बिट्ठलदास संस्कृत सीरीज ३४
कृष्णद्वैपायनमहर्षिव्यासविरचितम्
वराहपुराणम्
विस्तृत भूमिका, हिन्दी अनुवाद एवं श्लोकार्धानुक्रमणिका सहित
अनुवादक एवं सम्पादक
डॉ. सुरकान्त झा
वाराणसी
चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

विट्ठलदास संस्कृत सीरीज

३४

****

कृष्णद्वैपायनमहर्षिव्यासविरचितम्-

वराहपुराणम्

विस्तृत भूमिका, हिन्दी अनुवाद एवं श्लोकार्धानुक्रमणिका सहित

अनुवादक एवं सम्पादक

डॉ. सुरकान्त झा

ज्यौतिषशास्त्राचार्य, शिक्षाशास्त्री

पी-एच. डी

चौखम्बा कृष्णदास अकादमी

वाराणसी

भूमिका

उपहरणं विभवानां संहरणं सकलदुरितजालस्य। उद्धरणं संसाराच्चरणं वः श्रेयसेस्तु विश्वपते।।
भिक्षुकोऽपि सकलेप्सितदाता पेतभूमिनिलयोऽपिपवित्रः। भूतमित्रमपि योऽमयसत्री तं विचित्रचरितं शिवमीडे।।
सृष्टिस्थित्यन्तकरणीं ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाम्। स संज्ञां याति भगवानेक एव जनार्दनः ।।
प्रधानपुरुषव्यक्तकालास्तु प्रविभागशः। रूपाणि स्थितिसर्गान्तव्यक्तिसद्भावहेतवः ।।
व्यक्तं विष्णुस्तथाव्यक्तं पुरुषः काल एव च। क्रीडतो बालकस्येव चेष्टां तस्य निशामय ।।
एक एव शिवः साक्षात् सृष्टिस्थित्यन्तसिद्धये। ब्रह्मविष्णुशिवाख्याभिः कलनाभिर्विजृम्भते ।।

आदिकाल से ही भारतीय जनमानस पुराण को वेद की भाँति परमात्मा के निःश्वास भूत होने से अपौरुषेय मानकर उसके सम्मुख श्रद्धावनत रहने में गौरव की अनुभूति करता आ रहा है। इसीलिए भारतीय वाङ्मय में पुराणों की व्यापकता और उसकी महत्ता का गान भी अपरिमित एवं असन्दिग्ध रूप से निरन्तर होता आ रहा है। इस प्रकार पुराण भारत के अतीतकालीन धर्म और संस्कृति के मूर्तिमान् गौरव के प्रतीक स्वरूप में सदा प्रतिष्ठापित रहा है। जिस कारण आज के बौद्धिक वर्ग भी पुराणों के प्रभाव और उनके महत्त्व को रञ्चमात्र भी उपेक्षित नहीं कर पाये हैं। अतएव इस समय भी उन पुराणों के प्रति पूर्ववत् श्रद्धा और सम्मान का भाव यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होता है, जिस प्रकार सुदूर अतीत काल में रहा था।

चूँकि परमात्मा के निःश्वासभूत अपौरुषेय वेदों में भी पुराणों की चर्चा उपलब्ध होती है, अतः उनको वेदों के समान नित्य और प्रमाणस्वरूप बतलाया गया है। इस प्रसङ्ग में पुराण पाठ करने के उद्देश्य से अध्वर्यु यज्ञ के समय इस प्रकार प्रेरित करते हुए कहा गया है कि पुराण वेद है, वही यह वेद है। यथा—

तानुपदिशति पुराणम्। वेदः सोऽयमिति। किञ्चित् पुराणमाचक्षीत। एवमेवाध्वर्युः सम्प्रेषितः.........।।

शतपथ ब्राह्मण, १३/४/११३

फिर वहीं अथर्ववेद, बृहदारण्यकोपनिषद् आदि वैदिक साहित्यों में भी पुराणों के लिए अत्यन्त उच्चस्तरीय भावना व्यक्त की गई है।

इसी तरह पुराण की प्रशंसा और महत्ता को अभिव्यक्त करने हेतु व्यास ने महाभारत के प्रसङ्ग में कहा है कि—

''यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्।''

महाभारत, आदि पर्व, ५६.३३

पुराणों के विषय में व्यास ने तो यहाँ तक कह दिया कि जो वेदों में नहीं देखा गया, जो स्मृतियों में भी नहीं देखा गया तथा जो दोनों में नहीं देखा गया, वे सब भी पुराणों में सन्निहित हैं। यथा—

यन्न दृष्टं हि वेदेषु न दृष्टं स्मृतिषु द्विजाः। उभयोर्यन्न दृष्टं च तत्पुराणेषु गीयते।।

स्कन्द पुराण, ७-१-२-३२

पुराण की प्रशंसा करते हुए व्यास ने मत्स्यपुराण में उसे आदि शास्त्र कहा है। यथा—

''पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।''

चूँकि इस बात से समस्त विद्वान् प्रायः सहमत ही हैं कि श्रुति, स्मृति और पुराण; ये तीनों वैदिक सनातन धर्म के शाश्वत आधारस्तम्भ हैं, जिनमें श्रुति की प्रधानता है। अतः श्रुतिमूलक होने से स्मृति और पुराण की प्रमाणिकता भी निरन्तर रूप से आज भी सिद्ध होती है।

फिर मीमांसा, धर्मशास्त्र आदि शास्त्रीय ग्रन्थों में श्रुति और स्मृति विषयक विवेचन विस्तार से प्राप्त होता है। वैसे श्रुतिवाक्यों या वचनों की तुलनात्मक विचार करते हुए उसका वहाँ तर्कपूर्ण रीति से उचित स्थलों पर समन्वय भी किया गया है। अत: श्रुतिवाक्यों का यथार्थ रूप से उद्‌बोधन करने हेतु ही इतिहास और पुराणों की अपेक्षा अनुभव की जाती ही है। जैसे कि मनुस्मृतिकार ने कहा है कि—

''इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्। विभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरेदिति।''

इस प्रकार इन्हीं कारणों से आज भी भारतीय और भारतीयेतर समस्त विद्वान् एक मत होकर यह स्वीकार किया करते हैं कि पुराण का अधिकतर अंश प्रमाणिक है तथा वस्तुत: वे अत्यन्त महत्वपूर्ण और अनुकरणीय हैं। इतना ही नहीं, बहुत सारे वैदेशिक इतिहासविदों ने भी पुराणों में संग्रहणीय ऐतिह्य स्थलों के बल पर ही भारतीय प्राचीन इतिहास की रचना करने हेतु बाध्य होकर साहस प्रदर्शित किया है।

इस प्रकार उपरोक्त व्याख्यान पर दृष्टिपात करते हुए पुराण की ऐतिह्य विवेचना हेतु यहाँ यह जानना भी आवश्यक है कि अपौरुषेय वेदों और वैदिक वाङ्मय के अधिकतर ग्रन्थों के भाष्यकार, टीकाकार, निबन्धकर्त्ता और प्रवक्ता कौन-कौन से लोग हैं। ऐसे जनों के नाम क्रमश: शङ्कर, रामानुज, वल्लभ, मध्वाचार्य, निम्बार्क आदि हैं, ये लोग ही वेदादि शास्त्रों के ज्ञान को प्रकाशित करने वालों के समूह का प्रतिनिधित्व करते देखे जाते हैं। इस समय इस क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य करने वालों में प्रात: स्मरणीय करपात्री स्वामी, जिनका पूरा नाम श्री हरिहरानन्द सरस्वती था और इनके साथ गिरधर शर्मा चतुर्वेदी, माधवाचार्य आदि जैसे विद्वानों का नाम लिया जाता है। करपात्री स्वामी द्वारा रामायण मीमांसा, वेदार्थ पारिजात आदि ग्रन्थ तथा गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी द्वारा 'पुराण-परिशीलन', 'महर्षिकुलवैभवम्' आदि एवं माधवाचार्य द्वारा विरचित 'पुराण दिग्दर्शन' ग्रन्थ देखे जाते हैं। इन सबों के अतिरिक्त भी अन्यान्य बहुत सारे आचार्यों, मनीषियों, लेखकों का नाम लिया जा सकता है, जिन्होंने वैदिक वाङ्मय के साथ पुराणों के ऐतिह्य विवेचन करने के क्षेत्र में सार्थक प्रयास किया है।

ऐसे ही प्रयास करने वालों में आर्यसमाजी विद्वान् दयानन्द स्वामी, रघुनन्दन शर्मा, रामदेवाचार्य, भगवद्दत्त आदि विद्वानों का नाम प्रसिद्ध है। दयानन्द स्वामी द्वारा वेदभाष्य आदि ग्रन्थ, रघुनन्दन शर्मा द्वारा वैदिक सम्पत्ति और अक्षर विज्ञान, रामदेवाचार्य द्वारा भारतवर्ष का इतिहास तथा भगवद्दत्त द्वारा वेदविद्या निदर्शन, थ्योरी आफ क्रिएशन और भारतवर्ष का इतिहास आदि के सहित अन्यान्य आर्यसमाजी विद्वानों द्वारा विरचित ग्रन्थ वेदादि शास्त्रों के विवेचक प्रतिनिधि ग्रन्थ रूप में उपलब्ध होता है।

यहाँ वैदिक वाङ्मय के अनुशीलन क्रम में मैक्समूलर आदि के साथ अन्यान्य देशी और विदेशी विद्वानों का भी स्मरण अनुचित नहीं है।

इस प्रकार वेद और तन्मूलक शास्त्रीय ग्रन्थों में समय क्रम से ह्रास का होना भी माना जाता है। इसी कारण यहाँ पूर्व-पूर्वकालिन शास्त्र सर्वाधिक मान्य और प्रमाणिक माने गये हैं। अतएव समस्त विद्वान् जन अपने को मनुस्मृति के वचन से ही सन्नियन्त्रित करते हैं, जैसे कि मनुस्मृतिकार ने कहा है कि—

या वेद बाह्याः स्तुतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः। सर्वांस्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः।।
उत्पद्यन्ते च्यवन्ते न यान्यतोऽन्यानि कानिचित्। तान्यर्वाक्कालिकतया निष्फलान्यनृतानि च।।

—मनु०, अ० १२/९५-९६

अर्थात् वे स्मृतियाँ, जो वेदबाह्य हैं और जो कोई कुदृष्टियाँ हैं, वे सब परलोक में निष्फल होते हैं। क्योंकि उन सबको महर्षियों-मनीषियों ने तम:प्रधान माना है।

फिर इस वेद से भिन्न जिन शास्त्रों की रचना की जाती है, वे प्राय: विनष्ट हो जाया करते हैं। चूँकि वे सब अर्वाचीन होने से निष्फल तथा असत्य होते हैं। तथा च—

चातुर्वर्ण्यं त्रयोलोकाश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक्। भूतं भवत् भविष्यच्च सर्वं वेदात् प्रसिध्यति।।

मनु०, १२/९७

अर्थात् अलग-अलग चार वर्ण, तीन लोक, चार आश्रम, भूत, भविष्य और वर्तमान आदि सभी वेद से ही प्रसिद्ध होते हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि उपरोक्त वैदिक आर्य समाज वाद को मानने वाले जन चूँकि वेद की संहिताओं को परमेश्वर के निःश्वासभूत मानते हैं, परन्तु वैदिक वाङ्मय जैसे ब्राह्मणों, आरण्यकों, उपनिषदों, पुराणों और इस तरह के अन्य वेदानुगामी शास्त्रों की अपौरुषेयता को स्वीकार नहीं करते हैं। फिर वहीं पाश्चात्य विद्वानों की अपनी पृथक् सोचने की पद्धति है। अतएव ये लोग डार्विन के विकासवाद के अनुयायी होने से किसी भी ज्ञान-विज्ञान की दिव्यता को स्वीकार या ग्रहण नहीं करते हैं।

वेद और पुराणों का प्रादुर्भाव

इस प्रसङ्ग में पहले भी लिखा गया है कि मत्स्यपुराण में व्यास ने सर्वप्रथम ब्रह्मा से समुद्भूत पुराण को कहा है। वैसे ही अन्यत्र भी इस प्रकार से कहा गया है—

''अस्य महतो भूतस्य निःक्वसितमेतद्यद् ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानीति।'' —ब्र०उ०, २.८

अर्थात् ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास, पुराण, विद्या, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र और इन सबकी व्याख्या; ये सभी महान् भूतात्मा परमेश्वर के निःश्वास स्वरूप हैं। यही मन्त्र विना किसी परिवर्तन के शतपथब्राह्मण-४, प्र. ४ में भी दिया गया है।

अब यहाँ अथर्ववेद के दो उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

'ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रिताः ।।' —(अथर्व. ११-७।१।२४)

सबके अन्त में परमात्मा से ऋक्, साम, छन्द, पुराण, यजुर्वेद उत्पन्न हुए। अब दूसरा प्रमाण देखें—

'तमितिहासश्च पुराणाश्च गाथाश्च नाराशंसीश्चानुव्यचलन्। इतिहासस्य च वै स पुराणस्य गाथानां च नाराशंसीनां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद।।'—(अथर्व. का. १५प्र. ६ अनु. १ मं. १२)

उसके बाद इतिहास, पुराण, गाथा और नाराशंसियों का प्रियधाम है।

इस महत्त्वपूर्ण वैदिक परम्परा में पुराण का नाम सम्मान के साथ संकलित है। और भी देखें—

'सहोवाच ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासं पुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम् ।'

—(छान्दो. ७।१२)

उपरोक्त में भी वेदों की पवित्र परम्परा में पुराण शब्द को सादर उद्धृत किया गया है। एक उद्धरण और देखें—

'अरेऽस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेवैतद् यद् ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि।।' —(बृह. अ. ४, कं. ११. ब्रा. ५)

इस उद्धरण में पुराण शब्द का उल्लेख है। अब हम श्रुतियों के बाद स्मृतियों के उन कतिपय वचनों को उपस्थापित करेंगे, जिनमें पुराण शब्द का प्रसंगवश उल्लेख किया गया है, वे इस प्रकार हैं—

'स्वाध्यायं श्रावयेत् पित्र्ये धर्मशास्त्राणि चैव हि। आख्यानानीतिहासांश्च पुराणानि खिलानि च।।'

—(मनु. अ. ३।२३२)

श्राद्ध में पितरों को वेदपाठ, धर्मशास्त्र, आख्यान, इतिहास तथा पुराणों को सुनाये। इसी प्रसङ्ग को शतपथब्राह्मण में भी इस प्रकार उद्धृत किया गया है—

'नवमेऽहनि किञ्चित् पुराणमाचक्षीत।'

अर्थात् अश्वमेध यज्ञ के नवे दिन में कुछ पुराण पाठ करना चाहिये।

इस प्रकार उपरोक्त उद्धरण में चारों वेदों के समान इतिहास, पुराण आदि समस्त वेदानुगामी शास्त्रों को भी परमेश्वर का निःश्वासभूत ही कहा कया है। इस आधार पर निश्चय ही पुराण आदि भी वेद के समान नित्य शास्त्र ही हैं।

इसके अनन्तर छान्दोग्योपनिषद्, शतपथ ब्राह्मण, वायुपुराण आदि में भी पुराणों हेतु वेदसंज्ञा प्रदान की गई है। चूँकि सृष्टि के आदिकाल में ब्रह्मा के चारों मुखों से जैसे चारों वेद उत्पन्न हुए, उसी तरह ब्रह्मा के मुख से ही सर्वप्रथम शतकोटि श्लोकों वाला आदि पुराण संहिता का प्रादुर्भाव हुआ। चूँकि मत्स्यपुराण सुस्पष्ट स्वरों में आदि-आदि पुराणप्रसंगों को एकत्व का प्रतिपादक कहा है। जैसे—

''पुराणमेकमेवासीत् पुरा काव्यान्तरे नृप। त्रिवर्ग साधनं पुण्यं शतकोटि प्रविस्तरम्।।''

—मत्स्यपुराण, ५३/५

अर्थात् हे नृप! काव्यारम्भ के समय शतकोटि श्लोकात्मक त्रिवर्ग का साधन करने वाला पवित्र पुराण एक ही था। इस प्रसङ्ग में पद्मपुराण का कथन और भी अत्यन्त महत्त्व की सूचना प्रदान करता है। जैसे—

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्। अनन्यं च वक्त्रेभ्यो वेदान्ताय विनिर्गताः।।

—पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड, अ० १०४

अर्थात् ब्रह्मा ने समस्त शास्त्रों से पूर्व पुराणों का स्मरण किया कि उनके मुखों से वेदों का प्रादुर्भाव हुआ। इस कारण ब्रह्मा से उत्पन्न यह शतकोटि श्लोकात्मक पुराणसंहिता और चार लाख श्लोकात्मक इसी का सारसंक्षिप्त संस्करण सर्वप्रथम ब्रह्माण्डपुराण के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यही ब्रह्माण्डपुराण कालान्तर में अष्टादश पुराणों के स्वरूप में पृथक् हुआ। अतः ब्रह्माण्डादि पुराणों की यह आविर्भाव प्रक्रिया वेदोत्पत्ति के समान ही विवेचित हुई है।

अतः विद्वानों को जानना चाहिए कि यदि ये पुराण अत्यन्त अभिनव हैं तो इनकी चर्चा इतने समय पहले कैसे हुई और किसने की? अब आप एक उदाहरण याज्ञवल्क्यस्मृति का भी देखें—

'पुराणं न्यायमीमांसा-धर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः। वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश।।'

—(याज्ञ. अ. १३)

पुराण शब्द से अट्ठारह पुराण; न्याय शब्द से वैशेषिक तथा गौतमसूत्र; मीमांसा से पूर्वमीमांसा कर्मकाण्ड, उत्तरमीमांसा वेदान्त, धर्मशास्त्र से सभी स्मृतियाँ और छहों अंगों सहित चारों वेद, चौदह विद्यायें धर्म के स्थान हैं। महर्षि याज्ञवल्क्य वेद मन्त्रों के द्रष्टा तथा अत्यन्त प्राचीन ऋषि हैं। जब वे अपनी स्मृति में प्रथम स्थान पुराणों को दे रहे हैं, तो हम कैसे स्वीकार कर लें कि पुराणों की रचना प्रथम बार इसी कलियुग के प्रारम्भ में हुई है।

अब हम त्रेतायुग के आदिकवि एवं मनीषी महर्षि वाल्मीकि-कृत रामायण की ओर दृष्टिपात करते हैं। उन्होंने एक प्रसंग में पुराण शब्द का उल्लेख इस प्रकार किया है—

'एतच्छ्रुत्वा रहः सूतो राजानमिदमब्रवीत्। श्रूयतां तत्पुरावृत्तं पुराणे च मया श्रुतम्।।१।।

ऋत्विग्भिरुपदिष्टोऽयं पुरावृत्तो मया श्रुतः। सनत्कुमारो भगवान् पूर्वं कथितवान् कथाम्।।२।।

—(बाल का. सर्ग ९)

राजा दशरथ ने अपने पुत्र न होने की बात कही; यह सुनकर सूतजी ने राजा से कहा—सुनिये मैंने पुराण में यह सुना है। ऋत्विजों से सुनकर सनत्कुमार जी ने इस कथा को कहा कि आपके चार पुत्र होंगे। इस पर विचार कीजिये कि महर्षि वाल्मीकि त्रेता में हुए और वेदव्यास द्वापर युग के अन्त में, इससे हम कैसे मान ले कि पुराणों

का श्रीगणेश तभी से हुआ। इससे पुराणों की प्राचीनता स्वयं सिद्ध हो जाती है। अब हम महर्षि पतञ्जलि के महाभाष्य-पश्पशाह्निक का एक अंश उद्धृत करते हैं, जिसमें शब्द प्रयोग की क्षेत्र सीमा बतलायी गयी है—

'सप्तद्वीपा वसुमती त्रयोलोकाश्चत्वारो वेदाः साङ्गाः सरहस्या बहुधा भिन्ना एकशतमध्वर्युशाखाः सहस्त्रवर्त्मा सामवेदः एकविंशतिधा बह्वृच्यन्नवधाऽथर्वणो वेदो वाको वाक्यमितिहासः पुराणं वैद्यक-मित्येतावाञ्छब्दस्य प्रयोगविषयः' इति।

इन उपरोक्त दृष्टियों से जब हम देखते हैं, तो पुराणों की प्राचीनता और अपौरुषेयता वेद की तरह पूर्णरूप से सिद्ध हो जाती है।

मत्स्यपुराण के निम्न श्लोक को लेकर समाज में भ्रम फैलाया गया है कि वायुपुराण को लेकर कुल १९ महापुराण हो जाते हैं। अर्थ पर ध्यान दें और उक्त पुराण के विषयों का अध्ययन करें, तो यह भ्रम सर्वथा निर्मूल हो जायेगा। वह श्लोक इस प्रकार है—

'श्वेतकल्पप्रसङ्गेन धर्मान् वायुरिहाब्रवीत् ।
यत्र तद् वायवीयं स्याद्रुद्रमाहात्म्यसंयुतम् ।।
चतुर्विंशत्सहस्त्राणि पुराणं तदिहोच्यते ।। (मत्स्य ५३/५८)

श्वेतकल्प में वायुदेव ने जिसमें धर्मकथा और रुद्रमाहात्म्य का वर्णन किया है, वह वायवीय संहिता या वायुपुराण है; इसकी श्लोक संख्या चौबीस हजार है। वस्तुतः जिस वायुपुराण को देवीभागवत, कूर्मपुराण और अग्निपुराण ने अट्ठारह पुराणों में गिनाया है, वह 'शिवपुराण' है।

अतः यहाँ पर इस प्रसङ्ग में वेदाभिर्भाव का भी थोड़े में विवेचन प्रस्तुत किया गया है, जिससे पुराण की अपौरूषेयता और प्राचीनता और अधिक प्रमाणित होती है।

वेदाभिर्भाव कथन

चूँकि ॐ अर्थात् प्रणव से वेदों का आविर्भाव हुआ है। अतएव ब्रह्मा के काव्य स्वर स्वरूप सर्वप्रथम प्रणव की ही उत्पत्ति हुई, जैसे कि कहा गया है—

''ॐकारो चाथ शब्दश्च द्वावेव ब्रह्मणा पुरा। कण्ठं भित्वा विनिर्यातो तस्मान्माङ्गलिकावुभौ।।''

अर्थात् ॐकार और अथ शब्द; इन दोनों की उत्पत्ति सर्वप्रथम ब्रह्मा के कण्ठ से हुई। इस प्रसङ्ग में और भी कहा गया है, जैसे कि—

''ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपव्याख्यानम्।।

—माण्डूक्य उपनिषद् ११

अर्थात् 'ओम्' इस एक अक्षर के व्याख्यान स्वरूप समस्त वेदादि पुराण शास्त्र ही हैं। फिर कहा गया है कि—

''सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वारणि च यद् वदन्ति यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीभ्योमित्येतत्।।'' —कठ०, १/१५

''वेदः प्रणव एवाग्रे।।'' आ०पु०, ११/१७/११

''स ब्रह्मा ओमित्येतदक्षरमपश्यत्।।'' गोपथ पू०, १/१५

अर्थात् प्रत्येक वेद जिस एक पद का चिन्तन किया करते हैं, जिसे पाने हेतु समस्त तपस्याएँ की जाती हैं, वेद भी जिसका वर्णन किया करते हैं। जिसकी इच्छा से ऋषिगण ब्रह्मचर्य व्रत किया करते हैं, थोड़े में आपको वह पद बतलाता हूँ। वह एक पद 'ॐ' है।

अतः आदिकाल में प्रणव स्वरूप एक ही वेद हुआ करता था। फिर उस ब्रह्मा ने 'ॐ' इस अक्षर का साक्षात्कार किया। तत्पश्चात् कालान्तर में प्रणव के विस्तार स्वरूप त्रिपदा गायत्री का प्रादुर्भाव हुआ। उस प्रणव के 'अ उ म' इन

तीन वर्णों की व्याख्या स्वरूप ही गायत्री का प्रत्येक पाद हुआ। अतएव वही त्रिपदा ब्रह्मगायत्री ही वेदों का अपर स्वरूप हुआ। वैसे शास्त्रों में गायत्री को वेदमाता सम्बोधित किया गया है। जैसे—

''आगच्छ वरदे 'देवि' त्र्यक्षरे! ब्रह्मवादिनि!।
गायत्रि छन्दसां मातः! ब्रह्मयोनि नमोऽस्तुते।।''

अर्थात् हे त्र्यक्षरा ब्रह्मवादिनि वरदायिनि देवि! आओ, हे छन्दों की माला स्वरूपा ब्रह्मयोनि गायत्री देवि! आपको प्रणाम है। तथा च—

''वेदानां मातरं सावित्री सम्पदमुपनिषदमुपासते।''

गो०पू०, १/३९

''स्तुता मया वरदा वेदमाता।'' अथर्ववेद

कहा गया है कि ब्रह्मा द्वारा इस ब्रह्मगायत्री को विश्वामित्र ऋषि के लिए कही गयी थी। अतएव वैदिक वाङ्मय में विश्वामित्र को गायत्री का द्रष्टा ऋषि कहा गया है, एवं इसी त्रिपदा गायत्री से त्रिकाण्डात्मक वेदों का विस्तार हुआ। आदिकाल में ऋग्, यजुः, साम आदि भाग सहित अथर्ववेद नामक मन्त्रसंहिता ही एक वेद के स्वरूप में प्रकट थी। जिसे द्वापर युग में व्यास जी द्वारा ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद के साथ अथर्ववेद नाम से अलग संहिताओं की विरचना की गई।

इस प्रकार से यहाँ यह ज्ञात होता है कि वेदों और पुराणों का प्रादुर्भाव क्रम प्रायः एक समान ही रहा है। फिर जिस प्रकार वेदों को गायत्री का व्याख्यान स्वरूप कहा गया, उसी प्रकार इतिहासपरक पुराण को भी गायत्री का व्याख्यान स्वरू५ प्रस्तुत किया गया। यहाँ निरुक्तकार यास्क ने वेदों की साम्प्रदायिक परम्परा का वर्णन इस तरह से प्रस्तुत किया है। जैसे—

साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुस्तेऽवरेभ्यो साक्षात्कृतधर्मस्य उपदेशेन मन्त्रान् सम्प्रददुः।
उपदेशाय ग्लायन्तोऽवरे बिल्वग्रहणायेमं ग्रन्थं समाम्नासिषु वेदं च वेदाऽङ्गानि च।।

निरुक्त, ९.२

अर्थात् ऋषिजन धर्म का साक्षात्कार कराने वाले हुए। उनमें सामान्य क्षमता वाले जनों को साक्षात्कृत धर्म का उपदेश प्रदान किया। अकालान्तर में उपदेश ग्रहण करने में शिथिल क्षमता वाले जनों को सम्यक् मन्त्र ग्रहण करने में सक्षम करने की दृष्टि से इस निरुक्त नाम के ग्रन्थ और आयुर्वेदादि नाम से उपवेद और फिर वेदाङ्गों का उपदेश किया।

अन्यत्र इन शब्दों में निरुक्तकार के कथन की पुष्टि की गई है—-

''प्रवक्तारश्च ते खलु इतिहासपुराणस्य।''

न्यायदर्शन भाष्य, ४/१/६२

अर्थात् अवश्य ही वे ऋषि मन्त्र के सदृश इतिहासात्मक पुराण के प्रवक्ता रहे, न कि निर्माता।

इस तरह पाश्चात्य विद्वान् या उनके अनुयायी भारतीय या भारतीयेतर विद्वान डार्विन के विकासवाद के अनुरूप उपरोक्त कथन नहीं होने से उससे वे सभी भारतीय वैदिक शास्त्रों के सर्वसम्मत सिद्धान्त को अमान्य करते हैं।

व्यास विरचित पुराण

इस प्रकार उपरोक्त के अतिरिक्त भी कई अन्य विरोधाभास पुराणों के प्रसंग में हमारे सामने उपस्थित होता है। अतीतकालीन परम्परा का अनुसरण करने पर हमारे समक्ष ''अष्टादशपुराणानि कर्त्तां सत्यवती सुतः'' अर्थात् सत्यवती के पुत्र व्यास ही पुराणों के रचनाकार सिद्ध होते हैं। इसके अनुरूप आधुनिक पाश्चात्य विद्वान् ईसा के उत्तरकाल में गुप्त आदि सम्राटों के काल में पुराणों की रचना हुई, कहा करते हैं। इसके लिए वे विद्वान् मन्त्रकाल, ब्राह्मणकाल, सूत्र काल, पुराणकाल आदि अनेक काल विभागों की परिकल्पना भी करते हैं। जो उपरोक्त विवेचन से सही नहीं हैं। उपरोक्त प्रकार

वैदिक वाङ्मय के अध्ययन से स्पष्ट रूप से नि:सरित होता है कि पाश्चात्य विद्वानों ने जो काल विभाग प्रदर्शित किया है, वह भारतीयों द्वारा कदापि स्वीकार्य नहीं है।

भारतीय ऐतिह्य परम्परा के अनुसार वेदशाखाएँ जैसे—ब्राह्मण, श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र, आयुर्वेदीय संहिताएँ आदि ग्रन्थ प्राय: पुराण के ही समकालीन हैं। कहने की आवश्यकता यह है कि जिन ऋषियों ने ब्राह्मण ग्रन्थों की संरचना की, उन्होंने ही कल्पसूत्र, आयुर्वेद आदि विभिन्न संहिताओं का भी संकलन किया।

चूँकि ''मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्'' इस मीमांसा वचन के स्वरशात् मन्त्र और ब्राह्मण दोनों का नाम वेद ही है और उस वेद कथित अश्वमेध प्रकरण में नवें दिन पुराण पाठ करने का आदेश प्रदान किया गया है। जैसे—**''नवमेऽहनि किञ्चित् पुराणमाचक्षीत''** मीमांसा। फिर मनुस्मृतिकार ने भी पुराण पाठ करने का इस प्रकार निर्वचन किया है—

''स्वाध्यायं श्रावयेत् पित्र्ये धर्मशास्त्राणि चैव हि। आख्यानानीतिहासाँश्च पुराणानि खिलानि च।''

—मनु० स्मृ०, ३/२३२

अत: यहाँ यह प्रश्न भी उठ जाता है कि जो व्यास द्वापरयुग के अन्त में जन्मा हो, उस व्यास के द्वारा अष्टादश पुराणों की रचना हुई, यह कैसे माना जाय?

वैसे इस प्रश्न का उत्तर उपरोक्त विवेचन में आ चुका है कि पुराण ब्रह्मा के द्वारा प्रादुर्भूत हैं, जिसका पुनर्वाचन मात्र व्यास के द्वारा किया गया, इसी कारण उन्हें पुराणों का रचयिता कालान्तर में मान लिया गया। वैसे इस प्रसङ्ग की स्पष्टता हेतु वैदिक वाङ्मय से और अन्यान्य प्रमाण उपस्थापित करने की चेष्टा आगे की जा रही है।

चूँकि अश्वमेध आदि यज्ञ पुराणकर्त्ता व्यास के पूर्व भी राजा सगर, रामचन्द्रजी आदि विभिन्न चक्रवर्ती राजाजनों के द्वारा भी किया गया था, जो सर्वविदित है। जिसमें पुराण पाठ करने की व्यवस्था भी थी। उपरोक्त मीमांसा के वचन से यह बात स्वयं सिद्ध ही है। अत: यह मान लेना चाहिए कि त्रेतायुगीन सगर आदि राजाजनों के द्वारा सम्पादित किये गये अश्वमेध यज्ञों में भी पुराणों का पाठ अवश्य ही किया गया होगा। अतएव यहाँ यह स्वीकार करना पड़ता है कि वैदिक वाङ्मय में पुराणों के वाचन का विधान होने के कारण यह पुराण द्वापरयुगीन व्यास से अत्यन्त प्राचीन होना चाहिए।

यहाँ हमने पूर्व में बतलाया है कि वेद और पुराण दोनों अपौरुषेय हैं। वहाँ विविध प्रमाण भी उपस्थापित किये गये हैं। वस्तुत: वेदों में पुराण का उल्लेख होने से यह स्वयं सिद्ध हो जाता है कि व्यास पुराणों के प्रणेता नहीं हैं, तो फिर पुराण ग्रन्थों में रचयिता के रूप में भगवान् कृष्ण द्वैपायन व्यास का नाम कैसे जुड़ गया।

इसका निराकरण इस प्रकार है कि इस समय आयुर्वेद के क्षेत्र में 'चरकसंहिता' ग्रन्थ प्रसिद्ध और उपलब्ध है, जिसे अग्निवेश नाम के मुनि द्वारा रचा गया था; परन्तु कालान्तर में उसे चरक मुनि द्वारा प्रतिसंस्कारित किये जाने के कारण, उस ग्रन्थ को आज चरकसंहिता नाम से ही जाना जाता है और सामान्यजन उस संहिता को चरक की कृति ही समझा करते हैं।

इसी प्रकार पुराण ग्रन्थ अत्यन्त प्राचीन और अपौरुषेय हैं और भगवान् कृष्ण द्वैपायन व्यास जी ने अपने काल में उनका प्रतिसंस्कार कर दिया, फलस्वरूप पुराण उस व्यास के नाम से सुख्यात हो गया। इस प्रकार के प्रमाण छान्दोग्योपनिषद्, बृहदारण्यकोपनिषद्, तैत्तिरीय आरण्यक आदि ग्रन्थों में भी बहुत-सा उपलब्ध है।

इस प्रसङ्ग में और यह कहना है कि विष्णुपुराण, वायुपुराण, ब्रह्माण्ड पुराण आदि में कहा गया है कि महर्षि वेदव्यास ने सर्वप्रथम आख्यानों, उपाख्यानों, गाथाओं और कल्पोक्तियों का संग्रह कर एक पुराण संहिता बनायी थी। कालान्तर में उनके ही द्वारा अपने शिष्यों में श्रेष्ठ लोमहर्षण को अपनी पुराण संहिता का उपदेश किया गया था। फिर लोमहर्षण ने अपनी पुराणसंहिता का निर्माण किया। उस लोमहर्षण द्वारा भी अपने छ: शिष्यों की संहिता का छ: पाठक्रम के अनुरूप उपदेश दिया। तत्पश्चात् उनके छ: शिष्यों में से कश्यप, सावर्णि, शांखपायन, लोमहर्षण आदि ने अपनी-अपनी संहिताओं की रचना की। एवम्प्रकारेण कश्यप, सावर्णि, शांसपायन, रोमहर्षण आदि द्वारा चार पुराण संहिताएँ अपने

स्वरूप को धारण कर सकीं। इन चार संहिताओं में से तीन संहिताएँ रोमहर्षण की संहिता के ही अनुरूप थीं। इन चार संहिताओं में चार पाद भी थे, जैसा कि कहा गया है—

''सर्वास्ताः हि चतुष्पादाः।''

—वायुपुराण, १/६९/५९

ये सभी समस्त विषयों का ही प्रतिपादन कर रही थीं। जैसे कि—

''सर्वाश्चैकार्थवाचिकाः।''

—वायु पुराण, १/६९/५९ब

किन्तु, वेदशाखाओं की तरह उनका शब्दानुक्रम भिन्न होता था। जैसे कि—

''पाठान्तरे पृथग्भूता वेदशाखा यथातथा।''

फिर शांसपायनी संहिता के अतिरिक्त अन्य तीन संहिताओं में ४००० चार हजार श्लोक थे, किन्तु शंसपायनी संहिता में छियासी हजार ८६००० ऋक् या श्लोक थे। जैसे कि कहा गया है कि—

''चतुः साहस्त्रिकाः सर्वाः शांसपायनिकामृते।
शांसपायनिका चान्या नोदनार्थ विभूषिता।
सहस्त्राणि ऋचामष्टौ षट्शतानि तथैव च।।''

वैसे कहा जाता है कि भविष्य, मत्स्य, पद्म, वामन आदि पुराणों में इन तात्विक संहिताओं का आदिपुराण के नाम से उल्लेख प्राप्त होता है। चूँकि वे मूल संहिताएँ इस समय उपलब्ध नहीं ही हैं। इस प्रकार रोमहर्षण के अलावा अन्य संहिताओं के निबन्धक कतिपय पुराणों और महाभारत में प्रश्नकर्त्ता अथवा प्रवक्ता के रूप में देखे जाते हैं।

इस तरह सावर्णि को वायु० १/२१/१ में, कश्यप को वायु० १/७/१ में और शांसपायन को वायु० १/४९/९६, ५६/१/२, ५७/८६/६, ६०/३३/३४, २/१/१, ४/१, १०/२, ११/२४, २७/१६ आदि में प्रश्नकर्त्ता और वायु० २/४१/६७ आदि में प्रवक्ता कहा गया है। वायु और ब्रह्माण्ड; इन दो पुराणों का ही पाठ इस समय चार पादों में बँटा हुआ देखा जाता है।

वैदिक धर्म और सामान्य जन

पुराणों में वैदिक धर्म की चर्चा विस्तार से प्राप्त होती है। वह सनातन वैदिक धर्म कर्म, ज्ञान और उपासना नाम से प्रत्यक्ष रूप से तीन स्वरूपों में हमारे समक्ष प्रकट होता है। ये तीन स्वरूप अपने स्थान पर सर्वाङ्गसम्पन्न हैं। कहने का आशय यहाँ यह है कि जब जो कोई जन कर्म का आश्रय करता है तो उसके लिए कर्म ही प्रधान होना चाहिए। चूँकि कहा गया है कि—

''कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविशेत् शतं समाः।''

—यजुर्वेद, ४०/२

फिर इस कर्म के आश्रय से स्वर्ग आदि फलों के साथ मोक्ष की प्राप्ति भी होती है। अन्यत्र शास्त्र का आदेश है कि 'ज्योतिष्टोमेन स्वर्गकामो यजेत्।' इस कर्मक्षय की स्थिति में यज्ञ के हविर्भाग को प्राप्त करने वाले देवगण इन्द्र, अग्नि आदि कहे गये हैं और इस कर्माश्रय का विवेचन करने वाले ग्रन्थ मन्त्रसंहिता और ब्राह्मण ग्रन्थ कहे गये हैं।

अब ज्ञानमार्ग की चर्चा करते हैं। इस ज्ञानाश्रय में ज्ञान की प्राप्ति करना ही मुख्य लक्ष्य कहा गया है। कहने का तात्पर्य यह है कि ज्ञान की प्राप्ति हो जाने पर ही सामान्य जन को उसके जीवन की समरसता का अनुभव हो पाता है। अतएव कहा गया है कि 'तमेव विदित्वाति मृत्युमेति, नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय' अर्थात् ईश्वर का साक्षात्कार करने से ही सामान्य जन मात्र को मोक्ष प्राप्त हो सकता है और इस प्रकार ज्ञान के बिना मुक्ति का कोई और उपाय नहीं कहा जा सकता है।

इस ज्ञानाश्रय की यह एक विशेषता ही है, इसका आश्रयण करने वाले सामान्य जन को इन्द्र आदि देवों का पूज्यत्व त्याग कर केवल एक 'ब्रह्म' मात्र ही का आश्रयण करना चाहिए, क्योंकि उनके लिए वे ही परम श्रेष्ठ तत्व है। उसी ब्रह्म का यथार्थ ज्ञान करना सामान्य जन मात्र का लक्ष्य हुआ करता है। ज्ञानाश्रय कराने हेतु मार्गदर्शक रूप प्रमुख ग्रन्थ आरण्यक, उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र, पुराण आदि हैं।

अब वैदिक धर्म के तृतीय उपासना मार्ग की चर्चा करते हैं। इस उपासना का आश्रयण करने में ईश्वरोपासना ही प्रधान माना गया है। यहाँ ईश्वर का ही महत्व है। जिस प्रकार नारद भक्ति सूत्र में बतलाया गया है कि 'सा तु कर्मज्ञानयोगेभ्योऽत्यधिकतरा' अर्थात् उपासना कर्ममार्ग, ज्ञानमार्ग और योगमार्ग से भी श्रेष्ठ कहा गया है। इस उपासना का आश्रय ग्रहण करने वाले सामान्य जन भी इससे 'मोक्ष' आदि जैसे फलों को सहज ही प्राप्त कर लेता है।

इस उपासना मार्ग में शंकर, विष्णु, गणेश, दुर्गा आदि आदि देवताओं की उपासना करने के लिए कहा गया है। जो उपासकों हेतु निश्चय ही अभीष्ट की सिद्धि प्रदान करने वाले होते हैं। इस उपासना मार्ग का मुख्य प्रतिपादक ग्रन्थ अष्टादश पुराणों को ही माना गया है।

इस प्रकार सनातन वैदिक धर्म का आश्रयण करने वाले सामान्य जन स्वेच्छा से उपरोक्त तीनों मार्गों में से किसी एक को या दो को या तीनों को अपना कर जीवन लक्ष्य की प्राप्ति का प्रयास कर सकता है। चूँकि उपरोक्त कर्म, ज्ञान और उपासना मार्ग निश्चय ही एक-दूसरे का पूरक या सहायक ही है। इनमें परस्पर अन्योन्याश्रय सम्बन्ध होने से किसी भी प्रकार से विरोधाभास का सामना नहीं करना पड़ता है।

अत: कहा जा सकता है कि कर्म मार्ग का आश्रयण करने वाला जन ज्ञान भाग के साथ उपासना भाग का भी सुखपूर्वक आश्रयण कर सकता है, क्योंकि श्रीभास्करराय आदि महान् उपासकों ने भी सोमयाग जैसे महान्-महान् यज्ञ सम्पन्न करने में सफल हुए।

कर्म, ज्ञान और उपासना में से आप जो कोई मार्ग अपनायें, कोई चिन्ता नहीं। प्रत्येक मार्ग का आश्रयण करने वाला अन्य मार्ग के आश्रयण करने वाले का सम्मान ही किया करते हैं। इसका उदाहरण यह हो सकता है कि महान् तान्त्रिक भास्कर राय उपासना मार्ग के आचार्य थे। उनके द्वारा विरचित 'नित्यषोडशिकार्णव तन्त्र', 'वरिवस्या रहस्य' आदि तन्त्रशास्त्र के प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं।

फिर आद्यशंकराचार्य ज्ञानमार्ग के महान् आचार्य होकर भी वे त्रिपुरसुन्दरी और शंकर के परमोपासक भी माने जाते हैं। जो उनके द्वारा विरचित 'सौन्दर्यलहरी' आदि स्तोत्र ग्रन्थ के अध्ययन करने से सिद्ध हो जाता है। अत: कहना चाहिए कि वैदिक धर्म के उपरोक्त तीनों मार्ग पुराणों से होकर सामान्य जन को जीवन लक्ष्य की ओर आकृष्ट करते हुए अन्तत: 'मोक्ष' तक की यात्रा को सहज व सरल बनाकर उनके समक्ष प्रस्तुत करते हैं।

पुराणों की दृष्टि में सृष्टिक्रम

सृष्टिक्रम या उसकी उत्पत्ति का रहस्य प्रत्येक चिन्तनशील जन्मजात जिज्ञासु प्राणी के मन में समुत्कण्ठा उत्पन्न करता रहा है। इस जगत् में विद्यमान पृथिवी, सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र कोटि-कोटि जीव-जन्तुओं की प्रजातियाँ, सुख व दु:ख, जीवन-मरणादि सभी कुछ अनादि-काल से आकर्षण और विचार का विषय रहा है।

यही कारण है कि जहाँ वैदिक ऋषियों ने गहन-चिन्तन मनन का परिचय प्रस्तुत करते हुए एतत् सम्बन्धी अपने निष्कर्षात्मक आधार को वेदोक्त नासदीय-सूक्त (ऋ १०-१२९), पुरुष-सूक्त (१०.९०) वाक्-सूक्त (१०.१२५), प्रजापति-सूक्त (१०.१२१), अघमर्षण-सूक्त (१०.७२) के माध्यम से परिपुष्ट ही किये हैं, वहीं अनेक मन्त्रों, ब्राह्मण-ग्रन्थों एवं उपनिषद् वाक्यों में सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति, लय तथा प्राक्-सृष्टि सम्बन्धी विचारों को प्रस्तुत किया गया है।

स्मृतियों का विशाल वाङ्मय भी चिन्तन की इस धारा से समृद्ध है। सृष्टि-विवेचन की दृष्टि से पुराणों का योगदान भी प्रभूत है। पुराणों के लक्षण में जैसा पहले भी कहा गया है—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च। वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् ।।

इस प्रकार सृष्टि, प्रलय, वंश, मन्वन्तर, वंश्यानुचरित को पुराणों का प्रतिपाद्य विषय बतलाया गया है। प्राय: सभी पुराणों में सर्ग-प्रक्रिया या जगदुत्पत्ति का क्रम एक जैसा निरूपित किया गया है। सबने इस दृश्यमान प्रपञ्च के मूल में एकमात्र, सनातन, अव्यय, तत्त्व मात्र की स्थिति को स्वीकार किया है।

अपनी-अपनी रुचि या 'यादृशीभावना यस्य, सिद्धिर्भवति तादृशी' परिभाषा व सिद्धान्तवश अपने-अपने श्रद्धाभागवत आग्रह के अनुसार वैष्णवपुराणों में जहाँ इसे 'विष्णु'[१] कहा गया है; वहीं शैवपुराणों में इसे शिव[२] के नाम से एवं शाक्त-पुराणों में देवी[३] के नाम से अभिहित किया गया है। नामरूप के भावनात्मक भेद के उपरान्त भी इनकी तत्त्वत: एकता में सबकी श्रद्धा है। जहाँ तक विष्णुपुराणोक्त सृष्टि-चिन्तन का सन्दर्भ है; इसके अनुसार—

नाहो न रात्रि नभो न भूमिर्नासीत्तमोज्योतिरभूच्च नान्यत्।
श्रोत्रादिबुद्ध्यानुपलभ्यमेकं प्राधानिकं ब्रह्म पुमांस्तदासीत्।।[४]

सृष्टिसर्जना के पूर्व न दिन था, न रात्रि थी, न आकाश था, न पृथिवी थी, न अन्धकार था, न प्रकाश था। उस समय केवल एक अव्यक्त ब्रह्म ही स्थित था। इस ब्रह्म के विवरण में कहा गया है कि वह पर से पर, परमश्रेष्ठ, अन्तरात्मा में स्थित परमात्मा, रूप, वर्ण, नाम और विशेषण आदि से रहित, उत्पत्ति, अस्तित्व, वृद्धि, विपरिणाम, अपक्षय और विनाश इन छहों विकारों से सर्वथा अभावयुक्त था।

यह ब्रह्म ही व्यक्त और अव्यक्त जगत् के रूप से तथा इसके साक्षी पुरुष और काल के रूप से स्थित है। वहाँ इस ब्रह्म को 'विष्णु' का नाम दिया गया है, साथ ही यह भी वर्णित है कि समस्त विश्व को अपने में समाहित किए हुए होने के कारण इन्हें 'वासुदेव' नाम से भी अभिहित किया गया है।[५] वहाँ वर्णन है कि जनार्दन सृष्टि के त्रिविध प्रयोजनरूप सृष्टि-स्थिति-संहार के निमित्त क्रमश: ब्रह्मा, विष्णु और शिव इन संज्ञाओं को भी धारण करते हैं—

सृष्टिस्थित्यन्तकरणीं ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाम् । स संज्ञां याति भगवानेक एव जनार्दन:।।[६]

विष्णुपुराण में प्रधान, पुरुष, व्यक्त और काल ये परमात्मा विष्णु के चार रूप कहे गये हैं। विष्णु इन चार रूपों या शक्तियों के सहयोग से संसार की सर्जना, पालन एवं संहार करते हैं। यह व्यक्ताव्यक्त रूप संसार परमात्मा विष्णु के लिए एक क्रीड़ा या खेल के समान ही है। जिस प्रकार बालक खेल-खेल में अनेक प्रकार के खिलौने बनाया करते हैं, उसी प्रकार विष्णु भी अनन्त सृष्टि की सर्जना करते है—

---

१. ऊँ० नमो विष्णवे तस्मै नमस्तस्मै पुन: पुन:। यत्र सर्वं यत: सर्वं य: सर्वं सर्वसंश्रय: ।। विष्णुपुराण १/२०/८४

२. यच्चादौ हि समुत्पन्नं निगुर्णात्परमात्मन: तदेवं शिवसंज्ञं हि वेदं वेदान्तिनो विदु: ।
तस्मात्प्रकृतिरूत्पन्ना पुरुषेण समन्विता ताभ्यान्तप: कृत तत्र मूलस्ये च जले सुधी: ।। शिवपुराण ४२/२

३. ज्ञातं मयाखिलमिदं त्वयि सन्निविष्टं त्वत्तोऽस्य सम्भवलयावपि मातरद्य ।
शक्तिश्च तेऽस्य करणे विततप्रभावा, ज्ञाताधुना सकललोकमयीतिं नूनम् ।। देवीभागवत ३/४/३०

४. विष्णुपुराण; १/२/२३

५. पर: पराणां परम: परमात्मात्मसंस्थित: रूपवर्णादिनिर्देशविशेषणविवर्जित: ।
सर्वत्रासौ समस्तं च वसत्यत्रेति वै यत: तत: स वासुदेवेति विद्वद्भि: परिपठयते ।। विष्णुपुराण १/२/१०-१२

६. विष्णुपुराण १/२/६६

प्रधानपुरुषव्यक्तकालास्तु प्रविभागशः। रूपाणि स्थितिसर्गान्तव्यक्तिसद्भावहेतवः ।।
व्यक्तं विष्णुस्तथाव्यक्तं पुरुषः काल एव च। क्रीडतो बालकस्येव चेष्टां तस्य निशामय ।।[१]

सर्ग-काल उपस्थित होने पर परब्रह्म सर्वभूतेश्वर, सर्वात्मा, परमेश्वर, हरि अर्थात् विष्णु अपनी इच्छा से विकारी प्रधान और अविकारी अर्थात् पुरुष में प्रविष्ट होकर क्षोभ उत्पन्न करते हैं। जिस प्रकार क्रियाशील न होने पर भी गन्ध अपनी सन्निधिमात्र से ही मन को क्षुभित कर देता है, उसी प्रकार परमेश्वर अपनी सन्निधिमात्र से ही प्रधान और पुरुष को प्रेरित करते हैं, इस प्रकार विष्णुपुराणानुसार वह पुरुषोत्तम ही क्षोभ्य एवं क्षोभक दोनों है—

प्रधानपुरुषौ चापि प्रविश्यात्मेच्छया हरिः। क्षोभयामास सम्प्राप्ते सर्गकाले व्ययाव्ययौ ।।
यथा सन्निधिमात्रेण गन्धः क्षोभाय जायते। मनसो नोपकर्तृत्वात्तथाऽसौ परमेश्वरः।।
स एव क्षोभको ब्रह्मन् क्षोभ्यश्च पुरुषोत्तमः।[२]

ब्रह्मा आदि समस्त ईश्वरों के ईश्वर वे विष्णु ही समष्टि-व्यष्टि रूप, ब्रह्मादि जीवरूप तथा महत्तत्त्व रूप से स्थित हैं। विष्णुपुराण के अनुसार जब गुणों की साम्यावस्था रूप प्रधान विष्णु के क्षेत्रज्ञ रूप से अधिष्ठित हुआ तब उससे महत्तत्त्व की उत्पत्ति हुई—

स सङ्कोचविकासाभ्यां प्रधानत्वेऽपि च स्थितः। विकासाणुस्वरूपश्च ब्रह्मरूपादिभिस्तथा ।।
व्यक्तस्वरूपश्च तथा विष्णुः सर्वेश्वरेश्वरः । गुणसाम्यात्ततस्तस्मात्क्षेत्रज्ञाधिष्ठितान्मुने।
गुणव्यञ्जनसम्भूतिः सर्गकाले द्विजोत्तम ।।[३]

विष्णुपुराण के अनुसार महत्-तत्त्व को प्रधान या प्रकृति ने आवृत्त कर लिया। यह महत्-तत्त्व सात्त्विक, राजस और तामस भेद से तीन प्रकार के हैं। जिस प्रकार बीज छिलके के समभाव से ढँका रहता है; उसी प्रकार यह त्रिधात्मक महत्-तत्त्व प्रधान-तत्त्व से व्याप्त रहता है—

प्रधानतत्त्वमुद्भूतं महान्तं तत्समावृणोत् । सात्त्विका राजसश्चैव तामसश्च त्रिधा महान् ।।[४]

त्रिविध महत्तत्त्व से ही सात्त्विक, राजस और तामस तीन प्रकार का अहंङ्कार उत्पन्न हुआ। वह त्रिगुणात्मक होने से भूत और इन्द्रिय आदि का कारण है और प्रधान से जैसे महत्तत्त्व व्याप्त है, वैसे ही महत्तत्त्व से अहङ्कार व्याप्त है—

त्रिविधोऽयमहङ्कारो महत्तत्त्वादजायत ।।
भूतेन्द्रियाणां हेतुस्स त्रिगुणत्वान्महामुने । यथा प्रधानेन महान्महता स तथावृतः ।।[५]

विष्णुपुराण में इस महत्-तत्त्व सें पञ्च-तन्मात्राओं एवं पञ्च-महाभूतों की उत्पत्ति का क्रम बतलाते हुए कहा गया है कि तामस-अहंकार ने विकृत होकर शब्द-तन्मात्रारूप और उससे शब्द-गुण वाले आकाश को उत्पन्न किया। उस तामस-अहङ्कार ने शब्द-तन्मात्रारूप आकाश को व्याप्त किया। फिर आकाश ने विकृत होकर; स्पर्श-तन्मात्रा को उत्पन्न किया; उससे बलवान् वायु हुआ, उसका गुण स्पर्श माना गया। शब्द-तन्मात्रा रूप आकाश ने स्पर्श-तन्मात्रावाले वायु को आवृत्त किया। पुनः विकुर्वाण वायु ने भी रूप-तन्मात्रा को उत्पन्न किया। तन्मात्रायुक्त वायु से तेज का प्रादुर्भाव हुआ, जिसका गुण रूप कहा गया। स्पर्श-तन्मात्रारूप वायु ने रूप-तन्मात्रा वाले तेज को आवृत्त किया। रूप-तन्मात्रा तेज ने

---

१. विष्णुपुराण १/२/१७-१८
२. विष्णुपुराण १/२/२९-३०
३. विष्णुपुराण १/२/३१-३३
४. विष्णुपुराण १/२/३४
५. विष्णुपुराण १/२/३६

विकारयुक्त होकर रस-तन्मात्रा की सृष्टि की। रस-तन्मात्रा से रस गुण वाला जल हुआ। रस-तन्मात्रा वाले जल को रूप तन्मात्रावाले तेज ने व्याप्त कर लिया। रस-तन्मात्रा-रूप जल ने विकार को प्राप्त होकर गन्ध-तन्मात्रा का सृजन किया। उससे पृथिवी उत्पन्न हुई, जिसका गुण गन्ध को कहा गया है।

तन्मात्राओं में विशेष भाव नहीं होते इसलिए उनकी अविशेष संज्ञा है। वे अविशेष तन्मात्राएँ शान्त, घोर और मूढ़ नहीं है अर्थात् उनका सुख, दुःख या मोहरूप से अनुभव नहीं हो सकता। दस-इन्द्रियाँ, राजस अहङ्कार से और उनके अधिष्ठाता देवता सात्त्विक अहङ्कार से उत्पन्न हुए कहे जाते हैं। इस प्रकार इन्द्रियों के अधिष्ठाता दस देवता और ग्यारहवाँ मन सात्त्विक है।

त्वक्, चक्षु, नासिका, जिह्वा और श्रोत्र—ये पाँचों बुद्धि की सहायता से शब्दादि विषयों को ग्रहण करने वाली पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ है। पायु, उपस्थ, हस्त, पाद और वाक् ये पञ्च कर्मेन्द्रियाँ हैं। आकाश, वायु, तेज, जल और पृथिवी ये पञ्च भूत क्रमशः शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध पाँच गुणों से युक्त हैं—ये पञ्च-भूत शान्त, घोर और मूढ़ है।[१] परस्पर मिलने पर ये सभी भूत शान्त, घोर और मूढ़ प्रतीत होते हैं। पृथक्-पृथक् तो पृथिवी और जल शान्त है, तेज और वायु घोर है तथा आकाश शान्त है—
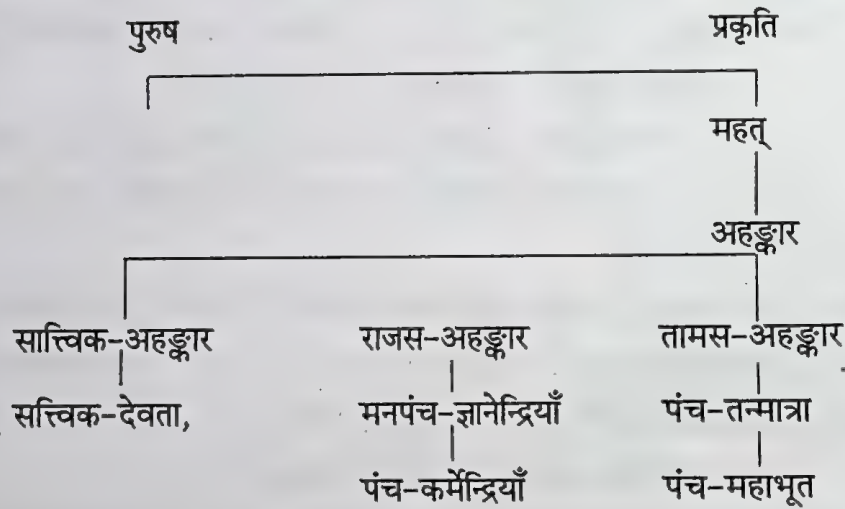
इन पञ्च-महाभूतों में यों तो पृथक्-पृथक् नाना शक्तियाँ हैं; किन्तु वे पूर्णतः मिले बिना संसार की रचना नहीं कर सके, एक-दूसरे के आश्रय से रहने वाले और एक ही संघात की उत्पत्ति के लक्ष्यवाले महत् तत्त्व से विशेष पर्यन्त प्रकृति के इन सभी विकारों ने पुरुष से अधिष्ठित होकर परस्पर सर्वथा ऐक्य भाव को प्राप्त होकर प्रधान-तत्त्व के अनुग्रह से अण्ड की उत्पत्ति की—

नानावीर्याः पृथग्भूतास्ततस्ते संहतिं बिना। नाशक्नुवन्प्रजाः स्रष्टुमसमागम्य कृत्स्नशः।।
समेत्यान्योन्यसंयोगं परस्परसमाश्रयाः। एकसङ्घातलक्ष्याश्च सम्प्राप्यैक्यमशेषतः।।
पुरुषाधिष्ठित्वाच्च प्रधानानुग्रहेण च। महदाद्या विशेषान्ता ह्यण्डमुत्पादयन्ति ते।।[१]

विष्णुपुराण वर्णन करता है कि, जल के बुलबुले के समान क्रमशः भूतों से बढ़ा हुआ वह गोलाकार और जल पर स्थित महान् अण्ड ब्रह्म अर्थात् हिरण्यगर्भ रूप विष्णु का अति उत्तम प्राकृत आधार हुआ। उसमें वे अव्यक्त स्वरूप जगत्पति विष्णु व्यक्त हिरण्यगर्भरूप से स्वयं ही विराजमान हुए—

१. विष्णुपुराण १/२/५२-५४

तत्राव्यक्तस्वरूपोऽसौ व्यक्तरूपो जगत्पतिः। विष्णुर्ब्रह्मस्वरूपेण स्वयमेव व्यवस्थितः ।।[१]

उन हिरण्यगर्भ का सुमेरू, उल्ब, पर्वत, जरायु तथा समुद्र गर्भाशयस्थ रस था। उस अण्ड में ही पर्वत और द्वीपादि सहित समुद्र, ग्रह सहित सम्पूर्ण लोक, देव, असुर, मनुष्य आदि विविध प्राणिवर्ग हुए।[२]

विष्णुपुराण में सृष्टि-कर्त्ता ब्रह्मा के ध्यान, अनुध्यान से सृष्टि की उत्पत्ति परम्परा अनेकत्र वर्णित है। इस दृष्टि से प्रथम-अंश के पाँचवें, सातवें, आठवें और प्रथम अध्याय दर्शनीय हैं। इस सृष्टि परम्परा का अध्ययन करने पर इनका चार प्रकार से वर्गीकरण किया जा सकता है— १. ब्राह्मी, २. रौद्री, ३. अङ्गजा, ४. मैथुनी।

ब्राह्मी-सर्ग—विष्णुपुराण के प्रथम अंश के सातवें अध्याय में ब्राह्मी सर्ग का वर्णन प्राप्त होता है। प्रजापति के ध्यान करने पर उनके देह-स्वरूप भूतों से शरीर और इन्द्रियों के सहित मानस प्रजा उत्पन्न हुई। इस प्रकार ब्रह्मा के शरीर से ही चेतन जीवों का प्रादुर्भाव हुआ। ब्रह्मा से उत्पन्न इन ऋषियों की संख्या नव है। इन ऋषियों के नाम इस प्रकार हैं—भृगु, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अंगिरा, मरीचि, दक्ष, अत्रि और वशिष्ठ। पुराणों में इन्हें नौ ब्रह्मा माना गया है। प्रजापति ने पुनः भूति सम्भूति, क्षमा, प्रीति, सन्नति, उर्ज्जा, अनसूया तथा प्रसूति इन नौ कन्याओं को उत्पन्न कर इन्हें उन महात्माओं की पत्नी होने का गौरव प्रदान किया, जिससे आगे चलकर सृष्टि का विस्तार हुआ—

भृगुं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुमङ्गिरसं तथा। मरीचिं दक्षमत्रिं च वसिष्ठं चैव मानसान् ।।
नव ब्रह्माण इत्येते पुराणे निश्चयं गताः। ख्यातिं भूतिं च सम्भूतिं क्षमां प्रीतिं तथैव च ।।
सन्नतिं च तथैवोर्ज्जामनसूयां तथैव च ।।[३]

रौद्री-सर्ग—विष्णुपुराण के प्रथम अंश के सांतवें और आठवें अध्याय में रौद्री-सर्ग का अत्यन्त ही गम्भीरतापूर्वक वर्णन प्राप्त होता है। ब्रह्मा ने सबसे पहले सनन्दनादि को उत्पन्न किया, किन्तु वे निरपेक्ष होने के कारण सृष्टि-कार्य में प्रवृत्त नहीं हुए। वे सभी ज्ञान-सम्पन्न, विरक्त और मत्सरादि दोषों से रहित थे। उनको संसार रचना से उदासीन देखकर ब्रह्मा को त्रिलोकी को भस्म कर देने वाला क्रोध उत्पन्न हुआ। उन्होंने अपनी टेढ़ी भृकुटी और क्रोध संतप्त ललाट से मध्यकाल के सूर्य के समान देदीप्यमान रूद्र की उत्पत्ति की। उसका अति प्रचण्ड शरीर आधा नर और आधा नारीरूप था। तदनन्तर ब्रह्मा 'अपने शरीर का विभाग कर' विभजात्मानमित्युक्त्वा तां ब्रह्मान्तर्दधे ततः ऐसा कहकर अन्तर्धान हो गये। इस प्रकार कहे जाने पर रूद्र ने अपने शरीरस्थ स्त्री और पुरुष दोनों भागों को अलग-अलग कर दिया और पुरुष को ग्यारह भागों में विभक्त किया तथा स्त्री भाग सौम्य, क्रूर, शान्त, अशान्त और श्याम, गौर आदि कई रूपों में विभक्त कर दिया।[४] विष्णुपुराण में अन्यत्र कहा गया है कि, कल्पादि में जब ब्रह्मा अपने ही सदृश पुत्र का ध्यान कर रहे थे, तब उनकी गोद में एक नीललोहित वर्ण के एक कुमार का प्रादुर्भाव हुआ।[५] जन्म के अनन्तर ही वह जोर-जोर से रोने लगा और इधर-उधर दौड़ने लगा। उसे रोता देखकर ब्रह्मा ने जब उससे पूछा कि तुम रोते क्यों हो? तब उस बालक ने कहा कि; मेरा नामकरण कर दीजिये। इस पर ब्रह्मा ने रूदन करने के कारण उसका नाम रूद्र रखा और कहा कि तुम रूदन मत करो धैर्य धारण करो—

किं त्वं रोदिषि त्वं ब्रह्मा रूदन्तं प्रत्युवाच ह ।।
नाम देहीति तं सोऽथ प्रत्युवाच प्रजापतिः। रूद्रस्त्वं देव नाम्नासि मा रोदीर्धैर्यमावह ।।[६]

---

१. विष्णुपुराण १/२/५६
२. विष्णुपुराण १/२/५७-५८
३. विष्णुपुराण १/२/५२-५४
४. विष्णुपुराण १/७/८.१०.१२-१५
५. विष्णुपुराण १/८/२
६. विष्णुपुराण १/८/३-४

ऐसा कहने पर भी वह सात बार और रोया तब ब्रह्मा ने उसके सात नाम और रखे; भव, शर्व, ईशान, पशुपति, भीम, उग्र और महादेव—

भवं शर्वमथेशानं तथा पशुपतिं द्विज। भीममुग्रं महादेवमुवाच स पितामहः ।।[१]

इन आठों के क्रम से ब्रह्मा ने आठ स्थान निश्चित किये। वे ही आठ स्थान इनके शरीर अथवा मूर्त्तिरूप हुए। उन आठों स्थानों के नाम इस प्रकार हैं— सूर्य, जल, पृथिवी, वायु अग्नि आकाश, दीक्षित, ब्राह्मण (यजमान) और सोम—

सूर्यो जलं मही वायुर्वह्निराकाशमेव च। दीक्षितो ब्राह्मणः सोम इत्येतास्तनवः क्रमात् ।।[२]

रूद्र आदि नामों के साथ उन सूर्य आदि मूर्तियों की क्रमशः आठ पत्नियाँ भी निश्चित की गयी— सुवर्चला, उष्ण, विकेशी, शिवा, स्वाहा, दिशाएँ, दीक्षा और रोहिणी—

सुवर्चला तथैवोषा विकेशी चापरा शिवा। स्वाहा दिशस्तथा दीक्षा रोहिणी च यथाक्रमम्।।[३]

इनके पुत्र की भी निष्पत्ति हुई जो इस प्रकार है— सूर्य के पुत्र शनैश्चर, जल के शुक्र, पृथिवी के लोहिताङ्ग, वायु के मनोजव, अग्नि के स्कन्द, दीक्षित के सर्ग, ब्राह्मण के सन्तान और सोम के बुध। विष्णुपुराण का वर्णन है कि, पुत्र-पौत्रादिकों से सम्पूर्ण विश्व व्याप्त है। इन अष्टमूर्तियों में रूद्र ने दक्ष की अनिन्दिता दुहिता सती को अपनी पत्नी के रूप में ग्रहण किया। सती ने अपने पिता दक्ष पर कुपित होने के कारण अपने शरीर का त्याग कर दिया, फिर वही सती मैना के गर्भ से हिमवान् की पुत्री 'उमा' नाम से प्रादुर्भूत हुई। तब महादेव ने उस अनन्यपरायणा उमा को पुनः पत्नी रुप में प्राप्त किया।

शनैश्चरस्तथा शुक्रो लोहिताङ्गो मनोजवः। स्कन्दः सर्गोऽथ सन्तानो बुधश्चानुक्रमात्सुताः।।
दक्षकोपाच्च तत्याज सा सती स्वकलेवरम्। हिमवद्दुहिता साऽभून्मेनायां द्विजसत्तम।।
उपयेमे पुनश्चोमामनन्यां भगवान्हरः ।।[४]

अङ्गज-सर्ग—विष्णुपुराण के प्रथम-अंश के पाचवें और छठें अध्याय में अंगज-सर्ग का वर्णन हुआ है। ब्रह्मा ने मन से सृष्टि करने के उपरान्त अपने शरीर के अंगों से भी सृष्टि का विस्तार करने के लिए संकल्प किया। उन्होंने मुख से सर्वप्रथम सत्त्वप्रधान ब्राह्मण को उत्पन्न किया। वक्षः स्थल से रजः प्रधान क्षत्रिय तथा जंघाओं से रज और तमः से युक्त वैश्य की सृष्टि की तथा अपने चरणों से तमः प्रधान शूद्र को उत्पन्न किया—

सत्याभिध्यायिनः पूर्वं सिसृक्षोर्ब्रह्मणो जगत्। अजायन्त द्विजश्रेष्ठ सत्त्वोद्रिक्ता मुखात्प्रजाः।।
वक्षसो राजसोद्रिक्तास्तथा वै ब्रह्मणोऽभवन्। रजसा तमसा चैव समुद्रिक्तास्तथोरुतः।।
पद्भ्यामन्याः प्रजा ब्रह्मा ससर्ज द्विजसत्तम। तमः प्रधानास्ताः सर्वाश्चातुर्वर्ण्यमिदं ततः।।[५]

सृष्टि के सम्पूर्ण प्राणियों को देव, असुर, पितृगण और मनुष्य इन चारों भागों में रखा जा सकता है।[६] प्रजापति के ध्यानस्थ होने पर तमोगुण के आधिक्य से सर्वप्रथम जघन से असुर उत्पन्न हुए, फिर उन्होंने आंशिक सत्त्वमय शरीर के पृष्ठ भाग से पितरों को उत्पन्न किया, तत्पश्चात् उन्होंने आंशिक रजोगुण को धारण कर मनुष्यों को आविर्भूत किया।

---

१. विष्णुपुराण १/८/६
२. विष्णुपुराण १//८/७
३. विष्णुपुराण १/८/८/
४.. विष्णुपुराण १/८/११,१२,१४
५. विष्णुपुराण १/६/३-५
६. ततो देवासुरपितृन्मनुष्यांश्च चतुष्टयम्। सिसृक्षुरम्भांस्येतानि स्वमात्मानमयूयुजत् ॥ वि.पु. १/५/३०।

इस प्रकार वे अपने चारों शरीरों को छोड़ते गये जिससे रात्रि, दिन, सन्ध्या और प्रातः का प्रादुर्भाव हुआ। ये चारों ब्रह्मा के शरीर कहे गये।[१]

मानवीय-सर्ग—विष्णुपुराण के प्रथम अंश के सातवें अध्याय में मानवीय-सर्ग का वर्णन हुआ है। ब्रह्मा ने अपने से उत्पन्न स्वायम्भुव को प्रजा पालन के लिए प्रथम मनु बनाया और उस स्वायम्भुव ने अपने तप के कारण शतरूपा नामक स्त्री को अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार किया। उन शतरूपा और स्वायम्भुव मनु से प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो पुत्र तथा उदार, रूप और गुणों से सम्पन्न प्रसूति और आकूति नाम की दो कन्याएँ उत्पन्न हुई। प्रसूति का विवाह दक्ष के साथ और आकूति का विवाह रूचि प्रजापति के साथ हुआ—

ततो ब्रह्माऽऽत्मसम्भूतं पूर्वं स्वायम्भुवं प्रभुः। आत्मानमेव कृतवान्प्रजापाल्वे मनुं द्विज।।
शतरूपां च तां नारीं तपोनिर्धूतकल्मषाम्। स्वायम्भुवो मनुर्देवः पत्नीत्वे जगृहे प्रभुः....
ददौ प्रसूतिं दक्षाय आकूतिं रुचये पुरा।[२]

प्राणियों के वैशिष्ट्य के आधार पर सृष्टि के विभिन्न प्रकारों का निरुपण विष्णुपुराण के प्रथम अंश के पाँचवे-अध्याय में किया गया है इसके अनुसार ब्रह्मा के द्वारा उत्पन्न सृष्टि में सबसे पहले महत्-तत्त्व का आविर्भाव हुआ, इसे ही 'प्रथम-सर्ग' कहा गया है। तन्मात्राओं से द्वितीय सृष्टि हुई, इस सर्ग को 'भूतसर्ग' के नाम से भी स्मृत किया गया है। तृतीय सृष्टि वैकारिक की है जिसे 'इन्द्रिय सम्बन्धी-सर्ग' भी कहते हैं। चौथा 'मुख्य-सर्ग' है पर्वतादि स्थावर इसी सृष्टि के अन्दर आते हैं। तिर्यक्-स्रोत पांचवी सृष्टि है; इसे तिर्यक् योनि भी कहा गया है। ऊर्ध्व स्रोताओं का छठा सर्ग है; जो देवसर्ग के नाम से भी जाना जाता है। अर्वाक्-स्रोताओं का सांतवा-सर्ग है; जिसे मनुष्य-सर्ग भी कहते हैं। आठवाँ अनुग्रह-सर्ग है, जो सात्त्विक और तामस दोनों गुणों से युक्त है। इस-प्रकार प्रथम तीन सृष्टि को 'प्राकृत-सर्ग' तथा बाद के पाँच सर्गों को 'वैकृत सर्ग' के नाम से जाना जाता है। इन आठ सृष्टियों के पश्चात् नवाँ कौमार-सर्ग हुआ, जो प्राकृत और वैकृत भेद से दोनों प्रकार का है। प्रथम तीन सर्ग बुद्धिपूर्वक उत्पन्न बताये गये हैं—"इत्येष प्राकृतः सर्गः सम्भूतो बुद्धिपूर्वकः" इस प्रकार पूर्वोक्त नव सर्गों को प्राकृत-वैकृत और उभयात्मक भेद से समझा जा सकता है।

प्राकृत	वैकृत	उभयात्मक
१. महत्-सर्ग	४. मुख्य-सर्ग	९. कौमार-सर्ग
२. तन्मात्राओं का सर्ग	५. तिर्यक्-सर्ग	(प्राकृत एवं वैकृत)
३. वैकारिक-सर्ग	६. ऊर्ध्व-सर्ग (देवसर्ग)	
	७. अर्वाक्-सर्ग (मनुष्यवर्ग)	
	८. अनुग्रह-सर्ग (सात्त्विक एवं तामसिक)	

विष्णुपुराण में प्राकृत सर्ग की संख्या तीन और वैकृत सर्ग की संख्या पाँच निर्धारित की गयी है। कौमार सर्ग को सभी पुराणों में उभयात्मक-सर्ग के रूप में ही स्वीकार किया गया है—

ब्रह्मसर्ग—महत्तत्त्व ब्रह्मा का प्रथम-सर्ग है—

प्रथमो महतः सर्गो विज्ञेयो ब्रह्मणस्तु सः।।[३]

भूतसर्ग—तन्मात्राओं का सर्ग द्वितीय-सर्ग है जिसे भूतसर्ग भी कहते हैं—

तन्मात्राणां द्वितीयश्च भूतसर्गो हि स स्मृतः।।[४]

---

१. विष्णुपुराण ३१-४०
२. विष्णुपुराण १/७/१६-१९
३. विष्णुपुराण १/५/१९
४. विष्णुपुराण १/५/२०

वैकारिक-सर्ग—इन्द्रिय सम्बन्धी सृष्टि को वैकारिक-सर्ग कहते हैं—

वैकारिकस्तृतीयस्तु सर्ग ऐन्द्रियकः स्मृतः।।[१]

मुख्यसर्ग—ब्रह्मा के ध्यान करने पर ज्ञान-शून्य, बाहर-भीतर से तमोमय और जड़ नगादि (वृक्ष, गुल्म, लता-वीरुत्-तृण) रूप पाँच प्रकार की सृष्टि हुई।[२] अन्यत्र भी नगादि को मुख्य कहा गया है। इसलिए यह सर्ग भी मुख्य-सर्ग के नाम से जाना जाता है—

मुख्या नगा यतः प्रोक्ता मुख्यसर्गस्ततस्त्वयम् ।।[३]

तिर्यक्-सर्ग—तिरछा चलने के कारण इसे तिर्यक्-सर्ग कहते हैं। इसमें पशु-पक्षी, कीट-पंतग आदि सम्मिलित हैं। ये प्रायः तमोमय, विवेकरहित, अनुचित मार्ग का आश्रय लेने वाले तथा विपरीत ज्ञान को ही यथार्थ मानने वाले होते हैं—

तस्याभिध्यायतः सर्गस्तिर्यक्स्रोताभ्यवर्त्तत । यस्मात्तिर्यक्प्रवृत्तिस्स तिर्यक्स्रोतास्ततः स्मृतः ।।[४]

ऊर्ध्वस्रोतस (देव) सर्ग — इस सर्ग के प्राणी ऊर्ध्वलोक में निवास करते हैं अतः उन्हें 'ऊर्ध्वस्रोतस्' कहा गया। इसमें उत्पन्न हुए प्राणी विषय सुख से युक्त, बाह्य और आन्तरिक दृष्टि से सम्पन्न तथा बाह्य और अन्तःज्ञान से युक्त थे। इस सर्ग को देवसर्ग के नाम से भी स्मृत किया गया है—

ते सुखप्रीतिबहुला बहिरन्तस्त्वनावृताः । प्रकाशा बहिरन्तश्च ऊर्ध्वस्रोतोद्भवाः स्मृताः ।।[५]

अर्वाक्-स्रोत (मानवीय-सर्ग) — इस सर्ग के प्राणी में त्रिविध (सत्व, रज और तम) गुणों का आधिक्य रहता है, इस सर्ग के प्राणी मनुष्य हैं इस कारण वे दुःख बहुल, क्रियाशील, एवं बाह्य-आभ्यन्तर ज्ञान से युक्त हैं।[६]

अनुग्रह-सर्ग—विष्णुपुराण में अनुग्रह-सर्ग के विषय में केवल सङ्केत किया गया है—

अष्टमोऽनुग्रहः सर्गः सात्त्विकस्तामसश्च सः।[७] अर्थात् अनुग्रह सर्ग सात्त्विक और तामसिक हैं।

कौमार-सर्ग— विष्णुपुराण में कौमार-सर्ग के विषय में भी केवल सङ्केत प्राप्त होता है—

प्राकृतो वैकृतश्चैव कौमारो नवमः स्मृतः।।[८] अर्थात् नवाँ कौमार-सर्ग है जो प्राकृत और वैकृत है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि भारतीय षड्दर्शनों में से सांख्यदर्शन का विपुल प्रभाव सृष्टि-प्रक्रिया के ऊपर पड़ा है। कपिल आदि विद्वान् के रूप में उपनिषदों में गृहीत किये गये हैं।

तत्त्वों की मीमांसा उनका महान् वैशिष्ट्य है। उनकी अपनी सृष्टि-प्रक्रिया है। सांख्य तो प्रकृति तथा पुरुष को मूल तत्त्व मानता है; परन्तु पुराणों की दृष्टि में ये दोनों परमात्मा से ही विनिःसृत होते हैं। निष्कर्ष यह है कि सांख्य का बहुशः आधार लेने पर भी पौराणिक सृष्टि-प्रक्रिया अपनी मौलिकता से मण्डित है तथा जो गहन चिन्तन के फलस्वरूप पुराण की प्राचीनता को सिद्ध करता है।

---

१. विष्णुपुराण १/५/२०
२. विष्णुपुराण १/५/६
३. विष्णुपुराण १/५/७
४. विष्णुपुराण १/५/९
५. विष्णुपुराण १/५/१३
६. विष्णुपुराण १/५/१८ तस्मात्ते दुःख बहुला भूयोभूयश्च कारिणः । प्रकाशा बहिरन्तश्च मनुष्याः साधकास्तु वै।।
७. विष्णुपुराण १/५/२४
८. विष्णुपुराण १/५/२५

पुराणों की विशेषता

अब तक पुराण विषयक की गई चर्चा से यह तो स्पष्ट जान पड़ता ही है कि पुराण भी वेद की तरह अपौरुषेय है। इसकी प्राचीनता में किसी भी प्रकार की शंका नहीं ही किया जा सकता। अत: वैदिक वाङ्मय के अध्ययन से पुराण की विशेषताओं को रेखाङ्कित करते हुए आदिकाल से अब तक के उसके क्रमागत विकास को आगे प्रदर्शित करना अनुचित नहीं है।

वैदिक वाङ्मय विशेषकर ब्राह्मणों में क्रम से उल्लिखित इहलौकिक, पारलौकिक एवं सृष्टि विषयोक्त की प्राथमिक अवस्था से पुराणों का साम्प्रतिक विशाल स्वरूप निष्पन्न हुआ है, जिसमें मानव जीवन के लिए उपयोगी प्राय: समस्त विषयों का सन्निवेश हुआ है।

विद्वानों के अनुसार पुराणों में सृष्टिविषयक चिन्तन स्वरूप प्राचीन आख्यान बहुतायत में उपलब्ध हैं। वैसे वैदिक वाङ्मय में प्राचीन कथाओं या सृष्टि-विवेचनों के रूप में पुराण का प्राथभिक उल्लेख मिलता है। अत: इस प्रसङ्ग में वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् के सहित अन्यान्य वैदिक ग्रन्थों के अधोलिखित स्थल अध्ययन करने योग्य हैं—

अथर्ववेद (११.७.२४; १५.६.१०-११),
शतपथब्राह्मण (११.५.६.८; १३.४.३.१३),
गोपथ ब्राह्मण (१.२१),
छान्दोग्य उपनिषद् (३.४.१.२; ४.१.२)
वृहदारण्यकोपनिषद् (२. ४.१०)
आश्वलायन श्रौतसूत्र (१०. ७)
शांख्यायन श्रौतसूत्र (१५.२.२७)
गौतम धर्मसूत्र (११. ९)

उपरोक्त स्थलों में यथास्थान समागत पुराण शब्द का प्रयोग अवश्य ही कुछ कुछ परम्परालब्ध आख्यानों के अर्थ के साथ कुछ सृष्टि-प्रक्रिया के विवेचन के अर्थ में उपलब्ध होता है। इन प्रयोगों से निश्चित रूप में वृहद् पुराण-साहित्य के पृथक् अस्तित्व की सूचना मिलती है।

इस प्रकार सृष्टि विषयक ज्ञान के साथ स्मृति आदि धर्म विषयों के प्रतिपादक शास्त्र के रूप में भी पुराणों को जाना जाता है। अतएव तैत्तिरीय आरण्यक (२.१०) एवं आपस्तम्ब धर्मसूत्र १.६.१९.१३ स्पष्ट रूप से पुराणों के निश्चित पृथक् रूप का उल्लेख करते हैं। तैत्तिरीय आरण्यक में 'पुराण' शब्द के बहुवचन का रूप प्रयुक्त हुआ है। आपस्तम्ब ने कतिपय पौराणिक श्लोकों को उद्धृत किया। उनमें कुछ श्लोक सम्प्रति उपलब्ध पुराणों में नहीं प्राप्त होते। किन्तु कुछ पाठ भेद से वे मनुस्मृति के (४.२४८-२४९) में मिलते हैं। उनके द्वारा उद्धृत दो श्लोक वायु पुराण (१.५.२१३, २१८), ब्रह्माण्ड (२.७.१८०), मत्स्य (१२४.१०.२-३) एवं विष्णु (२.८.९३) में उपलब्ध होते हैं। उनके द्वारा १.१०.२९.७ में उद्धृत गद्य भाग स्पष्टरूपेण मत्स्य पुराण के २२७.११५-११७ का संक्षिप्त रूप है। तथा च २.९.२४.६ में उद्धृत संक्षिप्त गद्यांश भविष्यत् पुराण को उपलक्षित करता है। आपस्तम्ब के इन उद्धरणों से स्पष्ट होता है कि उनके काल में पुराणों का वर्तमान स्वरूप अस्तित्व में था तथा उनमें सर्ग एवं प्रतिसर्ग के विवरण के साथ ही स्मृति के विषय भी समाविष्ट थे।

प्राय: पुराणों की परिभाषा "पुराणं पञ्चलक्षणम्" जैसा पूर्व में लिखा गया है, के रूप में की गयी है अर्थात् सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर एवं वंशानुचरित इन लक्षणों का वर्णन पुराणों में होता है। यह निश्चित है कि अमरकोश के पाँचवीं शताब्दी ईसा पूर्व के समय इस परिभाषा को पूर्ण मान्यता प्राप्त हो चुकी थी। क्योंकि इस कोश में भी 'पुराणं पञ्चलक्षणम्' के रूप में पुराण की परिभाषा की गयी है। वैसे पुराणों में केवल इन्हीं पाँच विषयों का वर्णन मात्र नहीं होता

है। वस्तुतः पुराणों को स्मृति के तुल्य ग्रन्थ माना जाता था, अतः उनमें धर्मशास्त्रीय विषयों का भी प्रचुर वर्णन उपलब्ध होता है।

इतिहासविदों के अनुसार प्रायः कौटिल्य के समय तक पुराणों का परिष्कृत विशाल वाङ्मय सुप्रतिष्ठित हो गया था। वैसे अपने काल में कौटिल्य ने पौराणिक को राजसभा का एक विशिष्ट सदस्य माना है। जिसका कार्य होता था मध्याह्न काल में राजा को पुराण की कथा श्रवण कराना। यद्यपि विष्णु पुराण में पुराण के पञ्चलक्षणों का साङ्गोपाङ्ग वर्णन हुआ है। अन्य पुराणों में उक्त पञ्चलक्षणों की अपेक्षा देवपूजा, व्रत, दान, तीर्थ एवं श्राद्धों का विशेष वर्णन भी प्राप्त होता है।

प्रो० काणे के मतानुसार महापुराणों का संग्रहकार्य ईसा की नवीं शताब्दी तक पूर्ण हो गया था एवं ईसा की सातवीं या आठवीं शताब्दी से उपपुराणों का संग्रह होने लगा था। इस प्रकार प्रायः तेरहवीं शताब्दी या उसके बाद तक उनकी संख्या में वृद्धि होती गयी।

यहाँ पाठकों की जानकारी के लिए यह बताना आवश्यक है कि पुराणों में समय-समय पर लिपिकारों एवं कथाकारों द्वारा स्वाभिमत प्रक्षिप्त अंशों का समावेश किये जाने की सम्भावना को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। किन्तु, सभी पुराणों में उनके प्राचीन मूल रूप के प्रचुर अंश में वर्तमान होने की स्थिति को न स्वीकार करना कथमपि उचित नहीं है। अग्निपुराण, नारदपुराण एवं गरुड़पुराण एक प्रकार के विश्वकोश ही हैं। इनमें जीवन से सम्बन्धित प्रायः समस्त विषयों का निरूपण हुआ है।

पुराण का स्वरूप

यद्यपि 'पुराण' शब्द सामान्यतः महापुराणों के लिए व्यवहृत होता देखा जाता है। तथापि यह शब्द वस्तुतः महापुराणों के साथ ही उपपुराणों, औपपुराणों आदि का भी उपलक्षक है। इतिहासविदों के अनुसार बहुत बाद में 'पुराण' शब्द के साथ 'महान्' विशेषण का प्रयोग कर उसे अष्टादश पुराणों का द्योतक माना जाने लगा। ब्रह्मवैवर्त (४.१३३.७), भागवत (१२.७.१० एवं १२.७.२२), भविष्य (३.४.२५.२२०) एवं वायुपुराण में अष्टादश पुराणों के लिए महान् या वृहद् विशेषणों का प्रयोग किया गया है। अन्य अन्य पुराणों में केवल 'पुराण' शब्द का ही प्रयोग प्राप्त होता है। भागवत एवं ब्रह्मवैवर्त में भी महापुराणों के लिए 'पुराण' शब्द का प्रयोग देखा जाता है। श्रीमद्भागवत में अष्टादश पुराणों का नामोल्लेख अधोलिखित प्रकार से हुआ है—

"ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवञ्च शैवं लैङ्गं सगारुडम्। नारदीयं भागवतमाग्नेयं स्कान्दसंज्ञितम्।।
भविष्यं ब्रह्मवैवर्तं मार्कण्डेयं सवामनम्। वाराहं मात्स्यं कौर्मञ्च ब्रह्माण्डाख्यमिति त्रिषट्।।

(भा०पु०, १२-७, २३-२४)

अर्थात् (१) ब्रह्मपुराण, (२) पद्मपुराण, (३) विष्णुपुराण, (४) शिव (वायु)पुराण, (५) लिङ्गपुराण, (६) गरुडपुराण, (७) नारदपुराण, (८) भागवतपुराण, (९) अग्निपुराण, (१०) स्कन्दपुराण, (११) भविष्यपुराण, (१२) ब्रह्मवैवर्तपुराण, (१३) मार्कण्डेयपुराण, (१४) वामनपुराण, (१५) वाराहपुराण, (१६) मत्स्यपुराण, (१७) कूर्मपुराण एवं (१८) ब्रह्माण्डपुराण।

इसी तरह महापुराणों के खिल भाग अथवा पूरक के रूप में उपपुराण निष्पन्न हुआ, माना जाता है। सौर पुराण (९.१२) उपपुराणों को पुराणों का खिलभाग अथवा पूरक कहता है। यह स्वयं को भी ब्रह्मपुराण का खिलभाग मानता है। यथा—

"खिलान्युपपुराणानि यानि चोक्तानि सूरिभिः। इदं ब्रह्मपुराणस्य खिलं सौरमनुत्तमम्।"

मत्स्यपुराण केवल चार उपपुराणों का उल्लेख करता है। यथा नारसिंह, नन्दीपुराण, साम्ब एवं आदित्य। वैसे चौधरी श्री नारायण सिंह के अनुसार प्रचलित परम्परा में उपपुराणों की संख्या भी अट्ठारह मानी जाती है। "स्टडीज इन

दि उपपुराणाज़" नामक ग्रन्थ में डॉ० आर०सी० हाजरा ने शताधिक उपपुराणों का उल्लेख किया है, किन्तु स्वयं पुराणों में प्राप्त प्रमाण के अनुरूप उपपुराणों की संख्या अट्ठारह ही मानी जाती है। उक्त चौधरी के अनुसार वस्तुतः चतुर्वेद के पूरक स्वरूप चतुरूपवेद के सदृश ही अट्ठारह पुराणों के पूरक रूप में अट्ठारह उपपुराण का होना न्यायसङ्गत है। इसी प्रकार अट्ठारह उपपुराणों के भी खिल भागस्वरूप अट्ठारह उपपुराण माने जाते हैं। कतिपय औपपुराणों का नाम उपपुराणों के सदृश देखकर उन्हें उपपुराण ही मानने की प्रवृत्ति सम्भावित है। किन्तु, यह उचित नहीं प्रतीत होता। क्योंकि अपने तुल्य नाम वाले उपपुराणों का खिलभाग होने से उन औपपुराणों का तत्सदृश नामकरण होना सर्वथा सम्भव है यह तर्कसंगत प्रतीत होता है।

श्री चौधरी के अनुसार पुराण एवं उपपुराण में अन्तर यह है कि विष्णुपुराण (३.६.२५) एवं सौरपुराण (९.४.५) के अनुसार पञ्चलक्षणात्मिका पुराण-परिभाषा महापुराण एवं उपपुराण दोनों पर लगती है, किन्तु भागवत (१२.७.१०) एवं ब्रह्मवैवर्त (४.१३३.६) के अनुसार पञ्चलक्षणी परिभाषा उपपुराणों पर एवं दशलक्षणी परिभाषा महापुराणों पर लागू होती है। किन्तु, यह लक्षणभेद आभास मात्र है। वस्तुतः अपने विशेष प्रयोजनवश भागवतकार ने पुराणों की एक दशलक्षणात्मक परिभाषा भी बतलायी है। प्रथम लक्षणवत् द्वितीय लक्षण भी उभयत्र व्याप्त है। अस्तु व्यावहारिक दृष्ट्या पुराणों एवं उपपुराणों में यही भेद माना जा सकता है कि स्वयं पुराण में जिन्हें पुराणनामावली में परिगणित किया गया है, वे महापुराण हैं एवं अन्य उपपुराण हैं। कूर्मपुराण में स्पष्टतः उपपुराणों के भी नाम का उल्लेख किया गया है। यथा—

"आद्यं सनत्कुमारोक्तं नारसिंहमतः परम्। तृतीय स्कान्दमुद्दिष्टं कुमारेण तु भाषितम्।।
चतुर्थं शिवधर्माख्यं साक्षान्नन्दोशभाषितम्। दुर्वाससोक्तमाश्चर्यं नारदोक्तमतः परम्।।
कापिलं मानवं चैव तथैवोशनसेरितम्। ब्राह्माण्डं वारुणं चाथ कालिकाह्वयमेव च।।
माहेश्वरं तथा शाम्बं सौरं सवार्थसञ्चयम्। पाराशरोक्तं मारीचं तथैव भार्गवाह्वयम्।।"

—(कूर्मपुराण, Cr. edn, II. 17-20)

अर्थात् (१) सनत्कुमारोक्त आदिपुराण, (२) नारसिंहपुराण, (३) स्कन्दपुराण, (४) नन्दीशप्रोक्त शिवधर्मपुराण, (५) दुर्वासोक्त आश्चर्यपुराण, (६) नारद पुराण, (७) कपिल पुराण, (८) मानवपुराण, (९) औशनस पुराण, (१०) ब्रह्माण्ड पुराण, (११) वरुण पुराण, (१२) कालिका पुराण, (१३) माहेश्वर पुराण, (१४) साम्बपुराण, (१५) सौरपुराण, (१६) पाराशर पुराण, (१७) मारीच पुराण एवं (१८) भार्गव पुराण।

औपपुराणों की नामावली निम्नलिखित प्रकार से है—

"आद्यं सनत्कुमारञ्च नारदीयं बृहच्च यत्। आदित्यं मानवं प्रोक्तं नन्दिकेश्वरमेव च।।
कौर्मं भागवतं ज्ञेयं वाशिष्ठं भार्गवं तथा। मुद्गलं कल्किदेव्यौ च महाभागवत तथा।।
बृहद्धर्मं परानन्दं वह्निं पशुपतिं तथा। हरिवंश ततो ज्ञेयमिदमौपपुराणकम्।।"

(बृहद्विवेकाध्याय ३, पुराणदिग्दर्शन, पृ० ५)

पुराण, उपपुराण औपपुराण आदि की सूची में अनेक समान नामों का उल्लेख हुआ है। इससे प्रथमदृष्ट्या यह भ्रम हो सकता है कि एक ही ग्रन्थ उपरोक्त सूचियों में सम्मिलित है। किन्तु, यह उचित नहीं है। वस्तुतः महापुराण की सूची में आये तत्तद् नाम के पुराणों का खिलभाग उपपुराण में एवं उसका भी खिलभाग औपपुराण में सम्मिलित जानना चाहिए।

पौराणिक शिष्य परम्परा

सर्वविदित तथ्य यह है कि प्रायः समस्त पुराण एक स्वर से व्यास को पुराणों का कर्त्ता मानते हैं। वहीं मत्स्य पुराण में कहा है—

"अष्टादश पुराणानि कृत्वा सत्यवतीसुतः । भारताख्यानमखिलं चक्रे तदुपबृंहितम् ।।"

—(५३.७०)

शास्त्र-सिद्धान्तानुसार प्रत्येक द्वापर के अन्त में और कलियुगारम्भ के समय परमेश्वर के व्यासावतार युगधर्म से अव्यवस्थित एवं कालक्रम से अस्तव्यस्त वेदों और पुराणों का सङ्कलन करते हैं। वर्तमान कल्प में व्यतीत द्वापर युगों की संख्या के अनुसार अब तक अट्ठाइस व्यास हो चुके हैं। देवीपुराण का वचन है—

द्वापरे द्वापरे विष्णुर्व्याससरूपेण सर्वदा। वेदमेकं स बहुधा कुरुते हितकाम्यया।।
अल्पायुषोऽल्पबुद्धींश्च विप्राञ्ज्ञात्वा कलावथ। पुराणसंहितां पुण्यां कुरुतेऽसौ युगे-युगे।।
द्वापरे प्रथमे व्यस्ताः स्वयं वेदाः स्वयम्भुवा। प्रजापतिर्द्वितीये तु द्वापरे व्यासकार्यकृत्।।
तृतीये चोशना व्यासश्चतुर्थे तु बृहस्पतिः। पञ्चमे सविता व्यासः षष्ठे मृत्युस्तदापरे।।
मघवा सप्तमे प्राप्ते वसिष्ठस्त्वष्टमे स्मृतः। सारस्वतस्तु नवमे त्रिधामा दशमे तथा।।
एकादशेऽथ त्रिवृषो भरद्वाजस्ततः परम्। त्रयोदशे चान्तरिक्षो धर्मश्चापि चतुर्दशे।।
त्र्य्यारुणिः पञ्चदशे षोडशे तु धनञ्जयः। मेधातिथिः सप्तदशे व्रती ह्यष्टादशे तथा।।
अत्रिरेकोनविंशे च गौतमस्तु ततः परम्। उत्तमश्चैकविंशेऽथ हर्यात्मा परिकीर्तितः।।
बेनो वाजश्रवाश्चैव सोमोऽमुष्यायणस्तथा। तृणविन्दुस्तथा व्यासा भार्गवस्तु ततः परम्।।
ततः शक्तिर्जातुकर्ण्यः कृष्णद्वैपायनस्ततः। अष्टाविंशति संख्येयं कथिता या मया श्रुता।।
एकोनत्रिंशत् संप्राप्ते द्रौणिर्व्यासो भविष्यति।।

—(देवी० भा०, १/३/१८-३३)

मत्स्य पुराण में भी इसी प्रकार कतिपय नामान्तर से व्यास-नामावलि दी गई है तथा भागवत में व्यास द्वारा वेदों के सङ्कलन का वर्णन निम्नलिखित प्रकार से किया गया है—

क्षीणायुषः क्षीणसत्त्वान् दुर्मेवान् वीक्ष्य कालतः। ब्रह्मेशाद्यैर्लोकपालैर्याचितौ धर्मगुप्तये।।
पराशरात्सत्यवत्यामंशांशं कलया विभुः। अवतीर्णो महाभाग! वेदं चक्रे चतुर्विधम्।।
ऋगथर्वयजुःसाम्नां राशीनुद्धृत्य वर्गशः। चतस्रः संहिताश्चक्रे मन्त्रैर्मणिगणा इव।।
तासां स चतुरः शिष्यानुपाहूय महामतिः। एकैकां संहितां ब्रह्मन् एकैकस्मै ददौ विभुः।।
पैलाय संहितामाद्यां बह्वृचाख्यामुवाच ह। वैशम्पायनसंज्ञाय निगदाख्यं यजुर्गणम्।।
साम्नां जैमिनये प्राह तथा छन्दोगसंहिताम्। अथर्वाङ्गिरसी नाम स्वशिष्याय सुमन्तवे।।

—(श्रीमद्भागवत, १२/६/४७-५३)

अत: श्री चौधरी के अनुसार इस प्रकार वेद-संहिताओं का पृथक्-पृथक् सङ्कलन कर व्यास ने अपने शिष्य पैल को ऋक् संहिता, वैशम्पायन को यजुः संहिता, जैमिनि को सामसंहिता एवं सुमन्तु को अथर्व संहिता प्रदान की। इन शिष्यों ने भी अपने शिष्य-प्रशिष्यों को पढ़ाया। इस प्रकार ''शिष्यैः प्रशिश्यैस्तच्छिष्यैर्वेदास्ते शाखिनोऽभवन्'' के अनुसार वेदों की अनेकानेक शाखाएँ हो गयीं।

वेदों का सङ्कलन करने के उपरान्त व्यास ने वेदोक्त आख्यायिकांश, सृष्टि प्रक्रिया-प्रतिपादक वाक्यसमूह तथा चिरन्तर ऋषि-देवता-चरित-समुदायरूप आदिम पुराण का सङ्कलन प्रारम्भ किया। उन्होंने असामान्य कौशलपूर्वक वेदान्तर्गत श्लोक, गाथा, नाराशंसी, पुराकल्य, जनश्रुति एवं आख्यायिका नामक अंशों को इतिहास के साथ सरल-सुबोध रूप से गुम्फित किया। इस प्रकार व्यास द्वारा शतकोटि संख्यक आदि पुराण चार लक्ष श्लोकों वाले अट्ठारह पुराणों के रूप में संक्षिप्त किया गया। पुराणों में कहा है—

''कालेन ग्रहणं दृष्ट्वा पुराणस्त ततो नृप । व्यासरूपमहं कृत्वा संहरामि युगे-युगे ।।
चतुर्लक्षप्रमाणेन द्वापरे-द्वापरे सदा । तथाष्टादशधा कृत्वा भूर्लोकेऽस्मिन् प्रकाश्यते ।।''

—(मत्स्य०, ५३/८-१०)

अपि च—

''त्र्यारुणिः कश्यपश्च सावर्णिरकृतव्रणः। वैशम्पायनहारीतौ षड् वै पौराणिका इमे।।
अधीयन्त व्यासशिष्यात्संहितां मत्यितुर्मुखा ।।''

—(श्रीमद्भागवत, १२/६७/५-६)

अर्थात् वेद संहिताओं की रक्षा का भार व्यास ने पैल आदि शिष्यों पर रखा, उसी प्रकार पुराणों की रक्षा का भार सूत के पिता रोमहर्षण पर रखा। आगे रोमहर्षण ने त्र्यारुणि, कश्यप, सावर्णि, अकृतव्रण, वैशम्पायन और हारीत, इन छः शिष्यों को पुराण-संहिता पढ़ायी एवं उन्हें पौराणिक की उपाधि प्रदान की।

उपर्युक्त प्रमाणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि वर्तमान वेद संहिताएँ और अष्टादश पुराण व्यास ने ही मूल रूप में निबद्ध किया है। किन्तु इस बात की सम्भावना का निषेध नहीं किया जा सकता कि समय-समय पर लेखकों या प्रवक्ताओं ने मूल पाठ में स्वेच्छया परिवर्तन-परिवर्धन या संशोधन किया होगा।

भविष्य-पुराण में पुराणों के व्यासकर्तृत्व के साथ ही अन्य प्रसङ्ग (१) विष्णु पुराण को पराशरकृत, (२) स्कन्द पुराण को शिवकृत, (३) पद्म पुराण तथा (४) ब्रह्म पुराण को ब्रह्माकृत, (५) गरुड़ को हरिकृत, (६) भागवत को शुककृत, (७) मत्स्य, (८) कूर्म, (९) नृसिंह, (१०) वामन, (११) शिव तथा (१२) वायु को व्यासकृत, (१३) मार्कण्डेय, (१४) वाराह को मार्कण्डेयकृत, (१५) आग्नेय को आङ्गिरसकृत, (१६) लिङ्ग एवं (१७) ब्रह्माण्ड को तुण्डीकृत, (१८) भविष्य को महादेवकृत माना गया है। किन्तु व्यास भिन्न अन्य सभी नामों को तत्तद् पुराणों का रचयिता न मानकर प्रवक्ता मानना चाहिए। इसी पुराण में अन्यत्र (१.१.५८) व्यास को १८ पुराणों का रचयिता माना गया है। पाणिनि व्याकरण के तद्धित प्रकरणान्तर्गत ''तेन निवृतम्, तदधीते तद्वेद, तेन प्रोक्तम्, पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु'' इत्यादि सूत्रों के अनुसार उक्त स्थलों की विसङ्गति का सहज समाधान प्राप्त होता है।

पुराण की संख्या, नाम और प्रकार

चौधरी श्रीनारायण सिंह जी के अनुसार परम्परानुसार महापुराण अट्ठारह ही माने जाते हैं। यद्यपि शिव पुराण को उमा-संहिता १३.४१ में पुराणों की संख्या छब्बीस बतलाई गई है, तथापि उक्त स्थल में उनका नामोल्लेख न होने से इसी सम्भावना की ही पुष्टि होती है कि उक्त स्थल में 'पुराण' शब्द से उपलक्षित होने वाले कतिपय उपपुराण या औपपुराण का सङ्केत मात्र हुआ है। अट्ठारह महापुराणों में चतुर्थ को शैव या वायवीय पुराण एवं अट्ठारहवें को ब्रह्माण्ड पुराण कहा गया है। कूर्मपुराण (I १.१५) में ब्रह्माण्ड को ही वायवीय कहा गया है।

अनेक पुराणों में अट्ठारह पुराणों की तालिका दी गयी है। किसी-किसी पुराण के विभिन्न स्थलों पर इसका उल्लेख हुआ है। मत्स्य, स्कन्द, नारदीय एवं आग्नेय इन पुराणों में यह उल्लेख प्राप्त होता है कि उक्त क्रमानुसार लिखित पुराणों का वर्ष के किन-किन मासों एवं अवसरों पर दान करना चाहिए। इन चारों ही पुराणों में चतुर्थ पुराण को वायवीय पुराण कहा गया है। अन्य सभी पुराणों में अष्टादश पुराणों की तालिका तदनुसार ही उपलब्ध होती है। किन्तु तत्सम्बन्धी दान-प्रक्रिया का कोई विवरण नहीं प्राप्त होता। इसके अतिरिक्त उनमें वायवीय पुराण के स्थान पर शिवपुराण का नामोल्लेख हुआ है।

वस्तुतः एक ही पुराण का नाम वायवीय या शैव पुराण है। यह दो भागों में विभक्त है एवं इसमें २४००० श्लोक हैं। वायुप्रोक्त होने से इसे वायुपुराण एवं इसका प्रतिपाद्य देवता शिव होने से इसे शैवपुराण कहा जाता है। 'तेन प्रोक्तम् एवं साऽस्य देवता' इन सूत्रों के आधार पर यह सङ्गति लगती है। इसी प्रकार ब्रह्माण्ड पुराण को भी वायु-प्रोक्त होने से वायवीय कहा गया है। तद्धित-सूत्रों के सूक्ष्म अर्थभेद की अकारण उपेक्षा कर किरफेल एवं हाजरा जैसे कतिपय भारतीय विद्याविदों ने ब्रह्माण्ड एवं वायु को एक ही ग्रन्थ मान लेने की भूल की है।

पद्मपुराण इन अष्टादश पुराणों को विष्णु के विभिन्न अङ्गस्वरूप निरूपित करता है। (पुराणावयवो हरिः)। यहाँ

चतुर्थ पुराण को शैव कहा गया है एवं उसे विष्णु की वाम भुजा बतलाया गया है। वैष्णवपुराण को विष्णु की दक्षिण भुजा कहा है। इससे पुराणों की पुण्यजनकता एवं दैवी भाव की अभिव्यक्ति होती है।

पुराणों की समस्त तालिकाओं में प्रायः नाम साम्य होते हुए भी क्रमभेद दिखलायी पड़ता है। स्थूलदृष्ट्या पुराणों की नामतालिका का पाँच क्रम प्राप्त होता है। इन्हें क्रमशः (१) विष्णुपुराणीय, (२) कूर्मपुराणीय, (३) लिङ्गपुराणीय, (४) संयुक्तक्रमीय एवं (५) यथेच्छ क्रमीय कहा जा सकता है।

(१) निम्नलिखित पुराणों में विष्णुपुराणीय क्रम प्राप्त होते हैं—

(i) मार्कण्डेयपुराण, वेंक. सं. १३४.८-१५

(ii) वाराहपुराण Cr. edn १११.६९.७२

(iii) भविष्यपुराण, वेंक. सं. १ (ब्राह्मपर्व) १.६१-६४

(iv) पद्मपुराण, आनन्दा. सं. १ (आदिखण्ड), ६२.२-७

(v) ब्रह्मवैवर्त, ४.१३३.११-२१

(vi) भागवतपुराण १२.१३.४-८

(vii) मत्स्य ५३.१२-५६ (चतुर्थ वायवीय) (पुराणदान)

(viii) नारदीय १.९२.२१-२८; अष्टादशपुराण की विस्तृत विषय-सूची १.९२.१०९ (चतुर्थ वायवीय); (मत्स्यवत् पुराणदान भी)

(ix) स्कन्द ७. (प्रभास खण्ड); २.२८-७७ (चतुर्थ वायवीय) (पुराण-दान मत्स्यवत्)

(x) अग्नि—आनन्दा. सं. २७२.१-२३ (चतुर्थ-वायवीय) (पुराणदान प्रायः मत्स्यवत्)

(२) कूर्मपुराणीय क्रम—

(i) पद्मपुराण. आनन्दा. सं. VI (उत्तरखण्ड) २१९.२५-२७

(ii) स्कन्द ७.२.५-७ (चतुर्थ शैव)

(iii) सौरपुराण-आनन्दा. सं. ९.६-१२ (चतुर्थ-वायवीय)। इसमें निम्नलिखित अन्तर है—

कूर्मपुराण में अष्टम मार्कण्डेय एवं नवम आग्नेय सौर में अष्टम आग्नेय तथा नवम मार्कण्डेय।

(३) लिङ्गपुराणीय—

(i) शिवपुराण—वेंक. सं. ५. (उमा. सं.) ४४.१२०-१२२

(४) अन्य पुराणों में उल्लिखित संयुक्त क्रम—

(i) पद्मपुराण ४. (पाताल खण्ड) १११.९०-९४

इस सूची का क्रम प्रथम से एकादश पर्यन्त कूर्मपुराणवत् है, किन्तु द्वादश से अष्टादश पर्यन्त निम्न क्रमानुसार इसमें भिन्नता है—

	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८
कूर्मपु.	वाराह	स्का.	वाम.	कौर्म	गात्स्य	गारुड	ब्रह्माण्ड
पद्मपु.	वामन	स्का.	मात्स्य	कौर्म	वाराह	गारुड	ब्रह्माण्ड

(ii) पद्मपुराण ६. (उत्तरखण्ड) २६३.७-८१—प्रथम से द्वादश पर्यन्त—विष्णुपुराणीय क्रम; त्रयोदश से अष्टादशपर्यन्त—लिङ्गपुराणीय क्रम।

(५) अलग-अलग पुराणों का—

यह क्रम पूर्वोल्लिखित किसी क्रम से मेल नहीं खाता। यह निम्नलिखित में है—

(i) भागवत १२.७.२३-२४

(ii) देवी भागवत १२.२.२-१२

(iii) वायुपुराण वेंक. सं. २.४२.१-११ (आनन्दा. सं. १०४.२-१०) इस सूची में आग्नेय एवं लिङ्गपुराण का नाम नहीं है। इसमें वायवीय के लिए अनिलपुराण कहा गया है एवं 'आदिक-पुराण' का अतिरिक्त उल्लेख हुआ है।

अष्टादश पुराणों की इन सर्वमान्य तालिकाओं के अतिरिक्त अधोलिखित तालिकाएँ भी उल्लेख्य हैं—

(१) भविष्य पुराण ३. (प्रतिसर्ग पर्व) ३. २८.१०-२४ इस तालिका में अट्ठारह पुराणों का तीन श्रेणियों में उल्लेख हुआ है। सात्त्विक, राजस एवं तामस। इसमें नारदीय एवं ब्रह्मवैवर्त का नाम नहीं है। तथा च, शैव एवं ब्रह्माण्ड के अतिरिक्त नृसिंह एवं ब्रह्माण्ड पुराण का उल्लेख हुआ है।

(२) पद्मपुराण ४. (पातालखण्ड) १००.५१-५३ यहाँ पुराण शाकुन के प्रसङ्ग में महापुराणों एवं उपपुराणों का उल्लेख हुआ है। इस तालिका में भी महापुराणों के साथ नृसिंह पुराण का उल्लेख हुआ है।

(३) अलबरूनी ने अष्टादश पुराणों की दो तालिकाएँ प्रस्तुत की हैं। उनमें एक विष्णु पुराणीय तालिका है एवं दूसरी उसे बतलाई गयी तालिका है। इस द्वितीय तालिका में एक भिन्न क्रम में अष्टादश पुराणों की तालिका दी गयी है, जिसमें पद्मभागवत, नारदीय, ब्रह्मवैवर्त, अग्नि एवं लिङ्गपुराणों का नाम नहीं है एवं आदिपुराण, नृसिंह, नन्दपुराण, आदित्यपुराण, सोमपुराण तथा साम्बपुराण का नाम जोड़ा हुआ है। इस तालिका में विष्णुपुराणीय शिवपुराण के स्थान पर वायुपुराण का उल्लेख है। वायुपुराण की सूची (१०४.२.१४) में आदिपुराण को आदिकपुराण कहा गया है। नृसिंह, नन्द, आदित्य एवं शाम्बपुराणों का नाम संभवत: मत्स्य पुराण (५३.६१) से लिया गया है। जो इन्हें पद्म एवं भविष्य पुराणों का उपभेद कहता है। सोमपुराण का उल्लेख केवल अलबरूनी द्वारा ही किया गया है। पुराणों की तालिका में इसका नाम नहीं उपलब्ध होता।

(४) सन् १९२१ में बड़ौदा से प्रकाशित कवीन्द्राचार्य की सूची में अष्टादश पुराणों की एक पुस्तकीय तालिका दी गयी है। १७वीं शताब्दी में विकसित कवीन्द्राचार्य के काशीस्थ ग्रन्थागार में ये पुस्तकें वर्तमान थीं। कवीन्द्राचार्य की सूची में संख्या १३३१ से १३४८ तक अष्टादशपुराण की तालिका दी गयी है। इसमें नारदीयपुराण के स्थान पर नन्दिपुराण का उल्लेख हुआ है। इस तालिका में विष्णुभागवत के स्थान पर देवीभागवत तथा शिवपुराण के स्थान पर वायु पुराण का उल्लेख हुआ है। उपपुराणों की तालिका में विष्णु पुराण का उल्लेख भागवत पुराण (नं. २३६४) के नाम से किया गया है।

महापुराणों के उपर्युक्त क्रमों के अवलोकन से यह सुस्पष्ट होता है कि प्राय: विष्णुपुराणीय क्रम पुराणों में अङ्गीकृत हुआ है। अपि च, किसी एक पुराण में स्वीकृत उसी पुराण की संख्या से भी इस क्रम की पुष्टि होती है।

(e) महापुराणों का श्रेणी-विभाजन—

मत्स्यपुराण (५३-६८-६९) में पुराणों की चार श्रेणियों का निरूपण किया गया है—

(अ) सात्त्विक-पुराण—वैष्णव पुराण।

(ब) राजस पुराण—ब्रह्मा सम्बन्धी।

(स) तामस पुराण—अग्नि एवं शिव सम्बन्धी।

(द) सङ्कीर्ण पुराण—सरस्वती एवं पितृगण सम्बन्धी। किन्तु इस प्रसङ्ग में किसी पुराण का नाम निर्देश नहीं है।

स्कन्दपुराण विष्णु, ब्रह्मा, रवि एवं शिव के माहात्म्य से सम्बन्धित नामनिर्देश रहित पुराणों का उल्लेख करता है। चार में विष्णु का माहात्म्य, दो में ब्रह्मा का माहात्म्य, दो में रवि का माहात्म्य एवं अवशिष्ट दस पुराणों में भगवान् शिव का माहात्म्य वर्णित है।

पुराणों में प्रतिपाद्य देवों के अनुसार उक्त प्रकार से पुराणों का श्रेणी-विभाजन किया गया है, किन्तु पुराणों का आधुनिक श्रेणी-विभाजन निम्नलिखित प्रकार से है—

(१) पुराणान्तर्गत विषयों के परीक्षणोपरान्त हर प्रसाद शास्त्री ने पुराणों को निम्नलिखित छः समूहों में विभक्त किया है—

(अ) विश्वकोषात्मक—गरुड, अग्नि एवं नारद।

(ब) तीर्थ एवं व्रतविषयक—पद्म, स्कन्द एवं भविष्य।

(स) वे पुराण, जिनका दो बार संशोधन हुआ— ब्रह्म, भागवत एवं ब्रह्मवैवर्त।

(द) ऐतिहासिक—ब्रह्माण्ड एवं लुप्त वायु पुराण (वर्तमान वायु का समावेश ब्रह्माण्ड में हो सकता है)।

(य) साम्प्रदायिक—लिङ्ग (शैव), वामन (शैव) एवं मार्कण्डेय (शाक्त)।

(र) प्राचीन पुराणों का नूतन स्वरूप—वाराह, कूर्म एवं मत्स्य। इनमें वाराह पुराण का प्राय: अर्धांश वाराह द्वारा प्रोक्त है। मत्स्य का तृतीयांश मत्स्य प्रोक्त तथा कूर्म पुराण का अष्टमांश ही कूर्म प्रोक्त है।

(२) पी०वी० काणे ने प्राय: हरप्रसाद शास्त्री के ही अनुसार निम्नलिखित श्रेणी विभाजन किया है—

(अ) विश्वकोषात्मक—अग्नि, गरुड एवं नारदीय।

(ब) प्राय: तीर्थमाहात्म्य विषयक— पद्म, स्कन्द एवं भविष्य।

(स) साम्प्रदायिक—लिङ्ग, वामन एवं मार्कण्डेय।

(द) ऐतिहासिक—वायु एवं ब्रह्माण्ड।

(३) आर०सी० हाजरा ने अपने पौराणिक रिकार्ड्स (भाग १, अध्याय २) में अष्टादश पुराणों को दो मुख्य श्रेणियों में विभक्त किया है—

(अ) विशिष्ट पुराण—अधिक प्राचीन पाठ वाले पुराण। यथा—मार्कण्डेय, वायु, ब्रह्माण्ड, विष्णु, मत्स्य, भागवत एवं कूर्म।

(ब) गौण पुराण—प्रक्षेपयुक्त पुराण यथा वामन, लिङ्ग, वाराह, पद्म, नारदीय, अग्नि, गरुड, ब्रह्म, स्कन्द, ब्रह्मवैवर्त एवं भविष्य।

(य) पुराणों में वर्णित पुराण पाठ का आभ्यन्तरिक विभाजन।

(क) चतुष्पादीय विभाजन

वायु पुराण (१.६१.५९) के अनुसार चार मूल पुराण संहिताएँ चार-चार पादों में विभाजित थीं। किन्तु, वहाँ उन चार पादों के नाम निर्दिष्ट नहीं हैं, किन्तु वायु पुराण (१.३२.५५-६४) में चारों पादों का नाम स्पष्टतया उल्लिखित है। (१) प्रक्रियापाद, (२) अनुषङ्गपाद, (३) उपोद्घातपाद एवं (४) उपसंहारपाद, जिसमें महायुग के सदृश पुराण का विभाजन निम्नलिखित चार प्रकार से होता है—

''यथायुगं चतुष्पादं विधात्रा विहितं स्वयम् । चतुष्पादं पुराणं तु ब्रह्मणा विहितं पुरा ।।६४।।

अर्थात् वायु के कथनानुसार जैसे महायुग क्रमशः कृत, त्रेता, द्वापर एवं कलियुग के रूप में विभक्त होता है। वैसे ही पुराणों में ये क्रमशः प्रक्रियापाद, अनुषङ्गपाद, उपोद्घातपाद एवं संहारपाद होते हैं।

विष्णुधर्मोत्तर पुराण (३.१७.२-३) में भी कहा है कि पुराण चतुष्पाद वाले होते हैं—

''प्रक्रिया प्रथमः पादः कथावस्तुपरिग्रहः । उपोद्घातानुषङ्गौ च तथा संहार एव च ।।
चतुष्पादं हि कथितं पुराणं भृगुनन्दन ।।''

सभी महापुराणों में केवल वायु एवं ब्रह्माण्ड ही इन पादों में विभक्त हैं।

(ख) नारदीय पुराणानुसार पुराणपाठ-विभाजन

नारदीय पुराण (१.९२.१०९) में विभिन्न पुराणों की तालिका सहित पुराण-पाठ के विभाजन का उल्लेख हुआ है। यद्यपि यह विभाजन अनेक महापुराणों के विभाजन से मेल नहीं खाता, किन्तु इससे नारदीय पुराण के संग्रह काल (सम्भवत: अष्टम या नवम शताब्दी ईसवीय) के समय वर्तमान पाठ-विभाजन की एक झलक प्राप्त होती है।

पुराणपाठीय विभाजन के लिए प्रयुक्त शब्द

नारदीय पुराण में निम्नलिखित शब्दों का प्रयोग हुआ है—

अंश—(विष्णुपुराणवत्)।

अङ्घ्रि—(पाद के लिए प्रक्रिया इत्यादि शब्द का प्रयोग हुआ है। यथा ना०पु० P. १. १०९.१३ b)।

अध्याय—(प्रधान अथवा प्रत्येक पुराण का उपविभाजन)।

खण्ड—(ब्रह्मवैवर्त या स्कन्दवत् 'खण्ड' शब्द का प्रयोग भाग के पर्यायवाची के रूप में भी हुआ है। यथा—गरुड पुराण का पूर्व खण्ड एवं उत्तर खण्ड)।

दल—(भाग के पर्यायवाची रूप में। यथा 'पुरोदले' एवं 'मध्यमे दले' यथा ब्रह्माण्ड पु० १०९.१३ b, २२d)।

पाद—(प्रक्रिया पाद इत्यादि, ब्रह्माण्ड अध्याय १०९ नारदीय पुराण में प्रथम: पाद:, द्वितीय: पाद:, तृतीय: पाद: एवं चतुर्थ: पाद: इत्यादि यथा अध्याय ९७)।

प्रविभाग—(भाग एवं विभाग यथा वाराहपुराण में पूर्व भाग एवं उत्तर प्रविभाग)।

भाग—(वामन में पूर्वभाग: एवं उत्तरभाग:। ब्रह्माण्ड में पूर्वो भाग:, मध्यमो भाग: एवं उत्तरी भाग:, लिङ्ग पुराण में पूर्व भाग: एवं उपरिभाग:)।

विभाग:— भाग (ब्रह्मपुराण में पूर्व भाग एवं उत्तर विभाग)।

संहिता—(कूर्म पुराण को चार संहिताओं में विभक्त कहा जाता है)।

स्कन्ध—यथा भागवत-पुराण एववं देवीभागवत में।

श्री चौधरी के अनुसार पुराण-पाठविभाजन

अब नारदपुराण के अनुसार पुराणों के पाठों का विभाजन जिस प्रकार से चौधरी श्रीनारायण सिंह ने वराहपुराण की अपने प्रति की प्रकाशित व्याख्या की भूमिका में बतलाया है, उसे यहाँ उसी प्रकार दिया जा रहा है—

(१) ब्रह्मपुराण (९२)—पूर्व भाग, उत्तर विभाग।

(२) पद्मपुराण (९३)—(१) सृष्टि खण्ड, (२) भूमिखण्ड, (३) स्वर्गखण्ड, (४) पातालखण्ड, (५) उत्तरखण्ड।

(३) वैष्णवपुराण (९४)—आदिभाग एवं विष्णुधर्मोत्तर। आदि भाग छ: अंशों में विभक्त है।

(४) वायवीय (९५)—पूर्व विभाग एवं उत्तरभाग (नर्मदा तीर्थवर्णन, शिवसंहिता)।

(५) श्रीमद्भागवत (९६)—१२ स्कन्ध।

(६) नारदीय (९६)—प्राग्भाग (पुन: नारद के प्रति सनक प्रोक्त प्रथम पाद:, सनन्दन प्रोक्त द्वितीय पाद:, सनत्कुमार प्रोक्त तृतीयपाद: एवं सनातन प्रोक्त चतुर्थपाद:) एवं उत्तर विभाग।

(७) मार्कण्डेय (८)—केवल अध्यायों में विभक्त।

(८) आग्नेय (९९)—केवल अध्यायों में।

(९) भविष्य (१००)—पाँच पर्वों में। (१) ब्रह्मपर्व, (२) वैष्णवपर्व, (३) शैवपर्व, (४) सौरपर्व, (५) प्रतिसर्गपर्व (सभविष्यकम्)।

(१०) ब्रह्मवैवर्त (१०१)—ब्रह्मखण्ड, प्रकृतिखण्ड, विघ्नेशखण्ड एवं कृष्णजन्मखण्ड।

(११) लिङ्गपुराण (१०२)—पूर्वभाग एवं उपरिभाग।

(१२) वाराह (१०३)—पूर्वभाग एवं उत्तर प्रविभाग।

(१३) स्कन्द (१०४)—सात खण्ड। (१) माहेश्वरखण्ड, (२) वैष्णवखण्ड, (३) ब्रह्मखण्ड, (४) काशीखण्ड, (५) अवन्तिखण्ड, (६) नागरखण्ड, (७) प्राभासिकखण्ड।

(१४) वामन (१०५)—पूर्वभाग (त्रिविक्रम चरित), उत्तरभाग (वृहद्वामनसंज्ञक)। यह पुनः सहस्रश्लोकीय चार संहिताओं में विभक्त है। (१) माहेश्वरी, (२) भागवती, (३) सौरी एवं (४) गाणेश्वरी।

(१५) कूर्णपुराण—विभागद्वय
- १. पूर्वविभाग
  - चार संहिताएँ
  - १. ब्राह्मी संहिता,
- २. उत्तरविभाग (व्यासगीता इत्यादि)
- उत्तरविभाग (अवशिष्ट)
  - २. भागवती संहिता,
    - (१) प्रथमः पादः
    - (२) द्वितीयः पादः
    - (३) तृतीयः पादः
    - (४) चतुर्थः पादः
    - (५) पञ्चमः पादः
  - ३. सौरी संहिता
  - ४. वैष्णवी संहिता (चतुष्पदी)

(१६) मात्स्य (१०७)—अध्याय।

(१७) गारुड (१०८)—पूर्वखण्ड, उत्तरखण्ड (प्रेतकल्प प्रभृति)।

(१८) ब्रह्माण्ड (१०९)—पूर्वोभागः
- १. प्रक्रियापादः
- २. अनुषङ्गपादः
- मध्यमो भागः — ३. उपोद्घातपादः
- उत्तरो भागः — ४. उपसंहारपादः

(ल) पुराण—पाठ-विस्तार

वायुपुराण (वेंक० सं० १.३२.६२-६३) में कहा है कि जैसे चतुर्युग में द्वादश सहस्र वर्ष होते हैं, उसी प्रकार पुराणों में द्वादश सहस्र श्लोक होते हैं। पुनश्च वे पादों में विभक्त होते हैं। यथा—

''एतद् द्वादशसाहस्रं चतुर्युगमिति स्मृतम् । एवं पादैः सहस्राणि श्लोकानां पञ्च पञ्च च।।
संध्या-संध्यांशकैरेव द्वे सहस्रे तथाऽपरे। एवं द्वादशसाहस्रं पुराणं कवयो विदुः।।''

भविष्य पुराण (वेंक. सं० १.१.१०३) का कथन है कि विद्वानों ने पुराणों में १२००० श्लोकों का होना बतलाया है। यथा—

''सर्वाण्येव पुराणानि संज्ञेयानि नरर्षभ। द्वारशैव सहस्राणि प्रोक्तानीह मनीषिभिः।।''

किन्तु यही पुराण अन्यत्र कहता है कि स्कन्दं एवं भविष्य में तुल्य आख्यानों का समावेश कर इन पाठों में वृद्धि होती गयी। उपर्युक्त दोनों पुराणों में क्रमशः शतसहस्र एवं लक्षार्ध श्लोक हैं। यथा—

''पुनर्वृद्धि गतानीह आख्यानैर्विविधैर्नृप। यथा स्कान्दं तथा चेदं भविष्यं कुरुनन्दन''।।१०४
स्कान्दं शतसाहस्रं तु लोकानां ज्ञातमेव हि। भविष्यमेतदृषिणा लक्षार्धं संख्यया कृतम्''।।१०५

तथापि सामान्यतः पुराण के श्लोकों की संख्या चार लाख मानी जाती है। इस चतुर्लक्षात्मक अष्टादशपुराण श्लोक-संख्या के अनुसार पुराण-पाठों के विस्तार का वर्णन नारदीय (१.९२-१०९), भागवत (१२.१३.४-८), देवीभागवत (१.३.३-१२), ब्रह्मवैवर्त (४.१३३.११-२१), मत्स्य (अ० ५३), स्कन्द (७.२.२८-७७), अग्नि

(२७२.१-२३) एवं वायु (१.४२.३-१०)। अग्नि को छोड़कर ये सभी पुराण न्यूनाधिक समान रूप से महापुराण के पाठों के विस्तार का उल्लेख करते हैं एवं श्लोकों का योग चार लक्ष बतलाते हैं। "एवं पुराण संदेहश्चतुर्लक्ष उदाहृत:" भागवत। एवं पुराण संख्यानं चतुर्लक्षमुदाहृतम्" ब्रह्मवैवर्त।

पुराणों में श्लोकों की संख्या का निर्णय

पुराणों में श्लोकों की निश्चित संख्याका इस समय निराकरण करना अत्यन्त कठिन है, फिर भी पाठकों का ध्यान चौधरी श्री नारायण सिंह के द्वारा इस प्रसङ्ग में किये गये उल्लेख की ओर आकृष्ट किया जाता है।

ब्रह्मपुराण—मुद्रित मत्स्यपुराण के संस्करणों में इस पुराण के श्लोकों की संख्या १३००० दी गयी है। किन्तु सर्व भारतीय काशिराज न्यास के पुराण विभाग के कतिपय हस्तलेखों में इसके श्लोकों की संख्या १०००० बतलायी गयी है। यह संख्या भी अन्य पुराणों द्वारा समर्थित है। प्रतीत होता है कि इसमें गौतमी माहात्म्य का समावेश होने पर यह संख्या ११००० हो गयी।

पद्मपुराण—अग्निपुराण के अतिरिक्त सभी पुराण इसके श्लोकों की संख्या ५५००० बतलाते हैं। अग्नि पुराण में इसकी श्लोक संख्या १२००० बतलायी गयी है। स्वयं पद्मपुराण के निम्न श्लोक से भी १२००० श्लोक संख्या की पुष्टि होती है। यथा—

"द्वादशैव सहस्राणां पद्माख्यां च सुसंहिताम्। कलौ युगे पठिष्यन्ति मानुषाः विष्णुतत्पराः।।"

—(आ० सं० २.१२५.४०)

विष्णुपुराण—नारदीयपुराण (१०.९४) विष्णु-धर्मोत्तर को विष्णुपुराण का उत्तर भाग मानता है। किन्तु षडंशालक विष्णुपुराण में विष्णु-धर्मोत्तर के श्लोकों का समावेश हो जाने पर विष्णु-पुराण की श्लोक संख्या २३००० श्लोकों से अधिक हो जाती है।

आग्नेयपुराण—भागवत एवं ब्रह्मवैवर्त में इसकी श्लोक संख्या १५००० तथा मत्स्य एवं स्कन्द में १६००० कही गयी है।

भविष्यपुराण—समय-समय पर होने वाले प्रक्षेपों के कारण इस पुराण का अत्यधिक विस्तार होता गया है। अतएव १४००० श्लोकों से इसकी श्लोक संख्या २६००० तक पहुँच गयी है। स्वयं भविष्य पुराण (१.१.१०५) के अनुसार इसकी श्लोक संख्या ५०००० श्लोकों अर्थात् 'लक्षार्ध' तक हो गयी है।

स्कन्दपुराण—मत्स्य, ब्रह्मवैवर्त, भागवत, देवीभागवत एवं स्कन्द में इस पुराण का विस्तार ८१,१०० श्लोकों तक कहा गया है। भविष्य पुराण १.१.१०५) इसकी संख्या शत सहस्र श्लोक बतलाता है। स्कन्द पुराण (७.२.१०६) के अनुसार इसके सात खण्डों में प्रत्येक खण्ड १२००० श्लोकों का है। "सर्वे द्वादश साहस्रा विभागाः संप्रकीर्तिताः"। इस प्रकार इसकी श्लोक-संख्या ८४००० श्लोकों की होती है। अग्निपुराण में भी यही श्लोक संख्या कही गयी है।

वामनपुराण—नारदीय पुराण (१.१०५) के अनुसार इसमें दो भाग हैं। पूर्वभाग एवं उत्तर भाग। वृहद्वामन संज्ञक उत्तर भाग की चार संहिताओं में प्रत्येक १००० श्लोकों की है। सम्पूर्ण वामन पुराण में १०००० श्लोक हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि इसके पूर्वभाग में ६००० श्लोक हैं। उपलब्ध वामन पुराण में इतने ही श्लोक प्राप्त होते हैं। प्रतीत होता है कि इसका उत्तर भाग लुप्त हो गया है।

कूर्मपुराण—मत्स्य पुराण में इसकी श्लोक संख्या १७००० बतलायी गयी है। सभी पुराण इसकी यही संख्या बतलाते हैं। अग्निपुराण उपलब्ध कूर्म पुराण की श्लोक संख्या ८००० बतलाता है। नारदीय पुराण (१.१०६) में केवल कूर्म पुराण की ब्राह्मी संहिता के पाठ का उल्लेख हुआ है। इस पुराण की अन्य तीन संहिताएँ लुप्त हो गयी हैं। अतः इसकी श्लोक संख्या १७००० से ६००० पर आ गयी है। अग्नि पुराण के अनुसार इसकी श्लोक संख्या ८००० है।

ब्रह्माण्डपुराण—मत्स्य एवं स्कन्द में इस पुराण की श्लोक संख्या १२०० एवं देवी भागवत में १२१०० कही गयी है।

अब आगे कहा जा रहा है कि श्री चौधरी श्री नारायण सिंह ने प्रस्तुत ग्रन्थ 'वराहपुराण' को जिसे शौकर पुराण भी कहा जाता है अट्ठारह पुराणों में बारहवाँ पुराण बतलाया है। चार वैष्णव पुराणों में यह भी एक वैष्णव पुराण है। इसमें शूकर रूपधारी श्रीविष्णु द्वारा समुद्र के अन्दर से पृथ्वी के उद्धार किये जाने का प्रसङ्ग वर्णित है। यद्यपि इस घटना का वर्णन केवल ११२.१२-११३.११ में वर्णित है तथापि पूर्व एवं उत्तर के अनेक अध्यायों में इस प्रसङ्ग का प्रायः उल्लेख किया गया है। यथा १.४ इ० ५०.२७; १२३.२६ इत्यादि।

श्री चौधरी जी के अनुसार कतिपय हस्तलेखों में उपलब्ध "आदि वाराह" नाम से किसी अधिक महत्त्वपूर्ण या प्राचीनतर वाराह-पुराण का अभिप्राय नहीं प्रकट होता। अपितु, इससे आकाश व्यापी वाराह की वैदिक एवं पौराणिक कल्पना का सङ्केत प्राप्त होता है। अनेक पुराणों में इस व्यापक अर्थ में "वराह" शब्द का प्रयोग हुआ है। भागवत पुराण (३.१९.३१) में श्रीविष्णु के आदिवराह या आदिशूकर रूप की स्तुति की गयी है। वराह रूप धारण कर समुद्र गर्भ से पृथ्वी के उद्धार करने के प्रसङ्ग का मूल वेदों के ब्राह्मण भाग में उपलब्ध होता है। इस सम्बन्ध में तैत्तिरीय ब्राह्मण १.२.१.३ एवं शतपथ ब्राह्मण १४.१.२.११ का प्रसङ्ग द्रष्टव्य है। ब्राह्मण भाग के वर्णन में यह भिन्नता है कि इसमें ब्रह्मा द्वारा वराह रूप धारण करने का वर्णन है, न कि विष्णु का। कालान्तर में ब्रह्मा का नारायणात्मक स्वरूप देख कर पौराणिकों ने विष्णु को ही वराह रूप से पृथ्वी का उद्धारक मान लिया। वाराह पुराण को प्रायः संहिता, रहस्य एवं शास्त्र के रूप में अभिहित किया गया है। अष्टादश पुराणों की तालिका (वाराहपुराण, १११.७२) एवं पुष्पिकाओं के अतिरिक्त इसका उल्लेख १११.४७; १४४.४९ d इत्यादि में भी हुआ है। किन्तु इन सभी स्थलों पर हस्तलेखों की स्थिति विशेष जटिल है। कतिपय हस्तलेखों की पुष्पिकाओं में (आदि) वराह शीर्षक के स्थान पर पुराण के विशेषण रूप में "प्रागितिहास" शब्द का प्रयोग हुआ है। अपि च, प्रायः सभी में 'भगवच्छास्त्र' विशेषण का भी प्रयोग हुआ है। जैसे—

इत्यादिवराहे प्रागितिहासे अ० ३७ हस्तलेख
वाराहे भगवच्छास्त्रे अ० ११७ हस्तलेख
वाराह महापुराणे अ० १३५ हस्तलेख
वाराहे पुराणे भगवच्छास्त्रे प्रागितिहासे अ० ११८ हस्तलेख

पुष्पिकाओं में पुराण के प्रथम भाग (अ० १-१११) को आदियुगों को आदिकृतवृत्तान्त (अ० २ इ० तु० नारदपुराण १.१०३, ८c) आदित्रेता (अ० १३ इ०) एवं द्वापर (अ० ७०) के समूहों में विभक्त किया गया है। किन्तु यह विभाजन सभी हस्तलेखों में नहीं हुआ है।

परम्परया अष्टादश पुराणों में वाराह पुराण को यद्यपि बारहवाँ पुराण माना जाता है, किन्तु कम से कम आठ पुराण-तालिकाओं में इस पुराण की भिन्न स्थिति पाई जाती है। यथा– भागवत १२.७, भविष्य ३.३.२८, देवीभागवत १.३.२, गरुड १.२१५, पद्म ४.१००, १११, स्कन्द ७.२ एवं वायु १०४। स्वयं वाराहपुराण में इसे बारहवाँ पुराण माना गया है—"वाराहं द्वादशं प्रोक्तम्।"

वाराहपुराण का विस्तार प्रायः २४००० श्लोकों का निर्धारित है। किन्तु आग्नेयपुराण (आनन्दाश्रम) संस्करण २७२.१६ में इसकी श्लोक संख्या १४००० कही गयी है। हस्तलेख $ब_२$ के अध्याय १३७ की पुष्पिका में भी इसी प्रकार की संख्या का उल्लेख हुआ है—

"इति श्री वराहपुराणे चतुर्विंशसाहस्त्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भगवच्छास्त्रे ॥"

अध्याय ११८ में भी कहा है—

"इति श्रीवराहपुराणे शतसाहस्त्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भगवच्छास्त्रे ॥"

काशिराज न्यास द्वारा प्रकाशित समीक्षात्मक संस्करण में केवल ९४७१ श्लोक एवं दस अध्यायों में गद्य भाग है। इससे पूर्वपिक्षया उत्तरोत्तर पुराणों का कलेवर क्रमशः छोटे होते जाने की प्रवृत्ति अभिलक्षित होती है। तथापि सम्प्रति कुछ पुराणों में निश्चय ही वृद्धि हुई है। इस समय वाराह-पुराण का पाठ दो प्रकार से उपलब्ध होता है। प्रथम दाक्षिमात्य पाठ, यह लघुतम पाठ है। द्वितीय औदीच्य या गौडीय पाठ (वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बम्बई से मुद्रित) है। समीक्षात्मक संस्करण की भूमिका में इसकी पर्याप्त विवेचना की गयी है।

नारदपुराण में वाराहपुराण के दो भागों का उल्लेख हुआ है। नारदपुराण में उल्लिखित वाराहपुराण के प्रथम भाग का विषय-विवरण उपलब्ध वाराहपुराण के विषय-विवरण से पूर्णतया मेल खाता है। किन्तु वर्तमान पुराण में द्वितीय भाग उपलब्ध नहीं होता। तथापि अन्तिम अध्याय (२१५.२ ff) में इसका सङ्केत प्राप्त होता है। जैसे—

''भगवद्विस्वरूपस्य स्थाणोरप्रतिमौजसः। क्रीडनो लोकनाथस्य कानने मृगरूपिणः।।२।।
यथा शरीरं शृङ्गं च पुण्यक्षेत्रे प्रतिष्ठितम्। हिताय जगतस्तत्र तीर्थानि च यथाऽभवन्।
तन्मे ब्रूहि महाभाग! यथातत्वं जगत्पते।।३।।

ब्रह्मोवाच!

पुलस्त्यो वक्ष्यते शेषं यदतोऽन्यं महामुने। सर्वेषामेव तीर्थानामेषां फलविनिश्चयम्।
कुरुराजं पुरस्कृत्य मुनीनां पुरतोऽयने।।४।।

—नारदपुराण (१.१०३.१३)

अतः हस्तलेखों में प्राप्त वराहपुराण का पाठ नारदपुराण की विषयसूची के अनुसार अपूर्ण प्रतीत होता है। पुराण-पाठ की फलश्रुति (१११.७३ इ०) तथा अध्याय १११ की समस्या का विशेष विवेचन समीक्षात्मक संस्करण की भूमिका में किया गया है। वहाँ व्यक्त अभिमत की पुष्टि डॉक्टर आर०सी० हाजरा ने भी की है। उनका कथन है कि प्रखण्ड १-११२ (= पाठसमीक्षा सं० १-१११) का क्रम आगे भङ्ग हो गया है एवं यह एक स्वतन्त्र कृति है।

वाराह पुराण में प्रायः अन्य पुराणों के सदृश ही अनेक ऐसे माहात्म्यों का समावेश हुआ है, जो हस्तलेखों की परम्परा में उपलब्ध नही होते। टो० आफ्रेक्ट के ''कैटेलोगस कैटेलोगोरम'' नामक कृति में ऐसी कृतियों का उल्लेख किया गया है। यथा—भगवद्गीतामाहात्म्य, चातुर्मास्य माहात्म्य, देवीकवच, मृत्तिकाशौचविधान, पद्मललिता (या कामवती चैत्रशुक्ला), पृथ्वीवाराह-संवाद, श्रीमुष्णमाहात्म्य, सूर्यस्तोत्र वेंकटमाहात्म्य, वेंकटगिरिमाहात्म्य, विमानमाहात्म्य, वृन्दावननिर्णय, वृन्दावनप्रकाश, वृन्दावन-रहस्य, व्यतीपातमाहात्म्य। वाराह पुराण में समाविष्ट अन्य कृतियों का भी उल्लेख समीक्षात्मक संस्करण में हुआ है।

'इतिहास एवं पुराण' वेदों के समुपवृंहण के साधन हैं एवं 'अल्पश्रुत से वेद को भय होता है' इस पौराणिक वचन द्वारा पुराणों के प्रामाण्य का प्रतिपादन एक जटिल समस्या उत्पन्न कर देता है। निबन्धकारों ने सम्पूर्ण पुराण को प्रामाणिक माना है। किन्तु, पुराण पाठ की प्रामाणिकता का निश्चय करना सर्वदा सरल कार्य नहीं होता। अतएव यदाकदा पुराणकारों ने किसी पुराण या उसके अंश के प्रति अपनी असहमति की विशेष विवेचना की है। निबन्धकारों ने वाराह पुराण के अत्यधिक वचनों को उद्धृत किया है एवं उनमें अनेक वचन वाराह पुराण के विस्तृत पाठ में उपलब्ध होते हैं। सम्प्रति अप्राप्त ''उत्तरविभाग'' के अतिरिक्त वास्तविक वाराह-पुराण का पाठ नारद पुराण के अध्याय १.१०३ के विवरणानुसार ही है। अस्तु, प्रकृत संस्करण का पाठ नारद-पुराण एवं अति प्राचीन निबन्धकारों के अनुसार ही है। किन्तु, कतिपय निम्नलिखित निष्कर्ष ध्यानार्ह हैं—

नारद पुराण १.१०३.१ d में वाराह पुराण का ''विष्णु-माहात्म्य'' विषयक कहा गया है। किन्तु, सम्प्रति उपलब्ध तमिल ग्रन्थों के आधार पर दीक्षितार वाराह पुराण को शिव-माहात्म्य विषयक ग्रन्थ मानते हैं। स्कन्द-पुराणान्तर्गत शिवरहस्य खण्ड से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है। हरप्रसाद शास्त्री का कथन है कि वर्तमान वाराह-पुराण सम्प्रति

अनुपलब्ध प्राचीन वाराहपुराण का नूतन संस्करण है। साम्प्रतिक वाराहपुराण में पुराण के सर्ग-प्रतिसर्गादि पञ्चलक्षणों का पूर्ण विवरण उपलब्ध नहीं होता। अध्याय १-२ एवं ९ में केवल मात्र सर्ग एवं प्रतिसर्ग का ही वर्णन हुआ है। अन्य तीन लक्षणों का वर्णन प्राय: छोड़ दिया गया है। पुराणों में विभिन्न कालों का संकेत प्राप्त होता है। पद्म पुराण ६.२६३.८१ इ०, गरुड, ब्रह्मखण्ड १.१ इ० एवं भविष्य १३.३.२८.१० इ० में प्रत्येक वराह पुराण को क्रमश: पृथक्-पृथक् गुण से सम्बन्धित बतलाता है। इससे विभिन्न कालों में भिन्न-भिन्न विषयों पर विशेष जोर देने की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। वर्तमान वाराह-पुराण की प्राचीनता विषयक यच०यच० विलसन के संशय को पूर्णतया स्वीकार नहीं किया जा सकता। क्योंकि ब्रह्मवैवर्त एवं भविष्य इत्यादि पुराणों की अपेक्षा वाराह-पुराण की प्राचीनता अधिक सुस्पष्ट है। तथापि, निबन्धों में उद्धृत वाराह-पुराण के अनेक वचनों के स्वरूप से इस सम्भावना को अधिक बल प्राप्त होता है कि तत्काल उपलब्ध वाराह पुराण का अधिकांश पाठ पूर्ण रूप से प्राचीन नहीं माना जा सकता। विष्णु पुराण (३.६.१८-१९) एवं देवी भागवत (१.१.१) इत्यादि पुराणों से लक्षित होने वाली प्रवृत्ति के अनुसार वाराह-पुराण (१४६.१९-२०) में यह कहा गया है कि इस पुराण में सभी शास्त्रों एवं पुराणों के उत्तमोत्तम विषयों का सङ्कलन किया गया है। किन्तु, इसके कुछ ही श्लोक अन्य पुराणों में उपलब्ध होते हैं। इसके अतिरिक्त इसमें भविष्य-पुराण को छोड़कर अष्टादश पुराणों में किसी अन्य पुराण का कोई उल्लेख नहीं हुआ है।

इस पुराण के विषयों के सूक्ष्म निरीक्षण से यह स्पष्ट होता है कि यथा समय वैष्णव, शैव एवं शाक्त सम्प्रदाय के लोगों ने इस पुराण का पूर्ण उपयोग किया एवं नये-नये विषयों का समावेश कर इसे अपने सम्प्रदायानुकूल रूप प्रदान करने का प्रयास किया। अनेक स्थलों पर इस प्रकार के सन्निवेश एवं परिवर्तन की झलक मिलती है। नारदपुराण (१.१०३.१) व्यास को इसका प्रवक्ता बतलाता है। हस्तलेख $ब_२$ के अध्याय १३७ एवं १८८ में भी इसे "संहिता वैयासिकी" कहा गया है। किन्तु, सम्पूर्ण ग्रन्थ में व्यास कहीं भी प्रवक्ता के रूप में नहीं उपलब्ध होते।

वाराह-पुराण के छन्दों की अपनी पृथक् विशिष्टता है। किसी पद या श्लोक के पञ्चम वर्ण पर प्राय: अनुस्वार का प्रयोग नहीं हुआ है। तथा च, व्याकरण सम्बन्धी आधारभूत नियमों की भी इसमें प्राय: उपेक्षा की गयी है। हस्तलेखों में प्राप्त होने वाले ऐसे च्युत-संस्कार दोषयुक्त प्रयोगों को देखकर यह धारणा पुष्ट होती है कि वे प्रयोग लिपिकारों के अज्ञान का परिणाम नहीं है, अपितु वे मूलपाठ के ही अंश हैं। धार्मिक कृत्यों एवं मन्त्रों से सम्बन्धित इसके अनेक अंश गद्यात्मक हैं।

वाराह-पुराण का अनुवाद बहुत ही कम हुआ है। तेलगू, कन्नड एवं हिन्दी में यद्यपि इसका कोई न कोई अनुवाद मिलता है, किन्तु किसी यूरोपीय भाषा में इसका कोई अनुवाद नहीं हुआ है।

वाराह पुराण के वर्ण्य विषय

"वराहेण पृथिवि संविदाना—अथर्व० १२/१/४८ अर्थात् वराह ने पृथ्वी को प्रबुद्ध किया।" इस वेदमन्त्र में सङ्केतित संवाद को ही वराह-पुराण कहा जाता है। इसका उल्लेख नारद-पुराण में निम्नलिखित प्रकार से हुआ है—

"शृणु पुत्र! प्रवक्ष्यामि वराहं वै पुराणकम्। भागद्वययुतं शश्वद् विष्णुमाहात्म्यसूचकम्।।
मानवस्य तु कल्पस्य प्रसङ्गं मत्कृतं पुरा। निबबन्ध पुराणेऽस्मिंश्चतुर्विंशसहस्रके।।"

—(नारद०, ४.२)

अर्थात् हे पुत्र! सुनो, मैं वाराहपुराण का वर्णन करता हूँ। इसके दो भाग हैं। यह विष्णु की महिमा का सूचक है। मेरा उपदिष्ट मानव-कल्प का प्रसङ्ग वेदव्यास ने चौबीस सहस्र श्लोकों में उक्त पुराण में निबद्ध किया है।

सृष्टि-प्रक्रिया का वर्णन करना ही पुराणों का मुख्य विषय है। सृष्टि क्रमश: सूक्ष्म से स्थूल स्वरूप प्राप्त करती है। वाराहं पुराण में सूक्ष्मता से स्थूलता को प्राप्त पदार्थों के संघात या पिण्ड बनने की क्रिया का वर्णन हुआ है। "प्रजापतिर्वै वायुर्भूत्वा व्यचरत्" अर्थात् प्रजापति वायु स्वरूप धारण कर विचरने लगा। इस ब्राह्मण-वचन के अनुसार वराह ही वायु

है। "वृणोति तु अह्वोति च वराहः" अर्थात् जो चतुर्दिक् दबा कर व्याप्त हो, उसे वराह कहते हैं। हमारे ब्रह्माण्ड में पाँच मण्डल कहे जाते हैं। ९१) स्वयम्भूमण्डल, (२) परमेष्ठीमण्डल, (३) सूर्यमण्डल, (४) चन्द्रमण्डल एवं (५) पृथ्वीमण्डल। इन पाँच मण्डलों के पाँच वाराह कहे जाते हैं। स्वयम्भू-मण्डल के निर्माता को 'आदिवराह' परमेष्ठीमण्डल के निर्माता को 'एमूषवराह' कहा गया है। 'एमूष' पद का निर्वचन है 'आ+इम+ऊष'। अर्थात् इस पृथ्वी को चारों ओर से दबाने वाला। यह वायु-विशेष पृथ्वी का पिण्ड बनाकर उसे दबाये रहता है। इसी से पृथ्वी टूटने नहीं पाती। इसीलिए पुराणों में कहा गया है कि पृथ्वी वराह की दाढ़ से दबी हुई है। इस वराह का निरूपण करने वाला ही बारहवाँ पुराण वराह पुराण कहा जाता है।

श्री चौधरी के अनुसार मत्स्य पुराण ५३.३८-४०१ स्कन्दपुराण १.२.५४-५६ एवं अग्निपुराण २७२.१६-१७ में उल्लिखित विषय-वस्तु से वराह-पुराण का विषय-वस्तु पर्याप्त भिन्न प्रतीत होता है। किन्तु इससे यह नहीं कहा जा सकता कि मत्स्य एवं अग्नि पुराण में सङ्केतित वराह-पुराण सम्प्रति उपलब्ध हस्तलेखीय वराह-पुराण से भिन्न है। नारद पुराण १०३.१-३ में भी मत्स्य (=स्कन्द) एवं अग्नि के सदृश ही विषयानुक्रमणिका दी गयी है।

किन्तु तदुपरान्त ही लिखा गया वराह-पुराण का सारांश प्रायः वाराह पुराण के अनुकूल ही है। अतः यह असम्भव नहीं है कि मत्स्य एवं अग्नि द्वारा अभिप्रेत पुराण भी सम्प्रति उपलब्ध वराह-पुराण ही है। नारद पुराण एवं समीक्षात्मक संस्करण के शीर्षकों के निम्नलिखित तुलनात्मक अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि दोनों ही विवरण अधिकांश में परस्पर अनुकूल हैं।

ब्रह्मोवाच

शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि वाराहं वै पुराणकम्। भागद्वययुतं शश्वद् विष्णुमाहात्म्यसूचकम्।।१।।
मानवस्य तु कल्पस्य प्रसङ्गं मत्कृतं पुरा। निबबन्ध पुराणेऽस्मिंस्चतुर्विंशसहस्त्रके।।२।।
व्यासो हि विदुषां श्रेष्ठः साक्षान्नारयणो भुवि। तत्रादौ शुभसंवादः स्मृतो भूमिवराहयोः।।३।।
अथादिकृतवृत्तान्ते रम्भस्य चरितं ततः। दुर्जयस्य च तत्पश्चाच्छ्राद्धकल्प उदीरितः।।४।।
महातपस आख्यानं गौर्युत्पत्तिस्ततः परा। विनायकस्य नागानां सेनान्यादित्ययोरपि।।५।।
गणानां च तथा देव्या धनदस्य वृषस्य। आख्यानं सत्यतपसो व्रताख्यानसमन्वितम्।।६।।
अगस्त्यगीता तत्पश्चाद् रुद्रगीता प्रकीर्त्तिता। महिषासुरविद्वंसमाहात्म्यं च त्रिशक्तिजम्।।७।।
पर्वाध्यायस्ततः श्वेतोपाख्यानं गोप्रदायिकम्। इत्यादिकृतवृत्तान्ते प्रथमे दर्शितं मया।।८।।
भगवद्धर्मके पश्चाद् व्रततीर्थकथानकम्। द्वात्रिंसदपराधानां प्रायश्चित्तं शरीरगम्।।९।।
तीर्थानां चापि सर्वेषां माहात्म्यं पृथगीरितम्। मथुराया विशेषेण श्राद्धादींनां विधिस्ततः।।१०।।
वर्णनं यमलोकस्य ऋषिपुत्रप्रसंगतः। विपाकः कर्मणः चैव विष्णुव्रतनिरूपणम्।।११।।
गोकर्णस्य च माहात्म्यं कीर्तितं पापनाशनम्। इत्येवं पूर्वभागोऽयं पुराणस्य निरूपितः।।१२।।
उत्तरे प्रविभागे तु पुलस्त्यकुरुराजयोः। संवादे सर्वतीर्थानां माहात्म्यं विस्तरात् पृथक्।।१३।।
अशेषधर्माश्चाख्यानाः पौष्करं पुण्यपर्व च। इत्येवं तव वाराहं प्रोक्तं पापविनाशनम्।।१४।।

नारद-पुराण १.१०३ (वेंकटेश्वर-संस्करण)	वाराह-पुराण (समीक्षात्मक संस्करण)
अध्याय १-४ (अनुक्रमणिका, सृष्टि; नारदजन्म)	
१. रम्भस्य चरितम्	अ० ५-८ (रम्भीयचरित)

अ० ९
(आदिसृष्टिमत्स्यावतार)

२. दुर्जयस्य च तत्पश्चात् — अ० १०-१२ (दुर्जयचरित)

३. श्राद्धकल्प उदीरितः — अ० १३-१४ (श्राद्धकल्प)

अ० १५-१६
(गौरमुख-सरमोपाख्यान)

४. महातपस आख्यानम् — अ० १७-३६ (महातपोपाख्यान)

अ० १६. २२-३६
(अग्न्युत्पत्ति)

अ० २०
(अश्विनोरुत्पत्तिः)

५. गौर्युत्पत्तिस्ततः परा — अ० २१-२२ (गौरुत्पत्ति)

६. विनायकस्य — अ० २६ (विनायकोत्पत्ति)

७. नागानाम् — अ० २४ (नागोत्पत्ति)

८. सेनान्यादित्ययोरपि — अ० २५-२६
(२५. स्कन्दोत्पत्ति)
(२६. आदित्योत्पत्ति)

९. गणानां च — अ० २७ (मातृगणोत्पत्ति)

१०. तथा देव्याः — अ० २८ (देव्युत्पत्ति)

अ० २९
(दिग्युत्पत्ति)

११. धनदस्य — अ० ३० (धनदोत्पत्ति)

अ० ३१ — (परापरनिर्णय)

१२. वृषस्य च — अ० ३० (धर्मोत्पत्ति)

अ० ३३. रुद्रोत्पत्ति
अ० ३४. पितृसर्गसृष्टि
अ० ३५. सोमोत्पत्ति

१३. आख्यानं सत्यतपसः — अ० ३६-३८ (सत्यतपोपाख्यान)

१४. व्रताख्यानसमन्वितम्	अ० ३९-५० (द्वादशीव्रत)
१५. अगस्त्यगीता तत्पश्चाद्	(अ० ५१-५९) (अगस्त्यगीता एवं अन्य उपाख्यान)
१६. रुद्रगीता प्रकीर्तिता	अ- ६०-८८ (रुद्रगीता एवं अन्य अनेक उपाख्यान)
१७. महिषासुरविध्वंसमाहात्म्यं च त्रिशक्तिजम्	अ० ८९-९६ (रुद्रमाहात्म्य अथवा त्रिशक्तिमाहात्म्य अथवा महिषासुरवध)
१८. पर्वाध्यायस्ततः	अ० ९७ (पर्वाध्याय)

समीक्षात्मक संस्करण के पाठ का अन्त—

यश्चापि शृणुयात् पादं पर्वाध्यायं सविस्तरम्। श्रावयेद् वा स पितरो यजेद् गत्वा गयामिति।।३५

समस्त पुष्पिकाओं में इसे पर्याध्याय कहा गया है। किन्तु, सत्यतपा के आख्यान से सम्बद्ध है और किसी भी प्रकार अन्तिम अध्याय नहीं है। यह अध्याय ३८ से सम्बन्धित हो सकता है। MS. म$_{१}$ का अन्त १००वें अध्याय (=समी० सं० ९८) के अन्त में होता है।

१९. श्वेतोपाख्यानं गोप्रदायिकम्	अ० ९८-१११ (श्वेतोपाख्यान)

इत्यादिकृतवृत्तान्ते प्रथमे दर्शितं मया ।।

अध्याय ११२ के प्रारम्भ में एक नया मङ्गलाचरण श्लोक है।
श्लोक ११२-१ श्लोक १.१ के सदृश है एवं बंगाली हस्तलेख
में इस अध्याय की संख्या १ देकर एक नवीन संख्याक्रम प्रारम्भ किया गया है।

२०. भगवद्धर्म के पश्चाद् व्रततीर्थकथानकम् — अ० ११२-११५

इन अध्यायों में विष्णु द्वारा पृथ्वी के उद्धार करने का वर्णन है (११२.१२-११३.११)। पृथ्वी वाराह से प्रश्न करती है (११३.१२-११३.६८) एवं चारों वर्णों द्वारा पूजन करने की विधि का वर्णन (११४ इत्यादि)

२१. द्वात्रिंशदपराधाणां प्रायश्चित्तं शरीरगम्	अ० ११६ (अपराध)	अ० १२९-१३६ (प्रायश्चित्त)
	अ० ११६-१२०	

यद्यपि अ० ११७ का प्रारम्भ—

"शृणुतत्त्वेन ते भद्रे प्रायश्चित्तं यथाविधि। यथावत् स न दातव्यो मम भक्तेन विद्यया।।"

तथापि इस अध्याय में मन्त्रों इत्यादि का विषय है।)

२२. तीर्थानां चापि सर्वेषां माहात्म्यं पृथगीरितम्	अ० १२१ (कोकामुखमाहात्म्य)	अ० १३७-१४२ (अनेक तीर्थ)
	अ० १२२-१२४ (गन्धतु एवं माया विषयक)	

अ० १२५
(कोकामुखमाहात्म्य)
अ० १२६-१२८
(ब्राह्मणादि-दीक्षा, दर्पणमन्त्र
इत्यादि एवं ताम्रोत्पत्ति)
अ० १४२
(गुह्यकर्ममाहात्म्य)

यहाँ यह उल्लेख्य है कि हस्तलेखों के (१११-१४९) के अध्यायों में सर्वाधिक सन्निवेश हुआ है। तथा च विभिन्न अध्यायों में उनके शीर्षकों की पुनरुक्ति हुई है।

अ० १५०-१७८
(मथुरामाहात्म्य)

२३. मथुराया विशेषेण

उल्लेख्य—इन हस्तलेखीय अध्यायों में अत्यल्प सन्निवेश हुआ है।

अ० १७९-१८४
(प्रतिमास्थापन)

२४. श्राद्धादीनां विधिस्ततः

अ० १८५-१८८
(श्राद्धोत्पत्ति)

अ० १८९-१९०
(मधुपर्कोत्पत्ति, सर्वश्रान्ति)

अ० १९१-२१०
(नासिकेतोपाख्यान या संसारचक्र)

२५. वर्णनं यमलोकस्य ऋषिपुत्रप्रसङ्गतः
विपाकः कर्मणः चैव
विष्णुव्रतनिरूपणम्

उल्लेख्य—हस्तलेख ब१ में अध्याय १ से नवीन संख्याक्रम प्रारम्भ होता है, किन्तु अन्य हस्तलेखों में पूर्व का ही संख्याक्रम चलता रहता है। इन अध्यायों में न केवल तीन उपर्युक्त शीर्षक उपलब्ध होते हैं, अपितु अन्य अनेक शीर्षक भी दृष्टिगत होते हैं।

हस्तलेख दे१० अध्याय २१० को भी 'वैशम्पायनीय' कहता है एवं हस्तलेख ब२ अध्याय १८८ को 'संहिता वैयासिकी' बतलाता है।

अ० २११-२१५
(गोकर्ण, श्रृंगेश्वर, शैलेश्वर प्रभृति)

नारद पुराण में अत्यल्प शब्दों (श्लोक १३-१४) में वर्णित 'उत्तरप्रविभाग' वराहपुराण में दृष्टिगत नहीं होता। यद्यपि इससे उपलब्ध महापुराण के श्लोकों (९४७१ श्लोक एवं गद्य भाग) तथा मत्स्य (=स्कन्द) अग्नि एवं नारद (२४०००) में वर्णित श्लोक-संख्या के अन्तर पर प्रकाश पड़ता है।

आर०सी० हाजरा वराह-पुराण के पाठ को चार स्पष्ट भागों में विभाजित करते हैं—

१. अध्याय १-११२ (= समीक्षात्मक संस्करण १-१११)
२. अध्याय ११३-१९२ (= समीक्षात्मक सं० ११२-१९०)
३. अध्याय १९३-२१२ (=समीक्षात्मक सं० १९१-२१०)

४. अध्याय २१३ से अन्त तक (=समीक्षात्मक सं० २११ से अन्त तक)

इनमें से प्रत्येक भाग विभिन्न व्यक्तियों की कृति प्रतीत होता एवं उत्तरकालीन प्रक्षेप वर्तमान हैं। प्रथम भाग पाञ्चरात्र सम्प्रदायानुसारी है एवं यह अवैदिक पाशुपत अर्थात् आगमिक शैव सम्प्रदाय का विरोधी है। अध्याय ८९-९६ में तीन शक्तियों का उल्लेख हुआ है। इससे यह भाग स्पष्टत: शाक्त सम्प्रदायानुगामी सिद्ध होता है किन्तु ९८-५२ से १११.६२ तक का अंश पद्मपुराण के सृष्टिखण्ड ३४ का ही अनुवाद करता है।

द्वितीय भाग ११२-१९० भागवत मतानुगामी है। तीर्थ-विषयक अध्याय १४० से १४९ तक एवं मथुरा माहात्म्य विषयक अध्याय १५० से १७८ तक का अंस बाद के प्रक्षेप हैं। अध्याय १४६.७० इत्यादि संभवत: पाञ्चरात्र सम्बद्ध है।

तृतीय भाग १९१-२१० में नाचिकेत की कथा है। पुष्पिकाओं में इसे 'संसारचक्र' भी कहा गया है। वराह पुराण में वर्णित कथा औपनिषदिक एवं महाकाव्यीय कथा से भिन्न है। संस्कृत के नासिकेतोपाक्यान का आधार है। वस्तुत: कुछ पुष्पिकाओं में इस कथा को नासिकेतोपाख्यान ही कहा गया है।

अन्तिम चतुर्थभाग २११-२१५ का अंश शैवसम्प्रदायानुगामी है। इसमें उत्तरगोकर्ण की उत्पत्ति एवं माहात्म्य तथा नेपाल के अन्य स्थानों का भी वर्णन है।

उपर्युक्त विवेचन में वर्णित भागों की अन्तिम अध्यायों की पुष्पिकाओं के श्लोक या नये भाग के प्रथम अध्याय के प्रारम्भिक श्लोक को देखने से प्राय: उन भागों का परिज्ञान सरलतापूर्वक हो जाता है।

इसका पूर्व में ही उल्लेख किया गया है कि प्रकृत पुराण में पञ्चलक्षण विषयक वर्णन अत्यल्प ही है। केवल अध्याय १. १-२.५१ एवं ९ में ही एतद्विषयक वर्णन हुआ है। अनेक स्थलों पर यह पुराण एक प्रकार से स्तोत्रों एवं व्रतविधानों का ग्रन्थ प्रतीत होता है। तथापि इस पुराण के अनेक विशिष्ट एवं रोचक स्थल ध्यानाकर्षण में समर्थ हैं।

वाराह-पुराण में मथुरा का सुविस्तृत माहात्म्य अट्ठाइस अध्यायों में वर्णित है। केवल मथुरा अथवा मथुरा एववं वृन्दावन का वर्णन पुराणों एवं महाभारत का एक प्रमुख विषय रहा। यह कृष्ण एवं राधा की लीला से सम्बन्धित है। जे०एन० फर्कुहर का कथन है कि वराहपुराण का मथुरा माहात्म्य मथुरा के गोस्वामियों की सोलहवीं शती की कृति है। एस०के० डे ने भी ऐसा ही कहा है। किन्तु, वेंकटेश्वर संस्करण का अन्तिम अध्याय (२१८.१-२), जो देवनागरीलिपि के हस्तग्रन्थ में भी उपलब्ध है, यह सूचित करता है कि इस पुराण की प्रतिलिपि सम्वत् १६२१ अर्थात् १५६२ ईसवी सन् में हुई थी। इसके बाद की अनुक्रमणिका में भी मथुरा-माहात्म्य (२१८.३७) को एक विषय निर्दिष्ट किया गया है। इससे यह प्रकट होता है कि सोलहवीं शती के मध्य तक मथुरा-माहात्म्य वाराह-पुराण में समाविष्ट हो चुका था। वस्तुत: गोस्वामी लोग इन हस्तलेखों की प्रतिलिपिंयों के समकालीन थे। अत: इस समय मथुरा-माहात्म्य के समावेश होने की कल्पना करने की अपेक्षा यह विचार करना चाहिए कि १५६२ ईसवी सन् में की गयी प्रतिलिपि के पूर्व ही मथुरा-माहात्म्य वाराह-पुराण में समाविष्ट हो चुका था। गोस्वामियों ने संभवत: इसका विस्तार किया हो। किन्तु, यह उल्लेखनीय है कि यद्यपि अट्ठाइस अध्यायों में मथुरा एवं वृन्दावन एवं उनके तीर्थों का तथा कृष्ण की लीलाओं का संक्षिप्त वर्णन हुआ है। किन्तु 'राधा' का उल्लेख केवल एक स्थल (१६२.३२-३४) पर हुआ है। यहाँ मथुरा स्थित 'राधाकुण्ड' के नाम का एक संक्षिप्त निर्वचन किया गया है। इस तथ्य से भी माहात्म्य के गोस्वामियों की कृति होने की सम्भावना की पुष्टि नहीं होती।

वाराह-पुराण में बुद्ध का उल्लेख भी एक विचारणीय विषय है। वाराह-पुराण के ३९-४८ अध्यायों में दशावतारों के अनुसार दस द्वादशी व्रतों का वर्णन किया गया है। वाराह पुराण में विष्णु के दस अवतारों का पूर्वनिर्धारण हो चुका है। (उदाहरणार्थ द्रष्टव्य ४.२; ११२.२७)। सामान्यतया मान्य अवतार क्रम के अनुसार बुद्ध नवम अवतार हैं। अङ्गीकृत समीक्षात्मक पाठ के द्वादशीव्रतों के वर्णन में नवम बुद्धावतार का नामोल्लेख नहीं हुआ है, क्योंकि यद्यपि दो

के अतिरिक्त अन्य अध्यायों की पुष्पिकाओं में यह उल्लिखित है तथा ४७.२३८ में एक सम्प्रदाय प्रवर्तक कहा गया है। किन्तु ४८.१९ में उन्हें मनुष्यों को मोहित करने वाला कहा गया है। अत: वाराह-पुराण में बुद्ध की स्थिति विवादास्पद है।

द्वादशी वाराह-पुराण की सर्वाधिक मान्य तिथि है। इसमें चौबीस द्वादशियों का उल्लेख हुआ है। अध्याय ३९-५० में बारह शुक्ला द्वादशियों को निम्नलिखित प्रकार से विष्णुसम्बन्धी निर्दिष्ट किया गया है—

मार्गशीर्ष	सम्बन्धित	मत्स्य से
पौष	"	कूर्म से
माघ	"	वराह से
फाल्गुन	"	नरसिंह से
चैत्र	"	वामन से
वैशाख	"	परशुराम से
ज्येष्ठ	"	राम से
आषाढ़	"	कृष्ण से
श्रावण	"	जनार्दन (बुद्ध?) से
भाद्र	"	कल्कि से
आश्विन	"	पद्मनाभ से
कार्त्तिक	"	योगीश्वर से

यहाँ उल्लेख्य है कि द्वादश मासीय क्रम अर्थात् वर्ष का आरम्भ मार्गशीर्ष से न कि चैत्र या वैशाख से होता है तथा अन्त कार्त्तिक से होता है।

बत्तीस या तैंतीस अपराधों तथा उनके प्रायश्चित्तों (अध्याय ११६ एवं १२९-१३६) का वर्णन, गणेशोत्पत्ति (अ० २३), चन्द्रोत्पत्ति (अ० ३५), कृष्णोत्पत्ति (अ० ४६.१२-१६) एवं अन्य कतिपय उत्पत्तियों का वर्णन भी पर्याप्त रोचक विषय हैं। महिषासुरवध (८९-९६) की कथा भी विशेष उल्लेखनीय है। आर०सी० हाजरा ८९ से ९५ तक के अंश को उत्तरकालीन प्रक्षेप मानते हैं किन्तु पी०वी० काणे उन्हें देवीलीला विषयक प्राचीनतम अंश मानते हैं।

वाराह पुराण में दो बार भविष्य पुराण का उल्लेख हुआ है। यह भविष्य पुराण को सूर्य-प्रोक्त बतलाता है। इसमें द्वादश आदित्यों (२६/६२) के जन्म की कथा बतलायी गयी है एवं साम्ब की कथा (२७५ इत्यादि = भविष्य I. १९९.१६-१८) का भी कुछ वर्णन हुआ है। सौर सम्प्रदायानुयायियों ने संभवत: इसमें कुछ सन्निवेश किया हो। वाराह-पुराण में उल्लिखित विशिष्ट तीर्थों में लोहार्गल एवं स्तुतस्वामी, शौकर या शौकरक (कदाचित् सौकर या सौकरक), गोकर्ण एवं मथुरा तीर्थ तथा उनके उपतीर्थ भी स्मरणीय हैं। अध्याय १२१ तथा अध्याय १४० में कोकामुख तीर्थ का माहात्म्य कहा गया है। चार के अतिरिक्त इस पुराण के सभी तीर्थों का वर्णन अध्याय १११ के अनुसार हुआ है।

अन्य पुराणों के सदृश वाराह-पुराण भी ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव की अभेदता पर बल देता है। तथापि, ऐसे अनेक स्थल हैं, जहाँ शिव एवं शैवों के प्रति किञ्चित् हेय दृष्टि प्रकट होती है। पुराणों में प्राय: उपलब्ध होने वाले ऐसे सभी स्थलों की सङ्गति मीमांसा शास्त्र में कथित "नहि निन्दा न्याय" की दृष्टि से लगायी जाती है।

यह उल्लेखनीय है कि हस्तलेखों का पर्याप्त समर्थन प्राप्त न होने से समीक्षात्मक संस्करण में प्रयागस्थ गङ्गा, यमुना एवं सरस्वती के सङ्गम के स्थान पर गण्डकी, देविका एवं ब्रह्मपुत्र के सङ्गम के लिए प्रयुक्त 'त्रिवेणी' शब्द के सदृश कतिपय रोचक विषयों को छोड़ दिया गया है। वेंकटेश्वर संस्करण या अन्य एकाध हस्तलेख के अध्यायों १-१११ एवं १५०-१७८ में श्लोकों का सन्निवेश अत्यल्प ही हुआ है। किन्तु अध्याय ११२-१४९ में इसकी पराकाष्ठा हो गयी है। यहाँ नारद पुराणीय विषय-क्रम विपर्यस्त हो गया है।

वाराह-पुराण में छत्तीस से कम स्तोत्र नहीं हैं। इनमें बाइस विष्णु सम्बन्धी, चार शिव एवं देवी-सम्बन्धी एवं छः अन्य देवों से सम्बन्धित हैं। इसमें प्रायः सत्तासी व्रतों एवं एक सौ आठ आख्यानों तथा उपाख्यानों का वर्णन हुआ है। इससे विण्टरनिट्ज द्वारा इस पुराण के विष्णु-सम्बन्धी व्रतादि विषयक ग्रन्थ होने की धारणा की पर्याप्त पुष्टि होती है।

पुराण-सङ्कलन का काल एवं स्थान

चौधरी श्री नारायण सिंह के अनुसार अनेक लेखकों ने वाराह-पुराण के निबन्धन का समय निर्धारित करने का प्रयास किया है। एच०एच० विलसन का कथन है कि वराह-पुराणीय सम्प्रदाय में कृष्ण की विशिष्ट उपासना की प्रवृत्ति तथा रथयात्रा एवं जन्माष्टमी सम्बन्धी व्रतों का अभाव है। इसके अतिरिक्त अन्य सङ्केत भी इसे वैष्णवोपासा के प्रारम्भिक स्तर से सम्बन्धित सूचित करते हैं। संभवतः इसे रामानुज के काल अर्थात् बारहवीं शताब्दी के प्रारम्भिक काल से सम्बन्धित माना जा सकता है। ओ० प्लेहर्टी इसे ७५० ईसवीय का एवं पी०वी० काणे इसे ईसा की दशवीं शताब्दी से पूर्व का ग्रन्थ मानते हैं। कुमार लाल की धारणा है कि इसका मुख्य भाग महाभारत कालीन है, किन्तु महापुराण के वर्तमान स्वरूप का पूर्व निर्माण विदेशी आक्रमणों के काल में हुआ, जबकि सौर-सम्प्रदाय का पर्याप्त विकास हो चुका था।

आर०सी० हाजरा सम्पूर्ण पुराण के सङ्कलन का कोई एक निश्चित समय निर्धारित कर विभिन्न स्थलों या अध्यायों के समय के निर्धारण का प्रयास करते हैं। उनके निष्कर्ष विचारणीय प्रतीत होते हैं। अतः नीचे उनकी पुनरावृत्ति की जाती है।

प्रथम भाग (अध्याय १-१११)	
अ—मूलांश	
अध्याय १-८८ एवं ९७	८०० ईसवीय
ब—प्रक्षिप्त	
अध्याय ८९-९५ एवं ९८.१-५०	१४०० ई० के बाद नहीं
अध्याय ९६	समय अज्ञात
अध्याय ९८ से १११.५८	११०० ईसवी के बाद नहीं
द्वितीय भाग (अध्याय ११२-१९०)	
अ—मूलांश	
अध्याय ११२-१३९ एवं १७९-१९०	८००-१००० ईसवी तक (प्रथम भाग के मूल अध्यायों के बाद)
ब—प्रक्षिप्त	
अध्याय १४०-१४९	१५०० ईसवी के बाद का नहीं
अद्याय १५०-१७८	अध्याय १४०-१४९ के बाद के बाद, किन्तु, 'हरिभक्ति-विलास' के निर्माण के बाद का नहीं।
तृतीय भाग	
अध्याय १९१-२१०	९०० एवं ११०० ईसवी के मध्य
चतुर्थ भाग	
अध्याय २११ से अन्त तक	काल अज्ञात। संभवतः ११०० ईसवी से पूर्व नहीं।

अतः वाराह-पुराण में प्रायः उत्तर भारत के ही स्थानों का वर्णन हुआ है, अतः आर०सी० हाजरा का यह मत

माना जा सकता है कि इस पुराण का सङ्कलन उत्तरी भारत में हुआ था। यदि ग्रन्थकार दाक्षिणात्य होते तो वे अपने प्रदेश के पवित्र स्थानों को कभी विस्मृत न करते। अन्त के पाँच अध्याय, २११-२१५, संभवतः किसी नेपाली की ही कृति है।

जनहित साधक पुराण

आधुनिक भारतीय जनमानस अप-टू-डेट बनने और कहलाने के चक्रव्यूह में फँसकर इतने बहक से गये हैं कि उन्हें अपने भारतीय होने में भी शर्म-सी आने लगी है। इस प्रकार वे अपने आपको भूलकर पाश्चात्यीकरण के शिकार हो गये हैं।

वशिष्ठ, विश्वामित्र, राम, कृष्ण, परशुराम, व्यास, चाणक्य, महाराणा प्रताप, शिवाजी, झाँसी की रानी आदि भारतीय स्वाभिमानी सपूत हो चुके हैं, लेकिन इस समय हम गौरव और स्वाभिमान को दरकिनार कर दिये। इसका स्मरण हमको फिर से यदि कोई दिला सकता है, तो वह केवल पुराण साहित्य ही है। हम कितने धार्मिक, न्यायपरायण, वीर, विद्वान् तथा दयालु थे, इन्हें हम प्रायः भूल चुके हैं और दिन-प्रतिदिन भूलते जा रहे हैं, जिन गुणों के कारण दूसरे लोग हमें आदर्श रूप में स्मरण किया करते थे। अतः इस समय उन बहुमूल्य गुणों की रक्षा तथा उनकी पुनः स्थापना के लिये पुराणसाहित्य का अध्ययन तथा मनन करना भारतीयों के लिये अत्यन्त हितकर एवं आवश्यक है।

विभिन्न विषयों के विवेचन एवं लोकोपयोगिता की दृष्टि से अठारह पुराणों में अग्निपुराण का सर्वाधिक महत्त्व है। इसमें अनेक विद्याओं का सुन्दर समावेश है।

पद्मपुराण में पुराणों को भगवान् विष्णु का ही विग्रह बतलाया गया है और उनके विभिन्न अङ्ग ही विभिन्न पुराण कहे गये हैं। (स्वर्गखण्ड ६२।२)।

भारतीय जीवन संस्कृति के वेदादि शास्त्रों के साथ इतिहास और पुराण हैं, चूँकि वे शास्त्रादि भगवान् के स्वाभाविक उच्छ्वास हैं, अतः वे भगवत्स्वरूप ही हैं। श्रुत ब्रह्मवाणी का संरक्षण परम्परा से ऋषियों द्वारा होता रहा, इसीलिये इसे 'श्रुति' कहते हैं। भगवदीय वाणी वेदों के सत्य को समझने के लिये षडङ्ग, अर्थात् शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छन्द, निरुक्त और ज्योतिष का अध्ययन आवश्यक था। परन्तु जन साधारण के लिये सहज और सरल होने से पुराणों का कथोपकथन अधिक जनप्रिय हो सका, जिससे वैदिक सत्य रोचक ऐतिहासिक आख्यायिकाओं द्वारा जन-जन तक पहुँचने का मार्ग प्रशस्त हो सका। यद्यपि पुराणों का कथोपकथन उतना ही प्राचीन है, जितना वैदिक ऋचाओं का संकलन और वंशानुवंश-संरक्षण। अतः अध्ययन की पाश्चात्य विश्लेषण-विवेचन-पद्धति को सर्वोपरि मानकर पुराणों को ईसाजन्म के आसपास अथवा उसके बाद का ठहराना सर्वथा भ्रान्त तथा अनुचित प्रयास है। भारत के आदिकाल में समाज का प्रतिभासम्पन्न समुदाय जिस प्रकार वेदों के अध्ययन-अध्यापन-निर्वचन में निर्मग्न रहा, उसी प्रकार उसी काल में समाज के साधारण समुदाय को धर्म में लगाये रखने के लिये पुराणों का कथन श्रवण प्रवचन होता रहा। शतपथब्राह्मण (१४।२।४।१०) में आया है कि 'चारों वेद, इतिहास, पुराण—ये सब महान् परमात्मा के ही निःश्वास हैं।' अथर्ववेद (११।७।२४) में आया है—'यज्ञ से यजुर्वेद के साथ ऋक्, साम, छन्द और पुराण उत्पन्न हुये।'

इस आधार पर कहा जा सकता है कि जो पुरातन आख्यान ऋषियों की स्मृतियों में सुरक्षित थे और जो वंशानुवंश ऋषि-कण्ठों से कीर्तित थे, उन्हीं का संकलन और विभागीकरण भगवान् वेदव्यास द्वारा हुआ। उन आख्यायिकाओं को व्यवस्थित करके प्रकाश में लाने का श्रेय भगवान् वेदव्यास को है। इसी कारण वे पुराणों के प्रणेता कहे जाते हैं; अन्यथा पुराण भी वेदों की भाँति ही अनादि, अपौरुषेय एवं प्रामाणिक हैं।

अतएव पुराणों के अध्ययन-अध्यापन की परम्परा को सुनियोजित रूप में पुनर्व्यवस्थापित कर समाज को सर्वाङ्गीण विकास के मार्ग पर अग्रसर करने का पुण्य कार्य अवश्य किया जाना चाहिए। इसका फल यह होना सम्भव ही है कि व्यष्टि और समष्टि के स्तर पर पारिवारिक, सामाजिक, राजनैतिक शैक्षणिक आदि-आदि समस्याओं का निराकरण

तो होना ही है, हर स्तर पर नैतिक मूल्यों का सम्वर्द्धन होकर महिला हितकारक समाज की स्थापना करने का मार्ग भी स्वतः स्थापित हो सकेगा।

इस प्रकार पुराण चर्चा के लाभ को समझने हेतु उनके विषयों के सन्दर्भ में संक्षिप्त चर्चा करना अनुचित नहीं ही होगा, चूँकि भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों की दृष्टि में पुराण भारतीय सभ्यता, संस्कृति के साथ एक महान् ज्ञानकोश है। इसके पौराणिक स्वरूप में कारणसृष्टि, कार्यसृष्टि और लय, देवपितरों की वंशावली, समस्त मन्वन्तर तथा वंशानुचरित (सूर्य, चन्द्र प्रभृति) वंशों में उत्पन्न राजाओं का संक्षिप्त वर्णन किया गया है। इससे तन्त्र, अलंकार, छन्द, ज्योतिष, व्याकरण, आयुर्वेद, राजनीति, कोश आदि विविध विषयों का सुन्दर परिचय मिलता है।

भगवान् वेदव्यास द्वारा प्रणीत शास्त्रों में अठारह महापुराण का एक विशेष स्थान है। पुराण ब्रह्मस्वरूप है, सर्वोत्कृष्ट है तथा वेदतुल्य है। देवताओं के लिये सुखद और विद्याओं का सार है। इस दिव्य पुराण के पठन-श्रवण से भोग-मोक्ष की प्राप्ति होती है।

पुराणों के पाँच लक्षण बताये गये हैं—१. सृष्टि उत्पत्ति वर्णन, २. सृष्टि विलय वर्णन, ३. वंश परम्परा वर्णन, ४. मन्वन्तर वर्णन और ५. विशिष्ट व्यक्ति चरित्र वर्णन। पुराण के पाँचों लक्षणों का अध्यन ज्ञानवर्द्धक तो है ही इनके अतिरिक्त वर्ण्य विषय इतने विस्तृत हैं कि इनको 'विश्वकोष' कहा जाता है। मानव के लौकिक, पारलौकिक और पारमार्थिक हित के लगभग सभी विषयों का वर्णन पुराण में मिलता है। प्राचीनकाल में न तो मुद्रण की प्रथा थी और न ग्रन्थ ही सुलभ होते थे। ऐसी परिस्थिति में विविध विषयों के महत्त्वपूर्ण विवेचन का एक ही स्थान पर एक साथ मिल जाना, यह एक बहुत बड़ी बात थी। इसी कारण पुराण बहुत जनप्रिय और विद्वद्वर्ग समादृत रहा।

सम्पूर्ण सृष्टि के कारण भगवान् विष्णु और शिव हैं, अतः पुराण में भगवान् के विविध अवतारों का संक्षिप्त वर्णन किया गया है, तो साथ ही शिव के अनेक विलक्षण स्वरूप का दर्शन भी प्रस्तुत किया गया है। भगवान् विष्णु ही मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, श्रीराम, श्रीकृष्ण और बुद्ध के रूप में अवतरित हुए तथा कल्कि के रूप में अवतरित होंगे। भगवान् के अवतारों की संख्या निश्चित नहीं है; परन्तु सभी अवतारों हेतु यही है कि सभी वर्ण और आश्रम के लोग अपने-अपने धर्म में दृढ़तापूर्वक लगे रहें। जगत् की सृष्टि के आदिकारण श्रीहरि अवतार लेकर धर्म की व्यवस्था और अधर्म का निराकरण करते हैं।

भगवान् विष्णु से ही जगत् की सृष्टि हुई। प्रकृति में भगवान् विष्णु ने प्रवेश किया। क्षुब्ध प्रकृति से महत्तत्त्व, फिर अहंकार उत्पन्न हुआ। फिर अनेक लोकों का प्रादुर्भाव हुआ, जहाँ स्वायम्भुव मनु के वंशज एवं कश्यप आदि के वंशज परिव्याप्त हो गये। भगवान् विष्णु आदिदेव हैं और सर्वपूज्य हैं। प्रत्येक साधक को आत्मकल्याण के लिये विधिपूर्वक भगवान् विष्णु का पूजन करना चाहिये।

भगवान् की पूजा का विधान क्या है, पूजा के अधिकार की प्राप्ति किस प्रकार हो सकती है, यज्ञ के लिये कुण्ड का निर्माण एवं अग्नि की स्थापना किस तरह की जाती है। शिष्य द्वारा आचार्य के अभिषेक का विधान क्या है? तथा भगवान् का पूजन एवं हवन किस प्रकार सम्पन्न किया जाय, इसका विस्तृत वर्णन पुराण में है। मन्त्र एवं विधिसहित पूजन हवन करने वाला अपने पितरों का उद्धारक एवं मोक्ष का अधिकारी होता है। देवपूजन के समान महत्त्व देवालय निर्माण का है। देवालय निर्माण अनेक जन्म के पापों को नष्ट करता है। निर्माण-कार्य के अनुमोदन मात्र से ही विष्णुधाम की प्राप्ति का अधिकार मिल जाता है। कनिष्ठ, मध्य और श्रेष्ठ—इन तीन श्रेणी के देवालयां के पाँच भेद भी में बताये गये हैं—१. एकायतन, २. त्र्यायतन, ३. पञ्चायतन, ४. अष्टायतन तथा ५. षोडशातन। मन्दिरों का जीर्णोद्धार करने वाले को देवालय निर्माण से दूना फल मिलता है। पुराण में विस्तार से बताया गया है कि श्रेष्ठ देव प्रासाद के लक्षण क्या हैं।

देवालाय में किस प्रकार की देव प्रतिमा स्थापित की जाय, इसका बड़ा सूक्ष्म एवं अत्यन्त विस्तृत वर्णन पुराणों

में है। शालग्रामशिला अनेक प्रकार की होती है। द्विचक्र एवं श्वेतवर्ण शिला 'वासुदेव' कहलाती है। कृष्णकान्ति एवं दीर्घ छिद्रयुक्त 'नारायण' कहलाती है। इसी प्रकार इसमें संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, परमेष्ठी, विष्णु, नृसिंह, वाराह, कूर्म, श्रीधर आदि अनेक प्रकार की शालग्रम शिलाओं का विशद् वर्णन है। देवालय में प्रतिष्ठित करने के लिये भगवान् वासुदेव की, दशावतारों की चण्डी, दुर्गा, गणेश, स्कन्द आदि देवी-देवताओं की, सूर्य की, ग्रहों की, दिक्पाल, योगिनी एवं शिवलिङ्ग आदि की प्रतिमाओं के श्रेष्ठ लक्षणों का वर्णन है। देवालय में श्रेष्ठ लक्षणों से सम्पन्न श्रीविग्रहों की स्थापना सभी प्रकार के मङ्गलों का विधान करती है। पुराणोक्त विधि के अनुसार देवालय में देव प्रतिमा की स्थापना और प्राण प्रतिष्ठा कराने से परम पुण्य होता है। श्रेष्ठ साधक के लिये यही उचित है कि अत्यन्त जीर्ण, अङ्गहीन, भग्न तथा शिलामात्रावशिष्ट (विशेष चिह्नों से रहित) देव प्रतिमा का उत्सवसहित विसर्जन करे और देवालय में नवीन मूर्ति का न्यास करे। जो देवालाय के साथ अथवा उससे अलग कूप, वापी, तड़ाग का निर्माण करवाता या वृक्षारोपण करता है, वह भी बहुत पुण्य का लाभ करता है। यह वृक्षारोपण आज के वैज्ञानिक युग में कितना आवश्यक है, सर्वविदित ही है।

भारतवर्ष में पञ्चदेवोपासना अति प्राचीन है। गणेश, शिव, शक्ति, विष्णु और सूर्य—ये पाँचों देव आदिदेव भगवान् की ही पाँच अभिव्यक्तियाँ हैं; परन्तु सब तत्त्वत: एक ही हैं। गणपति पूजन, सूर्य पूजन, शिव-पूजन, देवी पूजन और विष्णु पूजन के महत्त्व का भी पुराण में यथा स्थान प्रतिपादन हुआ है।

साधना के क्षेत्र मे श्रेष्ठ गुरु, श्रेष्ठ मन्त्र, श्रेष्ठ शिष्य और सम्यक् दीक्षा का बड़ा महत्त्व है। जिससे शिष्य में ज्ञान की अभिव्यक्ति करायी जाय, उसी का नाम 'दीक्षा' है। पाशमुक्त होने के लिये जीव को आचार्य से मन्त्राराधन की दीक्षा लेनी चाहिये। सविधि दीक्षित शिष्य को शिवतत्त्व की प्राप्ति शीघ्र होती है।

जहाँ भक्त मन, वाञ्छा, कल्पतरु भगवान् के सिद्ध श्रीविग्रहों के देवालय हैं, अथवा जहाँ सर्वलोकवन्दनीय श्रीहरि के प्रीत्यर्थ ऋषि-मुनियों ने कठिन साधना की है, वही भूमि 'तीर्थ' कहलाती है, जिसके सेवन से भोग-मोक्ष की प्राप्ति होती है। तीर्थ-सेवन का फल सबको समान नहीं होता। जिसके हाथ, पैर और मन संयमित हैं तथा जो जितेन्द्रिय, लघ्वाहारी, अप्रतिग्रही, निष्पाप है, उसी तीर्थयात्री को तीर्थ सेवन का यथार्थ फल मिलता है। ऐसे तीर्थयात्री को पुष्कर, कुरुक्षेत्र, काशी, प्रयाग, गया आदि तीर्थों का सेवन करना चाहिये। गयातीर्थ में शास्त्रोक्त विधि से श्राद्ध करने पर नरकस्थ पितर स्वर्ग के अधिकारी और स्वर्गस्थ पितर परमपद के अधिकारी होते हैं।

काम-क्रोधग्रस्त मनुष्य द्वारा नहीं चाहते हुए भी अज्ञानवश बलात् पापाचरण हो जाता है। पातक तो अनेक प्रकार के हैं, पर कभी-कभी ब्रह्महत्या, सुरापान, चोरी और गुरुतल्पगमन जैसे महापातक भी घटित हो जाते हैं। इन पातकों से विमुक्ति का उपाय प्रायश्चित्त है। पातक, उपपातक, महापातक के परिशमनार्थ अनेक प्रकार के प्रायश्चित्त का निर्देश किया गया है। यदि कुछ भी न हो सके तो भगवान् विष्णु की स्तुति करे। भगवान् विष्णु के समस्तपापनाशक स्तोत्र के आश्रय से समस्त पातक विनष्ट हो जाते हैं।

आत्मशुद्धि तथा शरीर शुद्धि का एक महान् साधन 'व्रत' भी है। शास्त्रोक्त नियम को ही व्रत कहते हैं। इन्द्रियसंयम और मनोनिग्रह आदि विशेष नियम व्रत के ही अंग हैं। व्रत करने वाले को किंचित कष्ट सहन करना पड़ता है, अत: इसे 'तप' भी कहते हैं। क्षमा, सत्य, दया, दान, शौच, इन्द्रियसंयम, देवपूजा, अग्निहोत्र, संतोष तथा चोरी का अभाव—ये दस नियम सामान्यत: सम्पूर्ण व्रतों में आवश्यक माने गये हैं। भगवान् अग्निदेव ने महर्षि वसिष्ठ को तिथि, वार, नक्षत्र, दिवस, मास, ऋतु, वर्ष, संक्रान्ति आदि के अवसर पर होने वाले स्त्री-पुरुष सम्बन्धी व्रत बताये हैं, जिनसे आत्यन्तिक कल्याण का सम्पादन होता है।

ग्रहों और नक्षत्रों की स्थिति भी मानव की सफलता-असफलता को प्रभावित करती तथा शुभ अशुभ का विधान करती है। इसी कारण ज्योतिषशास्त्र का संक्षेप में पुराणों ने भी सुन्दर उपदेश दिया, जिससे शुभ-अशुभ का निर्णय करने

वाले विवेक की प्राप्ति हो सके। वर-वधू के गुण, विवाहादि संस्कारों के मुहूर्त का निर्णय, 'काल' को समझने के लिये गणित, युद्ध में विजय-प्राप्ति के लिये विविध योग, शत्रु के वशीकरण के लिये शान्ति, वशीकरण आदि षट् तान्त्रिक कर्म, ग्रहण दान और ग्रहों की महादशा आदि सूक्ष्मतापूर्वक विचार किया गया है। इस विवेचन में ज्योतिषशास्त्र की प्रायः उपयोगी बातें समाविष्ट हो गयी हैं।

व्यष्टि और समष्टि के हित के लिये अपने-अपने वर्ण और आश्रम के अनुसार व्यक्तिमात्र के लिये स्वधर्म पालन आवश्यक है। स्वधर्म पालन ही सुख-शान्ति तथा मोक्ष की सीढ़ी है। यज्ञ करना-कराना, वेद पढ़ना-पढ़ाना और स्वाध्याय ब्राह्मण के कर्म हैं। दान देना, वेदाध्ययन करना, यज्ञानुष्ठान करना क्षत्रिय-वैश्य के सामान्य कर्म हैं। प्रजा-पालन और दुष्टदमन क्षत्रिय के तथा कृषि-गोरक्षा-व्यापार वैश्य के कर्म हैं। सेवा एवं शिल्परचना शूद्र का धर्म है। ब्रह्मचर्याश्रम मानव के पवित्र जीवन-प्रासाद के लिये 'नीव का पत्थर' है। अन्तेवासी को आज के विद्यार्थियों जैसा विलास-प्रमादपूर्ण जीवन नहीं, कठोर संयमित-नियमित-अनुशासित जीवन व्यतीत करने की आवश्यकता है, जिससे वह वैयक्तिक और सामाजिक धर्मों के पालन की क्षमता प्राप्त कर सके। विवाह के उपरान्त गृहस्थाश्रम की सम्पूर्ण दिनचर्या का उल्लेख करते हुए यह बताया गया है कि गृही नित्य देवाराधन, द्रव्य-शुद्धि, शौचाशौच-विचार एवं शुद्ध आचरण द्वारा किस प्रकार आत्मकल्याण और समाजकल्याण का सम्पादन करे। सद्गृहस्थ के लिये जो यहाँ तक कहा गया है कि 'श्री और समृद्धि के लिये गाय, चूल्हा, चाकी, ओखली, मूसल, झाड़ू एवं खम्भे का भी पूजन करे। पौत्र के जन्म के बाद गृहस्थ को वानप्रस्थ धारण करके पत्नीसहित तपःपूर्ण जीवन व्यतीत करना चाहिये। संन्यासी का जीवन तो त्याग का मूर्तिमान् स्वरूप है। संन्यासी शरीर के प्रति उपेक्षाभाव रखता हुआ एकाकी विचरता है और मननशील रहता है। कुटीचक, बहूदक, हंस और परमहंस—इन चार प्रकार के संन्यासियों में अन्तिम सर्वश्रेष्ठ है, जो नित्य ब्रह्म में स्थित है।

वास्तु-विद्या का भी पुराणों में यत्र-तत्र प्रभूत वर्णन है। भूमि के विस्तार का दिग्दर्शन कराते हुए विभिन्न द्वीप तथा देशों का वर्णन किया गया है। रहने के लिये गृह-निर्माण कैसे हो, फिर नगर-निर्माण की योजना कैसी हो—इसे भी युक्तिपूर्वक समझाया गया है। गृहनिर्माण और नगर निर्माण के साथ देव-प्रतिमा और देवालय निर्माण का भी विस्तृत विवरण है। नगर, ग्राम तथा दुर्ग में गृहों तथा प्रासादों की वृद्धि हो, इसकी सिद्धि के लिय ८१ पदों का वास्तुमण्डल बनाकर वास्तु देवता की पूजा अवश्य करनी चाहिये।

पूजा में पुष्पों का विशेष स्थान है। देव पूजन में मालती, तमाल, पाटल, पद्म आदि विभिन्न पुष्पों के विभिन्न फल होते हैं। परन्तु देवपूजन के लिये श्रेष्ठपुष्प हैं—अहिंसा, इन्द्रियनिग्रह, दया, शम, तप, सत्य आदि। इन भाव पुष्पों से अर्चित श्रीहरि शीघ्र सन्तुष्ट होते हैं। भाव-पुष्पों से अर्चना करने वाले को नरक-यातना नहीं सहनी पड़ती; अन्यथा पापाचारी को अवीचि, ताम्र, रौरव, तामिस्त्र आदि नरकों के कष्ट भोगने पड़ते हैं। पुण्यात्मा को स्वर्ग की प्राप्ति होती है। विशेष पर्वपर विशेष तीर्थ में, विशेष तिथि में दान का अलग-अलग फल प्राप्त होता है। दान से मोक्ष तक की प्राप्ति हो सकती है। परन्तु फल की कामना से दिया गया दान मोक्ष की प्राप्ति न करवाकर व्यर्थ चला जाता है। गायत्री मन्त्र की व्याख्या करते हुए भगवान् व्यास ने बताया है कि जो लोग भगवती गायत्री का एवं गायत्री मन्त्र का आश्रय लेते हैं, उनके शरीर और प्राण दोनों की रक्षा होती है।

राज्य में सुख-शान्ति बनाये रखने के लिये राजा को अपने धर्म का भलीभाँति पालन करना चाहिये। शत्रुसूदन, प्रजापाल, सुदण्डधारी, संयमी, रण, कलाविद् , न्यायप्रिय, दुर्गरक्षित, नीतिकुशल राजा ही अपने धर्म का पालन कर सकता है। जो राजा धनुर्वेद के शिक्षण-प्रशिक्षण की पूर्ण व्यवस्था रखता है और जो लोक-व्यवहार में परम कुशल है, उसका पराभव नहीं होता।

स्वप्न और शकुन का भी जीवन पर शुभ और अशुभ प्रभाव पड़ता है। सभी स्वप्न और शकुन प्रभावशाली नहीं होते; पर जिनसे अशुभ होता है, उनके निवारण का उपाय भी बताया गया है। शुभ-लक्षण सम्पन्न स्त्री या पुरुष की संगति

सदा कल्याणकारी होती है; अतः इनके लक्षणों का भी विस्तृत वर्णन है। जीवन श्रीयुक्त रहे, अतः हीरा, मोती, प्रवाल, शङ्ख आदि रत्नों को परीक्षण के उपरान्त ही धारण करना चाहिये, जिससे शुभ का विधान हो।

भगवान् व्यास देव ने चारों वेदों की सभी शाखाओं का विस्तृत वर्णन करके चारों वेदों की विभिन्न ऋचाओं या सूक्तों के सहित पाठ, जप हवन करने का विधान बताया, जिससे भुक्ति मुक्तिकामी पुरुष को अभीष्ट की प्राप्ति तथा सभी उत्पातों की शान्ति होती है। जैसे ऋग्वेद के 'अग्निमीले पुरोहितम्'—इस सूक्त का सविधि जप करने से इष्टकामनाओं की पूर्ति होती है। भगवान् व्यास देव ने सूर्य, चन्द्र, यदु, पुरु आदि अनेक वंशों का वर्णन किया, जिनका चरित्र सुनने से पापों का विनाश होता है। यदुवंश में भगवान् श्रीकृष्ण का अवतार धर्म-संरक्षण, अधर्म नाश, सुरपालन और दैत्य मर्दन के लिये ही हुआ था।

स्वास्थ्य रक्षा सम्बन्धी ज्ञान भी मनुष्य के लिये आवश्यक है। अतः स्वास्थ्य के सिद्धान्त, रोग के भेद एवं कारण, औषधि का विवेचन, वैद्य का कर्त्तव्य उपचार के उपाय, शरीर के अवयव, गज और अश्व की चिकित्सा आदि का वर्णन करते हुए आयुर्वेद का ज्ञान कराया गया है, जो मृत को भी प्राण देता है। अनिष्ट-निवारण मन्त्रों के प्रयोगों द्वारा भी होता है, अतः मन्त्र-तन्त्र की परिभाषा और भेद-प्रभेद बताकर शिव, सूर्य, गणपति, लक्ष्मी, गौरी आदि देवी-देवताओं के अनेक मन्त्र और मण्डल बताये गये हैं, जिनको सिद्ध करके प्रयोग करने से विष-शमन, बालग्रह आदि का निवारण होता है।

समाज में उसका बड़ा आदर होता है, जिसकी वाणी में रस है, जिसमें अभिव्यक्ति की कुशलता है और जिसमें प्रस्तुतीकण की क्षमता है। अतः पुराणों में काव्य मीमांसा का अतिविस्तृत वर्णन है। काव्याङ्ग, नाटक-निरूपण, रसभेद, शब्दालंकार, अर्थालंकार, शब्दगुण आदि शास्त्रीय विषयों की सूक्ष्म विवेचना है। यह इसलिये कि—

'अपारे काव्यसंसारे कविरेव प्रजापतिः।' (अग्नि. ३३९।१०)।

लोक परलोक और परमार्थ के सर्वोपयोगी स्थूल-सूक्ष्म विषयों के वर्णन का यही उद्देश्य है कि मानव सुखी, शान्त, समृद्ध एवं स्वस्थ जीवन व्यतीत करते हुए परम तत्त्व को प्राप्त करे। जीवन में अर्थ और काम दोनों हों, पर वे हों धर्म के द्वारा नियन्त्रित। जीवन धर्मनिष्ठ हो और अन्त में मोक्ष की प्राप्ति हो।

धर्मशास्त्र का उपदेश देते हुए बताया गया है कि 'धर्म वही है, जिससे भोग और मोक्ष, दोनों प्राप्त हो सके। वैदिक कर्म दो प्रकार का है—एक प्रवृत्त और दूसरा निवृत्त। कामनायुक्त कर्म को 'प्रवृत्तकर्म' कहते हैं। ज्ञानपूर्वक निष्कामभाव से जो कर्म किया जाता है, उसका नाम 'निवृत्तकर्म' है। वेदाभ्यास, तप, ज्ञान, इन्द्रियसंयम, अहिंसा तथा गुरुसेवा—ये परम उत्तम कर्म निःश्रेयस (मोक्षरूप कल्याण) के साधन हैं। इन सबमें भी सबसे उत्तम आत्मज्ञान है।' (अग्नि १६२।३-७)

'भुक्ति' से भी महत्त्वपूर्ण 'मुक्ति' है। जिससे जीवात्मा सभी प्रकार के बन्धनों से मुक्त होकर परमात्मस्वरूप हो जाता है। 'ज्ञान' वही है, जो ब्रह्म को प्रकाशित करे और 'योग' वही है, जिससे चित्त ब्रह्म से संयुक्त हो जाय।

'ब्रह्मप्रकाशकं ज्ञानं योगस्तत्रैकचित्तता।' (अग्नि. २७२।१)।

अतः भगवान् व्यासदेव ने यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि अर्थात् अष्टाङ्गयोग का वर्णन किया, जिससे आत्मा परमात्मचैतन्यरूप हो जाय। परमात्म-चैतन्य की प्राप्ति ही परम प्राप्तव्य है। इसी की प्राप्ति के दो प्रधान मार्ग—ज्ञानप्रतिष्ठा और कर्मनिष्ठा का प्रतिपादन करने वाली श्रीमद्भागवतगीता का संक्षेप में कथन करने के उपरान्त कई प्रकार की गीता का भी वर्णन किया गया है।

वस्तुतः शरीर से आत्मा पृथक् है। नेत्र, मन, बुद्धि आदि आत्मा नहीं है। आत्मा इनका नहीं, ये आत्मा के हैं।

जीवात्मा परमात्मा का सनातन अंश है। ब्रह्मत्व की प्राप्ति में जीवन की परम सफलता है। इसके लिये ज्ञानयोग श्रेष्ठ साधन है। साधना के द्वारा जीव जगत् के स्थूल-सूक्ष्म बन्धनों से मुक्त होकर ब्रह्मत्व की प्राप्ति कर लेता है।

साधक को 'शरीरभाव' से अतीत होना आवश्यक है। अपवाद की बात दूसरी है। अन्यथा सभी को अभ्यास करना ही पड़ता है। इसलिये पूजा, व्रत, तप, वैराग्य और देवाराधन का विधान है।

आत्मोत्कर्ष के लिये सभी को अपने-अपने स्तर के अनुकूल साधन-पथ चुनना चाहिये। सभी का स्तर एक नहीं, अत: सभी का अधिकार भी समान नहीं। देवोपासना से भी परमतत्त्व की प्राप्ति हो सकती है। देवोपासकों का जो 'विष्णु' है, वही याज्ञिकों का 'यज्ञपुरुष' है और वही ज्ञानियों का 'मूर्तिवान् ज्ञान' है। जीवात्मा किसी पथ का आश्रय ले, अन्तिम उद्देश्य यही है कि आत्मा और परमात्मा का एकत्व प्रकाशित हो जाय।

सच्चा श्रेय तो सदा परमार्थ में ही निहित रहता है। परमार्थ की दृष्टि से तो आत्मा और परमात्मा का नित्य अभिन्नत्व है। अग्निपुराण में श्रीसूतजी ने कहा है—'भगवान् विष्णु ही सार से भी सार तत्त्व हैं। वे सृष्टि और पालन आदि के कर्ता और सर्वत्र व्यापक हैं।' 'वह विष्णुस्वरूप ब्रह्म मैं ही हूँ'—इस प्रकार उन्हें जान लेने पर सर्वज्ञता प्राप्त हो जाती है।'

ऐसे अपौरुषेय वेदसम्मत, सर्वविद्यायुक्त और ब्रह्मस्वरूप पुराण का जो पठन, श्रवण, अध्ययन और मनन करता है, उसे भोग और मोक्ष दोनों की ही प्राप्ति होती है—

सारात्सारो हि भगवान् विष्णुः सर्गादिकृद्विभुः। ब्रह्माहमस्ति तं ज्ञात्वा सर्वज्ञत्वं प्रजायते।

—(अग्नि. १।४)

प्रस्तुत वराहपुराण की हिन्दी अनुवाद करने के समय उपलब्ध अधिकतम सामग्रियों का अत्यन्त तत्परता से दोहन करने का यथासम्भव प्रयास किया गया है। इस आधर पर केवल यह कह सकते हैं कि वराहपुराण की इस नई प्रति में विषय या छन्द या मुद्रण आदि सम्बन्धित अुशद्धियों को दूर करने में यथासम्भव सफल प्रयत्न निश्चय ही किया गया है। साथ ही हिन्दी करने में जिन महानुभावों या उनकी कृतियों से मुझे जो भी सहयोग प्राप्त हुआ, एतदर्थ मैं उन सभी महानुभावों का हृदय से आभार भी स्वीकार करता हूँ। अन्त में अधोलिखित निवेदन आदि प्रस्तुत करता हुआ विराम लेता हूँ। सधन्यवाद!!

विद्वत् प्रार्थना

छन्दोऽनुरोधाद्विषयानुरोधादर्किंवा मया व्याकरणस्य दृष्ट्या।
संशोधनं सूक्ष्मदृशा कृतं यत् यत् स्यात् प्रमोदाय सुधीजनानाम् ॥१॥
व्यासः प्रसीदन्तु विशुद्धपाठाद् भक्तः प्रसीदन्तु कथाप्रसादात्।
भुक्तिं च मुक्तिं भुवि लब्धुकामाः सर्वे प्रसीदन्तु हरिप्रसादात् ॥२॥

विजयादशमी, संवत् २०७०
स्थान-वाराणसी

विद्वच्चरणकिङ्करः
सुरकान्त झा

विषयानुक्रमणिका

❖❖❖

स्वस्ति वाचन

ओम् स्वस्ति नो मिमीतामश्विना भगः
स्वस्ति देव्यदितिरनर्वणः। स्वस्ति पूषा
असुरो दधातु नः स्वस्ति द्यावापृथिवी सुचेतुना
स्वस्तये वायुमुप ब्रवामहै सोमं स्वस्ति
भुवनस्य यस्पतिः। बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये
स्वस्तय आदित्यासो भवन्तु नः।
विश्वे देवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो
वसुरग्निः स्वस्तये। देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये
स्वस्ति नो रुद्रः पात्वंहसः।
स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति।
स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्याचन्द्रमसाविव।
पुनर्ददताघ्नता जानता संगमेमहि।

—ऋग्वेद : ५.५१.११–१५।

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वायुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम।।
ओम् द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष ॸ शान्तिः पृथिवी
शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः
शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्व ॸ
शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि।
ओम् आब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम
आ राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो
जायताम् दोग्ध्री धेनुर्वोढ़ाऽनड्वानाशुः सप्तिः
पुरन्धिर्योषा जिष्णु रथेष्ठाः सभेयो युवास्य
यजमानस्य वीरो जायताम् निकामे निकामे
नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः
पच्यन्ताम् योगक्षेमो नः कल्पताम्।

—यजुर्वेद अ० २२–२२

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम् देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवा ँ सस्तनूभिर्व्यशेम हि देवहितं यदायुः ।।

—ऋग्वेद १-८९-८

ओम् शतं जीवेम शरदो वर्द्धमानः शतं हेमन्तान्छतमु वसन्तान् ।
शतमिन्द्राग्नी सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषेमं पुनर्दुः ।।

—ऋग्वेद : १०.१६१-४

स जयति सिन्धुर वदनो देवो यत्पादपङ्कजस्मरणम् ।
वासरमणिरिव तमसां राशीन्नाशयति विघ्नानाम् ।।
विश्वनाथं गुरुं नत्वा मॉऽन्नपूर्णां सरस्वतीं ।
वराहपुराणं यत्तत् सुरकान्तः प्रस्तूयते ।।

।।महाग्रन्थोऽयं मातापितृचरणकमलेषु समर्पितः।।

॥श्रीः॥

श्री वराहपुराणम्

प्रथमोऽध्यायः

अथ ईशवन्दनं धरणेः प्रश्नसहितविष्णुस्तुतिः

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीञ्चैव ततो जयमुदीरयेत्।
नमस्तस्मै वराहाय लीलयोद्धरते महीम्।
खुरमध्यगतो यस्य मेरुः खणखणायते॥१॥
दंष्ट्राग्रेणोद्धृता गौरुदधिपरिवृता पर्वतैर्निम्नगाभिः
साकं मृत्पिण्डवत् प्राग्बृहदुरुवपुषाऽनन्तरूपेण येन।
सोऽयं कंसासुरारिर्मुरनरकदशास्यान्तकृत्सर्वसंस्थः
कृष्णो विष्णुः सुरेशो नुदतु मम रिपूनादिदेवो वराहः॥२॥
यः संसारार्णवे नौरिव मरणजराव्याधिनक्रोर्मिभीमे
भक्तानां भीतिहर्ता मुरनरकदशास्यान्तकृत् कोलरूपी।

अध्याय–१

ईशवन्दन, धरणि का प्रश्न और विष्णु स्तुति

व्यासमूर्तिं नमस्कृत्य विश्वनाथं जगद्गुरुम् ।
ततः क्रियते भाषायां वराहनामकं जयम् ।।

पृथ्वी का लीला से उद्धार करने वाले और जिनके खुरों के मध्य फँसा हुआ सुमेरु खणखणाता रहता है, उस विष्णु रूप भगवान् वराह को नमस्कार है।।१।।

बहुत पहले विशाल शरीर और अनन्त रूपों को धारण करने वाले, जिसने अपनी दाढ़ के अग्रभाग से नदियों, पर्वतों और समुद्रों से समावृत अर्थात् घिरी हुई पृथ्वी को ढेला की तहर उद्धार किया था, वह कंस नाम के असुर का शत्रु, मुर, नरक, दशग्रीव रावण आदि रक्षकुल के वीरों को मारने वाला, सर्वव्यापक, कृष्ण, विष्णु, सुरेश आदि नामों से स्मरण किये जाने वाला आदि देव भगवान् वराह मेरे समस्त शत्रुओं को विनष्ट कर दें।।२।।

जो संसार समुद्र में नौका की तरह जीवों के मरण, वार्धक्य, व्याधि आदि रूपी मगरमच्छों द्वारा आन्दोलित जलस्थ उर्मियों अर्थात् जल में उत्पन्न लहरों जैसे भूख, प्यास, हानि, मृत्यु, शोक, मोह आदि के भय से मुक्त करते

विष्णुः सवश्वरोऽयं यमिह कृतधियो लीलया प्राप्नुवन्ति
मुक्तात्मानो नपापं भवतु नुदितारातिपक्षः क्षितीशः॥३॥

सूत उवाच

यस्मिन् काले क्षितिः पूर्वं कल्पवराहवपुषा तु सा। उद्धता विष्णु भक्त्या पप्रच्छ परमेश्वम्॥४॥

धरण्युवाच

कल्पे कल्पे भवानेव मां समुद्धरते विभो। न चाहं वेद ते मूर्तिं नादिसर्गं च केशव॥५॥
वेदेषु चैव नष्टेषु मत्स्यो भूत्वा रसातलम्। प्रविश्य तानपाकृष्य ब्रह्मणे दत्तवानसि॥६॥
अन्यत् सुरासुरमयं त्वं समुद्रस्य मन्थने। धृतवानसि कौर्म्येण मन्दरं मधुसूदन॥७॥
पुनर्वाराहरूपेण आगच्छन्तीं रसातलम्। उज्जहारैकदंष्ट्रेण भगवन् वै महार्णवात्॥८॥
अन्यद्धिरण्यकशिपुर्वरदानेन दर्पितः। आबाधमानः पृथिवीं स त्वया विनिपातितः।
बलिस्तु वद्धो भगवंस्त्वया वामनरूपिणा॥९॥
पुनर्निःक्षत्रिया देव त्वया चापि पुरा कृता। जामदग्न्येन रामेण त्वया भूत्वाऽसकृत्प्रभो॥१०॥
पुनश्च रावणो रक्षः क्षपितं क्षात्रतेजसा। न च जानाम्यहं देव तव किञ्चिद्विचेष्टितम्॥११॥

हैं, भक्तों के सब प्रकार के भय का हरण करते हैं, मुर, नरक, दशग्रीव आदि जैसे अतिवादियों का नाश करने वाले, वराह रूप धारण करने वाले तथा मुक्तात्मा जिन्हें अनायास प्राप्त करते हैं, वे शत्रुओं का नाशक, पृथ्वीपती, सर्वेश्वर, विष्णु हम सबका कल्याण करें।।३।।

श्रीसूतजी कहते हैं कि जिस समय वराह रूप धारण करने वाले श्री विष्णुहरि ने पृथ्वी का उद्धार किया था, उस समय उस पृथ्वी ने भक्ति युक्त वाणी में परमेश्वर विष्णु से पूछा—।।४।।

धरणि ने पूछा कि हे विभो! प्रत्येक कल्प की आदि में आप द्वारा सदा ही मेरा उद्धार किया जाता है, परन्तु हे केशव! मैं आपके स्वरूप और आदि सर्ग अर्थात् आदितम सृष्टि या सर्वप्रथम हुई सृष्टि को नहीं जानती।।५।।

वेदों के नष्ट हो जाने के बाद उत्पन्न स्थिति में भी मत्स्य होकर अर्थात् मत्स्यावतार लेकर रसातल में प्रवेशकर, वहाँ से आपने उन नष्ट हुए वेदों को अपने में समाविश्य कर फिर ब्रह्माजी को प्रदान किये हैं।।६।।

हे मधुसूदन! आपने सुर और असुर के सम्मिलित प्रयास से हुए समुद्र-मन्थन के समय कूर्मावतार लेकर समुद्र से निकले हुए मन्दराचल को भी सहज ही धारण किया है।।७।।

फिर वराहरूप धारण कर आपने ही हिरण्याक्ष द्वारा रसातल में लेकर मुझे स्थापित करने से अपने दाढ़ से मुझे बाहर निकाल कर बचाया।।८।।

फिर एक बार वरदान प्राप्ति से दर्प युक्त होकर मुझे पीड़ित करने वाले हिरण्यकशिपु को आपने अपने नरसिंह रूप धारण कर मार दिया। हे भगवन्! आपने वामनावतार लेकर बलि को भी दर्पमुक्ति हेतु बाँध दिया।।९।।

इसी तरह हे देव! पुरातन समय में ही यमदगिन पुत्र परशुराम के रूप में आपने मुझे पापी क्षत्रियों से कई बार मुक्त किया था।।१०।।

इतना ही नहीं, आपने एक बार अपने क्षात्रतेज से राम रूप धारण कर रक्षकुलपालक दशग्रीव रावण का संहार भी किया था। इस प्रकार हे देव! मैं आपकी विचेष्टा को थोड़ी भी नहीं जानती हूँ।।११।।

उद्धृत्य मां कथं सृष्टिं सृजसे किं च सा त्वया।
सकृद्धियेत कृत्वा च पाल्यते चापि केन च॥१२॥
केन वा सुलभो देव जायसे सततं विभो। कथं च सृष्टेरादिः स्यादवसानं कथं भवेत्॥१३॥
कथं युगस्य गणना संख्याऽस्यानुचतुर्युगम्। के वा विशेषास्तेष्वस्मिन् का वा वाऽवस्था महेश्वरः॥१४॥
यज्वानः के च राजानः के च सिद्धिं परां गताः। एतत्सर्वं समासेन कथयस्व प्रसीद मे॥१५॥
इत्युक्तः क्रोडरूपेण जहास परमेश्वरः। हसतस्तस्य कुक्षौ तु जगद्धात्री ददर्श ह।
रुद्रान् देवान् सवसवः सिद्धसङ्घान् महर्षिभिः॥१६॥
सचन्द्रसूर्यग्रहसप्तलोकानन्तःस्थितांस्तावदुपात्तधर्मान् ।
इतीदृशं पश्यति सा समस्तं यावत्क्षितिर्वेपितसर्वगात्रा॥१७॥
उन्मीलितास्यस्तु यदा महात्मा दृष्टो धरण्याऽमलसर्वगात्र्या।
तावत्स्वरूपेण चतुर्भुजेन महोदधौ सुप्तमथोऽन्वपश्यत्॥१८॥
शेषपर्यङ्कशयने सुप्तं देवं जनार्दनम्। दृष्ट्वा तन्नाभिपङ्कस्थमन्तःस्थं च चतुर्मुखम्।
कृताञ्जलिपुटा देवी स्तुतिं धात्री जगाद ह॥१९॥

धरण्युवाच

नमः कमलपत्राक्ष नमस्ते पीतवाससे। नमः सुरारिविध्वंसकारिणे परमात्मने॥२०॥

मेरा उद्धार आप क्यों करते हैं? फिर आप सृष्टि कैसे करते हैं? एक निश्चित काल तक उसे धारण क्यों करते हैं? फिर उस सृष्टि का आप पालन भी क्यों और किस प्रकार करते हैं।।१२।।

हे देव! हे विभो! आप किस उपाय से सदा के लिए सुलभ हो सकते हैं? आप सृष्टि का आरम्भ और अन्त किस प्रकार करते हैं।।१३।।

हे महेश्वर! किस प्रकार युग की गणना की जा सकती है? फिर चतुर्युग में भी प्रत्येक की गणना किस प्रकार की जा सकती है? उन चारों युगों की क्या-क्या विशेषता है? तथा उनकी क्या अवस्था होती है?।।१४।।

उपरोक्त चारों युगों में यज्ञ कार्य सम्पन्न करने वाले और उनसे सिद्धि प्राप्त करने वाले कौन-कौन से राजाजन हुए। मुझ पर कृपा करके हमारी उक्त जिज्ञासाओं की संक्षिप्त वर्णन द्वारा मुझे तृप्त करें, आपकी बड़ी कृपा होगी।।१५।।

इस प्रकार की धरणि की बातों को सुनकर वराह रूप धारण करने वाले परमेश्वर के हँसने पर उस समय उस परमेश्वर के उपदस्थ वसुओं से सम्पन्न रुद्रगणों, देवगणों एवं महर्षिगणों के सहित सिद्धगणों को भी संसार को धारण करने वाली धरणि ने देखा।।१६।।

तत्पश्चात् धरणि ने उन परमेश्वर के अन्तः स्थित उपरोक्त स्व-स्वधर्म में संलिप्त चन्द्र, सूर्य, ग्रह, सातों लोकों के सहित देखा। इस तरह से उपरोक्त समस्त चीजों को देखकर धरणि का सम्पूर्ण शरीर कम्पायमान हो गया।।१७।।

जब निर्मल स्वच्छ सम्पूर्ण शरीर वाली धरणि उन्मीलित खुले मुख वाले महात्मा को जान लिया, तो तत्पश्चात् धरणि ने उनको चतुर्भुज स्वरूप से महासमुद्र में शयन करते हुए पाया।।१८।।

फिर उसने देखा कि शेषनाग की बनी पर्यंक पर जनार्दन देव शयन की मुद्रा में हैं, उनके नाभिकमल के अन्तः स्थित चतुर्भुज ब्रह्मा हैं। इस प्रकार देखकर देवी धरणि उनकी स्तुति करने हेतु प्रस्तुत हो गई।।१९।।

धरणि बोली—हे कमलपत्र के समान नेत्र वाले! आपको नमस्कार। आप पीला वस्त्र धारण करने वाले को नमस्कार है। सभी देवों के शत्रुओं को विनष्ट करने वाले परमात्मा आपको नमस्कार है।।२०।।

शेषपर्यङ्कशयने धृतवक्षस्थलश्रिये। नमस्ते सर्वदेवेश नमस्ते मोक्षकारिणे॥२१॥
नमः शार्ङ्गासिचक्राय जन्ममृत्युविवर्जिते। नमो नाभ्युत्थितमहाकमलासनजन्मने॥२२॥
नमो विद्रुमरक्तास्यपाणिपल्लवशोभिने। शरणं त्वां प्रपन्नाऽस्मि त्राहि नारीमनागसम्॥२३॥
पूर्णनीलाञ्जनाकारं वाराहं ते जनार्दन। दृष्ट्वा भीताऽस्मि भूयोऽपि जगत् त्वद्देहगोचरम्।
इदानीं कुरु मे नाथ दयां त्राहि महाभयात्॥२४॥
केशवः पातु मे पादौ जङ्घे नारायणो मम। माधवो मे कटिं पातु गोविन्दो गुह्यमेव च॥२५॥
नाभिं विष्णुस्तु मे पातु उदरं मधुसूदनः। उरुं त्रिविक्रमः पातु हृदयं पातु वामनः॥२६॥
श्रीधरः पातु मे कण्ठं हृषीकशो मुखं मम। पद्मनाभस्तु नयने शिरो दामोदरो मम॥२७॥
एवं न्यस्य हरेर्न्यासनामानि जगती तदा। नमस्ते भगवन् विष्णो इत्युक्त्वा विरराम ह॥२८॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे प्रथमोऽध्यायः॥१॥

शेष के बनी पर्यंक पर शयन की मुद्रा में स्ववक्षस्थल पर श्रीलक्ष्मी को धारण करने वाले हे सर्वदेवेंश! आपको नमस्कार है। आप मोक्षप्रदाता को नमस्कार है।।२१।।

शार्ङ्गधनुष, असि, चक्र आदि को धारण करने वाले, जन्म और मृत्यु से परे, आपको नमस्कार है। स्वनाभि से उत्थित महद् कमल के आसन पर चतुर्भुज ब्रह्मा को उत्पन्न करने वाले, आपको नमस्कार है।।२२।।

मूँगा के समान रक्तमुख और कमलपत्र के समान हस्तों से शोभायमान आपको नमस्कार है। मैं आपके शरण में हूँ। मुझ पापरहिता की अवश्य रक्षा कीजिए।।२३।।

हे जनार्दन! आपके घने नीलवर्ण के अञ्जन के समान इस वराह रूप और आपके शरीरान्तर्गतस्थ जगत् (ब्रह्माण्ड) को जान-समझ कर मैं भीतग्रस्त हो गयी हूँ। हे नाथ! अतः आप अब मुझ पर दया करें। हे महाप्रभु! इस महाभय से मेरी रक्षा करें।।२४।।

केशव मेरे पादों की, नारायण मेरी जंघाओं की, माधव मेरे कटि की और गोविन्द मेरे गुह्य (गुप्त) स्थान की रक्षा करें।।२५।।

विष्णु मेरे नाभि की, मधुसूदन मेरे उदरस्थल की, त्रिविक्रम मेरे ऊरूओं की तथा वामन मेरे हृदय भाग की रक्षा करें।।२६।।

श्रीधर मेरे कण्ठप्रदेश की, हृषीकेश मेरे मुख की, पद्मनाभ मेरे नयनों की तथा दामोदर मेरे शिरप्रदेश की रक्षा करें।।२७।।

इस प्रकार से भगवान् विष्णु श्रीहरि के न्यास योग्य नामों को अपने समस्त शरीर के अङ्गों में न्यास करने के पश्चात् धरणि 'हे भगवन् विष्णो! आपको नमस्कार है, इतना बोलकर चुप हो गयी।।२८।।

।।इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में धरणि की प्रार्थना आदि प्रसङ्ग बिहार प्रान्त के सहरसा-मण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ।।१।।

❖❖❖

द्वितीयोऽध्यायः

अथ नवविधसर्गसहितं नारदपूर्वजन्मवृत्तम्

सूत उवाच

ततस्तुष्टो हरिर्भक्त्या धरण्यात्मशरीरगाम्। मायां प्रकाश्य तेनैव स्थितो वाराहमूर्तिना॥१॥
जगाद किं ते सुश्रोणि प्रश्नमेनं सुदुर्लभम्। कथयामि पुराणस्य विषयं सर्वशास्त्रतः॥२॥
पुराणानां हि सर्वेषामयं साधारणः स्मृतः। श्लोकं धरणि निश्चित्य निःशेषं त्वं पुनः शृणु॥३॥

श्री वराह उवाच

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च। वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥४॥
आदिसर्गमहं तावत् कथयामि वरानने। यस्मादारभ्य देवानां राज्ञां चरितमेव च।
ज्ञायते चतुरंशश्च परमात्मा सनातनः॥५॥

आदावहं व्योम महत् ततोऽणुरेकैव मत्तः प्रबभूव बुद्धिः।
त्रिधा तु सा सत्त्वरजस्तमोभिः पृथक् पृथक् तत्त्वरूपैरुपेता॥६॥
तस्मिंस्त्रिकेऽहं तमसो महान् स सदोच्यते सर्वविदां प्रधानः।
तस्मादपि क्षेत्रविदूर्जितोऽभूद् बभूव बुद्धिस्तु ततो बभूव॥७॥

अध्याय–२

नवविध सर्ग और नारद का पूर्वजन्मवृत्त

श्रीसूतजी कहते हैं कि इस प्रकार से धरणि की भक्ति से संतुष्ट होकर श्रीविष्णु हरि ने अपने शरीरगत व्याप्त माया को प्रकाशित कर अपने उसी वराह रूप से स्थित हो गए।।१।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि हे सुश्रोणि (सुशोभित कटि वाली धरणि!) तुमने यह दुर्लभ प्रश्न कैसे पूछ लिया? फिर भी मैं तुम्हारे लिए सभी शास्त्रों से सम्मत पुराण के इन विषयों को कहता हूँ।।२।।

वैसे निश्चय ही सब पुराणों के विषय में यह श्लोक सामान्यतया कहा गया है। हे धरणि! फिर भी तुम उसे पूर्णता से श्रवण करो।।३।।

श्रीभगवान् वराह कहते हैं कि सृष्टि, प्रलय, वंश, मन्वन्तर और विविध वंशों के मुख्य चरित्रों का कथन करना; पुराण के पाँच लक्षण माने जाते हैं।।४।।

हे श्रेष्ठ मुख वाली सुन्दरि! सर्वप्रथम मैं आदि सर्ग को बतलाता हूँ, जिससे प्रायः देवताओं, राजपुरुषों आदि के चरित्र के साथ चतुरंशात्मक सनातन परमात्मा का बोध होता है।।५।।

सर्वप्रथम महाकाश के स्वरूप को मैं धारण किया, फिर अणु रूप मन तत्पश्चात् सत्त्व, रज, तम आदि त्रित्त्व स्वरूपा एक ही सूक्ष्म बुद्धि के भिन्न-भिन्न तत्त्व स्वरूप को धारण किया।।६।।

इस प्रकार उपरोक्त त्रिधात्मक बुद्धितत्त्व में तमोगुण के साथ मैं महा तत्त्वात्मक स्वरूप में स्थित होता हूँ, सदैव

तस्मात्तु तेभ्यो श्रवणादिहेतवस् ततोऽक्षमाला जगतो व्यवस्थिता।
भूतैर्गतैरेव च पिण्डमूर्त्तिर्मया भद्रे विहिता त्वात्मनैव॥८॥
शून्यं त्वासीत् तत्र शब्दस्तु खं च तस्माद् वायुस्तत एवानु तेजः।
तस्मादापस्तत एवानु देवि मया सृष्टा भवती भूतधात्री॥९॥
योगे पृथिव्या जलवत् ततोऽपि सबुद्बुदं कललं त्वण्डमेव।
तस्मिन् प्रवृत्ते द्विगतेऽहमासीदापोमयश्चात्मनात्मानमादौ॥१०॥
सृष्ट्वा नारस्ता अथो तत्र चाहं येन स्यान्मे नारायणेति।
कल्पे कल्पे तत्र संयामि भूयः सुप्तस्य मे नाभिजः स्याद् यथाद्य॥११॥
एवंभूतस्य मे देवि नाभिपद्मे चतुर्मुखः। उत्तस्थौ च मया प्रोक्तः प्रजाः सृज महामते॥१२॥
एवमुक्त्वा तिरोभावं गतोऽहं सोऽपि चिन्तयन्।
आस्ते यावज्जगद्धात्रि नाध्यगच्छत किञ्चन॥१३॥
तावत् तस्य महारोषो ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः। सम्भूय तेन बालः स्यादङ्के रोषात्मसम्भवः॥१४॥

सब कुछ जानने वालों में प्रधान स्वरूप से स्थित हुआ। तत्पश्चात् पूर्वोक्त प्रधान से भी बढ़कर ऊर्जस्वी क्षेत्रज्ञ (जीव) के रूप में स्थित हुआ। उसके बाद अहंकार स्वरूप में बुद्धि तत्त्व का प्रादुर्भाव हुआ।।७।।

फिर उस अहंकारस्वरूपात्मक बुद्धितत्त्व से श्रवण आदि इन्द्रियों के कारणरूप शब्दादि तन्मात्रात्मक तत्त्व प्रादुर्भूत हुए। तत्पश्चात् पूर्वोक्त सत्त्वादि गुण त्रय से श्रवण आदि इन्द्रियों के कारण शब्दादि तन्मात्रायें तथा उन तन्मात्राओं से इन्द्रियों के समूह प्रकट हुए। उसके बाद हे भद्रे! आकाशादि पञ्चमहाभूतों से मैं स्वयं ही पिण्डरूप देह की रचना की।।८।।

प्रारम्भ में आकाश तत्त्व शून्य स्वरूप में ही था। उसमें शब्द रूप गुण उपस्थित था। उसके बाद उस आकाश तत्त्व से वायु, वायु से तेज, फिर उस तैजस तत्त्व से जलतत्त्व प्रकट हुआ। हे देवि! तत्पश्चात् उस जल तत्त्व से मैंने सभी जीवों का पोषण करने वाला तुम्हारा सृजन किया।।९।।

उस समय फिर पृथ्वी का जल से योग होने पर क्रम से बुद्बुद, कलल और फिर अण्ड उत्पन्न हुआ। तत्पश्चात् स्वयं ही मैंने उस अण्ड से प्रथम एक अन्य जल तत्त्व का निर्माण किया।।१०।।

इस प्रकार मैं उपरोक्त प्रकार से उत्पन्न नार अर्थात् जल तत्त्व में स्वयं को स्थित किया, जिससे ही मेरा नाम 'नारायण' सार्थक हुआ। सभी कल्पों में उस नारद नामक जलतत्त्व में मैं स्वयं ही निवास किया करता हूँ। तत्पश्चात् उस जलतत्त्व में मेरे शयन करते समय मेरी नाभिकमल से आदि पुरुष 'ब्रह्मा' प्रादुर्भूत हुआ करते हैं।।११।।

हे देवि! एक प्रकर से मेरे नाभि कमल पर स्थित ब्रह्मा के उत्पन्न होने पर मैंने उनसे कहा—हे महामते!! प्रजा की सृष्टि करो।।१२।।

इस प्रकार से कहते हुए मैं तिरोहित हो गया। हे जगद्धात्रि अर्थात् संसार को धारण करने वाली धरणि देवि! उसके बाद भी वे चिन्तित मुद्रा में उस कमल पर यथास्थिति स्थित मात्र बने रहे, कुछ भी निर्णय नहीं कर सके।।१३।।

तब उस काल में उस अत्यन्त रूष्ट अव्यक्तजन्मा ब्रह्मा की गोद में एक बालक प्रकट हो गया।।१४।।

यो रुदन् वारितस्तेन ब्रह्मणाव्यक्तमूर्त्तिना। ब्रवीति नाम मे देहि तस्य रुद्रेति सो ददौ॥१५॥
सोऽपि तेन सृजस्वेति प्रोक्तो लोकमिमं शुभे। अशक्तः सोऽथ सलिले ममज्ज तपसे धृतः॥१६॥
तस्मिन् सलिलमग्ने तु पुनरन्यं प्रजापतिम्। ब्रह्मा ससर्ज्ज भूतेषु दक्षिणाङ्गुष्ठतो वरम्।
वामे चैव तथाऽङ्गुष्ठे तस्य पत्नीमथासृजत्॥१७॥
स तस्यां जनयामास मनुं स्वायम्भुवं प्रभुः। तस्मात् सम्भाविता सृष्टिः प्रजानां ब्रह्मणा पुरा॥१८॥

धरण्युवाच

विस्तरेण ममाचक्ष्व आदिसर्गं सुरेश्वर। ब्रह्मा नारायणाख्योऽयं कल्पादौ चाभवद् यथा॥१९॥

श्रीभगवानुवाच

ससर्ज सर्वभूतानि यथा नारोयणात्मकः। कथ्यमानं मया देवि तदशेषं क्षिते शृणु॥२०॥
गतकल्पावसाने तु निशि सुप्तोत्थितः शुभे। सत्त्वोद्रिक्तस्तथा ब्रह्मा शून्यं लोकमवैक्षत॥२१॥
नारायणः परोऽचिन्त्यः पराणामपि पूर्वजः। ब्रह्मस्वरूपी भगवाननादिः सर्वसम्भवः॥२२॥
इमं चोदाहरन्त्यत्र श्लोकं नारायणं प्रति। ब्रह्मस्वरूपिणं देवं जगतः प्रभवाप्ययम्॥२३॥
आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः। अयनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः॥२४॥

उस समय इस तरह उत्पन्न बालक के रोने पर उस अव्यक्तजन्मा ब्रह्मा ने उसे रोने से रोका, तो बालक ने कहा—आप मेरा नाम रखें। इस पर ब्रह्मा ने उस बालक का नाम 'रुद्र' रख दिया।।१५।।

हे शुभे! तत्पश्चात् उन्होंने उससे भी कहा—'इस लोक की सृष्टि करो।' लेकिन सृष्टि करने में असमर्थ बालक जलमग्न होकर तपनिष्ट हो गया।।१६।।

उस बालक के जलमग्न होकर तपनिष्ट हो जाने पर अव्यक्तजन्मा ब्रह्मा ने अपना दाहिना अँगुष्ठ से अन्य प्रजापति को और अपने बाँया अँगुष्ठ से प्रजापति की पत्नि को उत्पन्न किया।।१७।।

फिर उस स्वयंभू प्रभु प्रजापति ने अपनी पत्नि से स्वायम्भुव मनु को जन्म दिया। इस तरह आदि काल में ब्रह्मा ने उस स्वायम्भुव मनु से प्रजा की अभिवृद्धि करायी।।१८।।

धरणी ने पूछा कि हे सुरेश्वर! कल्प के प्रारम्भ में आदि सर्ग और नारायण नाम के ब्रह्मा किस प्रकार उत्पन्न हुए, उसका विस्तारपूर्वक मुझसे कृपापूर्वक कथन करें।।१९।।

श्रीभगवान् ने कहा कि हे धरणी देवि! जिस प्रकार से समस्त जीवों का सृजन नारायण स्वरूपात्मक ब्रह्मा ने किया, इस समय मेरे शब्दों में उस सम्पूर्ण कथा (घटना क्रम) को सुनो।।२०।।

हे शुभे! सृष्टि कल्प के व्यतीत होने पर रात्रि (कल्प) शयन के पश्चात् जागकर सत्त्व गुणों से सम्पन्न ब्रह्मा ने जगत् को शून्यावस्था में पाया।।२१।।

नारायण परात्पर, अविचिन्त्य, अनादि, परों का भी पूर्व तथा समस्त का सृजक ब्रह्मस्वरूप भगवान् हैं।।२२।।

संसार का सृजन पालन तथा संहार करने वाले उस ब्रह्मस्वरूप नारायण देव के लिए यह श्लोक कहा जाता है।।२३।।

आप (जल) को 'नार' कहा जाता है, जल नर की सन्तान है। पुरातन काल में वह 'नार' या जल उन आदिदेव का 'अयन' था; अतः उस आदिदेव को नारायण कहा जाने लगा।।२४।।

सृष्टिं चिन्तयतस्तस्य कल्पादिषु यथा पुरा। अबुद्धिपूर्वकस्तस्य प्रादुर्भूतस्तमोमयः॥२५॥
तमो मोहो महामोहस्तामिस्त्रो ह्यन्धसंज्ञितः। अविद्या पञ्चपर्वैषा प्रादुर्भूता महात्मनः॥२६॥
पञ्चधावस्थितः सर्गो ध्यायतोऽप्रतिबोधवान्। बहिरन्तोऽप्रकाशश्च संवृतात्मा नगात्मकः।
स मुख्यसर्गो विज्ञेयः सर्गविद्भिर्विचक्षणैः॥२७॥
पुनरन्यदभूत् तस्य ध्यायतः सर्गमुत्तमम्।
तिर्यक्स्त्रोतस्तु वै यस्मात् तिर्यक्स्त्रोतस्तु वै स्मृतः॥२८॥
पश्वादयस्ते विख्याता उत्पथग्राहिणस्तु ते। तमप्यसाधकं मत्वा तिर्यक्स्त्रोत चतुर्मुखः॥२९॥
ऊर्ध्वस्त्रोतस्त्रिधा यस्तु सात्त्विको धर्मवर्त्तनः। तथोर्ध्वचारिणो देवाः सर्वगर्भसमुद्भवाः॥३०॥
ते सुखप्रीतिबहुला बहिरन्तस्त्वनावृताः। तस्मिन् सर्गेऽभवत् प्रीतिर्निष्पद्यन्ते प्रजास्तदा॥३०[१]॥
तदा सृष्ट्वाऽन्यसर्गं तु तदा दध्यौ प्रजापतिः।
असाधकांस्तु तान् मत्वा मुख्यसर्गादिसम्भवान्॥३१॥
ततः स चिन्तयामास अर्वाक्स्त्रोतस्तु स प्रभुः।
अर्वाक्स्त्रोतसि चोत्पन्ना मनुष्याः साधका मताः॥३२॥

पूर्व-पूर्व कल्पों के समान ही सृष्टि सम्बन्धी विचार रखने वाले उन आदिदेव से अबुद्धिपूर्वक तमोमय पदार्थ भी उत्पन्न हुआ।।२५।।

इस प्रकार उन महात्मा आदि देव से तम, मोह, महामोह, तमिस्र एवं अन्धतमिस्र नाम के ये पञ्चपर्वा अविद्या उत्पन्न हुई।।२६।।

सृजन सम्बन्धी ध्यान करने वाले उन आदिदेव से पञ्चस्वरूपात्मक ज्ञानशून्य, बाह्य, प्रकाशहीन, अन्तश्चेतन, स्थावर आदि जगत् की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार सृष्टि तत्त्ववेत्ता पुरुष उनको प्रमुख सर्ग कहा करते हैं।।२७।।

फिर उन्हीं ध्यानस्थ देव से तिर्यक् स्रोत युक्त अर्थात् पशु, पक्षी आदि जैसी श्रेष्ठ जगत् की उत्पत्ति हुई। अतएव उस सृष्टि को तिर्यक् स्रोत कहा जाता है।।२८।।

उपरोक्त तिर्यक् स्रोत से उत्पन्न होने वाले को पशु आदि कहा गया है, जो उत्पथ अर्थात् उन्मार्ग को ग्रहण कर गमन करते हैं। उसको भी चतुर्मुख ब्रह्माजी ने अपने लक्ष्य या कार्य के साधन करने योग्य नहीं समझ कर, पुनः ब्रह्माजी ने अन्य तीन प्रकार के ऊर्ध्वस्रोत युक्त सात्त्विक, धर्माचरण करने वाले तथा ऊर्ध्व गमन करने वाले देवताओं को उत्पन्न किया। इस तरह उपरोक्त सभी गर्भ से उत्पन्न जीवन वाले हैं।।२९-३०।।

इनमें सुख और प्रीति बहुलता से थी, जो बाह्य और अन्तस्थ आवरण से मुक्त था, आशय यह कि उनकी बाह्य और आन्तरिक चेतना खुली हुई या आवरण रहित थी। उन सृष्टियों में प्रीति की उत्पत्ति का आधिक्य होने से उनसे पीढ़ी दर पीढ़ी प्रजाओं की उत्पत्ति सम्भव हुई।।३०[१]।।

एवं प्रकार से अन्यान्य सर्गों की भी उत्पत्ति हुई, जिनमें मुख्य सर्ग के रूप में उत्पन्न होने वाले जैसे वृक्षादिकों को भी पुरुषार्थ साधन क्रम में अक्षम समझकर आदि देव प्रजापति ने फिर से ध्यानावस्था को धारण कर लिया।।३१।।

तत्पश्चात् वह प्रभु अर्वाक् स्रोत अर्थात् अधोलोक निवासी जनों वाली सृष्टि का चिन्तन करते हैं। इस अर्वाक् स्रोतज जीवों में मनुष्य पुरुषार्थ आदि साधन करने में सक्षम देखे गए।।३२।।

ते च प्रकाशबहुलास्तमोद्रिक्ता रजोऽधिकाः।
तस्मात् तु दुःखबहुला भूयोभूयश्च कारिणः॥३३॥
इत्येते कथिताः सर्गाः षडेते सुभगे तव। प्रथमो महतः सर्गस्तन्मात्राणि द्वितीयकः॥३४॥
वैकारिकस्तृतीयस्तु सर्गश्चैन्द्रियकः स्मृतः। इत्येष प्राकृतः सर्गः संभूतो बुद्धिपूर्वकः॥३५॥
मुख्यसर्गश्चतुर्थस्तु मुख्या वै स्थावराः स्मृताः।
तिर्यक्स्त्रोतश्च यः प्रोक्तस्तैर्यक्स्त्रोतः स उच्यते॥३६॥
तथोर्ध्वस्त्रोतसां श्रेष्ठः सप्तमः स तु मानवः। अष्टमोऽनुग्रहः सर्गः सात्त्विकस्तामसश्च सः॥३७॥
पञ्चैते वैकृताः सर्गाः प्राकृतास्तु त्रयः स्मृताः।
प्राकृतो वैकृतश्चैव कौमारो नवमः स्मृतः॥३८॥
इत्येते वै समाख्याता नव सर्गाः प्रजापतेः। प्राकृता वैकृताश्चैव जगतो मूलहेतवः।
इत्येते कथिताः सर्गाः किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि॥३९॥

धरण्युवाच

नवधा सृष्टिरुत्पन्ना ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः। कथं सा ववृधे देव एतन्मे कथयाच्युत॥४०॥

उपरोक्त अर्वाक् स्रोतज मनुष्यों में प्रकाश की अधिकता, तम का उद्रेक अर्थात् अधिकतम तम का प्रभाव, रज की अधिकता होने से ही उनमें दुःख का आधिक्य तो होता ही है, वे निरन्तर कठिनतर कर्म साधन करने वाले होते हैं।।३३।।

हे सुभगे! एवम्प्रकार से तुमसे छः प्रकार के सर्गों को बतलाया गया है, जिनमें प्रथम सर्ग महत्तत्त्व से सम्बन्धित है, तो द्वितीय सर्ग तन्मात्राओं से।।३४।।

तृतीय सर्ग, जो वैकारिक कहा गया है, इन्द्रियों से सम्बन्धित है। इस तरह यह प्राकृत सर्ग बुद्धिपूर्वक उत्पन्न हुआ माना गया है।।३५।।

मुख्य सर्ग चतुर्थ कहा जाता है। जहाँ स्थावर को मुख्य माना गया है। तथा तिर्यक् स्रोत से उत्पन्न होने वले जीवों की तैर्यक्स्रोत नाम से जाना जाता है।।३६।।

ऐसे ही ऊर्ध्वस्रोतज जीव श्रेष्ठ षष्ठम सर्ग से सम्बन्धित हैं। वहीं सप्तम सर्ग मनुष्यों से सम्बन्धित है और अष्टम सर्ग अनुग्रह सर्ग माना जाता है, जिसे सत्त्व एवं तम गुणों से सम्पन्न कहा गया है।।३७।।

इस प्रकार उपरोक्त आठ सर्गों में से पाँच सर्ग को वैकृत और तीन सर्ग को प्राकृत माना गया है। वहीं नवम सर्ग प्राकृत और वैकृत मिश्र सर्ग को कौमारसर्ग के रूप में बतलाया जाता है।।३८।।

एवं प्रकारेण प्रजापति से सम्बन्धित इन नौ प्रकार के सर्गों को बतलाया गया है। यहाँ प्राकृत और वैकृत सर्ग, जो कहे गए हैं उन्हें ही संसार का मूलकारण माना गया है। इस तरह यहाँ तक मैंने सर्गों को बतलाया है। अब और क्या-क्या तुम सुनना चाहती हो, उसे पूछ लो।।३९।।

धरणी ने पूछा कि हे देव! अच्युत!! अब मुझे आप यह कहें कि अव्यक्तजन्मा ब्रह्मा से उत्पन्न उपरोक्त नौ प्रकार की सृष्टि किस प्रकार से पल्लवित-पुष्पित होने लगी।।४०।।

श्रीवराह उवाच

प्रथमं ब्रह्मणा सृष्टा रुद्राद्यास्तु तपोधनाः। सनकादयस्ततः सृष्टा मरीच्यादय एव च॥४१॥
मरीचिरत्रिश्च तथा अङ्गिराः पुलहः क्रतुः। पुलस्त्यश्च महातेजाः प्रचेता भृगुरेव च।
नारदो दशमश्चैव वशिष्ठश्च महातपाः॥४२॥
सनकादयो निवृत्त्याख्ये तेन धर्मे प्रयोजिताः।
प्रवृत्त्याख्ये मरीच्याद्या मुक्त्वैकं नारदं मुनिम्॥४३॥
योऽसौ प्रजापतिस्त्वाद्यो दक्षिणाङ्गुष्ठसम्भवः। तस्यादौ तत्र वंशेन जगदेतच्चराचरम्॥४४॥
देवाश्च दानवाश्चैव गन्धर्वोरगपक्षिणः। सर्वे दक्षस्य कन्यासु जाताः परमधार्मिकाः॥४५॥
योऽसौ रुद्रेति विख्यातः पुत्रः क्रोधसमुद्भवः। भ्रुकुटीकुटिलात् तस्य ललाटात् परमेष्ठिनः॥४६॥
अर्धनारीनरवपुः प्रचण्डोऽतिभयङ्करः। विभजात्मानमित्युक्तो ब्रह्मणाऽन्तर्दधे पुनः॥४७॥
तथोक्तोऽसौ द्विधा स्त्रीत्वं पुरुषत्वं चकार सः। बिभेद पुरुषत्वं च दशधा चैकधा च सः।
ततस्त्वेकादश ख्याता रुद्रा ब्रह्मसमुद्भवाः॥४८॥
अयमुद्देशतः प्रोक्तो रुद्रसर्गो मयाऽनघे। इदानीं युगमाहात्म्यं कथयामि समासतः॥४९॥

भगवान् वराह ने कहा कि तत्पश्चात् ब्रह्मा द्वारा प्रथम रुद्रादि देवताओं की सृष्टि किया गया, फिर तपोधनी सनकादि देवर्षियों का सृजन किया गया और फिर मरीच्यादि महर्षियों को उत्पन्न किया गया।।४१।।

यहाँ मरीच्यादि ऋषियों के नाम हैं—मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलह, क्रतु, महातेजस्वी पुलस्त्य, प्रचेता, भृगु, दशम नारद और महातपस्वी वशिष्ठ, ये सभी ब्रह्मा से उत्पन्न होने वाले महर्षि कहे गये हैं।।४२।।

तत्पश्चात् उन प्रजापति ब्रह्मा ने सनकादि देवर्षियों को निवृत्ति नामक धर्म के आचरण करने हेतु नियुक्त किया। फिर एक मुनि नारद को छोड़कर शेष मरीच्यादि महर्षियों को प्रवृत्ति नामक धर्मपालन में प्रवृत्त किया।।४३।।

नारायणोद्भूत ब्रह्मा के दक्षिण अंगुष्ठ से उत्पन्न होने वाले आदि प्रजापति हैं, जिसे दक्ष भी कहा जाता है। आदि काल से उन्हीं के वंश से चर और अचर संसार की उत्पत्ति हुई, जानना चाहिए।।४४।।

इस ब्रह्माण्ड के देव, दानव, गन्धर्व, उरग, पक्षी आदि सभी परम धार्मिकों की उत्पत्ति दक्ष की कन्याओं से हुई है।।४५।।

पूर्व कथित सर्वप्रथम ब्रह्मा के क्रोध से उत्पन्न 'रुद्र' नाम से सुविख्यात पुत्र हुए, वह उन परमेष्ठी की कुटिल भ्रृकुटी वाले क्रोधयुक्त ललाट से उत्पन्न हुआ, माना जाता है।।४६।।

वह ब्रह्मपुत्र रुद्र अति भयङ्कर, प्रचण्ड, अर्द्धनारीश्वर शरीर वाला हुआ। अतः ब्रह्मदेव ने उसे 'अपना विभाजन करो' ऐसा कहकर फिर अन्तर्धान हो गए।।४७।।

ब्रह्मदेव के इस प्रकार से कह देने पर उसने अपने उस अर्द्धनारीश्वर शरीर का प्रथमतः एक स्त्री और दूसरा पुरुष रूप दो भाग किया। फिर इस क्रम में उसने अपने पुरुष शरीर का और दश विभाग किया, जिससे दश और एक ग्यारह विभाग हो गये। इस तरह ब्रह्मा से उत्पन्न एकादश रुद्र जगत्प्रसिद्ध हैं।।४८।।

हे अनघे (निष्पापा) धरणी! इस प्रकार से मैंने सार रूप में रुद्र सर्ग का भी वर्णन कर दिया है। अब आगे मैं संक्षेप में ही युगमाहात्म्य का कथन करता हूँ।।४९।।

कृतं त्रेता द्वापरश्च कलिश्चेति चतुर्युगम्। एतस्मिन् ये महासत्त्वा राजानो भूरिदक्षिणाः।
देवासुराश्च ये चक्रुर्धर्मं कर्म च तच्छृणु॥५०॥
आसीत् प्रथमकल्पे तु मनुः स्वायम्भुवः पुरा। तस्य पुत्रद्वयं जज्ञे अतिमानुषचेष्टितम्।
प्रियव्रतोत्तानपादनामानं धर्मवत्सलम्॥५१॥
तत्र प्रियव्रतो राजा महायज्वा तपोबलः। च चेष्ट्वा विविधैर्यज्ञैर्विपुलैर्भूरिदक्षिणैः॥५२॥
सप्तद्वीपेषु संस्थाप्य भरतादीन् सुतान् निजान्।
स्वयं विशालां वरदां गत्वा तेपे महत् तपः॥५३॥
तस्मिन् स्थितस्य तपसि राज्ञो वै चक्रवर्त्तिनः। उपेयान्नारदस्तत्र दिदृक्षुर्धर्मचारिणम्॥५४॥
स दृष्ट्वा नारदं व्योम्नि ज्वलद्भास्करतेजसम्।
अभ्युत्थानेन राजेन्द्र उत्तस्थौ हर्षितस्तदा॥५५॥
तस्यासनं च पाद्यं च सम्यक् तस्य निवेद्य वै। स्वागतादिभिरालापैः परस्परमवोचताम्।
कथान्ते नारदं राजा पप्रच्छ ब्रह्मवादिनम्॥५६॥

प्रियव्रत उवाच

भगवन् किञ्चिदाश्चर्यमेतस्मिन् कृतसंज्ञिते। युगे दृष्टं श्रुतं वाऽपि तन्मे कथय नारद॥५७॥

कृत, त्रेता, द्वापर और कलि नाम के ये चार युग होते हैं इन युगों में जो भी महासत्त्वयुक्त और अधिकतम दान-दक्षिणा देने वाले राजाजन, देवता और असुर हुए, उनके द्वारा जो कुछ भी धर्म, कर्म आदि सम्पन्न हुए, उसे तुम सुनो।।५०।।

अति पुरातन काल के प्रथम कल्प में स्वायम्भुव मनु हुआ था। उनको अत्यन्त मानवीय चेष्टाओं वाले और धर्मवत्सल, प्रियव्रत एवं उत्तानपाद नाम के दो पुत्रों की प्राप्ति हुई।।५१।।

उन दोनों पुत्रों में से प्रियव्रत नाम का राजा महान् यज्ञों को करने वाला और अत्यन्त तपोबली थे। उनके द्वारा अत्यधिक दक्षिणा वाले अनेक तरह के बड़े-बड़े यज्ञों का अनुष्ठान सम्पन्न किया गया, तत्पश्चात् सप्तद्वीपों में अपने भरत आदि पुत्रों को स्थापित करने के बाद स्वयं वरप्रदान करने वाला 'विशाला' (बदरी) नामक तीर्थ में जाकर महत्त्वपूर्ण तप करने में लीन हो गये।।५२-५३।।

तपस्या में स्थित हुए उन चक्रवर्त्ती राजा धर्मचारी को देखने हेतु एक बार नारद उन राजा के पास आ रहे थे।।५४।।

तभी आकाश में सूर्य के समान देदीप्यमान तेजस्वी नारद को देखकर वे तपनिष्ठ श्रेष्ठ राजा प्रसन्नचित्त हो उनके अभ्युत्थान (स्वागत) हेतु खड़े हो गये।।५५।।

नारदजी के आ जाने पर उन्हें राजा द्वारा विधि अनुसार आसन, पाद्य आदि प्रदान किया गया, फिर उन दोनों के परस्पर एक-दूसरे से स्वागत-वार्ता सम्पन्न हुई। तत्पश्चात् उन राजा ने ब्रह्मवादी नारद से अपनी जिज्ञासा प्रकट की।।५६।।

राजा प्रियव्रत ने पूछा—हे भगवन् नारद! इस कृत युग नाम के युग में आपके द्वारा कम या अधिक जैसा भी आश्चर्य उत्पन्न करने वाली वार्ता देखी या सूनी गई हो, उन्हें मुझसे बतलायें।।५७।।

नारद उवाच

आश्चर्यमेकं दृष्टं मे तच्छृणुष्व प्रियव्रत। ह्यस्तनेऽहनि राजेन्द्र श्वेताख्यं गतवाहनम्।
द्वीपं तत्र सरो दृष्टं फुल्लपङ्कजमालिनम्॥५८॥
सरसस्तस्य तीरे तु कुमारीं पृथुलोचनाम्। दृष्ट्वाऽहं विस्मयापन्नस्तां कन्यामायतेक्षणाम्॥५९॥
पृष्टवानस्मि राजेन्द्र तदा मधुरभाषिणीम्। काऽसि भद्रे कथं वासि किं वा कार्यमिह त्वया।
कर्त्तव्यं चारुसर्वाङ्गि तन्ममाचक्ष्व शोभने॥६०॥
एवमुक्ता मया सा हि मां दृष्ट्वाऽनिमिषेक्षणा।
स्मृत्वा तूष्णीं स्थिता यावत् तावन्मे ज्ञानमुत्तमम्॥६१॥
विस्मृतं सर्ववेदाश्च सर्वशास्त्राणि चैव ह। योगशास्त्राणि शिक्षाश्च वेदानां स्मृतयस्तथा॥६२॥
सर्वं दृष्ट्वैव मे राजन् कुमार्याऽपहृतं क्षणात्। ततोऽहं विस्मयाविष्टश्चिन्ताशोकसमन्वितः॥६३॥
तामेव शरणं गत्वा यावत् पश्यामि पार्थिव।
तावद् दिव्यः पुमांस्तस्याः शरीरे समदृश्यत॥६४॥
तस्यापि पुंसो हृदये त्वपरस्तस्य चोरसि। अन्यो रक्तेक्षणः श्रीमान् द्वादशादित्यसन्निभः॥६५॥
एवं दृष्ट्वा पुमांसोऽत्र त्रयः कन्याशरीरगाः। क्षणेन तत्र कन्यैका न तान् पश्यामि सुव्रत॥६६॥

नारद जी ने कहा कि हे प्रियव्रत! मैंने एक आश्चर्य देखा है, उसको मैं तुम्हें कहता हूँ, सुनो। हे राजेन्द्र! कलदिन के समय मैं श्वेत नाम के द्वीप की ओर गया था। उस स्थान पर मैंने खिले हुए कमलपुष्पों से सम्पन्न एक सरोवर देखा।।५८।।

उस सरोवर के किनारे मैंने एक स्थूल नेत्रों वाली कुमारी को देखा। उस पृथुलोचना कन्या को देखकर मैं आश्चर्य में पड़ गया।।५९।।

हे राजेन्द्र! फिर मैंने उस मधुरभाषिणी कन्या से पूछ लिया कि हे भद्रे! तुम कौंन हो? इस स्थान पर किस प्रकार आयी हो अथवा तुम्हें यहाँ क्या कार्य है? हे चारुसर्वाङ्गि शोभने! ये सब तुम मुझसे बतलाओ।।६०।।

मेरे द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर वह अपलक नेत्रों वाली, मुझे देखकर फिर जैसे कुछ स्मरण करती हुई, मौन भाव से जैसे ही खड़ी हो रही, वैसे उसी समय मेरा समस्त श्रेष्ठ ज्ञान भूल-सा गया। हे राजन! उस कन्या को देखते ही मेरे सम्पूर्ण वेद, सब शास्त्र, योगशास्त्र, शिक्षायें तथा वेद-स्मृतियों का ज्ञान क्षण में लुप्त हो गया। तत्पश्चात् मैं विस्मयपूर्वक चिन्ता, शोक आदि युक्त हो गया।।६१-६३।।

हे राजन्! मैंने जिस समय उनका ही शरणागत होकर अपनी दृष्टिपात किया, उसी समय उनके शरीर में एक दिव्य पुरुष की आकृति दीख पड़ी।।६४।।

फिर उस पुरुष के भी हृदय में एक अन्य पुरुष और उस अन्य पुरुष के हृदय में भी एक दूसरा द्वादश सूर्य के समान लाल नेत्र वाला श्रीमन्त पुरुष विद्यमान देखा।।६५।।

इस प्रकार उन कन्या के शरीरगत तीन स्तरों में पुरुषों को देखने के क्षणमात्र बाद वहाँ एकमात्र एक कन्या ही दीख रही थी। फिर वे पुरुष हे सुव्रत! मुझे नहीं दिखलायी पड़े।।६६।।

ततः पृष्टा मया देवी सा कुमारी कथं मम। वेदा नष्टा ममाचक्ष्व भद्रे तन्नाशकारणम्॥६७॥

कन्योवाच

माताऽहं सर्ववेदानां सावित्री नाम नामतः। मां न जानासि येन त्वं ततो वेदा हृतास्तव॥६८॥

एवमुक्ते तया राजन् विस्मयेन तपोधन। पृष्टा क एते पुरुषा एतत् कथय शोभने॥६९॥

कन्योवाच

य एष मच्छरीरस्थः सर्वाङ्गैश्चारुलोचनः। एष ऋग्वेदनामा तु देवो नारायणः स्वयम्।
वह्निभूतो दहत्याशु पापान्युच्चारणादनु॥७०॥

एतस्य हृदये योऽयं दृष्ट आसीत् त्वयात्मजः। स यजुर्वेदरूपेण स्थितो ब्रह्मा महाबलः॥७१॥

तस्याप्युरसि संविष्टो य एष शुचिरुज्ज्वलः। स सामवेदनामा तु रुद्ररूपी व्यवस्थितः।
एष आदित्यवत् पापान्याशु नाशयते स्मृतः॥७२॥

एते त्रयो महावेदा ब्रह्मन् देवास्त्रयः स्मृताः। एते वर्णा अकाराद्याः सवनान्यत्र वै द्विज॥७३॥

एतत् सर्वं समासेन कथितं ते द्विजोत्तम। गृहाण वेदान् शास्त्राणि सर्वज्ञत्वं च नारद॥७४॥

एतस्मिन् वेदसरसि स्नानं कुरु महाव्रत। कृते स्नानेऽन्यजन्मीयं येन स्मरसि सत्तम॥७५॥

उसके बाद मैंने उन कुमारी देवी से अपनी जिज्ञासा को इस प्रकार व्यक्त किया कि हे देवि! मेरे वेद किस प्रकार नष्ट हो गए? हे भद्रे! आप उनके नाश होने के कारण को मुझे बतलायें।।६७।।

कन्या ने कहा—मैं वेदमाता हूँ। मेरा ही नाम सावित्री है। जिससे तुम मुझे नहीं जानते, अतः तुम्हारे सब वेदों का हरण कर लिया गया।।६८।।

इस प्रकार उस कन्या के वचनों को सुनकर हे तपोधन राजन्! मैंने पुनः उस कन्या से पूछ लिया कि हे शोभने! आप में वे तीनों पुरुष कौन-कौन थे, इसे आप मुझे अवश्य कहें।।६९।।

कन्या ने कहा—जो यह सर्वाङ्ग सहित सुन्दर नयनों वाला, मेरे शरीरान्तर्गतस्थ पुरुष है, वह ऋग्वेद स्वरूप में साक्षात् नारायण ही हैं। जिसके उच्चारण करने मात्र से वे अग्निस्वरूप में शीघ्र ही सर्वपापों को भस्म करने वाले हैं।।७०।।

उपरोक्त नारायणस्वरूपात्मक पुरुष के हृदय में जो तुमने उनके पुत्र स्वरूपात्मक पुरुष को देखा है, वास्तव में वह यजुर्वेद स्वरूप महाबलवान् 'ब्रह्मा' हैं।।६९।।

फिर उस यजुर्वेदस्वरूपात्मक पुरुष के हृदय में जो तुमने शुचि, समुज्ज्वल तेज सम्पन्न जिस पुरुष को विद्यमान देखा है, वास्तव में वह सामवेद स्वरूप में 'रुद्रदेव' विद्यमान हैं। वे सूर्य के समान अपने स्मरण मात्र से सर्वपापों का नाश कर देने वाला है।।७२।।

हे ब्रह्मन्! ये तीनों महावेद हैं, जिनके ये तीनों नारायण, ब्रह्मा और रुद्र नाम के देवता हैं। हे द्विज! इन वेदों में सम्प्रयुक्त ये अकारादि वर्ण को अन्यत्र 'सवन' कहा गया है।।७३।।

हे द्विजोत्तम! इन सभी वार्ताओं को मेरे द्वारा तुम्हें संक्षेप में ही कहा गया है। हे नारद! अब तुम वेदों, शास्त्रों और सर्वज्ञता को मुझसे ग्रहण करो।।७४।।

हे महाव्रत! तुम इस वेद-सरोवर में स्नान करो। हे सत्तम! इसमें स्नान करने पर तुम अपने अन्य जन्मों

एवमुक्त्वा तिरोभावं गता कन्या नराधिप। अहं तत्र कृतस्नानस्त्वां दिदृक्षुरिहागतः॥७६॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः॥२॥

तृतीयोऽध्यायः

अथ नारदोक्त ब्रह्मपारगस्तोत्रं तस्य पूर्वजन्मवृत्तञ्च

प्रियव्रत उवाच

अन्यस्मिन् भगवन् जन्मन्यासीद् यत् तद् विचेष्टितम्।
सर्वं कथय देवर्षे महत् कौतूहलं हि मे॥१॥

नारद उवाच

स्नातस्य मम राजेन्द्र तस्मिन् वेदसरस्यथ। सावित्र्याश्च वचः श्रुत्वा तस्मिन् जन्मसहस्रकम्।
स्मरणं तत्क्षणाज्जातं शृणु जन्मान्तरं मम॥२॥

अस्त्यवन्तीपुरं राजंस्तत्राहं प्राग् द्विजोत्तमः। नाम्ना सारस्वतः पूर्वं वेदवेदाङ्गपारगः॥३॥

के बारे में स्मरण करने लगोगे अर्थात् इस सरोवर में स्नान करते ही अपने पूर्व-पूर्व जन्मों के किए हुए कर्मों का स्मरण होने लग जाएगा।।७५।।

हे नराधिप! इस प्रकार मुझे कहकर वह कन्या तिरोधान कर गयी। फिर मैं उसी सरोवर में स्नान करने के पश्चात् तुमसे मिलने की इच्छा से इस ओर आ गया हूँ।।७६।।

।।इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में नवविध सर्ग और नारद का पूर्वजन्म वृत्त विषयक द्वितीय अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ।।१।।

अध्याय–३

नारद प्रोक्त ब्रह्मपारग स्तोत्र एवं उसके पूर्वजन्म वृत्तान्त

प्रियव्रत ने पूछा कि हे भगवन्! अन्य जन्म में जो कुछ आप द्वारा किया गया, उन सब कर्मों के बारे में मुझसे कहें। हे देवर्षि! आपके उन विषयों को जानने हेतु मेरे अन्दर अत्यन्त कौतूहल है।।१।।

नारद ने कहा—हे राजेन्द्र! सावित्री की वाणी सुनकर उस वेदसर के स्नान करने के पश्चात् उसी समय से मुझे अपने हजारों जन्मों के कर्मों का स्मरण हो आया है। इसलिए अब आप मेरे जन्मजन्मान्तर की वार्ता को सुनो।।२।।

हे राजन् अवन्तीपुर नाम की एक नगरी है। पहले मैं उस नगरी में एक सारस्वत नाम का वेदवेदाङ्गपारग कुलीन ब्राह्मण था।।३।।

बहुभृत्यपरीवारो बहुधान्यश्च पार्थिव। अन्यस्मिन् कृतसंज्ञे तु युगे परमबुद्धिमान्॥४॥
ततो ध्यातं मयैकान्ते किमनेन करोम्यहम्।
द्वन्द्वेन सर्वमेतद्धि न्यस्त्वा पुत्रेषु याम्यहम्। तपसे धृतसङ्कल्पः सरः सारस्वतं द्रुतम्॥५॥
एवं चिन्त्य मया इष्टः कर्मकाण्डेन केशवः। श्राद्धैश्च पितरो देवा यज्ञैश्चान्ये तथा जनाः॥६॥
ततोऽहं निर्गतो राजंस्तपसे धृतमानसः। सारस्वतं नाम सरो यदेतत्पुष्करं स्मृतम्॥७॥
तत्र गत्वा मया विष्णुः पुराणः पुरुषः शिवः।
आराधितो मया भक्त्या जपन्नारायणात्मकम्॥८॥
ब्रह्मपारमयं राजञ्जपता परमं स्तवम्। ततो मे भगवांस्तुष्टः प्रत्यक्षत्वं जगाम ह॥९॥

प्रियव्रत उवाच

कीदृशं ब्रह्मपारन्तु श्रोतुमिच्छामि सत्तम। कथयस्व प्रसादेन देवर्षे सुप्रसन्नधीः॥१०॥

नारद उवाच

परं पराणाममृतं पुराणं पारं परं विष्णुमनन्तवीर्यम्।
नमामि नित्यं पुरुषं पुराणं परायणं पारगतं पराणाम्॥११॥
पुरातनं त्वप्रतिमं पुराणं परापरं पारगमुग्रतेजसम्।
गम्भीरगम्भीरधियां प्रधानं नतोऽस्मि देवं हरिमीशितारम्॥१२॥

हे राजन्! अन्य कृत नाम के युग में मैं बहुत-सारे सेवकों, पारिवारिक जनों, बहुत सारे धन-धान्यों वाला परम बुद्धिमान् ब्राह्मण था।।४।।

एक बार मैं एकान्त में विचार करने लगा कि मुझे इस द्वन्द्व रूप संसार से क्या करना है? इसीलिए मैं अपना सर्वस्व पुत्रों को सौंप कर तप करने हेतु दृढ़ संकल्प लेकर जल्दी ही सारस्वत सरोवर पर चला जाऊँ।।५।।

इस प्रकार विचार करने के बाद मैंने कर्मकाण्ड द्वारा केशव को, यज्ञों से देवताओं को और श्राद्ध द्वारा पितरों तथा अन्य जनों को भी संतृप्त किया।।६।।

हे राजन्! उसके बाद तप करने की दृढ़ संकल्प बुद्धि से मैं सारस्वत नाम के सरोवर की ओर चल दिया, वह सारस्वत सरोवर 'पुष्कर' नाम से प्रसिद्ध है।।७।।

इस तरह उस स्थान पर जाकर नारायणात्मक मन्त्र युक्त ब्रह्मपारमय श्रेष्ठ स्तोत्र का भक्तिपूर्वक जप और पाठ करता हुआ मैंने कल्याणमय पुराण पुरुष विष्णु की आराधना करते हुए उनको प्रसन्न किया, फिर वे प्रत्यक्ष प्रकट हुए।।८-९।।

प्रियव्रत ने कहा—हे सत्तम (श्रेष्ठजन)! ब्रह्मपार नामक स्तोत्र कैसा है? मैं भी उसे सुनने की इच्छा करता हूँ। हे देवर्षि! कृपापूर्वक और प्रसन्न मन से उसे मुझसे कहिये।।१०।।

नारद ने कहा—उत्तमोत्तम, अमृत, पुराण, पारम्पार, अनन्तवीर्य, नित्य, पुराण पुरुष, दूसरों को आश्रय प्रदान करने वाले, पारंगत, श्रीविष्णु को मैं प्रणाम करता हूँ।।११।।

पुरातन, अप्रतिम पुराण, परापर, पारगामी, उग्रतेज धारण करने वाले, गम्भीरों में भी अत्यन्त गम्भीर, विद्वानों में भी प्रधान, संसार के नियामक भगवान् देव हरि को मैं प्रणाम करता हूँ।।१२।।

परात्परं चापरमं प्रधानं परास्पदं शुद्धपदं विशालम्।
परात्परेशं पुरुषं पुराणं नारायणं स्तौमि विशुद्धभावः॥१३॥
पुरा पुरं शून्यमिदं ससर्ज तदा स्थिततत्वात्पुरुषः प्रधानम्।
जने प्रसिद्धः शरणं ममास्तु नारायणो वीतमलः पुराणः॥१४॥
पारं परं विष्णुमपाररूपं पुरातनं नीतिमतां प्रधानम्।
धृतक्षमं शान्तिधरं क्षितीशं शुभं सदा स्तौमि महानुभावम्॥१५॥
सहस्रमूर्धानमनन्तपादमनेकबाहुं शशिसूर्यनेत्रम्।
क्षराक्षरं क्षीरसमुद्रनिद्रं नारायणं स्तौम्यमृतं परेशम्॥१६॥
त्रिवेदगम्यं त्रिनवैकमूर्त्तिं त्रिशुक्लसंस्थं त्रिहुताशभेदम्।
त्रितत्त्वलक्ष्यं त्रियुगं त्रिनेत्रं नमामि नारायणमप्रमेयम्॥१७॥
कृते सितं रक्ततनुं तथा च त्रेतायुगे पीततनुं पुराणम्।
तथा हरिं द्वापरतः कलौ च कृष्णीकृतात्मानमथो नमामि॥१८॥
ससर्ज यो वक्त्रत एव विप्रान् भुजान्तरे क्षत्रमथोरुयुग्मे।
विशः पदाग्रेषु तथैव शूद्रान् नमामि तं विश्वतनुं पुराणम्॥१९॥
परात्परं पारगतं प्रमेयं युधाम्पतिं कार्यत एव कृष्णम्।
गदासिचर्मण्यभृतोत्थपाणिं नमामि नारायणमप्रमेयम्॥२०॥

परात्पर, अद्वितीय, प्रधान, परास्पद, शुद्धपद, विशाल, परात्परेश, पुराणपुरुष नारायण की मैं विशुद्ध भाव से स्तवन करता हूँ।।१३।।

श्रीनारायण के द्वारा बहुत पहले इस शून्यपुर की सर्ज्जना की गई। अतः उस काल में स्थित होने से वे पुरुषों में भी प्रधान पुरुष के नाम से सुख्यात हैं। वे वीतमल (निर्मल) पुराण नारायण भगवान् मुझे अपना शरण प्रदान करें।।१४।।

पारम्पार, अपार रूप, पुरातन, नीतिमानों में भी प्रधान, क्षमावान्, शान्तिधर, कल्याण स्वरूप, महानुभाव, क्षितीश की मैं सदा वन्दना करता हूँ।।१५।।

सहस्रशीर्ष, अनन्तपाद, अनेक बाहु, चन्द्र और सूर्य जैसे नेत्रों वाले, क्षर तथा अक्षर, क्षीरसागर में शयन करने वाले, अमृत, परेश, नारायण की स्तुति करता हूँ।।१६।।

त्रिवेदगम्य, त्रिनवैकमूर्त्ति, त्रिशुक्लसंस्थ, निहुताशभेद, त्रितत्त्वलक्ष्य, त्रियुग, त्रिनेत्र, अप्रमेय नारायण को मैं प्रणाम करता हूँ।।१७।।

कृतयुग में श्वेत शरीर वाले, त्रेतायुग में रक्तवर्ण शरीर वाले, द्वापर में पीतवर्ण के शरीर वाले और कलियुग में कृष्णवर्ण के शरीर वाले हरि को मैं नमस्कार करता हूँ।।१८।।

जिनके मुख से ब्राह्मण, भुजाओं के मध्य से क्षत्रिय, दोनों ऊरुओं से वैश्य तथा पद के अग्रभाग से शूद्र की उत्पत्ति हुई, मैं उन विश्वतनु पुराण पुरुष को प्रणाम करता हूँ।।१९।।

परात्पर, पारगत, प्रमेय, योद्धाओं में भी श्रेष्ठ योद्धा, कार्यवश कृष्ण रूप में अवतार लेने वाले, हाथों में गदा, तलवार, ढाल धारण करने वाले, अप्रमेय नारायण को मैं प्रणाम करता हूँ।।२०।।

इति स्तुतो देववरः प्रसन्नो जगाद मां नीरदतुल्यघोषः।
वरं वृणीष्वेत्यसकृत्ततोऽहं तस्यैव देहे लयमिष्टवांश्च॥२१॥

इति श्रुत्वा वचो मह्यं देवदेवः सनातनः। उवाच प्रकृतिं विप्र संसरस्वाक्षयमिमाम्॥२२॥
ब्रह्मणो युगसहस्त्रं तत्ते तस्मात् समुद्भवः। भविता ते तथा नाम दास्यते सम्प्रयोजनम्॥२३॥
नारं पानीयमित्युक्तं तं पितृणां सदा भवान्। ददाति तेन ते नाम नारदेति भविष्यति॥२४॥
एवमुक्त्वा गतो देवः सद्योऽदर्शनमुच्चकैः। अहं कलेवरं त्यक्त्वा कालेन तपसा तदा॥२५॥
ब्रह्मणोऽङ्गे लयं प्राप्तस्तदोत्पत्तिं च पार्थिव। दिवसे तु पुनः सृष्टो दशभिस्तनयैः सह॥२६॥
दिनादिर्यो हि देवस्य ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः। स सृष्ट्यादिः समस्तानां देवादीनां न संशयः॥२७॥
सर्वस्य जगतः सृष्टिरेषैव प्रभुधर्मतः। एतन्मे प्राकृतं जन्म यन्मां पृच्छसि पार्थिव॥२८॥
तस्मान्नारायणं ध्यात्वा प्राप्तोऽस्मि परतो नृप। तस्मात्त्वमपि राजेन्द्र भव विष्णुपरायणः॥२९॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे तृतीयोऽध्यायः॥१॥

इस प्रकार से स्तुत, प्रसन्न श्रेष्ठ देवता ने मेघ के समान ध्वनि में मुझसे बारम्बार कहा—'वर माँगो'। तत्पश्चात् मैंने उन्हीं के शरीर में लय होने की अपनी इच्छा बतलायी।।२१।।

इस प्रकार मेरी वाणी को सुनकर सनातन देवदेव ने मुझसे पुनः कहा—हे विप्र! इस अक्षय प्रकृति का सदा अनुसरण करते रहो।।२२।।

तत्पश्चात् ब्रह्मा के हजारों युग पर्यन्त तुम विचरण करो। फिर उसमें से ही तुम्हारा आविर्भाव होगा। उसी समय तुम्हारा यह नाम 'नारद' सार्थक होगा। क्योंकि पानी (जल) को 'नार' कहा जाता है। आप सदा उसे अपने पितरों को प्रदान करते हैं, इसलिए ही तुम्हारा नाम 'नारद' होगा।।२३-२४।।

इस प्रकार उच्च स्वर से कहते हुए तत्क्षण उनका अदर्शन हो गया। तत्पश्चात् यथावसर तपस्या द्वारा मैंने अपने देह का त्याग कर दिया।।२५।।

हे राजन्! उसके बाद मैं ब्रह्मा के अङ्ग में समा गया। फिर जब सृष्टि कल्प रूप दिवस का प्रारम्भ हुआ, तो फिर मैं ब्रह्मदेव द्वारा दस पुत्रों के सहित उत्पन्न किया गया।।२६।।

इस तरह अव्यक्तजन्मा ब्रह्मदेव के दिन का जो आदि होता है, वही निश्चयपूर्वक सभी देवताओं आदि की सृष्टि का आरम्भ होता है।।२७।।

वही अव्यक्जजन्मा ब्रह्मदेव संसार सहित सभी सृष्टि के धर्म से सम्पन्न प्रभु हैं। हे राजन् यही मेरा प्राकृत (वर्तमान) जन्म है। जिसे आप द्वारा पूछा गया है।।२८।।

हे नृप! इसलिए ही मात्र नारायण का ध्यान करते हुए मैंने इस प्रकार की श्रेष्ठता को धारण किया है। हे राजेन्द्र! तुम भी सदा विष्णु परायण बन जाओ।।२९।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में नारदप्रोक्त ब्रह्मपारगस्तोत्रसहित नारदजन्मवृत्त नामक तृतीय अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥३॥

❖❖❖

चतुर्थोऽध्यायः

अथ श्रीविष्णोरष्टमूर्त्तिश्चाश्वशिरोपाख्यानम्

धरण्युवाच

योऽसौ नारायणो देवः परमात्मा सनातनः। भगवान् सर्वभावेन उताहो नेति शंस मे॥१॥

श्रीवराह उवाच

मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नरसिंहोऽथ वामनः। रामो रामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्की च ते दश॥२॥

इत्येताः कथितास्तस्य मूर्त्तयो भूतधारिणि। दर्शनं प्राप्तुमिच्छूनां सोपानानीव शोभने॥३॥

यत्तस्य परमं रूपं तन्न पश्यन्ति देवताः। अस्मदादिस्वरूपेण पूरयन्ति ततो धृतिम्॥४॥

ब्रह्मा भगवतो मूर्त्त्या रजसस्तमसस्तथा।
याभिः संस्थाप्यते विश्वं स्थितौ सञ्चाल्यते च ह॥५॥

त्वमेका तस्य देवस्य मूर्तिराद्या धराधरे। द्वितीया सलिलं मूर्तिस्तृतीया तैजसी स्मृता॥६॥

चतुर्थी वायुमूर्तिः स्यादाकाशाख्यातु पञ्चमी। एतास्तु मूर्तयस्तस्य क्षेत्रज्ञत्वं हि मद्धियाम्।
मूर्तित्रयं तथा तस्य इत्येताश्चाष्टमूर्त्तयः॥७॥

अध्याय–४

श्रीविष्णु की अष्टमूर्त्ति एवं कपिल व जैगीषव्य से अश्वशिरा को उपदेश प्राप्ति

धरणी ने पूछा कि हे भगवन्! जो नारायण देव हैं, वे ही पूर्णतया सनातन परमात्मा हैं, या नहीं, यह आप मुझसे बतलायें।।१।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि हे भूतधारिणि! मत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, श्रीराम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि—ये दश उन परमात्मा की अष्टमूर्त्तियाँ कही गई हैं। हे शोभने! दर्शन करने की अभिलाषा करने वालों के हेतु ये अष्टमूर्त्तियाँ अष्टसोपान की तरह हैं।।२-३।।

उन परमात्मा का जो परम स्वरूप है, उसे देवता भी नहीं देख पाते हैं। हमारे जैसे अष्टमूर्त्तियों के स्वरूप से ही वे सृष्टि को धारण करने जैसा कार्य करते हैं।।४।।

उन परमात्मा के स्वरूप से राजस एवं तामस गुणों के योग का परिणाम स्वरूप ब्रह्मा की मूर्त्ति की उत्पत्ति हुई। उनके वश इस संसार की सृष्टि-स्थिति और संचालन सम्भव होता है।।५।।

हे धरणि! तुम ही उन परमात्मा की एकमात्र आदि मूर्त्ति हो, उनकी दूसरी मूर्त्ति जल और तीसरी मूर्त्ति अग्नि को माना जाता है।।६।।

उन परमात्मा की चौथी मूर्त्ति वायु तथा पाँचवीं मूर्त्ति आकाश है। इस प्रकार परमात्मा की ये पञ्च मूर्त्तियाँ और हम लोगों के अन्तःस्थ क्षेत्रज्ञ स्वरूपात्मक सूर्य, चन्द्र और आत्मा प्रकार की तीन मूर्त्तियाँ मिलाकर परमात्मा की अष्टमूर्त्तियाँ हो जाती हैं।।७।।

अभिर्व्याप्तमिदं सर्वं जगन्नारायणेन ह। इत्येतत्कथितं देवि किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि॥८॥

धरण्युवाच

नारदेनैवमुक्तस्तु तदा राजा प्रियव्रतः। कृतवान् किं ममाचक्ष्व प्रसादात्परमेश्वर॥९॥

वराह उवाच

भवतीं सप्तधा कृत्वा पुत्राणां च प्रदाय सः। प्रियव्रतस्तपस्तेपे नारदाच्छ्रुतविस्मयः॥१०॥
नारायणात्मकं ब्रह्म परं जप्त्वा स्वयम्भुवः। ततस्तुष्टमनाः पारं परं निर्वाणमाप्तवान्॥११॥
शृणु चान्यद्वरारोहे यद्वृत्तं परमेष्ठिनः। आराधनाय च यतः पुराकाले नृपस्य ह॥१२॥
आसीदश्वशिरा नाम राजा परमधार्मिकः। सोऽश्वमेधेन यज्ञेन यष्ट्वा सुबहुदक्षिणः॥१३॥
स्नातश्चावभृथे सोऽथ ब्राह्मणैः परिवारितः। यावदास्ते स राजर्षिस्तावद्योगिवरो मुनिः।
आययौ कपिलः श्रीमाञ्जैगीषव्यश्च योगिराट्॥१४॥
ततस्त्वरितमुत्थाय स राजा स्वागतक्रियाम्। चकार परया युक्तः स मुदा राजसत्तमः॥१५॥
तावर्च्चितावासनगौ दृष्ट्वा राजा महाबलः। पप्रच्छ तौ तिग्मधियौ योगज्ञौ स्वेच्छयागतौ॥१६॥
भवन्तौ संशयं विप्रौ पृच्छामि पुरुषोत्तमौ। कथमाराधयेद्देवं हरिं नारायणं परम्॥१७॥

इस प्रकार भगवान् नारायण अपनी इन अष्टमूर्त्तियों के द्वारा इस संसार में सर्वत्र व्याप्त हैं। हे देवि! यहाँ तक तो मैंने तुम्हें कह दिया, अब और क्या सुनना चाहती हो? उसे कहो।।८।।

धरणी ने पूछा कि हे परमेश्वर! कृपाकर मुझे यह बतलायें कि नारद के द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर राजा प्रियव्रत ने क्या किया।।९।।

श्रीभगवान् वराह ने कहा कि नारद के आश्चर्योत्पादक वार्ता सुनकर राजा प्रियव्रत ने आपके सप्तद्वीप का भाग कर अपने पुत्रों को सौंपा और स्वयं तपस्यारत हो गया।।१०।।

फिर नारायणात्मक ब्रह्मपार स्तोत्र का जप करते हुए वह राजा प्रियव्रत प्रसन्न हृदय से स्वायम्भुव के पारम्पर स्वरूप निर्वाण को प्राप्त कर लिया।।११।।

हे वरारोहे! पुरातन समय में परमेष्ठी की आराधना हेतु प्रयत्न करने वाले राजा का अन्यान्य वृत्तान्त को सुनो।।१२।।

एक अश्वरशिरा नाम का परम धार्मिक राजा था। उसने अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न कर बहुत सारी दक्षिणा प्रदान की।।१३।।

तत्पश्चात् अवभृथ स्नान से निवृत्त होकर ब्राह्मणों से घिरा हुआ वह राजर्षि जैसे-ही आसन पर स्थित हुआ, उसी समय योगियों में श्रेष्ठ श्रीमान् कपिल मुनि और योगीराज जैगीषव्य आ पहुँचे।।१४।।

फिर शीघ्रता से उठकर राजाओं में श्रेष्ठ उस राजा ने अत्यन्त प्रसन्नता से उन दोनों का स्वागत तत्परता से किया।।१५।।

स्वागत कार्य सम्पन्न कर स्वेच्छा से आये हुए योगज्ञ और तीक्ष्ण बुद्धि वाले उन दोनों को यथायोग्य आसन पर स्थित हुआ जानकर परम बलवान् राजा ने उन दोनों से अपनी जिज्ञासा को प्रकट की।।१६।।

हे पुरुषोत्तम विप्रद्वय! मैं आप दोनों से अपना संशय पूछना चाहता हूँ। वह यह कि श्रीहरि नारायण देव की आराधना किस प्रकार से करनी चाहिए।।१७।।

विप्रावूचतुः

क एष प्रोच्यते राजंस्त्वया नारायणो गुरुः। आवां नारायणौ द्वौ तु त्वत्प्रत्यक्षगतौ नृप॥१८॥

अश्वशिरा उवाच

भवन्तौ ब्राह्मणौ सिद्धौ तपसा दग्धकिल्बिषौ।
कथं नारायणावावामिति वाक्यमथेरितम्॥१९॥

शङ्खचक्रगदापाणिः पीतवासा जनार्दनः। गरुडस्थो महादेवः कस्तस्य सदृशो भुवि॥२०॥

तस्य राज्ञो वचः श्रुत्वा तौ विप्रौ शंसितव्रतौ।
जहसतुः पश्य विष्णुं राजन्निति जजल्पतुः॥२१॥

एवमुक्त्वा स कपिलः स्वयं विष्णुर्बभूव ह। जैगीषव्यश्च गरुडस्तत्क्षणात् समजायत॥२२॥

ततो हाहाकृतं त्वासीत्तत्क्षणाद्राजमण्डलम्। दृष्ट्वा नारायणं देवं गरुडस्थं सनातनम्॥२३॥

कृताञ्जलिपुटो भूत्वा ततो राजा महायशाः। उवाच शाम्यतां विप्रौ नायं विष्णुरथेदृशः॥२४॥

यस्य ब्रह्मा समुत्पन्नो नाभिपङ्कजमध्यतः। तस्माच्च ब्रह्मणो रूद्रः स विष्णुः परमेश्वरः॥२५॥

इति राजवचः श्रुत्वा तदा तौ मुनिपुंगवौ। चक्रतुः परमां मायां योगमायाविशेषतः॥२६॥

विप्रद्वय ने कहा कि हे राजन्! तुमने हम दोनों से किस नारायण स्वरूप गुरु के बारे में पूछा है। हे नृप! तुम्हारे सामने उपस्थित हम दोनों ही प्रत्यक्ष नारायण स्वरूप हैं।।१८।।

अश्वशिरा ने कहा कि यह सत्य है कि आप दोनों ने कठिन तप से अपने-अपने पापों का क्षय किये हुए सिद्ध ब्राह्मण हैं। लेकिन 'हम दोनों नारायण हैं' यह कथन आप लोगों ने कैसे कह दिया?।।१९।।

वे जनार्दन महादेव तो अपने हाथों में शङ्ख, चक्र, गदा आदि धारण करने वाले हैं। वे पीताम्बर धारण करने वाले और गरुड़ पर स्थित रहते हैं। इस प्रकार इस भूमण्डल में उनके जैसा दूसरा कौन है? अर्थात् कोई नहीं।।२०।।

इस तरह से राजा की वाणी सुनकर कठिन व्रत करने वाले वे दोनों विप्र हँस पड़े। फिर वे दोनों राजा से कहते हैं कि हे राजन्! विष्णु को देखो।।२१।।

इस प्रकार से कहते हुए कपिल स्वयं विष्णु स्वरूप और जैगीषव्य उसी क्षण गरुड़जी के रूप में प्रकट हो गये।।२२।।

इस तरह सनातन नारायण देव को गरुड़ासीन देखकर उस क्षण सम्पूर्ण राजमण्डल हाहाकार कर उठा।।२३।।

इसके बाद महायशस्वी राजा अपने दोनों हाथों को जोड़कर कहा—हे विप्रद्वय शान्त होईये, क्योंकि विष्णु नारायण ऐसे नहीं हैं।।२४।।

जिनके नाभिकमल के बीच ब्रह्मा उत्पन्न हुए और उन ब्रह्मा से रुद्र की उत्पत्ति हुई है, ऐसे परमेश्वर ही विष्णु हैं।।२५।।

इस तरह से राजा की बातों को सुनकर उन दोनों मुनि श्रेष्ठों ने परममाया और विशेषकर योगमाया को प्रकट कर दिया।।२६।।

कपिलः पद्मनाभस्तु जैगीषव्यः प्रजापतिः। कमलस्थो बभौ ह्रस्वस्तस्य चाङ्के कुमारकः॥२७॥
ददर्श राजा रक्ताक्षं कालानलसमद्युतिम्। नेत्थं भवति विश्वेशो मायैषा योगिनां सदा।
सर्वव्यापी हरिः श्रीमानिति राजा जगाद ह॥२८॥
ततो वाक्यावसाने तु तस्य राज्ञो हि संसदि।
मत्कुणा मशका यूका भ्रमराः पक्षिणोरगाः॥२९॥
अश्वा गावो द्विपाः सिंहा व्याघ्रा गोमायवो मृगाः।
अन्येऽपि पशवः कीटा ग्राम्यारण्याश्च सर्वशः।
दृश्यन्ते राजभवने कोटिशो भूतधारिणि॥३०॥
तं दृष्ट्वा भूतसङ्घातं राजा विस्मितमानसः। यावच्चिन्तयते किं स्यादेतदित्यवगम्य च।
जैगीषव्यस्य माहात्म्यं कपिलस्य च धीमतः॥३१॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा स राजाश्वशिरास्तदा।
प्रपच्छ तावृषी भक्त्या किमिदं द्विजसत्तमौ॥३२॥

द्विजावूचतुः

आवां पृष्टौ त्वया राजन् कथं विष्णुरिहेज्यते। प्राप्यते वा महाराज तेनेदं दर्शितं तव॥३३॥
सर्वज्ञस्य गुणा ह्येते ये राजंस्तव दर्शिताः। स च नारायणो देवः सर्वज्ञः कामरूपवान्॥३४॥

उस समय मुनि कपिल पद्मनाभ (विष्णु) और जैगीषव्य पद्मासनस्थ प्रजापति (ब्रह्मा) जिनके गोद में एक छोटा कुमार था, के स्वरूप में प्रकट हो गये।।२७।।

इस प्रकार राजा ने लाल-लाल नेत्र और कालाग्नि के समान तेजस्वी विष्णु स्वरूप को देखकर भी कहा—वे विश्वेश्वर इस प्रकार के नहीं हैं'। ये सब योगियों की मायामात्रा है, श्रीमान् हरि सर्वव्यापक हैं।।२८।।

राजा के इतना कहते ही, हे भूतधारिणि उस राजा के सभामण्डल में मच्छर, खटमल, जूँए, भौंरे, पक्षी, सर्प, घोड़े, गौएँ, हाथी, सिंह, व्याघ्र, शृंगाल, मृग और अन्यान्य ग्रामीण जङ्गली पशु तथा कीड़े भी करोड़ों की संख्या में सर्वत्र दीखने लगे।।२९-३०।।

इस तरह से उस राजभवन में विविध प्रकार के जीवों के प्रकट हो जाने पर राजा का चित्त आश्चर्यचकित हो गया। फिर जैसे ही उन्होंने विचार करना प्रारम्भ किया कि ये सब क्या है? उसी समय उन्हें जैगीषव्य और बुद्धिमान् कपिल मुनि का माहात्म्य बोध हो गया।।३१।।

फिर क्या, उस राजा अश्वशिरा ने हाथ जोड़कर भक्तिभाव से उन दोनों विप्रश्रेष्ठ मुनियों से पूछा कि यह क्या है?।।३२।।

यह सुनकर दोनों विप्रों ने कहा—हे राजन्! तुमने हम दोनों से पूछा था कि विष्णु की पूजा किस प्रकार से होती है या वे कैसे प्राप्त होते हैं। हे महाराज! इसलिए ही हम दोनों ने तुम्हारे लिये यह विलक्षण दृश्य प्रकट किया।।३३।।

हे राजन्! इस तरह से दिखलाये गये दृश्यात्मक गुण सर्वज्ञ के हैं। वे नारायण देव सर्वज्ञ और इच्छानुरूप स्वरूप धारण करने में सक्षम हैं।।३४।।

सोम्यस्तु संस्थितः क्वापि प्राप्यते मनुजैः किल। आराधनेन चैतस्य वाक्यमर्थवदिष्यते॥३५॥
किन्तु सर्वशरीरस्थः परमात्मा जगत्पतिः। स्वदेहे दृश्यते भक्त्या नैकस्थानगतस्तु सः॥३६॥
अतोऽर्थं दर्शितं रूपं देवस्य परमात्मनः। आवयोस्तव राजेन्द्र प्रतीतिः स्याद्यथा तव।
एवं सर्वगतो विष्णुस्तव देहे जनेश्वर॥३७॥
मन्त्रिणां भृत्यसङ्घस्य सुराद्या ये प्रदर्शिताः। पशवः कीटसङ्घाश्च तेऽपि विष्णुमया नृप॥३८॥
भावनान्तु दृढां कुर्याद्यथा सर्वगतो हरिः। नान्यत्तत्सदृशं भूतमिति भावेन सेव्यते्॥३९॥
एष ते ज्ञानसद्भावस्तव राजन् प्रकीर्त्तितः।
परिपूर्णेन भावेन स्मरन् नारायणं हरिम्॥४०॥
पूजोपहारैर्धूपैश्च ब्राह्मणानां च तर्पणैः। ध्यानेन सुस्थितेनाशु प्राप्यते परमेश्वरः॥४१॥

।।इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः।।४।।

मनुष्य अपनी आराधना से निश्चयपूर्वक किसी भी स्थान पर विष्णु को उनके सौम्य रूप से प्राप्त कर लेता है। इस कथन के अर्थ युक्त वाक्य को क्या आप सुनना चाहेंगे?।।३५।।

किन्तु जगत्पति परमात्मा प्रत्येक शरीर में स्थित हैं। उनकी भक्ति से भक्त अपने शरीर में ही उनका दर्शन कर लेता है। परमात्मा सदा किसी एक स्थान पर नहीं रहते।।३६।।

हे राजन्! हम दोनों ने परमात्मदेव का स्वरूप आपको इसलिए दिखलाया, जिससे आपको हम दोनों पर विश्वास हो जाय। हे जनेश्वर! इस प्रकार सर्वव्यापक विष्णु हम दोनों के शरीर में तथा आपके शरीर में भी स्थित हैं।।३७।।

हे राजन्! मन्त्रिगणों, भृत्यगणों के सहित आपको भी जो भी देवादिकों के दृश्य दिखाये गये हैं और पशु या कीट समूह भी सभी विष्णु नारायणमय हैं।।३८।।

भगवान् नारायण सर्वव्यापक हैं, इस प्रकार की भावना को अपने अन्दर दृढ़ता प्रदान करनी चाहिए। क्योंकि वास्तव में उनके सदृश कोई प्राणी नहीं है, इस भाव को धारण कर उस देव की सेवाचर्या करनी चाहिए।।३९।।

हे राजन्! परिपूर्ण भाव से श्रीनारायण हरि का स्मरणपूर्वक हम दोनों ने आपसे ज्ञान का यह सुन्दर स्वरूप बतलाया है।।४०।।

इस प्रकार ब्राह्मणों को पुष्प और धूप रूपी उपहारों और तर्पण से संतृप्त करते हुए विधिवद् चित्त स्थिर कर उनका ध्यान करने से परमेश्वर निश्चय ही सहज ही प्राप्त हो जाते हैं।।४१।।

।।इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में विष्णु की अष्टमूर्त्ति आदि व्याख्यानात्मक चतुर्थ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ।।४।।

❖❖❖

पञ्चमोऽध्यायः

अथाश्वशिरामोक्षजिज्ञासां नारायणस्तुतिञ्च

अश्वशिरा उवाच

भवन्तौ मम सन्देहमेकं छेत्तुमिहार्हतः। येन छिन्नेन जायेत मम संसारविच्युतिः॥१॥
एवमुक्तो नृपतिना तदा योगिवरो मुनिः। कपिलः प्राह धर्मात्मा राजानं यजतां वरम्॥२॥

कपिल उवाच

कस्ते मनसि सन्देहो राजन् परमधार्मिक। छिन्दामि येन तच्छ्रुत्वा ब्रूहि यत्तेऽभिवाञ्छितम्॥३॥

अश्वशिरा उवाच

कर्मणा प्राप्यते मोक्ष उताहो ज्ञानिना मुने। एतन्मे संशयं छिन्धि यदि मेऽनुग्रहः कृतः॥४॥

कपिल उवाच

इमम्प्रश्नं महाराज पुरा पृष्टो बृहस्पतिः। रैभ्येण ब्रह्मपुत्रेण राज्ञा च वसुना पुरा।
वसुरासीन्नृपश्रेष्ठो विद्वान्दानपतिः पुरा॥५॥
चाक्षुषस्य मनोः काले ब्रह्मणोऽन्वयवर्द्धनः। वसुश्च ब्रह्मणः सद्म गतवांस्तद्दिदृक्षया॥६॥
पथि चैत्ररथं दृष्ट्वा विद्याधरवरं नृप। अपृच्छच्च वसुः प्रीत्या ब्रह्मणोऽवसरं प्रभो॥७॥

अध्याय–५

अश्वशिरा मोक्ष जिज्ञासा और नारायण स्तुति

अश्वशिरा ने कहा कि आप दोनों मेरा एक सन्देह दूर करने में सक्षम हैं, जिसके दूर होने से निश्चय ही मेरी इस संसार से मुक्ति सम्भव होगी।।१।।

तत्पश्चात् राजा के द्वरा इस प्रकार कहे जाने पर योगिश्रेष्ठ धर्मात्मा कपिल मुनि ने यज्ञकर्त्ताओं में श्रेष्ठ राजा अश्वशिरा से कहा।।२।।

कपिलमुनि ने कहा कि हे परम धार्मिक राजन्! आपके मन में सन्देह क्या है? जिसे सुनकर मैं उसका समाधान करूँगा। अतः निश्चिन्त होकर जो कुछ तुम्हारे मन में हो, उसे व्यक्त करो।।३।।

राजा ने कहा—हे मुनि! कर्म से या ज्ञान से मोक्ष प्राप्त होता है? यदि आपने मेरे ऊपर अनुग्रह किया हो, तो मेरे इस प्रकार के सन्देह को दूर करें।।४।।

कपिलमुनि ने कहा—हे महाराज! पुरातन काल में ब्रह्मपुत्र रैभ्य और राजा वसु ने भी यही प्रश्न बृहस्पति से किया था। बहुत पहले चाक्षुष मनु के समय में वसु नाम के दानपति विद्वान् और ब्रह्मकुल की वृद्धि करने वाला श्रेष्ठ राजा था। किसी समय वसु ब्रह्माजी के दर्शन की इच्छा से उनके निवास पर पहुँचे।।५-६।।

पथ में चैत्ररथ नाम का श्रेष्ठ विद्याधर को देखकर राजावसु ने उससे नम्रतापूर्वक ब्रह्माजी के दर्शन का समय पूछा।।७।।

सोऽब्रवीद्देवसमितिर्वर्तते ब्रह्मणो गृहे। एवं श्रुत्वा वसुस्तस्थौ द्वारि ब्रह्मौकसस्तदा।
तावत्तत्रैव रैभ्यस्तु आजगाम महातपाः॥८॥
स राजा प्रीतिमनसा वसुः सम्पूर्णमानसः। उवाच पूजयित्वाग्रे क्व प्रयातोऽसि वै मुने॥९॥

रैभ्य उवाच

अहं बृहस्पतेः पार्श्वे आगतोऽस्मि महानृप। किञ्चित्कार्यान्तरं प्रष्टुमहं देवपुरोहितम्॥१०॥
एवं वदति रैभ्ये तु ब्रह्मणस्तन्महत्सदः। उत्तस्थौ स्वानि धिष्ण्यानि गता देवगणाः प्रभो॥११॥
तावद्बृहस्पतिस्तत्र रैभ्येण सह संविदम्। कृत्वा स्वधिष्ण्यमगद् वसुना चानुपूजितः॥१२॥
रैभ्य आङ्गिरसो राजा वसुश्चोपविवेश ह। उपविष्टेषु राजेन्द्र तेषु तेष्वपि सोऽब्रवीत्॥१३॥
बृहस्पतिर्देवगुरू रैभ्यं वचनमन्तिके। किं करोमि महाभाग वेदवेदाङ्गपारग॥१४॥

रैभ्य उवाच

बृहस्पते कर्मणा किं प्राप्यते ज्ञानिनाऽथवा। मोक्ष एतन्ममाचक्ष्व पृच्छतः संशयं प्रभो॥१५॥

बृहस्पतिरुवाच

यत्किञ्चित्कुरुते कर्म पुरुषः साध्वसाधु वा।
सर्वं नारायणे न्यस्य कुर्वन्नपि न लिप्यते॥१६॥

उसने कहा कि ब्रह्माजी के घर के अन्दर देवसभा चल रही है। फिर इस प्रकार सुनने के बाद वसु ब्रह्मभवन के द्वार पर ही खड़े हो गए। उसी समय उसी जगह महातपस्वी रैभ्य भी आ पहुँचे।।८।।

फिर उन सम्पूर्णमानस राजा वसु ने प्रीतियुक्त मन से प्रथम मुनि रैभ्य का पूजन करने के बाद कहा—हे मुनि! आप कहाँ जा रहे हैं?।।९।।

रैभ्य ने कहा कि हे महाराज! मैं तो बृहस्पति के समीप आया हूँ। देव पुरोहित से मुझे कुछ कार्यान्तर या विशेष कार्य के बारे में पूछना है।।१०।।

तब कपिल ने अश्वशिरा से कहा—हे प्रभो! रैभ्य इस प्रकार कह ही रहे थे कि ब्रह्मा की वह महासंसद सम्पन्न हो चुकी थी फिर देवगण अपने-अपने स्थान की ओर चले गए।।११।।

फिर उस समय बृहस्पति संविदा अर्थात् नियम, निश्चय, शर्त आदि विचार करने के बाद रैभ्य और वसु द्वारा सुपूजित होकर धिष्ण्य (स्थान) पर गये।।१२।।

फिर बृहस्पति के स्थान पर अङ्गिरा पुत्र रैभ्य और राजा वसु यथायोग्य स्थान पर स्थित हो गए। हे राजेन्द्र! सबके सब जब बैठ गए, एक-दूसरे से वार्ता करने लगे, तभी उन्होंने कहा।।१३।।

बृहस्पति ने रैभ्य से कहा—हे वेदवेदाङ्गपारग महाभाग! यदि आप की वार्ता का अन्त हो गया हो, तो बतायें कि मैं क्या करूँ?।।१४।।

रैमय ने कहा— हे बृहस्पति! मेरी जिज्ञासा है मोक्ष कर्म से या ज्ञान से प्राप्त होता है? हे प्रभो! इस प्रकार प्रश्न करने वाले मुझ संशयात्मा को यह बतलायें।।१५।।

बृहस्पति ने कहा—पुरुष जैसा भी कम या अधिक, शुभ अथवा अशुभ कर्म करता है, उन सबको पुरुष द्वारा नारायण को समर्पित करने पर वह कर्मफल से लिप्त नहीं होता है।।१६।।

श्रूयते च द्विजश्रेष्ठ संवादो विप्रलुब्धयोः। आत्रेयो ब्राह्मणः कश्चिद्वेदाभ्यासरतो मुनिः॥१७॥
वसत्यविरतः प्रातःस्नायी त्रिषवणे रतः। नाम्ना संयमनः पूर्वमेकस्मिन्दिवसे नदीम्।
धर्मारण्ये गतः स्नातुं धन्यां भागीरथीं शुभाम्॥१८॥
तत्रासीनं महायूथं हरिणानां विचक्षणः। लुब्धो निष्ठुरको नाम धनुष्पाणिः कृतान्तवत्।
आययौ तं जिघांसुः स धनुष्यायोज्य सायकम्॥१९॥
ततः संयमनो विप्रो दृष्ट्वा तं मृगयारतम्। वारयामास मा भद्र जीवघातमिमङ्कुरु॥२०॥
एतच्छ्रुत्वा वचो व्याधः स्मितपूर्वमिदं वचः। उवाच नाहं हिंसामि पृथग्जीवं द्विजोत्तम॥२१॥
परमात्मा त्वयं भूतैः क्रीडते भगवान् स्वयम्। कृता मृदा बलीवर्दास्तर वेदतन्न संशयः॥२२॥
अहंभावः सदा ब्रह्मन्न विधेयो मुमुक्षुभिः। यात्राप्राणरतं सर्वं जगदेतद्विचेष्टितम्।
तत्राहमिति यः शब्दः स साधुत्वं न गच्छति॥२३॥
इत्याकर्ण्य स विप्रेन्द्रो द्विजः संयमनस्तदा। विस्मयेनाब्रवीद्वाक्यं लुब्धं निष्ठुरकं द्विजः॥२४॥
किमेतदुच्यते भद्र प्रत्यक्षं हेतुमद्वचः। ततः श्रुत्वा मुनेर्विप्रं लुब्धकः प्राह धर्मवित्।
कृत्वा लोहमयं जालं तस्याधो ज्वलनं ददौ॥२५॥

हे द्विजश्रेष्ठ! इस प्रसङ्ग में ब्राह्मण और लुब्धक (शिकरी का सम्वाद सुनने योग्य है। कोई अत्रिगोत्रीय वेदाभ्यासी ब्राह्मण मुनि था।।१७।।

बहुत पहले नियमित प्रातःस्नान करने वाला और तीन सन्ध्याओं में यज्ञ करने वाला मुनि संयमन नाम का ब्राह्मण धर्मारण्य में निवास करता था। एक दिन वह शुभा धन्या भागीरथी नदी में स्नान करने हेतु गया।।१८।।

वहीं पर हिरणों का एक बहुत बड़ा समूह उपस्थित था। उन हिरनों को मारने की इच्छा वाला, धनुष धारण किये काल के समान बुद्धिमान निष्ठुरक नाम का लुब्धक धनुष पर बाण चढ़ाते हुए प्रस्तुत हुआ।।१९।।

इस प्रकार मृगया में लिप्त उस शिकारी को देख, संयमन ब्राह्मण ने उसको रोकने की चेष्टा करते हुए कहा—हे भद्र! यह जीव हिंसा मत करो।।२०।।

इस प्रकार ब्रह्मण का वचन सुनकर व्याध मुस्कुराते हुए यह कहा कि हे द्विजोत्तम! मैं स्वयं से पृथक् जीव की हिंसा नहीं कर रहा हूँ।।२१।।

परमात्मा भगवान् स्वयं जीवों के साथ उसी प्रकार खेला करते हैं, जिस प्रकार मिट्टी से बनाये हुए बैंलों से बालक खेला करते हैं, इसमें संशय नहीं है।।२२।।

हे ब्रह्मन्! मोक्ष की ईच्छा वालों का यह अहंकार ही है। याद रखना चाहिए कि संसार की सभी क्रियाकलाप जीवन यात्रा के निर्वहण हेतु ही होती है। इस विषय में 'अहंकार' का उपयोग कदापि उचित नहीं है।।२३।।

फिर इस प्रकार के वचन सुनकर वह विप्रेन्द्र संयमन ब्राह्मण ने चकित होकर व्याध निष्ठुरक से इस प्रकार का वचन कहा।।२४।।

हे भद्र! तुम किस प्रकार के प्रत्यक्ष हेतु युक्त वाणी कह रहे हो।' इस तरह से ब्राह्मण की वाणी सुनकर धर्मविद् लुब्धक ने उस ब्राह्मण से कहा। फिर लौहमय जाली लाकर उसके नीचे अग्नि जला दिया।।२५।।

दत्त्वा वह्निं द्विजु प्राह ज्वाल्यतां काष्ठसञ्चयः।
ततो विप्रो मुखेनाग्निं प्रज्वाल्य विरराम ह॥२६॥
ज्वलिते तु पुनर्वह्नौ तं जालं लोहसम्भवम्। पृथक् पृथक् सहस्राणि निन्येऽन्तर्जालकैर्द्विज।
एकस्थानगतस्यापि वह्नेरायसजालकैः॥२७॥
ततो लुब्धोऽब्रवीद्विप्रमेकां ज्वालां महामुने। गृहाण येन शेषाणां करिष्यामीह नाशनम्॥२८॥
एवमुक्त्वा हुताशे तु तोयपूर्णं घटं द्रुतम्। चिक्षेप सहसा वह्निः प्रशशामाशु पूर्ववत्॥२९॥
ततोऽब्रवील्लुब्धकस्तु ब्राह्मणं तं तपोधनम्।
भगवन् या त्वया ज्वाला गृहीतासीद्धुताशनात्।
प्रयच्छ येन मार्गाणि मांसान्यानाय्य भक्षये॥३०॥
एवमुक्तस्तदा विप्रो यावदायसजालकम्। पश्यत्येव न तत्राग्निर्मूलनाशे गतः क्षयम्॥३१॥
ततो विलक्षभावेन ब्राह्मणः शंसितव्रतः। तूष्णीम्भूतः स्थितस्तावल्लुब्धको वाक्यमब्रवीत्॥३२॥
एतस्मिञ्ज्वलितो वह्निर्बहुशाखश्च सत्तम। मूलनाशे भवेन्नाशस्तद्वदेतदपि द्विज॥३३॥
आत्मा स प्रकृतिस्थश्च भूतानां संश्रयो भवेत्।
भूय एषा जगत्सृष्टिस्तत्रैव जगतो भवेत्॥३४॥

फिर उस व्याध ने ब्राह्मण से कहा कि काष्ठ संचय कर इस जाली के नीचे जलाओ। फिर ब्राह्मण मुख से अग्नि प्रज्वलित कर वहाँ से दूर हट गया।।२६।।

हे द्विज! फिर से लौहजाली के नीचे अग्नि के प्रज्वलित हो जाने पर उस लौहजाली के जाल-छिद्रों से अग्नि भिन्न-भिन्न सहस्रों रूपों में दीखने लगा, जबकि अग्नि एक स्थान पर ही जलायी गई है।।२७।।

फिर लुब्धक ने ही ब्राह्मण से कहा—हे महामुनि! अब आप इन जालियों के ज्वालाओं में से एक ज्वाला को पकड़ कर रखें, जिससे मैं शेष ज्वालाओं को बुझा सकूँ।।२८।।

इस प्रकार कहकर वह लुब्धक अग्नि के मूलस्रोत पर तुरन्त एक जलपूर्ण घट को उड़ेल दिया। इस प्रकार अचानक अग्नि जल्द ही पूर्व की तरह शान्त हो गई।।२९।।

तत्पश्चात् उस लुब्धक ने उस तपस्वी ब्राह्मण से कहा—हे भगवन्! अब आप अग्नि की जिस ज्वाला को पकड़ कर रखा है, उसे मुझे दे दीजिए, जिससे मैं अभी मृगों का मांस भूनकर भक्षण कर सकूँ।।३०।।

इस प्रकार से कहे जाने पर ब्राह्मण जब लौह जाली को देखा, तो वहाँ कोई अग्नि ज्वाला शेषित नहीं था। चूँकि मूल अग्नि के नष्ट होने पर उस जाली में व्याप्त अग्नि की समस्त ज्वालायें भी नष्ट हो गई थी। यह देखकर सदा कठोर व्रत धारण करने वाला ब्राह्मण लज्जायुक्त होकर चुपचाप खड़ा ही रह गया। उस समय लुब्धक उससे इस प्रकार का वाक्य कहा।।३२।।

हे सत्तम! इस प्रज्वलित अग्नि में अनेक शाखाओं वाली अग्नि ज्वालायें जल रही थी। अतः उसके मूल अग्नि के नष्ट होने पर सबका नाश हो जाता है। वही यहाँ भी हुआ है।।३३।।

प्रकृति में उपस्थित आत्मा समस्त भूतों (पञ्चमहाभूतों) का आश्रय होता है। अतः उस आत्मा के आश्रय से ही बार-बार इस संसार की रचना हुआ करती है।।३४।।

पिण्डग्रहणधर्मेण यदस्य विहितं व्रतम्। तत्तदात्मनि संयोज्य कुर्वाणो नावसीदति॥३५॥
एवमुक्ते तु व्याधेन ब्राह्मणो राजसत्तम। पुष्पवृष्टिरथाकाशात्तस्योपरि पपात ह॥३६॥
विमानानि च दिव्यानि कामगानि महान्ति च। बहुरत्नानि मुख्यानि ददृशे ब्राह्मणोत्तमः॥३७॥
तेषु निष्ठुरकं लुब्धं सर्वेषु समवस्थितम्। ददृशे ब्राह्मणस्तत्र कामरूपिणमुत्तमम्॥३८॥
अद्वैतवासनासिद्धं योगाद्बहुशरीरकम्। दृष्ट्वा विप्रो मुदा युक्तः प्रययौ निजमाश्रमम्॥३९॥
एवं ज्ञानवतः कर्म कुर्वतोऽपि स्वजातिकम्। भवेन्मुक्तिर्द्विजश्रेष्ठ रैभ्य राजन्वसो ध्रुवम्॥४०॥
एवं तौ संशयच्छेदं प्राप्तौ रैभ्यवसू नृप। बृहस्पतेस्ततो धिष्ण्याज्जग्मतुर्निजमाश्रमम्॥४१॥
तस्मात्त्वमपि राजेन्द्र देवं नारायणं प्रभुम्। अभेदेन स्वदेहस्थं तु पश्यन्नाराधय प्रभुम्॥४२॥
कपिलस्य वचः श्रुत्वा स राजाश्वशिरा विभुः। ज्येष्ठं पुत्रं समाहूय धन्यं स्थूलशिराह्वयम्।
अभिषिंच्य निजे राज्ये स राजा प्रययौ वनम्॥४३॥
नैमिषाख्यं वरारोहे तत्र यज्ञतनुं गुरुम्। तपसाराधयामास यज्ञमूर्तिस्तवेन च॥४४॥

शरीर धारण करने के कारण इस शरीरधारी जीव का जो धर्मवश कर्म शास्त्रादि में विहित किया गया है, उसे आत्मा को अर्पण करने के भाव से सम्पन्न करने वाले कभी दुःखी नहीं होता है।।३५।।

हे राजसत्तम! व्याध द्वारा ब्राह्मण से इस प्रकार कहने के समय, उसके ऊपर आकाश से पुष्पों की बारिश होने लगी।।३६।।

उस समय ब्राह्मण श्रेष्ठ ने स्वेच्छाचारी, विशाल, दिव्य विमानों को विविध प्रमुख रत्नों से सम्पन्न देखा।।३७।।

उस ब्राह्मण ने उस स्थान पर उन समस्त विमानों में कामना के अनुरूप स्वरूपवान् और एक समान अवस्थाओं में उस श्रेष्ठ निष्ठुरक नाम के व्याधा को स्थित देखा।।३८।।

इस तरह अद्वैत भाव की सिद्धि करने वाले एवं योगज्ञान के प्रभाव से विविध देह धारण करने वाले निष्ठुरक लुब्धक को देखकर ब्राह्मण सहर्ष अपने आश्रम की ओर चल पड़ा।।३९।।

हे द्विजश्रेष्ठ! रैभ्य एवं राजा वसु! इस तरह स्वजातीय कर्म करते रहने पर भी निश्चयपूर्वक ज्ञानियों की मुक्ति हो जाया करती है।।४०।।

हे नृप! इस प्रकार से रैभ्य और राजा वसु संशय मुक्त होकर बृहस्पति के मार्गदर्शन पाकर अपने आश्रम की ओर चल पड़े।।४१।।

इस प्रकार हे राजेन्द्र! आप भी अपने शरीर में स्थित प्रभु नारायण देव की आराधना अभेद दृष्टि से करें।।४२।।

कपिल की वाणी सुनकर उस परम सामर्थ्यवान् राजा अश्वशिरा ने स्थूलशिरा नाम के अपने यशस्वी बड़े पुत्र को बुलाकर अपने राज्यसिंहासन पर उनका अभिषेक कर दिया। उसके बाद वह राजा वन की ओर चला गया।।४३।।

हे वरारोहे! उसने नैमिषारण्यतीर्थ में सर्वश्रेष्ठ यज्ञमूर्त्ति और यज्ञ शरीर वाले विष्णु की स्तुति द्वारा आराधना की।।४४।।

धरण्युवाच

कथं यज्ञतनोः स्तोत्रं राज्ञा नारायणस्य ह। स्तुतिः कृता महाभाग पुनरेतच्च शंस मे॥४५॥

वराह उवाच

नमामि याज्यं त्रिदशाधिपस्य भवस्य सूर्यस्य हुताशनस्य।
सोमस्य राज्ञो मरुतामनेकरूपं हरिं यज्ञनरं नमस्ये॥४६॥
सुभीमदंष्ट्रं शशिसूर्यनेत्रं संवत्सरे चायनयुग्मकुक्षम्।
दर्भाङ्गरोमाणमथेध्मशक्तिं सनातनं यज्ञनरं नमामि॥४७॥
द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि व्याप्तं शरीरेण दिशश्च सर्वाः।
तमीड्यमीशं जगतां प्रसूतिं जनार्दनं तं प्रणतोऽस्मि नित्यम्॥४८॥
सुरासुराणां च जयाजयाय युगे युगे यः स्वशरीरमाद्यम्।
सृजत्यनादिः परमेश्वरो यस्तं यज्ञमूर्तिं प्रणतोऽस्मि नाथम्॥४९॥
दधार मायामयमुग्रतेजा जयाय चक्रं त्वमलांशुशुभ्रम्।
गदासिशार्ङ्गादिचतुर्भुजोऽयं तं यज्ञमूर्तिं प्रणतोऽस्मि नित्यम्॥५०॥
क्वचित् सहस्त्रं शिरसां दधार क्वचिन्महापर्वततुल्यकायः।
क्वचित् स एव त्रसरेणुतुल्यो यस्तं सदा यज्ञनरं नमामि॥५१॥

धरणी ने कहा—हे महाभाग! आप फिर से मुझे यह कहें कि राजा द्वारा यज्ञ शरीर नारायण की किस प्रकार किस स्तोत्र से स्तुति की गई?।।४५।।

श्रीभगवान् वराह ने कहा—मैं देवेन्द्र, शंकर, सूर्य, अग्नि, सोम के स्वामी चन्द्रमा, तथा मरुद्गणों के आराध्य अनेक रूप धारण करने वाले यज्ञपुरुष हरि को नमस्कार करता हूँ।।४६।।

भयावह दाढ़ वाले, चन्द्र और सूर्य स्वरूप नेत्रों वाले, वर्ष में होने वाले उत्तरायण व दक्षिणायन रूप दो अयनों के सदृश कुक्षियों वाले, कुशों के रोम धारण करने वाले, समिधा के समान शक्ति वाले सनातन यज्ञपुरुष को नमस्कार करता हूँ।।४७।।

अन्तरिक्ष और भूमि के अन्तर अर्थात् मध्य का भाग, सभी दिशायें जिनके शरीर से व्याप्त हैं तथा जगत् की उत्पत्ति करने वाले ऐसे जनार्दन आराध्य देव को मैं नित्य नमस्कार करता हूँ।।४८।।

देव और दानवों के क्रम से जय और पराजय करने वाले, प्रत्येक युग में जो अपने शरीर से सृष्टि का आदि करने वाले तथा इस तरह अनादि सृष्टि वाले जो परमेश्वर यज्ञमूर्त्ति हैं उन नाथ को मैं प्रणाम करता हूँ।।४९।।

विजय हेतु उग्रतेज को धारण करने वाले, माया स्वरूप अमल, प्रकाशवान् शुभ्र चक्र, गदा, खड्ग, शार्ङ्गधनुष आदि धारण करने वाले, चार भुजाओं वाले जो परमेश्वर हैं, उन यज्ञमूर्त्ति को मैं नित्य प्रणाम करता हूँ।।५०।।

जिसने कहीं सहस्त्र शिर धारण किया, कहीं महापर्वतों के समान शरीर धारण किया तथा कहीं पर त्रसरेणु के समान सूक्ष्मतम स्वरूप धारण किया, मैं ऐसे यज्ञपुरुष को हमेशा प्रणाम करता हूँ।।५१।।

चतुर्मुखो यः सृजते समग्रं रथाङ्गपाणिः प्रतिपालनाय।
क्षयाय कालानलसन्निभो यस्तं यज्ञमूर्तिं प्रणतोऽस्मि नित्यम्॥५२॥
संसारचक्रक्रमणक्रियायै य इज्यते सर्वगतः पुराणः।
यो योगिभिर्ध्यायते चाप्रमेयस् तं यज्ञमूर्तिं प्रणतोऽस्मि नित्यम्॥५३॥
सम्यङ् मनस्यर्पितवानहं ते यदा सुदृश्यं स्वतनौ तु तत्त्वम्।
न चान्यदस्तीति मतिः स्थिरा मे यतस्ततो मावतु शुद्धभावम्॥५४॥
इतीरतस्तस्य हुताशनार्चिःप्रख्यं तु तेजः पुरतो बभूव।
तस्मिन् स राजा प्रविवेश बुद्धिं कृत्वा लयं प्राप्तवान् यज्ञमूर्तौ॥५५॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे पञ्चमोऽध्यायः॥५॥

जो चार मुखों वाले होकर समस्त सृष्टि की रचना करते हैं, जो जन त्राण के लिए या उनके परिपालन के लिए चक्र को धारण करते हैं और जो सृष्टि संहार के लिए प्रलयाग्नि के समान हैं, मैं ऐसे यज्ञपुरुष को नित्य प्रणाम करता हूँ।।५२।।

संसार चक्र का सांसारिक प्रपञ्च के परिभ्रमण या निर्वहण के लिए जिन सर्वव्यापी पुराण पुरुष का यजन किया जाता है और योगीजन जिन अप्रमेय का ध्यान किया करते हैं, मैं ऐसे यज्ञमूर्त्ति को नित्य प्रणाम करता हूँ।।५३।।

सदा से मैंने आपके स्वरूप को अपने चित्त में धारण कर रखा है, फिर आप के सुन्दर स्वरूप का अपने शरीर में ध्यान किया करता हूँ, अपने दृढ़ विचार से आपके अतिरिक्त अन्य किसी का अस्तित्व नहीं जानता। अतः आप मुझ शुद्धभावयुक्त की रक्षा करें।।५४।।

ऐसे स्तोत्र से अर्चन करने वाले राजा अश्वशिरा के समक्ष अग्नि ज्वाला-सी महातेज उत्पन्न हुआ। फिर उस राजा ने अपनी अभेद बुद्धि के बल से उस तेज़ में समाविष्ट हो गया। इस तरह वह राजा उस यज्ञमूर्त्ति में विलीन हो गया।।५५।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में अश्वशिरामोक्ष जिज्ञासा और नारायण स्तुति नामक पाँचवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥५॥

❖❖❖

षष्ठोऽध्यायः

अथ वसुकृतपुण्डरीकाक्षस्तोत्रं तस्य पूर्वजन्मकृतञ्च

धरण्युवाच

स वसुः संशयच्छेदं प्राप्य रैभ्यश्च सत्तमः। उभौ किं चक्रतुर्देव श्रुत्वा चाङ्गिरसं वचः॥१॥

श्री वराह उवाच

स वसुः सर्वधर्मज्ञः स्वराज्यं प्रतिपालयन्। अयजद् बहुभिर्यज्ञैर्महद्भिर्भूरिदक्षिणैः॥२॥
कर्मकाण्डेन देवेशं हरिं नारायणं प्रभुम्। तोषयामास राजेन्द्रस्तमभेदेन चिन्तयन्॥३॥
ततः कालेन महता तस्य राज्ञो मतिः किल। निवृत्तराज्यभोगस्य द्वन्द्वस्यान्तमुपेयुषी॥४॥
ततः पुत्रं विवस्वन्तं श्रेष्ठं भ्रातृशतस्य ह। अभिषिच्य स्वके राज्ये तपोवनमुपागमत्॥५॥
पुष्करं नाम तीर्थानां प्रवरं यत्र केशवः। पुण्डरीकाक्षनामा तु पूज्यते तत्परायणैः॥६॥
तत्र गत्वा स राजर्षिः काश्मीराधिपतिर्वसुः। अतितीव्रेण तपसा स्वशरीरमशोषयत्॥७॥
पुण्डरीकाक्षपारं तु स्तवं भक्त्या जपन् बुधः। आरिराधयिषुर्देवं नारायणमकल्मषम्।
स्तोत्रान्ते तल्लयं प्राप्तः स राजा राजसत्तमः॥८॥

अध्याय–६

वसुकृत पुण्डरीकाक्ष स्तोत्र तथा उनका पूर्वजन्म वृत्त

धरणी ने पूछा—हे देव! वह राजा वसु और श्रेष्ठ रैभ्य दोनों ने अङ्गिरा के वचन से सन्देह मुक्त हो जाने पर क्या किया?।।१।।

श्रीवराह भगवान् ने कहा—वह राजा वसु, जो सभी धर्मों को जानने वाले थे, अपने राजकीय दायित्वों का पालन करते हुए अतिशय दक्षिणा वाले बहुत-सारे यज्ञों को सम्पादित किया।।२।।

उस श्रेष्ठ राजेन्द्र ने अपनी अभेद परक भावना से देवेश प्रभु नारायण हरि का स्मरण करते हुए, उनको कर्मकाण्ड सम्पादन से भी संतुष्ट किया।।३।।

तत्पश्चात् कुछ काल बाद उन राजा की बौद्धिक स्तर राज्य कार्य के भोग लिप्सा के द्वन्द्व से मुक्त हो गया।।४।।

फिर अपने ज्येष्ठ पुत्र विवश्वान्, जो सौ भाईयों वाला था, को बुलाकर अपने राज्य सिंहासन पर अभिषिक्त कर दिया और वह स्वयं राजा तपोवन में चला गया।।५।।

तीर्थों में श्रेष्ठ पुष्कर नाम के तीर्थ है, जहाँ पर भगवत्परायण जन पुण्डरीकाक्ष नाम के भगवान् केशव भी पूजा किया करते हैं।।६।।

काश्मीराधिपति राजर्षि वसु ने वहाँ पहुँच कर अतितीव्र तप से अपने शरीर को अवशोषित कर डाला।।७।।

फिर भक्तिभाव से पुण्डरीकाक्षपार नाम की स्तुति का पाठ करते हुए उस बुद्धिशील राजा वसु ने निर्मल नारायण की आराधना करने लगा। इस तरह स्तुति सम्पन्न करते हुए वह श्रेष्ठ राजा वसु ने अपने को नारायण में लीन कर दिया।।८।।

धरण्युवाच

पुण्डरीकाक्षपारन्तु स्तोत्रं देव कथं स्मृतम्। कीदृशं तन्ममाचक्ष्व परमेश्वर तत्त्वतः।।९।।

श्रीवराह उवाच

नमस्ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते मधुसूदन। नमस्ते सर्वलोकेश नमस्ते तिग्मचक्रिणे।।१०।।
विश्वमूर्तिं महाबाहुं वरदं सर्वतेजसम्। नमामि पुण्डरीकाक्षं विद्याविद्यात्मकं विभुम्।।११।।
आदिदेवं महादेवं वेदवेदाङ्गपारगम्। गम्भीरं सर्वदेवानां नमामि मधुसूदनम्।।१२।।
विश्वमूर्ति महामूर्ति विद्यामूर्ति त्रिमूर्तिकम्। कवचं सर्वदेवानां नमस्ये वारिजेक्षणम् ।।१३।।
सहस्त्रशीर्षिणं देवं सहस्त्राक्षं महाभुजम्। जगत्संव्याप्य तिष्ठन्तं नमस्ये परमेश्वरम्।।१४।।
शरण्यं शरणं देवं विष्णुं जिष्णुं सनातनम्। नीलमेघप्रतीकाशं नमस्ये चक्रपाणिनम्।।१५।।
शुद्धं सर्वगतं नित्यं व्योमरूपं सनातनम्। भावाभावविनिर्मुक्तं नमस्ये सर्वगं हरिम्।।१६।।

नान्यत् किञ्चित् प्रपश्यामि व्यतिरिक्तं त्वयाऽच्युत।
त्वन्मयं च प्रपश्यामि सर्वमेतच्चराचरम्।।१७।।

एवं तु वदतस्तस्य मूर्त्तिमान् पुरुषः किल। निर्गत्य देहान्नीलाभो घनचण्डो भयङ्करः।।१८।।
रक्ताक्षो ह्रस्वकायस्तु दग्धस्थूणासमप्रभः। उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा किं करोमि नराधिप।।१९।।

धरणी ने पूछा कि हे देव परमेश्वर! आप कृपापूर्वक मुझे यह बतलायें कि यह पुण्डरीकाक्ष स्तोत्र कैसे गाया गया और वह किस प्रकार का है।।९।।

श्री भगवान् वराह ने कहा—पुण्डरीकाक्ष को प्रणाम है, मधुसूदन को नमस्कार है। सर्वलोकेश को नमस्कार हैं। तीक्ष्णचक्रधारी देवता को नमस्कार है।।१०।।

मैं विश्वमूर्ति महाबाहु, वरदाता, सर्वतेजस्वरूप, विद्या और अविद्या स्वरूप, सर्वव्यापक पुण्डरीकाक्ष को प्रणाम करता हूँ।।११।।

मैं आदिदेव, महादेव, वेदवेदाङ्गपारग, सभी देवों में गम्भीर मधुसूदन को नमस्कार करता हूँ।।१२।।

मैं विश्वमूर्त्ति, महामूर्त्ति, विद्यामूर्त्ति, त्रिमूर्त्ति (ब्रह्मा-विष्णु-शिवस्वरूपात्मक), सभी देवताओं के कवच स्वरूप, कमलनेत्र को प्रणाम करता हूँ।।१३।।

मैं हजारों शिरों वाले देव, सहस्त्राक्ष, महाभुजाओं वाले, सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त होकर स्थित रहनेवाले परमेश्वर को प्रणाम करता है।।१४।।

मैं शरणदाता, शरण, देव, विष्णु, जिष्णु, सनातन, नीलमेघ के समान आभा वाले, चक्रपाणि को नमस्कार करता हूँ।।१५।।

मैं शुद्ध, सर्वव्यापी, आकाश स्वरूप, सदा रहने वाले, सनातन, भाव और अभाव मुक्त, सब जगह पहुँच रखने वाले सर्वग, हरि को नमस्कार करता हूँ।।१५।।

हे अच्युत! मैं आपसे पृथक् और कुछ भी नहीं देखता। मुझे यह अनुमान हो रहा है कि यह सम्पूर्ण चराचर सृष्टि केवल आप से ही व्याप्त है।।१७।।

इस प्रकार स्तोत्र पाठ करने में तत्पर उस राजा के शरीर से नीलवर्ण, प्रचण्ड, भयङ्कर, रक्तनेत्र एवं जली

राजोवाच

कोऽसि किं कार्यमिह ते कस्मादागतवानसि। एतन्मे कथय व्याध एतदिच्छामि वेदितुम्॥२०॥

व्याध उवाच

पूर्वं कलियुगे राजन् राजा त्वं दक्षिणापथे। पूर्णधर्मोद्भवः श्रीमान् जनस्थाने विचक्षणः॥२१॥
स कदाचिद् भवान् वीर तुरगैः परिवारितः। अरण्यमागतो हन्तुं श्वापदानि विशेषतः॥२२॥
तत्र त्वयाऽन्यकामेन मृगवेषधरो मुनिः। दण्डयुग्मेन दूरे तु पातितो धरणीतले॥२३॥
सद्यो मृतश्च विप्रेन्द्रस्त्वं च राजन् मुदा युतः। हरिणोऽयं हत इति यावत् पश्यसि पार्थिव।
तावन्मृगवपुर्विप्रो मृतः प्रस्रवणे गिरौ॥२४॥
तं दृष्ट्वा त्वं महाराज क्षुभितेन्द्रियमानसः। गृहं गतस्ततोऽन्यस्य कस्यचित् कथितं त्वया॥२५॥
ततः कतिपयाहस्य त्वया रात्रौ नरेश्वर। ब्रह्महत्याभयाद्भीतचित्तेनैतद् विचिन्तितम्।
कृत्यं करोमि शान्त्यर्थं मुच्यते येन पातकात्॥२६॥
ततस्त्वया महाराज सकृन्नारायणं प्रभुम्। सञ्चिन्त्य द्वादशी शुद्धा त्वया राजन्नुपोषिता॥२७॥
नारायणो मे सुप्रीत इति प्रोक्त्वा शुभेऽहनि। गौर्दत्ता विधिना सद्यो मृतोऽस्युदरशूलतः॥२८॥

लकड़ी की तरह कृष्ण वर्ण वाला लघुकाय पुरुष निकला और हाथ जोड़कर बोला—'हे नराधिप! मैं क्या करूँ'।।१८-१९।।

राजा ने कहा—तुम कौन हो? यहाँ तुम्हारा क्या काम है? कहाँ से आये हो? व्याध मुझे तुम ये सब बतलाओ, मैं ये सब जानना चाहता हूँ।।२०।।

व्याध ने कहा—हे राजन्! पूर्व के कलियुग में आप दक्षिणापथ के जनस्थान में पूर्णधार्मिक कुल में उत्पन्न, विचक्षण, ऐश्वर्य सम्पन्न राजा थे।।२१।।

एक बार आप बलशाल घोड़ों से घिरे हुए, विशेष रूप से जङ्गली पशुओं को मारने हेतु जंगल में गये।।२२।।

वहाँ आपने किसी अन्य अभिलाषा से विचरण कर रहे मृग वेषधारी मुनि को अपने से मात्र दो दण्ड की दूरी से धरणीतल पर मार गिराया।।२३।।

हे पार्थिव! वह श्रेष्ठ विप्र तत्क्षण मृत्यु मुख में समा गया और आनन्द से युक्त आपने 'यह हरिण मारा गया' समझते हुए उसको देखा, तब वह मृग वेषधारी विप्र प्रस्रवण गिरि पर मर गया।।२४।।

हे महाराज! उस अवस्थागत मुनि को देखकर आपकी इन्द्रियाँ और मन व्यथित हो गया। अपने घर में जाने पर किसी अन्य से यह कथा सूनाई।।२५।।

हे श्रेष्ठ राजन! थोड़े दिनों के बाद रात्रि के समय ब्रह्महत्या के भयग्रस्त चित्त से आपने यह सोचा कि मैं अपनी इस ब्रह्महत्या की शान्ति हेतु कुछ ऐसा करूँ, जिससे उस पाप से मुझे छुटकारा मिल जाय।।२६।

हे राजन्! फिर एक समय आपने नारायण प्रभु का ध्यान करते हुए शुद्धा द्वादशी का उपवास रूप व्रत धारण किया।।२७।।

नारायण मेरे ऊपर प्रसन्न हों, इस प्रकार से कहते हुए शुभ दिन में 'गोदान' भी कराया, इससे आप तत्क्षण ही उदरशूल से मृत्यु को प्राप्त हो गये।।२८।।

अभुक्तो द्वादशीधर्मे यत् तत्रापि च कारणम्।
कथयामि भवत्पत्नी नाम्ना नारायणी शुभा॥२९॥

सा कण्ठगेन प्राणेन व्याहृता तेन ते गतिः। कल्पमेकं महाराज जातो विष्णुपुरे तव॥३०॥

अहं च तव देहस्थः सर्वं जानामि चाक्षयम्। ब्रह्मग्रहो महाघोरः पीडयामीति मे मतिः॥३१॥

तावद्विष्णोस्तु पुरुषैः किङ्करैर्मुसलैरहम्। प्रहृतः सङ्क्षयं यातस्ततस्ते रोमकूपतः।
स्वर्गस्थस्यापि राजेन्द्र स्थितोऽहं स्वेन तेजसा॥३२॥

ततोऽहःकल्पनिर्वृत्ते रात्रिकल्पे च सत्तम। इदानीमादिसृष्टौ तु कृते नृपतिसत्तम॥३३॥

सम्भूतस्त्वं महाराज राज्ञः सुमनसो गृहे। काश्मीरदेशाधिपतेरहं चाङ्गरुहैस्तव॥३४॥

यज्ञैरिष्टं त्वयानेकैर्बहुभिश्चाप्तदक्षिणैः। न चाहं तैरपहतो विष्णुस्मरणवर्जितैः॥३५॥

इदानीं यत् त्वया स्तोत्रं पुण्डरीकाक्षपारकम्। पठितं तत्प्रभावेन विहायाङ्गरुहाण्यहम्।
एकीभूतः पुनर्जातो व्याधरूपो नृपोत्तम॥३६॥

अहं भगवतः स्तोत्रं श्रुत्वा प्राक्पापमूर्त्तिना। मुक्तोऽस्मि धर्मबुद्धिर्मे वर्त्तते साम्प्रतं विभो॥३७॥

एतच्छ्रुत्वा वचो राजा परं विस्मयमागतः। वरेण छन्दयामास तं व्याधं राजसत्तमः॥३८॥

और भी अभुक्त द्वादशी जन्य धर्म के निमित्त उपवास करना भी एक कारण था, उसे मैं कह रहा हूँ। आपकी नारायणी नाम की शुभ गुणों वाली पत्नि थी।।२९।।

हे महाराज! प्राणों के कण्ठगत होने पर आपने उसे पुकारा। इसी से आपको सद्गति विष्णुपुर में कल्प पर्यन्त के लिए प्राप्त हो गई।।३०।।

आपके शरीर स्थित मैं आपकी सभी बातों को पूर्णरूपेण जानता था। मैं तो महाघोर ब्रह्मग्रह हूँ। मेरा यह विचार था कि मैं आपको पीड़ित करूँ।।३१।।

लेकिन उस समय विष्णु सेवकों द्वारा मुसल से मारे जाने पर मेरा क्षय हो गया। हे राजन्! फिर स्वर्ग में रहने पर भी आपके रोमछिद्रों में प्रविष्ट होकर अपने तेज से स्थित रहा।।३२।।

हे सत्तम! इन सब के बावजूद आदि सृष्टि के समय ब्रह्मा के दिनकल्प और रात्रिकल्प के समापन पर इस कृतयुग में आप काश्मीर के राजा 'सुमना' के गृह में पैदा हुए। मैं भी आपके रोमों के साथ उत्पन्न हो गया।।३३-३४।।

वैसे आपने अधिकतम दक्षिणा वाले कई यज्ञों को सम्पन्न किया, परन्तु विष्णु के स्मरण से रहित उन यज्ञों से मैं नष्ट नहीं हो सका।।३५।।

हे नृपोत्तम! इस समय आपने जिस 'पुण्डरीकाक्षपार' नाम के स्तोत्र का पाठ किया है, उसके प्रभाव से रोमों को त्याग कर मैं फिर से एक स्वरूप व्याध के रूप में प्रकट हुआ हूँ।।३६।।

हे विप्र! भगवान् का स्तोत्र सुनकर मैं पूर्व की पापमूर्त्ति से विलग हो गया हूँ। अब तो मेरी धर्मबुद्धि हो गयी है।।३७।।

इस प्रकार व्याध के वचन सुनकर राजा को अत्यधिक आश्चर्य हुआ। उस श्रेष्ठ राजा ने उस व्याध को वर प्रदान कर प्रसन्न किया।।३८।।

राजोवाच

स्मारितोऽस्मि यथा व्याध त्वया जन्मान्तरं गतम्।
तथा त्वं मत्प्रसादेन धर्मव्याधो भविष्यति॥३९॥

यश्चैतत् पुण्डरीकाक्षपारगं श्रृणुयात् परम्। तस्य पुष्करयात्रायां विधिस्नानफलं भवेत्॥४०॥

श्री वराह उवाच

एवमुक्त्वा ततो राजा विमानवरमास्थितः। परेण तेजसा योगमवापाशेषधारिणि॥४१॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे षष्ठोऽध्यायः॥६॥

राजा ने कहा—जहाँ से भी तुमने हमें बीते पूर्व जन्मों की याद दिलाया है। अतः तुम मेरे अनुग्रह से धर्म व्याध ही होओगे।।३९।।

वैसे जो भी 'पुण्डरीकाक्षपार' नाम के इस श्रेष्ठ स्तोत्र को सुन लेगा, उसे पुष्करतीर्थ में विधिविधान से किये स्नान जैसा शुभ फल प्राप्त होगा।।४०।।

श्री भगवान् वराह ने कहा—हे शेष धारिणि! इस प्रकार से कहते हुए श्रेष्ठ राजा वसु दिव्य विमान पर स्थित हो परमतेज में समा गया।।४१।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में वसुकृत् पुण्डरीकाक्ष और उसका पूर्वजन्मकृत नामक छठवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥६॥

❖❖❖

सप्तमोऽध्यायः

अथ गयायां पिण्डदानमहत्त्वकथने रैभ्यकृद् गदाधर स्तोत्रम्

धरण्युवाच

रैभ्योऽसौ मुनिशार्दूलः श्रुत्वा सिद्धं वसुं तदा। स्वयं किमकरोद् देव संशयो मे महानयम्॥१॥

श्रीवराह उवाच

स रैभ्यो मुनिशार्दूलः श्रुत्वा सिद्धं वसुं तदा। आजगाम गयां पुण्यां पितृतीर्थे तपोधनः।
तत्र गत्वा पितॄन् भक्त्या पिण्डदानेन तर्पयत्॥२॥

ततो वै सुमहत् तीव्रं तपः परमदुश्चरम्। चरतस्तस्य तत्तीव्रं तपो रैभ्यस्य धीमतः।
आजगाम महायोगी विमानस्थोऽतिदीप्तिमान्॥३॥

त्रसरेणुसमे शुद्धे विमाने सूर्यसन्निभे। परमाणुप्रमाणेन पुरुषस्तत्र दीप्तिमान्॥४॥

सोऽब्रवीद् रैभ्य किं कार्यं तपश्चरसि सुव्रत। एवमुक्त्वा दिवो भूमिं मापयामास वै पुमान्॥५॥

तत्रापि रथपञ्चाभं विमानं सूर्यसन्निभम्। युगपद् विष्णुभुवनं व्याप्नुवन्तं ददर्श सः॥६॥

ततः स विस्मयाविष्टो रैभ्यः प्रणतिपूर्वकम्।
पप्रच्छ तं महायोगिन् को भवान् प्रब्रवीतु मे॥७॥

अध्याय–७

गया में पिण्डदान माहात्म्य एवं रैभ्यकृत् गदाधर स्तोत्र

धरणी ने पूछा—हे देव! मैं महासंशय में हूँ कि उस मुनि श्रेष्ठ रैभ्य ने उस समय 'वसु को सिद्ध हुआ' सुन लेने के पश्चात् स्वयं क्या कार्य किया?।।१।।

श्रीवराह भगवान् ने कहा—उस काल में 'वसु सिद्ध हुआ' सुनकर मुनि श्रेष्ठ तपस्वी रैभ्य शुचि पितृतीर्थ गया में जाकर भक्ति भाव से पिण्डदान से अपने पितरों का तर्पण किया।।२।।

फिर वह अतितीव्र परमतप करने में जुट कया। इस तरह उस बुद्धिमान् रैभ्य द्वारा तीव्रतप सम्पादित किये जाने पर अचानक विमान पर स्थित अत्यन्त दीप्तियुक्त महायोगी उपस्थित हुआ।।३।।

त्रसरेणु और सूर्य के समान तेज युक्त शुद्ध विमान पर परमाणु तुल्य दीप्तिमान् पुरुष बैठा था।।४।।

उसने कहा—हे सुव्रत रैभ्य! तुम किस प्रयोजन से तप कर रहे हो? इस प्रकार से कहते हुए वह दिव्य पुरुष आकाश और पृथ्वी में व्याप्त-सा हो गया।।५।।

इसके बावजूद भी उस रैभ्य ने पाँच रथों के समान प्रकाश सम्पन्न सूर्य के समान विमान को एक साथ सम्पूर्ण भुवन को व्याप्त करते देखा।।६।।

तत्पश्चात् आश्चर्ययुक्त उस रैभ्य ने उन्हें प्रणाम कर उन महायोगी से पूछा 'आप कौन हैं?' यह हमें अवश्य बतलायें।।७।।

पुरुष उवाच

अहं रुद्रादवरजो ब्रह्मणो मानसः सुतः। नाम्ना सनत्कुमारेति जनलोके वसाम्यहम्॥८॥
भवतः पार्श्वमायातः प्रणयेन तपोधन। धन्योऽसि सर्वथा वत्स ब्रह्मणः कुलवधर्नः॥९॥

रैभ्य उवाच

नमोऽस्तु ते योगिवर प्रसीद दयां मह्यं कुरुषे विश्वरूप।
किमत्र कृत्यं वद योगिसिंह कथं हि धन्योऽहमुक्तस्त्वया च॥१०॥

सनत्कुमार उवाच

धन्यस्त्वमेव द्विजवर्यमुख्य यद् वेदवादाभिरतः पितॄंश्च।
प्रीणासि मन्त्रव्रतजप्यहोमैर्गयां समासाद्य तथाऽन्नपिण्डैः॥११॥
शृणुष्व चान्यं नृपतिर्बभूव विशालनामा स पुरीं विशालाम्।
उवास धन्यो धृतिमानपुत्रः स्वयं विशालाधिपतिर्द्विजाग्र्यान्।
पप्रच्छ पुत्रार्थममित्रसाहस्ते ब्राह्मणाश्चोचुरदीनसत्त्वाः॥१२॥
राजन् पितॄंस्तर्पय पुत्रहेतोर्गत्वा गयामन्नदानैरनेकैः।
ध्रुवं सुतस्ते भविता नृपेश सुसंप्रदाता सकलक्षितीशः॥१३॥
इतीरितो ब्राह्मणैः स प्रहृष्टो राजा विशलाधिपतिः प्रयत्नात्।
आगत्य तेन प्रवरेण तीर्थे मघासु भक्त्याऽथ कृतं पितॄणाम्॥१४॥

उस पुरुष ने कहा—मैं रुद्र के पश्चात् पैदा हुआ ब्रह्मा का मानस पुत्र सनत्कुमार हूँ। वैसे मैं जनलोक में निवास कर रहा हूँ।।८।।

हे तपोधन! स्नेहवश मैं आपके पास उपस्थित हुआ हूँ। हे वत्स! तुम सभी प्रकार धन्य एवं ब्रह्मवंश की अभिवृद्धि करने वाले हो।।९।।

रैभ्य ने कहा—हे योगिश्रेष्ठ! आपको मेरा प्रणाम है। हे विश्वरूप! आप प्रसन्न हों और मेरे ऊपर दया करें। हे योगिसिंह! मुझे आप यह बतला सकते हैं कि इस समय मेरा क्या कर्त्तव्य है तथा आपने मुझे 'धन्य' क्यों कहा?।।१०।।

सनत्कुमार ने कहा—हे द्विजश्रेष्ठों में श्रेष्ठ द्विज रैभ्य! तुम धन्य इस प्रकार हो कि वेदों का स्वाध्याय करते हुए भी तुम मन्त्र-जप, हवन और गया में रहकर अन्न पिण्डों से पितरों को तृप्त कर रहे हो।।११।।

इस प्रसङ्ग में तुम्हें एक अन्य कथा सुनाता हूँ। किसी समय विशाल नाम का एक राजा था। वह विशालापुरी में निवास करने वाला था। वह पुत्ररहित था, पर धैर्य्यवान् एवं धन्य उस विशालाधिपति ने श्रेष्ठ ब्राह्मणों से अपने पुत्र होने हेतु पूछा। उस समय दीनता रहित चित्त वाले उन ब्राह्मणों ने कहा—।।१२।।

हे राजन्! आपको चाहिए कि गया में जाकर पुष्कल अन्न के दान द्वारा पितरों को तृप्त करें, इससे आपको पुत्र प्राप्ति होगी। हे श्रेष्ठ राजन्! तुम्हें निश्चय ही पुत्र की प्राप्ति होगी। वह सम्पूर्ण संसार का स्वामी तथा महाधनी होगा।।१३।।

ब्राह्मणों के इस प्रकार कहे जाने पर विशालाधिपति उस राजा ने प्रसन्न होकर उस श्रेष्ठ तीर्थ में जाकर मघा नक्षत्र में भक्तिपूर्वक पितरों का तर्पण किया।।१४।।

पिण्डप्रदानं विधिना प्रयत्नाददद्वियत्युत्तममूर्त्तयस्तान्।
पश्यन् स पुंसः सितपीतकृष्णानुवाच राजा किमिदं भवद्भिः।
उपेक्ष्यते शंसत सर्वमेव कौतूहलं मे मनसि प्रवृत्तम्॥१५॥

सित उवाच

अहं सितस्ते जनकोऽस्मि तात नाम्ना च वृत्तेन च कर्मणा च।
अयं च मे जनको रक्तवर्णो नृशंसकृद् ब्रह्महा पापकारी॥१६॥
अधीश्वरो नाम परः पिताऽस्य कृष्णो वृत्त्या कर्मणा चापि कृष्णः।
एतेन कृष्णेन हताः पुरा वै जन्मन्यनेके ऋषयः पुराणाः॥१७॥
एतौ मृतौ द्वावपि पुत्र रौद्रमवीचिसंज्ञं नरकं प्रपन्नौ।
अधीश्वरो मे जनकः परोऽस्य कृष्णः पिता द्वावपि दीर्घकालम्।
अहं च शुद्धेन निजेन कर्मणा शक्रासनं प्रापितो दुर्लभं ततः॥१८॥
त्वया पुनर्मन्त्रविदा गयायां पिण्डप्रदानेन बलादिमौ च।
मेलापितौ तीर्थपिण्डप्रदानप्रभावतो यौ नरकश्रितावपि॥१९॥
पितॄन् पितामहांस्तत्र तथैव प्रपितामहान्। प्रीणयामीति तत्तोयं त्वया दत्तमरिन्दम॥२०॥
तेनास्मद्युगपद् योगो जातो वाक्येन सत्तम। तीर्थप्रभावाद् गच्छामि पितृलोकं न संशयः॥२१॥

इस प्रकार वह राजा सप्रयत्न विधि के अनुसार पितरों को पिण्डदान कर रहा था, उसी क्षण आकाश में तीन उत्तम मूर्त्तियाँ दीख पड़ीं। राजा द्वारा श्वेत, पीत, कृष्ण आदि वर्ण के तीन पुरुषों को देखकर कहा—आप लोग यहाँ आकर क्या देख रहे हैं। मुझसे इन बातों को बतलाईए। इसके लिए मेरे चित्त में अति कौतूहल है।।१५।।

सित ने कहा—मैं वृत्त या सदाचारी, कर्म एवं अपने नाम से भी स्वच्छ तुम्हारा 'सित' नाम का पिता हूँ और यह रक्त वर्ण वाला पुरुष मेरा पिता है। यह नृशंस, ब्रह्मघाती, और महापापी है।।१६।।

इनका नाम अधीश्वर जानो। इसके व्यतिरिक्त जो अन्य पुरुष काले वर्ण का है, जो वृत्त एवं कर्म दोनों से कृष्ण ही हैं। इसने पूर्व जन्म में अनेक प्राचीन ऋषियों का वध किया है।।१७।।

हे पुत्र! मरने पर अधीश्वर नामक मेरे पिता और दूसरे ये कृष्ण नामक इनके पिता दोनों ही बहुत दिनों तक भयङ्कर अवीचि नाम के नरक में थे, परन्तु अपने शुद्ध कर्म से मुझे दुर्लभ शक्रासन भी प्राप्त हुआ।।१८।।

फिर सित ने कहा—हे पुत्र! मन्त्रज्ञाता तुमने जो आकर गया में पिण्डदान किया। तीर्थ में उस पिण्डदान के प्रभाव से इन नरकवासयों को भी मुझसे मिला दिया।।१९।।

हे अरिमर्दन राजन! मैं पिता, पितामह, प्रपितामह को तृप्त करूँ। इस प्रकार कहकर तुमने उस जल का दान किया था।।२०।।

हे श्रेष्ठ पुरुष! उस वाक्य से हम सबों का एक साथ समागम हो गया। सन्देह मुक्त होकर तीर्थ के प्रभाव से अब हम सभी पितृलोक में निवास करेंगे।।२१।।

अत्र पिण्डप्रदानेन एतौ तव पितामहौ। दुर्गतावपि संसिद्धौ पापकृद्विकृतिं गतौ॥२२॥
तीर्थप्रभाव एषोऽस्मिन् ब्रह्मघ्नस्यापि तत्सुतः। पितुः पिण्डप्रदानेन कुर्यादुद्धरणं पुनः॥२३॥
एतस्मात् कारणात् पुत्र अहमेतौ विगृह्य वै। आगतोऽस्मि भवन्तं वै द्रष्टुं यास्यामि साम्प्रतम्।
एतस्मत् कारणाद् रैभ्य भवान् धन्यो मयोच्यते॥२४॥
सकृद् गयाभिगमनं सकृत्पिण्डप्रदापनम्। दुर्लभं त्वं पुनर्नित्यमस्मिन्नेव व्यवस्थितः॥२५॥
किमनु प्रोच्यते रैभ्य तव पुण्यमिदं प्रभो। येन साक्षाद् गदापाणिर्दृष्टो नारायणः स्वयम्॥२६॥
ततो गदाधरः साक्षादस्मिंस्तीर्थे व्यवस्थितः। अतोऽतिविख्याततमं तीर्थमेतद् द्विजोत्तम॥२७॥

श्रीवराह उवाच

एवमुक्त्वा महायोगी तत्रैवान्तरधीयत। रैभ्योऽपि च गदापाणेर्हरेः स्तोत्रमथाकरोत्॥२८॥

रैभ्य उवाच

गदाधरं विबुधजनैरभिष्टुतं धृतक्षमं क्षुधितजनार्तिनाशनम्।
शिवं विशालासुरसैन्यमर्दनं नमाम्यहं हतसकलाशुभं स्मृतौ॥२९॥
पुराणपूर्वं पुरुषं पुरुष्टुतं पुरातनं विमलमलं नृणां गतिम्।
त्रिविक्रमं धृतधरणिं बलेर्हं गदाधरं रहसि नमामि केशवम्॥३०॥

इस तीर्थस्नान में पिण्डदान तुम्हारे द्वारा किये जाने से पापकर्म करने वाले तुम्हारे विकृति व दुर्मति को प्राप्त हुए इन दोनों पितामहों को भी सिद्धि प्राप्त हो गया है।।२२।।

इस तीर्थ का यह प्रभाव ही है कि ब्रह्मघाती पिता का पुत्र भी पिण्डदान से अपने पिता का उद्धार कर सकता है।।२३।।

हे पुत्र! इससे ही मैं इन दोनों को लेकर तुम्हें देखने हेतु आया हूँ। अतः अब मैं जा रहा हूँ। हे रैभ्य! इसीलिए मैंने आपको 'धन्य' कहा है।।२४।।

गया में एक बार जाना और वहाँ एक बार पिण्डदान करना दुर्लभ है। फिर तुम तो यहीं पर सम्यक् रूप से निवास कर रहे हो।।२५।।

हे प्रभु रैभ्य! पुनः पुनः क्या कहा जाय, तुम्हारा पुण्य है, जिससे तुमने स्वयं गदापाणि नारायण का साक्षात् दर्शन किया।।२६।।

जहाँ से उक्त तीर्थ में प्रत्यक्ष गदाधर उपस्थित रहते हैं। अतः हे द्विजोत्तम! यह तीर्थ अत्यन्त विख्यात है।।२७।।

श्री वराह भगवान् ने कहा—इस प्रकार से कहने के बाद वह महायोगी वहीं पर अन्तर्धान हो गये। फिर रैभ्य ने भी गदापाणि श्रीहरि की स्तुति की।।२८।।

रैभ्य ने कहा—देवताओं से स्तुत, क्षमावान्, क्षुधापीड़ित जन दुःखनाशक, विशाल असुर सेना का मर्दन करने वाले, स्मरणात् सर्वाशुभनाशक, कल्याण करने वाले, गदाधर को प्रणाम है।।२९।।

पुराण पूर्व पुरुष, अत्यन्त संस्तुत, पुरातन, विमल, समर्थ, मनुष्यों को गति प्रदाता, त्रिविक्रम, पृथ्वीधर और बलि के नियामक गदाधर, केशव को एकाग्र मन से मैं प्रणाम करता हूँ।।३०।।

सुशुद्धभावं विभवैरुपावृतं श्रियावृतं विगतमलं विचक्षणम्।
क्षितीश्वरैरपगतकिल्बिषैः स्तुतं गदाधरं प्रणमति यः सुखं वसेत्॥३१॥
सुरासुरैरर्च्चितपादपङ्कजं केयूरहाराङ्गदमौलिधारिणम्।
अब्धौ शयानं च रथाङ्गपाणिनं गदाधरं प्रणमति यः सुखं वसेत्॥३२॥
सितं कृते त्रेतायुगेऽरुणं विभुं तथा तृतीये पीतवर्णमच्युतम्।
कलौ घनालिप्रतिमं महेश्वरं गदाधरं प्रणमति यः सुखं वसेत्॥३३॥
बीजोद्भवो यः सृजते चतुर्मुखस्तथैव नारायणरूपतो जगत्।
प्रपालयेत् रुद्रवपुस्तथान्तकृद् गदाधरो जयतु षडर्धमूर्तिमान्॥३४॥
सत्त्वं रजश्चैव तमो गुणास्त्रयस्त्वेतेषु नान्यस्य समुद्भवः किल।
स चैक एव त्रिविधो गदाधरो दधातु धैर्यं मम धर्ममोक्षयोः॥३५॥
संसारतोयार्णवदुःखतन्तुभिर्वियोगनक्रक्रमणैः सुभीषणैः।
मज्जन्तमुच्चैः सुतरां महाप्लवे गदाधरो मामु दधातु पोतवत्॥३६॥
स्वयं त्रिमूर्तिः स्वमिवात्मनात्मनि स्वशक्तितश्चाण्डमिदं ससर्ज्ज ह।
तस्मिञ्जलोत्थासनमार्यतेजसं ससर्ज्ज यस्तं प्रणतोऽस्मि भूधरम्॥३७॥

सुन्दर और शुद्धभाव सम्पन्न, उच्चतम विभव से सम्पन्न, श्री सम्पन्न, निर्मल, विलक्षण बुद्धि सम्पन्न, पापरहित राजाओं से स्तुत गदाधर को जो मनुष्य प्रणाम करता है, वह सुखपूर्ण जीवन पाता है।।३१।।

सुर और असुर के द्वारा पूजित पादकमल वाले, केयूर-हार-अङ्गद, मुकुट आदि धारण करने वाले, क्षीरसागर में शयन करने वाले, हाथ में चक्र धारण करने वाले गदाधारी को प्रणाम करने वाले सदा सुखपूर्ण जीवन पाता है।।३२।।

कृतयुग में श्वेतवर्ण वाले, त्रेतायुग में रक्तवर्ण वाले, द्वापरयुग में पीतवर्ण वाले और कलियुग में मेघ और भ्रमर के समान अर्थात् कृष्णवर्ण वाले अच्युत, महेश्वर, विभु, गदाधर नाम वाले को जो प्रणाम करता है, वह सुखपूर्ण जीवन पाता है।।३३।।

जो अपने बीज से उत्पन्न चतुर्मुख स्वरूप द्वारा सृष्टि करते हैं, इसी तरह जो नारायण स्वरूप से संसार का पालन करते हैं तथा रुद्र स्वरूप से संसार का संहार करते हैं, ऐसे तीन स्वरूप वाले गदाधर की जय हो।।३४।।

सत्त्व, रज तथा तम के भेद से तीन गुण हैं और इन गुणों पर आपके अतिरिक्त किसी अन्य का कोई प्रभाव नहीं है; क्योंकि एकमात्र स्वरूप से गदाधर इन तीन गुणों के कारण तीन स्वरूप वाले कहे जाते हैं। ऐसे गदाधर मुझे धर्म और मोक्ष के प्रसङ्ग में धैर्य्य प्रदान करें।।३६।।

स्वयं अपने समान अपने में अपने द्वारा तीन मूर्त्तियों को धारण कर अपनी शक्ति से इस विश्व ब्रह्माण्ड का सृजन कर फिर उसमें अत्यन्त तेजस्वी कमलासनस्थ ब्रह्मा की सृष्टि करने वाले और पृथ्वी को धारण करने वाले परमेश्वर को प्रणाम करता हूँ।।३७।।

मत्स्यादिनामानि जगत्सु सुरादिसंरक्षणतो वृषाकपिः।
मखस्वरूपेण स समन्ततो विभुर्गदाधरो मे विदधातु सद्गतिम्॥३८॥

श्रीवराह उवाच

एवं स्तुतस्तदा विष्णुर्भक्त्या रैभ्येण धीमता। प्रादुर्बभूव सहसा पीतवासा जनार्दनः॥३९॥
शङ्खचक्रगदापाणिर्गरुडस्थो वियद्गतः। उवाच मेघगम्भीरधीरवाक् पुरुषोत्तमः॥४०॥
तुष्टोऽस्मि रैभ्य भक्त्या ते स्तुत्या च द्विजसत्तम। तीर्थस्नानेन च विभो ब्रूहि यत्तेऽभिवाञ्छितम्॥४१॥

रैभ्य उवाच

गतिं मे देहि देवेश यत्र ते सनकादयः। वसेयं तत्र येनाहं त्वत्प्रसादाद् गदाधर॥४२॥

देव उवाच

एवमस्त्विति ते ब्रह्मन्नित्युक्त्वाऽन्तरधीयत। भगवानपि रैभ्यस्तु दिव्यज्ञानसमन्वितः॥४३॥
क्षणाद् बभूव देवेन परितुष्टेन चक्रिणा। जगाम यत्र ते सिद्धाः सनकाद्या महर्षयः॥४४॥
एतच्च रैभ्यनिर्दिष्टं स्तोत्रं विष्णोर्गदाभृतः। यः पठेत् स गयां गत्वा पिण्डदानाद् विशिष्यते॥४५॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे सप्तमोऽध्यायः॥७॥

संसार में जहाँ मत्स्यादि अवतार केवल देवताओं की रक्षा करने हेतु हुए हैं, जो मुख्यतया हर जगह व्याप्त वृषाकपि (विष्णु) हैं, ऐसे गदाधर हमें सद्गति प्रदान करें।।३८।।

श्री भगवान् वराह ने कहा—इस प्रकार बुद्धिमान् रैभ्य के भक्तिभाव से स्तुति करने पर अचानक पीताम्बर धारण करने वाले जनार्दन स्वयं ही वहाँ प्रकट हो गए।।३९।।

उन पुरुषोत्तम भगवान् ने हाथों में शङ्ख, चक्र, गदा आदि धारण किये हुए गरुड़ पर स्थित होकर आकाश से मेघतुल्य गम्भीर और धीर वाणी में बोले—।।४०।।

हे द्विजसत्तम! विभो रैभ्य! तुम्हारे द्वारा की गई भक्ति स्तुति और तुम्हारे तीर्थ सेवन से मैं सन्तुष्ट हूँ। अतः तुम्हारी जो भी इच्छा हो, उसे मुझसे कहो।।४१।।

रैभ्य ने कहा—हे देवेश गदाधर! आप मुझे भी वह गतिप्रदान करें, जिससे मैं आपकी कृपा प्रसाद से वहाँ निवास कर सकूँ, जहाँ वे सनकादि ऋषि निवास करते हैं।।४२।।

देव ने कहा—हे ब्रह्मन्! जैसा तुम कह रहे हो, वैसा ही होगा। इस तरह से कहते हुए भगवान् देव अन्तर्धान हो गये तथा रैभ्य को क्षण भर के अन्दर दिव्यज्ञान का अनुभव होने लगा।।४३।।

इस प्रकार रैभ्य चक्रधर देव की कृपा प्रसाद से वहाँ चला गया, जहाँ सनकादि ऋषिगण निवास करते हैं।।४४।।

रैभ्य प्रोक्त इस गदाधर स्तोत्र का जो जन पाठ करेंगे, उसे गया जाकर पिण्डदान करने का अधिकतर फल की प्राप्ति हो सकेगी।।४५।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में रैभ्यंचरित नामक सातवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसा-मण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥७॥

❖❖❖

अष्टमोऽध्यायः

अथ धर्मव्याधचरिते सद्कृद्विष्णुस्तुतिः

श्रीवराह उवाच

यौऽसौ वसोः शरीरे तु व्याधो भूत्वा नृपस्य ह। स स्ववृत्त्या स्थितः कालं चतुर्वर्षसहस्रकम्॥१॥
एकैकं स्वकुटुम्बार्थे हत्वा वनचरं मृगम्। भृत्यातिथिहुताशानां प्रीणनं कुरुते सदा॥२॥
मिथिलायां वरारोहे सदा पर्वणि पर्वणि। पितॄणां कुरुते श्राद्धं स्वाचारेण विचक्षणः॥३॥
अग्निं परिचरन् नित्यं वदन् सत्यं सुभाषितम्। प्राणयात्रानुसक्तस्तु योऽसौ जीवं न पातयेत्॥४॥
एवं तु वसतस्तस्य धर्मबुद्धिर्महातपाः। पुत्रस्त्वर्जुनको नाम बभूव मुनिवद्वशी॥५॥
तस्य कालेन महता चारित्रेण च धीमतः। बभूवार्ज्जुनकी नाम कन्या च वरवर्णिनी॥६॥

तस्या यौवनकाले तु चिन्तयामास धर्मवित्।
कस्येयं दीयते कन्या को वा योग्यश्च वै पुमान्॥७॥

इति चिन्तयतस्तस्य मतङ्गस्य सुतं प्रति। धर्मव्याधस्य सुव्यक्तं प्रसन्नाख्यं प्रति ब्रुवन्॥८॥

अध्याय–८

धर्मव्याध चरित्र और सद्कृत विष्णु स्तुति

श्री भगवान् वराह ने कहा कि राजा वसु के शरीर में जो व्याध होकर स्थित था, वह चार हजार वर्ष पर्यन्त अपनी वृत्ति में लिप्त रहा।।१।।

वह अपने कुटुम्ब हेतु प्रतिदिन एक-एक जंगली पशु को मारकर हमेशा अपने सेवक, अतिथि एवं अग्नि को तृप्त करता रहा था।।२।।

हे वरारोहे! बुद्धिमान् व्याध मिथिला नगरी में अपने आचार के अनुरुप प्रत्येक अमावस को पितरों का श्राद्ध भी करता था।।३।।

वह व्याध नित्य अग्नि की परिचर्या में तथा सत्य सुन्दर वचन बोलकर अपने जीवन के निर्वहण में व्यस्त रहता था। किन्तु वह व्यर्थ का जीव हत्या नहीं करता था।।४।।

ऐसे ही जीवन निर्वाह करते हुए उसे अर्जुनक नामक धार्मिक बुद्धिमान् महातपस्वी पुत्र प्राप्त हुआ। वह पुत्र मुनियों के समान जितेन्द्रिय था। महा चरित्रवान् बुद्धिमान् उस व्याध को बहुत समय बाद एक सुन्दर अर्जुनकी नाम की कन्या उत्पन्न हुई।।५-६।।

उसकी यौवनावस्था के आ जाने पर उस धर्मज्ञ व्याध ने विचार किया कि यह कन्या किसे दी जाय या इसके योग्य कौन-सा वर है।।७।।

धर्मव्याध के इस तरह विचार करने में अधिकतर लोगों ने स्पष्ट रूप से मतङ्ग के 'प्रसन्न' नाम के पुत्र के लिए प्रस्ताव किया।।८।।

एवं संचिन्त्य मातङ्गः प्रसन्नं प्रति सोद्यतः॥ उवाच तस्य पितरं प्रसन्नायार्ज्जुनीं भवान्।
गृहाण तपतां श्रेष्ठ स्वयं दत्तां महात्मने॥९॥

मतङ्ग उवाच

प्रसन्नोऽयं मम सुतः सर्वशास्त्रविशारदः। गृह्णाम्यर्जुनकीं कन्यां त्वत्सुतां व्याधसत्तम॥१०॥
एवमुक्ते तदा कन्यां धर्मव्याधो महातपाः। मतङ्गपुत्राय ददौ प्रसन्नाय च धीमते॥११॥
धर्मव्याधस्तदा कन्यां दत्त्वा स्वगृहमीयिवान्। सापि श्वशुरयोर्भर्तुः शुश्रूषणपराऽभवत्॥१२॥
अथ कालेन महता सा कन्याऽर्जुनकी शुभा। उक्ता श्वश्र्वा सुता पुत्रि जीवहन्तुस्त्वमीदृशी।
न जानासि तपश्चर्त्तुं भर्त्तुराराधन तथा॥१३॥
साऽपि स्वल्पापराधेन भर्त्सिता तनुमध्यमा। पितुर्वेश्मगता बाला रोदमाना मुहुर्मुहुः॥१४॥
पित्रा पृष्टा किमेतत् ते पुत्रि रोदनकारणम्। एवमुक्ता तदा सा तु कथयामास भामिनी॥१५॥
श्वश्वाऽहमुक्ता तीव्रेण कोपेन महता पितः। जीवहन्तुः सुतेत्युच्चैरसकृद् व्याधजेति च॥१६॥
एतच्छ्रुत्वा स धर्मात्मा धर्मव्याधो रुषाऽन्वितः। मतङ्गस्य गृहं सोऽथ गत्वा जनपदैर्वृतम्॥१७॥

ऐसा विचार बना कर वह धर्म व्याध ने मतङ्ग के पास उसके पुत्र के निमित्त गया और मतङ्ग भी प्रसन्न के व्याह हेतु तत्पर हुए। धर्मव्याध ने प्रसन्न के पिता मतङ्ग से कहा—तपस्वियों में श्रेष्ठ आप महात्मा प्रसन्न के लिए मेरे द्वारा स्वयं दी गई अर्जुनकी को स्वीकार करें।।९।।

मतङ्ग ने कहा—हे श्रेष्ठ व्याध! प्रसन्न नाम का मेरा पुत्र सम्पूर्ण शास्त्रों का ज्ञाता है। मैं आपकी अर्जुनकी नाम की पुत्री ग्रहण करना स्वीकार करता हूँ।।१०।।

मतङ्ग के द्वारा इस तरह से कहे जाने के बाद महातपस्वी धर्म व्याध ने मतङ्गपुत्र बुद्धिमान् प्रसन्न को अपनी कन्या सुपूर्द कर दी।।११।।

फिर धर्म व्याध कन्या देने के बाद अपने घर वापस आ गया। और इस तरह वह कन्या भी अपने सास, ससुर और पति की सेवा करने में विरत हो गई।।१२।।

कुछ समय बाद उस कन्या की सास ने शुभलक्षणा अर्जुनकी नामकी अपनी बहु से कहा—हे पुत्री! तुम जीवघाती की पुत्री हो, अतः तुम तप व सेवा नहीं जानती।।१३।।

इस तरह छोटी गलती के कारण अपनी सास द्वारा इस तरह निन्दित होने पर वह सुन्दरी कन्या बार-बार रोती हुई, अपने पिता के गृह पहुँच गई।।१४।।

पिता के पूछने पर कि हे पुत्री! तुम्हारे रोने का कारण क्या है? इस तरह पिता के पूछने पर उस सुन्दरी कन्या ने कहा—।।१५।।

हे पिता! तीव्र रोष में सास ने मुझे कई बार यह कहा कि तुम जीवघाती व्याध की पुत्री हो।।१६।।

इस तरह अपनी पुत्री के वचन को सुनकर वह धर्म व्याध धर्मात्मा जनपदों से आवृत्त मतङ्ग के गृह पहुँच गया।।१७।।

तस्यागतस्य सम्बन्धी मतङ्गो जयतां वरः। आसनाद्यर्घ्यपाद्येन पूजयित्वेदमब्रवीत्।
किमागमनकृत्यं ते किं करोम्यागतक्रियाम्॥१८॥

व्याध उवाच

भोजनं किञ्चिदिच्छामि भोक्तुं चैतन्यवर्जितम्। कौतूहलेन येनाहमागतो भवतो गृहम्॥१९॥

मतङ्ग उवाच

गोधूमा व्रीहयश्चैव संस्कृता मम वेश्मनि। भुज्यतां धर्मविच्छ्रेष्ठ यथाकामं तपोधन॥२०॥

व्याध उवाच

पश्यामि कीदृशास्ते हि गोधूमा व्रीहयो यवाः। स्वरूपेण च सन्त्येते येन वो वेद्मि सत्तम॥२१॥

श्रीवराह उवाच

एवमुक्ते मतङ्गेन शूर्पं गोधूमपूरितम्। अपरं तत्र व्रीहीणां धर्मव्याधाय दर्शितम्॥२२॥
दृष्ट्वा व्रीहीन् सगोधूमान् धर्मव्याधो वरासनात्। उत्थाय गन्तुमारेभे मतङ्गेन निवारितः॥२३॥
किमर्थं गन्तुमारब्धं त्वया वद महामते। अभुक्तेनैव संसिद्धं मद्गृहे चान्नमुत्तमम्।
पाचयित्वा स्वयं चैव कस्मात् त्वं नाद्य भुञ्जसे॥२४॥

व्याध उवाच

सहस्रशः कोटिशश्च जीवान् हंसि दिने दिने। अथेदृशस्य पापस्य कोऽन्नं भुञ्जति सत्पुमान्॥२५॥

जय को सदा वरण करने वालों में श्रेष्ठ और धर्म व्याध के सम्बन्धी मतङ्ग ने समागत अतिथि को आसन पाद्य, अर्घ्य आदि से सम्मान देकर पूछा 'आपके पधारने का क्या प्रयोजन है? मैं किस प्रकार आपका स्वागत करूँ।।१८।।

व्याध ने कहा—मैं कौतूहलवश होकर आपके गृह में आया हूँ और मैं आपके यहाँ चैतन्यरहित पदार्थ का भोजन करने की इच्छा रखता हूँ।।१९।।

मतङ्ग ने कहा—हे धर्मज्ञ! श्रेष्ठ तपोधन! मेरे घर में गेहूँ व जौ का पदार्थ बना है, आप उसे यथेच्छा भोजन रूप में ग्रहण कर सकते हैं।।२०।।

मतङ्ग ने कहा—हे सज्जन! मैं देखना चाहता हूँ कि गेहूँ व जौ कैसे हैं? जिस रूप के ये अन्न आपके हैं, उन्हें जानना चाहता हूँ।।२१।।

श्री भगवान् वराह ने कहा—इस प्रकार कहे जाने पर मतङ्ग ने एक गेहूँ से भरा हुआ तथा दूसरा भी धान्यपूर्ण सूप धर्म व्याध को प्रदर्शित किया।।२२।।

गेहूँ सहित धान्य आदि अन्न को देख-समझ कर वह धर्म व्याध उस श्रेष्ठ आसन से उठकर चलने लगा। तब मतङ्ग ने उसे रोका।।२३।।

हे महामति! बतलायें कि आप मेरे गृह में तैयार श्रेष्ठ अन्न को बिना खाये उठकर क्यों चलने लगे? या आप स्वयं ही उसे बनवा कर आज क्यों नहीं खाते?।।२४।।

व्याध ने कहा—आप प्रतिदिन सहस्रों क्या करोड़ों जीवों की हत्या करते हैं। कौन सत्पुरुष इस प्रकार के पापी का अन्न भक्षण करने की इच्छा करेगा?।।२५।।

अचैतन्यं यदि गृहे विद्यतेऽन्नं सुसंस्कृतम्। इदानीमत्र संदृष्टा एते तु जलजन्तवः।
उप्ताः सहस्रतां यान्ति प्रतिसंवत्सरं मुने॥२६॥
अहमेकं कुटुम्बार्थे हन्म्यरण्ये पशुं दिने। तं चेत् पितृभ्यः सत्कृत्य दत्त्वा भुञ्जामि साऽनुगः॥२७॥
त्वं तु जीवान् बहून् हत्वा स्वकुटुम्बेन सानुगः। भुञ्जन्नेतेन सततमभोज्यं तन्मतं मम॥२८॥
ब्रह्मणा तु पुरा सृष्टा ओषध्यः सर्ववीरुधः। यज्ञार्थं तत्तु भूतानां भक्ष्यमित्येव वै श्रुतिः॥२९॥
दिव्यो भौतस्तथा पैत्रो मानुषो ब्राह्म एव च। एते पञ्च महायज्ञा ब्रह्मणा निर्मिताः पुरा॥३०॥
ब्राह्मणानां हितार्थाय इतरेषां च तन्मुखम्। इतरेषां तु वर्णानां ब्राह्मणैः कारिताः शुभाः॥३१॥
एवं यदि विभागः स्याद् वरान्नं तद् विशुध्यति। अन्यथा व्रीहयोऽप्येते एकैके मृगपक्षिणः।
मन्तव्या दातृभोक्तृणां महामांसं तु तत् स्मृतम्॥३२॥
मया ते दुहिता दत्ता पुत्रार्थे देवरूपिनी। सा च त्वद्भार्यया प्रोक्ता दुहिता जन्तुघातिनः॥३३॥
अतोऽर्थमागतोऽहं ते गृहं प्रति समीक्षितुम्। आचारं देवपूजां च अतिथीनां च तर्पणम्॥३४॥
एतेषामेकमप्यत्र कुर्वन्नपि न दृश्यते। तद् गृहं गन्तुमिच्छामि पितृणां श्राद्धकाम्यया॥३५॥

इस समय जो भी इस गृह में बना वर्तमान अन्न जीवरहित दीख रहा है, लेकिन ये जलजन्तु के रूप में स्पष्ट दीख रहे हैं। हे मुनि! बोने पर प्रत्येक वर्ष हजारों की संख्या में ये उत्पन्न भी हो जाया करते हैं।।२६।।

मैं कुटुम्ब के निर्वहणहेतु प्रतिदिन एक-एक जङ्गली पशु को मारता हूँ, उसे पकाने के बाद पितरों को अर्पित करने के बाद ही अनुगामियों सहित भक्षण करता हूँ।।२७।।

परन्तु यहाँ तो आप अनेक जीवों की हत्या कर नित्य अपने अनुचरों के साथ उन्हें भक्षण कर जाते हैं। अतएव मेरे विचार से आपका अन्न भोजन योग्य नहीं हो सकता है।।२८।।

आदि काल में ब्रह्मा ने कुछ औषधियों एवं सब प्रकार के वनस्पतियों की यज्ञ हेतु सृष्टि की थी। श्रुति वाक्य है कि यज्ञ के बाद ये प्राणियों हेतु भक्ष्य हैं।।२९।।

एवं पूर्वकाल में ही ब्रह्मा ने दिव्य याने द्युलोक सम्बन्धी, भौतयाने भूत सम्बन्धी पैत्रयाने पितर सम्बन्धी मनुष्य सम्बन्धी और ब्रह्म सम्बन्धी, इस पाँच महायज्ञों को ब्राह्मणों के हितार्थ बनाया। अन्य के लिए उन ब्राह्मणों को मुख बनाया। उपरोक्त पाँच महायज्ञ ब्राह्मणों द्वारा सम्पादित होने पर अन्य वर्णों का भी कल्याण होता है।।३०-३१।।

इस तरह अन्न का भी प्रभाग किया जाय, तो वह अन्न श्रेष्ठ हो जाता है। अन्यथा इन अन्नों को भी एक-एक पशु व पक्षी ही मानना चाहिए। इस तरह ये देने और भक्षण करने वालों हेतु महामांस ही कहा जाना चाहिए।।३२।।

मेरे द्वारा आपके पुत्र हेतु देवरूपिणी सुन्दरी कन्या प्रदान की गई, किन्तु आपकी पत्नि ने उसे जन्तुघाती की पुत्री कहा है।।३३।।

अतएव मैं आपके गृह में यह देखने व समझने के लिए आया हूँ कि आप देवपूजा, अतिथियों का सत्कार के साथ आपके गृह सदस्यों का आचार-विचार कैसा है।।३४।।

जिनमें से आप एक भी करने वाले नहीं प्रतीत हो रहे हैं। अतः अब मैं पितरों का श्राद्ध करने हेतु अपने गृह को जाना चाहता हूँ।।३५।।

स्वगृहे नैव भुञ्जामि पितॄणां कार्यमित्युत। अहं व्याधो जीवघाती न तु त्वं लोकहिंसकः॥३६॥
मत्सुता जीवघातस्य यदोढा त्वत्सुतेन च। तन्महत्त्वं च सञ्जातं प्रायश्चित्तं तपोधन॥३७॥

एवमुक्त्वा च चोत्थाय शप्त्वा नारीं तदा धरे।
मा स्नुषाभिः समं श्वश्र्वा विश्वासो भवतु क्वचित्॥३८॥
मा च स्नुषा कदाचित् स्याद् या श्वश्रूं जीवतीमिषेत्।
एवमुक्त्वा गतो व्याधः स्वगृहं प्रति भामिनि॥३९॥
ततो देवान् पितॄन् भक्त्या पूजयित्वा विचक्षणः।
पुत्रं चार्जुनकं स्थाप्य स्वसन्ताने महातपाः॥४०॥

धर्मव्याधो जगामाशु तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्। पुरुषोत्तमाख्यं च परं तत्र गत्वा समाहितः।
तपश्चचार नियतः पठन् स्तोत्रमिदं धरे॥४१॥
नमामि विष्णुं त्रिदशारिनाशनं विशालवक्षःस्थलसंश्रितश्रियम्।
सुशासनं नीतिमतां परां गतिं त्रिविक्रमं मन्दरधारिणं सदा॥४२॥
दामोदरं रञ्जिभूतलं धिया यशोंशुशुभ्रं भ्रमराङ्गसप्रभम्।
धराधरं नरकरिपुं पुरुष्टुतं नमामि विष्णुं शरणं जनार्दनम्॥४३॥

इस समय, तो मैं अपने गृह में भी भोजन नहीं ही करूँगा, क्योंकि पितरों का श्राद्ध रूप कार्य अभी करना है। मैं जीवघाती व्याध हूँ और आप लोक हिंसक नहीं हैं।।३६।।

और हे तपोधन! आपके पुत्र ने जो मेरी कन्या से विवाह किया है, वह तो अब एक महान् प्रायश्चित्त हो गया है।।३७।।

इस प्रकार से कहते हुए हे पृथ्वि! वह व्याध उठा और नारी को इस तरह शापित किया कि कहीं भी सास-पुत्रवधू का कभी विश्वास नहीं करे।।३८।।

इसी तरह कभी कोई पुत्रवधू भी इस तरह की न हो, जो सास को जीवित देखना चाहे। हे भामिनी! इस प्रकार कहते हुए व्याध अपने गृह को चला गया।।३९।।

फिर महातपस्वी विचक्षण व्याध ने देवों, पितरों आदि का भक्तिभाव से पूजन व तर्पण कर अपने पुत्र अर्जुनक को अपनी वंशादि वृद्धि हेतु सुस्थापित कर दिया।।४०।।

हे धरे! तत्पश्चात् धर्म व्याध ने जल्दी ही त्रैलोक्य सुविख्यात् पुरुषोत्तम नाम के तीर्थ में जाकर एकनिष्ठ चित्त से उक्त स्तोत्र का पाठ करते हुए तपनिष्ठ हो गया।।४१।।

देवताओं के शत्रुओं का नाशक, विशाल वक्षस्थल पर श्रीवत्स रूप की शोभा धारण करने वाले, सुशासन अर्थात् सुन्दर शासन करने वाले, नीतिमानों में श्रेष्ठ, मन्दर धारण करने वाले, त्रिविक्रम श्री विष्णु को मैं सदा प्रणाम करता हूँ।।४२।।

अपनी बुद्धि बल से समस्तसंसार को प्रसन्न करने वाले, अतिशय यश की किरण जालों से शुभ्रवर्ण वाले, भ्रमरों की सदृश कान्ति वाले, पृथ्वी को धारण करने वाले, नरक नाम के असुर का शत्रु, बहुत सारे विभिन्न स्तरीय जनों से भी पूजित, सबको शरण प्रदान करने वाले दामोदर, श्री विष्णु, जनार्दन को मैं प्रणाम करता हूँ।।४३।।

नरं नृसिंहं हरिमीश्वरं प्रभुं त्रिधामनामानमनन्तवर्चसम्।
सुसंस्कृतास्यं शरणं नरोरुमं व्रजामि देवं सततं तमच्युतम् ।।४३[१]।।
त्रिधा स्थितं तिग्मरथाङ्गपाणिनं नयस्थितं तृप्तमनुत्तमैर्गुणैः।
निःश्रेयसाख्यं क्षपितेतरं गुरुं नमामि विष्णुं पुरुषोत्तमं त्वहम्।।४४।।
हतौ पुराणौ मधुकैटभावुभौ बिभर्त्ति च क्ष्मां शिरसा सदा हि सः।
ययथा स्तुतो मे प्रसभं सनातनो दधातु विष्णुः सुखमूर्जितं मम।।४४[१]।।
महावराहो हविषाम्बुभोजनो जनार्दनो मे हितकृच्चितुमुखः।
क्षितीधरो मामुदधिक्षयो महान् स पातु विष्णुः शरणार्थिनं तु माम्।।४५।।
मायाततं तेन जगत्त्रयं कृतं यथाग्निनैकेन ततं चराचरम्।
चराचरस्य स्वयमेव सर्वतः स मेऽस्तु विष्णुः शरणं जगत्पतिः।।४६।।
भवे भवे यश्च ससर्ज कं ततो जगत् प्रसूतं सचराचरं त्विदम्।
ततश्च रुद्रात्मवति प्रलीयतेऽन्वतो हरिर्विष्णुहरस्तयोच्यते।।४७।।
खात्मेन्दुपृथ्वीपवनाग्निभास्करा जलं च यस्य प्रभवन्ति मूर्त्तयः।
स सर्वदा मे भगवान् सनातनो ददातु शं विष्णुरचिन्त्यरूपधृक्।।४८।।

त्रिधाम नाम वाले, अनन्त यश वाले, सुसंस्कृत मुख वाले, सबको शरण देने वाले, प्रभु, नृसिंह नर स्वरूप वाले, नरोत्तम, हरि, अच्युत देव का मैं सदा शरण जाता हूँ।।४३[१]।।

भूत-वर्तमान-भविष्यत् रूप में तीन प्रकार स्थित रहने वाले, हाथ में तीक्ष्ण चक्र धारण करने वाले, नीतिगत मार्ग में स्थित रहने वाले, श्रेष्ठतम गुणों से सर्वथा संतृप्त होने वाले, कल्याण स्वरूप और पाप को नष्ट करने वाले, गुरु स्वरूप, पुरुषोत्तम श्री विष्णु को मैं प्रणाम करता हूँ।।४४।।

पूर्वकाल में मधु व कैटभ दोनों को मारने वाले, सदा अपने मस्तक पर पृथ्वी को धारण करने वाले, जैसे-तैसे भी मेरे द्वारा स्तुत और प्रसन्न सनातन श्री विष्णु निश्चित ही मुझे श्रेष्ठ सुख प्रदान करेंगे।।४४[१]।।

महावराह, हविर्भोक्ता, जनार्दन, सदा हित करने वाले, यज्ञाग्नि के समान मुख वाले, पृथ्वी को धारण करने वाले, समुद्र में शयन करने वाले, महान्, विष्णु मेरे ऐसे शरण में आये हुए की सदा रक्षा करें।।४५।।

जिस देव ने अपनी माया के बल से त्रैलोक्य को उसी तरह व्याप्त किया हुआ है, जिस तरह एक ही अग्नि सम्पूर्ण चराचर जगत् में व्याप्त है और जो स्वयं ही चराचर जगत् के सभी दिशाओं में स्थित हैं, ऐसे जगत्पति श्री विष्णु मुझे सदा ही अपना शरण प्रदान करते रहें।।४६।।

सभी सृष्टि के आरम्भ के समय जो ब्रह्मा की सृष्टि करते हैं और उस ब्रह्मा द्वारा इस चराचर जगत् को उत्पन्न किया जाता है। तथा फिर प्रलय काल में यह जगत् उसी के रुद्रस्वरूप में विलीन हो जाता है। इसी कारण से श्री हरि को विष्णु और हर दोनों कहा जाता है।।४७।।

आकाश, आत्मा, चन्द्र, पृथ्वी, वायु, अग्नि, सूर्य और जल जिसकी ये अष्टमूर्त्तियाँ हैं, वे अचिन्त्य स्वरूप सनातन भगवान् विष्णु हमारा कल्याण करें।।४८।।

इतीरिते तस्य सनातनः स्वयं पुरो बभूवाद्भुतरूपदर्शनः।
वरं वृणीष्वेति सनातनोऽब्रवीदनन्तपादोदरबाहुवक्त्रः॥४९॥
इतीरिते व्याधवरो जगाद प्रदीयतामेष वरः सुतेष्वपि।
क्रियाकलापेन तथात्मविद्यया कुलप्रसूतावपि तेऽनुगामिनः।
भवेत् तथा धर्मयुगे समुद्भवः कलौ न मे मत्प्रभवेषु केषुचित्॥५०॥
ज्ञानोदयस्त्वस्य कुलस्य सर्वगे लयस्तथा ब्रह्मणि मे सनातन।
प्रसादमेवं तव देव सत्तम प्राप्तस्त्वहं त्वल्लयमेमि पश्चात्॥५१॥
इतीरिते तं भगवानुवाच ह प्रसन्नबुद्धिर्भवते मया त्वयम्।
वरो विसृष्टश्च कुलस्य ते मया लयस्तथा ब्रह्मणि शाश्वते तव॥५२॥
इतीरिते देववरेण स क्षणात् स्वदेहतस्तेज उदीर्णमैक्षत।
विसर्जयामास कविं सनातनं लयं च तत्र प्रतिपेदिवानसौ॥५३॥
इतीरितं स्तोत्रवरं धरे नरः पठिष्यते यश्च श्रृणोति मानवः।
हरिं समभ्यर्च्य सदा ह्युपोषितो विशेषतो विष्णुदिने च मानवः।
स याति यत्र स्वयमेव केशवो वसेत मन्वन्तरसप्ततिं सुखम्॥५४॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे अष्टमोऽध्यायः॥८॥

उपरोक्त प्रकार से स्तुति किये जाने पर अद्भुत स्वरूपवान् सनातन विष्णु उस व्याध के समक्ष प्रकट हो गये। फिर अनन्तपाद, उदर, बाहु, मुख आदि वाले सनातन विष्णु व्याध से कहा—'वर मांग लो'॥४९॥

इस प्रकार भगवान् नारायण द्वारा कहे जाने पर उस श्रेष्ठ व्याध ने कहा—आप हमें यह वरदान दें कि मेरे पुत्र एवं वंश में उत्पन्न होने वाले सन्तति भी अपने कर्म एवं आत्मज्ञान से आपका ही अनुसरण करने वाले हों, साथ ही उनकी उत्पत्ति धर्मयुग में ही हो और मेरे कुल का किसी भी व्यक्ति का जन्म कलियुग में न ही हो॥५०॥

इस कुल के व्यक्तियों में ज्ञान का सदा उदय होता रहे एवं हे सनातन देव! सर्वव्यापी ब्रह्म में मेरा लय हो। हे श्रेष्ठ देव! इस तरह मुझे अब आपका अनुग्रह प्राप्त हो गया, इसके बाद मैं आप में विलीन हो जाऊँगा॥५१॥

इस प्रकार व्याध के कहने पर श्रीदेव ने उससे कहा—प्रसन्न चित्त होकर मैंने तुमको और तुम्हारे वंशजनों को यह वर प्रदान किया और तुम शाश्वत ब्रह्म में लीन होओगे॥५२॥

इस तरह वरिष्ठतम देव के कहते ही उसने तत्क्षण अपने शरीर से उत्तम तेज को प्रकट होते देखा। वह तेज उस व्याध का देह छोड़कर उस सनातन कवि में विलीन हो गया॥५३॥

हे धरे! उपरोक्त श्रेष्ठ स्तोत्र का जो जन पाठ करेगा या सुनेगा, और हरि की पूजा कर विशेष रूप से विष्णु के दिन अर्थात् एकादशी तिथि को उपवास करेगा, वह उस जगह को पाकर सुख के साथ सत्तर मन्वन्तर पर्यन्त निवास करेगा, जहाँ वह केशव निवास करते हैं॥५४॥

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में धर्मव्याध चरित्र और सद्कृत विष्णु स्तुति नामक बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥८॥

❖❖❖

नवमोऽध्यायः

अथ मत्स्यावतारेण वेदोद्धारः देवेण मत्स्यस्यस्तुतिश्च

धरण्युवाच

आदौ कृतयुगे नाथ किं कृतं विश्वमूर्त्तिना। नारायणेन तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः॥१॥

श्रीवराह उवाच

पूर्वं नारायणस्त्वेको नासीत् किञ्चिद्धरेः परम्। सैक एव रतिं लेभे नैव स्वच्छन्दकर्मकृत्॥२॥
तस्य द्वितीयमिच्छन्तश्चिन्ता बुद्ध्यात्मिका बभौ। असावित्येव संज्ञा या क्षणं भास्करसन्निभा॥३॥
तस्या अपि द्विधा भूता चिन्ताभूद् ब्रह्मवादिनी। उमेति संज्ञया यत्तत्सदा मर्त्ये व्यवस्थिता॥४॥
ओमित्येकाक्षरीभूता ससर्जेमां महीं तदा। भूः ससर्ज भुवं सोऽपि स्वः ससर्ज च ततो महः॥५॥
ततश्च जन इत्येव ततश्चात्मा प्रलीयते। एतदोतं तथा प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥६॥
जगत् प्राणवतो भूतं शून्यमेतत् स्थितं तदा। येयं मूर्तिर्भगवतः शङ्करः स स्वयं हरिः॥७॥
शून्याँल्लोकानिमान् दृष्ट्वा सिसृक्षुर्मूर्त्तिमुत्तमाम्। क्षोभयित्वा मनोधाम तत्राकारः स्वमात्रतः॥८॥

अध्याय–९

मत्स्यावतार द्वारा वेदों का उद्धार और देव द्वारा मत्स्य स्तुति

धरणी ने पूछा—हे नाथ! विश्वमूर्त्ति नारायण द्वारा आदि कृतयुग में क्या सब किया गया? उन सबको यथा स्वरूप में सुनने की इच्छा हो रही है।।१।।

श्री भगवान् वराह ने कहा—सर्वप्रथम इस संसार में एकमात्र नारायण ही थे। हरि को छोड़कर और कुछ भी नहीं था। परन्तु अपनी इच्छावश कर्मकर्त्ता हरि अकेले रति आनन्द अनुभव नहीं कर पाये।।२।।

तत्पश्चात् उनकी 'द्वितीय' की इच्छा उत्पन्न हुई, तो उसी समय एक बुद्धि सम्बन्धी चिन्ता उत्पन्न हुई। जिसे बुद्धि कहा गया, जो सूर्य सदृश तेजस्विनी थी।।३।।

उस बुद्धि का भी दो भाग हो गया, एक चिन्ता ब्रह्मवादिनी हुई जो 'उमा' के नाम से हमेशा ही भूमण्डल में रहने वाली कही गई है।।४।।

एवं एकाक्षर (ॐ) स्वरूपिणी उस उमा के द्वारा उस समय इस पृथ्वी की रचना हुई। और फिर उसी के द्वारा भूः, भुवः, स्वः और महर्लोक का भी सृजन किया गया।।५।।

फिर उसने जन व तप लोकों की रचना की, जिसमें आत्मा को प्रवेश मिल गया। यह संसार आत्मा में इसी प्रकार घुला मिला है, जिस प्रकार सूत्र में मणि गूँथी रहती हैं।।६।।

उस काल में यह सम्पूर्ण संसार प्रणव (ॐ) से उत्पन्न होकर शून्य स्वरूप में अवस्थित था। भगवान् की जो ये अष्टमूर्तियाँ हैं, वे स्वयं शंकर और हरि ही हैं।।७।।

इस प्रकार समस्त लोकों को शून्यावस्था में अनुभव कर परमेश्वर ने उत्तम मूर्त्ति की सृष्टि करने की अपनी इच्छा की। तत्पश्चात् वे अपने मनोधाम को क्षुभित कर अपने एक मात्रा स्वरूप 'आकार' के रूप से स्थित हुए।।८।।

स्थितस्तस्मिन् यदा क्षुब्धे ब्रह्माण्डमभवत्तदा। तस्मिंस्तु शकलीभूते भूर्लोकं च व्यवस्थितम्॥९॥
अपरं भुवनं प्रायान्मध्ये भास्करसन्निभम्। पुराणपुरुषो व्याप्य पद्मकोशो व्यवस्थितः॥१०॥
स हि नारायणो देवः प्राजापत्येन तेजसा। अकाराद्यं स्वरं नाभ्यां हलं च विससर्ज ह॥११॥
अमूर्त्तसृष्टौ शास्त्राणि उदगायत् तदा दिशः। सृष्ट्वा पुनरमेयात्मा चिन्तयामास धारणम्॥१२॥
तस्य चिन्तयतो नेत्रात् तेजः समभवन्महत्। दक्षिणं वह्निसङ्काशं वामं तुहिनसन्निभम्॥१३॥
तं दृष्ट्वा चन्द्रसूर्यौ तु कल्पितौ परमेष्ठिना। ततः प्राणः समुत्तस्थौ वायुश्च परमेष्ठिनः॥१४॥
स एव वायुर्भगवान् योऽद्यापि हृदिगो विभुः। तस्माद् वह्निः समुत्तस्थौ तस्मादग्नेर्जलं महत्॥१५॥
य एवाग्निः स वै तेजो ब्राह्मं परमकारणम्। बाहुभ्यामप्यसौ तेजः क्षात्रं तेजः ससर्ज ह॥१६॥
ऊरुभ्यामपि वैश्यांश्च पद्भ्यां शूद्रांस्तथा विभुः। ततस्तु ससृजे यक्षान् राक्षसांश्च तथा विभुः॥१७॥
चतुर्विधैस्तु भूर्लोकं भुवर्लोकं वियच्चरैः। भूतैः स्वर्मार्गगैरन्यैः स्वर्लोकं समपूरयत्॥१८॥
महर्लोकं तथा तैस्तैर्भूतैश्च सनकादिभिः। जनलोकं ततश्चैव वैराजैः समपूरयत्॥१९॥
तपोलोकं ततो देवस्तपोनिष्ठैरपूरयत्। अपुनर्मारकैर्देवैः सत्यलोकमपुरयत्॥२०॥

तत्पश्चात् उपरोक्त क्षुभित मनस्तत्त्व में स्थित होकर ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ। फिर उसका दो खण्ड कर भूलोक की उत्पत्ति हुई।।९।।

फिर दूसरा भुवर्लोक की उत्पत्ति हुई। इन दोनों लोकों के मध्य भाग में व्याप्त होकर सूर्य के समान पुराण रूप अर्थात् ब्रह्मा पद्मकोश के ऊपर स्थित हुये।।१०।।

निश्चय वह नारायण देव ही अपने प्रजापत्य तेज से नाभि क्षेत्र में अकारादि स्वरों और व्यञ्जनों की सर्जना की।।११।।

इस तरह स्वर और व्यञ्जन स्वरूपात्मक दो अमूर्त्त पदार्थों की उत्पत्ति हो जाने के बाद शास्त्रों की उत्पत्ति हो सकी। फिर दिशाओं को बनाकर परमात्मा ने सृष्टि धारणा की चिन्ता की।।१२।।

इस चिन्तन युक्त स्थिति में उनके नेत्र से महान् तेज की उत्पत्ति हुई। जहाँ के दायीं ओर का तेज अग्नि के समान और बायीं ओर का तेज तुषार के समान था।।१३।।

इस तरह उनको देख-समझकर परमेष्ठी ने चन्द्र और सूर्य की रचना कर डाली। फिर परमेष्ठी से प्राण वायु की भी उत्पत्ति हुई।।१४।।

यह प्राणवायु वही सर्वव्यापक वायुदेव हैं, जो आज भी सभी जीवों के हृदय में विद्यमान हैं। उस वायु से अग्नि और उस अग्नि से महान् जल उत्पन्न हुआ।।१५।।

यह जो अग्नि है, वही परम कारण रूप में ब्रह्मतेज कहा गया है। उस तेज ने परमेष्ठी के भुजाओं से क्षात्र तेज की उत्पत्ति कर दिया।।१६।।

फिर ऊरु भाग से वैश्यों को और चरणों से शूद्रों की उत्पत्ति हुई। उसके बाद विभु परमेश्वर द्वारा यक्षों और राक्षसों को उत्पन्न किया गया।।१७।।

उस परमेश्वर ने चार प्रकार के जीवों से भूर्लोक और आकशचारी जीवों के भुवर्लोक को एवं स्वःमार्ग से गमन करने वाले जीवों से स्वरलोक को प्रपूरित किया।।१८।।

एवं सनकादि अनेक प्राणियों से महर्लोक को भरा गया तथा विराट् हिरण्यगर्भ की उपासना करने वाले वैराज नामक प्राणियों से जनलोक को भरा गया।।१९।।

इसी प्रकार देव परमेश्वर देव परमेश्वर ने तपोनिष्ठ जीवों के द्वारा तपोलोक को और पुनः पुनः नहीं मरने व जन्म लेने वालों अर्थात् जन्म-मृत्यु से परे जीवों के द्वारा सत्यलोक को सम्पूरित किया।।२०।।

सृष्टिं सृष्ट्वा तथा देवो भगवान् भूतभावनः। कल्पसंज्ञं स्वकं घस्त्रं जागर्ति परमेश्वरः॥२१॥
तस्मिन् जगति भूर्लोको भुवर्लोकश्च जायते। स्वर्लोकश्च त्रयोऽप्येते जायन्ते नात्र संशयः॥२२॥
सुप्ते तु देवे कल्पान्ते तावती रात्रिरिष्यते। त्रैलोक्यमेतत् सुप्तं स्यात् तथोपप्लवतां गतम्॥२३॥
ततो रात्र्यां व्यतीतायामुत्थितः कमलेक्षणः। चिन्तयामास तान् वेदान् मातरं च चतुर्ष्वपि।
चिन्तयानः स देवेशस्तान् वेदान् नाध्यगच्छत॥२४॥
लोकमार्गस्थितिं कर्त्तुं निद्राज्ञानेन मोहितः। चिन्तयामास देवेशो नात्र वेदा व्यवस्थिताः॥२५॥
ततः स्वमूर्त्तौ तोयाख्ये लीनान् दृष्ट्वा सुरेश्वरः।
जिघृक्षुश्चिन्तयामास मत्स्यो भूत्वाविशज्जलम्॥२६॥
एवं ध्यात्वा महामत्स्यस्तंत्क्षणात् समजायत। विवेश च जलं देवः समन्तात् क्षोभयन्निव॥२७॥
तस्मिन् प्रविष्टे सहसा जलं तु महामहीधृग्वपुषि प्रकाशम्।
मात्स्यं गते देववरे महोदधिं हरिं स्तवैस्तुष्टुवुरुद्धतक्षितिम्॥२८॥
नमोस्तु वेदान्तरगाप्रतर्क्य नमोऽस्तु नारायण मत्स्यरूप।
नमोऽस्तु ते सुस्वर विश्वमूर्त्ते नमोऽस्तु विद्वाद्वयरूपधारिन्॥२९॥

फिर सृष्टि कार्य सम्पन्न कर भूतभावन भगवान् देव परमेश्वर अपने कल्पसंज्ञक दिन भाग में सदा जागते ही रहते हैं।।२१।।

बिना किसी संशय के यह जानना चाहिए कि कल्प रूप इस संसार में भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक—ये तीनों लोकों की उत्पत्ति हुई।।२३।।

फिर दिन कल्प के अन्त में, जब रात्रिकल्प प्रारम्भ होता है, देव परमेश्वर शयन करते हैं। उस समय प्रलय को प्राप्त होकर यह संसार भी सो जाता है।।२३।।

इस तरह पुनः रात्रिकल्प के बीत जाने पर परमेश्वर कमलनेत्र सोये हुए से जाग जाते हैं और फिर उसने वेदों तथा उन चारों की मातृकाओं का चिन्तन करते हैं। एक बार ऐसे ही चिन्तन करते हुए उन देवेश को वे वेद अधिगत नहीं हुये।।२४।।

उस समय जागने पर परमेश्वर ने निद्रा जन्य अज्ञान से ग्रसित होकर लोकमार्ग की व्यवस्था करने हेतु वेदों का चिन्तन किया। परन्तु उस समय देवेश को कहीं वेद की प्राप्ति नहीं हुई।।२५।।

तत्पश्चात् सुरेश्वर ने जलसंज्ञक अपनी मूर्त्ति में उन वेदों को लीन देखकर वहाँ से उसे लाने का विचार किया और मत्स्य रूप में उस जल में प्रवेश किया।।२६।।

इस प्रकार परमेश्वर के अपने मत्स्य रूप का ध्यान करते ही उसी समय भगवान् महामत्स्य का रूप अवतरित हो गया। इस तरह चारों दिशाओं को क्षुब्ध करते हुए जल में प्रवेश किया।।२७।।

फिर तो पृथ्वी का उद्धारक, महापर्वतों को भी धारण करने वाले मत्स्य शरीर धारण किये भगवान् के अचानक प्रकाश स्वरूप से जल में प्रवेश करने के समय ही देवगणों ने उन हरि की स्तुति प्रारम्भ कर दी।।२८।।

हे वेदान्तपारगामी अप्रतर्क्य हरि! आपको प्रणाम है। हे मत्स्य रूप धारण करने वाले नारायण! आपको प्रणाम है। हे सुस्वर विश्वमूर्त्ति! आपको प्रणाम है। हे दो विद्याओं के रूप धारण करने वाले प्रभु! आपको प्रणाम है।।२९।।

नमोऽस्तु चन्द्रार्कमरुत्स्वरूप जलान्तविश्वस्थित चारुनेत्र।
नमोस्तु विष्णोः शरणं व्रजामः प्रपाहि नो मत्स्यतनुं विहाय॥३०॥
त्वया ततं विश्वमनन्तमूर्त्ते पृथग्गते किञ्चिदिहास्ति देव।
भवान् न चास्य व्यतिरिक्तमूर्त्तिस्त्वत्तो वयं ते शरणं प्रपन्नाः॥३१॥
खात्मेन्दुवह्निश्च मनश्च रूपं पुराणमूर्त्तेस्तव चाब्जनेत्र।
क्षमस्व शम्भो यदि भक्तिहीनं त्वया जगद्भासति देवदेव॥३२॥
विरुद्धमेतत् तव देवरूपं सुभीषणं सुस्वनमद्रितुल्यम्।
पुराण देवेश जगन्निवास शमं प्रयाह्यच्युत तीव्रभानो॥३३॥
वयं हि सर्वे शरणं प्रपन्ना भयाच्च ते रूपमिदं प्रपश्य।
लोके समस्तं भवता विना तु न विद्यते देहगतं पुराणम्॥३४॥
एवं स्तुतस्तदा देवो जलस्थान् जगृहे च सः।
वेदान् सोपनिषच्छास्त्रानन्तःस्थं रूपमास्थितः॥३५॥
यावत्स्वमूर्तिर्भगवांस्तावदेव जगत् त्विदम्। कूटस्थे तल्लयं याति विकृतिस्थे विवर्द्धते॥३६॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे नवमोऽध्यायः॥९॥

हे चन्द्र, सूर्य, वायु, मूर्त्ति और प्रलय के समय विश्वाश्रय! आपको प्रणाम है। हे सुन्दर नेत्रों वाले परमेश्वर आपको नमस्कार है। मैं विष्णु की शरण में जाता हूँ। हे प्रभो! अब मत्स्यस्वरूप त्याग कर हमारी रक्षा करें।।३०।।

हे देव! हे अनन्त मूर्त्ति! आपने विश्व का विस्तार किया है, उसके तत्त्वों को पृथक्-पृथक् करने पर, जो शेष रह जाता है, वह आप ही हैं, आपसे पृथक् होकर इस संसार की कोई स्वरूप नहीं है। हम आपके शरण में हैं।।३१।।

हे कमलनेत्र! आकाश, आत्मा, चन्द्र, अग्नि, मन आदि भी आप पुराणमूर्त्ति के ही स्वरूप हैं। हे शम्भु! मुझ भक्तिभाव रहित को आप क्षमा दान दें। हे देवाधिदेव! आप से ही इस जगत् की प्रतीति होती है।।३२।।

हे पुराण देवेश! तीव्र गर्जना वाले पर्वत के सदृश अत्यन्त भयङ्कर आपका ही रूप आपके सौम्य-सरल रूप के विपरीत है। हे जगन्निवास तीव्रभानु! आप शान्त हों।।३३।।

आपके इस स्वरूप को देखकर भययुक्त होकर हम लोग आपके शरण में हैं। हम सभी आपको नमस्कार करते हैं। इस संसार में आप से पृथक् कुछ भी तो नहीं है। यह समस्त पुराण जगत् भी तो आपके शरीर में ही स्थित है।।३४।।

इस तरह से स्तुत देव ने उपनिषद्, शास्त्रों सहित वेदों को प्राप्त कर अपने ही अन्तःस्थ रूप में धारण कर लिया।।35।।

ईश्वर अपने स्वरूप से जहाँ तक भी स्थित हो सकते हैं, वहाँ तक यह संसर भी है। आपके कूटस्थ स्वरूप में इस संसार का क्षय होता है और उनके विकृतिस्थ याने विकसित होने पर इस संसार की भी अभिवृद्धि सम्भव होती है।।३६।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में मत्स्यावतार द्वारा वेदों का उद्धार और देव द्वारा मत्स्य स्तुति नामक नवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥९॥

❖❖❖

दशमोऽध्यायः

अथ दुर्जयचरिते गौरमुखस्याश्रमवर्णनम्

श्रीवराह उवाच

एवं सृष्ट्वा जगत्सर्वं भगवान् भूतभावनः। विरराम ततः सृष्टिर्व्यवर्द्धत धरे तदा॥१॥
वृद्धायामथ सृष्टौ तु सर्वे देवाः पुरातनम्। नारायणाख्यं पुरुषं यजन्तो विविधैर्मखैः॥२॥
द्वीपेषु चैव सर्वेषु वर्षेषु च मखैर्हरिम्। देवाः सत्रैर्महद्भिस्ते यजन्तः श्रद्धयान्विताः।
तोषयामासुरत्यर्थं स्वं पूज्यं कर्तुमीप्सवः॥३॥
एवं तोषयतां तेषां बहुवर्षसहस्त्रिकम्। काले देवस्तदा तुष्टः प्रत्यक्षत्वं जगाम ह॥४॥
अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रो महागिरेः शृङ्गमिवोल्लिखंस्तदा।
उवाच किं कार्यमथो सुरेशो ब्रूतां वरं देववरा वरं वः॥५॥

देवा ऊचुः

जयस्व गोविन्द महानुभाव त्वया वयं नाथ वरेण देवाः।
मनुष्यलोकेऽपि भवन्तमाद्यं विहाय नास्मान्भवते ह कश्चित्॥६॥

अध्याय-१०

दुर्जय चरित मृगया और गौरमुख आश्रम वर्णन

श्री भगवान् वराह ने कहा— हे धरे! लोक भावन भगवान् सम्पूर्ण संसार की सर्जना करने के बाद निश्चिन्त हो गये। फिर सृष्टि की अभिवृद्धि भी होती रही।।१।।

इस सृष्टि की स्वभाविक अभिवृद्धि होने से समस्त देवगण भी विविध प्रकार के यज्ञों से श्री नारायण नाम के पुरातनपुरुष का यजन करने लगे।।२।।

वे देवगण स्वयं को भी पूजास्पद बनाने हेतु प्रत्येक द्वीप और वर्ष में श्रद्धायुक्त होकर बड़े-बड़े यज्ञों से श्रीहरि की अत्यधिक पूजन करने में व्यस्त रहने लगे।।३।।

इन देवगणों द्वारा नारायण की उक्त प्रकार पूजन करते हुए कई एक हजार वर्ष व्यतीत हो गए। फिर नारायण देव संतृप्त व प्रसन्न होकर प्रत्यक्ष प्रकट हुये।।४।।

उस समय कई बाहु, उदर, मुख, नेत्र आदि से सम्पन्न महापर्वत शिखर के सदृश समुन्नत शरीर वाले भगवान् विष्णु प्रकट हुए और कहा—हे श्रेष्ठ देवों! क्या प्रयोजन है? आप लोग वददान मांग लो।।५।।

देवगणों ने कहा—हे महानुभव! हे गोविन्द! आपकी जय हो, हे नाथ! आप श्रेष्ठ वरिष्ठ देवों के साथ हम लोग भी देव माने गए हैं। मर्त्यलोक में भी आज ऐसे आद्य पुरुष को छोड़कर अन्य कोई भी हम देवगणों से श्रेष्ठ नहीं हैं।।६।।

रुद्रादित्यौ वसवो ये च साध्या विश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च।
सर्वे भवन्तं शरणं गताः स्म कुरुष्व पूज्यानिह विश्वमूर्ते॥७॥
एवमुक्तस्तदा तैस्तु महायोगेश्वरो हरिः। करोमि सर्वान् वः पूज्यानित्युक्त्वाऽन्तरधीयत॥८॥
देवा अपि निजौकांसि गतवन्तः सनातनम्। स्तुवन्तः परमेशोऽपि त्रिविधं भावमास्थितः॥९॥
एवं त्रिधा जगद्धाता भूत्वा देवान् महेश्वरः।
आराध्य सात्त्विकं राजं तामसं च त्रिधा स्थितम्॥१०॥
सात्त्विकेन पठेद् वेदान् यजेद् यज्ञेन देवताः। आत्मनोऽवयवो भूत्वा राजसेनापि केशवः॥११॥
स कालरूपिणं रौद्रं प्रकृत्या शूलपाणिनम्। आत्मनो राजसीं मूर्त्तिं पूजयामास भक्तितः।
तामसेनापि भावेन असुरेषु व्यवस्थितः॥१२॥
एवं त्रिधा जगद्धाता भूत्वा देवान् महेश्वरः। आराधयामास ततो लोकोऽपि विविधोऽभवत्॥१३॥
ब्रह्मविष्णुमहेशाननाम्ना गृह्य व्यवस्थितः। स च नारायणो देवः कृते युगवरे प्रभुः॥१४॥
त्रेतायां रुद्ररूपस्तु द्वापरे यज्ञमूर्त्तिमान्। कलौ नारायणो देवो बहुरूपो व्यजायत॥१५॥
तस्यादिकृत्ततो विष्णोश्चरितं भूरितेजसः। शृणुष्व सर्वं सुश्रोणि गदतो मम भामिनि॥१६॥

चन्द्र, सूर्य, वसुगण, सब साध्यगण, अश्विनी कुमार दोनों भाई वायु और सब अष्टमपायी देवगण भी आपके शरण में हैं। हे विश्वमूर्त्ति! हम सब को भी इन सब लोकों में पूजास्पद बना दें।।७।।

फिर देवगणों के इस प्रकार कहे जाने पर महायोगेश्वर हरि 'मैं तुम लोगों को पूजनीय बना देता हूँ।' यह कहकर अन्तर्धान हो गए।।८।।

इस तरह देवगण भी सनातन देव की स्तुति करते हुए अपने अपने स्थान की ओर चल दिये। इस समय परमेश ने भी तीन तरह के भावों में स्वयं को अवस्थित किया।।९।।

इस तरह तीन प्रकार के रूप धारण करने वाले महेश्वर देवगणों की आराधना कर सात्त्विक, राजस और तामस तीन स्वरूपों में अपने को स्थित कर लिया।।१०।।

श्री केशव स्वयं का अपना ही अवयव रूप अपने सात्त्विक स्वरूप से वेदों का पाठ किया करते हैं और अपने राजस स्वरूप से यज्ञों द्वारा देवों की पूजा किया करते हैं।।११।।

वहीं केशव पूर्ण भक्तिभाव से अपनी कालस्वरूप प्रकृति से रौद्र और भयंकर राजसी शूलपाणि की मूर्त्ति की उपासना किया करते हैं इस प्रकार से वे अपनी तामस मूर्त्ति द्वारा असुरों के बीच में व्यवस्थित रहते हैं।।१२।।

एवम्प्रकारेण जगद् को धारण करने वाले महेश्वर के अपने तीन प्रकार के स्वरूप से देवताओं की आराधना करते रहने से यह लोक भी तीन प्रकार के हुए।।१३।।

वे ही परमात्मा अपने ब्रह्मा, विष्णु और महेश नाम ग्रहण कर स्थित हैं। वे ही कृत नामक वरिष्ठ युग में नारायण देव प्रभु के स्वरूप में भी प्रकट स्थित हैं।।१४।।

वे ही परमात्मा त्रेता नामक युग में रुद्र स्वरूप में, द्वापर युग में यज्ञमूर्त्ति स्वरूप में और कलियुग में नारायण देव होने के साथ अनेक स्वरूपों वाला हो गये।।१५।।

हे सुश्रोणि भामिनि! उसी अत्यन्त तेजस्वरूप श्रीविष्णु के आदि समय के सम्पूर्ण चरित को मैं तुमसे बतलाता हूँ, उसे श्रवण करो।।१६।।

आसीत् कृतयुगे राजा सुप्रतीको महाबलः। तस्य भार्याद्वयं चासीदविशिष्टं मनोरमम्॥१७॥
विद्युत्प्रभा कान्तिमती तयोरेते तु नामनी। तयोः पुत्रं समं राजा न लेभे यत्नवानपि॥१८॥
यदा तदा मुनिश्रेष्ठमात्रेयं वीतकल्मषम्। तोषयामास विधिना चित्रकूटे नगोत्तमे॥१९॥
स ऋषिस्तोषितस्तेन दीर्घकालं वरार्थिना। वरं दिदित्सया यावदब्रवीदत्रिजो मुनिः॥२०॥
तावदिन्द्रोऽपि करिणा गतः पार्श्वेन तस्य ह। देवसैन्यैः परिवृतस्तूष्णीमेव महाबलः॥२१॥
तं दृष्ट्वाऽन्तर्गतप्रीतिमप्रीतिं प्रीतवान् मुनिः। चुकोप देवराजाय शापमुग्रं ससर्ज ह॥२२॥
यस्मात् त्वया ममावज्ञा कृता मूढ दिवस्पते। ततस्त्वं चालितो राज्यादन्यलोके वसिष्यसि॥२३॥
एवमुक्त्वाऽपि कोपेन सुरेश तं च भूपतिम्। उवाच राजन् पुत्रस्ते भविता दृढविक्रमः॥२४॥
इन्द्ररूपोपमः श्रीमानुद्यच्छस्त्रः प्रतापवान्। विद्याप्रभावकर्म्मज्ञः क्रूरकर्मा भविष्यति।
दुर्जयोऽतिबलो राजा एवमुक्त्वा गतो मुनिः॥२५॥
सोऽपि राजा सुप्रतीको भार्यायां गर्भमावहत्। विद्युत्प्रभायां धर्मज्ञः साऽपि काले त्वसूयत॥२६॥

पुरातनकाल में कृतयुग में महाबली सुप्रतीक नामक एक राजा था। अविशिष्ट मनोरम स्वरूप वाली उनकी दो भार्यायें थीं।।१७।।

उनकी पत्नियों में एक का नाम विद्युत्प्रभा और दूसरी कान्तिमती नाम की थी। यत्न करने के बावजूद उन रानियों से राजा को पुत्र की प्राप्ति नहीं हुई।।१८।।

फिर एक बार चित्रकूट नामक श्रेष्ठ पर्वत पर उन्होंने विधि विधान के साथ मुनियों में श्रेष्ठ अत्रिपुत्र, पीले वस्त्र धारण करने वाले दुर्वासा को प्रसन्न कर लिया।।१९।।

फिर दीर्घकाल व्यतीत होने पर उस वर की आकांक्षा रखने वाले राजा के द्वारा वे ऋषि पुत्र प्रसन्न किये जा सके। उस समय उस अत्रिपुत्र दुर्वासा मुनि द्वारा वर प्रदान करने की आकांक्षा से कुछ कहने हेतु प्रयत्नशील ही हुए थे।।२०।।

उसी काल में उनके बगल से महाबली इन्द्र हाथी पर सवार हुए देवसेना सहित चुपचाप आगे बढ़ते चले गये।।२१।।

इस प्रकार अपने प्रति अपने अन्तःकरण में प्रेम रखने वाले इन्द्र को देखकर प्रसन्न होने वाले मुनि ने इस अवज्ञापूर्ण व्यवहार से कुपित होकर इन्द्र को शाप दे डाला।।२२।।

हे मूढ़ दिवस्पति! जिस भी कारण तुमने मेरी अवज्ञा की, मैं तुम्हें शाप देता हूँ कि तुम अपने राज्य से पदच्युत होकर अन्य लोक में निवास करने हेतु बाध्य होओगे।।२३।।

इस प्रकार से कुपित होकर इन्द्र को कहने पर भी उस मुनि ने उस राजा से कहा कि हे राजन्! आपको दृढ़पराक्रमी पुत्र होगा।।२४।।

वह तुम्हारा पुत्र इन्द्र के समान स्वरूपवान्, श्रीमान्, शस्त्र संचालन निपुण, प्रतापवान्, विद्या ज्ञान के प्रभाव से सम्पन्न, कर्मको जानने वाला, क्रूरकर्म करने वाला, दुर्जय और अत्यन्त बलशाली राजा सिद्ध होगा। एवम्प्रकारेण मुनि कहते हुए वहाँ से चले गये।।२५।।

तत्पश्चात् उन धर्मशील राजा प्रतीक ने अपनी भार्या विद्युत्प्रभा में गर्भ का आवाहन किया। उस रानी ने भी उपयुक्त समय पाकर अपना गर्भ प्रसव भी किया।।२६।।

तस्याः पुत्रः समभवद् दुर्जयाख्यो महाबलः। जातकर्मादिसंस्कारं तस्य चक्रे मुनिः स्वयम्।
दुर्वासा नाम तपसो तस्य देहमकल्मषः॥२७॥
तस्य चेष्टेर्बलेनासौ मुनेः सौम्यो बभूव ह। वेदशास्त्रार्थविद्यायां पारगो धर्मवान् शुचिः॥२८॥
या द्वितीयाऽभवत् पत्नी तस्य राज्ञो महात्मनः।
नाम्ना कीर्त्तिमती धन्या तस्याः पुत्रो बभूव ह।
नाम्ना सुद्युम्न इत्येवं वेदवेदाङ्गपारगः॥२९॥
अथ कालेन महता स राजा राजसत्तमः। सुप्रतीकः सुतं दृष्ट्वा दुर्जयं योग्यमन्तिके॥३०॥
आत्मनो वृद्धभावं च वाराणस्यधिपो बली। चिन्तयामास राज्यार्थं दुर्जयं प्रति भामिनि॥३१॥
एवं सञ्चिन्त्य धर्मात्मा तस्य राज्यं ददौ नृपः। स्वयञ्च चित्रकूटाख्यं पर्वतं स जगाम ह॥३२॥
दुर्जयोऽपि महद्राज्यं हस्त्यश्वरथवाजिभिः। संयोज्य चिन्तयामास राज्यवृद्धिं प्रति प्रभुः॥३३॥
एवं सञ्चिन्त्य मेधावी हस्त्यश्वरथपत्तिभिः। समेतां वाहिनीं कृत्वा उत्तरां दिशमाश्रितः।
तस्य चोत्तरतो देशाः सर्वे सिद्धा महात्मनः॥३४॥
भारताख्यमिदं वर्षं साधयित्वा सुदुर्जयः। ततः किंपुरुषं नाम वर्षं तेनापि साधितम्॥३५॥

उसको दुर्जय नामक महाबलशाली पुत्र की प्राप्ति हुई। स्वयं निष्पाप मुनि दुर्वासा ने उस शिशु शरीर का जातकर्म आदि संस्कार सम्पादित किया।।27।।

उन्हीं मुनि के तपबल से वह बालक वेदादि शास्त्रार्थ विषयक विद्याओं में पारङ्गत, धर्मवान्, सौम्य और पवित्र हुआ।।२८।।

फिर उस महात्मा राजा की जो कीर्त्तिमति नाम की दूसरी धन्या पत्नि थी, उसमें भी सुद्युम्न नामक वेदवेदाङ्ग पारगामी पुत्र उत्पन्न हुआ।।२९।।

एतदनन्तर बहुत समय व्यतीत होने के पश्चात् बलशाली, श्रेष्ठों में श्रेष्ठ राजा काशी नरेश राजा सुप्रतीक ने अपनी समीप में उपस्थित पुत्र दुर्जय को सुयोग्य अनुभव करते हुए एवं हे भामिनि! साथ ही अपनी वृद्धावस्था का भी अनुमान कर उस दुर्जय पुत्र को अपना राज्य सौंपने का विचार बनाने लगा।।३०-३१।।

इस प्रकार के विचार अपने मन में उत्पन्न होने पर उस धर्मात्मा राजा ने उसे अपना राज्य प्रदान कर स्वयं चित्रकूट नामक पर्वत पर चल गये।।३२।।

इधर राजा दुर्जय ने भी अपने महान् राज्य की अभिवृद्धि की इच्छा से उस महान् राज्य को हाथी, घोड़े, रथ आदि से सम्पन्न करने का विचार किया।।३३।।

इस प्रकार सोचकर वह मेधावी राजा ने हाथी, घोड़े आदि से युक्त पैदल सेना लेकर उत्तर दिशा की ओर गया और उस दिशा के सभी देश को उस महात्मा राजा ने अधिगत कर लिया।।३४।।

इस क्रम में उस राजा दुर्जय ने भारत नामक देश को अपने अधीन करते हुए किंपुरुष नाम के वर्ष या देश पर भी अपना अधिकार स्थापित कर लिया।।३५।।

ततः परतरं चान्यद्धरिवर्षं जिगाय सः। रम्यं हिरण्यमयं चापि कुरुभद्राश्वमेव च।
इलावृतं मेरुमध्यमेतत् सर्वं जिगाय सः॥३६॥
जित्वा जम्ब्वाख्यमेतद्धि द्वीपं यावदसौ नृपः। जगाम देवराजानं जेतुं सर्वं सुरान्वितम्॥३७॥
मेरुपर्वतमारुह्य देवगन्धर्वदानवान्। गुह्यकान् किन्नरान् दैत्यांस्ततो ब्रह्मसुतो मुनिः।
नारदो दुर्जयजयं देवराजाय शंसत॥३८॥
तत इन्द्रस्त्वरायुक्तो लोकपालैः समन्वितः। जगाम दुर्जयं हन्तुं सोऽचिरेणास्त्रनिर्ज्जितम्।
विहाय पर्वतं मेरुं मर्त्यलोकमिहागतः॥३९॥
पूर्वदेशे च देवेन्द्रो लोकपालैः समं प्रभुः। स्थितवांस्तस्य सुमहच्चरितं सम्भविष्यति॥४०॥
दुर्जयश्च सुराञ्जित्वा यावत् प्रतिनिवर्त्तते। गन्धमादनपृष्ठे तु स्कन्धावारनिवेशनम्।
कृत्वाऽवस्थितसम्भारमागतौ तापसौ तु तम्॥४१॥
तावागतावथाब्रूतां राजन् दुर्ज्जय लोकपाः।
निवारितास्त्वया सर्वं लोकपालैर्विना जगत्।
न प्रवर्त्तेत तस्मान् नौ देहि तत्पदमुत्तमम्॥४२॥

तत्पश्चात् उस राजा ने उसके बाद के देश हरिवर्ष को भी जीत लिया। फिर उसने हिरण्मय कुरुवर्ष, भद्राश्ववर्ष, हलावृत और मेरु मध्य भाग के क्षेत्र आदि को भी जीता।।३६।।

वह राजा इस तरह जम्बू नाम के द्वीप को अपने अधीन करते हुए सभी देवताओं से युक्त देवराज को जीतने के लिए प्रयत्नशील हुआ।।३७।।

वह राजा दुर्जय जब मेरु नाम के पर्वत पर चढ़कर देवों, गन्धर्वों, दानवों, यक्षों, किन्नरों और दैत्यों को जीतने हेतु जाने को हुआ, उस समय ब्रह्मपुत्र नारद मुनि ने देवराज इन्द्र से दुर्जय की विजय यात्रा की गाथा का समाचार दिया।।३८।।

तब इन्द्र अतिशीघ्रता से लोकपालों के सहित राजा दुर्जय को मारने हेतु पहुँच गया। परन्तु वह राजा दुर्जय ने तत्काल ही अपने अस्त्रों से इन्द्र को परास्त कर दिया, फिर देवराज मेरु पर्वत को छोड़कर मर्त्यलोक में भागने के लिए बाध्य हो गया।।३९।।

वह प्रभु देवेन्द्र लोकपालों के साथ पूर्वदिशा के देश में निवास करने लगे, जहाँ उसका महान् चरित्र सम्भव होगा।।४०।।

इस तरह देवताओं को जीतकर जब दुर्जय वापस आने लगा, उस समय वह गन्धमादन पर्वत पर अपनी सैनिकों सहित पड़ाव डालकर सबको व्यवस्थित कर ही रहा था कि उसी समय उसके पास दो तपस्वी आ पहुँचे।।४१।।

वे दोनों आगन्तुक तपस्वियों ने कहा—हे राजन् दुर्जय! आपने लोकपालों को हटा दिया है। इस तरह विना लोकपालों का अखिल संसार का संचालन नहीं हो सकता, अतः आप हम दोनों को लोकपालों के श्रेष्ठ पद पर नियुक्त कर दें।।४२।।

एवमुक्ते ततस्तौ तु दुर्जयः प्राह धर्मवित्। कौ भवन्ताविति ततस्तावूचतुररिन्दमौ।
विद्युत्सुविद्युन्नामानावसुराविति मानद॥४३॥
त्वया सम्प्रति चेच्छामो धर्म्यं सत्सु सुसंस्कृतौ। लोकपालमतं सर्वमावां कुर्म सुदुर्जय॥४४॥
एवमुक्ते दुर्ज्जयेन तौ स्वर्गे सन्निवेशितौ। लोकपालौ कृतौ सद्यस्ततोऽन्तर्धानं जग्मतुः॥४५॥
तयोरपि महत्कर्म चरितं च धराधरे। भविष्यति महाराजो दुर्जयो मन्दरोपरि॥४६॥
धनदस्य वनं दिव्यं दृष्ट्वा नन्दनसन्निभम्। मुदा बभ्राम रम्योऽस्मिन् स यावद्राजसत्तमः॥४७॥
तावत्सुवर्णवृक्षाधः कन्याद्वयमपश्यत। अतीवरूपसम्पन्नमतीवाद्भुतदर्शनम्॥४८॥
दृष्ट्वा तु विस्मयाविष्टः क इमे शुभलोचने। एवं सञ्चिन्त्य यावत् स क्षणमेकं व्यवस्थितः।
तस्मिन् वने तावदुभौ तापसौ सोऽवलोकयत्॥४९॥
तौ दृष्ट्वा सहसा राजा ययौ प्रीत्या परां मुदम्। अवतीर्य द्विपात् तूर्णं नमश्चक्रे तयोः स्वयम्॥५०॥
उपविष्टः स ताभ्यां तु कौश्ये दत्ते वरासने। पृष्टः कस्त्वं कुतश्चासि कस्य वा किमिह स्थितः॥५१॥
तौ प्रहस्याब्रवीद् राजा सुप्रतीकेति विश्रुतः। तस्य पुत्रः समुत्पन्नो दुर्जयो नाम नामतः॥५२॥

उन दोनों के द्वारा इस तरह कहे जाने पर वह धर्मवदि् राजा ने उनसे कहा—आप दोनों कौन हैं? फिर उन दोनों अरिदमन करने वाले ने कहा—हे मानद! हम दोनों विद्युत् और सुविद्युत् नाम के असुर हैं।।४३।।

हे श्रेष्ठ राजा दुर्जय! इस समय हम दोनों सद्पुरुषों में सुसंस्कृत आपसे धर्म सम्बन्धी प्रयोजन साधन करना चाहते हैं। हम दोनों लोकपालों का सभी कार्य सम्पादित करेंगे।।४४।।

इस प्रकार से कहे जाने पर राजा दुर्जय ने उन दोनों को स्वर्ग में निवेशित करते हुए लोकपाल बना दिया। तत्पश्चात् वे दोनों शीघ्र ही वहाँ से अन्तर्धान कर गये।।४५।।

इन दोनों का भी महान् चरित्र आगे कहा जाएगा। हे धराधरे! फिर वह महाराजा दुर्जय मन्दराचल पर आ पहुँचा।।४६।।

वहाँ आकर वे श्रेष्ठ राजा नन्दनवन के समान कुबेर का दिव्य वन देखकर आनन्द के साथ जिस समय उस रमणीक वन में भ्रमणशील हुये।।४७।।

उस समय वहाँ एक सुवर्णवृक्ष के नीचे अत्यन्त सुन्दर रूपवती और अति अद्भुत शोभा सम्पन्न दो कन्याओं का दर्शन किया।।४८।।

उन दोनों को वहाँ देखकर आश्चर्ययुक्त होकर सुन्दर नेत्रों वाली ये दोनों कौन हैं? इस प्रकार सोचते हुए जैसे ही वह राजा दुर्जय क्षणमात्र को रुका, वैसे ही उसने उस वन में दो तपस्वियों को भी देखा।।४९।।

अचानक उन दोनों तपस्वियों को देखकर उस राजा दुर्जय को अतीव हर्ष का अनुभव हुआ। फिर वह तत्काल हाथी से उतरकर स्वयं उन दोनों तपस्वियों को नमस्कार किया।।५०।।

उन दोनों द्वारा प्रदत्त कौशेय वस्त्र पर वह जब बैठ गया, फिर तपस्वियों ने पूछा 'तुम कौन हो'? कहाँ से आये हो? किसके पुत्र हो? और यहाँ क्यों रुके हो?।।५१।।

उन दोनों से हँसते हुए राजा ने कहा—सुप्रतीक नाम का राजा था, उन्हीं का मैं दुर्जय नाम का पुत्र हूँ।।५२।।

पृथिव्यां सर्वराजानो जिगीषन्निह सत्तमौ। आगतोऽस्मि ध्रुवं चैव स्मर्त्तव्योऽहं तपोधनौ।
भवन्तौ कौ समाख्यातं ममानुग्रहकाङ्क्षया॥५३॥

तापसावूचतुः

आवां हेतृप्रहेत्राख्यौ मनोः स्वायम्भुवः सुतौ। आवां देवविनाशाय गतौ स्वो मेरुपर्वतम्॥५४॥
तत्रावयोर्महासैन्यं गजाश्वरथसङ्कुलम्। जिगाय सर्वदेवानां शतशोऽथ सहस्रशः॥५५॥
ते च देवा महत्सैन्यं दृष्ट्वा सैन्यं निपातितम्। असुरैरुज्झितप्राणं ततस्ते शरणं गताः॥५६॥
क्षीराब्धौ यत्र देवेशो हरिः शेते स्वयं प्रभुः। तत्र विज्ञापयामासुः सर्वं प्रणतिपूर्वकम्॥५७॥
देवदेव हरे सर्वं सैन्यं त्वसुरसत्तमैः। पराजितं परित्राहि भीतं विह्वललोचनम्॥५८॥
त्वया देवासुरे युद्धे पूर्वं त्राता स्म केशव। सहस्रबाहो क्रूरस्य समरे कालनेमिनः॥५९॥
इदानीमपि देवेश असुरौ देवकण्टकौ। हेतृप्रहेतृनामानौ बहुसैन्यपरिच्छदौ।
तौ हत्वा त्राहि नः सर्वान् देवदेव जगत्पते॥६०॥
एवमुक्तस्ततो देवो विष्णुर्नारायणः प्रभुः। अहं यास्यामि तौ हन्तुमित्युवाच जगत्पतिः॥६१॥

हे उत्तम पुरुषों! पृथ्वी के समस्त राजाओं को जीतते हुए मैं यहाँ तक आ पहुँचा हूँ। हे तपस्वियों! आप लोगों को भी मैं कभी-कभी अनुग्रहपूर्वक याद कर सकूँगा। अतः आप दोनों कौन हैं? मुझे ये सब कुछ बतायें, बड़ी कृपा होगी।।५३।।

तपस्वियों ने कहा—हम दोनों भाई स्वायम्भुव मनु के हेतृ और प्रहेतृ नामक दो पुत्र हैं। एक बार हम दोनों देवों के विनाश करने हेतु मेरुपर्वत पर गये हुये थे।।५४।।

उस स्थान पर हाथी, घोड़ों और रथों के सहित हमारी विशाल सेना ने सैकड़ों-सहस्रों की संख्या में समस्त देवों को जीत लिया।।५५।।

इस प्रकार असुरों से मारी गयी विशाल सेना को देखकर समस्त डरे हुये देवगण श्रीविष्णु की शरण में आ पहुँचे।।५६।।

जहाँ पर क्षीरसागर में स्वयं श्रीहरि देवेश शयन किया करते हैं, वहाँ आकर समस्त देवगण ने सविनय उनसे प्रार्थना किया।।५७।।

हे देवाधिदेव हरि! श्रेष्ठ असुरों से पराजित, भयाकूल और विह्वल नेत्रों वाली हमारी सम्पूर्ण सेना की रक्षा करें।।५८।।

हे केशव! देवासुर संग्राम के समय सहस्रभुज कालनेमि से युद्ध करने के समय आपने हमारी रक्षा की थी।।५९।।

हे देवेश! इस समय भी विशाल सेना से सम्पन्न हेतृ और प्रहेतृ नाम के दो असुर भाई देवों के लिए कण्टक रूप होकर उपस्थित हैं। हे देवाधिदेव! जगत्पति! उन दोनों को मारकर हमारी रक्षा करें।।६०।।

देवों द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर जगत्पति प्रभु श्रीविष्णु नारायण देव ने कहा—ठीक है, मैं उन दोनों असुर भाईयों को मारने अवश्य जाऊँगा।।६१।।

एवमुक्तास्ततो देवा मेरुपर्वतसन्निधौ। प्रतस्थुस्तेऽथ मनसा चिन्तयन्तो जनार्दनम्॥६२॥
तैः सञ्चिन्तितमात्रस्तु देवश्चक्रगदाधरः। आवयोः सैन्यमाविश्य एक एव महाबलः॥६३॥
एकधा दशधात्मानं शतधा च सहस्रधा। लक्षधा कोटिधा कृत्वा स्वभूत्वा च जगत्पतिः॥६४॥
एवं स्थिते देववरे अस्मत्सैन्ये महाबलः। यः कश्चिदसुरो राजन्नावयोर्बलमाश्रितः।
स हतः पतितो भूमौ दृश्यते गतचेतनः॥६५॥
एवं तत् सहसा सैन्यं मायया विश्वमूर्त्तिना। निहतं साश्वकलिलं पत्तिद्विपसमाकुलम्॥६६॥
चतुरङ्गं बलं सर्वं हत्वा देवो रथाङ्गधृक्। आवां शेषावथो दृष्ट्वा गतोऽन्तर्द्धानमीश्वरः॥६७॥
आवयोरीदृशं कर्म दृष्टं देवस्य शार्ङ्गिणः। ततस्तमेव शरणं गतावाराधनाय वै॥६८॥
त्वं चास्मन्मित्रतनयः सुप्रतीकात्मजो नृपः। इमे च आवयोः कन्ये गृहाण मनुजेश्वर।
हेतृकन्या सुकेशी तु मिश्रकेशी प्रहेतृणः॥६९॥
दुर्जयस्त्वेवमुक्तस्तु हेतृणा ते उभे शुभे। कन्ये जग्राह धर्मेण भार्यार्थं मनुजेश्वरः॥७०॥
ते लब्ध्वा सहसा राजा मुदा परमया युतः। आजगाम स्वकं राष्ट्रं निजसैन्यसमावृतः॥७१॥

इस तरह से श्रीविष्णु से आश्वस्त होकर देवगण मेरुपर्वत के नजदीक आकर अपने-अपने मन से जनार्दन श्रीविष्णु का चिन्तन करने लगे।।६२।।

उन देवताओं द्वारा इस तरह चिन्तन करने मात्र से महाबली चक्रगदाधारी देव अकेले ही हमारी सेनाओं में प्रवेश कर अपनी विभूति से उन जगत्पति ने अपने आपको एक, दश, सौ, सहस्र, लक्ष, कोटि आदि रूपों में प्रकट कर लिया।।६३-६४।।

हे राजन्! उन श्रेष्ठ देव द्वारा इस तरह से अनेक रूपों में प्रकट हो जाने पर हमारी सेना के जो कोई भी महाबली असुर सेना था, उन्हें मार-मार कर पृथ्वी पर इस तरह फेंक दिया कि वे सभी निष्प्राण-सा हो गये।।६५।।

एवम्प्रकारेण अचानक अपनी माया से उन विश्वमूर्त्ति श्रीहरि ने अश्वों, हाथियों और पैदल विशाल हमारी सम्पूर्ण सेना को मार दिया।।६६।।

लेकिन वे ईश्वर चक्रधारी श्रीविष्णु देव हमारी समस्त चतुरङ्गिणी सेना को मारकर और हम दोनों भाईयों को जीवित देखकर भी अन्तर्धान कर गये।।६७।।

तत्पश्चात् श्रीविष्णु देव के इस तरह के कार्यों को देखकर हम दोनों भाईयों ने भी उनकी आराधना करने का लक्ष्य लेकर उन्हीं के शरण में चले गये।।६८।।

हे राजन्! आप तो मेरे मित्र सुप्रतीक के पुत्र हैं। ये दोनों मेरी कन्यायें हैं। अतः हे राजन्! इन दोनों को आप ग्रहण करें। इनमें से एक हेतृ की पुत्री सुकेशी और दूसरी मेरे भाई प्रहेतृ की पुत्री मिश्रकेशी है।।६९।।

इस प्रकार से हेतृ के द्वारा कहे जाने पर राजा दुर्जय ने उन दोनों सुन्दर कन्याओं को धर्मपूर्वक अपनी भार्या के रूप में स्वीकार कर लिया।।७०।।

उन कन्याओं को अधिगत कर राजा दुर्ज्जय अकस्मात् अत्यन्त आनन्द के सहित अपनी सेना को लेकर अपनी राजधानी लौट आया।।७१।।

ततः कालेन महता तस्य पुत्रद्वयं बभौ। सुकेश्याः प्रभवः पुत्रो मिश्रकेश्याः सुदर्शनः।।७२।।

स राजा दुर्जयः श्रीमाँल्लब्ध्वा पुत्रद्वयं शुभम्।
स्वयं कालान्तरे श्रीमाञ्जगामारण्यमन्तिके।।७३।।

तत्रस्थो वनजातीर्हि बधयन् वै भयङ्कराः। ददर्शारण्यमाश्रित्य मुनिं स्थितमकल्मषम्।।७४।।

तपस्यन्तं महाभागं नाम्ना गौरमुखं शुभम्। ऋषिवृन्दस्य गोप्तारं त्रातारं पापिनः स्वयम्।।७५।।

तस्याश्रमो विमलजलाविलेमरुत्सुगन्धिवृक्षप्रवरे द्विजन्मनः।
रराज जीमूत इवाम्बरान्महीमुपागतः प्रवरविमानवद गृहः।।७६।।

ज्वलन्मखाग्निप्रतिभासिताम्बरः सुशुद्धसंवासितवेशकुट्टकः।
शिष्यैः समुच्चारितसामनादकः सुरूपयोषिदृषिकन्यकाकुलः।
इतीदृशोऽस्यावसथो वराश्रमे सुपुष्पिताशेषतरुप्रसूनः।।७७।।

।।इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे दशमोऽध्यायः।।१०।।

तत्पश्चात् बहुत समय व्यतीत होने के बाद उन राजा दुर्जय को उन पत्नियों से दो पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें सुकेशी से उत्पन्न पुत्र 'सुप्रभ' एवं मिश्रकेशी का पुत्र 'सुदर्शन' था।।७२।।

इस प्रकार श्रीमान् राजा दुर्जय अपने सुन्दर-सुन्दर दो पुत्रों को प्राप्त कर कुछ समय और बीताने के बाद स्वयं नजदीक के ही वन में रहने चला गया।।७३।।

उस वन में रहते हुए उसने उसी वन में रहने वाले भयङ्कर वन्य जातियों का वध करने वाले एक निष्पाप मुनि को देखा।।७४।।

उस वन में इस प्रकार राजा ने गौरमुख नाम के सुन्दर महाभागी तपनिष्ठ और पापियों से अपनी और अन्य ऋषियों की रक्षा करने वाले मुनि को देखा।।७५।।

उस मुनि के आश्रम में निर्मल जल और सुगन्धित वायु प्रदान करने वाले वृक्षों और आकाश से पृथ्वी पर आच्छादित मेघ के समान श्रेष्ठ विमान तुल्य गृह शोभायमान था।।७६।।

श्रेष्ठ आश्रम, सुन्दर-सुन्दर ऋषि कन्याओं से सुसम्पन्न, यज्ञ की प्रज्वलित अग्नि से आकाश-सा प्रतीति कराने वाला, सुन्दर पत्थरों से अलंकृत शिष्यगणों के सामगान से प्रतिध्वनित, अनेक वृक्षों के खिले-खिले पुष्पों से सुशोभित और उसमें उस ऋषि का निवास स्थान था।।७७।।

।।इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में दुर्जय चरित में गौरमुख आश्रम वर्णन नामक दशवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ।।१०।।

❖❖❖

एकादशोऽध्यायः

अथ गौरमुखेण दुर्जयस्य सत्कारस्तथा तस्य मणिलोभवशाद्वधञ्च

श्रीवराह उवाच

ततस्तमीदृशं दृष्ट्वा तदा गौरमुखाश्रमम्। दुर्जयश्चिन्तयामास रम्यमाश्रममण्डलम्।।१।।
प्रविशाम्यत्र पश्यामि ऋषीन् परमधार्मिकान्। चिन्तयित्वा तदा राजा प्रविवेश तमाश्रमम्।।२।।
तस्य प्रविष्टस्य ततो राज्ञः परमहर्षितः। चकार पूजां धर्मात्मा तदा गौरमुखो मुनिः।।३।।
स्वागतादिक्रियाः कृत्वा कथान्ते तं महामुनिः। स्वशक्त्याहं नृपश्रेष्ठ सानुगस्य तु भोजनम्।।४।।
करिष्यामि प्रमुच्यन्तां साधु वाहा इति द्विजः। एवमुक्त्वा स्थितस्तूष्णीं स मुनिः शंसितव्रतः।।५।।

राजाऽपि तस्थौ तद्भक्त्या स्वसहायैः समन्वितः।
अक्षौहिण्यो बलस्यास्य पञ्चमात्रास्तदा स्थिताः।
अयं च तापसः किं मे दास्यते भोजनं त्विह।।६।।

निमन्त्र्य दुर्जयं विप्रस्तदा गौरमुखो नृपम्। चिन्तयामास किं चास्य मया देयं तु भोजनम्।।७।।

अध्याय–११

गौरमुख द्वारा दुर्जय का सत्कार और मणिलोभी दुर्जय का वध

श्री भगवान् वराह ने कहा—एतदनन्तर जब गौरमुख के इस तरह के सुन्दर रमणिक आश्रम को देखकर राजा दुर्जय ने सोचा कि क्यों ने इस रम्य आश्रम मण्डल में चलकर परमधार्मिक ऋषियों का दर्शन किया जाय। इस प्रकार से विचार कर लेने के बाद राजा दुर्जय उस आश्रम में प्रवेश किया।।१-२।।

तब परमहर्षित धर्मात्मा मुनि गौरमुख ने उस प्रवेश करने वाले राजा का स्वागत-सत्कार किया।।३।।

स्वागत सत्कार आदि कर्म के साथ कुशल क्षेम जैसी वार्त्ता के पश्चात् उस महामुनि ने उस राजा दुर्जय से कहा—हे नृपश्रेष्ठ! मैं अपनी शक्ति के अनुरूप आपके समस्त अनुचरों के सहित आपको भोजन कराना चाहता हूँ। अतः आप लोग अपने-अपने सुन्दर-सुन्दर वाहनों को इसी स्थान पर रहने दें। इस प्रकार से कहने के बाद तीव्र व्रत धारण करने वाले वे ब्रह्मण मुनि शांत हो गये।।४-५।।

वहाँ राजा दुर्जय भी उनकी आह्लादकारी प्रेमभाव से अपने सहायकों के सहित उस समय उस आश्रम में ठहर गया। उस काल में उस राजा दुर्जय की पाँच अक्षौहिणी सेना थी। फिर वह राजा ने इस प्रकार सोचा कि यह तपस्वी ब्राह्मण इस समय हम लोगों को क्या भोजन देगा।।६।।

उक्त प्रकार राजा दुर्जय अपने हृदय में सोचता रहा, इधर उस राजा दुर्जय को आमन्त्रित करने के बाद वह ब्राह्मण गौरमुख सोचने लगा कि आखिर मैं इन लोगों को क्या भोजन हेतु परोसूँ?।।७।।

एवं चिन्तयतस्तस्य महर्षेर्भावितात्मनः। स्थितो मनसि देवेशो हरिर्नारायणः प्रभुः॥८॥
ततः संस्मृत्य मनसा देवं नारायणं तदा। तोषयामास गङ्गायां प्रविश्य मुनिसत्तमः॥९॥

धरण्युवाच।

कथं गौरमुखो विष्णुं तोषयामास भूधर। एतन्मे कौतुकं श्रोतुं सम्यगिच्छा प्रवर्तते॥१०॥

श्रीवराह उवाच।

नमोऽस्तु विष्णवे नित्यं नमस्ते पीतवाससे। नमस्ते चाद्यरूपाय नमस्ते जलरूपिणे॥११॥
नमस्ते सर्वसंस्थाय नमस्ते जलशायिने। नमस्ते क्षितिरूपाय नमस्ते तेजसात्मने॥१२॥
नमस्ते वायुरूपाय नमस्ते व्योमरूपिणे। त्वं देवः सर्वभूतानां प्रभुस्त्वमसि हृच्छयः॥१३॥
त्वमोङ्कारो वषट्कारः सर्वत्रैव च संस्थितः। त्वमादिः सर्वदेवानां तव चादिर्न विद्यते॥१४॥
त्वं भूस्त्वं च भुवो देव त्वं जनस्त्वं महः स्मृतः। त्वं तपस्त्वं च सत्यं च त्वयि देव चराचरम्॥१५॥

त्वत्तो भूतमिदं सर्वं विश्वं त्वदुद्भूता ऋगादयः।
त्वत्तः शास्त्राणि जातानि त्वत्तो यज्ञाः प्रतिष्ठिताः॥१६॥

त्वत्तो वृक्षा वीरुधश्च त्वत्तः सर्वा वनौषधीः। पशवः पक्षिणः सर्पास्त्वत्त एव जनार्दन॥१७॥

इस प्रकार से चिन्तामग्न भावुक हृदय वाले उन महर्षि के मन में देवेश श्रीहरि नारायण स्थित हो चले।।८।।

तत्पश्चात् उस ब्राह्मण गौरमुख ने उस काल में अपने मन में श्रीहरि नारायण का स्मरण किया और गङ्गा में प्रवेश कर उनकी स्तुति करने लगा।।९।।

धरणी ने कहा—हे भूधर! उस गौरमुख ब्राह्मण ने श्रीहरि विष्णु को किस प्रकार संतुष्ट किया? कौतुकवश यह मुझे सम्यक् रूप से सुनने की आकांक्षा हो रही है।।१०।।

श्री भगवान् वराह ने कहा—श्री विष्णु को प्रणाम है। पीताम्बर धारण करने वाले को नित्य प्रणाम है। आदि रूप वाले और जल रूप धारण करने वाले को प्रणाम है।।११।।

सर्वत्र स्थित रहने वाले, जल में शयन करने वाले श्रीविष्णु नारायण को प्रणाम है। पृथ्वी और तेज रूप धारी श्री विष्णु को प्रणाम है।।१२।।

वायुरूपधारी को प्रणाम, आकाश रूपधारी को प्रणाम। आप समस्त जीवों के प्रभु उन सबके हृदय में स्थित रहने वाले देव हैं।।१३।।

आप ओंकार और वषट्कार स्वरूप एवं सभी जगह स्थित रहने वाले हैं। आप सभी देवों के भी आदि हैं, लेकिन आपकी आदि आप स्वयं हैं।।१४।।

हे देव! आप ही भूलोक, आप ही भुवर्लोक, आप ही जनलोक, आप ही महलोक, आप ही तपोलोक और आप ही तो सत्य लोक माने जाते हैं। हे देव! आप में चराचर जगत् स्थित है।।१५।।

आप से ही इस समस्त विश्व की उत्पत्ति हुई है। आप से ही ऋग् आदि चार वेद उत्पन्न हुये हैं। आप ही से सभी शास्त्र उत्पन्न हुए हैं तथा आप से ही समस्त यज्ञ सुप्रतिष्ठित है।।१६।।

आप से ही समस्त प्रकार के वृक्ष और वनस्पतियाँ एवं आप से ही समस्त प्रकार की वनौषधियाँ भी उत्पन्न हैं। हे जनार्दन! आप से ही सभी पशु, पक्षी, सर्प आदि की उत्पत्ति हुई है।।१७।।

ममापि देवदेवेश राजा दुर्जयसंज्ञितः। आगतोऽभ्यागतस्तस्य आतिथ्यं कर्त्तुमुत्सहे॥१८॥
तस्य मे निर्धनस्याद्य देवदेव जगत्पते। भक्तिनम्रस्य देवेश कुरुष्वान्नाद्यसञ्चयम्॥१९॥
यं यं स्पृशामि हस्तेन यं यं पश्यामि चक्षुषा। वृक्षं वा तृणकन्दं वा तत्तदन्नं चतुर्विधम्॥२०॥
तथा त्वन्यतमं वापि यद् ध्यातं मनसा मया। तत् सर्वं सिद्ध्यतां मह्यं नमस्ते परमेश्वर॥२१॥

श्रीवराह उवाच

इति स्तुत्या तु देवेशस्तुतोष जगतां पतिः। मुनेस्तस्य स्वकं रूपं दर्शयामास केशवः॥२२॥
उवाच सुप्रसन्नात्मा ब्रूहि विप्र वरं परम्। एवं श्रुत्वाक्षिणी यावदुन्मीलयति वै मुनिः॥२३॥
तदा शङ्खगदापाणिः पीतवासा जनार्दनः। गरुडस्थोऽपि तेजस्वी द्वादशादित्यसप्रभः॥२४॥
दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद् युगपदुत्थिता। यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः॥२५॥
तत्रैकस्थं जगत् कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा। ददर्श स मुनिर्देवि विस्मयोत्फुल्ललोचनः॥२६॥
जगाम शिरसा देवं कृताञ्जलिरथाब्रवीत्। यदि मे वरदो देवो भूयाद् भक्तस्य केशव॥२७॥

हे देवदेवेश! दुर्जय नामक राजा मेरे आश्रम में अभ्यागत के रूप में आया हुआ है। मैं उनका आतिथ्य करने के लिए उत्सुक हूँ।।१८।।

हे देवदेव! जगत्पते! देवेश!! अतः आज भक्ति से नम्र मुझ जैसे निर्धन के आश्रम को अन्नादि से परिपूर्ण कर दें।।१९।।

इस समय मैं जिस-किसी वृक्ष, तृण अथवा मूल को हाथ से स्पर्श करता जाऊँ उन्हें नेत्र से देखूँ, वे सभी चार प्रकार के अन्न हो जाय।।२०।।

अथवा मैंने जो कुछ भी अपने मन से चिन्तन किया है, वे सब ही पूर्ण हो जाय। हे परमेश्वर! आपको प्रणाम है।।२१।।

श्री भगवान् वराह ने कहा—इस प्रकार इस स्तुति से जगत्पति देवेश संतुष्ट हो गये। और फिर श्री केशव ने उस पुण्यात्मा मुनि को अपने स्वरूप का दर्शन कराया।।२२।।

अति संतुष्ट होकर श्री नारायण देव ने कहा—'हे विप्रवर! तुम अपनी इच्छानुरुप वर माँग लो। इस प्रकार सुनते ही मुनि ने जब अपने नेत्रों को खोला।।२३।।

उस समय उसके सामने अपने हाथों में शङ्ख और गदाधारी, पीताम्बरधारी, गरुड़ पर स्थित द्वादश आदित्य तुल्य प्रभावान् तेजस्वी जनार्दन साक्षात् उपस्थित हैं।।२४।।

उस समय यदि स्वर्ग में भी एक साथ हजारों सूर्य प्रकाशमान हों, ऐसे में होने वाले प्रकाश के समान उस महात्मा का प्रकाश था।।२५।।

हे देवि! आश्चर्यचकित नेत्रों वाले उस मुनि ने उन एक देव के ही अन्दर स्थित एवं अनेक रूपों में पृथक् समस्त चराचर जगत् को देख लिया।।२६।।

फिर उसने अञ्जलिबद्ध होकर उन नारायण देव को अपने मस्तक के बल प्रणाम करते हुए कहा—हे केशव! आप यदि मुझ जैसे को वर देना ही चाहते हैं—।।२७।।

इदानीमेष नृपतिर्यथा सबलवाहनः। ममाश्रमे कृताहारः श्वः प्रयाता स्वकं गृहम्॥२८॥
इत्युक्तस्तस्य देवोशो वरदः संबभूव ह। चित्तसिद्धिं ददौ तस्मै मणिं च सुमहाप्रभम्॥२९॥
तं दत्त्वान्तर्दधे देवः स च गौरमुखो मुनिः। जगाम चाश्रमं पुण्यं नाना ऋषिनिषेवितम्॥३०॥
तत्र गत्वा स विप्रेन्द्रश्चिन्तयामास वै मुनिः। हिमवच्छिखराकारं महाभ्रमिव चोन्नतम्।
शशाङ्करश्मिसङ्काशं गृहं वै शतभूमिकम्॥३१॥
तादृशानां सहस्राणि लक्षकोट्यश्च सर्वशः। गृहाणि निर्ममे विप्रो विष्णोर्लब्धवरस्तदा॥३२॥
प्राकाराणि ततोपान्ते तल्लग्नोद्यानकानि च। कोकिलाकुलघुष्टानि नानाद्विजवराणि च॥३३॥
चम्पकाशोकपुन्नागनागकेशरवन्ति च॥३३॥
नानाजात्यास्तथा वृक्षा गृहोद्यानेषु सर्वशः। हस्तिनां हस्तिशालाश्च तुरगाणां च मन्दुराः॥३४॥
चकार सञ्चयान् विप्रो नानाभक्ष्याणि सर्वशः।
भक्ष्यं भोज्यं तथा लेह्यं चोष्यं बहुविधं तथा।
चकारान्नाद्यनिचयं हेमपात्र्यश्च सर्वतः॥३५॥
एवं कृत्वा स विप्रस्तु राजानं भूरितेजसम्। उवाच सर्वसैन्यानि प्रविशन्तु गृहानिति॥३६॥
एवमुक्तस्ततो राजा तद्गृहं पर्वतोपमम्। प्रविवेशान्तरेष्वन्ये भृत्या विविशुराशु वै॥३७॥

तो आज यह राजा दुर्जय अपनी वाहिनी सेना के साथ मेरे आश्रम में भोजन कर संतुष्ट हो कल अपने गृह जाय, ऐसा कुछ वरदान दीजिए।।२८।।

उस मुनि के इस प्रकार से कहे जाने पर उन देवेश ने उसको वर प्रदान करते हुए एक चित्तसिद्धि नाम का अति प्राभासम्पन्न मणि उपलब्ध कर दिया।।२९।।

इस तरह चित्तसिद्धिमणि प्रदान कर भगवान् अन्तर्धान कर गये। फिर वह गौरमुख मुनि अनेक ऋषियों से सेवित अपने आश्रम में आ गये।।३०।।

आश्रम में आकर उस ब्राह्मण मुनि श्रेष्ठ ने हिमालय शिखर की आकृति और महातेज के समान समुन्नत तथा चन्द्रकिरणों के सदृश सौ मणियों वाले गृह का चिन्तन किया।।३१।।

फिर इस प्रकार श्रीविष्णु से वरदान पाने वाले उस गौरमुख मुनि ने उसी तरह के सभी जगह, हजारों, लाखों क्या करोड़ों गृहों का निर्माण करा दिया। उन भवनों के समीप कोकिल स्वर निनादित, विविध पक्षियों से सम्पन्न चम्पक, अशोक, पुन्नाग एवं नागकेशर के पेड़ों से संयुक्त वाटिका वन भी बन गये।।३२-३३।।

उन गृहोद्यानों-वाटिकाओं में सभी जगह विविध जातियों के वृक्ष तो थे ही, हाथियों, घोड़ों के लिए भी हस्तिशाला और घुड़साल भी बने हुए थे।।३४।।

उन गृहवाटिकाओं में हर जगह अनेक प्रकार के भक्ष्य, भोज्य, लेह्य और चूसने योग्य खाद्य पदार्थों का संचय भी किया हुआ था और साथ ही सर्वत्र अन्नादि एवं स्वर्णपात्रों का ढेर उपलब्ध करा दिया गया था।।३५।।

इस प्रकार से साधन सम्पन्न हो जाने के पश्चात् उस ब्राह्मण ने उस तेजस्वी राजा से कहा—हे राजन्! सभी प्रकार के सेनाओं को अपने-अपने अनुकूल गृहों में प्रवेश करने का आदेश दें।।३६।।

तत्पश्चात् इस प्रकार से मुनि द्वारा कहे जाने पर सर्वप्रथम राजा एक पर्वततुल्य गृह में प्रवेश किया, फिर अन्यान्य सेवकों ने भी तत्काल ही अन्यान्य गृहों में प्रवेश कर गये।।३७।।

ततस्तेषु प्रविष्टेषु तदा गौरमुखो मुनिः। प्रगृह्य तं मणिं दिव्यं राजानं चेदमब्रवीत्॥३८॥
मज्जनाभ्यवहारार्थं पथि श्रमकृते तथा। विलासिनीस्तथा दासान् प्रेषयिष्यामि ते नृप॥३९॥
एवमुक्त्वा स विप्रेन्द्रस्तं मणिं वैष्णवं तदा। एकान्ते स्थापयामास राज्ञस्तस्य प्रपश्यतः॥४०॥
तस्मिन् स्थापितमात्रे तु मणौ शुद्धसमप्रभे। निश्चेरुर्योषितस्तत्र दिव्यरूपाः सहस्त्रशः॥४१॥
सुकुमाराङ्गरागाद्याः सुकुमारा वराङ्गनाः। सुकपोलाः सुचार्व्यङ्ग्यः सुकेशान्ताः सुलोचनाः।
काश्चित्सौवर्णपात्रीश्च गृहीत्वा सम्प्रतस्थिरे॥४२॥
एवं यौषिद्गणास्तत्र नराः कर्मकरास्तथा। निर्जग्मुस्तस्य नृपतेः सर्वे भृत्या नृपस्य ह।
केवलं भोजनं पूर्वं परिधानं च सर्वशः॥४३॥
ताः स्त्रियः सर्वभृत्यानां राजमार्गेण मज्जनम्।
ददुस्ते च नराश्वानां हस्तिनां च त्वरान्विताः॥४४॥
नानाविधानि तूर्याणि तत्रावाद्यन्त सर्वशः। मज्जने नृपतेस्तत्र ननृतुश्चान्ययोषितः।
अपराश्च जगुस्तत्र शक्रस्येव प्रमज्जतः॥४५॥
एवं दिव्योपचारेण स्नात्वा राजा महामनाः। चिन्तयामास राजेन्द्रो विस्मयाविष्टचेतनः।
किमिदं मुनिसामर्थ्यं तपसो वाऽथ वा मणेः॥४६॥

उन सभी को गृहों में प्रवेश कराने के बाद उस दिव्यमणि के सहित गौरमुख मुनि ने उस राजा से इस प्रकार कहा—।।३८।।

हे राजन्! आपके मार्गश्रम को दूर कराने हेतु और स्नान सहित भोजन आदि कार्य के लिए हावभाव युक्त स्त्रियों और दासों को भेज दे रहा हूँ।।३९।।

इस प्रकार से कहकर वह ब्राह्मण श्रेष्ठ विष्णु से वर प्राप्त उस शुभ वैष्णव मणि को उस राजा के देखते हुए एकान्त में स्थापित कर दिया।।४०।।

इस तरह उस मणि के वहाँ स्थापित होते ही दिव्य रूप और गुण सम्पन्न सहस्त्र नारियाँ प्रकट हो गयीं।।४१।।

वे सभी नारियाँ सुन्दर अङ्ग-रागादि से सम्पन्न सुकुमार श्रेष्ठ अङ्गों वाली, सुन्दर सुकोमल, कपोल वाली, मनोहर अवयवों वाली, सुन्दर केशराशि और सुन्दर नयनों वाली थीं, जिनमें से कुछ सुवर्ण पात्र लिये उपस्थित हुईं।।४२।।

इस तरह वहाँ पर स्त्रियों का समूह तथा कार्यवाहक मनुष्य भी उत्पन्न हो गये। उस राजा के सभी सेवकों ने पहले केवल राजा के भोजन और वस्त्र से सम्बन्धित कार्यों को सम्पन्न किया।।४३।।

तत्पश्चात् उन स्त्रियों ने शीघ्रतापूर्वक राजकीय विधि से ही समस्त सेवकों, मनुष्यों, घोड़ो, हाथियों को भी स्नान कराया।।४४।।

उस जगह पर सर्वत्र विविध प्रकार के बाजे बज रहे थे। कुछ स्त्रियाँ राजा के स्नान करते समय नृत्य कर रहीं थीं। कुछ अन्य स्त्रियाँ इस तरह गीत गा रही थी, जैसे वास्तव में देवेन्द्र स्नान कर रहे हों।।४५।।

इस प्रकार से राजा महामना दुर्जय दिव्य उपचारों से स्नान कर विस्मयपूर्वक यह सोचने के लिए विवश हो गया कि यह मुनि का अथवा उसकी तपदग्धपुण्य का अथवा इस चित्तसिद्धमणि का प्रभाव है।।४६।।

एवं स्नात्वा शुभे वस्त्रे परिधायोत्तमे तथा। विविधान्नं तु विधिना बुभुजे स नृपोत्तमः।।४७।।
यथा च नृपतेः पूजा कृता तेन महर्षिणा। तद्वद् भृत्यजनस्यापि चकार मुनिसत्तमः।।४८।।
यावत् स राजा बुभुजे सभृत्यबलवाहनः। तावदस्तगिरिं भानुर्जगामारुणसप्रभः।।४९।।

ततस्तु रात्रिः समपद्यताऽधुना शरच्छशाङ्कोज्ज्वलऋक्षमण्डिता।
करोति रागं स च रोहिणीधवः सुसङ्गतं सौम्यगुणेषु तापि च।।५०।।
भृगूद्वहः कृष्णतरांशुभानुना सहोद्यतो दैत्यगुरुः सुराधिपः।
अथान्तरात्पक्षगतो न राजते स्वभावयोगेन मतिस्तु देहिनाम्।।५१।।
सुरक्तता भूमिसुतश्च मुञ्चते राहुः सिती चन्द्रमसोंशुभिः सितैः।
मुक्तः स्वभावो जगतः सुरासुरै रनुस्वभावो बलवान् सुकृन्नृपः।।५२।।
सितेश्वराख्यापितरश्मिमण्डले सूर्यत्वसिद्धान्तकषेव निर्मले।
करोति केतुर्न परे महत्तमस्तदा कुशीलेषु गतिश्च निर्मला।।५३।।
बुधोच्चबुद्धिर्जगतो विभावयन् रराज राज्ञो तनयः स्वकर्मभिः।
भृतेच्छकः कक्षविवाहिताश्चिरं भवेदियं साधुषु सम्मितिध्रुवम्।।५४।।

तत्पश्चात् स्नान आदि से निवृत्त होकर शुभ वस्त्रों को धारण कर उस नृपश्रेष्ठ ने सम्यक् रूप से विविध प्रकार के अन्न का भोजन किया।।४७।।

जिस प्रकार से उस महर्षि के द्वारा राजा का सत्कार किया गया, उसी तरह उस मुनि श्रेष्ठ ने सेवकों-भृत्यों आदि का भी सत्कार किया।।४८।।

जब तक राजा सहित भृत्यों, सेना, वाहन आदि भोजन कार्य से निवृत्त हुआ, तब तक अरुण वर्ण वाले सूर्य अस्त हो गये।।४९।।

एतदनन्तर रात्रि हो गई और उस रात्रि में शरत्कालीन चन्द्रमा तथा नक्षत्रपुंज की उज्ज्वल शोभा हर जगह व्याप्त-सी हो गई। रोहिणीपति चन्द्र अपने सौम्य गुणों से युक्त जनों में अनुराग प्रकट करने वाला सिद्ध हो रहा था, तो वियोगियों को ताप प्रदान करने वाला।।५०।।

उस एक रात्रि में राहु सहित शुक्र और सुरगुरु बृहस्पति तक एक साथ उदित हुए थे। फिर भी गुरु दूसरे पक्ष के साथ उदय लेने से शोभायमान तो नहीं ही हो रहे थे। इसलिए कि जीवों की बुद्धि उनके स्वभाव के अनुरूप ही हुआ करती है।।५१।।

वैसे मंगल चन्द्रमा के शुभ किरणों के संसर्ग पाकर अपनी लालिमा का त्याग अवश्य कर दिया था। साथ-ही राहु ने भी अपनी कालिमा का त्याग कर दिया। जैसे कि देवता और असुरों ने अपने सांसारिक भावनाओं से मुक्ति पा ली हो। चूँकि श्रेष्ठ कार्य करने वाला राजा भी अपने स्वभाव से बलवान् होता है।।५२।।

इसलिए कि सूर्य से प्रकाश प्राप्त करने के सिद्धान्त का अक्षरशः पालन करने वाला अमल-स्वच्छ आभा सम्पन्न चन्द्र के विस्तृत क्षेत्र में फैलाये गये किरणपुञ्जों के मध्य स्थित केतु अपनी गहन अन्धकार को भी छोड़ दिया।। इस तरह उस समय पापी स्वभाव सम्पन्न ग्रहों की भी अमल-स्वच्छ बुद्धि हो गई थी।।५३।।

नक्षत्रराज चन्द्र का पुत्र बुध अपनी श्रेष्ठ बुद्धि के कारण संसार को प्रकाशमान करने की अपनी चेष्टा रूपी

करोति केतुः कपिलं वियच्चिरं राज्ञः सुराणां पथि संस्थितं भृशम्।
न दुजर्नः सज्जनसंसदि क्वचित् करोति शुद्धं निजकर्मकौशलम्॥५५॥
शशाङ्करश्मिप्रविभासिता अपि प्रकाशमीयुर्निरताः पदे पदे।
कुलंभवाः सम्भवधर्मपत्तयो महांशुयोगान्महतां समुन्नतिम्॥५६॥
त्रिदोषसक्तान्निकृतोऽस्य सर्वशः सुतेन राज्ञो वरुणस्य सूर्यजः।
विराजते कौशिकसन्निवेशिता न वेदकर्म क्वचिदन्यथा भवेत्॥५७॥
द्वन्द्वः समेतान् मम यः शिशुः पुरा हरिर्यं आराधितवान् नृपासनम्।
लक्ष्म्यापि बुद्ध्या सुचिरं प्रकाशते ध्रुवेण विष्णुस्मरणेन दुर्लभम्॥५८॥
इतीदृशी रात्रिरभूदृशेः शुभे वराश्रमे दुर्जयभूपतेः शुभा।
सभृत्यसामन्तवराश्वदन्तिनः सुभक्तवस्त्राभरणादिपूजया॥५९॥
इतीदृशायां वररत्नचित्रिताः सुपट्टसंवीतवरास्तृतास्तदा।
गृहेषु पर्यङ्कवराः समाश्रिताः सुरूपयोषित्कृतभङ्गभासुराः॥६०॥

कार्यों को करते हुए आकाश में चमक बिखेर रहे थे। नक्षत्र कक्षा में विशिष्ट रूप से अवस्थित भरण-पोषण करने की इच्छा वाला बुध दीर्घकाल तक शुभग्रहों के बीच सदा सम्मिलित रहे।।५४।।

केतु देवराज के पथस्थित आकाश मण्डल को दीर्घकाल पर्यन्त कपिल वर्ण का कर ही देता है क्योंकि सज्जनों के बीच दुर्जन कभी भी अपना स्वच्छ व्यवहार नहीं करता।।५५।।

चन्द्र की प्रकाश रश्मियों से प्रकाशित होने वाले ग्रहों की भी रश्मियाँ विविध स्थानों पर एकीभूत होकर प्रकाशित हो रही है। चूँकि कुलपरम्परागत स्वभाविक धर्म अत्यन्त तेजवानों के संसर्ग से और अधिक प्रगतिशील हो जाया करता है।।५६।।

किसी समय राजा वरुण के पुत्र ने त्रिदोष युक्त होकर भी जिस सूर्य पुत्र का सब प्रकार से अनादर किया था, फिर भी वह सुशोभित हो रहा है। चूँकि उनकी किरणें कौशिक अर्थात् कोश अन्धकार से समावृत ग्रहों की कक्षा में सन्निवेशित हैं। इसलिए कि वेदविहित कर्म कभी भी व्यर्थ नहीं होता।।५७।।

मेरा जिस शिशु ने पुरातन काल में राजसिंहासन के लिए द्वन्द्व उत्पन्न होने से श्रीहिर की उपासना की थी, वह ध्रुव शाश्वद् विष्णु स्मरण के प्रभाव से शोभा एवं बुद्धि दोनों स्तरों से सुसम्पन्न होकर सुदुर्लभ स्थान पर चिरकाल से प्रकाशित होते आ रहे हैं।।५८।।

इस प्रकार गौरमुख नामक उस मुनि के कल्याणप्रद उस श्रेष्ठ आश्रम में भृत्यों, सामन्तों, श्रेष्ठ अश्वों व हाथियों के साथ राजा दुर्जय की वह रात्रि सुन्दर भोजन, वस्त्र, आभूषणादि से आतिथ्य सत्कार स्वरूप आनन्दपूर्वक बीत गई।।५९।।

उस समय उस आश्रम में विविध गृहों में सुसज्जितसुन्दर रङ्गों वाले सुन्दर-सुन्दर गद्दों और चादरों से आच्छादित तथा सुन्दर सुन्दर स्त्रियों के हाथभाव से सुशोभित पलङ्ग लगे हुए थे।।६०।।

स तत्र राजा विससर्ज भूभृतः स्वयं सुभृत्यानपि सर्वतो गृहान्।
गतेषु सुष्वाप वरस्त्रिया वृतः सुरेशवत्स्वर्गगतः प्रतापवान्॥६१॥
एवं सुमनसस्तस्य सभृत्यस्य महात्मनः। ऋषेस्तस्य प्रभावेन हृष्टास्तु सुषुपुस्तदा॥६२॥
ततो रात्र्यां व्यतीतायां स राजा ताः स्त्रियः पुनः।
अन्तर्द्धानं गतास्तत्र दृष्ट्वा तानि गृहाणि च॥६३॥
अदृश्यानि महार्हाणि वरासनजलानि च। राजा स विस्मयाविष्टश्चिन्तयामास दुःखितः॥६४॥
कथमेवं मणिर्मह्यं भवतीति पुनः पुनः। चिन्तयन्नधिगम्याथ स राजा दुर्जयस्तदा॥६५॥
चिन्तामणिमिमं चास्य हरामीति विचिन्त्य सः। प्रयाणं नोदयामास स राजाश्रमबाह्यतः।
आश्रमस्य बहिर्गत्वा नातिदूरे सवाहनः॥६६॥
ततो विरोचनाख्यं वै प्रेषयामास मन्त्रिणम्। ऋषेर्गौरमुखस्यापि मणेर्याचनकर्मणि॥६७॥
ऋषिं तं च समागत्य मणिं याचितुमुद्यतः। रत्नानां भाजनं राजा मणिं तस्मै प्रदीयताम्॥६८॥
अमात्येनैवमुक्तस्तु क्रुद्धो गौरमुखोऽब्रवीत्। प्रतिगृह्णाति विप्रस्तु राजा चैव ददाति च।
त्वं च राजा पुनर्भूत्वा याचसे दीनवत् कथम्॥६९॥
एवं ब्रूहि दुराचारं राजानं दुर्जयं स्वयम्। गच्छ द्रुतं दुराचारं मा त्वां लोकोऽत्यगादिति॥७०॥
एवमुक्त्वा मुनिः प्रागात् कुशेध्माहरणाय वै। चिन्तयन् मनसा तं च मणिं शत्रुविनाशनम्॥७१॥

यह राजा ने स्वयं समस्त राजसेवकों को अपने-अपने गृहों में शयन हेतु भेज दिया। उन अपने राजसेवकों के चले जाने के बाद वह प्रतापी राजा स्वर्गस्थ इन्द्र के समान स्त्रियों से घिरा हुआ-सा स्वयं भी सो गया।।६१।।

तत्पश्चात् इस तरह उन सुष्ठुमन वाले महात्मा ऋषि के प्रभाव से वह राजा प्रसन्नता से अपने भृत्यों सहित शयन करने लगा।।६२।।

इस प्रकार निद्रा के साथ रात्रि के व्यतीत हो जाने पर वह राजा उन स्त्रियों, गृहों आदि को तथा बहुमूल्य पलङ्ग सहित वस्त्रादि और जलकुण्डों, तालाबों को अदृश्य हुआ जानकर आश्चर्यपूर्वक दुःखी मन से सोच-विचार में पड़ गया।।६३-६४।।

इस स्थिति में अपने को पाकर उस समय वह राजा दुर्जय पुनः पुनः इस प्रकार चिन्तन करने लगा कि वह मणि मुझे कैसे प्राप्त हो सकता है? फिर उसने एक उपाय विचारा।।६५।।

उस चिन्तामणि को ऋषि से मैं हरण करा लूँ, इस तरह सोचा हुआ वह राजा उस आश्रम के बाह्य सीमा तक चला आया। वाहन के सहित आश्रम के बाहरी क्षेत्र में कुछ दूर पर जाकर राजा ने अपने विरोचन नाम के मन्त्री को मणि लेने के लिए उन गौरमुख ऋषि के पास भेज दिया।।६६-६७।।

वह मन्त्री उन ऋषि से मणि माँगने हेतु तैयार मन से पहुँच कर इस प्रकार से उसने कहा—हे मुने! राजा रत्नों के अधिकारी होते हैं। अतः आप उसे राजा को दे दीजिए।।६८।।

उस मन्त्री द्वारा ऐसा कहे जाने पर कुपित हुए ऋषि गौरमुख ने कहा—ब्राह्मण दान लेता है और राजा दान देता है किन्तु तुम राजा होकर दीन की तरह क्यों माँग रहे हो।।६९।।

जाओ और राजा से कह दो कि उन्हें संसार दुराग्रही-दुराचारी न समझ ले। उसके पूर्व तुम सभी इस आश्रम

एवमुक्तस्तदा दूतो जगाम च नृपान्तिकम्। कथयामास तत्सर्वं यदुक्तं ब्राह्मणेन च॥७२॥
ततः क्रोधपरीतात्मा श्रुत्वा ब्राह्मणभाषितम्। दुर्जयः प्राह नीलाख्यं सामन्तं गच्छ माचिरम्।
ब्राह्मणस्य मणिं गृह्य तूर्णमेहि यदृच्छया॥७३॥
एवमुक्तस्तदा नीलो बहुसेनापरिच्छदः। जगाम स च विप्रस्य वन्यमाश्रममण्डलम्॥७४॥
तत्राग्निहोत्रशालायां दृष्ट्वा तं मणिमाहितम्। उत्तीर्य स्यन्दनान्नीलः सोऽवरोहत भूतले॥७५॥
अवतीर्णे ततस्तस्मिन् नीले परमदारुणे। क्रूरबुद्ध्या मणेस्तस्मान्निर्जग्मुः शस्त्रपाणयः॥७६॥
सरथाः सध्वजाः साश्वाः सबाणाः सासिचर्मिणः।
सधनुष्काः सतूणीरा योधाः परमदुर्जयाः।
निश्चेरुस्तं मणिं भित्त्वा असङ्ख्येया महाबलाः॥७७॥
तत्र सज्जा महाशूरा दश पञ्च च सङ्ख्यया। नामभिस्तान् महाभागे कथयामि शृणुष्व तान्॥७८॥
सुप्रभो दीप्ततेजाश्च सुरश्मिः शुभदर्शनः। सुकान्तिः सुन्दरः सुन्दः प्रद्युम्नः सुमनाः शुभः॥७९॥
सुशीलः सुखदः शम्भुः सुदान्तः सोम एव च। एते पञ्चदश प्रोक्ता नायका मणितोत्थिताः॥८०॥
ततो विरोचनं दृष्ट्वा बहुसैन्यपरिष्कृतम्। योधयामासुरव्यग्रा विविधायुधपाणयः॥८१॥

से चले जाओ—इस प्रकार से कहते हुए उन मुनि ने उस शत्रुविनाशक मणि का चिन्तन करते हुए कुश और ईंधन लाने चल दिये।।७०-७१।।

इस तरह से कहे जाने पर वह मन्त्री चुपचाप वापस राजा के पास आ गया फिर उस ब्राह्मण ऋषि ने जैसा कहा था, वे सब राजा से कह सुनाया।।७२।।

मन्त्री के द्वारा ब्राह्मण के कथनों को सुनकर अत्यन्त कुपित राजा दुर्जय ने अपने नील नाम के सामन्त से इस तरह कहा—'जाओ! देर न करो, इच्छानुसार उस ब्राह्मण से चिन्तामणि को लेकर शीघ्र आओ।।७३।।

फिर तो इस प्रकार कहे जाने पर नील एक बड़ी सेना के साथ उस वन में स्थित ब्राह्मण के उस आश्रम क्षेत्र में आ गया।।७४।।

वहाँ आकर उसने अग्निहोत्रशाला में ही उस मणि को रखा हुआ देखा। वह मन्त्री नील रथ से उतर कर भूमि पर खड़ा हो गया।।७५।।

इस तरह उस क्रूर विचार वाले अत्यन्त भयंकर दुर्जय के मन्त्री उस नील के रथ से उतरने पर अचानक उस चिन्तामणि से अपने-अपने हाथों में शस्त्र आदि धारण किये हुए बहुत-सारे योद्धा प्रकट होने लगे।।७६।।

मणि का भेदन कर असंख्यक महाबलवान् रथ, ध्वज, अश्व, बाज, खड्ग, ढाल, धनुष, तूणीर आदि सम्पन्न परमदुर्जय योद्धा अचानक अवतरित होने लगे।।७७।।

उन सैनिकों में पन्द्रह महाशूर महायोद्धा थे। हे महाभागे धरणि! अब मैं उन महाशूरों का नाम तुम्हें बतला रहा हूँ, उसे ध्यान से सुनो। सुप्रभ, दीप्ततेजा, सुरश्मि, शुभदर्शन, सुकान्ति, सुन्दर, सुन्द, प्रद्युम्न, सुमना, शुभ, सुशील, सुखद, शम्भु, सुदान्त, सोम आदि पन्द्रह मणि से निकलने वाले महानायक बतलाया गया है।।७८-८०।।

एतदनन्तर सामने विवोचन को बहुत बड़ी सैन्य बल से सम्पन्न देखते ही उनसे अनेक प्रकार के आयुध धारण किये हुए योद्धा धैर्य के साथ युद्ध करने लगे।।८१।।

धनूंषि तेषां कनकप्रभाणि शरान् सुजम्बूनदपुंखनद्धान्।
पतन्ति खड्गानि विभीषणानि भुशुण्डिशूलाः परमप्रधानाः॥८२॥
रथो रथं सम्परिवार्य तस्थौ गजो गजस्यापि हयो हयस्य।
पदातिरत्युग्रपराक्रमश्च पदातिमेव प्रससार चाग्र्यम्॥८३॥
द्वन्द्वान्यनेकानि तथैव युद्धे द्रवन्ति शूराः परिभर्त्सयन्तः।
विभीषणं निर्गतचापमार्गं बभूव रक्तप्रभवं सुघोरम्॥८४॥
तथा प्रवृत्ते तुमुलेऽथ युद्धे हतः स राज्ञः सचिवो विसंज्ञः।
सहानुगः सर्वबलैरुपेतो जगाम वैवस्वतमन्दिराय॥८५॥
तस्मिन् हते दुर्जयराजमन्त्रिणि उपाययौ स्वेन बलेन राजा।
स दुर्जयः साश्वरथोऽतितीव्रः प्रतापवांस्तैर्मणिजैर्युयोध॥८६॥
ततस्तस्मिंस्तदा राज्ञो महत्कदनमाबभौ। ततो हेतृप्रहेतृभ्यां श्रुत्वा जामातरं रणे॥८७॥
युध्यमानं महाबाहुं ततस्त्वाययतुश्चमूः। तस्मिन् बले तु दैत्या ये तान् शृणुष्व धरेरितान्॥८८॥
प्रघसो विघसश्चैव सङ्घसोऽशनिसप्रभः। विद्युत्प्रभः सुघोषश्च उन्मत्ताक्षो भयङ्करः॥८९॥
अग्निदन्तोऽग्नितेजाश्च बाहुशक्रः प्रतर्दनः। विराधो भीमकर्मा च विप्रचित्तिस्तथैव च॥९०॥

उन योद्धाओं के धनुष स्वर्ण की आभा से सम्पन्न और उनके बाण में स्वर्ण के पुङ्ख जड़े हुए थे। उस काल में हो रही युद्ध में अति भयानक खड्ग का प्रयोग हो रहा था। साथ ही भूशुण्डि, शूल एवं परम मुख्य अस्त्रों का उपयोग भी हो रहा था।।८२।।

इस तरह रथियों ने रथियों को, हाथी सवारों ने हाथी सवारों को, घुड़सवारों ने घुड़सवारों को घेर कर युद्ध तो करने लगे, वहाँ अत्युग्र पराक्रमी पदाति सैनिक भी प्रमुख पदातियों की ओर बढ़ते चले गये।।८३।।

इस प्रकार से परस्पर सभी योद्धा द्वन्द्व युद्ध करने लगे। शूरवीर भर्त्सना करते हुये भी देखे जा रहे थे। धनुष से भी अति भयंकर बाण एक के बाद चलाये जाने लगे। उस समय महाघोर बाहुयुद्ध-मलयुद्ध भी होने लगा था।।८४।।

महाभयानक तुमुल युद्ध के प्रारम्भ होते ही राजा का वह मन्त्री बेहोश हो गया। और फिर वह अपने अनुचरों के सहित मरकर यमलोक की यात्रा पर चला गया।।८५।।

उस अपने मन्त्री के मारे जाने की सूचना पर राजा दुर्जय स्वयं अपनी सेना के सहित आ धमका। वह अतितीक्ष्ण और प्रतापशाली राजा घोड़े और रथों के सहित मणि से निकले हुये उन योद्धाओं महायोद्धाओं से युद्ध करने लगा।।८६।।

तत्पश्चात् इस युद्ध में उस राजा दुर्जय की बड़ी दुर्दशा हुई। इस प्रकार के महायुद्ध में अपने महाबाहु जामाता को लड़ते हुए सुनकर हेतृ और प्रहेतृ भी अपनी सेना लेकर आ पहुँचे। हे पृथ्वि! उनके सेना में जो प्रमुख दैत्य थे, उनके नाम मैं तुम्हें कहता हूँ, सुनो।।८७-८८।।

प्रघस, विघस, संघस, अशनिसप्रभ, विद्युत्प्रभ, सुघोष, उन्मत्ताक्ष, भयंकर अग्निदन्त, अगिनतेज,

एते पञ्चदश श्रेष्ठा असुराः परमायुधाः। अक्षौहिणीपरीवार एकैकोऽत्र पृथक्पृथक्॥९१॥
महामायास्तु समरे दुर्ज्जयस्य महात्मनः। युयुधुर्मणिजैः सार्धं महासैन्यपरिच्छदाः॥९२॥
सुप्रभःप्रघसं त्वाजौ ताडयामास पञ्चभिः। शरैराशीविषाकारैः प्रतप्तैः पतगैरिव॥९३॥
तप्ततेजास्त्रिभिर्बाणैर्विघसं संप्रविध्यत। संघसं दशभिर्बाणैः सुरश्मिः प्रत्यविध्यत॥९४॥

अशनिप्रभं रणेऽविध्यत् पञ्चभिः शुभदर्शनः।
विद्युत्प्रभं सुकान्तिस्तु सुघोषं सुन्दरस्तथा॥९५॥

उन्मत्ताक्षं तथाविध्यद् सुन्दः पञ्चभिराशुगैः। चकर्त्त च धनुस्तस्य शितेन नतपर्वणा॥९६॥
सुमना अग्निद्रंष्ट्रं तु सुशुभश्चाग्नितेजसम्। सुशीलो वायुशक्रं तु सुमुखश्च प्रतर्दनम्॥९७॥
विराधेन तथा शम्भुः सुकीर्तिर्भीमकर्म्मणा। विप्रचित्तिस्तथा सोमं एतद् युद्धं महानभूत्॥९८॥
परस्परं सुयुद्धेन योधयित्वाऽस्त्रलाघवात्। यथासंख्येन ते दैत्याः पुनर्मणिभवैर्हताः॥९९॥
यावत् संग्रामघोरो वै महांस्तेषां व्यवर्द्धत। तावत् समित्कुशादीनि कृत्वा गौरमुखो मुनिः॥१००॥
आगतो महदाश्चर्य संग्रामं भीमदर्शनम्। बहुसैन्यपरीवारं स्थितं तं चापि दुर्ज्जयम्॥१०१॥
तं दृष्ट्वा स मुनिर्द्वारि चिन्तापरम एव हि। उपविश्याधिगम्याथ मणेः कारणमेव ह॥१०२॥

बाहुशक्र, प्रतर्दन, विराघ, भीमकर्मा, विप्रचित्ति आदि पन्द्रह उत्कृष्ट आयुधधारी श्रेष्ठ असुर महायोद्धा उपस्थित थे। इनमें से प्रत्येक की पृथक्-पृथक् एक-एक अक्षौहिणी की सैन्यशक्ति उस समय उपस्थित हो गई थी।।८९-९१।।

उस समय महात्मा राजा दुर्जय के अतिमायावी सेनानायक अपनी अत्यन्त बड़ी सेना सहित मणि से उत्पन्न सैनिकों से लड़ने लगे।।९२।।

उस युद्ध में सुप्रभ ने प्रघस को जैसे उड़ने वाले सर्पाकार पाँच बाणों से मारा। तप्ततेजा ने विघस को तीन बाणों से मारा। सुरश्मि ने सङ्घस को दश बाणों से भेद डाला।।९३-९४।।

उस युद्ध में शुभदर्शन ने अशनिप्रभ को पञ्च बाणों से, सुकान्ति ने विद्युत्प्रभ को और सुन्दर ने सुघोष को और सुन्द ने उन्मत्ताक्ष को पाँच बाणों से मार डाला तथा तीक्ष्ण बाण से उसके धनुष को भी काट डाला।।९५-९६।।

सुमना ने अग्निदंष्ट्र को सुशुभ ने अग्नितेजा को सुशील ने वायुशक्र को एवं सुमुख ने प्रतर्दन को धूल चटा दिया।।९७।।

इस तरह शम्भु विराध से, सुकीर्त्ति भीमकर्मा से और विप्रचित्ति सोम से लड़ रहे थे, एवम्प्रकारेण यह महायुद्ध हो रहा था।।९८।।

पुनः पुनः उस मणि से उत्पन्न होने वाले महावीरों ने अस्त्र कौशल दिखा कर परस्पर युद्ध करते हुए उन दैत्यों को क्रम-क्रम से खोज-खोज कर मार डाला।।९९।।

उन योद्धाओं का महायुद्ध जब महाभयानक स्तर पर चल ही रहा था, उसी समय समिधा और कुशा लिये गौरमुख मुनि वहीं पर आ गये तथा उस महाकौतुककारी भारी भयानक उस महायुद्ध को तथा अपनी सेना के संग उस दुर्जय राजा को भी देखा।।१००-१०१।।

उस राजा को देखते ही उनका अत्यन्त चिन्ता होने लगी। मणि को ही इस युद्ध का कारण मानकर मुनि अपने आश्रम के द्वार पर बैठ गये।।१०२।।

एवं कृत्वा मणिकृतं रौद्रं गाढं च संयुगम्। चिन्तयामास देवेशं हरिं गौरमुखो मुनिः॥१०३॥
स देवः पुरतस्तस्य पीतवासाः खगासनः। किमत्र ते मया कार्यमिति वाणीमुदीरयत्॥१०४॥
स ऋषिः प्राञ्जलिर्भूत्वा उवाच पुरुषोत्तमम्। जहीमं दुर्ज्जयं पापं ससैन्यं परिवारिणम्॥१०५॥
एवमुक्तस्तदा तेन चक्रं ज्वलनसन्निभम्। मुमोच दुर्जयबले कालचक्रं सुदर्शनम्॥१०६॥
तेन चक्रेण तत्सैन्यमासुरं दौर्जयं क्षणात्। निमेषान्तरमात्रेण भस्मवद् बहुधा कृतम्॥१०७॥
एवं कृत्वा ततो देवो मुनिं गौरमुखं तदा। उवाच निमिषेणेदं निहतं दानवं बलम्॥१०८॥
अरण्येऽस्मिंस्ततस्त्वेवं नैमिषारण्यसंज्ञितम्। भविष्यति यथार्थं वै ब्राह्मणानां विशेषतः॥१०९॥
अहं च यज्ञपुरुष एतस्मिन् वनगोचरे। नाम्ना याज्या सदा चेमे दश पञ्च च नायकाः।
कृते युगे भविष्यन्ति राजानो मणिजा मुने॥११०॥
एवमुक्त्वा ततो देवो गतोऽन्तर्धानमीश्वरः। द्विजोऽपि स्वाश्रमे तस्थौ मुदापरमया युतः॥१११॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे एकादशोऽध्यायः॥११॥

फिर मणि के द्वारा किया जा रहा इस तरह के तुमुल भयंकर युद्ध को अपने संज्ञान में रखकर गौरमुख मुनि ने देवेश श्रीहरि का स्मरण करने लगा।

पीताम्बर धारण करने वाले और गरुड़ासीन देव उनके सम्मुख प्रकट हो गये और इस प्रकार की वाणी बोले कि 'मैं तुम्हारा क्या कार्य करूँ'॥१०४॥

तब उन ऋषि ने हाथ जोड़कर उन पुरुषोत्तम से कहा—सैन्यबल और परिवार सहित इस पापी राजा दुर्जय का शीघ्र वध करें॥१०५॥

इस प्रकार कहते ही उन्होंने अग्नि के समान कालचक्र सदृश सुदर्शन चक्र को दुर्जय की सेना पर चला दिया॥१०६॥

उस चक्र द्वारा क्षणमात्र में एक पलक झपकते ही दुर्जय की आसुरी सेना भस्म की तरह विनष्ट कर दी गई॥१०७॥

यह सब होने के बाद श्रीहरि विष्णु देव ने ऋषि गौरमुख से कहा—निमेष काल मात्र में समस्त दानवी सेना इस अरण्य में मारी गई अतएव अर्थ के अनुरूप इस अरण्य का नाम 'नैमिषारण्य' होगा, जो विशेष रूप से ब्राह्मणों के निवास करने वाला होगा॥१०८-१०९॥

यज्ञपुरुष के नाम से मेरे इस मणि से उत्पन्न इन पन्द्रह महानायकों का इस वन प्रान्त में पूजन करना चाहिए, ये सभी हे मुनि! कृतयुग में राजा होंगे॥११०॥

तत्पश्चात् इस प्रकार कहते हुए देवेश्वर अदृश्य हो चले। वह ब्राह्मण गौरमुख भी परमानन्द के सहित अपने उसी आश्रम में निवास करने लगा॥१११॥

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में गौरमुख द्वारा दुर्जय का सत्कार और मणिलोभी दुर्जय का वध नामक ग्यारहवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥११॥

❖❖❖

द्वादशोऽध्यायः

अथ सुप्रतीकेन रामस्तुतिस्तेषु तल्लीनश्च

श्रीवराह उवाच

ततः पुत्रं रथाङ्गाग्निदग्धं श्रुत्वा नृपोत्तमः। सुप्रतीकः प्रतीतात्मा चिन्तयामास पार्थिवः।
तस्य चिन्तयतस्त्वेवं तदा बुद्धिरजायत॥१॥
चित्रकूटे गिरौ विष्णुः सदा रामेति कीर्त्यते। ततोऽहं रामसंज्ञेन नाम्ना स्तौमि जगत्पतिम्॥२॥

सुप्रतीक उवाच

नमामि रामं नरनाथमच्युतं कविं पुराणं त्रिदशारिनाशनम्।
शिवस्वरूपं प्रभवं महेश्वरं सदा प्रपन्नार्तिहरं धृतश्रियम्॥३॥
भवान् सदा देव समस्ततेजसां करोषि तेजांसि समस्तरूपधृक्।
क्षितौ भवान् पञ्चगुणस्तथा जले चतुःप्रकारस्त्रिविधोऽथ तेजसि।
द्विधाऽथ वायौ वियति प्रतिष्ठितो भवान् हरे शब्दवपुः पुमानसि॥४॥
भवान् शशी सूर्यहुताशनोऽसि त्वयि प्रलीनं जगदेतदुच्यते।
भवत्प्रतिष्ठं रमते जगद् यतः स्तुतोऽसि रामेति जगत् प्रतिष्ठितम्॥५॥

अध्याय–१२

सुप्रतीक की राम स्तुति और परमेश्वर में उनका लीन होना

श्रीभगवान् वराह ने कहा—एतदनन्तर अपने पुत्र को सुदर्शन चक्र की अग्नि से भस्म हो गया, सुनकर राजा सुप्रतीक आश्वस्त भाव से सोच-विचार करने लगा। तदुपरान्त उनको इस प्रकार की बुद्धि समझ आई।।१।।

श्री विष्णु राम नाम से चित्रकूट पर्वत पर स्थित रहते हैं, ऐसा सूना जाता है। अतः मैं राम नाम से उन जगत्पति हरि श्रीविष्णु की स्तुति करूँगा।।२।।

सुप्रतीक ने कहा—नरनाथ, अच्युत, कवि, पुराण, देवशत्रु असुरनाशक, शिवस्वरूप, सबके उत्पत्ति बिन्दु, महेश्वर, शरणागत के दुःखों को दूर करने वाले और ऐश्वर्ययुक्त श्रीराम को मैं प्रणाम करता हूँ।।३।।

हे देव! हे हरि! आप ही समस्त तेजस्वियों को तेज प्रदान करने वाले हैं, आप ही समस्त रूपों को धारण करने वाले हैं। आप पृथ्वी में रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द आदि पाँच गुणों; जल में रूप, रस, स्पर्श, शब्द आदि चार गुणों; तेज में रूप, स्पर्श, शब्द आदि तीन गुणों; वायु में स्पर्श और शब्द दो गुणों तथा आकाश में शब्द रूप गुण के रूप में स्थित रहने वाले पुरुष हैं।।४।।

आप चन्द्र, सूर्य और अग्नि के स्वरूप हैं। आप ही में जगत् का लय होना बतलाया जाता है। इस प्रकार आपसे सुप्रतिष्ठित होकर जगत् आनन्द प्राप्त कर पाते हैं। अतः विश्व में प्रतिष्ठित आपके 'राम' नाम से स्तुति की जाती है।।५।।

भवार्णवे दुःखतरोर्मिसङ्कुले तथाक्षमानग्रणेऽतिभीषणे।
न मज्जति त्वत्स्मरणप्लवो नरः स्मृतोऽसि रामेति तथा तपोवने॥६॥
वेदेषु नष्टेषु भवांस्तथा हरे करोषि मात्स्यं वपुरात्मनः सदा।
युगक्षये रञ्जितसर्वदिङ्मुखो भवांस्तथाग्निर्बहुरूपधृग् विभो॥७॥
कौर्मं तथा ते वपुरास्थितः सदा युगे युगे माधव तोयमन्थने।
न चान्यदस्तीति भवत्समं क्वचिज्जनार्दनाद् यः स्वयं भूतमुत्तमम्॥८॥
त्वया ततं विश्वमिदं महात्मन् स्वकाखिलान् वेद दिशश्च सर्वाः।
कथं त्वमाद्यं परम तु धाम विहाय चान्यं शरणं व्रजामि॥९॥
भवानेकः पूर्वमासीत् ततश्च त्वत्तो मही सलिलं वह्निरुच्चैः।
वायुस्तथा खं च मनोऽपि बुद्धिश्चेतो गुणास्तत्प्रभवं च सर्वम्॥१०॥
त्वया ततं विश्वमिदं समस्तं सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे।
समस्तविश्वेश्वर विश्वमूर्त्ते सहस्त्रबाहो जय देव देव।
नमोऽस्तु रामाय महानुभाव॥११॥
इति स्तुतो देववरः प्रसन्नः तदा राज्ञः सुप्रतीकस्य मूर्तिम्।
सन्दर्शयामास ततोऽभ्युवाच वरं वृणीष्वेति न सुप्रतीकम्॥१२॥
एवं श्रुत्वा वचनं तस्य राजा ससम्भ्रमं देवदेवं प्रणम्य।
उवाच देवेश्वर मे प्रयच्छ लयं यदास्ते परमं वपुस्ते॥१३॥

आपके नाम स्मरण जैसी नौका पर आसीन पुरुष दुःखरूपी लहरों से पूर्ण एवं इन्द्रिय रूपी मगरों से युक्त भयंकर संसार समुद्र में भी नहीं डूब पाता है। तपोवन में भी 'राम' इस नाम मात्र से आपका स्मरण किया जाता है।।६।।

हे हरि! वेदों के नष्ट होने के समय आप हमेशा अपना मत्स्य रूप धारण करते हैं। हे विभु! युगान्त में आप समस्त दिशाओं को 'रक्त' वर्ण में ढाल देने वाले अनेक रूपधारी अग्नि हैं।।७।।

हे माधव! समुद्रमन्थन के अवसर पर प्रत्येक युग में आप कूर्म रूप को धारण करने वाले हैं। आपके समान अन्य कोई कहीं नहीं है। आप ही आदि पुरुष जनार्दन स्वयं ही सर्वोत्तम हैं।।८।।

हे महात्मन्! आपने ही इस विश्वब्रह्माण्ड का विस्तार किया है। आप ही अपनी सम्पूर्ण सृष्टि और समस्त दिशाओं को जानने वाले हैं। अतः आद्य परमधाम को छोड़कर मैं अन्य किसी की शरण में कैसे जा सकता हूँ।।९।।

प्रत्येक सृष्टि के पूर्वकाल में एकमात्र आप ही रहा करते हैं। फिर आपसे ही पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि चित्त और अन्य सभी गुण प्रकट हुये तथा उन्हीं से ये समस्त संसार की उत्पत्ति हुई।।१०।।

आपने समस्त संसार का विस्तार किया है। आपको मैं सनातन पुरुष मानता हूँ। हे सम्पूर्ण विश्व के ईश्वर विश्वमूर्ति, सहस्त्रबाहु! देवाधिदेव! आपकी सदा जय। हे महानुभाव! आप 'राम' को प्रणाम है। इस तरह से स्तुति करने पर श्रेष्ठदेव श्रीराम प्रसन्न होकर सुप्रतीक राजा को अपना स्वरूप दर्शन कराया और कहा—'वर माँग लो'।।११-१२।।

राजा सुप्रतीक उनके इस प्रकार की वाणी को सुनकर ससम्मान देवाधिदेव को प्रणाम किया और कहा—'हे देवेश्वर! आप मुझे अपने श्रेष्ठ स्वरूप में मिला लें'।।१३।।

इतीरिते राजवरः क्षणेन लयं तथाऽगादसुरघ्नमूर्तौ।
स्थितस्तस्मिन्नात्मभूतो विमुक्तः स भूमिपः कर्मकाण्डैरनेकैः॥१४॥

श्रीवराह उवाच

इतीरितं ते तु मया पुराणं स्वायम्भुवे चादिकृतैकदेशम्।
शक्यं न चास्यैर्बहुभिः सहस्त्रैरपीह केनापि सुखेन वक्तुम्॥१५॥
उद्देशतः संस्मृतमात्रमेतन्मयाऽपि भद्रे कथितंते पुराणम्।
समुद्रतोयात् परिमाणसृष्टिः क्वचित् क्वचिद् वृत्तमथो ह्यनर्घ्यम्॥१६॥
स्वयम्भुवा कथितं ब्रह्मणापि नारायणेनापि कुतो भवेऽन्यः।
अशक्यमस्माभिरितीरितं ते तन्मूर्त्तित्वात् स्मरणेनेदमाद्यम्॥१७॥
समुद्रे बालुकासङ्ख्या विद्यते रजसः क्षितौ।
न तु सृष्टेः पुनः सङ्ख्या क्रीडतः परमेष्ठिनः॥१८॥
एष नारायणस्यांशो मया प्रोक्तः शुचिस्मिते। कृते वृत्तान्त एषश्च किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि॥१९॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे द्वादशोऽध्यायः॥१२॥

इस प्रकार से कहते ही श्रेष्ठ राजा पलमात्र में असुरारि श्रीराम के स्वरूप में लीन हो गया तथा अनेक विध के कर्म बन्धनों से विमुक्त हो, उन देव के आत्मभूत होकर स्थित हो गया।।१४।।

श्री भगवान् वराह ने कहा—हे पृथ्वी! आदिकृत् ब्रह्मा ने जिस पुराण के एक देश को स्वायम्भू मनु के लिए कहा था, उस पुराण के एक अंश को मैंने तुमसे कहा है। सम्पूर्ण पुराण का तो कोई अनेक हजारों मुखों से वर्णन नहीं कर सकता, फिर एक मुख से तो बात ही क्या कहना।।१५।।

हे भद्रे! मैंने तुम्हें समस्त पुराण नहीं सुनाया है, बल्कि उसका संस्मरण मात्र सुनाया है। जिस प्रकार समुद्र जल का कोई परिमाण नहीं बताया जा सकता वैसे ही विस्तारित पुराण के कुछ अनमोल वृत्तान्त मात्र का वर्णन मेरे द्वारा तुम्हें सुनाया गया है।।१६।।

वस्तुतः स्वयम्भू ब्रह्मा और नारायण ने इस पुराण का कथन किया है। इस विश्व में कोई दूसरा कैसे इसका वर्णन कर सकेगा। हम जो नहीं कर सकते, वह तुम्हें मैंने कहा है। उन नारायण देव का स्वरूप होने से मैंने स्मरण करते हुए यह आदि कालीन कथा सुनाया है।।१७।।

वैसे समुद्र में बालुका कणों की और भूमि पर धूलिका कणों की संख्या भले ही गिनी जा सकती हो, लेकिन लीला में अनवरत लीन रहने वाले परमेष्ठी की सृष्टि लीला की गणना कथमपि नहीं हो सकती है।।१८।।

हे शुचिस्मिते! यह कथावृत्त तुमसे मैंने नारायण के अंशस्वरूप मात्र बतलाया है। चूँकि यह वृत्तान्त सत्ययुग में घटित हुई है, अब और क्या सुनने की इच्छा रखती हो?।।१९।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में सुप्रतीक की राम स्तुति और परमेश्वर में उनका लीन होना नामक बारहवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१२॥

❖❖❖

त्रयोदशोऽध्यायः

अथ श्राद्धकल्पे पितरोत्पत्तिस्तेषां सन्ततिस्तथा श्राद्धकालञ्च

धरण्युवाच

एतन्मे तन्महदाश्चर्यं दृष्ट्वा गौरमुखो मुनिः।
ते चापि मणिजाः प्राप्ताः किं फलं तु वरं गुरो॥१॥

कोऽसौ गौरमुखः श्रीमान् मुनिः परमधार्मिकः। किं चकार हरेः कर्म दृष्ट्वासौ मुनिपुङ्गवः॥२॥

श्रीवराह उवाच

निमिषेण कृतं कर्म दृष्ट्वा भगवतो मुनिः। आरिराधयिषुर्देवं तमेव प्रययौ वनम्।
प्रभासं नाम सोमस्य तीर्थं परमदुर्लभम्॥३॥

तत्र दैत्यान्तकृद् देवः प्रोच्यते तीर्थचिन्तकैः। आराधयामास हरिं दैत्यसूदनसंज्ञितम्॥४॥
तस्याराधयतो देवं हरिं नारायणं प्रभुम्। आजगाम महायोगी मार्कण्डेयो महामुनिः॥५॥
तं दृष्ट्वाऽभ्यागतं दूरादर्घपाद्येन सो मुनिः। अर्चयामास तं भक्त्या मुदा परमया युतः॥६॥
कौश्यां वृष्यां तदासीनं पप्रच्छेदं मुनिस्तदा। शाधि मां मुनिशार्दूल किं करोमि महाव्रत॥७॥

अध्याय–१३

पितरोत्पत्ति और उनकी सन्तति, श्राद्धकाल तथा पितृगीता

धरणि ने कहा—हे देव! पूर्वोक्त प्रकार के उन महद् आश्चर्य को देखने वाला गौरमुख मुनि और मणि से उत्पन्न उन योद्धाओं को कौन-से श्रेष्ठतर फल गुरु से प्राप्त हो सका?।।१।।

परमधार्मिक श्रीमान् गौरमुख मुनि कौंन थे? उन मुनि श्रेष्ठ ने हरि के इस तरह के कर्म को देख-समझ कर क्या किया?।।२।।

श्री भगवान् वराह ने कहा—निमेष मात्र से सम्पादित किये गये भगवान् के कर्म को देखकर मुनि उन्हीं देव श्रीविष्णु की ही आराधना करने की इच्छा लेकर उस वन में चले गये, जहाँ सोमदेव का प्रभास नाम का परम दुर्लभ तीर्थ है।।३।।

तीर्थों के प्रसङ्ग में चिन्तन करने वाले विद्वज्जन वहाँ दैत्यों को मारने वाले श्रीविष्णु देव का श्रीनिवास सिद्ध किया करते हैं। मुनि ने वहीं दैत्यसूदन नामक श्रीहरि की आराधना सम्पादित की।।४।।

उस गौरमुख के प्रभु नारायण देव श्रीहरि की आराधना काल में ही महायोगी मार्कण्डेय महान् मुनि का आगमन हो गया।।५।।

दूर से ही उनको आते देखकर गौरमुख मुनि ने आत्मानन्द का अनुभव करते हुए अर्घ्य और पाद्य द्वारा भक्तिभाव से उनका स्वागत सत्कार किया।।६।।

फिर मुनि गौरमुख ने अपने सामने कुशासन पर बैठे हुए मुनि मार्कण्डेय से प्रश्न किया कि हे महाव्रती मुनिशार्दूल! इस समय मुझे बतलायें कि मुझे क्या करना चाहिए?।।७।।

एवमुक्तः स विप्रेन्द्रो मार्कण्डेयो महातपाः। उवाच श्लक्ष्णया वाचा मुनिं गौरमुखं तदा॥८॥

मार्कण्डेय उवाच

एतदेव महत्कृत्यं यत्सतां संगमो भवेत्। यत्तु सान्देहिकं कार्यं तत्पृच्छस्व महामुने॥९॥

गौरमुख उवाच

एते हि पितरो नाम प्रोच्यन्ते वेदवादिभिः।
सर्ववर्णेषु सामान्या उताहोस्वित् पृथक् पृथक्॥१०॥

मार्कण्डेयः

सर्वेषामेव देवानामाद्यो नारायणो गुरुः। तस्माद् ब्रह्मा समुत्पन्नः सोऽपि सप्तासृजन्मुनीन्॥११॥
मां यजस्वेति तेनोक्तास्तदा ते परमेष्ठिना। आत्मनात्मानमेवाग्रे अयजन्त इति श्रुतिः॥१२॥
तेषां वै ब्रह्मजातानां महावैकारिकर्मणाम्। अशपद् व्यभिचारो हि महानेष कृतो यतः।
प्रभ्रष्टज्ञानिनः सर्वे भविष्यथ न संशयः॥१३॥
एवं शप्तास्ततस्ते वै ब्रह्मणात्मसमुद्भवाः। सद्यो वंशकरान् पुत्रानुत्पाद्य त्रिदिवं ययुः॥१४॥
ततस्तेषु प्रयातेषु त्रिदिवं ब्रह्मवादिषु। तत्पुत्राः श्राद्धदानेन तर्पयामासुरञ्जसा॥१५॥

फिर इस तरह से मुनि गौरमुख के कहे जाने पर महातपस्वी विप्रश्रेष्ठ मारकण्डेय मुनि ने उनसे मीठे स्वर में कहा—॥८॥

श्री मार्कण्डेय मुनि ने कहा—हे महामुनि! वैसे तो सज्जनों का समागम हो जाना ही एक महान् कार्य जैसा है। अतः आपको जिन विषयों में सन्देह हो, उन्हें पूछ लें॥९॥

गौरमुख ने कहा—वेदवादियों के द्वारा जिन पितरों की चर्चा किया जाता है, वे पितर सब वर्णों के सामान्य रूप में होते हैं अथवा पृथक्-पृथक् होते हैं॥१०॥

श्री मार्कण्डेय मुनि ने कहा—समस्त देवताओं का गुरु अर्थात् उत्पत्तिकर्त्ता एकमात्र आदि पुरुष नारायण हैं। उन्हीं नारायण से ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई। फिर उन ब्रह्माजी ने भी सात मुनियों का सृजन किया॥११॥

फिर उन परमेष्ठी के द्वारा उनसे कहा गया कि तुम लोग पूजन करो।' परन्तु सूना जाता है कि उन सात मुनियों ने 'अपने आपके द्वारा स्वयं आत्मा का ही पूजन करना स्वीकार किया॥१२॥

इस प्रकार उन मुनियों को जिनने अत्यन्त विकार सम्पन्न कर्म करना स्वीकार किया, ब्रह्मा ने यह शाप दिया कि इस तरह से तुम लोगों ने महा व्यभिचार पूर्ण कर्म किया है, इसीलिए तुम सभी भ्रष्ट ज्ञानी होओगे, इसमें संशय नहीं है॥१३॥

उक्त प्रकार ब्रह्मा से शापित और उन्हीं से उत्पन्न वे सभी मुनिजन शीघ्र अपना अपना वंश विस्तार हेतु पुत्रों को उत्पन्न कर करके स्वर्ग को चलते बने॥१४॥

तदनन्तर उन ब्रह्मवादियों के स्वर्ग जाने के बाद उनके पुत्रों ने श्राद्धकर्म में भक्ति सम्पन्न होकर संतुष्टि प्राप्त की॥१५॥

ते च वैमानिकाः सर्वे ब्रह्मणः सप्त मानसाः।
तत् पिण्डदानं मन्त्रोक्तं प्रपश्यन्तो व्यवस्थिताः॥१६॥

गौरमुख उवाच

ये च ते पितरो ब्रह्मन् यं च कालं समासते।
कियन्तो वै पितृगणास्तस्मिंल्लोके व्यवस्थिताः॥१७॥

मार्कण्डेय उवाच

प्रवर्त्तन्ते वराः केचिद् देवानां सोमवर्धनाः। ते मरीच्यादयः सप्त स्वर्गे ते पितरः स्मृताः॥१८॥
चत्वारो मूर्त्तिमन्तो वै त्रयस्त्वन्ये ह्यमूर्त्तयः। तेषां लोकनिसर्गं च कीर्त्तयिष्यामि तच्छृणु॥१९॥
प्रभावं च महर्धिं च विस्तरेण निबोध मे। धर्ममूर्तिधरास्तेषां त्रयोऽन्ये परमा गणाः।
तेषा नामानि लोकांश्च कीर्तयिष्यामि तच्छृणु॥२०॥
लोकाः सन्तानका नाम यत्र तिष्ठन्ति भास्वराः। अमूर्त्तयः पितृगणास्ते वै पुत्राः प्रजापते॥२१॥
विराजस्य प्रजाश्रेष्ठा वैराजा इति ते स्मृताः। देवानां पितरस्ते हि तान् यजन्तीह देवताः॥२२॥
एते वै लोकविभ्रष्टा लोकान् प्राप्य सनातनात्। पुनर्युगशतान्तेषु जायन्ते ब्रह्मवादिनः॥२३॥
ते प्राप्य तां स्मृतिं भूयः साध्य योगमनुत्तमम्। चिन्त्य योगगतिं शुद्धां पुनरावृत्तिदुर्लभाम्॥२४॥

इसके बाद ब्रह्मा के इन सभी सात मानस पौत्रों द्वारा श्राद्धकर्म के निमित्त दिये गये पिण्डदान और पिण्डदान के निमित्त वाचनीय मन्त्रों के प्रभाव से वे सभी मुनि स्वर्ग में वैमानिक नाम से आज भी स्थित हैं।।१६।।

गौरमुख ने कहा—हे ब्रह्मन्! जिस प्रकार के पितर जन हैं, जिस समय वे उपस्थित रहते हैं और उस लोक में कितने पितृगण अवस्थित हैं?।।१७।।

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—देवताओं के लिए सोम की अभिवृद्धि करने वाले, श्रेष्ठ सात मरीचि आदि हैं। वे सभी स्वर्ग में पितर कहलाते हैं।।१८।।

उन पितरों में चार मूर्त्तिमान् हैं तथा अन्य तीन अमूर्त हैं। उनकी लौकिक सृष्टि कैसी है, उसका वर्णन करते हैं, ध्यान देकर सुनो।।१९।।

उन पितरों का विस्तृत प्रभाव और महाऐश्वर्य युक्त कथन मुझसे सुनो। उनमें धर्ममूर्त्ति धारण करने वाले तीन अन्य श्रेष्ठ पितृगण हैं, उनके नाम और लोकों का वर्णन कर रहा हूँ, उसे सुनो।।२०।।

संतानक नामक एक लोक है, जहाँ 'भास्वर' अर्थात् अभौतिक शरीरधारी पितृगणों का निवास स्थान कहा गया है। ये पितृगण प्रजापति ब्रह्मा के पुत्रा होकर अमूर्त्त हैं।।२१।।

विराज नाम के प्राजापति के पुत्रों को 'वैराज' नामक पितर कहा जाता है, वे सभी देवजनों के पितर माने जाते हैं। अतः देवजन उनका यजन किया करते हैं।।२२।।

वे सभी पितर सनातन लोक के रहने वाले हैं, जो सौ युग व्यतीत होने पर प्रायः कल्पान्त में ब्रह्मलोक से पृथक् ब्रह्मवादी के रूप में पैदा होते हैं।।२३।।

तत्पश्चात् वे सर्वप्राचीन स्मृति की प्राप्ति हेतु श्रेष्ठ योग का साधन तथा चिन्तन करते हुए पुनरागमन रहित शुद्ध योगगति की उपलब्धि करते हैं।।२४।।

एते स्म पितरः श्राद्धे योगिनां योगवर्धनाः। आप्यायितास्तु ते पूर्वं योगं योगबले रतौ॥२५॥
तस्माच्छ्राद्धानि देयानि योगिनां योगिसत्तम। एष वै प्रथमः सर्गः सोमपानामनुत्तमः॥२६॥
एते त एकतनवो वर्तन्ते द्विजसत्तमाः। भूर्लोकवासिनां याज्याः स्वर्गलोकनिवासिनः।
ब्रह्मपुत्रा मरीच्याद्यास्तेषां याज्या महद्गताः॥२७॥
कल्पवासिकसंज्ञानां तेषामपि जने गताः। सनकाद्यास्ततस्तेषां वैराजास्तपसि स्थिताः।
तेषां सत्यगता मुक्ता इत्येषा पितृसन्ततिः॥२८॥
अग्निष्वात्तेति मारीच्या वैराजा बर्हिसंज्ञिताः। सुकालेयापि पितरो वसिष्ठस्य प्रजापतेः।
तेऽपि याज्यास्त्रिभिर्वर्णैर्न शूद्रेण पृथक्कृतम्॥२९॥
वर्णत्रयाभ्यनुज्ञातः शूद्रः सर्वान् पितॄन् यजेत्। न तु तस्य पृथक् सन्ति पितरः शूद्रजातयः॥३०॥
मुक्ताश्चेतनको ब्रह्मन् ननु विप्रेषु दृश्यते। विशेषशास्त्रदृष्ट्या तु पुराणानां च दर्शनात्॥३१॥
एवं ऋषिस्तुतैः शास्त्रं ज्ञात्वा याज्यकसम्भवान्।
स्वयं सृष्ट्यां स्मृतिर्लब्धा पुत्राणां ब्रह्मणा ततः।
परं निर्वाणमापन्नास्तेऽपि ज्ञानेन एव च॥३२॥

ये सभी पितृगण योगीजनों के योग की अभिवृद्धि करते हुए श्राद्धकाल में आप्यायित होकर योगबल से सम्बन्धित प्रसङ्ग में सिद्धि प्रदान करने वाले होते हैं।।२५।।

हे योगिसत्तम! अतः योगीजनों को ही श्राद्ध में भोजन हेतु आमन्त्रित करना चाहिए। क्योंकि यह सोमपायी पितरों का अनुत्तम प्रथम सर्ग माना जाता है।।२६।।

ये सभी पितृगण एक मात्र शरीर धारण करने वाले, श्रेष्ठ ब्राह्मण तथा स्वर्ग में निवास करने वाले माने जाते हैं। जो भूलोक वासियों के लिए पूज्य कहे गये हैं। ब्रह्मपुत्र मरीचि आदि इन पितरों के नाम बतलाये गये हैं। इन मरीच्यादि पितृगणों के भी पूज्य महर्लोक निवासी पितर पूज्य कहे गये हैं।।२७।।

इन्हें अर्थात् महर्लोक निवासी पितृगणों को कल्प पर्यन्त जीवित रहने के कारण कल्पवासी कहे गये हैं। इन महर्लोकवासी पितरों के भी पितर जनलोक निवासी सनकादि पितर पूज्य होते हैं। फिर उनके भी तपस्या में स्थित विराज पितर पूज्य होते हैं। इन पितरों के भी सत्यलोक निवासी मुक्त पूज्य बतलाये जाते हैं। इतने ही पितरों की संतति कहे गये हैं।।२८।।

अग्निष्वात्त आदि पितर, मरीचि की सन्तानें हैं। बर्हिषद् आदि पितर विराज पुरुष की सन्तानें हैं। इसी तरह सुकालेय संज्ञक पितर वशिष्ठ प्रजापति की सन्तानें हैं। इन सभी पितरों का पूजन तीनों वर्णों को करना चाहिए और शूद्रवर्ण के लिए भी कोई अलग से पितर नहीं कहे गये हैं, तात्पर्य यह कि शूद्र के लिए भी ये सभी पितर ही पूज्य माने जाते हैं।।२९।।

इस तरह शूद्रों को तीन वर्णों से पूछकर पितरों का पूजन करना चाहिए। क्योंकि शूद्र के लिए शूद्रजातीय अलग से पितृगण नहीं होते हैं। इसका कारण है कि पितरों में चातुर्वर्ण्य व्यवस्था का विचार नहीं होता है।।३०।।

हे ब्रह्मन्! ब्राह्मणों के प्रसङ्ग में मुक्त और चेतन दो प्रकार पितरों के अवश्य विचारणीय हैं। इस तरह विशेष शास्त्रों को देखकर या पुराण आदि के पाठ से अथवा ऋषि प्रणीत शास्त्रों से अपने पूजास्पद पितरों का ज्ञान कर उनकी

वस्वादीनां कश्यपाद्या वर्णानां वसवादयः। अविशेषेण विज्ञेया गन्धर्वाद्या अपि ध्रुवम्॥३३॥
एष ते पैतृकः सर्ग उद्देशेने महामुने। कथितो नान्त एवास्य वर्षकोट्या हि दृश्यते॥३४॥
श्राद्धस्य कालान् वक्ष्यामि तान् शृणुष्व द्विजोत्तम।
श्राद्धार्हमागतं द्रव्यं विशिष्टमथवा द्विजम्॥३५॥
श्राद्धं कुर्वीत विज्ञाय व्यतिपातेऽयने तथा। विषुवे चैव संप्राप्ते ग्रहणे शशिसूर्ययोः।
समस्तेष्वेव विप्रेन्द्र राशिष्वर्केऽतिगच्छति॥३६॥
नक्षत्रग्रहपीडासु दुष्टस्वप्नावलोकने। इच्छाश्राद्धानि कुर्वीत नवसस्यागमे तथा॥३७॥
अमावस्या यदा आर्द्राविशाखास्वातियोगिनी।
श्राद्धैः पितृगणस्तृप्तिं तदाप्नोत्यष्टवार्षिकीम्॥३८॥
अमावस्था यदा पुष्ये रौद्रेऽथर्क्षे पुनर्वसौ। द्वादशाब्दं तथा तृप्तिं प्रयान्ति पितरोऽर्च्चिताः॥३९॥
वासवाजैकपादर्क्षे पितृणां तृप्तिमिच्छताम्। वारुणे चाप्यमावास्या देवानामपि दुर्लभा॥४०॥
नवस्वर्क्षेष्वमावास्या यदा तेषु द्विजोत्तम। तदा श्राद्धानि देयानि अक्षय्यफलमिच्छताम्।
अपि कोटिसहस्त्रेण पुण्यस्यान्तो न विद्यते॥४१॥

पूजा करनी चाहिए। एवम्प्रकारेण अपनी सृष्टि के अन्तर्गत अपने पुत्रों का स्मरण जब ब्रह्मा को हुआ, तब उन्हें पता चला कि वे सभी ज्ञान की प्राप्ति कर परम निर्वाण को प्राप्त कर चुके हैं।।३१-३२।।

वसु आदिकों के कश्यप आदि और ब्राह्मण आदि वर्णों के वसु आदि तथा गन्धर्व आदि पितर होते हैं। यह बात सामान्य रूप से सभी को जान लेना चाहिए।।३३।।

हे महामुनि! यहाँ मैंने आप से इस पितृसर्ग का निर्देश मात्र किया है। इस तरह करोड़ों वर्षों में भी इनके वर्णन का अन्त नहीं होने वाला है।।३४।।

हे द्विजोत्तम! अब मैं आपसे 'श्राद्धकाल' का विवेचन करने जा रहा हूँ, उन्हें श्रवण करो। श्राद्ध योग्य आया हुआ द्रव्य अथवा वैशिष्ट्यपूर्ण द्विज की चर्चा करते हैं।।३५।।

हे विप्रेन्द्र! व्यतीपात, अयनकाल, विषुव संक्रान्ति, सूर्य और चन्द्र ग्रहण तथा सभी राशियोंमें सूर्य का संक्रमण होने के समय श्राद्ध करना चाहिए।।३६।।

नक्षत्रों और ग्रहप्रद पीड़ा प्राप्त होने के समय, दुष्ट स्वप्न देखने के बाद, काम्यश्राद्ध, नवान्न प्रयोग के समय श्राद्ध करना चाहिए।।३७।।

जिस समय आर्द्रा, विशाखा, स्वाती आदि नक्षत्रों की युति अमावस्या को हो उस समय श्राद्ध करने से पितरों को आठ वर्ष पर्यन्त की तृप्ति प्राप्त हो जाती है।।३८।।

जिस समय पुष्य, रुद्रदेवता का नक्षत्र आर्द्रा, पुनर्वसु आदि नक्षत्रों की युति अमावस्या को हो उस समय श्राद्ध करने पर पितरों को द्वादश वर्ष पर्यन्त की तृप्ति मिलती है।।३९।।

पितरों को तृप्ति प्रदान करने वाले देवताओं के लिए भी धनिष्ठा, पूर्वाभाद्रपदा और शतभिषा नक्षत्रों से युक्त अमावास्या दुर्लभ कहा गया है।।४०।।

हे द्विजोत्तम! उपरोक्त नौ नक्षत्रों से युक्त अमावास्या के रहने पर श्राद्ध का अक्षय फल प्राप्त करने की इच्छा वाले मनुष्य को श्राद्ध कर्म सम्पादित करने से करोड़ों वर्ष में भी उसके पुण्य का अन्त नहीं होता है।।४१।।

अथापरं पितरः श्राद्धकालं रहस्यमस्मत् प्रवदन्ति पुण्यम्।
वैशाखमासस्य तु या तृतीया नवम्यसौ कार्त्तिकशुक्लपक्षे॥४२॥
नभस्यमासस्य तमिस्रपक्षे त्रयोदशी पञ्चदशी च माघे।
उपप्लवे चन्द्रमसो रवेश्च तथाष्टकास्वप्ययनद्वये च॥४३॥
पानीयमप्यत्र तिलैर्विमिश्रं दद्यात्पितृभ्यः प्रयतो मनुष्यः।
श्राद्धं कृतं तेन समा सहस्त्रं रहस्यमेतत् पितरो वदन्ति॥४४॥
माघसिते पञ्चदशी कदाचिदुपैति योगं यदि वारुणेन।
ऋक्षेण कालः परमः पितॄणां न त्वल्पपुण्यैर्द्विज लभ्यतेऽसौ॥४५॥
काले धनिष्ठा यदि नाम तस्मिन् भवेत्तु विप्रेन्द्र यदा पितृभ्यः।
दत्तं जलान्नं प्रददाति तृप्तिं वर्षायुतं तत्कुलजैर्मनुष्यैः॥४६॥
तत्रैव चेद् भाद्रपदास्तु पूर्वाः काले तदा यैः क्रियते पितृभ्यः।
श्राद्धं परां तृप्तिमुपेत्य तेन युगं समग्रं पितरः स्वपन्ति।
श्राद्धं तु यत्पक्षमुदाहरन्ति तत्पैतृकं मुनिगणाः प्रवदन्ति तुष्टिम्॥४७॥
गङ्गासरयूमथवा विपाशां सरस्वतीं नैमिषगोमतीं वा।
ततोऽवगाह्यार्चनमादरेण कृत्वा पितॄणामहितानि हन्ति॥४८॥

नोट—यहाँ नौ नक्षत्रों की चर्चा आई है। परन्तु उनमें दो बार आर्द्रा, जहाँ एक बार आर्द्रा, दूसरी बार रौद्र नाम से।।४१।।

तत्पश्चात् इससे भी अधिक पुण्यप्रदायी और गुप्त श्राद्धकाल को पितरजन हमसे इस तरह कहते हैं—पितरों का श्राद्धकाल तब समझना चाहिए, जिस समय वैशाखमास की तृतीया तिथि तथा कार्तिक शुक्ल नवमी तिथि वर्तमान रहती है।।४२।।

नभस्य अर्थात् भाद्रपद मास के कृष्णपक्ष की त्रयोदशी और माघ मास की पञ्चदशी अर्थात् अमावास्या तिथि को, सूर्य व चन्द्र ग्रहण काल में, अष्टका तिथियों अर्थात् अष्टमी तिथियों अथवा सप्तमी, अष्टमी और नवमी तिथियों की प्राप्ति पर तथा दोनों अयनों के समय में मनुष्य को प्रयत्न के साथ पितरों हेतु तिल मिश्रित जल प्रदान करना चाहिए। इस प्रकार उसके द्वारा किया यह श्राद्ध सहस्रवर्षात्मक श्राद्ध के समान होता है। इस रहस्य को पितरजन बतलाते हैं।।४३-४४।।

माघमास कृष्णपक्ष अमावास्या तिथि को शतभिषा नक्षत्र का दुर्लभ योग होने पर यह पितरों के लिए सर्वोत्तम काल होता है। हे द्विज! अल्प पुण्य से यह काल प्राप्त नहीं हो सकता है।।४५।।

हे विप्रेन्द्र उस समय अर्थात् माघमास अमावास्या को धनिष्ठा नक्षत्र होने पर उनके कुल में उत्पन्न किसी मनुष्यों द्वारा दिया गया जल और अन्न पितरों को दस हजार वर्षों पर्यन्त तृप्ति प्रदान करने वाला होता है।।४६।।

उपरोक्त काल में यदि पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र हो, तो उस समय जो कोई पितरों का श्राद्ध करने वाला होता है, उसे उस श्राद्ध से तृप्त हुए सम्पूर्ण युग तक उसके पितर सुखशयन किया करते हैं।।४७।।

इस प्रकार श्राद्धकर्म हेतु जो भी पक्ष मुनिजनों द्वारा बतला दिया गया है, उनमें श्राद्ध करने वालों के पितरों

गायन्ति चैतत् पितरः कदा तु वर्षामघातृप्तिमवाप्य भूयः।
माघासितान्ते शुभतीर्थतोयैर्यास्याम तृप्तिं तनयादिदत्तैः॥४९॥
चित्तं च वित्तं च नृणां विशुद्धं शस्तश्च कालः कथितो विधिश्च।
पात्रं यथोक्तं परमा च भक्तिर्नृणां प्रयच्छन्त्यभिवाञ्छितानि॥५०॥
पितृगीतास्तथैवात्र श्लोकास्तान् शृणु सत्तम। श्रुत्वा तथैव भविता भाव्यं तत्र विधात्मना॥५१॥
अपि धन्यः कुले जायादस्माकं मतिमान् नरः।
अकुर्वन् वित्तशाठ्यं यः पिण्डान् यो निर्वपिष्यति॥५२॥
रत्नवस्त्रमहायानं सर्वं भोगादिकं वसु। विभवे सति विप्रेभ्यो अस्मानुद्दिश्य दास्यति॥५३॥
अन्नेन वा यथाशक्त्या कालेऽस्मिन् भक्तिनम्रधीः।
भोजयिष्यति विप्राग्र्यांस्तन्मात्रविभवो नरः॥५४॥
असमर्थोऽन्नदानस्य वन्यशाकं स्वशक्तितः।
प्रदास्यति द्विजाग्र्येभ्यः स्वल्पां यो वापि दक्षिणाम्॥५५॥
तत्राप्यसामर्थ्ययुतः कराग्राग्रस्थितांस्तिलान्।
प्रणम्य द्विजमुख्याय कस्मैचिद् द्विज दास्यति॥५६॥

को अवश्य तृप्ति मिलती है। गङ्गा, सरयू, विपाशा, सरस्वती, अथवा नैमिषारण्य गोमती में स्नान करके जो जन सम्मानपूर्वक पितरों का श्राद्ध करता है, वह अपने समस्त अशुभों को नष्ट कर देता है।।४८।।

पितृगण यह गाया करते हैं कि कब वर्षाकाल के मघा नक्षत्र में तृप्ति योग्य जल प्राप्त कर पुनः माघ मास के कृष्ण पक्ष की अमावास्या में पुत्रादिकों के दिये शुभ तीर्थजल से हम सभी तृप्ति प्राप्त कर सकेंगे।।४९।।

श्राद्धकर्म में मनुष्यों का विशुद्ध चित्त और धन, प्रशस्त काल, निर्दिष्ट विधि, यथोक्त पात्र तथा श्रेष्ठ भक्ति मनुष्यों को मनोवांछित फल प्रदान करते हैं।।५०।।

हे श्रेष्ठ मुनि! अब पितरों के गाये उन गीतों को सुनो। सुनने के उपरान्त आप भी वैसे ही बने और उस विधि का पालन करें।।५१।।

इस प्रक्रम के बुद्धिमान् धन्य मनुष्य हमारे कुल में उत्पन्न हों, जो वित्तशाढ्य अर्थात् कंजूसी न करते हुए पिण्डदान करने वाले हों।।५२।।

यहाँ कहा गया है कि पितरों की यह आकांक्षा रहती है कि हमारे कुल में ऐसा कौन कब होगा, जो ऐश्वर्यवान् होकर हमारे निमित्त से ब्रह्मणों को रत्न, वस्त्र, महायान, सभी प्रकार का भोग करने योग्य साधन और धन दान कर सकेगा।।५३।।

अथवा उपरोक्त श्राद्ध के समय भक्ति से सम्पन्न, विनीत मन वाला होकर अन्न, वस्त्र आदि मात्र की योग्यता रखने वाला मनुष्य भी श्रेष्ठ ब्राह्मणों को भोजन प्रदान करेगा।।५४।।

अन्नादि दान करने में अशक्य रहने पर भी अपनी शक्ति के अनुरूप श्रेष्ठ द्विजों को वन्यशाक और स्वल्प भी दक्षिणा प्रदान करेगा।।५५।।

अथवा उपरोक्त सामर्थ्य के अभाव में भी जो श्रेष्ठ द्विज को प्रणाम करते हुए अपने हाथ से एक मुट्ठी काला तिल भी प्रदान करने वाला होगा।।५६।।

तिलैः सप्ताष्टभिर्वाऽपि समवेतां जलाञ्जलिम्।
भक्तिनम्रः समुद्दिश्याप्यस्माकं सम्प्रदास्यति॥५७॥
यतः कुतश्चित् सम्प्राप्य गोभ्यो वापि गवाह्निकम्।
अभावे प्रीणयत्यस्मान् भक्त्या युक्तः प्रदास्यति॥५८॥
सर्वाभावे वनं गत्वा कक्षमूलप्रदर्शकः। सूर्यादिलोकपालानामिदमुच्चैः पठिष्यति॥५९॥
न मेऽस्ति वित्तं न धनं न चान्यच्छ्राद्धस्य योग्यं स्वपितॄन् नतोऽस्मि।
तृप्यन्तु भक्त्या पितरो मयैतौ भुजौ ततौ वर्त्मनि मारुतस्य॥६०॥
इत्येतत् पितृभिर्गीतं भावाभावप्रयोजनम्। कृतन्तेन भवेच्छ्राद्धं य एवं कुरुते द्विजः॥६१॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे त्रयोदशोऽध्यायः॥१३॥

अथवा उपरोक्त के अभाव में भी हमारे निमित्त से विनम्रभाव से युक्त होकर सात या आठ तिलों से युक्त जलाञ्जलि देने वाला होगा।।५७।।

अथवा उपरोक्त के अभाव में भी जो जहाँ कहीं से भी गौ का चारा लाकर भक्ति भाव के सहित गायों को प्रदान कर हमें संतुष्ट करने वाला हो सकेगा।।५८।।

इस तरह सर्वथा सब कुछ का अभाव होने पर वन में जाकर अपने कक्षा (काँख) के मूलभाग को दिखलाते हुए अर्थात् दोनों हाथ ऊपर उठाकर सूर्यादि लोकपालों के प्रति ऊँचे स्वर से इस प्रकार कहना चाहिए—।।५९।।

हे पितरों! मेरे पास धनादि सम्पत्ति या श्राद्धयोग्य साधन कुछ भी नहीं है। अतः मैं अपने पितरों को प्रणाम करता हूँ। मेरी भक्तिभाव से पितृगणसंतृप्त हों, यह मैं आकाश मार्ग में अपनी दोनों भुजाओं को उठाकर सत्य-सत्य कह रहा हूँ।।६०।।

इस प्रकार धन के भाव और अभाव दोनों स्थितियों में पितरों द्वारा कहे गये कार्य को जो उक्त प्रकार करता है, उसके द्वारा श्राद्ध कार्य सम्पन्न हुआ, जानना चाहिए।।६१।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में पितरोत्पत्ति और उनकी सन्तति, श्राद्धकाल तथा पितृगीता नामक तेरहवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१३॥

❖❖❖

चतुर्दशोऽध्यायः

अथ श्राद्धयोग्यब्राह्मणः तस्य विधिः फलञ्च

मार्कण्डेय उवाच

एतन्मे कथितं पूर्वं ब्रह्मपुत्रेण धीमता। सनकानुजेन विप्रर्षे ब्रह्मणान् शृणु साम्प्रतम्॥१॥
त्रिणाचिकेतस्त्रिमधुस्त्रिसुपर्णः षडङ्गवित्। वेदवित् श्रोत्रियो योगी तथा वै ज्येष्ठसामगः॥२॥
ऋत्विजं भागिनेयं च दौहित्रं श्वसुरं तथा। जामातरं मातुलं च तपोनिष्ठं च ब्राह्मणम्॥३॥
पञ्चाग्न्यभिरतं चैव शिष्यं सम्बन्धिनं तथा। मातृपितृरतं चैव एताञ्छ्राद्धे नियोजयेत्॥४॥
मित्रधुक् कुनखी चैव श्यावदन्तस्तथा द्विजः। कन्यादूषयिता वह्निवेदोज्झः सोमविक्रयी॥५॥
अभिशप्तस्तथा स्तेनः पिशुनो ग्रामयाजकः। भृतकाध्यापकश्चैव भृतकाघ्यापितश्च यः॥६॥
परपूर्वापतिश्चैव मातापित्रोस्तथोज्झकः। वृषलीसूतिपोष्यश्च वृषलीपतिरेव च।
तथा देवलकश्चापि श्राद्धे नार्हन्ति केतनम्॥७॥

अध्याय–१४

श्राद्ध योग्य ब्राह्मण, श्राद्धविधि और फल

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—हे विप्रर्षि! बहुत पहले ब्रह्मा के पुत्र सनक के बुद्धिमान् अनुज सनत्कुमार ने मुझसे श्राद्ध विषयक जो कुछ कहा था, उनमें श्राद्ध योग्य ब्राह्मणों को सुनो।।१।।

त्रिणाचिकेत अर्थात् अध्वर्यु यज्ञ करने वाला, त्रिमधु अर्थात् 'मधुव्वाता' इत्यादि तीन मन्त्रों का उच्चारण करने वाला, त्रिसुपर्ण अर्थात् वेद मन्त्रों का ज्ञाता, वेद के षड् अंगों जैसे शिक्षा, कल्प, छन्द, व्याकरण, ज्योतिष और निरुक्त को जानने वाला, वेदज्ञ, श्रौत्रिय, योगी, ज्येष्ठ साम का गायन करने वाला, पुरोहित, भाँजा, दौहित्र, श्वसुर, जामाता, मामा, तपस्वी ब्राह्मण, पञ्चाग्नि का सेवन करने वाला, शिष्य, सम्बन्धी, माता-पिता का सेवक आदि जैसे ब्राह्मणों को श्राद्ध में नियोजित करना उचित है।।२-४।।

नोट—त्रिणाचिकेत अर्थात् द्वितीय कठ में 'अयं वाव यः पवते' इत्यादि वाक्यों को पढ़ने वाला या उसका अनुष्ठान करने वाला। **त्रिमधु**—अर्थात् 'मधुव्वाता' इत्यादि मन्त्रों का उच्चारण, अध्ययन, और मधुव्रत का आचरण करने वाला। **त्रिसुपर्ण** अर्थात् ब्रह्म मेतु मां इत्यादि तीन अनुवाकों का अध्ययन-मनन और उससे सम्बन्धित व्रत करने वाला।।२-४।।

मित्रविद्रोही, कुत्सित नख से युक्त, काले-काले दाँतों वाला ब्राह्मण, कन्या को दूषित करने वाला, अग्नि और वेद का त्याग करने वाला, सोम को बेचने वाला, अभिशाप ग्रस्त, चोर, पिशुन, ग्रामयाजक, धन लेकर (सेवक की तरह) पढ़ाने वाला, धन देकर पढ़ने वाला, परपूर्वापति अर्थात् पुनः विवाहित स्त्री का पति, मातृ-पितृ त्यागी, शूद्रा अथवा सूत जाति की स्त्री द्वारा पालित, शूद्रा का पति, मन्दिर में मूर्ति पूजन से जीविका चलाने वाला आदि जैसे ब्राह्मण श्राद्ध में निमन्त्रण के अधिकारी नहीं होते हैं।।५-७।।

प्रथमेऽह्नि बुधः कुर्याद् विप्राग्र्याणां निमन्त्रणम्।
आनिमन्त्र्य द्विजान् गेहमागतान् भोजयेद् यतीन्॥८॥
पादशौचादिना गेहमागतान् भोजयेद् द्विजान्। पवित्रपाणिराचान्तानासनेषूपवेशयेत्॥९॥
पितृणामयुजो युग्यान् देवानामपि योजयेत्। देवानामेकमेकं वा पितृणां च नियोजयेत्॥१०॥
तथा मातामहश्राद्धं वैश्वदेवसमन्वितम्। कुर्वीत भक्तिसम्पन्नस्तन्त्रं वा वैश्वदेविकम्॥११॥
प्राङ्मुखं भोजयेद् विप्रं देवानामुभयात्मकम्।
पितृपैतामहानां च भोजयेच्चाप्युदङ्मुखान्॥१२॥
पृथक् तयोः केचिदाहुः श्राद्धस्य करणं द्विजः। एकत्रैकेन पाकेन वदन्त्यन्ये महर्षयः॥१३॥
विष्टरार्थं कुशान् दत्त्वा सम्पूज्यार्घविधानतः। कुर्यादावाहनं प्राज्ञो देवानां तदनुज्ञया॥१४॥
यवाम्बुना च देवानां दद्यादर्घ्यं विधानवित्। सुगन्धधूपदीपांश्च दत्त्वा तेभ्यो यथाविधि।
पितृणामपसव्येन सर्वमेवोपकल्पयेत्॥१५॥
अनुज्ञां च ततः प्राप्य दत्त्वा दर्भान् द्विधाकृतान्। मन्त्रपूर्वं पितृणां तु कुर्यादावाहनं बुधः।
तिलाम्बुना चापसव्यं दद्यादर्घ्यादिकं बुधः॥१६॥

इस प्रकार बुद्धिमान् मनुष्य को पहिले दिन अग्रणी ब्राह्मणों को निमंत्रित करना चाहिए। निमन्त्रित करने के पश्चात् घर में पधारे संयमी ब्राह्मणों को भोजन करायें।।८।।

घर पधारे ब्राह्मणों के पैरों को धोकर ससम्मान भोजन कराना चाहिए। फिर हस्त शुद्धि, मुखशुद्धि कर लेने वाले ब्राह्मणों को आसनों पर विराजित करना चाहिए।।९।।

यहाँ ध्यान रखना चाहिए कि पितृ कार्य में अयुग्म अर्थात् विषम संख्यक एवं देवकार्य के निमित्त युग्म अर्थात् समसंख्यक अथवा देव या पितर दोनों के निमित्त एक-एक ही ब्राह्मण को निमन्त्रित करना चाहिए।।१०।।

और वैश्व देव विधि सहित मातामह का श्राद्ध करना चाहिए अथवा भक्तिपूर्वक तान्त्रिक वैश्वदेविक कर्म को सम्पन्न करना चाहिए।।११।।

देवता हेतु ब्राह्मणों को पूर्वाभिमुख भोजन करावे या पूर्वाभिमुख और उत्तराभिमुख दोनों दिशाओं में बैठाकर भोजन कराना चाहिए। लेकिन पितृ-पितामह सम्बन्धी ब्राह्मण को उदङ्मुख ही भोजन कराना श्रेयस्कर है।।१२।।

हे द्विज! किसी ने पिता और पितामह दोनों का श्राद्ध अलग-अलग करने का विधान बतलाया है तथा अन्य महर्षि एक स्थान पर एक पाक द्वारा श्राद्ध करने का विधान बतलाते हैं।।१३।।

अपने पितरों के लिए आसन स्वरूप कुशा देने के बाद उनके अर्घ विधि से निमन्त्रित ब्राह्मणों का सम्मान कर बुद्धिमान व्यक्ति उनकी ही आज्ञा से देवताओं का आवाहन करें।।१४।।

विधान जानने वालों को चाहिए कि वह यव युक्त जल से देवताओं को अर्घ प्रदान करें। इस तरह पितरों का सभी कार्य अपसव्यावस्था में करना उचित है।।१५।।

तत्पश्चात् ब्राह्मणों की आज्ञानुसार दो टूकड़े किये कुशों को देकर बुद्धिमान् पुरुष को मन्त्र से पितरों का आवाहन करना चाहिए। वहाँ ज्ञानी व्यक्ति अपसव्य होकर तिलमिश्रित जल से पितरों को अर्घ्यादि प्रदान करे।।१६।।

काले तत्रातिथिं प्राप्तमन्नकामं द्विजाध्वगम्। ब्राह्मणैरभ्यनुज्ञातः कामं तमपि पूजयेत्।।१७।।
योगिनो विविधै रूपैर्नराणामुपकारिणः। भ्रमन्ति पृथिवीमेतामविज्ञातस्वरूपिणः।।१८।।

तस्मादभ्यर्चयेत् प्राप्तं श्राद्धकालेऽतिथिं बुधः।
श्राद्धक्रियाफलं हन्ति द्विजेन्द्रापूजितोऽतिथिः।।१९।।

जुहुयाद् व्यञ्जनं क्षारैर्वर्ज्यमन्नं ततोऽनले। अनुज्ञातो द्विजैस्तैस्तु त्रिः कृत्वा पुरुषर्षभ।।२०।।
अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहेति प्रथमाहुतिः। सोमाय वै पितृमते दातव्या तदनन्तरम्।।२१।।
वैवस्वताय चैवान्या तृतीया दीयताहुतिः। हुतावशिष्टमल्पाल्पं विप्रपात्रेषु निर्वपेत्।।२२।।
ततोऽन्नं मृष्टमत्यथमभीष्टमभिसंस्कृतम्। दत्त्वा जुषध्वमिच्छातो वाच्यमेतदनिष्ठुरम्।।२३।।

भोक्तव्यं तैश्च तच्चित्तैर्मौनिभिः सुमुखैः सुखम्।
अक्रुध्यता अत्वरता देयं तेनापि भक्तितः।।२४।।

रक्षोघ्नमन्त्रपठनं भमेरास्तरणं तिलैः। कृत्वाऽध्येपाश्च पितरस्त एव द्विजसत्तमाः।।२५।।
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः। मम तृप्तिं प्रयान्त्वद्य होमाप्यायितमूर्त्तयः।।२६।।

उस स्थान पर निमन्त्रित ब्राह्मणों की आज्ञा से श्राद्ध के समय भोजन की इच्छा से दूर से आये हुये अतिथि द्विज का भी पूजन करना चाहिए।।१७।।

इस पृथ्वी पर मनुष्यों के उपकारी अज्ञात स्वरूप धारी योगीजन अनेक भेषों में सदा भ्रमण करते रहते हैं।।१८।।

अतः बुद्धिमान् व्यक्ति श्राद्ध काल में पधारे हुये अतिथि का पूजन अवश्य करें। हे द्विजश्रेष्ठ! अपूजित अतिथि श्राद्ध कार्य के फल को नष्ट कर देते हैं।।१९।।

तत्पश्चात् उन द्विजों की आज्ञा से श्रेष्ठ व्यक्ति को क्षार पदार्थों से रहित अन्न की अग्नि में तीन बार आहुति देनी चाहिए।।२०।।

'अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा' इस मन्त्र से प्रथम आहुति देनी चाहिए। तत्पश्चात् 'सोमाय वै पितृमते स्वाहा' इस मन्त्र से द्वितीय आहुति देनी चाहिए।।२१।।

और 'वैवस्वतारय स्वाहा' इस मन्त्र से तीसरी आहुति देने के पश्चात् हवन से बचे हुए अन्न को थोड़ा-थोड़ा ब्राह्मणों के पात्रों में डाल देना चाहिए।।२२।।

फिर अतिशुद्धता के साथ तैयार किये गये श्रेष्ठ अन्न ब्राह्मणों को अर्पण कर कोमल वाणी द्वारा कहना चाहिए कि अब 'आप सभी' इच्छानुसार भोजन करें।।२३।।

तदनन्तर एकाग्रचित्त उन ज्ञानी ब्राह्मणों को प्रसन्न मुख मौन धारण कर सुख के साथ भोजन ग्रहण करना चाहिए। तथा उस श्राद्धकर्त्ता को भी क्रोध रहित हो बिना जल्दी-जल्दी किये भक्ति भाव से भोज्य द्रव्यों को परोसना चाहिए।।२४।।

श्राद्धकर्त्ता को 'रक्षोघ्नमन्त्रपाठपूर्वक' भूमि को तिलों से आच्छादित कर ब्राह्मण ही पितर हैं, इस भावना से पितरों का ध्यान करते रहना चाहिए।।२५।।

हवन से पुष्ट देह वाले मेरे पिता, पितामह एवं प्रपितामह सभी आज तृप्त हों।।२६।।

पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः। मम तृप्तिं प्रयान्त्वद्य विप्रदेहेषु संस्थिताः॥२७॥
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः। तृप्तिं प्रयान्तु पिण्डेषु मया दत्तेषु भूतले॥२८॥
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः। तृप्ति प्रयान्तु मे भक्त्या यन्मयैतदुदाहृतम्॥२९॥

मातामहस्तृप्तिमुपैतु तस्य तथा पिता तस्य पिता ततोऽन्यः।
विश्वेऽथ देवाः परमां प्रयान्तु तृप्तिं प्रणश्यन्तु च यातुधानाः॥३०॥
यज्ञेश्वरो हव्यसमस्तकव्यभोक्ताऽव्ययात्मा हरिरीश्वरोऽत्र।
तत्सन्निधानादपयान्तु सद्यो रक्षांस्यशेषाण्यसुराश्च सर्वे॥३१॥

तृप्तेष्वेतेषु विप्रेषु किरेदन्नं महीतले। दद्यादाचमनार्थाय तेभ्यो वारि सकृत्सकृत्॥३२॥
सुतृप्तैस्तैरनुज्ञातः सर्वेणान्नेन भूतले। सलिलेन ततः पिण्डान् सम्यग्गृह्य समाहितः॥३३॥
पितृतीर्थेन सलिलं तथैव सलिलाञ्जलिम्। मातामहेभ्यस्तेनैव पिण्डांस्तीर्थेषु निर्वपेत्।
दक्षिणाग्रेषु दर्भेषु पुष्पधूपादिपूजितान्॥३४॥
स्वपित्रे प्रथमं पिण्डं दद्यादुच्छिष्टसन्निधौ। पितामहाय चैवान्यं तत्पित्रे च तथाऽपरम्॥३५॥
दर्भमूले लेपभुजः लेपयेल्लेपघर्षणात्। पिण्डे मातामहे तद्वद् गन्धमाल्यादिसंयुतैः॥३६॥

इस प्रकार ब्रह्मणों की देह में स्थित मेरे पिता, पितामह और प्रपितामह सभी आज तृप्त हों।।२७।।

पृथ्वी पर मेरे द्वारा दिये गये पिण्ड से मेरे पिता, पितामह और प्रपितामह सभी आज तृप्त हों।।२८।।

भक्तिभाव से मैंने जो कुछ दिया या कहा, उसके प्रभाव से मेरे पिता, पितामह और प्रपितामह सभी आज तृप्त हों।।२९।।

मातामह, प्रमातामह और वृद्धप्रमातामह तथा सभी विश्वेदेवगण परम तृप्ति प्राप्त करें एवं सभी राक्षसों का नाश हो जाय।।३०।।

यह सभी द्रव्य और कव्यों का भोग करने वाले यज्ञेश्वर अव्ययात्मा ईश्वर हरि यहाँ स्थित हैं। अतः उनके सन्निधान से सभी राक्षस और असुर भाग जाय।।३१।।

इन भोक्ता ब्राह्मणों को तृप्ति प्राप्त हो जाने पर पृथ्वी के ऊपर अन्न छिड़कना चाहिए। एवं एक-एक बार उन्हें आचमन हेतु जल प्रदान करना चाहिए।।३२।।

इस प्रकार से उन तृप्तिपूर्वक भोजन कर लेने वाले ब्राह्मणों की आज्ञा से सम्पूर्ण अन्न से पिण्ड निर्माण कर एकाग्रचित्त से पृथ्वी पर जल के सहित संकल्पपूर्वक पितरों को प्रदान करें।।३३।।

पिण्ड पर पितृतीर्थ से जल प्रदान करना चाहिए। इसी तरह जलाञ्जलि भी पितृतीर्थ से ही देनी चाहिए। मातामहादिकों को भी दक्षिणाग्र कुशा पर पुष्प धूप आदि से पूजित पिण्डदान पितृतीर्थ से ही करना चाहिए।।३४।।

उच्छिष्ट अन्न के समीप अपने पिता को प्रथम पिण्ड प्रदान करना चाहिए। दूसरा पिण्ड पितामह को तथा अन्य पिण्ड प्रपितामह को प्रदान करना चाहिए।।३५।।

दर्भमूल में लेप घर्षण से लेपभोजी पितरों को तृप्त करना चाहिए। इसी तरह मातामह के भी पिण्ड की गन्ध और माला इत्यादि से पूजन करना चाहिए।।३६।।

पूजयित्वा द्विजाग्र्याणां दद्यादाचमनं बुधः। पैत्रेभ्यः प्रथमं भक्त्या तन्मनस्को द्विजेश्वरः॥३७॥

सुस्वधेत्याशिषा युक्तां दद्याच्छक्त्या च दक्षिणाम्।
दत्त्वा च दक्षिणां तेभ्यो वाचयेद् वैश्वदेविकान्।
प्रीयन्तामिति ये विश्वे देवास्तेन इतीरयेत्॥३८॥

तथेति चोक्ते तैर्विप्रैः प्रार्थनीयास्तथाशिषः। पश्चाद् विसर्जयेद् देवान् पूर्वं पैत्र्यान्महामते॥३९॥

मातामहानामप्येवं सह देवैः क्रमः स्मृतः। भोजने च स्वशक्त्या च दाने तद्वद् विसर्जने।
आपादशौचनात् पूर्वं कुर्यादेव द्विजन्मसु॥४०॥

जानन्तं प्रथमं पित्र्यं तथा मातामहेषु च। विसर्जयेत् प्रीतिवचः सम्मान्याभ्यर्थितांस्ततः।
निवर्त्तेताभ्यनुज्ञात आद्वारान्तमनुव्रजेत्॥४१॥

ततस्तु वैश्वदेवाख्यां कुर्यान्नित्यक्रियां ततः। भुञ्जीयाच्च समं पूज्य भृत्यबन्धुभिरात्मना॥४२॥

एवं श्राद्धं बुधः कुर्यात् पित्र्यं मातामहं तथा।
श्राद्धैराप्यायिता दद्युः सर्वान् कामान् पितामहाः॥४३॥
त्रीणि श्राद्धे पवित्राणि दौहित्रः कुतपस्तिलाः।
रजतस्य तथा दानं तथा सन्दर्शनादिकम्॥४४॥

हे द्विजेश्वर! द्विजाग्रों की पूजा विद्वानों को आचमन देकर करनी चाहिए। तत्पश्चात् भक्तिभाव से पितृपरायण होकर पितृस्थानीय ब्राह्मणों को 'सुस्वधा' इत्यादि शब्दों से मङ्गलकामना के साथ दक्षिणा प्रदान करना चाहिए। यहाँ पितृस्थानीय ब्राह्मणों को 'सुस्वधा' मङ्गलवचन सहित दक्षिणा प्रदान करने के बाद 'विश्वेदेवाः प्रीयन्ताम्' इस मन्त्र को पढ़ते हुये कहना चाहिए।।३७-३८।।

हे महामति! तत्पश्चात् वहाँ उपस्थित ब्राह्मणों से 'तथास्तु' कहे जाने पर उनसे आशीर्वाद की याचना करनी चाहिए। पुनः देवताओं का विसर्जन करना चाहिए। सर्वप्रथम पितृस्थानीय ब्राह्मणों को विदा करना उचित है।।३९।।

विश्वेदेवों के साथ मातामहों का पादशौच से प्रारम्भ कर भोजन, दान और विसर्जन करना, यही क्रम है।।४०।।

यहाँ कहने का तात्पर्य यह है कि प्रथम विश्वेदेवों का पूजन फिर पितरों और मातामहों का पूजन,किन्तु विसर्जन पहले पितरों एवं मातामहों का फिर विश्वेदवों का करना उचित है।।४०।।

यहाँ पितृस्थानीयों में प्रथम ज्ञानी पितृस्थानीय ब्राह्मण को विसर्जित करना चाहिए। इसी तरह मातामहादि के निमित्त निमंत्रित ब्राह्मणों में भी पहले ज्ञानी ब्राह्मणों का प्रीतिपूर्वक सुन्दर वाणी से उनका सम्मान और प्रार्थना कर उन्हें विसर्जित करें। तत्पश्चात् द्वार पर्यन्त उनका अनुगमन करने के बाद उनकी आज्ञा से वापस आना चाहिए।।४१।।

तत्पश्चात् वैश्वदेव नामक नित्यकर्म कर अपने पूज्य भृत्यों और बन्धुजनों के साथ उनका सम्मान कर भोजन करना चाहिए।।४२।।

बुद्धिमान् पुरुष को इस तरह से अपने पितृ और मातृ कुल के पितरों का श्राद्ध करना चाहिए। श्राद्ध से तृप्त पितृगण व्यक्ति की सभी इच्छाओं की पूर्त्ति करते हैं।।४३।।

दौहित्र, कुतप (दिन का आठवाँ पहर) एवं तिल, ये तीन पदार्थ श्राद्ध में पवित्र होते हैं। इसी तरह रजत (चाँदी) का दान और उसका दर्शन आदि भी श्राद्ध में पवित्र माना जाता है।।४४।।

वर्ज्यन्तु कुर्वता श्राद्धं क्रोधोऽध्वगमनं त्वरा। भोक्तुरप्यत्र विप्रेन्द्र त्रयमेतन्न संशयः॥४५॥
विश्वेदेवाः सपितरस्तथा मातामहा द्विज। कुलं चाप्यायते पुंसां सर्वं श्राद्धं प्रकुर्वताम्॥४६॥
सोमाधारः पितृगणो योगाधारश्च चन्द्रमाः। श्राद्धं योगनियुक्तं तु तस्माद् विप्रेन्द्र शस्यते॥४७॥
सहस्रस्यापि विप्राणां योगी चेत् पुरतः स्थितः।
सर्वान् भोक्तृंस्तारयति यजमानं तथा द्विज॥४८॥
मह्यं सनत्कुमारेण पूर्वकल्पे द्विजोत्तम। कथितं वायुना चापि देवानां शंभुना तथा॥४९॥
ऋषिणां शक्तिपुत्रेण तथा मैत्रेयसंज्ञिते। भविष्यति क्रमाद् यावन् मया ते कथितं द्विज॥५०॥
इयं सर्वपुराणेषु सामान्या पैतृकी क्रिया।
एतत् क्रमात् कर्मकाण्डं ज्ञात्वा मुच्येत बन्धनात्॥५१॥
एतदाश्रित्य निर्वाणं ऋषयः शंसितव्रताः। प्राप्ता गौरमुखेदानीं त्वमप्येवं परो भवं॥५२॥
इति ते कथितं भक्त्या पृच्छतो द्विजसत्तम। पितॄन् यष्ट्वा हरिं ध्यायेद् यस्तस्य किमतः परम्।
न तस्मात् परतः पित्र्यं तन्त्रमस्तीति निश्चयः॥५३॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे चतुर्दशोऽध्यायः॥१४॥

इस प्रकार श्राद्धकर्त्ता को क्रोध, मार्गगमन एवं शीघ्रता नहीं करनी चाहिए। हे विप्रेन्द्र! निःसंशय श्राद्ध में भोजन हेतु आमन्त्रित ब्राह्मणों को भी उक्त तीनों कार्य वर्जन करना चाहिए।।४५।।

हे द्विज! विश्वेदेव, पितृ-मातृ क्रम के पितर और श्राद्धकर्त्ता का सम्पूर्ण वंश इस प्रकार संतृप्त हो जाता है।।४६।।

हे विप्रेन्द्र! पितरों को सोमाधार और चन्द्रमा को योगाधार के रूप में मान्यता होने से योगी पुरुष की उपस्थिति में श्राद्ध करना शुभप्रद है।।४७।।

हे द्विज! यदि हजारों विप्रों की टोली में एकमात्र अग्रस्थ योगी के उपस्थित रहने पर समस्त भोजन करने वाले और यजमान दोनों को तारने वाला होता है।।४८।।

हे द्विजोत्तम! पूर्वकल्प में सनत्कुमार ने मुझसे इसी प्रकार श्राद्धकल्प की चर्चा की थी। वायु ने देवों से, शम्भु ने ऋषियों से, शक्तिपुत्र ने मैत्रेय से यही श्राद्ध कल्प का वाचन किया था। हे द्रिज! भविष्य में भी इसी रूप में यह प्रचलित भी रहेगा, जिसे मैंने आपको बतलाया है।।४९-५०।।

समस्त पुराणों में सामान्यतया यह पितृसम्बन्धी पद्धति का वाचन हुआ है। क्रम से इस श्राद्ध विषयक कर्मकाण्ड को जानकर पुरुष सभी बन्धनों से मुक्त हो जाता है।।५१।।

हे गौरमुख! तीव्र व्रतधारी ऋषिगण इस पद्धति का परिपालन करते हुए निर्वाण अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति कर चुके हैं। अब तुम्हें भी इसका अनुसरण करना चाहिए।।५२।।

हे द्विजश्रेष्ठ! भक्तिभाव से सम्पन्न होकर प्रश्न करने के कारण मैंने तुम्हें यह पद्धति बतलाया है। पितरों की पूजा करने के उपरान्त हरि (विष्णु) का ध्यान करना ही अभीष्ट होना चाहिए। इसीलिए कि इस पितृतन्त्र से बढ़कर और कोई दूसरा तंत्र नहीं है।।५३।।

॥इस प्रकार श्रीवराहपुराण भगवच्छास्त्र में श्राद्ध योग्य ब्राह्मण, श्राद्धविधि और फल नामक चौदहवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१४॥

पञ्चदशोऽध्यायः

अथ गौरमुखपूर्वजन्मज्ञानं विष्णुसायुज्यप्राप्तिश्च

धरण्युवाच

एवं श्राद्धविधिं श्रुत्वा मार्कण्डेयान्महामुनिः।
तदा गौरमुखो देवः किमूर्ध्वं कृतवान् विभो॥१॥

श्रीवराह उवाच

एतच्छ्रुत्वा तदा धात्रि पितृतन्त्रं महामुनिः। संस्मारितो जन्मशतं मार्कण्डेयेन धीमता॥२॥

धरण्युवाच

भगवन् गौरमुखः कोऽसौ अन्यजन्मनि कः स्मृतः।
कथं च स्मृतवान् स्मृत्वा किं चकार च सत्तमः॥३॥

श्रीवराह उवाच

भृगुरासीत् स्वयं साक्षादन्यस्मिन् ब्रह्म जन्मनि। तदन्वयात्मजस्त्वेष मार्कण्डेयो महामुनिः॥४॥
पुत्रैस्तु बोधिता यूयं सुगतिं प्राप्स्यथेति यत्। प्रागुक्तं ब्रह्मणा तेन मार्कण्डेयेन बोधितः॥५॥
सस्मार सर्वजन्मानि स्मृत्वा चैव तु यत्कृतम्। तच्छृणुष्व वरारोहे कथयामि समासतः॥६॥

अध्याय-१५

गौरमुख को पूर्वजन्म ज्ञान और विष्णु सायुज्य की प्राप्ति

श्री धरणी ने पूछा कि हे सर्वव्यापक देव! मार्कण्डेय मुनि से इस तरह श्राद्ध विधि को सुनकर तत्काल महामुनि गौरमुख ने क्या किया?।।१।।

श्री वराह भगवान् ने कहा—हे धात्रि! इस पितृतन्त्र को सुनाकर तत्काल धीमान् मार्कण्डेय मुनि ने उस महामुनि गौरमुख को विगत सौ जन्म-जन्मान्तरों का स्मरण करवा दिया।।२।।

श्री धरणी ने पूछा कि हे भगवन्! वे गौरमुख कौन थे? पूर्व के जन्म में उनका नाम क्या था? उसने किस प्रकार अपने जन्मान्तर का स्मरण कर सका, फिर स्मरण के पश्चात् उन्होंने क्या किया?।।३।।

श्री भगवान् वराह ने कहा—ब्रह्मकुल के अन्य जन्म में वह साक्षात् स्वयं भृगु था और ये मार्कण्डेय महामुनि उसके वंश के पुत्र हैं।।४।।

बहुत पहले ही ब्रह्माजी द्वारा कहा हुआ था कि तुम्हारे पुत्रों द्वारा ज्ञान कराये जाने पर तुम सबको सुगति प्राप्त हो सकेगी। इसीलिए ही मार्कण्डेय मुनि ने उन्हें इसका ज्ञान कराया।।५।।

हे वरारोहे! उस गौरमुख ने अपने सभी पूर्व-पूर्व जन्मोंका स्मरण किया और उन्हें स्मरण कर उसने जिस प्रकार का व्यवहार किया, उसे संक्षेप में कहने जा रहा हूँ; तुम ध्यान से सुनो।।६।।

एवं श्राद्धविधानेन द्वादशाब्दं ततः पितॄन्।
इष्ट्वा पश्चाद्धरेः स्तोत्रं स मुनिस्तूपचक्रमे॥७॥
प्रभासं नाम यत्तीर्थं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्।
तत्र दैत्यान्तकं देवं स्तोतुं गौरमुखः स्थितः॥८॥

गौरमुख उवाच

स्तोष्ये महेन्द्रं रिपुदर्पहं शिवं नारायणं ब्रह्मविदां प्रतिष्ठितम्।
आदित्यचन्द्राश्वियुगस्थमाद्यं पुरातनं दैत्यहरं सदा हरिम्॥९॥
चकार मात्स्यं वपुरात्मनो यः पुराकृतं वेदविनाशकाले।
महामहीधृग्वपुरग्रपुच्छछटाहवार्च्चिः सुरशत्रुहाद्यः॥१०॥
तथाब्धिमन्थानकृते गिरीन्द्रं दधार यः कौर्मवपुः पुराणम्।
हितेच्छया यः पुरुषः पुराणः प्रपातु मां दैत्यहरः सुरेशः॥११॥
महावराहः सततं पृथिंव्यास् तलात्तलं प्राविशद् यो महात्मा।
यज्ञाङ्गसंज्ञः सुरसिद्धवन्द्यः स पातु मां दैत्यहरः पुराणः॥१२॥
नृसिंहरूपी च भवत्यजस्त्रं युगे युगे योगिवरोग्रभीमः।
करालवक्त्रः कनकाग्रवर्चा रत्नाशयोऽस्मानसुरान्तकोऽव्यात्॥१३॥

तत्पश्चात् उस मुनि ग़ौरमुख ने बारह वर्ष पर्यन्त इस श्राद्ध की विधि का अनुसरण करते हुए पितरों का पूजन सम्पन्न करने के बाद श्रीहरि विष्णु की स्तुति की।।७।।

त्रिलोकी में प्रसिद्ध प्रभास नामक तीर्थ क्षेत्र में मुनि गौरमुख ने दैत्यों का संहार करने वाले देव श्री नारायण का स्तवन करने हेतु प्रस्तुत हुआ।।८।।

गौरमुख ने कहा—मैं हमेशा रिपुओं के अहंकार शामक, कल्याणकारक स्वरूप से ब्रह्मवादियों में प्रतिष्ठित तथा सूर्य, चन्द्र, अश्विनी कुमार आदि में स्थित रहने वाले आदि पुरुष स्वरूप वाले, पुरातन पुरुष, दैत्यों का नाशक, महेन्द्र श्री हरि का स्तवन कर रहा हूँ।।९।।

जिसमें वेदविनाश काल में बहुत पहले अपना मत्स्य स्वरूप धारण किया और वे ही पर्वत सदृश महाविशाल उस स्वरूप के पुच्छाग्र भाग की शोभा युद्ध की ज्वाला सदृश चमकाने वाले, सुरों के रिपुओं को मारने वाले और सबके आदि हैं।।१०।।

उस पुराण पुरुष ने ही समुद्रमन्थन के समय कूर्म स्वरूप धारण कर देवहित की इच्छा से पुरातन विशाल पर्वत मन्दराचल को भी धारण किया, वे ही दैत्यों के विनाशक सुरेश मेरी सदा रक्षा करें।।११।।

देवताओं और सिद्धों के वन्दनीय जिस यज्ञाङ्ग नाम के महात्मा महावराह ने पृथ्वीं के एक तल से दूसरे तल में प्रवेश किया था, वे ही दैत्यनाशक पुराण पुरुष सदा हमारी रक्षा करें।।१२।।

प्रत्येक युग में योगियों में श्रेष्ठ स्वरूप धारण करने वाले, उग्र, भीम स्वरूप वाले, कराल भयङ्कर मुखाकृति वाले, सुवर्ण की तरह तेज सम्पन्न, रत्नाशय स्वरूप वाले नृसिंह स्वरूप को धारण करने वाले, असुर नाशक देव श्री नारायण सदा हमारी रक्षा करें।।१३।।

बलेर्मखध्वंसकृते महात्मा स्वां गूढतां योगवपुःस्वरूपः।
स दण्डकाष्ठाऽजिनलक्षणः पुनः क्षितिं च पदा क्रान्तवान् यः स पातु॥१४॥
त्रिःसप्तकृत्वो जगतीं जिगाय जित्वा ददौ कश्यपाय प्रचण्डः।
स जामदग्न्योऽभिजनस्य गोप्ता हिरण्यगर्भोऽसुरहा प्रपातु॥१५॥
चतुःप्रकारं च वपुर्य आद्यं हैरण्यगर्भप्रतिमानलक्ष्यम्।
रामादिरूपैर्बहुरूपभेदश्चकार सोऽस्मानसुरान्तकोऽव्यात्॥१६॥
चाणूरकंसासुरदर्पभीतेर्भीतामराणामभयाय देवः।
युगे युगे वासुदेवो बभूव कल्पे भवत्यद्भुतरूपकारी।
युगे युगे कल्किनाम्ना महात्मा वर्णस्थितिं कर्त्तुमनेकमूर्त्तिः॥१७॥
सनातनो ब्रह्ममयः पुराणो न यस्य रूपं सुरसिद्धदैत्याः।
पश्यन्ति विज्ञानगतिं विहाय अथोऽप्यनेकानि समर्चयन्ति।
मत्स्यादिरूपाणि चराणि सोऽव्यात्॥१८॥
नमो नमस्ते पुरुषोत्तमाय पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते।
नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते नयस्व मां मुक्तिपदं नमस्ते॥१९॥

एवं नमस्यतस्तस्य महर्षेर्भावितात्मनः। प्रत्यक्षतां गतो देवः स्वयं चक्रगदाधरः॥२०॥

जिसने बलि के यज्ञ को विनष्ट करने हेतु और अपनी गूढ़ स्वरूप धारण करने हेतु दण्डकाष्ठ और मृगचर्म आदिसम्पन्न यौगिक शरीर धारण किया और फिर अपने पैरों से सम्पूर्ण पृथ्वी को आक्रान्त भी कर डाला, वे ही देव श्री नारायण हमारी रक्षा करें।।१४।।

जिसने अपने वंश की रक्षा की और जिस जमदग्नि के प्रचण्ड पुत्र ने इक्कीस बार पृथ्वी को जीतकर कश्यप को दान कर दिया, वे ही असुरनाशक हिरणगर्भ हमारी रक्षा करें।।१४-१५।।

जिसने हिरण्यगर्भ के समान दीखने वाले अपने आदि शरीर को चार प्रकार के राम आदि स्वरूपों से अनेक प्रकार वाला उत्पन्न किया। वे ही असुरों को अन्त करने वाले देव श्रीराम सदा हमारी रक्षा किया करें।।१६।।

जिसने प्रत्येक कल्प के प्रत्येक द्वापर युग में चाणूर और कंसादि असुरों के अहंकार के भय से भयभीत देवताओं को अभय करने हेतु वासुदेव स्वरूप धारण किया, और प्रत्येक युग में अत्यन्त अद्भुत स्वरूप धारण करने वाले अनन्तमूर्त्ति महात्मा देव वर्णाश्रम की रक्षा हेतु कल्कि नाम से उत्पन्न हुआ, उनको प्रणाम है।।१७।।

पुरातन, सनातन, ब्रह्ममय स्वरूप वाले, जिसके स्वरूप को देवता, सिद्ध और दैत्यगण विज्ञान गति के बिना देख भी नहीं पाते, उनके मत्स्यादि बहुत-सारे स्वरूपों की ही उपासना करते रहते हैं, वे ही स्वरूप वाले हमारी सदा रक्षा करें।।१८।।

आप पुरुषोत्तम को प्रणाम है। पुनः पुनः आपको वारम्वार प्रणाम है। आपके आगे और पीछे दोनों तरफ से आपको नमस्कार है। मुझको मुक्तिपद प्रदान करें। आपको नमस्कार है।।१९।।

स्वयं चक्र गदा धारण करने वाले देव इस तरह भक्तिभाव से सम्पन्न होकर स्तुति करने वाले, उस आत्मज्ञानी गौरमुख महर्षि के सम्मुख प्रकट हो गये।।२०।।

तं दृष्ट्वा तस्य विज्ञानं निस्तरङ्गं स्वदेहतः।
उत्तस्थौ सोऽपि तं लब्ध्वा तस्मिन् ब्रह्मणि शाश्वते।
लयं जगाम देवात्मा त्वपुनर्भवसंज्ञिते॥२१॥

।इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे पञ्चदशोध्यायः।।१५।।

षोडशोऽध्यायः

अथ देवदानवयोर्युद्धोद्योगं गोमेधयज्ञं सरमोपाख्यानञ्च

धरण्युवाच

तदा दुर्वाससा शप्तो देवराजः शतक्रतुः। वसिष्यसि त्वं मर्त्येषु सुप्रतीकसुतेन तु॥१॥
उत्सादितो दिवो मूढेत्येवमुक्तस्तु भूधर। इन्द्रो मर्त्त्यमुपागम्य सर्वदेवसमन्वितः॥२॥
किं चकार च तस्मिंस्तु दुर्जये च निपातिते। परमेष्ठिना भगवता तेन योगविदुत्तमौ॥३॥
स्वर्गे विद्युत्सुविद्युच्च तौ च किं चक्रतुस्तदा। एतन्मे संशयं देव कथयस्व प्रसादतः॥४॥

इस तरह मुनि गौरमुख ने भगवान् देव को देखा। उनके देखते-समझते ही उनके श्रीअङ्ग से एक दिव्य विज्ञान उत्पन्न हुआ, उनको प्राप्त कर वे देवात्मा गौरमुख सनातन ब्रह्म में जिसे मोक्ष कहा जाता है, लीन हो गया।।२१।।

।।इस प्रकार श्रीवराहपुराण भगवच्छास्त्र में गौरमुख को पूर्वजन्म ज्ञान और विष्णु सायुज्य की प्राप्ति नामक पन्द्रहवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ।।१५।।

अध्याय-१६

देव-दानव युद्धोद्योग, गोमेध यज्ञ और सरमा उपाख्यान

धरणी ने पूछा कि उस काल में दुर्वासा द्वारा सौ यज्ञ सम्पन्न करने वाले देवताओं के राजा इन्द्र को शाप दिया गया कि हे मूढ़ तुम सुप्रतीक के पुत्र द्वारा स्वर्ग से च्युत किये जाने पर मनुष्यों के बीच निवास करोगे। इस तरह से शाप प्राप्त होने पर स्वर्ग से च्युत किये गये इन्द्र ने सभी देवताओं सहित मनुष्य होकर क्या किया।।१-२।।

और भी जब उन भगवान् परमेष्ठी ने सुप्रतीक पुत्र दुर्जय को मार गिराया। उसके बाद उन दोनों श्रेष्ठ योगविदों ने, जिनका नाम विद्युत् और सुविद्युत् था, स्वर्ग में उस समय क्या किया? हे देव! इस प्रकार के मेरे संशय के बारे में कृपाकर मुझे बतलायें।।३-४।।

श्रीवराह उवाच

दुर्जयेन जितो धात्रि देवराजः शतक्रतुः। भारते हि तदा वर्षे वाराणस्यां तु पूर्वतः।
आश्रित्य संस्थितो देवैः सह यक्षमहोरगैः॥५॥
विद्युत्सुविद्युच्च तदा योगमास्थाय शोभने। दीर्घतापज्वरं वायुकर्मयोगेन संश्रितौ।
लोकपालायतं कृत्स्नं चक्रतुर्योगमायया॥६॥
तं दुर्जयं मृतं श्रुत समुद्रान्तःस्थितं तदा। आनीय चतुरङ्गं तु देवान् प्रति विजग्मतुः॥७॥
आगत्य तौ तदा दैत्यौ महत्सैन्येन पर्वतम्।
हिमवन्तं समाश्रित्य संस्थितौ तु बभूवतुः॥८॥
देवा अपि महत्सैन्यं संहत्य कृतदंशिताः। मन्त्रयाञ्चक्रुरव्यग्रा ऐन्द्रं पदमभीप्सवः॥९॥
अब्रवीत् तत्र देवानां गुरुराङ्गिरसो मुनिः। गोमेधेन यजध्वं वै प्रथमेन तदनन्तरम्॥१०॥
यष्टव्यं क्रतुभिः सर्वैरेकास्थितिरथामराः। उपदेशो मया दत्तः क्रियतां शीघ्रमेष वै॥११॥
एवमुक्तास्तदा देवा गाः पशूंश्चानुकल्प्य ते। मुमुचुश्चरणार्थाय रथार्थं सरमां ददुः॥१२॥
ताश्च गावो देवशुन्या रक्ष्यमाणा धराधरे। तत्र जग्मुस्तदा गावश्चरन्त्यो तत्र तेऽसुराः॥१३॥

श्री भगवान् वराह ने कहा—हे धात्रि! उस समय दुर्जय से परास्त होकर देवराज इन्द्र यक्षों, नागों और देवताओं के सहित भारत वर्ष के वाराणसी नाम के नगर के पूर्वभाग में निवास योग्य स्थान चयन कर निवास करने लगे।।५।।

हे शोभने! तत्पश्चात् विद्युत् और सुविद्युत् ने योग में स्थित होकर वायु कर्म योग द्वारा दीर्घ तापज्वर का आश्रयण करते हुए योगमाया से लोकपालों के समस्त कार्यों को सम्पादित कराया।।६।।

फिर तो उस दुर्जय को मरा हुआ सुनकर विद्युत् और सुविद्युत् दोनों समुद्र के अन्दर स्थित अपनी चतुरङ्गिणी सेना के सहित देवताओं की ओर चल दिये।।७।।

इस तरह वे दोनों दैत्य विशाल सेना सहित हिमालय पर्वत के आश्रित क्षेत्र में आकर स्थित हो गये।।८।।

इधर इन्द्र के सिंहासन की वापसी के इच्छुक पीड़ित देवताओं ने भी विशाल सेना एकत्रित कर सावधान होकर मन्त्रणा करने में व्यस्त हो गये।।९।।

जहाँ देवताओं के गुरु और अङ्गिरा के कुल में उत्पन्न बृहस्पति ने सलाह दिया कि पहले आप लोग गोमेध यज्ञ का सम्पादन करें।।१०।।

तत्पश्चात् एक साथ समस्त देवता मिलकर यज्ञों से यजन करें। इस प्रकार जो मैंने यह उपदेश दिया है, उसे आप सब शीघ्र सम्पन्न करें।।११।।

तब इस प्रकार से बृहस्पति द्वारा कहे जाने पर देवताओं ने गायों और पशुओं का सृजन किया और फिर उन्हें चरने हेतु छोड़ दिया गया तथा अपनी कुतिया सरमा को देवों ने उनकी रक्षा हेतु नियुक्त कर दिया।।१२।।

देव पालित कुतिया द्वारा रक्षित वे गायें पर्वत पर चरती हुई उन असुरों के पास जा पहुँची, जहाँ वे सेना के साथ स्थित थे।।१३।।

ते च गावस्तु ता दृष्ट्वा शुक्रमूचुः पुरोहितम्। पश्वर्थं देवगा ब्रह्मंश्चार्यन्ते रक्षमाणया।
देवशुन्या सरमया वद किं क्रियतेऽधुना॥१४॥
एवमुक्तस्तदा शुक्रः प्रत्युवाचासुरांस्तदा। एता गा ह्रियतां शीघ्रमसुरा मा विलम्बथ॥१५॥
एवमुक्तास्तदा दैत्या जह्रुस्ता गा यदृच्छया। हृतासु तासु सरमा मार्गन्वेषणे रता॥१६॥
अपश्यत् सा दितेः पुत्रैर्नीता गावो धराधरे। दैत्यैरपि शुनी दृष्टा दृष्टमार्गा विशेषतः॥१७॥
दृष्ट्वा ते तां च साम्नैव सामपूर्वमिदं वचः। आसां गवां तु दुग्ध्वैव क्षीरं त्वं सरमे शुभे॥१८॥
पिबस्वैवमिति प्रोक्ता तस्यै तद् दुरञ्जसा। दत्त्वा तु क्षीरपानं तु तस्यै ते दैत्यनायकाः॥१९॥
मा भद्रे देवराजाय गाश्चेमा विनिवेदय। एवमुक्त्वा ततो दैत्या मुमुचुस्तां शुनीं वने॥२०॥
तैर्मुक्ता सा सुरसंस्तूर्णं जगाम खलु वेपती। नमश्चक्रे च देवेन्द्रं सरमा सुरसत्तम्॥२१॥
तस्याश्च मरुतो देवो देवेन्द्रेण निरूपिताः। गूढं गच्छत रक्षार्थं देवशुन्या महाबलाः॥२२॥
इत्युक्तास्तेन सूक्ष्मेण वपुषा जग्मुरञ्जसा। तेऽप्यागम्य सुरेन्द्राय नमश्चकुर्धराधरे॥२३॥
तां देवराजः पप्रच्छ क्व गावः सरमेऽभवन्। एवमुक्ता तु सरमा न जानामीति चाब्रवीत्॥२४॥

इस तरह उन समस्त गायों को देखकर उन असुरों ने अपने पुरोहित शुक्राचार्य से कहा कि हे ब्रह्मन्! देवताओं से पालित कुतिया सरमा द्वारा रक्षित पशुरूप देव गायें चर रहीं हैं। अतः हम लोगों को इस विषय में इस समय क्या करना उचित होगा?।।१४।।

इस प्रकार से पूछे जाने पर शुक्राचार्य ने तब असुरों से कहा कि हे असुरो! इन गायों को शीघ्र ही अपहृत करो, इसमें विलम्ब नहीं करना चाहिए।।१५।।

इस तरह से अपने गुरु के कहे जाने पर उत्साहित दैत्यों ने अपनी सुविधा के अनुसार उन गायों को अपहृत किया। उन गायों के अपहरण कर लिये जाने पर सरमा उनके मार्गों का अनुसन्धान करने लगी।।१६।।

उस समय उसने देखा कि दितिपुत्र गायों को पर्वत के विशेष स्थल पर लेकर चले गये हैं। इस तरह दैत्यों ने भी विशेष रूप से मार्ग अनुसन्धान करने वाली उस सरमा कुतिया को देखा।।१७।।

तत्पश्चात् दैत्यों ने उस सरमा को देखकर शान्तिपूर्वक सामनीति का पालन करते हुये यह कहा कि हे शुभ्रे सरमा! तुम इन गायों को दुह कर दूध पी लो। इस प्रकार कह कर सरमा को दूध पीने हेतु दे दिया। फिर उसे दैत्य नायकों ने दूध पी लेने के बाद कहा—।।१८-१९।।

हे भद्र! तुम देवराज इन्द्र से इन गायों के प्रसङ्ग में मत कहना। इस प्रकार से कहते हुए उस कुतिया को वन में जाने हेतु छोड़ दिया।।२०।।

इस तरह उन दैत्यों से मुक्त होकर वह सरमा कँपकँपाती हुई देवताओं के पास शीघ्र ही चली आई तथा सुरश्रेष्ठ देवेन्द्र को आकर प्रणाम किया।।२१।।

देवपालित इस कुतिया की रक्षा करने हेतु गोपनीय रूप से देवेन्द्र द्वारा नियुक्त अत्यन्त बलशाली मरुद्गण भी सूक्ष्म शरीर से सफलतापूर्वक आ पहुँचा। उन्होंने आकर हे पृथ्वि! इस प्रकार सुरेन्द्र को प्रणाम किया।।२२-२३।।

तब देवेन्द्र ने सरमा से पूछा कि हे सरमा! गायें कहाँ हैं? इस प्रकार से पूछे जाने पर भी सरमा ने कह दिया कि मैं नहीं जानती, गायें कहाँ हैं।।२४।।

तत इन्द्रो रुषा युक्तो यज्ञार्थमुपकल्पिताः। गावः क्व चेति मरुतः प्रोवाचेदं शुनी कथम्॥२५॥
एवमुक्तास्तु मरुतो देवेन्द्रेण धराधरे। कथयामासुरव्यग्राः कर्म तत् सरमाकृतम्॥२६॥
ततः इन्द्रः समुत्थाय पदा सन्ताडयच्छुनीम्।
क्रोधेन महताविष्टो देवेन्द्रः पाकशासनः॥२७॥
क्षीरं पीतं त्वया मूढे गावस्ताश्चसुरैर्हृताः। एवमुक्त्वा पदा तेन ताडिता सरमा धरे॥२८॥
तस्येन्द्रपादघातेन क्षीरं वक्त्रात् प्रसुस्त्रुवे। स्त्रवता तेन पयसा सा शुनी यत्र गा भवत्।
जगाम तत्र देवेन्द्रः सहसैन्यस्तदा धरे॥२९॥
गत्वा चापश्चद् देवेन्द्रस्ता गा दैत्यैरुपाहृताः। पालनां चक्रुर्ये दैत्यास्ते दैत्या बलिनो भृशम्।
ते सैन्यैर्निहताः सद्यस्तत्यजुर्गाः स्वमूर्त्तिभिः॥३०॥
सामन्तैश्च सुरेन्द्रोऽथ वृतः परमहर्षितैः। ताश्च लब्ध्वा महेन्द्रस्तु मुदा परमया युतः॥३१॥
चकार यज्ञान् विविधान् सहस्त्रानपि स प्रभुः। क्रियमाणैस्ततो यज्ञैर्ववृधेन्द्रस्य तद् बलम्॥३२॥
वर्द्धितेन बलेनेन्द्रो देवसैन्यमुवाच ह। सन्नह्यतां सुराः शीघ्रं दैत्यानां वधकर्मणि॥३३॥

फिर इन्द्र ने रोषपूर्वक मरुद्गणों से पूछा कि यज्ञ के निमित्त कल्पित गायें कहाँ स्थित हैं? और यह कुतिया कैसी हो गई है?।।२५।।

हे पृथ्वि! इस प्रकार देवेन्द्र के पूछने पर मरुतों ने शान्ति के साथ विनम्रता से उन सभी घटनाओं का उल्लेख उनसे कर दिया, जैसा-जैसा सरमा द्वारा किया गया था।।२६।।

फिर तो पाकशासन अर्थात् पाक नाम के असुर का वध करने वाले देवेन्द्र अत्यन्त रूष्ट होकर उठे और उस सरमा कुतिया को लात से मारा।।२७।।

और कहा हे मूढ़! तुमने असुर के द्वारा अपहृत किये गये गायों का दूध भी पिया तथा मुझसे असत्य कहा। इस तरह इन्द्र ने उस कुतिया को अपने लात से मारा।।२८।।

इस प्रकार इन्द्र के पदाघात से आक्रान्त सरमा नाम की कुतिया के मुख से दूध की धारा-सी बहने लगी। हे पृथ्वी! उस समय उस बहते दूध धारा के साथ वह कुतिया, जहाँ गायें थीं, वहाँ गयी तथा साथ में देवेन्द्र भी सेना सहित वहाँ पहुँच गये।।२९।।

वहाँ पहुँच कर देवेन्द्र ने दैत्यों द्वारा अपहरण की गयी गायों को देखा। और देखा कि उन गायों की रक्षा अत्यन्त बलशाली दैत्यों द्वारा की जा रही है। उस समय देवेन्द्र सेना द्वारा मारे जाने पर उन दैत्यों ने अपने शरीर के सहित गायों को भी छोड़ दिया।।३०।।

इस प्रकार परम प्रसन्न सामन्तों द्वारा इन्द्र को घेर लिया गया और महेन्द्र भी उन गायों के प्राप्त हो जाने से परम हर्ष का अनुभव करने लगे।।३१।।

फिर तो उन प्रभु ने विविध प्रकार के हजारों यज्ञ सम्पादित किया और इन यज्ञों के करने के प्रभाव से इन्द्र का अत्यन्त बल बढ़ गया।।३२।।

इस प्रकार से अत्यन्त बलशाली हुये इन्द्र ने अपने देव सेना को इस तरह सम्बोधित किया कि हे देवों! दैत्यों के वध के निमित्त आप सभी शीघ्र प्रस्तुत हो जायँ।।३३।।

एवमुक्तास्ततो देवाः सन्नद्धास्तत्क्षणेऽभवन्। असुराणामभावाय जग्मुर्देवाः सवासवाः॥३४॥
गत्वा तु युयुधुस्तूर्णं विजिग्युस्त्वासुरीं चमूम्। जिताश्च देवैरसुरा हतशेषा धराधरे।
ममज्जुः सागरजले भयत्रस्ता विचेतसः॥३५॥
देवराजोऽपि त्रिदिवं लोकपालैः समं धरे। आरुह्य बुभुजे प्राग्वत् स देवो देवराट् प्रभुः॥३६॥
य एनं शृणुयान्नित्यं परमाख्यानमुत्तमम्। स गोमेधस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः॥३७॥
भ्रष्टराज्यश्च यो राजा शृणोतीदं समाहितः। स देवेन्द्र इव स्वर्गं राज्यं स्वं लभते नरः॥३८॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे पञ्चदशोऽध्यायः॥१५॥

इन्द्र के इस तरह से कहे जाने पर देव सेना तत्काल प्रस्तुत हो गयी और फिर इन्द्र के साथ असुरों के नाश हेतु प्रस्थान कर दिये।।३४।।

तत्पश्चात् उन्होंने शीघ्रता से जाकर दैत्यों से युद्ध किया और उसकी सेना को जीत लिया। इस प्रकार देवताओं से पराजित और मारे जाने के भय से अग्रतापूर्वक उस सागर के जल में शरण लिया।।३५।।

हे पृथ्वि! फिर देवन्द्र ने भी अपने लोकपालों के साथ स्वर्ग को प्रस्थान किया तथा इस प्रकार वे स्वर्ग में पहुँच कर देवताओं के साथ स्वर्ग का भोग करने लगा।।३६।।

इस प्रकार सरमा के इस श्रेष्ठ उपाख्यान का जो नित्य पाठ करता है या सुनता है, वह निश्चय ही गोमेध का फल प्राप्त करता है।।३७।।

जिस किसी राज्य च्युत राजा के द्वारा एकाग्रतापूर्वक इस उपाख्यान को सूना जाता है, वह राजा शीघ्र अपना राज्य उसी तरह प्राप्त कर लेता है, जिस तरह कि इन्द्र ने स्वर्ग को पुनः प्राप्त कर लिया।।३८।।

॥इस प्रकार श्रीवराहपुराण भगवच्छास्त्र में देव-दानव युद्धोद्योग, गोमेध यज्ञ और सरमा उपाख्यान नामक सोलहवाँ बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१६॥

❖❖❖

सप्तदशोऽध्यायः

अथ प्रजापालमहातपयोरूपाख्यानम्

धरण्युवाच

ये ते मणौ तदा देव उत्पन्ना नरपुङ्गवाः। तेषां वरो भगवता दत्तस्त्रेतायुगे किल॥१॥
राजानो भवितारो वै कथं तेषां समुद्भवः। किं च चक्रुर्हि ते कर्म पृथङ् नामानि शंस मे॥२॥

श्रीवराह उवाच

सुप्रभो मणिजो यस्तु राजा नाम महामनाः। तस्योत्पत्तिं वरारोहे शृणु त्वं भूतधारिणि॥३॥
असीद् राजा महाबाहुरादौ कृतयुगे पुरा। श्रुतकीर्तिरिति ख्यातस्त्रैलोक्ये बलवत्तरः॥४॥
तस्य पुत्रत्वमापेदे सुप्रभो मणिजो धरे। प्रजापालेति वै नाम्ना श्रुतकीर्तिर्महाबलः॥५॥
सैकस्मिंश्चिद् दिने प्रायाद् गहनं श्वापदाकुलम्। तत्रापश्यदृषेर्धन्यं महदाश्रममण्डलम्॥६॥
तस्मिन् महातपा नाम ऋषिः परमधार्मिकः। तपस्तेपे निराहारो जपन् ब्रह्म सनातनम्॥७॥
तत्रासौ पार्थिवः श्रीमान् प्रवेशाय मतिं तदा। चकार चाविशद् राजा प्रजापालो महातपाः॥८॥

अध्याय–१७

प्रजापाल और महातपाख्यान, देव के अहंकार शमन, सोम का प्राधान्य वर्णन

श्री धरणि ने पूछा कि हे देव! त्रेतायुग में मणि से उत्पन्न श्रेष्ठ मनुष्य को, जिन्हें भगवान् ने वर प्रदान किया था, कि 'तुम सभी राजा होओगे' उनकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई तथा वे सभी कौन-सा ऐसा कार्य किया? जिससे उनकी प्रतिष्ठा अधिक हुई, मुझसे उन सभी के नाम अलग-अलग कृपा कर कहें।।१-२।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि हे वरारोहे भूतधारिणि! सर्वप्रथम तुम मणि से उत्पन्न सुप्रभ नामक राजा, जो महामनस्वी राजा थे, के उत्पत्ति-प्रसङ्ग को सुनो।।३।।

आदि कृतयुग में बहुत पहले त्रिलोक प्रसिद्ध अयत्न्त बलशाली महाबाहु श्रुतकीर्ति नामक एक राजा हुआ था।।४।।

पुरातन काल में मणि से उत्पन्न होने वाला वह सुप्रभ नामक राजा ही उस श्रुतकीर्त्ति राजा का पुत्र था। हे धरे! उसी का प्रजापाल नाम पड़ा था, जिसकी अत्यन्त कीर्ति थी।।५।।

वही प्रजापाल राजा एक बार हिंसक पशुओं वाले वन में पहुँच गया, जहाँ उसने ऋषि के वासयोग्य पवित्र महान् आश्रम मण्डल को भी देखा।।६।।

उस समय उस स्थान पर महातपा नामक परमधार्मिक ऋषि निराहारपूर्वक सनातन ब्रह्म का जप करते हुए तप से अपने को तपा रहे थे।।७।।

तत्पश्चात् उस श्रीमान् महातपस्वी पार्थिव राजा प्रजापाल ने उस आश्रम मण्डल में प्रवेश करने का निर्णय करते हुए उसमें प्रविष्ट हुआ।।८।।

तस्मिन् वराश्रमपदे वनवृक्षजात्या धराप्रसूतोर्जितमार्गजुष्टाः।
लतागृहा इन्दुरविप्रकाशिनो नायासितज्ञाः कुलभृङ्गराजाः॥९॥
सुरक्तपद्मोदरकोमलाग्रनखाङ्गुलीभिः प्रसृतैः सुराणाम्।
वराङ्गनाभिः पदपंक्तिमुच्चैर्विहाय भूमिं त्वपि वृत्रशत्रोः॥१०॥
क्वचित् समीपे तमतीव हृष्टैर्नानाद्विजैः षट्चरणैश्च मत्तैः।
वासद्भिरुच्चैर्विविधप्रमाणाः शाखाः सुपुष्पाः समयोगयुक्ताः॥११॥
कदम्बनीपार्ज्जुनशीलशाललतागृहस्थैर्मधुरस्वरेण ।
जुष्टं विहङ्गैः सुजनप्रयोगा निराकुला कार्यधतिर्यथास्थैः॥१२॥
मखाग्निधूमैरुदिताग्निहोमैस्ततः समन्ताद् गृहमेधिभिर्द्विजैः।
सिंहैरिवाधर्म्मकरी विदारितः स तीक्ष्णदंष्ट्रैर्वरमत्तकेसरैः॥१३॥
एवं स राजा विविधानुपायान् वराश्रमे प्रेक्षमाणो विवेश।
तस्मिन् प्रविष्टे तु स तीव्रतेजा महातपाः पुण्यकृतां प्रधानः।
दृष्टो यथा भानुरनन्तभानुः कौश्यासने ब्रह्मविदां प्रधानः॥१४॥
दृष्ट्वा स राजा विजयी मृगाणां मतिं विसस्मार मुनेः प्रसङ्गात्।
चकार धर्मं प्रति मानसं सो अनुत्तमं प्राप्य नृपो मुनिः सः॥१५॥

प्रायः उस मनोरम आश्रम में भूमि से उत्पन्न अनेक जंगली अलभ्य वृक्षों की जाति से वन के मार्ग परिसम्पन्न थे और लताओं के पुञ्ज, सूर्य व चन्द्र की किरणों से शोभायमान हो रहे थे। वहाँ प्रमुख भृङ्ग भी सहजता से अपना पहचान करा रहे थे।।९।।

वह स्थान वृत्रासुर के शत्रु इन्द्र के स्वर्ग का राज्य छोड़कर आगता देवस्त्रियों के रक्त कमल के अग्रभाग के समान नखों वाले चरणों के चिह्नों से अत्यन्त ही शोभायमान हो रहा था।।१०।।

उसके समीप ही कहीं-कहीं अनेक प्रकार के अत्यन्त प्रसन्नचित्त पक्षियों और मतवाले भृङ्गों के निनाद से पूर्ण और सुगन्ध सम्पन्न पुष्पों से युक्त अनेक प्रकार के शाखाओं वाले वृक्ष भी स्थित थे।।११।।

कदम्ब, नीप, अर्जुन, शील, शाल, लता आदि में बने घरों में निवास करने वाले यथा स्थान स्थित पक्षियों के मधुर स्वर से वह आश्रम गुञ्जायमान हो रहा था, तथा सज्जनों में युक्त कार्य की धारणा से अत्यन्त शान्त, उस आश्रम की भूमि शोभायमान हो रही थी।।१२।।

उस स्थान पर निवास करने वाले गृहस्थ द्विजों ने अपने यज्ञ की अग्नि और उसकी धुयें एवं अग्नि में अर्पण होने वाले आहुतियों द्वारा अधर्म को इस तरह नष्ट कर दिया था, जैसे मानों तीक्ष्ण दाढ़ों वाले उत्तम श्रेणी के मतवाले सिंहों द्वारा हाथी भी विदीर्ण कर दिये गये हैं।।१३।।

इस प्रकार के अनेक विध विशिष्टता को अनुभव करते हुए वह राजा उस श्रेष्ठ आश्रम में प्रविष्ट हुआ। प्रवेश करते ही वह राजा परम तेज सम्पन्न महातपस्वी और महाधार्मिकों में प्रमुख अनन्त किरणों वाले सूर्य के सदृश तथा ब्रह्मवेत्ताओं में प्रधान महामुनि को कुशासन पर स्थित हुआ देखा।।१४।।

इस तरह से उस मुनि को देखने के बाद उस मुनि के संगति प्रभाव से विजयी मुद्रा में वह राजा उन पशुओं

स मुनिस्तं नृपं दृष्ट्वा प्रजापालमकल्मषम्। अभ्यागतक्रियां चक्रे आसनस्वागतादिभिः॥१६॥
ततः कृतासनो राजा प्रणम्य ऋषिपुङ्गवम्। पप्रच्छ वसुधे प्रश्नमिमं परमदुर्लभम्॥१७॥
भगवन् दुःखसंसारमग्नैः पुम्भिस्तितीर्षुभिः। यत्कार्यं तन्ममाचक्ष्व प्रणते शंसितव्रत॥१८॥

महातपा उवाच

संसारार्णवमज्जमानमनुजैः पोतः स्थिरोऽतिध्रुवः
कार्यः पूजनदानहोमविविधैर्यज्ञैः समं ध्यायनैः।
कीलैःकीलितमोक्षभिः सुरभटैरुर्ध्वे भहारज्जुभिः
प्राणाद्यैरधुना कुरुष्व नृपते पोतं त्रिलोकेश्वरम्॥१९॥

नारायणं नरकहरं सुरेशं भक्त्या नमस्कुर्वति यो नृपेश।
स वीतशोकः परमं विशोकं प्राप्नोति विष्णोः पदमव्ययं तत्॥२०॥

नृप उवाच

भगवन् सर्वधर्मज्ञ कथं विष्णुषः सनातनः। पूज्यते मोक्षमिच्छद्भिः पुरुषैर्वद तत्त्वतः॥२१॥

महातपा उवाच

श्रृणु राजन् महाप्राज्ञ यथा विष्णुः प्रसीदति। पुरुषाणां तथा स्त्रीणां सर्वयोगीश्वरो हरिः॥२२॥

के शिकार करने सम्बन्धी विचार को भूलता हुआ उन महामुनि का दर्शन पाकर श्रेष्ठतम धर्म विषयक विचार में निमग्न हो गया।।१५।।

उस प्रजापालक एवं निष्पाप राजा को देखकर उन महामुनि ने आसन और स्वागतादि द्वारा उस राजा का आतिथ्य सत्कार किया।।१६।।

हे वसुधे! उसके बाद उस श्रेष्ठतर ऋषि से उनको प्रणामपूर्वक उनके द्वारा दिये गये आसन पर स्थित होकर राजा ने परम दुर्लभ इस प्रकार की जिज्ञासा प्रकट की।।१७।।

हे शंसितव्रत को करने वाले! दुःखयुक्त संसार में निमग्न परन्तु मोक्ष प्राप्त करने की इच्छा वाले जनों का जो कर्त्तव्य होना चाहिए, उसे आप मुझ जैसे शरणागत को कहें।।१८।।

महातपा ने कहा कि हे राजन्! संसार रूपी समुद्र में उत्तरा रहे मनुष्यों हेतु एक प्रकार से अत्यन्त दृढ़ और स्थिर पोत है, उन भगवान् का ध्यान चिन्तन करते हुए विविध प्रकार से यज्ञों सहित पूजन, दान, हवन आदि करना। क्योंकि इस प्रकार करने से मोक्ष प्राप्त पराक्रमी देवता महान् रज्जुओं से उस प्राणी को ऊपर की ओर खींच लेते हैं। हे राजन! अब तुम्हें भी प्राणादि का साधन कर त्रिलोकेश्वर को पोत बनाना चाहिए।।१९।।

हे नृपेश! जो कोई प्राणी भक्तिभाव सहित नरक का हरण करने वाले नारायण सुरेश को प्रणाम करता है, वह निश्चय ही शोकरहित होकर विष्णु के उस शोक रहित शास्वत पद को प्राप्त कर लेता है।।२०।।

राजा ने कहा—हे सभी तरह के धर्मों को जानने वाले, धर्मज्ञ भगवन्! आप कृपा कर मुझसे यह बतलायें कि मोक्षेच्छु पुरुषों को यथार्थ विष्णु पूजन किस प्रकार से करना चाहिए।।२१।।

महातपा ने कहा कि हे महाप्राज्ञ राजन्! सभी योगियों के ईश्वर हरि श्री विष्णु पुरुषों और स्त्रियों के ऊपर जिस प्रकार प्रसन्न होते हैं, उसे सुनो।।२२।।

सर्वे देवाः सपितरो ब्रह्माद्याश्चाण्डमध्यगाः। विष्णोः सकाशादुत्पन्ना इतीयं वैदिकी श्रुतिः॥२३॥
अग्निस्तथाश्विनौ गौरो गजवक्त्रभुजङ्गमाः। कार्त्तिकेयस्तथादित्यो मातरो दुर्गया सह॥२४॥
दिशो धनपतिर्विष्णुर्यमो रुद्रः शशी तथा। पितरश्चेति सम्भूताः प्राधान्येन जगत्पतेः॥२५॥
हिरण्यगर्भस्य तनौ सर्व एव समुद्भवाः। पृथक्पृथक् ततो गर्वं वहमानाः समन्ततः॥२६॥
अहं योग्यस्त्वहं याज्य इति तेषां स्वनो महान्। श्रूयते देवसमितौ क्षुब्धसागरसन्निभः॥२७॥
तेषां विवदमानानां वह्निरुत्थाय पार्थिवः। उवाच मां यजस्वेति ध्यायध्वं मामिति ब्रुवन्॥२८॥
प्राजापत्यमिदं नूनं शरीरं मद्विनाकृतम्। विनाशमुपपद्येत यतो नायं महानहम्॥२९॥
एवमुक्त्वा शरीरं तु त्यक्त्वा वह्निर्विनिर्ययौ। निर्गतेऽपि ततस्तस्मिंस्तच्छरीरं न शीर्यते॥३०॥
ततोऽश्विनौ मूर्तिमन्तौ प्राणापानौ शरीरगौ। आवां प्रधानावित्येवमूचतुर्याज्यमुत्तमौ॥३१॥
एवमुक्त्वा शरीरं तु विहाय क्वचिदास्थितौ। तयोरपि क्षयं कृत्वा क्षेत्री तत्पुरमास्थितम्॥३२॥

ततो वागब्रवीद् गौरी प्राधान्यं मयि संस्थितम्।
साप्येवमुक्त्वा क्षेत्रात् तु निश्चक्राम बाहिः शुभा॥३३॥

ब्रह्मादि देवता, सब पितर तथा ब्रह्माण्ड मध्यस्थ निवास करने वाले सभी विष्णु से उत्पन्न हैं, इस प्रकार से वेदों में कहा गया है।।२३।।

अग्नि, अश्विनी कुमारद्वय, गौरी, गणेश, सर्प, कार्त्तिकेय, आदित्य, दुर्गा देवी सहित मातृकायें, दिशायें, धनेश (कुबेर), विष्णु, यम, रुद्र, चन्द्रमा, पितृगण आदि-आदि प्रमुख रूप से उसी जगत्पति से ही उत्पन्न हैं।।२४-२५।।

इस तरह हिरण्यगर्भ के शरीर से उत्पन्न होने वाले सभी देवगण अलग-अलग चारों ओर गर्व करने लगे।।२६।।

'मैं ही योग्य हूँ तथा मेरी ही पूजा होनी चाहिए' इस तरह से समुद्र को क्षुभित करने जैसा उन सबका अत्यन्त महाकोलाहल देवताओं की सभा में सूनायी पड़ने लगा।।२७।।

हे राजन्! विवाद करने वाले उन देवताओं में से उठते हुये अग्निदेव ने कहा "मेरा यज्ञ एवं मेरा ध्यान करो।' क्योंकि मेरे विना प्रजापति का बनाया शरीर निश्चय ही विनष्ट हो जाया करेगा। अतः क्या मैं महान् नहीं हूँ?।।२९।।

इस प्रकार कहते हुये अग्नि शरीर को छोड़कर बाहर निकल गया। तत्पश्चात् उसके निकल जाने के बाद भी वह शरीर नष्ट नहीं हुआ।।३०।।

तत्पश्चात् शरीरस्थ प्राण और अपान स्वरूप मूर्त्तिमान् अश्विनी कुमारों ने कहा कि हम दोनों प्रमुख और वरिष्ठ पूजास्पद हैं।।३१।।

इस प्रकार कहते हुए वे दोनों भी शरीर को छोड़कर अन्यत्र स्थान पर स्थित हो चले। उन दोनों के न रहने पर भी आत्मा उस शरीर में बना रहा।।३२।।

फिर वाक्स्वरूप गौरी ने कहा कि 'प्रमुखता मुझमें है'। इस प्रकार कहते हुए वह शुभा (गौरी) भी शरीर से पृथक् निकल कर स्थित हो गयी।।३३।।

तया विनापि तत्क्षेत्रं वागूनं व्यवतिष्ठत। ततो गणपतिर्वाक्यमाकाशाख्योऽब्रवीत् तदा॥३४॥
न मया रहितं किञ्चिच्छरीरं स्थायि दूरतः। कालान्तरेत्येवमुक्त्वा सोऽपि निष्क्रम्य देहतः॥३५॥
पृथग्भूतस्तथाप्येतच्छरीरं नाप्यनीनशत्। विनाशाख्यतत्त्वेन तथाऽपि च विशीर्यते॥३६॥
सुषिरैस्तु विहीनं तु दृष्ट्वा क्षेत्रं व्यवस्थितम्। शरीरधातवः सर्वे ते ब्रूयुर्वाक्यमेव हि॥३७॥
अस्माभिर्व्यतिरिक्तस्य न शरीरस्य धारणम्। भवतीत्येवमुक्त्वा ते जहुः सर्वे शरीरिणः॥३८॥
तैर्व्यपेतमपि क्षेत्रं पुरुषेण प्रपाल्यते। तं दृष्ट्वा त्वब्रवीत् स्कन्दः सोऽहङ्कारः प्रकीर्तितः॥३९॥
मया विना शरीरस्य सम्भूतिरपि नेष्यते। एवमुक्त्वा शरीरात् तु सोऽभ्यपेतः पृथक् स्थितः॥४०॥
तेनाक्षतेन तत्क्षेत्रं विना मुक्तवदास्थितम्। तं दृष्ट्वा कुपितो भानुः स आदित्यः प्रकीर्तितः॥४१॥
मया विना कथं क्षेत्रमिमं क्षणमपीष्यते। एवमुक्त्वा प्रयातः स तच्छरीरं न शीर्यते॥४२॥
ततः कामादिरुत्थाय गणो मातृविसंज्ञितः। न मया व्यतिरिक्तस्य शरीरस्य व्यवस्थितिः।
एवमुक्त्वा स यातस्तु शरीरं तन्न शीर्यते॥४३॥
ततो मायाऽब्रवीत्कोपात् सा च दुर्गा प्रकीर्तिता।
न मयास्य विना भूतिरित्युक्त्वाऽन्तर्दधे पुनः॥४४॥

फिर भी वह शरीर वाणी रहित होकर भी स्थित ही रहा। तब आकाश नामक गणपति ने कहा कि कोई शरीर मेरे बिना देर तक नहीं रह सकता। इस प्रकार कहते हुये वह भी शरीर से निकल कर अलग हो गया। उसके पृथक् होने के बाद भी वह शरीर नष्ट नहीं हुआ। इस तरह आकाश नामक तत्त्व से अलग होकर भी वह शरीर नष्ट नहीं हुआ।।३४-३६।।

इस तरह आकाश के विना भी शरीर को पूर्ववत् व्यवस्थित देखकर उन सभी शरीर के धातुओं ने यह वाक्य कहा—।।३७।।

हमोर विना शरीर धारण होने योग्य नहीं रहेगा। ऐसा कहते हुए उन सभी शरीरधारी धातुओं ने प्रजापति के देह को छोड़ दिया।।३८।।

पुरुष ने उनसे रहित शरीर का भी अनुपालन किया। उसे देखकर अहंकार कहे जाने वाले उन स्कन्द ने कहा—।।३९।।

'मेरे विना इस शरीर की उत्पत्ति ही नहीं हो सकती।' इस प्रकार कहते हुए वह भी शरीर को छोड़कर बाहर निकल कर पृथक् हो गया।।४०।।

फिर भी वह शरीर उन स्कन्द के विना भी मुक्त की तरह स्थित रहा। जिसे देखकर भानु रूष्ट हो गये, जिन्हें आदित्य कहा जाता है।।४१।।

मेरे विना यह शरीर किस प्रकार क्षणभर भी रह सकेगा? इस प्रकार कहते हुए वे भी शरीर से निकल गये। फिर भी वह शरीर यथास्थिति ही बना रहा।।४२।।

तत्पश्चात् मातृगण नाम के कामादि ने भी उठकर कहा कि मेरे विना यह शरीर नहीं रह सकता? इस प्रकार कहते हुए वे सभी भी शरीर से पृथक् हो गये। फिर भी वह शरीर यथास्थिति बना ही रहा।।४३।।

इसके बाद दुर्गा नाम की माया ने कोपपूर्वक कहा कि मेरे विना यह शरीर नहीं रह सकता। तत्पश्चात् वह भी इस प्रकार कहते हुए अन्तर्धान हो गईं।।४४।।

ततो दिशः समुत्तस्थुरूचुश्चेदं वचो महत्। नास्माभी रहितं कार्यं भवतीति न संशयः।
चतस्त्र आगताः काष्ठा अपयाताः क्षणात् तदा॥४५॥
ततो धनपतिर्वायुर्मध्यपेते क्व सम्भवः। शरीरस्येति सोप्येवमुक्त्वा मूर्धानगोऽभवत्॥४६॥
ततो विष्णोर्मनो ब्रूयान्नायं देहो मया विना।
क्षणमप्युत्सहेत् स्थातुमित्युक्त्वान्तर्दधे पुनः॥४७॥
ततो धर्मोऽब्रवीत् सर्वमिदं पालितवानहम्। इदानीम्मय्युपगते कथमेतद्भविष्यति॥४८॥
एवमुक्त्वा गतो धर्मस्तच्छरीरं न शीर्यते। ततोऽब्रवीन्महादेवः अव्यक्तो भूतनायकः॥४९॥
महत्संज्ञो मया हीनं शरीरं नो भवेद् तथा। एवमुक्त्वा गतः शम्भुस्तच्छरीरंन शीर्यते॥५०॥
तं दृष्टा पितरश्चोचुस्तन्मात्रं यावदस्मभिः। प्रगतैरेभिरेतच्च शरीरं शीर्यते ध्रुवम्।
एवमुक्त्वा तु ते देहं त्यक्त्वाऽन्तर्द्धानमागताः॥५१॥
अग्निः प्राणो अपानश्च आकाशं सर्वधातवः। क्षेत्रं तद्वदहङ्कारो भानुः कामादयो मया।
काष्ठा वायुर्विष्णुर्धर्म शम्भुस्तथेन्द्रियार्थकाः॥५२॥
एतैर्मुक्तं तु तत्क्षेत्रं तत् तथैव व्यवस्थितम्। सोमेन पाल्यमानं तु पुरुषेणेन्दुरूपिणा॥५३॥

फिर दिशायें भी उठती हुईं इस प्रकार से महान् वचन कह सूनाया कि 'निःसन्देह हमारे विना कार्य का सम्पादन नहीं हो सकता है?' इस प्रकार से अपनी बातें कहती हुई वे चारों दिशायें भी पलभर में वहाँ से चली गईं।।४५।।

'मेरे न रहने पर शरीर की उत्पत्ति हो ही नहीं सकती' इस तरह से कहता हुआ वायु स्वरूप वाले धनपति भी उस शरीर के मस्तक से निकल कर चला गया।।४६।।

फिर मनःस्वरूप विष्णु इस प्रकार से कहते हुए अन्तर्धान हो गये कि यह शरीर मेरे अभाव में क्षण भर के लिए भी रहने हेतु उत्सुक नहीं हो सकता।।४७।।

इन सबों के बाद धर्म ने भी इस प्रकार से कहा कि मैंने इन सबों का पालन करने वाला हूँ, तो मेरे चले जाने पर यह शरीर किस प्रकार रह सकेगा?।।४८।।

उपरोक्त प्रकार कहते हुए धर्म के चले जाने पर भी वह शरीर नष्ट नहीं हुआ। फिर महान् नाम का अव्यक्त भूतनायक महदेव ने भी कहा कि मेरे विना शरीर नहीं ही रहेगा। इस तरह से कहते हुए शम्भु भी चले गये, फिर भी वह शरीर नष्ट नहीं हुआ।।४९-५०।।

उक्त प्रकार की घटनाओं को देखते हुये तन्मात्र स्वरूप पितृगणों ने भी कह दिया कि हम सबों के इस शरीर से पृथक् हो जाने पर निश्चय ही यह विनष्ट हो जाएेगा। इस प्रकार कहते हुए उस शरीर को छोड़कर वे पितृगण भी तिरोहित हो गये।।५१।।

अग्नि, प्राण, अपान,, आकाश, सभी प्रकार की धातुऐं, अहंकार, सूर्य, कामादि, माया (दुर्गा), दिशायें, वायु, विष्णु, धर्म, शम्भु आदि सभी इन्द्रियों को वहन करने वाले सभी देवगण के उस शरीर से पृथक् हो जाने पर भी वह शरीर इन्दु रूपी सोमपुरुष द्वारा पालित होकर पूर्ववत् स्थित रहा।।५२-५३।।

एवं व्यवस्थिते सोमे षोडशात्मन्यथाक्षरे। प्राग्वत् तत्र गुणोपेतं क्षेत्रमुत्थाय बभ्रम॥५४॥
प्रागवस्थं शरीरं तु दृष्ट्वा सर्वज्ञपालितम्। ताः क्षेत्रदेवताः सर्वा वैलक्षं भावमाश्रिताः॥५५॥
तमेवं तुष्टुवुः सर्वास्तं देवं परमेश्वरम्। स्वस्थानमीयिषुः सर्वास्तदा नृपतिसत्तम॥५६॥
त्वमग्निस्त्वं तथा प्राणस्त्वमपानः सरस्वती। त्वमाकाशं धनाध्यक्षस्त्वं शरीरस्य धातवः॥५७॥
अहंकारो भवान् देव त्वमादित्योऽष्टको गणः। त्वं माया पृथिवी दुर्गा त्वं दिशस्त्वं मरुत्पतिः॥५८॥
त्वं विष्णुस्त्वं तथा धर्मस्त्वं जिष्णुस्त्वं पराजितः। अक्षरार्थस्वरूपेण परमेश्वरसंज्ञितः॥५९॥
अस्माभिरपयातैस्तु कथमेतद्भविष्यति। एवमत्र शरीरं तु त्यक्तमस्माभिरेव च॥६०॥
तत् परं भवता देव तदवस्थं प्रपाल्यते। स्थानभङ्गो न नः कार्यः स्वयं सृष्ट्वा प्रजापते॥६१॥
एवं स्तुतस्ततो देवस्तेषां तोषं परं ययौ। उवाच चैतान् क्रीडार्थं भवन्तोत्पादिता मया॥६२॥

कृतकृत्यस्य मे किं नु भवद्भिर्विप्रयोजनम्।
तथाऽपि दद्मि वो रूपे द्वे द्वे प्रत्येकशोऽधुना॥६३॥

भूतकार्येष्वमूर्तेन देवलोके तु मूर्तिना। तिष्ठध्वमपि कालान्ते लयं त्वाविशत द्रुतम्॥६४॥

तथा इस अक्षर षोडशकला स्वरूप सोम के शरीर में बने रहने पर पूर्वस्थिति के अनुरूप गुणों से सम्पन्न वह शरीर उठकर भ्रमणशील हो गया।।५४।।

उपरोक्त प्रकार सर्वज्ञ सोमपुरुष के द्वारा पोषित शरीर को यथास्थिति देखकर उन समस्त क्षेत्र या अङ्ग देवताओं को अत्यन्त आश्चर्य हुआ।।५५।।

हे नृपति श्रेष्ठ! फिर तो उन सभी अङ्ग देवता उन परमेश्वरदेव की इस तरह से स्तवन करने लगे और फिर अपने-अपने स्थान पर पूर्ववत् स्थित होने की अपनी-अपनी इच्छाऐं व्यक्त करने लगे।।५६।।

आप अग्नि हैं तथा आप ही प्राण, अपान और सरस्वती हैं। आप ही आकाश और कुबेर भी हैं और शरीर की समस्त धातुऐं भी हैं।।५७।।

हे देव! आप अहंकार हैं। आप ही आदित्य, अष्टगण, माया, पृथ्वी, दुर्गा, दिशायें होने के साथ आप ही मरुत्पति भी हैं।।५८।।

आप ही विष्णु, धर्म आदि होने के साथ विजयी और पराजित भी हैं। आप स्वयं ही अक्षरार्थ स्वरूप परमेश्वर नाम वाले भी हैं।।५९।।

'यह शरीर तब कैसे रह पायेगा, जब हम सभी इसे छोड़कर चले जाऐंगे'; यहसोच कर इस शरीर को छोड़कर सभी पृथक् हो गये; फिर भी यह शरीर यहाँपर पूर्ववत् बना रहा। हे देव! आपने तब भी इस शरीर का उसी प्रकार पालन किया। हे प्रजापति! आप स्वयं हमारी सृष्टि किया है, अतः हम लोगों को अपने-अपने स्थान से पृथक् न करें।।६०-६१।।

इस तरह से स्तवन करने के उपरान्त देव (सोम) उनके ऊपर परम प्रसन्न हो गये और वे उनसे कहते हैं कि आप लोग यह जान लें कि मैंने आप लोगों की उत्पत्ति मात्र क्रीड़ा करने हेतु किया है।।६२।।

फिर भी मैं कृतकृत्य हूँ; लेकिन आप सबों से मेरा विशेष कोई और प्रयोजन नहीं है। फिर भी मैंने इस समय सोचा है कि तुममें से प्रत्येक को दो-दो स्वरूप प्रदान करूँगा।।६३।।

भूतकर्मों में अमूर्त्तरूप से तथा देवलोक में मूर्त्तरूप से आप सभी स्थित रहें। तथा सृष्टि के अन्त होने पर शीघ्र

शरीराणि पुनर्नैवं कर्त्तव्योऽहमिति क्वचित्। मूर्त्तीनां च तथा तुभ्यं दद्मि नामानि वोऽधुना॥६५॥
अग्नेर्वैश्वानरो नाम प्राणापानौ तथाश्विनौ। भविष्यति तथा गौरी हिमशैलसुता तथा ॥६६॥
पृथिव्यादिगुणस्त्वेष गजवक्त्रो भविष्यति। शरीरधातवश्चेमे नानाभूतानि एव तु।
अहङ्कारस्तथा स्कन्दः कार्त्तिकेयो भविष्यति॥६७॥
भानुश्चादित्यरूपोऽसौ मूर्त्तामूर्त्ते च चक्षुषी। कामाद्योऽयं गणो भूयो मातृरूपो भविष्यति॥६८॥
शरीरमाया दुर्गैषा कारणान्ते भविष्यति। दश कन्या भविष्यन्ति काष्ठास्त्वेतास्तु वारुणाः॥६९॥
अयं वायुर्धनेशस्तु कारणान्ते भविष्यति। अयं मनो विष्णुनामा भविष्यति न संशयः॥७०॥
धर्मोऽपि यममाना च भविष्यति न संशयः। महत्तत्त्वं च भगवान् महादेवो भविष्यति॥७१॥
इन्द्रियार्थाश्च पितरो भविष्यन्ति न संशयः। अयं सोमः स्वयं भूत्वा यामित्रं सर्वदामराः॥७२॥
एवं वेदान्तपुरुषः प्रोक्तो नारायणात्मकः। स्वस्थाने देवताः सर्वा देवस्तु विरराम ह॥७३॥
एवं प्रभावो देवोऽसौ वेदवेद्यो जनार्दनः। कथितो नृपते तुभ्यं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि॥७४॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे सप्तदशोऽध्यायः॥१७॥

लय को प्राप्त जाओ। इस समय शीघ्र तुम लोग इस शरीर में स्थित हो जाओ। इस तरह से तुम सभी पुनः अहंकार नहीं करना, अच्छा रहेगा। अब मैं तुम लोगों और तुम्हारी मूर्त्तियों का नामकरण करने जा रहा हूँ।।६४-६५।।

अग्नि का नाम वैश्वानर, प्राण और अपान का नाम अश्विनी कुमार तथा गौरी का नाम हिमशैल सुता होगा।।६६।।

यह पृथिव्यादिगण गजानन कहलायेंगे। इस शरीर की सभी धातुऐं अनेक प्रकार के भूत होंगे और अहंकार स्कन्द कार्त्तिकेय कहलाएगा।।६७।।

यह आदित्य नाम का भानु मूर्त और अमूर्त रूप से चक्षुरूप होंगे। कामादि अष्टगण मातृका रूप होंगे।।६८।।

कारणान्तर उपस्थित होने पर दुर्गा शरीरस्थ माया होंगी तथा वरुण की दस कन्यायें ये दस दिशायें होंगी।।६९।।

कारण का अन्त होने पर धनेश ही वायु होगा तथा इस मन का नामान्तर निश्चय ही विष्णु होगा। एवं निश्चय ही धर्म का नाम भी यम होगा तथा महत्तत्त्व निश्चय ही भगवान् महादेव माने जाऐंगे।।७०-७१।।

इन्द्रियों के विषय निश्चय कर पितर ही होंगे और हे देवगण! स्वयं यह सोम सर्वदा ही यामित्र होकर स्थित रहेंगे।।७२।।

इस तरह से नारायण स्वरूप वेदान्त पुरुष का वर्णन सम्पन्न होने पर सभी देवता अपने-अपने स्थान पर चले गये एवं देव नारायण ने भी वक्तव्य को विराम दिया।।७३।।

हे राजन्! वेदों से जानने योग्य जनार्दन देव का प्रभाव और कार्य को आपसे कहा है। अब आप और क्या सुनना पसन्द करेंगे।।७४।।

॥इस प्रकार श्रीवराहपुराण भगवच्छास्त्र में प्रजापाल और महातपाख्यान, देव के अहंकार शमन, सोम का प्राधान्य वर्णन नामक सत्रहवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायण-कुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१७॥

अष्टादशोऽध्यायः

अथ अग्न्युत्पत्तिस्तेषां नामानि

प्रजापाल उवाच

कथमग्नेः समुत्पत्तिरश्विनोर्वा महामुने। गौर्या गणपतेर्वाऽपि नागानां वा गुहस्य च॥१॥
आदित्यचन्द्रमातॄणां दुर्गाया वा दिशां तथा। धनदस्य च विष्णोर्वा धर्मस्य परमेष्ठिनः॥२॥
शम्भोर्वापि पितॄणां च तथा चन्द्रमसो मुने। शरीरदेवताः ह्येताः कथं मूर्त्तित्वमागताः॥३॥
किं च तासां मुने भोज्यं का वा संज्ञा तिथिश्च का।
यस्यां यष्टास्त्वमी पुंसा फलं यच्छन्त्यनामयम्।
एतन्मे सरहस्यं तु मुने त्वं वक्तुमर्हसि॥४॥

महातपा उवाच

योगसाध्यः स्वरूपेण आत्मा नारायणात्मकः। सर्वज्ञः क्रीडतस्तस्य भोगेच्छा चात्मनात्मनि।
क्षोभितेऽभून्महाभूते एतच्छब्दं तदद्भुतम्॥५॥
तमप्यप्रीतिमत्तोयं विकारं समरोचयत्। विकुर्वतस्तस्य तदा महानग्निः समुत्थितः।
कोटिज्वालापरीवारः शब्दवान् दहनात्मकः॥६॥

अध्याय–१८

अग्न्युत्पत्ति और उनके विविध नाम

राजा प्रजापाल ने पूछा कि हे महामुनि! अग्नि, अश्विनी कुमारों, गौरी, गणपति, नागों, कार्त्तिकेय आदि की उत्पत्ति किस प्रकार से हुई?।।१।।

हे मुनि! आदित्य, चन्द्र, मातृकायें, दुर्गा, दिशायें, कुबेर, विष्णु, धर्म अथवा परमेष्ठी शम्भु आदि के सहित पितृगण और चन्द्रमा; ये सभी शरीर-देवता किस प्रकार से मूर्त्तिमान हो पाये।।२-३।।

हे मुनि! इन सबका आहार, नाम और तिथि क्या थी? जिनमें पूजन आदि करने से ये मनुष्यों को रोगहीन करते हुए फल प्रदान करने वाले होते हैं। हे मुनि! आप मुझे यह रहस्य के साथ बतलाने की कृपा करें।।४।।

महातपा ने कहा कि योग से साधन किये जाने वाले ये नारायण स्वरूप आत्मा हैं। आत्मा द्वारा आत्मा में क्रीड़ारत आत्माराम उन नारायण को भोग विषयक इच्छा हुई। उस काल में महाभूत के क्षोभित होने पर यह अद्भुत शब्द सूनाई दिया।।५।।

यह शब्द उन नारायण को अरूचिकर होकर भी जल सम्बन्धी वह विकार रूचिकर हुआ। फिर उनके विकृति से करोड़ों ज्वालाओं से युक्त, शब्द सम्पन्न जलाने की शक्ति वाला महान् अग्नि उत्पन्न हुई।।६।।

असावप्यतितेजस्वी विकारं समरोचयत्। विकुर्वतो बभौ वह्नेर्वायुः परमदारुणः।
तस्मादपि विकारस्थादाकाशं समपद्यत॥७॥
तच्छब्दलक्षणं व्योम स च वायुः प्रतापवान्। तच्च तेजोऽम्भसा युक्तं श्लिष्टमन्योन्यतस्तथा॥८॥
तेजसा शोषितं तोयं वायुना उग्रगामिना। बाधितेन तथा व्योम्ना मार्गे दत्ते तु तत्क्षणात्॥९॥
पिण्डीभूतं तथा सर्वं काठिन्यं समपद्यत्। सेयं पृथ्वी महाभाग तेषां वृद्धतराभवत्॥१०॥
चतुर्णां योगकाठिन्यादेकैकगुणवृद्धितः। पृथ्वी पञ्चगुणा ज्ञेया तेऽप्येतस्यां व्यवस्थिताः॥११॥
स च काठिन्यकं कुर्वन् ब्रह्माण्डं समपद्यत। तस्मिन् नारायणो देवश्चतुर्मूर्त्तिश्चतुर्भुजः॥१२॥
प्राजापत्येन रूपेण सिसृक्षुर्विविधाः प्रजा। चिन्तयन् नाधिगच्छेत् सृष्टिं लोकपितामहः॥१३॥
ततोऽस्य सुमहान् कोपो जज्ञे परमदारुणः। तस्मात् कोपात् सहस्रार्चिरुत्तस्थौ दहनात्मकः॥१४॥
स तं दिधक्षुर्ब्रह्माणं ब्रह्मणोक्तस्तदा नृप। हव्यं कव्यं वहस्वेति ततोऽसौ हव्यवाहनः॥१५॥
ब्रह्माणं क्षुधितः प्रायात् किं करोमि प्रसाधि माम्।
स ब्रह्मा प्रत्युवाचाथ त्रिधा तृप्तिमवाप्स्यसि॥१६॥

वह अग्नि अति तेजवान् होकर भी विकार की इच्छा वाला था। इस अग्नि के विकृत होने से परम दारुण वायु भी उत्पन्न हो गया फिर उसमें भी विकार उत्पन्न होने से आकाश की उत्पत्ति हुई।।७।।

वह वायु प्रतापी और आकाश शब्द गुण सम्पन्न था। फिर वहं तेज भी जल से युक्त था। इस प्रकार से सभी भूत (तत्त्व) परस्पर एक-दूसरे से संश्लिष्ट (मिश्रित) होते गये।।८।।

इस तरह तेज ने जल को शोषित किया, उग्रगामी वायु ने फिर उसे बाधित भी किया। लेकिन आकाश ने तत्काल उसके लिए भी मार्ग उपलब्ध कराया।।९।।

इस तरह सभी भूतों का पिण्ड बनते हुए उसमें कठोरता भी आती गई। हे महाभाग! उसी का फल यह पृथ्वी है। यह उन सभी से अधिक क्लिष्ट गुणों वाली हो गई।।१०।।

अन्य चार भूतों के योग से उत्पन्न कठोरता के फलस्वरूप एक-एक गुण की वृद्धि होने से पृथ्वी को गन्धादि पाँच गुणों वाली बना दिया। वे जल आदि चार भूत भी इस पृथ्वी में स्थित हैं।।११।।

इन समस्त भूतों में कठोरता उत्पन्न करते हुए वह परमेश्वर ब्रह्माण्ड स्वरूप को धारण कर लिया। उसमें चतुर्भुज नारायण देव चतुर्मुख ब्रह्मा भी हुये।।१२।।

जिस समय प्रजापति स्वरूप से अनेक प्रकार की प्रजा का सृजन करने की इच्छा वाला लोक पितामह ब्रह्मा चिन्तन करके भी सृष्टि करने में असमर्थ हो गये, उस समय उनको परम कठिन महाकोप की उत्पत्ति हुई। उसके परिणाम स्वरूप सहस्त्रों ज्वाला वाला जलाने की शक्ति सम्पन्न अग्नि उत्पन्न हो गयी।।१३-१४।।

हे राजन्! फिर जब वह अग्नि उन ब्रह्मा को भी दग्ध करने की इच्छा प्रकट की उस समय ब्रह्माजी ने उनसे कहा कि तुम हव्य और कव्य का वहन करो। इसी कारण वह अग्नि हव्यवाहन होकर प्रसिद्ध हुआ।।१५।।

वह अग्नि भूखा होने से ब्रह्मा से कहा कि अब मैं क्या करूँ। मुझे आज्ञा दीजिए। फिर उन ब्रह्माजी ने उत्तर दिया कि तुम्हें तीन तरह से संतृप्ति प्राप्त हो सकेगी।।१६।।

दत्तासु दक्षिणास्वादौ तृप्तिर्भूत्वा यतोऽमरान्। नयसे दक्षिणाभागं दक्षिणाग्निस्ततोऽभवत्॥१७॥
आ समन्ताद्धुतं किञ्चिद् यत् त्रिलोके विभावसो। तद् वहस्व सुरार्थाय ततस्त्वं हव्यवाहनः॥१८॥
गृहं शरीरमित्युक्तं तत्पतिस्त्वं यतोऽधुना। अतो वै गार्हपत्यस्त्वं भव सर्वगतो विभो॥१९॥
विश्वान् नरान् हुतो येन नयसे सद्गतिं प्रभो। अतो वैश्वानरो नाम तव वाक्यं भवष्यिति॥२०॥
द्रविणं बलमित्युक्तं धनं च द्रविणं यतः। ददाति तद्भावानेव द्रविणोदास्ततोऽभवत्॥२१॥
तनुं पास्यतनुं पासि येन त्वं सर्वदा विभो। ततस्तनूनपान्नाम तव वत्स भविष्यति॥२२॥
भवान् जातानि वै वेद अजातानि च येन वै। अतस्ते नाम भवतु जातवेदा इति प्रभो॥२३॥
नाराः सामान्यतः पुंसो विशेषेण द्विजातयः। ते शंसन्ति यतस्त्वां तु नाराशंसस्ततो भव॥२४॥

अगस् तिरोभवेन्नित्यं निःशब्दो निश्चात्मकः।
अगस्त्वं सर्वगत्वाच्च तेनाग्निस्तवं भविष्यसि॥२५॥

ध्मा प्रपूरणशब्दो य इध्मा नाम प्रकीर्त्त्यते। पूरितस्यागतिर्येन तेनेध्मस्त्वं भविष्यसि॥२६॥

जहाँ से सर्वप्रथम दक्षिणा प्रदान करने से तृप्त होकर तुम देवताओं के पास दक्षिणा का भाग पहुँचाओगे। अतः इस तरह तुम दक्षिणाग्नि नाम से जाने जाओगे।।१७।।

हे अग्नि सम्पूर्ण त्रिलोक में हर जगह जो कुछ भी होम किया जायेगा, उसे भी तुम देवों के लिए लाया करोगे। इससे तुम हव्यवाहन कहलाओगे।।१८।।

गृह को शरीर कहा जाता है, जिसके स्वामी तुम हो। अतः हे विभु! अब तुम सर्वत्र प्राप्त होने वाले 'गार्हस्पत्याग्नि' कहलाओगे।।१९।।

हे प्रभो! जहाँ से तुम सभी मनुष्यों को होम से सद्गति दिलाते हो, उस कारण से तुम्हारा अपर नाम वैश्वानर भी होगा।।२०।।

जहाँ पर द्रविण को बल और धन को द्रविण कहा गया है, आप ही वह धन प्रदान करने वाले हो। इस कारण आपका अपर नाम 'द्रविणोदा' होगा।।२१।।

हे विभो! जहाँ से आप सब जगह तनु अर्थात् शरीर धारण करने वाले और अतनु अर्थात् शरीर धारण नहीं करने वाले की रक्षा किया करते हो, वहाँ हे वत्स! तुम्हारा नाम 'तनूनपात्' होगा।।२१।।

जहाँ से आप प्रत्येक जात अर्थात् जन्म लेने वाले और अजात अर्थात् जन्म नहीं लेने वाले पदार्थों का ज्ञान रखते हैं। वहाँ हे प्रभो! तुम्हारा नाम जातवेदा होगा।।२३।।

सामान्यतया प्रत्येक पुरुषों को और विशेष रूप से द्विजातियों अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों को 'नार' कहा जाता है। वे पुरुष या द्विजातिजन सदा तुम्हारी स्तुति किया करते हैं। अतः तुम्हारा नाम 'नाराशंस' भी होगा।।२४।।

'अग' शब्द 'नित्य तिरोहित होना' के और 'नि' शब्द 'निश्चय' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ करता है। अतः तुम सर्वव्यापक होने से 'अग' या अगम्य भी हो। अतः तुम 'अग्नि' होओगे।।२५।।

'ध्मा' शब्द का अर्थ 'प्रपूरण' है, जिस 'ध्मा' से 'इध्मा' शब्द व्युत्पन्न होती है। चूँकि 'पूरित' अर्थात् पूर्ण की कहीं गति नहीं होती है। अतः तुम 'इध्म' नाम धारण करने वाले होओगे।।२६।।

याज्यान्येतानि नामानि तव पुत्र महामखे। यजन्तस्त्वां नराः कामैस्तर्पयिष्यन्त्यसंशयम्॥२७॥

।इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे अष्टादशोऽध्यायः॥१८॥

—✻✻✻—

एकोविंशोऽध्यायः

अथ अग्न्युत्पत्तौ प्रतिपदा तिथेराधिपत्यम्

महातपा उवाच

विष्णोर्विभूतिमाहात्म्यं कथितं ते प्रसङ्गतः। तिथीनां शृणु माहात्म्यं कथ्यमानं मया नृप॥१॥
इत्थंभूतो महानग्निर्ब्रह्मक्रोधोद्भवो महान्। उवाच देवं ब्रह्माणं तिथिर्मे दीयतां विभो।
यस्यामहं समस्तस्य जगतः ख्यातिमाप्नुयाम्॥२॥

ब्रह्मोवाच

देवानामथ यक्षाणां गन्धर्वाणां च सत्तम। आदौ प्रतिपदा येन त्वमुत्पन्नोऽसि पावक॥३॥
त्वत्पदात् प्रतिपदं चान्या संभविष्यन्ति देवताः। अतस्ते प्रतिपन्नाम तिथिरेषा भविष्यति॥४॥

हे पुत्र! तुम्हारे ये सभी नाम महायज्ञों में यजनीय हैं। तुम्हें मनुष्य विविध प्रकार की अपनी कामनाओं से यजन करते हुए निश्चय ही तृप्त करेंगे।।२७।।

।।इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में अग्न्युत्पत्ति और उनके विविध नामक अट्ठारहवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ।।१८।।

अध्याय-१९

अग्नि की उत्पत्ति और प्रतिपदा तिथि का आधिपत्य

महातपा ने कहा कि हे राजन्! प्रसङ्गवश मैंने आपसे विष्णु विभूति का महात्म्य की चर्चा की है। अब आगे मैं अपने द्वारा कथित तिथियों का माहात्म्य कहता हूँ।।१।।

इस प्रकार ब्रह्मा के क्रोध से उत्पन्न महाग्नि ने ब्रह्मदेव से कहा कि हे विभो! मुझे तिथि प्रदान करें, जिसमें मैं सम्पूर्ण संसार में ख्यात हो जाऊँ।।२।।

ब्रह्मदेव ने कहा कि हे पावक! हे सत्तम! जहाँ से तुम देवों, यक्षों और गन्धर्वों के आदि में प्रथम कल्प स्वरूप में हुए हो।।३।।

एवं तुम्हारे प्रत्येक कला या पद के क्रम से अन्यान्य देवता की उत्पत्ति होगी। अतः आपके लिए यह प्रतिपदा नामक तिथि ठीक रहेगी।।४।।

तस्यां तिथौ हविष्येण प्राजापत्येन मूर्तिना। होष्यन्ति तेषां प्रीताः स्युः पितरः सर्वदेवताः॥५॥
चतुर्विधानि भूतानि मनुष्याः पशवोऽसुराः। देवाः सर्वे सगन्धर्वाः प्रीताः स्युस्तर्पिते त्वयि॥६॥
यश्चोपवासं कुर्वीत त्वद्भक्तः प्रतिपद्दिने। क्षीराशनो वा वर्त्तेत शृणु तस्य फलं महत्॥७॥
चतुर्युगानि षट्त्रिंशत् स्वर्लोकेऽसौ महीयते। तेजस्वी रूपसम्पन्नो द्रव्यवान् जायते नरः॥८॥
इह जन्मन्यसौ राजा प्रेत्य स्वर्गे महीयते। तूष्णीं बभूव सोऽप्यग्निर्ब्रह्मदत्ताश्रमं ययौ॥९॥
य इदं शृणुयान्नित्यं प्रातरुत्थाय मानवः। अग्नेर्जन्म स पापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः॥१०॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे एकोविंशोऽध्यायः॥१९॥

उस प्रतिपदा तिथि में जो कोई जन प्राजापत्य स्वरूप हवि से होम करेगा, उसके ऊपर सभी पितर और देवता प्रसन्न रहा करेंगे।।५।।

तुम्हारे तृप्त होने पर चार प्रकार के भूत, मनुष्य, पशु, असुर और गन्धर्व के साथ समस्त देवता भी प्रसन्न रहा करेंगे।।६।।

प्रतिपदा तिथि का जो कोई भक्त मनुष्य उपवास करेगा अथवा मात्र दुग्ध का आहार ग्रहण कर रहेगा, उसे मिलने वाले महान् फलों को कहता हूँ, सुनो।।७।।

वह मनुष्य छत्तीस महायुग पर्यन्त स्वर्गलोकमें पूजित तो होगा ही, इस लोक में भी वह तेजवान्, रूपसम्पन्न और द्रव्यवान् पुरुष के रूप में जन्म लेगा।।८।।

वह मनुष्य इस जन्म में राजा होकर मरने पर स्वर्ग में आदर प्राप्त करता है। फिर वह अग्नि भी यह सुनकर चुपचाप ब्रह्मदेव कथित स्थान पर चला गया।।९।।

इस प्रकार, जो मनुष्य सुबह-सबेरे जागकर अग्निजन्म की यह कथा सुनेगा या पढ़ेगा वे सभी पापों से रहित हो जाता है। इस प्रसंग में संशय नहीं करना चाहिए।।१०।।

।।इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में अग्नि की उत्पत्ति और प्रतिपदा तिथि का आधिपत्य नामक उन्नीसवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारानन्दिर में सुसम्पन्न हुआ।।१९।।

विंशोऽध्यायः

अथाश्विनीकुमारोत्पत्तिस्तस्य द्वितीयातिथेराधिपत्यम्

प्रजापाल उवाच

एवमग्नेः समुत्पत्तिर्जाता ब्रह्मन्महात्मनः। प्राणापानौ कथं देवावश्विनौ सम्बभूवतुः॥१॥

महातपा उवाच

मरीचिर्ब्रह्मणः पुत्रः स्वयं ब्रह्मा द्विसप्तभिः। रूपैर्व्यवस्थितस्तेषां मरीचिः श्रेष्ठतामगात्॥२॥
तस्य पुत्रो महातेजाः कश्यपो नाम वै मुनिः। स्वयं प्रजापतिः श्रीमान् देवतानां पिताऽभवत्॥३॥
तस्य पुत्रा बभूवुर्हि आदित्या द्वादश प्रभो। अदित्यपत्यानि ते सर्वे आदित्यास्तेन कीर्तिताः॥४॥
तेषां मध्ये महातेजा मार्त्तण्डो लोकविश्रुतः। नारायणात्मकं तेजो द्वादशं संप्रकीर्त्तितम्॥५॥
ये ते मासास्त आदित्याः स्वयं संवत्सरो हरिः। एवं ते द्वादशादित्या मार्त्तण्डश्च प्रतापवान्॥६॥
तस्य त्वष्टा ददौ कन्यां संज्ञां नाम महाप्रभाम्। तस्यापत्यद्वयं जज्ञे यमश्च यमुना तथा॥७॥

तस्य तेजोऽप्यसहती बभूवाश्वी मनोजवा।
स्वां छायां तत्र संस्थाप्य सा जगामोत्तरान् कुरून्॥८॥

अध्याय-२०

अश्विनी कुमारोत्पत्ति, ब्राह्मपारस्तोत्र, द्वितीया तिथि का आधिपत्य

राजा प्रजापाल ने पूछा कि हे ब्रह्मन्! इस प्रकार महात्मा अग्नि उत्पन्न हुए, इसे हमने सुना। अब आप कृपा कर प्राण और अपान कैसे देवस्वरूप अश्विनीकुमार हो गये, बतलायें।।१।।

महातपा ने कहा कि मरीचि, ब्रह्मा के पुत्र हैं। यहाँ कहने का तात्पर्य है कि ब्रह्मा ने स्वयं अपना चौदह (अथवा ७२ बहत्तर) प्रकार के रूप धारण किये; जिनमें मरीचि श्रेष्ठ है।।२।।

ब्रह्मा के ही महातेजवान् पुत्र कश्यप नामक मुनि भी हैं। वे भी श्रीमान् कश्यप रूप प्रजापति स्वयं देवताओं के भी पिता हुये।।३।।

हे प्रभो! उन्हीं कश्यप के बारह आदित्य पुत्र भी हुए, जहाँ से वे सभी अदिति के पुत्र होने से 'आदित्य' कहलाये।।४।।

उनमें से बारहवें महातेजवान् मार्तण्ड, जो जगत्प्रसिद्ध हैं, नारायणात्मक तेज माने जाते हैं।।५।।

प्रत्येक वर्ष या सम्वत्सर के जो ये बारह महीने हैं, वे ही द्वादश आदित्य हैं। स्वयं हरि ही सम्वत्सर हैं। इस तरह उन द्वादश आदित्यों में मार्तण्ड प्रधान माने गये हैं।।६।।

त्वष्टा ने उनको अपनी संज्ञा नाम वाली महाप्रभावती कन्या प्रदान किया। जिन्हें यमुना और यम नाम के दो सन्तानें उत्पन्न हुईं।।७।।

वह संज्ञा नाम की कन्या उन मार्तण्ड के तेज को सहन नहीं कर सकने के कारण मन के समान तीव्र वेगवाली घोड़ी बन कर और अपनी छाया को वहीं स्थापित कर उत्तर कुरु देश में चली गईं।।८।।

तद्रूपां तां सवर्णां तु भेजे मार्त्तण्डभास्करः। तस्या अपि द्वयं जज्ञे शनिं तपतिमेव च॥९॥
यदा त्वसदृशं भेजे पुत्रान् प्रति नरोत्तम। संज्ञां प्रोवाच भगवान् क्रोधसंरक्तलोचनः।
असमत्वं न कर्त्तव्यं स्वेष्वपत्येषु भामिनि॥१०॥
एवमुक्ता यदा सा तु असमत्वं व्यरोचत। यदा यमः स्वपितरं प्रोवाच भृशदुःखितः॥११॥
नेयं माता भवेत् तात अस्माकं शत्रुवत् सदा। सपत्नीव वृथाचारा स्वेष्वपत्येषु वत्सला॥१२॥
एवं यमवचः श्रुत्वा सा छाया क्रोधमूर्च्छिता। शशाप प्रेतराजस्त्वं भविष्यस्यचिरादिव॥१३॥
एवं श्रुत्वाऽथ मार्त्तण्डस्तदा पुत्रहितैषया। उवाच मध्यवर्ती त्वं भविता धर्मपापयोः।
लोकपालश्च भविता त्वं पुत्र दिवि शोभसे॥१४॥
शनिं शशाप मार्त्तण्डश्छायाकोपप्रधर्षितः। त्वं क्रूरदृष्टिर्भविता मातृदोषेण पुत्रक॥१५॥
एवमुक्त्वा समुत्थाय योगं भानुर्दिदृक्षया। तामपश्यत्त्वसौ साश्वी उत्तरेषु कुरुष्वथ॥१६॥
ततोऽश्वरूपं कृत्वा स गत्वा तत्रोत्तरान् कुरून्। प्राजापत्येन मार्गेण युयोजात्मानमात्मना॥१७॥
तस्यां त्वाष्ट्र्यामश्वरूप्यां मार्त्तण्डस्तीव्रतेजसः। बीजं निर्वापयामास तज्ज्वलन्तं द्विधाऽपतत्॥१८॥

उन मार्तण्ड सूर्य के द्वारा समान वर्ण से सम्पन्न अर्थात् तदनुरूप वाली उस छाया का ही सेवन कर संतुष्ट हुआ। उसे भी शनि एवं तपति दो सन्तानें हुईं।।९।।

जिस समय वह छाया उन पुत्रों में असमान व्यवहार करने लगी, तो भगवान् त्वष्टा भास्कर ने क्रोधपूर्ण नेत्रों से संज्ञा की छाया से कहा कि हे भामिनी अपनी ही सन्तानों में पक्षपात नहीं करना चाहिए।।१०।।

उपरोक्त प्रकार से कहे जाने के बावजूद भी छाया को पक्षपात करना ही अच्छा लगा, तो यम ने अत्यन्त दुःखपूर्ण भाव से अपने पिता से कहा—।।११।।

हे तात! प्रतीत होता है कि यह हमारी माता नहीं है, क्योंकि हम लोगों से सदा शत्रु की तरह व्यवहार किया करती है। यह सपत्नी के समान व्यर्थ आचार करने वाली है और मात्र अपनी सन्तानों से ही लगाव रखती है।।१२।।

यम के उक्त प्रकार की वाणी से वह छाया अत्यन्त क्रोधान्ध-सी हो गयी और उसने इस प्रकार से शाप दे दिया कि तुम शीघ्र प्रेतराज होओगे।।१३।।

इस प्रकार के छाया की वार्ता से क्षुब्ध और पुत्र की हित कामना से मार्तण्ड ने कहा कि हे पुत्र! तुम धर्म और पाप के मध्यस्थ होओगे। तुम लोकपाल के रूप में स्वर्ग की शोभा बढ़ाने वाले होओगे।।१४।।

इस तरह के छाया के व्यवहार से क्षुब्ध और प्रज्वलित क्रोध वश मार्तण्ड ने शनि को शाप दिया कि हे पुत्र! मातृदोष के कारण तुम क्रूरदृष्टि वाला होओगे।।१५।।

इस प्रकार क्रोध शान्त होने के बाद अपनी पत्नि संज्ञा से मिलने की इच्छा से भानु ने योगबल का आश्रयण कर देखा कि संज्ञा अश्वी रूप में उत्तर कुरु देश में स्थित है।।१६।।

तत्पश्चात् वे भी अश्वरूप धारण करते हुए प्राजापत्य मार्ग से होकर उत्तर कुरु देश संज्ञा के पास पहुँच गये और अपने को अपने से युक्त कर लिया।।१७।।

तीव्रगामी तेजस्वी मार्तण्ड ने अश्वरूपा त्वष्टा की पुत्री संज्ञा में अपना बीज वपन किया, वह प्रज्वलित बीज दो भाग में गिरा।।१८।।

तत्र प्राणस्त्वपानश्च योनौ चात्मजितौ पुरा। वरदानेन च पुनर्मूर्त्तिमन्तौ बभूवतुः॥१९॥
तौ त्वाष्ट्र्यामश्वरूपायां जातौ येन नरोत्तमौ। ततस्तावश्विनौ देवौ कीर्त्त्येते रविनन्दनौ॥२०॥
प्राजापत्यं स्वयं भानुस्त्वाष्ट्री शक्तिः परापरा। तस्याः प्राग्वच्छरीरस्थावमूर्त्तौ मूर्त्तिमाश्रितौ॥२१॥
ततस्तावश्विनौ देवौ मार्त्तण्डमुपतस्थतुः। ऊचतुः स्वरूचिं तावत् किं कर्त्तव्यमथावयोः॥२१॥

मार्त्तण्ड उवाच

पुत्रौ प्रजापतिं देवं भक्त्याराधयतां वरम्। नारायणं स वो दाता वरं नूनं भविष्यति॥२३॥
एवं तावश्विनौ प्रोक्तौ मार्त्तण्डेन महात्मना। तेपतुस्तीव्रतपसौ तपः परमदुश्चरम्।
ब्रह्मपारमयं स्तोत्रं जपन्तौ तु समाहितौ॥२४॥
तयोः कालेन महता ब्रह्मा नारायणात्मकः। तुतोष परमप्रीत्या वरं चैतं ददौ तयोः॥२५॥

प्रजापाल उवाच

अश्विभ्यामीरितं स्तोत्रं ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः। श्रोतुमिच्छाम्यहं ब्रह्मंस्त्वत्प्रसादान्महामुने॥२६॥

महातपा उवाच

श्रृणु राजन् यथा स्तोत्रमश्विभ्यां ब्रह्मणः कृतम्।
ईदृशं च फलं प्राप्तं तयोः स्तोत्रस्य चानघ॥२७॥

पुरातन काल में आत्मजयी प्राण और अपान वर प्राप्त होने से उस योनि में पुनः मूर्तिमान होकर उत्पन्न ng~~१९।।

जहाँ से वे दोनों नरश्रेष्ठ अश्वरूपा त्वष्ट्रा की पुत्री से सूर्यपुत्र के रूप में अश्विनीकुमार देवता रूप में उत्पन्न हुए।।२०।।

कहा गया है कि प्रजापति स्वयं भानु हैं और त्वष्ट्रा की पुत्री संज्ञा परापरा शक्ति हैं। वे दोनों प्राण और अपान पूर्व शरीर में अमूर्त्त रूप से स्थित थे। वे ही अश्विनी कुमारों के रूप में यहाँ मूर्त्तिमान हुए।।२१।।

वे दोनों अश्विनी कुमार उत्पन्न होने के पश्चात् मार्तण्ड के सम्मुख उपस्थित होकर स्वयं अपने आप से प्रकाशमान् भानु से पूछ दिया कि 'अब हमारा कर्त्तव्य आदि बतलायें, बड़ी कृपा होगी।।२२।।

इस पर मार्तण्ड ने कहा कि हे पुत्रो! भक्तिभावना से श्रेष्ठ प्रजापति नारायण देव की उपासना तुम्हें करनी चाहिए। वे निश्चय ही तुम्हें वर प्रदान करेंगे।।२३।।

महात्मा मार्तण्ड के इस प्रकार कहने पर तीव्र तपस्वी वे दोनों अश्विनी कुमारों ने अत्यन्त कठिन तप करते हुए एकाग्रतापूर्वक ब्रह्मपारमय स्तोत्र का पाठ करने लगे।।२४।।

महद् काल के उपरान्त नारायण स्वरूप ब्रह्म ने उन दोनों के कठिन तप से प्रसन्न होकर परम प्रेमपूर्वक आगे कहे अनुसार वर प्रदान किया।।२५।।

इस पर प्रजापाल राजा ने कहा कि हे महामुनि! आपकी कृपावश अव्यक्त जन्मा ब्रह्मा की प्रसन्नता हेतु अश्विनीकुमारों द्वारा कथित स्तोत्र सूनने की मेरी इच्छा है।।२६।।

महातपा ने कहा कि हे निष्पाप! अश्विनीकुमारों द्वारा ब्रह्मा की जिस प्रकार स्तुति की गई और उनको उस स्तोत्र पाठ से जो कुछ फल मिला, उसे सुनो।।२७।।

ॐनमस्ते निष्क्रिय निष्प्रपञ्च निराश्रय निरपेक्ष निरालम्ब निर्गुण निरालोक निराधार निर्जय निराकार।

ब्रह्मन् महाब्रह्मन् ब्राह्मणप्रिय पुरुष महापुरुषोत्तम। देव महादेवोत्तम स्थाणो स्थितस्थापक। भूत महाभूत भूताधिपति यक्ष महायक्ष यक्षाधिपते। गुह्य महागुह्याधिपते सौम्य महासौम्य सौम्याधिपते। पक्षि महापक्षिपते दैत्य महादैत्याधिपते। रुद्र महारुद्राधिपते विष्णु महाविष्णुपते। परमेश्वर नारायण प्रजापतये नमः।

एवं स्तुतस्तदा ताभ्यामश्विभ्यां स प्रजापतिः। तुतोष परमप्रीत्या वाक्यं चेदमुवाच ह॥२८॥
वरं वरयतां शीघ्रं देवैः परमदुर्लभम्। येन मे वरदानेन चरतस्त्रिदिवं सुखम्॥२९॥

अश्विनावूचतुः

आवयोर्यज्ञभागं तु देहि देव प्रजापते। सोमपत्वं च देवानां सामान्यत्वं च शाश्वतम्॥३०॥

ब्रह्मोवाच

रूपं कान्तिरनौपम्यं भिषक्त्वं सर्ववस्तुषु। सोमपत्वं च लोकेषु सर्वमेतद् भविष्यति॥३१॥

महातपा उवाच

एतत् सर्वं द्वितीयायामश्विभ्यां ब्रह्मणा पुरा। दत्तं यस्मादतस्तेषां तिथीनामुत्तमा तिथिः॥३२॥

निष्क्रिय, निष्प्रपञ्च, निराश्रय, निरपेक्ष, निरालम्ब, निर्गुण, निरालोक, निराधार, निर्जय, और निराकार को प्रणाम है।

हे ब्रह्मन् महाब्रह्मन्, ब्राह्मणप्रिय, पुरुष, महापुरुषोत्तम, देव, महादेवोत्तम, स्थाणु, स्थितिस्थापक,! हे भूत, महाभूत, भूताधिपति, यक्ष, महायक्ष, यक्षाधिपति, गुह्य, महागुह्याधिपति, सौम्य, महासौम्य, सौम्याधिपति, पक्षि, महापक्षिपति, दैत्य, महादैत्याधिपति, रुद्र, महारुद्राधिपति, विष्णु, महाविष्णुपति, परमेश्वर, नारायण और प्रजापति आपको प्रणाम है।

इस प्रकार उन अश्विनीकुमारों की स्तुति निवेदन से वे प्रजापति प्रसन्न होकर परम प्रेमपूर्वक इस प्रकार उनसे कहा—।।२८।।

आप दोनों देवों के लिए भी दुर्लभ वर शीघ्र माँग लो। मेरे वर प्रदान करने से तुम दोनों सुखपूर्वक स्वर्ग में भ्रमण करने का आनन्द ले सकते हो।।२९।।

अश्विनीकुमारों ने कहा कि हे प्रजापति देव! हम दोनों को यज्ञभाग और सोमपान करने का अधिकार प्राप्ति के सहित देवताओं से नित्यप्रति समानता प्राप्त होने का वर प्रदान करें।।३०।।

ब्रह्मा ने कहा कि रूप, अनुपम कान्ति, प्रत्येक वस्तु का भैषज्य ज्ञान, लोक में सोमपान करने का अधिकार, आदि सभी कुछ तुम दोनों को प्राप्त हो सकेगा।।३१।।

महातपा ने कहा कि पुरातन काल में जहाँ से ब्रह्मा ने अश्विनीकुमारों को द्वितीया तिथि के दिन उपरोक्त प्रकार का वर प्रदान किया था, अतः उनकी तिथि द्वितीया सर्वोत्तम है।।३२।।

एतस्यां रूपकामस्तु पुष्पाहारो भवेन्नरः। संवत्सरं शुचिर्नित्यं सुस्वरूपी भवेन्नरः।
अश्विभ्यां ये गुणाः प्रोक्तास्ते तस्यापि भवन्ति च॥३३॥
य इदं शृणुयान्नित्यमश्विभ्यां जन्म चोत्तमम्। सर्वपापविनिर्मुक्तः पुत्रवान् जायते नरः॥३४॥

।इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे विंशोऽध्यायः।।२०।।

—***—

एकविंशोऽध्यायः

अथ गौर्युत्पत्तिः

प्रजापाल उवाच

कथं गौरी महाप्राज्ञ संस्तुता वरदानतः। मूर्त्तिं लब्धवती पुंसः परस्य परमात्मनः॥१॥

महातपा उवाच

पूर्वं प्रजापतिर्देवः सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः। चिन्तयामास धर्मात्मा यदा ता नाध्यगच्छत॥२॥
तदास्य कोपात् संजज्ञे स च रुद्रः प्रतापवान्। रोदनात् तस्य रुद्रत्वं सञ्जातं परमेष्ठिनः॥३॥

अतः इस द्वितीया तिथि को जो कोई जन वर्ष पर्यन्त नित्य पवित्र रहते हुए पुष्पों का आहार करेगा, वह निश्चित रूप से सुन्दर स्वरूप वाला और अश्विनी कुमारों के लिए जो कुछ विशेषता से कहे गये हैं, वे सब भी उसे प्राप्त हो सकेंगे।।३३।।

इस प्रकार जो मनुष्य नित्य अश्विनी कुमारों के उत्तम जन्म की कथा को सुनेगा, वह निश्चय ही सभी पापों से रहित होकर पुत्रवान् भी होता है।।३४।।

।।इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में अश्विनी कुमारोत्पत्ति, ब्राह्मपारस्तोत्र, द्वितीया तिथि का आधिपत्य नामक बीसवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ।।२०।।

अध्याय–२१

दक्ष यज्ञ विध्वंश, रुद्रस्तुति, रुद्र हेतु दक्ष का कन्यादान

प्रजापाल ने कहा कि हे महाप्राज्ञ! प्रशंसा प्राप्त गौरी के परमपुरुष के वरदान से किस तरह का रूप धारण किया।।१।।

महातपा ने कहा कि आदिकाल में अनेक तरह की प्रजाओं की सृष्टि करने की जिगुप्सा वाले प्रजापति ने चिन्तन-मनन करने के बावजूद जिस समय उन प्रजाओं का सृजन करने में सफल नहीं हुए, तो उन्हें अत्यन्त रोष उत्पन्न हुआ था, उस रोष से ही प्रतापवान् रुद्र की उत्पत्ति हुई। अत्यन्त रुदन करने के कारण उन परमेष्ठी को रुद्र नाम दिया गया। अर्थात् उन्हें रुद्रत्व प्राप्त हुआ।२-३।।

तस्य ब्रह्मा शुभां कन्यां भार्यायै मूर्त्तिसम्भाम्।
गौरी नाम्ना स्वयं देवी भारती तां ददौ पिता॥४॥

रुद्रायामितदेहाय स्वयं ब्रह्मा प्रजापतिः। स तां लब्ध्वा वरारोहां मुदा परमया युतः॥५॥

सर्गकालेषु तं ब्रह्मा तपसा प्रत्युवाच ह। रुद्र प्रजाः सृजस्वेति पौनःपुन्येन चोदितः।
असमर्थोऽहमिति जले निमज्जत महाबलः॥६॥

तपोऽर्थित्वं तपोहीनः स्त्रष्टुं शक्नोति न प्रजाः। एवं चिन्त्य जले मग्नस्ततो रुद्रः प्रतापवान्॥७॥

तस्मिन् निमग्ने देवेश तां ब्रह्मा कन्यकां पुनः। अन्तःशरीरगां कृत्वा गौरीं परमशोभनाम्॥८॥

पुनः सिसृक्षुर्भगवानसृजत् सप्त मानसान्। दक्षं च तेषामारभ्य प्रजाः सम्यग् व्यवर्धिताः॥९॥

तत्र दाक्षायणीपुत्राः सर्वे देवाः सवासवाः। वसवोऽष्टौ च रुद्राश्च आदित्या मरुतस्तथा॥१०॥

साऽपि दक्षाय सुश्रोणी गौरी दत्ताऽथ ब्रह्मणा। दुहितृत्वे पुरा या हि रुद्रेणोढा महात्मना॥११॥

सा च दाक्षायणी देवी पुनर्भूत्वा नृपोत्तम। ततो दक्षः प्रहृष्टात्मा दौहित्रान् स्वान् स वृद्धिकृत्।
दृष्ट्वा यज्ञमथारेभे प्रीणनाय प्रजापतेः॥१२॥

तत्र ब्रह्मसुताः सर्वे मरीच्यादय एव च। चक्रुरार्त्विजकं कर्म स्वे स्वे मार्गे व्यवस्थिताः॥१३॥

उन रुद्र रूप परमेष्ठी के पिता होने के कारण ब्रह्मा ने पत्नि स्वरूप अपनी ही मूर्त्ति से उत्पन्न स्वयं भारती देवी स्वरूपा गौरी नाम की शुभा कन्या उनको प्रदान की।।४।।

उस अपरिमित शरीर वाले रुद्र ने उस सुन्दरी कन्या को प्राप्त कर परम आनन्द का अनुभव किया।।५।।

सृष्टि करने के अवसर पर ब्रह्मा द्वारा उनसे कहा गया कि 'हे रुद्र! तपस्या द्वारा प्रजा की सृष्टि करो' किन्तु इस तरह से ब्रह्मा द्वारा बार-बार कहे जाने पर भी रुद्र ने कहा कि मैं ऐसा करने में असमर्थ हूँ। यह कहकर वह महाबलशाली रुद्र जल में तिरोहित हो गये।।६।।

तपरहित व्यक्ति प्रजा सृजन कार्य में समर्थ नहीं हो सकता। इस प्रकार से विचार कर प्रतापवान् रुद्र तपस्या करने के निमित्त ही जल में निमग्न-सा हो गये।।७।।

उस समय इस तरह उस देवेश के जल में निमग्न हो जाने पर ब्रह्माजी ने परम सुन्दरी उस गौरी नाम की कन्या को अपने शरीर में समाहित कर लिया।।८।।

इसके बाद सृजन कार्य हेतु उद्यत भगवान् ब्रह्मा ने फिर से सात मानस पुत्रों और दक्ष को उत्पन्न किया। उसके बाद से ही उन्हीं लोगों से सृष्टि का प्रारम्भ होकर प्रजाओं की भी सविधि अभिवृद्धि होने लगी।।९।।

इन्द्रादि देवगण, अष्टवसु, एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य और एकोनपञ्चाशत (४९) मरुद् दक्ष की कन्याओं के पुत्र माने जाते हैं।।१०।।

इस प्रकार ब्रह्मा ने सर्वप्रथम महात्मारुद्र से विवाहित गौरी नाम की उस कन्या को पुत्री के रूप में दक्ष को सौंप दी।।११।।

हे नृपोत्तम! वह कन्या (देवी) इस तरह फिर से दाक्षायणी के रूप में अवतरित हो गई। तत्पश्चात् प्रसन्नचित्त प्रजापति दक्ष अपने दौहित्रों को देखकर परमेश्वर की प्रसन्नता हेतु यज्ञ करने को प्रस्तुत हुए।।१२।।

उस यज्ञ में मरीचि आदि ब्रह्मा के पुत्रों ने अपने-अपने कर्म में नियत रहते हुये ऋत्विजों की जिम्मेदारी भी सम्हाल लिया।।१३।।

ब्रह्मा स्वयं मरीच्यस्तु बभूवाऽन्ये तथापरे। अत्रिस्तु यज्ञकर्मस्थ आग्नीध्रस्त्वङ्गिरा भवत्॥१४॥
होता पुलस्त्यस्त्वभवदुद्गाता पुलहोऽभवत्। क्रतौ क्रतुस्तु प्रस्तोता तदा यज्ञे महातपाः॥१५॥
प्रतिहर्ता प्रचेतास्तु तस्मिन् क्रतुवरे बभौ। सुब्रह्मण्यो वशिष्ठस्तु सनकाद्याः सभासदः।
तत्र याज्यः स्वयं ब्रह्मा स च इज्यस्तु पूज्यते॥१६॥
पूज्या दक्षस्य दौहित्रा रुद्रादित्योऽङ्गिरादयः। प्रत्यक्षपितरस्ते हि तैः प्रीतैः प्रीयते जगत्॥१७॥
तत्र भागार्थिनो देवा आदित्या वसवस्तथा। विश्वेदेवाः सपितरो गन्धर्वाद्या मरुद्गणाः॥१८॥
जगृहुर्यज्ञभागान् स्वान् यावत् ते हविषोर्पितान्।
तावत्कालं जलात् सद्य उत्तस्थौ ब्रह्मणः पुनः॥१९॥
रुद्रः कोपोद्भवो यस्तु पूर्व मग्नो महाजले। स सहस्रार्कसङ्काशो निश्चक्राम जलात् ततः॥२०॥
सर्वज्ञानमयो देवः सर्वदेवमयोऽमलः। प्रत्यक्षदर्शी सर्वस्य जगतस्तपसा बभौ॥२१॥
तस्मिंस्तु काले पञ्चानां जातः सर्गो नरोत्तम। दिव्यानां पृथिवीस्थानां चतुर्णामरजातिनाम्॥२२॥
रौद्रसर्गस्य सम्भूतिस्तदा सद्योऽपि जायते। इदानीं रुद्रसर्गं त्वं शृणु पार्थिवसत्तम॥२३॥
दशवर्षसहस्राणि तपश्चीर्त्वा महज्जले। प्रतिबुद्धो यदा रुद्रस्तदा चोर्वी सकाननाम्।
दृष्ट्वा सस्यवतीं रम्यां मनुष्यपशुसङ्कुलाम्॥२४॥

उस यज्ञ में स्वयं मरीचि ब्रह्मा बने। इसी तरह अन्यान्य ब्रह्मा पुत्रों ने दूसरे-दूसरे कार्यों के सम्पादन करने लगे। इस क्रम में अत्रि यज्ञकर्म में लग गये, तो अङ्गिरा आग्नीध्र बन गये।।१४।।

उस समय के यज्ञ में उक्त क्रम में महातपस्वी पुलस्त्य होता, पुलह उद्गाता, और क्रतु प्रस्तोता बन गये थे।।१५।।

फिर उस श्रेष्ठ यज्ञ में प्रचेता प्रतिहर्ता, वशिष्ठ और सनकादि सभारुद्र बने तथा स्वयं ब्रह्माजी आराध्य और आराधक रूप में पूज गये।।१६।।

इस प्रकार प्रजापति दक्ष के दौहित्र अर्थात् पुत्री के पुत्र रुद्र, आदित्य, अङ्गिरा आदि पूज्य और प्रत्यक्ष पितृगण हैं। उनकी प्रसन्नता से जगत्प्रसन्न होता है।।१७।।

उस समय पितरों सहित आदित्यादि देवता, वसुगण, विश्वेदेव, गन्धर्वादि, मरुद्गण आदि उस यज्ञ के भाग प्राप्त करने के अधिकारी हुए।।१८।।

इस तरह वे सभी उस यज्ञ में हवि रूप में दिए गये अपने-अपने भागों को जब ग्रहण करने को उद्यत हुए, उसी क्षण जल से पुनः ब्रह्मा के रोष से उत्पन्न रुद्र प्रकट हो गये, जो पूर्व में महासमुद्र में निमग्न होगये थे। वे ही रुद्र सहस्रसूर्य के समान उस जल से प्रकट हुए।।१९-२०।।

वह रुद्र सर्वज्ञानमय, निर्मल, सर्वज्ञ, सर्वदेवमय और तप से सम्पूर्ण जगत् का प्रत्यक्षदर्शी हो गया था।।२१।।

हे नरोत्तम! उस समय पाँच भूतों और पृथ्वी पर स्थित चार दिव्य शाश्वत ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जातियों की सर्जना हुई।।२२।।

फिर उसी समय तत्काल ही रौद्र सृष्टि भी उत्पन्न हुई। हे नृपश्रेष्ठ! अब तुमसे रुद्रसृष्टि का विवेचन किया जा रहा है, उसे सुनो।।२३।।

महासमुद्र के महान् जल में दश सहस्र वर्ष तक तप करने के बाद, जिस समय रुद्र जागृत हुए तो वे मनुष्य और पशु से पूर्ण, धान्य सम्पन्न, वन सम्पन्न और रमणीय पृथ्वी को देखा।।२४।।

शुश्राव च तदा शब्दानृत्विजां दक्षसद्मनि। आश्रमे यज्ञिनां चोच्चैर्योगस्थैरिति कीर्त्तितम्॥२५॥
ततः श्रुत्वा महातेजाः सर्वज्ञः परमेश्वरः। चुकोप सुभृशं देवो वाक्यं चेदमुवाच ह॥२६॥
अहं पूर्वं तु कविना सृष्टः सर्वात्मना विभुः। प्रजाः सृजस्वेति तदा वाक्यमेतत् तथोक्तवान्॥२७॥
इदानीं केन तत्कर्म कृतं सृष्ट्यादिवर्णनम्। एवमुक्त्वा भृशं कोपान्ननाद परमेश्वरः॥२८॥
तस्य नानदतो ज्वालाः श्रोत्रेभ्यो निर्ययुस्तदा। तत्र भूतानि वेताला उच्छुष्मा प्रेतपूतनाः॥२९॥
कूष्माण्डा यातुधानाश्च सर्वे प्रज्वलिताननाः। उत्तस्थुः कोटिशस्तत्र नानाप्रहरणावृताः॥३०॥
ते दृष्ट्वा भूतसङ्घाता विविधायुधपाणयः। ससर्ज वेदविद्याङ्गं रथं परमशोभनम्॥३१॥
तस्मिन्नृगादयस्त्वश्वास्त्रितत्त्वं च त्रिवेणुकम्। त्रिपूजकं त्रिषवणं धर्माक्षं मारुतध्वनिम्॥३२॥
अहोरात्रे पताके द्वे धर्माधर्मे तु दण्डके। शकटं सर्वविद्याश्च स्वयं ब्रह्मादिसारथिः॥३३॥
गायत्री च धनुस्तस्य ओङ्कारो गुण एव च। स्वराः सप्त शरास्तस्य देवदेवस्य सुव्रत॥३४॥
एवं कृत्वा स सामग्रीं देवदेवः प्रतापवान्। जगाम दक्षयज्ञाय कोपाद् रुद्रः प्रतापवान्॥३५॥
गच्छतस्तस्य देवस्य अम्बराङ्गिरसं नयत्। ऋत्विजां मन्त्रनिचयो नष्टो रुद्रागमे तदा॥३६॥

उस समय वे आश्रम में स्थित दक्ष के गृह में यज्ञ कर रहे योग युक्त ऋत्विजों द्वारा ऊँचे स्वर में उच्चारण किये जा रहे मन्त्रों को सुना।।२५।।

तत्पश्चात् उन मन्त्र वाक्यों को सुनकर महातेजपुंज सर्वज्ञ परमेश्वर देव अत्यन्त क्रुद्ध होकर इस प्रकार से यह वाक्य बोला—।।२६।।

बहुत पहले ही सर्वात्म ब्रह्मा ने मुझ विभु को उत्पन्न कर प्रजा की सृष्टि करो' ऐसा वाक्य कहा था।।२७।।

इस समय किसने सृष्टि के विस्तार कार्य को किया है? इस प्रकार कहते हुए परमेश्वर ने अत्यन्त रोष करते हुए गर्जना की।।२८।।

गर्जन करने वाले रुद्र के कर्णों से उस समय अग्नि ज्वालायें प्रकट हो रही थीं। उस ज्वाला से तेजपुंज स्वरूप भूत, बेताल, प्रेत, पूतना, कूष्माण्ड, करोड़ों राक्षस आदि प्रकट हो गये। वे सभी प्रज्वलित मुखों वाले और विविध शस्त्रास्त्रों से भी सुसज्जित थे।।२९-३०।।

हाथों में विविध शस्त्रास्त्रों को धारण किये उन भूतगणों को देखकर उस समय उन देव ने वेद विद्यामय परम सुन्दर रथ की भी सर्जना की।।३१।।

उस रथ में ऋग्वेदादि ही अश्व, तीन तत्त्व ही तीन वेणु, तीन पूजक ही तीन सवन और वायु की ध्वनि धर्माक्ष अर्थात् धर्ममय रथ का अक्ष था।।३२।।

उस रथ की दिन और रात्रि दो पताकायें, धर्म और अधर्म दो दण्ड, सभी विद्यायें शकट और स्वयं ब्रह्मादि सारथी थे।।३३।।

हे सुव्रत! गायत्री उन देवाधिदेव का धनुष, ओंकार ही प्रत्यञ्चा और सात स्वर उनके बाण रूप में थे।।३४।।

इस प्रकार के साधन प्रस्तुत कर प्रताप सम्पन्न देवाधिदेव रुद्र क्रोधपूर्वक दक्ष के यज्ञ में उपस्थित हुए।।३५।।

उन रुद्र के चलने से उस समय आकाश से अग्नि की वर्षा हो रही थी। इस तरह रुद्र के चलने से उस समय ऋत्विजों का मन्त्र समूह ही नष्ट हो गया।।३६।।

विपरीतमिदं दृष्ट्वा तदा सर्वे च ऋत्विजः। ऊचुः सन्नह्यतां देवा महद् वो भयमागतम्।।३७।।
कश्चिदायाति बलवानसुरो ब्रह्मनिर्मितः। यज्ञभागार्थमेतस्मिन् क्रतौ परमदुर्लभम्।।३८।।
एवमुक्तास्ततो देवा ऊचुर्मातामहं तदा। दक्ष तात किमत्रास्मत्कार्यं ब्रूहि विवक्षितम्।।३९।।

दक्ष उवाच

गृह्यन्तां द्रुतमस्त्राणि सङ्ग्रामोऽत्र विधीयताम्। एवमुक्ते तदा देवैर्विविधायुधधारिभिः।
रुद्रस्यानुचरैः सार्द्धं महद्युद्धं प्रवर्त्तितम्।।४०।।
तत्र वैतालभूतानि कूष्माण्डा ग्रहपूतनाः। युयुधुर्लोकपालैश्च नानाशस्त्रधराणि च।।४१।।
देवा रौद्राणि भूतानि निरसन्तो यमालयम्। चिक्षिपुः सायकान् घोरानसींश्च सपरश्वधान्।।४२।।
भूतान्यपि मृधे घोराण्युल्मुकैरस्थिभिः शरैः। जग्मुर्देवान् मृधे रोषाद् रुद्रस्य पुरतो बलात्।।४३।।
ततस्तस्मिन् महारौद्रे संग्रामे भीमरूपिणि। रुद्रो भगस्य नेत्रे तु विभेदैकेषुणा मृधे।।४४।।
रुद्रस्य शरपातेन नष्टनेत्रं भगं तदा। दृष्ट्वास्य क्रोधात् तेजस्वी पूषा रुद्रमयोधयत्।।४५।।
सृजन्तमिषुजालानि पूषणं तु महामृधे। दृष्ट्वा रुद्रोऽस्य दन्तांस्तु चकर्ष परवीरहा।।४६।।

तत्पश्चात् इस तरह के विपरीत कार्यों को देखकर सभी ऋत्विजों ने कहा कि हे देवगण!आप सभी सावधान हो जाँय। आप को इस समय महाभय उपस्थित है।।३७।।

प्रतीत होता है कि ब्रह्मा द्वारा उत्पन्न कोई बलवान् असुर इस यज्ञ में परम दुर्लभ यज्ञभाग की इच्छा से आ रहा है।।३८।।

इसके बाद इस प्रकार से कहे जाने पर देवगणों ने मातामह से इस तरह कहा कि हे तात दक्ष! इस समय आप अपना विचार प्रकट करें कि इस समय हम लोगों को क्या करना उचित होगा?।।३९।।

दक्ष ने कहा कि आप सभी भी शस्त्रास्त्र ग्रहण कर इस समय युद्ध करो। इस प्रकार से कहे जाने पर उस समय विविध प्रकार के शस्त्रास्त्रों को धारण करते हुए देवगणों ने रुद्र के अनुचरों के साथ महायुद्ध करने में संलग्न हो गये।।४०।।

उस स्थान पर बेताल, भूत, कूष्माण्ड, ग्रह, पूतना आदि रुद्र के अनुयायियों ने भी विविध प्रकार के शस्त्रास्त्रों के द्वारा लोकपालों से युद्ध करने लगे।।४१।।

देवगणों ने भी महाभयंकर असि, परशु, बाणों आदि से प्रहार करते हुए रुद्र के भयानक गणों को यमालय पहुँचाने लगे।।४२।।

उस समय रुद्र के अनुचरों भयंकर भूतगणों ने भी उनके सम्मुख क्रोधयुक्त होकर उल्मुक अर्थात् प्रज्वलित अग्निदण्ड, अस्थि बाणों से देवताओं पर आक्रमण करने में व्यस्त दीखने लगे।।४३।।

उसके बाद तो जैसे महारौद्र और भयानक महायुद्ध होने लगा, जिसमें रुद्र ने अपने एक बाण से भग के नेत्रों को वेध दिया।।४४।।

फिर रुद्र के बाण प्रहार से भग के नष्ट नेत्र हुआ देखकर तेजवान् पूषा ने क्रोधयुक्त होकर रुद्र से युद्ध करने में व्यस्त हो गये।।४५।।

उस महायुद्ध में पूषा के बाण समूह की वर्षा को देखकर शत्रुसैन्य को नष्ट करने वाले रुद्र ने उन पूषा के भी दाँतों को ही उखाड़ डाला।।४६।।

तस्य दन्तांस्तदा दृष्ट्वा पूष्णो रुद्रेण पातितान्। दुद्रुवुः वसवो दिक्षु रुद्रास्त्वेकादश द्रुतम्॥४७॥

तान् भग्नान् सहसा दिक्षु दृष्ट्वा विष्णुः प्रतापवान्।
आदित्यावरजो वाक्यमुवाच स्वबलं तदा॥४८॥

क्व यात पौरुषं त्यक्त्वा दर्पं माहात्म्यमेव च। व्यवसायं कुलं भूतिं कथं न स्मर्यते द्रुतम्॥४९॥

परमेष्ठिगुणैयुक्तो लघुवद्भीतितः पुरा। नमस्कं कुरुते मोघं पृथिव्यां पद्मज स्वयम्॥५०॥

एवमुक्त्वा गरुत्मन्तमारुरोह हरिस्तदा। शङ्खचक्रगदापाणिः पीतवासा जनार्दनः॥५१॥

ततो हरिहरं युद्धमभवल्लोमहर्षणम्। रुद्रः पाशुपतास्त्रेण विव्याध हरिमोजसा।
हरिर्नारायणास्त्रेण रुद्रं विव्याध कोपवान्॥५२॥

नारायणं पाशुपतमुभेऽस्त्रे व्योम्नि रोषिते। युयुधाते भृशं दिव्यं परस्परजिघांसया।
दिव्यं वर्षसहस्रं तु तयोर्युद्धमभूत् तदा॥५३॥

तत्रैकं मुकुटोद्बद्धं मूर्द्धन्यं जटजालकम्। एकं प्रध्मापयच्छङ्खमन्यड्डमरुकं शुभम्॥५४॥

एकं खड्गकरं तत्र तथाऽन्यं दण्डधारिणम्। एकं कौस्तुभदीप्ताङ्गमन्यं भूतिविभूषितम्॥५५॥

एकं गदां भ्रामयति द्वितीयं दण्डमेव च। एकं शोभति कण्ठस्थैर्मणिभिस्त्वस्थिभिः परम्।
एकं पीताम्बरं तत्र द्वितीयं सर्पमेखलम्॥५६॥

इस तरह रुद्र द्वारा पूषा के दाँतों को उखड़ा हुआ देखकर वसुगण और चन्द्रमा जल्दी-जल्दी से दशों दिशाओं की ओर भागने का प्रयत्न करने लगे।।४७।।

इस तरह से उन लोगों को अचानक विभिन्न दिशाओं में भागते हुए देखकर प्रतापवान् विष्णु ने अपनी सेनाओं को ललकारते हुए कहा—।।४८।।

पौरुष छोड़कर कहाँ जा रहे हो? जल्दी ही अपने दर्प, माहात्म्य, व्यवसाय, कुल, जन्म आदि का स्मरण क्यों नहीं करते?।।४९।।

पुरातन समय में परमेष्ठी के गुणों से सम्पन्न कमल से उत्पन्न होने वाले ब्रह्मा पृथ्वी पर क्षुद्रों के समान भय से भागते हुए और नमस्कार भी करता है?।।५०।।

इस प्रकार से कहते हुए अपने हाथों में शङ्ख, चक्र, गदा आदि धारण करने वाले पीताम्बरधारी जनार्दन हरि गरुड़ पर आसीन हुए।।५१।।

फिर श्री हरि विष्णु और हर श्री शंकर के बीच रोमाञ्चकारी महायुद्ध होने लगा। रुद्र ने वेगपूर्वक पाशुपतास्त्र से हरि को वेधित किया, तो क्रोध सम्पन्न होकर श्रीहरि ने भी नारायणास्त्र से रुद्र को भी वेधित कर दिया।।५२।।

इस प्रकार नारायण और पाशुपत दोनों ही अस्त्र परस्पर रोषपूर्वक एक-दूसरे को मारने की इच्छा से आकाश में अत्यन्त अलौकिक युद्ध करने लगे। तत्पश्चात् उन दोनों में सहस्र दिव्य वर्ष पर्यन्त युद्ध होता रह गया।।५३।।

उन दोनों में एक के सिर पर मुकुट था तो दूसरे के मस्तक पर जटा का जाल स्थित था। एक शंख बजा रहा था तो दूसरा शुभ तुमरु बजा रहा था।।५४।।

उनमें से एक के हाथ में खड्ग तो दूसरे का शरीर विभूति से सुशोभित था।।५५।।

एक अपनी गदा को घूमा रहा था, तो दूसरा अपना दण्ड। एक कण्ठ में स्थित मणियों से अत्यधिक शोभित

एवं तौ स्पर्द्धिनावस्त्रौ रौद्रनारायणात्मकौ। अन्योऽन्यातिशयोपेतौ तदालोक्य पितामहः।।५७।।
उवाच शाम्यतामस्त्रौ स्वस्वभावेन सुव्रतौ। एवं ते ब्रह्मणा चोक्तौ शान्तभावं प्रजग्मतुः।।५८।।
अथ विष्णुहरौ ब्रह्मा वाक्यमेतदुवाच ह। उभौ हरिहरौ देवौ लोके ख्यातिं गमिष्यथः।।५९।।
अयं च यज्ञो विध्वस्तः सम्पूर्णत्वं गमिष्यति।
दक्षस्य ख्यातिमाँल्लोकः सन्तत्याऽयं भविष्यति।।६०।।
एवमुक्त्वा हरिहरौ तदा लोकपितामहः। ब्रह्मा लोकानुवाचेदं रुद्रभागोऽस्य दीयताम्।।६१।।
रुद्रभागो ज्येष्ठभाग इतीयं वैदिकी श्रुतिः। स्तुतिं च देवाः कुरुत रुद्रस्य परमेष्ठिनः।।६२।।
भगनेत्रहरं देवं पूष्णो दन्तविनाशनम्। स्तुतिं कुरुत मा शीघ्रं गीतैरेतैस्तु नामभिः।
येनायं वः प्रसन्नात्मा वरदत्वं भजेत ह।।६३।।
एवमुक्तास्तु ते देवाः स्तोत्रं शम्भोर्महात्मनः। चक्रुः परमया भक्त्या नमस्कृत्य स्वयम्भुवे।।६४।।

देवा ऊचुः

नमो विषमनेत्राय नमस्ते त्रयम्बकाय च। नमः सहस्त्रनेत्राय नमस्ते शूलपाणये।।६५।।
नमः खट्वाङ्गहस्ताय नमो दण्डभृते करे। त्वं देव हुतभुग्ज्वालाकोटिभानुसमप्रभः।।६६।।

हो रहा था, तो दूसरा अस्थियों के अलंकरण से अलंकृत था। एक ने पीताम्बर धारण कर रखा था, तो दूसरा सर्प की मेखला से शोभा पा रहा था।।५६।।

उस समय पितामह ब्रह्मा ने उपरोक्त प्रकार के एक से बढ़कर दूसरे को परस्पर स्पार्द्धात्मक युद्ध करने वाले रुद्र और नारायण स्वरूप दोनों अस्त्रों को देखकर कहा कि अपने-अपने स्वभाव के अनुरुप सुन्दर व्रत धारण करने वाले दोनों अस्त्र शान्त हो जाँय। इस प्रकार से ब्रह्माजी के कहते ही वे दोनों अस्त्र शान्त और स्थिर हो गये।।५७-५८।।

इस प्रकार उन्हें शान्त देख ब्रह्मा ने विष्णु और हर से इस वाक्य को कहा कि हे हरि और हर! आप दोनों ही देव इस संसार में सुप्रसिद्ध होंगे।।५९।।

तत्पश्चात् इस विध्वंस यज्ञ भी पूर्ण हो सकेगा। फिर यह लोक दक्ष की सन्तति से ही सुख्यात हो सकेगा।।६०।।

इसके बाद लोकपितामह हरि और हर से उक्त प्रकार कहने के उपरान्त लोगों से कहा कि इन्हें भी रुद्रभाग प्रदान किया जाय।।६१।।

चूँकि 'रुद्रभाग' ज्येष्ठ भाग होता है। इस प्रकार वेद कहते हैं। हे देवगण! आप लोग परमेष्ठी रुद्र की स्तुति करें।।६२।।

भग के नेत्रों और पूषा के दाँतों को क्रम से हरने और विनष्ट करने वले देव रुद्र की इन नामों से शान्ति के साथ स्तुति करनी चाहिए, जिससे यह तुम लोगों पर प्रसन्न होकर तुम्हें वर प्रदान कर सकें।।६३।।

इस प्रकार से कहे जाने पर उन देवताओं ने परम भक्तिमय होकर स्वयम्भू को नमस्कार कर महात्मा शम्भु की स्तुति करने लगे।।६४।।

देवताओं ने बोला कि आप विषम नेत्र को नमस्कार है। आप त्र्यम्बक को प्रणाम है। सहस्त्र नेत्र को प्रणाम है और आप शूलपाणि को प्रणाम है।।६५।।

अपने हाथ में खट्वाङ्ग अर्थात् खडिया के अंग सदृश अस्त्र धारण करने वाले को प्रणाम है और अपने हाथ

अदर्शनेऽनयद् देव मूढविज्ञानतोऽधुना। कृतमस्माभिरेवेश तदत्र क्षम्यतां प्रभो॥६७॥

नमस्त्रिनेत्रार्त्तिहराय शम्भो त्रिशूलपाणे विकृतास्यरूप।
समस्तदेवेश्वर शुद्धभाव प्रसीद रुद्राच्युत सर्वभाव॥६८॥
पूष्णोऽस्य दन्तान्तक भीमरूप प्रलम्बभोगीन्द्रलुलन्तकण्ठ।
विशालदेहाच्युत नीलकण्ठ प्रसीद विश्वेश्वर विश्वमूर्त्ते॥६९॥
भगाक्षिसंस्फोटनदक्षकर्मा गृहाण भागं मखतः प्रधानम्।
प्रसीद देवेश्वर नीलकण्ठ प्रपाहि नः सर्वगुणोपपन्न॥७०॥
सिताङ्गरागाप्रतिपन्नमूर्त्ते कपालधारिंस्त्रिपुरघ्न देव।
प्रपाहि नः सर्वभयेषु चैव उमापते पुष्करनालजन्म॥७१॥
पश्याम ते देहगतान् सुरेश सर्गादयो वेदवराननन्त।
साङ्गान् सविद्यान् सपदक्रमांश्च सर्वान् निलीनांस्त्वयि देवदेव॥७२॥

भव शर्व महादेव पिनाकिन् रुद्र ते हर। नताः स्म सर्वे विश्वेश त्राहि नः परमेश्वर॥७३॥
इत्थं स्तुतस्तदा देवैर्देवदेवो महेश्वरः। तुतोष सर्वदेवानां वाक्यं चेदमुवाच ह॥७४॥

में दण्ड धारण करने वाले को प्रणाम है। हे देव! आप अग्नि ज्वाला और करोड़ों सूर्य के समान प्रभा सम्पन्न हैं।।६६।।

आपको पूर्व में देखा नहीं था, इस कारण हे देव! इस समय मूर्खता और अज्ञानता के वशीभूत हम लोगों से जो कुछ धृष्टता हुई, उसे हे प्रभो! हे ईश! अब आप क्षमा करें।।६७।।

आप जैसे त्रिनेत्र, आर्तिहर, त्रिशूलपाणि, विकृतमुखस्वरूप शम्भु को प्रणाम है। हे सर्व देवताओं के ईश्वर, शुद्धभाव तथा सर्वभावमय अच्युत रुद्र! हम सब पर आप प्रसन्न हों।।६८।।

इस पूषा के दाँत को विनष्ट करने वाले, भीमरूप तथा जिनके कण्ठ में दीर्घ श्रेष्ठ सर्प लटक रहा है, ऐसे हे विशाल देह! नीलकण्ठ, विश्वेश्वर विश्वमूर्त्ति अच्युत आप प्रसन्न हों।।६९।।

हे भगनेत्र को भङ्ग करने के कर्म में निपुण! यज्ञ का प्रधान भाग ग्रहण करें। हे नीलकण्ठ देवेश्वर! प्रसन्न हो जाओ। हे सर्वगुण सम्पन्न देव! हमारी रक्षा करें।।७०।।

हे श्वेतवर्ण की विभूति को धारण करने से अपनी मूर्त्ति को आच्छादित किये रहने वाले, हे कपालधारी, त्रिपुरनाशक उमापति और कमलनाल से उत्पन्न होने वाले देव! सभी प्रकार की भयों से मेरी रक्षा करें।।७१।।

हे देवाधिदेव अनन्तसुरेश! हमें आपके शरीर में सृष्टि आदि कर्म निरन्तर हो रही है, तथा अङ्गों, विद्याओं और पदक्रम सहित सभी वेद आप में समाहित हैं।।७२।।

हे भव, शर्व, महादेव, पिनाकी, विश्वेश, रुद्र, परमेश्वर! हम सभी मिलकर आपको प्रणाम करते हैं। आप हमारी रक्षा करें।।७३।।

इस तरह देवताओं के स्तुति करने से देवाधिदेव महेश्वर ने प्रसन्न होकर सभी देवताओं से इस वाक्य को कहा—।।७४।।

रुद्र उवाच

भगस्य नेत्रं भवतु पूष्णो दन्तास्तथा मखः। दक्षस्याच्छिद्रतां यातु यज्ञश्चाप्यदितेः सुताः।
पशुभावं तथा चापि अपनेष्यामि वो सुराः॥७५॥
मद्दर्शनेन यो जातः पशुभावो दिवौकसाम्। स मयाऽपहृतः सद्यः पतित्वं वो भविष्यति॥७६॥
अहं च सर्वविद्यानां पतिराद्यः सनातनः। अहं वै पतिभावेन पशुमध्ये व्यवस्थितः॥७७॥
अतः पशुपतिर्नाम मम लोके भविष्यति। ये मां यजन्ति तेषां स्याद्दीक्षा पाशुपती भवेत्॥७८॥
एवमुक्तेऽथ रुद्रेण ब्रह्मा लोकपितामहः। उवाच रुद्रं सस्नेहं स्मितपूर्वमिदं वचः॥७९॥
ध्रुवं पशुपतिर्देव त्वं लोके ख्यातिमेस्यसि। अयं च देवस्तन्नाम्ना लोके ख्यातिं गमिष्यति।
आराध्यश्च समस्तानां देवादीनां गमिष्यति॥८०॥
एवमुक्त्वा तदा ब्रह्मा दक्षं प्रोवाच बुद्धिमान्। गौरीं प्रयच्छ रुद्राय पूर्वमेवोपपादिताम्॥८१॥
एवमुक्त्वा तदा देवस्तां कन्यां ब्रह्मसन्निधौ। ददौ रुद्राय महते गौरीं परमशोभनाम्॥८२॥
सं तां जग्राह विधिवद् रुद्रः परमशोभान्। दक्षस्य च प्रियं कुर्वन् बहुमानपुरःसरम्॥८३॥
गृहीतायां तु कन्यायां दाक्षायण्यां पितामहः। ददौ रुद्राय निलयं कैलासं सुरसन्निधौ॥८४॥

रुद्र ने कहा कि भग को नेत्र और पूषा को दाँत पुनः प्राप्त होगा। दक्ष का यज्ञ भी सुसम्पन्न हो। हे अदिति के पुत्र देवगण! मैं तुम्हारा पशुभाव दूर करता हूँ।।७५।।

मेरे दर्शन से जो पशुभाव देवों को प्राप्त हुआ था, उसे मैंने दूर कर दिया है तथा अब आप सभी को पतिभाव प्राप्त हो सकेगा।।७६।।

मैं सभी विद्याओं का आदि सनातन पति हूँ। मैं ही पशुओं अर्थात् मायाक्रस्त जीवों के मध्य पति अर्थात् ब्रह्म के रूप में स्थित हूँ।।७७।।

अतः जगत् में मेरा नाम पशुपति भी होगा। जो मेरी आराधना करेंगे उनकी पाशुपती दीक्षा होगी।।७८।।

रुद्र के ऐसा कहने पर लोक पितामह ब्रह्मा ने रुद्र से हँसते हुये स्नेहपूर्वक इस वचन को कहा—।।७९।।

हे देव! निश्चित ही इस लोक में आप पाशुपति के नाम से सुख्यात होंगे। यह देव भी इस लोक में आपके नाम से ही प्रसिद्ध होगा। आप ही समस्त देवताओं आदि के आराध्य होंगे।।८०।।

इस प्रकार कहते हुये बुद्धि सम्पन्न ब्रह्मा ने दक्ष से कहा कि पूर्व में ही समर्पित गौरी रुद्र को प्रदान कर दिया गया।।८१।।

इस तरह से ब्रह्मा के कह देने पर दक्ष ने उनकी उपस्थिति में ही परमसुन्दरी कन्या गौरी महान् रुद्र को समर्पित कर दिया गया।।८२।।

फिर उस रुद्र ने दक्ष का प्रिय करते हुए अत्यन्त आदर के साथ यथाविधि उस परम सुन्दरी कन्या गौरी को ग्रहण भी कर लिया।।८३।।

दक्ष कन्या गौरी को ग्रहण करने पर पितामह ने रुद्र को देवों के समीप ही कैलाश पर्वत का स्थान प्रदान किया।।८४।।

रुद्रोऽपि प्रययौ भूतैः समं कैलासपर्वतम्। देवाश्चापि यथास्थानं स्वं स्वं जग्मुर्मुदान्विताः।
ब्रह्मापि दक्षसहितः प्राजापत्यं पुरं ययौ॥८५॥

।।इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे एकविंशोऽध्यायः।।२१।।

द्वाविंशोऽध्यायः

अथ दक्षयज्ञध्वंसम्

महातपा उवाच

तस्मिन् निवसतस्तस्य रुद्रस्य परमेष्ठिनः। चुकोप गौरी देवस्य पितुर्वैरमनुस्मरन्॥१॥
चिन्तयामास देवस्य अनेनापकृतं पुरा। यज्ञो विध्वंसितो यस्मात् तस्माच्चान्यां तनूमहम्॥२॥
आराध्य तपसा तस्य गृहे भूत्वा व्रजाम्यहम्। कथं गच्छामि पितरं दक्षं क्षयितबान्धवम्॥३॥
भवपत्नी च दुहिता एवं सञ्चिन्त्य सुन्दरी। जगाम तपसे देवी हिमवन्तं महागिरिम्॥४॥

फिर रुद्र भी भूतादि गणों के सहित कैलाश पर्वत पर चले गये। तथा देवगणों ने भी प्रसन्नता के साथ अपने-अपने स्थान की ओर चल दिये। उसके बाद ब्रह्मा भी दक्ष के सहित प्रजापति के पुर को चले गये।।८५।।

।।इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में दक्ष यज्ञ विध्वंश, रुद्रस्तुति, रुद्र हेतु दक्ष का कन्यादान नामक इक्कीसवां अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ।।२१।।

अध्याय-२२

दक्षयज्ञध्वंस, गौरी का देहत्याग, पार्वती जन्म और विवाह

महातपा ने कहा कि ब्रह्मा द्वारा प्रदत्त स्थान कैलाश पर्वत पर परमेष्ठी रुद्र देव के निवास करने पर अपने पिता और रुद्र के वैर करने को स्मरण कर गौरी रूष्ट हो गई।।१।।

इस प्रकार के विचार करने लगी की जहाँ से इनरुद्रदेव ने पूर्वकाल में दक्ष का अपकार एवं यज्ञ का विध्वंस किया था। अतः मुझे अन्य शरीर धारण करना चाहिए।।२।

अतः अब मुझे अन्य शरीर से तप द्वारा रुद्रदेव की आराधना कर उनकी भार्या के रूप में उनके घर में जाना उचित है; क्योंकि वैर के कारण जिनके बान्धव नष्ट हो गए हैं, उन अपने पिता दक्ष के घर मैं कैसे जा सकती हूँ।।३।।

इस प्रकार विचार कर रुद्र की भार्या और दक्ष की कन्या सुन्दरी गौरी तपस्या करने के लिए विशाल पर्वत हिमालय पर चली गयी।।४।।

तत्र कालेन महता क्षपयन्ती कलेवरम्। स्वशरीराग्निना दग्धा ततः शैलसुताभवत्॥५॥
उमा नामेति महती कृष्णा चेत्यभिधानतः। लब्ध्वा तु शोभनां मूर्तिं हिमवन्तगृहे शुभा॥६॥
पुनस्तपश्चकारोग्रं देवं स्मृत्वा त्रिलोचनम्। असावेव पतिर्मह्यमित्युक्त्वा तपसि स्थिता॥७॥
कुर्वन्त्या तत् तपश्चोग्रं हिमवन्ते महागिरौ। कालेन महता देवस्तपसाराधितस्तया॥८॥
आजगामाश्रमं तस्या विप्रो भूत्वा महेश्वरः। वृद्धः शिथिलसर्वाङ्गः स्खलंश्चैव पदे पदे॥९॥

कृच्छ्रात् तस्याः समीपं तु आगत्य द्विजसत्तमः।
बुभुक्षितोऽस्मि मे देहि भद्रे भोज्यं द्विजस्य तु॥१०॥

एवमुक्ता तदा कन्या उमा शैलसुता शुभा। उवाच ब्राह्मणं भोज्यं दद्मि विप्र फलादिकम्।
कुरु स्नानं द्रुतं विप्र भुञ्जस्वान्नं यदृच्छया॥११॥

एवमुक्तस्तदा विप्रस्तस्य पार्श्वे महानदीम्। गङ्गां जगाम स्नानार्थी स्नानं कर्त्तुमवातरत्॥१२॥
स्नानं तु कुर्वता तेन रुद्रेण द्विजरूपिणा। भूत्वा मायामयं भीमं मकरं भयदर्शनम्।
ग्राहितस्तु तदा विप्रस्तेन दुष्टेन मद्गुना॥१३॥

दृष्ट्वा धृतमथात्मानं मकरेण बलीयसा। वृद्धमात्मानमन्यन्तां दर्शयन्वाक्यमब्रवीत्॥१४॥

वहीं पर वे बहुतों काल तक अपने शरीर को क्षीण करने का प्रयास करने लगी। फिर अपनी ही शरीर की हबग्न से उस अपने ही शरीर को जलाकर शैलपुत्री हो गईं।।५।।

इस तरह उन कल्याण स्वरूपा ने उमा महाकाली के नाम से हिमवान् के घर में सुन्दर शरीर पुनः धारण कर ली।।६।।

फिर त्रिलोचन रुद्रदेव को स्मरण करती हुई, यह संकल्प ले ली कि वे ही पुनः मुझे पति के रूप में प्राप्त हों, तपस्या प्रारम्भ की, फिर उग्र तप करने लगी।।७।।

इस प्रकार हमिालय पर्वत पर उन देवी के द्वारा उग्र तप करते रहने पर बहुत काल के बाद उन देवी गौरी के द्वारा आराधित होकर उनके आराध्य देव महेश्वर एक कृश शरीर धारी वृद्ध ब्राह्मण के रूप में लड़खड़ाते कदम-दर-कदम चलते हुए उन देवी (पार्वती) की कुटिया में पहुँच गये।।८-९।।

अत्यन्त कठिनाई से उन देवी के समीप आकर वह श्रेष्ठ ब्रांह्मण ने कहा कि हे भद्र! मैं भूख से व्युकुल हूँ, मुझ ब्राह्मण को भोजन प्रदान करो।।१०।।

तत्पश्चात् इस तरह कहे जाने पर हिमपुत्री भद्रा सुन्दरी उमा ने कहा—हे प्रिप! आप ब्राह्मण को भोजन करने योग्य फल आदि प्रदान करूँगी। हे विप्र! शीघ्र स्नान करे और फिर इच्छा के अनुरुप अन्न आदिग्रहण करो।।११।।

इस प्रकार से कहे जाने पर वह स्नानेच्छुक ब्राह्मण नजदीक में ही स्थित महानदी गङ्गा में स्नान हेतु उतरा।।१२।।

जिस समय ब्राह्मण वेशधारी रुद्र स्नान करने के हेतु गङ्गा में प्रवेश किया था, कि वे स्वयं ही उस समय एक मायामय महाभयंकर भीमरूप मकर का रूप धारण कर उस दुष्ट मकर से उस ब्राह्मण को ग्रसित करवा दिया।।१३।।

इस तरह बलवान् मकर से स्वयं को पकड़वा कर रुद्र रूप धारी वृद्ध ब्राह्मण अपने वृद्ध शरीर को दिखलाते हुये उस गौर से इस प्रकार का वाक्य कहा—।।१४।।

अब्रह्मण्यं गतं कन्ये धावस्वानय मां रुषः। यावन्नायाति विकृतिं तावन्मां त्रातुमर्हसि॥१५॥
एवमुक्ता तदा कन्या चिन्तयामास पार्वती। पितृभावेन शैलेन्द्रं भर्तृभावेन शङ्करम्।
स्पृशामि तपसा पूता कथं विप्रं स्पृशाम्यहम्॥१६॥
यद्येनं नापकर्षामि मकरेण जले धृतम्। तदानीं ब्रह्मवध्या मे भविष्यति न संशयः॥१७॥
अन्यव्यतिक्रमे धर्ममपनेतु च शक्यते। ब्रह्मवध्या पुनर्नैवमेवमुक्त्वा गता त्वरम्॥१८॥
सा गत्वा त्वरितं भीरुर्गृहीत्वा पाणिना द्विजम्। चकर्षान्तर्जलात् तावत् स्वयं भूतपतिर्हरः॥१९॥
यमाराध्य तपश्चर्त्तुमारब्धं शैलपुत्रया। स एव भगवान् रुद्रस्तस्याः पाणौ विलम्बतः॥२०॥
तं दृष्ट्वा लज्जिता देवी पूर्वत्यागमनुस्मरन्। न किञ्चिदुत्तरं सुभ्रूर्वदति स्म सुलज्जिता॥२१॥
तूष्णींभूतां तु तां दृष्ट्वा गौरीं रुद्रो हसन्निव। पाणौ गृहीत्वा मां भद्रे कथं त्यक्तुमिहार्हसि॥२२॥
मत्पाणिग्रहण भद्रे वृथा यदि करिष्यसि। तदानीं ब्रह्मणः पुत्र्यामाहारार्थं ब्रवीम्यहम्॥२३॥
न भवेत् परिहासोऽयमुक्ता देवी परापरा।
लज्जमाना तदा वाक्यं वदति स्मितपूर्वकम्॥२४॥

हे कन्ये! महान् अनर्थ हो गया। रुष्ट मत होओ। जब तक यह मकर मुझे नष्ट करे, दौड़कर आओ और मुझे बचा लो।।१५।।

उस समय इस प्रकार स ब्रह्मण कथित वाक्य को सुनकर कन्या पार्वती ने सोचा कि मैं तो हिमवान् को पितृभाव से तथा श्रीशंकर को पतिभाव स्पर्श करती हूँ। किन्तु इस समय तपस्या पवित्र हुयी मैं इस ब्राह्मण को किस प्रकार स्पर्श करूँ।।१६।।

यदि जल में मकर द्वारा पकड़े गए इस ब्राह्मण को नहीं खींच लेती हूँ, तो निश्चय ही मुझे ब्रह्महत्या का पाप लग सकता है।।१७।।

इस परिस्थिति में अन्य प्रकार के परपुरुषस्पर्शजन्य आदि पाप का परिमार्जन तो कर सकती हूँ, पर ब्रह्महत्या रूप अधर्म का नहीं। इस तरह सोचती हुई पार्वती शीघ्रता से उस ब्राह्मण के समीप चली गईं।।१८।।

फिर वह डरती हुई शीघ्रता से गयी और अपने हाथों से उस ब्राह्मण को पकड़ कर जैसे ही जल के भीतर से बाहर खींचती, उस समय वैसे ही भूतपति हर स्वयं जिसकी आराधना हेतु वह शैलपुत्री ने उग्र तपस्या करना स्वीकार किया था, वही सदाशिव भगवान् रुद्र उसके बाहु में लटके हुये थे।।१९-२०।।

उन्हें देखते ही पार्वती अपने पूर्व चिन्ति त्याग को स्मरण कर लज्जित हो गई। तत्पश्चात् अत्यन्त सुन्दरी पार्वती ने लज्जा से कोई उत्तर नहीं दिया।।२१।।

इस तरह उस गौरी को चुप हुआ देखकर रुद्र ने मुस्कुराते हुय कहा कि हे भद्र! मेरा हाथ पकड़ कर मुझे कैसे छोड़ सकती हो?।।२२।।

इस तरह हे भद्रे! तुम मेरे पाणिग्रहण को निरर्थक कर दोगी, तो आहार के लिए मुझे ब्रह्मा की पुत्री से ही कहना पड़ेगा।।२३।।

'यह परिहास नहीं है।' इस प्रकार से कहे जाने पर लज्जित परात्पर देवी पार्वती ने भी हँसते हुए यह कहा—।।२४।।

देवदेव त्रिलोकेश त्वदर्थोऽयं समुद्यमः। प्राग्जन्माराधितो भर्त्ता भवान् देवो महेश्वरः॥२५॥
इदानीं मे भवान् देवः पतिर्नान्यो भविष्यति।
किन्तु स्वामी पिता मह्यं शैलेन्द्रा मे व्रजामि तम्।
अनुज्ञाप्य विधानेन ततः पाणिं ग्रहीष्यसि॥२६॥
एवमुक्तवा तदा देवी पितरं प्रति भामिनो। कृताञ्जलिपुटा भूत्वा हिमवन्तमुवाच ह॥२७॥
अतोऽन्यजन्मभर्त्ता मे रुद्रो दक्षमखान्तकः। इदानीं तपसा सैव ध्यातोऽभूद् गतिभावनः॥२८॥
स च विश्वपतिर्भूत्वा ब्राह्मणो मे तपोवनम्। आगत्य भोजनार्थाय याचयामास शङ्करः।
मया स्नातुं व्रजस्वेति चोदितो जाह्नवीं गतः॥२९॥
तत्रासौ वृद्धकायेन द्विजरूपेण शङ्करः। मकरेण धृतस्तूर्णमब्रह्मण्यमुवाच ह॥३०॥
ब्रह्महत्याभयात् तात मया पाणौ धृतस्ततः। धृतमात्रः स्वकं देहं दर्शयामास शङ्करः॥३१॥
ततो मामब्रवीद् देवः पाणिग्रहणमागतम्। भविता देवि मा किञ्चिद् विचारय तपोधने॥३२॥
एवमुक्ता त्वहं तेन शङ्करेण महात्मना। तदनुज्ञाप्य देवेशं भवन्तं प्रष्टुमागता।
इदानीं यत्क्षमं कार्यं तच्छीघ्रं संविधीयताम्॥३३॥

हे देवाधिदेव! त्रिलोकेश! आपके लिए ही मेरा यह तपस्यारूप उद्यम है। चूँकि पूर्वजन्म में आराधित आप महेश्वर देव ही मेरे पति हैं।।२५।।

इस समय भी आप मेरे पति हैं। दूसरा कोई मेरा पति नहीं हो सकता। किन्तु इस समय पर्वतराज (हिमालय) का मेरे ऊपर अधिकार है। अतः मैं उनके पास जाती हूँ। आप उनकी आज्ञा प्राप्त करने के पश्चात् मेरा विधानपूर्वक पाणिग्रहण कर सकेंगे।।२६।।

तत्पश्चात् इस प्रकार कहकर सुन्दरी पार्वती हिमवान् के पास आकर खड़ी हुई और उनके सम्मुख हाथ जोड़कर उनसे इस प्रकार से कहने लगी।।२७।।

इस जन्म में पूर्वजन्म में दक्ष के यज्ञ को विध्वंस करने वाले रुद्र ही मेरे पति हैं। इस समय गति प्रदान करने वाले उन्हीं रुद्र की मैंने अपनी तपस्या द्वारा आराधना की है।।२८।।

वे विश्वेश शंकर ब्राह्मण वेश धारण कर मेरे तपोवन में पधारें और भोजन की याचना की। 'स्नान कर आओ' इस तरह मेरे कहे जाने पर वे गङ्गा के तट पर गये।।२९।।

वहाँ पर मकर ने वृद्ध शरीर वाले ब्राह्मण रूप धारण करने वाले शंकर को शीघ्र पकड़ लिया। तब उन्होंने अब्रह्माण्य अर्थात् ब्राह्मण के लिए अनर्थ हुआ' इस तरह से कहा।।३०।।

तत्पश्चात् हे ता! ब्रह्महत्या के भय से मैंने उनका हाथ पकड़खींच लिया। हाथ पकड़ते ही शंकर ने अपना शरीर स्वरूप प्रदर्शित कर दिया।।३१।।

फिर वह देव शंकर ने पाणिग्रहण किये ही मुझेसे कहा कि हे तपोधन देवि! आप अन्य कुछ विचार न करें।।३२।।

उन महात्मा शंकर के इस प्रकार से कहे जाने पर मैं उन देवेश को समझा कर आपके पास आप से आदेशित होने आयी हूँ। अब जो कुछ उचित मार्ग या कार्य हो उसे आप शीघ्र अपनायें।।३३।।

एवं श्रुत्वा तदा वाक्यं शैलराजो मुदा युतः। उवाच दुहितां धन्यां तस्मिन् काले वराननाम्॥३४॥
पुत्रि धन्योऽस्म्यहं लोके यस्य रुद्रः स्वयं हरः। जामाता भविता देवि त्वयाऽपत्यवदस्म्यम्।
स्थापितो मूर्ध्नि देवानामपि पुत्रि त्वया ह्यहम्॥३५॥
स्थीयतां क्षणमेकं तु यावदागमनं मम। एवमुक्त्वा गतो राजा शैलानां ब्रह्मणोऽन्तिकम्॥३६॥
तत्र दृष्ट्वा महात्मानं सर्वदेवपितामहम्। उवाच प्रणतो भूत्वा ब्रह्माणं शैलराट् ततः॥३७॥
देवोमा दुहिता मह्यं तां रुद्राय ददाम्यहम्। त्वया देव अनुज्ञातस्तत्करोमि प्रशाधि मम्॥३८॥
ततो ब्रह्मा प्रीतमना यादि रुद्रा तां शुभाम्। प्रयच्छोवाच देवानां तदा लोकपितामहः॥३९॥
एवमुक्तः शैलराजः स्ववेश्मागम्य सत्वरम्। देवानृषीन् सिद्धसंघान् चामन्त्रयत सत्वमरम्॥४०॥
तुम्बुरं नारदं चैव हाहाहूहूं तथैव च। स गत्वा किन्नांश्चैव असुरान् राक्षसानपि॥४१॥
पर्वताः सरितः शैला वृक्षा ओषधयस्तथा। आगता मूर्त्तिमन्तो वै पर्वताः सङ्गमोपलाः।
हिमवद्दुहितुर्द्रष्टुं विवाहं शंकरणे ह॥४२॥
तत्र वेदिः क्षितिश्चासीत् कलशाः सप्त सागराः। सूर्यो दीपस्तथा सोमः सरितो ववहुर्जलम्॥४३॥

फिर इस तरह की वार्त्ता को सुनकर शैलराज ने प्रसन्नता के साथ यह कहा कि धन्य हुई सुमुखी मेरी पुत्री। अब तुम सुनो।।३४।।

हे पत्री! इस संसार में मैं भी धन्य हुआ, क्योंकि जिसके जामाता साक्षात्स्वयं हर रुद्र होने वाले हैं। हे पुत्री! तुमने तो हमें संततिवान् और देवताओं के मस्तक पर स्थापित कर दिया।।३५।।

ठीक है, अब तुम कुछ पल ठहरो। तब तक मैं आता हूँ। इस प्रकार कहते हुए पर्वत राज हिमवान् ब्रह्मा के पास पहुच गये।।३६।।

उस समय वहाँ समस्त देवताओं के पितामह महात्मा ब्रह्मा का दर्शन करने के अनन्तर उन्हेंप्रणाम करते हुए पर्वतराज ने उनसे कहा—।।३७।।

हे देव! उमा मेरीपुत्री है। आपकी आज्ञा हो, तो उसे मैं रुद्र को प्रदान कर सकूँगा। हे देव! अतः आप जैसी आज्ञा करें, मैं वैसा ही कुछ करेंगे।।३८।।

इस प्रकार हिमवान् की वार्ता को सुनकर देव सन्निधिवान् लोक पितामह ब्रह्मा ने प्रसन्नतापूर्ण मन से कहा कि हे पुत्र! जाओं और उस कल्याणी को रुद्र की सेवा के लिए प्रदान कर दो।।३९।।

इस तरह से ब्रह्मा द्वारा आदेश प्राप्त शैलराज जल्दी-जल्दी अपने घर आकर देवों, ऋषियों, सिद्धसंघों को शीघ्र आमन्त्रित करने के उपक्रम की तैयारी में जुट गये।।४०।।

फिर वे तुम्बुरु, नारद, हाहा-हूहू नाम के गन्धर्वों, किन्नरों, राक्षसों और असुरों ादि को भी उनके यहाँ जा-जाकर आमन्त्रित किया।।४१।।

पर्वतों, नदियों, शैलों, वृक्षों, ओषधियों, छोटे पहाड़ों, सङ्गम स्थानों आदि ने भी आमन्त्रण स्वीकार करते हुए प्रस्तर मूर्त्ति के रूप में शंकर संग हिमालय की पुत्री का विवाह देखने हेतु प्रस्तुत हुए।।४२।।

उस विवाह हेतु पृथ्वी को ही विवाह वेदिका बनाई गई, सप्तसागरों को ही कलश के रूप में स्थापित किया गया। जहाँ दीपक के रूप में सूर्य और चन्द्र को आवाहित किया गया तथा नदियाँ जल प्रस्तुत करने के काम को भलीभाँति सम्पन्न करने में व्यस्त थीं।।४३।।

एवं विवाहसामग्रीं कृत्वा शैलवराधिपः। प्रेषयामास रुद्राय समीपं मन्दरं गिरिम्॥४४॥
स तदा मन्दोक्तस्तु शंकरो द्रुतमाययौ। विधिना सोमया पाणिं जग्राह परमेश्वरः॥४५॥

तत्रोत्सवे पर्वतनारदौ द्वौ जगुश्च सिद्धा ननृतुर्वनस्पतीः।
पुष्याण्यनेकानि विचिक्षिपुः शुभाः ननर्तुरुच्चैः सुरयोषितो भृशम्॥४६॥
तस्मिन् विवाहे सलिलप्रवाहे चतुर्मुखो लोकपर स्वसंस्थः।
उवाच कन्यां भव पुत्रि लोके नारी प्रभर्त्ता तव चान्यपुंसाम्।
इत्येवमुक्त्वा स उमां सरुद्रां पितामहः स्वं पुरमाजगाम॥४७॥
जामातरं पर्वतराट् सुपूज्य विसर्जयामास विभुं स सोमम्।
देवांश्च दैत्यान् विधिनानृषींश्च संपूज्य सर्वान् विविधैस्तु वस्तुभिः।
विभूषणैर्वस्त्रवरान्नदानैर्विसर्जयामास तद्रादिमुख्यान्॥४८॥
स वीतशोको विरजो विशुद्धः शुभाननां देववराय दत्त्वा।
उमां महात्मा हिमवानद्रिराजः पैतामहे लोक इवाध्वरे भात्॥४९॥
इतीरितेयं तव राजसत्तम प्रसूतिरेषा न विदुर्यां सुरासुराः।
स्वयंभुदक्षाद्रिराजः त्रिजन्मभिर्गौरीविवाहोऽपि मया सुकीर्तितः॥५०॥

इस प्रकार विवाहकालिक पूजन सामग्री की उपलब्धि कर लेने के बाद शैलराज ने मन्दराचल को रुद्र के पास भेजा।।४४।।

जिफर तो मन्दराचल के आवाहन करने पर वे परमेश्वर शंकर जल्दी ही विवाह कार्य हेतु प्रस्तुत हुए तथा सविधि उमा का पाणिग्रहण किया।।४५।।

इस प्रकार उस वैवाहिक उत्सव में पर्वत और नारद दोनों ने गीत गाने का काम किया, सिद्धों ने नृत्य प्रस्तुत किया, वनस्पतियों ने अनेक प्रकार के पुष्पों की वर्षा की एवं देवाङ्गनाओं ने भी अत्यन्त उच्चकोटि का नृत्य प्रस्तुत किया।।४६।।

इस शिव-पार्वती के विवाह के अवसर पर जलधारा के समय आत्मनिष्ठ जगत् में सर्वश्रेष्ठ चतुर्मुख ब्रह्मा नेकन्या से इस प्रकार कहा कि हे पुत्री! इस जगत् में तुम सदा श्रेष्ठ स्त्री बनी रहो और तुम्हारा पति भी सर्वोत्तम पुरुष बना रहे। इस तरह रुद्र के साथ उमा से कहकर पितामह अपने पुर कोचले गये।।४७।।

फिर हिमवान् पर्वतराज ने जामाता शंकर की सविधि पूजन-सत्कार कर उमा के साथ उन्हें विदा किया। तत्पश्चात् विभूषण, वस्त्र, श्रेष्ठतम अन्न आदिप्रदान कर तथा विविध प्रकार की वस्तुओं से देवताओं, दैत्यों, ऋषियों, पर्वतों आदि सभी का सत्कारपूर्वक उन्हें भी विदा कर दिया।।४८।।

हिमालयराज अपने जामाता श्रेष्ठ देव शंकर को अपनी पुत्री शुभानना उमा सौंपने के बाद शोक और रजोगुण देषों से निवृत्त होकर पितामह के लोक के समानयज्ञमण्डप में विराजकर शोभायमान होरहे थे।।४९।।

हे नृपोत्तम! इस प्रकार से मैंने तुमसे इस सृष्टि की कथा को सूनाया है, जिसे प्रायः सुर औरअसुर भी नहीं जानते। मैंने स्वयम्भू, दक्ष, पर्वतराज के तीन जन्मान्तरों में किये गए गौरी विवाह का सविधि विवेचन किया है।।५०।।

श्रीवराह उवाच

एवं सा गौरिनाम्ना तु कारणान्मूर्त्तिमागता। संबभूव यथा प्रोक्तं प्रजापालय पृच्छते।
ऋषिणा महता पूर्वं तपसा भावितात्मना॥५१॥
गौर्या उत्पत्तिरेषा वै कथिता परमर्षिणा। विवाहश्च यथा वृत्तस्तत्सर्वं कथितं तव॥५२॥
एतत् सर्वं तु गौर्या वै संपन्नं तु तृतीयया। तस्यां तिथौ तृतीयायां लवणं वर्ज्रयेन्नरः।
यश्चोपोष्यति नारी वा सा सौभाग्यं तु विन्दति॥५३॥
दुर्भगा या तु नारी स्यात् पुरुषश्चातिदुर्भगः। एतच्छ्रुत्वा तृतीयायां लवणन्तु विवर्जयेत्॥५४॥
सर्वकामानवाप्नोति सौभाग्यं द्रव्यसम्पदः। आरोग्यं च सदा लोके कान्तिं पुष्टिं च विन्दति॥५५॥

।इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे द्वाविंशोऽध्यायः।।२२।।

—❊❊❊—

श्री भगवान् वराह ने कहा कि महातपस्या से शुद्ध अन्तःकरण वाले ऋषि ने प्रजापाल के द्वारा पूछे जाने पर कारणवशात् मूर्त्तिधारण करने वाली गौरी, जैसे उत्पन्न हुई, उन सबका वर्णन किया था।।५१।।

इस प्रकार गौरी का यह सब कार्य तृतीया तिथि को हुआ था, अतः मनुष्यों को प्रत्येक तृतीया तिथि में नमक का त्याग करना चाहिए। जो कोई भी पुरुष अथवा स्त्री इस तृतीया के दिन उपवास करता है, उसे निश्चय ही सौभाग्य की प्राप्ति होती है।।५३।।

इस प्रकार अत्यन्त दुर्भाग्य युक्त पुरुष अथवा स्त्री भी यदि इस तृतीया को इस कथा का श्रवण कर नमक का भी त्याग करेगा, उसकी निश्चय ही सभी कामनायें पूर्ण होकर लोक में सर्वदा सौभाग्य, सम्पत्ति, आरोग्य, कान्ति के सहित पुष्टि को प्राप्त करता है।।५४-५५।।

।।इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में दक्षयज्ञध्वंस, गौरी का देहत्याग, पार्वती जन्म और विवाह नामक बाईसवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ।।२२।।

त्रयोविंशोऽध्याय

अथ गणेशावतारम्

प्रजापाल उवाच

कथं गणपतेर्जन्म मूर्तिमन्तं च सत्तम। एतन्मे संशयं छिन्धि धृतिकष्टं व्यवस्थितम्।।१।।

महातपा उवाच

पूर्वं देवगणाः सर्वे ऋषयश्च तपोधनाः। कार्यारम्भं तथा चक्रुः सिद्ध्यते च न संशयः।।२।।
सन्मार्गवर्त्तिषु तथा सिद्ध्यन्ते विघ्नतः क्रियाः। असत्कारिषु सर्वेषु तद्वदेवमविघ्नतः।।३।।
ततो देवाः सपितरश्चिन्तयामासुरोजसा। असत्कार्येषु विघ्नार्थे सर्व एवाभ्यमन्त्रयन्।।४।।
ततस्तेषां तदा मन्त्रं कुर्वतस्त्रिदिवौकसाम्। बभूव बुद्धिर्गमने रुद्रं प्रति महामतिम्।।५।।
ते तत्र रुद्रमागम्य कैलासनिलयं गुरुम्। ऊचुः सविनयं सर्वे प्रणिपातपुरःसरम्।।६।।

देवा ऊचुः

देव देव महादेव शूलपाणे त्रिलोचन। विघ्नार्थमविशिष्टानामुत्पादयितुमर्हसि।।७।।

अध्याय-२३

गणेशावतार और चतुर्थी तिथि का आधिपत्य प्राप्ति

प्रजापाल ने पूछा कि हे महात्मन्! गणेश का जन्म किस प्रकार हुआ और फिर वे मूर्तिमान् किस प्रकार हुए। शीघ्र मेरी इस जिज्ञासा की शान्ति हेतु मेरे संशय को दूर करें, क्योंकि यह संशय रूप में मुझे पीड़ाकारक हो रहा है।।१।।

महातपा ने कहा कि हे राजन्! पुरातनकाल में ही देवताओं के सहित सभी तपनिष्ठ ऋषिगण जो भी कार्य प्रारम्भ कर देते थे, तो वे निःसंशय पूर्ण हो जाया करते थे।।२।।

इस तरह सन्मार्ग का अनुसरण करने वालों के कार्य विघ्न के आ जाने पर भी पूर्ण हो जाया करते थे। वैसे ही असन्मार्ग का अनुसरण करने वालों को भी क्रियायें विना विघ्न के पूर्ण हो जाया करती थीं।।३।।

तत्पश्चात् पितरों केसहित समस्त देवताओं ने सभी का आवाहन कर उस कार्य में निश्चयपूर्वक विघ्न ही पड़ा चाहिए, का यथाशक्ति विचार-विमर्श किया।।४।।

इस प्रकार से वे सभी देवगण मन्त्रणापूर्वक यह निश्चय किया कि हम लोगों को महाबुद्धिमान्रुद्र के शरण में जाना ही उचित होगा।।५।।

फिर वे सभी कैलाश पर्वत पर निवास करने वाले गरु रुद्र के पास आ पहुँचे और उन्हें विनयपूर्वक प्रणाम कर इस प्रकार से कहा—।।६।।

देवों ने कहा कि हे देवाधिदेव शूलपाणि त्रिलोचन महादेव! अविशिष्ट जनों अर्थात् अशिष्टजनों के कार्यों में विघ्न उत्पन्न करने वाले 'हेतु' आप किसी की भी उत्पत्ति करें, बड़ी कृपा होगी।।७।।

एवमुक्तस्तदा देवैर्भवः परमया मुदा। उमां निरीक्षयामास चक्षुषा निमिषेण ह॥८॥
देवानां सन्निधौ तस्य पश्यतोमां महात्मनः। चिन्ताभूद् व्योम्नि मूर्त्तिभ्यो दृश्यते केन हेतुना॥९॥
पृथिव्या विद्यते मूर्त्तिरपां मूर्त्तिस्तथैव च। तेजसः श्वसनस्यापि मूर्त्तिरेषा तु दृश्यते।
आकाशं च कथं नैति मत्वा देवो जहास च॥१०॥
ज्ञानशक्तिमुमां दृष्ट्वा यद् दृष्टं व्योम्नि शम्भुना। यथोक्तं ब्रह्मणा पूर्वं शरीरं तु शरीरिणाम्॥११॥
यच्चापि हसितं तेन देवेन परमेष्ठिना। एतत् कार्यचतुष्केण पृथिव्यादिचतुर्ष्वपि॥१२॥
मूर्त्तिमानतितेजस्वी हसतः परमेष्ठिनः। प्रदीप्तास्यो महादीप्तः कुमारो भासयन् दिशः।
परमेष्ठिगुणैर्युक्तः साक्षाद् रुद्र इवापरः॥१३॥
उत्पन्नमात्रो देवानां योषितः संप्रमोहयन्। कान्त्या दीप्त्या तथा मूर्त्या रूपेण च महात्मवान्॥१४॥
तं दृष्ट्वा परमं रूपं कुमारस्य महात्मनः। उमाऽनिमेषनेत्राभ्यां तमपश्यत भामिनी॥१५॥
तं दृष्ट्वा कुपितो देवः स्त्रीभावं चञ्चलं तथा। मत्वा कुमाररूपं तु शोभनं मोहनं दृशाम्।
ततः शशाप तं देवो स्त्रीशङ्कां परमेश्वरः॥१६॥
कुमार गजवक्त्रस्त्वं प्रलम्बजठरस्तथा। भविष्यसि तथा सर्पैरुपवीतगतिर्ध्रुवम्।
एवं शशाप तं देवस्तीव्रकोपसमन्वितः॥१७॥

देवताओं के इस प्रकार के विनीत वाणी को सुनकर शंकर अत्यन्त प्रसन्नता के साथ अपलक नेत्रों से उमा की ओर देखा।।८।।

आगत देवताओं के समक्ष में ही उमा देवी की तरफ देख रहे उन महात्मा शंकर को यह चिन्ता हुई कि मूर्त्तिमान् पृथिव्यादि से अमूर्त्त आकाश में किस कारण भेद देख जाता है।।९।।

पृथ्वी में मूर्त्ति है। इसी तरह जल में भी मूर्त्ति है। तेज और वायु में भी मूर्त्ति दिख जाया करती है। आकश इस प्रकार का क्यों नहीं है? यह सोचकर महादेव हँसने लगे।।१०।।

इस प्रकार ज्ञान-शक्ति उमा को देखकर शम्भु ने जो आकाश की ओर देखा और पूर्वमें ब्रह्मा ने कहा था कि केवल शरीर धारियों का शरीर होगा और जो शिव हँसा कि इन चार कार्यों से पृथिव्यादि चारों उत्कृष्ट देव उत्पन्न हुए।।११-१२।।

उन परमेष्ठी शिव कें हँसते ही, उन हँस रहे परमेष्ठी से अतितेजस्वी प्रदीप्त मुखमहादीप्तियुक्त परमेष्ठी के गुणों से सम्पन्न साक्षात् दूसरे रुद्र के सदृश एक कुमार दिशाओं को आलोकित करता हुआ उत्पन्न हो गया।।१३।।

वह महात्मा उत्पन्न होकर तत्क्षण से अपनी कान्ति, दीप्ति, मूर्त्ति एवं रूप से देवाङ्गनाओं को भी मोहित करने लगा।।१४।।

उन महात्मा कुमार के उस सुन्दर रूप को देखकर सुन्दरी उमा ने अपलक नेत्रों से उसे देखकर प्रसन्न होने लगी।।१५।।

स्त्री स्वभाव को इस प्रकार से वचंल समझकर तथा नेत्रों को मोहित करने वाले उस कुमार के सुन्दर स्वरूप को देखकर श्री शंकर जी स्त्रियों के प्रति शंका से क्रुद्ध हो गये और उसे शाप दिया।।१६।।

उन तीव्र कोप सम्पन्न देव ने उसे शाप दिया कि हे कुमार! तुम निश्चय ही हाथी के समान मुख वाले लम्बोदर और सर्प के उपवीत धारण करने वाले होओगे।।१७।।

अर्द्धकोट्या च रोमाणामात्मनोऽङ्गे त्रिलोचनः। कूपकास्वेदसलिलपूर्णशूलधरस्तथा।
धुन्वन् शरीरमुत्थाय ततो देवो रुषान्वितः॥१८॥
यथा यथाऽसौ स शरीरमाद्यं धुनोति देवस्त्रिशिखास्त्रपाणिः।
यथा तथा चाङ्गरुहाश्चकासुर्जलं क्षितौ संन्यपतंस्तथान्याः॥१९॥
विनायकानेकविधा गजास्यास्तमालनीलाञ्जनसन्निकाशाः।
उत्तस्थुरुच्चैर्विविधास्त्रहस्तास्तस्तु देवा मनसाकुलेन॥२०॥
किमेतदित्यद्भुतकर्मकारी ह्येकः करोत्यप्रतिमं महच्च।
कार्यं सुराणां कृतमेतदिष्टं भवेदथैतं परितं कुतस्तत्॥२१॥
दिवौकसां चिन्तयतां तथा तु विनायकैः क्ष्मा क्षुभिता बभूव।
चतुर्मुखश्चाप्रतिमो विमानमारुह्य खे वाक्यमिदं जगाद॥२२॥
धन्याः स्थ देवाः सुरनायकेन त्रिलोचनेनाद्भुतरूपिणा च।
अनुगृहीताः परमेश्वरेण सुरद्विषां विघ्नकृतां नतौ च॥२३॥
इत्येवमुक्त्वा प्रपितामहस्तानुवाच देवस्त्रिशिखास्त्रपाणिम्।
यस्ते विभो वक्त्रसमुद्भवः प्रभुर्विनायकानां भवतु त्विमेऽनुगाः॥२४॥
भवांस्तथास्यात्मवरेण चाम्बरे त्वया चतुर्ष्वस्तु शरीरचारी।
आकाशमेतद् बहुधा व्यवस्थितं त्वया वरेण्यः कृत एव नान्यः॥२५॥

तत्पश्चात् त्रिशूलधारी त्रिनेत्र महादेव क्रोधपूर्वक अर्द्ध कोटि-रोम छिद्रों के स्वेदजल से पूर्ण शरीर को उठाकर हिलोन लगे।।१८।।

अपने हाथ में त्रिशूल धारण किये उन महादेव ने अपने आदिकाल में उत्पन्न शरीर को जितना ही हिलाया, उनके रोम उतने ही प्रज्वलित हुए और उन रोम कूपों से उतना ही अधिक जल पृथ्वी पर गिरा, जिससे अन्य गज के समान मुखवाले, तमाल और नीलाञ्जन के समान तथा हाथों में विविध अस्त्रों को धारण किये अनेक विध विनायक वेगपूर्वक प्रकट होने लगे। तब देवताओं ने व्याकुल चित्त से विचार किया।।१९-२०।।

कि यह क्या है? इस प्रकार अद्भुत कर्म करने वाला एक ही देव और अतुलनीय महान् कर्म कर रहा है। देवताओं का अभीष्ट कार्य किया जा चुका था। अब चारों ओर यह क्या हो रहा है?।।२१।।

देवताओं के द्वारा उक्त प्रकार से विचार करने के समय विनायकों से सम्पूर्ण भूमण्डल क्षुभित हो गयी तथा अप्रतीक चतुर्मुख ब्रह्मा ने आकाश में विमान पर आरूढ़ होकर देवों को इस प्रकार के वाक्य से सम्बोधित किया कि—।।२२।।

हे देवताओं आप सब धन्य हो। सुरगणों से द्वेष करने वालों को विघ्न प्रदान करने वाले विनय करने के कार्य में अद्भुत रूप धारण करने वाले त्रिलोचन सुरनायक परमेश्वर ने आप सबको कृतज्ञ किया है।।२३।।

देवों से इस तरह कहकर ब्रह्माजी ने त्रिशूलधारी शिव से कहा कि हे विभो! आपके मुख से जो उत्पन्न हुआ है, वह विनायकों का प्रभु और ये सभी विनायक उनके अनुचर हो सकेंगे।।२४।।

आपके द्वारा आकाश में दृष्टिनिक्षेप के परिणाम स्वरूप यह श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न हुआ आपने ही पृथ्वी आदि चार

प्रभुर्भव त्वं प्रतिमास्त्रपाणिना इमानि चास्त्राणि वरांश्च देहि।
इत्येवमुक्त्वाऽधिगते पितामहे त्रिलोचनश्चात्मभवं जगाद॥२६॥
विनायको विघ्नकरो गजास्यो गणेशनामा च भवस्य पुत्रः।
एते च सर्वे तव यां तु भृत्या विनायकाः क्रूरदृशः प्रचण्डाः।
उच्छुष्मदानादिविवृद्धदेहाः कार्येषु सिद्धिं प्रतिपादयन्तः॥२७॥
भवांश्च देवेषु तथा मखेषु कार्येषु चान्येषु महानुभावात्।
अग्रेषु पूजां लभतेऽन्यथा च विनाशयिष्यस्यथ कार्यसिद्धिम्॥२८॥
इत्येवमुक्त्वा परमेश्वरेण सुरैः समं काञ्चनकुम्भसंस्थैः।
जलैस्तथासावभिषिक्तगात्रो रराज राजेन्द्र विनायकानाम्॥२९॥
दृष्ट्वाऽभिषिच्यमानं तु देवास्तं गणनायकम्। तुष्टुवुः प्रयताः सर्वे त्रिशूलास्त्रस्य सन्निधौ॥३०॥

देवा ऊचुः

नमस्ते गजवक्त्राय नमस्ते गणनायक। विनायक नमस्तेऽस्तु नमस्ते चण्डविक्रम॥३१॥
नमोऽस्तु ते विघ्नकर्त्रे नमस्ते सर्पमेखल। नमस्ते रुद्रवक्त्रोत्थ प्रलम्बजठराश्रित॥३२॥
सर्वदेवनमस्कादविघ्नं कुरु सर्वदा। एवं स्तुतस्तदा देवैर्महात्मा गणनायकः।
अभिषिक्तश्च रुद्रेण सोमस्यापत्यतां गतः॥३३॥

भूतों की तरह यह शरीर धारण करने वाले आकाश को अनेक प्रकार से व्यवस्थित किया है और आपका ही बनाया यह वरणीया (देव) हैं, अन्य नहीं है।।२५।।

हे त्रिलोचन! आप ही इनके प्रभु हैं और इन विनायकों को श्रेष्ठ शस्त्र तथा वर प्रदान करें। इस प्रकार कहकर पितामह के चले जाने पर त्रिलोचन महादेव ने अपने पुत्र से कहा—।।२६।।

हे पुत्र! विनायक, विघ्नकर, गजवदन, गणेश, शंकरपुत्र आदि-आदि सब आपके नाम होंगे। ये संभी क्रूर नेत्र प्रचण्ड विनायक तुम्हारे भृत्य होंगे। ये सभी परिश्रम जन्य पदार्थों के दानादि से शरीर की अभिवृद्धि प्राप्त करने वाले सभी प्रकार के कार्यों में सिद्धि प्रदान करने वाले होंगे।।२७।।

आप सभी को अपनी महानुभावत्व की प्राप्ति के कारण देवों, यज्ञों और अन्य कार्यों में भी अग्रपूजा प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त रहेगा। अन्यथा आप उस कार्य की सिद्धि को नष्ट करने में सक्षम हो सकें।।२८।।

इस प्रकार से वर प्रदान करने के पश्चात् देवताओं सहित परमेश्वर द्वारा स्वर्ण कलशों में रखे गये जल से अभिषिक्त होते ही विनायकों के राजेन्द्र शोभा को प्राप्त होने लगे।।२९।।

उपरोक्त प्रकार से गणनायक गणेश का अभिषेक होते हुए देखकर वहाँ उपस्थित समस्त देवगण त्रिशूलधारी शिव के सन्निधि में सप्रयास उन गणेश की स्तुति से प्रार्थना करने लगे।।३०।।

देवों ने कहा कि आप गजवदन को प्रणाम है, गणनायक आपको प्रणाम है। हे विनायक! आपको प्रणाम है तथा हे प्रचण्ड विक्रम! आपको प्रणाम है। आप विघ्नकर्त्ता को प्रणाम है। सर्प की मेखला धारण करने वाले गणपति! आपको प्रणाम है। तथा रुद्र के मुख से उत्पन्न! आपको प्रणाम है। हे लम्बोदर! आपको प्रणाम है।।३१-३२।।

आप हम सभी देव गणों का हमारे द्वारा नमस्कार किये जाने से सदा अविघ्न रूप कल्याण करने वाले हैं। तत्पश्चात् देवताओं से इस प्रकार स्तुत और अभिषिक्त महात्मा गणनायक सोम रुद्र के पुत्र हुए।।३३।।

एतच्चतुर्थ्यां सम्पन्नं गणाध्यक्षस्य पार्थिव। यतस्ततोऽयं महती तिथीनां परमा तिथिः॥३४॥
एतस्यां यस्तिलान् भुक्त्वा भक्त्या गणपतिं नृप। आराधयति तस्याशु तुष्यते नात्र संशयः॥३५॥
यश्चैतत् पठते स्तोत्रं यश्चैतच्छृणुयात् सदा। न तस्य विघ्ना जायन्ते न पापं सर्वथा नृप॥३६॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे त्रयोविंशोऽध्यायः॥२३॥

चतुर्विंशोऽध्यायः

अथ नागोत्पत्तिः

धरण्युवाच

कथं ते गात्रसंस्पर्शान्मूर्त्तिमन्तो महाबलाः। नागा बभूवुर्देवस्य कारणं ते महीधर॥१॥

वराह उवाच

श्रुत्वा गणपतेर्जन्म प्रजापालो नराधिपः। उवाच श्लक्ष्णया वाचा तं मुनिं शंसितव्रतम्॥२॥

हे राजन्! जहाँ इस इस गणेश का जन्म चतुर्थी तिथि को हुआ था, अतः यह तिथि सभी तिथियों में महान् और सर्वश्रेष्ठ है।।३४।।

हे नृप! इस तिथि के दिन जो मनुष्य तिल खाकर भक्तिपूर्वक गणेश की आराधना करेगा, उस पर गणपति निश्चय ही शीघ्र प्रसन्न हो सकेंगे।।३५।।

हे नृप! जो मनुष्य सर्वदा यह स्तोत्र पढ़ता है अथवा सुनता है, उसे किसी प्रकार का विघ्न या पाप नहीं होता है।।३६।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में गणेशावतार और चतुर्थी तिथि का आधिपत्य प्राप्ति नामक तेईसवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥२३॥

अध्याय-२४

नागोत्पत्ति, पञ्चमी तिथि का आधिपत्य प्राप्ति, नागों का दुग्ध स्नान फल

धरणी ने पूछा कि हे महीधर! देवेश! आपके शरीर के स्पर्श करने मात्र से महाबलशाली के नाग मूर्तिमान् किस प्रकार और किस कारण से हो सका?।।१।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि गणेश जन्म वृत्त उक्त प्रकार से सुन लेने के पश्चात् वह राजा प्रजापाल अपनी स्नेहमयी वाणी से उन तीव्र व्रत धारी मुनि से पूछा—।।२।।

प्रजापाल उवाच

भगवंस्तार्क्ष्यविषयाः कथं मूर्त्तिमुपागताः। नागा बभूवुः कुटिला एतदाख्यातुमर्हसि॥३॥

महातपा उवाच

सृजता ब्रह्मणा सृष्टिं मरीचिः सूतिकारणम्। प्रथमं मनसा ध्यातस्तस्य पुत्रस्तु कश्यपः॥४॥

तस्य दाक्षायणी भार्या कद्रूर्नाम शुचिस्मिता। मारीचो जनयामास तस्यां पुत्रान् महाबलान्॥५॥

अनन्तं वासुकिं चैव कम्बलं च महाबलम्। कर्कोटकं च राजेन्द्र पद्मं चान्यं सरीसृपम्॥६॥

महापद्मं तथा शङ्खं कुलिकं चापराजितम्। एते कश्यपदायादाः प्रधानाः परिकीर्त्तिताः॥७॥

एतेषां तु प्रसूत्या तु इदमापूरितं जगत्। कुटिला हीनकर्माणस्तीक्ष्णास्योत्थविषोल्बणाः।

दृष्ट्वा संदश्य मनुजान् कुर्युर्भस्म क्षणाद् ध्रुवम्॥८॥

शब्दगामी यथा स्पर्शं मनुष्याणां नराधिप। अहन्यहनि जायेत क्षयः परमदारुणः॥९॥

आत्मनस्तु क्षयं दृष्ट्वा प्रजाः सर्वाः समन्ततः। जग्मुः शरण्यं शरणं परं तु परमेश्वरम्॥१०॥

इममेवार्थमुद्दिश्य प्रजाः सर्वा महीपते। ऊचुः कमलजं विष्णुं पुराणं ब्रह्मसंज्ञितम्॥११॥

देवा ऊचुः

देवदेवेश लोकानां प्रसूति परमेश्वर। त्राहि नस्तीक्ष्णदंष्ट्राणां भुजङ्गानां महात्मनाम्॥१२॥

प्रजापाल ने पूछा कि हे भगवन्! गरुड़ के आहार बनने वाले कुटिल नाग किस प्रकार से रूप धारण करने वाले होकर उत्पन्न हो सका। मुझे यह बतलायें।।३।।

महातपा ने कहा कि सृष्टि सुजन करने वाले ब्रह्मदेव ने सर्वप्रथम सन्तति हेतु मरीचि का अपने मन में ध्यान किया। उन मरीचि के पुत्र कश्यप हुए।।४।।

हे राजेन्द्र! दक्ष पुत्री कद्रू, जो पवित्र और हँसमुख थी, उन कश्यप की पत्नि हुई। इस प्रकार मरीचि पुत्र कश्यप ने उस अपनी कद्रू नाम की पत्नि से महाबलवान् पुत्रों अनन्त, वसुकि, अति बलवान् कम्बल, कर्कोटक, पद्म एवं अन्य सर्प महापद्म, शङ्ख, कुलिक अपराजित आदि को जन्म दिया। प्रायः ये सभी कश्यप के प्रधान पुत्रों में माने जाते हैं।।५-७।।

फलस्वरूप मरीचि के इन पुत्रों से यह संसार पूर्णतया, सम्पन्न हो गया। ये सभी प्रायः कुटिल और कर्महीन हुए। इन सबके मुखों से तीक्ष्ण, प्रचण्ड विष ही निकलता था। प्रायः ये मनुष्यों को देखकर और डँस कर पलमात्र में भस्म करने वाले थे।।८।।

हे राजन् जिस समय शब्द के समान गमन करने वाले सर्पों के स्पर्श से प्रतिदिन मनुष्यों का परम भयानक रूप में नाश होने लगा।।९।।

उस समय इस प्रकार अपने मनुष्य कुल के नाश को होते देख सब ओर से समस्त प्रजाजन सर्वश्रेष्ठ शरणागत वत्सल परमेश्वर की शरण में पहुँच गई।।१०।।

हे महीपते! अपनी रक्षा को लक्ष्य कर समस्त प्रजाजन ने ब्रह्मा नाम के कमल से उत्पन्न पुरातन विष्णु से निवेदन किया।।११।।

देवताओं ने कहा कि हे लोकों को उत्पन्न करने वाले देव देवेश परमेश्वर! ये तीक्ष्ण दाढ़ों वाले महात्मा भुजङ्गमों से हम सब की रक्षा का शीघ्र उपाय करें।।१२।।

अहन्यहनि ये देव पश्येयुरुरगा दृशा। मनुष्यपशुरूपं वा तत्सर्वं भस्मसाद् भवेत्॥१३॥
त्वया सृष्टिः कृता देव नीयते सा भुजङ्गमैः। एतज्ज्ञात्वा तु दुर्वृत्तं तत्कुरुष्व महामते॥१४॥

ब्रह्मोवाच

अहं रक्षां विधास्यामि भवतीनां न संशयः।
व्रजध्वं स्वानि धिष्ण्यानि प्रजा माभूत् ससाध्वसा॥१५॥

एवमुक्त्वा प्रजास्तेन ब्रह्मणाऽव्यक्तमूर्त्तिना। आजग्मुः परमप्रीत्या नत्वा चैव स्वयंभुवे॥१६॥
आगतासु प्रजास्वाद्यस्तानाहूय भुजङ्गमान्। शशाप परमक्रुद्धो वासुकिप्रमुखांस्तदा॥१७॥

ब्रह्मोवाच

यतो मत्प्रभवान् नित्यं क्षयं नयत मानुषान्।
भवान्तरे अथान्यस्मिन् मातुः शापात् सुदारुणात्।
भविताऽतिक्षयं घोरं नूनं स्वायम्भुवेऽन्तरे॥१८॥

एवमुक्तास्तु वेपन्तो ब्रह्माणं भुजगोत्तमाः। निपत्य पादयोस्तस्य इदमूचुर्वचस्तदा॥१९॥

नागा ऊचुः

भगवन् कुटिला जातिरस्माकं भवता कृता। विषोल्बणत्वं क्रूरत्वं दृक्शस्त्रत्वं च नस्त्वया।
सम्पादितं त्वया देव इदानीं शमयाच्युत॥२०॥

हे देव! ये सर्प नित्य प्रति जिस किसी मनुष्य, पशु आदि को अपनी दृष्टि से देख लेते हैं, वे सभी भस्म हो जाया करते हैं।।१३।।

हे देव! आपने सृष्टि की सर्जना की है और ये सर्प उसी को नष्ट किये जा रहे हैं। हे महामति! इनके इस प्रकार के दुष्टाचरण को जानकर आप शीघ्र उचित उपाय करें।।१४।।

ब्रह्मा ने कहा कि हे प्रजाओं! निश्चयपूर्वक मैं तुमलोगों की रक्षा करूँगा। अभी तुम सभी अपने-अपने स्थान को जाओं और भय मत करो।।१५।।

इस प्रकार उन अव्यक्त जन्मा ब्रह्मा के समझाने और आश्वस्त करने पर समस्त प्रजाजन अत्यन्त प्रेम और भक्तिपूर्वक ब्रह्माजी को प्रणाम कर अपने अपने स्थानों की ओर चल दिया।।१६।।

तत्पश्चात् उन प्रजाजनों के चले जाने पर ब्रह्माजी ने वसुकि आदि नागों को बुलाया और अत्यन्त रोषपूर्वक उन्हें शाप दे दिया।।१७।।

ब्रह्माजी ने कहा कि जहाँ से तुम लोग मेरे सृजित मनुष्यों को नित्य नष्ट कर रहे हो। अतः दूसरे जन्म में माता के अतिदारुण शापवश निश्चयपूर्वक स्वायम्भुव मन्वन्तर में तुम लोगों का भयंकर रूप से नाश हो जाएगा।।१८।।

फिर तो इस प्रकार से ब्रह्माजी द्वारा कहे जाने पर सभी श्रेष्ठ नाग काँपते हुए उन ब्रह्माजी के पैरों पर गिरकर इस प्रकार के वचन कहने लगे।।१९।।

नागों ने कहा कि हे भगवन्! अपके द्वारा ही हमारी कुटिल जाति की उत्पत्ति की गई है। हे देव! आपने ही हमारे विष में तीव्रता और हममें क्रूरता तथा हमें दृष्टि रूपी शस्त्र प्रदान किया है। हे अच्युत! अतः आप ही इनको शान्त करें।।२०।।

ब्रह्मोवाच

यदि नाम मया सृष्टा भवन्तः कुटिलाशयाः। ततः किं मनुजान् नित्यं भक्षयध्वं गतव्यथाः॥२१॥

नागा ऊचुः

मर्यादां कुरु देवेश स्थानं चैव पृथक् पृथक्।
मनुष्याणां तथाऽस्माकं समयं च पृथक् पृथक्।
नागानां वचनं श्रुत्वा देवो वचनमब्रवीत्॥२२॥

अहं करोमि वो नागाः समयं मनुजैः सह। तदेकमनसः सर्वे शृणुध्वं मम शासनम्॥२३॥
पातालं वितलं चैव हर्म्याख्यं च तृतीयकम्। प्रदत्तं चैव सदा रम्यं गृहं तत्र गमिष्यथ॥२४॥

तत्र भोगान् बहुविधान् भुञ्जाना मम शासनात्।
तिष्ठध्वं सप्तमं यावद् रात्र्यन्तं तुं पुनः पुनः॥२५॥

ततो वैवस्वतस्यादौ काश्यपेया भविष्यथ। दायादाः सर्वदेवानां सुपर्णस्य च धीमतः॥२६॥
तदा प्रसूतिर्वः सर्वा भोक्ष्यते चित्रभानुना। भवतां नैव दोषोऽयं भविष्यति न संशयः॥२७॥

ये वै क्रूरा भोगिनो दुर्विनीतास्तेषामन्तो भविता नान्यथैतत्।
कालप्राप्तं भक्षयध्वं दशध्वं तथाऽपकारे च कृते मनुष्यम्॥२८॥
मन्त्रौषधैर्गारुडमण्डलैश्च बद्धैर्दृष्टैर्मानवा ये चरन्ति।
तेषां भीतैर्वर्त्तितव्यं न चान्यच्चिन्त्यं कार्यं चान्यथा वो विनाशः॥२९॥

ब्रह्मा ने कहा कि यदि मेरे द्वारा ही आप कुटिल स्वभाव वाले नागों की सृष्टि की गई है तो क्या आप लो निर्दयतापूर्वक इन मनुष्यों का भक्षण उचित है?।।२१।।

नागों ने कहा कि हे देवेश! हमारी एवं मनुष्यों की मर्यादा, स्थान और समय का पृथक्-पृथक् निर्धारण करने की कृपा करें। इस प्रकार के नागों की वाणी को सुनकर उन देवेश ने यह वचन कहा—।।२२।।

हे नागों! मैं मनुष्यों के साथ तुम्हारे समय का निर्धारण करने जा रहा हूँ। तुम लोग एकाग्रता पूर्वक मेरे उस अनुशासनात्मक आदेश को सुनो।।२३।।

मैंने तुम लोगों के लिए पाताल, वितल और तृतीय हर्म्य नाम का सदा भूमिस्थ प्रासाद रमणीय गृह प्रदान किया है। अतः तुम सभी वहाँ जाकर निवास करो।।२४।।

इस प्रकार मेरे अनुशासनात्मक आदेश के अनुपालन करते हुए विविध प्रकार के भोगों को भोगते हुए वहां पर सात मन्वन्तर तक स्थित रहोगे। फिर जब प्रलय स्वरूप रात्रि का अन्त होने पर पुनः वैवस्वत मन्वन्तर के आरम्भ में कश्यप के पुत्र रूप में सभी देवों एवं बुद्धिमान् गरुड़ के दामाद बन जाओगे।।२५-२६।।

उस काल में चित्रभानु अर्थात् अग्नि तुम्हारी समस्त सन्ततियों को खा जाऐगा। निश्चय ही जिसमें आप लोग निर्दोष रहेंगे, फिर भी इस प्रकार की घटना होगी।।२७।।

लेकिन उस समय जो क्रूर और दुष्ट नाग होंगे उन्हीं का क्षय होगा, अन्यों का नहीं। मृत्यु का समय आ जाने पर अथवा अपकार किये जाने पर आप सभी मनुष्यों को डँस कर उनका भक्षण कर सकेंगे।।२८।।

उस स्थिति में भी जो मनुष्य मन्त्र और औषधि से सम्पन्न तथा गारुडमण्डल से रक्षित होकर संचरण करता

इतीरिते ब्रह्मणा ते भुजङ्गा जग्मुः स्थानं क्ष्मातलाख्यं हि सर्वे।
तस्थुर्भोगान् भुञ्जमानाः समग्रान् रसातले लीलया संस्थितास्ते॥३०॥
एवं शापं तु ते लब्ध्वा प्रसादं च चतुर्मुखात्। तस्थुः पातालनिलये मुदितेनान्तरात्मना॥३१॥
एतत् सर्वञ्च पञ्चम्यां तेषां जातं महात्मनाम्। अतस्त्वियं तिथिर्धन्या सर्वपापहरा शुभा॥३२॥
एतस्यां संयतो यस्तु अम्लं तु परिवर्जयेत्। क्षीरेण स्नापयेन्नागांस्तस्य यास्यन्ति मित्रताम्॥३३॥

।।इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे चतुर्विंशोऽध्यायः।।२४।।

रहे, उनसे डरना आवश्यक होगा। ऐसे मनुष्यों का अनिष्ट कथमपि नहीं सोचना अन्यथा तुम्हारा निश्चय ही नाश हो जाएगा।।२९।।

ब्रह्मा के द्वारा इस प्रकार से कहे जाने के पश्चात् वे सभी सर्प पृथ्वीतल नाम के स्थान पर निवास हेतु प्रस्थान कर दिये। फिर वे सभी रसातल में जाकर सभी प्रकार के भोगों को भोगते हुए लीलापूर्वक निवास करने लगे।।३०।।

ब्रह्मा जी से इस प्रकार से शाप और उससे बचने के उपाय प्राप्त कर वे सभी नाग प्रसन्नतापूर्वक पाताल के अपने गृह में निवास करते रहे।।३१।।

इस तरह उन नागरूप महात्माओं का ये सभी कार्य पञ्चमी तिथि में सम्पन्न होने से सभी पापों का विनाश करने वाली यह शुभ पञ्चमी तिथि धन्य हुई।।३२।।

इस प्रकार पञ्चमी तिथि को संयम के साथ जो मनुष्य खट्टे पदार्थ का त्याग करेगा और दुग्ध द्वारा नागों को स्नान करा सकेंगे, निश्चय नाग सदा उनका मित्र बनकर रह सकेगा।।३३।।

।।इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में नागोत्पत्ति, पञ्चमी तिथि का आधिपत्य प्राप्ति, नागों का दुग्ध स्नान फल आदि नामक चौबीसवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायण-कुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ।।२४।।

❖❖❖

पञ्चविंशोऽध्यायः

अथ स्कन्दोत्पत्तिः

प्रजापाल उवाच

अहङ्कारात् कथं जज्ञे कार्त्तिकेयो द्विजोत्तम। एतन्मे संशयं छिन्धि पृच्छतो वै महामुने॥१॥

महातपा उवाच

सर्वेषामेव तत्त्वानां यः परः पुरुषः स्मृतः। तस्मादव्यक्तमुत्पन्नं तत्त्वादि त्रिविधं तु तत्॥२॥
पुरुषाव्यक्तयोर्मध्ये महत्त्वं समपद्यत। स चाहङ्कार इत्युक्तो यो महान् समुदाहृतः॥३॥
पुरुषो विष्णुरित्युक्तः शिवो वा नामतः स्मृतः। अव्यक्तं तु उमा देवी श्रीर्वा पद्मनिभेक्षणा॥४॥
तत्संयोगादहङ्कारः स च सेनापतिर्गुहः। तस्योत्पत्तिं प्रवक्ष्यामि श्रृणु राजन् महामते॥५॥

आद्यो नारायणो देवस्तस्माद् ब्रह्मा ततोऽभवत्।
अतः स्वयम्भुवश्चान्ये मरीच्याद्यार्कसम्भवाः॥६॥

तेष्वारभ्य सुरा दैत्या गन्धर्वा मानुषाः खगाः। पशवः सर्वभूतानि सृष्टिरेषा प्रकीर्त्तिता॥७॥
सृष्ट्यां विस्तारितायां तु देवदैत्या महाबलाः। सापत्न्यं भावमास्थाय युयुधुर्विजिगीषवः॥८॥

अध्याय-२५

स्कन्दोत्पत्ति, षष्ठी का आधिपत्य, फल भक्षण फल आदि

प्रजापाल ने कहा कि हे द्विजोत्तम! कार्त्तिकेय किस प्रकार अहंकार से उत्पन्न हुए? हे महामुने! मैं आपसे पूछता हूँ और आप मेरे इस सन्देह का शीघ्र शमन करने की कृपा करें।।१।।

महातपा ने कहा कि प्रत्येक तत्त्व में, जो 'परमपुरुष' स्थित है, उससे ही अव्यक्त नाम के आदि तत्त्व की उत्पत्ति हुई। वह अव्यक्त भी तीन प्रकार के हैं।।२।।

इस क्रम में पुरुष और व्यक्त के बीच उत्पन्न महत्तत्त्व है, जिसे महान् अथवा अहंकार कहा गया है।।३।।

उसी पुरुष को विष्णु या शिव के नाम से जाना गया है तथा अव्यक्त को पद्मनयना लक्ष्मी अथवा उमादेवी कहा जाता है।।४।।

अतः उन शिव और उमादेवी के एकीकरण से अहंकार की उत्पत्ति हुई तथा वही अहंकार सेनाापति गुह अर्थात् कार्त्तिकेय हैं। हे महामति राजन्! अतएव यहाँ मैं अब उनके जन्म की कथा का वर्णन करने जा रहा हूँ, सुनो।।५।।

फिर वह नारायण आदि देव हैं, जिनसे ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई। उन ब्रह्मा स्वायम्भुव से मरीचि आदि और उनके कुल में अन्यान्य सूर्य आदि की उत्पत्ति हुई।।६।।

वहाँ से ही प्रारम्भ कर देवता, दैत्य, मनुष्य, पक्षी, पशु और अन्य-अन्य सब प्राणियों की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार से ही सृष्टि का विवेचन जानना चाहिए।।७।।

फिर सृष्टि क्रम के विस्तारित होने पर महान् बलशाली देव और दैत्य की शत्रुता का प्रारम्भ भी हो गया। फलस्वरूप वे एक-दूसरे को नीचा दिखाने की आकांक्षा से परस्पर लड़ाई-झगड़े करने लगे।।८।।

दैत्यानां बलिनः सन्ति नायका युद्धदुर्मदाः। हिरण्यकशिपुः पूर्वं हिरण्याक्षो महाबलः।
विप्रचित्तिर्विचित्तिश्च भीमाक्षः क्रौञ्च एव च॥९॥
एतेऽतिबलिनः शूरा देवसैन्यं महामृधे। अनारतं सितैर्बाणैर्जयन्तेऽनुदिनं मृधे॥१०॥
तेषां पराजयं दृष्ट्वा देवानां तु बृहस्पतिः। उवाच हीनं वः सैन्यं नायकेन विना सुराः॥११॥
एकेनेन्द्रेण दिव्यं तु सैन्यं पातुं न शक्यते। अतः सेनापतिं किञ्चिदन्वेषयत मा चिरम्॥१२॥
एवमुक्तास्ततो देवा जग्मुर्लोकपितामहम्। सेनापतिं च नो देहि वाक्यमूचुः ससंभ्रमम्॥१३॥
ततो दध्यौ चतुर्वक्त्रः किमेषां क्रियते मया। ब्रह्माऽथ चिन्तयामास रुद्रं प्रति मनोगतम्॥१४॥
ततो देवाः सगन्धर्वा ऋषयः सिद्धचारणाः। ब्रह्माणं पुरतः कृत्वा जग्मुः कैलासपर्वतम्॥१५॥
तत्र दृष्ट्वा महादेवं शिवं पशुपतिं विभुम्। तुष्टुवुर्विविधैस्तोत्रैः शक्राद्यास्त्रिदिवौकसः॥१६॥

देवा ऊचुः

नमाम सर्वे शरणार्थिनो वयं महेश्वरं त्र्यम्बकभूतभावनम्।
उमापते विश्वपते मरुत्पते जगत्पते शङ्कर पाहि नः स्वयम्॥१७॥

इस देव-दैत्य के पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता के क्रम में पुरातन काल में हिरण्यकशिपु, महाबली हिरण्याक्ष, विप्रचित्ति, वितित्ति, भीमाक्ष, क्रौञ्च आदि दैत्यों के महाबलवान् महायुद्धादि के अजेय नायक हो चुके हैं।।९।।

ये सभी अत्यन्त बलशाली दैत्य नायक देव-दैत्य युद्ध में प्रतिदिन लगातार तीक्ष्ण बाणों से देवताओं की सेना को पराजित कर जीत लिया करते थे।।१०।।

इस तरह एक बार देवों की पराजय से दुःखी बृहस्पति ने कहा कि हे देवताओं! हमारी देवसेना नायकहीन है।।११।।

एकमात्र इन्द्र से देवसेना की रक्षा सम्भव नहीं है। अतः बिना विलम्ब किये किसी योग्य सेनानायक का अन्वेषण किया जाना चाहिए।।१२।।

इस प्रकार से बृहस्पति के द्वारा कहे जाने पर देवतागण लोकपितामह के पास जाकर विनम्रतापूर्वक इस तरह कहा कि आप हमें एक सेनापति प्रदान करें।।१३।।

तत्पश्चात् चतुर्मुख ब्रह्मा यह सुनकर विचार करने लगे कि मैं इस विषय में क्या करूँ, जिससे देवताओं का हित हो सके। इस तरह विचार कर ब्रह्मा अपने हृदय में स्थित रुद्र का ध्यान करने लगे।।१४।।

फिर गन्धर्वों सहित देवतागण, ऋषि और सिद्धचारण ब्रह्मदेव को आगे कर कैलाश पर्वत पर रुद्र के पास आ गये।।१५।।

वहाँ पहुँचकर इन्द्रादि देवगण पशुपति विभु महादेव शिव का दर्शन कर अनेक प्रकार के स्तोत्रों से उन शिव की स्तुति करने में लग गये।।१६।।

देवों ने कहा कि हम लोग आपके शरण के आकांक्षी हे भूतभावन त्रिलोचन महादेव! आपको प्रणाम करते हैं। हे विश्वनाथ मरुत्पति जगन्नाथ उमापति शंकर! आप स्वयं हमारी रक्षा का उपाय करें।।१७।।

जटाकलापाग्रशशाङ्कदीधितिप्रकाशिताशेषजगत्त्रयामल ।
त्रिशूलपाणे पुरुषोत्तमाच्युत प्रपाहि दैत्याच्च जगत्त्रयोदरे॥१८॥
त्वमादिदेवः पुरुषोत्तमो हरिर्भवो महेशस्त्रिपुरान्तको विभुः।
भगाक्षिहा दैत्यरिपुः पुरातनो वृषध्वजः पाहि सुरोत्तमोत्तम॥१९॥
गिरीशजानाथ गिरिप्रियाप्रिय प्रभो समस्तामरलोकपूजित।
गणेश भूतेश शिवाक्षयाव्यय प्रपाहि नो दैत्यवरान्तकाच्युत॥२०॥
पृथ्व्यादितत्त्वेषु भवान् प्रतिष्ठितो ध्वनिस्वरूपो गगने विशेषतः।
वायौ द्विधा तेजसि च त्रिधा जले चतुः क्षितौ पञ्चगुणः प्रपाहि नः॥२१॥
अग्निस्वरूपोऽसि तरौ तथोपले सत्त्वस्वरूपोऽसि तथा जलेष्वपि।
तेजःस्वरूपो भगवान् महेश्वरः प्रपाहि नो दैत्यगणार्दितान् हर॥२२॥
नासीद्यदाऽकाण्डमिदं त्रिलोचन प्रभाकरेन्द्रद्रविणाधिपाः कुतः।
तदा भवानेव विरुद्धलोचन प्रमाणबाधादिविवर्जितः स्थितः॥२३॥
कपालमालिन् शशिखण्डशेखर श्मशानवासिन् सितभस्मगुण्ठित।
फणीन्द्रसंवीततनोऽन्तकापह प्रपाहि नो दक्षधिया सुरेश्वर॥२४॥

आप अपने जटाओं पर चन्द्रकिरण धारण किये होकर त्रिलोकों को प्रकाशित करने वाले दोषरहित और अपने उदर में ही त्रिलोकों को धारण कर रखने वाले हे अच्युत पुरुषोत्तम त्रिशूलपाणि शंकर! आप हमारी रक्षा दैत्यों से करने के उपाय करें।।१८।।

आप ही आदि देव! पुरुषोत्तम, हरि, भव, महेश, त्रिपुरान्तक, विभु भगनेत्र हन्ता, दैत्यरिपु, पुरातन पुरुष और वृषध्वज हैं। अतः हे सुरोत्तमोत्तम! आप हमारी रक्षा का उपाय करें।।१९।।

हे हिमवान् की पुत्री पार्वती के पति, गिरिप्रिया के प्रिय अर्थात् मेनका के जामाता, सर्वदेवपूजित, प्रभु, गणाधिपति, भूतेश, अक्षय, अव्यय अच्युत और श्रेष्ठ दैत्य विनाशक शिव! हमारी रक्षा का उपाय करें।।२०।।

हे प्रभो! आप पृथ्वी आदि पञ्चभूतों में प्रतिष्ठित हैं। विशेषतः आकाश में ध्वनि रूप से, वायु में शब्द और स्पर्श दो रूपों से, तेज में शब्द, स्पर्श, रूप आदि तीन रूपों में, जल में आप शब्द, स्पर्श, रूप, रस आदि चार रूपों में तथा पृथ्वी में शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि पाँच रूपों में व्यस्थित हैं। अतः आप हमारी रक्षा का सम्यक् उपाय करें।।२१।।

हे भगवन् महेश्वर! आप वृक्षों में अग्नि रूप में, पत्थरों में सत्त्व रूप में तथा जल में तेज स्वरूप में अवस्थित हैं। हे हर! दैत्यों से सम्पीड़ित हमारी रक्षा का उपाय करें।।२२।।

हे त्रिलोचन! जिस समय यह संसार ही नहीं था, तो उस समय सूर्य, इन्द्र, कुबेर आदि कैसे स्थित थे। हे विरुद्ध लोचन! उस समय प्रमाण सम्बन्धी बाधाओं से हीन आप ही एकमात्र प्रमाण रूप में स्थित थे।।२३।।

हे कपालमालिन्! शशिखण्डशेखर, श्मशानवासी, श्वेत भस्म भूषित, सर्पराज से सुवेष्टित शरीराङ्गों वाले मृत्युञ्जय, सुरेश्वर! आप सावधान चित्त से हमारी रक्षा का उपाय करें।।२४।।

भवान् पुमान् शक्तिरियं गिरेः सुता सर्वाङ्गरूपा भगवंस्तथा त्वयि।
त्रिशूलरूपेण जगत्त्रयङ्करे स्थितं त्रिनेत्रेषु मखाग्नयस्त्रयः॥२५॥
जटास्वरूपेण समस्तसागराः कुलाचलाः सिन्धुवहाश्च सर्वशः।
शशी परं ज्ञानमिदं तव स्थितं न देव पश्यन्ति कुदृष्टयो जनाः॥२६॥
नारायणस्त्वं जगतां समुद्भवस्तथा भवः सैव चतुर्मुखो भवान्।
सत्त्वादिभेदेन तथाग्निभेदतो युगादिभेदेन च संस्थितस्त्रिधा॥२७॥
भवन्तमेते सुरनायकाः प्रभो भवार्थिनोऽन्यस्य वदन्ति तोषयन्।
यतस्ततो नो भूतिभूषण प्रपाहि विश्वेश्वर रुद्र ते नमः॥२८॥

महातपा उवाच

एवं स्तुतस्तदा देवो रुद्रः पशुपतिःसुरैः। उवाच देवानव्यग्रः किं कार्यं ब्रूत मा चिरम्॥२९॥

देवा ऊचुः

सेनापतिं नो देवेश देहि दैत्यवधाय वै। देवानां ब्रह्ममुख्यानामेतदेव हितं भवेत्॥३०॥

रुद्र उवाच

ददामि सेनानाथं वो देवा भवत विज्वराः। भविष्यमस्ति पौराणं योगादीनामचिन्तयन्॥३१॥
एवमुक्त्वा हरो देवान् विसृज्य स्वाङ्गसंस्थिताम्। शक्तिं सङ्क्षोभयामास पुत्रहेतोः परंतप॥३२॥

वैसे तो आप सृष्टि के पहले पुरुष रूप में ही स्थित थे। गिरिजा देवी शक्ति के रूप में आपके समस्त शरीर में स्थित थीं। आपके हाथ में त्रिशूल रूप से तीनों लोक और तीन नेत्रों में तीन यज्ञाग्नि भी स्थित थे।।२५।।

फिर समस्त सागर, कुलपर्वत, समस्त नदियाँ आदि जटा के रूप में थीं। आपके मस्तक पर चन्द्रमा के रूप में समस्त ज्ञान-विज्ञान स्थित था। हे देव! आपके इस स्वरूप को कुदृष्टि अर्थात् वेदबाह्य स्मृतियों का अनुसरण करने वाले नहीं देख पाते हैं।।२६।।

आप निश्चय ही इस संसार के उत्पन्न होने का कारण स्वरूप वही श्री नारायण हैं। वही शंकर और चतुर्मुख ब्रह्मा भी हैं। सत्त्वादि भेद और युगादि भेद से आप तीन-तीन स्वरूपों में स्थित हैं।।२७।।

हे प्रभो! जहाँ से समस्त भवार्थी सुरनायक आपकी ही स्तुति किया करते हैं, दूसरे की स्तुति नहीं ही करते। अतः हे भूतिभूषण! आप इनके हो जाय, और आप हमारी रक्षा का उपाय करें। हे विश्वेश्वर रुद्र! आपको प्रणाम है।।२८।।

महातपा ने कहा कि इस प्रकार से देवगणों के द्वारा स्तुति किये जानेपर पशुपति रुद्रदेव ने शान्त भाव से देवों से कहा कि शीघ्र बतलाओं, क्या प्रयोजन है?।।२९।।

देवों ने कहा कि हे देव! दैत्यों के वध हेतु हमें सेनानायक प्रदान करें, जिससे ब्रह्मादि सहित, समस्त देवगण का हित होना सम्भव हो सके।।३०।।

रुद्रदेव ने कहा कि हे देवगण! आप लोग इस प्रसङ्ग में निश्चिन्त हों। मैं आप लोगों की रक्षा हेतु सेनानायक प्रदान करूँगा। आगे योगादि साधकों से भ अचिन्त्य पुरातन पुरुष आपका सेनानायक होगा।।३१।।

हे परन्तप! इस प्रकार से कहने के बाद देवताओं को विदा कर श्रीशंकर ने अपने शरीर स्थित शक्ति को पुत्र के निमित्त क्षुब्ध कर दी।।३२।।

तस्य क्षोभयतः शक्तिं ज्वलनार्कसमप्रभः।
कुमारः सहजां शक्तिं बिभ्रज्ज्ञानैकशालिनीम्॥३३॥

उत्पत्तिस्तस्य राजेन्द्र बहुरूपा व्यवस्थिता। मन्वन्तरेष्वनेकेषु देवसेनापतेः किल॥३४॥

योऽसौ शरीरगो देवः अहङ्कारेति कीर्त्तितः। प्रयोजनवशाद् देवः सैव सेनापतिर्विभौ॥३५॥

तस्मिन् जाते स्वयं ब्रह्मा सर्वदेवैः समन्वितः। पूजयामास देवेशं शिवं पशुपतिं तदा॥३६॥

सर्वैश्च देवै ऋषिभिश्च सिद्धैः सेनापतिर्वरदानेन तेन।
आप्यायितः सोऽपि सुरानुवाच सखायार्थं क्रीडने कार्यमेव॥३७॥
श्रुत्वा वचस्तस्य महानुभावो महादेवो वाक्यमिदं जगाद।
ददामि ते क्रीडनकं तु कुक्कुटं तथानुगौ शाखविशाखसंज्ञौ।
कुमारभूतग्रहनायको भवान् भवस्व देवेश्वर सेनयापतिः॥३८॥

एवमुक्त्वा ततो देवः सर्वे देवाश्च पार्थिव। तुष्टुवुर्वाग्भिरिष्टाभिः स्कन्दं सेनापतिं तदा॥३९॥

देवा ऊचुः

भवस्व देवसेनानीर्महेश्वरसुत प्रभो।
षण्मुख स्कन्द विश्वेश कुक्कुटध्वज पावके॥४०॥

इस प्रकार उनके द्वारा शक्ति के क्षुब्ध किरण से अग्नि के समान तेज सम्पन्न कुमार उनके पास में उत्पन्न हुआ, जो एकमात्र ज्ञान स्वरूप शक्ति को धारण किये हुए उत्पन्न हुआ था।।३३।।

हे राजेन्द्र! विविध मन्वन्तरों में देवों का सेनापति अनेक रूपों में उत्पन्न हुआ करते हैं।।३४।।

हे विभो! अहंकार सम्बोधित होने वाला जो देव इस शरीर में स्थित है, प्रयोजन के अनुरूप वही देव देवताओं का सेनानायक होता है।।३५।।

तत्पश्चात् उस कुमार की उत्पत्ति हो जाने पर समस्त देवगणों के साथ स्वयं ब्रह्माजी ने देवेशपशुपति शिव का पूजार्चन किया।।३६।।

समस्त देवगण, ऋषिगण, सिद्धगण आदि ने उत्पन्न होने वाले उस कुमार स्वरूप अपने सेनानायक को वर प्रदान किया। इस प्रकार प्राप्त वरदान से अभिवृद्धि को प्राप्त उस कुमार ने भी देवों से क्रीड़ा कार्य एवं सहायक के विषय में पूछा।।३७।।

कुमार के द्वारा देवताओं से की जा रही वार्त्ताओं को सुनकर महानुभाव महादेव ने उस कुमार से कहा कि हे कुमार! मैं तुम्हें खेलने की सामग्री के रूप में कुक्कुट तथा शाख व विशाख नामक मित्र प्रदान करता हूँ। हे देवेश्वर कुमार! आप समस्त भूतों, ग्रहों आदि के नायक और देवताओं के सेनानायक बनेंगे।।३८।।

तत्पश्चात् हे राजन्! इस प्रकार से कहते हुए महादेव और समस्त देवताओं ने प्रिय वचनों से सेनापति स्कन्द की स्तुति की।।३९।।

देवताओं ने कहा कि हे महेश्वर! पुत्र षण्मुख, स्कन्द, विश्वेश, कुक्कुटध्वज पावकि, प्रभो! आप समस्तदेवताओं के सेनापति बनें।।४०।।

कम्पितारे कुमारेश स्कन्द बालग्रहानुग। जितारे क्रौञ्चविध्वंस कृत्तिकासुत मातृज॥४१॥
भूतग्रहपतिश्रेष्ठ पावकि प्रियदर्शन। महाभूतपतेः पुत्र त्रिलोचन नमोऽस्तु ते॥४२॥
एवं स्तुतस्तदा देवैर्ववर्ध भवनन्दनः। द्वादशादित्यसङ्काशो बभूवाद्भुतदर्शनः।
त्रैलोक्यमपि तत्तेजस्तापयामास पार्थिव॥४३॥

प्रजापाल उवाच

कथं तं कृत्तिकापुत्रमुक्तवन्तः सुरं गुरुम्। कथं च पावकिरसौ कथं वा मातृनन्दनः॥४४॥

महातपा उवाच

आदिमन्वन्तरे देव उत्पत्तिर्या मयोदिता। परोक्षदर्शिभिर्देवैरेवमेव स्तुतः प्रभुः॥४५॥
कृत्तिका पावकस्त्वन्यमातरो गिरिजा तथा। द्वितीयजन्मनि गुहस्यैते उत्पत्तिहेतवः॥४६॥
एवमेतत् तवाख्यातं पृच्छतः पार्थिवोत्तम। आत्मविद्याऽमृतं गुह्यमहङ्कारस्य सम्भवः॥४७॥
स्वयं स्कन्दो महादेवः सर्वपापप्रणाशनः। तस्य षष्ठी तिथिं प्रादादभिषेके पितामहः॥४८॥
एतां फलाशनो यस्तु क्षयेन्नियतमानसः। अपुत्रोऽपि लभेत् पुत्रानधनोऽपि धनं लभेत्।
यं यमिच्छेत मनसा तं तं लभति मानवः॥४९॥

हे शत्रुओं के कम्पितकर्त्ता, कुमारेश, स्कन्द, बालग्रहानुग, शत्रुजयी, क्रौञ्चविध्वंसक, कृत्तिकासुत, मातृप, हे भूतग्रहपति श्रेष्ठ, पावकि, प्रिय दर्शन, महाभूतपति के पुत्र, त्रिलोचन! आपको प्रणाम है।।४१-४२।।

फिर देवताओं से इस प्रकार स्तुति किये जाने पर शंकर पुत्र बढ़ने लगा और द्वादश आदित्य के समान अद्भुत स्वरूप का हो गया। हे राजन्! इस प्रकार उस कुमार का वह तेज इस त्रिलोकों को भी तप्त करने लगा।।४३।।

प्रजापाल ने कहा कि देवताओं ने उस कुमार को कृत्तिका का पुत्र और सुरगुरु क्यों कर सम्बोधित किया? और वह किस प्रकार पावकि अर्थात् अग्निपुत्र एवं मातृनन्दन कहलाया।।४४।।

महातपा ने कहा कि हे देव! मैंने आदि मन्वन्तर में जिस तरह की उत्पत्ति का वर्णन किया है, उस काल में परोक्षदर्शी देवताओं ने उसी प्रकार कार्त्तिकेय प्रभु की स्तुति की।।४५।।

कृत्तिका, अग्नि, अन्य मातृगण और गिरिजा, ये सभी अन्य-अन्य जन्म में कार्त्तिकेय की उत्पत्ति में कारण रहे हैं।।४६।।

हे पार्थिवोत्तम! तुम्हारे पूछने पर मैंने रहस्यमयी आत्म विद्या के अमृतस्वरूप परम गोपनीय अहंकार जन्म का वर्णन प्रस्तुत किया है।।४७।।

ये स्कन्द समस्त पापों को विनष्ट करने वाले स्वयं महादेव ही हैं। अभिषेक के अवसर पर पितामह ने उन्हें षष्ठी तिथि का आधिपत्य प्रदान किया।।४८।।

जो कोई जन इस षष्ठी तिथि को फलाहार कर उनके काल को संयमित मन से व्यतीत करता है, उसे पुत्रहीन होने पर पुत्र की प्राप्ति तथा धनहीन होने पर धन की प्राप्ति होती है। इस प्रकार से उक्त व्रत करने वाला मनुष्य मन से जो चाहे उसे प्राप्त करने में सफल हो जाता है।।४९।।

यश्चैतत् पठति स्तोत्रं कार्तिकेयस्य मानवः। तस्य गेहे कुमाराणां क्षेमारोग्यं भविष्यति॥५०॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे पञ्चविंशोऽध्यायः॥२५॥

षड्विंशोऽध्यायः

अथ द्वादशादित्योत्पत्तिः

प्रजापाल उवाच

शरीरस्य कथं मूर्तिग्रहणं ज्योतिषो द्विज। एतन्मे संशयं छिन्धि प्रणतस्य द्विजोत्तम॥१॥

महातपा उवाच

योऽसावात्मा ज्ञानशक्तिरेक एव सनातनः। स द्वितीयं यदा चैच्छत् तदा स्वात्मस्थितो ज्वलत्॥२॥

यः सूर्य इति भास्वांस्तु अन्योन्येन महात्मनः। लोलीभूतानि तेजांसि भासयन्ति जगत्त्रयम्॥३॥

तस्मिन् सर्वे सुराः सिद्धा गणाः सर्वे महर्षिभिः।
समं सूता इति विभो तस्मात् सूर्यो भवन् स्तुतः॥४॥

जो मनुष्य कार्त्तिकेय के इस स्तोत्र का पाठ करता है, उसके घर में कुमारों का कल्याण एवं आरोग्य अवश्य होता है।।५०।।

।।इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में स्कन्दोत्पत्ति, षष्ठी का आधिपत्य, फल भक्षण फल आदि नामक पच्चीसवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायण-कुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ।।२५।।

अध्याय–२६

द्वादशादित्योत्पत्ति सप्तमी का आधिपत्य, सूर्यार्चाफल

प्रजापाल ने पूछा कि हे द्विज! ज्योतिष्पिण्ड ने कैसे मूर्त्त स्वरूप को धारण कर लिया। हे द्विजोत्तम! मुझ विनम्र के इस सन्देह का निवारण आप अवश्य करें।।१।।

महातपा ने कहा कि यह जो हमारा अद्वितीय सनातन ज्ञानशक्ति युक्त आत्मा है, वह जब भी दूसरे की आकांक्षा करता है, तब वह अपने स्वरूप में स्थित आत्मा प्रज्वलित हो उठता है।।२।।

इस प्रकार जो प्रकाशमान् सूर्य है, वह भी इस महान् आत्मा के गतिमान तेज से विनिर्मित हुआ है और उस महान् आत्मा का चल तेज त्रिलोकों को प्रकाशित कर देता है।।३।।

हे प्रभो! उस ज्योति की उत्पत्ति होने से समस्त देवगण, सिद्धगण, ऋषिगण एक साथ एक काल में उत्पन्न हो गये। अतएव सूर्य की स्तुति की जाती है।।४।।

लोलीभूतस्य तस्याशु तेजसोऽभूच्छरीरकम्। पृथक्त्वेन रविः सोऽथ कीर्त्यते वेदवादिभिः॥५॥
भासयन् सर्वलोकांस्तु यतोऽसावुत्थितो दिवि। अतोऽसौ भास्करः प्रोक्तः प्रकर्षाच्च प्रभाकरः॥६॥
दिवा दिवस इत्युक्तस्तत्कारित्वाद् दिवाकरः। सर्वस्य जगतस्त्वादिरादित्यस्तेन उच्यते॥७॥
एतस्य द्वादशादित्याः संभूतास्तेजसा पृथक्। प्रधान एव सर्वेषां सर्वदा स विबुध्यते॥८॥
तं दृष्ट्वा जगतो व्याप्तिं कुर्वाणं परमेश्वरम्। तस्यैवान्तःस्थिता देवा विनिष्क्रम्य स्तुतिं जगुः॥९॥

देवा ऊचुः

भवान् प्रसूतिर्जगतः पुराणः क्षयामलैव प्रदहन् जगन्ति।
समुत्थितो नाथ शमं प्रयाहि मा देवलोकान् प्लुष कर्मसाक्षिन्॥१०॥
त्वया ततं सर्वत एव तेजः प्रतापिना सूर्य यजुःप्रवृत्ते।
तिग्मं रथाङ्गं तव देवकल्पं कालाख्यमध्वान्तकरं वदन्ति॥११॥
प्रभाकरस्त्वं रविरादिदेव आत्मा समस्तस्य चराचरस्य।
पितामहस्त्वं वरुणो यमश्च भूतं भविष्यच्च वदन्ति सिद्धाः॥१२॥
ध्वान्तं प्रणु त्वं सुरलोकपूज्य प्रयाहि शान्तिं पितरो वदन्ति।
वेदान्तवेद्योऽसि मखेषु देव त्वं हूयसे विष्णुरसि प्रसह्य।
इति स्तुतस्तैः सुरनाथ भक्त्या प्रपाहि शंभो न इति प्रसह्य॥१३॥

उस आत्मा को प्राप्त ज्ञानशक्ति के चल तेज एक अलग शरीर के रूप में निर्मित हुआ, उसे ही वैदिक जन 'रवि' नाम से पुकारते हैं।।५।।

जहाँ से यह समस्त लोकों को प्रकाशमान करता हुआ आकाश में भाषित हुआ, अतः इसे ही भास्कर भी कहा जाने लगा। वैसे तेज में प्रकर्ष की स्थिति से उसे ही प्रभाकर भी कहा गया है।।६।।

फिर दिन को दिवा भी कहा जाता है। उस दिन का प्रवर्तक होने के कारण उस सूर्य का ही 'दिवाकर' नाम दिया गया। वह सूर्य समस्त जगत् का आदि भी है, अतः उसे आदित्य भी कहा जाता है।।७।।

इसी के तेज प्रभाव से अलग-अलग बारह आदित्य की उत्पत्ति भी हुई है। अतः वह उन समस्त बारह आदित्यों में प्रधान माना गया है।।८।।

इस प्रकार इस जगत् को व्याप्त करने वाले उन परमेश्वर को देख कर उनके अन्तः स्थित समस्त देवगण बाहर निकल कर उनकी स्तुति करने लगे।।९।।

देवताओं ने कहा कि आप इस जगत् को उत्पन्न करने वाले महाकारण हैं, प्रत्येक के क्षयित होने पर के समय का निवास स्थान, निर्मल पुराण पुरुष हैं। जगत् को जलाते हुये ही आप उदित होते हैं। हे नाथ! आप शान्त हों, हे कर्मसाक्षी! देवलोकों को आप मत जलायें।।१०।।

हे सूर्य! यजु की प्रवृत्ति अर्थात् यज्ञ के निमित्त प्रतापयुक्त आपने सर्वत्र तेज का विस्तार किया। आप प्रकाश करने वाले आपके दिव्य तीक्ष्ण रथाङ्ग अर्थात् चक्र को काल के नाम से भी संज्ञापित किया गया है।।११।।

हे आदिदेव! सिद्ध जन आपको प्रभाकर, रवि और समस्त चराचर के आत्मा, पितामह, वरुण, यम, भूत और भविष्य भी कहते हैं।।१२।।

हे सुरलोकपूज्य! पितृगण ने कहे हैं कि आप अन्धकार निवारण करें और शान्त हों। हे देव! आप वेदान्तवेद्य

एवमुक्तस्तदा देवैः सौम्यां मूर्त्तिमथाकरोत्। प्रकाशत्वं जगामाशु देवतानां महाप्रभः॥१४॥
एतत्सर्वं सुराणां तु दहनं शमितं पुरा। सप्तम्यां खलु सूर्येण मूर्त्तित्वं कृतवान् भुवि॥१५॥
एतां यः पुरुषो भक्त्या उपास्ते सूर्यमर्चयेत्। भास्करेण च तस्यासौ फलमिष्टं प्रयच्छति॥१६॥
एतत् ते कथितं राजन् सूर्याख्यानं पुरातनम्। आदिमन्वन्तरे वृत्तं मातरः शृणु सांप्रतम्॥१७॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे षड्विंशोऽध्यायः॥२६॥

सप्तविंशोऽध्यायः

अथान्धकवधसहितमातृगणोत्पत्तिः

महातपा उवाच

पूर्वमासीन्महादैत्यो बलवानन्धको भुवि। स देवान् वशमानिन्ये ब्रह्मणो वरदर्पितः॥१॥

हैं। यज्ञ में आपका आवाहन होता है। आप श्रेष्ठ विष्णु हैं। हे शम्भो! आप दृढ़ता के सहित हमारी रक्षा को तत्पर हों। उन सभी देवों ने इस प्रकार सुरनाथ अर्थात् सूर्य की स्तुति की।।१३।।

तत्पश्चात् देवताओं द्वारा इस प्रकार स्तुति किये जाने पर महाप्रभावान् सूर्य ने अपनी मूर्त्ति को सौम्य करते हुए शीघ्र ही देवताओं को दीखने लग गये।।१४।।

पुरातन काल में इस प्रकार देवताओं का समस्त ताप शान्त हुआ था। निश्चय ही सप्तमी के दिन उसी समय सूर्य ने पृथ्वी पर अपनी मूर्त्ति को धारण किया था।।१५।।

जो कोई मनुष्य भक्ति भाव से इस सप्तमी तिथि में उपवास करते हुए भगवान् सूर्य की पूजार्चना करेगा, उसे वे सूर्य देव अभीष्ट फल अवश्य प्रदान करते हैं।।१६।।

हे राजन्! मैंने आपसे आदि मन्वन्तर में घटित हुआ यह पुरातन सूर्याख्यान को बतलाया है। अब आगे मातृगण का वर्णन करने जा रहा हूँ, उसे सुनो।।१७।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में द्वादशादित्योत्पत्ति, सप्तमी का आधिपत्य, सूर्यार्चाफल नामक छब्बीसवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥२६॥

❖❖❖

अध्याय-२७

अन्धकवध, मातृगणोत्पत्ति, अष्टमी में मातृगण पूजन महात्म्य

महातपा ने कहा कि पुरातन समय में अन्धक नाम का एक महाबलवान् महादैत्य पृथ्वी पर था। वह ब्रह्मा से वर प्राप्त करने के कारण दर्प में आकर देवताओं को वश में कर लिया था।।१।।

तेनात्मवान् सुराः सर्वे त्याजिता मेरुपर्वतम्। ब्रह्माणं शरणं जग्मुरन्धकस्य भयार्दिताः॥२॥
तानागतांस्तदा ब्रह्मा उवाच सुरसत्तमान्। किमागमनकृत्यं वो देवा ब्रूत किमास्यते॥३॥

देवा ऊचुः

अन्धकेनार्दिताः सर्वे वयं देवा जगत्पते। त्राहि सर्वांश्चतुर्वक्त्र पितामह नमोऽस्तु ते॥४॥

ब्रह्मोवाच

अन्धकान्नैव शक्तोऽहं त्रातुं वै सुरसत्तमाः। भवं शर्वं महादेवं व्रजामः शरणार्थिनः॥५॥
किन्तु पूर्वं मया दत्तो वरस्तस्य सुरोत्तमाः। अवध्यस्त्वं हि भविता न शरीरं स्पृशेन्महीम्॥६॥
तस्यैवं बलिनस्त्वेको हन्ता रुद्रः परंतपः। तत्र गच्छामहे सर्वे कैलासनिलयं प्रभुम्॥७॥
एवमुक्त्वा ययौ ब्रह्मा सदेवो भवसन्निधौ। तस्य संदर्शनाद् रुद्रः प्रत्युत्थानादिकाः क्रियाः।
कृत्वाभ्युवाच देवेशो ब्रह्माणं भुवनेश्वरम्॥८॥

शंभुरुवाच

किं कार्यं देवताः सर्वा आगता मम सन्निधौ।
येनाहं तत्करोम्याशु आज्ञा कार्या हि सत्वरम्॥९॥

देवा ऊचुः

रक्षव देव बलिनस्त्वन्धकाद् दुष्टचेतसः॥१०॥

उस बलवान् महादैत्य द्वारा मेरूपर्वत से निर्वासित किये गये समस्तदेवता अन्धक के भय से पीड़ित-सा होकर ब्रह्मा के शरण में पहुँच गये।।२।।

उस समय ब्रह्मा ने समागत उन श्रेष्ठ देवताओं से कहा कि हे देवो! आपके मेरे पास आने का क्या कारण है? बतलाओं, क्यों शान्त होकर बैठे हुए हो?।।३।।

देवताओं ने कहा कि हे जगत्पते! हम सभी देवजन अन्धक नाम के दैत्य से दुःखी हैं। हे चतुर्मुख पितामह! आप हम सभी की रक्षा करें। आपको हम लोगों का प्रणाम है।।४।।

ब्रह्माजी ने कहा कि हे श्रेष्ठदेवताओं! मैं आप लोगों की अन्धक महादैत्य से रक्षा करने में असमर्थ-सा हूँ। अतः आप लोग हमारे साथ भव शर्व महादेव के शरण में चलें।।५।।

किन्तु मैंने हे श्रेष्ठ देवगण! उसे पुरातन समय में इस प्रकार का वर प्रदान कर दिया है कि तुम अवध्य होओगे तथा तुम्हारा शरीर कभी भूमि का स्पर्श नहीं कर सकेगा।।६।।

बस! एक मात्र परंतपःरुद्र ही इस प्रकार के वर प्राप्त उस बलवान् महादैत्य को मारने में सक्षम हैं। अतः इस समय हम सभी उस कैलास निवासी प्रभु रुद्र के शरण में ही चलें।।७।।

इस प्रकार से देवताओं को कहने वाले ब्रह्माजी उन सबको साथ लेकर भगवान् शंकर के पास पहुँच गये। उन सबको एक साथ आते हुए देखकर देवेश रुद्र ने प्रत्युत्थानादि क्रिया करने के पश्चात् भुवनेश्वर ब्रह्मा से कहा—।।८।।

शम्भु ने कहा कि आप सभी देवजन मेरे पास क्यों पधारे हैं? शीघ्रता से आज्ञा करें, जिससे कि मैं उसे तत्क्षण पूरा करने की चेष्ट करूँगा।।९।।

देवताओं ने कहा कि हे देव! दुष्ट चेष्टाओं वाले बलवान् महादैत्य अन्धक से हमारी आप रक्षा करें, इस प्रकार से आपकी बड़ी कृपा होगी।।१०।।

यावदेवं सुरा सर्वे शंसन्ति परमेष्ठिनः। तावत् सैन्येन महता तत्रैवान्धक आययौ॥११॥
बलेन चतुरङ्गेण हन्तुकामो भवं मृधे। तस्य भार्यां गिरिसुतां हर्तुमिच्छन् ससाधनः॥१२॥
तं दृष्ट्वा सहसाऽऽयान्तं देवशक्रप्रहारिणम्। सन्नह्य सहसा देवा रुद्रस्यानुचरा भवन्॥१३॥
रुद्रोऽपि वासुकिं ध्यात्वा तक्षकं च धनंजयम्। वलयं कटिसूत्रं च चकार परमेश्वरः॥१४॥
नीलनामा च दैत्येन्द्रो हस्ती भूत्वा भवान्तिकम्। आगतस्त्वरितः शक्रहस्तीवोद्धतरूपवान्॥१५॥
स ज्ञातो नन्दिना दैत्यो वीरभद्राय दर्शितः। वीरभद्रोऽपि सिंहेन रूपेणाहत्य च द्रुतम्॥१६॥
तस्य कृत्तिं विदार्याशु करिणस्त्वञ्जनप्रभाम्। रुद्रायार्पितवान् सोऽपि तमेवाम्बरमाकरोत्।
ततः प्रभृति रुद्रोऽपि गजचर्मपटोऽभवत्॥१७॥
गजचर्म्मपटो भूत्वा भुजंगाभरणोज्ज्वलः। आदाय त्रिशिखं भीमं सगणोऽन्धकमन्वयात्॥१८॥
ततः प्रवृत्ते युद्धे च देवदानवयोर्महत्। इन्द्राद्या लोकपालास्तु स्कन्दः सेनापतिस्तथा।
सर्वे देवगणाश्चान्ये युयुधुः समरे तदा॥१९॥
तं दृष्ट्वा नारदो युद्धं ययौ नारायणं प्रति। शशंस च महद् युद्धं कैलासे दानवैः सह॥२०॥

जिस समय सभी देवजन परमेष्ठी शंकर से इस प्रकार से अपनी व्यथा व्यक्त ही कर रहे थे कि उसी समय महती सैन्य बल लेकर महादैत्य अन्धक वहीं आ पहुँचा।।११।।

इस प्रकार वह साधन सम्पन्न महादैत्य अपनी चतुरङ्गिणी सेना द्वारा शंकर को मारने और उनकी भार्या हिमपुत्री पार्वती का हरण करने की आकांक्षा से आया था।।१२।।

देवताओं और इन्द्र पर प्रहार करने वाले उस दैत्य को अचानक उस स्थान पर आया हुआ देखकर समस्त देवगण शीघ्रता से सावधान होकर रुद्र के पीछे हो गये।।१३।।

इधर परमेश्वर रुद्र ने भी वासुकि, तक्षक और धनञ्जय नाम के नागों का स्मरणकर उनको अपना वलय और कटिसूत्र बना लिया।।१४।।

इस बीच इन्द्र के हाथी की तरह उद्धत रूप सम्पन्न नील नाम का दैत्येन्द्र हाथी बनकर जल्दी-जल्दी से शिवजी के समीप पहुँच गया।।१५।।

लेकिन नन्दीजी ने उस दैत्य नील को पहचान कर उसकी ओर वीरभद्र का ध्यान आकृष्ट कर दिया। फिर वीरभद्र ने भी शीघ्रता से सिंह रूप धारण कर उस हाथी को मार डाला। और उसके अञ्जन सदृश चर्म को विदीर्ण कर रुद्र को अर्पित कर दिया। रुद्र ने भी उस हाथी के चर्म को वस्त्र रूप में धारण कर लिया। उसी समय से रुद्र गजचर्म का वस्त्र धारण करने वाले कहे जाने लगे।।१६-१७।।

फिर गजचर्म को वस्त्र रूप धारण कर और नागों के आभूषण से सुशोभित होकर उन्होंने भयंकर त्रिशूल लेकर गणों के सहित अन्धक की तरफ लपक पड़े।।१८।।

फिर इस तरह से देवों और दानवों का महासंग्राम प्रारम्भ हो गया। जिसमें इन्द्रादि लोकपाल, सेनानायक कार्त्तिकेय तथा अन्य-अन्य देवता भी उस समय युद्ध करने लगे।।१९।।

उस समय उस युद्ध को देखकर नारदजी श्रीनारायण विष्णु के समीप जाकर कैलाश में हो रहे देव-दानव संग्राम होने की जानकारी उनको प्रदान की।।२०।।

तच्छ्रुत्वा चक्रमादाय गरुडस्थो जनार्दनः। तमेव देशमागत्य युयुधे दानवैः सह॥२१॥
आगत्य च ततो देवा हरिणाप्यायिता रणे। विषण्णवदनाः सर्वे पलायनपरा भवन्॥२२॥
तत्र भग्नेषु देवेषु स्वयं रुद्रोऽन्धकं ययौ। तत्र तेन महद् युद्धमभवल्लोमहर्षणम्॥२३॥
तत्र देवोऽप्यसौ दैत्यं त्रिशूलेनाहनद् भृशम्। तस्याहतस्य यद् रक्तमपतद् भूतले किल।
तत्रान्धका असंख्याता बभूवुरपरे भृशम्॥२४॥
तद् दृष्ट्वा महदाश्चर्यं रुद्रो शूलेऽन्धकं मृधे। गृहीत्वा त्रिशिखाग्रेण ननर्त्त परमेश्वरः॥२५॥
इतरेऽप्यन्धकाः सर्वे चक्रेण परमेष्ठिना। नारायणेन निहतास्तंत्र येऽन्ये समुत्थिताः॥२६॥
असृग्धारातुषारैस्तु शूलप्रोतस्य चासकृत्। अनारतं समुत्तस्थुस्ततो रुद्रो रुषान्वितः॥२७॥
तस्य क्रोधेन महता मुखाज्ज्वाला विनिर्ययौ। तद्रूपधारिणी देवी यां तां योगेश्वरीं विदुः॥२८॥
स्वरूपधारिणी चान्या विष्णुनापि विनिर्मिता। ब्रह्मणा कार्तिकेयेन इन्द्रेण च यमेन च।
वराहेण च देवेन विष्णुना परमेष्ठिना॥२९॥
पातालोद्धरणं रूपं तस्या देव्या विनिर्ममे। माहेश्वरी च राजेन्द्र इत्येता अष्टमातरः॥३०॥
कारणं तानि यत्प्रोक्तं क्षेत्रज्ञेनावधारणम्। शरीराद् देवतानां तु तदिदं कीर्तितं मया॥३१॥

फिर तो इतना सुनने के बाद चक्र सहित गरुड़ारूढ़ जनार्दन विष्णु उस युद्ध स्थान कैलास में आ गये और तत्क्षण युद्ध करने में संलग्न हो गये।।२१।।

विष्णुजी द्वारा आकर युद्ध करने में संलग्न होने के बावजूद युद्ध में उत्साहित देवता फिर भी युद्ध से उदासिन हो-होकर भागने लगे।।२२।।

इस तरह देवताओं के उदासीन होकर भाग जाने पर स्वयं रुद्र अन्धक के समीप जाकर उसके साथ महान् रोमाञ्च करने वाला युद्ध करने लगे।।२३।।

उन शिव देव ने अपने त्रिशूल से उस अन्धक दैत्य पर कठोर प्रहार-पर-प्रहार किया, जिससे अन्धक के घायल होने से भूमि पर गिरे उसके रक्त से असंख्य अन्धक रूप दैत्य उत्पन्न हो गये।।२४।।

इस तरह की विचित्र घटना को देख व समझ कर परमेश्वर रुद्र ने अन्धक को अपने त्रिशूल पर उठा कर युद्धस्थल में ही नृत्य करने में लीन हो गये।।२५।।

इधर श्रीनारायण ने अन्यान्य उत्पन्न हुए अन्धकों से युद्ध करते हुए उन्हें अपने चक्र से मार गिराया।।२६।।

लेकिन त्रिशूल में लगे अन्धक के शरीर से गिर रहे रक्त की धारा निरन्तर प्रवाहित होते रहने से लगातार अन्धक भी अनेक उत्पन्न होते रहे। इससे रुद्र महादेव अत्यन्त रोष से सम्पन्न होते चले गये।।२७।।

इस प्रकार श्री रुद्र के क्रोधान्वित होने के कारण उनके मुख से एक ऐसी ज्वाला निकली जिससे एकदेवी का रूप प्रकट हुआ, उसने शिव रूप धारण कर रखा था, जिसे योगेश्वरी नाम से सम्बोधित किया गया।।२८।।

फिर विष्णु ने भी उसी तरह अपने सदृश रूप धारण करने वाली देवी को उत्पन्न किया। फिर तो ब्रह्मा, कार्त्तिकेय, इन्द्र, यम आदि-आदि ने भी अपने-अपने स्वरूप वाली देवियों को उत्पन्न किया। वराहरूप धारण करने वाले परमेष्ठी विष्णु ने उसदेवी का रूप पाताल को उखाड़ देने वाला निर्मित किया। हे राजेन्द्र! वे माहेश्वरी देवी हैं। ये ही सभी आठ मातृगण के रूप में प्रसिद्ध हैं।।२९-३०।।

क्षेत्रज्ञ याने परमेश्वर ने निश्चय ही देवों के शरीर से उत्पन्न हुई मातृकाओं के प्रादुर्भाव का, जो कारण बतलाया था, उसे मैंने कहा।।३१।।

कामः क्रोधस्तथा लोभो मदो मोहोऽथ पञ्चमः। मात्सर्यं षष्ठमित्याहुः पैशुन्यं सप्तमं तथा।
असूया चाऽष्टमी ज्ञेया इत्येता अष्टमातरः॥३२॥
कामं योगेश्वरीं विद्धि क्रोधो माहेश्वरीं तथा। लोभस्तु वैष्णवी प्रोक्ता ब्रह्माणी मद एव च॥३३॥
मोहः स्वयंभूः कौमारी मात्सर्यं चेन्द्रजं विदुः। यमदण्डधरा देवी पैशुन्यं स्वयमेव च।
असूया च वराहाख्या इत्येताः परिकीर्तिताः॥३४॥
कामादिगण एषोऽयं शरीरे परिकीर्तितः। जग्राह मूर्तिं तु यथा तथा ते कीर्तितं मया॥३५॥
एताभिर्देवताभिश्च तस्य रक्तेऽतिशोषिते। क्षयं गताऽऽसुरी माया स च सिद्धोऽन्धकोऽभवत्।
एतत् ते सर्वमाख्यातमात्मविद्याऽमृतं मया॥३६॥
य एतच्छृणुयान्नित्यं मातॄणामुद्भवं शुभम्। तस्य ताः सर्वतो रक्षां कुर्वन्त्यनुदिनं नृप॥३७॥
यश्चैतत् पठते जन्म मातॄणां पुरुषोत्तम। स धन्यः सर्वदा लोके शिवलोकं च गच्छति॥३८॥
तासां च ब्रह्मणा दत्ता अष्टमी तिथिरुत्तमा। एताः संपूजयेद् भक्त्या बिल्वाहारो नरः सदा।
तस्य ताः परितुष्टास्तु क्षेमारोग्यं ददन्ति च॥३९॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे सप्तविंशोऽध्यायः॥२७॥

काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह, मात्सर्य, पैशुन्य, असूया आदि आठ प्रकार की मातृकाओं को जानना श्रेयस्कर है। यहाँ काम को योगेवरी, क्रोध को माहेश्वरी, लोभ को वैष्णवी, मद को ब्रह्माणी, मोह को स्वयम्भू कौमारी, मात्सर्य को इन्द्राणी, पैशुन्य स्वयं यमदण्ड धारण करने वाली देवी तथा असूया को वाराहीदेवी के नाम से जानना उचित है।।३२-३४।।

ये ही मातृकायें प्राणिमात्र के शरीर में स्थित कामादिगण के रूप में माना गया है। इस प्रकार जो देवता, जिस प्रकार की देवी की मूर्त्ति धारण किया, उसे मैंने कहा।।३५।।

इन्हीं मातृका देवियों द्वारा उस अन्धक के शरीरगत रक्त का अत्यन्त शोषण हो जाने पर वह आसुरी माया का अन्त हो गया। फिर वह अन्धक भी सिद्ध हो गया। इस प्रकार मैंने आपसे सम्पूर्ण आत्मविद्या का अमृत रूप को कहा है।।३६।।

हे नृप! जो जन नित्यप्रति इन मातृकाओं की उत्पत्ति कथा को सुनता या सुनाता है उनका ये मातृकायें नित्य हर जगह रक्षा किया करती हैं।।३७।।

हे पुरुषोत्तम! जो जन मातृकाओं के इस उत्पत्ति कथा का पाठ करता है, वह इस लोक में सर्वदा ही कृतकृत्य होता है और अन्त में शिवधाम को प्राप्त करता है।।३८।।

ब्रह्माजी ने इन मातृकाओं के हेतु श्रेष्ठ अष्टमी तिथि दिया है। उस अष्टमी तिथि को जो जन बेल का भक्षण करता है और सदा भक्तिभाव से पूजार्चना करता है, उस व्यक्ति पर प्रसन्न होकर मातृकायें उनका कल्याण करती हुई उनको आरोग्य भी प्रदान करतीं हैं।।३९।।

।।इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में अन्धकवध, मातृगणोत्पत्ति, अष्टमी में मातृगण पूजन महात्म्य नामक सत्ताईसवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ।।२७।।

❖❖❖

अष्टविंशोऽध्यायः

नन्दा(गायत्री)देव्युत्पत्तिः

प्रजापाल उवाच

कथं माया समुत्पन्ना दुर्गा कात्यायनी शुभा। आदिक्षेत्रे स्थिता सूक्ष्मा पृथङ्मूर्त्ता व्यजायत।।१।।

महातपा उवाच

आसीद् राजा पुरा राजन् सिन्धुद्वीपः प्रतापवान्। वरुणांशो महाराज सोऽरण्ये तपसि स्थितः।।२।।
पुत्रो मे शक्रनाशाय भवेदिति नराधिपः। एवं कृतमतिः सोऽथ महता तपसा स्वकम्।
कलेवरं स्थितो भूत्वा शोषयामास सुव्रत।।३।।

प्रजापाल उवाच

कथं तस्य द्विजश्रेष्ठ शक्रेणापकृतं भवेत्। येनासौ तद्विनाशाय पुत्रमिच्छन् व्रते स्थितः।।४।।

महातपा उवाच

सोऽन्यजन्मनि पुत्रोऽभूत् त्वष्टुर्बलभृतां वरः। अवध्यः सर्वशस्त्रेषु अपां फेनेन नाशितः।।५।।
जलफेनेन निह्तस्तस्मिँल्लयमवाप्नुयात्। पुनर्ब्रह्मान्वयाज्जातः सिन्धुद्वीपेति संज्ञितः।
स तेपे परमं तीव्रं शक्रवैरमनुस्मरन्।।६।।

अध्याय–२८

नन्दा (गायत्री) देवी की उत्पत्ति, वेत्रासुरा का वध, नवमी फल

प्रजापाल ने पूछा कि आदि क्षेत्र में सूक्ष्म रूप में स्थित कल्याण करने वाली कात्यायनी, माया, दुर्गा आदि अलग-अलग मूर्त्ति के रूप में कैसे प्रकट हुईं।।१।।

महातपा ने कहा कि हे राजन्! पुरातन समय में वरुण का अंश स्वरूप सिन्धुद्वीप नाम का एक प्रतापवान् राजा हुआ करता था। वह राजा वन में तप करने में लीन था।।२।।

हे सुव्रत! वह राजा 'मेरा पुत्र इन्द्र को मारने वाला हो, इस प्रकार के संकल्प से निश्चय ही महान् तप द्वारा अपने शरीर को शोषित कर रहा था।।३।।

प्रजापाल ने पूछा कि हे द्विजश्रेष्ठ! किस प्रकार से उसका अपकृत इन्द्र द्वारा किया गया था? जिससे उसने इन्द्र को मारने का व्रत धारण करते हुए ऐसे पुत्र की कामना की।।४।।

महातपा ने कहा कि वस्तुतः वह राजा अपने पूर्वजन्म में त्वष्टा का एक बलवान् पुत्र था। फिर उस समय वह सभी शस्त्रों से अवध्य होने का वर प्राप्त किया हुआ था। जिसे इन्द्र ने जलफेन के अस्त्र से मार दिया था।।५।।

तत्पश्चात् जलफेन द्वारा मारे जाने पर वह उसमें ही लीन हो गया, फिर वह सिन्धुद्वीप नाम से ब्रह्मवंश में उत्पन्न होकर इन्द्र की शत्रुता को याद करते हुए अत्यन्त तीव्र तपस्या करने में लीन हो गया।।६।।

ततः कालेन महता नदी वेत्रवती शुभा। मानुषं रूपमास्थाय सालंकारं मनोरमम्।
आजगाम यतो राजा तेपे परमकं तपः॥७॥
तां दृष्ट्वा रूपसंपन्नां स राजा क्रुद्धमानसः। उवाच काऽसि सुश्रोणि सत्यं कथय भामिनि॥८॥

नद्युवाच

अहं जलपतेः पत्नी वरुणस्य महात्मनः। नाम्ना वेत्रवती पुण्या त्वामिच्छन्तीहमागता॥९॥
साभिलाषां परस्त्रीं च भजमानां विसर्ज्जयेत्। स पापः पुरुषो ज्ञेयो ब्रह्महत्यां च विन्दति।
एवं ज्ञात्वा महाराज भजमानां भजस्व माम्॥१०॥
एवमुक्तस्तया राजा साभिलाषोपभुक्तवान्। तस्य सद्योऽभवत् पुत्रो द्वादशार्कसमप्रभः॥११॥
वेत्रवत्युदरे जातो नाम्ना वैत्रासुरोऽभवत्। बलवानतितेजस्वी प्राग्ज्योतिषपतिर्भवत्॥१२॥
स कालेन युवा जातो बलवान् दृढविक्रमः। महायोगेन संयुक्तो जिगायेमां वसुंधराम्॥१३॥
सप्तद्वीपवतीं पश्चान्मेरुपर्वतमारुहत्। तत्रेन्द्रं प्रथमं जिग्ये पश्चादग्निं यमं ततः।
निर्ऋतिं वरुणं वायुं धनदश्चेश्वरं ततः॥१४॥
इन्द्रो गतो गतः सोग्निं अग्निर्भग्नो यमं ययौ। यमो निर्ऋतिमागच्छन्निर्ऋतिर्वरुणं ययौ॥१५॥

फिर बहुत काल के अनन्तर शुभकारिणी वेत्रवती नदी अलंकरणों से सुसज्जित होकर मनोरम मानवी रूप धारण कर उस जगह पहुँच गई, जहाँ वह राजा तीव्र तप में लीन था।।७।।

उस रूपवती स्त्री को देखते ही उस राजा ने रुष्ट मन से ही पूछा कि हे सुन्दरी! सत्य-सत्य कहो कि तुम कौन हो?।।८।।

नदी ने कहा कि मैं जलपति महात्मा वरुण की वेत्रवती नाम की पवित्र पत्नि हूँ, लेकिन तुम्हें पाने की इच्छा रखने के कारण यहाँ तक आ गयी हूँ।।९।।

ध्यान रहे कि काम की अभिलाषा सहित स्वयं प्रस्तुत होने वाली परस्त्री का त्याग करना पाप का कारण होता है और उसे ब्रह्महत्या का पाप भी लगता है। अतः हे महाराज! इस प्रकार से जानबूझ कर काम की अभिलाषा से उपस्थित हुई मेरा अवश्य सेवन करें।।१०।।

उस स्त्री के द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर राजा ने भी उसका इच्छा के साथ सेवन किया। जिसका फल यह हुआ की उस स्त्री के गर्भ से तत्क्षण ही द्वादश आदित्यों के समान तेजवान् पुत्र का जन्म हो गया।।११।।

इस तरह वेत्रवती के गर्भ से उत्पन्न होने वाले उस बालक का नाम वैत्रासुर हुआ। वह बालक अति बलवान् और अत्यन्त तेजस्वी था, जो असुर प्राग्ज्योतिषपुर का राजा हो गया।।१२।।

समय प्राप्त होने पर वह बलवान् और अत्यन्त पराक्रमी युवक महायोगों से सम्पन्न होकर सप्तद्वीपों वाली पृथ्वी को जीतकर उसका स्वामी हो गया।।१३।।

तत्पश्चात् उसने सुमेरु पर्वत पर आक्रमण कर सर्वप्रथम इन्द्र को परास्त कर जीत लिया। फिर वह युवक अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर और यहाँ तक कि शंकर को भी जीत लिया था।।१४।।

तब वह इन्द्र परास्त होकर अग्नि से मिलना चाहा। इधर अग्नि परास्त होकर यम के पास चला गया। फिर इधर यम पराजित होकर निर्ऋति के समीप गया और इधर निर्ऋति परास्त होकर वरुण के समीप चला गया।।१५।।

इन्द्रादिभिरुपेतस्तु वरुणो वायुमन्वगात्। वायुर्धनपतिं त्वागात् सर्वैरिन्द्रादिभिः सह॥१६॥
धनदोऽपि स्वकं मित्रमीशं देवसमन्वितः। इयाय गदया सोऽपि दानवो बलदर्पितः।
गदामादाय दुद्राव शिवलोकं प्रति प्रभो॥१७॥
शिवोऽप्यवध्यं तं मत्वा देवान् गृह्य ययौ पुरीम्।
ब्रह्मणः सुरसिद्धाद्यैर्वन्दितां पुण्यकारिभिः॥१८॥
तत्र ब्रह्मा जगत्स्रष्टा विष्णुपादोद्भवे जले। नियामिताकाशगतो जपत्यन्तर्जले शुभे।
क्षेत्रज्ञमायां गायत्रीं ततो देवा विचुक्रुशुः॥१९॥
त्राहि प्रजापते सर्वान् देवानृषिवरानपि। असुराद्भयमापन्नान् त्राहि त्राहीत्यचोदयन्॥२०॥
एवमुक्तस्तदा ब्रह्मा दृष्ट्वा देवांस्तदागतान्। चिन्तयामास देवस्य मायेयं विततं जगत्।
नासुरा न सुराश्चात्र मायेयं कीदृशी मता॥२१॥
एवं चिन्तयतस्तस्य प्रादुरासीदयोनिजा। शुक्लाम्बरधरा कन्या स्रक्किरीटोज्ज्वलानना।
अष्टभिर्बाहुभिर्युक्ता दिव्यप्रहरणोद्यता॥२२॥
चक्रं शङ्खं गदा पाशं खड्गं घण्टां तथा धनुः।
धारयन्ती तथा चान्यान् बद्धतूणा जलाद् बहिः॥२३॥
निश्चक्राम महादेवी सिंहवाहनवेगिता। युयुधे चासुरान् सर्वानेकैव बहुधा स्थिता॥२४॥

इस प्रकार इन्द्रादि के साथ वरुण वायु के पास गया, वायु सभी इन्द्रादि देवताओं को लेकर कुबेर के समीप चला गया।।१६।।

लेकिन उस समय शिवजी ने भी उसे अवध्य जानकर देवताओं के साथ सिद्धों और पुण्यकर्तियों से पूजित ब्रह्मपुरी में शरण ले लिया।।१८।।

उस समय उस ब्रह्मपुरी में जगत्कर्त्ता ब्रह्मा विष्णु चरण से उत्पन्न पवित्र गङ्गा जल में विष्णु की माया स्वरूपागायत्री का जप कर रहे थे। उसी समय देवगण वहाँ पर आर्तध्वनि करने लगे।।१९।।

इस प्रकार देवताओं द्वारा आर्तध्वनि के साथ कहा जाने लगा कि हे प्रजापति असुर से भयभीत सभी देवों एवं श्रेष्ठ ऋषियों की रक्षाकरें, रक्षा करें।।२०।।

तत्पश्चात् आर्तध्वनि के साथ देवताओं के इस तरह के वाक्यों को सुनकर ब्रह्माजी ने उन देवताओं को वहाँ आये हुए जाना। तब उन्होंने विचार किया कि यह विस्तृत जगत् देव की माया है। असुर एवं देवता इसप्रसङ्ग में समर्थ नहीं हैं। यह कैसी माया है?।।२१।।

ब्रह्माजी के इस प्रकार से चिन्तन करते ही श्वेतवस्त्रधारिणी, माला, मुकुट पहने, उज्ज्वल मुखवाली, अष्टभुजाओं से सम्पन्न और दिव्य आयुधों वाली एक गौरमुखी अयोनिजा कन्या प्रकट हो गयी।।२२।।

शंख, चक्र, गदा, पाश, खड्ग, घण्टा, धनुष, अन्य आयुध आदि धारण किये और तूणीर बाँधे हुए वह अयोनिजा कन्या जल से बाहर निकल आई।।२३।।

फिर वह देवी सिंह पर सवार होकर बड़े वेग से प्रकट हो गई तथा एक होते हुए भी अनेक रूपों से असुरों से लड़ने लगी।।२४।।

दिव्यं वर्षसहस्रं तु दिव्यैरस्त्रैर्महाबलम्। युद्ध्वा कालात्यये देव्या हतो वैत्रासुरो रणे।
ततः किलकिलाशब्दो देवसैन्येऽभन्महान्॥२५॥
हते वैत्रासुरे भीमे तदा सर्वे दिवौकसः। प्रणेमुर्जय युद्धेति स्वयमीशः स्तुतिं जगौ॥२६॥

महेश्वर उवाच

जयस्व देवि गायत्रे महामाये महाप्रभे। महादेवि महाभागे महासत्त्वे महोत्सवे॥२७॥
दिव्यगन्धानुलिप्ताङ्गि दिव्यस्रग्दामभूषिते। वेदमातर्नमस्तुभ्यं त्र्यक्षरस्थे महेश्वरि॥२८॥
त्रिलोकस्थे त्रितत्त्वस्थे त्रिवह्निस्थे त्रिशूलिनि। त्रिनेत्रे भीमवक्त्रे च भीमनेत्रे भयानके।
कमलासनजे देवि सरस्वति नमोऽस्तु ते॥२९॥
नमः पङ्कजपत्राक्षि महामायेऽमृतस्रवे। सवगे सर्वभूतेशि स्वाहाकारे स्वधेऽम्बिके॥३०॥
सम्पूर्णे पूर्णचन्द्राभे भास्वराङ्गे भवोद्भवे। महाविद्ये महावेद्ये महादैत्यविनाशिनि।
महाबुद्ध्युद्भवे देवि वीतशोके किरातिनि॥३१॥
त्वं नीतिस्त्वं महाभागे त्वं गीस्त्वं गौस्त्वमक्षरम्।
त्वं धीस्त्वं श्रीस्त्वमोङ्कारस्तत्त्वे चापि परिस्थिता।
सर्वसत्त्वहिते देवि नमस्ते परमेश्वरि॥३२॥

दिव्य सहस्र वर्ष पर्यन्त दिव्य अस्त्रों द्वारा उस महाबली असुर से लड़ने के बाद देवी ने उस युद्ध में वैत्रासुर का वध कर दिया फिर तो देव सेना में खुशी फैल गई।।२५।।

इस प्रकार भयानक महाबली वैत्रासुर के मारे जाने पर सभी देवगण उनको प्रणाम कर कहा कि हे देवि! इस युद्ध में आपकी विजय हो। फिर स्वयं शंकर उन देवी की स्तुति करने लगे।।२६।।

महेश्वर ने कहा कि हे महामाया, महाप्रभा, महाभागा, महासत्त्वा, महोत्सवा, महादेवी गायत्री आपको प्रणाम है।।२७।।

अपने शरीराङ्गों में दिव्य गन्ध का अपुलेप करने वाली, दिव्य माया से विभूषित, त्र्यक्षरस्थ वेदमाता, महेश्वरी आपको प्रणाम है।।२८।।

हे त्रिलोकस्था, त्रितत्त्वस्था, त्रिवह्निस्था, त्रिशूलिनी, त्रिनेत्रा, भीमवक्त्रा, भीमनेत्रा, भयानका, कमलासनस्थ देव ब्रह्मा की पुत्री सरस्वती देवि! आपको प्रणाम है।।२९।।

हे कमलपत्र के सदृश आँखों वाली, महामाया, गमृतस्राव करने वाली, सर्वव्यापक, सर्वभूतेश्वरी, स्वाहाकार और स्वधा शब्द स्वरूपा अम्बिके! आपको प्रणाम है।।३०।।

हे पूर्णचन्द्र के समान आभा सम्पन्ना, भास्वर अङ्गों वाली, भवोद्भवा, महाविद्या, महावेद्य स्वरूपा, महादैत्यविनाशिनी महाबुद्ध्युद्भूता, शोकरहिता, किरातिकी देवि! हे महाभागे! तुम नीति हो, तुम वाणी हो, शब्द और अक्षर हो। तुम धी, श्री और ओंकार स्वरूपा और तत्त्व में स्थिता हो रहे प्राणिमात्र का कल्याण करने वाली, परमेश्वरी देवि आपको मेरा प्रणाम है।।३१-३२।।

इत्येवं संस्तुता देवी भवेन परमेष्ठिना। देवैरपि जयेत्युच्चैरित्युक्ता परमेश्वरी॥३३॥
यावदास्ते चतुर्वक्त्रस्तावदन्तर्जलाद् बहिः। निश्चक्राम ततो देवीं कृतकृत्यां ददर्श सः॥३४॥
तां दृष्ट्वा देवकार्यं च सिद्धं मत्वा पितामहः। भविष्यं कार्यमुद्दिश्य ततो वचनमब्रवीत्॥३५॥

ब्रह्मोवाच

इयं देवी वरारोहा यातु शैलं हिमोद्भवम्। तत्र यूयं सुराः सर्वे गत्वा नन्दत माचिरम्॥३६॥
नवम्यां च सदा पूज्या इयं देवी समाधिना। वरदा सर्वलोकानां भविष्यति न संशयः॥३७॥
नवम्यां यश्च पिष्टाशी भविष्यति हि मानवः। नारी वा तस्य संपन्नं भविष्यति मनोगतम्॥३८॥
यश्च सायं तथा प्रातरिदं स्तोत्रं पठिष्यति। त्वयेरितं महादेव तस्य देव्या समं भवान्॥३९॥
वरदो देव सर्वासु आपत्स्वप्युद्धरस्व तम्। एवमुक्त्वा भवं ब्रह्मा पुनर्देवीं स चाब्रवीत्॥४०॥
त्वया देवि महत्कार्यं कर्त्तव्यं चान्यदस्ति नः। भविष्यं महिषाख्यस्य असुरस्य विनाशनम्॥४१॥
एवमुक्त्वा ततो ब्रह्मा सर्वे देवाश्च पार्थिव। यथागतं ततो जग्मुर्देवीं स्थाप्य हिमे गिरौ।
संस्थाप्य नन्दिता यस्मात् तस्मान्नन्दाऽभवत् तु सा।४२॥

इस प्रकार परमेष्ठी शंकर ने जिस समय उस देवी की स्तुति की; तब देवों ने भी उच्चस्वर से उन परमेश्वरी का जय-जयकार किया।।३३।।

चतुर्मुख ब्रह्मा जिस समय तक जल के अन्दर रहे, उस समय तक उपर्युक्त समस्त घटनायें सम्पन्न हो चुकी थीं। एतदनन्तर विष्णु चरण से उत्पन्न गङ्गा के जल से बाहर निकलकर उन ब्रह्मा ने कार्य सम्पन्न कर लेने वाली देवी का दर्शन किया।।३४।।

तत्पश्चात् उन देवी के दर्शन के बाद देवताओं का प्रयोजन भी सिद्ध हो गया, की जानकारी मिलने पर लोकपितामह ने भविष्यत् कार्य को लक्ष्य कर यह कहा—।।३५।।

ब्रह्मा ने कहा कि यह सौन्दर्य की देवी हिमालय पर्वत पर जाय और आप सभी देवता भी वहाँ जाकर आनन्द करें, इसमें अब विलम्ब नहीं करना चाहिए।।३६।।

हे देवताओ! इन देवी की पूजा हमेशा नवमी तिथि में एकाग्रता से करनी चाहिए। सन्देह मुक्त होकर जान लें कि पूजित होने पर यह देवी सभी जनों को वर प्रदान करने वाली होंगी।।३७।।

जब कोई व्यक्ति नवमी को पीसे हुए पदार्थ अर्थात् आटा के बने पदार्थों का भोजन करेगा उनकी सभी कामनायें पूरी होंगी।।३८।।

हे महादेव! जो व्यक्ति सायं और प्रातः आपके द्वारा गाये गये इस स्तोत्र का पाठ करेगा, उसे देवी के सहित आप भी वर प्रदान कर सकेंगे। हे देव! समस्त आपत्तियों से उसका उद्धार भी करेंगे। शंकर से इस प्रकार कहते हुए ब्रह्माजी पुनः देवी से कहा—।।३९-४०।।

हे देवि! आप हम लोगों का एक अन्य भी महद् कार्य करेंगी। आपके द्वारा महिष नाम के असुर का नाश भी हो सकेगा।।४१।।

हे राजन्! तत्पश्चात् इस प्रकार कहते हुए ब्रह्मा और समस्त देव देवी को हिमालय पर स्थापित कर जहाँ-

यश्चेदं शृणुयाज्जन्म देव्या यश्च स्वयं पठेत्। सर्वपापविनिर्मुक्तः परं निर्वाणमृच्छति॥४३॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे अष्टाविंशोऽध्यायः॥२८॥

एकोनत्रिंशोऽध्यायः

अथ दिशोत्पत्तिः

महातपा उवाच

श्रृणु राजन्नवहितः प्रजापाल कथामिमाम्। यदा दिशः समुत्पन्नाः श्रोत्रेभ्यः पृथिवीपते॥१॥
ब्रह्मणः सृजतः सृष्टिमादिसर्गे समुत्थिते। चिन्ताभून्महती को मे प्राजाः सृष्टाः धरिष्यति॥२॥
एवं चिन्तयतस्तस्य अवकाशं प्रजास्विह। प्रादुर्बभूवुः श्रोत्रेभ्यः दश कन्या महाप्रभाः॥३॥

पूर्वा च दक्षिणा चैव प्रतीची चोत्तरा तथा।
ऊर्ध्वाऽधरा च षण्मुख्याः कन्या ह्यासंस्तदा नृप॥४॥

जहाँ से आये थे, वहाँ चले गये। जहाँ से देवी को संस्थापित कर सभी देवगण आनन्दमग्न हो गये। अतः उन देवी का नाम 'नन्दा' हुआ।।४२।।

जब कोई भी जन उन देवी के जन्म की कथा सुने या सुनायेगा या जो इसका पाठ करेगा, वह समस्त पापों से मुक्त होकर श्रेष्ठ मोक्ष पद को प्राप्त करेगा।।४३।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में नन्दा (गायत्री) देवी की उत्पत्ति, वेत्रासुरा का वध, नवमी फल नामक अट्ठाइसवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥२८॥

अध्याय–२९

दिशोत्पत्ति, दशमी तिथि आधिपत्य, दशमी को दही भक्षण फल

महातपा ने कहा कि हे प्रजापाल! हे राजन्! आगे जो कथा मैं तुम्हें सुनाता हूँ, उसे ध्यान से सुनो। हे पृथ्वीपति! जिस तरह ब्रह्मदेव के कानों से दिशायें उत्पन्न हो गयीं, उसे सुनो।।१।।

सृष्टिकार्य का आरम्भ हो गया, उस समय सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा को चिन्ता हुई कि मेरी सृजित प्रजा को कौन धारण करेगा?।।२।।

इस प्रकार प्रजा के स्थान विषयक इस प्रकार की चिन्ता करते समय ब्रह्मा जी के कानों से दस महा प्रभा सम्पन्न कन्याओं की उत्पत्ति हो गयी।।३।।

हे राजन्! उन कन्याओं में पूर्वा, दक्षिणा, प्रवीची, उत्तरा, ऊर्ध्वा, अधरा नाम की छः कन्यायें मुख्य थीं।।४।।

अन्याश्चतस्रस्तेषां तु कन्याः सपरमशोभनाः। रूपस्विन्यो महाभागा गाम्भीर्येण समन्विताः॥५॥
ता ऊचुः प्रणयाद् देवं प्रजापतिमकल्मषम्। अवकाशं तु नो देहि देवदेव प्रजापते॥६॥
यत्र तिष्ठामहे सर्वा भर्तृभिः सहिताः सुखम्। पतयश्च महाभागा देहि नोऽव्यक्तसम्भव॥७॥

ब्रह्मोवाच

ब्रह्माण्डमेतत् सुश्रोण्यः शतकोटिप्रविस्तरम्। तस्यान्ते स्वेच्छया भद्रा उष्यतां मा विलम्बत॥८॥
भर्तृंश्च वः प्रयच्छामि सृष्ट्वा रूपस्विनोऽनघाः। यथेष्टं गम्यतां देशो यस्या यो रोचतेऽधुना॥९॥
एवमुक्ताश्च ताः सर्वा यथेष्टं प्रययुस्तदा। ब्रह्माऽपि ससृजे तूर्णं लोकपालान् महाबलान्॥१०॥
सृष्ट्वा तु लोकपालांस्तु ताः कन्याः पुनराह्वयत्। विवाहं कारयामास ब्रह्मा लोकपितामहः॥११॥
एकामिन्द्राय स प्रादादग्नयेऽन्यां यमाय च। निर्ऋताय च देवाय वरुणाय महात्मने॥१२॥
वायवे धनदेशाय ईशानाय च सुव्रत। ऊर्द्ध्वां स्वयमधिष्ठाय शेषायाधो व्यवस्थिताम्॥१३॥
एवं दत्त्वा पुनर्ब्रह्मा तिथिं प्रादाद् दिशां पुनः। दशमीं भर्तृनाम्नस्तु दध्यन्नं भोजनं प्रभुः॥१४॥
ततः प्रभृति ता देव्यः सेन्द्राद्याः परिकीर्तिताः। दशमी च तिथिस्तासामतीव दयिताभवत्॥१५॥

इस प्रकार उनमें अन्य चार कन्यायें भी परम शोभनीय, रूपशालिनी, महाभाग्यशालिनी तथा गाम्भीर्ययुक्ता थीं।।५।।

वे सभी विनम्रतापूर्वक पापहीन होकर शुद्धभाव से प्रजापति देव से कहा कि हे देवाधिदेव प्रजापति! हम सबों को अवकाश प्रदान करें।।६।।

जहाँ पर हम सभी अपने-अपने पतियों के सहित सुखशान्ति से निवास कर सकेंगे। और हे अव्यक्त जन्मा! हम सबों को महाभाग्यशाली भर्त्ता (पति) भी प्रदान करें।।७।।

ब्रह्मा ने कहा कि हे सुश्रोणियों! यह ब्रह्माण्ड शतकोटि योजन विस्तृत है। हे सुन्दरियो! उसके ठीक अन्त में तुम सभी स्वेच्छानुसार निवास करो। विलम्ब मत करो।।८।।

हे निष्पाप कन्याओ! रूपगुण युक्त पुरुषों की सर्जना कर तुम सबों को पति भी देता हूँ। अब जिसे जो देश रूचिकर हो, वह स्वेच्छानुसार वहाँ-वहाँ चली जाय।।९।।

उस समय इस तरह से कहे जाने पर वे सभी कन्यायें अपने-अपने इष्ट स्थान पर चली गई। ब्रह्माजी ने भी शीघ्र महाबलवान् लोकपालों की सर्जना की।।१०।।

उन लोकपालों की सर्जना करने के पश्चात् ब्रह्माजी ने उन दस कन्याओं को पुनः अपने समीप बुलाकर उनका विवाह उस दस लोकपालों से कर दिया।।११।।

उन्होंने इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, महात्मा वरुण देव को एक-एक कन्या प्रदान की।।१२।।

हे सुव्रत! फिर उन्होंने वायु, कुबेर, ईशान आदि को भी एक-एक कन्या प्रदान कर एक कन्या ऊर्ध्वा को ब्रह्मा जी स्वयं ग्रहण करते हुए अधरा नाम की कन्या शेष को प्रदान की।।१३।।

इस तरह से ब्रह्माजी ने विभिन्न लोकपालों को क्रम से दिशाओं की स्मृति स्वरूप कन्यायें प्रदान की और उनके पति के अनुरूप ही उन-उन कन्याओं का नाम भी दिया गया। फिर उन्हें दशमी तिथि प्रदान किया गया। ब्रह्मा ने उनका भोजन दधि और ओदन (भात) निश्चित किया।।१४।।

प्रायः उस समय से उन दिशारूप देवियों को इन्द्रादि लोकपालों से जोड़कर जाना जाने लगा। उन्हें (दिशा

तस्यां दध्याशनो यस्तु सुव्रती भवते नरः। तस्य पापक्षयं तास्तु कुर्वन्त्यहरहर्नृप॥१६॥
यश्चैतच्छृणुयाज्जन्म दिशां नियतमानसः। स प्रतिष्ठामवाप्नोति ब्रह्मलोके न संशयः॥१७॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे एकोनत्रिंशोऽध्यायः॥

त्रिंशोऽध्यायः

अथ धनोत्पत्तिः

महातपा उवाच

शृणु चान्यां वसुपतेरुत्पतिं पापनाशिनीम्। यथा वायुः शरीरस्थो धनदः संबभूव ह॥१॥
आद्यं शरीरं यत् तस्मिन् वायुरन्तः स्थितोऽभवत्। प्रयोजनान्मूर्त्तिमत्त्वमादिष्टं क्षेत्रदेवता॥२॥
तत्र मूर्त्तस्य वायोस्तु उत्पत्तिः कीर्त्यते मया। तां शृणुष्व महाभाग कथ्यमानां मयानघ॥३॥
ब्रह्मणः सृष्टिकामस्य मुखाद् वायुर्विनिर्ययौ। प्रचण्डशर्करावर्षी तं ब्रह्मा प्रत्यषेधयत्।
मूर्त्तो भवस्व शान्तश्च तत्रोक्तो मूर्त्तिमान् भवत्॥४॥

देवियों को) दशमी तिथि में जो मनुष्य दही भक्षण कर सुन्दर व्रत धारण करता है, वे दिशा देवियाँ नित्य ही उस मनुष्य के पाप को नष्ट किया करती हैं।।१६।।

इस प्रकार दिशाओं के जन्म विषयक इस कथा को जो जन एकग्रता से सुनता या पाठ करता है, उसे निश्चय ही ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त होती है।।१७।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में दिशोत्पत्ति, दशमी तिथि आधिपत्य, दशमी को दही भक्षण फल नामक उनतीसवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥२९॥

अध्याय-३०

धनदा-उत्पत्ति, एकादशी तिथि आधिपत्य, अपक्व भोजन फल

महातपा ने कहा कि वसुपति अर्थात् कुबेर की पापनाशक अन्य उत्पत्ति को सुनो। जिस तरह ब्रह्मा के शरीरस्थ वायु की कुबेर के रूप में उत्पत्ति हुई।आदिकाल में आदि शरीर में जो वायु स्थित था, कार्यवश क्षेत्रदेवता को मूर्त्तिमान् होने का आदेश प्राप्त हुआ।।१-२।।

अतः अब यहाँ मैं वायु के मूर्त्तिमान् होने का वर्णन करने जा रहा हूँ। हे निष्पाप महाभाग्यवान्! मेरे द्वारा कही जा रही उस जन्म का वृत्तान्त ध्यान से सुनो।।३।।

सृष्टि करने हेतु उद्यत ब्रह्मा के मुख से प्रचण्ड शर्करा (धूल) की वृष्टि करने वाला वधू निकला। ब्रह्मा ने उसे रोका और कहा मूर्त्त और शान्त हो जाओ। इस प्रकार से कहे जाने पर वायु मूर्त्तिमान् हो गया।।४।।

सर्वेषां चैव देवानां यद् वित्तं फमेव च। तत्सर्वं पाहि येनोक्तं तस्माद् धनपतिर्भवत्।।५।।
तस्य ब्रह्मा ददौ तुष्टस्तिथिमेकादशीं प्रभुः। तस्यामनग्निपक्वाशी यो भवेन्नियतः शुचिः।।६।।
तस्याशु धनदो देवस्तुष्टः सर्वं प्रयच्छति। एषा धनपतेर्मूर्तिः सर्वकिल्बिषनाशिनी।।७।।
य एतां श्रृणुयाद् भक्त्या पुरुषः पठतेऽपि वा। सर्वकाममवाप्नोति स्वर्गलोकं च गच्छति।।८।।

।।इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे त्रिंशोऽध्यायः।।३०।।

एकत्रिंशोऽध्यायः

अथ विष्णवोत्पत्तिः

महातपा उवाच

मनोर्नाम मनुत्वं च यदेतत् पठ्यते किल। प्रयोजनवशाद् विष्णुरसावेव तु मूर्त्तिमान्।।१।।
योऽसौ नारायणो देवः परात् परतरो नृप। तस्य चिन्ता समुत्पन्ना सृष्टिं प्रति नरोत्तम।।२।।

फिर ब्रह्मा ने कहा कि समस्त देवताओं के धन और फल की रक्षा करो। इस प्रकार से कहे जाने के कारण वह वायु धनपति या कुबेर हो गया।।५।।

इस तरह से संतुष्ट व प्रसन्न ब्रह्माजी ने उसे एकादशी तिथि प्रदान की। उस एकादशी तिथि में जो जन संयम और पवित्रता के साथ विना अग्नि में पकाया हुआ अर्थात् स्वयं का पका हुआ पदार्थ भक्षण करता है, उसके ऊपर शीघ्र प्रसन्न होकर धनद अर्थात् कुबेर सब कुछ प्रदान किया करते हैं। धनपति के इस प्रकार की मूर्त्ति सभी पापों को विनष्ट करने वाला होता है।।६-७।।

इस कथा को जो कोई जन भक्तिभाव से सुनता, सुनाता या पाठ करता है, वह जन समस्त अभीष्ट काम की प्राप्ति करता है और स्वर्ग लोक को जाता है।।८।।

।।इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में धनदा-उत्पत्ति, एकादशी तिथि आधिपत्य, अपक्व भोजन फल नामक तीसवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ।।३०।।

अध्याय-३१

विष्णु की उत्पत्ति, द्वादशी का आधिपत्य

महातपा ने कहा कि हे राजन्! हम लोगों के द्वारा जिस मनु का नाम और मनुत्व के बारे में पढ़ा जाता है, प्रयोजन के अनुसार वे ही विष्णु के रूप में मूर्त्तिमान् हुआ।।१।।

हे नरोत्तम! हे राजन्! वह जो नारायण देव हैं उनको एक बार सर्जना सम्बन्धी यह चिन्तन हो आया कि मैंने ही इस सृष्टि का सृजन किया है और मुझको ही इसका पालन करना चाहिए। किन्तु अपने अमूर्त्त स्वरूप से यह

सृष्टा चेयं मया सृष्टिः पालनीया मयैव ह। कर्मकाण्डं त्वमूर्त्तेन कर्तुं नैवेह शक्यते।
तस्मान्मूर्त्ति सृजाम्येकां यया पाल्यमिदं जगत्।।३।।
एवं चिन्तयतस्तस्य सत्याभिध्यायिनो नृप। प्राक्सृष्टिजातं राजन् वै मूर्त्तिमत् तत्पुरो बभौ।।४।।
पुरोभूते ततस्तस्मिन् देवो नारायणः स्वयम्। प्रविशन्तं ददर्शाथ त्रैलोक्यं तस्य देहतः।।५।।
ततः सस्मार भगवान् वरदानं पुरातनम्। वागादीनां ततस्तुष्टः प्रादात् तस्य पुनर्वरम्।।६।।
सर्वज्ञः सर्वकर्ता त्वं सर्वलोकनमस्कृतः। त्रैलोक्यविशनाच्च त्वं भव विष्णुः सनातनः।।७।।
देवानां सर्वदा कार्यं कर्त्तव्यं ब्रह्मणस्तथा। सर्वज्ञत्वं च भवतु तव देव न संशयः।।८।।
एवमुक्त्वा ततो देवः प्रकृतिस्थो बभूव ह। विष्णुरप्यधुना पूर्वां बुद्धिं सस्मार च प्रभुः।।९।।
तदा संचिन्त्य भगवान् योगनिद्रां महातपाः।
तस्यां संस्थाप्य भगवानिन्द्रियार्थोद्भवाः प्रजाः।
ध्यात्वा परेण रूपेण ततः सुष्वाप वै प्रभुः।।१०।।
तस्य सुप्तस्य जठरान्महत्पद्मं विनिःसृतम्। सप्तद्वीपवती पृथ्वी ससमुद्रा सकानना।।११।।
तस्य रूपस्य विस्तारं पातालं नालसंस्थितम्। कर्णिकायां तथा मेरुतन्मध्ये ब्रह्मणो भवः।।१२।।

कार्य करना सम्भव नहीं। अतः मैं एक मूर्त्ति स्वरूप प्रकट करूँगा, जिनके द्वारा इस सृष्टि का पालन कार्य सम्पादित हो सकेगा।।२-३।।

हे राजन्! उनके द्वारा हुआ इस सत्यसंकल्प का फल यह हुआ की उनके समक्ष पूर्वकल्प की सृष्टि की मूर्त्ति प्रकट हो गई।।४।।

तत्पश्चात् उस मूर्त्ति के प्रकट होने पर स्वयं साक्षात् नारायण देव उस मूर्त्ति से प्रकट हो गये। उस समय वे उस मूर्त्तिमान् सृष्टि को उसमें प्रवेश करते अनुभव किया।।५।।

फिर उस भगवान् ने पुरातन वाक् आदि के वरदान को स्मरण करते हुए प्रसन्न होकर उस मूर्त्तिमान् देव को वे फिर वर प्रदान किया।।६।।

आप ही सब कुछ करने वाले, अखिल लोक से नमस्कृत और सर्वज्ञ हैं। त्रैलोक्य में व्याप्त होने से आप सनातन विष्णु हैं।।७।।

आप ही देवताओं और ब्रह्मा जी के कार्य को सर्वदा पूर्ण करने वाले हैं। हे देव! आप निश्चय ही सर्वज्ञ हैं।।८।।

इस प्रकार से कहने के पश्चात् ब्रह्मदेव प्रकृतिस्थ हुए और प्रभु विष्णु ने भी अपने पूर्व बुद्धि का स्मरण किया।।९।।

हे महातपा! उस समय भगवान् ने योगनिद्रा का स्मरण किया और उसमें इन्द्रियार्थों से उत्पन्न प्रजा को स्थापित कर दिया। इस प्रकार फिर से परात्पर रूप से ध्यानपूर्वक प्रभु विष्णु शयन मुद्रा को धारण कर लिया।।१०।।

उस समय इस तरह शयन मुद्रा में स्थित उन विष्णु के उदर से एक महापद्म की उत्पत्ति हुई। उस पद्म का विस्तार समुद्र सहित पर्वतों और सप्तद्वीप पृथ्वी पर्यन्त था।।११।।

उस कमल के नाल में पाताल और कर्णिका में सुमेरु स्थित था। फिर उसके मध्य में ब्रह्माजी प्रकट हो गये।।१२।।

एवं दृष्ट्वा परं तस्य शीरस्य तु संभवम्। मुमुचे तच्छरीरस्थो वायुर्वायुं समं सृजत्॥१३॥
अविद्याविजयं चेमं शङ्खरूपेण धारय। अज्ञानच्छेदनार्थाय खड्गं तेऽस्तु सदा करे॥१४॥
कालचक्रमिमं घोरं चक्रं त्वं धारयाच्युत। अधर्मगजघातार्थं गदां धारय केशव॥१५॥
मालेयं भूतमाता ते कण्ठे तिष्ठतु सर्वदा। श्रीवत्सकौस्तुभौ चेमौ चन्द्रादित्यच्छलेन ह॥१६॥
मारुतस्ते गतिर्वीर गरुत्मान् स च कीर्त्तितः। त्रैलोक्यगामिनी देवी लक्ष्मीस्तेऽस्तु सदाश्रये।
द्वादशी च तिथिस्तेऽस्तु कामरूपी च जायते॥१७॥
घृताशनो भवेद्यस्तु द्वादश्यां त्वत्परायणः। स स्वर्गवासी भवतु पुमान् स्त्री वा विशेषतः॥१८॥
एष विष्णुस्तवाख्यातो मूर्त्तयो देवदानवान्। हन्ति पाति शरीराणि सृजत्यन्यानि चात्मनः॥१९॥
युगे युगे सर्वगोऽयं वेदान्ते पुरुषो ह्यसौ। न हीनबुद्ध्या वक्तव्यो मनुष्योऽयं कदाचन॥२०॥
य एवं श्रृणुयात् सर्गं वैष्णवं पापनाशनम्। स कीर्तिमिह संप्राप्य स्वर्गलोके महीयते॥२१॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे एकत्रिंशोऽध्यायः॥३१॥

उस शरीर की श्रेष्ठ उत्पत्ति को देखकर उनके शरीर में स्थित सूक्ष्म वायु उनके ही शरीर से निःसरित हुआ और उसने ही मूर्त्त वायु की सर्जना की।।१३।।

फिर कहा गया कि आप अविद्या को विजय करने वाला यह शंख धारण करें तथा अज्ञान का उच्छेदन करने हेतु आपके हाथ में सदा ही यह खड्ग स्थित रहना चाहिए और हे अच्युत् आप इस कठिन कालचक्र को भी धारण कर लें तथा हे केशव! अधर्म रूपी गण को ध्वस्त करने हेतु आप सदा गदा धारण कर लें।।१४-१५।।

आपके कण्ठ में सर्वदा प्राणियों की मातृस्वरूपा यह माला स्थित रहना चाहिए। चन्द्रमा और सूर्य के समान श्रीवत्स और कौस्तुभमणि आपके वक्षःस्थल पर सुशोभित हों।।१६।।

हे वीर! साक्षात् वायु आपकी गति है, जिसे गरुड़ नाम दिया जाता है। त्रैलोक्यगामिनी लक्ष्मी देवी हमेशा आपके आश्रयण में रहेंगी। आपकी तिथि द्वादशी होगी। आप सदा कामरूप हो सकेंगे।।१७।।

द्वादशी तिथि के दिन जो मनुष्य घृत प्लावित भोजन करेंगे और आप का भजन स्मरण करेंगे, वे जन स्त्री हों या पुरुष सभी स्वर्ग में निवास करेंगे।।१८।।

इस तरह मैंने आप से इन विष्णु के मूर्त्तिमान् होने की कथा को सुनाया है। यड़ अपने देव-दानव स्वरूप मूर्त्तियों का सदा पालन और संहार तथा अन्य शरीरों की सृष्टि भी करते रहते हैं।।१९।।

सभी पुत्रों में यह वेदान्त पुरुष सर्वव्यापक स्वरूप से स्थित रहते हैं। हीनबुद्धि द्वारा कभी इन्हें मनुष्य नहीं समझ लेना चाहिए।।२०।।

इस प्रकार जो भी मनुष्य इस पापनाश करने वाली इस वैष्णवी सृष्टि का श्रवण या पाठ करते हैं, वह इस लोक में यश कीर्त्ति प्राप्त करते हुए स्वर्ग में पूजित होता है।।२१।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में विष्णु की उत्पत्ति, द्वादशी का आधिपत्य नामक एकतीसवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥३१॥

❖❖❖

द्वात्रिंशोऽध्यायः

अथ धर्मोत्पत्तिः

महातपा उवाच

अथोत्पत्तिं प्रवक्ष्यामि धर्मस्य महतो नृप। माहात्म्यं च तिथिं चैव तन्निबोध नराधिप॥१॥
पूर्वं ब्रह्माऽव्ययः शुद्धः परादपरसंज्ञितः। स सिसृक्षुः प्रजास्त्वादौ पालनं च विचिन्तयत्॥२॥
तस्य चिन्तयतस्त्वङ्गाद् दक्षिणाच्छ्वेतकुण्डलः। प्रादुर्बभूव पुरुषः श्वेतमाल्यानुलेपनः॥३॥
तं दृष्ट्वावाच भगवांश्चतुष्पादं वृषाकृतिम्। पालयेमाः प्रजाः साधो त्वं ज्येष्ठो जगतो भव॥४॥
इत्युक्तः समवस्थोऽसौ चतुःपद्भ्यां कृते युगे। त्रेतायां च समस्तृभ्यां द्वे चैव द्वापरेऽभवत्।
कलावेकेन पादेन प्रजाः पालयते प्रभुः॥५॥
षड्भेदो ब्राह्मणानां स त्रिधा क्षत्रे व्यवस्थितः। द्विधा वैश्येकधा शूद्रे स्थितः सर्वगतः प्रभुः।
रसातलेषु सर्वेषु द्वीपवर्षे स्वयं प्रभुः॥६॥
द्रव्यगुणक्रियाजातिचतुःपादः प्रकीर्तितः। संहितापदक्रमश्चैव त्रिशृङ्गोऽसौ स्मृतो बुधैः॥७॥
तथा आद्यन्त ओङ्कार द्विशिराः सप्तहस्तवान्। त्रिबद्धबद्धो विप्राणां मुख्यः पालयते जगत्॥८॥

अध्याय-३२

धर्मोत्पत्ति और आख्यान, त्रयोदशी तिथि आधिपत्य, पाय से पितृ तर्पण फल

महातपा ने कहा कि हे नृप! अधुना मैं आपसे महाधर्म की उत्पत्ति, माहात्म्य, उनकी तिथि आदि को कहने जा रहा हूँ। हे नराधिप! आप उसे ध्यान से सुनो।।१।।

पुरातन समय में परात्पर नाम का शुद्ध और अव्यय ब्रह्मा थे। आदिकाल में वे प्रजा की सृष्टि करने की इच्छा और उसके पालन का भी विचार किया।।२।।

चिन्तनशील उनके दक्षिणाङ्ग से श्वेत कुण्डल, श्वेत माला और चन्दन का लेप धारण किये हुए एक पुरुष प्रकट हुआ।।३।।

चतुष्पाद और बैल की आकृति वाले उस पुरुष को देखकर भगवान् ब्रह्मदेव ने कहा कि हे साधु पुरुष! इस प्रजा का पालन करते हुए इस जगत् में आप सबसे महान् हों।।४।।

इस प्रकार से कहे जाने पर कृतयुग में चार पाद, त्रेता में तीन पाद, द्वापर में दो पाद और कलियुग में एक पाद से स्थित होकर वह धर्मस्वरूप प्रभु प्रजा का पालन करने लगा।।५।।

फिर वह धर्मस्वरूप और सर्वव्यापी प्रभु, ब्राह्मणों में छः प्रकार से, क्षत्रियों में तीन प्रकार से, वैश्यों में दो और शूद्रों में एकप्रकार से स्थित होकर सभी रसातलों, द्वीपों और वर्षों में स्वयं स्थित हो गया।।६।।

द्रव्य, गुण, क्रिया और जाति उस धर्मस्वरूप के चार पाद हैं। इस प्रकार विद्वानों द्वारा संहिता, पद और उसके स्वरूप इसके तीन सींग माने गये हैं।।७।।

आदि और अन्त का दो ॐकार इसके दो शिर माने गए। इसके विविध स्वरूपों में सात हाथ कहे गए

स धर्मः पीडितः पूर्वं सोमेनाद्भुतकर्मणा। तारां जिघृक्षता पत्नीं भ्रातुराङ्गिरसस्य ह॥९॥
सोऽपायाद् भीषितस्तेन बलिना क्रूरकर्मणा। अरण्यं गहनं घोरमाविवेश तदा प्रभुः॥१०॥
तस्मिन् गते सुराः सर्वे असुराणां तु पत्नयः। जिघृक्षन्तस्तदौकांसि बभ्रमुर्धर्मवञ्चिताः।
असुरा अपि तद्वच्च सुरवेश्मनि बभ्रमुः॥११॥
निर्मयादे तथा जाते धर्मनाशे च पार्थिव। देवासुरा युयुधिरे सोमदोषेण कोपिताः।
स्त्रीहेतोश्च महाभाग विविधायुधपाणयः॥१२॥
तान् दृष्ट्वा युध्यतो देवानसुरैः सह कोपितान्। नारदः प्राह संगम्य पित्रे ब्रह्मणि हर्षितः॥१३॥
स हंसयानमारुह्य सर्वलोकपितामहः। निवारयामास तदा कस्यार्थे युद्धमब्रवीत्॥१४॥
सर्वे शशंसुः सोमं तु स तु बुद्ध्वा स्वकं सुतम्। पीडनादपयातं तु गहनं वनमाश्रितम्॥१५॥
ततो ब्रह्मा ययौ तत्र देवासुरयुतस्त्वरन्। ददर्श च सुरैः सार्द्धं चतुष्पादं वृषाकृतिम्।
चरन्तं शशिसङ्काशं दृष्ट्वा देवानुवाच ह।१६॥

हैं तथा यह तीन स्वरों या तीन कालों के बन्धनों से बँधा था। ब्राह्मणों में प्रमुख यह जगत् का परिपालन करने वाला था।।८।।

पुरातनकाल में अद्भुत कर्म करने वाले चन्द्रमा ने आङ्गिरस के भाई बृहस्पति की पत्नि तारा को ग्रहण करने की इच्छा से उस धर्म को पीड़ित किया।।९।।

उस समय उस बलवान् क्रूर कर्मा की दुष्टता से डरकर वह धर्मस्वरूप प्रभु सघन गहन वन में आकर रहने लगा।।१०।।

इस प्रकार उस धर्म के चले जाने पर प्रत्येक देवता ने धर्म हीन होकर असुरों की पत्नियों को पाने की आकांक्षा लेकर उनके गृहों-गृहों में भटकना प्रारम्भ कर दिया। इसी तरह असुरों ने भी देवगृहों की ओर झाँकना प्रारम्भ कर दिया।।११।।

हे पार्थिव! हे महाभाग! मर्यादा की परिसमाप्ति और धर्मरहित होने पर सोम के दोष से दूषित हुये देवगण और असुरगण अपने-अपने हाथों में विविध प्रकार के अस्त्र-शस्त्र धारण कर स्त्री को लक्ष्य कर परस्पर युद्ध करने में लग गये।।१२।।

इस प्रकार से रोषयुक्त होकर उन देवताओं को असुरों के साथ युद्ध करते देखकर हर्षित नारद ने अपने पिता ब्रह्मा के समीप जाकर इस घटना को कहा।।१३।।

उस समय समस्त लोकों के स्वामी पितामह ब्रह्मा अपने हंसयान पर आरूढ़ होकर उस स्थान पर गये और उन लोगों को युद्ध करने से रोककर पूछा—युद्ध क्यों कर रहे हो?।।१४।।

समस्त देव और असुरों ने युद्ध का कारण सोम को कहा। फिर अपने पुत्र धर्म को पीड़ा के कारण भाग कर गहन वन में जाकर आश्रय लिये हुए जाना।।१५।।

फिर ब्रह्म देव और असुरों सहित शीघ्रता से उस स्थल पर गये, जहाँ देवों के साथ चतुष्पाद बैल की आकृति वाले चन्द्र के समान धर्म घास चर रहा था। उसे देखकर उन देवताओं से उसने कहा—।।१६।।

ब्रह्मा उवाच

अयं मे प्रथमः पुत्रः पीडितः शशिना भृशम्। पत्नीं जिघृक्षता भ्रातुर्द्धर्मसंज्ञो महामुनिः॥१७॥
इदानीं तोषयध्वं वै सर्व एव सुरासुराः। येन स्थितिर्वो भवति समं देवासुरा इति॥१८॥
ततः सर्वे स्तुतिं चक्रुस्तस्य देवस्य हर्षिताः। विदित्वा ब्रह्मणो वाक्यात् संपूर्णशशिसन्निभम्॥१९॥

देवा ऊचुः

नमोऽस्तु शशिसङ्काश नमस्ते जगतः पते। नमोऽस्तु देवरूपाय स्वर्गमार्गप्रदर्शक।
कर्ममार्गस्वरूपाय सर्वगाय नमो नमः॥२०॥
त्वयेयं पाल्यते पृथ्वी त्रैलोक्यं च त्वयैव हि। जनस्तपस्तथा सत्यं त्वया सर्वं तु पाल्यते॥२१॥
न त्वया रहितं किञ्चिज्जगत्स्थावरजङ्गमम्। विद्यते त्वद्विहीनं तु सद्यो नश्यति वै जगत्॥२२॥
त्वमात्मा सर्वभूतानां सतां सत्त्वस्वरूपवान्। राजसानां रजस्त्वं च तामसानां तम एव च॥२३॥
चतुष्पादो भवान् देव चतुश्शृङ्गस्त्रिलोचनः। सप्तहस्तस्त्रिबन्धश्च वृषरूप नमोऽस्तु ते॥२४॥
त्वया हीना वयं देव सर्व उन्मार्गवर्त्तिनः। तन्मार्गं यच्छ मूढानां त्वं हि नः परमा गतिः॥२५॥
एवं स्तुतस्तदा देवैर्वृषरूपी प्रजापतिः। तुष्टः प्रसन्नमनसा शान्तचक्षुरपश्यत॥२६॥

ब्रह्मा ने कहा कि चन्द्रमा द्वारा भ्रातृ-पत्नि ग्रसित करने की इच्छा के कारण इस धर्मनामक महामुनि पुत्र को अत्यन्त पीड़ा पहुँचा।।१७।।

हे देवताओं एवं असुरों! अधुना तुम दोनों मिलकर इसे प्रसन्न करो, जिससे तुम लोग भी एक साथ रह सको।।१८।।

फिर ब्रह्मदेव के कहने के अनन्तर सबने पूर्ण चन्द्र सदृश उन घास चर रहे बैल को धर्म मानकर प्रसन्नता के साथ उन धर्मरूप देव की स्तुति की।।१९।।

देवताओं ने कहा कि हे चन्द्रमा के समान देव! आपको प्रणाम है। हे जगत्पते! आपको प्रणाम है। हे देव रूपस्वर्गमार्ग प्रदर्शक! आपको प्रणाम है। हे कर्ममार्ग स्वरूप सर्वगामी! आपको बारम्बार प्रणाम है।।२०।।

आप ही इस भूमण्डल के पालनहार हैं। आप ही त्रिलोकों का पालनहार हैं। आपही जन, तप और सत्य नामक सब लोकों का पालन करने वाले हैं।।२१।।

इस जड़ और चेतन स्वरूप संसार में आपको छोड़कर कुछ भी शेष नहीं है। आपसे पृथक् होकर यह संसार ही नष्ट हो जाता है।।२२।।

आप ही समस्त प्राणियों की आत्मा हैं। आप ही सत्त्वगुण को धारण करने वालों के सत्त्वगुण स्वरूप हैं। रजोगुणियों के रजोगुण और तमोगुण वालों का तमोगुण स्वरूप हैं।।२३।।

हे देवता! आप तो चार पैर, चार सींग, तीन नेत्र, सात हाथ एवं तीन प्रकार के बन्धनों वाले और बैल के स्वरूप को धारण करने वाले हैं। अतः आपको प्रणाम है।।२४।।

हे देवता! आपसे पृथक् होकर हम सब जन कुपथ गमन कर गये हैं। अतः हमारा मार्गदर्शन करें। हम मूर्खों के आप ही परम गति स्वरूप हैं।।२५।।

तत्पश्चात् देवताओं के द्वारा उपरोक्त प्रकार से स्तुति किये जाने पर बैल के स्वरूप धारण करने वाले प्रजापति ने परम सन्तुष्ट और प्रसन्न मन तथा शान्त दृष्टि से उन लोगों को देखा।।२६।।

दृष्टमात्रास्तु ते देवाः स्वयं धर्मेण चक्षुषा। क्षणेन गतसंमोहाः सम्यक्सद्धर्मसंहिताः॥२७॥

असुरा अपि तद्वच्च ततो ब्रह्मा उवाच तम्।
अद्यप्रभृति ते धर्म तिथिरस्तु त्रयोदशी॥२८॥

यस्तामुपोष्य पुरुषो भवन्तं समुपार्जयेत्। कृत्वा पापसमाहारं तस्मान्मुञ्चति मानवः॥२९॥

यच्चारण्यमिदं धर्म्म त्वया व्याप्तं चिरं प्रभो। ततो नाम्ना भविष्ये तद्धर्मारण्यमिति प्रभो॥३०॥

चतुस्त्रिपाद् द्वयेकपाच्च प्रभो त्वं कृतादिभिर्ल्लक्ष्यसे येन लोकैः।
तथा तथा कर्मभूमौ नभश्च प्रायोयुक्तः स्वगृहं पाहि विश्वम्॥३१॥
इत्युक्तमात्रः प्रपितामहोऽधुना सुरासुराणामथ पश्यतां नृप।
अदृश्यतामगमत् स्वालयांश्च जग्मुः सुराः सवृषा वीतशोकाः॥३२॥
धर्मोत्पत्तिं य इमां श्रावयीत तदा श्राद्धे तर्पयेत पितृंश्च।
त्रयोदश्यां पायसेन स्वशक्त्या स स्वर्गगामी तु सुरानुपेयात्॥३३॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे द्वात्रिंशोऽध्यायः॥३२॥

स्वयं धर्म के नेत्रों से देखे जाने पर वे सभी देवगण क्षणमात्र में मोह रहित होकर विधिवद् सद्धर्म से संयुक्त हो गये।।२७।।

इसी तरह से असुरगण भी सद्धर्म से संयुक्त हुए। फिर ब्रह्मदेव ने उस धर्म से कहा कि हे धर्म! आज से आपकी त्रयोदशी तिथि होगी।।२८।।

जो कोई जन इस त्रयोदशी तिथि के दिन उपवास रखकर तुम्हारी आराधना करेगा, वह निश्चय ही पूर्व में किये समस्त पाप से मुक्त हो सकेगा।।२९।।

हे प्रभो! जहाँ से आप इस अरण्य में चिरकाल तक अवस्थित रहे। अतः भविष्य में यह आपके नाम से धर्मारण्य कहलाएगा।।३०।

हे प्रभो! कृतादि युगों में व्यक्ति तुम्हें चार, तीन, दो, एक-एक पाद से युक्त परिदृष्ट होंगे। इस कर्मस्थली में आकाश के सदृश स्थित रहकर अपने घर के समान इस संसार का लालन-पालन करो। आपको प्रणाम है।।३१।।

तत्पश्चात् हे नृप! इस प्रकार कहकर देवताओं और असुरों के देखते-देखते लोक पितामह विलुप्त हो गये। फिर समस्त देवताजन वृषस्वरूप धर्म सम्पन्न होकर और शोक से मुक्त होकर अपने-अपने स्थान को प्रस्थान कर गये।।३२।।

इस प्रकार जो जन इस धर्मोत्पत्ति की कथा को सुनाने या सुनने या पाठ करने में समय और मन लगायेगा, फिर त्रयोदशी तिथि को पायस से पितरों का श्राद्ध करेगा, वह निश्चय ही स्वर्ग में पहुँचकर देवताओं के संग आनन्दित हो सकेगा।।३३।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में धर्मोत्पत्ति आख्यान, त्रयोदशी तिथि आधिपत्य, पायस से पितृ तर्पण फल नामक बत्तीसवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायण-कुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥३२॥

❖❖❖

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

अथ रुद्रोत्पत्तिः

श्रीवराह उवाच

अथापरां रुद्रसंभूतिमाद्यां शृणुष्व राजन्निति सोऽभ्युवाच।
महातपाः प्रीतितो धर्म्मदक्षः क्षमास्त्रधारी ऋषिरुग्रतेजाः॥१॥
जातः प्रजानां पतिरुग्रतेजा ज्ञानं परं तत्त्वभावं विदित्वा।
सृष्टिं सिसृक्षुः क्षुभितोऽतिकोपादवृद्धिकाले जगतःप्रकामम्॥२॥
तपस्यतोऽतः स्थिरकीर्त्तिः पुराणो रजस्तमोध्वस्तगतिर्बभूव।
वरो वरेण्यो वरदः प्रतापी कृष्णारुणः पुरुषः पिङ्गनेत्राः॥३॥
रुदन्नुक्तो ब्रह्मणा मा रुद त्वं रुद्रस्ततोऽसावभवत् पुराणः।
नयस्व सृष्टिं विततस्वरूपां भवान् समर्थोऽसि महानुभाव॥४॥
इत्युक्तमात्रः सलिले ममज्ज मग्ने ससर्जात्मभवाय दक्षः।
कस्थे तदा देववरे वितेनुः सृष्टिं तु ते मानसा ब्रह्मजाताः॥५॥

अध्याय-३३

रुद्रोत्पत्ति, चतुर्दशी तिथि का आधिपत्य, रुद्रयजन का महाफल

श्री भगवान् वराह ने कहा कि धर्मदक्ष, क्षमारूपी शस्त्र धारण करने वाला, उग्रतेज सम्पन्न महातपा ऋषि ने प्रीति सहित कहा कि हे राजन्! अधुना रुद्र के आदिकालीन एक अन्य जन्म का विवरण कहा जा रहा है, उसे सुनो।।१।।

उग्र तेजस्वी प्रजापति ब्रह्मा ने अपनी उत्पत्ति के पश्चात् परम तत्त्व स्वरूप ज्ञान प्राप्त करते हुए सृष्टि सर्जना करने की इच्छा की। परन्तु सृजित संसार की पर्याप्त अभिवृद्धि नहीं होते हुए देख, वे (प्रजापति) अत्यन्त कोप से क्षुभित हो गये।।२।।

फिर जिस समय वे तपस्या करने में मग्न थे, तो उन प्रजापति से रज और तमोगुण की गतिहीन श्रेष्ठ वरेण्य वरदान प्रदान करने वाले, प्रतापी, कृष्ण और अरुणवर्ण तथा पिङ्गल नेत्रों वाले एक पुराण पुरुष की उत्पत्ति हुई।।३।।

अपनी उत्पत्ति के समय वह अत्यन्त रुदन कर रहा था, तो उस समय प्रजापति ब्रह्मा ने उस रोदन करते हुए पुरुष से कहा कि तुम मत रुदन करो। इसी कारण उस पुराण पुरुष का नाम 'रुद्र' हो गया। पुनः ब्रह्मा ने कहा कि हे महानुभाव! आप समर्थ हैं। अतः सृष्टि स्वरूप को विस्तारित करें।।४।।

ब्रह्मदेव के इस प्रकार से कहना ही हुआ कि रुद्र जल में समा गये। उनके जल में समा जाने पर ब्रह्माजी ने पुनः अपनी सृष्टि सर्जना हेतु दक्ष को उत्पन्न किया। इस प्रकार देव श्रेष्ठरुद्र के जल के अन्दर रहते हुए ब्रह्मदेव के मानसपुत्रों ने सृष्टि सर्जना कर उसका सविधि विस्तार किया।।५।।

तस्यां ततायां तु सुराधिपे तु पैतामहं यज्ञवरं प्रकामम्।
मग्नः पुरा यत्सलिले स रुद्रः उत्सृज्य विश्वं तु सुरान् सिसृक्षुः॥६॥
सुस्राब यज्ञं सुरसिद्धयक्षानुपागतान् क्रोधवशं जागम।
मन्युं प्रदीप्तं परिभाव्य केन सृष्टं जगन्मां व्यतिरिच्य मोहात्॥७॥
हा हेति चोक्ते ज्वलनार्चिषस्तु निश्चेरुरास्यात् परिपिङ्गलस्य।
तत्राभवन् क्षुद्रपिशाचसङ्घा तत्राभवन् क्षुद्रपिशाचसङ्घा॥८॥
घनं यदा तैर्विततं वियच्च भूमिश्च सर्वश्च दिशश्च लोकाः।
तदा स सर्वज्ञतया चकार धनुश्चतुर्विंशतिहस्तमात्रम्॥९॥
गुणं त्रिवृत्तं च चकार रोषादादत्त दिव्ये च धनुर्गुणं च।
ततश्च पूष्णो दशनानविध्यद् भगस्य नेत्रे वृषणौ क्रतोश्च॥१०॥
स विद्धबीजो व्यपयात्क्रतुश्च मार्गं वायुर्धारयन् यज्ञवाटात्।
देवाश्च सर्वे पशुपतिमुपेयुर्जग्मुश्च सर्वे प्रणतिं भवस्य॥११॥
आगम्य तत्रैव पितामहस्तु भवं प्रतीतः संपरिष्वज्य देवान्।
भक्त्योपेतान् वीक्षयद् देवदेवान् विज्ञानमन्तः कुरु वीरबाहो॥१२॥

इस तरह उस सृष्टि का विस्तार किये जाने के पश्चात् दक्ष ने श्रेष्ठ पैतामह यज्ञ का आयोजन किया। इसके बाद पूर्व समय में देवताओं की सर्जना की इच्छा से उत्पन्न रुद्र जो विश्व से विमुख होकर जल में निमग्न हो चले थे, उन रुद्र ने यज्ञकाल की मन्त्र ध्वनि को सुन लिया।।६।।

दक्ष के द्वारा आयोजित पैतामह यज्ञ में हो रहे मन्त्र ध्वनि को सुना। फिर वे यज्ञ हेतु समागत देवताओं सिद्धों और यक्षों को देखकर वे रुद्र अतिक्रुद्ध हो गये। इससे अत्यन्त क्रोधाभिभूत होकर उन्होंने कहा कि मेरे अलावा किसने मोहवश होकर इस संसार की सृष्टि की है?।।७।।

फिर तो हाहाकार की ध्वनि करने वाले उन पिङ्गलनेत्र रुद्र के मुख से अग्नि की ज्वलायें निरन्तर निकलने लगी। एवं उस ज्वाला से क्षुद्र पिशाच, बेताल, भूत, योगिगण आदि प्रकट हो गये।।८।।

जिस समय उनकी क्रिया से अखिल आकाश, पृथ्वी, दिशायें और लोक व्याप्त हो गये, उस समय उन सर्वज्ञ रुद्र ने चौबीस हाथों का धनुष निर्मित की।।९।।

इन सबके अलावे उन रुद्र ने त्रिवृत रस्सियों की रचना की। फिर उसने क्रोध मुद्रा में ही उस दिव्य धनुष में रस्सी बाँधकर उस पर बाण चढ़ाकर पूषा के दाँतों, भग के नेत्रों और क्रतु के वृषणों को वेध डाला।।१०।।

इस प्रकार बाण बिंधे वृषण वाला क्रतु उस यज्ञमण्डप से वायु की दिशा में भागने लगा। फिर सभी देवगण पशुपति के समीप जाकर उन्हें प्रणाम किया।।११।।

इन घटनाओं की जानकारी होने पर पितामह भी उस स्थान पर उपस्थित हो गये तथा उन रुद्र का आलिङ्गन किया। इस तरह देवताओं की भक्ति भाव को देखभाल कर ब्रह्मा ने देवाधिदेव रुद्र से कहा कि हे वीरबाहु! आप अपने अन्दर विज्ञान की उत्पत्ति करें।।१२।।

रुद्र उवाच

सृष्टः पूर्वं भवताऽहं न चेमे कस्मान्न भागं परिकल्पयन्ति।
यज्ञोद्भवं तेन रुषा मयेमे हृतज्ञाना विकृता देवदेव॥१३॥

ब्रह्मा उवाच

देवाः शंभुं स्तुतिभिर्ज्ञानहेतोर् यजध्वमुच्चैरसुराश्च सर्वे।
येन रुद्रो भगवांस्तोषमेति सर्वज्ञता तोषमात्रस्य च स्यात्॥१४॥
इत्युक्तास्तेन ते देवाः स्तुतिं चक्रुर्महात्मनः॥१५॥

देवा ऊचुः

नमो देवातिदेवाय त्रिनेत्राय महात्मने। रक्तपिङ्गलनेत्राय जटामुकुटधारिणे॥१६॥
भूतवेतालजुष्टाय महाभोगोपवीतिने। भीमाट्टहासवक्त्राय कपर्दिन् स्थाणवे नमः॥१७॥
पूष्णो दन्तविनाशाय भगनेत्रहने नमः। भविष्यवृषचिह्नाय महाभूतपते नमः॥१८॥
भविष्यत्रिपुरान्ताय तथान्धकविनाशिने। कैलासवरवासाय करिकृत्तिनिवासिने॥१९॥
विकरालोद्र्ध्वकेशाय भैरवाय नमो नमः। अग्निज्वालाकरालाय शशिमौलिकृते नमः॥२०॥
भविष्यकृतकापालिव्रताय परमेष्ठिने। तथा दारुवनध्वसंकारिणे तिग्मशूलिने॥२१॥

रुद्र ने कहा कि हे देव! आपने सर्वप्रथम मेरी उत्पत्ति की थी। अतः इन लोगों ने यज्ञ में मेरे भाग की परिकल्पना क्यों कर नहीं किया। हे देवाधिदेव! इसी से मैंने क्रोधपूर्वक इनके ज्ञान का हरण करते हुए इन सबको विकृत करना उचित समझा।।१३।।

ब्रह्माजी ने कहा कि हे सभी देव और असुर! आप सभी अपने ज्ञान की वापसी हेतु ऊँचे स्वर से शम्भु की आराधना हेतु स्तुति करें। इससे भगवान् निश्चय ही सन्तुष्ट होकर आप सबकी सर्वज्ञता वापस प्रदान कर देंगे।।१४।।

देवताओं ने कहा कि देवाधिदेव, जटामुकुटधारी, रक्त व पिङ्गल वर्ण के नेत्रों वाले महात्मा त्रिनेत्र को हम सभी एक साथ प्रणाम करते हैं।।१६।।

आप भूत और बेताल से सेवित, महासर्प का उपवीत धारण करने वाले तथा अपने मुख से भयंकर अट्टहास करने वाले कपर्दी स्थाणु को प्रणाम है।।१७।।

पूषा के दाँतों को तोड़ने वाले, भग नेत्र को भङ्ग करने वाले तथा आगे आने वाले समय में वृषध्वज कहलाने वाले महाभूतपति को प्रणाम है।।१८।।

भविष्य में त्रिपुर और अन्धक नाम के दो असुरों को मारने वाले, श्रेष्ठतम कैलासपर्वत पर निवास करने वाले तथा गजचर्म को धारण करने वाले को प्रणाम है।।१९।।

विकराल ऊर्ध्व केश वाले भैरव को वारम्वार प्रणाम है। अग्नि ज्वाला सदृश भयंकर तथा मस्तक पर चन्द्र को धारण करने वाले आपको प्रणाम है।।२०।।

आने वाले समय में कापालिक जैसा व्रत धारण करने वाले, दारुवन को ध्वंस करने वाले और तीक्ष्णास्त्र त्रिशूल धारण करने वाले परमेष्ठी को प्रणाम है।।२१।।

कृतकङ्कणभोगीन्द्र नीलकण्ठ त्रिशूलिने। प्रचण्डदण्डहस्ताय वडवाग्निमुखाय च॥२२॥
वेदान्तवेद्याय नमो यज्ञमूर्ते नमो नमः। दक्षयज्ञविनाशायय जगद्भयकराय च॥२३॥
विश्वेश्वराय देवाय शिवशंभुभवाय च। कपर्दिने करालाय महादेवाय ते नमः॥२४॥
एवं देवैः स्तुतः शंभुरुग्रधन्वा सनातनः। उवाच देवदेवोऽहं यत्करोमि तदुच्यताम्॥२५॥

देवा ऊचुः

वेदशास्त्राणि विज्ञानं देहि नो भव माचिरम्। यज्ञं च सरहस्यं नो यदि तुष्टोऽसि नः प्रभोः॥२६॥

महादेव उवाच

भवन्त पशवः सर्वे भवन्तु सहिता इत। अहं पतिर्वो भवतां ततो मोक्षमवाप्स्यथ।
तथेति देवास्तं प्राहुस्ततः पशुपतिर्भवत्॥२७॥
ब्रह्मा पशुपतिं प्राह प्रसन्नेनान्तरात्मना। चतुर्दशी ते देवेश तिथिरस्तु न संशयः॥२८॥
तस्यां तिथौ भवन्तं ये यजन्ते श्रद्धयान्विताः। उपोष्य पश्चाद्भुञ्जीयाद्गोधूमान्नेन वै द्विजान्।
तस्य त्वं तुष्टिमापन्नो नय स्थानमनुत्तमम्॥२९॥
एवमुक्तस्तदा रुद्रो ब्रह्मणाऽव्यक्तजन्मना। दन्तान् नेत्रे फले प्रादद्भगपूष्णोः क्रतोरपि।
परिज्ञानं च सकलं स प्रादाच्च सुरेष्वपि॥३०॥

नागराज का कङ्कण धारण करने वाले, नीलकण्ठ, त्रिशूलधारी, हाथ में प्रचण्डदण्ड धारण करने वाले और वडवाग्नि मुख वाले को प्रणाम है।।२२।।

वेदान्तवेद्य को प्रणाम है। यज्ञमूर्ति को वारम्वार प्रणाम है। दक्षयज्ञ ध्वंसक तथा जगत् भीतकारी रुद्र देव को प्रणाम है।।२३।।

हे विश्वेश्वर देव, शिव, शम्भु, भव, कपर्दी कराल आदि नाम वाले महादेव! आपको वारम्वार प्रणाम है।।२४।।

इस प्रकार से देवताओं द्वारा स्तुति किये जाने पर उग्रधन्वा सनातन शम्भु ने कहा कि मैं देवाधिदेव हूँ। मुझे क्या करना है, तुम लोग अपने हित की उन बातों को मुझसे कहो।।२५।।

देवताओं ने कहा कि हे प्रभो! हे भव! यदि आप वास्तव में हम लोगों से प्रसन्न हैं, तो हमें वेदों, शास्त्रों और रहस्यों के साथ यज्ञविज्ञान को प्रदान करने में विलम्ब न करें।।२६।

महादेव ने कहा कि यदि आप सभी एक साथ पशु हो जायँ और मैं आप सबका पति हो जाऊँ, तो उस समय तुम लोग मोक्ष प्राप्त कर सकोगे। फिर देवों ने उनसे कहा कि ऐसा ही हो जाय। उस सयम वे रुद्र पशुपति हो गये।।२७।।

फिर ब्रह्माजी ने अपने प्रसन्न चित्त में पशुपति से कहा कि हे देवेश! निश्चय ही चतुर्दशी तिथि की आधिपत्यता आपकी होगी।।२८।।

अतः उस तिथि में जो कोई श्रद्धा के साथ व्रतोपवास कर आपका पूजन करेगा और ब्राह्मणों को गेहूँ का बना पदार्थ भोजन करायेगा, उनके ऊपर प्रसन्न होकर आप उत्तम स्थान उन्हें प्रदान कर सकेंगे।।२९।।

फिर अव्यक्त जन्मा ब्रह्मदेव के इस प्रकार से कहे जाने पर रुद्र ने पूषा का दाँत, भग का नेत्र और क्रतु का

एवं रुद्रस्य संभूतिः संभूता ब्रह्मणः पुरा। अनेनैव प्रयोगेन देवानां पतिरुच्यते॥३१॥
यश्चैनं शृणुयान्नित्यं प्रातरुत्थाय मानवः। सर्वपापविनिर्मुक्तो रुद्रलोमवाप्नुयात्॥३२॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥३३॥

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

अथ पितरोत्पत्तिः

महातपा उवाच

पितृणां संभवं राजन् कथ्यमानं निबोध मे। पूर्वं प्रजापतिर्ब्रह्मा सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः॥१॥
एकाग्रमनसा सर्वास्तन्मात्रा मनसा बहिः। कृत्वा परमकं ब्रह्म ध्यायन् सर्गेप्सुरुच्चकैः॥२॥
तस्यात्मनि तदा योगं गतस्य परमेष्ठिनः। तन्मात्रा निर्ययुर्देहाद् धूमवर्णाकृतित्विषः॥३॥

वृषण पूर्ववत् होने का वरदान दिया। साथ ही समस्त देवताओं को सभी प्रकार का ज्ञान निःसंकोच प्रदान कर दिया॥३०॥

इस प्रकार पुरातन काल में ब्रह्मा से सर्वप्रथम रुद्र के उत्पन्न होने के कारण वे रुद्र समस्त देवताओं के पति कहे जाते हैं॥३१॥

इस तरह जो कोई भी मनुष्य प्रातःकाल में नित्यप्रति इस कथा को सुनेगा या सुनायेगा, वे सभी जन समस्त पापों से मुक्त होकर रुद्रलोक में निवास करेंगे॥३२॥

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में रुद्रोत्पत्ति, चतुर्दशी तिथि का आधिपत्य, रुद्रयजन का महाफल नामक तैंतीसवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥३३॥

अध्याय-३४

पितरोत्पत्ति, अमावास्या का आधिपत्य और तिलदान महत्त्व

महातपा ने कहा कि हे राजन्! अब मैं यहाँपर पितरों की उत्पत्ति प्रसङ्ग में बतलाने जा रहा हूँ, उसे ध्यान से सुनो। पुरातन काल में ही विविध प्रकार की प्रजा की सर्जना करने हेतु समुद्यत प्रजापति ब्रह्मा ने एकाग्रमन होकर समस्त तन्मात्राओं को अपने चित्त से बाहर कर सृष्टि सर्जना करने की मनसा से अद्वितीय परम ब्रह्म का दृढ़तापूर्वक ध्यान करने में लग गये॥१-२॥

इस प्रकार जिस समय वे अपनी आत्मा में चित्तवृत्तियों का निरोध किये हुए थे, उस समय परमेष्ठी के शरीर से धूम्रवर्ण के आकार की तेजस्वी तन्मात्रायें निकल गईं॥३॥

पिबाम इति भाषन्तः सुरान् सोम इति स्म ह। ऊर्ध्वं जिगमिषन्तो वै वियत्संस्थास्तपस्विनः॥४॥
तान् दृष्ट्वा सहसा ब्रह्मा तिर्यक्संस्थान उन्मुखान्। भवन्तः पितरः सन्तु सर्वेषां गृहमेधिनाम्॥५॥
ऊर्ध्ववक्त्रास्तु ये तत्र ते नान्दीमुखसंज्ञिताः। वृद्धिश्राद्धेषु सततं पूज्या श्रुतिविधानतः॥६॥

अग्निं पुरस्कृतो यैस्तु ते द्विजा अग्निहोत्रिणः।
नित्यैर्नैमित्तिकैः काम्यैः पार्वणैस्तर्पयन्तु तान्॥७॥
बहिःप्रवरणा ये च क्षत्रियास्तर्पयन्तु तान्।
आज्यं पिबन्ति ये चात्र तानर्चयन्तु विशः सदा॥८॥

ब्राह्मणैरभ्यनुज्ञाताः शूद्राः स्वपितृनामतः। तानेवार्चयतां सम्यग्विधिमन्त्रबहिष्कृताः॥९॥
अनाहिताग्नयो ये च ब्रह्मक्षत्रविशो नराः। स्वकालिनस्तेऽर्चयन्तु लोकाग्निपुरतः सदा॥१०॥

इत्येवं पूजिता यूयमिष्टान् कामान् प्रयच्छत।
आयुः कीर्त्तिं धनं पुत्रान् विद्यामभिजनं स्मृतिम्॥११॥

इत्युक्त्वा तु तदा ब्रह्मा तेषां पन्थानमाकरोत्। दक्षिणायनसंज्ञं तु पितृणां च पितामहः॥१२॥
तूष्णीं ससर्ज भूतानि तमूचुः पितरस्ततः। वृत्तिं नो देहि भगवन् यया विन्दामहे सुखम्॥१३॥

'हम सोमपान करेंगे' इस प्रकार से देवताओं से कहकर ऊपर की ओर जाने हेतु उद्यत वे सभी तपस्वी आकाश में स्थित हो गये थे।।४।।

ऊपर की दिशा में मुख किये हुए तिरछे रूप से आकाश में स्थित, उन तपस्वियों को अचानक देखकर ब्रह्माजी ने कहा कि 'आप लोग सभी के सभी गृहस्थों के पितृगण हैं'।।५।।

उन पितरों में जो ऊर्ध्वमुख थे, वे नान्दीमुख नामक पितृगण थे। वृद्धि श्राद्धों में श्रुति विधान के अनुरूप उनका पूजन करना श्रेयस्कर है।।६।।

जिन द्विजों ने अग्नि को पुस्कृत किया है, वे अग्निहोत्री जन नित्य, नैमित्तिक, काम्य एवं पार्वण श्राद्धों द्वारा उन पितृगणों को तृप्त करने का यत्न करें।।७।।

क्षत्रिय उन पितरों का तर्पण करें, जो बहिः प्रवरण नाम के हैं। वैश्य हमेशा उन पितरों का तर्पण करें, जो उनमें घृतपान करने वाले हैं।।८।।

शूद्र ब्राह्मणों की आज्ञा से विना विधि और मन्त्र के अपने पितादि के नाम से उन्हीं घृतपान करने वाले पितरों का तर्पण करें।।९।।

अनाहिताग्नि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्ण वाले जन हमेशा लोक और अग्नि के सम्मुख सुकालिन् नामक पितरों का पूजन करें।।१०।।

इस तरह से पूजित हो-होकर आप सभी आयुष्य, कीर्त्ति, धन, पुत्र, विद्या, सत्कुल, स्मृति आदि इष्ट कामनाओं को पूर्ण किया करें।।११।।

इस प्रकार से कहते हुए ब्रह्मदेव ने उन पितरों के लिए दक्षिणायन नाम के मार्ग को प्रदान कर दिया।।१२।।

तत्पश्चात् ब्रह्मदेव मौन धारण कर प्रजाओं के सृजन कार्य में संलग्न हो गये। पितरों ने उन ब्रह्मदेव से कहा कि हे भगवन्! हमें वृत्ति प्रदान करने की कृपा करें, जिससे हमें भी सुख प्राप्त हो सके।।१३।।

ब्रह्मा उवाच

अमावास्यादिनं वोऽस्तु तस्यां कुशतिलोदकैः। तर्पिता मानुषैस्तृप्तिं परां गच्छथ नान्यथा॥१४॥
तिला देयास्तथैतस्यामुपोष्य पितृभक्तितः। परमं तस्य संतुष्टा वरं यच्छत मा चिरम्॥१५॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः॥३४॥

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

अथ सोमोत्पत्तिः

महातपा उवाच

ब्रह्मणो मानसः पुत्रः अत्रिर्नाम महातपाः। तस्य पुत्रोऽभवत्सोमो दक्षजामातृतां गतः॥१॥
सप्तविंशति याः कन्या दाक्षायण्यः प्रकीर्त्तिताः।
सोमपत्न्योऽतिमन्तव्यास्तासां श्रेष्ठा तु रोहिणी॥२॥
तामेव रमते सोमो नेतरा इति शुश्रुमः। इतराः प्रोचुरागत्य दक्षस्यासमतां शशेः॥३॥

ब्रह्मा ने कहा कि आप लोगों के लिए अमावास्या का दिन मैं प्रदान करता हूँ। उस तिथि के दिन जिन मनुष्यों द्वारा कुश संयुक्त तिल और जल से तर्पण किया जाएगा, उससे आप लोगों को परमतृप्ति प्राप्त हो सकेगी। अन्य किसी भी प्रकार से आप लोगों को तृप्ति कठिन होगी।।१४।।

अतः इस अमावास्या तिथि में व्रत कर पितृभक्ति प्रदर्शन पूर्वक तिल दान करना अत्यन्त श्रेयस्कर है। इस प्रकार से करने वाले पुरुष पर परम प्रसन्न होकर आप शीघ्र वर प्रदान किया करेंगे।।१५।।

।।इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में पितरोत्पत्ति, अमावास्या का आधिपत्य और तिलदान महत्त्व नामक चौंतीसवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ।।३४।।

अध्याय–३५

सोमोत्पत्ति और उसका महत्त्व तथा पूर्णिमा तिथि आधिपत्य

महातपा ने कहा कि ब्रह्मदेव का अत्रि नाम से महातपस्वी एक मानस पुत्र था। उसे भी सोम नाम का एक पुत्रा हुआ। जो दक्ष का दामाद बना था।।१।।

दक्ष की सत्ताइस कन्यायें जहाँ कही जाती हैं, वहाँ से उन सबों को सोम की पत्नियाँ समझनी चाहिए। जिनमें रोहिणी सबसे श्रेष्ठ मानी गई है।।२।।

इस प्रकार कहा जाता है कि सोम उस रोहिणी के ही साथ केवल रमण किया करता था। अपनी अन्य पत्नियों के साथ रमण नहीं करने से चन्द्र या सोम की अन्यान्य पत्नियों ने दक्ष के पास पहुँच कर उनसे सोम के इस कुटिल व्यवहार को कह दिया।।३।।

दक्षोऽप्यसकृदागत्य तमुवाच स नाकरोत्। समतां सोऽपि तं दक्षः शशापन्तर्हितो भव॥४॥
एवं शप्तस्तु दक्षेण सोमो देहं त्यजेदथ। उवाच सोमो दक्षं तु भवानेवं भविष्यति।
अनेकतो विहायेमं ब्रह्मदेहं सनातमन्॥५॥
एवमुक्त्वा क्षयं सोम गमद् दक्षशापतः। देवा मनुष्याः पशवो नष्टे सोमे सवीरुधः॥६॥
क्षीणाभवंस्तदा सर्वा ओषध्यश्च विशेषतः। क्षयं गच्छद्भिरत्यर्थमोषधीभिः सुरर्षभाः॥७॥
मूलेषु वीरुधां सोमः स्थित इत्यूचुरातुराः। तेषां चिन्ताऽभवत् तीव्रा विष्णुं च शरणं ययुः॥८॥
भगवानाह तान् सर्वान् ब्रूत किं क्रियते मया। ते चोचुर्देव दक्षेण शप्तः सोमो विनाशितः॥९॥
तानुवाच तदा देवो मथ्यतां कलशोदधिः। ओषध्यः सर्वतो देवाः प्रक्षिप्याशु सुसंयतैः॥१०॥
एवमुक्त्वा ततो देवान् दध्यौ रुद्रं हरिः स्वयम्। ब्रह्माणं च तथा दध्यौ वासुकिं नेत्रकारणात्॥११॥
ते सर्वे तत्र सहिता ममन्थुर्वरुणालयम्। तस्मिंस्तु मथिते जातः पुनः सोमो महीपते॥१२॥
योऽसौ क्षेत्रज्ञसंज्ञो वै देहेऽस्मिन् पुरुषः परः। स एव सोमो मन्तव्यो देहिनां जीवसंज्ञितः।
परेच्छया स मूर्त्तिं तु पृथक् सौम्यां प्रपेदविान्॥१३॥

इस पर दक्ष के द्वारा बारम्बार समझाने पर भी सोम ने उन पत्नियों के साथ समान व्यवहार करने से कतराता ही रह गया। फिर उस समय दक्ष ने उसे शाप दे डाला कि तुम अन्तर्हित (क्षीण) हो जाओ।।४।।

तत्पश्चात् दक्ष के उपरोक्त श्राप के कारण सोम अपना शरीर त्याग कर दिया। सोम ने भी श्राप देने वाले दक्ष को इस तरह से कहा कि आप भी इस सनातन ब्रह्मदेह को त्याग कर अनेक से उत्पन्न हो सकेंगे।।५।।

इस प्रकार दक्ष के शाप के अनुरूपं सोम का क्षय हो गया। फिर तो सोम के क्षयित होने पर वनस्पतियों के साथ समस्त देव, मनुष्य, पशु आदि सभी क्षीणता को प्राप्त होते चले गये। फिर तो समस्त ओषधियाँ विशेष रूप से नष्ट प्राय हो गयीं और ओषधियों के क्षीणता से श्रेष्ठ देवता भी क्षीणतर होते चले गये।।६-७।।

तत्पश्चात् इस तरह से व्याकुल देवताओं ने कहा कि वनस्पतियों के मूल में सोम का निवास कहा गया है। उन्हें अत्यधिक व्यग्रता हो गई कि आखिर सोम की उपलब्धि कैसे की जा सकेगी। इस पर वे सभी देवगण विष्णु जी के शरण में पहुँच गए।।८।।

भगवान् विष्णु ने उन देवताओं से कहा कि बतलाओं कि मैं ऐसा क्या करूँ, जिससे आप सभी का कल्याण हो सके। उन देवों ने कहा कि हे देव! दक्ष के शापवश सोम विनष्ट हो गया है।।९।।

फिर भगवान् विष्णु देव ने उनसे कहा कि हे देवताओं! समस्त प्रकार की ओषधियों को संग्रहीत कर एकाग्रचित्त होकर शीघ्र कलशात्मक समुद्र में उन्हें डालकर मन्थन करो।।१०।।

तत्पश्चात् इस प्रकार से कहते हुए समुद्रमन्थन की देखभाल के लिए स्वयं श्रीहरि विष्णु ने रुद्र, ब्रह्मा और रस्सी बनने हेतु वासुकी का ध्यान किया।।११।।

हे राजन्! वे सभी वहाँ एकत्रित होकर एक साथ मिलकर समुद्र को मथने का काम करने लगे। उस समय समुद्र के मन्थन करने से सोम फिर से उत्पन्न हो गया।।१२।।

प्रायः समस्त देह में क्षेत्रज्ञ नाम से स्थित परम पुरुष ही 'सोम' हैं। उसे ही शरीर धारियों का प्राण (जीव) समझा जाना चाहिए। परमपुरुष अपनी इच्छा से पृथक् सौम्य मूर्त्ति में स्थित रहा करते हैं।।१३।।

तमेव देवमनुजाः षोडशेमाश्च देवताः। उपजीवन्ति वृक्षाश्च तथैवोषधयः प्रभुम्॥१४॥
रुद्रस्तमेव सकलं दधार शिरसा तदा। तदात्मिका भवन्त्यापो विश्वमूर्तिरसौ स्मृतः॥१५॥
तस्य ब्रह्मा ददौ प्रीतः पौर्णमासीं तिथिं प्रभुः। तस्यामुपोषयेद् राजंस्तमर्थं प्रतिपादयेत्॥१६॥
यवान्नहारश्च भवेत् तस्य ज्ञानं प्रयच्छति। कान्तिं पुष्टिं च राजेन्द्र धनं धान्यं च केवलम्॥१७॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे पञ्चत्रिंशोऽध्यायः॥३५॥
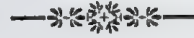
षट्त्रिंशोऽध्यायः

अथ प्रजापालेन गोविन्दस्तुतिः

महातपा उवाच

आदित्रेतासु राजानो मणिजा ये प्रकीर्त्तिताः।
कथयिष्यामि तान् राजन् यत्र जातोऽसि पार्थिव॥१॥

देवता, मनुष्य, एकादश इन्द्रिय और पञ्चमहाभूतों के अधिष्ठाता सोलह क्षेत्र देवता, वृक्ष, ओषधियाँ आदि उसी सोम नाम के प्रभु के आश्रय से जीवित हैं।।१४।।

फिर रुद्र भी कलाओं सहित उसी को अपने शिर पर धारण किये हुए हैं। जल भी उसी का अपर स्वरूप है। उसे विश्व मूर्त्ति कहा गया है।।१५।।

प्रभु ब्रह्मदेव ने भी उसे प्रसन्नता के साथ पूर्णिमा तिथि प्रदान किया है। उस तिथि में उपवास या व्रत करते हुए उसके निमित्त धन व वस्तु का दान करना चाहिए।।१६।।

हे राजन्! उस पूर्णिमा तिथि को जो जन जौ का बना पकवान आहार रूप में ग्रहण करेगा, उसे चन्द्र देवता ज्ञान, कान्ति, पुष्टि, धन, धान्य और कैवल्य पद सभी कुछ प्रदान करते हैं।।१७।।

।।इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में सोमोत्पत्ति और उसका महत्त्व तथा पूर्णिमा तिथि आधिपत्य नामक पैंतीसवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ।।३५।।

अध्याय-३६

प्रजापाल राजा का गोविन्द स्तुति सायुज्य

महातपा ने कहा कि हे राजन्! आदि त्रेतायुग में मणि से उत्पन्न होने वाले राजजन, जिनकी परम्परा में हे राजन्! तुम भी उत्पन्न हुए हो, जिनके बारे में आगे इस समय बतलाया हूँ।।१।।

योऽसौ सुप्रभनामासीत् स त्वं राजन् कृते युगे।
जातोऽसि नाम्ना विख्यातः प्रजापालेति शोभनः॥२॥

शेषास्त्रेतायुगे राजन् भविष्यन्ति महाबलाः। यो दीप्ततेजा मणिजः स शन्तेति प्रकीर्तितः॥३॥
सुरश्मिर्भविता राजा शशकर्णो महाबलः। शुभदर्शनः पाञ्चालो भविष्यति नराधिपः॥४॥
सुशान्तिरङ्गवंशे वै सुन्दरोऽप्यङ्ग इत्युत। सुन्दश्च मुचुकुन्दोऽभूत्सुद्युम्नस्तुर एव च॥५॥
सुमनाः सोमदत्तस्तु शुभः संवरणोऽभवत्। सुशीलो वसुदानस्तु सुखदो सुपतिर्भवत्॥६॥
शम्भुः सेनापतिरभूत् सुकान्तो दशरथः स्मृतः। सोमोऽभूज्जनको राजा एते त्रेतायुगे नृप॥७॥

सर्वे भूमिमिमां राजन् भुक्त्वा ते वसुधाधिपाः।
इष्ट्वा च विविधैर्यज्ञैर्दिवं प्राप्स्यन्त्यसंशयम्॥८॥

श्रीवराह उवाच

एवं श्रुत्वा स राजर्षिर्ब्रह्मविद्याऽमृतं प्रभुः। आख्यानं परमं प्रीतस्तपश्चर्तुमियाद् वनम्॥९॥
ऋषिरध्यात्मयोगेन विहायेदं कलेवरम्। ब्रह्मभूतोऽभवद्धात्रि हरौ लयमवाप च॥१०॥
वृन्दावनं च राजाऽसौ तपोऽर्थं गतवान् प्रभुः। तत्र गोविन्दनामानं हरिं स्तोतुमथारभत्॥११॥

हे राजन्! जिस राजा का नाम कृतयुग में सुप्रभ था, वही राजा उत्पन्न होकर तुम्हारे रूप में प्रजापाल नाम से सुख्यात हुए हैं।।२।।

हे राजन्! दूसरे-दूसरे शेष महाबलशाली लोग त्रेतायुग में जन्म लेंगे और उस मणि से उत्पन्न होने वाला राजा दीप्ततेजा को शन्त कहा जा सकेगा।।३।।

इसी तरह सुरश्मि शशकर्ण नाम के महाबलशाली राजा भी होगा, जो शुभ दर्शन वाला और पाञ्चालदेश का राजा हो सकेगा।।४।।

अंगवंश में उत्पन्न होने वाला सुशान्ति सुन्दर नाम से अङ्गदेश का राजा होगा। वहीं सुन्द मुचुकुन्द नाम का राजा भी होगा और सुद्युम्न तुर नाम का राजा भी होगा।।५।।

सुमना सोमदत्त, शुभ संवरण, सुशील वसुदान और सुखद सुपति नाम के राजाजन होंगे।।६।।

शम्भु को सेनापति, सुकान्त को दशरथ और सोम को जनक नाम के राजा हो सकेंगे। हे राजन्! ये सब त्रेतायुग में होने वाला राजा इस भूमण्डल का भोगकर और विविध प्रकार के यज्ञ सम्पादित कर निश्चय ही स्वर्ग प्राप्त कर सकेंगे।।७-८।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि वह राजर्षि प्रभु अमृत सदृश ब्रह्म विद्या के प्रसङ्ग में श्रेष्ठ आख्यान् सुनकर प्रसन्नता के साथ वन में तप करने हेतु पहुँच गया।।९।।

हे पृथ्वी! वह राजर्षि अध्यात्म योग से देह का त्याग करते हुए ब्रह्मस्वरूप को पाकर श्रीहरि विष्णु में अपने आपको विलय कर लिया।।१०।।

वह राजा प्रभु तपस्या के लिए वृन्दावन गया, जहाँ वह गोविन्द नाम के श्रीहरि की स्तुति करने में संलग्न हो गया।।११।।

राजोवाच

नमामि देवं जगतां च मूर्त्तिं गोपेन्द्रमिन्द्रानुजमप्रमेयम्।
संसारचक्रक्रमणैकदक्षं क्षितीधरं देववरं नमामि॥१२॥
भवोदधौ दुःखशतोर्म्मिभीमे जरावर्त्ते कृष्णपातालमूले।
तदन्तमेको दधते सुखं मे नमोऽस्तु ते गोपतिरप्रमेय॥१३॥
व्याध्यादियुक्तः पुरुषैर्ग्रहैश्च सङ्घट्टमानं पुनरेव देव।
नमोऽस्तु ते युद्धरते महात्मा जनार्दनो गोपतिरुग्रबाहुः॥१४॥
त्वमुत्तमः सर्वविदां सुरेश त्वया ततं विश्वमिदं समस्तम्।
गोपेन्द्र मां पाहि महानुभाव भवाद्भीतं तिग्मरथाङ्गपाणे॥१५॥
परोऽसि देव प्रवरः सुराणां पुंसः स्वरूपोऽसि शशिप्रकाशः।
हुताशवक्त्राच्युत तीव्रभाव गोपेन्द्र मां पाहि भवे पतन्तम्॥१६॥
संसारचक्रक्रमणान्यनेकान्याविर्भवन्त्यच्युत देहिनां यत्।
त्वन्मायया मोहितानां सुरेश कस्ते मायां तरते द्वन्द्वधामा॥१७॥
अगोत्रमस्पर्शमरूपगन्धमनामनिर्देशमजं वरेण्यम्।
गोपेन्द्र त्वां यद्युपासन्ति धीरास्ते मुक्तिभाजो भवबन्धमुक्ताः॥१८॥

राजा ने कहा कि मैं जगत् के मूर्त्तिस्वरूप, गोपेन्द्र, इन्द्रानुज, अप्रमेय, संचार चक्र को पार कराने में अत्यन्त प्रवीण, पृथ्वीमण्डल को धारण करने वाले और देवताओं में श्रेष्ठ देव को प्रणाम करता हूँ।।१२।।

दुःख रूपी सैकड़ों लहरों से भी भयानक भासित होने वाला, वृद्धावस्था रूपी आच्छादन से आच्छादित, पाताल, मूलस्वरूप श्रीकृष्ण रूपी भवसागर के अन्दर स्थित अद्वितीय देव, मुझे सुख प्रदान करें, मैं उन अप्रमेय गोपति को प्रणाम करता हूँ।।१३।।

आधि-व्याधियों आदि से ग्रसित और ग्रहरूपी यमदूतों द्वारा घसीटे जाते मुझ जैसे पुरुषों का आप उद्धार किया करते हैं। हे उग्रबाहु! हे गोपति महात्मा जनार्दन आदि देव आपको प्रणाम है।।१४।।

हे सुरेश! आप सर्वश्रेष्ठ सर्वज्ञ हैं। यह सम्पूर्ण संसार आप में व्याप्त है। हे चक्रपाणि महानुभाव गोपेन्द्र! मैं इस जगत् में भयों से युक्त हूँ। आप मेरी रक्षा करें।।१५।।

आप समस्त देवताओं में परमश्रेष्ठ देव हैं। आप चन्द्रमा के प्रकाश के सदृश पुरुष स्वरूप हैं। हे अग्नि के समान तेजवान् मुख वाले तीव्रभाव सम्पन्न गोपेन्द्र अच्युत! इस संसार रूपी सागर में मैं गिरने वाला हूँ, आप मेरी रक्षा करें।।१६।।

हे अच्युत! वैसे आपही की माया पाश से सम्मोहित शरीरधारियों के ऊपर विविध प्रकार के संसार रूपी चक्र चला करते हैं। अतः हम समस्त प्राणियों के वश में कहाँ कि आपके माया रूपी द्वन्द्वों के धाम को लाँघने की चेष्ट भी कर सकूँ। हे गोपेन्द्र! गोत्र, स्पर्श, रूप, गन्ध, नाम एवं निर्देश से रहित अजन्मा एवं वरणीय आपकी उपासना करने वाले धीरप्राणी संसार बन्धन से मुक्त होकर मोक्ष प्राप्त करते हैं।।१७-१८।।

शब्दातिगं व्योमरूपं विमूर्त्तिं विकर्मिणां शुभभावं वरेण्यम्।
चक्राब्जपाणिं तु तथोपचारादुक्तं पुराणे सततं नमामि॥१९॥
त्रिविक्रमं क्रान्तजगत्त्रयं च चतुर्मूर्त्तिं विश्वगतां क्षितीशम्।
शम्भुं विभुं भूतपतिं सुरेशं नमाम्यहं विष्णुमनन्तमूर्तिम्॥२०॥
त्वं देव सर्वाणि चराचराणि सृजस्यथो संहरसे त्वमेव।
मां मुक्तिकामं नय देव शीघ्रं यस्मिन् गता योगिनो नापयान्ति॥२१॥
जयस्व गोविन्द महानुभाव जयस्व विष्णो जय पद्मनाभ।
जयस्व सर्वज्ञ जयाप्रमेय जयस्व विश्वेश्वर विश्वमूर्त्ते॥२२॥

श्रीवराह उवाच

एवं स्तुत्वा तदा राजा निधाय स्वं कलेवरम्। परमात्मनि गोविन्दे लयमागाच्च शाश्वते॥२३॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे षट्त्रिंशोऽध्यायः॥३६॥

आप शब्दातीत, व्योम स्वरूप, त्रिमूर्त्ति, पुण्यकर्मियों के सद्भाव स्वरूप, वरणीय, अपने हाथों में कमल और चक्र धारण करने वाले और पुराणपुरुष के रूप में लाक्षणिकता से वर्णित परमपुरुष को मैं सदा ही प्रणाम करता हूँ।।१९।।

आप त्रिलोकों का अतिक्रमण करने में सक्षम, त्रिविक्रम, ब्रह्माण्ड में व्याप्त चतुर्मूर्त्ति, क्षितीश, शम्भु, विभु, भूतपति, सुरेश और अनन्तमूर्त्ति रूप विष्णु को मैं प्रणाम करता हूँ।।२०।।

हे देव! आप ही समस्त चराचर सर्जनहार औरसंहार करने वाले हैं। हे देव! मुझ जैसे मुक्ति की आकांक्षा वालों को शीघ्रता से वहाँ भेज दें, जहाँ से योगीजन भी पुनः पुनः वापस नहीं आना चाहते।।२१।।

हे महानुभाव देव! गोविन्द! सदा आपकी जय हो। हे विष्णो! आपकी जय हो। हे पद्मनाभ! आपकी जय हो। हे सर्वज्ञ! आपकी जय हो। हे अप्रमेय! आपकी जय हो। हे विश्वमूर्त्ति विश्वेश्वर! आपकी जय हो।।२२।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि इस प्रकार से स्तुति करने वाला राजा अपना शरीर त्याग कर शाश्वत परमात्मा गोविन्द में उनकी इच्छा से विलीन हो गये।।२३।।

॥इस प्रकार भगवच्छशास्त्र श्रीवराहपुराण में प्रजापाल राजा का गोविन्द स्तुति सायुज्य नामक छत्तीसवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा. द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥३६॥

❖❖❖

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

अथ धर्मव्याधोपाख्यानम्

धरण्युवाच

कथमाराध्यसे देव भक्तिमद्भिर्नरैर्विभो। स्त्रीभिर्वा सर्वमेतन्मे शंस त्वं भूतभावन॥१॥

श्रीवराह उवाच

भावसाध्योऽस्म्यहं देवि न वित्तैर्न जपैरहम्।
साध्यस्तथाऽपि भक्तानां कायक्लेशं वदामि ते॥२॥
कर्मण मनसा वाचा मच्चित्तो यो नरो भवेत्।
तस्य व्रतानि धास्यामि विविधानि निबोध मे॥३॥

अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यमकल्कता। एतानि मानसान्याहुर्व्रतानि तु धराधरे॥४॥
एकभक्तं तथा नक्तमुपवासादिकं च यत्। तत्सर्वं कायिकं पुंसां व्रतं भवति नान्यथा॥५॥
मौनं चाध्ययनं चैव देवस्तुत्यर्थकीर्तितम्। निवृत्तिश्चापि पैशुन्याद् वाचिकं व्रतमुत्तमम्॥६॥
अत्रापि श्रूयते चान्यदृषिरुग्रतपाः पुरा। ब्रह्मपुत्रः पुरा कल्पे आरुणिर्नाम नामतः॥७॥

अध्याय–३७

धर्मव्याधाख्यान और विष्णुनाम माहात्म्य

धरणी ने पूछा कि हे विभो! हे भूतभावन! कोई भी भक्तिभाव सम्पन्न स्त्री या पुरुष कैसे आपकी आराधना कर सकते हैं? आप ये सब मुझे बतलाने की कृपा करें।।१।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि हे देवि! भाव से ही मेरी उपासना सम्भव होती है। मैं धन या जप द्वारा साध्य नहीं हूँ। फिर भी मैं भक्तों को उनके प्रयास से प्राप्त होता हूँ। अब यहाँ उनके शारीरिक क्लेश को कहने जा रहा हूँ।।२।।

जो कोई भी जन मनसा, वाचा और कर्मणा मेरा चिन्तन करता रहता है, मैं उनके द्वारा किये जाने योग्य व्रतों को बतलाता हूँ, उन्हें सुनो।।३।।

हे पृथ्वी! अहिंसा, सत्य, आस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं निष्पाप बुद्धि; ये सब मनुष्य द्वारा किये जाने योग्य मानस व्रत बतलाये गये हैं।।४।।

एक अहोरात्र के दिन भाग में भोजन करना तथा रात्रि भाग में उपवास करना आदि ये सब मनुष्यों के कालिक व्रत हैं, जो कभी भी निरर्थक नहीं होते हैं।।५।।

मौन रहना, अध्ययन करना, देवता की स्तुति हेतु भजन करना, पिशुनता से निवृत्त रहना आदि ये उत्तम वाचिक व्रत हैं।।६।।

इस प्रसङ्ग में इस प्रकार का एक अन्य उपाख्यान सुना जाता है कि पुरातन कल्प में आरूणि नाम का एक उग्र तपस्वी ब्राह्मण था।।७।।

सोऽरण्यमगमत् किञ्चित् तपोऽर्थी द्विजसत्तमः। तपस्तेपे ततस्तस्मिन्नुपवासपरायणः॥८॥
देविकायास्तटे रम्ये सोऽवसद् ब्राह्मणः किल। कदाचिदभिषेकाय स जागम तत्र महानदीम्॥९॥
तत्र स्नात्वा जपन् विप्रो ददर्शायान्तमग्रतः। व्याधं महाधनुःपाणिमुग्रनेत्रं विभीषणम्॥१०॥
तं द्विजं हन्तुमायात् स वल्कलानां जिघृक्षया। तं दृष्ट्वा क्षुभितो विप्रो ब्रह्मघ्नस्य भयादिति।
ध्यायन् नारायणं देवं तस्थौ तत्रैव स द्विजः॥११॥
तं दृष्ट्वाऽन्तर्गतहरिं व्याधो भीत इवाग्रतः। विहाय सशरं चापं ततो वचनमब्रवीत्॥१२॥

व्याध उवाच

हन्तुमिच्छुरहं ब्रह्मन् भवन्तं प्रागिहागतः। इदानीं दर्शनात् तुभ्यं सा मतिः क्वापि ते गता॥१३॥
ब्राह्मणानां सहस्राधि सस्त्रीणामयुतानि च। निहतानि मया ब्रह्मन् निहतौ च कुटुम्बिनौ॥१४॥
नरकेऽभ्यधिकं चित्तं कदाचिदपि विद्यते। इदानीं तप्तुमिच्छामि तपोऽहं त्वत्समीपतः।
उपदेशप्रदानेन प्रसादं कर्तुमर्हसि॥१५॥
एवमुक्तोऽप्यसौ विप्रो नोत्तरं प्रत्यपद्यत। ब्रह्महा पापकर्मेति मत्वा ब्राह्मणपुंगवः॥१६॥
अनुक्तोऽपि स धर्मेप्सुर्व्याधस्तत्रैव तस्थिवान्।
स्नात्वा नद्यां द्विजः सोऽपि वृक्षमूलमुपाश्रितः॥१७॥

वह उत्तम ब्राह्मण तप करने के लिए वन में चला गया और वहाँ पर वह उपवास करते हुए तपस्यारत हो गया। वह ब्राह्मण देविका नदी के रमणीय तट पर रह रहा था। किसी समय वह स्नान करने उस देविका महानदी में गया हुआ था।।८-९।।

जिससमय वह स्नान आदि से निवृत्त होकर जप करने में संलग्न था, उस समय उस ब्राह्मण ने देखा कि अपने हाथ में महाधनुष धारण किये हुए उग्रनेत्रों वाले भयानक व्याध मेरे ही सामने से आ रहा है।।१०।।

वह व्याध उस ब्राह्मण के वल्कलों को हरने की इच्छा से उस ब्राह्मण को मारने हेतु प्रस्तुत हो गया। उसके उद्देश्य का अनुमान कर वह ब्राह्मण बहुत क्षुब्ध-सा हो गया तथा उस ब्रह्मघाती व्याध के भय से वह नारायण देव का ध्यान करते हुए वहीं के वहीं खड़ा रह गया।।११।।

इस तरह हृदय में श्रीहरि विष्णु का ध्यान करने वाले उस ब्राह्मण को देखकर वह व्याध भयभीत होने के समान बाध के साथ धनुष उस ब्राह्मण के सम्मुख में रखते हुए कहने लगा।।१२।।

व्याध ने कहा कि हे ब्रह्मन्! मैं यहाँ आपको पहले तो मारने हेतु ही आया था, लेकिन आपके दर्शन करने पर इस समय मेरी वह बुद्धि कहीं विलुप्त-सी हो गई है।।१३।।

वैसे तो मैंने सहस्रों ब्राह्मणों, स्त्रियों और उनकी कुटुम्बियों को यमलोक भेजा है।।१४।।

किसी समय मेरा चित्त तस्करों से भी अधिक निर्दयी था। लेकिन इस समय मैं आपके पास रहकर तप करने की इच्छा रखता हूँ। अतः उपदिष्ट कर मेरे ऊपर अनुग्रह करें।।१५।।

इस प्रकार से उस व्याध द्वारा कहे जाने पर भी उस श्रेष्ठ ब्राह्मण ने उसे ब्रह्मघाती और पापकर्म करने वाला समझ कर कुछ भी उत्तर नहीं दिया।।१६।।

फिर भी उस ब्राह्मण द्वारा कुछ भी उत्तर नहीं दिये जाने पर भी वह धर्माभिलाषी व्याध वहीं के वहीं स्थित ही रहा। वह ब्राह्मण भी स्नान-पूजा से निवृत्त हो, उसी वृक्ष के नीचे स्थित हो गया।।१७।।

कस्यचित् त्वथ कालस्य तां नदीमगमत् किल। व्याघ्रो बुभुक्षितः शान्तं तं विप्रं हन्तुमुद्यतः॥१८॥

अन्तर्जलगतं विप्रं यावद् व्याघ्रो जिघृक्षति।
तावद् व्याधेन विद्धोऽसौ सद्यः प्राणैर्वियोजितः॥१९॥

तस्माद् व्याघ्रशरीरात् तु उत्थाय पुरुषः किल। विप्रश्चान्तर्जले मग्नः श्रुत्वा तं शब्दमाकुलम्।
नमो नारायणायेति वाक्यमुच्चैरुवाच ह॥२०॥

व्याघ्रेणापि श्रुतो मन्त्रः प्राणैः कण्ठस्थितैस्ततः। श्रुतमात्रे जहौ प्राणान् पुरुषचाभवच्छुभः॥२१॥

सोऽब्रवीद् यामि तं देशं यत्र विष्णुः सनातनः। त्वत्प्रसादाद् द्विजश्रेष्ठ मुक्तपाप्मा निरामयः॥२२॥

इत्युक्तो ब्राह्मणः प्राह कोऽसि त्वं पुरुषर्षभ। सोऽब्रवीत् तस्य राजेन्द्रः प्रतापी पूर्वजन्मनि।
दीर्घबाहुरिति ख्यातः सर्वधर्मविशारदः॥२३॥

अहं जानामि वेदांश्च अहं वेद्मि शुभाशुभम्। ब्राह्मणे नैव मे कार्यं किं वस्तु ब्राह्मणा इति॥२४॥

तस्यैवं वादिनो विप्राः सर्वे क्रोधसमन्विताः। ऊचुः शापं दुराधर्षः क्रूरो व्याघ्रो भविष्यसि॥२५॥

अवमानात् तु विप्राणां सत्यान्तं स्मरणं तव। मृत्युकालेन संमूढ केशवेन भविष्यति॥२६॥

कुछ समय बीत जाने पर उस नदी के उसी तट पर जब ब्राह्मण पुनः जल में उतरा था एक भूखा व्याघ्र उपस्थित हो गया हौर उस शान्तचित्त ब्राह्मण को मारने हेतु उद्यत हुआ।।१८।।

इस तरह जैसे ही जल में स्थित उस ब्रह्मण को व्याघ्र ने पकड़ने की चेष्टा की, वैसे ही उस व्याध ने भी उस व्याघ्र को अपने धनुष के बाण से विद्ध कर उसके शरीर को प्राणरहित कर दिया।।१९।।

फिर इधर ब्राह्मण ने भी व्याघ्र को देखते ही ऊँचे स्वर से 'नमो नारायणाय' इस महामन्त्र का उच्चारण किया। फ़िर जल के अन्दर डूब-सा गया। उस शब्द को बाण लगने से व्याकूल व्याघ्र ने भी सुना और उसके शरीर से एक दिव्य पुरुष-सा प्रकट हो गया।।२०।।

बाण लगने से अपने कण्ठगत प्राणों वाले व्याघ्र ने जब वह मन्त्र सुना, सुनते ही अपना प्राण त्याग दिया और एक सुन्दर पुरुष के रूप में प्रकट हो गया।।२१।।

फिर उसने कहा कि हे द्विजश्रेष्ठ! आपकी कृपा प्रसाद से मैं इस समय पापरहित और सर्वदोषों से हीन होकर उस स्थान पर जा रहा हूँ, जहाँ सनातन विष्णु अवस्थित हैं।।२२।।

उसके इस प्रकार से कहने पर ब्राह्मण ने कहा कि हे पुरुष श्रेष्ठ! आप कौन हैं? फिर उसने भी कहा कि मैं पूर्व के जन्म में दीर्घबाहु नाम का समस्त धर्म का ज्ञाता प्रतापी श्रेष्ठ राजा था।।२३।।

मेरे द्वारा इस प्रकार के कथन कि 'मैं ही वेदों का ज्ञाता हूँ। मैं शुभ और अशुभ को जानने वाला हूँ। किसी ब्राह्मण से मुझे कोई प्रयोजन नहीं है। ब्राह्मण क्या वस्तु है। आदि कहा गया था।।२४।।

उस समय जब मैं इस प्रकार से बोल ही रहा था कि तब मुझ जैसे राजा को सभी ब्राह्मणों ने रोषपूर्वक श्रापित किया था कि 'तुम उग्र और क्रूर व्याघ्र होओगे।।२५।।

एवं हे मूढ़! ब्राह्मणों के अपमान के कारण तुम्हारी स्मृति भी जाती रहेगी तथा तुम्हें अपनी मृत्यु के समय केशव देव से फिर से तुम्हारी यह स्मृति वापस प्राप्त होगी।।२६।।

इत्युक्तोऽहं पुरा तैस्तु ब्राह्मणैर्वेदपारगैः। तमेव सर्वं संप्राप्तो ब्रह्मशापं सुपुष्कलम्॥२७॥
ततस्ते ब्राह्मणा सर्वे प्रणिपत्य महामुने। उक्ताऽनुग्रहहेतोर्वै ऊचुस्ते मामिमं पुरा॥२८॥
षष्ठान्नकालिकस्याग्रे यस्ते स्थास्यति कश्चन। स भक्ष्यस्ते तु भविता कश्चित्कालं नराधम॥२९॥
यदेषुघातं लब्ध्वा तु प्राणैः कण्ठगतैर्भवान्। श्रोष्यसे द्विजवक्त्रात् तु नमो नारायणेति हि।
तदा स्वर्गगतिस्तुभ्यं भविता नात्र संशयः॥३०॥
परवक्त्रगतस्यापि विष्णोर्नाम श्रुतं मया। लब्धद्वेषस्य विप्राणां प्रत्यक्षं तव सत्तम॥३१॥
यः पुनर्ब्राह्मणान् पूज्य स्ववक्त्रेण नमो हरिम्।
वदन् प्राणं विमुच्येत मुक्तोऽसौ वीतकिल्बिषः॥३२॥
सत्यं सत्यं पुनः सत्यमुत्क्षिप्य भुजमुच्यते। जङ्गमा ब्राह्मणा देवाः कूटस्थः पुरुषोत्तमः॥३३॥
एवमुक्त्वा गतः स्वर्गं स राजा वीतकल्मषः। ब्राह्मणोऽपि सदायुक्तस्तं व्याधं प्रत्यभाषत॥३४॥

ऋषिरुवाच

जिघृक्षोर्मृगराजस्य यत्त्वया रक्षितो ह्यहम्। तत्पुत्र तुष्टस्ते दद्मि वरं वरय सुव्रत॥३५॥

पुरातन समय में वेदपारगामी ब्राह्मणों के इस प्रकार से कहे जाने पर मैं पूर्णतया उस कठिन ब्रह्मशाप से युक्त हो गया था।।२७।।

हे महामुनि! तत्पश्चात् मैंने उन ब्राह्मणों से क्षमा याचना पूर्वक प्रणाम करते हुए अनुग्रह करने हेतु निवेदन किया, तो उन सब ब्राह्मणों ने मुझसे इस प्रकार कहा—।।२८।।

हे नराधम! छठे अन्न ग्रहण करने के काल में भोजन करने वाले तुम्हारे समक्ष जो भी उपस्थित रहेगा, वही तुम्हारा आहार हो सकेगा।।२९।।

फिर जिस समय धनुष से निर्गत बाण के आघात से तुम्हारा प्राण कण्ठगत होगा, उस समय तुम किसी ब्राह्मण के मुख से 'नमो नारायणाय' मन्त्र को यदि सुनोगे, तो उस समय तुम्हें निश्चय ही स्वर्ग की गति अधिगत हो सकेगी।।३०।।

हे सज्जन! आपके ही समक्ष आप जैसे अन्य ब्राह्मण श्रेष्ठ के मुख से ब्राह्मणों से द्वेष करने वाला मैं श्री विष्णु नारायण का नाम सुना और यह फल प्राप्त कर लिया।।३१।।

लेकिन जो ब्रह्मणों की पूजापूर्वक अपने मुख से 'नमो नारायणाय' का उच्चारण करते हुए अपने प्राण का त्याग करता है, वह निश्चय ही पापरहित होकर मुक्त हो जाता है।।३२।।

अपने भुजाओं को उठाकर तीन बार 'सत्य, सत्य, सत्य' शब्द का उच्चारण कर यह मेरे द्वारा कहा जा रहा है कि ब्राह्मण जंगम, देवता और कूटस्थ पुरुषोत्तम हैं।।३३।।

इस प्रकार से कहते हुए वह राजा पापरहित होकर स्वर्ग को चला गया। फिर सदा ही योगयुक्त उस ब्राह्मण ने भी पास में स्थित व्याघ से कहा—।।३४।।

ऋषि ने कहा कि हे सुन्दर व्रत करने वाले पुत्र! जहाँ से तुमने मुझे पकड़ने वाले व्याघ्र से मेरी रक्षा की है, वहाँ से मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न होकर तुम्हें वरदान देना चाहता हूँ तुम इस समय मुझसे वरदान जो चाहो माँग लो।।३५।।

व्याध उवाच

एष एव वरो मह्यं यत् त्वं मां भाषसे द्विज। अतः परं वरेणाहं किं करोमि प्रशाधि माम्॥३६॥

ऋषिरुवाच

अहं त्वया पुरा पुत्र प्रार्थितोऽस्मि तपोऽर्थिना। बहुपातकयुक्तेन घोररूपेण चानघ॥३७॥

इदानीं तव पापानि देविकाभिषवेण च। मद्दर्शनेन च चिरं विष्णुनामश्रुतेन च।

नष्टानि शुद्धदेहोऽसि सांप्रतं नात्र संशयः॥३८॥

इदानीं वरमेकं त्वं गृहाण मम सन्निधौ। तपः कुरुष्व साधो त्वं चिरकालं यदीच्छसि॥३९॥

व्याध उवाच

य एष भवता प्रोक्तो विष्णुर्नारायणः प्रभुः। स कथं प्राप्यते मर्त्यैरेष एव वरो मम॥४०॥

ऋषिरुवाच

तमुद्दिश्य व्रतं कुर्याद् यत्किंचित्पुरुषोऽच्युतम्। स परं तमवाप्नोति भक्त्या युक्तः पुमानिति॥४१॥

एवं ज्ञात्वा भवान् पुत्र व्रतमेतत् समाचर। न भक्षयामि सकटं न वदाम्यनृतं क्वचित्॥४२॥

एतत् ते व्रतमादिष्टं मया व्याधवर ध्रुवम्। तत्रैवं तपसा युक्तस्तिष्ठ त्वं यावदिच्छसि॥४३॥

इस पर उस व्याध ने कहा कि हे द्विज! मेरे लिए इस समय सबसे बड़ा वर यही है कि आप मुझसे बातचीत कर रहे हैं। अतः आप मुझे केवल उपदेश प्रदान करें, इसके आलवे अन्य वर से मेरा क्या प्रयोजन हो सकता है।।३६।।

ऋषि ने कहा कि हे निष्पाप पुत्र! भयानक स्वरूप वाले और विविध पापों से युक्त तुमने तप की कामना से मेरा अनुगम किया था।।३७।।

फिर इस समय देविका नदी में किये गये स्नान, मेरा दर्शन और विष्णु नाम मन्त्र का श्रवण करने से तुम्हारे चिरकालिक पाप भी नष्ट हो गये हैं। अतः अब तुम्हारा शरीर निश्चय ही विशुद्ध हो गया है।।३८।।

हे साधु! इस समय तुम मुझसे एक वर अवश्य माँग लो और फिर उसके बाद तुम्हारी यदि कामना हो, तो चिरकाल तक तपस्या करते रहो।।३९।।

व्याध ने कहा कि आपने अभी जिन प्रभु श्रीविष्णु नारायण हरि का उल्लेख किया है, उनको मनुष्य किस प्रकार से प्राप्त करने में सफल हो सकता है, आप इस समय हमें यह बतलायें, यही मेरा वरदान है।।४०।।

ऋषि ने कहा कि जो कोई श्री विष्णु की प्रसन्नतार्थ कोई भी व्रत करता है, वह भक्तिभाव सम्पन्न मनुष्य उन परम पुरुष को प्राप्त करने में सफल हो जाता है।।४१।।

हे पुत्र! इस प्रकार से समझ कर तुम यही व्रत करो कि 'मैं ग्रामान्न नहीं खाऊँगा और कभी भी असत्य भाषण नहीं ही करूँगा'।।४२।।

हे श्रेष्ठ व्याध! मैंने तुम्हें शाश्वत व्रत के नियम बतला दिया है। अतः जब तक तुम्हारी इच्छा हो, इस तरह से तप करते हुए यहीं पर निवास करो।।४३।।

श्रीवराह उवाच

एवं चिन्तान्वितं मत्वा वरदो ब्राह्मणोऽभवत्।
मोक्षार्थिनमथो बुद्ध्वा वञ्चयित्वा गतो मुनिः॥४४॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे सप्तत्रिंशोऽध्यायः॥३७॥

अष्टत्रिंशोऽध्यायः

अथ धर्मव्याध-दुर्वासोपाख्यानम्

श्रीवराह उवाच

स शुभं शोभनं मार्गमास्थाय व्याधसत्तमः। तपस्तेपे निराहरस्तं गुरुं मनसा स्मरन्॥१॥
भिक्षाकाले तु संप्राप्ते शीर्णपर्णान्यभक्षयत्। स कदाचित् क्षुधाविष्टो वृक्षमूलं समाश्रितः॥२॥
बुभुक्षितस्तरोः पर्णमैच्छद् भक्षितुमन्तिकात्। इत्येवं कुर्वतो व्योम्नि वागुवाचाशरीरिणी॥३॥
मा भक्षयस्व सकटमुच्चैरेवं प्रभाषिते। ततोऽसौ तं विहायान्यद् वार्क्षं पतितमग्रहीत्॥४॥
तमप्येवं निषिद्धं स्यादन्यं तथैवमेव च। एवं स सकटं मत्वा व्याधः किञ्चिन्न भक्षयत्॥५॥

श्री भगवान् वराह ने कहा कि इस समय उस व्याध को चिन्ता मग्न देखकर ब्राह्मण ने वर प्रदान किया। फिर उसे मोक्षेच्छु जान कर उस मुनि ने विष्णु की प्राप्ति का उपदेश देकर धीरे से वहाँ से चले गये।।४४।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में धर्मव्याधोपाख्यान और विष्णुनाम माहात्म्य नामक सैंतीसवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥३७॥

❖❖❖

अध्याय–३८

धर्मव्याध-दुर्वासोपाख्यान

श्री भगवान् वराह ने कहा कि वह श्रेष्ठ व्याध कल्याणकारी सुन्दर मार्ग का आश्रयण कर उपवासपूर्वक मन से अपने उस गुरु का स्मरण करते हुए तपस्या करने लगा।।१।।

भिक्षा का समय होने पर वह व्याध गिरे हुए पत्तों को खा लिया करता था। जिस किसी समय वह भूखा रहकर भी वृक्ष के नीचे बैठा रहा करता था।।२।।

बुभुक्षा अधिक होने से उस व्याध ने अपने निकट के वृक्ष का पत्ता खा लेने की कामना से जैसे ही इस प्रकार करने की चेष्ट की, तो अशरीररी वाणी ने आकाश से कहा—।।३।।

'अपवित्र पदार्थ मत खाओ' ऊँची आवाज में इस प्रकार सूने जाने पर उस पत्ता को त्यागकर उस व्याध ने वृक्ष के दूसरे गिरे हुए पत्ते को लेना चाहा।।४।।

फिर उस पत्ता को भी निकृष्ट कहे जाने पर दूसरे पत्ता लेना चाहा, लेकिन उसे भी उसी तरह निकृष्ट घोषित किये जाने पर उस व्याध ने इस प्रकार उसको भी अपवित्र समझ कर छोड़ दिया और फिर कुछ भी नहीं खाया।।५।।

निराहारस्तपस्तेपे स्मरन् गुरुमतन्द्रितः। तस्याथ बहुना काले गते ऋषिवरोऽभ्यगात्॥६॥
दुर्वासाः शंसितात्मा वै किञ्चित्प्राणमपश्यत। व्याधं तपोत्थतेजोभिर्ज्वलमानं हविर्यथा॥७॥

सोऽपि व्याधस्तु तं नत्वा शिरसाऽथ महामुनिम्।
उवाच स कृतार्थोऽस्मि भगवन् दर्शनात् तव॥८॥

इदानीं श्राद्धकालं मे प्राप्तं त्वमवधारय। शीर्णपर्णानि भक्षयन् वै तैरेवाहं महामुने।
भवन्तं प्रीणयामीति व्याधस्तं वाक्यमब्रवीत्॥९॥

दुर्वासा अपि तं शुद्धं शुद्धभावं जितेन्द्रियम्। जिज्ञासुस्तत्तपो वाक्यमिदमुच्चैरुवाच ह॥१०॥
यवगोधूमशालीनामन्नं चैव सुसंस्कृतम्। दीयतां मे क्षुधार्ताय त्वामुद्दिश्यागताय च॥११॥
इत्युक्तेन त्वसौ व्याधश्चिन्तां परमिकां गतः। क्व संभविष्यते मह्यमिति चिन्तापरोऽभवत्॥१२॥
तस्य चिन्तयतः पात्रमाकाशात् पतितं शुभम्। सौवर्णं सिद्धिसंयुक्तं तज्जग्राह करेण सः॥१३॥

तद् गृहीत्वा मुनिं प्राह दुर्वासाख्यं ससाध्वसः।
अत्रैव स्थीयतां ब्रह्मन् यावद् भिक्षाटनं त्वहम्।
करोमि मत्प्रसादोऽयं क्रियतां ब्रह्मवित्तम॥१४॥

इस प्रकार वह निराहार रहकर गुरु स्मरण पूर्वक आलस्य को त्यागते हुए तपस्या में लीन हो गया। इसी स्थिति में रहते हुए बहुत समय पश्चात् वहाँ पर श्रेष्ठ दुर्वासा ऋषि का आगमन हो गया। उन प्रशंसा योग्य दुर्वासा ऋषि ने वहाँ पर ज्वलनशील हवि के समान तप के तेज से प्रज्वलित अल्पप्राण उस तपरत व्याध को देखा।।६-७।।

फिर वहाँ पर उस व्याध ने भी पधारे उन महामुनि को देखते ही अपना शिर झुकाकर प्रणाम किया और कहा कि हे भगवन्! आपके दर्शन होने से मैं अकिञ्चन अत्यन्त कृतार्थ (कृतकृत्य) हो गया हूँ।।८।।

इस प्रकार उस व्याध ने फिर उनसे कहा कि हे महामुनि! आपको यह ज्ञात होना चाहिए कि इस समय मेरे श्राद्ध करने की स्थिति है। मैं आपका भी उन पेड़ों के गिरे हुये पत्तों से स्वागत कर सकूँगा, जिन्हें मैं खाकर अपना जीवन निर्वाह करता हूँ।।९।।

फिर भी ऋषि दुर्वासा ने भी उस शुद्ध हृदय वाले पवित्र और जितेन्द्रिय व्याध के तपस्या के प्रभाव को परखने की दृष्टि से ऊँचे आवाज में कहा—।।१०।।

मैं तुम्हारे पास भूख से व्याकुल हुआ आया हूँ। तुम जौ, गेहूँ, चावल आदि का बना विविध प्रकार के पकवान, जो तुम्हारे पास तैयार हो, का भोजन मुझे दो।।११।।

उन ऋषि के इस प्रकार से कहे जाने को सुनकर वह तपस्वी व्याध अत्यन्त चिन्ताग्रस्त हो गया। वह वारम्बार सोचने लगा कि ऐसे पकवान मैं कहाँ से प्राप्त कर सकूँगा?।।१२।।

इस प्रकार से वह व्याध चिन्तामग्न हो रहा था कि आकाश से सिद्धि संयुक्त स्वर्ण का सुन्दर-सा पात्र नीचे आ गिरा। फिर उस तपस्वी ने उस पात्र को अपने हाथों से पकड़ लिया।।१३।।

फिर उस तपस्वी व्याध ने उस पात्र को लिये सादर दुर्वासा मुनि से कहा कि हे श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण! जब तक मैं भिक्षाटन कर लौट आता हूँ, तब तक के लिए आप यहीं ठहरें। मेरे ऊपर आप इतना ही कृपा करें।।१४।।

एवमुक्त्वा ततो भिक्षामटनं व्याधसत्तमः। नातिदूरेण नगरं धनयोषसमन्वितम्॥१५॥
तस्य तत्र प्रयातस्य अग्रतः सर्वशोभनाः। वृक्षेभ्यो निर्ययुश्चान्या हेमपात्राग्रपाणयः।
विविधान्नानि तस्याशु दत्त्वा पात्रं प्रपूरितम्॥१६॥
स च भूतार्थमात्मानं मत्वा पुनरथाश्रमम्। आजगाम ततोऽपश्यत् तमृषिं जपतां वरम्॥१७॥
तं दृष्ट्वा स्थाप्य तां भिक्षां शुचौ देशे प्रसन्नधीः। प्रणम्य तमृषिं वाक्यमुवाच व्याधसत्तमः॥१८॥
भगवन् क्षालनं पद्भ्यां क्रियतामृषिपुंगव। यदि त्वहमनुग्राह्यस्तदेवं कर्त्तुमर्हसि॥१९॥
एवमुक्तः स जिज्ञासुस्तपोवीर्यं शुभं मुनिः। नदीं गन्तुं न शक्नोमि जलपात्रं न चास्ति मे॥२०॥
कथं प्रक्षालयाम्याशु व्याध पादौ महामते। इत्येतन्मुनिना व्याधः श्रुत्वा चिन्तापरोऽभवत्।
किं करोमि कथं चास्य भोजनं वै भविष्यति॥२१॥
एवं संचिन्त्य मनसा गुरुं स्मृत्वा विचक्षणः। जगाम शरणं तां तु सरितं देविकां सुधीः॥२२॥

व्याध उवाच

व्याधोऽस्मि पापकर्माऽस्मि ब्रह्महाऽस्मि सरिद्वरे।
तथाऽपि संस्मृता देवि पाहि मां शरणं गतम्॥२३॥

तत्पश्चात् इस तरह से कहने वाला वह श्रेष्ठ साधक व्याध धन और स्त्री से सम्पन्न पास के नगर को चल दिया।।१५।।

उस स्थान से उसके प्रयाण करने के पश्चात् कुछ आगे जाने पर अपने हाथों में एक स्वर्णपात्र लिए समस्त शोभाओं युक्त वनदेवियों वृक्षों से प्रकट हो गयी और फिर उन्होंने विविध प्रकार के अन्न प्रदान कर उस व्याध के पात्र को तुरन्त भर दिया।।१६।।

तत्पश्चात् वह अपने को भाग्यशाली समझ कर वापस अपने आश्रम में आ गया। फिर उसने तप कने वालों में श्रेष्ठ उन दुर्वास मुनि को देखा।।१७।।

उन महामुनि को देखते हुए उस श्रेष्ठ व्याध ने प्रसन्न मन से उस भिक्षा को एक पवित्र स्थल पर रखकर और उन ऋषि को प्रणाम कर इस प्रकार के वाक्य बोला—।।१८।।

हे ऋषिश्रेष्ठ! यदि आपकी मेरे ऊपर कृपा हो, तो आप अपना पादप्रक्षालन करें।।१९।।

इस प्रकार से उस व्याध के कहने पर उनकी तपस्या का शुभ प्रभाव जानने की कामना वाले उस मुनि श्रेष्ठ ने कहा कि देखा! मैं नदी तक तो जा नहीं सकता और फिर जलपात्र भी मेरे पास नहीं है।।२०।।

अतः 'हे महामति व्याध! मैं शीघ्रता से अपने चरणों को कैसे प्रक्षालित कर सकूँगा? उन मुनि के ऐसी बातों को सुनकर व्याध फिर सोच में पड़ गया कि अब मैं क्या करूँ और इनका भोजन किस प्रकार से सम्भव हो सकेगा।।२१।।

इस प्रकार की चिन्ता करते हुए चतुर और बुद्धिमान् व्याध ने अपने मन में गुरु का स्मरण करते हुए उस देविका नदी के शरण में चला गया।।२२।।

नदी से व्याध ने कहा कि हे श्रेष्ठ नदी! मैं तो व्याध हूँ। पापकर्म में संलग्न रहने वाला हूँ। साथ ही मैं ब्रह्मघाती भी हूँ। फिर भी हे देवि! स्मरण करने वाले मुझ शरणागत की रक्षा आप करें।।२३।।

देवतां नैव जानामि न मन्त्रं न तथार्चनम्। गुरुपादौ परं ध्यात्वा पश्यामि सततं शुभे॥२४॥
एवं विधस्य मे देवि दयां कुरु सरिद्वरे। ऋषेः क्षालार्थसलिलं समीपं कुरु माचिरम्॥२५॥
एवमुक्त्वाऽथ व्याधेन देविका पापनाशिनी।
आजगाम यतस्तस्थौ दुर्वासाः संशितव्रतः॥२६॥
तस्य पादौ स्वयं देवी क्षालयन्ती सरिद्वरा। जगाम ह्लादिनी भूत्वा व्याधाश्रमसमीपतः॥२७॥
तं दृष्ट्वा महदाश्चर्यं दुर्वासा विस्मयं ययौ। प्रक्षाल्य हस्तौ पादौ च तदन्नं श्रद्धयान्वितम्।
बुभुजे परमप्रीतस्तथाचम्य विचक्षणः॥२८॥
तमस्थिशेषं व्याधं तु क्षुधादुर्बलतां गतम्। उवाच वेदाध्ययनं सर्वे वेदाः ससंग्रहाः।
ब्रह्मविद्या पुराणानि प्रत्यक्षाणि भवन्तु ते॥२९॥
एवं प्रादाद् वरं तस्य दुर्वासा नाम चाकरोत्। भवान् सत्यतपा नाम ऋषिराद्यो भविष्यति॥३०॥
एवं दत्तवरो व्याधस्तमाह मुनिसत्तमम्। व्याधो भूत्वा कथं ब्रह्मन् वेदानध्यापयाम्यहम्॥३१॥

ऋषिरुवाच

प्राक्शरीरं गतं तेऽद्य निराहारस्य सत्तम। तपोमयं शरीरं ते पृथग्भूतं न संशयः॥३२॥

वैसे तो मैं देवता, मन्त्र और पूजन आदि की विधि भी नहीं जानता हूँ। हे कल्याणमयी! मैं सतत गुरु के दोनों चरणों का ध्यान करते हुए आपका दर्शन मात्र करने वाला हूँ।।२४।।

हे श्रेष्ठ नदी! आप इस प्रकार के मुझ जैसे प्राणी पर दया करें। आप अविलम्ब पूज्य उन ऋषि के पादप्रक्षालन के निमित्त उनके निकट ही जल की व्यवस्था कर दें।।२५।।

उस व्याध तपस्वी के इस प्रकार के निवेदन सुनकर उस पापनाशिनी देविका नदी ने अपनी धारा को वहां ले आयी, जहाँ तीव्रव्रती दुर्वासा मुनि स्थित से थे।।२६।।

इस प्रकार वह श्रेष्ठ नदी स्वरूपा देवी स्वयं ऋषि के पाद प्रक्षालन करती हुई उस व्याध के आश्रम के पास ही नदी रूप में प्रवाहित होने लगी।।२७।।

इस प्रकार की महान् आश्चर्यजनक घटना को देख व समझ कर दुर्वासा ऋषि चकित-से हो गये। फिर वे अपना हाथ-पैर प्रक्षालित कर अत्यन्त प्रीति के साथ व्याध से भिक्षान्न का भोजन किया। फिर आचमन कर लेने के पश्चात् बुद्धिमान् ऋषि दुर्वासा ने कंकाल मात्र शेषशरीर वाले भूख से दुर्बल उस व्याध से इस प्रकार कहा कि तुम्हें वेदज्ञान हो जाय। संग्रह सहित समस्त वेद, ब्रह्मविद्या और पुराण तुम्हें प्रत्यक्ष हो जाय।।२८-२९।।

फिर दुर्वासा ने उपरोक्त प्रकार से उस व्याध को वर प्रदान कर उसका नामकरण भी किया। उन्होंने कहा कि आज से आप का नाम सत्यतपा और आप आदि ऋषि होंगे।।३०।।

इस प्रकार से वर प्राप्त करने वाला तपस्वी व्याध ने उस समय उन श्रेष्ठ मुनि से यह कहा कि हे ब्रह्मन्! मैं व्याध होकर वेदों का अध्ययन कैसे कर सकता हूँ।।३१।।

इस पर ऋषि ने कहा कि हे श्रेष्ठ व्याध! अब निश्चय ही निराहार से तुम्हारा पूर्व का शरीर समाप्तप्राय ही है। यह तुम्हारा तपोमय शरीर है, जो पूर्व के शरीर से अलग है।।३२।।

प्राग्विज्ञानं गतं नाशमिदानीं शुद्धमक्षरम्। विद्धि तं शुद्धकायोऽसि तथाऽन्यत् ते शरीरकम्।
तेन वेदाः समं शास्त्रैः प्रतिभास्यन्ति ते मुने॥३३॥

।।इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे अष्टात्रिंशोऽध्यायः।।३८।।

ऊनचत्वारिंशोऽध्यायः

अथ मत्स्यद्वादशीविधानम्

सत्यतपा उवाच

भगवन् द्वे शरीरे तु इति यत्परिकीर्त्तितम्। तन्मे कथय भेदं वै के ते ब्रह्मविदां वर॥१॥

दुर्वासा उवाच

न द्वे त्रीणि शरीराणि वाच्यं तद्विपरीतकम्। विभोगायतनं चैव त्रिशरीराणि प्राणिनाम्॥२॥
प्रागवस्थमधर्माख्यं परिज्ञानविवर्जितम्। अपरं सव्रतं तद्धि ज्ञेयमत्यन्तधार्मिकम्॥३॥
धर्माधर्मोपभोगाय यत् तृतीयमतीन्द्रियम्। तत्त्रिभेदं विनिर्दिष्टं ब्रह्मविद्भिर्विचक्षणैः।
यातना धर्मभोगाश्च भुक्तिश्चेति त्रिभेदकम्॥४॥

इस प्रकार से अब तुम्हारा पूर्वज्ञान भी नष्ट हो चुका है, इस समय तुम उस शुद्ध सनातन तत्त्व को जानने में लगे रहो। तुम्हारा शरीर वास्तव में शुद्ध हो गया है और तुम्हारा यह शरीर दूसरा शरीर हो गया है। अतएव हे मुनि! शास्त्रों सहित तुम्हें वेदों का ज्ञान हो सकेगा।।३३।।

।।इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में धर्मव्याधदुर्वासोपाख्यान नामक अड़तीसवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ।।३८।।

अध्याय-३९

मार्गशीर्ष शुक्ल मत्स्य द्वादशी विधान और माहात्म्य

सत्यतपा ने कहा कि हे वरिष्ठ ब्रह्मज्ञानी भगवन्! जो दो प्रकार के शरीर कहे गये हैं उनके प्रसङ्ग में मुझे बतलाया जाय कि उसका प्रकार और स्वरूप क्या है?।।१।।

दुर्वासा ने कहा कि शरीर दो नहीं बल्कि उसके विपरीत तीन प्रकार के शरीर होते हैं। वहाँ प्राणियों के विविध आश्रय स्वरूप के अनुरूप तीन प्रकार का शरीर समझना चाहिए।।२।।

सर्वप्रथम ज्ञान शून्य अधार्मिक शरीर कहा गया है। दूसरे प्रकार का शरीर व्रत युक्त शरीर को अत्यन्त धार्मिक समझना चाहिए।।३।।

फिर धर्म और अधर्म के उपभोग योग्य तीसरे प्रकार का अतीन्द्रिय शरीर कहा गया है। इस प्रकार विद्वान् ब्रह्मज्ञानियों ने उस शरीर के तीन भेदों या प्रकारों का ही वर्णन किया है।।४।।

यस्तु भावः पुरा ह्यासीत् प्राणिनो निघ्नः स वै। तत्पापाख्यं शरीरं ते पापसंज्ञं तदुच्यते॥५॥

इदानीं शुभवृत्तिं तु कुर्वतस्तप आर्जवम्। अपरं धर्मरूपं तु शरीरं ते व्यवस्थितम्।
तेन वेदपुराणानि ज्ञातुमर्हस्यसंशयम्॥६॥

यदाष्टकं संपरिवर्त्तते पुमांस्तदा त्र्यवस्थः परिकीर्त्यते तु वै।
गताष्टवर्गस्त्रिगतः सदा शुभः स्थिरो भवेदात्मनि निश्चयात्मवान्॥७॥

यदा पञ्च पुनः पञ्च पञ्च पञ्चापि संत्यजेत्। एकमार्गस्तदा ब्रह्म शाश्वतं लभते नरः॥८॥

सत्यतपा उवाच

भगवन् यदि विज्ञानं शरीरं नोपजायते। तदा केन प्रकारेण परं ब्रह्मोपलभ्यते॥९॥

दुर्वासा उवाच

कर्मकाण्डं ज्ञानमूलं ज्ञानं कर्मादिकं तथा। एतयोरन्तरं नास्ति यथाऽश्ममृदयोर्मुने॥१०॥

कर्मकाण्डं चतुर्भेदं ब्राह्मणादिषु कीर्तितम्। तत्र वेदोक्तकर्माणि त्रयः कुर्वन्ति नित्यशः।
त्रिशूश्रूषामथैकस्तु एषा वेदोदिता क्रिया॥११॥

तुम्हारे पूर्वजीवन में प्राणियों की हत्या करने के समय तुम्हारा जिस प्रकार का भाव रहा, वैसे भाव युक्त शरीर ही तुम्हारा पापशरीर था। उसी शरीर को पाप नाम से कहा गया है।।५।।

लेकिन वर्तमान समय में तपस्या और सहजता सम्पन्न आचरण से तुम्हारी जो शुभ वृत्ति या प्रवृत्ति हो गई है, उससे यह तुम्हारा धर्मपरक या धार्मिक शरीर है। इसीलिए इस समय तुम्हारा वेदों और शास्त्रादि पुराणों को जानने का इस समय निःसन्देह अधिकार हो गया है।।६।।

जिस समय तक कोई व्यक्ति शुभाशुभ अदृष्ट सूचक ग्रहों और लग्नों से निर्दिष्ट होते हुए अष्टक से प्रभावित होता रहता है, उस समय तक उसकी धर्मात्मिका, अधर्मात्मिका और धर्म-अधर्मात्मिका नाम से तीन अवस्थायें भी कही जाती हैं। इस प्रकार शुभाशुभ परक विचार ग्रहों और जनों से निर्दिष्ट होने वाले अष्टक का अतिक्रमण करने वाला धर्मात्मिकादि तीनों अवस्थाओं से रहित होकर मंगल स्वरूप में आत्मविषयक स्थिर ज्ञान को प्राप्त करने के योग्य हो जाता है'।७।।

जिस समय मानव पाँच तन्मात्राओं, पाँच ज्ञानेन्द्रियों, पाँच कर्मेन्द्रियों और पाँच स्थूल भूतों के बारे में आत्मिक बुद्धि का परित्याग करता है, उस समय उसको अद्वैतमार्ग द्वारा शाश्वत ब्रह्म को प्राप्त करने का अवसर मिलता है।।८।।

सत्यतपा ने कहा कि हे भगवन्! जब तक विज्ञानमय शरीर उत्पन्न नहीं हो जाता है, तब तक परब्रह्म की प्राप्ति किस प्रकार हो सकती है?।।९।।

दुर्वासा ने कहा कि कर्मों का कारण ज्ञान है और ज्ञान कर्म से होता है। इन दोनों में प्रायः कोई तात्विक अन्तर उसी तरह नहीं है, जिस प्रकार पत्थर और मिट्टी में कोई तात्त्विक अन्तर नहीं होता है।।१०।।

चार प्रकार का कर्मकाण्ड ब्राह्मणादि वर्णों के हेतु बतलाया गया है। उनमें से शूद्रातिरिक्त ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य; ये तीनों नियमित वेदमूलक कर्म करने योग्य माना जाता है। चौथा शूद्र उन तीनों ब्राह्मणादि वर्णों की सेवा करने वाला कहा गया है। इस प्रकार यह वेद द्वारा कथित क्रिया समझनी चाहिए।।११।।

एतान् धर्मानवस्थाय ब्रह्मणोपास्तिं रोचते। तस्य मुक्तिर्भवेन्नूनं वेदवादरतस्य च॥१२॥

सत्यतपा उवाच

यदेतत् परमं ब्रह्म त्वया प्रोक्तं महामुने। तस्य रूपं न जानन्ति योगिनोऽपि महात्मनः॥१३॥

अनाममसगोत्रं च अमूर्त्तं मूर्त्तिवर्जितम्। कथं स ज्ञायते ब्रह्म संज्ञानामविवर्जितम्।

तस्य संज्ञां कथय मे वेदमार्गव्यवस्थिताम्॥१४॥

दुर्वासा उवाच

यदेतत् परमं ब्रह्म वेदव्यासेषु पठ्यते। स देवः पुण्डरीकाक्षः स्वयं नारायणः परः॥१५॥

स यज्ञैर्विविधैरिष्टैर्दानैर्दत्तैश्च सत्तम। प्राप्यते परमो देवः स्वयं नारायणो हरिः॥१६॥

सत्यतपा उवाच

भगवन् बहुवित्तेन ऋत्विग्भिर्वेदपारगैः। प्राप्यते पुण्यकृद्भिर्हि क्वचिद् यज्ञः कथंचन।

तेन प्राप्तेन भगवान् लभ्यते दुःखतो हरिः॥१७॥

वित्तेन च विना दानं दातुं विप्र न शक्यते। विद्यमानेऽपि न मतिः कुटुम्बासक्तचेतसः।

तस्य मोक्षः कथं ब्रह्मन् सर्वथा दुर्लभो हरिः॥१८॥

अल्पायासेन लभ्येत येन देवः सनातनः। तन्मे सामान्यतो ब्रूहि सर्ववर्णेषु यद् भवेत्॥१९॥

इन धर्मों का आश्रयण कर जिनको ब्रह्म की उपासना रूचिकारक होती है तथा जो वेदाध्ययन में लीन रहता है, उन्हें निस्सन्देह मुक्ति प्राप्त होती है।।१२।।

सत्यतपा ने कहा कि हे महामुनि! आपके द्वारा जिन परमब्रह्म का वर्णन किया गया है, उनके स्वरूप को योगीजन भी नहीं जानते।।१३।।

इस प्रकार नाम और गोत्र रहित, सर्वव्यापक, मूर्तिरहित और परिचयात्मक नाम आदि से रहित वह ब्रह्म किस प्रकार से जाना जा सकता है? उस ब्रह्मतत्त्व के वेदप्रतिपादित ज्ञानपरक उपाय को मुझसे कहें।।१४।।

दुर्वासा ने कहा कि वेदव्यास प्रणीत शास्त्रों जैसे ब्रह्मसूत्र, पुराणों आदि में जिनको परमब्रह्म माना गया है, वह स्वयं पुण्डरीकाक्ष स्वयं नारायण श्रीहरि देव ही हैं।।१५।।

हे सात्त्विक पुरुष! विविध प्रकार के यज्ञों का सम्पादन और विविध प्रकार से दान प्रदान करने से परमदेव स्वरूप स्वयं नारायण हरि को प्राप्त करना सम्भव होता है।।१६।।

सत्यतपा ने कहा कि हे भगवन्! वेदपारगामी पुण्यकर्मा ऋत्विज्जन भी बहुत धन द्वारा कभी किसी प्रकार यज्ञ कर पाते हैं। इस प्रकार प्राप्त उस यज्ञ से भगवान् श्रीहरि दुःख से ही प्राप्त होते हैं।।१७।।

हे विप्र! फिर विना धन के दान नहीं किया जा सकता और भी धन होने पर भी कुटुम्ब में आसक्त चित्त वाले प्राणी में दान आदि करने का विचार नहीं उत्पन्न होता। हे ब्रह्मन्! ऐसे जन को मोक्ष कैसे प्राप्त हो सकता है? अतः इस तरह तो श्रीहरि की प्राप्ति सर्वथा दुर्लभ ही है।।१८।।

जिस भी प्रकार से या श्रम से उन नारायण देव को प्राप्त किया जा सकता हो और जिसको साधारणतया सभी वर्ण और स्तर के लोग सम्पादित कर सकते हों, इस प्रकार का कोई उपाय मुझसे कहें, बड़ी कृपा होगी।।१९।।

दुर्वासा उवाच

कथयामि परं गुह्यं रहस्यं देवनिर्मितम्। धरण्या यत्कृतं पूर्वं मज्जन्त्या तु रसातले॥२०॥
पृथिव्याः पार्थिवो भावः सलिले नातिरेचितः। तस्मिन् सलिलमग्ने तु पृथ्वी प्रायाद् रसातलम्॥२१॥
सा भूतधारिणी देवी रसातलगता शुभा। आराधयामास विभुं देवं नारायणं परम्।
उपवासव्रतैर्देवी नियमैश्च पृथग्विधैः॥२२॥
कालेन महता तस्याः प्रसन्नो गरुडध्वजः। उज्जहार स्थितौ चेमां स्थापयामास सोऽव्ययः॥२३॥

सत्यतपा उवाच

कोऽसौ धरण्या संचीर्ण उपवासो महामुने। कानि व्रतानि च तथा एतन्मे वक्तुमर्हसि॥२४॥

दुर्वासा उवाच

यदा मार्गशिरे मासि दशम्यां नियमात्मवान्। कृत्वा देवार्चनं धीमानग्निकार्यं यथाविधिः॥२५॥
शुचिवासाः प्रसन्नात्मा हव्यमन्नं सुसंस्कृतम्। भुक्त्वा पञ्चपदं गत्वा पुनः शौचं तु पादयोः॥२६॥
कृत्वाऽष्टाङ्गुलमात्रं तु क्षीरवृक्षसमुद्भवम्। भक्षयेद् दन्तकाष्ठं तु तत आचम्य यत्नतः॥२७॥
स्पृष्ट्वा द्वाराणि सर्वाणि चिरं ध्यात्वा जनार्दनम्। शङ्खचक्रगदापाणिं किरीटिं पीतवाससम्॥२८॥

दुर्वासा ने कहा कि पुरातन समय में रसातल में उत्तरायी धरणी द्वारा जैसा भी किया गया था, उस देवप्रतिपादित परमगुह्य रहस्य को मैं कहने जा रहा हूँ।।२०।।

जल ने धरणी के पार्थिव स्वरूप को आत्ससात् कर लिया था, उस देव प्रतिपादित परमगुह्य रहस्य को मैं कहने जा रहा हूँ।।२०।।

जल ने धरणी के पार्थिव स्वरूप को आत्मसात् का लिया था। धरणी के उस पार्थिव स्वरूप का जल में डूब जाने पर पृथ्वी (धरणी) देवी रसातल में चली गई।।२१।।

प्राणियों को धारण करने वाली और रसातल में स्थित उस कल्याणमयी देवी ने विविध प्रकार के उपवास, व्रत और नियमपालन द्वारा परम विभु नारायण देव की आराधना की।।२२।।

तब जाकर बहुत समय पश्चात् गरुड़ध्वज श्रीविष्णु प्रसन्न हो गये। फिर उन अव्यय पुरुष ने इस धरणी को रसातल से बाहर लाकर जल के ऊपर स्थापित किया।।२३।।

सत्यतपा ने कहा कि हे महामुनि! धरणी द्वारा किया गया व्रत और उपवास किस प्रकार का था? आप मुझे यह बतलाने की कृपा करें।।२४।।

दुर्वासा ने कहा कि जिस समय मार्गशीर्ष मास की दशमी तिथि हो, उस समय संयमी बुद्धिमान् जन विधि के सहित देवपूजन और हवन करें।।२५।।

उस समय उसको पवित्र वस्त्र धारण कर प्रसन्न मन से अच्छे से पकाये गये हविष्य अन्न का भोजन करते हुये पाँच कदम चलकर पुनः पाद प्रक्षालन करना चाहिए।।२६।।

तत्पश्चात् दूध वाले वृक्ष का अष्ट अंगुल का दन्तधावन कर यत्न के सहित आचमन करना चाहिए।।२७।।

फिर शरीर के द्वार स्वरूप समस्त नेत्रादि इन्द्रियों को स्पर्श करते हुये चिरकाल तक हाथो में शंख, चक्र, गदा आदि के सहित किरीट और पीताम्बर धारण काने वाले जनार्दन का ध्यान करना चाहिए।।२८।।

प्रसन्नवदनं देवं सर्वलक्षणलक्षितम्। ध्यात्वा पुनर्जलं हस्ते गृह्य भानुं जनार्दनम्॥२९॥
ध्यात्वाऽर्घ्यं दापयेत् तस्य करतोयेन मानवः। एवमुच्चारयेद् वाचं तस्मिन् काले महामुने॥३०॥
एकादश्यां निराहारः स्थित्वाऽहमपरेऽहनि। भोक्ष्यामि पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाच्युत॥३१॥
एवमुक्त्वा ततो रात्रौ देवदेवस्य सन्निधौ। जपन्नारायणायेति स्वपेत् तत्र विधानतः॥३२॥
ततः प्रभाते विमले नदीं गत्वा समुद्रगाम्। इतरां वा तडागं वा गृहे वा नियतात्मवान्॥३३॥
आनीय मृत्तिकां शुद्धां मन्त्रेणानेन मानवः। धारणं पोषणं त्वत्तो भूतानां देवि सर्वदा।
तेन सत्येन मे पापं यावन्मोचय सुव्रते॥३४॥
ब्रह्माण्डोरतीर्थानि करैः स्पृष्टानि देव ते। तेनेमां मृत्तिकां स्पृष्ट्वा मा लभामि त्वयोदिताम्॥३५॥
त्वयि सर्वे रसा नित्याः स्थिता वरुण सर्वदा। तेनेमां मृत्तिकां प्लाव्य पूतां कुरु ममाचिरम्॥३६॥
एवं मृदं तथा तोयं प्रसाद्यात्मानमालभेत्। त्रिः कृत्वा शेषमृदया कुण्डमालिख्य वै जले॥३७॥
ततस्तत्र नरः सम्यक् चक्रवर्त्युपाचारतः। स्नात्वा चावश्यकं कृत्वा पुनर्देवगृहं व्रजेत्॥३८॥

इस तरह समस्त लक्षणों से सम्पन्न प्रसन्न मुख वाले श्री विष्णु देव का ध्यान करने के पश्चात् हाथों में जल ग्रहण कर भानु स्वरूप जनार्दन का भी ध्यान करना चाहिए।।२९।।

हे महामुनि! हस्त स्थित जल से सूर्यनारायण देव को अर्घ्य अर्पण कर मनुष्य को उस समय इस प्रकार भी वाणी बोलना चाहिए।।३०।।

कि हे पुण्डरीकाक्ष! एकादशी को निराहार रहते हुये मैं अगले दिन भोजन करने का आयोजन करूँगा। हे अच्युत! मुझको अपने शरण में रख ले, बड़ी कृपा होगी।।३१।।

इस प्रकार से निवेदन करते हुये रात्रि के समय में देवाधिदेव के पास 'ॐ नमोनारायणाय' मन्त्र से जप करते हुये यथाविधि वहीं शयन करना चाहिए।।३२।।

फिर संयमपालक पुरुष विमल प्रभात वेला में समुद्रगामिनी अथवा दूसरी किसी नदी या तालाब में अथवा उसके जल से घर में ही स्नान करना चाहिए।।३३।।

फिर मनुष्य आगे कथित इन मन्त्रों से मिट्टी ग्रहण करते हुये बोले कि हे देवि! तुम्हारे द्वारा सर्वदा प्राणियों को अवलम्बन और पोषण ही होता है। अतः हे सुव्रते! उस सत्य के द्वारा मेरे समस्त पापों को विनष्ट कर दो।।३४।।

हे देव! तुम्हारी किरणों से ब्रह्माण्डोदरस्थ समस्त तीर्थों का स्पर्श हुआ है। अतः आपकी आज्ञा से इस मिट्टी को स्पर्श करते हुए मैं आपके द्वारा स्पृष्ट उन पवित्र स्थानों को प्राप्त करता हूँ।।३५।।

हे वरुण देव! आपके अन्दर समस्त रस सदा ही स्थित रहते हैं। अतः इस मृत्तिका को आप्लावित कर शीघ्र ही पवित्र कर दो।।३६।।

इस तरह मिट्टी और जल की स्तुति कर उसे अपने शरीर में धारण करना चाहिए। 'ऐसा तीन बार करते हुये शेष मिट्टी से जल में कुण्ड का रेखाङ्कन करना चाहिए।।३७।।

तत्पश्चात् मनुष्य को चक्रवर्ती उपचार से वहीं स्नान करने के बाद आवश्यक अन्य कार्य सम्पन्न कर फिर देवालय में प्रवेश करनी चाहिए।।३८।।

तत्राराध्य महायोगिं देवं नारायणं प्रभुम्। केशवाय नमः पादौ कटिं दामोदराय च॥३९॥
ऊरुयुग्मं नृसिंहाय उरः श्रीवत्सधारिणे। कण्ठं कौस्तुभनाथाय वः श्रीपतये तथा॥४०॥
त्रैलोक्यविजयायेति बाहू सर्वात्मने शिरः। रथाङ्गधारिणे चक्रं शंकरायेति वारिजम्॥४१॥
म्भीरायेति च गदामम्भोजं शान्तिमूर्त्तये। एवमभ्यर्च्य देवेशं देवं नारायणं प्रभुम्॥४२॥

पुनस्तस्याग्रतः कुम्भान् चतुरः स्थापयेद् बुधः।
जलपूर्णान् समाल्यांश्च सितचन्दनलेपितान्॥४३॥

चूतपल्लवसग्रीवान् सितवस्त्रावगुण्ठितान्। स्थगितान् ताम्रपात्रैश्च लिपूर्णैः सकाञ्चनैः॥४४॥
चत्वारस्ते समुद्रास्तु कलशाः परिकीर्तिताः। तेषां मध्ये शुभं पीठं स्थापयेद् वस्त्रगर्भितम्॥४५॥
तस्मिन् सौवर्णरौप्यं वा ताम्रं वा दारवं तथा। अलाभे सर्वपात्राणां पालाशं पात्रमिष्यते॥४६॥
तोयपूर्णं तु तत्कृत्वा तस्मिन् पात्रे ततो न्यसेत्। सौवर्णं मत्स्यरूपेण कृत्वा देवं जनार्दम्।

वेदवेदाङ्गसंयुक्तं श्रुतिस्मृतिविभूषितम्॥४७॥

तत्रानेकविधैर्भक्षैः फलैः पुष्पैश्च शोभितम्। गन्धधूपैश्च वस्त्रैश्च अर्चयित्वा यथाविधि॥४८॥

फिर वहाँ महायोगी प्रभु नारायणदेव की पूजा अर्चना करनी चाहिए। जहाँ 'केशवाय नमः' इस मन्त्र से नारायणदेव के चरणों की पूजा कर 'दामोदराय नमः' मन्त्र से कटि की पूजा करनी चाहिए।।३९।।

'नृसिंहाय नमः' से दोनों ऊरुओं की, 'श्रीवत्सधारिणे नमः' मन्त्र से हृदय की, 'कौस्तुभनाथाय नमः' मन्त्र से कण्ठ की और 'श्रीपतये नमः' मन्त्र से वक्षःस्थल की पूजा करनी चाहिए।।४०।।

और 'त्रैलोक्यविजयाय नमः' मन्त्रा से बाहु की, 'सर्वात्मने नमः' से शिर की 'रथाङ्गधारिणे नमः' से चक्र की तथा 'चक्राय नमः' से शंख की पूजा करनी चाहिए।।४१।।

'गम्भीराय नमः' से गदा की और 'शान्तिमूर्त्तये नमः' से कमल की पूजा करनी चाहिए। इस तरह देवेश प्रभु नारायण देव की पूजा करनी चाहिए।।४२।।

तत्पश्चात् चतुर मनुष्य को फिर उन देव के सामने माला से युक्त चन्दन लेपित चार जलपूर्ण कलशों को स्थापित करना चाहिए।।४३।।

फिर उन कलशों के कण्ठों में आम्र पल्लव लगाना चाहिए और उसे श्वेत वस्त्रों से ढँक दिया जाना चाहिए। इससे पूर्व स्वर्णयुक्त, तिल से पूर्ण ताम्र के पात्रों से उन कलशों के मुख ढँक देना चाहिए।।४४।।

इस प्रकार से सुसज्जित कलशों को चार समुद्र समझना चाहिए। फिर उन कलशों के मध्य भाग में वस्त्र लिपटे पीठ की स्थापना भी करनी चाहिए।।४५।।

तत्पश्चात् उसके ऊपर स्वर्ण, चाँदी, ताम्र अथवा लकड़ी का पात्र स्थापित करना चाहिए। यह पात्र अन्य सभी प्रकार के पात्रों के अभाव में पलाश का भी हो सकता है।।४६।।

फिर इस पात्र को जल से भर देना चाहिए। उसमें वेदवेदाङ्ग और श्रुतियों एवं स्मृतियों से विभूषित जनार्दन देव की स्वर्ण की मस्त्यमूर्त्ति बनाकर रखनी चाहिए।।४७।।

इसके बाद पूजास्थल पर सविधि विविध प्रकार के भोज्यवस्तु, फल, पुष्प, गन्ध, धूप और वस्त्र उन देव की पूजा हेतु रख उनकी पूजा करनी चाहिए।।४८।।

रसातलगता वेदा यथा देव त्वयाहृताः। मत्स्यरूपेण तद्वन्मां भवानुद्धर केशव।
एवमुच्चार्य तस्याग्रे जागरं तत्र कारयेत्॥४९॥
यथाविभवसारेण प्रभाते विमले तथा। चतुर्णां ब्राह्मणानां च चतुरो दापयेद् घटान्॥५०॥
पूर्वं तु बह्वृचे दद्याच्छन्दोगे दक्षिणं तथा। यजुःशाखान्विते दद्यात् पश्चिमं घटमुत्तमम्।
उत्तरं कामतो दद्यादेष एव विधिः स्मृतः॥५१॥
ऋग्वेदः प्रीयतां पूर्वे सामवेदस्तु दक्षिणे। यजुर्वेदः पश्चिमतो अथर्वश्चोत्तरेण तु॥५२॥
अनेन क्रमयोगेन प्रीयतामिति वाचयेत्। मत्स्यरूपं च सौवर्णमाचार्याय निवेदयेत्॥५३॥
गन्धधूपादिवस्त्रैश्च संपूज्य विधिवत् क्रमात्। यस्त्विमं सरहस्यं च मन्त्रं चैवापपादयेत्।
विधानं तस्य वै दत्त्वा फलं कोटिगुणोत्तरम्॥५४॥
प्रतिपद्य गुरुं यस्तु मोहाद् विप्रतिपद्यते। स जन्मकोटि नरके पच्यते पुरुषाधमः।
विधानस्य प्रदाता यो गुरुरित्युच्यते बुधैः॥५५॥
एवं दत्त्वा विधानेन द्वादश्यां विष्णुमर्च्य च।
विप्राणां भोजनं कुर्याद् यथाशक्त्या सदक्षिणम्॥५६॥
ताम्रपात्रैश्च सतिलैः स्थगितान् कारयेद् घटान्। तत्र सज्जलपात्रस्थं ब्राह्मणाय कुटुम्बिने॥५७॥

फिर हे केशव देव! जैसे आपने मत्स्य रूप धारण कर वेदों का उद्धार किया था, वैसे ही आपको मेरा भी उद्धार करना चाहिए। इस प्रकार से कहते हुए प्रार्थनापूर्वक वहाँ जागरण करना चाहिए।।४९।।

तत्पश्चात् शुभ प्रभात वेला में ही यथाशक्ति दान रूप में दक्षिणा सहित चारों कलश चार ब्रह्मणों को दान कर देना चाहिए।।५०।।

इस प्रकार उन चारों कलशों में से पूर्व दिशा का ऋग्वेदी ब्राह्मण को, दक्षिण दिशा वाला कलश सामवेदी ब्राह्मण को, पश्चिम दिशा का उत्कृष्ट कलश यजुर्वेदी ब्राह्मण को तथा उत्तर दिशा का कलश स्वेच्छानुरुप ब्राह्मण को देना चाहिए। यही विधि बतलायी गई है।।५१।।

फिर पूर्व दिशा में ऋग्वेद, दक्षिण में सामवेद, पश्चिम में यजुर्वेद एवं उत्तर में अथर्ववेद प्रसन्न हों, कहना चाहिए।।५२।।

उपरोक्त क्रम से 'प्रीयताम्' इस पद का उच्चारण करते हुए सोने की मत्स्य मूर्त्ति आचार्य को सुपूर्द कर देना चाहिए।।५३।।

गन्ध, धूपादि तथा वस्त्रों से क्रम से सविधि पूजा करने के बाद मूर्त्ति दान करने के बाद जो रहस्यपूर्ण यह मन्त्र प्रदान करता है, उसे कोटिगुणित फल मिलता है।।५४।।

जिस किसी को गुरु बना लेने के बाद उनका मोहवश आदर नहीं किया जाता, तो ऐसे अधम व्यक्ति कोटि-कोटि जन्म पर्यन्त नरक का भोग करता रहता है। विद्वानों ने यहाँ विधि का उपदेश करने वाले को ही 'गुरु' माना है।।५५।।

एवम्प्रकारेण द्वादशी तिथि में विधान के अनुरुप दान देने के बाद विष्णु की पूजा कर यथासामर्थ्य ब्राह्मणों को भोजन कराकर दक्षिणा प्रदान करनी चाहिए।।५६।।

तत्पश्चात् पूजा स्थल में रखे हुए तिलयुक्त ताम्रपात्रों से ढँके हुए जल से भरे कलशों और भगवान् की प्रतिमा कुटुम्बी ब्राह्मण को दे देना चाहिए।।५७।।

देवं दद्यान्महाभागस्ततो विप्रांश्च भोजयेत्। भूरिणा परमान्नेन ततः पश्चात् स्वयं नरः।
भुञ्जीत सहितो बालैर्वाग्यतः संयतेन्द्रियः॥५८॥
अनेन विधिना यस्तु धरणीव्रतकृन्नरः। तस्य पुण्यफलं चाग्र्यं शृणु बुद्धिमतां वर॥५९॥
यदि वक्त्रसहस्राणि भवन्ति मम सुव्रत। आयुश्च ब्रह्मणस्तुल्यं भवेद् यदि महाव्रत॥६०॥
तदानीमस्य धर्मस्य फलं कथयितुं भवेत्। तथाप्युद्देशतो ब्रह्मन् कथयामि शृणुष्व तत्॥६१॥
दश सप्त दश द्वे च अष्टौ चत्वार एव च। लक्षायुतानि चत्वारि एकस्थं स्याच्चतुर्युगम्॥६२॥
तैरेकसप्ततियुगं भवेन्मन्वन्तरं मुने। चतुर्दशाहो ब्राह्मस्तु तावती रात्रिरिष्येत॥६३॥
एवं त्रिंशद्दिनो मासस्ते द्वादश समा स्मृता। तेषां शतं ब्रह्मणस्तु आयुर्नास्त्यत्र संशयः॥६४॥
यः सकृद् द्वादशीमेतामनेन विधिना क्षिपेत्। स ब्रह्मलोकमाप्नोति तत्कालं चैव तिष्ठति॥६५॥
ततो ब्रह्मोपसंहारे तल्लयं तिष्ठते चिरम्। पुनः सृष्टौ भवेद् देवो वैराजानां महातपाः॥६६॥
ब्रह्महत्यादिपापानि इह लोककृतान्यपि। अकामे कामतो वापि तानि नश्यन्ति तत्क्षणात्॥६७॥
इह लोके दरिद्रो यो भ्रष्टराज्योऽथ वा नृपः। उपोष्य तां विधानेन स राजा जायते ध्रुवम्॥६८॥

फिर अत्यन्त भाग्यवान् यजवान ब्राह्मणों को पर्याप्त पायस का भोजन कराने के पश्चात् वह यजवान बालकों के साथ संयमपूर्वक स्वयं भी भोजन करें।।५८।।

हे श्रेष्ठ बुद्धिमान्! जो जन इस विधि से धरणी का किया व्रत करता है, उसे प्राप्त होने वाले उत्तम फलों को कहता हूँ, सुनो।।५९।।

हे सुव्रत! मुझको यदि हजारों मुख के साथ हे महाव्रती! मेरी आयु ब्रह्मा के समान हो, तो फिर इस धर्म का फल कहा जा सकेगा। फिर भी मैं उसे यहाँ सारांश में कहता हूँ, उसे सुनो।।६०-६१।।

दस सात, दस दो, आठ चार अर्थात् ३२०००० वर्ष और चार करोड़ वर्ष को एकत्रित करने से अर्थात् ४३२०००० वर्षों का चतुर्युग होता है। (यहाँ बत्तीस लाख लाया गया है, चौधरी श्री नारायण सिंह की प्रति में, वहीं से ही इसे उद्धृत किया गया है।)।।६२।।

हे मुनि! इस प्रकार के इकहत्तर चतुर्युगों से एक मन्वन्तर होता है। फिर चौदह मन्वन्तरों का ब्रह्माजी का एक दिन और उतनी ही अवधि की उनकी एक रात्रि कही गई है।।६३।।

फिर इस प्रकार के तीस दिनों का ब्रह्माजी का एक मास और बारह मास का एक वर्ष होता है। इस प्रकार के सौ वर्षों की ब्रह्मा की आयु कही गई है। इसमें सन्देह नहीं है।।६४।।

जो जन इस विधि से एक द्वादशी बीताता है, उसे ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है। फिर उन ब्रह्मा की आयु पर्यन्त वह मनुष्य ब्रह्मलोक में निवास करता है।।६५।।

फिर जब ब्रह्मा में ही सृष्टि का लय होता है, उस समय वह जन चिरकाल तक ब्रह्मा में ही विलीन रहता है। लेकिन पुनःसृष्टि होने पर वह महातपस्वी वैराजों का देवता होता है।।६६।।

इस स्थिति में इस लोक में उपरोक्त प्रकार जानकर या अनजाने में किये गए ब्रह्महत्या आदि जैसे महापाप भी उसी पल विनष्ट हो जाते हैं।।६७।।

इस तरह इस लोक में जो जन दरिद्र होता है या जिस किसी राजा का राज्य नष्ट हुआ है, वह यदि विधि के अनुरूप उस द्वादशी के दिन व्रत करके निश्चयपूर्वक राजा हो सकता है।।६८।।

वन्ध्या नारी भवेद् या तु अनेन विधिना शुभा। उपोष्यति भवेत् तस्याः पुत्रः परमधार्मिकः॥६९॥
अगम्यागमनं येन कृतं जानाति मानवः। स इमं विधिमासाद्य तस्मात् पापाद् विमुच्यते॥७०॥
ब्रह्मक्रियाया लोपेन बहुवर्षकृतेन च। उपोष्येमां सकृद् भक्त्या वेदसंस्कारमाप्नुयात्॥७१॥
किमत्र बहुनोक्तेन न तदस्ति महामुने। अप्राप्यं प्राप्यते नैव पापं वा यन्न नश्यति॥७२॥
अनेन विधिना ब्रह्मन् स्वयमेव ह्युपोषिता। धरण्या मग्नया तात नात्र कार्या विचारणा॥७३॥
अदीक्षिताय नो देयं विधानं नास्तिकाय च। देवब्रह्मद्विषे वाऽपि न श्राव्यं तु कदाचन।
गुरुभक्ताय दातव्यं सद्यः पापप्रणाशनम्॥२४॥
इह जन्मनि सौभाग्यं धनं धान्यं वरस्त्रियः। भवन्ति विविधा यस्तु उपोष्य विधिना ततः॥७५॥
य इमं श्रावयेद् भक्त्या द्वादशीकल्पमुत्तमम्। शृणोति वा स पापैस्तु सर्वैरेव प्रमुच्यते॥७६॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे ऊनचत्वारिंशोऽध्यायः॥३९॥
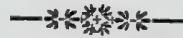
जो कोई बन्ध्या स्त्री इस विधान से शुभ द्वादशी को उपवास रखती है, उसे परम धार्मिक पुत्ररत्न की प्राप्ति होती है॥६९॥

जो कोई मनुष्य यह जानता हो कि उसने अगम्यागमन किया है, वह इस विधि का अनुसरण कर उस पाप से मुक्त हो सकता है॥७०॥

अधिक वर्षों तक उपनयनादि संस्कार रूप ब्रह्मक्रिया का लोप हो जाने पर जो जन भक्तिभाव से एक बार भी इस द्वादशी का व्रत रखता है, उसे वैदिक संस्कार प्राप्त होता है॥७१॥

हे महामुनि! बहुत कहने की क्या आवश्यकता है। इस प्रकार की कोई अप्राप्य पदार्थ नहीं है, जो इस द्वादशी व्रत के करने पर नहीं प्राप्त हो जाता है तथा सभी प्रकार के पाप भी नष्ट हो जाते हैं॥७२॥

हे ब्रह्मन्! महासागर में डूबी हुई स्वयं धरणी ने ही इस विधि से व्रत किया था, हे तात! इसमें सन्देह नहीं करना चाहिए॥७३॥

दीक्षाहीन और नास्तिक जन को इस द्वादशी व्रत विधान का उपदेश नहीं करना चाहिए। फिर देवता, ब्राह्मण आदि के द्वेषी जन को भी कभी भी यह विधि नहीं बतलानी चाहिए। केवल गुरु भक्त को ही इस द्वादशी व्रत विधान का उपदेश करना श्रेष्ठ है। इस द्वादशी व्रत के विधान को करने से तत्काल समस्त पाप विनष्ट हो जाता है॥७४॥

जो जन उपरोक्त विधान से व्रत करता है, उसे इस जन्म में सौभाग्य, धन, धान्य और विविध प्रकार की सुन्दर स्त्रियाँ भी भोग हेतु मिलती हैं॥७५॥

जो जन इस श्रेष्ठ द्वादशी कल्प की कथा को सुनता या सुनाता है, वे सभी पापों से मुक्त हो जाता है॥७६॥

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में मार्गशीर्ष शुक्ल मत्स्य द्वादशी विधान और माहात्म्य नामक उनतालीसवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥३९॥

❖❖❖

चत्वारिंशोऽध्यायः

अथ कूर्मद्वादशीव्रतविधानम्

दुर्वासा उवाच

तथैव पौषमासे तु अमृतं मथितं सुरैः। तत्र कूर्मो भवेद् देवः स्वयमेव जनार्दनः॥१॥
तस्येयं तिथिरुद्दिष्टा हरेर्वै कूर्मरूपिणः। पुष्यमासस्य या शुद्धा द्वादशी शुक्लपक्षतः॥२॥

तस्यां प्रागेव संकल्प्य प्राग्वत् स्नानादिकाः क्रियाः।
निर्वर्त्याराधयेद् रात्र्यामेकादश्यां जनार्दनम्।
पृथङ्मन्त्रैर्मुनिश्रेष्ठ देवदेवं जनार्दनम्॥३॥
ॐकूर्माय पादौ प्रथमं प्रपूज्य नारायणायेति हरेः कटिं च।
संकर्षणायेत्युदरं विशोकेत्युरो भवायेति तथैव कण्ठम्।
सुबाहवेत्येव भुजौ शिरश्च नमो विशालाय रथाङ्गसारम्॥४॥
स्वनामन्त्रेण सुगन्धपुष्पैर्नानानिवेद्यैर्विविधैः फलैश्च।
अभ्यर्च्य देवं कलशं तदग्रे संस्थाप्य माल्यैः सितकण्ठदाम॥५॥

अध्याय-४०

पौषशुक्ल कूर्म द्वादशी व्रत विधि व महात्म्य

दुर्वासा ने कहा कि उसी तरह से देवताओं ने पौषमास में अमृत का मन्थन किया था, उस समय स्वयं जनार्दन देव ही कूर्म (कछुआ) होकर अवतरित हुए थे।।१।।

उन्हीं कूर्म स्वरूप वाले जनार्दन देव के पूजन के लिए पौषमास के शुक्लपक्ष की द्वादशी तिथि सुनिश्चित की गई है।।२।।

हे मुनिश्रेष्ठ! उपरोक्त तिथि को पहले की तरह संकल्प के सहित स्नानादि चर्याओं को सम्पन्न कर एकादशी की रात्रि में पृंथक् मन्त्रों से देवाधिदेव जनार्दन की आराधना करनी चाहिए।।३।।

पूजा का क्रम इस प्रकार है—'ॐ कुर्माय नमः' इस मन्त्र से सर्वप्रथम पादों की पूजा करनी चाहिए। 'ॐ नारायणाय नमः' मन्त्र से कटि का, 'ॐ सङ्कर्षणाय नमः' मन्त्र से उदर का, 'ॐ विशोकाय नमः' मन्त्र से हृदयास्थल का, 'ॐ भवाय नमः' मन्त्र से कण्ठ का, 'ॐ सुबाहवे नमः' मन्त्र से दोनों बाहुओं का और 'ॐ विशालायनमः' मन्त्र से चक्र का पूजन करना चाहिए।।४।।

उन देवता का नाम उच्चारण सहित मन्त्र बोलते हुए सुगन्ध, पुष्प, विविध नैवेद्य और अनेक प्रकार के फलों से कूर्मदेव का पूजन करते हुए उनके सम्मुख माला एवं श्वेत वस्त्र से आच्छादित कलश की स्थापना करनी चाहिए।।५।।

तं रत्नगर्भं तु पुरेव कृत्वा स्वशक्तितो हेममयं तु देवम्।
समन्दरं कूर्मरूपेण कृत्वा संस्थाप्य ताम्रे घृतपूर्णपात्रे।
पूर्णघटस्योपरि संनिवेश्य श्वो ब्राह्मणायैवमेवं तु दद्यात्॥६॥
श्वो ब्राह्मणान् भोज्य सदक्षिणांश्च यथाशक्त्या प्रीणयेद् देवदेवम्।
नारायणं कूर्मरूपेण पश्चाद् तथा स्वयं भुञ्जीत सभृत्यवर्गः॥७॥
एवं कृते विप्र समस्तपापं विनश्यते नात्र कुर्याद् विचारम्।
संसारचक्रं तु विहाय शुद्धं प्राप्नोति लोकं च हरेः पुराणम्।
प्रयान्ति पापानि विनाशमाशु श्रीमांस्तथा जायते सत्यधर्मः॥८॥
अनेकजन्मान्तरसंचितानि नश्यन्ति पापानि नरस्य भक्त्या।
प्रागुक्तरूपं तु फलं भवेत नारायणस्तुष्टिमायाति सद्यः॥९॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे चत्वारिंशोऽध्यायः॥४०॥

पहले की ही तरह से उन कलशों में रत्न डालकर विभवानुसार मन्दर सहित कूर्म देव की स्वर्ण मूर्त्ति बनवाकर कलश पर स्थापित करनी चाहिए। फिर घृत से भरी ताम्रपात्र पूर्णकलश पर रखकर अग्रिम दिन पूर्ववत् ब्राह्मण को दान देना श्रेष्ठ है।।६।।

अगले दिन ब्राह्मण भोजन कराने के बाद दक्षिणा सहित उन्हें प्रदान करना चाहिए। फिर शक्ति के अनुरूप कूर्ममूर्त्ति नारायण देव की स्तुति भी करनी चाहिए। तत्पश्चात् भृत्यादि सहित स्वयं भी भोजन करना चाहिए।।७।।

हे विप्र! इस प्रकार से करने पर सभी प्रकार के पाप निस्सन्देह विनष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार से व्रत धारण करने वाला साधक संसार चक्र से मुक्त होकर श्रीहरि के प्राचीनतम लोक को प्राप्त कर लेता है। उसके समस्त पाप भी शीघ्र विनष्ट होने से वह सत्यधर्मपरायण श्रीमान् होता है।।८।।

इस प्रकार साधक के विविध जन्मान्तर से सञ्चित हुआ पाप देव की भक्ति के प्रभाव से विनष्ट होते हैं और उसे पूर्वाध्याय में कथित पुण्यफल की प्राप्ति होकर तत्काल नारायण देव की प्रसन्नता की प्राप्ति होती है।।९।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में पौषशुक्ल कूर्म द्वादशी व्रत विधि व माहात्म्य नामक चालीसवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥४०॥

❖❖❖

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

अथ वराहद्वादशीव्रतविधानम्

दुर्वासा उवाच

एवं माघे सिते पक्षे द्वादशीं धरणीभृतः। वराहस्य शृणुष्वाद्यां मुने परमधार्मिक॥१॥
प्रागुक्तेन विधानेन संकल्पस्नानमेव च। कृत्वा देवं समभ्यर्च्य एकादश्यां विचक्षणः॥२॥
धूपनैवेद्यगन्धेश्च अर्चयित्वाऽच्युतं नरः। पश्चात् तस्याग्रतः कुम्भं जलपूर्णं तु विन्यसेत्॥३॥
ॐ वाराहायेति पादौ तु माधवायेति वै कटिम्। क्षेत्रज्ञायेति जठरं विश्वरूपेत्युरो हरेः॥४॥
सर्वज्ञायेति कण्ठं तु प्रजानां पतये शिरः। प्रद्युम्नायेति च भुजौ दिव्यास्त्राय सुदर्शनम्।

अमृतोद्भवाय शङ्खं तु एष देवार्चने विधिः॥५॥
एवमभ्यर्च्य मेधावी तस्मिन् कुम्भे तु विन्यसेत्।
सौवर्णं रौप्यताम्रं वा पात्रं विभवशक्तितः॥६॥

सर्वबीजैस्तु सम्पूर्णं स्थापयिवा विचक्षणः। तत्र शक्त्या तु सौवर्णं वाराहं कारयेद् बुधः॥७॥

अध्याय-४१

माघशुक्ल वाराह द्वादशी व्रत एवं माहात्म्य

दुर्वासा ने कहा कि हे परम धार्मिक मुनि! इसी प्रकार माघ मास के शुक्लपक्ष में पृथ्वी को धारण करने वाले वराहदेव की आद्या द्वादशी के पूजन और माहात्म्य का वर्णन ध्यान से सुनो।।१।।

बुद्धिमान् साधक को एकादशी के दिन पूर्व-अध्यायोक्त विधान के अनुरूप संकल्प और फिर स्नान करने के पश्चात् भगवान् वराहदेव की पूजा करनी चाहिए।।२।।

भक्त जन को धूप, नैवेद्य और गन्ध से अच्युत श्रीविष्णु देव की पूजा करने के पश्चात् उन्हीं के सम्मुख जलपूर्ण कलश की स्थापना करनी चाहिए।।३।।

तत्पश्चात् 'ॐ वाराहाय नमः' मन्त्र से पादों का, 'ॐ माधवाय नमः' मन्त्र से कटि का, 'क्षेत्रज्ञाय नमः' मन्त्र से पेट का, 'ॐ विश्वरूपाय नमः' मन्त्र से श्रीहरि के हृदय का पूजन करना श्रेयस्कर है।।४।।

फिर 'ॐ सर्वज्ञाय नमः' मन्त्र से कण्ठ का 'ॐ प्रजापतये नमः' मन्त्र से शिर का, 'ॐ प्रद्युम्नाय नमः' मन्त्र से बाहुओं का, 'ॐ दिव्यास्त्राय नमः' मन्त्र से सुदर्शन चक्र का, 'ॐ अमृतोद्भवाय नमः' मन्त्र से शंख का पूजन करना चाहिए। इस प्रकार से देवपूजन विधि बतलायी गई है।।५।।

इस प्रकार मेधावी पुरुष को पूजन कर अपने विभव के अनुरूप कलश पर स्वर्ण, रजत या ताम्र का पात्र रखना चाहिए।।६।।

निपुण बुद्धिमान् जन को विविध प्रकार के धान्य बीजों से भरे पात्र की स्थापना कर अपनी शक्ति के अन्तर्गत उस पात्र के ऊपर स्वर्ण की वराह भगवान् की मूर्त्ति स्थापित करनी चाहिए।।७।।

दंष्ट्राग्रेणोद्धृतां पृथ्वीं सपर्वतवनद्रुमाम्। माधवं मधुहन्तारं वाराहं रूपमास्थितम्॥८॥
सर्वबीजभृते पात्रे रत्नगर्भं घटोपरि। स्थापयेत् परमं देवं जातरूपमयं हरिम्॥९॥
सितवस्त्रयुगच्छन्नं ताम्रपात्रं तु वै मुने। स्थाप्यार्च्चयेद् गन्धपुष्पैर्नैवेद्यैर्विविधैः शुभैः॥१०॥
पुष्पमण्डलिकां कृत्वा जागरं तत्र कारयेत्। प्रादुर्भावान् हरेस्तत्र वाचयेद् भावयेद् बुधः॥११॥
एवं सन्नियमस्यान्तं प्रभाते उदिते रवौ। शुचिः स्नात्वा हरिं पूज्य ब्राह्मणाय निवेदयेत्॥१२॥
वेदवेदाङ्गविदुषे साधुवृत्ताय धीमते। विष्णुभक्ताय विप्रर्षे विशेषेण प्रदपयेत्॥१३॥
देवं सकुम्भं तं दत्त्वा हरिं वाराहरूपिणम्। ब्राह्मणाय भवेद् यद्धि फलं तन्मे निशामय॥१४॥
इह जन्मनि सौभाग्यं श्रीः कान्तिस्तुष्टिरेव च। दरिद्रो वित्तवान् सद्यः अपुत्रो लभते सुतम्।
अलक्ष्मीर्नश्यते सद्यो लक्ष्मीः संविशते क्षणात्॥१५॥
इह जन्मनि सौभाग्यं परलोके निशामय। अस्मिन्नर्थे पुरावृत्तमितिहासं पुरातनम्॥१६॥
इह लोकेऽभवद् राजा वीरधन्वेति विश्रुतः। स कदाचिद् वनं प्रायान् मृगहेतोः परंतपः॥१७॥

कलश के ऊपर विविध बीजों से भरे पात्र में अपनी दंष्ट्रा के अग्रभाग से पर्वत, वन और वृक्षों से सम्पन्न धरणी का उद्धार करने वाले और मधु नाम के राक्षस को मारने वाले उस वाराह रूप धारण करने वाले माधव परमदेव श्रीहरि की रत्नगर्भ सोने की मूर्त्ति स्थापित करनी चाहिए।।८-९।।

हे मुने! श्वेत वस्त्रों से आच्छादित दो ताम्रपात्रों को कलश पर स्थापित कर विविध प्रकार के पवित्र गन्ध, पुष्प, नैवेद्यों आदि से उस देव मूर्त्ति की पूजा करनी चाहिए।।१०।।

विद्वान् जन को पुष्पों का एक मण्डप बनाकर और वहीं पर स्थित होकर रात्रिजागरण करनी चाहिए। उन हरि के अवतारों की कथा आदि का पाठ और ध्यान करना चाहिए।।११।।

इस तरह से इस व्रत के सम्पन्न हो जाने के अवसर पर सूर्योदय कालिक प्रभात में स्नान से शुद्ध होकर श्रीहरि की पूजा कर ब्राह्मण को दान कर देनी चाहिए।।१२।।

वह देव मूर्त्ति निश्चय ही वेदों, वेदाङ्गों आदि शास्त्र के विद्वान् साधु स्वभाव, बुद्धिशील विष्णुभक्त श्रेष्ठ ब्राह्मण को प्रदान करनी चाहिए।।१३।।

भगवान् वाराहस्वरूप देव हरि की वह प्रतिमा ब्राह्मण को कलश के साथ दान करने पर जिस प्रकार का फल होता है, उसे कहते हैं, सुनो।।१४।।

उपरोक्त प्रकार से प्रतिमा दान करने से इस जन्म में सौभाग्य, लक्ष्मी, कान्ति, तुष्टि आदि प्राप्त होते हैं। इस प्रकार व्रत करने वाला दरिद्र होने पर तत्काल सम्पत्तिवान् और उसे सन्तान नहीं होने पर तत्क्षण सन्तान प्राप्त होती है। प्रायः तत्काल अलक्ष्मी दूर होकर लक्ष्मी की प्राप्ति होती है।।१५।।

उपरोक्त का फल इस जन्म में सौभाग्य प्राप्ति है, परन्तु परलोक में प्राप्त होने वाले फल को कहते हैं, सुनो। इस प्रसङ्ग में एक पुरातन कालिक ऐतिहासिक कथा प्रसिद्ध है।।१६।।

इस जगत् में एक बार वीरधन्वा नाम से एक प्रसिद्ध राजा हुआ था। एक बार वह परन्तप राजा शिकार करने के लिए वन की यात्रा पर गया।।१७।।

व्यापादयन् मृगगणान् तत्रर्षिवनमध्यगः। जघान मृगरूपान् सोऽज्ञानो ब्राह्मणान् नृपः॥१८॥
भ्रातरस्तत्र पञ्चाशन्मृगरूपेण संस्थिताः। संवर्तस्य सुता ब्रह्मन् वेदाध्ययनतत्पराः॥१९॥

सत्यतपा उवाच

कारणं किं समाश्रित्य ते चक्रुर्मृगरूपताम्। एतन्मे कौतुकं ब्रह्मन् प्रणस्य प्रसीद मे॥२०॥

दुर्वासा उवाच

ते कदाचिद् वनं याता दृष्ट्वा हरिणपोतकान्।
जातमात्रान् स्वमात्रा तु विहीनान् दृश्य सत्तम।
एकैकं जगृहुस्ते हि ते मृताः स्कन्धसंस्थिताः॥२१॥

ततस्ते दुःखिता सर्वे ययुः पितरमन्तिकम्। ऊचुश्च वचनं चेदं मृगहिंसामृते मुने॥२२॥

ऋषिपुत्रका ऊचुः

जातमात्रा मृगाः पञ्च अस्माभिर्निहता मुने। अकामतस्ततोऽस्माकं प्रायश्चित्तं विधीयताम्॥२३॥
मपिता हिंसकस्त्वासीदहं तस्माद् विशेषतः। भवन्तः पापकर्माणः संजाता मम पुत्रकाः॥२४॥
इदानीं मृगचर्माणि परिधाय यतव्रताः। चरध्वं पञ्चवर्षाणि ततः शुद्धा भविष्यथ॥२५॥

उस राजा द्वारा उस ऋषिवन में स्थित पशुओं का शिकार करते हुए अज्ञानतावश मृगस्वरूप ब्राह्मणों का वध कर दिया गया।।१८।।

हे वेदाध्ययन में तत्पर ब्रह्मन्! उस वन में मृग रूप धारण कर संवर्त ऋषि के पुत्र पाँच भाई रहा करते थे।।१९।।

सत्यतपा ने पूछा कि हे ब्रह्मन्! वे पाँच भाई क्यों किस कारण से मृगरूप धारण किये हुये थे। मुझे यह जानने की अत्यन्त उत्सुकता है। कृपापूर्वक मेरे ऐसे विनम्र को वह रहस्य बतलायें, बड़ी कृपा होगी।।२०।।

दुर्वासा ने कहा कि वे सभी ऋषिपुत्र एक बार वन में भ्रमण करते हुये एक स्थान पर अपनी माता से बिछुड़े हुए तत्काल उत्पन्न मृगों के पुत्रों को देखा। हे सात्त्विक पुरुष! उन हिरण शावकों को असुरक्षित देखकर उन पाँचों भाईयों ने एक-एक शावक को अपने-अपने कन्धों पर ले लिया। लेकिन उनके कन्धे पर रखे हुए ही वे शावक मर गये।।२१।।

हे मुने! तत्पश्चात् वे सभी चिन्तित होकर अपने पिता के समीप गये और फिर उनसे हुई मृगहिंसा का वास्तविक वर्णन कर दिया।।२२।।

ऋषि पुत्रों ने कहा कि हे मुने! हम लोगों ने विना किसी इच्छा के तत्काल जन्में मृग के पाँच बच्चों को मारा है। अतः हमारे लिए इस पाप का प्रायश्चित्त बतलायें।।२३।।

संवर्त ने कहा कि मेरे भी पिता हिंसक थे एवं मैं उनसे भी बड़ा हिंसक हुआ। इसलिए कि पापकर्म करने वाले तुम लोग जैसे मेरे पांच हुए।।२४।।

अतः अब तुम लोग मृगचर्म धारणकर पांच वर्ष तक विचरण करते रहो। फिर जाकर तुम लोग पवित्र हो पाओगे।।२५।।

एवमुक्तास्तु ते पुत्रा मृगचर्मोपवीनिः। वनं विविशुरव्यग्रा जपन्तो ब्रह्म शाश्वतम्॥२६॥
तथा वर्षे व्यतिक्रान्ते वीरधन्वा महीपतिः। तत्राजगाम यस्मिंस्ते चरन्ति मृगरूपिणः॥२७॥
ते चाप्येकतरोर्मूले मृगचर्म्मोपवीतिनः। जपन्तः संस्थितास्ते हि राज्ञा दृष्ट्वा मृगा इति।
मत्वा विद्धास्तु युगपन्मृतास्ते ब्रह्मवादिनः॥२८॥
तान् दृष्ट्वा तु मृतान् राजा ब्राह्मणान् संशितव्रतान्। भयेन वेपमानस्तु देवराश्रमं ययौ।
तत्रापृच्छद् ब्रह्मवध्या ममायाता महामुने॥२९॥
आमूल्य तद् वधं वृत्तं कथयित्वा नराधिपः। भृशं शोकपरीतात्मा रुरोद भृशदुःखितः॥३०॥
स ऋषिर्देवरातस्तु रुदन्तं नृपसत्तमम्। उवाच मा भैर्नृपते अपनेष्यामि पातकम्॥३१॥
पाताले सुतलाख्ये च यथा धात्री निमज्जती। उद्धृता देवदेवेन विष्णुना क्रोडमूर्त्तिना॥३२॥
तद्वद् भवन्तं राजेन्द्र ब्रह्मवध्यापरिप्लुतम्। उद्धरिष्यति देवोऽसौ स्वयमेव जनार्दनः॥३३॥
एवमुक्तस्ततो राजा हर्षितो वाक्यमब्रवीत्। कतरेण प्रकारेण स मे देवः प्रसीदति।
प्रसन्ने चाशुभं सर्वं येन नश्यति सत्तम॥३४॥

दुर्वासा उवाच

एवमुक्तो मुनिस्तेन देवरात इमं व्रतम्।
आचख्यौ सोऽपि तं कृत्वा भुक्त्वा भोगान् सुपुष्कलान्॥३५॥

इस प्रकार से कहे जाने पर वे सभी ऋषि पुत्र मृगचर्म धारण कर व्यग्रता रहित होकर शाश्वत वेदमन्त्रों का पाठ करते हुए वन में भ्रमण करने लगे।।२६।।

फिर इसी तरह से एक वर्ष बीत जाने पर वीरधन्वा राजा उस वन में आ पहुँचा। जिस जगह पर मृग रूप में वे सभी ऋषिपुत्र भ्रमण कर रहे थे।।२७।।

मृगचर्म धारण किये हुए वे पांच भाई एक वृक्ष के मूल में बैठकर जप कर रहे थे। राजा ने उन सबको देखा और मृग समझ कर बाणों से विद्ध दिया। इस प्रकार से वे सभी भाई ब्रह्मवादी एक साथ ही शरीर त्याग दिये।।२८।।

इस प्रकार तीव्रव्रत धारण किये हुए उन ब्राह्मणों को मरा हुआ जानकर वह राजा भय से कम्पित हो उठा और फिर वह देवरात मुनि के आश्रम में आ पहुचा। वहाँ राजा ने कहा कि हे महामुने! मुझे ब्रह्महत्या लग गई है'। तब फिर उस राजा ने शुरुआत से उस हत्या की घटना का वर्णन कर दिया तत्पश्चात् अत्यधिक शोक और सन्ताप से युक्त होकर रोने लग गया।।२९-३०।।

फिर उन मुनि देवरात ने उस रोते हुए श्रेष्ठ राजा से बोला कि हे राजन्! डरो मत! मैं ही तुम्हारे इस ब्रह्महत्या रूपी पाप का परिमार्जन कर दूँगा।।३१।।

वराह स्वरूप धारण करने वाले देवाधिदेव विष्णु ने जिस प्रकार से सुतल नाम के पाताल में डूब रही पृथ्वी का उद्धार किया था, हे राजेन्द्र! वे ही जनार्दन देव स्वयं ही वैसे ही ब्रह्महत्या युक्त तुम्हारा भी उद्धार कर सकेंगे। इस प्रकार के कथन को सुनकर प्रसन्न राजा ने कहा कि हे महात्मन्! वे देव, जिनकी प्रसन्नता से विविध प्रकार के अनिष्टों का शमन होता है, मेरे ऊपर किस प्रकार से प्रसन्न होंगे।।३२-३४।।

दुर्वासा ने कहा कि उस राजा के इस प्रकार से निवेदन करने पर मुनि देवरात ने एक व्रत बतलाया। उस व्रत को करने के बाद उस राजा ने विविध प्रकार के भोगों को भोगा।।३५।।

मृत्युकाले मुनिश्रेष्ठ सौवर्णेन विराजता। विमानेनागमत् स्वर्गमिन्द्रलोकं स पार्थिवः॥३६॥
तस्येन्द्रस्त्वर्घ्यमादाय प्रत्युत्थानेन निर्ययौ। आयान्तमिन्द्रं दृष्ट्वा तु तमूचुर्विष्णुकिंकराः।
न द्रष्टव्यो देवराजस्त्वद्धीनस्तपसा इति॥३७॥
एवं सर्वे लोकपाला निर्ययुस्तस्य तेजसा। प्रत्याख्याताश्च तैर्विष्णुकिंकरैर्हीनकर्मणः।
एवं स सत्यलोकान्तं गतो राजा महामुने॥३८॥
अपुनर्मारके लोके दाहप्रलयवर्ज्जिते। अद्यापि तिष्ठते देवैः स्तूयमानो महानृपः।
प्रसन्ने यज्ञपुरुषे किं चित्रं येन तद्भवेत्॥३९॥
इह जन्मनि सौभाग्यमायुरारोग्यसम्पदः। एकैका विधिनोपास्ता ददात्यमृतमुत्तमम्॥४०॥
किं पुनर्वर्षसम्पूर्णे स ददाति स्वकं पदम्। नारायणश्चतुर्मूर्तिः पराध्यँ च न संशयः॥४१॥
यथैवोद्धृतवान् वेदान् मत्स्यरूपेण केशवः। क्षीराम्बुधौ मथ्यमाने मन्दरं धृतवान् प्रभुः।
तद्वच्च कूर्मरूपाख्या द्वितीया पश्य वैष्णवी॥४२॥
यथा रसातलात् क्ष्मां च धृतवान् पुरुषोत्तमः। वराहरूपी तद्वच्च तृतीया पश्य वैष्णवी॥४३॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे एकचत्वारिंशोऽध्यायः॥४१॥

हे मुनिवर! फिर वह राजा मृत्युकाल के आ जाने पर सुन्दर स्वर्णिम विमान से स्वर्गीय इन्द्रलोक में आ पहुँचा। फिर इन्द्र भी उसके स्वागतार्थ अर्घ्य लेकर तत्पर था और वह उस राजा की ओर बढ़ा। लेकिन इन्द्र को राजा की ओर आते देखकर भगवान् विष्णु के सेवकों ने कहा कि हे देव! देवराज इन्द्र से आपको नहीं मिलना चाहिए क्योंकि वह आपकी तुलना में तपस्या में न्यून ही हैं।।३६-३७।।

इस तरह से समस्त लोकपाल उस राजा के तेज को अनुभव कर उसकी ओर गये, किन्तु विष्णुसेवकों ने उन हीनकर्म वालों को मिलने से रोक दिया। हे महामुनि! इस प्रकार वह राजा सत्यलोक तक की यात्रा सम्पन्न कर लिया।।३८।।

वह महाराजा इस समय भी दाह और प्रलय वर्जित पुनर्जन्म आदि रहित लोक में देवताओं से स्तुत निवास करता हुआ स्थित है। हलाँकि यज्ञपुरुष की प्रसन्नता से ये सब होना आर्श्चजनक नहीं है।।३९।।

विधिपूर्वक किसी एक तिथि का भी व्रत कर लेने से इस जन्म में सौभाग्य, आयु, आरोग्य, धन-सम्पत्ति आदि के सहित श्रेष्ठ मोक्ष की लब्धि सम्भव होता है फिर एक सम्वत्सर का व्रत सम्पन्न करने पर बात ही क्या है? वह चतुर्मूर्ति नारायण निःसंशय साधक को अपना अतिश्रेष्ठ स्थान प्रदान करेंगे ही।।४०-४१।।

उन प्रभु केशव ने प्रथम मत्स्य स्वरूप से जिस तरह वेदों का उद्धार किया, उसी तरह से दूसरे कूर्मस्वरूप में सागर-मन्थन के समय मन्दर पर्वत को धारण किया। इस प्रकार इसे समझना चाहिए।।४२।।

फिर जब वाराह स्वरूप से भगवान् पुरुषोत्तम ने जिस तरह रसातल से धरणी का उद्धार किया, जिसे भगवान् विष्णु की तीसरी मूर्त्ति समझनी चाहिए।।४३।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में माघशुक्ल वाराह द्वादशी व्रत एवं माहात्म्य नामक इकतालीसवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥४१॥

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

अथ नरसिंहद्वादशीविधानम्

दुर्वासा उवाच

तद्वत् फाल्गुनमासे तु शुक्लपक्षे तु द्वादशीम्। उपोष्य प्रोक्तविधिना हरिमाराधयेत् सुधीः॥१॥
नरसिंहाय पादौ तु गोविन्दायेत्युरू तथा। कटिं विश्वभुजे पूज्य अनिरुद्धेयुरस्तथा॥२॥
कण्ठं तु शिकिण्ठाय पिङ्गकेशाय वै शिरः। असुरध्वंसनायेति चक्रं तोयात्मने तथा।
शङ्खमित्येव संपूज्य गन्धपुष्पफलैस्तथा॥३॥
तदग्रे घटमादाय सितवस्त्रयुगान्वितम्। तस्योपरि नृसिहं तु सौवर्णं ताम्रभाजने।
सौवर्ण शक्तितः कृत्वा दारुवंशमयेऽपि वा॥४॥
रत्नगर्भघटे स्थाप्य तं संपूज्य च मानवः। द्वादश्यां वेदविदुषे ब्राह्मणाय निवेदयेत्॥५॥
एवं कृते फलं प्राप्तं यत् पुरा पार्थिवेन तु। तस्याहं संप्रवक्ष्यामि वत्सनाम्ना महामुने॥६॥
आसीत् किंपुरुषे वर्षे राजा परमधार्मिकः। भारतेति च विख्यातस्तस्य वत्सः सुतोऽभवत्॥७॥
स शत्रुभिर्जितः संख्ये हृतकोशो द्विपादवान्। वनं प्रायात् सपत्नीको वसिस्याश्रमेऽवसत्॥८॥

अध्याय–४२

फाल्गुन शुक्ल नरसिंह द्वादशी व्रत विधि और माहात्म्य

दुर्वासा ने कहा कि धीमान् पुरुष को उपरोक्त विधि से ही फाल्गुन मास के शुक्ल की द्वादशी तिथि को उपवासपूर्वक श्रीहरि विष्णु की आराधना करनी चाहिए।।१।।

'ॐ नरसिंहाय नमः' इससे दोनों पादों का, 'ॐ गोविन्दाय नमः' मन्त्र से ऊरुओं का, 'ॐ विश्वभुजे नमः' मन्त्र से कटि का एवं 'ॐ अनिरुद्धाय नमः' मन्त्र से वक्षःस्थल कापूजन करना चाहिए।।२।।

इस 'ॐ शितिकण्ठाय नमः' मन्त्र से कण्ठ का, 'ॐ पिङ्गकेशाय नमः' मन्त्र से सिर का, 'ॐ असुरध्वंसनाय नमः' मन्त्र से चक्र का तथा 'ॐ तोयात्मने नमः' मन्त्र से शंख का गन्ध, पुष्प, फलों आदि के साथ पूजन करना चाहिए। फिर उस पीठ देवता के सम्मुख ताम्र या बाँस की बनी पीठिका पर श्वेत वस्त्रों से आच्छादित दो कलश स्थापित करनी चाहिए। उस कलश के ऊपर सामर्थ्य के अनुरूप सुवर्ण या ताम्र के पात्र में सुवर्ण निर्मित नृसिंह की मूर्त्ति स्थापित करनी चाहिए।।३-४।।

रत्नयुक्त कलश पर रखा गया उपरोक्त पात्र में देवमूर्त्ति की स्थापनापूर्वक साधक को द्वादशी में उस मूर्त्ति की पूजा कर वेदज्ञ ब्राह्मण के लिए दान करनी चाहिए।।५।।

हे महामुने! पुरातन काल में राजा वत्स ने इस प्रकार से अनुष्ठान करने के बाद जिस प्रकार का शुभफल प्राप्त किया था, उसका उल्लेख मैं यहाँ अब करने जा रहा हूँ।।६।।

किंपुरुषवर्ष में भारत नाम से प्रसिद्ध परमधार्मिक एक राजा रहता था। उसे वत्स नाम का पुत्र हुआ।।७।।

एक समय वह राजा अपने शत्रुओं से युद्ध में हारकर और धनादि कोष रहित होकर अपनी पत्नि के सहित पैदल ही चलते हुए वन में आ गया और फिर वशिष्ठ के आश्रम में रहने लगा।।८।।

कालेन गच्छता सोऽथ वसिष्ठेन महर्षिणा। किं कार्यमिति स प्रोक्तो वसस्यस्मिन् महाश्रमे॥९॥

राजोवाच

भगवन् हृतकोशोऽहं हृतराज्यो विशेषतः। शत्रुभिर्हतसंकल्पो भवन्तं शरणं गतः।
उपदेशप्रदानेन प्रसादं कर्तुमर्हसि॥१०॥

एवमुक्तो वसिष्ठस्तु तस्येमां द्वादशीं मुने। विधिना प्रत्युवाचाथ सोऽपि सर्वं तथाऽकरोत्॥११॥

तस्य व्रतान्ते भगवान् नारसिंहस्तुतोष ह। चक्रं प्रादाच्च शत्रूणां विध्वंसनकरं परम्॥१२॥

तेनास्त्रेण स्वकं राज्यं जितवान् स नृपोत्तमः। राज्ये स्थित्वाऽश्वमेधानां सहस्रमकरोद् विभुः।
अन्ते च विष्णुलोकाख्यं पदमाप च सत्तम॥१३॥

एषा धन्या पापहरा द्वादशी भवतो मुने। कथिता या प्रयत्नेन श्रुत्वा कुरु यथेप्सितम्॥१४॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे द्विचत्वारिंशोऽध्यायः॥

समय बीतने के अनन्तर एक बार महर्षि वशिष्ठ ने उससे पूछ दिया कि आप हमारे इस महाश्रम में किस प्रयोजन के अधीन रह रहे हैं॥९॥

तब राजा ने कहा कि हे भगवन्! मेरे शत्रुओं द्वारा विशेष रूप से मेरा धनादि कोष और राज्य अपहृत कर मेरे सङ्कल्पों को भी नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया है। फिर मैं आपकी शरण में आ गया हूँ। आप मुझे उपदेशित कर मेरे ऊपर अनुग्रह करने की कृपा प्रदान करें॥१०॥

हे मुने! इस प्रकार से उस राजा के उपरोक्त कथनों को सुनकर महर्षि वशिष्ठजी ने उस राजा को फाल्गुन शुक्ल नरसिंह द्वादशी व्रत विधि का उपदेश किया। उस राजा ने भी समस्त विधियों के सहित उस व्रत रूपी अनुष्ठान का सम्पादन किया॥११॥

फिर उस राजा की नरसिंह द्वादशी व्रत की विधि सम्पन्न होने के बाद भगवान् नरसिंह की प्रसन्नता उन्हें प्राप्त हुई। इस प्रकार उन भगवान् ने उन्हें श्रेष्ठ शत्रुनाशक चक्र प्रदान किया॥१२॥

वह श्रेष्ठ राजा उस श्रेष्ठ चक्र के प्रभाव से अपना राज्य शत्रुओं को जीतकर वापस प्राप्त कर लिया। फिर राज्य करते हुए उस राजा के द्वारा एक हजार अश्वमेध यज्ञ कराया गया। जीवन के अन्त में वह राजा विष्णुलोक की प्राप्ति भी करने में सफल हुआ॥१३॥

हे मुने! मेरे द्वारा आप से पवित्र पापहारिणी नरसिंह द्वादशी व्रत विधि को कहा गया है। आप भी सप्रयत्न इसका श्रवण किया और अब इच्छा हो, तो इस व्रत का अनुष्ठान कर अपना संकल्प पूर्ण करें॥१४॥

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में फाल्गुन शुक्ल नरसिंह द्वादशी व्रत विधि और माहात्म्य नामक बयालिसवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥४२॥

❖❖❖

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

अथ वामनद्वादशीविधानम्

दुर्वासा उवाच

एवमेव मुने मासि चैत्रे संकल्प्य द्वादशीम्। उपोष्याराधयेत् पश्चाद् देवदेवं जनार्दनम्।।१।।
वामनायेति पादौ तु विष्णवे कटिमर्चयेत्। वासुदेवेति जठरमुरः सम्पूर्णकाय च।।२।।
कण्ठं विश्वकृते पूज्य शिरो वै व्योमरूपिणे। बाहू विश्वजिते पूज्य स्वनाम्ना शंखचक्रकौ।।३।।
अनेन विधिनाभ्यर्च्य देवदेवं सनातनम्। प्राग्वदेवोत्तरं कुम्भं सयुग्मं पुरतो न्यसेत्।।४।।
प्रागुक्तपात्रे संस्थाप्य वामनं काञ्चनं बुधः। यथाशक्त्या कृतं ह्रस्वं सितयज्ञोपवीतिनम्।।५।।
कुण्डिकां स्थापयेत् पार्श्वे छत्रिकां पादुके तथा। अक्षमालां च संस्थाप्य वृसिकां च विशेषतः।।६।।
एतैरुपस्करैर्युक्तं प्रभाते स द्विजातये। दापयेत् प्रीयता विष्णुर्ह्रस्वरूपीत्युदीरयेत्।।७।।
मासनाम्ना तु संयुक्तं प्रादुर्भावविधानकम्। प्रीयतामिति सर्वत्र विधिरेष प्रकीर्तितः।।८।।

अध्याय–४३

चैत्रशुक्ल वामन द्वादशी व्रत विधि और माहात्म्य

दुर्वासा ने कहा कि हे मुने! इसी प्रकार ही चैत्रमास में भी शुक्लपक्ष द्वादशी तिथि को संकल्प कर उपवास करते हुए देवाधिदेव जनार्दन की आराधना करनी चाहिए।।१।।

पूजन मन्त्र इस प्रकार है—'ॐ वामनाय नमः' मन्त्र से चरणों की, 'ॐ विष्णवे नमः' मन्त्रा से कटि की, ॐ वासुदेवाय नमः' मन्त्रा से उदर की और 'सम्पूर्णकाय नमः' मन्त्र से उरःस्थल की पूजा की जानी चाहिए।।२।।

'ॐ विश्वकृते नमः' मन्त्र से कण्ठ की, 'ॐ व्याकमरूपिणे नमः' मन्त्र से शिर की, 'ॐ विश्वजिते नमः' मन्त्र से भुजाओं की और उनके अपने नाम से ही शंख तथा चक्र की पूजा करनी चाहिए।।३।।

उपरोक्त विधि से सनातन देवदेव की पूजा करते हुए पूर्व की तरह उत्तर दिशा में दो वस्त्रों से आच्छादित एक कुम्भ उनके सम्मुख स्थापित करने चाहिए।।४।।

फिर बुद्धिमान् साधक को उपरोक्त की तरह पूर्वोक्त पात्र में सामर्थ्यानुसार श्वेतयज्ञोपवीत सहित वामनदेवता की स्वर्ण की छोटी मूर्त्ति स्थापित करनी चाहिए।।५।।

तत्पश्चात् कलश (कुम्भ) के पार्श्वभाग में एक छोटी पात्र, छोटा छत्र, एक जोड़ा पादुका, अक्षमाला अर्थात् कमल की जपमाला और विशेषता से एक कुशासन रखना चाहिए।।६।।

फिर सुबह-सबेरे के समय उक्त सामग्रियों को देवमूर्त्ति सहित वह कुम्भ किसी ब्राह्मण को दान कर देना चाहिए। तथा 'ह्रस्वस्वरूपः विष्णुः प्रीयताम्' अर्थात् वामन रूपी विष्णु प्रसन्न हों, इस तरह से उच्चारण करना चाहिए।।७।।

चैत्रमास के नाम से संयुक्त विष्णुदेव के प्रादुर्भाव की विधि का उच्चारण कर 'प्रियताम्' कहना चाहिए अर्थात् 'चैत्रमासे द्वादश्यां वामनः प्रीयताम्' यह पद प्रत्येक जगह उच्चारण करना चाहिए। इसे हर जगह की विधि के लिए कही गई है।।८।।

श्रूयते च पुरा राजा हर्यश्वः पृथिवीपतिः। अपुत्रः स तपस्तेपे पुत्रमिच्छंस्तपोधनम्॥९॥
तस्यैव कुर्वतो व्युष्टिं पुत्रार्थे मुनिसत्तम। आजगाम हरिः पूर्वं द्विजरूपं समाश्रितः॥१०॥
उवाच तपसा राजन् किं ते व्यवसितं प्रभो। पुत्रार्थमिति प्रोवाच तं विप्रः प्रत्युवाच ह॥११॥
इदमेव विधानं तु कुरु राजन्नुवाच ह। एवमुक्त्वा तु राजानं क्षणादन्तर्हितः प्रभुः॥१२॥
राजाऽपि तं चकाराशु मन्त्रवन्तं द्विजातये। दरिद्राय तथा प्रादाज् ज्योतिर्गार्गाय धीमते॥१३॥
यथादितेरपुत्रायाः स्वयं पुत्रत्वमागतः। भगवंस्तेन सत्येन ममाप्यस्तु सुतो वरः॥१४॥
अनेन विधिना दत्ते तस्य पुत्रोऽभवन्मुने। कुवलाश्व इति ख्यातश्चक्रवर्ती महाबलः॥१५॥
अपुत्रो लभते पुत्रमधनो लभते धनम्। भ्रष्टराज्यो लभेद् राज्यं मृतो विष्णुपुरं व्रजेत्॥१६॥
कीर्त्तित्वा सुचिरं तत्र इह मर्त्यमुपागतः। चक्रवर्ती भवेद् धीमान् ययातिरिव नाहुषः॥१७॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे त्रयश्चत्वारिंशोऽध्यायः॥४३॥

सुना जाता है कि पुरातन काल में हर्यश्व नाम से एक पुत्रहीन तपस्वी राजा हुआ था। उसने पुत्र प्राप्ति की कामना से तप किया था॥९॥

हे श्रेष्ठ मुने! पुत्र के लिए तप कर रहे, उस राजा के पास उस काल में ब्राह्मण रूप धारण कर श्री विष्णु आ पहुँचे॥१०॥

उस ब्राह्मण ने कहा कि हे राजन्! हे प्रभो! आप इस तप से क्या सिद्ध करना चाहते हैं। इस पर राजा ने कहा कि मैं पुत्र प्राप्ति हेतु यह तप कर रहा हूँ। तो फिर उस आगत ब्राह्मण नेउस राजा से कहा कि—॥११॥

हे राजन् आप वामन द्वादशी का विधिपूर्वक व्रत करो। इस प्रकार कहकर वह ब्राह्मण रूप धारी विष्णु राजा के समीप से अन्तर्हित हो गये॥१२॥

फिर राजा ने भी यथाशीघ्र मन्त्रयुक्त वामन द्वादशी व्रत विधान का अनुसरण किया और ज्योतिर्गार्ग नाम के बुद्धिमान् लेकिन दरिद्र ब्राह्मण को सदक्षिणा कुम्भादि दान किया॥१३॥

तत्पश्चात् उसने भगवान् से प्रार्थना कि हे भगवन्! जैसे कि आप स्वयं अदिति के पुत्र हुये थे, वैसे ही अपने सत्यवचनवश मुझे भी श्रेष्ठ पुत्र की प्राप्ति हो॥१४॥

हे मुने! उपरोक्त प्रकार से पूजन और दान करने पर उस राजा हर्यश्व को कुवलाश्व नाम से अतिबलशाली चक्रवर्ती पुत्र की प्राप्ति हुई॥१५॥

इस प्रकार यह व्रत करने वाले साधक को पुत्रहीन होने पर पुत्र, धनहीन होने पर धन, जिस किसी का राज्य भ्रष्ट हो गया हो, उसे राज्य की प्राप्ति होती है। तथा मरने पर वह साधक विष्णुलोक में जाता है॥१६॥

वह साधक विष्णु लोक में जाकर चिरकाल तक कीर्त्ति प्राप्त करने के उपरान्त व्रत करने वाले नहुष-पुत्र ययाति के समान बुद्धिमान् चक्रवर्ती राजा होता है॥१७॥

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में चैत्रशुक्ल वामन द्वादशी व्रत विधि और माहात्म्य नामक तैंतालिसवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥४३॥

❖❖❖

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

अथ जामदग्न्यद्वादशीव्रतविधानम्

दुर्वासा उवाच

वैशाखेऽप्येवमेवं तु संकल्प्य विधिना नरः। तद्वत् स्नानादिकं कृत्वा ततो देवालयं व्रजेत्॥१॥
तत्राराध्य हरिं भक्त्या एभिर्मन्त्रैर्विचक्षणः। जागदग्न्याय पादौ तु उदरं सर्वधारिणे।
मधुसूदनायेति कटिमुरः श्रीवत्सधारिणे॥२॥
क्षत्रान्तकाय च भुजौ मणिकण्ठाय कण्ठकम्। स्वनाम्ना शङ्खचक्रौ तु शिरो ब्रह्माण्डधारिणे॥३॥
एवमभ्यर्च्य मेधावी प्राग्वत् तस्याग्रतो घटम्। विन्यस्य स्थगितं तद्वद् वस्त्रयुग्मेन वेष्टितम्॥४॥
वैणवेन तु पात्रेण तस्मिन् संस्थापयेद्धरिम्। जागदग्न्येति विख्यातं नाम्ना क्लेशविनाशनम्॥५॥
दक्षिणे परशुं हस्ते तस्य देवस्य कारयेत्। सर्वगन्धैश्च संपूज्य पुष्पैर्नानाविधैः शुभैः॥६॥
ततस्तस्याग्रतः कुर्याज्जागरं भक्तिमान्नरः। प्रभाते विमले सूर्ये ब्राह्मणाय निवेदयेत्।
एवं नियमयुक्तस्य यत्फलं तन्निबोध मे॥७॥

अध्याय–४४

वैशाख शुक्ल जामदग्न्य द्वादशी व्रत विधि और माहात्म्य

दुर्वासा ने कहा कि इसी प्रकार से साधक को वैशाख मास शुक्ल द्वादशी के दिन भी विधिवद् स्नानादि से निवृत्त होकर और संकल्पपूर्वक देवालय में जाकर उपरोक्त प्रकार पूजन करना चाहिए।।१।।

वहाँ पर विद्वान् साधक को भक्तिभाव से अधोलिखित मन्त्रों से हरि की आराधना करनी चाहिए। 'ॐ जामदग्न्याय नमः' मन्त्र से पादों, 'ॐ सर्वधारिणे नमः' मन्त्र से उदर, 'ॐ मधुसूदनाय नमः' मन्त्र से कटि, 'ॐ श्रीवत्सधारिणे नमः' मन्त्र से हृदय स्थल आदिमें श्री हरि की पूजा करनी चाहिए।।२।।

फिर श्री हरि के बाहुओं में 'ॐ क्षत्रान्तकाय नमः' मन्त्र से, कण्ठ में 'ॐ मणिकण्ठाय नमः' मन्त्र से तथा उनके अपने नाम से अर्थात् 'ॐ शङ्खधारिणे नमः' से शङ्ख और 'ॐ चक्रिणे नमः' मन्त्र से चक्र के साथ 'ॐ ब्रह्माण्डधारिणे नमः' मन्त्र से शिर में पूजन करना चाहिए।।३।।

तत्पश्चात् साधक को चाहिए कि उपरोक्त प्रकार पूजन कर देव के सम्मुख पूर्ववत् दो वस्त्रों से आच्छादित माल्यादि से सुशोभित कलश (कुम्भ) की स्थापना करें।।४।।

फिर उसे बाँस के पात्र से आच्छादित करने के उपरान्त उसमें कलशनाशक सुख्यात जामदग्न्य नाम से श्रीहरि की मूर्त्ति को स्थापित करनी चाहिए।।५।।

तदुपरान्त उन देवमूर्त्ति के दक्षिण हस्त में परशु स्थापित करनी चाहिए तथा समस्त गन्धों, पुष्पों आदि से उन देव की पूजा की जानी चाहिए।।६।।

तत्पश्चात् साधक को चाहिए कि वह उनके सम्मुख जागरण भी करे। फिर सबेरे सूर्योदय के बाद मूर्त्ति और कुम्भ किसी ब्राह्मण को दान करे। इस प्रकार से नियम करने वाले को, जो फल मिलता है, उसे अब मैं तुमसे कह रहा हूँ।।७।।

आसीद् राजा महाभागो वीरसेनो महाबलः। अपुत्रः स पुरा तीव्रं तपस्तेपे महौजसा॥८॥
चरतस्तत्तपो घोरं याज्ञवल्क्यो महामुनिः। आजगाम महायोगी तं दृष्ट्वा नातिदूरतः॥९॥
तमायान्तमथो दृष्ट्वा ऋषिं परमवर्चसम्। कृताञ्जलिपुटो भूत्वा राजाभ्युत्थानमाकरोत्॥१०॥
स पूजितो मुनिः प्राह किमर्थं तप्यते तपः। राजन् कथय धर्मज्ञ किं ते कार्यं विवक्षितम्॥११॥

राजोवाच

अपुत्रोऽहं महाभाग नास्ति मे पुत्रसंततिः। तेन मे तप आस्थाय कृष्यते स्वतनुर्द्विज॥१२॥

याज्ञवल्क्य उवाच

अलं ते तपसाऽनेन महाक्लेशेन पार्थिव। अल्पायासेन ते पुत्रो भविष्यति न संशयः॥१३॥

राजोवाच

कथं मे भविता पुत्रो अल्पायासेन वै द्विज। एतन्मे कथय प्रीतो भगवन् प्रणतस्य ह॥१४॥

दुर्वासा उवाच

एवमुक्तो मुनिस्तेन पार्थिवेन यशस्विना। आचख्यौ द्वादशीं चेमां वैशाखे सितपक्षजाम्॥१५॥
स हि राजा विधानेन पुत्रकामो विशेषतः। उपोष्य लब्धवान् पुत्रं नलं परमधार्मिकम्।
योऽद्यापि कीर्त्यते लोके पुण्यश्लोको नरोत्तमः॥१६॥

पुरातन काल में वीरसेन नाम से महान् भाग्यवान् और महान् बलशाली एक राजा हुआ था। महातेजस्वी वह राजा पुत्ररहित था। जिस कारण वह तीव्र तप करने लगा।।८।।

उस घोर तपनिष्ठ राजा के समीप उसी काल में महामुनि महायोगी याज्ञवल्क्य पधारे। राजा ने अपने पास आये हुए उन महामुनि को देखा।।९।।

फिर तो उस राजा ने परम तेजवान् उन ऋषि को आये हुये जानकर अपने हाथों को जोड़कर उनका स्वागत-सत्कार किया।।१०।।

इस प्रकार से उस राजा से पूजित व सत्कृत उन मुनि ने कहा कि हे धर्मज्ञ राजन्! आप घोर तप करने में क्यों कर संलग्न हैं? मुझसे कहो, तुम्हारा क्या अभीष्ट प्रयोजन है?।।१०।।

राजा ने कहा कि हे महाभाग! मैं पुत्रहीन जीवन जी रहा हूँ। मैं पुत्रादि सन्तानों से रहित होने के कारण ही हे द्विज! मैं इस प्रकार से घोर तप करते हुए अपने शरीर को कृश करने में लगा हूँ।।१२।।

याज्ञवल्क्य ने कहा कि हे राजन् अत्यन्त क्लेश युक्त आपका यह तप व्यर्थ है। आपको तो थोड़े यत्न से ही पुत्र की प्राप्ति हो सकती है, इसमें संशय मत करो।।१३।।

राजा ने कहा कि हे द्विज! अल्प प्रयत्न से मुझको कैसे पुत्र हो सकता है? हे भगवन्! मेरे ऐसे अत्यन्त विनीत के ऊपर प्रसन्न होकर इसका उपाय बतलायें।।१४।।

दुर्वासा ने कहा कि हे महामुने! उस यशस्वी राजा द्वारा इस प्रकार से कहे जाने के बाद उन ऋषि द्वारा वैशाख मास शुक्लपक्ष की द्वादशी तिथि के दिन व्रत विधि को बतलाया गया।।१५।।

फिर तो वह पुत्रकामना करने वाले राजा ने विशेष विधि द्वारा उपरोक्त द्वादशी के दिन व्रतोपवास करने के

प्रासङ्गिकं फलं ह्येतद् गतस्यास्य महामुने। सुपुत्रो जायते वित्तविद्यावान् कान्तिरुत्तमा॥१७॥
इह जन्मनि किं चित्रं परलोके शृणुष्व मे। कल्पमेकं ब्रह्मलोके वसित्वाऽप्सरसां गणैः॥१८॥
क्रीडत्यन्ते पुनः सृष्टौ चक्रवर्ती भवेद् ध्रुवम्। त्रिंशत्यब्दसहस्त्राणि जीवते नात्र संशयः॥१९॥

।इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः।।४४।।

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

अथ रामद्वादशीव्रतविधानम्

दुर्वासा उवाच

ज्येष्ठमासेऽप्येवमेवं संकल्प्य विधिना नरः। अर्चयेत् परमं देवं पुष्पैर्नानाविधैः शुभैः॥१॥
नमो रामाभिरामाय पादौ पूर्वं समर्चयेत्। त्रिविक्रमायेति कटिं धृतविश्वाय चोदरम्॥२॥

उपरान्त अत्यन्त धार्मिक नल नाम का पुत्र प्राप्त किया। उनके पुत्र को आज भी संसार में 'पुण्यश्लोक', पुरुषोत्तम आदि नाम से जाना जाता है।।१६।।

हे महामुने! इस प्रकार के व्रत का तो यह प्रासङ्गिक फल है। लेकिन इस व्रत को करने वाला उपासक निश्चय ही सुन्दर पुत्र, धन, विद्या, उत्तम कान्ति से सम्पन्न होता है।।१७।।

अतः इस जन्म में इस प्रकार के व्रत करने वाला साधक उपरोक्त फल प्राप्त करता है, इसमें आश्चर्य क्या है? परलोक में प्राप्त होने वाला फल अब तुम मुझसे सुनो। इस व्रत के उपासक एक कल्प पर्यन्त ब्रह्मलोक में अप्सराओं के साथ निवास करने वाला होता है।।१८।।

फिर कल्पान्त के बाद फिर से सृष्टि होने पर वह उपासक चक्रवर्ती राजा होता है। इस प्रकार वह उपासक निस्सन्देह तीस हजार वर्षों पर्यन्त जीवित रह पाता है।।१९।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में वैशाख शुक्ल जामदग्न्य द्वादशी व्रत विधि और माहात्म्य नामक चौवालिसवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायण-कुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥४४॥

अध्याय–४५

ज्येष्ठ शुक्ल राम द्वादशी व्रत विधि और माहात्म्य

इसी प्रकार से ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष द्वादशी के दिन विधिवद् उपवास करते हुए संकल्पपूर्वक विविध प्रकार के शुभ पुष्पों से परमदेव का पूजन करना चाहिए।।१।।

वहाँ पूजन क्रम इस प्रकार अपनाना चाहिए सर्वप्रथम 'ॐ नमो रामाभिरामाय' मन्त्र से पादों का, 'ॐ त्रिविक्रमाय नमः' मन्त्र से कटि का और 'ॐ धृतविश्वाय नमः' मन्त्र से उदर का पूजन करना चाहिए।।२।।

उरः संवत्सरायेति कण्ठं संवर्त्तकाय च। सर्वास्त्रधारिणे बाहू स्वनाम्नाऽब्जरथाङ्गकौ॥३॥
सहस्रशिरसेऽभ्यर्च्य शिरस्तस्य महात्मनः। एवमभ्यर्च्य विधिवत् प्रागुक्तं कुम्भं विन्यसेत्॥४॥
प्राग्वद् वस्त्रयुगच्छन्नौ सौवर्णौ रामलक्ष्मणौ। अर्चयित्वा विधानेन प्रभाते ब्राह्मणाय तौ।
दातव्यौ मनसा काममीहता पुरुषेण तु॥५॥
अपुत्रेण पुरा पृष्टो राज्ञा दशरथेन च। पुत्रकामपरः पश्चाद् वसिष्ठः परमार्चितः॥६॥
इदमेव विधानं तु कथयामास स द्विजः। प्राग्रहस्यं विदित्वा तु स राजा कृतवानिदम्॥७॥
तस्य पुत्रः स्वयं जज्ञे रामनामा सुतो बली। चतुर्द्धा सोऽव्ययो विष्णुः परितुष्टो महामुने।
एतदैहिकमाख्यातं पारत्रिकमतः शृणु॥८॥
तावद् भोगान् भुञ्जते स्वर्गसंस्थो यावदिन्द्रा दश च द्विद्विसंख्या।
अतीतकाले पुनरेत्य मर्त्त्यो भवेत राजा शतयज्ञयाजी।
नश्यन्ति पानानि च तस्य पुंसः प्राप्नोति निर्वाणमलं च शाश्वतम्॥९॥

।।इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः।।४५।।

फिर 'ॐ सम्वत्सरांय नमः' मन्त्र से हृदय का, 'ॐ सम्वर्त्तकाय नमः' मन्त्र से कण्ठ का, 'ॐ सर्वास्त्रधारिणे नमः' मन्त्र से भुजाओं का और अपने नाम से पद्म और चक्र का अर्थात् 'ॐ पद्मधारिणे नमः' से पद्म का तथा 'ॐ चक्रिणे नमः' मन्त्र से चक्र का पूजन करना चाहिए।।३।।

फिर ॐ सहस्रशिरसे नमः' मन्त्र से उस महात्मा के सिर का पूजन करना चाहिए। इस तरह पूजन करने के बाद पूर्व कथित विधि से घट स्थापित करना चाहिए।।४।।

सविधि पूर्वकथितानुसार दो वस्त्रों से आच्छादित राम और लक्ष्मण की स्वर्णमूर्त्ति का पूजन करते हुए मन में अपनी कामना को धारण कर उपासक को प्रातः काल किसी ब्राह्मण के लिए उन दोनों मूर्त्ति को घट सहित दान कर देना चाहिए।।५।।

पुरातन काल में राजा दशरथ, जो पुत्रहीन थे, के द्वारा पुत्र प्राप्ति की कामना से पूछन पर उन राजा द्वरा परम पूजित उन द्वित वशिष्ठ ने यही व्रत की विधि का विधान उनको भी बतलाया था। इस रहस्य की जानकारी होने पर उन राजा दशरथ ने यह व्रत धारण किया था।।६-७।।

हे महामुने! इस व्रत का ही प्रभाव था कि स्वयं वे अव्यय विष्णु अपने चार स्वरूपों में विभक्त हुआ तथा स्वयं राम नाम से उनके बलवान् पुत्र के रूप में अवतरित हुए। इस प्रकार से इस व्रत का इहलौकिक फल बतलाया गया है। आगे पारलौकिक फल कहता हूँ, सुनो।।८।।

इस व्रत के उपासक पुरुष स्वर्ग में चतुर्दश इन्द्रों के काल पर्यन्त दिव्य भेगों का उपभोग करता है। फिर इस काल की समाप्ति पर वह उपासक मनुष्य योनि में राजा होकर ही सौ यज्ञ करने वाला होता है। जिससे उस उपासक के समस्त पापों का नाश हो जाता है। फिर वह शाश्वत मोक्ष की प्राप्ति करने में सफल होता है।।९।।

।।इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में ज्येष्ठ शुक्ल राम द्वादशी व्रत विधि और माहात्म्य नामक पैंतालिसवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ।।४५।।

❖❖❖

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

अथ वासुदेवद्वादशीव्रतविधानम्

दुर्वासा उवाच

आषाढेऽप्येवमेवं तु संकल्प्य विधिना नरः। अर्चयेत् परमं देवं गन्धपुष्पैरनेकशः॥१॥
वासुदेवाय पादौ तु कटिं संकर्षणाय च। प्रद्युम्नायेति जठरं अनिरुद्धाय वै उरः॥२॥
चक्रपाणयेति भुजौ कण्ठं भूपतये तथा। स्वनाम्ना शङ्खचक्रौ तु पुरुषायेति वै शिरः॥३॥
एवमभ्यर्च्य मेधावी प्रग्वत्तस्याग्रतो घटम्। विन्यस्य वस्त्रसंयुक्तं तस्योपरि ततो न्यसेत्।
काञ्चनं वासुदेवं तु चतुर्व्यूहं सनातमन्॥४॥
तमभ्यर्च्य विधानेन गन्धपुष्पादिभिः क्रमात्। प्रागवत् तं ब्राह्मणे दद्याद् वेदवादिनि सुव्रते।
एवं नियमयुक्तस्य यत्पुण्यं तच्छृणुष्व मे॥५॥
वसुदेवोऽभवद् राजा यदुवंशविवर्द्धनः। देवकी तस्य भार्या तु समानव्रतधारिणी॥६॥
सा त्वपुत्राऽभवत् साध्वी पतिधर्मपरायणा। तस्य कालेन महता नारदोऽभ्यगमद् गृहम्॥७॥

अध्याय-४६

आषाढ़ शुक्ल वासुदेव द्वादशी व्रत विधा और माहात्म्य

दुर्वासा ने कहा कि इसी प्रकार से ही उपासक को आषाढ़ शुक्ल में भी सविधि संकल्प, स्नानादि पूर्वक विविध प्रकार के गन्ध, पुष्प आदि पूजा-द्रव्यों से परमदेव की पूजा करनी चाहिए।।१।।

वामदेव की पूजा का क्रम इस प्रकार से है—'ॐ वसुदेवाय नमः' मन्त्र से पादों 'ॐ संकर्षणाय नमः' मन्त्र से कटि, 'ॐ प्रद्युम्नाय नमः' मन्त्र से उदर, 'ॐ अनिरुद्धाय नमः' मन्त्र से हृदय, 'ॐ चक्रपाणये नमः' मन्त्र से भुजाओं, 'ॐ भूपतये नमः' मन्त्र से कण्ठ, अपने-अपने नाम से शंख और चक्र का अर्थात् 'ॐ शंखिने नमः' मन्त्र से शङ्ख, 'ॐ चक्रिणे नमः' मन्त्र से चक्र तथा 'ॐ पुरुषाय नमः' मन्त्र से शिर का पूजन करना चाहिए।।२-३।।

इस प्रकार पूजा सम्पन्न कर विद्वान् उपासक को पहले के समान देव के सम्मुख वस्त्र युक्त कुम्भ स्थापन करने के उपरान्त उसके ऊपर चतुर्व्यूह सनातन वासुदेव की स्वर्णमूर्त्ति स्थापित करनी चाहिए।।४।।

फिर क्रम से गन्ध, पुष्प आदि से सविधि देव का पूजन कर पूर्व की भाँति किसी वेदज्ञ सुव्रती ब्राह्मण को दान कर देना चाहिए। इस तरह से नियमपालनपूर्वक पूजन करने वाले को जो पुण्य होता है, उसे मैं आपको कहने जा रहा हूँ।।५।।

एक समय यदुवंश को बढ़ाने वाले एक राजा 'वसुदेव' हुए थे। उनकी भार्या देवकी उन्हीं की तरह व्रत धारण करने वाली थी।।६।।

लेकिन वह साध्वी, पुत्रविरहिता और पतिव्रता थी। अधिक काल व्यतीत होने पर उनके घर में एक बार नारद मुनि पधारे।।७।।

वसुदेवेनासौ भक्त्या पूजितो वाक्यमब्रवीत्। वसुदेव श्रृणुष्व त्वं देवकार्यं ममानघ।
श्रुत्वैतां च कथां शीघ्रमागतोऽस्मि तवान्तिकम्॥८॥
पृथिवी देवसमितौ मया दृष्टा यदूत्तम। गत्वा च जल्पती भारं न शक्ता ऊहितुं सुराः॥९॥
सौभकंसजरासन्धाः पुनर्नरक एव च। कुरुपाञ्चालभोजाश्च बलिनो दानवाः सुराः।
पीडयन्ति समेता मां तान् हनध्वं सुरोत्तमाः॥१०॥
एवमुक्ताः पृथिव्या ते देवा नारायणं गता। मनसा स च देवेशः प्रत्यक्षस्तत् क्षणाद् बभौ॥११॥
उवाच च सुरश्रेष्ठः स्वयं कार्यमिदं सुराः। साधयामि न सन्देहो मर्त्यं गत्वा मनुष्यवत्॥१२॥
किंत्वाषाढे शुक्लपक्षे या नारी सह भर्तृणा। उपोष्यति मनुष्येषु तस्या गर्भे भवाम्यहम्॥१३॥
एवमुक्त्वा गतो देवः स्वयं चाहमिहागतः। उपदिष्टं तु भवतो अपुत्रस्य विशेषतः।
उपोष्य लभते पुत्रं सहभार्यो न संशयः॥१४॥
एतां च द्वादशीं कृत्वा वसुदेवस्तथाप्तवान्। महतीं च श्रियं प्राप्तः पुत्रपौत्रसमन्वितः॥१५॥
भुक्त्वा राज्यश्रियं सोऽथ गतः परमिकां गतिम्। एष ते विधिरुद्दिष्ट आषाढे वे मुने॥१६॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे षट्चत्वारिंशोऽध्यायः॥४६॥

वह नारद वसुदेव के द्वारा भक्तिभाव सहित पूजित होने के उपरान्त उस राजा से कहा कि हे निष्पाप राजा वसुदेव! तुम मेरे द्वारा देवकार्य का वर्णन सुनो। इसे जानने के बाद ही मैं जल्दी से आपके पास आ पहुँचा हूँ॥८॥

यह पृथ्वी देवसभा में जाकर कहती सुनी गई है कि हे देव! मैं अब भार ढोने में समर्थ नहीं हूँ॥९॥

हे देवों! सौभ (शाल्व), कंस, जरासन्ध, नरक, कुरु, पञ्चाल, भोजवंशीय क्षत्रिय और सभी बलशाली दैत्य मिलकर मुझे पीड़ित कर रहे हैं। हे सुरोतमो! उन सबका शीघ्र वध करें॥१०॥

इस प्रकार से पृथ्वी द्वारा कहे जाने पर उन देवताओं ने अपने-अपने मन से नारायण के शरणागत हो चले। फिर तो वे देवेश तत्काल वहीं पर प्रकट हो गये। तदनन्तर उन श्रेष्ठ देव ने उनसे कहा कि हे देवताओ! मेरे द्वारा स्वतः मर्त्यलोक में पहुँचकर इस कार्य को निस्सन्देह सम्पन्न किया जाना है॥११-१२२॥

लेकिन आषाढ़ मास शुक्लपक्ष में पति सहित जिस किसी नारी के द्वारा वासुदेव द्वादशी व्रत विधिपूर्वक सम्पन्न किया जाएगा, मैं उसी नारी के गर्भ से उत्पन्न हो सकूँगा॥१३॥

इस प्रकार कहते हुए नारायण देव अन्तर्धान हो गये और फिर मैं आपके पास सीधे चला आया हूँ। आप पुत्रहीन को मैं सर्वप्रथम इस उपवास का उपदेश किया हूँ। इस दिन भार्या के साथ पति के उपवास करने से निस्सन्देह पुत्र की प्राप्ति होगी॥१४॥

इस तरह वसुदेव जी इस द्वादशी व्रत को धारण कर पुत्र और पौत्रों से सम्पन्न हो गये। साथ ही महदैश्वर्य को भी प्राप्त कर सके। फिर वे राज्यश्री का भोगकर परमगति भी प्राप्त की। हे मुने! इस प्रकार मैंने आपको आषाढ़ मास शुक्ल द्वादशी की इस कथा विधि को कह दिया है॥१५-१६॥

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में आषाढ़ शुक्ल वासुदेव द्वादशी व्रत विधि और माहात्म्य नामक छियालिसवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायण-कुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥४६॥

❖❖❖

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

अथ बुधद्वादशीव्रतविधानम्

दुर्वासा उवाच

श्रावणस्य तु मासस्य शुक्लपक्षे तु द्वादशी। अर्चयेत् परमं देवं गन्धपुष्पैर्जनार्दनम्॥१॥
दामोदराय पादौ तु हृषीकेशाय वै कटिम्। सनातनेति जठरमुरः श्रीवत्सधारिणे॥२॥
चक्रपाणयेति भुजौ कण्ठं च हरये तथा। मुञ्जकेशाय च शिरो भद्रायेति शिखां तथा॥३॥
एवं संपूज्य संस्थाप्य कुम्भं पूर्ववदेव तु। विन्यस्य वस्त्रयुग्मं तु तस्योपरि ततो न्यसेत्॥४॥
काञ्चनं देवदेवं तु दामोदरसनामकम्। तमभ्यर्च्य विधानेन गन्धपुष्पादिभिः क्रमात्॥५॥
प्राग्वत् तं ब्राह्मणे दद्याद् वेदवेदाङ्गपारगे। एवं नियमयुक्तस्य प्रभावं तच्छृणुष्व मे॥६॥
एष ते विधिरुद्दिष्टः श्रावणे मासि वै विभो। एतस्याश्च प्रभावं यत् शृणु पापप्रणाशनम्॥७॥
पुरा कृतयुगे राजा नृगो नाम महाबलः। बभ्राम स वनं घोरं मृगयासक्तमानसः॥८॥
स कदाचित् तुरङ्गेण हृतो दूरं महद्वनम्। व्याघ्रसिंहगजाकीर्णं दस्युसर्पनिषेवितम्॥९॥

अध्याय-४७

श्रावण शुक्ल बुध द्वादशी व्रत विधि और माहात्म्य

दुर्वासा ने कहा कि श्रावण मास शुक्ल पक्ष द्वादशी तिथि को पूर्ववत् गन्ध, पुष्प आदि पूजा द्रव्यों से परमदेव जनार्दन की अर्चना करनी चाहिए।।१।।

यहाँ पर 'ॐ दामोदराय नमः' मन्त्र से पादों, 'ॐ हृषिकेशाय नमः' मन्त्र से कटि, 'ॐ सनातनाय नमः' मन्त्र से उदर, 'ॐ श्री वत्सधारिणे नमः' मन्त्र से हृदय, 'ॐ चक्रपाणये नमः' मन्त्र से भुजाओं, 'ॐ हरये नमः' मन्त्र से कण्ठ, 'ॐ मुञ्जकेशाय नमः' मन्त्र से शिर और 'ॐ भद्राय नमः' मन्त्र से शिखा में पूजन करना चाहिए।।२-३।।

इस प्रकार देव नारायण के विभिन्न अंगों में पूजन करने के उपरान्त पहले की ही तरह से कुम्भ स्थापन करना चाहिए। फिर दो वस्त्रों से आच्छादित करने के बाद उसी के ऊपर दामोदर नाम से देवदेव की स्वर्ण मूर्त्ति स्थित करनी चाहिए। फिर व्रत विधानानुरुप से क्रम से गन्ध, पुष्प आदि से उस मूर्त्ति की अर्चना पहले की भाँति करके वेदवेदाङ्ग को जानने वाले ब्राह्मण को कुम्भ सहित दान कर देना चाहिए। इस व्रत को धारण करने वालों के प्रभाव पुण्य तुम मुझसे सुनो।।४-६।।

हे विभो! श्रावण मास शुक्ल पक्ष द्वादशी तिथि के व्रत विधि मैंने आपसे कही है। जो समस्त पापों को नाश करने वाला, इस व्रत के प्रभाव को सुनो।।७।।

पुरातन समय में एक बार नृग नाम से महाबलशाली राजा हुआ था। उसका आखेट करने में मन आसक्त रहने से वह घनघोर वन में विचरण कर रहा था।।८।।

अचानक उसका घोड़ा उसे व्याघ्र, सिंह, हाथी आदि से युक्त और डाकुओं के साथ महासर्पों वाले महावन में दूर लेकर चला गया।।९।।

एकाकी तत्र राजा तु अश्वं मुच्य तरोरधः। स्वयं कुशमथास्तीर्य सुप्तो दुःखसमन्वितः॥१०॥
तावत् तत्रैव लुब्धानां सहस्राणि चतुर्दश। आगतानि मृगान् हन्तुं रात्रौ राज्ञः समन्ततः॥११॥
तत्रापश्यन्त ते सुप्तं हेमरत्नविभूषितम्। नृगं राजानमत्युग्रं श्रिया परमया युतम्॥१२॥
ते गत्वा त्वरितं व्याधाः स्वभर्त्रे संन्यवेदयन्। सोऽपि रत्नसुवर्णार्थं राजानं हन्तुमुद्यतः॥१३॥
तुरगस्य च हेतोस्तु निस्त्रिंशा वनचारिणः। राजानं सुप्तमासाद्य निगृहीतुं प्रचक्रमुः॥१४॥
तावद् राज्ञः शरीरात् तु श्वेताभरणभूषिता। नारी काचित् समुत्तस्थौ स्त्रक्चन्दनविभूषिता।
उत्थाय चक्रमादाय ते म्लेच्छा विनिपातिताः॥१५॥
दस्यून् निहत्य सा देवी तस्य राज्ञस्तनुं पुनः। प्रविशन्त्याशु राजाऽपि प्रतिबुद्धोऽथ दृष्टवान्।
म्लेच्छांस्तु निहतान् दृष्ट्वा सा स्वमूर्त्तिलयं गता॥१६॥
अश्वमारुह्य स पुनर्वामदेवाश्रमं ययौ। तत्रापृच्छछ् ऋषिं भक्त्या का स्त्री के ते निपातिताः।
एतत् कार्यमृषे मह्यं कथयस्व प्रसीद मे॥१७॥

वामदेव उवाच

त्वमीसच्छूद्रजातीय अन्यजन्मनि पार्थिव। तत्र त्वया ब्राह्मणस्य प्रेषणं कुर्वता श्रुता।
श्रावणस्य तु मासस्य शुक्लपक्षे तु द्वादशी॥१८॥

फिर वह राजा अकेले दुःखी मन उस वन में वृक्ष के नीचे घोड़ों को छोड़कर और स्वयं कुशा का आसन लगाकर सो गया।।१०।।

उसी काल में रात्रि के समय चौदह हजार डाकू पशु के शिकार हेतु आकर राजा को चारों ओर से घेर लिया।।११।।

फिर वे सभी उस स्थल पर स्वर्ण, रत्न आदि से विभूषित अत्यन्त तेजवान् और शोभायमान राजा नृग को ध्यान से देखा।।१२।।

इस पर उन व्याधों ने शीघ्र ही आकर अपने स्वामी से कहा। फिर वह भी स्वर्ण, रत्न आदि के साथ घोड़ा के लिए उस राजा को मारने का पूरा मन बना लिया था।।१३।।

वे क्रूर वन में विचरण करने वाले उस सोते हुए राजा के पास पहुँचकर उसको पकड़ना चाहा।।१४।।

लेकिन तत्क्षण राजा के देह से श्वेत आभूषणों से अलंकृत और माला, चन्दनं आदि से सुशोभित एक नारी प्रकट हुई और उसने वहाँ पर उपस्थित उन समस्त म्लेच्छों को अपने चक्र से मार डाला।।१५।।

इस तरह से उन डाकुओं म्लेच्छों को मारकर वह देवी ज्यों ही पुनः उस राजा के शरीर में शीघ्रता से प्रवेश करने लगी, उसी क्षण राजा ने जागते हुए अपनी मूर्त्ति में लीन उस नारी को और म्लेच्छों को मरा हुआ देखा।।१६।।

फिर वह राजा अपने घोड़े पर सवार होकर समीपस्थ वामदेव के आश्रम में आ गये। आश्रम में राजा ने भक्तिभाव के साथ उस वामदेव ऋषि से पूछा कि वह स्त्री कौन थी और उनके द्वारा मारे गये लोग कौन थे? हे ऋषि! मेरे ऊपर प्रसन्न होकर मुझको इसका रहस्य कहें।।१७।।

ऋषि वामदेव ने कहा कि हे राजन्! तुम अन्य जन्म में शूद्र जाति में उत्पन्न हुए थे। वहाँ आपने ब्राह्मणों की सेवा करते हुए श्रावण मास शुक्ल पक्ष द्वादशी की प्रशंसा सुना था।।१८।।

सविधानात् त्वया राजन् भक्त्या वै समुपोषिता।
उपोषितायां तस्यां तु राज्यं लब्धं त्वयाऽनघ॥१९॥
सर्वापत्सु च सा देवी भवन्तं परिरक्षति। यया विनिहताः क्रूरा म्लेच्छाः पापसमन्विताः॥२०॥
एकैव पाति चापत्सु राज्यमेकैव यच्छति। किं पुनर्द्वादशैतास्तु येनैन्द्रं न ददुः पदम्॥२१॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः॥

अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

अथ कल्किद्वादशीव्रतविधानम्

दुर्वासा उवाच

तद्वद् भाद्रपदे मासि शुक्लपक्षे तु द्वादशीम्। संकल्प्य विधिना देवमर्च्चयेत् परमेश्वरम्॥१॥
नमोऽस्तु कल्किने पादौ हृषीकेशाय वै कटिम्। म्लेच्छविध्वंसनायेति जगन्मूर्त्ते तथोदरम्॥२॥
शितिकण्ठाय कण्ठं तु खड्गपाणेति वै भुजौ। चतुर्भुजायेति हस्तौ विश्वमूर्त्ते तथा शिरः॥३॥

हे राजन्! आपने भक्तिभाव से विधान के अनुसार उस व्रत को धारण भी कर लिया। हे निष्पाप! उस व्रत के प्रभाव से उस समय आप राज्य की प्राप्ति की थी।।१९।।

वह देवी आपकी प्रत्येक काल में प्रत्येक आपत्तियों से आपकी रक्षा करती है। हे राजन्! उसी ने इन पापी क्रूर म्लेच्छों को मार दिया है। तुम्हारी रक्षा भी की है। अतः तुम यह समझ लो कि श्रावण द्वादशी स्वरूप वह देवी है।।२०।।

चूँकि जब एक ही श्रावण द्वादशी व्रत सदा आपत्तियों में उपासक की रक्षा करने वाली होती है और एक ही राज्य प्रदान भी करती है। अतः उन द्वादश द्वादशियों के व्रत करने वाले उपासक को क्या इन्द्रपद प्रदान नहीं कर सकती है अर्थात् करती है।।२१।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में श्रावण शुक्ल बुध द्वादशी व्रत विधि और माहात्म्य नामक सैंतालिसवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥४७॥

अध्याय-४८

भाद्रशुक्ल कल्कि द्वादशी व्रत विधि और माहात्म्य

दुर्वासा ने कहा कि पूर्व की भाँति भाद्रपद मास शुक्ल पक्ष की द्वादशी तिथि के दिन सविधि संकल्पपूर्वक श्रीपरमेश्वर देव की पूजार्चना करनी चाहिए।।१।।

यहाँ पूजा क्रम इस प्रकार है—देव के पादों में 'ॐ कल्किने नमः' मन्त्र से, कटि में 'ॐ हृषिकेशाय नमः'

एवमभ्यर्च्य मेधावी प्राग्वत् तस्याग्रतो घटम्। विन्यसेत् कल्किनं देवं सौवर्णं तत्र कारयेत्॥४॥
सितवस्त्रयुगच्छन्नं गन्धपुष्पोपशोभितम्। कृत्वा प्रभाते विप्राय प्रदेयं शास्त्रवित्तमे।
एवं कृते भवेद् यस्तु तन्निबोध महामुने॥५॥
पूर्वं राजा विशालोऽभूत् काश्यां पुर्यां महाबलः। गोत्रजैर्हृतराज्योऽसौ गन्धमादनमाविशत्॥६॥
तस्य द्रोणां महाराज बदरीं प्राप्य शोभनाम्। हृतराज्यो विशेषेण गतश्रीको नरोत्तमः॥७॥
कदाचिदागतौ तत्र पुराणावृषिसत्तमौ। नरनारायणौ देवौ सर्वदेवनमस्कृतौ॥८॥
तौ दृष्ट्वा तत्र राजानं पूर्वागतकरिंदमौ। ध्यायन्तं परमं ब्रह्म विष्ण्वाख्यं परमं पदम्॥९॥
तौ प्रीतावूचतुस्तं तु राजानं क्षीणकल्मषम्। वरं वृणीष्व राजेन्द्र वरदौ स्वस्तवागतौ॥१०॥

राजोवाच

भवन्तौ कौ न जानामि कस्य गृह्णाम्यहं वरम्।
आराधयामि यत् तस्माद् वरमिच्छामि शोभनम्॥११॥

मन्त्र से, फिर जगन्मूर्त्ति परमेश्वर के उदर में 'ॐ म्लेच्छविध्वंसनाय नमः' मन्त्र से, कण्ठ में 'ॐ शितिकण्ठाय नमः' मन्त्र से, उनके भुजाओं में 'ॐ खड्गपाणये नमः' मन्त्र से, उनके हाथों में 'ॐ चतुर्भुजाय नमः' मन्त्र से और उनके शिर में 'ॐ विश्वमूर्त्तये नमः' मन्त्र से पूजा करनी चाहिए।।२-३।।

इस प्रकार से देव के विभिन्न अंगों की अभ्यर्चना करने के बाद विद्वान् साधक को उनके सम्मुख कुम्भ की स्थापना कर उस पर कल्किदेव की स्वर्ण मूर्त्ति स्थापित करनी चाहिए।।४।।

फिर उस कुम्भ को दो श्वेत वस्त्रों से ढँक कर गन्ध, पुष्प आदि द्रव्यों से पूजन कर प्रातःकाल ही श्रेष्ठ वेदादि शास्त्र को जानने वाले ब्राह्मण को दान कर देनी चाहिए। हे महामुने! इतना सब करने पर जो श्रेष्ठ फल होता है, उसे आप सुनो।।५।।

पुरातन काल में काशीपुरी में एक विशाल नाम का राजा हुआ था। अपने बान्धवों द्वारा राज्य अपहृत कर लिये जाने से खिन्न होकर वह गन्धमादन पर्वत पर चला आया।।६।।

इस प्रकार राज्यच्युत और विशिष्ट शोभा से हीन वह राजा उस पर्वत की एक धारी में स्थित बदरीवन में आ पहुँचा।।७।।

एक बार उसी क्रम में समस्त देवताओं के पूज्य नर और नारायण नाम के दो श्रेष्ठ पुरातन कालिक ऋषि वहाँ पर आ पहुँचे।।८।।

उन शत्रुनाशक दोनों ऋषियों ने वहीं पर पहले से आया हुआ उस राजा को उन विष्णु नाम के परमपद स्वरूप परमब्रह्म का ध्यान करता हुआ देखा।।९।।

फिर उन दोनों ने प्रसन्नतापूर्वक उस पापरहित ध्यानस्थ राजा से कहा कि हे राजेन्द्र! वर माँग लो। हम दोनों तुम्हीं को वर प्रदान करने तुम्हारे समीप आये हुये हैं।।१०।।

राजा ने कहा कि आप दोनों कौन हैं? मैं आप को नहीं जानता। मैं किससे वरदान ग्रहण करूँ। मैं जिस देव परमेश्वर की आराधना करने की चेष्टा कर रहा हूँ, उनसे ही शुभ वर की कामना करता हूँ।।११।।

एवमुक्तौ तु तौ राज्ञा कमाराधयसे प्रभो। कं वा वरं वृणुष्व त्वं कथयस्व कुतूहलात्॥१२॥
एवमुक्तस्ततो राजा विष्णुमाराधयाम्यहम्। कथयित्वा स्थितस्तूष्णीं ततस्तावूचतुः पुनः॥१३॥
राजन् तस्यैव देवस्य प्रसादादावयोर्वरः। दातव्यस्ते वरं ब्रूहि कस्ते मनसि वर्त्तते॥१४॥

राजोवाच

यथा यज्ञेश्वरं देवं यज्ञैर्विविधदक्षिणैः। यष्टुं समर्थता मे स्यात् तथा मे ददतं वरम्॥१५॥

नर उवाच

स्वयं नारायणो देवो लोकमार्गप्रदर्शकः। मया सह तपः कुर्याद् बदर्यां लोकभावनः॥१६॥
अयं मत्स्योऽभवत् पूर्वं पुनः कूर्म्मस्वरूववान्। वराहश्चाभवद् देवो नरसिंहस्ततोऽभवत्॥१७॥
वामनस्तु ततो जातो जामदग्न्यो महाबलः। पुनर्दाशरथिर्भूत्वा वासुदेवः पुनर्बभौ॥१८॥
बुद्धो भूत्वा जनं ह्येष मोहयामास पार्थिव।
सपत्नान् दसरूवो म्लेच्छान् पुनर्हत्वा महीमिमाम्॥१९॥
पूज्यते मत्स्यरूपेण सर्वज्ञत्वमभीप्सुभिः। स्ववंशोद्धरणार्थाय कूर्मयपी तु पूज्यते॥२०॥

उस राजा द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर उन दोनों ऋषियों ने कहा कि हे प्रभो! आप जिनकी उपासना में संलग्न हैं। वह कौन हैं? किससे आप वर माँग करेंगे। उत्सुकता से तुम हम दोनों से कह दो।।१२।।

इस प्रकार से कहे जाने पर राजा ने कहा कि मैं भगवान् विष्णु की उपासना में संलग्न हूँ। यह कहने के बाद राजा मौन हो गया। फिर उन दोनों ने उससे कहा कि—।।१३।।

हे राजन्! उन्हीं देव के कृपा से हम दोनों तुमको वर प्रदान करने हेतु आये हैं। अतः तुम वर माँगो। तुम्हारे मन में क्या है, उसे कहो?।।१४।।

राजा ने कहा कि मैं विविध प्रकार के दक्षिणाओं वाले यज्ञों द्वारा यज्ञेश्वर देव की पूजा करने में जिस प्रकार से पूर्ण सक्षम हो सकूँ, वह वर मुझे आप दोनों प्रदान करें।।१५।।

नर ने कहा कि जगत् के मार्गप्रदर्शक लोकभावन स्वयं नारायण देव बदरीवन में मेरे ही साथ तो तप करते हैं।।१६।।

जिन्होंने ही सर्वप्रथम मत्स्य स्वरूप, फिर कूर्मस्वरूप को धारण किया। वे ही देव वराह और नरसिंह स्वरूप वाले भी हुए।।१७।।

तत्पश्चात् वह वामनस्वरूप धारण किया, फिर बलवान् परशुराम भी वे ही हुए। फिर दाशरथि राम होते हुए वे वसुदेव के पुत्र रूप में वासुदेव कृष्ण बन गये।।१८।।

हे राजन्! बुद्ध का अवतार लेकर उन्होंने ही मानव मात्र को सम्मोहित किया। फिर कल्कि स्वरूप धारण कर क्रूर आततायी म्लेच्छ शत्रुओं को मार कर इस पृथ्वी को फिर से पूर्व स्वाभाविक स्थिति प्रदान की। वे ही भगवान् श्रीहरि विष्णु हैं।।१९।।

आपको यह समझना चाहिए कि सर्वज्ञता की कामना वाले इनके ही मत्स्य स्वरूप का यजन करते हैं। फिर अपने वंश की रक्षा व उद्धार करने हेतु उनके कूर्म स्वरूप की उपासना की जाती है।।२०।।

भवोदधिनिमग्नेन वाराहः पूज्यते हरिः। नारसिंहेण रूपेण तद्वत् पापभयान्नरैः॥२१॥
वामनं मोहनाशाय वित्तार्थे जमदग्निजम्। क्रूरशत्रुविनाशाय यजेद् दशरथिं बुधः॥२२॥
बलकृष्णौ यजेद् धीमान् पुत्रकामो न संशयः। रूपकामो यजेद् बुद्धं कल्किनं शत्रुघातने॥२३॥
एवमुक्त्वा नरस्तस्य इमामेवाब्रवीन्मुनिः। द्वादशीं कृतवान् सोऽपि चक्रवर्ती बभूव ह।
तस्यैव नाम्ना बदरी विशालाख्याऽभवन्मुने॥२४॥
इह जन्मनि राजाऽसौ राज्यं कृत्वा इयाद् वनम्। यज्ञैश्च विविधैरिष्ट्वा परं निर्वाणमाप्तवान्॥२५॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः॥

—❊❊❊—

इस संसार सागर में निमग्न मानव मात्र उनके वराह स्वरूप से श्री हरि का ही पूजन करते हैं। पाप से भयभीत होने पर मानव नृसिंह स्वरूपधारी श्री हरि की पूजा करते हैं।।२१।।

फिर मोह से मुक्त होने के लिए वामन स्वरूप, धन प्राप्ति हेतु भगवान् परशुराम स्वरूप और क्रूर शत्रु के नाश करने हेतु दशरथ के पुत्र राम स्वरूप की पूजा करनी चाहिए।।२२।।

इसी तरह पुत्राभिलाषी मानव मात्र को निःसंशय सहित बलराम और कृष्ण का ही पूजन और यजन करना चाहिए। फिर शत्रु के वधार्थ भगवान् कल्कि देव की उपासना ही करनी चाहिए।।२३।।

यहाँ एक ऋषि नर ने इस प्रकार से कहने के उपरान्त उस राजा को इसी द्वादशी के व्रत विधान को बता कर उसे धारण करने हेतु प्रेरित किया। फिर वह राजा भी इस भाद्रशुक्ल द्वादशी का व्रत धारण कर चक्रवर्ती राजा हो गया।।२४।।

इस जन्म में वह राजा राज्य करने से थक कर वन में चला गया। फिर वहाँ अनेक प्रकार के यज्ञ करने के बाद उस राजा ने अपने लिए निर्वाण पद (मोक्ष) प्राप्त कर लिया।।२५।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में भाद्रशुक्ल कल्कि द्वादशी व्रत विधि और माहात्म्य नामक अड़तालिसवां अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥४८॥

एकोनपञ्चाशोऽध्यायः

अथ पद्मनाभद्वादशीव्रतविधानम्

दुर्वासा उवाच

तद्वदाश्वयुजे मासि द्वादशीं शुक्लपक्षतः। संकल्प्याभ्यर्चयेद् देवं पद्मनाभं सनातनम्॥१॥
पद्मनाभाय पादौ तु कटिं वै पद्मयोनये। उदरं सर्वदेवाय पुष्कराक्षाय वै उरः॥२॥
प्रभवाय शिरः पूज्य प्रागवदग्रे घटं न्यसेत्। तस्मिन् सौवर्णकं देवं पद्मनाभं तु विन्यसेत्॥३॥
तमेव देवं संपूज्य गन्धपुष्पादिभिः क्रमात्। प्रभातायां तु शर्वर्यां ब्राह्मणाय निवेदयेत्।
एवं कृते तु यत् पुण्यं तन्निबोध महामुने॥४॥
आसीत् कृतयुगे राजा भद्राश्वो नाम वीर्यवान्। यस्य नाम्नाऽभवद् वर्षं भद्राश्वं नाम नामतः॥५॥
तस्यागस्त्यः कदाचित् तु गृहमागत्य सत्तम। उवाच सप्तरात्रं तु वसामि भवतो गृहे॥६॥
तं राजा शिरसा भूत्वा स्थीयतामित्यभाषत। तस्य कान्तिमती नाम भार्या परमशोभना॥७॥

अध्याय-४९

आश्विन शुक्ल पद्मनाभ द्वादशी व्रत विधि और माहात्म्य

दुर्वासा ने कहा कि पूर्व की तरह से आश्विन मास में शुक्ल पक्ष की द्वादशी को संकल्पपूर्वक सनातन पद्मनाभ देव की पूजार्चना करनी चाहिए।।१।।

यहाँ पूजा क्रम इस प्रकार है—पद्मनाभ देव के पादों में 'ॐ पद्मनाभाय नमः' मन्त्र से, उनकी कटि में 'ॐ पद्मयोनये नमः' मन्त्र से, उनके उदर में 'ॐ सर्वदेवाय नमः' मन्त्र से, उनके हृदय में 'ॐ पुष्कराक्षाय नमः' मन्त्र से, उनके हाथों में 'ॐ अव्यायाय नमः' मन्त्र से तथा उनके अस्त्रों की पूजा पूर्व की भाँति करनी चाहिए।।२।।

फिर उनके शिर में 'ॐ प्रभवाय नमः' मन्त्र से पूजा करनी चाहिए। तत्पश्चात् पूर्व की तरह अपने सम्मुख कुम्भ स्थापित करनी चाहिए। फिर उस पर भगवान् पद्मनाभ देव की स्वर्णमूर्त्ति स्थापित करनी चाहिए।।३।।

तत्पश्चात् उनका गन्ध, पुष्प आदि द्रव्यों से क्रम से पूजा कर रात्रि के उपरान्त सुबह-सबेरे वह कुम्भ ब्राह्मण को दान करना चाहिए। हे महामुनि! इस प्रकार से किये गये कर्म का जो पुण्य फल हो सकता है, उसे कहा जा रहा है, सुनो।।४।।

पुरातन काल में सत्ययुग में भद्राश्व नाम से पराक्रमी एक राजा हुआ था। यह वही राजा है, जिसके नाम से आज भी भद्राश्व वर्ष प्रसिद्ध है।।५।।

हे सत्तम! किसी समय में अगस्त्य मुनि उसके महल में पधारे और उन्होंने कहा कि मैं तुम्हारे यहाँ सात रात्रि तक निवास करूँगा।।६।।

इस प्रकार कहे जाने पर राजा भद्राश्व ने उनको अपना मस्तक नवा कर प्रणाम करते हुए कहा कि आप यहाँ अवश्य ठहरें। उस राजा की कान्तिमती नाम की परम सुन्दरी पत्नि भी थी।।७।।

तस्यास्तेजः समभवद् द्वादशादित्यसंनिभम्। शतानि पञ्च तस्यासन् सपत्नीनां यतव्रत॥८॥
ता दास्य इव कर्माणि कुर्वन्त्यहरहः शुभाः। कान्तिमत्या महाभाग भयात् त्रस्ता विचेतसः॥९॥
तामगस्त्यस्तथा दृष्ट्वा रूपतेजोऽन्वितां शुभाम्।
सपत्न्यश्च भया् तस्याः कुर्वन्त्यः कर्म शोभनम्।
राजा तु तस्या मुदितं मुखमेवावलोकयन्॥१०॥
एवंभूतामथो दृष्ट्वा राज्ञीं परमशोभानाम्। साधु साधु जगन्नाथेत्यगस्त्यः प्राह हर्षितः॥११॥
द्वितीये दिवसेऽप्येवं राज्ञीं दृष्ट्वा महाप्रभाम्। अहो मुष्टमहो मुष्टं जगदेतच्चराचरम्।
इत्यगस्त्यो द्वितीयेऽह्नि राज्ञीं दृष्ट्वाऽभ्युवाच ह॥१२॥
तृतीयेऽहनि तां दृष्ट्वा पुनरेवमुवाच ह। अहो मूढा न जानन्ति गोविन्दं परमेश्वरम्।
य एकेऽह्नि फलं चैतद् राज्ञे तुष्टः प्रदत्तवान्॥१३॥
चतुर्थे दिवसे हस्तावुत्क्षिप्य पुनरब्रवीत्। साधु साधु जगन्नाथ स्त्री शूद्राः साधु साध्विति।
द्विजाः साधु नृपाः साधु वैश्याः साधु पुनः पुनः॥१४॥
साधु भद्राश्च साधु त्वं भोऽगस्त्य साधु साधु ते। साधु प्रह्लाद ते साधु ध्रुव साधो महाव्रत।
एवमुक्त्वा ननर्तोच्चैरगस्त्यो राजसंनिधौ॥१५॥

जहाँ बारह आदित्य के समान उस राजमहिषी कान्तिती का तेज था। हे यतव्रत! फिर उस महारानी की पं… सौ सपत्नी (सौतें) भी थीं।।८।।

हे महाभाग! लेकिन उस कान्तिमती के भय से ग्रस्त और विचेष्टित होकर वे सभी स्त्रियाँ दासियों की तरह नित्य कार्यों में व्यस्त रहा करती थीं।।९।।

फिर रूप और तेज सम्पन्ना उस सुन्दरी कान्तिमती को तथा उसके प्रसन्नमुख ताकते रहने वाले उस राजा को तथा भययुक्ता सुन्दर कार्यों को करने वाली उस महारानी के सौतों को महामुनि अगस्त्यजी ने देखा।।१०।।

इस प्रकार की परमशोभना रानी कान्तिमती को देखने के अनन्तर प्रसन्नचित्त अगस्त्य मुनि ने कहा कि हे जगन्नाथ! धन्य हो, धन्य हो'।।११।।

फिर दूसरे दिन भी अगस्त्य मुनि ने इसी तरह परम सुन्दरी रानी को देखा और दूसरे दिन भी उन्होंने कहा कि 'अहो! यह चराचर जगत् वञ्चित हो गया, वञ्चित हो गया'।।१२।।

इसी तरह तीसरे दिन भी उस रानी को देखकर अगस्त्य ने कहा कि 'अहो! मूर्खजन उन रमेश्वर गोविन्द को नहीं जानते हैं, जिन्होंने हर्षित होकर इस राजा को एक दिन का पुण्यफल प्रदान किया है।।१३।।

चौथे दिन भी अपने दोनों हाथ उठाते हुए उन मुनि ने कहा कि हे राजन्! धन्य हो, धन्य हो। स्त्री और शूद्र धन्य हैं, धन्य हैं। द्विज धन्य हैं, राजा धन्य हैं और वैश्य भी वारम्वार धन्य हैं।।१४।।

हे भद्राश्व! तुम धन्य हो, हे अगस्त्य! तु भी धन्य हो, हे प्रह्लाद! तुम धन्य हो एवं हे महाव्रत साधुध्रुव! तुम धन्य हो। ऊँचे स्वरों में इस तरह से कहने के अनन्तर अगस्त्य मुनि उस राजा के पास में ही नृत्य करने लगे।।१५।।

एवंभूतं च तं दृष्ट्वा सपत्नीको नृपोत्तमः। किं हर्षकारणं ब्रह्मन् येनेत्थं नृत्यते भवान्॥१६॥

अगस्त्य उवाच

अहो मूर्खः कुराजा त्वमहो मूर्खाऽनुगास्त्वमी।
अहो पुरोहिता मूर्खा ये न जानन्ति मे मतम्॥१७॥

एवमुक्ते ततो राजा कृताञ्जलिरभाषत्। न जानीमो वयं ब्रह्मन् प्रश्नमेतत् त्वयेरितम्।
कथयस्व महाभाग यद्यनुग्रहकृद् भवान्॥१८॥

अगस्त्य उवाच

इयं राज्ञो त्वया याऽभूद् दासी वैश्यस्य वैदिशे। नगरे हरिदत्तस्य त्वमस्याः पतिरेव च।
तस्यैव कर्मकारोऽभूच्छूद्रः सेवनतत्परः॥१९॥
स वैश्योऽश्वयुजे मासि द्वादश्यां नियतः स्थितः।
स्वयं विष्णवालयं गत्वा पुष्पधूपादिभिर्हरिम्॥२०॥
अभ्यर्च्य स्वगृहं प्रायाद् भवन्तौ रक्षपालकौ।
स्थाप्य द्वावपि दीपानां ज्वलनार्थं महामते॥२१॥

गते वैश्ये भवन्तौथ दीपान् प्रज्वाल्य संस्थितौ। यावत् प्रभाता रजनी निशामेकां नरोत्तम॥२२॥
ततः काले मृतौ तौ तु उभौ द्वावपि दम्पति। तेन पुण्येन ते जन्म प्रियव्रतगहेऽभवत्॥२३॥

इस पर अपनी पत्नि के साथ उस श्रेष्ठ राजा ने उन्हें इस प्रकार नृत्य करते देखकर पूछ दिया कि हे ब्रह्मन्! आपके हर्षित होने में कारण क्या है? जिस कारण से आप इस तरह नृत्य करने में लगे हैं।।१६।।

फिर अगस्त्य मुनि ने कहा कि 'अहो! तुम मूर्ख कुराजा हो। अहो! ये तुम्हारे अनुचर भी मूर्ख हैं। अहो! ये तुम्हारे पुरोहित भी मूर्ख हैं, जो मेरी अन्तर्भाव को नहीं समझते।।१७।।

इस प्रकार से मुनि अगस्त्य के द्वारा कहे जाने पर राजा ने करबद्ध होकर कहा कि 'हे ब्रह्मन् ! वास्तव में आपके कथित इन प्रश्नों के भाव को नहीं जान पाये हैं। अतः हे महाभाग! यदि आपका मुझे अनुग्रह प्राप्त हो, तो इन प्रश्नों के रहस्य को बतला दें।।१८।।

अगस्त्य मुनि ने कहा कि पुरातन काल में वैदिश नाम के नगर में हरदत्त नाम से एक वैश्य के घर यह रानी, दासी थी और तुम इसके पिता थे। सेवा परायण शूद्रजातीय तुम भी उस वैश्य के ही नौकर थे।।१९।।

एक बार आश्विन मास की द्वादशी का व्रत धारण कर वह वैश्य स्वयं विष्णुमन्दिर में गया और पुष्प, गन्ध आदि द्रव्यों से श्रीहरि का पूजन किया।।२०।।

हे महामते! पूजा सम्पन्न करने के बाद वह वैश्य दीपक जलाने हेतु रक्षक और पालक के वेश में आप दोनों को नियुक्त कर घर चला गया।।२१।।

हे नरोत्तम! उसके चले जाने के अनन्तर आप दम्पति एक रात्रि पर्यन्त दीपक जलाकर प्रातःकाल पर्यन्त वहीं स्थित रहे।।२२।।

तत्पश्चात् उसी समय आप दम्पत्ति की मृत्यु हो गई। उसी पुण्य से तुम्हारा जन्म प्रियव्रत के घर में हुआ है।।२३।।

इयं तु पत्नी ते जाता पुरा वैश्यस्य दासिका। पारक्यस्यापि दीपस्य ज्वालितस्य हरेर्गृहे॥२४॥

यः पुनः स्वेन विरुेन विष्णोरग्रे प्रदीपकम्।
ज्वालयेत् तस्य यत् पुण्यं तत् संख्यातुं न शक्यते।
तेन साधो हरे साधु इत्युक्तं वचनं मया॥२५॥

कृते संवत्सेर भक्तिं हरेः कृत्वा विचक्षणः। संवत्सरार्धं त्रेतायां सममेतन्न संशयः॥२६॥

त्रिमासे द्वापरे भक्त्या पूजयेल्लभते फलम्। नमो नारायणयेत्युक्त्वा कलौ तु लभते फलम्।
तेन मुष्टं जगद् विष्णोर्भक्तिमात्रं मयेरितम्॥२७॥

पारक्यदीपस्योत्कर्षाद् वै देवाग्रे फलमीदृशम्। प्राप्तं फलं त्वया राजन् फलमेतन् मयेरितम्।
अहो मूढा न जानन्ति हरेर्दीपक्रियाफलम्॥२८॥

एवंविधं द्विजा ये च राजानो ये च भक्तितः। यजन्ते विविधैर्यज्ञैस्तेन ते साधवः स्मृताः॥२९॥

अहं तमेव मुक्त्वाऽन्यं न पश्यामि महीतले। तेन साधो अगस्त्येति मया चात्मा प्रशंसितः।
हर्षेण महता राजन् व्याक्षिप्तेन मयेरितम्॥३०॥

सा स्त्री धन्या स शूद्रस्तु तथा धन्यतरो मतः। भर्तुः सुश्रूषणं कृत्वा तत्परोक्षे हरेरिति॥३१॥

सा स्त्री धन्या तथा शूद्रो द्विजसुश्रूषणे रतः। तदनुज्ञया हरेर्भक्तिः स्त्री शूो तेन साध्विति॥३२॥

पुराने समय में उस वैश्य की वही दासी यह तुम्हारी पत्नि है। इस प्रकार दूसरे के कथनानुसार एक दिन दीपक जलाने का ही यह फल है।।२४।।

परन्तु जो कोई जन श्रीविष्णु के सम्मुख अपने स्वोपार्जित धन से दीपक जलाता है, उसे जिस प्रकार का पुण्य प्राप्त होता है, उसकी तो गणना ही नहीं है। हे साधु! इसीलिए मैंने यह कहा कि 'हे हरि धन्य हैं''।।२५।।

कृतयुग में बुद्धिमान् उपासक एक सम्वत्सर पर्यन्त हरि की भक्ति कर जो फल प्राप्त करता है, वह निस्संदेह ही त्रेतायुग में आधे सम्वत्सर पर्यन्त की गई हरिभक्ति के पुण्य फल के तुल्य होते हैं।।२६।।

द्वापरयुग में तीन मास तक भक्तिभाव से श्रीहरि की पूजा करने से जो फल मिलता है, वही फल कलियुग में 'ॐ नमो नारायणाय' इस मन्त्र के उच्चारण करने से प्राप्त हो जाता है। इसीलिए मैंने कहा कि विष्णु की भक्ति मात्र से जगत् को लूटा गया है।।२७।।

हे राजन् मैंने यह कहा है कि हरिदेव के सम्मुख दूसरों के लिए दीप जलाने से तुम्हें इस तरह का फल प्राप्त हुआ है। अहो! मूर्खजन हरि के सम्मुख दीप जलाने कि क्रिया के फल को नहीं जानते।।२८।।

इसलिए ही जो जन द्विज हो या राजा, इस तरह भक्तिभाव से विविध प्रकार के यज्ञों को आयोजन कर पूजन करते हैं, वे साधु कहे गये हैं।।२९।।

मैं तो उन हरि के अलावे अन्य किसी को भी इस पृथ्वी पर नहीं देखता, इसीलिए कहा कि 'अगस्त्य धन्य है। इससे मैंने अपनी ही पीठ थपथपायी है।।३०।।

हे राजन् अत्यन्त उत्सुकता से पैदा हुए परम हर्ष के वशीभूत ही मैंने कहा कि वह स्त्री और वह शूद्र अधिक ही धन्य है, जो अपने स्वामी की सेवा कर अप्रत्यक्ष रूप से श्रीहरि की सेवा कर पाता है।।३१।।

वह स्त्री भी धन्य है तथा द्विजो की सेवा करने वाला वह शूद्र भी धन्य है, जो उनकी आज्ञा पाकर ही सही, हरि की सेवा करता है। इसीलिए स्त्री और शूद्र दोनों धन्य हैं।।३२।।

आसुरं भावमास्थाय प्रह्लादः पुरुषोत्तमम्। मुक्त्वा चान्यं न जानाति तेनासौ साधुरुच्यते॥३३॥
प्रजापतिकुले भूत्वा बाल एव वनं गतः। आराध्य विष्णुं प्राप्तं तत् स्थानं परमशोभनम्।
तेन साधो ध्रुवेत्येवं मयोक्तं राजसत्तम॥३४॥
इति राजा वचः श्रुत्वा अगस्त्यस्य महात्मनः। अल्पोपदेशराजाऽसौ पप्रच्छ मुनिपुंगवम्॥३५॥
अगस्त्यश्च महाभागः कार्तिक्यां पुष्करं व्रजन्।
गतेऽगस्त्ये प्रगच्छन् वै भद्राश्वस्य निवेशनम्॥३६॥
पृष्टश्च राज्ञा तामेव द्वादशीं मुनिसत्तमः।

दुर्वासा उवाच

इदमेव मया तुभ्यं कथितं ते तपोधन॥३७॥
कथयित्वा पुनर्वाक्यमगस्त्यो नृपसत्तमम्। उवाच पुष्करं यामि पुनरेष्यामि ते गृहम्।
एवमुक्त्वा जगामाशु सद्योऽदर्शनतां मुनिः॥३८॥
राजाऽपि तेन विधिना पद्मनाभस्य द्वादशीम्। उपोष्य परमं काममिह जन्मनि चाप्तवान्॥३९॥
सपत्नीको नृपवरो द्वादशीं समुपोष्य च। इह जन्मनि राजाऽसौ पुत्रपौत्रांस्तथाऽऽप्तवान्॥४०॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे एकोनपञ्चाशोऽध्यायः॥

प्रह्लाद भावना वाला होकर भी पुरुषोत्तम श्रीहरि के अलावे अन्य को नहीं जानते। अतः उन्हें भी धन्य कहा जाता है।।३३।।

हे श्रेष्ठ राजन्! प्रजापति के वंश में उत्पन्न होकर भी ध्रुव बालपन में ही वन में चले गये और उन्होंने श्रीविष्णु की उपासना कर परम उत्तम स्थान प्राप्त किया, अतः मैंने ध्रुव को धन्य कहा है।।३४।।

इस तरह के महात्मा अगस्त्य के वचनों को सुनकर उस राजा ने मुनि श्रेष्ठ से एक लघु उपदेश करने हेतु पूछा।।३५।।

कार्तिक मास के निमित्त पुष्कर क्षेत्र को जाने के समय महाभाग अगस्त्य मुनि भद्राश्व के घर गये थे। उस राजा के द्वारा पूछे जाने पर उसी द्वादशी व्रत का उपदेश उनसे किया गया।।३६।।

दुर्वासा ने कहा कि जे तपोधन! मैंने तुम्हें वही द्वादशी व्रत को करने को कहा हूँ। इस प्रकार से कहते हुए अगस्त्य मुनि ने श्रेष्ठ राजा से फिर कहा कि इस समय मैं पुष्कर क्षेत्र जा रहा हूँ। वापसी के समय मैं पुनः तुम्हारे घर आऊँगा। इस तरह से कहते हुये वे महामुनि अगस्त्य जी तिरोधान हो गये।।३७-३८।।

उस राजा ने भी उपरोक्त विधि से पद्मनाभ नामक द्वादशी का व्रत धारणकर इस जन्म में परम श्रेष्ठ फल को प्राप्त किया है।।३९।।

अपनी पत्नि के सहित उस राजा ने उस द्वादशी का व्रत धारण कर इस जन्म में भी पुत्र और पौत्रों को प्राप्त किया।।४०।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में आश्विन शुक्ल पद्मानाभ द्वादशी व्रत विधि और माहात्म्य नामक उनचासवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायण-कुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१॥

पञ्चाशोऽध्यायः

अथ योगेश्वरद्वादशीव्रतविधानम्

दुर्वासा उवाच

गत्वा तु पुष्करं तीर्थमगस्त्यो मुनिपुंगवः। कार्तिक्यामाजगामाशु पुनर्भद्राश्वमन्दिरम्॥१॥
तमागतं मुनिं प्रेक्ष्य राजा परमधार्मिकः। अर्घपाद्यादिभिः पूज्य कृतासनपरिग्रहम्।
उवाच हर्षितो राजा तमृषिं संशितव्रतम्॥२॥

राजोवाच

भगवन् कथितं पूर्वं त्वया ऋषिवरोत्तम। द्वादश्याश्वयुजे मासि विधानं तत् कृतं मया।
इदानीं कार्तिके मासि यत् स्यात् पुण्यं वदस्व मे॥३॥

अगस्त्य उवाच

श्रृणु राजन् महाबाहो कार्तिके मासि द्वादशीम्।
उपोष्य विधिना येन यच्चास्याः प्राप्यते फलम्॥४॥
प्राग्विधनेन संकल्प्य तद्वत् स्नानं तु कारयेत्। विभुमेवार्चयेद् देवं नारायणमकल्मषम्॥५॥
नमः सहस्त्रशिरसे शिरः संपूजयेद्धरेः। पुरुषायेति च भुजौ कण्ठं वै विश्वरूपपिणे।
ज्ञानास्त्रायेति चास्त्राणि श्रीवत्साय तथा उरः॥६॥

अध्याय–५०

कार्त्तिक शुक्ल योगेश्वर द्वादशी व्रतविधि और माहात्म्य, धरणी व्रत समापन

दुर्वासा ने कहा कि इस प्रकार से मुनि अगस्त्य कार्त्तिक पूर्णिमा में पुष्कर तीर्थ पहुँचकर शीघ्र ही भद्राश्व के घर वापस आ गये।।१।।

फिर उन मुनि को आया हुआ जानकर परम धार्मिक राजा ने अर्घ्य और पाद्य आदि से उनका पूजन किया। उन मुनि के आसन पर स्थित होने पर प्रसन्नचित्त से राजा ने उन तीव्र व्रती ऋषि से इस प्रकार कहा—।।२।।

राजा ने कहा कि हे ऋषि श्रेष्ठ भगवन्! आपने इसके पहले जैसा कहा था, वैसा ही मैंने आश्विन् मास शुक्ल पक्ष की द्वादशी को कर लिया है। अब कार्त्तिक में करने योग्य यदि कोई पुण्यव्रत हो, तो वह मुझे कृपा कर बतलायें।।३।।

अगस्त्य ने कहा कि हे महाबाहु राजन्! कार्त्तिक मास में जिस विधान के साथ द्वादशी का व्रत करना चाहिए और टसका जैसा फल होता है, उसे भी सुनो।।४।।

पूर्व की भाँति संकल्पपूर्वक स्नान करना चाहिए एवं फिर निष्पाप विभु नारायण देव की पूजा इस तरह से करनी चाहिए।।५।।

यहाँ पूजन क्रम इस प्रकार है—श्री हरि के शिर में 'ॐ नमः सहस्त्रशिरसे' मन्त्र से, उनकी बाहुओं में 'ॐ पुरुषाय नमः' मन्त्र से और उनके कण्ठ में 'ॐ विश्वरूपिणे नमः' मन्त्र से, पूजा करनी चाहिए फिर उनके अस्त्रों की पूजा 'ॐ ज्ञानास्त्राय नमः' मन्त्र से और उनके हृदय में ॐ श्रीवत्साय नमः' मन्त्र से पूजन करना चाहिए।।६।।

जगद्ग्रसिष्णवे पूज्य उदरं दिव्यमूर्त्तये। कटिं सहस्त्रपादाय पादौ देवस्य पूजयेत्॥७॥
अनुलोमेन देवेशं पूजयित्वा विचक्षणः। नमो दामोदरायेति सर्वाङ्गं पूजयेद्धरेः॥८॥
एवं संपूज्य विधिना तस्याग्रे चतुरो घटान्। स्थापयेद् रत्नगर्भांस्तु सितचन्दनचर्चितान्॥९॥
स्रग्दामबद्धग्रीवांस्तु सितवस्त्रावगुण्ठितान्। स्थापितान् ताम्रपात्रैस्तु तिलपूर्णैः सकाञ्चनैः॥१०॥
चत्वारः सागराश्चैव कल्पिता राजसत्तम। तन्मध्ये प्राग्विधानेन सौवर्णं स्थापयेद्धरिम्।
योगीश्वरं योगनिद्रं चरन्तं पीतवाससम्॥११॥
तमप्येवं तु संपूज्य जागरं तत्र कारयेत्। कुर्याच्च वैष्णवं यज्ञं यजेद् योगीश्वरं हरिम्॥१२॥
षोडशारे तथा चक्रे राजभिर्बहुभिः कृते। एवं कृत्वाप्रभाते तु ब्राह्मणाय च दापयेत्॥१३॥
चत्वारः सागरा देयाश्चतुर्णां पञ्चमस्य ह। योगीश्वरं तु संपूर्णं दापयेत् प्रयतः शुचिः॥१४॥
वेदाढ्ये तु समं दत्तं द्विगुणं तद्विदे तथा। अचार्ये पञ्चरात्राणां सहस्त्रगुणितं भवेत्॥१५॥
यस्त्विमं सरहस्यं तु समन्त्रं चोपपादयेत्। विधानं तस्य वै दत्तं कोटिकोटिगुणोत्तरम्॥१६॥

फिर उस देव के उदर में 'ॐ जगद्ग्रसिष्णवे नमः मन्त्र से, उनकी कटि में 'ॐ दिव्यमूर्त्तये नमः' इस मन्त्र से और उनके पादों में 'ॐ सहस्रपादाय नमः' मन्त्र से पूजन करना चाहिए।।७।।

इस प्रकार साधक जन अनुलोम प्रकार से श्रीदेवेश की पूजा करने के उपरान्त 'ॐ दामोदराय नमः' मन्त्र से श्रीहरि के सर्वाङ्ग का पूजन करना चाहिए।।८।।

इस प्रकार सविधि पूजा करने के बाद उन देवेश के सम्मुख श्वेत चन्दन लगा हुआ और रत्न से युक्त चार कुम्भ (कलश) की स्थापना करनी चाहिए।।९।।

पुष्पादि मालाओं से अलंकृत वे चारों कुम्भ श्वेत वस्त्रों से ढँका हुआ होना चाहिए। फिर उन कुम्भों के ऊपर स्वर्ण युक्त तिल से भरा ताम्रपात्रा रखा होना चाहिए।।१०।।

हे राजश्रेष्ठ! इस प्रकार के इन चार कुम्भों में चार समुद्र की परिकल्पना की जानी चाहिए। इस प्रकार पूर्व कथित विधान के अनुरूप उनके मध्य वाले कुम्भ में योगनिद्रा में सन्निविष्ट पीताम्बर धारण करने वाले योगीश्वर श्रीहरि विष्णु की स्वर्ण मूर्त्ति स्थापित करनी चाहिए।।११।।

फिर उन योगीश्वर का पूजन करने के बाद भी रात्रि में वहाँ जागरण करना चाहिए और वैष्णव यज्ञ कर योगीश्वर हरि की पूजा करनी चाहिए।।१२।।

वहुत-सारे राजाओं से किये गये षोडश अरों वाले श्रीहरि के चक्र का भी पूजन करना चाहिए। इस प्रकार से कर लेने के बाद वे कुम्भादि सुबह-सबेरे ब्राह्मण को दान देना चाहिए।।१३।।

इस तरह संयम और पवित्रता के सहित चार ब्राह्मणों को चार समुद्र स्वरूप कुम्भों को और पाँचवें ब्राह्मण को योगीश्वर की सम्पूर्ण मूर्त्ति सहित कुम्भ दान करना चाहिए।।१४।।

यह दान किस प्रकार के ब्राह्मण को देना चाहिए, इस विषय में कहा गया है कि वैदिक ब्राह्मण को दान करने से दान के समान फल होता है। लेकिन वेदज्ञ ब्राह्मण को दान करने से उसका दुगुना फल होता है तथा पञ्चरात्र के आचार्य को दान करने से सहस्र गुणा फल होता है।।१५।।

जो मन्त्र और रहस्य के साथ इस विधि का अनुसरण कराता है, उन्हें दान देने से कोटि-कोटि गुणा अधिक-अधिक फल होता है।।१६।।

गुरवे सति यस्त्वन्यमाश्रये् पूजयेत् कुधीः। स दुर्गतिमवाप्नोति दत्तमस्य च निष्फलम्।
प्रयत्नेन गुरौ पूर्वं पश्चादयस्य दापये्॥१७॥
अविद्यो वा सविद्यो वा गुरुरेव जनार्दनः। मार्गस्थो वाप्यमार्गस्थो गुरुरेव परा गतिः॥१८॥
प्रतिपद्य गुरुं यस्तु मोहाद् विप्रतिपद्यते। स जन्मकोटि नरके पच्यते पुरुषाधमः॥१९॥
एवं दत्त्वा विधानेन द्वादश्यां विष्णुमर्च्य च।
विप्राणां भोजनं कुर्याद् यथाशक्त्या सदिक्षणम्॥२०॥
धरणीव्रतमेतद्धि पुरा कृत्वा प्रजापतिः। प्राजापत्यं तथा लेभे मुक्तिं ब्रह्म च शाश्वतम्॥२१॥
युवनाश्वोऽपि राजर्षिरनेन विधिना पुरा। मान्धातारं सुतं लेभे परं ब्रह्म च शाश्वतम्॥२२॥
तथा च हैहयो राजा कृतवीर्यो नराधिपः। कार्त्तवीर्यं सतुतं लेभे परं ब्रह्म च शाश्वतम्॥२३॥
शकुन्तलाऽप्येवमेव तपश्चीर्त्वा महामुने। लेभे शाकुन्तलं पुत्रं दौष्यन्तिं चक्रवर्तिनम्॥२४॥
तथा पौराणराजानो वेदोक्ताश्चक्रवर्त्तिनः। अनेन विधिना प्राप्ताश्चक्रवर्तित्वमुत्तमम्॥२५॥
धरण्या अपि पाताले मग्नया चरितं पुरा। व्रतमेतत् ततो नाम्ना धरणीव्रतमुत्तमम्॥२६॥

जो दुष्ट बुद्धिजन गुरु के रहते, अन्य का आश्रय लेता है अथवा पूजन करता है, उसे दुर्गति प्राप्त होती है। उसका दिया हुआ सब दान निष्फल ही होता है। अतः प्रयत्नपूर्वक सर्वप्रथम अपने गुरु को ही दान देना चाहिए, फिर अन्य को देना उचित है।।१७।।

क्योंकि विद्यायुक्त या विद्याहीन गुरु ही जनार्दन होता है। सन्मार्गी या कुमार्गी होकर भी गुरु ही परमगति प्रदान करने वाला होता है।।१८।।

जो पुरुषाधम गुरु बना कर मोहवश उन्हें छोड़ देता है, वह व्यक्ति कोटि जन्म पर्यन्त नरक में ही रहने को बाध्य रहता है।।१९।।

इस प्रकार नियमपूर्वक दान करने के बाद विष्णु पूजन कर सामर्थ्यानुसार ब्राह्मणों को भोजन करने के उपरान्त दक्षिणा दें।।२०।।

पुरातन समय में प्रजापति ने यह धरणीव्रत प्रतिपादित कर प्राजापत्यपद रूप मुक्ति और शाश्वत ब्रह्म को प्राप्त किया था।।२१।।

फिर पुरातन समय में ही राजर्षि युवनाश्व नें भी उक्त विधि से इस व्रत को धारण कर मान्धाता नाम से पुत्र और शाश्वत परमब्रह्म को प्राप्त कर लिया था।।२२।।

इसी तरह से हैहयवंशी राजा कृतवीर्य ने कार्तवीर्य नाम से पुत्र और शाश्वत परमब्रह्म को प्राप्त करने में सफलता पायी थी।।२३।।

हे महामुने! इसी प्रकार से शकुन्तला ने भी तप कर दुष्यन्त से चक्रवर्ती शाकुन्तला (भरत) नाम से पुत्र को प्राप्त किया था।।२४।।

फिर वेदोक्त पुरातन चक्रवर्ती राजाओं ने उक्त विधि के आश्रयण कर उत्तम चक्रवर्त्तित्व प्राप्त किया था।।२५।।

इतना ही नहीं, पुरातन काल में ही पाताल में धँसी पृथ्वी ने भी धरणीव्रत नाम से यह उत्तम व्रत किया था।।२६।।

समाप्तेऽस्मिन् धरा देवी हरिणा क्रोडरूपिणा। उद्धृताऽद्यापि तुष्टेन स्थापिता नौरिवाम्भसि॥२७॥
धरणीव्रतमेतद्धि कीर्तितं ते मया मुने। य इदं शृणुयाद् भक्त्या यश्च कुर्यान्नरोत्तमः।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुसायुज्यमाप्नुयात्॥२८॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे पञ्चाशोऽध्यायः॥५०॥

एकनपञ्चाशोऽध्यायः

अथ मोक्षधर्मनिरूपणम्

श्रीवराह उवाच

श्रुत्वा दुर्वाससो वाक्यं धरणीव्रतमुत्तमम्। ययौ सत्यतपाः सद्यो हिमवत्पार्श्वमुत्तमम्॥१॥
पुष्पभद्रा नदी यत्र शिला चित्रशिला तथा। वटो भद्रवटो यत्र तत्र तस्याश्रमो बभौ।
तत्रोपरि महत् तस्य चरितं संभविष्यति॥२॥

धरण्युवाच

बहुकल्पसहस्राणि व्रतस्यास्य सनातन। मया कृतस्य तपसस्तन्मया विस्मृतं प्रभो॥३॥

इस व्रत के सम्पन्न होने पर वाराहस्वरूप श्रीहरि ने ही इस पृथ्वी का उद्धार किया था और आज भी प्रसन्न हरि इसे जल पर स्थित नौका सदृश धारण किये हैं।।२७।।

हे मुने! आपसे मैंने यह धरणी व्रत कथा को बतलाया है। जो जन भक्तिभाव से इसे सुनता अथवा सुनाता है और जो श्रेष्ठ जन इसका अनुसरण करता है, वे समस्त पापों से मुक्त होकर विष्णु-सायुज्य की प्राप्ति कर लेता है।।२८।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में कार्तिक शुक्ल योगेश्वर द्वादशी व्रतविधि और माहात्म्य, धरणी व्रत समापन नामक पचासवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्य-नारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥५०॥

अध्याय–५१

मोक्षधर्म निरूपण और पशुपालोपाख्यान

श्री भगवान् वराह ने कहा कि दुर्वासा के द्वारा कथित श्रेष्ठ धरणी व्रत को सुनकर सत्यतपा तत्काल हिमवान के पास उत्तम स्थान में रहने चला गया।।१।।

पुष्पभद्रा नदी, चित्रशिला नामक शिला और भद्रवट नाम का वटवृक्ष जिस स्थान पर स्थित है, वहाँ उसका आश्रम शोभयमान था। इस प्रकार उस स्थान पर उसका महत्त्वपूर्ण चरित सम्भव होगा।।२।।

धरणी ने पूछा कि हे सनातन प्रभो! मेरे द्वारा यह तो भूला ही दी गई कि कई हजारों कल्पों तक यह व्रत करने जैसी मेरी तपस्या का इस प्रकार का फल है।।३।।

इदानीं त्वत्प्रसादेन स्मरणं प्राक्तनं मम। जातं जातिस्मरा चास्मि विशोका परमेश्वर॥४॥
यदि नाम परं देव कौतुकं हृदि वर्तते। अगस्त्यः पुनरागत्य भद्राश्वस्य निवेशनम्।
यच्चकार स राजा च तन्ममाचक्ष्व भूधर॥५॥

श्रीवराह उवाच

प्रत्यागतमृषिं दृष्ट्वा भद्राश्वः श्वेतवाहनः। वरासनगतं दृष्ट्व कृत्वा पूजां विशेषतः।
अपृच्छन्मोक्षधर्माख्यं प्रश्नं सकलधारिणि॥६॥

भद्राश्व उवाच

भगवन् कर्मण केन छिद्यते भवसंसृतिः। किं वा कृत्वा न शोचन्ति मूर्त्तामूर्त्तोपपत्तिषु॥७॥

अगस्त्य उवाच

शृणु राजन् कथां दिव्यां दूरासन्नव्यवस्थिताम्। दृश्यादृश्यविभागोत्थां समाहितमना नृप॥८॥
नाहो न रात्रिर्न दिशोऽदिशश्च न द्यौर्न देवा न दिनं न सूर्यः।
तस्मिन् काले पशुपालेति राजा स पालयामास पशूननेकान्॥९॥
तान् पालयन् स कदाचिद् दिदृक्षुः पूर्वं समुद्रं च जगाम तूर्णम्।
अनन्तपारस्य महोदधेस्तु तीरे वनं तत्र वसन्ति सर्पाः॥१०॥

हे परमेश्वर! इस समय आपकी कृपा प्रसाद से मेरे पूर्व ज्ञान का उदय हो गया है। अब मैं जाति स्मरा अर्थात् जन्मान्तर का स्मरण करने वाली और शोकहीना हो गयी हूँ।।४।।

हे देव! मेरे हृदय में अत्यन्त कौतुक उत्पन्न हो रहा है। हे भूधर! भद्राश्व के महल में वापस आकर अगस्त्य और उस राजा ने जो कुछ किया, वह सब आप मुझसे कहें।।५।।

श्री वाराह भगवान् ने कहा कि हे सकलधारिणि पृथ्वी! श्वेतवाहन भद्राश्व राजा ने वापस पधारे महर्षि अगस्त्य को श्रेष्ठ आसन पर विराजमान देखकर विशेषरूप से उनकी पूजा सत्कार कर उनसे मोक्षधर्म के प्रसङ्गों में अपनी जिज्ञासा को अभिव्यक्त किया।।६।।

भद्राश्व ने कहा कि हे भगवन्! किस कर्म को करने से संसार का बन्धन अर्थात् जन्म-मृत्यु, सुख-दुख आदि के भाव का अभाव हो सकता है? अथवा जन्म लेने के बाद प्राणी को क्या करना चाहिए कि वह किसी भी प्रकार से शोकग्रस्त न हो।।७।।

अगस्त्य ने कहा कि हे राजन्! दूर और समीप में व्यवस्थित तथा दृश्य और अदृश्य के विभाजन से उत्पन्न होने वाली इस प्रकार की कथा को एकाग्रता से सुनो।।८।।

उस समय दिन, रात्रि, दिशायें, आकाश, देवगण, दिन एवं सूर्य आदि कुछ भी नहीं थे। लेकिन उस काल में भी वह पशुपाल राजा अनेक पशुओं का पालन करता था।।९।।

उन सबका पालन करने के क्रम में ही वह एक बार पूर्वसमुद्र को देखने की लालसा से शीघ्रता से वहाँ गया। अनन्तपार महासमुद्र के किनारे पर स्थित वन में एक सर्प रहता था।।१०।।

अष्टौ द्रुमाः कामवहा नदी च तिर्यक् चोद्ध्र्व बभ्रमुस्तत्र चान्ये।
पञ्च प्रधानाः पुरुषास्तथैकां स्त्रियं बिभ्रते तेजसा दीप्यमानाम्॥११॥
साऽपि स्त्री स्वे वक्षसि धारयन्ती सहस्त्रसूर्यप्रतिमं विशालम्।
तस्याधरस्त्रिर्विकारस्त्रिवर्णस्तं राजानं पश्य परिभ्रमन्तम्॥१२॥
तूष्णींभूता मृतकल्पा इवासन् नृपोऽप्यसौ तद्वनं संविवेश।
तस्मिन् प्रविष्टे सर्व एते विविशुर्भयादैक्यं गतवन्तः क्षणेन॥१३॥
तैः सर्पैः स नृपो दुर्विनीतैः संवेष्टितो दस्तुभिश्चिन्तयानः।
कथं चैतेन भविष्यन्ति येन कथं चैते संसृताः संभवेयुः॥१४॥
एवं राज्ञश्चिन्तयतस्त्रिवर्णः पुरुषः परः। श्वेतं रक्तं तथा कृष्णं त्रिवर्णं धारयन्नरः॥१५॥
स संज्ञां कृतवान् मह्यमपरोऽथ क्व यास्यसि। एवं तस्य ब्रुवाणस्य महन्नाम व्यजायत॥१६॥
तेनापि राजा संवीतः स बुध्यस्वेति चाब्रवीत्। एवमुक्ते ततः स्त्री तु तं राजानं रुरोध ह॥१७॥
मायाततं तं मा भैष्ट ततोऽन्यः पुरुषो नृपम्। संवेष्ट्य स्थितवान् वीरस्ततः सर्वेश्वरेश्वरः॥१८॥
ततोऽन्ये पञ्च पुरुषा आगत्य नृपसत्तमम्। संवेष्ट्य संस्थिताः सर्वे ततो राजा विरोधितः॥१९॥
रुद्धे राजनि ते सर्वे एकीभूतास्तु दस्यवः। मथितुं शस्त्रमादाय लीनाऽन्योऽन्यं ततो भयात्॥२०॥

उस स्थान पर दोनों पार्श्वों और ऊपर की तरफ आठ शाखाओं वाला एक वृक्ष स्थित था और कामवाहा नाम की नदी थी। वहीं पर अन्य पाँच प्रधान पुरुष था जो तेज से दीप्तवान् एक स्त्री को धारण कर रखे थे।।११।।

फिर वह स्त्री अपने वक्षःस्थल पर हजारों सूर्य के समान विशाल पुरुष को धारण की हुई थी। उसका अधरोष्ठ तीन विकारों तथा तीन वर्णों से सम्पन्न था। उस राजा पशुपाल को भ्रमणशील देखकर वहाँ पर स्थित समस्त जन मौन और मृत तुल्य हो गये। वह राजा पशुपाल फिर भी उस वन में प्रविष्ट हो गया। उसके प्रवेश करने पर वे सभी भय के वश होकर क्षणमात्र में संकुचित होकर एकीकृत हो गये।।१२-१३।।

फिर दुष्ट और दुर्विनीत वहाँ स्थित सर्प लिपटे शरीर वाला वह राजा विचार किया कि ये कैसे उत्पन्न हुये और वह कौन है? जिनसे इनकी सृष्टि हुई है।।१४।।

इस तरह से विचार कर रहे राजा पशुपाल के सामने श्वेत, रक्त और कृष्ण, इन तीन वर्णों से युक्त, जो श्रेष्ठ पुरुष था, वह सचेत हुआ और कहा कि मेरे लिये यह सृष्टि हुई। अब तुम कहाँ जाओगे? उस पुरुष के इस प्रकार से कहने पर महत् नामक तत्त्व उत्पन्न हुआ।।१५-१६।।

फिर उस महत् नामक तत्त्व ने भी राजा को आविष्ट कर लिया और उसने कहा कि 'सचेत होओ'। तत्पश्चात् इस प्रकार से कहे जाने पर उस स्त्री ने भी राजा को अवरुद्ध कर लिया।।१७।।

इन सब के अनन्तर सर्वेश्वरेश्वर वीर, जो अन्य पुरुष था 'डरो मत'। इस प्रकार कहते हुए उस मायाग्रस्त राजा को संवेष्टित कर स्थित हुआ।।१८।।

फिर तो पाँच अन्य पुरुष ने भी आगे आकर राजा को संवेष्टित करते हुए स्थित हुआ। उस समय वे लोग राजा का विरोध करने लग गये।।१९।।

इस प्रकार राजा के अवरुद्ध होने पर समस्त दस्यु ऐक्यभाव से युक्त होकर शस्त्र लेकर उस राजा का मन्थन करने को उद्यत हुए। उस समय वे सब भयवश एक-दूसरे में लीन हो गये।।२०।।

तैर्लीनैर्नृपतेर्वेश्म बभौ परमशोभनम्। अन्येषामपि पापानां कोटिः साग्राभवन्नृप॥२१॥
गृहे भूसलिलं वह्निः सुखशीतश्च मारुतः। सावकाशानि शुभ्राणि पञ्चैकोनगुणानि च॥२२॥
एकैव तेषां सुचिरं संवेष्ट्यासज्यसंस्थिता। एवं स पशुपालोऽसौ कृतवानस्त्रा नृप॥२३॥
तस्य तल्लाघवं दृष्ट्वा रूपं च नृपतेर्मृधे। त्रिवर्णः पुरुषो राजन्नब्रवीद् राजसत्तमम्॥२४॥
त्वपुत्रोऽस्मि महाराज ब्रूहि किं करवाणि ते। अस्माभिर्बन्धुमिच्छद्भिर्भवन्तं निश्चयः कृतः॥२५॥
यदि नाम कृताः सर्वे वयं देव पराजिताः। एवमेव शरीरेषु लीनास्तिष्ठाम पार्थिव॥२६॥
मय्येके तव पुत्रत्वं गते सर्वेषु संभवः। एवमुक्तस्ततो राजा तं नरं पुनरब्रवीत्॥२७॥
पुत्रो भवति मे कर्त्ता अन्येषामपि सत्तम। युष्मत्सुखैर्नरैर्भावैर्नाहं लिप्ये कदाचन॥२८॥
एवमुक्त्वा स नृपतिस्तमात्मजमथाकरोत्। तैर्विमुक्तः स्वयं तेषां मध्ये स विरराम ह॥२९॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे एकपञ्चाशोऽध्यायः॥५१॥

ऐक्यभाव से लीन होने वाले उन सब से नृपति का शरीर रूपी गृह परम सुन्दर हो गया। हे राजन्! इस तरह कोटि-कोटि संख्यक अन्य पाप भी विलीन हो गये।।२१।।

पृथ्वी, जल, अग्नि, सुखदायक शीतल वायु, एवं शुभ आकाश; ये पाँच तत्त्व क्रम से एक-एक से गुणहीन तत्त्व राजा के शरीर में उत्पन्न हो गये।।२२।।

फिर राजा अकेले ही उन सब को संवेष्टित करने के बाद चिरकाल पर्यन्त उनके निकट रहा। हे राजन्! उस पशुपाल राजा ने सहजता से इस प्रकार से इस कार्य को कर सका।।२३।।

हे राजन्! युद्ध में उसके उस लाघव और रूप को देखते हुए तीन वर्णों से सम्पन्न पुरुष ने श्रेष्ठ राजा से यह कहा—।।२४।।

हे महाराज्! मैं आपका पुत्र हूँ। कहें मैं आपका किस कार्य को करूँ? आपको बन्धु बनाने की इच्छा से हमने यह निश्चय किया है।।२५।।

हे राजन्! यह हम सब आपसे परास्त हो गये, तो हम इसी तरह से पार्थिव शरीर से लीन ही रहेंगे।।२६।।

एक मात्र मुझको आपका पुत्र होने पर सब उत्पन्न हो सकेंगे। इस प्रकार कहने पर राजा ने फिर उस पुरुष से कहा—।।२७।।

हे श्रेष्ठ! मेरा पुत्र अन्यों का भी कर्त्ता हो सकेगा। तुम्हारे सुख स्वरूप मानवीय भावनाओं से मैं कभी भी स्थिर न हो सकूँगा।।२८।।

इस प्रकार से कहने पर उस राजा ने उसे अपना पुत्र मान लिया और उनसे मुक्त रहकर स्वयं उनके मध्य रमण करता रह सका।।२९।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में मोक्षधर्म निरूपण और पशुपालोपाख्यान नामक एकावन अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥५१॥

❖❖❖

द्वापञ्चाशोऽध्यायः

अथ पशुपालोपाख्यानम्

अगस्त्य उवाच

स त्रिवर्णो नृपोत्सृष्टः स्वतन्त्रत्वाच्च पार्थिव। अहं नामानमसृजत् पुत्रं पुत्रस्त्रिवर्णकम्।।१।।
तस्यापि चाभवत् कन्या अवबोधस्वरूपिणी। सा तु विज्ञानदं पुत्रं मनोह्वं विससर्ज ह।।२।।
तस्यापि सर्वरूपाः स्युस्तनयाः पञ्चभोगिनः। यथासंख्येन पुत्रास्तु तेषामक्षाभिधानकाः।।३।।
एते पूर्वं दस्यवः स्युस्ततो राज्ञा वशीकृताः। अमूर्त्ता इव ते सर्वे चक्रुरायतनं शुभम्।।४।।
नवद्वारं पुरं तस्य त्वेकस्तम्भं चतुष्पथम्। नदीसहस्रसंकीर्णं जलकृत्य समास्थितम्।।५।।
तत्पुरं ते प्रविविशुरेकीभूतास्ततो नव। पुरुषो मूर्त्तिमान् राजा पशुपालोऽभवत् क्षणात्।।६।।
ततस्तत्पुरंस्थस्तु पशुपालो महानृपः। संसूच्य वाचकाञ्छब्दान् वेदान् सस्मार तत्पुरे।।७।।
आत्मस्वरूपिणो नित्यास्तुदुक्तानि व्रतानि च।
नियमान् क्रतवश्चैव सर्वान् राजा चकार ह।।८।।
स कदाचिन्नृपः खिन्नः कर्मकाण्डं प्ररोचयन्। सर्वज्ञो योगनिद्रायां स्थित्वा पुत्रं ससर्ज ह।।९।।

अध्याय–५२

पशुपाल का उपाख्यान

अगस्त्य ने कहा कि हे राजन्! राजा द्वारा स्वीकार किया गया उस त्रिपर्ण पुत्र ने स्वतंत्र रूप से अहम् नाम से त्रिपर्ण पुत्र को पैदा किया।।१।।

फिर उसको भी ज्ञान स्वरूपा कन्या की उत्पत्ति हुई। उसने विज्ञानप्रद मन नाम से पुत्र उत्पन्न किया।।२।।

फिर उसको भी सभी स्वरूपों वाले और पाँच भोगों वाले पुत्र हुए, जिनको क्रम से इन्द्रिय नामक पुत्र प्राप्त हुए।।३।।

ये सभी पूर्व समय में दस्यु थे। तत्पश्चात् राजा ने उनको वशीभूत कर लिया। अमूर्त्त सदृश उन सभी ने शुभ पुर (गृह) का निर्माण किया।।४।।

उस पुर (गृह) में नौ द्वार, एक स्तम्भ और चार मार्ग उपलब्ध थे। हजारों नदियों से परिपूर्ण उस पुर में जलकर्म हेतु सम्यक् व्यवस्था थी।।५।।

इस प्रकार उन नौओं ने उस पुर में प्रविष्ट किया। तत्पश्चात् वे सभी एकीकृत हो गये। और फिर क्षणमात्र में मूर्त्तिमान् पुरुष पशुपाल नाम का राजा प्रकट हुआ।।६।।

उस पुर में स्थित पशुपाल नाम का महान् राजा ने भलीभाँति सचेत होकर उस पुर बोधक शब्दों और वेदों का स्मरण किया।।७।।

राजा ने उन वेदों में कथित आत्मस्वरूप नित्य व्रतों, नियमों और समस्त यज्ञों का सम्पादन भी किया।।८।।

फिर कर्मकाण्ड सम्पादित करने वाला वह सर्वज्ञ राजा एक समय दुःखी हो गया। फिर योगनिद्रा में स्थित होकर उसने एक पुत्र को पैदा किया।।९।।

चतुर्वक्त्रं चतुर्बाहुं चतुर्वेदं चतुष्पथम्। तस्मादरभ्य नृपतेर्वशे पश्चादयः स्थिताः॥१०॥
तस्मिन् समुद्रे स नृपो वने तस्मिंस्तथैव च। तृणादिषु नृपस्सैव हस्त्यादिषु तथैव च।
समोभवत् कर्मकाण्डादनुज्ञाय महामते॥११॥

।इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे द्वापञ्चाशोऽध्यायः॥५२॥

त्रिपञ्चाशोऽध्यायः

अथ स्वरपुरुषोपाख्यानम्

भद्राश्व उवाच

मत्प्रश्नविषये ब्रह्मन् कथेयं कथिता त्वया। तस्या विभूतिरभवत् कस्य केन कृतेन ह॥१॥

अगस्त्य उवाच

आगतेयं कथा चित्रा सर्वस्य विषये स्थिता। त्वद्देहे मम देहे च सर्वजन्तुषु सा समा॥२॥
तस्यां संभूतिमिच्छन् यस्तस्योपयं स्वयं परम्। पशुपालात् समुत्पन्नो यश्चतुष्पाच्चतुर्मुखः॥३॥
स गुरुः स कथायास्तु तस्याश्चैव प्रवर्त्तकः। तस्य पुत्रः स्वरो नाम सप्तमूर्तिरसौ स्मृतः॥४॥

वह उत्पन्न पुत्र चार मुखों, चार बाहुओं, चार वेदों और कर्म-ज्ञान-उपासना दास्य भाव स्वरूप चार मार्ग से युक्त था। उसकी उत्पत्ति होने पर पशुपाल राजा के वश में से सभी तत्त्व स्व-स्व स्थानों में अवस्थित हो गये।।१०।।

हे महामते! उस समुद्र में अवस्थित उस वन के तृणादि स्थावर और जंगम प्राणियों का वह राजा बन गया। वेदों के विधान को जानकर कर्म करने से वह राजा सभी के प्रति समान व्यवहार करने के योग्य हो गया।।११।।

।।इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में पशुपाल का उपाख्यान नामक बावनवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ।।५२।।

अध्याय–५३

स्वर पुरुष का उपाख्यान

भद्राश्व ने कहा कि हे ब्रह्मन्! मेरी जिज्ञासाओं के विषय में आपके द्वारा यह कथा सुनायी गई। किसके किस कर्म से उसकी विभूति हुई थी।।१।।

अगस्त्य ने कहा कि इस प्रकार की प्रचारित कथा प्रत्येक के विषय में घटित हो सकती है। तुम्हारे, हमारे अथवा समस्त प्राणियों के सम्बन्ध में इस प्रकार की कथा समान रूप से घटित होती है।।२।।

पशुपाल से उत्पन्न चार पादों और चार मुखों वाला, जो उसमें सम्भूति की कामना करने वाला तथा स्वयं उसके श्रेष्ठ उपाय स्वरूप था, वह गुरु तथा उस कथा का प्रवर्त्तक है। उसका ही स्वर नाम का पुत्र है। जिसे सप्तमूर्ति कहा जाता है।३-४।।

तेन प्रोक्तं तु यत्किंचित् चतुर्णां साधनं नृप। ऋगर्थानां चतुर्भिस्ते तद्भक्त्याराध्यतां ययुः॥५॥
चतुर्णां प्रथमो यस्तु चतुःशृङ्गसमास्थितः। वृषद्वितीयस्तत्प्रोक्मार्गेणैव तृतीयकः।
चतुर्थस्तत्प्रणीतस्तां पूज्य भक्त्या सुतं व्रजेत्॥६॥
सप्तमूर्त्तेस्तु चरितं शुश्रुवुः प्रथमं नृप। ब्रह्मचर्येण वर्त्तेत द्वितीयोऽस्य सनातनः॥७॥
ततो भृत्यादिभरणं वृषभारोहणं त्रिषु। वनवासश्च निर्दिष्ट आत्मस्थे वृषभे सति॥८॥
अहमस्मि वदत्यन्यश्चतुर्द्धा एकधा द्विधा। भेदभिन्नसहोत्पन्नास्तस्यापत्यानि जज्ञिरे॥९॥
नित्यानित्यस्वरूपाणि दृष्ट्वा पूर्वं चतुर्मुखः। चिन्तयामास जनकं कथं पश्याम्यहं नृप॥१०॥
मदीयस्य पितुर्ये हि गुणा आसन् महात्मनः। न ते सम्प्रति दृश्यन्ते स्वरापत्येषु केषुचित्॥११॥
पितुः पुत्रस्य यः पुत्रः स पितामहनामवान्। एवं श्रुतिः स्थिता चेयं स्वरापत्येषु नान्यथा॥१२॥
क्वापि संपत्स्यते भावो द्रष्टव्यश्चापि ते पिता। एवं नीतेऽपि किं कार्यमिति चिन्तापरोऽभवत्॥१३॥
तस्य चिन्तयतः शस्त्रं पितृकं पुरतो बभौ। तेन शस्त्रेण तं रोषान्ममन्थ स्वरमन्तिके॥१४॥

हे राजन्! उसने ऋग्वेद के अर्थ के रूप में चार पुरुषार्थों के जन उपकरणों को कहा है, वे चार वर्णों द्वारा परमेश्वर की भक्तिभाव से उपासनीय माना जाने लगा है।।५।।

इस प्रकार चार वेदों में प्राथमिक ऋग्वेद है, जो चार शृङ्गों वाला या यज्ञ के स्वरूपों में माना जाता है। द्वितीय यजुर्वेद वृष स्वरूप धर्म है, जिसके द्वारा बतलाये मार्ग से ही तृतीय सामवेद भी प्रवृत्त होता है और चतुर्थ अथर्ववेद भी उसी से प्रणीत ही हैं। इसीलिए इन ऋचाओं की पूजा करने के पश्चात् पुत्र के पास जाना श्रेष्ठ है।।६।।

हे राजन्! सप्तमूर्त्ति का चरित्र श्रवण करने वाले को सर्वप्रथम ब्रह्मचर्य का पालन करना उचित है। फिर वह सनातन गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर सकता है।।७।।

फिर वह भृत्यादि आश्रितों का लालन-पालन कर वृषभारोहण या धर्म-कर्म करने के विषय में विचार करे। तृतीय अवस्था में वृषभ के आत्मस्थ या आत्मा को धर्मयुक्त किये जाने के बाद वन में निवास करने योग्य माना गया है।।८।।

उसने कहा कि 'मैं एक हूँ'। यद्यपि दूसरे-दूसरे जन मुझे चार, एक और दो प्रकार के प्रभेदों से पृथक् माना करते हैं। लेकिन एक साथ उत्पन्न होने पर भी उस स्वर की सन्तान स्वरूप में ही हमकों जानते हैं।।९।।

हे नृप! पुरातन काल में चतुर्मुख के द्वारा नित्यानित्य स्वरूपों वाले को जानकर ही विचार किया गया था, कि मैं पिता को किस प्रकार देखूँ।।१०।।

मेरे महात्मा पिता के जो गुण थे, वे इस समय स्वर के किसी अपत्य में नहीं जान पड़ता है।।११।।

लेकिन इस प्रकार की श्रुति है कि पिता के पुत्र का जो पुत्र होता है, वह पितामह के नाम वाला होता है। फिर यह श्रुति स्वर के अपत्यों में अन्यथा रूप नहीं हो सकती है।।१२।।

मेरा भाव किस प्रकार से पूर्ण हो सकेगा और मेरे पिता भी कैसे दिख पड़ सकेंगे। इस प्रकार की स्थिति में क्या करना चाहिए वह ऐसी चिन्ता का शिकार हो गया।।१३।।

उनके चिन्तित अवस्था में ही उनके सम्मुख पिता का शस्त्र प्रकट हो गया। उसी शस्त्र से वह सन्निकटस्थ स्वर रूप पुत्र को रोष के सहित मथने लगा।।१४।।

तस्मिन् मथितमात्रे तु शिरस्तस्यापि दुर्ग्रहम्।
नालिकेरफलाकारं चतुर्वक्त्रोऽन्वपश्यत॥१५॥

तच्चावृतं प्रधानेन दशधा संवृतो बभौ। चतुष्पादेन शस्त्रेण चिच्छेद तिलकाण्डवत्॥१६॥
प्रकामं तिलसंच्छिन्ने तदमूलौ न मे बभौ। अहं त्वहं वदन् भूतं तमप्येवमथाच्छिनत्॥१७॥
तस्मिन् छिन्ने तदस्यांसे ह्रसव्मन्यमवेक्षत। अहं भूतादि वः पञ्च वदन्तं भूतिमन्तिकात्॥१८॥
तमप्येवमथो छित्त्वा पञ्चाशून्यममीक्षत। कृत्वावकाशं ते सर्वे जलपन्त इदमन्तिकात्॥१९॥
तमप्यसङ्गशस्त्रेण चिच्छेद तिलकाण्डवत्। तस्मिंमच्छिन्ने दशांशेन ह्रस्वमन्यमपश्यत॥२०॥
पुरुषं रूपशस्त्रेण तं छित्त्वाऽन्यमपश्यत। तद्वद् ह्रस्वं सितं सौम्यं तमप्येवं तदाऽकरोत्॥२१॥
एवं कृते शरीरं तु ददर्श स पुनः प्रभुः। स्वकीयमेवाकस्यान्तः पितरं नृपसत्तम॥२२॥
त्रसरेणुसमं मूर्त्या अव्यक्तं सर्वजन्तुषु। समं दृष्ट्वा परं हर्षमुभे विसस्वरार्त्तवित्॥२३॥

एवंविधोऽसौ पुरुषः स्वरनामा महातपाः।
मूर्त्तिस्तस्य प्रवृत्ताख्यं निवृत्ताख्यं शिरो महत्॥२४॥

उसके मथने के समय ही चतुर्मुख ने उसके नारियल फल की तरह की आकृति का दुर्ग्रह शिर देख लिया।।१५।।

दश दिशाओं में वह शिर रूप प्रधान बुद्धि या माया से घिरा हुआ-सा शोभायमान हो रहा था। ब्रह्मा ने उस समय चतुष्पाद शस्त्र द्वारा उसे तिल की तरह काट दिया।।१६।।

ठीक-ठीक उस मूलरहित से तिल समान काटे जाने पर वह मुझको दिख नहीं रहा था। 'अहम् अहम्' कहने वाले प्राणी को भी उसी प्रकार काटा।।१७।।

उसके भी कट जाने पर उसके कन्धे पर अन्य सूक्ष्म प्राणी को निकट से देखा, जिसके द्वारा यह कहा जा रहा था कि मैं तुम्हारी उत्पत्ति स्वरूप पञ्चभूतों का भी आदि स्वरूप पञ्चतन्मात्रा हूँ।।१८।।

फिर उन पाँच तन्मात्राओं को भी काटने के पश्चात् उसके द्वारा वहाँ पर शून्य स्थान नहीं देखा गया। वहाँ वे सबके सब कुछ ठहरे-ठहर कर मैं भूतादि हूँ, यह कहकर ब्रह्मा के पास स्थित हो गया।।१९।।

फिर तो ब्रह्मा ने भी असङ्गशस्त्र से उसको भी तिल सदृश काट दिया और उसे कट जाने पर ब्रह्मा ने उसके दशांश तुल्य दूसरे ह्रस्व पुरुष को भी देखा।।२०।।

रूप शस्त्र द्वारा उस पुरुष को भी काटने के पश्चात् ब्रह्मा जी ने उसी प्रकार अन्य श्वेत वर्ण और सौम्य स्वभाव के ह्रस्व पुरुष को देखा। फिर उसे भी वैसा ही कर दिया अर्थात् उसे भी काट दिया।।२१।।

इस प्रकार से कर देने के बाद उन प्रभु ने पुनः एक शरीर को देखा। हे श्रेष्ठ राजन्! उस शरीर के अन्दर उन्होंने अपने पिता को देखा।।२२।।

जिसकी मूर्त्ति त्रसरेणु के समान थी। समस्त प्राणियों में वह अव्यक्त रूप में स्थित था। एक-दूसरे को देखकर दोनों समान रूप से परम प्रसन्न थे। फिर विशिष्ट स्वरों की ध्वनियों को जानने वाले महातपस्वी स्वर संज्ञक वह पुरुष होने के स्वरूप वाला है। जिसकी मूर्त्ति का नाम प्रवृत्त है और उसके महान् शिर का नाम निवृत था।।२३-२४।।

एतस्मादेव तस्याशु कथया राजसत्तम। संभूतिरभवद् राजन् निवृत्तेस्त्वेष एव तु॥२५॥
एषेतिहासः प्रथमः सर्वस्य जगतो भृशम्। य इमं वेत्ति तत्त्वेन साक्षात् कर्मपरो भवेत्॥२६॥

।।इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे त्रिपञ्चाशोऽध्यायः।।५३।।

—✲✲❁✲✲—

चतुःपञ्चाशोऽध्यायः

अथ श्रेष्ठभर्तृप्राप्तिव्रतविधानम्

भद्राश्व उवाच

विज्ञानोत्पत्तिकामस्य क आराध्यो भवेद् द्विज।
कथं चाराध्यतेऽसौ हि एतदाख्याहि मे द्विज॥१॥

अगस्त्य उवाच

विष्णुरेव सदाराश्यः सर्वदेवैरपि प्रभुः। तस्योपायं प्रवक्ष्यामि येनासौ वरदो भवेत्॥२॥
रहस्यं सर्वदेवानां मुनीनां मनुजांस्तथा। नारायणः परो देवस्तं प्रणम्य न सीदति॥३॥

हे राज श्रेष्ठ! इसीलिए ही उसकी कथा से शीघ्र उत्पत्ति सम्भव हुआ। हे राजन्! यही सृष्टि का क्रम है।।२५।।

इसे अखण्ड जगत् का सार्वप्राथमिक इतिहास जानना चाहिए। जिसने इसको ठीक-ठीक तत्त्व रूप से प्रत्यक्ष जान लेता है, वह कर्म परायण कहलाता है।।२६।।

।।इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में स्वर पुरुष का उपाख्यान नामक तिरपनवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ।।५३।।

अध्याय-५४

श्रेष्ठ भर्तृ प्राप्ति व्रत विधान

भद्राश्व ने पूछा कि हे द्विज! विज्ञानोत्पत्ति की कामना वालों को किस देव की उपासना करना प्रासंगिक होगा? तथा हे द्विज! आप कृपापूर्वक यह भी बतलायें कि उन देव की उपासना किस प्रकार करनी चाहिए।।१।।

अगस्त्य ने कहा कि प्रभु विष्णु देव समस्त देवताओं के उपास्य हैं। मैं उन्हीं की उपासना का उपाय बतलाता हूँ, जिससे प्रसन्न होकर वे वर प्रदान करते हैं।।२।।

समस्त देवताओं, समस्त मुनियों और समस्त मानवों के हेतु परमदेव श्रीविष्णु एक रहस्य स्वरूप हैं। निस्सन्देह उन्हें प्रणाम करते रहने पर कष्ट होता नहीं है।।३।।

श्रूयते च पुरा राजन् नारदेन महात्मना। कथितं तुष्टिदं विष्णोर्व्रतमप्सरसां तथा॥४॥
नारदस्तु पुरा कल्पे गतवान् मानसं सरः। स्नानार्थं तत्र चापश्यत् सर्वमप्सरसां गणम्॥५॥
तास्तं दृष्ट्वा विलासिन्यो जटामुकुटधारिणम्। अस्थिचर्मावशेषं तु छत्रदण्डकपालिनम्॥६॥
देवासुरमनुष्याणां दिदृक्षुं कलहप्रियम्। ब्रह्मपुत्रं तपोयुक्तं पप्रच्छुस्ता वराङ्गनाः॥७॥

अप्सरस ऊचुः

भगवन् ब्रह्मतनय भर्तृकामा वयं द्विज।
नारायणश्च भर्त्ता नो यथा स्यात् तत् प्रचक्ष्व नः॥८॥

नारद उवाच

प्रणामपूर्वकः प्रश्नः सर्वत्र विहितः शुभः। स च मे न कृतो गर्वाद् युष्माभिर्यौवनस्मयात्॥९॥
तथापि देवदेवस्य विष्णोर्यन्नाम कीर्तितम्। भवतीभिस्तथा भर्त्ता भवत्विति हरिः कृतः।
तन्नामोच्चारणादेव कृतं सर्वं न संशयः॥१०॥
इदानीं कथयाम्याशु व्रतं येन हरिः स्वयम्। वरदत्वमवाप्नोति भर्तृत्वं च नियच्छति॥११॥

नारद उवाच

वसन्ते शुक्लपक्षस्य द्वादशी या भवेच्छुभा। तस्यामुपोष्य विधिवन् निशायां हरिमर्च्चयेत्॥१२॥

हे राजन्! यह सूना गया है कि पुरातन काल में महात्मा नारद द्वारा अप्सरागणों से तुष्टिप्रद व्रत को बतलाया गया था।।४।।

पूर्वकल्प में नारद मानस सरोवर पर स्नान के लिए पधारे हुए थे। वहीं पर उन्होंने अप्सराओं के एक समूह को भी उपस्थित देखा।।५।।

उन विलासिनियों ने भी जटा-मुकुटधारी अस्थि चर्मावशेष के साथ छत्र, दण्ड और कपालधारी उन नारद मुनि को देख लिया।।६।।

फिर देव, दानव और मानव, इन सबों से मिलते रहने की कामना वाले, कलहप्रिय और तपनिष्ठ उन ब्रह्मपुत्र नारद को देखकर उनसे उन वराङ्गनाओं ने पूछा—।।७।।

अप्सराओं ने कहा कि हे द्विज भगवन् ब्रह्मपुत्र! हम सभी पति की कामना करते हैं। अतः आप जिस भी प्रकार नारायण हम सब के पति हों, उस उपाय को बतलावें।।८।।

नारद ने कहा कि प्रणाम करते हुए प्रश्न करना, सदा ही शुभ माना गया है। यद्यपि तुम लोगों ने अपने नवयौवन के अहंकारवश मुझसे उस तरह से प्रश्न नहीं पूछा है।।९।।

तथापि तुम लोगों ने देव देव विष्णु का नाम ले लिया है और नारायण हमारे पति हों, इस प्रकार का निश्चय किया है। इसीलिए उनके नामोच्चारण मात्र से सभी कुछ कर लिया गया, माना जाना चाहिए।।१०।।

इस समय मैं अब उस व्रत को कहने जा रहा हूँ, जिससे स्वयं श्रीहरि वर प्रदान करने वाले होंगे और तुम लोगों के पति हो सकेंगे।।११।।

नारद ने कहा कि वसन्त ऋतु के शुक्लपक्ष में जो शुभकारिणी द्वादशी होती है, उस दिन उपवासपूर्वक रात्रि के समय सविधि श्रीहरि का पूजन करना चाहिए।।१२।।

पर्यङ्कास्तरणं कृत्वा नानाचित्रसमन्वितम्।
तत्र लक्ष्म्या युतं रौप्यं हरिं कृत्वा निवेशयेत्॥१३॥

तस्योपरि तः पुष्पैर्मण्डपं कारयेद् बुधः। नृत्यवादित्रगेयैचच जागरं तत्र कारयेत्॥१४॥
मनोभवायेति शिर अनङ्गायति वै कटिम्। कामाय बाहूमूले तु सुशास्त्रायेति चोदरम्॥१५॥
मन्मथायेति पादौ तु हरयेति च सर्वतः। पुष्पैः संपूज्य देवेशं मल्लिकाजातिभिस्तथा॥१६॥
पश्चाच्चतुर आदाय इक्षुदण्डान् सुशोभनान्। चतुर्दिक्षु न्यसेत् तस्य देवस्य प्रणतो नृप॥१७॥
एवं कृत्वा प्रभाते तु प्रदद्याद् ब्राह्मणाय वै। वेदवेदाङ्गयुक्ताय संपूर्णाङ्गाय धीमते॥१८॥

ब्राह्मणांश्च तथा पूज्य व्रतमेतत् समापयेत्।
एवं कृते तथा विष्णुर्भर्त्ता वो भविता ध्रुवम्॥१९॥

अकृत्वा मत्प्रणामं तु पृष्टो गर्वेण शोभनाः। अवमानस्य तस्यायं विपाको वो भविष्यति॥२०॥
एतस्मिन्नेव सरसि अष्टावक्रो महामुनिः। तस्योपहासं कृत्वा तु शापं लप्स्यथ शोभनाः॥२१॥
व्रतेनानेन देवेशं पतिं लब्ध्वाऽभिमानतः। अवमानेऽपहरणं गोपालैवा भविष्यति।

पुरा हर्त्ता च कन्यानां देवो भर्त्ता भविष्यति॥२२॥

फिर विविध प्रकार के चित्रों से सम्पन्न शयन योग्य शय्या बनवाकर उसके ऊपर लक्ष्मी सहित श्रीहरि की चाँदी की मूर्त्ति बना हुआ स्थापित करनी चाहिए।।१३।।

तत्पश्चात् सुधी साधक को उस शय्या के ऊपर पुष्पों आदि से मण्डप निर्माण कराकर नृत्य, वाद्य, गान आदि के सहयोग से रात्रि जागरण करना चाहिए।।१४।।

यहाँ पूजा का क्रम इस प्रकार है—'ॐ मनोभवाय नमः' इस मन्त्र से श्रीहरि के शिर में, 'ॐ अनङ्गाय नमः' मन्त्र से कटि में, 'ॐ कामाय नमः' मन्त्र से भुजामूल में, 'ॐ सुशास्त्राय नमः' मन्त्र से पेट में, 'ॐ मन्मथाय नमः' मन्त्र से पादों में, 'ॐ हरये नमः' मन्त्र से श्रीहरि के सर्वाङ्ग में पूजन करना चाहिए। मल्लिका और जूही के पुष्पों से देवदेवेश श्रीहरि का पूजन करना अतिश्रेष्ठ है।।१५-१६।।

हे नृप! इन सबके पश्चात् चार ईख दण्ड को सविनय उन श्रीदेवदेवेश के चारों दिशाओं में रख देने चाहिए।।१७।।

तत्पश्चात् प्रातःकाल में वेदवेदाङ्ग सम्पन्न, समस्त शरीराङ्गों वाले सुधी ब्राह्मण को वह मूर्त्ति युक्त शय्या दान करना चाहिए और फिर उन ब्राह्मणों का पूजन कर अपना व्रत समाप्त करना चाहिए। इस प्रकार से करने पर निश्चय ही श्रीविष्णु तुम सबके पति हो सकेंगे।।१८-१९।।

हे सुन्दरियो! गर्वसहित मुझको विना प्रणाम किये तुम सबों ने अपना प्रश्न पूछा था, अतः उस मेरे अपमान का तुम लोगों को यह फल प्राप्त हो सकेगा।।२०।।

हे सुन्दरियो! महामुनि अष्टावक्र इसी सरोवर पर जब आयेंगे और उनका उपहास करने पर तुम लोगों को उनसे श्राप की प्राप्ति होगी।।२१।।

इस व्रत से श्री देवदेवेश को पति बनाने के बाद गर्ववश किये गये अपमान से गोपालों द्वारा पहले तुम्हारा अपहरण किया जाएगा। उस समय, प्रथम कन्याओं का अपहरण करने वाले देवदेवेश तुम्हारे पति हो सकेंगे।।२२।।

अगस्त्य उवाच

एवमुक्त्वा स देवर्षिः प्रययौ नारदः क्षणात्। ता अप्येतद् व्रतं चक्रुस्तुष्टश्चासां स्वंय हरिः॥२३॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे चतुःपञ्चाशोऽध्यायः॥५४॥

पञ्चपञ्चाशोऽध्यायः

अथ श्रेष्ठव्रतविधानम्

अगस्त्य उवाच

शृणु राजन् महाभाग व्रतानामुत्तमं व्रतम्। येन संप्राप्यते विष्णुः शुभेनैव न संशयः॥१॥
मार्गशीर्षेऽथ मासे तु प्रथमाह्नात् समारभेत्। एकभक्तं सिते पक्षे यावत् स्याद् दशमी तिथिः॥२॥
ततो दशम्यां मध्याह्ने स्नात्वा विष्णुं समर्च्य च।
भक्त्या संकल्पयेत् प्राग्वद् द्वादशीं पक्षतो नृप॥३॥
तामप्येवमुषित्वा च यवान् विप्राय दापयेत्। कृष्णायेति हरिर्वाच्यो दाने होमे तथार्च्चने॥४॥

अगस्त्य ने कहा कि इस प्रकार से कहते हुए देवर्षि नारद पलभर में वहाँ से अन्तर्धान कर गये। उन अप्सराओं ने यह व्रत किया और फिर स्वयं उनके ऊपर श्री हरि प्रसन्न हुए।।२३।।

।।इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में श्रेष्ठ भर्तृ प्राप्ति व्रत विधान नामक चौवनवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ।।५४।।

अध्याय–५५

उत्तम व्रतानुष्ठान विधि और माहात्म्य

अगस्त्य ने कहा कि हे महाभाग्यवान् राजन्! अब आप व्रतों में भी श्रेष्ठ व्रत के बारे में सुनो। उस उत्तम व्रत को करने से श्रीविष्णु निस्संशय ही प्रसन्न होते हैं।।१।।

मार्गशीर्ष मास के शुक्ल पक्ष में पहिली तिथि से दशमी तिथि पर्यन्त भोजन के नाम पर एक भुक्त मात्र करना चाहिए। फिर दशमी तिथि के दिन मध्याह्न काल में स्नानादि से निवृत्त होकर श्रीविष्णु की पूजा भक्तिभाव से पहले की भाँति करने के उपरान्त उस पक्ष की ही द्वादशी तिथि के व्रत का संकल्प लेना चाहिए।।२-३।।

उस तिथि के दिन भी उसी तरह निरान्न व्रत करते हुए ब्राह्मणों को यवान्न दान करना चाहिए। दान, हवन, पूजन, आदि कर्म में सदैव 'कृष्णाय नमः' मन्त्र का इस तरह हरि के नाम का उच्चारण करना चाहिए।।४।।

चातुर्मास्यमथैवं तु क्षपित्वा राजसत्तम। चैत्रादिषु पुनस्तद्वदुपोष्य प्रयतः सुधीः।
शक्तुपात्राणि विप्राणां सहिरण्यानि दापयेत्॥५॥
श्रावणादिषु मासेषु तद्वच्छालिं प्रदापयेत्। त्रिषु मासेषु यावच्च कार्त्तिकस्यादिरागतः॥६॥
तमप्येवं क्षपित्वा तु दशम्यां प्रयतः शुचिः। अर्चयित्वा हरिं भक्त्या मासनाम्ना विचक्षणः॥७॥
संकल्पं पूर्ववद् भक्त्या द्वादश्यां संयतेन्द्रियः।
एकादश्यां यथाशक्त्या कारयेत् पृथिवीं नृप॥८॥
काञ्चनाङ्गं च पातालकुलपर्वतसंयुताम्। भूमिन्यासविधानेन स्थापयेत् तां हरेः पुरः॥९॥
सितवस्त्रयुगच्छन्नां सर्वबीजसमन्विताम्। संपूज्य प्रियदत्तेति पञ्चरत्नैर्विचक्षणः॥१०॥
जागरं तत्र कुर्वीत प्रभाते तु पुनर्द्विजान्। आमन्त्र्य संख्यया राजंश्चतुर्विंशति यावतः॥११॥
तेषां एकैकशो गां च अनड्वाहं च दापयेत्। एकैकं वस्त्रयुग्मं च अङ्गुलीयकमेव च॥१२॥
कटकानि च सौवर्णकर्णाभरणकानि च। एकैकं ग्राममेतेषां राजा राजन् प्रदापयेत्॥१३॥
तन्मध्यमं सयुग्मं तु सर्वमाद्यं प्रदापयेत्। स्वशक्त्याभरणं चैव दरिद्रस्य स्वशक्तितः॥१४॥
यथाशक्त्या महीं कृत्वा काञ्चनीं गोयुगं तथा। वस्त्रयुग्मं च दातव्यं यथाविभवशक्तितः॥१५॥

हे श्रेष्ठ राजन्! उपरोक्त प्रकार चार मास तक व्रत करने के बाद सुधी उपासक चैत्रादि मासों में फिर से यत्न करते हुए उपरोक्त प्रकार उपवास करते हुए ब्राह्मणों को स्वर्ण पात्र सहित सत्तू दान करना चाहिए।।५।।

श्रावण आदि तीन मासों में भी कार्तिक प्रारम्भ होने तक शालि दान करनी चाहिए।।६।।

उस मास में भी उपरोक्त प्रकार व्यतीत करते हुए दशमी को संयमी और पवित्र सुधी साधक भक्तिभाव से उस महीने के नाम से श्रीहरि का पूजन करना चाहिए।।७।।

हे राजन्! इन्द्रियों को संयमित रखते हुये पहले की तरह द्वादशी विषयक संकल्प कर एकादशी को ही यथाशक्ति मिट्टी की मूर्त्ति की रचना करनी चाहिए।।८।।

पाताल और कुलपर्वतों से संयुक्त पृथ्वी की स्वर्णमूर्त्ति बनवाकर भूमिन्यास की विधि के अनुसार उसे श्रीहरि के सम्मुख स्थापित करनी चाहिए।।९।।

सुधी साधक पञ्चरत्नों द्वारा 'प्रियदत्ता' मन्त्र सहित समस्त बीजों से सम्पन्न एवं दो श्वेत वस्त्रों से ढँकी हुई मूर्त्ति की पूजा करनी चाहिए।।१०।।

हे राजन्! पूजन के बाद रात्रि जागरण करना चाहिए तथा प्रातःकाल चौबीस की संख्या तक ब्राह्मणों को आमन्त्रित करना चाहिए।।१०।।

उनमें से प्रत्येक को एक गाय, एक बैल, एक जोड़ा वस्त्र और अंगुठी (स्वर्ण) प्रदान करनी चाहिए।।१२।।

हे राजन्!साधक यदि राजा हो, तो वह उन ब्राह्मणों में प्रत्येक को कङ्कण, स्वर्ण का कर्ण आभूषण आदि एक-एक ग्राम का प्रदान करें।।१३।।

प्रारम्भ में कहा गया प्रत्येक वस्तु जोड़े वस्त्र के साथ प्रदान करना मध्यम कोटि का होता है। अपनी शक्ति सामर्थ्य के अनुसार दरिद्र ब्राह्मण को आभूषण दान करना चाहिए।।१४।।

फिर सामर्थ्यानुसार पृथ्वी की स्वर्ण मूर्त्ति बनवाकर दो गाय को दो वस्त्र सहित दान करना चाहिए। या अपने

गां युग्माभरणात् सर्वं सहिरण्यं च कारयेत्। एवं कृते तथा कृष्णशुक्लद्वादश्यमेव च॥१६॥
रौप्यां वा पृथिवीं कृत्वा यथाविभवशक्तितः। दापयेद् ब्राह्मणानां तु तथा तेषां च भोजनम्।
उपानहौ यथाशक्त्या पादुके छत्रिकां तथा॥१७॥
एतान् दत्त्वा वेददेवं कृष्णो दामोदरो मम। प्रीयतां सर्वदा देवा विश्वरूपो हरिर्मम॥१८॥
दाने च भोजने चैव कृत्वा यत् फलमाप्यते। तन्न शक्यं सहस्त्रेण वर्षणामपि कीर्त्तितुम्॥१९॥
तथाप्युद्देशतः किञ्चित् फलं वक्ष्यामि तेऽनघ।
व्रतस्यास्य पुरा वृत्तं शुभान्यस्य श्रृणुष्व तत्॥२०॥
आसीदादियुगे राजा ब्रह्मवादी दृढव्रतः। स पुत्रकामः पप्रच्छ ब्रह्माणं परमेष्ठिनम्॥२१॥
तस्य व्रतान्ते विश्वात्मा स्वयं प्रत्यक्षतां ययौ। तुष्टश्चोवाच भो राजन् वरो मे व्रियतां वरः॥२२॥

राजोवाच

पुत्रं मे देहि देवेश वेदमन्त्रविशारदम्। याजकं यजनासक्तं कीर्त्या युक्तं चिरायुषम्।
असंख्यातगुणं चैव ब्रह्मभूतमकल्मषम्॥२३॥
एवमुक्त्वा ततो राजा पुनर्वचनमब्रवीत्। ममाप्यन्ते शुभं स्थानं प्रयच्छ परमेश्वर।
यत्तन्मुनिपदं नाम यत्र गत्वा न शोचति॥२४॥

वैभव एवं शक्ति के अनुरूप समस्त आभरणों और स्वर्ण सहित पृथ्वी की दो मूर्त्ति का निर्माण कराना चाहिए। इस प्रकार से करके कृष्ण एवं शुक्ल दोनों पक्षों की द्वादशी को व्रत करना श्रेष्ठ है।।१५-१६।।

अथवा पृथ्वी की चाँदी की मूर्त्ति बनवाकर ब्राह्मणों को दान करना चाहिए। फिर सामर्थ्य और विभवानुसार उनको भोजन कराना चाहिए। फिर जूता, पादुका, छाता आदि सामर्थ्यानुसार देना चाहिए।।१७।।

उपरोक्त वस्तुओं को प्रदान कर इस तरह से कहना चाहिए कि हे पृथ्वी! 'विश्वरूप कृष्ण हरि दामोदर' मेरे ऊपर प्रसन्न हों।।१८।।

इस प्रकार दान करने और भोजन कराने से प्राप्त होने वाले पुण्यफल का वर्णन हजारों वर्षों तक प्रयत्नशील रहकर भी सम्पूर्णता से नहीं किया जा सकता।।१९।।

तथापि हे निष्पाप! इस व्रत का सारफल यहाँ मैं आपको कहने जा रहा हूँ। पुरातन समय में इस व्रत को करने से जो पुण्य फल हुआ है, उसे सुनो।।२०।।

सत्ययुग काल में एक ब्रह्मवादी दृढ़व्रत राजा हुआ था।उसने पुत्र की कामना लेकर परमेष्ठी ब्रह्मा से पूछा। उन्होंने उसे यह व्रत बतलाया फिर उसने उसे किया भी।।२१।।

उसका यह व्रत सम्पन्न होने पर साक्षात् विश्वात्मा ने प्रकट होकर उसे देखते हुए उससे कहा कि 'हे राजन्! तुम मुझसे श्रेष्ठ वरदान माँगो'।।२२।।

राजा ने कहा कि हे देव! हमें वेदमन्त्रज्ञ, याजक, यजनशील, कीर्तियुक्त, दीर्घायु, असंख्यात गुणों से युक्त, दोषहीन तथा ब्रह्मभूत पुत्र आपको प्रदान करना चाहिए।।२३।।

वह राजा इस प्रकार से कहने के बाद फिर से कहा कि हे परमेश्वर! अन्तकाल में मुझे भी वह शुभ स्थान प्रदान करें, जो स्थान मुनियों को प्राप्त होता है और जहाँ रहने पर शोक नहीं होता।।२४।।

एवमस्त्विति तं देवः प्रोक्त्वा चादर्शनं गत। तस्यापि राज्ञः पुत्रोऽभूद् वत्सप्रीर्नाम नामतः॥२५॥
वेदवेदाङ्गसंपन्नो यज्ञयाजी बहुश्रुतः। तस्य कीर्त्तिर्महाराज विस्तृता धरणीतले॥२६॥
राजाऽपिं सुतं लब्ध्वा विष्णुदत्तं प्रातापिनम्। जगाम तपसे युक्तः सर्वद्वन्द्वान् प्रहाय सः॥२७॥
आराधयामास हरिं निराहारो जितेन्यिः। हिमवत्पर्वते रम्ये स्तुतिं कुर्वंस्तदा नृपः॥२८॥

भद्राश्व उवाच

कीदृशी सा स्तुतिर्ब्रह्मन् यां चकार स पार्थिवः। किं च तस्याभवद् देवं स्तुवतः पुरुषोत्तमम्॥२९॥

दुर्वासा उवाच

हिमवन्तं समाश्रित्य राजा तद्‌गतमानसः। स्तुतिं चकार देवाय विष्णवे प्रभविष्णवे॥३०॥

राजोवाच

क्षराक्षरं क्षीरसमुद्रशायिनं क्षितीधरं मूर्तिमतां परं पदम्।
अतीन्यिं विश्वभुजां पुरः कृतं निराकृतं स्तौमि जनार्दनं प्रभुम्॥३१॥
विंमादिदेवः परमार्थरूपी विभुः पुराणः पुरुषोत्तमश्च।
अतीन्यिो वेदविदां प्रधानः प्रपाहि मां शङ्खगदास्त्रपाणे॥३२॥
कृतं त्वया देव सुरासुराणां संकीर्त्यतेऽसौ च अनन्तमूर्ते।
सृष्ट्यर्थमेतत् तव देव विष्णो न चेष्टितं कूटगतस्य तत्स्यात्॥३३॥

इस प्रकार कहे ज़ाने पर वे देव ने भी उससे यह कहते हुए कि ''ऐसा ही हो' अन्तर्हित हो गये। फिर उस राजा को वत्सप्री नाम का पुत्र प्राप्त हुआ।।२५।।

वह राजपुत्र वेदवेदाङ्ग निपुण, यज्ञ करने वाला और बहुश्रुत था। हे महाराज! पृथ्वीतल पर उसकी कीर्त्ति विस्तारित होता गया।।२६।।

फिर वह संयमी राजा भी श्रीविष्णु द्वारा प्रदान किये गये उस प्रतापवान् पुत्र को प्राप्त करने के बाद समस्त द्वन्द्वों से मुक्त होकर तप करने चला गया।।२७।।

तत्पश्चात् वह राजा जितेन्द्रिय और निराहार रहते हुए रमणीय हिमालय पर स्तुति करते हुए श्रीहरि की उपासना करने में तल्लीन हो गया।।२८।।

भद्राश्व ने कहा कि हे ब्रह्मन्! उस राजा द्वारा किस प्रकार से स्तुति की गई, फिर उस पुरुषोत्तम श्रीहरि की स्तुति करने वाले उस राजा का क्या हुआ?।।२९।।

दुर्वासा ने कहा कि हिमालय पर निवास करने वाले राजा ने उन परमेश्वर में मन को लगाकर प्रभु श्रीविष्णु देव की स्तुति की।।३०।।

राजा ने कहा कि मैं क्षीरसमुद्रशायी, पृथ्वी को धारण करने वाले, मूर्त्तिमानों में श्रेष्ठ, अतीन्द्रिय, संसार को भोगने वालों में अग्रणी, क्षर-अक्षर-स्वरूप और निराकार प्रभु जनार्दन की स्तुति करता हूँ।।३१।।

आप परमार्थ स्वरूप, आदिदेव, पुरुषोत्तम, सर्वव्यापक, पुरातन, अतीन्द्रिय और वेदज्ञों में प्रधान हैं। हे शङ्खगदास्त्रपाणि! मेरी रक्षा करें।।३२।।

हे अनन्तमूर्त्ति! आपने ही सुरों और असुरों की सृष्टि की है। हे विष्णु देव! यह कार्य आपका सृष्टि हेतु कहा गया है। किन्तु कूटस्थ पुरुष स्वरूप से आपका यह कार्य नहीं हो सकता।।३३।।

तथैव कूर्मत्वमृगत्वमुच्चैस्त्वया कृतं रूपमनेकरूप।
सर्वज्ञभावादसकृच्च जन्म संकीर्त्त्यते तेऽच्युत नैतदस्ति॥३४॥
नृसिंह नमो वामन जमदग्निनाम दशास्यगोत्रान्तक वासुदेव।
नमोऽस्तु ते बुद्ध कल्किन् खगेश शंभो नमस्ते विबुधारिनाशन॥३५॥
नमोऽस्तु नारायण पद्मनाभ नमो नमस्ते पुरुषोत्तमाय।
नमः समस्तामरसङ्घपूज्य नमोऽस्तु ते सर्वविदां प्रधान॥३६॥
नमः करालास्य नृसिंहमूर्त्ते नमो विशालादिद्रसमान कूर्म।
नमः समुद्रप्रतिमान मत्स्य नमामि त्वां क्रोडरूपिननन्त॥३७॥
सृष्ट्यर्थमेतत् तव देव चेष्टितं न मुख्यपक्षे तव मूर्त्तिता विभो।
अजानता ध्यानमिदं प्रकाशितं नैभिर्विना लक्ष्यसे त्वं पुराण॥३८॥
आद्यो मखस्त्वं स्वयमेव विष्णो मखाङ्गभूतोऽसि हविस्त्वमेव।
पशुर्भवान् ऋत्विगिज्यं त्वमेव त्वां देवसङ्घा मुनयो यजन्ति॥३९॥
यदेतस्मिन् जगद्ध्रुवं चलाचलं सुरादिकालानलसंस्थमुत्तमम्।
न त्वं विभक्तोऽसि जनार्दनेश प्रयच्छ सिद्धिं हृदयेप्सितां मे॥४०॥
नमः कमलपत्राक्ष मूर्त्तामूर्त्त नमो हरे। शरणं त्वां प्रपन्नोऽस्मि संसारान्मां समुद्धर॥४१॥

हे अनेक रूप! उसी प्रकार आपने कूर्म और मृग (वाराह आदि) का रूप धारण किया। हे अच्युत! सर्वज्ञ होने के कारण आपका अनेक स्वरूप धारण करना कहा गया है, किन्तु ऐसा नहीं है।।३४।।

हे नृसिंह, वामन, परशुराम, दशानन के कुलोच्छेदक दाशरथि राम और वसुदेव पुत्र! आपको नमस्कार है। हे बुद्ध, कल्कि, गरुड़ और शम्भु स्वरूप असुरनाशक आपको नमस्कार है।।३५।।

हे पद्मनाभ नारायण! आपको प्रणाम है। पुरुषोत्तम को प्रणाम है। समस्त देवताओं के पूज्य को प्रणाम है। और सर्वज्ञों में प्रधान आपको प्रणाम है।।३६।।

भयानक मुख वले नृसिंहमूर्त्ति को प्रणाम है। विशाल पर्वत के समान कूर्म को प्रणाम है। समुद्र के समान मत्स्य को प्रणाम है। हे वाराहरूपधारी अनन्त आपको प्रणाम है।।३७।।

हे देव! यह कार्य आपका सृष्टि करने हेतु है। किन्तु, हे विभो! वास्तव में आप में मूर्त्तित्व नहीं है। अज्ञानता से इस ध्यान का प्रकाशन हुआ है। हे पुराण! इन सबसे रहित आप लक्षित भी तो नहीं हो सकते?।।३८।।

हे विष्णु! आप तो स्वयं आदि यज्ञ के स्वरूप हैं। आप ही यज्ञ के अङ्ग स्वरूप और हवि स्वरूप हैं आप ही पशु, पुरोहित और यज्ञाराध्य हैं। देव और ऋषि सभी आपकी उपासना किया करते हैं।।३९।।

इस जगत् में जो भी नित्य और अनित्य, चल और अचल, देवादि, काल और अग्नि में व्याप्त उत्तम तत्त्व हैं, वे सभी तो आपका ही स्वरूप हैं। हे ईश जनार्दन! आप विभक्त नहीं ही हैं। अतः मुझे मनोवांछित सिद्धि प्रदान करें।।४०।।

हे कमलपत्र के समान नेत्र वाले, आपको नमस्कार है। हे मूर्त्तामूर्त्त हरि! आपको नमस्कार है। मैं आपकी शरण में आया हूँ। इस संसार से मेरा उद्धार करें।।४१।।

एवं स्तुतस्तदा देवस्तेन राज्ञा महात्मना। विशालाम्रतलस्थेन तुतोष परमेश्वरः॥४२॥
कुब्जरूपी ततो भूत्वा आजगाम हरिः स्वयम्।
तस्मिन्नागतमात्रे तु सोप्याम्रः कुब्जकोऽभवत्॥४३॥
तं दृष्ट्वा महदाश्चर्यं स राजा संशितव्रतः। विशालस्य कथं कौब्ज्यमिति चिन्तापरोऽभवत्॥४४॥
तस्य चिन्तयतो बुद्धिर्बभौ तं ब्राह्मणं प्रति। अनेनागतमात्रेण कृतमेतन्न संशयः॥४५॥
तस्मादेषैव भविता भगवान् पुरुषोत्तमः। एवमुक्त्वा नमश्चक्रे तस्य विप्रस्य स नृपः॥४६॥
अनुग्रहाय भगवन् नूनं त्वं पुरुषोत्तमः। आगतोऽसि स्वरूपं मे दर्शयस्वाधुना हरे॥४७॥
एवमुक्तस्तदा देवः शङ्खचक्रगदाधरः। बभौ त्पुरतः सौम्यो वाक्यं चेदमुवाच ह॥४८॥
वरं वृणीष्व राजेन्द्र यत्ते मनसि वर्तते। मयि प्रसन्ने त्रैलोक्यं तिलमात्रमिदं नृप॥४९॥
एवमुक्तस्ततो राजा हर्षोत्फुल्लितलोचनः। मोक्षं प्रयच्छ देवेशेत्युक्त्वा नोवाच किंचन॥५०॥
एवमुक्तः स भगवान् पुनर्वाक्यमुवाच ह। मय्यागते विशालोऽमाम्रः कुब्जत्वमागतः।
यस्मात् तस्मात् तीर्थमिदं कुब्जकाम्रं भविष्यति॥५१॥

इस प्रकार उस समय उन महात्मा राजा ने देव की स्तुति की फिर तो परमेश्वर जो आम्र के मूल में स्थित हैं, प्रसन्न हो गये।।४२।।

तत्पश्चात् कुब्ज रूप धारण कर स्वयं श्रीहरि आ पहुँचे। उनके आते ही वह वृक्ष भी कुबड़ा हो गया।।४३।।

इस प्रकार के महाश्चर्य को देखकर वह तीव्रव्रत धारण करने वाला राजा यह विचार करने लगा कि इस विशाल आम्र वृक्ष में यह कुबड़ापन कहाँ से और कैसे आ गया।।४४।।

इस तरह से विचार करते हुए उस राजा का ध्यान ब्राह्मण की तरफ गया। फिर वह समझ गया कि ये सब इसी ब्राह्मण के आगमन से घटित हुआ है।

अतः निश्चय ही यही भगवान् पुरुषोत्तम हो सकते हैं। इस प्रकार विचार करते हुए उस राजा ने उस ब्राह्मण को प्रणाम किया।।४६।।

हे भगवान्! अवश्य ही आप पुरुषोत्तम मेरे पर अनुग्रह हेतु पधारे हैं। हे हरि! अब आप अपना स्वरूप मुझे भी दिखायें।।४७।।

फिर इस प्रकार से कहे जाने पर शङ्ख, चक्र, गदा आदि धारण करने वाले सुन्दर देव उस राजा के समक्ष प्रकट हो गये और इस प्रकार से कहा—।।४८।।

हे राजेन्द्र! तुम्हारे मन में जो कुछ हो, वह तुम वर माँग लो। हे राजन्! मेरी प्रसन्नता से यह त्रैलोक्य तिलमात्र ही है।।४९।।

तत्पश्चात् इस तरह से कहने पर राजा के नेत्र हर्ष से प्रफुल्लित हो गये। हे देवेश! मोक्ष प्रदान करें। इतना मात्र बोलकर राजा चुप हो गया।।५०।।

फिर इस प्रकार कहे जाने को सुनकर उन देव भगवान् ने कहा कि 'यह विशाल और विस्तृत आम का वृक्ष जिस भी कारण मेरे आने पर कुबड़ा हो गया है। अतः यहाँ पर कुब्जाम्र नाम का तीर्थ होगा।।५१।।

कलेवरं त्यजिष्यन्ति तेषां पञ्चशतानि च। विमानानि भविष्यन्ति योगिनां मुक्तिरेव च॥५२॥

एवमुक्त्वा नृपं देवः शङ्खाग्रेण जनार्दनः।
परपर्श स्पृष्टमात्रोऽसौ परं निर्वाणमाप्तवान्॥५३॥

तस्मात्त्वमपि राजेन्द्र तं देवं शरणं व्रज। येन भूयः पुनः शोच्यपदवीं नो प्रयास्यसि॥५४॥

य इदं शृणुयान्नित्यं प्रातरुत्थाय मानवः। पठेद् यश्चरितं ताभ्यां मोक्षधर्मार्थदो भवेत्॥५५॥

शुभव्रतमिदं पुण्यं यश्च कुर्याज्जनेश्वर। स सर्वसम्पदं चेह भुक्त्वेते तल्लयं व्रजेत्॥५६॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे पञ्चपञ्चाशोऽध्यायः॥

तिर्यग्योनि वाले प्राणियों से लेकर ब्राह्मण पर्यन्त जब यहाँ अपना शरीर त्यागा करेंगे, तो निश्चय ही उन्हें पाँच सौ विमान प्राप्त हो सकेंगे। फिर योगियों की तरह ही मुक्ति होगी।।५२।।

इस प्रकार से कहे हुए जनार्दन देव ने शंख के अग्रभाग से राजा का स्पर्श किया। स्पर्श होते ही राजा को परममोक्ष की प्राप्ति हो गई।।५३।।

हे राजेन्द्र! इसीलिए आप भी उन देव की शरण में जाओ। जिससे पुनः शोचनीय स्थान की प्राप्ति न हो सके।।५४।।

इस प्रकार जो जन प्रातःकाल जागकर नित्य इसे सुने या सुनायेगा, उसको यह चरित्र मोक्ष के सहित धर्म, अर्थ आदि प्रदान करने वाला होगा।।५५।।

हे नरेश्वर! जो जन यह कल्याणप्रद व्रत कर सकेगा, वह इस लोक में समस्त सम्पत्तियों को भोगकर अन्त में उन परमेश्वर में लीन हो सकेगा।।५६।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में उत्तम व्रतानुष्ठान विधि और माहात्म्य नामक पचपनवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥५५॥

❖❖❖

षट्पञ्चाशोऽध्यायः

अथ धन्यव्रतविधानम्

अगस्त्य उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि धन्यव्रातमनुत्तमम्। येन सद्यो भवेद् धन्य अधन्योऽपि हि यो भवेत्॥१॥
मार्गशीर्षे सिते पक्षे प्रतिपद् या तिथिर्भवेत्। तस्यां नक्तं प्रकुर्वीत विष्णुमग्निं प्रपूजयेत्॥२॥
वैश्वानराय पादौ तु अग्नयेत्युदरं तथा। हविर्भुजाय च उरो द्रविणोदेति वै भुजौ॥३॥
संवर्त्तायेति च शिरो ज्वलनायेति सर्वतः। अभ्यर्च्यैवं विधानेन देवदेवं जनार्दनम्॥४॥
स्यैव पुरतः कुण्डं कारयित्वा विधानतः। होमं तत्र प्रकुर्वीत एभिर्मन्त्रैर्विचक्षणः॥५॥
ततः संयावकं चात्रं भुञ्जीयाद् घृतसंयुतम्। कृष्णपक्षेऽप्येवमेव चातुर्मास्यं तु यावतः॥६॥
चैत्रादिषु च भुञ्जीत पायसं सघृतं बुधः। श्रावणादिषु सक्तूंश्च ततश्चैतत् समाप्यते॥७॥
समाप्ते तु व्रते वह्निं काञ्चनं कारयेद् बुधः। रक्तवस्त्रयुगच्छन्नं रक्तपुष्पानुलेपनम्॥८॥
कुङ्कुमेन तथा लिप्य ब्राह्मणं देवमेव च। सर्वावयवसम्पूर्णं ब्राह्मणं प्रियदर्शनम्॥९॥
पूजयित्वा विधानेन रक्तवस्त्रयुगेन च। पश्चात् तं दापयेत् तस्य मन्त्रेणानेन बुद्धिमान्॥१०॥

अध्याय–५६

धन्यव्रत और उसका माहात्म्य

अगस्त्य ने कहा कि इसके बाद अब मैं धन्य व्रत, जो श्रेष्ठ व्रत है, के बारे में बतलाऊँगा। इस व्रत को धारण करने वाला अधन्य साधक भी धन्य होता है।।१।।

इस व्रत को करने हेतु मार्गशीर्ष मास शुक्लपक्ष की प्रतिपदा तिथि की रात्रि में अग्नि स्वरूप विष्णु की मूर्त्ति बनाकर पूजा करनी चाहिए।।२।।

उस अग्नि स्वरूप विष्णु के पूजन क्रम में उनके पादो में 'ॐ वैश्वानराय नमः' मन्त्र से, उनके उदर में 'ॐ अग्नये नमः' मन्त्र से, उनके हृदय में 'ॐ हविर्भुजाय नमः' मन्त्र से, उनके भुजाओं में 'ॐ द्रविणोदाय नमः' मन्त्र से, उनके शिर में 'ॐ संवर्त्ताय नमः' मन्त्र से और उनके सर्वाङ्ग में 'ॐ ज्वलनाय नमः' मन्त्र से पूजन करना चाहिए। इस विधि के सहित देवदेव जनार्दन की पूजा करनी चाहिए।।३-४।।

फिर उन देव के ही समक्ष विधि के अनुरूप कुण्ड बनवाकर सुधी साधक को इन उक्त मन्त्रों से उस कुण्ड में हवन करना चाहिए।।५।।

तत्पश्चात् संयावक अर्थात् कुलथी से बने घृतप्लुत भोज्य वस्तु का भोजन भी करना चाहिए। इसी तरह से उस मास के कृष्णपक्ष में भी करनी चाहिए। चार माह तक इस प्रकार से भोजन ग्रहण करना चाहिए।।६।।

फिर चैत्रादि मासों में सुधी साधक को घृतप्लुत पायस का आहार ग्रहण करना चाहिए और श्रावण आदि माहों में सत्तू का आहार, फिर यह व्रत सम्पन्न होता है।।७।।

इस व्रत की समाप्ति पर सुधी उपासक अग्नि की स्वर्णमूर्त्ति बनवाकर और दो लाल वस्त्रों से ढँककर लाल

धन्योऽस्मि धन्यकर्माऽस्मि धन्यचेष्टोऽस्मि धन्यवान्।
धन्येनानेन चीर्णेन व्रतेन स्यां सदा सुखी॥११॥
एवमुच्चार्यं तं विप्रे न्यस्य कोशं महात्मनः।
सद्यो धन्यत्वमाप्नोति योऽपि स्याद् भग्सवर्जितः॥१२॥
इह जन्मनि सौभाग्यं धनं धान्यं च पुष्कलम्। अनेन कृतमात्रेण जायते नात्र संशयः॥१३॥
प्राग्जनमजनितं पापमग्निर्दहति तस्य ह। दगे पापे विमुक्तात्मा इह जन्मन्यसौ भवेत्॥१४॥
योऽपीदं श्रृणुयान्नित्यं यश्च भक्त्या पठेद् द्विजः। उभौ ाविह लोके तु धन्यौ सद्यो भविष्यतः॥१५॥
श्रूयते च व्रतं चैतच्चीर्णमासीन्महात्मना। धनदेन पुरा कल्पे शूद्रयोनौ स्थितेन तु॥१६॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे षट्पञ्चाशोऽध्यायः॥५६॥

पुष्प और अनुलेपन से शोभायमान करे। फिर देवमूर्त्ति सहित सर्वाङ्गों वाले प्रियदर्शन ब्राह्मण को कुंकुम से लिप्त कर दो लाल वस्त्रों से उस ब्राह्मण का विधि के अनुरूप पूजन कर लेने के बाद सुधी उपासक को अग्रोक्त मन्त्र से उसे वह मूर्त्ति दान कर देनी चाहिए।।८-१०।।

'मैं धन्य हूँ। मेरे कर्म धन्य हैं, मेरी चेष्टायें धन्य हैं। फिर मैं भी धन्यवान् हूँ। अपने से किये गये इस धन्यव्रत के प्रसाद से मैं सदा ही सुखी होऊँ।।११।।

इस प्रकार से मन्त्रोच्चारणपूर्वक महात्मा स्वरूप उस ब्राह्मण को वह कोश प्रदान कर भाग्यहीन मनुष्य भी तत्क्षण धन्य होता है।।१२।।

इस प्रकार के कर्म को करने से इस जन्म में अधिकतर धन, धान्य और सौभाग्य की प्राप्ति तो होती ही है। इसमें संशय नहीं करना चाहिए।।१३।।

साथ ही अग्नि देवता उस साधक के पूर्व जन्म के पापों को भी भस्म कर देता है। फिर पाप के जल जाने पर वह साधक निश्चय ही इसी जन्म में विमुक्त हो जाता है।।१४।।

इस तरह से जो द्विज इस कथा को नित्य सुनेगा, अथवा भक्तिभाव से इसका पाठ करेगा, वे दोनों ही इस लोक में तत्काल धन्य हो जाएंगे।।१५।।

इस प्रकार से सूना गया है कि पूर्व कल्प में शूद्रयोनि में स्थित महात्मा कुबेर ने यह व्रत धारण किया था।।१६।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में धन्यव्रत और माहात्म्य छप्पनवाँ नामक अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥५६॥

❖❖❖

सप्तपञ्चाशोऽध्यायः

अथ कान्तिव्रतविधानम्

अगस्त्य उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि कान्तिव्रतमनुत्तमम्। यत्कृत्वा तु पुरा सोमः कान्तिमानभवत् पुनः॥१॥
यक्ष्मणा दक्षशापेन पुराक्रान्तो निशाकरः। एतच्चीर्त्वा व्रतं सद्यः कान्तिमानभवत् किल॥२॥
द्वितीयायां तु राजेन्द्र कार्त्तिकस्य सिते दिने। नक्तं कुर्वीत यत्नेन अर्चयन् बलकेशवम्॥३॥
बलदेवाय पादौ तु केशवाय शिरोऽर्चयेत्। एवमभ्यर्च्य मेधावी वैष्णवं रूपमुत्तमम्॥४॥
परस्वरूपं सोमाख्यं द्विकलं तद्दिने हि यत्। तस्यार्घ दापयेद् धीमान् मन्त्रेण परमेष्ठिनः॥५॥
नमोऽस्त्वमृतरूपाय सर्वौषधिनृपाय च। यज्ञलोकाधिपतये सोमाय परमात्मने॥६॥
अनेनैव च मार्गेण दत्त्वार्घ्यं परमेष्ठिनः। रात्रौ सविप्रो भुञ्जीत सवान्नं सघृतं नरः॥७॥
फाल्गुनादिचतुष्के तु पायसं भोजयेच्छुचिः।
शालिहोमं तु कुर्वीत कार्त्तिके तु यवैस्तथा॥८॥

अध्याय–५७

कान्तिव्रत और माहात्म्य

अगस्त्य ने कहा कि धन्य व्रत कहने के पश्चात् अब मैं आपको कान्तिव्रत की विधि को बतलाते हैं, जिस व्रत को पुरातन काल में करने से चन्द्र पुनः कान्तिमान् हो गया था।।१।।

पुरातन काल में चन्द्र दक्ष के शाप से राजयक्ष्मा नाम के रोग से ग्रसित होकर कान्तिहीन हो गया था। किन्तु इस व्रत को धारण कर वह तत्काल कान्तिमान् हो गया।।२।।

हे श्रेष्ठ राजन्! कार्त्तिक मास शुक्लपक्ष द्वितीया तिथि की रात्रि में यत्नपूर्वक बलराम और केशव की प्रतिमा का पूजन करना चाहिए।।३।।

यह पूजन क्रम इस तरह है—श्री बलराम और कृष्ण के पादों में 'ॐ बलदेवाय नमः' मन्त्र से और उनके शिरों की पूजा 'ॐ केशवाय नमः' मन्त्र से करनी चाहिए। इस तरह सुधी साधक को उत्तम वैष्णव रूप की ही पूजा करनी चाहिए।।४।।

फिर उस दिन दो कलाओं से सम्पन्न सोम नाम के श्रेष्ठ स्वरूप को परमेष्ठी के अग्र मन्त्र से अर्घ्य दान करना चाहिए।।५।।

अमृतस्वरूप, समस्त औषधियों के राजा, यज्ञलोकाधिपति, परमात्मा सोम को मेरा प्रणाम है।।६।।

इस प्रकार परमेष्ठी के इस मार्ग से अर्घ्य दान कर रात्रि के समय ब्राह्मण के साथ उपासक को घृतप्लुत यवान्न का आहार ग्रहण करना चाहिए।।७।।

फिर फाल्गुन आदि चार मासों में उपासक को पवित्रता सहित पायस का भोजन करना चाहिए। कार्त्तिक में यव से शान्ति हवन करना चाहिए।।८।।

आषाढादिचतुष्के तु तिलहोमं तु कारयेत्। तद्वत् तिलान्नं भुञ्जीत एष एव विधिक्रमः॥९॥
ततः संवत्सरे पूर्णे शशिनं कृतराजतम्। सितवस्त्रयुगच्छन्नं सितपुषनुलेपनम्॥१०॥

कान्तिमानपि लोकेऽस्मिन् सर्वज्ञः प्रियदर्शनः।
त्वत्प्रसादात् सोमरूपिन् नारायण नमोऽस्तु ते॥११॥
अनेन किल मन्त्रेण दत्त्वा विप्राय वागयतः।
दत्तमात्रे ततस्तस्मिन् कान्तिमान् जायते नरः॥१२॥

आत्रेयेणापि सोमेन कृतमेतत् पुरा नृप। तस्य व्रतान्ते संतुष्टः स्वयमेव जनार्दनः।
यक्ष्माणमपनीयाशु अमृताख्यां कलां ददौ॥१३॥
तां कलां सोमराजाऽसौ तपसा लब्धवानिति। सोमत्वं चागमत् सोऽस्य ओषधीनां पतिर्बभौ॥१४॥
द्वितीयामश्विनौ सोमभुजौ कीर्त्येते तद्दिने नृप। तौ शेषविष्णू विख्यातौ मुख्यपक्षौ न संशयः॥१५॥
न विष्णोर्व्यतिरिक्तं स्याद् दैवतं नृपसत्तम। नामभेदेन सर्वत्र संस्थितः परमेश्वरः॥१६॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे सप्तपञ्चाशोऽध्यायः॥५७॥

इसी तरह आषाढ़ादि चार मासों में उपासक को तिल से हवन करना चाहिए। साथ ही तिलान्न का ही आहार भी ग्रहण करना चाहिए। इसी क्रम से कर्म करने की विधि है।।९।।

तत्पश्चात् वर्ष पूर्ण होने पर चन्द्रमा की चाँदी की प्रतिमा बनाकर उसे दो सफेद वस्त्रों से ढँककर सफेद पुष्प से ही उसे अलंकृत कर सफेद अनुलेपन ही अर्पित करना चाहिए। इसी प्रकार से ही ब्राह्मण की पूजा कर उन्हें ही अग्र मंत्र से मूर्त्ति दान दे देना चाहिए।।१०।।

दान करने का मंत्र यह है कि 'हे सोम स्वरूप नारायण! आपको नमस्कार है। आपके प्रसाद से ही इस लोक में मैं कान्तिवान्, सर्वज्ञ और प्रियदर्शन हो सकूँ।।११।।

इस प्रकार संयमित वाणी से उक्त मन्त्र से ब्राह्मण को दान करना चाहिए। उसको इसका दान करने मात्र से मनुष्य कान्तवान् हो जाता है।।१२।।

हे राजन्! पुरातन काल में अत्रि ऋषि के वंश में उत्पन्न सोम ने यह व्रत धारण किया था, उसका व्रत सम्पन्न होने पर स्वयं जनार्दन देव ने प्रसन्नता से उसे यक्ष्मा रोग से मुक्त करते हुए अमृत नाम की कला भी प्रदान की।।१३।।

इस प्रकार उन सोम राजा ने तप से उस कला और सोमत्व को भी प्राप्त कर लिया। इसी कारण से वे औषधियों के स्वामी हो गये।।१४।।

हे राजन्! इस प्रकार से कहा गया है कि द्वितीया तिथि को दोनों अश्विनी कुमार उस सोम की भुजा के स्वरूप अर्थात् सोमरस का पान करने वाले होते हैं। वे दोनों निस्सन्देह प्रमुखता से शेष और विष्णु के स्वरूप कहे गये हैं।।१५।।

हे श्रेष्ठ राजन्! विष्णु के अलावे अन्य कोई भी देवता नहीं है। नाम के भेद से ही परमेश्वर सर्वत्र विद्यमान रहते हैं।।१६।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में कान्तिव्रत और माहात्म्य नामक सत्तावनवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥५७॥

❖❖❖

अष्टपञ्चाशोऽध्यायः

अथ सौभाग्यकरणव्रतविधानम्

अगस्त्य उवाच

अतः परं महाराज सौभाग्यकरणं व्रतम्। शृणु येनाशु सौभाग्यं स्त्रीपुंसामुपजायते॥१॥
फाल्गुनस्य तु मासस्य तृतीया शुक्लपक्षतः। उपासितव्या नक्तेन शुचिना सत्यवादिना॥२॥
सश्रीकं च हरिं पूज्य रुद्रं वा चोमया सह। या श्रीः सा गिरिजा प्रोक्ता यो हरिः स त्रिलोचनः॥३॥
एवं सर्वेषु शास्त्रेषु पुराणेषु च पठ्यते। एतस्मादन्यथा यस्तु ब्रूते शास्त्रं पृथक्तया॥४॥
रुद्रो जनानां मर्त्यानां काव्यं शास्त्रं न तद्भवेत्। विष्णुं रुद्रकृतं ब्रूयात् श्रीगौरीं न तु पार्थिव।
तन्नास्तिकानां मर्त्यानां काव्यं ज्ञेयं विचक्षणैः॥५॥
एवं ज्ञात्वा सलक्ष्मीकं हरिं संपूज्य भक्तितः। मन्त्रेणानेन राजेन्द्र ततस्तं परमेश्वरम्॥६॥
गम्भीरायेति पादौ तु सुभगायेति वै कटिम्। उदरं देवदेवेति त्रिनेत्रायेति वै मुखम्।
वाचस्पतये च शिरो रुद्रायेति च सर्वतः॥७॥

अध्याय–५८

सौभाग्य व्रत और उसका माहात्म्य

अगस्त्य ने कहा कि हे महाराज! कान्तिव्रत की चर्चा के बाद अब मैं सौभाग्यकरण नाम के व्रत के प्रसङ्ग में कह रहा हूँ, सुनो। इस व्रत के प्रभाव से स्त्री और पुरुष दोनों को शीघ्र सौभाग्य की प्राप्ति होती है।।१।।

फाल्गुन मास के शुल्पक्ष की तृतीया तिथि की रात्रि में सत्यवादी उपासक को पवित्र रहते हुए इस व्रत की उपासना करनी चाहिए।।२।।

इस व्रत की उपासना के क्रम में श्री के साथ हरि और उमा के साथ रुद्र की पूजा करनी चाहिए। यहाँ यह जानना चाहिए कि श्री जो हैं, वही उमा हैं और जो हरि हैं, वही रुद्र हैं।।३।।

समस्त शास्त्रों और पुराणों में भी इसी प्रकार से ही कहा गया है। इसके विपरीत यदि कोई भेद-प्रतिपादक शास्त्र द्वारा कहा जाता है, तो वह ठीक नहीं है, ऐसा ही समझना चाहिए।।४।।

हे राजन्! रुद्र, किसी मरने वाले मनुष्यों के काव्यशास्त्र का विषय नहीं है। वह विष्णु और रुद्र के द्वारा उत्पन्न किया हुआ है और श्री को गौरी नहीं मानना चाहिए आदि-आदि विवेचन करने वाले को विद्वान् मरणशील नास्तिक मनुष्यों का काव्यशास्त्री प्रलाप मात्र समझें।।५।।

हे राजेन्द्र! इस प्रकार से इन विषयों को जान-समझकर भक्तिभावना से इस अग्रोक्त मन्त्र से परमेश्वर स्वरूप लक्ष्मी के साथ उन श्रीहरि की पूजा करनी चाहिए।।६।।

अब परमेश्वर का पूजन इस प्रकार करना चाहिए—उनके पादों में 'ॐ गम्भीराय नमः' मन्त्र से उनकी कटि में 'ॐ सुभगाय नमः' इस मन्त्र से, उनके पेट में 'ॐ देददेवाय नमः' मन्त्र से, इनके मुख में 'ॐ त्रिनेत्राय नमः' मन्त्र से, उनके शिर में 'ॐ वाचस्पतये नमः' मन्त्र से तथा उनके सर्वाङ्ग में पूजन 'ॐ रुद्राय नमः' मन्त्र से करना चाहिए।।७।।

एवमभ्यर्च्य मेधावी विष्णुं लक्ष्म्या समन्वितम्। हरं वा गौरिसंयुक्तं गन्धपुष्पादिभिः क्रमात्॥८॥
ततस्तस्याग्रतो होमं कारयेन्मधुसर्पिषा। तिलैः सह महाराज सौभाग्यपतयेति च॥९॥
ततस्त्वक्षारविरसं निस्नेहं धरणीतले। गोधूमान्नं तु भुञ्जीत कृष्णेप्येवं विधिः स्मृतः।

आषाढादिद्वितीयां तु पारणं तत्र भोजनम्॥१०॥
यवान्नं तु ततः पश्चात् कार्त्तिकादिषु पार्थिव।
श्यामाकं तत्र भुञ्जीत त्रीन् मासान् नियतः शुचिः॥११॥

ततो माघसिते पक्षे तृतीयायां नराधिप। सौवर्णा कारयेद् गौरीं रुद्रं चैकत्र बुद्धिमान्॥१२॥
सलक्ष्मीकं हरिं चापि यथाशक्त्या प्रसन्नधीः। ततस्तं ब्राह्मणे दद्या् पात्रभूते विचक्षणे॥१३॥
अन्नेन हीने वेदानां पारगे साधुवर्तिनि। सदाचारेति वा दद्यादल्पवित्ते विशेषतः॥१४॥
षड्भिः पात्रैरुपेतं तु ब्राह्मणाय निवेदयेत्। एकं मधुमयं पात्रं द्वितीयं घृतपूरितम्॥१५॥
तृतीयं तिलतैलस्य चतुर्थ गुडसंयुतम्। पञ्चमं लवणैः पूर्णं षष्ठं गोक्षीरसंयुतम्॥१६॥
एतानि दत्त्वा पात्राणि सप्तजन्मान्तरं भवेत्। सुभगो दर्शनीयश्च नारी वा पुरुषोऽपि वा॥१७॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे अष्टपञ्चाशोऽध्यायः॥५८॥

इस प्रकार सुधी साधक को सलक्ष्मी विष्णु अथवा सगौरी हर (रुद्र) की पूजा क्रम से गन्ध, पुष्प आदि पूजा द्रव्य से करनी चाहिए।।८।।

हे महाराज! तत्पश्चात् उन देवों के समक्ष 'ॐ सौभाग्यपतये नमः' मन्त्र सहित तिल, मधु, घृत आदि द्रव्यों से हवन करना चाहिए। फिर भूमितल पर ही नमक, स्वाद, स्नेह आदि से रहित गेहूँ के तैयार भोज्य वस्तु का आहार ग्रहण करना चाहिए। यह विधि कृष्णपक्षीय कही गई है। आषाढ़ आदि माहों में द्वितीया तिथि को पारण और यवान्न का आहार ग्रहण करना उचित है।।९-१०।।

हे राजन्! फिर कार्तिक आदि तीन मासों में पवित्र रहते हुए और नियमों का पालन करते हुए श्यामाक या सावाँ के तैयार भोज्य ग्रहण करना चाहिए।।११।।

हे राजन्! तत्पश्चात् विद्वान् मनुष्य माघ मास के शुक्लपक्ष की तृतीया तिथि को गौरी और रुद्र तथा लक्ष्मी और श्रीहरि के सोने से तैयार करायी गई मूर्त्ति को प्रसन्न मन से सत्पात्र ब्राह्मण को दान करना चाहिए।।१२-१३।।

यह दान विशेष रूप से वास्तव में अन्नहीन, वेदपारगामी, साधुस्वभाव, सदाचारी और अल्प धन वाले ब्राह्मण को ही करना श्रेयस्कर है। दान ब्राह्मण को छः प्रकार के पात्रों से युक्त करना उचित है। जिनमें एक पात्र घृत से और दूसरा मधु से भरा होना भी चाहिए। फिर तीसरा पात्र तिल के तेल से, चौथा पात्र गुड़ से, पाँचवाँ पात्र लवण से और छठा पात्र गौ-दुग्ध से भरी हुई हो।।१४-१६।।

इस प्रकार इन पात्रों के दान करने पर सात जन्मों में दानकर्त्ता स्त्री, पुरुष आदि सभी सौभाग्य और सौन्दर्य से सम्पन्न होते हैं।।१७।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में सौभाग्य व्रत और माहात्म्य नामक अट्ठावनवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥५८॥

❖❖❖

नवपञ्चाशोऽध्यायः

अथ अविघ्नकरव्रतविधानम्

अगस्त्य उवाच

अथाविघ्नकरं राजन् कथयामि शृणुष्व मे। येन सम्यक् कृतेनापि न विघ्नमुपजायते॥१॥
चतुर्थ्यां फाल्गुने मासि ग्रहीतव्यं व्रतं त्विदम्। नक्ताहारेण राजेन्द्र तिलान्नं पारणं स्मृतम्।
तदेवाग्नौ तु होतव्यं ब्राह्मणाय च तद् भवेत्॥२॥
चातुर्मास्यं व्रतं चैतत् कृत्वा वै पञ्चमे तथा। सौवर्णं गजवक्त्रं तु कृत्वा विप्राय दापयेत्॥३॥
पायसैः पञ्चभिः पात्रैरुपेतं तु तिलैस्तथा। एवं कृत्वा व्रतं चैतत् सर्वविघ्नैर्विमुच्यते॥४॥
हयमेधस्य विघ्ने तु संजाते सगरः पुरा। एतदेव चरित्वा तु हयमेधं समाप्तवान्॥५॥
तथा रुद्रेण देवेन त्रिपुरं निघ्नता पुरा। एतदेव कृतं तस्मात् त्रिपुरं तेन पातितम्।
मया समुद्रं पिबता एतदेव कृतं व्रतम्॥६॥
अन्यैरपि महीपालैरेतदेव कृतं पुरा। तपोऽर्थिभिर्ज्ञानकृतैर्निर्विघ्नार्थे परंतप॥७॥

अध्याय-५९

अविघ्नकर व्रत और माहात्म्य

अगस्त्य ने कहा कि हे राजन्! आगे अब मैं अविघ्नकर संज्ञक व्रत के बारे में कहने जा रहा हूँ, तुम मुझसे सुनो। इस व्रत को सविधि धारण कर लेने पर जीवन में विघ्न की उत्पत्ति तो नहीं ही होती है।।१।।

यह व्रत फाल्गुन मास की चतुर्थी तिथि को प्रारम्भ करना चाहिए। इस व्रत के धारण किये होने पर केवल रात्रि में भोजन और पारण तिलान्न से बतलाया गया है। तिलान्न से ही अग्नि में होम करना चाहिए। फिर वही ब्राह्मण को दान करना चाहिए।।२।।

यह व्रत चार माह कर लेने के पश्चात् पाँचवें मास में स्वर्ण की बनी गणेशजी की मूर्त्ति बनवाकर ब्राह्मण को दान करना चाहिए।।३।।

फिर पायस और तिल से भरी पाँच पात्रों सहित उन गणेश की मूर्त्ति का दान करना उचित है। इस तरह यह व्रत करने से समस्त विघ्न साधक के जीवन से भाग जाते हैं।।४।।

पुरातनकाल में अश्वमेध यज्ञ में विघ्न उत्पन्न होने पर राजा सगर ने भी यह व्रत धारण कर अश्वमेध का सुसमापन कर पाया था।।५।।

फिर त्रिपुर वध करने जाने के पूर्व श्री रुद्र ने भी यह व्रत धारण किया था। उसके बाद उनके द्वारा ही वह त्रिपुर मारा भी गया। समुद्रपान करने के पूर्व मैंने भी यही व्रत किया था।।६।।

हे परन्तप! इसी प्रकार से जीवन को निर्विघ्न करने के हेतु पुरातन काल में अनेक तपस्वी, ज्ञानी, अन्यान्य राजाओं ने भी इस व्रत को धारण किया था।।७।।

शूराय धीराय गजाननाय लम्बोदरायैकदंष्ट्राय चैव।
एवं पूज्यस्तद्दिने तत् पुनश्च होमं कुर्याद् विघ्नविनाशहेतोः॥८॥
अनेन कृतमात्रेण सर्वविघ्नैर्विमुच्ये। विनायकस्य कृपया कृतकृत्यो नरो भवेत्॥९॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे नवपञ्चाशोऽध्यायः॥५९॥

षष्टितमोऽध्यायः

अथ शान्तिव्रतविधानम्

अगस्त्य उवाच

शान्तिव्रतं प्रवक्ष्यामि तव राजन् शृणुष्व तत्। येन चीर्णेन शान्तिः स्यात् सर्वदा गृहमेधिनाम्॥१॥
पञ्चम्यां शुक्लपक्षस्य कार्त्तिके मासि सुव्रत। आरभेद् वर्षमेकं तु भुञ्जीयादम्लवर्जितम्॥२॥
नक्तं देवं तु संपूज्य हरिं शेषोपरि स्थितम्। अनन्तायेति पादौ तु वासुकायेति वै कटिम्॥३॥
तक्षकायेति जठरमुरः कर्कोटकाय च। पद्माय कण्ठं संपूज्य महापद्माय दोर्युगम्॥४॥

निश्चय ही उस चतुर्थी तिथि के दिन शूर, धीर, गजानन, लम्बोदर, एकदन्त आदि नाम वाले विघ्नेश्वर श्री गणेश देव का पूजन सहित वन्दना भी करनी चाहिए।।८।।

इस व्रत को धारण करते ही साधक मनुष्य विनायक देव की कृपा प्रसाद से सभी विघ्नों से रहित होकर कृतकृत्य हो जाता है।।९।।

।।इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में अविघ्नकर व्रत और माहात्म्य नामक उनसठवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ।।५९।।

अध्याय-६०

शान्ति व्रत और माहात्म्य

अगस्त्य ने कहा कि हे राजन्! मैं अब आपसे शान्ति व्रत को बतला रहा हूँ, उसे सुनो। जिसके करनेसे गृहस्थों को सदा ही शान्ति की प्राप्ति होती है।।१।।

हे सुव्रत! कार्त्तिक मास की शुक्लपक्षीय पञ्चमी तिथि से प्रारम्भ करते हुए एक वर्ष तक अम्ल (खटाई) रहित भोजन करना उचित है।।२।।

फिर रात्रि के समय शेष के ऊपर स्थित देव श्रीहरि की पूजा करनी चाहिए। उन देव के पादों, कटि, उदर, हृदयस्थल, कण्ठ, बाहुओं, मुख, शिर आदि अङ्गों में क्रम से 'ॐ अनन्ताय नमः, ॐ वासुकये नमः, ॐ तक्षकाय नमः, ॐ कर्कोटकाय नमः, ॐ पद्माय नमः, ॐ महापद्माय नमः, ॐ शङ्खपालाय नमः, ॐ कुटिलाय नमः,

शङ्खपालाय वक्त्रं तु कुटिलायेति वै शिरः। एवं विष्णुगतं पूज्य पृथक्त्वेन च पूजयेत्॥५॥
क्षीरेण स्नपनं कुर्यात् तानुद्दिश्य हरेः पुनः। तदग्रे होमयेत् क्षीरं तिलैः सह विचक्षणः॥६॥
एवं संवत्सरस्यान्ते कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम्। नागं तु काञ्चनं कुर्याद् ब्राह्मणाय निवेदयेत्॥७॥
एवं यः कुरुते भक्त्या व्रतमेतन्नराधिपः। तस्य शान्तिर्भवेन्नित्यं नागानां न भयं तथा॥८॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे षष्टितमोऽध्यायः॥६०॥

एकषष्टितमोऽध्यायः

अथ काम्यव्रतविधानम्

अगस्त्य उवाच

कामव्रतं महाराज शृणु मे गदतोऽधुना। येन कामाः समृद्ध्यन्ते मनसा चिन्तिता अपि॥१॥
षष्ठ्यां फलाशनो यस्तु वर्षमेकं व्रतं चरेत्। पौषमाससिते पक्षे चतुर्थ्यां कृतभोजनः॥२॥

आदि मन्त्र से पूजन करना चहिए। इस प्रकार से श्रीविष्णु के आधार रूप शेष का पूजन करने के पश्चात् अलग से भी उनकी पूजा करनी चाहिए।।३-५।।

तत्पश्चात् उपरोक्त समस्त नाम मंत्र से श्रीहरि को दुग्ध स्नान कराना चाहिए। फिर बुद्धिमान् साधक को उन हरि के सम्मुख पायस सहित तिल से हवन भी करना उचित है।।६।।

इस प्रकार से वर्ष की समाप्ति होने पर ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए। फिर सोने का नाग बनवा कर भी ब्राह्मण को दान करना चाहिए।।७।।

हे राजन्! इस तरह जो जन भक्ति सहित इस व्रत को धारण करता है, उसे निश्चय ही शान्ति की प्राप्ति होती है, साथ ही उसे नागों का भी किसी प्रकार भय नहीं होता है।।८।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में शान्ति व्रत और माहात्म्य नामक साठवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥६०॥

अध्याय-६१

काम्यव्रत माहात्म्य

अगस्त्य ने कहा कि हे महाराज! अब आगे मैं काम्यव्रत के बारे में तुम्हें सुनाने जा रहा हूँ, सुनो। इस व्रत के प्रभाव से मन में सोची गई कामनायें भी पूर्ण हो जाया करती हैं।।१।।

पौषमास के शुक्लपक्ष की चतुर्थी तिथि के दिन भोजन कर एक वर्ष पर्यन्त षष्ठी तिथि में बुद्धिमान् साधक को फल का आहर ग्रहण करना चाहिए।।२।।

षष्ठ्यां तु पारयेद् धीमान् प्रथमं तु फलं नृप। ततो भुञ्जीत यत्नेन वाग्यतः शुद्धमोदनम्॥३॥
ब्राह्मणैः सह राजेन्द्र अथवा केवलैः फलैः। तमेकं दिवसं स्थित्वा सप्तम्यां पारयेन्नृप॥४॥
अग्निकार्यं तु कुर्वीत गुहरूपेण केशवम्। पूजयित्वाभिधानेन वर्षमेकं व्रतं चरेत्॥५॥
षड्वक्त्र कार्त्तिक गुह सेनानी कृत्तिकासुत। कुमार स्कन्द इत्येवं पूज्यो विष्णुः स्वनामभिः॥६॥
समाप्तौ तु व्रतस्यास्य कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम्। षण्मुखं सर्वसौवर्णं ब्राह्मणाय निवेदयेत्॥७॥
सर्वे कामाः समृद्ध्यन्तां मम देव कुमारक। त्वत्प्रवादादिमं भक्त्या गृह्यतां विप्र माचिरम्॥८॥
अनेन दत्त्वा मन्त्रेण ब्राह्मणाय सयुग्मकम्। ततः कामाः समृद्ध्यन्ते सर्वे वै इह जन्मनि॥९॥
अपुत्रो लभते पुत्रमधनो लभते धनम्। भ्रष्टराज्यो लभेद् राज्यं नात्र कार्या विचारणा॥१०॥
एतद् व्रतं पुरा चर्णं नलेन नृपसत्तम। ऋतुपर्णस्य विषये वसता व्रतचर्यया॥११॥
तथा राज्यच्युतैरन्यैर्बहुभिर्नृपसत्तमैः। पौराणिकं व्रतं चैव सिद्ध्यर्थं नृपसत्तम॥१२॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे एकषष्टितमोऽध्यायः॥

हे राजन्! उस षष्ठी तिथि के दिन पहले तो फलाहार को फिर बुद्धिमान् साधक को सप्रयत्न मौन रहकर विशुद्ध भात का भोजन करना चाहिए।।३।।

हे नृप! उपर्युक्त भात का भोजन ब्राह्मणों के साथ अथवा हे राजेन्द्र! केवल उक्त षष्ठी तिथि के दिन फलाहार कर दिन बीता कर सप्तमी तिथि में पारण करनी चाहिए।।४।।

फिर अग्नि कर्म अर्थात् होम भी करना चाहिए और फिर विधिपूर्वक गुप्त रूपसे स्थित केशव की पूजा कर एक वर्ष पर्यन्त इस प्रकार व्रत पालन करना चाहिए।।५।।

तत्पश्चात् षड्वक्त्र, गुह, सेनानी, कृत्तिकासुत, कुमार, स्कन्द आदि उनके नामों से श्रीविष्णु की पूजा करनी चाहिए।।६।।

इस तरह इस काम्यव्रत की समाप्ति पर ब्राह्मण भोजन भी कराना चाहिए। फिर परिपूर्णता से सोने की षण्मुख या कार्त्तिकेय की मूर्त्ति बनवाकर ब्राह्मण को दान करना चाहिए।।७।।

यहाँ दान मन्त्र इस प्रकार दिया गया है—'हे कुमार स्वरूप देव! आपकी ही कृपा प्रसाद से हमारी सभी कामनायें पूर्णता को प्राप्त हों। हे विप्र! इस तरह भक्तिभाव से दान की गई मूर्त्ति को आप शीघ्र स्वीकार करें। इस मन्त्र से ब्राह्मण को वस्त्रादि के जोड़े सहित मूर्त्ति का दान करने से इस जन्म में ही समस्त अभिलाषायें पूर्ण होती हैं।।८-९।।

इस प्रकार इस व्रत के प्रभाव से पुत्रहीन को पुत्र, धनहीन को धन, राज्यच्युत राजा को राज्य आदि प्राप्त होते हैं। इस कथन में सन्देह नहीं है।।१०।।

हे नृपोत्तम! पुरातनकाल में राजा ऋतुपर्ण राज्य में निवास करते हुए नल ने इस व्रत को विधि सहित अपनाया था।।११।।

हे राजश्रेष्ठ! फिर और अनेक राज्यच्युत राजाओं के द्वारा भी इस प्रकार के पौराणिक व्रत को धारण कर राज्य प्राप्ति जैसी सिद्धि प्राप्त किया गया था।।१२।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में काम्यव्रत का माहात्म्य नामक एकसठवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥६१॥

❖❖❖

द्विषष्टितमोऽध्यायः

अथारोग्यकरव्रतविधानम्

अगस्त्य उवाच

अथापरं महाराज व्रतमारोगयसंज्ञितम्। कथयामि परं पुण्यं सर्वपापप्रणाशनम्॥१॥
तस्यैव माघमास्य सप्तम्यां समुपोषितः। पूजयेद् भास्करं देवं विष्णुरूपं सनातनम्॥२॥
आदित्य भास्कर रवे भानो सूर्य दिवाकर। प्रभाकरेति संपूज्य एवं संपूज्यते रविः॥३॥
षष्ठ्यां चैव कृताहारः सप्तम्यां भानुमर्चयेत्। अष्टम्यां चैव भुञ्जीत एष एव विधिक्रमः॥४॥
अनेन वत्सरं पूर्णं विधिना योऽर्चयेद् रविम्। तस्यरोग्यं धनं धान्यमिह जन्मनि जायते।
परत्र च शुभं स्थानं यद् गत्वा न निवर्तते॥५॥
सार्वभौमः पुरा राजा अनरण्यो महाबलः। तेनायमर्चितो देवो व्रतेनानेन पार्थिव।
तस्य तुष्टो वरं देवः प्रादादारोग्यमुत्तमम्॥६॥

भद्राश्व उवाच

किमसौ रोगवान् राजा येनारोग्यमवाप्तवान्। सार्वभौमस्य च कथं ब्रह्मन् रोगस्य संभवः॥७॥

अध्याय–६२

आरोग्यकारक व्रत विधि और उसका माहात्म्य

अगस्त्य ने कहा कि हे महाराज! एतदनन्तर मैं परमपुण्यप्रद और समस्त पापों का विनाश करने वाले आरोग्य संज्ञक व्रत को बतलाने जा रहा हूँ।।१।।

उसी माघ मास की सप्तमी तिथि के दिन उपवासपूर्वक विष्णु स्वरूप सनातन भास्कर देव का पूजन करना चाहिए।।२।।

हे आदित्य, भास्कर, रवि, भानु, सूर्य, दिवाकर, प्रभाकर! आप पूजास्पद हैं। इस प्रकार रवि की पूजा करनी चाहिए।।३।।

इस व्रत में पहले षष्ठी तिथि के दिन भोजन करने के बाद सप्तमी तिथि के दिन निरान्न निराहार रहते हुए सूर्यनारायण की पूजा करनी चाहिए। तत्पश्चात् अष्टमी तिथि के दिन भोजन करना चाहिए। इसी तरह इस व्रत का क्रम कहा गया है।।४।।

जो कोई भी इस विधान से सम्पूर्ण वर्ष सूर्य की पूजा करता है, उसको इस जन्म में आरोग्य, धन और धान्य की प्राप्ति होती है, फिर परलोक में वह शुभ स्थान प्राप्त करने वाला भी होता है, जहाँ से पुनः इस संसार में वापस नहीं होना पड़ता है।।५।।

पुरातनकाल में अनरण्य नाम का महाबलशाली और सार्वभौम राजा हुआ था। हे राजन् उसने इस व्रत से भगवान् सूर्य नारायण देव की आराधना की थी। उससे प्रसन्न होकर भगवान् सूर्य देव ने उन्हें उत्कृष्ट आरोग्यता प्रदान की थी।।६।।

भद्राश्व ने कहा कि उस रोगी राजा को ऐसा कौन-सा रोग था, जिससे उसने आरोग्यता प्राप्त की। हे ब्रह्मन्! समस्त पृथ्वी के राजा होने के बावजूद उन्हें रोग कैसे हुआ?।।७।।

अगस्त्य उवाच

स राजा सार्वभौमोऽभूद् यशस्वी च सुरूपवान्। स कदाचिन्नृपश्रेष्ठो नृपश्रेष्ठ महाबलः॥८॥
गतवान् मानसं दिव्यं सरो देवगणान्वितम्। तत्रापश्यद् बृहत् पद्मं सरोमध्यगतं सितम्॥९॥
तत्र चाङ्गुष्ठमात्रं तु स्थितं पुरुषसत्तमम्। रक्तवासोभिराच्छन्नं द्विभुजं तिग्मतेजसम्॥१०॥
तं दृष्ट्वा सारथिं प्राह पद्ममेतत् समानय। इदं तु शिरसा बिभ्रत् सर्वलोकस्य सन्निधौ।
श्लाघनीयो भविष्यामि तस्मादाहर माचिरम्॥११॥
एवमुक्तस्तदा तेन सारथिः प्रविवेश ह। ग्रहीतुमुपचक्राम तं पद्मं नृपसत्तम॥१२॥
स्पृष्टमात्रे ततः पद्मे हुङ्कारः समजायत। तेन शब्देन स त्रस्तः पपात च ममार च॥१३॥
राजा च तत्क्षणात् तेन शब्देन समपद्यत। कुष्ठी विगतवर्णश्च बलवीर्यविवर्जितः॥१४॥
तथागतमथात्मानं दृष्ट्वा स पुरुषर्षभः। तस्थौ तत्रैव शोकार्त्तः किमेतदिति चिन्तयन्॥१५॥
तस्य चिन्तयतो धीमानाजगाम महातपाः। वसिष्ठो ब्रह्मपुत्रोऽथ तं स पप्रच्छ पार्थिवम्॥१६॥
कथं ते राजशार्दूल तव देहस्य शासनम्। इदानीमेव किं कार्यं तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः॥१७॥
एवमुक्तस्ततो राजा वसिष्ठेन महात्मना। सर्वं पद्मस्य वृत्तान्तं कथयामास स प्रभुः॥१८॥

अगस्त्य ने कहा कि हे नृपश्रेष्ठ! वह राजा सार्वभौम, यशस्वी, सुरुपवान्, महाबलवान् और राजाओं में भी श्रेष्ठ था। एक बार देवगण के साथ दिव्य मानसरोवर के किनारे पर गया हुआ था। उस राजा ने वहाँ पर सरोवर के मध्य एक बृहद् श्वेत पद्म देखा और उस पद्म पर उसने अंगुष्ठ प्रमाण का, तीव्र, तेजस्वी, दो भुजाओं वाले और एक रक्त वस्त्र से ढँका हुआ श्रेष्ठ पुरुष को भी देखा।।८-१०।।

उसको देखते हुए उस राजा ने अपने सारथि से कहा कि यह पद्म ले आओ। मैं सबके बीच इसे अपने सिर पर धारण कर श्लाघनीय हो सकूँगा। इसीलिए इसे लाओ। अब देर मत करो।।११।।

हे राजश्रेष्ठ! तत्पश्चात् राजा द्वारा ऐसा कहे जाने पर सारथि सरोवर में प्रवेश किया और वह उस पद्म को पाने की चेष्टा करने लगा।।१२।।

फिर जब उस सारथि ने उस कमल का स्पर्श किया, तो स्पर्श होते ही एक हुंकार उत्पन्न हुआ। उस हुंकार शब्द से वह भयभीत हुआ और गिर कर मर भी गया।।१३।।

इधर उसी शब्द को सुनकर राजा भी तत्क्षण वर्ण, बल और वीर्य से हीन होकर कुष्ठ रोग का शिकार-सा हो गया।।१४।।

फिर अपने आप को ऐसा हुआ जानकर वह श्रेष्ठ राजा शोक से आर्त होकर वहीं पर बैठकर विचार करने लगा कि आखिर यह क्या है?।।१५।।

उस राजा के इस प्रकार से चिन्तित होने के समय ही वहाँ पर महातपस्वी, बुद्धिमान्, ब्रह्मपुत्र, वशिष्ठ जी का पदार्पण हो गया और उस वशिष्ठजी ने उस राजा से पूछा कि हे राजश्रेष्ठ! तुम्हारे शरीर की इस प्रकार की दुर्गति कैसे हुई। अब क्या करना चाहिए? इस प्रकार मुझ पूछने वाले से यह सब वृत्तान्त कहो।।१६-१७।।

इस प्रकार से महात्मा वशिष्ठ के पूछे जाने पर उस राजा ने पद्म का सम्पूर्ण वृत्तान्त उनसे बतला दिया।।१८।।

तं श्रुत्वा स मुनिस्तत्र साधु राजन्नथाब्रवीत्। असाधुरथ वा तिष्ठ तस्मात् कुष्ठित्वमागतः॥१९॥
एवमुक्तस्तदा राजा वेपमानः कृताञ्जलिः। पप्रच्छ साध्वहं विप्र कथं वाऽसाध्वहं मुने।
कथं च कुष्ठं मे जातमेतन्मे वक्तुमर्हसि॥२०॥

वसिष्ठ उवाच

एतद् ब्रह्मोद्भवं नाम पद्मं त्रैलोक्यविश्रुतम्। दृष्टमात्रेण चानेन दृष्टाः स्युः सर्वदेवताः।
एतस्मिन् दृश्यते चैतत् षण्मासं क्वापि पार्थिव॥२१॥
एतस्मिन् दृष्टमात्रे तु यो जलं विशते नरः। सर्वपापविनिर्मुक्त परं निर्वाणमर्हति॥२२॥
ब्रह्मणः प्रागवस्थाया मूर्त्तिरप्सु व्यवस्थिता। एतां दृष्ट्वा जले मग्नः संसाराद् विप्रमुच्यते॥२३॥
इमं च दृष्ट्वा ते सूतो जले मग्नो नरोत्तम। प्रविष्टश्च पुनरिमं हर्तुमिच्छन्नराधिप।
प्राप्तवानसि दुर्बुद्धे कुष्ठित्वं पापपूरुष॥२४॥
दृष्टमेतत् त्वया यस्मात् त्वं साध्विति ततः प्रभो। मयोक्तो मोहमापन्नस्तेनासाधुरितीरितः॥२५॥
ब्रह्मपुत्रो ह्यहं चेमं पश्यामि परमेश्वरम्। अहन्यहनि चागच्छंस्तं पुनर्दृष्टवानसि॥२६॥
देवा अपि वदन्त्येते पद्मं काञ्चनमुत्तमम्। मानसे ब्रह्मपद्मं तु दृष्ट्वा चत्र गतं हरिम्।
प्राप्स्यामस्तत् परं ब्रह्म यद् गत्वा न पुनर्भवेत्॥२७॥

इस प्रकार से राजा से पद्म वृत्तान्त सुनकर उन मुनि ने कहा कि हे राजन्! तुम यहाँ पर साधु और असाधु भाव से आये, इसीलिए तुम कुष्ठ रोगी होकर मुक्त हो गये हो।।१९।।

तत्पश्चात् उन मुनि के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर राजा काँपते हुए हाथ जोड़कर पूछा कि हे विप्र मुनि! मैं साधु और असाधु भी कैसे हो सकता हूँ। मुझे यह कुष्ठरोग कैसे हो गया? मुझे यह तो अवश्य बतलायें।।२०।।

वशिष्ठ ने कहा कि यह त्रिलोक में प्रसिद्ध ब्रह्मोद्भव कमल है। इस कमल के दर्शन मात्र से सर्वदेव दर्शन हो जाता है। हे राजन्! इस सरोवर में कहीं पर यह छः माह तक दीख पड़ता है।।२१।।

इस कमल को देखकर जो जल में प्रवेश करता है, वह समस्त पापों से मुक्त होकर परम निर्वाण प्राप्त कर लेता है।।२२।।

ब्रह्माजी की प्राथमिक अवस्थागत स्वरूप जल में व्यवस्थित है। जिसको देखकर जल में डूब जाने वाला व्यक्ति इस संसार सागर से मुक्त हो जाता है।।२३।।

हे नरोत्तम! इसको देखते ही तुम्हारा सारथि भी जल में डूब गया और हे राजन्! इस ब्रह्मोद्भव कमल की कामना लेकर तुम्हारे कारण वह जल में प्रवेश किया था। हे दुर्बुद्धि पापी पुरुष! इसी कारण तुम्हें कुष्ठ निकल आया है।।२४।।

तत्पश्चात् हे प्रभो! जहाँ से तुमने इसको देखा था, इसलिए मैंने तुम्हें साधु भी कहा था और जहाँ तुम मोह से आविष्ट हुए थे, अतः मैंने तुम्हें असाधु भी कहा था।।२५।।

मैं ब्रह्मा का पुत्र हूँ, प्रतिदिन यहाँ आकर इस परमेश्वर स्वरूप पद्म को देखा करता हूँ। तुमने भी उसे देखा है।।२६।।

सभी देवता भी इस उत्तमोत्तम स्वर्णपद्म की अनुशंसा किया करते हैं। इस मानस सर में ब्रह्मपद्म और उस उपर स्थित श्रीहरि का दर्शन कर हम भी उस परम ब्रह्म को प्राप्त करेंगे। जहाँ जाने पर पुनर्जन्म नहीं होता है।।२७।।

इदं च कारणं चान्यत् कुष्ठस्य शृणु पार्थिव। आदित्यः पद्मगर्भेऽस्मिन् स्वयमेव व्यवस्थितः॥२८॥
तं दृष्ट्वा तत्त्वतो भावः परमात्मैष शाश्वतः। धारयामि शिरस्येनं लोकमध्ये विभूषणम्॥२९॥
एवं ते जल्पता पापमिदं देवेन दर्शितम्। इदानीमिममेव त्वमाराधय महामते॥३०॥

अगस्त्य उवाच

एवमुक्त्वा वसिष्ठस्तु इममेव व्रतं तदा। आदित्याराधनं दिव्यमारोग्याख्यं जगाद ह॥३१॥
सोऽपि राजाऽकरोच्चेमं व्रतं भक्तिसमन्वितः। सिद्धिं च परमां प्राप्तो विरोगश्चाभवत् क्षणात्॥३२॥

।।इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे द्विषष्टितमोऽध्यायः।।६२।।
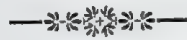
हे राजन्! तुम अपने इस कुष्ठ रोग का दूसरा कारण सुनो। इस पद्म के गर्भ में स्वयं 'आदित्य' ही स्थित हैं।।२८।।

उसको देखकर भी तुमने यथार्थ शाश्वत परमात्मा को नहीं पहचान पाया और फिर इस प्रकार की धृष्टतापूर्ण वाणी बोला कि मैं लोगों के बीच इस पद्म को आभूषण की तरह धारण करूँगा।।२९।।

तुम्हारे इस प्रकार के प्रलाप के पाप को सूर्यदेव ने देख लिया। अतः तुम्हें कुष्ठ हो गया। अतः हे महामते! अब तुम इन्हीं का आराधना करो।।३०।।

अगस्त्य ने कहा कि इस प्रकार से वशिष्ठ जी समझाते हुए उस राजा को आदित्य की आराधना करने वाले इस आरोग्य नामक दिव्य व्रत का उपदेश किया।।३१।।

तत्पश्चात् उस राजा ने भी भक्तिपूर्वक इस व्रत को धारण किया और परम सिद्धि योग्य फल प्राप्त करते हुए तत्क्षण कुष्ठ रोग से मुक्त हो गया।।३२।।

।।इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में आरोग्यकारक व्रत और माहात्म्य नामक बासठवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ।।६२।।

त्रिषष्टितमोऽध्यायः

अथ पुत्रप्राप्तिव्रतविधानम्

अगस्त्य उवाच

अथापरं महाराज पुत्राप्राप्तिव्रतं शुभम्। कथयामि समासेन तन्मे निगदतः श्रृणुः॥१॥
मासे भाद्रपदे या तु कृष्णपक्षे नरेश्वर। अष्टम्यामुपवासेन पुत्रप्राप्तिव्रतं हि तत्॥२॥
षष्ठ्यां चैव तु संकल्प्य सप्तम्यामर्चयेद् हरिम्। देवक्युत्सङ्गं देवं मातृभिः परिवेष्टितम्॥३॥
प्रभाते विमलेऽष्टम्यामर्चयेत् प्रयतो हरिम्। प्राग्विधानेन गोविन्दमर्चयित्वा विधानतः॥४॥
ततो यवैः कृष्णतिलैः सघृतैर्होमयेद् दधि।
ब्राह्मणान् भोजयेद् भक्त्या यथाशक्त्या सदिक्षणान्॥५॥
ततः स्वयं तु भुञ्जीत प्रथमं बिल्वमुत्तमम्। पश्चाद् यथेष्टं भुञ्जीत स्नेहैः सर्वरसैर्युतम्॥६॥
प्रमिमासमनेनैव विधिनोपोष्य मानवः। कृष्णाष्टमीमपुत्रोऽपि लभेत् पुत्रं न संशयः॥७॥
श्रूयते च पुरा राजा शूरसेनः प्रतापवान्। स ह्यपुत्रस्तपस्तेपेहिमवत्पर्वतोत्तमे॥८॥

अध्याय-६३

पुत्र प्राप्ति व्रत और माहात्म्य

अगस्त्य ने कहा कि हे महाराज! अब मैं दूसरे कल्याणकारक पुत्र प्राप्ति व्रत को सारांश रूप में ही आप से कहने जा रहा हूँ। उसे आप सुनो।।१।।

हे नरेश्वर! भाद्रपद मास के कृष्णपक्ष की अष्टमी तिथि को व्रतोपवास करने से पुत्र प्राप्ति व्रत सम्पन्न होता है।।२।।

इसके लिए षष्ठी तिथि को संकल्प लेकर सप्तमी तिथि के दिन देवकी के गोद में स्थित और माताओं से परिवेष्टित देव हरि की पूजा करनी चाहिए।।३।।

फिर अष्टमी तिथि को विमल प्रभातकाल में सयत्न पूर्वोक्त विधि के अनुरूप श्रीहरि की पूजा करनी चाहिए। विधिवद् गोविन्द की पूजा करने के बाद यव, काला तिल और घृत सहित दधि से होम कार्य सम्पन्न करना चाहिए। तत्पश्चत् दक्षिणा के साथ ब्राह्मण भोजन भी कराने चाहिए।।४-५।।

फिर स्वयं भी श्रेष्ठ प्रकार से बेल का भोजन करना चाहिए। तदुपरान्त स्निग्ध पदार्थों एवं सभी रसों युक्त पर्याप्त भोजन करना चाहिए।।६।।

प्रत्येक माह में इस विधि से कृष्णपक्ष अष्टमी तिथि को निरान्न व्रत करने से पुत्र हीन मनुष्य भी निःसंशय पुत्र प्राप्त कर लेता है।।७।।

कहा जाता है पुरातन काल में शूरसेन नाम का एक प्रतापी राजा हुआ था। वह राजा पुत्रहीन था। उसने श्रेष्ठ पर्वत हिमालय पर स्थित होकर तप किया।।८।।

तस्यैवं कुर्वतो देवो व्रतमेतज्जगाद ह। सोऽप्येतत् कृतवान् राजा पुत्रं चैवोपलब्धवान्॥९॥
वसुदेवं महाभागमनेकक्रतुयाजिनम्। तं लब्ध्वा सोऽपि राजर्षिः परं निर्वाणमाप्तवान्॥१०॥
एवं कृष्णाष्टमी राजन् मया ते परिकीर्तिता। संवत्सरान्ते दातव्यं कृष्णयुग्मं द्विजातये॥११॥
एतत् पुत्रव्रतं नाम मया ते परिकीर्तितम्। एतत् कृत्वा नरः पापैः सर्वैरेव प्रमुच्यते॥१२॥

।।इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे त्रिषष्टितमोऽध्यायः।।६३।।

चतुःषष्टितमोऽध्यायः

अथ शौर्य्यव्रतविधानम्

अगस्त्य उवाच

अथापरं प्रवक्ष्यामि शौर्यव्रतमनुत्तमम्। येन भीरोरपि महच्छौर्यं भवति तत्क्षणात्॥१॥
मासि चाश्वयुजे शुद्धां नवमीं समुपोषयेत्। सप्तम्यां कृतसंकल्पः स्थित्वाऽष्टम्यां निरोदनः॥२॥

इस प्रकार से उसके करने पर श्रीहरि देव ने इस व्रत का उसे उपदेश किया। उस राजा ने भी यह व्रत कर पुत्र की प्राप्ति से संतुष्ट हुआ।।९।।

उस राजा ने महान् भाग्यशाली और अनेक यज्ञों को करने वाला वसुदेव नाम का पुत्र को प्राप्त किया। उस पुत्र की प्राप्ति करने पर उस राजर्षि को परमनिर्वाण की प्राप्ति हुई।।१०।।

हे राजन्! मैंने आपसे इस प्रकार कृष्णाष्टमी व्रत का उपदेश किया है। वर्षान्त में ब्राह्मण को दो कृष्णमूर्ति या गाय का दान करना चाहिए।।११।।

मैंने इस तरह से आपसे यह पुत्र प्राप्ति व्रत को बतलाया दिया है। इसे करने पर मनुष्य समस्त पापों से भी मुक्त हो जाता है।।१२।।

।।इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में पुत्र प्राप्ति व्रत और माहात्म्य नामक तिरसठवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ।।६३।।

अध्याय–६४

शौर्यव्रत विधान और माहात्म्य

अगस्त्य ने कहा कि अब मैं यहाँ अन्य उत्तम शौर्यव्रत का उपदेश करने जा रहा हूँ। इस व्रत को धारण कर कायर पुरुष भी तत्काल महाशौर्य सम्पन्न हो जाता है।।१।।

यह व्रत आश्विन् मास शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि को करना चाहिए। इसके लिए सप्तमी तिथि को ही संकल्प कर अष्टमी तिथि को निर्जल रहना चाहिए।।२।।

नवम्यां पारयेत् पिष्टं प्रथमं भक्तितो नृप। ब्राह्मणान् भोजयेद् भक्त्या देवीं चैव तु पूजयेत्।
दुर्गां देवीं महाभागां महामायां महाप्रभाम्॥३॥
एवं संवत्सरं यावदुपोष्यति विधानतः। व्रतान्ते भोजयेद् धीमान् यथाशक्त्या कुमारिकाः॥४॥
हेमवस्त्रादिभिस्तास्तु भूषयित्वा तु शक्तितः। पश्चत् क्षमापयेत् तास्तु देवी मे प्रीयतामिति॥५॥
एवं कृते भ्रष्टराज्यो लभेद् राज्यं न संशयः। अविद्यो लभे विद्यां भीतः शौर्यं च विदन्ति॥६॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे चतुःषष्टितमोऽध्यायः॥६४॥

—❋❋❋—

पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

अथ सार्वभौमादिव्रतविधानम्

अगस्त्य उवाच

सार्वभौमव्रतं चान्यत् कथयामि समासतः। येन सम्यक्कृतेनाशु सार्वभौमो नृपो भवेत्॥१॥
कार्तिकस्य मास्य दशमी शुक्लपक्षिका। तस्यां नक्ताश्नो नित्यं दिक्षु शुद्धबलिं हरेत्॥२॥

हे राजन्! नवमी तिथि को प्रथम पिष्ट का पारण करना चाहिए और भक्तिपूर्वक ब्राह्मणों को भोजन कराने के बाद महान् ऐश्वर्य तथा तेज सम्पन्ना महामाया दुर्गा देवी की पूजा करनी चाहिए।।३।।

इस तरह विधि के अनुरूप वर्ष पर्यन्त व्रत करना चाहिए। इस व्रत के सम्पन्न होने पर बुद्धिमान साधक यथाशक्ति कुमारी कन्याओं को भोजन करावे।।४।।

फिर यथाशक्ति स्वर्ण और वस्त्रादि द्वारा उन्हें अलंकृत कर उनसे क्षमा याचना करनी चाहिए और 'देवी प्रसन्न हों' इस प्रकार उच्चारण करना चाहिए।।५।।

इस प्रकार से वे राजा, जो राज्यच्युत हो गया, वह भी अपना राज्य को प्राप्त कर लेता है। फिर विद्याहीन को इस व्रत से विद्या तथा भीरू, कायर को शोर्य-बल की प्राप्ति हो जाया करती है।।६।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में शौर्यव्रत विधान और माहात्म्य नामक चौंसठवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥६४॥

अध्याय–६५

सार्वभौम-वैष्णव-धर्म-रौद्र-इन्दु-पितृ व्रतविधि और माहात्म्य

अगस्त्य ने कहा कि अब सारांश रूप में ही मैं अन्य सार्वभौम व्रत आदि का उपदेश करने जा रहा हूँ। जिनको भलीभाँति सम्पन्न कर साधक शीघ्र सार्वभौम राजा आदि फल प्राप्त करता है।।१।।

यह सार्वभौम व्रत, नित्य कार्त्तिक मास के शुक्लपक्ष की दशमी तिथि को रात्रि में भोजन करना चाहिए और सभी दिशाओं में शुद्ध बलि प्रदान करनी चाहिए।।२।।

विचित्रैः कुसुमैर्भक्त्या पूजयित्वा द्विजोत्तमान्। दिशां तु प्रार्थनां कुर्यान् मन्त्रेणानेन सुव्रतः।
सर्वा भवन्त्यः सिद्ध्यन्तु मम जन्मनि जन्मनि॥३॥
एवमुक्त्वा बलिं तास दत्त्वा शुद्धेन चेतसा। ततो रात्रौ तु भुञ्जीत दध्यन्नं तु सुसंस्कृतम्॥४॥
पूर्वं पश्चाद् यथेष्टं तु एवं संवत्सरं नृप। यः करोति नरो नित्यं तस्य दिग्विजयो भवेत्॥५॥
एकादश्यां तु यत्नेन नरः कुर्याद् यथाविधि। मार्गशीर्षे शुक्लपक्षादारभ्याब्दं विचक्षणः।
तदा व्रतं धनदस्येष्टं कृतं वित्तं प्रयच्छति॥६॥
एकादश्यां निहारो यो भुङ्क्ते द्वादशीदिने। शुक्ले वाऽप्यथवा कृष्णे तद् व्रतं वैष्णवं महत्॥७॥
एवं चीर्णं सुघोराणि हन्ति पापानि पार्थिव। त्रयोदश्यां तु नक्तेन धर्मव्रतमथोच्यते॥८॥
शुक्लपक्षे फाल्गुनस्य तथारभ्य विचक्षणः। रौद्रं व्रतं चतुर्दश्यां कृष्णपक्षे विशेषतः।
माघमासादथारभ्य पूर्णं संवत्सरं नृप॥९॥
इन्दुव्रतं पञ्चदशं शुक्लायां नक्तभोजनम्। पितृव्रतममावास्यामिति राजन् तथेरितम्॥१०॥
दश पञ्च च वर्षाणि य एवं कुरुते नृप। तिथिव्रतानि कस्तस्य फलं व्रतप्रमाणतः॥११॥
अश्वमेधसहस्राणि राजसूयशतानि च। यष्टानि तेन राजेन्द्र कल्पोक्ताः क्रमवस्तथा॥१२॥

भक्तिभाव सहित विभिन्न वर्णों वाले पुष्पों से उत्तम ब्राह्मण का पूजन कर शुभ व्रत करने वाला साधक इस आगे कहे मन्त्रों से दिशाओं की प्रार्थना करे—'आप सभी मेरे प्रत्येक जन्म में सिद्धि प्रदान करें'।।३।।

इस प्रकार से कहते हुए शुद्ध मानसिक भाव से उन दिशाओं में बलि प्रदान करनी चाहिए। फिर रात में ठीकठीक बने अन्न (भात) दधि का भोजन करना चाहिए।।४।।

प्रथम दधि और अन्न खाना चाहिए, फिर यथेष्ठ भोजन करना चाहिए। हे राजन्! जो मनुष्य वर्ष पर्यन्त रोज-रोज इस प्रकार व्रत करता है, वह दिग्विजयी हो जाता है।।५।।

बुद्धिमान् पुरुष मार्गशीर्ष मास के शुक्लपक्ष की एकादशी तिथि से प्रारम्भ कर वर्ष पर्यन्त सयत्न यथाविधि यह व्रत धारण किये रहना चाहिए। कुबेर का इष्ट यह व्रत करने से वे कुबेर धन प्रदान करने वाले हो जाते हैं।।६।।

शुक्ल अथवा कृष्ण पक्ष की एकादशी को निराहार-निरान्न रहकर जो द्वादशी को भोजन करने वाला होता है, उसका यह महान् वैष्णव व्रत सम्पन्न हो जाता है।।७।।

हे राजन्! इस प्रकार करने पर यह व्रत अत्यन्त घोर पापों को विनष्ट करने वाला होता है। अब यहाँ त्रयोदशी की रात्रि में किये जाने वाले व्रत को बतलाया जा रहा है।।८।।

सुधी मनुष्य को फाल्गुन मास शुक्लपक्ष में व्रत आरम्भ करना चाहिए। फिर कृष्णपक्ष चतुर्दशी को विशेषतया 'रौद्रव्रत' किया जाता है। हे राजन्! माघमास से आरम्भ कर सम्पूर्ण वर्ष व्रत करना चाहिए।।९।।

शुक्लपक्ष की पञ्चदशी पूर्णिमा तिथि को रात्रि में भोजन और इन्दु व्रत करना चाहिए। हे राजन्! अमावास्या को पितृव्रत करना चाहिए।।१०।।

हे राजन्! इस प्रकार जो पन्द्रह वर्षों तक तिथि व्रतों को करता है, उसके व्रत के तुल्य क्या फल हो सकता है?।।११।।

हे राजन्! जो जन इन तिथियों के व्रतों को करते हैं, वे हजारों अश्वमेध, सैकड़ों राजसूय, कल्पोक्त सम्पूर्ण यज्ञ आदि को सम्पन्न कर लेते हैं।।१२।।

एकमेव कृतं हन्ति व्रतं पापानि नित्यशः। यः पुनः सर्वमेतद्धि कुर्यान्नरवरात्मज।
स शुद्धो विरजो लोकानाप्तनोति सकलं नृप॥१३॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे पञ्चषष्टितमोऽध्यायः॥६५॥

षट्षष्टितमोऽध्यायः

अथ पाञ्चरात्रसूचनम्

भद्राश्व उवाच

आश्चर्य यदि ते किंचिद् विदितं दृष्टमेव वा। तन्मे कथय धर्मज्ञ मम कौतूहलं महत्॥१॥

अगस्त्य उवाच

आश्चर्यभूतो भगवानेष एव जनार्दनः। तस्याश्चर्याणि दृष्टानि बहूनि विविधानि वै॥२॥
श्वेतद्वीपं गतः पूर्वं नारदः किल पार्थिव। सोऽपश्यच्छङ्खचक्राब्जान् पुरषांस्तिग्मतेजसः॥३॥
अयं विष्णुरयं विष्णुरेष विष्णुः सनातनः।
चिन्ताऽभूत्तस्य तान् दृष्ट्वा कोऽस्मिन् विष्णुरिति प्रभुः॥४॥

नित्य किया जाने वाला एक ही व्रत समस्त पापों को विनष्ट करने वाला होता है। हे राजन्! जो जन इन सभी व्रतों को करते हैं, वे शुद्ध और निष्पाप होकर समस्त लोकों को प्राप्त कर लेता है।।१३।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में सार्वभौम-वैष्णव-धर्म-रौद्र-इन्दु-पितृ व्रतविधि और माहात्म्य नामक पैंसठवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥६५॥

अध्याय–६६

पाञ्चरात्र का महत्त्व और विष्णु प्राप्ति का उपाय

भद्राश्व ने कहा कि हे धर्मज्ञ! यदि कोई आश्चर्य आपको ज्ञात हो अथवा आपके द्वारा देखा हुआ हो, तो मुझसे उसे आपको कहना चाहिए क्योंकि उसे सूनने की मुझे बड़ा कौतूहल है।।१।।

अगस्त्य ने कहा कि ये भगवान् जनार्दन ही साक्षात् आर्श्चस्वरूप हैं। इनसे सम्बन्धित मैंने विविध प्रकार के बहुत सारे आश्चर्य को देखा है।।२।।

हे राजन्! पुरातनकाल में एक बार नारदजी श्वेतद्वीप गए हुए थे। उन्होंने वहाँ पर शंख, चक्र और पद्म से युक्त तीव्र तेजस्वी पुरुषों को देखा।।३।।

वे उन्हें देखकर 'ये विष्णु हैं', 'ये विष्णु हैं', ये सनातन विष्णु हैं अथवा इनमें कौन प्रभु विष्णु हैं? इस तरह से उनके द्वारा चिन्ता की जाने लगी।।४।।

एवं चिन्तयतस्तस्य चिन्ता कृष्णं प्रति प्रभो। आराधयामि च कथं शङ्खचक्रगदाधरम्॥५॥
येन वेद्मि परं तेषां देवो नारायणः प्रभुः। एवं संचिन्त्य दध्यौ स तं देवं परमेश्वरम्॥६॥
दिव्यं वर्षसहस्रं तु साग्रं ब्रह्मसुतस्तदा। ध्यायतस्तस्य देवोऽसौ परितोषं जगाम ह॥७॥
उवाच च प्रसन्नात्मा प्रत्यक्षत्वं गतः प्रभुः। वरं ब्रह्मसुत ब्रूहि किं ते दद्मि महामुने॥८॥

नारद उवाच

सहस्रमेकं वर्षाणां ध्यातस्त्वं भुवनेश्वर। त्वत्प्राप्तिर्येन तद् ब्रूहि यदि तुष्टोऽसि मेऽच्युत॥९॥

देवदेव उवाच

पौरुषं सूक्तमास्थाय ये यजन्ति द्विजास्तु माम्। संहितामाद्यमास्थाय ते मां प्राप्स्यन्ति नारद॥१०॥
अलाभे वेदशास्त्राणां पञ्चरात्रादितेन ह। मार्गेण मां प्रपश्यन्ते ते मां प्राप्स्यन्ति मानवाः॥११॥
ब्राह्मणक्षत्रियविशां पञ्चरात्रं विधीयते। शूद्रादीनां न तच्छ्रोत्रपदवीमुपयास्यति॥१२॥
एवं मयोक्तं विप्रेन्द्र पुराकल्पे पुरातनम्। पञ्चरात्रं सहस्राणां यदि कश्चिद् ग्रहीष्यति॥१३॥
कर्मक्षये च मां कश्चिद् यदि भक्तो भविष्यति। तस्य चेदं पञ्चरात्रं नित्यं हृदि वसिष्यति॥१४॥
इतरे राजसैर्भावैस्तामसैश्च समावृताः। भविष्यन्ति द्विजश्रेष्ठ मच्छासनपराङ्मुखाः॥१५॥
कृतं त्रेता द्वापरं च युगानि त्रीणि नारद। सत्त्वस्थां मां समेष्यन्ति कलौ रजस्तमोऽधिकाः॥१६॥

हे राजन्! श्रीकृष्ण के प्रति इस तरह का चिन्तन कर वे विचार करने लगे कि शंख, चक्र और गदाधारी की आराधना मैं किस प्रकार करूँ ' जिस कारण मैं उनके श्रेष्ठ देव प्रभु नारायण को जान सकूँ। इस तरह विचार करते हुए उन्होंने उन परमेश्वर देव का ध्यान करने लगा।।५-६।।

तत्पश्चात् उस ब्रह्मपुत्र नारद ने सम्पूर्ण दिव्य सहस्रवर्षों तक उनका ध्यान करते हुए व्यतीत कर दिये। वे देव उनके ऊपर प्रसन्न हुए।।७।।

प्रसन्न प्रभु ने प्रत्यक्ष हो, उनसे कहा कि हे महामुने ब्रह्मपुत्र! वर माँगो, तुम्हें क्या प्रदान करूँ?।।८।।

नारद ने कहा—हे भुवनेश्वर! हे अच्युत! एक हजार वर्ष तक आपका ध्यान किया यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो आपकी प्राप्ति जिस तरह से हो, वह हमें बतलायें।।९।।

देवाधिदेव ने कहा कि हे नारद! जो द्विज आद्य संहिता स्वरूप पुरुषसूक्त के आधार पर मेरी पूजा किया करते हैं, वे ही मुझे प्राप्त कर सकते हैं।।१०।।

वेदशास्त्रों की अप्राप्ति पर पञ्चरात्र में कथित मार्ग से जो कोई मेरी पूजा किया करते हैं, वे जन मुझे प्राप्त करने में सफल होते हैं।।११।।

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों के लिए पाञ्चरात्र शास्त्र कहा गया है तथा शूद्रादिकों के लिए वह सुनने योग्य नहीं है।।१२।।

हे विप्रेन्द्र! यदि कोई पुराकल्प में मेरे कथित सहस्रसंख्यक पुरातन पाञ्चरात्र शास्त्र को ग्रहण करेगा, तो कर्मक्षय होने पर यदि मेरा कोई भक्त होगा, तो उसके हृदय में वह पाञ्चरात्र नित्य निवास करता रहेगा।।१३-१४।।

हे द्विजश्रेष्ठ! राजस और तामस भावों से युक्त अन्य लोग मेरे शास्त्र से पराङ्मुख रहेंगे। हे नारद! कृत,

अन्यच्च ते वरं दद्मि शृणु नारद साम्प्रतम्। यदिदं पञ्चरात्रं मे शास्त्रं परमदुर्लभम्।
तद्भवान् वेत्स्यते सर्वं मत्प्रसादान्न संशयः॥१७॥
वेदेन पञ्चरात्रेण भक्त्या यज्ञेन च द्विज। प्राप्योऽहं नान्यथा वत्स वर्षकोट्यायुतैरपि॥१८॥
एवमुक्त्वा स भगवान् नारदं परमेश्वरः। जगामादर्शनं सद्यो नारदोऽपि ययौ दिवम्॥१९॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे षट्षष्टितमोऽध्यायः॥६६॥

❖❖❖

सप्तषष्टितमोऽध्यायः

अथ विष्णवऽाश्चर्यवर्णनम्

भद्राश्व उवाच

भगवन् सितकृष्णे द्वे भिन्ने जगति केशवान्।
स्त्रियौ बभूवतुः के द्वे सितकृष्णा च का शुभा॥१॥

त्रेता, द्वापर आदि तीन युगों में सत्त्वगुणीजन मुझे प्राप्त कर सकेंगे। कलियुग में रजोगुण और तमोगुण की अधिकता ही होगी।।१५-१६।।

हे नारद! सुनो, अब मैं तुम्हें अन्य वर भी प्रदान करता हूँ। मेरा जो परम दुर्लभ यह पञ्चरात्रशास्त्र है, उसे आप निस्सन्देह मेरी कृपा से पूर्णता से जान सकेंगे।।१७।।

हे द्विज! वेद और पाञ्चरात्र, इन दोनों द्वारा निर्णीत भक्ति और यज्ञ से ही मैं प्राप्त होने वाला हूँ। हे वत्स! अन्य कोई भी तरीका से करोड़ वर्षों में भी मैं प्राप्त होने वाला नहीं हूँ।।१८।।

इस प्रकार वे भगवान् परमेश्वर नारद से कहते-कहते तत्काल अदर्शित हो गए और नारद जी भी स्वर्ग लोक को चल पड़े।।१९।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में पाञ्चरात्र का महत्त्व और विष्णु प्राप्ति का उपाय नामक छाछठवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तंर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥६६॥

❖❖❖

अध्याय-६७

विष्णु के आश्चर्य वर्णन के साथ जगदुत्पत्ति कथन

भद्राश्व ने कहा कि हे भग्वन्! इस संसार में प्रत्येक पदार्थ केशव से भिन्न श्वेत और कृष्ण रूप से अवस्थित हैं। सित और कृष्ण नामक दो स्त्रियाँ कौन-कौन हैं, उनमें कौन शुभा हैं।।१।।

कश्चासौ पुरुषो ब्रह्मन् य एकः सप्तधा भवेत्।
कोऽसौ द्वादशधा विप्र द्विदेहः षट्शिराः शुभः॥२॥
दम्पत्यं च द्विजश्रेष्ठ कृतसूर्योदयादनम्। कस्मादेतज्जगदिदं विततं द्विजसत्तम॥३॥

अगस्त्य उवाच

सितकृष्णे स्त्रियौ ये ते ते भगिन्यौ प्रकीर्तिते। सत्यासत्ये द्विवर्णा च नारी रात्रिरुदाहृता॥४॥
यः पुमान् सप्तधा जात एको भूत्वा नरेश्वर। स समुद्रस्तु विज्ञेयः सप्तधैको व्यवस्थितः॥५॥
योऽसौ द्वादशधा राजन् द्विदेहः षट्शिरा प्रभुः। संवत्सरः स विज्ञेयः शरीरे द्वे गती स्मृते।
ऋतवः षट् च वक्त्राणि एष संवत्सरः स्मृतः॥६॥
दम्पत्यं तदहोरात्रं सूर्याचन्द्रमसौ ततः। ततो जगत् समुत्तस्थौ देवस्यास्य नृपोत्तम॥७॥
स विष्णुः परमो देवो विज्ञेयो नृपसत्तम। न च वेदक्रियाहीनः पश्यते परमेश्वरम्॥८॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे सप्तषष्टितमोऽध्यायः॥६७॥

हे ब्रह्मन्! वह कौन पुरुष हैं, जो एक होते हुए भी सात स्वरूपों में विभाजित हैं और हे विप्र! दो देह वाला, छः सिरो वाला तथा बारह विभागों वाला शुभ पुरुष कौन है?॥२॥

हे द्विजश्रेष्ठ! किसने सूर्योदयास्त के आधार पर दाम्पत्य भाव को स्थापित किया है? हे द्विज सत्तम! यह जगत् किस स्थान से विस्तार को प्राप्त किया है॥३॥

अगस्त्य ने कहा कि सित और कृष्णा, इन दो स्वरूपों वाली स्त्रियाँ बहनें हैं इन दो वर्णों वाली सत्य और असत्य स्वरूपा शुक्ल और कृष्णपक्ष की रात्रियाँ दो स्त्रियाँ मानी गई हैं॥४॥

हे नरेश्वर! एक होने पर भी जो पुरुष सात स्वरूपों में विभक्त हैं, वह सात स्वरूपों में स्थित समुद्र है॥५॥

हे राजन्! दो शरीर और छः शिरों वाल तथा बारह भागों में विभाजित जो सक्षम पुरुष है, उसे सम्वत्सर समझना चाहिए। इस पुरुष का शरीर दो गति अर्थात् उत्तरायण और दक्षिणायन स्वरूप वाला माना गया है। इसके छः ऋतुऐं मुख हैं। वह ही सम्बत्सर स्वरूप पुरुष है॥६॥

फिर सूर्य और चन्द्र, इन दोनों के साथ दिन और रात्रि का क्रम से दाम्पत्य अर्थात् पति और पत्नि भाव जैसा बतलाया गया है। हे नृपोत्तम! इस कालपुरुष स्वरूप देव के शरीर से ही जगत् स्वरूप उत्पन्न हुआ है॥७॥

हे नृपश्रेष्ठ! उन विष्णु देव को परमदेव समझना चाहिए। उस देव को वह पुरुष, जो वेदकर्म को नहीं जानता, कथमपि नहीं देख पाता है॥८॥

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में विष्णु के आश्चर्य वर्णन के साथ जगदुत्पत्ति कथन नामक सड़सठवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥६७॥

❖❖❖

अष्टषष्टितमोऽध्यायः

अथ प्रागितिहासकथनम्

भद्राश्व उवाच

योऽसौ परापरो देवो विष्णुः सर्वगतो मुने। चतुर्युगे त्वसौ कीदृग् विज्ञेयः परमेश्वरः॥१॥
युगे युगे क आचारो वर्णानां भविता मुने। कथं च शुद्धिर्विप्राणामन्यस्त्रीसंकरैर्मुने॥२॥

अगस्त्य उवाच

कृते युगे मही देवैर्भुज्यते वेदकर्मणा। यजद्भिरसुरैस्त्रेतां तद्वद् देवैश्च सत्तम॥३॥
द्वापरे सत्त्वरजसी बहुले नृपसत्तम। यावद् धर्मसुतो राजा भविष्यति महामते॥४॥
ततस्तमः प्रभविता कलिरूपो नरेश्वर। तस्मिन् कलौ वर्त्तमाने स्वमार्गाच्चयवते द्विजः॥५॥
राजानो वैश्यशूद्राश्च प्रायशो हीनजातयः। भविष्यन्ति नृपश्रेष्ठ सत्यशौचविवर्जिताः॥६॥
अगम्यागमनं तत्र करिष्यन्ति द्विजातयः। अनृतं च वदिष्यन्ति वेदमार्गबहिष्कृताः।
विवाहांश्च करिष्यन्ति सगोत्रानसमांस्तथा॥७॥

अध्याय–६८

चतुर्युग स्वरूप और गम्यागम्यादिकथनपूर्वक प्रायश्चित्त कथन

भद्राश्व ने पूछा कि हे मुने! परापर और सर्वव्यापक जो श्रीविष्णु देव हैं, उन परमेश्वर को चार युगों में कैसे जाना जा सकता है?॥१॥

हे मुने! सभी युगों में वर्णों का आचार क्या-क्या होता है? हे मुने! परस्त्री प्रसङ्ग सम्बन्धी दोष से ब्राह्मणों की शुद्धि किस प्रकार सम्भव है?॥२॥

अगस्त्य ने कहा कि देवता वेदविहित कर्म बल से कृतयुग में पृथ्वी का भोग किया करते हैं। हे भद्र! फिर असुर और देवता, त्रेतायुग में यज्ञ सम्पादन बल से पृथ्वी का भोग किया करते हैं॥३॥

हे महामते! हे नृपश्रेष्ठ! द्वापर युग के समय में धर्मराज पुत्र युधिष्ठिर के राजा रहने तक सत्त्व और रजोगुण की प्रबलता विद्यमान रहेगी॥४॥

हे नरेश्वर! तत्पश्चात् तमोगुण प्रबल होने लग जाएगी। फिर उसके बाद कलियुग का समयारम्भ हो जाने पर द्विजातिजन अपने पथ से विमुख होने लगेंगे॥५॥

हे नृपश्रेष्ठ! इस कलियुग के समय में प्रायः सत्य और शुचिता विहीन हीनवर्ण अर्थात् वैश्य और शूद्रजन राजा होने लग जाएँगे॥६॥

फिर उस काल में द्विजाति जन वेदमार्ग से बहिष्कृत होकर अगम्यागमन करने और असत्य बोलने में लिप्त रहेंगे॥७॥

राजानो ब्राह्मणान् हिंस्युर्वित्तलोभान्विताः शठाः।
अन्त्यजा अपि वैश्यत्वं करिष्यन्ति पणे रताः।
अभिमानिनो भविष्यन्ति शूद्रजातिषु गर्विताः॥८॥
सर्वाशिनो भविष्यन्ति ब्राह्मणाः शौचवर्जिताः। सुरा पेयमिति प्राहुः सत्यशौचविवर्जिताः॥९॥
ततो विनश्यते लोको वर्णधर्मश्च नश्यते॥१०॥

भद्राश्व उवाच

अगम्यागमनं कृत्वा ब्राह्मणः क्षत्रियोऽपि वा।
शूद्रोऽपि शुद्ध्यते केन किं वाऽगम्यं तु शंस मे॥११॥

अगस्त्य उवाच

चातुर्गामी भवेद् विप्रस् त्रिगामी क्षत्रियो भवेत्।
द्विगामी तु भवेद् वैश्यः शूद्र एकगमः स्मृतः॥१२॥
अगम्यां ब्राह्मणीं प्राहुः क्षत्रियस्य नरेश्वर। क्षत्राणीं चेव वैश्यस्य वैश्यां शूद्रस्य पार्थिव।
अधकमस्योत्तमा नारी अगम्या मनुरब्रवीत्॥१३॥
माता मातृष्वसा श्वश्रूर्भ्रातृपत्नी च पार्थिव। स्नुषा च दुहिता चैव मित्रपत्नी स्वगोत्रजा॥१४॥
राजजायाऽऽत्मजा चैव अगम्या मुख्यतः स्त्रियः।
रजकादिषु चान्याश्च स्त्रियोऽगम्याः प्रकीर्तिताः।
अगम्यागमनं चैतत् कृतं पापाय जायते॥१५॥

हे राजन्! उस समय समान गोत्र में और असमान वर्णों वालों से विवाह करने लग जाऐंगे। धन लोभी और शठ राजाजन ब्राह्मणों की हिंसा भी करेंगे। क्रय-विक्रय से जुड़कर अन्त्यज भी वैश्य जैसा कर्म करने लग जाऐंगे।।८।।

फिर शूद्रवर्णज जनों में अभिमानी और गर्वयुक्तजन होंगे। ब्राह्मण शौचहीन होकर सर्वभक्षी तो होंगे ही, वे सत्य और शौच से हीन होकर सुरापान करने में आनन्दित होंगे। तत्पश्चात् लोक का विनाश और वर्ण-धर्म का लोप हो जाऐंगे।।९-१०।।

भद्राश्व ने फिर पूछा कि ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा शूद्र अगम्यागमन करने पर किस कर्म को करने से शुद्ध हो सकेगा। एवं अगम्या क्या है। ये सब मुझको बतलायें।।११।।

अगस्त्य ने कहा कि शास्त्रों में कहा गया है कि ब्राह्मण चार वर्णों की क्षत्रिय तीन वर्ण की, वैश्य दो वर्णों की स्त्रियों से और शूद्र केवल अपने वर्ण की स्त्री से संसर्ग करने के योग्य होता है।।१२।।

हे नरेश्वर! क्षत्रिय हेतु ब्राह्मणी को अगम्या कहा गया है। इसी तरह से हे राजन्! वैश्य हेतु क्षत्रियाणी और शूद्र हेतु वैश्या स्त्री अगम्या कही गई है। अतः मनु ने अधम वर्ण हेतु उत्तम वर्ण की स्त्री को अगम्या कहा है।।१३।।

हे राजन्! माता, मौसी, सास, भाभी, पुत्रवधू, पुत्री, मित्राणी, स्वगोत्रोत्पन्ना स्त्री, राजपत्नी, स्वपुत्री आदि प्रधानतया अगम्या स्त्रियाँ हैं। रजक आदि वर्ण की अन्य स्त्रियाँ भी अगम्या मानी गई हैं। इन अगम्या स्त्री में गमन करना पापोत्पत्ति का कारण होता है।।१४-१५।।

वियोनिगमनायाशु ब्राह्मणाय भवत्यलम्। शेषस्य शुद्धिरेषैव प्राणायामशतं भवेत्॥१६॥
बहुनाऽपि हि कालेन यत् पापं समुपार्जितम्। वर्णसंकरसंगत्या ब्राह्मणेन नरर्षभ॥१७॥
दशप्रणवगायत्रीं प्राणायामशतैस्त्रिभिः। मुच्यते ब्रह्महत्यायाः किं पुनः शेषपातकैः॥१८॥
अथवा पररूपं यो वेद ब्राह्मणपुंगवः। वेदाध्यायी पापशतैः कृतैरपि न लिप्यते॥१९॥
स्मरन् विष्णुं पठन् वेदं ददद् दानं यजन् हरिम्। ब्राह्मणः शुद्ध एवास्ते विरुद्धमपि तारयेत्॥२०॥
एतत् ते सर्वमाख्यातं यत् पृष्टोऽहं त्वया नृप। मन्वादिर्भिर्विस्तरशः कथ्यते येन पार्थिव।
समातस्तेन मया कथितं ते नृपोत्तम॥२१॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रेऽष्टषष्टितमोऽध्यायः॥६८॥

ब्राह्मण के लिए अगम्या गमन तत्काल विकृत योनि में जन्म देने वाला माना गया है। परन्तु उसके इतर अन्यान्य पापों की शुद्धि सौ प्राणायामों से ही हो जाती हैं॥१६॥

हे नरर्षभ! ब्राह्मण बहुत काल पर्यन्त वर्णसंकर आदि की साहचर्यादि से जितना भी पाप अर्जित करता हो, सौ प्राणायाम एवं तीन व्याहृतियों से युक्त दस बार ॐकार सहित गायत्री जप करके ब्रह्महत्या तुल्य पाप से भी वह विमुक्त होता है, तो अन्य पापों से उसका क्या हानि हो सकता है?॥१७-१८॥

अथवा जो ब्राह्मण उत्तम वेदों का स्वाध्याय करने वाला है और परब्रह्मस्वरूप को जानने वाला है, वह सौओं पाप करके भी उनसे लिप्त नहीं हो पाता है॥१९॥

विष्णु का स्मरण, वेद का अध्ययन, दान करने, यज्ञ करने आदि से ब्राह्मण शुद्ध होता ही है, वह धर्म विरुद्ध जीने वाले प्राणी का भी उद्धार करने में सक्षम होता है॥२०॥

हे राजन्! आपने जो कुछ मुझसे जानना चाहा, वे सब प्रायः मैंने आपसे कह दिया है। हे नृपश्रेष्ठ! वैसे मनु आदि शास्त्रकारों ने इन विषयों को अधिक विस्तार से ही कह दिया है। फिर मैंने आपसे उन्हीं विषयों को लेकिन साररूप में कहा है॥२१॥

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में चतुर्युग स्वरूप और गम्यागम्यादिकथनपूर्वक प्रायश्चित्त कथन नामक अड़सठवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायण-कुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥६८॥

❖❖❖

एकोनसप्ततितमोऽध्यायः

अथ नारायणाश्चर्यवर्णनम्

भद्राश्व उवाच

भगवन् त्वच्छरीरे तु यद् वृत्तं द्विजसत्तम। चिरजीवी भवांस्तन्मे वक्तुमर्हसि सत्तम॥१॥

अगस्त्य उवाच

मच्छरीरमिदं राजन् बहुकौतुहलान्वितम्। अनेककल्पसंस्थायि वेदविद्याविशोधितम्॥२॥

अटन् महीमहं सर्वां गतवानस्मि पार्थिव। इलावृतं महावर्षं मेरोः पार्श्वे व्यवस्थितम्॥३॥

तत्र रम्यं सरो दृष्टं तस्य तीरे महाकुटी। तत्रोपासशिथिलं दृष्टवानस्मि तापसम्।

अस्थिचर्मावशेषं तु चीरवल्कलधारिणम्॥४॥

तं दृष्ट्वाऽहं नृपश्रेष्ठ क एष नृपसत्तम। विश्वास्य प्रतिपत्त्यर्थं विधेयं मे नरोत्तम॥५॥

एवं चिन्तयतो मह्यं स मां प्राह महामुनिः। स्थीयतां स्थीयतां ब्रह्मन्नातिथ्यं करवाणि ते॥६॥

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य प्रविष्टोऽहं कुटीं तु ताम्। तावत् पश्याम्यहं विप्रं ज्वलन्तमिव तेजसा॥७॥

भूमौ स्थितं तु मां दृष्ट्वा हुङ्कारमकरोद् द्विजः। तद्धुङ्कारात् तु पातालं भित्त्वा पञ्च हि कन्यकाः॥८॥

अध्याय–६९

नारायणाश्चर्य प्रसङ्ग में अगस्त्य तापस संवाद

भद्राश्व ने पूछा कि हे श्रेष्ठ द्विज! हे भगवन्! आप चिरजीव हैं। अतः आपको अपने शरीर के बारे में जैसा कुछ विशिष्ट वृत्त है, उसे मुझसे कहना चाहिए।।१।।

अगस्त्य ने कहा कि हे राजन्! यह मेरा शरीर बहुत-सारे कौतूहलों वाला, कई कल्पों पर्यन्त स्थित रहने वाला और वेदविद्या से विशोधित है।।२।।

हे पार्थिव! मैं सम्पूर्ण भूमण्डल में भ्रमण करते हुए मेरु के पार्श्व में व्यवस्थित इलावत नामक महावर्ष में चला गया। वहाँ रमणीक सरोवर देखने को मिला। उस सरोवर के किनारे एक महान् कुटी स्थित थी। उस कुटिया में अस्थिचर्मावशेष वाला, चीर वल्कल धारण किये और नित्य उपवास से शिथिल तापस को देखा।।३-४।।

हे नृपश्रेष्ठ! हे नरोत्तम! उसे देखकर मैंने विचारा कि आखिर यह कौन है? अतः विश्वास प्रदान करते हुए इनसे जानकारी हेतु निवेदन करना चाहिए।।५।।

इस प्रकार से मेरे द्वारा विचार करते समय ही उस महामुनि ने मुझसे बोला कि हे ब्रह्मन् ठहरो! ठहरो! मेरे द्वारा आपका आथित्य किया जाना है।।६।।

उस महामुनि की वाणी सुनकर मैं भी उस कुटिया में जिस समय प्रवेश किया, तो उस समय मैंने ज्वलन्त तेज से सम्पन्न ब्राह्मण को देखा।।७।।

फिर मुझे भूमि पर ही अवस्थित देखकर उन ब्राह्मण ने एक 'हुंकार' किया। जिसके बाद पाताल भेद कर पञ्च कन्यायें बाहर निकल आईं।।८।।

निर्ययुः काञ्चनं पीठमेका तासां प्रगृह्य वै। सा मां प्रादात् तदाऽन्याऽदात् सलिलं करसंस्थितम्॥९॥
गृहीत्वाऽन्या तु मे पादौ क्षालितुं चोपचक्रमे। अन्ये द्वे व्यजने गृह्य मत्पक्षाभ्यां व्यवस्थिते॥१०॥
ततो हुङ्कारमकरोत् पुनरेव महातपाः। तच्छब्दानन्तरं हैमद्रोणीं योजनविस्तृताम्।
गृह्याजगाम मकरोत्प्लवं सरसि पार्थिव॥११॥
तस्यां तु कन्याः शतशो हेमकुम्भकराः शुभाः।
आययुस्तमथो दृष्ट्व स मुनिः प्राह मां नृप॥१२॥
स्नानार्थं कल्पितं ब्रह्मन्निदं ते सर्वमेव तु। द्रोणीं प्रविश्य चेमां त्वं स्नातुमर्हसि सत्तम॥१३॥
ततोऽहं तस्य वचनात् तस्यां द्रोण्यां नराधिप। विशामि तावत् सरसि सा द्रोणी प्रत्यमज्जत॥१४॥
द्रोण्यां जले निमग्नोऽहम् इति मत्वा नरेश्वर। उन्मग्नोऽहं ततो लोकमपूर्वं दृष्टवांस्ततः॥१५॥
सुहर्म्यकक्ष्यायतनं विशालं रथ्यापथं शुद्धजनानुकीर्णम्।
नीत्युत्तमैः सेवितमात्मविद्भिर्नृभिः पुराणैर्नयमार्गसंस्थैः॥१६॥
संयारचर्यापरिघाभिरुग्रं गम्भीरपातालतलस्थमाद्यम्।
सितैर्नृभिः पाशवराग्रहस्तैः द्विपाश्वसंघैर्विविधैरपेतम्॥१७॥

उन पञ्च कन्याओं में एक सोने की बनी पीढा लिए थी। उसने मुझको पीढ़ा जैसा बैठने हेतु दे दी। फिर दूसरी ने अपने हाथ में लिये जल मुझे दे दिया।।९।।

तीसरी कन्या मेरे पैरों को हाथ में लेकर धोने लगी और अन्य दो कन्याऐं मेरे दोनों बाजुओं में पंखा सहित खड़ी हो गईं।।१०।।

इसके अनन्तर भी उस महातापस ने फिर से दूसरी 'हुंकार' किया, तो उस शब्द के बाद एक योजन विस्तारित सोने की बनी द्रोणी सहित मकराकार नौका सरोवर में प्रकट हो गयी।।११।।

उस नौका के अन्दर से सौओं सुन्दर-सुन्दर कन्यायें अपने-अपने हाथ में सोने का कलश ली हुई आ गईं। हे राजन्! उस सबको देखकर उन महातापस ने मुझको सम्बोधित किया।।१२।।

हे श्रेष्ठ ब्रह्मण! ये सभी कलश आपके स्नान के लिए कल्पना की गई। अतः आप उस द्रोणी में प्रविष्ट होकर स्नान करें।।१३।।

हे नराधिप! इसके बाद उनके कथनानुसार मैं जैसे ही उस द्रोणी में प्रवेश किया, वैसे ही वह उस सरोवर में डूब गई।।१४।।

हे नरेश्वर! इस प्रकार मैंने तो यह समझ लिया कि मैं द्रोणी के सहित जल में डूब गया। परन्तु उसके बाद मैंने अलौकिक लोक को देखा।।१५।।

उस समय मेरे द्वारा नीति सम्पन्न श्रेष्ठ पुरुषों, आत्मनिष्ठ मनुष्यों और नीति के पथ पर चलने वाले अनुभव सिद्ध वृद्धों से सुशोभित सुन्दर-सुन्दर राजमहलों, बड़े-बड़े कमरों वाले विशाल भवनों और शुद्ध मनुष्यों से सम्पन्न राजकीय मार्गों से युक्त नगर जैसा देखा गया।।१६।।

चारों तरफ से आच्छादन करने वाली परिधा या गद्दा से भयानक गम्भीर पाताल के तल, उसमें स्थित

विचित्रपद्मोत्पलसंवृतानि सरांसि नानाविहगाकुलानि।
अम्भोजपत्रस्थितभृङ्गनादैरुद्गीतवन्तीव लयैरनैकेः॥१८॥
कैलासशृङ्गप्रतिमानि तीरेष्वनेकरत्नोत्पसंचितानि।
गृहाणि धन्याध्युषितानि नीचैरुपासितानि द्विजदेवविप्रैः॥१९॥
पद्मानि भृङ्गावनतानि चेलुस्तेषां पुनर्गुरुभारादजस्त्रम्।
जलेषु येषां सुस्वरास्यो द्विजातिर्वेदोदितानाह विचित्रमन्त्रान्॥२०॥
सिताब्जमालार्चितगात्रवन्ति वासोत्तरीयाणि खगप्रवारैः।
सरांयस्यनेकानि तथा द्विजास्तु पठन्ति यज्ञार्थविधिं पुराणम्॥२१॥
भगमन्नहं तेषु सरःस्वपश्यं वृन्दान्यनेकानि सुराङ्गनानाम्।
विद्याधराणां च तथैव कन्याः स्नानाय तं देशमुपागताश्च॥२२॥
ततः कदाचिद् भ्रमता नृपोत्तम प्रदृष्टमन्यत्सुसरः सुतोयम्।
प्राग् दृष्टमेकं तु तथैव तीरे कुटीं प्रपश्यामि यथा पुराऽहम्॥२३॥
यावत् कुटीं तां प्रविशामि राजन् तपस्विनं तं स्थितमेकदेशे।
दृष्ट्वाभिगम्याभिवदामि यावत् स्मयन्नुवाचाप्रतिमप्रभावः॥२४॥

आदिकालीन, अपने-अपने हाथों में श्रेष्ठ पाश लिये हुए श्वेत वर्ण के पुरुषों, विविध प्रकार के हाथियों और अश्वों से सम्पन्न वह नगर देखा गया था।।१७।।

चित्र-विचित्र कमलपुष्पों से सुसज्जित, कई प्रकार के पक्षियों से व्याप्त, उस कमलपत्रों पर स्थित भौंरों के स्वर से विविध लयों में मानों गान करते हुए सरोवर भी देखा गया।।१८।।

फिर उन सरोवरों के किनारे विभिन्न रत्नों की तरह पत्थरों से विशेष प्रकार से बनाये गये कैलाश पर्वत शिखर सदृश भवनों को भी देखा गया, जिनमें द्विज, देवता और ब्राह्मण भी रहा करते थे और जिनकी सेवा में नीच पुरुष भी लगे हुए थे।।१९।।

उस नगर में दिखने वाले सरोवरों में स्थितकमल पुष्प भी लगातार भौंरों के अन्यतम भार से झुके हुए प्रतीत हो रहे थे तथा उन सरोवरों के जल में सुन्दर स्वर युक्त कण्ठ वाले द्विजाति अर्थात् पक्षीगण या ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि जन वेदोक्त विचित्र-चित्र मन्त्रों का उच्चारण करने वाले थे।।२०।।

सफेद कमल पुष्पमाला से सुशोभित शरीर वाले और वास रूपी उत्तरीय धारण करने वाले विविध सरोवर पक्षियों के कलश वे भी निनादित हो रहे थे और द्विजाति जन प्राचीनतम यज्ञविधि का पाठ कर रहे थे।।२१।।

उन सरोवरों में मेरे द्वारा भ्रमण करते समय देवाङ्गनाओं के कई समूहों को भी देखा गया था, जहाँ विद्याधरों की कन्यायें नहाने हेतु उस सरोवर में आयी हुई थीं।।२२।।

हे नृपोत्तम! उस क्रम में भ्रमण करते हुए एक समय मेरे द्वारा सुन्दर जल से युक्त अन्य सरोवर को भी देखा गया। उसी प्रकार की कुटिया, जिस प्रकार की कुटिया मैंने पहले सरोवर के तीर पर देखी थी।।२३।।

हे राजन्! उस कुटिया में प्रविष्ट होने के बाद उस कुटिया के एक भाग में स्थित उसी तापस को देखा। इस प्रकार मैं जैसे ही उसके समीप जाकर कुछ कहना चाहा, वैसे ही वह अतुलनीय प्रभाव वाले तापस ने हँसते हुए मुझसे कहा—।।२४।।

तापस उवाच

किं मां विप्र न जानीषे प्राग्दृष्टमपि सत्तम। येन त्वं मूढवल्लोकमिममप्यनुपश्यसि॥२५॥
दृष्टं मत्कमिदं देवैर्भुवनं यन्न दृश्यते। त्वत्प्रियार्थं मया लोको दर्शितः स द्विजोत्तम॥२६॥
संपदं पश्य लोकस्य मदीयस्य महामुने। दधिक्षीरवहा नद्यस्तथा सर्पिर्मयान् ह्रदान्॥२७॥
गृहाणां हेमरत्नानां स्तम्भान् हेममयान् गृहे। रत्नोत्पलचितां भूमिं पद्मरागसमप्रभाम्।
पारिजातप्रसूनाढ्यां सेवितां यक्षकिन्नरैः॥२८॥
एवमुक्तस्तदा तेन तापसेन नराधिप। विस्मयापन्नहृदयस्तमेवाहं तु पृष्टवान्॥२९॥
भगवंस्तव लोकोऽयं सर्वलोकवरोत्तमः। सर्वलोका मया दृष्टा ब्रह्मशक्रादिसंस्थिताः॥३०॥
अयं त्वपूर्वो लोको मे प्रतिभाति तपोधन। संपदैश्वर्यतेजोभिर्हर्म्यरत्नचयैस्तथा॥३१॥
सरोभिः सूदकैः पुण्यैर्जलजैश्च विशेषतः। अत्यद्भुतमिदं लोकं दृष्टवानस्मि ते मुने॥३२॥
इत्थंभूतं कथं लोको भवांश्चेत्थं व्यवस्थितः। कथयस्वैतस्य हेतुं मे कश्च त्वं मुनिपुंगव॥३३॥
कथमिलावृते वर्षे सरस्तीरे महामुने। दृष्टवानस्मि सोऽहं त्वं सरस्तत् सा कुटी मुने।
हेमहर्म्याकुले लोके किं वा स्थानं तु ते कुटिः॥३४॥

तापस ने कहा कि हे सत्तम विप्रवर! पहले भी देखे होने के बाद भी क्या आप मुझे नहीं पहचान रहे हैं, जिस कारण आप मूर्ख की तरह इस लोक को देखे जा रहे हैं।।२५।।

आपने, तो मेरे इस भुवन को मात्र देखा है, जिसे देवगण भी नहीं देख पाते हैं। हे द्विजोत्तम! आपका प्रिय करने की कामना से मैंने आपको वह लोक भी दिखा दिया है।।२६।।

हे महामुने! आप मेरे लोक की सम्पत्ति को देखो। इस लोक में दधि और दुग्ध प्रवाहित नदियाँ और घृत से परिपूर्ण तालाब भी हैं।।२७।।

यहाँ पर सभी गृह भी सोने के ही बने हैं। उन भवनों में सोने का ही स्तम्भ भी लगे हैं। पद्मरागमणि के समान कान्ति सम्पन्न यहाँ की भूमि रत्नों के रूप में प्रस्तरों से आच्छादित, पारिजात के पुष्पों से समुन्नत तथा यक्षों, किन्नरों आदि से सेवित है।।२८।।

हे नराधिप! उसके बाद उस तापस द्वारा वैसे कुछ कहे जाने पर आश्चर्य सम्पन्न हृदय वाला मैंने उनसे पूछ दिया।।२९।।

हे भगवन्! आपका यह लोक, समस्त लोकों से भी अधिकतम श्रेष्ठ है। ब्रह्मा, इन्द्र आदि जहाँ निवस करते हैं, उन सभी लोकों को भी मैंने देखा है।।३०।।

परन्तु, हे तपोधन! यह लोक मुझे अलौकिक भासित हो रहा है। सम्पत्ति, ऐश्वर्य, तेज, महल, रत्न समूहों, सुन्दर जल सम्पन्न सरोवरों और विशेषतया पवित्र जलों से अत्यन्त अद्भुत आपके इस लोक को भी मैंने देख लिया है।।३१-३२।।

इस प्रकार के लोक, आपने कैसे सुव्यवस्थित किया है? मुझे इसका कारण भी कहें? हे मुनिश्रेष्ठ और आप कौन हैं?।।३३।।

हे महामुने! इलावृत वर्ष में सरोवर के किनारे पर मैंने आपको देखा था। हे मुने! स्वर्ण प्रासादों से युक्त इस लोक में वही मैं, आप और वह कुटिया कैसे आ गयी? अथवा आपका स्थान और कुटि कहाँ पर स्थित है?।।३४।।

एवमुक्तः स भगवान् मयाऽसौ मुनिपुंगवः। प्राह मह्यं यथावृत्तं यत् तु राजेन्द्र तच्छृणु॥३५॥

तापस उवाच

अहं नारायणो देवो जलरूपी सनातनः। येन व्याप्तादिं विश्वं त्रैलोक्यं सचराचरम्॥३६॥
या सा त्वाप्याकृतिस्तस्य देवस्य परमेष्ठिनः। सोऽहं वरुण इत्युक्तः स्वयं नारायणः परः॥३७॥
त्वया च सप्त जन्मानि अहमाराधितः पुरा। तेन त्रैलोक्यनाशेऽपि त्वमेकस्त्वभिलक्षितः॥३८॥
एवमुक्तस्तदा तेन निद्रामीलितलोचनः। पतितोऽहं धरापृष्ठे तत्क्षणात् पुनरुत्थितः॥३९॥
यावत्पश्याम्यहं राजन् तमृषिं तच्च वै पुरम्। तावन्मेरुगिरेर्मूर्ध्नि पश्याम्यात्मानमात्मना॥४०॥
समुद्रान् सप्त पश्यामि तथैव कुलपर्वतान्। सप्तद्वीपवतीं पृथ्वीं दृष्टवानस्मि पार्थिव॥४१॥
अद्यापि तं लोकवरं ध्यायंस्तिष्ठामि सुव्रत। कदा प्राप्स्येऽथ तं लोकमिति चिन्तापरोऽभवम्॥४२॥
एवं ते कौतुकं राजन् कथितं परमेष्ठिनः। यद् वृत्तं मम देहे तु मिमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि॥४३॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे एकोनसप्ततितमोऽध्यायः॥६९॥

हे राजेन्द्र! मेरे द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर उन ऐश्वर्य सम्पन्न श्रेष्ठ मुनि ने मुझसे जो वृत्तान्त कहा था, उसे सुनो॥३५॥

तापस ने कहा कि मैं तो जलस्वरूप सनातन नारायण देव हूँ, जिससे त्रिलोकी के रूप में यह चराचर विश्व ब्रह्माण्ड व्याप्त है॥३६॥

उन परमेष्ठी देव की जो जलमयी सृष्टि है, वह मैं वरुण नाम से स्वयं परस्वरूपात्मक नारायण देव हूँ॥३७॥

बहुत पहले तुमने सात जन्म पर्यन्त मेरी उपासना की थी। इस कारण से ही त्रिलोक का विनाश होने के बाद भी एकमात्र तुम बचे रह गये॥३८॥

हे राजन्! जिस समय मैंने अपनी आँखें खोली, तो मेरुपर्वत के शिखर स्थित मैंने उसी ऋषि, पुर और स्वयं को अपने आँखें से देखा॥३९-४०॥

फिर हे राजन्! मैंने पूर्व की तरह सात समुद्रों, कुल पर्वतों और सप्तद्वीपों वाली पृथ्वी उसी पृथ्वी को देखा॥४१॥

हे सुव्रत! आज भी मैं उस श्रेष्ठ लोक का ध्यान करते रहता हूँ। मैं सोचता रहता हूँ कि मैं उस लोक को कब प्राप्त कर सकूँगा॥४२॥

हे राजन्! मैंने तो इस तरह से आपसे परमेष्ठी के कौतुक को कह सुनाया है, जो मेरे इस देह में घटित हुआ था। अब अन्य क्या सुनना चाहते हो, उसे बताओ?॥४३॥

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में नारायणाश्चर्य प्रसङ्ग में अगस्त्य तापस संवादात्मक उनहत्तरवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥६९॥

सप्ततितमोऽध्यायः

अथ रुद्रगीतावर्णनम्

भद्राश्व उवाच

भगवन् किं कृतं लोकं त्वया तमनुपश्यता। व्रतं तपो वा धर्मो वा प्राप्त्यर्थं तस्य वै मुने॥१॥

अगस्त्य उवाच

अनाराध्य हरिं भक्त्या को लोकान् कामयेद् बुधः। आराधिते हरौ लोकाः सर्वे करतलेऽभवन्॥२॥
एवं संचिन्त्य राजेन्द्र मया विष्णुः सनातनः। आराधितो वर्षशतं क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः॥३॥
ततः कदाचिद् बहुना कालेन नुपनन्दन। यजतो मम देवेशं यज्ञमिर्तिं जनार्दनम्।
आहूता आगता देवाः सममेव सवासवाः॥४॥
स्वे स्वे स्थाने स्थिता आसन् यावद् देवाः सवासवाः। तावत् तत्रैव भगवानागतो वृषभध्वज॥५॥
महादेवो विरूपाक्षस्त्र्यम्बको नीललोहितः। सोऽपि रौद्रे स्थितः स्थाने बभूव परमेश्वरः॥६॥
तान् सर्वानागतान् दृष्ट्वा देवानृषिमहोरगान्। सनत्कुमारो भगवानाजगामाब्जसंभवः॥७॥
त्रसरेणुप्रमाणेन विमाने सूर्यसन्निभे। अवस्थितो महायोगी भूतभव्यभविष्यवित्॥८॥

अध्याय–७०

युगावस्था, ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र में अभेद, रुद्र का मोहशास्त्र निर्माण

भद्राश्व ने कहा कि हे भगवन्! हे मुने! उस वरुण लोक को देखने के बाद आपके द्वारा उसकी प्राप्ति हेतु कौन-कौन से व्रत, तप या धर्म किया जा चुका है?।।१।।

अगस्त्य ने कहा कि कौन बुद्धिमान् पुरुष भक्तिभाव से श्रीहर की आराधना किये बिना ही लोकों में जाने की कामना करेगा? श्रीहरि की आराधना से समस्त लोक करतलगत होते हैं।।२।।

हे राजेन्द्र! इस प्रकार विचार करने पर ही मैंने सौ वर्ष पर्यन्त यथेच्छ दक्षिणा वाले यज्ञों को सम्पादित कर सनातनविष्णु की उपासना की।।३।।

हे नृपनन्दन! बहुत समय के बाद एक दिन मेरे यज्ञ में यज्ञमूर्ति देवेश श्री जनार्दन के सहित आहूत किये गए इन्द्र के साथ समस्त देवता आ पहुँचे।।४।।

इस प्रकार समागत इन्द्र आदि देवगण जैसे ही अपने-अपने स्थानों पर अवस्थित होते, वैसे ही भगवान् वृषभध्वज महादेव भी पधार गए।।५।।

वे नीललोहित, विरूपाक्ष, त्र्यम्बक, परमेश्वर महादेव रुद्र अपने निहित स्थान पर आसीन हो गये।।६।।

फिर उन सभी देवताओं, ऋषियों, नागों आदि को आया हुआ जानकर कमलयोनि ब्रह्मपुत्र भगवान् सनत्कुमार भी आ पहुँचे।।७।।

इस तरह वे भूत, भविष्य, वर्तमान रूप काल के ज्ञाता, महायोगी, त्रसरेणु प्रमाणसे सूर्य के समान विमान में स्थित थे।।८।।

आगम्य शिरसा रुद्रं स ववन्दे महामुनिः। मया प्रणमितस्तस्थौ समीपे शूलपाणिनः॥९॥
तानहं संस्थितान् देवान् नारदादीनृषींस्तथा। सनत्कुमाररुद्रौ च दृष्ट्वा मे मनसि स्थितम्॥१०॥
क एषां भवते याज्यो वरिष्ठश्च नृपोत्तम। केन तुष्टेन तुष्टाः स्युः सर्व एते सरुद्रकाः॥११॥
एवं कृत्वा स्थिते राजन् रुद्रः पृष्टो मयाऽनघ। एवमर्थं क इज्योऽत्र युष्माकं सुरसत्तमाः॥१२॥
एवमुक्ते तदोवाच रुद्रो मां सुरसन्निधौ॥१३॥

रुद्र उवाच

शृण्वन्तु विबुधाः सर्वे तथा देवर्षयोऽमलाः। ब्रह्मर्षयश्च विख्यता सर्वे शृण्वन्तु मे वचः।
त्वं चागस्त्य महाबुद्धे शृणु मे गदतो वचः॥१४॥
यो यज्ञैरीड्यते देवो यस्मात् सर्वमिदं जगत्। उत्पन्नं सर्वदा यस्मिंल्लीनं भवति सामरम्॥१५॥
नारायणः परो देवः सत्त्वरूपो जनार्दनः। त्रिधात्मानं स भगवान् ससर्ज परमेश्वरः॥१६॥
रजस्तमोभ्यां युक्तोऽभूद् रजः सत्त्वाधिकं विभुः। ससर्ज नाभिकमले ब्रह्माणं कमलासनम्॥१७॥
रजसा तमसा युक्तः सोऽपि मां त्वसृजत् प्रभुः। यत्सत्त्वं स हरिर्देवो यो हरिस्तत्परं पदम्॥१८॥

वे महामुनि आते ही अपने सिर को नवाकर उन रुद्र को प्रणाम करने के पश्चात् जैसे ही शूलपाणि के समीप में बैठने को हुए मैं भी उन्हें प्रणाम किया।।९।।

इस तरह उन देवताओं, नारद आदि ऋषियों, सनत्कुमार, रुद्र आदि को एक साथ स्थित देखकर मेरे मन में इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ।।१०।।

हे नृपोत्तम! उस समय मैं सोच रहा था कि इन सबों में कौन श्रेष्ठ और सर्वपूज्य है? यहाँ किसके प्रसन्न हो जाने पर रुद्रसहित, ये सब के सब देव आदि प्रसन्न हो सकते हैं?।।११।।

हे निष्पाप राजन्! इस प्रकार के विचार के उत्पन्न होने पर मैंने रुद्र से ही इस प्रकार से अपनी जिज्ञासा को व्यक्त किया कि हे देवश्रेष्ठ! आप सब में कौन सर्वपूज्यनीय है?।।१२।।

उस समय इस तरह से मेरी व्यक्त जिज्ञासा को सुनकर उन रुद्र ने देवगणों के पास में ही मुझसे इस प्रकार कहा—।।१३।।

रुद्र ने कहा कि हे समस्त देवजन! निर्मल चित्त देवर्षियों और सुख्यात ब्रह्मर्षियों! इस समय मैं जो कहना चाह रहा हूँ, उसे सुनो तथा हे महाबुद्धिमान् अगस्त्य! तुम भी मेरा कहा सुनो।।१४।।

जिन देव का पूजन यज्ञ सम्पादन करके किया जाता है, जिनसे देवताओं के साथ-साथ यह अखिल विश्व उत्पन्न हुआ और उन्हीं में सदैव विलीन हो जाता है, परमदेव सत्यस्वरूप श्री जनार्दन भगवान् परमेश्वर ने स्वयं को ही तीन स्वरूपों में प्रकट किया हुआ है।।१५-१६।।

फिर रजोगुण और तमोगुण से सम्पन्न होकर उन विभु देव ने अपने नाभिकमल पर रजोगुण और सत्त्वगुण की अधिकता से कमलोद्भव ब्रह्मा की उत्पत्ति की।।१७।।

तत्पश्चात् उन प्रभु ने ही रज और तमोगुण सम्पन्न मेरी उत्पत्ति की। लेकिन जो सम्पूर्णता से सत्त्वगुणस्वरूप हैं, वे ही देव श्रीहरि हैं और वे ही देव परमपदस्वरूप हैं।।१८।।

ये सत्त्वरजसी सोऽपि ब्रह्मा कमलसंभवः। यो ब्रह्मा सैव देवस्तु यो देवः सः चतुर्मुखः।
यद्रजस्तमसोपेतं सोऽहं नास्त्यत्र संशयः॥१९॥
सत्त्वं रजस्तमश्चैव त्रितयं चैतदुच्यते। सत्त्वे नमुच्यते जन्तुः सत्त्वं नारायणात्मकम्॥२०॥
रजसा सत्त्वयुक्तेन भवेत् सृष्टी रजोऽधिका। तच्च पैतामहं वृत्तं सर्वशास्त्रेषु पठ्यते॥२१॥
यद्वेदबाह्यं कर्म स्याच्छास्त्रमुद्दिश्य सेव्यते। तद्रौद्रमिति विख्यातं कनिष्ठं गदितं नृणाम्॥२२॥
यद्धीनं रजसा कर्म केवलं मामसं तु यत्। तद् दुर्गतिपरं नृणामिह लोके परत्र च॥२३॥
सत्त्वेन मुच्यते जन्तुः सत्त्वं नारायणात्मकम्। नारायणश्च भगवान यज्ञरूपी विभाव्यते॥२४॥
कृते नारायणः शुद्धः सूक्ष्ममूर्त्तिरुपास्यते। त्रेतायां यज्ञरूपेण पञ्चरात्रैस्तु द्वापरे॥२५॥
कलौ मत्कृतमार्गेण बहुरूपेण तामसैः। इज्यते द्वेषबुद्ध्या स परमात्मा जनार्दनः॥२६॥
न तस्मात् परतो देवो भविता न भविष्यति।
यो विष्णुः स स्वयं ब्रह्मा यो ब्रह्मा सोऽहमेव च॥२७॥

इस प्रकार सत्त्व और रजोगुण सम्पन्न जो कमल से उत्पन्न होने वाले ब्रह्मा के स्वरूप हैं, वे ब्रह्मा ही स्वयं विष्णु देव हैं तथा जो विष्णु देव हैं, वे ही चतुर्मुख ब्रह्मा हैं। फिर जो रजोगुण और तमोगुण से सम्पन्न हुआ, वह ही मैं हूँ। अतः इसमें किसी भी प्रकार से सन्देह नहीं ही करना चाहिए।।१९।।

सत्त्व, रज और तम नाम से तीन गुण प्रसिद्ध हैं। उनमें से सत्त्व गुण प्राणियों को मुक्ति प्रदान करने वाला होता है। वही सत्त्व गुण नारायाण के स्वरूप हैं।।२०।।

ऐसे रजोगुण, जो सत्त्वगुण से सम्पन्न होता है, उससे रजोगुण की अधिकता वाली सृष्टि होती है। प्रत्येक शास्त्र में उसे ही पैतामह सृष्टि कहा गया है।।२१।।

अवैदिक पाशुपतादि शास्त्रों के उद्देश्य से जिन वेद बाह्य कर्मों का सम्पादन होता है उन्हीं कर्मों को रौद्र कर्म कहा गया है। मनुष्य द्वारा किया गया वह कर्म कनिष्ठ कर्म माना जाता है।।२२।।

इसी तरह रजोगुण से रहित, मात्र तमोगुण सम्बन्धी कर्म होता है, वह कर्म मनुष्यों को लोक और परलोक में दुर्गति करने वाला होता है।।२३।।

बताया गया है कि मनुष्य सत्त्वगुणी होने पर मुक्त हो जाता है। वह सत्त्व गुण नारायण के स्वरूप हैं। वे नारायण भगवान् साक्षाद् यज्ञ स्वरूप माने ही जाते हैं।।२४।।

इसीलिए कृतयुग के काल में शुद्ध सूक्ष्म स्वरूप वाले नारायण की आराधना होती है। फिर त्रेतायुग में यज्ञस्वरूप वाले तथा द्वापर युग में पाञ्चरात्र नारायण अर्थात् पाञ्चरात्र शास्त्र द्वारा प्रतिपादित नारायण स्वरूप की आराधना की जाती है।।२५।।

फिर कलियुग के समय तमोगुण वाले मनुष्य मेरे ही निर्मित बहुत प्रकार के पथों से द्वेषबुद्धि युक्त होकर उन्हीं जनार्दन परमात्मा की आराधना किया करते हैं।।२६।।

इस तरह उन परमात्मा जनार्दन से श्रेष्ठ कोई अन्य देव कभी नहीं हुआ और कभी भी नहीं हो सकेगा। चूँकि जो विष्णु हैं,वह ही स्वयं ब्रह्मा हैं तथा जो ब्रह्मा हैं, वह ही स्वयं मैं हूँ।।२७।।

वेदत्रयेऽपि यज्ञेऽस्मिन् याज्यं वेदेषु निश्चयः। यो भेदं कुरुतेऽस्माकं त्रयाणां द्विजसत्तम।
स पापकारी दुष्टात्मा दुर्गतिं गतिमाप्नुयात्॥२८॥
इदं च शृणु मेऽगस्त्य गदतः प्राक्तन तथा। यथा कलौ हरेर्भक्तिं न कुर्वन्तीह मानवाः॥२९॥
भूर्लोकवासिनः सर्वे पुरा यष्ट्वा जनार्दनम्। भुवर्लोकं प्रपद्यन्ते तत्रस्था अपि केशवम्।
आराध्य स्वर्गतिं यान्ति क्रमान्मुक्तिं व्रजन्ति च॥३०॥
एवं मुक्तिपदे व्याप्ते सर्वलोकैस्तथैव च। मुक्तिभाजस्ततो देवास्तं दध्युः प्रयता हरिम्॥३१॥
सोऽपि सर्वगतत्वाच्च प्रादुर्भूतः सनातनः। उवाच ब्रूत किं कार्यं सर्वयोगिवराः सुराः॥३२॥
ते तं प्राणम्य देवेशमूचुश्च परमेश्वरम्। देवदेव जनः सर्वो मुक्तिमार्गे व्यवस्थितः।
कथं सृष्टिः प्रभविता नरकेषु च को वसेत्॥३३॥
एवमुक्तस्ततो देवैस्तानुवाच जनार्दनः। युगानि त्रीणि बहवो मामुपेष्यन्ति मानवाः॥३४॥
अन्त्ये युगे प्रविरला भविष्यन्ति मदाश्रयाः। एष मोहं सृजाम्याशु यो जनं मोहयिष्यति॥३५॥
त्वं च रुद्र महाबाहो मोहशास्त्राणि कारय। अल्पायासं दर्शयित्वा फलं दीर्घं प्रदर्शय॥३६॥
कुहकं चेन्द्रजालानि विरुद्धाचरणानि च। दर्शयित्वा जनं सर्वं मोहयाशु महेश्वर॥३७॥

हे द्विजसत्तम! वेदों में यह निश्चित किया गया तथ्य है कि वेदत्रयी में कथित यह यज्ञ करना चाहिए। फिर भी यदि पाप करने वाला दुष्टात्मा मनुष्य हम तीनों अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु और महेश स्वरूप नारायण देव में भेद करना चाहता है, वह दुर्गति ही पाता है।।२८।।

हे अगस्त्य! इस समय मैं पुरातन काल की एक बात समझाता हूँ, कि मनुष्य कलि के काल में हरि भक्ति से क्यों विमुख होता है, उसे सुनो।।२९।।

बहुत पुरानी बात है, समस्त भूः लोक में निवास करने वाले जन जनार्दन देव की पूजा और भक्ति के बल से भुवः लोक तथा भुवः लोक में निवास करने वाले जन केशव की उपासना के बल से स्वः लोक को प्राप्त कर लिया करते थे। इस तरह क्रम से वे सब मुक्त ही हो जाया करते थे।।३०।।

अतएव समस्त जन मुक्तिपद प्राप्त करने वाला हो गया था। इस स्थिति का संज्ञान होने पर मोक्षाधिकारी देवताओं ने सयत्न श्रीहरि का स्मरण किया। इससे वे सर्वत्र व्याप्त रहने वाले देव सनातन प्रभु प्रकट होकर कहा कि हे श्रेष्ठ योगियों और देवों! कहें क्या प्रयोजन है?।।३१-३२।।

फिर वे सभी उन परमेश्वर देवेश को प्रणाम करते हुए उनसे कहने लगे कि हे देवाधिदेव! समस्तजन मोक्षमार्ग को ही चाहने वाले हो गये हैं, आखिर सृष्टि किस प्रकार आगे बढ़ेगी और नरक में कौन जन रह सकेगा?।।३३।।

उन देवताओं के द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर श्रीजनार्दन देव ने उनसे कहा कि देखिये! तीन युगों अर्थात् कृत, त्रेता और द्वापर में प्रायः अधिकतर जन मेरा आश्रय पाऐंगे।।३४।।

परन्तु अन्त्य कलियुग में मेरा आश्रय कोई-कोई ही प्राप्त करेंगे। मैं इस प्रकार की कोई मोहकारक सृष्टि करता हूँ, जो प्रत्येक मनुष्य को सम्मोहित कर सकेगा।।३५।।

हे महाबाहु रुद्र! आपके द्वारा भी मोहन करने वाले शास्त्रों की रचना होनी चाहिए। जिन शास्त्रों से अल्प श्रम से ही अधिक फल की प्राप्ति सम्भव हो।।३६।।

हे महेश्वर! इस प्रकार समस्त जनों को कुहक, इन्द्रजाल और विरुद्धाचरण प्रकट करते हुए सम्मोहित किया जाय।।३७।।

एवमुक्त्वा तदा तेन देवेन परमेष्ठिना। आत्मा तु गोपितः सद्यः प्रकाश्योऽहं कृतस्तदा॥३८॥
तस्मादारभ्य कालं तु मत्प्रणीतेषु सत्तम। शास्त्रेष्वभिरतो लोको बाहुल्येन भवेदतः॥३९॥
वेदानुवर्त्तिनं मार्गं देवं नारायणं तथा। एकीभावेन पश्यन्तो मुक्तिभाजो भवन्ति ते॥४०॥
मां विष्णोर्व्यतिरिक्तं ये ब्रह्माणं च द्विजोत्तम। भजन्ते पापकर्माणस्ते यान्ति नरकं नराः॥४१॥
ये वेदमार्गनिर्मुक्तास्तेषां मोहार्थमेव च। नयसिद्धान्तसंज्ञाभिर्मया शास्त्रं तु दर्शितम्॥४२॥
पाशोऽयं पशुभावस्तु स यदा पतितो भवेत्। तदा पाशुपतं शास्त्रं जायते वेदसंज्ञितम्॥४३॥
वेदमूर्तिरहं विप्र नान्यशास्त्रार्थवादिभिः। ज्ञायते मत्स्वरूपं तु मुक्त्वा वेदमनादिमत्।
वेदवेद्योऽस्मि विप्रर्षे ब्राह्मणैश्च विशेषतः॥४४॥
युगानि त्रीण्यहं विप्र ब्रह्मा विष्णुस्तथैव च। त्रयोऽपि सत्त्वादिगुणास्त्रयो वेदास्त्रयोऽग्नयः॥४५॥
त्रयो लोकास्त्रयः संध्यास्त्रयो वर्णास्तथैव च। सवनादि तु तावन्ति त्रिधा बद्धमिदं जगत्॥४६॥
य एवं वेत्ति विप्रर्षे परं नारायणं तथा। अपरं पद्मयोनिं तु ब्रह्माणं त्वपरं तु माम्।
गुणतो मुख्यतस्त्वेक एवाहं मोह इत्युत॥४७॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे सप्ततितमोऽध्यायः

—※※※—

इस प्रकार से कहते हुए देव तत्क्षण स्वयं को अन्तर्धान कर लिया तथा मुझे प्रकट कर दिया।।३८।।

इसी कारण से हे उत्तम आत्माओं! उस समय से ही शुरु होकर प्रायः समस्त संसार मेरे बनाये मोहयुक्त मार्गों का अनुसरण करने लग गये।।३९।।

चूँकि वेदमार्ग का अनुसरण करने वाले और नारायण देव को एकमात्र स्वरूप से समझने वाले जन मोक्ष के स्वत्वाधिकारी होते हैं।।४०।।

हे द्विजोत्तम! मुझे, विष्णु और ब्रह्मा को जो जन अलग अपना माना करते हैं, वे पापकर्मी जन निश्चय ही नरक में जाते हैं। वे सभी, जो वेदमार्ग बहिष्कृत हैं, उन्हें सम्मोहित करने हेतु ही मैंने नय सिद्धान्त के नाम से एक शास्त्र को बनाया है। अतः पशुभाव सम्पन्न मनुष्य के अन्तर्भाव में जिस समय यह नय शास्त्र रूप पाश अधिष्ठित हो जाएगा, उस समय पाशुपतशास्त्र को भी लोग वेद सदृश ही जानेंगे।।४१-४३।।

हे विप्र! मेरा स्वरूप अनादिकालिक वेद को त्याग कर दूसरे-दूसरे शास्त्रों का अनुसरण करने वालों द्वारा मैं वेदमूर्ति हूँ' ऐसा नहीं जाना जाता है। हे ब्रह्मर्षि! फिर भी विशेष रूप से ब्राह्मणों को वेद द्वारा ही ज्ञात हो पाता हूँ।।४४।।

हे विप्र! मैं ही तीन युग और ब्रह्मा तथा विष्णु के स्वरूप हूँ। सत्वादि अर्थात् सत्त्व, रज और तम गुण तीन वेद अर्थात् ऋक्, यजुः, और सामवेद, तीन अग्नि, तीन लोक, तीन सन्ध्या, तीन वर्ण, तीन सवन आदि स्वरूप से यह विश्व तीन तरह से बद्ध है।।४५-४६।।

हे ब्रह्मर्षि! फिर इस प्रकार जो कोई भी जन नारायण को परमात्म स्वरूप और कमलयोनि ब्रह्मा तथा मुझको अपरात्म स्वरूप कहता है, वह कथन भी मोहवश ही जानना चाहिए। वस्तुतः ये तीन गुणों के कारण पृथक् होकर भी एक ही तत्त्व मात्र हैं।।४७।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में युगावस्था, ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र में अभेद, रुद्र का मोहशास्त्र निर्माणात्मक सत्तरवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥७०॥

❖❖❖

एकसप्ततितमोऽध्यायः

अथ रुद्रगीतासु त्रिदेवाभेदत्वकथनम्

अगस्त्य उवाच

एवमुक्तास्ततो देवा ऋषयश्च पिनाकिना। अहं च नृपते तस्य देवस्य प्रणतोऽभवम्॥१॥
प्रणम्य शिरसा देवं यावत् पश्यामहे नृप। तावत् तस्यैव रुद्रस्य देहस्थं कमलासनम्॥२॥
नारायणं च हृदये त्रसरेणुसुसूक्ष्मकम्। ज्वलद्भास्करवर्णाभं पश्यामो भवदेहतः॥३॥
तं दृष्ट्वा विस्मिताः सर्वे याजका ऋष्यो मम। जयशब्दरवांश्चक्रुः सामऋग्यजुषां सवनम्॥४॥
कृत्वोचुस्तं तदा देवं किमिदं परमेश्वर। एकस्यामेव मूर्त्तौ ते लक्ष्यन्ते च त्रिमूर्त्तयः॥५॥

रुद्र उवाच

यज्ञेऽस्मिन् यद्धुतं हव्यं मामुद्दिश्य महर्षयः। ते त्रयोऽपि वयं भागं गृह्णीमः कविसत्तमाः॥६॥
नास्माकं विविधो भावो वर्तते मुनिसत्तमाः। सम्यग्दृशः प्रपश्यन्ति विपरीतेष्वनेकशः॥७॥
एवमुक्ते तु रुद्रेण सर्वे ते मुनयो नृप। पप्रच्छुः शंकरं देवं मोहशास्त्रप्रयोजनम्॥८॥

अध्याय–७१

त्रिदेवों में अभेदत्व, मोहशास्त्र प्रयोजन, गौतम आख्या, गोदावरी उत्पत्ति, गौतम का ब्राह्मणों को शाप

अगस्त्य ने कहा कि राजन्! इस तरह से श्रीशंकर जी के कहने पर समस्त देव, ऋषि और मैंने भी उन देव को प्रणाम किया।।१।।

हे राजन्! जैसे ही उन देव को शिर झुकाकर प्रणाम करने लगा, तो उस समय मेरे द्वारा देखा गया कि उन रुद्रदेव के देह में पद्मासनस्थ ब्रह्मा और हृदय में त्रसरेणु तुल्य अत्यन्त सूक्ष्म और ज्वलनशील सूर्य के सदृश प्रकाशमान् नारायण स्थित हैं।।२-३।।

इस प्रकार के दृश्य को देखकर यज्ञकर्त्ता समस्त ऋषिजन जय-जयकार जैसा शब्द करने लग गये। साथ वे सभी साम, यजुः और ऋग्वेद का पाठ करने में जुट गये।।४।।

इस तरह से घटनायें घटित हो जाने के बाद वे सब उन देव से पूछ दिया कि हे परमेश्वर! यह क्या है? आपके एक ही देह में तीन मूर्त्तियाँ अवस्थित दीख रही हैं।।५।।

रुद्र ने कहा कि हे महर्षियों! हे श्रेष्ठकवियों! इस यज्ञ में मुझकों लक्ष्य कर जो कुछ भी हवि भाग दिया गया है, उसका तीनों ही भाग हम तीनों मूर्त्ति ग्रहण करते हैं।।६।।

हे श्रेष्ठ ऋषियों! आपस में हम तीनों में अनेकता का भाव नहीं है। वास्तविक ज्ञानीजन विविध प्रकार से विपरीत भावों के देखने पर भी एकभाव ही ग्रहण करते हैं।।७।।

हे राजन् रुद्र द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर उन समस्त ऋषि-मुनियों ने श्रीशंकर देव से मोहशास्त्र के प्रयोजन के बारे में पूछ दिया।।८।।

ऋषय ऊचुः

मोहनार्थं तु लोकानां त्वया शास्त्रं पृथक् कृतम्।
तत् त्वया हेतुना केन कृतं देव वदस्व नः॥९॥

रुद्र उवाच

अस्ति भारतवर्षेण वनं दण्डकसंज्ञितम्। तत्र तीव्रं तपो घोरं गौतमो नाम वै द्विजः॥१०॥
चकार तस्य ब्रह्मा तु परितोषं गतः प्रभुः। उवाच तं मुनिं ब्रह्मा वरं ब्रूहि तपोधन॥११॥
एवमुक्तस्तदा तेन ब्रह्मणा लोककर्तृणा। उवाच सद्यः पङ्क्तिं मे धान्यानां देहि पद्मज॥१२॥
एवमुक्तो ददौ तस्य तमेवार्थं पितामहः। लब्ध्वा तु तं वरं विप्रः शतशृङ्गे महाश्रमम्॥१३॥
चकार तस्योषसि च पाकान्ते शालयो द्विजाः। लूयन्ते तेन मुनिना मध्याह्ने पच्यते तथा।
सर्वातिथ्यमसौ विप्रो ब्राह्मणेभ्यो ददात्यलम्॥१४॥
कस्यचित् त्वथ कालस्य महति द्वादशाब्दिका। अनावृष्टिर्द्विजवरा अभवल्लोमहर्षिणी॥१५॥
तां दृष्ट्वा मुनयः सर्वे अनावृष्टि वनेचराः। क्षुधया पीड्यमानास्तु प्रययुर्गौतमं तदा॥१६॥
अथ तानागतान् दृष्ट्वा गौतमः शिरसा नतः। उवाच स्थीयतां मह्यं गृहे मुनिवरात्मजाः॥१७॥
एवमुक्तास्तु ते तेन तस्थुर्विविधभोजम्। भुञ्जमाना अनावृष्टिर्यावत् सा निवृताऽभवत्॥१८॥

ऋषियों ने पूछा कि आप के द्वारा लोगों को मोहित करने वाला अलग से एक शास्त्र की रचना की गई है। हे देव! अतः हमें आप यह बतलायें कि आपने ऐसा क्यों किया?॥९॥

रुद्र ने कहा कि भारतवर्ष में एक दण्डक नाम का वन है। उस वन में रहने वाला एक गौतम नामक ब्राह्मण ने कठोर तीव्र तप किया है।॥१०॥

प्रभु ब्रह्माजी उस ब्राह्मण के तप से प्रसन्न हो गये। ब्रह्मा जी ने उस ऋषि से कहा 'हे तपोधन! वर माँग लो'॥११॥

फिर उन लोककर्त्ता ब्रह्माजी के इस प्रकार से कहे जाने पर उस गौतम ने भी कहा कि 'हे, हंसवाहन! धान्यों की पंक्ति प्रदान करें'॥१२॥

इस प्रकार से वर माँगे जाने पर लोकपितामह ने उसको वह वस्तु प्रदान कर दी। वह ब्राह्मण भी वर प्राप्त कर शतशृङ्ग नाम के पर्वत पर अपना महाआश्रम निर्माण किया॥१३॥

उस स्थान पर वह ऋषि उषाकाल में पकाने हेतु धान्य काट लेता था और फिर मध्याह्न काल में उस धान्य को पकाकर वह ब्राह्मण यथेच्छ मात्रा में अन्यान्य ब्राह्मणों का अतिशय आतिथ्य किया करता था॥१४॥

हे श्रेष्ठद्विजों! बहुत काल बीत जाने पर बारह वर्षों का महालोमहर्षक अवर्षण हुआ॥१५॥

उस समय वन में निवास करने वाले समस्त ऋषि-मुनि उस अवर्षण को देखकर भूख से पीड़ित होकर गौतम के पास पहुँच गए॥१६॥

तत्पश्चात् अपने पास आया हुआ जानकर गौतम ऋषि ने उन्हें अपने शिर से प्रणाम किया और कहा कि हे श्रेष्ठ मुनिजन आप सभी मेरे ही गृह में निवास करें॥१७॥

उस ऋषि द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर वे सभी विविध प्रकार से विविध भोजन करते हुए उस अवर्षण की समाप्ति काल तक वहीं पर रह गये॥१८॥

निवृत्तायां तु वै तस्यामनावृष्ट्यां तु ते द्विजाः। तीर्थयात्रानिमित्तं तु प्रयातुं तनसोऽभवन्॥१९॥
तत्र शाण्डियनामानं तापसं मुनिसत्तमम्। प्रत्युवाचेति संचिन्त्य मारीचः परमो मुनिः॥२०॥

मारीच उवाच

शाण्डिल्य शोभनं वक्ष्ये पिता ते गौतमो मुनिः। तमनुक्त्वा न गच्छामस्तपश्चर्तुं तपोवनम्॥२१॥
एवमुक्तेऽथ जहसुः सर्वे ते मुनयस्तदा। किमस्माभिः स्वको देहो विक्रीतोऽस्यान्नभक्षणात्॥२२॥
एवमुक्त्वा पुनश्चोचुः सोपाधिगमनं प्रति। कृत्वा मायामयीं गां तु तच्छज्ञलौ ते व्यसर्जयन्॥२३॥
तां चरन्तीं ततो दृष्ट्वा शालौ गां गौतमो मुनिः। गृहीत्वा सलिलं पाणौ याहि रुद्रेत्यभाषत।

ततो मायामयी सा गौः पपात जलबिन्दुभिः॥२४॥
निहतां तां ततो दृष्ट्वा मुनीन् जिगमिषूंस्तथा।
उवाच गौतमो धीमांस्तान् मुनीन् प्रणतः स्थितः॥२५॥

किमर्थं गम्यते विप्राः साधु शंसत माचिरम्। मां विहाय सदा भक्तं प्रणतं च विशेषतः॥२६॥

ऋषय ऊचुः

गोवध्येयमिह ब्रह्मन् यावत् तव शरीरगा। तावदन्नं न भुञ्जामो भवतोऽन्नं महामुने॥२७॥
एवमुक्तो गौतमोऽथ तान् मुनीन् प्राह धर्मवित्। प्रायश्चित्तं गोवध्याया दीयतां मे तपोधनाः॥२८॥

फिर उस अवर्षण के अन्त में वे समस्त ब्राह्मण तीर्थयात्रा को लक्ष्य कर वहाँ से जाने की इच्छा व्यक्त करने लगे।।१९।।

उस स्थान पर मारीच नाम का महामुनि ने कुछ विचार करते हुए शांडिल्य नाम के उत्तम श्रेणी के तपस्वी मुनि से कहा—।।२०।।

मारीच ने कहा कि हे शाण्डिल्य! मैं आपसे एक अच्छी बात कहना चाहता हूँ। गौतम मुनि तो आपके पिता हैं। उनको बिना बतलाये हम सभी तप करने हेतु भी तपोवन की ओर नहीं जा सकते हैं।।२१।।

इस प्रकार से कहे जाने र, सभी उपस्थित मुनिजन हँसने लगे। फिर उन्होंने कहा कि क्या अन्न खाने से हम सभी द्वारा अपना शरीर बेच दिया गया है?।।२२।।

इस प्रकार से कहते हुए और पुनः दोषारोपण करते हुए जाने की बात भी कह दी। एक माया की गाय निर्माण कर उनके आश्रम में छोड़ दियागया।।२३।।

फिर अपनी शाला में चरती हुई उस गाय को देखकर गौतम मुनि ने अपने हाथ में जल लेकर कहा कि 'हे रुद्रे! जाओ।' तत्पश्चात् वह मायामयी गाय उस जल विन्दु के स्पर्श मात्र से वहीं पर मर गई।।२४।।

इस प्रकार उस गाय को मरी हुई जानकर गौतम मुनि जाने वाले उन बुद्धिमान् मुनियों को प्रणामपूर्वक कहा कि हे ब्राह्मणों! आपकी सेवा में निरन्तर लगे रहने वाले और विशेषतया मुझ जैसे विनम्र को छोड़कर क्यों जाना चाह रहे हैं? आप लोग मुझे यथार्थ कहें, विलम्ब न करें, बड़ी कृपा होगी।।२५-२६।।

उन ऋषियों ने कहा कि हे ब्रह्मन्! हे महामुने आपके ऊपर जब तक यह गोहत्या जैसा पाप है, तबतक हम लोगों को आपका अन्न नहीं ही खाना चाहिए।।२७।।

तत्पश्चात् इस प्रकार से कहे जाने पर धर्मज्ञ गौतम ने उन ऋषिजनों से कहा कि हे तपोधनों! आप ही लोग मुझे गोहत्या का प्रायश्चित्त बतलायें।।२८।।

ऋषय ऊचुः

इयं गौरमृता ब्रह्मन् मूर्च्छितेव व्यवस्थिता। गङ्गाजलप्लुता चेयमुत्थास्यति न संशयः॥२९॥

प्रायश्चित्तं मृतायाः स्यादमृतायाः कृतं त्विदम्।
व्रतं वा मा कृथाः कोपमित्युक्त्वाप्रययुस्तु ते॥३०॥

गतैस्तैर्गौतमो धीमान् हिमवन्तं महागिरिम्। मामाराधयिषुः प्रायात् तप्तुं चाशु महत् तपः॥३१॥

शतमेकं तु वर्षाणामहमाराधितोऽभवम्। तुष्टेन च मया प्रोक्तो वरं वरय सुव्रत॥३२॥

सोऽब्रवीन्मां जटासंस्थां देहि गङ्गां तपस्विनीम्।
मया सार्धं प्रयात्वेषा पुण्या भागीरथी नदी॥३३॥

एवमुक्ते जटाखण्डमेकं स प्रददौ शिवः। तां गुह्य गतवान् सोऽपि यत्रास्ते सा तु गौर्मृता॥३४॥

तज्जलप्लाविता सा गौर्गता चोत्थाय भामिनी। नदी च महती जाता पुण्यतोया शुचिह्रदा॥३५॥

तं दृष्ट्वा महदाश्चर्यं तत्र सप्तर्षयोऽमलाः।
आजग्मुः खे विमानस्थाः साधु साध्वितिवादिनः॥३६॥

साधु गौतम साधूनां कोन्योऽस्ति सदृशस्तव। यदेवं जाह्नवीं देवीं दण्डके चावतारयत्॥३७॥

ऋषियों ने कहा कि हे ब्रह्मन्! यह गाय मरी नहीं है, मूर्छित सी पड़ी हुई है। गङ्गाजल स्नान कराने से यह गाय निस्संशय खड़ी हो सकती है।।२९।।

लेकिन मरी हुई गाय हो, तो उसका प्रायश्चित्त होता है, जो मरी नहीं है, उसका यह प्रायश्चित्त होता है। अतः आप रोष न करें। इस प्रकार कहते हुए वे सभी चले गए।।३०।।

उन सबके चले जाने पर वह बुद्धिमान् गौतम महान् पर्वत हिमालय पर तत्काल महातप पूर्वक मेरी उपासना करने हेतु प्रस्तुत हो गये।।३१।।

उनके द्वारा एक सौ वर्षों तक मेरी उपासना की गई। फिर प्रसन्न होकर मैंने कहा कि हे सुव्रत! वर माँग लो।।३२।।

उसने कहा कि आप अपनी जटा में अवस्थित तपस्विनी गङ्गा को मुझे प्रदान करें, यह पवित्र भागीरथी नदी मेरे साथ चल चलें।।३३।।

इस प्रकार से माँगे जाने पर उन शिव ने अपनी जटा का एक अंश उनको दिया। उसे लेकर वह वहाँ पर आ गया, जहाँ वह मायामयी गाय मरी हुई पड़ी थी।।३४।।

हे भामिनि! उस पवित्रतम जल से आप्लावित होकर वह मरी हुई गाय उठकर खड़ी हुई और चली गई। फिर तो उसी स्थान पर पवित्र जल ह्रद वाली महानदी भी स्थित हो गई।।३५।।

इस प्रकार के महाश्चर्यकारी घटना को देखकर अमल सप्तर्षि विमान पर चढ़कर आकाश में आ गये और 'साधु-साधु' कहकर प्रशंसा करने लगे।।३६।।

हे गौतम! तुम अवश्य साधु हो। इस प्रकार का साधुओं में भी तुम्हारे जैसा कौन हो सकता है? क्योंकि तुमने तो देवी जाह्नवी गङ्गा को इस दण्डक वन में अवतरित कर दिया।।३७।।

एवमुक्तस्तदा तैस्तु गौतमः किमिदं त्विति। गोवध्याकारणं मह्यं तावत् पश्यति गौतमः॥३८॥
ऋषीणा मायया सर्वमिदं जातं विचिन्त्य वै। शशाप तान् जटाभस्ममिथव्रतधरास्तथा।
भविष्यथ त्रयीबाह्या वेदकर्मबहिष्कृताः॥३९॥
तच्छ्रुत्वा क्रूरवचनं गौतमस्य महामुनेः। ऊचुः सप्तर्षयो मैवं सर्वकालं द्विजोत्तमाः।
भवन्तु किं तु ते वाक्यं मोघं नास्त्यत्रा संशयः॥४०॥
यदि नाम कलौ सर्वे भविष्यन्ति द्विजोत्तमाः। उपकारिणि ये ते हि अपकर्तार एव हि।
इत्थंभूता अपि कलौ भक्तिभाजो भवन्तु ते॥४१॥
त्वद्वाक्यवह्निनिर्दग्धाः सदा कलियुगे द्विजाः। भविष्यन्ति क्रियाहीना वेदकर्मबहिष्कृता॥४२॥
अस्याश्च गौणं नामेह नदी गोदावरीति च। गौर्दत्ता वरदानाच्च भवेद् गोदावरी नदी॥४३॥
एतां प्राप्य कलौ ब्रह्मन् गां ददन्ति जनाश्च ये।
यथाशक्त्या तु दानानि मोदन्ते त्रिदशैः सह॥४४॥
सिंहस्थे च गुरौ तत्र यो गच्छति समाहितः। स्नात्वा च विधिना तत्र पितॄंस्तर्पयते तथा॥४५॥
स्वर्गं गच्छन्ति पितरो निरये पतिता अपि। स्वर्गस्थाः पितरस्तस्य मुक्तिभाजो न संशयः॥४६॥

उनके इस प्रकार से कहे जाने पर जब गौतम ने ध्यानपूर्वक विचार किया कि आखिर इस गोहत्या का कारण क्या हो सकता है, तो उन्हें इसका रहस्य अवगत हो गया।।३८।।

यह घटना उन ऋषियों की माया से घटित हुई है। इस तरह सोचते हुए उन्हेंने उन्हें शाप दिया कि तुम सर्व जन जटा, भस्म और मिथ्या व्रत करने वाले, वेदत्रयी ऋग् यजुः साम वेदों से रहित और वैदिक कर्म से बहिष्कृत होओगे।।३९।।

हे महामुने! गौतम के इस प्रकार के क्रूर वाणी को सुनकर सप्तर्षियों ने कहा कि हे श्रेष्ठ ब्राह्मण प्रत्येक समय ऐसा नहीं होना चाहिए। किन्तु निस्संशय तुम्हारा कहा सत्य होगा।।४०।।

इस प्रकार परोपकार करने वालों के साथ इस प्रकार के अपकारी वे ब्राह्मण कलियुग में गौतम के कथनानुरूप होंगे। फिर भी वे भक्ति के पात्र बने रह सकेंगे।।४१।।

तुम्हारे वाक् स्वरूप अग्नि से भस्मीभूत ब्राह्मण हमेशा कलियुग में क्रियाहीन और वेदकर्म से बहिष्कृत होंगे।।४२।।

इस नदी का नाम 'गोदावरी' अपने गुणानुरूप ही सार्थक होगा। इसके द्वारा गाय और वर प्रदान किया गया। अतएव यह नदी 'गोदावरी' ही होगी।।४३।।

हे ब्रह्मन्! इस नदी के पास आकर जो कलियुग में भी 'गोदान' और यथाशक्ति दान करेगा, वे देवों के साथ आनन्दित होते रहेंगे।।४४।।

इस प्रकार सिंह राशिस्थ बृहस्पति के रहने पर जो जन एकाग्रमन से भक्तिपूर्वक स्नान कर अपने पितरों का तर्पण करेंगे, उनको नरक में रहने वाले पितर भी स्वर्ग में चले जाएंगे, साथ ही उसके स्वर्ग में रहने वाले पिता भी निःसंशय मोक्ष को प्राप्त कर सकेंगे।।४५-४६।।

त्वं ख्यातिं महतीं प्राप्य मुक्तिं यास्यसि शाश्वतीम्।
एवमुक्त्वाऽथ मुनयो ययुः कैलासपर्वतम्।
यत्राहमुमया सार्धं सदा तिष्ठामि सत्तमाः॥४७॥
ऊचुर्मां ते चमुनयो भवितारो द्विजोत्तमाः। कलौ त्वद्रूपिणः सर्वे जटामुकुटधारिणः।
स्वेचछया प्रेतवेषाश्च मिथ्यालिङ्गधराः प्रभो॥४८॥
तेषामनुग्रहार्थाय किंचिच्छास्त्रं प्रदीयताम्। येनास्मद्वंशजाः सव वर्तेयुः कलिपीडिताः॥४९॥
एवमभ्यर्थितस्तैस्तु पुराऽहं द्विजसत्तमाः। वेदक्रियासमायुक्तां कृतवानस्मि संहिताम्॥५०॥
निःश्वासाख्यां ततस्तस्यां लीना बाभ्रव्यशाण्डिलाः।
अल्पापराधाच्छ्रुत्वैव गता बैडालिका भवन्॥५१॥
मयैव मोहितास्ते हि भविष्यं जानता द्विजाः।
लौल्यार्थिनस्तु शास्त्राणि करिष्यन्ति कलौ नराः॥५२॥
निःश्वाससंहितायां हि लक्षमात्रं प्रमाणतः। सैव पाशुपती दीक्षा योगः पाशुपतस्त्विह॥५३॥
एतस्माद् वेदमार्गाद्धि यदन्यदिह जायते। तत् क्षुद्रकर्म विज्ञेयं रौद्रं शौचविवर्जितम्॥५४॥
ये रुद्रमुपजीवन्ति कलौ वैडालिका नराः। लौल्यार्थिनः स्वशास्त्राणि करिष्यन्ति कलौ नराः।
च्छुष्मरुद्रास्ते ज्ञेया नाहं तेषु व्यवस्थितः॥५५॥

इस प्रकार तुम महान् यश प्राप्त कर शाश्वत मोक्ष के भागी बनोगे। हे सज्ज्नों! इस प्रकार से कहते हुए मुनिगण कैलास पर्वत पर आ गए, जहाँ मैं उमा के साथ सदा निवास करता हूँ।।४७।।

फिर उन मुनियों ने मुझसे कहा कि हे प्रभो! कलियुग में समस्त श्रेष्ठ ब्राह्मण अपनी इच्छा से आपके समान जटा और मुकुट धारण करेंगे। वे प्रेत का वेष धारण कर मिथ्या लिङ्ग भी धारण करेंगे।।४८।।

अतःउनकी प्रसन्नतार्थ कोई शास्त्र उपलब्ध करायें, जिससे कलि से पीड़ित हमारे कुलजनों का जीवन निर्वाह होता रह सके।।४९।।

हे श्रेष्ठ द्विजों! पुरातन काल में उनके ही प्रार्थना करने के पश्चात् मैंने वेदक्रिया से युक्त संहिता की रचना किया।।५०।।

तत्पश्चात् निःश्वास नामक उस संहिता में वाभ्रव्य और शाण्डिल्य आदि लीन हो गये। थोड़ी-सी अपराध के कारण उस संहिता को सुनते ही वे वैतालिक व्रती हो गये।।५१।।

कलियुग में मेरी ही माया से सम्मोहित भविष्य को जानने वाले द्विजातीय मनुष्य धनलोभी होकर शास्त्रों की रचना किया करेंगे।।५२।।

उस निःश्वास संहिता में एक लक्ष श्लोकों का प्रमाण है। वही पाशुपति दीक्षा और पाशुपत योग है।।५३।।

यहाँ इस वेदमार्ग से ही जो अन्यान्य मार्ग उत्पन्न होगा, उसे रौद्र और शौच हीन क्षुद्रकर्म समझना चाहिए। कलियुग में जो रुद्रमार्ग का आश्रयण करेंगे, वे वैडालिक मनुष्य कहे जा सकेंगे। कलिकाल में धनलोलुप जन अपने शास्त्रों की रचना करेंगे। वे सभी मार्ग उच्छुष्मरुद्र अर्थात् क्षुद्ररुद्रमार्गी कहलायेंगे। मैं उनसे व्यवस्थित नहीं हूँ।।५४-५५।।

भैरवेणस्वरूपेण देवकार्ये यदा पुरा। नर्जितं तु मया सोऽयं संबन्धः क्रूरकर्मणाम्॥५६॥
क्षयं निनीषता दैत्यानट्टहासो मया कृतः। यःपुरा तत्र ये मह्यं पतिता अश्रुबिन्दवः।
असंख्यातास्तु ते रौद्रा भवितारो महीतले॥५७॥
उच्छुष्मनिरता रौद्राः सुरामांसप्रियाः सदा। स्त्रीलोलाः पापकर्माणः संभूता भूतलेषु ते॥५८॥
तेषां गौतमशापाद्धि भविष्यन्त्यन्वये द्विजाः। तेषां मध्ये सदाचारा ये ते मच्छासने रताः॥५९॥
स्वर्गं चैवापवर्गं च इति वै संशयात् पुरा। वैडालिकाऽो यास्यन्ति मम संततिदूषकाः॥६०॥
प्राग् गौतमाग्निना दग्धाः पुनर्मद्वचनाद् द्विजाः। नरकं तु गमिष्यन्ति नात्र कार्या विचारणा॥६१॥

रुद्र उवाच

एवं मया ब्रह्मसुताः प्रोक्ता जग्मुर्यथागतम्। गौतमोऽपि स्वकं गेहं जगामाशु परंतपः॥६२॥
एतद् वः कथितं विप्रा मया धर्मस्य लक्षणम्। एतस्माद् विपरीतो यः स पाषण्डरतो भवेत्॥६३॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे एकसप्ततितमोऽध्यायः॥७१॥
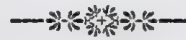
पुरातनकाल में जिस समय देव कार्य के निमित्त मैंने भैरव स्वरूप से नृत्य किया था, उसी समय क्रूर कर्मों से मेरा इस प्रकार का सम्बन्ध हो गया था।।५६।।

फिर दैत्यों के संहार करने की कामना से मैंने पुरातनकाल में वहाँ पर जो अट्हास किया था, उसी कारण जो भी अश्रुविन्दु गिरे थे, वे ही पृथ्वी पर रुद्रमार्ग के अनुयायी जन हो सकेंगे।।५७।।

वे लोग रुद्रमार्गानुयायी सदैव धूम्रपान आदि में निरत, सुरा और मांस के प्रेमी, स्त्रीलोलुप तथा पापमार्ग में रहकर कर्म करने वालों के रूप में पृथ्वी पर उत्पन्न हो सकेंगे।।५८।।

गौतम के शापवश उनके कुल में ब्राह्मण तो उत्पन्न हो सकेंगे, उनके बीच जो सदाचारी होगा, वे ही मेरे शासन में संलग्न रह सकेंगे।।५९।।

उनको ही स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त हो सकेंगे। किन्तु पूर्व सन्देह के कारण मेरे मार्ग का अनुसरण नहीं करने वाले वैडालव्रती और मेरी सन्तति को दूषित करने वाले मनुष्य की अधोगति होगी।।६०।।

इसमें कथमपि संशय नहीं कि सर्वप्रथम गौतम की शापाग्नि से दग्ध होकर और फिर मेरी वाणी के प्रभाव से द्विजगण नरक जा सकेंगे।।६१।।

रुद्र ने कहा कि मेरे द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर ब्रह्मपुत्र सप्तर्षिगण, जहाँ से आये हुए थे, वहाँ को चल गये।।६२।।

हे ब्राह्मणों! मैंने धर्म का इस प्रकार से लक्षण कहा है। फिर जो इसके विरुद्ध होता है, वह पाषण्ड में सम्मिलित रहने वाला है।।६३।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में त्रिदेवों में अभेदत्व, मोहशास्त्र प्रयोजन, गौतम आख्या, गोदावरी उत्पत्ति, गौतम का ब्राह्मणों को शाप नामक एकहत्तरवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥७१॥

❖❖❖

द्विसप्ततितमोऽध्यायः

प्रकृति-पुरुषयोवर्णनम्

श्रीवराह उवाच

सर्वज्ञं सर्वकर्त्तारं भवं रुद्रं पुरातनम्। प्रणम्य प्रयतोऽगस्त्यः पप्रच्छ परमेश्वरम्॥१॥

अगस्त्य उवाच

भवान् ब्रह्मा च विष्णुश्च त्रयमेतत् त्रयी स्मृता। दीपोऽग्निर्दीपसंयोगैः सर्वशास्त्रेषु सर्वतः॥२॥
कस्मिन् प्रधानो भगवान् काले कस्मिन्नधोक्षजः। ब्रह्मा वा एतदाचक्ष्व मम देव त्रिलोचन॥३॥

रुद्र उवाच

विष्णुरेव परं ब्रह्म त्रिभेदमिह पठ्यते। वेदसिद्धान्तमार्गेषु तन्न जानन्ति मोहिताः॥४॥
विशप्रवेशने धातुस्तत्तत्र ष्णु प्रत्ययादनु। विष्णुर्यः सर्वदेवेषु परमात्मा सनातनः॥५॥
योऽयं विष्णुस्तु दशधा कीर्त्यते चैकधा द्विजाः। स आदित्यो महाभाग योगैश्वर्यसमन्वितः॥६॥
स देवकार्याणि सदा कुरुते परमेश्वरः। मनुष्यभावमाश्रित्य स मां स्तौति युगे युगे।
लोकमार्गप्रवृत्त्यर्थं देवकार्यार्थसिद्धये॥७॥

अध्याय-७२

प्रकृति और पुरुष का निर्णय, त्रिदेवों में अभेदत्व

श्री भगवान् वराह ने कहा कि अगस्त्य द्वारा अतिशय विनम्रभाव से सर्वज्ञ, सर्वकर्त्ता, पुरातन, परमेश्वर, भव, रुद्र को प्रणाम करते हुए पूछा गया कि—॥१॥

अगस्त्य ने कहा कि आप, ब्रह्मा और विष्णु; इन तीन देवों को त्रयी कहा जाता है। अग्नि और दीप के संयोग से दीप में प्रकाश होता है। आप समस्त शास्त्रों में सर्वज्ञ हैं॥२॥

इस प्रकार कब आपकी प्रधानता होती है और कब भगवान् विष्णु अथवा ब्रह्मा प्रधान होते हैं? हे मेरे देव त्रिलोचन! यह मुझको बतलाने की कृपा करें॥३॥

रुद्र ने कहा कि विष्णु स्वरूप ही प्रधान हैं। वे ही परमब्रह्म हैं। वेद के सैद्धान्तिक मार्ग में उन परम ब्रह्म स्वरूप श्रीविष्णु का ही तीन प्रकार के स्वरूप भेद कहा गया है। अतः उसको नहीं जानने वाले मोहित हुआ करते हैं॥४॥

विश् धातु, जो प्रवेश करने के अर्थ में प्रयोग हुआ करता है, उस धातु से कर्त्ता के अर्थ में 'ष्णु' प्रत्यय के योग से 'विष्णु' शब्द उत्पन्न होता है, वे ही विष्णु समस्त देवों में प्रधान सनातन पुरुष परमात्मा हैं॥५॥

हे द्विजों! वे जो विष्णु कहे गए हैं, उनको दस और एक प्रकार का बतलाया गया है। वे महाभाग आदित्य योग के ऐश्वर्य से सुसम्पन्न हैं॥६॥

वे परमेश्वर सर्वदा देवताओं के प्रयोजन को सिद्ध करने में लगे रहते हैं। लोकमार्ग की प्रवृत्ति और देवकार्य की सिद्धि के लिए 'नररूप' धारण कर वे प्रत्येक युग में मेरी स्तुति किया करते हैं॥७॥

अहं च वरदस्तस्य द्वापरे द्वापरे द्विज। अहं च तं सदा स्तौमि श्वेतद्वीपे कृते युगे॥८॥
सृष्टिकाले चतुर्वक्त्रं स्तौमि कालो भवामि च। ब्रह्मा देवासुरा स्तौति मां सदा तु कृते युगे।
लिङ्गमूर्तिं च मां देवा यजन्ते भोकाङ्क्षिणः॥९॥
सहस्त्रशीर्षकं देवं मना तु मुमुक्षवः। यजन्ते यं स विश्वात्मा देवो नारायणः स्वयम्॥१०॥
ब्रह्मयज्ञेन ये नित्यं यजन्ते द्विजसत्तमाः। ते ब्रह्माणं प्रीणयन्ति वेदो ब्रह्मा प्रकीर्तितः॥११॥
नारायणः शिवो विष्णुः शंकरः पुरुषोत्तमः। एतैस्तु नामभिर्ब्रह्म परं प्रोक्तं सनातमन्।
तं च चिन्तामयं योगं प्रवदन्ति मनीषिणः॥१२॥
पशूनां शमनं यज्ञे होमकर्म च यद्भवेत्। तदोमिति च विख्यातं तत्राहं संव्यवस्थितः॥१३॥
कर्मवेदयुजां विप्र ब्रह्मा विष्णुर्महेश्वरः। वयं त्रयोऽपि मन्त्राद्या नात्र कार्या विचारणा॥१४॥
अहं विष्णुस्तथा वेदा ब्रह्म कर्माणि चाप्युत। एतत् त्रयं त्वेकमेव न पृथग् भावयेत् सुधीः॥१५॥
योऽन्यथा भावेयदेतत् पक्षपातेन सुव्रत। स याति नरकं घोरं रौरवं पापपूरुषः॥१६॥
अहं ब्रह्मा च विष्णुश्च ऋग्यजुः साम एव च। नैतस्मिन् भेदमस्यास्ति सर्वेषां द्विजसत्तम॥१७॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे द्विसप्ततितमोऽध्यायः॥७२॥

हे द्विजो! प्रत्येक द्वापर युग में मैं उन्हें वर प्रदान किया करता हूँ और कृतयुग में मैं श्वेतद्वीप में सदैव उनकी स्तुति किया करता हूँ॥८॥

सृष्टिकाल में काल का स्वरूप धारण कर मैं चतुर्मुख ब्रह्मा की स्तुति किया करता हूँ। फिर ब्रह्मा, देवता और असुर कृतयुग में सर्वदा मेरी स्तुति किया करते हैं एवं भोग करने की कामना वाले देवता भी सदा मेरी लिङ्गमूर्त्ति की पूजा किया करते हैं। इस तरह मोक्ष की कामना करने वाले जन मन से जिन हजारों मुख वाले देव की आराधना किया करते हैं, वे ही विश्वात्मा स्वयं नारायण देव हैं॥९-१०॥

हे द्विजश्रेष्ठ! जो जन नित्य ब्रह्मयज्ञ रूपात्मक यज्ञ किया करते हैं, वे ब्रह्मा को इस प्रकार से प्रसन्न किया करते हैं। ब्रह्मा को ही वेद भी कहा गया है। इस प्रकार से नारायण, शिव, विष्णु, शंकर, पुरुषोत्तम आदि नामों से सनातन परमब्रह्म का कथन किया जाता है। बुद्धिमान् जन उसे चिन्तामय योग कहा करते हैं। यज्ञ में जिन पशुओं का वध और हवन कार्य होते हैं, उसे 'ओम्' कहा जाता है। मैं उसमें विशेषता से स्थित रहने वाला हूँ॥११-१३॥

हे विप्रो! यहाँ यह ध्यान योग्य बात है कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर हम तीनों कर्म प्रतिपादक वेदों के सिद्धान्तों का अनुपालन करने वालें हेतु मन्त्र आदि के स्वरूप में स्थित हैं, इसमें संशय नहीं करना चाहिए। फिर यह कि मैं, विष्णु और वेद ये सभी ब्रह्मकर्म के विषय हैं। चूँकि ये तीनों एक ही तत्त्व हैं॥१४॥

अतः बुद्धिमान् पुरुष इन्हें अलग-अलग समझने की भावना को उत्पन्न ही न होने दें, तो अच्छा है॥१५॥

हे सुव्रत! पक्ष विशेष में लगाव के कारण, जो इनमें भेदात्मक अन्यान्य प्रकार की भावना करता है, वह पापीजन रौरव नरक में जाने को बाध्य है। हे श्रेष्ठ द्विजों! मैं, ब्रह्मा और विष्णु ही ऋग्, यजुः, साम आदि वेद के स्वरूप हैं। इन सब में कोई भी भेद नहीं है॥१६-७॥

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में प्रकृति और पुरुष का निर्णय, त्रिदेवों में अभेदत्व प्रतिपादक बहत्तरवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥७२॥

❖❖❖

त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

अथ रुद्रगीतासु वैराजादिवृत्त वर्णनम्

रुद्र उवाच

शृणु चान्यद् द्विजश्रेष्ठ कौतूहलसमन्वितम्। अपूर्वभूतं सलिले मग्नेन मुनिपुंगव॥१॥
ब्रह्मणाऽहं पुरा सृष्टः प्रोक्तश्च सृज वै प्रजाः। अविज्ञानसमर्थोऽहं निमग्नः सलिले द्विज॥२॥
तत्र यावत् क्षणं चैकं तिष्ठामि परमेश्वरम्। अङ्गुष्ठमात्रं पुरुषं ध्यायन् प्रयतमानसः॥३॥
तावज्जलात् समुत्तस्तुः प्रलयाग्निसमप्रभाः। पुरुषा दश चैकश्च तापयन्तोंशुभिर्जलम्॥४॥
मया पृष्टाः के भवन्तो जलादुत्तीर्य तेजसा। तापयन्तो जलं चेदं क्व वा यास्यथ संशत॥५॥
एवमुक्ता मयाते तु नोचुः किंचन सत्तमाः। एवमेव गतास्तूष्णीं ते नरा द्विजपुंगव॥६॥
ततस्तेषामनु महापुरुषोऽतीवशोभनः। स तस्मिन् मेघसंकाशः पुण्डरीकनिभेषणः॥७॥
तमहं पृष्टवान् कस्त्वं के चेमे पुरुषा गताः। किं वा प्रयोजनमिह कथ्यतां पुरुषर्षभ॥८॥

पुरुष उवाच

य एते वै गताः पूर्वं पुरुषा दीप्ततेजसः। आदित्यास्ते त्वरं यान्ति ध्याता वै ब्रह्मणा भव॥९॥

अध्याय-७३

वैराजवृत्तसहित रुद्र द्वारा विष्णु स्तुति और वर प्राप्ति

रुद्र ने कहा कि हे द्विजश्रेष्ठ! मुनि पुङ्गव! दूसरे एक पूर्वभूत कौतूहल से युक्त प्रसङ्ग को सुनो। जिस समय जल में निमग्न ब्रह्मा ने पुरातन काल में मुझको उत्पन्न किया और कहा कि 'तुम अब प्रजा का सृजन करो।' हे द्विज! अविज्ञान के वशीभूत प्रजा के सृजन में असक्षम होने से उस समय मैं जल में निमग्न हो गया।।१-२।।

फिर उस स्थान पर एकाग्र मन से जिस समय मैंने क्षणमात्र के लिए अंगुष्ठमात्र के लिए परमेश्वर स्वरूप पुरुष का ध्यान किया, उस समय प्रलयाग्नि के समान प्रभावान् ग्यारह पुरुष अपने तेज से जल को जलाते हुए प्रकट हो गए।।३-४।।

मैंने उनसे पूछ दिया कि इसी जल से उत्पन्न होकर इसी जल को अपने तेज से जलाने वाले आप सब कौन हैं और आप लोगों को जाना कहाँ है?, ये बतलायें।।५।।

हे सत्तम! मेरे पूछने पर भी वे सब कुछ नहीं बतलाये। हे द्विजश्रेष्ठ! वे सभी पुरुष उसी तरह से शान्तभाव से चलते बने।।६।।

तत्पश्चात् उन सब के पीछे से अत्यन्त सुन्दर, मेघ के समान वर्ण वाले और कमलनेत्र एक महापुरुष उसी जल में प्रकट हो गया।।७।।

उससे मैंने पूछ दिया कि 'आप कौन हैं? और ये सभी जाने वाले पुरुष कौन थे? आपका यहाँ पर क्या प्रयोजन है? हे पुरुष श्रेष्ठ! मुझसे यह आप बतायें।।८।।

पुरुष ने कहा कि हे शंकर! आगे जो दीप्ततेज सम्पन्न पुरुष गए हैं, वे सभी आदित्य हैं। ब्रह्मा के ध्यान करने के कारण वे शीघ्रता से चले गए।।९।।

सृष्टिं सृजति वै ब्रह्मा तदर्थं यान्त्यमी नराः। प्रतिपालनाय तस्यास्तु सृष्टेर्देव न संशयः॥१०॥

शम्भुरुवाच

भगवन् कथं जानीषे महापुरुषसत्तम। भवेति नाम्ना तत्सर्वं कथयस्व परो ह्यहम्॥११॥
एवमुक्तस्तु रुद्रेण स पुमान् प्रत्यभाषत। अहं नारायणो देवो जलशायी सनातनः॥१२॥
दिव्यं चक्षुर्भवतु वै तव मां पश्य यत्नतः। एवमुक्तस्तदा तेन यावद् पश्याम्यहं तु तम्॥१३॥
तावदङ्गुष्ठमात्रं तु ज्वलद्भास्करतेजसम्। तमेवाहं प्रपश्यामि तस्य नाभौ तु पङ्कजम्॥१४॥
ब्रह्माणं तत्र पश्यामि आत्मानं च तदङ्कतः। एवं दृष्ट्वा महात्मानं ततो हर्षमुपागतः।
तं स्तोतुं द्विजशार्दूल मतिर्मे समजायत॥१५॥
तस्य मूर्तौ तु जातायां स्तोत्रेणानेन सुव्रत। स्तुतो मया स विश्वात्मा तपसा स्मृतकर्मणा॥१६॥

रुद्र उवाच

नमोऽस्त्वनन्ताय विशुद्धचेतसे सरूपरूपाय सहस्रबाहवे।
सहस्ररश्मिप्रवराय वेधसे विशालदेहाय विशुद्धकर्मिणे॥१७॥
समस्तविश्वार्तिहराय शम्भवे सहस्रसूर्यानिलतिग्मतेजसे।
समस्तविद्याविधृताय चक्रिणे समस्तगीर्वाणनुते सदाऽनघ॥१८॥

ब्रह्मा सृष्टि करने में लगे हैं। इसीलिए ये पुरुष उस सृष्टि के परिपालन करने हेतु जा रहे हैं। हे देव! इसमें संशय नहीं करना चाहिए।।१०।।

शम्भु ने कहा कि हे श्रेष्ठ महापुरुष भगवन्! ये सब किस प्रकार ज्ञात है?मैं भव नाम का श्रेष्ठ पुरुष हूँ।।११।।

रुद्र के इस प्रकार से कहे जाने पर उस पुरुष ने भी उत्तर दिया कि मैं जलशायी सनातन नारायण देव हूँ।।१२।।

अब तुम्हें दिव्य दृष्टि मिल जाय। अतः अब तुम मेरी ओर देखो। फिर जैसे ही मैंने उसकी ओर देखने लगा।।१३।।

उसी क्षण मैं सूर्य के समान तेजवान् और प्रज्वलित अंगुष्ठ मात्र उसी पुरुष को देखा। उसकी नाभि में कमल था।।१४।।

वहीं मैंने ब्रह्मा को और उन्हीं के अंग में स्वयं को भी स्थित देखा। मैं महात्मा को ऐसे देखते हुए अपने को हर्षयुक्त अनुभव किया। हे द्विजश्रेष्ठ! उनकी स्तुति करने का विचार मुझमें उत्पन्न हुआ।।१५।।

हे सुव्रत! उस मूर्त्ति की उत्पत्ति होने पर मैंने तपस्या से उसके कर्म को स्मरण कर और इस स्तोत्र से उन विश्वात्मा की स्तुति करने लगा।।१६।।

रुद्र ने कहा कि विशुद्ध चित्त सम्पन्न, सरूपरूप, सहस्रबाहु, सहस्ररश्मिप्रवर, विशाल देह, विशुद्ध कर्म युक्त अनन्त वेधस् को नमस्कार है।।१७।।

सम्पूर्ण विश्व के दुःख को हरण करने वाले शम्भु, हजारों सूर्य और वायु के समान तीव्र तेजवान् सभी विद्याओं को धारण करने वाले चक्रधर और सभी देवताओं से नमस्कार कराने वाले, निष्पाप देव को निरन्तर नमस्कार है।।१८।।

अनादिदेवोऽच्युत शेषशेखर प्रभो विभो भूतपते महेश्वर।
मरुत्पते सर्वपते जगत्पते भुवः पते भुवनपते सदा नमः॥१९॥
जलेश नारायण विश्वशंकर क्षितीश विश्वेश्वर विश्वलोचन।
शशाङ्कसूर्याच्युत वीर विश्वगाप्रतर्क्यमूर्त्तेऽमृतमूर्तिरव्ययः॥२०॥
ज्वलद्हुताशार्चिविरुद्धमण्डल प्रपाहि नारायण विश्वतोमुख।
नमोऽस्तु देवार्त्तिहरामृताव्यय प्रपाहि मां शरणगतं सदाच्युत॥२१॥
वक्त्राण्यनेकानि विभो तवाहं पश्यामि मध्यस्थगतं पुराणम्।
ब्रह्माणमीशं जगतां प्रसूतिं नमोऽस्तु तुभ्यं तु पितामहाय॥२२॥
संसारचक्रभ्रमणैरनेकैः क्वचिद् भवान् देववरादिदेव।
सन्मार्गिभिर्ज्ञानविशुद्धसत्त्वैरुपास्यसे किं प्रलपाम्यहं त्वाम्॥२३॥
एकं भवन्तं प्रकृतेः परस्ताद् यो वेत्त्यसौ सर्वविदादिबोद्धा।
गुणा न तेषु प्रसभं विभेद्या विशालमूर्तिर्हि सुसूक्ष्मरूपः॥२४॥
निर्वाक्यो निर्मनो विगतेन्यिोऽसि कर्माभवान्नो विगतैककर्मा।
संसारवांस्त्वं हि न तादृशोऽसि पुनः कथं देववरासि वेद्यः॥२५॥

हे अच्युत्! आप अनादि देव हैं। हे शेष नाग के चिह्न युक्त व्यापक प्रभो! भूतपति, महेश्वर, मरुत्पति, सर्वपति, जगत्पति, पृथ्वीपति, लोकपति! आपको नमस्कार है।।१९।।

हे जलेश! नारायण, विश्वशंकर, क्षितीश, विश्वेश्वर, विश्वलोचन, चन्द्र और सूर्य के स्वरूप, अच्युत, वीर, विश्वव्यापी, अप्रतर्क्य मूर्त्ति अमृतमूर्त्ति, अजय, प्रज्वलित अग्निशिखा के विपरीत शीतल तेज मण्डल वाले, सर्वदिक्मुख वाले नारायण, मेरी रक्षा करो। हे देवों के दुःख हरण करने वाले, अमृत, अव्यय और अच्युत मेरे ऐसे शरणागत की निरन्तर रक्षा करें।।२०-२१।।

हे विभो! मैं आपके अनेक मुखों को और आपके मध्य में स्थित जगत् की उत्पत्ति करने वाले पुरातन ईश ब्रह्मा को देख रहा हूँ। आप पितामह को प्रणाम है।।२२।।

हे देवश्रेष्ठ आदिदेव! आप कभी-कभी विविध संसार चक्र के भ्रमणों से लक्षित होते हैं। सन्मार्ग पर चलने वाले और ज्ञान से निर्मल चित्तवाले पुरुष आपकी उपासना किया करते हैं। मैं आपकी क्या स्तुति कर सकता हूँ?।।२३।।

प्रकृति से परे स्थित रहने वाले आप एक अद्वितीय को जानता हूँ, वह सर्वज्ञ और आदि ज्ञानी है। उन ज्ञानियों पर गुणों का प्रभाव बलपूर्वक नहीं हो सकता है। आप विशालमूर्त्ति और अत्यन्त सूक्ष्म रूप वाले हैं।।२४।।

आप निश्चय ही वाक्यरहित, मनविहीन और इन्द्रियों से रहित हैं। आपसे कर्म नहीं होते। आप एकमात्र कर्म बन्धन से रहित हैं। संसार के दूसरे पदार्थ कार्य कारण रूप से जिस प्रकार स्थित हैं, उसी प्रकार आप संसारवान् नहीं हैं। अतः हे देवश्रेष्ठ! आपको कैसे जाना जा सकता है।।२५।।

मूर्तामूर्तं त्वतुलं लभ्यते ते परं वपुर्देव विशुद्धभावैः।
संसारविच्छित्तिकरैर्यजद्भिरतोऽवसीयेत चतुर्भुजस्त्वम्॥२६॥
परं न जानन्ति यतो वपुस्ते देवादयोऽप्यद्भुतकारणं तत्।
अतोऽवतारोक्ततनुं पुराणमाराधयेयुः कमलासनाद्यः॥२७॥
न ते वपुर्विश्वसृगब्जयोनिरेकान्ततो वेद महानुभावः।
परं त्वहं वेद्मि कविं पुराणं भवन्तमाद्यं तपसा विशुद्धः॥२८॥
पद्मासनो मे जनकः प्रसिद्धश्चैतत् प्रसूतावसकृत्पुराणैः।
संबोध्यते नाथ न मद्विधोऽपि विदुर्भवन्तं तपसा विहीनाः॥२९॥
ब्रह्मादिभिस्तत्प्रवरैरबोध्यं त्वां देव मूर्खाः स्वमनन्तनत्या।
प्रबोधमिच्छन्ति न तेषु बुद्धिरुदारकीर्त्तिष्वपि वेदहीनाः॥३०॥
जन्मान्तरैर्वेदविदां विवेकबुद्धिर्भवेन्नाथ तव प्रसादात्।
त्वल्लब्धाभस्य न मानुषत्वं न देवगन्धर्वगबतः शिवं स्यात्॥३१॥
त्वं विष्णुरूपोऽसि भवान् सुसूक्ष्मः स्थूलोऽसि चेदं कृतकृत्यतायाः।
स्थूलः सुसूक्ष्मः सुलभोऽसि देव त्वद्बाह्यवृत्त्या नरके पतन्ति॥३२॥

हे देव! विशुद्ध मन वाले आपके अतुलनीय मूर्त्त और अमूर्त्त श्रेष्ठ स्वरूप को प्राप्त करते हैं। अतएव विश्व का विच्छेद करने वाले उपासक आपको चतुर्भुज स्वरूप निर्धारित करते हैं।।२६।।

जहाँ से अद्भुत कारण स्वरूप आपके उस श्रेष्ठ स्वरूप को ब्रह्मा आदि देवता नहीं जानते, इसीलिए ही वे आपके अवतार के लिए कहे गए पुरातन स्वरूप की आराधना करते हैं।।२७।।

विश्व की सर्जना करने वाले महानुभाव कमलासनस्थ ब्रह्मा आपके स्वरूप को पूर्णतः नहीं जानते। किन्तु तप के कारण शुद्ध हुआ मैं आदिकालीन पुरातन कवि आपको जानता हूँ।।२८।।

कमलासन ब्रह्मा मेरे जनक के रूप में प्रसिद्ध हैं। इस उत्पत्ति के प्रसङ्ग में पुराण बहुत बार ऐसे क्रम का प्रतिपादन करते हैं। किन्तु, हे नाथ! मेरे समान जन भी यह नहीं समझ पाते। तथापि तपस्या से हीन आपके कृपापात्र भक्त आपको जानते हैं।।२९।।

श्रेष्ठ ब्रह्मादि देवगण आपके स्वरूप को नहीं जान पाते। किन्तु हे देव! मूर्खजन भी अनन्त नमस्कार द्वारा आपको जानना चाहते हैं। उनमें बुद्धि नहीं है। अत्यन्त यशस्वी जन भी ज्ञानहीन होते हैं।।३०।।

हे नाथ! आपकी कृपा से वेदज्ञों को भी अनेक जन्मों में बुद्धि अर्थात् वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति हो पाती है। आपको प्राप्त करने वालों को मनुष्यत्व की प्राप्ति नहीं होती है। देव और गन्धर्वों की गति भी कल्याणकारक नहीं है।।३१।।

आप अत्यन्त सूक्ष्म, स्थूल और विष्णु स्वरूप हैं। आपका यह स्वरूप कृतकृत्यता का कारण है। हे देव! अयत्न्त सूक्ष्म होकर भी आप स्थूल रूप से अत्यन्त सुलभ होते हैं। अतः आपसे बहिर्मुख चित्तवृत्ति से जन नरक में ही जाते हैं।।३२।।

किमुच्यते वा भवति स्थितेऽस्मिन् खात्म्येन्दुवह्न्यर्कमहीमरुद्भिः।
तत्त्वैः सतोयैः समरूपधारिण्यात्मस्वरूपे विततस्वभावे॥३३॥
इति स्तुतिं मे भ्रवन्ननन्त जुषस्व भक्तस्य विशेषतश्च।
सृष्टिं सृजस्वेति तवोदितस्य सर्वज्ञतां देहि नमोऽस्तु विष्णो॥३४॥
चतुर्मुखो यो यदि कोटिवक्त्रो भवेन्नरः क्वापि विशुद्धचेताः।
स ते गुणानामयुतैरनेकैर्वदेत् तदा देववर प्रसीद॥३५॥
समाधियुक्तस्य विशुद्धबुद्धेस्त्वद्भावभावैकमनोऽनुगस्य।
सदा हृदिस्थोऽसि भवान्नमस्ते न सर्वगस्यास्ति पृथग्व्यवस्था॥३६॥
इति प्रकाशं कृतमेतदीश स्तवं मया सर्वगतं विबुद्ध्वा।
संसारचक्रक्रममाणयुक्त्या भीतं पुनीह्यच्युत केवलत्वम्॥३७॥

श्रीवराह उवाच

इति स्तुतस्तदा देवो रुद्रेणामितितेजसा। उवाच वाक्यं संतुष्टो मेघगम्भीरनिःस्वनः॥३८॥

विष्णुरुवाच

वरं वरय भद्रं ते देव देव उमापते। न भेदश्चावयोर्देव एकावावामुभावपि॥३९॥

रुद्र उवाच

ब्रह्मणाऽहं नियुक्तस्तु प्रजाः सृज इति प्रभो। तत्र ज्ञानं प्रयच्छस्व त्रिविधं भूतभावनम्॥४०॥

विस्तृत स्वभाव वाले इस आत्म स्वरूप के स्थित रहने पर जल सहित वायु, आकाश, चन्द्र, सूर्य, अग्नि और पृथ्वी इन सभी तत्त्वों के समान रूप धारण करने वाले आपके विषय में क्या-क्या कहा जाय?॥३३॥

हे अनन्त भगवन्! मुझ भक्त की इस स्तुति को विशेष रूप में स्वीकार करें। 'सृष्टि उत्पन्न करो' इस प्रकार की आपकी आज्ञा प्राप्त करने वाले मुझको सर्वज्ञता प्रदान करें। हे श्रीविष्णु! आपको प्राणाम है॥३४॥

चतुरानन ब्रह्मा अथवा कोटि कोटि मुख वाला विशुद्ध चित्त वाला पुरुष यदि अनेक हजार वर्ष तक आपके गुणों का वर्णन करे, तभी कुछ नहीं कहा जा सकता है। हे श्रेष्ठ देव! आप प्रसन्न हों॥३५॥

समाधि युक्त, विशुद्ध बुद्धि और आपकी अनन्य भक्ति भावना से युक्त मन का अनुगमन करने वालें के हृदय में आप निरन्तर निवास करते हैं। आपको प्रणाम है। सर्वव्यापक आपकी अपना पृथक् व्यवस्था नहीं है॥३६॥

हे ईश! सर्वव्यापक आपको जानकर मैंने यह स्तुति प्रकाशित की है। हे अच्युत् / संसार चक्र के भ्रमण में पड़ने से डरने वालों को एकमात्र आप ही पवित्र करते हैं॥३७॥

श्री वराह भगवान् ने कहा कि तत्पश्चात् अतिशय तेजवान् रुद्र की ऐसी स्तुति करने पर मेघ समान गम्भीर वाणी वाले श्रीविष्णु देव ने सन्तुष्ट होकर यह वाक्य कहा—॥३८॥

विष्णु ने कहा कि हे देवाधिदेव उमापति! वर माँगो, आपका कल्याण हो। हे देव! हम दोनों में भेद नहीं है। हम दोनों एक ही हैं॥३९॥

रुद्र ने कहा कि हे प्रभो! ब्रह्मा ने मुझे प्रजा की सर्जना करने का आदेश दिया है। इसके लिए प्राणियों को भावित करने वाला त्रिविध ज्ञान मुझे प्रदान करें॥४०॥

विष्णुरुवाच

सर्वज्ञस्त्वं न संदेहो ज्ञानराशिः सनातनः। देवानां च परं पूज्यः सर्वदा त्वं भविष्यसि॥४१॥
एवमुक्तः पुनर्वाक्यमुवाचोमापतिर्मुदा। अन्यं देहि वरं देव प्रसिद्धं सर्वजन्तुषु॥४२॥
मूर्तो भूत्वा भवानेव मामाराधय केशव। मां वहस्व च देवेश वरं मत्तो गृहाण च।
येनाहं सर्वदेवानां पूज्यात् पूज्यतरो भवे॥४३॥

विष्णुरुवाच

देवकार्यावतारेषु मानुषत्वमुपागतः। त्वामेवाराधयिष्यामि त्वं च मे वरदो भव॥४४॥
यत् त्वयोक्तं वहस्वेति देवदेव उमापते। सोऽहं वहामि त्वां देवं मेघो भूत्वा शतं समाः॥४५॥
एवमुक्त्वा हरिर्मेघः स्वयं भूत्वा महेश्वरम्।
उज्जहार जलात् तस्माद् वाक्यं चेदमुवाच ह॥४६॥
य एते दश चैकश्च पुरुषाः प्राकृताः प्रभो। ते वैराजा यमहीं याता आदित्या इति संज्ञिताः॥४७॥
मदंशो द्वादशो यस्तु विष्णुनामा महीतले। अवतीर्णो भवन्तं तु आराधयति शंकर॥४८॥
एवमुक्त्वा स्वकादंशात् सृष्ट्वाऽऽदित्यं घनं तथा।
नारायणः शब्दवच्च न विद्मः क्व लयं गतः॥४९॥

विष्णु ने कहा कि इसमें संशय नहीं है कि तुम सर्वज्ञ, ज्ञान राशि और सनातन हैं। तुम सदैव देवों द्वारा पूजित होंगे।।४१।।

इस प्रकार से कहे जाने के बाद उमापति ने पुनःप्रसन्नता से कहा कि हे देव! सभी प्राणियों में प्रसिद्ध अन्य वर भी मुझे प्रदान करें।।४२।।

हे केशव! आप मूर्तरूप धारण कर मेरी उपासना करें, मुझे वहन करें तथा मुझसे वर ग्रहण करें, जिससे मैं समस्त देवों में पूज्य से भी अधिक पूज्य हो सकता हूँ।।४३।।

विष्णु ने कहा कि देवों के कार्य हेतु होने वाले अपने अवतारों में मनुष्य बनकर मैं आपकी ही उपासना किया करूँगा।।४४।।

हे देव उमापति! आपने जो यह कहा कि 'वहन करो', तो मैं आप देव को मेघ बन कर सैकड़ों वर्षों तक वहन कर सकूँगा।।४५।।

इस प्रकार से कहने के बाद हरि ने स्वयं मेघ का रूप धारण कर उस जल से महेश्वर को बाहर निकाला और यह वाक्य भी कहा—।।४६।।

हे प्रभो! ये जो एकादश आदित्य नाम वाले प्राकृत पुरुष हैं, वे पृथ्वी पर जाकर 'वैराज' होंगे।।४७।।

हे शंकर! मेरा ही अंश रूप विष्णु नाम से बारहवाँ पुरुष पृथ्वी पर अवतीर्ण होगा, जो आपकी सदा आराधना किया करेगा।।४८।।

इस प्रकार से कहने के बाद अपने अंश से आदित्य और घन की सर्जना कर नारायण शब्द के समान कहाँ लीन हो गए इसे हममें से कोई नहीं जानते।।४९।।

रुद्र उवाच

एवमेष हरिर्देवः सर्वगः सर्वभावनः। वरदोऽभूत् पुरा मह्यं तेनाहं दैवतैर्वरः॥५०॥
नारायणात् परो देवो न भूतो न भविष्यति। एतद् रहस्यं वेदानां पुराणानं च सत्तम।
मया वः कीर्तितं सर्वं यथा विष्णुरिहेज्यते॥५१॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे त्रिसप्ततितमोऽध्यायः॥७३॥

चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

अथ रुद्रगीतासु भुवनकोशवर्णनम्

श्रीवराह उवाच

पुनस्ते ऋषयः सर्वे तं पप्रच्छुः सनातनम्। रुद्रं पुराणपुरुषं शाश्वतं ध्रुवमव्ययम्।
विश्वरूपमजं शंभुं त्रिनेत्रां शूलपाणिनम्॥१॥

ऋषय ऊचुः

त्वं परः सर्वदेवानामस्माकं च सुरेश्वर। पृच्छाम तेन त्वां प्रश्नमेकं तद् वक्तुमर्हसि॥२॥

रुद्र ने कहा कि इस तरह सर्वव्यापक, सर्वभावन और देवों में श्रेष्ठ इन श्रीहरि ने पुरातन काल में मुझे वर प्रदान किया था।।५०।।

अतः नारायण से श्रेष्ठ देव न हुआ और न होगा। हे साधु! जैसे श्रीविष्णु की आराधना-उपासना की जाती है, मैंने आप लोगों से वेदों और पुराणों का वह सम्पूर्ण रहस्य कह सुनाया है।।५१।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में वैराजकृत सहित रुद्र द्वारा विष्णु स्तुति और वर प्राप्ति नामक तिहत्तरवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥७३॥

अध्याय-७४

भुवनकोश, प्रियव्रत चरित्र, द्वीप वर्षादि वर्णन

श्री वाराह भगवान् ने कहा कि उन समस्त ऋषियों ने फिर से उन सनातन, अव्यय, शाश्वत, ध्रुव, विश्वरूप, शूलपाणि, त्रिनेत्र, अज, पुराणपुरुष, शम्भु रुद्र से पूछ दिया।।१।।

ऋषियों ने पूछा कि हे सुरेश्वर! आप समस्त देवताओं और हम सबमें श्रेष्ठ हैं। अतः हम आपसे एक जिज्ञासा करना चाहते हैं, उसको बतलायें।।२।।

भूमिप्रमाणसंस्थानं पर्वतानां च विस्तरम्। समुद्राणां नदीनां च ब्रह्माण्डस्य च विस्तरम्।
अस्माकं ब्रूहि कृपया देवदेव उमापते।।३।।

रुद्र उवाच

सर्वेष्वेव पुराणेषु भूर्लोकः परिकीर्त्यते। ब्रह्मविष्णुभवादीनां वायव्ये च सविस्तरम्।।४।।
इदानीं च प्रवक्ष्यामि समासाद् वः क्षमान्तरम्। तन्निबोधत धर्मज्ञा गदतो मम सत्तमाः।।५।।

योऽसौ सकलविद्यावबोधितपरमात्मरूपी विगतकल्मषः परमाणुरचिन्त्यात्मा नारायणः सकललोकालोकव्यापी पीताम्बरोरुवक्षः क्षितिधरो गुणतो मुख्यतस्तु अणुमहद्दीर्घ-ह्रस्वमकृशमलोहितमित्येवमाद्योपलिक्षतविज्ञानमात्ररूपम्। स भगवांस्त्रिप्रकारः सत्त्व-रजस्तमोद्रिक्तः सलिलं ससर्ज। तच्च सृष्ट्वानादिपुरषः परमेश्वरो नारायणः सकलजगन्मयः सर्वमयो देवमयो यज्ञमय आपोमय आपोमूर्त्तिर्योगनिद्रया सुप्तस्य तस्य नाभौ सदब्जं निःससार। तस्मिन्सकलवेदनिधिरचिन्त्यात्मा परमेश्वरो ब्रह्मा प्रजापतिरभवत्।

स च सनकसनन्दनसनत्कुमारादीन् ज्ञानधर्मिणः पूर्वमुत्पाद्य पश्चान्मनुं स्वायंभुवं मरीच्यादीन् दक्षान्तान् ससर्ज। यः स्वायंभुवो मनुर्भगवता सृष्टस्तस्मादारभ्य भुवनस्यातिविस्तरो वर्ण्यते।

तस्य च मनोर्द्वौ पुत्रौ बभूवतुः प्रियव्रतोत्तानपादौ। प्रियव्रतस्य दश पुत्रा बभूवुः आग्नीघ्रोऽग्निबाहुर्मेधो मेधातिथिर्ध्रुवो ज्योतिष्मान् द्युतिमान् हव्यवपुष्मत्सवनान्ताः।

हे देवाधिदेव उमापति! कृपया हम सबको भूमि का प्रमाण और उसकी स्थिति, पर्वतों का विस्तार बतलाते हुए समुद्रों, नदियों और ब्रह्माण्ड का विस्तार वर्णन करें।।३।।

रुद्र ने कहा कि समस्त पुराणों में भूः लोक का वर्णन उपलब्ध है। फिर वायुपुराण में ब्रह्मा, विष्णु और शिव के लोकों का विस्तार भी दिया गया है। इस समय मैं आप सबको पृथ्वी का विस्तार कहता हूँ। हे धर्मज्ञ सत्तम! मेरे द्वारा कहा जा रहा उस प्रसङ्ग को ध्यान से सुनो।।४-५।।

सभी विद्याओं से ज्ञान करने के योग्य परमात्मा के स्वरूप, कल्मषहीन, परमाणु स्वरूप, अचिन्त्य, समस्त लोक और अलोक में व्याप्त रहने वाला, पीताम्बरधारी, विशाल वक्षःस्थल से युक्त, क्षितिधर, गुण से मुख्य रूप से अणु, महत्, दीर्घ, ह्रस्व, अकृत, अलोहित आदि-आदि विशेषणों द्वारा उपलक्षित विज्ञान स्वरूप, ऐसे जो नारायण हैं, उन भगवान् ने ही सत्त्व, रज और तमोगुण के आधिक्य से सर्वप्रथम जल की सर्जना की।

जल की सृजना करने के बाद अनादि पुरुष परमेश्वर, सकल जगन्मय, सर्वमय, यज्ञमय, जलमय, और जलमूर्त्ति नारायण योग निद्रावश शयन करने लग गये। फिर उनकी नाभि में से सत्स्वरूप कमल प्रकट हो गये। उस पर समस्त वेदनिधि अचिन्त्यात्मा परमेश्वर प्रजापति ब्रह्मा प्रकट हो गये।

फिर उन्होंने सनक, सनन्दन, सनत्कुमार आदि ज्ञानधर्म सम्पन्नों की सर्वप्रथम उत्पत्ति की। तत्पश्चात् स्वयाम्भुव मनु और मरीचि आदि दक्षों तक को उत्पन्न किया।

भगवान् प्रजापति ने जिन स्वायम्भुव मनु को उत्पन्न किया, उनसे आरम्भ कर संसार के अत्यन्त विस्तार के प्रमााण का वर्णन प्राप्त होता है।

उन स्वायम्भुव मनु के प्रियव्रत और उत्तानपाद नाम से दो पुत्र उत्पन्न हुए। फिर प्रियव्रत को भी दस पुत्र हुए जिनके नाम हैं—आग्नीघ्र, अग्निबाहु, मेध, मेधातिथि, ध्रुव, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान्, हव्य, वपुष्मत्, सवन आदि

स च प्रियव्रतः सप्तद्वीपेषु सप्त पुत्रान् स्थापयामास। तत्र चाग्नीध्रं जम्बूद्वीपेश्वरं चक्रे। शाकद्वीपेश्वरं मेधातिथिं कुशे ज्योतिष्मन्तं क्रौञ्चे द्युतिमन्तं शाल्मले वपुष्मन्तं गोमेदस्येश्वरं हव्यं पुष्कराधिपतिं सवनमिति। पुष्करेशस्यापि सवनस्य द्वौ पुत्रौ महावीतधातकी भवेताम्॥ तयोर्देशो गोमेदश्च नाम्ना व्यवस्थितौ।

धातकेर्धातकीखण्डं कुमुदस्य च कौमुदम्। शाल्मलाधिपतेरपि वपुष्मन्तस्य त्रयः पुत्राः सकुशवैद्युतजीमूतनामानः।

सकुशस्य सकुशनामा देशः वैद्युतस्य वैद्युतः जीमूतस्य जीमूत इति एते शाल्मलेर्देशा इति।

तथा च द्युतिमतः सप्त पुत्रकाः कुसलो मनुगोष्ठौष्णः पीवरोद्यान्धकारकमुनिदुन्दुभिश्चेति। तन्नाम्ना क्रौञ्चे सप्त महादेशनामानि।

कुशद्वीपेश्वरस्यापि ज्योतिष्मतः सप्तैव पुत्रास्तद्यथा उद्भिदो वेणुमांश्चैव रथोपलम्बनो धृतिः प्रभाकरः कपिल इति। तन्नामान्येव वर्षाणि द्रष्टव्यानि शाकाधिपस्यामि सप्त पुत्रा मेधातिथेस्तद्यथा शान्तभयशिशिरसुखोदयंनन्दशिवक्षेमकध्रुवा इति एते सप्त पुत्राः। एतन्नामान्येव वर्षाणि।

अथ जम्बूद्वीपेश्वरस्यापि आग्नीध्रस्य नव पुत्रा बभूवुः। तद्यथा नाभिः किंपुरुषो हरिवर्ष इलावृतो रम्यको हिरमयः कुरुर्भद्राश्वः केतुमालश्चेति। एतन्नामान्येव वर्षाणि। नाभेर्हेमवन्तं

फिर उन प्रियव्रत ने सप्तद्वीपों में अपने सात पुत्रों को प्रतिष्ठापित किया। उनमें आग्नीध्र को जम्बूद्वीप का राजा बनाया गया, मेधातिथि को शाकद्वीप का, ज्योतिष्मान् को कुशद्वीप का, और सवन को पुष्कर द्वीप का राजा बनाया गया। पुष्कर द्वीप के राजा सवन के महावीत और घातकी नाम से दो पुत्र उत्पन्न हुए। गोमेद के नाम से उनके देशों की व्यवस्थापना की गई।

जिसमें घातकी को धातकी खण्ड और कुमुद को कुमुद खण्ड नाम का देश प्राप्त हुआ। उनके शाल्मलाधिपति वपुष्मान् के भी तीन पुत्र सकुश, वैद्युत और जीमूत नाम से हुए थे।

उनमें से सकुश को सकुश नाम का देश, वैद्युत को वैद्युत नामक देश और जीमूत को जीमूत नामक देश प्रदान किया गया। इतने शाल्मलि देश के नाम भी जानना चाहिए।

एवम्प्रकार से द्युतिमान् को सात पुत्र थे। जिनके नाम हैं—कुशल, मनुगोष्ठ, औष्ण, पीवरोद्य, अन्धकारक, मुनि और दुन्दुभि। उन्हीं के नाम से क्रौञ्चद्वीप में सात महादेशों के नाम भी हैं।

फिर कुशद्वीप के राजा ज्योतिष्मान् के भी पूर्ववत् सात पुत्र हुए, जिनके नाम हैं—उद्भिद्, वेणुमान, रथ, उपलम्बन, धृति, प्रभाकर और कपिल। उन पुत्रों के नाम से ही उनके देशों (वर्षों) के नाम जानना चाहिए। वहीं पर शाकद्वीप के राजा मेधातिथि को भी सात पुत्र क्रम से शान्तभय, शिशिर, सुखोदय, नन्द, शिव, क्षेमक, और ध्रुव नाम से हुए थे। इन्हीं के नाम से शाकद्वीप के सात देश या वर्ष के नाम भी प्रसिद्ध थे।

एतदनन्तर जम्बूद्वीप के अधिपति आग्नीध्र को नौ पुत्र क्रम से नाभि, किम्पुरुष, हरिवर्ष, इलावृत, रम्यक, हरिमय, कुरु, भद्राश्व और केतुमाल हुये। जिनके नाम पर ही इनके वर्ष भी प्रसिद्ध हुए। जिन्हें इस तरह कहा गया

हेमकूटं किंपुरुषं नैषधं हरिवर्ष मेरुमध्यमिलावृतं नीलं रम्यकं श्वेतं हिरणमयं उत्तरं च शृङ्गवतः कुरवो माल्यवन्तं भद्राश्वं गन्धमादनं केतुमालमिति। एवं स्वायंभुवेऽन्तरे भुवनप्रतिष्ठा।

कल्पे कल्पे चैवमेव सप्त सप्त पार्थिवैः क्रियते भूमेः पालनं व्यवस्था च। एष स्वभावः कल्पस्य सदा भवतीति।

अत्र नाभेः सर्गं कथयामि। नाभिर्मेरुदेव्यां पुत्रमजनयद् ऋषभनामानं तस्य भरतो जज्ञे पुत्रश्च तावदग्रजः। तस्य भरतस्य पिता ऋषभो हिमाद्रेर्दक्षिणं वर्षमदाद्भारतं नाम। भरतस्यापि पुत्रः सुमतिर्नामा। तस्य राज्यं दत्त्वा भरतोऽपि वनं ययौ।

सुमतेस्तेजस्तत्पुत्रः सत्सुर्नामा। तस्यापीन्द्युम्नो नाम। तस्यापि परमेष्ठी तस्यापि प्रतिहर्त्ता तस्य निखातः निखातस्य उन्नेता उन्नेतुरप्यभावस्तस्योद्गाता तस्य प्रस्तोता प्रस्तोतुश्च विभुः विभोः पृथुः पृथोरनन्तः अनन्तस्यापि गयः गयस्य नयस्तस्य विराटः तस्यापि महावीर्यस्ततः सुधीमान् धीमतो महान् महतो भौमनो भौमनस्य त्वष्टा त्वष्टुर्विरजाः तस्य राजो राजस्य शतजित्।

तस्य पुत्रशतं जज्ञे तेनेमा वर्द्धिताः प्रजाः। तैरिदं भारतं वर्षं सप्तद्वीपं समाङ्कितम्॥६॥

है। हिमालय के नजदीक किम्पुरुष, नैषध पर्वत के समीप हरिवर्ष, मेरु मध्य इलावृत, नीलगिरि के पास रम्यक वर्ष, श्वेतगिरि के पास हिरण्मय वर्ष, शृङ्गवान् पर्वत के पास कुरुवर्ष, माल्यान् के पास भद्राश्व वर्ष और गन्धमादन पर्वत के पास केतुमाल वर्ष स्थित थे।

इस प्रकार स्वायम्भुव मन्वन्तर में सात-सात राजाओं द्वारा भूमिपालन की व्यवस्था की गई थी। प्रत्येक कल्प का यह सनातन स्वभाव जानना चाहिए।।

एतदनन्तर आगे नाभि के सर्ग (सृष्टि) को बतलाया जा रहा है। नाभि से मेरू देवी से ऋषभ नामक पुत्र को उत्पन्न किया। उसके भी भरत नामक ज्येष्ठ पुत्र थे। भरत के पिता ऋषभ ने उसे हिमालय के दक्षिण में भारत नामक देश आवहित किया। फिर उस भरत को भी सुमति नाम से एक पुत्र हुआ। उसको राज्य प्रदान कर भरत भी वन में चले गये।

उस सुमति का पुत्र तेजस् था, उसे भी सत्सु नामक पुत्र हुआ। फिर उस सत्सु का पुत्र इन्द्रद्युम्न नाम का था। उसका पुत्र परमेष्ठी, उसका पुत्र परिहर्ता, उसका पुत्र निखात, निखात का पुत्र उन्नेता, उन्नेता का पुत्र अभाव, उसका पुत्र उद्गाता, उसका पुत्र प्रस्तोता, उसका पुत्र विभु, उसका पुत्र पृथु, पृथु का पुत्र अनन्त, उस अनन्त का पुत्र गय, उस गय का पुत्र नय, उंस नय का पुत्र विराट, उसका पुत्र महावीर्य,उसका पुत्र सुधीमान्, सुधीमान् कापुत्र महान्, महान् को भौमन, भौमन को त्वष्टा, त्वष्टा का विरज पुत्र हुआ। फिर उस विरज को राज और उस राज को शतजित् नामक पुत्र हुआ।

उस शतजित् के सौ पुत्र हुये। उसने इस प्रकार की अतिशय वृद्धि की। वे ही भारत वर्ष को सात द्वीपों में चिह्नित करने का ठोस प्रयास किया।।६।।

तेषां वंशप्रसूत्या तु भुक्तेयं भारती प्रजा। कृतेत्रेतादियुक्त्या तु युगाख्या ह्येकसप्ततिः॥७॥
भुवनस्य प्रसङ्गेन मन्वन्तरमिदं शुभम्। स्वायंभुवं च कथितं मनोर्द्वीपान्निबोधत॥८॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे चतुःसप्ततितमोऽध्यायः॥७४॥

पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

अथ भुवनकोशे जम्बूद्वीपादि वर्णनम्

रुद्र उवाच

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि जम्बूद्वीपं यथातथम्। संख्यां चापि समुद्राणां द्वीपानां चैव विस्तरम्॥१॥
यावन्ति चैव वर्षाणि तेषु नद्यश्च याः स्मृताः। महाभूतप्रमाणं च गतिं चन्द्रार्कयोः पृथक्॥२॥
द्वीपभेदसहस्राणि सप्तस्वन्तर्गतानि च। न शक्यन्ते क्रमेणेह वक्तुं यैर्विततं जगत्॥३॥
सप्तद्वीपान् प्रवक्ष्यामि चन्द्रादित्यग्रहैः सह। येषां मनुष्यास्तर्केण प्रमाणानि प्रचक्षते॥४॥
अचिन्त्याः खलु ये भवा न तांस्तर्को साधयेत्। प्रकृतिभ्यः परं यच्च तदचिन्त्यं विभाव्यते॥५॥

उनके वंश की सन्ततियों द्वारा भारत वर्ष की इस प्रजा का भोग किया गया। इस प्रकार भुवनसर्ग के विषय में कृत और त्रेता आदि युग के क्रम से चार युगों की इकहत्तर आवृत्ति को शुभ मन्वन्तर कहा गया है। यहाँ स्वायम्भुव मनु के काल में इन के बारे में बतलाया गया, जानना चाहिए।।७-८।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में भुवनकोश, प्रियव्रत चरित्र, द्वीप वर्षादि वर्णन चौहत्तरवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥७४॥

अध्याय–७५

भुवनकोश-सुमेरु और जम्बूद्वीप वर्ण-विभाग आदि वर्णन

रुद्र ने कहा कि अब यहाँ से मैं जम्बूद्वीप के समुद्रों की संख्या और द्वीप-विस्तार को वास्तविक रूप से कहने जा रहा हूँ।।१।।

यहाँ जितने वर्ष कहे गये हैं, उनमें जितनी नदियाँ वर्णित हैं, उनमें महाभूतों का प्रमाण और सूर्य व चन्द्र की अलग-अलग गति सप्तद्वीपों के अन्दर हजारों द्वीपों के प्रकार का यहाँ क्रम से वर्णन करना असम्भव नहीं, तो कठिन तो है ही। जिनसे संसार को विस्तार प्राप्त है।।२-३।।

आगे चन्द्र, सूर्य और ग्रह के साथ सात द्वीपों को बतलाने जा रहा हूँ, जहाँ पर स्थित मनुष्य अपने तर्क से प्रमाणों को प्रस्तुत किया करते हैं।।४।।

निश्चय ही जो विषय वस्तु अचिन्त्य है, उसको तर्क के आधार पर सिद्ध करना उचित नहीं हो सकता है। प्रकृति से भी जो परम वस्तु है, उसे अचिन्त्य जानना चाहिए।।५।।

नव वर्षं प्रवक्ष्यामि जम्बूद्वीपं यथातथम्। विस्तरान्मण्डलाच्चैव योजनैस्तन्निबोधत॥६॥
शतमेकं सहस्राणां योजनानां समन्ततः। नानाजनपदाकीर्णं योजनैर्विविधैः शुभैः॥७॥
सिद्धचारणसंकीर्णं पर्वतैरुपशोभितम्। सर्वधातुविवृद्धैश्च शिलाजालसमुद्भवैः।
पर्वतप्रभवाभिश्च नदीभिः सर्वतश्चितम्॥८॥
जम्बूद्वीपः पृथुः श्रीमान् सर्वतः परिमण्डलः। नवभिश्चावृतः श्रीमान् भुवनैर्भूतभावनः॥९॥
लवणेन समुद्रो सर्वतः परिवारितः। जम्बूद्वीपस्य विस्तारात् समेन तु समन्ततः॥१०॥
तस्य प्रागायता दीर्घाः षडेते वर्षपर्वताः। उभयत्रावगाढाश्च समुद्रौ पूर्वपश्चिमौ॥११॥
हिमप्रायश्च हिमवान् हेमकूटश्च हेमवान्। सर्वत्र सुसुखश्चापि निषधः पर्वतो महान्॥१२॥
चतुर्वर्णः स सौवर्णो मेरुश्चोल्बमयो गिरः। वृत्ताकृतिप्रमाणश्च चतुरस्रः समुच्छ्रितः॥१३॥
नानावर्णस्तु पार्श्वेषु प्रजापतिगुणान्वितः। नाभिमण्डलसंभूतो ब्रह्मणः परमेष्ठिनः॥१४॥
पूर्वतः श्वेतवर्णस्तु ब्रह्मण्यं तेन तस्य तत्। पीतश्च दक्षिणेनासौ तेन वैश्यत्वमिष्यते॥१५॥
भृङ्गपत्रनिभश्चासौ पश्चिमेन यतोऽथ सः। तेनास्य शूद्रता प्रोक्ता मेरोर्नामार्थकर्मणः॥१६॥
पार्श्वमुत्तरतस्तस्य रक्तवर्णं विभाव्यते। तेनास्य क्षत्रभावः स्यादिति वर्णाः प्रकीर्त्तिताः॥१७॥

वास्तव में नौ वर्षों वाले जम्बूद्वीप का योजनों में जितना विस्तार और मण्डल है, उसे ही आगे बतलाया जाता है, उसे सुनो—॥६॥

अपने चारों ओर एक हजार योजन विस्तृत, विविध प्रकार के कल्याणकारक वर्षों से सम्पन्न, सिद्धों और चरणों से परिपूर्ण, पर्वतों से शोभायमान, शिलाओं से उत्पन्न हुई समस्त प्रकार की धातुओं से युक्त और सभी जगत पर्वत से उत्पन्न हुई नदियों से समृद्ध, विस्तृत, सुन्दर और चारों ओर मण्डलाकर नौ द्वीपों से समावृत प्राणियों को प्रफुल्लित करने वाला जम्बूद्वीप है॥७-९॥

अपने विस्तार के अनुरूप यह जम्बूद्वीप लवण समुद्र से चारों ओर से घिरा हुआ है। उसके पूर्व में ये छः दीर्घ वर्ष पर्वत फैले हुए हैं और इस द्वीप को दोनों ओर से पूर्वी और पश्चिमी समुद्र घेरे हुए हैं॥१०-११॥

हिमवान् पर्वत हिममय है और हेमकूट पर्वत स्वर्णमय है। महान् औषध पर्वत सभी जगह सुखप्रदायक है। सुमेरु पर्वत स्वच्छतापूर्ण सुवर्णमय मण्डलाकार प्रमाण वाला चौकोर और अत्यन्त ऊँचा है॥१२-१३॥

इसके पार्श्वों में विविध प्रकार के वर्णों का दर्शन होता है। यह परमेष्ठी ब्रह्मा के नाभि मण्डल से उत्पन्न और प्रजापति के गुणों से सम्पन्न हैं॥१४॥

इसके पूर्वके भाग का वर्ण श्वेत होने से उसका ब्राह्मणत्व माना जाता है। लेकिन उसका दक्षिणी भाग पीतवर्ण का है, इसी से उसका वैश्यत्व कहा जाता है॥१५॥

जहाँ से इसका पश्चिमी भाग भृङ्गपत्र के समान दीखता है, इस कारण से उसके नाम और कर्म भेद के आधार पर इस मेरुभाग की शूद्रत्व माना गया है॥१६॥

इसका उत्तर भाग रक्त वर्ण की आभा वाला है, अतः इससे इसका क्षत्रियत्व प्रकट होता है। इस आधार पर वर्णों को बतलाया गया है॥१७॥

वृत्तः स्वभावतः प्रोक्तो वर्णतः परिमाणतः। नीलश्च वैदूर्यमयः श्वेतशुक्लो हिरणमयः।
मयूरबर्हिवर्णस्तु शातकौम्भश्च शृङ्गवान्॥१८॥
एते पर्वतराजानः सिद्धचारणसेविताः। तेषामन्तरविष्कम्भो नवसाहस्त्र उच्यते॥१९॥
मध्ये त्विलावृतं नाम महामेरोः स संभवः। नवैव तु सहस्त्राणि विस्तीर्णः सर्वतश्च सः॥२०॥
मध्यं तस्य महामेरुर्विधूम इव पावकः। वेद्यर्द्धं दक्षिणं मेरोरुत्तरार्द्धं तथोत्तरम्॥२१॥
वर्षाणि यानि षडत्र तेषां ते वर्षपर्वताः। योजनाग्रं तु वर्षाणां सर्वेषां तद् विधीयते॥२२॥
द्वे द्वे वर्षे सहस्त्राणां योजनानां समुच्छ्रयः। जम्बूद्वीपस्य विस्तारस्तेषामायाम उच्यते॥२३॥
योजनायां सहस्त्राणि शतौ द्वौ चायतौ गिरी। नीलश्च निषधश्चैव ताभ्यां हीनाश्च ये परे।
श्वेतश्च हेमकूटश्च हिमवाञ्छृङ्गवांश्च यः॥२४॥
जम्बूद्वीपप्रमाणेन निषधः परिकीर्तितः। तस्माद् द्वादशभागेन हेमकूटः प्रहीयते।
हिमवान् विंशभागेन हेमकूटात् प्रहीयते॥२५॥
अष्टाशीतिसहस्त्राणि हेमकूटो महागिरिः। अशीतिर्हिमवान् शैल आयतः पूर्वपश्चिमे॥२६॥

अतएव स्वभाव, वर्ण और परिमाण के आधार से इस पर्वत के विषय में बतलाया गया है।नील पर्वत वैदूर्यमय है और श्वेतगिरि का वर्ण शुक्ल है फिर शृङ्गवान् पर्वत मयूरपुच्छ की तरह वर्ण सम्पन्न और स्वर्णमय है।।१८।।

इस समस्त पर्वतराजों को सिद्धों और चरणों से सेवित माना गया है। इनके मध्य की दूरी नौ हजार योजन की बतलायी गयी है।।१९।।

इसके मध्यभाग में इलावृत नाम से वर्ष है। यह महामेरु से उत्पन्न और चारों ओर नौ हजार योजन का विस्तार वाला है।।२०।।

फिर उसी के मध्य भाग में धूमहीन अग्नि के समान महामेरु पर्वत अवस्थित माना गया है। इस द्वीप का आधा भाग मेरु का दक्षिण पार्श्व और अन्य आधा भाग मेरु का उत्तर पार्श्व माना जाता है।।२१।।

यहाँ स्थित छः वर्ष के ही छः वर्ष पर्वत कहे जाते हैं। उन सबका विस्तार उन-उन वर्षों के योजन तुल्य ही माना जाता है।।२२।।

प्रायः दो-दो वर्षों के मध्य कई योजन ऊँचाई वाले पर्वत अवस्थित हैं। जम्बूद्वीप के विस्तार तुल्य उसकी लम्बाई जाननी चाहिए।।२३।।

फिर नील और नैषध नाम के दोनों पर्वत दो सौ हजार योजन विस्तार वाला है। उन दोनों से छोटे श्वेत, हेमकूट, हिमवान् और शृङ्गवान् नाम का पर्वत कहा गया है।।२४।।

वहाँ पर जम्बूद्वीप के प्रमाण तुल्य निषध पर्वत भी माना जाता है। फिर हेमकूट पर्वत के प्रमाण में उसका बारहवाँ भाग न्यून माना गया है। हिमवान् पर्वत के प्रमाण में हेमकूट का बीसवाँ भाग न्यून करते हुए जानना चाहिए।।२५।।

वैसे हेमकूट महापर्वत अट्ठासी हजार योजन का कहा गया है। पूर्व से पश्चिम में विस्तारित हिमवान् पर्वत अस्सी हजार योजन का माना जाता है।।२६।।

द्वीपस्य मण्डलीभावाद् ह्रासवृद्धी प्रकीर्त्यते। वर्षाणां पर्वतानां च यथा चेमे तथोत्तरम्॥२७॥
तेषां मध्ये जनपदास्तानि वर्षाणि चैव तत्। प्रपातविषमैस्तैस्तु पर्वतैरावृतानि तु॥२८॥
संततानि नदीभेदैरगम्यानि परस्परम्। वसन्ति तेषु सत्त्वानि नानाजातीनि सर्वशः॥२९॥
एतद्धैमवतं वर्षं भारती यत्र सन्ततिः। हेमकूटं परं यत्र नाम्ना किंपुरुषोत्तमः॥३०॥
वसन्ति तेषु सत्त्वानि नानाजातीनि सर्वशः। हेमकूटात् परं चैव मेरुपार्श्वे इलावृतम्॥३१॥
इलावृतात् परं नीलं रम्यकं नाम विश्रुतम्। रम्यकाच्च परं श्वेतं विश्रुतं तद्धिरण्मयम्॥३२॥
धनुःसंस्थे तु द्वे वर्षे विज्ञेये दक्षिणोत्तरे। द्वीपानि खलु चत्वारि चतुरस्त्रमिलावृतम्॥३३॥
अर्वाक् च निषधस्याथ वेद्यर्धं दक्षिणं स्मृतम्। परं श्रृङ्गवतो यच्च वेद्यर्धं हि तदुत्तरम्॥३४॥
वेद्यर्द्धे दक्षिणे त्रीणि वर्षाणि त्रीणि चोत्तरे। तयोर्मध्ये तु विज्ञेयो यत्र मेरुस्त्विलावृतः॥३५॥
दक्षिणेन तु नीलस्य निषधस्योत्तरेण च। उद्गायतो महाशैलो माल्यवान्नाम पर्वतः॥३६॥
योजनानां सहस्रे द्वे विष्कम्भोच्छ्रय एव च। आयामतश्चतुस्त्रिंशत् सहस्राणि प्रकीर्तितः॥३७॥

उन द्वीपों के मण्डलाकृति के अनुरूप वर्षों और पर्वतों का ह्रास और वृद्धि के क्रम से बतलाया गया है। जैसे यह स्थित है, वैसे ही उनके बाद वाले वर्षों और पर्वतों का भी क्रम समझना चाहिए।।२७।।

इस तरह उनके मध्य भाग में वैसे ही वर्षों और जनपदों की अवस्थिति कही गई है। झरनों के कारण से विषम होने वाले पर्वतों से वे वर्ष चारों ओर से घिरे हुए हैं।।२८।।

अतएव ये अनेक नदियों से सम्पन्न हैं और परस्पर आवागमन की दृष्टि से अगम्य हैं। उनके अन्तर्गत अनेक जातियों के जीव निवास करते हैं।।२९।।

यह हैमवत् वर्ष है, जहाँ की सन्तति को भारती कहा जाता है। फिर दूसरा हेमकूट नाम से पर्वत है, जहाँ श्रेष्ठ किम्पुरुष नाम से वर्ष स्थित है।।३०।।

फिर हेमकूट के पश्चात् निषध पर्वत है, जहाँ हरिवर्ष स्थित है। हरिवर्ष से परे मेरु के पार्श्व में इलावृत नाम से वर्ष स्थित है।।३१।।

तत्पश्चात् इलावृत के बाद नीलपर्वत और रम्यक नाम से प्रसिद्ध वर्ष स्थित है। फिर रम्यक के पश्चात् श्वेतपर्वत और हिरण्मय वर्ष है, उससे लगा हुआ श्रृङ्गवान् पर्वत और कुरुवर्ष स्थित बतलाया गया है।।३२।।

उसके दक्षिण और उत्तर में फैला हुआ धनुषाकृति के रूप से दो वर्ष स्थित हैं। इस प्रकार चार द्वीप होते हैं। फिर इलावृत और चतुरस्र अर्थात् चौकोर है।।३३।।

वैसे निषध पर्वत के पूर्व के भाग को दक्षिण अर्द्धवेदी और श्रृङ्गवान् बाद के भाग को उत्तरी अर्द्धवेदी कहा जाता है।।३४।।

उन अर्द्धवेदियों के दक्षिण और उत्तर में तीन-तीन वर्ष हैं। उनके मध्य, जहाँ मेरु पर्वत स्थित है, वहाँ इलावृत वर्ष समझना चाहिए।।३५।।

नील पर्वत के दक्षिण और निषध पर्वत के उत्तर में समुद्र के समानान्तर माल्यवान् नाम से महान् पर्वत भी स्थित है। जो विस्तार और ऊँचाई में दो सहस्र योजन है। इसकी लम्बाई चौंतीस हजार बतलायी गई है।।३६-३७।।

तस्य प्रतीच्यां विज्ञेयः पर्वतो गन्धमादनः।
आयामोच्छ्रयविस्तारात् तुल्यो माल्यवता तु सः॥३८॥
परिमण्डलस्तयोर्मध्ये मेरुः कनकपर्वतः। चतुर्वर्णः ससौवर्णश्चतुरस्रः समुच्छ्रितः॥३९॥
अव्यक्त धातवः सर्वे समुत्पन्ना जलादयः। अव्यक्तात् पृथिवीपद्मं मेरुस्तस्य च कर्णिका॥४०॥
चतुष्पत्रं समुत्पन्नं व्यक्तं पञ्चगुणं महत्। ततः सर्वाः समुद्भूता वितता हि प्रवृत्तयः॥४१॥
अनेककल्पजीवद्भिः पुरुषैः पुण्यकारिभिः। कृतात्मभिर्महात्मभिः प्राप्यते पुरुषोत्तमः॥४२॥
महायोगी महादेवो जगद्ध्येयो जनार्दनः। सर्वलोकगतोऽनन्तो व्यापको मूर्त्तिरव्ययः॥४३॥
न तस्य प्राकृता मूर्तिर्मांसमेदोऽस्थिसंभवा। योगित्वाच्चेश्वरत्वाच्च सत्त्वरूपधरो विभुः॥४४॥
तन्निमित्तं समुत्पन्नं लोके पद्मं सनातनम्। कल्पशेषस्य तस्यादौ कालस्य गतिरीदृशी॥४५॥
तस्मिन् पद्मे समुत्पन्नो देवदेवश्चतुर्मुखः। प्रजापतिपतिदव ईशानो जगतः प्रभुः॥४६॥
स्य बीजनिसर्गं हि पुष्करस्य यथार्थवत्। कृत्स्नं प्रजानिसर्गेण विस्तरेणैव वर्ण्यते॥४७॥
तदम्बु वैष्णवः कायो यतो रत्नविभूषितः। पद्माकारा समुत्पन्ना पृथिवी सवनद्रुमा॥४८॥
तत् तस्य लोकपद्मस्य विस्तरं सिद्धभाषितम्। वर्ण्यमानं विभागेन क्रमशः शृणुत द्विजाः॥४९॥

फिर उसके पश्चिम में गन्धमादन पर्वत स्थित है, जो लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई में माल्यवान् पर्वत के समान ही है। इन दोनों गन्धमादन और माल्यवान् पर्वतों से घिरा हुआ मेरु नाम का पर्वत है, जो स्वर्ण पर्वत है। चार वर्णों वाला वह स्वर्ण पर्वत चौकोर एवं ऊँचा है।।३८-३९।।

इन सभी धातुओं और जलादि की सर्जना अव्यक्त से ही सम्भव हुआ है। फिर पृथ्वी जैसे कमल भी अव्यक्त से ही उत्पन्न हुआ है। वह मेरु पर्वत उसी कमल की कर्णिका है।।४०।।

पृथ्वी जैसी महाव्यक्त कमल में चार पत्र एवं पाँच गुण रूप, रस, गन्ध,स्पर्श और शब्द भी हैं। उसी से समस्त प्रचलित सांसारिक व्यवहार की उत्पत्ति हो सकी है।।४१।।

कईयों कल्प पर्यन्त जीवित रहने वाले पुण्यकर्मा, कृतात्मा और महात्मा पुरुष पुरुषोत्तमत्व को प्राप्त हो सके हैं। विश्व के साध्य या ध्येय स्वरूप जनार्दन, महायोगी, महादेव, सर्वलोकव्यापी, अनन्त, व्यापक और अव्यय मूर्त्ति हैं।।४२-४३।।

उन ध्येय की मूर्त्ति मांस, मेद एवं अस्थि से निर्मित, प्राकृत मूर्त्ति नहीं है। योगी और ईश्वर होकर ये जनार्दन सत्त्वगुण स्वरूप और विभु हैं।।४४।।

उनके लिए लोकोंमें सनातन पद्म की उत्पत्ति हुई है। प्रारम्भ में उस कल्प शेष काल की गति इसी प्रकार की मानी गई है।।४५।।

उस पद्म में देवदेव, जगत्प्रभु, नियामक और प्रजापति चतुरानन ब्रह्मदेव प्रकट हुए। प्रजा की सर्जना वर्णन के सहित विस्तार से वास्तविक रूप से उस पद्म की उत्पत्ति का वर्णन ही किया जाता है।।४६-४७।।

वही जल विष्णु का देह है, जिससे रत्नों से सुशोभित कमलाकृति की पृथ्वी वन और वृक्षों सहित उत्पन्न हुई है। हे द्विजों! उस विश्वकमल का सिद्धों से कथित और विस्तृत विवेचन क्रम से विभागानुरूप से करते हैं, सुनो।।४८-४९।।

महावर्षाणि ख्यातानि चत्वार्यत्र च संस्थिताः। तत्र पर्वत्संस्थानो मेरुर्नाम महाबलः॥५०॥
नानावर्णः स पार्श्वेषु पूर्वतः श्वेत उच्यते। पीतं च दक्षिणं तस्य भृङ्गवर्णं तु पश्चिमम्॥५१॥
उत्तरं रक्तवर्णं तु तस्य पार्श्वं महात्मनः। मेरुस्तु शोभते शुक्लो राजवंशे तु धिष्ठितः॥५२॥
तरुणादित्यसंकाशो विधूम इव पावकः। योजनानां सहस्राणि चतुराशीतिरुच्छ्रितः॥५३॥
प्रविष्टः षोडशाधस्ताद्विस्तृतः षोडशैव तु। शरावसंस्थितत्वाच्च द्वात्रिंशन्मूर्ध्नि विस्तृतः॥५४॥
विस्तारस्त्रिगुणश्चास्य परिणाहः समन्ततः। मण्डलेन प्रमाणेन व्यस्यमानं तदिष्यते॥५५॥
नवतिश्च सहस्राणि येजनानां समन्ततः। ततः षट्काधिकानां च व्यस्यमानं प्रकीर्त्तितम्।
चतुरस्त्रेण मानेन परिणाहः समन्ततः॥५६॥
स पर्वतो महादिव्यो दिव्यौषधिसमन्वितः। भवनैरावृतः सर्वो जातरूपमयैः शुभैः॥५७॥
तत्र देवगणाः सर्वे गन्धर्वोरगराक्षसाः। शैलराजे प्रमोदन्ते तथैवाप्सरसां गणाः॥५८॥
स तु मेरुः परिवृतो भवनैर्भूतभावनैः। चत्वारो यस्य देशास्तु नानापार्श्वेषु धिष्ठिताः॥५९॥
भद्राश्वो भारतश्चैव केतुमालश्च पश्चिमे। उत्तरे कुरवश्चैव कृतपुण्यप्रतिश्रयाः॥६०॥

जहाँ पर चाल सुख्यात महावर्ष स्थित हैं। वहीं पर मेरु नाम से महाशक्तिशाली पर्वत स्थित है। उसके पार्श्व तो विविध वर्णों के हैं। पूर्व दिशा क पार्श्व श्वेत वर्ण का है, तो दक्षिण का पार्श्व पीत वर्ण का और पश्चिम पार्श्व भृङ्गवर्ण का है।।५०-५१।।

उस महात्मा का उत्तर पार्श्व का वर्ण रक्त वर्ण का है। इस प्रकार राजवंशों को उत्पन्न करने वाला शुद्ध मेरु विभूषित हो रहा है।।५२।।

वह मेरु पर्वत तरुण सूर्य और धूमहीन अग्नि के सदृश दर्शनीय है। जिसकी ऊँचाई चौरासी हजार योजनों की है।।५३।।

अधःतल की दिशा में यह सोलह हजार योजन तक प्रवेश लिया हुआ है। सोलह हजार योजन ही यह विस्तृत है। शराव अर्थात् कसोरे की आकृति में स्थित होने से इसकी चोटी बत्तीस योजन विस्तृत है।।५४।।

इसके चारों ओर की परिधि इसके विस्तार की तिगुनी कही गई है। यह मण्डलाकार फैली है।।५५।।

इसके बाद चारों दिशाओं में छानवे हजार योजनों का विस्तार है। यह विस्तार चारों ओर का मिलाकर चतुष्कोणाकार है।।५६।।

यह मेरु पर्वत दिव्य औषधियों से सम्पन्न होकर महादिव्य हुआ है। वह सम्पूर्णता से स्वर्णमय और कल्याणकारक भवनों से आवृत्त है।।५७।।

समस्त देवता, गन्धर्व, यक्ष, सर्प, राक्षस और अप्सराओं का समूह उस पर्वतराज पर विचरण किया करता है।।५८।।

फिर ऐसा मेरु पर्वत प्राणियों को आनन्द प्रदान करने वाले भवनों से आवृत्त है जिसके विविध पार्श्वों में चार देश (वर्ष) स्थित हैं।।५९।।

पूर्व दिशा में भद्राश्व, दक्षिण दिशा में भारतवर्ष, पश्चिम दिशा में केतुमाल और उत्तर में पुण्यवान् जनों से सम्पन्न कुरुवर्ष अवस्थित हैं।।६०।।

कर्णिका तस्य पद्मस्य समन्तात् परिमण्डला। योजनानां सहस्राणि योजनानां प्रमाणतः॥६१॥
तस्य केसरजालानि नवषट् च प्रकीर्त्तिताः। चतुरशीतिरुत्सेधो विवरान्तरगोचराः॥६२॥
त्रिंशच्चापि सहस्राणि योजनानां प्रमाणतः। तस्य केसरजालानि विकीर्णानि समन्ततः॥६३॥
शतसाहस्रमायाममशीतिः पृथुलानि च। चत्वारि तत्र पर्णानि योजनानां चतुर्दश॥६४॥
तत्र या सा मया तुभ्यं कर्णिकेत्यभिविश्रुता। तां वर्ण्यमानामेकाग्र्यात् समासेन निबोधत।
मणिपणशतैश्चित्रां नानावर्णप्रभासिताम्॥६५॥
अनेकपर्णनिचयं सौवर्णमरुणप्रभम्। कान्तं सहस्रपर्वाणं सहस्रोदरकन्दरम्।
सहस्रशतपत्रं च वृत्तमेकं नगोत्तमम्॥६६॥
मणिरत्नार्पितश्वभ्रैर्मणिभिश्चित्रवेदिकम्। सुवर्णमणिचित्राङ्गैर्मणिचर्चिततोरणैः॥६७॥
तत्र ब्रह्मसभा रम्या ब्रह्मर्षिजनसंकुला। नाम्ना मनोवती नाम सर्वलोकेषु विश्रुता॥६८॥
तत्रेशानस्य देवस्य सहस्रादित्यवर्चसः। महाविमानसंस्थस्य महिमा वर्त्तते सदा॥६९॥
तत्र सर्वे देवगणाश्चतुर्वक्त्रं स्वयं प्रभुम्। इष्ट्वा पूज्यनमस्कारैरर्चनीयमुपस्थिताः॥७०॥
यैस्तदा दिहसंकल्पैर्ब्रह्मचर्यं महात्मभिः। चीर्णं चारुमनोभिश्च सदाचारपथि स्थितैः॥७१॥
सम्यगिष्ट्वा च भुक्त्वा च पितृदेवार्चने रताः। गृहाश्रमपरास्तत्र विनीता अतिथिप्रियाः॥७२॥

उस कमलाकार कर्णिका स्वरूप मेरु चारों ओर मण्डलाकर विस्तृत है। उसका हजारों योजन प्रमाण का विस्तार माना गया है। उस कर्णिका में केसरों का समूह छानवे हजार योजन के मण्डल में स्थित है। उसके विवर के अन्दर चौरासी हजार योजन की ऊँचाई है।।६१-६२।।

चारों तरफ उसके केसरों का समूह तीस हजार योजनों के प्रमाण में विस्तृत है। इनकी लम्बाई सौ हजार योजन की और मोटाई अस्सी हजार योजनों की कही जाती है। उसमें चौदह योजनों के चार पत्ते स्थित माने गये हैं।।६३-६४।।

मैंने तुमसे जिस कर्णिका का उल्लेख किया है, उसका सारांश रूप में वर्णन किया जाता है, जिसे एकाग्र मन से सुनो—वह कर्णिका कई मणिमय पत्रों के समूह से सम्पन्न, सुवर्णमय, लाल रंग वाला, सुन्दर, हजारों पर्णों से युक्त, उसका आन्तरकि भाग हजारों कन्दराओं से सम्पन्न और सौओं हजार पत्रों वाला वृत्ताकार एक श्रेष्ठपर्वत है।।६५-६६।।

उसके गड्ढों में मणि और रत्न परिपूर्णता से सुलभ हैं। और उसके ऊपर मणियों की वेदियाँ हैं। उसके अंग स्वर्ण और मणियों से अलंकृत तथा उसका तोरण मणियों वाला है।।६७।।

वहीं पर सभी लोकों में मनोवती नाम से सुविख्यात ब्रह्मर्षियों से सुसम्पन्न रमणीक ब्रह्म सभा भी स्थित है।।६८।।

वहाँ पर हजारों सूर्य के सदृश तेजस्वी और महान् विमान में स्थित शंकर देव की महिमा गाथा सर्वदा विद्यमान रहता है।।६९।।

जहाँ पर स्वयं साक्षात् प्रभु पूजनीय चतुर्मुख ब्रह्मा की पूजा करने वाले सभी देवगण विद्यमान रहा करते हैं। इस प्रकार सदाचार पालन करने के पथ पर स्थित रहने वाले, सुन्दर पवित्र मन वाले तथा संकल्प का दृढ़ता से निर्वाह करने वाले, जिन महात्माओं के द्वारा ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया गया हो, जो सविधि उपासना पूर्वक अपने आहार, विहार और स्वयंहार के सहित देवताओं के और पितरों के पूजन में सदा तत्पर रहने वाले हों, वे ही उस स्थान के लिए अतिथि प्रिय गृहस्थाश्रमी हो सकते हैं।।७०-७२।।

गृहिणः शुक्लकर्मस्था विरक्ताः कारणात्मकाः। यमैर्नियमदानैश्च दृढनिर्दग्धकिल्बिषाः॥७३॥
तेषां निवसनं शुक्लब्रह्मलोकमनिन्दितम्। उपर्युपरि सर्वासां गतीनां परमा गतिः।
चतुर्दशसहस्राणि योजनानां तु कीर्त्तितम्॥७४॥
ततोर्द्धरुचिरे कृष्णे तरुणादित्यवर्चसि। महागिरौ ततो रम्ये रत्नधातुविचित्रिते॥७५॥
नैकरत्नसमावासे मणितोरणमन्दिरे। मेरोः सर्वेषु पार्श्वेषु समन्तात् परिमण्डले॥७६॥
त्रिंशद्योजनसाहस्रं चक्रपाटो नगोत्तमः। जारुधिश्चैव शेलेन्द्र इत्येते उत्तराः स्मृताः॥७७॥
एतेषां शैलमुख्यानामुत्तरेषु यथाक्रमः। स्थलीरन्तरद्रोण्यश्च सरांसि च निबोधत॥७८॥
दशयोजनविस्तीर्णा चक्रपाटोपनिर्गता। सा तूद्ध्र्ववाहिनी चापि नदी भूमौ प्रतिष्ठिता॥७९॥
सा पुर्याममरावत्यां क्रममाणेन्दुरा प्रभा। तया तिरस्कृता वाऽपि सूर्येन्दुज्योतिषां गणाः॥८०॥
उदयास्तमिते सन्ध्ये ये सेवन्ते द्विजोत्तमाः। तान् तुष्यन्ते द्विजाः सर्वानष्टावप्यचलोत्तमान्॥८१॥
परिभ्रमज्ज्योतिषां या सा रुद्रेन्द्रमता शुभा॥८२॥

इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः॥७५॥

जिस-किसी ने अपने यम, नियम और दान के आश्रय लेकर दृढ़ता के साथ अपने पापों को जलाया हो, जो कारण शरीर सम्पन्न, विरक्त और पुण्यकर्म में स्थित रहने वाले हों, वे ही गृहस्थाश्रमी होते हैं।।७३।।

इस प्रकार यह अनिन्दित शुद्ध ब्रह्मलोक ऐसे ही गृहस्थाश्रमियों का निवास स्थान हो सकता है। चूँकि सभी गतियों से बाद की यह परमगति है, जिसका विस्तार चौदह हजार योजनों का कहा गया है।।७४।।

वहाँ से उसकी तुलना में आधा सुन्दर, कृष्णवर्ण युक्त और तरुण सूर्य के सदृश तेज युक्त रत्नों और धातुओं से शोभायमान रमणीक महापर्वत के ऊपर जो विविध रत्नों का निवास रूप और मणियों के बने तोरणों वाले गृहों से युक्त है तथा मेरुपर्वत के समस्त पार्श्वों में मण्डलाकृति के रूप में स्थित हैं, उसी स्थान पर तीस हजार योजनों का पर्वत श्रेष्ठ चक्रपाट और पर्वत जारुधि नाम से स्थित है, जो उत्तर के पर्वत माने गये हैं। इन मुख्य पर्वतों के उत्तर में स्थित स्थली अन्तर वाले द्रोणियों और सरोवरों के बारे में यथाक्रम से सुनो—।।७५-७८।।

उस चक्रपाट पर्वत के पास से निकली हुई दश योजन विस्तार वाली उद्ध्र्ववाहिनी नाम से नदी भूमि पर अधिष्ठित है।।७९।।

इस प्रकार अमरावती पुरी में वह चन्द्रप्रभा के समान है या उसके द्वारा सूर्य, चन्द्र, और अन्य नक्षत्रपुंज उपेक्षित हो गये से हैं।।८०।।

जो कोई द्विजश्रेष्ठ उस सूर्य के उदय और अस्त के समय के दोनों सन्ध्याओं का सेवन किया करते हैं, उन जनों पर वे सभी अष्ट श्रेष्ठ पर्वत प्रसन्न रहते हैं।।८१।।

भ्रमणशील नक्षत्रपुंजों के बीच जो पुरी अवस्थित है, वह कल्याण करने वाली पुरी रुद्र और इन्द्र को भी प्रिय माना गया है।।८२।।

।।इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में भुवनकोश-सुमेरु और जम्बूद्वीप वर्ण-विभाग आदि वर्णन नामक पचहतरवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ।।७५।।

षट्सप्ततितमोऽध्यायः

अथ भुवनकोशो दिक्पालपुरी वर्णनम्

रुद्र उवाच

तस्यैव मेरोः पूर्वे तु देशे परमवर्चसे। चक्रवाटपरिक्षिप्ते नानाधातुविराजिते॥१॥
तत्र सर्वामरपुरं चक्रवाटसमुद्धतम्। दुर्धर्षं बलदृप्तानां देवदानवरक्षसाम्।
तत्र जाम्बूनदमयःसुप्राकारः सुतोरणः॥२॥
तस्याप्युत्तरपूर्वे तु देशे परमवर्चसे। अलोकजनसम्पूर्णा विमानशतसंकुला॥३॥
महावापिसमायुक्ता नित्यं प्रमुदिता शुभा। शोभिता पुष्पशबलैः पताकध्वजमालिनी॥४॥
देवैर्यक्षोप्सरोभिश्च ऋषिभिश्च सुशोभिता। पुरन्दरपुरी रम्या समृद्धा त्वमरावती॥५॥
तस्या मध्येऽमरावत्या व्रज्रवैदूर्यवेदिका। त्रैलोक्यगुणविख्याता सुधर्मा नाम वै सभा॥६॥
तत्रास्ते श्रीपतेः श्रीमान् सहस्राक्षः शचीपतिः। सिद्धादिभिः परिवृतः सर्वाभिर्देवयोनिभिः॥७॥
तत्र चैव सुवंशः स्याद् भास्करस्य महात्मनः। साक्षात् तत्र सुराध्यक्षः सर्वदेवनमस्कृतः॥८॥
तस्याश्च दिक्षु विस्तीर्णा तत्तद्गुणसमन्विता। तेजोवती नाम पुरी हुताशस्य महात्मनः॥९॥

अध्याय–७६

भुवन कोश- दिक्पालों की पुरियों का वर्णन

रुद्र ने कहा कि पूर्वोक्त मेरु के पूर्व में अतिशय प्रभाव सम्पन्न चक्रवाट से घिरा हुआ, अनेक प्रकार की धातुओं से विभूषित देश में उस चक्रवाट के समान उन्नत बल के गर्व से सम्पन्न, देवों-दानवों-राक्षसों आदि से अजेय सभी देवपुरी स्थित है, जो उस स्थान पर स्वर्ण निर्मित सुन्दर प्रकार, तोरण आदि शोभायमान हैं।।१-२।।

उस स्थान के उत्तर-पूर्व दिशा के तेजस्वी देश में भी अलौकिक प्राणियों से भरा हुआ और सैकड़ों विमानों से युक्त, बड़ी-बड़ी बावड़ियों वाली, निरन्तर आनन्ददायक, कल्याणमयी, पुष्पसमूह से विभूषित, पताका और ध्वजाओं के समूह से युक्त तथा देवों, यक्षों, अप्सराओं, ऋषियों आदि से शोभायमान, समृद्धि सम्पन्न, रमणीय, अमरावती नाम से इन्द्र की पुरी अवस्थित है।।३-५।।

उस पुरी अमरावती के बीचो बीच हीरा और वैडूर्य मणि की वेदिका युक्त त्रिलोक सुविख्यात गुणों से सम्पन्न 'सुधर्मा' नामक देवताओं की सभा है।।६।।

वहीं पर श्रीपति विष्णु के समान श्रीयुक्त सहस्रनेत्र, शचीपति इन्द्र सिद्धों और सभी देव योनि गत प्राणियों से समावृत्त स्थित रहते हैं। फिर वहीं समस्त देवताओं से नमस्कृत एवं देवताओं के अध्यक्ष महात्मा भास्कर सूर्य का सुन्दर स्थान है।।७-८।।

उस पुरी के सभी दिशाओं में उन-उन अनेक गुणों से सम्पन्न तेजोवती नाम से महात्मा अग्नि की पुरी है।।९।।

तत्तद्गुणवती रम्या पुरी वैवस्वतस्य च। नाम्ना संयमनी नाम पुरी त्रैलोक्यविश्रुता॥१०॥
तथा चतुर्थे दिग्भागे नैर्ऋताधिपतेः शुभा। नाम्ना कृष्णावती नाम विरूपाक्षस्य धीमतः॥११॥
पञ्चमे ह्युत्तरपुटे नाम्ना शुद्धवती पुरी। उदकाधिपतेः ख्याता वरुणस्य महात्मनः॥१२॥
तथा पञ्चोत्तरे देवस्वस्योत्तरपुटे पुरी। वायोर्गन्धवती नाम ख्याता सर्वगुणोत्तरा॥१३॥
तस्योत्तरपुटे रम्या गुह्यकाधिपतेः पुरी। नाम्ना महोदया नाम शुभा वैदूर्यवेदिका॥१४॥
तथाष्टमेऽन्तरपुटे ईशानस्य महात्मनः। पुरी मनोहरा नाम भूतैर्नानाविधैर्युता।
पुष्पैर्धन्यैश्च विविधैर्वनैराश्रमसंस्थितैः॥१५॥
प्रार्थ्यते देवलोकोऽयं स स्वर्ग इति कीर्तितः॥१६॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे षट्सप्ततितमोऽध्यायः॥७६॥

उन-उन अनेक गुणों से सम्पन्न, त्रिलोकों में सुप्रसिद्ध वैवस्वत की संयमिनी के नाम से रमणीक पुरी है तथा उत्तर दिशा में नैर्ऋताधिपति विरूपाक्ष बुद्धिमान् यमराज की कृष्णावती नाम से कल्याणमयी पुरी स्थित है।।१०-११।।

फिर पाँचवें उत्तर दिशा के कोण में उदकाधिपति महात्मा वरुण की शुद्धवती नाम से प्रसिद्ध पुरी है। तत्पश्चात् इन पाँच दैवी पुरियों के पश्चात् उत्तर के ही कोण में समस्त गुणों से श्रेष्ठ गन्धवती नाम से वायु की प्रसिद्ध पुरी है।।१२-१३।।

फिर उसके उत्तर के कोण में ही यक्षाधिपति कुबेर की वैडूर्य की वेदिका वाली महोदया नाम से कल्याणमयी पुरी है। तत्पश्चात् अष्टम कोण में महात्मा ईशान अर्थात् शंकर की विभिन्न प्रकार के भूतों से सम्पन्न मंगलमय पुष्पों से सुशोभित और आश्रम योग्य विविध प्रकार के वनों से युक्त मनोहरा नाम से पुरी स्थित है।।१४-१५।।

इन्हीं देवलोक की मनोभिलाषा से प्रार्थना की जाती है, जिसे स्वर्ग कहा गया है।।१६।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में भुवन कोश- दिक्पालों की पुरियों का वर्णन नामक छियत्तरवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥७६॥

सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

अथ भुवनकोशे मेरोर्वर्णनम्

रुद्र उवाच

यदेतत् कर्णिकामूलं मेरोर्मध्यं प्रकीर्तितम्। तद् योजनसहस्राणि संख्यया मानतः स्मृतम्॥१॥
चत्वारिंशत् तथा चाष्टौ सहस्राणि तु मण्डलैः। शैलराजस्य तत्तत्रा मेरुमूलमिति स्मृतम्॥२॥
तेषां गिरिसहस्राणामनेकानां महोच्छ्रयः। दिगष्टौ च पुनस्तस्य मर्यादापर्वताः शुभाः॥३॥
जठरो देवकूटश्च पूर्वस्यां दिशि पर्वतौ। पूर्वपश्चायतावेतावर्णवान्तर्व्यवस्थितौ।
मर्यादापर्वतानेतानष्टानाहुर्मनीषिणः॥४॥
योऽसौ मेरुर्द्विजश्रेष्ठाः प्रोक्तः कनकपर्वतः। विष्कम्भांस्तस्य वक्ष्यामि श्रृणुध्वं गदतस्तु तान्॥५॥
महापादास्तु चत्वारो मेरोरथ चतुर्दिशम्। यैर्न चचाल विष्टब्धा सप्तद्वीपवती मही॥६॥
दशयोजनसाहस्त्रं व्यायामस्तेषु शङ्क्यते। तिर्यगूर्ध्वं च रचिता हरितालतटैर्वृताः॥७॥
मनःशिलादरीभिश्च सुवर्णमणिचित्रिताः। अनेकसिद्धभवनैः क्रीडास्थानैश्च सुप्रभाः॥८॥
पूर्वेण मन्दरस्तस्य दक्षिणे गन्धमादनः। विपुलः पश्चिमे पार्श्वे सुपार्श्वश्चोत्तरे स्थितः॥९॥

अध्याय–७७

भुवनकोश :: मेरु केतुमाल और कुरु वर्ष का वर्णन

रुद्र ने कहा कि मेरु के मध्य भाग में यह जो कर्णिका का मूल बतलाया गया है, उसका प्रमाण हजारों योजन संख्या का होता है।।११।।

पर्वतराज के चारों तरफ अड़तालिस सहस्त्र योजन का मेरु का मूल बतलाया गया है, जिसमें सहस्त्रों पर्वत स्थित हैं। फिर उस पर्वत की अष्ट दिशाओं में कई योजन ऊँचे-ऊँचे कल्याणमय मर्यादा पर्वत स्थित हैं।।२-३।।

पूर्व की दिशा में जठर और देवकूट पर्वत हैं। ये दोनों पर्वत पूर्व से पश्चिम दिशा में समुद्र तक विस्तृत हैं। अतः बुद्धिशील जनों ने इन अष्ट मर्यादा पर्वता को बतलाया है।।४।।

हे श्रेष्ठ द्विजों! पूर्व में मेरु नाम के जिस स्वर्ण वाले पर्वत का विवेचन किया गया है, उसके विष्कम्भों अर्थात् व्यासात्मक विस्तार का वर्णन करने जा रहा हूँ। अतः उसका वर्णन किया जाता हुआ, सुनो—।।५।।

उस मेरु के चार तरफ चार महापाद स्थित हैं, जिनके द्वारा धारण किये जाने पर सात द्वीपों वाली पृथ्वी नहीं चल पा रही है।।६।।

वैसे उनका विस्तार दस हजार योजन का अनुमानित है। यह पार्श्व और ऊपरी भाग में विस्तृत है। उसका तट प्रदेश हरिताल का है।।७।।

जहाँ स्वर्ण और मणि चित्रित सिद्धजनों के अनेक भवनों और क्रीड़ा स्थलों से विभूषित प्रभावान् मनःशिला की गुफायें स्थित हैं।।८।।

उसके पूर्व दिशा में मन्दर पर्वत, दक्षिण दिशा में गन्धमादन पर्वत, पश्चिम दिशा में विपुल नाम का पर्वत और उसके उत्तर पार्श्व में सुपार्श्व स्थित हैं।।९।।

तेषां शृङ्गेषु चत्वारो महावृक्षाः प्रतिष्ठिताः। देवदैत्याप्सरोभिश्च सेविता गुणसंचयैः॥१०॥
मन्दरस्य गिरेः शृङ्गे कदम्बो नाम पादपः। प्रलम्बशाखाशिखरः कदम्बश्चैत्यपादपः॥११॥
महाकुम्भप्रमाणैश्च पुष्पैर्विकचकेसरैः। महागन्धमनोज्ञैश्च शोभितः सर्वकालजैः॥१२॥
समासेन परिवृतो भुवनैर्भूतभावनैः। सहस्रमधिकं सोऽथ गन्धेनापूरयन् दिशः॥१३॥
भद्राश्वो नाम वृक्षोऽयं वर्षाद्रेः केतुसंभवः। कीर्तिमान् रूपवाञ्छ्रीमान् महापादपपादपः।
यत्र साक्षाद्धृषीकेशः सिद्धसङ्घैर्निषेव्यते॥१४॥
तस्य भद्रकदम्बस्य तथाश्ववदनो हरिः। प्राप्तवांश्चामरश्रेष्ठ स हि सानुं पुनः पुनः॥१५॥
तेन चालोकितं वर्षं सर्वद्विपदनायकाः। यस्य नाम्ना समाख्यातो भद्राश्वेति न संशयः॥१६॥
दक्षिणास्यापि शैलस्य शिखरे देवसेविते। जम्बूः सद्यः पुष्पफला महाशाखोपशोभिता॥१७॥
तस्या ह्यतिप्रमाणानि स्वादूनि च मृदूनि च। फलान्यमृतकल्पानि पतन्ति गिरिमूर्धनि॥१८॥
तस्मद् गिरिवरश्रेष्ठात् फलप्रस्यन्दवाहिनी। दिव्या जाम्बूनदी नाम प्रवृत्ता मधुवाहिनी॥१९॥
तत्र जाम्बूनदं नाम सुवर्णमनलप्रभम्। देवालङ्कारमतुलमुत्पन्नं पापनाशनम्॥२०॥

उनके शिखरों पर गुणों से सम्पन्न देवों, दैत्यों और अप्सराओं से सेवित चार महावृक्ष प्रतिष्ठित हैं।।१०।।

फिर मन्दराचल की चोटी पर एक कदम्ब नाम से वृक्ष है। वह कदम्ब वृक्ष लम्बी-लम्बी शाखाओं वाला और उनकी चोटियों वाला चैत्यवृक्ष ही है।।११।।

वह वहाँ पर उत्पन्न होने वाला महासुगन्ध से मनोहारी और विकसित पंखुड़ियों वाले महाघट के सदृश पुष्पों से विभूषित रहने वाला है।।१२।।

सारांश रूप में कहा जाय तो वह प्राणियों को उल्लसित करने वाले लोकों से घिरा हुआ है। वह अपने गन्ध द्वारा दिग्‌दिगन्त को हजारों योजन तक आपूरित करता है।।१३।।

वहीं महान् वृक्षों में भी अतिशय महान् वर्ष पर्वत की चोटी पर उत्पन्न कीर्त्तिमान्, स्वरूपवान्, शोभासम्पन्न वह भद्राश्व नाम का महावृक्ष स्थित है, जहाँ पर हृषिकेश की सेवा में निरन्तर सिद्धगण लगे रहते हैं।।१४।।

देवताओं में श्रेष्ठतर अश्वमुख हरि निरन्तर दस कल्याणमय कदम्ब के शिखर पर स्थित रहते हैं।।१५।।

हे ब्राह्मण श्रेष्ठों! वह वर्ष को समालोकित करता है। अतः कहना चाहिए कि निस्संशय ही इस वृक्ष के नाम से उस वर्ष का नाम भद्राश्व पड़ा है।।१६।।

फिर देवताओं से सेवित इसी पर्वत की दक्षिणी चोटी पर तत्क्षण फल और पुष्प देने वाला तथा महान् शााखाओं से विभूषित जम्बूवृक्ष भी है।।१७।।

जिस जम्बूवृक्ष के अत्यन्त बड़े-बड़े, स्वादिष्ट और कोमल तथा अमृत तुल्य फल उस पर्वत की चोटी पर गिरते रहते हैं।।१८।।

फिर उसी वरिष्ठ श्रेष्ठ पर्वत से जम्बूफल के रस से बहने वाली मधुवाहिनी दिव्य जम्बूनदी निस्सरित हुई है।।१९।।

उस जम्बू नदी के तट पर देवताओं को विभूषित करने वाला अग्नि-सी प्रभा सम्पन्न अनुपम और पाप का नाशक जम्बूनद नामक स्वर्ण की उत्पत्ति होती है।।२०।।

देवदानवगन्धर्वयक्षराक्षसगुह्यकाः। पपुस्तदमृतप्रख्यं मधु जम्बूफलस्रवम्॥२१॥
सा केतुर्दक्षिणे वर्षे जम्बूर्लोकिषु विश्रुता। यस्या नाम्ना समाख्याता जम्बूद्वीपेति मानवैः॥२२॥
विपुलस्य च शैलस्य दक्षिणेन महात्मना। जातः शृङ्गेति सुमहानश्वत्थश्चेति पादपः॥२३॥
महोच्छ्रायो महास्कन्धो नैकसत्त्वगुणालयः। कुम्भप्रमाणै रुचिरैः फलैः सर्वर्तुकैः शुभैः॥२४॥
स केतुः केतुमालानां देवगन्धर्वसेवितः। केतुमालेति विख्यातो नाम्ना तत्र प्रकीर्तितः।
तन्निबोधत विप्रेन्द्रा निरुक्तं नामकर्मणः॥२५॥
क्षीरोदमथने वृत्ते माला स्कन्धे निवेशिता। इन्द्रेण चैत्यकेतोस्तु केतुमालस्ततः स्मृतः।
तेन तच्चिह्नितं वर्षं केतुमालेति विश्रुतम्॥२६॥
सुपार्श्वस्योत्तरे शृङ्गे वटो नाम महाद्रुमः। न्यग्रोधो विपुलस्कन्धो यस्त्रियोजनमण्डलः॥२७॥
माल्यादामकलापैश्च विविधैस्तु समन्ततः। शाखाभिर्लम्बमानाभिः शोभितः सिद्धसेवितः॥२८॥
प्रलम्बकुम्भसदृशैर्हेमवर्णः फलैः सदा। स ह्युत्तरकुरूणां तु केतुवृक्षः प्रकाशते॥२९॥
सनत्कुमारावरजा मानसा ब्रह्मणः सुताः। सप्त तत्र महाभागाः कुरवो नाम विश्रुताः॥३०॥

देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, गुह्यक योनि के प्राणी आदि मीठे जामुन के फल का अमृत तुल्य रस पान करते रहते हैं।।२१।।

इस प्रकार दक्षिण दिशा के वर्ष में वह केतु स्वरूप जम्बू वृक्ष लोक प्रसिद्ध है, जिनके नाम से मनुष्य द्वारा उस द्वीप को ही जम्बूद्वीप कहा जाता है।।२२।।

फिर महात्मा स्वरूप उस विपुल नामक पर्वत के शिखर पर महान् अश्वत्थ वृक्ष उत्पन्न हुआ है।।२३।।

वह वृक्ष अतिशय ऊँचा, महास्कन्ध वाला और अनेक सात्त्विक गुणों से सम्पन्न है, जो सभी ऋतुओं में उत्पन्न होने वाले कल्याणमय कुम्भ समान सुन्दर फलों से विभूषित रहा करता है।।२४।।

फिर देवताओं और गन्धर्वों से सेवित वह केतुमालों में केतु स्वरूप है। उसे केतुमाल इस नाम से प्रसिद्ध कहा गया है। हे विप्रेन्द्रों! नाम और कर्म के कारण होने वाली उसकी निरुक्ति इस प्रकार से है, उसे सुनो।।२५।।

क्षीर सागर के मन्थन के अवसर पर इन्द्र द्वारा चैत्यकेतु के स्कन्ध पर माला रखी गई थी। इसी कारण से उसे केतुमाल कहा गया है। फिर उससे ही चिह्नित वर्ष भी केतुमाल के नाम से सुख्यात है।।२६।।

सुपार्श्व के उत्तरी शिखर पर वट नाम का महावृक्ष स्थित है। उस वट का स्कन्ध अति विशाल है और उसका मण्डल तीन योजन का है।।२७।।

वह वृक्ष चारों ओर शाखाओं पर लटकने वाली अनेक प्रकार की मालाओं से विभूषित सिद्धगणों से सेवित भी है।।२८।।

उत्तर कुरु प्रदेश का चिह्न स्वरूप वह वृक्ष सदा सुनहले रंग के कुम्भ समान फलों से विभूषित रहा करता है।।२९।।

जहाँ पर सनत्कुमार के अनुज स्वरूप ब्रह्मा के सात मानस पुत्रों का निवास स्थान है, वे सातों महापुरुष 'कुरुओं' के नाम से सुविख्यात हैं।।३०।।

तत्र स्थिरगतैर्ज्ञानैर्विरजस्कैर्महात्मभिः। अक्षयः क्षयपर्यन्तो लोकः प्रोक्तः सनातनः॥३१॥
तेषां नामाङ्कितं वर्ष सप्तानां वै महात्मनाम्। दिवि चेह च विख्याता उत्तराः कुरवः सदा॥३२॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे सप्तसप्ततितमोऽध्यायः॥७७॥

—※※※—

अष्टसप्ततितमोऽध्यायः

अथ भुवनकोशे-गन्धमादनादिवर्णनम्

रुद्र उवाच

तथा चतुर्णां वक्ष्यामि शैलेन्द्राणां यथाक्रमम्।
अनुविध्यानि रम्याणि विहङ्गैः कूजितानि च॥१॥

अनेकपक्षियुक्तात्मश्रृङ्गाणि सुबहूनि च। देवानां दिव्यनारीभिः समं क्रीडामयानि च॥२॥
किन्नरोद्गीतघुष्टानि शीतमन्दसुगन्धिभिः। पवनैः सेव्यमानानि रमणीयतराणि च॥३॥

वहाँ रज और तम गुणों से रहित स्थिर ज्ञान वाले महात्माओं के रहने से वह लोक प्रलय पर्यन्त नष्ट नहीं होने से 'सनातन' कहा जाता है।।३१।।

उन्हीं सात महात्माओं के नाम से प्रसिद्ध वह वर्ष स्वर्ग और इस लोक में सदा 'उत्तरकुरु' के नाम से प्रसिद्ध है।।३२।।

।।इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में भुवनकोश मेरु केतुमाल और कुरु वर्ष का वर्णन नामक सतहत्तरवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ।।७७।।

अध्याय–७८

भुवनकोश–गन्धमादन आदि पर्वत और वन

रुद्र ने कहा कि पूर्वोक्त वर्णन के आलोक में उस सुमेरु पर्वत से सटे रमणीक और पक्षियों के चहचहाहट युक्त श्रेष्ठ चार पर्वतों का क्रम से विवरणप्रस्तुत करता हूँ।।१।।

उन पर्वतों के अनेक शिखर अनेक पक्षियों के चहचहाहट से सम्पन्न रहा करते हैं। इस प्रकार उन परदेवताओं की दिव्य नारियाँ निरन्तर अठखेलियाँ करती रहती हैं।।२।।

प्रायः उन पर्वतों के शिखर किन्नरों के गीत-संगीत से गुञ्जायमान रहा करते हैं तथा शीतल, मन्द एवं सुगन्धित वायु के कारण वे अत्यन्त रमणीय रहा करता है।।३।।

चतुर्दिक्षु विराजन्ते नामतः शृणुतानघाः। पूर्वे चैत्ररथं नाम दक्षिणे गन्धमादनम्।
प्रभावेण सुतोयानि नवखण्डयुतानि च॥४॥
वनषण्डांस्तथाक्रम्य देवता ललनायुताः। यत्र क्रीडन्ति चोद्देशे मुदा परमया युताः॥५॥
अनुबन्धानि रम्याणि विहगैः कूजितानि च। रत्नोपकीर्णतीर्थानि महापुयजलानि च॥६॥
अनेकजलयन्त्रैश्च नादितानि महान्ति च। शाखाभिर्लम्बमानाभी रुवत्पक्षिकुलालिभिः॥७॥
कमलोत्पलकह्लारशोभितानि सरांसि च। चतुर्षु तेषु गिरिषु नानागुणयुतेषु च॥८॥
अरुणोदं तु पूर्वेण दक्षिणे मानसं स्मृतम्। असितोदं पश्चिमे च महाभद्रं तथोत्तरे।
कुमुदैः श्वेतकपिलैः कह्लारैर्भूषितानि च॥९॥
अरुणोदयस्य ये शैलाः प्राच्या वै नामतः स्मृताः।
तान् कीर्त्त्यमानांस्तत्त्वेन शृणुध्वं गदतो मम॥१०॥
विकङ्को मणिशृङ्गश्च सुपात्रश्चोपलो महान्। महानीलोऽथ कुम्भश्च सुबिन्दुर्मदनस्तथा॥११॥
वेणुनद्धः सुमेदाश्च निषधो देवपर्वतः। इत्येते पर्वतवराः पुण्याश्च गिरयोऽपरे॥१२॥
पूर्वेण मन्दरात् सिद्धाः पर्वताश्च मदायुताः। सरसो मानसस्येह दक्षिणेन महाचलाः॥१३॥
ये कीर्त्तिता मया तुभ्यं नामतस्तान् निबोधत। शैलस्त्रिशिखरश्चैव शिशिरश्चाचलोत्तमः॥१४॥

हे निष्पाप! चार दिशाओं में विराजमान उन पर्वत शृङ्गों या शिखरों का नाम ध्यान से सुनो। पूर्व दिशा में चैत्ररथ और दक्षिण दिशा में गन्धमादन स्थित है। वहीं वे प्रभाव सम्पन्न सुन्दर जल से युक्त और नव खण्डों से सम्पन्न हैं। जहाँ आकर स्त्रियों के साथ देवगण परमानन्द सहित क्रीड़ा किया करते हैं।।४-५।।

इस प्रकार उनसे सम्बन्धित रमणीय शृङ्ग आदि पक्षियों के कूजन से सम्पन्न रहा करते हैं। फिर वहाँ के तीर्थ स्थल रत्नों से सम्पन्न और अतिशय पवित्र जल युक्त हैं।।६।।

वे शृङ्ग विभिन्न प्रकार के जलयन्त्रों और वृक्षों की शाखाओं पर स्थित पक्षियों के कुल द्वारा सदा प्रतिध्वनित होते रहा करते हैं।।७।।

विभिन्न प्रकार के गुणों से सम्पन्न उन चारों पर्वतों पर कमल, उत्पल और कल्हार के गन्ध से सुगन्धित सरोवर स्थित हैं। पूर्व दिशा में अरुणोद, दक्षिण दिशा में मानस, पश्चिम दिशा में असितोद और उत्तर दिशा में महाभद्र नाम से प्रसद्धि चार सरोवर श्वेत, कपिल आदि वर्ण के कुमुदों की सुगन्धि से शोभा को बढ़ा रहे हैं।।८-९।।

अरुणोदय के जो पर्वत पूर्व दिशा में बतलाये गये हैं, उनका मैं यथार्थ रूप से वर्णन करने जा रहा हूँ। अब मेरे कथन को ध्यान से सुनो—।।१०।।

विकङ्क, मणिशृङ्ग, महान् उपलसुपात्र पर्वत, महानील, कुम्भ, सुविन्दु, मदन, वेणुनाद, सुमेदा, देवपर्वत निषध आदि श्रेष्ठ पर्वत की श्रेणी में माने गये हैं। इन सबके अतिरिक्त दूसरे भी पवित्र पर्वत हैं।।११-१२।।

मन्दराचल के पूरब में और मानसरोवर के दक्षिण में आनन्दपूर्ण तथा सिद्धिप्रद महान् पर्वत हैं।।१३।।

इस प्रकार मेरे द्वारा तुम सब से जिन पर्वतों का उल्लेख किया गया है, उनका नाम मेरे द्वारा अब सुनो— जहाँ त्रिशिखर नाम से पर्वत और शिशिर नाम से श्रेष्ठ पर्वत कहा है।।१४।।

कपिश्च शतमक्षश्च तुरगश्चैव सानुमान्। ताम्राहश्च विषश्चैव तथा श्वेतोदनो गिरिः॥१५॥
समूलश्चैव सरलो रत्नकेतुश्च पर्वतः। एकमूलो महाशृङ्गो गजमूलोऽपि शावकः॥१६॥
पञ्चशैलश्च कैलासो हिमवानचलोत्तमः। उत्तरा ये महाशैलास्तान् वक्ष्यामि निबोधत॥१७॥
कपिलः पिङ्गलो भद्रः सरसश्च महाचलः। कुमुदो मुधमांश्चैव गर्जनो मर्कटस्तथा॥१८॥
कृष्णश्च पाण्डवश्चैव सहस्रशिरसस्तथा। पारियात्रश्च शैलेन्द्रः शृङ्गवानचलोत्तमः।
इत्येते पर्वतवराः श्रीमन्तः पश्चिमे स्मृताः॥१९॥
महाभद्रस्य सरस उत्तरेण द्विजोत्तमाः। ये पर्वताः स्थिता विप्रास्तान् वक्ष्यामि निबोधत॥२०॥
हंसकूटो महाशैलो वृषहंसश्च पर्वतः। कपिञ्जलश्च शैलेन्द्र इन्द्र शैलश्च सानुमान्॥२१॥
नीलः कनकशृङ्गश्च शतशृङ्गश्च पर्वतः। पुष्करो मेघशैलोऽथ विरजाश्चाचलोत्तमः।
जारुधिश्चैव शैलेन्द्र इत्येते उत्तराः स्मृताः॥२२॥
इत्येतेषां तु मुख्यानामुतरेषु यथाक्रमम्। स्थलीरन्तरद्रोण्यश्च सरांसि च निबोधत॥२३॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे अष्टसप्तातितमोऽध्यायः

उनमें कवि, शतमक्ष, तुरग पर्वत, ताम्राह, विष, श्वेतोदन आदि नाम से पर्वत हैं। फिर समूल, सरल, रत्नकेतु पर्वत, एकमूल नाम का पर्वत महान् पर्वत, गणमूल और शावक नामक पर्वत हैं।।१५-१६।।

पञ्चशैल, कैलास, पर्वतोत्तम हिमालय नाम का पर्वत आदि है। उत्तर दिशा में जो महान् पर्वत हैं, उनका वर्णन करने जा रहा हूँ, उसे सुनो—।।१७।।

कपिल, पिङ्गल, भद्र, महापर्वत, सरस, कुमुद, मधुमान्, गर्जन और मर्कट पर्वत हैं। फिर कृष्ण, पाण्डव, सहस्रसिरस, पर्वतश्रेष्ठ पारियात्र, पर्वतोत्तम शृङ्गवान् आदि सभी श्रीमान्, श्रेष्ठ, पर्वत पश्चिम दिशा में बतलाये हुए हैं।।१८-१९।।

हे द्विजोत्तम! हे विप्र! महाभद्र सरोवर के उत्तर दिशा में स्थित पर्वतों को अब कहता हूँ, उस विषय में सुनो— महापर्वत हंसकूट, वृषहंस पर्वत, श्रेष्ठ पर्वत, कपिञ्जल, शृङ्गयुक्त इन्द्रशैल नाम का पर्वत हैं। नील, कनकशृङ्ग शतशृङ्गपर्वत, पुष्कर, मेघशैल, पर्वतोत्तम विरजा और पर्वतश्रेष्ठ जारुधि, ये सभी उत्तर दिशा में स्थित पर्वत बतलाये गए हैं।।२०-२२।।

फिर उत्तर दिशा में स्थित इन पर्वतों के स्थालियों, अन्तर द्रोणियों, सरोवरों आदि का क्रम से आगे वर्णन करेंगे।।२३।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में भुवनकोश–गन्धमादन आदि पर्वत और वन नामक अठत्तरवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥७८॥

❖❖❖

एकोनाशीतितमोऽध्यायः

अथ भुवनकोशे-मेरुद्रोणिस्थसरादिवर्णनम्

रुद्र उवाच

सीतान्तस्याचलेन्द्रस्य कुमुदस्यान्तरेण च। द्रोण्यां विहङ्गपुष्टायां नानासत्त्वनिषेवितम्॥१॥
त्रियोजनशतायामं शतयोजनविस्तृतम्। सुरसामलपानीयं रम्यं तत्र सुरोचनम्॥२॥
द्रोणमात्रप्रमाणैश्च पुण्डरीकैः सुगन्धिभिः। सहस्रशतपत्रैश्च महापद्मैरलङ्कृतम्॥३॥
देवदानवगन्धर्वैर्महासर्पैरधिष्ठितम्। पुण्यं तच्छ्रीसरो नाम सप्रकाशमिहेह च॥४॥
प्रसन्नसलिलैः पूर्णं शरण्यं सर्वदेहिनाम्। तत्र त्वेकं महापद्मं मध्ये पद्मवनस्य च॥५॥
कोटिपत्रप्रकलितं तरुणादित्यवर्चसम्। नित्यं व्याकोशमधुरं चलत्वादतिमण्डलम्॥६॥
चारुकेसरजालाढ्यं मत्तभ्रमरनादितम्। तस्मिन् मध्ये भगवती साक्षात् श्रीर्नित्यमेव हि।
लक्ष्मीस्तु तं तदावासं मूर्त्तिमन्तं न संशयः॥७॥
सरसस्तस्य तीरे तु तस्मिन् सिद्धनिसेवितम्। सदा पुष्पफलं रम्य तत्र बिल्ववनं महत्॥८॥

अध्याय-७९

भुवन कोश-मेरु द्रोणी स्थित सर, वन, आश्रम आदि वर्णन

रुद्र ने कहा कि पर्वतश्रेष्ठ के सीतान्त और कुमुद के बीच में पशुपक्षियों द्वारा प्रतिध्वनित घाटी में विभिन्न प्रकार के जीव निवास किया करते हैं।।१।।

उस घाटी की लम्बाई तीन सौ योजन और चौड़ाई सौ योजन की है, वहीं पर स्वादपूर्ण और स्वच्छ जल का रमणीय सरोवर है।।२।।

फिर वही सरोवर द्रोण तुल्य प्रमाण के सुगन्धित कमलों और सौ हजार पत्रों वाले श्रेष्ठ कमलों से विभूषित है।।३।।

जहाँ पर देवता, दानव, गन्धर्व, महासर्प आदि निवास किया करते हैं। वहाँ पर स्थित शोभासम्पन्न सरोवर का नाम 'श्री सर' है।।४।।

स्वच्छ जल से परिपूर्ण और समस्त जीवों को आश्रय प्रदान करने वाले उस सरोवर के पद्मवन में बीचो बीच एक महापद्म भी स्थित है।।५।।

फिर वह महापद्म एक करोड़ पत्रों वाला तरुण सूर्य के तुल्य प्रकाशमान् निरन्तर विकसित रहने के कारण मधुर प्रतीत होने वाला और कम्पित होते रहने से महान् मण्डल की आकृति दृष्ट होता है।।६।।

वह पद्म सुन्दर केसरों से सम्पन्न होने से बहुत-सारे भौंरों से नित्य प्रतिध्वनित होता रहता है। उसके मध्य में साक्षात् स्वयं भगवती श्रीलक्ष्मी निरन्तर स्थित रहती हैं। इस प्रकार वह पद्म श्रीलक्ष्मी जी का मूर्त्ति स्वरूप निवासस्थल है, इसमें संशय नहीं।।७।।

उस सरोवर के तट पर पुष्प और फल से सम्पन्न तथा सिद्धगणों से सेवित रमणीय महाबिल्व का वन भी स्थित है।।८।।

शतयोजनविस्तीर्णं द्वियोजनशतायतम्। अर्द्धक्रोशोच्चशिखरैर्महावृक्षैः समन्ततः।
शाखासहस्रकलितैर्महास्कन्धैः समाकुलम्॥९॥

फलैः सहस्रसङ्काशैः हरितैः पाण्डुरैस्तथा। अमृतस्वादुसदृशैर्भेरीमात्रैः सुगन्धिभिः॥१०॥

शीर्यद्भिश्च पतद्भिश्च कीर्णभूमिवनान्तरम्। नाम्ना तच्छ्रीवनं नाम सर्वलोकेषु विश्रुतम्॥११॥

देवादिभिः समाकीर्णमष्टाभिः ककुभिः शुभम्।
बिल्वाशिभिश्च मुनिभिः सेवितं पुण्यकारिभिः।
तत्र श्रीः संस्थिता नित्यं सिद्धसङ्घनिषेविता॥१२॥

एकैकस्याचलेन्द्रस्य मणिशैलस्य चान्तरम्। शतयोजनविस्तीर्णं द्वियोजनशतायतम्॥१३॥

विमलं पङ्कजवनं सिद्धचारणसेवितम्। पुष्पं लक्ष्म्या घ्युतं भाति नित्यं प्रज्वलतीव ह॥१४॥

अर्द्धक्रोशं च शिखरैर्महास्कन्धैः समावृतम्। प्रफुल्लशाखाशिखरं पिञ्जरं भाति तद्वनम्॥१५॥

द्विबाहुपरिणाहैस्तैस्त्रिहस्तायामविस्तृतैः। मनःशिलाचूर्णनिभैः पाण्डुकेसरशालिभिः॥१६॥

पुष्पैर्मनोहरैर्व्याप्तं व्याकोशैर्गन्धशोभिभिः। विराजति वनं सर्वं मत्तभ्रमरनादितम्॥१७॥

तद्वनं दानवैर्दैत्येर्गन्धर्वैर्यक्षराक्षसैः। किन्नरैरप्सरोभिश्च महाभोगैश्च सेवितम्॥१८॥

वह बिल्ववन सौ योजन चौड़ा और दो सौ योजन लम्बाई वाला है। उस वन के चारों तरफ आधे कोस के समान ऊँचे शिखरों और हजारों शाखाओं वाले एवं महान् स्कन्धों वाले बड़े-बड़े वृक्षों से पूर्ण हैं।।९।।

इस प्रकार हजारों हरे और पीले अमृत के समान स्वादयुक्त भेरी के तुल्य आकृति वाले, सुगन्ध सम्पन्न, पक कर गिरने वाले बिल्व फलों से उस वन का मध्य भाग निरन्तर सम्पन्न रहा करता है। अतः समस्त लोकों में उस वन को 'श्रीवन' के नाम से जाना जाता है।।१०-११।।

वह वन अष्ट दिशाओं से आगन्तुक श्रीफल खाने वाले देव आदि पुण्यकर्मियों और ऋषि-मुनियों से सेवित रहता हुआ सिद्धगणों से भी सेवित रहता हुआ लक्ष्मी निरन्तर निवास करती हैं।।१२।।

इस प्रकार प्रत्येक श्रेष्ठ पर्वत और मणिशैल के मध्य का भाग सौ योजन चौड़ा और दो सौ योजन लम्बाई वाला है।।१३।।

वहाँ पर सिद्धगणों और चारणों से सेवित स्वच्छ कमलवन स्थित है, जहाँ शोभायुक्त पुष्प नित्य निरन्तर वहाँ खिले रहा करते हैं।।१४।।

वह वन अर्द्ध कोस के शिखरों वाले महान् स्कन्धों वाले वृक्षों से सम्पन्न होकर शाखाओं के पुष्पयुक्त अग्रभाग से पीतवर्ण का भासित होता है।।१५।।

इस प्रकार दो हस्त लम्बे और तीन हस्त चौड़े तथा मनःशिल के चूर्ण के समान पीले-पीले केसरों से सम्पन्न मतवाले भौंरों से प्रतिध्वनित, सुगन्ध से सम्पन्न और खिले विकसित मनोहर पुष्पों से वह वन प्रत्येक जगह विभूषित रहता है।।१६-१७।।

उसी वन में दानव, दैत्य, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, किन्नर, अप्सराओं के सहित महासर्प निवास किया करते हैं।।१८।।

तत्राश्रमो भगवतः कश्यपस्य प्रजापतेः। सिद्धसाधुगणाकीर्णं नानाश्रमसमाकुलम्॥१९॥
महानीलस्य मध्ये तु कुम्भस्य च गिरेस्तथा। मध्ये सुखा नदी नाम तस्यास्तीरे महद्वनम्॥२०॥
पञ्चाशद्योजनायामं त्रिंशद्योजनमण्डलम्। रम्यं तालवनं श्रीमत् क्रोशार्द्धोच्छ्रितपादपम्॥२१॥
महाबलैर्महासारैः स्थिरैरविचलैः शुभैः। महदञ्जनसंस्थानैः परिवृत्तैर्महाफलैः॥२२॥
मृष्टगन्धगुणोपेतैरुपेतं सिद्धसेवितम्। ऐरावतस्य करिणस्तत्रैव समुदाहृतम्॥२३॥
ऐरावतस्य रुद्रस्य देवशैलस्य चान्तरे। सहस्रयोजनायामा शतयोजनविस्तृता॥२४॥
सर्वा ह्येकशिला भूमिर्वृक्षवीरुधवर्जिता। आप्लुता पादमात्रेण सलिलेन समन्ततः॥२५॥
इत्येताभ्यन्तरद्रोचणे नानाकाराः प्रकीर्त्तिताः। मेरोः पार्श्वेन विप्रेन्द्रा यथावदनुपूर्वशः॥२६॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे एकोनाशीतितमोऽध्याः॥७९॥
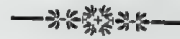
उसी वन में प्रजापति भगवान् कश्यप का आश्रम के सहित सिद्धों, साधुओं आदि के समूहों और अन्यान्य प्रकार के आश्रम स्थित हैं।।१९।।

फिर महानील और कुम्भ पर्वत के मध्य 'सुखानदी' स्थित है। उस नदी के तट पर महावन भी स्थित है।।२०।।

उस महावन से लगे पचास योजन लम्बा और तीस योजन चौड़ा तालवन स्थित है। उसमें आधे-आधे कोस के ऊँचे-ऊँचे वृक्ष स्थित हैं।।२१।।

वे सभी वृक्ष महाबलवान् और महाओजस्वी, स्थिर, अविचल, कल्याणमय और अञ्जन के सदृश महाफलों से सुसम्पन्न हैं।।२२।।

वह वन मधुर सुगंध और गुणों से सम्पन्न तथा सिद्धगणों से सेवित है। उसी स्थान पर ऐरावत नाम के हाथी का निवास स्थल भी कहा गया है।।२३।।

जहाँ ऐरावत और देवपर्वत रुद्राचल के मध्य हजार योजन लम्बी और सौ योजन चौड़ी भूमि स्थित है।।२४।।

इस तरह की भूमि वृक्षों और वनस्पतियों से हीन एक शिला खण्ड जैसा है। उसमें हर स्थान पर पादमात्र जल भरा हुआ है।।२५।।

हे विप्रेन्द्रों! सुमेरु के पार्श्व में इस प्रकार क्रम से अनेक प्रकार की घाटियों का उल्लेख किया गया है।।२६।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में भुवन कोश-मेरु द्रोणी स्थित सर, वन, आश्रम आदि वर्णन नामक उन्यासीवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥७९॥

❖❖❖

अशीतितमोऽध्यायः

अथ भुवनकोशे-मेरुस्थाश्रमादिवर्णनम्

रुद्र उवाच

अथ दक्षिणदिग्व्यवस्थिताः पर्वतद्रोण्यः सिद्धाचरिताः कीर्त्यन्ते।
शिशिरपतङ्गयोर्मध्ये शुक्लभूमिस्त्रिया मुक्तलतागलितपादपम्।
इक्षुक्षेपे च शिखरे पादपैरुपशोभितम्। उदुम्बरवनं रम्यं पक्षिसङ्घनिषेवितम्॥१॥
फलितं तद् वनं भाति महाकूर्मोपमैः फलैः। तद् वनं देवयोन्योऽष्टौ सेवन्ते सर्वदैव हि॥२॥

तत्र प्रसन्नस्वादुसलिला बहूदका नद्यो वहन्ति। तत्राश्रमो भगवतः कर्दमस्य प्रजापतेः। नानामुनिजनाकीर्णस्तच्च शतयोजनमेकं परिमण्डलं वनं च। तथा च ताम्राभस्य शैलस्य पतङ्गस्य चान्तरे शतयोजनविस्तीर्णं द्विगुणायतं बालार्कसदृशराजीवपुण्डरीकैः समन्ततः सहस्रपत्रैरविरलैरलंकृतं महत् सरोऽनेकसिद्धगन्धर्वाध्युषितम्।

तस्य च मध्ये महाशिखरः शतयोजनायामस्त्रिंशद्योजनविस्तीर्णोऽनेकधातुरत्नभूषितस्तस्य चोपरि महती रथ्या रत्नप्राकारतोरणा।

तस्यां महद् विद्याधरपुरम्। तत्र पुलोमनामा विद्याधरराजः शतसहस्रपरीवारः।

अध्याय–८०

भुवनकोश-मेरु पर देव आश्रम, वनद्रोणी का वर्णन

रुद्र ने कहा कि इस समय दक्षिण दिशा में व्यवस्थित सिद्धगणों से सेवित पर्वत द्रोणियों का उल्लेख किया जाता है—शिशिर और पतङ्ग नाम के पर्वतों के बीच स्थित स्त्री, लता और वृक्षों से रहित शुक्लवर्ण की भूमि है। इस इक्षुक्षेप शिखर पर वृक्षों से विभूषित और पक्षीगणों से सेवित रमणीय उदुम्बर वन स्थित है।।१।।

महाकूर्म के समान फलों से वे वृक्ष शोभा पाते हैं। अष्टदेव योनियों के जीव हमेशा ही उस वृक्ष का सेवन किया करते हैं।।२।।

वहाँ स्वच्छ, सुस्वादु और अत्यधिक जल से सम्पन्न नदियाँ प्रवाहित होती हैं। वहाँ पर अनेक मुनिजनों से सुशोभित भगवान् कर्दम प्रजापति का आश्रम है, वह वन एक सौ योजन के परिमण्डल का है। ताम्राभ और पतङ्ग नाम के पर्वतों का अन्तर सौ योजन चौड़ा और इसी का द्विगुणा अर्थात् दो सौ योजन लम्बा एक महासरोवर स्थित है, जो चारों ओर से हजारों पत्रों वाले बाल सूर्य के समान रक्तपद्मों से सघनता से विभूषित और अनेक सिद्धों और गन्धर्वों से सेवित है।

उसके मध्य में सौ योजन लम्बा, तीस योजन चौड़ा अनेक धातुओं एवं रत्नों से सुशोभित विस्तारित महाशिखर स्थित है। उसके ऊपर रत्न जड़ित प्रकार और तोरणों से सम्पन्न महान् एक राजमार्ग स्थित है।।

उसमें ही विद्याधरों का महान् पुर भी स्थित है। वहाँ सौ हजार परिवार से सम्पन्न पुलोम नाम से विद्याधरों का राजा निवास करता है।

तथा च विशाखाचलेन्द्रस्य श्वेतस्य चान्तरे सरः। तस्य च पूर्वतीरे महदाम्रवनं कनकसंकाशैः फलैरतिसगुगन्धिभिर्महाकुम्भमात्रैः सर्वतश्चितम्। देवगन्धर्वादयश्च तत्र निवसन्ति।

सुमूलस्याचलेन्द्रस्य वसुधारस्य चान्तरे त्रिंशद्योजनविस्तीर्णे पञ्चाशद्योजनायते।

बिल्वस्थली नाम। तत्र फलानि विद्रुमसंकाशानि तैश्च पतद्भिः स्थलमृत्तिका क्लिन्ना। तां च स्थलीं सुगुह्यकादयः सेवन्ते बिल्वफलाशिनः।

तथा च वसुधाररत्नधारयोरन्तरे त्रिंशद्योजनविस्तीर्णं शतयोजनमायतं सुगन्धिकिंशुकवनं सदा कुसुमं यस्य गन्धेन वास्यते योजनशतम्। तत्र सिद्धाध्युषितं जलोपेतं च। तत्र चादित्यस्य देवस्य महदायनम्। स मासे मासे च भगवानवतरति सूर्यः प्रजापतिः। कालजनकं देवादयो नमस्यन्ति।

तथा च पञ्चकूटस्य कैलासस्य चान्तरे सहस्रयोजनायामं विस्तीर्णं शतयोजनं हंसपाण्डुरं क्षुद्रसत्त्वैरनाधृष्यं स्वर्गसोपानमिव भूमण्डम्।

अथ पश्चिमदिग्भागे व्यवस्थिता गिरिद्रोण्यः कीर्त्यन्ते। सुपार्श्वशिखिशैलयोर्मध्ये समन्ताद् योजनशतमेकं भौमशिलातलं नित्यतप्तं दुःस्पर्शम्। तस्य मध्ये त्रिंशद्योजनविस्तीर्णं मण्डलं वह्निस्थानं। स च सर्वकालमनिन्धनो भगवान् लोकक्षयकारी संवर्तको ज्वलते।

वैसे विशाखा नाम का पर्वतराज और श्वेत पर्वत के भी मध्य में एक सरोवर स्थित है। उसके पूर्वी किनारे पर चारों ओर अतिसुगन्धित, बड़े घड़े के आकार वाले स्वर्ण के समान फलों से विभूषित महा आम्रवन है। वहाँ देवता और गन्धर्व आदि भी रहते हैं।।

सुमूल नाम के पर्वतराज और वसुधार नामक पर्वत के मध्य में तीस योजन चौड़ा और पचास योजन लम्बा बिल्वस्थली नाम का स्थान है। वहाँ विद्रुम के समान फल हैं। उन फलों के गिरने से उस स्थान की मिट्टी गिली रहती है। बिल्वफल भक्षण करने वाला गुह्यकादि उस स्थान में रहा करते हैं।

इसी तरह वसुधार और रत्नधार नाम के पर्वतों के बीच तीस योजन चौड़ा और सौ योजन लम्बा सदा ही पुष्प युक्त रहने वाला सुगन्धित किंशुक वन है। जिसके गन्ध से सौ योजन तक का स्थान सुगन्धित रहता है। वहाँ आदित्य देव का सिद्धादिगणों से सेवित जल युक्त महान् मन्दिर है। जहाँ, वे प्रजापति भगवान् सूर्य प्रत्येक मास में अवतरित होते रहते हैं। देवादिक कालजनक सूर्य को नमस्कार किया करते हैं।।

वैसे पञ्चकूट और कैलास के बीच हजार योजन लम्बा और सौ योजन चौड़ा हंस के समान श्वेत क्षुद्र जीवों हेतु अगम्य और स्वर्ग की सीढ़ी के समान भूमण्डल है।

इस समय पश्चिम दिशा में स्थित पर्वत की द्रोणियों का वर्णन किया जाता है। सुपार्श्व और शिखि नाम के पर्वतों के मध्य चारों ओर सौ योजन का पार्थिव शिलातल है। वह नित्य गर्म होता रहता है, जिसे स्पर्श करना भी कष्टदायक है।

उसके बीच में तीस योजन विस्तृत मण्डलाकार अग्निस्थान है। लोक क्षय करने वाले भगवान् सम्वर्त्तक नाम से वे अग्नि समस्त काल में विना इन्धन के ही जलते रहते हैं।

अन्तरे च शैलवरयोः कुमुदाञ्जनयोः शतयोजनविस्तीर्णा मातुलुङ्गस्थली सर्वसत्त्वानामगम्या पीतवर्णैः फलैरावृता सती सा स्थली शोभते।

तत्र च पुण्यो ह्रदः सिद्धैरुपेतः। बृहस्पतेस्तद् वनम्।

तथा च शैलयोः पिञ्जरगौरयोरन्तरेण सरो द्रोणी ह्यनेकशतयोजनायता महद्भिश्च षट्पदोद्घुष्टैः कुमुदैरुपशोभिता। तत्र च भगवतो विष्णोः परमेश्वरस्यायतनम्।

तथा च शुक्लपाण्डुरयोरपि महागिर्योरन्तरे त्रिंशद्योजनविस्तीर्णो नवत्यायत एकः शिलोद्देशो वृक्षविवर्जितः। तत्र निष्पङ्का दीर्घिका सवृक्षा च स्थलपद्मिनी अनेकजातीयैश्च पद्मैः शोभिता।

तस्याश्च मध्ये पञ्चयोजनप्रमाणो महान्यग्रोधवृक्षः। तस्मिंश्चन्द्रशेखरोमापतिर्नीलवासाश्च देवो निवसति यक्षादिभिरीड्यमानः।

सहस्त्रशिखरस्य गिरेः कुमुदस्य चान्तरे पञ्चाशद्योजनायामं विंशद्योजनविस्तृत-मिक्षुक्षेपोच्चशिखरमनेकपक्षिसेवितम्।

तत्र चेन्द्रस्य महानाश्रमो दिव्याभिप्रायनिर्मितः।

तथा च शङ्खकूटऋषभयोर्मध्ये पुरुषस्थली रम्याऽनेकगुणानेकयोजनायता बिल्वप्रमाणैः कङ्कोलकैः सुगन्धिभिरुपेता। तत्र पुरुषकरसोन्मत्ता नागाद्याः प्रतिवसन्ति।

कुमुद और अञ्जन नाम के श्रेष्ठपर्वतों के बीच का अन्तर सौ योजन विस्तार वाला 'मातुलुङ्ग वन' अर्थात् नींबू का वन है।समस्त प्राणियों के हेतु अगम्य होने के साथ पीत वर्ण के फलों से भरे पड़े रहता है।

वहाँ भी सिद्धगणों से युक्त पवित्र ह्रद या सरोवर स्थित है। वह वन बृहस्पति का कहा जाता है।

वैसे पिञ्जर और गौर नाम के पर्वतों के बीच एकसरोवर से युक्त कई सौ योजन की लम्बी द्रोणी या घाटी है। वह भौंरों से गुञ्जायमान और श्रेष्ठ कुमुदों से शोभायमान रहती है। वहीं पर परमेश्वर भगवान् विष्णु का मन्दिर है।

वैसे ही शुक्ल और पाण्डु नाम के पर्वतों के बीच तीस योजन विस्तार वाला और नब्बे योजन लम्बा वृक्ष के कारण खाली एक शिला प्रदेश भी है। वहाँ पर कीचड़ से रहित एक सरोवर है, जो वृक्षों से युक्त और अनेक कमलों से शोभित है। वह कमलाकार है।

फिर उसके बीच में पाँच योजन प्रमाण से युक्त महान् वट का वृक्ष है। वह वृक्ष यक्षादि से पूजित नीलाम्बर उमापति चन्द्रशेखर देव जहाँ निवास करते हैं।

सहस्त्र शिखर और कुमुद पर्वतों के बीच बीस योजन चौड़ा और पचास योजन लम्बा बहुत-सारे पक्षियों से सेवित तथा मीठा-मीठा रस स्त्रवित करने वाले अनेक वृक्षों के फलों से सुशोभित इन्दुक्षेत्र नाम का उच्चशिखर है।

वहाँ पर इन्द्र का महान् आश्रम, जो दिव्य अभिप्रायों से युक्त स्थित है।

वैसे ही शंखकूट और ऋषभ पर्वतों के बीच पुरुषस्थली नाम का एक स्थान है। वह स्थल कई योजन लम्बी, अनेक गुणों से सम्पन्न, रमणीक और बेल के तुल्य सुगन्धित कंकोल के फलों से युक्त है। वहीं पर पुरुषक के रस से उन्मत्त नाग आदि भी निवास किया करते हैं।

तथा कपिञ्जलनागशैलयोरन्तरे द्विशतयोजनमायामविस्तीर्णा शतयोजनस्थली नानावनविभूषिता द्राक्षाखर्जूरखण्डैरुपेता अनेकवृक्षवल्लीभिरनेकैश्च सरोभिरुपेता सा स्थली।

तथा च पुष्करमहामेघयोरन्तरे षष्टियोजनविस्तीर्णा शतायामा पाणितलप्रख्या महती स्थली वृक्षवीरुधविवर्जिता। तस्याश्च पार्श्वे चत्वारि महावनानि सरांसि चानेकयोजनानाम्। दश पञ्च सप्त तथाष्टौ त्रिंशद् विंशति योजनानां स्थल्यो द्रोण्यश्च। तत्र काश्चिन्महाघोराः पर्वतकुक्षयः।

।।इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे अशीतितमोऽध्यायः।।८०।।

फिर कपिञ्जल और नाग नाम के पर्वतों के मध्य दो सौ योजन लम्बी एवं सौ योजन चौड़ी अनेक वनों से शोभायमान स्थली है। वह स्थली द्राक्षा और खर्जूर के समूहों से युक्त है। वह अनेक वृक्षों और लताओं तथा सरोवरों से शोभा पाया करती है।

वैसे ही पुष्कर और महामेघ पर्वतों के बीच के अन्तराल साठ योजन चौड़ी और सौ योजन लम्बी वृक्षों और वनस्पतियों से हीन पाणितल नाम का महान् स्थल है। उसके पार्श्व में चार महान् वन, अनेक योजनों के सरोवर और दस, पाँच, सात, आठ, तीस और बीस योजनों वाले स्थल और द्रोणियाँ (घाटियाँ) हैं। वहाँ पर यत्र-कुत्र महाभयानक पर्वत गुफाऐं भी अवस्थित हैं।

।।इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में भुवनकोश-मेरु पर देव आश्रम, वनद्रोणी का वर्णन नामक अस्सीवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ।।८०।।

❖❖❖

एकाशीतितमोऽध्यायः

अथ भुवनकोशे-देवादिनिवासवर्णनम्

रुद्र उवाच

अतः परं पर्वतेषु देवानामवकाशा वर्ण्यन्ते। तत्र योऽसौ शान्ताख्यः पर्वतस्तस्योपरि महेन्द्रस्य क्रीडास्थानम्। तत्र देवराजस्य पारिजातकवृक्षवनम्। तस्य पूर्वपार्श्वे कुञ्जरो नाम गिरिः। तस्योपरि दानवानामष्टौ पुराणि च।

तथा वज्रके पर्वतवरे राक्षसानामनेकानि पुराणि। ते च नाम्ना नीलकाः कामरूपिणः। महानीलेऽपि शैलेन्द्रपुराणि। पञ्चदशसहस्त्राणि किन्नराणां ख्यातानि। तत्र देवदत्तचन्द्रादयो राजानः। पञ्चदशकिन्नराणां गर्विताः। तानि सौवर्णानि विलप्रवेशनानि च पुराणि। चन्द्रोदये च पर्वतवरे नागानामधिवासः। ते च बिलप्रवेशाः।

विलेषु वैनतेयविषयावर्त्तिनो व्यवस्थितानुरागे च दानवेन्द्रा व्यवस्थिताः। वेणुमत्यपि विद्याधरपुरत्रयम्। त्रिंशद्योजनशतविस्तीर्णमेकैकं तावदायतम्। उलूकरोमशमहावेत्रादयश्च राजानो विद्याधराणाम्। एकैके च शैलराजनि स्वयमेव गरुडो व्यवस्थितः।

कुञ्जरे तु पर्वतवरे नित्यं पशुपतिः स्थितः। वृषभाङ्को महादेवः शंकरो योगिनां वरः अनेकगणभूतकोटिसहस्त्रवारो भगवान् अनादिपुरुषो व्यवस्थितः।

अध्याय–८१

भुवनकोश-मेरु पर देव-दानव-राक्षस निवास वर्णन

रुद्र ने कहा कि एतदनन्तर पर्वतों पर अवस्थित देवताओं के निवास स्थान का वर्णन किया जा रहा है। उन पर्वतों में जो शान्त नाम का पर्वत है, उसके ऊपर महेन्द्र का क्रीड़ास्थल है। वहाँ वहीं पर देवेन्द्र का पारिजात वृक्षों का वन भी है। उसी के पूर्व दिशा में कुञ्जर नाम का पर्वत है। जिसके ऊपर दानवों का आठ पुर (नगर) भी अवस्थित है।

वैसे ही वज्रक नाम के पर्वत पर भी राक्षसों की अनेक पुरियाँ स्थित हैं। उनके नाम कामरूपी नीलक हैं। महानील (पर्वत) पर किन्नरों का पन्द्रह हजार शैलेन्द्र पुरियाँ भी प्रसद्धि हैं। वहाँ पर किन्नरों के देवदत्त, चन्द्रादि नामक पन्द्रह गर्वीले राजा भी निवास करते हैं। वहाँ पर बिल में से प्रवेश करने योग्य वे सुवर्णमयी पुरियाँ भी हैं। चन्द्रोदय नाम के श्रेष्ठ पर्वत पर नागों के रहने का स्थान है। ये भी बिल द्वारा प्रवेश करने योग्य स्थान है।

बिलों में गरुड़ के विषयावर्त्तिनी अनुराग युक्त श्रेष्ठ दानव व्यवस्थित है। वेणुमान् पर भी विद्याधरों के तीन पुरियाँ स्थित हैं। प्रत्येक पुर तीस हजार योजन विस्तृत और उतना ही लम्बा है। वहाँ पर क्रम से उलूक, रोमश और महावेत्रादि विद्याधरों के राजा हैं और प्रत्येक पर्वत राज पर गरुड़ स्वयमेव व्यवस्थित हैं।

पर्वतों में श्रेष्ठ कुञ्जर नाम के पर्वत पर पशुपति नित्य स्थित रहते हैं। वृषभाङ्क महादेव शंकर योगियों में श्रेष्ठ हैं। अनेक गणों एवं हजरों करोड़ भूतों से घिरे अनादि पुरुष भगवान् शिव वहाँ निवास करते हैं।

वसुधारे च पुष्पवतां वसूनां च समावासः। वसुधाररत्नधारयोर्मूर्ध्नि अष्टौ सप्त च संख्यया पुराणि वसुसप्तर्षीणां चेति। एकशृङ्गे च पर्वतोत्तमे प्रजापतेः स्थानं चतुर्वक्त्रस्य ब्रह्मणः। गजपर्वते च महाभूतपरिवृता स्वयमेव भगवती तिष्ठति।

वसुधारे च पर्वतवरे मुनिसिद्धविद्याधराणामायतनम्। चतुराशीत्यपरपुर्यो महाप्राकारतोरणाः। तत्र चानेकपर्वता नाम गन्धर्वा युद्धशालिनो वसन्ति। तेषां चाधिपतिर्देवो राजराजैकपिङ्गलः। सुरराक्षसाः पञ्चकूटे दानवाः शतशृङ्गे यक्षाणां पुरशतम्।

ताम्राभे तक्षकस्य पुरशतम्। विशखपर्वते गुहस्यायतनम्। श्वेतोदये गिरिवरे गरुडपुत्रस्य सुनाभस्यावासः। पिशाचके गिरिवरे महागन्धर्वभवनम्। हरिकूटे हरिर्देवः। कुमुदे किन्नरावासः। अञ्जने महोरगाः। कृष्णे गन्धर्वनगरम्। विद्याधरपुराणि च सप्त शोभितानि।

सहस्रशिखरे च दैत्यानामुग्रकर्मिणामावासः। पुराणां सहस्रमेकं हेममालिनाम् मुकुटे पन्नगोत्तमाः। विवस्वतस्तु सोमस्य वायोर्नागाधिपस्य च प्रपक्षे पर्वतवरे चत्वार्यायतनानि तु। एवं मेरुपर्वतेषु देवानामधिवासः।

मर्यादापर्वते देवकूटे पुरविन्यासः कीर्त्यते। तस्योपरि योजनशतं गरुडस्य जातं क्षेत्रम्। तस्यैव पार्श्वतस्त्रिंशद्योजनविस्तीर्णाश्चत्वारिंशदायताः सप्तगन्धर्वनगराः। आग्नेयाश्च नाम्ना गन्धर्वातिबलिनः। तत्र चान्यत् त्रिंशद्योजनमण्डलं पुरम् सैंहिकेयानाम्। तत्र च देवर्षिचरितानि देवकूटे दृश्यन्ते।

वसुधार नाम के पर्वत पर पुष्प सम्पन्न वसुओं का निवास स्थान है। फिर वसुधार और रत्नधार नाम के पर्वत के शिखर पर अष्टवसुओं एवं सप्तर्षियों के पन्द्रह पुर हैं। एक शृङ्ग नाम के श्रेष्ठ पर्वत पर चतुरानन प्रजापति ब्रह्मा का स्थान है। गजपर्वत पर महाभूतों से परिवृत्त साक्षात् स्वयं भगवती निवास करती हैं।

फिर उस वसुधार नाम के वरिष्ठ पर्वत पर मुनिगणों, सिद्धगणों और विद्याधरों के निवास स्थान हैं। महान् प्रकारों और तोरणों वाली चौरासी अन्य पुरियाँ हैं। वहाँ पर अनेक पर्वत नाम के युद्धशाली गन्धर्व निवास किया करते हैं। उन सबका राजाधिराज एक पिङ्गल अधिपति है। पञ्चकूट पर्वत पर देवता, राक्षस और दानवों का निवास है। शतशृङ्ग पर यक्षों के सौ पुर स्थित हैं।

ताम्राश पर्वत पर तक्षक के सौ पुर अवस्थित है। विशख पर्वत पर गुह का निवास है। श्वेतोदय श्रेष्ठ पर्वत पर गरुड़ पुत्र सुनाभ का आवास है। फिर पिशाचक श्रेष्ठ पर्वत पर महान् गन्धर्वों का भवन है। हरिकूट पर हरि देव रहा करते हैं। कुमुद नाम के पर्वत पर किन्नर निवास करते हैं। अञ्जन नाम के पर्वत पर महानागों का निवास है। कृष्ण नाम के पर्वत पर गन्धर्वों के नगर और विद्याधरों के सात पुर सुशोभित हैं।

सहस्र शिखर नामक पर्वत पर उग्रकर्मा दैत्यों के रहने का स्थान है। हेममाली नाम के पर्वत शिखर पर श्रेष्ठ सर्पों के एक सहस्रपुर है, जहाँ श्रेष्ठ सर्पका रहने योग्य स्थान है। प्रपक्ष नाम के श्रेष्ठ पर्वत पर विवस्वान, सोम, वायु, नागों के अधिराज आदि चारों के निवास स्थान हैं। वैसे ही मेरु नाम के पर्वत पर देवता रहते हैं।

अब देवकूट नाम के मर्यादा पर्वत अर्थात् सीमान्तपर्वत पर पुरों की रचना का उल्लेख किया जाता है। उस पर्वत के ऊपर गरुड़ का सौ योजन विस्तार वाला क्षेत्र स्थित है।उसी के पार्श्वभाग में गन्धर्वों के तीस योजन चौड़े और चालीस योजन लम्बे सात नगर हैं। यहाँ रहने वाले आग्नेय नाम का गन्धर्व अतिशय बलशाली है। सिंहिका के सन्तानों का यहाँ तीस योजन के मण्डल वाला पुर है। वहीं देवकूट पर देवर्षियों के चरित्रों का दर्शन होता है।

पुरं च कालकेयानां तत्रैव। तथा चान्तरतटेऽन्ये सुनाम्नाम तस्यैव दक्षिणे त्रिंशद्योजनविस्तृतं द्विषष्टियोजनायामं पुरम् कामरूपिणं दृप्तानां मध्यमे च तस्य हेमकूटे महादेवस्य न्यग्रोधः। अथातः कैलासवर्णको भवति।

कैलासस्य तटे योजनशतमायामविस्तृतम् भुवनमालाभिव्याप्तम्। तस्याश्च मध्ये सभा। तत्र च तत्पुष्करं नाम विमानं तिष्ठति। धनदस्य च तद्विमानमधिवासश्च। तत्र पद्ममहापद्मकरकच्छपकुमुदशङ्खनीलनन्दमहानिधयः प्रतिवसन्ति।

तत्र चन्द्रादीनां लोकपालानामावासः। तत्र च मन्दाकिनी नाम नदी। तथा कनकमन्दा मन्दा चेति नामभिः सरितः।

तत्रान्या अपि नद्यः सन्ति। पूर्वपार्श्वे च शतयोजनमायामास्त्रिंशद्योजनविस्तृता दशगन्धर्वपुर्यः तासु च सुबाहुहरिकेशचित्रसेनादयो राजानः।

तस्यैव च पश्चिमकूटे अशीतियोजनायामं चत्वारिंशद्विस्तृतमेकैकं यक्षनगरम्। तेषु च महामालिसुनेत्रचक्रादयो नायकाः। तस्यैव दक्षिणे पार्श्वे कुञ्जदरीषु गुहासु समुद्रा समुद्रं यावत्किन्नराणां पुरशतम्।

तेषु च द्रुमसुग्रीवादिभगदत्तप्रमुखं राजशतम्। तत्र च रुद्रस्योमया सार्द्धं विवाहस्संवृत्तः। तपश्च कृतवती गौरी। किरातरूपिणा च रुद्रेण स्थितम्। तत्रैव तत्र स्थितेन सोमेन शंकरणे जम्बूद्वीपावलोकनं कृतम्।

उसी के समीप कालकेयों का पुर भी है। वैसे ही अन्य तट पर सुरों के अन्य आवास स्थित हैं। उसके ही दक्षिण दिशा में दृप्त कामरूप सम्पन्न राक्षसों का तीस योजन चौड़ा और बासठ योजन लम्बा पुर स्थित है।उसके ही मध्य में स्थित हेमकूट पर्वत प़र महादेव का वटवृक्ष है। अब आगे कैलास पर्वत का विवेचनापूर्ण उल्लेख किया जाता है।

कैलास पर्वत के तटीय सौ योजन लम्बा और चौड़ा भुवनों कासमूह व्याप्त है। उस़के मध्य में सभा है। वहीं पर पुष्कर नाम का विमान अवस्थित है। वह विमान और निवास स्थल कुबेर का है। वहाँ पद्म, महापद्म, कर, कच्छप, कुमुद, शंख, नील आदि नाम की महानिधियाँ हैं।

वहाँ चन्द्र आदि लोकपालों काआवास है। वहीं मन्दाकिनी, कनकमन्दा तथा मन्दा नाम क़ी नदियाँ स्थित हैं।

वहाँ पर अन्यान्त नदियाँ भी प्रवाहित हैं। पूर्व की दिशा में सौ योजन लम्बी और तीस योजन चौड़ी दस गन्धर्व पुरियाँ भी स्थित हैं। उनमें सुबाहु, हरिकेश और चित्रसेन आदि राजा निवास करते हैं।

फिर उसी के पश्चिमी शिखर पर अस्सी योजन लम्बा और चालिस योजन विस्तृत यक्ष नगर स्थित है। उनमें महामाली, सुनेत्र और चक्र राजा है। उसके दक्षिण पार्श्व में स्थित कुञ्चों के बीच में स्थित समुद्र सदृश गम्भीर पर्वत की गुफाओं में समुद्र तक विस्तृत किन्नरों के सौ पुरियाँ स्थित हैं।

उन पुरियों में द्रुम, सुग्रीव, भगदत्त आदि जैसे सौ राजाओं का वासस्थल है। वहीं पर रुद्र का उमा के साथ विवाह हुआ था और पार्वती जी द्वारा तपस्या की गई थी। वहाँ पर शिव किरात रूप में स्थित हैं। वहीं स्थित होकर उमासहित शंकर जी ने जम्बूद्वीप का निरीक्षण किया था।

तत्र चानेककिन्नरगन्धर्वोपगीतमुमावनं नामाप्सरोभिरनेकपुष्पलतावल्लीभिरुपेतम्। यत्र भगवता महेश्वरेणार्द्धनारीनरवपुः प्राप्तम्। तत्र च कार्तिकेयस्य शरद्वनम्। पुष्पचित्रक्रौञ्चयोर्मध्ये कार्तिकेयाभिषेकः कृतः।

तस्य च पूर्वतटे सिद्धमुनिगणावासः कलापग्रामो नाम। तथा च मार्कण्डेय-वसिष्ठपराशरनलविश्वामित्रोद्दालकादीनां महर्षीणामनेकानि सहस्राण्याश्रमाणां हि भवति। तथा च पश्चिमस्याचलेन्द्रस्य निषधस्य भागं शृणुत।

तस्य च मध्यमकूटे विष्णवायतनं महादेवस्य। तस्यैवोत्तरतटे त्रिंशद्योजनविस्तृतं महत्पुरं लम्बाख्यातं राक्षसानाम्। तस्यैव दक्षिणे पार्श्वे बिलप्रवेशनगरम्। प्रभेदकस्य पश्चिमेन देवदानवसिद्धादीनां पुराणि।

तस्य गिरेर्मूर्ध्नि महती सोमशिला तिष्ठति। तस्यां च पर्वणि सोमः स्वयमेवावतरति। तस्यैवोत्तरपार्श्वे त्रिकूटं नाम। तत्र ब्रह्मा तिष्ठति क्वचित्। तथा च वह्न्यायतनम्। मूर्त्तिमान वह्निरुपास्यते देवैः। उत्तरे च शृङ्गाख्ये पर्वतवरे देवतानामायतनानि। पूर्वे नारायणस्यायतनम्। मध्ये ब्रह्मणः। शंकरस्य पश्चिमे। तत्र च यक्षादीनां केचित् पुराणि तस्य चोत्तरतीरे जातुछे महापर्वते त्रिंशद्योजनमण्डलं नन्दजलं नाम सरस्।

तत्र नन्दो नाम नागराजा वसति शतशीर्षप्रचण्ड इति इत्येतेऽष्टौ देवपर्वता विज्ञेयाः तेनानुक्रमेण हेमरजरत्नवैदूर्यमनःशिलाहिङ्गुलादिवर्णाः।

वहाँ पर अनेक किन्नरों और गन्धर्वों के संगीत से गुञ्जित उमा का वन है, जो अनेक अप्सराओं और अनेक प्रकार के पुष्पों तथा लता-वल्लरियों से सम्पन्न है। जहाँ पर भगवान् शिव शंकर ने अर्द्धनारीनर का शरीर धारण किया था। वहीं पर कार्त्तिकेय का शरद् वन स्थित है, जहाँ पर पुष्प चित्रों और क्रौञ्च के बीच कार्त्तिकेय का अभिषेक सम्पन्न किया गया था।

उसके पूर्वी दिशा में स्थित तट पर सिद्धों और मुनिगणों का निवास भी स्थित है। जिसका नाम कलापग्राम है। वैसे भी वहाँ पर मारकण्डेय, वशिष्ठ, पराशर, नल, विश्वामित्र, उदालक आदि महर्षियों के अनेक सहस्र आश्रम स्थित हैं। फिर पश्चिम दिशा में स्थित पर्वतराज निषध के भागों के बारे में कहा जाता है, उसे सुनो।

उसके मध्य शिखर पर महादेव का विष्णुगृह अवस्थित है। उसी के उत्तर किनारे तीस योजन विस्तृत राक्षसों का लम्ब नाम का महान् पुर है। उसी के दक्षिण ओर बिल प्रदेश नगर है। प्रभेद के पश्चिम दिशा में देव, दानव, सिद्धों आदि के पुर स्थित है।

उस पर्वत के शिखर पर महासोमशिला अवस्थित है। पूर्णिमा आदि से सम्बन्धित पर्वों के अवसर पर स्वयं सोमदेव अवतरित होते हैं। उसी के उत्तरी पार्श्व में त्रिकूट नाम का पर्वत है। उस पर कहीं पर ब्रह्माणी भी निवास किया करते हैं। वहीं पर अग्नि का अधिवास भी है। देवताओं द्वारा मूर्त्तिमान् अग्निदेव की आराधना की जाती है। उत्तर दिशा में शृङ्ग नामक श्रेष्ठ पर्वत पर देवों के निवास स्थान हैं। पूर्व की दिशा में नारायण का गृहवास है। मध्य में ब्रह्माजी और पश्चिम में शंकर जी का अधिवास स्थान है और वहीं पर यक्षादिकों के भी कुछ पुर स्थित हैं। उसके उत्तरी तट पर जातुछ नाम के महापर्वत पर तीस योजन के मण्डलाकार नन्दजल नाम का सरोवर है।

उसमें सौ सिरों वाला प्रचण्ड नन्द नाम के नागराज निवास करते हैं। इस तरह इन आठ देवपर्वतों के बारे में समझना चाहिए। वे क्रम से स्वर्ण, रजत, रत्न, वैडूर्य, मनःशिला, हिङ्गुल आदि वर्ण के हैं।

इयं च पृथ्वी लक्षकोटिशतानेकसंख्यातानां पूर्णा तेषु च सिद्धविद्याधराणां निलयाः। ते च मेरोः पार्श्वतः केसरवलयालवालं सिद्धलोकेति कीर्त्त्यते। इयं पृथ्वी पद्माकारेण व्यवस्थिता। एष च सर्वपुराणेषु क्रमः सामान्यतः प्रतिपाद्यते।

।।इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे एकाशीतितमोऽध्यायः।।

द्व्यशीतितमोऽध्यायः

अथ भुवनकोशो-नद्यादि वर्णनम्

रुद्र उवाच

अथ नदीनामवतारं श्रृणुत। आकाशसमुद्रो यः कीर्त्यते सामाख्यस् तस्मादाकाशगामिनी नदी प्रवृत्ता। सा चानवरतमिन्द्रगजेन क्षोभ्यते। सा च चतुरशीतिसहस्त्रोच्छ्राया। स च मेरोः सुदर्शनं करोति। सा च मेरुकूटतटान्तेभ्यः प्रस्खलिता चतुर्धा संजाता। षष्टिं च योजनसहस्रं निरालम्बा पतमाना प्रदक्षिणमनुसरन्ती चतुर्द्धा जगाम। सीता चालकनन्दा चक्षुर्भद्रा चेति नामभिः। यथोद्देशं सा चानेकशतसहस्त्रपर्वतानां दारयन्ती गां गतेति गङ्गेत्युच्यते।

यह पृथ्वी लाखों, करोड़ों या सैकड़ों की संख्या में वर्तमान पर्वत आदि से सुसम्पन्न है। उनमें सिद्धों, विद्याधरों आदि के निवास स्थान स्थित है।

वे मेरु के पार्श्व में केसर की पंखुड़ियों के घेरे के सदृश स्थित है। उनके ही सिद्धगणों का लोक बतलाया गया है। यह पृथ्वी पद्म के आकार में स्थित है। सभी पुराणों में सामान्यतः इसी क्रम से इसे प्रस्तुत किया गया है।

।।इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में भुवनकोश-मेरु पर देव-दानव-राक्षस निवास वर्णन नामक इक्यासीवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ।।८१।।

❖❖❖

अध्याय–८२

भुवनकोश-नदी, जनपद और कुल पर्वतों का वर्णन

रुद्र ने कहा कि इस समय आप सभी नदियों के अवतरण प्रसङ्ग में सुनो—साम नाम से जिस आकाश समुद्र का उल्लेख हुआ है, उससे ही आकाश गामिनी नदी निस्सरित हुई है। जिसे इन्द्र का हाथी ऐरावत निरन्तर क्षुब्ध करता रहता है। वह चौरासी हजार योजन विस्तार वाला है। यह मेरु की सुन्दरता को बढ़ाने वाली है। मेरु के शिखर प्रदेश से गिरकर इसका ही चार स्वरूप हो जाता है। साठ हजार योजन की ऊँचाई से निरालम्ब ही गिरती हुई दक्षिण दिशा में बहती हुई चार स्वरूप में प्रकट होती है। इसी का सीता, अलकनन्दा, चक्षु और भद्रा इस प्रकार चार नाम हो गये। इन नामों को लक्ष्य कर अनेक सौ हजार पर्वतों को विदीर्ण करती हुई गौ याने भूमि पर आ पहुँचती है। अतः जिसका नाम 'गङ्गा' दिया जाता है।

अथ गन्धमादनपार्श्वेऽमरकण्डिका वर्ण्यते। एकत्रिंशद्योजनसहस्राणि आयामः चतुःशतविस्तीर्णम्। तत्र केतुमालाः सर्वे जनपदाः कृष्णवर्णाः पुरुषा महाबलिनः। उत्पलवर्णाः स्त्रियः शुभदर्शनाः। तत्र च महावृक्षाः पनसाः सन्ति। तत्रेश्वरो ब्रह्मपुत्रस्तिष्ठति। तत्रोदकपानाच्च जरारोगविवर्जिता वर्षायुतायुषश्च नराः। माल्यवतः पूर्वपार्श्वे पूर्वगण्डिका एकशृङ्गाद्योजन-सहस्राणि मानतस्तत्र च भद्राश्वा नाम जनपदाः भद्रसालवनं च तत्र व्यवस्थितम्। कालाम्रवृक्षाः पुरुषाः श्वेताः पद्मवर्णिनः स्त्रियः कुमुदवर्णा दशवर्षसहस्राणि तेषामायुः। तत्र च पञ्च कुलपर्वताः। तद्यथा शैलवर्णः मालाख्यः कोरजश्च त्रिपर्णः नीलश्चेति तद्विनिर्गताः। तदम्भःस्थितानां देशानां तान्येव नामानि। ते च देशा एता नदीः पिबन्ति। तद्यथा सीता सुवाहिनी हंसवती कासा महाचक्रा चन्द्रवती कोवरी सुरसा शाखावती इन्द्रवती अङ्गारवाहिनी हरितोया सोमावर्ता शतह्रदा वनमाला वसुमती हंसा सुपर्णा पञ्चगङ्गा धनुष्मती मणिवप्रा सुब्रह्मभागा विलासिनी कृष्णतोया पुण्योदा नागवती शिवा शेवालिनी मणितटा क्षीरोदा वरुणावती विष्णुपदी महानदी हिरण्यस्कन्धवाहा सुरावती कामोदा पताकाश् चेत्येता महानद्यः। एताश्च गङ्गासमाः कीर्तिताः आजन्मान्तं पापं विनाशयन्ति। क्षुद्रनद्यश्च कोटिशः। ताश्च नदीर्ये पिबन्ति ते दशवर्षसहस्रायुषः। रुद्रोमाभक्ता इति।

।।इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे द्व्यशीतितमोऽध्यायः।।८२।।

अधुना गन्धमादन पर्वत के पार्श्व भाग में अवस्थित अमरकण्डिका का उल्लेख होता है। यह चार सौ योजन चौड़ी और इकतीस हजार योजन लम्बी है। इसके ही सम्पूर्ण प्रान्त को 'केतुमाल' नाम से जाना जाता है। यहाँ पर रहने वाले पुरुष कृष्णवर्ण वाले और अत्यन्त बलशाली होते हैं। यहाँ की स्त्रियाँ कमलवर्णा और सुन्दर दिखती हैं। यहीं पर कटहल के महान् वृक्ष उत्पन्न होते हैं। ब्रह्मपुत्र नदी यहाँ पर ईश्वर के समान है। इसका जल पीकर यहाँ पर रहने वाले वार्धक्य और रोगहीन होकर दस हजार वर्ष जीवित रहते हैं। माल्यवान् के पूर्व पार्श्व में एकशृङ्ग से हजार योजन प्रमाण की एक पूर्व गण्डिका नामक प्रस्तर खण्ड है। वह स्थान काले आम्र से युक्त भद्राश्व नामक जनपद और भद्रसालवन स्थित है। यहाँ श्वेत कमल के समान श्वेत वर्ण के पुरुष और कुमुदवर्ण की स्त्रियाँ उत्पन्न होती हैं। उस सबकी आयु दस हजार वर्षों की हुआ करती है। उस स्थान पर पाँच कुल पर्वत स्थित हैं। जैसे कि शैलवर्ण, मालाख्य, कोरज, त्रिपर्ण, नील आदि उनसे निकली हुई हैं। इस प्रकार उनसे निर्गत हुई नदियों के जल में स्थित देशों के नाम भी उनके ही अनुरूप हैं। उन देशों की प्रजा जिन नदियों के जलपान किया करते हैं, उन नदियों के नाम इस प्रकार से जानने चाहिए—सीता, सुवाहिनी, हंसवती, कासा, महाचक्रा, चन्द्रवती, काबेरी, सुरसा, शाखावती, इन्द्रवती, अङ्गारवाहिनी, हरितोया, सोमवती, शतह्रदा, नमाला, वसुमती, हंसा, सुपर्णा, पञ्चगङ्गा, धनुष्मती, मणिवप्रा, सुब्रह्मभागा, विलासिनी, कृष्णतोया, नागपती, शिवा, शैवालिनी, मणितटा, क्षीरोदा, वरुणावती, विष्णुपदी, महानदी, हिरयस्कन्दवाहा, सुरावती, कामेदा और पताका। ये सभी महानदियों के नाम कहे गये हैं। इन सभी महानदियों को गङ्गा के सदृश पवित्र मानना चाहिए। ये सभी जन्म से अन्तकाल पर्यन्त पाप को नष्ट कर देने वाली कही गई हैं। क्षुद्र नदियाँ तो करोड़ों हैं। जो इन महानदियों के जल पीते हैं, वे दश हजार वर्ष की आयु वाले कहे गये हैं। साथ ही ये सभी रुद्र और उमा के भक्त हुआ करते हैं।

।।इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में भुवनकोश-नदी, जनपद और कुल पर्वतों का वर्णन नामक बयासीवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ।।८२।।

त्र्यशीतितमोऽध्यायः

अथ भुवनकोशे-नैषधस्थानां वर्णनम्

रुद्र उवाच

निसर्ग एष भद्राश्वानां कीर्तितः केतुमालानां विस्तरेण कथितं। नैषधस्याचलेन्द्रस्य पश्चिमेन कुलाचलजनपदनद्यः कीर्त्यन्ते। तथा च विशाखकम्बलजयन्तकृष्णहरितोशोक-वर्द्धमाना इत्येतेषां सप्तकुलपर्वतानां कोटिशः प्रसूतिः। तन्निवासिनो जनपदास्तन्नामान एव द्रष्टव्याः। तद्यथा सौरग्रामात्तसांतपो कृतसुराश्रवण कम्बलमाहेयाचलकूट वासमूलतप क्रौञ्चकृष्णाङ्गमणिपङ्कज चूडमल सोमीय समुद्रान्तक कुरकुञ्चसुवर्णः तटककुह श्वेताङ्ग कृष्णपाटविद कपिलकर्णिक महिष कुब्जकरनाटमहोत्कट शुकनास गजभूम ककुरञ्जन मनाहकिं किसपार्ण भौमक चोरक धूम जन्म अङ्गार जतीवन जीव लौकिल वाचां सहाङ्ग मधुरेय शुके चकेय श्रवणमत्त कासिक गोदावाम कुलपञ्जा वर्ज्जहमोदश अलक एते जनपदास्तत्पर्वतोत्था नदीः पिबन्ति। तद्यथा प्लक्षा महाकदम्बा मानसी श्यामा सुमेधा बहुला विवर्णा पुङ्खा माला दर्भवती भद्रानदी शुकनदी पल्लवा भीमा प्रभञ्जना काम्बा कुशावती दक्षा कासवती तुङ्गा पुण्योदा चन्द्रावती सुमूलावती ककुद्मिनी विशाला करण्टका पीवरी महामाया महिषी मानुषी चण्डा एता नदीः प्रधानाः। शेषाः क्षुद्रनद्यः सहस्रशश्चेति।

।।इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे त्र्यशीतितमोऽध्यायः।।८३।।

अध्याय–८३

भुवनकोश-नैषधस्थ कुलाचल, जनपद, नदियों का निरूपण

रुद्र ने कहा कि इस प्रकार भद्राश्वों और केतुमालों का विस्तार से उल्लेख किया गया। अब पर्वतराज नैषध के पश्चिम दिशा में स्थित कुल पर्वतों, जनपदों, नदियों आदि के प्रसङ्ग में बतलाया जाता है। वैसे विशाख, कम्बल, जयन्त, कृष्ण, हरित, अशोक, वर्द्धमान आदि सप्त कुलपर्वतों के करोड़ों सन्तति कही गई है। उनमें रहने वाले जनपदों को उन-उन के नाम से ही समझना चाहिए। जैसे कि सौरग्राम आत्तसांतप, कृतसुरा, श्रवण, कम्बल, माहेय, चलकूट, वासमूल, तप, क्रौञ्च, कृष्णाङ्ग, मणिपङ्कज, चूड़मल, सोतीय, समुद्रान्तक, कुरकुञ्चसुवर्णः, तटककुह, श्वेताङ्ग, कृष्णपाटविद, कपितल, कर्णिक, महिष, कुब्ज, करनाट, महोत्कट, शुकनास, गजभूम, ककुरञ्जन, मनाहकिम्, सिपार्ण, भौमक, चोरक, धू, जन्म, अङ्गार, जतीवन, जीव लौकिक, वांचासह, अङ्गमधुरेय, शुकेचकेय, श्रवणमत्त, कासिक, गोदावाम, कुलपञ्जा, वर्ज्जह, मोदश, अलक आदि। इन जनपदों में रहने वाले लोग इन पर्वतों की नदियों के ही जल पीया करते हैं। यहाँ स्थित नदियों के नाम इस प्रकार से समझने चाहिए—प्लक्षा, महाकदम्बा, मानसी, श्यामा, समुमेधा, बहुला, विवर्णा, पुङ्खा, माला, दर्भवती, भद्रानदी, शुकनदी, पल्लवा, भीमा, प्रभञ्जना, काम्बा, कुशावती, दक्षा, कासवती, तुङ्गा, पुण्योदा, चन्द्रावती, सुमूलावती, ककुद्मिनी, विशाला, करण्टका, पीवरी, महामाया, महिषी, मानुषी, चण्डा आदि मुख्य नदियों के नाम हैं। इसके अलावे हजारों ही क्षुद्र नदियाँ प्रवाहित होती हैं।

।।इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में भुवनकोश-नैषधस्थ कुलाचल, जनपद, नदियों का निरूपण नामक तिरासीवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ।।८३।।

चतुःशीतितमोऽध्यायः

अथ भुवनकोशो-दक्षिणोत्तरादिवर्षवर्णनम्

रुद्र उवाच

उत्तराणां च वर्षाणां दक्षिणानां च सर्वशः। आचक्षते यथान्यायं ये च पर्वतवासिनः।
तच्छुणुध्वं मया विप्राः कीर्त्यमानं समाहिताः॥१॥

दक्षिणेन तु श्वेतस्य नीलस्य चोत्तरेण च। वायव्यां रम्यकं नाम जायन्ते तत्र मानवाः।
मतिप्रधाना विमला जरादौर्गन्ध्यवर्जिताः॥२॥

तत्रापि सुमहान् वृक्षो न्यग्रोधो रोहितः स्मृतः। तत्फलाद् रसपानाद्धि दशवर्षसहस्त्रिणः।
आयुषा सर्वमनुजा जायन्ते देवरूपिणः॥३॥

उत्तरेण च श्वेतस्य त्रिशृङ्गस्य च दक्षिणे। वर्षं हिरणमयं नाम तत्र हैरण्वती नदी।
यक्षा वसन्ति तत्रैव बलिनः कामरूपिणः॥४॥

एकादशहस्त्राणि समानां तेन जीवते। शातान्यन्यानि जीवन्ते वर्षाणां दश पञ्च च॥५॥

लकुचाः क्षुद्रसा वृक्षास्तस्मिन् देशे व्यवस्थिताः। तत्फलप्राशमाना हि तेन जीवन्ति मानवाः॥६॥

अध्याय-८४

भुवनकोश दक्षिणोत्तर और कुरु वर्ष वर्णन

रुद्र ने कहा कि हे ब्राह्मणगण! अब मैं आप लोगों को उत्तर और दक्षिण दिशा में स्थित वर्षों तथा पर्वत पर रहने वाले लागों का सम्पूर्ण वर्णन करने जा रहा हूँ। उसे सावधानीपूर्वक सुनो। मैं सब वृत्तान्त यथायोग्य कहता हूँ।।१।।

दक्षिण दिशा में श्वेत, उत्तर दिशा में नील और वायव्य कोण में रम्यक नामक पर्वत अवस्थित हैं, वहाँ पर उत्पन्न होने वाले मनुष्य दोषों से रहित, बुढ़ापाहीन और दुर्गन्धविहीन तथा बुद्धिमान होते हैं।।२।।

वहीं पर सुन्दर महावृक्ष 'वट' भी स्थित है। उस वृक्ष के फल को खाने और उसका रस पीकर वहाँ पर रहने वाले समस्त जन देवस्वरूप और दश हजार वर्ष की आयु वाले होते हैं।।३।।

फिर श्वेत पर्वत के उत्तर दिशा और त्रिशृङ्ग पर्वत के दक्षिण दिशा में हिरण्मय नामक वर्ष स्थित है। वहाँ पर हैरण्वती नाम की नदी बहती है, जहाँ पर बलशाली और स्वेच्छानुरूप स्वरूप धारण करने वाले यक्ष रहा करते हैं।।४।।

उपरोक्त वर्षों में रहने वाले कुछ जन ग्यारह हजार वर्षों तक और कुछ अन्य जन पन्द्रह हजार वर्षों तक भी जीवित रहने वाले हैं।।५।।

उन वर्षों में छोटे-छोटे रसीले लीची के वृक्ष व्यवस्थित रूप से उत्पन्न होते देखे जा सकते हैं, उन फलों को खाकर वहाँ पर रहने वाले जन जीवित रहा करते हैं।।६।।

तथा त्रिशृङ्गे च मणिकाञ्चनसर्वरत्नशिखरानुक्रमेण तस्य चोत्तरशृङ्गाद्दक्षिणसमुद्रान्तं चोत्तरकुरवः। वस्त्राण्याभरणानि च वृक्षेष्वेव जायन्ते। क्षीरवृक्षाः क्षीरासवाः सन्ति। मणिभूमिः सुवर्णबालुका। तस्मिन् स्वर्गच्युताश्च पुरुषा वसन्ति त्रयोदशवर्षसहस्रायुषः।

तस्यैव द्वीपस्य पश्चिमेन चतुर्योजनसहस्रमतिक्रम्य देवलोकाच्चन्द्रद्वीपो भवति योजनसहस्रपरिमण्डलः। तस्य मध्ये चन्द्रकान्तसूर्यकान्तनामानौ गिरिवरौ। तयोश्च मध्ये चन्द्रावती नाम महानदी अनेकवृक्षफलानेकनदीसमाकुला।

एतत्कुरुवर्षं च। तस्योत्तरपार्श्वे समुद्रोर्मिमालाढ्यं पञ्चयोजनसहस्रमतिक्रम्य देवलोकात् सूर्यद्वीपो भवति योजनसहस्रपरिमण्डलः। तस्य मध्ये गिरिवरः शतयोजनविस्तीर्णस्तावदुच्छ्रितः। तस्मात्सूर्यावर्त्तनामा नदी निर्गता। तत्र च सूर्यस्याधिष्ठितम्। तत्र सूर्यदैवत्यास्तद्वर्णाश्च प्रजा दशवर्षसहस्रायुषः।

तस्य च द्वीपस्य पश्चिमेन चतुर्योजनसहस्रमतिक्रम्य समुद्रं दशयोजनसहस्रं परिमण्डलत्वेन द्वीपो रुद्राकरो नाम। तत्र च भद्रासनं वायोरनेकरत्नशोभितम्। तत्र विग्रहवान् वायुस्तिष्ठति। तपनीयवर्णाश्च प्रजाः पञ्चवर्षसहस्रायुषः।

।।इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे चतुरशीतितमोऽध्यायः।।

उन तीन पर्वतों के शृङ्गों पर क्रम से मणि, काञ्चन और सर्वरत्नों से सम्पन्न शिखर स्थित हैं। उसके उत्तर शृङ्ग से दक्षिण समुद्र तक उत्तर कुरुवर्ष स्थित हैं, जहाँ पर वस्त्र और विविध आभूषण वृक्षों से ही उत्पन्न हुआ करते हैं। वहाँ के वृक्ष दुग्ध और आसव पैदा करने वाले भी होते हैं। वहाँ पर मणिमय भूमि और स्वर्णमयी बालुका उपलब्ध होती है। वहाँ निश्चय ही स्वर्ग सेपतित होने वाले जन निवास किया करते हैं। वहाँ पर रहने वाले जन तेरह हजार वर्षों की आयुष्य वाले हुआ करते हैं।

उस द्वीप के पश्चिम में देवलोक से चार हजार योजन के बाद हजार योजन के मण्डल वाला एक चन्द्रद्वीप स्थित है। उसके बीच में चन्द्रकान्त और सूर्यकान्त नाम से दो श्रेष्ठ पर्वत स्थित हैं। फिर उन दोनों के बीच में चन्द्रावती नाम की महानदी बहा करती है। वह महानदी भी वृक्षों, फलों और अनेक नदियों से सम्पन्न है।

यह कुरुवर्ष है। उसके उत्तर की दिशा में देवलोक से पाँच हजार योजन के बाद समुद्र की लहरों से सम्पन्न हजार योजन वाला मण्डलाकार सूर्यद्वीप स्थित है। उसके बीच में सौ योजन विस्तार वाला और उतना ही ऊँचा श्रेष्ठ पर्वत है। उससे सूर्यावर्त्त नाम की नदी निस्सरित हुई है। वहीं पर सूर्य का निवास स्थान है। वहाँ पर सूर्य को देवता मानने वाले और उसी के वर्ण वाले तथा दस हजार वर्ष पर्यन्त जीवन जीने वाले जन निवास किया करते हैं।

इस द्वीप के पश्चिम में चार हजार योजन बाद समुद्र पर्यन्त दस हजार योजन के मण्डल से युक्त 'रुद्राकर' नाम का द्वीप स्थित है। वहाँ वायु का अनेक रत्नों से सम्पन्न भद्रासन है। जहाँ पर शरीरधारी वायु निवास किया करते हैं। वहाँ पर रहने वाले जन स्वर्णमयी वर्ण वाले और पाँच हजार वर्षों तक जीवित रहने वाले होते हैं।

।।इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में भुवनकोश-नैषधस्थ कुलाचल, जनपद, नदियों का निरूपण नामक चौरासिवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ।।८४।।

❖❖❖

पञ्चाशीतितमोऽध्यायः

अथ भुवनकोशे-भारतीयनौभेद वर्णनम्

रुद्र उवाच

इयं भूपद्मव्यवस्था कथिता। इदानीं भारतं नवभेदं शृणुत। तद्यथा। इन्द्रः कसेरुः ताम्रवर्णो गभस्तिः नागद्वीपः सौम्यः गन्धर्वः वारुणः भारतं चेति। सागरसंवृतमेकैकं योजनसहस्त्रप्रमाणम्।

तत्र च सप्त कुलपर्वता भवन्ति। तद्यथा–महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमान् ऋक्षपर्वतः विन्ध्यश्च पारियात्रश्च इत्येते कुलपर्वताः। अन्ये च मन्दरशारदर्दुरकोलाहलसुरमैनाकवैद्युत-वारन्धमपाण्डुरतुङ्गप्रस्थकृष्णागिरिजयन्तरैवतऋष्यमूकगोमन्तचित्रकूटश्रीचकोरकूट-शैलकृतस्थल इत्येते क्षुद्रपर्वताः। शेषाः क्षुद्रतराः।

तेषामार्या म्लेच्छा जनपदा वसन्ति। पिबन्ति चैतासु नदीषु पानीयम्। तद्यथा गङ्गा सिन्धु सरस्वती शतद्रु वितस्ता विपाशा चन्द्रभागा सरयू यमुना इरावती देविका कुहू गोमती धूतपापा बाहुदा दृषद्वती कौशिकी निश्चरा गण्डकी चक्षुष्मती लोहिता इत्येता हिमवत्पादनिर्गताः।

वेदस्मृतिर्वेदवती सिन्धुपर्णा सचन्दना सदाचारा रोहिपारा चर्मण्वती विदिशा वेदत्रयी वपन्ती इत्येता पारियात्रोद्भवाः।

अध्याय–८५

भुवनकोश-भारत का नौ भेद, कुलपर्वत नदी के साथ शाकद्वीप के कुल पर्वत नदी का वर्णन

रुद्र ने कहा कि अब तक भूपद्म की व्यवस्था का वर्णन हुआ है। अब यहाँ भारत के नौ भेद या वर्ष का उल्लेख किया जाता है, उसे सुनो भारत के नौ भेद स्वरूप वर्ष इस प्रकार से है—

इन्द्र, कसेरु, ताम्रपर्ण, गभस्ति, नागद्वीप, सौम्य, गान्धर्व, वारुण और भारत। समुद्र से घिरे हुए सभी वर्ष एक हजार योजनविस्तार के हैं।

इस प्रकार वहाँ सात कुल पर्वत होते हैं। जैसेकि महेन्द्रा, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, ऋक्ष, विन्ध्य, पारियात्र आदि सात कुलपर्वत हैं। इसके अलावे अन्य मन्दर, शार, दर्दुर, कोलाहल, सुर, मैनाक, वैद्युत, वारन्धम, पाण्डुर, तुङ्गप्रस्थ, कृष्णागिरि, जयन्त, रैवत, ऋष्यमूक, गोमन्त, चित्रकूट, श्रीपर्वत, चकोर पर्वत, कूटशैल, कृतस्थल आदि क्षुद्र पर्वत हैं। इसके अलावे भी क्षुद्र पर्वत हैं।

उनमें आर्य और म्लेच्छ जनपद अवस्थित हैं। वे इन्हीं नदियों के जल भी पिया करते हैं। जैसे कि गङ्गा, सिन्धु, सरस्वती, शतद्रु, वितस्ता, विपाशा, चन्द्रभागा, सरयू, यमुना, इरावती, देविका, कूहू, गोमती, धूतपापा, वाहूदा, दृषद्वती, कौशिकी, निश्चरा, गण्डकी, चक्षुष्मती, लोहिता आदि नदियाँ हिमालय के पाद से निस्सरित हुई हैं।

वेदस्मृति, वेदवती, सिन्धुपर्णा, सचन्दना, सदाचारा, रोहिपारा, चर्मण्वती, विदिशा, वेदत्रयी, वपन्ती आदि नदियाँ पारियात्रा पर्वत से निस्सरित हुई हैं।

शोणा ज्योतीरथा नर्मदा सुरसा मन्दाकिनी दशार्णा चित्रकूटा तमसा पिप्पला करतोया पिशाचिका चित्रोत्पला विशाला वञ्जुला बालुका वाहिनी शुक्तिमती विरजा पङ्क्िनी रिरी कुहू इत्येता ऋक्षप्रसूताः।

मणिजाला शुभा तापी पयोष्णी शीघ्रोदा वेष्णा पाशा वैतरणी वेदी पाली कुमुद्वती तोया दुर्गा अन्त्या गिरा एता विन्ध्यपादोद्भवाः।

गोदावरी भीमरथी कृष्णा वेणा वञ्जुला तुङ्गभद्रा सुप्रयोगा बाह्या कावेरी इत्येताः सह्यपादोद्भवाः।

शतमाला ताम्रपर्णी पुष्पावती उत्पलावती इत्येता मलयजाः।

त्रियामा ऋषिकुल्या इक्षुला त्रिविदा लाङ्गूलिनी वंशवरा महेन्द्रतनयाः। ऋषिका लूमती मन्दगामिनी पलाशिनी इत्येताः शुक्तिमत्प्रभवाः।

एताः प्राधान्येन कुलपर्वतनद्यः। शेषज्ञः क्षुद्रनद्यः।

एष जम्बूद्वीपो योजनलक्षप्रमाणतः। अतः परं शाकद्वीपं निबोधत। जम्बूद्वीपस्य विस्ताराद् द्विगुणपरिणाहाललवणोदकश्च जम्बूद्वीपसमस्तेन द्विगुणावृतः।

तत्र च पुण्या जनपदाश्चिरान्म्रियन्ते दुर्भिक्षजराव्याधिरहितश्च देशोऽयम्।

शोणा, ज्योतिरथा, नर्मदा, सुरसा, मन्दाकिनी, दशार्णा, चित्रकूटा, तमसा, पिप्पला, करतोया, पिशाचिका, चित्रोत्पला, विशाला, वञ्जुला, बालुका, वाहिनी, शुक्तिमती, विरजा, पङ्क्िनी, रिरी, कुहू आदि नदियाँ ऋक्षपर्वत से निस्सरित हुई हैं।

मणिजाला, शुभा, तापी, पयोष्णी, शीघ्रोदा, वेष्णा, पाशा, वैतरणी, वेदी, पाली, कुमुदवती, तोया, दुर्गा, अन्त्या, गिरा आदि नदियाँ विन्ध्यपर्वत पाद से निस्सरित हुई हैं।

गोदावरी, भीमरथी, कृष्णा, वेणा, वञ्जुला, तुङ्गभद्रा, सुप्रयोगा, बाह्या, कावेरी आदि नदियाँ सह्यपर्वतपाद से निस्सरित हुई हैं।

शतमाला, ताम्रपर्णी, पुष्पावती, उत्पलावती आदि नदियाँ मलयपर्वत पाद से निस्सरित हुई हैं।

त्रियामा, ऋषिकुल्या, इक्षुला, त्रिविदा, लाङ्गूलिनी, वंशपरा, महेन्द्रतनया, ऋषिका, लूमती, मन्दगामिनी पलाशिनी आदि नदियाँ शुक्तिमान् पर्वत से निस्सरित हैं।

मुख्य रूप से ये सभी नदियाँ कुलपर्वतों से निस्सरित नदियाँ हैं। इसके अतिरिक्त अन्य नदियाँ क्षुद्र नदियाँ हैं।

इस जम्बूद्वीप का परिमाण एक लाख योजन है। एतदनन्तर शाकद्वीप के बारे में बतलाते हैं—जम्बूद्वीप के विस्तार से दोगुन विस्तार वाला लवणोदक है। तदनन्तर जम्बूद्वीप के तुल्य शाकद्वीप है। उसकी तुलना में दोगुन क्षारसमुद्र से वह समावृत्त है।

उस जगह पर रहने वाले पवित्र जनपद लम्बी आयु वाले हुआ करते हैं। यह देश दुर्भिक्ष, बुढ़ापा, रोग आदि से रहित होते हैं।

सप्तैव कुलवर्वतास्तावत् तिष्ठन्ति तस्य चोभयतो लवणक्षीरोदधी व्यवस्थितौ तत्र च प्रागायतः शैलेन्द्र उदयो नाम पर्वतः।

तस्यापरेण जलधारो नाम गिरिः। सैव चन्द्रेति कीर्त्तितः। तस्य च जलमिन्द्रो गृहीत्वा वर्षति। तस्य पारे रैवतके नाम गिरिः। सैव नारदो वर्ण्यते तस्मिंश्च नारपर्वतादुत्पन्नो तस्य चापरेण श्यामो नाम गिरिः। तस्मिंश्च प्रजाः श्यामत्वमापन्नाः सैव दुन्दुभिर्वण्यते। तस्मिन् सिद्धा इति कीर्तिताः।

प्रजानेकविधाः क्रीडन्तस्तस्यापरे रजतो नाम गिरिः सैव शाकोच्यते। तस्यापरेणाम्बिकेयः स च विभ्राजसो भण्यते। स एव केसरीत्युच्यते। ततश्च वायुः प्रवर्त्तते।

गिरिनामान्येव वर्षाणि तद्यथा–उदयसुकुमारो जलधारक्षेमकमहाद्रुमेति प्रधानानि द्वितीयपर्वतनामभिरपि वक्तव्यानि।

तस्य च मध्ये शाकवृक्षस्तत्र च सप्तमहानद्यो द्विनाम्न्यः। तद्यथा सुकुमारी नन्दा वेणिका धेनुः। इक्षुमती गभस्ति इत्येता नद्यः।

।।इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे पञ्चाशीतितमोऽध्यायः।।८५।।

यहाँ भी सात ही कुल पर्वत कहे जाते हैं। इसके दोनों ओर लवण और क्षीर समुद्र हैं। इसके ही पूर्व दिशा में उदय नाम का विस्तार वाला श्रेष्ठ पर्वत स्थित है।

उसके अन्य किनारे जलधार नाम से भी एक पर्वत है। जिसे चन्द्र कहा जाता है। इन्द्र उसका जल ग्रहण कर वृष्टि किया करता है। तदनन्तर रैवतक नाम से पर्वत है। जिसे नारद कहा गया है। उस नारद पर्वत से उत्पन्न श्याम, नामक पर्वत उसके ही दूसरे भाग में अवस्थित है। जहाँ की प्रजा भी श्याम वर्ण वाले होते हैं। जिसको ही दुन्दुभि कहा जाता है। वहाँ पर निवास करने वाले सिद्ध कहलाते हैं।

वहाँ पर प्रजा अनेक प्रकार से क्रीड़ा किया करती है। उसी के दूसरे भाग में रजत नाम से एक पर्वत है। उसे ही शाक कहा जाता है। उसके अन्य भाग में आम्बिकेय नाम से एक पर्वत है। जिसे विभ्राजस् कहा जाता है। उसको ही केशरी कहते हैं। तत्पश्चात् वायु पर्वत स्थित है।

इस पर्वत के नाम के अनुरूप ही उसके वर्ष भी हैं। जैसे कि उदय, सुकुमार, जलधार, क्षेमक, महाद्रुम आदि प्रधान वर्ष समझने चाहिए। पर्वतों के द्वितीय नाम अब आगे कहते हैं।

उसके मध्य में शाक वृक्ष अवस्थित है। वहाँ दो नामों से अलंकृत सात महानदियाँ हैं। जैसेकि—सुकुमारी, कुमारी, नन्दा, वेणिका, धेनु, इषुमती, गभस्ति आदिनदियाँ हैं।

।।इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में भुवनकोश-भारत का नौ भेद, कुलपर्वत नदी के साथ शाकद्वीप के कुल पर्वत नदी का वर्णन नामक पचासीवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ।।८५।।

❖❖❖

षडशीतितमोऽध्यायः

अथ भुवनकोशे कुशद्वीपवर्णनम्

रुद्र उवाच

अथ तृतीयं कुशद्वीपं शृणुत। कुशद्वीपेन क्षीरोदः परिवृतः शाकद्वीपस्य विस्ताराद् द्विगुणेन। तत्रापि सप्त कुलपर्वताः। सर्वे च द्विनामानः। तद् यथा–कुमुदविद्रुमेति च सोच्यते। उन्नतो हेमपर्वतः सैव।

बलाहको द्युतिमान् सैव। तथा द्रोणः सैव पुष्पवान्। कङ्कश्च पर्वतः सैव कुशेशयः। तथा षष्ठो महिषनामा स एव हरिरित्युच्यते। तत्राग्निर्वसति। सप्तमस्तु ककुद्मान् नाम सैव मन्दरः कीर्त्यते। इत्येते पर्वताः कुशद्वीपे व्यवस्थिताः।

एतेषां वर्षभेदो भवति द्विनामसंज्ञः। कुमुदस्य श्वेतमुद्भिदं तदेव कीर्त्यते। उन्नतस्य लोहितं वेणुमण्डलं तदेव भवति। बलाहकस्य जीमूतं तदेव रथाकार इति। द्रोणस्य हरितं तदेव बलाधनं भवति।

कङ्कस्यापि ककुद्मान् नाम। वृत्तिमत् तदेव मानसं महिषस्य प्रभाकरम्। ककुद्मतः कपिलं तदेव संख्यातं नाम। इत्येतानि वर्षाणि।

अध्याय–८६

भुवनकोश कुशद्वीप के वर्ष और नदियाँ

रुद्र ने कहा कि अब यहाँ तीसरे कुशद्वीप का उल्लेख किया जाता है, उसे सुनो। शाकद्वीप से दोगुने विस्तृत क्षेत्र वाले कुशद्वीप से क्षीरसागर चारों ओर से आवृत है। वहाँ भी सातकुलपर्वत हैं। सब के सब कुल पर्वत दो नाम वाले हैं। जैसे कि कुमुद और विद्रुम, इस प्रकार के नामों से जाना जाता है। उन्नत नाम का पर्वत ही सोमपर्वत कहा गया है।

फिर बलाहक को ही द्युतिमान् कहा जाता है। वहीं द्रोण का ही नाम पुष्पवान् है। कंक नाम के पर्वत को ही कुशेशय कहते हैं और जो महिष नाम का छठवाँ पर्वत है, उसको ही हरि नाम से जाना जाता है। जहाँ पर अग्नि का निवास कहा गया है। सातवाँ ककुद्मान नाम का पर्वत है, जिसे मन्दर कहा जाता है। इस प्रकार से ये सभी पर्वत कुशद्वीप में अवस्थित हैं।

इन पर्वतों के वर्षों के भी दो-दो नाम हैं। कुमुद के वर्ष का नाम श्वेत है। जिसे ही उद्भिद कहा जाता है। वहीं उन्नत का नाम लोहित है, जिसे ही वेणुमण्डल कहा जाता है। बलाहक का वर्ष जीमूत है। उसको ही रथाकार कहा गया है। द्रोण का वर्ष हरित है, जिसे बलाधन कहा जाता है।

कंक के वर्ष ककुदमान् हैं। उसी को वृत्तिमत् कहा गया है। महिष के वर्ष मानस है, जिसे प्रभाकर भी कहते हैं। ककुद्मान का वर्ष कपिल है। जिसे संख्यात भी कहा गया है। ये ही वर्ष हैं।

तत्र द्विनाम्न्यो नद्यः। प्रतपा प्रवेशा सैवोच्यते। द्वितीया शिवा यशोदा सा च भवति। तृतीया पित्रा नाम सैव कृष्णा भण्यते। चतुर्थी ह्रादिनी नाम सैव चन्द्रा निगद्यते। विद्युता च पञ्चमी शुक्ला सैव। वर्णा षष्ठी सैव विभावरी। महती सप्तमी सैव धृतिः। एताः प्रधानाः शेषाः क्षुद्रनद्यः। इत्येष कुशद्वीपस्य संनिवेशः।

शाकद्वीपो द्विगुणः संनिविष्टश्च कथितः। तस्य च मध्ये महाकुशस्तम्बः। एष च कुशद्वीपो दधिमण्डोदेनावृतः क्षीरोदद्विगुणेन।

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रेषडशीतितमोऽध्यायः॥८६॥

वहाँ दो नाम वाली नदियाँ हैं। जैसे कि प्रतपा नदी है, वह ही प्रवेशा कहलाती है। द्वितीय शिवा नाम वाली महानदी है, वही यशोदा कही जाती है।

तीसरी पित्रा नाम की नदी है, उसको ही कृष्णा कहा गया है। चौथी नदी ह्रादिनी है। जिसे ही चन्द्रा कहा जाता है। पञ्चमी नदी विद्युता नाम की है, जिसे शुक्ला कहा गया है। षष्ठी नदी वर्णा है, जो विभावरी भी कहलाती है। सातवीं नदी महती है, जो धृति भी कहलाती है। ये सभी मुख्य नदियों के नाम कहे गये हैं। अन्य छोटी-छोटी नदियाँ भी हैं। इस तरह से कुशद्वीप सन्निवेशित है।

इसकी तुलना में शाकद्वीप दोगुन विस्तार वाली मानी जाती है। उसके बीच महाकुशद्वीप स्थित है। यह कुशद्वीप क्षीरसागर की तुलना में दोगुन विस्तार वाले दधि और माण्डोदक (मांड़) के समुद्र से समावृत है।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में भुवनकोश कुशद्वीप के वर्ष और नदियाँ नामक छियासीवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥८६॥

सप्ताशीतितमोऽध्यायः

अथ भुवनकोशे क्रौञ्चद्वीप वर्णनम्

रुद्र उवाच

अथ क्रौञ्चं भवति चतुर्थं कुशद्वीपाद् द्विगुणमानतः समुद्रः क्रौञ्चेन द्विगुणेनावृतः। तस्मिंश्च सप्तैव प्रधानपर्वताः। प्रथमः क्रौञ्चो विद्युल्लतो रैवतो मानसः सैव पावकः। तथैवान्धकारः सैवाच्छोदकः। देवावृत्तो स च सुरापो भण्यते।

ततो देविष्ठः स एव काञ्चनशृङ्गो भवति। देवनन्दात्परो गोविन्दः, द्विविन्द इति। ततः पुण्डरीकः सैव तोषाशयः। एते सप्तरत्नमयाः पर्वताः क्रौञ्चद्वीपे व्यवस्थिताः। सर्वे च परस्परेणोच्छ्रयाः। तत्र वर्षाणि तथा क्रौञ्चस्य कुशलो देशः सवै माधवः स्मृतः वामनस्तु मनोऽनुगः सैव संवर्त्तकः।

तततोष्णवान् सोमप्रकाशः। ततः पावकः सैव सुदर्शनः। तथा चान्धकारः सैव संमोहः। ततो मुनिदेशः स च प्रकाशः। ततो दुन्दुभिः सैवानर्थ उच्यते। तत्रापि सप्तैव नद्यः। गौरी कुमुद्वती चैव सन्ध्या रात्रिर्मनोजवा ख्यातिश्च पुण्डरीका च गङ्गा सप्तविधाः स्मृताः।

अध्याय–८७

भुवनकोश क्रौञ्चद्वीप के कुलपर्वत, जनपद और नदियाँ

रुद्र ने कहा कि अधुना कुशद्वीप से तुलना में दोगुने विस्तार वाला चौथा क्रौञ्च द्वीप है। फिर इस दोगुने विस्तार वाले क्रौञ्चद्वीप से इसका समुद्र घिरा हुआ है और जिसमें सात ही प्राधान पर्वत हैं। यहाँ प्रथम क्रौञ्च पर्वत ही है। फिर विद्युल्लत, रैवत, मानस आदि पर्वत स्थित है। वही पावक भी कहा जाता है। वैसे जो अन्धकार नाम का पर्वत है, वही अच्छोदक भी कहा जाता है। देवावृत्त को सुराप कहा गया है।

तत्पश्चात् देविष्ठ है। जिसे काञ्चन शृङ्ग भी कहा जाता है। फिर देवनन्द के बाद गोविन्द है, जिसे द्विविन्द कहते हैं। फिर पुण्डरीक पर्वत स्थित है। वही तोषाशय भी कहलाता है। क्रौञ्चद्वीप का, ये सभी रत्नमय पर्वत व्यवस्थित है। वे सभी परस्पर एक-दूसरे से अधिक ऊँचे हैं। इन पर्वतों के वर्षों का नाम इस तरह है—क्रौञ्च पर्वत का वर्ष कुशल है, वही माधव कहलाता है। वामन नाम के पर्वत का वर्ष मनोऽनुग है। उसे ही संवर्त्तक कहते हैं।

तत्पश्चात् उष्णवान् हैं। जिसे सोमप्रकाश कहा जाता है। फिर पावक वर्ष है। जिसे सुदर्शन कहते हैं। फिर अन्धकार नामक वर्ष है। जिसे सम्मोह कहा जाता है। एतदनन्तर मुनि देश है, उसे प्रकाश कहा जाता है। फिर दुन्दुभि वर्ष है, जिसे अनर्थ कहा जाता है। फिर वहाँ भी सात नदियाँ ही हैं। गौरी, कुमुदवती, सन्ध्या, रात्रि, मनोजवा, ख्याति, पुण्डरीका आदि सात प्रकार की नदियाँ हैं।

गौरी सैव पुष्पवहा कुमुद्वती ताम्रवती रोधसन्ध्या सुखावहा च मनोजवा च क्षिप्रोदा च ख्यातिः सैव गोबहुला पुण्डरीका चित्रवेगा शेषाः क्षुद्रनद्यः॥ क्रौञ्चद्वीपो घृतोदेनावृतः। घृतोदः शाल्मलेनेति।

।इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रेसप्ताशीतितमोऽध्यायः।।८७।।

अष्टाशीतितमोऽध्यायः

अथ भुवनकोशे शाल्मलिद्वीपादि वर्णनम्

रुद्र उवाच

त्रिषु शिष्टेषु वक्ष्यामि द्वीपेषु मनुजान्युत। शाल्मलं पञ्चमं वर्षं प्रवक्ष्ये तन्निबोधत।
क्रौञ्चद्वीपस्य विस्ताराच्छाल्मलो द्विगुणो मतः॥१॥

घृतसमुद्रमावृत्य व्यवस्थितस्तद्विस्तारो द्विगुणस्तत्र च सप्त पर्वताः प्रधानास्तावन्ति वर्षाणि तावत्यो नद्यः। तत्र च पर्वताः। सुमहान् पीतःशातकौम्भात् सार्वगुणसौवर्णरोहित-सुमनसकुशल–जाम्बूनदवैद्युता इत्येते कुलपर्वता वर्षाणि चेति।

यहाँ पर गौरी नदी ही पुष्पवहा भी हैं। कुमुद्वती ही ताम्रवती भी कही जाती है। सन्ध्या ही रोध नाम वाली है। मनोजवा का नाम सुखवहा है। ख्याति ही क्षिप्रोदा है। वही गोबहुला भी कही जाती है। पुण्डरीका नाम वाली नदी का अपर नाम चित्रवेगा है। इसके अलावे अन्य छोटी-छोटी नदियाँ भी हैं। क्रौञ्च द्वीप घृतस्वरूप जल से सम्पन्न सागर से समावृत्त है। घृतसागर शाल्मल द्वीप से घिरा हुआ है।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में भुवनकोष क्रौञ्चद्वीप के कुलपर्वत, जनपद और नदियाँ नामक सतासिवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥८७॥

❖❖❖

अध्याय–८८

भुवनकोश शाल्मलि, गोमेद, पुष्कर द्वीप के साथ पृथ्वी और ब्रह्माण्ड

रुद्र ने कहा कि अत मैं अवशिष्ट तीन द्वीपों के मानवों के विषय में कहने जा रहा हूँ। वहाँ पञ्चम शाल्मल द्वीप के बारे में बतलाया जाता है, उसको सुनो। वैसे क्रौञ्च द्वीप के विस्तार की तुलना में शाल्मल द्वीप द्विगुणा कहा गया है।।१।।

वह द्वीप घृतसमुद्र को घेरकर स्थित है। उसका विस्तार घृतसागर की तुलना में दोगुना है। वहाँ भी सात प्रधान पर्वत हैं। फिर उतने ही वर्ष भी स्थित हैं। उतनी ही नदियाँ भी हैं। उस स्थान के पर्वत अत्यन्त विशाल और स्वर्ण के कारण पीले रंग के हैं। वैद्युत, सार्वगुण, सौवर्ण, रोहित, सुमनस, कुशल, जाम्बूनद आदिसात कुल पर्वत हैं और इन्हीं नामों के वर्ष भी हैं।

अथ षष्ठं गोमेदं कथ्यते। शाल्मलं यथा सुरोदनावृतं तद्वत् सुरोदोऽपि तद्विगुणेन गोमेदेनावृतः। तत्र च प्रधानपर्वतौ द्वावेव। एकस्य तावत्तावसरः अपरश्च कुमुद इति। समुद्रश्चेक्षुरसस्तद्द्विगुणेन पुष्करेणावृतः।

तत्र च पुष्कराख्ये मानसो नाम पर्वतः। तदपि द्विधा छिन्नं वर्षं तत्प्रमाणेन च। स्वादोदकेनावृतम्। ततश्च कटाहम्। एतत् पृथिव्याः प्रमाणम्। ब्रह्माण्डस्य च सकटाहविस्तारप्रमाणम्। एवंविधानामण्डानां परिसंख्या न विद्यते। एतानि कल्पे कल्पे भगवान् नारायणः क्रोडरूपी रसातलान्तःप्रविष्टानि दंष्ट्रैकेनोद्धृत्य स्थितौ स्थापयित।

एष वः कथितो मार्गे भूमेरायामविस्तरः। स्वस्ति वोऽस्तु गमिष्यामि कैलासं निलयं द्विजाः॥२॥

श्रीवराह उवाच

एवमुक्त्वा गतो रुद्रः क्षणाददृश्यमूर्त्तिमान्। ते च सर्वे गता देवा ऋषयश्च यथागतम्॥३॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे अष्टाशीतितमोऽध्यायः॥८८॥

एतदनन्तर आगे छठे गोमेद द्वीप के बारे में बतलाया जाता है। जैसे कि शाल्मल द्वीप सुरा की तरह जल से सम्पन्न सागर से घिरा हुआ है। उसी तरह सुरा समुद्र भी उससे दोगुने गोमेद द्वीप से समावृत है। वहाँ पर मात्र दो प्रधान पर्वत स्थित हैं। एक पर्वत का नाम अवसर है और पर्वत कुमुद नाम का है। यहाँ का समुद्र गन्ने के रस से सम्पन्न है। वह अपने से दोगुने प्रमाण वाले पुष्कर वर्ष से घिरा हुआ है।

उसके पुष्कर नाम के द्वीप में मानस नामक पर्वत स्थित है। जो दो भागों में विभाजित है। यह वर्ष अपने समान विस्तार वाले स्वादोदक से घिरा हुआ है। एतदनन्तर कटाह भी स्थित है। यह पृथ्वी का प्रमाण है और ब्रह्माण्ड का प्रमाण कटाह सहित पृथ्वी के प्रमाण के समान है। इस प्रकार के अण्डों की संख्या नहीं है। वाराह स्वरूप भगवान् नारायण सभी कल्पों में रसातल में प्रविष्ट इन अण्डानुरूप को एक दंष्ट्रा पर उठाकर धारण किये रहा करते हैं।

हे ब्राह्मणों! मेरे द्वारा आप लोगों से उक्त प्रकार पृथ्वी के प्रमाण के विस्तार को कहा गया है। आप लोगों का सदा कल्याण हो। अब मैं कैलास पर्वत पर स्थित अपने निवास स्थल पर जा रहा हूँ।।२।।

भगवान् वाराह ने कहा कि इस प्रकार से कहते हुए अदृश्य मूर्त्ति सम्पन्न रुद्र वहाँ से चले गए। वे सभी देव और ऋषिजन भी जहाँ-जहाँ से आये थे, वे सभी वहाँ-वहाँ को चले गए।।३।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में भुवनकोश भुवनकोश-क्रौञ्चद्वीप के कुलपर्वत, जनपद और नदियाँ नामक अट्ठासिवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुल-भूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥८८॥

❖❖❖

एकोननवतितमोऽध्यायः

अथ भुवनकोशे त्रिशक्तिकलादिनिरूपणम्

धरण्युवाच

परमात्मा शिवः पुण्य इति केचिद् भवं विदुः। अपरे हरिमीशानममिति केचिच्चतुर्मुखम्।।१।।
एतेषां कतमो देवः परः को वाऽथवाऽपरः। एतद्देव ममाचक्ष्व परं कौतूहलं विभो।।२।।

श्रीवराह उवाच

परो नारायणो देवस्तस्माज्जातश्चतुर्मुखः। तस्माद् रुद्रोऽभवद् देवि स च सर्वज्ञतां गतः।।३।।
तस्याश्चर्याण्यनेकानि विविधानि वरानने। शृणु सर्वाणि चार्वङ्गि कथ्यमानं मयाऽनघे।।४।।
कैलासशिखरे रम्ये नानाधातुविचित्रिते। वसत्यनुदिनं देवः शूलपाणिस्त्रिलोचनः।।५।।
सैकस्मिन् दिवसे देवः सर्वभूतनमस्कृतः। गणैः परिवृतो गौर्या महानासीत् पिनाकधृक्।।६।।
तत्र सिंहमुखाः केचिद् गणा नर्दन्ति सिंहवत्। अपरे हस्तिवक्त्राश्च हयवक्त्रास्तथापरे।।७।।
अपरे शिंशुमारास्या अपरे सूकराननाः। अपरेऽश्वामुखा रौद्रा खरास्याजाननास्तथा।
छागमत्स्याननाः क्रूरा ह्यनन्ताः शस्त्रपाणयः।।८।।

अध्याय-८९

त्रिशक्ति माहात्म्य, त्रिकला देवी का प्रादुर्भाव, ब्राह्मी शक्ति निरूपण

धरणी ने पूछा कि कोई-कोई तो श्रीशंकर को पुण्य परमात्मा शिव मानते हैं। कोई हरि को और कोई ब्रह्मा को ईशान अर्थात् परमात्मा कहा करते हैं।।१।।

हे देव! आप मुझे यह कहें कि इनमें कौन देव पर और कौन अपर हैं? हे विभो! इस प्रसङ्ग में जानने हेतु मुझे अत्यन्त कौतूहल हो रहा है।।२।।

श्रीभगवान् वाराह ने कहा कि हे देवि! निश्चय ही नारायण देव पर हैं। उनसे ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई है। फिर उन ब्रह्माजी से रुद्र की उत्पत्ति हुई है और वे सर्वज्ञ हैं।।३।।

हे सुमुखि! उनके विविध प्रकारक बहुत सारे आश्चर्यकारक कर्म हैं। हे निर्मल सुन्दर अङ्गों वाली! इस समय मेरे द्वारा कहे जा रहे उन सब आश्चर्यों को सुनो।।४।।

विभिन्न प्रकार की धातुओं से सुसज्जित रमणीय कैलास शिखर पर शूलपाणि त्रिलोचन महदेव नित्य निरन्तर निवास किया करते हैं।।५।।

किसी दिन समस्त प्राणियों से नमस्कृत पिनाकधारी महादेव महान् देवताओं के समूह से आवृत्त होकर वहाँ पर अवस्थित थे।।६।।

वहाँ पर सिंह के समान मुख वाले कुछ उनके गण सिंह के सदृश गर्जना कर रहे थे। दूसरे-दूसरे गण हाथी के सदृश मुख वाले भी थे और कुछ अश्व मुख वाले भी थे।।७।।

दूसरे कुछ गण शिशुमार के सदृश मुख वाले और अन्य कुछ गण शूकर के समान मुख वाले भी थे। कुछ

केचिद् गायन्ति नृत्यन्ति धावन्ति स्फोटयन्ति च।
हसन्ति किलकिलायन्ति गर्जन्ति च महाबलाः॥९॥
केचिल्लोष्टांस्तु संगृह्य युयुधुर्गणनायकाः। परे मल्लयुद्धेन युयुधुर्बलदर्पिताः।
एवं गणसहस्रेण वृतो देवो महेश्वरः॥१०॥
यावदास्ते स्वयं देव्या क्रीडन् देववरः स्वयम्। तावद् ब्रह्मा स्वयं देवैरुपायात् सह सत्वरः॥११॥
तमागतमथो दृष्ट्वा पूजयित्वा विधानतः। उवाच परमो देवो रुद्रो ब्रह्माणमव्ययम्॥१२॥
किमागमनकृत्यं ते ब्रह्मन् ब्रूहि ममाचिरम्। किं च देवास्त्वरायुक्ता आगता मम सन्निधौ॥१३॥

ब्रह्मोवाच

अस्त्यन्धको महादैत्यस्तेन सर्वे दिवौकसः। अर्दिता मत्समीपं तु बुद्ध्वा मां शरणैषिणः॥१४॥
ततश्चैते मया सर्वे प्रोक्ता देवा भवं प्रति। गच्छाम इति देवेश ततस्त्वेते समागतः॥१५॥
एवमुक्त्वा स्वयं ब्रह्मा वीक्षां चक्रे पिनाकिनम्। नारायणं च मनसा सस्मार परमेश्वरम्।
ततो नारायणो देवो द्वाभ्यां मध्ये व्यवस्थितः॥१६॥

भयंकर गण घोड़े के सदृश मुख वाले थे। कुछ गदहे और कुछ अन्य बकरी के समान मुख वाले थे। कुछ उसमें बकरे-से मुख वाले थे। फिर कुछ गण मत्स्य मुख वाले भी थे। वे सब गण क्रूर और असंख्यगण हाथों में शस्त्र भी धारण किये हुए थे।।८।।

उनमें से कुछ गा रहे थे, कुछ नाच रहे थे, कुछ दौड़ रहे थे, कुछ किलकारी कर रहे थे और कुछ महाबलशाली गण गर्जना कर रहे थे।।९।।

कुछ गणनायक ढेले एकत्रित कर आपस में युद्ध कर रहे थे। कुछ बल से गर्वीले होकर मल्लयुद्ध कर रहे थे। महेश्वर महादेव इस तरह सहस्रों गणों से आवृत्त थे।।१०।।

देवताओं में श्रेष्ठतम देव देवी के साथ स्वयं क्रीड़ा के मुद्रा में अवस्थित थे। ऐसे ही समय में स्वयं ब्रह्मा देवताओं के साथ शीघ्रता के सहित वहाँ आ पहुँचे।।११।।

तत्पश्चात् उन ब्रह्माजी को उपस्थित देखकर उन परमदेव रुद्र ने विधिपूर्वक उनकी पूजन कर लेने के बाद उन अव्यय ब्रह्मा से पूछा कि—।।१२।।

हे ब्रह्मन्! आप हमें बतलायें कि इस समय यहाँ आपके आने का कारण क्या है? अत्यन्त शीघ्रता के वश होकर सभी देवगण मेरे समीप क्यों पधारे हैं?।।१३।।

ब्रह्माजी ने कहा कि अन्धक नाम का एक महान् दैत्य है। उसके द्वारा समस्त देवताओं का मान मर्दन किया जा रहा है। इससे ये सभी मेरे पास शरणागत होकर आये।।१४।।

हे देवेश! फिर मैंने समस्त देवताओं से कहा कि हम शंकर के यहाँ चलें। तत्पश्चात् मेरे सहित समस्त देवगण, यहाँ आपके पास आ पहुँचे।।१५।।

इस प्रकार से कहते हुए स्वयं ब्रह्मा पिनाकी महादेव को देखने लग गये। और फिर परमेश्वर नारायण देव का स्मरण किया, तो नारायण देव उन दोनों के मध्य आकर उपस्थित हो गये।।१६।।

ततस्त्वेकीगतास्ते तु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः। परस्परं सूक्ष्मदृष्ट्या वीक्षां चक्रुर्मुदायुताः॥१७॥
ततस्तेषां त्रिधा दृष्टिर्भूत्वैका समजायत। तस्यां दृष्ट्यां समुत्पन्ना कुमारी दिव्यरूपिणी॥१८॥
नीलोत्पलदलश्यामा नीलकुञ्चितमूर्द्धजा। सुनासा सुललाटान्ता सुवक्त्रा सुप्रतिष्ठिता॥१९॥
त्वष्ट्रा यदग्निजिह्वं तु लक्षणं परिभाषितम्। तत्सर्वमेकतः संस्थं कन्यायां संप्रदृश्यते॥२०॥

अथ तां दृश्य कन्यां तु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
ऊचुः काऽसि शुभे ब्रूहि किं वा कार्यं विपश्चितम्॥२१॥
त्रिवर्णा च कुमारी सा कृष्णशुक्ला च पीतिका।
उवाच भवतां दृष्टेर्योगाज्जाताऽस्मि सत्तमाः।
किं मां न वेत्थ सुश्रोणीं स्वशक्तिं परमेश्वरीम्॥२२॥

ततो ब्रह्मादयस्ते च तस्यास्तुष्टा वरं ददुः। नाम्नाऽसि त्रिकला देवी पाहि विश्वं च सर्वदा॥२३॥
अपराण्यपि नामानि सभविष्यन्ति तवानघे। गुणोत्थानि महाभागे सर्वसिद्धकराणि च॥२४॥
अन्यच्च कारणं देवि त्रिवर्णाऽसि वरानने। मूर्तित्रयं त्रिभिर्वर्णैः कुरु देवि स्वकं तनुम्॥२५॥
एवमुक्ता तदा देवैरकरोत् त्रिविधां तनुम्। सितां रक्तां तथा कृष्णां त्रिमूर्तित्वं जाम ह॥२६॥

तत्पश्चात् इस प्रकार से एकत्रित हुए ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र महेश सानन्द एक-दूसरे को सूक्ष्म दृष्टि से देखने लग गये।।१७।।

तत्पश्चात् उन तीनों की तीन प्रकार की दृष्टियाँ एकीकृत होकर एक स्वरूप धारण कर ली, उस एक स्वरूप दृष्टि से एक दिव्य स्वरूप वाली कुमारी की उत्पत्ति हो गयी।।१८।।

वह कुमारी नील कमलदल के सदृश श्यामवर्ण की थी। उसके काले केश घूँघराले भी थे। उसकी नाक, ललाट और मुख अत्यन्त सुन्दर थे। इस तरह से वह कुमारी सुप्रतिष्ठित थी।।१९।।

त्वष्टा द्वारा अग्निजिह्व का जैसा लक्षण कहा गया है, वे सब एक साथ उस कन्या में स्पष्टतया परिलक्षित हो रहे थे।।२०।।

फिर उस कन्या को देखकर ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर ने कहा कि हे शुभे! तुम कौन हो? आप बतलाओं, क्या करने का विचार है।।२१।।

कृष्ण, शुक्ल और पीत, इन तीन वर्णों वाली उस कुमारी ने कहा कि हे श्रेष्ठ देवों! आपकी ही दृष्टियों के संयोग से मैं उत्पन्न हुई हूँ। क्या अपनी शक्ति स्वरूप सुन्दर कटिवाली मुझ परमेश्वरी को आप नहीं जानते?।।२२।।

फिर ब्रह्मा आदि देवों ने संतुष्ट होकर उन्हें वर प्रदान किया। हे देवि! तुम्हारा नाम त्रिकला देवी होगा। तुम सर्वदा विश्व का पालन किया करो।।२३।।

हे अनघे महाभागे! तुम्हारे गुणों के कारण स्वरूप समस्त सिद्धियों को प्रदान करने वाले अन्य नाम भी तुम्हारा सम्भव होगा।।२४।।

हे सुन्दर मुख वाली देवि! अन्य भी कई कारण हैं, जिससे तुम त्रिवर्णा हो। हे देवि! तुम जल्दी ही स्वयं को तीन वर्णों वाली तीन मूर्त्तियों में विभाजित करो।।२५।।

फिर देवों के इस प्रकार से कहते ही उस देवी ने अपने शरीर का तीन प्रकार बना दिया। उस देवी ने श्वेत, रक्त, और कृष्ण वर्णों वाली तीन मूर्त्तियों का स्वरूप धारण कर लिया।।२६।।

या सा ब्राह्मी शुभा मूर्त्तिस्तया सृजति वै प्रजाः। सौम्यरूपेण सुश्रोणी ब्रह्मसृष्ट्या विधानतः॥२७॥
या सा रक्तेन वर्णेन सुरूपा तनुमध्यमा। शङ्खचक्रधरा देवी वैष्णवी सा कला स्मृता।
सा पाति सकलं विश्वं विष्णुमायेति कीर्त्त्यते॥२८॥
या सा कृष्णेन वर्णेन रौद्री मूर्त्तिस्त्रिशूलिनी। दंष्ट्राकरालिनी देवी सा संहरति वै जगत्॥२९॥
या सृष्टिर्ब्रह्मणो देवी श्वेतवर्णा विभावरी। सा कुमारी महाभागा विपुलाब्जदलेक्षणा।
सद्यो ब्रह्माणमामन्त्र्य तत्रैवान्तरधीयत॥३०॥
साऽन्तर्हिता ययौ देवी वरदा श्वेतपर्वतम्। तपस्तुप्तुं महत् तीव्रं सर्वगत्वमभीप्सती॥३१॥
या वैष्णवी कुमारी तु साप्यनुज्ञाय केशवम्। मन्दाद्रिं ययौ तप्तुं तपः परमदुश्चरम्॥३२॥
या सा कृष्णा विशालाक्षी रौद्री दंष्ट्राकरालिनी। सा नीलपर्वतवरं तपश्चर्तुं ययौ शुभा॥३३॥
अथ कालेन महता प्रजाः स्त्रष्टुं प्रजापतिः। आरब्धवान् तदा तस्य ववृधे सृजतो बलम्॥३४॥
यदा न ववृधे तस्य ब्रह्मणो मानसी प्रजा। तदा दध्यौ किमेतन्मे न तदा वर्द्धते प्राजा॥३५॥
ततो ब्रह्मा हृदा दध्यौ योगाभ्यासेन सुव्रते। चिन्तयन् बुबुधे देवस्तां कन्यां श्वेतपर्वते।
तपश्चरन्तीं सुमहत् तपसा दग्धकिल्बिषाम्॥३६॥

इस तरह, जो सुन्दर कटिवाली शुभ ब्राह्मी मूर्त्ति है, वह सौम्य रूप से ब्रह्मसृष्टि के विधान के अनुरूप प्रजा की सृष्टि किया करती है।।२७।।

फिर जो रक्त वर्ण सुन्दर स्वरूप और क्षीण कटिवाली शंख और चक्र धारण करने वाली वैष्णवी देवी है, उसे कला कहा जाता है, जो समस्त विश्व का परिपालन करती है, जिसे विष्णु की माया भी कहा गया है।।२८।।

तत्पश्चात् जो कृष्ण वर्णा, त्रिशूल धारिणी, भयंकर दाढ़ों वाली रुद्र सम्बन्धिनी देवी है, वह इस जगत का संहार किया करती है।।२९।।

इस प्रकार ब्रह्मा की सृष्टि स्वरूपा, श्वेत वर्णा, तेजस्विनी, विपुल पद्मदल के सदृश नेत्रों वाली कुमारी देवी महाभागा ने तत्काल ब्रह्मा से आदेशित होकर वहीं पर अन्तर्हित हो गई।।३०।।

फिर वह वरदायिनी देवी अन्तर्हित होकर सर्वज्ञता की कामना से श्वेत पर्वत पर तप करने चली गई।।३१।।

फिर विष्णु से उत्पन्ना कुमारी ने भी श्री केशव की आज्ञा पाकर परम कठोर तप करने मन्दराचल पर चली गई।।३२।।

वैसे ही रुद्र से उत्पन्न कृष्णवर्णा, भयंकर दाढ़ों वाली, विशाल नेत्रों वाली कुमारी कल्याणी देवी भी तप करने के निमित्त श्रेष्ठ नीलपर्वत पर चली गई।।३३।।

तत्पश्चात् बहुत समय व्यतीत होने पर प्रजाओं की सृष्टि की इच्छा से प्रजापति ब्रह्मा ने उद्योग आरम्भ किया, तो उस सृजनकर्त्ता ब्रह्मा का बल वृद्धि होने लगा।।३४।।

लेकिन उन ब्रह्मा की मानसी प्रजा का विकास नहीं सम्भव हुआ, तो वे विचार करने लगे कि मेरी प्रजा क्यों नहीं बढ़ पा रही है।।३५।।

हे सुव्रते! फिर ब्रह्मा ने योगबल से अपने हृदय में ध्यान किया। इस प्रकार विचार करते हुए उन देव ने श्वेत पर्वत पर तप करने वाली और महातपस्या से भस्म हुए दोषों वाली उस कन्या के बारे में जान सका।।३६।।

ततो ब्रह्मा ययौ तत्र यत्र सा कमलेक्षणा। तपश्चरति तां दृष्ट्वा वाक्यमेतदुवाच॥३७॥

ब्रह्मोवाच

किं तपः क्रियते भद्रे कार्यमावेक्ष्य शोभने। तुष्टोऽस्मि ते विशालाक्षि वरं किं ते ददाम्यहम्॥३८॥

सृष्टिरुवाच

भगवन्नेकदेशस्था नोत्सहे स्थातुमञ्जसा। अतोऽर्थं त्वां वरं चाचे सर्वगत्वमभीप्सती॥३९॥

एवमुक्तस्तदा देव्या सृष्ट्या ब्रह्मा प्रजापतिः। उवाच तां तदा देवीं सर्वगा त्वं भविष्यसि॥४०॥

एवमुक्ता तदा तेन सृष्टिः सा कमलेक्षणा। तस्य ह्यङ्के लयं प्राप्ता सा देवी पद्मलोचना।
तस्मादारभ्य कालात् तु ब्राह्मी सृष्टिर्व्यवर्द्धत॥४१॥

ब्रह्मणो मानसाः सप्त तेषामन्ये तपोधनाः। तेषामन्ये ततस्त्वन्ये चतुर्द्धा भूतसंग्रहः।
सस्थाणुजङ्गमानां च सृष्टिः सर्वत्र संस्थिता॥४२॥

यत्किंचिद् वाङ्मयं लोके जगत्स्थावरजङ्गमम्। तत्सर्वं स्थापितं सृष्ट्या भूतं भव्यं च सर्वदा॥४३॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे एकोननवतितमोऽध्यायः॥८९॥

फिर वे ब्रह्माजी वहाँ जाकर उस कमलनयनी, तपनिष्ठा को देख कर यह वाक्य कहा कि—॥३७॥

ब्रह्मा ने कहा कि हे भद्रे! तुम क्यों तप कर रही हो? तुमने क्या प्रयोजन सोच रखा है? हे विशाल नेत्रों वाली! मैं तुमसे प्रसन्न हूँ, मैं तुम्हें क्या वर प्रदान करूँ॥३८॥

फिर सृष्टि ने कहा कि हे भगवन्! मैं सरलता से एक स्थान पर स्थिर नहीं रह सकती। अतएव मैं सर्वव्यापी होने की कामना से आपसे वर माँगना चाहती हूँ॥३९॥

इस प्रकार से सृष्टि देवी के कहे जाने पर प्रजापति ब्रह्मा ने उस देवी से कहा कि अच्छा, तो तुम सर्वव्यापिनी होओगी॥४०॥

फिर उस ब्रह्माजी द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर वह कमलनयनी सृष्टि देवी उनके ही अंक में विलीन हो गई। फिर उस समय से ब्रह्माजी की सृष्टि भी बढ़ने लगी॥४१॥

उस समय ब्रह्माजी के सात मानस पुत्र हुए थे। उन सभी मानस पुत्रों के अलावे अन्य तपस्वी पुत्र हुए। पुनः उन पुत्रों के भी अन्य पुत्र हुए। उनसे भी अन्य पुत्र हुए। जिनसे चार प्रकार की भूत सृष्टि हुई। इस प्रकार सर्वत्र चर और अचर प्राणियों की सृष्टि व्यवस्थित हो पायी॥४२॥

इस प्रकार इस संसार में जो कुछ भी स्थावर या जंगम वाङ्मय पदार्थ उपलब्ध है, सृष्टिदेवी ने भूत, भविष्य और वर्तमान काल क्रम में उन सब को व्यवस्थित की॥४३॥

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में त्रिशक्ति माहात्म्य, त्रिकला देवी का प्रादुर्भाव, ब्राह्मी शक्ति निरूपण नवासीवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुल-भूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥८९॥

नवतितमोऽध्यायः

अथ ब्रह्मणा सृष्टिदेव्याः स्तुतिः

श्रीवराह उवाच

श्रृणु चान्यं वरारोहे तस्या देव्या महाविधिम्। या सा त्रिशक्तिरुद्दिष्टा शिवेन परमेष्ठिना॥१॥
तत्र सृष्टिः पुरा प्रोक्ता श्वेतवर्णा स्वरूपिणी। एकाक्षरेति विख्याता सर्वाक्षरमयी शुभा॥२॥
वागीशेति समाख्याता क्वचिद् देवी सरस्वती। सैव विद्येश्वरी देवी सैव क्वाप्यमिताक्षरा।
सैव ज्ञानविधिः क्वापि सैव देवी विभावरी॥३॥
यानि सौम्यानि नामानि यानि ज्ञानोद्भवानि च। तानि तस्या विशालाक्षि द्रष्टव्यानि वरानने॥४॥
या वैष्णवी विशालाक्षी रक्तवर्णा सुरूपिणी। अपरा सा समाख्याता रौद्री चैव परापरा॥५॥
एतास्त्रयोऽपि सिद्ध्यन्ते यो रुद्रं वेत्ति तत्त्वतः। सर्वगेयं वरारोहे एकैव त्रिविधा स्मृता॥६॥
एषा सृष्टिर्वरारोहे कथिता ते पुरातनी। तया सर्वमिदं व्याप्तं जगत् स्थावरजङ्गमम्॥७॥
या साऽऽदौ वर्द्धिता सृष्टिर्ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः।
तया तुल्यां स्तुतिं चक्रे तस्या देव्याः पितामहः॥८॥

अध्याय-९०

त्रिशक्तियों के विभिन्न नाम, ब्रह्मा द्वारा सृष्टि देवी की स्तुति उसका माहात्म्य

श्री भगवान् वाराह ने कहा कि हे वरारोहे! परमेष्ठी शिव के द्वारा जिनको त्रिशक्ति स्वरूपा कहा गया है, उन देवियों के प्रसङ्ग की महान् विधि को ध्यान देकर सुनो—।।१।।

पुरातन काल में श्वेतवर्णा सत्त्वगुण स्वरूपा देवी की उत्पत्ति कथा बतलाया गया है। उस कल्याण करने वाली सर्वाक्षरमयी वह देवी 'एकाक्षरा' नाम से सुप्रसिद्ध है।।२।।

वैसे यत्र-तत्र वह देवी वागीशा और कहीं सरस्वती देवी कही गई हैं। वहीं देवी कहीं कहीं 'विद्येश्वरी देवी' और कहीं कहीं वही अमिताक्षरा भी कहलाती हैं। उसे कहीं-कहीं ज्ञानविधि और कहीं उसी को विभावरी देवी कहते हैं। हे सुन्दर मुख और विशाल नेत्रों वाली देवि! जो भी सौम्य नाम हैं और जो भी ज्ञान से उत्पन्न होने वाले विषय हैं, उन सबको उस देवी का स्वरूप समझना चाहिए।।३-४।।

वह जो रक्तवर्णा सुन्दर स्वरूपा और विशाल नेत्रों वाली वैष्णवी देवी हैं, उसे अपरा कहा जाता है तथा रुद्र विषयिणी देवी को परापरा कहना चाहिए।।५।।

जो कोई जन रुद्र को जानने वाला है, उसको ये तीनों ही देवियाँ सिद्ध हो जाया करती हैं। हे सुन्दरि! अतः सर्वव्यापक इस एक ही शक्तिस्वरूपा देवी को तीन तरह से मात्र कहा गया है।।६।।

हे वरारोहे! इस प्रकार तुमको पुरातन कालीन सृष्टि क्रम को कहा गया है। उसी कारण ही यह अखिल चराचर संसार में व्याप्त माना जाता है।।७।।

अव्यक्त जन्मा ब्रह्मा से जो सृष्टि स्वरूपा शक्ति आदि काल में वर्द्धित हुई थी, उस पितामह ने उसके समान उस देवी की स्तुति की।।८।।

ब्रह्मोवाच

जयस्व सत्यसंभूते ध्रुवे देवि वराक्षरे। सर्वगे सर्वजननि सर्वभूतमहेश्वरि॥९॥
सर्वज्ञे त्वं वरारोहे सर्वसिद्धिप्रदायिनी। सिद्धिबुद्धिकरी देवि प्रसूतिः परमेश्वरि॥१०॥
त्वं स्वाहा त्वं स्वधा देवि त्वमुत्पत्तिर्वरानने। त्वमोङ्कारस्थिता देवि वेदोत्पत्तिस्त्वमेव च॥११॥
देवानां दानवानां च यक्षगन्धर्वरक्षसाम्। पशूनां वीरुधां चापि त्वमुत्पत्तिर्वरानने॥१२॥
विद्या विद्येश्वरी सिद्धा प्रसिद्धा त्वं सुरेश्वरि। सर्वज्ञा त्वं वरारोहे सर्वसिद्धिप्रदायिनी॥१३॥
सर्वगा गतसंदेहा सर्वशत्रुनिबर्हिणी। सर्वविद्येश्वरी देवी नमस्ते स्वस्तिकारिणि॥१४॥

ऋतुस्नातां स्त्रियं गच्छेद् यस्त्वां स्तुत्वा वरानने।
तस्यावश्यं भवेत् सृष्टिस्त्वत्प्रसादात् प्रजेश्वरि।
स्वरूपा विजया भद्रा सर्वशत्रुप्रमोहिनी॥१५॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे नवतितमोऽध्यायः॥९०॥

ब्रह्माजी ने कहा कि हे सत्य से उत्पन्न होने वाली श्रेष्ठ अक्षर स्वरूपा, सर्वव्यापी, सर्वजननी, और समस्त भूतों की महेश्वरी शाश्वत देवि! आपकी जय हो।।९।।

हे सुन्दरी देवि! हे परमेश्वरि! आप सर्वज्ञ हैं, सर्वसिद्धि प्रदान करने वाली हैं, आप सिद्धि और बुद्धि प्रदान करने वाली हैं और आप ही सबको उत्पन्न करने वाली हैं।।१०।।

हे सुन्दरमुखी देवि! आप स्वाहा हो, स्वधा हो और ॐकार में स्थित रहने वाली हो, हे देवि! आप ही वेदों की उत्पत्ति का स्थान भी हो।।११।।

हे सुन्दर मुखवाली! आप देवों, गन्धर्वों, यक्षों, दानवों, राक्षसों, पशुओं, वनस्पतियों आदि की भी उत्पत्ति का स्थान हो।।१२।।

हे सुरेश्वरि! आप ही विद्या, विद्येश्वरी और सिद्धा के नाम से प्रसिद्ध हो। हे सुन्दरि! आप सर्वज्ञ और समस्त सिद्धियों को प्रदान करनेवाली हो।।१३।।

हे सर्वत्र व्यापिनी, सन्देह रहित, सर्वशत्रु विनाशिनी, सर्वविद्या स्वामिनी और आप ही कल्याणकारिणी देवी हैं। अतः आपको प्रणाम है।।१४।।

हे प्रजेश्वरि! सुन्दरि देवि! आप की इस स्तुति को करने के पश्चात् जो जन ऋतुस्नाता स्त्री के पास जाता है, उसे आपकी कृपा प्रसाद से अवश्य सन्तान की प्राप्ति होती है। हे देवि! आप आत्मस्वरूपा, विजया, भद्रा, समस्त शत्रुओं को मोहित करनेवाली हो।।१५।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में त्रिशक्तियों के विभिन्न नाम, ब्रह्मा द्वारा सृष्टि देवी की स्तुति उसका माहात्म्य नामक नब्बेवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायण-कुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥९०॥

❖❖❖

एकनवतितमोऽध्यायः

अथ वैष्णवीचरितम्

श्रीवराह उवाच

या मन्दरगता देवी तपस्तप्तुं तु वैष्णवी। राजसी परमा शक्ति कौमारव्रतधारिणी॥१॥
सैकाकिनी तपस्तेपे विशालायां तु शोभने। तस्यास्तपन्त्याः कालेन महता क्षुभितं मनः॥२॥
तस्मात् क्षोभात् समुत्तस्थुः कुमार्यः सौम्यलोचनाः।
नीलकुञ्चतकेशान्ता विम्बोष्ठायतलोचनाः।
नितम्बरशनोद्दामा नूपुराढ्याः सुवर्चसः॥३॥
एवंविधाः स्त्रियो देव्या क्षोभिते मनसि द्रुतम्। उत्तस्थुः शतसाहस्राः कोटिशो विविधानानाः॥४॥
दृष्ट्वा कुमार्यः सा देवी तस्मिन्नेव गिरौ शुभा। तपसा निर्ममे देवी पुरं हर्म्यशताकुलम्म॥५॥
विशालरथ्यं सौवर्णप्रासादैरुपशोभितम्। अन्तर्जलानि वेश्मानि मणिसोपानवन्ति च।
रत्नजालगवाक्षाणि आसन्नोपवनानि च॥६॥

अध्याय–९१

वैष्णवी चरित्र, तपनिष्ठ वैष्णवी के लावण्य से मोहित नारद का महिषासुर को उकसाना

श्री भगवान् वाराह ने कहा कि राजस गुण सम्पन्ना, परमा शक्ति स्वरूपा और कौमार्यव्रत धारण करने वाली जो वैष्णवी देवी तप करने हेतु मन्दर नाम के पर्वत पर चली गयी थी।।१।।

हे शोभने! उस देवी ने विशाला नाम के गुहा अथवा तीर्थ में अकेले ही तपस्या की। लम्बे समय के पश्चात् तपनिष्ठ उस देवी का चित्त क्षुभित-सा हो गया था।।२।।

उस क्षुभित मनवाली देवी से नीलवर्ण के घूँघराले बालों वाली, सुन्दर ओष्ठों और विशाल नेत्रों वाली, कमर में सुन्दर कटिबन्ध धारण करने वाली, नूपुरों से अलंकृत, तेजस्विनी और स्निग्ध नेत्रों वाली कई कुमारियाँ उत्पन्न हो गयीं।।३।।

इस प्रकार देवी के क्षुभित मन से विभिन्न प्रकार के मुखों वाली सैकड़ों, हजारों, और करोड़ों स्त्रियाँ अवतरित हुईं।।४।।

फिर उस कल्याण करने वाली देवी ने उन कुमारियों और स्त्रियों को देखकर उस पर्वत पर अपनी तपस्या के बल से सैकड़ों प्रासादों से सम्पन्न पुर का निर्माण किया।।५।।

वैसे वे सभी पुर विस्तृत पथों और स्वर्णिम प्रासादों से विभूषित था। उस पुर की भवनों के अन्दर जल की भी व्यवस्था थी। उन भवनों की सीढ़ियाँ मणियों से बनायी गई थी। फिर उन भवनों के झरोखे भी रत्नों से बनी हुई थी। उन झरोखों के पास उपवन भी उपलब्ध थे।।६।।

असंख्यातानि हर्म्याणि तथा कन्या धराधरे। प्राधान्येन प्रवक्ष्यामि कन्यानामानि शोभने॥७॥
विद्युत्प्रभा चन्द्रक्रान्तिः सूर्यकान्तिस्तथाऽपरा। गम्भीरा चारुकेशी च सुजाता मुञ्जकेशिनी॥८॥
घृताची वोर्वशी चान्या शशिनी शीलमण्डिता। चारुकन्या विशालाक्षी धन्या पीनपयोधरा॥९॥
चन्द्रप्रभा गिरिसुता तथा सूर्यप्रभाऽमृता। स्वयंप्रभा चारुमुखी शिवदूती विभावरी॥१०॥
जया च विजया चैव जयन्ती चापराजिता। एताश्चान्याश्च शतशः कन्यास्तस्मिन् पुरोत्तमे॥११॥
देव्या अनुचराः सर्वाः पाशाङ्कुशधराः शुभाः। ताभिः परिवृता देवी सिंहासनगता शुभा॥१२॥
सुसितैश्चामरैः स्त्रीभिर्वीज्यमाना विलासिनी। कौमारं व्रतमास्थाय तपः मर्तुं समुद्यता॥१३॥
यौवनस्था महाभागा पीनवृत्तपयोधरा। चम्पकाशोकपुन्नागनागकेसरदामभिः॥१४॥
सर्वाङ्गेष्वर्चिता देवी ऋषिदेवनमस्कृता। पूज्यमाना वरस्त्रीभिः कुमारीभिः समन्ततः॥१५॥
सर्वाङ्गभोगिनी देवी यावदास्ते तपोऽन्विता। तावदागतवांस्तत्र नारदो ब्रह्मणः सुतः॥१६॥
तं दृष्ट्वा सहसा देवी ब्रह्मपुत्रं तपोधनम्। विद्युत्प्रभामुवाचेदमासनं दीयतामिति।
पाद्यमाचमनीयं च क्षिप्रमस्मै प्रदीयताम्॥१७॥
एवमुक्ता तदा देव्या कन्या विद्युत्प्रभा शुभा। आसनं पाद्यमर्घ्यं च नारदाय न्यवेदयत्॥१८॥

इस तरह असंख्य कन्यायें और असंख्य भवन उपलब्ध थे। हे सुन्दरि पृथ्वि! अब मैं उन कन्याओं में जो प्रधान कन्यायें थीं, उनका नाम कहता हूँ।।७।।

विद्युत्प्रभा, चन्द्रकान्ति, सूर्यकान्ति, परा, गम्भीरा, चारुकेशी, सुजाता, मुञ्जकेशिनी, घृताची, उर्वशी, आदि और अन्य शशिनी, शीलमण्डिता, चारुकन्या, विशालाक्षी, धन्या, पीनपयोधरा, चन्द्रप्रभा, गिरिसुता, सूर्यप्रभा, अमृता, स्वयम्प्रभा, चारुमुखी, शिवदूती, विभावरी, जया, विजया, जयन्ती, अपराजिता आदि के साथ अन्य सैकड़ों कन्यायें उस पुर में निवास कर रही थीं।।८-११।।

ये समस्त कल्याण करने वाली कन्यायें देवी की अनुचरियाँ थीं, उन सभी के हाथों में पाश और अंकुश थी। इन समस्त कन्याओं से समावृत उन कल्याण करने वाली देवी अपने योग्य आसन पर समासीन थीं।।१२।।

वे स्त्रियाँ देवी को श्वेत चामर डुला रही थी। इस तरह विलास युक्त देवी कौमार व्रत धारण कर तप करने हेतु समुद्यत हो गई।।१३।।

उस स्थूल और वृत्ताकार पयोधरों से युक्त महान् भाग्यशालिनी युवावस्था सम्पन्ना देवी का सम्पूर्ण अंग चम्पा, अशोक, पुन्नाग, नागकेसर आदि पुष्पों की मालाओं से शोभा पा रहा था। फिर ऋषि और देवगण उन देवी को प्रणाम किया करते थे तथा श्रेष्ठ कुमारी कन्यायें उन देवी के चारों ओर स्थित होकर सेवाकार्य में लगी हुई थीं।।१४-१५।।

वह देवी अपने समस्त अंगों में समस्त ऐश्वर्य को धारण कर जब तपनिष्ठ होकर स्थित थी, उसी समय ब्रह्मा के पुत्र नारद वहाँ आ पहुँचे।।१६।।

उस समय अचानक ब्रह्मा के पुत्र उन तपोधन नारद को देखकर उन देवी ने विद्युत्प्रभा से इस प्रकार कहा कि इन्हें यह आसन देकर शीघ्रता से पाद्य और आचमन हेतु जल प्रदान करो।।१७।।

उस समय उन देवी के इस प्रकार से कहे जाने पर कल्याणकारिणी विद्युत्प्रभा नाम वाली उस कन्या ने नारद को आसन, पाद्य और अर्घ्य हेतु जल प्रदान किया।।१८।।

ततः कृतासनं दृष्ट्वा प्रणतं नारदं मुनिम्। उवाच वचनं देवी हर्षेण महताऽन्विता॥१९॥
स्वागतं भो मुनिश्रेष्ठ कस्माल्लोकादिहागतः।
किं कार्यं वद ते कृत्यं मा ते कालत्ययो भवेत्॥२०॥
एवमुक्तस्तदा देव्या नारदः प्राह लोकवित्। ब्रह्मलोकादिन्द्रलोकं तस्माद् रौद्रमथाचलम्॥२१॥
ततस्त्वामिह देवेशि द्रष्टुमभ्यागतः शुभे। एवमुक्त्वा मुनिः श्रीमांस्तां देवीमन्ववेक्षत॥२२॥
दृष्ट्वा मुहूर्तं देवेशीं विस्मितो नारदोऽभवत्। अहो रूपमहो कान्तिरहो धैर्यमहो वयः॥२३॥
अहो निष्कामता देव्या इति ोदमुपाययौ। देवगन्धर्वसिद्धानां यक्षकिन्नररक्षसाम्॥२४॥
न रूपमीदृशं क्वापि स्त्रीष्वन्यासु प्रदृश्यते। एवं संचिन्त्य मनसा नारदो विस्मयान्वितः॥२५॥
प्रणम्य देवीं वरदामुत्पपात नभस्तलम्। मगतश्च त्वरया युक्तः पुरीं दैत्येन्पालिताम्॥२६॥
महिषाख्येन भूतेशि समुद्रान्तः स्थितां पुरीम्। तत्राससाद भगवानसुरं महिषाकृतिम्॥२७॥
दृष्ट्वा लब्धवरं वीरं देवसैन्यान्तकं महत्। स तेन पूजितो भक्त्या तदा लोकचरो मुनिः॥२८॥
प्रीतात्मा नारदस्तस्मै देव्या रूपमनुत्तमम्। आचचक्षे यथान्यायं यद् दृष्टं देवतापुरे॥२९॥

तत्पश्चात् विनय सहित आसन पर स्थित नारद मुनि से देवी ने महान् हर्ष सम्पन्न होकर इस प्रकार से कहा– हे मुनिश्रेष्ठ! आपका स्वागत है। आप किस लोक में यहाँ आये हैं। क्या प्रयोजन है? आप अपना प्रयोजन भी बतलायें, जिससे आपका समय भी नष्ट न हो सके।।१९-२०।।

उस समय देवी के इस प्रकार से कहे जाने पर लोकों के ज्ञाता नारद ने कहा कि ब्रह्मलोक से इन्द्रलोक और उस स्थान से रुद्र के पर्वत तक हम गये।।२१।।

हे कल्याणमयी देवेशि! वहाँ से आपका दर्शन करने हम यहाँ पधारे हैं। इस प्रकार से बोलकर श्रीमान् नारद मुनि देवी की तरफ देखने लगे।।२२।।

फिर मुहूर्त्त काल तक उन देवेशी को देखने के बाद नारद मुनि आश्चर्यचकित हो गये। अहा! देवी का कैसा अद्भुत स्वरूप है? अहा! उनकी कैसी शोभा है?अहा! उनका कैसा धैर्य है और कैसी उनकी अवस्था?।।२३।।

अहा! देवी की निष्कामता कैसी है? इस प्रकार देखते हुए नारद मुनि विचार मग्न हो गये। देव, गन्धर्व, सिद्ध, यक्ष, किन्नर, राक्षस आदि की अन्य स्त्रियों में इस प्रकार का स्वरूप कहीं भी दर्शन नहीं हो सकता। इस तरह मन में विचार करते हुए नारद आश्चर्य मग्न हो गये।।२४-२५।।

फिर नारद मुनि उन वरदायिनी देवी को प्रणाम कर आकाश की ओर उड़ते चले गये तथा शीघ्र ही वह दैत्येन्द्र से पालित पुरी में पहुँच गये।।२६।।

हे भूतेशि! उस समय नारद महिष नामक असुर पालित समुद्र के अन्दर स्थित पुरी पहुँच गये। भगवान् नारद वहाँ महिषाकार शरीर वाले असुर के पास गये।।२७।।

मुनि ने उस वर प्राप्त किए और देवसेना को परास्त करने वाले महान् वीर को देखा। फिर उस असुर ने लोकभ्रमण करने वाले मुनि की भक्तिभाव से पूजा और सत्कार किया।।२८।।

उस समय मुनि नारद ने प्रसन्नतापूर्वक उसके सम्मुख देवता के पुर में देवी का जैसा श्रेष्ठ स्वरूप अवलोकित किया था, यथावत् उसका वर्णन कर दिया।।२९।।

नारद उवाच

असुरेन्द्रं शृणुष्वेकं कन्यारत्नं समाहितः। येन लब्धं तु त्रैलोक्यं वरदानाच्चराचरम्॥३०॥
ब्रह्मलोकादहं दैत्य मन्दराद्रिमुपागतः। तत्र देवीपुरं दृष्टं कुमारीशतसङ्कुलम्॥३१॥
तत्र प्रधाना या कन्या तापसी व्रतधारिणी। सा देवदैत्ययक्षाणां मध्ये काचिन्न दृश्यते॥३२॥
यादृशी सा शुभा दैत्य तादृश्येकाण्डमध्यतः। भ्रमता तादृशी दृष्ट्वा न कदाचिन्मया सती॥३३॥
तस्याश्च देवगन्धर्वा ऋषयः सिद्धचारणाः। उपासांचक्रिरे सर्वे येऽप्यन्ये दैत्यनायकाः॥३४॥
तां दृष्ट्वा वरदां देवीमहं मूर्णमिहागतः। अजित्वा देवगन्धर्वान् न तां जयति कश्चन॥३५॥
एवमुक्त्वा क्षणं स्थित्वा तमनुज्ञाप्य नारदः। यथागतं ययौ धीमानन्तर्धानेन तत्क्षणात्॥३६॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे एकनवतितमोऽध्यायः॥९१॥

नारद ने कहा कि असुरेन्द्र! सावधान होकर एक विशिष्ट काया रत्न की प्रशंसा सुनो। जिसने वरदान के द्वारा चराचर त्रैलोक्य का स्वरूप प्राप्त किया हुआ है।।३०।।

हे दैत्य! मैं ब्रह्मलोक से सीधे मन्दराचल पर चला गया था। वहाँ मैंने सैकड़ों कुमारियों से परिपूर्ण एक देवी पुर को देखा।।३१।।

उन सब में एक प्रधान कन्या व्रतधारिणी तापसी थी, वैसी देवों, दैत्यों और यक्षों में भी कहीं कोई दृष्ट नहीं है।।३२।।

हे दैत्यराज! कल्याण स्वरूपा उनकी जैसी दूसरी सती स्त्री मैंने इस ब्रह्माण्ड में भ्रमण करते हुए आजतक कहीं नहीं देख सका है।।३३।।

समस्त देव, गन्धर्व, ऋषि, सिद्ध चारण और अन्य दैत्यनायक भी उसकी आराधना ही किया करते हैं।।३४।।

उसके ऐसी वरदायिनी देवी को देखकर मैं शीघ्रता से यहाँ आया हूँ। देवों और गन्धर्वें को बिना जीते उसको कोई जीत नहीं सकता है।।३५।।

इस प्रकार कहते हुए फिर क्षण भर ठहर कर बुद्धिमान् नारद मुनि ने उससे कहकर तत्क्षण वहाँ से अन्तर्धान हो गये फिर जहाँ से आये थे, वहाँ चले गये।।३६।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में वैष्णवी चरित्र, तपनिष्ठ वैष्णवी के लावण्य से मोहित नारद का महिषासुर को उकसाना नामक इक्यानबेवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्य-नारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥९१॥

❖❖❖

द्विनवतितमोऽध्यायः

अथ महिषासुरवृत्तान्तम्

श्रीवराह उवाच

गते तु नारदे दैत्यश्चिन्तयामास तां शुभाम्। कथितां नारदमुखाच्छुत्वा विस्मितमानसः॥१॥
तामेव चिन्तयन् शर्म न लेभे दैत्यसत्तमः। अलंशर्मा महामन्त्री आनिनाय महाबलः॥२॥
तस्याष्टौ मन्त्रिणः शूरा नीतिमन्तो बहुश्रुताः। प्रघसो विघसश्चैव शङ्कुकर्णो विभावसुः।
विद्युन्माली सुमाली च पर्जन्यः क्रूर एव च॥३॥
एते मन्त्रिवरास्तस्य प्राधान्येन प्रकीर्तिताः। ते दानवेन्द्रमासीनमूचुः कृत्यं विधीयताम्॥४॥
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा दानवेन्द्रो महाबलः। उवाच कन्यालाभार्थं नारदावाप्तनिश्चयः॥५॥

महिष उवाच

मह्यं तु कथिता बाला नारदेन महर्षिणा। सा चाजित्य सुराध्यक्षं न लभ्येत वराङ्गना॥६॥
एतदर्थं भवन्तो वै कथयन्तु विमृश्य वै। कथं सा लभ्यते बाला कथं देवाश्च निर्जिताः।
भवेयुरिति तत्सर्वं कथयन्तु द्रुतं मम॥७॥

अध्याय-९२

महिषासुर का मन्त्रियों से मन्त्रणा, देवों के पास दूत भेजना, देवयुद्ध के हेतु तैयारी

श्री भगवान् वाराह ने कहा कि इस तरह से कहकर नारद के चले जाने पर नारद के मुख से सुने उस सुन्दरी की प्रशंसा से आश्चर्य युक्त मन से वह दैत्य विचार मग्न हो गया।।१।।

उस विषय में ही विचार करते रहने से उस दैत्य श्रेष्ठ को शान्ति नहीं मिल रही थी। फिर अलंशर्मा नाम का महाबलवान् महामन्त्री उसके आठ पराक्रमी, नीतिमान और बहुश्रुत मन्त्रियों को बुला लिया। जिनके नाम क्रम से प्रधरु, विधस, शङ्कुकर्ण, विभावसु, विद्युन्माली, सुमाली, पर्ज्जन्य और क्रूर थे।।२-३।।

उसके ये प्रधानता से मन्त्रियों के नाम कहे गये हैं। उन सभी मन्त्रियों ने बैठे हुए अपने दानवेन्द्र से कहा कि कार्य बतलायें।।४।।

उन सब के उस वचन को सुनकर कन्या की प्राप्ति हेतु नारद से प्रेरित निश्चय किये हुए महाबलशाली दैत्य ने कहा—।।५।।

महिष ने कहा कि महर्षि नारद द्वारा मुझसे एक कन्या के बारे में पता चला है। अतः देवों के स्वामी को जीते विना वह श्रेष्ठ कन्या नहीं मिल सकती है।।६।।

अतः आप सभी विचारपूर्वक कहें कि आखिर वह कुमारी कैसे प्राप्त की जाय? फिर देवगणों को किस प्रकार परास्त किया जाय। आप सभी जल्दी ही मुझे यह बतलायें।।७।।

एवमुक्तास्ततः सर्वे कथयामासुरञ्जसा। ऊचुः संमन्त्र्य ते सर्वे कथयामो वयं प्रभो॥८॥
एवमुक्तस्तथोवाच प्रघसो दानवेश्वरम्। या सा ते कथिता दैत्य नारदेन महासती।
सा शक्तिः परमा देवी वैष्णवी लोकधारिणी॥९॥
गुरुपत्नी राजपत्नी तथा सामन्तयोषितः। जिघृक्षन् नश्यते राजा तथागम्यागमेन च॥१०॥
प्रघसेनैवमुक्तस्तु विघसो वाक्यमब्रीत्। सम्यगुक्तं प्रघसेन तां देवीं प्रति पार्थिव॥११॥
यदि नाम मतैक्यं तु बुद्धिः स्मरणमागता। वरणीया कुमारी तु सर्वदा विजिगीषुभिः।
न स्वतन्त्रेण कन्यायाः कार्यं क्वापि प्रकर्षणम्॥१२॥
यदि वो रोचते वाक्यं मदीयं मन्त्रिसत्तमाः। तदानीं तां शुभां देवीं गत्वा याचन्तु मन्त्रिणः॥१३॥
यो महात्मा भवेत् तस्या बन्धुस्तं याचयामहे।
साम्नैवादौ ततः पश्चात् करिष्यामः प्रदानकम्।
ततो भेदं करिष्यामस्ततो दण्डं क्रमेण च॥१४॥
अनेन क्रमयोगेन यदि सा नैव लभ्यते। ततः सन्नह्य गच्छामो बलाद् गृह्णीम तां शुभाम्॥१५॥
विघसेनैवमुक्ते तु शेषास्तु मन्त्रिणो वचः। शुभमूचुः प्रशंसन्तः सर्वे हर्षितया गिरा॥१६॥

तत्पश्चात् इस प्रकार से कहे जाने पर सभी ने जल्दी से ही आपस में परामर्श कर कहा—'हे प्रभु! हम बतलाते हैं'। इस प्रकार से कह देने के बाद प्रघस ने दानवेन्द्र से कहा कि हे दैत्य! नारद ने जिस महावली कन्या की प्रशंसा किया है, वे परम शक्ति स्वरूपा लोकधारिणी वैष्णवी देवी ही हैं।।८-९।।

ऐसे में गुरुपत्नि, राजपत्नी, सामन्त की पत्नी को प्राप्त करने की कामना करने वाला और अगम्यागमन से राजा का नाश हो जाया करता है।।१०।।

प्रधस के इस प्रकार कहे जाने पर विघस ने समर्थन करते हुए कहा कि हे राजन्! उस देवी के बारे में प्रघस का कहा हुआ,उचित ही है।।११।।

यदि सभी एक मत होकर स्वीकृति दे, तो जहाँ मुझे यह सिद्धान्त भी याद आ रहा है कि विजयेच्छुओं को सदैव कुमारी का वरण करना उचित है। किन्तु स्वतन्त्र बुद्धि से कभी भी कन्या का अपहरण नहीं करना चाहिए।।१२।।

हे श्रेष्ठ मन्त्रिगण! यदि आप सबको भी मेरी कही बात अच्छी लगी हो, तो मन्त्रीगण उस कल्याणमयी देवी से जाकर याचना कर सकते हैं।।१३।।

जो कोई महात्मा उस कुमारी का बन्धु हो, उससे हम याचना तो कर सकते हैं। वैसे प्रारम्भ में साम नीति से प्रयास करने के बाद ही हमें दान रूप उपाय करना उचित है। फिर भी कार्य न हो, तो उसके बाद क्रम से भेद और दण्ड नीति का आश्रय लेना चाहिए।।१४।।

इस प्रकार क्रम से किये गए इन उपायों से यदि वह कन्या प्राप्त नहीं हो पाती है, तो हम सभी तैयारी में जाकर बलात् उस कल्याणमयी कन्या को ग्रहण करेंगे।।१५।।

विघस के द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर समस्त मन्त्रिगण ने उनकी प्रशंसा करते हुए प्रसन्नता से इस शुभ वचन को कहा कि—।।१६।।

साधूक्तं विघसेनेदं यत् तां प्रति वराननाम्। तदेव क्रियतां शीघ्रं दूतस्तत्र विसर्ज्यताम्॥१७॥
यः सर्वशास्त्रनीतिज्ञः शुचिः शौर्यसमन्वितः।
तस्माज् ज्ञात्वा तु तां देवीं वर्णतो रूपतो गुणैः॥१८॥
पराक्रमेण शैर्येण शौण्डीर्येण बलेन च। बन्धुवर्गेण सामग्र्या स्थानेन करणेन च।
एवं ज्ञात्वा तु तां देवीं ततः कार्यं विधीयताम्॥१९॥
ततः सपदि दैत्यस्य तद्वचः साधु साध्विति। प्रशशंसुर्वरारोह विघसं मन्त्रिसत्तमम्॥२०॥
प्रशस्य सर्वे तं दूतं संदेष्टुमुपचक्रमुः। विद्युत्प्रभं महाभागं महामायाविदं शुभम्॥२१॥
विसर्जयित्वा तं दूतं विघसो वाक्यमब्रवीत्। संनह्यन्तां दानवेन्द्राश्चतुरङ्गबलेन ह॥२२॥
असुरेन्द्र सुरैर्भग्नैस्तत्पराक्रमभीषिता। सा कन्या वशतामेति त्वयि शक्रसमागते॥२३॥
लोकपालैर्जितैः सर्वैस्तथैव मरुतां गणैः। नागैर्विद्याधरैः सिद्धैर्गन्धर्वैः सर्वतो जितैः।
रुद्रैर्वसुभिरादित्यैस्त्वमेवेन्द्रो भविष्यसि॥२४॥
इन्द्रस्य ते शतं कन्या देवगन्धर्वयोषितः। वशमायान्ति साऽपि स्यात् सर्वथा वशमागता॥२५॥
एवमुक्तस्तदा दैत्यः सेनापतिमुवाच ह। विरूपाक्षं महामेघवर्णं नीलाञ्जनप्रभम्॥२६॥

उस श्रेष्ठ कुमारी कन्या के प्रसङ्ग में विघस द्वारा कथित उचित विचारों को स्वीकार करते हुए उसे ही व्यवहार में लाया जाना चाहिए। वहाँ शीघ्रता से दूत भेजना चाहिए।।१७।।

दूत ऐसा हो, जो सभी शास्त्रों और नीति को जानने वाला हो, अच्छे आचार करने वाले हों और शौर्य सम्पन्न भी हो, तो उसके द्वारा उस देवी के वर्ण, रूप, गुण, पराक्रम, शौर्य, तेज, बल, बन्धुवर्ग, सामग्री, स्थान, साधन आदि की जानकारी कर उस देवी के बारे में जो सही हो, फिर निर्णय ले सके।।१८-१९।।

तत्पश्चात् सभी ने एक स्वर से उस दैत्य के वचन को 'ठीक है-ठीक है' कहा, और मन्त्रियों में श्रेष्ठ विघस की प्रशंसा करने लग गये।।२०।।

प्रशंसा करने के क्रम में समस्त महामायावी और महाभाग्यशाली विद्युत्प्रभ नाम के दूत को सन्देश देने में लग गये।।२१।।

उस दूत को भेज कर विघस ने कहा कि हे दानवेन्द्रो! चतुरङ्गिणी सेना के साथ सन्नद्ध हो जाओ। हे प्रभो! देव के ऊपर आक्रमण कर दिया जाय।।२२।।

हे असुरेन्द्र! उन देवताओं के परास्त हो जाने पर और आपके वश में इन्द्र के आ जाने पर आपके उस पराक्रम से भयभीत होकर वह कन्या आपके वश में आ सकेगी।।२३।।

समस्त लोकपालों, मरुद्गणों, विद्याधरों, सिद्धों, गन्धर्वों, रुद्रों, वसुओं, आदित्यों आदि के परास्त हो जाने पर आप ही इन्द्र बन जा सकेंगे।।२४।।

इस प्रकार इन्द्र के अधीनस्थ सैकड़ों कन्यायें और देवों, गन्धर्वों आदि की स्त्रियाँ भी आपके वश में तो आ ही जाएंगी, वह कन्या भी आपके वश हो सकेंगी।।२५।।

इस प्रकार से कहे जाने पर दैत्य ने महामेघ और नीलाञ्जन के सदृश वर्ण वाले विरूपाक्ष नाम के सेनापति से कहा कि—।।२६।।

आनीयतां द्रुतं सैन्यं हस्त्यश्वरथपत्तिनाम्। येन देवान् सगन्धर्वान् जायामि युधि दुर्ज्जयान्॥२७॥
एवमुक्ते विरूपाक्षस्तदा सेनापतिर्द्रुतम्। आनिनाय महत्सैन्यमनन्तमपराजितम्॥२८॥
एकैको दानवस्तत्र वज्रहस्तसमो युधि। एकैकं स्पर्धते देवं जेतुं स्वेन बलेन ह॥२९॥
तेषां प्रधानभूतानामर्बुदं नवकोटयः। येषामेकस्यानुयाति तावद् बलमथोर्ज्जितम्॥३०॥
तेषां नैकसहस्राणि दैत्यानां तु महात्मनाम्। समितिं चक्रुरव्यग्रास्तदा दैत्याः प्रहारिणः।
प्रयाणं कारयामासुर्देवसैन्यजिघांसया॥३१॥
विचित्रयाना विविधध्वजाग्रा विचित्रशस्त्रा विविधोग्ररूपाः।
दैत्या सुराञ् जेतुमिच्छन्त उच्चैर् ननर्त्तुरात्तायुधभीमहस्ताः॥३२॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे द्विनवतितमोऽध्यायः॥९२॥

तुम तत्काल हाथी, घोड़े, रथों, पैदलों आदि सेनाओं को ले आओ, जिससे दुर्ज्जय देवों, गन्धर्वों आदि को जीत लूँगा।।२७।।

फिर तो ऐसा कहे जाने पर सेनापति विरूपाक्ष तत्काल ही अनन्त कभी न हारने वाली विशाल सेना एकत्रित कर लिया।।२८।।

उन सेनाओं में एक-एक दानव, युद्ध करने में वज्र धारण करने वाले इन्द्र के समान ही महाबलवान् थे। उन सेनाओं में प्रत्येक योद्धा अपने ही बलपर देवों को हराने और जीतने की प्रतिद्वन्द्विता करने में लगा था।।२९।।

उन सेनाओं में प्रधान रूप से दानवों की संख्या एक अरब नौ करोड़ थे। जिनमें प्रत्येक के पास अनुगामिनी बलवती सेना भी उतनी ही संख्या में थी।।३०।।

फिर प्रहार करने में निपुण स्वभाव वाले और व्यग्र अनेक हजार दैत्यों ने मन्त्रणापूर्वक देवों की सेना को मारने की इच्छा से युद्ध हेतु प्रस्थान किया।।३१।।

विचित्र यानों, विभिन्न प्रकार की ध्वजाओं, अद्भुत शस्त्रों, विभिन्न प्रकार के स्वरूपों वाले तथा अपने-अपने हाथों में भयंकर आयुध धारण करने वाले राक्षस देवताओं को जीतने की कामना से अत्यन्त वेग से नृत्य करने लग गये।।३२।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में महिषासुर का मन्त्रियों से मन्त्रणा, देवों के पास दूत भेजना, देवयुद्ध के हेतु तैयारी नामक बानवेवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्य-नारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥९२॥

❖❖❖

त्रिनवतितमोऽध्यायः

अथ देवदानवयुद्धवर्णनम्

श्रीवराह उवाच

ततो महिषदैत्यस्तु कामरूपी महाबलः। मत्तहस्तिनमारुह्य यियासुर्मेरुपर्वतम्॥१॥
तत्रैन्द्रं पुरमासाद्य देवैः सह शतक्रतुम्। अभिदुद्राव दैत्येन्द्रसततो देवाः क्रुधान्विताः॥२॥
आदाय स्वानि शस्त्राणि वाहनानि विशेषतः। अधिष्ठायासुरानाजौ दुद्रुवुर्मुदिता भृशम्॥३॥
तेषां प्रववृते युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम्। घोरं प्रचण्डयोधानामन्योन्यमभिगर्जताम्॥४॥
तत्राञ्जनो नीलकुक्षिर्मेघवर्णो बलाहकः। उदराक्षो ललाटाक्षः सुभीमो भीमविक्रमः॥५॥
यथासंख्येन तद्वच्च दैत्या द्वादश चापरे। आदित्यान् दैत्यवर्यास्तु तेषां प्रधान्यतः शृणु॥६॥
भीमो ध्वङ्क्षो ध्वस्तकर्णः शङ्कुकर्णस्तथैव च।
वज्रकायोऽतिवीर्यश्च विद्युन्माली तथैव च॥७॥
रक्ताक्षो मदंस्तु विद्युज्जिह्वस्तथैव च। अतिकायो महाकायो दीर्घबाहुः कृतान्तकः॥८॥
एते द्वादश दैत्येन्द्र आदित्यान् युधि दुद्रुवुः। स्वकं सैन्यमुपादाय तद्वदन्येऽपि दानवाः।
रुद्रान् दुद्रुवुरव्यग्रा यथसंख्येन कोपिताः॥९॥

अध्याय–९३

त्रिशक्ति माहात्म्य में देव-दानव युद्ध और देवपराजय

श्री भगवान् वाराह ने कहा कि तत्पश्चात् स्वेच्छानुसार रूप बनाने वाले महाबलशाली महिष दैत्य मतवाले हाथी पर चढ़कर मेरु पर्वत पर आ गया।।१।।

फिर वहाँ इन्द्र के पुर में जाकर उस दैत्येन्द्र ने देवों सहित इन्द्र पर आक्रमण कर दिया। इससे देवता भी क्रुद्ध हो चले।।२।।

फिर उन देवों ने अपने-अपने शस्त्र के सहित अपने अपने विशिष्ट वाहनों पर सवार होकर अत्यन्त उत्साहपूर्वक युद्ध में असुर सेना पर आक्रमण कर दिया।।३।।

एक-दूसरे के प्रति गर्जना करते हुए उन प्रचण्ड योद्धाओं का भयानक और लोमहर्षक तुमुलयुद्ध का श्री गणेश हो गया।।४।।

उस समय वहाँ पर अञ्जन, नीलकुक्षि, मेघवर्ण, बलाटक, उदाक्ष, ललाटाक्ष, सुभीम, अत्यन्त पराक्रमी राहु आदि ने युद्ध में अष्ट वसुगणों पर आक्रमण कर दिया।।५।।

फिर अन्य बारह श्रेष्ठ दैत्य योद्धाओं ने क्रम से बारह आदित्यों पर चढ़ाई कर दिया। चढ़ाई करने वाले उन दैत्य योद्धाओं के नाम इस प्रकार हैं—।।६।।

भयानक ध्वाङ्क्ष, ध्वस्तकर्ण, शङ्कुकर्ण, वज्रकाय, अतिवीर्य, विद्युन्माली, रक्ताक्ष, भीमदंष्ट्र, विद्युज्जिह्व,

कालः कृतान्तो रक्ताक्षो हरणे मित्रहाऽनिलः। यज्ञहा ब्रह्महा गोघ्नः स्त्रीघ्नः संवर्त्तकस्तथा॥१०॥
इत्येते दश चैकश्च दैत्येन्द्र युद्धदुर्मदाः। यथासंख्येन रुद्रांस्तु दुद्रुवुर्भीमविक्रमाः॥११॥
शेषान् देवान् शेषदैत्या यथायोगमुपाद्रवन्। स्वयं महिषदैत्यस्तु इन्द्रं दुद्राव वेगितः॥१२॥
स चापि बलवान् दैत्यो ब्रह्मणो वरदर्पितः। अवध्यः पुरुषेणाजौ यद्यपि स्यात् पिनाकधृक्॥१३॥
आदित्यैर्वसुभिः साध्यै रुद्रैश्च निहता भृशम्। सअुरा यातुधानाश्च संख्यापूरणकेवलाः॥१४॥
देवानामपि सैन्यानि निहतान्यसुरैर्युधिः। एवं भूते तदा भग्ने देवेन्द्रे विद्रुताः सुराः॥१५॥
अर्दिता विविधैः शस्त्रैः शूलपट्टिशमुद्गरैः। गतवन्तो ब्रह्मलोकमसुरैरर्दिताः सुराः॥१६॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे त्रिनवतितमोऽध्यायः

अतिकाय, महाकाय, और दीर्घबाहु तथा कृतान्तक इन बारह श्रेष्ठ दैत्यों ने युद्ध में अपनी सेना लेकर आदित्यों पर आक्रमण कर दिया। इसी तरह व्यग्रताविमुख अन्य कुपित दैत्यों ने भी संख्यानुसार रुद्रों पर आक्रमण किया।।७-९।।

काल, कृतान्तक, रक्ताक्ष, हरण, मित्रहा, अनित्य, यज्ञहा, ब्रह्मा, गोघ्न, स्त्रीघ्न, सम्वर्त्तक आदि ग्यारह युद्ध दुर्मद श्रेष्ठ और अत्यन्त पराक्रती दैत्यों ने क्रम से ग्यारह रुद्रों पर आक्रमण कर दिया।।१०-११।।

अन्य दैत्यों ने अपने-अपने योग्यता वाले अन्य-अन्य देवताओं पर भी आक्रमण कर दिया। फिर स्वयं महिष दैत्यराज ने वेगसहित इन्द्र पर आक्रमण किया।।१२।।

इस युद्ध की स्थिति में यदि पिनाकधारी शंकर भी आ जाते, तो भी ब्रह्मा के वर से गर्वयुक्त वे बलवान् दैत्य किसी के द्वारा भी अवध्य ही था। आदित्यों, वसुओं, साध्यों, रुद्रों आदि से भी अन्यान्य असुर और राक्षस, जो मात्र संख्यापूर्त्ति करने वाले थे, आहत हुए।।१३-१४।।

इस प्रकार युद्ध में असुरों द्वारा देवों की भी सेनायें मारी गयी। फिर भी इस प्रकार इन्द्र के पराजित हो जाने पर देवगण भाग चले।।१५।।

विभिन्न प्रकार के शस्त्रों, शूल, पट्टिका, मुद्गरों आदि से आहत और असुरों से परास्त हो चले देवगण ने ब्रह्मलोक की ओर प्रस्थान किया।।१६।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में त्रिशक्ति माहात्म्य में देव-दानव युद्ध वर्णन नामक तिरानवेवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥९३॥

❖❖❖

चतुर्नवतितमोऽध्यायः

अथ महिषासुरवध :देवीस्तुतिश्च

श्रीवराह उवाच

अथ विद्युत्प्रभो दैत्यस्तथा दूतो विसर्जितः। देव्याः सकाशं गत्वाऽसौ तामुवाच सुमध्यमाम्॥१॥
प्रणम्य प्रयतो भूत्वा कुमारीशतसंकुलाम्। आस्थाने विनयापन्नस्ततो वचनमब्रवीत्॥२॥

विद्युत्प्रभ उवाच

देवि पूर्वमृषिस्त्वासीदादिसर्गे कसंभवः। सखा सारस्वतो जातः सुपार्श्वो नाम वै विभः॥३॥
तस्याभवन्महातेजाः सिन्धुद्वीपः प्रतापवान्। स हि तीव्रं तपस्तेपे माहिष्मत्यां पुरोत्तमे॥४॥
कुर्वतस्तु तपो घोरं निाहारस्य शोभने। आद्या तु विप्रचित्तेस्तु सुता सुरसुतोपमा।
माहिष्मतीति विख्याता रूपेणासदृशी भुवि॥५॥
सा सखीभिः परिवृता विहरन्ती यदृच्छया। आगता मन्दरद्रोणीं तत्रापश्यत् तपोनवमन्।
मनेुरम्बसंज्ञस्य विविधद्रुममालिनम्॥६॥
लतागृहैस्तु विविधैर्वकुलैर्लकुचैस्तथा। चन्दनैः स्पन्दनैः शालैः सरलैरुपशोभितम्।
विचित्रवनखण्डैश्च भूषितं तु महात्मनः॥७॥

अध्याय-९४

त्रिशक्ति माहात्म्य में देवी द्वारा महिषासुर वध, देवी स्तुति

श्री भगवान् वराह ने कहा कि एतनन्तर उन विद्युत्प्रभा नाम के दैत्य को दूत बनाकर जिस समय भेजा गया, तो उसने वहाँ पहुँच कर उस समय उन क्षीण सुन्दर कटि वाली देवी से कहा कि—॥१॥

उस समय सभा में सैकडों कुमारियों से समावृत उन देवी को सयत्न उसने प्रणाम किया, तदनन्तर यथोचित विनम्रतापूर्वक इस वचन को कहा—॥२॥

विद्युत्प्रभ ने कहा कि हे देवि! सृष्टि के प्रारम्भ काल में ब्रह्मा से उत्पन्न और सरस्वती का मित्र सुपार्श्व नाम का एक ऋषि हुआ था॥३॥

जिन्हें सिन्धुद्वीप नाम का महातेजवान् और महाप्रतापवान् पुत्र उत्पन्न हुआ था। उसने माहिष्मती नाम के श्रेष्ठ पुर में तीव्र तपस्या की थी॥४॥

हे शोभने! निराहार-निरान्नपूर्वक घोर तप कर रहे थे, उस समय विप्रचित्ति की अखिल पृथ्वी पर अनुपम स्वरूप वाली देव कन्या के समान माहिष्मति नाम की पहली पुत्री उत्पन्न हुई थी॥५॥

कहा जाता है कि अपनी सखियों से समावृत होकर स्वेच्छा से भ्रमण करती हुई वह मन्दराचल की घाटी में आ गई। जहाँ उसने अम्बर नाम के मुनि का विभिन्न प्रकार के वृक्षों से सम्पन्न तपोवन को देखा॥६॥

उन महात्मा का वह तपोवन विविध प्रकार के लतागृहों, वकुल, लकुच, चन्दन, कम्पन युक्त शालवृक्षों, सहजोत्पन्न पेड़ों और चित्र विचित्र वनसमूहों से शोभा को प्राप्त हो रहा था॥७॥

दृष्ट्वाश्रमपदं रम्यं वासुरी कन्यका शुभम्। माहिष्मती वरारोहा चिन्तयामास भामिनी॥८॥
भीषयित्वाहमेनं तु तापसं त्वाश्रमे स्वयम्। तिष्ठामि क्रिडति सार्धं सखीभिः परमार्चिता॥९॥
एवं संचिन्त्य सा देवी महिषी संबभूव ह। सखीभिः सह विश्वेशि तीक्ष्णशृङ्गाग्रधारिणी॥१०॥
तत्तृषिं भीषितुं ताभिः सह गत्वा वरानना। असौ बिभीषितस्ताभिस्तां ज्ञात्वा ज्ञानचक्षुषा।
आसुरीं क्रोधसंपन्नः शशाप शुभलोचनाम्॥११॥
यस्माद् भीषयसे मां त्वं महिषीरूपधारिणी। अतो भव महिष्येव पापकर्मे शतं समाः॥१२॥
एवमुक्ता ततः सा तु सखीभिः सह वेपती। पादयोर्न्यपतत् तस्य शापान्तं कुरु जल्पती॥१३॥
तस्यास्तद् वचनं श्रुत्वा स मुनिः करुणान्वितः।
शापान्तमकरोत् तस्या वाक्यं चेदमुवाच ह॥१४॥
अनेनैव स्वरूपेण पुत्रमेकं प्रसूय वै। शापान्तो भविता भद्रे मद्वाक्यं न मृषा भवेत्॥१५॥
एवमुक्ता गता सा तु नर्मदातीरमुत्तमम्। यत्र तेपे तपो घोरं सिन्धुद्वीपो महातपाः॥१६॥
तत्र चेन्दुमती नाम दैत्यकन्याऽतिरूपिणी। सा दृष्टा तेन मुनिना विवस्त्रा मज्जती जले॥१७॥

इस प्रकार उस तपोवन से सुन्दर रमणीय स्थान में आश्रम को देखकर माहिष्मती नाम की उस सुन्दरी असुर कन्या ने सोचा—।।८।।

इस अम्बर नाम के तपस्वी को डरा धमका कर मैं स्वयं ही इस आश्रम में निवास करूँगी और अपनी सखियों के सहित क्रीड़ाकर्मपूर्वक उन महात्मा से अतिशय सम्मान भी प्राप्त करती रह सकूँगी।।९।।

हे विश्वेशि! इस प्रकार से सोच-विचार करती हुई वह देवी अपनी सखियों के सहित तीक्ष्ण शृङ्ग धारण करने वाली महिषी का रूप धारण कर ली।।१०।।

वह सुमुखी उनके साथ उस ऋषि को भयभीत करने हेतु पहुँच गई। इस प्रकार उनसे भयभीत हुआ-सा मुनि उनको अपने ज्ञाननेत्र से शीघ्र पहचान लिया। तत्पश्चात् उस मुनि ने क्रोध से सम्पन्न होकर उस सुनयना आसुरी स्त्री को अभिशाप दे डाला।।११।।

कि जहाँ से तुम महिषरूप धर कर मुझे डराने की चेष्टा की है, अतः हे पापकर्मिणि! तुम सौ वर्ष तक भैंस के रूप में ही विचरण करती रहोगी।।१२।।

मुनि के इस प्रकार से कहे जाने पर अपनी सखियों सहित कम्पित देह वह 'शाप का समापन कैसे हो' इस तरह कहती हुई उन मुनि के पैरों पर गिर पड़ी।।१३।।

इस प्रकार के उसके विनम्र वचन को सुनकर करुणा सम्पन्न उस मुनि ने शाप समापन करने हेतु इस वाक्य को कहा—।।१४।।

हे भद्रे! इसी प्रकार तुम्हारे इसी स्वरूप से एक पुत्र उत्पन्न कर लेने पर तुम्हारें इस शाप का समापन हो सकेगा। क्योंकि मेरे वचन का असत्य होना सम्भव नहीं।।१५।।

इस प्रकार से उन मुनि के कहे जाने पर वह श्रेष्ठ नर्मदा के किनारे आ गई, जहाँ महातपस्वी सिन्धुद्वीप घोर तपश्चर्या में लीन थे।।१६।।

फिर उस मुनि के द्वारा उस स्थान पर जल में स्नान करती हुई, वस्त्रहीना अतिशय रूपशालिनी इन्दुमती नाम के दैत्य कन्या को देखा गया।।१७।।

चस्कन्द स मुनिः शुक्रं शिलाद्रोण्यां महातपाः।
तच्च माहिष्मती दृष्ट्वा दिव्यगन्धि सुगन्धि च।
ततः सखीरुवाचेदं पिबामीदं जलं शुभम्॥१८॥

एवमुक्त्वा तु सा पीत्वा तच्छुक्रं मुनिसंभवम्। प्राप्ता गर्भं मुनेर्बीजात् सुषाव च तदा सती॥१९॥
तस्याः पुत्रोऽभवद् धीमान् महाबलपराक्रमः। महिषेति स्मृतो नाम्ना ब्रह्मवंशविवर्धनः।
स त्वां वरयते देवि देवसैन्यविमर्दनः॥२०॥
स सुरानपि जित्वाऽऽजौ त्रैलोक्यं च तवानघे। दास्यते देवि सुप्रीतस्तव सर्वं महासुरः।
तस्यात्मोपप्रदानेन कुरु देवि महत् कृतम्॥२१॥
एवमुक्ता तदा देवी तेन दूतेन शोभना। जहास परमा देवी वाक्यं नोवाच किञ्चन॥२२॥
तस्या हसन्त्या दूतोऽसौ त्रैलोक्यं सचराचरम्। ददर्श कुक्षौ संभ्रान्तस्तत्क्षणात् समपद्यत॥२३॥
ततो देव्याः प्रतीहारी जया नामातितेजना। देव्या हृदि स्थितं वाक्यमुवाच तनुमध्यमा॥२४॥

जया उवाच

कन्यार्थी वदते यद्धि तत्त्वया समदीरितम्। यदि नाम व्रतं चास्याः कौमारं सार्वकालिकम्।
अपि चान्याः कुमार्योऽत्र सन्ति देव्याः पदानुगाः॥२५॥

उस समय, उस महातपस्वी मुनि ने शिला गह्वर में अपना शुक्रपात कर दिया। फिर माहिष्मती के द्वारा उस दिव्यगन्ध और सुगन्धि युक्त शुक्र को देख समझ कर अपनी सखियों से कहा 'मैं यह शुभ जल पीऊँगी'।।१८।।

इस प्रकार कहती हुई उसने मुनि के द्वारा पतित उस शुक्र को पी गई। तत्पश्चात् उस मुनि के शुक्र से उस माहिष्मती को गर्भ स्थित हो गया। फिर उस सती कन्या ने इस प्रकार प्रसव भी किया।।१९।।

इस प्रकार उसको ब्रह्मकुल को बढ़ाने वाला माहिष नाम से प्रसद्धि बुद्धिमान् महाबलवान् और पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुआ। हे देवि! इस समय देवों की सेना को परास्त करने वाला वही महिष तुम्हें वरण करना चाह रहा है।।२०।।

हे अनघे-निष्पाप! वह असुर युद्ध में देवताओं को भी जीतकर सम्पूर्ण त्रिलोक का राज्य आपको प्रदान करेगा। हे देवि! उसे आप स्वयं को अर्पित कर महान् कार्य का सम्पादन करें।।२१।।

उस दूत के द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर श्रेष्ठदेवी हँसने लगी। उन्होंने कोई वचन नहीं कहा।।२२।।

उस दूत ने उनदेवी के हँसते समय उनकी कुक्षि में सचराचर त्रैलोक्य का दर्शन कर लिया। इस दृश्य को देखकर वह तत्क्षण आश्चर्यान्वित हो गया।।२३।।

उस समय उन देवी की पतली कमर वाली अति तेजशालिनी जया नाम की द्वार दक्षिका ने देवी के हृदयस्थ विचार भाव को अपने शब्दों में इस तरह कहा—।।२४।।

जया ने कहा कि तुमने जो कुछ कहा है, वही सब कन्या को प्राप्त करने की कामना वालों द्वारा कहा जाता है। किन्तु इन्होंने हमेशा के लिए कुँआरी रहने का व्रत ले रखा है। यहाँ पर उपलब्ध अन्य कन्यायें भी देवी की ही अनुगामिनी हैं।।२५।।

तासामेकाऽपि नो लभ्या किमु देवी स्वयं शुभा।
याहि दूत त्वरन् मा ते किञ्चिदन्यद् भविष्यति॥२६॥

एवमुक्तो गतो दूतस्तावद् व्योम्नि महामुनिः। आयातो नारदस्तूर्णं नृत्यन्नुच्चैर्महातपाः॥२७॥
दिष्ट्या दिष्ट्येति तदतस्तां देवीं शुभलोचनाम्। उपविष्टो जगादाथ आसने परमेऽर्चितः॥२८॥
प्रणम्य देवीं सर्वेशीमुवाच च महातपाः। देवि देवैरहं प्रीतैः प्रेषितोऽस्मि तवान्तिकम्॥२९॥
विजिता देवि दैत्येन महिषाख्येन निर्जराः। त्वां गृहीतुं प्रयत्नं स कृतवान् देवि दैत्यराट्॥३०॥
एवमुक्तोऽस्मि देवैस्त्वां बोधयामि वरानने। स्थिरीभूता महादेवि तं दैत्यं प्रतिघातय॥३१॥

उक्त्वैवान्तर्हितः सद्यो नारदः स्वेच्छया ययौ।
देवी च कन्यास्ताः सर्वाः सन्नह्यन्तामुवाच ह॥३२॥

ततः कन्या महाभागाः सर्वास्ता देविशासनात्। बभूवुर्घोररूपिण्यः खड्गचर्मधुनर्धराः।
संग्रामहेतोः संतस्थुर्दैत्यविध्वंसनाय ताः॥३३॥

तावद् दैत्यबलं सर्वं मुक्त्वा देवचमूं द्रुतम्।
आययौ यत्र तद् देव्याः संनद्धं स्त्रीबलं महत्॥३४॥

अतः उनमें से एक की भी प्राप्ति सम्भव नहीं है। फिर इन कल्याणी देवी के प्रसङ्ग में कुछ कहना ही व्यर्थ है। हे दूत! तुम यहाँ से शीघ्रता से चले जाओ। क्योंकि तुमको कहीं कुछ अन्य न हो जाय।।२६।।

इस प्रकार से कहे जाने पर वह दूत वहाँ से चला गया। उसी समय शीघ्र ही नारद मुनि वेग के सहित नृत्य मुद्रा में आकाश में अवतरित हो गये।।२७।।

उस शुभलोचना देवी को 'धन्य-धन्य' कहने वाले नारद श्रेष्ठ आसन पर बैठकर पूजित हुए और फिर उन्होंने कहा—।।२८।।

महातपस्वी मुनि नारद देवी को प्रणाम कर कहने लगे कि हे देवि! प्रसन्नदेवों ने मुझे आपके समीप इस समय भेजा है।।२९।।

हे देवि! महिष नाम का दैत्य ने देवों को जीत लिया है। हे देवि! उस दैत्यपति ने आपको वरण करने का प्रयत्न कर दिया है।।३०।।

हे सुन्दर मुख की स्वामिनि! देवताओं ने मुझसे जो कहा है उसे मैं आपसे कहने जा रहा हूँ। हे महादेवि! स्थिर रहती हुई अर्थात् दृढ़ता के बल से आप उस दैत्य को मार गिरायें।।३१।।

इस प्रकार से कहकर महामुनि नारद तत्काल ही अन्तर्धान होकर अपनी इच्छानुरूप से चल दिये। फिर देवी ने उन समस्त कन्याओं को सम्बोधित कर कहा—'तैयार हो जाओ'।।३२।।

फिर वे समस्त महाभाग्यशालिनी कन्याओं खड्ग, ढाल और धनुष-बाण धारण कर भयंकर स्वरूप वाली हो गयीं। वे दैत्यों के विध्वंस के निमित्त युद्ध करने हेतु प्रस्तुत होने लग गईं।।३३।।

फिर इधर से दैत्यों की सेना तत्क्षण देवों की सेना को छोड़कर वहाँ पर आ गई, जहाँ देवी की विशाल स्त्री सेना स्थित थीं।।३४।।

ततस्ता युयुधुः कन्या दानवैः सह दर्पिताः। क्षणेन तद् बलं ताभिश्चतुरङ्गं निपातितम्॥३५॥
शिरांसि तत्र केषांचिच्छिन्नानि पतितानि च। अपरेषां विदार्योरः क्रव्यादाः पान्ति शोणितम्॥३६॥
अन्ये कबन्धभूतास्तु ननृतुर्दैत्यनायकाः। एवं क्षणेन ते सर्वे विध्वस्ताः पापचेतसः।
अपरे विद्रुताः सर्वे यत्रासौ महिषासुरः॥३७॥
ततो हाहाकृतं सर्वं तथा दैत्यबलं महत्। एवं तदाकुलं दृष्ट्वा महिषो वाक्यमब्रवीत्।
सेनापते किमेतद्धि बलं भग्नं ममाग्रतः॥३८॥
ततो यज्ञहनुर्नामा दैत्यो हस्तस्वरूपवान्। उवाच भग्नमेतद्धि कुमारीभिः समन्ततः॥३९॥
ततो दुद्राव महिषस्ताः कन्याः शुभलोचनाः। गदामादाय तरसा कन्या दुद्राव वेगवान्॥४०॥
यत्र तिष्ठति सा देवी देवगन्धर्वपूजिता। तत्रैव सोऽसुरः प्रायाद् यत्र देवी व्यवस्थिता।
सा च दृष्ट्व तमायान्तं विंशद्धस्ता बभूव ह॥४१॥
धनुः खड्गं तथा शक्तिं शरान् शूलं गदां तथा। परशुं डमरुं चैव तथा घण्टां विशालिनीम्।
शतघ्नीं मुद्गरं घोरं भुशृण्डीं कुन्तमेव च॥४२॥
मुसलं च तथा चक्रं भिन्दिपालं तथैव च। दण्डं पाशं ध्वजं चैव पद्मं चेति च विंशतिः॥४३॥
भूत्वा विंशभुजा देवी सिंहमास्थाय दंशिता। सस्मार रुद्रं देवेशं रौद्रं संहारकारणम्॥४४॥

तदनन्तर उन गर्वसम्पन्ना कन्याओं ने दानवों के साथ युद्ध किया। फिर क्षणमात्र में उन्होंने उन चतुरङ्गिणी सेना को मृत्युलोक पहुँचा दिया।।३५।।

वहाँ पर कुछ सैनिकों के कटे सिर गिरे हुए थे और मांसाहारी प्राणी मरे सैनिकों के वक्षःस्थल फाड़-फाड़ कर रक्त पी रहे थे।।३६।।

फिर अन्य दैत्यनायक कबन्ध स्वरूप में नृत्य कर रहे थे। इस तरह वे सभी पापकर्मकरने वाले क्षण भर में विनष्ट हो गये। अन्य कुछ दैत्य वहाँ से भाग गये और जहाँ वह महान् दैत्य महिषासुर अवस्थित था, वहाँ आ गये।।३७।।

तत्पश्चात् उस दैत्य सैन्य महा हाहाकार करने लग गया। इस प्रकार की सेनाओं की व्याकुलता को देखकर महिष ने कहा कि—हे सेनापति! यह सेनाइस तरह मेरे सम्मुख भाग-भाग कर क्यों आ गई है?।।३८।।

तदनन्तर यज्ञाहनु नाम का हाथी जैसे स्वरूप वाले दैत्य ने कहा कि 'हे दैत्य! उन कुमारियों ने हमारी चारों सेनाओं को मार डाला है'।।३९।।

फिर क्या था, वह महिष स्वयं सुन्दर नेत्रों वाली कन्याओं की ओर झपटा। वह गदा लेकर वेग सहित उन कन्याओं की ओर दौड़ने लगा।।४०।।

उस समय, वह असुर वहाँ गया, जहाँ देवों और गन्धर्वों से पूजित देवी अवस्थित थीं। उसको आता हुआ देख, वे देवी बीस हाथों वाली हो गयीं।।४१।।

उनके उन हाथों में धनु, खड्ग, शक्ति बाण, शूल, गदा, परशु, डमरु, विशालघण्टा, शतघ्नी, भयंकर मुद्गर, भुशुण्डी, भाला, मुसल, चक्र, भिन्दिपाल, दण्ड, पाश, ध्वज पद्म आदि बीस पदार्थ उपलब्ध थी।।४२-४३।।

फिर इस प्रकार बीस भुजाओं वाली देवी ने सिंह पर सवार होकर गर्जना की और भयंकर संहार के कारण स्वरूप देवेश रुद्र का स्मरण किया।।४४।।

ततो वृषध्वजः साक्षाद् रुद्रस्तत्रैव आययौ।
तया प्रणम्य विज्ञप्तः सर्वान् दैत्यान् जयाम्यहम्॥४५॥
त्वयि सन्निधिमात्रे तु देवदेव सनातन। एवमुक्त्वाऽसुरान् सर्वान् जिगाय परमेश्वरी॥४६॥
मुक्त्वा तमेकं महिशं शेषं हत्वा तमभ्ययात्।
यावद् देवी ततः साऽपि तां दृष्ट्वा सोऽपि दुद्रुवे॥४७॥
क्वचिद् युध्यति दैत्येन्द्रः क्वचिच्चैव पलायति।
क्वचित् पुनर्मृधं चक्रे क्वचित् पुनरुपारमत्॥४८॥
एवं वर्षहस्राणि दश तस्य तया सह। दिव्यानि विगतानि स्युर्युध्यतस्तस्य शोभने।
बभ्राम सकलं त्वाजौ ब्रह्माण्डं भीतमानसम्॥४९॥
ततः कालेन महता शतशृङ्गे महागिरौ। पद्भ्यामाक्रम्य शूलने निहतो दैत्यसत्तमः॥५०॥
शिरश्चिच्छेद खड्गेन तत्र चान्तःस्थितः पुमान्।
निर्गत्य विगतः स्वर्गं देव्याः शस्त्रनिपातनात्॥५१॥
ततो देवगणाः सर्वे महिषं वीक्ष्य निर्जितम्। सब्रह्मकाः स्तुतिं चक्रुर्देव्यास्तुष्टेन चेतसा॥५२॥

देवा ऊचुः

नमो देवि महाभागे गम्भीरे भीमदर्शने। जयस्थे स्थितिसिद्धान्ते त्रिनेत्रे विश्वतोमुखि॥५३॥

उस समय साक्षाद् वृषभध्वज रुद्र वहीं पर प्रकट हो गये। फिर उन देवी ने उन्हें प्रणाम कर कहा कि 'मैं समस्त दैत्यगणों को जीत लूँगी'।।४५।।

हे सनातन देवाधिदेव! आपके समीप रहने मात्र से मैं दैत्यों को परास्त करूँगी। इस प्रकार से कहने के वाद परमेश्वरी ने सभी असुरों को भी जीत लिया।।४६।।

उस एक महिष को छोड़कर समस्त दैत्यों को मार देने के पश्चात् उन देवी ने उस पर आक्रमण कर दिया। उस समय उस देवी को आता देख उस महिष ने भी आक्रमण कर दिया।।४७।।

वह दैत्येन्द्र कभी लड़ता था और कभी भाग जाता था। पुनः कभी युद्ध करने लगता था और कभी रूक जाता था।।४८।।

हे शोभने! इस तरह उन दोनों को युद्ध करते हुए दश हजार दिव्य वर्ष व्यतीत हो गये। युद्ध के कारण सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड व्यग्र और भयभीत हो गया।।४९।।

फिर अधिक काल व्यतीत होने के बाद सैकड़ों चोटियों वाले महान् पर्वत पर दोनों पैरों से दबाकर शूल से श्रेष्ठ दैत्य को देवी ने मार गिराया।।५०।।

उस समय देवी ने खड्ग से उसका सिर काट डाला, फिर उस दैत्य के अन्दर से स्थित पुरुष निकल कर देवी के शस्त्र से मारे जाने के कारण स्वर्ग को चला गया।।५१।।

तदनन्तर ब्रह्मा के साथ समस्त देवगण ने महिष को परास्त हुआ देख कर प्रसन्नचित्त से देवी की स्तुति करने लगा।।५२।।

देवताओं ने कहा कि हे महाभाग्यशालिनी, गम्भीर, भयंकर स्वरूप वाली, विजयशालिनी, स्थिति स्वरूपा, तीन नेत्रों वाली और सब दिशाओं में मुख वाली देवि! आपको प्रणाम है।।५३।।

विद्याविद्ये जये याज्ये महिषासुरमर्दिनि। सर्वगे सर्वदेवेशि विश्वरूपिणि वैष्णवि॥५४॥
वीतशोके ध्रुवे देवि पद्मपत्रशुभेक्षणे। शुद्धसत्त्वव्रतस्थे च चण्डरूपे विभावरि॥५५॥
ऋद्धिसिद्धिप्रदे देवि विद्येऽविद्येऽमृते शिवे। शांकरी वैष्णवी ब्राह्मी सव्रदेवनमस्कृते॥५६॥
घण्टाहस्ते त्रिशूलास्त्रे महामहिषमर्दिनि। उग्ररूपे विरूपाक्षि महामायेऽमृतस्त्रवे॥५७॥
सर्वसत्त्वहिते देवि सर्वसत्त्वमये ध्रुवे। विद्यापुराणशिल्पानां जननी भूतधारिणी॥५८॥
सर्वदेवरहस्यानां सर्वसत्त्ववतां शुभे। त्वमेव शरणं देवि विद्येऽविद्ये श्रियेऽम्बिके।
विरूपाक्षि तथा क्षान्ति क्षोभितान्तर्जलेऽविले॥५९॥
नमोऽस्तु ते महादेवि नमोऽस्तु परमेश्वरि। नमस्ते सर्वदेवानां भावनित्येऽक्षयेऽव्यये॥६०॥
शरणं त्वां प्रपद्यन्ते ये देवि परमेश्वरि। न तेषां जायते किञ्चिदशुभं रणसङ्कटे॥६१॥
यश्च व्याघ्रभये घोरे चौरराजभये तथा। स्तवमेनं सदा देवि पठिष्यति यतात्मवान्॥६२॥
निगडस्थोऽपि यो देवि त्वां स्मरिष्यति मानवः। सोऽपि बन्धैर्विमुक्तस्तु सुसुखं वसते सुखी॥६३॥

हे विद्या और अविद्या स्वरूपिणी, जया और यज्ञ करने वाली, महिषासुर का मर्दन करने वाली, सर्वत्र व्याप्त, समस्त देवों की स्वामिनी, विश्वरूपिणी, वैष्णवी आपको प्रणाम है।।५४।।

हे शोकरहित, शाश्वत्, कमलपत्र सदृश सुन्दरनेत्रों वाली, शुद्ध सत्त्वगुण वाले व्रत को धारण करने वाली, प्रचण्ड रूप धारिणी, रात्रिस्वरूपा देवि! आपको प्रणाम है।।५५।।

हे देवि! आप ऋद्धि और सिद्धि को प्रदान करने वाली, विद्या, अविद्या, अमृत, और शिव स्वरूपा हैं। आप शंकर, विष्णु और ब्रह्मा की शक्ति स्वरूपा तथा समस्त देवताओं से सदा नमस्कृत रहने वाली हैं।।५६।।

हे देवि! आप अपने हाथ में घण्टा धारण करने वाली, त्रिशूल रूप अस्त्र धारण करने वाली, महामहिष का मर्दन करने वाली, उग्रस्वरूपा, विरूपाक्षी, महामाया स्वरूपा और अमृत स्राव करने वाली हैं।।५७।।

हे देवि! आप समस्त प्राणियों का हित करने वाली, सर्वसत्त्वमय, ध्रुवस्वरूपिणी, विद्या, पुराण एवं शिल्पों की जननी तथा समस्त प्राणियों को धारण करने वाली हैं।।५८।।

हे कल्याणिनी देवि आप ही समस्तदेवों, रहस्यों और समस्त सत्त्वानों के आश्रय स्थान हैं। आप विद्या, अविद्या, श्री, अम्बिका, विरूपाक्षी, शान्ति स्वरूपा, अन्तर्जल को क्षुब्ध करने वाली और दोषरहिता हैं।।५९।।

हे महादेवि! आपको नमस्कार है। हे परमेश्वरी! तुम्हें नमस्कार है। हे अक्षय,अव्यय और समस्त देवों को नित्य भावस्वरूपा आपको प्रणाम है।।६०।।

हे परमेश्वरी देवि! जो कोई जन आपके शरण में आते हैं, उन्हें युद्ध के संकट में कोई अशुभ नहीं होता।।६१।।

हे देवि! जो कोई संयत चित्त से भयंकर व्याघ्र, चोर और राजा से होने वाले भय में इस स्तोत्र का पाठ करता है, उसे कोई अशुभ नहीं प्राप्त होगा।।६२।।

हे देवि! जंजीर में बँधा हुआ भी जो मनुष्य आपको स्मरण करेगा,वह निश्चय ही बन्धन मुक्त होकर सुख से सानन्द रह सकेगा।।६३।।

श्रीवराह उवाच

एवं स्तुता तदा देवी देवैः प्रणतिपूर्वकम्। उवाच देवान् सुश्रोणी वृणुध्वं वरमुत्तमम्॥६४॥

देवा ऊचुः

देवि स्तोत्रमिदं ये हि पठिष्यन्ति तवानघे। सर्वकामसमापन्नान् कुरु देवि स नो वरः॥६५॥

एवमस्त्विति तान् देवानुक्त्वा देवी पराऽपरा। विससर्ज ततो देवान् स्वयं तत्रैव संस्थिता॥६६॥

एतद् द्वितीयं यो जन्म वेद देव्या धराधरे। स वीतशोको विरजाः पदं गच्छत्यनामयम्॥६७॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे चतुर्नवतितमोऽध्यायः॥९४॥

—❊❊❊—
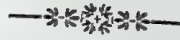
श्री भगवान् वाराह ने कहा कि तत्पश्चात् विनम्रता से देवों के इस प्रकार स्तुति करने पर सुन्दरकटि वाली देवी ने देवों से कहा 'उत्तम वर माँग लो'॥६४॥

देवों ने कहा कि हे पापहीना देवि! जो यह तुम्हारा स्तोत्र पाठ करें, उन्हें सब कामनाओं की पूर्त्ति से सम्पन्न करें। यही हमारा वर है॥६५॥

इस प्रकार परा एवं अपरा स्वरूपा देवी ने उन देवों से कहा—'ऐसा ही हो'। यह कहने के बाद देवताओं को विदा कर दिया गया और स्वयं देवी वहीं पर खड़ी रहीं॥६६॥

हे पृथ्वि! जो जन देवी के इस द्वितीय जन्म को जानता है। वह शोकरहित और रजोगुण शून्य होकर रोगरहित स्थान को प्राप्त कर लेता है॥६७॥

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में त्रिशक्ति माहात्म्य में महिषासुर वध और देवस्तुति नामक चौरानबेवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥९४॥

❖❖❖

पञ्चनवतितमोऽध्यायः

अथ रौद्री शक्ति द्वारा रुरुवधः

श्रीवराह उवाच

या स नीलगिरिं याता तपसे धृतमानसा। रौद्री तमोद्भवा शक्तिस्तस्याः शृणु धरे व्रतम्॥१॥
तपः कृत्वा चिरं कालं पालयाम्यखिलं जगत्। एवमुद्दिश्य पञ्चाग्निं साधयामास भामिनी॥२॥
तस्याः कालान्तरे देव्यास्तपन्त्यास्तप उत्तमम्। रुरुर्नाम महातेजा ब्रह्मदत्तवरोऽसुरः॥३॥
समुद्रमध्ये रत्नाढ्यं पुरमस्ति महावनम्। तत्र राजा स दैत्येन्द्रः सर्वदेवभयंकरः॥४॥
अनेकशतसाहस्रकोटिकोटिशतोत्तरैः। असुरैरन्वितः श्रीमान् द्वितीयो नमुचिर्यथा॥५॥
कालेन महता चासौ लोकपालपुराण्यथ। जिगीषुः सैनयसंवीतो देवैर्भयमरोचयत्॥६॥

उत्तिष्ठतस्तस्य महासुरस्य समुद्रतोयं ववृधेऽतिमात्रम्।
अनेकनक्रग्रहमीनजुष्टमाप्लावयत् पर्वतसानुदेशान्॥७॥
अन्तःस्थितानेकसुरारिसंघं विचित्रचर्मायुधचित्रशोभम्।
भीमं बलं बलिनं चारुयोधं विनिर्ययौ सिन्धुजलाद् विशालम्॥८॥

अध्याय–९५

रौद्री शक्ति का आविर्भाव, रुरु दैत्य वध, चामुण्डा स्तुति

श्री वाराह भगवान् ने कहा कि हे पृथ्वि! तमोगुण सम्पन्ना रुद्र सम्बन्धी, जिस शक्ति की उत्पत्ति हुई, वह शक्ति तप का निश्चय कर नीलगिरी पर चली गई थी, उसके व्रत को सुनो।।१।।

वह सुन्दरी 'मैं तपस्या कर सम्पूर्ण जगत् का पालन करूँगी' इस लक्ष्य से पञ्चाग्नि की साधना करने लग गई।।२।।

श्रेष्ठ तप करने वाली उस देवी का अधिकतर काल व्यतीत होने के समय ब्रह्मा से वर प्राप्त महातेजस्वी रुरु नाम का असुर हुआ था।।३।।

समुद्र के मध्य में रत्नों से सम्पन्न महावन युक्त पुर स्थित था। समस्त देवताओं को भयभीत करने वाला वह दैत्येन्द्र वहाँ का राजा था।।४।।

अनेकों हजार लाख करोड़ असुरों से सम्पन्न वह नमुचि के समान ही 'श्रीमान्' था।।५।।

फिर इस तरह बहुत समय के बीतने पर वह सेना से सम्पन्न होकर लोकपालों के पुरों को जीतने की कामना करने के कारण देवताओं को भयभीत करने लगा था।।६।।

उस महासुर के उठने पर समुद्र का जल स्तर अत्यन्त बढ़ गया। अनेक मगरों, घड़ियालों और मछिलियों से सम्पन्न जल द्वारा पर्वतों की चोटियाँ भी आप्लावित हो गयी।।७।।

समुद्र के अन्दर स्थित विचित्र चर्म और आयुधों से अतिशय विभूषित अतिशय बलवान् और पराक्रमी सुन्दर योद्धाओं से सम्पन्न विशाल असुर समूह सागर के जल से बाहर निकल आया।।८।।

तत्र द्विपा दैत्यवरैरुपेताः समानघण्टासुसमूहयुक्ताः।
विनिर्ययुः स्वाकृतिभीषणानि समन्तमुच्चैः खलु दर्शयन्तः॥९॥
अश्वास्तथा काञ्चनपीडनद्धा रोहीतमत्स्यैः समतां जलान्तः।
व्यवस्थितास्ते सममेव तूर्णं विनिर्ययुः लक्षशः कोटिशश्च॥१०॥
रथा रविस्यन्दनतुल्यवेगाः सुचक्रदण्डाक्षत्रिवेणुयुक्ताः।
सुशस्त्रयन्त्राः परिपीडिताङ्गाश्चलत्पताकास्त्वरितं विशङ्काः॥११॥
तथैव योधाः स्थगितेतरेतरास्तितीर्षवः प्रवरास्तूर्णपाणयः।
रणे रणे लब्धजयाः प्रहारिणो विरेजुरुच्चैरसुरानुगा भृशम्॥१२॥
देवेषु चैव भग्नेषु विनिर्गत्य जलात् ततः। चतुरङ्गबलोपेतः प्रायादिन्द्रपुरं प्रति॥१३॥
युयोध च सुरैः सार्द्धं रुरुर्दैत्यपतिस्तथा। मुद्गरैर्मुशलैः शूलैः शरैर्दण्डायुधैस्तथा।
जघ्नुर्दैत्याः सुरान् संख्ये सुराश्चैव तथाऽसुरान्॥१४॥
एवं क्षणमथो युद्धं तदा देवाः सवासवाः। असुरैर्निर्जिताः सद्यो दुद्रुवुर्विमुखा भृशम्॥१५॥
देवेषु चैव भग्नेषु विद्रुतेषु विशेषतः। असुरः सर्वदेवानामन्वधावत वीर्यवान्॥१६॥
ततो देवगणाः सर्वे द्रवन्तो भयविह्वलाः। नीलं गिरिवरं जग्मुर्यत्र देवी व्यवस्थिता॥१७॥

वे सभी समान घण्टों के समूह से सम्पन्न हाथी श्रेष्ठ दैत्यों सहित चारों ओर अपने भयंकर स्वरूप को प्रदर्शित करते हुए, समुद्र जल से बाहर को निकल आये।।९।।

उस जल के अन्दर रोहित मछली के समान स्थितिवान् अश्व स्वर्ण के साज से सुसज्जित लाखों -करोड़ों की संख्या में एक ही साथ शीघ्रता से प्रकट हो गया।।१०।।

रवि के स्पन्दन के समान अत्यन्त वेगवान्, सुन्दर भ्रमण चक्रों, दण्डों, धुरों और तीन बाँसों से सम्पन्न तथा सुन्दर शस्त्रों यन्त्रों से सम्पन्न और चंचल पताकाओं से अलंकृत भयानक दीखने वाले रथ तत्काल प्रकट हो गये।।११।।

फिर एक-दूसरे को स्थगित करने वाले, तैरने की कामना से तत्काल हाथ संचालन करने वाले, युद्ध में विजय प्राप्त करने वाले रुरु नाम के असुर के श्रेष्ठ योद्धा अतिशय शोभा को प्राप्त हो रहे थे।।१२।।

वह असुर जल से निकल कर और देवताओं के भाग जाने पर चतुरङ्गिणी सेना सहित इन्द्रलोक की तरफ बढ़ चला।।१३।।

उस रुरु नाम का दैत्यराज ने देवगणों से युद्ध किया। मुद्गर, मूशल, शूल, बाण, दण्ड और अन्यान्य शस्त्रों से असुरों ने देवों को और देवों ने असुरों को मारने में संलग्न से हो गए।।१४।।

इस तरह मात्र अल्प समय पर्यन्त युद्ध हो सका। तत्पश्चात् इन्द्र के साथ समस्त देवगण असुरों से परास्त होकर तत्क्षण युद्ध से विरत होकर जल्दी-जल्दी भाग खड़े हुए।।१५।।

इस स्थिति में रुरु नाम के पराक्रमी असुर ने विशेष रूप से परास्त होकर भागते हुए समस्त देवताओं का पीछा करने लगा।।१६।।

तत्पश्चात् भयातुर देवगण भागते-भागते पर्वत श्रेष्ठ नीलगिरि पर आ पहुँचे, जहाँ पर देवी स्थित थीं।।१७।।

रौद्री तपोरता देवी तामसी शक्तिरुत्तमा। संहारकारिणी देवी कालरात्रीति तां विदुः॥१८॥
सा दृष्ट्वा तान् तदा देवान् भयत्रस्तान् विचेतसः। मा भैष्टेत्युच्चकैर्देवी तानुवाच सुरोत्तमान्॥१९॥

देव्युवाच

किमियं व्याकुला देवा गतिर्व उपलक्ष्यते। कथयध्वं द्रुतं देवाः सर्वथा भयकारणम्॥२०॥

देवा ऊचुः

अयमायाति दैत्येन्द्रो रुरुर्भीमपराक्रमः। एतस्य भीतान् रक्षस्व त्वं देवान् परमेश्वरि॥२१॥
एवमुक्ता तदा देवैर्देवी भीमपराक्रमा। जहास परया प्रीत्या देवानां पुरतः शुभा॥२२॥
तस्या हसन्त्या वक्त्रात् तु बह्व्यो देव्यो विनिर्ययुः।
याभिर्विश्वमिदं व्याप्तं विकृताभिरनेकशः॥२३॥
पाशाङ्कुशधराः सर्वाः सर्वाः पीनपयोधराः। सर्वाः शूलधरा भीमाः सर्वाश्चापधराः शुभाः॥२४॥
ताः सर्वाः कोटिशो देव्यस्तां देवीं वेष्ट्य संस्थिताः। युयुधुर्दानवैः सार्द्धं बद्धतूणा महाबलाः।
क्षेणन दानवबलं तत्सर्वं निहतं तु तैः॥२५॥
देवाश्च सर्वे संयत्ता युयुधुर्दानवं बलम्। आदित्या वसवो रुद्र विश्वेदेवास्तथाश्विनौ।
सर्वे शस्त्राणि संगृह्य युयुधुर्दानवं बलम्॥२६॥

उस समय तपस्या में लीन श्रेष्ठ शक्तिस्वरूपा, तमोगुण स्वरूपिणी और संहार कार्य में तत्पर रहने वाली रुद्र सम्बन्धिनी उस देवी को लोग 'कालरात्रि' के नाम से जाना करते थे।।१८।।

इस तरह उस समय उस देवी ने उन भयाकुल और व्याकुल देवताओं को देखा। देवी ने उन श्रेष्ठ देवताओं से ऊँचे स्वर में कहा—'मत डरो'।।१९।।

देवी ने कहा कि हे देवताओं! आपकी यह कैसी व्याकुल अवस्था मुझे दिखलायी पड़ रही है। हे देवों! तत्क्षण ही अपने भय के कारण का सम्पूर्णता से बखान करो।।२०।।

देवताओं ने कहा कि हे परमेश्वरि! भयानक पराक्रमी दैत्येन्द्र रुरु हमारे पीछ-पीछे आ रहा है। अतः आप उनसे डरे हुए देवताओं की रक्षा करें।।२१।।

फिर तो देवों के कहने पर भयंकर पराक्रमी कल्याण करने वाली देवी ने अतिशय प्रेम से देवों के सम्मुख हँसने लग गईं।।२२।।

इस प्रकार उन हँस रही देवी के मुख से बहुत-सारी देवियाँ निकलने लग गईं। फिर तो अनेक प्रकार की विकृत देवियों से यह विश्व ही व्याप्त हो गया।।२३।।

तत्पश्चात् समस्त कल्याणमयी देवियाँ पाश और अंकुश धारण की हुई थी। समस्त देवियाँ पीन पयोधर युक्त, शूल और चाप भी धारण की हुई थीं।।२४।।

इस प्रकार करोड़ों की संख्या में उपस्थित वे सभी देवियाँ उन देवी को समावृत कर खड़ी हो गई थीं। तूण बाँधी हुई महाबलवती देवियाँ उन दानवों के साथ युद्ध करने लग गई। इस प्रकार उन्होंने क्षणमात्र में उस समस्त दानव सेना को मार गिराया।।२५।।

फिर तो सभी देवगण भी सन्नद्धता से उस दानव सेना से युद्ध लड़ने लगे। आदित्य, वसुगण, रुद्रगण, विश्वेदेवगण और दोनों अश्विनीकुमार आदि भी शस्त्रास्त्रों से दानव सेना से युद्ध करने में संलग्न से हो गए।।२६।।

कालरात्र्या बलं यच्च यच्च देवबलं महत्। तत्सर्वं दानवबलमनयद् यमसादनम्॥२७॥
एक एव महादैत्यो रुरुस्तस्थौ महामृधे। स च मायां महारौद्रीं रौरवीं विससर्ज ह॥२८॥
सा माया ववृधे भीमा सर्वदेवप्रमोहिनी। तया तु मोहिता देवाः सद्यो निद्रां तु भेजिरे॥२९॥
देवी च त्रिशिखेनाजौ तं दैत्यं समताडयत्। तया तु ताडितान्तस्य दैत्यस्य शुभलोचने।
चर्ममुण्डे उभे सम्यक् पृथग्भूते बभूवतुः॥३०॥
रुरोस्तु दानवेन्द्रस्य चर्ममुण्डे क्षणाद् यतः। अपहृत्याहरद् देवी चामुण्डा तेन साभवत्॥३१॥
सर्वभूतमहारौद्री या देवी परमेश्वरी। संहरिणी तु या चैव कालरात्रिः प्रकीर्त्तिता॥३२॥
तस्या ह्यनुचरा देव्यो या ह्यसंख्यातकोटयः। तास्तां देवीं महाभागां परिवार्य व्यवस्थिताः॥३३॥
याचयामासुरव्यग्रास्तास्तां देवीं बुभुक्षिताः। बुभुक्षिता वयं देवि देहि नो भोजनं शुभे॥३४॥
एवमुक्ता तदा देवी दध्यौ तासां तु भोजनम्।
न चाध्यगच्छच्च यदा तासां भोजनमन्तिकात्॥३५॥
ततो दध्यौ महादेवं रुद्रं पशुपतिं विभुम्। साऽपि ध्यानात् समुत्तस्थौ परमात्मा त्रिलोचनः॥३६॥
उवाच च द्रुतं देवीं किं ते कार्यं विवक्षितम्। ब्रूहि देवि वरारोहे यत् ते मनसि वर्त्तते॥३७॥

इस प्रकार कालरात्रि देवी की सेना और देवों की सेना, उन दोनों सेना ने उस सम्पूर्ण दानव सेना को यमलोक का रास्ता दिखाने में विलम्ब नहीं किया।।२७।।

इस प्रकार के महान् संग्राम में एकमात्र महादैत्य रुरु जीवित रह गया था। उसने भी उस समय महाभयंकर रौरवी माया की रचना की।।२८।।

फिर तो समस्त देवताओं को सम्मोहित करने वाली वहाँ भयंकर माया बहने लगी। उससे मोहित देवगण तत्काल निंद्रा के गोद में आ गये।।२९।।

लेकिन देवी ने युद्ध में उस दैत्य को त्रिशूल से मार गिराया। हे शुभनयने! उनके मारे जाने पर दैत्य के शरीर से दो चर्ममुण्ड पृथक हो गए।।३०।।

जहाँ से उन देवी ने क्षणमात्र में दानवेन्द्र रुरु के दोनों चर्ममुण्डों को अपहृत कर लिया। अतएव वे 'चामुण्डा' कहलाने लगी। जो परमेश्वरी देवी समस्त प्राणियों में महारौद्री संहारिणी हैं, वे कालरात्रि कही जाती हैं।।३१-३२।।

उस समय असंख्य करोड़ देवियाँ, जो उन देवी की अनुचरी थीं, वे उन महाभागा देवी को चारों ओर से घेरकर खड़ी थीं।।३३।।

तत्पश्चात् व्यग्रतारहित वे भूखी देवियाँ उन देवी से याचनापूर्वक कहने लगी कि हे कल्याणिनी देवि! हम सब भूखी हैं। हम सब के लिए भोजन दीजिए।।३४।।

उस समय इस प्रकार कहे जाने पर देवी ने उनके भोजन का ध्यान किया। लेकिन जब निकट में उन लोगों हेतु भोजन नहीं प्राप्त हुआ, तो उन देवी ने महादेव पशुपति विभु रुद्र का ध्यान करने लगी। वे परमात्मा त्रिलोचन भी ध्यान करने से तत्क्षण ही प्रकट हो गए।।३५-३६।।

प्रकट होते ही उन्होंने देवी से कहा कि आपका क्या अभिलषित कार्य है? हे सुन्दरि देवि! आपके मन में जो कुछ हो, उन्हें बतलायें।।३७।।

देव्युवाच

भक्ष्यार्थमासां देवेश किञ्चिद् दातुमिहार्हसि। बलात्कुर्वन्ति मामेता भक्षार्थिन्यो महाबलाः।
अन्यथा मामपि बलाद् भक्षयिष्यन्ति मां प्रभो॥३८॥

रुद्र उवाच

एतसां शृणु देवेशि भक्षमेकं मयोद्यतम्। कथ्यमानं वरारोह कालरात्रि महाप्रभे॥३९॥
या स्त्री सगर्भा देवेशि अन्यस्त्रीपरिधानकम्। परिधत्ते स्पृशेच्चापि पुरुषस्य विशेषतः॥४०॥
स भागोऽस्तु महाभागे कासिञ्चित् पृथिवीतले।
अन्याश्छिद्रेषु बालानि गृहीत्वा तत्र वै बलिम्।
लब्ध्वा तिष्ठन्तु सुप्रीता अपि वर्षशतान्यपि॥४१॥
अन्याः सूतिगृहे छिद्रं गृह्णीयुस्तत्र पूजिताः। निवसिष्यन्ति देवेशि तथान्या जातहारिकाः॥४२॥
गृहे क्षेत्रे तडागेषु वाप्युद्यानेषु चैव हि। अन्यचित्ता रुदन्त्यो याः स्त्रियस्तिष्ठन्ति नित्यशः।
तासां शरीराण्याविश्य काश्चित्तृप्तिमवाप्स्यथ॥४३॥
एवमुक्त्वा तदा देवीं स्वयं रुद्रः प्रतापवान्। दृष्ट्व रुरुं च सबलमसुरेन्द्रं निपातितम्।
स्तुतिं चकार भगवान् स्वयं देवस्त्रिलोचनः॥४४॥

रुद्र उवाच

जयस्व देवि चामुण्डे जय भूतापहारिणि। जय सर्वगते देवि कालरात्रि नमोऽस्तु ते॥४५॥

तब देवी ने कहा कि हे देवेश! इन समस्त देवियों को कुछ खाने हेतु दें। महाबलवती ये देवियाँ भोजन हेतु मुझसे बलपूर्वक याचना कर रही हैं। अन्यथा हे प्रभो! ये सभी मुझे ही बलपूर्वक अपना आहार बना लेंगी।।३८।।

इस पर रुद्र ने कहा कि हे महाप्रभावती सुन्दरि देवेशि कालरात्रि! मेरा कहा हुआ सुनो। मैंने इनके लिए एक आहार प्रस्तुत किया है।।३९।।

हे देवेशि! जो कोई गर्भवती स्त्री अन्य किसी स्त्री का परिधान धारण करे अथवा विशेष रूप से किसी पुरुष का वस्त्र स्पर्श करे, तो वह इनमें से कुछ देवियों का भाग बन सके अतिरिक्त अन्य देवियाँ पृथ्वी पर छिद्रों में बालकों को गहण करें और उसी का बलि प्राप्त कर प्रसन्नता से सौ वर्षों तक जीवन जीयें।।४०-४१।।

फिर उनमें से कुछ देवियाँ सूतिगृह में वर्तमान छिद्रों को ग्रहण करें एवं पूजित होकर निवास करे तथा अन्य कुछ देवियाँ तत्क्षण उत्पन्न शिशुओं का हरण करते हुए जीवन निर्वाह करें।।४२।।

उनमें से कुछ देवियाँ उन सब स्त्रियों के शरीर में प्रवेश कर तृप्ति प्राप्त करें; जो स्त्री अन्य पुरुषों में चित्त लगाकर घर, खेत, तालाब, उद्यान आदि में नित्य प्रति रोया करती है।।४३।।

उन देवीं से इस प्रकार कहते हुए प्रतापी रुद्र ने स्वयं भी सेनाओं के सहित मारे गये असुरेन्द्र रुरु को देखा। तत्पश्चात् त्रिलोचन भगवान् महादेव ने स्वयंदेवी की स्तुति इस प्रकार से करने में संलग्न हो गये।।४४।।

श्री रुद्र ने कहा कि हे चामुण्डा देवि! आपकी जय हो! हे भूतापहारिणी, आपकी जय हो। हे सर्वत्र व्याप्त रहने वाली देवि! आपकी जय हो। हे कालरात्रि आप को प्रणाम है।।४५।।

विश्वमूर्त्ते शुभे शुद्धे विरूपाक्षि त्रिलोचने। भीमरूपे शिवे विद्ये महामाये महोदये॥४६॥
मनोजवे जये जृम्भे भीमाक्षि क्षुभितक्षये। महामारि विचित्राङ्गे गेयनृत्यप्रिये शुभे॥४७॥
विकराले महाकालि कालिके पापहारिणि। पाशहस्ते दण्डहस्ते भीमरूपे भयानके॥४८॥
चामुण्डे ज्वलमानास्ये तीक्ष्णदंष्ट्रे महाबले। शवयानस्थिते देवि प्रेतासनगते शिवे॥४९॥
भीमाक्षि भीषणे देवि सर्वभूतभयंकरि। कराले विकराले च महाकाले करालिनि।
काली कराली विक्रान्ता कालरात्रि नमोऽस्तु ते॥५०॥
विकरालमुखी देवि ज्वालामुखि नमोऽस्तु ते। सर्वसत्त्वहिते देवि सर्वदेवि नमोऽस्तु ते॥५१॥
इति स्तुता तदा देवी रुद्रेण परमेष्ठिना। तुतोष परमा देवी वाक्यं चेदमुवाच ह।
वरं वृणीष्व देवेश यत् ते मनसि वर्त्तते॥५२॥

रुद्र उवाच

स्तोत्रेणानेन ये देवि त्वां स्तुवन्ति वरानने। तेषां त्वं वरदा देवि भव सर्वगता सती॥५३॥
यश्चेमं त्रिप्रकारं तु देव भक्त्या समन्वितः। स पुत्रपौत्रपशुमान् समृद्धिमुपगच्छति॥५४॥
यश्चेमं शृणुयाद् भक्त्या त्रिशक्त्यास्तु समुद्भवम्। सर्वपापविनिर्मुक्तः पदं गच्छत्यनामयम्॥५५॥

हे विश्वमूर्तिस्वरूप, कल्याणस्वरूपिणी! शुद्ध स्वरूप वाली, विरूपाक्षि, तीन नेत्रों वाली, भयंकर स्वरूपिणी, कल्याण करने वाली, विद्या स्वरूपा, महामाया, महोदयस्वरूपा, मन के समानवेग वाली, जयस्वरूपा, जृम्भस्वरूपिणी, भीमाक्षी, क्षुभितक्षयस्वरूपिणी, महामारीस्वरूपा, विचित्र देह वाली, गान और नृत्य की अनुरागिणी, कल्याणमयि देवि! हे विकराल, महाकालिस्वरूपा, पापहारिणी कालिका, हाथ में पाश और दण्ड धारण करने वाली, भयंकर रूप वाली और भयों को उत्पन्न करने वाली देवि!।।४६-४८।।

हे चामुण्डा, जाज्वल्यमान मुख वाली, तीक्ष्ण दाढ़ों वाली, महाबलवती, शवयान पर स्थित और प्रेतासन पर आसीन, कल्याणकारिणी देवि!।।४९।।

हे भयानक नेत्रों वाली, भय उत्पन्न करने वाली, समस्त प्राणियों को भयमुक्त कर देने वाली, भयंकर-विकराल-महाकालस्वरूपा, उग्र-प्रचण्ड पराक्रमशालिनी कालरात्रि स्वरूपा काली! आपको प्रणाम है।।५०।।

हे विकराल मुखवाली, ज्वालामुखि देवि! आपको नमस्कार है। हे समस्त प्राणियों का हित करने वाली, सर्वदेवी स्वरूपा देवि! आपको प्रणाम है।।५१।।

तत्पश्चात् परमेष्ठी रुद्र के इस प्रकार स्तुति करने पर वह देवी परम प्रसन्नता से यह वाक्य कहने लगी कि हे देवेश! आपके मन में जो कुछ हो वह वर माँग लें।।५२।।

रुद्र ने कहा कि हे सुन्दर मुख के स्वामिनि सर्वत्र व्याप्त रहने वाली, सती स्वरूपा, देवि! जो कोई जन तुम्हारो इस स्तोत्र से स्तुति करे, उसे आप अवश्य वर प्रदान किया करें।।५३।।

हे देवि! जो कोई भी जन देवी के इस तीन प्रकार के रूपों में भक्तिभाव से युक्त होगा, वह पुत्र, पौत्र के सहित बहुत से पशुओं का स्वामी होकर ऐश्वर्यवान् भी होगा।।५४।।

इस प्रकार जो कोई भी जन इन तीन शक्तियों की उत्पत्ति प्रसङ्ग को भक्तिभाव से सुनेगा, वह भी समस्त पापों से मुक्त होकर शोकरहित स्थान प्राप्त कर सकेगा।।५५।।

एवं स्तुत्वा भवो देवीं चामुण्डां परमेश्वरीम्। क्षणादन्तर्हितो देवस्ते च देवा दिवं ययुः॥५६॥
य एतां वेद वै देव्या उत्पत्तिं त्रिविधां धरे। सर्वपापविनिर्मुक्तः परं निर्वाणमृच्छति॥५७॥
भ्रष्टराज्यो यदा राजा नवम्यां नियतः शुचिः। अष्टम्यां च चतुर्दश्यामुपवासी नरोत्तमः।
संवत्सरेण लभते राज्यं निष्कण्टकं नृपः॥५८॥
एषा त्रिशक्तिरुद्दिष्टा नयसिद्धान्तगामिनी। एषा श्वेता परा सृष्टिः सात्त्विकी ब्रह्मसंस्थिता॥५९॥
एषैव रक्ता रजसि वैष्णवी परिकीर्त्तिता। एषैव कृष्णा तमसि रौद्री देवी प्रकीर्त्तिता॥६०॥
परमात्मा यथा देव एक एव त्रिधा स्थितः। प्रयोजनवशाच्छक्तिरेकैव त्रिविधाऽभवत्॥६१॥
य एतं शृणुयात् सर्गं त्रिशक्त्याः परमं शिवम्।
सर्वपापविनिर्मुक्तः परं निर्वाणमाप्नुयात्॥६२॥
यश्चेदं शृयाद भक्त्या नवम्यां नियतः स्थितः। स राज्यमतुलं लेभे भयेभ्यश्च प्रमुच्यते॥६३॥
यस्येदं लिखितं गेहे सदा तिष्ठति धारिणि। न तस्याग्निभयं घोरं सर्पचौरादिकं भवेत्॥६४॥
यश्चैतत् पूजयेद् भक्त्या पुस्तकेऽपि स्थितं बुधः। तेन यष्टं भवेत् सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम्॥६५॥

इस प्रकार परमेश्वरी चामुण्डा देवी की स्तुति कर श्री शंकर देव क्षणमात्र में विलीन हो गये। फिर सभी देवगण भी स्वर्गलोक को चलते बने।।५६।।

हे पृथ्वि! जो देवी की तीन प्रकार से होने वाली उत्पत्ति को जानता है, वह सभी प्रकार के पापों से मुक्त होकर श्रेष्ठ मोक्ष प्राप्त कर लेता है।।५७।।

यदि कोई राज्यभ्रष्ट नरश्रेष्ठ राजा नियम के सहित पवित्रता के साथ अष्टमी, नवमी, और चतुर्दशी तिथि के दिन उपवास करे, तो वह राजा एक वर्ष काल के अन्दर निष्कण्टक राज्य प्राप्त कर लेता है।।५८।।

इस प्रकार नीति के सिद्धान्त का ज्ञान प्रदान करने वाली, ये तीन शक्तियाँ हैं। जिनमें श्वेतवर्ण की शक्ति श्रेष्ठ सात्त्विकी शक्ति है, जो ब्रह्मा के समीप रहती है।।५९।।

वही रजोगुण स्वरूपा रक्तवर्णा शक्ति विष्णु के समीप रहती है। फिर कृष्णवर्ण की तमोगुणी शक्ति रुद्र की शक्ति के रूप में प्रसिद्ध है।।६०।।

जिस प्रकार एक ही परमात्मा देव के तीन भेद से स्थिति कही गई है, उसी प्रकार कार्यानुरुप एक ही शक्ति के तीन भेद से स्थिति मानी गई हैं।।६१।।

अतः जो कोई जन इन तीनों शक्तियों के अतिशय कल्याणप्रद इस उत्पत्ति कथा को सुनेगा, वह समस्त पापों से मुक्त होकर श्रेष्ठतम मोक्षपद को प्राप्त करेगा।।६२।।

जो कोई जन नवमी तिथि के दिन नियम से इस व्रत को धारण कर इस कथा का श्रवण करेगा, उसे निश्चय ही अतुल राज्य की प्राप्ति होती है। और वह सभी प्रकार के भयों से मुक्त हो सकेगा।।६३।।

हे पृथ्वि! जिसके गृह में यह स्तोत्र सर्वदा लिखित रूप में रहेगा, उसे भयंकर अग्नि, सर्प और चोर आदि प्रकारक भय नहीं होगा।।६४।।

जो बुद्धिमान् पुस्तक में भी स्थित इस कथा का भक्तिभाव से पूजन कर सकेगा, वह समस्त चराचर युक्त त्रैलोक्य पूजन का फल प्राप्त करेगा।।६५।।

जायन्ते पशवः पुत्रा धनं धान्यं वरस्त्रियः। रत्नान्यश्वा गजा भृत्या यानाश्चाशु भवन्त्युत।
यस्येदं तिष्ठते गेहे तस्येदं जायते ध्रुवम्॥६६॥

श्रीवराह उवाच

एतदेव रहस्यं ते कीर्त्तितं भूतधारिणि। रुद्रस्य खलु माहात्म्यं सकलं कीर्त्तितं मया॥६७॥
नवकोट्यस्तु चामुण्डा भेदभिन्ना व्यवस्थिता।
या रौद्री तामसी शक्तिः सा चामुण्डा प्रकीर्त्तिता॥६८॥
अष्टादश तथा कोट्य वैष्णव्या भेद उच्यते। या सा च राजसी शक्तिः पालनी चैव वैष्णवी।
या ब्रह्मशक्तिः सत्त्वस्था अनन्तास्ताः प्रकीर्त्तिता॥६९॥
एतासां सर्वभेदेषु पृथगेकैकशो धरे। सर्वासां भगवान् रुद्रः सर्वगश्च पतिर्भवेत्॥७०॥
यावन्त्यस्या महाशक्त्यास्तावद् रूपाणि शंकरः। कृतवांस्ताश्च भजते पतिरूपेण सर्वदा॥७१॥
यश्चाराधयते तास्तु रुद्रस्तुष्टो भविष्यति। सिद्ध्यन्ते तास्तदा देव्यो मन्त्रिणो नात्र संशयः॥७२॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे पञ्चनवतितमोऽध्यायः॥९५॥

वह स्तोत्र जिसके घर में स्थित रहता है, निश्चयपूर्वक उसे शीघ्र पशु, पुत्र, धन, धान्य, सुन्दरी स्त्रियाँ, रत्न, घोड़े, हाथी, नौकर और वाहनों की प्राप्ति होती है।।६६।।

श्री भगवान् वाराह ने कहा कि हे प्राणियों को धारण करने वाली! इस प्रकार मैंने आपको यह रहस्य कथा सुनाकर निश्चय ही रुद्र का अखिल माहात्म्य आपसे कह दिया है।।६७।।

इस अखिल ब्रह्माण्ड में चामुण्डा देवी नौ करोड़ प्रकार से वर्तमान हैं। जिन्हें तमोगुणात्मिका रोद्री शक्ति कहा गया है। उसे ही चामुण्डा कहा जाता है।।६८।।

इसी तरह विष्णु की रजोगुणात्मिका शक्ति स्वरूपा देवी अट्ठारह करोड़ प्रकार से इस अखिल ब्रह्माण्ड में विद्यमान हैं, जो पालन करने वाली राजसी शक्ति है, उसे ही विष्णु की शक्ति समझा जाता है। फिर ब्रह्मा की सत्त्वगुणात्मिका शक्ति इस अखिल ब्रह्माण्ड में अपने अनन्त भेदों से विद्यमान रहती है।।६९।।

हे पृथ्वि! इन शक्तियों के विभिन्न रूपों के अनुरूप अलग-अलग एक-एक रूप धारण कर सर्वव्यापी भगवान् रुद्र इन सभी के पति हैं।।७०।।

इस तरह इस महाशक्ति के विभिन्न भेदात्मक स्वरूप हैं, जिनके श्रीशंकर उतने ही भेदात्मक रूप से पति के रूप में उन सबका सेवन किया करते हैं।।७१।।

इस प्रकार जो जन उन समस्त देवियों की आराधना करता है, उससे रुद्र प्रसन्न होते हैं और उस समय मन्त्र धारण करने वालों को वे देवियाँ सिद्ध हो जाया करती हैं। इसे निस्सन्देह जानना चाहिए।।७२।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में रौद्री शक्ति का आविर्भाव, रुरु दैत्य वध, चामुण्डा स्तुति नामक पनचानबेवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायण-कुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥९५॥

❖❖❖

षण्णवतितमोऽध्यायः

अथ कापालिकरुद्रवर्णनम्

श्रीवराह उवाच

अथ रुद्रव्रतोत्पत्तिं शृणु देवि वरानने। येन ज्ञानेन पापानां मुच्यते भूरि मानवः॥१॥
ब्रह्मणा तु यदा रुद्रः पूर्वं सृष्टो वरानने। तृतीये जन्मनि विभुः पिङ्गाक्षो नीललोहितः॥२॥
तदा कौतूहलाद् ब्रह्मा स्कन्धे तं जगृहे प्रभुः। स्कन्धारूढे तदा रुद्रे ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः॥३॥
जन्मतश्च शिरो यद्धि पञ्चमं तज्जगाद ह। मन्त्रमाथर्वणं धात्रि येन सद्यः प्रमुच्यते॥४॥
कपालि रुद्र बभ्रोऽथ भव कैरात सुव्रत। पाहि विश्वं विशालाक्ष कुमारवर वित्तम॥५॥
एवमुक्तस्तदा रुद्रो भविष्यैर्नामभिर्भवः। कपालशब्दात् कुपितस्तच्छिरो विचकर्त्त ह॥६॥
वामाङ्गुष्ठनखेनाद्यं प्राजापत्यं विचक्षणः। तन्निकृत्तं शिरो धात्रि हस्तलग्नं बभूव ह॥७॥
तस्मिन् करस्थे शिरसि प्राजापत्ये त्रिलोचनः। ब्राह्मणं प्रयतो भूत्वा रुद्रो वचनमब्रवीत्॥८॥

रुद्र उवाच

कथं कपालं मे देव करात् पतति सुव्रत। नश्यते च कथं पापं ममैतद् वद माचिरम्॥९॥

अध्याय-९६

रुद्र का कापालिकत्व और कपालमोचन तीर्थ

श्री वाराह भगवान् ने कहा कि हे वरानने! देवि!! अब रुद्रव्रत की उत्पत्ति कथा सुनो, जिनके ज्ञान होने से मनुष्य विभिन्न पापों से मुक्त हो जाता है।।१।।

हे सुन्दर मुख वाली देवि! ब्रह्माजी के द्वारा जिस समय पुरातन काला में रुद्र की सर्जना की गई थी। तब तृतीय जन्म में विभु शंकर पिङ्गल वर्ण के नेत्र वाले और नीललोहित हुए थे।।२।।

उस समय प्रभु ब्रह्माजी ने उत्सुकतापूर्वक उनको कन्धे पर धारण कर लिया। रुद्र के स्कन्धारूढ़ होने के बाद अव्यक्तजन्मा ब्रह्मा का जन्मजात पाँचवाँ शिर ने हे पृथ्वि! अथर्ववेद के उस प्रकार के मन्त्र का उच्चारण किया, जिससे प्राणी तत्काल मुक्त हो जाता है।।३-४।।

हे सुव्रत! विशाल नेत्रों वाले! कुमारवरवित्तम! भव! कैरात! बभ्रु और कपाली रुद्र! इस विश्व ब्रह्माण्ड की रक्षा करो।।५।।

इस तरह भविष्य में सम्बोधित होने वाले नामों में भव रुद्र 'कपाल' शब्द से रूष्ट हो गए और ब्रह्मा के उस पञ्चम शिर को काट डाला।।६।।

उस ज्ञान सम्पन्न शंकर ने अपने बाँये अंगुष्ठ के नख से प्रजापति के आदिकालीन शिर को काटा था। हे पृथ्वि! ब्रह्मा का वह कटा हुआ शिर उस शंकर के हाथ में लग गया।।७।।

इस प्रकार प्रजापति का शिर हाथ में आ जाने पर त्रिलोचन रुद्र ने प्रयत्नपूर्वक ब्रह्मा से कहा—।।८।।

रुद्र ने कहा कि हे सुव्रत! देव!! मेरे हाथ से कपाल किस प्रकार गिरेगा और मेरा पाप किस प्रकार विनष्ट हो सकेगा मुझे यह उपाय शीघ्र सुझाये।।९।।

ब्रह्मा उवाच

इदमेव व्रतं देव चर कापालिकं विभो। समयाचारसंयुक्तं कृत्वा स्वेनैव तेजसा॥१०॥
एवमुक्तस्तदा रुद्रो ब्रह्मणाऽव्यक्तमूर्त्तिना। आजगाम गिरिं तुङ्गं महेन्द्रं पापनाशनम्॥११॥
तत्र स्थित्वा महादेवस्तच्छिरो विभिदे त्रिधा।
तस्मिन् भिन्ने पृथक् केशान् गृहीत्वा कृतवान् भवः।
यज्ञोपवीतं केशं तु महास्थ्यक्षमणींस्तथा॥१२॥
कपालशकलं चैकमसृक्पूर्णं करे स्थितम्। अपरं खण्डशः कृत्वा जटाजूटे न्यवेशयत्॥१३॥
एवं कृत्वा महादेवो बभ्रामेमां वसुंधराम्। सप्तद्वीपवतीं पुण्यां मज्जंस्तीर्थेषु नित्यशः॥१४॥
समुद्रे प्रथमं स्नात्वा ततो गङ्गां व्यगाहत। सरस्वतीं ततो गत्वा यमुनासङ्गमं ततः॥१५॥
शतद्रूं च ततो गत्वा देविकां च महानदीम्। वितस्तां चन्द्रभागां च गोमतीं सिन्धुमेव च।
तुङ्गभद्रां तथा गोदामुत्तरे गण्डकीं तथा॥१६॥
ऊर्ध्वगं तु ततो गत्वा ततो रुद्रमहालयम्। ततो दारुवनं गत्वा केदारगमनं पुनः॥१७॥
भद्रेश्वरं ततो गत्वा गयां पुनरथागमत्। गयां गत्वा कृतस्नानः पितॄन् संतर्प्य यत्नतः॥१८॥
पश्चाद् वेगेन सकलं ब्रह्माण्डं भूतधारिणि। बभ्राम सर्वदेवेश षष्ठेऽब्दे तस्य चापतत्॥१९॥

ब्रह्मा ने कहा कि हे विभो! हे देव!! आप अपने ही तेज द्वारा समयाचार से सम्पन्न हो, इस कापालिक व्रत को धारण कर लें।।१०।।

इस तरह अव्यक्त मूर्ति ब्रह्मा जी के कहे जाने पर रुद्र पापनाशक ऊँचे महेन्द्र पर्वत पर चले गए।।११।।

उस महेन्द्र पर्वत पर स्थित होकर महादेव ने उस शिर का तीन भाग कर दिया। उस शिर का विभाजन हो जाने पर शंकर ने केशों को पकड़कर अलग कर दिया। केशों का यज्ञोपवीत एवं महास्थियों को अक्ष की मणियाँ बना दिया।।१२।।

फिर रक्त युक्त कपाल का एक खण्ड हाथ में लगा रहा और दूसरे को तोड़कर जटाजूट में लगा दिया।।१३।।

इतने सबके बाद महादेव इन सात महाद्वीपों वाले पृथ्वी पर तीर्थों में नित्य स्नान करते हुए घूमने लगे।।४।।

उस क्रम में पहले समुद्र स्नान के बाद उन्होंने गङ्गा में स्नान किया। फिर सरस्वती में जाकर स्नान किया और फिर यमुना के संगम स्थान पर पहुँचे।।१५।।

फिर शतद्रु, चन्द्रभागा, गोमती, सिन्धु, तुङ्गभद्रा, गोदावरी और उत्तर में गण्डकी नदी में स्नान किया।।१६।।

फिर ऊर्ध्वग तीर्थ में जाने के बाद रुद्र महालय तीर्थ में पहुँच गए। फिर दारुवन में जाने के बाद केदार तीर्थ में भी चले गए।।१७।।

तत्पश्चात् भद्रेश्वर तीर्थ में जाकर फिर गया तीर्थ में पहुँचे, वहाँ पर स्नान करने के बाद यत्नपूर्वक पितरों का तर्पण भी किया।।१८।।

हे भूतों को धारण करने वाली, फिर सर्वदेवेश वेगपूर्ण रूप से अखिल ब्रह्माण्ड में भ्रमण करने लग गये।

भ्रमतः परिधानं तु कौपीनं रशनागतम्। तस्मिंस्तु पतिते देवि नग्नः कापालिकोऽभवत्॥२०॥
पुनरब्दद्वयं भ्रान्तो ब्रह्माण्डं तीर्थकारणात्। तीर्थे तीर्थे हरः स्नात्वा कपालं त्यक्तुमैच्छत।
त्यजतोऽपि न तद्धस्ताच्चयवते तस्य धारिणि॥२१॥
ततोऽन्यद् वर्षमेकं तु वर्त्तते हिमव् गिरौ। भमतो बभ्रुता जाता त्रिनेत्रस्य महात्मनः॥२२॥
पुनरब्दद्वयं चान्यत् परमेष्ठी वृषाकपिः। बभ्राम रुद्रस्तीर्थानि पुराणानि समन्ततः॥२३॥
कस्यचित्त्वथ कालस्य द्वादशेऽब्दे धराधरे। वाराणसीं गतो देवस्तत्र स्नानमथाकरोत्॥२४॥
गङ्गायां देवदेवेशो यावन्मज्जति भामिनि। तावत्कपालं पतितं यल्लग्नं ब्रह्मणः पुरा॥२५॥
कपालमोचनं नाम ततस्तीर्थमनुत्तमम्। पृथिव्यां ख्यातिमगमद् वाराणस्यां धराधरे॥२६॥
कपालं पतितं दृष्ट्वा रुद्रहस्ताच्चतुर्मुखः। आगतो देवसहितो वाक्यं चेदमुवाच ह॥२७॥

ब्रह्मोवाच

भव रुद्र विरूपाक्ष लोकमार्गे व्यवस्थितः। व्रतानि कुरु देवेश त्वच्चीर्णानि महाप्रभो॥२८॥
कपालं गृह्य यद् भ्रान्तं कौपीनेन समन्वितः। तन्महाव्रतसंज्ञं तु मनुष्याणां भविष्यति॥२९॥

छठे वर्ष में भ्रमण करते हुए उनका कटिसूत्र से बँधा हुआ कौपीन स्वरूप वस्त्र गिर गया। उसके गिर जाने पर हे देवि! कापालिक शंकर नग्न हो गए।।१९-२०।।

फिर से श्री शंकर तीर्थयात्रा के लिए दो वर्ष पर्यन्त ब्रह्माण्ड में भ्रमण करते रहे और प्रत्येक तीर्थ में स्नान कर कपाल त्याग की कामना पूर्ति का प्रयास करते रहे। हे पृथ्वि! लेकिन त्याग करने पर भी वह कपाल हाथ से अलग नहीं होता था।।२१।।

तत्पश्चात् वे एक वर्ष तक हिमालय पर्वत पर निवास करते और भ्रमण करते करते महात्मा त्रिलोचन शंकर पिङ्गलवर्ण के से हो गए।।२२।।

फिर वह परमेष्ठी वृषाकपि रुद्र अन्य दो वर्षों तक हर जगह प्राचीन तीर्थों में ही भ्रमण करते रह गये।।२३।।

तत्पश्चत् शंकर देव किसी बारहवें वर्ष में धरा पर भ्रमण करते हुए वाराणसी में आ पहुँचे और फिर यहां स्नान किया।।२४।।

हे भामिनि! देवदेवेश शंकर ने जैसे ही गङ्गा में स्नान किया, वैसे ही पूर्व काल में ब्रह्मा का जो शिर उनके हाथ में लग गया था, वह गिर गया।।२५।।

हे पृथ्वि! इसी से इस संसार में पृथ्वी पर वाराणसी में वह श्रेष्ठ तीर्थ कपालमोचन के नाम से प्रसिद्ध हो गया।।२६।।

रुद्र के हाथ से इस प्रकार कपाल को गिरा हुआ जानकर चतुर्भुज ब्रह्मा ने देवताओं के संहित आकर यह वाक्य कहा—।।२७।।

ब्रह्मा ने कहा कि हे महाप्रभु देवेश विरूपाक्ष रुद्र! आप लोक मार्ग में विशेष रूप से अवस्थित हों और अपने द्वारा किये गये व्रतों को करें।।२८।।

कपाल धारण कर कौपीन सहित आपने जो भ्रमण किया, वह मनुष्यों के लिए महाव्रत नाम का व्रत हुआ करेगा।।२९।।

नग्नेन भूत्वा यद् भ्रान्तं कपालव्यग्रपाणिना। तद् व्रतं नग्नकापालं भविष्यति नृणां भुवि॥३०॥
यच्च ते बभ्रुता जाता हिमवत्यचलोत्तमे। भ्रमतस्तद् व्रतं देव बाभ्रव्यं ते भविष्यति॥३१॥
यच्चेदानीं विशुद्धस्य तीर्थेऽस्मिन् देहशुद्धता। तच्छुद्धशैवं भवतु व्रतं ते पापनाशनम्॥३२॥
मां पुरस्कृत्य देवास्त्वां पूज्यन्ते विविधान्युत। शास्त्राणि तानि सर्वेषां कथयिष्यसि नान्यथा॥३३॥
व्रतानि कुरुते देव त्वत्कृतानि हि पुत्रक। स त्वत्प्रसाद् देवेश ब्रह्महाऽपि विशुध्यति॥३४॥
यद् व्रतं नग्नकापालं यद् बाभ्रव्यं त्वया कृतम्। यत् कृतं शुद्धशैवं च तत्तन्नाम्ना भविष्यति॥३५॥
मां पुरस्कृत्य देवं त्वां पूज्यते यो विधानतः। तेषां शास्त्राणि सर्वाणि शास्त्रं पाशुपतं तथा।
कथयस्व महादेव सविधानं समासतः॥३६॥
एवमुक्तस्ततो रुद्रो ब्रह्मणाऽव्यक्तमूर्तिना। दैवैर्जयेति संतुष्टः कैलासनिलयं ययौ॥३७॥
ब्रह्मा अपि सुरैः सार्धं गतः स्वं लोकमुत्तमम्। देवा अपि ययुः सर्वे यथागतमुपागताः॥३८॥
एतद् रुद्रस्य माहात्म्यं मया संपरिकीर्त्तितम्। चरितं यच्च देवस्य व्रतं समभवद् भुवि।
कोन्योऽस्त्यभ्यधिकं तस्य मुक्त्वा नारायणं प्रभुम्॥३९॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे षण्णवतितमोऽध्यायः॥९६॥

कपाल के हेतु से व्यग्र हाथ सहित नग्न होकर आपने जो भ्रमण किया, वह व्रत पृथ्वी पर मनुष्यों के लिए 'नग्नकपाल' व्रत होगा। भ्रमण काल में पर्वत श्रेष्ठ हिमालय पर आपने जो बभ्रुता अर्थात् पिङ्गलवर्णत्व को प्राप्त किया, उससे आपका वह व्रत बाभ्रव्य नामक व्रत होगा।।३०-३१।।

अब इस तीर्थ में विशुद्ध स्वरूप वाले आपके देह में शुद्धता आने से आपका यह पापनाशक व्रत शुद्ध शैव व्रत होगा। मुझको सामने रखकर देवगण आपका पूजन किया करेंगे और आप उन सबको वास्तविक रूप से उन विभिन्न शास्त्रों का उपदेश करेंगे।।३२-३३।।

हे देव! हे पुत्र! जो कोई जन तुम्हारे द्वारा किया हुआ व्रत करेगा, वह हे देवेश! ब्रह्म हत्यारा होने पर भी विशुद्ध हो सकेगा। आपने जिन नग्नपाल, बाभ्रव्य और शुद्ध शैव व्रत का पालन किया है, वे उसी नाम के व्रंत हुआ करेगा॥३४-३५।।

हे महादेव! मुझे आगे कर जो सविधि आपकी पूजा करंगे, उन सभी के विधानों तथा पाशुपतशास्त्र का विधान सहित सार रूप में उल्लेख करें।।३६।।

इस प्रकार अव्यक्तजन्मा ब्रह्मा के कहे जाने पर देवों की जयकार ध्वनि से संतुष्ट रुद्र कैलास धाम को प्रस्थान कर गए। फिर ब्रह्मा भी देवों के सहित अपने उत्तम लोक को चले गए। समस्त देव भी जहाँ से आये थे, वहाँ चले गए॥३७-३८।।

इस प्रकार मैंने रुद्र के इस माहात्म्य, उन महादेव के चरित्र और पृथ्वी पर हुए उनके व्रत विधान का उल्लेख किया है। अतः प्रभु नारायण को छोड़कर उनकी अपेक्षा कौन अधिक महिमावान् है?।।३९।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में रुद्र का कापालिकत्व और कपालमोचन तीर्थ नामक छियानबेवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥९६॥

सप्तनवतिततोऽध्यायः

अथ सत्यतपोपाख्यानम्

धरण्युवाच

योऽसौ सत्यतपा नाम लुब्धो भूत्वा द्विजो बभौ। येनारुणिर्व्याघ्रभयाद् रक्षितो यः स्वशक्तितः॥१॥
दुर्वाससा श्रुतार्थश्च हिमवन्तोत्तरं ययौ। तस्योपरि महाश्चर्यं भवतीति त्वयेरितम्।
कीदृशं तन्ममाचक्ष्व महत् कौतूहलं विभो॥२॥

श्रीवराह उवाच

स हि सत्यतपाः पूर्वं भृगुवंशोद्भवो द्विजः। दस्तुसंसर्गसंभूतो दस्युवत् समजायत॥३॥
ततः कालेन महता ऋषिसंगात् पुनर्द्विजः। बभौ दुर्वाससा सम्यग् बोधितश्च विशेषतः॥४॥
हिमाद्रेरुत्तरे पादे पुष्पभद्रा नदी शुभा। तस्यास्तीरे शिला दिव्या नाम्ना चित्रशिला धरे॥५॥
न्यग्रोधश्च महांस्तत्र नाम्ना भद्रमहावटः। तत्र सत्यतपाः स्थित्वा तपः कुर्वन् महातपाः॥६॥
स कदाचित् कुठारेण चकर्त समिधः किल। अछैत्सीदङ्गुलिं चैकां वामतर्जनिकां मुनिः॥७॥

अध्याय–९७

तपनिष्ठ सत्यतपा का अंगुली कटना, सत्य की परीक्षा

धरणी ने कहा कि उस सत्यतपा नामक लुब्ध ब्राह्मण ने अपनी शक्ति द्वारा व्याघ्र के भय से आरुणि की रक्षा की थी।।१।।

फिर वह दुर्वासा मुनि से ज्ञान की बात सुनकर हिमालय की उत्तर दिशा में चला गया था, आपने कहा है कि उसके साथ महाश्चर्यकारी घटना हुई। वहाँ वह आश्चर्य किस प्रकार का है? हमको बतलायें। हे विभो! इस प्रसंग को जानने हेतु मैं बहुत अधि उत्सुक हूँ।।२।।

श्री भगवान् वाराह ने कहा कि वह सत्यतपा ब्राह्मण पूर्वकाल में प्रथम भृगुकुल में उत्पन्न हुआ था। वह दस्युओं के संग साथ के कारण दस्यु के समान व्यवहार करता था।।३।।

फिर बहुत समय व्यतीत होने पर उसका साथ ऋषियों का होने पर वह फिर से ब्राह्मण जैसा आचरण करने लगा। फिर दुर्वासा द्वारा सविधि समझाने पर वह विशेष रूप से ज्ञानवान् हुआ।।४।।

हिमालय के उत्तरी पाद में पुष्पभद्रा नाम की शुभ नदी स्थित है। हे पृथ्वि! उस नदी के किनारे में चित्रशिला नाम का एक-एक दिव्य शिला है।।५।।

उसी स्थान पर भद्रमहावट नाम का महान् वटवृक्ष भी स्थित है। उसी जगह पर तपस्या करते हुए महातपस्वी सत्यतपा रहा करता है।।६।।

उसके द्वारा एक बार कुल्हाड़ी से समिधा हेतु लकड़ी काटी गई। मुनि ने अपनी बाँये हाथ की तर्जनी अंगुली को काट लिया।।७।।

छिन्नाया अङ्गुलेस्तस्य भस्मचूर्णं भवत् किल। न लोहितं न मांसं तु न मज्जा तत्र दृश्यते॥८॥
सोऽनादृत्य पुनर्वृश्य समिधो मुनिपुंगवः। एवमेव पुनर्भस्म स्रवन्तं तु प्रदृश्यते।
अङ्गुलीसंधिता तेन पूर्ववच्चाभवत् कृते॥९॥
तस्मिन् भद्रवटे चैकं मिथुनं किंनरं स्थितम्। रात्रौ सुप्तमृषेस्तस्य दृष्ट्वा तन्महदद्भुतम्।
प्रभाते विमले प्राप्तमिन्द्रलोकमिति स्मृतिः॥१०॥
अथैन्द्रेण सुराः सर्वे यक्षगन्धर्वकिंनराः। पृष्टाः किंचिदिहाश्चर्यमपूर्वं कथ्यतामिति॥११॥
तत्र रुद्रसरस्तीरे यदेतन्मिथुनं शुभम्। स्थितं किंनरयोस्तच्च वाक्यं चेदमुवाच ह॥१२॥
दृष्टं किंचिदिहाश्चर्यं दृष्टं तु हिमवद्गिरौ। पुष्पभद्रानदीतीरे महदाश्चर्यमुत्तमम्॥१३॥
येदतत् सत्यतपसः समवोचुस्ततः शुभे। स्रवणं भस्मनश्चैव श्रुतं सर्वं शशंस ह॥१४॥
तच्छ्रुत्वा सहसा शक्रो विस्मितो विष्णुमब्रवीत्।
आगच्छ विष्णो गच्छाव हिमवत्पार्श्वमुत्तमम्।
तत्राश्चर्यमपूर्वं मे कथितं किंनरेण ह॥१५॥
एवमुक्तस्ततो विष्णुर्वराहः संबभूव ह। मृगयुश्च तथैवेन्द्रो जग्मतुस्तमृषिं प्रति॥१६॥

फिर उसकी कटी अंगुली का भस्मचूर्ण बन गया। वहाँ पर रक्त, मांस या मज्जा कुछ भी नहीं दिखाई दिया।।८।।

फिर भी मुनिश्रेष्ठ ने लापरवाह होकर समिधा काटी, तो उसी प्रकार फिर से भस्म का स्रव होते हुए दीख पड़ा। लेकिन अंगुली को जोड़ देने पर वह पूर्ववत् हो गई।।९।।

उस भद्रवट पर एक किन्नर का जोड़ा रात्रि में सो रहा था।उसने उस ऋषि का महान् अद्भुत उस कार्य को देख लिया। इस क्रम में यह सुना जाता है कि शुभ प्रभात काल में वह किन्नर का जोड़ा इन्द्रलोक को जा चुका था।।१०।।

इस प्रकार इन्द्र ने उस समय समस्त देवों, यक्षों, गन्धर्वों, किन्नरों से पूछा कि आप सभी इस समय यहाँ कुछ अपूर्व आश्चर्य की घटना कहें।।११।।

उस समय उस रुद्र सरोवर के किनारे पर स्थित किन्नरों का जोड़ा जो स्थित था, उसने यह वाक्य कहा—।।१२।।

यहाँ हिमालय पर्वत के उत्तरी पाद में हमने एक आश्चर्य की घटना देखा है। वहाँ पुष्पभद्रा नदी के किनारे हमने अत्यन्त श्रेष्ठ महान् आश्चर्य देखा है।।१३।।

हे शुभे! फिर उसने सत्यतपा की तपस्या और भस्म स्राव की घटना का सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया।।१४।।

उस आश्चर्यकारी घटना को सुनकर चकित हुए इन्द्र ने सहस्र विष्णु से कहा कि 'हे विष्णो! आयें और हिमालय पर चलें। क्योंकि किन्नर ने उस जगह के अपूर्व घटित आश्चर्य को मुझसे कहा है।।१५।।

इस प्रकार इन्द्र के आग्रह पर विष्णु वाराह और इन्द्र आखेटक के रूप में उस ऋषि के आश्रम के पास आ गए।।१६।।

विष्णुर्वराहरूपेण ऋषिदृष्टिपथे स्थितः। भूत्वा दृश्योऽप्यदृश्योऽभूत् पुनरेव च दृश्यते॥१७॥
तावदिन्द्रो धनुःपाणिस्तीक्ष्णसायकधृक् पुरः। ागत्य सत्यतपसमृषिमेनमुवाच ह॥१८॥
भगवन्निह दृष्टस्ते वराहः पृथुलो महान्। येन तं हन्मि भृत्यानां पोषणाय महामुने॥१९॥
एवमुक्तो मुनिस्तेन चिन्तयामास धारिणि। यदि तं दर्शयाम्यस्मै वराहो हन्यते तदा॥२०॥
न चेत् कुटुम्बं क्षुधया सीदत्यस्य न संशयः। जायापुत्रसमायुक्तो लुब्धकोऽयं क्षुधान्वितः॥२१॥
सशल्यश्च वराहोऽयं ममाश्रममुपागतः। एवं गते तु किं कार्यं मयाऽसौ चिन्तयन्मुनिः।

नाध्यगच्छत बुद्धिश्च क्षणात् तस्य व्यजायत॥२२॥
द्रष्टुं चक्षुर्निहितं जङ्गमेषु जिह्वा वक्तुं मृगयो तद् विसृष्टम्।
द्रष्टं चक्षुर्नास्ति जिह्वेह वक्तुं जिह्वयैव स्याद् वक्ति यो नास्ति चक्षुः॥२३॥
एवं श्रुत्वा द्वावपि तस्य तुष्टाविन्द्राविष्णू दर्शयतां स्वमूर्तिम्।
वाक्य चेदमूचतुर्ब्रूहि नौ ते तुष्टौ धन्यं वरमेकं वदस्व॥२४॥
तच्छुत्वाऽसौ सत्यतपा उवाच देवावलं मे वर एष धन्यः।
यद् दृष्टौ मे पुरतो देवदेवौ न चातिरिक्तोऽस्ति वरः पृथिव्याम्॥२५॥

फिर वाराह रूपी श्री विष्णु उस ऋषि के दृष्टिपथ में स्थित होकर दृश्य होकर भी अदृश्य-सा हो गये और फिर दिखलाई देने लग गये।।१७।।

उतने में ही हाथ में धनुष और तीक्ष्ण बाण लिए हुए इन्द्र सामने आकर उस सत्यतपा ऋषि से पूछे– ।।१८।।

हे भगवन्! हे महामुने!! आपने महाविशाल वाराह क्या यहाँ देखा है? जिससे मैं उसे अपने भृत्यों के पोषण हेतु मार सकूँगा।।१९।।

हे पृथ्वि! उसके इस प्रकार से पूछने पर वह मुनि सोच में पड़ गये कि यदि मैं इसको उस वराह के विषय में बतलाता हूँ, तो वह वराह मारा जा सकता है।।२०।।

अन्यथा यदि नहीं बतलाता हूँ, तो इसका कुटुम्ब भी निःसंशय भूख से विह्वल हो सकेगा। स्त्री, पुत्र आदि वाला यह भूखा शिकारी तथा शल्ययुक्त यह वराह मेरे आश्रम में आया है। इस स्थिति में मुझे क्या करना चाहिए। वह मुनि विचार करने लगा। फिर भी वह कुछ निश्चय नहीं कर पाया। परन्तु क्षणमात्र में उसे यह बुद्धि सूझी।।२१-२२।।

हे लुब्धक! जंगम अर्थात् जीवों में देखने हेतु नेत्र होता है और बोलने हेतु जिह्वा होती है। देखने हेतु बनी नेत्र इस प्रसङ्ग में बोलने योग्य जिह्वा नहीं है। जबकि जिह्वा द्वारा ही बोला जा सकता है। फिर जो बोलने वाला है, वह नेत्र नहीं है।।२३।।

इस प्रकार के विचार को जानकर इन्द्र और विष्णु दोनों ही संतुष्ट होकर उस ऋषि को अपनी वास्तविक मूर्त्ति दिखला दी। फिर उससे यह कहा कि हम दोनों तुमसे प्रसन्न हैं। अतः हम दोनों से ही तुम वर माँग लो।।२४।।

इस प्रकार के वचन सुनकर वह सत्यतपा बोला कि हे देवों! मेरे लिए तो यही श्रेष्ठ वर है, कि आप दोनों श्रेष्ठ देव मेरे सम्मुख उपस्थित हो गये हैं। अतः पृथ्वी पर इससे अधिक उपयुक्त वर नहीं है।।२५।।

तथापीदं ये सदा पर्वकाले विप्रान् विप्राः श्रावयन्तीति भक्त्या।
तेषां पापं नश्यतां मासमेकं यत् संचितं त्वेष एको वरोऽस्तु॥२६॥
मुक्तिं चाहं व्रजामीति द्वितीयोऽस्तु वरो मम। तथेत्युक्त्वा तु तौ देवौ दत्त्वा तस्य वरं शुभम्॥२७॥
अदर्शनं गतौ देवौ सोऽपि तत्र व्यवस्थितः। लब्ध्वा वरं सत्यतपा ब्रह्मभूतोऽभवद् हृदि॥२८॥
यावदास्ते शुभे देशे कृतकृत्यो महामुनिः। तावत् तस्य गुरुस्तत्र आरुणिः समदृश्यत॥२९॥
पृथ्वीं प्रदक्षिणीकृत्य तीर्थहेतोर्विचक्षणः। तेन चासौ महाभक्त्या पूजितो मुनिपुंगवः।
पाद्याचमनगोदानैः कृतासनपरिग्रहः॥३०॥
ज्ञात्वा स शिष्यं सिद्धं तु तपसा दग्धकिल्बिषम्। उवाच विनयापन्नं प्राञ्जलिं पुरतः स्थितम्॥३१॥

आरुणिरुवाच

पुत्र सिद्धोऽसि तपसा ब्रह्मभूतोऽसि पुत्रक। इदानीमात्मना सार्धं मुक्तिकालमितोऽस्ति ते॥३२॥
उत्तिष्ठ गम्यतां पुत्र मया सार्धं परं पदम्। यद् गत्वा न पुनर्जन्म भवतीति न संशयः॥३३॥
एवमुक्त्वा ततः सिद्धावुभौ सत्यतपोरुणी। ध्यात्वा नारायणं देवं सदेहौ तो दिवं गतौ॥३४॥
यश्चापि शृणुयात् पादं पर्वाध्यायं सविस्तरम्। श्रावयेद् वा स पितरो यजेद् गत्वा गयामिति॥३५॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे सप्तनवतितमोऽध्यायः॥९७॥

फिर भी कृपा करें कि जो कोई ब्राह्मण पर्व के समय में भक्ति भाव से इस कथा को ब्राह्मणों को सुनायें, उसके एक मास का संचित पाप विनष्ट हो जाया करे। यही मेरा वर है।।२६।।

'मुझे मुक्ति मिले' यह मेरा दूसरा वर है। दोनों देवों ने 'ऐसा ही हो' कहकर वर प्रदान किया।।२७।।

तत्पश्चात् दोनों ही देव विलुप्त हो गए। वहाँ स्थित हुआ सत्यतपा भी वर प्राप्त कर अपने हृदय में ब्रह्मभय-सा अनुभव करने लगा।।२८।।

इस प्रकार से कृतकृत्य महामुनि जिस समय उस पवित्र स्थल पर स्थित था, उसी समय उसका गुरु आरुणि उस स्थल पर उपस्थित हो गये। वे विद्वान् गुरु तीर्थयात्रा करने के साथ पृथ्वी प्रदक्षिणा कर वहाँ पर आये हुए थे।।२९।।

उस समय उसने महाभक्तिभाव से गुरु स्वरूप मुनिश्रेष्ठ की पूजा सत्कार की। उसने पाद्य, आचमन और गोदान पूर्वक आसनस्थ मुनि का पूजन किया।।३०।।

फिर शिष्य को तप से पापमुक्त और सिद्ध हुआ समझ कर उन्होंने अपने सम्मुख स्थित हुए हाथ जोड़े विनम्र शिष्य से कहा—अरुणि ने कहा कि हे पुत्र! तुम तपस्या से सिद्ध हो चुके हो। हे प्रियपुत्र! तुम निश्चय ही ब्रह्मनिष्ठ हो चुके हो। अब मेरे ही साथ तुम्हारी मुक्ति का समय आ गया है।।३१-३२।।

हे पुत्र! उठो, मेरे साथ परमपद को प्रस्थान करो। वहाँ पहुँचने पर निःसंशय पुनर्जन्म नहीं हुआ करता है। इस प्रकार से कहे जाने पर सत्यतपा अपने गुरु आरुणि के साथ सिद्ध नारायण देव का ध्यान कर अपने-अपने शरीर से ही स्वर्ग को पहुँच गए।।३३-३४।।

इस प्रकार इस कथा को जो विस्तार से एक पाद या सम्पूर्ण पर्वाध्याय सुनेगा अथवा सुनायेगा, उसे गया में जाकर पितरों का श्राद्ध करने का फल प्राप्त होता है।।३५।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में तपनिष्ठ सत्यतपा का अंगुली कटना, सत्य की परीक्षा नामक सनताबेवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥९७॥

अष्टनवतितमोऽध्यायः

अथ विष्णुयजनादिनिरूपणम्

धरण्युवाच

या सा माया शरीरात् तु ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः। गायत्र्यष्टभुजा भूत्वा वैत्रासुरमयोधयत्॥१॥
सैव नन्दा भवेद् देवी देवकार्यचिकीर्षया। महिषाख्यासुरवधं कुर्वती ब्रह्मणेरिता।
वैष्धव्या च हतो देव कथमेतद्धि शंस मे॥२॥

श्रीवराह उवाच

इयं जगद्धिता देवी गङ्गा शंकरसुप्रिया। क्वचित् किंचिद् भवेद् वृत्तं स पदं वेद सर्ववित्॥३॥
स्वायंभुवे हतो दैत्यो वैष्णव्या मन्दरे गिरौ। महिषाख्योऽपरः पश्चात् स च वैत्रासुरः पुनः।
नन्दया निहतो विन्ध्ये महाबलपराक्रमः॥४॥
अथवा ज्ञानशक्तिः सा महिषोऽज्ञानमूर्त्तिमान्। अज्ञानं ज्ञानसाध्यं तु भवतीति न संशयः॥५॥
मूर्तिपक्षे चेतिहासममूर्ते चैकवद्धृदि। ख्याप्यते वेदवाक्यैस्तु इह सा वेदवादिभिः॥६॥
इदानीं शृणु मे देवि पञ्चपातकनाशनम्। यजनं देवदेवस्य विष्णोः पुत्रवसुप्रदम्॥७॥

अध्याय–९८

तिष्णु अर्चन-दीक्षा विधि और अन्नदान सहित तिल धेनु दान माहात्म्य

धरणि ने कहा कि अव्यक्त जन्मा ब्रह्मा के शरीर से जिस माया की उत्पत्ति हुई, वह माया अष्टभुजा गायत्री के रूप में वैत्रासुर से युद्ध की।।१।।

फिर उसी माया ने देवकार्य की कामना से ब्रह्मा से प्रेरित होकर महिष नाम के असुर का भी वध किया। हे देव! विष्णु की माया ने उस असुर को किस प्रकार मारा? मुझे इसे बतलायें।।२।।

श्री वाराह ने कहा कि यही देवी जगत् हित के निमित्त से गङ्गा के स्वरूप में श्री शंकर की परम प्रिया बनी। जहाँ कहीं भी कोई घटना हुआ करती है, उसे निश्चयपूर्वक सर्वज्ञ शंकर जान जाया करते हैं।।३।।

स्वायम्भुव मन्वन्तर में वैष्णवी माया ने मन्दराचल पर जिस महिषासुर को मारा था, बाद में वही वैत्रासुर हुआ। नन्दा देवी ने उसी महाबलशाली और महापराक्रमी असुर को मारा।।४।।

अथवा वही वैष्णवी देवी ज्ञानशक्ति स्वरूपा हैं और महिषासुर मूर्त्तिमान् अज्ञान है। अतः अज्ञान को ज्ञान से ही समाप्त किया जा सकता है। इसमें सन्देह नहीं।।५।।

साकार पक्ष में देवी का यह एक इतिहास है और निराकार स्वरूप में वे एकात्मक रूप से हृदय में स्थित रहा करती हैं। यहाँ पर संसार में वेदज्ञ वेदमन्त्रों द्वारा उन देवी का गुणगान किया करते हैं।।६।।

हे देवि! इस समय मेरे द्वारा तुम पाँच प्रकार के महान् पापों का नाश करने वाला तथा पुत्र, धन आदि प्रदान करने वाला देवदेव विष्णु के यज्ञ विधि का उल्लेख किया जाता है, उसे ध्यान से सुनो।।७।।

इह जन्मनि दारिद्र्यव्याधिकुष्ठादिपीडितः। अलक्ष्मीवानपुत्रस्तु यो भवेत् पुरुषो भुवि॥८॥
तस्य सद्यो भवेल्लक्ष्मीरायुर्वित्तं सुतःसुखम्। दृष्ट्वा तु मण्डलगतं देवं देव्या समन्वितम्॥९॥
नारायणं परं देवं यः पश्यति विधानतः। पूजितं नवनाभे तु षोडशाष्टदलेऽथवा।
आचार्यदर्शितं देवि मन्त्रमूर्तिमयोनिजम्॥१०॥
कार्त्तिके मासि शुक्लायां द्वादश्यां तु विशेषतः। सर्वासु वा यजेद् देवं द्वादशीषु विधानतः।
संक्रान्त्यां वा महाभागे चन्द्रसूर्यग्रहेऽपि वा॥११॥
यः पश्यति हरिं देवि पूजितं गुरुणा शुभे। तस्य सद्यो भवेत् तुष्टिः पापध्वंसश्च जायते।
सामान्यं देवतानां च भवतीति न संशयः॥१२॥
ब्राह्मणक्षत्रियविशां भक्तानां तु परीक्षणम्। संवत्सरं गुरुः कुर्याज्जातिशौचक्रियादिभिः॥१३॥
उपासन्नांस्तो ज्ञात्वा हृदयेनाथ धारयेत्। तेऽपि भक्तिमतो ज्ञात्वा आत्मानं परमेश्वरम्॥१४॥
संवत्सरं गुरोर्भक्तिं कुर्वन् विष्णोरिवाचलम्। संवत्सरे ततः पूण गुरुं चैव प्रसादयेत्॥१५॥
भगवतंस्त्वत्प्रसादेन संसारार्णवतारणम्। इच्छामस्त्वैहिकीं लक्ष्मीं विशेषेण तपोधन॥१६॥
एवमभ्यर्च्य मेधावी गुरुं विष्णुमिवाग्रतः।
अभ्यर्चितस्तैः सोऽप्याशु दशम्यां काञ्चत्तकस्य तु॥१७॥

जो कोई जन इस भूमि पर और इस जन्म में दरिद्रता, रोग या कुष्ठादि से पीड़ित और धनहीन या पुत्रहीन हो, वह देवी से युक्त मण्डलगत विष्णु देव का दर्शन कर तत्क्षण लक्ष्मी, आयु, धन, पुत्र या सुख प्राप्त कर लेता है।।८-९।।

जो कोई भी जन विधान के अनुरूप नौ नाभि या षोडशाष्टदल वाले कमलासन पर स्थित होकर पूजे गये अयोनिज मन्त्रस्वरूप परमदेव नारायण का गुरु से प्रदर्शित मार्ग द्वारा दर्शन और पूजन करने वाला होता है।।१०।।

हे महाभागे! कार्त्तिक मास शुक्ल पक्ष की द्वितीया को विशेष रूप से या समस्त द्वादशी तिथियों के दिन या संक्रान्ति या चन्द्र और सूर्य ग्रहण के अवसर पर यथाविधि विष्णु देव का पूजन करना चाहिए।।११।।

हे शुभप्रदायिनी देवि! इस प्रकार जो गुरु से आराधित देव का दर्शन करता है, उसे तत्काल संतोष की प्राप्ति होती है और उसका पाप नष्ट होता है। निश्चय ही वह देवता के सदृश हो जाता है।।१२।।

गुरु को एक वर्ष पर्यन्त जन्म, शौच और क्रियादि द्वारा भक्त, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य का परीक्षण करना चाहिए। फिर उनको शुद्ध हृदय से भक्त समझ लेने के बाद शिष्य रूप से उनको अंगीकार करना चाहिए। शिष्य बनने वाला पुरुष भी गुरु को आत्मस्वरूप परमेश्वर के रूप में जानकर उनकी भक्ति में मन को लगायें।।१३-१४।।

विष्णु के समान ही गुरु के बारे में अचल भक्ति भाव रखते हुए एक वर्ष व्यतीत कराना चाहिए। तत्पश्चात् एक वर्ष पूर्ण हो जाने पर गुरु को प्रसन्न भी करना चाहिए।।१५।।

हे तपोधन! हे भगवन्! आपकी कृपाप्रसाद से इस संसार सागर को पार उतारने वाली इहलौकिक लक्ष्मी को विशेष रूप से प्राप्त करना चाहते हैं।।१६।।

इस प्रकार बुद्धिशील साधक को अपने समक्ष स्थित विष्णु के समान गुरु का पूजन करना चाहिए। फिर

क्षीरवृक्षसमुद्भूतं मन्त्रितं परमेष्ठिनः। भक्षयित्वा स्वपेच्चैव देवदेवस्य सन्निधौ॥१८॥
स्वप्नान् दृष्ट्वा गुरोरग्रे श्रावयेत विचक्षणः। ततः शुभाशुभं तत्र लक्षयेत् परमो गुरुः॥१९॥
एकादश्यामुपोष्यैवं स्नात्वा देवालयं व्रजेत्। गुरुश्च मण्डलं भूमौ कल्पितायां तु वर्तयेत्॥२०॥
लक्षणैर्विविधैर्भूमिं लक्षयित्वा विधानतः। षोडशारं लिखेच्चक्रं नवनाभमथापि वा॥२१॥
अष्टपत्रमथो वाऽपि लिखित्वा दर्शयेद् बुधः। नेत्रबन्धं तु कर्वीत सितवस्त्रेण यत्नतः।
वर्णानुक्रमतः शिष्यान् पुष्पहस्तान् प्रवेशयेत्॥२२॥
नवनाभं यदा कुर्यान्मण्डलं वर्णकैर्बुधः। तदानीं पूर्वतो देवमिन्द्रमैन्द्र्यां तु पूजयेत्॥२३॥
लोकपालैः समं तद्वदग्निं संपूजयेच्छुभे। स्वदिक्षु तद्वद् याम्यायां नैर्ऋत्यां नैर्ऋतिं न्यसेत्॥२४॥
वरुणं वारुणायो च वयुं वायव्यतो न्यसेत्। धनदं चोत्तरे न्यस्य रुद्रमीशानगोचरे॥२५॥
पूज्यैवं तु विधानेन दिक्क्षेत्रेषु विशेषतः। पद्ममध्ये तथा विष्णुमर्चयेत् परमेश्वरम्॥२६॥
पूर्वपत्रे बलं पूंज्य प्रद्युम्नं दक्षिणे तथा। अनिरुद्धं तथा पूज्य पश्चिमे चोत्तरे तथा।
पूजयेद् वासुदेवं तु सर्वपातकशान्तिदम्॥२७॥

साधक द्वारा पूजित गुरु को भी तत्क्षण कार्तिक मास की दशमी तिथि में क्षीरवृक्ष से प्राप्त फलों आदि को अभिमन्त्रित करते हुए भक्षण कर देवदेव परमेष्ठी के सन्निधि में सोना चाहिए।।१७-१८।।

सोते हुए में रात्रि में देखे गये स्वप्न उस बुद्धिशील साधक को गुरु से सुनाना चाहिए। तदनन्तर परमगुरु या श्रेष्ठ गुरु या गुरुओं का गुरु उन स्वप्नों के बारे में शुभाशुभ का विचार करे।।१९।।

फिर एकादशी तिथि में उपवासपूर्वक गुरु को देवालय में जाकर निर्धारित या निश्चय किए हुए स्थान पर मण्डल बनाना चाहिए।।२०।।

वहाँ पर विभिन्न लक्षणों के अनुरुप भूमि की परीक्षा करने के बाद नौ नाभि अथवा सोलह अरों वाला चक्र बनाना चाहिए।।२१।।

तत्पश्चात् बुद्धिशील मनुष्य को अष्टदलकमल बनाकर प्रदर्शित करना चाहिए और सप्रयत्न श्वेत वस्त्र से नेत्रों को बन्द कर लेना चाहिए। फिर वर्ण के क्रम से हाथों में पुष्प सहित शिष्य को प्रत्रेश करना चाहिए।।२२।।

इस प्रकार सुधी पुरुष नौ नाभियों का मण्डल विविध वर्णों से जिस समय बना ले, उस समय पहले इन्द्र की दिशा पूर्व में उन (इन्द्र) की पूजा करें।।२३।।

इस प्रकार हे शुभे! लोकपालों के साथ अग्नि का उनकी दिशा अर्थात् अग्निकोण में पूजन करना चाहिए। फिर यम की दक्षिण दिशा में यम की पूजा करनी चाहिए और नैर्ऋति का निर्ऋति कोण में न्यास करना चाहिए।।२४।।

फिर वरुण का उनकी दिशा पश्चिम में, वायु का उनकी दिशा वायव्य में, कुबेर का उत्तर दिशा में और ईशान कोण में रुद्र क न्यास करना चाहिए।।२५।।

इस प्रकार विधि के सहित दिक् क्षेत्रों में विशेष रूप से इन्द्रादि देवताओं का पूजन करने के बाद कमल के मध्य में परमेश्वर विष्णु की पूजा करनी चाहिए।।२६।।

तदनन्तर पूर्व दिशा के दल पर बलराम की पूजा करने के बाद दक्षिणा दल पर प्रद्युम्न की पूजा करे

ऐशान्यां विन्यसेच्छङ्खमाग्नेय्यां चक्रमेव च। याम्यां तु गदां पूज्य वाव्ययां पद्ममेव च॥२८॥
ऐशान्यां मुसलं पूज्य दक्षिणे गरुडं न्यसेत्। वामतो विन्यसेल्लक्ष्मीं देवदेवस्य बुद्धिमान्॥२९॥
धनुश्चैव तु खड्गं च देवस्य पुरतो न्यसेत्। श्रीवत्सं कौस्तुभं चैव देवस्य पुरतोऽर्चयेत्॥३०॥
एवं पूज्य यथान्यायं देवदेवं जनार्दनम्। दिङ्मण्डलेषु विन्यस्य अष्टौ कुम्भान् विधानतः॥३१॥
वैष्णवं कलशं चैकं नवमं तत्र कल्पयेत्। स्नापयेन् मुक्तिकामं तु वैष्णवेन घटेन ह॥३२॥
श्रीकामं स्नापयेत् तद्वद्वैन्द्रेण तु घटेन ह। द्रव्यप्रतापकामस्य आग्नेयेन तु स्नापयेत्॥३३॥
मृत्युञ्जयविधानाय याम्येन स्नापनं तथा। दुष्टप्रध्वंसनायालं नैर्ऋतेन विधीयते॥३४॥
शान्तये वारुणेनाशु पापनाशाय वायवे। व्यसंपत्तिकामस्य कौबेरेण विधीयते॥३५॥
रौद्रेण ज्ञानहेतोस्तु लोकपालघटास्त्विमे। एकैकेन नरः स्नातः सर्वपापविवर्ज्जितः॥३६॥
भवेदव्याहतं ज्ञानं श्रीमान् विप्रो विचक्षणः। किं पुनर्नवभिः स्नातो नरः पातकवर्ज्जितः॥३७॥

चाहिए। फिर पश्चिम दिशा के दल पर अनिरुद्ध की और उत्तर दिशा के दल पर सर्वपाप विनाशक वासुदेव की पूजा करनी चाहिए।।२७।।

तत्पश्चात् शंख का ईशान कोण में और अग्निकोण में चक्र का न्यास करना चाहिए। फिर दक्षिण दिशा में गदा का पूजन करने के बाद कमल का पूजन वायव्य कोण में करना चहिए।।२८।।

फिर ईशान कोण में मुसल का पूजन करने के बाद दक्षिण दिशा में गरुड़ का न्यास करना चाहिए। फिर सुधी उपासक को देवदेव के वामभाग में श्रीलक्ष्मी का विन्यास करना चाहिए।।२९।।

एतदनन्तर श्रीविष्णु देव के समक्ष धनुष और खड्ग दोनों का न्यास करना चाहिए। फिर उन्हीं के समक्ष श्रीवत्स और कौस्तुभ का भी पूजन करना चाहिए।।३०।।

इस प्रकार यथाशक्ति देवदेव जनार्दन की पूजा करने के बाद दिङ्मण्डलों से सविधि अष्टकुम्भों का स्थापन करना चाहिए।।३१।।

उन मण्डल के मध्य में विष्णुस्वरूप नौवें कुम्भ की स्थापना करनी चाहिए। उस विष्णु स्वरूप कुम्भ में स्थित जल से मुक्ति की कामना करने वाले जन को स्नान कराना चाहिए।।३२।।

द्रव्य और प्रताप चाहने वाले को अग्नि कोणस्थ कुम्भ से स्नान कराना उचित है।।३३।।

फिर मृत्यु पर विजय पाने की इच्छा वाले को यम सम्बन्धी कुम्भ से तथा दुष्टों के विनाश करने की कामना वाले को निर्ऋति कोणस्थ कुम्भ से स्नान करने का नियम है।।३४।।

फिर वरुण स्वरूप वाले घट से शान्ति की आकांक्षा वाले को और तत्क्षण पापों को विनष्ट करने वाले को वायुकोणस्थ कुम्भ से स्नान कराना चाहिए। फिर द्रव्यादि और सम्पत्ति की इच्छा वाले को कुबेर स्वरूप कुम्भ से स्नान कराने का नियम है।।३५।।

इसी तरह से रुद्र स्वरूप या निमित्तक कुम्भ से ज्ञानार्थी को स्नान कराना चाहिए। उपरोक्त समस्त कुम्भ लोकपालों से सम्बन्धित हैं। इनमें से एक-एक कुम्भ द्वारा स्नान करने वाले जन समस्त पापों से रहित हो जाता है।।३६।।

फिर वह अव्याहत ज्ञान वाला हो जाता है। इस प्रकार स्नान करने वाला जन निश्चय ही चतुर, श्रीमान् विप्र होता है। अतः सभी नौ कुम्भों से स्नान करने वाला पापों से मुक्त होकर पुरुष और क्या नहीं हो सकता है?।।३७।।

जायते विष्णुसदृशः सद्यो राजाऽथ वा पुनः। अथवा दिक्षु सर्वासु यथासंख्येन लोकपान्।
पूजयीत स्वशास्त्रोक्तविधानेन विधानवित्॥३८॥
एवं संपूजय देवांस्तु लोकपालान् प्रसन्नधीः।
पश्चात् प्रदक्षिणं शिष्यान् बद्धनेत्रान् प्रवेशयेत्॥३९॥
आग्नेयधारणान् दग्धान् वायुना विधुतांस्तु सः।
सौमेनाप्यायितान् पश्चाच्छ्रावयेत् समयान् बुधः॥४०॥
अनिन्द्या ब्राह्मणा वेदा विष्णुर्ब्राह्मण एव च। रुद्रमादित्यमग्निं च लोकपालान् ग्रहांस्तथा॥४१॥
गुरून् वा वैष्णवान् वाऽपि पुरुषं पूर्वदीक्षितम्। एवं तु समये स्थाप्य पश्चाद्धोमं तु कारयेत्॥४२॥
तत्त्वानि शिष्यदेहे तु संस्थितानि तु शोधयेत्। ओं नमो भगवते सर्वरूपिणे हुं फट् स्वाहा।
षोडशाक्षरमन्त्रेण होमयेज्ज्वलिताग्नये॥४३॥
गर्भाधानादिकाश्चैव क्रियाः समवधारयेत्। त्रिभिस्त्रिभिराहुतिभिर्देवदेवस्य सन्निधौ॥४४॥
होमान्ते दीक्षितः पश्चाद् दापयेद् गुरुदक्षिणाम्। हस्त्यश्ववाजिकटकं हेमग्रामादिकं नृपः॥४५॥
दापयेद् गुरवे प्राज्ञो मध्यमो मध्यमं तथा। दापयेदितरो युग्मं सहिरण्यं तु दापयेत्॥४६॥

इस तरह वह साधक तत्क्षण विष्णु के समान होता है अथवा पुनर्जन्म लेने पर वह राजा होता है। अथवा इस विधान को जानने वाले को अपने शास्त्रों में कहे गए विधि के क्रम से समस्त दिशाओं में लोकपालों का पूजन करना चाहिए।।३८।।

फिर प्रसन्नचित्त होकर देवताओं और लोकपालों की पूजा सम्पन्न करने के बाद दक्षिण भाग से नेत्र बँधे शिष्यों को प्रवेश कराना चाहिए।।३९।।

फिर बुद्धिशील वह गुरु अग्निभय मुद्रा दग्ध, वायुशोधित, सोम से आप्यायित भक्तों को व्रत के नियम बतला देने चाहिए।।४०।।

चूँकि वेद और ब्राह्मण सदा ही अनिन्ध माना गया है। ब्राह्मण भी विष्णु स्वरूप है। रुद्र, आदित्य, अग्नि, लोकपालों और ग्रहों, गुरुजनों, विष्णु भक्तों या पूर्व दीक्षित शिष्य को इस प्रकार नियम में स्थापित कर हवन कराना चाहिए।।११-४२।।

फिर शिष्य के शरीरस्थ तत्त्वों का शोधन करना चाहिए। फिर 'ॐ नमो भगवते सर्वरूपिणे हुँ फट् स्वाहा' इस षोडशाक्षर मन्त्र से प्रज्ज्वलित अग्नि में हवन करना चाहिए।।४३।।

फिर देवेदेव के समीप में तीन-तीन आहुतियों से गर्भाधान आदि की क्रिया की सविधि परिकल्पना करनी चाहिए।।४४।।

फिर हवन को समाप्त कर दीक्षित राजा को हाथी, घोड़ा, सेना, स्वर्ण, ग्राम आदि गुरु को दक्षिणा स्वरूप में प्रदान करना चाहिए।।४५।।

सुधी साधक यदि मध्यम कोटि का हो, तो मध्यम कोटि की ही दक्षिणा प्रदान करे तथा ऐसे ही अन्य प्रकार के जन स्वर्ण सहित दो वस्त्र प्रदान करें।।४६।।

एवं कृते तु यत्पुण्यं माहात्म्यं जायते धरे। तन्न शक्यं तु गदितुमपि वर्षशतैरपि॥४७॥
दीक्षितात्मा पुरा भूत्वा वाराहं श्रृणुयाद् यदि। तेन वेदपुराणानि सर्वे मन्त्राः ससंग्रहाः॥४८॥
जप्ताः स्युः पुष्करे तीर्थे प्रयागे सिन्धुसागरे। देवागारे कुरुक्षेत्र वाराणस्यां विशेषतः॥४९॥
ग्रहणे विषुवे चैव यत्फलं जपतां भवेत्। तत्फलं द्विगुणं तस्य दीक्षितो यः श्रृणोति च॥५०॥
देवा अपि तपः कृत्वा ध्यायन्ते च वदन्ति च। कदा नो भारते वर्षे जन्म स्याद् भूतधारिणि।
दीक्षिताश्च भविष्यामो वाराहं श्रृणुमः कथम्॥५१॥
वाराहं षोडशात्मानं त्यक्त्वा देहं कदा वयम्। यास्यामः परमं स्थानं यं गत्वा न पुनर्भवेत्॥५२॥
एवं जल्पन्ति विबुधा मनसा चिन्तयन्ति च। वराहयागं कार्तिक्यां कदा द्रक्ष्यामहे धरे॥५३॥
एष ते विधिरुद्दिष्टो मयाऽयं भूतधारिणि। देवगन्धर्वयक्षाणां सर्वदा दुर्ल्लभा ह्यसौ॥५४॥
एवं यो वेत्ति तत्त्वेन यश्च पश्यति मण्डलम्। यश्चेमं श्रृणुयाद् देवि सर्वे मुक्ता इति श्रुतिः॥५५॥

धरण्युवाच

यत्त्वया कथितं देव द्वादशीनां फलं मम। तदायुषः स्वल्पतया मर्त्यैः प्राप्तुं न शक्यते॥५६॥

हे पृथ्वि! इस प्रकार से जो जन पुण्य और माहात्म्य स्वरूप होता है, उसका वर्णन सैकड़ों वर्षों में भी नहीं हो सकता है।।४७।।

इस प्रकार प्रथम दीक्षित होकर इस वाराहपुराण का श्रवण करने वाला मनुष्य द्वारा समस्त वेद, पुराण और संग्रह के साथ समस्त मन्त्रों का जप सम्पन्न होने जैसा होता है।।४८।।

विशेष रूप से पुष्करतीर्थ, प्रयाग, गङ्गासागर, देवमन्दिर, कुरुक्षेत्र, वाराणसी, ग्रहण, सक्रान्ति, आदि स्थान और काल में जप करने वाले को जैसा फल प्राप्त होता है, उसका दोगुना फल उसे प्राप्त हो जाता है, जो दीक्षित होकर वाराहपुराण को सुनता है।।४९-५०।।

हे भूतधारिणि पृथ्वि देवि! देवगण भी तपस्या करते हुए यह कामना करते हैं और कहते हैं कि भारतवर्ष में कब हम उत्पन्न होंगे और किस तरह से दीक्षित होकर 'वाराहपुराण' का श्रवण कर सकेंगे।।५१।।

हम कब अपने षोडशात्मक शरीर का त्याग कर वाराह देव के उस श्रेष्ठ स्थान पर जा सकेंगे, जहाँ पर जाकर पुनः जन्म नहीं लेना पड़ता है।।५२।।

हे पृथ्वि! देवताओं द्वारा इस तरह कहा और विचार किया जाता है कि कार्त्तिक मास में हम सभी कब 'वाराहयाग' होते देख सकेंगे।।५३।।

हे भूतधारिणि! मेरे द्वारा तुम्हें इस विधि को कहा गया, जो देवों, गन्धर्वों, यक्षों आदि के लिए भी सदा सर्वदा दुर्लभ है।।५४।।

हे देवि! जो जन इसे वास्तविक रूप से जानते हैं, जो जन मण्डल का दर्शन करते हैं और जो जन इसे सुनते हैं, वे सब जन मुक्त हो जाया करते हैं। ऐसा श्रुतियों में कहा गया है।।५५।।

धरणी ने कहा कि हे देव! आपके द्वारा मुझसे जो द्वादशी का फल बतलाया गया है, वह अल्पायु मनुष्यों द्वारा नहीं प्राप्त किया जा सकता है।।५६।।

अल्पायासेन येन स्यात् संवत्सरमुपोषितम्। तन्मे भवेत् सुरश्रेष्ठ कथयस्व महाफलम्॥५७॥

श्रीवराह उवाच

इममर्थं पुरा देवि श्वेतो राजा महायशाः। वसिष्ठं पृष्टवान् स्वर्गे क्षुधासंपीडितो भृशम्॥५८॥

आसीदिलावृते वर्षे श्वेतो नाम महामनाः। स महीं सकलां देवीं सपत्तनवनद्रुमाम्।
दातुमिच्छन् स चोवाच वसिष्ठो तपसां निधिम्॥५९॥

भगवन् दातुमिच्छामि ब्राह्मणेभ्यो वसुंधराम्। देह्यनुज्ञां स चोवाच वसिष्ठो राजसत्तमम्॥६०॥

अन्नदानं ददद् राजन् सर्वकालसुखावहम्। अन्नेन चैव दत्तेन किं न दत्तं महीतले॥६१॥

सवषामेव दानानामन्नदानं विशिष्यते। अन्नाद् भवन्ति भूतानि अन्नेनैव च वर्द्धते॥६२॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन अन्नं ददस्व भूपते। तदवज्ञाय राजाऽसौ वसिष्ठं वाक्यमब्रवीत्।
किं वस्तु सति ते चान्नं यद् वा देयं वदेत् किल॥६३॥

रत्नवस्त्रानलंकारान् श्रीमांश्च नगराणि च। दत्तवान् ब्राह्मणेभ्योऽथ कुञ्जरानजिनानि च॥६४॥

स कदाचिन् नृपः पृथ्वीं जित्वा परमधर्मवित्। पुरोहितमुवाचेदं वसिष्ठं जपतां वरम्।
भगवन्नश्वमेधानां सहस्त्र कर्तुमुत्सहे॥६५॥

हे सुरश्रेष्ठ! थोड़े ही परिश्रम करने से एक वर्ष अन्तराल की आराधना-व्रत करने से जो महाफल हो सकता हो, वे सब मुझसे कहें।।५७।।

श्री भगवान् वाराह ने कहा कि हे देवि! पुरातन काल में इसी प्रसङ्ग को स्वर्ग में भूख से अतिशय पीड़ित महायशस्वी राजा श्वेत द्वारा महर्षि वशिष्ठ से पूछा गया था।।५८।।

पुरातन काल में इलावृत नाम के वर्ष में महामना श्वेत नाम का एक राजा हुआ था। उसके द्वारा नगर, वन और वृक्षों से युक्त अखिल पृथ्वी देवी का दान करने की इच्छा से तपोनिधि वशिष्ठ से पूछा गया था—।।५९।।

हे भगवन्! मैं ब्राह्मणों को पृथ्वी दान करना चाहता हूँ। अतः आप मुझे इसके लिए आज्ञा प्रदान करें। उन वशिष्ठ ने उन श्रेष्ठ राजा से इस प्रकार कहा—।।६०।।

हे राजन्! ऐसे तो अन्न का दान देना समस्त कालों में सुखप्रद कहा ही गया है, और फिर अन्न प्रदान कर देने के बाद पृथ्वी पर का क्या नहीं दे दिया गया?।।६१।।

समस्त दानों में अन्नदान विशेष रूप से विशिष्ट होता है। चूँकि अन्न से ही प्राणी की उत्पत्ति होती है और वे सभी अन्न से वृद्धि को भी प्राप्त करते हैं।।६२।।

अतश्च हे राजन्! विभिन्न प्रकार के प्रयासों से अन्न दान करो। इस प्रकार के वशिष्ठ के वचन की उपेक्षा कर उस राजा ने वशिष्ठ से कहा कि आपका यह अन्न क्या वस्तु है अर्थात् बहुत तुच्छ वस्तु है, जिनका दान करने को योग्य कहते हैं।।६३।।

फिर राजा ने ब्राह्मणों को रत्न, वस्त्र, अलंकरण, सुसम्पन्न नगर, हाथी और मृगचर्मों का दान किया।।६४।।

एक समय धर्मज्ञ श्रेष्ठ राजा ने पृथ्वी को जीतकर नायकों में श्रेष्ठ पुरोहित वशिष्ठ से इस प्रकार कहा कि हे भगवन्! मैं सहस्त्रों अश्वमेध करना चाहता हूँ।।६५।।

सुवर्णरत्नरौप्याणि यागं कृत्वा द्विजातिषु। दत्तानि तेन राज्ञा वै नान्नं दत्तं तथा जलम्।
स्वल्पं वस्तुमिति ज्ञात्वा सोऽन्नं तु न ददत् प्रभुः॥६६॥
एवं विभवयुक्तस्य तस्य राज्ञो महात्मनः। कालधर्मवशाद् देवि मृत्युः समभवत् तदा॥६७॥
परलोके वर्तमानः स च राजा महामनाः। क्षुधया पीडितो ह्यासीत् तृषया च विशेषतः॥६८॥
तृषया पीड्यमानस्तु क्षुधया राजसत्तमः। आनिनायाप्सरो भोगं गत्वा श्वेताख्यपर्वतम्॥६९॥
तत्र प्राग्जन्ममूर्त्तिं च पुरा दग्धां महात्मनः। तत्रास्थीनि स संगृह्य लिहन्नास्ते स पार्थिवः।
पुनर्विमानमारुह्य दिवमाचक्रमे नृपः॥७०॥
अथ कालेन महता स राजा शंसितव्रतः। तान्यस्थीनि लिहन् दृष्टो वसिष्ठेन महात्मना।
उक्तश्च तेन किं त्वं स्वास्थि भुङ्क्षे नराधिप॥७१॥
एवमुक्तस्तदा राजा वसिष्ठेन महर्षिणा। उवाच वचनं चेदं श्वेतो राजा मुनिं तदा॥७२॥
भगवन् क्षुधितोऽस्म्यन्तरन्नपानं पुरा मया। न दत्तं मुनिशार्दूल तेन मे दारुणा क्षुधा॥७३॥
एवमुक्तस्ततो राज्ञा वसिष्ठो मुनिपुंगवः। उवाच च मुनिर्भूयो वाक्यं श्वेतं महानृपम्॥७४॥
किं ते करोमि राजेन्द्र क्षुधितस्य विशेषतः। अदत्तं नोपतिष्ठेत् कस्यचित् किंचिदुत्तमम्॥७५॥

फिर यज्ञ करने के बाद उसी राजा ने ब्राह्मणों को सोना, रत्नों और चाँदी का दान दिया, परन्तु अन्न और जल दान नहीं किया। उस राजा ने अन्न को तुच्छ समझ कर उसका दान नहीं किया।।६६।।

हे देवि! इस प्रकार से विभव सम्पन्न उस महात्मा राजा की मृत्यु काल के धर्म क्रम से हो गई।।६७।।

लेकिन परलोक वास करता हुआ वह महामना राजा विशेष रूप से भूख और प्यास से अत्यन्त पीड़ा का अनुभव किया।।६८।।

इस तरह भूख और प्यास सम्पीड़ित उस श्रेष्ठ राजा ने श्वेत नाम के पर्वत पर पहुँच कर अप्सराओं का भोग किया।।६९।।

वहीं पर उस महात्मा राजा ने अपने पूर्वजन्म के देह के अधजली हड्डियों को एकत्रित कर स्वयं राजा उन्हें चाटता हुआ विमान पर आरूढ़ होकर स्वर्ग को चला गया।।७०।।

तत्पश्चात् बहुत समय व्यतीत होने पर महात्मा वशिष्ठ ने उस राजा को उन हड्डियों को चाटता हुआ देखा। तब वे उससे कहते हैं कि हे राजन्! तुम अपनी ही हड्डियाँ क्यों खाये जा रहे हो।।७१।।

उस महर्षि वशिष्ठ के इस प्रकार से कहे जाने पर राजा श्वेत ने उस समय उन मुनि श्रेष्ठ से इस प्रकार का वचन कहा—।।७२।।

हे भगवन्! मैं अन्दर से भूखा हूँ। पुरातन समय में मैंने अन्न और जल का दान नहीं किया। हे श्रेष्ठ मुनि! इससे मुझे भयंकर भूख अनुभव हुआ करती है।।७३।।

तत्पश्चात् राजा के इस प्रकार से कहे जाने पर श्रेष्ठमुनि ने पुनः महाराज श्वेत से इस प्रकार के वाक्य कहा—।।७४।।

हे राजेन्द्र! विशेष रूप से भूखे हो, तुम्हारे लिए इस समय मैं क्या करूँ? विना दान किये, किसी को कोई श्रेष्ठ वस्तु नहीं मिल पाती है।।७५।।

रत्नहेमप्रदानेन भोगवान् जायते नरः। अन्नदानप्रदानेन सर्वकामैस्तु तर्पितः।
तन्न दत्तं त्वया राजन् स्तोकं मत्वा नराधिप॥७६॥

श्वेतउवाच

अदत्तस्य च सम्प्राप्तिस्तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः। शिरसा भक्तियुक्तेन याचितोऽसि महामुने॥७७॥

वसिष्ठ उवाच

अस्त्येकं कारणं येन जायते तन्न संशयः। तच्छृणुष्व नरव्याघ्र कथ्यमानं मयाऽनघ॥७८॥
आसीद् राजा पुराकल्पे विनीताश्वेति विश्रुतः। स सर्वमेधमारेभे स्वयं क्रतुवरं नृप॥७९॥
यजयताऽनेन विप्रेभ्यो दत्ता गावो द्विपा पसु। नान्नं तेन तदा दत्तं स्वल्पं मत्वा यथा त्वया।
ततः कालेन महता मृतोऽसौ जाह्नवीजले॥८०॥
कृत्वा पुण्यं विनीताश्वः सार्वभौमो नृपो महान्।
स्वर्गं च गतवान् सोऽपि यथा राजन् भवान् प्रभो॥८१॥
द्रुसावपि क्षुधाविष्ट एवमेव गतो नृपः। मर्त्यलोके नदीतीरं गङ्गायां नीलपर्वतम्॥८२॥
विमानेनार्कवर्णेन भास्वता देववन्नृपः। ददर्श च तदा राजा क्षुधितः स्वं कलेवरम्॥८३॥

रत्न और स्वर्ण का दान किये जाने पर मनुष्य भोगवान् होता है। परन्तु अन्न का दान करने से मनुष्य की समस्त कामनायें संतृप्त हुआ करती हैं। हे राजन्! उस अन्न को तुच्छ समझ कर कभी भी तुमने दान नहीं किया।।७६।।

श्वेत राजा ने कहा कि मुझ जैसे पूछने वाले को आप यह कहें कि दान में न दिये गये वस्तु की प्राप्ति किस प्रकार हो सकती है। हे महामुनि! भक्तिभाव से प्रणामपूर्वक आपसे निवेदन करता हूँ।।७७।।

वशिष्ठ ने कहा कि एक कारण है, जिससे निःसंशय उसका समाधान प्राप्त हो सकता है, अर्थात् नहीं दिया हुआ पदार्थ भी प्राप्त किया जा सकता है। हे निष्पाप उत्तम पुरुष!! मेरे द्वारा उसको कहा जा रहा है, तुम सुनो— ।।७७।।

हे राजन्! पूर्व कल्प में विनीताश्व नामक एक प्रसिद्ध राजा हुआ था। उस राजा के द्वारा स्वयं सर्वमेध नाम का श्रेष्ठ यज्ञ शुभारम्भ किया गया।।७९।।

यज्ञ के क्रम में उस राजा ने ब्राह्मणों को गायों, हाथियों, धन आदि का दान किया, परन्तु उसके द्वारा तब आपकी तरह अन्न को महत्त्वहीन समझकर उसका दान नहीं किया गया। फिर कुछ काल के बाद वह गङ्गा के जल में मृत्यु को प्राप्त हो गया।।८०।।

हे प्रभो! हे राजन्! आपकी तरह ही वह सार्वभौम महाराज विनीताश्व भी पुण्य करने के कारण स्वर्ग को चला गया।।८१।।

फिर आपकी तरह वह राजा भी भूख के कारण पीड़ा सहन करते हुए मर्त्यलोक में गङ्गा के तट पर अवस्थित नीलपर्वत पर पहुँच गया।।८२।।

सूर्य के समान वर्ण युक्त विमान से उस देव तुल्य भूखे राजा ने तब अपने शरीर को देख लिया।।८३।।

पुरोहितं ददर्शाथ होतारं जाह्नवीतटे। तं दृष्ट्वाऽसावपि नृपः पप्रच्छ मुनिसत्तमम्।
क्षुधायाः कारणं किं मे स होता तमुवाच ह॥८४॥
तिलधेनुं भवान् राजन् जलधेनुं च सत्तम। घृतधेनुं दधिधेनुं रसधेनुं च पार्थिव॥८५॥
देहि शीघ्रं येन भवान् क्षुधया वर्जितो भवेत्। तपते यावदादित्यस्तपते वाऽपि चन्द्रमाः॥८६॥
एवमुक्तस्ततो राजा तं पुनः पृष्टवानिदम्। तिलधेनोर्विधानं तु विनीताश्वो नराधिपः॥८७॥

विनीताश्व उवाच

कथं सा दीयते ब्रह्मंस्तिलधेनुर्जिगीषुभिः। भुङ्क्ते स्वर्गं च विप्रेन्द्र तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः॥८८॥

होता उवाच

विधानं तिलधेनोस्तु त्वं शृणुष्व नराधिप॥८९॥
चतुर्भिः कुडवैश्चैव प्रस्थ एकः प्रकीर्तितः। तैः षोडशैः भवेत् सा तु चतुर्भिर्वत्सको भवेत्॥९०॥
इक्षुदण्डमयाः पादा दन्ता पुष्पमयाः शुभाः। नासा गन्धमयी तस्या जिह्वा गुडमयी शुभा॥९१॥
पुच्छे स्रक् कल्पनीया स्याद् घटाभरणभूषिता। ईदृशीं कल्पयित्वा तु स्वर्णशृङ्गीं तु कारयेत्॥९२॥
कांस्यदोहां रौपयखुरां पूर्वधेनुविधानतः। कृत्वा तां ब्राह्मणायाशु दापयेत नराधिप॥९३॥

तत्पश्चात् गङ्गा के किनारे पर यज्ञ करने वाले अपने पुरोहित को उसने देखा, जिसे देखते ही उस राजा ने भी श्रेष्ठ मुनि से पूछा कि मेरे भूख का कारण क्या है? फिर यज्ञ कर रहे उस मुनि ने उस राजा से कहा—।।८४।।

हे सत्तमं राजन्! आपको शीघ्र ही तिलधेनु, जलधेनु, घृतधेनु, दधिधेनु, रसधेनु आदि धेनु का दान करना चाहिए।।८५।।

जिससे आप उस समय तक के लिए भूख से मुक्त हो जायँ, जिस समय तक सूर्य और चन्द्र का प्रकाश विद्यमान रहता है।।८६।।

उस मुनि के द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर राजा विनीताश्व फिर से इस तिलधेनु के विधि-विधान को जानने की जिज्ञासा की।।८७।।

विनीताश्व ने पूछा कि हे श्रेष्ठ विप्र! मुझ जैसे पूछने वाले को यह बतलायें कि तिलधेनु किस प्रकार से दी जा सकती है, जिससे स्वर्ग और उसका भोग भी प्राप्त होता है।।८८।।

इस प्रकार की जिज्ञासा को सुनकर यज्ञकर्त्ता होता ने कहा कि हे राजन्! आप अब तिलधेनु का विधान सुनें।।८९।।

जहाँ चार कुडव का एक प्रस्थ होता है। ऐसे सोलह प्रस्थों के तिल से वह तिलधेनु तैयार किया जाता है। फिर चार प्रस्थों से बछड़ा बन जाता है।।९०।।

ईख के दण्ड से उस धेनु के पैर बनाने चाहिए और पुष्पों से उसके पवित्र दाँत, उसके नाक गन्ध से तथा जिह्वा गुड़ से बनायी जाती है।।९१।।

उस तिलधेनु की पूँछ में पुष्पों की माला लगाते हुए उस धेनु को घण्टा और आभूषणों से विभूषित करना चाहिए। ऐसी धेनु बनाने के बाद उसके शृङ्ग को सोने का लगाना चाहिए।।९२।।

हे राजन्! पहले बताये हुए धेनु के विधि की अनुरूप उसके काँसे का स्तन और चाँदी के खुर बनवाने चाहिए। तत्पश्चात् उस धेनु को ब्राह्मण को शीघ्र दानकर देना चाहिए।।९३।।

कृष्णाजिनं धेनुवासो नन्दितां कल्पितां शुभाम्। सूत्रेण सूत्रितां कृत्वा सर्वरत्नसमन्विताम्।
सर्वौषधिसमायुक्तां मन्त्रपूतां तु दापयेत्॥९४॥

अन्नं मे जायतामन्यत् पानं सर्वरसास्तथा। सर्वं संपादयास्माकं तिलधेनो द्विजार्पिते॥९५॥

गृह्णामि देवि त्वां भक्त्या कुटुम्बार्थं विशेषतः।
भजस्व कामान् मां देवि तिलधेनो नमोऽस्तु ते॥९६॥

एवंविधां ततो दद्यात् तिलधेनुं नृपोत्तम। सर्वकामसमावाप्तिं कुरुते नात्र संशयः॥९७॥

यश्चेदं शृणुयाद् भक्त्या कुर्यात् कारयतेऽपि वा। सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं च गच्छति॥९८॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे अष्टनवतितमोऽध्यायः॥

उस दान किये जाने वाले धेनु का वस्त्र कृष्णवर्ण के मृगचर्म का होना चाहिए। एवं सूत्र द्वारा आवेष्टित कर समस्त रत्नों और सर्वौषधियों के साथ अभिमन्त्रित पवित्र कल्पित शुभ धेनु का दान करना चाहिए।।९४।।

फिर दानदाता को इस तरह बोलना चाहिए कि ब्राह्मण को दी जा रही हे तिलधेनु! मुझे अन्न, जल, समस्त रस आदि प्राप्त हों। मुझे समस्त पदार्थ की पूर्त्ति करो।।९५।।

फिर दान लेने वाले ब्राह्मण को इस तरह बोलना चाहिए कि हे देवि! मैं विशेष भक्तिभाव से कुटुम्ब के हेतु आपको ग्रहण कर रहा हूँ। हे देवि मेरी कामनायें पूर्ण करो। हे तिलधेनु! आपको प्रणाम है।।९६।।

हे नृपोत्तम! इस तरह से तिलधेनु दान किया जाना चाहिए। इससे मनुष्य की समस्त कामनायें पूर्ण हो जाया करती हैं। इसमें संशय नहीं है।।९७।।

जो जन भक्ति भाव से सम्पन्न होकर इस प्रसङ्ग का श्रवण करता, या करवाता है, वह समस्त पापों से रहित होकर विष्णु के धाम (लोक) को जाता है।।९८।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में विष्णु अर्चन-दीक्षा विधि और अन्नदान सहित तिल धेनु दान माहात्म्य नामक अनठानबेवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायण-कुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥९८॥

❖❖❖

नवनवतितमोऽध्यायः

अथ जलधेनुदानविधिः

होता उवाच

जलधेनुं प्रवक्ष्यामि पुण्येऽह्नि विधिपूर्वकम्। गोमये मण्डलं कृत्वा गोचर्म तदनन्तरम्।।१।।
तत्र मध्ये च राजेन्द्र पूर्णकुम्भं तु विन्यसेत्। जलपूर्णं सुगन्धाढ्यं कर्पूरागुरुचन्दनैः।
वासितं गन्धतोयेन तां धेनुं परिकल्पेयत्।२।।
वत्सं तथापरं कल्प्य घृतेन परिपूरितम्। वर्द्धनीकं महाराज पत्रपुष्पैः समन्वितम्।
दुर्वाङ्करैरुपस्तीर्य स्रग्दामैश्च विभूषितम्।।३।।
पञ्चरत्नानि निक्षिप्य तस्मिन् कुम्भे नराधिप। मांसीमुशीरं कुष्ठं च तथा शैलेयबालुकम्।।४।।
आमलाः सर्षपाः श्वेताः सर्वधान्यानि पार्थिव। चतुर्दिक्ष्वपि पात्राणि चत्वार्येव प्रकल्पयेत्।।५।।
एकं घृतमयं पात्रं द्वितीयं दधिपूरितम्। तृतीयं मधुनश्चैव चतुर्थं शर्करावृतम्।।६।।
सुवर्णमखचक्षूंषि शृङ्गाः कृष्णागरेषु च। प्रशस्तपत्रश्रवणं मुक्ताफलमयेक्षणाम्।।७।।
ताम्रपृष्ठां कांस्यदोहां दर्भरोमसमन्विताम्। पुच्छं सूत्रमयं कृत्वा कृष्णाभरणघण्टिकाम्।।८।।

अध्याय-९९

जलधेनु दान और माहात्म्य

होता ने कहा कि एतदनन्तर यहाँ मैं जलधेनु दान के विधान को कहने जा रहा हूँ! किसी पवित्र दिन सविधि गोमय से मण्डल बनाने के बाद गोचर्म प्रमाण तुल्य भूमि अर्थात् १० हाथ चौड़ी और १५ हाथ लम्बी भूमि को अधिकृत करना चाहिए।।१।।

हे राजेन्द्र! उस मण्डल के मध्य में जलपूर्ण, सुगन्ध युक्त, कर्पूर, अगरु, चन्दन आदि वासित और सुगन्धित जल से भरा हुआ पूर्णघट का स्थापन करना चाहिए! जहाँ उस पूर्ण घट या कुम्भ को ही धेनु समझना चाहिए।।२।।

हे महाराज! घृत परिपूरित, दूर्वाङ्कुर से आच्छादित और मालाओं से विभूषित अन्य घट को उस धेनु की बछड़ा के रूप में कल्पना करनी चाहिए।।३।।

हे राजन्! उस कुम्भ में पाँच रत्न, जटामांसी, खस, कूट, पत्थर का बालू आदि डाल देना चाहिए।।४।।

और हे राजन्! उस कुम्भ में ही आँवला, श्वेत सरसों और सभी धान्य डालना चाहिए। फिर चारों दिशाओं में चार पात्रों की कल्पना करनी चाहिए।।५।।

जिनमें से एक पात्र घृतपूर्ण, दूसरा दधिपूर्ण, तीसरा मधुपूर्ण और चौथा शर्करापूर्ण होना चाहिए।।६।।

फिर स्वर्ण का मुख और नेत्र, कृष्णवर्ण के अगर का सींग, विस्तारित पत्रों के कान और नेत्र छिद्र में मोती, ताम्बे की पीठ,, काँसे का दुग्धस्थान, रोम कुशाओं का, सूत्र से बनी पूँछ और लोहे की घण्टी बनानी चाहिए।।७-८।।

कम्बले पुष्पमालां च गुडास्यां शुक्तिदन्तिकाम्। जिह्वां शर्करया कृत्वा नवनीतेन च स्तनम्।
इक्षुपादां तु राजेन्द्र गन्धपुष्पोपशोभिताम्॥९॥
कृष्णाजिनोपरि स्थाप्य वस्त्रैराच्छादितां तु ताम्। गन्धपुष्पैः समभ्यर्च्य विप्राय विनिवेदयेत्॥१०॥
एवं धेनुं तदा दत्वा ब्राह्मणे वेदपारगे। साधुविप्राय राजेन्द्र श्रोत्रियायाहिताग्नये।
तपोवृद्धे वयोवृद्धे दातव्यं च कुटुम्बिने॥११॥
यो ददाति नरो राजन् पश्यति च शृणोति च। प्रतिगृह्णाति यो विप्रः सर्वे तरन्ति दुष्कृतम्॥१२॥
ब्रह्महा दस्युहा गोघ्नः सुरापो गुरुतल्पगः। विमुक्तः सर्वपापैस्तु विष्णुलोकं स गच्छति॥१३॥
योऽश्वमेधेन यजते समाप्तवरदक्षिणः। जलधेनुः च यो दद्यात् सममेतन्नराधिप॥१४॥
जलाहारस्त्वेकदिनं तिष्ठेच्च जलधेनुदः। अथ पयोव्रतस्तिष्ठेदेकाहं व्रतमास्थितः।
ग्राहकोऽपि त्रिरात्रं वै तिष्ठेदेवं न संशयः॥१५॥
यत्र क्षीरवराह नद्यो मधुपायकर्दमाः। यत्र चाप्सरसां गीतं तत्र यान्ति जलप्रदाः॥१६॥
दाता च दापकश्चैव प्रतिग्राहो च यो द्विजः। सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुमेति न संशयः॥१७॥

हे राजेन्द्र! कम्बल और फूल की माला से युक्त गुड़ का मुख, सीपी का दाँत, शर्करा की जीभ, मक्खन का स्तन, ईख का पैर बनाना चाहिए। फिर गन्ध और पुष्प से सुशोभित, वस्त्र से आच्छादित उस धेनु को काले हिरण के चर्म पर स्थापित करना चाहिए। फिर गन्ध-पुष्प आदि से पूजा करने के बाद उसे ब्राह्मण को दान करनी चाहिए।।९-१०।।

हे राजेन्द्र! इस तरह से वेदपारगामी, श्रोत्रिय, आहिताग्नि, तपोवृद्ध, वयोवृद्ध कुटुम्बी सज्जन ब्राह्मण को धेनु का दान करना चाहिए।।११।।

हे राजन्! जो जन दान करने वाला होता है, दान करते हुए देखने वाला है, इस प्रकार के दान करने के विधान को सुनता है, तथा जो ब्राह्मण यह दान लेता है, वे सभी जन पापों से रहित हो जाया करते हैं।।१२।।

इस दान का माहात्म्य ही है कि ब्रह्महत्या करने वाला, दस्युओं कीहत्या करने वाला, सुरापान करने वाला, गुरुपत्नी के साथ सहवास करने वाला आदि जन भी इस जलधेनु के दान से समस्त पापों से रहित होकर विष्णुलोक को प्राप्त होता है।।१३।।

हे राजन्! जो जन अश्वमेध यज्ञ करता है और यज्ञ में श्रेष्ठ दक्षिणा देता है तथा जो जलधेनु का दान करता है, वे दोनों समान होते हैं।।१४।।

जलधेनु दान करने वाला एक दिन जलाहार कर एक दिन दुग्धाहार करे फिर व्रत करे। दान लेने वाला भी निःसंशय इसी प्रकार तीन रात्रियों तक व्रत को धारण करे।।१५।।

जलधेनु को दान करने वाला, उस स्थान पर जाता है, जहाँ नदियों में दूध की धारा बहा करती है। मधु और खीर का कर्दम होता है और अप्सराओं का गान होता रहता है।।१६।।

दान करने वाला, दान दिलाने वाला और दान लेने वाला ब्राह्मण; ये सभी निःसंशय समस्त पापों से रहित होकर विष्णु के समीप जाता है।।१७।।

जलधेनुविधानं यः शृणुयात् कीर्त्तयेत् वा। सर्वपापविनिर्मुक्तः स्वर्गमेति जितेन्द्रियः॥१८॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे नवनवतितमोऽध्यायः॥९९॥

शततमोऽध्यायः

अथ रसधेनुदानविधिः

होता उवाच

रसधेनुविधानं ते कथयामि समासतः। अनुलिप्ते महीपृष्ठे कृष्णाजिनकुशोत्तरे॥१॥
रसस्य तु घटं राजन् संपूर्णं स्थापयेत् ततः। तुरीयांशेन वत्सं तु तत्पार्श्वे स्थापयेत् सुधीः॥२॥
एवं कार्या रसधेनुरिक्षुपादसमन्विता। सुवर्णशृङ्गाभरणा वस्त्रपुच्छा घृतस्तनी।
पुष्पकम्बलसंसक्ता शर्करामुखजिह्विका॥३॥
दन्ताः फलमयास्तस्याः पृष्ठे ताम्रमयीं शुभाम्। पुष्परोमां तु राजेन्द्र मुक्ताफलकृतेक्षणाम्॥४॥

जो जलधेनु के विधान के बारे में सुनता है अथवा उसका वर्णन करता है, वह जितेन्द्रिय मनुष्य सर्वपापों से रहित होकर स्वर्ग में निवास करता है।।१८।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में जलधेनु दान और माहात्म्य नामक निन्याबेवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥९९॥

अध्याय-१००

रसधेनु दान विधि और माहात्म्य

होता ने कहा कि मैं आपको सारांश में ही रसधेनु के विधान का वर्णन करने जा रहा हूँ। इसके लिए लिपी हुई भूमि पर कुशा रखकर उस पर कृष्ण मृगचर्म को बिछा देना चाहिए।।१।।

हे राजन्! एतदनन्तर सुधी मनुष्य सम्पूर्ण रसघट धेनु स्वरूप और उसका चतुर्थांश का बछड़ा उसके पार्श्व में स्थापित करना चाहिए।।२।।

फिर उक्त प्रकार से तैयार रसधेनु को ईख के पैरों से युक्त करना चाहिए। उसके लिए स्वर्ण के सींग से सुशोभित, वस्त्र के पूँछ, घृत का स्तन, पुष्प और कम्बल से संयुक्त और शर्करा के मुख व जिह्वा वाली धेनु बनानी चाहिए।।३।।

हे राजेन्द्र! इस शुभ रसधेनु के दाँत फल का, पृष्ठ ताँबे का, पुष्पों का रोम और मुक्ता फल का नेत्र बनाने चाहिए।।४।।

सप्तव्रीहिसमायुक्तां चतुर्दिक्षु च दीपिकाम्। सर्वोपस्करसंयुक्तां सर्वगन्धाधिवासिताम्।
चत्वारि तिलपात्राणि चतुर्दिक्षु निवेशयेत्॥५॥
ब्रह्मणे वेदविदुषे श्रोत्रियायाहिताग्नये। पुराणज्ञे विशेषेण साधुवृत्ताय धीमते।
तादृशाय प्रदातव्या रसधेनुः कुटुम्बिने॥६॥
दाता स्वर्गमवाप्नोति सर्वपापविवर्जितः। दाता च ग्राहको वाऽथ एकाहं रसभोजने॥७॥
सोमपानफलं तस्य सर्वक्रतुफलं भवेत्। दीयमानां तु पश्यन्ते ते यान्ति परमां गतिम्॥८॥
धेनुं च पूजयित्वाऽग्रे गन्धधूपस्त्रगादिभिः। पूर्वोक्तानि च मन्त्राणि तानि च प्रयतः स्मरेत्॥९॥
एवमुच्चारयित्वा तु दीयते वै द्विजोत्तमे। दश पूर्वान् परांश्चैव आत्मानं चैकविंशकम्।
प्रापयेत् परमं स्थानं स्वर्गान्नावर्तते पुनः॥१०॥
एषा ते कथिता राजन् रसधेनुरनुत्तमा। ददस्व च महाराज परं स्थानं तथाप्नुहि॥११॥
य इदं पठते नित्यं शृणुयादथ भक्तितः। सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते॥१२॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे शततमोऽध्यायः॥१००॥
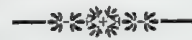
फिर उसे सात प्रकार के धान्यों से युक्त करना चाहिए। फिर उसके चारों ओर दीप जलाना चाहिए। फिर वहाँ समस्त सामग्रियों से युक्त कर समस्त गन्धों से सुवासित करना चाहिए। फिर उसके चारों दिशाओं में चार तिलपात्र स्थापित करनी चाहिए।।५।।

फिर वेद को जानने वाले, श्रोत्रिय, आहिताग्नि, विशेष रूप से पुराण मर्मज्ञ, सुन्दर चरित्र वाले, कुटुम्बी चतुर ब्राह्मण आदि में से किसी को यह रसधेनु दान करनी चाहिए।।६।।

इस रसधेनु का दान करने वाला हर प्रकार के पापों से रहित हो जाता है। इस प्रकार दान करने वाला, दान लेने वाला एक दिन उस रस का आहार ग्रहण करें।।७।।

इससे उनको सोमपान और सर्वमेघ यज्ञ करने का फल मिलता है। जो व्यक्ति इस प्रकार की रसधेनु को दान में देते हुए देखते हैं, वे परमगति प्राप्त कर पाते हैं।।८।।

यहाँ सर्वप्रथम समक्ष अवस्थित रसधेनु का गन्ध, धूप, माला आदि से पूजन करना चाहिए। फिर पूर्वोक्त मन्त्रों का सप्रयत्न उच्चारण करना चाहिए। फिर मन्त्र उच्चारणपूर्वक श्रेष्ठ ब्राह्मण को रस धेनु दान करना चाहिए। इस प्रकार से दान करने वाला मनुष्य दस पूर्व के और दस बाद के वंशजों को तथा स्वयं को भी लेकर अपने इक्कीस पीढ़ियों को श्रेष्ठ स्थान प्राप्त करने का अवसर सुलभ कर पाता है। फिर वह स्वर्ग पुनर्वापसी नहीं होता।।९-१०।।

हे राजन्! आपको रसधेनु दान का यह उत्तम विधि बतलायी गई है। हे महाराज! आप इसका दान कर परम स्थान को प्राप्त करें।।११।।

जो कोई जन इसका नित्य पाठ करता है, अथवा भक्तिभाव से इसे सुनता है, वह समस्त पापों से रहित होकर विष्णुलोक में भी पूजास्पद हो जाता है।।१२।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में रसधेनु दान विधि और माहात्म्य नामक सौवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१००॥

❖❖❖

एकाधिकशततमोऽध्यायः

अथ गुड़धेनुदानविधिः

होता उवाच

गुडधेनुं प्रवक्ष्यामि सर्वकामार्थसाधिनीम्। अनुलिप्ते महीपृष्ठे कृष्णाजिनकुशास्तृते।
तस्योपरि कृतं वस्त्रं गुडमानीय पुष्कलम्॥१॥

कृत्वा गुडमयीं धेनुं सवत्सां कांस्यदोहनीम्। सौवर्णमुखशृङ्गं च दन्ताश्च मणिमौक्तिकैः॥२॥

ग्रीवा रत्नमयी त्वस्या घ्राणं गन्धमयं तथा। शृङ्गौ चागुरुकोन पृष्टिं ताम्रमयीं तथा॥३॥

कांस्योपदोहनं तस्याः पुच्छं क्षौममयं स्मृतम्। इक्षुपादां रौप्यखुरां कम्बले पट्टसूत्रकम्॥४॥

आच्छाद्य वस्त्रयुग्मेन घण्टाचामरभूषिताम्। कांस्योपदोहनीं पात्रीं सर्वाभरणभूषिताम्॥५॥

प्रशस्तपत्रश्रवणां नवनीतस्तनीं बुधः। फलैर्नानाविधैस्तस्या उपशोभं प्रकल्पयेत्॥६॥

उत्तमा गुडधेनुः स्यात् सदा भारचतुष्टयम्। मागधेन तु तौल्येन चतुर्थांशेन वत्सकम्॥७॥

मध्यमा च तदर्धेन भारेणैकेन चाधमा। वित्तहीनो यथाशक्त्या शतैरष्टाभिः कारयेत्।
अत ऊर्ध्वं तु कर्तव्यं गृहविरुानुसारतः॥८॥

अध्याय-१०१

गुड़धेनु दान और माहात्म्य

होता ने कहा कि इस समय आगे मैं समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाली गुड़धेनु के दान का विधान बतलाने जा रहा हूँ। इसके लिए लिपी गई भूमि पर कुशा और मृगचर्म को बिछा देना चाहिए। फिर उस पर अधिकतर गुड़ रखकर वस्त्र से ढँक देना चाहिए।।१।।

फिर इस प्रकार गुड़मयी धेनु बना कर उसके पास गुड़ का बछड़ा भी बनाना चाहिए और काँसे की दोहिनी, मुख और सींग स्वर्ण की तथा दाँत मणिमुक्ता की बनानी चाहिए।।२।।

उस गाय की ग्रीवा रत्न की, गन्ध की नासिका, अगरु काष्ठ की दोनों सींग तथा ताँबा का पृष्ठ बनाना चाहिए।।३।।

उसके लिए काँसे का दुग्धपात्र, कपास का पूँछ, ईख का पैर, चाँदी का खुर, रंगीन धागों का कम्बल आदि बनानी चाहिए।।४।।

फिर घण्टा और चामर से सुशोभित काँसे का दुग्धपात्र और समस्त आभूषणों से सुशोभित धेनु को दो वस्त्रों से ढँक दिया जाना चाहिए।।५।।

सुधी जन को उस धेनु के कान प्रशस्त पत्रों के, स्तन मक्खन का बनाना चाहिए। फिर उसे विविध प्रकार के फलों से सजा देना चाहिए।।६।।

मागधीय प्रमाण के अनुरूप चार भार का श्रेष्ठ गुड़ धेनु माना गया है। फिर उसके चतुर्थांश का बछड़ा भी बनाना चाहिए।।७।।

उपरोक्त प्रमाण के आधे प्रमाण वाली मध्यम और एक भर वाली अधम गुड़धेनु कहा गया है। यहाँ पर

गन्धपुष्पादिभिः कृत्वा धूपनैवेद्यदीपकान्। ईदृशीं कल्पयित्वा तु ब्राह्मणाय निवेदयेत्।
साधुवृताय शान्ताय तथाऽमत्सरिणे नृप॥९॥
एवं कृत्वा द्विजेन्द्राय आहिताग्नेर्विशेषतः। ईदृशाय प्रदातव्या सहस्रकनकेन तु॥१०॥
तदर्द्धेन महाराज तस्याप्यर्द्धेन वा पुनः। शतेन वा शतार्द्धेन यथाशक्त्या तु दापयेत्॥११॥
गन्धवस्त्रादिभिः कृत्वा मुद्रिका कर्णपात्रकैः। छत्रिका पादुके दत्त्वा इमं मन्त्रमुदीरयेत्॥१२॥
या श्रियादीनि मन्त्राणि पूर्वोक्तानि स्मरेद् बुधः।
प्राङ्मुखोदङ्मुखो वापि ब्राह्मणाय निवेदयेत्॥१३॥
वाचा कृतं कर्मकृतं मनसा यद्विचिन्तितम्। मानकूटं तुलाकूटं कन्यानृतं गवानृतम्॥१४॥
दीयमानां प्रपश्यन्ति ते यान्ति परमां गतिम्। यत्र क्षीरवहा नद्यः पयःपायसकर्दमाः।
मुनयो ऋषयः सिद्धास्तत्र गच्छन्ति धेनुदाः॥१५॥
दश पूर्वान् दश परान् तारयेद् गुडधेनुदः। अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपाते दिनक्षये।
सर्वदैव प्रदातव्या पात्रं दृष्ट्वा महामते॥१६॥

वित्तहीन मनुष्य शक्ति के अनुसार एक सौ आठ द्रव्यों से भी गुड़धेनु बना सकते हैं। इसके अलावे घर की आर्थिक अवस्थानुसार ही गुड़धेनु को बनाना चाहिए।।८।।

फिर गन्ध, पुष्प आदि से तथा धूप, नैवेद्य और दीपकों से उस गुड़धेनु का पूजन करना चाहिए। हे राजन्! इस प्रकार के गुड़धेनु बनवा कर स्वच्छ सुन्दर आचरण वाले, शान्त स्वभाव और मत्सर रहित ब्राह्मण को दान कर दें।।९।।

इस प्रकार से करने के बाद विशेष रूप से अग्निहोत्री श्रेष्ठ ब्राह्मणों को सहस्र स्वर्णमुद्रा के सहित गुड़धेनु का दान करना श्रेष्ठ है।।१०।।

अथवा हे महाराज! उस सहस्र मुद्रा के आधे अर्थात् पाँच सौ अथवा सौ स्वर्णमुद्रा के सहित अथवा पचास स्वर्णमुद्रा के साथ यथासामर्थ्य गुड़धेनु का दान करना चाहिए।।११।।

फिर गन्ध, वस्त्र आदि के सहित अंगुठी, कर्णभूषण, छतरी, दो पादुका आदि प्रदान कर इस मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए।।१२।।

सुधीजन को पहले 'या श्रियादि' मन्त्र को बोलना चाहिए और पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख होकर ब्राह्मण को धेनु का दान करना श्रेष्ठ है।।१३।।

इस प्रकार ब्राह्मण को दान में दी गयी गुड़धेनु वाणी द्वारा किये गए, कर्म द्वारा किये गए, मन से सोचे गए पाप, नापने में किये जाने वाला छल, तौल में किये गए कपट, कन्या के निमित्त बोले गए असत्य और गाय के निमित्त बोले गए झूठ के कारण होने वाले समस्त पापों को नष्ट करने वाली होती है।।१४।।

जो कोई जन गुड़धेनु को दान किया जाता हुआ देखता है, वह भी परमगति पाने वाला होता है। गुड़धेनु दान करने वाला मनुष्य वहाँ जा पाता है, जहाँ नदियों में दूध बहता है, दूध एवं खीर का कीचड़ रहता है और जहाँ ऋषि, मुनि, सिद्ध आदि जन रहते हैं।।१५।।

गुड़धेनु दान करने वाला मनुष्य अपने दस पूर्व पुरुषों के साथ दस बाद के पुरुषों को भी तार देने वाला

एतदेव विधानं स्यादेते चोपस्कराः स्मृताः। मन्त्रावाहनसंयोगः सदा पर्वणि पर्वणि॥१७॥
गुडधेनुः प्रदातव्या भुक्तिमुक्तिफलप्रदा। सर्वकामप्रदा नित्यं सर्वपापहरा शुभा॥१८॥
गुडधेनोः प्रसादात् तु सौभाग्यमखिलं लभेत्। वैष्णवं पदमाप्नोति स्मरणे स्मरणे हरेः॥१९॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे एकाधिकशततमोऽध्यायः॥१०१॥
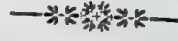
द्व्यधिकशततमोऽध्यायः

अथ शर्कराधेनुदानविधिः

होता उवाच

तद्वच्च शर्कराधेनुं श्रृणु राजन् यथार्थतः। अनुलिप्ते महीपृष्ठे कृष्णाजिनकुशोत्तरे॥१॥
धेनुं शर्करया राजन् कृत्वा भारचतुष्टयम्। उत्तमा कथ्यते सद्भिश्चतुर्थांशेन वत्सकम्॥२॥
तदर्द्धं मध्यमा प्रोक्ता कनिष्ठा भारकेण तु। तद्वद् वत्सं प्रकुर्वीत चतुर्थांशेन तत्त्वतः॥३॥

होता है। उत्तरायण, पवित्र, व्यतिपात अथवा दिनक्षय के दिन इस गुड़धेनु का दान करना चाहिए। हे महामति! पात्र देखकर सदा ही गुड़धेनु का दान करना चाहिए।।१६।।

गुड़धेनु दान का यही विधान है और यही सब सामग्रियाँ हैं। सदा प्रत्येक पर्व में मन्त्र से आवाहन करना चाहिए।।१७।।

निरन्तर समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाली, समस्त पापों से रहित करने वाली, भोग और मोक्ष को प्रदान करने वाली, कल्याणकारिणी गुड़धेनु का दान अवश्य ही करना चाहिए।।१८।।

इस गुड़धेनु की कृपाप्रसाद से सर्वसौभाग्य की प्राप्ति होती है। फिर दान करने वाला प्रतिदिन हरिस्मरण पूर्वक विष्णु लोक में चला जाता है।।१९।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में गुड़धेनु दान और माहात्म्य नामक एक सौ एकवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१०१॥

अध्याय-१०२

शर्कराधेनु दान और माहात्म्य

होता ने कहा कि हे राजन्! इसी प्रकार वास्तविक रूप से शर्कराधेनु की विधि को कहने जा रहा हूँ, सुनो। लिपी हुई भूमि पर कृष्णमृगचर्म और कुशा को बिछाकर हे राजन्! शक्कर से चार भर का धेनु बनानी चाहिए। साधुजन इस प्रकार की धेनु को उत्तम कहा करते हैं। फिर इसके चतुर्थांस का बछड़ा भी होना चाहिए।।१-२।।

फिर उसके आधे अर्थात् दो भर का गाय मध्यम और एक भर की गाय कनिष्ठ होती है। इसी तरह वास्तविक रूप से चतुर्थांश का बछड़ा बनाना चाहिए।।३।।

अथ कुर्यादष्टशतैरूर्ध्वं नृपतिसत्तम। स्वशक्त्या कारयेद् धेनुं यथात्मानं न पीडयेत्॥४॥
सर्वबीजानि संस्थाप्य चतुर्दिक्षु समन्ततः। सौवर्णमुखशृङ्गाणि मौक्तिका नयनानि च॥५॥
गुडेन तु मुखं कार्यं जिह्वा पिष्टमयी तथा। कम्बलं पट्टसूत्रेण कण्ठाभरणभूषितम्॥६॥
इक्षुपादां रौप्यखुरां नवनीतमयस्तनाम्। प्रशस्तपत्रश्रवणां सितचामरभूषिताम्।
पञ्चरत्नसमायुक्तां वस्त्रैराच्छादितोपरि॥७॥
गन्धपुष्पैरलंकृत्य ब्राह्मणाय कुटुम्बिने। श्रोत्रियाय दरिद्राय साधुवत्ताय धीमते॥८॥
वेदवेदाङ्गविदुषे आहिताग्नेर्विशेषतः। अदुष्टाय प्रदातव्या न तु मत्सरिणे द्विजे॥९॥
अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपाते शशिक्षये। एषु पुण्येषु कालेषु यदृच्छा वा स दापयेत्॥१०॥
सत्पात्रं च द्विजं दृष्ट्वा आगतं श्रोत्रियं गृहे। तादृशाय प्रदातव्या पुच्छदेशोपविश्य च॥११॥
पूर्वामुखस्थितो दाता अथवा च उदङ्मुखः। धेनुं पूर्वामुखीं कृत्वा वत्समुत्तरतो न्यसेत्॥१२॥
दानकाले तु ये मन्त्रास्तान् पठित्वा समर्पयेत्। संपूज्य विधिवद् विप्रं मुद्रिकाकर्णभूषणैः॥१३॥
स्वशक्त्या दक्षिणा दत्त्वा वित्तशाठ्यविवर्जितः। हस्ते तु दक्षिणां दत्त्वा गन्धपुष्पं सचन्दनम्।
धेनुं समर्पयेत् तस्य मुखं च न विलोकयेत्॥१४॥

हे उत्तम राजन्! अपनी शक्ति के अनुरूप, जिससे किसी प्रकार से अनावश्यक कष्ट नहीं उठाना पड़े, आठ सौ भार प्रमाण की धेनु बनवानी चाहिए।।४।।

चारों ओर चारों दिशाओं में प्रत्येक बीज को रखकर स्वर्ण का मुख और सींग, मोती के नेत्र और गुड़ का मुख (गह्वर), आटे की जिह्वा, रंगीन कम्बल और कण्ठ के आभूषण से उस धेनु को सुसज्जित करना चाहिए।।५-६॥

ईख के पैर, खुर चाँदी के, स्तन मक्खन के, प्रशस्त पत्रों के कान वाली धेनु को श्वेत चामर से विभूषित करना चाहिए एवं उसके ऊपर वस्त्रों से ढँक दिया जाना चाहिए।।७।।

दरिद्र, सच्चरित्र, बुद्धिमान्, श्रोत्रिय, कुटुम्बी आदि में से किसी ब्राह्मण को गन्ध, पुष्प आदिकों से विभूषित कर गुड़धेनु का दान करना चाहिए।।८।।

विशेषरूप से वेदाङ्ग को जानने वाले, अग्निहोत्री, दोषमुक्त, आदि जैसे ब्राह्मण को गुड़धेनु का दान करना चाहिए। मात्सर्ययुक्त ब्राह्मण को नहीं देना चाहिए।।९।।

उत्तरायण और विषुव संक्रान्ति के पुण्यकाल, व्यतीपात, दिनक्षय (तिथिक्षय) के दिन आदि के पर्वकालों के समय अथवा किसी भी विशेष अवसर पर शर्करा धेनु का दान करना चाहिए।।१०।।

सत्पात्र, श्रोत्रिय द्विज को गृह में आगमन होने पर शर्कराधेनु के पुच्छस्थान पर स्थित होकर उक्त प्रकार के ब्राह्मण को 'शर्कराधेनु' दान करना चाहिए।।११।।

दान देते समय दाता पूर्व की ओर अथवा उत्तर दिशा की तरफ मुख कर और गाय को भी पूर्वाभिमुख तथा बछड़े को उत्तराभिमुख स्थापित करना चाहिए।।१२।।

अंगुठी और कर्णाभूषणों के द्वारा सविधि ब्राह्मण का पूजन कर दान के समय का जो भी मन्त्र है, उनका वाचन करते हुए दान करना चाहिए।।१३।।

इस कार्य के निमित्त धन व्यय करने में कंजूसी नहीं करते हुए अपनी सामर्थ्यानुसार ब्राह्मण को दक्षिणा भी

एकाहं शर्कराहारो ब्राह्मणस्त्रिदिनं वसेत्। सर्वपापहरा धेनुः सर्वकामप्रदायिनी।
सर्वकामसमृद्धस्तु जायते नात्र संशयः॥१५॥
विष्णुलोकं नरो गच्छेद् यावदाहूतसंप्लवम्। स्वपितॄंस्तारयेच्चैव मातामहसमन्वितान्।
आत्मानं विष्णुसायुज्यं नयते नात्र संशयः॥१६॥
दीयमानां प्रपश्यन्ति ते यान्ति परमां गतिम्। य इदं शृणुयाद् भक्त्या पठते वाऽपि मानवः।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति॥१७॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे द्व्यधिकशततमोऽध्यायः॥१०२॥

प्रदान करना चाहिए। गन्ध, पुष्प, चन्दन आदि के सहित हाथ में दक्षिणा प्रदान कर उस ब्राह्मण को धेनु दिया जाना चाहिए। फिर उस ब्राह्मण का मुख नहीं देखना चाहिए।।१४।।

इस क्रम में दान करने वाला एक दिन शर्करा का आहार मात्र ग्रहण करे और दान लेने वाला ब्राह्मण तीन दिनों तक शर्करा भाग का आहार ग्रहण करें। इस प्रकार से शर्करा धेनु का दान निस्संशय ही समस्त पापों का विनाश करने वाला समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाला और समस्त अभिलषित समृद्धि को प्रदान करने वाला होता है।।१५।।

इस प्रकार शर्करा धेनु का दान करने वाला व्यक्ति निस्संशय ही प्रलय काल तक विष्णुलोक में निवास करने वाला होता है। फिर मातामह के सहित अपने सभी पितरों का भी तारन कर देता है। फिर स्वयं को विष्णु में विलीन कर लेता है।।१६।।

जो जन शर्कराधेनु का दान करता हुआ देखता है, वह भी श्रेष्ठ गति को प्राप्त करता है। जो जन भक्तिभाव से इसके विधान को सुनता या पढ़ता है, वह भी समस्त पापों से मुक्त हो, विष्णुलोक में जाता है।।१७।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में शर्कराधेनु दान और माहात्म्य नामक एक सौ दोवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१॥

❖❖❖

त्र्यधिकशततमोऽध्यायः

अथ मधुधेनुदानविधिः

होता उवाच

मधुधेनुं प्रवक्ष्यामि सर्वपातकनाशिनीम्। अनुलिप्ते महीपृष्ठे कृष्णाजिनकुशोत्तरे॥१॥
धेनुं मधुमयीं कृत्वा संपूर्णघटषोडशीम्। चतुर्थेन तथांशेन वत्सकं परिकल्पयेत्॥२॥
सौवर्णं तु मुखं कृत्वा शृङ्गाण्यगुरुचन्दनैः। पृष्ठं ताम्रमयं कृत्वा सास्नां पट्टमयीं तथा॥३॥
पादानिक्षुमयान् कृत्वा सितकम्बलकम्बलाम्। मुखं गुडमयं कृत्वा जिह्वां शर्करया तथा॥४॥
ओष्ठौ पुष्पमयौ तस्या दन्ताः फलमयाः स्मृताः। दर्भरोमा धरा देवी रौप्यखुरविभूषिता॥५॥
प्रशस्तपत्रश्रवणा प्रमाणात् परितस्तता। सर्वलक्षणसंयुक्ता सप्तधान्यानि दापयेत्॥६॥
चत्वारि तिलपात्राणि चतुर्दिक्ष्वपि दापयेत्। छादितां वस्त्रयुग्मेन घण्टाभरणभूषिताम्।
कांस्योपदोहिनीं कृत्वा गन्धपुष्पैस्तु धूपिताम्॥७॥
अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपाते दिनक्षये। संक्रान्त्यामुपरागे च सर्वकालं यदृच्छया॥८॥
द्रव्यब्राह्मणसंपत्तिं दृष्ट्वा तां तु प्रदापयेत्। ब्राह्मणाय दरिद्राय श्रोत्रियायाहिताग्नये॥९॥

अध्याय–१०३

मधुधेनु दान और उसका माहात्म्य

होता ने कहा कि इस समय मैं समस्त पापों का विनाशक मधुधेनु दान के विधान को कहने जा रहा हूँ। इसके लिए लिपी गई भूमि पर क्रम से बिछे कृष्णमृगचर्म और कुशा पर सम्पूर्ण सोलह मधुमयी कुम्भ रूप धेनु बनाकर उसके चतुर्थांश का बछड़ा बनाना चाहिए।।१-२।।

उसके लिए स्वर्ण का मुख, अगरु और चन्दन का सींग, ताम्र का पृष्ठ और रेशम की सास्ना बनानी चाहिए। पैर ईख से, श्वेत वर्ण के सूत्र युक्त कम्बल, गुड़ का मुख और शक्कर का जीह्वा बनवाना चाहिए।।३-४।।

उस धेनु का ओष्ठ पुष्प का दाँत फल का बनाना चाहिए। फिर उस धेनु का रोम कुशा से बनाना चाहिए। फिर उस धेनु का खुर चाँदी का बनाकर अलंकृत की हुई, ऐसी गाय हे पृथ्वी! बनानी चाहिए।।५।।

फिर उस धेनु के कान चौड़े पत्रों के होने चाहिए और समस्त लक्षणों से सम्पन्न उस धेनु के चारों ओर सप्तधान्य रखवाने की व्यवस्था करनी चाहिए।।६।।

फिर चारों दिशाओं में चार तिलपात्र रखवाने चाहिए। फिर उस मधुधेनु को दो वस्त्रों से ढँक कर घण्टा और आभूषणों से सुशोभित करना चाहिए। फिर काँसे की दोहनी बनी होनी चाहिए। तत्पश्चात् धूप और सुगन्ध सहित पुष्पों से धूपित करना चाहिए।।७।।

उत्तरायण और दक्षिणायन के विषुव के पवित्र दिन, व्यतिपात्, तिथिक्षय, संक्रान्ति, ग्रहण और अभीष्ट कालों में भी देवता, ब्राह्मण और सम्पत्ति को देखकर उस मधुधेनु को दरिद्र श्रोत्रिय, अग्निहोत्रीय ब्राह्मण को दान देना चाहिए।।८-९।।

आर्यावर्त्ते समुत्पन्ने वेदवेदाङ्गपारगे। तादृशाय प्रदातव्या मधुधेनुर्नरोत्तम॥१०॥
पुच्छदेशोपविष्टस्तु गन्धधूपादिपूजिताम्। आच्छाद्य वस्त्रयुग्मेन मुद्रिकाकर्णमात्रकैः॥११॥
स्वशक्त्या दक्षिणां दत्त्वा वित्तशाठ्यविवर्जितः। जलपूर्वं तु कर्त्तव्यं पश्चाद् दानं समर्पयेत्॥१२॥
रसज्ञा सर्वदेवानां सर्वभूतहिते रता। प्रीयन्तां पितृदेवाश्च मधुधेनो नमोऽस्तु ते।
एवमुच्चार्य तां धेनुं ब्राह्मणाय निवेदयेत्॥१३॥
अहं गृह्णामि त्वां देवि कुटुम्बार्थे विशेषतः। कामं कामदुघे कामान्मधुधेनो नमोऽस्तु ते॥१४॥
मधुवातेति मन्त्रेण दापयाशुचिकेन तु। दत्त्वा धेनुं महाराज छत्रोपानहौ तथा॥१५॥
एवं यः कुरुते भक्त्या मधुधेनुं नराधिप। दत्त्वा दानं पायसेन मधुना च दिनं नयेत्॥१६॥
ब्राह्मणोऽपि त्रिरात्रं तु मधुपायससंयुतम्। एवं कृते तु यत्पुण्यं तन्निबोध नराधिप॥१७॥
यत्र मधुवहा नद्यो यत्र पायसकर्दमाः। ऋषयो मुनयः सिद्धास्तत्र गच्छन्ति धेनुदाः॥१८॥
तत्र भोगानथो भुङ्क्ते ब्रह्मलोके स तिष्ठति। क्रीडित्वा सुचिरं कालं पुनर्मर्त्यमुपागतः।
स भक्त्वा विपुलान् भोगान् विष्णुलोकं स गच्छति॥१९॥

हे नरोत्तम! आर्यावर्त्त में जन्मा, वेदवेदाङ्ग पारगामी आदि जैसे ब्राह्मण को मधुधेनु का दान करना श्रेष्ठ है।।१०।।

पूँच्छस्थान पर स्थित होकर दो वस्त्रों से आच्छादित और अंगुठी तथा कर्णाभूषणों से सजी हुई मधु धेनु का दान करना श्रेयस्कर है।।११।।

धन विषयक कंजूसी न करते हुए अपनी शक्ति के अनुरूप दक्षिणा देकर प्रथम जल ग्रहण कर संकल्पपूर्वक दान करना चाहिए।।१२।।

समस्त देवताओं के रसों को जानने वाली और समस्त प्राणियों के हित में रमण करने वाली हे मधुधेनु! हमारे सभी पितृदेव प्रसन्न हों, आपको प्रणाम है। इस प्रकार बोलते हुए ब्राह्मण को वह मधुधेनु दान कर देना श्रेयस्कर है।।१३।।

हे देवि! विशेष रूप से मैं आपको अपने कुटुम्बीजनों के लिए ग्रहण करता हूँ। समग्रता से अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाली कामदुधा स्वरूपा हे मधुधेनु! आपको प्रणाम है।।१४।।

हे महाराज! अत्यन्त पवित्र 'मधुवाता' आदि मन्त्र से छत्र और उपानह के सहित मधुधेनु का दान करना चाहिए।।१५।।

हे राजन्! जो जन भक्तिभाव के सहित इस प्रकार मधुधेनु का दान करता है, फिर दान करने के उपरान्त खीर और मधु का आहार से ही दिन व्यतीत करता है।।१६।।

फिर वह दान लेने वाला ब्राह्मण भी तीन रात्रि तक मधु और खीर का आहार ग्रहण करता है, हे राजन्! इस प्रकार का आचरण करने के पुण्य फल को सुनो—।।१७।।

इस प्रकार से मधुधेनु दान करने वाला उस स्थान पर पहुँचते हैं, जहाँ की नदियों में मात्र मधु की ही धारा प्रवाहित होती है, जिसमें खीर का ही कीचड़ होता है और जहाँ ऋषि और मुनिजन निवास किया करते हैं।।१८।।

फिर वह ब्रह्मलोक में निवास करते हुए भोग करता है, साथ ही दीर्घकाल तक उसी जगह रमण करते हुए वह पुनः मर्त्यलोक में आकर अत्यधिक भोगों को भोग करने के उपरान्त विष्णुलोक को चला जाता है।।१९।।

दश पूर्वान् दश परानात्मानं चैकविंशतिम्। नयते विष्णुसायुज्यं मधुधेनुप्रसादतः॥२०॥
य इदं श्रृणुयाद् भक्त्या श्रावयेद् वाऽपि मानवः।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति॥२१॥

।।इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे त्र्यधिकशततमोऽध्यायः।।१०३।।

—※※※—

चतुरधिकशततमोऽध्यायः

अथ क्षीरधेनुदानविधिः

होता उवाच

क्षीरधेनुं प्रवक्ष्यामि तां निबोध नराधिप। अनुलिप्ते महीपृष्ठे गोमयेन नृपोत्तम॥१॥
गोचर्ममात्रमानेन कुशानास्तीर्य सर्वतः। तस्योपरि महाराज न्यसेत् कृष्णाजिनं॥२॥
तत्रोपरि कुण्डलिकां गोमयेन कृतामपि। क्षीरकुम्भं ततः स्थाप्य चतुर्थांशेन वत्सकम्॥३॥
सुवर्णमुखश्रृङ्गाणि चन्दनागुरुकानि च। प्रशस्तपत्रश्रवणां तिलपात्रोपरि न्यसेत्॥४॥

उस मधुधेनु की कृपाप्रसाद से वह व्यक्ति अपने पूर्व की दस पीढ़ी और आगे की दस पीढ़ी के वंशजों को तथा स्वयं अपने आपको भी अर्थात् अपने इक्कीस पीढ़ियों के पुरुषों को विष्णु सायुज्य प्रदान करने वाला हो जाता है।।२०।।

इस प्रकार जो जन भक्तिभाव से इस मधुधेनु विधान और माहात्म्य को श्रवण करता या कराता है, वह भी समस्त पापों से रहित होकर विष्णुलोक में पहुचने वाला हो जाता है।।२१।।

।।इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में मधुधेनु दान और उसका माहात्म्य नामक एक सौ तीसरा अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ।।१०३।।

अध्याय–१०४

क्षीरधेनु दान और माहात्म्य

होता ने कहा कि हे नराधिप! इस समय मैं आगे क्षीरधेनु का वर्णन करने जा रहा हूँ, उसे सुनो। हे नृपोत्तम! गाय की गोबर से लिपी हुई भूमि पर हे महाराज! सुधी जन को गोचर्म के प्रमाण तुल्य कुशा फैलाकर फिर उस पर कृष्णमृगचर्म को बिछा देना चाहिए।।१-२।।

फिर उस पर गाय के गोबर से बनी कुण्डलिका को स्थापित करना चाहिए। फिर उस पर क्षीरघट की स्थापना करनी चाहिए और उसी के बगल में उसका चतुर्थांश बछड़ा स्थापित करना चाहिए।।३।।

तत्पश्चात् तिल युक्त पात्र पर स्वर्ण, चन्दन और अगरु से निर्मित मुख और सींग तथा प्रशस्त पत्रों के कर्ण बनाकर स्थापित करना चाहिए।।४।।

मुखं गुडमयं तस्या जिह्वा शर्करया तथा। फलप्रशस्तदशनां मुक्ताफलमयेक्षणाम्॥५॥
इक्षुपादां दर्भरोमां सितकम्बलकम्बलाम्। ताम्रपृष्ठां कांस्यदोहां पट्टसूत्रमयं शुभम्॥६॥
पुच्छं च नृपशार्दूल नवनीतमयस्तनीम्। स्वर्णशृङ्गीं रौप्यखुरां पञ्चरत्नसमन्विताम्॥७॥
चत्वारि तिलपात्राणि चतुर्दिक्ष्वपि स्थापयेत्। सप्तव्रीसिमायुक्तां दिक्षु सर्वासु स्थापयेत्॥८॥
एवं लक्षणसंयुक्तां क्षीरधेनुं प्रकल्पयेत्। आच्छाद्य वस्त्रयुग्मेन गन्धपुष्पैः समर्चयेत्॥९॥
धूपदीपादिकं कृत्वा ब्राह्मणाय निवेदयेत्। आच्छाद्यालंकृतां कृत्वा मुद्रिकाकर्णमात्रकैः॥१०॥
पादुकोपानहच्छत्रं दत्त्वा दानं समर्पयेत्। अनेनैव तु मन्त्रेण क्षीरधेनुं प्रदापयेत्॥११॥
आश्रयः सर्वभूतानामित्यादि नरपुंगव। आप्यायस्वेति मन्त्रेण क्षीरधेनुं प्रासादयेत्॥१२॥
गृह्णामि च पठेन् मन्त्रं ग्राहको राजसत्तम। दीयमानां प्रपश्यन्ति ते यान्ति परमां गतिम्॥१३॥
एतां हेमसहस्त्रेण शतेनाथ स्वशक्तितः। शतार्द्धमऽप्यथवार्द्धं तथाऽर्द्धापि यथेच्छया।
दत्त्वा धेनुं महाराज शृणु तस्यापि यत्फलम्॥१४॥
षष्टिवर्षसहस्रं तु इन्द्रलोके महीयते। पितृभिः पितामहैः सार्द्धं ब्रह्मणो भवनं व्रजेत्॥१५॥

फिर उसका मुख गुड़ से, जिह्वा शक्कर से, दाँत फल से और नेत्र मोती से बनाये जाने चाहिए।।५।।

उस क्षीरधेनु का पैर ईख से, रोम कुशों से तथा श्वेत कम्बल से कम्बल, कांस की दोहनी और पवित्र रेशम के सूत्र की पूँछ बनाने चाहिए। हे नृपसिंह! उन धेनु के स्तन मक्खन से, सोने से सींग और खुर चाँदी से बनाकर उसको पञ्चरत्नों से सम्पन्न करना चाहिए।।६-७।।

फिर उसके चारों दिशाओं में तिलपात्रों की स्थापना करनी चाहिए और चारों दिशाओं में सप्तधान्य भी स्थापित करना चाहिए।।८।।

इस प्रकार के लक्षणों से सम्पन्न क्षीरधेनु का निर्माण कर उसे दो वस्त्रों से ढँक कर गन्ध, पुष्प आदि से उसकी पूजा करनी चाहिए।।९।।

फिर धूप, दीप आदि से पूजन कर और वस्त्रों से ढँककर उसको मुद्रिका और कर्णाभूषणों से सुशोभित कर ऐसी क्षीरधेनु ब्राह्मण को दान करना चाहिए।।१०।।

पादुका, उपानह, छत्र आदि प्रदान कर क्षीरधेनु का दान करना श्रेष्ठ है। आगे कथित मन्त्र से ही क्षीरधेनु का दान करना श्रेष्ठ है।।११।।

हे नरपुंगव! आश्रयः सर्वभूतानाम्' आदि अर्थात् हे गौ! आप ही समस्त प्राणियों के आश्रयभूत हो आदि और 'आप्यायस्वति अर्थात् आप संतुष्ट होओ' आदिमन्त्र से उन क्षीरधेनु को प्रसन्न चित्त करना चाहिए।।१२।।

हे राजसत्तम! दान लेने वाला ब्राह्मण को 'गृह्णामि' आदि मन्त्र बोलना चाहिए। इस तरह जो जन क्षीरधेनु का दान करते देखते हैं, उन्हें भी परम गति प्राप्त होती है।।१३।।

स्वशक्त्यानुरुप सहस्त्र, सौ, सौ का आधा या पचास अथवा उसका भी आधा अर्थात् पच्चीस अथवा इच्छानुसार उसके भी आधे सोने की मुद्रा सहित इस क्षीरधेनु का दान करना चाहिए। हे महाराज! इस दान का जो फल कहा गया है, उसे सुनो—।।१४।।

क्षीरधेनु का दान करने वाले इन्द्रलोक में साठ हजार वर्षों तक सम्मान प्राप्त करने वाला होता है। उनके पितरों, पितामहों के सहित ब्रह्मलोक में जाता है।।१५।।

दिव्यं विमानमारूढो दिव्यस्त्रगनुलेपनः। क्रीडित्वा सुचिरं कालं विष्णुलोकं स गच्छति॥१६॥
द्वादशादित्यसंकाशे विमाने वरमण्डिते। गीतवादित्रनिर्घोषैरप्सरोगणसेविते।
तत्रोष्य विष्णोः सौराजं विष्णुसायुज्यतां व्रजेत्॥१७॥
य इदं शृणुयाद् राजन् पठेद् वा भक्तिभावितः। सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति॥१८॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे चतुरधिकशततमोऽध्यायः॥१०४॥

पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः

अथ दधिधेनुदानविधिः

होता उवाच

दधिधेनोर्महाराज विधानं शृणु सांप्रतम्। अनुलिप्ते महीभागे गोमयेन नराधिप॥१॥
गोचर्ममात्रं तु पुनः पुष्पप्रकरसंयुतम्। कुशैरास्तीर्य वसुधां कृष्णाजिनकुशोत्तराम्॥२॥
दधिकुम्भं सुसंस्थाप्य सप्तधान्यस्य चोपरि। चतुर्थांशेन वत्सं तु सौवर्णमुखसंयुतम्॥३॥

चिरकाल तक ब्रह्मलोक में रमण करने के बाद दिव्यमाला और अनुलेपन से सम्पन्न होकर और दिव्य विमान पर चढ़कर वह विष्णु के लोक में चला जाता है।।१६।।

फिर संगीत और वाद्यध्वनि के सहित अप्सराओं के समूह से सेवित उस विष्णुलोक में निवास करते हुए उस व्यक्ति को विष्णु सायुज्य प्राप्त होता है।।१७।।

हे राजन्! जो जन भक्तिभाव सहित इसे श्रवण करता या कराता है, वह समस्त पापों से रहित होकर विष्णु को लोक में पहुँच जाता है।।१८।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में क्षीरधेनु दान और माहात्म्य नामक एक सौ चौथा अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१०४॥

❖❖❖

अध्याय-१०५

दधिधेनु दान और माहात्म्य

होता ने कहा कि हे महाराज! अधुना आप दधिधेनु के दान की विधि को सुनिये—हे नराधिप! गाय के गोबर से अनुलिप्त भूमि पर गोचर्म के प्रमाण तुल्य पृथ्वी पर कुशा बिछाकर उस पर कृष्णमृग के चर्म बिछाने के उपरान्त उसे पुष्पों से सम्पन्न करना चाहिए।।१-२।।

फिर उसको सप्तधान्य से युक्त कर उस पर दधिकुम्भ की स्थापना करनी चाहिए। फिर उसके चतुर्थांश तुल्य प्रमाण का बछड़ा भी बनवाना चाहिए और उसे स्वर्ण के मुख से सम्पन्न करना चाहिए।।३।।

आच्छाद्य वस्त्रयुग्मन पुष्पगन्धैस्तु पूजिताम्। ब्राह्मणाय कुलीनाय साधुवृत्ताय धीमते।
क्षमादमशमोपेते तादृशाय प्रदापयेत्।४॥
पुच्छदेशोपविष्टस्तु मुद्रिकाककर्णमात्रकैः। पादुकोपानहौ छत्रं दत्त्वा मन्त्रमिमं पठेत्।
दधिक्रामिति मन्त्रेण दधिधेनुं प्रदापयेत्॥५॥
एवं दधिमयीं धेनुं दत्वा राजर्षिसत्तम। एकाहारो दिनं तिष्ठेद् दध्ना च नृपनन्दन॥६॥
यजमानो वेद् राजंस्त्रिरात्रं च द्विजोत्तमः। दीयमानां प्रपश्यन्ति ते यान्ति परमं पदम्॥७॥
दश पूर्वान् दश परानात्मानं चैकविंशतिम्। विष्णुलोकमवाप्नोति यावदाभूतसंप्लवम्।
दाता च दापकश्चैव ते यान्ति परमां गतिम्॥८॥
यत्र दधिवहा नद्यो यत्र पायसकर्दमाः। मुनयो ऋषयः सिद्धास्तत्र गच्छन्ति धेनुदाः॥९॥
य इदं श्रावयेद् भक्त्या शृणुयाद् वाऽपि मानवः। सोऽश्वमेधफलं प्राप्य विष्णुलोकं स गच्छति॥१०॥

।।इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः।।१०५।।

फिर उसको दो वस्त्रों से आच्छादित करने के बाद पुष्प, गन्ध आदि से पूजा कर उस दधिधेनु सदाचारी, कुलीन, क्षमा, दम, शम से सम्पन्न सुधी ब्राह्मण को दान कर देना चाहिए।।४।।

उस धेनु के पुच्छभाग में स्थित होकर मुद्रिका और कर्णाभूषण सहित पादुका, उपनह, छाता आदि अर्पण कर 'दधिक्राम' आदि मन्त्र से दधिधेनु दान करना चाहिए।।५।।

हे नृपनन्दन! हे राजर्षिसत्तम! इस प्रकार दधिधेनु दान करने के बाद एक दिन केवल दधि का आहार ग्रहण कर बीताना चाहिए।।६।।

हे द्विजोत्तम! इस प्रकार से एक दिन दान दाता को बीताना चाहिए, लेकिन दान प्राप्त करने वाला द्विजोत्तम को उसी प्रकार से केवल दधि का आहार ग्रहण करते हुए तीन रात्रियाँ व्यतीत करनी चाहिए। इस तरह, जो जन उन दधिधेनु का दान करते हुए देख भी लेता है, तो उसे परमगति की प्राप्ति हो जाती है।।७।।

फिर दानदाता पुरुष अपने से दस पीढ़ी पूर्व और दस पीढ़ी बाद के तथा इस प्रकार स्वयं के सहित इक्कीस पीढ़ी के कुलपुरुषों के साथ महाप्रलय होने तक विष्णुलोक में ही निवास करता है। इस दान को करने और कराने वाला सभी परमगति प्राप्त करने वाले होते हैं।।८।।

इस दधिधेनु को दान करने वाला उस स्थान पर पहुँच जाते हैं, जहाँ नदियों में मात्र दधि की धारा प्रवाहित होती है और उसमें खीर का ही कीचड़ होता है तथा जहाँ ऋषि, मुनि, सिद्धगण आदि निवास करते हैं।।९।।

जो मनुष्य भक्तिभाव से इस 'दधिधेनु दान विधान' को सुनेगा या सुनायेगा, वह अश्वमेध यज्ञ करने का फल प्राप्त कर विष्णुलोक को जाएगा।।१०।।

।।इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में दधिधेनु दान और माहात्म्य नामक एक सौ पाँचवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ।।१०५।।

षडधिकशततमोऽध्यायः

अथ नवनीतधेनुदानविधिः

होता उवाच

नवनीतमयीं धेनुं शृणु राजन् प्रयत्नतः। यां श्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः।
गोमयेनानुलिप्तायां भूमौ गोचर्ममानतः॥१॥
तत्रोपरि कृष्णमृगस्य चर्म प्रसारितं नवनीतस्य कुम्भम्।
संस्थापयेत प्रयतो मनुष्यो वत्सं तथा तस्य चतुर्थभागे॥२॥
कृत्वा विधानेन च राजसिंह सुवर्णशृङ्गा सुमुखा च कार्या॥३॥
नेत्रे च तस्या मणिमौक्तिकानि कृत्वा तथास्यं च गुडेन तस्याः।
जिह्वां तथा शर्करया प्रकल्प्य फलानि दन्ताः कम्बलं पट्टसूत्रम्॥४॥
नवनीतस्तनीं राजन्निक्षुपादां प्रकल्पयेत्। ताम्रपृष्ठां सूत्रपुच्छां दर्भरोमकृतच्छविम्॥५॥
स्वर्णशृङ्गां रौप्यखुरां पञ्चरत्नसमन्विताम्। चतुर्भिस्तिलपात्रैश्च संयुतां सर्वतो दिशः॥६॥
आच्छाद्य वस्त्रयुग्मेन गन्धपुष्पैरलंकृताम्। दिग्भ्यो दीपांश्च प्रज्वाल्य ब्राह्मणाय निवेदयेत्॥७॥

अध्याय–१०६

नवनीतधेनु दान और माहात्म्य

होता ने कहा कि हे राजन्! अब नवनीत से निर्मित धेनु के विधान और माहात्म्य को सप्रयत्न सुनिये, जिसको सुनने के बाद मनुष्य निस्संशय समस्त पापों से रहित हो जाता है।।१।।

गाय के गोबर से लिपी हुई गोचर्म प्रमाण तुल्य भूमि पर कृष्ण मृगचर्म बिछाकर नवनीत घट की स्थापना करनी चाहिए। फिर उस मनुष्य को वहीं पर सयत्न नवनीत धेनु और उसके चतुर्थांश प्रमाण तुल्य का बछड़ा भी स्थापित करना चाहिए।।२।।

हे राजसिंह! इस प्रकार से विधानपूर्वक दधिधेनु स्थापित करने के उपरान्त उस धेनु का मुख और सींग सोने का बनवाना चाहिए।।३।।

फिर उस धेनु का नेत्र मणि और मुक्ता से, मुख गुड़ से, जिह्वा शर्करा से, दाँत फलों से और गलकम्बल रेशम सूत्र से बनवाना चाहिए।।४।।

हे राजन्! उस धेनु का स्तन नवनीत से, पैर ईख से, पीठ ताम्र से, पुच्छ सूत्र से, और रोम की शोभा कुशा से बनवाना चाहिए।।५।।

फिर स्वर्ण का सींग, खुर चाँदी का, जिन्हें पञ्चरत्नों से सजाना चाहिए। तत्पश्चात् उसके चारों तरफ चार तिल पात्रों को स्थापित करना चाहिए।।६।।

फिर दो वस्त्रों से नवनीत धेनु को ढँककर गन्ध, पुष्प आदि से विभूषित करने के बाद समस्त दिशाओं में प्रज्वलित दीपक स्थापित करना चाहिए। तत्पश्चात् उसे ब्राह्मण को दान कर देना चाहिए।।७।।

वेदवेदाङ्गविदुषे आहिताग्ने जितात्मने। मन्त्रास्त एव जप्तव्याः सर्वधेनुषु ये स्मृताः॥८॥
पुरा देवासुरैः सर्वैः सागरस्य तु मन्थने। उत्पन्नं दिव्यममृतं नवनीतमिदं शुभम्।
आप्यायनं तु भूतानां नवनीत नमोऽस्तु ते॥९॥
एवमुच्चार्य तां दद्याद् ब्राह्मणाय कुटुम्बिने। धेनुं च दत्त्वा सुव्रतां सोपधानं नयेद् गृहम्॥१०॥
विप्रवर्यस्य भूपाल हविष्यमन्नं सरसं चैव। भुक्त्वा तिष्ठेद् दिनं धेनुदस्त्रीणि विप्रः॥११॥
यः प्रश्यति तां धेनुं दीयमानां नरोत्तम। सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवसायुज्यतां व्रजेत्॥१२॥
पितृभिः पूर्वजैः सार्धं भविष्यद्भिश्च मानवः। विष्णुलोकं व्रजत्याशु यावदाभूतसंप्लवम्॥१३।
य इदं शृणुयाद् भक्त्या श्रावयेद् वाऽपि मानवः। सर्वपापविशुद्धात्मा विष्णुलोके महीयते॥१४॥

।इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे षडधिकशततमोऽध्यायः।।१०६।।

वेद और वेदाङ्ग शास्त्रों को जानने वाला, अहिताग्नि तथा जितेन्द्रिय ब्राह्मण को ही दान करना श्रेयस्कर है। इस प्रसङ्ग में भी उन मन्त्रों को ही बोलना चाहिए, जिन्हें पूर्वोक्त समस्त धेनुओं के दान के प्रसङ्ग में बोला गया है।।८।।

पुरातन काल में समस्त देवताओं और असुरों के सम्मिलित प्रयास से समुद्र का मन्थन सम्भव होने पर यह नवनीत दिव्य और अमृत सदृश प्राप्त किया गया था। समस्त प्राणियों को संतृप्त करने वाले हे नवनीत! आपको नमस्कार है।।९।।

इस तरह से बोलते हुए उक्त प्रकार के कुटुम्बी ब्राह्मण को उस नवनीत धेनु का दान करना चाहिए। उस सुन्दर व्रत सम्पन्न नवनीत धेनु का दान पाने के बाद ब्राह्मण उसे वस्त्रसहित अपने घर लेकर जाय।।१०।।

हे भूपाल! रस सम्पन्न हविष्यान्न का आहार ग्रहण करने के बाद उस नवनीत धेनु का दान करने वाला एक दिन तथा दान प्राप्त करने वाला ब्राह्मण उसी तरह तीन दिन व्यतीत करे।।११।।

हे नरोत्तम! इस नवनीत धेनु को दान करता हुआ, जो जन देखता है, वह भी समस्त पापों से रहित होकर शिव सायुज्य के अधिकारी हो जाता है।।१२।।

इस प्रकार पूर्वजों और भविष्य में उत्पन्न होने वाले पितरों के सहित मनुष्य विष्णुलोक में प्रलय पर्यन्त निवास करने हेतु पहुँचता है।।१३।।

जो जन इस नवनीत धेनु दान विधान और माहात्म्य प्रसङ्ग को सुनता या सुनाता है, वह समस्त पापों से रहित होकर विष्णुलोक ससम्मान प्राप्त करता है।।१४।।

।।इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में नवनीतधेनु दान और माहात्म्य नामक एक सौ छठवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ।।१०६।।

❖❖❖

सप्ताधिकशततमोऽध्यायः

अथ लवणधेनुदानविधिः

होता उवाच

लवणधेनुं प्रवक्ष्यामि तां निबोध महीपते। अनुलिप्ते महीपृष्ठे कृष्णाजिनकुशोत्तरे॥१॥
धेनुं लवणमयीं कृत्वा षोडशप्रस्थसंयुताम्। चतुर्भिर्वत्सं राजेन्द्र इक्षुपादां च कारयेत्॥२॥
सौवर्णमुखशृङ्गाणि खुरा रौप्यमयास्तथा। मुखं गुडमयं तस्या दन्ताः फलमया नृप॥३॥
जिह्वां शर्करया राजन् घ्राणं गन्धमयं तथा। नेत्रे रत्नमये कुर्यात् कर्णौ पत्रमयौ तथा।
श्रीखण्डशृङ्गकोष्ठौ च नवनीतमयाः स्तनाः॥४॥
सूत्रपुच्छां ताम्रपृष्ठां दर्भरोमां पयस्विनीम्। कांस्योपदोहां राजेन्द्र घण्टाभरणभूषितम्॥५॥
सुगन्धपुष्पधूपैश्च पूजयित्वा विधानतः। आच्छाद्य वस्त्रयुग्मेन ब्राह्मणाय निवेदयेत्॥६॥
ग्रहणे वाऽथ संक्रान्तौ व्यतीपाते तथायने। नक्षत्रग्रहपीडासु सर्वकालं प्रदापयेत्॥७॥
द्विजाय साधुवृत्ताय कुलीनाय च धीमते। वेदवेदाङ्गविदुषे श्रोत्रियायाहिताग्नये॥८॥

अध्याय-१०७

लवणधेनु दान विधि और माहात्म्य

होता ने कहा कि हे महीपते! इस समय मैं लवणधेनु दान विधि को कहने जा रहा हूँ, आप उसे मुझसे सुनें। अनुलिप्त समतल भूमि पर एक के बाद एक कृष्णमृग का चर्म और कुशा बिछा दिया जाना चाहिए।।१।।

फिर सोलह प्रस्थ का लवणमयी धेनु बनाना चाहिए। हे राजेन्द्र! साथ ही चार प्रस्थ लवण से बछड़ा बनाने के उपरान्त धेनु और बछड़ा के पैर ईख से बनाना चाहिए।।२।।

उनकी मुख और सींग स्वर्ण का और खुर चाँदी का तथा हे नृप! उन गाय और बछड़ा का मुख गुड़ से और दाँत फलों से बनाने चाहिए।।३।।

हे राजन्! उनकी जीभ शक्कर से नासिका सुगन्धित वस्तु से, नेत्र रत्न से तथा कर्ण प्रशस्त पत्रों से बनाने चाहिए। फिर उनके सींग का कोष्ठ श्रीखण्ड से तथा उनके स्तन नवनीत से बना देने चाहिए।।४।।

हे राजेन्द्र! सूत्र से पूँछ, ताम्र से पृष्ठ, रोम कुशाओं से और दोहिनी काँसे से बनाकर उस धेनु को घण्टा और आभूषणों से विभूषित करना चाहिए।।५।।

तत्पश्चात् सविधि सुगन्ध, पुष्प, धूप आदि से लवणधेनु का पूजन करने के बाद उसे दो वस्त्रों से ढँककर ब्राह्मण को प्रदान कर देना चाहिए।।६।।

इस लवणधेनु का दान ग्रहण, संक्रान्ति, व्यतीपात्, अयनकाल में ग्रहों से पीड़ित नक्षत्रकाल में या किसी भी समय करना चाहिए।।७।।

हे नृप! सदाचारी, कुलीन, धीमान्, वेद और वेदाङ्ग शास्त्रों में निष्णात, श्रोत्रिय, अग्निहोत्री आदि जैसे एवं

ईदृशाय प्रदातव्या तथाऽमत्सरिणे नृप। जप्तव्यमेव मन्त्रं तु पुच्छदेशोपविश्य च॥९॥
छत्रकोपानहौ देयौ मुद्रिकाकर्णमात्रकौ। आच्छाद्य वस्त्रयुग्मेन दक्षिणां कम्बलं ददेत्।
पूर्वोक्तेन विधानेन स्वशक्त्या कनकेन तु॥१०॥
इमां गृहाण भो विप्र धेनुं कामदुघां शुभाम्। भरस्व कामैर्मा देवि रुद्ररूपे नमोऽस्तु ते॥११॥
रराज सर्वभूतानां सर्वदेवनमस्कृता। कामं कामदुघे कामं लवणधेनो नमोऽस्तु ते॥१२॥
दत्वा धेनुं लवणं वर्ज्यमेकाहं चैव तिष्ठति। स्वयं त्रिरात्रं विप्रेण तथैव लवणाशिना॥१३॥
सहस्रेण शतेनाथ स्वशक्त्या कनकेन तु। दत्त्वेमां स्वर्गमाप्नोति यत्र देवो वृषध्वजः॥१४॥
य इदं शृणुयाद् भक्त्या श्रावयेद् वाऽपि मानवः।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो रुद्रलोकं च गच्छति॥१५॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे सप्ताधिकशततमोऽध्यायः॥१०७॥
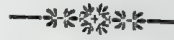
ईर्ष्या-द्वेष से मुक्त ब्राह्मण को लवणधेनु दान करना चाहिए। दाता को धेनु के पुच्छ भाग में स्थित होकर मन्त्र का जप करना श्रेयस्कर है॥८-९॥

छत्र, उपानह, मुद्रिका, आभूषण आदि भी उस धेनु के साथ प्रदान कर देना चाहिए। फिर पहले ही कहे विधि के अनुरूप धेनु को दो वस्त्रों से ढँककर अपनी सामर्थ्य के अनुरूप स्वर्णमुद्रा दक्षिणा सहित कम्बल और धेनु दान करना चाहिए॥१०॥

हे विप्र! इस कल्याण करने वाली कामधेनु के सदृश लवधधेनु को ग्रहण कीजिए। हे रुद्रस्वरूपा देवि! हमारी अभिलाषायें पूरा करें, आपको प्रणाम है॥११॥

समस्त प्राणियों में रमण करने वाली, समस्त देवताओं से नमस्कृत कामधेनु के समान हे लवणधेनु! हमारी इच्छायें पूर्ण कीजिए। आपको प्रणाम है॥१२॥

इस तरह धेनु दान कर देने के बाद दान करने वाला स्वयं लवण का वर्णन कर एक दिन और दान लेने वाला ब्राह्मण तीन रात्रि तक लवण का परित्याग करें॥१३॥

स्वशक्त्यानुरूप हजार अथवा सौ स्वर्ण मुद्रा सहित लवण धेनु को दान करने वाला मनुष्य उस स्थान पर पहुँच जाता है, जिस स्थान पर वृषभध्वज महादेव निवास करते हैं॥१४॥

जो जन भक्तिभाव के सहित इस लवणधेनु दान विधि और माहात्म्य का श्रवण करता या कराता है, वह समस्त पापों से रहित होकर रुद्रलोक में वास करता है॥१५॥

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में लवणधेनु दान विधि और माहात्म्य नामक एक सौ सातवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१०७॥

❖❖❖

अष्टाधिकशततमोऽध्यायः

अथ कर्पासधेनुदानविधिः

होता उवाच

अथातः संप्रवक्ष्यामि धेनुं कर्पासमयीं नृप। यत्प्रदानान्नरो याति ऐन्द्रं लोकमनुत्तमम्॥१॥
विषुवे त्वयने पुण्ये युगादिग्रहणे तथा। सर्वासु ग्रहपीड़ासु दुःस्वप्नाद्भुतदर्शने।
पुण्ये चायतने राजन् शुचिदेशे गवां गणे॥२॥
गोमयेनोपलिप्तायां दर्भानास्तीर्य वै तिलान्। तन्मध्ये स्थापयेद् धेनुं वस्त्रमाल्यानुलेपनैः।
नैवेद्यधूपदीपाद्यैः पूजयेच्च विमत्सरः॥३॥
उत्तमा चतुर्भिभरिस्तदर्धेन तु मध्यमा। भारेण अधमा प्रोक्ता वित्तशाठ्यं विवर्जयेत्।
चतुर्थांशेन कृत्वा वै वत्सं तु परिकल्पयेत्॥४॥
कर्त्तव्या रुक्मशृङ्गैस्तु राजतं खुरसंयुतम्। नानाफलमया दन्ता रत्नगर्भसमन्विताः॥५॥
इत्येवं सर्वसंपूर्णां कृत्वा श्रद्धासमन्वितः। आवाहयेत् तां कार्पासधेनुं मन्त्रैर्द्विजातये॥६॥
दद्यादथ दर्भपाणिः प्रयतः श्रद्धयान्वितः। पूर्वोक्तस्तु विधिः कार्यो दानमन्त्रपुरःसरः॥७॥

अध्याय-१०८

कपासधेनु दान विधि और माहात्म्य

होता ने कहा कि हे नृप! अधुना मैं कपास से निर्मित धेनु की दान विधि कहने जा रहा हूँ, जिसे दान करने वाला मनुष्य उत्तम इन्द्रलोक में पहुँच जाता है।।१।।

हे राजन्! विषुव संक्रान्ति, पवित्र अयनकाल, युगारम्भतिथि आदि, ग्रहण, समस्त प्रकार के ग्रहपीड़ा प्राप्ति पर, अद्भुत दुःस्वप्न देखने पर पवित्र गृह, देश, स्थान अथवा गोशाला की भूमि को अनुलिप्त कर कुशा और तिल फैलाकर उस भूमि के मध्य भाग में कपास धेनु की स्थापना करनी चाहिए। फिर ईर्ष्या मुक्तभाव से वस्त्र, माला, अनुलेपन, नैवेद्य, धूप आदि से उस धेनु का पूजन करना चाहिए।।२-३।।

वह धेनु चार भाग की हो, तो उत्तम उसके आधे की हो तो मध्यम और एक भार की हो, तो अधम धेनु मानी गई है। अतः इस प्रसंग में धन की कंजूसी को छोड़ देना चाहिए। साथ ही उस धेनु के चतुर्थांश का उसका बछड़ा बनाना चाहिए।।४।।

उस धेनु की सींग स्वर्ण से, खुर चाँदी से और विविध फलों से उनके दाँत बनाते हुए उस धेनु को रत्न से विभूषित करना चाहिए।।५।।

इस प्रकार श्रद्धा के सहित सब प्रकार से पूर्ण कपास की धेनु निर्मित कर उसका मन्त्र से आवाहन कर ब्राह्मण को दान कर देना चाहिए।।६।।

श्राद्धपूर्ण भाव से हाथ में कुशा लेकर प्रयत्न सहित धेनु दान करना चाहिए। फिर दान के मन्त्र द्वारा उपरोक्त विधान सम्पन्न करना चाहिए।।७।।

यथा देवगणाः सर्वे त्वया हीना न वर्तते। तथा मामुद्धरेद् देवि पाहि संसारसागरात्॥८॥

।इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे अष्टाधिकशततमोऽध्यायः॥१०८॥

नवाधिकशततमोऽध्यायः

अथ धान्यधेनुदानविधिः

होता उवाच

शृणु राजन् प्रयत्नेन दानमाहात्म्यमुत्तमम्। यस्य संकीर्तनादेव संतुष्येत् पार्वती स्वयम्।
विषुवे चायने वापि कार्तिक्यां तु विशेषतः॥१॥

तदिदानीं प्रवक्ष्यामि धान्यधेनोर्विधिं परम्। यां दत्त्वा सर्वपापेभ्यो विमुक्तो राजसत्तम।
शोभते कान्तिमान् मुक्तः शशाङ्क इव राहुणा॥२॥

दश धेनुप्रदानेन यत् फलं राजसत्तम। तत् सर्वमेव प्राप्नोति व्रीहिधेनुप्रदो नरः॥३॥

कृष्णाजिनं समीचीनं प्राग्ग्रीवं विन्यसेद् बुधः। गोमयेनानुलिप्तायां शोभनां वस्त्रसंयुताम्।

हे देवि! जैसे आपके विना सब देवगण निर्वाह भी नहीं कर पाते, उसी प्रकार हे देवि! संसार सागर से आप मेरा उद्धार कीजिए।।८।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में कपासधेनु दान विधि और माहात्म्य नामक एक सौ आठवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१०८॥

अध्याय-१०९

धान्यधेनु दान विधि और माहात्म्य

होता ने कहा कि हे राजन्! सप्रयत्न आप दान करने का श्रेष्ठ माहात्म्य को सुनिये, जिसके कहने मात्र से ही स्वयं पार्वती संतुष्ट हुआ करती हैं। विषुव संक्रान्ति अथवा अयन संक्रान्ति या विशेष रूप से कार्तिक मास में धान्य धेनु के दान का विधान अपनाया जाता है।।१।।

हें राजसत्तम! अब उसी धान्य धेनु की विधि को मैं बतलाने जा रहा हूँ। जिसके दान से मनुष्य समस्त पापों से रहित हो जाता है। फिर वह राहु मुक्त कांति सम्पन्न चन्द्रमा की तरह शोभायमान होता है।।२।।

हे राजसत्तम! जो फल मनुष्य दस गायों के दान से प्राप्त करता है, उस सम्पूर्ण फल को वह एक व्रीहि (धान्य) धेनु के दान से प्राप्त करने वाला होता है।।३।।

बुद्धिमान् जन पूर्व की ओर मुख कर गाय के गोबर से लिपी गई भूमि पर कृष्णमृग का चर्म बिछाये और उस पर उस वेदी के मध्य में वेद ध्वनि युक्त मांगलिक वाणी से गौ का पूजन करना चाहिए।।४।।

पूजयेद् वेदिमध्ये तु वेदनिर्घोषमङ्गलैः।।४।।
उत्तमा या तु धेनुः स्याद् द्रोणैश्चापि चतुष्टयम्। मध्यमा च तदर्धेन वित्तशाठ्यं न कारयेत्।
चतुर्थांशेन धेन्वा वै वत्सं तु परिकल्पयेत्।।५।।
कर्त्तव्यौ रुक्मशृङ्गौ तु राजतं खुरसंयुतम्। गोमेधा कुक्षि संकुर्याद् घ्राणमगरुचन्दनम्।।६।।
मुक्ताफलमया दन्ता घृतक्षौद्रमयं मुखम्। प्रशस्तपत्रश्रवणां कांस्यदोहनकान्विताम्।।७।।
इक्षुयष्टिमयाः पादाः क्षौमपुच्छसमन्विताम्। नानाफलसमोपेतां रत्नगर्भसमन्विताम्।
पादुकोपानहच्छत्रं भाजनं तर्पणं तथा।।८।।
इत्येवं रचयित्वा तां कृत्वा दीपार्चनादिकम्।
पुण्यकालं च संप्राप्य स्नातः शुक्लाम्बरो गृही।
त्रिःप्रदक्षिणामावृत्य मन्त्राणामनुकीर्तयेत्।।९।।
त्वं हि विप्र महाभाग वेदवेदाङ्गपारग। एतां ममोपकाराय गृह्णीष्व त्वं द्विजोत्तम।
प्रीयतां मम देवेशो भगवान् मधुसूदनः।।१०।।
त्वमेका लक्ष्मि गोविन्दे स्वाहा या च विभावसोः।
शक्रे शचीति विख्याता शिवे गौरीति संस्थिता।।११।।
गायत्री ब्रह्मणे प्रोक्ता ज्योत्स्ना चन्द्रे रवेः प्रभा। बुद्धिर्बृहस्पतेः ख्याता मेधा मुनिषु सत्तमा।
तस्मात् सर्वमयी देवी धान्यरूपेण संस्थिता।।१२।।

चार द्रोण (प्राचीन तौल प्रमाण) से बनायी गई धान्य धेनु उत्तम मानी गई है। उससे आधे से बनायी गई धेनु मध्यम होती है। धेनु बनाने के प्रसंग में वित्तशाठ्य नहीं करते हुए उस धान्य धेनु के प्रमाण का चतुर्थांश से उसके बछड़े की परिकल्पना करनी चाहिए।।५।।

उस धान्यधेनु के दोनों सींग स्वर्ण से, खुर चाँदी से, पेट गोमेद से और उसका घ्राण अगरु और चन्दन से बनाने चाहिए।।६।।

फिर मुख घृत और मधु से, दाँत मुक्ताफल से, पलाश पत्रों से उस गाय का कर्ण और काँसे से दोहिनी, ईख दण्ड से उसके पैर, रेशम सूत्र से पूँछ बनाते हुए विविध प्रकार के फलों और रत्न से सम्पन्न धान्य गाय को करने के बाद पादुका, उपानह, छाता, पात्र, तर्पण आदि उसके पास में स्थापित करना चाहिए।।७-८।।

इस तरह से उस धान्य धेनु को बनाने के बाद शुभकाल प्राप्त होने पर गृहस्थ जन श्वेत वस्त्र पहन कर उस धेनु की तीन प्रदक्षिणा कर मन्त्रों का उच्चारण करे।।९।।

हे वेद और वेदाङ्ग शास्त्रों में निष्णात महाभाग द्विजोत्तम विप्र! आप मेरा उपकार करने हेतु ही इस धान्य धेनु को ग्रहण करें, जिससे देवेश भगवान् मधुसूदन मेरे ऊपर प्रसन्न हो जाय।।१०।।

हे गोमातः! एक मात्र आप ही गोविन्द की लक्ष्मी, अग्नि की स्वाहा, इन्द्र की शची के स्वरूप में ख्यात हैं और आप ही शंकर की गौरी के रूप में वर्तमान हैं।।११।।

आप ही ब्रह्मा की गायत्री, चन्द्र की ज्योत्स्ना, रवि की प्रभा, बृहस्पति की बुद्धि और श्रेष्ठ मुनियों की मेधा के रूप में वर्तमान हो। अतः हे सर्वमयी देवि! आप धान्य रूप से विद्यमान रहते हैं।।१२।।

एवमुच्चार्य तां धेनुं ब्राह्मणाय निवेदयेत्। दत्त्वा प्रदक्षिणं कृत्वा तं क्षमाप्य द्विजोत्तमम्॥१३॥
यावच्च पृथिवी सर्वा वसुरत्नानि भूपते। तावत् पुण्यमाधिक्यं व्रीहिधेनोश्च तत् फलम्॥१४॥
तस्मान्नरेन्द्र दातव्या भुक्तिमुक्तिफलप्रदा। इह लोके च सौभाग्यमायुरारोग्यवर्धनम्॥१५॥
विमानेनार्कवर्णेन किङ्किणीरत्नमालिना। स्तूयमानोऽप्सरोभिश्च स याति शिवमन्दिरम्॥१६॥
यावच्च स्मरते जन्म तावत् स्वर्गे महीयते। ततः स्वर्गात् परिभ्रष्टो जम्बूद्वीपपतिर्भवेत्॥१७॥
एवं हरमुखोद्गीर्णं श्रुत्वा वाक्यं नरोत्तम। सर्वपापविशुद्धात्मा रुद्रलोके महीयते॥१८॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे नवाधिकशततमोऽध्यायः॥१०९॥

इस तरह से बोलते हुए ब्राह्मण को वह धेनु दान करना चाहिए। दान के बाद दान लेने वाले ब्राह्मण की प्रदक्षिणा करते हुए उनसे क्षमा माँग लेनी चाहिए।।१३।।

हे भूपते! इस पृथ्वी के विस्तार प्रमाण तुल्य और उस पर स्थित धन, रत्न आदि जो भी उपलब्ध हैं, उसके दान के तुल्य पुण्यफल इस व्रीहिधेनु का दान करने से मनुष्य को प्राप्त होता है।।१४।।

हे नरेन्द्र! इसी कारण से इस प्रकार के भुक्ति और मुक्ति का फल प्रदान करने वाले व्रीहिधेनु का दान अवश्य करना चाहिए। इसके करने से इस लोक में भी सौभाग्य, आयु, आरोग्य आदि की वृद्धि प्राप्त होती है।।१५।।

इस व्रीहिधेनु को दान करने वाला मनुष्य किङ्किणी और रत्नों की माला से सम्पन्न विमान द्वारा शिवलोक को चला जाता है, जिसकी स्तुति अप्सरायें भी करती रहती हैं।।१६।।

उस दान करने वाले जन को जिस समय तक अपने पूर्वकर्म की स्मृति बनी रहती है, वह उस समय तक स्वर्ग में पूजास्पद बने रहते हैं। तत्पश्चात् स्वर्ग से च्युत होकर जम्बूद्वीप का स्वामी हो जाता है।।१७।।

हे नरोत्तम राजन्! इस प्रकार शंकर प्रोक्त धान्य धेनु दान विधान को करने से मनुष्य समस्त पापों से रहितात्मा होकर रुद्रलोक में सम्मानास्पद को पाता है।।१८।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में धान्यधेनु दान विधि और माहात्म्य नामक एक सौ नवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१०९॥

दशाधिकशततमोऽध्यायः

अथ कपिलालक्षणमाहात्म्य

होता उवाच

अथातः संप्रवक्ष्यामि कपिलाधेनुमुत्तमाम्। यत्प्रदानान्नरो याति विष्णुलोकमनुत्तमम्॥१॥
पूर्वोक्तेन विधानेन दद्याद् धेनुं सवत्सकाम्। सर्वालंकारसंयुक्तां सर्वरत्नसमन्विताम्॥२॥
कपिलायाः शिरो ग्रीवां सर्वतीर्थानि भामिनि। पितामहनियोगाच्च निवसन्ति हि नित्यशः॥३॥
प्रातरुथाय यो मर्त्यः कपिलागलमस्तकात्। च्युतं तु भक्त्या पानीयं शिरसा वन्दते शुचिः॥४॥
स तेन पुण्यतोयेन तत्क्षणाद् दग्धकिल्बिषः। त्रिंशद्वर्षकृतं पापं दहयग्निरिवेन्धनम्॥५॥
कल्यमुत्थाय यो मर्त्यः कुर्यात् तासां प्रदक्षिणम्। प्रदक्षिणीकृता तेन पृथिवी स्याद् वसुंधरे॥६॥
प्रदक्षिणेन चैकेन श्रद्धायुक्तेन तत्क्षणात्। दशजन्मकृतं पापं तस्य नश्यत्यसंशयम्॥७॥
कपिलायास्तु मूत्रेण स्नायाच्चैव शुचिव्रतः। स गङ्गादिषु तीर्थेषु स्नातो भवति मानवः॥८॥
तेन स्नानेन चैकेन भावयुक्तेन वै नरः। यावज्जीवकृतात् पापान्मुच्यते नात्र संशयः॥९॥

अध्याय-११०

कपिला गौ लक्षण और उसका माहात्म्य

होता ने कहा कि अधुना मैं कपिला धेनुदान के विधान की चर्चा करने जा रहा हूँ, जिस कपिला दान से मनुष्य श्रेष्ठतम विष्णुलोक में जाने के योग्य हो जाता है।।१।।

पूर्व कथित विधियों से बछड़ा सहित समस्त अलंकारों और रत्नों से विभूषित धेनु का दान करना चाहिए।।२।।

हे भामिनि! पितामह की आज्ञा से समस्त तीर्थ उस कपिला धेनु के शिर और ग्रीवा में नित्य निवास किया करते हैं।।३।।

जो जन प्रातःकाल उठकर पवित्रता से कपिला धेनु के गले और मस्तक से गिरे जल को भक्तिभावना से अपने शिर में लगाकर नमस्कार करता है, वे जन उसी समय उस पवित्रतम जल से अपने पापों को भस्म कर देते हैं। वह पवित्र जल तीस वर्ष के पापों को इस तरह भस्मीभूत कर देता है, जैसे आग इन्धन को जला देती है।।४-५।।

हे वसुन्धरे! जो मनुष्य सबेरे उठकर उन (गाय) की प्रदक्षिण कर लेता है, उससे इस तरह पृथ्वी की प्रदक्षिणा हो जाती है।।६।।

श्रद्धावान् होकर उस धेनु की एक प्रदक्षिणा करने वाले मनुष्य के तत्क्षण दस जन्मों का किया हुआ पाप निस्संशय नष्ट हो जाया करता है।।७।।

जो जन पवित्र होकर कपिला धेनु के मूत्र से स्नान करता है, वह मनुष्य गङ्गा आदि तीर्थों में स्नान करने जैसा ही पुण्य प्राप्त कर लेता है।।८।।

भक्तिभाव से उक्त प्रकार एक बार भी स्नान कर लेने से उस स्नान किया हुआ मनुष्य निस्संशय अपने जीवन भर के पापों से रहित हो जाता है।।९।।

गोसहस्त्रं तु यो दद्यादेकां च कपिलां नरः। सममेतत् पुरा प्राह ब्रह्मा लोकपितामहः॥१०॥
गवामस्थि न तप्येत मृतगन्धे न दूषयेत्। यावज्जिघ्रति तं गन्धं तावत्पुण्यैस्तु पूयते॥११॥
गवां कण्डूयनं श्रेष्ठं तथा च परिपालनम्। तुल्यं गोशतदानस्य भयरोगादिपालने॥१२॥
तृणोदकानि यो दद्यात् क्षुधितानां गवाह्निकम्। गोमेधस्य फलं दिव्यं लभते मानवोत्तमः॥१३॥
विमानैर्विविधैर्दिव्यैः कन्याभिरभितोऽर्पितैः। सेव्यमानः सुगन्धैर्वै दीप्यमानो यथाग्नयः॥१४॥
सुवर्णकपिला पूर्वं द्वितीया गौरपिङ्गला। तृतीया चैव रक्ताक्षी चतुर्थी गुडपिङ्गला॥१५॥
पञ्चमी बहुवर्णा स्यात् षष्ठी च श्वेतपिङ्गला। सप्तमी श्वेतपिङ्गाक्षी अष्टमी कृष्णापिङ्गला॥१६॥
नवमी पाटला ज्ञेया दशमी पुच्छपिङ्गला। एकादशी खुरश्वेता त्वेतासां सर्वलक्षणा॥१७॥
सर्वलक्षणसंयुक्ता सर्वालंकृतसुन्दरी। ब्राह्मणाय प्रदातव्या भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी।
भुक्तिमुक्तिप्रदा गावो विष्णुलोकं स गच्छति॥१८॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे दशाधिकशततमोऽध्यायः॥११०॥

पुरातन समय में लोक पितामह ब्रह्मा द्वारा कहा गया है कि जो मनुष्य एक कपिला धेनु का दान कर दिया जाता है, वह एक हजार गोदान सदृश होता है।।१०।।

धेनु की हड्डी को कथमपि तपाना नहीं चाहिए। मृतक गौ के गन्ध से कोई दोष नहीं होता है। इस प्रकार जिस समय तक उस मृतक धेनु के गन्ध को मनुष्य सूँघता रहता है, उस समय तक वह पुण्य से सम्पन्न होता रहता है।।११।।

गाय को खुजलाना और उसका पालन करना उत्तम कर्म कहा गया है। भय और रोग आदि से गाय को बचाने का प्रयत्न करना सौ गोदान के समान होता है। जो जन भूखी और प्यासी गाय को तृणघास और जल प्रदान करता है, वह उत्तम मनुष्य गोमेध यज्ञ करने का दिव्य फल प्राप्त करने वाला होता है।।१२-१३।।

उस कपिला धेनु को दान करने वाला मनुष्य विविध प्रकार के दिव्य विमानों से सम्पन्न होकर चारों ओर दिव्य कन्याओं और दिव्य सुगन्धियों से सेवित हुआ अग्नि के समान दीप्तिवान् होता है।।१४।।

स्वर्ण जैसी वर्ण वाली कपिला गाय प्रथम श्रेणी की मानी जाती है, फिर गौर पिङ्गल वर्ण की गाय द्वितीय श्रेणी की और रक्तवर्ण के आँखों वाली तृतीय श्रेणी की तथा गुड़ के समान पिङ्गल वर्ण वाली चतुर्थ श्रेणी की कही गई है।।१५।।

कई वर्णों वाली धेनु पाँचवीं श्रेणी की, श्वेत पिङ्गल वर्ण वाली धेनु छठी श्रेणी की, श्वेत पिङ्गल वर्ण की आँखों वाली सातवीं श्रेणी की और कृष्ण पिङ्गल वर्ण वाली धेनु आठवीं श्रेणी की होती है।।१६।।

वहीं पर पाटल वर्ण की धेनु नवम श्रेणी की, पिङ्गल वर्ण की पूँछ वाली धेनु दशम श्रेणी की और श्वेत वर्ण की खुर वाली एकादश श्रेणी की धेनु होती है। इन समस्त लक्षणों या विशेषताओं वाली एकादश श्रेणी की धेनु होती है।।१७।।

इस प्रकार से भोग और मोक्ष प्रदान करने वाली, समस्त लक्षणों से सम्पन्न और सर्व अलंकरणों से सुशोभित सुन्दर दीखने वाली धेनु ब्राह्मण को दान करना श्रेष्ठ है। इस भोग और मोक्ष को प्रदान करने वाली कपिला धेनु को दान करने वाला निःसंशय ही विष्णुलोक को गमन करने वाला होता है।।१८।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में कपिला गौ लक्षण और उसका माहात्म्य नामक एक सौ दसवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥११०॥

एकादशाधिकशततमोऽध्यायः

अथ कपिलामाहात्म्यम्

होता उवाच

अतः परं महाराजोभयमुख्याः समासतः। विधानं यद् वराहेण धरण्याः कथितं पुरा।
तदहं संप्रवक्ष्यामि तव पुण्यफलं च यत्॥१॥

धरण्युवाच

या त्वया कपिला नाम पूर्वमुत्पादिता प्रभो। होमधेनुः सदा पुण्या सा ज्ञेया कतिलक्षणा॥२॥
कियत्यः कपिलाः प्रोक्ताः स्वयमेव स्वयंभुवा। प्रसूयमाना दानेन किंपुण्या स्याच्च माधव।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं विस्तरेण जगद्गुरो॥३॥

श्रीवराह उवाच

शृणुष्व भद्रे तत्त्वेन पवित्रं पापनाशनम्। यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः॥४॥
कपिला अग्निहोत्रार्थे यज्ञार्थे च वरानने। उद्धृत्य सर्वतेजांसि ब्रह्मणा निर्मिता पुरा॥५॥
पवित्राणां पवित्रं च मङ्गलानां च मङ्गलम्। पुण्यानां परमं पुण्यं कपिला च वसुंधरे॥६॥
तपसां तप एवाग्रं व्रतानामुत्तमं व्रतम्। दानानामुत्तमं दानं निधीनां ह्येतदक्षयम्॥७॥

अध्याय-१११

कपिला माहात्म्य, अष्टादश पुराण नाम, वाराहीसंहिता माहात्म्य

होता ने कहा कि हे महाराज! पुरातन काल में वराह के द्वारा पृथ्वी से जिस उभय मुख वाली धेनु दान विधान को बतलाया गया था, उसको और उसके पुण्यप्रदफल को सारांश रूप में मैं आपसे बतलाने जा रहा हूँ।।१।।

धरणी ने पूछा था कि हे प्रभो! पुरातन समय में आपके द्वारा नित्य पवित्र होमधेनु कपिला को प्रकट किया था, इस समय वह किन लक्षणो से पहचानी जाती है।।२।।

स्वयं ब्रह्मा द्वारा ही कितनी कपिला धेनु का उल्लेख किया गया है? हे माधव! प्रसविता धेनु के दान का क्या पुण्य फल होता है? हे जगद्गुरो! मैं यह विस्तार पूर्वक सुनने की इच्छा रखती हूँ।।३।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि हे भद्रे! वास्तविक रूप से पवित्र और पापनाश करने वाले इस विषय के बारे में सुनो, जिसको सुनकर मनुष्य समस्त पापों से निःसंश छूट जाता है।।४।।

हे वरानने! पुरातन समय में लोक पितामह ब्रह्माजी ने सब प्रकार के तेजों को एकत्रित कर उन तेजों से अग्निहोत्र और यज्ञकर्म के लिए कपिला-धनु उत्पन्न किया था।।५।।

हे वसुन्धरे! जो कपिला धेनु सबसे अधिक पवित्र, मंगलों में भी मंगल और पुण्य प्रदान करने वालों में भी सर्वाधिक पुण्यप्रद है।।६।।

जो कपिला धेनु तपों में भी उत्तम तप, व्रतों में भी श्रेष्ठतम व्रत, दानों में भी उत्तम दान और विधियों में भी अक्षय विधि है।।७।।

पृथिव्यां यानि तीर्थानि गुह्यान्यायतनानि च। पवित्राणि च पुण्यानि सर्वलोकेषु सुन्दरि॥८॥
होतव्यान्यग्निहोत्राणि सायं प्रातर्द्विजातिभिः। कपिलाया घृतेनेह दध्ना क्षीरेण वा पुनः॥९॥
जुह्वते ह्यग्निहोत्राणि मन्त्रैश्च विविधैः सदा। पूजयन्नेतिथीश्चैव परां भक्तिमुपागताः।
ते यान्त्यादित्यवर्णैश्च विमानैर्द्विजसत्तमाः॥१०॥
सूर्यमण्डलमध्येन ब्रह्मणा निर्मिता पुरा। कपिला या पिङ्गलाक्षीं सर्वसौख्यप्रदायिनी।
सिद्धिबुद्धिप्रदा धेनुः कपिलाऽनन्तरूपिणि॥११॥
एकादशी समाख्याताः कपिलास्ते वरानने। सर्वा ह्येता महाभागास्तारयन्ति न संशयः।
संगमेशु प्रशस्ताश्च सर्वपापप्रनाशनीः॥१२॥
अग्निपुच्छा अग्निमुखा अग्निलोमाऽनलप्रभा। तथाग्नेयी सदा देवी सुवर्णाख्या प्रवर्तते॥१३॥
गृहीत्वा कपिलां शूद्रः कामतः सदृशीं पिबेत्।
अतीतः स द्विजातीनां चण्डालसदृशो हि सः॥१४॥
तस्मान्न प्रतिगृह्णीयाच्छूद्राद् विप्रः प्रतिग्रहम्। दूरतः प्रतिहर्तव्याः श्वानस्तु क्षमिनां वरे॥१५॥

हे सुन्दरि! इस पृथ्वी के ऊपर जितने तीर्थ और गुप्त आयतन हैं और सब लोकों में जितने पवित्र और पुण्य स्थान, उनके समान ही यह पुण्यमयी कपिला धेनु है।।८।।

अतः द्विजातियों को सायं और प्रातःकाल कपिला के घृत, दधि या दूध से ही अग्निहोम के हेतु हवन करना श्रेयस्कर है।।९।।

इस प्रकार श्रेष्ठ भक्तिभावना सहित निरन्तर कपिला के घृतादि और सब प्रकार के मन्त्रों से जो जन अग्निहोत्र हेतु हवन करते हुए अतिथियों की भी पूजा-सत्कार करते हैं, ऐसे उत्तम श्रेणी के द्विज सूर्य के समान वर्ण युक्त विमानों से ऊर्ध्वलोक में पहुँचते हैं।।१०।।

पुरातन समय में ब्रह्माजी का सूर्य मण्डल के मध्यभाग से जिस पिङ्गल वर्ण के नेत्रों वाली समस्त सुखों को प्रदान करने वाली, सब प्रकार की सिद्धियों और बुद्धियों को देने वाली कपिला को निर्मित किया गया, उस कपिला धेनु का अनन्त स्वरूप होते हैं।।११।।

हे वरानने! यहाँ तुमको उपरोक्त ग्यारह प्रकार की कपिला धेनु के बारे में ही बतलायी गई है। जो समस्त महासौभाग्यवती धेनु जीवों को निस्संशय मुक्ति प्रदान करती है। और सम्पर्क में होने पर सब प्रकार के पापों को विनष्ट करती हैं।।१२।।

उस कपिला धेनु का पूँछ, मुख, लोम आदि अग्नि के समान हैं। अतः ऐसी अग्नि स्वरूप वाली कपिला देवी 'सुवर्ण' नाम से प्रसिद्ध हुई।।१३।।

लेकिन जो कोई शूद्रजन अपनी इच्छा से उपरोक्त सदृश कपिला धेनु को पालकर उसका दूध पीया करता है, वे द्विजातियों से त्याज्य और चाण्डाल के समान हो जाया करते हैं।।१४।।

अतः हे क्षमा करने वालों में श्रेष्ठ वसुन्धरे! ऐसे शूद्र से ब्राह्मण को कभी दान ग्रहण नहीं करना चाहिए तथा श्वान् की तरह दूर रखकर उसको सदा हेतु त्याग देना चाहिए।।१५।।

पर्वकाले हि सर्वे वै वर्जिताः पितृदैवतैः। असंभाष्याऽप्रतिग्राह्याः शूद्रास्ते पापकर्मिणः॥१६॥
पिबन्ति यावत् कपिलां तावत् तेषां पितामहाः। भूमेर्मलं समश्नन्ति जायन्ते विड्भुजश्चिरम्॥१७॥
तासां क्षीरं घृतं वापि नवनीतमथापि वा। उपजीवन्ति ये शूद्रास्तेषां गतिमतः शृणु॥१८॥
कपिलोपजीविनः शूद्राः क्रूरा गच्छन्ति रौरवम्। रौरवेषु च पच्यन्ते वर्षकोटिशतं धरे॥१९॥
ततो विमुक्ताः कालेन श्वानयोनिं व्रजन्ति ते। श्वानयोन्या विमुक्तस्तु विष्ठायां जायते कृमिः॥२०॥

विष्ठास्थानेषु पापिष्ठो दुर्गन्धिषु तु नित्यशः।
भूयो भूयो जायमानाः सद्यो नाशं व्रजन्ति ते॥२१॥

ब्राह्मणश्चैव यो विद्वान् कुर्यात् तेषां प्रतिग्रहम्। ततः प्रभृत्यमेध्यान्तः पितरस्तस्य शेरते॥२२॥
न तं विप्रं सुसंभाषेन्न चैवैकासनं विशेत्। स नित्यं वर्जनीयो हि दूरात् तु ब्राह्मणोऽध्वरे॥२३॥
यस्तेन सह संभाषेत् तथा चैकासनं व्रजेत्। प्राजापत्यं चरेत् कृच्छ्रं तेन शुद्ध्यति स द्विजः॥२४॥
एकस्य गोप्रदानस्य सहस्त्रांशेन पूर्यते। किमन्यैर्बहुभिर्दानैः कोटिसंख्यातविस्तरैः॥२५॥

फिर कम से कम पर्वकाल में तथा पितर और देवकार्य के समय ऐसे सब पापिष्ठ शूद्रों से न वार्त्ता करे और न उनका दान ही स्वीकार करे।।१६।।

ऐसे वे शूद्र जिस समय तक उस कपिला का दूध पीया करते हैं, उस समय तक उन शूद्रों के पितामहादि पितर भूमि पर स्थित मल का भक्षण ही किया करते हैं। वैसे उनको दीर्घकाल तक मलभक्षण करते रहना पड़ता है।।१७।।

तत्पश्चात् आगे उन शूद्रों के बारे में कहा जा रहा है, जो उन कपिला गायों के दूध, घी और मक्खन से आजीविका किया करते हैं, उनकी कैसी गति होती है, सुनो—।।१८।।

हे धरे! उन कपिला धेनु के माध्यम से आजीविका करने वाले क्रूर शूद्र रौरव नरक जाते हैं, जहाँ वे सौ करोड़ वर्षों तक दुःख भोग करते हुए निवास करते हैं।।१९।।

तत्पश्चात् निश्चित समय पर वे रौरव नरक से मुक्त होकर श्वान् योनि में उत्पन्न होते हैं, फिर उससे मुक्त होकर वे विष्ठा में स्थित रहने वाला कृमि होते हैं।।२०।।

इस प्रकार अत्यन्त पापीष्ठ वे जन निरन्तर वारम्वार दुर्गन्धयुक्त विष्ठा स्थान में उत्पन्न होते और जल्दी-जल्दी ही विनष्ट होते रहते हैं।।२१।।

ऐसे जनों का जो कोई ब्राह्मण और विद्वान् दान ग्रहण करता है, उसके पितर तत्क्षण से अपवित्र वस्तुओं में सोया करते हैं।।२२।।

इस प्रकार उस ब्राह्मण से वार्त्ता भी नहीं करनी चाहिए और उनके ऐसो के साथ एक आसन पर बैठना भी नहीं चाहिए। यज्ञादि अनुष्ठान में उन ऐसे ब्राह्मणों का दूर से तिरस्कार कर देना चाहिए।।२३।।

जो जन ऐसे उन जनों से वार्त्ता करता है और उनके साथ एक आसन पर बैठता है, उन ब्राह्मणों को भी कृच्छ्र प्राजापत्य व्रत करना चाहिए। फिर वह ब्राह्मण शुद्ध होता है।।२४।।

यहाँ कहा जा रहा है कि यदि एक मात्र कपिला गाय के दान मात्र करने से हजारों गुणा पुण्यफल प्राप्त हो सकता है, तो करोड़ों संख्या के विस्तार वाले अन्य दानों से क्या प्रयोजन है?।।२५।।

श्रोत्रियाय दरिद्राय सुवृत्तायाहिताग्नये। आसन्नप्रसवां धेनुं दानार्थी प्रतिपालयेत्।
कपिलाऽर्धप्रसूता वै दातव्या च द्विजन्मने॥२६॥
जायमानस्य वत्सस्य मुखं योन्यां प्रदृश्यते। तावत् सा पृथिवी ज्ञेया यावद् गर्भं न मुञ्चति॥२७॥
धेन्वा यावन्ति रोमाणि सवत्साया वसुंधरे। तस्याश्च पांशवो यावद् गर्भोदकपरिप्लुताः॥२८॥
तावत्यो वर्षकोट्यस्तु ब्रह्मवादिभिरर्चिताः। ब्रह्मलोके निवसन्ति ये च वै कपिलाप्रदाः॥२९॥
सुवर्णशृङ्गीं यः कृत्वा रौप्ययुक्तखुरां तथा। ब्राह्मणस्य करे दत्त्वा सुवर्णं रौप्यमेव च॥३०॥
कपिलायास्तदा पुच्छं ब्राह्मणस्य करे न्यसेत्। उदकं च करे दत्त्वा वाचयेच्छुद्धया गिरा॥३१॥
ससमुद्रवना तेन सशैलवनकानना। रत्नपूर्णा भवेद् दत्ता पृथिवी नात्र संशयः॥३२॥
पृथिवीदानतुल्येन दानेनैतेन वै नरः। नन्दितो याति पितृभिर्विष्णवाख्यं परमं पदम्॥३३॥
ब्रह्मस्वहारिणो गोघ्नो भ्रूणहा पाकभेदकः। महापातकयुक्तोऽपि वञ्चको ब्रह्मदूषकः॥३४॥
निन्दको ब्राह्मणानां च तथा धर्मोपदूषकः। एतैः पातकयुक्तोऽपि गवां दानेन शुद्ध्यति॥३५॥
यश्चोभयमुखीं दद्यात् प्रभूकनकान्विताम्। तद् दिनं पायसाहारं पयसा वातिवाहयेत्॥३६॥
सुवर्णस्य सहस्रेण तदर्धेनापि भामिनि। तस्याप्यर्धशतेनाथ पञ्चाशच्च ततोऽर्धकम्।
यथाशक्त्या प्रदातव्या वित्तशाठ्यं विवर्जयेत्।३७॥

दान करने के इच्छुक जन प्रसव काल में स्थित गौ का यत्न से पोषण करे और आधा प्रसव कर चुकी कपिला धेनु का ब्राह्मण को दान करें।।२६।।

उत्पन्न हो रहे बछड़े का मुख जिस समय गाय की योनि में दीख पड़े, उस समय से जब तक वह गर्भ का त्याग करती हो, उस समय तक उसे पृथ्वी के समान समझना चाहिए।।२७।।

वे वसुन्धरे! बछड़े के साथ उस धेनु के जितने रोम होते हैं और उस धेनु के गर्भ जल से जितने धूलकण भींगते हैं, उतने करोड़ वर्ष पर्यन्त उभयमुखी कपिला गाय को दान करने वाले जन ब्रह्मवादियों से पूजित होकर ब्रह्मलोक में रहा करते हैं।।२८-२९।।

उस धेनु की सींग को स्वर्ण से और खुर को चाँदी से सम्पन्न कर ब्राह्मण के हाथ में स्वर्ण, चाँदी रखकर कपिला धेनु का पूँछ और जल रखना चाहिए और शुद्धता से मन्त्रोच्चारण करना चाहिए।।३०-३१।।

इस प्रकार से उसके द्वारा निःसंशय समुद्र, वन, पर्वत आदि सम्पन्न पृथ्वी का दान दिया गया समझना चाहिए।।३२।।

फिर वह दान करने वाला मनुष्य पृथ्वी के दान के समान इस कपिला के दान से पितरों के प्रशंसा पात्र होते हुए विष्णुलोक नामक परमपद को प्राप्त कर लेता है।।३३।।

इस प्रकार के कपिला धेनु दान से ब्राह्मण का धन अपहरण करने वाला, गोहत्या करने वला, भ्रूण हत्या करने वाला, पाकभेदक, महापातकी, वञ्चक, ब्राह्मण को दूषित करने वाला, ब्राह्मण निन्दक, धर्मदूषक आदि सब प्रकार के पापों को करने वाले जन भी अत्यन्त विशुद्धता को प्राप्त हो जाता है।।३४-३५।।

जो जन पर्याप्त स्वर्ण सम्पन्न इस प्रकार की उभयमुखी अर्थात् तत्क्षण बछड़ा का प्रसव कर रही धेनु का दान करने वाले को उस दिन पायस का आहार लेकर समय बिताना चाहिए।।३६।।

हे भामिनि! हजार स्वर्णमुद्रा या उसका आधा अर्थात् पाँच सौ या उसका भी आधा ढ़ाई सौ अथवा सौ अथवा

इमां गृह्णोभयमुखीं भयत्राता ममाशु च। ददे वंशविवृद्ध्यर्थं सदा स्वस्तिकरी भव॥३८॥
प्रतिगृह्णामि त्वां धेनो कुटुम्बार्थे विशेषतः। स्वस्तिर्भवतु मे नित्यं रुद्राङ्गे ते नमो नमः॥३९॥
ॐ द्यौस्त्वा ददत्विति पुनर्मन्त्रेण प्रतिगह्णाति। कोऽदादिति मन्त्रेण प्रतिगृह्य वसुंधरे।
विसृज्य ब्राह्मणं देवि तां धेनुं तद्गृहं नयेत्॥४०॥
एवं प्रसूयमानां यो गां ददाति वसुंधरे। पृथिवी तेन दत्ता स्यात् सप्तद्वीपा न संशयः॥४१॥
चरन्ति तं चन्द्रसमानवक्त्राः प्रतप्तजम्बूनदतुल्यवर्णाः।
महासितत्वास्तनुवृत्तमध्याः सेवन्त्यजस्रं कुलिता हि देवाः॥४२॥
प्रातरुत्थाय यो भक्तः कल्पं धेन्वा मुदा युतम्।
जितेन्द्रियः शुचिर्भूत्वा पठेद् भक्त्या समाहितः॥४३॥
त्रिःसदावर्तनं कृत्वा पापं वर्षकृतं च यत्। नश्यते तत्क्षणादेव वायुना पांसवो यथा॥४४॥
श्राद्धकाले पठेद् यस्तु इदं पावनमुत्तमम्। तस्यान्नं संस्कृतं तद्धि पितरोऽश्नन्ति धीमतः॥४५॥

पचास स्वर्णमुद्रा अथवा अपनी शक्ति के अनुसारप्रचुर स्वर्ण मुद्रा सहित गोदान करना श्रेष्ठ है। इस प्रसङ्ग में वितशाठ्य अर्थात् कंजूसी नहीं करना चाहिए।।३७।।

दान करते समय दान देने वाले को इस प्रकार बोलना चाहिए कि हे ब्राह्मण! इस उभयमुखी धेनु को ग्रहण करो और फिर कहना चाहिए कि हे गौ! मेरी रक्षा करो। मेरे वंश की विशेष रूप से अभिवृद्धि करो, इसीलिए मैं यह दान क़र रहा हूँ। मेरा आप नित्य कल्याण करो।।३८।।

फिर दान लेने वाला भी इस प्रकार कहे कि हे धेनु! मैं अपने कुटुम्ब हेतु तुम्हें विशेष रूप से ग्रहण कर रहा हूँ। मेरा भी नित्य कल्याण हो। हे रुद्राङ्ग! आपको प्रणाम है।।३९।।

फिर यह कहकर कि 'ॐ द्यौस्त्वा ददतु'' आदि प्रकारक मन्त्रों को बोलकर धेनु को ग्रहण करना चाहिए। हे वसुन्धरे! कोऽदाद् आदि मन्त्र द्वारा दान लेने वाले ब्राह्मण को विदा करना चाहिए। फिर दान की गई धेनु को लेकर उस ब्राह्मण के गृह पहुँचा देना चाहिए।।४०।।

हे वसुन्धरे! इस प्रकार से जो कोई जन प्रसववती गाय का दान करने वाले हैं, वे निस्संशय सात द्वीपों से सम्पन्न पृथ्वी का दान किया, ऐसा अनुभव करे।।४१।।

इस प्रकार से कपिला धेनु दान करने वाले की सेवा में चन्द्र मुख वाले, तपे स्वर्ण के समान वर्ण वाले, महाश्वेत वर्ण वाले, मध्य भाग में क्षीण शरीर वाले समूह में आबद्ध देवगण निरन्तर सन्नद्ध रहा करते हैं।।४२।।

फिर इस प्रकार के साधक जन जो प्रातःकाल उठकर इन्द्रिय निग्रह पूर्वक पवित्र और प्रसन्नता से भक्तिभाव सहित एकाग्रभाव से धेनुकल्प का पाठ किया करते हैं।।४३।।

धेनु कल्प का निरन्तर नित्य तीन आवृत्ति पाठ करने वाले मनुष्य का एक वर्ष के अन्दर किया हुआ समस्त पापों का नाश उसी प्रकार हो जाता है, जिस प्रकार वायु से धूलकण उड़ जाया करते हैं।।४४।।

जो जन श्राद्धकाल में इस उत्तम और पवित्र कल्प का पाठ करता है, तो उस बुद्धिमान् मनुष्य का अन्न संस्कारवान् हो जाता है, जिसे पितृगण निश्चय खाया करते हैं।।४५।।

अमायां वाऽथ यः कश्चिद् द्विजानामग्रतः पठेत्। पितरस्तस्य तृप्यन्ति वर्षाणां शतमेव च॥४६॥
यश्चैतच्छृणुयान्नित्यं तद्गतेनान्तरात्मना। संवत्सरकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति॥४७॥

होता उवाच

इदं रहस्यं राजेन्द्र वराहेण पुरातनम्। धरण्यै कथितं राजन् धेनुमाहात्म्यमुत्तमम्।
मया ते कथितं सर्वं सर्वपापप्रणाशनम्॥४८॥
द्वादश्यां माघमासस्य शुक्लायां तिलधेनुदः। सर्वकामसमृद्धार्थो वैष्णवं पदमाप्नुयात्॥४९॥
द्वादश्यां श्रावणे मासि शुक्लायां राजसत्तम। प्रत्यक्षधेनुर्दातव्या सहिरण्या नृपोत्तम॥५०॥
सर्वदा सर्वधेनूनां प्रदानं राजसत्तम। सर्वपापप्रशमनं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्॥५१॥
एतत् ते सर्वमाख्यातं समासाद् बहुविस्तरम्। अपारफलमुद्दिष्टं ब्रह्मणा लोककर्तृणा॥५२॥
अथवा पीड्यसेऽत्यन्तं क्षुधया पार्थिवोत्तम। तदानीं कार्त्तिके देयं वर्ततेऽद्य नाराधिप॥५३॥
ब्रह्माण्डं सर्वसंपन्नं भूरत्नौषधैर्युतम्। देवदानवयक्षैश्च युक्तमेतत् सदा विभो॥५४॥
एतद्धेममयं कृत्वा सर्वबीजसमन्वितम्। सरत्नं पुरुषः कृत्वा कार्तिक्यां द्वादशीदिने॥५५॥
अथवा पञ्चदश्यां वा कार्तिकस्यैव नान्यतः। पुरोहिताय गुरवे दापयेद् भक्तिमान् नरः॥५६॥

अथवा अमावस्या तिथि के दिन ब्राह्मणगण के सम्मुख जो कोई जन इस धेनुकल्प का पाठ करते हैं, उसके पितर सौ वर्ष पर्यन्त तृप्त रहा करते हैं।।४६।।

अथवा जो जन अन्तरात्मा से तन्मय होकर इसे सुना करते हैं, उस जन के एक वर्षाभ्यन्तर में किया हुआ पाप तत्क्षण ही विनष्ट होते हैं।।४७।।

होता ने कहा कि हे राजेन्द्र! वराह ने पृथ्वी से इस पुरातन और श्रेष्ठ धेनु माहात्म्य को बतलाया था। फिर मैंने आपसे उस पापनाशक सम्पूर्ण माहात्म्य का उल्लेख किया है।।४८।।

फिर माघ मास के शुक्ल पक्ष की द्वादशी तिथि को तिल धेनु का दान, जो करता है, वह अपनी समस्त कामनाओं और अभिलाषाओं को पूरा करता हुआ विष्णुलोक में चला जाता है।।४९।।

हे राजसत्तम! हे नृपोत्तम! श्रावण मास के शुक्ल पक्ष की द्वादशी तिथि को स्वर्ण सहित प्रत्यक्ष धेनु का दान करना चाहिए।।५०।।

हे राजसत्तम! सब प्रकार के गोदान सदा ही सम्पूर्णता से पापों को नष्ट करने वाला और भोग व मोक्ष को प्रदान करने वाला होता है।।५१।।

जगत्स्रष्टा ब्रह्मा के द्वारा अतिविस्तारपूर्वक कथित इस सम्पूर्ण अपार फल को ही मैंने सारांश रूप से आपसे यहाँ कहा है।।५२।।

हे पार्थिवोत्तम! हे नराधिप! जब आप इस समय भूख से अतिशय पीड़ा का अनुभव कर रहे हैं, तो कार्त्तिक मास में दान अवश्य करना चाहिए। आज वही कार्त्तिक मास उपस्थित है।।५३।।

हे विभो! यह अखिल ब्रह्माण्ड सदा निरन्तर समस्त पदार्थों, प्राणियों, रत्नों, औषधियों, देवताओं, दानवों, यक्षों आदि से सुसम्पन्न ही रहा करती है।।५४।।

भक्ति भावना सम्पन्न जन को इस कार्त्तिक मास की द्वादशी अथवा कार्त्तिक पूर्णिमा को ही सब रत्नों, बीजों सहित इस ब्रह्माण्ड की स्वर्ण मूर्त्ति निर्मित कर गुरु पुरोहित को दान करना चाहिए।।५५-५६।।

ब्रह्माण्डोदरवर्तीनि यानि भूतानि पार्थिव। तानि दत्तानि तेन स्युः समासात् कथितं तव॥५७॥
ये यज्ञैर्यजते राजन् सहस्रवरदक्षिणैः। सैकोद्देशं यजेत् तस्य ब्रह्माण्डस्य विशेषतः॥५८॥
यः पुनः सकलं चेदं ब्रह्माण्डं यजते नरः। तेन यष्टं हुतं दत्तं पठितं कीर्तितं भवेत्॥५९॥
एवं श्रुत्वा ततो राजा हेमकुम्भं तु कल्पयेत्। ब्रह्माण्डमृषये प्रादात् सविधानं च तत्क्षणात्॥६०॥
सर्वकामैः सुसंभूतो ययौ स्वर्गं नराधिपः। तस्मात् त्वमपि राजेन्द्र तद् दत्त्वा तु सुखी भव॥६१॥
एवमुक्तो वसिष्ठेन सोऽप्येवमकरोन्नृपः। जगाम परमां सिद्धिं यत्र गत्वा न शोचति॥६२॥

श्रीवराह उवाच

इयं ते संहिता देवि कथिता सर्वकामिका। वराहाख्या वरारोहे सर्वपातकनाशिनी॥६३॥
सर्वज्ञादुत्थिता चेयं ततो ब्रह्मा बुबोध ह। ब्रह्माऽपि स्वसुते प्रादात् पुलस्त्याय महात्मने।
पुलस्त्योऽपि प्रदद्याद् वै भार्गवाय महात्मने॥६४॥
असावपि स्वशिष्याय प्रादादुग्राय धारिणे। उग्रोऽपि मुनये प्रादादेषोऽपि परिकीर्तितः॥६५॥
संबन्धः पूर्वकल्पोक्तो द्वितीयं शृणु सांप्रतम्। सर्वज्ञाल्लब्धवानस्मित्वं च मत्तो धराधरे॥६६॥

हे पार्थिव! इस प्रकार से उसके द्वारा किये जाने पर ब्रह्माण्ड के मध्य भाग में वर्तमान सब प्राणियों का दान सम्पन्न हो जाता है। इसे इस समय मैंने आपसे सारांश मात्र कहा है।।५७।।

हे राजन्! जो जन अतिशय उत्तम दक्षिणा वाले हजारों यज्ञों को करने वाला है, वह ब्रह्माण्ड की मूर्त्ति के एकांश दान करने के समान ही हुआ करता है।।५८।।

जो जन फिर और फिर इस अखिल ब्रह्माण्ड की पूजा करता है, उसके द्वारा समस्त यज्ञ, हवन, दान, कीर्तन आदि सुसम्पन्न हुए, माना जाता है।।५९।।

तत्पश्चात् इस प्रकार से होता को सुनकर तत्क्षण राजा ने स्वर्णकलश मँगाकर विधान के सहित उस ऋषि को दान कर दिया।।६०।।

सब इच्छाओं से युक्त वह श्रेष्ठ राजा स्वर्ग को चला गया। फिर हे नृपश्रेष्ठ! आप भी वह दान करके सुख को प्राप्त करें।।६१।।

इस प्रकार से वशिष्ठ से उस राजा ने जैसा सुना, उसने भी वैसा ही किया। फिर उसे श्रेष्ठ सिद्धि की प्राप्ति हुई, जिसे प्राप्त करने वाला प्राणी शोकाकुल नहीं होता।।६२।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि हे देवि! इस प्रकार से मैंने तुमको सब कामनाओं की पूर्ति करने वाली यह वाराही नामक संहिता को कहा है। हे वरारोहे! यह संहिता समस्त पापों को नाश करने वाली है।।६३।।

इस वाराहसंहिता को सर्वज्ञ ईश्वर ने उत्पन्न किया है। उनसे ब्रह्मा ने इस संहिता को जाना। ब्रह्माजी से उनके पुत्र महात्मा पुलस्त्य और पुलस्त्य से यह संहिता भार्गव को प्राप्त हुई।।६४।।

उस भार्गव ने भी इस संहिता को धारण करने योग्य शिष्य उग्र को प्रदान किया। सुना जाता है कि उग्र ने भी यह संहिता मुनि को प्रदान कर दी।।६५।।

हे धराधरे! यह पूर्वकल्पोक्त सम्बन्ध है। अधुना द्वितीय सम्बन्ध को सुनो। मैंने सर्वज्ञ से इसको प्राप्त कर सका है और अब तुम ने भी मुझसे इसे प्राप्त किया।।६६।।

त्वत्तश्च तपसा युक्ता वेत्स्यन्ते कपिलादयः। क्रमेण यावद् व्यासेन ज्ञातमेतद् भविष्यति॥६७॥
तस्यापि शिष्यो भविता नाम्ना वै रोमहर्षणः। असौ शुनकपुत्रस्य कथयिष्यति नान्यथा॥६८॥
अष्टादश पुराणानि वेद द्वैपायनो गुरुः। ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं भागवतं तथा॥६९॥
तथान्यं नारदीयं च मार्कण्डेयं च सप्तमम्। आग्नेयमष्टमं प्रोक्तं भविष्यं नवमं तथा॥७०॥
दशमं ब्रह्मवैवर्तं लैङ्गमेकादशं स्मृतम्। वाराहं द्वादशं प्रोक्तं स्कान्दं चापि त्रयोदशम्॥७१॥
चतुर्दशं वामनं च कौर्मं पञ्चदशं स्मृतम्। मात्स्यं च गारुडं चैव ब्रह्माण्डं च ततः परम्॥७२॥

श्रीवराह उवाच

य एतत् पारयेद् भक्त्या कार्तिक्यां द्वादशीदिने। तस्य नूनं भवेत् पुत्रो अपुत्रस्यापि धारिणि॥७३॥
यस्येदं तिष्ठते गेहे लिखितं पूजितं सदा। तस्य नारायणो देवः स्वः तिष्ठति धारिणि॥७४॥
यश्चैतच्छृणुयाद् भक्त्या नैरन्तर्येण मानवः। श्रुत्वा तु पूजयेच्छास्त्रं तथा विष्णुं सनातनम्॥७५॥
गन्धैः पुष्पैस्तथा वस्त्रैर्ब्राह्मणानां च तर्पणैः। यथाशक्त्या नृपो ग्रामैः पूजयेद् वाचकं धरे॥७६॥
श्रुत्वा तु पूजयेद् यस्तु शास्त्रं वाराहसंज्ञितम्। सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुसायुज्यमाव्रजेत्॥७७॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे एकादशाधिकशततमोऽध्यायः॥१११॥

फिर तप में संलग्न कपिल आदि महर्षि तुम्हारे द्वारा इसे जान सकेंगे। इस क्रम में यह क्रम से व्यास को भी प्राप्त हो सकेगा। उन व्यास का भी एक शिष्य होगा; रोमहर्षण। वह शुनक के पुत्र शौनक को इसे वास्तविक रूप से बतला सकेगा।।६७-६८।।

फिर गुरु द्वैपायन अट्ठारह पुराण के ज्ञाता हो सकेंगे। ब्राह्म पाद्म वैष्णव शैव भागवत आदि तथा अन्य नारदीय, सप्तम मारकण्डेय, अष्टम आग्नेय, नवम भविष्य, दसवाँ ब्रह्मवैवर्त, ग्यारहवाँ लिङ्ग, बारहवाँ वराह, तेरहवाँ स्कन्द, चौदहवाँ वामन, पन्द्रहवाँ कूर्म, सोलहवाँ मत्स्य, सत्रहवाँ गरुड़ और अट्ठारहवाँ ब्रह्माण्ड पुराण, इन पुराणों को व्यास जी द्वारा कहा गया है।।६९-७२।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि हे धारिणी! कार्त्तिक मास की द्वादशी को जो इसका पारायण करेगा, उस पुत्रहीन को भी पुत्र की प्राप्ति होगी।।७३।।

हे धारिणि! जिस किसी के घर में यह पुराण लिखित रूप में रखा और पूजा जाता है, उस जन के घर सर्वदा स्वयं नारायण देव निवास किया करते हैं। जो जन भक्तिभाव से नित्य इसे सुनता है और सुनकर शास्त्र और सनातन विष्णु की पूजा किया करते हैं, वे विष्णु की प्राप्ति करने वाला होता है।।७४-७५।।

हे धरे! राजा जनों द्वारा सामर्थ्य के अनुरूप गन्ध, पुष्प, वस्त्र, ब्राह्मण पूजन और ग्रामों द्वारा वाचक की पूजा की जानना चाहिए।।७६।।

जो जन सुनकर वराह नाम की संहिता की पूजा किया करते हैं, वे समस्त पापों से रहित होकर विष्णु सायुज्य को प्राप्त करने वाले होते हैं।।७७।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में कपिला माहात्म्य, अष्टादश पुराण नाम, वाराहीसंहिता माहात्म्य नामक एक सौ ग्यारहवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१११॥

❖❖❖

द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः

अथ धरणी द्वारा माधवस्तुतिः

ॐ नमो वराहाय। नमो ब्रह्मपुत्राय सनत्कुमाराय नमः।
नमस्तस्मै वराहाय लीलयोद्धरते महीम्। खुरमध्यगतो यस्य मेरुः खणखणायते॥१॥
स तेन सान्त्वितायां वै पृथिव्यां वै समागतः। सनत्कुमारस्तत्क्षेत्रे दृष्ट्वा तां संस्थितां महीम्।
स्वस्तिवाच्याह पुण्याग्रे प्रत्युवाच वसुंधराम्॥२॥

सनत्कुमार उवाच

यं दृष्ट्वा वर्द्धसे देवि त्वं च यस्यासि माधवि। विष्णुना धार्यमाणा च किं त्वया दृष्टमद्भुतम्॥३॥
एतदाचक्ष्व तत्त्वेन यत् ते हरिमुखाच्छुतम्। ब्रह्मपुत्रवचः श्रुत्वा पृथिवी वाक्यमब्रवीत्॥४॥

धरण्युवाच

यद् गुह्यं स मया पृष्टो यच्च मे संप्रभाषितम्। शृणु तत्त्वेन विप्रेन्द्र गुह्य धर्म महौजसम्॥५॥
भगवत्प्रोक्तधर्माणि यद् गुह्यं कथयाम्यहम्। तेन मे कथितं ह्येतत् संसारात् तु विमोक्षणम्॥६॥
विष्णुभक्तेन यत्कार्यं यत्क्रिया परिनिष्ठिता। उवाच परमं गुह्यं धर्माणां व्याप्तनिश्चयम्।
अयं धर्मो मया ह्येतच्छुतं धर्मसनातनम्॥७॥

अध्याय–११२

धरणी की ब्रह्मा की प्रेरणा से माधव स्तुति

ॐ श्री वराह भगवान् को प्रणाम है। ब्रह्माजी के पुत्र स्वरूप सनत्कुमार को प्रणाम है। उन भगवान् वराह को प्रणाम है, जिसने लीला करते हुए पृथ्वी का उद्धार किया और जिनके खुरों के बीच में स्थित सुमेरु पर्वत खण-खण जैसी आवाज किया करते हैं।।१।।

उन वराह भगवान् से सान्त्वना प्राप्त पृथ्वी के पास सनत्कुमार उस क्षेत्र विशेष में उपस्थित हुए। फिर वे सम्मुख स्थित पृथ्वी से स्वस्ति वाणी के साथ पूछा—।।२।।

सनत्कुमार ने पूछा कि हे माधवि! हे देवि!! तुम जिनको देखते ही बढ़ने लगती हो और तुम जिनकी हो, उन विष्णु से धारित होकर तुमने क्या अद्भुत बात देखी?।।३।।

अतः इस प्रसङ्ग में तुमने विष्णु के मुख से जैसा सुना, उसे वैसे ही यथार्थतः मुझसे बतलाओ। इस प्रकार से ब्रह्मपुत्र की वाणी को सुनकर पृथ्वी ने इस प्रकार से कहा—।।४।।

धरणी ने कहा कि हे श्रेष्ठ विप्र! मैंने उनसे जो रहस्य पूछा था और जो कुछ मुझे बतलाया गया, उस महान् ओजस्वी रहस्यमय धर्म को यथार्थ स्वरूप में ही सुने।।५।।

अब मैं भगवान् द्वारा कहे गए धर्मों को बतलाती हूँ। मुझसे जो कुछ रहस्य युक्त पदार्थ उन्होंने कहा है। वे सदा संसार से मुक्त करने वाला है।।६।।

अतः विष्णुभक्त के द्वारा जो कुछ किया जाना चाहिए और जिस क्रिया में अच्छी तरह लगे रहना चाहिए,

ततो महीवचः श्रुत्वा ब्रह्मपुत्रो महातपाः। उपाजपत तिष्ठन्तो कोकामुखदिशं प्रति।
जटिलो ब्रह्मचारी च ये केचित् समये स्थिता॥८॥

तान् सर्वान् स समानीय योगिनां परमः प्रभुः। सनत्कुमारः पूतात्माप्रत्युवाच महीं प्रति॥९॥

यन्मया पूर्वमुक्ताऽसि कथयस्व वरानने। अप्रमेयगतिं चैव धर्ममाचक्ष्व तत्त्वतः॥१०॥

ततस्तस्य वचः श्रुत्वा प्रणम्य ऋषिपुङ्गवान्। उवाच परमप्रीता धात्री मधुरया गिरा॥११॥

धरण्युवाच

शृण्वन्तु ऋषयः सर्वे यत्तद्विष्णुमुखाच्छ्रुतम्। वाढमित्येव तां देवीं स्वस्ति ब्रूहीति साब्रवीत्॥१२॥

नष्टचन्द्रानिले लोके नष्टभास्करतारके। स्तम्भिताश्च दिशःसर्वा न प्रज्ञायत किञ्चन॥१३॥

न वाति पवनस्तत्र न चैवाग्निर्न ज्योतिषः। किञ्चित् तत्र न विद्येत न तारा न च राशयः॥१४॥

अंशवश्च न विद्यन्ते न नक्षत्रा न वा ग्रहाः। न चैवाङ्गारकस्तत्र न शुक्रो न बृहस्पतिः॥१५॥

शनैश्चरबुधो नात्र न चेन्द्रो धनदो यमः। वरुणोऽपि न विद्येत नान्ये केचिद् दिवौकसः।
वर्जयित्वा त्रयो देवान् ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान्॥१६॥

पृथिवी भारसंतप्ता ब्रह्माणं शरणं गता। गत्वा तु शरणं देवी दैन्यं वदति माधवो॥१७॥

धर्मों में श्रेष्ठतम उस निश्चित परमधर्म को, जिसे उन श्री हरि ने मुझसे बतलाया है, यही धर्म है। मैंने इस सनातन धर्म को सुना है।।७।।

तत्पश्चात् धरणी की वाणी को सुनकर महान् तपनिष्ठ ब्रह्माजी के पुत्र ने कोकामुख तीर्थ की दिशा में मुख कर बुलाया। उस समय जितने भी जटाधारण करने वाले उस तीर्थ में निवास करते थे, योगियों में श्रेष्ठ अति सामर्थ्यशाली पवित्रात्मा उन सनत्कुमार ने उन सबको बुलाकर धरणी से कहा—।।८-९।।

हे वरानने! पहले ही मैंने जो कुछ पूछा था, उस अविज्ञात गति वाले धर्म का यथार्थ स्वरूप बतलाओ।।१०।।

इस प्रकार उनकी वाणी को सुनकर श्रेष्ठ ऋषियों को प्रणाम करते हुए परम प्रसन्न चित्त वाली पृथ्वी ने अपनी मधुर वाणी में कहा—।।११।।

धरणी ने कहा कि हे सब ऋषिजनों! मैंने उन विष्णु के मुख से जैसा सुना है, उसे सुनो। इस पर ऋषियों ने उन पृथ्वी देवी से कहा 'ठीक ही है, तो तुम्हारा कल्याण हो, कहो।' फिर पृथ्वी कहने लगी।।१२।।

चन्द्र, वायु, सूर्य, तारायें आदि के नष्ट हो जाने के समय समस्त दिशायें भी स्तम्भित हो गईं। फिर कुछ भी ज्ञात नहीं रह गया था।।१३।।

उस स्थान पर वायु भी नहीं बह रहा था, न अग्नि और न कोई अन्य प्रकाश पुञ्ज ही था। वहाँ पर तारा अथवा राशियाँ कुछ भी नहीं थीं।।१४।।

किसी प्रकार की कोई ज्योति, नक्षत्र, ग्रह आदि भी नहीं थे। फिर उस समय मंगल, शुक्र अथवा बृहस्पति भी नहीं थे।।१५।।

शनिश्चर, बुध, इन्द्र, कुबेर, यम आदि भी नहीं थे। वरुण भी उपलब्ध नहीं थे। ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि त्रिदेव को छोड़कर अन्य कोई देवगण भी उस समय नहीं थे। फिर भार से संतप्त पृथ्वी ब्रह्मा जी की शरण में गयी। उनकी शरणागत होकर पृथ्वी देवी दीनभाव से कहने लगीं।।१६-७।।

प्रसीद मम देवेन्द्र मग्नाऽहं भारपीडिता। सपर्वतवनैः सार्धं मां तारय पितामह॥१८॥
पृथिव्या वचनं श्रुत्वा ब्रह्मा लोकपितामहः। मुहूर्तं ध्यानमास्थाय पृथिवीं तामुवाच ह॥१९॥
नाहं तारयितुं शक्तो विषमस्थां वसुंधरे। लोकनाथं सुरश्रेष्ठमादिकर्त्तारमञ्जसा।
लोकेशं धन्विनं कृष्णं याहि मायाकरण्डकम्॥२०॥
सर्वेषामेव नः कार्यं यच्च किञ्चित् प्रवर्त्तते। सर्वांस्तारयितुं शक्तः किं पुनस्त्वां वसुंधरे॥२१॥
अनन्तशयने देवं शयानं योगशायिनम्। ततः कमलपत्राक्षी नानाभरणभूषिता।
कृताञ्जलिपुटा देवी प्रसादयति माधवम्॥२२॥
अहं भारसमायुक्ता ब्रह्माणं शरणं गता। प्रत्याख्याता भगवता तेनाप्युक्तमिदं वचः॥२३॥
नाहं तारयितुं शक्तः सुश्रोणि व्रज माधवम्। स त्वां तारयितुं शक्तो मग्नाऽसि यदि सागरे॥२४॥
प्रसीद मम देवेश लोकनाथ जगत्पते। भक्तायाः शरणायाश्च प्रसीद मम माधव॥२५॥
त्वमादित्यश्च चन्द्रश्च त्वं यमो धनदस्तु वै। वासवो वरुणश्चासि अग्निर्मारुत एव च॥२६॥
अक्षरश्च क्षरश्चासि त्वं दिशो विदिशो भवान्। मत्स्यः कूर्मो वराहोऽथ नारसिंहोऽसि वामनः।
रामो रामश्च कृष्णोऽसि बुद्धः कल्किमहात्मवान्॥२७॥
एवं यास्यसि योगेन श्रूयते त्वं महायशाः। युगे युगे सहस्राणि व्यतीता ये च संस्थिताः॥२८॥

हे देवेन्द्र! आप मेरे ऊंपर प्रसन्न हों। मैं भार से पीड़ित होकर डूबती जा रही हूँ। हे पितामह! पर्वत, वन आदिकों के सहित मेरा उद्धार कीजिए।।१८।।

इस प्रकार से पृथ्वी को सुनने के बाद लोक पितामह ब्रह्मदेव ने मुहूर्त्त पर्यन्त ध्यानस्थ रह कर उन पृथ्वी से कहा—हे वसुन्धरे! विषम स्थिति में पड़ी हुई तुझको तारने में मैं सक्षम नहीं हूँ। तुमको इसके लिए देवताओं में श्रेष्ठतम आदि कर्त्ता मायापति लोकेश धनुर्धर कृष्ण के पास जाना चाहिए।।१९-२०।।

हे वसुन्धरे! हम सबके प्रयोजनों को भी वे ही पार लगाते हैं। वे ही एकमात्र सक्षम हैं, सबका पार लगाने वाले वे ही हैं। ऐसे में तुम्हारी क्या बात है?।।२१।।

फिर पद्मपत्र के सदृश नेत्रों वाली और कईयों आभूषणों से विभूषित पृथ्वी देवी दोनों हाथों से कृताञ्जलि होकर शेषशय्या पर योगनिद्रा में शयनरत माधव को प्रसन्न करने में लग गई।।२२।।

मैं भारपीड़िता ब्रह्माजी की शरण में गयी हुई थी, परन्तु भगवान् ब्रह्मा ने मुझे भार मुक्त करने में अपनी असमर्थता प्रकट की। इसमें उन्होंने इस प्रकार से कहा—।।२३।।

हे सुश्रोणि! मैं तेरा उद्धर करने में सक्षम नहीं हूँ। तुम माधव के पास चली जाओ। यदि तुम सागर में डूबने वाली हो, तो वे तुम्हारा उद्धार करने में सक्षम हैं।।२४।।

अतः हे जगत्पति लोकनाथ देवेश माधव! मुझ-सी दीन भक्त और शरणागत पर प्रसन्न हों। आप ही सूर्य, चन्द्र, यम, कुबेर, इन्द्र, वरुण, अग्नि, वायु आदि हैं। आप ही क्षर और अक्षर हैं। आप ही दिशा, विदिशा, मत्स्य, कूर्म, वराह, वामन, परशुराम, रामचन्द्र, कृष्ण, बुद्ध कल्कि आदि भी हैं।।२५-२७।।

इस प्रकार से सुना गया है कि आप ही महायशस्वी, हजारों बीते हुए और इस समय वर्तमान युगों में भी इसी तरह योग द्वारा स्थित रहते हैं।।२८।।

पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पञ्चमम्।
शब्दस्पर्शस्वरूपोऽसि रसो गन्धोऽसि नो भवान्॥२९॥

सग्रहा ये च नक्षत्राः कलाकालमुहूर्त्तकाः। ज्योतिश्चक्रं ध्रुवश्चासि सर्वमुद्योतते भवान्॥३०॥
मासः पक्षमहोरात्रमृतुः संवत्सराण्यपि। ऋतवश्चासि षण्मासा षड्रसाश्चासि संयुतः॥३१॥
सरितः सागराश्चासि पर्वताश्च महोरगाः। त्वं मेरुर्मन्दरो विन्ध्यो मलयो दर्दुरो भवान्॥३२॥

हिमवान्निषधश्चासि चक्रोऽसि च वरायुधः।
धनूंषि च पिनाकोऽसि योगः सांख्योऽसि चोत्तमः॥३३॥

परम्परोऽसि लोकानां नारायण परायणः। संक्षिप्तं चैव विस्तारो गोप्ता क्षेप्ता च वै भवान्॥३४॥
यज्ञानां च महायज्ञो यूपानामसि संस्थितः। वेदानां सामवेदोऽसि यजुर्वेदो वरानन॥३५॥
ऋग्वेदोऽथर्ववेदोऽसि साङ्गोपाङ्गो महाद्युते। गर्जनं वर्षणं चासि त्वं वेधा अनृतानृते॥३६॥
अमृतं सृजसे विष्णो येन लोकानधारयत्। त्वं प्रीतिस्त्वं परा प्रीतिः पुराणः पुरुषो भवान्॥३७॥

ध्येयाध्येयं जगत् सर्वं यच्च किञ्चित् प्रवर्त्तते।
सप्तानामपि लोकानां त्वं नाथस्त्वं च संग्रहः॥३८॥

फिर पृथ्वी, वायु, आकाश, जल और पांचवाँ अग्नि; ये पञ्चमहाभूत तथा हम सब में स्थित शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध आदि सब कुछ तो आप ही हैं।।२९।।

ग्रहों के साथ समस्त नक्षत्र मण्डल, कलात्मक काल, मुहूर्त्त, राशिचक्र, ध्रुवतारा आदि सब भी तो आप ही हैं। इस जगत् में सभी कुछ आप ही प्रकाशित किया करते हैं।।३०।।

आप ही मास, पक्ष, दिन और रात्रि, षड्ऋतुऐं, सम्वत्सर तथा षड्रसों से युक्त भी हैं।।३१।।

आप ही नदियाँ, समुद्र, पर्वत, महान् सर्प हैं। आप ही मेरु, मन्दर, विन्ध्य, मलय, दर्दुरपर्वत भी हैं।।३२।।

आप ही हिमालय और निषध पर्वत, सुदर्शन चक्र स्वरूप श्रेष्ठ आयुध, पिनाक धनुष और उत्तम योग और सांख्यशास्त्र हैं।।३३।।

हे नारायण! आप जगत् के अत्यन्त श्रेष्ठ आश्रय स्थान, उसका सारांश और विस्तार स्वरूप तथा उसका रक्षक और उत्पादक भी हैं।।३४।।

हे वरानन! आप तो यज्ञों में महायज्ञ, यज्ञीय यूपों में अच्छी तरह स्थित रहने वाले, वेदों में सामवेद और यजुर्वेद स्वरूप हैं।।३५।।

हे महाद्युति! आप अंगों और उपाङ्गों से युक्त ऋग्वेद और अथर्ववेद हैं। आप ही गर्जन, वर्षण, वेधा, अनृत, ऋत आदि के स्वरूप हैं।।३६।।

हे विष्णो! आप ही अमृत को उत्पन्न करने वाले हैं, जिससे आपने लोकों को धारण किया था। आप प्रीति, श्रेष्ठ प्रेम स्वरूप और पुराणपुरुष भी हैं।।३७।।

आप ध्यान योग्य, ध्यान में न आने योग्य, जो वर्तमान अखिल जगत् है, वह आप ही हैं। आप सप्तलोकों के स्वामी और संग्रह करने वाले हैं।।३८।।

त्वं च कालश्च मृत्युश्च त्वं भूतो भूतभावनः।
आदिमध्यान्तरूपोऽसि मेधा बुद्धिः स्मृतिर्भवान्॥३९॥
आदित्यस्त्वं युगावर्त्तः स च पञ्च महातपाः। अप्रमाणप्रमेश्योऽसि ऋषीणां च महानृषिः॥४०॥
उग्रदण्डश्च तेजस्वी ह्रीर्लक्ष्मीर्विजयो भवान्। अनन्तश्चासि नागानां सर्पाणामसि तक्षकः।
उद्वहः प्रवहश्चासि वरुणो वारुणो भवान्॥४१॥
क्रीडाविक्षेपणश्चासि गृहेशु गृहदेवताः। सर्वात्मकः सर्वगतो वर्द्धनो मान एव च॥४२॥
साङ्गस्त्वं विद्युतीनां च विद्युतानां महाद्युतिः। युगो मन्वन्तरश्चासि वृक्षाणां च वनस्पतिः॥४३॥
अण्डजोद्भिज्जस्वेदानां जरायूणां च माधव।
श्रद्धाऽसि त्वं च देवेश दोषान् हन्ताऽसि माधव॥४४॥
गरुडोऽसि महात्मानं वहसे त्वं परायणः। दुन्दुभिर्नेमिघोषैश्च आकाशगमनो भवान्॥४५॥
जयश्च विजयश्चासि गृहेषु गृहदेवताः। सर्वात्मकः सर्वगतश्चेतनो मन एव च॥४६॥
भगस्त्वं वृषलिङ्गश्च परस्त्वं परमात्मकः। सर्वभूतनमस्कार्यो नमो देव नमो नमः।
मां त्वं मग्नामसि त्रातुं लोकनाथ इहार्हसि॥४७॥
आदिकालात्मकं ह्येतत् सर्वपापहरं शिवम्। य इदं पठते स्तोत्रं केशवस्य दृढव्रतः।
व्याधितो मुच्यते रोगाद् बद्धो मुच्येत बन्धनात्॥४८॥

आप ही काल, मृत्यु, भूत, भूतभावन, आदि, मध्य, अन्त स्वरूप, मेधा, बुद्धि, स्मृति आदि भी हैं।।३९।।

आप ही युगों को प्रवृत्त करने वाले आदित्य, पञ्चमहातपस्वी, प्रमाण और प्रमेय से मुक्त, ऋषियों के मध्य महान् ऋषि भी हैं।।४०।।

आप ही उग्र दण्ड स्वरूप, तेजस्वी, ह्रीं, लक्ष्मी, विजय आदि हैं। आप नागों में अनन्त सर्पों में तक्षक, उद्वह और प्रवह नाम के वायु, वरुण, वारुण (समुद्र) आदि भी हैं।।४१।।

आप ही द्युत क्रीड़ा में फेंकने योग्य अक्ष या पासा, घरों में वास करने वाले वास्तु देवता, सर्वात्मा, सर्वव्यापक, वर्द्धन, मान अर्थात् प्रमाण स्वरूप भी हैं।।४२।।

आप ही विशिष्ट प्रकाशस्त्रोतों के अंगों से सम्पन्न, प्रकाशकों में महान् प्रकाशक भी हैं। आप ही युग, मन्वन्तर, वृक्षों में वनस्पति आदि हैं।।४३।।

हे माधव! आप ही अण्डज, उद्भिज, स्वेदज, जरायुज आदि प्राणियों के श्रद्धा के योग्य हैं। हे देवेश माधव! आप ही तो समस्त दोषों को विनष्ट करने वाले हैं।।४४।।

आप महान् आत्म स्वरूप विष्णुदेव को वहन करने वाले गरुड़ भी हैं। आप ही श्रेष्ठतम शरण स्थान हैं। दुन्दुभि और नेमि की ध्वनि भी आप ही हैं। आकाश में गमन भी करने वाले हैं।।४५।।

आप ही जय और विजय, गृहों में गृहदेवता, सर्वस्वरूप, सर्वव्यापक, चेतन और मन के स्वरूप भी हैं।।४६।।

आप ही भग या ऐश्वर्य स्वरूप, वृषलिङ्ग अर्थात् धर्म के लक्षण स्वरूप, श्रेष्ठतम और परमात्मा हैं। आप समस्त प्राणियों से नमस्कार कराने वाले हैं। हे देव! आपको वारम्वार प्रणाम है। हे लोकनाथ! आप ही मुझ डूबने वाले को बचाने में सक्षम समर्थ हैं।।४७-४८।।

अपुत्रो लभते पुत्रं दरिद्रो धनमाप्नुयात्। अभार्यो लभते भार्यामपतिः पतिमाप्नुयात्॥४९॥
उभे संध्ये पठेद् यस्तु माधवस्य महास्तवम्। स गच्छेद् विष्णुलोकं हि नात्र कार्या विचारणा॥५०॥
अयं तु अक्षरोक्तोऽपि भवेत् तु परिकल्पना। तावद् वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते॥५१॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः॥११२॥
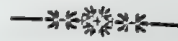
त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः

अथ वराहस्वरूपकथनम्

श्रीवराह उवाच

संस्तूयमानो भगवान् मुनिभिर्मन्त्रवादिभिः। तुष्टो नारायणो देवः केशवः परमो विभुः॥१॥
ततो ध्यानं समास्थाय दिव्यं योगं च माधवः। मधुरं स्वरमास्थाय प्रत्युवाच वसुंधराम्॥२॥
तव देव प्रियार्थाय भक्त्या यच्च व्यवस्थितम्। कारयिष्यामि ते सर्वं यत्ते हृदि व्यवस्थितम्॥३॥
अहं त्वां धारयिष्यामि सशैलवनकाननाम्। ससागरां ससरितां सप्तद्वीपसमन्विताम्॥४॥

पुत्ररहित को पुत्र, दरिद्र को धन आदि की प्राप्ति हो जाती है। पत्निरहितों को पत्नि और पतिरहितों को पति की प्राप्ति होती है।।४९।।

जो जन दोनों सन्ध्या कालों में माधव के इस महास्तुति का पाठ करने वाले हैं, वह निश्चयपूर्वक विष्णुलोक को जाते हैं। इसमें संशय नहीं करना चाहिए।।५०।।

यद्यपि यह अक्षरों में स्तुति को बतलाया गया है, किन्तु इससे यह फल प्राप्त होता है कि प्राणी इस स्तुति के अक्षरों के तुल्य हजारों वर्षों तक स्वर्ग लोक में निवास करता हुआ पूजित होता है।।५१।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में धरणी की ब्रह्मा के कहने पर माधव स्तुति नामक एक सौ बारहवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥११२॥

अध्याय-११३

वराह स्वरूप वर्णन और विभु अर्चना विषयक नानाविध प्रश्न

श्री वराह भगवान् ने कहा कि मन्त्रवादी ऋषियों द्वारा स्तुति करने पर परम विभु नारायण केशव देव प्रसन्न हो गए।।१।।

फिर तो श्री माधव ने अपने दिव्य योग से ध्यान किया और मीठे स्वरों में पृथ्वी देवी से कहा—हे देवि! तुम्हारे भक्तिभाव के कारण जैसा कुछ निश्चित हुआ है, उसे मैं तुम्हारे हित के लिए अवश्य करूँगा। फिर तुम्हारे हृदय में जो कुछ है, वे सब भी मैं कर सकूँगा।।२-३।।

एवमाश्वासयित्वा तु वसुधां स तु माधवः। रूपं संकल्पयामास वाराहं सुमहौजसम्॥५॥
षट् सहस्त्राणि चोच्छ्रायो विस्तारेण पुनस्त्रयः। एवं नवसहस्त्राणि योजनानां विधाय च॥६॥
वामया दंष्ट्रया गृह्य उज्जहार स मेदिनीम्। सपर्वतवनाकारां सप्तद्वीपां सपत्तनाम्॥७॥
नगा विलग्नाः पतिताः केचिद् विज्ञानसंश्रिताः।
शोभन्ते च विचित्राङ्गा मेघा वर्षागमे यथा॥८॥
चन्द्रनिर्मलसङ्काशा वराहमुखसंस्थिताः। शोभन्ते चक्रपाणेश्च मृणालं कर्दमे यथा॥९॥
एवं विधार्यमाणा सा पृथिवी सागरान्विता। वर्षाणं च सहस्त्रं हि वज्रदंष्ट्रेण साधुना॥१०॥
तस्यामेव तु कालस्य परिमाणं युगेषु च। एकसप्ततिमे कल्पे कर्दमोऽयं प्रजापतिः॥११॥
ततः पृथिव्या देवश्च भगवान् विष्णुरव्ययः। अन्योन्याभिमताश्चैव वाराहे कल्प उत्तमे॥१२॥
सा गौ स्तुवति तं चैव पुराणं परमव्ययम्। योगेन परमेणैव शरणं चैव गच्छति॥१३॥
आधारः कीदृशो देव उपयोगश्च कीदृशः। काले काले च देशे च कर्मणश्चापि कीदृशः॥१४॥

मैं पर्वत, वन, जंगल, समुद्र, नदी के सहित सप्त द्वीपों से सम्पन्न तुमको धारण करूँगा।।४।।

इस प्रकार से पृथ्वी को आश्वस्त करते हुए उन माधव ने वराह के अत्यन्त ओजस्वी स्वरूप का संकल्प धारण किया।।५।।

फिर उन ने छः हजार योजन ऊँचा और तीन हजार योजन चौड़ा, इस प्रकार नौ हजार योजन का वराह स्वरूप धारण कर लिया।।६।।

तत्पश्चात् उनने अपने वाम दंष्ट्रा पर पर्वत, वन, सात द्वीपों, नगरों आदि से युक्त पृथ्वी को ऊपर की ओर उठा लिया।।७।।

उस समय पृथ्वी से विशेष रूप से न जुड़े हुए कुछ पर्वत गिरने लगे और कुछ पर्वत विज्ञान की शक्तियों के आश्रित इस तरह शोभायमान हो रहे थे, जैसे वर्षा ऋतु में विभिन्न वर्णों और रूपों वाले मेघ सुशोभन प्रतीत होते हैं।।८।।

वैसे चक्रपाणि वराह के मुख पर स्थित चन्द्र की तरह अमल पर्वत इस प्रकार शोभा पा रहे थे, जैसे कीचड़ में पद्मनाल शोभा सम्पन्न दीख पड़ते हैं।।९।।

इस प्रकार वज्र के समान दाढ़ों वाले महात्मा वराह ने हजार वर्षों तक समुद्र सहित पृथ्वी को धारण किया रहा।।१०।।

युगों में उस काल का प्रमाण इस प्रकार है कि इकहत्तरवें कल्प में कर्दम प्रजापति चल रहा था।।११।।

तत्पश्चात् उत्तम नामक वराह कल्प में पृथ्वी ने अव्यय भगवान् विष्णु से प्रार्थना की और विष्णु ने पृथ्वी को आश्वासन दिया। उस समय उन दोनों ने आपस में एक-दूसरे को इस प्रकार से कहा—।।१२।।

उस समय उस पृथ्वी ने उन अव्यय स्वरूप वाले परमपुराण परमेश्वर की स्तुति की, और उत्तम योग द्वारा उनकी शरणागत हो गईं।।१३।।

पृथ्वी ने कहा कि हे देव! आधार किस प्रकार का है? और उसका उपयोग कैसे होता है? देश में काल-काल पर किस प्रकार का कर्म हुआ करता है?।।१४।।

कीदृशा पश्चिमा संध्या कीदृशा ह्यर्थवाह्यतः। शेषाः समानास्त्वां देवैः ये तु कर्माणि कुर्वते॥१५॥
किं नु संस्थापना देव आवाहनविसर्जने। अगुरुं गन्धधूपं च प्रापणं गुह्यसे कथम्॥१६॥
कथं पाद्यं च गृह्णासि स्थापना लेपनानि च। कथं दीपं च दातव्यं कन्दमूलफलानि च॥१७॥
आसनं शयनं चैव किं कर्मणि विधीयते। कथं पूजा प्रकर्तव्या प्रापणास्तत्र वै कति।
पूर्वपश्चिमसंध्यायां किं पुण्यं चापि तत्र वै॥१८॥
शरदि कीदृशं कर्म शिशिरे कर्म कीदृशम्। वसन्ते कीदृशं कर्म ग्रीष्मे किं कर्म कारयेत्।
प्रावृट्काले च किं कर्म वर्षान्ते किं च कारयेत्॥१९॥
यानि तत्रोपयोग्यानि पुष्पाणि च फलानि च।
कर्मण्याश्च अकर्मण्या ये वै शास्त्रबहिष्कृताः॥२०॥
किं कर्मणा भोगवता यावद् गच्छन्ति माधव।
कथं कर्म न चान्तेषु अतिगच्छति कीदृशाः॥२१॥
अर्चायाः किं प्रमाणं तु स्थापनं चापि कीदृशम्। परिमाणं कथं देव उपवासश्च कीदृशः॥२२॥
पीतकं शुक्लरक्तं वा कथं गृह्णीत शाश्वतम्। तेषां तु कानि वस्त्राणि यैर्हि तं प्रतिपद्यते॥२३॥

फिर पश्चिम की सन्ध्या कैसी हुआ करती है? अर्थ विहीन कार्य कैसा होता है? देवताओं की तरह जो कार्य करने वाले शेष लोग हैं वे कैसे आपकी सेवा करते हैं।।१५।।

हे देव! आपका स्थापन, आवाहन, विसर्जन कैसे होता है? पूजा प्रयुक्त अगरु और गन्ध, धूप किस प्रकार से ग्रहण किया जाता है?।।१६।।

आप किस प्रकार से पाद्य ग्रहण करते हैं? आपकी स्थापना और लेपन का प्रयोग कैसे होता है? दीप और कन्दमूल फल आपको कैसे प्रदान करना है?।।१७।।

आपके पूजन कर्म में आसन और शयन कैसे समर्पित किया जाता है। पूजा कैसे करनी चाहिए? अर्पण करने के योग्य पदार्थ कितने हैं? पश्चिम और पूर्व की सन्ध्या में पूजा करने से क्या निश्चित पुण्य होता है?।।१८।।

शरद् ॠतु में, शिशिर ॠतु में, वसन्तु ॠतु में, ग्रीष्म ॠतु में, वर्षा ॠतु में और वर्षा का अन्त होने पर कैसे कर्म करने चाहिए।।१९।।

इस प्रकार उन-उन कालों में जो-जो पुष्प और फल उपयोग करने के योग्य हैं, जो कर्म करने योग्य हैं तथा जो कर्म शास्त्र से बहिष्कृत और नहीं करने योग्य हैं, उन्हें कहें।।२०।।

किस प्रकार के भोग सम्पन्न जीव माधव की प्राप्ति करते हैं? किस प्रकार के कर्मवश जीव जीवनान्त में मुक्त नहीं हो पाते?।।२१।।

पूजा करने का प्रमाण क्या है? स्थापन कैसे किया जाता है? हे देव! परिमाण कैसे होता है? और उपवास किस प्रकार होता है?।।२२।।

पूजन काल में पीला, श्वेत, लाल या किस पुष्प आदि का ग्रहण करना चाहिए? उपासक के वस्त्र कैसे होने चाहिए? जिनसे उनका उनके पास पहुँच पाता है।।२३।।

केषु द्रव्येषु संयुक्तं मधुपर्कं च दीयते। के तु कर्मगुणास्तस्य मधुपर्कस्य माधव।
कानि लोकानि गच्छन्ति मधुपर्कस्य प्राशनात्॥२४॥
स्तवे परमकालेऽपि तव भक्तस्य माधव। किं प्रमाणं तु दातव्यं मधुपर्कसमन्वितम्॥२५॥
कानि मांसानि ते देव फलं शाकश्च कीदृशः। प्रापणेष्वपि युज्येत कर्मशास्त्रसमायुतम्॥२६॥
आहूतस्य च मन्त्रेण आगते भक्तवत्सले। केन मन्त्रविधानेन प्राशनं ते प्रदीयते॥२७॥
किं तस्य चोपचारेण अर्चयित्व यथाविधि। कानि कर्माणि कुर्वीत तव भक्तस्य भोजनात्॥२८॥
यत् स्तुतं प्रापणं देव न च दोषप्रसादितम्। केऽत्र भुञ्जन्ति तद् देव सर्वशुद्धिकरं शुभम्॥२९॥
ये तु एकाशिनो देवमुपसर्पन्ति माधवम्। तेषां तु का गतिर्देव तव भक्तिपरायणः॥३०॥
षष्ठाष्टमेन कालेन योऽभिगच्छेत माधवम्। तेषां तु का गतिर्देव तव भक्तिपरायणम्॥३१॥
कृच्छ्रं चान्द्रायणं कृत्वा येऽभिगच्छन्ति माधवम्। तेषां तु का गतिर्देव तव कर्मपरायणम्॥३२॥
व्रतं कृत्वा यथोक्तेन येऽभिगच्छन्ति माधवम्। कां गतिं पुरुषा यान्ति भावितास्तव शासने॥३३॥
कृच्छ्रं सांतपनं कृत्वा येऽभिगच्छन्ति माधवम्। कां गतिं ते प्रपद्यन्ते तव कर्मपरायणाः॥३४॥
वाय्वाहारं ततः कृत्वा कृष्णं समधिगच्छति। तेषां तु का गतिः कृष्ण तव भक्तिव्यवस्थिताः॥३५॥

किन द्रव्यों से सम्पन्न मधुपर्क देना है? हे माधव! उस मधुपर्क की विधि और गुण क्या है? मधुपर्क पीने से जीव किन लोकों को प्राप्त होता है?।।२४।।

हे माधव! उत्तम काल में स्तुति कर आपके भक्त को मधुपर्क से सम्पन्न कितनी वस्तु देनी चाहिए?।।२५॥

हे देव! किस प्रकार के मांस, फल, शाक आदि प्रदान करने से शास्त्रविहित कर्म सम्पन्न होता है?।।२६॥

मन्त्र से आंवाहन कर भक्त वत्सल के आ जाने पर किस मन्त्र विधि से भोग प्रदान करना चाहिए?।।२७॥

विधान के अनुरूप उपचार पूर्वक पूजा करने के बाद भोजन से पूर्व कौन से कर्म करने योग्य माना गया है?।।२८।।

हे देव! कौन जन स्तुति औरपूजा कर सब कुछ शुद्ध करने वाले कल्याणमय फलों को भोगते हैं?।।२९॥

हे देव! आपकी भक्ति से सम्पन्न हुआ एक बार भोजन करते हुए माधव देव की उपासना करने वालों की क्या गति होती है?।।३०।।

दिन के समय जो कोई छः या आठ बार माधव की पूजा किया करते हैं, उन आपके भक्तों की क्या गति होती है?।।३१।।

हे देव! जो जन कृच्छ्र चान्द्रायण व्रत धारण कर माधव की पूजा किया करते हैं, उन आपके भक्तों की क्या गति होती है?।।३२।।

आपकी आज्ञा में रहने वाले जो पुरुष यथोक्त विधि से व्रत कर माधव की उपासना करते हैं, उनकी गति क्या होती है?।।३३।।

आपके कर्म पारायण जो जन कृच्छ्रसान्तपन व्रत कर माधव की आराधना करते हैं, उनकी क्या गति होती है?।।३४।।

आपकी भक्ति से सम्पन्न जो व्यक्ति वायु का आहार करते हुए कृष्ण की आराधना करते हैं, उनकी क्या गति होती है?।।३५।।

अक्षारलवणं कृत्वा येऽभिगच्छन्ति चाच्युतम्। कां गतिं ते प्रपद्यन्ते तव कर्मानुसारिणः॥३६॥
तुलापुरुषकं कृत्वा येऽभिगच्छन्ति केशवम्। कां गतिं ते प्रपद्यन्ते नरा ये व्रतचारिणः॥३७॥
कृत्वा पयोव्रतं चैव येऽभिगच्छन्ति चाच्युतम्। कां गतिं ते प्रपद्यन्ते नरा ये व्रतचारिणः॥३८॥
दत्त्वा गवाह्निकं चैव ये प्रपद्यन्ति माधवम्। कां गतिं ते प्रपद्यन्ते तव भक्त्या व्यवस्थिताः॥३९॥
उञ्छवृत्तिं समास्थाय येऽभिगच्छन्ति माधवम्। कां गतिं ते प्रपद्यन्ते नरा भिक्षोपजीविनः॥४०॥
गृहस्थधर्मं कृत्वा वै येऽभिगच्छन्ति केशवम्। कां गतिं ते प्रपद्यन्ते तव कर्मपरायणाः॥४१॥
वैकुण्ठ तव क्षेत्रेषु ये तु प्राणान् विमुञ्चते। कांल्लोकांस्ते प्रपद्यन्ते तव क्षेत्रेषु ये मृताः॥४२॥
कृत्वा पञ्चात्मकं चैव माधवाय प्रपद्यति। कां गतिं तु परां यान्ति ते पञ्चत्वमाश्रिताः॥४३॥
कण्टशय्यां समासाद्य ये प्रपद्यन्ति चाच्युतम्। तेषां तु का गतिर्देव कण्टशय्यां समाश्रिताः॥४४॥
आकाशशयनं कृत्वा ये प्रपद्यन्ति चाच्युतम्। तेषां तु का गतिः कृष्ण तव भक्तिपरायणाः॥४५॥
गोव्रजे शयनं कृत्वा ये प्रपद्यन्ति केशवम्। तेषां तु का गतिर्देव तव भक्तिपरायणाः॥४६॥

इस प्रकार आपके कर्म का अनुसरण करने वाले जो व्यक्ति क्षार रहित लवण का भक्षण कर अच्युत की आराधना करते हैं, उनकी क्या गति होती है?।।३६।।

जो व्रत धारण करने वाला मनुष्य तुला पुरुषक अर्थात् अपने शरीर भार के प्रमाण तुल्य द्रव्य का दान कर केशव की आराधना करते हैं, उनकी क्या गति होती है?।।३७।।

जो व्रत धारण करने वाला मनुष्य मात्र दुग्ध पानं कर अच्युत की आराधना करते हैं, उनकी क्या गति होती है?।।३८।।

आपकी भक्ति में संलग्न जो व्यक्ति प्रतिदिन गौ को चारा प्रदान कर माधव की आराधना करते हैं, उनकी क्या गति होती है?।।३९।।

भिक्षा से जीविका निर्वाह करने वाले जो व्यक्ति उञ्छवृत्ति का पालन करते हुए माधव की आराधना करते हैं, उनकी क्या गति होती है?।।४०।।

आपके कर्मपरायण रहता हुआ जो जन गृहस्थ धर्म का पालन करते हुए केशव की आराधना करते हैं, उनकी क्या गति होती है?।।४१।।

हे भगवन्! आपके तीर्थस्वरूप क्षेत्रों में जो व्यक्ति प्राण त्याग कर मर जाते हैं, वे आपके तीर्थों में मरने वाले किन लोकों को प्राप्त करते हैं।।४२।।

जो जन पञ्च यज्ञों को सम्पन्न कर माधव की आराधना करते हैं, वे मरने पर किस श्रेष्ठ गति को प्राप्त कर पाते हैं।।४३।।

हे देव! जो जन कण्टक युक्त आसन स्थित होकर अच्युत की आराधना करते हैं, उनकी क्या गति होती है?।।४४।।

आपके जो भक्तजन आकाश में शयन करते हुए अच्युत की आराधना करते हैं, उनकी क्या गति होती है?।।४५।।

हे देव! आपके वे भक्तजन जो गोशाला में शयन कर केशव की आराधना करते हैं, उनकी क्या गति होती है?।।४६।।

शाकाहारं ततः कृत्वा येऽभिगच्छन्ति चाच्युतम्। तेषां तु का गतिर्देव तव भक्तिपरायणाः॥४७॥
पञ्चगव्यं ततः पीत्वा येऽभिगच्छन्ति माधवम्। तेषां तु का गतिर्देव ये नरा यावकाशिनः॥४८॥
आहारं गोमयं कृत्वा येऽभिगच्छन्ति केशवम्। नारायण गतिस्तेषां कीदृश्यत्र विधीयते॥४९॥
सक्तूंश्च भक्षयित्वा तु ये प्रपद्यन्ति चाच्युतम्। तेषां तु का गतिर्देव तव कर्मपरायणाः॥५०॥
शिरसा दीपकं कृत्वा येऽभिगच्छन्ति केशवम्। तेषां तु का गतिर्देव शिरसा दीपधारणात्॥५१॥
ये हि नित्यं पयः पीत्वा तव चिन्ताव्यवस्थिताः। ते गतिं कां प्रपद्यन्ति तव चिन्तापरायणाः॥५२॥
आमाशनं व्रतं कृत्वा ये प्रपद्यन्ति नित्यशः। तेषां तु का गतिर्देव तव भक्तिपरायणाः॥५३॥
भक्षयित्वा तु दूर्वां ये प्रपद्यन्ति मनीषिणः। तेषां तु का गतिर्देव स्वकर्मगुणचारिणः॥५४॥
जानुभ्यां प्रतिपद्यन्ति तव प्रीत्या च माधव। तेषां तु का गतिर्देव तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः॥५५॥
उत्तानशयनं कृत्वा ये विधारन्ति दीपिकाः। तेषां तु का गतिर्देव तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः॥५६॥
जानुभ्यां दीपकं कृत्वा केशवाय प्रपद्यते। तेषां तु का गतिर्देव तव धर्मपरायणाः॥५७॥
कराभ्यां दीपकं गृह्य केशवाय प्रपद्यते। तेषां तु का गतिर्देव कथ्यते चैव शश्वती॥५८॥

हे देव! आपके वे भक्तजन जो शाकाहार करते हुए अच्युत की आराधना करते हैं, उनकी क्या गति होती है?।।४७।।

हे देव! जो जन पञ्चगव्य पीकर माधव की आराधना करते हैं, उनकी क्या गति होती है?।।४८।।

हे नारायण! वे जन, जो गोमय का आहर ग्रहण कर केशव की आराधना करते हैं, उनकी क्या गति होती है?।।४९।।

हे देव! आपके वे भक्त जन जो सत्तू खाकर अच्युत की आराधना करते हैं, उनकी क्या गति होती है?।।५०।।

हे देव! जो शिर पर दीपक धारण कर केशव की आराधना करते हैं, उनकी क्या गति होती है?।।५१।।

आपके ध्यान में संलग्न वे लोग, जो नित्य जल पीकर आपका ध्यान किया करते हैं, उनकी गति क्या होती है?।।५२।।

हे देव! आपकी भक्ति परायण वे जन, जो नित्य कच्चे वस्तुओं का आहार कर आपकी आराधना करते हैं, उनकी क्या गति होती है?।।५३।।

हे देव! आपने कर्म और गुण के अनुरूप व्यवहार करने वाले वे बुद्धिमान् जन, जो दूब का आहर लेते हुए आपकी भक्ति किया करते हैं, उनकी क्या गति होती है?।।५४।।

हे देव! मुझ जैसे पूछने वाले को यह कहें कि वे जन, जो आपकी प्रीति पाने हेतु घुटनों के बल चलते हैं, ऐसे व्रत करने वालों की क्या गति होती है।।५५।।

हे देव! मेरे जैसे पूछने वाले को यह कहें कि वे जन, जो उत्तान शयन करते हुए दीपकों को धारण करते हैं, उनकी क्या गति होती है?।।५६।।

हे देव! घुटनों पर दीपक धारण कर वे धर्मपरायण भक्त, जो केशव की भक्ति किया करते हैं, उनकी क्या गति होती है?।।५७।।

हे देव! हाथों में दीपक धारण कर वे भक्तजन, जो केशव की पूजा किया करते हैं, उनको कैसी शाश्वत गति प्राप्त होती है।।५८।।

अवाक्शिरास्तु भूत्वा वै यः प्रपद्येज्जनार्दनम्।
भगवन् का गतिस्तस्य अवाक्शिरसि शायिनः॥५९॥

पुत्रदारगृहं चैव मुक्त्वा योऽनुप्रपद्यते। तेषां तु का गतिः सिद्धा कथयस्व सुरोत्तम॥६०॥
भाषितोऽसि मया ह्येवं सर्वलोकसुखावहम्। गमनागमनं चैव त्वत्प्रसन्नेन माधव॥६१॥
त्वं माता त्वं पिता त्वं च सर्वधर्मविनिश्चयः। अतस्त्वयैव वक्तव्यं योगसांख्यविनिश्चयः॥६२॥
त्वां भजंश्च गते जीवे मधुपर्कसमन्वितम्। भस्माकुलेषु निक्षिप्य कथं चाग्नौ प्रपद्यते॥६३॥
कां गतिं ते प्रपद्यन्ते त्वद्भक्ते जलसंस्थिते। त्वत्क्षेत्रसंस्थितो वाऽपि तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः॥६४॥
स्मरणं तेषु ते कृष्ण यैस्तु नाम प्रकीर्तितम्। नमो नाराणेत्युक्त्वा तेषां वै का गतिर्भवेत्॥६५॥
उद्यतेष्वपि शस्त्रेषु हन्यमाना रणे नराः। ये तु नाम प्रकीर्त्यन्ते तेषां वै कीदृशी भवेत्॥६६॥
अहं शिष्या च दासी च तव भक्तौ व्यवस्थिता। रहस्यं धर्मसंयुक्तं तन्ममाचक्ष्व माधव॥६७॥
एवं ते परमं गुह्यं मम प्रीत्या जगद्गुरो। लोकधमार्थं चिन्त्य त्वं तद् भवान् वक्तुमर्हसि॥६८॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे त्रयोदशाधिकाशततमोऽध्यायः॥११४॥

वे भक्तजन, जो सिर नीचे कर जनार्दन की आराधना किया करते हैं उन सिर नीचे कर आराधना करने वालो की क्या गति होती है?॥५९॥

हे सुरोत्तम! स्त्री, पुत्र, गृह सम्बन्धियों आदि के सुखों को त्याग कर जो भगवान् की भक्ति में लगे रहते हैं, उनकी क्या गति होती है?॥६०॥

हे माधव! मैंने आपसे उपरोक्त जिज्ञासा को व्यक्त किया है। आपकी प्रसन्नता से ही सबकी सुखप्रद आवागमन कर्म पूर्ण हुआ करता है। आप ही एकमात्र माता, पिता और अन्य समस्त धर्मों का निश्चय करने वाले हैं। अतः आप ही योग और सांख्य का निश्चय कर मुझसे कहें॥६१-६२॥

आपके यजन में चित्त को लगाये हुए जीवन निर्वाह करने के बाद मनुष्य मधुपर्क के सहित स्वयं को अग्नि में भस्म कर कौन-सी गति प्राप्त कर लेता है?॥६३॥

मेरे ऐसे पूछने वाले से आप यह कहे कि आपका भक्त जल में समाधि लगाकर अथवा आपके तीर्थ स्वरूप क्षेत्र में निवास करते हुए कौन सी गति प्राप्त कर लेता है?॥६४॥

हे कृष्ण! वे जन जो आपका स्मरण करते हैं, और जो आपका नाम संकीर्तन किया करते हैं, उनकी 'नमोनारायणाय' कहने पर क्या गति होती है?॥६५॥

शस्त्रधारण कर उद्यत और युद्ध में प्रहार झेलने पर भी जो जन आपके नाम का कीर्तन किया करते हैं, उनकी क्या गति होती है?॥६६॥

हे माधव! आपकी भक्ति में लगी रहने वाली मैं आपकी शिष्या और दासी हूँ। अतः आप धर्मयुक्त वे रहस्य मुझसे अवश्य कहें। हे जगद्गुरो मुझसे प्रीति रखने के कारण जगद् के धर्म और अर्थ का विचार करते हुए, आपको अपने परम रहस्य को मुझसे कहना चाहिए॥६७-६८॥

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में वराह स्वरूप वर्णन और विभु अर्चना विषयक नानाविध प्रश्न नामक एक सौ तेरहवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥११३॥

❖❖❖

चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः

अथ विष्णुयजनविधिः

ततो महीवचः श्रुत्वा देवो नारायणोऽब्रवीत्। कथयिष्यामि ते देवि कर्म स्वर्गसुखावहम्॥१॥
यत्त्वया पृच्छितं देवि तच्छृणुष्व वसुंधरे। स्थितिसंस्थानमर्त्यानां भक्त्या ये च व्यवस्थिताः॥२॥
नाहं दानसहस्रेण नाहं यज्ञशतैरपि। तुष्यामि न तु वित्तेन ये नराः स्वल्पचेतसः॥३॥
एकचित्तं समाधाय यो मां भजति माधवि। नित्यं तुष्यामि तस्याहं पुरुषं बहुदोषतः॥४॥
यच्च पृच्छसि मां भद्रे कर्म स्वर्गसुखावहम्। तच्छृणुष्व वरारोहे गदतो मे शुचिस्मिते॥५॥
ये मनस्यन्ति मां नित्यं पुरुषा बहुचेतसः। अर्द्धरात्रेऽन्धकारे च मध्याह्ने चापराह्णयोः॥६॥
यस्य चित्तं न नश्येत मम भक्तिव्यवस्थितम्। द्वादश्यामुपवासं तु यः कुर्यान्मम तत्परः।
न तेषां हि प्रणश्यामि कदाचिदपि माधवि॥७॥
लब्धचेतो गुणज्ञश्च नरो भक्तिपरायणः। यश्चापि मत्परः सो वै स्वर्गे वसति सुन्दरि॥८॥
स्वल्पकेन न गम्यन्ते दुष्प्राप्योऽहं वरानने। यानि कर्माणि कुर्वन्तो मां प्रपश्यन्ति माधवि।
तानि ते कथयिष्यामि येन भक्त्या व्यवस्थिताः॥९॥

अध्याय-११४

समन्त्रक विष्णु की अर्चाविधि और चातुर्वर्ण कर्म

तदनन्तर पृथ्वी की वाणी सुनकर नारायण देव ने कहा—हे देवि! मैं तुमको स्वर्ग में सुखप्रद कर्म को बतला दूँगा।।१।।

हे वसुन्धरे देवि! तुमने मुझसे भक्ति को प्राप्त होने वाले मनुष्यों की जिस अवस्था, स्थान आदि के बारे में पूछा है, उनको मैं तुमसे कहने जा रहा हूँ।।२।।

मैं हजारों दानों, सैकड़ों यज्ञों और बहुत-सारे धन से प्रसन्न नहीं होता। हे माधवि! लेकिन जो अल्पज्ञ मनुष्य एकनिष्ठ होकर मेरा भजन किया करते हैं, उनके बहुत दोषी होने पर भी मैं उन पर प्रसन्न हो जाया करता हूँ।।३-४।।

हे भद्रे! तुमने स्वर्ग में सुख प्रदान करने वाले जिस कर्म के बारे में मुझसे पूछा है, उसे मैं कह रहा हूँ। हे पवित्र मुस्कान वाली वरारोहे! अब उसे सुनो—।।५।।

वह अतिशय बुद्धिमान मनुष्य जो नित्य आधी रात में, अन्धकार होने पर, मध्याह्न में, या दोनों अपराह्नों में मुझे प्रणाम करता है तथा हे माधवि! ऐसा मेरा जो भक्त द्वादशी तिथि के रहते उपवास करता है, मैं उससे किसी क्षण पृथक् नहीं होता हूँ।।६-७।।

हे सुन्दरि! जो बुद्धिशील, गुणवान् और भक्ति परायण मनुष्य मेरा भक्ति करता है, वह निश्चय ही स्वर्ग में निवास किया करता है।।८।।

हे वरानने! मैं निश्चय ही दुष्प्राप्त हूँ। हे माधवि! जो कोई कर्मों को करने वाले, मेरा साक्षात्कार कर पाते

द्वादश्यामुपवासं तु ये वै कुर्वन्ति ते नराः। ते मामेव प्रपश्यन्ति मम भक्तिपरायणाः॥१०॥
कृत्वा चैवोपवासं तु गृह्य चैव जलाञ्जलिम्। नमो नारायणेत्युक्त्वा आदित्यं चावलोकयेत्॥११॥
यावन्तो बिन्दवः किञ्चित् पतन्त्येवाञ्जलेर्जलात्। तावद् वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते॥१२॥
अथ चैव तु द्वादश्यां पुरुषा धर्मवादकाः। विधिना च प्रयत्नेन ये मां कुर्वन्ति मानुषाः॥१३॥
पाण्डुरैश्चैव पुष्पैश्च मृष्टैर्धूपैश्च धूपयेत्। यो मे धारयते भूमे तस्यापि शृणु या गतिः॥१४॥
दत्त्वा शिरसि पुष्पाणि इमं मन्त्रमुदाहरेत्। हृदि कृत्वा तु मन्त्राणि शुक्लाम्बरधरो धरे॥१५॥
सुमनः सुमना गृह्य प्रियो मे भगवान् हरिः। एतेन मन्त्रेण सुमनो दद्यात्॥१६॥
नमोऽस्तु विष्णवे व्यक्ताव्यक्तगन्धसुगन्धि च। गृह्ण गृह्ण नमो भगवते विष्णवे।
अनेन मन्त्रेण गन्धं दद्यात्॥१७॥
श्रुत्वा प्रत्यागतमाधार सवनं पतये भव। प्रविष्टे मे धूपधूपनं गृह्णातु भगवानच्युतः।
अनेन मन्त्रेण धूपं दद्यात्॥१८॥
श्रुत्वा चैव च शास्त्राणि यो मामेवं तु कारयेत्। मम लोकं स गच्छेत जायते वै चतुर्भुजः॥१९॥
एतत् ते कथितं देवि श्रेष्ठं चैव मम प्रियम्। तव चैव प्रियार्थाय मन्त्रपूजासुखावहम्॥२०॥

हैं, वे कर्म अल्पश्रम से अवगत नहीं हो पाते। अब मैं तुम्हें उन कर्मों के बारे में बतलाऊँगा, जिनको करने से मनुष्य भक्तिभाव सम्पन्न हो जाता है।।९।।

जो कोई मेरी भक्ति परायण मनुष्य द्वादशी तिथि के दिन उपवास धारण करते हैं, वे मेरा दर्शन प्राप्त कर पाते हैं।।१०।।

उपवास पूर्वक अञ्जलि में जल भरकर और 'नमो नारायणाय' कहते हुए सूर्य का दर्शन करना उन्हें अर्घ्य देना चाहिए। इस प्रकार से अर्पित अर्घ के जल के जितने बिन्दु गिरते हैं उतने हजारों वर्षों तक मनुष्य स्वर्गलोक में पूज्यमान होता है।।११-१२।।

जो धर्मज्ञ जन द्वादशी को सप्रयत्न सविधि मेरा पूजन करते हैं और हे भूमे! मुझे श्वेत पुष्प अर्पण पूर्वक सुगन्धित धूप से धूपित कर मेरा ध्यान करते हैं, उनकी कैसी गति होती है, उसे सुनो—।।१३-१४।।

हे धरे! शिर पर पुष्प अर्पण कर और हृदय में शुक्लाम्बर धरं आदि मन्त्र स्मरण करते हुए यह पढ़ना चाहिए कि 'हे सुन्दर मन वाले मेरे प्रिय भगवान् हरि पुष्प धारण करें', इस मन्त्र से पुष्प चढ़ावें।।१५-१६।।

विष्णु को प्रणाम है। व्यक्त और अव्यक्त, गन्ध और सुगन्धि वाले पुष्पों को श्री विष्णु ग्रहण करें, ग्रहण करें। भगवान् विष्णु को नमस्कार है, इस मन्त्र द्वारा गन्ध प्रदान करना चाहिए।।१७।।

हे प्रभो अच्युत! सुगन्ध स्वरूप से आप में प्रविष्ट इस वृक्ष के रस को आप ग्रहण करें। मेरे द्वारा दिये गए धूप के धूम्र को भगवान् अच्युत ग्रहण करें। इस तरह इस मन्त्र द्वारा धूप अर्पण करना चाहिए।।१८।।

इस शास्त्रीय विधान को सुनकर जो इस प्रकार से मेरी आराधना करता है, वह निश्चय ही मेरे लोक में जाकर चतुर्भुज बन जाते हैं।।१९।।

हे देवि! तुम से प्रीति होने के कारण मैंने सुखप्रद इस श्रेष्ठ अपने प्रिय मन्त्र और पूजा की विधि को कहा है।।२०।।

श्यामाकं षष्टिकं चैव गोधूमा मुद्गकं तथा। शालीन्यवोयवांश्चैव तथा नीवारकङ्गुकाः॥२१॥
सस्यान्येतानि भुञ्जीत मम कर्मपरायणः। पश्यन्ति शङ्खचक्रं च लाङ्गलं मुसलं सदा।
गदा नित्यं सदा भक्तः पूजयेत् स च मे प्रियः॥२२॥
ब्राह्मणस्य तु वक्ष्यामि शृणु कर्म वसुंधरे। यानि कर्माणि कुर्वन्तो मम भक्तिपरायणाः॥२३॥
षट्कर्मनिरतो भूत्वा अहंकारविवर्जितः। लाभालाभं परित्यज्य भिक्षाहारो जितेन्द्रियः॥२४॥
मम कर्मसमायुक्तः पैशुन्येन विवर्जितः। ऋतुकालाभिगामी च शान्तात्मा मानवर्जितः।
शास्त्रानुसारी मध्यस्थो न वृद्धशिशुचेतनः॥२५॥
एतद् वै ब्राह्मणे कर्म पाकचिन्तापरायणः। कारयेदिष्टापूर्त्तेन स मामेव च पश्यति॥२६॥
क्षत्रियाणां प्रवक्ष्यामि मम कर्मपरायणाः। यानि कर्माणि कुर्वन्ति क्षत्रिया मध्यसंस्थिताः॥२७॥
दानशूरश्च कर्मज्ञो यज्ञेषु कुशलः शुचिः। मम कर्मसु मेधावी अहंकारविवर्जितः॥२८॥
अल्पभाषी गुणज्ञश्च नित्यं भागवतप्रियः। गुरुविद्यानसूया च गुह्यकर्मस्वनारतः॥२९॥
अभ्युत्थानादिकुशलः पैशुन्येन विवर्जितः। एतैर्गुणैः समायुक्तो यो मां यजति क्षत्रियः।
भजते मम यो नित्यं मम लोकाय गच्छति॥३०॥

सावाँ, साठी, गेहूँ, मूँग, धान, जौ, नीवार, कांगुनी आदि अन्नों का आहर लेकर मेरी आराधना में उक्त अन्न का आहर ग्रहण करने वाले मनुष्य मेरे शंख, चक्र, गदा, हल, मूसल को देखते रहा करते हैं। भक्त को सर्वदा श्री विष्णु पूजा में संलग्न रहना चाहिए। इस प्रकार वह मेरा प्रिय हो जाता है।।२१-२२।।

हे वसुन्धरे! अब मैं तुझे ब्राह्मण कर्म को कहने जा रहा हूँ, उसे सुनो—मेरी भक्ति में संलग्न ब्राह्मण, जिन कर्मों को करता है, उसे मैं कहता हूँ।।२३।।

ब्राह्मण इन्द्रिय-संयम करता हुआ अहंकार और लाभ-हानि के विचार का त्याग करता हुआ और भिक्षा से प्राप्त आहार स्वीकार करता हुआ अध्ययन और अध्यापन आदि छः प्रकार के कर्मों को किया करता है।।२४।।

फिर मेरे कर्म में लगा हुआ ब्राह्मण चुगली करने से बचता है। वृद्ध और शिशु योग्य ज्ञान वाले जनों को छोड़कर मध्यावस्था अर्थात् युवावस्था वाला ब्राह्मण ऋतुकाल में पत्निसंगम करता हुआ अभिमान रहित होकर शान्तमन से शास्त्र के अनुरूप कर्म करता है।।२५।।

ब्राह्मण का यही कर्म है। फिर ब्राह्मण भोजन की चिन्तन में संलग्न होकर इष्टापूर्त अर्थात् बलि वैश्वदेव आदि सम्बन्धी पञ्चयज्ञ को करे। इस प्रकार के आचरण करने वाला ब्राह्मण मेरा दर्शन प्राप्त करने वाला होता है।।२६।।

तत्पश्चात् मेरे कर्म में संलग्न मध्यायु अर्थात् युवा क्षत्रिय का जो भी कर्म हैं, अब उनको मैं कहने जा रहा हूँ।।२७।।

क्षत्रिय पवित्र, यज्ञ करने में कुशल, क्षत्रिय कर्म को जानने वाला, दानी और शूर होता है। उसको भी मेरे कर्मों को करने में बुद्धिशील और अहंकार रहित होना आवश्यक है।।२८।।

क्षत्रिय को अल्प बोलने वाला, गुणों को जानने वाला, नित्य भगवद् भक्तों की भक्ति, गुरु की विद्या से असूया या ईर्ष्या रहित और गुह्य कर्मों को न करने वाला होना चाहिए।।२९।।

क्षत्रियों को श्रेष्ठ जनों के स्वागत-सत्कार में किये जाने वाले अभ्युत्थान आदि कार्यों में कुशल तथा चुगलखोरी

वैश्यानां तु प्रवक्ष्यामि मम कर्मपरायणः। यानि कर्माणि कुरुते मम भक्तिपथे स्थितः॥३१॥
एभिर्गुणैः स्वधर्मेण लाभालाभविवर्जितः। ऋतुकालाभिगामी च शान्तात्मा मोहवर्जितः॥३२॥
शुचिर्दक्षो निराहारो मम कर्मरतः सदा। गुरुसंपूजको नित्यं युक्तो भक्त्यानुवत्सलः॥३३॥
वैश्योऽप्येवं सुसंयुक्तो योऽनुकर्मानुसारयेत्। तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥३४॥
अथ शूद्रस्य वक्ष्यामि कर्माणि शृणु माधवि। यानि कर्माणि वक्ष्यामि शूद्रो मह्यं व्यवस्थितः॥३५॥
दम्पती मम भक्तौ यौ मम कर्मपरायणौ। उभौ भगवतो भक्तौ मत्परौ कर्मनिष्ठितौ॥३६॥
देशकालावजानन्तौ वर्जितौ तमसो रजः। निरहंकारशुद्धान्तौ अतिथेर्मन्त्रवत्सलौ॥३७॥
श्रद्दधानौ विपूतान्तौ लोभमोहविवर्जितौ। नमस्कारप्रियौ नित्यं मम चिन्ताव्यवस्थितौ॥३८॥
शूद्रकर्माणि मे देवि य एवं स समाचरेत्। त्यक्त्वा ऋषिसहस्राणि शूद्रमेव भजाम्यहम्॥३९॥
चातुर्वर्ण्यस्य कर्माणि यत्त्वया परिपृच्छितम्। एवं कर्मगुणाश्चैव येन भक्त्या व्यवस्थिताः॥४०॥
सर्ववर्णानि मां देवि अपरं ब्राह्मणे शृणु। येन तत्प्राप्यते योगं तच्छृणुष्व वसुंधरे॥४१॥

से रहित होना चाहिए। इन गुणों से सम्पन्न क्षत्रिय मेरी आराधना और नित्य भजन करने वाला होकर मेरे लोक को प्राप्त करने वाला होता है।।३०।।

अब मेरे कर्म में संलग्न और मेरे भक्ति मार्ग में स्थित हुए वैश्यों के कर्मों को मैं आगे कहने जा रहा हूँ।।३१।।

वैश्यों को धर्म के अनुरूप लाभ और हानि के विचार से रहित होकर ऋतुकाल में स्त्रीसंग करने वाला, शान्त चित्त, मोहरहित, पवित्र, तत्परतापूर्वक उपवास करने वाला और सदा मेरे कार्य में संलग्न रहने वाला होना चाहिए। अतः इस प्रकार के गुणों से सम्पन्न नित्य गुरु का पूजन करने वाला, एकनिष्ठ भक्ति वाला और स्नेही स्वभाव वाला होना चाहिए।।३२-३३।।

इस प्रकार के गुणों से सम्पन्न वैश्य, जो अपने कर्मों का अनुसरण करने वाला होता है, उससे मैं कथमपि दूर नहीं होता और वह भी मुझसे दूर नहीं हो पाता है।।३४।।

हे माधवि! अधुना मैं शूद्र के कर्मों को कहने जा रहा हूँ।। इस समय मैं जिन कर्मों को कह रहा हूँ, उन कर्मों को करने वाला शूद्र मेरा प्रिय भक्त होता है।।३५।।

शूद्र, जो दत्पति अर्थात् पति-पत्नि दोनों मेरे भक्त होकर मेरे कर्म में संलग्न रहने वाला हो, तो वे दोनों ही भगवान् के भक्त होते हैं। अपने कर्म में निष्ठा रखने वाले के शूद्र दम्पति मेरे भक्त होते हैं।।३६।।

फिर शूद्र को देश और काल को जानने वाला, रज और तम गुणों से रहित, अहंकार शून्य, शुद्ध अन्तःकरण वाला, अतिथि और मन्त्र के अनुरागी, श्रद्धायुक्त, पवित्र चित्त वाला, लोभ और मोह से मुक्त, नमस्कार करने वाला और नित्य मेरा चिन्तन करते रहने वाला होना चाहिए।।३७-३८।।

हे देवि! मैं हजारों ऋषियों का त्याग कर उन शूद्रों का ही भजन करता हूँ, जो उक्त प्रकार के शूद्रों के कर्मों को करने में संलग्न रहता है।।३९।।

इस प्रकार मेरे द्वारा चारों वर्णों के जिन कर्मों को तुमने पूछा था, कहा गया है। वे कर्म और गुण इसी प्रकार के हैं। इन कर्मों में संलग्न रहकर मनुष्य निश्चय ही भक्ति सम्पन्न होता है।।४०।।

हे वसुन्धरे देवि! उपरोक्त समस्त कर्म सब वर्णों के कहे गये हैं। अब ब्राह्मण के अन्य कर्म के बारे में सुनो, जिनके सम्पादन से वे योग को प्राप्त करने वाला हो जाता है।।४१।।

त्यक्त्वा लाभमलाभं च मोहं कामं च वर्जयेत्।
न शीतेन न चोष्णेन लब्धाऽलब्धं न चिन्तयेत्॥४२॥
न तिक्तेनातिकटुना मधुराम्लैर्न लावणैः। न कषायैः स्पृहा यस्य प्राप्नुयात् सिद्धिमुत्तमाम्॥४३॥
भार्या पुत्रः पिता माता उपभोगार्थसंयुतम्। य एतान् हि परित्यज्य मम कर्मरतः सदा॥४४॥
धृतिज्ञः कुशलश्चैव श्रद्दधानो धृतव्रतः। मत्परो नित्यमुद्युक्तः अन्यकार्यजुगुप्सकः॥४५॥
बाले वयसि कल्पश्च अल्पभोगी कुलान्वितः। कारुण्यः सर्वसत्त्वानां प्रत्युत्थायी महाक्षमः॥४६॥
काले मौनक्रियां कुर्याद् यावत् तत्कर्म कारयेत्। त्रिकालं भजते संध्यां सदा कर्मपथे स्थितः॥४७॥
उपपन्नानुभुञ्जानः कर्मण्या भोजनानि च। अनुष्ठानपरश्चैव मम पार्श्वमनाश्च यः॥४८॥
काले मूत्रपुरीषाणि विसृज्य स्नानवत्सलः। पुष्पगन्धे च धूपे च सत्कर्म च सदारतः।
पुष्पगन्धे च धूपे च सत्कर्म च सदारतः॥४९॥
कदाचित् कन्दमूलानि फलानि च कदाचन। पयसा यावकेनापि कदाचिद् वायुभक्षणः॥५०॥
कदाचित् षष्ठकाले च क्वचिद् दृष्टमहाफलः। कदाचित् तु चतुर्थेन कदाचित् फलमेव च।
कदाचिद् दशमे भुञ्जेत् पक्षे मासे वसुंधरे॥५१॥

ब्राह्मणों को लाभ-हानि का विचार, मोह, काम आदि का त्याग करते हुए शीत और उष्ण दोनों से उद्विग्न न होकर प्राप्ति और अप्राप्ति की चिन्ता से मुक्त होना चाहिए।।४२।।

वह ब्राह्मण, जो अतिशय तीता, करुआ, मीठा, खट्टा, नमकीन, कसैला आदि रसों से युक्त पदार्थों की इच्छा नहीं करने वाला होता है, वह श्रेष्ठ सिद्धि वाला होता है।।४३।।

फिर पत्नि, पुत्र, पिता, माता, उपभोग योग्य पदार्थों से सम्पन्न गृह आदि का त्याग कर जो सदा ही मेरे कर्म में संलग्न रहने वाला, धैर्य्य धारण करने वाला, अपने कर्म में निपुण, श्रद्धालु, व्रत धारण करने वाला, मेरी भक्ति करने वाला, नित्य उद्योग करने वाला, अपने वर्ण के कर्मों से पृथक् अन्य कर्मों से दूर रहने वाला, बाल्यकाल में ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला, अल्प भोजन करने वाला, कुलीन,, सब प्राणियों पर करुणा करने वाला, स्वागत-सत्कार के लिए प्रत्युत्थान करने वाला और अतिशय क्षमावान् होना चाहिए।।४४-४६।।

ऐसा ब्राह्मण यथा अवसर शौचादि कर्म के प्रसङ्ग में मौन धारण करने वाला, त्रिकाल सन्ध्या करने वाला और नित्य अपने कर्म के मार्ग में संलग्न रहने वाला होता है।।४७।।

वह लब्ध भोगों को भोगने वाला, प्रशस्त खाद्य का आहार ग्रहण करने वाला, अनुष्ठान परायण और मेरे (विष्णु) समीप रहने की इच्छा वाला होता है।।४८।।

वह प्राप्त अवसर पर मलमूत्र का त्याग कर स्नान करने वाला होकर सदा पुष्प, गन्ध, धूप और सत्कर्म की व्यवस्था में संलग्न रहता है।।४९।।

वह कभी कन्दमूल, कभी फल, कभी दूध, कभी जौ से बने पदार्थों और कभी वायु भक्षण कर निर्वाह करने वाला होता है।।५०।।

हे वसुन्धरे! कभी उसे छठे दिन महान् फल तो कभी चौथे दिन उसे फल का ही आहार प्राप्त होता है। इसी क्रम में वह कभी दसवें दिन या एक पक्ष में या एक मास में भोजन करने वाला होता है।।५१।।

य एवं वर्त्तते विप्रो मम कर्म करोति च। योगिनस्तान् प्रवक्ष्यामि तेनैव च सनातनम्॥५२॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः॥११४॥

पञ्चादशाधिकशततमोऽध्यायः

अथ श्रीविष्णुपूजनफलकथनम्

श्रीवराह उवाच

मया प्रोक्तविधानेन यस्तु कर्माणि कारयेत्। शृणुष्व त्वं महाभागे येन साफल्यमाप्नुयात्॥१॥
एकचित्तः समाधाय अहंकारविवर्जितः। मच्चित्तोपगतो नित्यं क्षान्तो दान्तो जितेन्द्रियः॥२॥
फलमूलानि शाकानि द्वादश्यां वा कदाचन। पयोव्रतश्च तत्काले पुनश्चैव निरामिषः॥३॥
षष्ठ्यष्टमी अमावास्या उभे पक्षे चतुर्दशी। मैथुनं नाभिसेवेत द्वादश्यां च तथा प्रिये॥४॥
एवं योगविधानेन कर्म कुर्याद् दृढव्रतः। पूतात्मा धर्मसंयुक्तो विष्णुलोकं तु गच्छति॥५॥

इस प्रकार से जो ब्राह्मण जन व्यवहार करते हुए मेरा कर्म करते हैं, उसे मैं 'योगी' कहता हूँ। इसी से उसे शाश्वत पद की प्राप्ति भी तो होती है।।५२।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में समन्त्रक विष्णु की अर्चाविधि और चातुर्वर्ण कर्म नामक एक सौ चौदहवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥११४॥

❖❖❖

अध्याय–११५

विष्णु पूजन फल, सुख-दुःख प्रापक शुभाशुभ कर्म

श्री भगवान् वाराह ने कहा कि हे महाभागे! मैंने जो विधान कहा है, उससे कर्मों को करने पर सफलता प्राप्त होती है, उसे सुनो—।।१।।

एकनिष्ठ, समाधिस्थ होने वाला, अहंकार रहित होकर मुझमें चित्त को लगाने वाला नित्य-निरन्तर क्षमावान्, संयम धारण करने वाला और जितेन्द्रिय होता है।।२।।

ऐसा व्यक्ति द्वादशी तिथि को मूल-फल, शाक आदि का आहार करने वाला अथवा उस तिथि में दुग्धाहार मात्र लेने वाला होता है। फिर अन्य समय में निरामिष आहार करता है।।३।।

हे प्रिये! वह षष्ठी, अष्टमी, अमावास्या, दोनों पक्षों में चतुर्दशी और द्वादशी तिथि को मैथुन का त्याग करने वाला होता है।।४।।

इस प्रकार जो दृढ़ होकर व्रत धारण करने वाला योग विधान से कर्म करता है, ऐसा पवित्र आत्मा वाला मनुष्य धर्म में स्थित होकर विष्णुलोक को जाने वाला होता है।।५।।

न ग्लानिर्न जरा तस्य न मोहो रोग एव च। भुजाष्टादश जायन्ते धन्वी खड्गी शरी गदी॥६॥
तेषां व्युष्टिं प्रवक्ष्यामि मम कर्मसमुत्थिताम्। षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च।
ममार्चनविधिं कृत्वा मम लोके महीयते॥७॥
दुःखमेव प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व वसुंधरे। उचितेनोपचारेण दुःखमोक्षविनाशनम्॥८॥
अहंकारवृतो नित्यं नरो मोहेन चावृतः। ये मां नैव प्रपद्यन्ते ततो दुःखतरं नु किम्॥९॥
सर्वाशी सर्वविक्रेता नमस्कारविवर्जितः। ये च मां न प्रपद्यन्ते ततो दुःखतरं नु किम्॥१०॥
सर्वान्नानि तु सिद्धानि पाकभेदं तु कारयेत्। न वैश्वदेवा नाश्नन्ति ततो दुःखतरं नु किम्॥११॥
प्राप्तकाले वैश्वदेवे दृष्टमतिथिमागतम्।
अदत्त्वा तस्य यो भुङ्क्ते ततो दुःखतरं नु किम्॥१२॥
असंतुष्टश्च पैशुन्ये परदाराभिमर्शकः। परोपतापी मन्दात्मा ततो दुःखतरं नु किम्॥१३॥
अकृत्वा पुष्कलं कर्म गृहे संवसते नरः। मृत्युकालवशं प्राप्तस्ततो दुःखतरं नु किम्॥१४॥
हस्त्यश्वरथयानानि गच्छमानानि पश्यति। न चेत् तस्याग्रतः पृष्ठे ततो दुःखतरं नु किम्॥१५॥

जहाँ पर उनको ग्लानि, वृद्धता, मोह और रोग आदि ग्रसित नहीं करते हैं।ऐसे व्यक्ति को अठारह भुजायें होती हैं। और वह धनुष, बाण, खड्ग, गदा आदि युक्त होता है।।६।।

इस प्रकार से मेरे कर्म में आसक्त होकर जैसी अवस्था होती है, उसका वर्णन करता हूँ। अतः मेरी पूजनविधि को सम्पादित करने वाला मनुष्य साठ हजार और साठ सौ वर्षों तक मेरे ही लोक में रहकर पूजित होता रहता है।।७।।

हे वसुन्धरे! मैं अब दुःखों को कहने जा रहा हूँ, उसे सुनो—केवल उचित उपचार से ही दुःख प्राप्ति से मोक्ष और उसका विनाश हो जाता है।।८।।

नित्य-निरन्तर अहंकार, मोह आदि से युक्त, मनुष्य मेरी भक्ति से विमुख रहता है, उसके लिए इससे अधिक दुःख क्या हो सकता है?।।९।।

अब कुछ भक्षण करने वाला, सब कुछ बेचने वाला, नमस्कार भी नहीं करने वाला, और जो व्यक्ति मेरी शरण से वंचित रहने वाला है, उससे अधिक दुःख का भागी कौन हो सकता है?।।१०।।

जो जन सब प्रकार के अन्न पकाने वाला है और जो भोजन पकाने में विहित-निषिद्ध का भेद नहीं करने वाला है तथा जो बलिवैश्वदेव की विधि भी नहीं करता, उससे अधिक दुःख का भागी कौन हो सकता है?।।११।।

बलिवैश्वदेव के समय में आये हुए अतिथि को देखकर, जो जन उस अतिथि को भोजन बिना कराये, स्वयं भोजन करता है, उससे अधिक दुःख का भागी और कौन हो सकता है?।।१२।।

जो जन असंतुष्ट रहने वाला, चुगली करने वाला, परस्त्री सहवास करने वाला, दूसरों को कष्ट देने वाला, और कलुषित आत्मा वाला होता है, उससे अधिक दुःखभागी कौन हो सकता है?।।१३।।

जो जन विभिन्न कर्मों को किये बिना गृह में वास करता है और इसी क्रम में वह अपना देह त्याग करता है, तो उससे अधिक दुःखभागी कौन हो सकता है?।।१४।।

जो जन हाथी, घोड़े, वाहनों आदि को जाते हुए देखता है और यदि वे सब उसके आगे-पीछे नहीं जाते तो उससे अधिक दुःखभागी कौन हो सकता है?।।१५।।

अश्नन्ति पिशितं केचिद् घृतशालिसमन्वितम्। शुष्कान्नं केचिदश्नन्ति ततो दुःखतरं नु किम्॥१६॥
वरवस्त्रावृतां शय्यां समासेवन्ति भूषिताम्। केचित् तृणेषु शयते ततो दुःखतरं नु किम्॥१७॥
सुरूपो दृश्यते कश्चित् पुरुषश्चात्मकर्मभिः। केचिद् विरूपा दृश्यन्ते ततो दुःखतरं नु किम्॥१८॥
विद्वान् कृती गुणज्ञश्च सर्वशास्त्रविशारदः। केचिन् मूकाश्च दृश्यन्ते ततो दुःखतरं नु किम्॥१९॥
विद्यमाने धने केचित् कृपणा भोगवर्जिताः। दरिद्रो जायते दाता तत्र दुःखतरं नु किम्॥२०॥
पुरुषस्य द्वये भार्ये ताभ्यां चैकपुमांस्तदा। एकाऽपि दुर्भगा तत्र ततो दुःखतरं नु किम्॥२१॥
लब्ध्वा तु मानुषीं संज्ञां पञ्चभूतसमन्विताम्। मामेव न प्रपद्यन्ते ततो दुःखतरं नु किम्॥२२॥
लब्ध्वा ब्राह्मणभावं तु वर्णानामुत्तमं धरे। पापकर्मरतो यः स्यात् तत्र दुःखतरं नु किम्॥२३॥
एतत् ते कथितं भद्रे दुःखकर्मविनिश्चयम्। सर्वभूतहितार्थाय यत् त्वया परिपृच्छितम्॥२४॥
यच्च मां पृच्छसे भद्रे शुभं कीदृशमुच्यते। तच्छृणुष्वानवद्याङ्गि मम कर्मविनिश्चयम्॥२५॥
कृत्वा तु विपुलं कर्म मद्भक्तेषु निवेदयेत्। यस्य बुद्ध्या च जायेत स सुखायोपपद्यते॥२६॥

कुछ जन घृतादि सम्पन्न चावल आदि का भोजन करने वाले होते हैं और कुछ जन सूखे अन्न का आहार करने वाला होकर इससे अधिक दुःखभागी कौन हो सकता है।।१६।।

कुछ जन श्रेष्ठ वस्त्र से सम्पन्न सुशोभित शय्या पर और कुछ जन तृणों के ऊपर शयन किया करते हैं। अतः इससे अधिक दुःख क्या हो सकता है?।।१७।।

कुछ जन अपने कर्म बल से सुन्दर स्वरूप सम्पन्न होते हैं और कुछ जन कुरुप दीखते हैं, तो इससे अधिक दुःख क्या हो सकता है?।।१८।।

कोई जन विद्वान्, सुकृती, गुणज्ञ, सब शास्त्रों में निष्णात होता है और कोई जन मूर्ख मूक दीख पड़ता है, तो इससे अधिक दुःख क्या हो सकता है?।।१९।।

धन की उपलब्धता में भी कुछ जन कृपण और भोग रहित हुआ करते हैं, किन्तु दरिद्रजन भी दानी हुआ करता है, इससे अधिक दुःख क्या हो सकता है।।२०।।

जिस जन की दो भार्या हो और उनसे एक भाग्यहीन या दुषित योनि वाली हुई हो, तो उससे अधिक दुःख क्या हो सकता है?।।२१।।

पञ्चमहाभूतोत्पन्न मनुष्य योनि को प्राप्त करने वाला, जो जन मेरा आश्रयण नहीं करता, तो इससे अधिक दुःखी कौन हो सकता है?।।२२।।

हे धरे! चारों वर्णों में श्रेष्ठ ब्राह्मणत्व को प्राप्त कर जो जन पापकर्म में आसक्त रहता है, उससे अधिक दुःखी कौन हो सकता है।।२३।।

हे भद्रे! मैंने दुःखप्रदायक कर्मों का यह निर्णयात्मक स्वरूप को कहा है, जिसको तुमने सब प्राणियों के कल्याण हेतु मुझसे पूछा था।।२४।।

हे भद्रे सुन्दराङ्गि! आपने जो यह पूछा है कि शुभ कर्म कैसा होता है? अतः कर्म प्रसङ्ग के मेरे उस निर्णय को सुनो।।२५।।

विविध प्रकार के कर्मों को सम्पादित कर मेरे भक्तों को निवेदन करने वाले बुद्धिमान् जन सुख को प्राप्त करने वाला होता है।।२६।।

मामेवमर्चनं कृत्वा तत्र प्रापणमुत्तमम्। शेषमन्नं समश्नाति ततः सौख्यतरं नु किम्॥२७॥
त्रिकालं ये प्रपद्यन्ते मामेव च वसुंधरे। कृत्वा सायाह्निकं कर्म ततः सौख्यतरं नु किम्॥२८॥
देवतातिथिमर्त्यानां दत्त्वा चान्नं वसुंधरे। पश्चात् स वै समश्नाति ततः सौख्यतरं नु किम्॥२९॥
प्रविष्टस्त्वतिथिर्यस्य निराशो यन्न गच्छति। येन केनचिद् दत्तेन ततः सौख्यतरं नु किम्॥३०॥
मासि मास्येकदविसममावास्येति योच्यते। पितरो यस्य तृप्यन्ति ततः सौख्यतरं नु किम्॥३१॥
भोजनेषु प्रपन्नेषु यवान्नं यः प्रयच्छति। अभिन्नमुखरागेण ततः सौख्यतरं नु किम्॥३२॥
उभयोरपि भार्यासु यस्य बुद्धिर्न नश्यति। समं पश्यति यो देवि ततः सौख्यतरं नु किम्॥३३॥
अहिंसनं तु कुर्वीत विशुद्धेनान्तरात्मना। अहिंसोपरतः शुद्धः स सुखायोपपद्यते॥३४॥
परभार्यासु रूपासु मनो दृष्ट्वा न चाल्यते। यस्य चित्तं न गच्छेत ततः सौख्यतरं नु किम्॥३५॥
मौक्तिकादीनि रत्नानि तथैव कनकादयः। लोष्टवत् पश्यते यस्तु ततः सौख्यतरं नु किम्॥३६॥
मुदिते चाश्वनागेन्द्रे उभे सैन्ये पथि स्थिते। यस्तु प्राणान् प्रमुच्येत ततः सौख्यतरं नु किम्॥३७॥

जो जन इस प्रकार से मेरी पूजा करने के बाद मेरे निमित्त उत्तम दान करते हुए शेष अन्नादि का भोजन करने वाला होता है, उससे अधिक सुख क्या हो सकता है?।।२७।।

हे वसुन्धरे! जो जन त्रिकालों में मेरी आराधना और सायंकालीन कर्म को करने वाला होता है, उससे अधिक सुख क्या हो सकता है।।२८।।

हे वसुन्धरे! देवता, अतिथि और मनुष्यों को अन्न प्रदान कर जो जन भोजन करता है, उससे अधिक सुखी कौन हो सकता है?।।२९।।

कुछ न कुछ दिये जाने के कारण जिस किसी के यहाँ आया अतिथि निराश होकर नहीं लौटता, उससे अधिक सुखी कौन होगा?।।३०।।

प्रत्येक मास में एक अमावस्या होती है, उस दिन जिसके पितृगण श्राद्ध द्वारा तृप्त हुआ करते हैं उससे अधिक सुखयुक्त जन कौन हो सकता है?।।३१।।

भोजनोपरान्त जो कोई जन विना मुख रंग परिवर्तित किये 'जौ' अन्न का दान करता है, उससे अधिक सुख सम्पन्न कौन हो सकता है?।।३२।।

हे देवि! दो पत्नियों वाला जन, अपनी बुद्धि को नष्ट किये विना उन दोनों को समदृष्टि से देखता है, उससे अधिक सुख सम्पन्न कौन हो सकता है?।।३३।।

जो कोई जन विशुद्ध अन्तरात्मा से हिंसा नहीं करने वाला हो और अहिंसा व्रत का पालन करता हो, वह निश्चय ही सुख का अधिकारी होता है।।३४।।

अन्य की सुन्दर भार्या को देखकर जिसका मन विचलित नहीं होता और जो उसमें आसक्त नहीं होता, उससे अधिक सुखी कौन हो सकता है?।।३५।।

जो कोई जन मोती आदि रत्नों और स्वर्ण आदि धातुओं को मिट्टी के ढेले के सदृश समझता हो, उससे अधिक सुखी कौन हो सकता है?।।३६।।

जब मार्ग में दोनों ओर मदमस्त घोड़े और हाथियों वाली दो सेनाओं के बीच जो अपना प्राण का त्याग करता है, उससे अधिक सुखी कौन हो सकता है?।।३७।।

लब्धेन चाप्यलब्धेन कुत्सितं कर्मवर्जितम्। यस्तु जीवति संतुष्टः स सुखायोपपद्यते॥३८॥
भर्तुस्तु वै व्रतं स्त्रीणामेवमेव वसुंधरे। येन तुष्यति भर्तारं ततः सौख्यतरं नु किम्॥३९॥
विद्यते विभवेनापि पुरुषो यस्तु पण्डितः। निगृहीतेन्द्रियः पञ्च तत्र सौख्यतरं नु किम्॥४०॥
सहते चावमानं तु व्यसने न तु दुर्मनाः। यस्येदं विदितं सर्वं ततः सौख्यतरं नु किम्॥४१॥
अकामो वा सकामो वा मम क्षेत्रे वसुंधरे। यस्तु प्राणान् प्रमुच्येत ततः सौख्यतरं नु किम्॥४२॥
मातरं पितरं चैव यः सदा पूजयेन्नरः। देवतेव सदा पश्येत् ततः सौख्यतरं नु किम्॥४३॥
ऋतुकाले तु यो गच्छेन्मासे मासे तु मैथुनम्।
अनन्यमानसो भूत्वा ततः सौख्यतरं नु किम्॥४४॥
प्रयुक्तः सर्वदेवानां यो मामेव प्रपूजयेत्। तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥४५॥
एतत् ते कथितं भद्रे शुभाशुभविनिश्चयः। सर्वलोकहितार्थाय यन्मां त्वं परिपृच्छसि॥४६॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः॥११५॥

अपेक्षा के अनुरूप प्राप्ति अथवा अप्राप्ति होने पर भी जो जन निन्दित कर्मों को करने से दूर रहते हुए सन्तोष के सहित जीवन निर्वाह करते हैं, वह सुख का अधिकारी होता है॥३८॥

हे वसुन्धरे! स्त्रियों का व्रत एकमात्र उसका पति ही होता है, जिससे वह पति को संतुष्ट करने में लगी रहती हैं। उससे अधिक सुख क्या हो सकता है?॥३९॥

जो विद्वान् जन सम्पत्ति रहते हुए भी अपने पञ्च प्रमुख इन्द्रियों का निग्रह किये रहता है, उससे अधिक सुखी कौन हो सकता है?॥४०॥

जो जन अपमान सह लेता है, विपत्ति में भी जिसका मन मलिन नहीं हो पाता और जिसका ये समस्त कर्म सबको ज्ञात हो, तो उससे अधिक सुखी कौन हो सकता है?॥४१॥

हे वसुन्धरे! इच्छा अथवा अनिच्छा से ही जो जन मेरे तीर्थ स्वरूप क्षेत्र में अपना प्राण का त्याग करता है, उससे अधिक सुख क्या हो सकता है?॥४२॥

जो जन सदैव अपने माता-पिता की पूजा करने में तत्पर रहता है, उन्हें देवतुल्य सम्मान प्रदान करता है, उससे अधिक सुखी कौन हो सकता है?॥४३॥

जो जन प्रत्येक मास में अपनी पत्नी के ऋतुकाल में उसके साथ अनन्य मन से संगम करता है, उससे अधिक सुखी जन कौन हो सकता है?॥४४॥

जो जन सब देवता और पूजन को मेरा ही पूजन समझता है और इस प्रकार मेरी ही पूजा करता है, तो मैं ऐसे जनसे अदृश्य नहीं होता और न वह मुझसे अदृश्य होता है॥४५॥

हे भद्रे! समस्त लोकों के कल्याण की भावना से तुमने मुझसे जो कुछ पूछा था, उन सब शुभ और अशुभ का इस प्रकार का निर्णय मैंने तुमसे कह सुनाया है॥४६॥

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में विष्णु पूजन फल, सुख-दुःख प्रापक शुभाशुभ कर्म नामक एक सौ पन्द्रहवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥११५॥

❖❖❖

षोडशाधिकशततमोऽध्यायः

अथ विष्णुपूजापराधकथनम्

श्रीवराह उवाच

श्रृणु भद्रे महाश्चर्यमाहारविधिनिश्चयम्। आहारं चाप्यनाहारं तच्छृणुष्व वसुंधरे॥१॥
भुञ्जानो योऽति चाश्नाति मम योगाय माधवि। अतुल्यं कर्म कृत्वाऽपि पुरुषो धर्ममाश्रितः॥२॥
आहारं चैव कर्मज्ञा उपभुञ्जन्ति नित्यशः। सर्वे चात्रैव कर्मण्या व्रीहयः शालयस्तथा॥३॥
अकर्मण्यानि वक्ष्यामि येन भोज्यति मां प्रति। तेन वै भुक्तमार्गेण अपराधो महौजसः॥४॥
प्रथमं चापराधानि न रोचन्ते मम प्रिये। भुक्त्वा तु परकीयान्नं तत्परस्तन्निवर्त्तनः।
प्रथमश्चापराधोऽयं धर्मविघ्नाय वै भवेत्॥५॥
अभुक्त्वा दन्तकाष्ठानि यस्तु मामुपसर्पति। द्वितीयमपराधं तु कर्मविघ्नाय वर्तते॥६॥
गत्वा मैथुनसंयोगं योऽनु मां स्पृशते नरः। तृतीयमपराधं तु कल्पयामि वसुंधरे॥७॥
दृष्ट्वा रजस्वलां नारीमस्माकं यः प्रपद्यते। चतुर्थमपराधं तु दृष्टे वै न क्षमाम्यहम्॥८॥

अध्याय–११६

विष्णु पूजा कालिक बत्तीस अपराध

श्री भगवान् वाराह ने कहा कि भद्रे वसुन्धरे! महान् आश्चर्यकारी आहार विधान का विनिर्णय और आहार-अनाहार विषयक नियम को सुनो।।१।।

हे माधवि! जो जन अत्यन्त भोग करने की स्थिति में भी मेरे योग के लिए मात्र आहार ग्रहण करता है, वह अपने समान कर्म को न करने पर भी धर्मयुक्त रहा करता है।।२।।

मेरे कर्म को जानने वाले जन नित्य आहार का उपभोग करते हैं। जहाँ जौ और धान; सब कर्मों हेतु प्रशस्त अन्न माना गया है।।३।।

अब कर्म हेतु अप्रशस्त अन्नों के बारे में भी कहता हूँ, विधान के विपरीत जिस अन्न को खिलाने से महाबलशाली अपराध हुआ करता है।।४।।

हे प्रिये! सर्वप्रथम मुझको अपराध रूचिप्रद नहीं हुआ करता है। परकीय अर्थात् दूसरे का अन्न खाकर उसके ही आश्रित होना अथवा उससे विमुख रहना यह प्रथम अपराध है, जो निश्चय ही धर्म में विघ्न उत्पन्न करता है।।५।।

फिर दन्त धावन किये विना मेरे पास आराधना आदि हेतु आना, द्वितीय अपराध है, जो कर्म में विघ्न उत्पन्न करने वाला होता है।।६।।

हे वसुन्धरे! मैथुन कर्म से निवृत्त होकर जो जन मुझे स्पर्श करता है, उसे मैं तीसरा अपराध मानता हूँ।।७।।

फिर रजस्वला-ऋतुमती स्त्री को देखकर जो जन मेरे समीप आता है, उसे मैं चतुर्थ अपराध मानता हूँ और यह अपराध देखने पर मैं क्षमा नहीं करता।।८।।

दृष्ट्वा तु मृतकं चैव नाचम्य स्पृशते तु माम्। पञ्चमं चापराधं तु न क्षमामि वसुंधरे॥९॥
स्पृष्ट्वा तु मृतकं चैव असंस्कारकृतं च वै। षष्ठमिमं चापराधं न क्षमामि वसुंधरे॥१०॥
मामेवार्चनकाले तु पुरीषं यस्तु गच्छति। सप्तमं चापराधं तु कल्पयामि वसुंधरे॥११॥
यस्तु नीलेन वस्त्रेण प्रावृतो मां प्रपद्यते। अष्टमं चापराधं तु कल्पयामि वसुंधरे॥१२॥
ममैवार्चनकाले तु यस्त्वसत्यं प्रभाषति। नवमं चापराधं तु न रोचामि वसुंधरे॥१३॥
अविधानेन संस्पृश्य यस्तु मां प्रतिपद्यते। दशमं चापराधं तु मम चाप्रियकारकम्॥१४॥
क्रुद्धस्तु यानि कर्माणि कुरुते कर्मकारकः। एकादशापराधं तु कल्पयामि वसुंधरे॥१५॥
अकर्मण्यानि पुष्पाणि यस्तु मामुकल्पयेत्। द्वादशं चापराधं तं कल्पयामि वसुंधरे॥१६॥
यस्तु रक्तेन वस्त्रेण कौसुम्भेनोपगच्छति। त्रयोदशापराधं तु कल्पयामि वसुंधरे॥१७॥
अन्धकारे च मां देवि यः स्पृशेत कदाचन। चतुर्दशापराधं तु कल्पयामि वसुंधरे॥१८॥
यस्तु कृष्णेन वस्त्रेण मम कर्माणि कारयेत्। पञ्चदशापराधानि कल्पयामि वरानने॥१९॥
वाससामवधूतं तु यस्तु मामुपकल्पयेत्। षोडशं त्वपराधानां कल्पयामि वरानने॥२०॥

हे वसुन्धरे! जो जन मृतक शरीर को देखकर आचमन किए विना मेरा भी स्पर्श कर लेता है, उसे मैं पाँचवाँ अपराध मानता हूँ, इसे मैं क्षमा नहीं करता।।९।।

हे वसुन्धरे! जो जन मृतक को स्पर्श कर स्नान आदि संस्कार नहीं करता है, उसे मैं छठा अपराध मानता हूँ और इसे भी मैं क्षमा नहीं करता।।१०।।

हे वसुन्धरे! मेरे पूजा काल में जो जन मल त्याग करता है, उसे मैं सातवाँ अपराध मानता हूँ।।११।।

हे वसुन्धरे! जो जन नीला वस्त्र धारण कर मेरा पूजन किया करता है, उसे मैं आठवाँ अपराध मानता हूँ।।१२।।

हे वसुन्धरे! मेरे ही पूजा काल में जो जन असत्य भाषण करता है, उसे मैं नौवाँ अपराध मानता हूँ और मुझे कत्तई रूचिकर नहीं लगता।।१३।।

जो जन विना विधि विधान से पदार्थों का स्पर्श कर मेरी पूजा करता है, उसे मैं दशम अपराध मानता हूँ और वह मुझे प्रिय नहीं है।।१४।।

आराधना आदि कर्म करने को तत्पर जन क्रोधपूर्वक जिन कर्मों को करता है, उसे मैं ग्यारहवाँ अपराध मानता हूँ।।१५।।

हे वसुन्धरे! जो जन पूजनकर्म हेतु अप्रशस्त पुष्पों को मेरे लिए समर्पित करता है, उसे मैं बारहवाँ अपराध मानता हूँ।।१६।।

हे वसुन्धरे! जो जन लाल या कुसुम्भ रंग वाला वस्त्र धारण कर मेरी पूजा-आराधना करता है, उसे मैं तेरहवाँ अपराध मानता हूँ।।१७।।

हे वसुन्धरे! जो जन कभी भी अन्धकार में मेरा स्पर्श करता है, उसे तो मैं चौदहवाँ अपराध मानता हूँ।।१८।।

जो जन काला रंग वाला वस्त्र धारण कर मेरे पूजन में आराधना आदि कर्मों को करता है, उसे मैं पन्द्रहवाँ अपराध मानता हूँ।।१९।।

हे वरानने! जो जन मलिन वस्त्र धारण कर मेरी पूजा करता है, उसे मैं सोलहवाँ अपराध मानता हूँ।।२०।।

स्वयमन्नं तु यो दद्यादज्ञानाय च माधवि। सप्तादशापराधं तु कल्पयामि वरानने॥२१॥
यस्तु मात्स्यानि मांसानि भक्षयित्वा प्रपद्यते। अष्टादशापराधानि अनुजानामि माधवि॥२२॥
जालपादं भक्षयित्वा यस्तु मामुपसर्पति। एकोनविंशापराधं प्रतिजानामि सुन्दरि॥२३॥
नाचामेद्दीपकं स्पृष्ट्वा यो मां स्पृशति माधवि। विंशकं चापराधानि कल्पयामि वरानने॥२४॥
श्मशानं यश्च वै गत्वा यो मामेवाभिगच्छति। एकविंशापराधानि कल्पयामि वसुंधरे॥२५॥
पिण्याकं भक्षयित्वा तु यो मामेवोपचक्रमे। द्वाविंशत्यपराधानि तमहं चोपकल्पये॥२६॥
यस्तु वाराहमांसानि प्रापणेनोपपादयेत्। अपराधं त्रयोविंशं कल्पयामि वसुंधरे॥२७॥
सुरां पीत्वा तु यो मर्त्यः कदाचिदुपसर्पति। अपराधं चतुर्विंशं कल्पयामि वसुंधरे॥२८॥
यः कुसुम्भं च मे शाकं भक्षयित्वोपचक्रमे। पञ्चविंशापराधानि कल्पयामि सुमध्यमे॥२९॥
परप्रावरणे चैव यस्तु मामुपसर्पति। षड्विंशत्यपराधानि कल्पयामि मनोरमे॥३०॥
नवान्नं यस्तु भक्षेत न दत्वा पितृदैवते। सप्तविंशापराधानि कल्पयामि गुणान्विते॥३१॥
उपानहा सहासीनो ममार्चायोपचक्रमे। अष्टविंशापराधानि कल्पयामि गुणान्विते॥३२॥
शरीरं मर्दयित्वा तु यो मामाप्नोति माधवि। एकोनत्रिंशापराधानि तत् स्वर्गेषु न गच्छति॥३३॥

हे वसुन्धरे! जो जन अज्ञानी पुरुष को स्वयं अन्न प्रदान करता है, उसे मैं सत्रहवाँ अपराध मानता हूँ।।२१।।

हे माधवि! जो कोई जन मछली का मांस भक्षण कर मेरी पूजादि करता है, उसे मैं अट्ठारहवाँ अपराध मानता हूँ।।२२।।

हे सुन्दरि! बत्तख का मांस भक्षण कर जो जन मेरी पूजा करता है, उसे मैं उन्नीसवाँ अपराध मानता हूँ।।२३।।

हे वरानने! जो जन दीपक को स्पर्श कर विना आचमन किये, मेरा स्पर्श करता है, उसे मैं बीसवाँ अपराध मानता हूँ।।२४।।

पिण्याक अर्थात् पिट्ठी भक्षण कर जो जन मेरी पूजा करता है, उसे मैं बाईसवाँ अपराध मानता हूँ।।२६।।

हे वसुन्धरे! जो जन मुझको कुमार का मांस भोग अर्पण करता है, उसे मैं तेईसवाँ अपराध मानता हूँ।।२७।।

हे वसुन्धरे! जो जन कदाचित् सुरापान करने के बाद मेरा पूजन करता है, उसे मैं चौबीसवाँ अपराध मानता हूँ।।२८।।

हे सुन्दरि! जो जन कुसुम्भ का शाक भक्षण कर मेरा पूजन करता है, उसे मैं पच्चीसवाँ अपराध मानता हूँ।।२९।।

हे मनोरमे! जो जन दूसरे का वस्त्र धारण कर मेरी उपासना करता है, उसे मैं छब्बीसवाँ अपराध मानता हूँ।।३०।।

हे गुणान्विते! जो जन देवतओं और पितरों को अर्पण किए विना स्वयं ही नवान्न भक्षण करता है, उसे मैं सत्ताइसवाँ अपराध मानता हूँ।।३१।।

हे गुणान्विते! उपानह अर्थात् जूतादि पहने हुए बैठकर मेरी पूजा करने पर मैं उसे अट्ठाईसवाँ अपराध मानता हूँ।।३२।।

हे माधवि! अपने शरीर का मर्दन कर जो मेरी पूजा करता है, उसे मैं उनतीसवाँ अपराध मानता हूँ। इस प्रकार से वह स्वर्ग नहीं जा पाता है।।३३।।

अजीर्णेन समाविष्टो यस्तु मामुपगच्छति। त्रिंशकं चापराधानि कल्पयामि वसुंधरे॥३४॥
गन्धपुष्पाण्यदत्वा तु यस्तु धूपं प्रयच्छति। एकत्रिंशापराधं तु कल्पयामि मनस्विनि॥३५॥
विना भेर्यादिशब्देन द्वारस्योद्घाटनं मम। महापराधं विद्येत तद् द्वात्रिंशापराधकम्॥३६॥
अन्यच्छृणु प्रवक्ष्यामि दृढव्रतमनुत्तमम्। कृत्वा तु पुष्कलं कर्म मम लोकं च गच्छति॥३७॥
नित्ये युक्तश्च शास्त्रज्ञो मम कर्मपरायणः। अहिंसापरमश्चैव सर्वभूतदयापरः॥३८॥
सामान्यश्च शुचिर्दक्षो मम नित्यं पथे स्थितः। निगृह्य इन्द्रियान् सर्वानपराधविवर्जितः॥३९॥
उदारो धार्मिकश्चैव स्वदारेषु सुनिष्ठितः। शास्त्रज्ञः कुशलश्चैव मम कर्मपरायणः॥४०॥
चातुर्वर्ण्यस्य मे भद्रे सन्मार्गे निश्चिता स्थितिः। मिथ्या मे वचनं नैव मम लोकाय गच्छति॥४१॥
यस्य भार्या शुचिर्दक्षा मम कर्मपथे स्थिता। आचार्यभक्ता देवेषु भक्ता भर्तरि वत्सला॥४२॥
संसारेष्वपि वर्त्तन्ती गच्छते अग्रतो यदि। मम लोकस्थिता स्थाने भर्त्तारं संप्रतीक्षते॥४३॥
पुरुषो यदि मद्भक्तः स्त्रियं त्यक्त्वा स गच्छति। स ततोऽत्र प्रतीक्षेत भार्यां भर्त्तरि वत्सलाम्॥४४॥
अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि कर्मणां कर्म चोत्तमम्। ऋषयो मां न पश्यन्ति मम कर्मपथे स्थिताः।
यथा पश्यति सुश्रोणि दृढो भागवतः शुचिः॥४५॥

हे वसुन्धरे! जो जन अजीर्ण रोग से युक्त होकर मेरी पूजा करता है, तो उसे मैं तीसवाँ अपराध मानता हूँ।।३४।।

हे मनस्विनि! जो गन्ध और पुष्प दिये विना मुझे धूप देता है, उसे मैं इकतीसवाँ अपराध मानता हूँ।।३५।।

जो विना भेरी आदि के शब्द किये मेरा द्वार खोलता है, उसे मैं बत्तीसवाँ महापराध मानता हूँ।।३६।।

अब मैं अन्यान्य श्रेष्ठ दृढ़व्रत को बतला रहा हूँ, उसे सुनो—इन कर्मों को करने के बाद प्राणी मेरे लोक को जाता है।।३७।।

नित्य-निरन्तर क्रिया में युक्त शास्त्र को जानने वाला, कर्मपरायण, अहिंसाव्रती और समस्त प्राणियों पर दया करने वाला, सामान्य जीवन यापन वाला, पवित्र, उत्साहित रहने वाला, नित्य मेरे कर्म में स्थित, सब इन्द्रियों का निग्रह करने वाला और उपरोक्त समस्त बत्तीस अपराधों से रहित, उदार, धार्मिक, स्वपत्नी से प्रेम करने वाला, शास्त्रज्ञ, कुशल और मेरे कर्म में संलग्न रहने वाला हे भद्रे! चातुर्वर्ण्य के सन्मार्ग में निश्चित रूप से स्थित रहने वाला मेरे लोक में जाता है। मेरा वचन असत्य नहीं होता है।।३८-४१।।

जिसकी पत्नि पवित्र, उत्साह युक्त, मेरे कर्म मार्ग में स्थित, आचार्य की भक्ति करने वाली, देवताओं के प्रति भक्ति भावना वाली और कर्म मार्ग में स्थित होती है। यदि संसार के कर्मों को करते हुए स्त्री पहले मर कर मेरे लोक में पहुँचती है, तो वहाँ भी वह अपने पति की प्रतीक्षा करने वाली ही होती है।।४२-४३।।

यदि मेरा भक्त पुरुष स्त्री को छोड़कर चला जाता है, तो भी वह अपने से प्रेम करने वाली अपनी पत्नी की मेरे लोक में प्रतीक्षा करता है।।४४।।

अब मैं कर्मों में उत्तम अन्यान्य कर्म को भी कहने जा रहा हूँ। हे सुश्रोणि! मेरे कर्म मार्ग पर स्थित ऋषि भी मेरा ऐसा साक्षात्कार नहीं कर सकते जैसा पवित्र दृढ़ भगवद् भक्त कर सकता है।।४५।।

य एतेन विधानेन मम कर्माणि कारयेत्। श्वेतद्वीपं प्रपश्यन्ति मम कर्मपरायणाः॥४६॥
द्रष्टव्या मम लोकेषु ऋषयोऽपि वरानने। किं पुनर्मानुषा ये च मम कर्मपथे स्थिताः॥४७॥
अन्यदेवेषु ये भक्ता मूढा वै पापचेतसः। मम मायाविमूढात्मा न प्रपद्यन्ति माधवि॥४८॥
मां तु ये वै प्रपद्यन्ते मोक्षकामा वसुंधरे। तानहं भावसंसिद्धान् नयामि स्वपुरं धरे॥४९॥
येनासि परया भक्त्या येन त्वं धारिता मया। तेन ते कथितं हीदं गुप्तं धर्मं महायशाः॥५०॥
पिशुनाय न दातव्यं न च मूर्खाय माधवि। नादीक्षिताय दातव्यं नोपसर्पाय यत्नतः॥५१॥
ततो न चोपदिष्टाय न शठाय च दापयेत्। वर्जयित्वा भागवतं मम कर्मपरायणम्॥५२॥
एतत् ते कथितं देवि मम धर्मं महौजसम्। सर्वलोकहितार्थाय किमन्यत् परिपृच्छसि॥५३॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे षोडशाधिकशततमोऽध्यायः॥११६॥

जो जन इस विधि विधान से मेरे कर्म को करता है, वह मेरे कर्म में तत्पर जन श्वेतद्वीप को देखता है।।४६।।

हे वरानने! इस लोक में ऋषिजन भी मेरे कर्म में संलग्न दीख पड़ते हैं, तो मेरे कर्म मार्ग में संलग्न होने वाले मनुष्यों की क्या बात है?।।४७।।

हे माधवि! पापी मन वाले जो मूढ जन अन्यान्य देवताओं के भक्त होते हैं, मेरी माया से विमोहित वे जन मुझको नहीं प्राप्त कर पाते हैं।।४८।।

हे वसुन्धरे! मोक्ष की ईच्छा वाले जो जन मेरी भक्ति किया करते हैं, उन सिद्ध, भक्तों को मैं अपने पुर में ले जाता हूँ।।४९।।

हे महायशा! तुम तो मेरी श्रेष्ठ भक्ति से युक्त हो, जिससे मैं तुम्हें सदा धारण किये रहता हूँ। इसी से मैंने तुम्हें अपने हृदय का गुप्त धर्म बतला दिया है।।५०।।

हे माधवि! चुगलखेर, मूर्ख, अदीक्षित यत्न से भक्ति न करने वाले आदि जैसे जनों को यह ज्ञान नहीं देना चाहिए।।५१।।

इस प्रकार मेरे कर्म में तत्पर भगवद् भक्तों को छोड़कर अन्य उपदेश ग्रहण किए और शठ को यह ज्ञान नहीं देना चाहिए।।५२।।

हे देवि! सभी लोकों की कल्याण भावना से तुमकों मैंने यह परम शक्तिशाली धर्म को कह दिया है। अब और क्या पूछती हो?।।५३।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में विष्णु पूजा कालिक बत्तीस अपराध नामक एक सौ सोलहवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥११६॥

❖❖❖

सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः

अथ भगवदाराधनं माहात्म्यञ्च

श्रीवराह उवाच

शृणु तत्त्वेन मे भद्रे प्रायश्चित्तं यथाविधि। यथावत् स च दातव्यो मम भक्तेन विद्यया॥१॥
यथा चाभ्यञ्जनं दद्याद् यत् त्वया पूर्वपृच्छितम्। उद्वर्तनविधिं चापि शृणु देवि मम प्रियम्।
सामान्यं चैव कर्मण्यं शिवस्नानं मम प्रियम्॥२॥
कल्यमेव समुत्थाय हन्याद् भेरी यथोचिताम्। यत्र भेरी न वाद्येत कवाटं तत्र चाहनेत्॥३॥
द्वात्रिंशत् प्रकाराणि पदे दक्षिणजानुना। नमो नारायणेत्युक्त्वा इमं मन्त्रमुदीरयेत्॥४॥

ॐ मन्त्रा ऊचुः

देवता तपवस्वय आदिमध्यावसान अव्यक्त अव्यय बुद्ध्यस्व
तव कर्मणां संहारकर्ता च आगतं विज्ञाहि तव कर्मण्यवस्थितम्।
अनेन मन्त्रेण चोद्घाटितव्यं दन्तकाष्ठं च दातव्यम्
यावन्न स्पृशते भूमिं तावद् दीपं न ज्वाल्यते। दीपे प्रज्वलिते तत्र हस्तचौचं तु कारयेत्॥५॥
ततः प्रक्षाल्य हस्तौ तु पुनरेवमुपागतः। चरणौ वन्दयित्वा तं दन्तधावमुपानयेत्॥६॥

अध्याय–११७

मन्त्र सहित भगवान् की आराधना और माहात्म्य

श्री भगवान् वाराह ने कहा कि हे भद्रे! वास्तविक रूप में प्रायश्चित्त की विधि सुनो। मेरे भक्तों को यथावत् यह ज्ञान होना चाहिए।।१।।

हे देवि! पहले जिसे तुमने पहले पूछी थी, मेरे उस अञ्जन और लेप के प्रिय विधान को सुनो। कर्म करने हेतु प्रशस्त सामान्य सर्वाङ्ग स्नान मुझे प्रिय है।।२।।

प्रभात काल में उठकर यथोचित रूप से प्रथम भेरी बजाना चाहिए। जहाँ भेरी न बजती हो, वहाँ किवाड़ को ही खटखटाना चाहिए।।३।।

तत्पश्चात् वाम पैर मोड़कर दक्षिण घुटने के आधार पर स्थित होकर फिर बत्तीस बार 'नमो नारायणाय' बोलकर अग्रिम इस मन्त्र को बोलना चाहिए।।४।।

ॐ मन्त्रों ने कहा कि हे श्रेष्ठ; हे आदि, मध्य और अन्त स्वरूप अव्यक्त अव्यय देव! जागो! आपके कर्मों को करने वाला आया हुआ है। आप अपने कर्म के निमित्त आगत अपने सेवक को जानें।

इस मन्त्र से द्वार खोले और दन्तधावन प्रदान करना चाहिए। जिस समय तक भूमि का स्पर्श न हो जाय, उस समय तक दीप नहीं जलाना चाहिए। फिर दीप जलाने पर हस्त प्रक्षालन कर लेना चाहिए।।५।।

हाथ प्रक्षालित कर पुनः देवता के पादों की वन्दना करनी चाहिए और फिर पूर्व रखे गये उस दन्त धावन को लेकर जाना चाहिए।।६।।

ततः प्रस्थाप्यैव दन्तैर्विगृह्य पूर्वं जलं शुचिः। निरपराधो मध्यस्थ इदं मन्त्रमुदाहरेत्॥७॥

ॐ मन्त्रा ऊचुः

भुवनभवन रविसंहरण अनन्तो मध्यश्चेति। गृह्णेमं भुवनं दन्तधावनम्।
यत् त्वया भाषितं सर्वमेवं धर्मविनिश्चियम्। दन्तधावनं ततो दद्याद् यावत् कर्म वसुंधरे।
निर्माल्यं शिरसि कश्चिद् भक्त्या वात्मसमानतः॥८॥

पश्चात् तु जलपूतेन ततो हस्तेन सुन्दरि। कुर्यात् तु मुखकर्माणि स्वल्पेन सलिलेन च॥९॥
मुखे प्रक्षाल्यमाने तु मन्त्रं मे शृणु सुन्दरि। यस्त्वेवं कृतमन्त्रेण संसारात् तु प्रमुच्यते॥१०॥

मन्त्रा ऊचुः

जलं गृह्य देव हर्ता कर्ता विकर्ता ऊचताहवां त्वां गुणश्च आत्मनश्चापि गृह्ण वारिणश्चापि।
सर्वतो देवतानां मुखप्रक्षालनं कृत्वा ह्येतेन पूजयेन्मन्त्रान् धूपनैवेद्यैश्च सुगन्धैश्च पुनरेवं समर्चयेत्
ततः पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा भगवद्भक्तिवत्सलः। नमो नारायणेत्युक्त्वा इमं मन्त्रमुदाहरेत्॥११॥

ॐ मन्त्र उच्यते

यज्ञानां यज्ञयष्टायं भूतस्त्रष्टारमेव च। अन्यं पुष्पं हि संगृह्य कल्यमुत्थाय माधवम्॥१२॥
एवं पुष्पाणि आदाय ज्ञानी भागवतः शुचिः। देवीतले निपत्येत् तु सर्वकर्मसमन्वितः॥१३॥

एतदनन्तर पहिले मूर्त्ति के मुख के सामने दन्तधावन रखना और फिर जल से शुद्धि करनी चाहिए। उपरोक्त प्रकार से कर्म करने वाला पवित्र और अपराध मुक्त पुजारी को इस प्रकार मन्त्र बोलना चाहिए—।।७।।

ॐ मन्त्रों ने कहा कि 'हे संसार के जनक, सूर्य को संचालित करने वाले, अनन्त और मध्य स्वरूपदेव! इस सांसारिक दन्तधावन को ग्रहण करें।।

इस प्रसङ्ग में तुम्हारे द्वारा जो कुछ पूछा गया था, उस सम्पूर्ण धर्म का विनिश्चय इस प्रकार करना चाहिए। हे वसुन्धरे! तदनन्तर कर्म की विधि के अनुरूप दन्तधावन देना चाहिए अथवा अपने अनुकूल भक्ति को सम्पन्न होकर उनके सिर पर माला चढ़ाना चाहिए।।८।।

हे सुन्दरि! जल से, पवित्र हाथ से, अल्प जल से मुख प्रक्षालन आदि कर्मों को सम्पन्न करें।।९।।

हे सुन्दरि! मुख प्रक्षालन कालिक मेरे मन्त्र को सुनो। जो कोई इस प्रकार मन्त्र से कार्य करता है, वह संसार से मुक्त हो जाता है।।१०।।

ॐ मन्त्रों ने कहा कि 'हे हर्त्ता, कर्त्ता और विकर्त्ता देव! तुम्हारा आह्वान करता हूँ। जल को ग्रहण करो।' आप अपने और जल रूप गुण को ग्रहण करो। इस तरह सब जगह देवताओं का मुख प्रक्षालित कर आगे कथित मन्त्रों से धूप, नैवेद्य, सुगन्ध आदि से पूजन करना चाहिए। तत्पश्चात् पुष्पाञ्जलि अर्पण कर भगवद् भक्तजन 'नमो नारायणाय' इस मन्त्र का उच्चारण कर अग्रोक्त मन्त्र पढ़ें।।११।।

फिर मन्त्र में कहा गया है कि अन्य पुष्प ग्रहण कर यज्ञों की सृष्टि करने वाले और प्राणि की सर्जना करने वाले माधव को सुबह-सबेरे उठाना चाहिए।।१२।।

इस क्रम में पुष्पों को हाथ में लेकर पवित्र ज्ञानी और सभी यज्ञों को करने वाले भक्त भूमि पर सिर रखकर प्रणाम करें।।१३।।

ततो निपतितं कृत्वा प्रसीदेति जनार्दनम्। शिरसा चाञ्जलिं कृत्वा तु इमं मन्त्रमुदाहरेत्।।१४।।

ॐ मन्त्रा ऊचुः

लब्ध्वा संज्ञामपि नाथ प्रसन्नेच्छातः संसारान्मुक्तये।
अहं कर्म करोमि। यत् त्वया पूर्वमुक्तं मे प्रसीदतु।

एवं मन्त्रविधिं कृत्वा मम भक्तिव्यवस्थितः। पृष्ठतोऽनुपदं कृत्वा शीघ्रं यावन्न हीयते।।१५।।
एवं सर्वं समादाय मम कर्मदृढव्रतः। शीघ्रं मेऽभ्यञ्जनं दद्यात् तैलेन सघृतेन वा।।१६।।
ततस्तं स्नेहमुद्दिश्य मन्त्रज्ञः कर्मकारकः। एवं चित्तं समाधाय इमं मन्त्रमुदाहरेत्।।१७।।

मन्त्रा ऊचुः

स्नेहं स्नेहेन सगृह्य लोकनाथ मयाहृतम्।
सर्वलोकेषु सिद्धात्मा ददामि आत्महस्तेऽहमन्यप्रोक्तं मन्नमस्तवेति नमो नमः।।१८।।

एवं मन्त्रैः समाख्यातः शिरसि प्रथमं ददौ। पश्चाद् दक्षिणमङ्गेषु ततो वामं तु लेपयेत्।।१९।।
आपश्च पृष्ठमारुह्य ततः पश्चात् कटिं तथा। पश्चाल्लिप्येत् ततो भूमिं गोमयेन दृढव्रतः।।२०।।
तस्य दृष्ट्वा श्रुतं भद्रे लिप्सयंश्च सुनिश्चितः। यानि पुण्यान्यवाप्नोति मम मार्गानुसारिणः।।२१।।

फिर प्रणाम करने के बाद 'जनार्दन प्रसन्न हों' इस प्रकार कहते हुए अपने शिर पर हाथ जोड़े हुए रखकर अग्रोक्त मन्त्र का उच्चारण करें।।१४।।

ॐ मन्त्रों ने कहा कि 'हे नाथ! ज्ञान प्राप्ति के उपरान्त संसार से मुक्त होने के लिए मैं प्रसन्नतापूर्वक कर्म कर रहा हूँ। पूर्व में जैसे कि आपने कहा है, तदनुसार मैं कर्म कर रहा हूँ। आप निश्चयपूर्वक मेरे ऊपर प्रसन्न हों। इस तरह मन्त्र की विधि सम्पन्न कर मेरा भक्तिकर्त्ता शीघ्रतापूर्वक अपने पैरों को पीछे की ओर कर ले, जिससे मर्यादा का हनन न हो।।१५।।

फिर मेरे पूजनादि कर्म करने वाला दृढ़व्रती को सब सामग्री सहित तेल या घृत सहित मुझको अञ्जन अर्पित करना चाहिए।।१६।।

तदनन्तर उस स्नेह वाले वस्तु को लक्ष्य कर कर्म करने वाले मन्त्रों को जानते हुए एकनिष्ठ मन से इस प्रकार के मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए।।१७।।

ॐ मन्त्रों ने कहा कि हे समस्त लोकों के सिद्धात्म लोकनाथ! मेरे द्वारा उपलब्ध किए गये स्नेह युक्त पदार्थ को प्रेम सहित स्वीकार करें। मैं अपने हाथों में अन्य से कथित पदार्थ को समर्पित करता हूँ। आपको मेरा प्रणाम है।।१८।।

इस तरह से मन्त्र बोलते हुए पहले मस्तक पर, फिर दाहिने भाग के अंगों पर और फिर वाम भाग के अंगों पर स्नेह पदार्थ का अनुलेपन करना चाहिए।।१९।।

तदनन्तर पृष्ठभाग का और फिर कटि भाग का अनुलेपन करना चाहिए। इन सब के उपरान्त गोबर से भूमि को लेपित करना चाहिए।।२०।।

हे भद्रे! इस प्रकार के अनुलेपनादि कर्म करने वाले मेरे भक्तों का दर्शन करने से जैसा पुण्य मिलते हैं, उसे सुनो—।।२१।।

यावन्ति जलबिन्दूनि लिप्यमानस्य सुन्दरि। तावद् वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते॥२२॥
ततः पुण्यकृतांल्लोकान् पुरीषैर्येन लिप्यते। एकेनैवानुलेपेन गोषु योन्यां प्रमुच्यते॥२३॥
यो मे वाऽभ्यञ्जनं दत्त्वा विशिष्टेनैव कर्मणा।
यावन्ति बिन्दवः केचित् स्नेहं घृततिलानि वा।
तावद् वर्षसहस्राणि मम लोके प्रतिष्ठति॥२४॥
अथ चोद्वर्तनं भद्रे प्रवक्ष्यामि प्रियं मम। येन तुष्यन्ति वश्या मे विशुद्धिर्मम जायते॥२५॥
भोगिं वा यदि वा रोध्रं यदि पिप्पलिको मधु। मधूकमश्वपर्णं वा रोहिणं चैव कर्कटम्।
एतेषां प्राप्य लभते शास्त्रज्ञः कर्मकारकः॥२६॥
करेण यस्य चूर्णेन पिष्टचूर्णेन वा पुनः। एतेनोद्वर्तनं कुर्यान् मम गात्रसुखावहम्।
यदिच्छेत् परमां सिद्धिं मम कर्मानुसारिणः॥२७॥
एवमुद्वर्तनं कृत्वा सर्वकर्माणि कारयेत्। पश्चाद् देयं च स्नानं च यच्च मे मनसि प्रियम्॥२८॥
तत आमलकं चैव वसुगन्धार्णवमुत्तमम्। तैर्हि मे सर्वगात्राणि मर्दयित्वा दृढव्रतः।
जलकुम्भं ततो गृह्य इमं मन्त्रमुदाहरेत्॥२९॥

हे सुन्दरि! इस प्रकार जिस पदार्थ से अनुलेपन किया जाता है, उसमें जितनी संख्या में जल की बूँदे स्थित रहती हैं, तो पूजनकर्त्ता और उसको देखने वाला दोनों को उसी संख्या के समतुल्य हजारों वर्षों तक स्वर्ग में पूजित होने का सुख प्राप्त होता है।।२२।।

तदनन्तर गाय के गोबर से जिसके द्वारा लेपन किया गया होता है, वह भी पुण्य करने वालों के लोकों को प्राप्त करते हैं। एक बार लेपित करने से तो पशुयोनि से अवश्य मुक्ति मिल जाती है।।२३।।

फिर जिन विशिष्ट कर्मों द्वारा अञ्जन, घृत या तैल समर्पित किया गया रहता है, उसे उतने हजारों वर्षों तक मेरे लोक में प्रतिष्ठित होने का अवसर प्राप्त होता है, जितने बिन्दु जल उस स्नेहिल पदार्थ में उपलब्ध होते हैं।।२४।

हे भद्रे! अधुना मैं अपने प्रिय उद्वर्तन या उबटन के बारे में बतला रहा हूँ। इससे मेरे अनुचर सन्तृप्त हुआ करते हैं, जिससे मेरी शुद्धि भी हो जाती है।२५।।

कर्मकर्त्ता शास्त्र को जानने वाले जनों को भोगी या जीरा या लोध्र, पिप्पल, मधु, महुआ, पीपल पत्र, रोहिण, कर्कट आदि समस्त पदार्थों को मेरे उद्वर्तन हेतु उपलब्ध करना चाहिए।।२६।।

फिर मेरे कर्ममार्ग का अनुसरण करने वाला यदि उत्कृष्ट सिद्धि चाहता है, तो हाथ से मलकर या पीस-कूट कर बनाये गये इन वनस्पतियों के चूर्ण से उसको उबटन बनाना चाहिए। यह उबटन मेरे शरीर के लिए सुखकारक होता है।।२७।।

इस प्रकार से उबटन बनाने के कर्म करने के बाद अन्य सब शेष कर्म भी करना चाहिए। तदनन्तर मेरे चित्त को प्रिय लगने वाला स्नान कराना चाहिए।।२८।।

दृढ़व्रत धारण करने वाले को आँवला, अष्टगन्ध, उत्तम समुद्रफेन आदि के द्वारा मेरे सारे शरीर को मलकर जल का घड़ा हाथ में लेकर यह मन्त्र उच्चारण करना चाहिए।।२९।।

मन्त्रा ऊचुः

देवानां देवदेवोऽसि देव अनादि अनन्त व्यक्तरूप स्नानं गृह्य माम्।
एवं तु स्नापनं कुर्यान्मम मार्गानुसारिणः। अथ सौवर्णकुम्भेन रजतस्य घटेन वा॥३०॥
एतेषामप्यलाभेन कर्मज्ञः कर्म कारयेत्। ताम्रकुम्भमयं चैव कुर्यात् स्नापनमुत्तमम्॥३१॥
एवं तु स्नापनं कृत्वा विधिदृष्टेन कर्मणा। पश्चाद् गन्धं च दातव्यं प्रकृष्टं मन्त्रसंयुतम्॥३२॥

ॐ मन्त्रा ऊचुः

सर्वगन्धाः सर्वसौगन्धिभिश्च सर्वे वर्णा ये केचिद् विधिवर्ण त्वया दत्तं सप्तलोकेषु देव तव देहे नमति सुगन्धं मदाज्ञाश्च समावह मयं शुचि।
मम भक्त्याऽप्यनुष्ठाय प्रतिगृह्याशु माधव। एवं गन्धास्ततो दत्त्वा उत्कृष्टं कर्म कारयेत्॥३३॥
कर्मण्येष्वपि मालेषु शीघ्रमेव प्रदापयेत्। तमेव चार्चनं कृत्वा कर्मज्ञः कर्मसंमितः।
ततः पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा इमं मन्त्रमुदाहरेत्॥३४॥

ॐ मन्त्रा ऊचुः

जलजं स्थलजं चैव पुष्पं कालोद्भवं शुचिः। मम संसारमोक्षाय गृह्य गृह्य ममाच्युत॥३५॥
विश्वयोनोपचारेण अर्चयित्वा मम प्रियम्। पश्चाद् धूपानि मे दद्यात् सुगन्धद्रव्यसंमितान्॥३६॥

ॐ मन्त्रों ने कहा कि हे देवताओं के देवदेव! हे अनादि, अनन्त, व्यक्त स्वरूप देव! इस प्रकार मेरे द्वारा कराये जा रहे स्नान को आप स्वीकार करें। तत्पश्चात् मेरे मार्ग का अनुसरण कर्त्ता को सोने अथवा रजत के घड़े से मुझे स्नान कराना चाहिए।।३०।।

यहाँ पर कर्मज्ञ साधक को सोने अथवा चाँदी के कुम्भ अर्थात् घड़ा की व्यवस्था नहीं होने पर ताम्र के घड़े से मेरा उत्तम स्नान कराना चाहिए।।३१।।

एवम्प्रकारेण सविधि कर्म कर स्नान कराने के पश्चात् मन्त्रोच्चारण पूर्वक उत्कृष्ट सुगन्ध प्रदान किया जाना चाहिए।।३२।।

ॐ मन्त्रों ने कहा कि प्रत्येक प्रकार के सुगन्ध से सम्पन्न इस संसार के सभी सुगन्धि द्रव्य, जो आपने सातों लोकों में उत्पन्न किया है, हे देव! मेरे संकल्प से वे सुगन्धि द्रव्य आपके शरीर को प्राप्त हो सके। उन्हें आप स्वीकार करें, वह पवित्र है।

'हे माधव! भक्तिभाव से समर्पित मेरे इस सुगन्धि द्रव्य को ग्रहण करें।' इस प्रकार गन्ध अर्पण कर उत्कृष्ट कर्म करना चाहिए।।३३।।

तत्पश्चात् कर्मज्ञ को पूजन विधान के अनुरूप पूजन कर्म सम्पन्न करने के बाद उन्हें माला अर्पित करना चाहिए। फिर पुष्पाञ्जलि अर्पित करते हुए इस मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए।।३४।।

ॐ मन्त्रों ने कहा कि हे अच्युत! अपने-अपने काल में उत्पन्न होने वाले जलीय और स्थलीय पवित्र पुष्पों को मुझको इस संसार से मुक्त करने हेतु स्वीकार करें।।३५।।

इस प्रकार विश्वोत्पादक भगवान् की भक्ति भावना के साथ पूजा कर लेने के बाद मेरा प्रिय सुगन्धित द्रव्यों से युक्त धूप अर्पण करना चाहिए।।३६।।

धूपं गृह्य विधानेन मया प्रोक्तं महत्तरम्। उभयेषु कुलात्मेषु धूपमन्त्रमुदाहरेत्॥३७॥
वनस्पतिरसं दिव्यं बहुद्रव्यसमन्वितम्। मम संसारमोक्षाय धूपं मे संप्रगृह्यताम्॥३८॥

ॐ मन्त्रा ऊचुः

शान्ति देवता मे कोष्ठे वसन्ति शान्ति मे सांख्यानां शान्तियोगिनां गृह्य धूपं मम संसारमोक्षणं त्रातारं नास्ति मे कश्चित् त्वां विहाय जगद्गुरो॥३९॥
एवमभ्यर्चनं कृत्वा माल्यगन्धानुलेपनैः। पश्चाद् वस्त्रं ततो दद्यात् क्षौमं शुक्लं सपीतकम्॥४०॥
एवं वस्त्रं समादाय कृत्वा शिरसि चाञ्जलिम्। दिव्यं योगं समादाय इमं मन्त्रमुदाहृतम्॥४१॥

ॐ मन्त्रा ऊचुः

प्रीयतां भगवान् पुरुषोत्तमः श्रीनिवासः श्रीमानानन्दरूपः
गोप्ता कर्ता आदिकालात्मक भूतनाथ आदिरव्यक्तरूपः।
क्षौमं वस्त्रं वासिताश्च मनोज्ञ देव गृह्ण त्वं गात्र-
प्रच्छादनाय च वस्त्रैर्विभूषणं कृत्वा मम मार्गानुसारिणः।

पश्चात् पुष्पं ततो गृह्य आसनं चोपकल्पयेत्। गृहीत्वा प्रणवाद्येन धर्मपुण्येन संयुतः॥४२॥

फिर कर्मज्ञ अपने दोनों हाथों में विधिवद् मेरे द्वारा कथित उत्तम धूप लेकर साथ में धूपमन्त्र का उच्चारण इस तरह करें।।३७।।

इस संसार से मेरी मुक्ति के लिए विधि द्रव्यों के रूप में वनस्पति के रस रूप मेरे इस दिव्य धूप को ग्रहण करें।।३८।।

मन्त्रों ने कहा कि सांख्य योग के अनुयायी शान्त योगियों को अभीष्ट शान्ति प्रदान करने वाले देव! मेरे हृदय में स्थित होकर निवास करें। मुझे शान्ति मिले। संसार से मुक्त करने वाले मेरे इस धूप को ग्रहण करे। हे जगद्गुरु! आपके अतिरिक्त और कोई मुझको ताड़ने वाला नहीं है।।३९।।

इस प्रकार गन्ध, माला, अनुलेपनों आदि द्वारा पूजन करने के पश्चात् श्वेत और पीत वस्त्र उन्हें अर्पित करना चाहिए।।४०।

फिर वस्त्र अर्पण करने के बाद अपने शिर पर अञ्जलि बद्ध होकर दिव्य योग धारण कर इस मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए।।४१।।

ॐ मन्त्रों ने कहा कि भगवान् पुरुषोत्तम मेरे ऊपर प्रसन्न हों। श्रीनिवास, श्रीमान्, आनन्दस्वरूप, रक्षक, कर्त्ता, आदि कालस्वरूप भूतनाथ, आदि और अव्यक्त रूप, मनोज्ञ देव! आप अपने शरीर के आच्छादन के लिए सुवासित रेशमी वस्त्र को स्वीकार करें।

इस प्रकार मेरे भक्ति मार्ग का अनुसरण करने वाले जन को मेरी प्रतिमा अलंकरणों से विभूषित कर पुष्प हाथ में लेकर तथा धर्ममय पवित्र मन्त्र से आसन प्रदान करना चाहिए।।४२।।

ॐ मन्त्रा ऊचुः

इदं परापरनाथ परस्पर शास्त्र परप्रमाण प्रमाणिनां चैव
तिष्ठन् तदनुकल्पयोपयुक्तमात्मानं सत्यं सदेव गृह्ण।

एवं तु प्रापणं कृत्वा मम मार्गानुसारिणः। मुखप्रक्षालनं कृत्वा शीघ्रं मन्त्रप्रकल्पितम्॥४३॥
शुचिस्त्वेति देवानामेवं चैव परायणम्। शौचार्थं तु जलं गृह्ण कृत्वा प्रापणमुत्तमम्॥४४॥
एवं तु भोजनं दत्त्वा व्यपनीय तु प्रापणम्। ताम्बूलं तु ततो गृह्य इमं मन्त्रमुदाहरेत्॥४५॥

ॐ मन्त्रा ऊचुः

अलंकारं सर्वतो देवानां द्रव्योपयुक्तः सर्वसौगन्धिकादिभिर्गृह्य
ताम्बूलं लोकनाथ विशिष्टमस्माकं च भवनं तव प्रीतिर्मे भवम्।

अलंकारं मुखे श्रेष्ठं तव प्रीत्या मया कृतम्। मुखप्रसादनं श्रेष्ठं देव गृह्ण मनोहरम्॥४६॥
य एतेनोपचारेण मद्भक्तः कर्म कारयेत्। अनुमुक्तं महालोकान् पश्यते मम नित्यशः॥४७॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः॥११७॥

ॐ मन्त्रों ने कहा कि हे परात्परनाथ! परस्पर शास्त्र! प्रमाणकालों में सर्वोत्तम अपने-अपने सत्यात्म को ग्रहण करें। इस प्रकार मेरे मार्ग का अनुयायी को पूजा समय में उपलबध सामग्री अर्पण कर शीघ्र ही मुख प्रक्षालन पूर्वक मन्त्रोच्चारण करना चाहिए।।४३।।

हे देवताओं के शरणस्थान स्वरूप! अब आपकी शुद्धि हो। आप शौच हेतु जल ग्रहण करें। इस प्रकार मन्त्र पाठ करते हुए पवित्र जल अर्पण करना चाहिए।।४३।।

हे देवताओं के शरणस्थान स्वरूप! अब आपकी शुद्धि हो। आप शौच हेतु जल ग्रहण करें। इस प्रकार मन्त्र पाठ करते हुए पवित्र जल अर्पण करना चाहिए।।४४।।

फिर भोजन सम्बन्धी सामग्री अर्पण कर भोग लगाना चाहिए। तत्पश्चात् ताम्बूल अर्पण करते हुए यह मन्त्र बोलना चाहिए।।४५।।

ॐ मन्त्रों ने कहा कि हे देवताओं में उत्तम लोकनाथ! समस्त सुगन्धिमय द्रव्यादि से सम्पन्न अलंकरण स्वरूप ताम्बूल को स्वीकार करें। हमारा भवन विशिष्टता युक्त हो। आपमें मेरी सदा भक्ति रहे। मैंने सप्रेम आपके लिए मुख प्रसन्न करने वाला मनोहर अलंकार स्वरूप उत्तम ताम्बूल उपस्थित किया गया है। हे देव! आप इसे स्वीकार करें।।४६।।

जो कोई भक्तजन इस प्रकार के उपचारों द्वारा मेरा पूजा करने में लग जाता है, वह महान् लोकों का सुख भोगता हुआ नित्य मेरा दर्शन करने का लाभ प्राप्त करता है।।४७।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में मन्त्र सहत भगवान् की आराधना और माहात्म्य नामक एक सौ सत्रहवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥११७॥

❖❖❖

अष्टदशाधिकशततमोऽध्यायः

अथ श्रीविष्णुप्रापणकथनम्

धरण्युवाच

एवं कर्मविधिं श्रुत्वा सर्वसंसारमोक्षणम्। प्रसन्नवदनं देवं पुनर्वाक्यमुवाच ह॥१॥
एवं महौजसं कर्म तव मार्गानुसारिणः। त्वत्तस्तु प्रापणविधिस्तव प्रीत्या मया श्रुतः।
केन द्रव्येण संयुक्तं तन्ममाचक्ष्व माधव॥२॥
वसुधाया वचः श्रुत्वा वराहः परमात्मवान्। उवाच धर्मसंयुक्तं धर्मज्ञो वाक्यकोविदः॥३॥

श्रीवराह उवाच

येन मन्त्रेण संयुक्तो मम प्रापणकं नयेत्। सप्तव्रीहि ततो गृह्य पयसा सह संयुतम्।
परमं तस्य शाकानि मधुकोदुम्बरं तथा॥४॥
एते चान्ये च बहवः शतशोऽथ सहस्रशः। कर्मण्याश्च य एते ये मया परिकीर्तिताः॥५॥
व्रीहिणां च प्रवक्ष्यामि उपयोग्यानि माधवि। एकचित्तं समादाय प्रापणं शृणु सुन्दरि॥६॥
धर्मचिल्लिकशाकं च सुगन्धं रक्तशालिकौ। दीर्घशालि महाशालि वरकुङ्कुममक्षिकौ॥७॥
आमोदा सिवसुन्दर्यौ शिरीका कुलकालिकौ। विविधा यावकान्नानि ज्ञेया कर्मज्ञ एव तत्॥८॥

अध्याय-११८

विष्णु के प्रापणक में भोज्याभोज्य के अन्न निरूपण

धरणी ने कहा कि एवम्प्रकारेण सम्पूर्ण संसार के मोक्ष प्रदान करने वाले कर्मों की विधि को सुनकर पृथ्वी ने प्रसन्न चित्त होकर भगवान् वराह देव से पुनः इस वाक्य में पूछा कि—।।१।।

इस संसार में आपके मार्ग का अनुसरण करने वालों के महान् ओजपूर्ण कर्म को इस प्रकार मैंने आपसे सुन लिया। अब आप मुझको यह बतलाने की कृपा करें कि आपका भोग किन द्रव्यों से सम्पन्न होना चाहिए।।२।।

इस प्रकार धरणी की वाणी सुनकर धर्मविद् और वाक्यकोविद् परमात्मा वराह ने धर्मयुक्त वचन इस प्रकार से कहा—।।३।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि पहले जिस मन्त्र से भोग लगाना चाहिए, उसको सुनो। दूध के साथ-साथ सात प्रकार के धान्यों को लेकर भोग लगाना चाहिए। इसमें मधुक और उदुम्बर अर्थात् गूलर का शाक सबसे उत्तम भोग है।।४।।

अतः मैंने इन्हें और अन्यान्य सैकड़ों और हजारों पूजन आदि कर्म के योग्य द्रव्यों का वर्णन किया है।।५।।

हे माधवि! अब मैं उपयोग के योग्य व्रीहियों का उल्लेख करने जा रहा हूँ। हे सुन्दरि! अतः अपने एकाग्रचित्त से प्रापण याने देव को अर्पण करने योग्य पदार्थ के बारे में सुनो—।।६।।

उसमें धर्म चिल्लिक शाक, सुगन्धित रक्त शालिक, दीर्घशालिक, महाशालिक, वरकुंकुम, माक्षिक

कर्मण्या मुद्गमाषा वै तिलकङ्गुकुलत्थकाः। गवेधुकं महामोहं मकुष्ठमथ वाहिजम्॥९॥
श्यामाकमिति चोक्तानि कर्मण्यानि वसुंधरे।
कर्मण्येतानि प्रोक्तानि व्यञ्जनानि क्रियान्विता।
प्रतिगृह्णाम्यहं ह्येतान् यच्च भागवतां प्रियम्॥१०॥
पशूनां च प्रवक्ष्यामि धान्यानां गोरसानि च। ये ममैवोपयोग्यानि गव्यं दधिपयोघृतम्।
माहिषमाविकं छागमयाज्ञिकमुदाहृतम्॥११॥
मार्गं मांसं वरच्छागं शाशं समनुयुज्यते। एते हि प्रापणे दद्यान् मम चैव प्रियावहम्।
युञ्जानो वितते यज्ञे ब्राह्मणे वेदपारगे॥१२॥
भागं ममास्ति तत्रापि पशूनां छागलस्य च। माहिषं वर्जयेन् मह्यं क्षीरं दधिघृतं ततः॥१३॥
वर्जयेत् तत्र मांसानि यजुषा वैष्णवे सुते। परपायसवर्ज्यानि तन्मांसं चैकतः खुरम्॥१४॥
पक्षिणां च प्रवक्ष्यामि ये प्रयोज्या वसुंधरे। ये चैव मम यज्ञेषु उपसृजयन्ति नित्यशः॥१५॥
कर्मण्यं कौकुरं मांसं मायूरं कुक्कुटं तथा। लावकं वार्त्तिकं चैव प्रशस्तं च कपिञ्जलम्॥१६॥
वेणुकं कश्चिकश्चैव समातश्चैव वीर्यवान्। तत्तस्य कुकुरं चैव वरिक्षाणां वरप्रियः।
पञ्चकोटकमित्येव खारिका चैव पक्षिणाम्॥१७॥

आमोदा, शिव, सुन्दरी, शिरीका, कुल, कालिक, जौ से बने विविध प्रकार के खाद्य द्रव्यों आदि को पूजा के लिए योग्य पदार्थ जानना चाहिए।।७-८।।

फिर मूँग, उड़द, तिल, कंगु, कुलत्थ, गवेधुक, महामोह, मकुष्ठ, वाहिज आदि को पूजन कर्म योग्य जानना चाहिए।।९।।

हे वसुन्धरे! श्यामका के साथ-साथ उपरोक्त पदार्थों को पूजा कर्म योग्य माना जाता है। पूजन कर्मकर्त्ता द्वारा अपने पूजन कर्म में सम्प्रयुक्त आहर योग्य पदार्थों को तो इस प्रकार कहा गया है। वैसे मैं उपरोक्त पदार्थों और भगवद् भक्तों को प्रिय लगने वाले पदार्थों को स्वीकार किया करता हूँ।।१०।।

अब आगे मैं अपने उपयोग में लिये जाने योग्य पशु, धान्य, गोरस आदि का उल्लेख करने जा रहा हूँ। गाय का दही, दूध, घी, मक्खन आदि मेरे उपयोग के योग्य जानना चाहिए। भैंस, भेड़, बकरी आदि के दूध आदि यज्ञ के योग्य नहीं माना गया है।।११।।

मेरे भोग में मृग, उत्तम बकरा, खरगोश आदि के मांस का प्रयोग होना चाहिए। अतः इन्हें अवश्य देना चाहिए। क्योंकि ये मुझे प्रिय हैं। इस प्रकार वेदों के पारगामी ब्राह्मणों द्वारा किये जाने वाले यज्ञों में प्रयुक्त पशुओं और बकरे के मांस में मेरा भाग होता है। परन्तु भैंस के दूध, दही, घृत आदि मेरे लिए वर्जित जानना चाहिए।।१२-१३।।

यजुर्वेद द्वारा सम्पादित होने वाले वैष्णव यज्ञ में वैसे तो मांसों का वर्जन आवश्यक है। अन्यान्य पशुओं के दूध से बने पायस और एक खुर वाले पशुओं का मांस वर्जित है।।१४।।

हे वसुन्धरे! अब मैं उन पक्षियों के मांस का उल्लेख करने जा रहा हूँ, जो मेरे यज्ञों में नित्य प्रयोग करने योग्य हैं।।१५।।

कुकुर, मोर, मुर्गा, लावक, वार्तिक, कपिञ्जल आदि का मांस प्रशस्त है।।१६।।

वेणुक, कश्चिक, वीर्यवान्, समात, जल कुक्कुट अर्थात् कुकुर आदि का मांस देवताओं को भी प्रिय है।

न ते दद्यात् तु पक्षीणां नीलपत्रं तथैव च। गिरिवर्तिकमयेव मेध्यं पदविलासकम्।
चित्रमङ्गकपोतं च चतुरः पक्षिणः स्थिता॥१८॥
एते चान्ये च बहवः शतशोऽथ सहस्रशः। मम ये कर्मयोग्यानि ये मया परिकीर्तिताः॥१९॥
यस्त्वेतानि विजानीयात् कर्मकर्त्ता कदाचन। ततश्च नापराधोक्तं ममैवोक्तं वचः प्रिये॥२०॥
ते च भोज्याश्च मङ्गल्या मम भक्तसुखावहाः। ततो यष्टव्यमेवं हि यदिच्छेत् सिद्धिमुत्तमाम्॥२१॥
य एतेन विधानेन यजिष्यन्ति वसुंधरे। प्राप्नोति परमां सिद्धिं ममैवं कृतकर्म्मणः॥२२॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः॥११८॥

पक्षियों में पञ्चकोटक, खारिका नीलपत्र पक्षी का मांस नहीं देना चाहिए। परन्तु गिरविर्तिका, पदविलासक, चित्र,अंग कपोत आदि चार पक्षियों का मांस यज्ञ में प्रयोग करने के योग्य जानना चाहिए।।१७-१८।।

उपरोक्त और अन्यान्य सैकड़ों और हजारों द्रव्य हैं, जो मेरे कर्म में प्रयोग करने के योग्य हैं, जिनका उल्लेख किया भी गया है।।१९।।

हे प्रिये! मेरे कहने का भाव यह है कि मेरा पूजक, यदि इन पदार्थों को जानता है, तो उसके द्वारा कोई अपराध सम्भव नहीं होता है।।२०।।

चूँकि वे पदार्थ पवित्र आहार योग्य और मेरे भक्तों को सुख प्रदान करने वाले हैं; यदि श्रेष्ठ सिद्धि की कामना है, तो उन पदार्थों से ही पूजन करना चाहिए।।२१।।

हे वसुन्धरे! जो जन इस प्रकार के विधान से पूजा कर्म करेंगे, तो उन्हें मेरे उन कर्मों को करने से परम सिद्धि मिल सकेगी।।२२।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में विष्णु के प्रापणक में भोज्याभोज्य के अन्न निरूपण नामक एक सौ अट्ठारहवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥११८॥

❖❖❖

एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

अथ श्रीविष्णुत्रिसन्ध्यापूजाविधिः

श्रीवराह उवाच

शृणुष्व परमं गुह्यं यत् त्वया पूर्वपृच्छितम्। देवि सर्वं प्रवक्ष्यामि संसारतरणं महत्।।१।।
स्नानं कृत्वा यथान्यायं मम कर्मपरायणाः। उपसर्पन्ति मे भक्त्या कदन्नाशा जितेन्द्रियाः।।२।।
यच्चैवमुच्यते भद्रे मम रूपं सनातनम्। अहमेव वरारोहे सर्वभूतं सनातनम्।।३।।
अधश्चोर्ध्वं च यश्चैव अहमेव व्यवस्थितः। दिशां च विदिशां चैव अधश्चोर्ध्वं च भाविनि।।४।।
सर्वथा वन्दनीयास्ते मम भक्तेन नित्यशः। क्रियायुक्तसमूहेन यदीच्छेत् परमां गतिम्।।५।।
अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि गुह्यं लोके महद्यशः। यथा वै वन्दनीयास्ते मम मार्गानुसारिणः।।६।।
कृत्वाऽपि परमं कर्म बुद्धिमादाय तद्विधाम्। ततः पूर्वमुखो भूत्वा शुचिर्गृह्य जलाञ्जलिम्।
मूलयोगं समादाय इमं मन्त्रमुदीरयेत्।
यजामहे धर्मपरायणोद्भवं नारायणं प्रसीदेशान। सर्वलोकप्रधानं पुराणं कृपांसारमोक्षणम्।।८।।

अध्याय-११९

नारायण की समन्त्रक पूजा और त्रिसन्ध्या अनुकरणीय कर्म

श्री भगवान् वाराह ने कहा कि हे देवि! तुमने अपने पहले के जन्म में संसार से तरने का जिस महान् और अति गुह्य विधि को पूछा था, उसे इस समय मैं तुमसे कहने जा रहा हूँ, उसे सुनो—।।१।।

भक्ति भावना से कदन्न अर्थात् क्षुद्र अन्न खाने वाले जितेन्द्रिय मेरे भक्त यथाविधि स्नान करने के बाद उपासना किया करते हैं।।२।।

हे भद्रे! मेरे स्वरूप को सनातन कहा गया है। हे वराराहे! मैं ही सदा सर्वदा रहने वाला समस्त महाभूत स्वरूप हूँ।।३।।

हे भाविनि! मैं ऊपर, नीचे, दिशा, विदिशा आदि प्रत्यके जगह पर स्थित रहने वाला हूँ।।४।।

क्रियाओं से सम्पन्न भक्त जन यदि उत्तम गति की कामना करने वाला हो, तो उसको नित्य और निरन्तर मेरे सर्वव्यापी स्वरूप की वन्दना करनी चाहिए।।५।।

अब तुमको अन्य गुप्त, लेकिन लोक में अतिशय यश दिलाने वाला और अपने पथ के अनुयायी भक्तजनों की पूजाविधि का वर्णन करने जा रहा हूँ।।६।।

स्नान आदि उत्तम कर्म करने के पश्चात् उक्त प्रकार का संकल्प करना चाहिए। फिर पूर्वाभिमुख होकर पवित्रता धारण कर जलाञ्जलि और कुश सहित इस प्रकार मन्त्र बोलना चाहिए।।७।।

धर्मपारायण जनों की उत्पत्ति करने वाले नारायण देव की पूजा कर रहा हूँ। हे ईशान! प्रसन्न हों। आप समस्त लोकों में प्रधान, पुरातन और कृपापूर्वक संसार से मुक्त करने वाले ईश्वर का पूजन कर रहा हूँ।।८।।

ततः पश्चान्मुखो भूत्वा पुनर्गृह्य जलाञ्जलिम्। ॐ नमो नारायणेत्युक्त्वा इमं मन्त्रमुदाहरेत्॥९॥

ॐ मन्त्रा ऊचुः

यथा नु देवः प्रथमादिकर्ता पुराणकल्पं च यथा विभूतिः।
दिवि स्थिता चादिमनन्तरूपः अमोघमोघं संसारमोक्षणम्॥१०॥
अथ तस्मिंस्तु कालेऽस्मिन् पुनर्गृह्य जलाञ्जलिम्।
तेन चैवास्य योगेन भूत्वा चैवोत्तरामुखः। नमो नारायणेत्युक्त्वा इमं मन्त्रमुदाहरेत्॥११॥

मन्त्रोच्यते

यजामहे दिव्यपरं पुराणमनादिमध्यान्तमनन्तरूपम् भवोद्भवं संसारमोक्षणम्॥१२॥
ततस्तेनैव कालेन भूत्वा वै दक्षिणामुखः। नमः पुरुषोत्तमायेत्युक्त्वा इमं मन्त्रमुदाहरेत्॥१३॥

मन्त्रा ऊचुः

यजामहे यज्ञमहो रूपज्ञं कालं च कालादिकमप्रमेयम्। अनन्यरूपं संसारमोक्षणम्॥१४॥
काष्ठकृत्यस्ततो भूत्वा कृत्वा चेन्द्रियनिग्रहम्। अच्युते तु मनः कृत्वा इमं मन्त्रमुदाहरेत्॥१५॥

मन्त्रा ऊचुः

यजामहे सोमपथेन भावे त्रिसप्तलोकनाथम्। जगत्प्रधानं मृत्युरूपं संसारमोक्षणम्॥१६॥

फिर पश्चिम मुख होकर पुनः जलाञ्जलि लेकर 'ॐ नमो नारायणाय' इस तरह के मन्त्र को बोलना चाहिए।।९।।

ॐ मन्त्रों ने कहा कि प्रथम आदि कर्त्ता पुराणकल्प, वैभव युक्त, आदि और अनन्त स्वरूप, व्यर्थ संकल्प नहीं करने वाले, दिव्य लोक में रहने वाले, संसार से मुक्त करने वाला आप परमेश्वर की वन्दना करता हूँ।।१०।।

फिर उसके बाद उसी समय जलाञ्जलि और उसी कुशा मूल के सहित उत्तराभिमुख होकर 'नमो नारायणाय' कहने के बाद इस मन्त्र को बोलना चाहिए।।११।।

मन्त्र कहा जाता है कि दिव्य और श्रेष्ठ पुरातन, आदि, मध्य और अन्तरहित अनन्त स्वरूप, संसार के उत्पत्ति स्थान और संसार को मुक्त करने वाले ईश्वर की पूजा करता हूँ फिर उस समय दक्षिणाभिमुख होकर 'नमः पुरुषोत्तमाय' कहने के बाद इस मन्त्र को बोलना चाहिए।।१२-१३।।

ॐ मन्त्रों ने कहा कि रूपज्ञ, कालस्वरूप, कालादिक, अप्रमेय, यज्ञ स्वरूप, अनन्यरूप और संसार से मुक्त करने वाले ईश्वर की वन्दना करता हूँ।।१४।।

तत्पश्चात् काष्ठ की तरह स्थित होकर इन्द्रिय निग्रह पूर्वक भगवान् अच्युत में मन लगाकर इस मन्त्र को बोलना चाहिए।।१५।।

ॐ मन्त्रों ने कहा कि भक्तिभाव से सोमयज्ञ द्वारा तीन अर्थात् ऊर्ध्व, मध्य और अधः तथा सात ऊर्ध्व लोकों अर्थत् भूः, भुवः, स्वः महः, जनः, तपः, सत्यः आदि लोकों के साथ अतल, वितल, सुतल, तलातल, रसातल, पातालादि नाम के सात अधस्थ लोको के स्वामी, जगत्प्रधान, मृत्युस्वरूप, संसार से मुक्त करने वाले ईश्वर की वन्दना करता हूँ।।१६।।

एतेषां त्रिषु सन्ध्यासु कर्म चैवं समाचरेत्। बुद्धिमान् मतिमान् भूत्वा यदीच्छेत् परमां गतिम्॥१७॥
योगानां परमो योगो गुह्यानां गुह्यमुत्तमम्। सांख्यानां परमं सांख्यं कर्मणां कर्मचोत्तमम्॥१८॥
एतन्न दद्यान्मूर्खाय पिशुनाय शठाय च। दीक्षितायैव दातव्यं सुशिष्याय दृढाय च॥१९॥
एतन्मरणकालेऽपि गुह्यं विष्णुप्रभाषितम्। बुद्धिमान् मतिमान् भूत्वा विस्मरेन्न कदाचन॥२०॥
य एतत् पठते नित्यं कल्योत्थाय दृढव्रतः। ममापि हृदये नित्यं स्थितः सत्त्वगुणान्तिवः॥२१॥
य एतेन विधानेन त्रिसंध्यं कर्म कारयेत्। तिर्यग्योन्यापि संप्राप्य मम लोकाय गच्छति॥२२॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥११९॥

—❀—

यदि परम गति पाने की कामना हो, तो निश्चयात्मक ज्ञान और मनन शक्ति सम्पन्न व्यक्ति, सभी तीन सन्ध्याओं में उपरोक्त प्रकार से पूजन कर्म सम्पन्न किया करे।।१७।।

योगों में श्रेष्ठ योग, गुह्य में गुह्यतम रहस्य, सांख्यों में श्रेष्ठ सांख्य, कर्मों में श्रेष्ठ कर्म स्वरूप इस आचरण को कहा गया है।।१८।।

इस प्रकार का ज्ञान मूर्ख, चुगलखोर, शठ आदि जन को नहीं ही देना चाहिए। इस ज्ञान को दीक्षा प्राप्त, योग, दृड़ आदिजैसे शिष्य को ही दिया जाना चाहिए।।१९।।

बुद्धिमान्, मतिवान् जन को मृत्यु के समय भी विष्णु कथित इस रहस्य को कथमपि नहीं भूल जाना चाहिए।।२०।।

इस प्रकार दृढ़व्रत धारण करने वाला सत्त्वगुणी, प्रभात काल में उठकर नित्य इस उपाख्यान का पाठ करने वाले जन मेरे हृदय में सदैव स्थित रहा करता है। इस पूजन विधि से जो जन तीन सन्ध्याओं का कर्म सम्पन्न करता है, वे जन पशु-पक्षी की योनि में उत्पन्न होकर भी मेरे ही लोक में निवास करता है।।२१-२२।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में नारायण की समन्त्रक पूजा और त्रिसन्ध्या अनुकरणीय कर्म नामक एक सौ उन्नीसवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥११९॥

विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

अथ गर्भवासाभावकर्मनिरूपणम्

श्रीवराह उवाच

येन गर्भं न गच्छेत तन्मे शृणु हि माधवि। कथयिष्यामि ते ह्येवं सर्वधर्मविनिश्चयम्॥१॥
कृत्वाऽपि विपुलं कर्म आत्मानं न प्रशंसति। कुर्वते च बहु कर्म शुद्धेनैवान्तरात्मना॥२॥
कृत्वापि मम कार्याणि मत्प्रियाणि वसुंधरे। नैव कुर्वत्यहंकारं क्रोधं चैव न गृह्णति॥३॥
समं पश्यति चित्तेन लाभालाभविवर्जितः। पञ्चानामिन्द्रियाणां च समर्थो निग्रहे रतः॥४॥
कार्याकार्ये विजानाति सर्वधर्मेषु निष्ठितः। शीतोष्णवातवर्षाश्च क्षुत्पिपासासहाश्च ये॥५॥
यो दरिद्रो निरालस्यः सत्यवागनसूयकः। स्वदारनिरतो नित्यं परदारविवर्जकः॥६॥
सत्यवादी विशुद्धात्मा नित्यं भागवतप्रियः। संविभागी विशेषज्ञो नित्यं ब्राह्मणवत्सलः॥७॥
प्रियवादी द्विजानां च मम कर्मपरायणः। कुयोनिं तु न गच्छेत मम लोकाय गच्छति॥८॥
अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व वसुंधरे। यो वियोनिं नगच्छेत मम कर्मपरायणः॥९॥
जीवानि ये न हिंसन्ति सर्वभूतहितः शुचिः। सर्वे समानि पश्यन्ति काञ्चनं लोष्ठवद्यथा॥१०॥

अध्याय–१२०

गर्भवासाभाव कर्म और शुद्ध वैष्णव लक्षण

श्री भगवान् वाराह ने कहा कि हे माधवि! अब ऐसे कर्म, जिनसे जीव गर्भवास करने को बाध्य नहीं होता, उसे सुनो। मैं तुमको समस्त धर्मों के उस विशिष्ट निष्कर्ष को कहने जा रहा हूँ।।१।।

जो जन अतिशय कर्म करने के बावजूद भी अपनी प्रशंसा करने से बचता है और अपनी शुद्ध अन्तरात्मा से और अधिक कर्म करने में संलग्न रहता है, उसे परमगति मिलती है।।२।।

हे वसुन्धरे! जो जन, मुझको प्रिय लगने वाले मेरे कहे कर्मों को करने में अहंकार और क्रोध का आलम्बन नहीं करता है तथा चित्त में साम्यभाव से विचारवान् होकर लाभ और हानि के चिन्तन से मुक्त रहकर पाँच ज्ञानेन्द्रियों के निग्रह करने में सक्षम सफल होता है।।३-४।।

अपने समस्त कर्त्तव्यों धर्मों में निष्ठा रखने वाला, कार्याकार्य को जानने वाला, शीत-उष्ण-वायु-वर्षा-भूख-प्यास आदि को सहन करने वाला, दरिद्र, आलस्य रहित, सत्यवक्ता, ईर्ष्या से मुक्त, स्वभार्या से स्नेह करने वाला, परस्त्री का त्याग करने वाला, सत्यवादी, भगवद् भक्ति के मार्ग से प्रेम करने वाला, औचित्य पूर्ण सम्पत्ति आदि का विभाजन करने वाला, विशेषज्ञ, ब्राह्मणों में नित्य अनुराग रखने वाला, द्विजों से भी प्रिय बोलने वाला तथा मेरे कर्म के प्रति समर्पित या आसक्त होता है, वे जन दूषित योनियों में न जाकर मेरे लोक में रमण करता है।।५-८।।

हे वसुन्धरे! मेरे कहे कर्म में संलग्न रहने वाले अन्यान्य जन भी, जो विकृत योनियों में नहीं जाते, उनके बारे में भी मैं तुमसे कहने जा रहा हूँ, उसे सुनो—।।९।

सब जीवों का हित साधन करने वाले पवित्रता से रहते हुए जीव हिंसा नहीं करने वाले, स्वर्ण और मिट्टी

बाले वयसि वर्तन्तः क्षान्ता दान्ताः शुभे रताः।
कृत्यान्येव विजानन्ति वरेणापि कृतं क्वचित्॥११॥
कृत्यं न विस्मरेद् येन असत्यं च न जल्पति। व्यलीकेषु निवर्तन्ते पर्येति कृतनिश्चयः॥१२॥
नित्यं च धृतिमान् यश्च परोक्षे न च निक्षिपेत्।
ऋतुकालेऽभिगच्छेत अपत्यार्थं स्वकां स्त्रियम्॥१३॥
ईदृशास्तु नरा भद्रे मम कर्मपरायणाः। ते वियोनिं न गच्छन्ति मम गच्छन्ति सुन्दरि॥१४॥
पुनरन्यत् प्रवक्ष्यामि तच्छृणोहि वसुंधरे। पुरुषाणां प्रपन्नानां यश्च धर्मः सनातनः॥१५॥
मनुनाऽप्यन्यथा दृष्टो ह्यन्यथाङ्गिरसेन च। शुक्रेण चान्यथा दृष्टो गौतमेनापि चान्यथा॥१६॥
सोमेन चान्यथा दृष्टो रुद्रेणैवान्यथा पुनः। शङ्खेन चान्यथा दृष्टो लिखितेनैव चान्यथा॥१७॥
कश्यपेनान्यथा दृष्टो धर्मेणैवान्यथा धरे। अग्निना वायुना चैव दृष्टो धर्मोऽन्यथा धरे॥१८॥
यमेन चान्यथा दृष्ट न्द्रेण वरुणेन च। कुबेरेणान्यथा दृष्टः शालिण्डल्येनापि चान्यथा॥१९॥
पुलस्त्येनान्यथा दृष्ट आदित्येनैव चान्यथा। पितृभिश्चान्यथा दृष्टमन्यथा च स्वयंभुवा॥२०॥

में समभाव रखने वाले, सर्वदा बाल सुलभ व्यवहार करने वाले, क्षमावान्, इन्द्रियों का निग्रह करने वाले, परोपकार के कार्य में लगे रहने वाले, करने योग्य कर्मों को जानने वाले और दूसरों के द्वारा सम्पादित कर्म को भी जानने वाले होने चाहिए।।१०-११।।

ऐसे जन को जो करने योग्य कार्य को कभी भी नहीं भूलने वाले, असत्य नहीं बोलने वाले, अप्रमाणिक और मर्यादाहीन कार्यों को नहीं करने वाले, व्यवहार में दृढ़ निश्चयी होना चाहिए। जो नित्य धैर्य सम्पन्न रहने वाले, परोक्ष में किसी की भी निन्दा नहीं करने वाले और ऋतुकाल में सन्तान हेतु स्वपत्नी से संगम करने वाला होना चाहिए।।१२-१३।।

हे भद्रे! इस प्रकार के जो जन मेरे कर्म में नित्य संलग्न रहने वाले हैं, वे सभी जन विकृत योनियों में उत्पन्न नहीं होते। हे सुन्दरि! वे सब मेरे लोक को जाते हैं।।१४।।

हे वसुन्धरे! फिर से मैं भक्ति सम्पन्न लोगों के अन्य भी सनातन धर्म को बतलाने जा रहा हूँ, उसे सुनो।।१५।।

सनातन धर्म के प्रसङ्ग में मनु ने सनातन धर्म को अन्य प्रकार की दृष्टि से देखा है, तो अङ्गिरा अन्य दृष्टि से देखा है, शुक्र ने भी उसे अन्य रूप से देखा है, तो गौतम ने भी उसे भिन्न दृष्टि से देखा है।।१६।।

इसी तरह सोम ने भी उस सनातन धर्म को अन्य प्रकार से देखा है, तो रुद्र ने भी अन्य रूप से देखा है, शंख ने भी उसे अलग दृष्टि से देखा है और लिखित ने भी उसे अलग दृष्टि से देखा है।।१७।।

हे धरे! कश्यप ने उस धर्म को भिन्न रूप से देखा है, धर्मराज ने भी भिन्न दृष्टि से उसको देखा है और हे धरे!! अग्नि और वायु ने उस सनातन धर्म को अन्य ही तरह से देखा है। यम, इन्द्र, वरुण आदि ने भी उसे अन्यान्य प्रकार से देखा है। कुबेर और शाण्डिल्य ने उस सनातन धर्म को पृथक् दृष्टि से ही देखा है।।१८-१९।।

वहीं पुलस्त्य और आदित्य द्वारा भी उसके प्रसङ्ग में अन्य दृष्टि ही अपनाया गया। फिर पितरों और ब्रह्मा द्वारा भी उसके विषय में अलग रूप की ही दृष्टि अपनायी गई।।२०।।

आत्मन्यात्मनि धर्मेण येनरा निश्चितव्रताः। स्वकं पालयते धर्मं सव्मतेनैव भाषितम्॥२१॥
परवादं न कुर्वीत सर्वधर्मेषु निश्चितः। न निन्देद् धर्मकार्याणि आत्मधर्मपथे स्थितः॥२२॥
एभिर्गुणैः समायुक्तो मम कर्माणि कुर्वति। वियोनिं ते न गच्छन्ति मम लोकाय गच्छति॥२३॥
पुनरन्यत् प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्वेह माधवि। तरन्ति पुरुषा येन गर्भसंसारसागरम्॥२४॥
जितेन्द्रिया जितक्रोधा लोभमोहविवर्जिताः। आत्मपाकरता नित्यं देवातिथिपितृप्रियाः॥२५॥
हिंसादीनि न कुर्वन्ति मधुमांसविवर्जिताः। गावश्च नित्यं वन्दन्ति सुरापानविवर्जिताः॥२६॥
मनसा ब्राह्मणीं चैव यो न गच्छेत् कदाचन। कपिलां ददते विप्रे वृद्धं सान्त्वेन पालयेत्॥२७॥
सर्वेषां चैव पुत्राणां विशेषं यो न कुर्वति। संक्रुद्धं ब्राह्मणं दृष्ट्वा यस्तु तत्र प्रसादयेत्॥२८॥

यः स्पृशेत् कपिलां भक्त्या कुमारीं च न दूषयेत्।
अग्निं न चाक्रमेत् पद्भ्यां न च पुत्रेण भाषयेत्।
जले न मेहनं चैव गुरुवाक्यं न जल्पकः॥२९॥

एवं धर्मेण संयुक्तो यो नु मां प्रतिपद्यते। स च गर्भं न गच्छेत मम लोकाय गच्छति॥३०॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१२०॥
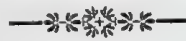
इस प्रकार, जो जन, अपने-अपने धर्म के अनुरुप निश्चयात्मक होकर व्रत धारण करते हैं और अपने सम्प्रदाय के अनुरूप बतलाये गये अपने धर्म का पालन करते हैं।।२१।।

अतः जो अपने धर्म में निश्चयता से स्थित रहते हुए अन्यों की निन्दा नहीं किया करते हैं तथा अपने धर्म पथ पर स्थित रहते हुए दूसरे के धर्मादि कार्यों की निन्दा नहीं किया करते हैं। जो जन, इन सब गुणों से सम्पन्न होकर मेरे कर्मों को करता है, वे सब भी विकृत योनियों में न जाकर मेरे लोक में जाता है।।२२-२३।।

हे माधवि! मैं फिर से अन्य धर्म को भी कहने जा रहा हूँ, उसे भी सुनो। जिस कर्म को करने के फलरूप व्यक्ति गर्भ रूपी संसार सागर से तर जाते हैं। जो जन इन्द्रियों और क्रोध को जीतने वाले, लोभ और मोहमुक्त, नित्य अपना भोजन बनाने वाले तथा देवता, अतिथि और पितरों के प्रिय होते हैं।।२४-२५।।

जो जन हिंसादि पापकर्म से मुक्त, मधु और मांस का त्याग करते हैं, जो गायों की नित्य वन्दना करते तथा सुरापान नहीं करते हैं। ऐसे जन, जो कभी मन से भी ब्राह्मणी से समागम करने के बारे में सोचता भी नहीं है, जो ब्राह्मण को कपिला गाय दान करता है और जो सान्त्वना सहित वृद्धों का पालन करते हैं।।२६-२७।।

जो जन, अपने सब पुत्रों में किसी से विशेष व्यवहार नहीं करता और जो ब्राह्मण को रोषयुक्त देखकर उससे सान्त्वना सहित प्रसन्न करता है। जो जन,कपिला गाय को स्पर्श करते हैं, कुमारी को दूषित नहीं करते, पैरों द्वारा अग्नि का उल्लंघन नहीं करता, पुत्र से भाषण नहीं करता, जल में मूत्र त्याग नहीं करता और गुरु के कथनों का अनादर नहीं करता है। जो जन, ऐसे धर्म से सम्पन्न होकर मेरी भक्ति किया करता है, वह गर्भ में न जाकर मेरे लोक में चला जाता है।।२८-३०।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में गर्भवासाभाव कर्म और शुद्ध वैष्णव लक्षण नामक एक सौ बीसवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१२०॥

❖❖❖

एकविंशधिकशततमोऽध्यायः

अथ वैष्णवलक्षण निरूपणम्

श्रीवराह उवाच

गुह्यानां परमं गुह्यं तच्छृणुष्व वसुंधरे। तिर्यग्योनिगताश्चापि येन मुच्यन्ति किल्विषात्॥१॥
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां द्वादश्यां च विधुक्षये। संक्रान्तौ ग्रहकाले च मैथुनं यो न गच्छति॥२॥
भुक्त्वा परस्य चान्नानि यश्चैव न विकुत्सति। बाले वयसि वर्तेत मम नित्यमनुव्रतः॥३॥
येन केनापि संतुष्टः पिता माता च पूजयेत्। प्राप्तं भुञ्जीत नित्यं च स्वयं न परिवेषकः॥४॥
अलुब्धः सर्वकार्येषु स्वतन्त्रो नित्यसंयतः। विकर्म नाभिकुर्वीत कौमारव्रतसंस्थितः॥५॥
सर्वभूतदयानित्यं संविभागी गुणान्वितः। दाता भोक्ता च स च वै सत्त्वेन च समन्वितः।
मतिमान् नैव तप्येत परार्थेषु कदाचन॥६॥
ईदृशीं बुद्धिमादाय मम कर्माणि कुर्वति। तिर्यग्योनिं न गच्छेत मम लोकाय गच्छति॥७॥
इमं गुह्यं वरारोहे देवैरपि दुरासदम्। तच्छृणोह्यनवद्याङ्गि कथ्यमानं मयाऽनघे॥८॥

अध्याय-१२१

वैष्णव लक्षण, कोकामुख माहात्म्य सहित चिल्ली और मत्स्य आख्यान

श्री भगवान् वाराह ने कहा कि हे वसुन्धरे! अब मैं गुह्यों का परम गुह्य तत्त्वों के बारे में कहने जा रहा हूँ, उसे सुनो। इसे सुनकर तिर्यग्योनि के जीव भी पाप से रहित हो जाते हैं।।१।।

जो अष्टमी, चतुर्दशी, द्वादशी, अमावस्या, संक्रान्ति, ग्रहण आदि के समय मैथुन नहीं ही करता है।।२।।

फिर जो परान्न खाकर उसकी निन्दा नहीं करता है। जो सदा बाल्यावस्था में रहता है, और मेरी नित्य भक्ति करते हुए जीवन निर्वाह करता है। जो जिस-किसी अर्थात् अनायास प्राप्त द्रव्य से भी संतुष्ट हुए माता और पिता की पूजा करता है। जो उपस्थित आहार योग्य भोजन करता है और जो अपना भोजन स्वयं नहीं परोसता है।।३-४।।

जो प्रत्येक कार्य को करने में नित्य संयम करने वाला हो। जो लोभमुक्त और स्वतंत्र रहने वाला और कौमारावस्था के व्रत का पालन करते हुए दुष्टकृत्य से बचता हो।।५।।

वह, जो नित्य प्रत्येक जीव पर दया करने वाला हो, लब्ध पदार्थों का न्यायसंगत विभाजन करता हो और गुणवान् हो। जो सत्त्वगुण युक्त होकर दान और भोग करने वाला हो। ऐसा बुद्धिमान् पुरुष जो कभी भी अन्यों के वैभव आदि से दुःखी नहीं होता हो।।६।।

जो जन, ऐसे बुद्धि और विचार से सम्पन्न होकर मेरे कहे कर्म को करता है, वे जन, तिर्यग्योनि में न जाकर मेरे लोक में निवास करता है।।७।।

हे वरारोहे! यह गुह्य तत्त्व देवताओं के लिए भी दुर्लभ ही है। अतः हे पापमुक्ता सुन्दराङ्गि! इस समय मेरे द्वारा कथित तत्त्व को सुनो—।।८।।

ये न हिंसन्ति भूतानि स्वेदजोद्भिज्जमण्डजान्। जरायुजानां शुद्धात्मा सर्वभूतदयापरः।
यस्तु कोकामुखे देवि ध्रुवं प्राणान् परित्यजेत्॥९॥
मनसापि न शक्नोति मम सल्लयतां व्रजेत्। ततो विष्णुवचः श्रुत्वा सा मही संशितव्रता।
वराहरूपिणं देवं प्रत्युवाच वसुंधरा॥१०॥

धरण्युवाच

अहं शिष्या च दासी च भक्ता च त्वयि माधव। एवं मे परमं गुह्यं मद्भक्त्या वक्तुमर्हसि॥११॥
चक्रं वाराणसी चैव अट्टहासं च नैमिषम्। भद्रकर्णह्लदं चैव कोकां वै किं प्रशंससि॥१२॥
सुगन्धं च द्विरण्डं वै मुकुटं मण्डलेश्वरम्। केदारं च ततो मुक्त्वा कोकां वै किं प्रशंससि॥१३॥
देवदारुवनं मुक्त्वा तथा जागेश्वरं विभुम्। दुर्गं महालयं मुक्त्वा कोकां वै किं प्रशंससि॥१४॥
गोकर्णं च ततो गुह्यं शुद्धं जालेश्वरं तथा। एकलिङ्गं ततो मुक्त्वा कोकां वै किं प्रशंससि॥१५॥
एवं पृष्टस्तया भक्त्या माधवश्चाथ माधवीम्। वराहरूपी भगवान् प्रत्युवाच वसुंधराम्॥१६॥

श्रीवराह उवाच

एवमेतन् महाभागे यन्मां त्वं चारु भाषसे। कथयिष्यामि ते गुह्यं कोका येन विशिष्यते॥१७॥
एते रुद्राश्रिताः क्षेत्रा ये त्वया परिकीर्तिताः। एते पाशुपताः श्रेष्ठा कोका भागवतस्य च॥१८॥

इस प्रकार जो शुद्धात्मा जन प्रत्येक प्राणी पर दया करते हुए स्वेदज, उद्भिज् और जरायुज जीवों की भी हिंसा नहीं करता हो। हे देवि! जो कोकामुख तीर्थ में निश्चयपूर्वक अपना प्राण छोड़ता है तथा अपने मन से भी किसी प्रकार की हिंसा का विचार नहीं करता हो, वह मुझमें लीन हो जाता है। उसके बाद विष्णु स्वरूप वराह भगवान् के वचन को सुनकर तीव्रव्रत धारण की हुई पृथ्वी ने वराह रूपधारी भगवान् विष्णु देव से कहा—।।९-१०।।

धरणी ने कहा कि हे माधव! मैं तो आपकी शिष्या, दासी और आपकी ही भक्ति में लीन रहने वाली हूँ। अतः भक्ति के कारण आप मुझको परमगुह्य तत्त्व को बतलायें, बड़ी कृपा होगी।।११।।

आप चक्र, वाराणसी, अट्टहास, नैमिष, भद्रकर्णह्लद आदि तीर्थ के रहते हुए भी कोकातीर्थ की ही प्रशंसा क्यों कर रहे हैं?।।१२।।

फिर सुगन्ध, द्विरण्ड, मुकुट, मण्डलेश्वर, केदार आदि के रहते कोका की ही प्रशंसा क्यों कर रहे हैं?।।१३।।

देवदारुवन, विभु जागेश्वर, अगम्य महालय को छोड़कर कोका की ही प्रशंसा क्यों कर रहे हैं? फिर रहस्य युक्त गोकर्ण, शुद्ध जालेश्वर, एकलिङ्ग आदि के रहते कोका की प्रशंसा क्यों करना चाहते हैं?।।१४-१५।।

इस प्रकार उस धरणी के भक्ति युक्त होकर पूछने पर वराह स्वरूप भगवान् विष्णु माधव ने माधवी पृथ्वी से इस तरह कहा—।।१६।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि हे भाग्यशालिनि! इस समय तुम्हारे द्वारा कही गई सुन्दर-सी बात, वे यथार्थतः सत्य ही है, किन्तु मेरे द्वारा तुम्हें, उस रहस्य को बतलाने की चेष्टा हो रही है, जिससे कोका तीर्थ की विशेषता ही सिद्ध होती है।।१७।।

इस समय तुम्हारे द्वारा जिन तीर्थों की चर्चा की गई है, वस्तुतः वे सभी तीर्थ रुद्र के आश्रित हैं। ये सभी पशुपति से सम्बन्धित तीर्थ हैं। किन्तु कोकातीर्थ भगवान् विष्णु से सम्बन्धित तीर्थों में उत्तम तीर्थ है।।१८।।

अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि महाख्यानं वरानने। वृत्तं कोकामुखे चैव मम क्षेत्रेषु सुन्दरि॥१९॥
लुब्धो ह्यामिषमाहारं चरन्तं कोकमण्डले। अल्पोदकेषु तिष्ठन्तं ततो मध्येन मत्स्यकम्।
स तेनापि प्रबुद्धेन विद्धो मत्स्यो कदाचन॥२०॥
मत्स्योऽथ बलवांस्तत्र लुब्धकस्य तु पाणितः। दूरे चैवोद्धृतस्तेन स तु मत्स्यो दिगम्बरे॥२१॥
श्येनो मन्त्रयते हन्तुं निःश्वसन् खचरंस्तथा। सोऽपतत् मम क्षेत्रेषु कोकायां तु वसुंधरे।
शकस्य पुत्रो जायेत रूपवान् बलवान् शुचिः॥२२॥
अथ तस्य तु कालेन कोके कश्चित् प्रवर्तते। गृह्य तन्मांसभागानि मृगव्याधः समागतः॥२३॥
अथ चामिषलुब्धा वै चिल्ही व्यचरदम्बरे। तस्मिन् देशे समागम्य मांसं हरितुमिच्छति॥२४॥
मृगव्याधेन सा चिल्ही मांसगृध्द्राऽतिलालसा। एकेनैव तु बाणेन सा वै निपतिता सह॥२५॥
आकाशात् पतिता भद्रे कोकायां मम मण्डले। जाता चन्द्रपुरे श्रेष्ठे राजपुत्री यशस्विनी॥२६॥
सा तु विवर्द्धते कन्या चतुःषष्टिकलान्विता। रूपयौवनसंपन्ना पुरुषं सा जुगुप्सति॥२७॥
रूपवान् गुणवान् शूरो युद्धकार्यार्थनिष्ठितः। सौम्यश्च पुरुषश्चैव स च नेति जुगुप्सति॥२८॥

हे वरानने! इस समय मैं तुमसे एक दूसरा महाख्यान का उल्लेख करने जा रहा हूँ। जो कुछ मेरे क्षेत्रों में श्रेष्ठ कोकामुख क्षेत्र में घटित हुआ था।।१९।।

किसी समय एक लुब्धक अर्थात् शिकारी अपने आहार हेतु कोकामण्डल क्षेत्र में मांस खोजते फिर रहा था। उस समय उसने अल्प जल युक्त तालाब के बीच स्थित मत्स्य को देख लिया। उस लुब्धक ने अत्यन्त बुद्धिमानी से उस मत्स्य को वेध दिया।।२०।।

हे दिशा रूपी वस्त्र को धारण करने वाली पृथ्वि! फिर उसने वहाँ स्थित बलयुक्त मत्स्य को ले जाने के विचार से दूर से ही भूमि की ओर फेंकना चाहा।।२१।।

हे वसुन्धरे! उसी क्षण एक बाजपक्षी भी उस पर झपट पड़ा, लेकिन अन्त्य निःश्वास लेता हुआ वह मत्स्य आकाश मार्ग से फेंके जाने पर मेरे क्षेत्र कोकातीर्थ में आ गिरा और वह मर कर शक का सुन्दर बलवान् पुत्र हो गया।।२२।।

कुछ काल पश्चात् वह मृगव्याध अर्थात् लुब्धक उसी मत्स्य का मांस लेकर कोकातीर्थ में आ पहुँचा।।२३।।

उसी क्षण मांसभक्षी कोई चिल्ही आकाश में उड़ रही थी। उस स्थान पर आकर वह भी उस मत्स्य के मांस का हरण करने की कामना करने लगी।।२४।।

फिर उस व्याध ने मांस की इच्छा वाले और अत्युत्सुक उस चिल्ही को एक ही बाण से मार डाला। वह भी मत्स्य के साथ जमीन पर आ गिरी।।२५।।

हे भद्रे! इस प्रकार मेरे मण्डल कोकातीर्थ में गिरने पर वह चिल्ही श्रेष्ठ नगर चन्द्रपुर के यशस्विनी राजपुत्री के रूप में उत्पन्न हो गयी।।२६।।

अपने रूप और यौवन के सहित युद्ध कृत्य और चौंसठ कलाओं से सम्पन्न वह राजपुत्री बड़ी होकर पुरुषों से घृणा करने वाली हो गई।।२७।।

परन्तु वह रूप और गुणों से सम्पन्न युद्धकार्य में कुशल तथा शूर और सौम्य स्वभाव वाले पुरुष से घृणा नहीं किया करती थी।।२८।।

अथ केनचित् कालेन शकयानन्दपूरके। संबन्धं जायते तेषां ममेच्छायै वरानने॥२९॥
प्राप्ते तु ताविहान्योन्यमुभयोश्चैव सुन्दरि। यथान्यायं स विप्रोक्तं विधिदृष्टेन कर्मणा॥३०॥
स च तयासमं नित्यं सा च तेन समं शुभम्। अन्योन्याभिरमंश्चैव मुहूर्त्तेऽपि न मुच्यते॥३१॥
एवं सुबहुधा काले गच्छते च अनिन्दिते। सा सत्प्रेम्णा च संयुक्ता सौहृदेन च नायिका॥३२॥
एवं चैव सतौ तौ तु विशेषेण सुसौहृदम्। बहु चैव गतः कालः समभोगेषु सक्तवान्॥३३॥
राजपुत्रस्ततोऽप्यत्र शकानां नन्दिवर्द्धनः। तस्य जायेत मध्याह्ने शिरोरुगतिभीषणा॥३४॥
ये केचिद् भिषजस्तत्र गदेशु कुशलाः शुभे। ते तस्य सर्वमाचष्टे न च तिष्ठति वेदना॥३५॥
एवं वै बहवः कालाःसंजातस्य तु गच्छति। न संबुध्यति चात्मानं विष्णुमायाप्रमोहितः॥३६॥
पूर्णे हि समये तत्तु उभयोश्च तदन्तरम्। तस्य कालः संवृतस्य योऽसौ पूर्वप्रतिस्तवः॥३७॥
अथ कालान्तरे तेषां वृत्तं कौतूहलं विभो। अन्योन्यप्रीतियुक्तौ तु न विमुच्येत वै तथा॥३८॥
तं सर्वमनवद्याङ्गी भर्त्तुरिव प्रभाषति। किमिदं तव भद्रं ते वेदना जायते शिरे।
एतादाचक्ष्व तत्त्वेन यद्यहं च तव प्रिया॥३९॥

हे वरानने! कुछ काल और बीत जाने पर मेरी ही इच्छा से आनन्दपुर में शक के साथ उसका सम्बन्ध हो गया।।२९।।

हे सुन्दरि! फिर वे दोनों यथाविधि ब्राह्मणों द्वारा कहे तरीके से विवाह कर्म सम्पादित कर एक-दूसरे का हो गया।।३०।।

फिर वह शकपुत्र उस राजपुत्री के साथ और वह राजपुत्री उस शक कुमार के साथ नित्य-निरन्तर रमण करने में व्यस्त हो गया। वे दोनों एक-दूसरे से एक मूहुर्त्त के लिए भी अलग नहीं हुआ करते थे।।३१।।

हे भद्रे! इस प्रकार बहुत-सा काल बीत गया। वह नायिका स्वरूप राजपुत्री सात्त्विक प्रेम और सौहार्द्र से सम्पन्न थी।।३२।।

दूसरी तरफ वह शक कुमार भी इस अवस्था को प्राप्त था। वे दोनों विशिष्ट स्नेह से सम्पन्न होते चले गये। अत्यधिक समय बीत जाने के बाद भी वह शक कुमार निरन्तर भोग करने में आसक्त होता चला गया।।३३।।

वैसे वह शककुमार अपने राजपुत्र शकवंश के आनन्द की हृद्धि करने वाला ही था। लेकिन उस राजपुत्र को मध्याह्न काल में नित्य अति भीषण शिर की पीड़ा हुआ करती थी।।३४।।

हे शुभे! वहाँ उसके शिरो रोग की चिकित्सा करने में जितने चिकित्सक थे, वे सभी उसका पूर्णता से उपचार कर थक चुके थे। किन्तु उसकी शिरोवेदना समाप्त नहीं हुई।।३५।।

इस प्रकार उत्पन्न होने वाले राजपुत्र का बहुत-सा समय बीत गया, परन्तु विष्णु माया से सम्मोहित, वह स्वयं को नहीं जान सके।।३६।।

तत्पश्चात् समय पूरा होने के कारण उन दोनों का पूर्वनिर्धारित काल उपस्थित हो गया।।३७।।

हे विभो! कालान्तर में उनका उत्सुकता भरा चरित्र घटित हो चुका था। परस्पर एक-दूसरे के प्रेम से सम्पन्न होकर वे अलग नहीं हुआ करते थे।।३८।।

सर्वाङ्गसुन्दरी कुमारी ने अपने पति से कहा कि हे भद्रपुरुष! आपको यह शिरोवेदना क्यों हुआ करती है। यदि मैं आपकी प्रिया हूँ, तो मुझसे वास्तविक वार्ता कहना चाहिए।।३९।।

बहवो भिषजश्चैव नानाशास्त्रविशारदाः। कुर्वन्ति तव कर्माणि शिरे तिष्ठति वेदना॥४०॥
एवं स प्रियया प्रोक्तस्तां प्रियां पुनरब्रवीत्। इतः किं विस्मृतं भद्रे सर्वव्याधिसमन्वितम्।
लभते जातमात्रेण दुःखेन च सुखेन च॥४१॥
एवं जातं वरारोहे मानुषत्वं च संहृतम्। संसारसागरारूढं नातिपृच्छितुमर्हसि॥४२॥
एवं सा तेन प्रोक्ता तु श्रोतुकामा वरानना। पक्षमासगते काले ह्येतौ तौ शयने गतौ॥४३॥
जातकौतूहला क्षेत्रे पुनरेवान्वपृच्छत। कथयस्व तमेवार्थं यन्मया पूर्वपृच्छितम्।
न हि त्वं भाषसे मां च प्रियं जनमृताकुलम्॥४४॥
गोप्यं वा किञ्चिदस्तीह किं गोपयसि मे पुरः। अवश्यं चैव वक्तव्यं यद्यहं तव वल्लभा॥४५॥
इति निर्बन्धतः पृष्टः स शकाधिपतिर्नृपः। तां प्रियां प्रणयात् प्राह बहुमानपुरःसरम्।
मुच्यतां मानुषो भावस्तां जातिं स्मर जन्मनि॥४६॥
अथ कौतूहलं भद्रे मातरं पितरं मम। मम माता वरारोहे येनाहं धारिता वयम्॥४७॥
गत्वा कोकामुखं ह्येवं देवानामपि दुर्लभम्। तं तु ते कथयिष्यामि सर्ववृत्तमनिन्दिते।
ततश्च मेऽनवद्याङ्गि भर्त्तारमभिभाषत॥४८॥

अनेक शास्त्रों के जानकार बहुत-सारे चिकित्सक आपकी चिकित्सा सेवा में सदा लगे हुए हैं, परन्तु आपकी वेदना आज भी वैसे ही बनी हुई है।।४०।।

अपनी प्रियतमा के इस प्रकार से कहे जाने पर उसने उस प्रिया से कहा कि हे भद्रे! तुम यह क्यों भूल गई कि उत्पन्न होते ही जीव दुःख या सुख या व्याधियों से युक्त मनुष्यत्व की प्राप्ति करता है।।४१।।

हे वरारोहे! इस प्रकार से मनुष्यत्व की प्राप्ति कर उत्पन्न हुए मनुष्य संसार सागर में आये हुए मुझसे कुछ पूछने योग्य तो नहीं ही है।।४२।।

फिर सुनने की कामना करने वाली उस सुन्दरी से उसने इस प्रकार कहकर बात को टाल दिया। तत्पश्चात् पक्ष और मास का समय अर्थात् डेढ़ महीने का समय बीतने पर एक दिन वे दोनों मिलकर शय्या पर लेटे हुए थे।।४३।।

लेकिन वेदना प्रसङ्ग में उत्पन्न हुई जानने की उत्सुकता को स्मरण कर उस प्रिया ने पुनः कहा कि मुझे आप वह बात बतलायें, जिसे मैंने पहले ही पूछा था। चूँकि मैं अत्यन्त व्याकुल प्रियजनों में एक हूँ, मुझे आप क्यों नहीं बतला रहे हैं?।।४४।।

अथवा यदि कोई गुप्त बात है, तो भी उसे मेरे सम्मुख क्यों छिपाते हैं। यदि मैं आपकी प्रिया हूँ, तो आपको मुझे अवश्य ही बतलाना चाहिए।।४५।।

इस प्रकार आग्रहपूर्ण बर्ताव से पूछने पर उस शक राजा ने अत्यन्त सम्मान सहित प्रेमपूर्वक अपनी प्रिया से कहा कि मनुष्य होने का भाव त्याग कर अपने पूर्वजन्म के उस अवस्था का स्मरण करना चाहिए।।४६।।

हे भद्रे! यह उत्सुकता का विषय है। मेरी माता और पिता के समीप चलो। हे सुन्दरि! मेरी जिस माता ने हमें धारण किया था, विशेष रूप से उसके समीप चलो।।४७।।

हे अनिन्दिते! देवताओं के लिए भी दुर्लभ कोकामुख तीर्थ में जाने के बाद ही उस पूरे वृत्तान्त को मैं तुमसे कह सकता हूँ। हे सुन्दरि! उसके बाद उस सुन्दरी ने अपने पति का निवेदन स्वीकार कर लिया।।४८।।

उभौ तौ चरणौ गृह्य श्वश्रूं श्वशुरमब्रवीत्। गन्तुमिच्छामहे तत्र पुण्यं कोकामुखे महत्॥४९॥
कार्यगौरवभावेन न निषेध्यौ कथञ्चन॥ अद्य यावत् किमपि वां याचितं न मया क्वचित्॥५०॥
पुरस्ताद् युवयोस्तन्मे याचितं दातुमर्हतः। शिरोवेदनया युक्तः सदा तव सुतो ह्ययम्॥५१॥
मध्याह्ने मृतकल्पो वै जायते ह्यचिकित्सकम्। सुखानि सर्वविषयान् विसृज्य परिपीडितः॥५२॥
कोकामुखं विना कटं न निवृत्तं भविष्यति। कदाचिन्नोक्तपूर्वं ते रहस्यं परमं शुभम्॥५३॥
त्वरितं गन्तुमिच्छामि विष्णोस्तु परमं पदम्। दम्पती त्विह गच्छामि स्थानं परममुत्तमम्॥५४॥
ततो वधूवचः श्रुत्वा शकादिपृथिवीपतिः। करेण स्वयमादाय वधूं पुत्रमुवाच ह॥५५॥
किमिदं चिन्तितं वत्स कोकामुख्याश्रमं प्रति। हस्त्यश्वरथयानानि स्त्रियश्चाप्सरसोपमाः॥५६॥
सर्वमेतत् तु सप्ताङ्गं कोशकोष्ठादिसंयुतम्। सरत्ननिचयं राज्यं सर्वं त्वयि निवर्त्तितम्॥५७॥
मित्रा वरासनं चैव गृह्ण पुत्र ममोत्तरम्। त्वयि प्रतिष्ठिताः प्राणाः सन्तानं च तदुत्तमम्॥५८॥
ततः पितुर्वचः श्रुत्वा पुत्रो राज्ञो यशस्विनि। पितरं चरणौ गृह्य प्रत्युवाच पुनस्ततः॥५९॥
अलं राज्येन कोशेन वाहनेन बलेन च। गन्तुमिच्छामि तत्राहं शीघ्रं कोकामुखं महत्॥६०॥

फिर वे दोनों माता-पिता और सास-श्वसुर के दोनों पैर पकड़ कर कहा कि हम दोनों अत्यन्त पवित्र कोकामुख तीर्थमें जाना चाहते हैं। कार्य की गौरवतावश हमें किसी प्रकार आप लोगों को नहीं रोकना चाहिए। वैसे अब तक मैंने आप दोनों से कुछ भी तो नहीं माँगा है।।४९-५०।।

पुनः शककुमार की पत्नी ने कहा कि अतः जो कुछ हमारे द्वारा माँगा जा रहा है, उसे आप लोगों को दे देना चाहिए। चूँकि आपका पुत्र मैं सदा शिर की वेदना से पीड़ित होकर जी रहा हूँ।।५१।।

दोपहर के समय आप का पुत्र यह मृतक के समान हो जाया करता है। इसकी यह पीड़ा चिकित्सा करने के योग्य नहीं है। समस्त विषयों और सुखों को त्याग कर मैं इससे निरन्तर पीड़ित हो जाया करता हूँ।।५२।।

विना कोकामुख तीर्थ में गये, यह शिरो वेदना दूर नहीं हो सकता है। पहले कभी इसने आप से अत्यन्त शुभ रहस्य को नहीं कहा था।।५३।।

अतः मैं शीघ्रता से विष्णु के उत्तम स्थान में जाने का इच्छुक हूँ। पति व पत्नि हम दोनों ही उस परमोत्तम स्थान को जा रहे हैं।।५४।।

तत्पश्चात् वधू की वार्त्ता सुनकर शकारि राजा ने स्वयं हाथ से अपनी वधू को उठाया और अपने पुत्र से कहा—।।५५।।

हे पत्र! कोकामुख तीर्थ में जाने का यह किस प्रकार का विचार कर रहे हो? यहाँ हाथी, घोड़ा, रथ, वाहन, ,अप्सराओं की तरह की स्त्रियाँ तो हैं ही।।५६।।

कोश और कोष्ठादि से सम्पन्न सात अंगों वाला यह सम्पूर्ण राज्य समस्त प्रकार के रत्नों के सहित तुमको समर्पित है।।५७।।

हे पुत्र! मेरे बाद तुम अपने मित्रों और श्रेष्ठ आसन को स्वीकार कर लो। तुम्हारे ऊपर ही मेरा सम्पूर्ण जीवन निर्भर है और तुमसे ही उत्तम सन्तान प्राप्त करना चाहता हूँ।।५८।।

हे यशस्विनि! अपने पिता शकारि राजा की वाणी सुनकर पुत्र ने पिता के पैरों को पकड़कर पुनः कहा कि राज्य, कोश, वाहन और सेना आदि सभी व्यर्थ है। मैं उसी महान् कोकामुख तीर्थ में जाने के इच्छुक हूँ।।५९-६०।।

शिरोवेदनया युक्तो यदि जीवाम्यहं पितः। तदा राज्यं बलं कोशो ममैवैतन्न संशयः।
तत्रैव गमनान्मह्यं वेदनानाशमेष्यति॥६१॥
तथा वै धार्यमाणोऽसौ तिष्ठते सर्वकर्मवित्।
पित्रा ततोऽनुज्ञातो वै गच्छ पुत्र नमोऽस्तु ते॥६२॥
वणिजः पौरवाश्चैव वैश्याश्चैव वराङ्गनाः। अगमद् राजपुत्रं यः कोकामुखपथं स्थितः॥६३॥
अथ दीर्घेण कालेन प्राप्ता कोकामुखान्तिकम्। यत्त्वया पृच्छितं पूर्वं रहस्यं कथयेन्मम॥६४॥
एवमेव प्रियाप्रोक्तो राजपुत्रो यशस्विनि। प्रहस्य प्रियामालिङ्ग्य प्रत्युवाच प्रियां तथा॥६५॥
सुखं स्वप वरारोहे इहैकां रजनीं प्रिये। कालं ते कथयिष्यामि यच्च स्यात् ते मनीषितम्॥६६॥
ततः प्रभाते शर्वर्यां स्नातौ क्षौमविभूषितौ प्रणम्य शिरसा विष्णुं हस्ते गृह्य ततः प्रियाम्॥६७॥
ततः पूर्वोत्तरे पार्श्वे नित्यं या हृदि तिष्ठति। पश्चात् पूर्वेण पार्श्वेण भूमिं तत्र निखानयेत्॥६८॥
अस्थीनि तत्र दृश्यन्ते अवशेषानि ये क्वचित्। एतानि मम चास्थीनि पूर्वकानि वरानने॥६९॥
अहं मत्स्यो हि कोके तु विचरामि जलेषु वै। व्याधेन निगृहीतोऽस्मि बडिशेन जलेचरः।
तद्धस्तान्निर्गतस्तत्र बलेन पतितो भुवि॥७०॥

हे पिताजी! शिरोवदना से युक्त मैं यदि जीवित रहा, तो निस्सन्देह यह राज्य, कोश, सेना आदि मेरी ही हो सकेगी। लेकिन उसी तीर्थ में जाने से मेरी वेदना दूर हो सकती है।।६१।।

सब कर्मों को जानने वाला वह कुमार इसी प्रकार से रोके जाने से रुकता रहा, फिर बहुत समय बाद उसे पिता राजा ने आज्ञा देते हुए कहा कि 'हे पुत्र! जाओ, तुमको नमस्कार है।'।।६२।।

कोकामुख तीर्थ की ओर जाने वाले मार्ग पर स्थित राजकुमार के समीप उस नगर के व्यवसायी, नागरिक, वैश्य, श्रेष्ठ स्त्रियाँ आदि सभी पहुँच गए।।६३।।

तत्पश्चात् दीर्घकाल के बाद कोकामुख तीर्थ के समीप पहुँचकर 'आपसे पूर्व में जो मेरे द्वारा पूछा गया था, उस रहस्य की बात को मुझे इस समय आपको कहना चाहिए'।।६४।।

हे यशस्विनी! अपनी प्रिया द्वारा इस प्रकार से पूछे जाने पर उस राजकुमार ने हँसते हुए प्रिया का आलिङ्गन कर उनसे कहा—।।६५।।

हे वरारोहे प्रिये! यहाँ पर एक रात कम से कम सुख से शयन करो। फिर समय आने पर तुम्हारा जो अभीष्ट है, उसे अवश्य बतला दिया जाऐगा।।६६।।

फिर उस रात्रि के पश्चात् प्रभातकाल में स्नान आदि करने के बाद दोनों ने रेशमी वस्त्र धारण करने के बाद शिर से श्रीविष्णु देव को प्रणाम कर राजकुमार ने अपनी प्रिया का हाथ पकड़ लिया।।६७।।

उसके बाद पूर्वोत्तर की ओर स्थित सरोवर के समीप अपनी प्रिया को लेकर चला गया। वहाँ पर पूर्व समय की अवशिष्ट हड्डियाँ दीख पड़ रही थीं। फिर उसने वहाँ पर स्थित पूर्व की ओर की भूमि को खोदने लगा। हे सुमुखी! ये मरे पूर्वजन्म की हड्डियाँ हैं।।६८-६९।।

मैं मत्स्य स्वरूप में इस कोकातीर्थ में विचरण किया करता था। जल में विचरण करते समय मृगव्याध ने वंशी फेंककर मुझे पकड़ लिया, उसके हाथ से निकल मैं वेग के साथ पृथ्वी पर आ गिरा।।७०।।

श्येनेनामिषलुब्धेन नखैर्विद्धोऽस्मि सुन्दरि। स निरस्थितमं कर्त्तुं श्येनेनामिषलोलुपि।
आकाशात् पतितोस्माहमिदं वा पश्य सुन्दरि॥७१॥
तेन तस्य प्रहारेण जाता शिरसि वेदना। अहमेव विजानामि न कश्चान्यो विजानति॥७२॥
एतत् ते कथितं भद्रे यत्त्वया पूर्वपृच्छितम्। गच्छ सुन्दरि भद्रं ते यत्र ते वर्त्तते मनः॥७३॥
ततस्तस्यानवद्याङ्गी रक्ताद्मशुभानना। करुणं स्वरमादाय भर्त्तारं पुनरब्रवीत्॥७४॥
इत्यर्थं च मया भद्र परं गुह्यं महोत्तमम्। न त्वया कथितं हीदं कर्म मोहात्मकारणम्॥७५॥
अहं च यादृशी भद्र पुरा आसीद् व्यवस्थिता।
क्षुत्पिपासापरिश्रान्ता नैनं प्राप्तोऽस्मि माधवम्।
वृक्षोपरि समासीना भक्ष्यं चैव विचिन्वती॥७६॥
अथ कश्चिन् मृगव्याधो हत्वा वनचरान् बहून्। संगृह्य मांसभाराणि इदं पार्श्वं प्रचक्रमे॥७७॥
स्थापयित्वा मांसभारान् क्वचित् काष्ठं समाहरेत्। अहं चरामि चाकाशे मार्गमादाय चामिषम्।
क्षुत्पिपासापरिश्रान्ता किञ्चिन् मांसानि छिन्दति॥७८॥
तत आधार्य काष्ठानि प्रज्वाल्य च हुताशनम्। पचतस्तत्र मांसानि क्षुत्पिपासापरिष्कृतम्॥७९॥
ततो वृक्षं समासाद्य पश्यति मांसगृद्धिता। पतितोऽस्मि ततस्तत्र यत्राऽसौ पच्यतेमिषम्॥८०॥

हे सुन्दरि! उसी समय मांस का लोभी बाज ने भी मुझे अपने नखों से घायल कर दिया। हे सुन्दरि! फिर देखों कि मांस लोभी श्येन ने आकाश से गिरे हुए मुझको मारने के लिए प्रहार किया था।।७१।।

उसी बाज के उस प्रहार से मेरे शिर में पीड़ा उत्पन्न हुई। इसे मैं ही जानता हूँ। कोई अन्य इसे नहीं जानता है।।७२।।

हे भद्रे! तुम जो कुछ मुझसे जानना चाहती थी, उसे मैंने तुमको बतला दिया। हे सुन्दरि! अब तुम्हारा मन जहाँ चाहे, वहाँ जा सकती हो।।७३।।

फिर उस लाल कमल के समान मुख वाली सुन्दरी ने करुण वाणी में अपने पति से कहा—हे प्रिय! मैंने आपसे अत्यन्त श्रेष्ठ परम गोपनीय और मोहित करने वाले कर्म का उल्लेख नहीं किया है।।७४-७५।।

हे प्रिय! पुरातन काल में जिस तरह भूख और प्यास से व्याकुल मुझे शान्ति नहीं मिली और वृक्ष के ऊपर बैठी हुई मैं आहार खोजने में लगी रही।।७६।।

तत्पश्चात् पशुओं का बहुत-से शिकारी बहुत से जंगली जानवरों को मारने के बाद इस ओर आ ठहरा था।।७७।।

फिर मांस भार को रखकर वे कहीं लकड़ी चुनने चले गए। मैं भी उस समय मांस लिये हुए और भूख तथा प्यास से थकी हुई आकाश में विचरण करती हुई थोड़ा-थोड़ा मांस खाये जा रही थी। कुछ क्षण बाद व्याध ने लकड़ी रखकर आग जलायी और भूख-प्यास दूर करने हेतु मांस पकाने लगा।।७८-७९।।

उस समय मैं भी मांस के लोभ से वृक्ष पर बैठी हुई उसे देख रही थी। फिर वह जहाँ मांस पक रहा था, अचानक मैं वहाँ पर झपट पड़ी।।८०।।

अप्रमाणं मया मांसो विद्धो वज्रमयैर्नखैः। न च शक्तोऽस्मि संहर्त्तुं मांसभारप्रपीडिता॥८१॥
न दूरं गमिता तत्र चाल्पस्थाने व्यवस्थिता। भक्षयित्वा ततो मांसं प्रहृष्टेनान्तरात्माना॥८२॥
एवं तु भक्षयन्तीं मां मांसभक्षपराजिताम्। लक्षिताऽस्मि च व्याधेन क्रुद्धोमिषकाङ्क्षिणा॥८३॥
ततः स धनुरुद्यम्य बाणं गृह्य ममान्तिकम्। पातितोऽस्मि ततस्तेन खादन्ती मांसपिण्डकम्॥८४॥
ततोऽहं भ्रममाणा वै निश्चेष्टा गतमानसा। पतिताऽस्मि अहं भद्र कालतन्त्रे दुरासदे॥८५॥
अस्य क्षेत्रप्रभावेन अकामान्ता यशस्विनी॥८६॥
अस्थीनि पश्य मे तानि ततः शेषाणि ये च मे। जीर्णानि दीर्घकालेन ये केचित् परिनिष्ठिता॥८७॥
एवं तु दर्शयित्वा वै भर्त्तारं पुनरब्रवीत्। आनीतोऽसि मया भद्र स्थानं कोकामुखं प्रति॥८८॥
यस्य क्षेत्रप्रभावेन तिर्यग्योनिगता वयम्। जाता वै मानुषीं संज्ञामुत्तमेषु कुलेषु च॥८९॥
यं यं वक्ष्यसि कल्याणं विष्णुप्रोक्तं यशोधन। तानहं कारयिष्यामि विष्णुलोके सुखावहे॥९०॥
ततस्तस्या वचः श्रुत्वा आगतोऽयं पुरागतिम्।
विस्मयं परमं गत्वा साधु साध्विति सोऽब्रवीत्॥९१॥
श्रुत्वा वै क्षेत्रकर्माणि स तस्या वचनं महत्। तेऽपि कुर्वन्ति कर्माणि यस्य यस्यावरोचते॥९२॥

फिर मैंने अपने वज्रतुल्य नखों से अत्यधिक मांस काट लिया, परन्तु मासं भार से पीड़ित होने के कारण उत्तम मांस को मैं नहीं ले जा सकी थी।।८१।।

तत्पश्चात् मैं दूर न जाकर थोड़ी ही दूर पर बैठ गयी और प्रसन्नता से मांस खाने लगी। उसी क्षण मांस की कामना वाला रुष्ट व्याध ने मासं लेकर भागने वाली और फिर उस मांस को खा रही मुझे देखा।।८२-८३।।

तत्पश्चात् उसने धनुष और बाण लेकर मांस खा रही मुझ पर बाण चला दिया। इससे मैं वहीं गिर पड़ी।।८४।।

फिर मैं बेहोश होकर निश्चेष्ट हुई और चक्कर खाती हुई भयंकर काल के वश में हो चली।।८५।।

लेकिन इस क्षेत्र के प्रभाव से मैं निष्काम और यशस्विन हो गयी। उस घटना के बाद अवशिष्ट मेरी हड्डियों को देख लो। अधिक काल वश ये जीर्ण-सी हो गयी हैं।।८६-८७।।

इस प्रकार से अपने पति को अपनी हड्डियाँ दिखाकर उसने पुनः कहा कि हे प्रिय! मैं आपको कोकामुख तीर्थ में लेकर आई हूँ, जिस क्षेत्र के प्रभाव से तिर्यग्योनि में पड़े हुए हम दोनों को मनुष्य योनि मिल पायी है और हम उत्तम कुल में उत्पन्न हो सके।।८८-८९।।

हे यशोधन! अतः विष्णु के द्वारा बतलायें गये सुख सम्पन्न विष्णुलोक में ले जाने वाले जिन कल्याणरूपी कार्यों को कहो, उन्हें सम्पन्न करा ली जाय।।९०।।

इस प्रकार के उसके वचन सुनकर उसे पुरातन समय की अवस्था का स्मरण होने लगा। अत्यन्त आश्चर्य के साथ उसने 'साधु-साध' कहा।।९१।।

उसके इस प्रकार के महान् वचन को सुनकर वह उस क्षेत्र के योग्य कर्म को करने लगा। फिर उसके साथ वहाँ पहुँचे हुए उनके परिजन भी अपनी-अपनी रूचि के अनुरूप क्षेत्रोपयोगी कर्म करने में लीन हो गये।।९२।।

केचिच्चान्द्रायणं कुर्युः केचिच्च जलजासनम्।
ये च विष्णुमयाः कर्मास्तान् सदैव समाचरेत्॥९३॥
बहुधान्यवरं रत्नं दम्पत्योऽथ यशस्विनि। तेऽपि कुर्वन्ति कर्माणि समं भक्त्या व्यवस्थिताः॥९४॥
तेऽपि दीर्घेण कालेन अटमानात्मनिःकृतिम्। कुर्वन्तो धर्मकर्माणि भाव्यं पञ्चत्वमागताः॥९५॥
ततः क्षेत्रप्रभावेण मम कर्मप्रभावतः। मम चैव प्रसादेन श्वेतद्वीपमुपागताः॥९६॥
एवं स राजपुत्रो वै सर्वभूतगुणान्वितः। मुक्त्वा तु मानुषं भावमूर्ध्वशाखोपतिष्ठति॥९७॥
योऽसौ परिजनस्तस्य मम कर्मव्यवस्थितः। मानुषं भावमुत्सृज्य मम लोकमुपागतः।
सर्वशो द्युतिमांस्तत्र आत्मना आत्मदर्शनात्॥९८॥
याश्च तत्र स्त्रियः काश्चित् सर्वाश्चोत्पलगन्धिनीः।
मायया मतिमान् मुक्तः सर्वे चैव श्रियावृताः॥९९॥
एवं मत्स्यश्च चिल्ली च सकामा ये समागातः। प्रसादान्मम सुश्रोणि श्वेतद्वीपमुपागताः॥१००॥
एष कर्मश्च कीर्तिश्च शकानां च महद्यशः। कर्मणां कर्म च श्रेष्ठं तपसां च महत्तपः॥१०१॥
आख्यानां परमाख्यानं द्युतीनां च महाद्युतिः। धर्माणां च परो धर्मस्तवार्थं कीर्त्तितो मया॥१०२॥

उस समय कोई चान्द्रायण व्रत करने लगा, कोई पद्मासन लगाने लगा। जो कर्म विष्णु के भाव से सम्पन्न हैं, वे उन्हें करने में सदा मन लगाने लगे।।९३।।

वे दोनों यशस्वी दम्पत्ति भी विविध प्रकार से श्रेष्ठ धान्य रत्न आदि का दान करते हुए समान रूप से भक्ति भावना के साथ दैनिक विष्णु कर्म करने में संलग्न हो गए थे।।९४।।

दीर्घकाल के व्यतीत होने पर अपनी मोक्ष प्राप्ति हेतु उस क्षेत्र में चारों ओर विचरण और धार्मिक अनुष्ठान करते हुए वे सभी सुनिश्चित आगत मृत्यु को प्राप्त हुए थे।।९५।।

फिर उस तीर्थ क्षेत्र का प्रभाव, मेरे कर्म के प्रभाव तथा मेरी कृपा से उन्हें श्वेतद्वीप प्राप्त हुआ। इस प्रकार सब गुणों से सम्पन्न वह शककुमार मनुष्य योनि को भी छोड़कर उत्तम देवयोनि को प्राप्त करने में सफल हुआ।।९६-९७।।

उस समय उस तीर्थ में उनके जो परिजन मेरे कर्म के सम्पादन में सन्नद्ध थे, वे भी सब के सब मनुष्य योनि का त्याग करते हुए मेरे लोक में आ पहुँचे। वैसे वे सभी आत्मा से आत्मा का दर्शन करने के कारण सब प्रकार से शोभा सम्पन्न हुए।।९८।।

फिर उस समय वहाँ जितनी स्त्रियाँ थीं, वे सब के सब पद्मसुगन्ध से सम्पन्न हो गई और फिर वे सभी माया से रहित होकर शोभा को प्राप्त करने लगी।।९९।।

हे सुश्रोणि! इस प्रकार कामना के सहित मेरे तीर्थ में आये हुए मत्स्य और चिल्ली दोनों मेरे अनुग्रह से श्वेतद्वीप पर पहुँच गये।।१००।।

इस प्रकार यह आख्यान शकों का महान् यश, कीर्त्ति, धर्मकार्यों में श्रेष्ठतर कर्म और तपों में भी श्रेष्ठतर तप के स्वरूप में स्थित है।।१०१।।

इस प्रकार मैंने तुम्हारे लिये भी आख्यानों में श्रेष्ठतर आख्यान, तेजस्वियों में श्रेष्ठतर तेजस्वी और धर्मों में भी श्रेष्ठतर धर्म का उल्लेख किया है।।१०२।।

क्रोधनाय न तं दद्यान् मूर्खाय पिशुनाय च। अभक्ताय न तं दद्यादश्रद्धाय शठाय च॥१०३॥
दीक्षिताय च दातव्यमुपपन्नाय नित्यशः। पण्डिताय च दातव्यं यश्च शास्त्रविशारदः॥१०४॥
एतन्मरणकालेऽपि धारयेद् यः समाहितः। सोपि मुच्येत पूतात्मा गर्भयोनिभवाद्भयात्।

एतत् ते कथितं भद्रे महाख्यानं महौजसम्॥१०५॥
य एतेन विधानेन गत्वा कोकामुखं महत्।
तेऽपि यान्ति परां सिद्धिं चिल्लीमत्स्यौ यथा पुरा॥१०६॥

।।इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१२१।।
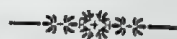
फिर इस आख्यान को क्रोधी, मूर्ख, चुगली करने वाले, भक्तिभाव रहित, श्रद्धारहित, और शठ जनों को कथमपि नहीं ही सुनाना श्रेष्ठतर कर्म है।।१०२-१०३।।

लेकिन भक्तिभाव सम्पन्न, दीक्षित, पण्डित, शास्त्रज्ञ आदि जैसे गुणों से सम्पन्न जनों को अवश्य ही सुनाना पुण्यकार्य है।।१०४।।

जो जन मरने के समय के उपस्थित होने पर इस आख्यान का ध्यान करते हैं वे सभी पवित्र आत्मायोनि और गर्भ के भय से रहित हो सकेंगे। हे भद्र! मैंने तुम्हें इस महान् और ओज सम्पन्न श्रेष्ठ आख्यान को सुना दिया है।।१०५।।

जो जन इस आख्यानोक्त कर्म विधान के सहित कोकामुख तीर्थ में जाते हैं, वे सभी चिल्ली और मत्स्य के समान उत्तमोत्तम सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं।।१०६।।

।।इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में वैष्णव लक्षण, कोकामुख माहात्म्य सहित चिल्ली और मत्स्य आख्यान नामक एक सौ इक्कीसवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायण-कुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ।।१२१।।

❖❖❖

द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

अथ मासक्रमपूजाफलम्

श्रुत्वा तु कोकामाहात्म्यं पृथिवी धर्मसंहिता। विस्मयं परमं गत्वा श्रुत्वा धर्मं महौजसम्॥१॥

धरण्युवाच

अहो प्रभावं कोकाया माहात्म्यं क्रोडरूपिणः।
तिर्यग्योनिगतौ चापि प्राप्तौ यत् परमां गतिम्॥२॥

तव देव प्रसादेन किञ्चिदिच्छामि वेदितुम्। यन्मया पूर्वपृष्ठोऽसि केन धर्मेण मानवाः॥३॥
तपसा कर्मणा वाऽपि पश्यन्ति त्वां हि माधव। प्रसादसुमुखो भूत्वा निखिलं वक्तुमर्हसि॥४॥
एवं पृष्टस्तदा देव्या माधव्या स तु माधवः। प्रहस्य पुनरेवेदं वक्तुं समुपचक्रमे॥५॥
एवमेतन्महाभागे यथा त्वं भीरु भाषसे। कथयिष्यामि ते सर्वं धर्मं संसारमोक्षणम्॥६॥
गते मेघागमे देवि प्रसन्नशरदागमे। अम्बरे विमले जाते विमले शशिमण्डले॥७॥
नातिशीते न चात्युष्णे काले हंसविराविणि। कुमुदोत्पलकह्लारपद्मसौरभनिर्भरे॥८॥

अध्याय-१२२

शरदादि ऋतुओं और मार्गशीर्ष, वैशाख मासों में विविध पुष्पों गन्धों से विष्णु पूजन का फल

इस प्रकार कोकातीर्थ का माहात्म्य और महान् ओजस्वी धर्मकथा सुनकर धर्मसम्पन्ना पृथ्वी को अत्यन्त आश्चर्य का अनुभव हुआ।।१।।

धरणी ने कहा कि अहो! क्रोडरूपी विष्णु और कोकातीर्थ के प्रभाव का माहात्म्य निश्चय ही विस्मयकारी है। इसलिए कि उसके प्रभाव से ही तिर्यग्योनि में उत्पन्न दो जीव चिल्ली और मत्स्य को किस प्रकार से परम गति की प्राप्ति हो गई।।२।।

हे देव! आपके ही कृपा प्रसाद से मैं और कुछ जानकारी करने की कामना रखती हूँ। हे माधव! मैंने आप से पूर्व में भी यह पूछा था कि मनुष्य किस धर्म, तप अथवा कर्म के प्रभाववश आपका दर्शन करने में सफलता प्राप्त करता है। अतः आप अपने कृपा प्रसादवश प्रसन्नता से उनसब प्रसङ्गों में मुझसे बतलायें, बड़ी कृपा होगी।।३-४।।

इस प्रकार से माधवी देवी के द्वारा पूछे जाने पर उन माधव देव ने हँसते हुए उसे कहना प्रारम्भ किया।।५।।

हे महाभागे भीरु धरणि! जो कुछ तुम मुझसे पूछ रही हो, उन संसार से मुक्त करने वाले धर्म जो मैं सम्पूर्णता से तुम्हें कह रहा हूँ।।६।।

हे देवि! वर्षा ऋतु के व्यतीत होने पर प्रसन्नचित्त करने वाले शरद् ऋतु काल में जब आकाश और चन्द्रमण्डल निर्मल रहता है, हे हंस सदृश वाणी वाली पृथ्वि! जब न अधिक शीत और न अधिक उष्ण और

कुमुदस्य तु मासस्य भवेद् या द्वादशी शुभा। तस्यां मामर्चयेद् यस्तु प्रभावं तं शृणु प्रिये॥९॥
यावल्लोकाश्च धार्यन्ते तावत्कालं वसुंधरे। मद्भक्तो जायते धन्यो नान्यभक्तः कदाचन॥१०॥
कृत्वा ममैव कर्माणि द्वादश्यां तत्र माधवि। ममैवाराधनार्थाय इमं मन्त्रमुदीरयेत्॥११॥

मन्त्रः–ब्रह्मणा रुद्रेण च यः स्तूयमानो।
भगवानृषिः वन्दितो वन्दनीयः प्राप्ता द्वादशीयं ते॥१२॥

प्रबुध्यस्व जाग्रतो लोकनाथ मेघा गताः। निर्मलः पूर्णश्चन्द्रः शारदानि पुष्पाणि लोकनाथ।
तुभ्यमहं ददामीति धर्महेतोस्तव प्रीतये॥१३॥
प्रबुद्धं जाग्रतं लोकनाथ त्वां भ्राजमानं यज्ञेन यजन्ते।
सत्रेण सत्रिणो वेदैः पठन्ति भागवताः।
शुद्धाः प्रबुद्धा जाग्रन्तो लोकनाथ॥१४॥

एवं कर्माणि कुर्वीत द्वादश्यां वै यशस्विनि। मम भक्ता व्रतश्रेष्ठं ते यान्ति परमां गतिम्॥१५॥
एवं वै शारदं कर्म निखिलं कथितं मया। देवि संसारमोक्षार्थं मम भक्तसुखावहम्॥१६॥
अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि शैशिरं कर्म शोभनम्।
यानि कर्माणि कुर्वन्तः पुंसो यान्ति परां गतिम्॥१७॥

कुमुद तथा पद्मों की सुगन्धि से सम्पन्न वातावरण होता है, उस समय, हे प्रिये! कार्तिक मास की शुभ द्वादशी तिथि के दिन, जो जन मेरा पूजन किया करते हैं, उसके क्या प्रभाव होते हैं, उसे सुनो।।७-९।।

हे वसुन्धरे! इस समय मेरा पूजन करने वाला मेरा भक्तजन उस समय तक धन्य बने रहते हैं जिस समय तक ये सब लोक अपने अस्तित्व में रहते हैं, किन्तु अन्य का भक्त उस समय कभी भी धन्य नहीं होता है।।१०।।

हे माधवि! तत्कालिक द्वादशी में मेरे पूजन सम्बन्धी कर्मों को करने वाले जनों को मेरी ही आराधना हेतु अग्रोक्त मन्त्र बोलना चाहिए—।।११।।

मन्त्र—हे ब्रह्मा और रुद्र द्वारा स्तुत और ऋषिजनों से वन्दित वन्दनीय भगवान् विष्णु! यह आपकी द्वादशी आ गयी है।।१२।।

हे लोकनाथ! अब आप जागृत हों, मेघ भी लुप्त हो चुका है, चन्द्रमा भी सम्पूर्णता से निर्मल दीखने लगा है। अतः हे लोकनाथ! धर्म के लिए, आपकी प्रसन्नता के लिए मैं आपको शरदीय पुष्प समर्पित करता हूँ।।१३।।

हे लोकनाथ! शुद्धात्मा, ज्ञानवान्, भगवद् भक्त और यज्ञ सम्पन्न करने वाले जनों द्वारा ज्ञानस्वरूप, जागृत और प्रकाशस्वरूप आपका यज्ञ के माध्यम से पूजन एवं वेद मन्त्रों से स्तुति किये जाते हैं।।१४।।

हे यशस्विनि! इसी तरह से द्वादशी को मेरा पूजन कर्मों को सम्पन्न करना चाहिए। मेरे जो कोई भक्तजन यह श्रेष्ठव्रत किया करते हैं, उनको निश्चय ही परमगति मिल जाती है।।१५।।

हे देवि! मैंने इस प्रकार अपने भक्तों को सुख प्रदान करने वाले शारदीय अपने पूजन के सम्पूर्ण कर्म को कह दिया है। अब तुमको मैं शिशिर ऋतु में होने वाले अन्य सुन्दर कर्म को कहने जा रहा हूँ, जिन कर्मों को सम्पन्न कर मनुष्य परमगति की प्राप्ति करने में सफल हुआ करते हैं।१६-१७।।

शीतवाताभिसंतप्ता मम भक्ता व्यवस्थिताः। अनन्यमनसो भूत्वा योगाय कृतनिश्चयाः॥१८॥
शिशिरे यानि कर्माणि पुष्पिताश्च वनष्पतीः। तैरेव चार्च्चनं कृत्वा जानुभ्यां पतितः क्षितौ।
कराभ्यामञ्जलिं कृत्वा इमं मन्त्रमुदीरयेत्॥१९॥
शिशिरो भवान् धर्त्त इमं लोकनाथ हिमं दुस्तरं दुष्प्रवेशं।
कालं संसारान्मां तारयेमं धर्त्त त्रिलोकनाथ॥२०॥
यस्त्वथैतेन मन्त्रेण शिशिरे कर्म कारयेत्। स गच्छेत् परमां सिद्धिं मम भक्तिव्यवस्थितः॥२१॥
अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व वसुंधरे। मासं मार्गशिरं चैव वैशाखं च मम प्रियम्॥२२॥
अहं च ते प्रवक्ष्यमि गन्धपत्रस्य यत्फलम्। नववर्षसहस्राणि नववर्षशतानि च॥२३॥
तिष्ठते विष्णुलोकेऽस्मिन् यो ददाति सुनिश्चलम्। एकैकं गन्धपत्रं च दानमेतन्महत्फलम्।
मतिमान् धृतिमान् भूत्वा गन्धपत्रं हि दापयेत्॥२४॥
पुनरन्यत्प्रवक्ष्यामि गन्धपत्रस्य यत्फलम्। द्वादश्यां चैव यो दद्यात् त्रीन् मासांश्च समाहितः॥२५॥
कौमुदस्य तु मासस्य मार्गशीर्षस्य वै तथा। वैशाखस्य तु मासस्य वनमालां सुपुष्पिताम्॥२६॥
एकचित्तं समाधाय गन्धपत्राणि यो न्यसेत्। वर्षाणि द्वादशैवेह कृता गन्धेन पूजिता॥२७॥

शीत और वायु से पीड़ित एवं दृढ़ निश्चय वाले मेरे भक्तों को एकनिष्ठ चित्त से योग साधन करने का निश्चय कर मेरी उपासना विषयक जो भी कर्म हैं, उन्हें सम्पन्न कर शिशिर ऋतु में पुष्पित होने वाली वनस्पतियों के पुष्पों से मेरी पूजा कर घुटनों के आधार पर पृथ्वी पर बैठे हुए दोनों हाथ जोड़कर इस प्रकार के मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए।।१८-१९।।

हे धारण करने वाले लोकनाथ! यह हिममय दुःसह एवं कठोर शिशिर ऋतु का समय है। हे लोकनाथ! मुझे इस संसार से मुक्त करने की कृपा करें।।२०।।

जो जन इस मन्त्र से शिशिर ऋतु में कर्म करने वाले हैं, वे जन मेरी भक्ति से सम्पन्न होकर परम सिद्धि की प्राप्ति करने वाले होते हैं।।२१।।

हे वसुन्धरे! तुमको अन्यान्य कर्म भी कहने जा रहा हूँ, उसे सुनो। मार्गशीर्ष और वैशाख मास मुझे अत्यधिक प्रिय है।।२२।।

मैं तुमको गन्धपत्र का जो फल है, उसे बतला रहा हूँ। जो जन गन्धपत्र मुझे प्रदान करता है, वे हजार और नौ सौ वर्ष तक निश्चय ही विष्णुलोक में रहते हैं। एक-एक गन्धपत्र के दान का यह महान् फल कहा गया है। बुद्धि और धैर्य्य से सम्पन्न होकर गन्धपत्र का दान करना ही चाहिए।।२३-२४।।

उस गन्धपत्र के दान का जो कुछ अन्यान्य फल होते हैं, उसे अब कह रहा हूँ। जो जन एकनिष्ठ भाव से तीन मास तक द्वादशी को गन्धपत्र का दान करते हैं, उनकी परमगति प्राप्त होती है।।२५।।

कौमुद अर्थात् कार्त्तिक मास, मार्गशीर्ष और वैशाख मास, इन तीन मासों में द्वादशी तिथि के दिन, जो जन सुन्दर पुष्पों की माला बनाकर एकनिष्ठ भाव से गन्धपत्र समर्पित करते हैं, वे इस तरह बारह वर्ष के समान गन्धपत्र द्वारा मेरा पूजन सम्पन्न करने वाला हो जाता है।।२६-२७।।

शालपुष्पेण मिश्रेण कौमुद्यां गन्धकेन च। मासि मार्गशिरे भद्रे दद्यादुत्पलमिश्रितम्।
एवं महत्फलं भद्रे गन्धपत्रस्य कारयेत्॥२८॥
श्रुत्वेति वचनं तस्य प्रश्रयेण तु माधवी। प्रहस्य प्रणयाद् वाक्यमुवाच मधुसूदनम्॥२९॥
एते द्वादशमासाश्च षष्ट्युत्तरशतत्रयम्। संपूर्णवत्सरे देव द्वौ मासौ किं प्रशंससि।
द्वादशीं चापि देवेश प्रशंससि सदा मम॥३०॥
इति पृष्टस्तदा देव्या धरण्या स तु माधवः। प्रहस्य तामुवाचेदं वचनं धर्मसंश्रितम्॥३१॥
शृणु तत्त्वेन मे देवि येनेमौ मम च प्रियौ। तिथीनां द्वादशी चापि सर्वयज्ञफलाधिका॥३२॥
दत्त्वा द्विजसहस्रेभ्यो यत्फलं प्राप्नुयान्नरः। तदेकं संप्रदायैव द्वादश्यामभिविन्दति॥३३॥
कौमुद्यां च प्रबुद्धोऽस्मि वैशाख्यां त्वं समुद्धता। महादानाधिको योगस्तेनैतत् प्रभवो धरे॥३४॥
अतः कौमुदिकायां तु वैशाख्यां यतमानसः। गन्धपत्रं करे गृह्य इमं मन्त्रमुदीरयेत्॥३५॥
मन्त्रः-भगवान्नाज्ञापय
इमं बहुतरं नित्यं वैशाखं चैव कार्त्तिकम्। गृहाणि गन्धपत्राणि धर्ममेवं प्रवर्धय।
नमो नारायणेत्युक्त्वा गन्धपत्रं प्रदापयेत्॥३६॥

हे भद्रे! कुमुदिन वाले मास कार्त्तिक मास में मार्गशीर्ष अर्थात् आगहन मास में शालपुष्प, गन्धपत्र और कमल से सम्पन्न माला समर्पित करनी चाहिए। हे भद्रे! इस प्रकार महान् फल प्रदान करने वाले गन्धपत्र का दान करना चाहिए।।२८।।

इस प्रकार की उनकी वाणी को सुनकर पृथ्वी ने हँसते हुए उन मधुसूदन से कहने लगी कि हे देव! पूरे वर्ष में तीन सौ साठ दिनों के बारह मास होते हैं। उनमें से दो ही मासों की प्रशंसा आप क्यों करते हैं और हे देवेश! आप सदा ही मुझसे द्वादशी तिथि की ही प्रशंसा क्यों कर किया करते हैं?।।२९-३०।।

इस प्रकार से धरणी देवी के द्वारा पूछे जाने पर उन माधव ने हँसते हुए यह धर्म सम्पन्न वचन कहा कि हे देवि! जिस कारण ये दोनों मास और प्रत्येक प्रकार के यज्ञ के फल से अधिक फल प्रदान करने वाली द्वादशी मुझे अत्यन्त प्रिय है, उसके वास्तविक रहस्य को मुझसे तुम सुनो—।।३१-३२।।

कोई जन हजार ब्राह्मणों को दान प्रदान कर जैसा फल प्राप्त कर सकता है, वैसा ही फल द्वादशी के दिन मात्र एक ब्राह्मण को दान प्रदान कर प्राप्त कर सकता है।।३३।।

हे धरे! कार्त्तिक मास में मैं जागृह होता हूँऔर वैशाख मास में तुम्हारा उद्धार हुआ था, इस कारण से इन मासों में महान् दानों से भी अधिक फल का योग होता है।।३४।।

इसलिए कार्त्तिक और वैशाख मासों में संयमित चित्त होकर हाथ में गन्धपत्र लेकर यह मन्त्र पढ़ना चाहिए—।।३५।।

भगवान् आज्ञा दें। यह वैशाख और कार्त्तिक मास नित्य अत्यन्त श्रेष्ठ मास हैं। इन गन्ध पत्रों को स्वीकार करते हुए इससे धर्म की वर्द्धन करें। आप नारायण को प्रणाम है, इस प्रकार कहते हुए गन्धपत्र हमें प्रदान करना चाहिए।।३६।।

पुष्पाणां च प्रवक्ष्यामि यो गुणो यच्च वै फलम्। दत्त्वा वै गन्धपत्राणि मम भक्तेषु सुन्दरि।
क्रमिकं सुमनो गृह्य इमं मन्त्रमुदीरयेत्॥३७॥
मन्त्रः–भगवान्नाज्ञापयति
सुमनो भगवन् सर्वान् विशुद्धात्मा सुनिश्चिताः। गृह्णीष्व सुमनस्केन देवदेव सुगन्धकाः॥३८॥
प्राप्नोति ददमानस्तु मम कर्मपरायणः। न जन्म मरणं चैव न ग्लानिं न च वै क्षुधाम्।
दिव्यं वर्षसहस्रं वै मम लोकेषु तिष्ठति॥३९॥
एकैकस्य तु पुष्पस्य पुण्यमेतन्महत्फलम्। सुमनो गन्धसंभूतं यत्त्वया परिपृच्छितम्॥४०॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१२२॥

हे सुन्दरि! जो गुण और फल पुष्पों का होता है, उसे कहने जा रहा हूँ। मेरे भक्त जनों को क्रम से गन्धपत्र प्रदान करने के बाद पुष्प लेकर इस प्रकार मन्त्र उच्चारण करना चाहिए।।३७।।

मन्त्र—भगवान् आज्ञा प्रदान करते हैं। हे देवदेव भगवन्! शुभ निश्चय, विशुद्ध चित्त, और पवित्र मन से समर्पित सुगन्धित पुष्पों को ग्रहण करें।।३८।।

इस प्रकार दान करने से मेरे कर्म में संलग्न जन को जन्म और मरण का दुःख, ग्लानि, क्षुधा आदि का कष्ट नहीं होता तथा इस प्रकार वे हजार दिव्य वर्ष तक मेरे लोक में निवास करते हैं।।३९।।

गन्ध नामक वृक्ष से उत्पन्न एक-एक पुष्प के दान का यह महान् और पवित्र फल होता है, जिसे तुमने पूछा था।।४०।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में शरदादि ऋतुओं और मार्गशीर्ष, वैशाख मासों में विविध पुष्पों गन्धों से विष्णु पूजन का फल नामक एक सौ बाईसवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१२२॥

त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

अथ ऋतुभेदेन विष्णुपूजनम्

श्रीवराह उवाच

फाल्गुनस्य तु मासस्य शुक्लपक्षस्य द्वादशीम्।
गृह्य वासन्तिकान् पुष्पान् सुगन्धान् ये क्रमागताः॥१॥
श्वेतपाण्डुरकं चैव सुगन्धं शोभनं बहु। विधिना मन्त्रयुक्तेन सुप्रीतेनान्तरात्मना॥२॥
तत एवं विधिं कृत्वा सर्वं भागवतः शुचिः। यस्तु जानाति कर्माणि सर्वमन्त्रविनिश्चितः॥३॥
तदाहरेत कर्माणि विधिदृष्टेन कर्मणा। विधिना मन्त्रपूतेन कुर्याच्चान्तमनोऽमलः।
नमो नारायणेत्युक्त्वा इमं मन्त्रमुदीरयेत्॥४॥
ॐ नमो वासुदेवेश शङ्खचक्रधराच्युत। नमोऽस्तु ते लोकनाथ प्रवीराय नमोऽस्तु ते॥५॥
संपुष्पितस्येह वसन्तकाले वनस्पतेर्गन्धरसप्रयुक्ताः।
पश्येदिमान् पुष्पितपादपेन्द्रान् वसन्तकाले समुपागते च॥६॥
यश्चैतेन विधानेन कुर्यान्मासे तु फाल्गुने। न स गच्छति संसारं मम लोकाय गच्छति॥७॥

अध्याय-१२३

षड्ऋतु कर्म सहित षड्ऋतुओं में विष्णुपूजा से मोक्ष प्राप्ति

श्री भगवान् वराह ने कहा कि फाल्गुन मास के शुक्लपक्ष की द्वादशी तिथि के दिन जो क्रम से वसन्त ऋतु में प्राप्त होने वाले पुष्प हों, उन्हें ग्रहण करना चाहिए।।१।।

उस समय अत्यन्त हर्षयुक्त मन से मन्त्रयुक्त विधि से श्वेत और पाण्डुर वर्ण के अति सुन्दर सुगन्धित पुष्प लेना चाहिए।।२।।

तत्पश्चात् विष्णु- उपासनीय कर्मों को जानने वाले और सभी मन्त्रों को जानने वाले जन पवित्र भगवद् भक्त इस प्रकार से भगवान् की पूजा विषयक विधि सम्पन्न करें।।३।।

फिर शान्त और निर्मल मन वाले भगवद् भक्त मन्त्र से शुद्ध विधि द्वारा पूजन कर्म को सम्पन्न करे और 'नमो नारायणाय' बोलते हुए इस मन्त्र को भी बोले—।।४।।

हे शंख और चक्रधारी, अच्युत, वासुदेवेश! आपको नमस्कार है। हे लोकनाथ! आपको प्रणाम है। हे प्रवीर! आपको प्रणाम है।।५।।

वसन्त ऋतु के समय पुष्पित होने वाली वनस्पतियों के गन्ध और रस से सम्पन्न पुष्पों वाले इन श्रेष्ठ वृक्षों को देखना चाहिए।।६।।

इस प्रकार फाल्गुन मास में जो कोई इस पूजन विधि से कर्म करने वाला होता है, उसे संसार की प्राप्ति नहीं होती है और वे मेरे लोक में चला जाता है।।७।।

यच्च पृच्छसि सुश्रोणि मासे वैशाख उत्तमे। शुक्लपक्षे तु द्वादश्यां यत्फलं तच्छृणुष्व मे॥८॥
पुष्पितेषु च शालेषु तथान्येषु द्रुमेशु च। गृहीत्वा शालपुष्पाणि मम कर्मणि संस्थिताः॥९॥
कृत्वा तु मम कर्माणि शुभानि तरुणानि च।
पूज्य भागवतान् सर्वान् स्थापयित्वा ततोऽग्रतः॥१०॥
ऋषि स्तुवन्ति मन्त्रेण वेदोक्तेन च माधवि। गन्धर्वाप्सरसश्चैव गीतनृत्यैः सवादितैः॥११॥
स्तुवन्ति देवलोकाश्च पुराणं पुरुषोत्तमम्। सिद्धविद्याधरा यक्षाः पिशाचोरगराक्षसाः।
स्तुवन्ति देवभूतानां सर्वलोकस्य चेश्वरम्॥१२॥
आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ समरुद्गणाः। स्तुवन्ति देवदेवेशं युगानां संक्षयेऽक्षयम्॥१३॥
ततो वायुश्च विश्वे च अश्विनौ च समन्विताः। स्तुवन्ति केशवं देवमादिकालमयं प्रभुम्॥१४॥
ततो ब्रह्मा च सोमश्च शक्रश्चाग्निसमन्वितः। स्तुवन्ति नाथं भूतानां सर्वलोकमहेश्वरम्॥१५॥
नारदः पर्वतश्चैव असितो देवलस्तथा। पुलहश्च पुलस्त्यश्च भृगुश्चाङ्गिर एव च॥१६॥
एते चान्ये च बहवो मित्रावसुपरावसू। स्तुवन्ति नाथं भूतानां योगिनां योगमुत्तमम्॥१७॥
श्रुत्वा तु प्रतिनिर्घोषं देवानां तु महौजसम्। ततो नारायणो देवः प्रत्युवाच वसुंधराम्॥१८॥
किमयं श्रूयते शब्दो ब्रह्मघोषेण चोदितः। देवानां च महाभागे महाशब्दोऽत्र श्रूयते॥१९॥

हे सुन्दरकटि वाली पृथ्वी! तुमने तो उत्तम वैशाख मास के शुक्लपक्ष की द्वादशी तिथि में व्रत करने के फल सम्बन्ध में जो पूछा है, उसे मुझसे सुनो—॥८॥

पुष्पित शालवृक्ष और अन्यान्य वृक्षों के पुष्पों का संग्रह कर मेरे भक्त को पूजा विषयक शुभ और उत्साह युक्त कर्मों को सम्पन्न कर भगवान् के समस्त भक्तों की पूजा कर अपने ही समक्ष स्थापित कर लेनी चाहिए।।९-१०।।

हे माधवि! ऋषिजन वेद द्वारा प्रतिपादित मन्त्र विधि से और गन्धर्व के सहित अप्सरायें वाद्यों सहित गीत और नृत्य द्वारा श्रीभगवान् का स्तवन किया करते हैं।।११।।

देव, सिद्ध, विद्याधर, यक्ष, पिशाच, नाग, राक्षस आदि गणों द्वारा देवताओं और समस्त प्राणियों के ईश्वर पुरातन पुरुषोत्तम का स्तवन किया जाता है।।१२।।

आदित्यगण, वसुगण, रुद्रगण, अश्विनीकुमारों और मरुद्गण युगों के अन्त होने पर भी अक्षय रहने वाले देवाधिदेव का स्तवन करते हैं।।१३।।

फिर वायु और विश्वेदेव, अश्विनी कुमारों सहित आदि काल के स्वरूप देव प्रभुकेशव का स्तवन किया करते हैं। फिर ब्रह्मा और सोम, इन्द्र और अग्निदेव के सहित सभी लोकों के महेश्वर भूतनाथ का स्तवन किया करते हैं।।१४-१५।।

उसी क्रम में नारद, पर्वत, असित, देवत, पुलह, पुलस्त्य, भृगु, अङ्गिरा आदि और अनेक ऋषि और मित्रवसु और परावसुगण योगियों के श्रेष्ठ योगस्वरूप भूतनाथ का स्तवन किया करते हैं।।१६-१७।।

इस प्रकार देवगणों के ओजपूर्ण जय-जयकार की ध्वनि को सुनकर नारायण देव ने धरणी से कहा—हे महाभागे! ब्रह्मा की ध्वनि से समुत्प्रेरित देवताओं का यह महाशब्द यहाँ क्यों सुनायी पड़ रहा है?।।१८-१९।।

ततः कमलपत्राक्षी सर्वरूपगुणान्विता। वाराहरूपिणं देवं प्रत्युवाच वसुंधरा॥२०॥
देवाः काङ्क्षन्ति ते देव वाराहीरूपसंस्थितिम्। त्वन्नियोगनियुक्तस्य तदर्थं लोकभावना॥२१॥
ततो नारायणो देवः पृथिवीं प्रत्युवाच ह। अं जानामि तान् देवि मार्गमाणान् पथे स्थितान्॥२२॥
दिव्यं वर्षसहस्रं वै धारिताऽसि वसुंधरे। मया लीलायमानेन एकदंष्ट्राक्रमेण वै॥२३॥
इहागच्छामि भद्रं ते द्रष्टुकामा दिवौकसः। आदित्या वसवो रुद्राः स्कन्देन्द्रसपितामहाः॥२४॥
एवं तस्य वचः श्रुत्वा माधवस्य वसुंधरा। शिरसा चाञ्जलिं कृत्वा ततस्तच्चरणौ पतत्॥२५॥
वाराहं पुरुषं देवं विज्ञाप्यति वसुंधरा। उद्धृताऽस्मि त्वया देव रसातलगता ह्यहम्।
शरणं त्वामनाथा वै त्वद्भक्तस्य गतिः प्रभुः॥२६॥
किं कर्म कर्मणा केन किं वा जन्मपरायणम्। कथं वा तुष्यसे देव पूज्यः केनासि कर्मणा।
तदहं कारयिष्यामि कर्म स्वर्गसुखावहम्॥२७॥
न च मेऽस्ति व्यथा काचित् तव कर्मविधानतः।
न ग्लानिर्न जरा काचिन्न जन्ममरणे तथा॥२८॥
सर्वे सुरासुरा लोका रुद्रेन्द्रसपितामहाः। कोष्ठे निवासं कुर्वन्ति तवैकस्य यशोधराः॥२९॥

तत्पश्चात् पद्मपत्र के समान नेत्रों वाली और समस्त स्वरूप और गुण से सम्पन्न पृथ्वी ने वाराह स्वरूप धारण करने वाले देव से कहा कि—॥२०॥

हे देव! देवताजन आपके वराह स्वरूप में स्थित होने और आपकी आज्ञा से उस आज्ञा के पालन करने हेतु लोक सम्बन्धी कार्य को सम्पन्न करने में लगे हैं॥२१॥

फिर नारायण देव ने धरणी से कहा कि हे देवि! मुझे खोजने वाले पथ पर स्थित उन देवताओं को मैं जानता हूँ॥२२॥

हे वसुन्धरे! लीला करते हुए मैंने अपने एक दाढ़ पर तुमको एक हजार दिव्य वर्ष तक धारण किया हुआ था॥२३॥

हे भद्रे! आदित्य, वसुगण, रुद्रगण, स्कन्द, शंकर, ब्रह्मा आदि देवता तुमको ही देखने आ रहे हैं॥२४॥

इस प्रकार से उन माधव की वाणी को सुनकर एक हाथ जोड़कर पृथ्वी उनके चरणों पर गिर पड़ी॥२५॥

फिर धरणी ने वराहस्वरूप देव से कहने लगी कि हे देव! आपने रसातल में गयी हुयी मुझको निकाल लाया है। हे प्रभु! मैं अनाथ आपकी शरण में हूँ, आप प्रभु ही अपने इस भक्तिनी की गति हैं॥२६॥

हे देव! आजीवन कौन-सा कर्म करते रहना चाहिए? किस कर्म को करने से आप प्रसन्न होते हैं और किस कर्म से आपकी पूजा होती है। मैं भी उस स्वर्ग का सुख प्रदान करने वाला उन कर्मों को करना चाहूँगी॥२७॥

आपका कर्म सम्पादन में मुझे किसी प्रकार का कष्ट, ग्लानि, जरा और जन्म तथा मरण का भय भी नहीं हो सकता है॥२८॥

हे यशस्वी! ब्रह्मा सहित रुद्र, इन्द्र और समस्त देवगण तथा असुरजन सभी आपकी ही कोष्ठ में निवास किया करते हैं॥२९॥

कानि कर्माणि कुर्वन्ति यैस्त्वां पश्यन्ति माधव।
किमाहाराः किमाचारास्त्वां पश्यन्तीह माधव॥३०॥
ब्राह्मणस्य च किं कर्म क्षत्रियस्य च किं भवेत्।
वैश्यः किं कुरुते कर्म शूद्रः किं कर्म कारयेत्॥३१॥
योगो वै प्राप्यते केन तपो वा केन निश्चितम्। किं चात्र फलमाप्नोति तव कर्मपरायणः॥३२॥
किं च दुःखनिवासं वा भोजनं पानकं तथा। किं च कर्म प्रयोक्तव्यं तव भक्तेषु माधव॥३३॥
प्रापणं कीदृशं चापि दिशासु विदिशासु च।
कथं योनिं न गच्छेत वियोनिं न च गच्छति॥३४॥
तिर्यग्योनिं न गच्छेत कर्मणा केन केशव। तन्ममाचक्ष्व सकलं येन मे सुसुखं भवेत्॥३५॥
जरा वा केन गच्छेत जन्म केन च गच्छति। गर्भवासं न गच्छेत कर्मणा केन वाऽच्युत॥३६॥
संसारं च न गच्छेत कस्य चैव प्रभावतः। इत्युक्तो भगवांस्तत्र प्रत्युवाच वसुंधराम्॥३७॥
शृण्वन्तु मे भागवता ये च मोक्षे व्यवस्थिताः।
तान्मन्त्रान् कीर्त्तयिष्यामि यैस्तोषं यामि नित्यशः॥३८॥

हे माधव! कौन-सा ऐसा कर्म करने से जीव आपका दर्शन कर पाते हैं। हे माधव! कौन-सा आहार करने और किस आचार पालन से जीव आपका दर्शन पाते हैं?।।३०।।

वहीं पर ब्राह्मण का क्या कर्त्तव्य है, क्षत्रिय क्या कर्म करें? वैश्य क्या कार्य करे तथा शूद्र के द्वारा कौन-सा कार्य किया जाना चाहिए?।।३१।।

किस कर्म से योग को सिद्ध किया जा सकता है? और किस प्रकार के कर्म से तप निश्चित रूप से सम्पन्न होता है? आपके पूजनादि रूप के कर्म में लीन रहने वाले जन क्या फल पा लेते हैं?।।३२।।

कैसा भोजन-पान आदि दुःख का निवास स्वरूप होता है। हे माधव! आपके भक्तों के साथ कैसा कर्म करना श्रेयस्कर होता है।।३३।।

फिर दिशाओं और विदिशाओं में क्या पूजन-सामग्री अर्पित किया जाय? किस कर्म में योनि की प्राप्ति नहीं होती और किस कर्म से विकृत योनि में नहीं जाना पड़ता।।३४।।

हे केशव! किस कर्म से तिर्यग्योनि में नहीं जाना पड़ता है? मुझे वे सब कहें, जिससे मुझे सुन्दर सुख की उपलब्धि हो सके।।३५।।

इस तरह किस कर्म को करने से वृद्धावस्था आती है और किस कर्म से पुनः जन्म लेना पड़ता है? हे अच्युत! किस कर्म से गर्भवास नहीं करना पड़ता है।।३६।।

आपके किस कर्म के प्रभाव से संसार की प्राप्ति नहीं होती है? इस प्रकार से धरणी द्वारा कहे जाने पर भगवान् वराह ने धरणी से कहा—।।३७।।

मोक्षमार्ग में सुव्यवस्थित रूप से स्थित मेरे भक्तों! सुनो—मैं उन मन्त्रों का वर्णन करता हूँ, जिनसे मैं नित्य सन्तुष्ट हुआ करता हूँ।।३८।।

मन्त्रः

मासेषु सर्वेषु च मुख्यभूतस्त्वं माधवो माधवमास एव।
पश्येद् देवं तं तु वसन्तकाले उपागतं गन्धरसप्रयुक्त्या।
नित्यं च यज्ञेषं यथेज्यते यो नारायणः सप्तलोकेषु वीरः॥३९॥

एवं ग्रीष्मे विधिं चैव कुर्यात् सर्वं विधानतः। इममुच्चारयेन्मन्त्रं सर्वभागवतप्रियम्॥४०॥

मन्त्रः

मासेषु सर्वेष्वपि मुख्यभूतो मासो भवान् ग्रीष्म एकः प्रपन्नः।
पश्येद्भवान् वर्त्तति ग्रीष्मकाले उपागतं गन्धरसप्रयुक्त्या।
नित्यं च यज्ञेषु तथेज्यमानो नारायणः सर्वलोकेषु वीरः॥४१॥

एतेनैव विधानेन ग्रीष्मे चैवार्चनं कुरु। न जन्ममरणं तस्य मम लोके गतिर्भवेत्॥४२॥

यावन्तः पुष्पिताः शालाः पृथ्व्यां यावत्सुगन्धकाः।
अर्चितः स भवेत् सर्वैः कृतो येन ह्ययं विधिः॥४३॥

एवं माधवमासे तु मम कर्म च कारयेत्। निष्कला भवते बुद्धिः संसारे च न जायते॥४४॥

अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि कर्म संसारमोक्षणम्। कदम्बकुटजाश्चैव शल्लकार्जुनकास्तथा।
एभिरेवार्चनं कुर्यात् विधिदृष्टेन कर्मणा॥४५॥

मन्त्र—हे माधव! आप समस्त मासों में प्रमुख माधव मास अर्थात् वैशाख मास के स्वरूप हैं। वसन्त ऋतु के समय गन्ध व रस के प्रयोग से उपस्थित हुये उन देव का दर्शन करना चाहिए। सप्त लोकों में एक मात्र वीर नारायण हैं, जिनकी यज्ञों में नित्य पूजा की जाती है।।३९।।

इसी प्रकार ग्रीष्म ऋतु के समय में सविधि समस्त पूजन विधि सम्पन्न कर सब भगवद् भक्तों के प्रिय इस मन्त्र को बोलना चाहिए।।४०।।

मन्त्र—समस्त मासों में मुख्य आप अद्वितीय ग्रीष्म अर्थात् ज्येष्ठ मास के रूप में उपस्थित हैं। ग्रीष्मकाल के आरम्भ होने पर गन्ध और रस सम्पन्न पदार्थों के उपयोग द्वारा अपने पास उपस्थित भक्त को आप देख लें। आप यज्ञों में नित्य पूजास्पद होने वाले नारायण और सम्पूर्ण लोकों में श्रेष्ठ वीर हैं।।४१।।

इस विधि विधान से ग्रीष्म ऋतु काल में भगवान् की पूजा करनी चाहिए। इससे जन्म और मरण का कष्ट नहीं होता है और उसको मेरे लोक की प्राप्ति होती है।।४२।।

इस पृथ्वी पर जितने फूल वाले वृक्ष और सुगन्धित द्रव्य हैं, उन सबके द्वारा वह पूजित होता है, जिसने इस विधि को पूरा कर लिया है।।४३।।

इस प्रकार से वैशाख मास में मेरी पूजा कर्म पूर्ण करना चाहिए। इस तरह से किया जाने पर बुद्धि शुद्ध होती है और संसार में जन्म नहीं लेना पड़ता है।।४४।।

इस संसार सागर से मुक्त करने वाला अन्यान्य कर्म भी तुमको कहता हूँ—कदम्ब, कुटज, शल्लकी, अर्जुन आदि वृक्षों के फूलों से सविधि कर्म द्वारा पूजा करनी चाहिए।।४५।।

ततः संस्थापनं कुर्यान्मम मन्त्रपरायणः। नमो नारायणायेति इमं मन्त्रमुदाहरेत्॥४६॥

मन्त्रः

पश्यन्ति मेध्या अपि मेघवर्णं त्वामागताः पूज्यमानं महिम्ना।
निद्रां भवान् गृह्णतु लोकनाथ वर्षास्विमं पश्यतु मेघवृन्दम्॥४७॥

आषाढमासे द्वादश्यां सर्वशान्तिकरं शुभम्। य एतेन विधानेन मम कर्म तु कारयेत्।
स मर्त्यो न प्रणश्येत संसारेऽस्मिन् युगे युगे॥४८॥

एतत् ते कथितं देवि ऋतूनां कर्म चोत्तमम्। तरन्ति येन संसारं नराः कर्मपरायणाः॥४९॥
एतद् गुह्यं महाभागे देवाः केचिन्न जानते। मुक्त्वा नारायणं देवं वाराहं रूपमास्थितम्॥५०॥
नादीक्षिताय दातव्यं मूर्खाय पिशुनाय च। कुशिष्याय न दातव्यं ये च शास्त्रार्थदूषकाः॥५१॥
न पठेद् गोघ्नमध्ये वै न पठेच्छठमध्यगः। धनधर्मक्षयस्तेषां पठनादाशु जायते।
पठेद् भागवतां मध्ये ये च धर्मेण दीक्षिताः॥५२॥
एतेन कर्मणा भद्रे यत्त्वया परिपृच्छितम्। कात्स्न्र्येन कथितं ह्येतत् किमन्यत् परिपृच्छसि॥५३॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१२३॥

तत्पश्चात् मेरे मन्त्र का पाठ करते हुए प्रतिमा की स्थापना करनी चाहिए और 'नमो नारायणाय' इस मन्त्र को बोलना चाहिए।।४६।।

कि इस पूजा के अवसर पर उपस्थित पवित्र जन मेघवर्ण सम्पन्न देव को अपनी महिमासे पूजे जाते हुए देखते हैं। हे लोकनाथ! इस वर्षा ऋतु काल में उस मेघसमूह को देखकर निद्रा ग्रहण करना चाहिए।।४७।।

जो कोई जन इस विधि के द्वारा आषाढ़ मास की द्वादशी तिथि के दिन सब तरह से शान्ति प्रदान करने वाले, कल्याणकारी मेरे इस कर्म को करते हैं, वे जन इस संसार में अनेक युगों पर्यन्त नाश को प्राप्त नहीं होते हैं।।४८।।

हे देवि! इस प्रकार मैंने ऋतुओं के क्रम से सम्पन्न करने योग्य उत्तम कर्म को तुमसे कहा है। इस कर्म को सम्पन्न कर कर्म परायण जन संसार से मुक्त हो जाया करते हैं।।४९।।

हे महाभागे! वराह स्वरूप धारी मुझ नारायण देव के अतिरिक्त अन्य कोई भी देवता इस रहस्य की बात को नहीं जानते हैं। इस रहस्यमयी पद्धति को किसी ऐसे जन, जो दीक्षारहित, मूर्ख, चुगलखोर, कुशिष्य, शास्त्र के अर्थों में कमी देखने वाले जनों को कथमपि नहीं देना चाहिए।।५०-५१।।

और न गोहत्या करने वालें और शठ पुरुषों के मध्य इस रहस्यमयी विषय को कहना चाहिए। इस प्रकार जो जन इस शास्त्र का वाचन उपरोक्त प्रकार के जनों के समक्ष करता है, निश्चय ही उसका धन और धर्म दोनों क्षीण हो जाया करता है। अतः धर्मानुरूप से दीक्षित जनों को भगवद्भक्तों के समक्ष इसका पाठ करना श्रेष्ठ होता है।।५२।।

हे भद्रे! इस प्रकार से मैंने तुम्हारे पूछे और जानने योग्य कर्म के वर्णन द्वारा सम्पूर्णता से बतला दिया है। अब आगे तुम्हें और क्या-क्या पूछना है।।५३।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में षड्ऋतु कर्म सहित षड्ऋतुओं में विष्णुपूजा से मोक्ष प्राप्ति नामक एक सौ तेईसवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१२३॥

❖❖❖

चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

अथ विष्णुमायामाहात्म्यम्

सूत उवाच

श्रुत्वा षड्ऋतुकर्माणि पृथिवी शंसितव्रता। ततो नारायणं भूयः प्रत्युवाच वसुंधरा॥१॥
मङ्गल्याश्च पवित्राश्च ये त्वया समुदाहृताः। मम लोकेषु विख्याता मनः प्रह्लादयन्ति मे॥२॥
श्रुत्वा त्वेतानि कर्माणि त्वन्मुखोक्तानि माधव। जाताऽस्मि निर्मला देव शशाङ्क इव शारदः॥३॥
एतन्मे परमं गुह्यं परं कौतुहलं तथा। ममैव च हितार्थं त्वं विष्णो वक्तुमिहार्हसि॥४॥
यामेनां भाषसे देव मम मायेति नित्यशः। का माया कीदृशी विष्णो किं वा मायेति चोच्यते।
ज्ञातुमिच्छामि मायार्थं रहस्यं परमुत्तमम्॥५॥
ततस्तस्या वचः श्रुत्वा विष्णुर्मायाकरण्डकः। प्रहस्य मधुरं वाक्यं प्रत्युवाच वसुंधराम्॥६॥
इयं मा भूमि ते माया यां मां त्वं परिपृच्छसि।
किं च मा क्लिश्यते भूमि न मायां ज्ञातुमिच्छसि॥७॥
अद्यापि मां न जानन्ति रुद्रेन्द्राः सपितामहाः। मम मायां विशालाक्षि किं पुनस्त्वं वसुंधरे॥८॥

अध्याय-१२४

विष्णु माया का माहात्म्य और सोमशर्मा का आख्यान

सूत ने कहा कि इस प्रकार षड् ऋतुओं के क्रम में भगवत्पूजन के कर्मों को सुनकर तीव्रव्रत धारण करने वाली धरणी ने फिर से नारायण देव से पूछा—।।१।।

आपके द्वारा लोक प्रचलित जिन पवित्र कल्याणप्रद कर्मों को मुझसे कहा गया है, वे सब मेरे मन को निश्चय ही आनन्दित करने वाले हैं।।२।।

हे देव! हे माधव!! इस तरह आपके ही मुख से इन कर्मों के विधान को सुनकर मै शारदीय चन्द्र के समान स्वच्छ-सी हो गयी हूँ।।३।।

लेकिन फिर भी मुझे इस परम रहस्यमयी विषय में अत्यन्त उत्सुकता उत्पन्न हो रही है। हे विष्णु! मेरे ही कल्याण हेतु आप उसे भी मुझसे कहें—।।४।।

हे देव! जिसे आप हमेशा 'मेरी भार्या' कहा करते हैं। हे विष्णो! अतः आपकी वह माया क्या और कैसी है? और उसे आप माया ही क्यों कहा करते हैं? माया शब्द के अत्यन्त उत्तम रहस्यपूर्ण अर्थ को मुझे जानने की बड़ी कामना हो रही है।।५।।

धरणी की वाणी को सुनने के बाद माया का सूत्राधार विष्णु ने हँसते हुए मीठे स्वर में उस धरणी को इस प्रकार से कहा कि—।।६।।

हे भूमि! तुम जिस माया के बारे में जानना चाहती हो, वह तुम मत पूछो, हे भूमि! अधिक क्या कहा जाय, यदि जीव इस माया को जानने की इच्छा न करे, तो उसे कष्ट नहीं होता है।।७।।

हे विशालाक्षि! ब्रह्मा के साथ शंकर और इन्द्र आज तक भी मुझे और मेरी माया को नहीं जानते, तो तुम्हारी बात ही क्या है?।।८।।

पर्जन्यो वर्षते यत्र तज्जलेन प्रपूरयेत्। देशो निर्जलतां याति एषा माया मम प्रिये॥९॥
सोमोऽपि क्षीयते पक्षे पक्षे चापि विवर्धते। अमायां न स दृश्येत मायेयं मम सुन्दरि॥१०॥
हेमन्ते सलिलं कूपे उष्णं भवति तत्त्वतः। भवेच्च शीतलं ग्रीष्मे मायेयं मम तत्त्वतः॥११॥
पश्चिमां दिशमास्थाय यदस्तं याति भास्करः। उदेति पूर्वतः प्रातर्मायेयं मम सुन्दरि॥१२॥
शोणितं चैव शुक्लं च उभे प्राणिषु संस्थिते। गर्भे च जायते जन्तुर्मम मायेयमुत्तमा॥१३॥
जीव प्रविश्य गर्भे तु सुखं दुःखानि विन्दति। जातश्च विस्मरेत् सर्वमेषा माया ममोत्तमा॥१४॥
आत्मकर्माश्रितो जीवो नष्टसंज्ञो गतस्पृहः कर्मणा नीयतेऽन्यत्र मायैषा मम चोत्तमा॥१५॥
शुक्रशोणितसंयोगाज्जायन्ते यदि जन्तवः। अङ्गुल्यश्चरणौ चैव भुजौ शीर्षं कटिस्तथा॥१६॥
पृष्ठं तथोदरं चैव दन्तोष्ठपुटनासिका। कर्णनेत्रकपोलौ च ललाटं जिह्वया सह।
एतया मायया युक्ता जायन्ते यदि जन्तवः॥१७॥
तस्यैव जीर्यते भुक्तमग्निना पीतमेव च। अधश्च स्रवते जन्तुरेषा माया ममोत्तमा॥१८॥
शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धश्च पञ्चमः। अतः प्रवर्त्तते जन्तुरेषा माया मम प्रिये॥१९॥

हे प्रिये! यह भी तो मेरी माया ही है कि जहाँ मेघ जल की बारिश करता है, वह स्थान जल से भरा होता है और जहाँ वर्षा नहीं होती है, वह देश जलरहित होता है।।९।।

हे प्रिये! मेरी माया ही के कारण एक पक्ष में चन्द्रमा क्षीण होता है, तो दूसरे में उसकी वृद्धि होती है। हे सुन्दरि! यह भी तो मेरी माया ही है, कि वह चन्द्र, अमावस्या तिथि में दिखलाई नहीं देता है।।१०।।

यह भी तो मेरी माया ही है कि हेमन्त ऋतु में वास्तविक रूप से कुएँ का जल उष्ण और ग्रीष्म ऋतु काल में वही शीतल होता है।।११।।

हे सुन्दरि! यह भी तो मेरी माया ही है कि सूर्य पश्चिम दिशा में स्थित होकर अस्त और प्रातःकाल वही पूर्वदिशा में स्थित हुआ उदित होता है।।१२।

प्रत्येक जीव में शोणित अर्थात् लाल द्रव्य और शुक्ल अर्थात् सफेद शुक्र, ये दोनों वर्णों के द्रव्य स्थित रहते हैं। यह भी तो मेरी उत्तमा माया है, जिनसे जीव गर्भ से उत्पन्न होते हैं।।१३।।

यह भी तो मेरी उत्तमा माया ही है कि जीव गर्भ में स्थित रहते सुख और दुःख के वास्तविक कारणों को भी जानते रहते हैं, परन्तु जन्म लेते ही उन सबको भूल जाते हैं।।१४।।

यह भी तो मेरी उत्तमा माया ही है कि अपने कर्म पर अवलम्बित जीव संज्ञाशून्य और निःस्पृह होकर अपने कर्म द्वारा ही अन्यत्र स्थानान्तरित होते हैं।।१५।।

यह भी तो मेरी माया ही है कि जीव वीर्य और रज के संयोग होने पर अंगुलियों, पैरों, हाथों, मस्तक, कटि, पीठ, पेट, दाँतों, ओष्ठों, नाकों, कानों, नेत्रों, कपोलों, ललाट आदि के साथ उत्पन्न होते हैं।।१६-१७।।

यह भी तो मेरी उत्तमा माया ही है कि गर्भ निर्गत जीव द्वारा खाया और पिया गया द्रव्य अग्नि द्वारा पचाया जाता है और फिर वही पचा हुआ अवशिष्ट द्रव्य अधोमार्ग से बाहर निकल जाया करता है।।१८।।

हे प्रिये! यह भी तो मेरी माया ही है कि उस जीव में शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि पाँच विशेषताओं की प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है।।१९।।

सर्वर्तुषु निजाकारः स्थावरे जङ्गमे तथा। तत्त्वं न ज्ञायते तस्य मायैषा मम सुन्दरि॥२०॥

आपो दिव्यास्तथा भौमा आपो येषु प्रतिष्ठिताः।
न च वृद्धिं प्रयान्त्यत्र मायैषा परमा मम॥२१॥

वृष्टौ बहूदकाः सर्वे पल्वलानि सरांसि च। ग्रीष्मे सर्वाणि शुष्यन्ति एतन्मायाबलं मम॥२२॥

हिमवच्छिखरान्मुक्ता नाम्ना मन्दाकिनी नदी। गां गता सा भवेद् गङ्गा मायैषा म कीर्त्तिता॥२३॥

मेघा वहन्ति सलिलं लवणं सलिलार्णवे। वर्षन्ति मधुरं लोके सर्वं मायाबलं मम॥२४॥

रोगार्त्ता जन्तवः केचिद् भक्षयन्ति महौषधम्। तस्य वीर्यं समाश्रित्य मायां तु विसृजाम्यहम्॥२५॥

औषधे दीयमानेऽपि जन्तुः पञ्चत्वमेति यत्। निर्वीर्यमौषधं कृत्वा कालो भूत्वा हराम्यहम्॥२६॥

प्रथमं जायते गर्भः पश्चाज्जायेत वै पुमान्। जायते मध्यमस्त्र ततोऽपि जरसा पुनः।
तत इन्द्रियनाशश्च एतन्मायाबलं मम॥२७॥

यद्भूमौ निहितं बीजं तस्मात् तज्जायतेऽङ्कुरम्।
एकबीजात् प्रकीर्णाद् वै जायन्ते तानि भूरिशः।
तत्रामृतं विसृजामि मायायोगेन माधवि॥२८॥

हे सुन्दरि! यह भी तो मेरी माया ही है कि प्रत्येक जीव सब ऋतुओं में चर और अचर रूप की योनि में उत्पन्न होकर भी अपना-अपना विशेष आकार-प्रकार बनाये रखते हैं परन्तु इसकी वास्तविकता को वे जान नहीं पाते हैं।।२०।।

यह भी तो मेरी परमा माया ही है कि दिव्य याने आकाशात्मक और भौम याने पृथ्वी सम्बन्धी जलों में कहीं भी स्थित होने पर भी उसमें कोई वृद्धि नहीं होती है।।२१।।

यह भी तो मेरी माया का बल ही है कि वर्षा ऋतु के समय में सब छोटे-बड़े सरोवर अत्यन्तजल से भर जाया करते हैं और ग्रीष्म ऋतु के समय में वे सूख भी जाते हैं।।२२।।

यह भी तो मेरी प्रसिद्ध माया ही है कि हिमालय के शिखर से निकलने वाली मन्दाकिनी नाम की नदी पृथ्वी पर आकर गङ्गा कहलाने लगी है।।२३।।

कुछ रोगग्रस्त जीव महान् औषधियाँ भक्षण करते हैं और फिर वे स्वस्थ भी हो जाया करते हैं। इसलिए कि उन औषधियों के वीर्य रूप में मैं अपनी माया का ही सृजन करता हूँ।।२५।।

वैसे तो औषध ग्रहण कराने पर भी जीव मर जाया करते हैं। इसलिए कि मैं ही उस औषधि को शक्तिहीन बना कर काल स्वरूप होकर उन जीवों के प्राणों का हरण करता हूँ।।२६।।

जीव सर्वप्रथम गर्भ में उत्पन्न होता है, फिर वह जन्म लेकर संसार में आता है। जन्म होने के बाद जीव की मध्यावस्था याने बाल्य, किशोर, युचा आदि अवस्थायें व्यतीत होती हैं, फिर जीव वृद्धावस्था को प्राप्त होने पर उनकी इन्द्रियाँ भी नष्ट होने लग जाती हैं। यह भी तो मेरी माया का ही बल है।।२७।।

भूमि में जिन बीजों को बोया जाता है, फिर उन प्रत्येक बीज के अंकुर उत्पन्न होता है। अतःबोया गया एक बीज से पुनः पुनः अनेक बीज उत्पन्न हो जाया करते हैं। हे माधवि! मैं अपनी ही माया के योग से उन बीजों में अमृत उत्पन्न करता हूँ।।२८।।

लोक एवं विजानाति गरुडो वहतेऽच्युतम्। भूत्वा वेगेन गरुडो वहाम्यात्मानमात्मना॥२९॥
या एता देवताः सर्वा यज्ञभागेन तोषिताः। मायामेतामहं कृत्वा तोषयामि दिवौकसः॥३०॥

लोकाः सर्वे विजानन्ति देवा नित्यं मखाशिनः।
मायामेतामहं कृत्वा रक्षामि त्रिदशान् सदा॥३१॥

सर्वोऽपि भजते लोको यष्टारं च बृहस्पतिम्। मायामाङ्गिरसीं कृत्वा याजयामि दिवौकसः॥३२॥
सर्वे लोका विजानन्ति वरुणः पाति सागरम्। मायां तु वारुणीं कृत्वाऽहं पामि महोदधिम्॥३३॥
सर्वे लोका विजानन्ति कुबेरोऽयं धनेश्वरः। कुबेरमायामादाय अहं रक्षामि तद् धनम्॥३४॥
एवं लोका विजानन्ति वृत्रः शक्रेण सूदितः। शाक्रीं मायां समास्थाय मया वृत्रो निषूदितः॥३५॥

एवं लोका विजानन्ति आदित्यश्च ध्रुवो महान्।
देहं मायामयं कृत्वा वहाम्यातिदत्यमेव च॥३६॥

एवमाभाषते लोको जलं किं नश्यतेऽखिलम्। बडवामुखमायेन पिबामि तदहं जलम्।
वायुमायामहं कृत्वा मेघेषु विसृजाम्यहम्॥३७॥
यदिदं भाषते लोकः कृत्वैतत् तिष्ठते जलम्। देवा अपि न जानन्ति अमृतं कुत्र तिष्ठति।
मम मायानियोगेन तिष्ठते ह्यौषधीषु तत्॥३८॥

इस प्रकार संसार यह जानता है कि गरुड़ अच्युत विष्णु को वहन किया करते हैं, किन्तु तत्त्वतः मैं स्वयं ही गरुड़ बनकर स्वयं को ही वेगसहित ढोते रहता हूँ।।२९।।

फिर वे समस्त देवगण, जो यज्ञभाग पाकर संतुष्ट हुआ करते हैं। अतः मैं ही इस अपनी माया से इन देवताओं को सन्तुष्ट किया करते हैं।।३०।।

इस प्रकार समस्त जन यह जानते हैं कि देवगण यज्ञभाग का नित्य भोग किया करते हैं। लेकिन मैं ही इस तरह की अपनी माया से सदा ही देवताओं की रक्षा किया करता हूँ।।३१।।

फिर समस्त जन यष्टा बृहस्पति को यजन करने वाला माना करते हैं, परन्तु मैं आङ्गिरसी रूपी अपनी माया से देवों का यज्ञ सम्पन्न किया करता हूँ।।३३।।

फिर संसार के समस्त जन यह जानते हैं कि वरुण सागर की रक्षा किया करते हैं। परन्तु मैं आपी वारुणी माया से सम्पूर्ण समुद्र की रक्षा किया करता हूँ।।३४।।

और संसार के समस्त जन यह जानते हैं कि यह कुबेर ही धनेश्वर हैं। परन्तु मैं ही अपनी कुबेरी माया से उन सब धनों की रक्षा किया करता हूँ।।३५।।

फिर इसी तरह सभी जन यह जानते हैं कि आदित्य स्थिर एवं महान् हैं। परन्तु मैं ही मायामय देह धारण कर आदित्य को वहन किया करता हूँ।।३६।।

इसी तरह संसार के जन यह कहा करते हैं कि समुद्र का सम्पूर्ण जल क्यों नष्ट हुआ करता है। सत्य यह है कि मैं ही वडवाग्नि स्वरूप मायामय मुख द्वारा उस अखिल जल को पीया करता हूँ और वायु माया द्वारा उस जल को मेघों के लिए विसर्जित करते रहता हूँ।।३७।।

फिर सभी जन यह कहा करते हैं कि यह जल कहाँ रहता है और देवता भी यह नहीं जानते हैं कि अमृत कहाँ रहता है। परन्तु सत्य यह है कि मेरी माया के नियोग से वह अमृत औषधियों में स्थित रहा करता है।।३८।।

लोको ह्येवं विजानाति राजा पालयते प्रजाः। राजमायामहं कृत्वा पालयामि वसुंधराम्॥३९॥
ये तु वै द्वादशादित्या उद्देष्यन्ति युगक्षये। प्रविश्य तानहं भूमि मायां लोके सृजाम्यहम्॥४०॥
वर्षश्च पांशुना भूमि लोकेषु पतते सदा। मायां पांशुमयीं कृत्वा पूरयाम्यखिलं जगत्॥४१॥
वर्षते यत्र संवर्त्तो धारैर्मुसलसन्निभैः। मायां सांवर्त्तकीं गृह्य पूरयाम्यखिलं जगत्॥४२॥
यत् स्वपामि वरारोहे शेषस्योपरि धारिणि। अनन्तमायया चाहं धारयामि स्वपामि च॥४३॥
वराहमायामादाय भूमे जानासि किं न वै। देवा यत्र निलीयन्ते सा माया मम कीर्त्तिता॥४४॥

तदाऽपि वैष्णवीं मायां कस्माज्जानासि नैव च।
धारिताऽसि च सुश्रोणि वारान् सप्तदशैव तु॥४५॥

माया तु मम देवीयं कृत्वा ह्येकार्णवां महीम्। मम मायाबलं ह्येतद् येन तिष्ठाम्यहं जले॥४६॥
प्रजापतिं च रुद्रं च सृजामि च हरामि च। तेऽपि मायां न जानन्ति मम मायाविमोहिताः॥४७॥
अथो पितृगणाश्चैव य एते सूर्यतेजसः। मायां पितृमयीं ह्येतां गृह्णामीह च तत्त्वतः॥४८॥

सभी संसारीजन यह जानते हैं कि राजा द्वारा प्रजा का पालन हुआ करता है। परन्तु मैं ही राजमाया द्वारा पृथ्वी का पालन किया करता हूँ।।३९।।

युग के क्षय होने पर जो द्वादश आदित्य उदित होते हैं, उनमें प्रविष्ट कर मैं ही संसार में हे भूमि! माया का सृजन किया करता हूँ।।४०।।

हे भूमि! इस संसार में सर्वदा धूलि की वृष्टि हुआ करती रहती है। परन्तु मैं ही धूलिमयी माया से अखिल संसार को व्याप्त करते रहता हूँ।।४१।।

जिस समय प्रलयकालिक संवर्त नामक मेघ मूसल की तरह से अपनी जल धारा द्वारा वृष्टि करता है, उस समय मैं सांवर्त्तकी माया से अखिल संसार को व्याप्त करता हूँ।।४२।।

हे वरारोहे धारिणि! जिस समय मैं शेष की शय्या पर शयन करने वाला होता हूँ, उस समय मैं अनन्त नाम के माया से अखिल संसार को धारण करते हुए ही शयन करता हूँ।।४३।।

हे भूमे! क्या तुम यह नहीं जानती कि वराहमाया को धारण कर मैंने क्या किया था? देवताजन जिसमें लीन हो जाते हैं, वही तो मेरी माया कही जाती हे।।४४।।

फिर भी क्या तुम वैष्णवी माया को नहीं जानती हो। हे सुश्रोणि! उस माया द्वारा तुम सत्रह वार धारण की जा चुकी हो।।४५।।

हे देवि! मेरी इसी माया ने पृथ्वी को एकार्णव अर्थात् एक सागर में मग्न कर दिया है। यह भी तो मेरी माया का ही बल है कि मैं जल में भी स्थित रहता हूँ।।४६।।

मैं प्रजापति और रुद्र का भी सृजन और संहार करता रहता हूँ। मेरी ही माया से विमोहित वे लोग भी मेरी माया को नहीं जानते हैं।।४७।।

सूर्य के सदृश तेजवान् ये जो पितृगण हैं, वे सब भी मेरी ही माया हैं। मैं ही तत्त्वतः इस पितृमयी माया का रूप ग्रहण कर लेता हूँ।।४८।।

किं तु मायैव सुश्रोणि अन्यच्च शृणु सुन्दरि। ऋषिर्मानुषसारेण स्त्रियो योनिं प्रवेशितः॥४९॥
ततो विष्णोर्वचः श्रुत्वा श्रोतुकामा वसुंधरा। कराभ्यामञ्जलिं कृत्वा वाक्यमेतत् तदाऽब्रवीत्॥५०॥
किं तेन ऋषिमुख्येन कृतं कर्म सुदुष्करम्। स्त्रीत्वं चैव पुनः प्राप्तं स्त्रीयोनिं च प्रजापतिः॥५१॥
एतन्मे सर्वमाख्याहि परं कौतूहलं मम। तस्य ब्राह्मणमुख्यस्य स्त्रीत्वे यत्कर्म पापकम्॥५२॥
ततो मह्या वचः श्रुत्वा हृष्टतुष्टमना हरिः। मधुरं वाक्यमादाय प्रत्युवाच वसुंधराम्॥५३॥
शृणु तत्त्वेन मे देवि धर्माख्यांन महामते। माया मम विशालाक्षि रोहिणी लोमहर्षिणी॥५४॥
मायया मम योगेन सोमशर्मा च क्लेशितः। गतो गतीरनेकाश्च उत्तमाधममध्यमाः।
ब्राह्मणत्वं पुनः प्राप्तो मम मायाप्रणोदितः॥५५॥
यथा ब्राह्मणमुख्येन स्त्रियो योनिश्च प्रापिता। न तस्य विकृतं कर्म अपराधो न विद्यते॥५६॥
ममैवाराधनपरो मम कर्मपरायणः। नित्यं चिन्तयते भूमि मम चिन्तां मनोरमाम्॥५७॥
अथ दीर्घेण कालेन तस्य तुष्टोऽस्मि सुन्दरि। तपसा कर्मणा भक्त्या अनन्यमनसा स्तुतः॥५८॥
ततस्तस्य मया देवि दत्त्वा दर्शनमुत्तमम्। वरेण छन्दितो विप्रः साधु तुष्टोऽस्मि ते प्रभो॥५९॥

हे सुश्रोणि! तुम हमारी अन्य माया को भी सुनो—उसी माया के बल से मैंने पुरुष स्वरूप वाले एक ऋषि को स्त्री स्वरूप में बदल दिया।।४९।।

तत्पश्चात् उन भगवान् विष्णु की वाणी को सुनकर उनकी वाणी को सुनने की इच्छा वाली धरणी ने अपने दोनों हाथों की अञ्जुलि बाँध कर इस प्रकार से कहा—।।५०।।

उन मुख्य ऋषि ने किस प्रकार के अतिदुष्कर कर्म को सम्पन्न किया, जिससे उन्हें स्त्री रूप की प्राप्ति हुई और उस स्त्री योनि के बाद वह फिर प्रजापति हुए।।५१।।

इस प्रकार के सम्पूर्ण वृत्तान्त को हमें बतलायें। इस प्रसङ्ग में मुझे अत्युत्सुकता हो रही है। उन महान् ब्राह्मण की स्त्रीत्व की प्रा.प्ति में जो पापकर्म कारण रहा हो, वह मुझे बतलाने की कृपा करेंगे।।५२।।

फिर धरणी की वाणी सुनकर प्रसन्न और संतुष्ट मन वाले भगवान् विष्णु ने मीठे स्वर में धरणी को प्रत्युत्तर दिया।।५३।।

हे महामते! देवि!! तत्त्वतः तुम धर्म विषयक वृत्तान्त सुनो। हे विशालाक्षि! लोभहर्षिणी रोहिणी नाम की मेरी माया है।।५४।।

मुझसे प्रेरित मायावश सोमशर्मा पीड़ित होकर कई प्रकार के उत्तम, मध्यम, अधम आदि दशाओं को प्राप्त किया। मेरी माया से प्रेरित होकर ही पुनः उसे ब्राह्मणत्व की प्राप्ति हुई।।५५।।

उन ब्राह्मण को प्राप्त स्त्री स्वरूप का कारण उसका कोई विकृत कर्म या अपराध नहीं था। हे भूमि! वह मेरी ही आराधना योग्य कर्म में लगा हुआ नित्य मेरा मनोहर ध्यान किया करता था।।५६-५७।।

हे सुन्दरी! तत्पश्चात् बहुत समय बीतने पर उसके तप, कर्म, भक्ति और उसके द्वारा अनन्य भाव से की गई स्तुति से उसके ऊपर प्रसन्न हो गया।।५८।।

हे देवि! उस समय उन ब्राह्मण को अपना उत्तम दर्शन प्रदान कर मैंने कहा कि 'मैं तुम्हारे पर अत्यन्त प्रसन्न हूँ,। तुम वर माँग लो।।५९।।

वरं वरय भद्रं ते तव यद् हृदि वर्त्तते। तत् तत् सर्वं प्रदास्यामि सर्वकामसमाश्रितम्।।६०।।
किं नु वै काञ्चनं गावः किं च राज्यमकण्टकम्। अथ चेच्छसि स्वर्गं च यत्र चाप्सरोगणाः।।६१।।
अथ चेच्छसि विप्रेन्द्र ऋषीणां वा तपो महत्। भविता वा ततश्चैव मम कर्मपरायणः।।६२।।
अथ चेच्छसि कन्यानां सहस्त्रं दिव्यमुत्तमम्। धनरत्नसमृद्धानां हेमभाण्डविभूषितम्।।६३।।
सर्वासां दिव्यरूपाणां भवन्त्यप्सरसोपमाः। ददामि ते वरं चैव विप्र यत्ते विचिन्तितम्।।६४।।
ततो मम वचः श्रुत्वा स च ब्राह्मणपुंगवः। शिरसा पतितो भूम्यामुवाच मधुरां गिरम्।।६५।।
अथ नो कुप्यसे देव वरं समनुयाचते। यत्त्वया भाषितं देव मम देयं यदृच्छया।।६६।।
न चाहं काञ्चनं गावो न च स्त्री राज्यमेव च। नाप्सरो नैव च स्वर्गमैश्वर्यं न मनोहरम्।।६७।।
तथा स्वर्गसहस्त्राणि एकस्तत्र न रोचते। ज्ञातुमिच्छामि ते मायां यया क्रीडसि माधव।।६८।।
ततस्तस्य वचः श्रुत्वा स मया तत्र भाषितः। किं मायया ते विप्रेन्द्र अकार्यं पृच्छसे द्विज।
देवा अपि न जानन्ति विष्णुमायाविमोहिताः।।६९।।
ततो मम वचः श्रुत्वा स च ब्राह्मणपुंगवः। उवाच मधुरं वाक्यं मायाकर्मप्रणोदितः।।७०।।

हे भक्त! तुम्हारे हृदय में जो कुछ हो वह वर माँगो। तुम्हारा सदा कल्याण हो। मैं तुम्हारी समस्त कामनाओं के अनुरूप तुम्हें वर प्रदान करूँगा।।६०।।

अतः स्वर्ण, गायें, निष्कण्टक राज्य आदि की बात ही क्या है? यदि तुम्हें स्वर्ग की कामना हो, तो वह भी मैं तुम्हें दूँगा, जहाँ अप्सरायें भी तुम्हारे लिए उपलब्ध होंगी।।६१।।

हे विप्रेन्द्र! यदि तुम ऋषि तुल्य महान् तप की कामना करते हो, तो मेरे कर्म में लगे रहने से वह भी तुम्हें सहज ही प्राप्त होगा।।६२।।

वैसे यदि तुम धन और धान्य से सम्पन्न तथा स्वर्णकलश से विभूषित हजारों दिव्य और श्रेष्ठ कन्याओं की इच्छा करते हो, तो वह भी तुम्हें दे सकता हूँ।।६३।।

हे विप्र! तुम जैसी इच्छा करो तदनुरूप अप्सराओं के समान सब दिव्य स्वरूप वाली कन्याओं का वर मैं तुम्हें दे सकता हूँ।।६४।।

तत्पश्चात् उन ब्राह्मण श्रेष्ठ ने मेरी वाणी सुनकर भूमि पर अपना मस्तक टेकते हुए मुझे प्रणाम किया और फिर अपनी मीठी वाणी से इस तरह कहने लगा।।६५।।

हे देव! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो मैं आपसे वर माँगता हूँ। हे देव! आपने मुझे स्वेच्छा से जो वर देने को कहा है, उसके अनुसार मैं स्वर्ण, गाय, राज्य, अप्सरायें, स्वर्ग, मनोहर ऐश्वर्य आदि नहीं चाहता हूँ या फिर सहस्त्रों स्वर्ग आदि में मुझे कोई रूचि नहीं है। हे माधव! मैं आपकी उस माया को जानना चाहता हूँ, जिससे आप क्रीड़ा किया करते रहते हैं।।६६-६८।।

तत्पश्चात् उसके इस प्रकार से कहे गए वचनों को सुनकर मैंने तब कहा कि हे विप्रेन्द्र! तुम्हें माया से क्या प्रयोजन। हे द्विज! तुमने पूछने योग्य बात तो पूछी नहीं। देवता भी उस माया को नहीं जानते क्योंकि वे भी विष्णु की उस माया से विमोहित हुआ करते हैं। फिर मेरी वाणी को सुनकर उन श्रेष्ठ ब्राह्मण ने माया के कर्म से प्रेरित होकर यह मीठा वचन बोला—।।६९-७०।।

यदि तुष्टोऽसि मे देव कर्मणा तपसा तथा। तव देव प्रसादेन ममैवं दीयतां वरः॥७१॥
ततस्तु स मया प्रोक्तस्तपस्वी ब्राह्मणस्तथा। गच्छ कुब्जाम्रके गङ्गां स्नातो मायां तु द्रक्ष्यसि॥७२॥
ममैवं वचनं श्रुत्वा कृत्वा चैव प्रदक्षिणाम्। कुब्जाम्रके देवि विप्रो मम मायाभिकाङ्क्षिणः॥७३॥

ततः कुण्डी त्रिदण्डी च मात्राभाण्डं च यत्नतः।
स्थापयित्वा यथान्यायं तीर्थमाराधयद् यथा॥७४॥

ततो ह्यवतरन् गङ्गां विधिदृष्टेन कर्मणा। अवागाह्य ततो गङ्गां सर्वगात्राणि क्लेदिताः॥७५॥
निषादान्तर्गतो गर्भे तिष्ठते स च ब्राह्मणः। हृदयेऽचिन्तयत् तत्र गर्भक्लेशेन पीडितः॥७६॥

अहो कष्ट मया किंचित्कर्म वा दुष्कृतं कृतम्।
योऽहं निषादगर्भेऽस्मिन् वसामि नरकेषु च॥७७॥
धिक् तपो धिक् च मे कर्म धिक् फलं धिक् च जीवितम्।
योऽहं निषादगर्भेषु पीड्यतेऽधनसंकुले॥७८॥

त्रीणि चास्थिशते पूर्णे नवद्वाराभिदर्शने। मूत्रपुरीषसाकीर्णे मांसशोणितकर्दमे॥७९॥
दुर्गन्धिदुःसहे चैव वातिके श्लेष्मपैत्तिके। बहुरोगसमाकीर्णे बहुदुःखसमाकुले।
अलं किं तेन चोक्तेन दुःखाद्यनुभवामि च॥८०॥

हे देव! यदि आप मेरे कर्म और तप से मुझ पर प्रसन्न हैं, तो प्रसन्नता से मुझे यह वर प्रदान करने की कृपा करें।।७१।।

इसके बाद मैंने उस तपनिष्ठ ब्राह्मण से कहा कि जाओ कुब्जाम्रक नाम के तीर्थ में गङ्गा स्नान करने पर उस माया का दर्शन कर पाओगे।।७२।।

हे देवि! इस प्रकार मेरी वाणी को सुनने के बाद मेरी प्रदक्षिणा कर मेरी उस माया को देखने की इच्छा से सम्पन्न ब्राह्मण कुब्जाम्रक तीर्थ में चला गया।।७३।।

फिर कुण्ड और त्रिदण्ड धारण करने वाले उस ब्राह्मण ने अपने सामान को यत्न के साथ रखकर यथाविधि तीर्थ की उपासना की।।७४।।

फिर यथाविधि कर्म कर उसने गङ्गा में प्रविष्ट होकर सर्वांगों को जल से भिंगो दिया।।७५।।

उसके बाद वह ब्राह्मण एक निषाद के गर्भ में प्रविष्ट कर गया और फिर गर्भ के क्लेश से पीड़ित होने पर हृदय में सोचने लगा।।७६।।

अहो! कैसा कष्ट है। लगता है, मैंने कोई पापकर्म भी किया है, जिस कारण मैं इस समय निषाद के गर्भस्वरूप इस नरक में स्थित हुआ हूँ।।७७।।

अतः मेरे तप, कर्म, पुण्यफल और मेरे जीवन को धिक्कार है। इसलिए कि उन सब से युक्त जो मैं हूँ, उसे धनहीन निषाद के गर्भ में पीड़ित होना पड़ रहा है।।७८।।

इस प्रकार तीन सौ हड्डियों से सम्पन्न, नौ द्वारो से युक्त, मलमूत्र और मांस तथा रक्त के कीचड़ से सम्पन्न दुःसह दुर्गन्धि वाले, वात, पित्त, कफ आदि से युक्त अनेक रोगों से आक्रान्त या विविध दुःखों से सम्पन्न जिनका वर्णन क्या किया जाय, इस गर्भ में मैं दुःखों का अनुभव कर रहा हूँ।।७९-८०।।

कुतो विष्णुः कुतो वाऽहं कुतो गङ्गाजलानि च।
गर्भसंसारनिष्क्रान्तः पश्चाद् यास्यामि यां क्रियाम्॥८१॥

एवं चिन्तयमानस्तु शीघ्रं गर्भाद् विनिःसृतः। भूम्यां तु पततस्तस्य नष्टं तद्धि विचिन्तितम्॥८२॥

प्रजाता स ततः कन्या निषादस्य गृहे तदा। योऽसौ कुण्डी त्रिदण्डी च नदीतीरेषु तिष्ठति।
न च तं विन्दते कश्चिन्मम मायाप्रमोहितः॥८३॥

अथ दीर्घेण कालेन निषादस्य गृहे तदा। धनधान्यसमृद्धस्य वर्तते स च ब्राह्मणः।
न च संज्ञायते कश्चिद् विष्णुमायाप्रमोहितः॥८४॥

अथ दीर्घस्य कालस्य कृतोद्वाहा यशस्विनी। पुत्रं दुहितरं चैव जनयन्मम मायया॥८५॥

भक्षाभक्षं च खादेत पेयापेयं च तत्पिबेत्। जीवानि चैव विक्रीय घातितांश्च ततस्ततः॥८६॥

कार्याकार्यं न जानीते वाच्यावाच्यं न जानति।
गम्यागम्यं न जानाति मायाजालेन मोहितः॥८७॥

पञ्चाशतेषु वर्षेषु मया ध्यातः स ब्राह्मणः। तपसश्च प्रभावेण घटं स्पर्शति सुन्दरि॥८८॥

मनसा कुरुते स्नानं वस्त्रं च परिनिक्षिपेत्। भूम्यां वस्त्रं समास्थाप्य विगाहयति जाह्नवीम्॥८९॥

प्रस्वेदघर्मसंतप्ता सशिरश्चापमाहते। जातस्तपोधनस्तत्र दण्डकुण्डिधरस्तथा॥९०॥

कहाँ पर विष्णु हैं, कहाँ पर मैं हूँ, कहाँ पर गङ्गा का जल है और कहाँ पर वह क्रिया है, जिसे मैं गर्भ से निकल सकूँगा।।८१।।

इस प्रकार से सोचते हुए वह जल्दी ही गर्भसे निकला और भूमि पर गिरते ही उसका वे सब विचार नष्ट-सा हो गया।।८२।।

फिर वह ऋषि निषाद के घर में कन्या रूप में उत्पन्न होकर मेरी माया से मोहित होने से वह अपने उस पूर्व स्वरूप को विस्मृत कर गया, जिस स्वरूप में कुण्ड और दण्ड धारण कर नदी के किनारे पर स्थित हुआ था।।८३।।

वैसे तो वह ऋषि धन और धान्य से सम्पन्न निषाद के घर में बहुत काल तक स्थित रहा। इस प्रकार उसे विष्णु मायावश पूर्व का कुछ भी स्मरण में नहीं रह गया था।।८४।।

फिर बहुत काल बाद विवाह संस्कार हो जाने पर उस यशस्विनी कन्या ने मेरी ही माया से पुत्र और पुत्री को भी उत्पन्न किया।।८५।।

उस समय वह सब भक्ष्य और अभक्ष्य वस्तुओं को खाने, पेय और अपेय वस्तुओं को पीने में कोई संकोच नहीं करती थी। फिर इधर-उधर मारे हुए जीवों को बेंच कर जीवन निर्वाह किया करती थी।।८६।।

इस प्रकार उस समय वह माया जाल में फँसी होकर कार्य और अकार्य, वाच्य और अवाच्य तथा गम्य और अगम्य के भेद रहस्य को भी नहीं जानती थी।।८७।।

हे सुन्दरि! फिर पचास वर्षों के उपरान्त मैंने उस ब्राह्मण ऋषि को याद किया। इस क्रम में तपस्या के प्रभाववश उसने घड़ा को उठाया और मन से स्नान करने का विचार करते हुए उसने अपना वस्त्र उतारकर पृथ्वी पर उसे रखने के बाद गङ्गा में प्रवेश किया।।८८-८९।।

फिर प्रस्वेद और पसीने से व्याकुल मन होकर जैसे ही उसने शिर सहित जल में डूबकी लगायी, वह पूर्वकाल का दण्ड और कुण्ड धारण करने वाला तपस्वी हो गया।।९०।।

ततः पश्यति विप्रोऽसौ मात्रां कुण्डिस्त्रिकुण्डिकाम्।
वस्त्राणि दर्शिताश्चैव यत्र संस्थापिताः पुरा।
विप्रेण जातज्ञानेन विष्णुमायाभिकाङ्क्षिणा॥९१॥
तत उत्तरतस्तत्र गङ्गायां तु तपोधनः। सव्रीडो गृह्णते वासो योगं च परिचिन्तयन्।
उपविश्यात्र गङ्गायां पुलिनेन समन्तिके॥९२॥
ततो विन्दति चात्मानं तत्र तत्र विगर्हितम्। मया किं पापकर्मण कृतं कर्म सुदुष्करम्।
अगाधं वा परिभ्रष्टं येनाहं प्रापितस्त्विमम्॥९३॥
निषादस्य कुले जातो भक्षाभक्षाश्च भक्षिताः।
जीवाश्च घातिताः सर्वे स्थलजा जलनानि च॥९४॥
पेयापेयं च मे पीतं विक्रीताश्चाप्यविक्रयाः। अगम्यागमनं चैव वाच्यावाच्यं न रक्षितम्॥९५॥
वेश्मतोऽभोज्यभोज्यानि भुक्तं चैव न संशयः। पुत्रा दुहितरश्चैव निषादाज्जनिता मया॥९६॥
ततः किं चापराधं वा केन मामनुचिन्तये। येनाहं प्रापितो ह्येनां नैषादीमीदृशीं दशाम्॥९७॥
एतस्मिन्नन्तरे भूमि निषादः क्रोधमूर्च्छितः। पुत्रैः परिवृतस्तत्र मायातीर्थमुपागतः॥९८॥
ततो मृगयते भार्यां भक्तिमान् शुभलक्षणाम्। परिपृच्छति चैकैकं तपमानं तपोधनम्॥९९॥
किं नु पश्यथ भार्या मे गङ्गातीरमुपागता। घटमादाय हस्तेन आगता जलकारणात्॥१००॥

उस समय उस ब्राह्मण ने मञ्जूषा, कुण्डिका और त्रिदण्ड को भी देखा। विष्णु माया के दर्शनाकांक्षी होने का उस विप्र को ज्ञान होने पर वे सब वस्त्र उसी स्थान पर दिखलाई पड़ने लगा, जहाँ वे पूर्व में रखे गये थे।।९१।।

तत्पश्चात् उस स्थान पर उस लज्जित हुआ-सा तपस्वी ने गङ्गा के तट पर ही वस्त्र धारण किया और फिर गङ्गा के किनारे में ही बैठ कर चित्त एकाग्र कर विचार मग्न हो गया।।९२।।

मैंने ऐसा कौन-सा दुष्कर्म किया, जिससे मैं इस घोर पतित अवस्था में आ गया। मैं निषाद के वंश में उत्पन्न हुआ तथा भक्ष्य और अभक्ष्य वस्तुओं का विचार किये विना उन्हें खाया साथ ही मैंने सब तरह के स्थल-जलचारी जीवों की हत्या भी की।।९४।।

फिर मैंने पेय और अपेय पदार्थों को भी पिया तथा बेचने के अयोग्य वस्तुओं को भी बेचा। मैंने अगम्य के साथ भी गमन किया तथा अकथनीय और कथनीय वाणी का भी विचार कभी नहीं किया।।९५।।

अपने ही घर में मैंने निस्संशय ही अखाद्य-अभक्ष्य का भोजन भी किया तथा मैंने निषाद के संयोग से पुत्रों और पुत्रियों को भी जन्म दिया।।९६।।

इस प्रकार मैं बारम्बार यह सोचने हेतु बाध्य हो रहा हूँ कि मैंने ऐसा कौन सा अपराध किया था, जिसके कारण मैंने निषाद की ऐसी दशा को प्राप्त हुआ।।९७।।

हे भूमि! इसी दौरान अत्यन्त रूष्ट और पुत्रों से घिरा हुआ निषाद वहाँ उस माया तीर्थ में आ पहुँचा।।९८।।

उस समय उस भक्तिभाव सम्पन्ना, शुभ लक्षणों वाली अपनी धर्मभार्या को ढूँढने लगा। वहाँ पर वह तपश्चर्या में लगे हुए एक-एक तपस्वी से पूछने लगा।।९९।।

कि क्या जल के हेतु हाथ में घड़ा ली हुई गङ्गा के किनारे आयी मेरी पत्नी को आपने देखा है?।।१००।।

तत्रैव च नराः केचिन्मायातीर्थमुपागताः। पश्यन्ते तत्र परिव्राजं कुम्भं चैव यथा स्थितम्॥१०१॥
ततो दुःखेन संतप्तः अपश्यंश्च स्वकां प्रियाम्। दृष्ट्वा पटं च कुम्भं च करुणं परिदेवयत्॥१०२॥
इदं वासश्च कुम्भं च नदीकूलेषु तिष्ठति। न चापि दृश्यते भार्या मम गङ्गामुपागता॥१०३॥
अथ केनापि ग्राहेण स्नायमाना तपस्विनी। गृहीता तोयसंस्थेन जिह्वालोभेन च स्त्रियम्॥१०४॥

न वाप्रियं मयेत्युक्त्वा कदाचिदपि वाचकम्।
स्वप्नेऽपि नोक्तपूर्वोऽस्मि कदाचिदपि चाप्रियम्॥१०५॥

अथवाऽपि पिशाचेन भक्षिता भूतराक्षसैः। आकृष्टा किं नु रोगेण गङ्गातीरसमाश्रिता॥१०६॥
किं कृतं दुष्कृतं पूर्वं मम कर्मसुसङ्कटम्। येन मत्पुरतो भार्या त्वद्दृष्टा विगतिं गता॥१०७॥

एहि मे सुभगे कान्ते मम छन्दानुवर्त्तिनि।
पश्यैतान्वा सगम्भीरान् क्लिश्यमानानितस्ततः॥१०८॥

किं मां पश्य वरारोहे त्रीन् पुत्रान् सुसुबालकान्। दुहितॄः पश्य चत्वारि सर्वं तु मम मानदे॥१०९॥
मम पुत्रा रुदन्त्येते बालकास्तव लालसाः। नित्यं च दारिका रक्ष मम दुष्कृतकारिणः॥११०॥

उस माया तीर्थ में आये हुए वहीं पर स्थित कुछ मनुष्य थे। फिर उसी स्थान पर उसने उस प्रकार से स्थित सन्यासी और घड़ा को देखा।।१०१।।

फिर अपनी प्रिया की खोज में संलग्न निषाद ने उसे नहीं देखा। लेकिन उसके वस्त्र और घड़ा को देखा तो वह करुण क्रन्दन करने लग गया।।१०२।।

कहने लगा कि नदी के किनारे मेरी भार्या का यह वस्त्र और घड़ा पड़ा है। किन्तु इस गङ्गा किनारे पर आयी मेरी भार्या कहीं नहीं दीख रही है।।१०३।।

ऐसा तो नहीं कि कोई जिह्वा लोभी जलचर किसी ग्राह ने स्नान कर रही मेरी तपस्विनी भार्या को पकड़ लिया।।१०४।।

वैसे तो मैंने उसे कभी भी अप्रिय वचन भी नहीं कहा था और उससे भी पहले कभी स्वप्न में भी मुझसे अप्रिय वचन नहीं कहा था।।१०५।।

या तो किसी पिशाच ने उसे खा लिया अथवा भूत और राक्षसों से आविष्ट हो गई अथवा किसी रोग से ग्रसित होकर गङ्गा किनारें पर वह आयी थी।।१०६।।

मैंने अपने पूर्व के समय में कौन सा ऐसा भयानक पापकर्म किया था, जिससे मेरे ही सम्मुख रहने वाली मेरी भार्या आप लोगों के देखते-देखते अदृश्य होकर दुर्गति को प्राप्त हो गई।।१०७।।

हे मेरी इच्छा के अनुरूप चलने वाली मेरी सुन्दरि भार्या! मेरे पास आ जाओ, और तुम अपने गर्भ से उत्पन्न सन्तानों को इधर-उधर दुःखी होते देखो।।१०८।।

हे मुझको सम्मान देने वाली सुन्दरि! अपने तीन बाल्यावस्था वाले पुत्रों और अपनी चार पुत्रियों को ध्यान से देखो।।१०९।।

हे पत्नि! मेरे ये सुन्दर बालक तुम्हें पाने की इच्छा से रो रहे हैं। मुझ पापी के इन बालकों की नित्य रक्षा करो।।११०।।

कामं मां क्षुधितं चैव यास्यसि त्वं पिपासितम्।
त्वमेव मुच्य कल्याणि मम भक्त्या व्यवस्थिता॥१११॥
एवं विलपमानस्य निषादस्य यतस्ततः। सव्रीडो भाषते विप्रो निषादं गच्छ नास्ति सा।
सुखं योगं समाख्यातं पुत्र भार्या गतो हि यः॥११२॥
तं तथा रुदितं दृष्ट्वा कारुण्येन परिप्लुतः। निषादं भाषते तत्र गच्छ किं परिक्लिश्यसे॥११३॥
तानि बालानि रक्षस्व आहारैर्विविधैरपि। एते वै त्रायणीयास्ते सदा कालं हि पुत्रकाः॥११४॥
परिव्राजवचः श्रुत्वा निषादस्तस्य सन्निधौं उवाच मधुरं वाक्यं दुःखशोकपरिप्लुतः॥११५॥
अहो मुनिवरश्रेष्ठ अहो धर्मविदांवर। सान्त्वितोऽस्मि त्वया विप्र वचनैर्मधुराक्षरैः॥११६॥
निषादस्य वचः श्रुत्वा स मुनिः संशितव्रतः। उवाच मधुरं वाक्यं दुःखशोकपरिप्लुतः॥११७॥
मा रोदीर्वच्मि भद्रं ते तवाहं प्रवरस्त्रियः। गङ्गातीरं समासाद्य जाताऽस्मि च तप प्रिया॥११८॥
परिव्राजवचः श्रुत्वा निषादो विगतज्वरः। श्लक्ष्णं वचनमादाय प्रत्युवाच द्विजोत्तमम्॥११९॥
किमिदं भाषासे विप्र अव्यक्तं यत्कदाचन। अभाषैव च कर्माणि पुंसः स्त्रीत्वं न चार्हति॥१२०॥

हे कल्याणि! तुम मेरी भक्ति करने वाली होकर भी मुझ भूखे-प्यासे को त्याग कर जल लाने को आयी और इस प्रकार नष्ट हो गयी।।१११।।

इस प्रकार से उस शोकपूर्ण विलाप करने वाले निषाद से उस ब्राह्मण ने लज्जा युक्त होकर ही कहा—'जाओ! जो पुत्र और पत्नी से युक्त होता है, उसे सुख का योग कहा गया है। अब वह तुम्हारा चला गया है।।११२।।

फिर इस प्रकार से उस निषाद को रोते देखकर ब्राह्मण ने करुणा युक्त होकर उस निक्षाद से कहा—'जाओ क्यों क्लेश करते हो'।।११३।।

तुम अनेक प्रकार के आहारों द्वारा उन बच्चों की रक्षा करो। तुम्हें सर्वदा इन बच्चों की ही रक्षा करनी चाहिए।।११४।।

परिब्राजक रूप के व्यक्ति का वचन सुनकर दुःख और शोक से युक्त उस निषाद ने उस सन्यासी से मधुर वचन में कहा—।।११५।।

अहा! हे श्रेष्ठ धर्मज्ञ मुनिश्रेष्ठ विप्र! आपने मधुर अक्षरों वाले वचनों से मुझे सान्त्वना देने की कृपा की है।।११६।।

निषाद की वाणी सुनकर कठोर व्रत धारण करने वाले उस मुनि ने दुःख और शोक युक्त होकर उस निषाद से ही मधुर वाणी में कहा—।।११७।।

मैं कहता हूँ, रोओ मत। तुम्हारा कल्याण हो। मैं तुम्हारी श्रेष्ठ स्त्री था। गङ्गा के किनारे आकर मैं तुम्हारी भार्या बन गया था।।११८।।

सन्यासी की वाणी को सुनकर निषाद सन्ताप मुक्त हो गया। उसने श्रेष्ठ द्विज से मीठे स्वरों में कहा—हे विप्र! यह कैसी आप अस्पष्ट बात कह रहे हो। इस प्रकार का कर्म कभी भी पहले नहीं कहा गया है। पुरुष स्त्रीत्व के योग्य कैसे हो सकता है?।।११९-१२०।।

निषादस्य वचः श्रुत्वा ब्राह्मणो दुःखमूर्च्छितः। उवाच मधुरं वाक्यं गङ्गातीरेषु धीवरम्॥१२१॥
शीघ्रं गच्छ स्वकं देशमेतान् गृह्य स्वबालकान्।
सर्वेषां च यथासंख्यं स्नेहं कर्त्तव्यमेव च॥१२२॥
स तेन चोदितो ह्येवं निषादो नावगच्छति। मधुरं स्वरमादाय प्रत्युवाच स ब्राह्मणम्॥१२३॥
किं त्वया दुष्कृतं कर्म कृतं पूर्वं पुरातनम्। मम यद् भाषसे चैवमहं ते प्रवरस्त्रियः॥१२४॥
केन दोषेण प्राप्तस्त्वं स्त्रियत्वं ऋषिपुंगव।
मुनित्वं च कथं प्राप्तं एतदाचक्ष्व पृच्छतः॥१२५॥
एवं तस्य वचः श्रुत्वा स ऋषिः संशितव्रतः। उवाच मधुरं वाक्यं मायातीर्थजलेचरम्॥१२६॥
निषाद शृणु तत्त्वेन यत्कथा मम तत्त्वतः। न मया दुष्कृतं किंचित्कृतमेव हि केनचित्॥१२७॥
एवं भक्तिसमाचारमभक्ष्यं चैव वर्ज्जितम्। स मयाराधितो देवो लोकनाथो जनार्दनः।
कर्मभिर्बहुभिश्चैव मया दर्शनकाङ्क्षिणा॥१२८॥
अथ दीर्घेण कालेन मया दृष्टो जनार्दनः। वरेण छन्दयामास बहुना तदनन्तरम्॥१२९॥
न मया चेप्सितस्तत्र दीयमानो वरस्तदा। ईप्सिता च मया तत्र विष्णुमाया महाभया॥१३०॥

निषाद के इस वचन को सुनकर वह ब्राह्मण दुःखग्रस्त होकर मूर्च्छित-सा हो गया फिर उसने उस गङ्गा के तट पर उस निषाद से मीठे स्वरों में कहा—।।१२१।।

आप अपने इन बच्चों को लेकर अपने स्थान पर शीघ्र चले जाओ और सबसे यथोचित स्नेहपूर्ण व्यवहार करो।।१२२।।

उसके इस प्रकार कहे जाने पर निषाद कुछ भी नहीं समझ पाया उसने मीठे स्वर में उस ब्राह्मण को इस प्रकार उत्तर दिया—।।१२३।।

तुम पूर्व में कौन-सा ऐसा पापकर्म किये थे, जो तुम मुझसे कहते हो कि 'मैं तुम्हारी श्रेष्ठ स्त्री था'।।१२४।।

हे ऋषिश्रेष्ठ! किस दोष से तुमको स्त्रीत्व की प्राप्ति हुई और फिर से मुनित्व कैसे प्राप्त हुआ। मुझ जिज्ञासु को यह बतलाने की कृपा करें।।१२५।।

उसके इस प्रकार की वाणी को सुनकर उन कठोर व्रतधारण करने वाले ऋषि ने मायातीर्थ के उस जल में विचरण करने वाले निषाद से मधुर वाणी में कहा—।।१२६।।

हे निषाद! मेरी वास्तविक सत्य कथा को सुनो। वैसे मैंने कोई दुष्कृत्य नहीं किया है और न किसी द्वारा वैसा कराया ही गया है।।१२७।।

वैसे मैंने अभक्ष्य वस्तुओं का भी भोजन नहीं करते हुए भक्तिभाव धारण किया है। मैंने दर्शन करने की कामना से कई कर्मों के द्वारा लोकनाथ जनार्दन देव की उपासना की है।।१२८।।

फिर बहुत कालों के पश्चात् मैंने जनार्दन देव का दर्शन प्राप्त किया। तत्पश्चात् उन्होंने मुझे अनेक प्रकार से वर भी प्रदान करना चाहा।।१२९।।

उनके द्वारा वर प्रदान किये जाने पर भी मैंने उसे लेना नहीं चाहा। मैंने विष्णु की महाभयानक माया को ही जानना चाहा।।१३०।।

ततो मां भाषते विष्णुः किं ते मायेन ब्राह्मण।
गच्छ कुब्जाम्रकं श्रेष्ठं स्नानं कुरु च जाह्नवीम्॥१३१॥
एवं तत्र वचश्चोक्त्वा विष्णुश्चान्तरधीयत। अहं मायाप्रलोभेन गङ्गातीरमुपागतः।
स्थापितं दण्डकुण्डी च पात्रं वस्त्रं च निक्षिपेत्॥१३२॥
उचितेनोपचारेण निमज्य सलिलाम्भसि। न तत्र किंचिज्जानामि किमिदं किं प्रवर्त्तते॥१३३॥
सर्वमेव विजानामि यो निषादगृहेऽवसम्। लोभमोहार्थकामार्थक्रोधेन च परिप्लुतः॥१३४॥
ततः केनापि कर्मेण जलकृत्यमिहागतः।
निमज्य सलिले चात्र जातोऽस्मि ब्राह्मणो ह्यहम्॥१३५॥
निषाद पश्य कुण्डं च मात्रावस्त्रं सचीवरम्। पञ्चाशद्वर्षवासोऽपि ततस्तत्र न नश्यति।
न जीर्णाश्चीवराः सर्वे जाह्नव्या नैव ते हृताः॥१३६॥
एवं तेन ततश्चोक्तो निषादोऽदृश्यतां गतः। ये च ते बालकास्तत्र तेषां कश्चिन्न दृश्यते॥१३७॥
स ततो ब्राह्मणो देवि तपस्तपति निश्चितः। ऊर्ध्वश्वासोर्ध्वबाहुश्च वायुभक्षपरायणः॥१३८॥
तस्य वै तिष्ठमानस्य अपराह्णं तु जायते। ततः प्रमुच्य तोयं तं देवि कृत्वा यथोचितम्॥१३९॥

तत्पश्चात् विष्णु देव ने मुझसे कहा कि हे ब्राह्मण! माया से तुम्हारा कोई प्रयोजन तो नहीं है, फिर भी तुम श्रेष्ठ कुब्जाम्रक तीर्थ में जाकर गङ्गा स्नान करो।।१३१।।

उसके बाद इस प्रकार कहते हुए विष्णुदेव अन्तर्हित हो गये। फिर मैं माया के लोभ से गङ्गा के किनारे पर आया और अपना दण्ड व कुण्ड की स्थापन करने के बाद पात्र और वस्त्र को भी यहाँ रख दिया।।१३२।।

फिर यथाकाल उचित उपचार द्वारा मैंने गङ्गाजल में डूबकी लगायी, तो उस समय मुझे यह ज्ञान नहीं रह गया कि क्या हो रहा है।।१३३।।

परन्तु मैं वे सब जनता हूँ, जो निषादगृह में रहते हुए मैंने लोभ, मोह, काम, क्रोध आदि के अधीन होकर किया है।।१३४।।

फिर किसी कर्मवश मैं जल लेने हेतु यहाँ आया और जल में डूबकी लगाने पर पुनः मैं ब्राह्मण हो गया हूँ।।१३५।।

हे निषाद! कुण्ड, दण्ड, वस्त्र, कौपीन आदि सामान को देखो। पचास वर्ष तक तुम्हारे घर में रहने पर भी ये चीबर न तो नष्ट हुए, न पुराने हुए और न गङ्गा द्वारा हटाये गए हैं।।१३६।।

फिर उसके इस प्रकार कहे जाने पर निषाद भी अदृश्य हो गया, जो बच्चे वहाँ थे, वे भी कहीं नहीं दिखलायी पड़े।।१३७।।

हे देवि! फिर वह ब्राह्मण निश्चिन्त होकर श्वास को अपर ब्रह्माण्ड में चढ़ा कर भुजाओं को ऊपर उठाये हुए तथा वायुमात्र का आहार लेते हुए तप करने में संलग्न हो गया।।१३८।।

हे देवि! उसके द्वारा इस प्रकार करते हुए अपराह्ण हो गया, फिर वह यथा काल उचित क्रिया सम्पन्न कर वह जल का किनारा छोड़ दिया।।१३९।।

कर्मण्येषु च पुष्पेषु ममार्चनरतस्ततः। अर्चयित्वा यथान्यायं वीरासनमुपागतः।
वृतस्तु ब्राह्मणैर्मुख्यैर्गङ्गास्नानेषु वै द्विजः॥१४०॥
ऊचुस्ततो द्विजास्तत्र तपस्वी तपसि स्थितः।
पूर्वाह्णे स्थापिता मात्रा त्रिदण्डी दण्डकुण्डिका॥१४१॥
इतो गतोऽसि ब्रह्मेन्द्र स्थापयित्वा तु चीवरान्। विस्मारितमिदं स्थानं शीघ्रं न त्वमुपागतः॥१४२॥
ततो विप्रावचः श्रुत्वा मूष्णीमासीन्मुनिस्तदा। ब्राह्मणानुगतं स्थानमात्मनात्मानुसंस्थितः॥१४३॥
एतस्मिन्नन्तरे देवि स च ब्राह्मणपुंगवः। चिन्तयन् मनसा देवि किमिदं चाद्भुतं महत्।
अद्य पञ्चाशद् वर्षाणि अमावस्या तु एष वै॥१४४॥
किमिदं वर्त्तते कालं किं मायामूचुर्ब्राह्मणाः। पूर्वाह्णे स्थापिता मात्रा अपराह्णे कुतो गतः॥१४५॥
एतस्मिन्नन्तरे देवि ब्राह्मणं तस्य ब्राह्मणः। दर्शितं तस्य चात्मानं दिव्यरूपेण वर्चसा।
दर्शयित्वा ततो रूपं भाषितं वचनं मया॥१४६॥
स्नातुकामो गतो विप्रः पूर्वाह्णे जपकारणात्। इदं पश्यापराह्णे वै किं प्रभो विनिवर्त्तसे॥१४७॥
ममैव वचनं श्रुत्वा स च श्रोत्रियपुंगवः। कृताञ्जलिपुटो भूत्वा मन्युना चाभिपीडितः।
भूमौ च स्वशिरः कृत्वा प्रत्युवाच ततो मम॥१४८॥

फिर वह मेरी पूजार्चन करते हुए पुण्य कर्मों में संलग्न हो गया। वह यथाकाल पूजन करने के बाद वीरासन पर स्थित हुए उस ब्राह्मण को गङ्गा में स्नान कर रहे श्रेष्ठ ब्राह्मणजनों ने देखा।।१४०।।

उसके पश्चात् उन ब्राह्मणों ने उस स्थल पर तप में संलग्न तपस्वी से कहा कि तुमने पूर्वाह्ण में त्रिदण्ड, कुण्डिका और मंजूषा यहाँ रखा था।।१४१।।

हे ब्राह्मण श्रेष्ठ! चीवरों को रखकर तुम यहाँ से गये, किन्तु तुमको यह स्थान भूल-सा गया। जिससे तुम यहाँ शीघ्र नहीं आ सके।।१४२।।

इस प्रकार के ब्राह्मणों की वाणी को सुनने पर भी वह मुनि ब्राह्मणों से सम्पन्न उस स्थान पर आत्मा से मन को जोड़कर चुपचाप स्थित ही रहा।।१४३।।

हे देवि! इस दौरान वह ब्राह्मण श्रेष्ठ अपने मन में सोच रहा था कि यह किस प्रकार का महाश्चर्य है? पचास वर्ष व्यतीत होने पर भी आज यह अमावस्या तिथि ही है।।१४४।।

यह कौन-सा समय है? इन ब्राह्मणों ने यह कैसी आश्चर्यकारी बात कही है कि पूर्वाह्ण में मंजूषा याने सामानों का पात्र रखकर कहाँ चले गए थे?।।१४५।।

हे देवि! इसी समय मैंने उस ब्राह्मण को मैंने अपना तेजस्वी दिव्य स्वरूप से स्वयं को प्रकट कर दिया और अपना स्वरूप दिखाकर मैंने यह वचन कहा—।।१४६।।

हे विप्र! पूर्वाह्ण में जप के हेतु स्नान की कामना से गए थे। हे प्रभो! देखो, इस समय अपराह्ण काल में आप क्यों लौटे हो?।।१४७।।

मेरे इस प्रकार की वाणी को सुनकर शोकाकुल वह श्रेष्ठ श्रोत्रिय ब्राह्मण हाथ जोड़कर और भूमि पर अपना मस्तक रखकर मुझसे बोला—।।१४८।।

जाता मे सप्त जातानि अपत्यानि च पुष्कलान्।
विक्रीतं जातकं मद्यं कच्छपं च सितात्मकम्॥१४९॥
भक्षाभक्षं कृतं चान्यत् पेयापेयं च पीतवान्।
गम्यागम्यः कृतश्चापि वाच्यावाच्यं च भाषितम्॥१५०॥

किं मया विकृतं कर्म सेवमानेन माधव। तपश्च तप्यमानेन किं मया विकृतं तपः॥१५१॥
भक्षितं किमकर्मण्यं सेवमानेन चाच्युत। व्यभिचारं च मे तत्र कृतं चैव तवार्च्चने।
एतदाचक्ष्व तत्त्वेन येनाहं नरकं गतः॥१५२॥
एतत् तेनाहमुक्तस्तु वचनं दुःखसंयुतम्। मायालुब्धेन विप्रेण गङ्गापुलिनसंसदि॥१५३॥
ततस्तस्य वचः श्रुत्वा करुणं परिदेवितम्। उक्तवानमस्मि तं विप्रं दुःखसंतप्तलोचनम्॥१५४॥
मा मत्यं कुरु वै विप्र आत्मदोषो हि ते भवत्। येन दुःखमनुप्राप्तं तिर्यग्योनिं च वै गतः॥१५५॥
उक्तमेव मया पूर्वं विप्र किं तव मयया। ददामि दिव्यलोकान् वै तांस्तु ब्राह्मण नेच्छसि॥१५६॥
दृष्टा तु वैष्णवी माया या त्वया ब्राह्मणेप्सिता। न गतं दिवसं चैव नापराह्णमशेषतः।
वर्षाणि नैव पञ्चाशन्निषादस्य गृहेऽभवन्॥१५७॥

मुझसे सात सन्तानें उत्पन्न हुईं। मैंने अनेक प्रकार के बनाये हुए मद्यों को और श्वेत कच्छपों को बेचा।।१४९।।

मैंने भक्ष्य और अभक्ष्य वस्तुओं को भी खाया, पेय और अपेय तरल वस्तुों को पीया, गम्य और अगम्य के साथ रमण किया और वाच्य व अवाच्य वचनों को बोला।।१५०।।

हे माधव! सेवा करते हुए मैंने कौन-सा ऐसा दुष्टकर्म किया था और तपस्या करते हुए मैंने कौन-सा विकृत तप किया?।।१५१।।

हे अच्युत! भजन करने के समय मैंने ऐसा कौनसा अभक्ष्य सेवन किया, कौन-सा अकर्म किया अथवा आपकी पूजा के समय मैंने क्या व्यभिचार किया। मुझे तत्त्वतः वे सब बतलायें, जिससे मैं नरक तुल्य जीवन में पड़ा रहा था।।१५२।।

उस गङ्गा के किनारेपर एकत्रित कई जनों के मध्य भी माया से मोहित उस विप्र ने मुझसे इस प्रकार अपना दुःखयुक्त वचन कहा।।१५३।।

तत्पश्चात् उसकी वाणी सुनकर मैंने करुणा से रोते हुए और दुःख से पीड़ित नेत्रों वाले उस विप्र से कहा—हे विप्र! चिन्ता मत करो। वैसे भी यह तुम्हारा ही अपना दोष था, जिससे तुमको इस तरह से दुःखसहन करना पड़ा और तुम तिर्यग् योनि में चले गये।।१५४-१५५।।

हे विप्र! मैंने तुमको पहले ही कहा था कि तुमको माया से क्या प्रयोजन है, मैं तो तुमको दिव्यलोकों में जाने को कहा था, किन्तु हे ब्राह्मण! तुमने ही मना किया था।।१६।।

हे ब्राह्मण! तुमने जो वैष्णवी माया की कामना की थी, वही तुमने देखी है। न दिन समाप्त हुआ है, और न पूर्ण अपराह्ण हुआ है और उस निषाद के घर में रहते हुए पचास वर्ष भी व्यतीत नहीं हुए हैं।।१५७।।

अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व द्विजोत्तम।
या एषा वैष्णवी माया त्वया ब्राह्मण ईप्सिता॥१५८॥
त्वया न तत्कृतं किञ्चिच्छुभं वाऽशुभमेव वा। सर्वं मायामयं तत्र विस्मयात् परितप्यसे॥१५९॥
यत्त्वया दुष्कृतं कर्म व्यभिचारं तथा कृतम्। अर्चनं न च ते भ्रष्टं तपश्चैव न नाशितम्॥१६०॥
पुनरन्यत् प्रवक्ष्यामि तच्छृणोषि द्विजोत्तम। यस्य चैवापराधेन स्वयं कृत्वा भवान्तरे॥१६१॥
शुद्धा भागवता विप्र मद्भक्ता नाभिवादिताः। तस्य दोषापराधस्य फलं प्राप्तं ततो द्विज।
सर्वथा वन्दनीया वै भक्ता भागवताः शुचिः॥१६२॥
ये तु वन्दन्ति विप्रेन्द्र भक्तान् भागवतान् मम। वन्दितोऽस्मीह विप्रेन्द्र सत्यमेतन्न संशयः॥१६३॥
यो मां पृच्छति वै गन्तुं यस्य वाच्यं न विद्यते। अनन्यमनसो भूत्वा मद्भक्तेषु नियोजयेत्॥१६४॥
गच्छ ब्राह्मण सिद्धोऽसि प्राणांश्चात्रैव संन्यस। गच्छ मे परमं स्थानं श्वेतद्वीपं मया सह॥१६५॥
एवमुक्तो मया भूमि स च ब्राह्मणपुंगवः। दत्त्वा वरं महाभागे तत्रैवान्तरधीयत॥१६६॥
ब्राह्मणो देहं संन्यस्य मायातीर्थे यशस्विनि। कृत्वा सुदुष्करं कर्म श्वेतद्वीपमुपागतः॥१६७॥

हे द्विजोत्तम! मैं तुमको और भी बतला रहा हूँ, सुनो—हे ब्राह्मण! तुमने जिसे जानना चाहा था, वही यह वैष्णवी माया है।।१५८।।

तुमने कोई शुभ या अशुभ कर्म नहीं किया है। ये सभी कुछ मायामय है, जिससे तुम दुःखी हो रहे हो।।१५९।।

तुमने कोई पापकर्म या व्यभिचार तो नहीं ही किया। न तुम्हारी कोई पूजा भ्रष्ट हुई है और न तुम्हारा तप भ्रष्ट हुआ है।।१६०।।

हे द्विजोत्तम! मैं तुम्हें और भी अन्यान्य बातें बतलाता हूँ, उन्हें सुनो। स्वयं जिनका अपराध करने से तुम भवसागर में जा गिरे।।१६१।।

हे विप्र! तुमने मेरे भक्तिभाव सम्पन्न शुद्ध भक्तों का अभिवादन नहीं किया। हे द्विज! उस दोष जनित अपराध का फल तुमको अधिगत हुआ। पवित्र भक्ति सम्पन्न भगवान् के भक्त सब प्रकार से वन्दनीय होते हैं।।१६२।।

हे श्रेष्ठ विप्र! जो मेरे भक्ति सम्पन्न भक्तों की वन्दना करते हैं, उनके द्वारा मेरी वन्दना हो जाती है। इसे सर्वदा निस्संशय सत्य समझना चाहिए।।१६३।।

जो कोई जन मेरे बारे में जानने की जिज्ञासा रखते हैं या मेरे उस स्थान पर जाना चाहता है, जिसका वर्णन नहीं हो सकता, उसे अनन्य भाव से मेरे भक्तों की सेवा में जुड़ जाना चाहिए।।१६४।।

हे ब्राह्मण! जाओ! तुम सिद्ध हो। यहीं पर तुम अपने प्राणों का त्याग कर दो। मेरे ही साथ मेरे श्रेष्ठ स्थान श्वेतद्वीप को चलो।।१६५।।

हे महाभागे भूमि! इस प्रकार मैंने उस ब्राह्मण श्रेष्ठ से कहते हुए वर प्रदान करने के बाद इसी समय मैं अन्तर्हित होगया।।१६६।

हे यशस्विनि! वह ब्राह्मण अत्यन्त दुष्कर कर्म करने के बाद उसी मायातीर्थमें अपना देह का त्याग कर श्वेतद्वीप को चला गया।।१६७।।

धन्वी तूणी शरी खड्गी महाबलपराक्रमः। मम पश्यति वै नित्यं मायाबलं सुसंस्थितम्॥१६८॥
तव मायेन किं भूमे न मायां ज्ञातुमर्हसि। मम मायां न जानन्ति देवदानवराक्षसाः॥१६९॥
एतत् ते कथितं भूमे मायाख्यानं महौजसम्।
मायाचक्रमिति ख्यातं सर्वं दुःखसुखावहम्॥१७०॥
आख्यानानां महाख्यानं तपसां च परं तपः। पुण्यानां परमं पुण्यं गतीनां परमा गतिः॥१७१॥
पठेच्च नित्यं भक्तेषु अभक्तेषु न कीर्त्तयेत्। मा पठेन्नीचमध्ये वै न पठेच्छास्त्रदूषके॥१७२॥
अग्रतः पृष्ठतो मह्यं मद्भक्तेषु यथाग्रतः। पठतः शोभते विप्रो न तु ये शास्त्रदूषकाः॥१७३॥
कल्यमुत्थाय यो नित्यं पठते च दृढव्रतः। तेन द्वादशवर्षाणि ममाग्रे पठितं भवेत्॥१७४॥
अथ पूर्णेन कालेन पुमान् पञ्चत्वमागतः। मद्भक्तो जायते देवि वियोनिं च न गच्छति॥१७५॥
य एवं शृणुयान्नित्यं महाख्यानं वसुंधरे। न स जायेत मन्दात्मा वियोनिं च न गच्छति॥१७६॥
एतत् ते कथितं भद्रे यत्त्वया पूर्वमीप्सितम्। मुच्यमाना वरारोहे किमन्यत्परिपृच्छसि॥१७७॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१२४॥

इस प्रकार वह ब्राह्मण महान् बल और पराक्रम से सम्पन्न होकर धनुष, बाण, तूणीर, खड्ग धारण किए रहकर नित्य माया के बल से सम्पन्न और सुप्रतिष्ठित मेरा दर्शन करने लगा।।१६८।।

हे भूमि! तुम्हें माया से क्या प्रयोजन? तुम माया को नहीं जान सकती। देवता, दानव राक्षस आदि भी मेरी माया को अब तक नहीं जान पाया है। हे भूमि! मैंने तुम्हें अपनी माया से सम्बन्धित अत्यन्त ओजस्वी यह आख्यान कहा। सब प्रकार के दुःख और सुख से सम्पन्न यह आख्या 'मायाचक्र' इस नाम से प्रसिद्ध है।।१६९-१७०।।

सभी आख्यानों में महान् आख्यान, तपों में भी श्रेष्ठतप, पुण्यों में परम पुण्य और गतियों में परम गति रूप यह आख्यान है। इस आख्यान का पाठ भक्तों के पास ही करना चाहिए। अभक्तों से इसका वाचन कथमपि नहीं करना चाहिए। फिर नीचों के समीप अथवा शास्त्र को दूषित करने वालों के समक्ष इस आख्यान का पाठ नहीं ही करना उत्तम है। मेरे अग्रभाग और पृष्ठभाग अथवा मेरे भक्तों के आगे इस आख्यान को पढ़ने वाला ब्राह्मण शोभा को प्राप्त होता है। परन्तु जो शास्त्र को दूषित करते हैं, उसके सामने पढ़ने वाले निश्चय ही शोभा नहीं प्राप्त करते हैं।।१७१-१७३।।

जो दृढव्रत धारण करने वाला जन नित्य, प्रातःकाल उठकर इसका पाठ करता है, उसे द्वादश वर्ष पर्यन्त मेरे आगे इसका पाठ करने का फल प्राप्त होता है।।१७४।।

हे देवि! आयुष्य काल पूर्ण होने पर मनुष्य मरने के बाद मेरा भक्त होकर उत्पन्न होता है। उसे निकृष्ट योनि ही प्राप्त होती है।।१७५।।

हे पृथ्वी! जो जन नित्य इस महाख्यान को सुनता है, वे जन मन्दात्मा के रूप में नहीं जन्म लेता है और उसे भी विकृत योनि नहीं मिलती है।१७६।।

हे भद्रे! आपने जो कुछ पहले मुझसे पूछा था, उसे मैंने तुमसे इस प्रकार कह सुनाया। हे सुन्दरि! मुझसे विमुक्त होने जा रही तुम अब और क्या जानना चाहती हो, उसे पूछो।।१७७।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में विष्णु माया का माहात्म्य और सोमशर्मा का आख्यान नामक एक सौ चौबीसवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१२४॥

❖❖❖

पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

अथ कुब्जाम्रकतीर्थमाहात्म्यम्

सूत उवाच

श्रुत्वा मायाबलं ह्येतद् धरणी संशितव्रता। वराहरूपिणं देवं प्रत्युवाच वसुंधरा॥१॥

धरण्युवाच

यत्तत् कुब्जाम्रकं देव भाषसे तदनन्तकम्। नाहमत्र विजानामि यन्मया पूर्वपृच्छितम्॥२॥
यत्तत्कुब्जाम्रके पुण्यं व्युष्टिस्तस्य सनातनी। एतन्मे परमं गुह्यं भगवन् वक्तुमर्हसि॥३॥

श्रीवराह उवाच

सर्वं तत्कथयिष्यामि सर्वलोकसुखावहम्। यत्तत्कुब्जाम्रके व्युष्टिर्यच्च तीर्थमनिन्दितम्।
तानि कार्त्स्न्येन मे देवि शृणु तत्त्वेन सुन्दरि॥४॥
यथा कुब्जाम्रको जातस्ततस्तीर्थं यथाक्रमम्। यच्च कर्म ततो भूमि स्नातो याति मृतेष्वपि॥५॥
युगे सप्तदशे भूमि कृत्वा चैकां वसुंधराम्। मधुकैटभौ तथा हत्वा ब्रह्मावचननोदितः।
संहारं तु ततः कृत्वा गङ्गाद्वारमुपागतः॥६॥

अध्याय-१२५

कुब्जाम्रक माहात्म्य में व्याली-नकुलोपाख्यान

सूतजी ने कहा कि इस प्रकार मायाबल सम्बन्धी आख्यान को सुनकर प्रसन्न तीव्र व्रत धारण करने वाली वसुन्धरा ने वराहस्वरूप विष्णु देव से पूछा कि—।।१।।

धरणी ने पूछा कि हे देव! आपने इस समय जिस कुब्जाम्रक नाम के तीर्थ का, जिसका अनन्त फल है, का वर्णन किया है, मैं उसके बारे में नहीं जानती हूँ। वैसे इस प्रसंग में मैंने पहले भी आपसे जानने की जिज्ञासा की है।।२।।

उस कुब्जाम्रक तीर्थ में निवास करने का जो शाश्वत फल है, उस अत्यन्त गुप्त पुण्य को आप मुझे बतलायें, बड़ी कृपा होगी।।३।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि सम्पूर्ण लोकों को सुख प्रदान करने वाले उस तीर्थ का विस्तार से उल्लेखपूर्वक वर्णन करता हूँ। हे सुन्दरि! देवि!! उस कुब्जाम्रक तीर्थ में निवास करने का विधान और उसका फल तथा उस निन्दारहित तीर्थ का माहात्म्य तत्त्वतः सम्पूर्णता से सुनो।।४।।

जिस प्रकार से कुब्जाम्रक तीर्थ की उत्पत्ति हुई और फिर किस प्रकार वह तीर्थ बना और जिस प्रकार के कर्म को करके इस तीर्थ में स्नान करने वाला मरने के बाद किस प्रकार की शुभ गति को प्राप्त करता है, उन सबको सुनो—।।५।।

पुरातनकाल में सत्रहवें कल्प में ब्रह्माजी के कथन से प्रेरित होकर मधु और कैटभ नाम के दैत्य का वध करते समय मैंने एक पृथ्वी की सर्जना की तथा तब उन दैत्यों का वध कर मैं गङ्गा द्वार तीर्थ में गया।।६।।

पश्यामि तं नतं भूमि रैभ्यं नाम महायशम्। मम चाराधने युक्तं धर्मकर्मसुनिष्ठितम्॥७॥
युक्तिमन्तो गुणाश्च शुचिर्दक्षो जितेन्द्रियः। दशवर्षसहस्राणि ऊर्ध्ववाहुः स तिष्ठति॥८॥
सहस्रं चाम्बुभक्षेण तथा शैवालभक्षणम्। वर्षाणां च शतं पञ्च तिष्ठते स महामुनिः॥९॥
ततः प्रीतोऽस्म्यहं देवि रैभ्यस्य च महात्मनः। भक्त्या च परया चैव तेन चाराधितो ह्यहम्॥१०॥
ततो वै तप्यमानं तं गङ्गाद्वारमुपागतम्। आम्रवृक्षं समासाद्य दृष्टः स मुनिपुंगवः॥११॥
दर्शितोऽयं मया चात्मा हेतुमात्रेण केनचित्। मया यदाश्रितश्चाम्रस्तेन कुब्जत्वमागतः॥१२॥
एवं कुब्जाम्रकं ख्यातं स्थानमेकं यशस्विनि। मृतापि तत्र गच्छन्ति मम लोकाय केवलम्॥१३॥
अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व वसुंधरे। दृष्ट्वा मम ऋषिश्चैव यानि वाक्यान्यभाषत॥१४॥
एवं तत्र मया दृष्ट्वा कुब्जरूपं समास्थितः। जानुभ्यामवनिं गत्वा किञ्चिदेव प्रभाषते॥१५॥
जानुभ्यां पतितं दृष्ट्वा स मुनिः संशितव्रतः। वरेण छन्दितस्तत्र न तस्यैव च रोचते॥१६॥
ममैवं वचनं श्रुत्वा स ऋषिस्तपसान्वितः। उवाच मधुरं वाक्यं प्रसादार्थी महायशाः॥१७॥
यदि प्रसन्नो भगवान् लोकनाथो जनार्दनः। तव चात्र निवासं वै देव इच्छामि नित्यशः॥१८॥

हे भूमि! फिर मैंने उस पृथ्वी पर मेरी ही साधना-उपासना करने वाले महायशस्वी तथा धर्म-कर्म में महान् निष्ठा रखने वाले उन रैभ्य नाम के एक ऋषि को देखा।।७।।

वे रैभ्य ऋषि युक्तिवान्, गुणज्ञ, पवित्र, आलस्यरहित, जितेन्द्रिय आदि विशेषता सम्पन्न अपने भुजाओं को ऊपर उठाये हुए दस हजार वर्षों से तप में लीन थे।।८।।

वे महामुनि हजार वर्षों तक मात्र जल पीते और पाँच सौ वर्षों तक शैवाल का भक्षण करते रहे थे।।९।।

हे देवि! इस स्थिति में उस समय मैं उन महात्मा रैभ्य पर प्रसन्न हो गया। उसने भी उस समय मेरी परमभक्ति भाव से उपासना की थी।।१०।।

उस समय मैंने गङ्गाद्वार तीर्थ में आकर एक आम्र वृक्ष पर चढ़कर उन तप कर रहे मुनिपुङ्गव को देखा।।११।।

फिर मैंने येन केन प्रकारेण उनको अपना दर्शन करा दिया। लेकिन जिस समय मैं जिस आम्रवृक्ष पर स्थित था, वह वृक्ष कुब्ज याने टेढ़ा हो गया।।१२।।

हे यशस्विनि! इस प्रकार वह स्थान कुब्जाम्रक नाम से सुख्यात हो गया। उस स्थल पर मरने वाले जीव मात्र मेरे लोक को ही प्राप्त करते हैं।।१३।।

हे वसुन्धरे! मैं तुमको इस प्रसङ्ग में और भी बहुत-सी बातें बतलाने जा रहा हूँ। उसे तुम ध्यान से सुनो—मेरा दर्शन प्राप्त करने के पश्चात् उन रैभ्य ऋषि ने जिन वाक्यों को बोला,उन्हें तुम सुनो—।।१४।।

उस कुब्जाम्र पेड़ के ऊपर स्थित हुआ मुझे देखकर उन रैभ्य मुनि ने अपने दोनों घुटनों के बल पृथ्वी पर लेटकर प्रणाम किया और कुछ कहा—।।१५।।

अपने घुटनों के बल पृथ्वीपर लेटे हुए उनको देखकर मैंने कठोर व्रत को धारण करने वाले उस रैभ्य मुनि को वरदान प्रदान करना चाहा, परन्तु उसे कोई भी वर मेरा पसन्द नहीं हुआ।।१६।।

उस समय मेरी इस प्रकार की वाणी सुनकर कृपाकांक्षी महायशस्वी उन तपस्वी ऋषि ने मुझसे मीठे स्वर में कहा—।।१७।।

यावल्लोका धरिष्यन्ति तावद्वर महाप्रभो। स्थानं तव प्रसादाच्चैवेच्छेयं तव संस्थितिम्॥१९॥
मा मे भक्तिर्भवेदन्ये तव वर्ज्या जनार्दन। अन्ये भक्तिर्भवेद् विष्णो रोचते न कदाचन॥२०॥
एतेन परमं चित्तं यन्मया हृदि वर्तते। उपेन्द्र यदि तुष्टोऽसि एतन्मे दीयतां वरम्॥२१॥
ततस्तस्य वचः श्रुत्वा रैभ्यस्य मुंनिपुंगवः। वाढमित्येव ब्रह्मेन्द्र एवमेतद् भविष्यति॥२२॥
ममैव वचनं श्रुत्वा ब्राह्मणः स वसुंधरे। मुहूर्तं ध्यानमास्थाय प्रत्युवाच द्विजोत्तमम्॥२३॥
शृणु तत्त्वेन मे देवि यन्मां त्वं परिपृच्छसि। तीर्थे कुब्जाम्रके पुण्ये मम लोकसुखावहे॥२४॥

तीर्थं तु कुमुदाकारं तस्मिन् कुब्जाम्रके स्थितम्।
स्नानमात्रेण सुश्रोणि स्वर्गं प्राप्नोति मानवः॥२५॥

कौमुदस्य तु मासस्य तथा मार्गशिरस्य च। वैशाखस्यैव मासस्य कृत्वा वै कर्म दुष्करम्॥२६॥
यो वै परित्यजेत् प्राणान् स्त्रियः पुंसनपुंसकौ। निष्कलां लभते सिद्धिं मम लोकं स गच्छति॥२७॥
अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व वसुंधरे। तीर्थं मानसमित्येव यस्तु तत्र विधीयते॥२८॥

हे लोकनाथ जनार्दन भगवन्! यदि आप तुझ पर प्रसन्न ही हैं, तो मैं चाहता हूँ कि आपका यहाँ पर नित्य निवास हुआ करे।।१८।।

हे महाप्रभो! मुझे इस प्रकार का वर प्रदान करें कि जिस समय तक यह लोक रहे उस समय तक इस स्थान पर आप निवास करते रहेंगे। आपकी कृपाप्रसाद से मैं यहाँ पर आपका निवास स्थान की ही कामना कर रहा हूँ।।१९।।

हे जनार्दन! फिर आपके अलावे किसी अन्य में मेरी भक्तिभाव कभी नहीं होना चाहिए। हे विष्णो! मुझको यह भी कभी प्रिय नहीं होगी कि आपके अतिरिकत किसी अन्य में मेरी भक्ति भाव हो।।२०।।

हे उपेन्द्र! सम्प्रति यदि आपके प्रति आपका चित्त तत्त्वतः उदार है और आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो मुझे यह वर प्रदान करें।।२१।।

फिर उन रैभ्य नाम के मुनि श्रेष्ठ की वाणी सुनकर ब्राह्मण स्वरूप वाले विष्णु ने कहा—'अच्छा! ऐसा ही होगा'।।२२।।

हे पृथ्वी! मेरे इस प्रकार के कथन को सुनकर ब्राह्मण श्रेष्ठ ने पलभर ध्यान करते हुए संतोषजनक उत्तर दिया।।२३।।

हे देवि! लोकों को सुख प्रदान करने वाले पवित्र कुब्जाम्रक तीर्थ के बारे में तुमने मुझसे जो कुछ और पूछा था, उसे भी सुनो—।।२४।।

हे सुश्रोणि! उपरोक्त कुब्जाम्रक तीर्थ में कुमुदाकार एक तीर्थ है, उसमें स्नान करने मात्र से मनुष्यों को स्वर्ग मिल जाता है।।२५।।

वैसे कौमुद का तात्पर्य कार्त्तिक, मार्गशीर्ष और वैशाख मासों में कठिन तप सदृश कर्म करने के बाद जो भी स्त्री, पुरुष अथवा नपुंसक जीव अपना प्राण त्याग करता है, उसे पूर्ण सिद्धि मिल जाती है तथा वे मेरे लोक में निवास करने वाले होते हैं।।२६-२७।।

हे वसुन्धरे! उससे सम्बन्धित अन्य बातें भी मैं तुमको बतलाने जा रहा हूँ, उसे सुनो!वहीं पर 'मानस' नामक

यस्मिन् स्नात्वा विशालाक्षि गच्छते नन्दनं वनम्। दिव्यं वर्षसहस्रं वै मोदते चाप्सरैः सह॥२९॥
पूर्णे वर्षसहस्रे तु जायते विपुले कुले। द्रव्यवान् गुणवांश्चैव जायते तत्र मानवः॥३०॥
तत्राथ मुञ्चते प्राणान् कौमुदस्य तु द्वादशीम्। पुष्कलां लभते सिद्धिं मम लोकं च गच्छति॥३१॥
अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व वसुंधरे। मायातीर्थमिदं ख्यातं येन माया विजानते॥३२॥
तस्मिन् कृतोदको ब्रह्मन् मायातीर्थे महायशाः। दशवर्षसहस्राणि मद्भक्तो जायते नरः॥३३॥
लभते परमां व्युष्टिं कुबेरभवनं यथा। सहस्रमेकं वर्षाणां स्वच्छन्दगमनालयम्॥३४॥
अथवा म्रियते तत्र मायातीर्थे यशस्विनि। मायायोगी ततो भूत्वा मम लोकाय गच्छति॥३५॥
अन्यच ते प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व वसुंधरे। तीर्थं सर्वात्मकं नाम सर्वधर्मगुणान्वितम्॥३६॥

यस्तत्र स्नायते कश्चिद् वैशाखस्य तु द्वादशीम्।
निष्कलं लभते स्वर्गं सहस्रं दश पञ्च च॥३७॥

अथात्र मुञ्चते प्राणान् तीर्थे शीर्षकपे तथा। सर्वसङ्गं परित्यज्य मम लोकाय गच्छति॥३८॥
पुनरन्यत् प्रवक्ष्यामि शृणु मे शुभलोचने। तीर्थं पूर्णमुखं नाम तं तु कश्चिन्न जानते॥३९॥

तीर्थ है, जो जीव वहाँ जाता है और हे विशालाक्षि! जो कोई जन उसमें स्नान करता है, वे जन मरने के बाद निश्चय ही नन्दन वन में चला जाता है और फिर अप्सराओं के सहित दिव्य हजार वर्षों तक रमण करते हैं।।२८-२९।।

फिर जब दिव्य हजार वर्ष व्यतीत हो जाने पर वे जन विशाल कुल में उत्पन्न होते हैं। वहाँ वे गुणों से सम्पन्न धनाढ्य व्यक्ति होते हैं।।३०।।

जो कोई जन वहाँ पर कार्त्तिक शुक्ल द्वादशी तिथि के दिन प्राण त्याग करते हैं, उन्हें बहुत-सी सिद्धियों की प्राप्ति होती है। फिर वे मेरे लोक में निवास करते हैं।।३१।।

हे वसुन्धरे! इस प्रसङ्ग में और भी बातें मैं तुमको बतलाने जा रहा हूँ, उसे सुनो, वहाँ इस मायातीर्थ नाम के स्थान से माया का ज्ञान हुआ करता है।।३२।।

हे ब्रह्मन्! इस माया तीर्थ में जलक्रिया करने वाले व्यक्ति से हजार वर्ष तक महान् यशस्वी और मेरा भक्त बनकर रहना पसन्द करने वाला होता है।।३।।

वह मनुष्य कुबेर के महल के समान श्रेष्ठ निवास स्थान वाला होता है और एक हजार वर्ष तक स्वेच्छा से स्वर्ग में निवास करता है। फिर जो उस माया तीर्थ में मर जाता है, वे भी माया योगी होकर मेरे ही लोक में आता है।।३४-३५।।

हे वसुन्धरे! तुम्हें इसके अलावे अन्य भी विशेषता बतला रहा हूँ। वहाँ पर सब प्रकार के धर्मगुणों से सम्पन्न 'सर्वात्मक' नाम का तीर्थ भी है।।३६।।

जो कोई जन वैशाख मास की द्वादशी तिथि के दिन उस तीर्थ में स्नान करता है, वे जन पचास हजार वर्षों तक के लिए स्वर्ग को प्राप्त कर लेता है। फिर शीर्षकपि नाम के तीर्थ में प्राण त्याग करने वाले जन सभी प्रकार की आसक्तियों को त्याग कर मेरे लोक में गमन करता है।।३७-३८।।

हे शुभलोचने! मैं तुमको कुछ अन्य भी रहस्य को कहने जा रहा हूँ। मुझसे तुम उसे भी सुनो। वहीं पर पूर्णमुख नाम का तीर्थ भी स्थित है, जिनके बारे में जानने वाला कोई नहीं है।।३९।।

तत्र सर्वा भेवद् गङ्गा शीतलं जायते जलम्। तत्र चोष्णं भवयम्बु ज्ञेयं पूर्णमुखं तथा॥४०॥
स्नात्वा गच्छति सुश्रोणि सोमलोके महीयते। पश्यते तु सदा सोमं सहस्त्रदशपञ्च च॥४१॥
ततः स्वर्गात् परिभ्रष्टो ब्राह्मणश्चैव जायते। मद्भक्तः शुचिमान् दक्षः सर्वकर्मगुणान्वितः॥४२॥
अथवा म्रियते तत्र मासि मार्गशिरे तथा। शुक्लपक्षे च द्वादश्यां मम लोकं च गच्छति॥४३॥
तत्र मां पश्यते नित्यं दीप्तिमन्तं चतुभुर्जम्। न जन्म विद्यते तस्य मरणं च कदाचन॥४४॥
पुनरन्यत् प्रवष्यामि तच्छृणुष्व वसुंधरे। अशोकं नाम तीर्थं तु अशोकं तत्र तिष्ठति।
तस्य व्याप्तिं प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व वुसंधरे॥४५॥
अनन्यमानसो भूत्वा भक्तो भागवतो मम। यस्तु स्नाति तत्र तीर्थे कदाचिदपि मानवः।
दशवर्षसहस्त्राणि मोदते ह्यमरालये॥४६॥
ततः स्वर्गात् परिभ्रष्टस्तस्य तीर्थस्य यत्फलम्। द्रव्यवान् गुणवांश्चैव मद्भक्तश्चैव जायते॥४७॥
वैशाखस्य तु मासस्य शुक्लपक्षस्य द्वादशीम्। यदि मुञ्चेत् स्वकं देहं कृत्वा कर्म सुदुष्करम्॥४८॥
न जन्ममरणं तस्य न ग्लानिर्न च वै भयम्। सर्वसङ्गविनिर्मुक्तो मम लोकाय गच्छति॥४९॥
अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व वसुंधरे। तीर्थं करवीरकं नाम लोके मम सुखावहम्॥५०॥

सामान्यतया सम्पूर्ण गङ्गा नदी का जल शीतल ही रहा करता है। परन्तु जहाँ पर उसका जल उष्ण होता है, उसे ही पूर्णमुख तीर्थ कहा गया है।।४०।।

हे सुश्रोणि! उस तीर्थ में स्नान करने पर जीव सोमलोक में सम्मान प्राप्त करता है। वे जीव वहाँ पर पचास हजार वर्षों तक सदा सोम का दर्शन पाता है।।४१।।

फिर वह स्वर्ग से पतित होकर भी ब्राह्मण कुल में जन्म लेकर पवित्रात्मा कर्मठ, सर्वगुण सम्पन्न आदि के सहित मेरा भक्त होता है। फिर जो मार्गशीर्ष मास के शुक्लपक्ष की द्वादशी को देह का त्याग कर मेरे लोक में फुँच जाता है।।४२-४३।।

वहाँ पर वह व्यक्ति नित्य तेजवान् चतुर्भुज मेरे स्वरूप का दर्शन करने वाला होता है। फिर उसका कभी भी जन्म या मरण नहीं ही होता है।।४४।।

हे वसुन्धरे! पुनः भी अन्यान्य रहस्य की बात तुमसे कहने जा रहा हूँ। उसे भी सुनो।वहाँ अशोक नाम का एक तीर्थ है। वहाँ एक अशोक वृक्ष स्थित है। हे वसुधे! उसके फलों को कह रहा हूँ, उसे सुनो।।४५।।

जो जन भगवत्परायण मेरा भक्त होते हुए अनन्यचित्त से किसी समय उस तीर्थ में स्नान करता है, तो वे दस हजार वर्षों तक देवलोक में निवास करने वाला होता है।।४६।।

फिर उस स्वर्ग से पतित होकर भी वह यह फल पाता है कि वह धन, धर्म, गुणों से युक्त होकर मेरा भक्त भी होता है।।४७।।

फिर सुन्दर दुष्कर कर्मों को करते हुए यदि वह वैशाख मास के शुक्लपक्ष की द्वादशी तिथि के दिन अपना देह त्याग करता है, तो वह जन्म, मरण और आनन्द के नष्ट होने के भय से मुक्त होता है। वह समस्त आसक्तियों से मुक्त रहकर मेरे लोक को गमन करने वाला होता है।।४८-४९।।

हे वसुन्धरे! तुमको अन्य रहस्य की बात भी कहता हूँ, उसे सुनो। एक करवीरक नाम का तीर्थ है, वह भी मेरे लोक में सुख प्रदान करने वाला है।।५०।।

तस्य चिह्नं प्रवक्ष्यामि येन ज्ञापयते शुभे। पुरुषो ज्ञानवांश्चैव मम भक्तिसमन्वितः।।५१।।
माघमासे तु सुश्रोणि शुक्लपक्षे तु द्वादशीम्। पुष्पितः करवीरो वै मध्याह्ने तु न संशयः।।५२।।
तस्मिन् कृतोदकस्तीर्थे स्वच्छन्दगमनालयः। भ्रमेद् विमानमारूढो सहस्त्रं नरिनर्त्ति च।।५३।।
तत्राथ म्रियते भूमि माघमासे तु द्वादशीम्। ब्रह्माणं मां च पश्येत पश्यते च वृषध्वजम्।।५४।।
पुनरन्यत् प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व वसुंधरे। तस्य ब्राह्मणमुखस्य पूर्वं यत् कथितं मया।।५५।।
तस्मिन् कुब्जाम्रके भद्रे स्थानं तु मम रोचते। पुण्डरीक इति ख्यातं तीर्थमेव महद्यशः।।५६।।
तस्य चिह्नं प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व वसुंधरे। तस्य तीर्थस्य सुश्रोणि फलं तत्र महागुणम्।।५७।।
पुण्डरीकस्य यज्ञस्य यजमानस्य यत् फलम्। प्राप्नोति वसुधे तत्र स्वयमेव न संशयः।।५८।।
अथवा म्रियते तत्र लब्धसंज्ञो महातपाः। दशानां पुण्डरीकानां फलं प्राप्नोति मानवः।।५९।।
भुक्त्वा यज्ञफलं तत्र जातिशुद्धो महातपाः। सिद्धिं च लभते नित्यं मम लोकाय गच्छति।।६०।।

अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि प्रिये तद् वै श्रृणोहि मे।
अग्नितीर्थमिति ख्यातं गुह्यं कुब्जाम्रके स्थितम्।।६१।।

हे शुभे! अब उसका चिह्न कहता हूँ, जिससे उसका पहचान होता है। ज्ञानी और मेरा भक्त जन ही वहाँ पहुँच पाते हैं।।५१।।

हे सुश्रोणि! वहाँ उस तीर्थ में निश्चय ही माघमास के शुक्लपक्ष की द्वादशी तिथि को मध्याह्न काल में करवीर का पुष्प खिला हुआ दिखता है।।५२।।

उस तीर्थ में स्नान आदि जल क्रिया करने वाले जनस्वेच्छा के अनुरूप रमण करने वाले लोक में पहुँचता है और विमान में सवार होकर हजार वर्षों तक अतिशय नृत्य-आनन्द करता है तथा हे पृथ्वि! उस तीर्थ में वह माघ मास की द्वादशी को शरीर त्याग कर मेरा, ब्रह्मा और शिव स्वरूप त्रिदेव का दर्शन करने वाला होता है।।५३-५४।।

हे पृथ्वि! अब अन्यान्य रहस्य की बातें कहता हूँ, उसे भी सुनो, जिसे मैंने उन मुख्य ब्राह्मण से पूर्व में भी कहा था।।५५।।

वह यह है कि उस कुब्जाम्रक तीर्थ में पुण्डरीक नाम से सुख्यात महायशस्वी एक तीर्थ स्थान है, जो मुझे बहुत पसन्द है।।५६।।

हे वसुन्धरे! उसका चिह्न याने विशेषता अब मैं तुमको कहता हूँ, उसे सुनो—हे सुश्रोणि! वहाँ के उस तीर्थ का महागुण सम्पन्न फल है।।५७।।

हे पृथ्वि! पुण्डरीक यज्ञ करने वाले यजमान को जो फल प्राप्त होता है, वहाँ वह फल निस्संशय स्वतः ही मिल जाता है। अथवा ज्ञानवान् महान् तपस्वी स्वरूप में जो जन वहाँ अपना प्राण का त्याग करते हैं, उसको दस पुण्डरीक यज्ञों को करने का फल मिल जाता है।।५५-५९।।

वहाँ पर शुद्ध जाति में जन्म लेने वला महान् तपस्वी ही यज्ञफल का भोग करते हुए नित्य सिद्धि को प्राप्त करने वाला हो जाता है। फिर मेरे लोक में चला जाता है।।६०।।

हे प्रिये! तुमको मैं और भी रहस्य की बातों को बतलाता हूँ। तुम उसको मुझसे सुनो। उस कुब्जाम्रक में अग्नि तीर्थ नाम से प्रसिद्ध एक गुप्त स्थान है।।६१।।

पुनः प्रजायते चैव द्वादश्यां पञ्चवर्जितः। कौमुदस्य तु मासस्य मासि मार्गशिरस्य च॥६२॥
आषाढस्य च मासस्य शुक्लपक्षे तु द्वादशीम्। यश्चैव माधवे मासि समये हृदि वर्त्तते।
तेषां शुक्ले तु द्वादश्यां तीर्थं तिष्ठति तत्त्वतः॥६३॥
तस्य चिह्नं प्रवक्ष्यामि देवि तत्त्वं विजानतः। येन चिह्नेन विज्ञेयं स तीर्थवरमामकम्।
एकचित्तं समाधाय तच्छृणोहि वसुंधरे॥६४॥
मुच्य भागवतान् शुद्धान् मम संहितपाठकान्।
न कश्चित् तद् विजानाति यस्तु शास्त्रं न जानति॥६५॥
फलं तस्य प्रवक्ष्यामि मृतोऽपि स्नातकोऽपि वा। एकचित्तं समाधाय तच्छृणोहि वसुंधरे॥६६॥
अग्नितीर्थेषु स्नातो वै तस्मिन् कुब्जाम्रके तु वा।
अग्नितीर्थे महाभागे शृणु स्नानेन यत्फलम्॥६७॥
सप्त कृत्वाऽग्निमेधानां यत्फलं भवति प्रिये। प्राप्नोति स महाभागे स्नानमात्रे न संशयः॥६८॥
अथवा म्रियते तत्र तत्त्वेनैकैकद्वादशीम्। विंशद्रात्रोषितस्तत्र मम लोकाय गच्छति॥६९॥
तीर्थानि तस्य वक्ष्यामि चिह्नानि शृणु सुन्दरि।
येन विज्ञायते विद्वान् मम भक्त्या सुखावहम्॥७०॥

पञ्च विकार याने काम, क्रोध, लोभ, मोह और मद रूपी दोषों से विमुक्त भाव पुनः द्वादशी तिथि में जन्म लेता है। फिर कौमुद मास याने कार्तिक, मार्गशीर्ष, वैशाख, आषाढ़ आदि मासों में जिनके हृदय में इस तीर्थ की इच्छा हो जाती है, उनके लिए द्वादशी को तत्त्वतः वह तीर्थ उपस्थित हो जाता है।।६२-६३।।

हे देवि! अब मैं उसकी विशेषता को बतलाने जा रहा हूँ, उसे तुम सुनो।

जिस विशेषता या चिह्न से इस मेरा तीर्थ का पहचान होता है उसको हे पृथ्वि! एकाग्रमन से उसे तुमको सुनना चाहिए।।६४।।

मेरे संहिता का पाठ करने वाले शुद्ध भगवद् भक्तों के अलावे अन्य कोई भी जो शास्त्रज्ञाता नहीं है, वह उस तीर्थ को नहीं जानता।।६५।।

उस तीर्थ में मरने या स्नान करने का जो फल होता है, उसे कहता हूँ। हे वसुन्धरे! एकाग्रचित्त से उसे सुनो।।६६।।

उस कुब्जाम्रक तीर्थ में ही स्थित अग्नि तीर्थ में स्नान करने से मनुष्य महान् पुण्य प्राप्त करने वाला होता है। हे महाभागे! उस अग्नि तीर्थ में स्नान करने का जैसा फल होता है, वैसे फलों को सुनो।।६७।।

हे महाभागे! प्रिये!! सात बार अग्निमेध यज्ञ करने से जो फल होता है, उस फल को अग्नितीर्थ में स्नान करने मात्र से ही जीव प्राप्त करता है।।६८।।

अथवा किसी एक द्वादशी तिथि के दिन जो मरता है या जो बीस रात्रि तक वहाँ पर निवास करता है, वह मेरे लोक में निश्चय ही पहुँचता है।।६९।।

हे सुन्दरि! अब ऐसे तीर्थों की विशेषता को कहता हूँ, जिसे जानने मात्र से मनुष्य विद्वान् तो होता ही है, उसे मेरी सुखप्रदायक भक्ति भी प्राप्त होती है।।७०।।

उष्णं भवति हेमन्ते वसुधा तत्र निष्कलम्। गङ्गा तद् भवते चोष्णा ग्रीष्मे वै शीतला भवेत्॥७१॥
एतच्चिह्नं महाभागे तीर्थमाग्नेयमुत्तरे। तरन्ति मानवा येन घोरं संसारसागरम्॥७२॥

अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि देवि कुब्जाम्रके महत्।
वायव्यमिति विख्यातं तीर्थं धर्माद् विनिःसृतम्॥७३॥
तस्मिंस्तीर्थे तु यः स्नातः कृतोदककृताग्निकः।
वाजपेयस्त यज्ञस्य फलं प्राप्नोति निष्कलम्॥७४॥

अथवा म्रियते तत्र वायुतीर्थे महाह्रदे। दिनानि दशपञ्चैव कृतमेव हि मामकम्॥७५॥
न तस्य म्रियते भूमि जन्म तस्य न विद्यते। जायते च चतुर्बाहुर्मम लोके प्रतिष्ठितः॥७६॥
तस्य चिह्नं प्रवक्ष्यामि वायुतीर्थस्य सुन्दरि। येन चिह्नेन विज्ञेयः शुभैर्भागवतैस्तथा॥७७॥
अश्वत्थवृक्षपत्राणि चलन्ति नित्यशोऽवने। चतुर्विंशतिद्वादश्यां येन प्रज्ञायते विभो॥७८॥
पुनरन्यत् प्रवक्ष्यामि तीर्थे कुब्जाम्रके भुवि। शक्रतीर्थमिति ख्यातं सर्वसंसारमोक्षणम्॥७९॥
तस्मिन् स्नातो वरारोहे शक्रतीर्थे महायशाः। शक्रस्य वसते लोके वज्रहस्तो न संशयः॥८०॥
अथवा म्रियते देवि शक्रतीर्थे महातपे। उपोष्य दशरात्राणि मम लोकाय गच्छति॥८१॥

हेमन्त ऋतु काल में वहाँ की सम्पूर्ण भूमि उष्णता को प्राप्त करती है। अतः उस काल में गङ्गा उष्ण और ग्रीष्म में शीतलतायुक्त हो जाती है।।७१।।

हे महाभागे! उत्तर दिशा में स्थित आग्नेय तीर्थ की यह विशेषता है कि मनुष्य उसके प्रभाव से घोर संसार सागर को पार कर जाता है।।७२।।

हे देवि! अन्य रहस्यात्मक बातों को भी तुमसे कहता हूँ। उस कुब्जाम्रक तीर्थ में धर्म से उत्पन्न 'वायव्य' नाम का एक प्रसिद्ध तीर्थ है।।७३।।

उस तीर्थ में स्नान करने वाले जन पितृ-तर्पणादि जलक्रिया एवं हवनादि अग्निकर्म को करते हैं, उनको पूर्णता से वाजपेय यज्ञ करने का फल मिलता है।।७४।।

अथवा जो जन वायुतीर्थ के महाह्रद में स्थित रहकर प्राण का त्याग करते हैं, अथवा पन्द्रह दिनों तक उस तीर्थ में वास करते हैं, वह मेरा कर्म करने वाला होता है। हे भूमि! वह पुनः पुनः न मरता है औरन उसका जन्म ही होता है। वह व्यक्ति कतुर्भुज होकर मेरे लोक में प्रतिष्ठित होता है।।७५-७६।।

हे सुन्दरि! अब मैं तुम्हें वायुतीर्थ के उन विशेषताओं को कहता हूँ, जिनसे वह तीर्थ कल्याणमय भगवद् भक्तों द्वारा पहचाना जाता है।।७७।।

वहाँ के वन में नित्य अश्वत्थ वृक्ष के पत्र हिलते रहा करते हैं। जिससे बारह मासों के चौबीस द्वादशी तिथियों में उस स्थान पर परमेश्वर की स्थिति का ज्ञान होता है।।७८।।

हे पृथ्वि! फिर से अन्य रहस्यात्मक बातें बतलाता हूँ। उस कुब्जाम्रक तीर्थ में ही सम्पूर्ण संसार से मुक्त करने वाला शक्रतीर्थ भी स्थित है।।७९।।

हे वरारोहे! कुब्जाम्रक तीर्थ में स्थित शक्रतीर्थ में स्नान आदि जलक्रिया करने वाला मनुष्य महान् यशस्वी होता है और वह निस्संशय हाथ में वज्र धारण कर इन्द्रलोक में निवास करने वाला होता है।।८०।।

हे देवि! हे महातपे!! दस रातों तक उपवास करते हुए इन्द्रतीर्थ में प्राण छोड़ने वाला मरने पर मेरे लोक में जाकर रहता है।।८१।।

तस्य चिह्नं प्रवक्ष्यामि येन विज्ञायते ततः। एकचित्तं समाधाय शृणु सुन्दरि तत्त्वतः॥८२॥
पञ्चवृक्षं ततस्तत्र तस्य तीर्थस्य दक्षिणे। भूमि येन स विज्ञेयः शक्रतीर्थमिति स्मृतम्॥८३॥
पुनरन्यत् प्रवक्ष्यामि तीर्थमेव वसुंधरे। वरुणेन तपस्तप्तं सहस्राः पञ्च सप्त च।
तस्य स्नातस्य वक्ष्यामि पृच्छितं चैव यत्फलम्॥८४॥
मृतो वा येन प्राप्नोति पुरुषः संशितव्रतः। अष्टवर्षसहस्राणि गत्वा वै वरुणालयम्।
स्वच्छन्दमनसो भूत्वा एवमेव न संशयः॥८५॥
अथवा म्रियते तत्र विंशरात्रोषितो नरः। सर्वसङ्गान् परित्यज्य मम लोकाय गच्छति॥८६॥
तस्य चिह्नं प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व वसुंधरे। तत्र धारा पतत्येका एकरूपा सदा भवेत्।
न वर्धते च वर्षासु घर्मे न ह्रसते पुनः॥८७॥
सप्तसामुद्रकं नाम तस्मिन् कुब्जाम्रके स्थितम्। तस्मिन् कृतोदको भूमि नरो धर्मपरायणः।
त्रयाणामश्वमेधानां फलं प्राप्नोति मानवः॥८८॥
शीघ्रं गच्छति वै स्वर्गं सहस्रं त्रीणि पञ्च च। ततः स्वर्गात् परिभ्रष्टः कुलवाञ्जायते द्विजः।
वेदवेदाङ्गकुशलः सोमपश्चैव जायते॥८९॥
अथात्र मुञ्चते प्राणान् मुक्तः सङ्गविवर्जितः। उषित्वा सप्तरात्रं वै मम लोकाय गच्छति॥९०॥

अब मैं उसकी भी विशेषताओं को कहता हूँ। इससे उसका परिचय पहचान होता है। हे सुन्दरि! उसे एकाग्रमन से तुम सुनो।।८२।।

हे भूमि! उसे दक्षिण भाग में पाँच प्रकार के वृक्ष हैं। जिन वक्षों से भी शक्र तीर्थ को पहचाना जाता है।।८३।।

हे वसुन्धरे! मैं तुमको फिर से अन्य तीर्थ के बारे में कहता हूँ। वहाँ पर वरुण ने द्वादश हजार वर्षों तक तप किया था। उस तीर्थ में स्नान करने वाले को प्राप्त होने वाले फल मैं कहता हूँ, जिसे तुमने पूछा था।।८४।।

अथवा कठिनतर व्रत धारण करने वाला व्यक्ति वहाँ मरने के बाद आठ हजार वर्षों तक वरुणालय में जाकर स्वेच्छापूर्वक रमण करने वाला होता है, संशय नहीं।।८५।।

अथवा बीस रात तक उपवास करते हुए वहाँ मरनेवाला सब आसक्तियों का त्याग कर मेरे लोक में चला आता है।।८६।।

हे वसुन्धरे! उसकी विशेषताओं को कहने जा रहा हूँ, उसे सुनो। वहाँ पर एक नदी की धारा पतित होती है, जो सदा एक रूप में रहा करती है, वह वर्षा काल में भी नहीं बढ़ती है और ग्रीष्म काल में घटती भी नहीं है।।८७।।

उसी कुब्जाम्रक तीर्थ में सप्तसामुद्रक नामक तीर्थ है। हे भूमि! उसमें स्नानादि जल क्रिया करने वाला धर्मनिष्ठ व्यक्ति तीन अश्वमेध यज्ञों का फल पाता है।।८८।।

वह प्राण त्याग कर शीघ्र स्वर्ग जाता है, फिर वहाँ आठ हजार वर्षों तक रहकर स्वर्ग से पतित होकर कुलीन, वेदवेदाङ्ग कुशल और सोमपान करने वाला द्विज के रूप में जन्म लेता है।।८९।।

फिर वह सात रात्रियों तक वहाँ उपवास करते हुए प्राणोत्सर्ग कर निःसङ्ग मुक्त पुरुष होकर मेरे लोक में चला जाता है।।९०।।

तस्य चिह्नं प्रवक्ष्यामि तीर्थभूमिं महीधरे। वैशाखस्य तु द्वादश्यां विभूतिस्तत्र जायते।
वहेच्च विमला गङ्गा स्वर्गतोयविभूषिता॥९१॥
तस्मिंस्तीर्थे महातेजः खीरवर्णं पुनर्भवेत्। पुनश्च पीतवर्णाभा पुनः रक्तोदका भवेत्॥९२॥
वर्णं मरकताभाति पुनर्मुक्तासमप्रभम्।एतैश्चिह्नैस्तु विज्ञेयं तत् तीर्थं परमात्मभिः॥९३॥
अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि तीर्थं कुब्जाम्रके भुवि। तीर्थं मानसरं नाम सर्ववैष्णवकं शुभम्॥९४॥
तस्मिन् स्नातो वरारोहे गच्छते मानसं सरः। देवान् पश्यति वै सर्वान् रुद्रेन्द्रसमरुद्गणान्॥९५॥
अथ तत्र मृतो भूमि त्रिंशद्रात्रोषितो नरः। सर्वसविनिर्मुक्तो मम लोकाय गच्छति॥९६॥
तस्य चिह्नं प्रवक्ष्यामि येन प्रज्ञायते नरैः। परागर्वाचच विततं मानुषाणां दुरासदम्॥९७॥
एतत् ते भूमि विज्ञेयो यथैषो मानसं सरः। शुभैर्भागवतैर्ज्ञेयो मम कर्मसुनिष्ठितैः॥९८॥
एतत् तीर्थं महाभागे तस्मिन् कुब्जाम्रके स्मृतम्।
सिद्धिकामस्य विप्रस्य रैभ्यस्य परिकीर्त्तितम्॥९९॥
अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व वसुंधरे। तत्र कुब्जाम्रके वृत्तं पुराश्चर्यं महौजसम्॥१००॥

हे पृथ्वि! अब मैं उस तीर्थ की भूमि की विशेषता को कहता हूँ। वहाँ पर वैशाख मास की द्वादशी तिथि के दिन ऐश्वर्य उत्पन्न होता है। वहाँ पर स्वर्गीय जल से सुशोभित निर्मल गङ्गा नदी बहा करती है।।९१।।

उस तीर्थ में प्रवाहित होने वाली गङ्गा का जल किसी समय समुज्ज्वल दूध सदृश वर्ण वाला तो किसी समय पीले वर्ण वाला और किसी समय रक्तवर्ण वाला हो जायाकरता है।।९२।।

किसी समय उस गङ्गा का जल मरकतमणि के समान और किसी समय मुक्ता के समान वर्ण का हो जाता है। अतः आत्मज्ञानी पुरुष इन्हीं चिह्नों या विशेषताओं से उस तीर्थ का ज्ञान किया करते हैं।।९३।

हे भूमि! अब कुब्जाम्रक तीर्थके अन्यान्य तीर्थों को भी कहता हूँ। समस्त विष्णु भक्तों के लिए कल्याणप्रद मानसर नाम का तीर्थ है।।९४।।

हे वरारोहे! उसमें स्नान करने वाला मानस सरोवर पर जाया करता है, और वह वहाँ पर रुद्र, इन्द्र, मरुद्गणों के साथ अन्यान्य देवताओं का भी दर्शन कर अपने को धन्य कर पाता है।।९५।।

फिर हे भूमि! तीस रातों तक वहाँ पर रहते हुए उपवास कर मरने पर मनुष्य बस आसक्तियों से मुक्त होकर मेरे लोक में आ जाता है।।९६।।

अब मैं उनका कुछ ऐसी विशेषताओं को कहता हूँ, जिनसे मनुष्य उनका पहचान करने में सफल होता है। वह पूर्व और पश्चिम की दिशा में विस्तृत दीखने वाला मनुष्यों के लिए अत्यन्त अगम्य स्थान है।।९७।।

हे भूमि! तुमको यह ज्ञात होना चाहिए कि यह मानस सरोवर के समान है। मेरे ही कर्मों में आसक्त रहने वाला, पवित्र, भगवद् भक्तों को इसकी जानकारी रहती है।।९८।।

हे महाभागे! उस कुब्जाम्रक में यह तीर्थ सिद्धि की कामना वाले रैभ्य ब्राह्मण के नाम से सुख्यात है।।९९।।

हे वसुन्धरे! अब मैं तुम्हें अन्य भी तीर्थों को कहता हूँ, उसे सुनो। पुरातन काल में उस कुब्जाम्रक तीर्थ में एक महातेज सम्पन्ना आश्चर्यमय घटना हुयी थी।।१००।।

मम निर्माल्यपार्श्वे वै व्याली वसति निर्भया। गन्धमाल्योपहाराणि भक्षयन्ती यदृच्छया॥१०१॥

कस्यचित् त्वथ कालस्य नकुलस्य चागतः।
पश्यते च ततस्तां वै रममासणां च निर्भयाम्।
नकुलेन सह व्याली तयोर्युद्धं प्रवर्त्तत॥१०२॥

सम्पूण ते तु मध्याह्ने माघमासे तु द्वादशीम्। तया स दष्टो नकुलो नाशाय मम मन्दिरे॥१०३॥
तेनापि विषदिग्धेन व्याली शीघ्रं निपातिता। उभौ चान्योन्ययुद्धेतामुभौ पञ्चत्वमागतौ॥१०४॥
व्याली प्राग्ज्योतिषे जाता राजपुत्री यशस्विनि। नकुलो जायते देवि कोशलेशु जनाधिपः।

रूपवान् गुणवान् देवि सर्वशास्त्रकलान्वितः॥१०५॥

तौ तु दीर्घेण कालेन सौख्येन परिरञ्जितौ। तौ च वधर्ध्तमन्योन्यं शुक्लपक्षे यथा शशी॥१०६॥

दृष्ट्वा नकुलं सा कन्या शीघ्रं वै हन्तुमिच्छति।
व्यालीं दृष्ट्वा राजपुत्रः सहसा हन्तुमिच्छति॥१०७॥

अथ तस्यां तु कालेन कोशलः कामरूपकः। मत्प्रसादेन वै देवि सम्बन्धश्चैव जायते।

उभयोश्च कृतोद्वाहः प्राग्ज्योतिषसकोशलौ॥१०८॥

दृष्टप्रीतिस्तु तौ जातौ यथा तु जतुकाष्ठवत्। रमतोः भ्रमतोस्तत्र यत्र तत्रापि रोचते।

यथा शची च शक्रश्च विचरन् नन्दने वने।१०९॥

मेरे निर्माल्य के समीप भयशून्या एक सर्पिणी रहा करती थी, जो इच्छानुसार उपहार स्वरूप चढ़ाये गये गन्ध और माल्यादि का भक्षण किया करती थी।।१०१।।

किसी समय को पाकर वहाँ पर एक नेवला आया और उसने निर्भयर्पूक विचर रही उस सर्पिणी को देख लिया। फिर उस नेवला और सर्पिणी दोनों में परस्पर युद्ध-सी छिड़ गई।।१०२।।

माघ मास की द्वादशी तिथि के दिन मध्याह्नकाल व्यतीत होने पर उस सर्पिणी ने मेरे मन्दिर में उस नेवला को मारने हेतु डँस लिया।।१०३।।

इस प्रकार विष से व्याकुल होकर उस नेवला ने भी जल्दी ही उस सर्पिणी को मार डाला। वे दोनों परस्पर लड़ते-लड़ते एक साथ ही मर गये।।१०४।।

हे देवि! वहीं सर्पिणी मरकर प्राग्ज्यौतिष देश में यशस्विनी राजपुत्री होकर उत्पन्न हुयी और वह नकुल कोशल देश का राजा होकर प्रतिष्ठित हुआ। हे देवि! वह सुन्दर स्वरूप और गुण युक्त तथा समस्त शास्त्रों एवं कलाओं से सम्पन्न था।।१०५।।

फिर वे दोनों बहुत समय तक परस्पर सुख के साथ अनुरक्त भी रहे और शुक्लपक्षीय चन्द्र की तरह वे दोनों बढ़ते गये।।१०६।।

लेकिन नकुल को देखकर वह कन्या उसे मारने की कामना करती थी तथा सर्पिणी को देखकर वह राजपुत्र अचानक उसे मारना चाहता था।।१०७।।

हे देवि! फिर मेरी कृपा से उन दोनों कोशल देश के राजपुत्र और कामरूप की कन्या का परस्पर विवाह हो गया।।१०८।।

जतुकाष्ठ याने लाख की लकड़ी के समान वे दोनों एक-दूसरे के दर्शन मात्र से परस्पर अनुरक्त भी होगा।

एवं दीर्घेण कालेन तयोः प्रीतिर्न हीयते। वर्धते च यथान्यायं वेलामिव महोदधिः॥११०॥
ते रमन्ति विहारेषु देवतायतनेषु च। एवं तयोर्गतः कालो वर्षाणां सप्तसप्ततिः।
ते न बुद्ध्यन्ति चात्मानं मम मायाप्रमोहितौ॥१११॥
एवं तौ विहरन्तौ तु तस्मिन्नुपवने ततः। दृष्ट्वा व्यालीं राजपुत्रस्ततो हन्तुं व्यवस्थितः॥११२॥
स तया धार्यमाणो वै व्यालीं हन्तुं ततोद्यतः। यथा गरुडो नागानां हतवान् विनतात्मजः॥११३॥
स तथा वार्यमाणश्च शीघ्रमेव निपातिता। रुषिता राजपुत्री सा न किञ्चिदपि भाषितः॥११४॥
ततस्तस्यां तु वेलायां राजपुत्र्याः समग्रतः।
विलान्निष्क्रम्य नकुलमाहारपरिकाङ्क्षिणम्॥११५॥
दृष्ट्वा च रममाणं सा नकुलं शुभदर्शनम्। क्रोधो वै जायते तस्या नकुलं हन्तुमुद्यता।
वारिता राजपुत्रेण सुता प्राग्ज्योतिषस्य वै॥११६॥
नकुलं घातितं दृष्ट्वा शुभगं सर्वदर्शिनम्। कुपितो राजपुत्रो वै राजपुत्र्यां प्रभाषत॥११७॥
स्त्रीणां तु भर्त्ता वै मान्यः सदैव तु विधीयते। मया वै धार्यमाणेन नकुलं यत्त्वया हतम्॥११८॥
ततस्तस्य वचः श्रुत्वा राजपुत्री यशस्विनी। क्रोधमूर्च्छितसर्वाङ्गी राजपुत्रमथाब्रवीत्॥११९॥

वे दोनों अपनी कामनाओं के अनुरूप जहाँ-तहाँ इस तरह विहार और भ्रमण करने लगे, जिस प्रकार इन्द्र और इन्द्राणी नन्दनवन में विहार किया करते हैं।।१०९।।

इस प्रकार दीर्घकाल तक उन दोनों की प्रीति में किसी तरह कमी नहीं हुई और वह प्रीति यथावसर पूर्णिमा तिथि के समुद्र की तरह बढ़ती गई।।११०।।

इस क्रम में वे दोनों विहार करने योग्य स्थानों और देवस्थानों में रमण करते रहे। इस तरह उन दोनों का साथ सतहत्तर वर्ष बीत गये। मेरी माया से मोहित होकर दोनों परस्पर एक-दूसरे को नहीं जान पाये।।१११।।

तत्पश्चात् एक बार एक उपवन में इस प्रकार विहार करते हुए राजकुमार एक सर्पिणी को मारने के लिए उद्यत हो गया।।११२।।

फिर उस कन्या के द्वारा मारने से मना करने पर भी राजकुमार उस सर्पिणी को मारने के लिए इस प्रकार उद्धत हो गया, जिस प्रकार विनता पुत्र गरुड़ नागों को मारा करता है।।११३।।

लेकिन उस राजकुमारी के मना करने पर भी उस राजकुमार ने शीघ्रता से उस सर्पिणी को मार ही दिया। उस समय क्रोधित राजकुमारी ने राजकुमार से कुछ नहीं कहा।।११४।।

तत्पश्चात् उस समय ही राजकुमारी के सम्मुख आहर की कामना से कोई नेवला अपने बिल से बाहर निकला। उस राजपुत्री ने भी उस सर्प की इच्छा वाले नेवला को देख लिया।।११५।।

इस तरह भ्रमण करते हुए उस सुन्दर से नेवला को देखकर राजकुमारी को क्रोध आगया। फिर राजकुमार के सामने ही उसके मना करने पर भी वह कामरूप की राजकुमारी नकुल को मारने के लिए प्रस्तुत हो गयी।।११६।।

फिर सबके लिए दर्शनीय सुन्दर नेवला को मारा गया देखकर रोषित राजकुमार ने राजकुमारी से कहा— इस प्रकार का सदा से चला आ रहा शिष्टाचार है कि स्त्रियों के लिए पति मान्य होता है। फिर भी मेरे रोकने पर भी तुमने उस मेवला को क्यों मार दिया।।११७-११८।।

उसके इस वचन को सुनकर यशस्विनी राजकुमारी का सारा शरीर रोष से भर गया। फिर उसने राजकुमार से कहा—।।११९।।

अनापराधाचरिता त्वया सर्पी निपातिता। किं तत्र नापराधं ते निहिता क्षितिचारिणी।
तत्त्वया धार्यमाणेन शीघ्रमेव निपातिता॥१२०॥

राजपुत्र्या वचः श्रुत्वा राजपुत्रो यथाब्रवीत्। वाग्भिः सकटुकं प्रोक्तं म पूर्वं कदाचन॥१२१॥

सर्पमाशीविषं भद्रे तीक्ष्णदंष्ट्रो महाभयः। दशते मानुषं शीघ्रं तेन सर्पो मया हतः॥१२२॥

प्रजा पाल्या मया भद्रे ये केचिदपथे स्थिताः।
सर्वे ते नाशितव्या वै राज्ञा शास्त्रे यथा श्रुतिः॥१२३॥

श्वापदं ये तु हिंसन्ति मानुषं तेऽपि कामतः।
सस्यं च येऽपि हिंसन्ति तेऽपि वध्या न संशयः॥१२४॥

मैव राजधर्मो वै कर्त्तव्यो राजकर्मणि। नकुलेनापराधं ते आख्याहि यदि किं कृतम्॥१२५॥

दर्शनीयः सुरूपश्च राजयोग्यो गृहेषु च। मङ्गल्यश्च पवित्रश्च नकुलश्च निपातितः॥१२६॥

स च मे धार्यमाणेन राजपुत्रीं न तां सतीम्। न तां भद्रे प्रशंसामि नकुलं गृह्यमेव च॥१२७॥

यन्मया धार्यमाणोऽपि त्वया च नकुलो हतः।
मम चापि न भार्याऽसि अहं चापि पतिर्न च॥१२८॥

तुमने तो विना अपराध के सर्पिणी को मार दिया था। क्या तुमने उस समय मेरे मना करने पर भी भूमि पर घूम रही सर्पिणी को शीघ्रता से ही मार कर अपराध नहीं किया था?।।१२०।।

तत्पश्चत् पहले कभी भी अपने प्रति कटुवाणी का व्यवहार नहीं करने वाली अपनी पत्नी राजकुमारी की वाणी को सुनकर राजकुमार ने कहा।।१२१।।

हे भद्रे! तीक्ष्ण दाढ़ों वाला विषधर सर्प अत्यन्त भयानक होता है। वह मनुष्यों को भी शीघ्र डस लेता है। इसी से मैंने सर्प को मार डाला था।।१२२।।

हे भद्रे! मुझे प्रजापालन करना चाहिए। इसीलिए जो भी कोई अपथ गमन करने वाला होता है, श्रुति निर्देशानुरूप राजा को उन सभी का नाश करना चाहिए।।१२३।।

फिर भी, जो कोई भी पशु मनुष्य की हत्या करने वाले हैं या फिर अन्नों को नष्ट करते हैं, वे सब निस्संशय वध के योग्य हुआ करते हैं।।१२४।।

राजकर्म के निमित्त राजधर्म का पालन करना मेरा दायित्व व कर्त्तव्य हो जाता है। मुझे कहो कि नेवला याने नकुल ने तुम्हारा क्या आपराध किया था?।।१२५।।

तुमने तो दर्शनीय और अपने गृह में राजा को रखने योग्य मंगलकारी और पवित्र नकुल को मार दिया।।१२६।।

हे राजकुमारी! मेरे मना करने पर भी उसे मारना उचित तो नहीं था न। हे भद्र/ मैं तुम्हारे द्वारा उसके मारे जाने की प्रशंसा नहीं कर सकता। इसलिए कि नकुल घर में रखने के योग्य है।।१२७।।

चूँकि तुमने मेरे मना करने पर भी नकुल को मार डाला। अतः तुम मेरी पत्नी नहीं और न मैं तुम्हारा पति ही हूँ।।१२८।।

किं च ते न हतो वाऽद्य अवध्याः सर्वतः स्त्रियः।
एतद् वाक्यमथोक्त्वा च निवर्त्य नगरं प्रति॥१२९॥
एवं क्रोधं समादाय नष्टप्रीतिरुभौ तथा। एवं स च गतः कालो दम्पत्योस्तदनन्तरम्।
न रञ्जयति चान्योन्यं यथान्यायेन दूषणम्॥१३०॥
राजपुत्रस्तु सुश्रोणि शरीरं नाभिरञ्जति। यथान्यायं विधानेन नकुलाद् वधकोपितः॥१३१॥
अथ दीर्घेण कालेन कोशलाया जनाधिपः। शृणोति तां कथां सर्वां वधं नकुलसर्पयोः॥१३२॥
एवं श्रुत्वा यथान्यायं सक्रोधमुभयोरपि।
समानीय ततः सर्वान् अमात्यान् कञ्चुकीस्तथा।
वधूपुत्रं समानीय राजा वचनमब्रवीत्॥१३३॥
कुतः पुत्र गतः प्रेम वध्वर्थे क्व गतस्तव। प्रीतिर्जतुकाष्ठवद् या पुत्र नष्टा कुतस्तु सा॥१३४॥
दर्पणेष्विव पश्यामि प्रतिविम्बं यथात्मनि। तथास्ते नापसव्येन कदाचिदपि पुत्रक॥१३५॥
दक्षा सुशीला धर्मिष्ठा न च वै त्यक्तुमर्हसि। अप्रियं नोक्तपूर्वं तु परे परिजने जने।
मिष्ठान्नसाधने ह्येषा वधूस्त्यक्तुं न युज्यते॥१३६॥
धनं सर्वं तु ते धर्मो धर्मा योषिन्न संशयः। अहो संत्यजनादेव स्त्रीणां वै कुलसन्ततिः॥१३७॥

वैसे स्त्रियाँ सब प्रकार से अवध्य होती हैं। अतः मैं आज तुम्हारी हत्या नहीं करता। इस प्रकार के वचन कहते हुए वह राजकुमार अपने नगर की ओर वापस आ गया।।१२९।।

इस प्रकार एक-दूसरे पर क्रोध करने के कारण उन दोनों का पारस्परिक प्रेम नष्ट-सा हो गया। उन पति एवं पत्नी का समय इस प्रकार बीतने लगा। न्याय के कारण उत्पन्न दोष से वे दोनों एक-दूसरे का अनुरञ्जन नहीं किया करते थे।।१३०।।

हे सुश्रोणि! वह राजकुमार नेवला के वध से ऐसा कुपित था कि वह अपना यथोचित विधि से अपने शरीर को भी अलंकृत नहीं किया करते थे।।१३१।।

फिर बहुत काल व्यतीत होने पर कोशलपुरी के राजा ने नकुल और सर्प के मारे जाने के सम्बन्ध की कथा को सुनी।।१३२।।

इस प्रकार उस कथा को सुनकर राजा उन दोनों के ऊपर न्यायानुरूप रूष्ट हो गये। तब राजा ने सभी अमात्यों, कञ्चुकियों, वधू और अपने पुत्र को बुलाकर इस प्रकार से कहा हे पुत्रा! तुम दोनों का जतुकाष्ठ के समान वर्द्धनशील प्रेम क्यों नष्ट हो गया। तुम्हारी वह प्रीति कहाँ चली गई है।।१३३-१३४।।

हे पुत्र! दर्पण में प्रतिबिम्ब की तरह मैं तुम दोनों का स्वरूप चेहरा देख रहा हूँ। अस्तु! तुम्हारे पारस्परिक व्यवहार कभी भी विरुद्ध नहीं होती थी।।१३५।।

तुम दक्ष, सुशील, और धर्मिष्ठा वधू को मत छोड़ो। तुम्हारे दूसरे सेवकों से भी पहले अप्रिय वचन इसने नहीं कहा था। मिष्ठान्न सेवन करने के उद्देश्य से यह वधू कभी भी त्याग करने के योग्य नहीं है।।१३६।।

तुम्हारा सर्वस्व धन धर्म ही है। निस्संशय पत्नी धर्म स्वरूपा होती है। अहा! सत्य और धर्म से युक्त मनुष्य से ही स्त्रियों में कुल की वृद्धि करने वाली सन्तति भी उत्पन्न होती है।।१३७।।

ततः पितुर्वचः श्रुत्वा राजपुत्रो यशस्विनि। उभौ च चरणौ गृह्य पितरं प्रत्यभाषत॥१३८॥
दोषो न विद्यते तात स्नुषायां तव निष्कला। वार्यमाणा मया राजन् नकुलश्चाग्रतो हतः॥१३९॥
ततो मे जायते मन्युर्दृष्ट्वा नकुलं पातितम्। क्रोधासक्ते सतप्तेन येन वै परिभाषिता॥१४०॥
ततः पतिवचः श्रुत्वा प्राग्ज्योतिषकुलोद्भवा। शिरसा प्रणतिं कृत्वा वाक्यं चेदमुवाच ह॥१४१॥
नापराधोऽतिभीतश्चावनतो भुजगस्तथा। शतशो वार्यमाणेन शीघ्रमेव निपातितः॥१४२॥
ततः सर्पवधं दृष्ट्वा क्रोधसंतप्तदर्शना। अनेन सह संवादं किञ्चिदेव प्रभाषिणी॥१४३॥
वधूपुत्रवचः श्रुत्वा कोसलानां जनेश्वरः। उवाच मधुरं वाक्यमुभयोर्यद्धितं शुभम्॥१४४॥
नकुलो हतमित्याह यदि सर्पो निपातितः। किमिदं क्रियते क्रोधमेतन्मे वक्तुमर्हसि॥१४५॥
हते तु नकुले पुत्र कस्ते मन्युर्भवेत् तदा। राजपुत्रि हते सर्पे कस्ते मन्युर्भवेदिह॥१४६॥
ततः पितुर्वचः श्रुत्वा कोशलेश्वरनन्दनः। उवाच मधुरं वाक्यं राजपुत्रो महायशाः॥१४७॥
ततः किं तेन पृष्ठेन त्वया पृच्छितुमर्हसि। एतां पृच्छ महाभाग यं ज्ञास्यन्ति शरीरिणः॥१४८॥

हे यशस्विनि! अपने पिता की वाणी सुनकर उन दोनों ने उनका पैर पकड़ कर कहा कि—।।१३८।।

हे तात! आपकी वधू का कोई दोष नहीं है। हे राजन्! मेरे मना करने पर भी इस सुन्दरी ने मेरे ही सामने नकुल को मार दिया।।१३९।।

उस नकुल को मरा हुआ देखकर मुझे रोष हो गया। इसीलिए रोषयुक्त होकर दुःखी मन से मैंने इसे अलग कर दिया है।।१४०।।

फिर पति का वचन सुनकर प्राग्ज्योतिष देश में उत्पन्न राजकुमारी ने शिर से प्रणाम कर यह वाक्य कहा—।।१४१।।

वस्तुतः मेरा अपराध नहीं है। अत्यन्त भययुक्त और विनम्र सर्प को सैकड़ों बार मना करने पर भी इन्होंने उसे शीघ्रता से मार डाला था।।१४२।।

फिर मैंने सर्प को मरा हुआ देखकर क्रोध और दुःख से युक्त होकर इनके साथ विवाह होने को अपने कठोर वचन से कहा था।।१४३।।

इस प्रकार अपने पुत्र और वधू के विचारों को सुनकर उस कोशलपुरी देश के राजा ने दोनों के हित साधक मधुर और शुभ वचन कहा—।।१४४।।

यह कहा जाता है कि चूँकि सर्प मारा गया, इसलिए नकुल मारा गया। अब दोनों द्वारा यह क्रोध क्यों किया गया?।।१४५।।

हे पुत्र! नकुल के मारे जाने पर तुम्हें क्रोध क्यों हुआ? तथा हे राजकुमारि! सर्प के मारे जाने पर तुम्हें क्रोध क्यों हुआ।।१४६।।

इसके बाद पिता का परामर्श पूर्ण वाणी सुनकर कोशलपुरी नरेश के महान् यशस्वी राजकुमार ने यह मधुर वचन कहा।।१४७।।

फिर राजकुमार ने कहा कि उस प्रत्यक्ष कारण को पूछने में आपका क्या भाव है? हे महाभाग! आप इस राजकुमारी से ही पूछें, जिससे सब लोग रहस्य की बात को जान सकें।।१४८।।

पुत्रस्य वचनं श्रुत्वा कोशलानां जनेश्वरः। उवाच मधुरं वाक्यं धर्मसंयोगसाधनम्॥१४९॥
ब्रूहि पुत्र यथान्यायं यत्ते मनसि वर्त्तते। प्रीतिविच्छेदकरणमुभयोर्दम्पतीमिह॥१५०॥
जातः संवर्धितः पुत्र सर्वकर्मेषु निष्ठितः। पित्रा वै पृष्टगुह्यानि गोपयन्ति नराधमाः॥१५१॥
सत्यं च यदसत्यं वा न ब्रुवन्ति कदाचन। पतन्ति नरके घोरे रौरवे तप्तबालुके॥१५२॥

पित्रा पृटं तु ये सत्यं ब्रुवते च शुभाशुभम्।
दिव्यां च ते गतिं यान्ति या गतिः सत्यवादिनाम्म॥१५३॥

अवश्यमेव तद् वात्क्यंत वत्क्तयं मम सन्निधौ। यस्य दोषेण वै पुत्र नष्टा प्रीतिर्गुणाकरे॥१५४॥
ततः पितुर्वचः श्रुत्वा कोशलानन्दिवर्धनः। उवाच श्लक्ष्णया वाचा तत्रैव जनसंसदि॥१५५॥
गच्छत्वेष जनः सर्वो यथान्यायं गृहाणि वै। कल्यं ते कथयिष्यामि एष यत् तव रोचते॥१५६॥
प्रभातायां तु शर्वर्यां शङ्खदुन्दुभिनादितः। विबुद्धः कोशलश्रेष्ठः सूतमागधवन्दिभिः॥१५७॥
तदा कमलपत्राक्षो राजपुत्रो महायशाः। स्नातो मङ्गलकं कृत्वा राजधानीमुपागतः॥१५८॥
ततः कञ्चुकी शीघं वै राजधानीं निवेदितः। द्वारि तिष्ठति पुत्रस्ते तव दर्शनलालसः॥१५९॥

पुत्र की वाणी सुनकर कोशल नरेश ने धर्म की प्राप्ति कराने वाला मधुर वाक्य को इस प्रकार से कहा— हे पुत्र! तुम्हारे मन के अन्दर जो कुछ हो, वे सब यथोचित विधि से कह दो। पति और पत्नि में विच्छेद कराने वाला जो भी मुख्य कारण हो, उसे बतलाओ।।१४९-१५०।।

चूँकि पिता से उत्पन्न होने के बाद पुत्र का लालन-पालन कर उसे सब कर्मों के योग्य बनाया जाता है। अतः पिता के पूछने पर रहस्य को छिपाने वाला पुत्र निश्चय ही नराधम होता है।।१५१।।

जो पुत्र सत्य या असत्य रहस्य की बातें किसी समय नहीं बतलाते, वे तप्त बालू वाले घोर रौरव नरक में चला जाता है।।१५२।।

पिता द्वारा पूछे जाने पर जो कुछ शुभ या अशुभ बात सत्य-सत्य बतला दिया जाता है, तो वह सत्यवादी की दिव्य गति को प्राप्त करने वाला होता है।।१५३।।

हे पुत्र! मेरे पास वह बात अवश्य ही कहो, जिससे इस गुण सम्पन्ना पत्नी में तुम्हारी प्रीति नष्ट-सी हो गई है।।१५४।।

तत्पश्चात् पिता की वाणी सुनकर कोशल नरेश के आनन्दवर्द्धन करने वाले राजपुत्र ने उसी जन सभा में सुन्दर वचन कहा—।।१५५।।

जो भी उचित विधि हो, तदनुसार इस समय आप सभी जन को अपने-अपने गृहों को जाना चाहिए। मैं कल प्रातःकाल आप सबको वह रहस्य की बात बतला दूँगा, जो कि आप लोगों को विशेष प्रिय है।।१५६।।

फिर रात्रि बाद प्रातःकाल होने पर शंख और दुन्दुभि के निनाद तथा सूत और बन्दीजनों के स्तोत्रपाठ से कौशल श्रेष्ठ राजकुमार को जगाया गया।।१५७।।

उसके बाद महान् यशस्वी पद्मपत्र के समान नेत्रों वाले राजकुमार स्नान और पूजा आदि मंगलकृत्यों को करने के बाद राजसभा में उपस्थित हो गया।।१५८।।

फिर कञ्चुकी ने शीघ्र ही राजसभा में निवेदन किया कि द्वार पर उपस्थित आपका पुत्र आपका दर्शन करना चाहता है।।१५९।।

कञ्चुकेस्तु वचः श्रुत्वा कोशलानां जनेश्वरः। शीघ्रमेव प्रविश्याथ मत्पुत्रश्च कुलोद्भवः॥१६०॥
राजपुत्रे प्रविष्टे तु तत्र चोत्सवते जनः। चातुर्वर्ण्यप्रवृत्तिं तां परीतौ पितृपुत्रकौ॥१६१॥
यद् गुह्यं पृच्छसे तात मम चात्र जनाकुले। न शक्नोमि च तं वक्तुं ततो गुह्यं जनाकुले॥१६२॥
अवश्यमेव वक्तव्यं त्वया पृष्टेन निष्कलम्। एतद् गुह्यं महाराज प्रीतिविच्छेदकारकम्॥१६३॥
यदिच्छसि महाराज श्रोतुं गुह्यमिदं महत्। गच्छ कुब्जाम्रकं शीघ्रं तात एवं मया सह॥१६४॥
तत्र ते कथयिष्यामि कोसलाधिपते नृप। यत्त्वया पृच्छितं ह्येतद् गुह्यं पूर्वमनिन्दितम्॥१६५॥
ततस्तस्य वचः श्रुत्वा राजपुत्रस्य वै नृपः। वाढमित्येव तत्राह चातुर्वर्ण्य यशस्विनि॥१६६॥
राजपुत्रे गते तत्र अमात्यस्य च सन्निधौ। उवाच मधुरं वाक्यं ये वै तत्र जनाः स्थिताः॥१६७॥
तत्र गच्छामहे गन्तुं स्थानं कुब्जाम्रकं प्रति। न केनचिद् वारणीयो गमने कृतनिश्चयः॥१६८॥
अथ ते सप्तरात्रेण राजानं तमुवाच ह। सज्जन्ति सर्वद्रव्याणि किमाज्ञापयते भवान्॥१६९॥

अमात्यानां वचः श्रुत्वा कोशलानां जनाधिपः।
साधु साध्विति चोक्त्वा वै अमात्यजनसंसदि॥१७०॥

कञ्चुकी का कथन सुनने के बाद कौशल नरेश ने कहा कि मेरे कुल में उत्पन्न पुत्र को शीघ्र ही प्रवेश करने हेतु कहो॥१६०॥

उसके बाद रासभी में राजकुमार के प्रविष्ठ करते ही वहाँ उपस्थित सभासदों ने अत्यन्त प्रसन्नता प्रकट की। फिर चारों वर्ण के मनुष्यों ने उन पिता-पुत्र दोनों को चारों ओर से घेर कर खड़े हो गये॥१६१॥

हे तात! चूँकि आप यहाँ पर सभासदों की भीड़ में मुझसे रहस्य की बात जानना चाहते हैं। अतः मैं इस भीड़ की स्थिति में इस रहस्य को बतला नहीं सकता हूँ।'॥१६२॥

हे महाराज! लेकिन आपके द्वारा पूछे जाने के कारण प्रीति को नष्ट करने वाला इस रहस्य की बात को मैं वैसे अवश्य आपको बतलाऊँगा॥१६३॥

हे महाराज! यदि आप इस महान् रहस्य की बात सुनना ही चाहते हैं, तो आप शीघ्र ही मेरे साथ कुब्जाम्रक नाम के तीर्थ में चलने की कृपा प्रदान करें॥१६४॥

हे कोसलाधिप! आपने पुरातन काल के जिस अनिन्दित रहस्य को पूछा था, उसे मेरे द्वारा वहीं पर बताया जाना ठीक होगा॥१६५॥

हे यशस्विनि! इस प्रकार से राजकुमार के वचन को सुनकर राजा ने चातुर्वर्ण के उपस्थित प्रजा के सामने ही कहा—अच्छा, ऐसा ही होगा॥१६६॥

फिर राजकुमार के सभाभवन से चले जाने पर राजा ने अमात्यों और वहाँ उपस्थित लोगों के सामने मीठे स्वरों में कहा कि—॥१६७॥

मैं कुब्जाम्रक तीर्थ की दिशा में जाना चाहता हूँ। मैंने जाने हेतु निश्चयात्मक विचार कर लिया है। अतः कोई भी मुझे जाने से इस समय न रोक सके॥१६८॥

फिर उन लोगों ने राजा से कहा—यात्रा के लिए अनिवार्य अपेक्षित सब वस्तुऐं सात दिनों में प्रस्तुत हो सकेंगे। आपकी क्या आज्ञा है?॥१६९॥

इस प्रकार के अमात्यों के वचन को सुनकर कोसलनरेश ने अमात्यों की सभा में 'साधु-साधु' यह कहा॥१७०॥

हस्त्यश्वरथयानानि भाण्डागारं सुसंयुतम्। कारुजापण्यवेश्याश्च गन्तुकामाः प्रचक्रिरे॥१७१॥
ततः स राजशार्दूलो ज्येष्ठं पुत्रं प्रभाषत। पुत्र किं चैव कर्त्तव्यं शून्यं राज्यमिदं मया॥१७२॥
ततः पितुर्वचः श्रुत्वा राजपुत्रो महायशाः। उवाच मधुरं वाक्यं निपत्य चरणौ पितुः॥१७३॥
एष कनीयसो भ्राता एकोदरविनिःसृतः। एतस्य दीयतां राज्यं यथान्यायमुपागतम्॥१७४॥
पुत्रस्य वचनं श्रुत्वा स राजा धर्मनिष्ठितः। त्वयि जीवति वै ज्येष्ठे कनीयान् कथमर्हति॥१७५॥
ततः पितुर्वचः श्रुत्वा कोशलानां कुलोद्वहः। उवाच मधुरं वाक्यं पितरं धर्मकारणात्॥१७५॥
अनुजानामि ते तात दीयमानां वसुंधराम्। तस्य धर्मोचितो यस्तु भुञ्जमानस्य मेदिनीम्॥१७७॥
नाहं कुब्जाम्रकं गत्वा निवर्त्तिष्ये कदाचन। एतत् सत्यं च धर्मं च ततस्ते कथितं मया॥१७८॥
राजपुत्राभ्यनुज्ञातो ह्यभिषिक्तो जनाधिपः। संमुखेन महाराज्ये भूमि भूमिपसत्तमः॥१७९॥
ततो दीर्घेण कालेन स्थानं कुब्जाम्रकं गतः। अन्तःपुरसमायुक्तः सर्वद्रव्यसमन्वितः॥१८०॥
एवं चैवोषितास्तस्थुः स्थाने कुब्जाम्रके गताः। ददुस्ते धनरत्नानि दीर्घकालं च गच्छति॥१८१॥

फिर हाथी, घोड़ा, रथ, वाहन आदि सविधि सम्पन्न भाण्डागार, शिल्पी, बाजार के सामान, वेश्या आदि सब को ले जाने का उपक्रम प्रारम्भ हो गया।।१७१।।

इन सबके बीच उस श्रेष्ठ राजा ने ज्येष्ठ पुत्र से कहा—हे पुत्र! क्या मैं राज्य को राजा के विना छोड़कर कैसे जा सकता हूँ।।१७२।।

फिर पिता की वाणी को सुनकर महान् यशस्वी राजकुमार ने पिता के पैरों पर गिरकर इस प्रकार से कहा कि सम्प्रति राजा के योग्य यह मेरा सहोदर छोटा भाई है, न्याय के अनुरूप प्राप्त राज्य इसे सौंप दिया जाना उचित होगा।।१७३-१७४।।

अपने बड़े पुत्र के ऐसे वचन को सुनकर उस धर्म में निष्ठावान् राजा ने कहा कि अपने ज्येष्ठ पुत्र अर्थात् तुम्हारे जीवित रहते मैं अपने कनिष्ठ पुत्र को राज्य का अधिकारी कैसे बना सकता हूँ?।।१७५।।

फिर अपने पिता के ऐसे वचनों को सुनकर कोसलों के कुल में श्रेष्ठ राजकुमार ने धर्म का विचार करते हुए अपने पिता से ही मीठे स्वर में कहा—।।१७६।।

हे तात! मैं पृथ्वी का राज्य प्रदान करने हेतु आपका अनुमोदन करता हूँ। धर्मके अनुरूप उचित अधिकारी, जिसको भी अपनी भोगी जाने वाली पृथ्वी प्रदान कर देता है, वही उस समय उसका उचित अधिकारी हो जाता है।।१७७।।

फिर मैं कुब्जाम्रक तीर्थ में पहुँचकर पुनः कभी नहीं लौट सकूँगा। मैंने यह आपको धर्मयुक्त सत्य बात ही कही है।।१७८।।

हे भूमि! उस श्रेष्ठ राजा ने राजकुमार के अनुमोदन कर देने पर अपने सामने अपने महान् राज्य के लिए आपने कनिष्ठपुत्र छोटे राजकुमार को उस राज्य की सिंहासन पर अभिषिक्त कर दिया।।१७९।।

फिर वह राजा दीर्घ काल के पश्चात् अन्तःपुर और समस्त द्रव्यों और साधनों के सहित कुब्जाम्रक तीर्थ में पहुँच गया।।१८०।।

इस प्रकार वे सब कुब्जाम्रक में आकर निवास करने लगे। फिर वे धन और रत्नों का दान भी करने लगे। ये सब करते हुए बहुत काल बीत गया।।१८१।।

एवं च वसतां तेषां बुद्धी राज्ञो व्यजायत। गुह्यं वै प्रष्टुकामस्य प्रीतिविच्छेदकारणम्॥१८२॥
ततश्चास्तं गतेसूर्ये ततो रात्रिरुपागता। कोशलाधिपतिः श्रेष्ठः पुत्रमेवमुवाच तम्॥१८३॥
प्राप्ताः कुब्जाम्रकं वत्स विष्णोः पादसमाश्रयम्।
दत्तानि धनरत्नानि न चैवं चिन्तयन्ति ताम्॥१८४॥
ब्रूहि सत्यं ततस्तत्र यस्य त्वं सुन्दरी स्नुषा। अदुष्टकारिणी युक्ता कुलशीलगुणान्विता॥१८५॥
उवाच मधुरं वाक्यं पितरं तदनन्तरम्। स्वप तात इमां रात्रिमेक एव जनाधिप।
प्रभाते कथयिष्यामि यद् वृत्तं तं दुरासदम्॥१८६॥
ततो रजन्यां व्युष्टायामुदिते च दिवाकरे। कृतोदकं तु गङ्गायां क्षौमवस्त्रविभूषितः॥१८७॥
अर्चयित्वा यथान्यायं भूमि युक्तेन कर्मणा। पितुः प्रदक्षिणं कृत्वा वाक्यमेतदुवाच ह॥१८८॥
एह्येहि तात गच्छाम यत्स्वं गुह्यानि पृच्छसि। शृणु तत्त्वेन मे राजन् यत्त्वया पूर्वपृच्छितम्॥१८९॥
राजपुत्रश्च ते राजा सा च पङ्कजलोचना। गता निर्माल्यकूटं ते यद् वृत्तं पुरातनम्॥१९०॥
निर्माल्य तु समासाद्य राजपुत्रो महातपाः। उभौ तौ चरणौ गृह्य पितरं प्रत्यभाषत॥१९१॥
नकुलोऽहं महाराज वसामि कदलीतले। ततोऽहं कालसंयुक्तः प्राप्तो निर्माल्यकूटकम्॥१९२॥

इस प्रकार से कुब्जाम्रक में रहते हुए अपने पुत्र राजकुमार के प्रीति विच्छेदक रहस्य के कारण को जानने के आकांक्षी राजा को यह विचार उत्पन्न हुआ।।१८२।।

फिर दिन के अन्त में सूर्यास्त होने पर रात्रि हुई। उस समय श्रेष्ठ कोसल नरेश ने अपने ज्येष्ठ पुत्र से कहा हे पुत्र! हम सब इस कुब्जाम्रक क्षेत्र में आ पहुँचे हैं और श्रीविष्णु के चरणों में धन और रत्नों का दान भी किया है। लेकिन हम उस राजकुमारी की चिन्ता नहीं कर रहे हैं।।१८३-१८४।।

अतः अब तुम प्रीति को नष्ट करने वाला रहस्य की बात को बतलाओ, जिसके कारण तुमने दोषरहिता, कुलशीला और गुण सम्पन्ना सुन्दर मेरी वधू का त्याग कर दिया है।।१८५।।

फिर राजकुमार ने अपने पिता से इस प्रकार की मधुर वाणी में कहा—हे राजन्! आज रात्रि में हम सब शयन करें, प्रातःकाल वह दुःखदायी वृत्तान्त बतला दूँगा।।१८६।।

इस प्रकार रात्रि के बाद सूर्योदय होते ही राजकुमार गङ्गा में स्नान आदि जल की क्रिया सम्पन्न कर रेशमी वस्त्र से अलंकृत हो गया।।१८७।।

यथोचित विधि से पूजन आदि कर्म सम्पन्न कर भूमि की प्रार्थनापूर्वक पिता की प्रदक्षिणा करने के बाद राजकुमार ने यह वाक्य कहा—।।१८८।।

हे पिता! आईए, आईए। हम साथ चलते हैं। आपने पहले जो कुछ रहस्य पूछा था, उस रहस्य को आप सुनें—राजा, राजकुमार, कमलनयनी वह राजकुमारी और राजा के वे सब सेवक उस विष्णु निर्माल्य के ढेर के समीप गए, जहाँ पर प्राचीन समय में विशेष घटना घटी थी।।१८९-१९०।।

उस निर्माल्य के ढेर के समीप पहुँच कर महान् तपस्वी राजकुमार ने पिता के दोनों पैरों को पकड़कर कहा हे महाराज! मैं पहले के जन्म में नकुल था और उस कदली के नीचे रहता था। फिर मैं काल से समुप्रेरित होकर एक बार निर्माल्य ढ़ेर के समीप आ गया था।।१९१-१९२।।

ततश्चाशीविषा सर्पी प्राप्ता चैव जनाधिप। भक्षयन्ती सुगन्धीनि दिव्यानि सुसुमानि च॥१९३॥
दृष्ट्वा तु तां महाव्यालीं क्रोधसंरक्तलोचनः। अचिरेण मुहूर्त्तेन अस्याङ्कं संहितो गतः॥१९४॥
तस्याश्च मम राजेन्द्र घोरं युद्धं प्रवर्त्तत। माघमासस्य द्वादश्यां ततः कश्चिन्न पश्यति॥१९५॥
युध्यमानस्य मे तत्र गात्रं चैव निगूहतः। नासावंशे तया दष्टो भुजङ्ग्या च तदन्तरे॥१९६॥
मयाऽपि विषदिग्धेन निहता सा भुजंगमा। उभौ प्राणान् परित्यज्य उभौ पञ्चत्वमागतौ॥१९७॥
मृतौ स्म काले राजेन्द्र क्रोधदोषपरिप्लुतौ। जातोऽहं तव पुत्रो वै कोसलाधिपतेः सुतः॥१९८॥
एवं मे घातिता सर्पी तत् क्रोधवशनिश्चयात्। एतद् गुह्यं महाराज यत्त्वया पूर्वपृच्छितम्॥१९९॥

राजतपुत्रवचः श्रुत्वा वधूर्वचनमब्रवीत्।
उवाच श्वशुरं वाक्यं गत्वा निर्माल्यकूटकम्॥२००॥

अहं सर्पी महाराज नकुलेन निपातिता। प्राग्ज्योतिषकुले जाता वधूस्तव उपागता॥२०१॥
तेन क्रोधेन नृपते मूर्च्छिता मरणं प्रति। घातितो नकुलश्चैव गुह्यमेतद् ब्रवीमि ते॥२०२॥
वधूपुत्रवचः श्रुत्वा स राजा संशितव्रतः। मायातीर्थं समासाद्य ततः पञ्चत्वमागतः॥२०३॥
राजपुत्रो विशालाक्षि राजपुत्री यशस्विनी। पौण्डरीके ततस्तीर्थे तेऽपि पञ्चत्वमागताः॥२०४॥

हे राजन्! तत्पश्चात् विष से सम्पन्ना एक सर्पिणी दिव्य सुगन्धों और पुष्पों को खाती हुई आयी।।१९३।।

फिर उस महान् सर्पिणी को देखकर मेरे नेत्र क्रोध से लाल हो गये। तत्काल ही मैं उसके समीप पहुँच गया।।१९४।।

फिर युद्ध के समय वैसे अपने शरीर को सुरक्षित अवश्य ही कर रखा था। परन्तु फिर भी सर्पिणी ने मेरे नाक के अन्दर डँस ही लिया।।१९६।।

फिर विष से दग्ध होने के बावजूद मैंने उस सर्पिणी को मार डाला। हम दोनों ही ने अपना-अपना प्राण त्यागते ही मर गए।।१९७।।

हे राजेन्द्र! क्रोध स्वरूप दोष से मरे हुए हम दोनों के मरने के बाद मैं तो कोसल नरेश का पुत्र होकर उत्पन्न हुआ।।१९८।।

उस क्रोध के वशीभूत होने से इस तरह वह सर्पिणी मारी गयी। हे महाराज! यही वह रहस्य है, जिसे आपने मुझसे पूछा था।।१९९।।

उस राजपुत्र की वाणी सुनकर राजा की वधू निर्माल्य ढेर के समीप जाकर श्वसुर से बोलने लगी कि हे महाराज! मैं नकुल द्वारा ही मारी गई वही सर्पिणी हूँ, जो प्राग्ज्योतिषपुर में उत्पन्न होकर मैं आपकी पुत्रवधू हुई थी।।२००-२०१।।

इस प्रकार क्रोध के वश होकर मरती हुई मैंने नकुल को मार डाला। मैंने भी आपसे इस रहस्य की बात को कह दिया।।२०२।।

फिर ये सब रहस्य की कथा वधू और पुत्र से सुनकर कठिन व्रत करने वाला राजा मायातीर्थ में जाकर मर गया।।२०३।।

हे विशालाक्षि! यशस्विनी राजकुमारी, राजकुमार और उनके साथ आये हुए वे सब सेवक आदि भी उस पौण्डरीक तीर्थ में मर गये।।२०४।।

गतास्ते परमं स्थानं यत्र देवो जनार्दनः। राजा वा राजपुत्रश्च राजपुत्री यशस्विनी॥२०५॥
मम चैव प्रसादेन तपसश्च बलेन च। कृत्वा सुदुष्करं कर्म श्वेतद्वीपमुपागताः॥२०६॥
योऽसौ परिजनो देवि कृत्वा तु सुकृतं तपः। तेऽपि सिद्धिं परां प्राप्ताः श्वेतद्वीपमुपागताः॥२०७॥

एवं ते कथितं देवि व्युष्टि कुब्जाम्रकस्य च।
तस्य ब्राह्मणमुख्यस्य रैभ्यस्य कथितं मया॥२०८॥
एष जप्यश्च पुण्यश्च चातुर्वर्ण्यव्यवस्थितः।
कार्याणां च महत् कार्यं क्रियाणो च महाक्रिया।
तेजसां च महत्तेजस्तपसां च महत्तपः॥२०९॥

एतन्न मूर्खमध्ये तु पठेदपि कदाचन। न पठेद् गोघ्नमध्ये तु वेदवेदाङ्गनिन्दके॥२१०॥
न पठेद् गुरुनिन्दके मा पठेच्छास्त्रदूषके। पठेद् भागवतां मध्ये ये च दीक्षासु निष्ठिताः॥२११॥
य एनं पठते भूमि कल्यमुत्थाय मानवः। पठंस्तारयते देवि दश पूर्वान् दशापरान्॥२१२॥

एतत्तु पठमानो वै यस्तु प्राणान् विमुञ्चति।
चतुर्भुजश्च जायेत मल्लोकेषु प्रतिष्ठितः॥२१३॥

इस प्रकार से वे राजा, राजकुमार, यशस्विनी राजकुमारी आदि सब उस स्थान को चले गए, जहाँ जनार्दन देव रहा करते हैं।।२०५।।

फिर मेरी कृपा और अपनी तप के प्रभाव से अति कठिन कर्म करने के बाद वे सब श्वेतद्वीप में चले गए।।२०६।।

हे देवि! उस राजा के सभी सेवकजन भी सुन्दर तप करने के कारण सिद्धि प्राप्त कर श्वेतद्वीप में पहुँच गये।।२०७।।

हे देवि! इस प्रकार से मैंने तुम्हें कुब्जाम्रक तीर्थ में उस ब्राह्मण श्रेष्ठ रैभ्य के विशिष्ट निवास का रहस्य कह सुनाया।।२०८।।

चातुर्वर्ण के मनुष्यों हेतु इस उपाख्यान का पाठ, जप आदि पुण्य प्रदायक है। यह सभी कार्यों में श्रेष्ठ कार्य,क्रियाओं में श्रेष्ठ क्रिया, तेजों में श्रेष्ठ तेज तथा तपों में श्रेष्ठ तप है।।२०९।।

इसका पाठ या इसकी चर्चा मूर्खों, गोवध करने वाले, वेदवेदाङ्ग की निन्दा करने वालों के बीच नहीं ही करनी चाहिए।।२१०।।

फिर गुरु की निन्दा करने वाले, शास्त्रों में दोष खोजने वाले आदि के मध्य भी इसका पाठ नहीं ही करना चाहिए। भगवद् भक्तों और दीक्षित जनों के बीच इसका पाठ अवश्य करना चाहिए।।२११।।

हे भूमि देवि! प्रातःकाल जागकर जो जन इस उपाख्यान का पाठ करता है, वह अपने पूर्व की दस और आगे की दस पीढ़ियों को मुक्त करने वला होता है।।२१२।।

जो इसका पाठ करते हुए प्राण का त्याग कर देता है, वह चतुर्भुज होकर मेरे लोक में प्रतिष्ठित होता है।।२१३।।

एतत् ते कथितं भूमि स्थानं कुब्जाम्रकं मया। मम भक्तसुखार्थाय किमन्यत् परिपृच्छसि॥२१४॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१२५॥

षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

अथ विष्णुदीक्षाविधानम्

सूत उवाच

एवं धर्मांस्ततः श्रुत्वा बहुमोक्षार्थकारणान्। प्रत्युवाच ततो भूमिर्लोकनाथं जनार्दनम्॥१॥
अहो प्रभावो धर्मस्य कथ्यमानोऽतिपुष्कलम्। अहं भारभराक्रान्ता लघुर्जाताऽस्मि माधव॥२॥

विमोहा च विशुद्धा च शृण्वमाना त्विमान् प्रभो।
धर्मा लोकेषु विख्याता मुखात् तव विनिःसृताः॥३॥

पुनः पृच्छामि ते देव संशयं तु विदांवर। एवं धर्मविधानेन दीक्षा लभ्यन्ति पुष्कलाः॥४॥
एवमेव परं गुह्यं परं कौतूहलं च मे। धर्मसंरक्षणार्थाय तद्भवान् वक्तुमर्हसि॥५॥

हे भूमि! इस प्रकार मैंने तुमको अपने भक्तों के सुख के लिए कुब्जाम्रक तीर्थ के माहात्म्य को कहा है। तुम और क्या पूछना चाहोगी।२१४।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में कुब्जाम्रक माहात्म्य में व्याली-नकुलोपाख्यान नामक एक सौ पच्चीसवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१२५॥

अध्याय–१२६

ब्राह्मण-विष्णु दीक्षा विधान और उसमें वर्ज्यावर्ज्य

सूत ने कहा कि इस प्रकार अनेक लोगों को मोक्ष प्रदान करने वाले धर्मों को इस तरह से सुनकर भूमि ने लोकनाथ जनार्दन से कहा—।।१।।

हे माधव! कहने योग्य धर्म का किस प्रकार का महान् प्रभाव है? मैं चराचर के भार से बोझिल हुई अपने को हल्की अनुभव करती हूँ।।२।।

हे प्रभो! अब मैं इन कुब्जाम्रक के माहात्म्य को सुनकर मोहमुक्त और शुद्ध सी हो गई हूँ। आपके मुख से निःसरित यह धर्म निश्चय ही लोक में प्रसिद्ध हो सकेंगे।।३।।

हे विद्वान् पुरुषों में वरिष्ठ देव! पुनः मैं आपसे अपनी शंका के बारे में पूछना चाहती हूँ कि किस धर्म के विधान से श्रेष्ठ दीक्षा मिल सकती है।।४।।

फिर भी मुझे परम रहस्य के प्रसङ्ग में जानने की उत्सुकता है। धर्म के संरक्षण हेतु आप मुझे वे सब बतलायें, बड़ी कृपा होगी।।५।।

ततो महीवचः श्रुत्वा मेघदुन्दुभिनिःस्वनम्। वाराहरूपी भगवान् प्रत्युवाच वसुंधराम्।।६।।

श्रीवराह उवाच

शृणु तत्त्वेन मे देवि मम धर्मं सनातनम्। मम देवा न जानन्ति ये च योगव्रते स्थिताः।।७।।
इमं धर्मं वरारोहे ममाङ्गविधिनिःसृतम्। अहमेको विजानामि मद्भक्ताश्चैव ये जनाः।।८।।
यच्च पृच्छसि मे भद्रे दीक्षा भगवते कथाम्। तच्छृणुष्व वरारोहे कर्म संसारमोक्षणम्।।९।।
दीक्षां न लभते कश्चित् पुनः संसारमोक्षणम्। मयोक्तां लभते कश्चिद् दीक्षां चैव सुखावहाम्।।१०।।
चातुर्वर्णस्य वक्ष्यामि दीक्षामेव यशस्विनि। तरन्ति मनुजा येन गर्भसंसारसागरात्।।११।।
महासान्तपनं कृत्वा तप्तकृच्छ्रं च सुन्दरि। अभिगच्छेद् गुरु देवि शाधि शिष्योऽस्म्यहं तव।
तदा वृतोर्घभुञ्जानः पश्चाद् द्रव्याणि चाहरेत्।।१२।।
लाजान् मधुकुशांश्चैव घृतं चामृतसम्तिम्। धूपगन्धांश्च माल्यांश्च पालाशं दण्डयष्टिकम्।।१३।।
चर्म कृष्णाजिनं चैव घटं चैव कमण्डलुम्। वासांसि पादुकांश्चैव शुक्लयज्ञोपवीतकम्।।१४।।
यन्त्रिकामर्घपात्रं च चरुस्थालीं च दर्विकाम्। तिलान् ब्रीहियवांश्चैव विविधांश्च फलोदकान्।।१५।।
भक्ष्यभोज्यान्नपानं च कर्मण्येव च संचयान्। दीक्षिता यद् विभुञ्जन्ति मम कर्मपरायणाः।।१६।।

तत्पश्चात् धरणी के इस प्रकार के मेघ और दुन्दुभि की ध्वनि जैसी शब्दों को सुनकर वराहस्वरूप भगवान् ने उसको इस प्रकार उत्तर दिया।।६।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि हे देवि! तत्त्वतः मेरे सनातन धर्म को तुम सुनो। योगव्रत धारण करने वाले देवगण भी मेरे इस धर्म को नहीं जानते हैं।।७।।

हे सुन्दरि! केवल मैं और मेरे भक्तजन ही मेरे मुख स्वरूप अंग से निःसरित इस धर्म को जानते हैं। अन्य कोई इसे नहीं जान सकता है।।८।।

हे भद्रे! हे वरारोहे! भगवान् विषयक जिस दीक्षा विधान को तुम जानने की इच्छा रखती हो, उसको जो इस संसार से मुक्त करने वाले धर्म हैं, के बारे में सुनो—।।९।।

कोई भी जन, इस संसार से मुक्त करने वाली, इस दीक्षा को नहीं प्राप्त कर पाता है। मेरे द्वारा कहे जाने पर ही कोई जन इस सुख प्रदान करने वाली दीक्षा को प्राप्त करता है।।१०।।

हे यशस्विनी! मैं चारों वर्णों के हेतु व्यावहारिक दीक्षा के विधान को कहने जा रहा हूँ, जिसे जानकर मनुष्य संसार समुद्र के गर्भ से पार हो जाता है।।११।।

हे देवि! हे सुन्दरी!! महासान्तपन और तप्तकृच्छ्र व्रत कर गुरु के समीप पहुँचकर बोलना चाहिए कि 'मैं आपका शिष्य हूँ, मेरा शासन करे'। फिर गुरु द्वारा शिष्य रूप से वरण कर लिये जाने पर लाये गए अर्घ्य का उपयोग करते हुए अधोलिखित द्रव्यों को लाना चाहिए।।१२।।

लावा, मधु, कुश, अयाचित, अन्नयुक्त घृत, धूप, गन्ध, माला, पालाश दण्ड, व्याघ्र का चर्म, कृष्ण मृग का चर्म, कुम्भ, कमण्डलु, वस्त्र, खड़ाऊँ, श्वेत यज्ञोपवतीत, यन्त्रिका, अर्धपात्र, चरु हेतु बर्तन, करछुल, तिल, धान, यव, अनेक प्रकार के फल, जल, खाने योग्य अन्न और पीने योग्य पदार्थ, यज्ञादि स्वरूपकर्म में प्रयुक्त होने वाले पदार्थों के समूह तथा मेरे कर्म परायण दीक्षित जन जिन पदार्थों का भोग अर्पण करते हैं।।१३-१६।।

यानि कानि च बीजानि रत्नानि विविधानि च। कनकादीनि सुश्रोणि तानि शीघ्रमुपाहरेत्॥१७॥
पायसं च गुडं चैव सुकर्मपरिनिष्ठितः। कर्मण्यामृतकल्पानि तत एवमुपाहरन्॥१८॥
एतान्येवोपहाराणि कर्मण्या च यशस्विनि। पूर्णनेत्रान् विशालाक्षि तद्भितानि कारयेत्॥१९॥
सौवर्णं रजतं चैव ताम्रमृण्मयकानि च। तानि संहरयेत् तत्र गुरुमूले न संशयः॥२०॥
स्नात्वा मङ्गलसंयुक्तो दीक्षाकामश्च ब्राह्मणः। गुरोश्चरणौ संगृह्य ब्रूहि किं करवाणि ते॥२१॥
ततो गुरुणाऽनुज्ञातो वेदिं कुर्याच्चतुष्कलाम्। ब्राह्मणो दीक्षमाणस्तु चतुरस्त्रां तु षोडश॥२२॥
मम संस्थापयेत् तत्र यच्चतुर्थो न विद्यते। कर्मणा विधिदृष्टेन मम तत्रैव चार्चयेत्॥२३॥
तत्रार्चनाविधिं कृत्वा गुरुधर्मविनिश्चयात्। यानि कानि च द्रव्याणि वेदमिध्यमुपाहरेत्॥२४॥
चतुरः कलशान् दद्याच्चतुःपार्श्वेषु सुन्दरि। वारिपूर्णान् द्विजाञ्छुद्धान् सहकारविभूषितान्॥२५॥
सर्वतः शुक्लसूत्रेण वेष्टयेत तथानघे। पूर्णपात्राणि चत्वारि चतुःपार्श्वे तु स्थापयेत्॥२६॥

एवं मन्त्रं ततः कृत्वा दद्याद् दीक्षाप्रयोजकः।
सा च मात्रा यथान्यायं येन वा तुष्यते गुरुः॥२७॥

हे सुश्रोणि! कोई भी बीज, विविध रत्न, स्वर्ण आदि धातुओं आदि को शीघ्र वहाँ पर लाकर रखना चाहिए।।१०।।

फिर सुन्दर और पवित्र कर्म करते हुए खीर, गुड़ और यज्ञादि कर्म के योग्य अमृत तुल्य पदार्थों को भी एकत्रित करना चाहिए।।१८।।

हे विशालाक्षि! ये सब ही कर्म करने हेतु योग्य पदार्थ हैं। हे यशस्विनि! इन सब वस्तुओं का संग्रह कर लेना चाहिए।।१९।।

स्वर्ण, चाँदी, ताम्र, मिट्टी आदि से निर्मित पात्रों को सन्देह रहित होकर गुरु के चरणों के समीप रखना चाहिए।।२०।।

फिर दीक्षा की कामना वाला ब्राह्मण स्नान कर गुरु के पैरों को पकड़ कर पूछे कि मैं आपका क्या कार्य करूँ?।।२१।।

तत्पश्चात् गुरु की आज्ञा प्राप्त कर दीक्षा की कामना वाला ब्रह्मण को चार कलाओं वाली चौकोर सोलह वेदियाँ बनानी चाहिए।।२२।।

फिर उस वेदी पर जो चौथी न हो, मेरी स्थापना कर विधान के अनुसार कर्म से मेरी पूजार्चा करनी चाहिए। फिर गुरु के आदेशानुसार और धर्म स्वरूप मेरी अर्चा कर वेदी के मध्य में सब द्रव्य रखना चाहिए।।२३-२४।।

हे सुन्दरि! दीक्षा लेने वाले ब्राह्मण को आम्रपत्रों से विभूषित जल से भरे चार कुम्भों को वेदी के चारों ओर स्थापित करना चाहिए।।२५।।

हे अनघे! सब ओर श्वेत सूत्र लपेट कर चार जल भरे कुम्भों को वेदी के चारों ओर स्थापित करना चाहिए।।२६।।

फिर मन्त्रोच्चारणपूर्वक दीक्षा ग्रहण करने वाला यथाविधि उक्त मात्रा में अथवा जिससे गुरु सन्तुष्ट हो, उतनी मात्रा में उपरोक्त वस्तुऐं प्रदान करना चाहिए।।२७।।

यथान्यायेन संगृह्य गुरुकर्मविनिश्चितः। प्रपद्य शपथं विष्णोर्दीक्षाणां परिकाङ्क्षिणः॥२८॥
उपस्पृश्य यथान्यायं भूत्वा पूर्वामुखं ततः। सर्वेषां श्रावयेत् शिष्यान् दीक्षणार्थं न संशयः॥२९॥
यस्तु भगवतं दृष्ट्वा भूत्वा भागवतः शुचिः। अभ्युत्थानं न कुर्वीत अहो तेनापि हिंसितः॥३०॥
यश्च कन्यां पिता दत्त्वा नप्रयच्छति तां पुनः। अष्टौ पितृगणास्तेन हिंसिता नात्र संशयः॥३१॥
भार्यां प्रियसखीं यस्तु साध्वीं हिंसति निर्घृणः। न तेषां पुनरावृत्तिर्हिंसिता च वसुंधरा॥३२॥

ब्रह्मघ्नश्च कृतघ्नश्च गोघ्नश्च पापदुष्कृतम्।
एतान् शिष्यान् विवर्जेत उक्ता ये चान्यपातकाः॥३३॥

शालपत्रे न भोक्तव्यं न छेत्तव्यं कदाचन। अश्वत्थो वटवृक्षश्च न छेत्तव्यो कदाचन॥३४॥
न छेत्तव्यो विल्ववृक्षोदुम्बरस्य कदाचन। कर्मण्याश्चैव ये वृक्षा न छेत्तव्या मनीषिभिः॥३५॥
यदिच्छेत् परमां सिद्धिं मोक्षधर्म सनातनम्। भक्ष्याभक्ष्यं च ते शिष्य वेदितव्यं तदन्तरे॥३६॥
करीरस्य वधं शस्तं फलान्यौदुम्बरस्य च। सद्यो भक्षा भवेत् तेन अभक्षाः पूतिवासकाः॥३७॥
भुक्त्वा मांसं वराहस्य मत्स्यस्य सकलेरितः। अभक्ष्या ब्राह्मणैर्ह्येति दीक्षितैर्हि न संशयः॥३८॥

यहाँ दीक्षा स्वरूप धर्म को सुनिश्चित करने वाला गुरु को संकल्पपूर्वक विष्णु की दीक्षा लेने वाले शिष्यों का संग्रह करना चाहिए।।२८।।

फिर पूर्वाभिमुख होकर यथाविधि आचमन करने के बाद निःसंशयपूर्वक सब शिष्यों को दीक्षा हेतु मन्त्रों का उपदेश देना चाहिए।।२९।।

जो पवित्र भगवद् भक्त होकर उन भगवान् के अन्यान्य भक्तों को देखकर उनके सम्मान में खड़ा नहीं होता, वह उस भवगद् भक्तों की हिंसा करने का दोषी हो जाता है।।३०।।

जो पिता कन्या दान करने का वचन देकर फिर बाद में उस कन्या का उसे दान नहीं करता है, वह लोक में निःसंशय आठ पितरों की हिंसा करने वाला होता है।।३१।।

जो कठोर हृदय का पुरुष अपनी प्रिया संगिनी साध्वी पत्नी को प्रताड़ित भी करता है, तो उसे अपनी मुक्ति हेतु पृथ्वी पर पुनः जन्म लेने का अवसर नहीं मिलता तथा वह सदा ही नरक आदि में रहता हुआ कष्ट भोगता है। इसलिए कि भार्या को मारने वाला व्यक्ति पृथ्वी की हिंसा करने वाला होता है।।३२।।

ब्राह्मण को मारने वाला, कृतघ्न, गोवधक, दुष्कर्म करने वाला, शास्त्रानुसार पाप करने वाला आदि व्यक्तियों को शिष्य बनाने में वर्जित करना चाहिए।।३३।।

भगवद् भक्तों को चाहिए कि वे कभी शालवृक्ष के पत्ते में भोजन न करें और न उस वृक्ष को काटे। पीपल और वट वृक्ष को कथमपि नहीं काटे। बुद्धिशील भक्त मनुष्य को बेल, गूलर और जो वृक्ष यज्ञादि कर्म के उपयोगी हो, उन्हें कभी भी नहीं काटना चाहिए।।३४-३५।।

हे शिष्य! इन सब के बाद यदि तुम परमसिद्धि और मोक्षधर्म की कामना करते हो, तो तुमको भक्ष्य और अभक्ष्य को भी जानना आवश्यक है।।३६।।

करीर अर्थात् काँटेदार वृक्ष को काटना शुभदायक है। गूलर का फल तत्काल ही खाने योग्य कहा गया है। ऐसे शिष्य को दुर्गन्ध युक्त पदार्थ नहीं खाना चाहिए।।३७।।

सब लोगों के प्रेरणावश होकर शूकर और मछली का मांस खाने से शिष्य पतित हो जाता है। निस्सन्देह दीक्षित ब्राह्मण हेतु ये सब अभक्ष्य जानना चाहिए।।३८।।

परिवादं न कुर्वीत न हिंसां वा कदाचन। पैशुन्यं च न कर्त्तव्यं व्यसनस्थेन वा क्वचित्॥३९॥
अतिथिं चागतं दृष्ट्वा दूराध्वानगतं तथा। संविभागस्तु कर्त्तव्यो येन केन च पुत्रक॥४०॥
गुरुपत्नी राजपत्नी ब्राह्मणी वा कदाचन। मनसाऽपि न गन्तव्या एवं विष्णुः प्रभाषते॥४१॥
कनकादीनि रत्नानि यौवनस्थां च योषिताम्। तत्र चित्तं न कर्त्तव्यमेवं विणुः प्रभाषते॥४२॥
दृष्ट्वा परस्य भाग्यानि आत्मानं व्यसनं तथा। तत्र मन्युर्न कर्त्तव्य एष धर्मः सनातनः॥४३॥
एवं ततः श्रावयित्वा दीक्षाकामान् वसुंधरे। छत्रं चोपानहं चैव मनसा चोपकल्पयेत्॥४४॥
द्वौ द्वौदुम्बरपत्राणि वेदीमध्येषु स्थापयेत्। क्षुरं चैव वरारोहे जलपूर्णं च भाजनम्।
मम चाह्वानयेद् भूमि मन्त्रेण विधिनाऽर्चयेत्॥४५॥

ॐ मन्त्रः

सप्तद्वीपं च सप्तपर्वताश्च सप्तसागरा दश स्वर्गसहस्राश्च समस्ताश्च नमोऽस्तु ते सर्वस्ते हृदये वसति यश्चैतद् वर्षति यश्च पुनरुत्तमति। ॐ भगवन् वासुदेव मयैतत् स्मर यदुक्तं वराहरूपसृष्टेन पृथिव्या यां तु मन्त्रानुस्मरणं च यदाज्ञापयामास भगवानस्माकमज्ञातमनुचिन्तयित्वा भगवन्नागच्छ दीक्षाकामविप्रस्त्वत्प्रसादमुदीक्षति। एतन्मन्त्रमुदाहरित्वा शिरोभिर्जानुभिर्भूमिं गत्वा भवितव्यम्।

शिष्य को कभी भी परनिन्दा या हिंसा नहीं ही करनी चाहिए। उसे पिशुनता याने चुगलखोरी, जुआ आदि जैसे व्यसन भी कभी नहीं करना चाहिए।।३९।।

हे पुत्र! जो कोई भी जन दूर मार्ग चल कर आये हुए अतिथि को देख ले, तो येन केन प्रकारेण वह उस अतिथि को अर्घ्य आदि सत्कार योग्य पदार्थ प्रदान करें।।४०।।

विष्णु ने इस प्रकार से कहा है कि मन से भी कभी गुरुपत्नी, राजपत्नी, ब्राह्मणी आदि के साथ सहवास करने का विचार भी नहीं आने देना चाहिए।।४१।।

विष्णु ने कहा है कि पराये स्वर्ण आदि धातु, रत्न और युवती स्त्री में मन को नहीं ही लगने देना चाहिए।।४२।।

दूसरे के भाग्य और अपने व्यसन को देखकर शोक नहीं करना चाहिए। यह ही सनातन धर्म है।।४३।।

हे पृथ्वि! मन्त्र का उपदेष्टा आचार्य को दीक्षार्थी से इस प्रकार कहकर मन में छत्र और जूता का संकल्प करना चाहिए।।४४।।

हे सुन्दरि! वेदी मध्य में उदुम्बर के दो पत्ते, छुरी एवं जल पूर्ण पात्र को रखे और हे भूमि! मन्त्र द्वारा मेरा आवाहन करते हुए पूजन करना चाहिए।।४५।।

ॐ मन्त्र ने कहा कि ॐ हे भगवान् वासुदेव! आपको प्रणाम है। सातद्वीप, सात पर्वत, दस हजार स्वर्गलोक आदि सभी आपके हृदय में रहते हैं। जो मेघ वर्ण करता है और जो सूर्य तपता है, वे सभी आपके हृदय में स्थित हैं। मैंने इस समय जो कुछ कहा है, उसका स्मरण करे और वराह स्वरूप धारण कर जो पृथ्वी को मन्त्र का उपदेश दिया था और भगवान् अज्ञात विषयों को विचार कर बतलाया था, उसका स्मरण करें। हे भगवान् आप पधारे। दीक्षाकांक्षी विप्र आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

इस मन्त्र को बोलते हुए भूमि पर शिर और घुटना टेक कर प्रणाम करना चाहिए।

ॐ स्वागतं स्वागतवानिति। तत एतेन मन्त्रेण आनयित्वा वसुंधरे।
अर्घ्यं पाद्यं च दातव्य मन्त्रेण विधिनिश्चयात्॥४६॥

अकृतघ्ने देवानसुरः कृतघ्न रुद्रेण ब्राह्मणाय लब्धमर्थमिमं भगवतेऽस्तु। दत्तं प्रतिगृह्णीष्व च लोकनाथं। एवं भूमि ततो दत्त्वा अर्घ्यं पाद्यं च कर्मणः। क्षुरं गृह्य यथान्यायमिदं मन्त्रमुदीरयेत्॥४७॥

ॐ मन्त्रः

एवं ते वरुणः पातु शिष्य क्लेदयतः शिरः। जलेन विष्णुयुक्तेन दीक्षां संसारमोक्षणम्॥४८॥
एतस्य कलशं दद्यात् कर्मकारस्य सुन्दरि।४८[१]॥

निष्कलं तु शिरः कृत्वा शोणितेन विवर्जितम्। पुनः स्नानं ततः कृत्वा शीघ्रमेव न संशयः॥४९॥
एतस्य विविधं कृत्वा दीक्षाकामस्य सुन्दरि। दत्त्वा संसारमोक्षाय सर्वकामविनिश्चितः।
जानुभ्यामवनिं गत्वा इमं मन्त्रमुदाहरेत्॥५०॥

ॐ मन्त्रः

वन्दामि भो भागवतांश्च सर्वान् सुदीक्षिता ये गुरवश्च पूर्वे।
विष्णुप्रसादेन च लब्धदीक्षा मम प्रसीदन्तु नमामि सर्वान्॥५१॥

हे पृथ्वि! फिर 'ॐ स्वागतं स्वागतवान्' इस मन्त्र द्वारा सविधि अर्घ्य और पाद्य लेकर प्रदान करना चाहिए।।४६।।

हे भगवन्! अकृतघ्न, कृतघ्न, देव, असुर, रुद्र, ब्राह्मण आदि को दिया गया ये सब वस्तु आपको समर्पित किया गया है। हे लोकनाथ! इसे स्वीकार करें।

इस प्रकार बोलने के बाद अर्घ्य और पाद्य प्रदान कर कार्योपयोगी छुरा हाथ में लेकर यथोचित विधि से अधोलिखित मन्त्र को बोलना चाहिए।।४७।।

ॐ मन्त्र ने कहा कि शिष्य के शिर भिंगाते हुए वरुण तुम्हारी रक्षा करे' कहना चाहिए। विष्णु प्रतिमा युक्त जल से सम्पन्न दीक्षा संसार से मुक्त करने वाली होती है।।४८।।

हे सुन्दरि! इससे कर्म कर्त्ता को कलश का दान कर देना चाहिए।।४८[१]।।

शिर से खून किसी भी तरह से विना बहाये मुण्डन कर्म सम्पन्न कर तत्काल ही पुनः निःसंशय होकर स्नान करना चाहिए।।४९।।

हे सुन्दरि! इस प्रकार दीक्षाभिलाषी शिष्य का विविध संस्कार कर संसार से मोक्ष हेतु उसे दीक्षा प्रदान करनी चाहिए। फिर समस्त कामनाओं को संयमित करते हुए पृथ्वी पर घुटनों को टेक कर इस प्रकार यह मन्त्र पढ़ना चाहिए।।५०।।

ॐ मन्त्र ने कहा कि हे सब दीक्षित भगवद् भक्तो और पहले के सब उपदेशक गुरुजनो! आपको प्रणाम है। श्रीविष्णु की अनुकम्पा से ही मुझे दीक्षा मिल पायी है। आप सब प्रसन्न हों। आपको प्रणाम करता हूँ।।५१।।

नमित्वा भगवान् भक्तम्य प्रज्वाल्य च हुजाशनम्।
घृतेन मधुमिश्रेण लाजाकृष्णातिलेन च॥५२॥
सप्तवारांस्ततो दत्त्वा विंशत्यैव प्रमोदनम्। जानुभ्यामवनिं गत्त्वा एवं मन्त्रमुदाहरेत्॥५३॥

ॐ मन्त्रः

अश्विनौ दिशः सोमसूर्यौ साक्षिपात्रं वयम्। प्रसन्ना शृण्वन्तु मे सत्यवाक्यं वदामि॥५४॥
सत्येन धार्यते भूमिः सत्येन तिष्ठते भूमिः। सत्येन गच्छते सूर्यो भूमिः सत्येन वर्धते॥५५॥
एवं सत्यं तपः कृत्वा ब्राह्मणो वीक्षणं पुनः। गुरु प्रसादयेत् तत्र मन्त्रेण विधिना च यत्॥५६॥
त्रयः प्रदक्षिणं कृत्वा देवं भागवतं गुरुम्। गुरवे चरणौ गृह्य इमं मन्त्रमुदाहरेत्॥५७॥

ॐ मन्त्रः

गुरुदेवप्रसादेन लब्धा दीक्षा यदृच्छया। यत्ते वापकृतं किंचिद् गुरुर्मर्षयतां मम॥५८॥
एवं प्रसादयित्वा तु शिष्यो मन्त्रेण सुन्दरि। वेदिमध्ये स्थापत्वि भूत्वा पूर्वामुखं ततः॥५९॥
शिष्यमेव ततो दृष्ट्वा गृह्य चैव कमण्डलुम्। शुक्लयज्ञोपवीतं च इमं मन्त्रमुदाहरेत्॥६०॥

ॐ मन्त्रः

ॐ विष्णुप्रसादेन गतोऽसि सिद्धिं प्राप्ता च दीक्षा च कमण्डलुं च।
गृहीत्वा तु कराभ्यां युक्तोऽसि कर्मणः क्रियायां चैव॥६१॥

इस तरह भक्ति भाव सहित भगवान् को प्रणाम कर अग्नि प्रज्वलित कर घृत, मधु, लावा और काले तिल से प्रसन्नता से सत्ताइस वार हवन करें और पृथ्वी पर घुटनों को टेक कर इस प्रकार यह मन्त्र बोलना चाहिए—।।५२-५३।।

ॐ मन्त्र ने कहा कि दोनों अश्विनी कुमार, दिशायें, चन्द्र, सूर्य आदि सब साक्षी रूप में प्रसन्न हों, और सुनें। मैं सत्य वाक्य कह रहा हूँ।।५४।।

सत्य भूमि को धारण करता है, भूमि सत्य से स्थिर है। सूर्य सत्य से गमन करता है और सत्य से ही भूमि की वृद्धि भी होती है।।५५।।

इस तरह सत्य का शपथ ग्रहण कर दीक्षा लेने वाले ब्राह्मणों को पुनः गुरु की ओर देखना चाहिए और सविधि मन्त्र से गुरु को प्रसन्न करना चाहिए।।५६।।

देवता स्वरूप भगवद् भक्त गुरु की तीन प्रदक्षिणा कर उनके दोनों पैरों को पकड़ कर इस प्रकार से मन्त्र बोलना चाहिए—।।५७।।

ॐ मन्त्र ने कहा कि गुरुवर के कृपाप्रसाद से कामना के अनुरूप मुझे दीक्षा प्राप्त हो सकी है। मेरे द्वारा जो कुछ अपराध भी हुआ हो, गुरुदेव उसे क्षमा करें।।५८।।

हे सुन्दरि! इस प्रकार शिष्य मन्त्र द्वारा गुरु को प्रसन्न कर पूर्वाभिमुख होकर वेदी के मध्य में स्वयं बैठे।।५९।।

फिर शिष्य को इस तरह स्थित हुआ देखकर कमण्डलु और शुक्ल यज्ञोपवीत लेकर गुरु को यह मन्त्र बोलना चाहिए—।।६०।।

ॐ मन्त्र ने कहा कि विष्णु की कृपा प्रसाद से तुम सिद्ध हो गये और तुमको दीक्षा मिल गयी। हाथों में कमण्डलु लेकर दीक्षा स्वरूप कर्म की क्रिया में युक्त हुए हो।।६१।।

मुखपट्टं ततः कृत्वा दीक्षितो गुरुणा तथा। सर्वप्रदक्षिणां कृत्वा इमं मन्त्रमुदाहरेत्॥६२॥
अन्धो भूत्वा यद्यहं भ्रम्यतेऽत्र लब्धो गुरुर्विष्णुदीक्षा च लब्धा।
तव प्रसादाच्च गुरो यथावत्। एतेन मन्त्रेण मुखपट्टं कारयेत्।
शौचमेकेन वै कुर्याद् देवान् देयं तु वाससम्। एवं वै विष्णुमादत्ते गृह्ण वत्स कमण्डलुम्॥६३॥
इमं लोकेषु विख्यातं शोधनं सर्वकर्मसु। गृह्णस्व गन्धपत्राणि सर्वगन्धं सुखोचितम्।
सर्वं वैष्णवकं शुद्धं सर्वसंसारमोक्षणम्॥६४॥
गृह्ण वै मधुपर्कं च प्राप्य कायविशोधनम्। उभौ तु चरणौ गृह्य उपाध्यायोपकल्पयेत्॥६५॥
शिरसा चाञ्जलिं कृत्वा मनश्चैव सुसंयतम्। अर्घं गृह्य यथान्यायमिमं मन्त्रमुदीरयेत्॥६६॥
शृण्वन्तु मे भागवताः सर्वा गुरुश्च मे कर्मदीक्षां चकार।
अहं शिष्यो दासभूतस्तवैवदेवसमोगुरुश्च मे तथोपपन्नम्॥६७॥
एषागमे सर्ववर्णेषु दीक्षा भूमि जानतः। त्रयाणां मन्त्रवर्णानां दीक्षा त्वन्या विधीयते॥६८॥
य एतेन विधानेन दीक्षयेत वसुंधरे। उभयोः प्राप्नुयात् सिद्धिमाचार्यः शिष्य एव च॥६९॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१२६॥

फिर गुरु से दीक्षा प्राप्त शिष्य को मुख पर पट्टी लगाकर सबकी प्रदक्षिणा कर यह मन्त्र बोलना चाहिए।।६२।।

अन्धा हुआ सा मैं भ्रमण कर रहा था। यहाँ गुरु प्राप्त हुए। हे गुरुदेव! आपकी अनुग्रह से यथास्थिति विष्णु की दीक्षा हमें प्राप्त हुई। इस मन्त्र से मुख पर से लगी पट्टी हटा देनी चाहिए। फिर एक आचमन कर पट्टी का वस्त्र देवों को अर्पित कर देना चाहिए। इसी प्रकार से विष्णु तुम्हें ग्रहण करेंगे। हे वत्स! कमण्डलु ग्रहण करो।।६३।।

समस्त कर्मों में शुद्ध की यह विधि लोकों में सुख्यात है। अपने गन्ध का पात्र, सुखदायक सब गन्ध, विष्णु सम्बन्धी सब पदार्थ और समस्त संसार से मुक्त करने वाला शुद्ध पदार्थों को ग्रहण करो।।६४।।

तुम मधुपर्क ग्रहण करो। देह शोधन अर्थात् स्नान के लिए जल प्राप्त कर उपदेष्टा आचार्य के दोनों पैरों को पकड़ कर उनकी वन्दना करनी चाहिए।।६५।।

विधि सम्मत ठीक-ठीक मन को संयमित कर सिर पर हाथ जोड़कर प्रणाम कर अर्घ लेकर यह मन्त्र बोलना चाहिए—हे सब भगवद् भक्तों! सुनो, गुरु ने विष्णु भक्ति स्वरूप कर्म करने की दीक्षा मुझे प्रदान की है। मैं शिष्य आपका दास स्वरूप ही हूँ। मेरे लिए गुरु देवता के समान हो चुके हैं।।६६-६७।।

हे भूमि! आगमशास्त्र में सब वर्णों के लिए यह दीक्षा कही गयी है, अन्य तीन वर्णों ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य नाम के द्विजमात्र के लिए अन्य दीक्षा का भी विधान है।।६८।।

हे वसुन्धरे! जो इस विधान से दीक्षा प्रदान करता है, वह आचार्य और शिष्य दोनों ही परमसिद्धि को प्राप्त करते हैं।।६९।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में ब्राह्मण-विष्णु दीक्षा विधान और उसमें वर्ज्यावर्ज्य नामक एक सौ छब्बीसवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१२६॥

❖❖❖

सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

अथ विष्णुदीक्षाकर्मनिरूपणम्

श्रीवराह उवाच

क्षत्रियस्य प्रवक्ष्यामि तच्छृणोहि वसुंधरे। त्यक्त्वा प्रहरणान् सर्वान् यः कश्चित्पूर्वशिक्षितम्।
पूर्वमन्त्रेण मे भूमि तस्य दीक्षां च कारयेत्॥१॥
मया च पूर्वमुक्तानि यानि संभारकाणि च। तानि सर्वान् समानीय एवं वर्ज्यं यशस्विनि॥२॥
न दद्यात् कृष्णसारस्य चर्म तत्र कदाचन। पालाशं दण्डकाष्ठं च दीक्षायां न तु कारयेत्॥३॥
छागस्य कृष्णसारस्य तस्य चर्म च कारयेत्। अश्वत्थदण्डकाष्ठं च दीक्षायै तदनन्तरम्॥४॥
कृत्वा द्वादशहस्तानि स्थण्डिलं चोपलेपयेत्।
सर्वाण्येतानि वै कृत्वा यन्मया भाषितानि वै॥५॥
एवं कृत्वा ततः सर्वं क्षत्रिये दीक्षकारिणे। ममैव शरणं गत्वा इमं मन्त्रमुदाहरेत्॥६॥

मन्त्रः-

त्यक्तानि विष्णो शस्त्राणि त्यक्तं कर्म च क्षत्रियम्।
सर्वं त्यक्त्वा देवं विष्णुं प्रपन्नोऽस्मि। नाथ संसारार्थैव जातिं मां जनयस्व॥७॥

अध्याय-१२७

विष्णु दीक्षा के कर्त्तव्य, गणान्तिका ग्रहण विधि, विष्णु पूजा कङ्कनी, अञ्जन, दर्पण अर्पण

श्री भगवान् वराह ने कहा कि हे वसुन्धरे! जो कोई क्षत्रिय जन युद्धादि सम्बन्धी ज्ञान के रहित शस्त्रों की शिक्षा परित्याग करते हुए मेरी दीक्षा प्राप्त करने की कामना रखता है, तो ऐसे दीक्षा का विधान बतलाया जाता है, उसे सुनो। हे भूमि! मेरे पूर्व के मन्त्र से ही उसकी दीक्षा की जानी चाहिए।।१।।

हे यशस्विनि! मैंने पहले ही जिन वस्तुओं को कहा है, उन सबका संग्रह करते हुए अधोलिखित वस्तुओं का त्याग करना चाहिए।।२।।

इस दीक्षा कर्म में कभी कृष्णसार मृग का चर्म और पलाश का दण्ड ग्रहण नहीं करना चाहिए।।३।।

लेकिन क्षत्रिय की दीक्षा में काले बकरे का चर्म और पीपल का दण्ड प्रयोग किया जाना चाहिए।।४।।

फिर बारह हाथ का चबूतरा बना कर उसे गाय के गोबर से लीप देना चाहिए। इसके बाद मैंने जैसा भी कहा है, उन सब कार्यों को करना चाहिए।।५।।

दीक्षाभिलाषी क्षत्रिय के लिए इस प्रकार से समस्त सामग्री उपलब्ध करने के बाद मेरा वह क्षत्रिय शरणागत होकर इस मन्त्र का उच्चारण करे—।।६।।

ॐ मन्त्र ने कहा कि हे विष्णो! मैंने शास्त्रों और क्षत्रियकर्मों को छोड़ दिया है। सब कुछ छोड़कर मैं आप विष्णु देव का शरणागत हूँ। हे नाथ! संसार के लिए भी लाभकारी जाति के योग्य मुझे बना दें।।७।।

एवं ततो वचश्चोक्त्वा क्षत्रियो मम पार्श्वतः। उभाभ्यां चरणौ गृह्य इमं मन्त्रमुदीरयेत्॥८॥

मन्त्रः-

नाहं शस्त्रं देवदेव स्पृशामि परापवादं न च वै ब्रवीमि।
कर्म करोमि संसारमोक्षणम् त्वया चोक्तमेव वराहसंस्थितम्॥९॥

तत्र एवं वचो ब्रूते सर्वं चैवात्र योजयेत्। विविधैर्गन्धपत्रैश्च धूपैश्चैव यथोदितम्॥१०॥
यथा तेनैव तान् भूमे भोजयेत् तदनन्तरम्। शुभान् भागवतांश्चैव एवमेतन्न संशयः॥११॥
एषा वै क्षत्रिये दीक्षा देवि संसारमोक्षणम्। मत्प्रसादेन कर्त्तव्यं यदीच्छेत् सिद्धिमुत्तमाम्॥१२॥
वैश्यस्यैव प्रवक्ष्यामि श्रृणु तत्त्वेन सुन्दरि। दीक्षा च यादृशी तत्र यथा भवति सुन्दरि॥१३॥
त्यक्त्वा तु वैश्यकर्माणि मम कर्मपरायणः। यथा च लभते सिद्धिं तृतीयो वर्णसंस्थितः॥१४॥
सर्वांस्तत्र समानीय ये मया पूर्वभाषिताः। विंशद्धस्तं समालिप्य पूर्वन्यायेन कारयेत्।
चर्मणा पीतछागस्य स्वगात्रं परिवेष्टयेत्॥१५॥
उदुम्बरं दण्डकाष्ठं च गृह्य हस्ते तु दक्षिणे।
कुर्याद् भागवतान् शुद्धान् त्रीणि वारान् प्रदक्षिणम्।
जानुभ्यामवनिं गत्वा इमं मन्त्रमुदाहरेत्॥१६॥

इस प्रकार मेरे सामने स्थित क्षत्रिय शिष्य को यह वचन कहकर दोनों हाथों से दोनों पैर पकड़ कर यह मन्त्र बोलना चाहिए।।८।।

मन्त्र ने कहा कि हे देवेदेव! मैं अब शस्त्र को स्पर्श भी नहीं करूँगा। दूसरों की कभी निन्दा भी नहीं करूँगा। फिर मैं संसार से मुक्त करने वाला और वराह पुराणोक्त समस्त कार्यों को करने में तत्पर रहूँगा।।९।।

इस प्रकार से प्रार्थना करने वाले क्षत्रिय पूर्वोक्त सब विविध प्रकार के गन्धों, पत्रों, धूपों और अन्य सब वस्तुओं का संग्रहण करें।।१०।।

हे भूमि! फिर उन पवित्र भगवद् भक्त दीक्षा लेने वालों को निःसंशय होकर भोजन कराना चाहिए। इस प्रसङ्ग में इसी प्रकार का विधान है।।११।।

हे देवि! क्षत्रिय हेतु यह दीक्षा की विधि संसार से मुक्ति दिलाने वाली है। उत्तम सिद्धि की कामना करने वाले को मेरी कृपा प्रसाद से यह दीक्षा विधि सम्पन्न करना चाहिए।।१२।।

हे सुन्दरि! इसी प्रकार वैश्यों की दीक्षा विधि को कहने जा रहा हूँ। उसे सुनो। हे सुन्दरि! उन वैश्यों के लिए जिस प्रकार की दीक्षा विधि होती है और जिस प्रकार वह दीक्षा प्रदान की जाती है, उनको मैं बतला रहा हूँ।।१३।।

मेरे कर्म में संलग्न रहने वाला तीसरे वर्ण वैश्य के कर्मों को छोड़कर जैसे सिद्धि प्राप्त करते हैं, उसे सुनो। पहले ही मेरे द्वारा कथित सब वस्तुओं का संग्रह कर पहले के ही समान बीस हाथ भूमि को लीपकर वहाँ पर स्थित हो जाय। फिर पीतवर्ण के बकरे के चर्म से अपने शरीर को आच्छादित करे।।१४-१५।।

अपने दाहिने हाथ में उदुम्बर का दण्ड धारण कर शुद्ध भगवद् भक्तों की तीन बार प्रदक्षिणा करे। फिर भूमि पर घुटनों के बल बैठ कर अधोलिखित मंत्र का उच्चारण करना चाहिए।।१६।।

मन्त्रः-

अहं हि वैश्यो भवन्तमुपागतः प्रमुच्य कर्माणि च वैश्ययोगम्।
दीक्षा च लब्धा भगवत्प्रसादात् प्रसीद संसारकरोहि मोक्षणम्॥१७॥
मम त्वेवं ततश्चोक्त्वा मम कर्मप्रसादनात्। गुरवे चरणौ गृह्य इमं मन्त्रमुदाहरेत्॥१८॥
त्यक्त्वा वै कृषिगोरक्षावाणिज्यक्रयविक्रयम्।
लब्धा च त्वत्प्रसादेन विष्णुदीक्षाऽथ कामयेत्॥१९॥
देवाभिवादनं कृत्वा पुरो भागवतेषु च। पश्चात्तु भोजनं दद्यदपराधबहिष्कृतम्॥२०॥
एवं दीक्षा तु वैश्यानां मम मार्गानुसारिणाम्।
येन मुच्यति सुश्रोणि घोरसंसारसागरात्॥२१॥
शूद्रस्यापि प्रवक्ष्यामि मद्भक्तस्य वसुंधरे। यतु दीक्षां समासाद्य मुच्यते सर्वकिल्बिषैः॥२२॥
सर्वद्रव्याणि संस्कारान् ये मया पूर्वभाषिताः।
दीक्षाकामस्य शूद्रस्य एतान् शीघ्रं प्रकल्पयेत्॥२३॥
उपलिप्य सप्तहस्तं स्थण्डिलं तदनन्तरम्। चर्मणा कृष्णछागस्य तस्य गात्राणि वेष्टयेत्।
खादिरं दण्डकाष्ठं च गुरुणा तत्प्रकल्पयेत्॥२४॥

मन्त्र ने कहा कि वैश्य योग्य कर्मों का त्याग कर मैं वैश्य आपके समीप आया हुआ हूँ। आप भगवान् की कृपा प्रसाद से मुझे दीक्षा की प्राप्ति हुई। आप प्रसन्न हों। आप मुझे इस संसार सागर से मुक्ति प्रदान करें।।१७।।

फिर मेरी भक्ति युक्त कर्म से मुझे प्रसन्न करने हेतु मेरे समक्ष इस प्रकार से कहने के उपरान्त गुरु का चरण पकड़ कर इस मन्त्र को बोलना चाहिए।।१८।।

मन्त्र ने कहा कि कृषि, गोरक्षा, वाणिज्य, क्रय-विक्रय स्वरूप वैश्य कर्म को छोड़कर आपके कृपा प्रसाद से मैंने स्वेच्छा से विष्णु की दीक्षा ली है।।१९।।

फिर भगवद् भक्तों के सामने ही देव का अभिवादन कर उन्हें अपराध रहित भोजन भी प्रदान करना चाहिए।।२०।।

इस प्रकार हे सुश्रोणि! मेरे मार्ग का अनुसरण करने वाले भक्तों की वैसी ही दीक्षा होती है, जिससे वह संसार से मुक्त हो जाता है।।२१।।

हे वसुन्धरे! अब मैं अपने भक्त शूद्र की दीक्षा की विधि को कहता हूँ, जिसे प्राप्त कर वे लोग सभी पापों से रहित हो जाया करेगा।।२२।।

मेरे द्वारा पहले जिन-जिन वस्तुओं और संस्कारों को बतलाया गया है, उन सब वस्तुओं को तत्काल ही दीक्षा की कामना वाले शूद्र हेतु उपलब्ध कर संग्रहित करना चाहिए।।२३।।

फिर सात हाथ लम्बा चौड़ा चबूतरा बनाकर उसे गाय के गोबर से लीपा जाना चाहिए। उसके बाद उस शूद्र के शरीर को काले बकरे के चर्म से आच्छादित करनी चाहिए और गुरु को चाहिए कि उस शिष्य को खदिर का काष्ठ दण्ड धारण करावे।।२४।।

एवं गृह्य यथान्यायं शूद्रो दीक्षादिकारणम्। ममैव शरणं गत्वा इमं मन्त्रमुदाहरेत्॥२५॥

मन्त्रः-

शूद्रोऽहं शूद्रकर्माणि मुक्त्वा भक्षं च सर्वशः।
भक्षयामो ह्यभक्ष्यं वै शूद्रकर्म च कुर्वतः॥२६॥
त्यक्तुमिच्छामि तत्सर्वं विष्णोः कर्म करोमि वै।
पश्य वै देव शूद्रोऽहं तव प्रपन्नोऽस्मि गुरुप्रसादात्॥२७॥

एवं वदेत् ततो देवं शूद्रो दीक्षाभिकाङ्क्षिणः। विमुक्तः सर्वपापेभ्यो लब्धसंज्ञो गतस्पृहः॥२८॥
उभौ चरणौ संगृह्य गुरवे तदनन्तरम्। गुरोः प्रसादनार्थाय इमं मन्त्रमुदाहरेत्॥२९॥

मन्त्रः-

विष्णुप्रसादेन गुह्यं प्रसन्नपूर्वं लब्ध्वार्थमेवं संसारमोक्षणाय करोमि कर्म प्रसीद।

एवं मन्त्रमुदीर्याथ कुर्यात् तत्र प्रदक्षिणम्।
चतुरश्च यथान्यायं पुनश्चैवाभिवादयेत्॥३०॥

अनन्तरं ततः कुर्याद् गन्धमाल्येन चार्च्चनम्। भोजयेच्च यथान्यायमपराधविवर्जितः॥३१॥
दीक्षा एषा च शूद्राणामुपचारश्च ईदृशः। चतुर्णामपि वर्णानां दुःखसंसारमोक्षणम्॥३२॥

शूद्र शिष्य को फिर दीक्षा हेतु यथोचित प्रकार सभी उपकरणों को ग्रहण करने के बाद मेरा शरणागत होकर अधोलिखित मन्त्र को बोलना चाहिए।।२५।।

मन्त्र ने कहा कि मैं शूद्र हूँ। शूद्र के कर्मों और आहारों को पूर्ण रूप से छोड़कर मैं आपके शरण में आ गया हूँ। वैसे अब तक मैंने शूद्र के कर्म को करता हुआ अभक्ष्य भक्षण करता रहा हूँ।।२६।।

मैं उन समस्त कर्मों को छोड़कर अब केवल, विष्णु का कर्म करूँगा। हे देव! गुरु की कृपा से मैं शूद्र आपका शरणागत हो गया हूँ।।२७।।

फिर समस्त पापों से मुक्त, ज्ञान मुक्त और निष्काम दीक्षा की कामना से युक्त शूद्र को इस तरह उन विष्णु देव के समक्ष कहना चाहिए।।२८।।

तत्पश्चात् गुरु के दोनों पैरों को पकड़ कर गुरु की प्रसन्नता प्राप्त करने हेतु इस प्रकार इस मन्त्र को बोलना चाहिए।।२९।।

मन्त्र ने कहा कि भगवान् श्रीविष्णु की कृपा से मैंने प्रसन्नतापूर्वक इस तरह दीक्षा के रूप में गुप्त अर्थ को प्राप्त कर लिया है। मैं अब सदा इस संसार से विमुक्त होने का ही प्रयास करूँगा। आप मुझ पर प्रसन्न हों।

इस प्रकार मन्त्र को बोलकर यथोचित विधि से चार बार प्रदक्षिणापूर्वक उनका अभिवादन करना चाहिए।।३०।।

फिर गन्ध, माला आदि द्वारा पूजा करनी चाहिए। तत्पश्चात् दोषरहित होकर सविधि भोजन कराना चाहिए।।३१।।

इस प्रकार यह शूद्रों की दीक्षा विधि कही गई है। यही उपचार है। यह चारों वर्णों को दुःखों और संसार से मुक्त करने वाला होता है।।३२।।

अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व वसुंधरे। चतुर्णामपि वर्णानां यथा छत्रं प्रदीयते॥३३॥
ब्राह्मणे पाण्डुरं दद्याद् रक्तं दातव्यं क्षत्रिये। वैश्याय पीतकं दद्यान् नीलं शूद्राय दापयेत्॥३४॥

सूत उवाच

चातुर्वर्ण्यस्य श्रुत्वा वै सा मही संशितव्रता। वराहरूपिणं किं नु कर्त्तव्यं तव कर्मपरायणैः॥३५॥

धरण्युवाच

श्रुत्वा दीक्षां यथान्यायं चातुर्वर्ण्यस्य केशव। दीक्षितैः किं नु कर्त्तव्यं तव कर्मपरायणैः॥३६॥
ततो महीवचः श्रुत्वा मेघदुन्दुभिनिःस्वनः। वराहरूपी भगवानुवाच स महीं स्थितः॥३७॥

श्रीवराह उवाच

शृणु तत्त्वेन कल्याणि यन्मां त्वं परिपृच्छसि। सर्वत्र चिन्तनीयोऽहं गुह्यमेव गणान्तिकम्॥३८॥
नारायणवचः श्रुत्वा धरणी संशितव्रता। हृष्टतुष्टमनास्तत्र श्रुत्वा धर्मं महौजसम्।
शुचिर्भागवतां श्रेष्ठा तव कर्मणि नित्यशः॥३९॥
ततः कमलपत्राक्षी भक्ताभक्तेषु वत्सला। कराभ्यामञ्जलिं कृत्वा नारायणमथाब्रवीत्॥४०॥

धरण्युवाच

त्वद्भक्तेन महाभाग विधिना दीक्षितेन च। तव चिन्तापरेणात्र किं कर्त्तव्यं च माधव॥४१॥

हे वसुन्धरे! मैं अब अन्य विधि भी तुमको सुनाने जा रहा हूँ। जिसमें चारों वर्णों के दीक्षित जनों को किस प्रकार के छत्र दिया जाता है, उसे सुनो—॥३३॥

इस क्रम में दीक्षित ब्राह्मण को पाण्डुर वर्ण का, क्षत्रिय को रक्त वर्ण का, वैश्य को पीत वर्ण का और शूद्र को नील वर्ण का छत्र दिया जाना चाहिए॥३४॥

सूत ने कहा कि चारों वर्णों की दीक्षा विधान को सुनने के बाद तीव्रव्रतधारिणी उस पृथ्वी ने वराह स्वरूप देव से कहा—॥३५॥

धरणी ने कहा कि हे केशव! चारों वर्णों का दीक्षा विधान को यथावसर मैंने सुन लिया। आपके कर्म में अनुरक्त दीक्षित जनों को क्या करना चाहिए?॥३६॥

फिर मेघ और दुन्दुभि के समान आवाज में वहाँ पर स्थित वराह स्वरूप भगवान् ने धरणी की वाणी को सुनकर उससे कहा—॥३७॥

श्री भगवान् वराह ने कहा कि हे भद्रे! तुमने जो कुछ मुझसे पूछी हो, उसे वास्तविक स्वरूप में सुनो— मैं हर जगह गुप्त रूप से ध्यान करने योग्य गणान्तिक हूँ॥३८॥

श्री नारायण के इस प्रकार के वचन को सुनकर तीव्रव्रत वाली धरणी वहाँ पर अत्यन्त ओजस्वी धर्म को सुनकर प्रसन्न और सन्तुष्ट मन वाली नजर आने लगी। वैसे तो पृथ्वी नित्य, जो पवित्र और श्रेष्ठ भगवद् भक्तों में एक हैं, स्वयं भगवान् का शुभ कर्म को करने वाली है॥३९॥

फिर पद्मपत्र की तरह आँखों वाली भगवद् भक्त और भक्तों से स्नेह करने वाली पृथ्वी ने हाथों को जोड़कर उन नारायण से कहा—॥४०॥

धरणी ने कहा कि हे महाभाग! हे माधव!! यथावसर दीक्षित और आपका ध्यान करने वाले आपके भक्त को आखिर क्या-क्या करना चाहिए?॥४१॥

केन चिन्तयसे देव अचिन्त्यो मानुषैः परः। किं च भागवतैः कार्यं यथाचिन्त्यं न शक्यते॥४२॥
ततो भूम्या वचः श्रुत्वा आदिरव्यक्तसंभवः। मधुरं स्वरमादाय प्रत्युवाच वसुंधराम्॥४३॥

श्रीवराह उवाच

देवि तत्त्वेन वक्ष्यामि यन्मां त्वं परिपृच्छसि। येन चिन्तयते मर्त्यः मम कर्मपरायणः॥४४॥
एषा गणन्तिका नाम दक्षिणाम्बुजनिःसृता। एतद् गुह्यं महाभागे मम चिन्तां विचिन्तयेत्॥४५॥
दीक्षितेन तु शुद्धेन विधिदृष्टेन कर्मणा। गृहीतव्यं विशालाक्षि मन्त्रेण विधिनात्र वै॥४६॥
यस्तु भागवतो भूत्वा तद् गृह्णाति गणान्तिकाम्। जनस्य दर्शनस्पर्शसंयुक्तां वामसंयुताम्॥४७॥
यस्तु गृह्णाति सुश्रोणि मन्त्रपूतां गणान्तिकाम्। आसुरी दीक्षणा तस्य न मे धर्मे प्रवर्त्तते॥४८॥

गुह्यं गणान्तिकां देवि यो मां चिन्तयते बुधः।
जन्मान्तरसहस्राणि चिन्तितोऽहं च तेन वै॥४९॥

ग्रहणस्य प्रवक्ष्यामि यथा शिष्याय दीयते। मन्त्रं लोकसुखार्थाय तच्छृणुष्व वसुंधरे॥५०॥
कौमुदस्य तु मासस्य मार्गशीर्षस्य वाऽप्यथ। वैशाखस्यापि मासस्य शुक्लपक्षे तु द्वादशी॥५१॥

हे देव! मनुष्यों में कौन-से मनुष्य द्वारा अचिन्त्य श्रेष्ठदेव स्वरूप आपका चिन्तन कर सकता है। वैसे भगवद् भक्तों को क्या-क्या कार्य करना चाहिए, जिससे वह स्वयं चिन्तनीय स्थिति को प्राप्त न कर ले?।।४२।।

फिर भूमि की वाणी सुनकर सृष्टि के आदि स्वरूप अव्यक्त उत्पत्ति वाले वराहस्वरूप भगवान् ने मीठे वचनों में पृथ्वी से कहा—।।४३।।

श्री वराह ने कहा —हे देवि! तुमने जो कुछ मुझसे पूछा है, उसे तत्त्वतः मैं तुमसे कहता हूँ, जिसके द्वारा मेरे कर्म में अनुरक्त मनुष्य मेरा चिन्तन करता है।।४४।।

हे महाभागे! दाहिने कमल से निःसरित यह गणान्तिका नाम के मेरे इस ध्यान की गुप्त विधि है। इसके द्वारा मनुष्य मेरा चिन्तन कर सकता है।।४५।।

हे विशालाक्षि! यथोचित विधि से किये कर्मों के द्वारा दीक्षित व्यक्ति को विधान के अनुरूप मन्त्र से ध्यान की यह विधि स्वीकार करनी चाहिए।।४६।।

जो जन भगवद् भक्त होकर दर्शन और स्पर्शन द्वारा वाममार्ग से सम्बद्ध गणान्तिका व्रत को ग्रहण करता है, उस मनुष्य का धर्म नहीं रह जाता है और वह दीक्षित भी नहीं कहा जा सकता है।।४७।।

हे सुश्रोणि! जो जन मन्त्र वाला गणान्तिक व्रत को ग्रहण करता है, उसकी दीक्षा आसुरी हुआ करती है। वह मेरे धर्म में प्रवृत्त नहीं हो सकता है।।४८।।

हे देवि! जो बुद्धिमान् मनुष्य गणान्तिक नाम के गुप्त विधि से मेरा चिन्तन करता है, उसे हजारों जन्मों तक मेरा ध्यान करना पड़ता है।।४९।।

हे वसुन्धरे! इस व्रत को ग्रहण करने की विधि अब मैं बतला रहा हूँ। शिष्यों को यह मन्त्र जिस तरह दिया जा सकता है, उसे लोकसुख हेतु सुनो।।५०।।

कार्तिक, मार्गशीर्ष अथवा वैशाख मास के शुक्लपक्ष की द्वादशी तिथि को निरामिष व्रत धारण कर

कुर्यान्निरामिषं त्र दिनानि त्रीणि निश्चितः। ततो गणान्तिका ग्राह्या मन्त्रवद धर्मनिश्चिता॥५२॥
ममाग्रतो वरारोहे प्रज्वाल्य च हुताशनम्। कुशैः संस्तरणं कृत्वा स्थापयित्वा गणान्तिकाम्॥५३॥
ततः शिष्यो गुरुश्चैव दीक्षितः शुचिमुत्तमम्। नमो नारायणेत्युक्त्वा इमं मन्त्रमुदाहरेत्॥५४॥

मन्त्रः–

या धारिता पूर्पपितामहेन ब्रह्मण्यदेवेन भवोद्भवेन।
नारायणाद् दक्षिणगात्रजातां गृह्णामहे वश्यामृतं तु तत्त्वतः॥५५॥

तत एतेन मन्त्रेण पुनर्गृह्य गणान्तिकाम्। शिष्याय प्रददौ तत्र पुनर्मन्त्रमुदाहरेत्॥५६॥

मन्त्रः–

नारायणाद् दक्षिणगात्रजातां स्वशिष्य गृह्णन् समयेन देवीम्।
इमां चिन्तापरो भूत्वा भवोद्भाव न जायते॥५७॥

धरण्युवाच

स्नानोपकल्पनानतेषु किं कर्तव्यं तु माधव। प्रसाधनविधिं चैव केन मन्त्रेण कारयेत्।
अकर्मण्येव मुच्यन्ते तव कर्मपरायणाः॥५८॥

ततो भूम्या वचः श्रुत्वा लोकनाथो जनार्दनः। धर्मसंयुक्तवाक्येन प्रत्युवाच वसुंधराम्॥५९॥

श्रीवराह उवाच

देवि तत्त्वेन वक्ष्यामि यन्मां त्वं परिपृच्छसि। स्नानस्यैवोपचाराणि यानि कुर्वन्ति कर्मिणः॥६०॥

विनिश्चयपूर्वक तीन दिनों एक उसका पालन करना चाहिए। फिर मन्त्रयुक्त निश्चित धर्म विधान वाली गणान्तिका ग्रहण करनी चाहिए।।५१-५२।।

हे सुन्दरि! मेरे सामने अग्नि प्रज्वलित कर और कुश बिछाकर गणान्तिका की स्थापना करनी चाहिए।।५३।।

फिर दीक्षा गुरु और दीक्षित शिष्य को 'नमो नारायणाय' इस प्रकार कहते हुए इस पवित्र और उत्तम मन्त्र को ग्रहण करना चाहिए।।५४।।

मन्त्र ने कहा कि पुरातनसमय में शिव से उत्पन्न ब्रह्मस्वरूप पितामह ने नारायण के शरीर के दक्षिण भाग से उत्पन्न जिस अमृत स्वरूप, वशीभूत करने वाला विधान को ग्रहण किया था, उसे तत्त्वतः ग्रहण करता हूँ।।५५।।

फिर इस मन्त्र से पुनः गणान्तिक को ग्रहण कर शिष्य को प्रदान करने के लिए मन्त्र बोलना चाहिए।।५६।।

मन्त्र ने कहा कि हे देव! मेरा शिष्य नारायण के दाहिने भाग के शरीर से उत्पन्न इस आराधना विधान को ग्रहण करता है। इस ध्यान करने वाले जन का पुनर्जन्म नहीं हुआ करता है।।५७।।

धरणी ने कहा कि हे माधव! दीक्षा प्राप्त करने वाले को दीक्षा कर्म के अन्त में सम्पन्न होने वाले अभिषेक सम्बन्धी कार्यों में क्या करना चाहिए तथा स्नान के बाद उसे शरीर सम्बन्धी प्रसाधन की रीति किस मन्त्र से सम्पन्न करना चाहिए? आपके कर्म में संलग्न भक्त विना कर्म के ही मुक्त हो जाते हैं।।५८।।

फिर से भूमि की वाणी सुनकर लोकनाथ जनार्दन ने पृथ्वी से धर्मयुक्त वचन कहा—।।५७।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि हे देवि! तुम जो कुछ मुझसे पूछ रही हो, उसे तत्त्व रूप से मैं तुमको बतलाने जा रहा हूँ। कर्मनिष्ठ जन स्नान के विषय में जो-जो उपचार किया करते हैं, उन्हें मैं बतलाने जा रहा हूँ।।६०।।

वृत्तश्चैवोपचारेषु जलप्रमुदितेषु च। कङ्कतीं चाञ्जनं चैव शीघ्रमेवोपकल्पयेत्।
दर्पणं च वरारोहे येन मन्त्रेण दीयते॥६१॥

स्पृष्ट्वा तु मम गात्राणि क्षौमवस्त्रेण तत्त्वतः। अञ्जनं कङ्कतीं चैव शीघ्रमेव प्रकल्पयेत्॥६२॥

ततो जानुस्थितो भूत्वा मम कर्मपरायणः। अञ्जलिं कङ्कतं गृह्य इमं मन्त्रमुदाहरेत्॥६३॥

ॐ मन्त्रः-एषोञ्जलिं कङ्कतं देव प्रसीद नारायण शिरः प्रसाधि हि
महानुभावे नेत्रे वश्च ये पश्यन्ति सर्वलोका लोकप्रभो
सर्वलोकप्रधान एषो नयनं अञ्जय लोकनाथ।

प्रसीद नारायण गृह्ण गृह्ण पश्येतमुद्भाव सद्भावेन। नमो नारायणेत्युक्त्वा इमं मन्त्रमुदाहरेत्॥६४॥

मन्त्रः

एषा मया माधव त्वत्प्रसादाद् गुरुप्रसादाच्च मन्त्रपूजा।
प्राप्ता मयैषा च गणान्तिका वै भवत्वधर्मं न मे कदाचित्॥६५॥

य एतेन विधानेन मम कर्माणि दीक्षितः। गृह्यते गुरुसंयुक्तो मम लोकाय गच्छति॥६६॥

कुशिष्याय न दातव्यं पिशुनाय शठाय च। एषा चैव वरारोहे गृह्णेमं च गणान्तिकम्।
सुशिष्या च दातव्यं हस्तेष्वेव गणान्तिकम्॥६७॥

मङ्गल्यं मङ्गलं सिद्धं भक्तसंसारमोक्षणम्। परिमाणं प्रवक्ष्यामि शृणु तत्त्वेन माधवि॥६८॥

प्रसन्नता से जल सम्बन्धी उपचार पूरा कर तत्काल कंघी और अंजन सम्बन्धी कार्य करना चाहिए। फिर हे सुन्दरी! जिस मन्त्र से दर्पण अर्पण किया जाता है, उसे सुनो—।।६१।।

वास्तविक रूप से मेरे अंगों को रेशम के वस्त्र से पोंछ कर कंघी और अंजन का कार्य तत्क्षण सम्पन्न कर लेना चाहिए।।६२।।

फिर मेरे कर्म में संलग्न मनुष्य को घुटनों के बल बैठकर अञ्जलि में कंघी लेकर यह मन्त्र पढ़ना चाहिए। ॐ मन्त्र ने कहा कि हे देव! ये अंजन और कंघी है, आप प्रसन्न हों। हे नारायण! आप अपने शिर को प्रसाधित करें। समस्त जन आपके जिन महान् कृपालु दोनों नेत्रों को देखते हैं। हे सब लोकों के प्रधान, लोकप्रभो! लोकनाथ!! यह नेत्रों का अञ्जन है। हे नारायण! आप इसे ग्रहण कर प्रसन्न हों। इसे सद्भावना से देखकर स्वीकार करें। 'नमो नारायणाय' यह कहकर इस मन्त्र को बोलना चाहिए।।६३-६४।।

ॐ मन्त्र कहते हैं कि हे माधव! आपके और गुरु की कृपा से मैंने इस मन्त्र की पूजा और गणान्तिका पूजन विधान प्राप्त की है। मुझे कभी भी अधर्म न हो।।६५।।

मेरे कर्म में दीक्षित, जो मनुष्य इस विधान से सम्पन्न होता है, वह गुरु सहित मेरे लोक में चला जाता है।।६६।।

कुशिष्य, पिशुन अर्थात् चुगलखोर और शठ को इस मेरे कर्म विधान का उपदेश कथमपि नहीं करना चाहिए। हे सुन्दरि! इस गणान्तिका को ग्रहण कर सुशिष्य के हाथों में ही इसे देना चाहिए।।६७।।

हे विष्णुप्रिया! मैं कल्याणमय, मंगलस्वरूप, सिद्ध और भक्त को संसार से मुक्त करने वाले परिमाण को कह रहा हूँ। उसे तत्त्व रूप से तुम सुनो—।।६८।।

उत्तमा तु शतं पूर्णं पञ्चाशतिकमध्यमा। पञ्चविंशतिकान्यासा परिमाणं विधीयते॥६९॥
रुद्राक्षा उत्तमा चैव पुत्रजीवकमध्यमा। कन्यसी अष्टकैर्विध्वा देवि त्वां कथितं मया॥७०॥
एतन्न जानते कश्चिज्जन्मान्तरशतैरपि। सर्वयोगविदां शुद्धां मोक्षकामा गणान्तिकाम्॥७१॥

नोच्छिष्टेन तु स्पृष्टव्या स्त्रीणां हस्ते न कारयेत्।
आकाशे स्थापनं कुर्याद् यदिच्छेत् परमां गतिम्॥७२॥

गुह्यानां परमं गुह्यं संध्योपासनमेव च। एष मन्त्रश्च जाप्यश्च पूज्यमेव गणान्तिकम्॥७३॥
एवं हि विधिपूर्वेण पालयेत गणान्तिकाम्। विशुद्धो मम भक्तश्च मम लोकाय गच्छति॥७४॥
एवं विष्णोर्वचः श्रुत्वा धरणी रत्नभूषितम्। प्रत्युवाच परं श्रेष्ठं लोकनाथं महौजसम्॥७५॥
दर्पणं ते कथं देयं तन्ममाख्याहि माधव। येन तुष्टो निजं रूपं पश्यसे चिन्तितः प्रभो॥७६॥
धरण्यास्तद्वचः श्रुत्वा वराहः पुनरब्रवीत्' शृणु मे दर्पणविधिं यथावद् देवि सुव्रते।

नमो नारायणेत्युक्त्वा इमं मन्त्रमुदीरयेत्॥७७॥

मन्त्रः

शुचिर्भागवताः श्रेष्ठास्तव कर्मविनिश्चिताः।
गात्राणि ते सर्वजगत्प्रधानं मुखं चन्द्रपताग्रे नेत्रे।
इमं च मे दर्पणं लोनाथस्य पश्य स्वरूपं जगत् सर्वतः।
य एतेन विधानेन मम कर्मपरायणः।
मम कर्माणि कुर्वीत तारिताः सप्त वै कुलाः॥७८॥

सौ का परिमाण उत्तम, पचास का मध्यम और पच्चीस का अधम परिमाण होता है।।६९।।

हे देवि! मैं तुमको यह बतलाना चाहता हूँ कि रुद्र नेत्र तुल्य अर्थात् तीन संख्या वाला उत्तम, पुत्रजीवक अर्थात् पाँच संख्या वाला मध्यम और अष्ट संख्यक तुल्य संख्या से विद्ध अर्थात् कनिष्ठ परिमाण होता है।।७०।।

सैकड़ों जन्मों में भी कोई समस्त योगों को जानने वाला कोई-कोई एक मोक्षार्थी इस शुद्ध गणान्तिका को जान पाता है।।७१।।

ध्यान देने की बात यह है कि मुख जूठा रहते कथमपि गणान्तिका का स्पर्श नहीं ही करना चाहिए। स्त्रियों के हाथों में इसे नहीं ही देना चाहिए। यदि परम गति प्राप्त करने की कामना करते हों, तो आकाश में इसकी स्थापना करनी चाहिए।।७२।।

यह गणान्तिका गुप्त में भी अति गोपनीय, सन्ध्योपासना और मन्त्र का जप है। जो मेरा विशुद्ध भक्त इस तरह विधिपूर्वक गणान्तिका की विधि का पालन करता है, वह निश्चय ही मेरे लोक में निवास करता है।।७१-७४।।

एवम्प्रकार विष्णु का वचन सुनकर धरणी ने रत्नविभूषित, परमश्रेष्ठ, महान् ओजस्वी लोकनाथ से कहा— हे माधव! प्रभो!! आपको दर्पण किस प्रकार से अर्पण करना चाहिए? जिससे चिन्तन करने वाले पर आप प्रसन्न होकर अपना स्वरूप देखते हैं।।७५-७६।।

इस प्रकार के धरणी का वचन सुनकर भगवान् वराह ने पुनः कहा कि हे सुव्रते! देवि!! मुझसे यथा विधि दर्पण अर्पण विधि सुनो 'नमो नारायणाय' इस मन्त्र को बोलकर आगे लिखित मन्त्र को बोलना चाहिए।।७७।।

ॐ मन्त्र ने कहा कि आपके कर्म में संलग्न श्रेष्ठ और पवित्र भगवद् भक्त को यह कहना चाहिए कि समस्त

एतेन मन्त्रेण वै भूमि उपचारस्तु ईदृशः। हृष्टतुष्टेन कर्त्तव्यं यदीच्छेत् परमां गतिम्॥७९॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१२७॥

अष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

अथ सन्ध्यादिकर्मनिरूपणम्

श्रीवराह उवाच

भूषितालंकृतं कृत्वा मम कर्मपरायणः। शुक्लयज्ञोपकं दद्यान्नवसूत्रगुणं तथा॥१॥

शिरसा चाञ्जलिं कृत्वा वसुधा पुनरब्रवीत्।

धरण्युवाच

एतन्मे परमं गुह्यं तद्भवान् वक्तुमर्हसि॥२॥

सन्ध्यां वै केन मन्त्रेण तव कर्मपरायणः। वन्देद् भागवतां शुद्धां तव कर्मविनिश्चितः॥३॥

संसार आपका शरीर है, प्रधान याने प्रकृति आपका मुख है, चन्द्रमा और सूर्य आपके दोनों नेत्र हैं। यह मेरा दर्पण है, इसमें समस्त जगत् के लोकनाथ भगवान् के स्वरूप का दर्शन करना चाहिए।।७८।।

मेरे कर्म में संलग्न रहने वाले जो कोई इस विधान से मेरे कर्मों को करने वाले हैं, वे जन अपने सात पीढ़ियों के पुरुषों का उद्धार कर देता है।।७८।।

हे भूमि! यदि परमगति की कामना करने वाले चाहे, तो प्रसन्न और संतुष्ट मन से इस मन्त्र द्वारा इस प्रकार से पूजा का समायोजन करे।।७९।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में विष्णु दीक्षा के कर्त्तव्य, गणान्तिका ग्रहण विधि, विष्णु पूजा कङ्कनी, अञ्जन, दर्पण अर्पण नामक एक सौ सत्ताइसवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१२७॥

अध्याय-१२८

सन्ध्योपासना, विष्णुदीपदान, ताम्रपात्र महत्त्व और गुडाकेशोपाख्यान

श्री भगवान् वराह ने कहा कि मेरे कर्म को करने वाले जन को नौ सूत्रीय बनाये गए श्वेत यज्ञोपवीत को सुसंस्कारित और अलंकृत कर दान करना चाहिए।।१।।

पृथ्वी ने अपने शिर से अपने ही दोनों हाथ जोड़कर और लगा कर फिर से कहा। पृथ्वी ने कहा कि आपको मुझसे यह परम गुप्त बात को अवश्य बतलाना चाहिए।।२।।

आपका कर्मपरायण और निश्चित रूपसे आपके ही कर्म में संलग्न रहने वाले जनों को आपके किस मन्त्र से भगवद्विषयक शुद्ध सन्ध्या की वन्दना करनी चाहिए।।३।।

ततो भूमिवचः श्रुत्वा भूतानां प्रभवोऽव्ययः। वराहरूपो भगवान् प्रत्युवाच वसुंधराम्॥४॥

श्रीवराह उवाच

शृणु माधवि तत्त्वेन यन्मां त्वं परिपृच्छसि। कथयिष्यामि ते भद्रे प्रवरं गुह्यमुत्तमम्।
यथा वदन्ति वै सुभ्रु पुण्या भागवताः शुभाः॥५॥

कृत्वा तु मम कर्माणि शुचि संसारमोक्षणम्। पूर्वां चैवापरां सन्ध्यां यथा वन्दति निाश्चितः॥६॥
जलाञ्जलिं ततो गृह्य मम भक्त्या व्यवस्थितः। मुहूर्त्तं ध्यानमास्थाय इमं मन्त्रमुदाहरेत्॥७॥

मन्त्रः

भवोद्भवमादिव्यक्तरूपमादित्यं च सर्वदेव ब्रह्मा रुद्रस्त्वादृक् स ममासीद् ध्यानयोगस्थितास् ते वै सन्ध्यासंस्था वासुदेवं नमन्ति आदिमव्यक्तरूपमात्मानं कृत्वा देवसंस्था तथापि संसारार्थकर्म तत्करणा मे संध्यासंस्था वासुदेव नमो नमः।

मन्त्राणां परमो मन्त्रस्तपसां परमं तपः। आचारं कुरुते ह्येतन् मम लोकाय गच्छति॥८॥
गुह्यानां परमं गुह्यं रहस्यं परममुत्तमम्। य एवं पठते नित्यं न स पापैर्विलिप्यते॥९॥
नादीक्षिताय दातव्यं नोपनीते कदाचन। दीक्षितायैव दातव्यमुपपन्ने तथैव च॥११॥

तत्पश्चात् भूमि की वाणी को सुनकर समस्त चराचर को उत्पन्न करने वाले सनातन वराहस्वरूप भगवान् विष्णु ने पृथ्वी को प्रत्युत्तर दिया—।।४।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि हे माधवि! तुमने जो कुछ मुझसे पूछा है, उसके तात्त्विक स्वरूप को मैं कहने जा रहा हूँ, सुनो—हे भद्रे! अब मैं तुमको उस श्रेष्ठ और उत्तम गुप्त रहस्य को अपनी वाणी से खोलने जा रहा हूँ। हे सुभ्रु! शुभकारी और पवित्र भगवद् भक्त उस गुप्त रहस्य को जिस प्रकार से कहते हैं, यहाँ से उसी प्रकार कह रहा हूँ।।५।।

इस संसार से मुक्ति प्रदान करने वाले मेरे पुण्य कर्मों को सम्पन्न कर निश्चिन्त होकर पूर्व और अपर काल की सन्ध्या का वन्दन करना चाहिए। फिर भक्तिपूर्वक अञ्जलियों में जल लेकर एक मुहूर्त्त तक ध्यान करने के बाद इस मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए।।६-७।।

ॐ मन्त्र ने कहा कि आपके समान ब्रह्मा, रुद्र आदि सभी देवता ध्यान योग का आलम्बन सन्ध्याकालिक कर्म में संलग्न होकर संसार को उत्पन्न करने वाले आदित्य स्वरूप वासुदेव को प्रणाम किया करते हैं। देव योनि में स्थित समस्त देवता संसार के लिए आवश्यक कर्म करने वाले और सन्ध्या में स्थित वासुदेव को वारम्वार प्रणाम किया करते हैं। मन्त्रों में श्रेष्ठ मन्त्र, तपों में श्रेष्ठ तप स्वरूप इस कर्म को जो करने वाला है, वह मेरे लोक में चला जाता है।।८।।

जो जन गुप्त से परमगुप्त और परमोत्तम इस रहस्य का नित्य पाठ करता है, वह समस्त पापों से सदा निर्लिप्त रहता है।।९।।

कभी भी किसी समय दीक्षारहित और उपनयन संस्कार हीन जन को इस रहस्य का उपदेश नहीं ही करना चाहिए।।१०।।

हे माधवि! फिर से वास्तविक रूप से अन्य रहस्यात्मक बात को बतलने जारहा हूँ। शुभमय भगवद्भक्तों द्वारा मैं जिस प्रकार दीप को स्वीकार करता हूँ, उसे अब सुनो—।।११।।

पुनरन्यत् प्रवक्ष्यामि शृणु तत्त्वेन माधवि। दीपं यथैव गृह्णामि दत्तं भागवतैः शुभैः॥११॥
कृत्वा तु मम कर्माणि गृह्य दीपकमुत्तमम्। जानुसंस्थां ततः कृत्वा इमं मन्त्रमुदाहरेत्॥१२॥

ॐ नमो भगवतेऽनुग्रहतेजाय विष्णो सर्वदेवाग्निसंस्था प्रविष्टा एवं चाग्निसंस्थाः प्रविष्टा एवं चाग्निस्तव तेजः प्रविष्टः तेजश्चात्मा मां ससमन्त्रश्च तेजसः संसारार्थं देव गुह्यस्व दीपद्युति मन्त्रमूर्त्ति मन्त्रश्च भूत्वा इमं कर्म च निष्कलम् तत्करोमि यथान्यायायं गर्भवासेन दुःखितः।

यस्त्वनेन विधानेन दीपकं ददते नरः। तारिताः पितरस्तेन निष्कलाश्च पितामहाः॥१३॥
अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि कर्म लोकसुखावहम्। येन मन्त्रेण दातव्यं ललाटे मम चित्रकम्॥१४॥

मन्त्रः

मुखमण्डनं चिन्तय वासुदेव त्वया प्रयुक्तं च मयोपनीतम्।
एतेन चित्रितं देव गृह्ण ममैव संसारकरोहि मोक्षम्।
एतेन मन्त्रेण चित्रकं दातव्यम्।

नारायणवचः श्रुत्वा विस्मिता च वसुंधरा। वाराहरूपं भगवन् प्रत्युवाच पुनर्वचः॥१५॥
श्रुत्वा भागवता देव तव कर्मपरायणाः। कृत्वा तु तव कर्माणि शेषे च तव सेवने॥१६॥

मेरा कर्म करने वाले को उत्तम प्रकार का दीपक लेकर घुटनों के बल बैठे हुए इस मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए।।१२।।

अनुग्रह प्रदान करने वाला तेज सम्पन्न भगवान् को प्रणाम है। हे विष्णो! आप समस्त देवताओं और अग्नि में प्रविष्ट होकर स्थितिवान् हैं। हे देव! अग्नि स्वरूप आपका तेज सर्वत्र व्याप्त है। आप तेज स्वरूप हैं। आपके संसार के उपकार के लिए मेरे दिये हुए मन्त्रयुक्त तेजस्वरूप यह दीप स्वीकार करना चाहिए। दीप प्रकाश और मन्त्र मूर्त्ति स्वरूप इस मन्त्र के द्वारा मेरे इस कर्म को सम्पन्न करना चाहिए।

मैं गर्भवास के समय होने वाले कष्ट से पीड़ित आवश्यकता के अनुरूप उचित विधि से इस कर्म को कर रहा हूँ। जो जन इस विधि से दीपकों का दान करता है, वे जन अपने पितरों, पितामहों को पूर्ण रूप से मुक्ति प्रदान का मार्ग प्रशस्त कर देता है।।१३।।

अब आगे मैं तुमको संसार को सुख प्रदान करने वाले अन्य कर्म को भी कहने जा रहा हूँ। जिस मन्त्र से मेरे ललाट में तिलक लगाना चाहिए, उस मन्त्र को कहा जाता है।।१४।।

मन्त्र ने कहा कि हे वासुदेव! आपसे समुत्प्रेरित होकर मैं मुख को मण्डित करने योग्य द्रव्य लेकर आया हूँ। आपको इसका चिन्तन करना चाहिए। हे देव! इसे ग्रहण कर इसका तिलक धारण करें। मुझको इस संसार सागर से मुक्त करें। इस मन्त्र से देव को तिलक लगा देना चाहिए।

इस प्रकार से नारायण देव की वाणी को सुनकर आश्चर्यान्वित पृथ्वी ने फिर से वराह स्वरूप भगवान् से पूछ दिया।।१५।।

हे देव! मेरे द्वारा सुना गया है कि आपका कर्म करने वाला भगवद् भक्त आपके पूजाप्रसङ्ग के कर्मों को सम्पन्न कर उस पूजा विषयक कर्म के अन्त में प्रापण नाम का कृत्य किया करते हैं।।१६।।

तत्र प्रापणकृत्यं तु केषु पात्रेषु कारयेत्। एतदाचक्ष्व तत्त्वेन येन तुष्यसि माधव॥१७॥

ततो भूम्या वचः श्रुत्वा लोकनाथोऽब्रवीदिदम्।
शृणु तत्त्वेन मे देवि ये च पात्रा मम प्रियाः।
तानि ते कथयिष्यामि यत्त्वया पूर्वपृच्छितम्॥१८॥

सौवर्णं राजतं कांस्यं येषु दीयेत प्रापणा। तानि सर्वानि परित्यज्य ताम्र च मम रोचते॥१९॥
एवं नारायणाच्छुत्वा धर्मकामा वसुंधरा। उवाच मधुरं वाक्यं लोनाथं जनार्दनम्॥२०॥
मुच्य सौवर्णरौप्यं च कांस्यं चैव जनार्दन। एतन्मे परमं गुह्यं ताम्रस्ते रोचते कथम्॥२१॥
ततो भूमिवचः श्रुत्वा आदिरव्यक्तमव्ययः। लोकानां प्रवरः श्रेष्ठः प्रत्युवाच वसुंधराम्॥२२॥
शृणु तत्त्वेन मे भूमि कथ्यमानं मयाऽनघे। एकचित्तं समाधाय येन मे ताम्रकं प्रियम्॥२३॥
सप्तयुगसहस्राणि आदिकालादि माधवि। यस्तु ताम्रसमुत्पन्ने ममैव प्रियदर्शने॥२४॥
ततः कमलपत्राक्षि गुडाकेशो महासुरः। ताम्ररूपं समादाय ममैवाराधने स्थितः॥२५॥
तत आराधितस्तेन सहस्राणि च षोडश। मम भक्तो विशालाक्षि धर्मकामेन निश्चयम्।

ततः प्रीतोऽस्मि सुश्रोणि तस्य संतपनिश्चयात्॥२६॥

अतः आपका प्रापण कर्म किस प्रकार के पात्र में करना श्रेष्ठ है। हे माधव! आप मुझे तत्त्वतः इस प्रकार का विधान बतलाने की कृपा करें, जिससे आपको प्रसन्न किया जा सकता हो।।१७।।

इस प्रकार धरणी की वाणी को सुनने के उपरान्त लोकनाथ ने इस प्रकार से कहा—हे देवि! मेरा जो पात्र अतिप्रिय है, उनको तत्त्वतः सुनो। तुम्हारे द्वारा जो कुछ पहले पूछा गया है, उनको मैं तुमसे बतलाने जा रहा हूँ।।१८।।

वैसे मेरा प्रापण कर्म को करने वाले सोना, चाँदी, काँसा आदि धातुओं के पात्रों में किया करते हैं, परन्तु इन सबों के अतिरिक्त मुझे केवल ताम्र पात्र सबसे अधिक प्रिय है।।१९।।

इस प्रकार श्रीनारायण के द्वारा कहे जाने पर धर्म की सदा कामना करने वाली धरणी ने लोकनाथ जनार्दन से मधुर शब्दों में कहा—हे जनार्दन! मुझे यह परमगोपनीय रहस्य बतलाया जाय कि उपरोक्त सोना, चाँदी, काँसा आदि धातुओं को छोड़कर आपको ताम्र पात्र ही क्यों प्रिय है।।२०-२१।।

फिर भूमि की वाणी सुनकर लोकों के परम श्रेष्ठ, सृष्टि के आदि स्वरूप, अत्यन्त और अव्यय भगवान् ने धरणी से पुनः कहा।।२२।।

हे भूमि! एकाग्रचित्त से वास्तविक रूप से कहे जाने वाले उस रहस्य को सुनो, जिससे मुझे ताम्र प्रिय लगता है।।२३।।

हे प्रियदर्शने! सम्प्रति सृष्टि के आदि काल से सात हजार युगों के बीत जाने पर मेरी माया स्वरूप इस ताम्र की उत्पत्ति हुई।।२४।।

हे पद्माक्षि! पुरातन समय में गुडाकेश नामक महासुर ताम्र स्वरूप धारण कर मेरी उपासना करने में संलग्न हुआ था।।२५।।

हे विशालाक्षि उस धर्माभिसिक्त मेरे भक्त ने दृढ़ निश्चयी होकर सोलह हजार वर्षों एक मेरी उपासना की। हे सुश्रोणि फिर उसके कठिन और सुन्दर तप के प्रसङ्ग में दृढ़ निश्चय को देखकर मैं अत्यन्त प्रसन्न हो गया।।२६।।

ततस्ताम्राश्रमे रम्ये यत्र ताम्रसमुद्भवः। दृष्ट्वाश्रमं मया देवि किञ्चिदेव सुभाषितम्॥२७॥
ततो जानुस्थितो भूत्वा मम एष विचिन्तयत्। तमूचेऽहं ततो दृष्ट्वा मम चिन्तापरायणम्।
गुडाकेश महाप्राज्ञ मम कर्मविधौ स्थितः॥२८॥
एवं स तु मया प्रोक्तः प्रसन्नेनान्तरात्मना। गुडाकेश महाभाग ब्रूहि किं करवाणि ते॥२९॥
तोषितोऽस्मि महाप्राज्ञ त्वया भक्तेन केवलम्।
यत्त्वया चिन्तितं सौम्य कर्मणा मनसा च वै।
वरं ब्रूहि महाभाग तव यद् रोचते हृदि॥३०॥
एवं मम वचः श्रुत्वा गुडाकेशो वचोऽब्रवीत्। कराभ्यामञ्जलिं कृत्वा विशुद्धेनान्तरात्मना॥३१॥
यदि तुष्टोऽसि मे देव समस्तेनान्तरात्मना। जन्मान्तरसहस्राणि तव भक्तिर्दृढास्तु मे।
चक्रेण वधमिच्छामि त्वया मुक्तेन केशव॥३२॥
य एष मज्जामांसं वै त्वया चक्रेण पातितम्। ताम्रं नाम भवेद् देव पवित्रीकरणं शुभम्॥३३॥
ते पात्रं ततः कृत्वा शुद्धिर्धर्मविनिश्चिता। तव प्रापणकं देव ताम्रभाजनसंस्थितम्॥३४॥
एतन्मे परम चिरुं लोकनाथ व्यवस्थितम्। प्रसन्नो यदि मां देव ततो मे दीयतां वरः।
यत्त्वया चिन्तितं देव तप उग्रमिदं महत्॥३५॥

फिर जिस स्थान पर ताम्र उत्पन्न हुआ था, उसी रमणीय ताम्र के आश्रम में पहुच गया। हे देवि! आश्रम को देखकर मैंने कुछ सुन्दर वाक्य कहा—।।७।

फिर घुटनों के बल बैठकर उसने मेरा ध्यान किया। उस समय मेरा ध्यान करता हुआ उसको देखकर मैंने उससे कहा—हे महाबुद्धिमान्! गुडाकेश!! तुम मेरे कर्म में लगे हो।।२८।।

फिर मैंने प्रसन्नचित्त से होकर उससे कहा—हे महाभाग! गुडाकेश! बतलाओं कि मैं तुम्हारा किस प्रकार से हित लाभ करूँ।।२९।।

हे महाप्राज्ञ! अनन्य भक्ति से तुमने मुझको सन्तुष्ट किया है। हे सौम्य! मन और कर्म से तुमने जो कुछ विचार किया हो। हे महाभाग! और जो कुछ तुम्हारे मन को अच्छा लग सकता हो, उसे वर रूप में मुझसे माँग लो।।३०।।

इस प्रकार के मेरे वचनों को सुनकर गुडाकेश हाथ जोड़कर विशुद्ध मन से मुझसे कहने लगा—।।३१।।

हे देव! आप यदि सम्पूर्ण अन्तरात्मा से प्रसन्न हों, तो मुझे यह श्रेष्ठ वर प्रदान करें कि हजारों जन्मों तक मुझे आप में दृढ भक्ति बनी रहे। हे केशव! आप द्वारा प्रहार किये गए चक्र से मैं अपना वध चाहता हूँ।।३२।।

हे देव! आपके चक्र से जो मेरा मांस और मज्जा गिरे, वह पवित्र करने वाला शुभ ताम्र धातु हो जाय।।३।।

हे देव! वह पात्र ऐसा हो, जिससे धर्म का विनिश्चय हो सके और उस ताम्र पात्र में आपका प्रापण कर्म सम्पन्न हो।।३४।।

हे लोकनाथ! यह मेरा सुनिश्चित श्रेष्ठ संकल्प है। हे देव! यदि मेरे ऊपर प्रसन्न हीं हैं, तो मुझे यह वर प्रदान करें। हे देव! आपने यदि यह मान लिया है कि मेरा यह मान तप उग्र है, तो फिर मुझे उपरोक्त वर प्रदान करने की कृपा करें।।३५।।

बाढमित्येव तं चाह एवमेतद् भविष्यति। यावल्लोका धरिष्यन्ति तावच्चैवं महासुर।
तावत्ताम्रस्थितो भूत्वा मम संस्थो भविष्यसि॥३६॥
गुडाकेश तपश्चैवं स ताम्रं तस्य निष्कलम्। माङ्गल्यं च पवित्रं च सर्वसंसारमोक्षणम्।
एवं तत्र मया चोक्तं सोऽपि वै तपसि स्थितः॥३७॥
एवं पश्यति तं चक्रं मध्याह्ने तु दिवाकरे। वैशाखस्य तु मासस्य शुक्लपक्षे तु द्वादशीम्।
वधिष्यति न संदेहः स चक्रश्चाग्नितेजसः॥३८॥
एष्यते मम लोकाय एवमतन्न संशयः। एवमेतद् वचशेक्त्वा तत्रैवान्तरधीयत॥३९॥
सोऽपि कुर्वीत कर्माणि चक्राद् वधमनीषया। शुचीनि च विशिष्टानि यथोपेतं मम प्रिये॥४०॥
सोऽपि चिन्तयते तत्र निवृत्तेनान्तरात्मना। कुतश्चैष्यति वै मासः कदा चक्रं समेष्यति॥४१॥
यो मे निकृत्य मांसानि विष्णुसंस्थां करिष्यति। एवं संचितयानस्य मासं माधवमागतम्॥४२॥
शुक्लपक्षे तु द्वादश्यां ततो धर्मसुनिश्चितः। विष्णुसंस्थापनं कृत्वा मध्याह्ने तु दिवाकरे॥४३॥
मुञ्च मुञ्च मया चक्रं ज्वलन्निव हुताशनम्।
आत्मा मे नीयतां शीघ्रं निकृत्य चक्रमङ्ग मे॥४४॥
तस्य मांसमयं ताम्रं पञ्चरङ्गं तु शोणितम्। रूपं चास्थीनि जायेत मलकं कांस्यमुच्यते॥४५॥

मैंने उससे कहा कि 'अच्छा' ऐसा ही होगा। हे महासुर! यह लोक जब तक रहेगा, तब तक तुम ताम्र में स्थित होकर मुझसे जुड़े रहकर याद किये जा सकोगे।।३६।।

इस प्रकार उस गुडाकेश के तप से वह सम्पूर्ण ताम्र पवित्र, मंगलमय और समस्त संसार को मोक्ष प्रदान करने वाला हो गया। यह वहाँ मैंने उसे कहा। वह भी अपनी तपस्या में संलग्न ही रहा।।३७।।

तत्पश्चात् उसमें उस चक्र को देखा। वैशाख मास के शुक्लपक्ष की द्वादशी को मध्याह्नकालिक सूर्य के होने पर अग्नि के समान तेजस्वी वह चक्र निःसंशय उसका वध करने वाला है।।३८।।

फिर मेरे लोक में पहुँचकर शोभा को प्राप्त होगा। इस तरह इस वचन को कहकर मैं वहीं पर अन्तर्धान कर गया।।३९।।

हे मेरी प्रिये! चक्र से वध कराने की इच्छा से वह भी सम्यक् रूप से विशेष प्रकार के पवित्र कर्म करने में संलग्न हो गया।।४०।।

वहाँ वह भी शान्तचित्त से विचार करता रहा था कि कब वह मास आये और कब चक्र आयेगा, जो मेरे मांसो को काट कर विष्णु का स्थान बना सकेगा। इस प्रकार उसके सोचते-सोचते वह वैशाख मास भी आ गया।।४१-४२।।

तत्पश्चात् धर्म हेतु दृढ़ निश्चय सम्पन्न गुडाकेश ने मध्याह्न का सूर्य हो जाने पर विष्णु की स्थापना कर 'अग्नि सदृश समुज्वलित चक्र मेरे ऊपर चलाये जायँ, मेरे ऊपर चलायें। चक्र से शरीर का संयोग कर मेरे शरीर को शीघ्र काट कर मेरी आत्मा को ले जायँ।।४३-४४।।

जिससे उसके मांस का ताम्र, रुधिर का पञ्चरङ्ग, हड्डी से चाँदी और कल रूप का कांसा हुआ कहा जाता है।।४५।।

यो वै ताम्रेण मे देवि प्रापणं मम दीयते। एकैकस्य च सिक्थस्य तच्छृणुष्व फलं महत्॥४६॥
यावन्ति तानि सिक्थानि ताम्रपात्रस्थितानि वै। तावद् वर्षसहस्राणि मम लोके स मोदते॥४७॥
एतद् भागवतः कुर्याद् यदीच्छेत मम प्रियम्। गुह्यं ताम्रमयं पात्रं नित्यं मां धर्मकारणात्॥४८॥
एवं ताम्रं समुत्पन्नं तस्मात् प्रियतरं मम। देवि तत्त्वेन ते हीदं कथितं ताम्रनिश्चयम्॥४९॥
पवित्राणां पवित्रं च मङ्गलानां च मङ्गलम्। विशुद्धानां शुचिश्चैव ताम्रं संसारमोक्षणम्॥५०॥
दीक्षितानां विशुद्धानां मम कर्मपरायणम्। सदा ताम्रेण कर्त्तव्यमेवं भूमि मम प्रियम्॥५१॥
एषा वै दीक्षणा भद्रे एष ताम्रस्य संभवः। निष्कलं कथितं सर्वं किमन्यत् परिपृच्छसि॥५२॥

॥इति श्रीवराहपुराणेभगवच्छास्त्रे अष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१२८॥

हे देवि! जो मुझे ताम्र में प्रापण अर्थात् नैवेद्य प्रदान करता है, उसके प्रत्येक सिक्थ (कण) का महान् फल होता है, उसे सुनो—॥४६॥

ताम्रपात्र में जितने सिक्थ उपलब्ध रहते हैं, उतने हजार वर्ष तक वह मेरे लोक में रमण करता रहता है॥४७॥

जो भगवद्भक्त जन मेरा प्रिय होना चाहे, वह धर्म के लिए गुप्त ताम्रपात्र में मुझे प्रापण प्रदान करें॥४८॥

इस तरह उस गुडाकेश से मेरा अत्यन्त प्रिय ताम्र उत्पन्न हो सका। हे देवि! मैंने तुम्हें वास्तविक रूप से ताम्र का सुनिश्चित स्वरूप बतला दिया है॥४९॥

इस प्रकार ताम्र पवित्रों में अतिपवित्र, मंगलों में भी अति मंगल, शुद्धों में भी अति शुद्ध और संसार से मुक्ति प्रदान करने वाला है॥५०॥

हे भूमि! विशुद्ध दीक्षित जनों को हमेशा ताम्र से ही मेरे से सम्बन्धित समस्त मेरा प्रिय कार्य करना श्रेष्ठ है॥५१॥

हे भद्रे यही दीक्षा विधि है। इसी प्रकार ताम्र उत्पन्न हुआ। सम्पूर्णता से मैंने इसे तुम्हें बतला दिया है। अब आगे तुम मुझसे क्या पूछना चाहती हो?॥५२॥

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में सन्ध्योपासना, विष्णुदीपदान, ताम्रपात्र महत्त्व और गुडाकेशोपाख्यान नामक एक सौ अट्ठाइसवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायण-कुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१२८॥

ऊनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

अथ विष्णुपूजने राजान्ननिषेधं प्रायश्चित्तंञ्च

सूत उवाच

एवं दीक्षां ततः श्रुत्वा वाक्यं नारायणान्मुखात्। विशुद्धमनसा भूमिः पुनर्विष्णुमथाब्रवीत्॥१॥

धरण्युवाच

अहो दीक्षणमाहात्म्यं यस्य वै व्युष्टिरुत्तमा। श्रुत्वा वयं महाभाग जाताऽस्मि विमला विभो॥२॥

अहो देवस्य माहात्म्यं लोकनाथस्य तत्त्वतः। येन स कारिणी दीक्षा चातुर्वर्ण्यसुखावहा॥३॥

एकं मे परमं गुह्यं यदीश हृदि वर्त्तते। तव भक्तसुखार्थाय तत् त्वं मे वक्तुर्महसि॥४॥

देव पूर्वापराधास्ते द्वात्रिंशत्परिकीर्त्तिताः। एवं कृत्वाऽपराधानि मनुजा अल्पचेतसः॥५॥

कर्मणा केन शुद्धयन्ति अपराधस्य कारिणः। तन्ममाचक्ष्व तत्त्वेन मम प्रीत्या च माधव॥६॥

ततो भूम्या वचः श्रुत्वा हृषीकेशो महायशाः। दिव्यं ध्यानं समादाय प्रत्युवाच वसुंधराम्॥७॥

श्रीवराह उवाच

शुद्धा भागवता भूत्वा मम कर्मपरायणाः। ये तु भुञ्जन्ति राजान्नं लोभेन च भयेन च॥८॥

आपद्गतापि भुञ्जीत राजान्नं तु वसुंधरे। दशवर्षसहस्राणि पच्यन्ते नरके पराः॥९॥

अध्याय–१२९

विष्णु पूजा में राजान्न ग्रहण निषेध और प्रायश्चित्त

सूतजी ने कहा कि इसके अनन्तर नारायण के मुख से इस प्रकार से दीक्षा विधान सुनकर भूमि ने फिर से शुद्ध मन होकर विष्णु से कहा—।।१।।

धरणी ने कहा कि जिसकी फल पद्धति श्रेष्ठ है, उस दीक्षा का माहात्म्य धन्य है। हे महाभाग प्रभु! इसको सुनकर मैं विशुद्ध चित्त हो गयी हूँ।।२।।

लोकनाथ देव का माहात्म्य वस्तुतः धन्य है, जिससे उनके लिए होने वाली चारों वर्णों की सुखदायक दीक्षा होती है।।३।।

हे ईश! मेरे हृदय में एक अत्यन्त गोपनीय रहस्य है, अतः आप अपने भक्तों के सुखानुभूति हेतु वह रहस्य मुझे बतलायें।।४।।

हे देव! पूर्व में आपके कर्म करने वालों से बत्तीस प्रकार के अपराध बतलाये गये हैं, अल्पज्ञानी मनुष्य इस प्रकार के अपराधो को करके किस कर्म द्वारा अपराध कृत्य के दोष से मुक्त हो पाता है। हे माधव! मुझ पर स्नेह कर मुझे वास्तविक रूप से वे सब बताने की कृपा करें।।५-६।।

तत्पश्चात् भूमि की वाणी सुनकर महायशस्वी हृषिकेश ने दिव्य ध्यान धारण कर उससे कहा—।।७।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि मेरे कर्म में संलग्न, जो मनुष्य शुद्ध भगवद् भक्त होकर भी लोभ या भय के कारण राजा का अन्न खाता है, अथवा हे वसुन्धरे! आपत्ति के समय भी जो राजा का अन्न खाते हैं, वे जन दस हजार वर्षों तक नरक का भोग किया करते हैं।।८-९।।

भगवद्वचनं श्रुत्वा कम्पिता च वसुंधरा। दिनानि सप्त दश च भयं तीव्रं प्रजायते॥१०॥
ततो दीनमना भूत्वा सा मही संशितव्रता। उवाच मधुरं वाक्यं सर्वलोकसुखावहम्॥११॥

धरण्युवाच

शृणु तत्त्वेन मे देव यन्मे च हृदि वर्त्तते। को नु दोषो हि राज्ञां तु तन्मे त्वं वक्तुमर्हसि॥१२॥
ततो भूम्या वचः श्रुत्वा सर्वधर्मविदांवरः। प्राह नारायणो वाक्यं धर्मकामां वसुंधराम्॥१३॥

श्रीवराह उवाच

शृणु सुन्दरि तत्त्वेन गुह्यमेतदनिन्दिते। राजान्नं तु न भोक्तव्यं शुभैर्भागवतैः सदा॥१४॥
यद्यपि च ममांशेन राजा लोके प्रवर्त्तते। राजसस्तमसश्चापि कुर्वन् कर्म सुदारुणम्॥१५॥
गर्हितानि वरारोहे राजान्नानि न संशयः। धर्मसंधारणार्थाय न तु मे रोचते भुवि॥१६॥
ततोऽन्यत् संप्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व वसुंधरे। यथा राज्ञां तु भोज्यं वै शुद्धैर्भावगतैः शुभैः॥१७॥
स्थापयित्वा तु मां देवि विधिदृष्टेन कर्मणा। धनधान्यसमृद्धानि दत्त्वा भागवतैरपि॥१८॥
सिद्धं भागवतैश्चान्नं म प्रापणशेषणम्। भुञ्जानस्तु वरारोहे नस पापेन लिप्यते॥१९॥
एवं विष्णुवचः श्रुत्वा धरणी संशितव्रता। वाराहरूपिणं देवं प्रत्युवाच वरानना॥२०॥

भगवान् की वाणी को सुनकर धरणी काँपने लगी। सत्रह दिनों तक उसे तीव्र भय सताता रहा।।१०।।

फिर तीव्र व्रत धारण करने वाली उस धरणी ने दीनतापूर्वक शुद्ध मन से समस्त लोकों को सुख प्रदान करने वाले मीठे स्वर में कहा—।।११।।

धरणी ने कहा कि हे देव! मेरे हृदय में इस समय जो कुछ है, उसे आप तत्त्व रूप से सुनें। राजाओं का क्या दोष होता है? उसे मुझे बतलायें।।१२।।

फिर धरणी की वाणी सुनकर सब धर्मों को जानने वालों में श्रेष्ठ नारायण ने धर्माभिलाषिणी धरणी से कहा—श्री भगवान् वराह ने कहा कि हे अनिन्दित सुन्दरि! इस रहस्यात्मक विषय को तत्त्वतः सुनो। पवित्र भगवद भक्तों को सदा राजा का अन्न नहीं ही खाने के बारे में सोचना चाहिए।।१३-१४।।

यद्यपि मेरे ही अंश से राजा लोक में प्रवृत्त हुआ करता है। लेकिन वह रजोगुण और तमोगुण वाले अति कठिन कर्मों को करने से राजा का अन्न निःसंशय निन्दित हुआ करता है। पृथ्वी धर्म की धारणा के निमित्त मुझे राजा का अन्न प्रिय नहीं होता है।।१५-१६।।

हे वसुन्धरे! इसके अलावे अन्य बातें भी बतलाता हूँ। उसे सुनो—शुद्ध और कल्याणकारी भगवद् भक्तों को जिस प्रकार राजाओं का अन्न खाना चाहिए, उसे सुनो—।।१७।।

हे देवि! विधि के अनुकूल कर्म द्वारा मेरी स्थापना कर और भगवद् भक्तों को प्रचुर धनधान्य देकर हे सुन्दरि! भगवद् भक्तों द्वारा पकाये गए और मुझको भोग अर्पण कर बचे हुए राजा क अन्न को खाने से वह भगवद् भक्त पाप से निर्लिप्त रहने में सफल होता है।।१८-१९।।

विष्णु के इस वचन को सुनकर तीव्रव्रत धारण करने वाली सुन्दर मुख वाली पृथ्वी ने वराहस्वरूप धारण करने वाले देव से कहा—।।२०।।

धरण्युवाच

राजान्नं तु ततो भुक्त्वा शुद्धो भागवतः शुचिः। कर्मणा केन शुद्ध्येत तन्मे ब्रूहि जनार्दन॥२१॥

श्रीवराह उवाच

शृणु तत्त्वेन मे देवि यन्मां त्वं भीरु भाषसे। तरन्ति पुरुषा येन राजान्नमुपभुञ्जकाः॥२२॥

एकं चान्द्रायणं कृत्वा तप्तकृच्छ्रं च पुष्कलम्।
कुर्यात् सान्तपनं चैकं शीघ्र मुच्येत किल्बिषात्॥२३॥

राज्ञामन्नानि वै भुक्त्वा इमं कर्म समारभेत्। न तस्यैवापराधोऽस्ति वसुधे वै वचो मम॥२४॥

एवमेव न भोक्तव्यं राजान्नं तु कदाचन। ममात्र प्रियकामाय यदीच्छेत् परमां गतिम्॥२५॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे ऊनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥१२९॥

धरणी ने कहा कि राजा का अन्नाहार करने के पश्चात् शुद्ध और पवित्र भगवद् भक्त किस कर्म से शुद्ध होता है? हे जनार्दन! यह मुझे बतलाने की कृपा करें।।२१।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि भीरु देवि! तुमने जो कुछ मुझसे कहा है, उसे तत्त्व रूप से सुनो। राजा का अन्नाहार करने वाले जिस कर्म को करने से तरते हैं,उसे सुनो।।२२।।

एक चान्द्रायण व्रत कर अनेक तप्तकृच्छ्र और एक सान्तपन व्रत करना श्रेष्ठ है। इस प्रकार से करने वाला भक्त शीघ्र उसके पाप से मुक्त हो जाता है।।२३।।

राजाओं का अन्नाहार ग्रहण करने से होने वाले पाप से मुक्ति के लिए यह कर्म करना चाहिए। हे पृथ्वि! यहां मेरा कहने का भाव है कि इसे करने से भगवद् भक्त का कोई भी अपराध नहीं शेष रह जाता है।।२४।।

इस संसार में मेरी प्रियता की कामना वाले यदि परम गति चाहता हो, तो कभी भी विना प्रायश्चित्त के इस प्रकार से ही राजा का अन्नाहार नहीं स्वीकार करे।।२५।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में विष्णु पूजा में राजान्न ग्रहण निषेध और प्रायश्चित नामक एक सौ उनतीसवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायण-कुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१२९॥

त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

अथ विष्णुपूजनपूर्वं दन्तकाष्ठभक्षण महत्त्वम्

श्रीवराह उवाच

दन्तकाष्ठमखादित्वा यो हि मामुपसर्पति। पूर्वकालकृतं कर्म तेन चैकेन नश्यति॥१॥
नारायणवचः श्रुत्वा पृथिवी धर्मसंस्थिता। विष्णुभक्तसुखार्थाय हृषीकेशमुवाच ह॥२॥

धरण्युवाच

सर्वकालकृतं कर्म क्लेशेन महताऽनघ। कथमेकापराधेन सर्वमेव प्रणश्यति॥३॥

श्रीवराह उवाच

शृणु सुन्दरि तत्त्वेन कथ्यमानं मयाऽनघे। येन चैकापराधेन पूर्वकर्म प्रणश्यति॥४॥
मनुष्यः किल्बिषी भद्रे कफपित्तसमन्वितः। पूयशोणितसंपूर्णं दुर्गन्धि मुखमस्य तत्॥५॥
न सहेदुचितं देवि दन्तकाष्ठस्य भक्षणात्। शुद्धिं भागवतीं चैव आचारेण विवर्जिताम्॥६॥

धरण्युवाच

दन्ताकाष्ठमखादित्वा यः कर्माणि करोति ते। प्रायश्चित्तं च मे ब्रूहि येन धर्मं न नश्यति॥७॥

श्रीवराह उवाच

एवमेतन्महाभागे यन्मां त्वं परिपृच्छसि। कथयिष्यामि ते हीदं यथा शुद्ध्यन्ति मानवाः॥८॥

अध्याय-१३०

दन्तकाष्ठ भक्षण विना विष्णु पूजा का प्रायश्चित्त

श्री भगवान् वराह ने कहा कि जिसने दन्तकाष्ठ याने दन्तधावन नहीं किया और मेरे पास आ जाता है, तो उसके पूर्व के समस्त शुभ कर्म उस एक अपराध से विनष्ट हो जाते हैं।।१।।

श्री नारायण की वाणी सुनकर धर्म में स्थित रहने वाली पृथ्वी ने विष्णु भक्तों के सुख हेतु हृषीकेश से पूछा। धरणी ने कहा कि हे अनघ! अत्यन्त क्लेश सहन कर किया हुआ कर्म भी कैसे एक ही अपराध के कारण सर्वथा नष्ट हो जाया करता है।।२-३।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि हे अनघे! हे सुन्दरि! जिस किसी एक ही अपराध पूर्वकृत कर्म नष्ट हो जाता है, मैं उसे तुमको इस समय तत्त्वतः कहते हैं, उसे तुम सुनो।।४।।

हे भद्रे! कफ और पित्त से समन्वित जन दोषयुक्त होता है। क्योंकि उसका रक्त और पीव से युक्त मुख दुर्गन्ध वाला होता है।।५।।

हे देवि! दन्तधावन नहीं किया हुआ आचारहीन जन भगवद् कर्म के लिए अपेक्षित शुद्धि योग्य नहीं माना जा सकता है।।६।।

धरणी ने कहा कि जो कोई जन दन्तधावन किए विना ही कर्म करता है, उसका प्रायश्चित्त क्या है? मुझे बतलायें, जिसके कर लेने पर उसका धर्म नष्ट न हो सके।।७।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि हे महाभाग! तुम मुझसे जिस तरह इसे पूछ रही हो, उसे मैं तुमको बतलाने जा रहा हूँ, जिसे करने पर व्यक्ति किस प्रकार शुद्ध हो जाता है।।८।।

आकाशशयनं कृत्वा दिनानि द्वे च पञ्च च। अभुक्त्वा दन्तकाष्ठस्य एवं शुद्ध्यति मानवः॥९॥
एतत् ते कथितं भद्रे दन्तकाष्ठस्य भक्षणम्। य एतेन विधानेन प्रायश्चित्तं समाचरेत्।
न तस्यैवापराधोऽस्ति एवमेव न संशयः॥१०॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥१३०॥

एकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

अथ मृत्तकाद्यशौचे विष्णुपूजने प्रायश्चित्तम्

श्रीवराह उवाच

गत्वा तु मैथुनं भद्रे अस्नातो यो मम स्पृशेत्। रेतः पिबति दुर्बुद्धिःसहस्त्रं नव पञ्च च॥१॥
ततो नारायणाच्छ्रुत्वा सा मही संशितव्रता। तत्र दैन्यमना भूत्वा उवाच मधुसूदनम्॥२॥
किमिदं भाषसे देव धर्मं भीषणसंकटम्। कथं देव पुमान् सो वै रेतःपानपरो भवेत्।
एतन्मे परमं दुःखं तद् भवान् वक्तुमर्हसि॥३॥

विना दन्तधावन किये, मेरा कर्म करने वाला जन सात दिनों तक खुले आकाश में सोकर शुद्ध हो जाया करता है।।९।।

हे भद्रे! मैंने इस प्रकार दातौन करने का विधान तुमसे कह दिया है। जो कोई जन इस विधान से प्रायश्चित करता है, उसका अपराध अशेष हो जाता है।ऐसा होने में किसी भी प्रकार से संशय नहीं ही करना चाहिए।।१०।।

।।इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में दन्तकाष्ठ भक्षण विना विष्णु पूजा का प्रायश्चित नामक एक सौ तीसवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ।।१३०।।

❖❖❖

अध्याय–१३१

मृतक दर्शन, शवस्पर्श, रजस्वलादि स्पर्श का विष्णु पूजा में प्रायश्चित्त

श्री वराह भगवान् ने कहा कि जो जन मैथुन कर स्नान किये विना ही मुझे स्पर्श करते हैं, वे मूर्ख पैंतालिस हजार वर्षों तक रेतस् का पान करने वाला होता है।।१।।

फिर श्री नारायण से यह सुनकर तीव्रव्रत धारण करने वाली उस धरणी ने दैन्य भाव युक्त चित्त से मधुसूदन से कहा—।।२।।

हे देव! धर्म से होनेवाला यह कैसा भीषण संकट आपने बतलाया है। हे देव! वह व्यक्ति कैसे रेतस् पान कर पाता है? मुझे इस प्रसङ्ग से अतिदुःख हो रहा है। अतः आप मुझको यह बतलाने की कृपा करें।।३।।

श्रीवराह उवाच

शृणु तत्त्वेन मे देवि इदं गुह्यमनुत्तमम्। चिह्नमेतद् वरारोहे व्यभिचारविनिश्चयम्।।४।।
पुरुषाः स्त्रीषु कर्माणि ये च कुर्वन्ति निर्घृणाः। दोषस्तस्यापराधस्य फलं प्राप्नोति मानवः।।५।।
एवमेतद् वरारोह यत् त्वया परिपृच्छितम्। अपराधस्य दोषेण विशुद्धिश्च न जायते।।६।।
प्रायश्चित्तं प्रवक्ष्यामि रागदोषेण योषितः। गृहस्थाः पुरुषा भद्रे मम कर्मपराणाः।।७।।
यावकेन दिनत्रीणि पिण्याकेन पुनस्त्र्यहः। वायुभक्षो दिनं त्वेकं ततो मुञ्चति किल्बिषात्।।८।।
य एवं कुरुते भूमि विधिदृष्टेन कर्मणा। ज्ञात्वा कर्मापराधं तु न स पापेन लिप्यते।।९।।
एतत् ते कथितं भद्रे मैथुनं योऽभिगच्छति। प्रायश्चित्तं महाभागे मम लोकसुखावहम्।।१०।।

श्रीवराह उवाच

स्पृष्ट्वा चैव मृतं भे नरं पञ्चत्वमागतम्। म शास्त्रं बहिः कृत्वा श्मशानं यः प्रपद्यते।।११।।
पितरस्तस्य सुश्रोणि आत्मना च पितामहाः। श्मशाने जम्बुका भूत्वा भक्षमाणाः शवांस्तथा।।१२।।
ततो हरेर्वचः श्रुत्वा धर्मकामा वसुंधरा। उवाच मधुरं वाक्यं सर्वलोकहिताय वै।।१३।।

धरण्युवाच

तव नाथ प्रपन्नानां कथं वा विद्यते गतिः। प्रायश्चित्तं च मे ब्रूहि येन मुच्येत किल्बिषात्।।१४।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि हे देवि! वास्तविक रूप से इस श्रेष्ठ रहस्य को तुम मुझसे सुनो। हे सुन्दरि! यह चिह्न याने लक्षण व्यभिचार का निश्चय कराने वाला है।।४।।

क्रूर पुरुष स्त्रियों के प्रसङ्ग में जो दुष्ट कर्म करने वाले होते हैं, ऐसे मनुष्य को उस अपराध का दुष्ट फल प्राप्त होता है।।५।।

हे सुन्दरि! तुमने जो पूछा है, वह ऐसा अपराध है किउस अपराध के दोष से मनुष्य को मुक्ति कहाँ मिल पाती है।।६।।

अब रागवश स्त्रियों के संग असत्कर्म करने का प्रायश्चित्त कहने जा रहा हूँ। हे कल्यणि! मेरे कर्म में संलग्न गृहस्थ पुरुष तीन दिनों तक जौ के आटे से बने पदार्थ से पुनः तीन दिनों तक खली से जीवन निर्वाह करते हुए फिर एकदिन वायु रूप आहार करने के बाद पाप से मुक्त हो पाता है।।७-८।।

हे भद्रे! हे महाभागे! जो कोई पुरुषजन स्त्रियों के साथ मैथुन करता है, उसे मेरे लोक में सुख प्रदान करने वाला प्रायश्चित्त मैंने तुमसे बतला दिया है।।१०।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि हे भद्रे! जो कोई जन मृत जीव के शव का स्पर्श करता है और मेरे शास्त्र की उपेक्षा कर श्मशान में भी चला जाता है, हे सुश्रोणि! वह, उसके पितृगण पितामह अर्थात् तीन पीढ़ी तक शृंगाल योनि में उत्पन्न होकर श्मशान में शव को खाया करते हैं।।११-१२।।

इस प्रकार श्री हरि की वाणी सुनकर धर्म-आकांक्षिणी वसुन्धरा ने समस्त लोक के कल्याण की भावना से इस प्रकार मीठे स्वर में कहा—।।१३।।

धरणी ने कहा कि हे नाथ! आपके शरणागत में आये हुए जनों का किस प्रकार सद्गति होती है? वह प्रायश्चित्त बतलाया जाय, जिससे पाप से मुक्ति मिल जाती हो।।१४।।

श्रीवराह उवाच

शृणु सुन्दरि तत्त्वेन यन्मां तं परिपृच्छसि। कथयिष्यामि ते हीदं शोभनं पापनाशनम्॥१५॥
एकाहारो दिनान् सप्त त्रिरात्रं चाप्युपोषितः।
पञ्चगव्यं ततः पीत्वा शीघ्रं मुच्यति किल्बिषात्॥१६॥
शवे सृष्टेपराधस्य एष ते कथितो विधिः। सर्वथा वर्जनीयं वै सर्वभागवतेन तु॥१७॥
य एतेन विधानेन प्रायश्चित्तं समाचरेत्। विमुक्तः सर्वपापेभ्यो अपराधो न विद्यते॥१८॥

शवस्पर्शनापराधप्रायश्चित्तम्

श्रीवराह उवाच

नारीं रजस्वलां स्पृष्ट्वा यो मां स्पृशति निर्भयः। रागमोहे संयुक्तः कामेन च वशीकृतः॥१९॥
वर्षाणां तु सहस्त्रैकं रजः पिबति निर्घृणः। अन्धश्च जायते देवि दरिद्रोऽज्ञानमूर्खवान्॥२०॥
न च विन्दति चात्मानं पतन्तं नरके यथा। अपराधमिमं कृत्वा तत्रैवं नास्ति संशयः॥२१॥

धरण्युवाच

तव देव प्रपन्नानां मोक्षं संसारसागरात्। अपराधसमायुक्तस्तव कर्मपरायणः।
कर्मणा येन शुद्ध्येत तन्मे ब्रूहि जनार्दन॥२२॥

श्रीवराह उवाच

स्पृष्ट्वा रजस्वलां नारीं नरो मद्भक्तितत्परः। ततः कृत्वा त्रिरात्रं तु आकाशशयने वसेत्।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि हे सुन्दरि! मुझसे तुमने जो कुछ पूछा है, उसके यथार्थ स्वरूप को सुनो। मैं मुम्हें पापनाशक यह सुन्दर रहस्य बतला रहा हूँ।।१५।।

सात दिन पर्यन्त एक बार आहार लेकर फिर तीन दिन पर्यन्त उपवास करना चाहिए। फिर पञ्चगव्य पीने से जीव पाप से मुक्त हो जाता है।।१६।।

जब शव का स्पर्श किया जाता है, उससे उत्पन्न अपराध की यह प्रायश्चित्त विधि तुमको बतलाया गया। वैसे सभी भगवद् भक्तों को शव स्पर्श का सर्वथा त्याग करना चाहिए।।१७।।

जो उपरोक्त विधि से प्रायश्चित करता है, वह समस्त पापों सेरहित हो जाता है। और उसका अपराध शेष नहीं रह जाता है।।१८।।

।।यह शवस्पर्शन प्रायश्चित्त हुआ।।

श्री वराह ने कहा कि जो जन रजस्वला स्त्री का स्पर्श कर निर्भयता से राग, मोह और काम के वश होकर मुझे भी स्पर्श करता है। हे देवि! ऐसा अपवित्र जीव हजारों वर्षों तक रजस् का पान ही करता रहता है। फिर वह अन्धा, अज्ञानी और मूर्ख भी होता है। वह नरक में पतित होने वाले अपनी आत्मा को नहीं जान पाता है। यह अपराध करने पर निःसंशय उसे वहाँ इस प्रकार ही होना पड़ता है अर्थात् नरक में ही उसे जाना पड़ता है।।२०-२१।।

धरणी ने कहा कि हे देव! आपका कार्य परायण भक्त अपराध से युक्त होने पर कैसे संसार सागर से मुक्त हो पाता है। श्री भगवान् वराह ने कहा कि मेरी भक्ति करने वाले जन को रजस्वला स्त्री का स्पर्श करने पर तीन रात्रि पर्यन्त

शुद्धो भागवतो भूत्वा मम कर्मपरायणः॥२३॥
एवं कृत्वा महाभागे प्रायश्चित्तं मम प्रियम्। मुच्यते किल्बिषाद् देवि आचारेण बहिः कृतः॥२४॥
एतत् ते कथितं भद्रे यत् स्पृष्ट्वा तु रजस्वलाम्। प्रायश्चित्तं महाभागे सर्वसंसारमोक्षणम्॥२५॥
रजस्वलास्पर्शापराधप्रायश्चित्तम्
श्रीवराह उवाच
स्पृष्ट्वा तु मृतकं देवि मम क्षेत्रेषु तिष्ठति। शतं वर्षसहस्राणि गर्भेषु परिवर्तते॥२६॥
दश वर्षसहस्राणि चण्डालश्चैव जायते। अन्धः सप्त सहस्राणि मण्डूकश्च शतं समाः॥२७॥
मक्षिक त्रीणि वर्षाणि टिट्टिभैकादशं समाः। दश वै सप्त चान्यानि कृकलासो भवेत् समाः॥२८॥
हस्ती वर्षशतं चैव खरो द्वात्रिंशकं भवेत्। चतुर्विंशो बलीवर्दः श्वा तु द्वादशवार्षिकः।
मार्जारो नव वर्षाणि वानरो दश पञ्च च॥२९॥
एवं य चात्मदोषेण मम कर्मपरायणः। प्राप्नोति सुमहद् दुःखं देवि एवं न संशयः॥३०॥
ततो हरेर्वचः श्रुत्वा दुःखेन परिपृच्छति। सर्वसंसारमोक्षाय प्रत्युवाच वसुंधरा॥३१॥
किमिदं भाषसे देव मानुषाणां दुरासदम्। वाक्यं भीषणकं चैव मम मर्मप्रभेदकम्॥३२॥
आचाराच्च परिभ्रष्टास्तव कर्मपरायणाः। तरन्ति येन दुर्गाणि प्रायश्चित्तं च मे वच॥३३॥

उपवास कर खुले आकाश में शयन करना चाहिए। इस प्रकार मेरा कर्म परायण भक्त शुद्ध हो जाता है।।२२-२३।।

हे महाभागे! देवि!! अपने कर्म आचार को बहिष्कृत करने वाला मनुष्य इस प्रकार मेरा प्रिय प्रायश्चित्त करने के बाद पाप से रहित हो जाया करता है।।२४।।

हे भद्रे! मैंने रजस्वला का स्पर्श के कारण उत्पन्न दोष के शमन हेतु किया जाने वाला यह प्रायश्चित्त मुझसे कहा है। हे महाभागे! यह प्रायश्चित्त संसार से मोक्ष देने वाला है।।२५।।

।।यह रजस्वला के स्पर्श से उत्पन्न प्रायश्चित्त कहा गया।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि हे देवि! मरे व्यक्ति ाा शव स्पर्श कर जो कोई जन मेरे क्षेत्र में निवास करता है, वह सौ हजार वर्षों तक गर्भों में जाता आता रहता है।।२६।।

मृतक का स्पर्श करने वाला दस हजार वर्षों तक चण्डाल, सात हजार वर्षों तक गिरगिट होता है।।२८।।

पुनः वह सौ वर्षों तक हाथी, बत्तीस वर्षो तक गदहा, चौबीस वर्षों तक बैल और बारह वर्षों तक कुत्ता होता है। पुनः वह नौ वर्षों तक बिल्ली और पन्द्रह वर्षों तक वानर होता है। इस प्रकार मेरे कर्म में संलग्न व्यक्ति पने मृतक स्पर्श रूपी दोष से महान् दुःखपाता है। हे देवि! इसमें सन्देह नहीं है।।२९-३०।।

तत्पश्चात् हरि की वाणी सुनकर पृथ्वी ने समस्त संसार के मोक्ष हेतु दुःसपूर्वक श्रीहरि से पूछा—।।३१।।

हे देव! यह मनुष्यों को भय प्रदायक और मेरे मर्म को भेदने वाला इस प्रकार की कठोर वाणी आप कैसे कह सकते हैं?।।३२।।

वैसे आपके कर्मपरायण जन आचार भ्रष्ट होकर भी जिस प्रकार से कष्टों को सहन करने में सफल हो पाते हैं, वह प्रायश्चित्त मुझे आप बतलाने की कृपा करें।।३३।।

श्रुत्वा पृथ्व्यास्तथा वाक्यं लोकनाथो जनार्दनः। धर्मसंरक्षणार्थाय प्रत्युवाच वसुंधराम्॥३४॥

श्रीवराह उवाच

स्पृष्ट्वा तु मृतकं भूमि मम कर्मपरायणः। एकाहारस्ततस्तिष्ठेद् दिनानि दश पञ्च च॥३५॥
तत एवं विधिं कृत्वा पञ्चगव्यं तु प्राशयेत्। शुद्ध एवं विशुद्धात्मा कर्मणा च न लिप्यते॥३६॥
एतत् ते कथितं देवि स्पृष्ट्वा मृतकमेव च। दोषं चैव विशुद्ध्येत यत् त्वया पूर्वपृच्छितम्॥३७॥
य एतेन विधानेन प्रायश्चित्तं समाचरेत्। अपराधविनिर्मुक्तो मम लोकं स गच्छति॥३८॥

॥ मृतकस्पर्शनप्रायश्चितम्॥

।।इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे एकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः।।१३१।।

पृथ्वी के इस प्रकार के निवेदन को सुनकर लोकनाथ जनार्दन ने धर्म की रक्षा करने के लिए पुनः पृथ्वी से कहने लगे।।३४।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि हे भूमि! मृतक का स्पर्श करने वाले मेरे कर्मपरायण भक्त जन को चाहिन कि वे पन्द्रह दिन पर्यन्त एक बार भोजन किया करें।।३५।।

इस विधान को सम्पन्न कर पञ्चगव्य का पान करना चाहिए फिर विशुद्ध आत्मा वाला मेरा भक्त इस प्रकार शुद्ध हो जाता है और वे कर्म से लिप्त नहीं होता है।।३६।।

हे देवि! तुमने जो कुछ पूर्व में पूछा था, कि मृतक का स्पर्श करने के बाद मनुष्य जन कैसे दोषों से रहित हो जाता है? यह तुमको बतलाया।।३७।।

जो जन, इस विधान का आश्रयण कर इस प्रकार से प्रायश्चित्त करता है, वे जन अपराध से मुक्त होकर मैं लोक में चला जाता है।।३८।।

।। इस प्रकार मृतक स्पर्श-दोष का प्रायश्चित्त हुआ।।

।।इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में मृतक दर्शन, शवस्पर्श, रजस्वलादि स्पर्श का विष्णु पूजा में प्रायश्चित नामक एक सौ इकतीसवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ।।१३१।।

❖❖❖

द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

अथ विष्णुपूजने निषिद्धः

श्रीवराह उवाच

स्पृश्यमानोऽथ मां भूमि वातकर्म प्रमुञ्चति। पुरीषसदृशं वायुं वायुपीडितामानसः॥१॥
मषिका पञ्च वर्षाणि त्रयो वर्षाणि मूषकः। श्वा चैव त्रीणि वर्षाणि कूर्मो वै जायते नव॥२॥
एष वै तापनं देवि मोहनं मम सांप्रतम्। यो वै शास्त्रं विजानाति मम कर्मपरायणः।
श्रुत्वा वाक्यं हृषीकेशं प्रत्युवाच वसुंधरा॥३॥

धरण्युवाच

अतुलं कर्म कृत्वैव तव कर्मपरायणः। तेषां देव सुखार्थाय विशुद्धिं वक्तुमर्हसि॥४॥

श्रीवराह उवाच

शृणु कात्स्न्र्येन मे देवि कथ्यमानं मयाऽनघे। अपराधमिमं कृत्वा संतरेद् येन कर्मणा॥५॥
यावकेन दिनत्रीणि नक्तेन च पुनस्त्रयः। कर्म चैवं ततः कृत्वा स च मे नापराध्यति।
सर्वसङ्गं परित्यज्य मम लोकाय गच्छति॥६॥
एतत् ते कथितं भद्रे मरुत्कर्मापराधिनम्। दोषं चैव गुणं यत् त्वया परिपृच्छितम्॥७॥

।इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः।।१३२।।

अध्याय-१३२

श्रीविष्णु पूजन में पुरीष सहित अपान वायु त्याग से प्रायश्चित्त

श्री भगवान् वराह ने कहा कि हे भूमि! मेरे स्पर्श करने के समय जो जन वायु से व्याकुल चित्त वाला मल समान अधोवायु का त्याग करता है, वह मनुष्य पाँच वर्षों तक मक्षिका, तीन वर्षों तक चूहा, तीन वर्षों तक कुकुर और नौ वर्षों तक कछुआ होता है।।१-२।।

हे देवि! मेरा कर्मपरायण जो कोई भक्त जन यह कष्टप्रद और मोहकारी शस्त्र को जानने वाला है, उसका कल्याण होता है। इस प्रकार यह वाक्य सुनकर पृथ्वी ने हृषिकेश से कहा—।।३।।

धरणी ने कहा कि अतुलनीय कर्म सम्पन्न करके ही पुरुष आपका कर्म परायण होता है। हे देव! उन मनुष्यों के सुख हेतु प्रायश्चित्त क्या है?।।४।।

श्री वराह भगवान् ने कहा कि हे निष्पाप देवि! इस प्रकार के अपराध को करने के बाद जिस कर्म को करके मनुष्य पारहित होता है, ऐसे प्रायश्चित्त को मैं कहने जा रहा हूँ, उसे तुम पूर्ण रूप से ध्यान देकर सुनो।।५।।

इस स्थिति में व्यक्ति को चाहिए कि वह तीन दिनों और रात्रियों तक मात्र जौ से बने पदार्थ का सेवन कर जीवन निर्वाह करें। इस तरह करने के बाद वह व्यक्ति ध्नश्चय ही मेरा अपराधी नहीं रह जाता है। तत्पश्चात् वह समस्त प्रकार के संग-साथ को त्याग कर मेरे लोक को चला जाता है।।६।।

हे भद्रे! तुमने तो वायु त्याग विषयक अपराध के जिन गुणों और दोषों को पूछा था, उन्हें मैंने तुमको बतला दिया है।।७।।

।।इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में श्री विष्णुपूजन में पुरीष सहित अपान वायु त्याग से प्रायश्चित्त नामक एक सौ बत्तीसवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ।।१३२।।

त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

अथ विष्णुपूजने पुरीषोत्सर्जने प्रायश्चितम्

श्रीवराह उवाच

शृणु तत्त्वेन मे भूमि कथ्यमानं मयाऽनघे। पुरीषं मुञ्चते यस्तु मम कर्म समाचरन्॥१॥
दिव्यं वर्षसहस्त्रं तु रौरवे नरके वसेत्। पुरीषं भक्षयेत् तत्र महादुःखसमन्वितः॥२॥
प्रायश्चित्तं वदाम्यत्र येन मुच्येत किल्बिषात्। मम कर्मपरिभ्रष्टो विहतेनान्तरात्मना॥३॥
एकां जलमयीं शय्यामेकमाकाशशायनम्। एवं कृत्वा विधानं तु सोऽपराधात् प्रमुच्यते॥४॥
एतत् ते कथितं भद्रे पुरीषं यः समुत्सृजेत्। मद्भक्तेषु विशालाक्षि अपराधविनिश्चयः॥५॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥
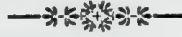
अध्याय-१३३

विष्णु पूजा के समय पुरीष उत्सर्ग

श्री भगवान् वराह ने कहा कि हे निष्पाप भूमि! मेरा कर्म में संलग्न रहते हुए जो कोई जन मल त्याग करता है, अब मैं उसका अपराध कहता हूँ, सुनो।।१।।

वह मनुष्य हजरों दिव्य वर्षों तक रौरव नाम के नरक में रहने को बाध्य होता है। वह महादुःखों से सम्पन्न होकर, वहाँ मल भक्षण ही करता रहता है।।२।।

अब मैं उसका प्रायश्चित्त कहने जा रहा हूँ, जिससे मनुष्य पाप रहित हो जाता है। इस प्रकार के विभ्रष्ट मन वाला, कर्म भ्रष्ट हुआ मेरा भक्त मनुष्य एक दिन जल में और एक दिन आकाश में शयन करना चाहिए। इस तरह से विधि का अनुपालन करने के बाद वह अपराध से मुक्त हो जाता है।।३-४।।

हे भद्रे! जो जन मेरा कर्म करते हुए मल त्याग करता है, उसका प्रायश्चित्त यह मैंने तुमसे कह दिया। हे विशाल नेत्रों वाली पृथ्वि! मेरे भक्तों के प्रसङ्ग में इस प्रकार अपराध का विनिश्चय किया गया है।।५।।

।।इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में विष्णु पूजा के समय पुरीष उत्सर्ग नामक एक सौ तैंतीसवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ।।१३३।।

चर्तुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

अथ श्रीविष्णुपूजनेऽपराधम्

श्रीवराह उवाच

मुक्त्वा तु मम मन्त्राणि मम कर्मपरायणः। प्रायश्चित्तविधिं देवि यस्तु वाक्यं प्रभाषते।
मूर्खो भवति सुश्रोणि जात्या वै सप्त पञ्च च॥१॥
तस्य वक्ष्यामि सुश्रोणि मम कर्मपरायणः। प्रायश्चित्तविधिं देवि येन मुच्येत किल्बिषात्॥२॥
आकाशशयनं कृत्वा दिनानि दश पञ्च च। मुच्यते किल्बिषात् तत्र देवि चैवं न संशयः॥३॥
॥इति मौनत्यागप्रायश्चित्तम्॥

श्रीवराह उवाच

भूषितो नीलवस्त्रेण यो हि मामुपपद्यते। वर्षाणां च शतं पञ्च कृमिर्भूत्वा स तिष्ठति॥४॥
तस्य वक्ष्यामि सुश्रोणि अपराधविशोधनम्। प्रायश्चित्तं विशालाक्षि येन मुच्येत किल्बिषात्॥५॥
फलं चान्द्रायणं कृत्वा विधिदृष्टेन कर्मणा। मुच्यते किल्बिषाद् भूमि एवमेतन्न संशयः॥६॥
नीलवस्त्रप्रायश्चित्तम्

अध्याय-१३४

विष्णु पूजा के समय सामयिक अपराध और प्रायश्चित्त

श्री भगवान् वराह ने कहा कि हे देवि! मेरा पूजा आदिकर्म में संलग्न होने वाला जो व्यक्ति मेरे मन्त्र का त्याग कर अन्य वाक्यों को बोलता है,उसके प्रायश्चित्त की विधि कहने जा रहा हूँ। हे सुश्रोणि! ऐसा व्यक्ति, जो मेरे पूजा काल में अन्य विषयों के वाक्य बोलता है, वह बारह जन्म पर्यन्त मूर्ख होता है।।१।।

हे सुश्रोणि! देवि! मेरा कर्मपरायण भक्त जन, जिस किसी विधान से पापरहित हो जाता है, उस प्रायश्चित्त विधि को मैं कहने जा रहा हूँ।।२।।

हे देवि! पन्द्रह दिनों तक ऐसा व्यक्ति खुले आकाश में शयन करने से पापरहित हो जाता है, इसमें संशय नहीं करना चाहिए।।३।।

।।यह मौनत्याग का प्रायश्चित्त कहा गया है।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि जो कोई जन नीलावस्त्र धारण कर मेरा पूजा आदि कर्म करने वाला है, वे पाँच सौ वर्षों तक कृमि होकर उत्पन्न होता है।।४।।

हे विशालाक्षि! हे सुश्रोणि! ऐसा व्यक्ति जिस तरह पापमुक्त होता है, उस प्रकार के अपराध रहित करनेवाला प्रायश्चित्त मैं कहने जा रहा हूँ।।५।।

हे भूमि! ऐसा व्यक्ति विधान के अनुरूप कर्म द्वारा चान्द्रायण व्रत के फल से उस पाप से मुक्त हो पाता है। इसमें संशय नहीं करना चाहिए।।६।।

।। नील वस्त्र धारण करने का प्रायश्चित्त हुआ।।

श्रीवराह उवाच

अविधानेन संस्पृश्य यस्तु मामुपसर्पति। स मूर्खः पापकर्मा च मम विप्रियकारकः॥७॥
तेन दत्तं वरारोहे गन्धमाल्यसुगन्धिनः। प्रापणं न च गृह्णामि सृष्टं चापि कदाचन॥८॥
ततो नारायणवचः श्रुत्वा सा संशितव्रता। उवाच मधुरं वाक्यं धर्मकामा वसुंधरा॥९॥

धरण्युवाच

यन्मां त्वं भाषसे नाथ आचारस्य व्यतिक्रमम्। उपस्पृश्य समाचारं रहस्यं वक्तुमर्हसि॥१०॥
केन कर्मविधानेन भूत्वा भागवता भुवि। उपस्पृश्योसर्पन्ति तव कर्मपरायणाः॥११॥
एतन्मे संशयं देव परं कौतूहलं हि मे। तव भक्तसुखार्थाय निष्कलं वक्तुमर्हसि॥१२॥

श्रीवराह उवाच

शृणु सांत्वेन मे देवि यन्मां त्वं भीरु भाषसे। कथितं मम तत्त्वेन गुह्यमेतत् परं महत्॥१३॥
विमुच्य सर्वकर्माणि यो हि मामुपसर्पति। तस्य वै शृणु सुश्रोणि उपस्पृश्य च यत्क्रिया॥१४॥
भूत्वा पूर्वामुखस्तत्र पादौ प्रक्षाल्य चाम्बुभिः। उपस्पृश्य यथान्यायं तिस्त्रो वै गृह्य मृत्तिकाः॥१५॥
ततः प्रक्षालितं हस्तं जलेन तदनन्तरम्। सप्तकोशं ततो गृह्य मुखं प्रक्षालयेत् तथा॥१६॥

श्री वराह ने कहा कि जो जन विना विधि का अनुसरण किये मेरा उपस्पर्शनादि पूर्वक पूजन आदि कर्म करने वाला होता है, वे जन मूर्ख, पापकर्मा एवं मेरे अप्रिय कार्यों को करने वाला होता है।।७।।

हे सुन्दरि! अतः उसके द्वारा अर्पित सुगन्ध, माला, प्रापण याने नैवेद्य आदि कोमैं कभी भी स्वीकार नहीं करता हूँ।।८।।

फिर इस तरह के नारायण के वचन को सुनकर तीव्र व्रत धारिणी धर्माभिलाषिणी उस धरिणी ने मीठे स्वर में पुनः पूछा—।।९।।

धरणी ने पूछा कि हे नाथ! आपने अभी मुझसे आचार के व्यतिक्रम का जो वर्णन किया है, उस प्रकार उपस्पर्शन कर किये जाने योग्य प्रायश्चित्त रूपी सदाचार का रहस्य मुझसे कहने की कृपा करें।।१०।।

किस कर्म विधि के साधन से आपके कर्म परायण भगवद् भक्त उपस्पर्शन कर्म कर आपके सान्निध्य सुख को प्राप्त करते हैं।।११।।

हे देव! मुझे यह संदेहास्पद प्रतीत होता है कि इस प्रसङ्ग में मुझे अत्यधिक उत्सुकता है। अतः अपने भक्त के सुख साधन हेतु इस प्रकार के रहस्य की बातें सम्पूर्णता से बतलायें।।१२।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि हे भीरु देवि! इस समय तुमने जो कुछ मुझसे पूछा है, उसे मुझसे शान्ति धारणकर सुनो। मैं तत्त्वतः उस महाश्रेष्ठ रहस्य को बतला रहा हूँ।।१३।।

हे सुश्रोणि! जो सब कर्मों को छोड़कर मेरे पास आ जाता है, वह उपस्पर्शन कर्म के पश्चात् जो क्रिया करता है, उसे सुन लो—।।१४।।

पूर्वाभिमुख स्थित होकर और फिर जल से मेरे दोनों पैरों को धोकर यथाविधि तीन बार मिट्टी से हाथ मलने के बाद जल से हाथ धोना चाहिए। फिर सप्तकोश याने विशेष प्रकार से बने जलपात्र को लेकर मुख प्रक्षालित करना चाहिए।।१५-१६।।

पादमेकैकमेकस्तु पञ्च पञ्च ददेत् ततः। कौशौ संमृज्यतां तत्र यदीच्छेत मम प्रियम्॥१७॥
त्रीणि कोशान् पिबेत् तत्र सर्वकायविशोधनम्। कराभ्यां मुख मार्जेत सर्वमिन्द्रियनिग्रहम्॥१८॥
प्राणायामं ततः कृत्वा मम चिन्तापरायणः। कर्मणा विधिदृष्टेन भूत्वा संसारमोक्षणम्॥१९॥
त्रीणि वारान् स्पृशेत् तत्र शिरो ब्रह्मणि संस्थितः।
त्रीणि वारान् पुनस्तत्र उभौ तो कर्णनासिके॥२०॥
स्पृशेत निष्कलस्तत्र यो यो यत्र प्रतिष्ठितः। विक्षिपेत् त्रीणि वाराणि सलिलं प्रवरं त्रयम्॥२१॥
एवं भुक्तस्य कर्त्तव्यं ममाभिगमनेषु च। उपस्पृश्य तनुं चान्ते यदीच्छेत प्रियं मम॥२२॥
एवं च कुर्वतस्तस्य मम कर्मव्यवस्थितः। अपराधं न विन्देत देवि एवं न संशयः॥२३॥
ततो नारायणवचः श्रुत्वा देवी वसुंधरा। उवाच मधुंर वाक्यं सर्वभागवतप्रियम्॥२४॥

धरण्युवाच

उपस्पृश्य विधानेन यस्तु कर्माणि चाप्नुयात्। तापनं शोधनं चैव तद्भवान् वक्तुमर्हसि॥२५॥

श्रीवराह उवाच

श्रृणु तत्त्वेन मे भूमि इमं गुमनिन्दिते। यां गतिं च प्रपद्यन्ते मम शास्त्रबहिःकृताः॥२६॥

प्रत्येक पाद में एक-एक पञ्च कर्मेन्द्रियों पर एक-एक कर पाँच बार जल प्रदान करना चाहिए। फिर मेरा प्रिय चाहने वाले को दो कोशों को शुद्ध करना चाहिए।।१७।।

फिर सम्पूर्ण शरीर को शुद्ध करने वाले तीन कोशों का पान करना चाहिए। फिर दोनों हाथों से मुख का मार्जन कर समस्त इन्द्रियों का निग्रह करना चाहिए।।१८।।

फिर प्राणायाम करने के बाद विधि के अनुरूप कर्म द्वारा संसार से मुक्त करने वाला मेरा चिन्तन भी करना चाहिए।।१९।।

फिर तीन बार शिर में स्थित ब्रह्म का स्पर्श करना चाहिए। इसके बाद फिर तीन बार दोनों कानों और नासिका छिद्रों का स्पर्श करना चाहिए।।२०।।

इस प्रकार जो-जो देवता शरीर में जहाँ-जहाँ प्रतिष्ठित हों, उन अंगों का पूर्णतया स्पर्श करना चाहिए। श्रेष्ठ जल तीन बार चारों ओर फेंकने चाहिए।।२१।।

खाकर जूँठे मुँह मेरे पास आने पर हुए अपराध के समय यदि वह मेरा प्रिय होना चाहे तो उपस्पर्शन कर्म के बाद इस प्रकार कर्म करना चाहिए।।२२।।

मेरा कर्म परायण पुरुष इस प्रकार के कर्म को करने पर अपराध से रहित हो जाता है। हे देवि! इसमें संशय नहीं करना चाहिए। फिर नारायण का वचन सुन कर धरणी देवी ने सभी भगवद् भक्तों के प्रिय भगवान् से मीठे स्वर में कहा—।।२३-२४।।

धरणी ने कहा कि उपस्पर्शन कर जो भगवद् भक्त विधि के अनुरूप तप और शुद्धि के रूप में जिन कर्मों को करता है, उनको आप बतलाने की कृपा करें।।२५।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि हे भूमि! मेरे शास्त्र से बहिष्कृत पुरुष, जो गति पाते हैं, उसे मेरे द्वारा तत्त्वतः सुनो। हे निर्दोष भूमि! यह निश्चय ही एक रहस्य की बात है।।२६।।

व्यभिचारं च म कृत्वा यो नु मामुपसपति। दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च।
कृमिर्भूत्वा यथान्यायं तिष्ठते नात्र संशयः॥२७॥
प्राश्चित्तं प्रवक्ष्यामि तस्य मूर्खस्य माधवि। यस्य कृत्वा महाभागे कृतकृत्यः पुनर्भवेत्॥२८॥
महासान्तपनं कृत्वा तप्तकृच्छ्रं च निष्कलम्। ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यो यस्तु म मते स्थिताः॥२९॥
अनेन विधिना कृत्वा प्रायश्चित्तं यशस्विनि।
किल्बिषात् तु प्रमुक्तास्ते गच्छन्ति परमां गतिम्॥३०॥

उपस्पृश्यापराधप्रायश्चित्तम

श्रीवराह उवाच

यस्तु क्रोधसमाविष्टो मम कर्मपरायणः। स्पृशेत मम गात्राणि चित्तं कृत्वा चलाचलम्॥३१॥
न चाहं रागमिच्छामि क्रुद्धमेव यशस्विनि। इच्छामि च वदा दान्तं शुभं भागवतं शुचिम्॥३२॥
पञ्चेन्द्रियसमायुक्तं लाभालाभविवर्जितम्। अहंकारविनिर्मुक्तं कर्मण्यभिरतं मम॥३३॥
अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व वरानने। स यथा लभते क्रुद्धः शुद्धो भागवतः शुचिः॥३४॥
चिल्ली जातो वर्षशतं श्येनो वर्षशतं पुनः। भेकस्त्रिशतवर्षाणि यातुधानः पुनर्दश॥३५॥

जो कोई जन व्यभिचार करने के उपरान्त मेरे पास आ जाता है यथा विधि दस हजार और एक बार दस सौ याने, ग्याहर हजार वर्षों तक कृमि के रूप में उत्पन्न होता है। इसमें संशय नहीं करना चाहिए।।२७।।

हे माधवि! ऐसे मूर्खों का प्रायश्चित्त मेरे द्वारा बतलाया जाता है। हे महाभागे! इस प्रायश्चित्त को करके भक्त पुनः कृतकृत्य हो जाता है।।२८।।

जो कोई ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि जनों द्वारा पूर्णतया महासान्तपन और तप्तकृच्छ्र व्रत कर मेरे मत में पुनः शुद्ध होकर स्थित हो जाता है।।२९।।

हे यशस्विनि! इस विधि से प्रायश्चित्त कर मेरे भक्त पाप से रहित होकर परमगति को प्राप्त करने के योग्य हो जाते हैं।।३०।।

।।उपस्पर्शन के अपराध का प्रायश्चित्त।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि मेरा कर्मपरायण भक्त जन क्रोध सम्पन्न होकर अस्थिर चित्त के साथ मेरा स्पर्श करते हैं। हे यशस्विनि! मैं रागयुक्त क्रोधी को नहीं पसन्द करता हूँ। मैं सदा संयमी, कल्याामय और पवित्र भगवद् भक्त को ही पसन्द करता हूँ।।३१-३२।।

पञ्च इन्द्रियों से सम्पन्न, लाभ हानि के विचारों से रहित, अहंकार रहित, और मेरे कर्म में संलग्न भक्त को मैं पसन्द करता हूँ।।३३।।

हे सुन्दरि! मैं तुमको अन्य भी रहस्य की बातें बतलाता हूँ। मेरा शुद्ध भगवद् भक्त जो क्रोधी है,उसका जैसा फल होता है, उसे तुम सुनों—।।३४।।

ऐसे भक्त जन सौ वर्षों तक चील्ह, पुनः सौ वर्षों तक बाज, तीन सौ वर्षों तक मेढ़क, और पुनः दस सौ वर्षों तक राक्षस होकर उत्पन्न होता रहता है।।३५।।

अपुमान् षष्टिवर्षाणि रेतोभक्षस्तु जायते। अन्धो जायेत सुश्रोणि पञ्च सप्त नवस्तथा॥३६॥
गृध्रो द्वात्रिंशवर्षाणि चक्रवाको दशैव च। शैवालभक्षिता चैव ह्याकाशगमनं तथा॥३७॥
ब्राह्मणो जायते भूमि मण्डूकस्य पथे स्थितः। आत्मकर्मापराधेन प्राप्तः संसारसागरम्॥३८॥

धरण्यु वाच

अहो वै परमं गुह्यं यत्त्वया पूर्वभाषितम्। बहुभूतं च मे चित्तं मम चैव न संस्थितम्।
यत्त्वया भाषितं हीदं भक्तानां च दुरासदम्॥३९॥
श्रुत्वा दुस्तरसंसारं भीताऽस्मि परिदेविता। नाहमाज्ञापयामि त्वां देवदेव जगत्पते॥४०॥
मम चैव प्रियार्थाय सर्वलोकसुखावहम्। येन मुच्यन्ति संक्रुद्धा लुब्धाः कर्मपरायणाः॥४१॥
अल्पसत्त्वा गतभया रागलोभसमन्विताः। तरन्ति येन दुर्गाणि प्रायश्चित्तं च मे वद॥४२॥
ततः कमलपत्राक्षो वाराहमुखसंस्थितः। सनत्कुमार मद्भक्त्या मम नारायणोऽब्रवीत्॥४३॥
ततो भूम्या वचः श्रुत्वा ब्रह्मणश्च सुतो मुनिः। सनत्कुमारो योगज्ञः प्रत्युवाच वसुंधराम्॥४४॥
धन्या चैव सभाग्या च यत्त्वया पृष्टवान् हरिः। वराहरूपी भगवान् सर्वमायाकरण्डकः॥४५॥
किं त्वया भाषितो देवि सर्वयोगाङ्गयोगवित्। देवो नारायणस्तत्र सर्वधर्मविदां वरः॥४६॥

हे सुश्रेणि! ऐसा व्यक्ति साठ वर्षों तक रेतस् का पान करने वाला अपुरुष जैसा होता है। फिर इक्कीस वर्ष पर्यन्त अन्धा ही रहता है। फिर वह बत्तीस वर्षों तक गीध और दस ही वर्षों तक शैवाल का भक्षण करने वाला आकाशचारी चक्रवाक होता है।।३६-३७।।

हे भूमि! फिर वह ब्राह्मण वर्ण में उत्पन्न होता है और मण्डूक मार्ग में स्थित रहता है। वह अपने कर्म के अपराध से संसार सागर को प्राप्त करता है।।३८।।

धरणी ने पूछा कि अहो! आपने पहले जो अत्यन्त गुह्य रहस्य कहा है, उससे मेरा मन अव्यवस्थित और अस्थिर हो गया है। आपने जो यह कहा है, वह भक्तों के लिए अत्यन्त कष्टदायक है।।३९।।

मैं इस दुस्तर संसार के स्वरूप को सुनकर भययुक्त और दुःखी हो गई हूँ। हे देवदेवेश! जगत्पति! मैं आपको आज्ञा नहीं दे रही, पूछ रही हूँ, बतलायें।।४०।।

मेरे स्नेह के लिए संसार को सुखदायक वे सब उपाय बतलायें, जिससे कर्मापरायण क्रोध और लोभ से रहित होते हैं।।४१।।

अल्पशक्ति सम्पन्न भयमुक्त, राग और लोभ से युक्त कर्मपरायण, जिसके द्वारा कष्टों से रहित होते हैं, ऐसा प्रायश्चित्त मुझे बतलाने की कृपा करें।।४२।।

हे सनत्कुमार! फिर मेरी भक्ति से प्रसन्न होकर पद्माक्ष के सदृश नेत्र वाले वराह स्वरूप नारायण ने मुझसे कहा—।।४३।।

फिर इस तरह के भूमि की वाणी सुनकर ब्रह्मपुत्र योगी मुनि सनत्कुमार ने पृथ्वी से कहने लगे—।।४४।।

हे धरणी! तुम धन्य और सौभाग्य शालिनी हो, जो तुमने सब प्रकार की माया के निधान वराह स्वरूप भगवान् श्री हरि से ये सब पूछ लिया।।४५।।

हे देवि! इस प्रकार तुमने समस्त योगाङ्गों और योगों के मर्मज्ञ और समस्त धर्मों को जानने वालों में श्रेष्ठ नारायण देव से वहाँ क्या पूछा था? बतायें।।४६।।

कुमारवचनं श्रुत्वा सा मही प्रत्यभाषत। शृणु तत्त्वेन मे ब्रह्मन् यत्त्वया परिपृच्छितम्॥४७॥

कार्यं क्रियां च योगं च अध्यात्मं पार्थिवस्थितम्।
एतन्मे पृच्छितो ब्रह्मन् देवे नारायणः प्रभुः॥४८॥
ततो मां भाषते ब्रह्मन् विष्णुर्मायाकरण्डकः।
क्रुद्धा भागवता ब्रह्मन् येन शुद्धयन्ति किल्बिषात्॥४९॥

कृत्वा तेन व्रतं चैव मम कर्मपरायणः। षष्ठे काले तु भुञ्जीत गृहभिक्षामनिन्दिते।
अष्टौ भिक्षा यथान्यायं शुद्धा भागवता गृहे॥५०॥

य एतेन विधानेन ब्रह्मन् कर्माणि कारयेत्। मुच्यते किल्बिषात् तत्र एवमाह जनार्दनः॥५१॥
यदीच्छति परां सिद्धिं विष्णुलोकं द्विजोत्तम। शीघ्रमाराधयेद् विष्णुमेवमेव तरन्ति ते॥५२॥
ततो भूम्याः वचः श्रुत्वा ब्रह्मणश्च सुतो मुनिः। प्रत्युवाच विशालाक्षीं धर्मकामो वसुंधराम्॥५३॥
अहो गुह्यं रहस्यं च यत् त्वया देवि भाषितम्। तस्य ये मुखनिष्क्रान्ता धर्मास्तान् वक्तुमर्हसि॥५४॥

धरण्युवाच

ततः स पुण्डरीकाक्षः शङ्खचक्रगदाधरः। वाराहरूपी भगवान् लोकनाथो जनार्दनः॥५५॥
उवाच मधुरं वाक्यं मेघदुन्दुभिनिस्वनः। भक्तकर्मसुखार्थाय गुणवित्तसमन्वितम्॥५६॥

सनत्कुमार की वाणी को सुनकर उस पृथ्वी ने कहा कि हे ब्रह्मन्! आपने जो पूछा है, उसे तत्त्वतः मुझसे आप सुनो—।।४७।।

हे ब्रह्मन्! मैंने प्रभु नारायण देव से कार्य, क्रिया, योग और पार्थिव द्रव्यों में स्थित अध्यात्म यही सब पूछा था।।४८।।

हे ब्रह्मन्! फिर मायापति श्री विष्णु ने मुझे उस तत्त्व को बतलाया, जिससे क्रोध युक्त भगवद् भक्त पाप से रहित हो जाया करते हैं।।४९।।

हे अनिन्दित धरणि! मेरा कर्म परायण भक्त व्रत धारण कर दिन के छठवें भाग में गृहों से भिक्षा लेकर भोजन करे। फिर यथाविधि के अनुरूप शुद्ध भगवद् भक्तों के आठ गृहों से भी भिक्षा लेनी चाहिए।।५०।।

हे ब्रह्मन् जो जन इस विधि के अनुरूप कर्म में संलग्न रहता है, वे जन पापों से रहित होते हैं। ऐसा जनार्दन ने कहा है।।५१।।

हे द्विजोत्तम! यदि जिसे परमसिद्धि और विष्णु लोक की कामना हो, तो उन्हें शीघ्र ही श्री विष्णु की उपासना करने में लग जानी चाहिए। इसी तरह से वे भक्तजन तर जाया करते हैं।।५२।।

फिर भूमि का कथन सुनकर ब्रह्मपुत्र धर्माकांक्षी मुनि सनत्कुमार ने विशालाक्षि धरणी से कहा कि—।।५३।।

हे देवि! इस प्रकार से तुमने मुझे गुह्य रहस्य को बतलाया है। उन नारायण के मुख से जो धर्म बतलाये गये हैं, उनको तुम अपने मुख से कहो।।५४।।

फिर धरणी ने कहा कि तदुपरान्त पद्मनेत्र शंखचक्रधारी लोकनाथ वराहस्वरूप उन भगवान् जनार्दन ने मेघ और दुन्दुभि समान स्वरों से भक्तों के कर्म सुखों हेतु गुण सम्पत्ति युक्त मीठे स्वरों में कहा—।।५५-५६।।

य एतेन विधानेन आचारेण समन्वितः। देवि कारयते कर्म मम लोकाय गच्छति॥५७॥
क्रुद्धेन न च कर्त्तव्यं न लुब्धेन न च त्वरा। मत्पूजनं विशालाक्षि यदीच्छेत् परमां गतिम्॥५८॥
ये मां देवि यजिष्यन्ति क्रोधं त्यक्त्वा जितेन्द्रियाः। संसारं ते न गच्छन्ति अपराधविवर्जिताः॥५९॥

क्रुद्धापराधप्रायश्चित्तम्

श्रीवराह उवाच

अकर्मण्येन पुष्पेण यो मामर्चयते भुवि। पातनं तस्य वक्ष्यामि तच्छृणुष्व वसुंधरे॥६०॥
नाहं तत्प्रतिगृह्णामि न च ते वै मम प्रियाः। मूर्खैर्भागवतैर्दत्तं मम विप्रियकारिणः॥६१॥
पतन्ति नरके घोरे रौरवे तदनन्तरम्। अज्ञानस्य च दोषेण दुःखान्युभवन्ति च॥६२॥
वानरो दश वर्षाणि मार्जारश्च त्रयोदश। मूषकः पञ्च वर्षाणि बलीवर्दश्च द्वादश॥६३॥
छागश्चैवाष्टवर्षाणि मासं वै ग्रामकुक्कुटः। त्रीणि वर्षाणि महिषो भवत्येव न संशयः॥६४॥
एतत्ते कथितं भद्रे पुष्पं यन्मे न रोचते। अकर्मण्यं विशालाक्षि पुष्पं ये च ददन्ति वै॥६५॥

धरण्युवाच

भगवन् यदि तुष्टोऽसि विशुद्धोनान्तरात्मना। येन शुद्ध्यन्ति ते भक्तास्तव कर्मपरायणाः॥६६॥

हे देवि! आचारवान् जो भक्त इस विधि के अनुरूप कर्म सम्पन्न करता है, वह निश्चय ही मेरे लोक में चला जाता है।।५७।।

हे विशालाक्षि! यदि परम गति पाने की कामना हो, तो क्रोध, लोभ या उतावला से होकर मेरा पूजन नहीं ही करना श्रेष्ठ है।।५८।।

हे देवि! क्रोध त्याग कर जो जितेन्द्रिय व्यक्ति मेरा पूजन करता है, वह अपराध रहित हो जाता है। फिर उसे वापस संसार में नहीं आना पड़ता है।।५९।।

।। क्रोध अपराध का प्रायश्चित्त।।

श्री वराह ने कहा कि हे धरणि! जो जन पूजन कर्म के अयोग्य पुष्प द्वारा मेरा पूजन करता है, उसके पतन होने का उल्लेख करने जा रहा हूँ, सुनो।।६१।।

इस प्रकार करके वे रौरव नरक में स्वयं को लेकर चला जाता है और अज्ञान दोष से वह दुःखों को ही भोगा करते हैं।।६२।।

ऐसे भक्त दस वर्षों तक वानर, तेरह वर्षों तक चूहा और बारह वर्षों तक बैल हुआ करते रहते हैं।।६३।।

फिर आठ वर्षों तक बकरा,एक माह ग्राम कुक्कुट, तीन वर्षों तक भैंस होते रहते हैं, इसमें संशय नहीं करना चाहिए।।६४।।

हे भद्रे! जो पुष्प मुझे अच्छा नहीं लगता उसका फल मैंने तुम्हें बतला दिया है और हे विशालाक्षि! जो कर्म के अयोग्य पुष्प मुझे अर्पित करते हैं, उनका फल भी तुम्हें बतला दिया गया।।६५।।

धरणी ने पूछा कि हे भगवन्! यदि आप विशुद्ध भाव से मुझ पर अनुग्रह करना चाहते हैं, तो उसका प्रायश्चित्त बतला दें, जिससे आपके कर्म परायण भक्त जन शुद्ध हो जाया करते हैं।।६६।।

श्रीवराह उवाच

श्रृणु तत्त्वेन मे देवि यन्मां त्वं परिपृच्छसि। प्रायश्चित्तं महाभागे येन शुद्ध्यन्ति मानवाः॥६७॥
एकाहारं ततः कृत्व मासमेकं वसुंधरे। वीरासनविधिं चैव कारयेत् सप्त सप्त च॥६८॥
चतुर्थं भक्षमेकेन मासेन घृतपायसम्। यावकान्नं दिनांस्त्रीणि वायुभक्षो दिनत्रयम्॥६९॥
य एतेन विधानेन देवि कर्माणि कारयेत्। सर्वपापप्रमुक्तश्च मम लोकं स गच्छति॥७०॥

अकर्मण्यपुष्पापराधप्रायश्चित्तम्।

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥१३४॥

श्री भगवान् वराह ने कहा कि मुझसे तुमने जो कुछ पूछ रही हो, उन्हें तुम यथाविधि मुझसे सुनो। हे महाभागे! वह प्रायश्चित्त सुनो, जिससे मनुष्य को शुद्ध होने का अवसर सुलभ होता है।।६७।।

हे पृथ्वी! इस प्रकार करने से वह एक मास तक एकाहार करे, फिर चौदह वीरासन विधि का आधान करना चाहिए।।६८।।

एक मास तक चौथे दिन घृत और पायस का भोजन करना चाहिए। फिर तीन दिनों तक जौ का बना पदार्थ भोजन रूप में लेकर फिर तीन दिनों तक वायु का आहार करना चाहिए।।६९।।

हे देवि! जो कोई जन इस विधि के अनुसार मेरे कर्मों को किया करते हैं, वे सब पापों से रहित होकर मेरे लोक में चला जाता है।।७०।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में विष्णु पूजा के समय सामयिक अपराध और प्रायश्चित्त नामक एक सौ चौंतीसवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१३४॥

पञ्चस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

अथ विष्णुपूजनेऽन्यापराध कथनम्

श्रीवराह उवाच

रक्तवस्त्रेण संयुक्तो यो हि मामुपसर्पति। तस्यापि शृणु सुश्रोणि कर्मसंसारमोक्षणम्॥१॥
रजस्वलासु नारीषु रजो यत्तत्प्रवर्त्तते। तेनासौ रजसा स्पृष्टो कर्मदोषेण जानतः॥२॥
वर्षाणि दश पञ्चैव तस्य ते तत्र निश्चयः। रजो भूत्वा महाभागे रक्तवस्त्रपरायणः॥३॥
प्रायश्चित्तं प्रवक्ष्यामि तस्य कायविशोधनम्।
येन शुध्यन्ति वै भूमि पुरुषाः शास्त्रवर्ज्जिताः॥४॥
एकाहारं ततः कृत्वा दिनानि दश सप्त च। वायुभक्षो दिनत्रीणि दिनमेकं जलाशनः॥५॥
एवं स मुच्यते भूमि मम विप्रियकारकः। प्रायश्चित्तं ततः कृत्वा ममासौ रोचते सदा॥६॥
एतत् ते कथितं भूमि रक्तवस्त्रविभूषितम्। प्रायचित्तं महाभागे सर्वसंसारमोक्षणम्॥७॥
रक्तास्त्रपरिधानप्रायश्चित्तम्।

अध्याय-१३५

विष्णु पूजन में रक्तादि वस्त्र निषेध और अन्यान्य अपराधों के प्रायश्चित्त

श्री वराह ने कहा कि हे सुश्रोणि! जो कोई जन लाल रंग का वस्त्र धारण कर मेरे समीप आता है, तो उसे दोषयुक्त होने पर संसार से मुक्त करने वाली युक्ति सुनो।।१।।

इस प्रकार के जानते हुए किये अपराध युक्त जन कर्मदोष से उस रज से संयुक्त होता है, जो रजस्वला स्त्रियों में प्रवाहित हुआ करता है।।२।।

हे महाभागे! रक्त धारण करने वाले को विनिश्चयपूर्वक यह फल होता है कि वह रजरूप से स्त्री योनि में पन्द्रह वर्षों तक निवास करता है।।३।।

हे भूमि! अब शास्त्र को छोड़कर वे जन जिस तरह से शुद्ध हो सकते हैं, मैं शरीर को शुद्ध करने वाला उस प्रायश्चित्त को कहने जा रहा हूँ।।४।।

ऐसे जनों को सत्रह दिनों तक एक सन्ध्या भोजन करने के बाद तीन दिनों तक वायुभक्षण करना चाहिए; फिर एक दिन जल का आहार मात्र लेना चाहिए।।५।।

हे भूमि! मेरा अप्रिय करने वाले जन इस प्रकार प्रायश्चित्त कर दोषमुक्त हो जाते हैं और मेरा प्रिय भी हो जाते हैं।।६।।

हे भूमि महाभागे! रक्त वस्त्र धारण कर पूजा करने वाले जन का संसार के मुक्ति प्रदान करने वाला यह प्रायश्चित्त तुमको मैंने बतला दिया।।७।।

।।रक्तवस्त्र धारण करने के दोष का प्रायश्चित्त।।

श्रीवराह उवाच

यस्तु मामन्धकारेषु विना दीपेन सुन्दरि। स्पृशते मां विना शास्त्रं त्वरमाणो विमोहितः॥८॥
पतनं तस्य वक्ष्यामि तच्छृणुष्व वसुंधरे। तेन क्लेशं समासाद्य क्लिश्यते च नराधमः॥९॥
अन्धो भूत्वा महाभागे एकं जन्म तमोमयः। सर्वाशी सर्वभक्षश्च मनवश्चैव जायते॥१०॥
यतः स्मृतिस्ततस्तस्य मद्भक्तश्चैव जायते। अनन्यमानसो भूत्वा भूमे ह्येतत्प्रसादयेत्॥११॥
प्रायश्चित्तं प्रवक्ष्यामि अन्धकारे तु यः स्पृशेत्। तरन्ति येन संसारं मम लोकाय गच्छति॥१२॥
अक्ष्याच्छादं विधायित्वा दिनानि दश पञ्च च। एकाहारं ततः कृत्वा दिनविंशं समाहितः॥१३॥
यस्य कस्यापि मासस्य एकामेव च द्वादशीम्। एकाहारस्ततो भूत्वा तिष्ठेच्चापि जलाशनः॥१४॥
ततो यवान्नं भुञ्जीत गोमूत्रेण प्रपाचितम्। प्रायश्चित्तेन चैतेन मुच्यते पातकात् ततः॥१५॥

अन्धकारप्रायश्चित्तम्

श्रीवराह उवाच

यः पुनः कृष्णवस्त्रेण मम कर्मपरायणः। देवि कर्माणि कुर्वीत तस्य वै पतनं शृणु॥१६॥
घुणो वै पञ्च वर्षाणि काष्ठभक्षश्च जायते। मशकस्त्रीणि वर्षाणि दंशस्त्रीणि च पञ्च च॥१७॥

हे सुन्दरि! जो जन विना दीपक का अन्धकार में ही मोह के वशीभूत व्यग्रता सहित शास्त्र नियम विरुद्ध मेरा स्पर्श करता है, हे पृथ्वी! मैं उसके अधोपतन का उल्लेख करने जा रहा हूँ। उसे तुम सुनो। वह नरों में अधम नर उस अपराध से प्राप्त क्लेश ग्रस्त होकर दुःखी हुआ करता है।।८-९।।

हे महाभागे! वह एक जन्म में तमोगुणी एवं सर्वभक्षी होने के साथ अन्धा भी होता है।।१०।।

फिर चूँकि उसे पूर्वजन्म का वृत्त स्मरण रहता है, अतः वह मेरा भक्त होता है। हे भूमि! वह अनन्य मन से मेरा भक्त होकर मुझे प्रसन्न करने में संलग्न रहता है।।११।।

जो जन मुझे अन्धकार में स्पर्श करने वाला है, उसके अपराध का प्रायश्चित्त कहा जा रहा है, जिससे वह अपराध करने वाला संसार से मुक्त होकर मेरे लोक में जाता है।।१२।।

ऐसे जन को चाहिए कि वह पन्द्रह दिन एक आखें ढँक कर रखे और फिर बीस दिन पर्यन्त एक निष्ठ भाव से एक भुक्त ग्रहण करे।।१३।।

जिस-किसी माह के एक द्वादशी को एकाहार करने के उपरान्त जल पीकर ही जीवन निर्वाह करें। फिर गोमूत्र से पकाये जौ-अन्न का भोजन करना चाहिए। इस प्रकार के प्रायश्चित्त से वह उस पाप से रहित होकर मुक्त हो जाता है।।१४-१५।।

।। अन्धकार में स्पर्श करने का प्रायश्चित्त।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि हे देवि! कृष्ण वस्त्र धारण कर जो कोई मेरा भक्त जन पूजनादि कर्म को करता है, उसके अधःपतन को कहा जा रहा है, सुनो।।१६।।

वे जन पाँच वर्ष तक काष्ठ का भक्षण करने वाला 'घुन' होते हैं। फिर वे जन तीन वर्षों तक मच्छर और फिर आठ वर्षों तक जीवों को डँस मारने वाले जीव होते हैं।।१७।।

मत्स्यो वै दश वर्षाणि लावकस्तु समास्त्रयः। पञ्च वर्षाणि नकुलो दश वर्षाणि कच्छपः।
एवं भ्रमति संसारे मम कर्मपरायणः॥१८॥
पारावतश्च जायेत नव वर्षाणि पञ्च च। तिष्ठते मम पार्श्वेषु यत्रैवाहं प्रतिष्ठितः॥१९॥
प्रायश्चित्तं प्रवक्ष्यामि तस्य संसारमोक्षणम्। येनासौ लभते सिद्धिं कृष्णवस्त्रापराधतः॥२०॥
सप्ताहं यावकं भुक्त्वा त्रिरात्रं सक्तुपिण्डिकाः।
त्रीणि पिण्डंस्त्रिरात्रं तु एवं मुच्येत किल्बिषात्॥२१॥
य एतेन विधानेन देवि कर्माणि कारयेत्। शुचिर्भागवचतो भूत्वचा मम मार्गानुसचरकः।
न स गच्छति संसारं मम लोकाय गच्छति॥२२॥

कृष्णवस्त्रपरिधानप्रायश्चित्तम्

श्रीवराह उवाच

वाससा न च धौतेन यो मे कर्माणि कारयेत्। शुचिर्भागवतो भूत्वा मम मार्गानुसारकः॥२३॥
तस्य दोषं प्रवक्ष्यामि अपराधं वसुंधरे। पतन्ति येन संसारं वासोच्छिष्टकारिणः॥२४॥
देवि भूत्वा खगं ते तु जन्म चैकं न संशयः। उष्ट्रं चैकं भवेज्जन्म जन्म चैकं खरस्तथा॥२५॥
गोमायुरेकजन्मा वै जन्म चैकं हयस्तथा। सारङ्गस्त्वेकजन्मा वै मृगो भवति वै ततः॥२६॥

ऐसा व्यक्ति पुनः दस वर्षों तक मछली, तीन वर्षों तक लावापक्षी, पाँच वर्षों तक नेवला और फिर दस वर्षों तक कछुआ होते हैं। मेरा अपराध करने वाला भक्त इस रीति से इस संसार में भ्रमण करते रहते हैं।।१८।।

वे जन चौदह वर्षों तक कबूतर होते हैं और जहाँ कहीं मेरी मूर्त्ति प्रतिष्ठित होती है, वहाँ पर मेरे पास रहने वाले जीव होते हैं।।१९।।

अब उनके संसार से मुक्ति प्रदान करने वाला प्रायश्चित्त कहा जा रहा है, जिससे वे जन काला वस्त्र धारण करने के दोष से मुक्त होने की चेष्टा करता है।।२०।।

वे जन, एक सप्ताह पर्यन्त जौ-अन्न का आहार ग्रहण करने के बाद तीन रात्रि तक सत्तू की पिण्डियों को भक्षण करे। फिर तीन रात्रियों में सत्तू की तीन पिण्डियों का आहार ग्रहण करने से दोषी व्यक्ति पाप से मुक्त हो जाया करता है।।२१।।

हे देवि! जो इस विधान से कर्म करते हैं, वे मेरे मार्ग का अनुयायी भगवद् भक्त पवित्र हो जाता है। वे संसार में पुनर्जन्म से मुक्त होकर मेरे लोक में निवास करने वाले होते हैं।।२२।।

।।कृष्ण वस्त्र धारण करने का प्रायश्चित्त।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि मेरे मार्ग का अनुयायी पवित्र भगवद् भक्त के रूप में भी जो जन विना धुला वस्त्र धारण किये मेरे कर्म को करने में संलग्न होते हैं, हे पृथ्वि! मैं ऐसे उच्छिष्ट वस्त्र धारण कर कर्म करने वाले उन भक्त जनों के दोष वाले अपराध को कहने जा रहा हूँ, जिससे वे सांसारिक प्रञ्चना में उलझते रहते हैं।।२३-२४।।

हे देवि! निःसंशय ऐसे जनों को क्रम से एक-एक बार अश्व, उष्ट्र और गर्दभ योनि में उत्पन्न होने के लिए बाध्य होना पड़ता है।।२५।।

पुनः ऐसे जन एक बार श्रृंगाल, एक बार घोड़ा, एक बार पक्षी और फिर एक बार मृग योनि में जन्म लेने हेतु बाध्य होते हैं।।२६।।

सप्तजन्मान्तरं पश्चात् ततो भवति मानुषः। मद्भक्तश्च गुणाश्च मम कर्मपरायणः।
निरपराधो दक्षश्च अहंकारविवर्जितः॥२७॥

धरण्युवाच

श्रुतमेतत् प्रयत्नेन यत्त्वया समुदाहृतम्। संसारं वाससोच्छिष्टा येन गच्छन्ति मानुषाः॥२८॥
प्रायश्चित्तं च मे ब्रूहि सर्वकर्मसुखावहम्। किल्विषाद् येन मुञ्चन्ति तव कर्मपरायणाः॥२९॥

श्रीवराह उवाच

शृणु तत्त्वेन मे देवि कथ्यमानं मयाऽनघे। प्रायश्चित्तं प्रवक्ष्यामि मम कर्मसुखावहम्॥३०॥
यावकेन दिनत्रीणि पिण्याकेन पुनस्त्रयः। कणभक्षो दिनत्रीणि पायसेन दिनत्रयम्।
पयोभक्षो दिनत्रीणि वायुभक्षो दिनत्रयम्॥३१॥
एवं कृत्वा महाभागे वाससोच्छिष्टकारिणः। अपराधं न विद्येत संसारं च न गच्छति॥३२॥

अधौतवासोऽपराधप्रायश्चित्तम्

श्रीवराह उवाच

श्वानोच्छिष्टं तु यो दद्यान्मम कर्मपरायणः। पापं तस्य प्रवक्ष्यामि संसारस्य महद् भयम्॥३३॥
श्वानो वै सप्त जन्मानि गोमायुः सप्त वै तथा। उलूकः सप्तवर्षणि पश्चाज्जायेत मानुषः॥३४॥

तत्पश्चात् सप्त जन्म पश्चात् वे जन मनुष्य की योनि में जन्म लेकर मेरा भक्त, गुणज्ञ, मेरे कर्म करने में तत्पर, अपराध रहित, दक्ष और अभिमान शून्य व्यक्ति के रूप में जाने जाते हैं।।२७।।

धरणी ने कहा कि इस प्रकार उच्छिष्ट वस्त्र धारण कर आपका कर्म करने वाले जन जिस भी प्रकार संसार की प्रवञ्चना में फँस कर पतित होते हैं, उसे आपके द्वारा बतलाये जाने पर मेरे द्वारा चेष्टापूर्वक सुना गया।।२८।।

अब आप मुझे समस्त कर्मों में सुख प्रदान करने वाला उसका प्रायश्चित्त भी बतलाने की कृपा करें, जिससे आपके कर्म करने वाले पापमुक्त भी हो सकें।।२९।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि हे निष्पाप देवि! मैं अब मेरे ही कर्म करने वाले को सुख प्रदान करने वाला प्रायश्चित्त कहने जा रहा हूँ वास्तविक रूप में मेरे द्वारा कहे जा रहे उस रहस्य को सुनो—।।३०।।

इसके लिए तीन दिनों तक जौ के बने पदार्थ का फिर तीन दिनों तक पिण्याक याने खली का, तीन दिनों तक कण यानि अनाज के दाने का, फिर तीन दिनों तक खीर का, फिर तीन दिनों तक जल का और फिर तीन दिनों तक वायु का भक्षण करना चाहिए।।३१।।

हे महाभागे! इस प्रकार से आहरर ग्रहण कर उच्छिष्ट वस्त्र धारण कर पूजा आदि कर्म करने वालों का अपराध का समापन हो जाता है। फिर वह मनुष्य संसार में फिर से बार-बार जन्म नहीं ले पाता है।।३२।।

।।विना धुले वस्त्र पहन कर पूजन करने के अपराध का प्रायश्चित्त।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि मेरा कर्म करने हेतु सन्नद्ध रहने वाला व्यक्ति द्वारा कुत्ते का उच्छिष्ट अर्पण किये जाने पर उसका पाप कहा जा रहा है। यह इस संसार में महाभयानक हुआ करता है।।३३।।

ऐसा व्यक्ति सात जन्मों तक कुत्ता, सात जन्मों तक शृंगाल और सात जन्मों तक उल्लू होता है, फिर वह मनुष्य रूप में जन्म ले पाता है।।३४।।

विशुद्धात्मा श्रुतिज्ञश्च मद्भक्तश्चैव जायते। गृहे भागवतोत्कृष्टे अपराधविवर्जितः॥३५॥
शृणु तत्त्वेन वसुधे प्रायश्चित्तं महौजसम्। तरन्ति मानुषा येन त्यक्त्वासंसारसागरम्॥३६॥
मूलभक्षो दिनत्रीणि फलाहारो दिनत्रयम्। शाकभक्षो दिनत्रीणि पयोभक्षो दिनत्रयम्॥३७॥
दध्याहारो दिनत्रीणि पायसेन दिनत्रयम्। वाय्वाहारो दिनत्रीणि स्नानं कृत्वा दृढव्रतः॥३८॥
एवं दिनान्येकविंशत् कृत्वा वै शुभलक्षणम्। अपराधं न विद्येत मम लोकाय गच्छति॥३९॥

श्वानोच्छिष्टापराधप्रायश्चित्तम्।

श्रीवराह उवाच

भुक्त्वा वराहमांसं तु यश्च मामिह सर्पति। पतनं तस्य वक्ष्यामि यथा भवति सुंदरी॥४०॥
वाराहो दशवर्षाणि भूत्वा तु चरते वने। व्याधो भूत्वा महाभागे समाः सप्त च सप्त च।
भूमिर्भूत्वा समाः सप्त तिष्ठते तस्य पुष्करे॥४१॥
ततश्च मूषको भूत्वा वर्षाणि च चतुर्दश। एकोनविंशवर्षाणि यातुधानश्च जायते॥४२॥
शल्यकं चाष्टवर्षाणि जायते स वने बहु। व्याघ्रस्त्रिंशच्च वर्षाणि जायते पिशिताशनः॥४३॥
एवं संसारतिं गत्वा वाराहामिषभक्षकः। जायते विपुले सिद्धे कुले भागवतस्तथा॥४४॥

फिर वह मनुष्य उत्तम भगवद् भक्त के यहाँ अपराध मुक्त, विशुद्धात्मा होकर, वेदों को जानने वाला और मेरा भक्त होकर उत्पन्न होता है।।३५।।

हे वसुधे! वास्तविक रूप से अतिशक्त प्रायश्चित्त को कहा जाता है, सुनो, जिसके द्वारा मनुष्य संसार सागर से तर जाया करते हैं।।३६।।

ऐसे व्यक्ति को तीन दिनों तक मूल का, तीन दिनों तक फल का, तीन दिनों तक शाक का, और तीन दिनों तक जल का आहार करना चाहिए।।३७।।

फिर तीन दिनों तक दही का, तीन दिनों तक खीर का और तीन दिनों तक वायु का आहार करना चाहिए। तत्पश्चात् स्नान कर दृढ़व्रती होकर रहना चाहिए।।३८।।

इन इक्कीस दिनों तक शुभ लक्षणों वाला व्रत करने के बाद अपराध अवशिष्ट नहीं रह जाता है। फिर वह मेरे प्रिय लोक में निवास करने वाला हो जाता है।।३९।।

।।इस प्रकार कुत्ते के उच्छिष्ट से उत्पन्न अपराध का प्रायश्चित्त हुआ।।

श्री भगवान् वराह ने कहा हे सुन्दरि! जो जन सुअर का मांस भक्षण कर मेरे समीप आता हैं। वैसे जनों का जैसा पतन होता है, उसे कहने जा रहा हूँ।।४०।।

ऐसा व्यक्ति दस वर्षों तक सुअर योनि में जन्म लेकर वन में विचरण करता है। फिर वह चौदह वर्षों तक व्याध और सात वर्षों तक भूमि होकर उसके रहने के स्थान में रहता है।।४१।।

फिर चौदह वर्षों तक चूहा योनि में उत्पन्न होकर रहता है। फिर उन्नीस वर्षों तक राक्षस योनि में उत्पन्न हो जाता है। तत्पश्चात् आठ वर्ष पर्यन्त शल्लकी रूप धारण कर वन में बहुत भ्रमण करने वाला होता है, फिर तीस वर्षों तक मांसाहारी व्याघ्र स्वरूप में उत्पन्न हुआ करता है।।४२-४३।।

इस प्रकार वराह योन सुअर का मांस भक्षण करने वाला इस संसार में कई बार उत्पन्न होने के उपरान्त फिर से भगवद् भक्त होकर विशाल सिद्ध कुल में उत्पन्न होता है।।४४।।

हृषीकेशवचः श्रुत्वा सर्वं संपूर्णलक्षणम्। शिरसा चाञ्जलिं कृत्वा वाक्यं चेदमुवाच ह॥४५॥
एतन्मे परमं गुह्यं तव भक्तसुखावहम्। वराहमांसभक्षं तु येन मुच्येत किल्बिषात्॥४६॥

श्रीवराह उवाच

तरन्ति मानवा येन तिर्यक्संसारसागरात्। गोमयेन दिनं पञ्च कणाहारेण सप्त वै॥४७॥
पानीयं तु ततो भुक्त्वा तिष्ठेत् सप्त दिनं ततः। अक्षारलवणं सप्त सक्तुभिश्च तथा त्रयः॥४८॥
तिलभक्षो दिनान् सप्त सप्त पाषाणभक्षकः। पयो भुक्त्वा दिनं सप्त कारयेच्छुद्धिमात्मनः॥४९॥
क्षान्तं दान्तं पराकृत्वा अहंकारविवर्जितः। दिनान्येकोनपञ्चाशच्चरतः कृतनिश्चयः॥५०॥
विमुक्तः सर्वपापेभ्यः ससंज्ञो विगतज्वरः। कृत्वा तु मम कर्माणि मम लोकाय गच्छति॥५१॥

वाराहमांसभक्षणप्रायश्चित्तम्

श्रीवराह उवाच

जालपादं भक्षयित्वा यस्तु मामुपसर्पति। जालपादं ततो भूत्वा वर्षाणि दश पञ्च च।
कुम्भीरो दश वर्षाणि पञ्च वर्षाणि शूकरः॥५२॥
तावद् भ्रमति संसारे मम चैवापराधतः। कृत्वा तु दुष्करं कर्म जायते विपुले कुले॥५३॥

हृषीकेश की समस्त लक्षणों से सम्पन्न वाणी को सुनकर धरणी ने सिर पर अपने हाथों को जोड़े हुए इस प्रकार से यह वचन कहा—।।४५।।

जिस कर्म के द्वारा पापों से मुक्ति मिलती है और वे कर्म, जो आपके भक्तों को सुख प्रदान करने वाला है, उस वराह मांसाहारी जन का प्रायश्चित्त मेरे लिए निश्चय ही अति रहस्य का विषय बन गया है।।४६।।

फिर श्री भगवान् वराह ने कहा कि मानव मात्र जिस प्रायश्चित्त कर्म को करने से इस तिर्यक् योनि में उत्पन्न न होकर संसार समुद्र के उस पार चला जाता है, वैसे प्रायश्चित्त कर्म आगे कहा जा रहा है—इसके लिए पाञ्च दिन पर्यन्त गोबर और फिर सात दिन पर्यन्त कण का भक्षण करना चाहिए। तदनन्तर सात दिन पर्यन्त जल मात्र का आहार लेकर फिर दस दिनों तक क्षार रहित नमक का भक्षण करना चाहिए। फिर तीन दिन पर्यन्त सत्तू से जीवन निर्वाह करना चाहिए।।४७-४८।।

इसी क्रम में सात दिन पर्यन्त तिल का आहार लेकर फिर सात दिन पर्यन्त पाषाण का और फिर सात दिन पर्यन्त जलाहार लेकर अपनी शुद्धि को सुनिश्चित करनी चाहिए।।४९।।

एवम्प्रकार से दृढ़निश्चयी होकर अहंकारहीन, क्षमावान् और इन्द्रियों को संयमित कर उनचास दिनों तक यह व्रत पालन करना चाहिए।।५०।।

इस प्रकार से आचरण करने वाले जन ज्ञानलब्ध कर दुःख से मुक्त रहकर समस्त पापों से रहित हो जाया करते हैं। फिर वे जन मेरे पूजन आदि कर्मों को करने के उपरान्त मेरे लोक में चले जाते हैं।।५१।।

।।इस प्रकार वराह यानेसुअर मांस भक्षण प्रायश्चित्त हुआ।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि जो जन बत्तख का मांस भक्षण करने के बाद मेरे समीप आता है, तो वे पन्द्रह वर्षों तक जलपाद होने के पश्चात् दस वर्षों तक कुम्भीर और पाँच वर्षों तक सुअर याने वराह के रूप में जन्म लेते हैं। इस प्रकार मेरे अपराध से वे जन अत्यन्त कठिन कर्म कर विशाल कुल में उत्पन्न होता है।।५२-५३।।

शुद्धो भागवतः श्रेष्ठस्त्वपराधविवर्जितः। सर्वधर्मान् परित्यज्य मम लोकाय गच्छति॥५४॥
प्रायश्चित्तं प्रवक्ष्यामि जालपादस्य भक्षणे। तरन्ति मनुजा येन घोरसंसारसागरात्॥५५॥
यावकान्नं दिनत्रीणि वायुभक्षो दिनत्रयम्। फलभक्षो दिनत्रीणि तिलभक्षो दिनत्रयम्॥५६॥
अक्षारलवणान्नाशी पुनस्तत्र दिनत्रयम्। पञ्चदश दिनान्येवं प्रायश्चित्तं समाचरेत्॥५७॥
जालपादापराधस्य एवं कुर्वीत शोधनम्। विनीतात्मगतिर्भूत्वा यदिच्छेत् सुन्दरां गतिम्॥५८॥

इति जालपादभक्षणापराधप्रायश्चित्तम्।

।इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः।।१३५।।

इस तरह वे अपराध मुक्त होकर शुद्ध और श्रेष्ठ भगवद् भक्त सभी धर्मों को छोड़कर मेरे लोक में निवास करते हैं।।५४।।

अब जलपाद भक्षण का प्रायश्चित्त कहने जा रहा हूँ। जिस प्रायश्चित्त को सम्पन्न कर मनुष्य घोर संसार समुद्र से पार हो जाते हैं।।५५।।

इस क्रम में तीन दिन तक जौ का बना पदार्थ, तीन दिन वायु का आहार, तीन दिन तक फलाहार, और तीन दिन तक तिल खाकर फिर तीन दिन तक क्षार मुक्त लवण से युक्त अन्न खाना चाहिए। इस प्रकार यह प्रायश्चित्त पन्द्रह दिनों तक करना चाहिए।।५६-५७।।

इस प्रकार सुन्दर गति को चाहने वाले जनों को चाहिए कि इस प्रकार विनय सम्पन्न स्वभाव का होकर बत्तख मांस भक्षण के अपराध से मनुष्य सर्वथा मुक्त हो जाता है।।५८।।

।।जालपाद भक्षण के अपराध का प्रायश्चित्त।।

।।इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में विष्णु पूजन में रक्तादि वस्त्र निषेध और अन्यान्य अपराधों के प्रायश्चित्त नामक एक सौ पैंतीसवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्य-नारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ।।१३५।।

षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

अथ विष्णुपूजनेऽन्यापराधप्रायश्चितम्

श्रीवराह उवाच

दीपं स्पृष्ट्वा तु यो देवि मम कर्माणि कारयेत्। तस्यापराधात् वै भूमि पातं प्राप्नोति मानवः॥१॥
तच्छुणुष्व महाभागे कथ्यमानं मयाऽनघे। जायते षष्टिवर्षाणि कुष्ठी गात्रपरिप्लुतः।
चाण्डालस्य गृहे तत्र एवमेतन्न संशयः॥२॥
एवं भुक्त्वा तु तत्कर्म मम क्षेत्रे मृतो यदि। मद्भक्तश्चैव जायेत शुद्धे भागवते गृहे॥३॥
प्रायश्चित्तं प्रवक्ष्यामि दीपस्य स्पर्शनाद् भुवि। तरन्ति मनुजा येन कष्टचण्डालयोनिषु॥४॥
यस्य कस्यापि मासस्य शुक्लपक्षे च द्वादशीम्। चतुर्थभक्तमाहारामाकाशशयने स्वपेत्॥५॥
दीपं दत्त्वाऽपराधाद् वै तरन्ति मनुजा भुवि। शुचिर्भूत्वा यथान्यायं मम कर्मपथे स्थिताः॥६॥
एतत् ते कथितं देवि स्पर्शनाद दीपकस्य तु। संसारशोधनं चैव यत् कृत्वा लभते शुभम्॥७॥

दीपस्पर्शनापराधप्रायश्चित्तम्

अध्याय-१३६

विष्णु पूजा में अन्यान्य अपराधों का प्रायश्चित्त

श्री वराह भगवान् ने कहा कि हे देवि भूमि! जो कोई जन दीप स्पर्श कर मेरा कर्म करने वाला है, वे उस अपराध से जिस प्रकार पतित होता है, हे निष्पाप महाभागे! मेरे द्वारा कहे जाने वाले उस गुह्य रहस्य को सुनो। ऐसे व्यक्ति के शरीर में कुष्ठ रोग व्याप्त हो जाता है और फिर वे साठ वर्षों तक चाण्डाल के घर रहने वाले होते हैं। इसमें संशय नहीं करना चाहिए।।१-२।।

इस प्रकार उस कर्म का प्रायश्चित्त भोगने के पश्चात् फिर यदि वे मेरे क्षेत्र में मरते हैं, तो मेरा भक्त होकर वे भगवद् भक्त के शुद्ध घर में उत्पन्न होता है।।३।।

हे भुवि! अब दीप का स्पर्श करने से होने वाले दोष का प्रायश्चित्त कहा जा रहा है, जिस प्रायश्चित्त से मनुष्य चाण्डाल योनियों में होने वाले कष्ट से रहित हुआ करते हैं।।४।।

जिस भी मास के शुक्ल पक्ष की द्वादशी तिथि के दिन चतुर्थ प्रहर में भात भक्षण कर खुले आकाश में शयन करना चाहिए।।५।।

फिर दीप का दान कर मनुष्य अपराध से रहित हो जाया करते हैं, और संसार में पवित्र होकर यथान्याय विधि से मेरे कर्म मार्ग में स्थित रहते हैं।।६।।

हे देवि! इस प्रकार दीप स्पर्श के दोष से संसार को शुद्ध करने वाला यह उपाय तुम्हें बतला दिया, जिस प्रायश्चित्त को करके मनुष्य अपना कल्याण करता है।।७।।

।।दीप स्पर्शन के अपराध का प्रायश्चित्त।।

श्रीवराह उवाच

श्मशानं यो नरो गत्वा अस्नात्वैव तु मां स्पृशेत्। मम दोषापराधं च शृणु तत्त्वेन निष्कलम्॥८॥
जम्बुको जायते भूमौ वर्षाणां नव पञ्च च। गृध्रस्तु सप्तवर्षाणि जायते खचरेश्वरः।
चरन्तौ मानुष मांसमुभौ तौ गृध्रजम्बुकौ॥९॥
पिशाचो जायते तत्र वर्षाणि नव पञ्च च। ततस्तु कुणपोच्छिष्टं त्रिंशद्वर्षाणि खादति॥१०॥
ततो नारायणाच्छुत्व धरणी वाक्यमब्रवीत्। एतन्मे परमं गुह्यं लोकनाथ जनार्दन।
परं कौतूहलं देव निखिलं वक्तुमर्हसि॥११॥
श्मशानं पुण्डरीकाक्ष ईश्वरेण प्रशंसितम्। किं तत्र विगुणं देव पवित्रे शिवभाषिते॥१२॥
स तत्र रमते नित्यं भगवांस्तु महाद्युतिः। कपालं गृह्य देवोऽत्र दीप्तिमन्तं महौजसम्॥१३॥
प्रशंसितं च रुद्रेण भवता किं च निन्दितम्। श्मशानं पद्मपत्राक्ष रुद्रस्य च निशि प्रियम्॥१४॥

श्रीवराह उवाच

शृणु तत्त्वेन मे देवि इदमाख्यानमुत्तमम्। अद्यपि ते न जानन्ति ह्यनघे संशितव्रताः।
कृत्व सुदुष्करं कर्म सर्वभूतपतिं हरम्॥१५॥
हत्वा च बालवृद्धानि त्रिपुरे रूपिणीः स्त्रियः। तेन पापेन संबद्धो न शक्नोति विचेष्टितुम्॥१६॥

श्री भगवान् ने कहा कि जो जन श्मशान जाकर फिर विना स्नान किये ही मुझे भी स्पर्श कर लेता है, उसके द्वारा मेरे किये कर्म का दोष और अपराध का वास्तविक रूप से उल्लेख किया जा रहा है, सुनो।।८।।

इस क्रम में उसे चौदह वर्षों तक पृथ्वी पर शृंगाल और सात वर्षों तक पक्षिराज गृध्र रूप में उत्पन्न होना पड़ता है। शृंगाल, गृध्र आदि दोनों मनुष्य मांस भक्षक हैं।।९।।

फिर वह चौदह वर्षों तक पिशाच के रूप में स्थित रहता है। फिर तीस वर्षों तक श्मशान में मांसाहारी मांसाहारी जीवों की जूठा बलि रूप अवशेष भाग भक्षण करता है।।१०।।

इस प्रकार नारायण की वाणी सुनकर धरणी ने यह वचन कहा—हे लोकनाथ! जनार्दन!! मेरे लिए यह परम रहस्य है। मैं इस प्रसङ्ग में अत्यन्त उत्सुक हूँ। हे देव! मुझे इसको सम्पूर्णत से कहने की कृपा करें।।११।।

हे कमलनेत्र! ईश्वर ने श्मशान की अत्यन्त प्रशंसा की है। हे देव! इस प्रकार शिव शंकर द्वारा प्रशंसित उस श्मशान में क्या दोष है?।।१२।।

फिर महादीप्ति वाला, अत्यन्त ओजवान् कपाल धारण कर वे महातेजस्वी भगवान् शिव शंकर वहाँ पर नित्य विहार किया करते हैं।।१३।।

अतः आपके द्वारा उन रुद्र से प्रशंसित श्मशान की निन्दा क्यों की गई है? हे पद्मनेत्र! श्मशान रात्रि में शिवजी को प्रिय हुआ करता है।।१४।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि हे देवि! मेरे द्वारा तुम इस आख्यान को वास्तविक रूप में सुनो—हे निष्पाप धरणि! आज भी कठोर व्रत धारण करने वाले वे सब शिव भक्त इसे नहीं जानते। सर्वभूताधिपति हर ने त्रिपुरासुर संग्राम के समय अतिशय कठिन कर्म को सम्पन्न किया।।१५।।

उस समय त्रिपुर में उन्होंने बालकों, वृद्धो और सुन्दर स्त्रियों का भी वध कर दिया। उस पाप से युक्त होने पर वे कोई भी चेष्टा करने में सक्षम नहीं थे।।१६।।

प्रणष्टे मानसैश्वर्ये न स्वमाया च योगिनः। विवर्णवदनो भूत्वा तिष्ठते स महेश्वरः।
तत्र स्थानेश्वरो भूमि गणैः सर्वैः समावृतः॥१७॥
नष्टमायं ततो देवि चिन्तयामि वसुंधरे। ततो ध्यातो मया देवि ईश्वरः पुनरेष्यति॥१८॥
यावत् पश्यामि तं देवं देवि दिव्येन चक्षुषा। नष्टमायाबलं रुद्रं सर्वभूतमहेश्वरम्॥१९॥
ततोऽहं तत्र गत्वा तु यष्टकामं त्रियम्बकम्। नष्टसंज्ञो हतज्ञानो नष्टयोगबलोऽबलः॥२०॥
तत ईशो मया चोक्तो वाक्यमेव सुखावहम्। किमिदं तिष्ठसे रुद्र कश्यमलेन समावृतः॥२१॥
त्वं कर्ता च विकर्ता च विकाराकार एव च।
त्वं वै सांख्यं च योगं च त्वं योगिस्त्वं परायणम्॥२२॥
त्वमुग्रदेवदेवादिस्त्वं सोमस्त्वं तथा दिशः। किं न बुध्यसि चात्मानं गणैः परिवृतो भवान्॥२३॥
किमिदं देवदेवेश विवर्णः पृथुलोचनः। तन्ममाचक्ष्व तत्त्वेन एष यत्पृच्छितो भवान्॥२४॥
स्मर योगं च मायां च पश्य विष्णोर्महात्मनः। तव चैव प्रियार्थाय येनाहमिदमागतः॥२५॥
ततो मम वचः श्रुत्वा लब्धसंज्ञो महेश्वरः। उवाच मधुरं वाक्यं पापसंतप्तलोचनः॥२६॥
शृणु तत्त्वेन मे देव कोऽन्योऽप्येवं करिष्यति। अन्यो नारायणं चैकं सर्वलोकवरं शुभम्॥२७॥

उनका मानसिक तेज नष्टप्राय हो चुके थे। अपनी ही माया से उनका सम्पर्क विच्छेद हो गया। इस प्रकार के महेश्वर कान्तिहीन मुखवाले हो गये। हे भूमि! अपने सब गणों से आवृत्त वे वहाँ पर स्थित थे।।१७।।

हे देवि धरणि! इस तरह माया रहित रुद्र का मेरे द्वारा चिन्तन किया गया, तो हे देवि! मेरे ध्यान करने पर वे रुद्र पुनः ध्यान में आ पहुचे।।१८।।

हे देवि! मेरे द्वारा फिर दिव्य नेत्र से माया रहित सर्वभूतमहेश्वर उन रुद्र को देखकर उनकी पूजा करने की कामना से वहाँ जाकर संज्ञा-ज्ञान-योग आदि से रहित बलशून्य त्र्यम्बक रुद्र को देख लिया गया।।१९-२०।।

फिर मैंने उन महादेव से यह सुखदायक वचन कहा कि हे रुद्र! मोहयुक्त होकर आप इस प्रकार क्यों स्थिर भाव में स्थित हैं।।२१।।

आप तो कर्त्ता, विकर्त्ता, विकार, आकार स्वरूप आदि हैं। आप सांख्य, योग, योगी, श्रेष्ठ आकार आदि स्वरूप हैं। आप उग्रदेव, आदिदेव, सोम और दिशाओं के स्वरूप हैं। गणों से समावृत्त आप स्वयं को क्यों नहीं पहचान लेते हैं।।२२-२३।।

हे विशा नेत्र! तेजहीन देवदेवेश! यह क्या है? मैंने आपसे जो कुछ पूछा है, उसे यथार्थ रूप से मुझसे कहिए।।२४।।

आप अपने योग और माया का स्मरण करें। आपको महात्मा विष्णु की ओर देखना चाहिए, इसलिए कि आपके प्रिय करने हेतु ही मैं यहाँ आया हूँ।।२५।।

इस प्रकार के मेरे वचन को सुनकर महेश्वर को चेतना वापस आ गई। उन पाप से संतप्त नेत्र महेश्वर ने मीठे स्वर में कहा—।।२६।।

हे देव! तत्त्वतः सुनो, दूसरा कौन ऐसा कर सकता है? सर्वलोकों में श्रेष्ठ कल्याणकारक एक मात्र नारायण ही हैं, जो ऐसा करने में सक्षम हैं।।२७।।

हे विष्णो त्वत्प्रसादेन पावनं चैव माधव। लब्धं योगं च सांख्यं च जातोऽस्मि विगतज्वरः।
त्वत्प्रसादेन जातोऽस्मि पूर्णेन्दुरिव निर्मलः॥२८॥
अहं त्वां तु विजानामि मम त्वं तु विजानतः। अन्यः कश्चिन्न जानाति ते मे चैवमनन्तरम्॥२९॥
ब्रह्मा तद्वन्न जानाति लिप्यमानोऽपि नित्यशः। साधु विष्णो महाभाग सर्वमायाकरण्डक॥३०॥
एवं मह्यं हरो वाक्यमुक्त्वा भूतमहेश्वरः। मुहूर्त्तं ध्यानमास्थाय पुनः प्रोवाच मां वचः॥३१॥
तव विष्णो प्रसादेन मया तत् त्रिपुरं हतम्। निहता दानवास्तत्र गर्भिण्यश्च निपातिताः॥३२॥
बालवृद्धा हतास्तत्र विस्फुरन्तो दिशो दश। तस्य पापस्य दोषेण न शक्नोमि विचेष्टितुम्॥३३॥
नष्टं योगं च मायां च नष्टैश्वर्यस्य मे भवान्। किं मया कृष्ण कर्त्तव्यं एनोवस्थेन माधव॥३४॥
विष्णो तत्त्वेन मे ब्रूहि शोधनं पापनाशनम्। येन वै कृतमात्रेण शीघ्रं मुच्येत किल्बिषात्॥३५॥
एवं चिन्तात्मनस्तत्र मया रुद्रश्च भाषितः। कपालमालां गृहीत्वा त्वं समलं गच्छ शंकर॥३६॥
ममैवं वचनं श्रुत्वा भगवान् परमेश्वरः। उवाच मां पुनर्व्यक्तं मां बोधय जगत्पते।
कीदृशः समलो विष्णो यत्र गच्छामहे वयम्॥३७॥
ततस्तस्य वचः श्रुत्वा शंकरस्य यशस्विनि। तत्पापशोधनार्थाय मया वाक्यं प्रभाषितम्॥३८॥

हे माधव विष्णु! आपकी कृपा से मुझे पुनः पवित्र योग और सांख्य की प्राप्ति हुई और मैं सन्ताप रहित हो गया। आपकी कृपा से मैं पूर्ण चन्द्र सदृश निर्मल हो गया हूँ।।२८।।

मैं भी आपको जान रहा हूँ और आप मुझे भी जान रहे हैं। अन्य कोई मेरे और आपके अन्तर को नहीं जानने वाला है।।२९।।

नित्य सम्पर्क में रहने वाले ब्रह्मा भी यह रहस्य नहीं जानते। हे सर्वमायाधिपति महाभाग विष्णु! आप धन्य हैं।।३०।।

इस प्रकार मुझसे कहकर एक मुहूर्त्त के लिए ध्यान करते हुए भूतमहेश्वर हर ने पुनः मुझसे यह वचन कहा— हे विष्णो! आपकी ही कृपा प्रसाद से मैंने उस त्रिपुर दैत्य को मारा था। वहाँ दैत्य मारा गया। फिर उनकी गर्भिणी स्त्रियाँ भी मारी गईं।।३१-३२।।

फिर दस दिशाओं में भाग रहे बालक और वृद्ध भी मारे गये। उस पाप के दोष से मैं चेष्टा रहित हो जा रहा हूँ।।३३।।

इस प्रकार मेरा योग और मेरी माया भी नष्ट हो गई। आप ही नष्ट ऐश्वर्य वाले मेरे हितैषी हैं। हे माधव कृष्ण! पापयुक्त अवस्था में मुझे क्या करना चाहिए?।।३४।।

हे विष्णो! मुझे तत्त्वतः पाप को विनष्ट करने वाला प्रायश्चित्त बतलायें, जिसे करने मात्र से मैं पाप से मुक्त हो सकूँ।।३५।।

उस समय, मैंने इस प्रकार से चिन्तित रुद्र से कहा कि हे शंकर! कपाल सहित तुम समल में जाओ।।३६।।

मेरे द्वारा इस तरह से कहे जाने को सुनकर भगवान् परमेश्वर शंकर ने पुनः मुझसे पूछा कि हे जगत्पति! मुझको स्पष्ट रूप में बतलायें। हे विष्णो! समल कैसा और कहाँ है? जहाँ मैं जाऊ।।३७।।

तत्पश्चात् हे यशस्विनि! उन शंकर की वाणी को सुनकर उनके पाप की शुद्धिहेतु मैंने इस प्रकार से कहा कि—।।३८।।

श्मशानं समलो रुद्र पूतिको व्रणगन्धिकः। स्वयं तिष्ठन्ति वै तत्र मनुजा विगतस्पृहाः॥३९॥
यत्र गृह्य कपालानि रम तत्रैव शंकर। तत्र वर्षसहस्राणि दिव्यान्येव दृढव्रतः॥४०॥
ततो भक्ष्य मांसानि पापक्षयचिकीर्ष भोः। हिंसमानानि भोज्यानि ये च भोज्यास्तव प्रियाः॥४१॥
एवं सर्वैर्गणैः सार्द्धं वस तत्र सुनिश्चितः। पूर्णे वर्षसहस्रे तु स्थित्वा त्वं समले पुनः।
गच्छाश्रमपदं पश्चाद् गौतमस्य महामुनेः॥४२॥
तत्र ज्ञास्यसि चात्मानं आश्रमे विधिसंस्थिते। प्रसादाद् गौतममुनेर्भविता गतकिल्बिषः॥४३॥
सततं पापसंपन्नं कपालं शिरसि स्थितम्। ऋषिः पातयितुं शक्तस्त्वत्प्रसादान्न संशयः॥४४॥
एवं तस्य वरं दत्त्वा तत्रैवान्तरधीयत। रुद्रोऽपि भ्रमते तत्र श्मशाने पापसंवृते॥४५॥
अतो न रोचते भूमि श्मशानं मे कदाचन। यत्र रुद्रकृतं पापं तिष्ठते चयशस्विनि।
एतत् ते कथितं भद्रे श्मशानस्य जुगुप्सितम्॥४६॥
विनाऽपि कृतसंस्कारो मम कर्मपरायणः। प्रायश्चित्तं प्रवक्ष्यामि येन शुध्यति किल्बिषात्॥४७॥
कृत्वा चतुर्थभक्षं तु दिनानि दश पञ्च च। आकाशशयनं कुर्यादेकवस्त्रः कुशास्तरे॥४८॥
प्रभाते पञ्चगव्यं तु पातव्यं कर्मकारणात्। विमुक्तः सर्वपापेभ्यो मम लोकाय गच्छति॥४९॥

श्मशानप्रवेशापराधप्रायश्चित्तम्।

हे रुद्र! दुर्गन्ध और व्रण सदृश गन्ध से सम्पन्न श्मशान को ही 'समल' समझना चाहिए, जहाँ निस्पृह मनुष्य रहा करते हैं।।३९।।

हे शंकर! कपाल सहित दृढ़व्रत धारण कर वहीं पर हजारों वर्ष तक तुम विहार करो। वहाँ उपलब्ध मांसों का आहार ग्रहण करते हुए अपने पापों को विनष्ट करने की कामना करो। फिर हिंसामय खाद्य पदार्थों और अपने प्रिय आहारों को ग्रहण करो। इस तरह अपने समस्त गणों के सहित तुम निश्चिन्त होकर हजार वर्षों तक उस श्मशान याने समल में निवास करो। फिर महामुनि गौतम के आश्रम स्थल में स्थित हो जाओ।।४०-४२।।

विधि के अनुरूप स्थापित उस आश्रम में तुम अपने आपको जानोगे और फिर गौतम मुनि के कृपा प्रसाद से पाप मुक्त हो जा सकोगे।।४३।।

तुम्हारे ही अनुग्रह से निःसंशय गौतम मुनि नित्य निरन्तर तुम्हारे शिर पर स्थित पापयुक्त कपाल को गिरा सकेंगे। इस प्रकार से उन रुद्र को वर प्रदान कर उसी स्थान पर उसी क्षण अन्तर्हित हो गए। फिर रुद्र भी उस स्थान पर स्थित श्मशान में भ्रमण करने में लीन हो गये।।४४-४५।।

हे यशस्विनि! धरणि! इस प्रकार जहाँ रुद्र द्वारा किया हुआ पाप स्थित है, वह स्थान श्मशान मुझे कभी भी प्रिय नहीं हो सका। हे भद्रे! इस प्रकार मैंने तुमको श्मशान का दोष बतला दिया है।।४६।।

इस प्रकार मेरे कर्म को करने में संलग्न जन संस्कार के विना भी जिस प्रायश्चित्त को करने से पापमुक्त हो जाता है, उसे आगे बतलाने जा रहा हूँ।।४७।।

इस क्रम में पन्द्रह दिनों तक दिन के चौथे भाग में आहार ग्रहण कर एक ही वस्त्र धारण कर कुशासन पर खुले आकाश में शयन करना चाहिए।।४८।।

इस कर्म को लक्ष्य कर प्रातः काल पञ्चगव्य का पान करना चाहिए। इस प्रकार सब पापों से मुक्त होकर मनुष्य मेरे लोक में चला जाता है।।४९।।

।।श्मशान प्रवेश से हुए अपराध का प्रायश्चित्त।।

श्रीवराह उवाच

पिण्याकं भक्षयित्वा तु यो वै मामुपसर्पति। तस्य वै श्रृणु सुश्रोणि ह्यपराधं महौजसम्॥५०॥
उलूको दशवर्षाणि कच्छपस्तु समास्त्रयः। जायते मानवस्तत्र मम कर्मपरायणः॥५१॥
तस्य वक्ष्यामि सुश्रोणि प्रायश्चित्तं महौजसम्। किल्बिषाद् येन मुच्येत संसारान्तं च गच्छति॥५२॥
यावकेन दिनैकं तु तक्रेण सह कारयेत्। एकपिण्डविमिश्रेण उदकेन सह पिबेत्॥५३॥
एवं ततो विधिं कुर्यान् मम कर्मपरायणः। रात्रौ वीरासनं कुर्यादाकाशशयने वसेत्॥५४॥
आकाशशयनं कत्वा प्रभाते चैव साधकः। पञ्चगव्यं ततः पीत्वा शीघ्रं पापात् प्रमुच्यते॥५५॥
य एतेन विधानेन वसुधे कर्म कारयेत्। न व गच्छति संसारं मम लोकाय गच्छति॥५६॥

पिण्याकभक्षणप्रायश्चित्तम्

श्रीवराह उवाच

वराहमांसेन तु यो मम कुर्वीत प्रापणम्। मूर्खास्ते पापकर्माणो मम कर्मपरायणाः॥५७॥
यांस्तु दोषान् प्रपद्यन्ते संसारं च वसुंधरे। तानि ते कथयिष्यामि तच्छृणुष्व वसुंधरे॥५८॥

श्री भगवान् वराह ने कहा कि हे सुश्रोणि! जो जन पिण्याक अर्थात् खली का आहार ग्रहण कर मेरे समीप आता है, उसके महाप्रबल अपराध कों मैं बतला रहा हूँ, उसे सुनो।।५०।।

ऐसा मेरा कर्म परायण जन दस वर्षों तक उल्लू की योनि में और तीन वर्षों तक कछुआ योनि में उत्पन्न होकर रहता है।।५०।।

हे सुश्रोणि! उस पाप के अति प्रबल प्रायश्चित्त को कहता हूँ, पुनः जिसके द्वारा वह व्यक्ति पाप से रहित हो जाता है, और फिर उसके देह का अन्त होता है।।५२।।

इस क्रम में एक दिन तक्र याने मट्ठा के सहित जौ के बने पदार्थ भक्षण करना चाहिए। फिर एक दिन जल के सहित जौ के बने पदार्थ का एक पिण्ड खाना चाहिए। इस प्रकार मेरे कर्म में संलग्न भक्त जन को इस विधि का अनुपालन करना चाहिए। फिर वे जन रात्रि काल में वीरासन में स्थित हो और खुले आकाश में शयन करे।।५३-५४।।

इस प्रकार साधक आकाश शयन कर प्रातःकाल पञ्चगव्य का पान करे। इससे वे शीघ्र ही पाप से रहित हो जाते हैं।।५५।।

हे धरणि! जो जन इस प्रकार के विधान से कर्म को सम्पादित करता है, वे जन संसार के आवागमन रूपी चक्र में न फँस कर मेरे लोक में जाता है।।५६।।

।।पिण्याक भक्षण के पाप से मुक्ति का प्रायश्चित्त।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि मेरे कर्म में संलग्न जो कोई भक्त जन मुझको वराह याने सुअर का मांस अर्पण करते हैं, वे जन निश्चय ही मूर्ख और पापकर्म करने वाले होते हैं।।५७।।

हे वसुन्धरे! ऐसे जन जिन दोषों और सांसारिक दशाओं को प्राप्त किया करते हैं, उनको तुम्हें कहने जा रहा हूँ, हे वसुन्धरे! उसे सुनो।।५८।।

यावद् रोमा वराहस्य मम गात्रेषु संस्थिताः। तावद् वर्षसहस्राणि नरके पतते भुवि॥५९॥
अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व वसुंधरे। वाराहेण तु मांसेन यस्तु कुर्वीत प्रापणम्॥६०॥
यावत् तत्र च सिक्थानि भाजनेषु प्रतिष्ठिताः। तावत्स पतते देवि शौकरीं योनिमास्थितः॥६१॥
अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व वसुंधरे। यां गतिं संप्रपद्यन्ते मम कर्मपरायणाः॥६२॥
अन्धो भूत्वा ततो देवि जन्म चैकं तु तिष्ठति। एवं गत्वा तु संसारं वाराहमांसप्रापणात्॥६३॥
जायते विपुले शुद्धे कुले भागवते शुचिः। विनीतः कृतसस्कारो मम कर्मपरायणः।
द्रव्यवान् गुणवांश्चैव रूपवाञ्छीलवाञ्छुचिः॥६४॥
प्रायश्चित्तं प्रवक्ष्यामि तस्य कायविशोधनम्। किल्बिषाद् येन मुच्येत मम कर्मपरायणः॥६५॥
फलाहारो दिनान् सप्त सप्तमूलाशनस्तथा। दिनानि सप्त तिष्ठेत सप्त वै पायसेन च॥६६॥
तक्रेण सप्त दिवसान् सप्त यावकभोजनः। दध्याहारो दिनाः सप्त दिनेऽहङ्कारवर्जितः॥६७॥
करोति यस्तु वै भूमे मयोक्तं कर्मसंसदि। प्रायश्चित्तं महाभागे मम लोकाय गच्छति॥६८॥

वाराहमांसप्रापणापराधप्रायश्चित्तम्

हे भुवि! मेरे वराह शरीर में जितने रोआँ स्थित हैं, उतने हजारों वर्षों तक वे जन नरक में निवास किया करते हैं।।५९।।

हे वसुन्धरे! जो भक्तजन वराह मासं का मुझे भोग लगाता है, उनके अन्यान्य फलों को भी तुम्हें बतलाने जा रहा हूँ, उसे सुनो।।६०।।

हे देवि! उस समय उस पूजा के बर्तनों में जितने उस मांस के टुकड़े उपलब्ध होते हैं, उतने ही हजार वर्षों तक वे पतित जन सुअर की योनि में रहता है।।६१।।

हे वसुन्धरे! वराह के मांस मेरा पूजन करने वाले जन अन्य भी जो कोई गति प्राप्त किया करते हैं, उन्हें तुमसे कहता हूँ, उसे सुनो।।६२।।

हे देवि! वराह के मांस से पूजन करने से वे जन संसार में अन्धा होकर भ्रमण करते रहते हैं।।६३।।

फिर वे मेरा कर्म करने वाला शुभ, विनीत, संस्कार सम्पन्न, धनवान्, गुणों से सम्पन्न, रूपवान्, शीलवान् और शुद्ध व्यक्ति विशाल और शुद्ध भगवद् भक्त के कुल में जन्म लेता है।।६४।।

अब उसके शरीर को शुद्ध करने वाला प्रायश्चित्त को कहने जा रहा हूँ, जिससे मेरा कर्म करने वाला मनुष्य पापमुक्त हो जाया करते हैं।।६५।।

इस क्रम में उनको सात दिनों तक फलहार, सात दिनों तक मूलाहार और सात दिनों तक दूध से बना पदार्थ ग्रहण करना चाहिए।।६६।।

फिर उन्हें सात दिनों तक मट्ठा, सात दिनों तक जौ से बना पदार्थ का भ्क्षण और सात दिनों तक अहंकार रहित होकर दिन में दही का आहार ग्रहण करना पड़ता है।।६७।।

हे भूमे! इस कर्मशाला में जो जन मेरे कथनानुसार प्रायश्चित्त कर लेता है, हे महाभागे! वे जन मेरे लोक में चला जाता है।।६८।।

।।वराह मांस पूजनापराध का प्रायश्चित्त।।

श्रीवराह उवाच

मद्यं पीत्वा वरारोहे यस्तु मामुपसर्पति। तत्र दोषं प्रवक्ष्यामि शृणु सुन्दरि तत्त्वतः॥६९॥
दशवर्षसहस्राणि दरिद्रो जायते पुनः। मानवश्च भवेत् तत्र मद्भक्तश्च न संशयः॥७०॥
यस्तु भागवतो भूत्वा कामरागेण मोहितः। दीक्षितः पिबते मद्यं प्रायश्चित्तं न विद्यते॥७१॥
अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि तच्छृणोहि वसुंधरे।
अग्निवर्णां सुरां पीत्वा येन मुच्यन्ति किल्बिषात्॥७२॥
य एतेन विधानेन प्रायश्चित्तं समाचरेत्। न स लिप्यति पापेन संसारं न च गच्छति॥७३॥

मद्यपानापराधप्रायश्चित्तम्

श्रीवराह उवाच

कौसुम्भं चैव यः शाकं भक्षयेन् मम पूजकः।
नरके परूयते घोरे दश पञ्च च सूकरः॥७४॥
ततो गच्छेच्छ्वयोनौ च त्रीणि वर्षाणि जम्बुकः। वर्षमेकं ततः शुध्येन्मत्कर्मणि रतः शुचिः।
मम लोकमवाप्नोति शुद्धो भूत्वा वसुंधरे॥७५॥
ततो भूमिर्वचः श्रुत्वा प्रत्युवाच पुनर्हरिम्। कुसुम्भशाकनैवेद्यप्रापणेन च किल्बिषात्।
कथं मुच्येत देवेश प्रायश्चित्तं वद प्रभो॥७६॥

श्री भगवान् वराह ने कहा कि हे सुन्दरि! अब जो जन मद्य सेवन कर मेरे समीप आता है, उसका दोष कहा जा रहा है। हे सुन्दरि! उसे तत्त्वतः सुनो—।।६९।।

वे जन दस हजार वर्षों तक दरिद्र होकर जन्म लेता है। वे जन निःसंशय उस सयम भी मेरा भक्त ही बना रहता है।।७०।।

जो दीक्षित भगवद् भक्त होकर भी कामवासना वश मद्य सेवन करता है, उसका प्रायश्चित्त नहीं है।।७१।।

हे वसुन्धरे! अब मैं तुमको अन्यान्य प्रायश्चित्त बतलाने जा रहा हूँ। वैसे अग्निवर्ण की अर्थात् जलती हुई सुरा का सेवन कर व्यक्ति पाप मुक्त हो जाता है।।७२।।

जो इस विधि से प्रायश्चित्त करता है, वे पाप से लिप्त नहीं होता है और संसार में फिर से जन्म लेने को बाध्य नहीं होता है।।७३।।

।।मद्यपायी के अपराध का प्रायश्चित्त।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि मेरी पूजा करने वाले जो जन कुसुम्भ शाक का भक्षण करता है, वह घोर नरक में वास करता है और पन्द्रह वर्षों तक उसे सुअर की योनि में जन्म लेना पड़ता है।।७४।।

फिर वे तीन वर्षों तक कुत्ते की और एक वर्ष तक शृंगाल की योनि में जीवन जीता है। फिर मेरे कर्म में आसक्त रहने वाले जन पवित्र शुद्ध भक्त हो जाता है। हे वसुन्धरे! वे शुद्ध होकर मेरे लोक में चला जाता है।।७५।।

इस प्रकार के भगवान् वराह की वाणी सुनकर भूमि ने फिर श्री हरि से कहा कि हे प्रभो! हे देवेश!! आखिर यह तो बतलायें कि कुसुम्भ शाक का भोग लगाने पर मनुष्य कैसे अपने पाप से रहित हो जाते हैं।।७६।।

श्रीवराह उवाच

यो मे कुसुम्भशाकेन प्रापणं कुरुते नरः। दशवर्षसहस्राणि नरके परिपच्यते।
प्रायश्चित्तं प्रवक्ष्यामि तत्र मे वदतः शृणु॥७७॥
भक्षणे तु कृते कुर्याच्चान्द्रायणमतन्द्रितः। प्रापणे तु कृते कुर्याद् द्वादशाहं पयोव्रतम्॥७८॥
य एतेन विधानेन प्रायश्चित्तं समाचरेत्। न स लिप्येत पापेन मम लोकं च गच्छति॥७९॥

कुसुम्भशाकभक्षणप्रापणकयोः प्रायश्चित्तम्

श्रीवराह उवाच

यः पारक्येन वस्त्रेण नापधौतेन माधवि। प्रायशितत्ती पुमान् मूर्खो मम कर्मपरायणः॥८०॥
करोति मम कर्माणि स्पृशते मां तमः स्थितः।
मृगो जायेत सुश्रोणि वर्षाणि त्रीणि सप्त च॥८१॥
हीनपादेन जायेत चैकजन्म वसुंधरे। मूर्खश्च क्रोधनश्चैव जायते तस्य कर्मणः॥८२॥
तस्य वक्ष्यामि सुश्रोणि प्रायश्चिरुं महौजसम्। येन गच्छति संसारं मम भक्त्या व्यवस्थितः॥८३॥
अष्टभक्षं ततः कृत्वा मम कर्मपरायणः। माघस्यैव तु मासस्य शुक्लपक्षस्य द्वादशीम्॥८४॥
तिष्ठेज्जलाशये तत्र क्षान्तो दान्तो जितेन्द्रियः। अनन्यमानसो भूत्वा मम चिन्तापरायणः॥८५॥

श्री भगवान् वराह ने कहा कि जो जन मुझे कुसुम्भ शाक भोग अर्पण किया करता है, वे जन दास हजार वर्षों तक नरक में दुःख भोगा करते हैं। अब मैं उसका प्रायश्चित्त बतलाने जा रहा हूँ, इस विषय में मेरा कहा हुआ, सुनो।।७७।।

इस प्रकार इस क्रम में कुसुम्भ शाक खाने पर आलस्य त्याग कर चान्द्रायण व्रत करना चाहिए। और यदि मुझे नैवेद्य रूप में कुसुम्भ शाक अर्पित किया है, तो वारह दिन पर्यन्त 'पयोव्रत' करना चाहिए।।७८।।

जो जन इस प्रकार से प्रायश्चित करते हैं, वे पाप से मुक्त हो जाता है और मेरे लोक में चले जाते हैं।।७९।।

।।कुसुम्भ शाकाहार और नैवेद्य अर्पण का प्रायश्चित्त।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि हे माधवि! जो मूर्खजन विना धुले दूसरो का वस्त्र पहन कर मेरा पूजा आदि कर्म करने में प्रवृत्त होता है, वे जन प्रायश्चित्त के भागीदार हो जाते हैं।।८०।।

हे सुश्रोणि जो अन्धकार में रहकर मुझे स्पर्श करता है, और मेरा पूजा आदि कर्म भी करता है, वे जन इक्कीस वर्षों तक मृगयोनि में रहता है।।८१।।

हे वसुन्धरे! फिर वे उस कर्म के अधीन होकर एक जन्म में एक पैर से रहित मूर्ख और क्रोधी होकर उत्पन्न होता है।।८२।।

हे सुन्दरि! मैं ऐसे कारणों का अति प्रबल प्रायश्चित्त बतला रहा हूँ, जिससे वे मेरी भक्ति से सम्पन्न होकर संसार में उत्पन्न होता है।।८३।।

इसके लिए मेरा कर्म परायण जन को आठ ग्रास भक्षण कर माघ मास के शुक्लपक्ष की द्वादशी को एकाग्र मन से मेरा चिन्तन करते हुए शम और दम से युक्त तथा जितेन्द्रिय होकर जलाशय में निवास करना चाहिए।।८४-८५।।

प्रभातायां तु शर्वर्यामुदिते तु दिवाकरे। पञ्चगव्यं ततः पीत्वा मम कर्माणि कारयेत्।।८६।।
य एतेन विधानेन प्रायश्चित्तं समाचरेत्। सर्वपापविनिर्मुक्तो मम लोकाय गच्छति।।८७।।

परकीयवस्त्रापराधप्रायश्चित्तम्

श्रीवराह उवाच

अदत्त्वा यो नवान्नानि मम कर्मपरायणः। भुञ्जेद् भूमि नवान्नानि परैर्दत्तानि केनचित्।।८८।।
नाहं लोभेन चेच्छञ्मि न च रागेण सुन्दरि। अवश्यमेव कर्तव्यं मम कर्मपरायणैः।।८९।।
ततो भागवतो भूत्वा नवान्नं यो न कारयेत्। पितरस्तस्य नाश्नन्ति वर्षाणि दश पञ्च च।।९०।।
अदत्त्वा यस्तु भुञ्जीत नवान्नानि कदाचन। न तस्य धर्मो विद्येत एवमेतन्न संशयः।।९१।।
अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि येन तत्र प्रमुच्यते। प्रायश्चित्तं महाभागे मम भक्तसुखावहम्।।९२।।
उपवासं त्रिरात्रं तु तेन चैव तु कारयेत्। आकाशशयनं कृत्वा चतुर्थेऽहनि शुद्ध्यति।।९३।।
एवं तत्र विधिं कृत्वा उदिते च दिवाकरे। पञ्चगव्यं ततः पीत्वा शीघ्रं मुच्येत किल्बिषात्।।९४।।
य एतेन विधानेन प्रायश्चित्तं समाचरेत्। सर्वसङ्गं परित्यज्य मम लोकाय गच्छति।।९५।।

नवान्नभक्षणापराधप्रायश्चित्तम्

फिर रात्रि के बाद प्रातःकाल सूर्योदय के समय पञ्चगव्य पान करने के पश्चात् मेरा पूजा आदि कर्मों को करने चाहिए।।८६।।

जो जन इस विधि से प्रायश्चित्त करता है, वे समस्त पापों से रहित होकर मेरे लोक में चला जाता है।।८७।।

।।परकीय वस्त्र धारण आदि से हुए अपराध का प्रायश्चित्त।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि मेरा जो भक्त किन्हीं अन्यों के द्वारा दिये नवीन अन्न को मुझे विना अर्पण किये भक्षण करता है, वह अपराधी होता है।।८८।।

हे सुन्दरि! मैं लोभ अथवा राग के कारण कोई पदार्थ नहीं चाहा करता हूँ। मेरे भक्त का यह आवश्यक कर्त्तव्य है।।८९।।

अतएव जो भगवद् भक्त होकर भी नवीन अन्न मुझे अर्पण नहीं करता है, उसके पितृगण पन्ह वर्षों तक भूखे रहा करते हैं।।९०।।

जो मुझे अर्पण किये विना कभी भी नवीन अन्न भक्षण करता है, उसका धर्म नहीं रह जाता है। इसमें संशय नहीं करना चाहिए।।९१।।

हे महाभागे! अब मैं तुमको अपने भक्तों को सुख प्रदान करने वाला प्रायश्चित्त कहने जा रहा हूँ, जिसके द्वारा मनुष्य उस पाप से रहित हो जाता है।।९२।।

तदनुसार उनके द्वारा तीन रात्रियों तक उपवस करना चाहिए। फिर चौथे दिन खुले आकाश में शयन करने के पश्चात् वे शुद्ध होते हैं।।९३।।

उपरोक्त विधि के अनुपालन कर सूर्योदय के समय पञ्चगव्य का पान कर वे जन शीघ्र पाप से रहित हो जाया करते हैं।।९४।।

जो जन इस विधि से प्रायश्चित्त का अनुसरण करता है, वे सभी सङ्गों का परित्याग कर मेरे लोक में जाता है।।९५।।

।।नवान्न भक्षणापराध का प्रायश्चित्त।।

श्रीवराह उवाच

अदत्त्वा गन्धमाल्यानि यो मे धूपं प्रयच्छति। कुणपो जायते भूमि यातुधानो न संशयः॥९६॥
वर्षाणि चैकविंशानि अपस्कारनिवासकः। तित्यत्र महाभागे एवमेतन्न संशयः॥९७॥
अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व वसुंधरे। प्रायश्चित्तं प्रवक्ष्यामि येन मुच्येत किल्बिषात्॥९८॥
यस्य कस्यचिन्मासस्य शुक्लपक्षस्य द्वादशीम्। उपोष्य चाष्टभक्तं तु दशैकादशमेव च॥९९॥
प्रभातायां तु शर्वर्यामुदिते च दिवाकरे। पञ्चगव्यं ततः पीत्वा शीघ्रं मुच्यति किल्बिषात्॥१००॥
य एतेन विधानेन प्रायश्चित्तं समाचरेत्। तानि तानि तरन्त्येवं सर्व एव पितामहाः॥१०१॥

गन्धमाल्यमदत्त्वा धूपदानापराधप्रायश्चित्तम्

श्रीवराह उवाच

वहन्नुपानहौ पद्भ्यां यस्तु मामुपचक्रमेत्। चर्मकारस्तु जायेत वर्षाणां तु त्रयोदश॥१०२॥
तत्र जन्मपरिभ्रष्टः शूकरो जायते पुनः। शूकराच्च परिभ्रष्टः श्वानस्तत्रैव जायते॥१०३॥
ततः श्वानात् परिभ्रष्टो मानुषश्चैव जायते। मद्भक्तश्च विनीतश्च अपराधविवर्जितः।
मुक्त्वा तु सर्वसंसारं मम लोकाय गच्छति॥१०४॥

श्री भगवान् वराह ने कहा कि हे भूमि! जो जन गन्ध और माला अर्पित किये विना मुझे धूप देता है, वे निःसंशय मरने पर राक्षस ही होता है। और वे इक्कीस वर्षों तक अपवित्र स्थान में निवास करता है। हे महाभागे! इसमें संशय नहीं करना चाहिए।।९६-९७।।

हे वसुन्धरे! मैं तुमको अन्य प्रायश्चित्त बतला रहा हूँ, जिसके करने पर मनुष्य पाप से रहित हो जाता है, तुम उसे सुनो।।९८।।

जिस-किसी माह के शुक्लपक्ष की द्वादशी को उपवास करने पर दस और ग्यारह दिन पर्यन्त आठ ग्रास खाना चाहिए।।९९।।

फिर रात्रि के पश्चात् प्रातः सूर्योदय के समय पञ्चगव्य पान करने पर वे शीघ्र पाप से रहित हो जाता है।।१००।।

जो कोई जन इस विधि के अनुरूप प्रायश्चित्त करता है, उसके सभी पितृगण और पितमहादि भी तर जाया करते हैं।।१०१।।

।।गन्ध और माला विना अर्पित धूप से हुए अपराध का प्रायश्चित्त।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि जो जन अपने पैरों में जूता पहने ही मेरे समीप आता है, वे जन तेरह वर्ष पर्यन्त चमार योनि में जन्म लेता है।।१०२।।

उस जन्म की समाप्ति पर वे सुअर योनि प्राप्त करते हैं। फिर सुअर योनि से निकलने पर वे वहीं कुकुर योनि में उत्पन्न होते हैं।।१०३।।

इस प्रकार अपराध मुक्त होकर मेरा भक्त विनम्र होकर सब संसार से मुक्त होकर मेरे लोक में चले जाते हैं।।१०४।।

य एतेनविधानेन वसुधे कर्म कारयेत्। न स लिप्यति पापेन एवमेतन्न संशयः॥१०५॥

उपानहापराधप्रायश्चित्तम्

श्रीवराह उवाच

भेरीशब्दमकृत्वा तु यस्तु मां प्रतिबोधयेत्। बधिरो जायते भूमि एकजन्म न संशयः॥१०६॥
तस्य वक्ष्यामि सुश्रोणि प्रायश्चित्तं मम प्रियम्। किल्बिषाद् येन मुच्येत भैरीताडनमोहितः॥१०७॥
यस्य कस्यचिन्मासस्य शुक्लपक्षे तु द्वादशीम्।
आकाशशयनं कृत्वा शीघ्रं मुच्येत किल्बिषात्॥१०८॥
य एतेन विधानेन वसुधे कर्म कारयेत्। अपराधं न गच्छेत मम लोकाय गच्छति॥१०९॥

भेरीताडनापराधप्रायश्चित्तम्

श्रीवराह उवाच

अन्नं भुक्त्वा बहुतरमजीर्णेन परिप्लुतः। उद्गारेण समायुक्त अस्नात उपसर्पति॥११०॥
एकजन्मा तथा श्वाऽसौ वानरश्चैव जायते। शृगाल एकजन्मा वै छागश्चैवैकजन्मनि।
एकजन्मा भवेदन्धो मूषको जायते पुनः॥१११॥
तारितो ह्येष संसारे जायते विपुले कुले। शुद्धो भागवतः श्रेष्ठ अपराधविवर्जितः॥११२॥

हे वसुधे! जो जन इस विधि से कर्म सम्पन्न करता है, वे जन पाप से युक्त नहीं रह जाते। इस प्रकार होने में कोई संशय नहीं करना चाहिए।।१०५।।

।।जूता पन अपराध करने का प्रायश्चित्त।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि हे भूमि! जो जन मेरी वाद्य के शब्द विना मुझे जगाया करते हैं, वे निःसंशय एक जन्म में बहरा हुआ करता है।।१०६।।

हे सुश्रोणि! अब मैं उसयके लिए अपना प्रिय प्रायश्चित्त कहने जा रहा हूँ, जिसके द्वारा भेरी के ताडन को प्रसङ्ग में मोहित होने वाले जन पाप से मुक्त हो जाया करते हैं।१०७।।

जिस-किसी माह के शुक्लपक्षीय द्वादशी के दिन खुले आकाश में शयन करने पर शीघ्र पाप से मुक्त हो जाया करते हैं।।१०८।।

हे वसुधे! जो जन इस विधि से कर्म सम्पन्न करते हैं, उन्हें अपराध कभी लिप्त नहीं कर पाता है और वे मैं लोक में चले जाते हैं।।१०९।।

।।भेरी ताडनाभाव के अपराध का प्रायश्चित्त।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि जो जन अत्यधिक अन्न खाकर और अजीर्ण के साथ उद्गार युक्त होकर विना स्नान किये मेरे पास आते हैं, वे जन एक जन्म में कुत्ता और फिर अन्य जन्म में वानर होते हैं। फिर वे एक जन्म में शृंगाल, फिर अन्य जन्म में बकरा होते हैं। वे फिर, एक जन्म में अन्धा और अन्य जन्म में चूहा की योनि में उत्पन्न होते हैं।।११०-१११।।

इस प्रकार से संसार में अनेक योनियों से होते हुए वे एक विशाल कुल में उत्पन्न होकर अपराध रहित शुद्ध श्रेष्ठ भगवद् भक्त होते हैं।।११२।।

प्रायश्चित्तं प्रवक्ष्यामि मम भक्तसुखावहम्। किल्बिषाद् येन मुच्येत मम कर्मपरायणः॥११३॥
यावकेन दिनत्रीणि मूलकेन दिनत्रयम्। फलाहारो दिनत्रीणि अक्षारलवणं त्रयः॥११४॥
पायसेन दिनत्रीणि साक्तवेन दिनत्रयम्। वायुभक्षो दिनत्रीणि आकाशशयनस्त्रयः॥११५॥
प्रभातायां तु शर्वर्यां दन्तधावनबोधितः। पञ्चगव्यं पिबेच्चैव शरीरपारिशोधनम्॥११६॥
य एतेन विधानेन प्रायश्चित्तं समाचरेत्। न तस्य लभते पापं मम लोकाय गच्छति॥११७॥
आख्यानानां महाख्यानं तपसां च परं तपः। अत्राहं कीर्तयिष्यामि ब्राह्मणेभ्यो महेश्वरि॥११८॥
एष धर्मश्च कीर्तिश्च आचाराणां महौजसाम्। गुणानां परमं श्रेष्ठं द्युतीनां च महाद्युतिः॥११९॥
य एवं पठते नित्यं कल्यमुत्थाय मानवः। स पितॄंस्तारयेज्जन्तुर्दश पूर्वान् दशापरान्॥१२०॥
आरोग्याणां महारोग्यं मङ्गलानां तु मङ्गलम्। रत्नानां परमं रत्नं सर्वपापप्रणाशनम्॥१२१॥
यस्तु भागवतो नित्यं पठते च दृढव्रतः। कृत्वा सर्वापराधानि न स पापेन लिप्यते॥१२२॥
एष जाप्यः प्रमाणश्च संध्योपासनमेव च। काल्यमुत्थाय पठते मम लोकाय गच्छति॥१२३॥

अब मैं अपने भक्तों को सुख प्रदान करने वाला प्रायश्चित्त कहने जा रहा हूँ, जिससे मेरे कर्म में लगा मनुष्य पाप से मक्त हो जाते हैं।।१३।।

इस क्रम में तीन दिन तक यावक याने जौ-अन्न का, तीन दिन कन्दमूल का, तीन दिन फल का और तीन दिन तक क्षार रहित लवण से युक्त आहार करना चाहिए। फिर तीन दिनों तक खीर का, तीन दिन तक सत्तू और तीन दिन वायु का सेवन करते हुए फिर तीन दिन तक खुले आकाश में शयन करना चाहिए।।११४-११५॥

इस तरह रात्रि के बाद प्रातः समय दन्तधावन करने पर पञ्चगव्य का पान करना चाहिए। इस प्रकार शरीर को शुद्ध करना चाहिए।।११६।।

जो जन इस विधि से प्रायश्चित्त करता है, उसे पाप स्पर्श भी नहीं करता। फिर वे जन मेरे लोक में चले जाते हैं।।११७।।

हे महेश्वरि! इस प्रकार मैंने यहाँ आख्यानों में महान् आख्यान और तपों में श्रेष्ठ तप का उल्लेख ब्राह्मणों के लिए किया है।।११८।।

यह धर्म, कीर्त्ति, आचारों में अति प्रबल आचार, गुणों में अत्यन्त श्रेष्ठ गुण और तेजस्वियों में महान् तेजस्वी है।।११९।।

जो जन प्रातः समय जागकर इसका नित्य पाठ किया करता है, वह अपने पूर्व में दस पीढ़ियों को और दस आगे के पीढ़ियों को मुक्त कर देता है।।१२०।।

यह आरोग्यों में अत्यन्त आरोग्य, मंगलों में परम मंगल, रत्नों में श्रेष्ठ रत्न और सभी पापों को विनष्ट करने वाला है।।१२१।।

जो कोई भगवद् भक्त दृढ़व्रत धारण कर नित्य इसको पढ़ने वाला होता है, ऐसे जन समस्त पाप करने पर भी पाप से युक्त नहीं होता है।।१२२।।

यह आख्यान जप करने योग्य, प्रमाण स्वरूप, सन्ध्योपासन आदि है। जो प्रातःकाल जागते ही इसका पाठ करता है, वह मेरे लोक में जाता है।।१२३।।

न पठेन्मूर्खमध्ये तु कुशिष्याणां तथैव च। दद्याद् भागवते श्रेष्ठे मम कर्मपरायणः॥१२४॥
एतत् ते कथितं देवि आचारस्य विनिश्चयम्।
यत् त्वया पृच्छितं पूर्वं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि॥१२५॥
।इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥१३६॥

—※※※—

सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

अथ चक्रादितीर्थ कथनम्

भूमिरुवाच

श्रुत्वा तु विपुलं ह्येतदपराधविशोधनम्। कर्म भागवतं श्रेष्ठं सर्वभागवतप्रियम्॥१॥
अहो कर्म महाश्रेष्ठं भगवंस्तव भाषितम्। मम चैव प्रियार्थाय तव भक्तसुखावहम्॥२॥
श्रुतं ह्येव मया विष्णो सर्वधर्मार्थसाधकम्। प्रमुक्ता सर्वपापेभ्यो जाताऽस्मि शशिनिर्मला॥३॥

इसक पाठ मूर्खों के बीच और कुशिष्यों के सामने भी नहीं करना चाहिए। इस प्रकार मेरे कर्म में संलग्न रहने वाले, श्रेष्ठ भगवद् भक्त को इसका उपदेश किया जाना श्रेष्ठ है।।१२४।।

हे देवि! तुमको आचार के प्रसङ्ग में यह विशेष निश्चित तत्त्व को बतला दिया गया है, जिसे तुमने पहले पूछा था। तुम्हें और क्या सुनना है, पूछो।।१२५।।

॥इस प्रकार महापुराणों में श्रेष्ठ श्रीविष्णुवामपादस्वरूप कृष्णद्वैपायन भगवान् व्यासकृत अग्निमहापुराणान्तर्गत विष्णुपूजा में अन्यान्य अपराध नामक एक सौ नौवाँ अध्याय डॉ. सुरकान्त झा द्वारा सुसम्पन्न हुआ॥१०९॥

अध्याय–१३७

चक्रादि नाना तीर्थ, शौकरक महात्म्य में सोम की तपस्या, विष्णु का वरदान, गीध श्रृंगाली उपाख्यान और आदित्य को वरदान

भूमि ने कहा कि अब तक मङ्कने सभी भगवद् भक्तों को प्रिय और अपराध से शुद्ध कर देने वाले भागवद्विषयक विस्तृत श्रेष्ठतर कर्मों को सुना।।१।।

हे भगवन्! मेरा लक्ष्य प्राप्ति हेतु आपके द्वारा कहा गया कर्म अत्यन्त ही श्रेष्ठ और भक्तों को सुख प्रदान करने वाला है।।२।।

हे विष्णो! इस प्रकार मेरे द्वारा सब धर्मों के प्रसङ्ग में उनके प्रयोजनों और लक्ष्यों को पूर्ण करने वाला कर्म के विषय में सुना गया। अब मैं सभी पापों से रहित होकर चन्द्रसदृश अमल हो गई हूँ।।३।

एकं मे परमं गुह्यं सर्वधर्मसुखावहम्। तव भक्तसुखार्थाय तद् भवान् वक्तुमर्हति॥४॥
किमुच्यते व्रतं चैव ततः कुब्जाम्रकं शुभम्। कतरं वापि तच्छ्रेष्ठं क्षेत्रं भक्तसुखावहम्॥५॥

श्रीवराह उवाच

शृणु मे परमं गुह्यं यत् त्वया परिपृच्छितम्। मम क्षेत्रं प्रियं चैव शुद्धं भागवतप्रियम्॥६॥
परं कोकामुखं स्थानं तथा कुब्जाम्रकं परम्। परं सौकरकं स्थानं सर्वसंसारमोक्षणम्॥७॥
यत्र स्थाने मया देवि उद्धृताऽसि रसातलात्। यत्र भागीरथी गङ्गा मम सौकरके स्थिता॥८॥

धरोवाच

कानि लोकानि लोकेश यान्ति सौकरके मृताः। किं च पुण्यं भवेत् तत्र स्नातस्य पिबतस्तथा॥९॥
कति तीर्थानि पद्माक्ष क्षेत्रे सौकरके तव। धर्मसंस्थापनार्थाय तद् विष्णो वक्तुमर्हसि॥१०॥

श्रीवराह उवाच

शृणु तत्त्वेन मे देवि यन्मां त्वं परिपृच्छसि। कां गतिं ते प्रपद्यन्ते नराः सौकरके मृताः॥११॥
येषां स्नातस्य वै पुण्यं गतस्यैव मृतस्य च। यत्र यानि च तीर्थानि मम संस्थानसंस्थिताः॥१२॥

फिर भी मेरा सभी धर्म औरसुख से पूर्ण एक परम गुह्य जिज्ञासा है। आपको अपने भक्तों के सुख हेतु उसका उल्लेखनीय समाधान करना चाहिए।।४।।

अतः आपके भक्तों को सुख प्रदान करने वाला व्रत कौन-सा है। और कल्याणमय कुब्जाम्रक नाम का वह श्रेष्ठ क्षेत्र कौन-सा है?।।५।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि तुमने जो कुछ पूछा है, उन अत्यन्त गुह्य और भगवद् भक्तों को प्रिय मेरे परम गुह्य तथा मेरे शुद्ध प्रिय क्षेत्र को सुनो।।६।।

इस क्रम में परम कोकामुख और कुब्जाम्रक नाम के स्थानों तथा श्रेष्ठतम सौकरक नाम का स्थान सम्पूर्ण संसार से मुक्ति प्रदान करने वाला क्षेत्र है।।७।।

हे देवि! जिस समय मेरे द्वारा जहाँ पर तुमको रसातल से निकाला गया था और जहाँ पर भागीरथी गङ्गा स्थित हैं, वह भी मेरा सौकरक नाम का स्थान है।।८।।

धरा ने पूछा कि हे लोकेश! सौकरक तीर्थ में मरने वाले मनुष्य किन-किन लोकों में जाया करते हैं। वहाँ स्नान करने वाले और वहाँ का जल पीने वाले को कौन-सा पुण्य फल प्राप्त हुआ करता है।।९।।

हे पद्मनेत्र! आपसे सम्बन्धित उस सौकरक क्षेत्र में कितने तीर्थ स्थित हैं? हे विष्णो! धर्म स्थापना हेतु आपको उसका भी उल्लेख करना चाहिए।।१०।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि हे देवि! तुम मुझसे जो यह पूछती हो कि सौकरक तीर्थ में मरने वालों को कौन गति प्राप्त होती है, उसे तत्त्वतः मुझसे सुनो।।११।।

वहाँ उस तीर्थ में जाने वो, स्नान करने वाले और मरने वाले जनों को जैसा पुण्य प्राप्त होता है और मेरे उस स्थान पर जो तीर्थ हैं तथा हे महाभागे सुन्दरि! सौकरक नाम के मेरे उस क्षेत्र में जाकर मनुष्य जो कुछ पुण्य पाते हैं, उसको मुझसे सुनो।।१२।।

श्रृणु पुण्यं महाभागे मम क्षेत्रेषु सुन्दरि। प्राप्नुवन्ति महाभागे गत्वा सौकरकं प्रति॥१३॥
दश पूर्वापरांस्त्रीणि अपरान् सप्त पञ्च च। सुगमिष्यन्ति ये तत्र तानि तेष्वपि जन्तवः॥१४॥
गमनादेव सुश्रोणि मुखस्य मम दर्शनात्। सप्त जन्मान्तरे भद्रे जायते विपुले कुले॥१५॥
धनधान्यसमृद्धेषु रूपवान् गुणवान् शुचिः। मद्भक्तश्चैव जायेत मम कर्मपरायणः॥१६॥
एवं वै मानुषो भूत्वा अपराधविवर्जितः। गमनं तस्य क्षेत्रस्य मरणं तत्र कारयेत्॥१७॥
ये मृतास्तत्र सुश्रोणि क्षेत्रे शौकरके मम। धन्वी तूणी गदी खड्गी दीप्तियुक्तश्चतुर्भुजः॥१८॥
अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व वसुंधरे। तीर्थेषु तत्र स्नातश्च प्राप्नोति परमां गतिम्॥१९॥
चक्रतीर्थं महाभागे यत्र चक्रं प्रतिष्ठितम्। श्रृणु पुण्यं तस्य भद्रे प्राप्नुवन्ति नराः स च॥२०॥
चक्रतीर्थे नरो गत्वा तदर्थाय शुभः शुचिः। स्नानं कुर्याद् यथान्यायं प्राप्तो माधवद्वादशीम्॥२१॥
दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च। धनधान्यसमृद्धोऽपि जायते विपुले कुले॥२२॥
मद्भक्तश्चात्र जायेत मम कर्मपरायणः। अपराधं वर्जयति दीक्षितश्चैव जायते॥२३॥
भूत्वा वै मानुषस्तत्र तीर्णः संसारसागरम्। गमनं कुरुते तत्र मरणं तत्र कारयेत्॥२४॥

इस प्रकार वहाँ पर जो जीव पहुँचते हैं, उनके पूर्व के दस पीढ़ी और उनके बाद के आने वाले पन्द्रह पीढियों के पुरुषों की सद्गति होती है।।१४।।

हे सुश्रोणि! उन तीर्थ में जाने और वहाँ मेरे मुख का दर्शन करने मात्र से ही मनुष्य अपने आनेवाले सात जन्मों में विशाल शुभ कुल में जन्म लेता है।।१५।।

ऐसे जन धन धान्य से युक्त, सुन्दर रूपवान्, गुणवान्, पवित्र, मेरा भक्त और मेरा कर्मपरायण हुआ करता है। इस तरह मनुष्य शरीर प्राप्त कर वह अपराध रहित भी हुआ करता है। अतः उस क्षेत्र में जाना, वहाँ मरना श्रेयस्कर है।।१६-१७।।

हे सुश्रोणि! मेरे उस सौकरक नाम के क्षेत्र में जो जन मरते हैं, वे धनुष, तरकस, गदा, खड्ग, तेज आदि से सुसम्पन्न चतुर्भुज स्वरूप वाले सम्पूर्ण संसार को छोड़कर श्वेतद्वीप को जाते हैं।।१८।।

हे वसुन्धरे! तुमको मैं अन्यान्य फलों को भी बतला रहा हूँ, उसे सुनो वहाँ के तीर्थों में स्नान करने वाले परमगति को प्राप्त कर लिया करते हैं।।१९।।

हे महाभागे! वहीं पर एक 'चक्र' नाम का तीर्थ भी है, जहाँ 'चक्र' प्रतिष्ठित है। हे कल्याणिनि! वहाँ पर पहुचने वाले जन को जो पुण्य फल का लाभ होता है, उसे सुनो।।२०।।

उन तीर्थ के लक्ष्य प्राप्ति हेतु शुभ संकल्प युक्त और पवित्र होकर चक्र तीर्थ में वैशाख मास के द्वादशी तिथि के दिन पहुँच कर विधि के अनुरूप स्नान करना चाहिए।।२१।।

ऐसे जन दस हजार और दस सौ कुल ग्यारह हजार वर्षों तक धन और धान्य से युक्त रहा करता है। फिर विशाल कुल में उसका जन्म हुआ करता है।।२२।।

वे जन, मेरा भक्त होते हैं तथा मेरे कर्म में संलग्न रहते हैं। फिर वे अपराध मुक्त होकर दीक्षा भी प्राप्त करता है।।२३।।

वे जीव मनुष्य होकर उन तीर्थों में जाते हैं। फिर वहीं मरने पर वे इस संसार समुद्र से पार उतर जाते हैं।।२४।।

धन्वी चक्री गदी खड्गी जायते च चतुर्भुजः। नरो भूत्वा महाभागे विमुक्तः सर्वकिल्बिषात्॥२५॥
चक्रतीर्थस्य पुण्येन श्वेतद्वीपं च स गच्छति। एतत् पुण्यं महाभागे मम शौकरकं प्रति।
चक्रतीर्थे विशालाक्षि मरणे कृतकृत्यता॥२६॥
अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व वसुंधरे। रूपतीर्थमिति ख्यातं क्षेत्रे शौकरके मम॥२७॥
तत्र पुण्यं प्रवक्ष्यामि स्नातस्य च मृतस्य च। यां गतिं वै प्रपद्येत म कर्मपरायणः॥२८॥
अभक्ष्यभक्षणं कृत्वा स्नानं कृत्वा दृढव्रतः। कौमुदस्य च मासस्य शुक्लपक्षस्य द्वादशीम्॥२९॥
तारिताः पितरस्तेन तथैव च पितामहाः। दश पञ्च च सप्तैव व्यतीता ये उपस्थिताः॥३०॥
यावन्ति जलबिन्दूनि तस्य गात्रे प्रतिष्ठिताः। तावद् वर्षसहस्राणि मम भक्तश्च जायते॥३१॥
रूपवान् गुणवांश्चैव जायते द्रविणान्वितः। सुरूपां लभते भार्यां मद्भक्तश्च पतिव्रताम्॥३२॥
दाता चैव तु जायेत क्रोधरागविवर्जितः। संविभागी सुशीलश्च मद्भक्तेषु च वत्सलः॥३३॥
प्रतीर्त्वा सर्वसंसारं मम कर्मपरायणः। कुरुते मरणं तत्र मत्प्रसादान्न संशयः॥३४॥
मृतस्तत्र विशालाक्षि रूपतीर्थे महौजसि। दीप्तिांश्चैव जायेत द्युतिमांश्च चतुर्भुजः।
श्वेतद्वीपं समासाद्य वायुभक्षश्च संस्थितः॥३५॥

हे महाभागे! वे मनुष्य होकर समस्त पापों से रहित होकर धनुष, चक्र, गदा, खड्ग आदि धारण करने वाले चतुर्भुज हो जाया करते हैं।।२५।।

इस प्रकार चक्रतीर्थके पुण्य लाभ होनेसे वे श्वेतद्वीप में जाते हैं। हे महाभागे! मेरे सौकरक तीर्थ का यहपुण्य हुआ करता है। हे विशालाक्षि! इस चक्रतीर्थ में मरने स मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है।।२६।।

हे वसुन्धरे! अब तुमको मैं अन्यान्य रहस्य को भी बतला रहा हूँ, उसे सुनो—। मेरे इस सोकरक तीर्थ में ही एक 'रूपतीर्थ' भी है।।२७।।

उस जगह स्नान करने और मरने वाले जन, जिनको मिलने वाले पुण्य को बतलाने जा रहा हूँ। मेरा कर्मपरायण भक्तजन, ज़ो गति पाते हैं, उसे कहता हूँ।।२८।।

अभक्ष्य-भक्षण करने पर भी दृढ़व्रत धारण कर कौमुद याने कार्त्तिक मास की शुक्लपक्षीय द्वादशी को स्नान करने वाला अपने पन्द्रह पूर्व पीढ़ियों और सात उपस्थित पितरों और पितामहादिकों को भी तार देने वाला होता है।।२९-३०।।

इस समय उसके शरीर पर जल की जितनी बूँदें रहती हैं, वे उतने हजारों वर्षों तक मेरे भक्त के रूप में रहा करते हैं, वे जन रूप, गुण, धन आदि से सम्पन्न होते हैं, तथा मेरा वे भक्तजन सुन्दर पतिव्रता पत्नि प्राप्त करने वाला होता है।।३१-३२।।

ऐसा जन क्रोध और राग से रहित समान विभाग करने वाला, सुशील, दाता और भक्तों से स्नेह करने वाल होते हैं।।३३।।

इस प्रकार मेरा कर्मपरायण जन मेरा अनुग्रह प्राप्त कर निःसंशय ही वहाँ मर जाते हैं और समस्त संसार से मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं।।३४।।

हे विशालाक्षि! ऐसे महान् ओजस्वी रूप तीर्थ में मरने वाला जन श्वेतद्वीप में पहुँचकर तेज और कान्ति से सम्पन्न होकर चतुर्भुज और वायु का आहार करनेवाला होते हैं।।३५।।

तस्य चिह्नं प्रक्ष्यामि रूपतीर्थस्य सुन्दरि। येन विज्ञायते भूमि मम कर्मपरायणः॥३६॥
चिह्नं कुरवकस्तत्र दक्षिणे पार्श्वसंस्थितः। नातिस्थूलो न चात्युच्चैर्मध्यमस्य च पादपः॥३७॥
पुषपितो माधवे मासि कामिन्याकृतिशोषणः। पुष्पितः स तु सुश्रोणि कौमुदे द्वादशीदिने॥३८॥
एतच्चिह्नं महाभागे तत्र शौकरके मम। अटमानेन मर्त्येन विज्ञेयं तु न संशयः॥३९॥
पुनरन्यं प्रवक्ष्यामि तस्मिन् शौकरके मम। योगतीर्थमिति ख्यातं दुर्विज्ञेयं सुरैरपि॥४०॥
योगतीर्थे च ये स्नाता मम कर्मपरायणाः। यां गतिं ते प्रपद्यन्ते मम कर्मसुकौशलाः॥४१॥
दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च। मद्भक्ताश्चैव जायन्ते अपराधविवर्जिताः।
क्रोधरागविनिर्मुक्ता ह्यहिंसाकृतनिश्चयाः॥४२॥
एतत् पुण्यं महाभागे योगतीर्थे महात्मनि। अहोरात्रोषितस्तत्र यः करोति यशस्विनि।
सर्वसंसारनिर्मुक्तो मम कर्मपराणः॥४३॥
स तं मृगयते तीर्थं योगेन परिसंस्थितः। स च तं लभते तीर्थं मत्प्रसादान्न संशयः।
पुण्यं शौकरके भद्रे तत्र स्नानं प्रयच्छति॥४४॥
तत्र प्राणान् परित्यज्य मम कर्मपरायणः। योगी चापि ततो भूत्व श्वेतद्वीपं स गच्छति॥४५॥

हे सुन्दरि! उस 'रूपतीर्थ' का चिह्न कहा जा रहा है, जिससे मेरा कर्म परायण उस स्थान का जानता है।।३६।।

वहाँ के दक्षिणपार्श्व में चिह्न स्वरूप कुरबक नाम का पुष्प स्थित है, उसका वृक्ष न अत्यन्त मोटा और न अति ऊँचा होता है, अल्कि वह मध्य परिमाण वाला होता है।।३७।।

हे सुश्रोणि! वहाँ पर कामपीड़िता स्त्रियों की आकृतिक का शोषक वैशाख में पुष्पित होने वाला वह वृक्ष कार्त्तिक की द्वादशी को पुष्पित होता है।।३८।।

हे महाभागे! मेरे उस सौकरक क्षेत्र में भ्रमण करने वाले जन को निःसंशय इस प्रकार का चिह्न दीख जाया करता है।।३९।।

फिर अपने उस सौकरक तीर्थ में स्थित एक-दूसरे तीर्थ को बतंला रहा हूँ। देवों के लिए भी कठिनता से ज्ञात होने वाला 'योगतीर्थ' नाम का ख्यात तीर्थ वहाँ पर स्थित है।।४०।।

मेरे कर्मपरायण और मेरे कर्म में निपुण जन 'योगतीर्थ' में स्नान कर जो गति प्राप्त करते हैं, उसे सुनोक्त।।४१।।

वे जन दस हजार और दस सौ याने ग्यारह हजार वर्षों तक अपराध, क्रोध और राग से मुक्त तथा अहिंसा व्रत को निश्चित करने वाले मेरे भक्त होते हैं।।४२।।

हे यशस्विनि महाभागे! इस महान् योगतीर्थ में जो जन एक अहोरात्र काल तक रह जाते हैं, उसको इस पुण्य का लाभ होता है। फिर वे समस्त संसार से मुक्त होकर मेरा कर्मपरायण हुआ करते हैं।।४३।।

वे जन योग सम्पन्न होकर उस तीर्थ का शोध करते हैं, तो मेरी कृपाप्रसाद से वे जन निःसंशय उस तीर्थ को प्राप्त कर लेते हैं। हे भद्रे! उसका पुण्य उन सौकरक तीर्थमें स्नान करने का मौका प्राप्त करते हैं।४४।।

मेरे पूजा आदिकर्म में संलग्न रहने वाले जन वहाँ प्राण त्याग करने के पश्चात् योगवान् होकर श्वेतद्वीप में पहुँच जाते हैं।।४५।।

एतत् ते कथितं भद्रे योगतीर्थे महत्फलम्। योगिनो यत्र गच्छन्ति मम कर्मपरायणाः॥४६॥
तस्य चिह्नं प्रवक्ष्यामि योगतीर्थस्य सुन्दरि। स च विज्ञायते तत्र मम कर्मपरायणैः॥४७॥
मार्गशीर्ष मासस्य शुक्लपक्षे चतुर्दशीम्। अकस्मादन्धकारोऽत्र सत्तीर्थेषु च जायते॥४८॥
त्रीणि हस्तसहस्राणि त्रीणि हस्तशतानि च। त्रयो हस्ता विशालाक्षि परिमाणं विधीयते॥४९॥
एतच्चिह्नं ततो दृष्ट्वा मरणं यस्तु कारयेत्। स्नानं चैव विशालाक्षि पूर्वोक्तां गच्छते गतिम्॥५०॥
एतच्चिह्नं महाभागे योगतीर्थ मयि स्थिते। मां यजेत् सिद्धिकामस्तु यदीच्छेत् परमां गतिम्॥५१॥
वसुधेऽन्यं प्रवक्ष्यामि तीर्थे शौकरके मम। यत्र तप्तं तपश्चैव सोमेन तदनन्तरम्॥५२॥
पञ्चवर्षसहस्राणि एकपादेन तिष्ठति। पञ्चवर्षसहस्राणि ऊर्ध्वबाहुस्तथैव च॥५३॥
अधोमुखः पञ्च पुनः पञ्चैवोर्ध्वमुखस्तथा। वायुभक्षः पुनः पञ्च निराहारो व्रते स्थितः॥५४॥
एवं विधसहस्राणि वत्सराणां कृतं तपः। ममैवाराधने युक्तो ब्राह्मणानां हिते रतः॥५५॥
एतच्छुत्वा वचस्तस्य प्रष्टुकामा वसुंधरा। शिरस्यञ्जलिमाधाय ततः श्लक्ष्णमुवाच ह॥५६॥
किमेवं तोषितस्तेन शशोन जनार्दनः। एतदाचक्ष्व तत्त्वेन परं कौतूहलं हि मे॥५७॥

हे भद्रे! जहाँ पर मेरे कर्मपरायण ऐसे योगीजन जाया करते हैं, उस योगतीर्थ में होने वाले यह महाफल तुमसे कहा है।।४६।।

हे सुन्दरि! उस योगतीर्थ का लक्षण मैं कहने जा रहा हूँ, मेरे कर्मपरायण जन वहाँ उस लक्षण को जान जाते हैं। मार्गशीर्ष मास के शुक्लपक्ष की चतुर्दशी को उस सात्त्विक योगतीर्थ में अचानक अन्धकार छा जाता है।।४७-४८।।

हे विशालाक्षि! उस तीर्थ का प्रमाण तीन हजार तीन सौ तीन हाथ का होता है।।४९।।

हे विशालाक्षि! जो जन इस लक्षण को जानकर स्नान और देहत्याग करते हैं, वे पूर्व कथित गति को प्राप्त करते हैं।।५०।।

हे महाभागे! इस योगतीर्थ में मेरे रहने पर यह चिह्न प्रकट हुआ करता है। सिद्धि की कामना करने वाले जन जब श्रेष्ठ गति की इच्छा करते हैं, तो वे वहाँ पर मेरी आराधना भी किया करते हैं।।५१।।

हे वसुधे! मेरे इस शौकरक तीर्थ में जो अन्य तीर्थ हैं, उनको बतला रहा हूँ जहाँ सोम ने तप किया था।।५२।।

उसने पाँच हजार वर्षों तक एक पैर से खड़ा रहकर और पाँच हजार वर्षों तक ऊर्ध्व बाहु होकर तप किया।।५३।।

फिर उसने पाँच हजार वर्षों तक अधोमुख, पाँच हजार वर्षों तक ऊर्ध्व मुख होकर और पाँच हजार वर्षों तक निराहार तथा वायु भक्षण व्रत किया।।५४।।

इस प्रकार ब्राह्मण हित की कामना से उसने हजार वर्षों तक तप करते हुए मेरी उपासना भी की थी।।५५।।

उन देव की इस वाणी को सुनकर वसुन्धरा ने उनसे पूछने की इच्छा से शिर से अञ्जलि जोड़कर स्नेहपूर्ण स्वर में कहा—।।५६।।

उस समय उस चन्द्र ने इस तरह से उन जनार्दन को क्यों प्रसन्न करने की चेष्ट की? मुझको यह तत्त्वतः बतलाने की कृपा करें, इसलिए कि इस प्रसङ्ग को जानने की मेरी बड़ी जिज्ञासा है।।५७।।

वसुधाया वचः श्रुत्वा विष्णुर्मायाकरण्डकः। उवाच मधुरं वाक्यं मेघदुन्दुभिनिःस्वनः॥५८॥
शृणु भूमि प्रत्नेन कथ्यमानं मयाऽनघे। तस्य वै कारणं येन तेन चाराधितोऽस्म्यहम्॥५९॥
तस्य प्रीतोऽस्म्यहं देवि विशुद्धेनान्तरात्मना। दर्शितश्च मया ह्यात्मा यो हि देवेषु दुर्लभः॥६०॥
रूपं सोमेन मे दृष्टं विसंज्ञस्तदनन्तरम्। मह्यं द्रष्टुं न शक्नोति मम तेजःप्रमोहितः॥६१॥
तत एव निमीलाक्षः शिरसा च कृताञ्जलिः। न शक्नोति तथा वक्तुं भीरुः संत्रस्तलोचनः॥६२॥
एवमेतद् विचेष्टन्तं ब्राह्मणानामपीश्वरम्। वाणीं सूक्ष्मां समादाय स सोमो नोदितो मया॥६३॥
किमिदं कारणं सोम तप्यसे कर्त्तुलालसः। ब्रूहि तत्त्वेन मे सर्वं तत् त्वं सोम मनीषितम्।
सर्वं ते कारयिष्यामि मत्प्रसादान्न संशयः॥६४॥
मम वाक्यं ततः श्रुत्वा ग्रहाणां प्रवरेश्वरः। उवाच मधुरं वाक्यं सोमतीर्थवस्थितः॥६५॥
भगवन् यदि तुष्टोऽसि मम चात्र ततः प्रभो। लोकनाथ जगत्स्रष्टः सर्वयोगेश्वरेश्वर॥६६॥
यावल्लोका धरिष्यन्ति यावत् त्वं च जनार्दन। अतुला त्वयि मे भक्तिस्तुभ्यं भक्तो जनार्दन॥६७॥
यच्चापि मम तद् रूपं त्वया संस्थापितं प्रभो। सप्तद्वीपे च दृश्येत तत्र तत्रैव संस्थितम्॥६८॥
सोममित्येष यज्ञेषु पिबन्ति मम ब्राह्मणाः। गतिः परमिका तेषां दिव्या विष्णो भवेद् यथा॥६९॥

इस प्रकार से धरणी की वाणी सुनकर मायानिधि ने मेघ और दुन्दुभि के सदृश गम्भीर ध्वनि के सहित मधुर स्वरों में यह कहा—॥५८॥

हे अनघे भूमे! मेरे द्वारा चेष्टापूर्वक कहे जाने वाले अपनी जिज्ञासा का कारण सुनो, जिससे उसने मेरी उपासना की॥५९॥

हे देवि! उस चन्द्रमा द्वाा मुझको प्रसन्न किये जाने पर अपने विशुद्ध अन्तःकरण वाले मैंने उसे अपना स्वरूप दर्शन दिया, जो देवताओं के लिए दुर्लभ होता है॥६०॥

उस सोम ने मेरा स्वरूप देखने के बाद चेष्टाहीन हो गया। मेरे तेज से सम्मोहित चन्द्र ने मेरा रूप नहीं देख पाता था। फिर उसने अपने नेत्र बन्द कर शिर पर हाथ रखकर जोड़ा, व्यग्र नेत्रों वाला वह भयग्रस्त होने से कुछ बोल नहीं पा रहा था॥६१-६२॥

इस प्रकार निष्क्रिय निश्चेष्ट हुए ब्राह्मणों के अधीश्वर सोम को मैंने सूक्ष्म स्वरों का आश्रयण कर प्रेरित किया और कहा कि—॥६३॥

हे सोम! तुम किसलिए या क्या करने की कामना से इस प्रकार तप करने में संलग्न हो? हे सोम! तुम तत्त्वतः मुझे अपनी सम्पूर्ण कामना को कहो॥६४॥

फिर मेरी वाणी सुनकर 'सोमतीर्थ' में स्थित ग्रहों के स्वामी ने यह मधुर वचन कहा॥६५॥

हे जगत्स्रष्टा लोकनाथ सर्वयोगेश्वरेश्वर भगवन् प्रभो! यदि आप यहाँ मेरे ऊपर प्रसन्न ही हैं, तो हे जनार्दन! जब तक लोकपाल लोकों को धारण करें और जब तक आप रहें, उस समय तक आप में मेरी अतुल भक्ति बना रहे। मैं आपका भक्त कहलाता रह सकूँ॥६६-६७॥

हे प्रभो! आपने सातों द्वीपों में जहाँ-जहाँ मेरा जो स्वरूप स्थापना की है, वहाँ-वहाँ वही स्वरूप स्थित नजर आता है॥६८॥

हे विष्णो! जिस किसी कारण से ब्राह्मण यज्ञों में मेरा सोमपान किया करते हैं, इसलिए उनकी श्रेष्ठ दिव्य गति प्राप्त होना चाहिए॥६९॥

क्षीणस्तत्र त्मावास्यां यत्र पिण्डपितृक्रिया। प्रवर्त्तेत यथान्यायं भवेयं सौम्यदर्शनः॥७०॥
अधर्मो च न मे बुद्धिर्भवेद् विष्णो कदाचन। पतित्वं चाथ गच्छेयमोषधीनां तथा कुरु॥७१॥
यदि तुष्टो मया देव त्वमेवाव्यक्तमायया। मम चैव प्रियार्थाय एतन्मे दीयतां वरः॥७२॥
ततः सोमवचः श्रुत्वा स मया संशिव्रतः। भविष्यति न संदेहो यत् त्वया सोम चेप्सितम्॥७३॥
ततः स ब्राह्मणस्तुष्टो विशुद्धेनान्तरात्मना। वचनं वाढमित्येव अनुग्रहममन्यत॥७४॥
ततस्तस्य वचः श्रुत्वा सोमस्य तदनन्तरम्। गच्छ सोम यथायायमुक्त्वा चान्तरधीयत॥७५॥
एवं तप्तं महाभागे तपः सोमेन निश्चयात्। प्राप्तश्च परमां सिद्धिं सोमतीर्थे न संशयः॥७६॥
यस्तत्र स्नापयेत् तीथ मम कर्मपरायणः। अष्टमेन तु भक्तेन मम कर्मविधिस्थितः॥७७॥
फलं तस्य प्रवक्ष्यामि स्नात्वैवं यस्तु कारयेत्। प्राप्नोति यन्महाभागे सोमतीर्थे कृतोदकः॥७८॥
त्रिंशद्वर्षसहस्राणि त्रिंशद्वर्षशतानि च। जायते ब्राह्मणः सुभ्रु वेदवेदाङ्गपरागः॥७९॥
द्रव्यवान् गुणवांश्चैव संविभागी यशस्विनि। मद्भक्तश्चैव जायेत अपराधविवर्जितः।
स एष ब्राह्मणो भूत्वा स्थित्वा संसारसागरे॥८०॥

मेरी क्षीण हुई अवस्था अमावास्या तिथि के दिन जो जन पिण्डदान एवं पितृकर्म सविधि सम्पादित किया करते हैं, उससे ही मैं पुनः सौम्य दर्शन कराने वाला होऊँ।।७०।।

हे विष्णो, आप मेरे ऊपरऐसी कृपा करें, जिससे मेरी बुद्धि कभी भी अधर्म में न जाय और मैं सदा ओषधियों का पति रहूँ।।७१।।

हे देव! यदि आप मेरे प्रसन्न किये गए हों, तो आप अपनी अव्यक्त माया से मेरी प्रियता हेतु मुझे यह वर प्रदान करें।।७२।।

फिर इस प्रकार के सोम के कथनों को सुनकर मैंने उस तीव्र व्रतधारी को कहा—हे सोम! तुम जो चाहते हो, वह निस्संशय पूरा हो सकेगा।।७३।।

तत्पश्चात् वह ब्राह्मण संतुष्ट हो गया और विशुद्ध अन्तःकरण से 'अच्छा' वचन कहा और मेरा अनुग्रह को भी मान लिया।।७४।।

फिर उस सोम के कथनसुनकर मैंने उससे कहा कि हे सोम! जाओ! यथाविधि से इस प्रकार से कहते हुए मैं अन्तर्हित हो गया।।७५।।

हे महाभागे! सोम ने निश्चयपूर्वक सोमतीर्थ में ऐसे तप को सम्पन्न किया। फिर निःसंशय! श्रेष्ठ सिद्धि प्राप्त की।।७६।।

मेरा कर्मपरायण और मेरे कर्म की विधि में तत्पर जो जन आठ उपवास कर उस सोमतीर्थ में स्नान करते हैं। हे महाभागे! फिर जो स्नान के बाद सोमतीर्थ उदक क्रिया सम्पन्न करते हैं, वे जो फल पाते हैं, मैं उसे बतला रहा हूँ।।७७-७८।।

हे सुभ्रु! वे जन तीस हजार वर्ष पर्यन्त वेद वेदाङ्ग पारगामी ब्राह्मण होता है।।७९।।

हे यशस्विनि वे जन द्रव्य और गुण से युक्त, दान दाता और मेरा अपराध नहीं करने वाला भक्त होता है, संसार-समुद्र में रहकर भी वे इस प्रकार के ब्रह्मण हुआ करते हैं।।८०।।

तस्य चिह्नं प्रवक्ष्यामि सोमतीर्थस्य सुन्दरि। स तत्र येन विज्ञेयो मम मार्गानुसारणि॥८१॥
वैशाखस्य तु मास्य कृष्णपक्षस्य द्वादशीम्। प्रवृत्ते चान्धकारे तु यत्र किंचिन्न दृश्यते॥८२॥
सोमेन च विना भूमिर्दृश्यते चन्द्रसप्रभा। आलोकश्चैव दृश्येत सोमस्तत्र न दृश्यते॥८३॥
आत्मनो दृश्यते छाया यथान्यायं पथे स्थिते।
सोमश्चैव न दृश्येत एवं वै विस्मयं परम्॥८४॥
एतच्चिह्नं महाभागे पुण्ये सौकरके मम। सोमतीर्थे विशालाक्षि येन मुच्यन्ति मानवाः॥८५॥
एतत् ते कथितं भद्रे सोमतीर्थस्य निश्चयम्। तरन्ति मनुजा येन गत्वा संसारसागरम्॥८६॥
अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व वसुंधरे। प्रभावमस्य क्षेत्रस्य विस्मयं परमं महत्॥८७॥
अकामात् तु मृता तीर्थे आत्मनाः कर्मनिश्चयात्। मम क्षेत्रप्रभावेन सृगाली मानुषी भवत्॥८८॥
राजपुत्री विशालाक्षी शुद्धा सर्वाङ्गसुन्दरि। रूपान्विता गुणवती चतुःषष्टिकलान्विता॥८९॥
तरू पूर्वेण पार्श्वेन तीर्थं गृध्रवटं स्मृतम्। यत्राकामो मृतो गृध्रो मानुषत्वमुपागतः॥९०॥
वाक्यं नारायणाच्छ्रुत्वा धरणी शुभलक्षणा। उवाच मधुरं वाक्यं विष्णुभक्तसुखावहम्॥९१॥

हे सुन्दरि! मैं आज उस सोमतीर्थ का लक्षण बतला रहा हू। जिन लक्षणों से मेरा मार्गानुगामी जन उस तीर्थ को वहाँ पहचान लेता है।।८१।।

जिस समय वैशाख मास के कृष्णपक्ष की द्वादशी को अन्धकार हो जाने के बाद भी जिस समय जहाँ कुछ भी दृष्ट नहीं हो रहा हो, वहाँ विना चन्द्र की ही भूमि चन्द्रमा के सदृश प्रभा सम्पन्न दीखने लगता है, लेकिन चन्द्र दृष्ट नहीं होता है।।८२-८३।।

यथोचित मार्ग में स्थित रहने पर वहाँ उस रात्रि में अपनी छाया दीखने लगता है। यह एक परम आश्चर्यजनक वात है।।८४।।

हे विशालाक्षि! महाभागे! मेरे उस पवित्र शौकरक तीर्थ में स्थित 'सोमतीर्थ' जिससे मनुष्य मुक्त हो जाया करते हैं, का यह लक्षण है।।८५।।

हे भद्रे! मैंने सोमतीर्थ का यह सुनिश्चित स्वरूप तुमको बतला दिया है, जहाँ पहुँच कर मनुष्य संसार सागर से तर जाया करते हैं।।८६।।

हे वसुन्धरे! इस क्षेत्र का दूसरा आश्चर्यकारी परम महान् प्रभाव तुमको मैं कह रहा हूँ, उसे ध्यान से सुनो।।८७।।

अपने कर्मफल के वशीभूत सोमतीर्थ में विना कामना किये भी भरी हुई अञ्जली मेरे क्षेत्र के प्रभाव से मानवी हो गयी। वह विशाल नेत्रों वाली, शुद्ध सर्वाङ्गसुन्दरी, रूप, गुण और चौसठ कलाओं से युक्त राजकुमारी हुई।।८८-८९।।

उसी तीर्थ के पूर्व दिशा की ओर गृध्रवट नाम का तीर्थ है। जहाँ विना कामना वाला मरा हुआ गीध मनुष्य होकर विचरण कर रहा था।।९०।।

इस प्रकार नारायण के कथन सुनकर शुभलक्षणा धरणी ने श्री विष्णु के भक्तों को सुख प्रदान करने वाले मधुर वचनों में पूछा—।।९१।।

अहो तीर्थप्रभावो वै त्वं चैव शुभलक्षणः। तस्य देव प्रभावेन तिर्यग्योनित्वमागतौ।
गृध्रश्चैव सृगाली च प्राप्तौ वै मानुषीं तनुम्॥९२॥
स्नानं च तत्र तीर्थेषु मरणं च जनार्दन। कां गतिं ते प्रपद्यन्ते तन्ममाचक्ष्व केशव॥९३॥
चिह्नं च कीदृशं तेषां येन ज्ञायन्ति ते तथा। तीर्थानि च तव क्षेत्रे विष्णुभक्तसुखावहे॥९४॥
केन कर्मविपाकेन मृतौ गृध्रशृगालकौ। अकामौ तव क्षेत्रेषु प्राप्तवांश्च महत् प्रियम्॥९५॥
ततो महीवचः श्रुत्वा विष्णुर्धर्मविदां वरः। उवाच मधुरं वाक्यं धर्मकामां वसुंधराम्॥९६॥
शृणु तत्त्वेन मे भूमि यन्मां त्वं परिपृच्छसि।
उभौ तो कारणाद् येन प्राप्तौ वै मानुषीं तनुम्॥९७॥
तस्मिन् काले ह्यतिक्रानते मम कर्मविनिश्चयात्। त्रेतायुगमनुप्राप्ते जाते च युगसंस्थिते॥९८॥
तत्र राजा महाभागः सर्वकर्मविनिश्चितः। ब्रह्मदत्तेति विख्यातः पुरं काम्पिल्यमास्थितः॥९९॥
तस्य पुत्रो महाभागः सर्वधर्मेषु निष्ठितः। सोमदत्तेति विख्यातः कुमारः शुभलक्षणः॥१००॥
पित्रर्थे त्वथमावास्या मृगलिप्सामुपागमत्। अरण्यं स ततो गत्वा व्याघ्रसिंहनिषेवितम्।
न तत्र लभते किञ्चित् पितृकार्ये नराधिपः॥१०१॥

हे देव! अहा! इस तीर्थ का कैसा सुप्रभाव है। आप भी किस प्रकार के शुभलक्षण वाले हैं। अतः इस तीर्थ के प्रभाव से तिर्यग्योनि में उत्पन्न गीध और शृंगाली को मानव देह की प्राप्ति हुई।।९२।।

हे जनार्दन! इस तीर्थ में स्नान करने और मरने से किस प्रकार की गति की प्राप्ति होती है? हे केशव! मुझे यह बतलाने की कृपा करें।।९३।।

इसी तरह विष्णु भक्तों को सुख प्रदान करने वाले आपके क्षेत्र में वह कौन सा चिह्न है, जिससे वहां स्थित तीर्थों को वे भक्त जानने में सक्षम हो जाते हैं।।९४।।

उन गीध और शृंगाली को विना कामना के आपके क्षेत्र में मरने पर किस कर्म के कारण से परमप्रिय गति की प्राप्ति हुई थी।।९५।।

इस प्रकार की धरणी के कथनों को सुनकर धर्मज्ञों में परमश्रेष्ठ श्रीविष्णु ने धर्म की आकांक्षिणी धरणी से मधुर वचनों में कहा—।।९६।।

हे धरणि! तुमने मुझसे जो कुछ पूछा है, उसे तत्त्वतः सुनो। जिस कारण उन दोनों को मानवी देह की प्राप्ति हुई, उसे भी सुनो—।।९७।।

उन कालखण्डों के बीत जाने पर मेरे द्वारा निर्देशित कर्मफल के कारण त्रेतायुग के आने पर समस्त कर्म का निश्चय करने वाला महाभाग्यशाली ब्रह्मदत्त नाम का ख्याति प्राप्त राजा हुआ था, जो काम्पिल्य नगर में रहा करता था।।९८-९९।।

उसे सोमदत्त नाम से प्रसिद्ध महाभाग्यशाली सब धर्मों में स्थित और शुभ लक्षणों से सुसम्पन्न कुमार हुआ।।१००।।

उन राजा को अमावास्या तिथि के दिन पितृकर्म हेतु हरिण पाने की कामना हुई। फिर वे राजा व्याघ्र और सिंहों से सम्पन्न वन में गया। वहाँ उसे पितृकार्य हेतु कुछ प्राप्त करना सम्भव न हुआ।।१०१।।

एवं तु भ्रमतस्तस्य शृगाली दक्षिणे स्थिता। अङ्गमध्ये तु विद्धा सा स्फुरन्ती सर्वमङ्गला॥१०२॥
एवं सा बाणसंतप्ता व्यथया च परिप्लुता। पीत्वा सा सलिलं तत्र वृक्षशाखोटकं तथा॥१०३॥
आतपेन परिश्रान्ता बाणेन च परिप्लुता। अकामाऽमुञ्चत प्राणांस्तीर्थे सोमात्मकं प्रति॥१०४॥
एतस्मिन्नन्तरे भद्रे राजपुत्रः क्षुधार्दितः। प्राप्तो गृध्रवटं तीर्थं विश्रामं तत्र चाकरोत्॥१०५॥
अथ पश्यति गृध्रस्य न्यग्रोधे शाखमाश्रितम्। एकेन च स बाणेन तथा च विनिपातितः॥१०६॥
स तत्र पतितो गृध्रो वटमूले यशस्विनि। गतासुर्नष्टसंज्ञो वै बाणभग्नहृदस्तथा॥१०७॥
तं दृष्ट्वा पतितं गृध्रं राजपुत्रः सतुष्टवान्। स तस्य लूनपक्षान् वै बाणपक्षविलोहितः॥१०८॥
गृहीत्वा तस्य पत्राणि सोमदत्तो नराधिपः। वटे गृध्रं स्थापयित्वा स्वं पुरं वै समागतः॥१०९॥

सोऽपि दीर्घेण कालेन अकामः पतितस्तथा।
कलिङ्गस्य सुतश्रेष्ठो जातो वै सर्वशास्त्रवित्॥११०॥

पण्डितो गुणवांश्चैव आत्मदेशप्रियंकरः। आयासं न तु विन्देत दुःखं तत्र क्वचिन्न तु॥१११॥
या सा सृगाली हे भूमि कान्तीराज्ये नराधिपः। अजायत कुले तस्य राजपुत्री मनोरमा॥११२॥

इस प्रकार घूमते हुए उसके दाहिनी ओर एक शृंगाली दिखायी दी। समस्त शुभ लक्षणों से प्रकाशित हो रही शृंगाली के शरीर का मध्य भाग बाण से विद्ध हो गया।।१०२।।

इस प्रकार बाण से विद्ध हुए कष्ट से पीड़ित वह शृंगाली जल पीकर वृक्ष की शाखा के नीचे विश्राम करने लगी।।१०३।।

फिर वह शृंगाली उस समय धूप से व्याकुल और बाण से पीड़ित शृंगाली ने न चाहते हुए भी सोमतीर्थ में प्राण त्याग दिया।।१०४।।

हे भद्रे! इसी बीच भूख से पीड़ित राजपुत्र गृध्रवट तीर्थ में पहुँचा और वहाँ विश्राम करने लगा।।१०५।।

फिर उसने उस समय उस वट की शाखा पर बैठे हुए एक गृध्र को देखा और जिसे वह एक बाण के प्रहार से मार गिराया था।।१०६।।

हे यशस्विनि! इस तरह वह गृध्र वहीं वट वृक्ष के मूल में आ गिर पड़ा। बाण से विद्ध हृदय वाला अचेत गृध्र वहीं पर मर भी गया।।१०७।।

इस तरह से गिरे हुए गृध्र को देखकर वह राजपुत्र प्रसन्न हो गया। उसने बाण के पक्ष से उसके पंखो को काट दिया।।१०८।।

फिर उन सोमदत्त नामक वह राजा उस गृध्र के पंखों को लेकर और वट के मूल में गृध्र को स्थापित कर अपने पुर को चला गया।।१०९।।

इस तरह विना इच्छा से मरा हुआ वह गृध्र भी बहुत समय बाद कलिङ्ग देश के राजा का सर्वशास्त्रों को जानने वाला एक श्रेष्ठ पुत्र हुआ।।११०।।

ऐसे वह कुमार गुणवान्, पण्डित और अपने देश का हित करने वाला था। उसे तो इसके लिए परिश्रम भी नहीं करने पड़ते थे। क्योंकि उसे वहाँ कोई दुःख नहीं था।।१११।।

हे भूमि! उधर जो वह शृगाली थी, वह कान्ती राज्य के राजा के कुल में मनोहर राजपुत्री हुई।।११२।।

रूपवती गुणवती दक्षा सर्वाङ्गसुन्दरी। चतुःषष्टिकलायुक्ता कोकिलेव सुखस्वरा॥११३॥
एवं प्रवर्त्तिते तत्र कान्तीराज्ये लिङ्गके। सौहृदात् प्रतिहार्दिक्यादन्योन्यकुलनिश्चयात्।
भूमे मम प्रसादेन संबन्धो जायते ततः॥११४॥
अथ दीर्घेण कालेन कान्तीराजकलिङ्गयोः। उद्वाहं कारयामासुर्विधिदृष्टेन कर्मणा॥११५॥
धनरत्नसमृद्धानि ददौ तस्य कलिङ्गयोः। योग्यानि रमणीयानि भूषणान्यर्हणानि च॥११६॥
वधूं गृह्य कलिङ्गो वै कृतोद्वहां सुतस्थिताम्। हृष्टतुष्टेन मनसा स्वं पुरं शीघ्रमागतः॥११७॥
एवं गच्छति कालो वै दम्पतीनां सहानुगः। प्रीतिर्जायति चान्योन्यं रोहिणीचन्द्रयोरिव॥११८॥
रेमतुस्तौ विहारेषु देवतायतनेषु च। वने चोपवने चैव ये केचिन्नन्दनोपमाः॥११९॥
भर्त्तारं सान पश्येच्चेत् कदाचिद् यदि पार्श्वतः। नष्टं मन्यति चात्मानं राजपुत्री यशस्विनी॥१२०॥
न स पश्यति भार्यां स्वां सर्वरूपातिसुन्दरीम्। सोऽपि पश्यति चात्मनं नष्टमेव जनाधिपः।
दिवसे दिवसेऽप्येवं वर्धत्येव च सुन्दरि॥१२१॥
तयोः प्रवर्द्धते प्रीतिर्वेलेव च महोदधेः। नान्तरं लभते तत्र पुरुषो वा कदाचन॥१२२॥

वह रूपवती, गुणवती, निपुण, सर्वाङ्ग सुन्दरी, चौंसठ कलाओं से सम्पन्न और कोयल की तरह मुख स्वरों की स्वामिनी थी।।११३।

हे भूमि! इस प्रकार से होने पर कान्ती राज्य और कलिंग राज्य में मैत्री और प्रेम के कष्ट परस्पर कुल सम्बन्ध का निश्चय हो जाने पर मेरे कृपा प्रसाद से उन दोनों कुलों में सम्बन्ध भी हो गया।।११४।।

फिर बहुत दिनों के बाद कान्ती और कलिङ्ग देश के राजाओं ने विधि के अनुरूप कर्म द्वारा राजपुत्र और राजपुत्री का विवाह करवा दिया।।११५।।

उस कान्तीदेश के राजा ने कलिङ्ग के उस राजकुमार को धन, रत्नों सहित योग्य रमणीय तथा उपयुक्त आभूषण प्रदान किया।।११६।।

इस प्रकार कलिङ्ग राज्य का राजपुत्र अपने समीप में स्थित विवाहिता वधू को लेकर प्रसन्न और संतुष्ट मन से शीघ्र अपने पुर में आ पहुँचा।।११७।।

फिर उन दोनों पति और पत्नी को इस तरह साथ साथ रहते हुए धीरे-धीरे समय व्यतीत होने लगा और उन दोनों में परस्पर समय के साथ रोहिणी और चन्द्रमा के सदृश प्रेम बढ़ने लगा।।११८।।

वे दोनों विहारों, देव स्थानों, वनों और नन्दन वन के समान उपवनों में रमण और विहार करने लगे।।११९।।

वह यशस्विनी राजपुत्री यदि कभी अपने समीप पति को नहीं देखती तो स्वयं का नष्ट हुई मानने लगती थी।।१२०।।

उधर वह राजपुत्र भी जब सब प्रकार से अपनी अतिसुन्दरी पत्नी को नहीं देखता था, तो अपने को नष्ट हुआ मानने लगता था। इस प्रकार प्रतिदिन वह सुन्दरी बढ़ने लगी।।१२१।।

इस प्रकार दन दोनों की प्रीति महासमुद्र के ज्वार के सदृश बढ़ने लगी। वह पुरुष राजपुत्र भी उसके उस प्रेम में कभी कोई अन्तर नहीं अनुभव कर पाता था।।१२२।।

सा तु चात्मसुशीलेन वृत्तेन च वसुंधरे। कलिङ्गं तोषयामास पौरजानपदांस्तथा॥१२३॥
अन्तःपुरुषे या नार्यः कलिङ्गेषु नराधिपः। वृत्तेन ताभ्यां तुष्टास्ते कर्मभ्यां पूजनने च॥१२४॥
एवं प्रवर्द्धिता ताभ्यां प्रीतिः पूर्वं यशस्विनि। रेमाते तत्र चान्योन्यं शचीवासवयोर्यथा॥१२५॥
अथ सा प्रणयपूर्वमेकान्ते यशस्विनि। प्रेम्णा तु ह्रीमती बाला राजपुत्रं प्रभाषित॥१२६॥
किञ्चिदिच्छामि ते वक्तुं राजपुत्र यशोधन। मम स्नेहात् प्रियं चैव तद् भवान् वक्तुमर्हति॥१२७॥
ततो भार्यावचः श्रुत्वा कलिङ्गस्य सुतः प्रभुः। उवाच मधुरं वाक्यं पद्मपत्रनिभेषणः॥१२८॥
यं यं चवक्ष्यसे भद्रे तं तं तुभ्यं मनीषितम्। तत् सर्वं कारयिष्यामि शपे सत्येन सुन्दरि॥१२९॥
सत्यं मूलं ब्राह्मणानां विष्णुः सत्ये प्रतिष्ठितः। तस्य मूलं तपो राज्ञि राज्यं सत्ये प्रवर्त्तते॥१३०॥
नाहं मिथ्या प्रवक्ष्यामि कदाचिदपि सुन्दरि। उक्तपूर्वं न मे मिथ्या ब्रूहि किं करवाणि ते॥१३१॥
हस्त्यश्वरथयानानि ये च रत्ना महौजसः। अथ्वा परमग्र्यं तु पट्टबन्धं करोमि ते॥१३२॥
सा भर्तृवचनं श्रुत्वा कान्तीराजस्य चात्मजा। उभौ चरणौ संगृह्य भर्त्तारं प्रत्युवाच ह॥१३३॥
न चैव रत्नमिच्छामि हस्त्यश्वरथमेव च। पट्टबन्धेन मे कार्यं यावद् ध्रियति मे गुरुः॥१३४॥

हे वसुन्धरे! उसने अपने सुन्दर स्वभाव एवं चरित्र से कलिङ्ग राज्य और वहाँ के निवासियों को संतुष्ट करने लगी थी।।१२३।।

इस प्रकार राजा ने अपने चरित्र, कर्म और आदर द्वारा कलिङ्ग देश के अन्तःपुरों में जो स्त्रियाँ रहती थी, उन सबको भी संतुष्ट रखते थे।।१२४।।

हे यशस्विनी! इस प्रकार पहले इन दोनों का प्रेम बढ़ता ही रहा। इन्द्र और इन्द्राणि शची के समान वे दोनों परस्पर रमण करते रहते थे।।१२५।।

हे यशस्विनि! फिर उस लज्जाशील राजकुमारी ने एकान्त में प्रेमपूर्वक उस राजकुमार से कहा कि—हे यशोधन राजपुत्र! मैं आपसे कुछ कहना चाहती हूँ मेरे स्नेह से आप मुझे वह प्रिय बात बतलायें।।१२६-१२७।।

फिर पत्नि का कथन सुनकर पद्मपत्र के समान नेत्र वाले कलिङ्ग के समर्थ राजपुत्र ने मधुर वचन में इस प्रकार कहा—।।१२८।।

हे सुन्दरि! हे भद्रे!! तुमको जो भी इच्छा हो, वह मुझसे कहो, मैं सत्य का शपथ लेकर कहता हूँ कि मैं वे सब करूँगा।।१२९।।

चूँकि ब्राह्मणों का मूल सत्य है, विष्णु सत्य में प्रतिष्ठित हैं, राजा में उस सत्य के मूल वाला तप रहता है और सत्य से ही राजा चलता है।।१३०।।

हे सुन्दरि! मैं कभी भी झूठ नहीं बोलता हूँ। मेरा पूर्व का कहना असत्य नहीं होता को, मैं तुम्हारा क्या करूँ।।१३१।।

हाथी, घोड़ा, रथ, सवारियाँ या जो महान् तेजस्वी रत्न हो, वह तुमको दूँ, अथवा तुमको अतिश्रेष्ठ पट्टबन्ध प्रदान करूँ।।१३२।।

पति का वचन सुनकर कान्ती राज्य को वह कुमारी दोनों पैरों को पकड़ कर अपने पति से बोली कि मैं रत्न, हाथी, घोड़ा, रथ आदिनहीं चाहती। मेरे श्रेष्ठजन सास के रहते पट्टबन्ध से मेरा कोई सरोकार नहीं है।।१३४।।

एका स्वपितुमिच्छामि मध्याह्ने तु तथाविधे। न चिरं चाल्पकालं तु यथा कश्चिन्न पश्यति॥१३५॥
श्वशुरो यदि वा श्वश्रूय चान्ये च नराधिप। सुप्ता नैव तु द्रष्टव्या व्रतमेतन्मुहूर्त्तकम्॥१३६॥
आत्मनो वै गृहजना ये केचित् स्वजने जनाः। तैस्तु सुप्ता न द्रष्टव्या कदाचिदपि संस्थिता॥१३७॥
ततो भार्यावचः श्रुत्वा कलिङ्गैश्वर्यवर्द्धनः। वाढमित्येव तां वाक्यं प्रत्युवाच वसुंधरे॥१३८॥
विस्रब्धा भव सुश्रोणि कल्याणेन यशस्विनि। न त्वां वै द्रक्ष्यते कश्चिच्छयनीयमहाव्रतम्॥१३९॥
एवं गच्छति काले तु तयोस्तु तदनन्तरम्। कलिङ्गो जरया युक्तः पुत्रं राज्येऽभ्यषेयत्॥१४०॥

राज्यं दत्त्वा वरारोहे यथान्यायं कुलोद्भवम्।
भक्त्वा निःकण्टकं राज्यं दत्त्वा पञ्चत्वमागतः॥१४१॥

एवं प्रभुञ्जते राज्यं पितुर्दत्तं यशोऽर्जितम्। एकाकी स्वपते तत्र यत्र कतश्चिन्न पश्यति॥१४२॥
स तु दीर्घेण कालेन कलिङ्गवंशवर्द्धनः। सुतान् जनयते पञ्च आदित्यवपुषः शुचीन्॥१४३॥
एवं तु मानुषं लोकं मया मायाप्रमोहितम्। आत्मकर्मसुसंयुक्तं चक्रवत्परिवर्त्तते॥१४४॥

तजातो जन्तुर्भवेद् बालो बालस्तु तरुणो भवेत्।
तरुणो मध्यमं याति पश्चाद् याति जरायतम्॥१४५॥

मैं मध्याह्न काल में भी अल्पकाल तक, नहीं कि विलम्ब काल तक इस प्रकार सोना चाहती हूँ कि मुझ ऐसी सोती हुई को कोई न देख सके।।१३५।।

हे नराधिप! सास, ससुर या अन्य जो भी हों वे सोयी हुई मुझको न देखें। यह एक मुहूर्त्त याने दो घड़ी का व्रत होगा।।१३६।।

अपने घर के जन या अन्य कोई सगे सम्बन्धी हों, वे कभी भी मुझे सोयी हुई को न देखें।।१३७।।

हे वसुन्धरे! फिर भार्या की वाणी सुनकर कलिङ्ग के ऐश्वर्य को बढ़ाने वाले राजकुमार ने पत्नी से 'ठीक है' इस प्रकार से वचन कह दिया।।१३८।।

हे सुश्रोणि! यशस्विनि!! शयनीय नाम के महाव्रत करते हुए तुमको कोई नहीं देख पायेगा। सुखपूर्वक आश्वस्त हो जाओ।।१३९।।

फिर उन दोनों का समय व्यतीत होता रहा। जरायुक्त कलिङ्ग के राजा ने पुत्र का राज्याभिषेक कर दिया।।१४०।।

हे सुन्दरि! अपने कुल में प्राप्त निष्कण्टक राज्य को भोगने के बाद राजा यथाविधि राज्य को समर्पित कर मृत्यु को प्राप्त हो गया।।१४१।।

इस प्रकार राजकुमार यश द्वारा अर्जित एवं पिता से प्राप्त राज्य का भोग करने लगा। उस समय वह और उसकी पत्नी एकाकी वहाँ सोती थी, जहाँ की कोई भी उसे देख न सके।।१४२।।

फिर कलिङ्गराज केवंश की वृद्धि करने वाले उस राजकुमार ने बहुत काल केपश्चात् सूर्य के सदृश तेजवान शरीर वाले पवित्र स्वस्थ पाँच पुत्रों को उत्पन्न किया।।१४३।।

फिर मैंने इस प्रकार माया द्वारा मनुष्यों को सम्मोहित कर रखा है। अपने कर्मों से संयुक्त मानवलोक चक्रव

बालो वै यानि कर्माणि करोति ह्यविजानतः। न स लिप्यति पापेन एवमेतन्न संशयः॥१४६॥
तत्र कारयमाणस्य राज्यं चाखिलकण्टकम्। सप्तसप्ततिवर्षाणि ह्यतीतानि यशस्विनि॥१४७॥
अष्टसप्ततिमे वर्षे एकान्ते तु नराधिपः। तां चिन्तां चिन्तयेत् तत्र मध्याह्ने च दिवाकरे॥१४८॥
माधवस्य तु मास्य शुक्लपक्षे तु द्वादशीम्। बुद्धिः संपद्यते तस्य प्रियादर्शनलालसा॥१४९॥

कोऽर्थस्तत् किं व्रतं चस्या एषा स्वपिति निर्जने।
न सुप्तायां व्रतं किञ्चिद् दृश्यते धर्मसंचये॥१५०॥

न च विष्णुकृतं कर्म न चैवेश्वरनचोदितम्। मनुना वै कृतो धर्म एष चैव न दृश्यते॥१५१॥
न काश्यपकृतो धर्मो महानपि न योगिनाम्। न तत्र एष विद्येत यश्चरेत इमं व्रतम्॥१५२॥
बार्हस्पत्येशु धर्मेषु याम्येषु च न विद्यते। एष विद्यते तत्र सुप्ता चरति यद् व्रतम्॥१५३॥

भुक्त्वा तु कामभोगानि भुक्त्वा तु पिशिताशनम्।
ताम्बूलं रक्तास्त्राणि सुसूक्ष्मे पट्टवाससी॥१५४॥

सुगन्धैर्भूषितं गात्रं सर्वरत्नसमायुतम्। मम कान्ता विशालाक्षी किमत्र चरते व्रतम्॥१५५॥

परिवर्तित होता रहता है। इस प्रकार उत्पन्न हुआ प्राणी क्रम से बालक होता है। बालक तरुण बन जाता है, वह तरुण मध्यमावस्था को प्राप्त होता है और फिर वह जराग्रस्त होता है।।१४४-१४५।।

बालक कुछ नहीं जानते हुए भी जिन कर्मों को करता है, उनके कारण होने वाले पाप से वह लिप्त नहीं होता। इसमें संशय नहीं है।।१४६।।

हे यशस्विनि! इस प्रकार सभी कण्टकों से रहित राज्य करते हुये उसे सतहत्तर वर्ष व्यतीत हो गये।।१४७।।

तत्पश्चात् अठहत्तरवें वर्ष मध्याह्न का सूर्य होने पर एकान्त में वह राजा उस चिन्ता को करने लगा।।१४८।।

उसको इस प्रकार वैशाख मास के शुक्लपक्ष की द्वादशी तिथि के दिन अपनी प्रिया को देखने की कामना उत्पन्न हुई।।१४९।।

उसका क्या प्रयोजन है? कैसा व्रत है एवं वह क्यों एकान्त में सोती है? धर्म संकलन का कार्य अर्थात् धर्मशास्त्र में सोते हुए कोई व्रत किया जाय, ऐसा नहीं देखा या सुना गया है।।१५०।।

श्री विष्णु ने भी इस प्रकार के कर्म को निर्दिष्ट नहीं किया है और ईश्वर शिव शंकर ने भी इसकी विधि नहीं बताया है। मनु ने इस धर्म का विधान किया हो, यह भी नहीं देखा गया है।।१५१।।

काश्यप ने भी इस प्रकार के महान् धर्म की विधि नहीं बनायी है। योगियों ने भी इस प्रकार के कोई नहीं है, जो यह व्रत करता हो।।१५२।।

'सोती हुयी रहने वाला जो यहव्रत कर रही है, वह बृहस्पति या यम के द्वारा भी कहा हुआ धर्म नहीं समझ में आ रहा है।।१५३।।

कामना के अनुरूप भोगों को भोगते हुए, मांस खाकर, ताम्बुल सेवन करते हुए सूक्ष्म रेशमी रक्त वस्त्रों को धारण कर सुगन्ध से आभूषित और सब रत्नों से अलंकृत शरीर वाली विशाल नेत्रों वाली मेरी पत्नी कौन व्रत करती है?।।१५४-१५५।।

कुप्यतेऽपि च दृष्ट्वा वा प्रिया मे कमलेक्षणा। अवश्यमेव द्रष्टव्या चरन्ती कीदृशं व्रतम्॥१५६॥
किन्नरैः सुप्रलक्ष्येत वशीकरणमुत्तमम्। अथ योगीश्वरी भूत्वा गच्छते यत्र रोचते॥१५७॥
अथवा चान्यसंसृष्टा कामरोगेण चावृता। मुहूर्त्तं स्वपते धूर्त्ता पुरुशं चान्यमाश्रिता॥१५८॥
एवं चिन्तयतस्तस्य अस्तंगतदिवाकरे। संवृत्ता रजनी सुभ्रु सर्वसार्थसुखवहा॥१५९॥
ततो रात्र्यां व्यतीतायां प्रभातसमये ततः। पठन्ति मागधा वन्दिसूता वैतालिकास्तथा॥१६०॥
शङ्खदुन्दुभिनादैश्च बोधितो वै नराधिपः। सर्वलोकहितार्थाय उदिते च दिवाकरे॥१६१॥
यत् तदा चिन्तितं पूर्वं द्रष्टुकामेन तां प्रियाम्। सर्वचिन्तां परित्यज्य सा चिन्ता परिवर्त्तते॥१६२॥

स्नातोपस्पृश्य न्यायेन क्षौमवस्त्रेण चावृतः।
कृत्वा चोत्सारणं चैवमाज्ञां दत्त्वा यथोचिताम्॥१६३॥

व्रतस्थं मां तु यः स्पृश्येन्नारी पुरुष एव वा। धर्मयुक्तेन दण्डेन मम वध्यो भवेत् तु सः॥१६४॥
एवमाज्ञापयित्वा तु कलिङ्गो नृपतिः प्रभुः। गतःस्म त्वरया धीमान् प्रविष्टस्तत्र सुव्रते॥१६५॥
पर्यङ्कस्य तले तत्र राजा दर्शनलालसः। विलोक्य तां वरारोहां ततश्चिन्तापरायणः॥१६६॥

यद्यपि कमलनेत्री मेरी प्रिया सोते समय देखने वाले को देखकर रूष्ट हो सकती है, तथापि यह अवश्य देखना चाहिए कि वह कैसा व्रत कर रही है।।१५६।।

क्या किन्नरों द्वारा किया गया कोई श्रेष्ठ वशीकरण का प्रयोग हुआ है अथवा योगेश्वरी बन कर वह जहाँ अच्छा लगे वहाँ चली जाती है।।१५७।।

अथवा क्या वह कामरोग से ग्रस्त होकर किसी अन्य पुरुष में आसक्त हो गई है। इस प्रकार यह धूर्त स्त्री मुहूर्त्त भर अन्य पुरुष के साथ शयन करती है।।१५८।।

हे सुभ्रु! उसके इस प्रकार सोचते-विचारते सूर्यास्त के पश्चात् समस्त चराचर को सुख प्रदान करने वाली रात्रि का आगमन हो गया।।१५९।।

फिर भी रात्रि के अन्त होने पर प्रातःकाल मगधा, बन्दीजन और बैतालिक आदि स्तुति गायक मंगल पाठ करने लगे।।१६०।।

फिर सर्वलोक हितार्थ सूर्योदय होने पर राजा को शंख एवं दुन्दुभि के शब्दों से जगाया गया।।१६१।।

फिर मध्याह्न में शयन करने वाली अपनी उस प्रिया को देखने की कामना, जिसको राजा ने पहले ही की थी, वही चिन्ता सब चिन्ताओं को बाधित कर होने लगी।।१६२।।

राजा ने विधि के अनुरूप स्नान और आचमन कर सूक्ष्म रेशमी वस्त्र पहन कर और समस्त जनों को इस प्रकार यथाविधि आज्ञा प्रदान कर हटाया।।१६३।।

व्रत में स्थित मुझको जो स्त्री या पुरुष स्पर्श करेगा, वह धर्मयुक्त दण्ड से मेरे द्वारा मारा जा सकेगा।।१६४।।

हे सुव्रते धरणि! इस प्रकार आज्ञा प्रदान करने के पश्चत् कलिङ्ग राज्य का बुद्धिमान् राजा शीघ्र के सहित अपने महल के अन्दर प्रविष्ट हो गया।।१६५।।

देखने की कामना से राजा चारपाई के अन्दर घुस गया और उस सुन्दरी को देखकर चिन्ता करने लगा।।१६६।।

ततः कमलपत्राक्षी वेदनायासपीडिता। रुजार्त्ता रुरुदे तत्र शिरोवेदनताडिता॥१६७॥
किं मया तु कृतं कर्म पूर्वमेव सुदुष्करम्। येनाहमीदृशीं प्राप्ता दशां पुण्यपरिक्षयात्॥१६८॥
भर्त्ता च मां न जानाति क्लिश्यमानामनाथवत्।
अथेमं किं तु भर्त्ता च मन्यते स्वजनस्य वा॥१६९॥
कथये किं शयानां तु सखीनां यत्र वर्तते। तेन तत्र न युज्येत यन्मया परिचिन्तितम्॥१७०॥
किं च वात्मनि दुःखस्य सर्वमेतन्न युज्यते। किं च मां वक्ष्यते भर्त्ता किं च मामितरे जनाः।
अन्यायेन व्रतं चीर्णं सर्वतो विकृतं भवेत्॥१७१॥
कदाचिदपि कालस्य गच्छेत् सौकरकं प्रति। ततो ब्रूयादिदं वक्यं यन्मया हृदि वर्त्तते॥१७२॥
ततः प्रियावचः श्रुत्वा तत उत्थाप्य वै नृपः।
दोर्भ्यामालिङ्ग्य वै भार्यां वाक्यमेतत् प्रभाषति॥१७३॥
किमिदं निन्दसे भद्रे आत्मानं न प्रशंससि।
अशोच्या शोचनीया तु यच्च निन्दसि चात्मनि॥१७४॥
भिषजः किं न विद्यन्ते अष्टकर्मसमायुताः। यैस्तु वै साम नीयेत प्रवृद्धा वेदना शिरे॥१७५॥
त्वया यच्चापराधेन एतद् गुह्यं कृतं महत्। येन वै क्लिश्यसे भद्रे शिरस्यसुखपीडिता॥१७६॥
वायुना कफपित्तेन शोणितेन कफेन वा। सन्निपातस्य दोषेण येनेदं दूयते शिरः॥१७७॥

फिर पीड़ा और परिश्रम से पीड़ित तथा शिर की रोग से दुःखी रोग ग्रस्ता वह कमलनेत्री रोने लगी।।१६७।।

मैं पूर्वके जन्मों में कौन सा दुष्कर कर्म किया है, जिससे मैं पुण्यक्षय हो जाने पर इस प्रकार की दशा को प्राप्त हो गई।।१६८।।

मेरे पति भी अनाथ के सदृश पीड़ित हो रही मुझे नहीं जाते या पति क्या मुझ स्वजन के बारे में जानता है।।१६९।।

सोती हुई मैं सखियों से भी क्या कहूँ। इससे मैंने जो सोचा है, वह प्राप्त नहीं हो रहा है।।१७०।।

वैसे दुःख को सबसे कहा जाना तो ठीक नहीं है। पति या अन्य जन क्या कहेंगे। इस तरह अन्यायपूर्वक किया गया व्रत सब प्रकार से विकृत ही होता है।।१७१।।

यदि किसी समय पति सौकरक तीर्थ में चलें तो मैं उससे वह बात कहूँ,जो मेरे हृदय में विद्यमान है।।१७२।।

फिर इस तरह के प्रिया के वचन सुनकर राजा ने उसे वहाँ से उठाया और अपनी दोनों भुजाओं से आलिङ्गित कर अपनी पत्नी से यह वचन कहा—।।१७३।।

हे भद्रे! क्यों तुम अपनी निन्दा करती हो। अपनी प्रशंसा क्यों नहीं करती। क्योंकि तुम स्वयं अपनी निन्दा करती हो। अतः अशोचनीय होते हुए भी शोचनीय हो रही हो।।१७४।।

क्या आयुर्वेद में अष्टाङ्गकर्म को जानने वाले चिकित्सक नहीं है, जो बढ़ी हुई शिर की वेदना को शान्त कर सकें।।१७५।।

हे भद्रे! जिस अपराध वश तुमने यह महान् गुह्य कर्म किया है और जिसके कारण शिर की वेदना

कालाकालादितत्त्वज्ञा ह्युपायज्ञा यशस्विनि। अश्नासि पिशितं चान्नं तेनेदं दूयते शिरः॥१७८॥
कृतमत्र शिरावेधो रक्तं चैवातिश्राव्यते। दीयतेऽथ शिरोभ्यङ्गं किं न तिष्ठति वेदना॥१७९॥

किमेतद् गोपितं गुह्यं मयि पूर्वं न चोदितम्।
त्वयाऽत्र व्रतलक्ष्येण चात्मानं चैव किलश्यसि॥१८०॥

या त्वं भाषसे वाक्यं गच्छ सौकरकं प्रति। तवैव यत् कार्यं गुह्यं येन वाध्यति वेदना॥१८१॥
ततः कमलपत्राक्षी सव्रीडा दुःखसंवृता। उभौ तौ चरणौ गृह्य भर्त्तारं प्रत्यभाषत॥१८२॥
किं प्रसादेन राजेन्द्र न त्वं पृच्छितुमर्हसि। इमां कथं विशालाक्ष मम कर्मानुसारिणम्॥१८३॥
ततो भार्यावचः श्रुत्वा कलिङ्गानां जनाधिपः। उवाच मधुरं वाक्यं विहितेनान्तरात्मना॥१८४॥
किमिदं गोपसे गुह्यं मम चात्र यशस्विनि। कथं न कथ्यसे मह्यं पृच्छमाना यशस्विनि॥१८५॥

सा भर्त्तुश्च वचः श्रुत्वा विस्मयोत्फुल्ललोचना।
उवाच मधुरं वाक्यं कलिङ्गानां जनाधिपम्॥१८६॥
भर्त्ता धर्मो यशो भर्त्ता तथा भर्त्ता प्रियेण च।
अवश्यमेव तद् वाच्यं यन्मां त्वं परिपृच्छसि॥१८७॥

से तुम पीड़ित हो रही हो, किस वायु, कफ पित्त, रक्त, कफ अथवा सन्निपात के दोष से यह शिर पीड़ित हो रहा है।।१७६-१७७।।

हे यशस्विनि! काल और अकाल के तत्त्व तथा उपाय को जानने वाली तुम जो कच्चे मांस का आहार करती हो, उसी से शिर को यह पीड़ा हो रही है।।१७८।।

यदि शिरावेध किया जाय, तो अत्यधिक रक्त गिरेगा। यदि शिर की मालिश की जाय, तो पीड़ा दूर हो सकती है।।१७९।।

वैसे इस रहस्य को तुमने क्यों छिपाया। मुझसे पहले ही क्यों नहीं कहा। इस प्रकार तुम व्रत के कारण से स्वयं को क्यों पीड़ित कर रही हो?।।१८०।।

अतः तुमने जो वाक्य कहा है, उसके अनुसार तुम सौकरक तीर्थ में जाओ। तुम वह गुप्त कर्म करो, जिससे तुम्हारे शिर की वेदना तुम्हें पीड़ित न करें।।१८१।।

तत्पश्चात् दुःखी कमलनेत्री ने लज्जाते हुए उसने दोनों पैरों को पकड़कर पति से कहने लगी।।१८२।।

हे राजेन्द्र! कृपा करने का क्या लाभ? हे विशाल नेत्र मेरे कर्म के अनुसार होने वाली इस कथा को आप न पूछें।।१८३।

तत्पश्चात् पत्नी की वाणी सुनकर हृदय की प्रेरणा से कलिङ्ग देश के राजा ने अपनी मधुर वाणी में कहा कि हे यशस्विनि! तुम इस रहस्य की बात को मुझसे क्यों छिपा रही हो। हे यशस्विनि! मेरे पूछने पर भी मुझे क्यों नहीं बतला रही हो।।१८४-१८५।।

अपने पति का कथन सुनकर विस्मय से उत्फुल्ल नेत्रों वाली उस रानी ने कलिङ्ग के राजा से इस प्रकार से मधुर वचन कहा—।।१८६।।

चूँकि कहा गया है कि पति ही धर्म है, यश और प्रेम का पात्र है। अतः मुझसे जो कुछ पूछा जा रहा है, उसे अवश्य बतलाना होगा।।१८७।।

नां जातु प्रवक्ष्यामि तव ह्यस्मिन् नराधिप। एतद् दुःखं महाभागं यन्मे हृदि विवर्त्तते॥१८८॥
सुखे हि वर्त्तसे नित्यं महाराजोऽसि सुन्दरः। बह्व्यो मत्सदृशा भार्यास्तिष्ठन्त्यन्तःपुरे तव॥१८९॥
त्वं मे देवो गुरुः साक्षाद् भर्त्ता यज्ञः सनातनः।
धर्मश्चार्थश्च कामश्च यशः स्वर्गं पतिः स्मृतः।
सर्वमेव हि चिन्त्यं मे पृष्टायास्ते जनाधिप॥१९०॥
अवश्यमेव वक्तव्यं कारणं तत्र चानघ। सुमुखे तव राजेन्द्र राज्यकामेऽखिलेऽपि वा॥१९१॥
बहवः सन्ति ते भार्या वेदनां प्रष्टुमर्हसि। अश्नामि पिशितान्नानि आज्ञा मे वर्त्तते प्रभो।
गन्धभोगाश्च विद्यन्ते न मां त्वं प्रष्टुमर्हसि॥१९२॥
ततो भार्यावचः श्रुत्वा कलिङ्गानां जनाधिपः।
उवाच मधुरं वाक्यं भार्यां कमललोचनाम्॥१९३॥
शृणु तत्त्वेन मे भद्रे शुभं वा यदि वाऽशुभम्। अवश्यमेव वक्तव्यं धर्ममेतन्न संशयः॥१९४॥
इमानि यानि ह्यानि स्त्रीणां धर्मपथे स्थिताः। भर्त्तारं च समासाद्य रहस्ता गोपयन्ति न॥१९५॥
कृत्वा सुदुष्करं कर्म रागलोभप्रमोहिता। या तु गोपयते गुह्यं सती सा नोच्यते बुधैः॥१९६॥

हे राजन्! हे महाभाग!! मेरे हृदय में जो यह दुःख है, उस प्रसङ्ग में आपको कुछ भी नहीं बतलाया जा सकता है।।१८८।।

हे महाराज! आप सुन्दर हैं और नित्य सुख से रहने के योग्य हैं। आपके अन्तःपुर में मेरे ही समान अनेक आपकी पत्नियाँ हैं। आप मांस और विविध प्रकार के अन्न का आहार कर सकते हैं। तथा प्रजा भी तो आपकी आज्ञा पालन करने वाली है। आप मेरे साक्षात् गुरु, भर्त्ता और सनातन यज्ञ हैं। पति को धर्म, अर्थ, काम, यश और स्वर्ग कहा गया है। हे जनाधिप! आप द्वारा पूछी जा रही मेरी ये सब बातें चिन्तनीय हैं।।१८९-१९०।।

हे निष्पाप! इसका कारण भी अवश्य ही बतलाना होगा। हे राजेन्द्र! आपकी अनुकूलता या पूर्ण राज्य की इच्छा होने पर भी निश्चय ही मुझे बतलाना होगा।।१०१।।

आपकी अनेक पत्नियाँ हैं, आप उनका कष्ट पूछ सकते हैं। हे प्रभो! मैं मांस और अन्न का भक्षण करती हूँ तथा सभी जन मेरी आज्ञा के अनुसार व्यवहार भी किया करते हैं। मेरे लिए गन्ध और भोग उपलब्ध है। आप मुझसे न पूछे।।१९२।।

इस प्रकार की पत्नी का कथन सुनकर कलिङ्ग राज ने अपनी कमलनेत्री पत्नी से मधुर वाणी में इस प्रकार कहा—।।१९३।।

हे भद्रे! तत्त्व की बात सुनो। शुभ या अशुभ जो कुछ भी हो, उसे तुमको मुझसे निश्चय ही बतलाना चाहिए। क्योंकि निःसंशय यही धर्म भी है।।१९४।।

धर्म के मार्ग में स्थित स्त्रियों के जो भी रहस्य की बातें होती हैं, उन्हें वे अपने पति से कथमपि नहीं छिपाया करती हैं।१९५।।

लेकिन राग और लोभ के वश मोहित होकर जो कोई जन दुष्कर कर्म कर उसको अपने पति से छिपाया करती है, उसे बुद्धिमान् जन सती नहीं कहते।१९६।।

एवं चिन्त्य महाभागे ब्रूहि सत्यं यशस्विनि। अधर्मस्ते न भविता ह्यार्थकथने मम॥१९७॥
ततो भर्तृव्चः श्रुत्वा कान्तीराजकुलोद्भवा। प्रत्युवाच प्रियं वाक्यं कलिङ्गानां नराधिपम्॥१९८॥
देवो राजा गुरू राजा सोमो राजेति पठ्यते। अवश्यमेव वक्तव्यमेष धर्मः सनातनः॥१९९॥
यदि गुह्यं न ते कार्यं श्रूयतां राजसत्तम। ज्येष्ठं पुत्र भिषिञ्चस्व महाराज्येऽवनीश्वर॥२००॥

दत्त्वा राज्यं च पुत्राय यथान्यायं कुलोचितम्।
एहि नाथ मया सार्द्धं गच्छावः सौकरं प्रति॥२०१॥
ततो भार्यावचः श्रुत्वा कलिङ्गानां जनाधिपः।
वाढमित्येव वाक्येन छन्दयामास सुन्दरीम्॥२०२॥

अहं दास्यामि पत्राय स्वं राज्यं वचनात् तव। यथान्यायेन वै पूर्वं पितृर्लब्ध्वा यथाक्रमम्॥२०३॥
ते तु तत्र यथान्यायं निष्क्रान्तास्तदनन्तरम्। राजा च राजपुत्री च अपश्यन्त ततो जनाः॥२०४॥
ततश्चोच्चस्वरेणाथ राजा तत्र प्रभाषते। क एष तिष्ठते द्वारि शीघ्रं कञ्चुकिमागतम्॥२०५॥
प्रस्थापय जनाः सर्वे मम ये परिचारकाः। वृत्तं कौतूहलं योऽयं शीघ्रं यातु यशस्विनि॥२०६॥
ततो हलहला शब्दा हास्यमन्तःपुरो जनाः। किमिदं कारणं वाक्यं येन चोत्सारिता वयम्॥२०७॥

हे महाभागे! हे यशस्विनि!! मुझ से कोई भी गुप्त बातें कहने में आपको कोई अधर्म नहीं होने जा रहा है।।१९७।।

फिर तो अपने पति के वचन को सुनकर कान्ति राजपुत्री महारानी ने कलिङ्ग नरेश से प्रिय वचन में इस प्रकार कहा—।।१९८।।

राजा को देव, गुरु और सोम कहा गया है। अवश्य ही कहना होगा। यही मेरा सनातन धर्म है।।१९९।।

हे नृपश्रेष्ठ! जब आप से बातें छिपाना भी नहीं है, तो आप सुनें। हे राजन्! आप अपने सबसे ज्येष्ठ पुत्र का राज्याभिषेक कर दें।।२००।।

हे नाथ! कुल व्यवहार के अनुरूप यथारीति पुत्र को राज्य प्रदान कर आओ और हम दोनों ही सौकरक तीर्थ की ओर चलें।।२०१।।

फिर अपनी पत्नी की बातें सुनकर कलिङ्गराज ने 'अच्छा' यह वाक्य कहकर अपनी सुन्दरी रानी को प्रसन्न करने में लग गया।।२०२।।

तुम्हारे कहे जाने के पहले ही मैं क्रम के अनुरूप पिता से प्राप्त राज्य यथारीति अपने पुत्रों को सौंप दूँगा।।२०३।।

फिर वे वहाँ से यथाविधि बाहर निकल गये। फिर उनके प्रजाजनों ने राजा और रानी को देखा।।२०४।।

उस समय राजा ने अपने उच्च स्वर में कहने लगा कि यहाँ द्वार पर कौन है? कञ्चुकी को शीघ्र ले आओ।।२०५।।

यहाँ पर मेरे जो सेवकजन हैं, वे सब लोगों को यहाँ से हटा दें। हे यशस्विनि! कौतूहल उपस्थित है, जो भी यहाँ हों, वह शीघ्र चला जाय।।२०६।।

फिर तो अन्तःपुर के निवासी जनों के बीच में हल्ला और हँसी होने लगी। सभी कहने लगे कि यह कौन-सी बात है, जिससे हम सभी हटाये जा रहे हैं।।२०७।।

राजतो बहवश्चिन्ता बहुकार्याभिसारिणात्। अश्रोतव्यं भवेन्नूनं येन चोत्सारिता वयम्॥२०८॥

ततो भोज्यान्नपानानि सर्वतो भुञ्जते नृपः।
अमात्यान् स्थापयामास अभिषेकस्य कारणात्॥२०९॥

संप्राप्तान् सचिवांस्तत्र राजा वचनमब्रवीत्। राजधानीं विशालाक्षो राजशास्त्रविशारदः॥२१०॥

दृष्ट्वा चैवममात्यांश्च कलिङ्गो धर्मसंमतम्। उवाच मधुरं वाक्यं शब्दाशास्त्रार्थनिष्ठितम्॥२११॥

कल्यमिच्छामहे तावत् पुत्रं राज्येऽभिशेचितुम्। शीघ्रं सज्जय यत्कार्यं मम पुत्राभिषेचने॥२१२॥

कृतमित्येव तत्राहुः सचिवास्तं नराधिपम्।अस्माकं च प्रियं चैव यत्त्वं राजन् प्रभाषसे॥२१३॥

एवमुक्त्वा गतामात्या अस्तं प्राप्तो दिवाकरः। सुखेन सा गता रात्रिर्गीतगान्धर्ववादितैः॥२१४॥

बोधितः स च राजा सूतमागधवन्दिभिः। वैतालिकैश्च सुश्रोणि सर्वमङ्गलपाठकैः॥२१५॥

प्रभातायां तु शर्वर्यामुदिते च दिवाकरे। मुहूर्त्तं शुभमासाद्य ह्यभिषिक्तो नपेण हि॥२१६॥

एवं दत्त्वा ततो राज्यं मूर्ध्नि चाघ्राय धर्मवित्। उवाच मधुरं वाक्यं पुत्रं पुत्रवतां वरः॥२१७॥

राज्यस्थेनापि ते पुत्र कर्त्तव्यं शृणु तन्मम। यदीच्छेत् परमं धर्मं पितृणां तारणं तथा॥२१८॥

चूँकि राजा को कईयों कर्मों में लगे रहने से अनेक प्रकार की चिन्ता हुआ करती है। निश्चय ही कोई न सुनने योग्य बात होगी, जिससे हम सभी हटाये गये हैं।।२०८।।

फिर राजा ने सब प्रकार के अन्न और पान का उपभोग किया और अभिषेक हेतु मन्त्रियों को नियुक्त किया।।२०९।।

राजनीत विशारद विशाल नेत्र वाले राजा ने राजधानी में उपस्थित मन्त्रियों से कहा।।२१।।

कलिङ्ग नरेश ने मन्त्रियों को देखकर व्याकरण शुद्ध मधुर वचनों में इस प्रकार से कहा—।।२११।।

मैं प्रातःकाल पुत्र का राज्याभिषेक करना चाहता हू। मेरे पुत्र के राज्याभिषेक में जो करना हो, उसे शीघ्र प्रस्तुत करें।।२१२।।

तब मन्त्रियों ने उन राजा से कहा कि सभी कुछ कर दिया गया। हे राजन्! जो कह रहे हैं, वे हम सभी का प्रिय है।।१३।।

इस प्रकार से कहकर मन्त्री चले गये। सूर्य भी अस्त हो गया। गाते बजाते हुए वह रात्रि व्यतीत हुई।।२१४।।

हे सुश्रोणि! सब प्रकार का माङ्गलिक पाठ करने वाले सूत, मागध, बन्दीजन, और वैतालिकों ने राजा को सविधि जगाया।।२१५।।

रात्रि के अन्त में प्रातःकाल सूर्योदय हो जाने पर राजा ने शुभ मुहूर्त के आ जाने पर अपने ज्येष्ठ पुत्र का अभिषेक करा दिया।।२१६।।

फिर राज्याभिशेक के पश्चात् पुत्रवानों में श्रेष्ठ धर्मज्ञ राजा ने पुत्र का मस्तक सूँघ कर पुत्र से मधुर वचन कहा—।।२१७।।

हे पुत्र! तुमको श्रेष्ठ धर्म और पितरों को तारने की इच्छा हो, तो राज्य करते हुए तुम्हें जो करना उचित है, से सब सुनों—।।२१८।।

दातव्योर्त्तिर्न कर्त्तव्या हन्तव्याः पारदारिकाः।
बालघाताश्च हन्तव्या हन्तव्याः स्त्रीविघातकाः॥२१९॥

मा लोभं परभार्यासु ब्राह्मणीषु कदाचन। सुरूपां परनारीं तु दृष्ट्वा चक्षुर्निमीलयेत्॥२२०॥
मा लोभःपरद्रव्येषु अन्यायोपार्जितेषु च। न चिरं तिष्ठते क्वापि सर्वेऽमात्या कदाचन॥२२१॥
रक्षणीयश्च ते देशः कुलनययशोर्ज्जितः। नित्योद्युक्तेन स्थातव्यममात्यवचनं कुरु॥२२२॥
अमात्यो यद् वचो ब्रूयात् पुत्र कार्यं विमर्शनम्। अवश्यमेव कर्त्तव्यं शरीरपरिरक्षणम्॥२२३॥
प्रजा येन प्रमोदन्ति येन तुष्यन्ति ब्राह्मणाः। एवं ते पुत्र कर्त्तव्यं मम प्रियहितैषिणा॥२२४॥
सप्तव्यसन वर्जेत दोषा राजसुतो महाः। येषु राजा विनश्येत संपन्नोऽपि महाद्युतिः॥२२५॥
वर्जयेत सुरापानं मृगव्यां वर्जयेत् सदा। वाक्पारुष्यं न वक्तव्यं वृथावाचं कदाचन॥२२६॥
राजगुह्यं न वक्तव्यं दूतभेदं च वर्जयेत्। वर्जयेद् दण्डपारुष्यमसद्भिश्च समागमम्॥२२७॥
अर्थदूषणकं चैव न कर्त्तव्यं कदाचन। अमात्यं नाप्रियं ब्रूयाद् य इच्छेद् राजकर्मणि॥२२८॥
नाहं वारितमिच्छामि गमनाय पथे स्थितः। एतन्मे क्रियतां शीघ्रं यदीच्छसि मम प्रियम्॥२२९॥

दान देना चाहिए। सब चराचर को दुःख नहीं देना चाहिए। परस्त्रियों के साथ संगम करने वालों को मारना चाहिए। बालक की हत्या करने वालों एवं स्त्रियों के हत्यारों को मारना चाहिए।।२१९।।

इससे की स्त्रियों और विशेषतया ब्राह्मण की स्त्रियों के प्रति लोभ नहीं ही करना चाहिए। सुन्दर परस्त्री को देखकर आँख बन्द कर लेना चाहिए।।२२०।।

अन्यों के धन और अन्याय से उपार्जित धन का लोभ नहीं करना चाहिए। सभी अमात्य कहीं भी चिरकाल तक नहीं रहते।।२२१।।

तुमको वंश, नीति, कीर्त्ति, आदि द्वारा अर्जित देश की रक्षा करनी चाहिए। नित्य निरन्तर उद्योगशील रहकर अमात्यों के कथनानुसार कार्य करना चाहिए।।२२२।।

हे पुत्र! अमात्य जो बात कह दे, उस पर अवश्य विचार करना और शरीर की रक्षा हेतु सदा तत्पर अवश्य रहना चाहिए।।२२३।।

हे पुत्र! मेरा प्रिय और हित करने की इच्छा से तुमको अवश्य ही ऐसा कार्य करना चाहिए, जिससे प्रजा प्रसन्न और ब्राह्मण संतुष्ट हों।।२२४।।

हे राजपुत्र! काम, क्रोध, आदि सात प्रकार के व्यसनों का सदा त्याग करना चाहिए। ये सभी महान् दोष के कारण हैं, जिनके रहने पर महातेजस्वी एवं सम्पत्तिशाली होते हुए भी राजा नष्ट हो जाता है।।२२५।।

सदा ही सुरापान और मृगया का त्याग करना चाहिए। कभी भी कठोर वाणी और निरर्थक वचन नहीं बोलना चाहिए।।२२६।।

राज्य का रहस्य किसी से नहीं कहना चाहिए। दूत में भेद का होना रोकना चाहिए। कठोर दण्ड नहीं देना चाहिए। असज्जनों के साथ सम्पर्क कभी नहीं रखना चाहिए।।२२७।।

अर्थ विषयक किसी प्रकार के आदत आदि जैसे व्यसन नहीं होना चाहिए। जो राज्य करने की इच्छा करने वाला हो, उसको अमात्य से कभी भी अप्रिय नहीं बोलना चाहिए। मैं जाने हेतु मार्ग में स्थित होने पर रोका जाना नहीं चाहता। यदि मेरा प्रिय करना चाहते हो, तो मेरा यह कहा हुआ कार्य शीघ्र करो।।२२८-२२९।।

ततः पितुर्वचः श्रुत्वा राजपुत्रो यशस्विनि।
उभौ तु पादौ संगृह्य कारुण्यात् प्रत्युवाच तम्॥२३०॥
मम किं तात राज्येन कोशेन च बलेन च। यत्त्वया विरहे तात न शक्नोमि विचेष्टितुम्॥२३१॥
अभिषेकं राजशब्दं मम संज्ञार्पितं त्वया। एतन्न बहुमन्येऽहं विना तात त्वया ह्यहम्॥२३२॥
क्रीडामात्रं विजानामि येन क्रीडन्ति बालकाः।
राज्यचिन्तां न जानामि राजानो यां तु कुर्वते॥२३३॥
स राजा तद् वचः श्रुत्वा कलिङ्गानां महीपतिः। उवाच मधुरं वाक्यं सामपूर्वं यशस्विनि॥२३४॥
यद्येवं भाषसे पुत्र नाहं जानामि ते वचः। पुत्र शिक्षापयिष्यन्ति पौरजानपदास्तव॥२३५॥
एवं संदिष्य तं तत्र स राजा धर्मशास्त्रतः। गमनं चक्रिरे तत्र क्षेत्राय कृतनिश्चयः॥२३६॥
तं प्रयान्तं ततो दृष्ट्वा पौरजानपदास्तथा। सकलत्रसुताश्चापि अनुयान्ति नराधिपम्॥२३७॥
हस्त्यश्वरथयानानि स्त्रियश्चान्तःपुरस्तथा। हृष्टतुष्टमनाः सर्वे अनुयान्ति नराधिपम्॥२३८॥
अथ दीर्घेण कालेन प्राप्तस्सौकरकं प्रति। धनधान्यसमृद्धानि प्रददौ तत्र माधवि॥२३९॥

हे यशस्विनि! फिर पिता का वचन सुनकर राजपुत्र ने पिता के दोनों पैरों को पकड़ कर करुण भाव में उत्तर दिया—।।२३०।।

हे पिता! राज्य, कोष और सेना से मुझे क्या काम है? क्योंकि हे तात! आपके विरह में मैं कुछ नहीं कर सकता।।२३१।।

भले ही आपने अभिषेक कर मुझे राजा बना दिया, किन्तु आपके विना मैं इसे बहुत महत्त्व नहीं दे पाऊँगा।।२३२।।

मैं तो केवल खेल जानता हूँ, जिन्हें बच्चे खेला करते हैं। राजा जन जिस प्रकार विचार करते हैं, उस राज्य विषयक चिन्तन को मैं नहीं जानता।।२३३।।

हे यशस्विनि! उसका वचन सुनकर कलिङ्ग राज ने शान्ति के साथ अपने पुत्रों से इस वचन को कहा।।२३४।।

हे पुत्र! तुम जो इस तरह से कह रहे हो, तुम्हारी वह बात मेरी समझ में नहीं आ रहा है। हे पुत्र! नगर और देश के निवासी जन तुम्हें शिक्षित कर देंगे, इसकी चिन्ता मुझे नहीं है।।२३५।।

इस प्रकार धर्मशास्त्रानुसार उसे निर्देशित करते हुए तीर्थ जाने हेतु निश्चय किया हुआ वह राजा फिर चला गया।।२३६।।

फिर उसे जाते हुए देखकर नगर और देश के निवासी स्त्री और पुत्रों के साथ राजा के पीछे-पीछे उनका अनुसरण कर चल पड़े।।२३७।।

हाथी, घोड़े, रथ,वाहन, स्त्रियाँ, अन्तःपुर में रहने वाली रानियाँ प्रसन्न और सन्तुष्ट मन से राजा के पीछे चल पड़ीं।।२३८।।

फिर बहुत समय के बाद वे सौकरक तीर्थ में पहुचे। हे पृथ्वी! उस राजा ने वहाँ धन, धान्य और सम्पत्ति प्रदान किया।।२३९।।

एवं च गच्छते कालस्तत्र तस्य वसुंधरे। वर्तमाने यथान्यायं धर्मेण च क्रियापरम्॥२४०॥
ततः स पद्मपत्राक्षः कलिङ्गानां जनाधिपः। उवाच मधुरं वाक्यं कान्तीराजसुतां तदा॥२४१॥
पूर्णं वर्षसहस्त्रं वै जीवितं मम सुन्दरि। ब्रूहि तत् परमं गुह्यं यन्मया पूर्वपृच्छितम्॥२४२॥
ततो भर्तुर्वचः श्रुत्वा प्रहसित्वा शुभेक्षणा। उभौ तौ चरणौ गृह्य राजानं वाक्यमब्रवीत्॥२४३॥
एवमेतन्महाभाग यन्मां त्वं परिपृच्छसि। उपवासं त्रिरात्रं तु पश्चाच्छ्रोष्यसि पुंगव॥२४४॥
वाढमित्येव राजा स प्रत्युवाच यशस्विनि। पद्मपत्रविशालाक्षि पूर्णचन्द्रनिभानने॥२४५॥
दन्तकाष्ठं ततो गृह्य द्वादशाङ्गुलमेव च। उपविश्य विधानेन सोपवासं समाचरेत्॥२४६॥
गते तत्र त्रिरात्रे तु स्नातौ क्षौमविभूषितौ। प्रणमित्वा तु तौ विष्णुं दम्पती तदनन्तरम्॥२४७॥
ततो सर्वाणि रत्नानि विमुच्य च शुभानना। प्रददौ सुन्दरी मह्यं यत्र गात्रेषु संस्थितिः॥२४८॥
त्यक्ताभरणसर्वाङ्गी प्रत्युवाच जनेश्वरम्। एह्येहि नाथ गच्छामो यत् त्वयैव मनीषितम्॥२४९॥
ततो हस्ते पतिं गृह्य उत्थाय च यशस्विनी। उवाच मधुरं वाक्यं कलिङ्गाधिपतिं तथा॥२५०॥
सृगाली पूर्वमेवाहं तिर्यग्योनिव्यवस्थिता। विद्धाऽस्मि सोमदत्तेन बाणेन मृगलिप्सुना॥२५१॥

हे पृथ्वि! इस प्रकार यथोचित विधि से धर्मानुरूप कार्य करते हुए उसका समय व्यतीत होने लगा। फिर कमलनेत्र उस कलिङ्ग नरेश ने क़ान्तिराज देश की राजकुमारी से मधुर वचनों में इस प्रकार से कहा—।।२४०-२४१।।

हे सुन्दरि! मेरे जीवन का हजार वर्ष पूर्ण हो चुका है। अब तुम उस श्रेष्ठ रहस्य को बतलाने की चेष्टा करो, जिसे मैंने तुमसे पूछा था।।२४२।।

इस प्रकार से अपने पति का वचन सुनकर हँसते हुए सुन्दर नेत्रों वाली रानी ने उसके दोनों पैरों को पकड़कर इस तरह से कहा—।२४३।।

हे श्रेष्ठ महाभाग! आप मुझसे जो कुछ पूछ रहे हैं उसके प्रसङ्ग में यह बात है कि तीन रात्रि तक उपवास रखने के बाद आप उसे सुन सकेंगे।।२४४।।

हे पद्मपत्र विशालाक्षि! हे पूर्णचन्द्र सदृश मुख वाली!! उस राजा ने 'ठीक है' इस प्रकार से उससे कहा।।२४५।।

फिर बारह अंगुल का दन्तकाष्ठ का उपयोग कर लेने के पश्चात् विधि विधान के अनुरूप बैठकर वह राजा उपवास धारण कर लिया।।२४६।।

तत्पश्चात् तीन रात्रियाँ बीत जाने पर स्नान करने के बाद रेशमी वस्त्र और अलंकरण धारण कर उन पति-पत्नी दोनों ने श्रीविष्णु को प्रणाम किया।।२४७।।

फिर सुन्दर मुख वाली रानी ने सब रत्नों को उतार कर मेरे विभिन्न अंगों में समर्पित कर दिया।।२४८।।

इस प्रकार अपने समस्त अंगों से आभूषणों को उतार देने वाली उस रानी ने राजा से कहा कि हे नाथ! आओं आप जहाँ चाहते हो, वहाँ चलें।।२४९।।

हे यशस्विनि! फिर अपने पति का हाथ पकड़कर रानी ने कलिङ्ग नरेश को उठाया और उनसे मधुर वचन कहा।।२५०।।

पूर्वकाल में मैं पशुयोनि में स्थित शृंगाली थी। मृगया की लालच में सोमदत्त ने बाण से मुझे मार दिया था।।२५१।।

एतं शिरसि मे राजन् पश्य बाणं सुसंस्थितम्। यस्य दोषेण मय्येषा रजस्तमवशानुगा॥२५२॥
कान्तीराजकुले जन्म पित्रा दत्ता तव प्रिया।
गच्छ राजन् यथान्यायं परां सिद्धिं नमोऽस्तु ते॥२५३॥
ततः स पद्मपत्राक्षः कलिङ्गानां जनाधिपः। श्रुत्वा वाक्यं महाराजो विशुद्धेनान्तरात्मना।
उवाच मधुरं वाक्यं तां प्रियां चारुहासिनीम्॥२५४॥
अहं गृध्रो महाभागे एवं वनविचारिणा। तेनैव सोमदत्तेन एकबाणे निपातितः॥२५५॥
ततोऽहमपि सुश्रोणि कलिङ्गाधिपतिर्नृपः। लब्धा च परमा व्युष्टिः राज्यं च प्रापितं मया।
लब्धा सिद्धिर्वरारोहे मया सर्वाङ्गसुन्दरि॥२५६॥
अकामघातितो भद्रे चरता वै महौजसे।
प्राप्तोऽस्मि परमां सिद्धिं राज्यलक्ष्मीं च प्रापितः॥२५७॥
एहि कान्ते मया सार्द्धं कुरु कर्माणि सुन्दरि। ये च भागवताः श्रेष्ठा ये च नारायणप्रियाः॥२५८॥
पौरजानपदाः सर्वे श्रुत्वा तु तदनन्तरम्। लाभालाभौ परित्यज्य तेऽपि कर्माणि कारयेत्॥२५९॥
तेऽपि दीर्घेण कालेन घटमानात्मनो गतिम्। कृत्वा तु विमलं कर्म सर्वे पञ्चत्वमागताः॥२६०॥

हे राजन् देखिये, मेरे शिर में यह बाण आज भी लगा हुआ है, जिसके दोष से ही मैं रजः और तमो गुण के अधीन रहती हूँ।।२५२।।

कान्तीराज के कुल में जन्म होने पर पिता ने मुझे आपकी प्रियतम बना दिया। हे राजन्! आप सुख के साथ श्रेष्ठ सिद्धि को प्राप्त करें, आपको प्रणाम है।।२२३।।

इस प्रकार उसका वचन सुनकर पद्मनेत्र उस कलिङ्गराज ने अपनी सुन्दर हँसी हँसने वाली प्रिया से शुद्ध भावना के सहित यह मधुर वचन कहा—।।२५४।।

हे महाभागे! मैं भी तो पूर्व में एक गृध्र ही था, उसी वन में भ्रमण कर रहे उसी सोमदत्त ने मुझे भी एक बाण से मार डाला था।।२५५।।

हे सुश्रोणि! मैं भी कलिङ्ग राज्य के राजा के रूप में प्रतिष्ठित हुआ और मुझे श्रेष्ठ उपभोग तथा राज्य की प्राप्ति हुई। हे सर्वाङ्ग सुन्दरि! मुझे सिद्धि प्राप्त हुई।।२५६।।

हे भद्रे! इस महान् तेजमयी तीर्थ में घूम रहे सोमदत्त द्वारा मैं विना इच्छा के मारा गया। मरने पर मुझे श्रेष्ठ सिद्धि और राज्य प्राप्त हुआ।।२५७।।

हे सुन्दरि प्रिये! अतः अब आओ और साथ मिलकर नारायण के उन कर्मों को करो, जिसे श्रेष्ठ भगवद् भक्त और नारायण के प्रिय किया करते हैं।।२५८।।

इस तरह वे सभी नगर और देशनिवासी जन भी उन दोनों की बात सुनने के उपरान्त लाभ-हानि का विचार त्याग कर तदनुसार ही कर्म करने में संलग्न हो गये।।२५९।।

वे सब भी बहुत समय तक अपनी गति का भोग करते हुए शुद्धकर्म साधन करने के साथ मृत्यु को प्राप्त हुए।।२६०।।

श्वेतद्वीपं ततः प्राप्ताः सर्वे चैव चतुर्भुजाः। सर्वे शङ्खधराश्चैव सर्वे चायुधसंयुताः॥२६१॥
याः स्त्रियश्च वरारोहे स्तुतिमान्या महौजसः। श्वेतद्वीपे प्रमोदन्ति सर्वभोगसमन्विताः॥२६२॥
एवं ते कथिता भूमि व्युष्टिः सौकरके महत्। अकामपतिताश्चैव श्वेतद्वीपमुपागताः॥२६३॥
य एतेन विधानेन वासं तीर्थे तु कारयेत्। मरणं च विशालाक्षि श्वेतद्वीपं स गच्छति॥२६४॥
अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व वसुंधरे। स्नानाच्छाखोटके तीर्थे तत्प्राप्नोति स माधवि॥२६५॥
दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च। नन्दनं वनमाश्रित्य मोदते तत्र वै सदा॥२६६॥
ततः स्वर्गात् परिभ्रष्टो जायते विपुले कुले। मद्भक्तश्चैव जायेत एवमेतन्न संशयः॥२६७॥
पुनरन्यत् प्रवक्ष्यामि स्नातो गृध्रवटे नरः। यत्फलं समवाप्नोति स्नातमात्रः कृतोदकः॥२६८॥
नववर्षसहस्राणि नववर्षशतानि च। इन्द्रलोकं समासाद्य मोदते सह दैवतैः॥२६९॥
इन्द्रलोकात् परिभ्रष्टो मम तीर्थप्रभावतः। सर्वसङ्गं परित्यज्य मद्भक्तश्चैव जायते॥२७०॥
एतत् ते कथितं भद्रे स्नानमात्रस्य यत्फलम्। यत् त्वया पृच्छितं पूर्वं सर्वसंसारमोक्षणम्॥२७१॥

तदुपरान्त वे सभी शंख, चक्र, और सब आयुधों से युक्त होकर चार भुजाओं के सहित श्वेतद्वीप को चले गये।।२६१।।

हे सुन्दरि! वहाँ पर जो भी प्रशंसनीय स्त्रियाँ थीं, वे सब भी उन महान् तेजवान् श्वेतद्वीप में सभी भोगों से सम्पन्न होकर आनन्द मग्न हो गये।।२६२।।

हे भूमि इस प्रकार मैंने सौकरक तीर्थ में प्राप्त होने वाले महान् फलों को तुमसे बतलाया। इस प्रकार बिना इच्छा किये ही उस तीर्थ में मरे जीवों को भी किस तरह श्वेतद्वीप की प्राप्ति हुई, यह कहा गया है।२६३।

हे विशालाक्षि! जो जन इस विधान से सौकरक तीर्थ में रहते हैं या मरते हैं वे सभी श्वेतद्वीप को चले जाते हैं।।२६४।।

हे पृथ्वि! अब तुम्हें अन्य रहस्य की बात भी बतला रहा हूँ। हे माधवि! जिस प्रकार शाखोटक तीर्थ में स्नान करने से फलों की प्राप्ति होती है, उसे सुनो—।।२६५।।

वैसे शाखोटक तीर्थ में स्नान करने वाले जन दस हजार दस सौ अर्थात् ग्याहर हजार वर्षों तक नन्दन वन में रहते हुए, वे सभी सदा आनन्द प्राप्त किया करते हैं।।२६६।।

फिर वे सभी स्वर्ग से भ्रष्ट होने पर विशाल कुल में उत्पन्न होते हैं एवं मेरा भक्त ही होता है। इसमें कोई संशय नहीं करना चाहिए।।२६७।।

अब पुनः दूसरे रहस्य की बात बतला रहा हूँ। गृध्रवट तीर्थ में स्नान करने वाला मनुष्य केवल स्नान करने मात्र से और अपने पितरों को जलाञ्जलि प्रदान करने से जिस प्रकार के फल प्राप्त करते हैं, उसे सुनो—।।२६८।।

वे जीव नौ हजार नौ सौ वर्ष इन्द्रलोक में निवास करते हुए देवताओं के साथ आनन्द किया करते हैं।।२६९।।

फिर इन्द्रलोक से भ्रष्ट हो जाने पर वे मेरे तीर्थ के प्रभाव से ही सब संगों का त्याग कर मेरा भक्त हो जाया करते हैं।।२७०।।

हे भद्रे! इस प्रकार तुमने सम्पूर्ण संसार से मुक्त करने वाले जिस रहस्य को जानना चाहा था, मैंने स्नान मात्र से होने वाले उन फलों को बतलाया।।२७१।।

ततो नारायणाच्छ्रुत्वा पृथिवी संशितव्रता। उवाच मधुरं वाक्यं लोकनाथं जनार्दनम्॥२७२॥
किं तेन विकृतं कर्म येन तीर्थत्वमाप्यते। एवमाचक्ष्व तत्त्वेन रहस्यं परमुत्तमम्॥२७३॥
ततो महीवचः श्रुत्वा सर्वलोकप्रभुर्हरिः। उवाच मधुरं वाक्यं धर्मकामां वसुंधराम्॥२७४॥
शृणु तत्त्वेन मे देवि यन्मां त्वं परिपृच्छसि। तिर्यग्योनिमनुप्राप्तौ उभौ तौ गृध्रजम्बुकौ॥२७५॥
जन्मान्तरार्जितैः पुण्यैस्तीर्थस्नानजपादिभिः। महादानैश्च लभ्येत तीर्थे पञ्चत्वमर्चकैः॥२७६॥
जन्मान्तरकृतं कर्म यत् स्वल्पमपि वा बहु। तत्कदाचित् फलत्येव न तस्य परिसंक्षयः॥२७७॥
कदाचित् ससहायं वै पुण्यतीर्थादिदर्शनात्। दुर्बलं प्रबलं भूत्वा प्रबलं दुर्बलं भवेत्।
पापान्तरं समासाद्य गहना कर्मणो गतिः॥२७८॥
यदल्पमपि दृश्येत तन्महत्त्वाय कल्पते। अत एव मनुष्यत्वं प्राप्तं राजत्वमेव च।
सुगाली चैव गृध्रश्च तीर्थस्यैव प्रभावतः॥२७९॥
मरणादेव संप्राप्य क्षीणपापौ स्मृतिं पुनः। श्वेतद्वीपं ततः प्राप्तौ जानीहि त्वं वसुंधरे॥२८०॥
पुनरन्यत् प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व वसुंधरे। तीर्थं वैवस्वतं नाम आदित्यो यत्र तप्यते।
तेन तप्तं महाभागे पुत्रार्थेन यशस्विनि॥२८१॥

इस प्रकार के श्री नारायण के वचनों को सुनकर तीव्रव्रत धारण करने वाली धरणी ने लोकनाथ उस जनार्दन से मधुर वचनों में कहा—।।२७२।।

उन से ऐसा कौन-सा विशिष्ट कर्म हुआ, जिसके कारण उसे तीर्थत्व प्राप्त हुआ। इस परम श्रेष्ठ तत्त्व का वास्तविक उल्लेख आपको करना चाहिए।।२७३।।

फिर धरणी की बातों को सुनकर सर्वलोक के स्वामी श्रीहरि ने उस धर्माकांक्षिणी धरणी से कहा कि हे देवि! तुम मुझसे जो कुछ जानने हेतु पूछती हो, उसे वास्तविक रूप में एकाग्रचित्त से सुनो। तिर्यग् योनि में उत्पन्न वे दोनों गिद्ध और शृंगाली तीर्थत्व को प्राप्त करने में सफल हो गये।।२७४-२७५।।

उपासना करने वाला जीव जन्मान्तरों में स्वोपार्जित पुण्यों, तीर्थ में स्नान, और जप-पूजन आदि और महान् दान करने से तीर्थ में मृत्यु को प्राप्त करता है।।२७६।।

जन्म-जन्मान्तर में किये गये अल्प अथवा अधिक कर्म निश्चयपूर्वक कभी न कभी अवश्य फल प्रदान करने वाला होता है। यह जानना चाहिए कि किये गए कर्म का कभी भी क्षय नहीं हुआ करता है।।२७७।।

कभी-कभी पवित्र तीर्थादि के दर्शन के सहायता से दुर्बल पुण्य भी प्रबल हो जाया करता है और प्रबल पुण्य अन्य पापकर्म से युक्त होने पर दुर्बल हो जाया करता है। अतः इस तरह कर्म की गति बड़ी विलक्षण व रहस्यमयी है।।२७८।।

इस तरह जो कर्म छोटा समझ में आता है, वह बड़ा फल भी कभी देने में समर्थ हो जाया करता है। इसीलिए गीध और शृंगाली को तीर्थ के ही प्रभाव से मनुष्य योनि एवं राजा का पद प्राप्त हो सका।।२७९।।

इत तीर्थमें मृत्यु पाने से ही मनुष्यत्व और राजत्व प्राप्त कर पाप के क्षीण होने पर उन गीध और शृंगाली को पूर्वजन्म की स्मृति भी बनी रही। हे धरणि! तुम्हें यह जानना चाहिए कि उसके बाद ही उन दोनों को श्वेतद्वीप में स्थान मिला। हे वसुन्धरे! अब पुनः मैं तुम्हें दूसरे रहस्य के प्रसङ्ग कहने जा रहा हूँ। तुम उसे सुनो कि एक वैवस्वत नामक तीर्थ है, जहाँ आदित्य ने तप किया था। हे महाभागे! हे यशस्विनि!! उन्होंने वहाँ पुत्र प्राप्ति के लिए तप किया था।।२८०-२८१।।

दशवर्षसहस्राणि चान्द्रायणपरोऽभवत्। ततः सप्तसहस्राणि वायुभक्षः समाश्रितः।
ततस्तुष्टोऽस्म्यहं भद्रे आदित्यस्य महौजसः॥२८२॥
वरेण छन्दयामास आदित्यं तदनन्तरम्। विवस्वन्तं महाभागं मम कर्मपरायणम्।
एवं ब्रूहि महातेजा यत् त्वया मनसेप्सितम्॥२८३॥
ततो मम वचः श्रुत्वा कश्यपस्य सुतो बली। मधुरं स्वरमादाय प्रत्युवाच महद् वचः॥२८४॥
यदि देव प्रसन्नोऽसि एवं मे दीयतां वरः। पुत्रमिच्छामि ते देव त्वत्प्रसादेन केशव॥२८५॥
विवस्वद्वचनं श्रुत्वा वरकामस्य सुन्दरि। भाषितं च मया वाक्यं विशुद्धेनान्तरात्मना॥२८६॥
एवमेतन्महाभाग भविष्यति न संशयः। यमश्च यमुना चैव भविष्येते न संशयः॥२८७॥
एवं तस्य वरं दत्त्वा आदित्यस्य वसुंधरे। आत्मयोगप्रभावेन तत्रैवान्तरधीयत॥२८८॥
आदित्योऽपि गतो भद्रे वेश्म चैव महाधनम्। पुण्ये सौकरकं चैव कृत्वा कर्म सुदुष्करम्॥२८९॥
अष्टमेन तु भक्तेन यस्तु स्नाति वसुंधरे। दशवर्षसहस्राणि आदित्येषु प्रमोदते॥२९०॥
अथवा म्रियते तत्र तीर्थे वैवस्वते शुभे। न स गच्छति सुश्रोणि यमस्य भवनं क्वचित्॥२९१॥
एतत् ते कथितं भद्रे स्नानं तीर्थे विवस्वते। मरणे च प्रवक्ष्यामि यत्फलं शुभलोचने॥२९२॥

उस समय वे दस हजार वर्षों तक चान्द्रायण व्रत करते रहे थे। फिर सात हजार वर्षों तक वे वायुभक्षण करते रहे। हे भद्रे! फिर मैं महान् ओजस्वी आदित्य पर प्रसन्न हो सका था।।२८२।।

तत्पश्चात् मैंने महाभाग्यवान् और मेरे कर्मपरायण विवस्वान् आदित्य को वर प्रदान करने की कामना की तथा मैंने कहा कि 'हे महातेजस्वी आदित्य तुम्हारे मन की जो अभिलाषा हो, वह कहो''।।२८३।।

फिर मेरी बातों को सुनकर कश्यप के बलवान् पुत्र आदित्य ने मधुर स्वर में मुझसे इस प्रकार कहा—हे देव! यदि आप मेरे पर प्रसन्न हैं, तो मुझे इस प्रकार के वर प्रदान करें। हे देव केशव! मैं आपका कृपापात्र पुत्र चाहता हूँ।।२८४-२८५।।

हे सुन्दरि! वर की कामना करने वाले विवस्वान् की बातों को सुनकर मैंने विशुद्ध भावना से उनसे कहा कि हे महाभाग! निःसंशय ऐसा ही होगा। तुम से यम और यमुना की उत्पत्ति होगी। इसमें संशय नहीं करना चाहिए।।२८६-२८७।।

हे वसुन्धरे! इस प्रकार मैं उन आदित्य को वर प्रदान कर अपने योग के प्रभाव से वहीं अन्तर्हित हो गया।।२८८।।

हे भद्रे! आदित्य भी इसी सौकरक तीर्थ में उत्कट कर्म करने के बाद महान् धन सम्पन्न अपने गृह को चले गये।।२८९।।

हे वसुन्धरे! वैसे जो कोई जन वैवस्वत तीर्थ में आठ दिन तक व्रत धारण कर स्नान करते हैं, वे दस हजार वर्षों तक आदित्य लोक में आनन्द करते हैं।।२९०।।

अथवा हे सुश्रोणि! जो जन शुभ वैवस्वत तीर्थ में मरते हैं, वे कभी भी यमलोक में नहीं जाते हैं।।२९१।।

हे भद्रे! मैंने विवस्वान् के तीर्थ में स्नान करने का इस प्रकार का फल तुमसे कहा है। हे शुभलोचने! अब मैं तुम्हें वहाँ मरने का जो फल है, वे सब बतलाते हैं।।२९२।।

कृत्वा त्वनशनं चैव दिनानि दश पञ्च च। सर्वसङ्गं परित्यज्य मम लोकं स गच्छति॥२९३॥
एतत् ते कथितं भद्रे तीर्थे वैवस्वते फलम्। यथावृत्तं पुरा तत्र क्षेत्रे सौकरके मम॥२९४॥
आख्यानानां महाख्यानं क्रियाणां च महाक्रिया।
एष जप्यः प्रमाणश्च सन्ध्योपासनमेव च।
एष वेदाश्च मन्त्राश्च सर्वं भागवतप्रियम्॥२९५॥
पिशुनाय न दातव्यं मूर्खे भागवते न तु। न च वैश्याय शूद्राय ये न जानन्ति मां परम्॥२९६॥
पण्डितानां सभामध्ये ये च भागवता भुवि। पठेद् ब्राह्मणमध्ये तु ये च वेदविदां वराः॥२९७॥
दीक्षितायैव दातव्यं ये च शास्त्राणि जानते। एतत् ते कथितं भद्रे पुण्यं सौकरके महत्॥२९८॥
य एतत् पठते सुभ्रु कल्यमुत्थाय नित्यशः। तेन द्वादशवर्षाणि चिन्तितोऽहं न संशयः।
न स जायेत गर्भेषु संसारं च न गच्छति॥२९९॥
पठितं ह्येकमध्यायं तारयेत कुलान् दश। सर्वसंसारमोक्षाय किमन्यत् परिपृच्छसि॥३००॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥१३७॥

यहाँ जो जन पन्द्रह दिनों तक अनशन याने उपवास कर सभी सङ्गों का सर्वथा त्याग कर मर जाते हैं, वे सब मेरे लोक में जाते हैं।।२९३।।

हे भद्रे! मेरे द्वारा वैवस्वत तीर्थ में मरने का फल उसी तरह तुमको बतला दिया है, जिस तरह कि प्राचीन काल में मेरे सौकरक तीर्थ में घटित हुआ है।।२९४।।

इस उपाख्यान कथाओं में महाकथा और क्रियाओं में महाक्रिया है। यह जप करने योग्य, प्रमाण स्वरूप और सन्ध्योपासना है। यह वेद मन्त्रों के समान और सभी भगवद् भक्तों के लिए परमप्रिय है।।२९५।।

किसी भी पिशुन, मूर्ख भगवद् भक्त वैश्य, शूद्र और मुझे श्रेष्ठ न मानने वालों को कथमपि इसे नहीं बतलाया जाना चाहिए।।२९६।।

वेदज्ञों में श्रेष्ठ एवं भगवद् भक्तों को, पण्डितों की सभा में अथवा ब्राह्मणों के मध्य इसका पाठ अवश्य करना चाहिए।।२९७।।

जो जन दीक्षित और शास्त्रज्ञ हों, उसे ही इसका ज्ञान देना उचित है। हे भद्रे! मैंने तुमको सौकरक तीर्थ में घटित यह महान् पुण्य बतलाया है।।२९८।।

हे सुभ्रु! जो जन इसका पाठ नित्य प्रातः उठकर करेंगे, वे निःसंशय बारह वर्षों तक मेरा चिन्तन करने का फल प्राप्त कर ले सकेंगे। ऐसे जन कभी गर्भ में नहीं पहुँचता और संसार में उसका जन्म नहीं होता।।२९९।।

इसके एक अध्याय का पाठ पाठक के दस पीढ़ियों को तार देता है और वह सारे संसार से मुक्त हो जाता है। अब तुम आगे और क्या पूछना चाहती हो?।।३००।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में चक्रादि नाना तीर्थ, शैकरक महात्म्य में सोम की तपस्या, विष्णु का वरदान, गीध शृंगाली उपाख्यान और आदित्य को वरदान नामक एक सौ सैंतीसवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१३७॥

❖❖❖

अष्टत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

अथ विष्णुमन्दिरलेपनादिफलम्

सूत उवाच

एतत् पुण्यं ततः श्रुत्वा रम्ये सौकरके तथा। गुणस्तवं च माहात्म्यं जात्यानां परिवर्त्तनम्॥१॥
ततः कमलपत्राक्षी सर्वधर्मविदां वरा। विस्मयं परमं गत्वा निवृत्तेनान्तरात्मना।
पुनः प्रपच्छ तं देवं विस्मयाविष्टमानसा॥२॥
अहो तीर्थस्य माहात्म्यं क्षेत्रे सौकरके तव। अकामान्म्रियमाणस्य मानुषत्वमजायत॥३॥
किं चान्यं परं देव वृत्तं सौकरके पुनः। तन्ममाचक्ष्च तत्त्वेन परं कौतूहलं हि मे॥४॥
लिप्यमानस्य किं पुण्यं गोमयस्य च किं फलम्। सलिलं दीयमानस्य पुण्यं कीदृशमुच्यते॥५॥
यो भुवं मार्जयेद् देव तव कर्मपरायणः। मनसा हृष्टतुष्टेन तस्य पुण्यं तु किं भवेत्॥६॥
गीयमाने च किं पुण्यं वाद्यमाने च किं फलम्।
नृत्यतः किं भवेत् पुण्यं जाग्रमाणस्य किं फलम्॥७॥

अध्याय–१३८

विष्णु मन्दिर में लेपन, मार्जन, गायन आदि का फल, आदित्य तीर्थ और खयरीठोपाख्या

सूत ने कहा कि इस प्रकार रमणीय सौकरक तीर्थ में घटित हुए इस पुण्य प्राप्ति, गुण स्तुति, माहात्म्य, योनियों का परिवर्तन आदि प्रकार की घटनाओं को सुनकर कमलपत्राक्षि और सर्वधर्मज्ञों में श्रेष्ठ धरणी अपने विरक्त भाव से महान् विस्मय करने लगी। इस तरह विस्मयान्वित चित्त वाली धरणी ने उन देव नारायण से पुनः पूछने लगी कि—।।१-२।।

अहा! आपके सौकरक क्षेत्र में स्थित तीर्थ का किस प्रकार का माहात्म्य है। वहाँ विना इच्छा के भी मरने पर जीव को मनुष्यत्व प्राप्त हो जाया करता है।।३।।

हे देव! सौकरक क्षेत्र में कौन अन्य श्रेष्ठ घटना हुई, उसे मुझसे कहें। इस प्रसङ्ग में मुझको महान् उत्सुकता है।।४।।

चूँकि वहाँ भूमि को गोबर से लीपने का कैसा पुण्य लाभ होता है? और वहाँ जल द्वारा भूमि को सींचने से कैसा पुण्य मिलता है।।५।।

हे देव! आपके कर्मपरायण भक्त प्रसन्न और सन्तुष्ट चित से वहाँ भूमि को झाड़ू से झाड़कर स्वच्छ करता है, तो उसको कैसा पुण्य मिलता है?।।६।।

उस क्षेत्र में गीत गाने से कैसा पुण्य मिलता है और वाद्य बजाने से क्या पुण्य लाभ होता है? तथा वहाँ नृत्य करने से कैसा पुण्य होता है और वहाँ पर जागरण करने का क्या फल होता है।।७।।

उपाहार्येण पुष्येण चान्येन कर्मणेन च। कां गतिं ते प्रपद्यन्ते नानापुष्पोपहारिणः॥८॥
एतन्मे परमं गुह्यं मम यद्धृति वर्त्तते। तव भक्तसुखार्थाय तद् भवान् वक्तुमर्हसि॥९॥
ततो मह्या वचः श्रुत्वा सर्वदेवमयो हरिः। उवाच मधुरं वाक्यं धर्मकामां वसुंधराम्॥१०॥
शृणु सुन्दरि तत्त्वेन यन्मां त्वं परिपृच्छसि। सर्वं ते कथयिष्यामि पुण्यं गुह्यं सुखावहम्॥११॥
तस्मिन् सौकरके चैव शरदि खञ्जरीटकः। कीटांश्चैव पतङ्गांश्च भक्षितुं स च गृह्णति॥१२॥
आहारस्य च दोषेण ततोऽजीर्णेन पीडितः। ततो विह्वलनिश्चेष्टो मरणे कृतनिश्चयः।
अजीर्णस्य तु दोषेण स तु पञ्चत्वमागतः॥१३॥
खञ्जरीटं च तं दृष्ट्वा बालकाः क्रीडितुं गताः। गृह्य क्रीडावसानेन ते रमन्ति यथा तथा॥१४॥
अन्योन्यं तु ततो बालाः पक्षानेव च जानतः। मम भवेति चोच्यन्ते तेषां वैजायते कलिः॥१५॥
तत एकेन बालेन गृहीत्वा खञ्जरीटकम्। युष्माकं नाभवत् तत्र प्राक्षिपज्जाह्नवीजले॥१६॥
तत आदित्यतीर्थेषु यन्मया पूर्वकीर्त्तितम्। पतितः सलिले गाङ्गे जलप्रक्लिन्नपक्षकः॥१७॥
वैश्यस्य तु गृहे जातो अनेकक्रतुयाजिनः। धनरत्नसमृद्धे तु रूपवान् गुणवान् शुचिः।
विशुद्धश्च पवित्रश्च मद्भक्तश्च वसुंधरे॥१८॥

वहाँ पर विविध प्रकार के पुष्पहार प्रदान करने, पुष्प चढ़ाने से और अन्यान्य कर्मों को करने से कैसा फल प्राप्त होता है?॥८॥

इस प्रकार मेरे हृदय में कई श्रेष्ठ रहस्य विद्यमान हैं, उनको आप अपने भक्तों के कल्याण हेतु मुझसे कहना चाहिए॥९॥

धरणी की बातों को ध्यान से सुनकर सर्वदेवमय श्रीहरि ने धर्माकांक्षिणी पृथ्वी से मधुर स्वरों में कहने लगे—॥१०॥

हे सुन्दरि! तुम मुझसे जिन सब बातों को पूछ रही हो, उसे तत्त्वतः सुनो। मेरे द्वारा तुमको सुखी करने वाला और पवित्र सभी रहस्यों को कहा जाता है॥११॥

किसी काल में उस सौकरक तीर्थ स्थल में एक खञ्जरीठ नामक पक्षी था। वह प्रायः शरद् ऋतु काल में अपने आहार हेतु कीड़ों और पतङ्गों को पकड़ा करता था॥१२॥

इस आहार दोषवश वह एक बार अजीर्ण जैसा रोग से पीड़ित हो गया। इससे ही व्याकुल और निश्चेष्ट होने पर उसने मरने का निश्चय कर लिया। फिर वह उस अजीर्ण रोग के प्रकोप से मर भी गया॥१३॥

इस प्रकार से उस मरे खञ्जरीट को देखकर खेल रहे बच्चे खेल की समाप्ति पर उसे लेकर जिस-तिस प्रकार खेल करने में लग गये॥१४॥

फिर वे लड़के परस्पर ज्ञानपूर्वक अनेक समूहों में बँट गये। वे परस्पर कहने लग गये कि 'यह मेरा है'। इस पर उनमें विवाद उत्पन्न हो गया॥१५॥

फिर एक लड़के ने खञ्जरीट को उठाकर कहा कि 'यह तुम सबको नहीं ही मिलेगा' इस प्रकार से कहते हुए उसे गङ्गाजल में फेंक दिया॥१६॥

फिर मेरे द्वारा पूर्व में कहे हुए 'आदित्य तीर्थ' के गङ्गाजल में उसे फेंका गया और जल में भींगे पंखों

अथ तं जातमात्रं वै वर्षा गच्छन्ति द्वादश। ततो मातापितुश्चैव स बालः प्रत्यभाषत॥१९॥
ततो ह्येकमनाश्चिन्त्य यन्मया हृदि वर्त्तते। मत्प्रियं यदिजानीत एको मे दीयतां वरः॥२०॥
न चाहं वारणीयो वै पित्रा मात्रा कदाचन। सत्यं शपामि गुरुणा यथा ननु कृतं भवेत्॥२१॥
पुत्रस्य वचनं श्रुत्वा दम्पती चोभयं तथा। उवाच च शुभं वाक्यं बालं कमललोचनम्॥२२॥
यद् यत् त्वं वयसे वत्स यत्त्वया हृदि वर्त्तते। सर्वं तं कारयिष्याम एवमेतन्न संशयः॥२३॥
विंशद् गावः सहस्त्राणि सर्वांश्च शुभदोहनाः। यत्र यद् रोचते पुत्र ददाहि त्वमवारितः॥२४॥
पुनरन्यं प्रवक्ष्याव आवयोः शृणु पुत्रक। वैश्या वै वाणिकर्माणि वाणिजं किं भविष्यति।
पुत्र मित्राणि वर्धन्ते पृष्ठतं सह क्रीडितम्॥२५॥
तत् कुरुष्व यथान्यायं मित्रेभ्यो दीयतां धनम्। धनधान्यानि रत्नानि देहि पुत्र न वारितः॥२६॥
कन्या वै रमणीयाश्च स्वजातीनि शुभानि च। आनयिष्याव भद्रं ते उद्वाहेन क्रमेण च॥२७॥
यदिच्छसि पुनश्चान्यं यज यज्ञैर्हि पुत्रक। विधिना पूर्वदृष्टेन वैश्या येन यजन्ति च॥२८॥

वाला खञ्जरीट हे पृथ्वि! अनेक यज्ञ करने वाले धन और रत्नों से समृद्ध वैश्य के घर में रूप और गुण से युक्त पवित्र, विशुद्ध और मेरे भक्त पुरुष के रूप में उत्पन्न हुआ।।१७-१८।।

इस प्रकार उसके जन्म से बारह वर्ष बीत गए। फिर उस बालक ने माता और पिता से कहा—आप दोनों एकनिष्ठ चित्त से निश्चयपूर्वक मेरा प्रिय करने की इच्छा से मेरे हृदय में जो भी बात है, वह मुझे वर के रूप में प्रदान करें।।१९-२०।।

वैसे माता और पिता को मुझे नहीं टोकना उचित है। 'मैं सत्यपूर्वक शपथ लेता हूँ, जिससे कही गयी बात को गुरुजन को निश्चयपूर्वक ही पूर्ण करना चाहिए।।२१।।

अपने पुत्र की बात सुनकर पति और पत्नि दोनों ने अपने कमलनेत्र बालक से शुभ वचन कहा—हे पुत्र! तुम जो कहोगे और तुम्हारे हृदय में जो कुछ विद्यमान है, उन सभी को हम दोनों पूर्ण करेंगे। इसमें संशय नहीं करना चाहिए।।२२-२३।।

हे पुत्र! तुम विना किसी बाधा का सभी दूध प्रदान करने वाली बीस हजार गायें जहाँ चाहो, जिसको चाहो, उसे दान करो।।२४।।

हे पुत्र! इसी समय हम दोनों तुमसे पुनः अन्यान्य बातें करते हैं, उसे सुनो। वैश्यजन व्यापार कर्म किया करते हैं। उनके व्यापार का क्या होगा? हे पुत्र! तुम्हारे अनुगामी और साथ-साथ खेलने वाले मित्रों की वृद्धि करो।।२५।।

यह सब कार्य तुम यथोचित विधि से करो। मित्रों को धन दो। हे पुत्र! तुम धन, धान्य और रत्नों का दान करो। इसमें भी तुम्हें कोई बाधा नहीं है।।२६।।

तुम चाहो तो हम दोनों विवाह पद्धति से तुम्हारे लिए अपनी ही जाति की सुन्दर और कल्याणमयी कन्यायें ला सकते हैं।।२७।।

हे पुत्र! पहले देखे गए विधि से वैश्यजन जैसे यज्ञ करते हैं, वैसे ही अन्य कुछ तुम करना चाहो, तो कर सकते हो।।२८।।

अष्टौ संपूर्णधुर्याणां हलानां तावतां शतम्। वैश्यकर्मण्युपादाय किं पुनः कृषिमिच्छसि॥२९॥
यावन्तमिव भाषन्ति अतिथीन् भोजयिष्यसि।
यावत् भोजनतृप्तान् वा द्विजानिच्छसि तर्पितुम्।
सर्वं निजेच्छया पुत्र कर्त्तुमर्हसि सांप्रतम्॥३०॥
पितृमातृवचः श्रुत्वा स बालो धर्मसंश्रुतः। उभौ च चरणौ गृह्य पितामात्रोः पुनर्ब्रवीत्॥३१॥
गोप्रदाने न मे कार्यं मित्रं चापि न चिन्तितम्।
कन्यालाभे न चेच्छाऽस्ति नैव यज्ञफले तथा॥३२॥
नाहं वाणिज्यमिच्छामि कृषिगोरक्षमेव च। न च सर्वातिथित्वं वै मम चित्ते प्रसज्जति॥३३॥
एकं मे परमं गुह्यं यन्ममेच्छा प्रवर्त्तते। चिन्ता नारायणं क्षेत्रं गन्तुं सौकरकं प्रति॥३४॥
तः पुत्रवचः श्रुत्वा मम कर्मपरायणः। करुणं परिदेवन्तौ रुदन्तावुभयोस्तथा॥३५॥
अद्य द्वादशवर्षाणि तव जातस्य पुत्रक। किमिदं चिन्तितं वत्स त्वया नारायणाश्रयम्॥३६॥
चिन्तयिष्यसि भद्रं ते यदा तत्प्राप्नुया वयः। अद्यापि भाजनं गृह्य धावमानाऽस्मि पृष्ठतः॥३७॥

क्या तुम वैश्यकर्म अंगीकार कर आठ श्रेष्ठ बैलों से चलने वाले सौ हलों से कृषिकर्म करना चाहते हो?।।२९।।

तुम जितने अतिथियों को चाहों, उन्हें भोजन करा सकते हो। अथवा जितने ब्राह्मणों को तुम भोजन से संतुष्ट करना चाहो, उन्हें संतुष्ट कर सकते हो। हे पुत्र! अब तुम अभी से अपनी इच्छानुसार सब कर्म कर सकते हो।।३०।।

इस प्रकार से अपनी माता और पिता की बातों को सुनकर उस धर्मज्ञ बालक ने अपने माता-पिता के दोनों चरणों को पकड़ कर कहा—।।३१।।

वैसे मुझे न गोदान करना है, न मुझे मित्रों की चिन्ता है। न मुझे कन्या ही पाने की इच्छा है और न तो यज्ञ फल प्राप्ति की ही कामना है।।३२।।

वैसे ही मुझे न व्यापार, खेती या गोदान करने की ही कामना है। न मेरे चित्त में सब वर्णों के अतिथियों का सत्कार करने की ही कामना है।।३३।।

केवल मेरा एकमात्र रहस्यात्मक इच्छा है, जिसे पूरा करना है। इसके लिए मुझे नारायण के सौकरक नाम के तीर्थ स्थान में जाना आवश्यक है।।३४।।

इस प्रकार अपने पुत्र के कर्मपरायण युक्त बातों को सुनकर उनके माता-पिता ने दीनतापूर्वक रोते हुए कहा कि—।।३५।।

हे पुत्र! तुम्हारा जन्म से अब तक मात्र बारह वर्ष ही तो हुए हैं। हे वत्स! अतः तुमने अभी ही नारायण के आश्रय में जाने का विचार क्यों कर लिया।।३६।।

वैसे जब तुम्हारी अवस्था तदनुरूप हो जाय, तब तुम इस प्रकार के शुभ विचार को पूरा करना। हम तो आज भी तुम्हारे पीछे तुम्हें खिलाने हेतु पात्र लेकर दौड़ा करते हैं।।३७।।

किमिदं चिन्तितं वत्स गमने सौकरं प्रति। अद्यापि ते न पश्यन्ति फलं दत्तं महौजसम्॥३८॥
किमिदं चिन्तितं वत्स वेलातिक्रमभोजने। अकस्माद् बुद्धिरत्पन्ना क्षेत्रं नारायणं प्रति॥३९॥
अद्यापि तौ स्तनौ मह्यं प्रस्नुतस्तु दिवानिशम्। पुत्र त्वत्स्पर्शनाशाय किमेतच्चिन्तितं त्वया॥४०॥
रात्रौ सुप्तोऽसि वत्स त्वं शय्यासु परिवर्त्तितः। अम्बेति भाषसेऽद्यापि कथमेतद् विचिन्त्यसे॥४१॥
स्पृशन्ति तव नार्योऽ क्रीडमानास्तु पुत्रकत। पुरुषाश्च विशालाक्ष तव रूपेण विस्मिताः॥४२॥
अप्रियं नोक्तपूर्वं मेऽसंतुष्टेनापि पुत्रक। कस्य दोषापराधेन चिन्तितं गमनं तव॥४३॥
अपराधं न विद्येत पुत्र क्षेत्रगृहेष्वपि। वस्तुं स्वजनवत् पुत्र परुषं नैव भाषितम्॥४४॥
रुष्टे वा त्वयि पुत्रे ह मुच्यतेऽपि च यष्टिकः। पुत्र हन्तुं न शक्नोमि त्वया वादाप्रपीडिता॥४५॥
ततो मातुर्वचः श्रुत्वा स वैश्यकुलनन्दनः। उवाच मधुरं वाक्यं जननीं संशितव्रतः॥४६॥
उषितोऽस्मि त्वदङ्गेषु अन्धे गर्भेशयस्तथा। क्रीडितोऽस्मि यथान्यायं तवोत्सङ्गे यशविनि॥४७॥
स्तनौ ह्येतौ मया पोतौ ललितेन विजृम्भितौ। अङ्कं तव समारुह्य पांशुभिर्गात्रगुण्ठितः॥४८॥

हे वत्स! इस तरह सौकरक तीर्थ क्षेत्र में जाने का तुम्हारा विचार कैसे हो गया। अभी तो मैं तुमको कोई महान् श्रेष्ठ फल भी नहीं प्रदान कर सका हूँ।।३८।।

हे वत्स! वैसे अभी भोजन का समय बीत रहा है। इसी समय तुमने यह किस प्रकार का विचार करने लगा है। नारायण क्षेत्र के प्रति तुमको क्यों अचानक ऐसी बुद्धि उत्पन्न हो गई।।३९।।

आज भी हमारे दोनों स्तन तुम्हारे स्पर्श हेतु दिनरात श्रवित हुआ करते हैं। तुमने यह कैसा विचित्र विचार कर लिया है?।।४०।।

हे वत्स! तुम रात्रि में इस समय भी शयन करते समय शय्या बदलते हुए माँ, माँ!! किया करते हो, अतः इस समय तुम ऐसी बात क्यों कर रहे हो?।।४१।।

हे पुत्र! इस समय क्रीडारत स्त्रियाँ भी तुम्हें निस्संकोच स्पर्श करती हैं। हे विशालाक्षपुत्र! पुरुषजन भी तुम्हारे रूप से विस्मित हुआ करते हैं।।४२।।

हे पुत्र! असन्तुष्ट होकर भी तुमने मुझसे पहले कुछ नहीं कहा। किसके दोष और अपराध के वश तुमने यहाँ से सौकरक तीर्थ जाने का विचार बना लिया।।४३।।

हे पुत्र! पुत्र, क्षेत्र और गृह में कोई अपराध नहीं रहता। स्वजन के सदृश तुमने कोई कठोर बात नहीं कही है।।४४।।

हे पुत्र! विवाद होने पर भी दुःख का अनुभव नहीं करती हुई मैं तुम्हारे रूष्ट होने या दण्ड चलाने पर भी तुम्हें नहीं मार सकती।।४५।।

इस प्रकार अपनी माता की बात सुनकर तीव्रव्रत धारण करने वाले उस वैश्यंकुल के पुत्र ने माता से मीठे स्वर में यह वचन कहा—।।४६।।

हे यशस्विनि! आपके शरीर के भीतर अन्धकार पूर्ण गर्भ में शयन करता हुआ मैं स्थित रहा हूँ तथा आपकी गोद में मैंने यथोचित रीति से क्रीड़ा की है।।४७।।

धूलधूसरित शरीर वाले मैंने आपकी गोद में बैठकर प्रेम से बढ़े हुए आपके इन स्तनों का सेवन किया है।।४८।।

अम्ब मा चैव कारुण्यं कुरु ते यत् सुतोन्मुखम्। मुञ्च पुत्रकृतं शोकं न मां शोचितुमर्हसि॥४९॥
आयान्ति च पुनर्यान्ति गता गच्छन्ति चापरे। दृश्यन्ते च पुनर्नष्टा न दृश्यन्ते पुनः क्वचित्॥५०॥
वतो जातफाः क्व संबन्धमलं त्वं च पिता च मे। इमां योनिमनुप्राप्तो घोरसंसारसागरम्॥५१॥
मातापितृसहस्त्राणि पुत्रदारशतानि च। जन्मजन्मनि वर्त्तन्ते कुतस्ते कस्य वा वयम्।
एवं चिन्तां समासाद्य अम्ब मा परिशोचसि॥५२॥
एवं श्रुत्वा पिता माताविस्मयात् पुनरूचतुः। अहो बत महद् गुह्य किमेतत् तात कथ्यताम्॥५३॥
एतद् वचनमाकर्ण्य स वैश्यकुलबालकः। उवाच मधुरं वक्यं जननीं पितरं तथा॥५४॥
यदि श्रुतेन वै कार्यं गुह्येन परिनिश्चयात्। तन्मां प्रक्ष्यति ततो वै गत्वा सौकरकं प्रति॥५५॥
अम्बा च जननी मह्यं कुक्षिणा येन धारितः।
तात सार्धं तेन याम क्षेत्रं सौकरकं प्रति॥५६॥
तत्राहं कथयिष्यामि मम गुह्यं महौजसम्। सूर्यतीर्थं समासाद्य यत् तात परिपृच्छसि॥५७॥
वाढमित्येव तं पुत्रं दम्पती परिभाषितौ। गमने कृतसंकल्पौ ततः सौकरकं प्रति॥५८॥

हे माँ! पुत्र मोह से उत्पन्न होने वाली करुणा का अनुभव मत करो। पुत्र मोह से होने वाला शोक भी मत करो। मेरी चिन्ता करना, त्याग दो।।४९।।

इस संसार में लोग आते हैं, फिर चले जाते हैं, फिर दूसरे-दूसरे गये हुए लोग आ जाते हैं। नष्ट हुई वस्तुऐं भी पुनः दीख जाया करती हैं और कभी भी नहीं भी दिखते हैं।।५०।।

ये जीव कहाँ से उत्पन्न होते हैं। इसका कहाँ पर सम्बन्ध होता है। आप और मेरे पिता मेरे लिए निरर्थक है। इस योनि में आकर घोर संसार सागर में पड़ा हूँ।।५१।।

चूँकि प्रत्येक जीव का जन्म जन्मान्तरों में हजारों हजार माता, पिता, सैकड़ों की संख्या में पुत्र एक पत्नियाँ भीं रही होंगी। वे सब कहाँ से आये कहाँ गये अथवा हम लोग किसके हैं। हे मातः! इस प्रकार के विचार का तुम शोक न करो, अच्छा हो।।५२।।

इस प्रकार के उनकी बातों को सुनकर उसके माता-पिता ने फिर से चकित होकर कहा कि हे तात! कहो यह तुम्हारा रहस्य किस प्रकार का है?।।५३।।

ऐसे कहे गए वचन को सुनकर उस वैश्यकुल नन्दन ने अपने माता-पिता से मधुर वाणी में कहा— यदि आप दोनों मेरी उन रहस्य की बातों को सुनने का निश्चय कर लिया हो, तो हे पिता! आप दोनों मेरे साथ सौकरक तीर्थ में चलकर मुझसे रहस्य को पूछें।।५४-५५।।

मुझे अपने पेट में धारण करने वाली अपनी माता और पिता के साथ मैं सौकरक तीर्थ में जाना पसन्द करूँगा।।५६।।

इस प्रकार मैं सौकरक तीर्थ क्षेत्र के सूर्य तीर्थ में पहुँचकर पिता ने जो पूछा है, उस महान् ओजस्वी अपने रहस्य की बात को अवश्य बतलाऊँगा।।५७।।

फिर पति और पत्नि ने अपने उस पुत्र से कहा कि 'अच्छा'। तत्पश्चात् उन दोनों ने सौकरक तीर्थ में जाने का संकल्प कर लिया।।५८।।

आद्यपक्षेण वै पुत्र कृतकृत्यो भविष्यति। सर्वद्रव्यसमायुक्तो गमने सौकरं प्रति॥५९॥
ततः स पद्मपत्राक्षः आभीराणां जनेश्वरः। गावो विंशत्सहस्राणि प्रेषयत्यग्रतो द्रुतम्॥६०॥
अग्रे ययुस्ता गाः सर्वा द्रव्येण च समायुताः।
यच्च किञ्चिद् गृहे वाऽस्ति कृतं नारायणं प्रति॥६१॥
ततः पूर्वार्द्धमासेन माघमासे त्रयोदशीम्। सर्वं स्वजनमामन्त्र्य संबन्धं च यथाविधि॥६२॥
मुहूर्तेन तु शुभ्रेण गमनं कुरुते ततः। स्नात्वा च कृतशौचाय नारायणमुदावहम्॥६३॥
तेऽथ दीर्घेण कालेन मम भक्त्या व्यवस्थिताः। वैशाखस्य तु द्वादश्यां मम क्षेत्रमुपागताः॥६४॥
गङ्गायां स्नान्ति वै तत्र क्षौमवस्त्रविभूषिताः। गावो विंशसहस्राणि ममैवमुपसाधयेत्॥६५॥
तत्र भङ्गुरसो नाम मम कर्मपरायणः। तेन ता गा गृहीता वै विधिदृष्टेन कर्मणा॥६६॥
मत्तः स प्रददौ तस्य विंशा गावो महाधनाः। मङ्गल्याश्च पवित्राश्च सर्वाश्च वरदोहनाः॥६७॥
प्रददौ धनरत्नानि नित्यमेव दिने दिने। मोदते सह पुत्रेण भार्यया स्वजनेन च॥६८॥
एवं तु वसतस्तस्य वर्षाकाल उपस्थितः। प्रावृडुपस्थिता तत्र सर्वसस्यप्रवर्धनी॥६९॥

हे पुत्र! इस महीने के प्रथम पक्ष में तुम कृतकृत्य हो जाओगे। सभी द्रव्यों से सम्पन्न होकर हम दोनों सौकरक तीर्थ की ओर चल सकेंगे।।५९।।

फिर उस कमलनेत्र आभीर के राजा ने बीस हजार गायों को शीघ्र पहले ही भेज दिया।।६०।।

इस प्रकार द्रव्य और गायों को आगे भेज दी गई। तत्पश्चात् उसके घर में शेष जो कुछ वस्तुएँ अवशिष्ट रह गईं, उन्हें वे श्री नारायण प्रभु को समर्पित कर दिया।।६१।।

तत्पश्चात् माघमास के पूर्वार्द्ध याने कृष्णपक्ष में त्रयोदशी तिथि को यथोचित रूप से अपने समस्त स्वजनों और कुटुम्बियों को आमन्त्रित कर लिया।।६२।।

फिर उन लोगों ने स्नान और शौच से निवृत्त होने के पश्चात् शुभ मुहूर्त में श्री नारायण को प्रसन्न करने वाला यात्रा का आरम्भ कर दिया।।६३।।

इस प्रकार वे यात्रा करते हुए बहुत काल उपरान्त मेरी भक्ति भावना से सम्पन्न होकर वैशाख द्वादशी को मेरे क्षेत्र में आ पहुँचे।।६४।।

फिर गङ्गा में स्नान करने के बाद रेशमी वस्त्रों से विभूषित होकर अपने बीस हजार गायों को भी मुझे ही वे समर्पित कर दिये।।६५।।

उस समय उसी क्षेत्र में एक मेरा भङ्गुरस नाम का कर्मपरायण भक्त ब्राह्मण रहते थे, उसी ने यथोचित रीति से उन गायों को ग्रहण किया।।६६।।

उसने भी उस ब्राह्मण को मुझे लक्ष्य कर अपने महाधन के साथ बीस हजार गायें प्रदान कर दिया। वे गायें सभी मंगलमयी, पवित्र और श्रेष्ठ दूध प्रदान करने वाली थीं।।६७।।

इस प्रकार उसने नित्य धन और रत्नों का दान करते हुए पत्नी, पुत्र और साथ आये स्वजनों के सहित आनन्द से समय व्यतीत करने लगा।।६८।।

उसके इस प्रकार से रहते हुए वर्षा ऋतु का काल आ गया। वहाँ भी सभी अनाजों को समृद्ध करने वाली वर्षा ऋतु विद्यमान हो गयी।।६९।।

पुष्पितानि कदम्बानि कुटजार्जनकानि च। एवं दुःखसमुत्पन्नाः स्त्रियो या रहिताः प्रियैः॥७०॥
गर्जतां गर्जतां चैव धारापातनिपातिताः। मेघाः सविद्युतश्चैव बलाकाङ्गदभूषिताः॥७१॥
मयूराणां च निर्घोषैर्बलाकानां महास्वनैः। कुटजार्जुनगन्धाश्च कदम्बार्जुनपादपाः॥७२॥
वाताः प्रवान्ति ते तत्र शिखीनां च सुखावहाः।
शोकेन कामिनीनां च भर्त्रा विरहिताश्च याः॥७३॥
एवं स गच्छते कालो मेघदुन्दुभिनादितः। शरत्कालमनुप्राप्तमगस्तिरुदितो महान्॥७४॥
तडागानि प्रसन्नानि भूषिता कुमुदोत्पलैः। पद्मषण्डानि रम्याणि पुष्पितानि यथोचिताः॥७५॥
आवान्ति सुसुखा वाताः कह्लारसुखशीतलाः। सप्तपर्णविमिश्रेण शीतलाः कामिवल्लभाः॥७६॥
एवं शरदि निर्वृत्ते कौमुद्ये समुपागते। स तस्य मासे सुश्रोणि शुक्लपक्षान्तरे तदा॥७७॥
एकादश्यां ततः सुभ्रु स्नातौ क्षौमविभूषितौ। उभौ तौ दम्पती तत्र पुत्र मेवमुवाच तौ॥७८॥
उषिताः पुत्र षण्मासान् रहः श्वो द्वादशी भवेत्।
किन्नो न वक्ष्यसे गुह्यं येन वै वारिता वयम्॥७९॥

जिस कारण उस समय वहाँ पर कुटज, कदम्ब और अर्जुन के वृक्ष भी फूलने लग गये। इस प्रकार पतियों से रहित स्त्रियाँ भी दु;ख पीड़ित होने लग गयी।।७०।।

बलाका याने पक्षी स्वरूप अंगद से अलंकृत मेघ वारम्वार गरजने लगे एवं उनसे धारा प्रवाह वृष्टि भी होने लगी।।७१।।

मोरों की कूका ध्वनि और हंसो के महास्वर से सब जगह रमणीयता छा-सी गई। कुटज और अर्जुन वृक्ष के पुष्पों का सुगन्ध भी फैलने लग गयी। कदम्ब और अर्जुन को वृक्ष सविधि शोभा पा रही थी।।७२।।

वहाँ पर भौंरों को सुख प्रदान करने वाला और अपने पतियों से दूर रहने वाली स्त्रियों को पीड़ित करने वाला वायु बहने लगा था।।७३।।

इस तरह मेघ स्वरूपी दुन्दुभि से निनादित वह काल व्यतीत हो रहा था। फिर लगे हाथ शरद् ऋतु भी आ गई। फिर अगस्त नक्षत्र भी उदित हो गये।।७४।।

तालाब, स्वच्छ और कुमुद तथा कमल पुष्पों से शोभा पा रहा था। यथाविधि सुन्दर कमलों के समूह भी खिलने लग गये थे।।७५।।

फिर वातावरण सप्तपर्ण और कमल पुष्पों के सुगन्ध से सम्पन्न और सुख प्रदान करने वाला शीतल तथा रसिकों को प्रिय लगने वाली हवायें भी चलने लगीं।।७६।।

इस प्रकार शरद् ऋतु के अन्त होते-होते कार्त्तिक मास का काल आ गया। हे सुश्रोणि! उस समय उस मास के शुक्लपक्ष में हे सुभ्रु! एकादशी को उन दोनों पति और पत्नि ने स्नान करने के बाद रेशमी वस्त्र धारण कर अपने पुत्र से इस प्रकार कहा कि—।।७७-७८।।

हे पुत्र! हम सब छः माह से यहाँ रहते आ रहे हैं। कल द्वादशी आ जाएगी। क्या हमें तुम वह रहस्य की बात नहीं बतलाओगे, जिससे हम पृथक् हो रहे हैं?।।७९।।

पित्रोस्तु वचनं श्रुत्वा स पुत्रो धर्मनिष्ठितः। उवाच मधुरं वाक्यं मरणे कृतनिश्चयः॥८०॥
एवमेतन्महाभाग यत् त्वया परिभाषितम्। कल्यं ते कथयिष्यामि इदं गुह्यं महौजसम्॥८१॥
एषा वै द्वादशी तात प्रभोर्नारायणप्रिया। मङ्गला च विचित्रा च विष्णुभक्तसुखावहा॥८२॥
ददन्ते येऽपि हृष्टात्मा कौमुद्यायां तु द्वादशीम्। दीक्षितास्ते योगिकुले विष्णोश्च परिवर्द्धते॥८३॥
तेन दानप्रभावेन विष्णुकर्मपरायणाः। तरन्ति विपुलं तात घोरं संसारसागरम्।
एवं कथयतां तेषां प्रभाता रजनी शुभा॥८४॥
ततः संध्यामपक्रान्तेऽभ्युदिते सूर्यमण्डले। शुचिर्भूत्त्वा यथान्यायं क्षोमवस्त्रविभूषितः॥८५॥
प्रणम्य शिरसा देवं कृत्वा तत्र प्रदक्षिणम्। उभौ तो चरणौ गृह्य मातापितरमब्रवीत्॥८६॥
शृणु तात महाभाग येन तत्त्वमिहागताः। यद् भवान् पृच्छते तात गुह्यं सौकरकं प्रति॥८७॥
खञ्जरीटो ह्यहं तात तिर्यग्जातो ह पक्षिणः। भक्षितानि पतङ्गानि अजीणनातिपीडितः॥८८॥
अहं तेनैव दोषेण न शक्नोमि विचेष्टितुम्। दृष्ट्वा मां विह्वलं बाला गृहीत्वा क्रीडितुं गताः॥८९॥
हस्ताद्धस्तेन क्रीडन्तश्चान्योन्यपरिहासया। त्वया दृष्टो मया दृष्टो अन्योन्यं जायते कलिः॥९०॥

माता-पिता की बातों को सुनकर उस धर्मपरायण पुत्र ने अपने मरने का निश्चय कर कहा—।।८०।।

हे महाभाग! इस प्रकार की बात है कि आपने जो कुछ पूछा है, वह अत्यन्त ओजपूर्ण रहस्य मैं कल आपको बतला सकेंगे।।८१।।

इसीलिए कि हे तात! कल होने वाली द्वादशी विचित्र मंगलमयी और विष्णु भक्तों को सुख ही प्रदान करने वाली है।।८२।।

जो जन प्रसन्नता से कार्त्तिक शुक्ल द्वादशी को दान प्रदान करता है, वे जन विष्णुभक्त योगी के कुल में उत्पन्न एवं दीक्षित होते हैं।।८३।।

हे तात! श्री विष्णु के कर्म में लगे हुए भक्त उस दान के प्रभाव से घोर संसार सागर से तर जाया करते हैं। इस प्रकार उनके बात करते रात्रि बीत गई।।८४।।

तत्पश्चात् प्रातःकाल सन्ध्या कर्म सम्पन्न कर सूर्योदय के बाद यथोचित रीति से शौच सम्पन्न कर उसने रेशमी वस्त्र धारण कर लिया।।८५।।

उसने वहाँ देवलायों को प्रणाम कर प्रदक्षिणा करने के बाद उनके दोनों पैरों को पकड़ कर अपने माता-पिता से कहा—।।८६।।

हे तात! आप जिस लिए इस सौकरक तीर्थ क्षेत्र में पधारे हैं और आपने जो पूछा है, उस गुह्य तत्त्व को अब सुनें—।।८७।।

हे तात! मैं पूर्व जन्म में तिर्यग योनि में जन्मा खञ्जरीट पक्षी था। कीड़े-पतङ्गों को खाने से मैं अजीर्ण रोग से ग्रस्त होकर अन्त्यन्त पीड़ा का अनुभव कर रहा था। उस समय उस दोष के कारण मैं कोई चेष्टा नहीं कर पा रहा था। मुझे व्याकुल देख कर कुछ खेल रहे लड़कों ने पकड़ लिया और खेलने चले गये।।८८-८९।।

वे सभी आपस में परिहास करते हुए एक दूसरे के हाथों हाथ खेलने लगे। इसे तुमने देखा या मैंने देखा, इस तरह की बातें हुए उनमें परस्पर संघर्ष होने लग गया।।९०।।

तत एकेन बालेन भ्रमयित्वाऽक्षयेऽम्भसि। न ते चेति न मेत्युक्त्वा आदित्यं तीर्थमाश्रितः।
तीव्रं क्रोधं समाधाय क्षिप्तोऽहं जाह्ववीजले।९१॥
तत्र मुक्ता मया प्राणाः सूर्यतीर्थे महौजसि। अकामेन विशालाक्षि जातोऽस्मि तव पुत्रकः॥९२॥
अयं स वर्त्तते कालो एषा चैव तु द्वादशी। अकामान्म्रियमाणस्य वर्षाण्यद्य त्रयोदश॥९३॥
एतत् ते कथितं तात गुह्यमागमनं प्रति। अहं कर्म करिष्यामि गच्छ तात नमोऽस्तु ते॥९४॥
ततो माता पिता चैव पुत्रं पुनरुवाच चहच। विष्णुप्रोक्तानि कर्माणि यं यं कारयिता भवान्॥९५॥
तान् वय च करिष्यामो विधिदृष्टेन कर्मणा। घटमाना यथान्यायं गर्भसंसारमोक्षणम्॥९६॥
तेऽपि दीर्घेण कालेन मम कर्मपरायणाः। कृत्वा तु विपुलं कर्म ततः पञ्चत्वगामताः॥९७॥
मम क्षेत्रप्रभावेन चात्मनः कर्मनिश्चयात्। प्रमुक्तसर्वसंसाराः श्वेतद्वीपमुपागताः॥९८॥
योऽसौ परिजनः कश्चिद् गृहेभ्यश्च समागतः।
सोऽपि कृत्वातु कर्माणि यस्य यद् रोचते यथा॥९९॥
प्रमुक्तः सर्वसंसारान्मम कर्मपरायणः। देवि क्षेपभावेन श्वेतद्वीपमुपागतः।
सर्वश्रियावृतस्तत्र व्याधिरोगविवर्जितः॥१००॥

'फिर यह न तो तुम्हारा है, न मेरा है' एक बालक ने इस प्रकार से कहते हुए यहाँ स्थित 'आदित्य तीर्थ' में तीव्र क्रोधपूर्वक मुझे घुमाकर गङ्गा के गम्भीर अगाध जल में फेंक दिया।।९१।।

हे विशालाक्षि! विना इच्छा के ही मैंने इस ओजस्वी सूर्य तीर्थ में अपना प्राण त्याग दिया और आपके पुत्र रूप में जन्म ले लिया।।९२।।

यही वह समय और द्वादशी तिथि है। जहाँ से विना इच्छा के मेरे मरने के पश्चात् आज तेरह वर्ष हो चला है।।९३।।

हे तात! मैंने यहाँ आने का यह रहस्य आपको अब बतला दिया। अब मैं अपना कार्य करूँगा। हे तात! अब आप सब जाय। आपको प्रणाम है।।९४।।

फिर से माता-पिता ने अपने पुत्र से इस प्रकार कहा कि आप विष्णु के कथनानुरूप जिन-जिन कार्यों को करेंगे, हम भी उन विधियों के अनुरूप कार्य करते हुए उन कर्मों को करना चाहते हैं। क्योंकि यथारीति किये जाने वाले कर्म गर्भ और संसार से मुक्त कर दिया करते हैं।।९५-९६।।

इस प्रकार मेरे कर्म परायण वे सब भी बहुत काल तक अनेक विध कर्म करने के बाद यमलोक को प्राप्त हो गये।।९७।।

मेरे क्षेत्र के प्रभाव से अपने कर्म के निश्चय से समस्त संसार से मुक्त होकर वे सब श्वेतद्वीप को चले गये।।९८।।

उनके जो सेवक जन अपने घरों से वहाँ आये हुए थे, वे सब भी जिसको जो कर्मपसन्द आया, उस कर्म को वे यथारीति करने लग गये।।९९।।

हे देवि! मेरे कर्म परायण उनके वे परिजन भी समस्त संसार से मुक्त होकर क्षेत्र के प्रभाव से श्वेतद्वीप को चले गये। वे सब भी वहाँ सम्पूर्ण ऐश्वर्य सम्पन्न तथा शरीरिक और मानसिक रोगों से मुक्त हो गए।।१००।।

सर्वे च योगिनस्तत्र सर्वे चोत्पलगन्धिनः। मोदन्ते तु यथान्यायं प्रसादात् क्षेममेव च॥१०१॥
एतत् ते कथितं देवि महाख्यानं महौजसम्। पुनरन्यद् यथा वृत्तं तं तु सौकरके विधौ॥१०२॥
एषा व्युष्टिर्महाभागे क्षेत्रे सौकरके मम। तिर्यग्योनिमनुप्राप्य श्वेतद्वीपमुपागताः॥१०३॥
य एतत् पठते नित्यं कल्यमुत्थाय मानवः। स कुलं तारयेत् तूर्णं दशपूर्वान् दशापरान्॥१०४॥
न पठेन्मूर्खमध्ये तु पापिष्ठे शास्त्रदूषके। न पठेत् पिशुनां मध्ये एकाकी तु पठेत् गृहे॥१०५॥
पठेत् तद् ब्रह्मणां मध्ये ये च वेदविदां वराः। पठेद् भागवतां मध्ये ये च शास्त्रगुणान्विताः।
विशुद्धानां विनीतानां सर्वसंसारमोक्षणम्।१०६॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे अष्टत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥१३८॥

—※※※—

वहाँ पर वे सभी योगी होकर कमलगन्ध से सुवासित हो गये। उस क्षेत्र के प्रभाव से वे यथाविधि रूप से आनन्द में मग्न होकर रहने लगे।।१०१।।

हे देवि! उस सौकरक तीर्थ में जो घटित हुआ था, उस अत्यन्त ओजस्वी आख्यान को मैंने तुमको यथावत् सुना दिया है।।१०२।।

हे महाभागे! मेरे इस सौकरक तीर्थ की यह विशेषता ही है कि इस प्रकार जीव तिर्यग् योनि में उत्पन्न होकर भी श्वेतद्वीप में जाने के योग्य हो गये।।१०३।।

जो जन प्रातःकाल जागकर इस आख्यान का पाठ करेंगे, वे जन तत्काल ही अपने पूर्व की और बाद की दस-दस पीढ़ियों को तारने वाले होते हैं।।१०४।।

इस आख्यान को मूर्ख, पापी,शास्त्र में दोष देखने वाले, चुगली करने वालों के बीच नहीं पढ़ा जाना चाहिए। अपने घर में अकेले ही इसका पाठ करना अत्यन्त श्रेयस्कर है।।१०५।।

जो जन वेदज्ञों में भी श्रेष्ठ हों, ऐसे उन ब्राह्मणों एवं शास्त्रीय गुणों से सम्पन्न विशुद्धात्मा, विनय सम्पन्न भगवद् भक्तों के मध्य ही इस उपाख्यान का पाठ करना उचित है।।१०६।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में विष्णु मन्दिर में लेपन, मार्जन, गायन आदि का फल, आदित्य तीर्थ और खयरीठोपाख्या नामक एक सौ अड़तीसवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१३८॥

एकोनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

अथ विष्णुमन्दिलेपनफलम्

श्रीवराह उवाच

शृणु तत्त्वेन मे देवि लिप्यमानस्य यत्फलम्। सर्वं ते कथयिष्यामि यथा प्राप्नोति मानवः॥१॥
गोमयं गृह्य वै भूमि मम वेश्मोपलेपयेत्। यावन्त्येव पदा न्यस्ताः समन्तादुपलेपनात्।
तावद् वर्षसहस्राणि दिव्यानि दिवि मोदते॥२॥
यदि द्वादशवर्षाणि लिप्यते मम कर्मसु। जायते विपुले शुद्धे धनधान्यसमाकुले॥३॥
नमस्कारं च प्राप्नोति कुशद्वीपाय गच्छति। कुशद्वीपमनुप्राप्य सहस्रा जीवते दश।
मद्भक्तश्चैव जायेत महिमान् गुणवान् शुचिः॥४॥
कुशद्वीपात् परिभ्रष्टो मम कर्मपरायणः। राजा वै जायते सुभ्रु सर्वधर्मेषु निष्ठितः॥५॥
लेपनस्य प्रभावेण मम कर्मपरायणः। भक्त्या व्यवस्थितं चासीच्छुचिः शास्त्राणि पृच्छते॥६॥
देवि कारयते सर्वं मम चायतनानि च। कारयित्वा यथान्यायं मम लोकाय गच्छति॥७॥
गोमयस्य तु वक्ष्यामि तच्छृणुष्व वसुंधरे। गोमयं तु समासाद्य यानि लोकानि गच्छति॥८॥

अध्याय–१३९

विष्णु मन्दिर लेपन आदि माहात्म्य में चाण्डाल और राक्षस आख्यान

श्री भगवान् वराह ने कहा कि हे देवि! मनुष्य जन मेरे मन्दिर को लीपकर जिस प्रकार के फल प्राप्त किया करते हैं, वे सब तत्त्वतः तुमको बतला रहा हूँ, सुनो।।१।।

हे भूमि! गोबर से मेरे मन्दिर को लीपा जाता है। मनुष्य द्वारा मन्दिर को लीपते समय चारों ओर जितने कदम भूमि पर पड़ते हैं, वे मनुष्य उतने हजार वर्ष तक स्वर्ग में दिव्य भोगों को भोगा करते हैं।।२।।

जब मेरे कर्म में संलग्न जन बारह वर्षों तक मन्दिर लीपता रहता है, तो वह निश्चय ही धन धान्य सम्पन्न विशुद्ध विशाल कुल में उत्पन्न हुआ करते हैं।।३।।

ऐसे जन दूसरे लोगों से नमस्कार अभिवादन स्वरूप सम्मान पाया करते हैं। पिर मरने पर कुशद्वीप में रहने का अवसर प्राप्त करते हैं। उस कुशद्वीप में जाकर वह दश हजार वर्ष तक जीवन धारण करता है। फिर वह महिमा और गुण सम्पन्न होकर मेरा पवित्र भक्त के रूप में प्रतिष्ठित होता है।।५।।

मन्दिर लेपन प्रभाव से मनुष्य मेरा कर्मपरायण भक्तिभाव सम्पन्न, पवित्र और विभिन्न शास्त्रों का जिज्ञासु व्यक्ति हुआ करता है।।६।।

ऐसे जन मेरा सब कर्म किया करता है। और फिर मेरे मन्दिरों का निर्माण कराने का यशभागी भी होता है। यथाविधि सब कार्यों के सम्पन्न होने पर वे जन मेरे लोक में निवास करने वाला होता है।।७।।

हे वसुन्धरे! अब मैं गोबर का माहात्म्य कहने जा रहा हूँ। उसे सुनो। इस तरह गोबर प्राप्त करने से जो लोक प्राप्त होते हैं, उसे सुनो।।८।।

समीपे यदि वा दूरे यो वा नयति गोमयम्। यावन्त्यस्य पदाग्राणि तावत् स्वर्गे महीयते॥९॥
एकादशसहस्राणि एकादशशतानि च। रमते च मुदा युक्तो गोमयानयने नरः॥१०॥
शाल्मले तु परिभ्रष्टो राजा भवति धार्मिकः। मद्भक्तश्चैव जायेत सर्वधर्मविदां वरः॥११॥
अथ द्वादशवर्षाणि एकचित्तपरायणः। वहते गोमयं सुभ्रु मम लोकाय गच्छति॥१२॥
स्नानोपलेपने भूमि सलिलं यो ददाति माम्। तस्य पुण्यं महाभागे शृणु तत्त्वेन निष्कलम्॥१३॥
यावन्तो बिन्दवस्तत्र पानीयस्य वसुंधरे। तावद् वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते॥१४॥
स्वर्गलोकात् परिभ्रष्टः क्रौञ्चद्वीपं च गच्छति। क्रौञ्चदीपात् परिभ्रष्टः सर्वधर्मपरायणः।
सर्वसङ्गान् परित्यज्य मम लोकाय गच्छति॥१५॥
संमार्जनं प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व वसुंधरे। यां गतिं पुरुषो याति स्त्रियो वा कर्मणि स्थिताः।
शुचिर्भागवतः शुद्धो अपराधविवर्जितः॥१६॥
यावन्तः पांसवो भूमेरुड्डीयन्ते तु चालिताः। तावद् वर्षशतान्याशु स्वर्गलोके महीयते॥१७॥
स्वर्गलोकात् परिभ्रष्टः शाकद्वीपाय गच्छति। तत्र स्थित्वा चिरं कालं राजा भवति धार्मिकः॥१८॥

जो जन दूस से अथवा पास से गोबर लेकर जाता है, उसके जितने कदम पृथ्वी पर पड़ते हैं, उतने समय तक वह स्वर्ग में आदर प्राप्त करता है।।९।।

इस तरह गोबर लींपने हेतु ढोने वाला ग्यारह हजार ग्याहरह सौ वर्षों तक आनन्द के साथ स्वर्ग में विहार करने वाला होता है।।१०।।

वे जन स्वर्ग से पतित होने पर शाल्मलद्वीप का राजा होता है और वे श्रेष्ठ धर्मज्ञ भक्त मेरा हुआ करते हैं।।११।।

हे सुभ्रु! इस प्रकार जो बारह वर्षों तक एकनिष्ठ होकर गोबर ढोता है, वे निश्चय ही मेरे लोक में निवास किया करते हैं।।१२।।

हे महाभागे वसुन्धरे! इसी प्रकार मेरे स्नान और उपलेपन के समय मुझे जल अर्पण करने वाले जनों के समस्त पुण्य को तत्त्वतः सुनो।।१३।।

हे वसुन्धरे! वहाँ जल की जितने बूँदें होती हैं, उतने हजारों वर्षों तक वह स्वर्ग में सम्मान पाता है।।१४।।

फिर स्वर्ग से च्युत होने पर वे क्रौञ्चद्वीप में जन्म लेता है। उसके बाद मरने पर सब धर्मों से सम्पन्न वे सभी संगों को छोड़कर मेरे लोक में पहुँचता है।।१५।।

अब संमार्जन अर्थात् झाड़ू-पोछा लगाने का फल बतलाया जा रहा है। हे वसुन्धरे! उसे सुनो। इस प्रकार के कार्य को करने वाले जन अपराध मुक्त पवित्र शुद्ध भगवद् भक्त जन स्त्री या पुरुष मेरे कर्म में संलग्न होकर जो गति पाते हैं, उसे सुनो।।१६।।

उनके झाडू लगाने से भूमि के जितने धूल कण उड़ते हैं, उतने वर्षों तक वे जन तत्काल ही स्वर्ग में सम्मान प्राप्त करते हैं।।१७।।

फिर स्वर्ग से भ्रष्ट होकर शाकद्वीप में जाता है और बहुत दिनों तक वहाँ स्थित रहकर वे जन धार्मिक राजा हो जाता है।।१८।।

ततो भुक्त्वा सर्वभोगान् स्थित्वा संसारसागरे। शाकद्वीपात् परिभ्रष्टो मम लोकाय गच्छति॥१९॥
हृष्टपुष्टमना भूत्वा सर्वकामसमन्वितः। नन्दनं वनमासाद्य मोदते चामरैः सह॥२०॥
नन्दाच्च परिभ्रष्टो मम भक्त्या व्यवस्थितः। श्वेतद्वीपं ततो गच्छेन्मत्कर्मनिरतः शुचिः॥२१॥
अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि शृणुष्व गदतो मम। गायनं मम कुर्वन्ति मम कर्मपरायणाः।
तेषां यत् यत्फलं भूमे शृणुष्व गदतो मम॥२२॥
यावन्ति चाक्षराण्येव गीयमाने यशस्विनि। तावद् वर्षसहस्राणि इन्द्रलोके महीयते॥२३॥
रूपवान् गुणवान् सिद्धः सर्ववेदविदां वरः। नित्यं पश्यति वै वज्रपाणिं देवं न संशयः॥२४॥
मद्भक्तश्चैव जायेत इन्लोकपथे स्थितः। सर्वकर्मगुणश्रेष्ठस्तत्रापि मम पूजकः॥२५॥
इन्द्रलोकात् परिभ्रष्टो मम गीतपरायणः। नन्दनादौ वने रम्ये रमन् देवगणैः सह॥२६॥
तः स भूमौ जायेत वैष्णवैः सह संस्थितः।
गायन् मम यशो नित्यं भक्त्या परमया युतः।
प्रमुक्तः सर्वसंसारान्मम लोकाय गच्छति॥२७॥

सूत उवाच

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा माधवस्य यशस्विनी। कृताञ्जलिपुटा भूत्वा प्रत्युवाच वसुंधरा॥२८॥

ऐसे जन प्रसन्न और स्वस्थ मन से उन समस्त भोगों से सम्पन्न होता है। नन्दन वन में रहते हुए देवों के साथ सानन्द व्यतीत करता है।।२०।।

फिर नन्दनवन से पतित होने पर वह मेरी भक्ति से सम्पन्न और मेरे कर्म में परायण पवित्र भक्त होकर श्वेतद्वीप को जाता हे।।२१।।

हे भूमे! मेरा कर्म परायण जन मेरे सामने गीत गाता है, उसे प्राप्त होने वाले फलों को मैं आगे कहने जा रहा हूँ।।२२।।

हे यशस्विनि! गाने में जितने अक्षर होते हैं, उतने हजार वर्षों तक वे इन्द्रलोक में सम्मान पाने वाला होता है।।२३।।

वे जन सुन्दर, गुणवान्, सब वेदज्ञों में श्रेष्ठ, सिद्ध आदि सम्पन्न होकर नित्य वज्रपाणि का दर्शन करने वाला होते हैं, इसमें संशय नहीं है।।२४।।

फिर इन्द्रधाम में रहते हुए वे मेरा भक्त होते हैं। समस्त श्रेष्ठ कर्म और गुणों से युक्त होकर मनुष्य वहाँ भी मेरा पूजन करते हैं।।२५।।

मेरे बारे में गीत गाने वाले जन देवताओं के साथ रमण योग्य नन्दन आदि जैसे वनों में विहार करते हुए इन्द्रलोक का निवासी हो जाता है। फिर इन्द्रलोक से भ्रष्ट होकर वे पृथ्वी पर जन्म लेते हैं। फिर वैष्णव जनों के ही साथ रहते हुए परम भक्ति भाव से नित्य मेरे यश का गान करते हैं। फिर सम्पूर्ण संसार से मुक्त होकर मेरे लोक में चले जाते हैं।।२६-२७।।

सूत ने कहा कि मांधव के इस प्रकार के वचन को सुनकर यशस्विनि धरणी ने बद्धाञ्जलि होकर कहा धरणी

धरण्युवाच

अहो गीतप्रभावेन सिद्धिं प्राप्तस्तु कः पुमान्। तन्ममाचक्ष्व तत्त्वेन परं कौतूहलं हि मे॥२९॥

श्रीवराह उवाच

श्रृणु तत्त्वेन मे भूमि कथ्यमानं यशस्विनि।
यस्तु गीतप्रभावेण सिद्धिं प्राप्तो महौजसम्॥३०॥

तत्रैव चाश्रमे भद्रे चण्डालः कृतनिश्चयः। दूराज्जागरतो याति मम भक्त्या व्यवस्थितः॥३१॥

एवं तु गायमानस्य गतान् संवत्सरान् बहून्। श्वपाकश्च गुणज्ञश्च मद्भक्तश्चैव सुन्दरि॥३२॥

कौमुदस्य तु मासस्य शुक्लपक्षे तु द्वादशीम्। सुप्ते गते जने जाते वीणां गृह्य स चक्रमात्॥३३॥

ततो जागरचण्डालो गृहीतो ब्रह्मरक्षसा। अल्पप्राणः श्वपाको वै बलवान् ब्रह्मराक्षसः॥३४॥

दुःखशोकेन संतप्तो न शक्नोति विचेष्टितुम्। तेनैवोक्तः श्वपाकेन बलवान् ब्रह्मराक्षसः।
किं त्वया चेप्सितं मह्यं यस्त्वेवं परिधावसि॥३५॥

श्वपाकवचनं श्रुत्वा तेन ब्राह्मणराक्षसः। उवाच परमं वाक्यं मानुषाहारलोलुपः॥३६॥

अद्येह दशरात्रं मे निराहारस्य गच्छति। विधातृविहिताहारं तवात्र कल्पितं मम॥३७॥

ने कहा कि अहो! गीत के प्रभाव से कैसे मनुष्य को सिद्धि मिल जाती है? यह मुझे तत्त्वतः बतलाने की कृपा करें। इस प्रसङ्ग में मुझे अत्यन्त उत्कण्ठा है।।२८-२९।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि हे यशस्विनी! तात्त्विक दृष्टि से कहे जाने वाले इस रहस्य को मेरे द्वारा सुनो। गीत प्रभाव से जिसने भी महान् ओजस्वी सिद्धि प्राप्त की, मेरे द्वारा तुम उसे इस समय सुनो।।३०।।

हे भद्रे! किसी समय किसी आश्रम में दृढ़ निश्चय वाला, मेरी भक्तिभाव से युक्त एक चाण्डाल दूर से ही जागरण व्रत करते हुए और गीत गाते हुए रहा करता था।।३१।।

हे सुन्दरि! इस प्रकार जागरणपूर्वक गीत गाते हुए उस चाण्डाल को कई वर्ष व्यतीत हो गए। हलांकि वह चाण्डाल गुणज्ञ और मेरा भक्त था।।३२।।

फिर एक बार कौमुद याने कार्त्तिक मास की द्वादशी को संसारी जनों के सो जाने पर वह चाण्डाल वीणा सहित भटक रहा था।।३३।।

तभी उस जागरणशील चाण्डाल को एक ब्रह्मराक्षस ने पकड़ लिया था। चूँकि चाण्डाल अल्प प्राण और ब्रह्मराक्षस बलवान् था।।३४।।

इससे वह चाण्डाल दुःख व शोक के कारण किसी भी प्रकार की चेष्टा करने में असमर्थ था। उसी क्रम में उस चाण्डाल ने उस ब्रह्मराक्षस से कहा कि तुम मुझसे क्या अपेक्षा रखते हो, जिस कारण तुम इस तरह मुझे छोड़ रहे हो।।३५।।

चाण्डाल की बात सुनकर उस मनुष्याहार के लोभी ब्रह्मराक्षस ने यह श्रेष्ठ वचन कहा कि—।।३६।।

आज मुझे यहाँ निराहार रहते हुए दस रात्रि बीत गये। लेकिन आज विधाता ने यहाँ तुमको मेरे आहार के रूप में भेज दिया है।।३७।।

अद्य त्वां भक्षयिष्यामि वसामांसं च शोणितम्।
तर्पयित्वा यथान्यायं तृप्तिं यास्याम्यहं पराम्॥३८॥

ब्रह्मरक्षोवचः श्रुत्वा श्वपाको गीतलालसः। राक्षसं छन्दयामास मम भक्त्या व्यवस्थितः॥३९॥
एवमेतन् महाभाग भक्ष्योऽहं समुपागतः। अवश्यमेव कर्त्तव्यं धात्रा दत्तं यथा तव॥४०॥
किं त्वहं देवदेवस्य जागरे गन्तुमुद्यतः। तत्र गत्वा देवदेवमुपास्य विधिना हरिम्।
पश्चात् खादसि मां रक्षो जागराद् विनिवर्जितम्॥४१॥
विष्णोः संतोषणार्थाय यतो मे व्रतमुत्तमम्। मां प्रेषय न भङ्गो वै देवं नारायणं प्रति।
जागरे विनिवृत्ते मां भक्षयस्व यदीच्छसि॥४२॥
श्वपाकस्य वचः श्रुत्वा ब्रह्मरक्षः क्षुधार्दितम्। उवाच परुषं वाक्यं श्वपाकं तदनन्तरम्॥४३॥
मिथ्या किं भाषसे मूढ पुनरेष्यामि तेऽन्तिकम्। मृत्योर्मुखमनुप्राप्य पुनर्जीवति मानवः।
रक्षसो मुखविभ्रष्टः पुनरागन्तुमिच्छसि॥४४॥
राक्षसस्य वचः श्रुत्वा चण्डालो धर्मसहितः। उवाच मधुरं वाक्यं राक्षसं पिशिताशनम्॥४५॥
यद्यहं जातिचाण्डालः पूर्वकर्मविदूषितः। प्राप्तोऽहं मानुषं भावं विहितेनान्तरात्मना॥४६॥

इस प्रकार आज मैं यथाविधि संतुष्टि के सहित तुम्हारे रक्त, मज्जा और मांस का आहार करके परम तृप्ति प्राप्त कर सकूँगा।।३८।।

ब्रह्मराक्षस की बात सुनकर मेरी भक्ति करने वाला गीताकांक्षी चाण्डाल ने ब्राह्मराक्षस से प्रार्थना की।।३९।।

हे महाभाग! ऐसा ही हो। मैं तुम्हारा भक्ष्य रूप में उपलब्ध हूँ। फिर विधाता ने तुम्हारे लिए मुझे जिस प्रकार दिया हो, तुम उसी प्रकार अवश्य करो।।४०।।

परन्तु, इस समय मैं देवदेव के जागरण व्रत हेतु जाने को तत्पर हूँ। अतः वहाँ जाकर विधि सहित देवदेव श्रीहरि की आराधना कर मैं वापस आपके पास आ जाऊँगा। हे राक्षस! उसके बाद तुम मुझे इच्छानुसार खा जाना।।४१।।

इसलिए कि मेरा यह उत्तम व्रत श्री विष्णु को सन्तुष्ट करने के लिए है। अतः मुझे जाने दिया जाय। नारायण देव विषयक व्रत को कत्तई भङ्ग नहीं होना चाहिए। यदि तुम मुझे खाना ही चाह रहे हो, तो इस जागरण व्रत के उपरान्त मुझे खा लेना।।४२।।

इस प्रकार चाण्डाल की बात सुनकर उस भूखे ब्रह्मराक्षस ने चाण्डाल से कठोर वचन कहा—।।४३।।

हे मूढ़! तुम इस प्रकार झूठ क्यों बोल रहे हो? कि तुम मेरे पास वापस आ जाओगे। मृत्यु मुख में जाकर क्या कोई मनुष्य फिर से जीवित रहा है? उस पर राक्षस के मुख से छूटजाने पर क्या पुनः आने की इच्छा रखते हो?।।४४।।

फिर भी ब्रह्मराक्षस के वचन को सुनकर धर्मशील चाण्डाल ने मांस भोजी ब्रह्मराक्षस से मीठे स्वर में यह वचन कहा—।।४५।।

यह जो मैं अपने पूर्वजन्म के कर्मदोष से चाण्डाल गति की मनुष्य योनि में उत्पन्न हुआ हूँ। मेरी अन्तरात्मा द्वारा दिया गया आश्वासन हे ब्रह्मराक्षस! कि मैं लौट कर तुम्हारे पास आऊँ, इस हेतु मेरा शपथ सुनो। हे ब्रह्मराक्षस!

श्रृणु तत् समयं रक्षो येनाहं पुनरागमन्। दूराज्जागरणं कृत्वा लोकस्य द्विजराक्षस।
सत्येन पुनरेषमि यदि मन्यसि मुञ्च माम्॥४७॥
सत्यमूलं जगत्सर्वं लोकाः सत्ये प्रतिष्ठिताः। सत्येन लभते सिद्धिं ऋषयो ब्रह्मवादिनः॥४८॥
सयेन दीयते कन्या सत्यं जल्पन्ति ब्राह्मणाः।
सत्यं जल्पन्ति राजानस्त्रीण्येतानि ब्रुवन्ति तम्॥४९॥
सत्येन गम्यते स्वर्गं मोक्षं सत्येन प्राप्यते। सत्येन तपते सूर्यः सोमः सत्येन रञ्जति॥५०॥
षष्ठ्यष्टमीममावस्यामुभे पक्षे चतुर्दशीम्। अस्नातानां गतिं गच्छे यद्यहं नागमे पुनः॥५१॥
गुरुपत्नीं राजपत्नीं योऽभिगच्छति मोहितः। तां गतिं संप्रपद्येऽहं यद्यहं नागमे पुनः॥५२॥
याजकानां च ये लोका ये च मिथ्याभिभाषिणाम्।
तां गतिं प्रतिपद्येऽहं यद्यहं नागमे पुनः॥५३॥
ब्रह्मघ्ने च सुरापे च स्तेने भग्नव्रते तथा। तेषां गतिं प्रपद्येऽहं यद्यहं नागमे पुनः॥५४॥
श्वपाकवचनं श्रुत्वा तुष्टो ब्राह्मणराक्षसः। उवाच मधुरं वाक्यं गच्छ शीघ्रं नमोऽस्तु ते॥५५॥
ब्रह्मराक्षसमुक्तस्तु श्वपाकः कृतनिश्चयः। पुनर्गायति मह्यं वै मम भक्त्या व्यवस्थितः॥५६॥

मैं सत्य शपथ करता हूँ कि विष्णु देव के विषयक जागरण व्रत पूर्ण कर मैं पुनः तुम्हारे पास वापस आऊँगा। यदि मेरी बात मान सकते हो, तो तुझे जागरण हेतु जाने दो।।४६-४७।।

चूँकि अखिल जगत् का आधार यही सत्य है। समस्त लोक सत्य पर ही सुप्रतिष्ठित है। ब्रह्मवादी ऋषिजन सत्य बल से ही सिद्धि प्राप्त किया करते हैं।।४८।।

फिर इसी सत्य के बल से कन्या का दान होता है। ब्राह्मण जन सदा सत्य बोला करते हैं। राजाजन सत्य ही बोला करते हैं। ये तीनों उस सत्य को ही बोना करते हैं।।४९।।

सत्य से ही स्वर्ग की प्राप्ति होती है। उसी सत्य से मोक्ष भी मिलते हैं। उसी सत्य से सूर्य में तप होता है। उसी सत्य से ही चन्द्रजगत् को शीतलता प्रदान करता है।।५०।।

इस प्रकार यदि मैं फिर से वापस न आऊँ, तो मुझे प्रतिमास के दोनों पक्षों की षष्ठी, अष्टमी, चतुर्दशी, अमावास्या, पूर्णिमा को स्नान नहीं करने वाले जनों की जैसी गति प्राप्त हो।।५१।।

फिर भी यदि मैं न आया तो मोहवश गुरुपत्नि और राजपत्नि से सहवास करने वाले जनों की गति मुझे प्राप्त हो सके।।५२।।

फिर भी यदि मैं न आया, तो जो लोक विधानरहित यज्ञ करने वाले जनों को और जो लोक मिथ्या बोलने वाले जनों को मिलते हैं, वही गति मिले।।५३।।

फिर भी यदि मैं न आया, तो ब्रह्महत्या, सुरापान, चोरी, आदि करने वाले और व्रतभङ्ग करने वाले को जो गति मिलती है, वही गति मुझे भी प्राप्त हो।।५४।।

इस प्रकार से चाण्डाल की बातों को सुनकर ब्राह्मराक्षस सन्तुष्ट हो चला। फिर उसने यह मधुर वाणी में कहा कि 'शीघ्र जाओ' तुम्हें प्रणाम है।।५५।।

दृढ़ निश्चय किया हुआ और मेरी भक्ति भावना से सम्पन्न चाण्डालब्रह्मराक्षस से विमुक्त होकर फिर से मेरा गुणगान करने में लग गया।।५६।।

अथ प्रभाते विमले विनिवृत्ते तु जागरे। नमो नारायणेयुक्त्वा श्वपाकः परिवर्त्तते॥५७॥
गच्छतस्त्वरितं तस्य पुरुषश्चाग्रतः स्थितः। उवाच मधुरं वाक्यं पुरुषं तत्र संसदि॥५८॥
समयो मे कृतस्तत्र ब्रह्मराक्षससंसदि। तत्राहं गन्तुमिच्छामि समयस्य तु रक्षणे॥५९॥
ततःस पद्मपत्राक्षि श्वपाकं प्रत्युवाच ह। मधुरां गिरमादाय विहितेनान्तरात्मना॥६०॥
गच्छ चण्डाल भद्रं ते न तत्र गन्तुमर्हसि। यत्रासौ राक्षसः पापः पिशिताशी दुरात्मकः॥६१॥
ततस्तस्य वचः श्रुत्वा श्वपाकः संशितव्रतः। उवाच मधुरं वाक्यं मरणे कृतनिश्चयः॥६२॥
नाहमेवं करिष्यामि यन्मां त्वं परिभाषसे। न चाहं नाशये सत्यमेतन्मे निश्चितं व्रतम्॥६३॥
सत्यमूलं प्रवृत्तिर्वै कुले सत्ये प्रतिष्ठितम्। सत्यमूलंप्रवृत्तिर्वै कुलं सत्ये प्रतिष्ठितः॥६४॥

न चैवाहं तमुत्सुज्य भवेऽसत्यं कदाचन।
नाहं मिथ्या चरिष्यामि गच्छ तात नमोऽस्तु ते॥६५॥

एवं तं ब्रुवमाणो वैश्वपाकः सत्यचोदितः। ब्रह्मरक्षमनुप्राप्तः सत्यवाक्यप्रभाषितः॥६६॥
दृष्ट्वा च राक्षसं तत्र श्वपाकः संशितव्रतः। उवाच मधुरं वाक्यं तत्र राक्षससंसदि॥६७॥

फिर शुभ प्रभात काल में जागरण व्रत सम्पन्न होने पर 'नमो नारायणाय' यह कहते हुए चाण्डल वापस हो गया।।५७।।

उसके शीघ्रता के साथ मार्ग गमन करते समय उसके समक्ष एक पुरुष खड़ा हो गया। उसने उसके सम्मुख में खड़े पुरुष से मधुर वाक्य में कहा—।।५८।।

मैंने ब्रह्मराक्षस वार्त्ता क्र में शीघ्र वापसी की प्रतिज्ञा की है। अतः मुझे प्रतिज्ञा की रक्षा हेतु मैं वहाँ शीघ्रता में जाना चाह रहा हूँ।।५९।।

हे पद्मपत्राक्षि! फिर उसने भी सावधान चित्त होकर मीठे स्वरों में उस चाण्डाल स्वरूप से इस प्रकार कहा— हे चाण्डाल तुम अपने घर को जाओ। तुम्हारा कल्याण होगा। तुमको वहाँ नहीं जाना उचित है, जहाँ वह मांसाहारी पापी दुरात्मा ब्रह्मराक्षस स्थित है।।६०-६१।।

इस प्रकार उसकी बातें सुनकर तीव्रव्रत धारण करने वाले और मरने का निश्चय करने वाले चाण्डाल श्वपच ने मीठी वाणी में कहा—।।६२।।

जिस तरह की बातें तुम कह रहे हो, इस प्रकार मैं नहीं कर सकूँगा। मैं कभी भी अपने कारण सत्य को नष्ट नहीं होने दूँगा। यह मेरा अपना सुनिश्चित नियम है।।६३।।

समस्त व्यवहार का मूल सत्य है। कुल भी सत्य पर आधारित है। सत्य ही परमधर्म है और आत्मा सत्य पर प्रतिष्ठित होता है।।६४।।

अतः मैं उस सत्य का त्याग कर असत्यवादी कथमपि नहीं कहला सकता हूँ।। हे तात! मैं मिथ्या व्यवहार नहीं कर सकता। आप जायें, आपको प्रणाम है।।६५।।

इस प्रकार उस पुरुष से कहकर सत्य से प्रेरित और सत्य वचन बोलने वाला चाण्डाल उस ब्रह्मराक्षस के समीप आ पहुँचा।।६६।।

वहाँ पर ब्रह्मराक्षस को देखकर तीव्रव्रतधारी चाण्डल ने उस गोष्ठी में उस ब्रह्मराक्षस से यह मधुर वचन कहा—।।६७।।

आगतोऽस्मि महाभाग गाययित्वा यथेष्टतः। वैष्णवीं लोकनाथस्य मम पूर्वं मनोरथम्॥६८॥
एषोऽहं मम गात्राणि भक्षयस्व यथेष्टतः। यथान्यायं विधानेन यस्तु श्रुत्वाऽथ रोचते॥६९॥
नोक्तपूर्वं मया मिथ्या कदाचिदपि राक्षस। तेन सत्येन रक्षस्व ब्रह्मराक्षस मामितः॥७०॥
श्वपाकस्य वचः श्रुत्वा ततः स ब्रह्मराक्षसः। उवाच मधुरं वाक्यं श्वपाकं तदनन्तरम्॥७१॥
साधु तुष्टोऽस्म्यहं वत्स सत्यं धर्मं च पालितम्। चण्डालस्याविधिज्ञस्य यस्य ते बुद्धिरीदृशी॥७२॥
ब्रह्मरक्षोवचः श्रुत्वा श्वपाकः सत्यसंगरः। उवाच मधुरं वाक्यं ब्रह्मराक्षसमेव तु॥७३॥
यद्यप्यहं वै चण्डालो निवृत्तः पापकर्मणः। सत्यं वाक्यं मयोक्तं वै ब्रह्मराक्षस नित्यशः॥७४॥
श्वपाकवचनं श्रुत्वा ब्रह्मरक्षो भयानकम्। उवाच मधुरं वाक्यं श्वपाकं संशितव्रतम्॥७५॥
यत् त्वया गीयते रात्रौ विष्णोर्जागरणं प्रति। फलं गीतस्य मे देहि यदीच्छेज्जीवमात्मनः॥७६॥
ब्रह्मरक्षोवचः श्रुत्वा श्वपाकः कृतनिश्चयः। उवाच मधुरं वाक्यं ब्रह्मराक्षससंसदि॥७७॥
यत्त्वया भाषितं पूर्वं तत् सत्यं तु कृतं मया। खादाद्य रक्षो मे मांसं न ददे गीतजं फलम्॥७८॥
श्वपाकस्य वचः शृत्वा ब्रह्मरक्षो महाद्युतिः। उवाच मधुरं वाक्यं चण्डालं तदनन्तरम्॥७९॥

हे महाभाग! स्वेच्छानुरूप मैं लोकनाथ श्री विष्णु के पास से गान कर आ गया हूँ। मेरा पूर्व मनोरथ पूर्ण हो चुका है।।६८।।

मैं यहाँ हूँ। अब तुम मेरे शरीर के अंगों को अपनी कामना के अनुरूप यथारीति से खा सकते हो। तुम्हें जो भी सुनने पर अच्छा लगे, वैसा करो।।६९।।

हे ब्रह्मराक्षस! मैं पहले भी कभी मिथ्या वचन नहीं कहा है। अतः हे ब्रह्मराक्षस! इस समय भी मुझे उस सत्य से बचाओ।।७०।।

फिर उस चाण्डाल की बातें सुनकर उस ब्रह्मराक्षस ने उस चाण्डाल रूप श्वपच से मधुर वाणी में कहा— हे वत्स! तुम धन्य हो। मैं सन्तुष्ट हूँ, तुमने सत्य और अपने धर्म का पालन किया। विधिशास्त्र को न जानने वाले तुम चाण्डाल की जो ऐसी सुन्दर बुद्धि है।।७१-७२।।

इस प्रकार प्रशंसात्मक वचन सुनकर भी सत्यसंघ चाण्डाल ने उस ब्रह्म राक्षस से मधुर वचन कहा—यद्यपि मैं चाण्डाल हूँ, परन्तु मैं पाप से निवृत्त हूँ। हे ब्रह्मराक्षस! मैंने निरन्तर ही सत्य का पालन किया है।।७३-७४।।

उस चाण्डाल की बातें सुनकर ब्रह्मराक्षस ने भयानक तीव्रव्रतधारी उस चाण्डाल से पुनः मधुर वचन कहा— देखो, यदि तुम अपना जीवन अब भी चाहते हो, तो इस रात्रि में विष्णु के पास जागरण करते हुए जो तुमने गीत गाया है, उसका फल मुझे दे दो।।७५-७६।।

इस प्रकार के ब्रह्मराक्षस के वचन को सुनकर दृढ़ निश्चय वाला चाण्डाल ने उस ब्रह्मराक्षस की गोष्ठ में मधुर स्वर में कहा।।७७।।

देखो! पहले तुमने जो कहा था,उसे मेरे द्वारा सत्य कर दिया गया है। हे राक्षस! अब तुम केवल और केवल मेरा मांस खाने को प्रवृत्त हो। मैं किसी भी तरह अपनी गीत का फल तुम्हें नहीं दे सकता।।७८।।

फिर भी चाण्डाल का वचन सुनकर उस महातेजवान् ब्रह्मराक्षस ने चाण्डाल से फिर मधुर वचन कहा—।।७९।।

अर्द्धरात्र्याश्च मे देहि यच्च गीतं त्वया फलम्।
ततो मोक्ष्यामि कल्याण भक्ष्यामि न च भीषणः॥८०॥

ब्रह्मरक्षोवचः श्रुत्वा श्वपाकः प्रत्युवाच ह। मनोज्ञं तमिदं वाक्यं यत् त्वं राक्षस भाषसे।
भक्षयामि ततश्चोक्त्वा गीतपुण्यं किमिच्छसि॥८१॥

श्वपाकवचनं श्रुत्वा ब्रह्मरक्षोऽब्रवीत् पुनः। एकयामीयं मे देहि पुण्यं गीतस्य ते फलम्।
ततो मोक्षसि भक्षेण संगतं पुत्रदारकैः॥८२॥

श्रुत्वा राक्षसवाक्यानि चण्डालो गीतलोभितः। उवाच मधुरं वाक्यं राक्षसं कृतनिश्चयः॥८३॥

न गायनफलं दद्मि ब्रह्मराक्षस चेप्सितम्। विपाहि शोणितं मह्यं यत् त्वया पूर्वभाषितम्॥८४॥

श्वपाकवचनं श्रुत्वा राक्षसः पुनरब्रवीत्। एकगीतस्य मे देहि यत् त्वया विष्णुसंसदि।
एतेन तारितोऽस्मीति तव गीतफलेन वै॥८५॥

श्रुत्वा राक्षसवाक्यानि श्वपाको मधुरं ब्रवीत्। किं त्वया विकृतं कर्म तद् ब्रूहि मम राक्षस।
कर्मणा यस्य दोषेण ब्रह्मरक्षस्त्वमागतः॥८६॥

श्वपाकवचनं श्रुत्वा ब्रह्मरक्षो महायशाः। उवाच मधुरं वाक्यं दुःखसंतप्तमानसः॥८७॥

नाम्ना वैसोमशर्माऽहं चरको ब्रह्मयोनिजः। सूत्रमन्त्रपरिभ्रष्टो यज्ञकर्मसु निष्ठितः॥८८॥

अच्छा, तो तुमने आधि रात तक ही जो गान किया हो, उसी का मात्र फल यदि तुम मुझे दे दो, तो हे कल्याण स्वरूप! मैं भीषण ब्रह्मराक्षस तुमको मुक्त कर सकता हूँ, तुम्हें खाऊँगा नहीं।।८०।।

ब्रह्मराक्षस की वाणी सुनकर चाण्डाल ने कहा कि हे राक्षस! तुम जो कह रहे हो, तुम्हारा यह वाक्य सुन्दर है। 'खाऊँगा' ऐसा कहने के बावजूद भी अब तुम गीत का पुण्य क्यों लेना चाहते हो?।।८१।।

पुनः चाण्डाल की बातों को सुनकर ब्रह्मराक्षस ने कहा कि अच्छा, तो तुम अपने गीत के एक प्रहर का पुण्य ही मुझे दे दो। फिर तुम मेरे आहार बनने से बचकर स्त्री पुत्र आदि से मिल सकते हो।।८२।।

फिर राक्षस के वाक्यों को सुनकर गीत के फल के लोभी दृढ़ निश्चय वाला चाण्डाल ने उस राक्षस से मधुर वचन इस प्रकार कहा—।।८३।।

हे ब्रह्मराक्षस! मैं तुमको अपने इच्छित गीत का फल नहीं दे सकता हूँ। तुम मेरे रक्त का पान करो। जो कुछ तुमने मुझसे पहले कहा था।।८४।।

इस प्रकार चाण्डाल याने श्वपच की वाणी सुनकर ब्रह्मराक्षस ने पुनः कहा कि तुम्हारे द्वारा विष्णु के पास जो भी एक गीत गाया हो, उसका ही फल मुझे दे दो। तुम्हारे इस गीत के पुण्यफल से ही मैं तर जाऊँगा।।८५।।

फिर राक्षस के इस कथन को सुनकर चाण्डाल ने इस प्रकार मधुर वचन कहा कि हे राक्षस! तुमने ऐसा कौन सा विकृति वाला कार्य किया था, उसे मुझे बतलाओ। तुम जिस कारण से जिस कर्म के दोष से इस तरह ब्रह्मराक्षस होने को विवश हुआ।।८६।।

उस चाण्डाल के कथन को सुनकर महायशस्वी दुःखसन्तप्त हृदय वाले ब्रह्मराक्षस ने कहा कि—।।८७।।

मैं यज्ञकर्मों में निष्ठा रखने वाला ब्राह्मण योनि से उत्पन्न सूत्र और मन्त्र से पतित सोमशर्मा नाम का चरक शाखीय ब्राह्मण था।।८८।।

ततोऽहं कारयेद् यज्ञं लोभमोहप्रपीडितः। यज्ञो प्रवर्त्तमाने तु संशूलस्तत्र जायते॥८९॥
अथ पञ्च महारात्र्यामसमाप्ते क्रतौ तथा। अकृत्वा विपुलं यज्ञं ततः पञ्चत्वमागतः॥९०॥
अस्य यज्ञस्य दोषेण मातङ्ग श्रृणु तन्मम। जातोऽस्मि राक्षसस्तत्र ब्रह्मपुष्टेषु राक्षसः॥९१॥
मन्त्रहीनं मया तत्र स्वरहीनं च तत्कृतम्। सूत्रहीनं मया तत्र प्राग्वंशं च मया कृतम्॥९२॥
परिमाणं च रूपाणि मया तत्रोपलक्षितम्। लुब्धस्य तस्य दोषेण योनिं प्राप्तोऽस्मि राक्षसीम्॥९३॥
तव गीतप्रभावेन निस्तारयितुमर्हसि। मुच्यते राक्षसं तेन विष्णुगीतेन मे यदि॥९४॥
ब्रह्मरक्षोवचः श्रुत्वा श्वपाकः संशितव्रतः। वाढमित्येव तं वाक्यं ब्रह्मरक्षो वचोऽब्रवीत्॥९५॥
ददामि ते इदं गीतं सस्वरं पदमुत्तमम्। फलेन तस्य भद्रं ते मोक्षो राक्षस निष्कलः॥९६॥
यस्तु गायति संयुक्त गीतकं विष्णुसन्निधौ। स तारयति दुर्गाणि श्वपाको राक्षसं यथा॥९७॥
एवं तत्र फलं गृह्य राक्षसो ब्रह्मसंज्ञितः। जातस्तु विमलो भद्रे शरदीव यथा शशी॥९८॥
श्वपाकश्चापि सुश्रोणि मम चैवोपगायकः। कृत्वा सुविपुलं कर्म स ब्रह्मत्वमुपागतः॥९९॥

मेरे द्वारा लोभ और मोह से ग्रसित होकर यज्ञ किया गया था। वह यज्ञ प्रारम्भ होने पर मैं शूल से पीड़ित हो गया।।८९।।

फिर पाँच रात्रियों में यज्ञ की समाप्ति के पहले ही वह विशाल यज्ञ विना पूर्णाहुति किये ही मैं मृत्यु को प्राप्त कर लिया।।९०।।

हे चाण्डाल! सुनो। मैं अपने इस दोष से ब्रह्मण विशेष राक्षस योनि को प्राप्त होकर ब्रह्मराक्षस हो गया।।९१।।

अपने पूर्व जन्मकृत् उस यज्ञ में मैंने मन्त्र, स्वर और सूत्र से मुक्त जो भी कर्म किया, लोभ के वश होकर उस काल में यज्ञ के फल का जो परिमाण और स्वरूप विचार किया था, उसी लोभरूप दोष से मैं ब्रह्मराक्षस की योनि प्राप्त किया।।९२-९३।।

तुम मुझे अपने गीत के पुण्य प्रभाव से मुक्त कर सकते हो। यदि तुम्हारी इच्छा हो, तो अपने विष्णु के प्रति गाये हुए गीत के प्रभाव से मुझ जैसे ब्रह्मराक्षस को मुक्त कर सकते हो।।९४।।

इस प्रकार के ब्रह्मराक्षस के विनम्र विचार को सुनकर तीव्रव्रतधारी चाण्डाल ने उस ब्रह्मराक्षस से 'अच्छा' यह मधुर वचन कहा—।।९५।।

'ठीक है' मैं तुमको स्वर के साथ आपना गाया हुआ यह गीत प्रदान करता हूँ। हे राक्षस! उस गीत के पुण्यफल से तुम्हारा कल्याण होगा और तुम निश्चय ही पूर्णतया मुक्त हो जाओगे।।९६।।

जो जन विष्णु के सन्निधान में स्वरयुक्त गान किया करता है, वह कष्टों से रहित हो जाता है। जिस प्रकार चाण्डाल ने राक्षस को मुक्त किया था।।९७।।

हे भद्रे! इस प्रकार उस चाण्डाल का पुण्य फल ग्रहण कर ब्रह्मराक्षस शारदीय चन्द्र की तरह निर्मल हो गया था।।९८।।

हे सुश्रोणि! मेरे पास में गाना गाने वाला वह चाण्डाल श्वपच भी सुन्दर प्रशस्त कर्मों को करने से ब्रह्मत्व को प्राप्त कर लिया था।।९९।।

एतद् गीतफलं देवि प्राप्नोति मनुजो भुवि। मह्यं जागरतो भद्रे गीयमाने महायशाः॥१००॥
यस्तु गायति सुश्रोणि कौमुद्यां चैव द्वादशीम्। सर्वसङ्गं परित्यज्य म लोकाय गच्छति॥१०१॥
यस्तु गायति गीतानि मम जागरणे सदा। युक्तमन्तस्ततो भूत्वा मम लोकाय गच्छति॥१०२॥
एतत् ते कथितं देवि गायन्ते मनुजा भुवि। तस्य गीतस्य शब्देन तरेत् संसारसागरम्॥१०३॥
वादित्रस्य प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व वसुंधरे। प्राप्तवान् मनुजा येन वादेभ्यो धर्मसंमिताः॥१०४॥
शम्यातालप्रयोगेन सन्निपातेन वा पुनः। नववर्षसहस्राणि नववर्षशतानि च।
कुबेरभवनं गत्वा मोदते वै यदृच्छया॥१०५॥
कुबेरभवनाद् भ्रष्टः स्वच्छन्दगमनालयः। तालशम्यासन्निपातैर्मम लोकाय गच्छति॥१०६॥
नृत्यमानस्य वक्ष्यामि तच्छृणुष्व वसुंधरे। मानवो येन गच्छेत छित्वा संसारबन्धनम्॥१०७॥
त्रिंशद् वर्षसहस्राणि त्रिंशद्वर्षशतानि च। पुष्करद्वीपमासाद्य स्वच्छन्दगमनालयः।
फलं प्राप्नोति सुश्रोणि मम कर्मपरायणः॥१०८॥
रूपवान् गुणवान् शूरः शीलवान् सुपथे स्थितः। मद्भक्तश्चैव जायेत संसारपरिमोचितः॥१०९॥

हे देवि! इस प्रकार महायशस्वी मनुष्य भूमि पर मेरे सन्निधान में गीत गाकर यह फल प्राप्त कर लिया। हे भद्रे! मेरे समीप जागरण कर गीत गाने पर ऐसा फल हुआ॥१००॥

हे सुश्रोणि! याने सुन्दर कटिवाली पृथ्वि! कौमुद याने कार्त्तिक मास की द्वादशी तिथि के दिन जो मेरे पास रात्रि में जागते हुए गीत गाया करता है, वह समस्त अपने संगों याने दोषों से मुक्त रहकर मेरे लोक में चला जाता है॥१०१॥

जो जन निरन्तर मेरे समीप जागते हुए गीतों को गाया करता है, वे जन योगयुक्त होकर मेरे लोक में ही जाता है॥१०२॥

हे देवि! संसार में मनुष्य द्वारा मेरे सम्मुख गायन करने का यह फल मैंने तुमको बतला दिया है। उस गीत गायन के प्रभाव से मनुष्य इस संसार सागर से तर जाया करता है॥१०३॥

हे पृथ्वि! इसी प्रकार मैं अपने समीप वाद्य बजाने का फल कहने जा रहा हूँ। धर्मशील मनुष्य मेरे पास बाजा बजाकर जो फल प्राप्त कर लेता है, उसे बतलाता हूँ॥१०४॥

झाँझ अथवा अन्य वाद्यों के सामूहिक प्रयोग से मनुष्य नौ हजार नौ सौ वर्ष तक कुबेर के भवन में रहकर स्वेच्छानुरूप आनन्द भोगता है॥१०५॥

उस कुबेर भवन से पतित होकर स्वेच्छाचारी वह मनुष्य झाँझ या सामूहिक वाद्यों को बजाने से मेरे लोक को चला जाता है॥१०६॥

हे वसुन्धरे! मेरे पास नृत्य करने वाले को जो फल प्राप्त होता है, उसे बतलाता हूँ। तुम उसे सुनो। मनुष्य जिससे सांसारिक बन्धनों को काटकर मुक्त हो जाता है॥१०७॥

हे सुश्रोणि! मेरा कर्म परायण स्वेच्छा से गतिशील भक्त पुष्कर द्वीप में जा कर तीस हजार तीन सौ अर्थात् तैंतीस हजार वर्ष तुल्य नृत्य के पुण्य फल को पाता है॥१०८॥

मेरा भक्त स्वरूपवान्, गुणवान्, शीलवान्, सन्मार्गगामी, शूर और संसार से मुक्त होने वाला होता है॥१०९॥

यस्तु जागरते नित्यं एवं कर्मपरायणः। जम्बूद्वीपं समासाद्य राजराजस्तु जायते॥११०॥
सवकर्मसमायुक्तो रक्षिता च महीपतिः। मद्भक्तश्चैव जायेत मम कर्मपरायणः॥१११॥
यो मामुपनयेद् भूमि मम कर्मपथे स्थितः। पुष्पाणि तत्र यावन्ति यो मां शिरसि तिष्ठति।
स कृत्वा पुष्कलं कर्म मम लोकाय गच्छति॥११२॥
एतत् ते कथितं देवि महत्पुण्यं महौजसम्। मम भक्तसुखार्थाय सर्वसंसारमोक्षणम्॥११३॥
य एतत् पठते भूमि कल्यमुत्थाय मानवः। स तु तारयते जन्तुर्दश पूर्वान् दशापरान्॥११४॥
न पठेन् मूर्खमध्ये तु पिशुने न पठेत् सदा। पठेद् भागवतां मध्ये मम कर्मपरायणः॥११५॥
अश्रद्दधाने क्रूरे वा न पठेद् देवि नास्तिके। यदीच्छेत् सिद्धिकल्याणं मङ्गलं च मम प्रियम्॥११६॥
धर्माणां परमो धर्मः क्रियाणां परमा क्रिया। मा पठेच्छास्त्रदूषाय अध्यायं तु कदाचन।
यदीच्छेत् परमां सिद्धिं विष्णुलोकं वसुंधरे॥११७॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे एकेनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥

जो जन जागते हुए इस प्रकार मेरे सम्मुख कर्मपरायण रहा करता है, वे जन जम्बूद्वीप में उत्पन्न होकर राधिराज हुआ करते हैं।।११०।।

वह समस्त अच्छे कर्मों से सम्पन्न रक्षक, राजा तथा मेरा कर्म परायण भक्त हुआ करता है।।१११।।

हे भूमि! मेरे कर्म मार्ग का अनुसरण करने वाला जो भक्तजन मुझे पुष्प चढ़ता है। इस प्रकार मेरे शिर पर जितने पुष्प स्थित रहते हैं, उतने काल तक वह अनेक पुण्य कर्म कर मेरे लोक में जाया करता है।।११२।।

हे देवि! इस प्रकार मैंने तुमको महापवित्र, अत्यन्त ओजस्वी, मेरे भक्तों को सुख प्रदान करने वाला और समस्त संसार से मुक्त करने वाला यह रहस्य बतला दिया है।।११३।।

हे देवि भूमि! जो जन प्रातःकाल जागकर इसका पाठ करता है, वे जन अपने पूर्व के और बाद के दस-दस पीढ़ियों को तारने वाला होते हैं।।११४।।

मेरे कर्मपरायण भक्त को मूर्खों के मध्य और चुगली करने वालों के सम्मुख कभी भी इसका पाठ नहीं करना चाहिए। केवल भगवद् भक्तों के सम्मुख इसका पाठ करना चाहिए।।११५।।

हे देवि! जिनको प्रिय सिद्धि, कल्याण और मंगल की कामना हो, तो उसको श्रद्धाहीन, क्रूर, नास्तिक आदि के सम्मुख इसका पाठ नहीं करना चाहिए।।११६।।

यहाँ धर्मों में परम धर्म, क्रियाओं में परम क्रिया है। हे वसुन्धरे! यदि परम सिद्धि और विष्णु लोक प्राप्ति की कामना हो, तो यह अध्याय शास्त्र को दूषित करने वाले के सम्मुख कदापि नहीं पढ़ना चाहिए।।११७।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में विष्णु मन्दिर लेपन आदि माहात्म्य में चाण्डाल और राक्षस आख्यान नामक एक सौ उनतालिसवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१३९॥

❖❖❖

चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

अथ कोकामुखमाहात्म्यम्

धरण्युवाच

श्रुतानि देव स्थानानि ये त्वया परिकीर्त्तिताः।
कस्मिन् तिष्ठसि नित्यं त्वं तद् भवान् वक्तुमर्हसि॥१॥
किं च ते परमं स्थानं यत्र मूर्त्याकृतिर्भवान्।
कस्मिन् स्थाने कृतं कर्म येन यात्युत्तमां गतिम्॥२॥

श्रीवराह उवाच

शृणु तत्त्वेन मे देवि भक्तानां भक्तवत्सले। येषु स्थानेषु तिष्ठामि कथ्यमानानि तान् शृणु॥३॥
तव कोकामुखं नाम यन्मया पूर्वभाषितम्। बदरीति च विख्याता गिरिराजशिलातले॥४॥
स्थानं लोहार्गलं नाम म्लेच्छराजैः समावृतम्। क्षणं पि तं न मुञ्चामि एतत् ते कथितं मया॥५॥
य चैत्यं पश्य मे भूमे जगत्सर्वं चराचरम्। सर्वतोऽहं वरारोहे कश्चिन्नूनं न जानते॥६॥
ये तु जानन्ति मां देवि गुह्यं कामगतिं मम। शीघ्रं कोकामुखं यान्तु मम कर्मपराणाः॥७॥

अध्याय-१४०

कोकामुख का श्रेष्ठत्व और वहाँ अन्यान्य तीर्थों का माहात्म्य

धरणी ने कहा कि हे देव! आप के द्वारा जिन-जिन स्थानों का उल्लेख किया गया है, उनको मैंने ध्यानपूर्वक सुना। अब आप यह बतलायें कि आप किन-किन स्थानों में नित्य निरन्तर रहा करते हैं?।।१।।

उनमें भी आपका श्रेष्ठ स्थान कौन-सा है, जहाँ आप मूर्त्ति के रूप में स्थित रहते हैं? फिर किस स्थल पर किया जाने वाला कर्म इस प्रकार का होता है, जो उत्तम गति प्रदान करता है?।।२।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि भक्तों को सदा स्नेह दृष्टि से देखने वाली हे देवि! वास्तविक तत्त्व को सुनो। मैं जिन स्थलों पर निवास करता हूँ, उसका उल्लेख करता हूँ, उसको तुम ध्यान से सुनो।।३।।

मेरे द्वारा कोकामुख नाम के तीर्थ का तुमसे पूर्व में वर्णन किया गया है और पर्वतराज की शिला पर जो बदरी नामक प्रसिद्ध तीर्थ है तथा म्लेच्छ राजाओं से आवृत्त जो लोहार्गल नामक स्थान है, उनको क्षणमात्र के लिए भी मैं नहीं छोड़ता। मैंने यह तुम्हें बतलाया था।।४-५।।

हे भूमे! इस चैत्य युक्त मेरे तीर्थ को सम्पूर्ण चराचर जगत् मानना चाहिए। हे सुन्दरि! वैसे मैं सर्वत्र विद्यमान हूँ। निश्चय ही यह कोई नहीं जानता।।६।।

हे देवि! जो मुझे तथा मेरी गूढ़ स्वच्छन्द गति को जानने वाले हैं, उन ऐसे मेरे कर्म परायण भक्तों को शीघ्र कोकामुख तीर्थ में जाना चाहिए।।७।।

ततो देववचः श्रुत्वा पृथिवी वाक्यमब्रवीत्। अञ्जलिं शिरसा कृत्वा निभृतेनान्तरात्मना॥८॥

धरण्युवाच

सर्वतोऽहं लोकनाथं परं कौतूहलं हि मे। कथं कोकामुखं श्रेष्ठं तद् भवान् वक्तुमर्हसि॥९॥

श्रीवराह उवाच

नास्ति कोकामुखात् क्षेत्रं नास्ति कोकामुखाच्छुभम्।
नास्ति कोकामुखाच्छ्रेष्ठं नास्ति कोकासमं प्रियम्॥१०॥

यस्तु कोकामुखं गत्वा न भूयो विनिवर्त्तते। कर्माणि तत्र कुर्वीत यष्टं भवति चात्मनि॥११॥

यानि यानि च क्षेत्राणि त्वया पृष्टो वसुंधर। कोकामुखसमं क्षेत्रं न भूतं न भविष्यति॥१२॥

मम या परमा मूर्त्तिर्न तां जानन्ति मोहिताः। स्थितां कोकामुखे देवि एतत् ते कथितं मया॥१३॥

धरण्युवाच

देवदेव महादेव भक्तानां भक्तवत्सल। यानि गुह्यानि मे तत्र कोकायां वक्तुमर्हसि॥१४॥

श्रीवराह उवाच

शृणु तत्त्वेन मे देवि यन्मां त्वं परिपृच्छसि। तस्मिन् कोकामुखे रम्ये कथ्यमानं मयानघे॥१५॥

जलबिन्दुरिति ख्याता पर्वतात् पतिता भुवि। तां तु गुह्यामति देवि न जानन्ति मनीषिणः॥१६॥

फिर विष्णु देव की वाणी को सुनकर धरणी ने एकाग्रमन से मस्तक पर अपने हाथों को रखकर जोड़ते हुए यह वाक्य कहा—।।८।।

धरणी ने कहा कि हे लोकनाथ! आपने कहा कि मैं सर्वत्र स्थित रहता हूँ। इस विषय में मुझे अत्यन्त उत्सुकता उत्पन्न हो गई है। कोकामुख तीर्थ सर्वश्रेष्ठ क्यों और कैसे है? आप इसे स्पष्टता से समझाईये, बड़ी कृपा होगी।।९।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि देखो! कोकामुख से श्रेष्ठ अन्य कोई क्षेत्र नहीं है। कोकामुख से अधिक शुभस्थल भी नहीं है। इससे श्रेष्ठ तीर्थ नहीं है। इस कोकामुख तीर्थ के सदृश कोई अन्य स्थल नहीं है।।१०।।

जो कोई जन कोकामुख तीर्थ में जाकर पुनः नहीं लौटता और वहाँ रहते हुए भी कर्मों का साधन करने वाला होता है, वह अपनी आत्मा में यज्ञ करता रहता है।।११।।

हे वसुन्धरे! तुमने जिन-जिन क्षेत्रों को पूछा है, उनमें से कोई भी क्षेत्र कोकामुख तीर्थ के सदृश न कभी था और न कभी हो सकेगा।।१२।।

हे देवि! चूँकि कोकामुख तीर्थ में मेरी श्रेष्ठ मूर्त्ति स्थित है, जिसे प्रायः मोहग्रस्त जन नहीं ही जानते हैं। मैंने तुमको यह रहस्य की बात बतला दिया है।।१३।।

धरणी ने कहा कि हे अपने भक्तों से स्नेह करने वाले देवदेव महादेव! उस कोकातीर्थ में जो रहस्यमय स्थल हों, उन सबको तो आप हमको बतलाने की कृपा करें।।१४।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि हे देवि! मुझसे तुम जो कुछ जानना चाहती हो, उस सुन्दर कोकामुख तीर्थ में विद्यमान स्थलों का उल्लेख मुझसे सुनो—।।१५।।

हे देवि! पर्वत से भूमि पर गिरी हुई 'जल विन्दु' नाम की प्रसिद्ध नदी है। मनीषि जन भी उस अतिगुह्य श्रेष्ठ नदी को नहीं जानते हैं।।१६।।

तत्र स्नात्वा वरारोहे एकरात्रोषितो नरः। जातिं स्मरति चात्मानं न च कर्मसु सज्जति॥१७॥
अथ तत्र मृतो देवि कृत्वा कर्म महौजसम्। सर्वसङ्गान् परित्यज्य मम लोकाय गच्छति॥१८॥
विष्णुधारेति विख्याता कोकायां मम मण्डले। पर्वतात् पतिता भूमि धारा मुशलसन्निभा॥१९॥
अहोरात्रोषितो भूत्वा स्नानं कुर्यात् प्रयत्नतः। अग्निष्टोमसहस्रस्य फलं प्राप्नोति मानवः॥२०॥
मुह्यते न स कर्माणि गतिं प्राप्नोति चोत्तमाम्। जायते विपुले शुद्धे मम मार्गानुसारिणः॥२१॥
तत्राथ मुञ्चते प्राणान् विष्णुधारां समाश्रितः। पश्यते परमां मूर्त्तिमेतां मम न संशयः॥२२॥
तत्र विष्णुपदं नाम स्थानं कोकामुखाश्रितम्। एतत् कश्चिन्न जानति वर्ज्जं वाराहसंहिताम् ॥२३॥
तस्मिन् कृतोदको देवि त्रिरात्रोपोषितो नरः। क्रौञ्चद्वीपे स जायेत मम मार्गानुसारिणः॥२४॥
तत्राथ मुञ्चते प्राणान् गुह्यस्थाने परे मम। सर्वसङ्गान् परित्यज्य मम लोकाय गच्छति॥२५॥
अस्ति विष्णुसरो नाम यत्त्वया सह क्रीडितम्। यत्र दंष्ट्राप्रहारेण चाहृताऽसि वसुंधरे॥२६॥
तत्र स्नानं तु कुर्वीत प्रातःकाले वसुंधरे। सर्वपापविशुद्धात्मा मम लोकाय गच्छति॥२७॥

हे सुन्दरि! वहाँ एक रात रह लेने वाला मनुष्य अपने पूर्वजन्म का स्मरण करने लगता है, फिर वह इस सांसारिक कर्मों में लिप्त नहीं हुआ करता है।।१७।।

हे देवि! फिर वह मनुष्य वहाँ मर कर महा ओजस्वी कर्म द्वारा सभी संगों याने दोष से रहित होकर मेरे लोक में जाता है।।१८।।

फिर कोकातीर्थ में स्थित मेरे ही मण्डल में पर्वत से भूमि पर गिरी हुई 'मूशल' सदृश धारा युक्त 'विष्णुधारा' नाम से प्रसिद्ध एक नदी है।।१९।।

सप्रयास वहाँपर एक अहोरात्र रहते हुए उपवासपूर्वक स्नान करने वाला मनुष्य एक हजार अग्निष्टोम करने का फल प्राप्त करता है।।२०।।

इस प्रकार वह मनुष्य किन्हीं कर्मों से मोहित नहीं होता हुआ उत्तम गति प्राप्त करने वाला होता है। फिर मेरे मार्ग का अनुगमन करने वाला वह मनुष्य शुद्ध और विशाल वंश में जन्म लिया करता है।।२१।।

फिर जो कोई जन वहाँ उस विष्णु धारा नदी में प्राण का त्याग कर लेता है, तो वह निःसंशय मेरे इस श्रेष्ठ स्वरूप का दर्शन करता है।।२२।।

वहीं उस कोकामुख तीर्थ में 'विष्णुपद' नाम का एक स्थल है। इस वराहसंहिता के अलावे उस स्थल को कोई जन नहीं जानता है। हे देवि! उपवासपूर्वक वहाँ तीन रातों तक तर्पण करने वाला जन क्रौञ्चद्वीप में जन्म लेकर मेरे मार्ग का अनुसरण करने वाला होता है।।२३-२४।।

इस प्रकार यदि मेरे उस गुह्य स्थल पर कोई अपना प्राण विसर्जित करता है, तो वह मनुष्य अपने सभी संगों याने दोषों से मुक्त होकर मेरे लोक में जाता है।।२५।।

हे वसुन्धरे! वहीं पर 'विष्णुसर' नाम का एक सरोवर भी है, जहाँ मैंने तुम्हारे साथ क्रीड़ा की थी, फिर अपनी दंष्ट्रा के प्रहार से तुम्हारा उद्धार भी किया था।।२६।।

हे वसुन्धरे! वहाँ उस सरोवर में प्रातःकाल स्नान करना श्रेष्ठ है। वहाँ स्नानकरने से मनुष्य सभी पापों से विरहित और विशुद्ध होकर मेरे लोक में जाता है।।२७।।

सोमतीर्थमिति ख्यातं कोकायां मम मण्डले। यत्र पञ्चशिला भूमिर्विष्णुनामेति चाङ्किता॥२८॥
यस्तत्र कुरुते स्नानं पञ्चरात्रोषितो नरः। गोमेदे जायते द्वीपे मम मार्गानुसारिणः॥२९॥
तत्राथ मुञ्चते प्राणान् तस्मिन् गुह्ये परे मम। सर्वपापविनिर्मुक्तः शुद्धात्मा पश्यते मम॥३०॥
तुङ्गकूटेति विख्यातं कोकायां मम मण्डले। धाराः पतन्ति चत्वारः पर्वतादुच्चसंश्रिताः॥३१॥
यस्तत्र कुरुते स्नानं पञ्चरात्रोषितो नरः। कुशद्वीपं समासाद्य मम लोकेषु तिष्ठति॥३२॥
अनिन्द्यमाश्रमं नाम क्षेत्रं कर्मसुखावहम्। देवापि यत्र जानन्ति किं पुनर्मनुजादयः॥३३॥
तत्र स्नात्वा वरारोहे अहोरात्रोषितो नरः। जायते पुष्करद्वीपे मम कर्मपरायणः॥३४॥
अथ त्र मृतो भूमि तस्मिन् क्षेत्रे महाशुचिः। सर्वपापविनिर्मुक्तो मम लोकाय गच्छति॥३५॥
अस्त्यत्राग्निसरो नाम परं गुह्यं ममेप्सितम्। पञ्च धाराः पतन्त्यत्र गिरिकुञ्जसमाश्रिताः॥३६॥
तत्र कृतोदको देवि पञ्चरात्रोषितो नरः। कुशद्वीपे च जायेत मम कर्मपरायणः॥३७॥
तत्राथ मुञ्चते प्राणान् कृत्व कर्म महौजसम्। ब्रह्मलोकमतिक्रम्य मम लोकं स गच्छति॥३८॥

इसी प्रकार उस कोकामुख नाम के तीर्थ में विद्यमान मेरे मण्डल में सोमतीर्थ नाम का स्थल है। जहाँ विष्णु नाम से अंकित भूमि की पाँच शिलायें हैं।।२८।

जो जन वहाँ पाँच रातों तक रहते हुए स्नान करता है, वह मनुष्य 'गोमेदद्वीप में जन्म लेकर मेरे मार्ग का अनुसरण करने वाला होता है।।२९।।

फिर यदि वह मनुष्य मेरे उस गुह्य श्रेष्ठस्थल पर प्राण विसर्जित करता है, तो समस्त पापों से विरहित होकर मेरा दर्शन पाता है।।३०।।

मेरे उस कोकामुख तीर्थ क्षेत्र में 'तुङ्गकूट' नाम का एक स्थल है। वहाँ पर ऊँचे पर्वत से चार धारायें भूमि पर गिरती हैं।।३१।।

जो कोई जन पाँच रातों तक रहते हुए वहाँ स्नान करता है, तो वह कुशद्वीप में जन्म लेकर मेरे लोक में जाता है।।३२।।

उस कर्मसुख प्रदान करने वाले कोकामुख क्षेत्र में 'अनिन्द्य' आश्रम है। उसे देवगण भी नहीं जानते हैं, तो मनुष्यादि की बात ही क्या है?।।३३।।

हे सुन्दरि! जो जन एक रात-दिन वहाँ पर रहते हुए स्नान कर लेता है, वह पुष्करद्वीप में जन्म लेकर मेरा कर्मपरायण हुआ करता है।।३४।।

हे भूमि! यदि कोई जन उस क्षेत्र में मर जाता है, तो वह महापवित्र और सभी पापों से रहित होकर मेरे लोक में जाता है।।३५।।

फिर यहाँ इस कोकामुख तीर्थ में 'अग्निसर' नाम का मेरा प्रिय अत्यन्त गुप्त स्थल है। यहाँ के पर्वतशिखर से पांच धारायें गिरा करती हैं।।३६।।

हे देवि! वहाँ उस 'अग्निसर' नामक स्थल में पाँच रातों तक उपवास पूर्वक स्नान आदि जल क्रिया सम्पन्न करने वाला मनुष्य कुशद्वीप में उत्पन्न होकर मेरा कर्मपरायण होता है।।३७।।

फिर कोई जन वहाँ पर महा ओजवान् कर्म कर अपना प्राण विसर्जित कर ब्रह्मलोक का अतिक्रमण करते हुए मेरे लोक में चले जाते हैं।।३८।।

अस्ति पञ्चशिखं नाम गुह्यं क्षेत्रं परं मम। यत्र धारा पतत्येका पुण्या भूमि शिलातले॥३९॥
तत्र स्नानं प्रकुर्वीत एकरात्रोषितो नरः। जायते क्षत्रियः शूरो मम कर्मपरायणः॥४०॥
तत्राथ मुञ्चते प्राणान् कृतकृत्यः शुचिर्नरः। इन्द्रलोकमतिक्रम्य मम लोकाय गच्छति॥४१॥
अस्ति सूर्यप्रभं नाम क्षेत्रं गुह्यं परं मम। उष्णधारा पतत्यत्र सूर्याग्निसमदर्शना॥४२॥
तत्र स्नानं प्रकुर्वीत पञ्चरात्रोषितो नरः। वसते सूर्यलोकेषु मम मार्गानुसारकः॥४३॥
अथात्र मुञ्चते प्राणान् सूर्यधारां समाश्रितः। सूर्यलोकमतिक्रम्य मम लोकं च गच्छति॥४४॥
अस्ति धेनुवटं नाम गुह्यं क्षेत्रं परं मम। एका धारा पतत्यत्र देवि पूर्णा शिलोच्चयात्॥४५॥
तत्र स्नानं प्रकुर्वीत एकमेकं दिनं तथा। सप्तरात्रोषितो भूत्वा मम कर्मसमाश्रितः।
ऋषिव्रतसमायुक्तो जायते मत्परायणः॥४६॥
तत्राथ मुञ्चते प्राणान् मम कर्मपरायणः। ऋषिलोकं समासाद्य मम लोकं प्रपद्यते॥४७॥
सप्तसामुद्रिकं नाम अस्ति गुह्यं परं मम। स्नात्वा सप्तसमुद्रेषु लब्धसंज्ञः समाहितः।
विहरेत् सप्तद्वीपेशु मम कर्मविनिश्चितः॥४८॥

हे धरणि! वहाँ पर एक अत्यन्त गुह्य पञ्चशिख नाम का स्थल है, जहाँ पर शिलातल पर एक पवित्र धारा गिरा करती है।३९।।

वहाँ पर एक रात व्यतीत कर स्नान करने वाला मनुष्य शूरवीर, क्षत्रिय और मेरा कर्मपरायण हुआ करता है।।४०।।

फिर वहाँ पर प्राणोत्सर्ग कर कृतकृत्य और पवित्र हुआ मनुष्य इन्द्रलोक का अतिक्रमण करते हुए मेरे लोक को जाया करता है।।४१।।

एक अन्य क्षेत्र 'सूर्यप्रभ' नाम का परम गुह्य स्थान है। जहाँ पर अग्नि और सूर्य के समान दीखने वाली उष्ण धारा गिरा करती है। वहाँ पर जो जन पाँच रातों तक रहते हुए स्नान करते हैं, तो वे जन सूर्यलोक में निवास करता हुआ मेरे मार्ग का अनुसरण करने वाला हुआ करते हैं।।४२-४३।।

यदि कोई जन इस सूर्यधारा में प्राणोत्सर्ग करता है, तो वे जन सूर्यलोक का अतिक्रमण करते हुए मेरे लोक को जाता है।।४४।।

हे देवि! एक अन्य मेरा परम गुह्य धेनुवट नाम का क्षेत्र है। यहाँ पर पर्वत शिखर से एक पूर्ण धारा गिरा करती है।।४५।।

वहाँ सात रातों तक रहते हुए प्रत्येक दिन स्नान करने के बाद मेरा कर्म करने वाला मनुष्य ऋषिव्रत से युक्त और मेरा भक्त होता है।।४६।।

वहाँ पर प्राणोत्सर्ग करने वाला मेरा कर्मपरायण पुरुष ऋषिलोक में निवास करने के बाद मेरे लोक में जाता है।।४७।।

इसी तरह सप्तसामुद्रिक नाम का एक अन्य परम गुह्य क्षेत्र है। सप्त समुद्र तीर्थ में स्नान करने पर मेरा भक्त ज्ञान सम्पन्न होकर सात द्वीपों में विहार करने वाला होता है। और ऐसा मनुष्य निश्चयात्मक रूप से मेरे कर्म को विशेषता से करता है।।४८।।

तत्राथ मुञ्चते प्राणान् मम चिन्तासमन्वितः। सप्तद्वीपमतिक्रम्य मम लोकं तु गच्छति॥४९॥
अस्ति धर्मोद्भवं नाम तस्मिन् क्षेत्रे परं मम। एकधारानुपतते गिरिकुञ्जे शिलातले॥५०॥
तत्र स्नानं तु कुर्वीत एकरात्रोषितो नरः। न वैश्यो जायते शूद्रो मम कर्मपरायणः॥५१॥
तत्राथ मुञ्चते प्राणान् गुह्ये देवि शिलोच्चये। साङ्गं यज्ञं सदाक्षिण्यं भुक्त्वा मां प्रतिपद्यते॥५२॥
अस्ति कोटिवटं नाम क्षेत्रं गुह्यं परं मम। एकधारा पतत्यत्र वटमूलमुपाश्रिता॥५३॥
तत्र स्नांन तु कुरुते त्रिरात्रोपोषितो नरः। यावन्ति वटपत्राणि तस्मिन् शृङ्गे परे मम॥५४॥
तावद् वर्षसहस्राणि रूपसंपत्समन्वितः। तिष्ठते तु वरारोहे मम मार्गानुसारिणः॥५५॥
तत्राथ मुञ्चते प्राणान् कृत्वा कर्म सुदुष्करम्। अग्निवर्णस्ततो भूत्वा मम लोकं च गच्छति॥५६॥
पाप्रपमोचनं नाम गुह्यमस्ति परं मम। पततेत्रैकधारा तु स्थूला कुम्भसमानतः॥५७॥
यस्तत्र कुरुते स्नानमहोरात्रोषितो नरः। जायते च चतुर्वेदो मम कर्मानुसारिणः॥५८॥
तत्राथ मुञ्चते प्राणान् नदीं कौशिकिमाश्रितम्। यस्त्र कुरुते स्नानं पञ्चरात्रोषितो नरः।
मोदते वासवे लोके मम मार्गानुसारिणः॥५९॥

वहाँ पर ऐसे जन प्राण त्याग कर मेरी भक्ति से सम्पन्न हो जाता है। फिर वेसात द्वीपों का अतिक्रमण कर मेरे लोक में चला जाता है।।४९।।

उस क्षेत्र में ही एक अन्य धर्मोद्भव नाम का मेरा एक स्थान है। वहाँ पर पर्वत कुञ्ज से शिलातल पर एक धारा गिरा करती है।।५०।।

वहाँ पर एक रात रहते हुए मनुष्य को स्नान करना श्रेष्ठ होता है। इस प्रकार स्नान करने वाला मनुष्य वैश्य या शूद्र योनि में जन्म नहीं लेता है। फिर वह मेरा कर्मपरायण भी हुआ करता है।।५१।।

हे देवि! फिर यदि वह वहाँ गुह्य उस शिखर पर अपना प्राणोत्सर्ग करता है, तो इस प्रकार करने वाला दक्षिणा युक्त साङ्ग यज्ञ का फल भोगते हुए मुझे प्राप्त करने में सफल हो जाता है।।५२।।

एक दूसरा क्षेत्र 'कोटवट' नाम का श्रेष्ठ गुह्य क्षेत्र है। वहाँ पर पर्वत शिखर से एक धारा मात्र गिरा करती है, जो धारा वट मूल होकर प्रवाहित होती है।।५३।।

इस प्रकार वहाँ तीन रात उपवास पूर्वक व्यतीत करते हुए जो जन स्नान करते हैं,वे मेरे उस शिखर पर जितने वट पत्र हैं, हे सुन्दरि! उतने हजार वर्षों तक स्वरूप और सम्पत्तिवान् होकर मेरे मार्ग का अनुगमन करने वाले होते हैं।।५४-५५।।

यदि वहाँ वे कठिनतर कर्मों को सम्पन्न करते हुए अपना प्राणोत्सर्ग करते हैं, तो वे अग्निवर्ण सदृश तेजस्वी होकर मेरे लोक में जाता है।।५६।।

फिर मेरा एक गुप्त और श्रेष्ठ स्थल, जिसे 'पाप प्रमोचन' नाम से जानना चाहिए, वहाँ पर कुम्भ के समान एकमोटी धारा पर्वत शिखर से गिरा करती है।५७।।

अतः वहाँ पर एक दिन रात निवास करते हुए स्नान करने वाला चारों वेदों के परम जानकार और मेरे कर्म का अनुसरण करने वाला होता है।।५८।।

फिर जो जन वहाँ कौशिकी नदी के समीप प्राणोत्सर्ग करने वाले हैं और जो पाँच रातों तक वहाँ निवास करने

तत्राथ मुञ्चते प्राणान् मम कर्मपरायणः। वासवं लोकमुत्सृज्य मम लोकं तु गच्छति।।६०।।
यमव्यसनकं नाम गुह्यमस्ति परं मम। स्त्रोतो वहति तत्रैकं नदीं कौशिकिमाश्रितम्।।६१।।
यस्तत्र कुरुते स्नानमेकरात्रोषितो नरः। न स गच्छति दुर्गाणि यमस्य व्यसनं महत्।।६२।।
अथ तत्र ज्यजेत् प्राणान् मम कर्मपरायणः। विशुद्धो मुक्तपापोऽसौ मम लोकाय गच्छति।।६३।।

मातङ्गं नाम विख्यातं तस्मिन् क्षेत्रे परं मम।
स्त्रोतो वहति तत्रैव नदीकौशिकिमाश्रितम्।।६४।।

स्नानं कुर्वन्ति ये तत्र एकरात्रोषिता नराः। भेदं किंपुरुषं प्राप्य जायन्ते नात्र संशयः।।६५।।
विद्वाञ्छुचिश्च जायेत मम कर्मानुसारकः। रूपवान् गुणवांश्चैव मम कर्मसु निष्ठितः।।६६।।
तत्राथ मुञ्चते प्राणन् गुह्ये देवि परे मम। मुक्त्वा किंपुरुषं भेदं मम लोकाय गच्छति।।६७।।
अस्ति वज्रभवं नाम तस्मिन् गुह्ये परं मम। स्त्रोतो वहति तत्रैकमाश्रितं कौशिकीं नदीम्।।६८।।
स्नानं करोति यस्तत्र एकरात्रोषितो नरः। जायते शक्रलोके तु मम कर्मानुसारकः।।६९।।

वाले हैं, वे वहाँ स्नान करने के बाद इन्द्रलोक में विहार करते हुए मेरे मार्ग का अनुसरण करने वाले हुआ करते हैं।।५९।।

जो कोई मेरा कर्मपरायण जन वहाँ अपने प्राणों का उत्सर्ग किया करते हैं,वे इन्द्रलोक का अतिक्रमण कर मेरे लोक में चले जाते हैं।।६०।।

फिर मेरा एक क्षेत 'यम व्यसनक' नाम से अति गुह्य स्थान है, वहाँ पर कौशिकी नदी का एक सोता बहा करता है।।६१।।

जो कोई जन वहाँ एक रात्रि उपवासपूर्वक रहते हुए स्नान किया करते हैं, उसे यम के महा व्यसन के कष्टों व दुःखों को नहीं भोगना पड़ता है।।६२।।

इस प्रकार यदि कोई मेरा कर्मपरायण जन वहाँ अपना प्राणों का उत्सर्ग करते हैं, तो वे शुद्ध और पापमुक्त होकर मेरे लोक में चले जाते हैं।।६३।।

उसी क्षेत्र में एक मेरा श्रेष्ठ 'मातङ्ग' नाम का ख्यात स्थल है, वहाँ भी कौशिकी नदी से सम्बन्धित एक धारा प्रवाहित होता रहता है।।६४।।

जो कोई जन वहाँ पर एक रात निवास करते हुए स्नान किया करते हैं, वे जन निःसंशय किन्नर लोक में उत्पन्न हुआ करते हैं।।६५।।

ऐसे मेरे कर्मों का अनुपालन करने वाले जन सुन्दर, गुणवान, पवित्र, विद्वान् और मेरा कर्म परायण हुआ करते हैं।।६६।।

मेरे ऐसे उस परम गुप्त स्थल में प्राण विसर्जित करने वाले गन्धर्व लोक का अतिक्रमण कर मेरे लोक में चले जाते हैं।।६७।।

फिर मेरे उस गुप्त स्थान में ही एक 'वज्रभव' नाम का श्रेष्ठ क्षेत्र भी है। वहाँ भी कौशिकी नदी की एक धारा प्रवाहित हुआ करती है, जो जन वहाँ पर एक रात रहते हुए स्नान भी कर लेता है, वे इन्द्रलोक में उत्पन्न होकर मेरे कर्म को करने वाला हुआ करते हैं।।६८-६९।।

शरीरचक्रसङ्घाते वज्रहस्तस्वरूपकः। तत्र स्नानप्रभावेन जायते नात्र संशयः॥७०॥
अथात्र मुञ्चते प्राणान् मम चिन्तानुसारिणः। शक्रलोकमतिक्रम्य मम लोकं प्रपद्यते॥७१॥
तत्र त्रिक्रोशमात्रेण गुह्यं क्षेत्रं परं मम। शक्रकुण्डेति विख्यातं तस्मिन् कोकाशिलातले॥७२॥
स्नानं ये तत्र कुर्वन्ति त्रिरात्रोपोषिता नराः। जम्बूद्वीपेषु परित्यज्य भवते मम पार्श्वगः॥७३॥
अस्ति गुह्यं परं भद्रे तस्मिन् क्षेत्रे परं मम। मनुजा येन गच्छन्ति मुक्त्वा संसारसागरम्॥७४॥
दंष्ट्राङ्कुरेति विख्यातं यत्र कोका विनिःसृता। एतद् गुह्यं न जानन्ति यतो मुञ्चन्ति जन्तवः॥७५॥
तत्र कृतोदको भद्रे अहोरात्रोषितो नरः। जायते शाल्मलिद्वीपे मम कर्मानुसारिणः॥७६॥
तत्राथ मुञ्चते प्राणान् मम कर्मसु निष्ठितः। शाल्मलिद्वीपमुत्सृज्य मम पार्श्वे स तिष्ठति॥७७॥
तस्मिन् क्षेत्रे महाभागे गुह्यमस्ति परं मम। विष्णुतीर्थमिति खतं मम भक्तसुखवहम्॥७८॥
तः पर्वतध्मये तु कोकायां पतते जलम्। त्रीणि स्त्रोतो महाभागे सर्वसंसारमोक्षणम्॥७९॥
तत्र कृतोदको भूमि छित्वा संसारबन्धनम्। वायोश्च भवनं प्राप्य वायुभूतः स तिष्ठति॥८०॥

इस प्रकार वे अपने स्नान करने के प्रभाववश निःसंशय उसके शारीरिक अंगों का स्वरूप इन्द्र के समान हो जाया करते हैं।।७०।।

इसी प्रकार मेरा ध्यान करने वाला जन वहाँ अपने प्राणों का विसर्जन करते हुए इन्द्रलोक का भी अतिक्रमण कर मेरे ही लोक को जाता है।।७१।।

एक न्य क्षेत्र उस 'को' नाम के पर्वत की तराई में शब्दकुण्ड नाम से प्रसिद्ध तीन कोश विस्तृत मेरा परम गुह्य क्षेत्र है, जो जन वहाँ पर तीन रातों तक उपवास पूर्वक स्नान किया करते हैं, वे जन जम्बूद्वीप में जन्म लिया करते हैं। वहाँ जामुन का एक विशाल वृक्ष विद्यमान है, वहाँ पर अपना प्राण उत्सर्ग करने वाले जन जम्बूद्वीप का अतिक्रमण कर मेरा अनुसरण करने वाला हो जाता है।।७२-७३।।

हे भद्रे! उस क्षेत्र में भी मेरा एक परम गुह्य क्षेत्र है, जिसके प्रभाववश मनुष्य संसार सागर से विमुक्त हो जाया करता है।।७४।।

उस क्षेत्र का नाम दंष्ट्राङ्कुर प्रसिद्ध है, जहाँ पर कोका नाम की नदी निःसरित हुआ करती है। इस क्षेत्र को कोई जन नहीं जानते हैं। इस क्षेत्र में समस्त जीवों को मुक्ति प्राप्त हो जाया करती है।।७५।।

हे भद्रे! वहाँ पर एक दिन रात रहते हुए स्नान आदि जल क्रिया करने वाले जन शाल्मलि द्वीप में उत्पन्न होकर मेरा कर्मपरायण हुआ करते हैं।।७६।।

मेरे कर्म परायण जन वहाँ पर अपना प्राण उत्सर्ग करने के बाद शाल्मलि द्वीप का अतिक्रमरण कर मेरा सहचर हुआ करते हैं।।७७।।

हे महाभागे! उस क्षेत्र में मेरा एक अन्य परम गुप्त और मेरे भक्तों को सुख प्रदान करने वाला 'विष्णुतीर्थ' नाम से ख्यात स्थान है।।७८।।

हे महाभागे! वहाँ कोका पर्वत के मध्य से समस्त संसार सागर से विमुक्त करने वाले जल के तीन धारायें प्रवाहित हुआ करती हैं।।७९।।

हे भूमे! वहाँ पर स्नान, तर्पण आदि जल क्रिया करने वाले जन इस संसारके कर्म बन्धन को काटते हुए वायुलोक में जाकर वायु रूप में निवास किया करते हैं।।८०।।

तत्राथ मुञ्चते प्राणान् मम कर्मसु निष्ठितः। मुक्त्वा वायुं स चात्मानं मम लोकाय गच्छति॥८१॥

अस्ति तत्र परं स्थानं सङ्गमं कौशिकोकयोः।
सार्वकामिकविख्याता शिला तिष्ठति चोत्तरे॥८२॥

तत्र यः कुरुते स्नानमहोरात्रोषितो नरः। विस्तीर्णे जायते वंशे जातिं स्मरति चात्मनः॥८३॥
स्वर्गे वा यदि वा भूमौ यं यं कामयते भुवि। तत् तत् प्रापयते भूमि स्नातमात्रः शिलातले॥८४॥
त्राथ मुञ्चते प्राणान् म कर्मपथे स्थितः। सर्वसङ्गं परित्यज्य मम लोकाय गच्छति॥८५॥

अस्ति मत्स्यशिला नाम गुह्यं कोकामुखे परम्।
धाराः पतन्ति तिस्रो वै नदीकौशिकमाश्रिताः॥८६॥
तत्र च स्नायमानस्तु यदि पश्यति मत्स्यकम्।
ततो जानीहि मां भूमि प्राप्तो नारायणः स्वयम्॥८७॥

तत्र मत्स्यं पुनर्दृष्ट्वा स्नायमानेन सुन्दरि। दद्यादर्घ्यं ततो भद्रे मधुलाजसमन्वितम्॥८८॥
यस्तत्र कुरुते स्नानं देवि गुह्ये ततः परे। तिष्ठते पद्मपत्रे तु सोत्तरे मेरुसंश्रिते॥८९॥
अथ प्राप्य प्रमुच्यते मत्स्यं गुह्यं परं मम। मेरुशृङ्गं समुत्सृज्य मम लोकाय गच्छति॥९०॥

फिर वहाँ उस तीर्थ में प्राण त्याग कर मेरा कर्मपरायण जन वायुलोक और अपने वायु स्वरूप से मुक्त होकर मेरे लोक में चले जाते हैं।।८१।।

फिर वहीं कौशिकी और कोकनदी के सगम स्थल पर एक श्रेष्ठ 'सर्वकामिक' नाम से प्रसिद्ध स्थान है। उसी के उत्तर दिशा में एक शिला है। जो जन वहाँ पर एक रातदिन रहते हुए स्नान भी करते हैं, वे निश्चय ही विशाल वंश में उत्पन्न हुआ करते हैं फिर वे अपने पूर्व के जन्मान्तरों का भी स्मृति प्राप्त कर लेते हैं।।८२-८३।।

हे भूमि! इस प्रकार उस शिलातल पर केवल स्नान करने वाले जन स्वर्ग अथवा पृथ्वी पर जो भी कुछ कामना करते हैं, वे सब के सब पूर्ण हो जाते हैं।।८४।।

फिर मेरे कर्म पथ पर विद्यमान रहता हुआ जो जन वहाँ पर अपना प्राण त्याग करते हैं, वेसभी अपने संगों याने दोषों से मुक्त होकर मेरे लोक में जाने में सफल हो जाते हैं।।८५।।

इसी प्रकार कोकामुख क्षेत्र में ही मत्स्य शिला नाम का एक परमगुप्त स्थान है, जहाँ पर कौशिकी नदी की तीन धारायें प्रवाहित होती हैं।।८६।।

हे भूमि! वहाँ पर स्नान करते हुए, जो जन मछलियों को देखा करते हैं, ऐसा समझना चाहिए कि उसे साक्षात् स्वयं नारायण प्राप्त हो गये हैं।।८७।।

हे सुन्दरि! स्नान करने वाले जनों को वहाँ मत्स्य को देखकर मधु और लाजा से युक्त अर्घ्य अर्पण करना चाहिए।।८८।।

हे देवि! जो जन उस परमगुप्त स्थान पर स्नान करते हैं, वे उत्तर दिशा में स्थित मेरुपर्वत पर स्थित पद्म पर अपने लिए स्नान प्राप्त करते हैं।।८९।।

इस प्रकार जो जन मेरे परमगुप्त मत्स्य नाम के स्थान में पहुच कर अपने प्राणों का उत्सर्ग करते हैं, वे मेरुशृङ्ग का अतिक्रमण कर मेरे लोक को जाने वाले होते हैं।।९०।।

पञ्चयोजनविस्तारं क्षेत्रं कोकामुखे मम। यत्स्वेतानि तवजानाति न स पापेन लिप्यते॥९१॥
अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व वसुंधरे। तस्मिन् कोकामुखे रम्ये तिष्ठामि दक्षिणामुखः॥९२॥
शिला चन्दनसंकाशा देवानामपि दुर्लभा। वाराहं रूपमादाय तिष्ठामि पुरुषाकृतिः॥९३॥
वामोन्नतमुखं कृत्वा वामदंष्ट्रासमन्वितम्। पश्यामि च जगत् सर्वं ये च भक्ता मम प्रियाः॥९४॥
ये च मां स्मरते भूमे पुरुषा मुक्तकिल्बिषाः। तत्र कुर्वन्ति कर्माणि शुद्धं संसारमोक्षणम्॥९५॥
यदि कोकामुखं गच्छेत् कदाचित्कालपर्यये। मा ततो विनिवर्त्तेत यदिच्छेन्मम साम्यताम्॥९६॥
गुह्यानां परमं गुह्यमेतत्स्थानं परं महत्। सिद्धीनां परमा सिद्धिर्गुह्यं कोकामुखं परम्॥९७॥

न च सांख्येन योगेन सिद्धिं यान्ति महत्पदम्।
यान्ति कोकामुखं गत्वा रहस्यं कथितं मया॥९८॥

एवं श्रेष्ठं महाभागे यत्त्वया परिपृच्छितम्। कथानां कथितं सर्वं किमन्यत्परिपृच्छसि॥९९॥
य एतत् पठते भद्रे कोकाभवमहत् परम्। तारिताः पितरस्तेन दश पूर्वा दशपराः॥१००॥
मृतो वा तत्र जायेत शुद्धे भागवते कुले। अनन्यमनसो भूत्वा मम मार्गानुसारिणः॥१०१॥

मेरे उस कोकामुख नाम के स्थल का विस्तार प्रमाण पाँच योजन है। जो जन इसे जानते हैं, वे किसी भी प्रकार से पाप से लिप्त नहीं हुआ करते हैं।।९१।।

हे वसुन्धरे! अब तुमको मैं कुछ अन्य रहस्य की बातें भी बतला रहा हूँ, उसे सुनो। मैं उस कोकामुख के रमणीय क्षेत्र में दक्षिणाभिमुख विद्यमान हूँ।।९२।।

वहीं पर देवताओं के लिए दुर्लभ चन्दन के समान शिला है। मैं उस पर वराहस्वरूप धारण कर पुरुष के समान स्थित हूँ।।९३।।

वहाँ मैं वामभाग की दंष्ट्रा से युक्त मुख को वाम दिशा में ऊँचा किये हुए सम्पूर्ण संसार को तथा अपने प्रिय भक्तों को देखा करता हूँ।।९४।।

हे भूमे! इस प्रकार निष्पाप जन मेरा स्मरण करते हुए संसार से मुक्त करने वाले शुद्ध कर्मों को किया करते हैं।।९५।।

यदि किसी काल क्रम के वश कभी कोकामुख में जान पड़े, तो मेरी समानता प्राप्त करने की कामना होने पर वहाँ से वापस नहीं होना चाहिए।।९६।।

यह परम महास्थ्ल गुप्ततर में भी परम गुह्य है। इस प्रकार से परम गुह्य कोकामुख सिद्धियों में परम सिद्धि प्रदाता है।।९७।।

इस प्रकार कोकामुख क्षेत्र में जाने से जिस महान् पद और सिद्धि की प्राप्ति होती है, वह सांख्य और योग से कथमपि नहीं प्राप्त होती है। मैंने तुमको यह रहस्य की बात बतलायी है।।९८।।

हे महाभागे! तुमने जो कुछ श्रेष्ठ बातें पूछी थीं, उन सबको मैंने तुमको कह दिया। अब और क्या पूछना है, पूछ लो।।९९।।

हे भद्रे! जो जन कोकामुख प्रसङ्ग के श्रेष्ठ उपाख्यान को पढ़ते हैं, वे अपने दश पूर्व और दस बाद के पीढ़ियों के पितरों को तार देता है। फिर मरने पर वे वहाँ शुद्ध भगवद् भक्त के कुल में जन्म लेकर अनन्य मन से मेरे मार्ग का अनुगमन करने वाले होते हैं।।१००-१०१।।

यश्चेदं शृणुयान्नित्यं कल्य उत्थाय मानवः। त्यक्त्वा पञ्चशतं जन्म मम भक्तश्च जायते॥१०२॥
य एतत् पठते नित्यं कोकायाः परमं महत्। गच्छते परमं स्थानमेवमेतन्न संशयः॥१०३॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥
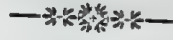
एकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

अथ बदरीवन माहत्म्यम्

श्रीवराह उवाच

तस्मिन् हिमवतः पृष्ठे तत्र गुह्यं परं मम। बदरीति च विख्याता देवानामपि दुर्लभा॥१॥
न तत् प्राप्नोति मनुजः कृत्वा कर्म सुदुष्करम्। प्राप्नुवन्ति च भक्ता ये बदरीं विश्वतारिणीम्॥२॥
दुर्लभं तन्मम क्षेत्रं हिमकूटशिलातले। यस्तत्र प्राप्नुते क्षेत्रं कृतकृत्यो भवेन्नरः॥३॥
ब्रह्मकुण्डेति विख्यातं शस्तं तत्र शिलोच्यते। हिमसंस्थं तथात्मानं कृत्वा तिष्ठामि माधवि॥४॥

जो जन सुबह-सबेरे उठकर इस आख्यान को नित्य सुना करते हैं, वे पन्द्रह जन्मों के भोग का त्याग करते हैं और मेरा भक्त हो जाया करते हैं।।१०२।।

जो जन कोकामुख के इस अत्यन्त गुह्य वर्णन का पाठ करता है, वे परम पद को प्राप्त करते हैं। इस प्रकार होने में कोई भी किसी भी प्रकार का संशय नहीं करना चाहिए।।१०३।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में कोकामुख का श्रेष्ठत्व और वहाँ अन्यान्य तीर्थों का माहात्म्य नामक एक सौ चालीसवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१४०॥

अध्याय-१४१

बदरीवन माहात्म्य और विभिन्न तीर्थों का वर्णन

श्री भगवान् वराह ने कहा कि वहाँ हिमालय के उस शिखर पर देवों को भी दुर्लभ बदरीवन नाम का मेरा गुप्त स्थान है।।१।।

साधारण मनुष्य वहाँ नहीं पहुँच सकता। अत्यन्त दुष्कर कर्म करने वाले मेरे भक्त जन ही हैं, जो विश्व का तारन करने वाले बदरी तीर्थ में पहुँचते हैं।।२।।

इस प्रकार उस हिमालय के शिखर की शिला पर मेरा वह दुर्लभ क्षेत्र है, जो मनुष्य वहाँ जाता है, वह कृतकृत्य हो जाता है।।३।।

उस ऊची शिला पर ब्रह्मकुण्ड नाम का प्रशस्त स्थान है। हे माधवि! मैं अपने आप को हिमरूप में परिणत कर वहाँ रहता हूँ।।४।।

स्नानं करोति यस्तत्र त्रिरात्रोपोषितो नरः। अग्निष्टोमशतं तुल्यं फलं प्राप्नोति मानवः॥५॥
उषित्वा तत्र कृच्छ्राणि यदि प्राणान् परित्यजेत्। ब्रह्मलोकमतिक्रम्य मम लोकं प्रपद्यते॥६॥
अग्निकुण्डमिति ख्यातं बदर्यायां ममाश्रमे। यत्राहं चाग्निना देवि तपसा परितोषितः॥७॥
हिमाग्निसदृशो भूत्वा तस्मिन् पञ्चशिलोच्चये। देवि तिष्ठामि तत्त्वेन मम भक्ताननुग्रहात्॥८॥
स्नानं करोति यस्तत्र एकरात्रोषितो नरः। दशाश्वमेधयज्ञानां फलं प्राप्नोति मानवः॥९॥
मुञ्चेत् प्राणांस्तत्र यदि कृत्वा चान्द्रायणं प्रिये। अग्निलोमतिक्रम्य मम लोकं स गच्छति॥१०॥
अस्ति सत्यपदं नाम तस्मिन् क्षेत्रे परं मम। त्रीणि शृङ्गात् पतन्त्येव धारा मुशलसन्निभाः॥११॥
यस्तत्र कुरुते स्नानं त्रिरात्रोपोषितो नरः। सत्यवादी भवेद् दक्षो मम कर्मपरायणः॥१२॥
यस्तत्र मुञ्चते प्राणान् यदि कृत्वा जलाशयम्। सत्यलोकमतिक्रम्य मम लोकाय गच्छति॥१३॥
अस्ति पञ्चशिखं नाम बदर्यामाश्रमे मम। यत्र धारा पतेत् पञ्च पञ्चशृङ्गसमाश्रिताः॥१४॥
यस्तत्र कुरुते स्नानं पञ्चस्त्रोते परं मम। मोदते नाकपृष्ठे तु सोऽश्वमेधफलं लभेत्॥१५॥

अतः उपवास पूर्वक तीन रातों तक वहाँ जो मनुष्य स्नान किया करते हैं, वे सब अग्निष्टोम के समान पुण्य फल प्राप्त करते हैं।।५।।

जो जन वहाँ निवास करते हुए कृच्छ्रव्रत कर प्रण विसर्जित किया करते हैं, वे ब्रह्मलोक का अतिक्रमण कर मेरे लोक में पहुँच जाता है।।६।।

हे देवि! उस बदरी में स्थित मेरे आश्रम के अग्निकुण्ड नाम के क्षेत्र में अग्नि ने तपस्या करके मुझे प्रसन्न किया था।।७।।

हे देवि! उस पञ्चशिला के ऊपर वास्तव में मैं भक्तों पर कृपा करने हेतु हिमाग्नि का स्वरूप धारण कर निवास करता हूँ।।८।।

इस प्रकार जो जन वहाँ एक रात रहते हुए स्नान करते हैं,उनको दश अश्वमेध यज्ञों का पुण्य फल मिलता है।।९।।

हे प्रिये! जो जन चान्द्रायण व्रत कर वहाँ पर अपना प्राण विसर्जन करते हैं, तो वे अग्निलोक को अतिक्रमण मेरे लोक को चला जाता है।।१०।।

उस क्षेत्र में सत्यपद नाम से मेरा एक श्रेष्ठ स्थान है। वहाँ पर मूसल के सदृश तीन धारायें प्रवाहित होती हैं।।११।।

इस प्रकार जो जन तीन रातों तक उपवास करते हुए स्नान करते हैं, वे सत्यवादी दक्ष और मेरा कर्मपरायण हुआ करता है।।१२।।

जल में रहते हुए जो जन वहाँ प्राणोत्सर्ग करते हैं, वे सत्यलोक का अतिक्रमण कर मेरे लोक में पहुँचता है।।१३।।

उस बदरी आश्रम में पञ्चशिख नाम का एक मेरा स्थल है, जहाँ पर पञ्चशिखरों पर स्थित पाँच धारायें प्रवाहित होती हैं।।१४।।

इस प्रकार जो जन पञ्चस्तोत्र में विद्यमान मेरे श्रेष्ठ क्षेत्र में स्नान कर लेते हैं, उसे अश्वमेध यज्ञ करने का फल मिलता है और वे स्वर्ग में विहार करते हैं।।१५।।

यद्यत्र मुञ्चते प्राणान् कृत्वा कर्म सुदुष्करम्। स्वर्गलोकमतिक्रम्य मम लोकं प्रपद्यते॥१६॥
चतुःस्रोतमिति ख्यातं तस्मिन् क्षेत्रे परं मम। चतुर्धाराः पतन्त्यत्र चतुरो दिशमाश्रिताः॥१७॥
यस्तत्र कुरुते स्नानमेकरात्रोषितो नरः। मोदते नाकपृष्ठे तु मम भक्तश्च जायते॥१८॥
अथ प्राणान् परित्यज्य कृत्वा कर्म सुदुष्करम्। नाकपृष्ठमतिक्रम्य मम लोकं प्रपद्यते॥१९॥
वेदधारा इति ख्यातं तस्मिन् क्षेत्रे परं मम। यत्र ब्रह्ममुखाद् भ्रष्टा वेदाश्चत्वार एव च॥२०॥
तत्रैव हिमवत्पृष्ठे चतुःशृङ्गे बृहत्तराः। धाराः पतन्ति चत्वारि विषमाश्च शिलोच्चये॥२१॥
यस्तत्र कुरुते स्नानं चतूरात्रोषितो नरः। चतुर्णामपि वेदानां ग्रहणे कारणं भवेत्॥२२॥
अथात्र मुञ्चते प्राणान् मम कर्मपथे स्थितः। देवलोकमतिक्रम्य मम लोके प्रतिष्ठते॥२३॥
द्वादशादित्यकुण्डेति तस्मिन् क्षेत्रे परे म। यत्र ते द्वादशादित्या देवि संस्थापिता मया॥२४॥
तत्र पर्वतश्रृङ्गे तु स्थूलमूले शिलातले। द्वादशा पतते धारा मम कर्मसुखावहाः॥२५॥
यस्तत्र कुरुते स्नानं या काचिद् द्वादशी दिने। यत्र ते द्वादशादित्यास्ततत्र गच्छेन्न संशयः॥२६॥
अथात तुञ्चते प्राणान् मम कर्मणि संस्थितः। समतिक्रम्य चादित्यान् मम लोके महीयते॥२७॥

जो कोई जन अत्यन्त दुष्कर कर्म करके यहाँ पर प्राण उत्सर्ग करते हैं,वे जन स्वर्गलोक का अतिक्रमण कर मेरे लोक में चला जाता है।।१६।।

फिर उसी क्षेत्र में चतुःस्रोत नाम का मेरा श्रेष्ठ स्थल है। यहाँ चारों दिशाओं में प्रवाहित हो रही चार धारायें गिरती हैं। जो जन एक ही रात यहाँ रहते हुए स्नान करते हैं, वे स्वर्ग में विहार करते हैं और वे मेरा भक्त होते हैं।।१७-१८।।

यहाँ अत्यन्त दुष्कर कर्म करके प्राण विसर्जित करने वाले जन स्वर्ग का अतिक्रमण कर मेरे लोक में चला जाता है।।१९।।

मेरे उसी क्षेत्र में वेदधारा नाम का स्थल है, जहाँ ब्रह्मा के मुख से चार वेद प्रकट हुए थे।।२०।।

वहाँ पर हिमालय पर्वत के चार शिखरों पर चार विशाल विषम धारायें शिलाओं के ऊपर गिरती हैं।।२१।।

जो जन चार रातों तक वहाँ रहते हुए स्नान करते हैं, वे चारो वेदों को प्राप्त करने के कारण होते हैं याने चतुर्वेदज्ञ होते हैं।।२२।।

फिर वे मेरे कर्म मार्ग में संलग्न होकर यहाँ पर प्राणोत्सर्ग करने वाले जन देवलोक का अतिक्रमण कर मेरे लोक में चला जाता है।।२३।।

हे देवि! मेरे उस श्रेष्ठ क्षेत्र में द्वादशादित्य का कुण्ड है। जहाँ पर मेरे द्वारा द्वादश आदित्यों की स्थापना की गई थी।।२४।।

वहीं पर पर्वत के शिखर पर स्थूलमूल युक्त शिला पर बारह धारायें गिरती हैं। वे धारायें मेरा कर्म करने में सुख प्रदायक सिद्ध होती हैं।।२५।।

जो जन किसी भी द्वादशी तिथि के दिन वहाँ पर स्नान करते हैं। वे संशय मुक्त होकर वहाँ जाता है, जहाँ द्वादशादित्य विराजते हैं।।२६।।

वहीं पर मेरा कर्म करने वाले जन अपना प्राणोत्सर्ग करते हैं, तो फिर उसको द्वादश आदित्यों का अतिक्रमण कर मेरे लोक में सम्मान मिलते हैं।।२७।।

लोकपालमिति ख्यातं तस्मिन् क्षेत्रे परं मम। तत्र ते लोकपाला मे देवि संथापिता मया॥२८॥
तत्र पर्वतमध्ये तु स्थूलकुण्डं बृहन्महत्। भित्त्वा पर्वतमुद्गारो यत्र सोमसमुद्भवः॥२९॥
तत्र स्नानं तु कुर्वीत ज्येष्ठमासस्य द्वादशीम्। मोदते लोपालेषु मम भक्तश्च जायते॥३०॥
अथात्र मुञ्चते प्राणान् कृतकर्माऽपि द्वादशीम्। लोकपालानतिक्रम्य मम लोकं प्रपद्यते॥३१॥
अस्ति मेरोर्वरं नाम तस्मिन् गुह्ये परं मम। तत्र स्थितेन मे भूमि मेरुः संस्थापितो मया॥३२॥
तत्र धाराः पतेत् त्रीणि सुवर्णसदृशप्रभाः। पतन्ति तज्जलं भूमि व्यक्तिर्नैवोपलभ्यते॥३३॥
यस्तत्र कुरुते स्नानं त्रिरात्रोपोषितो नरः। मोदते मेरुशृङ्गेषु मम भक्तश्च जायते॥३४॥
अथ तत्र मृतो देवि तस्मिन् गुह्ये परे मम। मेरुपृष्ठमतिक्रम्य मम लोकाय गच्छति॥३५॥
मानसोद्भेदविख्यातो बदर्यामाश्रमे म। यच्छिलातलमध्ये तु जलं गच्छति विस्तरम्॥३६॥
देवाप्येवं न जानन्ति तं देशं तत्र संस्थितम्। मानुषा हि विजानन्ति भूम्यां पतति तज्जलम्॥३७॥
यस्तत्र कुरुते स्नानमहोरात्रोषितो नरः। मोदते मानसे दिव्ये मम भक्तश्च जायते॥३८॥

हे देवि! उसी क्षेत्र में लोकपाल नाम का मेरा श्रेष्ठ स्थान है। मेरे द्वारा वहाँ पर लोकपालों की स्थापना की गई थी।।२८।।

जहाँ पर पर्वत के बीच में एक महान् विशाल स्थूलकुण्ड है, उस पर्वत के शिखर को भेद कर ही सोम उत्पन्न हुए थे।।२९।।

वैसे ज्येष्ठ मास की द्वादशी तिथि के दिन वहाँ स्नान करनाश्रेष्ठ है। इस तरह से स्नान करने वाले जन लोकपालों के लोक में रमण किया करते हैं। जो जन निश्चय ही मेरा भक्त हुआ करते हैं।।३०।।

फिर मेरे कर्मों को करते हुए द्वादशी तिथि के दिन प्राणोत्सर्ग करने वाले जन लोपालों के लोकों का अतिक्रमण कर मेरे लोक में प्रतिष्ठित होते हैं।।३१।।

उसी गुह्य स्थान में 'मेरुवर' नाम का मेरा ही श्रेष्ठ स्थान है। हे भूमि! वहाँ रहते हुए मेरे द्वारा मेरु की स्थापना की गई थी।।३२।।

वहाँ पर सुपर्ण के सदृश प्रकाशयुक्त तीन धारायें गिरा करती हैं। हे भूमि! परन्तु वे धारायें वहाँ प्रत्यक्ष नहीं हैं।।३३।।

वहाँ तीन रातों तक उपवास करते हुए जो जन स्नान किया करते हैं, वे जन मेरु पर्वत पर रमण किया करते हैं और वे मेरा भक्त होते हैं।।३४।।

हे देवि! उस मेरे परम गुप्त स्थान में प्राणोत्सर्ग करने वाले जन मेरुपृष्ठ का अतिक्रमण करते हुए मेरे लोक में चले जाते हैं।।३५।।

फिर उस बदरी आश्रम में ही मानसोद्भेद नामक मेरा स्थान है। जहाँ पर शिलातल के बीच में जल का विस्तार देखा जाता है।।३६।।

वैसे देवगण भी वहाँ विद्यमान उस देश को नहीं ही जानते हैं। लेकिन भूमि पर जो जल गिरा करते हैं, उसे मनुष्य जन जानते हैं।।३७।।

इस प्रकारसे एक दिन रात रहते हुए जो जन वहाए स्नान कर लेते हैं, वे जन दिव्य मानस सरोवर के क्षेत्र में रमण किया करते हैं और वे मेरा भक्त होते हैं।।३८।।

अस्ति पञ्चशिरं नाम तस्मिन् गुह्यं परं मम। यत्र संच्छिद्यते ब्रह्मशिरश्चैव महाद्युतिः॥३९॥
तत्र वै पञ्चकुण्डानि स्थूलशीर्षशिलोच्चये। पञ्चज्ञत्र शिरसंस्थानि बहुधारासमन्विताः॥४०॥
यस्तु मन्मध्यमं कुण्डं छिन्नमेव स्वयंभुवा। तत्र रक्तजला भूमिर्दृश्यते धारसंकुला॥४१॥
यस्तत्र कुरते स्नानं पञ्चरात्रोषितो नरः। मोदते ब्रह्मलोकस्थो मम भक्तश्च जायते॥४२॥
तत्राथ मुञ्चते प्राणान् गुह्ये पञ्चशिरे मम। जलचान्द्रायणं कृत्वा मम कर्मसु निष्ठितः॥४३॥
बुद्धिमान् मतिमांश्चैव रागमोहविवर्जितः। ब्रह्मलोकमतिक्रम्य मम लोकाय गच्छति॥४४॥
अस्ति सोमाभिषेकेति तत्र गुह्यं परं मम। राजत्वे ब्राह्मणानां च माभिषिक्तं पुरा मया॥४५॥
तत्राहं तोषतस्तेन अत्रिपुत्रेण माधवि। नव पञ्च च कोट्यानि कृत्वा कर्म सुदुष्करम्॥४६॥
प्राप्तश्च परमां सिद्धिं मत्प्रसादाद् वसुंधरे। तदायत्तं जगत् सर्वं ब्रीहयः परमौषणम्॥४७॥

जायन्तेऽस्मिन् प्रलीयन्ते स्कन्देन्द्राः समरुद्गणाः।
भूमि सोममयं सर्वं मम संस्थो भविष्यति॥४८॥

तत्र सोमगिरिर्नाम यत्र धारा पतेद् भुवि। कुण्डेऽरण्ये विशाले तु एएत् ते कथितं मया॥४९॥

वहीं पर पञ्चशिर नामक मेरा परमगुह्य स्थान है, जहाँ महातेजस्वी ब्रह्मशिर का छेदन हुआ था।।३९।।

उस स्थूल शीर्ष की शिला पर पाँच कुण्ड हैं। चोटी पर प्रवाहित हो रही पाँच धारायें वहाँ कुण्डों में गिरा करती हैं।।४०।।

वहाँ जो मध्यम कुण्ड है, उसे ब्रह्माजी ने ही बनाया है। धारा से पूर्ण उस कुण्ड में लाल वर्ण के जल सम्पन्न भूमि दिखाई दिया करती है।।४१।।

इस प्रकार पाँच दिन रात वहाँ रहते हुए स्नान करने वाले जन ब्रह्मलोक में आनन्दित हुआ करते हैं और वे मेरा भक्त होते हैं।।४२।।

मेरा कर्मपरायण जो जन जल चान्द्रायण व्रत कर गुप्त पञ्चशिर नाम के स्थान पर अपना प्राण उत्सर्ग करते हैं, वे जन बुद्धिमान्, मतिवान्, और रागद्वेष से शून्य होकर मेरे लोक का अतिक्रमण कर मेरे पास आ जाता है।।४३-४४।।

फिर वहीं पर सोमाभिषेक नाम का मेरा परम गुह्य स्थान है, पूर्वकाल में मैंने वहाँ ब्राह्मणों के राजा के पद पर सोम को अभिषिक्त किया था।।४५।।

हे माधवि! दुष्कर चौदह करोड़ वर्षों तक वहाँ ऋषि अत्रि के उस पुत्र ने दुष्कर कर्म अर्थात् कठिनतर तप करते हुए मुझे प्रसन्न किया था।।४६।।

हे वसुन्धरे! उसको मेरी कृपा से परम सिद्धि मिली थी। समस्त जगत्, समस्त अनाज और श्रेष्ठ औषधियाँ उसके अधीन हो गयीं।।४७।।

मरुद्गणों सहित इन्द्रादि देवता किसी समय उससे उत्पन्न होते और उसी में विलीन होते थे। हे भूमे! सोम से उत्पन्न सम्पूर्ण जग्रत् मुझ में स्थित होगा।।४८।।

वहाँ सोमगिरी नाम के पर्वत हैं, जहाँ भूमि पर स्थित विशाल कुण्ड में एक धारा गिरती है। मैंने तुमको यह रहस्य की बात बतला दिया है।।४९।।

यस्तत्र कुरुते स्नानं त्रिरात्रोपोषितो नरः। मोदते सोमलोके तु एवमेतन्न संशयः॥५०॥
अथात्र म्रियते देवि कृत्वा कर्म सुदुष्करम्। सोमलोकमतिक्रम्य मम लोकं प्रपद्यते॥५१॥
अस्ति चोर्वशिकुण्डेति गुह्यं क्षेत्रं परं मम। यत्र चैवोर्वशी भित्त्वा दक्षिणोरुमजायत॥५२॥
तत्र तप्याम्यहं देवि देवानामपि कारणात्। न मां कश्चिद् विजानाति स्वात्मनो हि विजानते॥५३॥
ततो मे तप्यमानस्य बहुवर्षव्यतिक्रमम्। देवा अपि न जानन्ति वर्ज्य ब्रह्ममहेश्वरौ॥५४॥
एकैकेन फलेनात्र बदर्यायां सुनिश्चितम्। दिव्यं वर्षसहस्रं वै तपश्चीर्णं मया भुवि॥५५॥
तत्राहं दशकोट्यानि दशवर्ष तथार्बुदम्। दश भूमे च पद्मानि निष्ठितोऽहं तपःस्थितः॥५६॥
ततस्ते मां न पश्यन्ति देवा गुह्यपथे स्थितम्। विस्मयं परमं जग्मुर्देवा दुःखपरायणाः॥५७॥
अहं पश्यामि सर्वान् वै तपःसंस्थो वसुंधरे। ते मां सर्वे न पश्यन्ति मायायोगव्रते स्थितम्॥५८॥
ततस्ते देवताः सर्वे प्रत्यूचुश्च पितामहम्। विष्णुना च विना लोके शान्तिं नैव लाभमहे॥५९॥
देवतानां वचः श्रुत्वा ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः। योगमायापटच्छन्नं कथयामास मां तदा॥६०॥

इस प्रकार तीन रातों तक उपवास करते हुए जो वहाँ स्नान किया करते हैं, वह मनुष्य सोमलोक में अनन्द किया करते हैं। इसमें संशय नहीं करना चाहिए।।५०।।

हे देवि! अति दुष्कर कर्म करके जो जन वहाँ पर अपना प्राण -उत्सर्ग करने के उपरान्त सोमलोक का अतिक्रमण कर मेरे लोक में चले जाते हैं।।५१।।

उर्वशी कुण्ड नाम के मेरा परम गुप्त एक क्षेत्र है, जहाँ उर्वशी ने मेरी दक्षिण जाँघ को भेद कर जन्म लिया था।।५२।।

हे देवि! देवताओं के हेतु मैं वहाँ तप कर रहा हूँ। मुझे कोई भी नहीं जानता। मैं स्वयं ही स्वयं को जान रहा था।।५३।।

उस समय इस तरह तप करते हुए दीर्घकाल व्यतीत हो गये। ब्रह्मा और शंकर के अतिरिक्त देवगण भी इसे नहीं जानते हैं।।५४।।

हे भुवि! बदरी क्षेत्र में मैंने निश्चिन्त होकर एक-एक फल से दिव्य हजार वर्षों तक तपस्या की है।।५५।।

हे भूमे! इस प्रकार से मेरे द्वारा वहाँ पर दस पद्म, दस अरब, दस करोड़ वर्षों तक निष्ठापूर्वक तप किया गया था।।५६।।

अतएव वे देवगण गुप्त पथ में स्थित हुआ मुझे नहीं देखने में सफल हो पाते थे। इससे दुःख परायण देवताओं को अत्यन्त आश्चर्य हुआ।।५७।।

हे वसुन्धरे! वैसे मैं तप करते हुए भी उन मसस्त देवों को देखा करता था। वे सभी मायायोग सम्पन्न व्रत में विद्यमान मुझको नहीं देख पा रहे थे।।५८।।

फिर समस्त देवताओं ने आदि देव पितामह से पूछा कि विष्णु के नहीं होने से इस संसार में हम लोगों को शान्ति नहीं मिल रही है।।५९।।

इस प्रकार से देवताओं के वचन को सुनकर ब्रह्मज्ञानियों में परम श्रेष्ठ ब्रह्माजी ने योगमाया रूपी पट से समाच्छादित मुझे बतलाया।।६०।।

ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः। तत्र जग्मुर्महाभागे तुष्यन्तः परया मुदा।
विभावयन्ति मां तत्र देवा इन्द्रपुरोगताः॥६१॥
त्वया नाथ परित्यक्ता दुःखिताः शर्मवर्जिताः। त्रायस्व नो हृषीकेश परमानुग्रहेण वै॥६२॥
एतत् कृत्वा विशालाक्षि देवान् प्रणतिपूर्वकान्। मया विलोकिताः सर्वे परां निर्वृतिमागताः॥६३॥
तदेतदुर्वशीकुण्डे एकरात्रोषितो नरः। यः स्नाति सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः।
उर्वशीलोकमसाद्य क्रीडते कालमक्षयम्॥६४॥
यस्तत्र चोत्सृजेत् प्राणान् मम कर्मपरायणः। पुण्यपापविनिर्मुक्तो याति मल्लयतां प्रिये॥६५॥
बदरीमाश्रमं पुण्यं यत्र तत्र स्थितः स्मरेत्। य याति वैष्णवं स्थानं पुनावृत्तिवर्जितः॥६६॥
य इदं शृणुयान्नित्यं मद्भक्तः सततं पठेत्। ब्रह्मचारी जितक्रोधः सत्यवादी जितेन्द्रियः।
ध्यानयोगरतो नित्यं स मुक्तिफलभाग् भवेत्॥६७॥
यस्यैतद् विदितं सर्वं ध्यानयोगं वसुंधरे। योऽवगच्छति चात्मानं स गच्छेत् परमां गतिम्॥६८॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे एकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥१४१॥

फिर गन्धर्वों के साथ देवता, सिद्ध और श्रेठ ऋषिगण परम आनन्द एवं सन्तोषपूर्वक वहाँ गए। इन्द्रादि के साथ देवताओं ने वहाँ मुझे देखा और फिर कहा—।।६१।।

हे नाथ! आपके द्वारा परित्यक्त हो जाने पर हम सब दुःखी और शान्ति रहित हो गये हैं। हे हृषिकेश! परम कृपा द्वारा आप हमारी रक्षा करें।।६२।।

हे विशालाक्षि! मैंने इस प्रकार से कहते हुए स्तुति करते हुए प्रणाम करने वाले देवताओं को भी देखा है। उन सबको परम शान्ति प्राप्त हुई।।६३।।

इस प्रकार एक रात प्रवास करते हुए जो जन उस उर्वशी कुण्ड में स्नान करते हैं, वे जनसर्वपापों से रहित हो जाया करते हैं। इसमें संशय नहीं करना चाहिए। वे जन उर्वशी लोक में पहुँचकर अक्षय काल तक रमण करते रहते हैं।।६४।।

हे प्रिये! इस प्रकार मेरा कर्मपरायण, जो जन वहाँ पर अपना प्राणों का उत्सर्ग करते हैं, वे पुण्य और पाप से विमुक्त होकर मुझ में विलीन हो जाते हैं।।६५।।

जहाँ-कहीं भी रहते हुए जो जन पवित्र बदरी आश्रम का स्मरण किया करते हैं, वे पुनः पुनः जन्म लेने के बन्धन से रहित होकर विष्णु के लोक में चले जाते हैं।।६।।

जो जन नित्य इसे सुनता या सुनाता या पाठ करते हैं, वे जन ब्रह्मचारी, क्रोधमुक्त, सत्य बोलने वाला, जितेन्द्रिय, ध्यान योग में सदा लगा रहने वाला मेरा भक्त कहलाते हुए मुक्ति पाने के अधिकारी होते हैं।।६७।।

हे वसुन्धरे! जो जन इस अखिल ध्यान योग के प्रसङ्ग के बारे में जानते और समझते हैं और जो जन आत्मा के स्वरूप को भी जानते हैं, उन्हें निश्चय ही परमगति मिलती है।।६८।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में बदरीवन माहात्म्य और विभित्र तीर्थों का वर्णन नामक एक सौ इकतालिसवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायण-कुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१४१॥

❖❖❖

द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

अथ गुह्यकर्मादिनिरूपणम्

सूत उवाच

ततो देववचः श्रुत्वा धर्मकामा वसुधरा। कृताञ्जलिपुटा भूत्वा प्रसादयति माधवम्॥१॥

धरण्युवाच

दास्या मे प्रणयं कृत्वा विज्ञाप्यं शृणु माधव।
मृदुना च स्वभावेन वक्ष्यामि त्वां जनार्दन॥२॥

अल्पप्राणबला नार्यो यत्त्वया परिभाषितम्। अशक्ताः सहितुं ह्येताः क्षुामनशनेऽबलाः॥३॥
भुञ्जमाना नरा ह्यत्रा राजसा यान्ति शं परम्। अन्नं ह्यनुग्रहं देव येन ते कर्मसंश्रिताः॥४॥
तस्यास्तद् वचनं श्रुत्वा माधव्याः स च माधवः। प्रहस्य भावशुद्धात्मा तत्र एवं प्रभाषति॥५॥

श्रीवराह उवाच

साधु देवि वरारोहे मम कर्मव्यवस्थिते। पृष्टोऽहं परमं गुह्यं मम भक्तसुखावहम्॥६॥
स्पृष्टा या रजसा देवि मम कर्मपरायणा। मा संस्पृशतु तत्रस्थं यत्र तिष्ठामि सुन्दरि॥७॥

अध्याय–१४२

गुह्यकर्म, चित्त की धारणा, स्त्री गमनदि उपाय और संन्यास की श्रेष्ठता

सूतजी ने कहा कि उन सबके बाद श्री भगवान् वराहदेव की बातों को सुनकर धर्माभिमानी धरणी ने बद्धाञ्जलि होकर श्रीमाधव से निवेदन किया।।१।।

धरणी ने पूछा कि हे माधव! मुझ जैसी दासी पर कृपा करके आपको सुनना चाहिए। मृदु स्वभाववश आप जनार्दन से कहने जा रही हूँ।।२।।

कि स्त्रियाँ अल्प प्राण और अबला कही जाती हैं। आपने जिस प्रकार से उपवास करने को कहा है, उसे वे अबला स्त्रियाँ सह नहीं सकती हैं।।३।।

हे देव! कृपापूर्वक मुझे वे अन्न बतलाने की अनुकम्पा करें, जिससे आपके कर्मपरायणा रजःयुक्त स्त्रियाँ अत्यन्त अनुकूलता का अनुभव कर सकती हैं।।४।।

इस प्रकार से माधवी याने धरणी की बातों को सुनकर माधव ने हँसते हुए अपने शुद्धभाव युक्त वाणी से इस प्रकार कहा—।।५।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि हे मेरे कर्म परायणा सुन्दरि! तुम तो धन्य हो। तुमने मुझसे मेरे ही भक्तों को सुख प्रदान करने वाला अत्यन्त गुप्त रहस्य को पूछा है।।६।।

हे देवि सुन्दरि! मेरे कर्म परायणा स्त्रियाँ रजोयुक्ता अवस्था में मैं जहाँ भी स्थित होऊँ, वहाँ स्थित किसी मेरी मूर्त्ति का कथमपि स्पर्श नहीं ही करे।।७।।

यदि भावस्तदा कश्चिद् भोजने कायसाधने।
चित्तं न्यस्य मयि क्षोणि भोक्तव्यं न च संशयः॥८॥
न सा लिप्यति दोषेण भुञ्जमाना रजस्वला। अञ्जलिं शिरसा कृत्वा मयाक्तं मित्रसम्मितम्॥९॥
अनादिमध्यान्तमजं पुराणं रजस्वला देववरं नमामि।
तत एतेन मन्त्रेण भुक्त्वा देवि रजस्वला॥१०॥
करोति यानि कर्माणि न तैर्दुष्येत कर्हिचित्। प्राप्नुयात् पुरुषत्वं च न्यस्तसंसारचिन्तनात्॥११॥
धरण्युवाच
पुरुषा वा स्त्रियो वाऽपि न पुमांसो न वा स्त्रियः। कथं दोषेण मुच्यन्ते जन्मसंसारबन्धनात्॥१२॥
श्रीवराह उवाच
इन्द्रियाणि निगृह्याथ चित्तं मय्यनुवेश्य च। मयि संन्यासयोगेन मम कर्मपरायणः।
मम योगेषु संन्यासमेकचित्तो दृढव्रतः॥१३॥
एवं कुर्वन् महाभागे स्त्रियो व पुन्नपुंसकम्। ज्ञानं संन्यासयोगं वा यदीच्छेत् परमां गतिम्॥१४॥
अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व वसुंधरे। मनो बुद्धिश्च चित्तं च ते ह्यनीषाः शरीरिणाम्॥१५॥
एकचित्तं मनः कृत्वा ज्ञानेन पृथुलोचने। समचित्तं प्रपद्यन्ते न ते लिप्यन्ति मानवाः॥१६॥

हे क्षोणि! उस अवस्था में अपने शरीर को स्वस्थ रखने वाले भोजन, यदि उसमें उसकी रूचि हो, तो मुझ में चित्त को संलग्न किए हुए निःसंशय होकर उसे वह भोजन करना श्रेष्ठ है।।८।।

इस प्रकार भोजन करने वाली रजस्वला स्त्री को किसी प्रकार से दोष नहीं लगता। मेरे द्वारा मित्र भावना से कहा जा रहा है कि वह मस्तक से अपने हाथों को जोड़कर इस प्रकार से मन्त्र कहे कि 'मैं रजस्वला स्त्री आदि, मध्य और अन्त मुक्त पुरातन श्रेष्ठ देव को प्रणाम करती हूँ।।९-१०।।

इस मन्त्र को स्मरण कर भोजन करके रजस्वला स्त्री मेरा कर्म करती है, तो उससे दूषित नहीं होती। इस तरह उसको संसार की चिन्ता से रहित पुरुषत्व मिलता है।।११।।

धरणी ने पूछा कि पुरुष, स्त्री और नपुंसक जन भी कर्मदोष तथा जन्म तथा संसार की बाध्यताओं से किस प्रकार मुक्त हो सकते हैं?।।१२।।

श्री भगवान् वराह ने कहाकि अपनी इन्द्रियों का निग्रह करते हुए मुझ में मन को संलग्न कर सन्यास योग द्वारा मुझसे संयुक्त होकर मनुष्य जनों को मेरा कर्म करना चाहिए। उसको एकनिष्ठ मन और दृढ़भाव बल से मेरे द्वारा कहे गए योगों में संन्यास योग का आश्रयण करना चाहिए।।१३।।

हे महाभागे! जब परम गति प्राप्त करने की कामना हो, तब पुरुष, स्त्री या नपुंसक को इस प्रकार ज्ञानयोग या संन्यास योग का आश्रयण करना श्रेष्ठ है।।१४।।

हे वसुन्धरे तुमको मैं अभी अन्य रहस्य को भी कहने जा रहा हूँ, उसे सुनो। चूँकि शरीर धारा करने वाले जीवों के मल, बुद्धि और चित्त अस्थिर या चर होते हैं।।१५।।

हे पृथुलोचने! अपने ज्ञान द्वारा मनुष्य अने मन और चित्त को एकनिष्ठ कर समचित्त वाले हो जाते हैं और वे फिर दोष रहित हुआ करते हैं।।१६।।

सर्वभक्ष्याणि भक्षन्तः पेयापेयं तथैव च। समं चित्तं मयि यदि तदा तस्य न च क्रिया॥१७॥
चित्तं मनश्च बुद्धिश्च मत्संस्थं च समं यदि। यत् किञ्चित् कुर्वतः कर्म पद्मपत्रमिवाम्भसि।
संयोगान्न च लिप्येत समत्वादेव नान्यथा॥१८॥
रात्रिन्दिवं मुहूर्त्तं वा क्षणं वा यदि वा कला। निमेषं वाऽनिमेषं च देवि चित्तं समं कुरु॥१९॥
सदा दिवा निशाश्चैव कुर्वन्तः कर्मसंकरम्।
तेऽपि यान्ति परां सिद्धिं यदि चित्तं व्यवस्थितम्॥२०॥
जाग्रतः स्वपतो वऽपि शृण्वतः पश्यतोऽपि वा।
यो मां चित्ते चिन्तयति मच्चिन्तस्य च किं भयम्॥२१॥
दुर्वृत्तमपि चाण्डालं ब्राह्मणं चापथि स्थितम्। तं तु देवि प्रशंसामि नान्यचित्तं कदाचन॥२२॥
यजन्तः सर्वयज्ञांश्च ज्ञानसंस्कारसंस्कृताः। मयि चित्तं समादाय मम कर्मपरायणाः।
ये मे कुर्वन्ति कर्मणि ते मे हृदयसंस्थिताः॥२३॥
सुखं निद्रां समादाय स्वपन्तः कर्मसंस्थिताः। येषां स्वप्नगतं चित्तं तेऽपि देवि मम प्रियाः॥२४॥
सर्वकर्मसु चात्मानं शुभेषु अशुभेषु च। प्राप्नुवन्ति च दुःखानि भ्रमच्चित्ता नराधमाः॥२५॥

इस प्रकार यदि मनुष्य का चित्त मुझ में एकनिष्ठ भाव से युक्त हो, तो उनके लिए कोई अन्य क्रिया आदि करने की अपेक्षा ही नहीं रहती। फिर वे समस्त भोज्य, पेय और अपेय पदार्थों को ग्रहण करते रहते हैं।।१७।।

अतः यदि मनुष्य का मन, बुद्धि और चित्त मुझ में संलग्न हो, तो उन्हें कोई भी कर्म करने वाला होने पर भी जल में स्थित कमलपत्र के समान निर्लिप्त हुआ जानना चाहिए। अतः इसके लिए चित्त साम्य होना चाहिए, न कि अन्य किसी तरह मनुष्य कर्म के संयोग से लिप्त नहीं होता है।।१८।।

हे देवि! दिन, रात्रि, क्षण, कला, निमेष या अर्ध निमेष के लिए भी चित्त को साम्य युक्त अवश्य करना चाहिए।।१९।।

चूँकि यदि चित्त सुव्यवस्थित रूप से साम्यावस्था में हो, तो दिन या रात कभी भी दोष युक्त कर्म करने वाले जन भी परम सिद्धि की प्राप्ति करते हैं।।२०।।

फिर जो सोते, जागते, सुनते, देखते आदि के समय अपने चित्त में मेरा चिन्तन करते रहते हैं, उन्हें क्या और किस बात की चिन्ता या भय होगा?।।२१।।

हे देवि! इस प्रकार मैं उस दुराचारी चाण्डाल और कुमार्ग में स्थित ब्राह्मण की कभी प्रशंसा किया करता हू, जो कि कभी भी दूसरे में अपना चित्त नहीं लगता।।२२।।

एब यज्ञों के कर्त्ता, ज्ञान संस्कार से सम्पन्न आदि जैसे जन मेरे कर्मपरायण होकर मुझ में चित्त लगाये हुए मेरे कर्मोंको करते हैं, वे मेरे हृदय में बसते हैं।।२३।।

ऐसे जन, जो सुख सहित निद्रा में शयन करने वाले मेरे कर्म परायण हैं, उनका चित्त स्वप्न में भी मुझ में ही संलग्न रहता है, वे भी मेरे प्रिय हुआ करते हैं।।२४।।

वैस भ्रमात्मक चित्त वाले अधम जन अपने शुभ और अशुभ अपने सब कर्मोंमें दुःख ही प्राप्त किया करते हैं।।२५।।

चित्तं नाशो हि लोकस्य चित्तं मोक्षस्य कर्मणः। तस्माच्चित्तं सादाय मां प्रपद्य वसुंधरे।
न्यस्य ज्ञानं च योगं च तस्माच्चित्तं परं न्यसेत्॥२६॥
मच्चित्तः सततं यो मां भजेत नियतव्रतः। न्यस्तयोगं परं ज्ञानं मम पार्श्वे स इष्यते॥२७॥
मया चैवं पुरा सृष्टं प्रजार्थेन वसुंधरे। मासे मासे तु गन्तव्यमृतुकाले व्यवस्थिते।
एकचित्तं समादाय यदीच्छेत मम प्रियम्॥२८॥
न गच्छेद् यदि मासे तु ऋतुकालव्यवस्थिते। पितरस्तस्य हन्यन्ते दश पूर्वा दशापराः॥२९॥
न तत्र कामलोभेन मोहेन च वसुंधरे। त्यक्त्वाऽनङ्गंच मोहं च पित्रर्थाय स्त्रियं व्रजेत्॥३०॥
द्वितीये मा स्पृशेत् नारीं कामलोभात् कदाचन। मा स्पृशेत्तु तृतीये तु चतुर्थे न कदाचन॥३१॥
वृत्ते संभोधर्मे तु कृतकौतुकसंस्थितः। शयने न स्त्रियं पश्येद् यदीच्छेच्छुद्धिमुत्तमाम्॥३२॥
कौतुके कृतकृत्ये तु मम कर्मपरायणः। जलस्नानं ततः कुर्यादन्यवस्त्रपरिग्रहम्॥३३॥
अपूर्णे ऋतुकाले तु योऽभिगच्छेद् रजस्वलाम्। रेतःपाः पितरस्तस्य एवमेतन्न संशयः॥३४॥

हे वसुन्धरे! चित्त ही संसारी जनों के नाश का और चित्त ही मोक्ष का कारण है। अतः चित्त का निग्रह करते हुए मेरे शरण का ग्रहण करना चाहिए। अतएव ज्ञान और योग का न्यास करते हुए उत्तम चित्त को मुझ में लगाना चाहिए।।२६।।

इस प्रकार मुझ में चित्त लगाये हुए नियम सहित व्रत करने वाला मनुष्य अन्य योग और श्रेष्ठ ज्ञान का भी त्याग कर मेरे भजन-चिन्तन करते हुए भी मेरे पास पहुँच जाता है।।२७।।

हे वसुन्धरे! पुरातन समय में मेरे द्वारा प्रजा की सृष्टि के लिए प्रत्येक मास में पत्नि सहवास हेतु ऋतुकाल की व्यवस्था की गई थी। अतएव मनुष्य यदि मेरा प्रिय करना चाहता है, तो उसको अपना चित्त एकाग्र कर निश्चित काल में अपनी पत्नी से अवश्य सहवास करना चाहिए।।२८।

इस प्रकार प्रत्येक मास में नियत ऋतुकाल के अवसर पर मनुष्य अपनी पत्नी से सहवास यदि नहीं करता है, तो उसके दस पूर्व और दस बाद के पितरों का नाश होता है।२९।।

अतएव हे धरणि! इस प्रसङ्ग में कामवासना, लोभ या मोहवश आचरण करना निषिद्ध है तथा काम और मोह को छोड़ते हुए पितरों की प्रसन्नता हेतु अपनी स्वधर्मोपार्जित स्त्री के साथ सम्भोग करना ही चाहिए।।३०।।

किसी भी माह में स्त्री के ऋतु के प्रारम्भ काल से प्रथम या द्वितीय दिन काम या किसी लोभवश स्त्री का स्पर्श भी नहीं करना चाहिए। फिर तीसरे और चौथे दिन भी स्त्री का काम या लोभवश कभी भी स्पर्श नहीं करना चाहिए।।३१।।

यदि कोई भी पुरुष श्रेष्ठ शुद्धि की कामना करे, तो उसे कौतुक के वशीभूत स्त्री के साथ सहवास समाप्त होने पर उस सोती हुई स्त्री को कभी नहीं निहारना चाहिए।।३२।।

वैसे सम्भोग निमित्तक कौतुक सम्पन्न हो जाने पर मेरा कर्म परायण भक्त जल से स्नान कर अन्यवस्त्र धारण करे।।३३।

किन्तु ऋतुकाल पूर्ति के पूर्व जो ऐसी रजस्वला स्त्री के साथ सम्भोग करते हैं, उनके पितर स्त्री के रज का पान करते हैं, इसमें संशय नहीं है।।३४।।

एकां तु पुरुषो याति द्वितीयां काममोहितः। तृतीयां वा चतुर्थीं वा तदा स पुरुषोऽधमः।
सर्वस्यैव तु लोकस्य समयोऽयं हि मत्कृतः॥३५॥
ऋतुकाले तु सर्वासां पित्रर्थं भोग इष्यते। ऋतुकालाभिगामी यो ब्रह्मचार्येव सम्मतः॥३६॥
न गच्छति च यः क्रोधान्मोहाद् वा पुरुषाधमः। ऋतौ ऋतौ भ्रूणहत्यां प्राप्नोति पुरुषचरन्॥३७॥
अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व वसुंधरे। ज्ञानं तु चित्तयोगस्य कर्मयोगस्य यत्क्रिया॥३८॥
कर्मणा यान्ति मत्स्थानं यान्ति मद्ज्ञाननिष्ठिताः।
यान्ति योगविदः स्थानं नास्ति चान्या परा गतिः॥३९॥
ज्ञानं योगं च सांख्यं च नास्ति चित्तव्यपाश्रितम्।
लभन्ते पुष्कलां सिद्धिं मम मार्गानुसारिणः॥४०॥
यस्तु भागवतो भूत्वा ऋतुकाले व्यवस्थितः। वायुभक्षस्ततस्तिष्ठेद् भूमे त्रीतिण तिदनांस्ततः॥४१॥
अथ तत्र चतुर्थे तु दिने प्राप्ते वसुंधरे। कृत्वा वै सिद्धिकर्माणि न गच्छेदपराणि तु॥४२॥
ततः स्नानेन कुर्वीत शिरसो मलशोधनम्। शुक्लाम्बरधरो भूत्वा चित्तं कृत्वा समाहितम्॥४३॥
ततो बुद्धिं मनश्चैव समं कृत्वा वसुंधरे। पश्चात् कुर्वन्ति कर्माणि सदा ये मे हृदि स्थिताः॥४४॥

जब कोई व्यक्ति ऋतुकाल के प्रारम्भ होने के द्वितीय, तृतीय या चतुर्थ दिन सम्भोग करते हैं, तो वे अधम व्यक्ति होता है। यह नियम मेरे द्वारा सब प्रकार के लोगों हेतु बना दिया गया है।।३५।।

वैसे पितरों की प्रसन्नता हेतु सब स्त्रियों के ऋतुकाल की चतुर्थ रात्रि के बाद उसका भोग करना उचित है। जो जन उस ऋतुकाल में स्त्री से सम्भोग करता है, तो वह पुरुष ब्रह्मचारी ही माना जाता है।।३६।।

जो अधम जन क्रोध या मोहवश प्रत्येक ऋतु के समय में स्त्री के साथ सम्भोग नहीं करता, उस मनुष्य को भ्रूणहत्या का पाप लग जाता है।।३७।।

हे वसुन्धरे! अभी यहाँ तुमको मैं दूसरा रहस्य भी बतला रहा हूँ, उसे सुनो। आगे चित्तयोग का ज्ञान और कर्मयोग की क्रिया को यहाँ बतला रहा हूँ।।३८।।

कर्म के वश कर्मयोगी मेरे स्थान में पहुँचते हैं। मेरे ज्ञान से युक्त ज्ञानयोगी जन भी मेरे स्थान को पाते हैं। इसी तरह योग वेत्ता जन भी मेरे स्थान को जाते हैं। इससे श्रेष्ठ गति कोई अन्य है ही नहीं।।३९।।

वैसे ज्ञान, योग और सांख्य चित्त से अलग नहीं है, मेरे इस मार्ग के अनुचर श्रेष्ठ सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं।।४०।।

हे भूमे! भगवद् भक्त होकर जो ऋतुमती स्त्री होती है, वह तीन दिनों तक वायु का आहार ग्रहण करें।।४१।।

हे वसुन्धरे! फिर चौथे दिन वह सिद्धिदायक कर्म करने के पश्चात् अन्य कोई भी कार्य उसको नहीं करना चाहिए।।४२।।

फिर स्नान के द्वारा शिर के मल का शोधन करना चाहिए और श्वेत वस्त्र धारण कर अपने चित्त को भी एकाग्र करना चाहिए।।४३।।

हे वसुन्धरे! फिर बुद्धि और मन को समभाव में बनाये रख कर जो सर्वदा कर्म करती है, वे मेरे हृदय में स्थित होते हैं।।४४।।

मम प्रापणकं कृत्वा ततः कुर्वन्ति भोजनम्। अञ्जलिं शिरसा कृत्वा मयोक्तं कर्मसम्मितम्॥४५॥

तत्र मन्त्रः

आदिर्भवतान् गुप्तमनन्तमध्यो रजस्वला देव वयं नमामः।
उपोषितास्त्रीणि दिनानि चैवं मुक्तौ रतं वासुदेवं नमामः॥४६॥
ये तु कुर्वन्ति कर्माणि स्नातास्नाता विभागशः।
एवं न दूष्यते देवि नारी वा पुरुषोऽपि वा॥४७॥
कुर्वन्ति मम कर्माणि ते यथावन्मम प्रियाः। सर्वाण्यनुदिनं भद्रे मम चित्तानुसारिणः।
प्राप्नुयात् पुरुषः स्त्री वा रजसा दूषिता अपि॥४८॥
एकचित्तस्ततो भूत्वा भूमे चेन्द्रियनिग्रहात्। मम योगेष्टसंन्यासं यदीच्छेत् परमां गतिम्॥४९॥
एवं कुर्वन्ति ये नित्यं स्त्रियः पुंसो नपुंसकाः। ज्ञाने सत्यप्ययोगानां मम कर्मसु कर्णिाम्॥५०॥
अद्यापि मां न जानन्ति नराः संसारसंश्रिताः।
ते वै भूमे विजानन्ति ये मद्भक्त्या व्यवस्थिताः॥५१॥
मातापितृसहस्त्राणि पुत्रदारशतानि च। चक्रवत् परिवर्त्तन्ते यन्मोहान्मां न जानते॥५२॥
अज्ञानेनावृतो लोको मोहेन च वशीकृतः। सङ्गैश्च बहुभिर्बद्धस्तेन चित्तं न संन्यसेत्॥५३॥

जो जन, मुझे अर्पण कर भोजन किया करते हैं, उन्हें सद्गति ही मिलती है। मस्तक पर हाथ जोड़कर मेरे बतलाये विधि के अनुरूप कार्य करना चाहिए।।४५।।

मन्त्र कहते हैं कि 'हम आपको प्रणाम करते हैं। आप आदि स्वरूप, गुप्त, अन्त या मध्य से मुक्त हैं। रजस्वला हम आपको नमस्कार करते है। फिर हमने तीन दिनों तक उपवास किया और ऋतुमती के धर्म से मुक्त हैं। हम वसुदेव को प्रणाम करते हैं। हे भूमि! रजस्वला स्त्री इसी मन्त्र से शुद्धि होती है।।४६।।

हे देवि! जो स्त्री अथवा पुरुष वारम्वार स्नान कर क्रम से कर्मों को करते हैं, वे दोष युक्त नहीं हुआ करते।।४७।।

हे भद्रे! मेरी कामना के अनुरूप आचरण करने वाले मेरे प्रिय भक्त स्त्री या पुरुष जो कोई जन प्रतिदिन समस्त कर्म किया करते हैं, वे रज से दूषित होने पर भी सद्गति ही प्राप्त किया करते हैं।४८।।

हे भूमे! फिर जो जन अपनी परम गति की कामना वाले हैं, तो उनको अपनी इन्द्रियों के निग्रहपूर्वक एकनिष्ठ होकर मुझको प्रिय संन्यास योग का आश्रयण करना चाहिए।।४९।।

इस प्रकार मेरा कर्म करने वाले जो कोई स्त्री या पुरुष या नपुंसक जन प्रतिदिन उक्त प्रकार कर्म करते हैं, वे निःसंशय ज्ञान सम्पन्न हो जाया करते हैं।।५०।।

हे भूमे! सांसारिक कार्यों में ही संलग्न रहने वाले जन मुझे नहीं जानते। जो मेरी भक्ति से सम्पन्न हैं, वे ही मुझे जाना करते हैं।।५१।।

जो कोई जन मोह के वशीभूत होकर मुझे नहीं जाना करते, उनके कई जन्मों में सहस्त्रों माता-पिता और सैकड़ों स्त्री-पुरुष परिवर्तित होते रहा करते हैं।।५२।।

चूँकि सांसारिक जीव अज्ञान से घिरे होकर मोह के वश और कई प्रकार के संगों याने दोषों से बँधे होते हैं। इसलिए ही उनका चित्त संन्यास सम्पन्न नहीं हो पाता है।।५३।।

अन्यत्र गच्छते माता पिता चान्यत्र गच्छति। पुत्राश्चान्यत्र गच्छन्ति दाराश्चान्यत्र संस्थिताः॥५४॥
जायन्ते चात्मनः स्थाने स्वस्वकर्मसमुद्भवे। ज्ञानमूढा वरारोहे नराः संसारमोहिताः॥५५॥
अल्पकालं परं चैव मासंवत्सरेति च। भविष्यन्ति ततः कृत्वा न मे मूर्त्या सहासते॥५६॥
यस्यैतद् विदितं सर्वं न्यासयोगं वसुंधरे। योगे न्यस्य सदात्मानं मुच्यते न च संशयः॥५७॥
य एतच्छृणुयान्नित्यं कल्यमुत्थाय मानवः। पुष्कलां लभते सिद्धिं मम लोकं च गच्छति॥५८॥
एतत् ते कथितं भद्रे रहस्यं परमं महत्। यत्त्वया पृच्छितं देवि मम भक्तसुखावहम्॥५९॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥१४२॥

माता दूसरे जगह चली जाती है और पिता भी दूसरे जगह चले जाते हैं। फिर इसी प्रकार पुत्र तथा स्त्रियाँ भी दूसरे जगह चली जाती हैं।५४।।

हे सुन्दरि! संसार से सम्मोहित ज्ञानशून्य जन अपने-अपने कर्म से उत्पन्न स्थानों में जाकर जन्म ग्रहण किया करते हैं।।५५।।

वहाँ पर वे थोड़े समय तक एक माह या वर्ष पर्यन्त रहा करते हैं। फिर कर्म करने के बाद भी वे मेरी मूर्ति के पास स्थित नहीं हो पाते।।५६।।

हे वसुन्धरे! जिनको इस प्रकार से सभी न्यास योग का ज्ञान उपलब्ध है, वे सदा योग में स्वयं को संलग्न कर निःसंशय मुक्त हो जाया करते हैं।।५७।।

जो जन प्रातः काल जागकर प्रतिदिन इस आख्यान को सुनते या सुनाते हैं, वे अतिशय सिद्धि को प्राप्त कर लेते हैं और मेरे लोक में चले जाते हैं।।५८।।

हे भद्रे! इस प्रकार से मेरे भक्तों के लिए परम सुखप्रद जिस रहस्य को तुमने मुझसे पूछा था, वह महान् श्रेठ रहस्य मेरे द्वारा तुमको कह दिया गया है। तुम्हें और क्या सुनना है, उसे पूछो।।५९।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में गुह्यकर्म, चित्त की धारणा, स्त्री गमनदि उपाय और संन्यास की श्रेष्ठता नामक एक सौ बयालिसवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१४२॥

त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

अथ मन्दारक्षेत्रमाहात्म्यम्

श्रीवराह उवाच

पुनरन्यत् प्रवक्ष्यामि एकान्तं शृणु सुन्दरि। स्थानं मे परमं गुह्यं कर्मिकाणां सुखावहम्॥१॥
जाह्नव्या दक्षिणे कूले विन्ध्यपृष्ठसमाश्रितः। मन्दारेति च विख्यातः सर्वभागवतप्रियः॥२॥
तत्र त्रेतायुगे भूमे रामो नाम महाद्युतिः। भविष्यति न संदेहः स च मां स्थापयिष्यति॥३॥
वाक्यं नारायणाच्छ्रुत्वा धर्मकामा वसुंधरा। उवाच मधुरं वाक्यं लोकनाथं जनार्दनम्॥४॥

धरण्युवाच

देव देव महादेव हरे नारायण प्रभो। मन्दारेति त्वया प्रोक्तं देव धर्मार्थसंयुतम्॥५॥
मन्दारे कानि कर्माणि कुर्वन्ते कर्मिणस्ततः। कानि लोकानि गच्छन्ति तव चिन्ताव्यवस्थिताः॥६॥
कानि तत्रैव गुह्यानि रहस्यं कीदृशानि च। भवते कथ मन्दारं तद् भवान् वक्तुमर्हसि॥७॥

श्रीवराह उवाच

शृणु सुन्दरि यत्नेन यन्मां त्वं परिपृच्छसि। कथयिष्यामि ते गुह्यं मन्दारस्य महाक्रियाम्॥८॥

अध्याय–१४३

मन्दार क्षेत्र का माहात्म्य

श्री भगवान् वराह ने कहा कि हे सुन्दरि! तुम सुनो, मैं फिर से एक रहस्य की बात बतला रहा हूँ। मेरे कर्म परायण भक्तों को सुखप्रद एक अत्यन्त गुप्त स्थान है।।१।।

वह गङ्गा के दक्षिण तट पर विन्ध्यपर्वत के ऊपर मन्दार नाम से प्रसिद्ध समस्त मेरे भगवद् भक्तों का प्रिय स्थान है।।२।।

हे भूमे! वैसे त्रेतायुग में महातेजस्वी राजा राम होंगे और वे ही निःसंशय वहीं पर मेरी स्थापना करेंगे।।३।।

इस प्रकार श्री नारायण का वचन सुनकर धर्माभिकामनी धरणी ने लोकनाथ जनार्दन से मधुर वाक्य कहा— ।।४।।

धरणी ने कहा कि हे देवदेव महादेव प्रभु नारायण देव श्री हरि! आपके द्वारा धर्मार्थ सम्पन्न मन्दार नाम के स्थान का उल्लेख किया गया है।।५।।

फिर कर्मपरायण जन उसे मन्दार नाम के स्थान पर कौन कर्म किया करते हैं और वहाँ आपका ध्यान करने वाले जन आपके किन लोकों में जाया करते हैं?।।६।।

वहाँ पर कौन-सा गुप्त स्थान है और वहाँ के किस प्रकार के रहस्य हैं। फिर वह मन्दार आपको क्यों पसन्द है? ये सब आपको मुझे कहना चाहिए।।७।।

श्री वराह भगवान् ने कहा कि हे सुन्दरि! जो कुछ भी तुम मुझसे पूछ रही हो, उस रहस्य की बात को अब तुम यत्नपूर्वक सुनो। अब मैं मन्दार स्थान की महाक्रिया को तुमसे कहने जा रहा हूँ।।८।।

क्रीडमानोऽस्म्यहं तत्र दृष्ट्वामन्दारपुष्पितम्। मनोज्ञं च हृदि न्यस्तं सर्वधर्माश्रयं शुभम्॥९॥
तत्र मे भविता चिन्ता मन्दारे पर्वतस्थिते। कुण्डाश्चैकादशस्तत्र विन्ध्यपर्वतनिःसृताः॥१०॥
तन्मयाऽत्र प्रभावेन मन्दारश्च महाद्रुमः। अनुग्रहः कृतो भद्रे मम भक्तसुखावहः॥११॥
दर्शनीयतमं स्थानं मनोज्ञं च शिलातलम्। यत्र तिष्ठम्यहं देवि मन्दारद्रुममाश्रितः॥१२॥
विस्मयं शृणु सुश्रोणि मन्दारेति द्रुमे तथा। द्वादश्यायां चतुर्दश्यां स पुष्पति द्रुमोत्तमः॥१३॥
तत्र मध्याह्नवेलायां वीक्ष्यमाणो जनैस्ततः। तत्स्ववीरेति मय्युक्तं कुर्वन्ति मम कर्मिकाः॥१४॥
तस्मिन् मन्दारकुण्डे तु एकभक्तोषितो नरः। स्नानं करोति शुद्धात्मा स गच्छेत् परमां गतिम्॥१५॥
अथ प्राणान् प्रमुच्येत कुण्डे मन्दारसंस्थिते। तपः कृत्वा वरारोहे मम लोकाय गच्छति॥१६॥
तस्य चोत्तरपार्श्वे तु प्रापणं नाम तं गिरिम्। यत्र धारा पतेत् त्रीणि दक्षिणां दिशमाश्रिताः॥१७॥
स्नानकुण्डेति विख्यातं तस्मिन् क्षेत्रे परं मम। दक्षिणे पतते धारा स्त्रवन्तोदङ्मुखानि च॥१८॥
तत्र स्नातो वरारोहे एकरात्रोषितो नरः। मोदते दक्षिणे शृङ्गे तस्मिन् मेरौ शिलोच्चये॥१९॥
तत्राथ मुञ्चते प्राणान् मम कर्मानुसारिणः। सर्वसङ्गं परित्यज्य मम लोकं प्रपद्यते॥२०॥

उस मन्दार को मैं सदा पुष्पित हुआ देखकर ही वहाँ क्रीड़ा किया करता रहता हूँ। मेरे द्वारा समस्त धर्मों के आश्रय स्वरूप मनोहर मन्दार को हृदय में धारण कर लिया गया है।।९।।

पर्वत पर स्थित उस मन्दार नाम के स्थान पर मैंने चिन्तन किया था। वहाँ विन्ध्यपर्वत से निःसरित ग्यारह कुण्ड हैं। वहीं पर मेरे ही प्रभाव से मन्दान का एक महान् वृक्ष है। हे भद्रे! मैंने वहाँ भक्तों को सुख प्रदान करने वाले अनुग्रह को किया है।।१०-११।।

हे देवि! उस मन्दार वृक्ष के बारे में यह आश्चर्य युक्त तथ्य इस प्रकार सुनो। वह उत्तम वृक्ष द्वादशी और चतुर्दशी को खिला करता है।।१३।।

फिर भी समस्त मनुष्य उस मन्दार को मध्याह्न काल में देखा करते हैं। मेरे अनुगमन करने वाले मेरे कर्म परायण जन वहाँ कर्म सम्पन्न किया करते हैं।।१४।।

इस प्रकार वहाँ एक ही बार भोजन कर निवास करने वाले जन उस मन्दार कुण्ड में स्नान कर शुद्धात्मा हो जाते हैं और वे परम गति प्राप्त करते हैं।।१५।।

हे सुन्दरि! फिर मन्दार स्थान पर स्थित कुण्ड के पास तपनिष्ठ होकर प्राण विसर्जित करने वाले जन मेरे लोक को जाया करते हैं।।१६।।

उस मन्दार स्थान से उत्तर पार्श्व में प्रापण नाम का पर्वत है, उस पर दक्षिण दिशा की ओर तीन धारायें गिरा करती हैं।।१७।

फिर मेरे उस श्रेष्ठ क्षेत्र में स्नानकुण्ड नाम से प्रसिद्ध स्थान है, उसके दक्षिण की ओर जल की धारा गिरा करती है एवं उसके उत्तर दिशा की ओर वह धारा बहा करती है।।१८।।

हे सुन्दरि! जो कोई जन वहाँ एक रात रहते हुए स्नान किया करते हैं, वे जन मेरु पर्वत के दक्षिण दिशा की चोटी पर स्थित ऊँची शिला पर आमोद किया करते हैं।।१९।।

यदि मेरे कर्म परायण जन वहाँ अपने प्राणों का विसर्जन करते हैं, तो फिर वे जन अपने सभी संगों से मुक्त होकर मेरे लोक में जाया करते हैं।।२०।।

तस्य पूर्वोत्तरे पार्श्वे गुह्यं वैकुण्ठकारकम्। यत्र धारा पतत्येका हरिद्रावर्णसन्निभा॥२१॥
यस्तत्र कुरुते स्नानमेकरात्रोषितो नरः। नाकपृष्ठं समासाद्य अप्सरोभिः स मोदते॥२२॥
तत्राथ मुञ्चते प्राणान् कृतकृत्यः सुनिश्चतः। तारयित्वा कुलं सर्वं मम लोकं प्रपद्यते॥२३॥
तस्य दक्षिणपूर्वेण मम स्त्रोतो वराङ्गने। पतते विन्ध्यशृङ्गेषु अगाधश्च महाह्रदः॥२४॥
तत्र स्नानं तु यः कुर्यादेकरात्रोषितो नरः। मोदते पूर्वपार्श्वे तु तस्मिन् मेरौ शिलोच्चये॥२५॥
अथात्र मुञ्चते प्राणान् मम चित्तव्यवस्थितः। छित्त्वा वै सर्वसंसारं मम लोकाय गच्छति॥२६॥
मन्दारस्य तु पूर्वेण गुह्यं कोटरसंस्थितम्। यत्र धारा पतत्येका मुखलैः सदृशोपमा॥२७॥
तत्र स्नानं प्रकुर्वीत पञ्चभक्तोषितो नरः। मोदते पूर्वपार्श्वे तु तस्मिन् मेरौ शिलोच्चये॥२८॥
अथात्र मुञ्चते प्राणान् कृत्वा कर्म सुदुष्करम्। मेरुशृङ्गं समुत्सृज्य मम लोकं च गच्छति॥२९॥
तस्य दक्षिणपार्श्वे तु गुह्यं विन्ध्यविनिःसृतम्। पञ्चधाराः पतन्त्यत्र मुशलसदृशोपमाः॥३०॥
तत्र स्नानं तु कुर्वीत अहोरात्रोषितो नरः। मोदते दक्षिणे शृङ्गे महामेरौ शिलोच्चये॥३१॥

उसके उत्तर पार्श्व में वैकुण्ठकारक नाम का गुह्य एक स्थान है। जहाँ पर पीले वर्ण के समान एक धारा गिरा करती है।।२१।।

इस प्रकार वहाँ एक रात रहते हुए जो जन स्नान करते हैं, वे स्वर्ग में पहुँच कर अप्सराओं के साथ विहार कर आनन्दित होते हैं।।२२।।

फिर कृतकृत्य और निश्चिन्त होकर वे जन वहाँ प्राण विसर्जित कर सम्पूर्ण कुल को भी तार कर मेरे लोक में चले जाते हैं।।२३।।

हे सुन्दरि! उसके दक्षिण पूर्व की ओर विन्ध्यपर्वत की चोटी पर मेरा अगाध एवं महाह्द्र एक सोता गिरता हुआ दिखता है।।२४।।

जो जन वहाँ एक रात रहते हुए स्नान किया करते हैं, वे उस मेरु पर्वत के पूर्व की ओर उच्च शिला पर विहार करते हैं।।२५।।

इस प्रकार मुझ में अपना चित्त को लगाये हुए जो जन अपने प्राणों का उत्सर्जन करते हैं, वे समस्त सांसारिक बन्धनों को तोड़ कर मेरे लोक में जाया करते हैं।।२६।।

उस मन्दार स्थान से पूर्व की ओर एक गुफा में स्थित एक गुह्य स्थान है, जहाँ पर मूसल के समान एक धारा गिरा करती है।।२७।।

फिर वहाँ पाँच काल में उपवास पूर्वक स्नान करने वाले जन उस मेरु पर्वत के पूर्व की ओर उच्च शिखर पर आनन्दित हुआ करते हैं।।२८।।

फिर अत्यन्त दुष्कर कर्म करते हुए अपने प्राणों का विसर्जन करने वाले जन मेरु पर्वत के शिखर का त्याग कर मेरे लोक में चले जाते हैं।।२९।।

उसके दक्षिण की ओर विन्ध्य पर्वत से निकला एक गुह्य कुण्ड स्थान है, जिसमें मूसल के समान पाँच धारायें गिरा करती हैं।।३०।।

वहाँ पर एक दिन रात तक निवास करते हुए स्नान करने वाले जन महामेरु के दक्षिण दिशा की ओर के शिखर की उच्च शिला पर अत्यन्त आनन्द की अनुभूति किया करते हैं।।३१।।

अथात्र मुञ्चते प्राणान् कृत्वा कर्म सुदुष्करम्। मेरुशृङ्गं परित्यज्य मम लोकं प्रपद्यते॥३२॥
दक्षिणे पश्चिमे भागे मन्दारस्य यशस्विनि। अत्र धारा पतत्येका आदित्यसमतेजसा॥३३॥
तत्र स्नानं प्रकुर्वीत अहोरात्रोषितो नरः। मोदते पश्चिमे शृङ्गे ध्रुवो यत्र प्रवर्तते॥३४॥
अथात्र मुञ्चते प्राणान् मम कर्मव्यवस्थितः। सर्वपापविनिर्मुक्तो मम लोके च मोदते॥३५॥
तस्य पश्चिमपार्श्वे तु गुह्यं देवसमन्वितम्। चक्रावर्त्त इति ख्यातो अगाधश्च महाह्रदः॥३६॥
स्नानं करोति यस्तत्र पञ्चभक्तोषितो नरः। मोदते सर्वशृङ्गेषु स्वच्छन्दगमालयः॥३७॥
अथ वै मुञ्चते प्राणान् चक्रवर्त्ती महायशाः। शृङ्गान् सर्वान् परित्यज्य मोदते मम सन्निधौ॥३८॥
दिशं वायव्यमाश्रित्य तस्मिन् विन्ध्यशिलोच्चये। धारास्त्रयः पतन्त्यत्र मुशलप्रतिमाकृतिः॥३९॥
तत्र स्नानं तु यः कुर्यान्मम चित्तव्यवस्थितः। मोदते सर्वशृङ्गेषु एकाचित्तसमाश्रितः॥४०॥

अथात्र मुञ्चते प्राणान् तस्मिन गुह्ये यशस्विनि।
सर्वसङ्गं परित्यज्य मम लोकाय गच्छति॥४१॥

तस्य त्रिकोशमात्रेण दक्षिणां दिशमाश्रितः। गुह्यं गम्भीरकं नाम अगाधं च महाह्रदम्॥४२॥

अत्यन्त दुष्कर कर्म करने के बाद वहाँ पर प्राणों का परित्याग करने वाले जन मेरु शृङ्ग का त्याग कर मेरे लोक में जाया करते हैं।।३२।।

हे यशस्विनि! मन्दार स्थान के दक्षिण पश्चिम दिशा की ओर सूर्य सदृश तेजवती एक धारा गिरा करती है।।३३।।

जो जन वहाँ एक दिन रात रहते हुए स्नान किया करते हैं, वे उसके पश्चिम ओर के शिखर पर रमण करते हैं, जहाँ ध्रुवतारा प्रवृत होता है।।३४।।

फिर मेरा कर्म करते हुए वे जन वहाँ अपने प्राणों का त्याग करने के बाद सभी पापों से रहित होकर मेरे लोक को जाया करते हैं।।३५।।

उसके पश्चिम दिशा की ओर देवताओं से सम्पन्न 'चक्रावर्त' नाम से प्रसिद्ध एक अगाध गुह्य महाह्रद है। पाँच कालों तक उपवास पूर्वक वहाँ स्नान करने वाले जन स्वच्छन्द विचरण करते हुए समस्त शृङ्गों पर रमण करते हैं।।३६-३७।।

फिर वे जन सभी शृङ्गों को छोड़कर महायशस्वी चक्रवर्ती राजा होते हैं। फिर अपने प्राणों का त्याग कर वे मेरे पास ही में रमण किया करते हैं।।३८।।

वायव्य कोण की दिशा की ओर उस विन्ध्यपर्वत की उच्च शिला पर मूसल के आकार की तीन धारायें गिरा करती हैं।।३९।।

इस प्रकार मुझ में ही अपने चित्त को लगाये हुए जो जन, वहाँ स्नान करते हैं, वे एकनिष्ठ जन समस्त शृङ्गों पर आमोद करते हैं।।४०।।

हे तपस्विनि! यदि वे उस गुह्य स्थान पर अपने प्राणों का विसर्जन किया करते हैं, तो सभी शृङ्गों को त्याग कर वे सभी मेरे लोक में चले जाते हैं।।४१।।

उसके दक्षिण दिशा की ओर तीन कोश में गम्भीरक नाम के गुह्य अगाध एक महाह्रद है।।४२।।

तत्र स्नानं प्रकुर्वीत अष्टभक्तोषितो नरः। मोदते सर्वद्वीपेषु स्वच्छन्दगमनालयः॥४३॥
अथ वै मुञ्चते प्राणान् मम कर्मव्यवस्थितः। सर्वद्वीपान् परित्यज्य मम लोकं प्रपद्यते॥४४॥
तस्य पश्चिमपार्श्वे तु गुह्यं मे परमं महत्। सप्त धाराः पतन्त्यत्र अगाधश्च महाह्रदः॥४५॥
तत्र स्नानं प्रकुर्वीत अहोरात्रोषितो नरः। मोदते शक्रलोके तु स्वच्छन्दगमनालयः॥४६॥
अथ वै मुञ्चते प्राणान् स्वकर्मपरिनिष्ठितः। सर्वसङ्गं परित्यज्य मम लोकं प्रपद्यते॥४७॥
मण्डलं तस्य क्षेत्रस्य कथ्यमानं मया शृणु। समन्तपञ्चकं नाम मन्दारे गिरिसंस्थिते॥४८॥
तत्र तिष्ठामि सुश्रोणि उत्तरां दिशमाश्रितः। मन्दारे परमं गुह्यं तस्मिन् वै पर्वतोत्तमे॥४९॥
दक्षिणे संस्थितं चक्रं वामे स्थाने च वै गदा। लाङ्गलं मुसलं चैव शङ्खं तिष्ठति चाग्रतः॥५०॥
य एतच्छृणुयान्नित्यं गुह्यं मन्दारसंस्थितम्। तव चैव प्रियार्थाय मम भक्तसुखावहम्॥५१॥
एतन्न जानते कश्चिन्मम मायाविमोहितः। मुच्य भागवतान् शुद्धान् ये च वाराहसंश्रिताः॥५२॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे त्रयश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥१४३॥

वहाँ पर आठ काल तक उपवासपूर्वक स्नान करने वाले जन स्वच्छन्द भ्रमण करते हुए सभी द्वीपों में रमण किया करते हैं।।४३।।

फिर मेरा कर्म करते हुए वे जन प्राणों का परित्याग करने के पश्चात् सभी द्वीपों को भी त्याग कर मेरे लोक में चले जाते हैं।।४४।।

उसी के पश्चिम दिशा की तरफ मेरा एक परम महान् गुह्य स्थान है, जहाँ एक अगाध महाह्रद है, जिसमें सात धारायें गिरा करती हैं।।४५।।

वहाँ पर एक दिन रात रहते हुए स्नान करने वाले जन स्वच्छन्द विचरण करते हुए इन्द्रलोक में विहार किया करते हैं।।४६।।

फिर ऐसे जन अपने कर्मों को करते हुए वहाँ प्राणों का त्याग करने पर वे अपने सभी संगों याने दोषों को त्याग कर मेरे लोक में जाते हैं।।४७।।

अब मैं उस क्षेत्र का मण्डल कहने जा रहा हूँ, उसे सुनो। मन्दार पर्वत पर स्थित 'समन्तपञ्चक' नाम का स्थान है।।४८।।

हे सुश्रोणि! उस श्रेष्ठ मन्दार पर्वत पर उत्तर दिशा की ओर मैं परम गुह्य स्थान पर रहा करता हूँ।।४९।।

मेरे दक्षिण की ओर चक्र, वामभाग में गदा, हल और मुशल तथा सम्मुख शंख स्थित है।।५०।।

इस प्रकार से जो जन तुमको प्रिय और मेरे भक्तों को सुख प्रदायक मन्दार नामक पर्वत पर स्थित गुह्य स्थान का वर्णन प्रतिदिन सुनते हैं, उनको निःसंशय उत्तम गति मिला करती है।।५१।।

विशुद्ध भगवद् भक्तों तथा जो वाराह के आश्रित जन हैं, उनके अतिरिक्त कोई भी जन, जो माया से विमोहित हैं, इसे नहीं जानते।।५२।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में मन्दार क्षेत्र का माहात्म्य नामक एक सौ तिरालिसवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१४३॥

❖❖❖

चतुश्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

अथ शालग्रामक्षेत्रकथनम्

सूत उवाच

श्रुत्वा मदारमाहात्म्यं धर्मकामा वसुंधरा। विस्मयं परमं गत्वा श्रुत्वा धर्मं महौजसम्॥१॥

धरण्युवाच

तव देव प्रसादेन श्रुतं मन्दारवर्णनम्। मन्दारात् परमं स्थानं विष्णो तद् वक्तुमर्हसि॥२॥

श्रीवराह उवाच

शृणु तत्त्वेन मे देवि यन्मां त्वं परिपृच्छसि। कथयिष्यामि ते गुह्यं शालग्राममिति श्रुतम्॥३॥
द्वापरे तु युगे भूमे यदूनां कुलसंकुले। तत्र शूरेति विख्यातो यदूनां वंशवर्धनः॥४॥
तस्य पुत्रो महाभागे सर्वकर्मपरायणः। वसुदेव इति ख्यातो यादवानां कुलोद्वहः॥५॥
तस्य भार्या च वसुधे सर्वावयवसुन्दरी। देवकी नाम नाम्ना च मनोज्ञा शुभदर्शना॥६॥
तस्या गर्भे महाभागे भविष्यामि न संशयः। वासुदेव इति ख्यातो देवानामरिमर्दनः॥७॥
ततो वै वर्त्तते तस्य यादवानां कुलात्तमे। तत्र ब्रह्मर्षिपरमः शालङ्कायन एव च॥८॥
ममैवाराधनार्थाय भ्रमते स दिशो दश। मेरुशृङ्गे तपस्तप्तं पुत्रार्थेषु विनिश्चितः॥९॥

अध्याय–१४४

शालग्राम क्षेत्र और नन्दीश्वर, उस क्षेत्र में अन्य तीर्थ

सूतजी ने कहा कि धर्माभिकाङ्क्षिणी धरणी अत्यन्त ओजस्वी धर्म और मन्दार का माहात्म्य सुनकर परम विस्मय युक्ता हो गई।।१।।

धरणी ने पूछा कि हे देव! आपके अनुग्रह से मेरे द्वारा मन्दार पर्वत का वर्णन सुना गया। अब आप मन्दार से भी श्रेष्ठ जो विष्णु का स्थान हो, उसे बतलाने की कृपा करें।।२।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि हे देवि! इस समय, जो कुछ तुम मुझसे पूछ रही हो, उसे तत्त्वतः मुझसे तुम सुनो। मैं शालग्राम नाम से सुख्यात गुह्य स्थान को तुमसे कहने जा रहा हूँ। हे भूमे! द्वापर युग में यादवों के विशाल कुल में उनके वंश की अभिवृद्धि करने वाला शूर नाम से एक प्रसिद्ध व्यक्ति होगा।।३-४।।

हे महाभागे! इसे सम्पूर्ण कर्मों को करने वाला और यादवों के कुल में श्रेष्ठ वसुदेव नाम से प्रसिद्ध पुत्र होगा।।५।।

हे भूमे! सभी सुन्दर शारीरिक अंगों वाली देवकी नाम की उसकी सुन्दर मनोहर पत्नि होगी।।६।।

हे महाभागे! उसके गर्भ से मैं देवों के शत्रुओं को विनष्ट करने वाले 'वासुदेव' के नाम से अवतार ले सकूँगा, इसमें सन्देह नहीं करना चाहिए।।७।।

इस प्रकार उस यादवों के उत्तम वंश में मेरे रहते समय में ही शाङ्कलायन नाम का श्रेष्ठ ब्रह्मर्षि मेरी उपासना हेतु दसों दिशाओं में घूम रहे हैं। उन्होंने निश्चयात्मक होकर मेरु पर्वत के शिखर पर पुत्र हेतु तप किया है।।८-९।।

दिव्यं वर्षशतं चैव एकपादेन तिष्ठति। बदर्यां च सहस्त्रं तु ऊर्ध्वबाहुः स तिष्ठति।
मानसं सरमाश्रित्य सहस्राणि च तिष्ठति॥१०॥
गत्वा कोकामुखं देवि वायुभक्षो जितक्लमः। सहस्त्रं तिष्ठते पञ्च पुत्रकामो महायशाः॥११॥
गत्वा पिण्डारकं नाम मम क्षेत्रं वसुंधरे। लोहार्गलेति विख्यातं सहस्त्रं चैव तिष्ठति॥१२॥
ईश्वरेण समं पुत्रं सर्वयोगेश्वरं स्थितम्। न च मां पश्यते दवि मार्गमाण इतस्ततः॥१३॥
अहमीश्वरेण देवेशि पूर्वमेव समागतः। तस्य वै तप्यमानस्य लोकायतनमन्तिके॥१४॥
मम रुद्रप्रसादेन ईश्वरसमतेजसः। जातो नन्दीश्वरस्तत्र ईश्वरे दक्षिणे स्थितः॥१५॥
मायायोगबलोपेतस्त्र्यक्षो वै शूलपाणिधृक्। रूपवान् गुणवांश्चैव वपुषादित्यसन्निभः।
स तं न ज्ञायते जातं ममैवाराधने स्थितः॥१६॥
ईश्वरस्य प्रियश्रेष्ठो वयस्यो नन्दिकेश्वरः। विमुच्य मथुरां देवि गृह्य गावो यथोचितः।
गण्डक्याश्चोत्तरे कूले गोष्ठं कुर्याद् यशस्विनि॥१७॥
अथ दीर्घेण कालेन स ऋषिः संशितव्रतः। तप्यमानो यथान्यायं पश्यते शालमुत्तमम्॥१८॥
अभिन्नमतुलच्छायं विशालद्रुमपुष्पितम्। मनोज्ञं च सुगन्धं च देवानामपि दुर्लभम्॥१९॥

वे वहाँ सौ दिव्य वर्षों तक एक पैर पर खड़े रहकर तप किए थे। भुजाओं को उठाये हुए वे हजार वर्ष पर्यन्त बदरीवन में भी रहे थे और मानस सरोवर पर जाकर वे हजार वर्षों तक खड़े ही रहे।।१०।।

हे देवि! पुत्र की कामना वाले महायशस्वी वे काकमुख जाकर विना थकावट के वायु भक्षण करते हुए पाँच हजार वर्षों तक खड़े ही रहे।।११।।

हे वसुन्धरे! मेरे ही पिण्डारक क्षेत्र में जाकर लोहार्गल नाम से प्रसिद्ध स्थान में वे हजार वर्षों तक खड़े ही रहे।।१२।।

इस प्रकार इधर-उधर ईश्वर के समान सभी योगियों में श्रेष्ठ पुत्र की खोज करते रहे, किन्तु उन्होंने मुझे नहीं देखा।।१३।।

हे देवि! लोकायतन में तप कर रहे उसके समीप ईश्वर शिव के साथ मैं पहले से ही गया हुआ था।।१४।।

मेरे और शिव के कृपा प्रसाद से ईश्वर के दक्षिण पार्श्व में स्थित ईश्वर के समान तेजवान् नन्दीश्वर वहाँ उत्पन्न हुए।।१५।।

मायायोग के अधीन हाथों में शूल धारण किए हुए सूर्य के समान तेजवान् शरीर वाले स्वरूपवान और गुणवान् त्रिनेत्र नन्दीश्वर ने जन्म ले लिया। किन्तु मेरी उपासना में स्थित वे उत्पन्न उन नन्दीश्वर को नहीं जान पाये।।१६।।

हे यशस्विनि देवि! ईश्वर के प्रिय श्रेष्ठ नन्दिकेश्वर युवा होने पर मथुरा को छोड़कर यथोचित गायों को साथ लिए हुए गण्डकी के उत्तरी तट पर गये और वहीं उन्होंने गोष्ठ की स्थापना की।।१७।।

फिर दीर्घकाल के बाद तीव्रव्रतधारी तपनिष्ठ उन ऋषि ने यथोचितरूप से उत्तम शालवृक्ष को देखा।।१८।।

सधन और उत्तम छाया वाला पुष्प सम्पन्न वह विशाल वृक्ष मनोहर सुगन्धित और देवताओं के लिए भी दुर्लभ था।।१९।।

ऋषिर्ग्लानिपरः श्रान्तः सालङ्कायमनुत्तमम्। पश्यते च ततः शालं विशालं शुभदर्शनम्॥२०॥
ततो दृष्ट्वा महाशालं परिश्रान्तो महामुनिः। विश्रामं कुरुते तत्र द्रष्टुकामोऽथ मां ततः॥२१॥
शालस्य तस्य पूर्वेण स्थितः पश्चान्मुखोः मुनिः।
मायया मम मूढात्मा प्राप्तुं शक्तो न मामितः॥२२॥
ततः पूर्वेण पार्श्वेन तस्य शालस्य सुन्दरि। वैशाखमासद्वादश्यां दर्शयामास तं मुनिम्॥२३॥
मां दृष्ट्वा स मुनिस्तत्र तपस्तप्तुं समुद्यतः। रूपं महौजसं दृष्ट्वा स्तुवते मन्त्रवादिभिः॥२४॥
एवं तु स्तवमानं तं शालङ्कायनमुत्तमम्। दक्षिणेऽहं गतः पार्श्वे तस्य वृक्षस्य सुन्दरि॥२५॥
पूर्वस्थानं परित्यज्य स ऋषिः संशतिव्रतः। दक्षिणं तु गतं स्थानं यत्र तिष्ठाम्यहं धरे॥२६॥
ततो मां स्तुवते भूमे मन्त्रैर्वेदैश्च संयुतः। यत्नेन प्रमुखे प्रोक्तं सर्वं गुह्यं मम प्रियम्॥२७॥
ततोऽहं स्तूयमानो वै ऋग्वेदकुशलैर्ऋचैः। गतोऽस्मि पश्चिमं पार्श्वं तत्क्षणाद् देवि निश्चितः॥२८॥
ततःपश्चिमपार्श्वे तु स्थितोऽस्मि यत्र माधवि। यजुर्वेदेन मन्त्रेण स्तुतोऽस्मि तत्र संस्थितः॥२९॥
ततोऽहं स्तूयमानो वै ऋषिमुख्येन सुन्दरि। गतोऽहमुत्तरं पार्श्वं जिज्ञासार्थं महाव्रतम्॥३०॥

तत्पश्चात् उत्साह रहित श्रान्त, सालङ्कायन ऋषि ने विशाल और सुन्दर शाल वृक्ष को देखा।।२०।।

इस प्रकार उस महाशाल वृक्ष को देखने के पश्चात् थके एवं मुझे देखने की कामना वाले महामुनि ने विश्राम किया।।२१।।

उसी शालवृक्ष के पूर्व दिशा में बैठे हुए पश्चिमाभिमुख मुनि मेरी माया से मोहित होने से मुझे नहीं खोज सका।।२२।।

फिर हे सुन्दरि! उसी शालवृक्ष के पूर्व की ओर वैशाख मास की द्वादशी को मेरे द्वारा उस मुनि को दर्शन दिया गया।।२३।।

वहाँ पर मुझे देखकर वह मुनि तप करने को समुद्यत हो गया। महान् ओजवान् स्वरूप देखकर वह मन्त्र के वचनों से स्तुति करने लगा।।२४।।

हे सुन्दरि! इस प्रकार उस श्रेष्ठ शालङ्कायन मुनि के स्तुति करने के समय में मैं उसी वृक्ष के दक्षिण पार्श्व में चला गया।।२५।।

हे पृथ्वि! वह तीव्रव्रतधारी ऋषि पूर्व के स्थान को त्याग कर दक्षिण की तरफ उस स्थान पर गया, महाँ मैं स्थित हूँ।।२६।।

हे भूमे! पिर वे ऋषि वेद और मन्त्र से स्तुति कर यत्नपूर्वक मेरे समक्ष मुझको प्रिय लगने वाला समस्त रहस्य का बखान करने लग गये।।२७।।

हे देवि! इसक्रम में ऋग्वेद के सुन्दर मन्त्रों से स्तुति किए जाने पर मैं तत्क्षण ही उसी वृक्ष के पश्चिम पार्श्व में चला गया।२८।।

हे माधवि! फिर मैं पश्चिम की तरफ जहाँ मैं स्थित हू, वहाँ जाकर यजुर्वेद के मन्त्रों से मेरी स्तुति करने लग गये।।२९।।

हे सुन्दरि! फिर श्रेष्ठ ऋषि से स्तुत होकर मैं उसके महाव्रत को जानने हेतु उस वृक्ष के उत्तर की तरफ चला गया।।३०।।

ततः कमलपत्राक्षं पार्श्वं जिज्ञासार्थं महाव्रतम्। ततः कमलपत्राक्षं दृष्ट्वा मामुत्तरे स्थितम्॥३१॥
ततो ब्रह्मवचः श्रुत्वा विहितेनान्तरात्मना। गतः पूर्वपरं स्थानं तस्य शालस्य सुन्दरि॥३२॥
ततो मध्ये परं स्थानं स ऋषिः संशतिव्रतः। पठन्तं सामवेदं च उत्तरं दिशि पूर्वतः॥३३॥
प्राप्तोऽस्मि परमां प्रीतिं तमवोचं ततो ऋषिम्। साधु ब्रह्मन् महाभाग शालङ्कायन सत्तम॥३४॥
तपसानेन संतुष्टः स्तुत्या चैवानया तव। वरं वरय भद्रं ते संसिद्धस्तपसा भवान्॥३५॥
एवमुक्तः स तु मया शालङ्कायनसत्तमः। शालवृक्षं समाश्रित्य निभृतेनान्तरात्मना॥३६॥
ततो मां भाषते देवि स ऋषिः संशितव्रतः। तवैवाराधनार्थाय तपस्तप्तं मया हरे॥३७॥
पर्यटामि महीं सर्वां सशैलवनकाननाम्। तद् दृष्टोऽसि महाभाग चक्रपाणै महौजसः॥३८॥
यदि तुष्टोऽसि मे देव सर्वशान्तिकरो हरिः। पुत्रमिच्छाम्यहं विष्णो महेश्वरसमं वरम्॥३९॥
एवमुक्तोऽस्म्यहं तेन मुनिना भीमकर्मणा। पुत्रकामेन विप्रेण दीर्घकालं तपस्विना॥४०॥
एवं तस्य वचः श्रुत्वा ब्राह्मणस्य वसुंधरे। मधुरां गिरमादाय स मया प्रतिभाषितः॥४१॥

फिर कमलपत्र के समान नेत्र वाले मुझको उत्तर दिशा की ओर देखकर वे ऋषि अथर्ववेद के मन्त्रों से वहाँ मेरी स्तुति गाने लग गया।।३१।।

हे सुन्दरि! फिर एकनिष्ठ मन वाले ब्राह्मण के वचन को सुनकर मैं उस शालवृक्ष के पूर्व की तरफ के श्रेष्ठ स्थान पर चला गया।।३२।।

फिर उस स्थान के मध्य में वर्तमान श्रेष्ठ स्थान पर स्थित तीव्रव्रत करने वाला वह ऋषि उत्तर दिशा से पूर्व की ओर सामवेद का पाठ करने लग गया। हे सुन्दरि! तदनन्तर वेद के उच्चारण और ऋषि के ब्रह्मज्ञान से मैं अत्यन्त प्रसन्न हो गया तथा फिर उस ऋषि से कहा कि हे महाभाग श्रेष्ठ ब्रह्मन् शालङ्कायन! तुम तो धन्य हो। तुम्हारी इस प्रकार की तपस्या पूर्ण स्तुति से मैं अत्यन्त सन्तुष्ट हूँ। तुम अब वर माँग लो। तुम्हारा कल्याण हो। अपनी तपस्या से आप सिद्ध हो चुके हैं।।३३-३५।।

मेरे द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर वे श्रेष्ठ शाङ्कायन ऋषि एकनिष्ठ मन से शालवृक्ष के मूल में नीचे बैठ गये।।३६।।

हे देवि! फिर तीव्रव्रत धारी वे ऋषि मुझसे कहने लगे कि हे हरि! आपकी उपासना करने हेतु ही मैंने यह तप किया था।।३७।।

इसके लिए मैं पर्वत और वन से सम्पन्न अखिल भूमण्डल पर भ्रमण करता रहा। फिर महान् भाग्यवान् और अत्यन्त ओजवान् हे चक्रपाणि हरि! अब आप दर्शन भी दिये हैं।।३८।।

समस्त प्रकार की शान्ति प्रदान करने वाले हे देव हरि! यदि आप मुझसे संतुष्ट हैं जो हे विष्णो! मैं महेश्वर शिव के सदृश पुत्र प्राप्त करने हेतु आपसे वर की कामना करता हूँ।।३९।।

इस प्रकार उग्रकर्म साधक दीर्घकाल तक तपस्या करने वाले उस पुत्र की कामना करने वाले ब्राह्मण ऋषि ने मुझसे कहा।।४०।।

हे वसुन्धरे! इस प्रकार के उस ब्राह्मण के वचनों को सुनकर मैंने भी उससे मधुर वचन में यह कहा—।।४१।।

चिरकालं व्रतस्थेन यदिच्छसि तपोधन। स कामस्तवसंजातः सिद्धोऽसि तपसा भवान्॥४२॥
ईश्वरस्य प्रियश्रेष्ठो नाम्ना वै नन्दिकेश्वरः। तवद्दक्षिणाङ्गात् संभूतः पुत्रस्तव मनीश्वर॥४३॥
संहरस्व तपो ब्रह्मन् शान्तिं गच्छ महामुने। अद्य वै तस्य जातस्य कल्पानिसप्त सप्त च॥४४॥
न त्वं जानासि विप्रेन्द्र स जातो नन्दिकेश्वरः। मायायोगबलोपेतो द्वारि तिष्ठति शंकरात्॥४५॥
एवं पुत्रवरं लब्ध्वा शालवृक्षस्य तन्मम। वृक्षं दक्षिणतः कृत्वा तत्रैवान्तरधीयत॥४६॥
ममैव रोचते स्थानं गिरिकूटशिलोच्चये। शालग्राम इति ख्यातो भक्तसंसारमोक्षणम्॥४७॥
तत्र गुह्यानि मे भूमि कथ्यमानानि तच्छृणु। तरन्ति मनुजास्तत्र घोरसंसारसागरम्॥४८॥
तत्र पञ्चदशा गुह्याः शालग्रामे यशस्विनि। अद्यापि तान् न जानन्ति मुच्य वाराहसंहिताम्॥४९॥
तत्र बिल्वप्रभं नाम गुह्यं धर्म्यं मम प्रियम्। कुण्डानि तत्र चत्वारि क्रोशमात्रे यशस्विनि॥५०॥
हृद्यं च तत्परं गुह्यं भक्तकर्मसुखावहम्। तत्र स्नानं तु कुर्वीत अहोरात्रातेषितो नरः।
चतुर्णामश्वमेधानां फलं प्राप्नोति मानवः॥५१॥
अथात्र मुञ्चते प्राणान् मम कर्मसु निष्ठितः। अश्वमेधफलं भुक्त्वा मम लोके स मोदते॥५२॥

हे तपोधन! चिरकाल तक व्रत करते हुए तुम जो कुछ चाहते थे, तुम्हारी वह इच्छा पूरी की जा चुकी है। आप तपस्या के कारण सिद्ध हो गये हैं।।४२।।

हे मुनीश्वर! आपके दक्षिण अंग से नन्दिकेश्वर नाम से आपका पुत्र जन्म ले चुका है। जो ईश्वर शंकर का प्रिय और श्रेष्ठ स्वरूप है।।४३।।

हे महामुने ब्रह्मन्! अब आप अपना तप का अन्त करो और सुखशान्ति प्राप्त करो। आज उसे उत्पन्न हुए चौदह कल्प व्यतीत हो चुके हैं।।४४।।

हे श्रेष्ठ विप्र! तुम इसे नहीं जान सके। माया योगबल से सम्पन्न वह नन्दिकेश्वर उत्पन्न हुआ है, जो सदा शंकर के द्वार पर खड़ा रहा करता है।।४५।।

उस भक्त ने शालवृक्ष के नीचे मेरा यह वर प्राप्त किया। उसके बाद वृक्ष के दक्षिण ओर जाकर मैं वहीं अन्तर्हित हो गया।।४६।।

फिर गिरिकूट की उच्च शिला पर स्थित स्थान मुझे प्रिय है। शालग्राम नाम से ख्यात वह स्थान भक्त को संसार से मुक्त करने वाला है।।४७।।

हे भूमे! अब मैं वहाँ के गुप्त स्थानों के बारे में क्रम से कहता हूँ। उसे तुम सुनो। वहाँ पर पहुँचने वाले मनुष्य घोर संसार सागर से पार हो जाते हैं।।४८।।

हे यशस्विनि! उस शालग्राम तीर्थ में पन्द्रह गुप्त स्थान हैं। वाराह संहिता को छोड़कर आज भी अन्य कोई उन स्थानों को नहीं जानता।।४९।।

वहाँ पर बिल्वप्रभ नामक धर्मयुक्त गुप्त स्थान मुझे प्रिय है। हे यशस्विनि! वहाँ एक कोश के क्षेत्र में चार कुण्ड स्थित हैं।।५०।।

वह सुन्दर और श्रेष्ठ गुप्त स्थान भक्तों को कर्म करने में सुख प्रदान करने वाला है। वहाँ एक अहोरात्र रहते हुए स्नान करने वाले जन चार अश्वमेधों का फल प्राप्त करते हैं। फिर मेरे कर्म में भलीभाँति संलग्न जन यहाँ पर अपने प्राणों का विसर्जन कर अश्वमेध का फल भोगते हुए मेरे लोक में आनन्द प्राप्त करते हैं।।५१-५२।।

चक्रस्वामीति विख्यातं तस्मिन् क्षेत्रे परं मम। चक्राङ्कितशिलास्तत्र दृश्यन्ते च इतस्ततः॥५३॥
चक्राङ्कितशिला यत्र तिष्ठते वरवर्णिनि। तत्क्षेत्रं विद्धि वसुधे समन्ताद् योजनत्रयम्॥५४॥
तत्र स्नानं तु कुर्वीत त्रिरात्रोपोषितो नरः। त्रयाणामपि यज्ञानां फलं प्राप्नोति मानवः॥५५॥
अथात्र मुञ्चते प्राणान् मम कर्मानुसारिणः। वाजपेयफलं भुक्त्वा मम लोकं च गच्छति॥५६॥
यत्र विष्णुपदं नाम क्षेत्रं गुह्यं परं मम। पतन्ति त्रीणि धाराणि हिमकूटं समाश्रिताः॥५७॥
तत्र स्नानं तु कुर्वीत त्रिरात्रोपोषितो नरः। त्रयाणामपि रात्रीणां फलं प्राप्नोति निष्कलम्॥५८॥
अथ वै मुञ्चते प्राणान् मुक्तसङ्गो गतक्लमः। अतिरात्रफलं भुक्त्वा मम लोकं च गच्छति॥५९॥
तत्र कालीह्रदं नाम गुह्यं क्षेत्रं परं मम। अत्र चैकोद्भवः स्त्रोतो बदरीवृक्षनिःसृत॥६०॥
तत्र स्नानं तु कुर्वीत षष्ठकालोषितो नरः। नरमेधस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः॥६१॥
अथात्र मुञ्चते प्राणान् मुक्तरागो गतक्लमः। नरमेधफलं भुक्त्वा मम लोके च मोदते॥६२॥
अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि आश्चर्याणि वसुंधरे। तत्र शङ्खप्रभं नाम गुह्यं क्षेत्रं परं मम॥६३॥

उसी क्षेत्र में चक्रस्वामी नाम का प्रसिद्ध मेरा एक श्रेष्ठ स्थान है, वहाँ इधर-उधर चक्राङ्कित शिलाओं का भी दर्शन होते हैं।।५३।।

हे सुन्दर वर्ण वाली पृथ्वि! वहाँ पर जहाँ चक्राङ्कित शिला स्थित है, उस क्षेत्र को चतुर्दिक तीन योजन विस्तार वाला जानना चाहिए। फिर तीन रातों तक वहाँ उपवास करते हुए स्नान करने वाले जन तीन वाजपेय यज्ञों का फल प्राप्त किया करते हैं।।५४-५५।।

फिर मेरे कर्मों को करने वाले जन वहाँ प्राण त्याग कर वाजपेय यज्ञ का फल भोग कर मेरे लोक को जाता है।।५६।।

फिर वहीं पर मेरा विष्णुपद नाम से अत्यन्त गुप्त एक क्षेत्र है, वहाँ हिंमकूट से निकलने वाली तीन धारायें गिरा करती हैं।।५७।।

तीन रातों तक वहाँ उपवासपूर्वक स्नान करने वाले जन तीन रातों का याने तीन अतिरात्र व्रत का सम्पूर्ण फल पाते हैं।।५८।।

फिर आसक्ति और क्लान्ति से विरहित हुए जन वहाँ अपने प्राणों का विसर्जन कर अतिरात्र यज्ञ का फल भोगते हुए मेरे लोक को जाते हैं।।५९।।

उसी क्षेत्र में मेरा कालीह्रद नाम से अत्यन्त गुप्त एक क्षेत्र है। यहीं पर बदरी वृक्ष से निःसरित एक स्त्रोत स्थित है।।६०।।

वहाँ पर जो जन छः दिन रातों को रहते हुए स्नान करते हैं, वे जन नरमेध यज्ञ का फल अधिगत कर लेते हैं।।६१।।

फिर आसक्ति और क्लान्ति से विमुक्त जन यहाँ पर अपने प्राणों का त्याग कर और नरमेध यज्ञ का फल भोग कर मेरे लोक में आनन्द से रहते हैं।।६२।।

हे वसुन्धरे! अब आगे तुमको मैं अन्यान्य आश्चर्योत्पादक स्थान के बारे में बतला रहा हूँ। वहाँ शंखप्रभ नाम का मेरा परम गुह्य एक क्षेत्र है, जहाँ द्वादशी तिथि के दिन आधी रात में शंख का घोर शब्द सुनायी देता है।।६३।।

शङ्खशब्दं श्रृणोद्धीम मम रात्रे तु द्वादशीम्। गदाकुण्डमिति ख्यातं तस्मिन् क्षेत्रे परं मम।
यत्र वै कम्पते स्रोतो दक्षिणां दिशमाश्रितम्॥६४॥
तत्र स्नानं तु कुर्वीत त्रिरात्रोपोषितो नरः। वेदान्तगानां विप्राणां फलं प्राप्नोति मानवः॥६५॥
अथ वै मुञ्चते प्राणान् कृतकृत्यो गुणान्वितः। गदापाणिर्महाकायो मम लोकं प्रपद्यते॥६६॥
पुनश्चाग्निप्रभं नाम गुह्यं क्षेत्रं परं मम। धारा पतति तत्रैका पूर्वोत्तरसमाश्रिता॥६७॥
यस्तत्र कुरुते स्नानं चतुर्भक्तोषितो नरः। अग्निष्टोमात् पञ्चगुणं फलं प्राप्नोनि मानवः॥६८॥
अथात्र मुञ्चते प्राणान् मम कर्मसु निष्ठितः। अग्निष्टोमफलं भुक्त्वा मम लोकं प्रपद्यते॥६९॥
तत्राश्चर्यं महाभागे कथ्यमानं मया श्रृणु। हेमन्ते चोदकमुष्णं ग्रीष्मे भवति शीतलम्॥७०॥
गुह्यं सर्वायुधं नाम तत्र क्षेत्रे परं मम। पतन्ति सप्त स्रोतांसि हिमवन्तविनिःसृताः॥७१॥
तत्र स्नानं यदा कुर्यात् पञ्चकालोषितो नरः। राजा भवति सुश्रोणि सर्वायुधकलान्वितः॥७२॥
अथ वै मुञ्चते प्राणान् मम कर्मविनिश्चितः। स भुक्त्वा राज्यभोगानि मम लोकं च गच्छति॥७३॥
तत्र देवप्रभं नाम गुह्यं क्षेत्रं परं मम। धारा पञ्चमुखास्तत्र पतन्त्यो गिरिसंश्रिताः॥७४॥

उसी क्षेत्र में गदाकुण्ड नाम का मेरा एक श्रेष्ठ स्थान है। जहाँ दक्षिण की दिशा में एक स्रोत प्रवाहित होता रहता है। वहाँ पर तीन रातों तक उपवास कर स्नान करने वाला व्यक्ति वेदान्त को जानने वाले ब्राह्मणों के जैसा फल प्राप्त करने वाला होता है।।६४-६५।।

फिर कृतकृत्य और गुणवान् जन वहाँ पर अपने प्राणों का परित्याग करने के बाद गदापाणि और विशाल शरीर वाला होकर मेरे लोक में निवास करता है।।६६।।

मेरा एक अग्निप्रभ नामक परम गुप्त क्षेत्र है। वहाँ पूर्वोत्तर कोण की दिशा में स्थित एक धारा गिरा करती है।।६७।।

चार भोजन काल तक उपवास कर जो जन वहाँ पर स्नान कर लेता है, वे जन अग्निष्टोम से भी पाँच गुणा फल पाने वाला हो जाता है।।६८।।

यदि मेरा कर्मपरायण भक्त जन यहाँ अपना प्राण विसर्जित करते हैं, तो अग्निष्टोम का फल भोग कर मेरे लोक में जाते हैं।।६९।।

हे महाभागे! वहाँ पर घटित होने वाला आश्चर्य अब मैं मुमको बतला रहा हूँ। उसे तुम सुनो। वहाँ का जल हेमन्त ऋतु में उष्ण और गीष्म ऋतु में शीतल रहा करता है।।७०।।

उसी क्षेत्र में सर्वायुध नाम का परम गुप्त एक मेरा स्थान है। वहाँ पर हिमालय से निःसरित होने वाली सात धारायें गिरा करती हैं।।७१।।

हे सुश्रोणि! पाँच काल तक उपवास कर जो जन वहाँ स्नान करते हैं, तो वे समस्त आयुध और कलाओं से सम्पन्न राजा हुआ करते हैं।।७२।।

यदि मेरे कर्मों को निश्चयपूर्वक करने वाले जन यहाँ प्राण का त्याग करते हैं, तो वे राज्य भोगों को भोगते हुए मेरे लोक में जाते हैं।।७३।।

उसी क्षेत्र में एक देवप्रभ नाम का मेरा परम गुप्त एक क्षेत्र है। वहाँ पर पर्वत के ऊपर स्थित पाँच मुख वाली धारायें गिरा करती हैं।।७४।।

तत्र स्नानं तु कुर्वीत षष्ठकालोषितो नरः। चतुर्णामपि वेदानां याति पारं न संशयः॥७५॥
अथात्र मुञ्चते प्राणान् लोभमोहविवर्जितः। वेदकर्म समुत्सृज्य मम लोके महीयते॥७६॥
गुह्यं विद्याधरं नाम तत्र क्षेत्रे परं मम। पञ्च धाराः पतन्त्यत्र हिमकूटविनिःसृताः॥७७॥
यस्तत्र कुरुते स्नानमेकरात्रोषितो नरः। याति वैद्याधरं लोकं कृतकृत्यो न संशयः॥७८॥

अथात्र मुञ्चते प्राणान् वीतरागो गतक्लमः।
भुक्त्वा वैद्याधरान् भोगान् मम लोकाय गच्छति॥७९॥

तत्र पुण्यनदी नाम गुह्यं क्षेत्रं परं मम। शिलाकुण्डलताकीर्णं गन्धर्वाप्सरसेवितम्॥८०॥
तत्र स्नानं तु कुर्वीत अष्टभक्तोषितो नरः। भ्रमते सप्तद्वीपानि स्वच्छन्दगमनालयः॥८१॥
अथात्र मुञ्चते प्राणान् मम मार्गानुसारिणः। सप्तद्वीपान् समुत्सृज्य मम लोकाय गच्छति॥८२॥
गन्धर्वेति च विख्यातं तस्मिन् क्षेत्रे परं मम। एकधारा पतत्यत्र पश्चिमां दिशमाश्रिता॥८३॥
तत्र स्नानं प्रकुर्वीत षष्ठकालोषितो नरः। गन्धर्वनगरं प्राप्य मोदते विगतज्वरः॥८४॥
अथात्र मुञ्चते प्राणान् मम कर्मसु निश्चितः। ब्रह्मलोकमतिक्रम्य मम लोकं प्रपद्यते॥८५॥

वहाँ छः काल तक रहते हुए स्नान करने वाले जन निःसंशय चारों वेदों का पारगामी हो जाता है।।७५।।

फिर लोभ और मोह से रहित वे जनवहाँ प्राणों का उत्सर्जन करने के बाद वेदविहित कर्मों का त्याग करते हुए मेरे लोक में आदर पाते हैं।।७६।।

उसी क्षेत्र में विद्याधर नाम का मेरा अत्यन्त गुह्य एक और क्षेत्र है। यहाँ पर हिमगिरी से निःसरित पाँच धारायें गिरती हैं।।७७।।

जो जन यहाँ एक रात रहकर स्नान करते हैं, वे कृतकृत्य होकर निःसंशय विद्याधरों के लोक में जाया करते हैं।।७८।।

फिर आसक्ति और क्लान्ति से मुक्त हुए जन वहाँ प्राण परित्याग कर विद्याधरों का भोग प्राप्त कर मेरे लोक में जाते हैं।।७९।।

उसी क्षेत्र में पुण्य नदी नाम से मेरा परम गुप्त एक अन्य क्षेत्र है। वह स्थान शिला, कुण्ड और लताओं से सम्पन्न तथा गन्धर्वों और अप्सराओं से सेवित है। वहाँ आठ कालों का भोजन त्याग कर उपवास पूर्वक स्नान करने वाले जन स्वच्छन्दगति पाकर सात द्वीपों का भ्रमण करते हैं।।८०-८१।।

फिर मेरे मार्ग का अनुसरण करने वाले जन यहाँ अपना प्राण त्याग करने के बाद सात द्वीपों को त्याग कर मेरे लोक को चले जाते हैं।।८२।।

उसी क्षेत्र में गन्धर्व नाम का मेरा एक अन्य श्रेष्ठ गुप्त स्थान है। जहाँ पश्चिम दिशा के आश्रित एक धारा यहाँ आकर गिरा करती है।।८३।।

अतः यहाँ छः भोजन कालों तक उपवास करते हुए स्नान करने वाले जन दुःखों से विरहित होकर गन्धर्वनगर में पहुँच कर आनन्द करते हैं।।८४।।

फिर मेरा कर्म परायण मनुष्य यहाँ प्राणों का त्याग कर ब्रह्मलोक का अतिक्रमण कर मेरे लोक में चले जाते हैं।।८५।।

तत्राश्चर्यं महाभागे कथ्यमानं मया शृणु। श्रूयते ब्रह्मनिर्घोषो अर्द्धरात्रे तु द्वादशीम्॥८६॥
चतुर्णां लोपालानामस्ति गुह्यं परं मम। धाराः पतन्ति चत्वारि चत्वारो दिशिमाश्रिताः॥८७॥
तत्र स्नानं प्रकुर्वीत चतूरात्रोषितो नरः। मोदते लोकपालेषु स्वच्छन्दगमनालयः॥८८॥

अथात्र मुञ्चते प्राणान् मम भक्त्या व्यवस्थितः।
लोकपालान् समुत्सृज्य मम लोकाय गच्छति॥८९॥

तत्र देवह्रदं नाम मम क्षेत्रे वसुंधरे। यत्र क्रान्ताऽसि मे भूमि बलियज्ञविनाशनात्॥९०॥
स ह्रदो वरदे श्रेष्ठो मनोज्ञः सुखशीतलः। अगाधश्च ह्रदो देवि देवनामपि दुर्लभः॥९१॥
तस्मिन् ह्रदे महाभागे पदा मम कृतोदके। चक्राङ्कितानि मत्स्यानि पर्यटन्ति इतस्ततः॥९२॥
अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व वसुंधरे। महाश्चर्य विशालाक्षि यत्र तत्परिवर्त्तते।

श्रद्दधानापि पश्यन्ति न पश्येत् पापकर्मणः॥९३॥

तस्मिन् देवह्रदे भूमे चतुर्विंशतिद्वादशीम्। सौवर्णानि च पद्मानि दृश्यन्त्युदितभास्करे।

तावत् पश्यन्ति ते भूमि यावन्मध्यंदिने स्थिते॥९४॥

तत्र स्नानं प्रकुर्वीत दशभक्तोषितो नरः। दशानामश्वमेधानां फलं प्राप्नोति मानवः॥९५॥

हे महाभागे! मैं वहाँ के आश्चर्यों को कहने जा रहा हूँ, उसे सुनो। वहाँ पर द्वादशी तिथि के दिन अर्द्धरात्रि के समय ब्रह्मनिर्घोष याने वेदध्वनि सुनने को मिलती है।।८६।।

फिर मेरा एक अन्य परम गुप्त स्थान चारों लोक पालों का निवास स्थान है। वहाँ चारों ओर की दिशाओं में स्थित चार धारायें गिरा करती हैं।।८७।।

फिर चार रातों तक उपवास पूर्वक वहाँ स्नान करने वाले जन स्वच्छन्द गति करने वाला होकर लोकपालों के लोक में आनन्द प्राप्त करते हैं।।८८।।

इस प्रकार यदि मेरी भक्ति सम्पन्न होकर वे जन वहाँ अपने प्राणों का परित्याग करते हैं, तो लोकपालों के लोकों का त्याग कर वे मेरे लोक में जाते हैं।।८९।।

हे भूमे! उसी क्षेत्र में एक अन्य मेरा देवह्रद नाम का स्थान है। हे भूमे! मेरे द्वारा बलि यज्ञ का ध्वंक्ष करते हुए जहाँ तुम मापी गयी हो।।९०।।

हे वरदायिनि देवि! जल सम्पन्न मेरे उस ह्रद में चक्राङ्कित मत्स्य इधर-उधर तैरत रहा करती हैं।।९२।।

हे विशालक्षि! हे वसुन्धरे! आगे मैं तुमको और भी अन्य महान् आश्चर्य सम्पन्न वृत्तान्त कहने जा रहा हूँ। जैसा वहाँ पर घटित हुआ करता है। उसे सुनो। इस तरह श्रद्धा सम्पन्न जन ही उसे देखा करते हैं और पाप कर्मिष्ठ उसे नहीं ही देख या समझ पाने में सक्षम हुआ करते हैं।।९३।।

हे भूमे! उस मेरे देवह्रद में वर्ष की चौबीस द्वादशी तिथियों को सूर्योदय होने पर स्वर्णपद्म का दर्शन हुआ करता है। हे भूमे! वे हेमकमल तब तक ही दिखते हैं, जब तक सूर्य मध्याह्न में स्थित रहा करते हैं।।९४।।

दस भोजन कालों तक उपवास पूर्वक जो जन वहाँ पर स्नान किया करते हैं, तो वे जन दस अश्वमेध यज्ञ करने का फल अधिगत कर लेते हैं।।९५।।

अथात्र मुञ्चते प्राणान् मम चित्तव्यवस्थितः। अश्वमेधफलं भुक्त्वा भूमे मत्समतां व्रजेत्॥९६॥

एते पञ्चदशा गुह्या शालग्रामे प्रकीर्त्तिताः।
शुद्धान् भागवतान् कृत्वा एतद् भूमि मया कृतम्॥९७॥

पूर्वामुखमहं तत्र शालग्रामे यशस्विनि। भविष्यामि न संदेहो भूमे भागवतप्रियः॥९८॥
अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व वसुंधरे। अन्तर्गुह्य परं श्रेष्ठं यन्न जानन्ति मोहिताः॥९९॥
शिवो मे दक्षिणं स्थानं तिष्ठते विगतज्वरः। लोकानां प्रवरश्रेष्ठः सर्वलोकवरो हरः॥१००॥
तं यो वदन्ति हे भूमे वन्दितोऽहं न संशयः। वृथागमनमित्याह एवमेतन्न संशयः॥१०१॥
शिवाग्रे वन्दयित्वा तु भूमे मामेव वन्दति। लभते पुष्कलां सिद्धिं या मयाऽत्र सुकीर्त्तिता॥१०२॥
समन्ततो मम क्षेत्रं दशयोजनविस्तरम्। मृताप्यत्र गतिं यान्ति मम कर्मानुसारिणः॥१०३॥
एतत् ते कथितं भद्रे शालग्रामस्य निश्चयम्। यत्त्वया पृच्छितं पूर्वं पुण्यं भागवतप्रियम्॥१०४॥
आख्यानानां महाख्यानं द्युतीनां परमाद्युतिः। पुण्यानां परमं पुण्यं तपसां च महत्तपः॥१०५॥
गुह्यानां परमं गुह्यं लाभानां लाभमुत्तमम्। शुद्धानां परमं शुद्धं गतीनां परमा गतिः॥१०६॥

हे भूमे! फिर मुझ में अपने मन को संयुक्त कर वे अपना प्राण छोड़ते हैं, तो वे अश्वमेध का फल भोग करते हुए मेरी समता को प्राप्त कर लेते हैं।।९६।।

हे भूमे! शालग्राम क्षेत्रान्तर्गत ये ही मेरे पन्द्रह गुह्य तीर्थ क्षेत्र हैं। शुद्ध भगवद् भक्तों को उत्पन्न करने के बाद मैंने इन क्षेत्रों को भी तैयार किया।।९७।।

हे यशस्विनि भूमे! उस मेरे शालग्राम तीर्थ में मैं निःसंशय पूर्वाभिमुख स्थित हुआ हूँ। फिर मैं अपने भगवद् भक्तों का प्रिय भी हूँ।।९८।।

हे वसुन्धरे! मैं तुमको अपने अन्य भी परम श्रेष्ठ अन्तर्गुह्य नाम के तीर्थों का वर्णन करने जा रहा हूँ, जिसे मोहित जन नहीं जाना करते हैं।।९९।।

मेरे दक्षिण भाग में लोकों में परम श्रेष्ठ और सभी जनों के प्रिय सन्तापरहित हर शिव स्थित हैं।।१००।।

इस प्रकार जो जन उनको प्रणाम किया करते हैं, वे निःसंशय मेरी वन्दना कर लिया करता है, समझना चाहिए। उन्हें कहीं अन्यत्र व्यर्थ का जाना नहीं पड़ता है। इसमें किसी तरह संशय नहीं करना चाहिए।।१०१।।

हे भूमे! शिव को सामने से प्रणाम कर मनुष्य मुझे भी प्रणाम कर लेता है। उसे महान् सिद्धि की प्राप्ति हो जाती है, जिसका वर्णन यहाँ किया है।।१०२।।

मेरे क्षेत्र के चारों ओर दस योजन के विस्तार में जो जन अपने प्राणों का त्याग करते हैं, वे मेरे कर्म परायण जन मेरी गति को पाते हैं।।१०३।।

हे भद्रे! तुम्हारे द्वारा पहले ही सभी भगवद् भक्तों को जो प्रिय पूछा गया था, मैंने शालग्राम क्षेत्र का यह अपना निश्चय तुमको वर्णन कर दिया।।१०४।।

यह आख्यानों में परम आख्यान, प्रकाशों में श्रेष्ठ प्रकाश, पुण्यों में परम पुण्य और तपों में भी परम तप है।।१०५।।

यह गुह्यों में भी परम गुह्य, लाभो में भी परम लाभ, शुद्धता में भी परम शुद्ध तथा गतियों में भी परम गति है।।१०६।।

न एतत् पिशुने दद्यान्न पठेत् पापकर्मसु। ये च देवद्विषो मूढा लाभालाभेन मोहिताः॥१०७॥
कुशिष्याय न दातव्यं न दद्याच्छास्त्रदूषके। नीचाय च न दातव्यं ये न जानन्ति सेवितुम्॥१०८॥
सुशिष्यायैव दातव्यं धीराय गुणवत्यपि। गुरुशुश्रूषवे नित्यं ब्रह्मण्ये शरणाय च॥१०९॥
य एतत् पठते नित्यं कल्यमुत्थाय मानवः। कुलांस्तारयते देवि सप्त सप्त च सप्त च॥११०॥
एवं मरणकाले तु मां कदाचिन्न विस्मरेत्। यदीच्छेत् परमां सिद्धिं मम लोकं स गच्छति॥१११॥
एतत् ते कथितं भद्रे शालग्रामस्य यत् फलम्। सर्वभागवतश्रेष्ठे किमन्यत्परिपृच्छसि॥११२॥

।।इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः।।१४४।।

अतः चुगलखोरों को इस आख्यान का उपदेश कथमपि नहीं करना चाहिए। फिर देवता के द्वेषी और लाभालाभ के विचार से ग्रसित, पाप कर्म करने वाले जनों के समक्ष इसका पाठ नहीं करना चाहिए।।१०७।।

फिर कुशिष्य, शास्त्र को दूषित करने वाले, नीच और सेवा करने को नहीं जानने वाले जनों को भी इस आख्यान का उपदेश नहीं करना चाहिए।।१०८।।

धीर, गुणवान्, गुरु का सेवक, ब्राह्मण भक्त और शरण आये हुए शिष्य को इस आख्यान का उपदेश देना श्रेष्ठ है।।१०९।।

हे देवि! जो जन प्रातः काल उठकर नित्यप्रति इस आख्यान का पाठ करता है, वह अपने इक्कीस पीढ़ियों को तारने वाला होता है।।११०।।

जिस किसी जन को यदि परम सिद्धि पाने की कामना हो, तो वह मरने के समय भी मुझे नहीं भूलने की चेष्टा ही करे। इस प्रकार करने से वे निश्चय ही मेरे लोक को जाते हैं।।१११।।

हे भद्रे! इस प्रकार मेरे द्वारा अपने शालग्राम क्षेत्र का जो कुछ फल होता है, वे सब तुमको कह दिया गया है। हे समस्त भगवद् भक्तों में श्रेष्ठ धरणि! तुम मुझसे और क्या-क्या पूछना चाहती हो, उन्हें भी पूछ लो।।११२।।

।।इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में शालग्राम क्षेत्र और नन्दीश्वर, उस क्षेत्र में अन्य तीर्थ नामक एक सौ चौवालिसवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ।।१४४।।

पञ्चचत्वारिंशदधकशततमोऽध्यायः

अथ गोनिष्क्रमणतीर्थमाहात्म्यम्

सूत उवाच

शालग्रामस्य माहात्म्यं गुह्यं महौजसम्। विस्मयं परमं गत्वा हृष्टा वचनमब्रवीत्॥१॥

धरण्युवाच

अहो क्षेत्रस्य माहात्म्यं यत्त्वया भाषितं हरे। एतच्छ्रुत्वा महाभाग जाताऽस्मि विगतज्वरा॥२॥
एकं मे परमं गुह्यं धर्मं परमनिश्चयम्। शालग्रामात्परं गुह्यमस्ति क्षेत्रं परं क्वचित्॥३॥
ततो महीवचः श्रुत्वा सर्वलोकमयो हरिः। उवाच मधुरं वाक्यं धर्मकामा वसुंधराम्॥४॥
शृणु भूमि प्रयत्नेन कारणं परमं मम। गुह्यमस्त्यपरं गुह्यं हिमशृङ्गशिलोच्चये।
गोनिष्क्रमणकं नाम गावो यत्रावतारिताः॥५॥
यथा निष्क्रमणं प्राप्य सौरभाणां महायशाः। सप्ततिर्यत्र कल्याणि और्वो यत्र प्रजापतिः॥६॥
स वारयति लोकानि मम मायाबलान्वितः। तस्यैवं वर्त्तमानस्य याति कालोऽतितप्यतः॥७॥
एवं तु वर्त्तमानानि सर्वलोकेशु संशयः। न ह्यसौ वरते किञ्चिल्लाभालाभविवर्जितः।
सूचकोऽपि न विद्येत बलिकर्मसु संयतः॥८॥

अध्याय-१४५

गोनिष्क्रमण तीर्थ की उत्पत्ति और उसका माहात्म्य

सूतजी ने कहा कि इस प्रकार शालग्राम क्षेत्र के महा ओजवान् माहात्म्य को सुनकर धरणी और भी परम आश्चर्य के साथ बोल पड़ी।।१।।

धरणी ने कहा कि हे हरि! आपके द्वारा अपने क्षेत्र का जो माहात्म्य वर्णन किया गया है, उसे सुनने के पश्चात् निश्चय ही मैं सन्ताप मुक्त हो गयी हूँ।।२।।

अब मुझे परम गुह्य धर्म के विषय में जानने का श्रेष्ठ कौतूहल है। क्या कहीं शालद्राम क्षेत्र से भी श्रेष्ठ क्षेत्र अन्य कोई है?।।३।।

तत्पश्चात् धरणी की बातें सुनकर सर्वलोकमय हरि ने धर्माभिकामिनी उस धरणी से मीठे वचनों में कहा—हे भूमे! प्रयत्न के सहित मेरा परम कारण को सुनो। हिमशृङ्ग के उच्चतर शिला पर गोनिष्क्रमणक नाम का मेरा अन्य एक गुह्य तीर्थ है, जहाँ कि गायें स्वर्ग से उतारी गयीं थी।।४-५।।

हे भद्रे! सुरभि याने स्वर्गीय गाय की सत्तर सन्तानें यही पृथ्वी पर अवतरित हुई थीं। उस समय यहाँ ओर्व प्रजापति थे।।६।।

मेरी माया के बल से सम्पन्न वे दूसरों का दुःख निवारा किया करते थे। इस तरह अति कष्ट के साथ व्यवहार करते हुए उनका समय व्यतीत होता रहा।।७।।

इस प्रकार रहने वाले उनके प्रति लोगों के मन में संशय उठने लगा। इसलिए कि वे लाभ और हानि के विचार से शून्य ही थ। फिर वे संयम के सहित यज्ञ कार्यों में लगा रहता था। अतः उनके कार्यों में कोई दोष नहीं था।।८।।

अथ दीर्घस्य कालस्य कश्चिद् ब्रह्मयतिस्तथा। तपस्तप्यति वसुधे तस्मिन् शैलोच्चये भुवि॥९॥
ईश्वरोऽपि महाभागे तत्पार्श्वं समुपागतः। गोनिष्क्रमेति विख्यातं सर्वलोकमनुत्तमम्॥१०॥
अथ और्वो महाभागे तप्यते मम दर्शनात्। पद्मानां कारणाद् देवि गङ्गाद्वारमुपागतः॥११॥
तं निर्गतं ततो ज्ञात्वा अथ सर्वतपस्विनम्। महेश्वरो महातेजाः संभ्रमं समुपागतः॥१२॥
फलपुष्पसमाकीर्णं लक्ष्म्या चैवोपशोभितम्। आश्रमं रूपसंपन्नं सर्वकामफलोदकम्।
तद्वै रुद्रस्य तेजेन भस्मकूटप्रतिष्ठितम्॥१३॥
दग्ध्वा तं चाश्रमं रम्यमूर्वस्य महति प्रियम्। ईश्वरोऽपि पुनः प्राप्तः शीघ्रमेव महालयम्॥१४॥
एतस्मिन्नन्तरे देवि गृह्य पुष्पकरण्डकम्। और्वश्च स्वाश्रमं प्राप्तः क्षान्तो दान्तो जितेन्द्रियः॥१५॥
दृष्ट्वा तं चाश्रमं दग्धं बहुपुष्पफलोदकम्। मन्युना परमाविष्टो दुःखेन च परिप्लुतः॥१६॥
उवाच क्रोधरक्ताक्षो वचनं निर्दहन्निव। येनैष चाश्रमो दग्धो बहुपुष्पफलोदकः।
सोऽपि दुःखेन सतप्तः सर्वलोकान् भ्रमिष्यति॥१७॥
एवं शापे विमुक्ते तु और्वेण च सुसुन्दरि। भीषणात् सर्वलोकानां न कश्चित् पर्यवारयत्॥१८॥

हे वसुधे! दीर्घकाल के पश्चात् उस शिलोच्चय पर कोई यति स्वरूप तप करने में लगे हुए थे।।९।।

हे महाभागे! इस प्रकार ईश्वर भी उसके पास पहुँच गये। वह स्थान इस संसार में गो निष्क्रमण नाम से सुख्यात है।।१०।।

हे महाभागे! मेरे दर्शनार्थ तपस्या करने वाले और्व याने पूजा के लिए कमल पुष्पों को लेने गङ्गाद्वार तक गए।।११।।

फिर इस तरह श्रेष्ठ तपस्वी को वहाँ से गया हुआ जानकर महातेजवान् महेश्वर शिव तत्क्षण वहीं पहुंच गए।।१२।।

फिर फल और फूलों से भरा हुआ, शोभा और सौन्दर्य युक्त तथा सब प्रकार के फलों और जल से युक्त वह आश्रम रुद्र के तेज से भस्म के ढेर में बदलते चला गया।।१३।।

इस तरह और्व के परम प्रिय उस आश्रम को भस्म कर महेश्वर फिर से तत्क्षण ही अपने श्रेष्ठ रहने के स्थान पर आ गए।।१४।।

हे देवि! एतदनन्तर पुष्प की टोकरी उठाये हुए क्षमावान्, संयत चित्त, और जितेन्द्रिय और्व अपने आश्रम में आ पहुँचे।।१५।।

वहाँ अनेक प्रकार के पुष्प, फल और ञल से युक्त अपने उस आश्रम को भस्मसात् हुआ देखकर वे अत्यन्त क्रोध और दुःख से सम्पन्न हो गये।।१६।।

इस प्रकार क्रोध के कारण उनके नेत्र लाल दीखने लगे और फिर जलते हुए के समान उन्होंने यह वचन कहा कि अनेक पुष्पों, फलों और जल से परिपूर्ण इस आश्रम को जिस किसी ने जलाया है, वह भी दुःख से सन्तप्त होकर सम्पूर्ण लोकों में भटकता फिरेगा।।१७।।

हे सुन्दरि! और्व द्वारा समस्त लोकों में इस प्रकार भीषण शाप दिये जाने पर शाप से कोई नहीं बचा सका।।१८।।

तत्क्षणादेव सुश्रोणि स ईशोऽपि जनेश्वरः। दाहेन परमं तप्तो रुद्रो देवीमुवाच ह॥१९॥
अस्माकमपि सुश्रोणि दाहो हृदि च वर्त्तते। तेन दाहेन संतप्तो न शक्नोमि विचेष्टितुम्॥२०॥
पार्वत्या च ततः प्रोक्तमावां नारायणं प्रति। गच्छावस्तस्य वाक्येन सुखं तव भविष्यति॥२१॥
ततो नारायणं गत्वा सह तेन तमौर्वकम। गत्वा नारायणश्चौर्वमूचेऽयं रुद्र ईश्वरः।
त्वच्छापेन वयं तप्तास्तस्य तापं निवर्तय॥२२॥

ऊर्व उवाच

मृषा मया च नोक्तव्यं कथं तापो निवर्तते। ततो धेनूः समानीय गव्यैस्तं स्नापयन्तु वै।
तस्मात् तस्य शिवायेह तापो निर्वत्स्यते ध्रुवम्॥२३॥
एतस्मिन्नन्तरे देवि मया गावोऽवतारिताः। सप्तसप्तति कल्याणि सुरभीणां महौजसाम्॥२४॥
तेनाह्लादितदेहाश्च परां निर्वृतिमागताः। तच्च गोनिष्क्रमं नाम क्षेत्रं भागवतप्रियम्॥२५॥
तत्र स्नानं तु कुर्वीत एकरात्रोषितो नरः। गोलोकं च समासाद्य मोदते नात्र संशयः॥२६॥
अथात्र मुञ्चते प्राणान् कृत्वा कर्म सुदुष्करम्।
शङ्खी खड्गी गदी तूणी भूत्वा चागच्छते मम॥२७॥
पञ्च धाराः पतन्त्यत्र मूले मूलवटस्य तु। तत्र स्नानं तु कुर्वीत पञ्चरात्रोषिता नरः।
पञ्चानां चैव यज्ञानां फलं प्राप्नोति मानवः॥२८॥

हे सुश्रोणि! उसी समय सक्षम न होकर भी जीवों के स्वामी रुद्र ने जलन से अत्यन्त तप्त होते हुए भी देवी पार्वती से कहा—।।१९।।

हे सुन्दरि! इस समय हमारे भी हृदय में जलन हो रहा है। उस जलन से सन्तापित होकर मैं किसी प्रकार की कोई चेष्टा नहीं कर पा रहा हूँ।।२०।।

फिर देवी पार्वति ने कहा कि हमको लेकर आप नारायण के पास चलें। इसलिए कि उनके वचन सुनकर आपको सुख प्राप्त होगा।।२१।।

फिर वे दोनों नारायण के समीप आ गए। उनके साथ ही नारायण उस औंर्व के समीप जाकर बोलने लगे कि ये ईश्वर रुद्र हैं। तुम्हारे शाप से ये सन्तप्त हैं। इनके शाप को दूर कर दो।।२२।।

औंर्व ने कहा कि मैं असत्य नहीं बोल सकता हूँ। ताप कैसे दूर हो सकता है। फिर उसने कहा कि गायों को लेकर उनके दूध से इनको स्नान कराना चाहिए। इससे इनका निश्चय कल्याण होगा। फिर इनका ताप भी निश्चय ही दूर होगा।।२३।।

हे देवि! इसी कारण उसी समय मैंने वहाँ गायों को अवतरित किया। हे भद्रे! इस प्रकार सुरभि की सन्तान स्वरूप परम ओजस्वी सतहत्तर गायें वहाँ पर लायी गयीं।।२४।।

फिर इस प्रकार से सभी लोगों का शरीर आह्लादित हो सका और उनको भी परम शान्ति प्राप्त हो सकी। गोनिष्क्रमण नाम का वह क्षेत्र भगवद् भक्तों को अत्यन्त प्रिय है।।२५।।

फिर यहाँ दुष्कर कर्म करके अपना प्राण त्याग करने पर वे जन शंख, चक्र, गदा और तूणीर धारण कर मेरे लोक में आ जते हैं।।२७।।

यहाँ पर मूलवट के मूल में पाँच धारायें गिरा करती हैं। वहाँ स्नान कर पाँच रातों तक उपवास करने वाले जन पाँच यज्ञों का फल पाते हैं।।२८।।

अथात्र मुञ्चते प्राणान् कृत्वा कर्म सुदुष्करम्। पञ्चयज्ञफलं भुक्त्वा मम लोकं प्रपद्यते॥२९॥
अस्ति पञ्चपदं नाम तस्मिन् क्षेत्रे परं मम। मम पूर्वेण पार्श्वेण दृढा पञ्च महाशिलाः॥३०॥
मत्पूर्वां दिशमाश्रित्य तत्र बह्मपदद्वयम्। मध्ये तु तस्य कुण्डस्य शिला विस्तीर्णसंश्रिता।
ऊद्र्ध्वनालपरीणाहं यत्र विष्णुपदं मम॥३१॥
तत्र स्नानं तु कुर्वीत पञ्चरात्रोषितो नरः। याति शुद्धानि लोकानि ये च भागवतप्रियाः॥३२॥
अथात्र मुञ्चते प्राणांस्तत्र पञ्चपदे नरः। विमुक्तः सर्वसंसारान्मम लोकं च गच्छति॥३३॥
ततो बह्मपदं नाम क्षेत्रं गुह्यं परं मम। यत्र धारा पतत्येका पश्चिमां दिशिमाश्रिता॥३४॥
तत्र स्नानं तु कुर्वीत एकरात्रोषितो नरः। ब्रह्मलोकमवाप्नोति ब्रह्मणा सह मोदते॥३५॥
कौमुदस्य तु मासस्य शुक्लपक्षे तु द्वादशीम्। त्रयाणां वाजपेयानां यज्ञानां विधिपूर्वकम्।
फलं प्राप्नोति सुश्रोणि धृतिमान् मतिमान् नरः॥३६॥
अथात्र मुञ्चते प्राणान् मम कर्मसु निष्ठितः। वाजपेयफलं भुक्त्वा मम लोकं प्रपद्यते॥३७॥
अस्ति कोटिवटं नाम तस्मिन् क्षेत्रे परं मम। पञ्चक्रोशं ततो गत्वा वायव्यां दिशि संस्थितः॥३८॥
तत्र स्नानं तु कुर्वीत षष्ठकालोषितो नरः। बहुयज्ञस्य कोटीनां फलं प्राप्नोति निष्कलम्॥३९॥

फिर वहाँ पर दुष्कर कर्मों को करके अपना प्राण छोड़ने वाले जन पाँच यज्ञों को करने का फल भोग कर मेरे लोक में आ जाता है।।२९।।

उसी क्षेत्र में 'पञ्चपद' नाम का मेरा एक श्रेष्ठ स्थान है। मेरे पूर्व पार्श्व में पाँच महादृढ़ शिलायें स्थित हैं।।३०।।

मेरे पूर्व दिशा में ब्रह्मा के दो पदचिह्न स्थित हैं। उस कुण्ड के बीच में विस्तारित एक शिला स्थित है। जहाँ ऊपर की ओर निकला हुआ नाल के समान विस्तृत मेरा 'विष्णुपद' स्थित है।।३१।।

इस प्रकार जो जन वहाँ पाँच रातों तक रहते हुए स्नान करते हैं, वे जन विष्णु के उन शुद्ध लोकों में जाते हैं, जो लोक भगवद् भक्तों को परम पसन्द है।।३२।।

फिर उस पञ्चपद में प्राण को छोड़ने के बाद मनुष्य समस्त संसार से विमुक्त होकर मेरे लोक में जाया करते हैं।।३३।।

फिर ब्रह्मपद नाम का मेरा परमगुप्त क्षेत्र भी है, जहाँ पश्चिम की दिशा में एक धारा गिरा करती है।।३४।।

जो जन वहाँ एक रात रहते हुए स्नान भी करते हैं, वे जन ब्रह्मलोक में जाकर ब्रह्मा के साथ आनन्द से रहते हैं।।३५।।

हे सुश्रोणि! ऐसे वे धीर और बुद्धिमान् जन कार्त्तिक मास के शुक्लपक्ष की द्वादशी को वहाँ पर स्नान कर विधिपूर्वक किये गये तीन वाजपेय यज्ञों का फल प्राप्त करने वाला होता है।।३६।।

फिर वे जन मेरे कर्मों में निष्ठापूर्वक संलग्न रहकर वहाँ अपने प्राणों को छोड़ने के बाद वाजपेय यज्ञों का फल भोग करते हुए मेरे लोक में जाता है।।३७।।

उसी क्षेत्र में वहाँ से पाँच कोस जाकर वायव्य दिशा में स्थित कोटिवट नाम का मेरा श्रेष्ठ स्थान है। जो जन वहाँ छः दिनों तक रहते हुए स्नान करते हैं, वे जन अनेक कोटि यज्ञों का पूर्ण फल पाने वाले होते हैं।।३८-३९।।

अथात्र मुञ्चते प्राणान् भूमे कोटिवटे शुभे। यज्ञकोटिफलं भुक्त्वा मम लोकं प्रपद्यते॥४०॥
अस्ति विष्णुसरो नाम तस्मिन् क्षेत्रे परं मम। पूर्वोत्तरेण पार्श्वेन पञ्चक्रोशं न संशयः॥४१॥
मत्सरः पद्मपत्राक्षि अगाधं परिसंस्थितम्। पञ्चक्रोशश्च विस्तारः सर्वतः परिमण्डलः॥४२॥
तत्र भ्रमति यो भद्रे कुर्याच्चैव प्रदक्षिणम्। उपवासं त्रिरात्रं तु कृत्वा कर्म सुदुष्करम्॥४३॥
यावन्ति भ्रममाणस्य पदानि ननु सुन्दरि। तावद्वर्षसहस्राणि ब्रह्मलोके महीयते॥४४॥
अथात्र मुञ्चते प्राणान् स्वकर्मपरिनिष्ठितः। ब्रह्मलोकं समुत्सृज्य मम लोके महीयते॥४५॥
तस्मिन् क्षेत्रे महाभागे आश्चर्यं शृणु सुन्दरि। गवां वै श्रूयते शब्दो मम कर्मसुखावहः॥४६॥
अथात्र ज्येष्ठमासस्य शुक्लपक्षस्य द्वादशीम्। श्रूयते सुमहान् शब्दः स्वयमेतन्न संशयः॥४७॥
एवं गोस्थलके पुण्ये महाभागवतः शुचिः। करोति शुभकर्माणि शीघ्रं मुच्येत किल्बिषात्॥४८॥
एवं तेन महाभागे ईश्वरेण यशस्विनि। शापदाहो विनिर्मुक्तः सर्वैः सह मरुद्गणैः॥४९॥
एतत् गोस्थलकं नाम सर्वशान्तिकरं परम्। कथितं देवि कात्स्न्येंन तवानुग्रहकाम्यया॥५०॥

हे भूमे! फिर वे जन इस शुभ कोटिवट में अपने प्राणों को विसर्जित कर कोटियज्ञों का फल भोग करते हुए मेरे लोक में जाया करते हैं।।४०।।

वहाँ से पूर्वोत्तर के कोण की दिशा में पाँच कोस की दूरी पर उस क्षेत्र में निश्चय ही 'विष्णुसर' नाम का मेरा श्रेष्ठ एक सरोवर है।।४१।।

हे कमलाक्षि! मेरा वह अगाध सरोवर पाँच कोस के विस्तार प्रमाण में सब ओर मण्डल के आकार में स्थित है।।४२।।

हे भद्रे! तीन रातों तक उपवास स्वरूप अति दुष्कर कर्म करने के बाद जो जन वहाँ प्रदक्षिणा करते हुए घूम जाते हैं, हे सुन्दरि! उनके भ्रमणकाल में उन जनों के जितने पद वहाँ चिह्नित होते हैं, वे जन उतने हजार वर्षों तक ब्रह्मलोक में पूजित हुआ करते हैं।।४३-४४।।

इस प्रकार मेरे कर्मों को अपना कर्म मान कर भलीभाँति करने वाले जन जब यहाँ अपने प्राणों का उत्सर्जन करते हैं, तो वे ब्रह्मलोक को छोड़कर मेरे लोक में आदर पाने वाले हो जाते हैं।।४५।।

हे महाभागे! हे सुन्दरी!! उस क्षेत्र का कौतुक सुनो। मेरे कर्म में सुख प्रदान करने वाली गायों का शब्द वहाँ सुनने को मिलता है।।४६।

फिर ज्येष्ठ मास की शुक्लपक्षीय द्वादशी तिथि के दिन यहाँ पर निश्चय ही अपने आप यह शब्द सुनायी पड़ता है।।४७।।

इस प्रकार जो जन शुद्धभगवद् भक्त इस पवित्र गोस्थल पर शुभ कर्मों को करते हैं, वे तत्काल पापों से रहित हो जाया करते हैं।।४८।।

हे महाभागे! हे यशस्विनि!! इस प्रकार वे ईश्वर समस्त मरुद्गणों के सहित शाप जनित जलन से मुक्त हो गये।।४९।।

हे देवि! तुम पर कृपा करने की कामना से मेरे द्वारा तुमको सब प्रकार की शान्ति प्रदायक इस 'गोस्थलक' नाम के श्रेष्ठ स्थान को बतला दिय गया है।।५०।।

एषोध्यायो महाभागे सर्वमङ्गलकारकः। मम मार्गानुसाराणां मम प्रीतिविवर्द्धनः॥५१॥
श्रेष्ठानां परमं श्रेष्ठं मङ्गलानां च मङ्गलम्। लाभानां परमो लाभो धर्माणां धर्म उत्तमः॥५२॥
लभन्ते पठमाना वै मम मार्गानुसारिणः। तेजः श्रियं च लक्ष्मीं च सर्वकामान् यशस्विनि॥५३॥
यावन्ति चाक्षराणि स्युरत्राध्याये मनस्विनि। तावद्वर्षसहस्राणि मम लोके महीयते॥५४॥
पतनं च न विद्येत पठमानो दिने दिने। तारितानि कुलान्येभिः सप्त सप्त च सप्त च॥५५॥
पिशुनाय न दातव्यं न मूर्खाय शठाय च। देयं पुत्राय शिष्याय यश्च जानाति सेवितुम्॥५६॥
एतन्मरणकाले तु न कदाचित् तु विस्मरेत्। श्लोकं वा यदि वा पादं यदीच्छेत् परमां गतिम्॥५७॥
तत्क्षेत्रं तु महाभागे पञ्चयोजनमण्डलम्। तिष्ठामि परया प्रीत्या दिशं पूर्वामुपाश्रितः॥५८॥
पश्चिमेन वहेद् गङ्गा निष्कामेन वसुंधरे। एवं रहस्यं गुह्यं च सर्वकर्मसुखावहम्॥५९॥
एतत्ते परमं भद्रे गुह्यं धर्मसमन्वितम्। मम क्षेत्रं महाभागे यत्त्वया परिपृच्छितम्॥६०॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥१४५॥

हे महाभागे! इस प्रकार यह आख्यान सब प्रकार से मंगल करने वाला और मेरे मार्ग का अनुगमन करने वालों की प्रीति को बढ़ाने वाला है।।५१।।

यह श्रेष्ठों में परम श्रेष्ठ, मंगलों में अति मंगल, लाभों में श्रेष्ठतर लाभ और धर्मों में श्रेष्ठतम धर्म है।।५२।।

हे यशस्विनि! इस प्रकार मेरे मार्ग का अनुगमन करते हुए इसका पाठ करने वाले तेज, शोभा, सम्पत्ति और समस्त इच्छाओं को प्राप्त करने वाले होते हैं।।५३।।

हे मनस्विनि! इस आख्यानाध्याय में जितने वर्ण हैं, उतने हजार वर्षों तक इस आख्यान को पाठ करने वाले जन मेरे लोक में सम्मान पाते हैं। वैसे प्रतिदिन इस आख्यान का पाठ करने वालों का कभी पतन नहीं होता है। उनके द्वारा इक्कीस पीढ़ियाँ तार दी जाती हैं।।५४-५५।।

चुगलखोर, मूर्ख और दुष्ट जनों को इसका उपदेश नहीं करना चाहिए। जो जन सेवा करना जानता हो, उस पुत्र एवं शिष्य को इसका उपदेश करना पुण्यप्रद होता है। परमगति पाने की कामना करने वाले जनों को मरने के समय भी इस आख्यान के एक भी श्लोक या उसका पाद को भी कभी नहीं भूलना चाहिए।।५६-५७।।

हे महाभागे! वह क्षेत्र पाँच योजन के वृत्त में स्थित है। वहाँ पर मैं पूर्व की दिशा की ओर परम प्रेम से निवास करता हूँ।।५८।।

हे वसुन्धरे! उस क्षेत्र के पश्चिम की दिशा की ओर निष्काम भाव से गङ्गा प्रवाहित होती है। यह गुह्य रहस्य सभी कर्मों में सुख प्रदान करने वाला है।।५९।।

हे भद्रे! इस प्रकार तुम्हारे द्वारा जो कुछ पूछा गया था, उस धर्म युक्त अत्यन्त गुप्त अपने क्षेत्र या तीर्थ के बारे में मैंने तुमको कह दिया है। और तुम जो कुछ पूछना चाहती हो पूछ लो।।६०।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में गोनिष्क्रमण तीर्थ की उत्पत्ति और उसका माहात्म्य एक सौ पैंतालिसवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१४५॥

❖❖❖

षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

अथ स्तुतस्वामिक्षेत्रमाहात्म्यम्

सूत उवाच

गोनिष्क्रमणमाहात्म्यं श्रुत्वा गुह्यमनुत्तमम्। विस्मयं परमं गत्वा सर्वरत्नविभूषिता॥१॥

धरण्युवाच

अहो गवां च माहात्म्यं तव चैव महाप्रभो। यच्छ्रुत्वाऽहं जगन्नाथ जाताऽस्मि परिनिर्वृता॥२॥
एवमेव परं गुह्यं ब्रूहि नारायण प्रभो। अस्मात्क्षेत्रात्परं कश्चित् यदि क्षेत्रं विशिष्यते॥३॥

श्रीवराह उवाच

अहं नारायणो देवः सर्वधर्मव्यपाश्रयः। मात्सर्यं च न विद्येत तेनाहं परमः प्रभुः॥४॥
एतच्छास्त्रं महाभागे प्रयुक्तं लीलया मया। वराहरूपमादाय सर्वभागवतप्रियम्॥५॥

धरण्युवाच

यथा यथा भाषसि पूर्वकारिणामिदं वचो धर्मविनिश्चितं महत्।
तथा तथा देववराप्रमेय हृद्यं मनो भावयसे जनार्दन॥६॥

तमो महीवचः श्रुत्वा धर्मश्रेष्ठो महायशाः। वाराहरूपी भगवान् प्रत्युवाच वसंधुराम्॥७॥

अध्याय-१४६

स्तुत स्वामितीर्थ का नामकरण और उसका माहात्म्य

सूतजी ने कहा कि इस तरह से गोनिष्क्रमण का उत्तम माहात्म्य सुनकर सभी प्रकार के रत्नों से सुशोभित धरणी को अत्यन्त ही कौतुहल उत्पन्न हुआ।।१।।

धरणी ने कहा कि हे जगन्नाथ महाप्रभो! गायों का और आपका यह कैसा माहात्म्य है, जिसको सुनने के बाद मुझे पूरी शान्ति अनुभव हो रही है।।२।।

हे प्रभु नारायण! इसी प्रकार के इस क्षेत्र से भी उत्तम और विशेष गुप्त स्थान यदि कोई हो, तो उसे भी आप बतलाने की कृपा करें।।३।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि मैं समस्त धर्मों का विशेष आश्रय स्वरूप नारायण हूँ। मुझ में मात्सर्य नहीं है। इसीलिए मैं परम प्रभु हूँ।।४।।

हे महाभागे! मैंने लीला करने के लक्ष्य से बस भगवद् भक्तों को प्रिय वराह स्वरूप धारण कर इस शास्त्र को बनाया है।।५।।

धरणी ने पूछा कि हे अप्रमेय देव श्रेष्ठ जनार्दन! आप पूर्व के कर्म परायणों के धर्मपूर्ण विशेष रूप से निश्चित और इस महावचन को जितना ही सुनाते जा रहे हैं, उतना ही यह मेरे हृदय को प्रिय लगता जाता है।।६।।

फिर धरणी की बात सुनकर महान् यशस्वी धर्मश्रेष्ठ वराहस्वरूप भगवान् हरि ने धरणी से कहा।।७।।

श्रीवराह उवाच

साधु भूमे महाभागे मम कर्मव्यवस्थिते। कथयिष्यामि ते ह्येवं गुह्यं लोकसुखावहम्॥८॥
स्तुतस्वामीति विख्यातं तत्र क्षेत्रं भविष्यति। द्वापरं युगमासाद्य तत्र स्थास्यामि सुन्दरि॥९॥
पुत्रोऽहं वसुदेवस्य देवक्या गर्भनिःसृतः। वासुदेव इति ख्यातः सर्वदानवसूदनः॥१०॥
पञ्च तस्य सुशिष्याश्च भविष्यन्ति विचक्षणाः। ऋषयो धर्मसंयुक्ता मत्प्रसादाद् बलाश्रिताः॥११॥
ते मां संस्थपयिष्यन्ति चतुर्मूर्त्तिं महीं गतम्। शाण्डिल्यो जाजलिश्चैव कपिलश्चोपशायकः।
भृगुश्चैव महाभागे मम मार्गानुसारिणः॥१२॥
ते प्रसन्नमना भूमे आत्मदृष्टान्तदर्शिनः। स्वयं ज्ञानप्रभावेन मां स्तुविष्यन्ति माधवि॥१३॥
बलदेवो अहं चैव प्रद्युम्नश्चानिरुद्धकः। गच्छता बहुकालेन मम कर्मपरायणाः॥१४॥
ततो दीर्घेण कालेन इज्यापूर्वस्थितेन च। वरं तेषां प्रदास्यामि यो यस्मिन् हृदि संस्थितः॥१५॥
ते प्रवक्ष्यन्ति मां देवि आत्मशास्त्रपथे स्थिताः। विष्णुशास्त्रं प्रतिष्ठेत यत्र धर्मः सुनिश्चतः॥१६॥
सर्वं भवति तत्सत्यं न तु मिथ्या कदाचन। तव देव प्रसादेन इह लोके प्रवर्त्तताम्॥१७॥

श्री भगवान् वराह ने कहा कि हे महाभागे भूमे! तुम धन्य हो और मेरे कर्म में ही व्यवस्थित रहने वाली हो। तुमको लोक को सुख प्रदान करने वाला यह गुप्त तत्त्व बतला रहा हूँ।।८।।

स्तुतस्वामी नाम का एक क्षेत्र है। हे सुन्दरि! द्वापर युग आ जाने पर मैं उस क्षेत्र में स्थित होकर रहा करूँगा।।९।।

फिर देवकी के गर्भ से अवतरित होकर मम वसुदेव का पुत्र 'वासुदेव' होऊँगा। सम्पूर्ण दानवों का नाश करने वाला मम वसुदेव के नाम से सुख्यात हो सकूँगा।।१०।।

मेरी कृपा से पाँच बुद्धिमान्, धर्मयुक्त और बलवान् ऋषि उस स्तुतस्वामी के सुन्दर शिष्य हो सकेंगे।।११।।

हे महाभागे! मेरे मार्ग का अनुसरण करने वाले शांडिल्य, जाजलि, कपिल,, उपशाक, भृगु आदि पाँच शिष्य पृथ्वि पर मेरी ही चतुर्भुज मूर्त्ति की स्थापना कर सकेंगे।।१२।।

हे माधवि! हे भूमे!! वे सब प्रसन्नचित्त, आत्मदर्शी ऋषि जन स्वयं अपने ज्ञान के प्रभाव से मेरी स्तुति करेंगे।।१३।।

बहुत काल तक मेरे साथ बलदेव, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध आदि का मेरे कर्म परायण जन स्तुति किया करेंगे।।१४।।

फिर दीर्घकाल तक आराधना करते रहने पर मैं उन सबको जिसकी जैसी हार्दिक कामना होगी, उसको वैसे ही वरदान दे सकूँगा।।१५।।

हे देवि! आत्मशास्त्र के मार्ग में विद्यमान रहेन वाले वे जन मुझसे यह कह सकेंगे कि इस संसार में यह विष्णुशास्त्र सुप्रतिष्ठित हों, जिसमें धर्म सविधि सुनिश्चित किया हुआ है।।१६।।

हे देव! आपकी कृपा प्रसाद से यह सम्पूर्ण शास्त्र सत्य ही हो। यह कभी भी मिथ्या सिद्ध नहीं हों। अतः आप इसे इस संसार में प्रवर्तित करें।।१७।।

तेषां संभावयिष्यामि सर्वकर्मसुनिष्ठितान्। सुशिष्या बाढमित्येवं भविष्यति न संशयः॥१८॥
तदेते प्रवदिष्यन्ति सर्वभागवतप्रियम्। यथा च मध्यमानाद् वै दध्नश्चोद्धियते घृतम्।
एवं सर्वेषु शास्त्रेषु वाराहं घृतसंमितम्॥१९॥
वाराहं ज्ञानमुत्सृज्य महाभागं महौजसम्। एवं समं मया चैव आत्मानं परिभाषितम्।
ते प्रमाणं करिष्यन्ति यान्ति सिद्धिं परां विभो॥२०॥
महाज्ञानमिदं सूक्ष्मं भूमे भक्तेषु वत्स्यते। शास्त्राणां परमं शास्त्रं सर्वसंसारमोक्षणम्॥२१॥
किञ्चिदन्यत् प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व वसुंधरे। शास्त्रमेतन्महाभागे स्थूलं कर्म महौजसम्॥२२॥
केचित् तरन्ति ज्ञानेन केचित् कर्माणि निष्ठिताः। केचिज्जाप्येन सुश्रोणि केचिदोंकारकर्मणा॥२३॥
केचिद्योगबलं भुक्त्वा पश्यन्ति मम संस्थितम्। विधिपूर्वेण मे केचिन्नराः पश्यन्ति निष्ठिताः॥२४॥
सर्वकर्मराः केचित् सर्वाशी सर्वविक्रयी। ते मां पश्यन्ति वै भूमे एकचित्तव्यवस्थिताः॥२५॥
एवमेतन्महाशास्त्रं देवि संसारतो महत्। मम भक्त्या व्यवस्थित्य घोरसंसारमोक्षणम्।
प्रागुक्तं मम शिष्येषु दृष्ट्वा तं चात्मनात्मनि॥२६॥

फिर मैं सभी कर्मों में पूर्ण निष्ठा वाले उन सभी के वचनों का आहार कर सकूँगा। और कह सकूँगा कि हे सुन्दर सुशिष्यों! ठीक है, निःसंशय, इसी प्रकार हो सकेगा।।१८।।

फिर वे सभी भगवद् भक्तों को प्रिय लगने वाला यह वचन कह सकेंगे कि जिस प्रकार मथे जाने पर दही से घृत निकल जाता है, उसी प्रकार सभी शास्त्रों में वराहपुरण घृत तुल्य ही सिद्ध हो।।१९।।

फिर वे अन्य प्रकार के ज्ञान की उपेक्षा कर इस प्रकार के महाभाग्य कारक और परम ओजस्वी तथा मेरे ही समान परिभाषित आत्मा को प्रमाण स्वरूप माना करेंगे। फिर वे इस प्रकार श्रेष्ठ ईश्वरीय सिद्धि अधिगत करेंगे।।२०।।

हे भूमे! यह सूक्ष्म महाज्ञान भक्तों में स्थित होगा। यह शास्त्र सम्पूर्ण शास्त्रों में श्रेष्ठ और समस्त संसार से मुक्ति प्रदान करने वाला है।।२१।।

हे वसुन्धरे! कुछ अन्य रहस्य की बातें भी बतला रहा हूँ, उसे सुनो। हे महाभागे! यह शास्त्र महान् ओजस्वी कर्मस्वरूप और स्थूल हैं।।२२।।

हे सुश्रोणि! कुछ जन ज्ञान के बल से संसार से मुक्ति पा जाया करते हैं। तो कुछ जन निष्ठ के साथ कर्म करने में विश्वास करते हैं। कुछ जन जप किया करते हैं और कुछ जन ओंकार का ध्यान स्वरूप कर्म को महत्त्व देते हैं।।२३।।

कुछ जन योग का बल प्राप्त कर मेरे स्थान को देखा करते हैं। कुछ जन सविधि भक्ति में अपने को निष्ठित कर मेरे स्थान को देखा करते हैं।।२४।।

हे भूमे! कुछ अनन्य चित्त मनुष्य सब प्रकार के कर्मों को सम्पन्न करते हुए सब कुछ भक्षण करते हुए और सब कुछ विक्रय करते हुए भी मेरा साक्षात्कार कर लिया करते हैं।।२५।।

हे देवि! इस तरह आत्मा से आत्मा में उस विशिष्ठ आत्मा का साक्षात्कार करने के बाद मेरे शिष्यों को पूर्व में ही कहा गया संसार में मेरी भक्ति से सम्पन्न घोर संसार से मुक्ति प्रदान करने वाला यह महान् शास्त्र है।।२६।

ते तथा च प्रवक्ष्यन्ते यस्य यत्राभिरोचते। अन्यथान्यस्य दृष्टानामृषिभिर्यत् प्रयोजितम्॥२७॥
तद्युगस्य प्रभावेन भूमे कुर्वन्ति मानवाः। तेषु गिष्यैः समं देवि ये शास्त्रविनियोजिताः॥२८॥
मत्प्रसादेन ते सर्वे सिद्धिं यान्ति परां प्रिये। तेषां दोषेण वक्ष्यामि मम शिष्येभ्यः सुन्दरि॥२९॥
मात्सर्यं च भविष्यन्ति तेषु शास्त्रेशु निष्ठिताः। मात्सर्यं येन कुर्वन्ति मम मार्गानुसारिणः।
मात्सर्यस्य प्रभावेन न ते यान्ति परां गतिम्॥३०॥
अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व वसुंधरे। मम मार्गानुसारेण परं गुह्यं मम प्रिये॥३१॥
शास्त्रवन्तो विनीताश्च बहुदोषविवर्जिताः। ते तु मात्सर्यदोषेण नष्टाचाराः पतन्त्यधः॥३२॥
मात्सर्यं सर्वनाशाय मात्सर्यं धर्मनाशकम्।
यस्तु मात्सर्यसंयुक्तो न स पश्यति मां क्वचित्॥३३॥
बहुकर्मसमायुक्ता दानाध्ययननिष्ठिताः। तपसा ज्ञानयुक्ता वा नित्यकर्मसु चोद्यताः॥३४॥
एवं तु पुष्कलं भूमि मात्सर्यं यस्तु कुर्वति। न ते पश्यन्ति मां भूमे मात्सर्यपरिदूषिताः॥३५॥
सर्वथा देवि कर्त्तव्यं मात्सर्यं न सदा बुधैः। मम शास्त्रपरेणेह यदीच्छेत् परमां गतिम्॥३६॥

अन्यान्य शास्त्र को पृथक् दृष्टि से देखने वाले ऋषिजनों द्वारा जिसका प्रयोग किया गया है, उसे वे जन जिसे जहाँ जो अच्छा लगता है, उसे वहाँ उसी प्रकार उपदेशित किया करते हैं।।२७।।

हे देवि! उस दस युग के प्रभाव से उपलब्ध शास्त्र से नियन्त्रित शिष्य के समान वे जन उन्हीं उपदेश के अनुरूप कार्य किया करते हैं।।२८।।

हे प्रिये! वे सबके सब भी मेरी कृपा से ही परमसिद्धि भी पाया करते हैं। हे सुन्दरि! अपने शिष्यों के लिए उनका दोष अवश्य बतला सकूँगा।।२९।।

उन विविध रूप के शास्त्रों में निष्ठित जनों में मात्यर्य उत्पन्न हो सकेंगे। मेरे मार्ग के अनुयायी जन भी चूँकि मात्सर्य करने लग जाएंगे तो इसीलिए उस मात्सर्य प्रभाव से उन्हें भी परमगति नहीं मिल सकेगी।।३०।।

हे वसुन्धरे! तुमको मैं अन्य भी प्रकार के रहस्य की बात बतला रहा हूँ, उसे सुनो। हे प्रिये! मेरे मार्ग का अनुगमन करने हेतु यह परम गुह्य रहस्य है।।३१।।

जो जन शास्त्रयुक्त, विनीत और अनेक दोषों से रहित होकर भी मात्सर्य दोष से आचार भ्रष्ट होकर अधः पतित हो जाते हैं।।३२।।

वह मात्सर्य निश्चय ही सर्वनाश कराने वाला होता है। मात्सर्य ही धर्म का नाश कराने वाला है। जो जन मात्सर्य सम्पन्न होते हैं, वे जन कभी भी मेरा साक्षात्कार नहीं कर पाते हैं।।३३।।

अतः विविध प्रकार के कर्मों को सम्पन्न करने वाले, दान, और अध्ययन में निष्ठा रखने वाले, तप तथा ज्ञान से सम्पन्न तथा नित्य कर्मों के साधन में सदा समुद्यत आदि-आदि अतिशय सात्त्विक कार्यों का साधन कर लेने पर भी हे भूमि! जो जन मात्सर्य किया करते हैं, वे जन मात्सर्य से अत्यन्त दूषित होकर मेरे साक्षात्कार करने से वंचित रह जाते हैं।।३४-३५।।

इसीलिए हे देवि! अपनी परम गति की कामना करने वाले मेरे कर्म या शास्त्र परायण बुद्धिमान् जनों को कभी भी किसी तरह मात्सर्य करने से बचना चाहिए।।३६।।

एतद् गुह्यं महाभागे अमात्सर्यस्य लक्षणम्। सर्वथा देवि भवतु अमात्सर्यपथे स्थितः॥३७॥
एतद् गुह्यं महाभागे न जानन्ति मनीषिणः। मात्सर्यस्तु तु दोषेण बहवो निधनं गताः॥३८॥
एतच्छास्त्रं महाभागे प्रयुक्तं विधया मया। वराहरूपमादाय सर्वभागवतप्रियम्॥३९॥
तत्राश्चर्यं महाभागे तस्मिन् भूतगिरौ मम। आयसी प्रतिमा तत्र अभेद्या नात्र संशयः॥४०॥
ब्रुवन्ति केचित् कांस्येति आयसीत्यपरेऽब्रुवन्। पाषाणीत्यपरे केचिदन्ये वज्रमयीति च॥४१॥
ऊर्द्धां वा यदि वाऽधो वा ये कुर्वन्ति ममार्चनम्।
ते तथापि स्पृशन्ते मां शिरो मध्ये तु सुन्दरि॥४२॥
ये तु पश्यन्ति मां भूमे मणिपूरगिरौ स्थितम्। स्तुवन्त्याचार्यवन्तश्च मत्प्रसादात्सुसंयताः॥४३॥
आचार्याणां गुणं भुक्त्वा मम कर्मपथे स्थिताः। सर्वकिल्बिषमुक्ताश्च यान्ति ते परमां गतिम्॥४४॥
तस्मिन् क्षेत्रे महाभागे अस्ति गुह्यं परं मम। पञ्चारुणेति विख्यातमुत्तरां दिशमाश्रितम्॥४५॥
तत्र स्नानं प्रकुर्वीत पञ्चकालोषितो नरः। मोदते नन्दने दिव्ये अप्सरोभिः समाकुले॥४६॥
अथात्र मुञ्चते प्राणान् कृतकृत्यो भवेन्नरः। नन्दनं वनमुत्सृज्य मम लोकं च गच्छति॥४७॥

हे महाभागे! यह मात्सर्य रहित होने का गुह्यतर लक्षण है। हे देवि! ये भक्त जनों को सदा मात्सर्य रहित मार्ग पर स्थित होना ही श्रेष्ठ है।।३७।।

हे महाभागे! बुद्धिमान जन भी इस गुह्य रहस्य की बात नहीं जाना करते हैं। चूँकि इस मात्सर्य दोष के कारण बहुत-सारे बुद्धिमान् जन भी विनष्ट से हो गये हैं।।३८।।

हे महाभागे! इस प्रकार मेरे द्वारा वराहस्वरूप धारण कर सविधि समस्त भगवद् भक्तजनों के प्रिय इस शास्त्र को बतलाया गया है।।३९।।

हे महाभागे! वहाँ एक आश्चर्यकारी बात है। उस भूतगिरि नाम के पर्वत पर मेरी लोहे की अभेद्य प्रतिमा है। इसमें संशय नहीं करना चाहिए।।४०।।

जिसे कुछ जन कांसे, कुछ जन लोहे से, अन्य कुछ जन पत्थर से और अन्य कुछ जन हीरे से निर्मित माना करते हैं।।४१।।

हे सुन्दरि! जो कोई भी जन उस मूर्त्ति के ऊपरी या नीचे के भाग में पूजा आदि करते हैं, तो वे सब जन इस प्रकार करने पर भी मेरे शिर मध्य में ही स्पर्श करते हैं, ऐसा मानना चाहिए।।४२।।

हे भूमे! अपने आचार्य द्वारा दीक्षित और मेरी कृपाप्रसाद से सम्पन्न होकर जो जन मणिपुर पर्वत पर स्थित मेरी मूर्त्ति का दर्शन किया करते हैं, वे आचार्य के गुणों का भोग करते हुए मेरे कर्म मार्ग में लगे रहकर सभी अपने पापों से रहित होकर परम गति प्राप्त करते हैं।।४३-४४।।

हे महाभागे! उस क्षेत्र में उत्तर की दिशा की ओर पञ्चारूण नाम से प्रसिद्ध मेरा परम गुह्य स्थान है।।४५।।

पाँच भोजन कालों तक उपवास पूर्वक वहाँ स्नान करने से मानव अप्सराओं से सम्पन्न दिव्य नन्दन वन में रमण किया करते हैं।।४६।।

जो जान वहाँ अपने प्राणों का त्याग करते हैं, तो वे जन कृतकृत्य हो जाया करते हैं। फिर वे नन्दन वन को छोड़कर मेरे लोक में निवास करते हैं।।४७।।

भृगुकुण्डेति विख्यातं तत्र गुह्यं परं मम। मम दक्षिणपार्श्वे तु अदूरादर्धयोजनम्॥४८॥
तत्र स्नानं तु कुर्वीत मम मार्गानुसारिणः। भूपृष्ठे न तु जायेत कालेन विजितेन्द्रियः॥४९॥
ध्रुवो यत्र तु तिष्ठेत मेरुशृङ्गे शिलोच्चये। तत्र मोदति सुश्रोणि अप्सरोभिर्यथासुखम्॥५०॥
अथात्र मुञ्चते प्राणान् मम कर्मपथे स्थितः। ध्रुवलोकं परित्यज्य मम लोकं प्रपद्यते॥५१॥
मणिकुण्डेति विख्यातं तत्र गुह्यं परं मम। मणयो यत्र दृश्यन्ते अनेकालयसंस्थिताः॥५२॥
अगाधं तं ह्रदं भद्रे देवानामपि दुर्लभम्। विस्मयं किं पुनस्तत्र मणयश्च चलाचलाः॥५३॥
तत्र स्नानं प्रकुर्वीत पञ्चकालोषितो नरः। रत्नभागी भवेद् वीरो राजलक्षणसंयुतः॥५४॥
अथात्र मुञ्चते प्राणान् मम कर्मपथे स्थितः। छित्त्वा वै सर्वसंसारं मम लोकं प्रपद्यते॥५५॥
सुगुह्यं पूर्वपार्श्वेन मम क्षेत्रस्य सुन्दरि। अदूरात् त्रीणि क्रोशाणि परिमाणं विधीयते।
तत्र स्नानं तु कुर्वीत मम लोकाय गच्छति॥५६॥
धूतपापेति विख्यातं तत्र गुह्यं परं मम। अदूरात् पञ्चक्रोशानि मम क्षेत्रस्य पश्चिमे॥५७॥
तत्र कुण्डं महाभागे मम यद् रोचते जलम्। मरकमसुवर्णाभमगाधं निर्मितं मया॥५८॥

वहाँ पर मेरे दक्षिण पार्श्व में आधे योजन की अल्प दूरी पर 'भृगुकुण्ड' नामक प्रसिद्ध मेरा एक परम गुह्य स्थान है। मेरे मार्ग का अनुसरण करने वाले जो जन जितेन्द्रिय होकर वहाँ पर स्नान करते हैं, उसे काल प्रभाव से पृथ्वी तल पर जन्म नहीं लेना पड़ता है।।४८-४९।।

हे सुश्रोणि! वे जन सुखपूर्वक अप्सराओं के साथ सुमेरु पर्वत की उस ऊँची शिला पर रमण किया करते हैं, जहाँ पर ध्रुव नक्षत्र अवस्थित हैं।।५०।।

इस प्रकार मेरे कर्म मार्ग में संलग्न रहते हुए वहाँ प्राण त्याग कर मनुष्य ध्रुव लोक का त्याग कर मेरे लोक में सीधे पहुँच जाता है।।५१।।

वहाँ पर मणिकुण्ड नाम का मेरा परम गुह्य स्थान है, जहाँ पर अनेक आगारों में स्थित मणियाँ दिश जाया करती हैं।।५२।।

हे भद्रे! वह ह्रद अगाध तथा देवों को भी दुर्लभ होने से अधिक आश्चर्य और क्या हो सकता है कि वहाँ की मणियाँ चल और अचल दोनों प्रकार की हैं।।५३।।

इस प्रकार पाँच भोजन कालों तक उपवासपूर्वक वहाँ पर स्नान करने वाले जन समस्त राजलक्षणों से सम्पन्न, रत्नों का अधिकारी और वीर पुरुष हुआ करते हैं।।५४।।

फिर मेरे कर्म मार्ग में रहते हुए वहाँ मरने वाले जन समस्त संसार से रहित होकर मेरे लोक में जाया करते हैं।।५५।।

हे सुन्दरि! मेरे क्षेत्र के पूर्व की ओर एक अत्यन्त गुह्य स्थान है। मेरे क्षेत्र के पास में ही स्थित दस गुह्य स्थान का प्रमाण तीन कोस है। यहाँ स्नान करने वाले जन निश्चय ही मेरे लोक में जाया करते हैं।।५६।।

वहाँ पर 'धूतपाप' जैसे नाम का एक प्रसिद्ध मेरा श्रेष्ठ गुह्य स्थान है। मेरे क्षेत्र के पश्चिम दिशा की ओर पास में ही स्थित उस स्थान का प्रमाण पांच कोस मात्र है।।५७।।

हे महाभागे! वहीं पर एक कुण्ड भी स्थित है, जिसका जल मुझे अत्यन्त प्रिय है। मेरे द्वारा मरकतमणि और स्वर्ण और स्वर्ण वर्ण जैसे उस अगध कुण्ड का निर्माण किया गया है।।५८।।

तत्र स्नानं प्रकुर्वीत पञ्चभक्तोषितो नरः। धुन्वानो दुष्करं कर्म पञ्चभूतात्मनिष्ठितम्।।५९।।
तत्र कृतोदको भद्रे धूतपापे यशस्विनि। गत्वेन्द्रलोकं सुश्रोणि देवैः सहस मोदते।।६०।।
अथात्र मुञ्चते प्राणान् मम कर्मपरायणः। इन्द्रलोकं परित्यज्य मम लोकं च गच्छति।।६१।।
तत्राश्चर्यं महाभागे धूतपापे शृणोहि मे। वर्त्तते च विशालाक्षि मणिपूरे गिरौ मम।।६२।।
तावन्न पतते धारा यावत्पापं न धूयते। धूते पापे च सुश्रोणि धारा च पतते महीम्।।६३।।
एवं तत्र विशालाक्षि वृक्षमाम्रस्य संस्थितम्। धूतपापः प्रविश्येत यदीच्छेत् सिद्धिमुत्तमाम्।।६४।।
तत्र क्षेत्रे वरारोहे समन्तात् पञ्चयोजनम्। यत्र तिष्ठाम्यहं देवि पश्चिमां दिशिमाश्रितः।।६५।।
तत्र चामलकं भद्रे अदूरादर्द्धयोजनात्। मम चैव प्रसादेन सर्वकालफलोदयम्।।६६।।

तत्र कश्चिद् विजानाति पापकर्मा नराधमः।
मुच्य भागवतान् शुद्धान् मम कर्मव्यवस्थितान्।।६७।।

उपोष्य च त्रिरात्राणि श्रद्दधानो जितेन्द्रियः। तत्र गत्वा वरारोहे उदिते तु दिवाकरे।।६८।।

वहाँ पाँच भोजन कालों तक रहते हुए स्नान करने वाले जन पञ्चभूत और आत्मा में स्थित भोगकारक अदृष्ट का अन्त कर लेता है।।५९।।

हे सुश्रोणि यशस्विनि! उस धूतपाप नामक तीर्थ में स्नान, तर्पण आदि जलक्रिया करने वाले जन इन्द्रलोक में जाकर देवताओं के साथ आनन्द करता है।।६०।।

इस प्रकार जो जन मेरे कर्म में संलग्न रहते हुए वहाँ अपना प्राण का विसर्जन करते हैं, तो वे इन्द्रलोक में जाकर देवताओं के साथ आनन्द करता है।।६०।।

इस प्रकार जो जन मेरे कर्म में संलग्न रहते हुए वहाँ अपना प्राण का विसर्जन करते हैं, तो वे इन्द्रलोक को छोड़कर मेरे लोक में जाते हैं।।६१।।

हे विशालाक्षि! हे महाभागे!! मेरे उस मणिपूरगिरि पर स्थित उस धूतपाप तीर्थ में जो कुछ आश्चर्य घटित होता है, उसे तुम सुनो।।६२।।

वहाँ पर जिस काल तक पाप विनष्ट नहीं हो जाता है, उस काल तक जल की धारा नहीं गिरा करती है। हे सुश्रोणि! पाप के अन्त होने पर जल की धारा पृथ्वी पर गिरा करती है।।६३।।

हे विशालाक्षि! उस स्थल पर एक आम का वृक्ष स्थित है। जो जन श्रेष्ठ सिद्धि की कामना किया हो, तो उसे धूतपाप तीर्थ में प्रवेश करना श्रेष्ठ है।।६४।।

हे सुन्दरि! हे देवि!! उस क्षेत्र के चारों ओर पाँच योजन में मेरा निवास स्थान है। वहाँ मैं पश्चिम दिशा में विद्यमान हूँ।।६५।।

हे भद्रे! वहाँ निकट ही आधे योजन पर आँवले का वृक्ष भी है, जो मेरी कृपा से सब समय फल से भरा रहा करता है।।६६।।

इस प्रकार मेरे कर्म में संलग्न शुद्ध भगवद् भक्तों के अतिरिक्त अन्य कोई पापी अधम जन उसे नहीं जानता।।६७।।

फिर तीन रातों तक उपवास कर श्रद्धास्पत्र जितेन्द्रिय जन को सूयादय के समय वहाँ पर अवश्य जाना चाहिए।।६८।।

अथ मध्याह्नवेलायां यदि वास्तंगतेऽपि वा।
एकचित्तेन गन्तव्यं धृतिं कृत्वा सुपुष्कलाम्॥६९॥

यत्तत्र लभे भद्रे फलमामलके शुभे। पञ्चरात्रेण लभते तस्मिन् भूतगिरौ मम॥७०॥
ततो हरिवचः श्रुत्वा सा मही संशिव्रता। पुर्नारायणं तत्र वाक्येन परिचोदयत्॥७१॥
स्तुतस्वामी श्रुतोऽसि त्वं तत्र स्थानानि यानि च। एवं मे कारणं विष्णो निरुक्तं वक्तुमर्हसि॥७२॥

श्रीवराह उवाच

हत्वा कंसादयो भूमि ये चान्ये देवकण्टकाः। द्वापरं युगमासाद्य यत्र स्थास्यामि सुन्दरि॥७३॥
ततो मे सर्वदेवेभिर्बहुभिमन्त्रवादिभिः। स्तुवन्ति मम सुश्रोणि मणिपूरगिरिश्रितम्॥७४॥
ततो मां नारदो देवि असितो देवलस्तथा। पर्वतश्च महाभागे मम भक्त्या व्यवस्थिताः॥७५॥
नाम कुर्वन्ति मे तत्र मणिपूरगिरौ स्थितम्। स्तुतस्वामीति विख्यातं मम कर्ममुपाश्रयम्॥७६॥
एतत् ते कथितं भद्रे निरुक्तं कारणं विभो। यत्त्वया पृच्छितं ह्येतत् सर्वभागवतप्रियम्॥७७॥
एतत् ते देवि माहात्म्यं तत्र स्तुतिगिरौ मम। द्वापरं युगमासाद्य तत्र स्थास्यामि सुन्दरि॥७८॥

या मध्याह्न अथवा सूर्यास्त काल में भी एकाग्रमन से अति धैर्य धारण करते हुए अवश्य वहाँ जाना चाहिए।।६९।।

हे भद्रे! मेरे उस भूतगिरि पर पाँच रातों में जिस प्रकार का फल होता है, वे फल आमलक में जाकर अधिगत हुआ करते हैं।।७०।।

इस प्रकार श्री हरि की बात सुनकर तीव्र व्रतधरी उस धरणी ने पुनः ही उन नारायण को अपनी वाणी से सद्प्रेरित किया।।७१।।

इस प्रकार वहाँ पर जो स्थान हैं, उन स्थानों में आप स्तुतस्वामी के नाम से सुख्यात हैं। हे विष्णु! इसका कारण और इस नाम की व्युत्पत्ति मुझे बतलायें।।७२।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि हे सुन्दरि! भूमे!! द्वापर युग के आ जाने पर कंस आदि और अन्य देवद्रोही जनों को मारकर मैं वहाँ स्थित हो सकूँगा।।७३।।

हे सुश्रोणि! फिर अनेक प्रकार का मन्त्रोच्चारण करने वाले सभी देवता मणिपूर गिरि पर स्थित होकर स्तुति करेंगे।।७४।।

हे महाभागे! हे देवि!! फिर मेरी भक्ति से सम्पन्न नारद, असित, देवल और पर्वत ऋषि मेरा नामकरण कर सकेंगे।।७५।।

वे सब ऋषिजन उस मणिपूर पर्वत पर विद्यमान मुझे मेरे कर्म के अनुरूप स्तुतस्वामी के नाम से ख्याति प्रदान करेंगे।।७६।।

हे भद्रे! हे विभो!! इस प्रकार तुमने जो कुछ पूछा था। उन सभी भगवद् भक्तों के प्रिय निरुक्त और नाम का कारण तुमाके बतला दिया है।।७७।।

हे देवि! मैंने अपने उस स्तुत गिरि का माहात्म्य तुमको बतलाया है। हे सुन्दरि! द्वापर युग के आ जाने पर मैं वहाँ स्थित होऊँगा।।७८।।

एतानि भूमि गुह्यानि तत्र भूतगिरौ मम। श्रद्दधानेन मर्त्त्येन श्रोतव्यं नात्र संशयः॥७९॥
एतत् ते कथितं भद्रे सर्वधर्मव्यपाश्रयम्। स्तुतस्वामिनि माहात्म्यं किमन्यत् परिपृच्छसि॥८०॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥
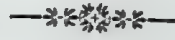
सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

अथ साम्ब-दुर्वासोपाख्यानम्

सूत उवाच

स्तुतस्वामिनि माहात्म्यं श्रुत्वा धर्मपरायणा। हृष्टतुष्टमना देवी वाक्यमेतदुवाच ह॥१॥

धरण्युवाच

अहो तद्गुणमाहात्म्यं देवदेववर प्रभो। एवं श्रुत्वा महाभाग परां शान्तिमुपागता॥२॥
सुररिपुवरवधकारी धरणीधरः शङ्खचक्रगदाब्जपाणिः।
नाराचवारणासिधारी स्वयमिह शास्त्रमुदावहत् प्रधानम्॥३॥

हे भूमे! इस प्रकार मेरे उस भूतगिरि के ये गुह्य स्थान हैं। श्रद्धालु जनों को इसका श्रवण करना चाहिए। इसमें सन्देह नहीं है।।७९।।

हे भद्रे! इस प्रकार स्तुत स्वामी का सभी धर्मों से सम्पन्न यह माहात्म्य मैं तुमको बतला दिया है। तुम और क्या जानना चाहती रही हो?।।८०।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में स्तुति स्वामितीर्थ का नामकरण और उसका माहात्म्य नामक एक सौ छियालिसवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१४६॥

अध्याय-१४७

साम्ब को दुर्वासा का श्राप, यदुकुल विनाश, द्वारका तीर्थों का माहात्म्य

इस प्रकार प्रसन्न और सन्तुष्ट चित्त वाली धर्म परायण धरणी ने स्तुतस्वामी का माहात्म्य सुनकर यह कहा—।।१।।

धरणी ने कहा कि हे देव श्रेष्ठ प्रभो! हे नारायण देव!! अहो! उसका गुण और माहात्म्य तो निश्चय ही अद्भुत है। हे महाभाग! उसको सुनने के बाद मुझे अत्यन्त शांति की अनुभूति हो रही है।।२।।

इस प्रकार नाराच याने बाणों को रखने वाला उपकरण, कवच, खड्ग आदि को धारण करने वाले, देव द्रोहियों का संहार करने वाले, धरणी को धारण करने वाले और शंख, चक्र, गदा, कमल आदि को अपने हाथों में रखने वाले श्री भगवान् वराह स्वयं ही इस प्रधान शास्त्र को प्रकट किया है।।३।।

एवं हि गुणमाहात्म्यं स्तुतस्वामिनि तच्छ्रुतम्। स्तुतस्वम्यात् परं क्षेत्रमस्ति श्रेष्ठतरं क्वचित्॥४॥

श्रीवराह उवाच

एवं भूमि वरं श्रेष्ठे फुल्लपङ्कजमालिनि। कथयिष्यामि ते हृद्यं गुह्यं भागवतप्रियम्॥५॥
द्वापरं युगमासाद्य यादवानां कुलोद्वः। सौरीति तत्र विख्यातो भविष्यति पिता मम॥६॥
शृणु तत्त्वेन मे भूमि यन्मां त्वं परिपृच्छसि। अस्ति द्वारवती नाम पुरी शक्रपुरी यथा।
मत्प्रभावानुरूपा च निर्मिता विश्वकर्मणा॥७॥
पञ्चयोजनविस्तारा दशयोजनमायता। वसाम्यत्र वरारोहे शतपञ्चसमास्तथा॥८॥
भारावतरणं कृत्वा देवतानां महत्प्रियम्। पुनरेष्यामि सुश्रोणि मूर्त्तिमात्मनि संश्रिताम्॥९॥
भविष्यति वरारोहे ईश्वरः सदृशो मम। दुर्वासा इति विख्यातो मामसौ वै शपिष्यति॥१०॥
तस्य शापाभिसंतापात् सर्वे द्वादरकवासिनः।
वृष्ण्यन्धकाश्च भोजाश्च गमिष्यन्ति यमक्षयम्॥११॥
चन्द्रपाण्डुरसंकाशो वनमाली हलायुधः। स तं हलेन संकृष्य प्रविष्य वरुणालयम्॥१२॥
ततो नारायणाच्छ्रुत्वा धर्मकामा वसुंधरा। उभौ तौ चरणौ गृह्य पुनः पप्रच्छ माधवी॥१३॥

इस प्रकार मैंने स्तुतस्वामी के उस गुण और माहात्म्य को सुन लिया है। क्या कहीं स्तुतस्वामी से अधिक श्रेष्ठ अन्य कोई और क्षेत्र है?।।४।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि प्रफुल्लित कमल माला धारण करने वाली हे श्रेष्ठ भूमे! अब मैं तुमको भगवद् भक्तों के प्रिय सुन्दर गुह्य क्षेत्र को बतला रहा हूँ।।५।।

द्वापर युग आ जाने पर यदुवंशियों के कुल में श्रेष्ठ सौरि नाम का मेरे प्रसिद्ध पिता उत्पन्न हो सकेंगे। हे भूमि! अतः तुम मुझसे जो कुछ पूछ रही हो, उसे यथार्थतः मुझसे सुनो। इन्द्रपुरी की तरह द्वारवती नाम की एक पुरी है। विश्वकर्मा ने मेरे ही प्रभाव से मेरे अनुरूप इस पुरी को निर्मित किया है।।६-७।।

इस पुरी का विस्तार प्रमाण पाँच योजन चौड़ी और दस योजन लम्बी है। हे सुन्दरि! मैं यहाँ पर पाँच सौ वर्षों तक मात्र रहा करता हूँ।।८।।

हे सुश्रोणि! देवताओं के लिए अत्यन्त प्रिय भूमि का भार उतार कर मैं पुनः अपने स्वरूपाधारित मूर्त्ति में सन्निहित हो जाता हूँ।।९।।

हे सुन्दरि! मेरे सदृश समर्थ प्रसिद्ध दुर्वासा नाम के ऋषि होंगे। वे कुझे शाप दे देंगे। उस शाप के प्रभाव से वृष्णियों, अन्धकों और भोजों के कुल में उत्पन्न सब के सब द्वारका पुरी के निवासी यमालय में जा सकेंगे।।१०-११।।

फिर चन्द्र के समान गौर, वनमाला धारी, हलायुध बलराम उसे हल से विदीर्ण कर वरुण लोक को जा सकेंगे।।१२।।

फिर नारायण से इस प्रकार सुनने के पश्चात् धर्माभिकांक्षिणी धरणी ने उनके दोनों पैरों को पकड़ कर फिर से पूछा।।१३।।

धरण्युवाच

लोकनाथोऽसि सर्वेषां देव मायाकरण्डक। कथं शपति दुर्वासा असावार्हं दिवौकसाम्॥१४॥

श्रीवराह उवाच

एवमेतद् वरारोहे यन्मां त्वं परिपृच्छसि। यथा शपति दुर्वासाः कारणं तच्छृणुष्व मे॥१५॥
तत्र जाम्बवती नाम मम नारी भविष्यति। रूपयौवनसंपन्ना कामभोगसमन्विता॥१६॥
तस्याः पुत्रो महाभागे रूपयौवनदर्पितः। साम्ब इत्यभिविख्यातो ममैव सततं प्रियः॥१७॥
तेन वै क्रीडमानेन कृत्वा गर्भमतथ्यतः। स पृष्टः परमश्रेष्ठे ऋषिः किं चात्र जायते॥१८॥
तेन साम्बमदं ज्ञात्वा स मुनिः क्रोधमूर्च्छितः। शृणु साम्ब महामूढ यन्मां त्वं परिपृच्छसि॥१९॥
जायते तव गर्भात् तु दुरात्मा कुलिशं स्थितः। येन वृष्ण्यन्धकाः सर्वे गमिष्यन्ति यमक्षयम्॥२०॥
श्रुत्वा दुर्वाससः शापं ते च सर्वे कुमारकाः। शापभाराभिसंतप्ता ममैव शरणं गताः॥२१॥
ततोऽहं ते च संपश्य कुमाराः समुपागताः। किमागमनं मे वत्साः सर्वे चैव समुत्सुकाः॥२२॥
ततो मां भाषते साम्बो दीनः संतप्तमानसः। दुर्वाससा वै शप्तास्तु वयं त्वां शरणं गताः॥२३॥

धरणी ने कहा कि हे देवमायाधिपते! आप तो सब लोकों के नाथ हैं। वे दुर्वासा ऐसे देवों के स्वामी को कैसे शाप दे देते हैं?।।१४।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि हे सुन्दरि! तुम मुझसे जो कुछ पूछ रही हो, वे सब वैसे ही है। दुर्वासा जैसे शाप दिया करते हैं, वे सब मुझसे सुनो।।१५।।

वहाँ पर जाम्बवती नाम की मेरी रूप और यौवन से युक्ता और काम और भोग करने वाली पत्नी होगी।।१६।।

हे महाभागे! उस मेरी पत्नी को स्वरूप और यौवन के गर्व के अनुरूप मुझे सदा प्रिय साम्ब नाम वाला प्रसिद्ध पुत्र हो सकेगा।।१७।।

हे परमश्रेष्ठा धरणि! कृत्रिमता पूर्वक गर्भ धारण करने के खेल करते हुए उसने उन परमश्रेष्ठ ऋषि से पूछ दिया कि इससे क्या उत्पन्न होगा?।।१८।।

इस प्रकार से साम्ब के गर्व को जानकर क्रोधाभिभूत होकर उन ऋषि ने कहा कि हे महामूढ़! तुम्हारे द्वारा मुझसे जो कुछ पूछा गया है, उसे सुनो।।१९।।

तुम्हारे गर्भ से अपने कुल का इस प्रकार का दुरात्मा वज्र उत्पन्न होगा, जिसके द्वारा समस्त वृष्णि और अन्धक कुल के जन यमालय जा सकेंगे।।२०।।

इस प्रकार दुर्वासा ऋषि के शाप को सुनकर वे सब कुमार शाप के भय से अभिसंतप्त होकर मेरे शरण में ही आ पहुँचे।।२१।।

फिर इस तरह आये हुए उन कुमारों को देखकर मैंने अत्यन्त जिज्ञासु सब कुमारों से पूछ दिया कि हे मेरे वत्स! इस समय इस तरह तुम्हारे आने का कारण क्या है?।।२२।।

फिर दुःखयुक्त मन से दीन साम्ब ने कहा कि दुर्वासा के श्राप से दुखित मन हम लोग आपकी शरण में आये हैं।।२३।।

मया वै क्रीडमानेन गर्भं कृत्वा मृषागतम्।
जायते किं च मे वाऽत्र स मया भाषितो मुनिः॥२४॥

ममैव वचनं श्रुत्वा दुर्वासाः क्रोधमूर्च्छितः। उवाच परुषं वाक्यं क्रोधसंतप्तलोचनः॥२५॥
शृणु साम्ब महामूर्ख यन्मां त्वं परिपृच्छसि। जायते तव गर्भात् तु यथा वृष्णिकुलक्षयः॥२६॥
एवं तस्य वचः श्रुत्वा अहं तस्येदमुक्तवान्। गच्छ साम्ब महाभाग स्ववेश्ममचिराद् यथा।
एवमेतन्न संदेहो दुर्वासा यत् प्रभाषते॥२७॥

एवं ते कथितं भूमि यत्त्वया परिपृच्छितम्। शापस्य कारणार्थाय वृष्णीनां च महाभयम्॥२८॥
तत्र स्थानानि मे भूमे कथ्यमानानि मे शृणु। द्वारकायां वरारोहे सर्वभागवतप्रियम्॥२९॥
अस्ति पञ्चसरं नाम गुह्यं क्षेत्रं परं मम। समुद्रतीरमुत्सृज्य मम कर्मसुखावहम्॥३०॥
तत्र स्नानं तु कुर्वीत षष्ठकालोषितो नरः। मोदते नाकपृष्ठे तु अप्सरोगणसंकुले॥३१॥
अथात्र मुञ्चते प्राणान् क्षेत्रे पञ्चसरे मम। देवलोकं समुत्सृज्य मम लोकं प्रपद्यते॥३२॥
प्लक्षो वै तत्र सुश्रोणि शतशाखो महाद्रुमः। चतुर्विंशतिद्वादश्यां स भवेत् तत्फलान्वितः॥३३॥

उन दुर्वासा ऋषि को देखकर खेलते हुए मिथ्या गर्भ बनाते हुए मैंने समक्ष स्थित ऋषि से कह दिया कि बतलायें कि 'इससे मुझे क्या उत्पन्न होगा'?।।२४।।

इस प्रकार की मेरी बातों को सुनकर क्रोध से मूर्च्छित और प्रज्वलित आँखों वाले दुर्वासा ने मुझसे कठोरतर वाणी में यह कह दिया।।२५।।

हे महामूर्ख साम्ब! तुमने जो कुछ मुझसे पूछा है, उसके बारे में सुनो। तुम्हारे गर्भ से ऐसा बालक उत्पन्न होगा, जो वृष्णि कुल का क्षय कर देगा।।२६।।

उन कुमारों की बात सुनकर मैंने उनसे यह कहा कि हे महाभाग साम्ब! तुम अविलम्ब अपने घर को जाओ। दुर्वासा ने जो कुछ कहा है, वैसा ही होगा, इसमें सन्देह मत करो।।२७।।

हे भूमि! इस प्रकार तुमने जो कुछ पूछा है, उसे मैंने तुमको बतला दिया। वैसे उस शाप के कारण वृष्णि कुल के लोगों में महाभय उत्पन्न हो गया।।२८।।

हे भूमे! उस द्वारकापुरी में जितने स्थान हैं, उनको मुझसे तुम सुनो। चूँकि यह वर्णन सभी भगवद् भक्तों को भी अति पसन्द है।।२९।।

वहाँ समुद्र के तट के अतिरिक्त 'पञ्चसर' नाम का मेरा परम गुह्य क्षेत्र है। जो क्षेत्र मेरे कर्म साधन हेतु सुखप्रदायक है। छः बार भोजन करने के समय तक वहाँ रहते हुए स्नान करने वाले जन अप्सराओं से पूर्ण स्वर्ग में आनन्द किया करते हैं।।३०-३१।।

यदि वे जन मेरे उस पञ्चसर क्षेत्र में प्राण त्याग करते हैं, तो वे देवलोक को त्याग कर मेरे लोक में पहुँच जाते हैं।।३२।।

हे सुश्रोणि! वहीं पर सौ शाखाओं से सम्पन्न एक पीपल का महावृक्ष है। वह वृक्ष चौबीस द्वादशियों के फलों से सम्पन्न है।।३३।।

बहवस्तत्र गच्छन्ति लाभालाभेन मानवाः। फलं न लभते कश्चिद्वर्ज्य भागवतं शुचिम्॥३४॥
लभन्ते ये फलं तत्र गुह्ये पञ्चसरे मम। ते लभन्ते परां सिद्धिमेवमेतन्न संशयः॥३५॥
प्रभासमिति विख्यातं तस्मिस्तीर्थे परं मम।
मनुजा यं न पश्यन्ति रागलोभसमन्विताः॥३६॥
तत्र स्नानं प्रकुर्वीत पञ्चभक्तोषितो नरः। मोदते सप्तद्वीपेषु गुह्यानि च स गच्छति॥३७॥
अथ चेन्मुञ्चते प्राणान् प्रभासे गतकिल्बिषः। सर्वसङ्गं परित्यज्य मम लोकाय गच्छति॥३८॥
तत्राश्चर्यं महाभागे कथ्यमानं मया शृणु। प्रभासे यत्र शृण्वन्ति सागरे नगरं प्रति॥३९॥
मकरास्तत्र दृश्यन्ते भ्रममाणाः समन्ततः। न किंचिदपराध्यन्ति स्नायमाना जले ततः॥४०॥
अथात्र प्रक्षिपेत् पिण्डान् प्रसन्ने सलिले न तु। असंप्राप्ते च गृह्णन्ति एवमेतन्न संशयः॥४१॥
पापकर्मरतस्यापि न गृह्णन्ति जलं प्रति। गृह्णन्ति शुभकर्माणां पिण्डमेव न संशयः॥४२॥
पञ्चकुण्डमिति ख्यातं तस्मिन् गुह्यं पर मम। अगाधश्चाप्यपारश्च क्रोशविस्तार एव च॥४३॥
तत्राभिषेकं कुर्वीत पञ्चकालोषितो नरः। मोदते शक्रलोके स एवमेतन्न संशयः॥४४॥

लाभ और हानि के विचार के लिए वहाँ कई जन जाया करते हैं। पवित्र भगवद् भक्त के अलावे अन्य कोई भी जन वहाँ कोई फल नहीं पा सकते हैं।।३४।।

मेरे उस गुह्य पञ्चसर में जो कोई जन फल पाने वाले हैं, उनको परम सिद्धि मिल जाती है। इसमें कोई सन्देह नहीं करनी चाहिए।।३५।।

मेरे उसी क्षेत्र में प्रभास नाम का एक तीर्थ है, जिसे राग और लोभ वाले जन नहीं ही देख या समझ पाते हैं।।३६।।

इस प्रकार पाँच समय तक उपवास करते हुए वहाँ स्नान करने वाले जन सात द्वीपों में रमण किया करते हैं तथा गुह्यतर स्थानों को प्राप्त करते हुए वे पापरहित जन यदि उस प्रभास तीर्थ में अपना प्राण का परित्याग करते हैं, तो वे सभी संसर्गों को त्याग कर मेरे लोक में जाते हैं।।३७-३८।।

हे महाभागे! अब तुम मेरे द्वारा कहे जा रहे वहाँ के आश्चर्य को भी सुनो। जनश्रुति है कि उस प्रभास नगर के पास समुद्र में चारों और घूमते हुए मगरमच्छ दीखा करते हैं, किन्तु वे वहाँ जल में स्नान करनेवालों को कोई हानि नहीं पहुँचाते हैं।।३९-४०।।

मैने वहाँ जल में पिण्डदान कर पिण्डों को फेकना चाहिए। जल में पिण्ड के गिरने के पूर्व ही वे मगरमच्छ उन पिण्डों को पकड़ लिया करते हैं। इसमें संशय नहीं है।।४१।।

लेकिन पापकर्म में रत रहने वाले जनों का जल में फेंका गया पिण्ड, वे नहीं ग्रहण करते हैं। केवल वे शुभकर्म करने वाले जनों का ही पिण्ड पकड़ा करते हैं। संशय नहीं।।४२।।

वहीं पर मेरा परम गुह्य 'पञ्चकुण्ड' नाम का एक स्थान है। वह कुण्ड अथाह अपार और एक कोस क्षेत्र में विस्तारित है।।४३।।

फिर पाँच कालों तक वहाँ रहते हुए स्नान करने वाले जन निःसंशय इन्द्रलोक में जाकर आनन्द प्राप्त करते हैं।।४४।।

अथात्र मुञ्चते प्राणान् पञ्चकुण्डे यशस्विनि। शक्रलोकं परित्यज्य मम लोकाय गच्छति॥४५॥
तत्राश्चर्यं महाभागे कथ्यमानं मया शृणु। पापकर्मा न पश्यन्ति पश्यन्ति शुभकर्मिणः॥४६॥
चतुर्विंशतिद्वादश्यां मध्याह्ने च दिवाकरे। रौप्यं सौवर्णकं पद्मं दृश्यते नात्र संशयः॥४७॥
ब्रह्मसंगमनं नाम तस्मिन् क्षेत्रे परं मम। धाराः पतन्ति चत्वारि मणिपूरगिरौ श्रिताः॥४८॥
तत्राभिषेकं कुर्वीत चतुर्भक्तोषितो नरः। वैखानसेषु लोकेषु मोदते नात्र संशयः॥४९॥

अथात्र मुञ्चते प्राणान् सर्वकर्मविनिश्चितः।
त्यक्त्वा वैखानसांल्लोकान् मम लोकाय गच्छति॥५०॥

तत्रापि परमाश्चर्यं कथ्यमानं शृणोहि मे। यानि दृश्यन्ति कुण्डेषु मणिपूराश्रिते गिरौ॥५१॥
प्रतिक्षिता ते पापस्य न पतेत जलं भुवि। स्नायमानुषु जातेन न पतन्ति यथा पुरा॥५२॥
हंसकुण्डेति विख्यातं तस्मिन् क्षेत्रे परं मम। धारा चैका पतत्यत्र मणिपूरगिरौ श्रिता॥५३॥
तत्राभिषेकं कुर्वीत षष्ठकालोषितो नरः। मुक्तसङ्गो महाभागे मोदते वरुणालये॥५४॥
अथात्र मुञ्चते प्राणान् हंसकुण्डे वरानने। वारुणं लोकमुत्सृज्य मम लोकं प्रपद्यते॥५५॥

हे यशस्विनि! फिर वे जन पञ्चकुण्ड तीर्थ में प्राण का परित्याग करते हुए इन्द्रलोक को छोड़कर मेरे लोक में चले जाते हैं।।४५।।

हे महाभागे! इस प्रकार मेरे द्वारा कहे जा रहे वहाँ के आश्चर्य को अब सुनो। जिसे पापकर्म करने वाले जन वहाँ पर नहीं देखा करते हैं। केवल शुभकर्मी जन ही उसे देखा करते हैं।।४६।।

उस तीर्थ में प्रत्येक पक्ष की चौबीस द्वादशियों के दिन दोपहर के सूर्य के समय चाँदी और स्वर्ण कमल दिखलायी पड़ते हैं। इसमें सन्देह नहीं।।४७।।

उसी क्षेत्र में ब्रह्म सङ्गमन नाम का मेरा श्रेष्ठ स्थान है। मणिपूर पर्वत पर स्थित चार धारायें वहाँ से आकर यहाँ गिरती हैं।।४८।।

अतः चार भोजन कालों तक उपवासपूर्वक वहाँ स्नान करने वाले जन वैखानसों के लोक में आनन्द किया करते हैं। इसमें संशय नहीं है।।४९।।

सभी प्रकार के कर्मों से उपराम होकर वे जन वहाँ प्राण का परित्याग करते हुए वैखानसों के लोक को छोड़कर मेरे लोक में आ जाते हैं।।५०।।

वहाँ मणिपूर पर्वत पर स्थित कुण्डों में जो आश्चर्य घटित होता है, उसे मैं आगे कहने जा रहा हूँ। तुम उसे सुनो।।५१।।

हवाँ पर पाप क्षीण होने की प्रतीय करने वाले जनों के शरीर से पृथ्वी पर जल नहीं गिरा करता है। जिस प्रकार पुरातन काल में उत्पन्न जीवों के स्नान काल में जल नहीं गिरता था।।५२।।

उसी क्षेत्र में हंसकुण्ड नामक प्रसिद्ध मेरा एक श्रेष्ठ स्थान है। मणिपूर पर्वत पर स्थित एक धारा वहाँ गिरा करती है। जहाँ छः भोजन काल तक निवास करते हुए स्नान करने वाले जन संसर्ग दोष से रहित होकर वरुण लोक में आनन्द करते हैं।।५३-५४।।

फिर हे सुन्दरि! यहाँ प्राण परित्याग करने वाले जन वरुण लोक का परित्याग कर मेरे लोक में आ जाते हैं।।५५।।

तत्राश्चर्यं प्रवक्ष्यामि हंसकुण्डे यशस्विनि। शुद्धाः पश्यन्ति मनुजाः पापकर्मा न पश्यति॥५६॥
चतुर्विंशतिद्वादश्यां मध्याह्ने च दिवाकरे। हंसाश्चैवात्र दृश्यन्ते चन्द्रकुन्दसमप्रभाः॥५७॥
हंसान् पश्यति यस्तत्र भ्रममाणनितस्ततः। ते लभन्ति परां सिद्धिमेवमेतन्न संशयः॥५८॥
कदम्बमिति विख्यातं कुण्डं क्षेत्रे पर मम। यत्र शुद्धा महाभागे गता वृष्णियमक्षयम्॥५९॥
तत्राभिषेकं कुर्वीत चतुःकालोषितो नरः। मोदते ऋषिलोकेषु एवमेतन्न संशयः॥६०॥
अथात्र मुञ्चते प्राणान् कृत्वा कर्म सुदुष्करम्। ऋषिलोकं परित्यज्य मम लोकं प्रपद्यते॥६१॥
तत्राश्चर्यं महाभागे कथ्यमानं श्रृणोहि मे। कदम्बात्पतते धारा तत्र पूर्वं विनिःसृता॥६२॥
स कदम्बो महाभागे माघमास्य द्वादशीम्। पुष्पापतति वरारोहे उदिते च दिवाकरे॥६३॥
यस्तत्र लभते पुष्पं मम मार्गानुसारिणः। ते लभन्ते परां सिद्धिमेवमेतन्न संशयः॥६४॥
चक्रतीर्थमिति ख्यातं तस्मिन् क्षेत्रे परं मम। पञ्च धाराः पतन्त्यत्र मणिपूरसमाश्रिताः॥६५॥
तत्राभिषेकं कुर्वीत पञ्चकालोषितो नरः। दशवर्षसहस्राणि स्वर्गलोके स मोदते॥६६॥

हे यशस्विनि! उस हंस कुण्ड तीर्थ में घटित होने वाले आश्चर्य को सुनो। उसे शुद्ध व पवित्र जन ही देख करते हैं। पापीजन उसे नहीं ही देख पाते हैं।।५६।।

प्रत्येक पक्ष की चौबीस द्वादशी तिथियों के दिन दोपहर के समय यहाँ चन्द्र और कुन्द के समान वर्ण वाले हंस दीख पड़ते हैं।।५७।।

जो जन वहाँ पर इधर-उधर भ्रमण शील हंसों को देखा करते हैं, उनको परमसिद्धि मिला करती है। इसमें संशय नहीं है।।५८।।

फिर उसी क्षेत्र में प्रसिद्ध और श्रेष्ठ कुण्ड 'कदम्ब' नाम से स्थित है। हे महाभागे! जहाँ पर शुद्ध होकर ही वृष्टि की सन्ताने शाश्वत लोक को जा सकी।।५९।।

चार आहर कालों तक उपवास करते हुए वहाँ स्नान करने वाले जन ऋषियों के लोक में जा कर आनन्द किया करते हैं। इसमें भी संशय नहीं है।।६०।।

फिर वहाँ दुष्कर कर्म सम्पन्न करते हुए अपने प्राण का तयग करने वाले ज़न ऋषीोक को छोड़कर मेरे लोक में जाते हैं।।६१।।

हे महाभागे! अब घटित होने वाले आश्चर्य के बार में मुझसे सुनो। उस कदम्ब कुण्ड से निकली हुई एक पूर्व धारा वहाँ पर गिरा करती है।।६२।।

हे महाभागे! हे सुन्दरि!! माघ मास की द्वादशी तिथि के दिन सूर्योदय होने पर उस कदम्ब कुण्ड में पुष्प गिरा करते हैं।।६३।।

मेरे मार्ग का अनुयायी जो जन वहाँ के पुष्प पर जाते हैं, उन्हें परमसिद्धि प्राप्त हुआ करती है। इसमें भी संशय नहीं करना चाहिए।।६४।।

उसी क्षेत्र में चक्रतीर्थ नामक प्रसिद्ध श्रेष्ठ एक मेरा स्थान है। मणिपूर पर्वत पर स्थित पाँच धारायें वहाँ आकर गिरा करती हैं।।६५।।

फिर पाँच बार के भोजन काल तक निवास करते हुए वहाँ स्नान करने वाले जन दस हजार वर्षो तक स्वर्गलोक में आनन्द किया करते हैं।।६६।।

अथात्र मुञ्चते प्राणान् लाभालाभविवर्जितः।
सर्वान् स्वर्गान् समुत्सृज्य मम लोकाय गच्छति॥६७॥
तत्राश्चर्यं प्रवक्ष्यामि कथ्यमानं शृणुष्व मे। अन्यथा ये न पश्यन्ति मम कर्मपरायणाः॥६८॥
चतुर्विंशतिद्वादश्यामर्द्धरात्रे यशस्विनि। श्रूयते तत्र निर्घोषो मम कर्मसुखावहः॥६९॥
सुगन्धो वायते वायुर्बहुमाल्यसमन्वितः। दुर्लभः पापकर्माणां सुलभः शुभकर्मिणाम्॥७०॥
तस्य चोत्तरपार्श्वेन सुगन्धश्च महाद्रुमः। पुष्पते सोऽद्य तत्रापि उदिते च दिवाकरे॥७१॥
ये तत्र लभते पुष्पं मम मार्गानुसारिणः। ते लभन्ति परां सिद्धिमेवं भूमे न संशयः॥७२॥
अस्ति रैवतकं नाम तस्मिन् क्षेत्रे परं मम। सर्वलोकेषु विख्यातं यत्र च क्रीडितं मया।
बहुगुल्मलताकीर्णं फलपुष्पैः सुशोभितम्॥७३॥
बहुवर्णशिलापङ्का गुहाश्चापि दिशो दश। वापीश्च कन्दराश्चैव देवानामपि दुर्लभाः॥७४॥
तत्राभिषेकं कुर्वीत षष्ठकालोषितो नरः। गच्छते सोमलोकाय कृतकृत्यो न संशयः॥७५॥
अथात्र मुञ्चते प्राणान् मम कर्मसु निष्ठितः। सोमलोकं समुत्सृज्य मम लोकं प्रपद्यते॥७६॥

फिर लाभ और हानि की भावना का त्याग कर वहाँ प्राण त्याग करने वाले जन सभी स्पर्श का त्याग कर मेरे लोक में चले जाते हैं।।६७।।

इस प्रकार मैं अब वहाँ घटित होने वाला आश्चर्य को कहता हूँ, सुनो। मेरे सब कर्म परायणों के अलावे जो जन स्थित रहते हैं, फिर भी वे इसे नहीं देख पाते।।६८।।

हे यशस्विनि! चौबीस द्वादशी तिथियों की आधी रात में वहाँ मेरा कर्म करने वाले जनों को सुखप्रद घोष सुनाई पड़ता है।।६९।।

वहाँ पर वायु अनेक मालाओं के प्रसङ्ग के सुगन्धि प्रवाहित किया करते हैं। पापकर्म करने वाले जनों को यह दुर्लभ तथा शुभकर्म कर्त्ता जनों को सुलभ है।।७०।।

उसके उत्तर दिशा में सुगन्धि वाले महावृक्ष स्थित है। सूर्योदय के बाद वह आज भी वहाँ पुष्पित हो जाया करता है।।७१।।

मेरे मार्ग के अनुयायी जो जन वहाँ पुष्प प्राप्त करते हैं, उनको परम सिद्धि मिलती है। हे भूमि! इस प्रकार होने में किसी प्रकार का संशय नहीं है।।७२।।

उसी क्षेत्र में रैवतक नाम का मेरा श्रेष्ठ स्थान है। जो सम्पूर्ण लोकों में प्रसिद्ध है। मैंने वहीं पर क्रीड़ा भी की थी। वह अनेक पुष्पों, लताओं से युक्त और फल, फूलों आदि से विभूषित है। वह विविध वर्णों की शिलाओं और मिट्टी से सम्पन्न है। उसकी दस दिशाओं में देवों को भी दुर्लभ गुफायें, बावलियाँ और कन्दरायें स्थित हैं।।७३-७४।।

इस प्रकार छः भोजन कालों वहीं पर निवास करते हुए स्नान करने वाले जन कृतकृत्य होकर सोमलोक को चले जाते हैं। इसमें संशय नहीं है।।७५।।

मेरे कर्म में अच्छी प्रकार से निष्ठित जन जब यहाँ प्राण का परित्याग करते हैं, तो वे जन सोमलोक का त्याग कर मेरे लोक को जाते हैं।।७६।।

तत्राश्चर्यं महाभागे कथ्यमानं मया श्रृणु। पश्यन्ति मनुजाः सर्वे धर्मकामा न संशयः।।७७।।
पतन्ति सर्ववृक्षाणां पत्राणि सुबहून्यपि। एव चापि न दृश्येत प्रसन्नं याति तज्जलम्।।७८।।
स चपूर्वेण पार्श्वेन शोभते महतो द्रुमः। अपरो मम पार्श्वेन देवानामपि दुर्लभः।।७९।।
समन्तात् पञ्चक्रोशानि सर्वतः परिविस्तरम्।
पद्मोत्पलनिभैः पुष्पैः सुगन्धं कुसुमैः सह।।८०।।
बहुपुष्पलताकीर्णं सर्वतस्तु फलान्वितम्। शिलातलगुहाच्छन्नं सुगन्धिकुसुमैः सह।।८१।।
तत्राभिषेकं कुर्वीत अष्टभक्तोषितो नरः। मोदते नन्दने दिव्ये अप्सरोभिः समन्विते।।८२।।
अथात्र मुञ्चते प्राणान् कृत्वा कर्म सुदुष्करम्। नन्दनं वनमुत्सृज्य मम लोकं प्रपद्यते।।८३।।
अत्राश्चर्यं महाभागे कथ्यमानं मया श्रृणु। पश्यन्ति मनुजाः सर्वे धर्मकामा न संशयः।।८४।।
मध्याह्ने च पुनः पूर्णश्चार्द्धरात्रे समो भवेत्। वर्द्धते क्षीयते चैव यथैव च महोदधिः।।८५।।
तस्य पश्चिमपार्श्वे तु तत्र बिल्वं महाद्रुमम्। चतुर्विंशतिद्वादश्यां स च पुष्पति निष्कलम्।।८६।।
पश्यते शुभकर्मा च पापकर्मा न पश्यति। दृश्यते च महाभागे अस्तमेते दिवाकरे।।८७।।

हे महाभागे! अब मैं वहाँ घटित होने वाले आश्चर्य को कहने जा रहा हूँ। उसे तुम सुनो। सभी धर्मेच्छु जन इस प्रकार के आश्र्य को निःसंशय देखा करते हैं।।७७।।

सभी वृक्षों के अधिकतम पत्ते वहाँ पर गिरा करते हैं, परन्तु इस प्रकार होने पर भी वे पत्ते वहाँ नहीं दीख पड़ते हैं। वे सभी उसके स्वच्छ जल में चले जाते हैं।।७८।।

वह वृक्ष महान् पूर्व दिशा के पार्श्व में शोभायमान है। मेरे पार्श्व में देवों को भी दुर्लभ अन्यान्य वृक्ष भी स्थित हैं। फिर कमल के समान फूलों और सुगन्धि के साथ वह सर्वत्र चारों ओर पांच कोस में फैला हुआ है।।७९-८०।।

वह स्थान अधिकतम मछलियों से सम्पन्न जल से पूर्ण, अप्सराओं केसमूह से युक्त, सर्वत्र अत्यधिक पुष्पों, लताओं फलों आदि से भरा हुआ है।।८१।।

आठ भोजन कालों तक उपवास पूर्वक वहाँ स्नान करने वाले जन अप्सराओं से सम्पन्न दिव्य नन्दन वन में रमण करते हैं।।८२।।

दुष्कर कर्मों को करके वहाँ अपने प्राणों का परित्याग करने वाले जन नन्दनवन को छोड़कर मेरे लोक में चले जाते हैं।।८३।।

हे महाभागे! अब मैं वहाँ पर घटित होने वाले आश्चर्य को कह रहा हूँ, उसे सुनो। समस्त धर्मपिपासु जन निसन्देह उसे देखा करते हैं।।८४।।

वह मध्याह्न में पुनः पूर्ण और आधी रात में समान हो जाया करता है। समुद्र के समान वह नित्य बढ़ता और घटता रहा करता है।।८५।।

वहीं पर पश्चिम पार्श्व में एक महान् वृक्ष है। वह वृक्ष चौबीस कुल द्वादशी तिथियों को फूलों सेपरिपूर्ण जाया करता है।।८६।।

इस तरह शुभ कर्म कर्त्ता उसे देखा करते हैं। पापकर्मी उसे नहीं देख पाते हैं। हे महाभाग! सूर्यास्त होने पर वह दिख जाया करता है।।८७।।

यस्तत्र लभते पुष्पं मम मार्गानुसारिणः। ते लभन्ते परां सिद्धिमेवं भूमे न संशयः॥८८॥

विष्णुसंक्रमणं नाम तस्मिन् क्षेत्रे परं मम।
विद्धोऽस्मि तत्र व्याधेन प्राप्तो मूर्त्तिं स्वकां प्रति॥८९॥

तत्र कुण्डं महाभागे मणिपूरगिरौ श्रुतम्। धारा चैका पतत्यत्र सुप्रमाणा महौजसि॥९०॥
तत्राभिषेकं कुर्वीत चतुःकालसमन्वितः। मोदते सूर्यलोकेषु स्वच्छन्दगमालयः॥९१॥
अथात्र मुञ्चते प्राणान् लाभालाभविवर्जितः। सूर्यलोकं समुत्सृज्य मम लोकं प्रपद्यते॥९२॥
तत्राश्चर्यं प्रवक्ष्यामि विष्णुसंक्रमणे सरे। दुर्लभः पापकर्माणां सुलभः शुभकर्मिणाम्॥९३॥
तस्य दक्षिणपार्श्वे तु अश्वत्थो वै महाद्रुमः। चतुर्विंशतिद्वादश्यां मध्याह्ने तु दिवाकरे॥९४॥
फलते स यथान्यायं सर्वभागवतप्रियः। उच्चैश्चैव विशालश्च मनोज्ञः शीतलस्तथा॥९५॥
ये लभन्ति फलं तत्र मम मार्गानुसारिणः। ते लभन्ति परा सिद्धिमेवमेतन्न संशयः॥९६॥
तस्मिन् क्षेत्रे महाभागे तिष्ठामि चोत्तरामुखः। सर्वभागवतप्रीतिः समुद्रतटमाश्रितः॥९७॥
अहं रामेण सहितः सा च एकादशी शुभा। त्रीणि तत्रैव तिष्ठाम द्वारकायां यशस्विनि॥९८॥

हे भूमि! मेरे मार्ग के अनुयायी जो जन वहाँ पर पुष्प पा जाते हैं, उनको निःसंशय परम सिद्धि मिलती है।।८८।।

उसी क्षेत्र में विष्णुसंक्रमण नाम का मेरा श्रेष्ठ स्थान है। वहाँ व्याध द्वारा वेधित मैं अपनी मूर्त्ति में स्थित हूँ।।८९।।

हे महाभागे! मणीपूर पर्वत पर वहाँ एक कुण्ड का होना भी सुना गया है। हे महातेजस्विनी! वहाँ एक धारा भी गिरा करती है।।९०।।

चार भोजन कालों तक उपवास सम्पन्न होकर वहाँ पर स्नान करने से जन सूर्यलोक में स्वच्छन्द विचरण करते हुए आनन्द किया करते हैं।।९१।।

यदि कोई जन लाभ और हानि से मुक्त होकर वहीं पर अपने प्राणों का उत्सर्जन करते हैं, तो वे सूर्य लोक को छोड़कर मेरे लोक में जाते हैं।।९२।।

फिर उस विष्णु संक्रमण सरोवर का आश्चर्य कहने जा रहा हूँ, उसुनो। जो शुभ कर्म करने वालें के लिए सुलभ और पापकर्म करने वालें हेतु दुर्लभ है।।९३।।

उसी के दक्षिण दिशा के पार्श्व में अश्वत्थ का महान् वृक्ष है। वर्ष के चौबीस द्वादशी तिथियों के दोपहर के समय उसमें फल लग जाया करते हैं। समस्त भगवद् भक्त जनों को प्रिय वह ऊँचा, विशाल, मनोहर और शीतल वृक्ष फल सम्पन्न होता है।।९४-९५।।

इस प्रकार मेरे मार्ग के अनुयायी जन वहाँ फल की प्राप्ति कर अपने लिए परमसिद्धि भी पर लिया करते हैं। ऐसे होने में संशय नहीं है।।९६।।

हे महाभागे! उस क्षेत्र में समस्त भगवद् भक्तों के प्रिय समुद्र के किनारे उत्तराभिमुख होकर मैं अवस्थित हूँ।।९७।।

हे यशस्विनि! बलराम सहित मैं और वह शुभ एकादशी, ये तीनों ही वहाँ द्वारका में रहा करते हैं।।९८।।

तस्मिन् क्षेत्रे महाभागे त्रीणि तत्रैव मोदते। त्रिंशद्योजनविस्तारे सर्वतस्तु दिशो दश॥९९॥
ये तु यान्तु वरारोहे ये तु पश्यन्ति मां शुचिः। अदीर्घेणैव कालेन प्राप्नुवन्ति परां गतिम्॥१००॥
आख्यानानां महाख्यानं शान्तीनां शान्तिरुत्तमा।
धर्माणां परमो धर्मो द्युतीनां च महाद्युतिः॥१०१॥
लाभानां परमं लाभं क्रियाणां च महाक्रिया। श्रुतीनां परमं श्रेष्ठं तपसां च परं तपः॥१०२॥
एतन्मरणकाले तु मा कदाचित्तु विस्मरेत्। यदीच्छेत् परमां सिद्धिं मम लोकाय गच्छति॥१०३॥
य एतत् पठते भद्रे कल्यमुत्थाय मानवः। तारिताः स्वकुलाः सर्वे सप्त सप्त च सप्त च॥१०४॥
एतत् ते कथितं भद्रे द्वारकायाः सुनिश्चयम्। उचितेनोपचारेण किमन्यत् परिपृच्छसि॥१०५॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥१४७॥

हे महाभागे! सभी जगह समस्त दिशाओं में तीस योजन विस्तारित उस क्षेत्र में ये तीनों आनन्द किया करते हैं।।९९।।

हे सुन्दरि! जो पवित्र जन वहाँ जाकर मेरा दर्शन करते हैं, वे अलप समय में ही परम गति को प्राप्त कर लिया करते हैं।।१००।।

यह आख्यान समस्त आख्यानों में महान् आख्यान, शान्तियों में परम शान्ति, धर्मों में परमधर्म और तेजों में महान् तेज स्वरूप है।।१०१।।

फिर यह सभी लाभों में परम लाभ, क्रियाओं में परम क्रिया, श्रुतियों में महान् और तपों में परम तप भी है।।१०२।।

जिस-किसी को यदिपरम सिद्ध पाने की कामना हो, तो मरने को समय भी इसे क्या नहीं भूलना चाहिए। इस प्रकार के आचरण वाले मेरे लोक में जाते हैं।।१०३।।

हे भद्रे! जो जन सुबह सबेरे जागते हुए इसका पाठ करते हैं, वे जन अपने कुल की इक्कीस पीढ़ियों को तारने वाले होते हैं।।१०४।।

हे भद्रे! द्वारिका के प्रसङ्ग में ठीक-ठीक इस निष्कर्ष को तुमको बतला दिया है। अब तुम मुझसे और क्या जानना चाहती हो।।०५।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में साम्ब को दुर्वासा का श्राप, यदुकुल विनाश, द्वारका तीर्थों का माहात्म्य नामक एक सौ सैंतालिसवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्य-नारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१४७॥

अष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

अथ सानन्दूरतीर्थमाहात्यम्

सूत उवाच

द्वारकायास्तु माहात्म्यं श्रुत्वा ह्येतत् तु भाषितम्। हृष्टतुष्टमनास्तत्र धर्मकामा वसुंधरा॥१॥

धरण्यु उवाच

अहो देव प्रसादश्च यत् त्वया परिकीर्तितम्। शृणोमि तन्महाभाग प्राप्ताऽस्मि महतीं श्रियम्॥२॥
एतन्मे परमं गुह्यं लोकनाथ जनार्दन। द्वारकातः परं श्रेष्ठमस्ति गुह्यं परं क्वचित्॥३॥
ततो महीवचः श्रुत्वा विष्णुः कमललोचनः। वाराहरूपी भगवान् प्रत्युवाच वसुंधराम्॥४॥

श्रीवराह उवाच

सानन्दूरेति विख्यातं भूमि गुह्यं परं मम। उत्तरे तु समुद्रस्य मलयस्य तु दक्षिणे॥५॥
तत्र तिष्ठामि वसुधे उदीचीं दिशमाश्रितः। प्रतिमां चैकमादाय नात्युच्चां नातिनीचकाम्॥६॥
आयसीं वदते केचित् केचित् ताम्रां वदन्ति हि। कांस्येति ब्रह्मरीतेति केचित् सीसेति चापरे॥७॥
एतन्महत् तदाश्चर्यं शैलिकेति तथापरे। तत्र स्थानानि मे भूमे कथ्यमानानि मे शृणु॥८॥

अध्याय-१४८

सानन्दूर तीर्थ, विष्णु प्रतिमा, स्नानसहित मरण फल और माहात्म्य

सूतजी ने कहा कि इस प्रकार श्री भगवान् वराह के द्वारा द्वारकापुरी का इस माहात्म्य को सुनकर प्रसन्न और सन्तुष्ट चित्त धर्माभिकामिनी धरणी ने कहा—।।१।।

पृथ्वी ने कहा कि हे देव! यह आपकी कृपा ही है कि आपने मुझे जो कुछ कहा मैंने भी उसे सुना है। हे महाभाग! इसमें मुझे महान् ऐश्वर्य की प्राप्ति हुई।।२।।

हे लोकनाथ! जनार्दन! मेरे लिए तो यह श्रेष्ठतर रहस्य की बात है। अब कहीं कोई यदि द्वारकापुरी से भी अधिक श्रेष्ठ अन्य गुप्त स्थान आपका हो, तो उसे बतलायें।।३।।

फिर धरणी की बात सुनकर वराह स्वरूप कमलनेत्र भगवान् विष्णु ने धरणी से कहा कि—।।४।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि हे भूमि! समुद्र के उत्तर और मलयपर्वत के दक्षिण में सानन्दूर नाम से प्रसिद्ध मेरा परमगुप्त एक स्थान है।।५।।

हे वसुधे! वहाँ पर मैं एक न अधिक ऊँची और न अधिक नीची प्रतिमा के आधार में उत्तराभिमुख होकर स्थित रहता हूँ।।६।।

उस मेरी प्रतिमा को कोई जन लोहे की, कोई जन ताम्र की, कोई अन्य जन काँसे की, कोई अन्य जन पीतल की और कोई अन्य जन सीसे की कहा करते हैं।।७।।

यहाँ यह भी एक महान् आश्चर्य है कि कोई जन इस प्रतिमा को पत्थर की बनी भी कहा करते हैं। हे भूमे! अब तुम मेरे द्वारा कहे जा रहे वहाँ के स्थानों को सुनो।।८।।

मनुजा यत्र मुच्यन्ते गताः संसारसागरात्। तत्राश्चर्यं प्रवक्ष्यामि सानन्दूरे यशस्विनि॥९॥
सौवर्णं दृश्यते पद्मं मध्याह्ने तु दिवाकरे। यत्र रामगृहं नाम मम गुह्यं यशस्विनि।
तत्रापि शृणु चाश्चर्यं यच्चापि परिवर्तते॥१०॥
एकं तत्र लतावृक्षमुच्चस्थूलं महाद्रुमम्। समुद्रमध्ये तिष्ठन्तं कोऽपि तत्र न पश्यति॥११॥
अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि महाश्चर्यं वसुंधरे। मम भक्त्यापि पश्यन्ति तिष्ठमानाः स्वकर्मणा॥१२॥
बहुमत्स्यसहस्राणि कोट्यो ह्यर्बुदमेव च। क्षिप्तं पिण्डं ततो मध्ये येन केन विकर्मिणा॥१३॥
एकस्तत्र स्थूलमत्स्यो भूमे चक्रेण चाङ्कितः। तावत् कश्चिन्न गृह्णाति यावत् तेन न भक्षितः॥१४॥
तत्र रामसरो नाम गुह्यं क्षेत्रं परं मम। अगाधश्चाप्यपारश्च रक्तपद्मविभूषितः॥१५॥
तत्र स्नानं तु कुर्वीत एकरात्रोषितो नरः। बुधस्य भवनं गत्वा मोदते नात्र संशयः॥१६॥
अथ प्राणान् प्रमुच्यते रम्ये रामसरे तथा।
बुधस्य भवनं त्यक्त्वा मम लोकं च गच्छति॥१७॥
तजत्र रामसरे भूमि महाश्चर्यं शृणोहि मे। मनुजास्तत्र पश्यन्ति मम कर्मरता न ये॥१८॥

वहाँ पर पहुँच जाने वाले जन इस संसार सागर से मुकत हो जाया करते हैं। हे यशस्विनि! उस सानन्दूर में स्थित आश्चर्य को कह रहा हूँ, सुनो।।९।।

वहाँ दोपहर के सूर्य होने पर स्वर्ण कमल दिख पड़ता है। हे यशस्विनि! वहाँ रामगृह नाम का मेरा गुप्त एक स्थान है। वहाँ पर ही होने वाले आश्चर्य को सुनों।।१०।।

वहाँ पर एक लतायुक्त ऊँचा और मोटा महान् वृक्ष है। वह समुद्र के मध्य स्थित है। वहाँ उसे कोई नहीं देखता।।११।।

हे वसुन्धरे! अब तुमको वहाँ के अन्य भी महान् आश्चर्य को बतला रहा हूँ। मेरी भक्ति से युक्त अपना कर्म करने वाले उसे देखते हैं।।१२।।

वहाँ कई हजार, करोड़ और अरबों मछलियाँ हैं। जिस किसी पापकर्म करने वाले जनों द्वारा उनके मध्य फेंका गया पिण्ड वहाँ पड़ा रहता है।।१३।।

हे भूमे! चक्र से अंकित एक छोटी मछली वहाँ स्थित है। जब तक वह वहाँ फेंके गए पिण्ड को नहीं खा लेती है, तब तक कोई अन्य मछली उस पिण्ड को नहीं ग्रहण करती।।१४।।

वहीं पर मेरा 'रामसर' नाम का एक श्रेष्ठ क्षेत्र है। वह अगाध, अपार और लाल कमल के समान शोभायुक्त है।।१५।।

एक रात तक रहते हुए वहाँ स्नान करने पर जन बुध के लोक में जाकर रमण करते हैं। इसमें सन्देह नहीं है।।१६।।

फिर सुन्दर रामसर में जो जन अपना प्राण का त्याग करते हैं, वे जन बुध लोक को छोड़कर मेरे लोक में चले जाते हैं।।१७।।

हे भूमे! उसी रामसर में स्थित महान् आश्चर्य को मुझसे तुम सुनो। जो जन मेरे कर्म करने में आसक्त नहीं है, वे जन उसे नहीं देख पाते हैं।।१८।।

तत्सरः क्रोधविस्तारं बहुगुल्मलतावृतम्। मनोज्ञं रमणीयं च जलजैश्चापि संवृतम्॥१९॥
तत्र रूढानि पद्मानि द्योतयन्ति दिशो दश। एकं तु दृश्यते श्वेतमब्जं रुक्ममयं तथा॥२०॥
तत्र ब्रह्मसरो नाम गुह्यं क्षेत्रं परं मम। उत्तरेण तु पार्श्वेन मम क्षेत्रस्य सुन्दरि॥२१॥
तत्र कुण्डं महाभागे पर्वते च समाश्रितम्। धारा यत्र पतेच्चैवमुच्चा मुसलसंनिभा॥२२॥
तत्र स्नानं प्रकुर्वीत षष्ठकालोषितो नरः। ब्रह्मलोकं समासाद्य मोदते नात्र संशयः॥२३॥
अथ प्राणान् प्रमुच्येत तत्र ब्रह्मसरे मम। ब्रह्मणा समनुज्ञातो मम लोकाय गच्छति॥२४॥
तत्राश्चर्यं महाभागे रम्ये ब्रह्मसरे शृणु। मद्भक्ता यानि पश्यन्ति घोरसंसारमोक्षणम्॥२५॥
चतुर्विंशतिद्वादश्यां सा धारा पृथुलेक्षणे। मध्याह्ने पतते भूमि यावत्सूर्यः स तिष्ठति॥२६॥
परावृत्ते ततु मध्याह्ने सा धारा न पतेद् भुवि। एवं तत्र महाश्चर्यं पुण्ये ब्रह्मसरे मम॥२७॥
अस्ति संगमनं तत्र गुह्यं क्षेत्रं परं मम। समुद्रश्चैव रामश्च समेष्येते वराङ्गने॥२८॥

तत्र कुण्डं महाभागेत प्रसन्नतिवमलोदकम्।
बहुगुल्मलताकीर्णं शोभतं च विहङ्गमैः॥२९॥

इस प्रकार वह सुन्दर रमणीक सर एक कोस विस्तृत तथा अनेक गुल्मों, लताओं और कमलों से समावृत है।।१९।।

वहाँ पर उत्पन्न कमल दश दिशाओं को प्रकाशित करते हैं। उनमें एक चाँदी का श्वेत कमल दिखलायी पड़ता है।।२०।।

हे सुन्दरि! मेरे क्षेत्र के उत्तर पार्श्व में वहाँ 'ब्रहमसर' नाम का मेरा परम ुप्त क्षेत्र है। हे महाभागे! उस पर्वत पर एक कुण्ड है, जहाँ मूसल की सामान एकऊँची धारा गिरती है।।२१-२२।।

इस प्रकार छः आहार कालों तक रते हुए वहाँ स्नान करने पर जन ब्रह्मलोक में जाकर आनन्द किया करते हैं। इसमें संशय नहीं है।।२३।।

फिर मेरे ब्रह्मसर में जो जन अपना प्राणों का उत्सर्ग करते हैं, वे जन ब्रह्मा के अनुमति से मेरे लोक में आ जाता है।।२४।।

हे महाभागे! उस रमणीय ब्रह्मसर में स्थित घटित आश्चर्य को सुनो। जिसे मेरे भक्त देखते हैं। यह संसार सागर से मुक्ति प्रदान करने वाला है।।२५।।

हे विशालाक्षि भूमे! वर्ष के चौबीस द्वादशी तिथियों के दिन वहाँ एक धारा कई धाराओं के रूप में उस समय तक गिरा करती हैं। जिस समय तक मध्याह्नकाल का सूर्य अवस्थित रहते हैं।।२६।।

फिर मध्याह्न काल के अन्त होने पर वह धारा पृथ्वी पर नहीं गिरा करती है। मेरे उस पवित्र ब्रह्मसर में इस प्रकार का महान् आश्चर्य है।।२७।।

वहीं पर उसी क्षेत्र में 'संगमन' नाम का एक मेरा परम गुह्य क्षेत्र है। हे सुन्दरि! वहाँ परसमुद्र और राम कुण्ड दोनों परस्पर मिले हुए हैं।।२८।।

हे महाभागे! वहाँ कई गुल्मों और लताओं से सम्पन्न तथा पक्षियों से विभूषित सुन्दर स्वच्छ जल का कुण्ड है।।२९।।

समुद्रस्य तु पार्श्वन अदूरात् तत्र योजनात्। मण्डिता कुमुदैः पद्मैः सुगन्धैश्चोत्पलैस्तथा॥३०॥
तत्र स्नानं तु कुर्वीत षष्ठकालोषितो नरः। समुद्रभवनं गत्वा मम लोकं प्रपद्यते॥३१॥
तत्राश्चर्यं प्रवक्ष्यामि कुण्डे रामस्य संगमे। यं दृष्ट्वा मनुजास्तत्र भ्रमन्ति विगतज्वराः॥३२॥
यानि कानि च पर्णानि पतन्ति जलसंससदि। एकोऽपि तं न पश्येत किमत्र परमं प्रिये॥३३॥
अच्छिद्राणि च पत्राणि तस्मिन् रामस्य संगमे। प्रत्यनेनापि मार्गन्तश्छिद्रं तत्र न पश्यति॥३४॥
अस्ति शक्रसरो नाम गुह्यं क्षेत्रं परं मम। तत्र पूर्वेण पार्श्वेन अदूरादर्धयोजनात्॥३५॥
तस्य कुण्डस्य सुश्रोणि चत्वारो दिशमाश्रिताः। धाराः पतन्ति चत्वारः प्रसन्नसलिलास्तथा॥३६॥
तत्र स्नानं तु कुर्वीत चतुष्कालोषितो नरः। चतुर्षु लोकतेतपालेतषु मोदते नात्र संशयः॥३७॥
अथात्र मुञ्चते प्राणान् तस्मिन् शक्रसरे मम। लोकपालान् समुत्सृज्य मम लोकेषु मोदते॥३८॥
तत्राश्चर्यं महाभागे यानि पश्यन्ति माधवि। शुद्धा भागवता भूमि सर्वसंसारमोक्षणम्॥३९॥
ता धाराश्चतुरो भद्रे पतन्ति चतुरो दिशम्। न च तद् वर्धते चाम्भो न चैव परिहीयते॥४०॥
मासि भाद्रपदे चापि शुक्लपक्षस्य द्वादशीम्। श्रूयते गीतिनिर्घोषः श्रुतिकर्ममनोहरः॥४१॥

फिर सुगन्ध वाले कुमुदों और कमलों से शोभा युक्त वह कुण्ड समुद्र के पार्श्व में एक योजन से कम की दूरी पर स्थित है।।३०।।

इस प्रकार छः भोजन कालों तक रहते हुए जो जन वहाँ स्नान किया करते हैं, वे जन समुद्र के गृह में जाकर फिर मेरे लोक में आ जाते हैं।।३१।।

उस राम के संगम कुण्ड में घटित होने वाले आश्चर्य को बतला रहा हूँ, जिसे देखकर कोई भी जन वहाँ दुःख मुक्त होकर विचरण करते हैं।।३२।।

हे प्रिये वहाँ जलसमूह में जो पते गिरा करते हैं, उनको एक भी जीव नहीं देख पाते हैं। इससे बढ़कर और क्या आश्चर्य हो सकता है।?।।३३।।

उस रामसंगम में रिने वाले पत्ते छिद्र रहित होते हैं। प्रयत्नपूर्वक भी खोजने पर उसमें छिद्र नहीं दीख पड़ते हैं। वहाँ पूर्व की दिशा की ओर आधे कोस की दूरी पर 'शक्रसर' नाम का मेरा एक परम गुह्य क्षेत्र है। हे सुश्रोणि! उसके चारों ओर सभी दिशाओं में स्वच्छ जल की चार धारायें गिरा करती हैं।।३४-३६।।

इस प्रकार चार भोजन कालों तक उपवासपूर्वक जो जन वहाँ स्नान किया करते हैं, वे जन चार लोकपालों के लोक में रमण किया करते हैं। इसमें संशय नहीं हे।।३७।।

फिर मेरे इस शक्रसर में जो जन अपना प्राण का त्याग किया करते हैं, वे लोकपालों के लोकों का त्याग कर मेरे लोक में आनन्द प्राप्त करते हैं।।३८।।

हे महाभागे माधवि! हे भूमे!! जो जन शुद्ध भगवद् भक्त होते हैं, वे ही वहाँ के समस्त संसार से मुक्ति प्रदान करने वाले आश्चर्य को देखा करते हैं।।३९।।

हे भद्रे! चारों दिशाओं में वे चार धारायें गिरती रहती हैं, परन्तु वह सरोवर जल के कारण न तो बढ़ता है और न घटता ही है।।४०।।

इस तरह भाद्रपद मास के शुक्लपक्ष की द्वादशी को वहाँ कानों में सुहाने वाले गीत के शब्द सुनायी पड़ते रहते हैं।।४१।।

अस्ति सूर्पारकं नाम गुह्यं क्षेत्रं परं मम। जामदग्न्यस्य रामस्य आश्रमोऽथ भविष्यति॥४२॥
तत्र तिष्ठाम्यहं भद्रे समुद्रतटमाश्रितः। शाल्मलीं चाग्रतः कृत्वा तिष्ठामि चोत्तरामुखः॥४३॥
तत्र स्नानं तु कुर्वीत पञ्चकालोषितो नरः। ऋषिलोकं ततो गत्वा पश्यते च अरुन्धतीम्॥४४॥
अथ प्राणान् प्रमुच्येत कृत्वा कर्म सुदुष्करम्। ऋषिलोकं समुत्सृज्य मम लोकं प्रपद्यते॥४५॥
तत्राश्चर्यं महाभागे नमस्कारं तु कुर्वते। वर्षाणि द्वादशं तेन नमस्कारं कृतं भवेत्॥४६॥
तस्मिन् क्षेत्रे महाभागे पश्यन्ति परिनिष्ठिताः। पापात्मानो च पश्यन्ति मम मायाविमोहिताः॥४७॥
चतुर्विंशतिद्वादश्यां समुपायाति शाल्मली। स्थिते च तत्र मध्याह्ने यावन्न परिवर्त्तते॥४८॥
तत्र पश्यन्ति सुश्रोणि शुद्धा भागवता नराः। अन्यो न पश्यते कश्चिद् यस्य भक्तिर्न विद्यते॥४९॥
तत्राश्चर्यं महाभागे नमस्कारं तु कुर्वते। वर्षाणि द्वादशं तेन नमस्कारं कृतं भवेत्॥५०॥
तस्मिन् खेत्रे महाभागे अस्ति गुह्यं परं मम। जटाकुण्डमिति ख्यातं वायव्यां दिशि संस्थितम्॥५१॥
कुण्डं तच्च महाभागे समन्ताद् दशयोजनम्। मलयस्य दक्षिणेन समुद्रस्य च उत्तरे॥५२॥
तत्र स्नानं तु कुर्वीत पञ्चकालोषितो नरः। अगस्तिभवनं गत्वा मोदते नात्र संशयः॥५३॥

फिर मेरा एक परम गुह्य क्षेत्र सूर्पारक नामक है। वहाँ पर जमदग्नि के पुत्र परशुराम का क्षेत्र है। हे भद्रे! मैं वहाँ समुद्र तट पर उत्तराभिमुख होकर स्थित हू। तथा मेरे समक्ष शाल्मलि वृक्ष स्थित है।।४२-४३।।

इस तरह जो जन अपने पांच भोजन कालों तक उपवास कर वहाँ स्नान किया करते हैं, वे जन ऋषिलोक में जाकर अरुन्धति का दर्शन पाते हैं।।४४।।

फिर दुष्कर कर्मों को सम्पादित कर वे जन यहाँ अपना प्राण का परित्याग कर ऋषि लोक का त्याग करते हुए मेरे लोक में चले जाते हैं।।४५।।

हे महाभागे! वहाँ पर यह आश्चर्य की बात है कि जो जन वहाँ पर नमस्कार एक बार मात्र करते हैं, तो उनके द्वारा किया गया एक नमस्कार बारह वर्षों तक निरन्त किये गये नमस्कार के तुल्य होता है।।४६।।

हे महाभागे! पूर्ण निष्ठावान् जन ही उस क्षेत्र को देख पाते हैं। मेरी माया से विमोहित पापीजन उसे नहीं देख पाते। चूँकि वर्ष के चौबीस द्वादशी तिथियों के दिन के मध्याह्न काल में शाल्मलि वृक्ष पर फल लगते हैं। इस तरह मध्याह्न काल जिस काल तक रहता है, उस काल तक वे उसी प्रकार बने रहते हैं। उनमें किसी तरह का परिवर्तन नहीं होता है।।४७-४८।।

हे सुश्रोणि! शुद्ध भगवद् भक्त जन ही वहाँ पर घटित होने वाले आश्चर्य को देखा करते हैं। अन्य कोई भक्ति रहित जन उसे आश्चर्य को नहीं देख पाते हैं।।४९।।

हे महाभागे! वहाँ यह आश्चर्य है कि वहाँ एक बार जो जन नमस्कार करते हैं, तो वह नमस्कार उसका निरन्तर बारह वर्षों तक नमस्कार किए जाने के समान हो जाता है।।५०।।

हे महाभागे! उस क्षेत्र की वायव्य दिशा में जटाकुण्ड नाम से प्रसिद्ध मेरा परम गुह्य कुण्ड है। हे महाभागे! वह कुण्ड चारों ओर दस योजन तक विस्तारित है। वह मलय पर्वत के दक्षिण तथा समुद्र के उत्तर में स्थित है।।५१-५२।।

इस प्रकार जो जन पाँच आहार काल तक उपवास कर वहाँ स्नान किया करते हैं, वे जन अगस्ति लोक में पहुँच कर आनन्द पाया करते हैं। इसमें संशय नहीं है।।५३।।

अथ प्राणान् प्रमुच्येत मम चित्तसमाहितः। अगस्तिभवनं त्यक्त्वा मम लोकं तु गच्छति॥५४॥
तस्य कुण्डस्य सुश्रोणि नव धारा न किंचन। विस्तारश्च महाभागे अगाधश्च महार्णवः॥५५॥
आश्चर्यं च महत् तत्र कथ्यमानं मया शृणु। यानि पश्यन्ति सुश्रोणि समन्तादितरे जनाः॥५६॥
चतुर्विंशतिद्वादश्यां उदिते च दिवाकरे। न वर्द्धति ततश्चाम्भो यावदस्तं न गच्छति॥५७॥
जातायां च ततो रात्र्यां तस्याम्भः पृथुलोचने। प्रभातसमये यावत् समं तिष्ठति तत्पुनः॥५८॥
एतत् ते कथितं भद्रे सानन्दूरेति तन्मया। आश्चर्यं च प्रमाणं च भक्तिकीर्तिविवर्धनम्।
गुह्यानां परमं गुह्यं स्थानानां परमं महत्॥५९॥
यस्तु गच्छति सुश्रोणि अष्टभक्तपथे स्थितः। प्राप्नोति परमां सिद्धिं ममैव वचनं यथा॥६०॥
य एतत् पठते नित्यं यश्चैनं शृणुयात् सदा। कुलानि तेन तीर्णानि षट् च षट् च पुनश्च षट्॥६१॥
एतन्मरणकाले तु स्मर्तव्यं मानवैः सदा। यदीच्छेद् विष्णुलोकाय निष्कलं गमनं प्रति॥६२॥
एतत् ते कथितं भद्रे सत्यं गुह्यं परोत्तमम्। सर्वभागवतार्थाय किमन्यत् परिपृच्छसि॥६३॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे अष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥१४८॥

फिर मुझ में चित्त एकाग्र कर लगाने वाले जन यहाँ अपने प्राण को छोड़ते हैं, तो वे जन अगस्त लोक को त्याग कर मेरे लोक में पहुँच जाते हैं।।५४।।

हे सुश्रोणि! उस कुण्ड में नौ धारायें गिरा करती है। किन्तु उनसे कुण्ड में किसी प्रकार से परिवर्तन नहीं होता। हे महाभागे! वह महासागर के समान विस्तृत एवं अगाध भी है।।५५।।

इस प्रकार मेरे द्वारा आगे कहे जाने वाले वहाँ घटित आश्चर्य को सुनो हे सुश्रोणि! जिन आश्चर्यों को वहाँ चारों ओर अन्यान्य जन देखा करते हैं। प्रत्येक वर्ष के चौबीस द्वादशी तिथियों के दिन सूर्योदय के बाद वहाँ धारायें गिरने लगती हैं, फिर भी जिस समय तक सूर्यास्त नहीं होता, उस समय तक उसकी जलवृद्धि नहीं होती।।५६-५७।।

हे विशालाक्षि! फिर भी रात के समय उसका हाल प्रातःकाल पर्यन्त पुनः समान रूप से बना रता है।।५८।।

हे भद्रे! मैंने इस प्रकार तुमको सानन्दूर क्षेत्र का प्रमाण और वहाँ का आश्चर्य बतला दिया है। यह भक्ति और कीर्ति की वृद्धि करने वाला है। यह गुह्यों में परम गुह्य तथा स्थानों में परम महान् स्थान है।।५९।।

हे सुश्रोणि! जो जन आठ भोजन कालों तक मार्ग में चलते हुए यहाँ आते हैं, उसे परम सिद्धि मिलती है। जैसे मेरी वाणी से सिद्धि मिला करती है।।६०।।

जो जन नित्य इस आख्यान का पाठ करते हैं और जो इसे सदैव सुना करता है, उसके द्वारा अपने वंश की अट्ठारह पीढ़ियों को तार दी जाती है। यदि सविधि विष्णु लोक पहुँचने की कामना हो, तो मरते समय मनुष्य को सदा इस आख्यान का स्मरण करना चाहिए।।६१-६२।।

हे भद्रे! मैंने समस्त भगवद् भक्तों के कल्याण हेतु तुमको यह परम श्रेष्ठ गुह्य सत्य को बतला दिया है। अब और क्या तुम जानना चाहती हो?।।६३।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में सानन्दूर तीर्थ, विष्णु प्रतिमा, स्नानसहित मरण फल और माहात्म्य नामक एक सौ अड़तालिसवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१४८॥

एकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

अथ लोहार्गलक्षेत्रमाहात्म्यम्

सूत उवाच

एतच्छ्रुत्वा तु माहात्म्यं सानन्दूराद् वसुंधरे। कृताञ्जलिपुटा तत्र विमलेनान्तरात्मना॥१॥

धरण्युवाच

श्रुतमेतज्जगन्नाथ विष्णो गुह्यमनुत्तमम्। यच्छ्रुत्वा सुमहाभाग जाताऽस्मि विगतज्वरा॥२॥
अस्ति किञ्चिन्महद् गुह्यं हृदये परिवर्त्तते। सानन्दूरात्परं गुह्यं क्षेत्रमस्ति क्वचित्परम्॥३॥
सुरकारण नरसिंह लोकनाथ युधि ससुरासुर देव धीरवर।
कमलदलसहस्रनेत्ररूपो जयति कृतान्तमनेककालरूपः॥४॥

श्रीवराह उवाच

शृणु देवि च तत्त्वेन यन्मां त्वं परिपृच्छसि। गुह्यमन्यत्प्रयत्नेन कारणं महतः प्रियम्॥५॥
ततः सिद्धवटे भद्रे गत्वा वै त्रिंशयोजनम्। गुह्यमन्यत्प्रयत्नेन कारणं महतः प्रियम्॥६॥
ततः सिद्धवटे भद्रे गत्वा वै त्रिंशयोजनम्। म्लेच्छमध्ये वरारोहे हिमवन्तसमाश्रिते॥७॥
तत्र लोहार्गलं नाम निवासं मे विधीयते। गुह्याः पञ्चदशा यत्र समन्तात्पञ्चयोजनम्॥८॥

अध्याय–१४९

लोहार्गल क्षेत्र का माहात्म्य, नाम का कारण, उसके विविध तीर्थ

सूतजी ने कहा कि इस प्रकार सानन्दूर के माहात्म्य को सुनकर अञ्जलिबद्ध होकर पृथ्वी ने कहा—॥१॥

पृथ्वी ने कहा कि हे जगन्नाथ विष्णु! मेरे द्वारा यह श्रेष्ठ गुह्य रहस्य की बातें सुना गया, जिससे मैं इस समय सन्ताप मुक्त हो चुकी हूँ।।२।।

मेरे हृदय में बारम्बार यह बात उठा रकती है कि क्या और कोई महान् रहस्य को सकता है? क्या कहीं सानन्दूर से भी बढ़कर श्रेष्ठ कोई गुह्य स्थान है।।३।।

हे देवकारण स्वरूप! हे लोकनाथ!! हे नरसिंह!!! हे देवासुर संग्राम में श्रेष्ठ धैर्य्यशाली देव!! हे सहस्रकमलदल के समान नेत्र वाले!!! हे अनेक कृतान्तों के कालरूप!! आपकी जय हो।।४।।

इस तरह से धरणी के गद्‌गद वाणी को सुनकर सबके दुःखों को दूर करने वाले जनार्दन हरि ने मधुर वचन में यह कहा।।५।।

श्री वराह भगवान् ने कहा कि हे देवि! तुम मुझसे जो पूछती हो, उसे यथार्थ रूप से सप्रयास सुनो। यह महान् प्रेम का कारण स्वरूप अन्य गुह्य तत्त्व है।।६।।

हे सुन्दरि! हे भद्रे!! वहाँ से तीस योजन जाने पर म्लेच्छों के देश के मध्य हिमालय पर स्थित सिद्धवट में एक गुह्य स्थान है।।७।।

वहीं पर लोहार्गल नाम का मेरा स्थान है। उसके चारों ओर पांच योजन पर्यन्त पन्द्रह गुह्य स्थान हैं।।८।।

दुर्गमं दुःसहं चैव सपापैः परिवेष्टितम्। सुलभं पुण्यकर्माणां मम चिन्तानुसारिणाम्॥९॥
तत्र तिष्ठाम्यहं भद्रे उदीचीं दिशमाश्रितः। हिरण्यप्रतिमां कृत्वा जातरूपां न संशयः॥१०॥
ततो मे दानवाः सर्वे क्रमन्तो लोकमुत्तमम्। मम चैवान्तरं दत्त्वा हत्वा मायां च वैष्णवीम्॥११॥
आदित्या वसवो वायुरश्विनौ च महौजसः। सोमो बृहस्पतिश्चैव ये चान्ये वै दिवौकसः॥१२॥
तेषां चैवार्गलं दत्त्वा चक्रं गृह्य महौजसम्। शतकोटिसहस्राणि शीघ्रमेव निपातिताः॥१३॥
ततश्च देवताः सर्वास्तुष्यमाणा इतस्ततः। एवं लोहार्गलेत्यासीन्नाममेतं च कारितम्॥१४॥
ततो देवासुरे युद्धे हत्वा त्रिदशकण्टकान्। ते मां संस्थापयन्त्यत्र तस्मिन् देशे यशस्विनि॥१५॥
यो मां पश्यति सुश्रोणि प्रयत्नेन कदाचन। तेऽपि भागवता भूमे भवन्ति परिनिष्ठिताः॥१६॥
तत्र कुण्डेति सुश्रोणि स्नानं कुर्वन्ति निश्चिताः। उपोष्य च त्रिरात्रं तु विधिदृष्टेन कर्मणा।
ततः स्वर्गसहस्रेषु मोदते नात्र संशयः॥१७॥
अथात्र मुञ्चते प्राणान् स्वकर्मपरिनिष्ठितः। सर्वस्वर्गान् परित्यज्य पश्यते मम नित्यशः॥१८॥
अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि यत्र तत्परमाद्भुतम्। लोकविस्मपनार्थं तु यो मया तत्र तत्कृतः॥१९॥

वे सब स्थान पापयोनि के जीवों से समावृत दुर्गम एवं दुःसह हैं। परन्तु मेरा चिन्तन करने वाले जनों और पुण्य कर्म करने वालों के लिए वह सुलभ है।।९।।

हे भद्रे! वहाँ पर मैं उत्तर दिशा की ओर सुन्दर स्वरूप वाली स्वर्ण मूर्त्ति के आधार में स्थित हूँ। इसमें भी संशय नहीं है।।१०।।

फिर मेरी उपेक्षा कर वैष्णवी माया को परास्त कर समस्त दानवों ने मेरे उस उत्तम स्थान पर आक्रमण किया था।।११।।

वहाँ महान् ओजस्वी ब्रह्मा, रुद्र, कार्त्तिकेय, मरुद्गण, आदित्यगण, वसुगण, वायु, अश्विनी दोनों कुमारों, सोम, बृहस्पति और अन्य देवता आ गए।।१२।।

उनको अर्गला देते हुए महान् ओजपूर्ण चक्र लेकर मैंने शीघ्र ही शतकोटिसहस्र उन दानवों को मार डाला था।।१३।।

फिर देवतागण जहँ-तहाँ स्थित होकर स्तुति करते रहते हैं। अतः इस प्रकार इस स्थान का नाम लोहार्गल पड़ा था।।१४।।

हे यशस्विनि! तत्पश्चात् युद्ध में राक्षवसों को मारकर वे उस देश में मुझे स्थापित किये थे।।१५।।

हे सुश्रोणि! जो कभी वहाँ मेरा दर्शन करते हैं, वे भी निष्ठावान् भगवद् भक्त हो जाते हैं।।१६।।

हे सुश्रोणि! वहाँ एक कुण्ड है। तीन रात्रि तक उपवासपूर्वक यथाविधि कर्म द्वारा जो जन उस कुण्ड में निश्चिन्त होकर स्नान करते हैं, वे जन निःसंशय हजारों स्वर्गों में आनन्द पाने वाले होते हैं।।१७।।

पूर्ण निष्ठावान् होकर अपने कर्मों को सम्पादित करते हुए वहाँ पर अपना प्राणों का उत्सर्जन करने वाले जन समस्त स्वर्गों का त्याग कर मेरे लोक में नित्य मेरा दर्शन किया करते हैं।।१८।।

इसी तरह वहाँ का जो कुछ अन्य भी परम अद्भुत रहस्य है, उसे मैं तुमसे बतला रहा हूँ, जिसे मैंने वहाँ

चतुर्विंशतिद्वादश्यां मांसेन विधिना मम। बलिः प्रदीयते तत्र सर्वकर्मविशोधनम्॥२०॥
अश्वो मे कल्पितस्तत्र सर्वरत्नविभूषितः। श्वेतः कुमुदवर्णाभः शङ्खकुन्दसमप्रभः॥२१॥
मार्गणा मे धनुस्तत्र अक्षसूत्रं कमण्डलुम्। आसनं विततं दिव्यं दीयते चाश्व उत्तमः॥२२॥
श्वेतपर्वतमारुह्य पतमानः कुरून् बहून्। पतितास्तत्र दृश्यन्ति क्षतस्तत्र न विद्यते॥२३॥
अन्ये कान्येव रूपाणि पातयित्वा इतस्ततः। शान्तदान्तपरिक्लिष्टः स चाश्वो दिवि वर्त्तते॥२४॥

सूत उवाच

ततो भूम्या वचः श्रुत्वा ब्रह्मपुत्रो महामुनिः। विस्मयं परमं जग्मुर्विष्णुमाहात्म्यचोदितः॥२५॥
ततः सविस्मसंय गत्वा ब्रह्मपुत्रो महामतिः। सनत्कुमारो भगवान् पुनरेव प्रभाषत॥२६॥

सनत्कुमार उवाच

धन्याऽसि देवि सुश्रोणि सुपुण्याऽसि वरानने। देवि यल्लोकनाथेन दर्शनं स्पर्शनं गता॥२७॥
पद्मपत्रविशालाक्षे यत्त्वया परिपृच्छतः। तं वदस्व वरारोहे ततः शान्तिमुपैष्यति॥२८॥
यथा यथा भाषसि धर्मसंहितं गुह्यं परं देववरप्रणीतम्।
गुणोत्तमं कारणं शास्त्रसंयुतं तथा तथा भावयसे मनो मम॥२९॥

मनुष्यों को आश्चर्य चकित करने हेतु किया है। वहाँ पर प्रत्येक वर्ण की चौबीस द्वादशी तिथियों के दिन मेरी विधि से समस्त कर्मों की शुद्धि करने वाली मासबलि मुझे प्रदान की जाती है।।१९-२०।।

मेरे लिए वहाँ सभी रत्नों से सुशोभित कुमुद, शंख और कुन्द के समान श्वेत वर्ण का अश्व कल्पित किया गया है।।२१।।

मेरे धनुष, बाण, अक्षसूत्र, कमण्डलु, दिव्य विस्तृत आसन आदि से वह उत्तम अश्व सम्पन्न किया गया है।।२२।।

वह आश्व श्वेत पर्वत पर चढ़कर अनेक कुरुदेश के निवासियों के ऊपर गिरता हुआ दिखलायी पड़ा है, जिससे कुरुदेश वासी गिरे हुए दिख पड़ते हैं, किन्तु उनको किसी प्रकार की चोट नहीं पहुँचती है।।२३।।

इसी प्रकार अनेकानेक लोगों को इधर-उधर गिराकर वह शान्त दान्त और थका हुआ घोड़ा आकाश में स्थित रहता है।।२४।।

सूतजी ने कहा कि फिर भूमि की बातें सुनकर ब्रह्मा के पुत्र महामुनि सनत्कुमार विष्णु के माहातय से प्रेरित और अत्यन्त आश्चर्यान्वित हुए।।२५।।

फिर आश्चर्य सम्पन्न होकर महाबुद्धिशाली भगवान् सनत्कुमार ने पुनः कहा।।२६।।

सनत्कुमार ने कहा कि हे सुश्रोणि सुमुखि देवि! तुम धन्य हो और अत्यन्त पुण्यशीला भी हो, जिससे तुमको लोकनाथ विष्णु का दर्शन और स्पर्शन मिल सका।।२७।।

हे सुन्दरी! तुम्हारे द्वारा कमलपत्र के समान विशाल नेत्र वाले भगवान् जो कुछ पूछा था, उसे बतला दो, इससे मुझको शान्ति मिल सकेगी।।२८।।

फिर तुम जिस तिस प्रकार धर्म युक्त शास्त्र सम्मत उत्तम गुण युक्त कारण स्वरूप परम गुह्य तत्त्व का वर्णन करती हो, उतना ही मेरे मन को प्रसन्न कर दे रही है।।२९।।

ततः स पुण्डरीकाक्षः पुनराचक्षते कथम्। कर्मणा विधिदृष्टेन सर्वभागवतप्रियम्॥३०॥

सूत उवाच

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा कुमारस्य महौजसः। उवाच मधुरं वाक्यमाभाष्य ब्रह्मणः सुतम्।
श्रृणु वत्स जगन्नाथो यथा मामाह नोदितः॥३१॥

श्रीवराह उवाच

एवं तत्रैव कर्माणि क्रियन्ते विधिपूर्वकम्। शोधकानि च पापानां मृदूनि च शुभानि च॥३२॥
अश्वानां तत्कुलीनानां मां वहन्ति सुमध्यमे। नान्यं वहन्ति ते चाश्वा मम वाहा दुरत्यया:॥३३॥
कुण्डं पञ्चसरो नाम गुह्यं क्षेत्रं परं मम। धाराः पतन्ति चत्वारि शङ्खवर्णा मनोजवा:॥३४॥
तत्र स्नानं तु कुर्वीत चतुःकालसमास्थितः। लोकं चैत्राङ्गदं गत्वा गन्धर्वैः सह मोदते॥३५॥
अथ चेन्मुञ्चते प्राणांस्तस्मिन् क्षेत्रे परे मम। गन्धर्वलोकमुत्सृज्य मम लोकाय गच्छति॥३६॥
ततो नारदकुण्डेति मम क्षेत्रे परं महत्। पतन्ति धारा वै पञ्च तालवृक्षसमोपमा:॥३७॥
तत्र स्नानं तु कुर्वीत एकभक्तोषितो नरः। देवर्षिं नारदं पश्येन्मोदते तेन वै समम्॥३८॥
अथत्र मुञ्चते प्राणान् मम गुह्यविनिश्चितः। प्रमुच्य नारदं दिव्यं मम लोकं च गच्छति॥३९॥

फिर उन पुण्डरीकाक्ष ने विधि सम्मत कर्म द्वारा ज्ञात होने वाले समस्त भगवद् भक्तों के प्रिय तत्त्व को किस प्रकार बतलाया ?।।३०।।

सूत ने कहा कि ब्रह्मा के पुत्र महान् ओजवान् सनत्कुमार की इस वाणी को सुनकर धरणी ने मधुर वचन में यह कहा—।।३१।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि इस प्रकार वहाँ पर सविधि पापों को दूर करने वाले सरस शुभ कर्म किये जाते हैं।।३२।।

हे सुश्रोणि! उस कुल के ही अश्व मुझे ढोया करते हैं। वे घोड़े अन्य को नहीं ही ढोया करते हैं। मेरे वाक अत्यन्त भीषण होते हैं।।३३।

उस 'पञ्चसर' नाम का मेरा परम गुह्य क्षेत्र है। उसमें शंख वर्ण वाली मन के समान तेज वेगवती चार धारायें गिरा करती हैं।।३४।।

फिर चार योजन कालों तक संयमपूर्वक निवास करते हुए उसमें स्नान करने वाले चित्राङ्गद के लोक में पहुँचकर गन्धर्वों के साथ आनन्दित होते हैं।।३५।।

फिर यदि उस मेरे श्रेष्ठ क्षेत्र में जो जन अपना प्राण त्याग करते हैं, तो वे जन गन्धर्व लोक को छोड़कर मेरे लोक में आ जाता है।।३६।।

फिर मेरे श्रेष्ठ नारदकुण्ड क्षेत्र में तालवृक्ष के समान पाँच धारायें गिरा करती हैं। इस प्रकार एक भोजन काल पर्यन्त उपवास पूर्वक उस कुण्ड में स्नान जो जन करते हैं, वे जन देवर्षि नारद का दर्शन करउनके ही साथ आनन्द किया करते हैं।।३७-३८।।

यदि कोई जन अत्यन्त निश्चिन्त होकर मेरे उस गुह्य क्षेत्र में प्राण त्याग करते हैं, तो वे जन मेरे दिव्य लोक में जाता है।।३९।।

ततो वसिष्ठकुण्डेति तस्मिन् क्षेत्रे परं मम। धाराः पतन्ति त्रीण्यत्र नातिह्रस्वा न चोत्तमाः॥४०॥
तत्राभिषेकं कुर्वीत एकभक्तोषितो नरः। वासिष्ठं लोकमासाद्य मोदते नात्र संशयः॥४१॥
अथात्र मुञ्चते प्राणान् मम कर्मसु निष्ठितः। वासिष्ठं लोकमुत्सृज्य मम लोकं प्रपद्यते॥४२॥
पञ्चकुण्डेति विख्यातं तस्मिन् क्षेत्रे परं मम। धाराः पतन्ति पञ्चात्र हिमकूटसमन्विताः॥४३॥
तत्राभिषेकं कुर्वीत पञ्चकालोषितो नरः। स तत्र गच्छते भूमि यत्र पञ्चशिखो मुनिः॥४४॥
अथात्र मुञ्चते प्राणान् क्षेत्रे पञ्चशिखे मम। पञ्चचूडं समुत्सृज्य स याति परमां गतिम्॥४५॥
सप्तर्षिकुण्डं विख्यातं गुह्यं क्षेत्रं परं मम। सप्त गाराः पतन्त्यत्र हिमपर्वतसंश्रिताः॥४६॥
तत्राभिषेकं कुर्वीत सप्तभक्तोषितो नरः। मादते ऋषिलोकेषु ऋषिकन्याभिसंवृतः॥४७॥
अथात्र मुञ्चते प्राणान् रागलोभविवर्जितः। सप्तर्षीन् स मुसत्सृज्य मोदते मम संस्थितः॥४८॥
शरभङ्गस्य कुण्डं वै क्षेत्रे गुह्यं परे मम। तत्र धारा पतत्येका शरभङ्गाश्रिता नदी॥४९॥
स्नानं ये कुर्वते तत्र षष्ठकालोषिता नराः। मोदते शरभङ्गेशु ऋषिकन्यासमाकुले॥५०॥

फिर उसी क्षेत्र में वशिष्ठ कुण्ड नाम का मेरा श्रेष्ठ स्थान है। उसमें न अत्यन्त छोटी और न अत्यन्त बड़ी याने मध्यम श्रेणी की तीन धारायें गिरती हैं।।४०।।

इस प्रकार एक भोजन काल तक उपवास करके उस कुण्ड में स्नान जो जन किया करते हैं, वे जन वशिष्ठ लोक में पहुँचकर आनन्द करता है। इसमें संशय नहीं।।४१।।

फिर मेरे कर्म में निष्ठित जन यदि वहाँ प्राण त्याग करते हैं, तो वशिष्ठ के लोक को छोड़कर मेरे लोक में आ जाते हैं।।४२।।

इसी प्रकार से उसी क्षेत्र में पञ्चकुण्ड नाम से प्रसिद्ध मेरा एक श्रेष्ठ स्थान है। उसमें हिमालय पर्वत से निकलने वाली पाँच धारायें गिरती हैं।।४३।।

हे भूमि! इस प्रकार पांच आहार काल तक निवास करते हुए वहाँ स्नान जो जन करते हैं, वो जन वहाँ पहुंचते हैं, जहाँ पञ्चशिख मुनि रहा करते हैं।।४४।।

यदि मेरे पञ्चशिख क्षेत्र में जो जन अपना प्राण त्याग करते हैं, तो वे जन वे पञ्चचूड़ स्थान को त्याग कर परम गति को पा जाते हैं।।४५।।

फिर मेरा एक सप्तर्षि कुण्ड नाम से सुख्यात परम गुह्य क्षेत्र है। हिमालय पर स्थित सात धारायें उसमें गिरा करती हैं। सात भोजन कालों तक उपवास पूर्वक वहाँ स्नान करने वाले जन ऋषियों के लोकों में ऋषि कन्याओं से आवृत होकर आनन्द किया करते हैं।।४६-४७।।

फिर वे जन राग और लोभ से मुक्त अवस्था में वहाँ अपने प्राणों का त्याग करते हैं, तो वे जन सप्तर्षि लोकों का त्याग कर मेरे लोक में रहकर मुदित हुआ करते हैं।।४८।।

उसी क्षेत्र में मेरा गुह्य श्रेष्ठ शरभङ्गकुण्ड नाम का एक स्थान है। उसमें शरभङ्ग पर्वत पर आश्रित नदी की एक धारा गिरा करती है।।४९।।

छः भोजन कालों तक उपवास पूर्वक जो जन उसमें स्नान किया करते हैं, वे ऋषियों की कन्याओं से पूर्ण शरभङ्ग के लोक में आनन्द पाते हैं।।५०।।

अथात्र मुञ्चते प्राणान् सर्वसङ्गविवर्जितः। शरभङ्गं समुत्सृज्य मम लोके स मोदते॥५१॥
कुण्डमग्निसरं नाम सर्वमायाभिसंवृतम्। भूमिं भित्वा जलं तत्र तिष्ठते च वरानने॥५२॥
तत्र स्नानं प्रकुर्वीत षष्ठकालोषितो नरः। गत्वा चाङ्गिरसं लोकं मोदते स मया सह॥५३॥
कुण्डं बृहपतेर्भूमि सर्ववेदोदकाश्रितम्। धारा चैका पतत्यत्र हिमकूटसमाश्रिता॥५४॥
तत्र स्नानं तु कुर्वीत षष्ठकालोषितो नरः। गत्वा बृहस्पतेर्लोकं मुनिकन्याभिर्मोदते॥५५॥

अथात्र मुञ्चते प्राणान् मम लोकं समाश्रितः।
सोऽपि याति परां सिद्धिं समुत्सृज्य बृहस्पतिम्॥५६॥
वैश्वानरस्य कुण्डेति गुह्यं क्षेत्रं परं मम।
धाराश्चैकादशस्तत्र पतन्ति हिमसाह्वयात्॥५७॥

तत्राभिषेकं कुर्वीत दशरात्रोषितो नरः। स वैश्वानरलोकेषु मोदते नात्र संशयः॥५८॥
अथात्र मुञ्चते प्राणान् विंशरात्रोषितो नरः। पूज्यते मम लोकेषु एवमेतन्न संशयः॥५९॥
कार्त्तिकेयस्य कुण्डेति गुह्यं क्षेत्रं परं मम। यत्र पञ्चदशा धाराः पतन्ति हिमपर्वतात्॥६०॥

फिर सभी सङ्गदोषों से मुक्त होकर यदि वे जन यहाँ प्राण त्याग किया करते हैं, तो शरभङ्ग के स्थान को छोड़कर मेरे लोक में आनन्द पाते हैं।।५१।।

हे सुन्दरि! वहाँ सभी माया से घिरा हुआ अग्निसर नाम का एक कुण्ड है। जिसमें भूमि को फोड़कर निकला हुआ जल भरा रहता है।।५२।।

आठ भोजन कालों तक रहते हुए उस कुण्ड में जो जन स्नान करते हैं, वे जन आङ्गिरस लोक में पहुँचकर मेरे साथ आनन्द पाने वाले होते हैं।।५३।।

हे भूमि! वहीं पर एक बृहस्पति कुण्ड भी है, जिसमें समस्त वेदों के प्रभाव वाले जल विंद्यमान हैं। हिमालय पर्वत से निःसरित एक धारा उसमें गिरा करती है।।५४।।

छः योजन कालों तक वहाँ रहते हुए जो जन उस कुण्ड में स्नान करते हैं, वे जन बृहस्पति के लोक में जाकर मुनि कन्याओं के सहित आनन्द करते हैं।।५५।।

फिर यदि कोई जन यहाँ आकर अपना प्राण त्याग करते हैं, तो वे जन बृहस्पति के लोक को त्याग कर मेरे लोक में जाते हैं और उसको परमसिद्धि मिलती है।।५६।।

एक मेरा परम गुह्य क्षेत्र वैश्वानर कुण्ड के नाम से स्थित है, उसमें हिमालय पर्वत से ग्यारह धारायें आकर गिरा करती हैं।।५७।।

दस रातों तक निवास करते हुए उसमें स्नान जो जन कर लेते हैं, वे जन वैश्वानर लोक में ाकर आनन्द करते हैं। इसमें संशय नहीं।।५८।।

इस प्रकार बीस रात्रियों तक यहाँ रते हुए कोई जन अपना प्राण त्याग करते हैं, तो वे जन निःसंशय मेरे लोक में पूजित होते हैं।।५९।।

कार्त्तिकेय कुण्ड नाम का मेरा परम गुह्य एक क्षेत्र है, जिसमें हिमालय पर्वत से पन्द्रह धारायें आकर गिरा करती हैं।।६०।।

तत्र स्नानं प्रकुर्वीत षष्ठकालोषितो नरः। कुमारं पश्यते व्यक्तं षण्मुखं शुभदर्शनम्॥६१॥
अथात्र मुञ्चते प्राणान् कृत्वा चान्द्रायणं शुचिः। कार्त्तिकेयं समुत्सृज्य मोदते मम मण्डले॥६२॥
उमाकुण्डेति विख्यातं तस्मिन् क्षेत्रे परं मम। सा गौरी यत्र चोत्पन्ना सर्वदेववराङ्गना॥६३॥
तत्र स्नानं तु कुर्वीत दशरात्रोषितो नरः। गौरीं च पश्यते देवीं तस्या लोके च मोदते॥६४॥
अथ प्राणान् प्रमुच्येत दशरात्रोषितो नरः। उमालोकं समुत्सृज्य मम लोकं स गच्छति॥६५॥
महेश्वरस्य कुण्डेति यत्र चोद्वाहिता उमा। कादम्बचक्रवाकैश्च हंससारससेवितम्॥६६॥
तिस्रो धाराः पतन्त्यत्र हिमपर्वतसंश्रिताः। स्थूलाश्च रमणीयाश्च न ह्रस्वा विमलास्तथा॥६७॥
तत्र स्नानं तु कुर्वीत द्वादशाहोषितो नरः। मोदते रुद्रलोकेषु रुद्रकन्याभिरावृतः॥६८॥
अथात्र मुञ्चते प्रणान् कृत्वा कर्म सुदुष्करम्। स रुद्रलोकमुत्सृज्य मम लोकाय गच्छति॥६९॥
प्रख्यातं ब्रह्मकुण्डेति वेदा यत्र समुत्थिताः। चतुरो वेदधारास्ताः पतन्ति हिमसाह्वयात्॥७०॥
ततः पूर्वेण पार्श्वेन सामधारा पतेत् ततः। उच्चा च रमणीया च पाण्डुरा विमलोदका॥७१॥

इस प्रकार छः भोजन कालों तक यहाँ रहते हुए उसमें स्नान जो कोई जन करते हैं, वे जन निःसंशय षडानन कुमार कार्त्तिकेय का दर्शन पा जाते हैं।।६१।।

फिर चान्द्रायण व्रत करके यदि शुद्ध और पवित्र होकर जो यहाँ अपना प्राण का परित्याग करते हैं, तो वे उसके बाद कार्त्तिकेय के स्थान को छोड़कर मेरे मण्डल में आकर निवास करने लगते हैं।।६२।।

फिर उसी क्षेत्र में 'उमाकुण्ड' नाम से प्रसिद्ध मेरा श्रेष्ठ स्थान है। वहाँ समस्त देवताओं की स्त्रियों में श्रेष्ठ वे उमा देवी उत्पन्न हुयी थीं।।६३।।

दस रातों तक रहते हुए वहाँ स्नान करने पर व्यक्ति गौरीजी का दर्शन करते हैं। और उनके लोक में आनन्द किया करते हैं।।६४।।

फिर दस रातों तक निवास करते हुए जो जन वहाँ अपना प्राण विसर्जित करते हैं, तो वे जन उमालोक को भी छोड़कर मेरे लोक में जाते हैं।।६५।।

फिर महेश्वर कुण्ड नाम का मेरा स्थान है। जहाँ पर उमा का विवाह सम्पन्न हुआ था। वह स्थान कदम्ब वृक्षों के समूह, चक्रवाक, हंस और सारसों से युक्त है।।६६।।

इस प्रकार हिमालय पर्वत पर संचित, भोरी, मनोहर, ह्रस्व और विमल तीन धारायें उसमें गिरा करती हैं फिर बारह दिन तक निवास करते हुए वहाँ स्नान कने वाले जन रुद्र कन्याओं से घिरे हुए होकर रुद्र लोक में आनन्द किया करते हैं।।६७-६८।।

यदि अत्यन्त दुष्कर कर्म करते हुए जो जन वहाँ अपना प्राण परित्याग करते हैं,तो रुद्रलोक को छोड़कर वे मेरे लोक में चले जाते हैं।।६९।।

ब्रह्मकुण्ड नाम से प्रसिद्ध एक स्थान है, जहाँ वेद उत्पन्न हुए थे। हिमशिखर से उसमें चार वेद के समान शुद्ध धारायें गिरा करती हैं।।७०।।

वहाँ पर पूर्व दिशा की ओर मनोहर, पाण्डुर वर्ण की स्वच्छ जल वाली सामवेद नाम की धारा गिरा करती है।।७१।।

पुनश्चोरुरपार्श्वेन सुवर्णसदृशोपमा। ऋग्वेद पतते धारा प्रसन्नविमलोदका॥७२॥
अथ पश्चिमपार्श्वेन यजुर्वेदेन मण्डिता। अथ दक्षिणपार्श्वेन अथर्वणसमन्विता॥७३॥
एका धारा पतत्यत्र इन्द्रगोपकसन्निभा। यस्तत्र कुरुते स्नानं सप्तरात्रोषितो नरः।
ब्रह्मलोकं समासाद्य ब्रह्मणा सह मोदते॥७४॥
अथात्र मुञ्चते प्राणान् अहंकारविवर्जितः। ब्रह्मलोकं परित्यज्य मम लोकं प्रपद्यते॥७५॥
गुह्याख्याने महाभागे क्षेत्रे लोहार्गले मम। सिद्धिकामेन मर्त्येन गन्तव्यं नात्र संशयः॥७६॥
समन्तात् पञ्चविंशत्तु योजनानि वरानने। न तस्य कर्म विद्येत स एव मयि संस्थितः॥७७॥
आख्यानानां महाख्यानं धर्माणं धर्ममुत्तमम्। पवित्राणां पवित्रं तु न देयं यस्य कस्य चित्॥७८॥
ये पठन्ति महाभागे शृण्वन्ति मत्पथे स्थिताः। कुलानि तारितास्तैस्तु उभयोरपि विंशतिः॥७९॥
एतन्मरणकाले तु न कदाचित् तु विस्मरेत्। यदीच्छेत् परमां सिद्धिं सर्वसंसारमोक्षणम्॥८०॥
एतत् ते कथितं भद्रे लोहार्गलनिवासिने। माहात्म्यं पद्मपत्राक्षि गुह्यं यं च महौजसम्।
मङ्गल्यं च पवित्रं च मम भक्तसुखावहम्॥८१॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे एकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः॥१५१॥

पुनः उत्तर दिशा के पार्श्व में स्वर्ण के समान जल की ऋग्वेदीय नाम की धारा गिरा करती है। फिर पश्चिम दिशा की पार्श्व में युजर्वेद नाम की धारा से सुशोभित है तथा दक्षिण दिशा के पार्श्व आथर्वण नाम की धारा से समायुक्त है।।७२-७३।।

फिर वहाँ इन्द्रगोप मणि के समान एक धारा गिरती है। सात रातों तक निवास करते हुए जो जन वहाँ स्नान करते हैं वे ब्रह्मलोक में जाकर ब्रह्मा के साथ आनन्द करते हैं। फिर अहंकार से मुक्त होकर यहाँ प्राण का उत्सर्जन करने पर व्यक्ति ब्रह्मलोक को भी छोड़कर मेरे लोक में चले जाते हैं।।७४-७५।।

हे महाभागे! इस लोहार्गल नाम के मेरे गुह्य क्षेत्र में सिद्धि पाने की कामना वाले जनों को अवश्य जाना चाहिए। इसमें संशय नहीं करना चाहिए।।७६।।

हे सुन्दरि! वहाँ चतुर्दिक् पचीस योजन के क्षेत्र में जो जन जाते या मरते हैं, उसका कर्म शेष नहीं रह जाते। वे सब मुझ में स्थित हो जाते हैं।।७७।।

यह आख्यान समस्त आख्यानों में श्रेष्ठ आख्यान, धर्मों में श्रेष्ठ धर्म और पवित्रताओं में परम पवित्र है। इसे जिस किसी को नहीं बताना चाहिए। इस प्रकार मेरे मार्ग में स्थित हुए जो जन इसको पढ़ते और सुनते हैं, उन ही तरह के जनों के कुल की बीस पीढ़िया तर जाया करती हैं। यदि किसी को परम सिद्धि पाने की कामना हो, तो समस्त संसार से मुक्त करने वाले इस आख्यान का मरने के समय कभी भी नहीं भूलना चाहिए।।७८-८०।।

हे भद्रे! हे पद्माक्षि!! मेरे द्वारा तुमको लोहार्गल क्षेत्र में निवास करने का माहात्म्य तथा मेरे भक्तों को सुख प्रदान करने वाले अत्यन्त ओजस्वी, पवित्र और कल्याणकारक गुह्य रहस्य बतला दिया है।।८१।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में लोहार्गल क्षेत्र का माहात्म्य, नाम का कारण, उसके विविध तीर्थ नामक एक सौ उनचासवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुल-भूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१४९॥

पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

अथ मथुरामाहात्म्यनिरूपणम्

सूत उवाच

श्रुत्वा देवस्य माहात्म्यं लोहार्गलनिवासिनः। त्रैलोक्यनाथाधिपतेर्विस्मयं परमं गता॥१॥

धरण्युवाच

पद्मपत्रविशालाक्ष लोकनाथ जगत्पते। त्वत्प्रसादाच्च देवेश श्रुतं शास्त्रं महोदयम्॥२॥
तव शिष्या च दासी च त्वामहं शरणं गता। जगद्धातर्जगद्योने जगत्प्रभुरतन्द्रितः॥३॥
तव संभावनाद् देव जाताऽस्मि कनकोज्ज्वला।
अलंकृता च शस्ता च सर्वशास्त्रेण मानद॥४॥
जगद्धातुर्जगच्छास्त्रकृतेनाथ परिश्रमः। त्वदायत्तं जगत्सर्वं यच्च किंचित् प्रवर्त्तते॥५॥
इति मत्वा च मे देव साह्लादो हृदि वर्त्तसे। लोहार्गलात् परं श्रेष्ठं गुह्यं परमदुर्लभम्॥६॥
तीर्थं तद् वद कल्याणं तीर्थानामुत्तमोत्तमम्। यदस्ति दुर्लभं तीर्थं तत् त्वं कथय मे प्रभो॥७॥

अध्याय–१५०

मथुरा-माहात्म्य में विश्रान्ति, प्रयाग आदि तीर्थ प्रशंसा क्रम में तिन्दुक क्षेत्र प्रशंसा, नापितोपाख्यान

सूतजी ने कहा कि त्रैलोक्यनाथाधिपति लोहार्गल निवासी देव का इस प्रकार माहात्म्य सुनकर धरणी अत्यन्त विस्मय को प्राप्त हो गई।।१।।

धरणी ने कहा कि हे पद्मपत्रविशालाक्ष लोकनाथ जगत्पते! हे देवेश!! आपकी कृपा सेमेरे द्वारा अत्यन्त श्रेष्ठ शास्त्रीय बातें सुना गया।।२।।

हे जगत को धारण करने वाले तन्द्रारहित एवं संसार के मूल कारण स्वरूप जगत् के स्वामी! मैं आपकी शिष्या, दासी तथा आपकी शरणागता हूँ।।३।।

हे मानप्रदाता देव! आपके अनुग्रह से ही मैं स्वर्णवर्ण वाली, समस्त शास्त्रों से अलंकृत तथा पवित्र हो गई हूँ।।४।।

हे नाथ जगत् के नियमन के लिए ही जगत् के विधाता स्वरूप आपका परिश्रम है। समस्त जगत् में जो कुछ भी प्रवृत्त है, वे सब आपके ही अधीन है।।५।।

हे देव! इस प्रकार समझने पर मेरे हृदय में आनन्द होता है। क्या लोहार्गल से भी कोई उत्तम, श्रेष्ठ, परम दुर्लभ और गुह्य स्थान है?।।६।।

हे प्रभो! यदि उत्तम तीर्थों में श्रेष्ठ कोई अन्य कल्याणमय दुर्लभ तीर्थ हो, तो उसे आप मुझे बतलाने की कृपा करें।।७।।

श्रीवराह उवाच

न विद्यते च पाताले नान्तरिक्षे न मानुषे। समत्वं मथुराय हि प्रियं मम वसुंधरे॥८॥

सूत उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य प्रणम्य शिरसा तदा। पुण्यानां परमं पुण्यं पृथ्वी वचनमब्रवीत्॥९॥

पृथिव्युवाच

पुष्करं नैमिषं चैव पुरीं वाराणसीं तथा। एतान् हित्वा महाभाग मथुरां किं प्रशंससि॥१०॥

श्रीवराह उवाच

श्रृणु कात्स्न्र्येन वसुधे कथ्यमानं मयाऽनघे। मथुरेति च विख्यातमस्ति क्षेत्रं परं मम।
सुरम्या च सुशस्ता च जन्मभूमिः प्रिया मम॥११॥

श्रृणु देवि यथा स्तौमि मथुरां पापहारिणीम्। तत्र वासी नरो याति मोक्षं नास्त्यत्र संशयः॥१२॥
महामाघ्यां प्रयागे तु यत्फलं लभते नरः। तत्फलं लभते देवि मथुरायां दिने दिने॥१३॥
सन्निहत्यां च यत्पुण्यं राहुग्रस्ते दिवाकरे। तत्फलं लभते देवि मथुरायां दिने दिने॥१४॥
पूर्णे वर्षसहस्त्रे तु वाराणस्यां तु यत्फलम्। तत्फलं लभते देवि मथुरायां क्षणेन हि॥१५॥
कार्तिक्यां चैव यत्पुण्यं पुष्करे तु वसुंधरे। तत्फलं लभते देवि मथुरायां दिने दिने॥१६॥

श्री भगवान् वराह ने कहा कि हे वसुन्धरे! मनुष्य लोक, अन्तरिक्ष अथवा पाताल में मथुरा के सदृश प्रिय अन्य कोई भी तीर्थ नहीं है।।८।।

सूत ने कहा कि फिर उन देव की बातों को सुनकर धरणी ने उन्हें शिर से प्रणाम कर पवित्रों में परम पवित्र वाणी में कहा।।९।।

धरणी ने पूछा कि हे महाभाग! पुष्कर क्षेत्र, नैमिष और वाराणसीपुरी, इन सबको छोड़कर आप मथुरा की ही प्रशंसा क्यों कर रहे हैं।।१०।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि हे निष्पाप धरणि! मैं पूर्णता से तुम्हें बतलाने जा रहा हूँ, उसे सुनो। मथुरा नाम से प्रसिद्ध मेरा श्रेष्ठ श्रेत्र है। वह मेरी मनोहर प्रिय और प्रशस्त जन्म भूमि भी है।।११।।

हे देवि! मैं पापहारिणी मथुरा की स्तुति क्यों करता हूँ, उसे सुनो। वहाँ के निवासी जन को निःसंशय मोक्ष की प्राप्ति हुआ करती है।।१२।।

हे देवि! कोई जन माघमास की अमावस तिथि को प्रयाग में जो फल पाया करते हैं, वे ही फल मथुरा में प्रतिदिन प्राप्त हो जाया करते हैं।।१३।।

हे देवि! राहु द्वारा सूर्य के ग्रस्त काल में सन्निहति याने कुरुक्षेत्र में जो पुण्य प्राप्त हुआ करते हैं, मथुरा में वे फल नित्य प्राप्त हुआ करते हैं।।१४।।

देवि! वाराणसी में एक हजार वर्ष पूरा होने पर जो फल मिलते हैं, वे फल मथुरा में एक क्षण में ही मिल जाया करते हैं।।१५।।

हे देवि! हे वसुन्धरे!! पुष्कर तीर्थ में भी कार्त्तिक मास में जो पुण्य होता है, वे फल मथुरा में नित्य ही प्राप्त हुआ करते हैं।।१६।।

मथुरां तु परित्यज्य योऽन्यत्र कुरुते रतिम्। मूढो भ्रमति संसारे मोहितो मम मायया॥१७॥
यः श्रृणोति वरारोहे माथुरं मम मण्डलम्। अन्येनोच्चारितं शश्वत् सोऽपि पापैः प्रमुच्यते॥१८॥
पृथिव्यां यानि तीर्थानि आसमुद्रसरांसि च। मथुरायां गमिष्यन्ति सुप्ते चैव जनार्दने॥१९॥
मथुरामण्डलं प्राप्य श्राद्धं कृत्वा यथाविधि। तृप्तिं यान्तीह पितरो यावत् स्थित्यग्रजन्मनः॥२०॥
ये वसन्ति महाभागे मथुरामितरे जनाः। तेऽपि यान्ति परां सिद्धिं मत्प्रसादान्न संशयः॥२१॥
कुब्जाम्रके सौकरके मथुरायां विशेषतः। विना सांख्येन योगेन मुच्यते नात्र संशयः॥२२॥
मथुरायां महापुर्यां ये वसन्ति शुचिव्रताः। बलिभिक्षाप्रदातारो देवास्ते नरविग्रहाः॥२३॥
भविष्यामि वरारोहे द्वापरे युगसंस्थिते। ययातिभूपवंशे च क्षत्रियः कुलवर्द्धनः॥२४॥
भविष्यामि वरारोहे मथुरायां न संशयः। मूर्त्तिं चतुर्विधां कृत्वा स्थास्यामिति तथा ततः।
स्थास्यामि वत्सरशतं युद्धेषु कृतनिश्चयः॥२५॥
एका चन्दनसङ्काशा द्वितीया कनकप्रभा। अशोकसदृशा चान्या अन्या चोत्पलसन्निभा॥२६॥
तत्र गुह्यानि नामानि भविष्यन्ति मम प्रिये। पुण्यानि च पवित्राणि संसारच्छेदानानि च॥२७॥

अतः मथुरा को त्याग कर जो जन अन्यत्र विचरण करते हैं, वे जन मूढ़ हैं और मेरी माया से विमोहित होकर संसार में भटकते रहते हैं।।१७।।

हे सुन्दरि! जो जन दूसरों के द्वारा उच्चारित मेरे मथुरा मण्डल का वर्णन भी सुनता है, वे जन भी सदा पापों से रहित हो जाया करते हैं।।१८।।

इस भूमि पर समुद्र से सरोवरों तक तिने तीर्थ हैं, वे जनार्दन के शयन करने पर मथुरा में ही जाया करते हैं।।१९।।

मथुरा मण्डल में पहुँचकर सविधि श्राद्ध करने पर मनुष्यों के पितृगण ब्रह्मा की आयु पर्यन्त तृप्त रहा करते हैं।।२०।।

हे महाभागे! मथुरा में जो कोई इतर जन याने चाण्डाल जन भी रहा करते हैं, वो भी मेरी कृपा से निःसंशय परम सिद्धि पा जायाकरते हैं।।२१।।

कुब्जाम्रक, सौकरक और विशेषता से मथुरा में विना सांख्य और योग के ही निःसंशय मनुष्य मुक्ति को प्राप्त कर लेते हैं।।२२।।

पवत्रि व्रत धारण करने वाले जो जन महापुरी मथुरा में निवास करते हैं, और बलिभिक्षा प्रदान किया करते हैं, वे जन शरीर धारण करने वाले देवता हुआ करते हैं।।२३।।

हे सुन्दरि! द्वापर युग के आ जाने पर मैं राजा ययाति के वंश में कुलवृद्धि करने वाले क्षत्रिय होऊँगा।।२४।।

हे सुन्दरि! मैं निःसन्देह मथुरा में जन्म ले सकूँगा और वहाँ पर चार प्रकार की मूर्त्ति धारण कर स्थित होऊँगा।।२५।।

मेरी एक मूर्त्ति चन्दन के समान, ऊँची स्वर्ण वर्ण की, अन्य एक अशोक के समान तथा दूसरी एक उत्पल के समान रहेगी।।२६।।

हे प्रिये! वहाँ संसार के कर्म बन्धनों को काटने वाले मेरे गुह्य, पवित्र और पुण्य नाम की प्रसिद्ध हो सकेंगे।।२७।।

अत्राहं घातयिष्यामि द्वात्रिंशति वसुंधरे। दैत्यान् घोरान् महाभागे कंसादीन् घोरदर्शनान्॥२८॥
यमुना यत्र सुवहा नित्यं सन्निहिता ध्रुवम्। वैवस्वतस्वसा रम्या यमुना यत्र विश्रुता॥२९॥
तां नदीं यमुनां गङ्गा प्रयागे सङ्गमिश्रिता। गङ्गाशतगुणा पुण्या माथुरे मम मण्डले।
यमुना विश्रुता देवि नात्र कार्या विचारणा॥३०॥
तत्र तीर्थानि गुह्यानि भविष्यन्ति ममानघे। एषु स्नातो नरो देवि मम लोके महीयते॥३१॥
अथात्र मुञ्चते प्राणान् मम कर्मपरायणः। न जायते स मर्त्त्येषु जायते च चतुर्भुजः॥३२॥
अविमुक्ते नरः स्नातो मुक्तिं प्राप्नोत्यसंशयम्। तत्राथ मुञ्चते प्राणान् मम लोकं स गच्छति॥३३॥
विश्रान्तिसंज्ञकं नाम तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्। यस्मिन् स्नातो नरो देवि मम लोके महीयते॥३४॥
सर्वतीर्थेषु यत्सननं सर्वतीर्थेषु यत्फलम्। तत्फलं लभते देवि दृष्ट्व देवं गतश्रमम्॥३५॥
न च यज्ञैर्न तपसा न ध्यानैर्न च संयमैः। तत्फलं लभते देवि स्नातो विश्रान्तिसंज्ञके॥३६॥
कालत्रयं तु वसुधे यः पश्यति गतश्रमम्। कृत्वा प्रदक्षिणे द्वे तु विष्णुलोकं स गच्छति॥३७॥
अस्ति चान्यत्परं गुह्यं सर्वसंसारमोक्षणम्। यस्मिन् स्नातो नरो देवि मम लोके महीयते॥३८॥

हे महाभागे भूमे! मैं वहाँ भयंकर दिखने वाले बाइस घोर कंस आदि दैत्यों का संहार कर सकूँगा।।२८।।

जहाँ निश्चित रूप से सुन्दर प्रवाह वाली वैवस्वत मनु की बहन रमणीय और प्रसिद्ध यमुना नदी सदा स्थित रहती रह सकेंगी।।२९।।

फिर गङ्गा प्रयाग में उस यमुना नदी के साथ मिला करती है। मेरे मथुरा मण्डल में यमुना गङ्गा से सौ गुना अधिक पवित्र है। हे देवि! यमुना इस प्रकार प्रसिद्ध है। इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं है।।३०।।

हे निष्पाप! वहाँ मेरे गुह्य तीर्थ होंगे। हे देवि! जिन तीर्थों में स्नान करने से मनुष्य मेरे लोक में पूज्यमान होता है।।३१।।

फिर मेरा कर्म करने वाले वे जन, जो यहाँ प्राण त्याग करते हैं, वे जन मनुष्य योनि में पुनर्जन्म नहीं लेते हैं ओर वह चतुर्भुज हो जाते हैं।।३२।।

अविमुक्त क्षेत्र में स्नान करने वाले जन निःसंशय मुक्त हो जाते हैं और यहाँ प्राण त्याग कर वह मेरे लोक में जाता है।।३३।।

हे देवि! विश्रान्ति नाम के तीर्थ तीनों लोकों में प्रसिद्ध हैं, जहाँ स्नान करने वाले जन मेरे लोक में पूज्यमान होते हैं।।३४।।

हे देवि! सभी तीर्थों में स्नान करने का जैसा फल मिलता है, वैसा ही फल वहाँ स्थित गतश्रम देव का दर्शन करने से प्राप्त होता है।।३५।।

हे देवि! विश्रान्ति नाम के तीर्थ में स्नान करने वाले जनों को जो फल मिलता है, वह फल यज्ञ, तप, ध्यान और संयम से भी नहीं मल पाता है।।३६।।

हे वसुधे! तीन कालों में जो जन दो प्रदक्षिणा करते हुए गतश्रम होकर देव का दर्शन करते हैं, वे जन विष्णु के लोक में चला जाता है।।३७।।

हे देवि! समस्त संसार से मुक्ति प्रदान करने वाला अन्य भी श्रेष्ठ गुह्य तीर्थ है, जिसमें स्नान करने वाले जन मेरे लोक में पूज्यमान होते हैं।।३८।।

प्रयागं नाम तीर्थं तु देवानामपि दुर्लभम्। यस्मिन् स्नातो नरो देवि अग्निष्टोमफलं लभेत्॥३९॥
इन्द्रलोकं समासाद्य नरोऽसौ देवि मोदते। अथात्र मुञ्चते प्राणान् मम लोकं स गच्छति॥४०॥
तथा कनखलं तीर्थं परं प्रियतरं मम। स्नानमात्रेण तत्रापि नाकपृष्ठे स मोदते॥४१॥
अस्ति क्षेत्रं परं गुह्यं तिन्दुकं नाम नामतः। तस्मिन् स्नातो नरो देवि मम लोके महीयते।
अस्मिंस्तीर्थे पुरा वृत्तं तच्छृणुष्व वसुंधरे॥४२॥
पाञ्चालविषये देवि काम्पिल्यं च पुरोत्तमम्। धनधायसमायुक्तं ब्रह्मदत्तेन पालितम्॥४३॥
तस्मिंस्तु वसतस्तस्य नापितस्य पुरोत्तमे। कालेन महता तस्य कुटुम्बं क्षयमागतम्॥४४॥
क्षीणे कुटुम्बे तु तदा सुभृशं दुःखपीडितः। सर्वसङ्गपरित्यागी सोऽगच्छन्मथुरां पुरीम्॥४५॥
ब्राह्मणावसथे सोऽपि वसमानो वसुंधरे। तस्य कर्मशतं कृत्वा स्नात्वैव यमुनां नदीम्।
तत्र स्नानं च कुरुते नित्यकालं दृढव्रतः॥४६॥
ततः कालेन महता पञ्चत्वं समुपागतः। तस्य तीर्थप्रभावेन जातोऽसौ ब्राह्मणोत्तमः॥४७॥
तस्मिन् वरगृहे देवि ब्राह्मणो योगिनां वरः। जातिस्मरो महाप्राज्ञो विष्णुभक्तो वसुंधरे।
तस्य तीर्थप्रभावेन प्राप्ता मुक्तिः सुदुर्लभा॥४८॥

हे देवि! देवताओं के लिए भी दुर्लभ एक प्रयाग नाम का तीर्थ है, जहाँ स्नान करने वाले जन अग्निष्टोम के जैसा फल प्राप्त करते हैं।।३९।।

हे देवि! वे जन इन्द्रलोक में पहुँच कर आनन्द पाते हैं और फिर यहाँ प्राण का त्याग करने पर मेरे लोक में आनन्दित होते हैं।।४०।।

वैसे श्रेष्ठ कनखल तीर्थ मुझे अत्यन्त प्रिय है। वहाँ भी स्नान करने वाले जन स्वर्ग में आनन्द प्राप्त करते हैं।।४१।।

हे देवि! तिन्दुक नाम के मेरा एक परम गुह्य स्थान है, जहाँ स्नान करने वाले जन मेरे लोक में पहुँचकर सम्मान प्राप्त करते हैं। हे वसुन्धरे! इस तीर्थ में घटित पुरातन कालीन घटनाओं को सुनो।।४२।।

हे देवि! किसी समय ब्रह्मदत्त द्वारा पालित, धन और धान्य से सुसम्पन्न काम्पिलय नाम से एक श्रेष्ठ प्रसिद्ध नगर पाञ्चाल नाम के देश में स्थित था। हे देवि! वहाँ तिन्दुक नाम के नापित का सब कुटुम्ब विनष्ट हो गया।।४४।।

अपने कुटुम्बियों के नाश पर अत्यन्त दुःख से पीड़ा युक्त होकर सभी सङ्गों को छोड़कर वह तिन्दुक मथुरापुरी को चला गया।।४५।।

हे वसुन्धरे! वहाँ पर एक ब्राह्मण के गृह में निवास करते हुए उसका सारा कार्य सम्पन्न करने के बाद दृढ़व्रत वाला वह नापित तिन्दुक वहीं नित्य यमुना में नहाया करता था।।४६।।

फिर दीर्घकाल के पश्चात् वह तिन्दुक मृत्यु को प्राप्त होकर दूसरे जन्म में उस तीर्थ के प्रभाव वश एक श्रेष्ठ ब्राह्मण हुआ।।४७।।

हे वसुन्धरे! देवि! वह श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न हुआ ब्राह्मण योगियों में भी श्रेष्ठ, अपने पूर्व-पूर्व जन्म के वृत्तान्त को स्मरण करने वाला, महान् बुद्धिमान् और परम विष्णु भक्त हुआ। चूँकि उसे उस तीर्थ के प्रभाववश अत्यन्त दुर्लभ मुक्ति मिली थी।।४८।।

वैरोचनेन बलिना सूर्यस्त्वाराधितः पुरा। भ्रष्टराज्येन बलिना धनकामेन वै पुरा॥४९॥
ऊद्‌र्ध्वबाहुर्निराहारस्तप्तवानुत्तमं तपः। साग्रं संवत्सरं देवि ततः काममवाप्नुयात्॥५०॥
तस्य प्रसन्नो भगवान् द्युमणिः प्रत्यभाषत। किं कारणं बले ब्रूहि तपस्यसि महत् तपः॥५१॥

बलिरुवाच

भ्रष्टराज्योऽस्मि देवेश पाताले निवसाम्यहम्। वित्तेनापि विहीनस्य कुटुम्बभरणं कुतः॥५२॥
मुकुटात् तस्य वै सूर्यो ददौ चिन्तामणिं ततः। चिन्तामणिं तु संप्राप्य पातालमगमत् तदा॥५३॥
तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नातः सर्वपापैः प्रमुच्यते। तत्राथ मुञ्चते प्राणान् मम लोकं स गच्छति॥५४॥
आदित्येऽहनि संक्रान्तौ ग्रहणे चन्द्रसूर्ययौः। तस्मिन् स्नातो नरो देवि राजसूयफलं लभेत्॥५५॥
यत्र ध्रुवेण संतप्तमिच्छया परमं तपः। तत्र वै स्नानमात्रेण ध्रुवलोके महीयते।
तत्राथ मुञ्चते प्राणान् मम लोके महीयते॥५६॥
ध्रुवतीर्थे तु वसुधे यः श्राद्धं कुरुते नरः। पितॄंस्तारयते सर्वान् पितृपक्षे विशेषतः॥५७॥
दक्षिणे ध्रुवतीर्थस्य तीर्थराजं प्रकीर्तितम्। तस्मिन् स्नातो नरो देवि मम लोके महीयते॥५८॥

एतदनन्तर सभी पापों को विनष्ट करने वाला श्रेष्ठ एक सूर्य तीर्थ है। पुरातन काल में अपने राज्य के नाश होने पर विरोचन पुत्र बलि के धन की जिगुप्सा से वहाँ सूर्य की उपासना की थी।।४९।।

हे देवि! अपने दोनों भुजाओं को उठाये हुए निराहार-निरान्न रहकर उन्होंने कई वर्षों तक तपस्या की। फिर जाकर उसकी कामना पूर्ण हो सकी थी।।५०।।

उस समय उसके ऊपर प्रसन्न होकर सूर्यनारायण देव ने कहा कि हे बलि! कहो किस प्रयोजन वश तुम महान् तप करने में लीन हो।।५१।।

बलि ने कहा कि हे देवेश राज्यच्युत हुआ मैं पाताल में रहने को बाध्य हूँ। धन-सम्पत्ति से भी बहिष्कृत होने से मेरे कुटुम्ब का भरण-पोषण भी कठिन है।।५२।।

तत्पश्चात् सूर्य देव ने अपने मुकुट से चिन्तामणि उसे दे दिया। फिर वह पाताल की ओर वापस चला गया।।५३।।

इस प्रकार उन तीर्थों में स्नान जो जन करते हैं, वे जन समस्त पापों से विरहित हो जाता है तथा वहाँ पर अपने प्राणों का विसर्जन करने वाले जन मेरे लोक में चले जाते हैं।।५४।।

हे देवि! सङ्क्रान्ति, रविवार, ग्रहण (सूर्य या चन्द्र) के दिन वहाँ स्नान करने वाले जन राजसूय यज्ञ करने का फल प्राप्त करते हैं।।५५।।

किसी समय ध्रुव ने वहाँ कामना सहित परम तप किया था, वहाँ पर स्नान करने वाले जन भी ध्रुव लोक में सम्मान पा जाते हैं। फिर वहाँ प्राण त्याग करने वाले जानों को मेरे लोक में सम्मान प्राप्त होता है।।५६।।

हे वसुधे! जो जन ध्रुवतीर्थ मं विशेषतापूर्वक पितृपक्ष के काल में श्राद्ध करते हैं, तो वे सब पितरों को तार दिया करते हैं।।५७।।

उन ध्रुव तीर्थ के दक्षिण की दिशा में 'तीर्थराज' स्थित है, ऐसी मान्यता है। हे देवि! अतः वहाँ स्नान करने वाले जन मेरे लोक में पूज्यमान होते हैं।।५८।।

तद्दक्षिणे महादेवि ऋषितीर्थं परं मम। तत्र स्नातो नरो देवि ऋषिलोकं प्रपद्यते।
तत्राथ मुञ्चते प्राणान् मम लोकं स गच्छति॥५९॥
दक्षिणे ऋषितीर्थस्य मोक्षतीर्थं वसुंधरे। स्नानमात्रेण वसुधे मोक्षं प्राप्नोति मानवः।
तत्राथ मुञ्चते प्राणान् म लोके महीयते॥६०॥
तत्रैव कोटितीर्थं हि देवानामपि दुर्लभम्। तत्र स्नानेन दानेन मम लोके महीयते॥६१॥
कोटितीर्थे नरः स्नातो दानं दत्त्वा तु शक्तितः। तारिताः पितरस्तेन तथैव प्रपितामहाः।
कोटितीर्थे नरः स्नात्वा ब्रह्मलोके महीयते॥६२॥
तत्रैव बोधितीर्थं तु पितॄणामपि दुर्लभम्। पिण्डं दत्त्वा तु वसुधे पितृलोकं स गच्छति॥६३॥
गयापिण्डप्रदानेन यत्फलं लभते नरः। तत्फलं लभते देवि ज्येष्ठे बोध्यां न संशयः॥६४॥
द्वादर्शतानि तीर्थानि देवानां दुर्लभानि च। स्नानं दानं जपं होमं सहस्रगुणितं भवेत्॥६५॥
एषां स्मरणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते। श्रुत्वा तीर्थस्य माहात्म्यं सर्वान् कामानवाप्नुयात्॥६६॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः॥१५०॥

हे महादेवि! उसी की दक्षिण दिशा में मेरा श्रेष्ठ ऋषितीर्थ स्थित है। हे देवि! अतः वहाँ स्नान करने वाले जन ऋषिलोक में जाते हैं। फिर यदि कोई वहाँ अपना प्राण कात्याग करते हैं, तो वे सब मेरे लोक में जाते हैं।।५९।।

हे वसुधे! उस ऋषितीर्थ के दक्षिण दिशा में मोक्षतीर्थ स्थित है। जहाँ स्नान करने वाले जन मोक्ष को प्राप्त करते हैं। फिर वे वहाँ अपने प्राणों को विसर्जित कर वे सब मेरे लोक में सम्मान पाने के अधिकारी हो जाता है।।६०।।

उसी स्थल पर देवताओं के लिए भी दुर्लभ कोटितीर्थ स्थित है। वहाँ पर जो कोई जन स्नान और दान काते हैं, वे भी मरे लोक में सम्मान पाते हैं।।६१।।

फिर मनुष्य कोटितीर्थ में स्नान कर यथाशक्ति दान कर पितरों और प्रपितामहों को तार दते हैं। इस तरह कोटितीर्थ में स्नान कर वे जन ब्रह्मलोक में पूज्य होते हैं।।६२।।

फिर वहीं पर दुर्लभ पितरों की बोधितीर्थ भी है। हे वसुधे! इस प्रकार वहाँ पर पिण्ड दान करने वाले जन पितृलोक में पहुँच जाते हैं।।६३।।

इस तरह वे जन गया तीर्थ में पिण्ड दान कर जैसा फल पाते हैं, वैसा ही फल निःसंशय ज्येष्ठ मास में बोधितीर्थ में पिण्ड दान से प्राप्त कर लते हैं।।६४।।

इस तरह उपरोक्त बारह तीर्थ देवताओं के लिए भी दुर्लभ ही हैं। फिर यहाँ पर किया गया स्नान, दान, जप, होम आदि भी हजार गुण अधिक प्राप्त होता है।।६५।।

इस आख्यान के स्मरण करने से ही व्यक्ति अपने समस्त पापों से रहित हो जाया करते हैं और फिर इन तीर्थों के माहात्म्य श्रवण करने से भी उनकी समस्त इच्छायें भी पूरी हो जाया करती हैं।।६६।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में मथुरा-माहात्म्य में विश्रान्ति, प्रयाग आदि तीर्थ प्रशंसा क्रम में तिन्दुक क्षेत्र प्रशंसा, नापितोपाख्यान नामक एक सौ पचासवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्राम-सम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१५०॥

एकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

अथ मथुरामाहात्म्ये क्षत्रधनुपीवरोपाख्यानम्

श्रीवराह उवाच

उत्तरे शिवकुण्डाच्च तीर्थानां नवसंज्ञितम्। नवतीर्थात्परं तीर्थं न भूतं न भविष्यति॥१॥
तत्रैव स्नानमात्रेण सौभाग्यं जायते ध्रुवम्। रूपवन्तः प्रजायन्ते स्वर्गलोके न संशयः॥२॥
तस्मिन् स्नातो नरो देवि देवैश्च सह मोदते। तत्र संयमनं नाम तीर्थ त्रैलोक्यविश्रुतम्॥३॥
तत्राथ मुञ्चते प्राणान् मम लोकं स गच्छति। पुनरन्यत् प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व वसुंधरे॥४॥
तस्मिन् संयमने तीर्थे यद् वृत्तं हि पुरातनम्। कश्चित् पापसमाचारो निषादो दुष्टचेतनः॥५॥
वसते नैमिषारण्ये सुप्रतीते सुपापकृत्। केनचित् त्वथ कार्येण सोगच्छन्मथुरां पुरीम्॥६॥
तत्र प्राप्याथ कालिन्दीं कृष्णपक्षे चतुर्दशीम्। कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां तर्त्तुकामो निषादजः॥७॥
तरता यमुनां तेन प्राप्तं संयमनं श्रुतम्। तत्र तीर्थे तु पतितौ शिरःस्थौ तदुपानहौ॥८॥
स दृष्ट्वा पतितौ तत्र यमुनासलिले शुभे। ममज्जासौ तः पापस्तस्मिंतीर्थे वरे शुभे॥९॥

अध्याय–१५१

मथुरा माहात्म्य में क्षत्रधनु और पीवरोपाख्यान सहित द्वादश वन वर्णन

श्री भगवान् वराह ने कहा कि इसी तरह शिवकुण्ड से उत्तर दिशा में नवसंज्ञा नाम का एक तीर्थ है। इस नवतीर्थ से महान-सा तीर्थ न हुआ, न होगा।।१।।

वहाँ मनुष्यों को स्नान मात्रा से निश्चित ही सौभाग्य उत्पन्न हो जाता है। उस तीर्थ में स्नान कर निःसंशय मनुष्य रूपवान् होकर स्वर्ग में चले जाते हैं।।२।।

हे देवि! उस तीर्थ में स्नान करने वाले जन देवताओं के साथ आनन्दित होते हैं। वहीं पर तीनों लोकों में प्रसिद्ध संयमन नाम का तीर्थ भी है।।३।।

वहाँ जो जन प्राणों का उत्सर्ग करते हैं, वे मेरे लोक में जाते हैं, हे वसुन्धरे फिर से अब उस स्थान के अन्यान्य विषयों की चर्चा करते हैं, तुम उसे सुनो।।४।।

पुरातन काल में जिस प्रकार की घटना उस संयमन तीर्थ में घटी थी, उसे सुनो। काई पाप करने वाला दुष्टात्मा निषाद उस समय हुआ था। वह पापकर्म करनेवाला निषाद अच्छी तरह से संज्ञात नैमिषारण्य तीर्थ में रहा करता था। किसी समय किसी प्रयोजन वश वह मथुरापुरी में गया हुआ था।।५-६।।

फिर वह वहाँ रहते हुए कृष्णपक्ष की चतुर्दशी तिथि के दिन यमुना नदी के तीर पर घूमने गया। उस समय उस निषाद पुत्र को उस नदी में तैरने की सबल इच्छा उत्पन्न हो गई।।७।।

अपनी इच्छा के वशीभूत तैरते हुए वह यमुना नदी को पारकर प्रसिद्ध 'संयमन तीर्थ' में आ गया। उस समय उस तीर्थ में उनके शिर पर स्थित दोनों जूते गिर पड़े।।८।।

फिर वहाँ यमुना के पवित्र जल में अपने उन दोनों जूतों को गिरा हुआ देखकर उस पापी ने उस शुभमय श्रेष्ठ तीर्थ में डूबकी लगा दी।।९।।

मग्नमात्रस्य तत्राथ गतप्राणोऽभवत् तदा।
तस्य तीर्थप्रभावेन जातोऽसौ पृथिवीपतिः॥१०॥
सौराष्ट्रविषये देवि क्षत्रियोऽभूद् धनुर्द्धरः। नाम्ना क्षत्रधनुर्नाम सोऽभवत् प्रियदर्शनः॥११॥
पालयामास वसुधां क्षत्रधर्मं समाश्रितः। तेनोढा काशिराजस्य पीवरी नामतः शुभा।
पत्नीशतानां मुख्यानां प्रवरा सा वसुंधरे॥१२॥
तयासौ रमयामास उद्यानेषु वनेषु च। प्रासादेषु च रम्येषु नदीनां पुलिनेषु च॥१३॥
प्रजां पालयतस्तस्य दानं च ददतस्तदा। कालो गच्छति राज्ञस्तु भोगासक्तो न विन्दति॥१४॥
भोगासक्तस्य वसुधे वर्षाणां सप्ततिर्गता। पुत्राः सप्त यथा जाताः कन्या पञ्च सुशोभनाः॥१५॥
राज्ञां पञ्च सुता दत्ताः कन्याश्च शुभलोचनाः।
पुत्रान् संस्थापयामास स्थानेषु वसुधाधिपान्॥१६॥
पीवर्या सह सुप्तः स रात्रौ च वसुधाधिपः। तत्र प्रबुद्धो नृपतिर्हाहेति वदते मुहुः।
स्मृत्वा तु मथुरां देवि स्मृत्वा संयमनं परम्॥१७॥
ततः सा पीवरी राज्ञी भर्तारं पर्यपृच्छत। किं त्वया भाषितं राजन् मथुरेति पुनः पुनः॥१८॥
एव सा पृच्छते देवी भर्तारं शुभलोचना। प्रियाया वचनं श्रुत्वा राजा वचनमब्रवीत्॥१९॥

इस प्रकार उसके डूबकी लगाते ही वह निषाद प्राण विरहित हो हो चला। फिर उस तीर्थ के प्रभाव के वश वह राजा हो गया।।१०।।

हे देवि! वस्तुतः वह सौराष्ट्र देश में धनुर्धर स्वरूपवानन् एक क्षत्रिय क्षत्रधुन नाम से प्रसिद्ध हुआ।।११।।

हे वसुन्धरे! वह राजा क्षत्रधनु क्षात्रधर्म ग्रहण कर पृथ्वी का पालन करने लगा। उसने काशिराज की पीवरी नाम की शुभ कन्या से विवाह भी किया। वह कन्या उनकी सैकड़ों मुख्य पत्नियों में श्रेष्ठ थी।।१२।।

वह उस राजा के साथ उद्यानों, वनों, रमणीय प्रासादों और नदी तीरों पर विहार किया करती थी।।१३।।

इस प्रकार उस क्षत्रधनु राजा का समय प्रजापालन करने और दान देने में व्यतीत हुआ करता था। परन्तु उस समय वह भोग में आसक्त होकर व्यतीत हो रहे कालों का ज्ञान नहीं कर पाया था।।१४।।

हे वसुधे! इस प्रकार उसके भोग में आसक्त रहते हुए सत्तर वर्ष बीत गये। उसके उस क्रम में सात पुत्र तथा पाँच सुन्दरी कन्यायें भी उत्पन्न हुयीं।।१५।।

फिर राजा ने अपनी पाँच सुनेत्री कन्याओं का विवह भी कर दिया और फिर विभिन्न जगहों राजधानियों में अपने पुत्रों को राजा भी बनाकर स्थापित कर दिया।।१६।।

हे देवि! इसी क्रम में एक दिन रात में पीवरी पत्नी के साथ सोते हुए वह राजा स्वप्नावस्था में मथुरा और श्रेष्ठ संयमन तीर्थ का स्मरण करते हुए जागकर वारम्बार हाय-हाय करने लगा।।१७।।

उसकी पत्नी पीवरी ने इस पर अपने पति राजा से पूछ दिया कि हे राजन्! आप बारम्बार इस तरह मथुरा-मथुरा आदि क्यों बोल रहे हैं?।।१८।।

इस तरह उस रानी पीवरी ने अपने पति से पूछा। फिर पत्नी की बातें सुनकर उस राजा ने कहा—मतवाला,

मत्तः सुप्तः प्रमत्तश्च असम्बद्धं प्रभाषते। निद्रावशस्य वचनं न त्वं प्रष्टुमिहार्हसि॥२०॥

पीवर्युवाच

कथयस्व ममाद्य त्वं यद्यहं वल्लभा तव। प्राणांस्त्यक्ष्याम्यहं देव यदि गोपयसे मम॥२१॥
प्रियाया वचनं श्रुत्वा उवाच स नराधिपः। अवश्यं यदि वक्तव्यं गच्छावो मथुरां पुरीम्॥२२॥
तत्र गत्वा यथातत्त्वं कथयिष्यामि भामिनि। ददस्व विपुलं दानं ब्राह्मणेभ्यः सुलोचने॥२३॥
पुत्रान् स्थाप्य च दौहित्रान् स्वे स्वे स्थाने निवेश्य च।
कोशं रत्नानि ग्रामांश्च पुत्रान् वीक्ष्य पुनः पुनः॥२४॥
ततः संमानयामास जनं पुरनिवासिनम्। पितृपैतामहं राज्यं पालितव्यं यथाक्रमम्।
राज्ये पुत्रान् नियोक्ष्यामि यदि वा रोचतेऽनघाः॥२५॥
राज्यं पुत्रकलत्रं च बन्धुवर्ग तथैव च।
नित्यमिच्छन्ति वै लोके यमस्येच्छन्ति चान्यथा॥२६॥
एवं ज्ञात्वा प्रयत्नेन कर्तव्यं चात्मनो हितम्। तस्मात् सर्वं परित्यज्य गच्छामो मथुरां पुरीम्॥२७॥
अहो कष्टं यदस्माभिः पुरा राज्यमनुष्ठितम्। इदानीं तु मया ज्ञातं त्यागान्नास्ति परं सुखम्॥२८॥

पागल और सोया हुआ जीव असम्बद्ध बातें ऐसे ही बोला करते हैं। निद्रा के वश होकर कहे गये मेरी वाणी को तुम्हें नहीं पूछना चाहिए।।१९-२०।।

फिर पीवरी ने कहा कि यदि मैं आपकी प्रिया हूँ, तो आप आज मुझे यह कहें। हे देव! यदि आप मुझसे इस तरह बातें छिपाया करेंगे, तो मैं अपना प्राण त्याग कर दूँगी।।२१।।

इस तरह के अपनी प्रिया की बातें सुनकर उस राजा ने कहा कि यदि मुझे यह बातें तुमसे निश्चित रूप से कहना ही है, तो हम दोनों मथुरा चलें।।२२।।

हे भामिनि! फिर वहाँ पहुँचकर मैं तत्त्वतः सब कुछ तुम्हें कह दूँगा। हे सुनयने! इस समय तुम ब्राह्मणों को यथेच्छ दान करो।।२३।।

तदनन्तर उस राजा ने अपने पुत्रों को स्थापित कर और अपने नारियों को भी अपने-अपने स्थानों पर सुस्थापित कर दिया। फिर उसने बार-बार कोष, रत्न, ग्राम और अपने पुत्रों को देखा।।२४।।

फिर उसने इसी क्रम में अपने पुरवासियों का सम्मान करते हुए कहा कि क्रम के अनुरूप पिता और पितामह से प्राप्त किये हुए राज्य का पालन सबको करना चाहिए। हे निष्पाप! फिर यदि आप सबको प्रिय लगे, तो अपने राज्य हेतु अपने पुत्रों को नियुक्त कर दूँ।।२५।।

वैसे इस संसार में प्रत्येक जन, इस राज्य, पुत्र, पत्नी, बन्धु-बान्धव आदि को नित्य चाहा करते हैं और यम रूप मृत्यु की कामना नहीं करते।।२६।।

परन्तु समझदारीपूर्वक प्रयास करके अपना हित करना ही चाहिए। अतः इस समय मैं अब सब कुछ त्याग कर 'मथुरापुरी' तीर्थ को जा रहा हूँ।।२७।।

अहो! वैसे यह कष्ट की बात हो सकती है कि अब तक मैंने राज्यकार्य करता रहा हूँ। लेकिन अब मैं यह जान कर कि त्याग से बड़ा सुख नहीं है।।२८।।

नास्ति विद्यासमं चक्षुर्नास्ति चक्षुस्समं बलम्। नास्ति रागसमं दुःखं नास्ति त्यागात् परं सुखम्॥२९॥

यः कामान् कुरुते सर्वान् यश्चैतान् केवलांस्त्यजेत्।
प्रापणात् सर्वकामानां परित्यागो विशिष्यते॥३०॥

अभिषिच्य सुतं ज्येष्ठमनुयोज्य परान् बहून्। ततः पौरजनं दृष्ट्वा चतुरङ्गबलान्वितः।
ततः कालेन महता संप्राप्तो मथुरां पुरीम्॥३१॥

तेन दृष्टा पुरी रम्या वासवस्य पुरी यथा। तीर्थैर्द्वादशभियुक्ता पुण्या पापहरा शुभा॥३२॥

रम्यं मधुवनं नाम विष्णुस्थानमनुत्तमम्। तं दृष्ट्वा मनुजो देवि सर्वान् कामानवाप्नुयात्॥३३॥

वनं तालवनं चैव द्वितीयं वनमुत्तमम्। एकादशी शुक्लपक्षे मासि भापदे हि या।
तत्र सतो नरो देवि कृतकृत्यो हि जायते॥३४॥

वनं कुन्दवनं नाम तृतीयं चैवमुत्तमम्। तत्र गत्वा नरो देवि कृतकृत्यो हि जायते॥३५॥

एकादशी कृष्णपक्षे मासि भाद्रपदे हि या। तत्र स्नातो नरो देवि रुद्रलोके महीयते॥३६॥

चतुर्थं काम्यकवनं वनानां वनमुत्तमम्। तत्र गत्वा नरो देवि मम लोके महीयते॥३७॥

विमलस्य च कुण्डे तु सर्वपापैः प्रमुच्यते। यस्तत्र मुञ्चते प्राणान् मम लोकं स गच्छति॥३८॥

चूँकि विद्या के समान नेत्र नहीं होता। नेत्र के समान बल नहीं होता। राग के समान दुःख नहीं होता और त्याग से महान् सुख नहीं होता है।।२९।।

अतः जो जन कामनायें करते हैं, जो जन इस सभी का मात्र त्याग करता है। इन दोनों में समस्त इच्छाओं की पूर्त्ति करने की तुलना में उनका त्याग करना श्रेष्ठ है।।३०।।

तदनन्तर वह राजा अपने ज्येष्ठ पुत्र को राज्यपद पर अभिषिक्त कर अन्यान्य बहुत सारे लोगों को नियुक्त कर और पुरवासियों को देखकर चतुरङ्गिणी सेना के सहित बहुत काल बाद मथुरा पुरी को आ पहुँचा।।३१।।

वहाँ पहुँचकर उसने इन्द्रपुरी जैसी रमणीय मथुरा पुरी को देखा। इस प्रकार पवित्रा, शुभकारी और पापमुक्त करने वाली वहनगरी बारह तीर्थों वाला माना जाता है।।३२।।

फिर रमणीय मधुवन विष्णु का श्रेष्ठतम क्षेत्र है। हे देवि! उस नगरी का दर्शन पाकर संसारजन समस्त इच्छाओं की पूर्त्ति कर लिया करते हैं।।३३।।

हे देवि! वहाँ तालवन नाम का वन दूसरा श्रेष्ठ वन है। उस वन में भाद्रपद मास के शुक्लपक्ष की एकादशी तिथि को वहाँ स्नान करने वाले जन सदा हेतु कृतकृत्य हो जायाकरते हैं।।३४।।

फिर कुन्दवन नाम का तीसरा वन है। हे देवि जो जन वहाँ जाता है, वे जन स्वयं कृतकृत्य हो जाया करते हैं।।३५।।

हे देवि! इस प्रकार भाद्रपद मास के कृष्णपक्ष की एकादशी तिथि के दिन वहाँ स्नान करने वाले जन रुद्रलोक में सम्मान से निवास करते हैं।।३६।।

चौथा वन इस क्रम में काम्यक वन है, जो सब वनों में श्रेष्ठ है। हे देवि! कोई भी जन वहाँ पहुँच कर ही मेरे लोक में आदर पाने के योग्य हो जाता है।।३७।।

इस प्रकार उस विशुद्ध क्षेत्र के कुण्ड में स्नान जो जन करते हैं, वे जन सभी पापों से रहित हो जाया करते हैं, फिर वहाँ जो जन अपना प्राणों का त्याग करते हैं, वे जन मेरे लोक में पहुँचने वाले होते हैं।।३८।।

पञ्चमं बहुलवनं वनस्थानमनुत्तमम्। तत्र गत्वा नरो देवि अग्निस्थानं स गच्छति॥३९॥
यमुनाया परे पारे देवानामपि दुर्लभम्। अस्ति भद्रवनं नाम वनानां वनमुत्तमम्॥४०॥
तत्र गत्वा तु वसुधे मद्भक्तो मत्परायणः। तद्वनस्य प्रभावेन नागलोकं स गच्छति॥४१॥
सप्तमं तु वनं भूमे खादिरं लोकविश्रुतम्। तत्र गत्वा नरो भद्रे मम लोकं स गच्छति॥४२॥
महावनं चाष्टमं तु सदैव तु मम प्रियम्। तस्मिन् गत्वा तु मनुज इन्द्रलोके महीयते॥४३॥
लोहजङ्घवनं नाम लोहजङ्घेन रक्षितम्। नवमं तु वनं देवि महापातकनाशनम्॥४४॥
वनं बिल्ववनं नाम दशमं देवपूजितम्। तत्र गत्त्वा तु मनुजो ब्रह्मलोके महीयते॥४५॥
एकादशं तु भाण्डीरं योगिनां प्रियमुत्तमम्। तस्य दर्शनमात्रेण नरो गर्भं न गच्छति॥४६॥
भाण्डीरं समनुप्राप्य वनानां वनमुत्तमम्। वासुदेवं ततो दृष्ट्वा पुनर्जन्म न विद्यते॥४७॥
वृन्दावनं द्वादशमं वृन्दया परिरक्षितम्। मम चैव प्रियं भूमे सर्वपातकनाशनम्॥४८॥
वृन्दावने च गोविन्दं ये पश्यन्ति वसुंधरे। न ते यमपुरं यान्ति यान्ति पुण्यकृतां गतिम्॥४९॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे एकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः॥१५१॥

फिर वहाँ पर एक 'बहुलवन' नाम का पाँचवाँ श्रेष्ठ वन भी है। हे देवि! वहाँ जो जन चला जाता है, उन्हें अग्निलोक में स्थान प्राप्त होते हैं। इस प्रकार यमुना नदी के अन्य किनारे पर देवता पर देवताओं के लिए भी दुर्लभ 'भद्रवन' नाम का एक श्रेष्ठ वन है।।३९-४०।।

हे वसुधे! मेरा भक्त परायण जन वहाँ पहुँच कर उस वन के प्रभाव वश नागलोक में अपना स्थान पा लेते हैं।।४१।।

हे भूमे! वहाँ पर संसार में प्रसिद्ध खादिर नाम का सातवाँ वन भी है। हे भद्र! जो जन वहाँ पहुँच जाता है, वे जन मेरे लोक में भी पहुँच जाते हैं। उस क्षेत्र में स्थित 'महावन' नाम का आठवाँ वन है। जो मुझे सदैव प्रिय लगता है। जो जन वहाँ पहुँच जाता है, वे जन इन्द्रलोक में सम्मान पाने के योग्य हो जाते हैं।।४२-४३।।

हे देवि! फिर उसी क्षेत्र में स्थित लोकजङ्घ से रक्षित लोकजङ्घ नाम का वन नौवाँ वन है, जो महापातकों का भी नाश करने वाला है। उस क्षेत्र में ही स्थित बिल्ववन नाम का दसवाँ वन है, जो देवताओं द्वारा पूज्यमान है। कोई मनुष्य वहाँ पर पहुँचकर ब्रह्मलोक में भी सम्मान प्राप्त करता है।।४४-४५।।

वहीं पर योगीजनों को भी प्रिय श्रेष्ठ भाण्डीर नाम का ग्यारहवाँ वन है। उस वन के दर्शन करने मात्र से मनुष्य गर्भबन्धन से मुक्त हो जाता है। इस प्रकार वनों में श्रेष्ठ भाण्डीर वन में पहुँच कर और वहाँ स्थित वासुदेव का दर्शन कर मनुष्य पुनर्जन्म के बन्धन से मुक्त होता है।।४६-४७।।

उसी क्षेत्र में वृन्दा द्वारा रक्षित वृन्दावन नाम का बारहवाँ वन है। हे भूमि! वह वन मेरा प्रिय और सभी पापों को दूर करने वाला वन है।।४८।।

हे वसुन्धरे! उस वृन्दावन में जो जन गोविन्द का दर्शन कर लेते हैं, उन्हें यमपुर में कभी जाना नहीं पड़ता है। वे जन पुण्यात्माओं की जैसी गति पाया करते हैं।।४९।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में मथुरा माहात्म्य में क्षत्रधनु और पीवरोपाख्यान सहित द्वादश वन वर्णन नामक एक सौ इक्यावनवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्य-नारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१५१॥

द्वापञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

अथ मथुरामाहात्म्ये क्षत्रधनु-पीवरी वर्णनम्

श्रीवराह उवाच

एवंविधां च मथुरां दृष्ट्वा तो मुदमापतुः। एवं तु वसतस्तस्य राज्ञस्तत्र वसुंधरे॥१॥
पप्रच्छ च तदा भार्या गुह्यं पूर्वं सुदुर्लभम्। कथितं च पुरा तेन यद्वृत्तं हि पुरातनम्॥२॥
तवापि यत्पुरा वृत्तं गुह्यं तत्कथयस्व मे। विहस्य पीवरी राज्ञी त्विदं वचनमब्रवीत्॥३॥
अहं तु पीवरी नाम गङ्गातीरनिवासिनी। आगता मथुरां द्रष्टुं कुमुदस्य तु द्वादशीम्॥४॥
नावमारुह्य यान्तीऽहं पतिता यमुनाजले। गतप्राणा समुत्पन्ना तत्रैव वसुधाधिप॥५॥
अस्य तीर्थप्रभावेन जाता काशिपतेः सुता। त्वया विवाहिता राजन् जातिस्मरणसंभवा।
अस्य तीर्थप्रभावेन धर्मयुक्ता तथाऽनघ॥६॥
धारातपनके तीर्थे त्यक्त्वा जीवतमात्मनः। त्यक्त्वा चात्मतनुं देवि धारापतनके शुभे।
त्यक्त्वा प्राणांश्च वसुधे नागलोकं गता हि सा॥७॥
यमस्वसारं संप्राप्य त्यक्त्वा जीवितमात्मनः। विष्णुलोकं स संप्राप्य दिव्यमूर्त्तिश्चतुर्भुजः॥८॥

अध्याय-१५२

मथुरा माहात्म्य-क्षत्रधनु-पीवरी की जातिस्कर सहित विविध तीर्थ कथन

श्री भगवान् वराह ने कहा कि इस प्रकार से मथुरापुरी तीर्थ को देखते हीं उन दोनों को अपार प्रसन्नता प्राप्त हुई। हे वसुन्धरे! फिर वहाँ पर हने वाले राजा से उसकी पत्नी ने पहले के अत्यन्त दुर्लभ रहस्य की बातों को पूछा। पुरातनकाल में जैसा पूर्व में घटित हुआ था, उसने उसको बतला दिया।।१-२।।

फिर राजा ने उस अपनी पत्नी से पूछा कि यदि तुम्हारी भी पुरातन कोई गुह्य बात हो, तो उसे मुझसे बतलाओ। रानी पीवरी ने हँसते हुए यह बात कहने लगी।।३।।

पुरातन काल में मैं गङ्गा किनारे रहने वाली पीवरी नाम की एक स्त्री थी। फिर मैं कार्त्तिक द्वादशी को मथुरा दर्शन करने आयी थी।।४।।

अतः नौका पर सवार होकर भ्रमण करती हुई, अचानक मैं यमुना नदी में ही गिर पड़ी और मर गयी। फिर हे राजन्! मैं भी वहीं उत्पन्न हुई।।५।।

इस तीर्थ का ही प्रभाव था कि मैं काशिराज की पुत्री हुई। हे निष्पाप राजन्! इस तीर्थ के प्रभावश मेरा तुमसे विवाह हो गया और मुझ में भी पूर्वजन्म की स्मृति और धार्मिकता जागृत हो गई।।६।।

हे देवि! राजा ने धारापतनक तीर्थ में अपना शरीर को त्याग दिया और हे वसुधे! वह रानी पीवरी भी उसी तीर्थ में प्राणान्त कर नागलोक को गई।।७।।

इस प्रकार यम की बहन यमुना के समीप आकर अपना प्राणान्त करने वाले राजा चार भुजाओं वाला दिव्य स्वरूप धारण कर विष्णुलोक को गया।।८।।

धारापतनके स्नात्वा नाकपृष्ठे स मोदते। अथात्रा मुञ्चते प्राणान् मम लोकं स गच्छति॥९॥
अतः परं नागतीर्थं तीर्थानामुत्तमोत्तमम्। यत्र स्नाता दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः॥१०॥
घण्टाभरणकं तीर्थं सर्वपापप्रमोचनम्। यस्मिन् स्नातो नरो देवि सूर्यलोके महीयते।
अथात्र मुञ्चते प्राणान् मम लोकं स गच्छति॥११॥
पुनरन्यत् प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व वसुंधरे। तीर्थानामुत्तमं तीर्थं ब्रह्मलोकेति विश्रुतम्॥१२॥
तत स्नात्वा च पीत्वा च नियतो नियताशनः। ब्रह्मणा समनुज्ञातो विष्णुलोकं स गच्छति॥१३॥
सोमतीर्थं तु वसुधे पवित्रे यमुनाम्भसि। यत्र मां पश्यते सोमो द्वापरे युगसंस्थिते॥१४॥
तत्राभिषेकं कुर्वीत स्वकर्मपरिनिष्ठितः। मोदते सोमलोके तु एवमेतन्न संशयः।
तत्राथ मुञ्चते प्राणान् मम लोकं स गच्छति॥१५॥
सरस्वत्याश्च पतनं सर्वपापहरं शुभम्। तत्र स्नात्वा नरो देवि अवर्णोऽपि यतिर्भवेत्॥१६॥
पुनरन्यत् प्रवक्ष्यामि माथुरे मम मण्डले। यस्तत्र कुरुते स्नानं त्रिरात्रोपोषितो नरः॥१७॥
स्नानमात्रेण मनुजो मुच्यते ब्रह्महत्यया। तत्राथ मुञ्चते प्राणान् मम लोकं स गच्छति॥१८॥

चूँकि धारापतनक में स्नान करने वाले जन स्वर्ग लोक में आनन्द पाते हैं और यदि कोई वहाँ प्राणान्त करता हो, तो मेरे लोक को वह जाता है।।९।।

फिर उन तीर्थों में भी अतिश्रेष्ठ नागतीर्थ है, जहाँ कि स्नान करने वाले जन स्वर्ग को चले जाते हैं और वहाँ अपना प्राणान्त करने वाले जनों का पुनर्जन्म नहीं ही हुआ करता है।।१०।।

हे देवि! घण्टाभरणक नाम के तीर्थ मनुष्य के सभी पापों को विनष्ट करने वाला है। जहाँ पर स्नान करने वाले जन सूर्यलोक में सम्मान प्राप्त करते हैं। यदि वहाँ वे अपना प्राणान्त करते हैं, तो मेरे लोक में चले जाते हैं।।११।।

हे वसुन्धरे! फिर से मैं अब अन्यान्य तीर्थों का वर्णन करने जा रहा हूँ। उसे सुनो। ब्रह्मलोक नाम का प्रसिद्ध तीर्थ सभी तीर्थों में श्रेष्ठ है।।१२।।

वहाँ पर नियम के साथ स्नान, दान, पान और नियत आहार ग्रहण करने वाले जन ब्रह्माजी की आज्ञानुसार विष्णु लोक में चले जाते हैं।।१३।।

हे वसुधे! पवित्र यमुना जल में सोमतीर्थ अवस्थित है। जहाँ द्वापर युग के प्रारम्भ हो जाने पर सोम मेरा दर्शन किया करते हैं।।१४।।

निरासा के साथ अपना कर्म करने वाले जन वहाँ स्नान करने पर सोमलोक में मुदित होकर निवास करते हैं। इसमें कोई संशय नहीं है। फिर वहाँ अपना प्राणों का अन्त करने वाले जननिश्चय ही मेरे लोक में चले जाते हैं।।१५।।

हे देवि! वहीं पर सभी पापों को नष्ट करने वाला सरस्वती पतन नामक तीर्थ भी स्थित है। वहाँ स्नान करने वाले जन नीच वर्ण का होकर भी यति होता है।।१६।।

फिर से मैं अपने मथुरापुरी में अवस्थित अन्यान्य तीर्थों का उल्लेख कर रहा हूँ, सुनो। इस प्रकार तीन रातों तक उपवास पूर्वक व्यतीत करते हुए जो जन वहाँ स्नान किया करते हैं, वे जन उस स्नान मात्र से ही ब्रह्म हत्या से भी मुक्ति पा जाते हैं और यहाँ अपना प्राणान्त करने वाले मेरे लोक में जाते हैं।।१७-१८।।

दशाश्वमेधमृषिभिः पूजितं सर्वदा पुरा। तत्र ये स्नान्ति नियतास्तेषां स्वर्गो न दुर्लभः॥१९॥
मथुरापश्चिमे पार्श्व ततं ऋषिपूजितम्। ब्रह्मणा सृष्टिकाले तु मनसा निर्मितं पुरा॥२०॥
मानसं नाम तीर्थं तु ऋषिभिः पूजितं पुरा। तत्र स्नाता दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः॥२१॥
तीर्थं तु विघ्नराजस्य पुण्यं पापहरं शुभम्। तत्र स्नातस्तु मनुजो गणेशेन न पीड्यते॥२२॥
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां चतुर्थ्यां तु विशेषतः। तस्मिंस्तीर्थवरे स्नातो न पीडयति विघ्नराट्॥२३॥
विद्यारम्भेषु सर्वेषु यज्ञदानक्रियासु च। करोत्यविघ्नं वसुधे सततं पार्वतीसुतः।
तत्राथ मुञ्चते प्राणान् मम लोकं स गच्छति॥२४॥
ततः परं कोटितीर्थं पवित्रं परमं शुभम्। तत्र वै स्नानमात्रेण गवां कोटिफलं लभेत्॥२५॥
तत्राथ मुञ्चते प्राणान् लोभमोहविवर्जितः। सोमलोकमतिक्रम्य मम लोकं स गच्छति॥२६॥
अतः परं शिवक्षेत्रमर्द्धक्रोशं तु दुष्करम्। तत्र स्थितो हरो देवो मथुरां रक्षते सदा॥२७॥
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च माथुरं लभते फलम्। अथात्र मुञ्चते प्राणान् मम लोकं स गच्छति॥२८॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः॥१५२॥

पुरातन काल में वहाँ ऋषियों के द्वारा दशाश्वमेध तीर्थ पूज्यमान था, जो जन वहाँ नियम सहित स्नान कर लेते हैं, उनको स्वर्ग दुर्लभ नहीं रह जाता है। फिर मथुरापुरी के पश्चिम पार्श्व में सर्वदा ऋषियों से पूज्यमान और पहले के समय में ब्रह्मा द्वारा सृष्टि करने के समय संकल्प पूर्वक बनाया हुआ तीर्थ है।।१९-२०।।

पुरातन काल में वहाँ पर ऋषियों द्वारा पूजास्पद मानस तीर्थ भी स्थित है। जहाँ स्नान करने वाले जन स्वर्ग जाया करते हैं और जो वहाँ मरते हैं, उनका निश्चय ही पुनर्जन्म नहीं हुआ करता है।।२१।।

फिर वहीं पर पाप को नाश करने वाले शुभ प्रदायक पवित्र विघ्नराजतीर्थ स्थित है। वहाँ पर स्नान करने वाले जन गणेश से सम्पीड़ित नहीं हुआ करते हैं।।२२।।

फिर अष्टमी, चतुर्दशी और विशिष्टता से चतुर्थी तिथि को, इन तिथियों में स्नान करने वाले जन को विघ्नेश्वर गणेश सम्पीड़ित नहीं करते हैं।।२३।।

हे वसुधे! पार्वती सुत श्रीगणपति विद्यारम्भ, सभी प्रकार के यज्ञ, दान और अन्यान्य कर्मों के आरम्भ में निर्विघ्नता प्रदान करते हैं तथा तदनन्तर यह कि यहाँ पर प्राण का त्याग करने वाले जन मेरे लोक में जाते हैं।।२४।।

फिर वहीं पर परम शुभदायक पवित्र 'कोटितीर्थ' स्थित है। वहाँ पर स्नान करने से ही करोड़ों गौदान करे का फल मिल जाता है। फिर वहाँ प्राण का त्याग करने वाले जब लोग और मोह से मुक्त होकर सोम लोक का अतिक्रमण करते हुए मेरे लोक में चले जाते हैं।।२५-२६।।

एतदनन्तर यहाँ से आधे कोस की दूरी पर दुष्कर शिवक्षेत्र स्थित है। इस तरह याहँ पर स्थित भगवान् शिव सर्वदा मथुरा नगरी की रक्षा किया करते हैं। यहाँ इस तीर्थ में स्नान और जलपान करने वालों को मथुरापुरी का सब पुण्य फल मिल जाता है। इसी तरह यहाँ अपने प्राणों को त्याग करने वालों को मेरा लोक प्राप्त हो जाता है।।२७-२८।।

।।इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में मथुरा माहात्म्य-क्षत्रधनु-पीवरी की जातिस्कर सहित विविध तीर्थ कथन नामक एक सौ बावनवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायण-कुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ।।१५२।।

❖❖❖

त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

अथ मथुरामाहात्म्ये अक्रूरतीर्थे सुधन-ब्रह्मराक्षस सम्वादः

श्रीवराह उवाच

पुनरन्यत् प्रवक्ष्यामि मर्त्त्यलोके सुदुर्लभम्। अनन्तं विदितं तीर्थमचलं ध्रुवमव्ययम्॥१॥

तत्र नित्यं स्थितो देवि लोकानां हितकाम्यया।
मां दृष्ट्वा मनुजा देवि मुक्तिभाजो भवन्ति ते॥२॥

अयने विषुवे चैव संक्रान्तौ च वसुंधरे। अनन्तं तीर्थमासाद्य मुच्यते सर्वपातकैः॥३॥

अक्रूरे च पुनः स्नात्वा राहुग्रस्ते दिवाकरे। राजसूयाश्वमेधाभ्यां फलं प्राप्नोति मानवः॥४॥

तीर्थराजं हि चाक्रूरं गुह्यानां गुह्यमुत्तम्। तत्फलं समवाप्नोति सर्वतीर्थावगाहनात्।
अस्मिंस्तीर्थे पुरावृत्तं तच्छृणुष्व वसुंधरे॥५॥

नाम्ना तु सुधनो नाम मम भक्तः सदैव हि। धनधान्यसमायुक्तो बन्धुपुत्रसमन्वितः॥६॥

बन्धुपुत्रकलत्रैश्च गृहे वसति चोत्तमे। पुत्रदाराममत्वेन मम भक्तो वसुंधरे॥७॥

अध्याय-१५३

मथुरा माहात्म्य-अक्रूरतीर्थ में सुधन और ब्रह्मराक्षस वार्त्ता

भगवान् वराह ने कहा कि पुनः मैं मर्त्यलोक में अत्यन्त दुर्लभ, सार्वकालिक, सार्वभौमिक, अव्यय, अचल, प्रसिद्ध और अनन्त तीर्थ का उल्लेख करने जा रहा हूँ।।१।।

हे देवि! सांसारिक जनों की हितकामना से वहाँ मैं सदा ही विद्यमान रहता हूँ। हे देवि! मेरा वहाँ दर्शन कर सामान्य जन भी मुक्ति पाने के अधिकारी हो जाते हैं।।२।।

हे वसुन्धरे! अयन याने उत्तरायण या दक्षिणायन के समय, विषुव याने जिस समय दिन और रात तुल्य प्रमाण के होते हैं, उस काल तथा सामान्य संक्रान्ति के समय उस अनन्त तीर्थ में पहुँच कर सामान्य जन भी समस्त पापों से विरहित होते हैं।।३।।

सूर्य ग्रहण के समय भी अक्रूर तीर्थ में स्नान करने वाले जन राजसूय, अश्वमेध यज्ञ आदि के सम्पादन से मिलने वाले जैसे फलों को भी पा जाते हैं।।४।।

चूँकि तीर्थराज अग्रूर गुह्यतरों में भी अत्यन्त गुह्य तीर्थ है। अतः इस तीर्थ में स्नान करने वाले जन सभी तीर्थों में स्नान करने जैसा फल पाते हैं। हे वसुन्धरे! प्राचीन काल में इस तीर्थ में घटित हो चुके घटना के बारे में सुनो।।५।।

नित्य भक्ति रखने वाला सुधन नाम का मेरा एक भक्त था। वह धन-धान्य से युक्त और बन्धु-बान्धवों वाला था।।६।।

फिर वह अपने बन्धुओं, पुत्रों और स्त्रियों के सहित अपने श्रेष्ठ घर में रहा करता था। हे वसुन्धरे! वह मेरा भक्त होने के साथ अपने पुत्र, स्त्री आदि के प्रति अत्यन्त ममत्व से युक्त था।।७।।

गच्छन्ति दिवसास्तस्य मासाः संवत्सरास्तथा। करोति गृहकृत्यानि धनोपायेन नित्यशः॥८॥
भानकूटं तुलाकूटं न करोति स कर्हिचित्। एवं च वसतस्तस्य बहवो वत्सरा गताः॥९॥
नित्यकालं च कुरुते हरेः पूजमुत्तमम्। पुष्पदीपप्रदानेन चन्दनेन सुगन्धिना॥१०॥
उपहारेण दिव्येन धूपेन च सुगन्धिना। एकादश्यां तु कुरुते पक्षोरुभयोरपि।
सोपवासस्तु वसुधे रात्रौ जागरणं शुभम्॥११॥
स गच्छति सदा कालमक्रूरं चैव जागरे। स गत्वा नृत्यते सुभ्रु ममाग्रे चैव सर्वदा॥१२॥
सुधनस्तु वणिक्श्रेष्ठः कदाचिद् रात्रिजागरे। गच्छमानो गृहीतस्तु चरणे ब्रह्मरक्षसा॥१३॥
कृष्णवर्णो महाकाय ऊर्ध्वकेशो भयंकरः। पादे गृहीत्वा सुधनं वचनं चेदमब्रवीत्॥१४॥
राक्षसोऽहं वणिक्श्रेष्ठ वसामि वनमाश्रितः।
त्वामद्य भक्षयिष्यामि तृप्तिं यास्यामि शाश्वतीम्॥१५॥

सुधन उवाच

प्रतीक्षस्व दिनं मेऽद्य दास्यामि तव पुद्गलम्। भक्षयिष्यसि मे गात्रं मिष्टान्नपरिपोषितम्॥१६॥
जागरं देवदेवस्य कर्त्तुमिच्छामि राक्षस। मम व्रतं सदा देवभक्त्या जागर्त्ति चक्रिणे॥१७॥

इस प्रकार उसके जीवन के दिन, माह, वर्ष आदि बीत रहे थे। फिर धन आदि के उपायों से वह अपने गृहस्थी के कार्यों का नित्य संचालन कर रहा था।।८।।

फिर भी वह नाप-तौल में इमानदार रहते हुए कपट से दूर रहता था। इस प्रकार जीवन निर्वाह करते हुए उनके अनेकों वर्ष बीतते चले गए।।९।।

वह व्यक्ति नित्य ही पुष्प, चन्दन, दीप, सुगन्धि द्रव्य से श्रीहरि का भी श्रेष्ठ पूजन किया करता रहा था।।१०।।

हे वसुधे! उपहार, दिव्य, धूप, सुगंन्धि आदि से पूजन कर्म करते हुए दोनों पक्षों की एकादशी तिथि के दिन उपवास कर वह रात में शुभ जागरण कर्म भी सम्पन्न किया करता था।।११।।

हे सुभ्रु! फिर वह रात्रि जागरण करते हुए सर्वदा अक्रूर तीर्थ में भी जाया करता था। फिर वह वहाँ पहुँचकर मेरे समक्ष नृत्य भी करता था।।१२।।

किसी दिन रात्रि जागरण हेतु अक्रूर तीर्थ में जाते समय उस वणिक् श्रेष्ठ सुधन के पैरों को किसी ब्रह्मराक्षस ने जकड़ लिया।।१३।।

वह ब्रह्मराक्षस कृष्णवर्ण के महाकाल और बड़े-बड़े बालों से युक्त भयंकर स्वरूप वाला था। जिसने पैर पकड़कर उस सुधन से यह वचन कहा—।।१४।।

हे वणिक् श्रेष्ठ! मैं वनों में रहने वाला राक्षस हूँ। मैं आज इस समय तुमको खाकर अपनी शाश्वत भूख की तृप्ति प्राप्त कर सकूँगा।।१५।।

सुधम ने कहा कि लेकिन वैसे तुम्हें मेरी प्रतीक्षा आज करनी चाहिए। मैं तुमको कल अपना मिष्ठान्न से परिपालित शरीर खाने हेतु प्रस्तुत कर सकूँगा।।१६।।

हे राक्षस चूँकि मैं इस समय देव देव का जागरण व्रत करने का इच्छुक हूँ। मैं उस चक्रधारी देव की भक्तिपूर्वक सदा यह जागरण व्रत करता आ रहा हूँ।।१७।।

तत्र जागरंण कृत्वा प्रभाते तव सन्निधौ। आगमिष्याम्यहं शीघ्रमादित्योदयनं प्रति।
पश्चात् खादसि मे गात्रं जागराद् विनिवर्त्तितम्॥१८॥
विष्णोः संतोषणार्थाय ममैतद् व्रतमुत्तमम्। मा रक्षो व्रतभङ्गं हि देवं नारायणं प्रति।
जागरे विनिवृत्ते तु मां भक्षय यथेप्सितम्॥१९॥
सुधनस्य वचः श्रुत्वा ब्रह्मरक्षः क्षुधार्दितः। उवाच मधुरं वाक्यं वणिजं तदनन्तरम्॥२०॥
मिथ्या प्रभाषसे साधो त्वं पुनः कथमेष्यसि। को हि रक्षोमुखाद् भ्रष्टो मानुषो यो निवर्त्तते॥२१॥
राक्षसस्य वचः श्रुत्वा स विणग्वाक्यमब्रवीत्। सत्यमूलं जगत्सर्वं सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम्॥२२॥
यद्यहं च वणिक् पूर्वं कर्मणा न हि दूषितः। प्राप्तश्च मानुषो भावो विहितेनान्तरात्मना॥२३॥
शृणु मत्समयं रक्षो येनाहं पुनरागमम्। कृत्वा जागरणं तत्र नर्त्तयित्वा यथा सुखम्।
पुनरेष्याम्यहं रक्षो नासत्यं विद्यते मयि॥२४॥
सत्यमूलं जगत्सर्वं सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम्। सिद्धिं लभन्ति सत्येन ऋषयो वेदपारगाः॥२५॥
सत्येन दीयते कन्या सत्यं जल्पन्ति ब्राह्मणाः। सत्यं वदन्ति राजानः सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम्॥२६॥
सत्येन गम्यते स्वर्गं मोक्षं सत्येन गम्यते। सत्येन सूर्यस्तपति सोमः सत्येन राजते॥२७॥

फिर वहाँ रात्र जागरण कर मैं प्रातःकाल सूर्योदय काल में तत्काल तुम्हारे समीप आ जाऊँगा। फिर जागरण कर्म से वापस आये हुए मेरे शरीर को तुम प्रसन्नता से खा लेना।।१८।।

देखो! मेरा यह श्रेष्ठ व्रत भी विष्णु की संतुष्टि हेतु उन्हें समर्पित है। हे राक्षस! नारायण देव के निमित्त किये जा रहे मेरे इस व्रत को भंग तुम मत करो। लेकिन जागरण से वापसी करने पर स्वेच्छया मेरा भक्षण कर लेना।।१९।।

फिर इस प्रकार के सुधन की बातें सुनकर क्षुधा से व्याकुल ब्रह्मराक्षस ने उस वणिक् से यह विनम्र वचन कहा—।।२०।।

हे साधो! तुम झूठ बोल रहे हो? तुम पुनः क्यों मेरे पास आओगे। ऐसा कौन मनुष्य है ,जो राक्षस के मुख से छूटकर पुनः लौट सकता है?।।२१।।

इस प्रकार राक्षस की बातें सुनकर उस वणिक् सुधन ने कहा कि देखो! समस्त जगत् का मूल सत्य ही है। सत्य में सब कुछ सुप्रतिष्ठित है।।२।।

क्योंकि अब मैं पूर्व कृत्कर्म से दूषित वणिक् नहीं हूँ। अब अपने अन्तरात्मा से सम्पादित शुभकर्मों से मुझे मनुष्य भाव प्राप्त हुआ है।।२३।।

इसीलिए हे राक्षस! मेरा उस शपथ वाक्य को सुनो, जिसके कारण मैं वापस आ सकूँगा। वहाँ रात्रि जागरण करते हुए सुख के सहित नृत्य करके मैं पुनः वापस आऊँगा। हे राक्षस! मुझ में कुछ भी असत्य नहीं है।।२४।।

सुनो! सम्पूर्ण संसार का मूल सत्य है। सत्य में ही समस्त जगत् प्रतिष्ठित है। वेदपारज्ञ ऋषिजन सत्य से ही सिद्धि पाया करते हैं।।२५।।

सत्याश्रित होकर ही कन्यादान सम्पन्न होता है। ब्राह्मण सदा सत्य बोला करते हैं। राजाजन भी सत्य बोलते हैं। सब कुछ सत्य में सुप्रतिष्ठित है।।२६।।

सत्य से ही स्वर्ग में जाया जाता है। सत्य से ही मुक्ति प्राप्त होती है। सूर्य भी सत्य से ही तापमान होता है। चन्द्रमा भी सत्य से ही प्रकाशित हुआ करता है।।२७।।

यमः सत्येन हरति सत्यादिन्द्रो विराजते। वरुणश्च कुबेरश्च तौ च सत्ये प्रतिष्ठितौ॥२८॥
न चासत्यं वदिष्यामि ब्रह्मराक्षस मे व्रतम्। तत् सत्यं मम नश्येत यद्यहं नागमे पुनः॥२९॥
परदारांस्तु यो गच्छेत् काममोहप्रपीडितः। तेन पापेन लिप्येऽहं यद्यहं नागमे पुनः॥३०॥
गत्वा रजस्वलां नारीं काममोहप्रपीडितः। तेन पापेन लिप्येयं यद्यहं नागमे पुरः॥३१॥
दत्त्वा च भूमिदानं तु अपहारं करोति यः। तेन पापेन लिप्येयं यद्यहं नागमे पुरः॥३२॥
पूर्वभुक्तां स्त्रियं चैव आत्मीयां च सुसंहिताम्। वर्जयन्ति च ये द्वेषात् तेषां पापं भवेन्मम॥३३॥
पाकभेदं तु यः कुर्यादात्मनो हि परस्य च। तेन पापेन लिप्येऽहं यद्यहं नागमे पुनः॥३४॥
अमावस्यां महारक्षः श्राद्धं कृत्वा स्त्रियं व्रजेत्। तेन पापेन लिप्येयं यद्यहं नागमे पुरः॥३५॥
षष्ठ्यष्टमी अमावास्या उभे पक्षे चतुर्दशी। अस्नातो यां गतिं गच्छेद् यद्यहं नामे पुनः॥३६॥
भार्यां विसृज्य वसुधे शिष्टं गच्छति निर्घृणः। तेन पापेन लिप्येयं यद्यहं नागमे पुरः॥३७॥
गुरुपत्नीं राजपत्नीं योऽभिगच्छति मोहितः। तेन पापेन लिप्येयं यद्यहं नागमे पुरः॥३८॥

यम की सत्य बल से ही हरण किया करते हैं। इन्द्र भी सत्य बल से ही विद्यमान है। वरुण और कुबेर सत्य में सही सुप्रतिष्ठित हैं।।२८।।

हे ब्रह्मराक्षस! मेरा तो यही व्रत है ,कि जान भले चली जाय, परन्तु मैं असत्य भाषण नहीं करूँगा। यदि मैं फिर भी वापस न आया, तो मेरा वह सत्य नष्ट हो जाय। यदि मैं फिर भी नहीं आता हूँ, तो काम और मोह की पीड़ा से युक्त होकर जो अन्य की स्त्री में सहवास करता है, उसके पाप में मैं लिप्त होऊँ।।२९-३०।।

यदि फिर भी मैं वापस न आऊँ, तो काम और मोह से पीड़ित होकर रजस्वला स्त्री के साथ सहवास के पाप से युक्त हो जाऊँ।।३१।।

फिर भी यदि मैं न वापस आऊँ, तो मैं भूमि दान कर पुनः उसे वापस ले लेने के पाप से लिप्त हो जाऊँ।।३२।

जो अपने साथ रहने वाली पूर्व में भोगी गई अपनी स्त्री को द्वेष के कारण छोड़ देने के पाप में मैं लिप्त हो जाऊँ।।३३।।

फिर भी यदि मैं न वापस आऊँ, तो जो अपने लिए और दूसरे के लिए किये जाने वाले पापकर्म या भोजन बनाने में भेद करता है, उसके पाप से मैं लिप्त हो जाऊँ।।३४।।

हे महाराक्षस! फिर भी यदि मैं न वापस आऊँ तो अमावस तिथि में श्राद्ध कर जो स्त्रीगमन करने से पाप होता है, उस पाप से मैं लिप्त हुआ, माना जाऊँ।।३५।।

यदि फिर भी मैं वापस नहीं आऊँ, तो षष्ठी, अष्टमी, अमावस और दोनों पक्षों की चतुर्दशी को स्नान नहीं करने वालों जैसी मेरी गति हो।।३६।।

फिर भी यदि मैं न वापस आऊँ तो हे वसुधे! जो निष्ठरतापूर्वक पत्नी को त्याग कर चला जाता है, उसके जैसे पाप से मैं लिप्त माना जाऊँ।।३७।।

फिर भी यदि मैं वापस नहीं आऊँ, तो तो मोहित होकर गुरुपत्नी, राजपत्नी आदि से संगम करता हो उसके जैसे पाप से मैं लिप्त माना जाऊँ।।३८।।

दास्यामीति वचश्चोक्त्वा नैव दद्यात् कथंचन। तेन पापेन लिप्येयं यद्यहं नागमे पुरः॥३९॥
यस्तु कन्यां सकृद् दत्वा अन्यस्मै यः प्रयच्छति। तेन पापेन लिप्येयं यद्यहं नागमे पुरः॥४०॥
घातकानां च ये लोका ये लोका मित्रघातिनाम्।
तेषां गतिं प्रपद्येयं यद्यहं नागमे पुनः॥४१॥
ब्रह्मघ्ने च सुरापे च चौरे भगन्व्रते तथा। तेषां गतिं प्रपद्येऽहं यद्यहं नागमे पुनः॥४२॥

श्रीवराह उवाच

सुधनस्य वचः श्रुत्वा संतुष्टो ब्रह्मराक्षसः। उवाच मधुरं वाक्यं गच्छ शीघ्रं नमोऽस्तु ते॥४३॥
ब्रह्मराक्षसमुक्तोऽसौ वणिजो विधिनिश्चयः। पुनर्नृत्यति चैवाग्रे मम भक्तिव्यवस्थितः॥४४॥
अथ प्रभातसमये नृत्यविक्षेपकोविदः। नमो नारायणायेति उच्चार्य च पुनः पुनः॥४५॥
निवृत्ते जागरे सोऽथ कालिन्दीसलिले प्लुतः। दृष्ट्वा मां दिव्यरूपं तु गमोऽसौ मथुरां पुरीम्॥४६॥
दृष्टश्चाग्रे त्वहं तेन पुरुषो दिव्यरूपधृक्। स च पृष्टो मया देवि क्व भवान् प्रस्थितो द्रुतम्॥४७॥
पुरुषस्य वचः श्रुत्वा सुधनो वाक्यमब्रवीत्। अहं गच्छामि त्वरितो ब्रह्मराक्षससन्निधौ॥४८॥

फिर भी मैं यदि वापस नहीं आऊँ, तो जो दूँगा इस प्रकार कहने पर भी कभी भी नहीं देने से जो पाप होता है, उससे मैं लिप्त माना जाऊँ।।३९।।

फिर भी यदि मैं वापस न आऊँ, तो जो एक बार कन्यादान कर फिर से उसी कन्या को दूसरों के लिए दे देता है, उसके पाप से मुझे लिप्त माना जाय।।४०।।

यदि फिर भी मैं वापस नहीं आऊँ, तो मुझे दूसरे की हत्या करने या मित्र से घात करने के कारण उनको मिलने वाला लोक मुझे प्राप्त हो।।४१।।

फिर भी यदि मैं नहीं वापस आऊँ, तो मुझे भी ब्रह्महत्या करने वालों, मद्य पीने वालों, चोर या व्रत भंग करने वालों की जैसी गति प्राप्त हो।।४२।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि इस तरह से उस वणिक् सुधन की बातें सुनकर वह ब्रह्मराक्षस संतुष्ट हो गया और उसने उससे मधुर वाणी में कहा कि तुम शीघ्र जाओ। तुमको मेरा प्रणाम है।।४३।।

इस प्रकार उस ब्रह्मराक्षस से अवकाश पाकर अपनी निश्चित व्रत विधि वाले उस वणिक् सुधन ने भक्ति भावना से मेरे समक्ष पुनः नृत्य किया।।४४।।

फिर प्रातः प्रभात काल में नृत्य कर्म में निपुण वणिक् सुधन ने वारम्वार 'नमो नारायणाय' कहते रहा।।४५।।

फिर जागरण के अन्त होने पर उसने यमुना नदी के जल में स्नान किया। फिर मेरे दिव्य स्वरूप का दर्शन करने के पश्चात् मथुरापुरी से चला गया।।४६।।

हे देवि! फिर मैंने रास्ते में उसके सम्मुख दिव्य स्वरूप धारण किया हुआ पुरुष के रूप में प्रकट हो गया। फिर मैंने पूछा कि आप शीघ्रता के साथ कहाँ भागे जा रहे हैं।।४७।।

इस प्रकार उस पुरुष के वचन को सुनकर वणिक् सुधन ने यह विनम्र वचन कहा कि मैं जल्दी-जल्दी से एक ब्रह्मराक्षस के पास जा रहा हूँ।।४८।।

निवारयामास स तदा न गन्तव्यं त्वयाऽनघ। जीवतो धर्ममाहात्म्यं मृते धर्म कुतो यशः॥४९॥
पुरुषस्य वचः श्रुत्वा स वणिग्वाक्यमब्रवीत्। न चासत्यं वदिष्यामि यास्ये राक्षससन्निधौ॥५०॥
ब्रह्मराक्षसमासाद्य सत्यवाक्यपरायणः। उवाच मधुरं वाक्यं तत्र राक्षससंसदि॥५१॥
आगतोऽहं महाभाग नर्त्तयित्वा यथासुखम्। विष्णवे लोनाथाय मया दत्तं हि जागरम्॥५२॥
इदं शरीरं मे रक्षो भक्षयस्व यथेप्सितम्। यथान्यायविधानेन यथा वा तव रोचते॥५३॥
नोक्तपूर्वं मयाऽसत्यं कदाचिदपि राक्षस। तेन सत्येन मां भुङ्क्ष्व ब्रह्मराक्षस दारुण॥५४॥
वणिजस्य वचः श्रुत्वा ततोऽसौ ब्रह्मराक्षसः। उवाच मधुरं वाक्यं सुधनं तदनन्तरम्॥५५॥
साधु तुष्टोऽस्मि भद्रं ते सत्यं धर्मं च पालितम्। वणिजश्चातिविज्ञश्च यस्य ते बुद्धिरीदृशी॥५६॥
जागरस्य समस्तस्य ममपुण्यं प्रयच्छ वै। तस्य पुण्यप्रभावेन यथाऽहं मुक्तिमाप्नुयाम्॥५७॥

सुधन उवाच

नाहं ददामि ते पुण्यं नृत्यस्य नरभोजन। अर्द्धं वाऽद्य समस्तं वा प्रहरं चार्द्धमेव वा॥५८॥
सुधनस्य वचः श्रुत्वा प्रब्रवीद् ब्रह्मराक्षसः। एकनृत्यस्य मे पुण्यं देहि त्वं शूद्रसत्तम।

फिर उस पुरुष ने उसे रोकते हुए कहा कि हे निष्पाप! वहाँ पर तुमको कथमपि नहीं जाना चाहिए। जीवित रहने पर ही धर्म का महत्त्व होता है। मरने पर धर्म, यश आदि का कहाँ महत्त्व रह जाता है।।४९।।

इस प्रकार उस पुरुष की बातों को सुनकर उस वणिक् सुधन ने यह मधुर वाक्य कहा कि मैं असत्य भाषण नहीं करता। मैं उस ब्रह्मराक्षस के पास जाऊँगा।।५०।।

फिर उस सत्य वाक्य परायण वणिक् सुधन उस ब्रह्मराक्षस के समीप पहुँच गया और वहाँ उस राक्षस से अपनी मधुर वाणी में यह वचन कहा—।।५१।।

हे महाभाग! मैं आपके पास सुख के साथ नृत्य कृत्य समपन्न कर वापस आ गया हूँ। लोकनाथ विष्णु को मैंने जागरण व्रत समर्पण कर आ गया हूँ।।५२।।

हे राक्षस! अब आप अपनी इच्छानुसार मेरे इस शरीर को न्यायोचित विधि से अथवा जैसे आपकी इच्छा हो उस प्रकार खा जाओ।।५३।।

हे राक्षस! मैंने पहले कभी भी असत्य नहीं ओता है। हे दारूण ब्रह्मराक्षस! अब उसी सत्य के बल से मुझे मुझे खा जाओ।।५४।।

फिर वणिक् की बातें सुनकर उस ब्रह्मराक्षस ने वणिक् सुधन से यह कहा कि तुम धन्य हो। मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। तुम्हारा सदा कल्याण हो। तुमने सत्य और धर्म का न्यायोचित पालन किया है। तुम अत्यन्त ज्ञानवान् वणिक् हो, इसी से तुम्हारी ऐसी बुद्धि है।।५५-५६।।

अतः तुम मुझे अपने सम्पूर्ण जागरण व्रत का पुण्य प्रदान कर दो, जिससे मैं उस पुण्य के प्रभाव से मुक्ति प्राप्त कर लूँ।।५७।।

सुधन ने कहा कि हे मानवभोजी! मैं आज आधा या सम्पूर्ण या एक प्रहर या आधे प्रहर के भी अपने हाथ का पुण्य तुमको नहीं दे सकता हूँ।।५८।।

इस प्रकार उस सुधन की बातें सुनकर ब्रह्मराक्षस ने कहा कि हे श्रेष्ठ शूद्र! तुम मुझे एक ही नृत्य का पुण्य

सुधन उवाच

नाहं दास्यामि मे पुण्यं यथोक्तं च समाचर॥५९॥
केन त्वं कर्मदोषेण राक्षसत्वमुपागतः। यत्ते गुह्यं महाभाग सर्वं तत्कथयस्व मे॥६०॥
सुधनस्य वचः श्रुत्वा विहसित्वा तु राक्षसः।
किं त्वं मां च न जानासि प्रतिवासी ह्यहं तव॥६१॥
अग्निदत्तस्तु वै नाम छन्दोगो ब्राह्मणोत्तमः। इष्टकास्तु हरन् नित्यं पारकीयास्तु सर्वदा।
हृतास्तु गृहकामेन राक्षसत्वमुपागतः॥६२॥
मया त्वं हि यथाप्राप्त उपकारं कुरुष्व मे। एकविश्रामपुण्यं मे देहि त्वं शूद्रसत्तम॥६३॥
कृपया तु समायुक्तो स विणग् वाक्यमब्रवीत्।
दत्त्वा दानं तु नृत्यस्य एकविक्षेपकस्य तु।
एकनृत्यप्रभावेन राक्षसो मुक्तिमाप्नुयात्॥६४॥

श्रीवराह उवाच

सुधनस्तु ततो देवि विश्वरूपं जनार्दनम्। अग्रतस्तु स्थितं देवं दृष्ट्वाऽसौ धरणीं गतः॥६५॥
उवाच मधुरं वाक्यं देवदेवो जनार्दनः। चतुर्भुजो दिव्यतनुः शङ्खचक्रगदाधरः॥६६॥
विमानवरमारुह्य मम लोकं व्रजस्व च। इत्युक्त्वा माधवो देवि तत्रैवान्तरधीयत॥६७॥

प्रदान कर दो। सुधन ने कहा कि मैं तुमको कोई भी पुण्य प्रदान नहीं कर सकता हूँ। तुमने जैसा कहा था वैसा ही करो।।५९।।

वैसे तुम अपने किस कर्मदोष से ब्रह्मराक्षस हुए हो? हे महाभाग! तुम्हारा जो रहस्य की बात हो, वह मुझे तुम बतलाओ।।६०।।

ऐसी सुधन की बातें सुनकर राक्षस ने हँसते हुए कहा कि क्या तुम मुझे नहीं जानते? मैं तुम्हारा ही पड़ोसी हूँ।।६१।।

मैं तुम्हारा पड़ोसी अग्निदत्त नाम का सामवेदी श्रेष्ठ ब्राह्मण हूँ। मैं गृहकार्य से सदा दूसरे की ईटें चुराने के कारण ही ब्रह्मराक्षस हो गया हूँ।।६२।।

मैंने जिस-किसी प्रकार तुमको उपलब्ध कर सकहा है। मेरा उपकार कर दो। हे श्रेष्ठ शूद्र! मुझे एक नृत्य के विराम का ही पुण्य दे दो।।६३।।

फिर करुणा से अपूर्ण उस वणिक् ने कहा कि मैंने एक नृत्य का फल तुमको द दिया। तदनन्तर एक नृत्य के पुण्य प्रभाव से राक्षस ने मुक्ति प्राप्त कर ली।।६४।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि हे देवि! फिर उस सुधन ने विश्वरूप जनार्दन देव को अपने सामने देखकर पृथ्वी पर प्रणिपात किया।।६५।।

देव देव शंख, चक्र, गदा आदि धारण किये दिव्य शरीरधारी चतुर्भुज जनार्दन ने मीठे स्वर में यह वचन कहा—तुम अब श्रेष्ठ विमान पर सवार होकर मेरे लोक को प्रस्थान करो। हे देवि! इस प्रकार कहते हुए माधव वहीं पर अन्तर्हित कर गये।।६६-६७।।

सुधनः सशरीरोऽपि सकुटुम्बो दिवं ययौ। विमानवरमारुह्य विष्णोर्लोकं ततो गतः।
एष तीर्थप्रभावो वै कथितस्ते वसुंधरे॥६८॥
अक्रूराच्च परं तीर्थं न भूतं न भविष्यति। तस्य तीर्थप्रभावेन सुधनो मुक्तिमाप्नुयात्॥६९॥
द्वादशी शुक्लपक्षे तु कुमुदस्य तु या भवेत्। तस्मिन् स्नातस्तु वसुधे राजसूयफलं लभेत्॥७०॥
कार्तिकीं समनुप्राप्य तत्तीर्थे तु वसुंधरे। वृषोत्सर्गं नरः कुर्वस्तारयेत् स कुलोद्भवान्॥७१॥
श्राद्धं यः कुरुते सुभ्रु कार्तिक्यां प्रयतो नरः। पितरस्तारितास्तेन सदैव प्रपितामहाः॥७२॥

।।इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः।।१५३।।

—✻✻❋✻✻—

इस प्रकार सुधन भी सशरीर कुटुम्ब सहित श्रेष्ठ विमान पर सवार होकर स्वर्ग को चला गया। फिर वहाँ से विष्णुलोक को पहुँच गया। हे पृथ्वि! मैंने तुमको इस प्रकार से उस तीर्थ के प्रभाव को बतला दिया है।।६८।।

अतः अक्रूर तीर्थ से बड़ा कोई तीर्थ न हुआ और न होगा। उस तीर्थ के प्रभाव से सुधन ने मोक्ष की प्राप्ति भी कर ली।।६९।।

हे वसुधे! कार्तिक मास शुक्लपक्ष की द्वादशी के दिन उस अक्रूर तीर्थ में स्नान करने वाले जन राजसूय यज्ञ का फल पा लेता है।।७०।।

हे वसुन्धरे! कार्तिक मास आने पर उस अक्रूरतीर्थ में वृषोत्सर्ग करने वाले जन अपने कुल के समस्त जनों का उद्धार कर देता है।।७१।।

हे सुभ्रु! कार्त्तिक मास में जो जन वहाँ नियम के सहित श्राद्ध करता है, वह सदा ही पितरों और प्रपितामहों को तार दिया करता है।।७०।।

।।इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में मथुरा माहात्म्य-अक्रूरतीर्थ में सुधन और ब्रह्मराक्षस वार्त्ता नामक एक सौ तिरपनवा अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ।।१५३।।

चतुष्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

अथ मथुरा माहात्म्ये वत्सक्रीडनकादि तीर्थ वर्णनम्

श्रीवराह उवाच

वत्सक्रीडनकं नाम तीर्थं क्षेत्रं परं मम। तत्र रक्तशिलाबद्धं रक्तचन्दनभूषितम्॥१॥
स्नानमात्रेण तत्रैव वायुलोकं व्रजेन्नरः। तत्राथ मुञ्चते प्राणान् मम लोके महीयते॥२॥
पुनरन्यत् प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व वसुंधरे। अस्ति भाण्डीरकं नाम तीर्थं परममुत्तमम्॥३॥
शालैस्तालैश्च तरुभिस्तमालैरर्ज्जुनैस्तथा। इङ्गुदैः पीलुकैश्चैव करीरै रक्तपुष्पकैः॥४॥
तस्मिन् भाण्डीरके स्नातो नियतो नियताशनः। सर्वपापविनिर्मुक्त इन्लोकं स गच्छति।
तत्राथ मुञ्चते प्राणान् मम लोकं स गच्छति॥५॥
पुनरन्यत् प्रवक्ष्यामि क्षेत्रं वृन्दावनं मम। तत्राहं क्रीडयिष्यामि गोभिर्गोपालकैः सह।
सुरम्यं सुप्रतीतं च देवदानवदुर्लभम्॥६॥
तत्र कुण्डे महाभागे बहुगुल्मलतावृते। तत्र स्नानं प्रकुर्वीत एकरात्रोषिता नरः॥७॥
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च क्रीडमानः स मोदते। तत्राथ मुञ्चते प्राणान्मम लोकं स गच्छति॥८॥

अध्याय-१५४

मथुरा माहात्म्य-वत्सक्रीडनक, भाण्डीर, वृन्दावन आदि तीर्थों का माहात्म्य

श्री भगवान् वराह ने कहा कि वहीं पर वत्सक्रीडनक नाम का मेरा एक श्रेष्ठ तीर्थ स्थल है। जो रक्तवर्ण की शिलाओं से पूर्ण और रक्त चन्दन से सुशोभित है।।१।।

वहाँ पर स्नान करने मात्र से मनुष्य वायुलोक में चला जाता है फिर यदि वहाँ वह अपना प्राणों का उत्सर्ग करता है, तो मेरे लोक में पहुँचकर सम्मान प्राप्त करता है।।२।।

हे वसुन्धरे! अब पुनः अन्यान्य तीर्थ का उललेख करने जा रहा हूँ। वहीं पर एक भाण्डरीक नाम का भी अत्यन्त श्रेष्ठ तीर्थ है, जो शाल, ताड़, तमाल, अर्जुन, इङ्गुवी, पीलुक, करीर, रक्तपुष्पक आदि वृक्षों से सम्पन्न है।।३-४।।

निरन्तर सविधि नियत आहार ग्रहण करते हुए जीवन निर्वाह करने वाले जन उस तीर्थ में स्नान कर समस्त पापों से विरहित होकर इन्द्रलोक में चले जाते हैं। फिर यदि वे जन वहाँ अपना प्राणों का त्याग करते हैं, तो वे मेरे लोक में चले जाते हैं।।५।।

अब मैं पुनः अन्य तीर्थ अपने वृन्दावन तीर्थ का उल्लेख करने जा रहा हूँ। जहाँ मैं गायों और गोपालों के साथ-साथ खेला करूँगा। वह तीर्थ सुरम्य, सुप्रसिद्ध और देवों तथा दानवों के लिए दुष्कर क्षेत्र है।।६।।

हे महाभागे! वहाँ पर रात्रि विश्राम करते हुए जो जन विभिन्न गुल्मों, लताओं आदि से घिरे हुआ वहाँ के कुण्ड में स्नान करते हैं, तो वे गन्धवां, अप्सराओं आदि के साथ क्रीडा करते हुए आनन्द किया करते हैं। फिर वहाँ वे अपने प्राणों का परित्याग कर मेरे लोक में पहुँच जाया करते हैं।।७-८।।

पुनरन्यत् प्रवक्ष्यामि महापातकनाशनम्। तस्मिन् वृन्दावने तीर्थे यत्र केशी निपातितः॥९॥
गङ्गाशतगुणं पुण्यं यत्र केशी निपातितः। काश्याः शतगुणं पुण्यं यत्र विश्रमते हरिः।
तस्माच्छतगुां पुण्यं नात्र कार्या विचारणा॥१०॥
तत्रापि च विशेषोऽस्ति केशितीर्थे वसुंधरे। तस्मिन् पिण्डप्रदानेन गयातुल्यफलं भवेत्॥११॥
गयापिण्डप्रदानेन यत्फलं प्राप्यते नरैः। स्नाने दाने तथा होमे अग्निष्टोमफलं लभेत्॥१२॥
सूर्यतीर्थे तु वसुधे द्वादशादित्यसंज्ञके। कालियो रमते तत्र कालिन्द्याःसलिले शुभे॥१३॥
आदित्या वीक्षितो भूमौ शीतार्त्तेन मया तदा। द्वादशास्तु यथादित्यास्तपन्ति मम सन्निधौ॥१४॥
कालियो दमितस्तत्र आदित्याः स्थापिता मया। वरं वृणुध्वं भद्रं वो यद् वो मनसि वर्त्तते॥१५॥

आदित्या ऊचुः

वरं ददासि वै देव वरार्हा यदि वा वयम्। अस्मिंस्तीर्थवरे स्नानमस्माकं संप्रदीयताम्॥१६॥
आदित्यानां वचः श्रुत्वा ततोऽहं वाक्यमब्रुवम्। द्वादशादित्यसंज्ञं हि स्थानमेतद् भविष्यति॥१७॥
चैत्रमासे नरः षष्ठ्यां शुक्लपक्षे वसुंधरे। अस्मिन् स्नातो नरो देवि सर्वान् कामानवाप्नुयात्॥१८॥

अब मैं पुनः अपने उस वृन्दावन तीर्थ में अवस्थित बड़े से बड़े पातकों का नाश करने वाले अन्य तीर्थों का उल्लेख करने जा रहा हूँ। जहाँ केशी का वध किया गया था।।९।।

जहाँ पर केशी का वध किया गया था, वह क्षेत्र गङ्गा से सौ गुना अधिक पुण्यदायक है। जहाँ हरि विश्राम करते हैं, वह स्थान काशी से सौ गुना अधिक पुण्यकारक है। उससे सौ गुना अधिक पुण्य मिलता है, इसमें संशय नहीं है।।१०।।

हे वसुन्धरे! उस केशि तीर्थ की एक विशिष्टता है कि वहाँ पर पिण्डदान करने से गया के समतुल्य फल मिलता है।।११।।

इस प्रकार गयामें पिण्डदान करने से जैसा फल मिलता है, वैसा ही फल यहाँ मिल जाता है। इस तीर्थ में स्नान, दान, हवन आदि से अग्निष्टोम करने जैसा फल मिलता है।।१२।।

हे वसुधे! वहीं पर द्वादशादित्य नाम का सूर्यतीर्थ भी है। जहाँ यमुना के पवित्र जल में कालिय नाम विहार किया करते हैं।।१३।।

शीत से सम्पीड़ित भूमि पर मैंने आदित्य की तरफ देख। अतः द्वादश आदित्य मेरे पास तपा करते हैं।।१४।।

फिर मैंने ही वहीं पर कालिय नाम का दमन भी किया था और आदित्यों की स्थापना की और उनसे कहा कि तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारे मन में जो कुछ हो, उसे वर के रूप में माँग लो।।१५।।

आदित्यों ने कहा कि हे देव! यदि हम वर पाने के योग्य लगते हों या आप हमें वर प्रदान करना चाहते हैं, तो आप हमें इस श्रेष्ठ तीर्थ में नहाने का वर प्रदान करें।।१६।।

इस प्रकार आदित्यों की बात सुनकर मैंने यह वचन कहा कि यह स्थान द्वादशदित्य नाम का होना चाहिए।।१७।।

हे सुनघ्नरे! हे देवि! चैत्रमास शुक्लपक्ष की षष्ठी तिथि को इस तीर्थ में स्नान करने वाले जन अपनी सभी इच्छाओं कोप्राप्त कर लेते हैं।।१८।।

आदित्येऽहनि संक्रान्तावस्मिंस्तीर्थे वसुंधरे। मनसाऽभीप्सितं कामं नरः प्राप्नोति संयतः॥१९॥
सूर्यतीर्थे नरः स्नातो दृष्ट्वाऽऽदित्यं वसुंधरे। आदित्यभुवनं प्राप्य कृतकृत्यः स मोदते।
अथात्र मुञ्चते प्राणान् मम लोकं स गच्छति॥२०॥
कालियस्य ह्रदं गत्वा क्रीडां कृत्वा वुसंधरे। स्नानमात्रेण तत्रैव मुच्यते सर्वकिल्बिषैः।
अथात्र मुञ्चते प्राणान् मम लाकं स गच्छति॥२१॥
उत्तरे हरिदेवस्य दक्षिणे कालियस्य तु। अनयोर्देवयोर्मध्ये ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः॥२२॥
।।इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे चतुष्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः।।

हे वसुन्धरे! रविवार के दिन और संक्रान्ति के दिन इस तीर्थ में स्नान करने वाले संयमी जन अपने चित्त के अनुकूल परिणाम प्राप्त करते हैं।।१९।।

हे वसुन्धरे! इस सूर्य तीर्थ में स्नान करने वाले जन आदित्य का दर्शन कर कृतकृत्य होकर आदित्य लोक में मुदित हुआ करते हैं। फिर यदि वे जन यहाँ अपने प्राणों का त्याग भी करते हैं, ो वे मेरे लोक में जाते हैं।।२०।।

हे वसुन्धरे! वहीं पर कालियह्रद के समीप पहुँच कर क्रीड़ा करने के बादन स्नान करने मात्र से जीव अपने सभी पापों से रहित हो जाता है। फिर यहाँ अपने प्राणों का परित्याग करके वे मेरे लोक में चले जाते हैं।।२१।।

इस प्रकार हरिदेव के उत्तर दिशा के क्षेत्र और कालिय नाग के दक्षिण दिशा के क्षेत्र में, इन दोनों देवक्षेत्रों के मध्य जो जन मर जाया करते हैं; उन जनों कापुनर्जन्म नहीं हुआ करते हैं।।२२।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में एक सौ चौवनवा मथुरा माहात्म्य-वत्सक्रीडनक, भाण्डीर, वृन्दावन आदि तीर्थों का माहात्म्य नामक अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१५४॥

❖❖❖

पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

अथ मथुरामाहात्म्ये तत्तीर्थेषुस्नानादिकृत्यफलकथनम्

श्रीवराह उवाच

यमुनापारमुल्लङ्घ्य तत्रैव च महामुने। मलयार्जुनकं तीर्थं कुण्डं तत्र च विद्यते॥१॥
पर्यस्तं तत्र शकटं भिन्नभाण्डकुटीघटम्। तत्र स्नानोपवासेन अनन्तं फलमश्नुते॥२॥
द्वादश्यां शुक्लपक्षस्य ज्येष्ठमासे वसुंधरे। तत्र स्नाने दानेन महापातकनाशनम्॥३॥
ज्येष्ठस्य शुक्लद्वादश्यां स्नात्वा सुनियतेन्द्रियः। मथुरायां हरिं दृष्ट्वा प्राप्नोति परमां गतिम्॥४॥
यमुनासलिले स्नातः शुचिर्भूत्वा जितेन्द्रियः। समभ्यर्च्याच्युतं सम्यक् प्राप्नोति परमां गतिम्॥५॥
अपि चास्मत्कुले जातः कालिन्दीसलिले प्लुतः। अर्चयिष्यति गोविन्दं मथुरायामुपोषितः।
इति गायन्ति पितरः परलोकगताः सदा॥६॥
ज्येष्ठमासे तु द्वादश्यां समभ्यर्च्य जनार्दनम्। धन्योऽसौ पिण्डनिर्वापं यमुनायां प्रदास्यति॥७॥
निचुलायां परिक्रामन् वसन्तस्यारिबन्धनात्। गोविन्दे जागरं कृत्व कृतकृत्यो भविष्यति॥८॥

अध्याय–१५५

मथुरा माहात्म्य-इनके तीर्थों में स्नान, दान, मरण, पिण्डदान का फल कथन

श्री वराह भगवान् ने कहा कि हे महामुने! उसी स्थान पर यमुना नदी के उस पार जाये जाने पर मलयार्जुनक तीर्थ और कुण्ड स्थित है।।१।।

वहाँ पर छिन्न-भिन्न भाण्ड, कुटी और घट वाला शकट लटाकाया गया था। वहाँ पर स्नान और उपवास करने से अनन्त फल मिलता है।।२।।

हे वसुन्धरे वहाँ ज्येष्ठ मास के शुक्लपक्ष की द्वादशी तिथि के दिन स्नान और दान करने वाले जनों के महापातक का भी नाश हो जाया करता है।।३।।

फिर ज्येष्ठ मास के शुक्लपक्षीय द्वादशी तिथि के दिन इन्द्रिय निग्रहपूर्वक जो जन वहाँ पर स्नान करने के साथ-साथ मथुरा में हरि का दर्शन भी करते हैं, वे जन परम गति निश्चय ही पा जाया करते हैं।।४।।

फिर जितेन्द्रिय जन यमुना नदी के जल में स्नान कर शुद्धावस्था में अच्छी तरह अच्युत का पूजन करते हुए परम गति पा जाया करते हैं।।५।।

इस तरह परलोक पहुँच चुके पितर जन सर्वदा यह गाया करते हैं कि क्या मेरे कुल में उत्पन्न कोई जन मथुरा में उपवास करते हुए यमुना नदी के जल में स्नान कर श्रीगोविन्द का पूजन भी कर सकेगा?।।६।।

क्या कोई मेरा कौलिक जन ज्येष्ठ मास की द्वादशी तिथि को जनार्दन का पूजन कर धन्य हुए यमुना में पिण्डदान कर सकेगा?।।७।।

क्या वे जन निचुला में परिक्रमा करते हुए वसन्त के शत्रु को बन्धन युक्त करते हुए अर्थात् इन्द्रिय निग्रह पूर्वक गोविन्द की प्रसन्नता हेतु जागरण व्रत करने वाला कृतकृत्य हो सकेगा?।।८।।

तत्रैव तु महातीर्थं वने बहुलसंज्ञके। तत्र स्नातो नरो देवि रुद्रलोके महीयते॥९॥
चैत्रमासे च द्वादश्यां शुक्लपक्षे वसुंधरे। तत्र स्नातो नरो याति मम लोकं न संशयः॥१०॥
अस्ति भाण्डह्रदं नाम परेपारे सुदुर्लभम्। दृश्यन्त्यहरहस्तत्र आदित्याः शुभकारिणः॥११॥
तत्र चार्कस्थले कुण्डे स्नानं यः कुरुते नरः। सर्वपापविनिर्मुक्तः सूर्यलोके व्रजेन्नरः।
तत्राथ मुञ्चते प्राणान् मम लोकं स गच्छति॥१२॥
अर्कस्थलसमीपे तु कूपं तु विमलोदकम्। सप्तसामुद्रकं नाम देवानामपि दुर्लभम्॥१३॥
तत्र स्नानेन वसुधे स्वच्छन्दगमनालयः। अथात्र मुञ्चते प्राणान् मम लोकं गच्छति॥१४॥
तत्र वीरस्थलं नाम क्षेत्रं गुह्यं परं मम। आसन्नसलिलं चैव पद्मोत्पलविभूषितम्॥१५॥
यस्तत्र कुरुते स्नानमेकरात्रोषितो नरः। स मत्प्रसादात् सुश्रोणि वीरलोके महीयते।
अथात्र मुञ्चते प्राणान् मम लोकं सगच्छति॥१६॥
कुशस्थलं च तत्रैव पुण्यं पापहरं शुभम्। तत्र स्नातो नरो देवि ब्रह्मलोके महीयते।
अथात्र मुञ्चते प्राणान् मम लोकं गच्छति॥१७॥
तत्र पुष्पस्थलं नाम शिवक्षेत्रमनुत्तमम्। तत्र स्नानेन मनुजः शिवलोके महीयते॥१८॥

हे देवि! उसी स्थल पर बहुल नामक वन में महातीर्थ स्थित है। जहाँ पर स्नान करने वाले जन रुद्रलोक में पहुँचकर सम्मान पाने के योग्य होते हैं।।९।।

हे वसुन्धरे! चैत्रमास के शुक्लपक्ष की द्वादशी तिथि के दिन वहाँ स्नान कर मनुष्य निःसंशय, मेरे लोक में चला जाता है।।१०।।

फिर दूसरे किनारे पर अतिदुर्लभ भाण्डह्रद नाम का एक तीर्थ स्थित है। वहाँ आदित्य गण शुभकृत्य करने वले जनों को देख करते हैं।।११।।

फिर उस सूर्यस्थल के कुण्ड में जो जन स्नान करते हैं, वे जन सभी पापों से मुक्त होकर सूर्यलोक में चला जाता है। फिर यदि वे वहाँ अपना प्राणों का उत्सर्जन करते हैं, तो वे मेरे लोक में पहुँच जाया करते हैं।।१२।।

फिर उस सूर्यस्थल के पास में विमल जल से सम्पन्न सप्तसामुद्रिक नाम का देवतओं केलिए अयत्न्त दुष्कर कूप है।।१३।।

हे वसुधे! वहाँ पर स्नान करने वाला स्वच्छन्द गति का हो जाता है। फिर यहाँ प्राण त्याग कर मनुष्य मेरे लोक में चला जाता है।।१४।।

फिर एक वीरस्थल नाम का मेरा परम गुह्य क्षेत्र है। वहाँ का जल पद्मपत्र से शोभायमान है।।१५।।

हे सुश्रोणि! एक रात तक निवास कर जो वहाँ स्नान करता है, वह मेरी कृपा से वीरलोक में सम्मान पाता है। फिर यहाँ पर प्राण त्याग कर वह मेरे लाक में जाता है।।१६।।

फिर उसी स्थल पर कुशस्थल नाम का पवित्र पापनाशक शुद्ध तीर्थ है। हे देवि! वहाँ पर स्नान करने वाला ब्रह्मलोक में सम्मान पाता है और यदिवहाँ अपना प्राण भी त्याग करते हैं, तो वे मेरे लोक को चले जाते हैं।।१७।।

वहीं पर पुष्पस्थल नाम का श्रेष्ठ शिवक्षेत्र है। वहाँ स्नान करने से वे शिव के लोक में सम्मान प्राप्त करते हैं।।१८।।

एते पञ्चस्थला ख्याता महापातकनाशनाः। तेषु स्नातस्तु वसुधे ब्रह्मणा सह मोदते॥१९॥
तत्र गोपीश्वरो नाम महापातकनाशनः। कृष्णस्य रमणार्थं हि सहस्राणि च षोडष।
गोप्यो रूपाणि चक्रे च तत्र क्रीडनकेशवम्॥२०॥
यदा बालेन कृष्णेन भग्नार्जुनयुगं तथा। शकटं च तदा भिन्नं घटभाण्डकुटीरकम्॥२१॥
ताभिस्तत्रैव गोविन्दं क्रीडन्तं च यदृच्छया। परिष्वक्तं हि धर्मेण व्याजेन च सुगोपितम्॥२२॥
मातलिस्तत्र चागत्य देवैरुक्तं यथोदितम्। गोपवेषधरं देवमभिषेकं चकार ह॥२३॥
आनीय सप्त कलशान् तत्रौषधिपरिप्लुतान्। गोपीमण्डलपानेन स्नापितो हेमकुण्डलः।
गोप्यो गायन्ति नृत्यन्ति कृष्ण कृष्ण इति ब्रुवन्॥२४॥
तत्र गोपीश्वरं देवं मातलिस्थाप्य पूजितम्। कूपं च स्थापयामास माङ्गल्यैः कलशैः शुभैः॥२५॥
सप्तसामुद्रिकं नाम कूपं तु विमलोदकम्। देवस्याग्रे तु वसुधे गोपीशस्य महात्मनः॥२६॥
पितरश्चापि नन्दन्ति पानीयं पिण्डमेव च। सप्तसामुद्रिके कूपे यः श्राद्धं संप्रदास्यति।
पितरस्तारितास्तेन कुलानां सप्तसप्ततिः॥२७॥
सोमवारे त्वमावास्यां पिण्डदानं करोति यः। गयापिण्डप्रदानं तु कृतं स्यान्नात्र संशयः॥२८॥

वैसे महापातकों को विनष्ट करने वाले ये पाँच प्रसिद्ध स्थल हैं। हे पृथ्वि! उनमें स्नान करने वाले जन ब्रह्मा के साथ मुदित होते हैं।।१९।।

फिर वहाँ पर महापातक को विनष्ट करने वाला गोपीश्वर तीर्थ है। जहाँ बालकृष्ण ने जब यमलार्जुन वृक्षों को उन्मूलित किया और जिस समय घड़ा कुटिर और शकट का नाश किया, उस समय कृष्ण को विहार करने हेतु वहाँ सोलह सहस्र गोपियों ने उन केशव को कृत्रिम गोपी के रूप का बनाया था।।२०-२१।।

इस प्रकार उनने धर्म के साथ छद्मवेष में अतिगुप्त विधि से क्रीड़ा कर रहे गोविन्द का आलिङ्गन किया।।२२।।

फिर देवताओं के कहे जाने पर मातलि ने वहाँ पहुँच कर उनके कथन के अनुरूप गोपवेषधारी देव का अभिषेक भी किया।।२३।।

उस समय औषधियों से युक्त सात कलशों को गोपमण्डल द्वारा मँगवा कर मातलि ने स्वर्णकुण्डल धारी केशव का स्नान कराया। फिर गोपियाँ उस समय कृष्ण-कृष्ण कहते हुए नृत्य व गीत गाने लगी थीं।।२४।।

इस प्रकार मातलि द्वारा वहाँ पर गोपीश्वर देव को स्थापित कर पूजन किया गया और कल्याणमय माङ्गलिक कलशों से कूप भी स्थापित किया गया।।२५।।

हे वसुधे! महात्मा गोपीश्वर देव के सम्मुख विमल जल वाला सप्त सामुद्रक नाम का एक कूप है। पितर भी वहाँ के जल और पिण्ड को पसन्द करते हैं।।२६।।

जो जन सप्तसामुद्रक कूप पर श्राद्ध कर सकते हैं, वे सत्ताइस पीढ़ि के पितरों को तार ले जाते हैं।।२७।।

जो जन सोमवार के दिन आमावस्या को वहाँ पिण्डदान करता है, उनके द्वारा निःसंशय यहाँ पर गया के समान पिण्डदान किया जाता है।।२८।।

गोविन्दस्य च देवस्य तथा गोपीश्वरस्य च। मध्ये तु मरणं यस्य शक्रस्येति सलोकताम्॥२९॥
तथा बहुलरुद्रस्य गोविन्दस्यैव मध्यतः। तद्वद् ब्रह्माणमीशस्य गोपीशस्यैव मध्यतः॥३०॥
एतेषु स्नानदानेन पिण्डपातेन भामिनि। नरस्तारयते पुंसां दश पूर्वान् दशापरान्॥३१॥
एवं स्नातो नरो देवि देवैश्च सह मोदते। तत्राथ मुञ्चते प्राणान् मम लोकं स गच्छति॥३२॥
वत्सपुत्रं महापुण्यं तीर्थं परमकं मम। मथुरादक्षिणे पार्श्वे वत्सरागविभूषितम्।
तत्र स्नानेन दानेन वाञ्छितं फलमाप्नुयात्॥३३॥
मथुरादक्षिणे पार्श्वे क्षेत्रं फाल्गुनकं तथा। तत्र स्नात्वा च पीत्वा च वीरलोके महीयते॥३४॥
तत्र फाल्गुनके चैव तीर्थे परमदुर्लभे। वृषभाञ्जनकं नाम क्षेत्रं मे दुर्लभं महत्॥३५॥
तत्राभिषकं यः कुर्यात् स दवैः स मोदते। तत्राथ मुञ्चते प्राणान् मम लोके महीयते॥३६॥
अस्ति तालवनं नाम धेनुकासुररक्षितम्। मथुरापश्चिमे भागे अदूरादर्द्धयोजनम्॥३७॥
तत्र कुण्डं स्वच्छजलं नीलोत्पलविभूषितम्। तत्र स्नानेन दानेन वाञ्छितं फलमाप्नुयात्॥३८॥
अस्ति संवीटकं नाम अस्मिन् क्षेत्रे परं मम। तत्र कुण्डं विशालाक्षि प्रसन्नसलिलं शुभम्॥३९॥

फिर गोविन्द और गोपीश्वर देव के मध्य जिन जनों की मृत्यु होती है, वे जन इन्द्र के लोक को जाता है।।२९।।

इसी प्रकार बहुलरुद्र तथा गोविन्द के बीच और ब्रह्मेश्वर तथा गोपीश्वर के मध्य प्राण त्याग करने वाले जन की सुगति होती है।।३०।।

हे सुन्दरि! इस स्थानों पर स्नान, दान, अथवा पिण्डदान करने वाले जन अपने पूर्व के दस तथा बाद के दस पीढ़ियों को तार देता है।।३१।।

हे देवि! इस प्रकार स्नान करने वाले जन देवों के साथ आनन्दित होते हैं। फिर यहाँ पर अपना प्राण त्याग करने पर मेरे लोक में जाते हैं।।३२।।

फिर मेरा वत्सपुत्र नाम का महापवित्र परमश्रेष्ठ एक तीर्थ है। जो मथुरा के दक्षिण पार्श्व में वत्सराग से सुशोभित है। वहाँ पर स्नान और दान जो जन किया करते हैं, उन्हें अभिलषित फल मिलता है।।३३।।

इसी प्रकार मथुरा के दक्षिण पार्श्व में फाल्गुनक क्षेत्र स्थित है। वहाँ पर स्नान, दान आदि जो ज करते हैं, वे वीरलोक में सम्मान पाते हैं।।३४।।

परम दुर्लभ उस फाल्गुनक तीर्थ में मेरा महादुष्कर वृषभाञ्जनक नाम का क्षेत्र है, जो जन वहाँ स्नान करते हैं, वे देवताओं के सहित आनन्दित होते हैं, और फिर यहाँ पर अपने प्राणों का परित्याग कर मेरे लोग में सम्मानित होते हैं।।३५-३६।।

फिर मथुरा के पश्चिमी भाग के पस ही आधे योजन का तालवन नाम का धेनुकासुर से रक्षित तीर्थ है। यहाँ नीलकमल से अलंकृत स्वच्छ जल युक्त कुण्ड है। वहाँ पर स्नान, दान आदि जो जन करते हैं, उन्हें मनोवांछित फल मिलता है।।३७-३८।।

हे विशालाक्षि! इस क्षेत्र में संवीटक नाम का एक तीर्थ है। वहाँ स्वच्छ जल वाला शुभ कुण्ड स्थित है।।३९।।

तत्र स्नानं च यः कुर्यादेकरात्रोषितो नरः। अग्निष्टोमफलं चैव लभते नात्र संशयः।
तत्राथ मुञ्चते प्राणान् मम लोकं स गच्छति॥४०॥
मथुरापश्चिमे भागे अदूरादर्द्धयोजने। मया तत्र तपस्तप्तं पुत्रार्थं हि वुसंधरे॥४१॥
देवकीगर्भसंभूतो वसुदेवगृहे शुभे। तत्र पुण्येन हि मया रविराराधितस्तदा॥४२॥
लब्धप्रज्ञो मया पुत्रो रूपवांश्च गुणान्वितः। तत्रैव तु मया दृष्टः पद्महस्तो दिवाकरः॥४३॥
मासि भाद्रपदे देवि तिग्मतेजा विभावसुः। सप्तम्यां शुक्लपक्षस्य रविस्तिष्ठति सर्वदा॥४४॥
तस्मिन्नहनि यः स्नानं कुर्यात् कुण्डे समाहितः। न तस्य दुर्लभं लोके सर्वदाता दिवाकरः॥४५॥
आदित्येऽहनि संप्राप्ते सप्तम्यां तु वसुंधरे। नरो वाऽप्यथ वा नारी प्राप्नोत्यविकलं फलम्॥४६॥
तत्रैव तु तपस्तप्तं राज्ञा शन्तनु पुरा। आदित्यं तु पुरस्थाप्य प्राप्तो भीष्मो महाबलः॥४७॥
शन्तनुः प्राप्य तं पुत्रं गतोऽसौ अस्तिनापुरम्। तत्र स्नानेन दानेन वाञ्छितं फलमाप्नुयात्॥४८॥

।।इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः।।१५५।।

जो जन एक रात्रि मात्र वहाँ रहते हुए वहाँ स्नान करते हैं, वे निःसंशय अग्निष्टोम का फल पाते हैं तथा यहाँ प्रण त्याग कर वह मेरे लोक में जाते हैं।।४०।।

हे वसुन्धरे! मथुरा के पश्चिम भाग में आधे योजन की दूरी पर मैंने पुत्र के निमित्त तप किया था।।४१।।

वसुदेव के शुभगृह में देवकी के गर्भ से पुण्यवश उत्पन्न होकर मैंने सूर्य की आराधना भी की थी।।४२।।

इस प्रकार मैंने बुद्धिमान् स्वरूपवान् और गुणवान् पुत्र को प्राप्त किया था। वहाँ मैंने हाथ में कमल धारण करने वाले सूर्य का दर्शन किया था।।४३।।

हे देवि! भाद्रपद मास के शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथि के दिन सर्वदा तेज किरणों से युक्त तेजस्वी सूर्य वहाँ स्थित हुआ करते हैं।।४४।।

इस प्रकार उस दिन जो जन एकनिष्ठ होकर कुण्ड में स्नान करते हैं, तो उसे संसार में कुछ भी असम्भव नहीं रह जाता है। उसे सूर्य सब कुछ प्रदान कर देते हैं।।४५।।

हे वसुन्धरे! रविवार के दिन सप्तमी हो, तो वहाँ स्नान करने वाले जन स्त्री हो या पुरुष वे सभी सम्पूर्ण फल प्राप्त करते हैं।।४६।।

पुरातन समय में वहीं पर राजा शान्तनु ने सूर्य के सम्मुख स्थित होकर तप किया था, जिससे उनको महाबलवान् भीष्म रूप में पुत्र की प्राप्ति हुई थी।।४७।।

वे ही शान्तनु उस पुत्र को पाकर हस्तिनापुर चले गए। वहाँ स्नान और दान करने से मनोवांछित फल की प्राप्ति होती है।।४८।।

।।इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में मथुरा माहात्म्य-इनसे सम्बन्धित तीर्थों में स्नान, दान, मरण, पिण्डदान का फल कथन नामक एक सौ पचपनवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ।।१५४।।

❖❖❖

षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

अथ मथुरामाहात्म्ये केशवप्रदक्षिणादिनिरूपणम्

श्रीवराह उवाच

विंशतिर्योजनानो तु माथुरं मम मण्डलम्। यत्र तत्र नरः स्नातो मुच्यते सर्वकिल्बिषैः॥१॥
वर्षाकाले तु स्थातव्यं यच्च स्थानं तु हर्षदम्।पुण्यात् पुण्यतरं चैव माथुरे मम मण्डले॥२॥
सप्तद्वीपेषु तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च। मथुरायां गमिष्यन्ति प्रसुप्ते तु सदा मयि॥३॥
शयनोत्थितं तु दृष्ट्वा मां मथुरायां वसुंधरे। ते नरा मां प्रपश्यन्ति सर्वकालं न संशयः॥४॥
सुप्तोत्थितस्य वसुधे दृष्ट्वा मे मुखपङ्कजम्। सप्तजन्मकृतं पापं तत्क्षणादेव मुच्यते।
मथुरावासिनो लोकाः सर्वे ते मुक्तिभाजनाः॥५॥
मथुरां समनुप्राप्य दृष्ट्वा देवं तु केशवम्। स्नात्वा पुनस्तु कालिन्द्यां यो मां पश्यति सर्वदा।
स तत्फलमवाप्नोति राजसूयाश्वमेधयोः॥६॥
प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुंधरा। प्रदक्षिणी येन मथुरायां तु केशवः॥७॥
घृतपूर्णेन पात्रेण समग्रेण च वाससा। केशवस्याग्रतो दत्त्वा दीपकं तु वसुंधरे॥८॥
पञ्चयोजनविस्तारमायामे पञ्चविस्तरम्। दीपमालासमाकीर्णं विमानं लभते नरः॥९॥

अध्याय–१५६

मथुरा माहात्म्य केशव की प्रदक्षिणा व दीपदान, मथुरा प्रदक्षिणा

श्री भगवान् वराह ने कहा कि मेरा माथुर मण्डल बीस योजन में स्थित है। उसमें जहाँ-कहीं भी स्नान जो जन किया करते हैं, वे जन अपने सम्पूर्ण पापों से विरहित हो जाते हैं।।१।।

मेरे इस माथुर मण्डल में वर्षाऋतु के समय जो कोई पवित्र से भी अधिक पवित्र और हर्षयुक्त स्थान उपलब्ध हो, वहाँ पर निवास हेतु अवश्य आयोजन करना चाहिए।।२।।

मेरे शयन करने के समय सात द्वीपों के समस्त तीर्थ और पुण्य स्थान सदा मथुरा में आ जाया करते हैं।।३।।

हे वसुन्धरे! जो जन मथुरा में शयन कर और फिर जागते हुए मेरा दर्शन किया करते हैं, वे जन निःसंशय सर्वदा मेरा दर्शन करते हैं।।४।।

हे वसुधे! इस प्रकार शयन करने से जागकर मेरे मुखकमल को निहारने वाला जीव तत्काल सात जनें के अर्जित पापों से मुक्त हो जाते हैं। जो जन मथुरा में निवास करते हैं, वे सभी मोक्ष के योग्य होते हैं।।५।।

मथुरा में पहुँचकर केशव देव का दर्शन कर जो जन यमुना में स्नान करने के बाद हमेशा मेरा दर्शन किया करते हैं, उन्हें राजसूय और अश्वमेध यज्ञ करने का फल मिला करते हैं। फिर जो जन मथुरा में केशव की प्रदक्षिणा किया करते हैं, वे जन सातों द्वीपों की प्रदक्षिणा करने का फल प्राप्त कर लेते हैं।।६-७।।

हे वसुन्धरे! जो जन घृतयुक्त पात्र और अखण्डित वस्त्र के साथ केशव के समक्ष दीपक प्रदान करते हैं, वे जन पाँच योजन लम्बा और चौड़ा तथा दीपमाला से अलंकृत विमान प्राप्त कर लेते हैं।।८-९।।

सर्वकामसमृद्धं तदप्सरोगणसेवितम्। रम्यमालाभिराकीर्णं विमानं सार्वकामिकम्।
समारोहति वै नित्यं प्रभामण्डलमण्डितम्।१०॥

ये देवा ये च गन्धर्वाः सिद्धाश्चारणपन्नगाः। ते स्पृहन्ति सदा देवि पुण्यमस्ति कृतं भुवि॥११॥

यदि कालान्तरे पुण्यं हीयतेऽस्य पुरा कृतम्। सतां पुण्यगृहे देवि जायते मानवो हि सः॥१२॥

धरण्युवाच

क्षेत्रं हि रक्षते देव कस्त्विदं पापनाशनम्। यक्षरक्षः पिशाचैश्च भूतप्रेतविनायकैः।
एवमादिभिराजुष्टं क्षेत्रं न फलदं भवेत्॥१३॥

श्रीवराह उवाच

मत्क्षेत्रं ते न पश्यन्ति मत्प्रभावात् कदाचन। न विकुर्वन्ति ते दृष्ट्वा मत्पराणां हि देहिनाम्॥१४॥

रक्षार्थं हि मया दत्ता दिक्पालास्तु वरानने। लोकपालास्तु त्वारस्तीर्थ रक्षन्ति ये सदा॥१५॥

पूर्वां रक्षति इन्द्रस्तु यमो रक्षति दक्षिणाम्। पश्चिमां रक्षते नित्यं वरुणः पाशधृक् स्वयम्॥१६॥

उत्तरां तु कुबेरस्य महाबलपराक्रमः। मध्यं तु रक्षते नित्यं शिवो देव उमापतिः॥१७॥

मथुरायां गृहे यस्तु प्रासादं पुरवासिनाम्। कारयित्वा तु मनुजो जायते स चतुर्भुजः॥१८॥

फिर वे विमान सम्पूर्ण अभीष्ट पदार्थों से सम्पन्न, अप्सराओं से सेवित, सुन्दर मालाओं से युक्त और स्वेच्छा से हर जगह जाने वाला होता है । वे जन नित्य प्रभामण्डल से सुशोभित उस विमान पर चढ़ा करते हैं।।१०।।

हे भुवि! इस प्रकार सभी देवता, गन्धर्व, सिद्ध चारण, सर्प आदि सदा यह इच्छा या कामना करते रहते हैं कि पृथ्वी पर किया हुआ कोई पुण्य शेष रहे।।११।।

हे देवि! फिर यदि कालान्तर में पूर्व के समय उसका किया पुण्य नष्ट हो जाते हैं तो वे सब मनुष्य होकर किसी साधुजन के गृह में उत्पन्न हुआ करते हैं।।१२।।

धरणी ने कहा कि हे देव! कौन-से देव इस पापनाशक क्षेत्र की रक्षा किया करते हैं? यक्ष, राक्षस, पिशाच, दूत, भूत, प्रेत, विनायक आदि से सम्पन्न क्षेत्र फलदान करने वाले नहीं हुआ करते हैं।।१३।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि मेरे प्रभाववश वे सभी कभी भी मेरे क्षेत्र को देख भी नहीं करते हैं और मेरे शरीरधारी भक्तों का किसी भी प्रकार से कोई अनिष्ट भी नहीं करते हैं।।१४।।

हे सुन्दरि! मेरे द्वारा इस महानगरी की रक्षा के लिए दिक्पालों को नियुक्त कर रखा है। जो चार लोकपाल हमेशा इस तीर्थ की रक्षा किया करते हैं।।१५।।

उनका क्रम यह है कि इस नगरी की पूर्व दिशा में इन्द्र, दक्षिण दिशा में यम, और पश्चिम दिशा में पाश धारण करने वाले वरुण नित्य रक्षा किया करते हैं।।१६।।

फिर इस नगरी की उत्तर दिशा में स्थित महाबलशाली और पराक्रमी कुबेर तथा इसके मध्य में स्थित उमापति शिव देव स्वयं रक्षा किया करते हैं।।१७।।

जो जन मथुरा में नगर निवासियों का घर और प्रासाद बना पाते हैं, वे जन निश्चय ही चतुर्भुज हो जाया करते हैं।।१८।।

मथुरायां महाभागे कुण्डे तु विमलोदके। गम्भीरे सर्वदा देवि संतिष्ठेत चतुर्भुजः॥१९॥
तत्राभिषककं कुर्वीत एकरात्रोषितो नरः। मोदते सर्वलोकेषु सर्वपापविवर्जितः॥२०॥
तत्राथ मुञ्चते प्राणान् स्नानं कृत्वा वसुंधरे। वैष्णवं लोकमासाद्य क्रीडते ससुखे दिवि॥२१॥
तत्रैव च सदार्श्चं कथ्यमानं मया शृणु। यद् दृश्यते वै सुश्रोणि कुण्डे वै विमलोदके॥२२॥
हेमन्ते तु भवेच्चोष्णं तेजसा मम शोभने। ग्रीष्मे भवति सुश्रोणि तुषारसदृशोपमम्॥२३॥
न वर्द्धते च वर्षासु ग्रीष्मे चापि न हीयते। एतच्च महदाश्चर्यं तस्मिन् कुण्डे परं मम॥२४॥
पदे पदे तीर्थफलं मथुरायां वसुंधरे। तत्र तत्रा नरः स्नातो मुच्यते सर्वपातकैः॥२५॥
वर्षासु स्थलतीर्थेषु स्नातव्यं तु प्रयत्नतः। ह्रदेशु देवखातेषु गर्तेशु च नदीषु च॥२६॥
प्रवाहेशु च दिव्येषु नदीनां सङ्गमेषु च। वर्षासु सर्वतः स्नायाद् यदीच्छेत् परमां गतिम्॥२७॥
अस्ति क्षेत्रं परं दिव्यं मुचुकुन्दं तु नामतः। मुचुकुन्दः स्वपित्यत्र दानवासुरपातनः॥२८॥
तत्र कुण्डे नरः स्नात्वा प्राप्नोत्यभिमतं फलम्। अथात्र मुञ्चते प्राणान् मम लोकं स गच्छति॥२९॥

हे महाभागे देवि! इस प्रकार इस मथुरा के विमल जल के गम्भीर कुण्ड में सर्वदा चतुर्भुज विष्णु रहा करते हैं।।१९।।

जो जन एकरात रहते हुए वहाँ स्नान करते हैं, वे सभी पापों से मुक्त होकर समस्त लोकों में आनन्द करने के अधिकारी हो जाते हैं।।२०।।

हे वसुन्धेर! वहाँ पर स्नान कर जो जन अपना प्राण परित्याग किया करते हैं, वे दिव्य वैष्णव लोक में जाकर सुखपूर्वक क्रीड़ा किया करते हैं।।२१।।

हे सुश्रोणि! अब मैं वहाँ नित्य घटित होने वाले आश्चर्य को कहने जा रहा हूँ, सुनो। वेसब आश्चर्य विमल जल वाले कुण्ड में देखने चाहिए।।२२।।

हे सुश्रोणि सुन्दरि! मेरे ही तेज से वह कुण्ड हेमन्त ऋतु में उष्ण तथा ग्रीष्म काल में तुषार समान शीतल जल वाला रहा करता है।।३।।

फिर वह वर्षाऋतु में न बहता है और न ग्रीष्म में घटता है। मेरे उस कुण्ड में यह परम आश्चर्य अनुभव होता है।।२४।।

हे वसुन्धरे! मथुरा में कदम-दर-कदम तीर्थ का फल मिलता है। वहाँ कहीं भी स्नान करने वाले जन समस्त पापों से रहित हो जाते हैं।।२५।।

फिर वर्षाकाल में प्रयत्नपूर्वक ह्रद, प्राकृतिक जलाशय, वाबली, नदियों आदि स्थल तीर्थों में स्नान करना चाहिए।।२६।।

फिर यदि परम गति की कामना हो तो वर्षा काल में वहाँ स्थित समस्त दिव्य प्रवाहों, नदियों आदि के सङ्गमों पर भी स्नान करना चाहिए।।२७।।

वहाँ पर मुचुकुन्द नाम का एक श्रेष्ठ तीर्थ है। यहाँ पर दानवों और असुरों को मारने वाले मुचुकुन्द शयन किया करते हैं।।२८।।

प्रत्येक जन वहाँ के कुण्ड में स्नान कर मनेप्सित फल प्राप्त करते हैं। फिर यहाँ प्राण परित्याग कर वे मेरे लोक में भी चले जाते हैं।।२९।।

इहजन्मकृतं पापमन्यजन्मकृतं च यत्। तत्सर्वं नश्यते शीघ्रं कीर्त्तने केशवस्य तु॥३०॥
किं तस्य बहुभिर्मन्त्रैर्भक्तिर्यस्य जनार्दने। नरके पच्यमानस्य गतिर्देवो जनार्दनः॥३१॥
कृत्वा प्रदक्षिणं देवं मथुरायां तु केशवम्। न जायते मर्त्त्यलोके जातो वा नृपतिर्भवेत्॥३२॥
मासे वै कौमुदे देवि यः करोति प्रदक्षिणाम्। देवेषु मम रूपेषु सोऽनन्तफलमश्नुते॥३३॥
सुप्तोत्थितं हरिं दृष्ट्वा मथुरायां वसुंधरे। न तस्य पुनरावृत्तिर्जायते स चतुर्भुजः॥३४॥
कुमुदस्य तु मासस्य मथुरायां वसुंधरे। नवम्यां दक्षिणं कृत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते॥३५॥
ब्रह्मघ्नश्च सुरापश्च गोघ्नो भग्नव्रतस्तथा। मथुराप्रदक्षिणां कृत्वा पूतो भवति मानवः॥३६॥
अष्टम्यां प्राप्य मथुरां दन्तधावनपूर्वकम्। ब्रह्मचर्येण तां रात्रिं कृतसंकल्पमानसः॥३७॥
धौतवस्त्रस्तु सुस्नातो मौनव्रतपरायणः। प्रदक्षिणां प्रकुर्वीत सर्वपातकशुद्धये॥३८॥
प्रदक्षिणं क्रियमाणमन्यो यः स्पृशते नरः। सर्वान् कामानवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा॥३९॥
मथुरायां नरो गत्वा दृष्ट्वा देवं स्वयंभुवम्। प्रदक्षिणायां यत्पुण्यं तत्पुण्यं लभते हि सः॥४०॥

यहाँ केशव का भजन-कीर्तन करने पर इस जन्म के साथ अन्य जन्म में भी जो कुछ पाप किया गया रहता है, वे सबके सब विनष्ट हो जाते हैं।।३०।।

जिस किसी जन की भक्ति जनार्दन में होती है, उनको बहुत मन्त्रों से भी क्या प्रयोजन? इस तरह नरक के दुःख पाने वालों की गति जनार्दन देव ही होते हैं।।३१।।

इस प्रकार मथुरा में केशव देव भी प्रदक्षिणा करने वाले मर्त्यलोक में उत्पन्न वीं हुआ करते हैं और यदि उत्पन्न होते हैं, तो वे राजा ही हुआ करते हैं।।३२।।

हे देवि! कार्त्तिक मास में जो जन मेरे स्वरूप वाले देव मूर्त्तियों की प्रदक्षिणा किया करते हैं, उन्हें अनन्त फल मिलते हैं।।३३।।

हे वसुन्धरे! इस प्रकार मथुरा में शयन करने से जागकर हरि का दर्शन करने वले जनों का पुनर्जन्म नहीं हुआ करता। वह चतुर्भुज हो जाते हैं।।३४।।

हे वसुन्धरे! मथुरा में कार्त्तिक मास की नवमी तिथि के दिन प्रदक्षिणा करने वाले जन अपने सभी पापों से विरहित हो जाते हैं।।३५।।

ब्रह्मघातक, मद्यप, गोघातक, व्रत भंग करने वाला आदि प्रकार के जन मथुरा की प्रदक्षिणा कर पवित्र हो जाते हैं।।३६।।

अष्टमी तिथि के दिन मथुरा में पहुँच कर दन्तधावन कर मन में संकल्प लेकर ब्रह्मचर्यपूर्वक उन जनों को रात्रि बीताना चाहिए।।३७।।

फिर अगले दिन नवमी को अच्छी तरह स्नान कर धुला वस्त्र पहन कर समस्त पापों को शुद्धि हेतु प्रदक्षिणा करना चाहिए।।३८।।

फिर प्रदक्षिणा करते समय उन्हें जो कोई अन्यान्य जन स्पर्श करते हैं, वे समस्त कामनाओं को प्राप्त कर लेंता है। संशय नहीं।।३९।।

इस प्रकार जो जन मथुरा में जाकर स्वयम्भू देव का दर्शन करता है, वे प्रदक्षिणा से जो पुण्य होता है, वह पुण्य प्राप्त कर लेता है।।४०।।

देवस्याग्रे तु वसुधे कूपं तु विमलोदकम्। पितरश्चाभिनन्दन्ति पानीयं पिण्डमेव च॥४१॥
चतुःसामुद्रिकं नाम कूपं लोकेषु विश्रुतम्। तत्र स्नातो नरो भद्रे देवैस्तु सह मोदते।
तत्राथ मुञ्चते प्राणान् मम लोकं स गच्छति॥४२॥

।।इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः।।१५६।।

सप्तपञ्चादधिकशततमोऽध्यायः

अथ मथुरामाहात्म्ये भूप्रदक्षिणाफल कथनम्

धरण्युवाच

श्रुतं सुबहुशो देव तीर्थानां गुणविस्तरम्। प्रोच्यमानं तु पुण्याख्यं त्वत्प्रसादाज्जनार्दन॥१॥
न दानैर्न तपोभिश्च न यज्ञैस्तादृशं फलम्। प्रदक्षिणायाः पृथिवी यादृशं तीर्थसेवया॥२॥
पृथिव्याश्चतुरन्तायाः क्रमणं दुर्गमं विभो। सर्वतीर्थाभिगमनमस्ति दुर्गमनं नृणाम्॥३॥
अस्ति कश्चिदुपायोऽत्र येनसम्यगवाप्यते। प्रसादसुमुखो भूत्वा तत्सर्वं कथयस्व मे॥४॥

हे वसुधे! देव के समक्ष विमल जल का कूप स्थित है। पितर भी वहाँ जल और पिण्ड की इच्छा किया करते हैं।।४१।।

इस प्रकार से लोकों में प्रसिद्ध चतुःसामुद्रक नाम का कूप है। हे भद्रे! वहाँ स्नान करने वाले जन देवतओं के साथ मुदित होते हैं। यदि वहाँ जो जन अपना प्राण त्याग करते हैं; तो वे मेरे लोक में जाते हैं।।१५६।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में मथुरा माहात्म्य केशव की प्रदक्षिणा व दीपदान, मथुरा प्रदक्षिणा नामक एक सौ छप्पनवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायण-कुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१॥

अध्याय-१५७

मथुरा माहात्म्य-पृथ्वी प्रदक्षिणा कर्त्ताओं के नाम, मथुरा प्रदक्षिणा का फल कथन

धरणी ने कहा कि हे देव जनार्दन! आपके अनुग्रह से मेरे द्वारा बहुत-सारे तीर्थों के पवित्र और विस्तृत विशेषताओं को सुना गया। फिर दान, तप, यज्ञ अथवा पृथ्वी की प्रदक्षिणा करने से उस प्रकार का फल नहीं ही प्राप्त होता है, जिस प्रकार उन तीर्थों के सेवन से प्राप्त होते हैं।।१-२।।

हे विभो! इस प्रकार चतुरन्त भूमि प्रदक्षिणा करना निश्चय ही दुर्गम कार्य है। इसी तरह एक सामान्य जन को भी समस्त तीर्थों में पहुँच पाना भी दुष्कर कार्य है।।३।।

अतः क्या इस प्रकार का कोई उपाय है, जिसके द्वारा अच्छी तरह वे सब फल सम्पूर्णता से मिल सके? हमको अनुग्रहपूर्वक वे सब बतलाने का कष्ट करें।।४।।

श्रीवराह उवाच

भद्रे श्रृणु महत्पुण्यं पृथिव्याः सर्वतो दिशम्। परिक्रम्य यथाऽध्वानं प्रमाणगणितं शुभम्।
पृथिव्याः क्रमणे सम्यक् श्रृणु त्वं योजनानि वै॥५॥
षष्टिकोटिसहस्राणि षष्टिकोटिशतानि च। तीर्थान्येतानि दैवानि तारकाश्च नभस्थले॥६॥
गणितानि समस्तानि वायुना जगदायुषा। ब्रह्मणा लोमशेनैव नारदेन ध्रुवेण च।
जाम्बवत्याश्च पुत्रेण रावणेन हनूमता॥७॥
एतैरनेकधा देवि ससागरवना मही। क्रमिता बालिना चैव बाह्यमण्डलरेखया॥८॥
अन्तरभ्रमणेनैव सुग्रीवेण महात्मना। तथा पूर्वं च देवेन्द्रैः पञ्चभिः पाण्डुनन्दनैः॥९॥
योगसिद्धैस्तथा कैश्चिन्मार्कण्डेयमुखैरपि।
क्रमिता न क्रमिष्यन्ति न पूर्वे नापरे जनाः॥१०॥
अल्पसत्त्वबलोपेतैः प्राणिभिश्चाल्पबुद्धिभिः। मनसाऽपि न शक्येत गमनस्य च का कथा॥११॥
सप्तद्वीपे तु ये तीर्था भ्रमणाच्च फलं भवेत्। प्राप्यते चाधिकं तस्मान्मथुराभ्रमणीयके॥१२॥
मथुरां समनुप्राप्य यस्तु कुर्यात् प्रदक्षिणम्। प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुंधरा॥१३॥

श्रीभगवान् वराह ने कहा कि हे भद्रे!सुनो। भूमि के चारों दिशाओं में जहाँ तक सम्भव हो सके शुभ कार्य में स्थित तीर्थों का विचार करते हुए प्रदक्षिणा करने से महापुण्य मिलता है। अब तुम पृथ्वी की प्रदक्षिणा योग्य योजनों को कहते हैं, सुनो।।५।।

इस सम्पूर्ण पृथ्वी पर साठ हजार कोटि और साठ सौ कोटि देवताओं के तीर्थ हैं, उतने ही तारे आकाश में स्थित हैं।।६।।

इस जगत् की आयु की गणना वायु,, ब्रह्मा, लोमश, नारद, ध्रुव, जाम्बवती पुत्र जाम्बवान्, रावण, हनुमान आदि ने की है।।७।।

हे देवि! इस सबके साथ बालि ने सागर के सहित इस पृथ्वी की प्रदक्षिणा उसकी बाहर परिधि के अनुसार कई बार की है। फिर पहले ही महात्मा सुग्रीव ने और श्रेष्ठ देवता के समान पाँच पाण्डुपुत्रों ने भी आन्तरिक भाग में परिक्रमण किया है।।८-९।।

फिर योग की सिद्धि करने वाले मार्कण्डेय आदि कुछ मुनियों ने भी पृथ्वी की प्रदक्षिणा की है। इन सबके अलावे इनसे भी पहले उत्पन्न हुए किसी ने भी पृथ्वी की प्रदक्षिणा नहीं की है और आगे भी कोई मनुष्य पृथ्वी की प्रदक्षिणा नहीं कर सकेंगे।।१०।।

इस प्रकार अल्प सत्त्व और बल वाले और अल्प बुद्धि वाले जीव द्वारा या मन द्वारा भी यह नहीं हो सकता है। गमन/भ्रमण की तो बात ही क्या है?।।११।।

फिर सात द्वीपों में इस पृथ्वी पर जितने तीर्थ स्थित हैं, उतने जगह जाने से जो फल होता है, उससे अधिक फल मात्र मथुरा की यात्रा कर लेने से मिल जाता है।।१२।।

इस प्रकार मथुरा में पहुँचकर जो जन वहाँ की प्रदक्षिणा करते हैं, वे सातद्वीपों से युक्त इस पृथ्वी की प्रदक्षिणा कर लेता है।।१३।।

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन सर्वकामानभीप्सुभिः। कर्त्तव्या मथुरां प्राप्य नरैः सम्यक् प्रदक्षिणा॥१४॥

धरण्युवाच

यथाविधानक्रमणे मथुरायामवाप्यते। प्रदक्षिणाफलं सम्यगनुक्रमविधिं वद॥१५॥

श्रीवराह उवाच

पुरा सप्तर्षिभिः पृष्टो ब्रह्मा लोकपितामहः। इदमेवार्थमप्युक्तो यथा त्वं पृष्टवान्मम॥१६॥
श्रुत्वा सर्वपुराणोक्तं तीर्थानुक्रमणं परम्। पृथिव्याश्चतुरन्तायास्तथा तद्वक्तुमुद्यतः॥१७॥
सर्वदेवेषु यत्पुण्यं सर्वतीर्थेषु यत्फलम्। सर्वदानेषु यत्प्रोक्तमिष्टापूर्तेषु चैव हि।
फलं तदधिकं प्रोक्तं मथुरायाः परिक्रमे॥१८॥
प्रहृष्टा ऋषयो जग्मुरभिवाद्य स्वयंभुवम्। आगत्य मथुरां देवीमाश्रमाश्चक्रिरे द्विजा।
ध्रुवेण सहिता आसन् कामयानास्तु तद्दिनम्॥१९॥
कुमुदस्य तु मासस्य नवम्यां शुक्लपक्षके। मथुरापरिक्रमं कृत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते॥२०॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः॥

अतः समस्त कामनाओं को पूरा करने के अभिलाक्षी जनों को सब तरह के प्रयासों से मथुरा पहुँच कर अच्छी तरह प्रदक्षिणा कर लेनी चाहिए।।१४।।

धरणी ने कहा कि इस मथुरा का जिस विधि से प्रदक्षिणा करने से उस प्रदक्षिणा का फल मिलता हो, क्रम से उन विधियों का उल्लेख कीजिए।।१५।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि पुरातन काल में सप्तर्षियों ने लोकपितामह ब्रह्मा से इस बात को पूछा था, जिसे तुमने अभी मुझसे पूछा है और उन्होंने भी यही सब बातें बतलायी थीं।।१६।।

फिर सभी पुराणों में उल्लिखित चतुरन्त पृथ्वी में वर्तमान तीर्थों का क्रम सुनकर उन सप्तर्षिं ने ब्रह्मा से पूछा और उन्होंने यह बतलाया कि सम्पूर्ण देवों के दर्शन से जो कुछ पुण्य प्राप्त होता है तथा सभी तीर्थों में सब प्रकार के दानों और इष्टापूर्त करने से जो फल मिलता है, उससे अधिक फल मथुरा की प्रदक्षिणा करने से प्राप्त हो जाता है।।१७-१८।।

हे देवि! इस प्रकार सुनकर ऋषिगण प्रसन्नता से स्वयम्भू ब्रह्मा को प्रणाम कर विदा हो गए। फिर मथुरा में पहुँचकर उन ब्राह्मणों ने अपना-अपना आश्रम भी बनाया और ध्रुव के साथ याने ध्रुवतीर्थ में उस दिन की प्रतीक्षा करने लगे।।१९।।

इस प्रकार कार्तिक मास के शुक्लपक्ष की नवमी को मथुरा की प्रदक्षिणा करने से सभी पापों से रहित हुआ जा सकता है।।२०।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में मथुरा माहात्म्य—पृथ्वी प्रदक्षिणा कर्त्ताओं के नाम मथुरा प्रदक्षिणा का फल कथन नामक एक सौ सत्तावनवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्य-नारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१५७॥

❖❖❖

अष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

अथ मथुरामाहात्म्ये मथुरा परिक्रमावर्णनम्

श्रीवराह उवाच

अष्टम्यां मथुरां प्राप्य कार्त्तिकस्य सिते नरः। स्नात्वा विश्रान्तितीर्थे तु पितृदेवार्चने रतः॥१॥
विश्रान्तिदर्शनं कृत्वा दीर्घविष्णुं च केशवम्। दिनान्ते नियमं कार्यं तीर्थे विश्रान्तिसंज्ञके॥२॥
मथुरां च परिक्रामन् दृष्ट्वा देवं स्वयंभुवम्। स्थितं वा स्थलरूपेण केशवं क्लेशनाशनम्।
प्रदक्षिणायाः सम्यग् वै फलमाप्नोति मानवः॥३॥
उपवासरतः सम्यगल्पमेध्याशनोऽथवा। दन्तकाष्ठं च सायाह्ने कृत्वा शुद्ध्यर्थमात्मनः॥४॥
ब्रह्मचर्येण तां रात्रिं कृत्वा संकल्पमानसम्। धौतवस्त्रधरः स्नातो मौनव्रतपरायणः॥५॥
तिलाक्षतकुशान् गृह्य पितृदेवार्थमुद्यतः। दीपहस्तो वनं गत्वा श्रान्तो विश्रान्तिजागरे॥६॥
तथानुक्रमणं तैश्च ध्रुवाद्यैर्ऋषिभिः कृतम्। एवं परम्परायातं क्रमणीयं नरोत्तमैः॥७॥
प्रदक्षिणावर्त्तमानो नरो भक्तिसमन्वितः। सर्वान् कामानवाप्नोति हयमेधफलं लभेत्॥८॥

अध्याय–१५८

मथुरा माहात्म्य-मथुरा परिक्रमा विधि और उसका महत्त्व

श्री भगवान् वराह ने कहा कि इस प्रकार कार्तिक मास की शुक्लपक्षीय अष्टमी तिथि के दिन मथुरा में पहुंचकर विश्राम तीर्थ में स्नान कर पितर और देवताओं की अर्चना करने में संलग्न होना चाहिए।।१।।

फिर विश्रान्ति तीर्थ में विश्रान्ति देव और दीर्घविष्णु नाम के केशव का दर्शन करते हुए सायं समय में उसी विश्रान्ति नाम के तीर्थ में आकर विधिवद् निवास करना चाहिए।।२।।

फिर मथुरा की प्रदक्षिणा काल में चाहिए कि स्वयम्भू देव अथवा वहाँ स्थूल रूप में अवस्थित क्लेशनाशक केशव का दर्शन करे। तभी प्रदक्षिणा करने वाले जनों को प्रदक्षिणा का सम्यक् फल मिलता है।।३।।

इस प्रकार के अवसर पर उपवास अथवा स्वल्प शुद्धपवित्र आहार ग्रहण करे और फिर से सायाह्नकाल में अपनी शुद्धि हेतु दन्तधावन भी करें।।४।।

फिर मानसिक संकल्प और ब्रह्मचर्य धारण पूर्वक वे जन रात्रि में विश्राम करे तथा फिर मौन धारणावस्था में स्नान कर धुले वस्त्रों को धारण करे।।५।।

इस प्रकार वे जन, जो पितरों एवं देवताओं के कर्म करने हेतु प्रस्तुत हों, वे तिल, अक्षत और कुशों के सहित हाथ में दीपक लेकर वन में पहुँचे और वहाँ विश्रान्ति सागर तीर्थ में विश्राम करे।।६।।

पूर्वोक्त ध्रुव आदि ऋषिजनों ने इसी क्रम से मथुरा की परिक्रमा की थी। अतः श्रेष्ठ जनों को भी इसी प्रकार परम्परागत विधि से प्रदक्षिणा करनी चाहिए।।७।।

इस प्रकार भक्ति भावना से प्रदक्षिणा करने वाले जनों की समस्त अभिलाषायें पूर्ण होती है और उनको अश्वमेध यज्ञ करने जैसा फल भी मिलता है।।८।।

एवं जागरणं कृत्वा नवम्यां नियतः शुचिः। ब्राह्मे मुहूर्त्ते संप्राप्ते ततो यात्रामुपक्रमेत्।
तथा प्रारभ्यते यात्रा यावन्नोदयते रविः॥९॥
प्रातः स्नानं तथा कुर्यात्तीर्थे दक्षिणकोटिके। प्रक्षाल्य पादावाचम्य हनूमन्तं प्रसादयेत्॥१०॥
सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं कुमारं ब्रह्मचारिणम्। विज्ञाप्य सिद्धिकर्त्तारं यात्रासिद्धिप्रदायकम्।
यस्य संस्मरणादेव सर्वे नश्यन्त्युपद्रवाः॥११॥
यथा रामस्य यात्रायां सिद्धिस्ते सुप्रतिष्ठिता। तथा परिभ्रमन् मेऽद्य भवान् सिद्धिप्रदो भव।
इति विज्ञाप्य मेऽद्य भवान् सिद्धिप्रदो भव॥१२॥
इति विज्ञाप्य विधिवद् हनूमन्तं गणेश्वरम्। दीपपुष्पोपहारैस्तु पूजयित्वा प्रसादयेत्॥१३॥
तथैव पद्मनाभं तु दीर्घविष्णुं भयापहम्। विज्ञाप्य सिद्धिकर्त्तारो देव्यश्च तदनन्तरम्॥१४॥
दृष्ट्वा वसुमतीं देवीं तथैव ह्यपराजिताम्। आयुधागारसंस्थां च नृणां सर्वभयापहम्॥१५॥
कंसवासनिकां तद्वदौग्रसेनीं तु चर्चिकाम्। वधूटीं च तथा देवीं दानवक्षयकारिणीम्॥१६॥
जयदां देवतानां च मातरो देवपूजिताः। गृहदेव्यो वास्तुदेव्यो दृष्ट्वाऽनुज्ञाप्य निर्गमेत्॥१७॥
मौनव्रतधरो गच्छेद् यावद् दक्षिणकोटिके। प्राप्य स्नात्वा पितॄंस्तर्प्य दृष्ट्वा देवं प्रणम्य च।

तत्पश्चात् रात्रि में जागरण करते हुए नवमी तिथि के दिन विधिपूर्वक पवित्रावस्था और ब्राह्ममुहूर्त्त में यात्रा का शुभारम्भ करनी चाहिए। हलांकि यात्रा तभी करनी प्रारम्भ करे, जब सूर्योदय हो गया हो।।९।।

फिर प्रातःकालीन स्नान दक्षिण कोटि तीर्थ में करना उचित है। वहाँ पर अपने दोनों पैरों को धोने के पश्चात् आचमन कर हनुमान की प्रार्थना करे।।१०।।

प्रार्थना इस तरह करनी चाहिए कि सभी मङ्गलों के मङ्गलस्वरूप, ब्रह्मचारी, सिद्धिप्रदायक और जिनके स्मरण मात्र से ही सभी उपद्रवों का नाश होता है, उन अंजनी कुमार हनुमान की ऐसी प्रार्थना करे।।११।।

जिस प्रकार राम की यात्रा में सिद्धियाँ आप में ही सन्निहित थीं याने आपने ही उन्हें यात्रा में सफलता प्रदान की थी, उसी तरह मुझे भी इस परिक्रमा में आप सिद्धि प्रदान करे।।१२।।

इस तहर से गणेश्वर हनुमान् की स्तुति कर उनकी दीप और पुष्प आदि उपचार से अर्चना कर उन्हें प्रसन्न करनी चाहिए।।१३।।

फिर उसी प्रकार भयापहारी पद्मनाभ दीर्घ विष्णु का स्तवन कर सिद्धि प्रदान करने वाली देवियों की भी स्तुति करनी चाहिए।।१४।।

फिर वसुमती देवी का दर्शन कर आयुधागार में स्थित मनुष्यों के सभी पापों से मुक्त करने वली अपराजिता का भी दर्शन करना चाहिए।।१५।।

फिर कंसवासनिका, औग्रसेनी, चर्चिका, दानवों का नाश करने वाली वधूटी देवी आदि का दर्शन भी करना चाहिए।।१६।।

फिर देवी को विजयी करने वाली देव पूजित मातृकाओं, गृहदेवियों और वास्तुदेवियों का भी दर्शन करते हुए उनकी प्रार्थनापूर्वक परिक्रमा करनी चाहिए।।१७।।

इसी क्रम में मौनव्रत धारण कर दक्षिण कोटि तीर्थ में पहुँचकर स्नान करने के बाद अपने-अपने पितरों का

नत्वा गच्छेदिक्षुवासां देवीं कृष्णसुपूजिताम्॥१८॥

बालक्रीडनरूपाणि कृतानि सह गोपकैः। यानि तीर्थानि तान्येव स्थापितानि महर्षिभिः।
ख्यातिं गतानि दिव्यानि सर्वपापहराणि च॥१९॥

वत्सपुत्रं ततो गच्छेत् सर्वपापहरं शुभम्। अर्कस्थलं वीरस्थलं कुशस्थलमनन्तरम्।
पुण्यस्थलं महास्थलं महापातकनाशनम्॥२०॥

एवं पञ्चस्थला ख्याता महापातकनाशनाः। येषु दृष्टेषु मनुजो ब्रह्मणा सह मोदते।
शिवं सिद्धिमुखं दृष्ट्वा स्थलानां फलमाप्नुयात्॥२१॥

हयमुक्तिं ततो गच्छेत् सिन्दूरं ससहायकम्। श्रूयते चात्र ऋषिभिर्गीता गाथा पुरातनी॥२२॥

अश्वारूढेन तेनैव यात्रेयं समनुष्ठिता। अश्वो मुक्तिं गतस्तत्र सहायसहितः सुखम्॥२३॥

राजपुत्रः स्थितस्तत्र यानयात्रा न मुक्तिदा। तस्माद् यानैस्तु यात्रा च न कर्त्तव्या फलेच्छया।
तस्मिंस्तीर्थे तु तं दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा पापैः प्रमुच्यते॥२४॥

लवणस्य गुहां तत्र दृष्ट्वा भक्तिसमन्वितः। शत्रुघ्नमीश्वरं चैव सर्वपपैः प्रमुच्यते॥२५॥

कुण्डं शिवस्य विख्यातं तत्र स्नानान्महाफलम्। मल्लिकादर्शनं कृत्वा कृष्णस्य जयदं शुभम्।
ततः कदम्बखण्डस्य गमनात् सिद्धिमाप्नुयात्॥२६॥

तर्पण कर केशव देव का दर्शन कर उन्हें प्रणाम करे फिर कृष्ण पूजिता इक्षु वाला देवी को प्रणाम करना चाहिए।।१८।।

फिर महर्षियों द्वारा गोपों के साथ बालक्रीडा करने वाले केशव रूप की तीर्थों की स्थापना की गई है। वे दिव्य और सभी पाप हरने वाली तीर्थ संसार में प्रसिद्ध है।।१९।।

तत्पश्चात् सर्वपापहारी कल्याणमय वत्सपुत्र नाम की तीर्थ, अर्कस्थल, वीरस्थल, कुशस्थल, पुण्यस्थल और फिर पापनाशक महास्थल की भी यात्रा की जानी चाहिए।।२०।।

चूकि ये पाँच स्थल महापातक नाश करने वाले प्रसिद्ध हैं। जिनके दर्शन मात्र से मनुष्य ब्रह्मानन्द का सुख प्राप्त करते हैं। फिर सिद्धिमुख शिव का दर्शन करने से पाँचों स्थलों के दर्शन का फल मिल जाया करता है।।२१।।

इन सब तीर्थों के बाद सिन्दूरवर्णीय सहायक हयमुक्ति तीर्थ की यात्रा भी करनी चाहिए। यहाँ के बारे में ऋषियों के द्वारा कही हुई गाथाऐं सूनी जा सकती है। कहा जाता है कि किसी अश्वारूढ राजपुत्र ने यह यात्रा की थी। फिर सहायक सहित अश्व वहीं पर मर गया और जिससे वह मुक्त हो गया।।२२-२३।।

लेकिन राजपुत्र वहीं रह गया। चूँकि यान द्वारा की गई यात्रा कथमपि मुक्तिप्रद नहीं होती है। अतः फल की आकांक्षी जनों को यान द्वारा यह यात्रा नहीं करनी चाहिए। उस तीर्थ में उसका दर्शन और स्पर्शन से मनुष्य अपने पापों से छूट जाता है।।२४।।

फिर वहीं पर भक्तिभाव से रावण की गुहा में पहुँच कर शत्रुघ्नेश्वर का दर्शन कर मनुष्य सभी पापों से छूट जाते हैं।।२५।।

वहीं पर प्रसिद्ध शिव कुण्ड भी है। उस कुण्ड में स्नान करने से महाफल मिलता है। फिर कृष्ण को विजय प्रदान करने वाले शुभप्रद मल्लिकार्जुन का दर्शन कर कदम्ब खण्ड में जाने से मनुष्य को सिद्धि मिलती है।।२६।।

अपरं तत्र गुह्याख्यं तीर्थं तस्य समीपतः। गमनात् तस्य तीर्थस्य महापातकनाशनम्।
उल्लोला वरदा तत्र दृष्ट्वा गतिमवाप्नुयात्॥२७॥
चर्च्चिका योगिनी तत्र योगिनीपरिवारिता। कृष्णस्य रक्षणार्थं हि स्थिता सा दक्षिणां दिशम्॥२८॥
अस्पृश्या च स्पृशा चैव मातरौ लोकपूजितौ।
बालानां दर्शनं द्वाभ्यां महारक्षां करिष्यति॥२९॥
वर्षखातं ततो गत्वा कुण्डं पापहरं परम्। गत्वा स्नात्वा पितॄंस्तप्य। सर्वपापै प्रमुच्यते॥३०॥
क्षेत्रपालं ततो गत्वा शिवं भूतेश्वरं हरम्। मथुराक्रमणं तस्य जायते सफलं तथा॥३१॥
कृष्णक्रीडासेतुबन्धं महापातकनाशनम्। वलभीं तत्र क्रीडार्थ दृष्ट्वा देवो गदाधरः॥३२॥
गोपकैः सहितस्तत्र क्षणमेकं दिने दिने। तत्रैव रमणार्थं हि नित्यकालं स गच्छति॥३३॥
बलिह्रदं च तत्रैव जलक्रीडाकृतं शुभम्। यस्य संदर्शनादेव सर्वपापैः प्रमुच्यते॥३४॥
ततः परं च कृष्णेन कुक्कुटैः क्रीडनं कृतम्। यस्य दर्शनमात्रेण चण्डः सद्गतिमाप्नुयात्॥३५॥
स्तम्भोच्चयं सुशिखरं सौरभैः ससुगन्धिभिः। भूषितं पूजितं तत्र कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा॥३६॥

फिर उसी के पास की गुह नाम की अन्य तीर्थ भी है। उस तीर्थ में पहुँच जाने से ही महापातक का नाश होता है। वहीं पर वरप्रदायिनी उल्लोला देवी के दर्शन कर लेने से मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है।।२७।।

फिर वहीं पर योगिनियों से आवृत चर्चिका देवी नाम की योगिनी स्थित है। चूँकि कृष्ण की रक्षा के लिए वह दक्षिण दिशा में स्थित हुई थीं।।२८।।

वहीं पर अस्पृश्या और स्पृशा नाम की दो देवियाँ भी हैं। ये दानों मातृकायें लोगों द्वारा पूजी जाती हैं। इन दोनों का दर्शन बालकों की महारक्षार्थ हुआ करता है।।२९।।

फिर वर्षखात नाम के श्रेष्ठ पापापहारक कुण्ड पर पहुँचकर स्नान कर पितृ तर्पण करने वाले जन सम्पूर्ण पापों से रहित हो जाते हैं।।३०।।

इस प्रकार भूतेश्वर क्षेत्रपाल हर शिव की यात्रा करने वाले की मथुरा परिक्रमा सफलता को प्राप्त होती है।।३१।।

फिर यात्री कृष्ण की क्रीड़ा हेतु बनाये हुए महापातक नाश करने वाले सेतु बन्धन नाम के तीर्थ और बलभी नामक क्रीड़ा तीर्थ में गदाधर देव का दर्शन होता है।।३२।।

वे गदाधर देव गापों के साथ प्रत्येक दिन क्षणमात्र के लिए वहाँ पर रमण या विहार करने हेतु प्रतिदिन पधारते हैं।।३३।।

वहीं जलक्रीड़ा हेतु शुभ बलिह्रद है, जिसका दर्शन करने से ही समस्त पापों से मुक्ति मिल जाया करती है।।३४।।

फिर वहाँ वह तीर्थ है, जहाँ कि श्रीकृष्ण कुक्कुट के साथ क्रीड़ा की थी। जिसका दर्शन करने मात्र से उग्रपापी जन भी सद्गति प्राप्त कर लेते हैं।।३५।।

वहीं पर धार्मिक कृष्ण द्वारा सुरभित सुगन्धितों से अलंकृत पूजित उच्च स्तम्भ वाला शिखर भी स्थित है।।३६।।

तस्य प्रदक्षिणं कृत्वा परिपूज्य प्रयत्नतः। मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं व्रजेत् तु सः॥३७॥
वसुदेवेन देवक्या गर्भसंरक्षणाय च। कृतमेकान्तशयनं महापातकनाशनम्॥३८॥
ततो नारायणस्थानं प्रविशेन्मुक्तिहेतवे। परिक्रम्य ततो देवान् नारायणपुरोगमान्॥३९॥
दृष्ट्व ततोऽनुविज्ञाप्य गणं सिद्धिविनायकम्।
कुब्जिकां वामनां चैव ब्राह्मण्यौ कृष्णमानिते॥४०॥
अनुज्ञाप्य ततः स्थानं द्रष्टुं गर्तेश्वरं शिवम्। दृष्टमात्रेण तत्रैव यात्राफलमवाप्यते॥४१॥
लोहजङ्घं ततो दृष्ट्वा आरक्षं परमं हरेः। रक्षणार्थं हि क्षेत्रस्य यात्रायाः सिद्धिदं नृणाम्।
प्रभालल्लीं च तत्रैव दृष्ट्वा कामानवाप्नुयात्॥४२॥
महाविद्येश्वरी देवी कृष्णरक्षार्थमुद्यता। नित्यं सन्निहिता तत्र सिद्धिदा पापनाशिनी॥४३॥
कृष्णेन बलभद्रेण गोपैः कंसं जिघांसुभिः। संकेतकं कृतं तत्र मन्त्रनिश्चयकारकम्॥४४॥
तदा संकेतकेशा च सिद्धा देवी प्रतिष्ठिता। सिद्धिप्रदा भोगदा च तेन सिद्धेश्वरी स्मृता॥४५॥
संकेतकेश्वरीं चैव दृष्ट्वा सिद्धिमवाप्नुयात्। तत्र कुण्डं स्वच्छजलं महापातकनाशनम्॥४६॥

जो जन सत्प्रयास उसकी प्रदक्षिणा पूजन पूर्वक करते हैं, वे जन सभी पापों से रहित होकर विष्णु धाम को चले जाते हैं।।३७।।

फिर वसुदेव द्वारा देवकी में स्थित गर्भ की रक्षा हेतु, जहाँ एकान्त में शयन किया था, वह 'एकान्तशयन' नाम का तीर्थ महापातक को नष्ट करने वाला है।।३८।।

फिर मुक्ति हेतु नारायण के स्थान में प्रविष्ट होना चाहिए। फिर वहाँ नारायण आदि देवताओं की परिक्रमा करनी चाहिए।।३९।।

तत्पश्चात् सिद्धिविनायकगण का दर्शन कर उनकी स्तुति करनी चाहिए। फिर कृष्ण द्वारा सत्कृत् 'कुब्जिका एवं वामना नाम की दो ब्राह्मणियों का भी दर्शन करना चाहिए।।४०।।

उनकी स्तुति सम्पन्न कर गर्तेश्वर शिव के स्थान का दर्शन करने का प्रयास होना चाहिए। उसका दर्शन करने पर ही इस यात्रा का सम्पूर्ण फल मिल जाता है।।४१।।

फिर हरि के क्षेत्र की रक्षा हेतु लोहजङ्घ नाम का श्रेष्ठ रक्षक है। वहाँ की यात्रा व्यक्तियों को सिद्धि प्रदायक होती है। वही प्रभालल्ली का दर्शन करने से कामना की सिद्धि होती है।।४२।।

फिर वहाँ पर स्थित पापनाशिनी सिद्धिदायिनी महाविद्येश्वरी देवी कृष्ण की रक्षा हेतु नित्य उद्यत रहा करती हैं।।४३।।

फिर कृष्ण, बलभद्र, गोपों आदि ने वहाँ पर कंस को मारने की इच्छा से मात्र निश्चय करने हेतु संकेत स्थान को बनाया था।।४४।।

फिर उस काल में उन लोगों ने संकेत केशा सिद्धादेवी की स्थापना की थी। ये सिद्धि एवं भोग को देने वाली है। अतः वे सिद्धेश्वरी नाम से प्रसिद्ध है।।४५।।

उन संकेतेश्वरी का दर्शन करने पर सिद्धि मिलती है। वहीं पर स्वच्छ जलवाला महापातक विनाश करने वाला एक कुण्ड भी स्थित है।।४६।।

ततो दृष्ट्वा महादेवं गोकर्णेश्वरनामतः। यस्य दर्शनामात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते॥४७॥
सरस्वतीं नदीं दृष्ट्वा ततो भद्राणि पश्यति। विघ्नराजं ततो गच्छेद् गणेशं विघ्ननाशनम्॥४८॥
गङ्गां साध्वीं च तत्रैव महापातकनाशिनीम्।
दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा तथा ध्यात्वा सर्वकामान् समश्नुते॥४९॥
महादेवमुखाकारं नाम्ना रुद्रमहालयम्। क्षेत्रपं तं परं दृष्ट्वा क्षेत्रवासफलं लभेत्।
तस्मादुत्तरकोटिं च दृष्ट्वा देवं गणेश्वरम्॥५०॥
द्युतक्रीडा भगवता कृता गोपजनैः सह। नानावहासरूपेण जिता गोप्यो धनानि च।
गोपैरानीय तत्रैव कृष्णाय च निवेदिता॥५१॥
गोपालकृष्णगमनं महापातकनाशनम्। समस्तं बालचरितं भ्रमता च यथासुखम्॥५२॥
कृतं तत्र यथारूपं तद्रूपं च तथा तथा। ऋषिभिः सेवितं ध्यातं विष्णोर्माहात्म्यमुत्तम्॥५३॥
ततो गच्छेन्महातीर्थं विमलं यमुनाम्भसि। स्नात्वा पीत्वा पितॄंस्तर्प्य नाम्ना रुद्रमहालयम्।
गार्ग्यतीर्थे महापुण्ये नरस्तत्र तथाक्रमेत्॥५४॥
भद्रेश्वरे महातीर्थे सोमतीर्थे तथैव च। स्नात्वा सोमेश्वरं देवं दृष्ट्वा यात्राफलं लभेत्॥५५॥

फिर वहीं पर गोकर्णेश्वर नाम के महादेव का दर्शन करना श्रेष्ठ है। उनके दर्शन मात्र से जीव सभी पापों से रहित हो जाया करते हैं।।४७।।

फिर सरस्वती देवी नाम की नदी का दर्शन कर जीव अपने लिए परमशुभ का अनुभव किया करते हैं। फिर समस्त सिद्धियों को प्रदान करने वाले विघ्ननाशक रमणीय विघ्नराज गणेश के समीप पहुँच कर फिर उनका दर्शन कर शुभ फल पाया करते हैं।।४८।।

फिर वहीं पर महापातकनाशिनी साध्वी गंगा का दर्शन, स्पर्शन और ध्यान करते हुए जीव समस्त अभिलाषाओं को पूरा कर लिया करता है।।४९।।

फिर महादेव के मुख के समान रुद्रमाहात्म्य नाम का श्रेष्ठ क्षेत्रपाल का दर्शन कर क्षेत्रवास का फल पाना चाहिए। फिर वहीं पर उत्तर कोटि गणेश्वर का दर्शन करना चाहिए।।५०।।

जिस समय भगवान् ने गोपजनों के साथ विविध प्रकारक परिहासपूर्वक द्युतक्रीड़ा की और उनकी गोपियों और धनों को भी जीत लिया। फिर गोपों ने वहीं उन गोपियों और धनों को एकत्रित कर उन्हें समर्पण कर दिया था।।५१।।

इस प्रकार महापातक नाशक गोपालकृष्णगमन नाम के तीर्थ हैं। सुखपूर्वक घूमते हुए सभी बालचरित्र को भगवान् ने जिस अपने स्वरूप से प्रस्तुत किया था, ऋषियों ने उसी-उसी रूप से विष्णु के उत्तम माहात्म्य का सेवन एवं ध्यान किया।।५२-५३।।

फिर यमुना जल में स्नान, आचमन, पितृतर्पण कर रुद्रमहालय नामक विमल महातीर्थ में पहुँचना श्रेष्ठ है और वहाँ से मनुष्य को महापवित्र गार्ग्य तीर्थ में जाना चाहिए।।५४।।

इसी तरह महान् तीर्थ भद्रेश्वर तथा सोमेश्वर में स्नान कर सोमेश्वर देव का दर्शन कर यात्रा का फल भी पाना चाहिए।।५५।।

सरस्वत्याः संगमे च संतर्प्य पितृदेवताः। घण्टाभरणके तद्वत् तथा गरुडकेशवे॥५६॥
धारालोपनके तद्वद् वैकुण्ठे खण्डवेलके। मन्दाकिन्याः संयमने असिकुण्डे तथैव च॥५७॥
गोपानां तीर्थके चैव तथैवामुक्तिकेश्वरे। वैलक्षगरुडे चैव महापातकनाशने॥५८॥
एते तीर्था महापुण्या तथा विश्रान्तिसंज्ञकः। एषु तीर्थेषु क्रमितो भक्तिमान् विजितेन्द्रियः।
देवान् पितॄन् समभ्यर्च्य ततो देवं प्रसादयेत्॥५९॥
अविमुक्तेश देवेश सप्तर्षिभिरनुष्ठित। मथुराक्रमणीयं मे सफलं स्यात् तवाज्ञया॥६०॥
इत्येवं देवदेवेशं विज्ञाप्य क्षेत्रपं शिवम्। विश्रान्तिसंज्ञके स्नानं कृत्वा च पितृतर्पणम्॥६१॥
गतश्रमं परिक्रम्य स्तुत्वा दृष्ट्वा प्रणम्य च। सुमङ्गलां ततो गच्छेद् यात्रासिंद्धि प्रसादयेत्॥६२॥
सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके। यात्रेयं त्वत्प्रसादेन सफला मे भवत्विति॥६३॥
पिङ्गलादेश्वरं देवं पिप्पलादेन पूजितम्। विश्रान्तु परिक्रम्य श्रान्तस्तत्र महातपाः॥६४॥
उपलिप्य ततस्तस्य शीर्षस्योपरितो महान्। उपरि लिङ्गं संस्थाप्य स्वनाम्ना चिह्नितं शिवम्॥६५॥
कर्कोटकं तथा नागं महादुष्टनिवारणम्। दृष्ट्वा गच्छेत् ततो देवीं या कृष्णेन विनिर्मिता॥६६॥

वहाँ सरस्वती के संगम पर पितर देवों का तर्गण भी करना चहिए। इसी प्रकार घण्टाभरणक और गरुडकेशव पर भी तर्पण करना उचित है। उसी तरह धरालोपनक, वैकुण्ठ, खण्डवेलक, मन्दाकिनी के संगम तथा असि कुण्ड नाम के स्थानों पर पितृतर्पण करना चाहिए। फिर गोपतीर्थ, अविमुक्तेश्वर और महापातकों को विनष्ट करने वाले वैलक्षण रुद्र नाम के तीर्थ में पितृतर्पण करना चाहिए।।५६-५८।।

ये सब तीर्थ और विश्रान्ति नाम के महातीर्थ पवित्र तीर्थ हैं। भक्तिपूर्वक जितेन्द्रिय होकर मनुष्य इन तीर्थों में जाकर देवों और पितरों की अर्चना कर केशव की स्तुति करें।।५९।।

इस प्रकारसप्तर्षियों द्वारा सुपूजित हे देवेश अविमक्तेश! आपकी आज्ञा से मेरी मथुरा की प्रदक्षिणा सफल हो।।६०।।

फिर देवाधिदेव क्षेत्रपाल शिव की स्तुति कर विश्रान्तिसंज्ञक तीर्थ में स्नान कर फिर पितृतर्पण करना चाहिए।।६१।।

तत्पश्चात् प्रदक्षिणा के बाद स्तुति, दर्शन और प्रणाम करते हुए श्रमरहित होकर वहाँ से सुमङ्गला देवी के समीप पहुँचकर यात्रा सिद्धि हेतु निवेदन करना चाहिए।।६२।।

हे सर्वमङ्गलमाङ्गल्या और सर्वार्थ साधिका देवि! आपकी कृपा से मेरी यह यात्रा सफल और सिद्धिप्रद हो।।६३।।

फिर पिप्पलाद पूजित पिङ्गलादेश्वर देव का दर्शन और पूजन करना चाहिए। महातपस्वी पिप्लाद ने प्रदक्षिणा करते हुए शिथिल होने पर वहीं विश्राम किया था।।६४।।

फिर महान् पिप्लाद ऋषि ने वहाँ की भूमि के शीर्षस्थान पर उपलेपन कर अपने नाम के शिवलिङ्ग की स्थापना की थी।।६५।।

फिर महादुष्ट का निवारण करने वाले कर्कोटक नाग का दर्शन कर कृष्ण द्वारा निर्मित देवी का दर्शन करना चाहिए।।६६।।

कंसभेदं प्रथमतः श्रुतं यत्र कुमन्त्रितम्। सुखवासं च वरदं कृष्णस्याक्लिष्टकर्मणः॥६७॥
सुखासीनं च तत्रैव स्थापितं शकुनाय वै। सानुकूलः स्वरो यत्र प्रवेशे दक्षिणः स्वनः॥६८॥
ध्याता शुभाय कृष्णेन स्वसा सातिसुखप्रदा। भयार्त्तेन च कृष्णेन ध्याता देवी च चण्डिका॥६९॥

स्थापिता सिद्धिदा तत्र नाम्ना चार्त्तिहरा ततः।
दृष्ट्वा सर्वातिहरणं यस्या देव्याः सुखी नरः॥७०॥

अगोत्तरं शुभतरं शकुनार्थं हि याचतः। कृष्णस्य कंसघातार्थं संभूतस्तमगोत्तरम्।

तं दृष्ट्वा मनुजः कामान् सर्वानिष्टान् प्रवर्तते॥७१॥
वज्रानननं ततो ध्यात्वा कृष्णो मल्लजिघांसया।
निहत्य मल्लान् पश्चाद्धि वज्राननमकल्पयत्॥७२॥
वाञ्छितार्थफलं चेच्छन् कृष्णेन स्यान्मनोरथान्।
यस्यै यस्यै देवतायै तस्यै तस्यै ददौ मखम्॥७३॥

उपयाचितं तु माङ्गल्यं सर्वपापहरं शुभम्। कृष्णस्य बालचरितं महापातकनाशनम्॥७४॥
सूर्यं संवरदं देवं माथुराणां कुलेश्वरम्। दृष्ट्वा तत्रैव दानं च दत्त्वा यात्रां समापयेत्॥७५॥

फिर कंस भेदतीर्थ में जहाँ कृष्ण ने सर्वप्रथम कंस की दुष्ट मन्त्राणा को सुना था, वहाँ जाना चाहिए। फिर वे यात्री जन निरन्तर कर्मशील कृष्ण के वरदायक सुखवास नाम के तीर्थ में जाना चाहिए।।६७।।

वहीं पर शकुन देखने हेतु स्थापित सुखासीन नाम का तीर्थ है। वहाँ पर प्रवेश करने पर अनुकूल स्वर सुनाई पड़ता है और दाहिनी ओर की नासिका का श्वास वायु प्रवाहित होने लग जाता है।।६८।।

चूँकि कृष्ण ने वहाँ शङ्खीमयी अतिसुख प्रदा अपनी बहन का ध्यान किया था। फिर भयार्त्त कृष्ण ने देवी चण्डिका का ध्यान किया था।।६९।।

अतः उनमें वहाँ सिद्धदायिनी, आतिर्त्तिहरा नाम की देवी को स्थापित किया। इस प्रकार वहाँ सर्वार्त्तिहारिणी देवी का दर्शन करने से मनुष्य सुखी हो जाता है।।७०।।

फिर कृष्णजी ने अत्यन्त शुभमय शकुन के निमित्त अगोत्तर की स्थापना की थी। श्रीकृष्ण ने कंस के वध हेतु उस अगोत्तर को स्थापित किया। उसका दर्शन करने से भी मनुष्य की इच्छायें पूर्ण हुआ करती हैं।।७१।।

फिर कृष्ण ने मल्लों को मारने हेतु व्रजानन का ध्यान किया था और मल्लों को मारने के पश्चात् वहाँ उनकी स्थापना भी की।।७२।।

वाञ्छित फल की कामना करने वाले कृष्ण ने कामनानुरूप जिस-जिस देवता को प्रणाम किया, उन सभी का यज्ञ भी सम्पादित किया।।७३।।

उपयाचित्त माङ्गल्य का पूजन समस्त पापों का नाशक और शुभप्रद होता है। इस प्रकार श्रीकृष्ण का बालचरित महापातकों का विनाशक है।।७४।।

फिर मथुरा निवासियों के कुलेश्वर वरदायक सूर्यदेव का दर्शन और दान कर वहीं पर यात्रा सम्पन्न करना चाहिए।।७५।।

एवं प्रदक्षिणं कृत्वा नवम्यां शुक्लकौमुदीम्। सर्वान् कुलान् समादाय विष्णुलोके महीयते॥७६॥
क्रमतः पदविन्यासा यावन्तः सर्वतो दिशः। तावन्तः कुलसंभूताः सूर्ये तिष्ठन्ति शाश्वते॥७७॥
ब्रह्मघ्नश्च सुरापश्च चौरा भग्नव्रताश्च ये। अगम्यागमने शीलाः क्षेत्रदारापहारकाः।
मथुराक्रमणं कृत्वा विपाप्मानो भवन्ति ते॥७८॥
अन्यदेशागतो दूरात् परिक्रमति यो नरः। तस्य संदर्शनादन्ये पूताः स्युर्विगतामयाः॥७९॥
श्रुतं यैश्च विदूरस्थैः कृतयात्रं नरं नरैः। सर्वपापविनिर्मुक्तास्ते यान्ति परमां गतिम्॥८०॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे अष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः॥१५८॥

इस प्रकार से कार्त्तिक मास के शुक्लपक्ष की नवमी को प्रदक्षिणा करने वाले जन अपने सभी कुलजनों के सहित विष्णु लोक में सम्मान पाने वाले होते हैं।।७६।।

फिर सभी दिशाओं में प्रदक्षिणा करते हुए, जितने कदम पड़ते हैं कुल में उत्पन्न उतने पूर्वज शाश्वत सूर्य लोक में निवास करते हैं।।७७।।

ब्रह्मघातक, मद्यप, चोर, व्रतभंग करने वाले, अगम्यागमन करने वाले और फिर भूमि और भूमि का अपहरण करने वाले भी मथुरा की प्रदक्षिणा कर पाप रहित हो जाते हैं।।७८।।

दूर-दूर के अन्यान्य देश से यहाँ पहुँचकर जो जन यह प्रदक्षिणा किया करते हैं, उनके दर्शन से दूसरे भी पवित्र और कष्ट रहित हो जाया करते हैं।।६९।।

इस प्रकार से दूर रहने वाले जन मथुरा की यात्रा करने वाले जन का वर्णन को सुना करते हैं, तो वे सभी भी पापों से रहित होकर परमगति पाते हैं।।७०।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में मथुरा माहात्म्य-मथुरा परिक्रमा विधि और उसका महत्त्व नामक एक सौ अठावनवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१५८॥

❖❖❖

एकोनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

अथ मथुरामाहात्म्ये तस्य प्रदक्षिणा फल कथनम्

धरण्युवाच

ये धर्मविमुखा मूढाः सर्वज्ञानबहिष्कृताः। का गतिः कृष्णः तेषां हि विहिता नरके सुरैः॥१॥
अभुक्त्वा नारकं दुःखं सुकृतैः पुण्यदैर्नृणाम्। प्रयान्ति कर्मणा येन तमुपायं ब्रवीहि मे॥२॥

श्रीवराह उवाच

सर्वधर्मविहीनानां पुरुषाणां दुरात्मानाम्। नरकार्त्तिहरा देवी मथुरा पापघातिनी॥३॥
मथुरावासिनो ये च तीर्थानां चोपसेवकाः। वनानां दर्शको वाऽथ मथुराक्रमकोऽपि वा॥४॥
एषां मध्ये कृतं यैश्च एकं च शतमोजसा। न ते नरकभोक्तारः स्वर्गभाजो भवन्ति ते॥५॥
प्रथमं मधुवनं नाम द्वादशं वृन्दकावनम्। एतानि ये प्रपश्यन्ति न ते नरकभाजिनः॥६॥
यथाक्रमेण ये यात्रां वनानां द्वादशस्य तु। करिष्यन्ति वरारोहे ते यान्ति शक्रशासनम्॥७॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे एकोनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः॥१५९॥

—※※※—

अध्याय-१५९

मथुरा प्रदक्षिणा से समस्त नरकों के दुःखों से निवृत्ति

धरणी ने कहा कि हे कृष्ण! जो जन सब प्रकार के ज्ञान से हीन और धर्म विमूख मूढ़ होते हैं, उनकी असुरों से नरक में क्या गति हुआ करती है।।१।।

जिस कर्म से मनुष्य विना नरक का दुःख भोगे पुण्यप्रद शुभ कर्मों से सद्गति प्राप्त किया करते हैं, उस उपाय को मुझे बतलाने की कृपा करें।।२।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि देखो! यह मथुरा देवी सभी धर्मों से मुक्त दुरात्मा जनों के नरक के दुःख से निवृत्ति वाली और पापनाश करने वाली हैं।।३।।

जो जन मथुरा में रहा करते हैं, वहाँ के तीर्थो का सेवन करते हैं, वनों का दर्शन करते हैं अथवा मथुरा की प्रदक्षिणा करने वाले हैं, जो इनमें से एक भी उत्साहपूर्वक सौ बार करते हैं, वे नरक का भोग करने वाले नहीं होते हैं। वे स्वर्ग के अधिकारी होते हैं।।४-५।।

जो जन प्रथम मधुवन एवं बारहवें वृन्दावन के साथ इन बारह वनों को देखा करते हैं, वे इतने से भी नरक भोग के अधिकारी नहीं होते हैं।।६।।

हे सुन्दरि! जो जन क्रम से बारह वनों की यात्रा कर लिया करते हैं, वे जन निश्चय ही इन्द्र के राज्य का भोग किया करते हैं।।७।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में मथुरा प्रदक्षिणा से समस्त नरकों के दुःखों से निवृत्ति नामक एक सौ उनसठवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१५९॥

❖❖❖

षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

अथ मथुरामाहात्म्ये चक्रतीर्थवर्णनम्

श्रीवराह उवाच

पुनरन्यत् प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व वसुंधरे। चक्रतीर्थे पुरावृत्तं मथुरायां तथोत्तरे॥१॥
महामहोदयं नाम जम्बूद्वीपस्य भूषणम्। तस्मिन् पुरवरे दिव्ये ब्राह्मणो वसते शुभे॥२॥
कन्यां स पुत्रमादाय ब्राह्मणो वेदपारगः। शालग्रामं महापुण्यमगच्छद् ब्राह्मणोत्तमः॥३॥
तत्रासौ वसते विप्रः पुण्यसेवी तु सर्वदा। तीर्थसेवी स्नानपरो देवतादर्शने रतः॥४॥
तत्र सिद्धेन संवासो ब्राह्मणस्याभवत् तदा। स सिद्धो वसते नित्यं कल्पग्रामे तु सर्वदा।
गच्छते सर्वकालं तु शालग्रामे वसुंधरे॥५॥
स तेन सह संगत्य कान्यकुब्जनिवासिना। कल्पग्रामविभूतिं च नित्यकालं स वर्णयेत्॥६॥
कल्पग्रामविभूतिं च श्रुत्वा स मुनिसत्तमः। गमने बुद्धिरुत्पन्ना ततः सिद्धं स याचते॥७॥
मित्रत्वे वर्तते सिद्धनयस्वात्मनिवेशने। ब्राह्मणस्य वचः श्रुत्वा सिद्धो वचनमब्रवीत्॥८॥
तत्र सिद्धा हि गच्छन्ति तेन तस्य गतिर्भवेत्। प्रार्थना दुर्लभा चात्र शृणु वै ब्राह्मणोत्तम।

अध्याय–१६०

मथुरा माहात्म्य–चक्रतीर्थ वर्णन में ब्राह्मण कुमार की ब्रह्महत्या निवृत्ति

श्री भगवान् वराह ने कहा कि हे वसुन्धरे! अब आगे पुनः मथुरा के उत्तर की ओर स्थित चक्रतीर्थ में घटित हुई अन्य पुरातन घटना का उल्लेख करने जा रहा हूँ, उसे तुम सुनो।।१।।

जम्बूद्वीप के भूषण स्वरूप महामहोदय में कान्यकुब्ज नाम का स्थान है। उस श्रेष्ठ शुभ दिव्य पुर में एक ब्राह्मण रहा करता था।।२।।

वह वेदपारगामी श्रेष्ठ ब्राह्मण अपने कन्या और पुत्र को लेकर महापवित्र शालग्राम तीर्थ में आ गया। फिर वह ब्राह्मण पवित्र कर्म करते हुए वहाँ सदैव स्नान एवं देवदर्शन में लगे रहकर तीर्थसेवा कर रहा था।।३-४।।

हे वसुन्धरे! उस समय वहाँ पर एक सिद्ध व्यक्ति के साथ उस ब्राह्मण का समागम हुआ। वह सिद्ध व्यक्ति सदा कल्पग्राम में ही रहा करता था। फिर रोज व रोज वह शालग्राम तीर्थ में भी जाया करता था।।५।।

इस तरह उस कान्यकुब्ज स्थान के निवासी ब्राह्मण से मिल बैठ कर नित्य कल्पग्राम की विभूतियों की चर्चा किया करता था।।६।।

फिर कल्पग्राम की विभूति को सुनकर उस मुनि श्रेष्ठ ने वहाँ जाने का मन बना लिया। फिर उसने सिद्ध से प्रार्थना की।।७।।

हे सिद्ध! तुम मेरे मित्र हो। अपने निवास पर मुझे ले चलो। ब्राह्मण की बात सुनकर सिद्ध ने यह वचन कहा—।।८।।

वैसे वहाँ तो सिद्ध जन ही जाया करते हैं। अभी तुम्हारी पहुँच वहाँ नहीं हो सकती है। हे ब्राह्मणोत्तम! सुनो।

आत्मयोगबलेनैव नेष्यामि त्वां सपुत्रकम्॥९॥
दक्षिणे तु करे गृह्य ब्राह्मणं वेदपारगम्। वामेन तु करे गृह्य तस्य पुत्रं महामतिम्॥१०॥
उत्पपात तदा सिद्धो गृहीत्वा ब्राह्मणोत्तमौ। कल्पग्रामे तु तौ मुक्तौ पितापुत्रौ वसुन्धरे॥११॥
तत्र तौ वसतो नित्यं कल्पग्रामे द्विजोत्तमौ। तत्र कालेन महता रुजा देहेभवत् तदा॥१२॥
रुजया पीड्यमानः स दशां तु दशमीं गतः। मर्त्तुकामो द्विजवरो निरीक्ष्य सुतमुत्तमम्॥१३॥
उवाच पुत्रं धर्मात्मा मरणे समुपस्थिते। गङ्गातीरे च मां पुत्र नय त्वं मा विलम्बय॥१४॥
गङ्गापुलिनमासाद्य ब्राह्मणे च स्थिते तदा। रुरोद पुत्रस्तु तदा पितृस्नेहसमन्वितः॥१५॥
वेदाध्ययनशीलस्य पितुर्भक्तिमतस्ततः। वसतस्तत्र वै तस्य कालो गच्छति शोभने॥१६॥
कल्पग्रामे तदा सिद्धस्तस्य कन्या वरोत्तमा।
वरमन्वेषणे तस्या न च प्राप्तो वरः क्वचित्॥१७॥
कदाचित् केन योगेन कान्यकुब्जनिवासकः। तस्याग्रहे प्रविष्टस्तु भोजनार्थं द्विजोत्तमः॥१८॥
पृष्टोऽसौ ब्राह्मणो भद्रे क्व भवांस्त्वमिहागतः। स सर्वं कथयामास यथावृत्तं दृढव्रतः॥१९॥

इस विषय में तुम्हारी प्रार्थना का पूर्ण होना दुष्कर-सा है। मैं आत्मयोग के बल से ही पुत्र सहित तुम्हें ले चल सकूँगा।।९।।

फिर सिद्ध ने दाहिने हाथ से उस वेदपारगी ब्राह्मण को तथा बायें हाथ से उसके बुद्धिमान् पुत्र को पकड़ लिया।।१०।।

फिर दोनों श्रेष्ठ ब्राह्मणों को पकड़े हुए वह सिद्ध उड़ने लगा। हे वसुन्धरे! उसने उन दोनों पिता एवं पुत्र को कल्पग्राम में स्वतन्त्र कर दिया।।११।।

फिर वे दोनों श्रेष्ठ ब्राह्मण नित्य कल्पग्राम में निवास करे लगे। बहुत समय बाद वहाँ वह शरीर से रोगी हो गया।।१२।।

इस प्रकार रोगपीड़ित होकर वह दसवीं दशा के पास की दशा याने मृत्यु को प्राप्त हो गया। उस समय वह श्रेष्ठ ब्राह्मण ने मरने के पूर्व अपने उत्तम पुत्र को देखकर कहा—।।१३।।

मरणकाल उपलब्ध होने पर धर्मात्मा ब्राह्मण ने अपने पुत्र से कहा कि हे पुत्र! तुम मुझे गंगातट पर ले चलो, विलम्ब इसमें मत करो।।१४।।

फिर गंगा तट पर आकर ब्राह्मण के वहाँ स्थित हो जाने पर पितृस्नेह से युक्त पुत्र रोने लगा।।१५।।

हे सुन्दरि! वहाँ रहकर वेदाध्ययन करते हुए उसका समय पिता की सेवा में व्यतीत हुआ करता था।।१६।।

फिर कल्पग्राम में निवास कर रहा कोई सिद्ध अपनी श्रेष्ठ कन्या का वर खोज रहा था, किन्तु कहीं उसके योग्य वर नहीं मिल रहा था।।१७।।

एक समय किसी संयोगवश कान्यकुब्ज स्थान का रहने वाला श्रेष्ठ ब्राह्मण उसके आग्रह पर भोजन के लिए प्रवेश किया।।१८।।

हे भद्रे! उसने उस ब्राह्मण से पूछा कि आप कहाँ से यहाँ आये हुए हैं। फिर उस दृढ़व्रत ब्राह्मण ने समस्त यथार्थ वार्त्ता सुना दिया।।१९।।

दिव्यज्ञानेन तं दृष्ट्वा पूजयामास तं द्विजम्।
पूजयित्वा यथान्यायं कन्यां तस्मै ददौ तदा॥२०॥

श्वसुरस्य गृहे नित्यं भोजनं कुरुते शुभे। वसते पितृसान्निध्ये प्रतिचारी स पुत्रकः॥२१॥
कालेन गच्छता तस्य अतिक्षीणः पिता तदा। अपृच्छत् श्वसुरं देवि पितुर्मरणमात्मनः॥२२॥
जामातुर्वचनं श्रुत्वा विहस्य मुनिरब्रवीत्। शूद्रान्नं भक्षितं तेन नित्यकालं द्विजोत्तम॥२३॥
तस्य चाहारदोषेण मृत्युं समधिगच्छति। पादयोस्तु तले तस्य शूद्रान्नं परिपूरितम्॥२४॥
जान्वोरूर्ध्वं न विद्येत शूद्रान्नं च द्विजोत्तम। शूद्रान्नेन विहीनस्य तस्य मृत्युर्भविष्यति॥२५॥
श्वशुरस्य वचः सर्वं तावतोऽस्य निवेदयेत्। निशि पुत्रस्य वचनं श्रुत्वा हृदि निवेशयन्॥२६॥
ततः प्रभाते विमले उदिते च दिवाकरे। पितुः समीपात् स गतः श्वशुरस्य निवेशनम्॥२७॥
गते पुत्रे पिता तस्य रुजा अत्यन्तपीडितः। दीर्घादनशनात् क्षीणो मर्तुकामो द्विजोत्तमः।

गङ्गातीरात् समुत्तिष्ठन् दिशः सर्वा व्यलोकयात्॥२८॥

सन्निधावुपलं दृष्ट्वा गृहीतं तेन तत् तदा। चूर्णयामास तौ पादौ पीडया मोहितो द्विजः॥२९॥

इस प्रकार दिव्यज्ञान द्वारा उसको देखने के बाद सिद्ध ने उस ब्राह्मण की पूजा की। पूजन के पश्चात् यथोचित रीति से उसने उसको अपनी कन्या दे दी।।२०।।

हे भद्रे! पितृसेवक वह नित्य पुत्र श्वसुर के गृह में भोजन करता था और वह पिता के पास आकर रहा करता था।।२१।।

फिर कुछ समय बीतने पर उसका पिता अत्यन्त क्षीण हो गया। हे देवि! उसने अपने श्वसुर से अपने पिता के मरण के रहस्य को पूछ लिया।।२२।।

इस प्रकार अपने जामाता की बात सुनकर उस मुनि से हँसते हुए कहा कि हे द्विजोत्तम! उसने सदा शूद्र का अन्न खाया है।।२३।।

उसी आहर के दोष से वह मृत्यु को नहीं प्राप्त कर पा रहा है। उसके पैरों के नीचे शूद्रान्न भरा हुआ है।।२४।।

हे द्विजोत्तम! जानुओं के ऊपर शूद्रान्न नहीं है। अतः उसकी मृत्यु शूद्रान्न मुक्त होने पर ही हो सकेगी।।२५।।

इस प्रकार उसने अपने श्वसुर की बातों को अपने उन पिता से कह दिया। फिर इस तरह वे पुत्र की बातों को सुनकर उसने उन बातों को अपने हृदय में निहित कर लिया।।२६।।

फिर जब प्रातःकाल हुआ, तो स्पष्टसूर्योदय होने पर ब्राह्मण पुत्र अपने श्वसुर के घर अपने पिता के पास से चला गया।।२७।।

फिर पुत्र के चले जाने पर रोग से अतिपीड़ित और बहुत समय तक उपवास करने के कारण दुर्बल हो चले उसके पिताश्रेष्ठ ब्राह्मण ने स्वयं अपने आपको मृत्यु पाने की इच्छा की।।२८।।

अतएव उसने गंगा के तीर से उठकर अपने चारों तरफ निरीक्षण किया। फिर उसने अपने निकट पड़े एक पत्थर देखकर उठा लिया। फिर पीड़ा से अति व्याकुल हो रहे ब्राह्मण ने उस पत्थर से अपने दोनों पैरों को ही तोड़ डाला।।२९।।

ततः प्राणान् परित्यज्य गतोऽसौ कालवर्तनम्।
स्नात्वा भुक्त्वा ततो गत्वा प्रेक्षते पितरं मृतम्॥३०॥
पितृपञ्चत्वमापन्ने दृष्ट्वा स रुरुदे भृशम्। रुदित्वा सुचिरं कालं शास्त्रदृष्ट्या विचिन्तयत्।
संस्कारयोग्यता नास्ति इत्येवं पुनरब्रवीत्॥३१॥
सर्पशृङ्गिहतानां च दंष्ट्रिविप्रहतस्य च। आत्मनस्त्यागिनां चैव आपस्तम्बोऽब्रवीदिदम्॥३२॥
आत्मघाती नरः पापो नरके पच्यते चिरम्। प्रायश्चित्तं विधीयेत न दद्याच्चोदकक्रियाम्।
अहो दैवं सुबलवत् पौरुषं तु निरर्थकम्॥३३॥
जामाता तु महाभागे गतः श्वशुरमन्दिरम्। तं दृष्ट्वा श्वशुरो दीनमिदं वचनमब्रवीत्॥३४॥
ब्रह्महत्या तु ते भूता गच्छ त्वं च यथेप्सितम्। श्वशुरस्य वचः श्रुत्वा जामाता वाक्यमब्रवीत्॥३५॥
न मया ब्राह्मणवधं कदाचिदपि कारितम्। केन दोषेण मे सिद्ध ब्रह्महत्याफलं महत्॥३६॥
जामातुर्वचनं श्रुत्वा श्वशुरो वाक्यमब्रवीत्। पितुस्त्वया वधोपायं विनिर्दिष्टं च पुत्रक।
तेन दोषेण विप्रर्षे ब्रह्महत्याफलं तव॥३७॥
आसनाच्छयनाच्चैव भोजनाद् कथनादपि। संवत्सरेण पतति पतितेन सहाचरन्।
तस्मान्मम गृहे नास्ति वासस्तव द्विजोत्तम॥३८॥

फिर वह अपना प्राण त्याग कर यमलोक सिधार गया। जब स्नान और भोजन करने के पश्चात् उसका पुत्र वहाँ आया, तो अपने पिता को मरा हुआ पाया।।३०।।

इस प्रकार अपने पिता को मरा हुआ पाकर वह बहुत रोने लगा। बहुत काल बाद उसने अपना होश सम्हाल कर शास्त्रीय दृष्टि से विचार किया, तो उसने पाया कि इनमें संस्कार की योग्यता नहीं है। इस प्रकार से विचार कर उसने पुनः सोचा।।३१।।

साँप, सींग वाले पशु, दाढ़ों वाले पशु आदि के आघात से मरे हुए अथवा आत्महत्या करने वालों का संस्कार नहीं हो सकता, यह आपस्तम्ब का वचन है।।३२।।

फिर आत्मघाती पापी मनुष्य दीर्घकाल तक नरक में कष्ट भोगता है। उसका प्रायश्चित्त करना चाहिए। उसके लिए जलदान आदि याने अन्त्येष्टि संस्कार आदि क्रिया नहीं ही करनी चाहिए।।३३।।

हे महाभागे! फिर जामाता अपने श्वसुर के घर गया। उसे दुःखी देखकर श्वसुर ने इस प्रकार कहा—।।३४।।

तुम्हें तो ब्रह्महत्या लग चुकी है। तुम्हें स्वेच्छा से यहाँ से चले जाना चाहिए। श्वसुर की बातें सुनकर जामाता ने यह वाक्य कहा—।।३५।।

अब तक तो मैंने कभी भी ब्राह्मण वध नहीं किया है। हे सिद्ध! किस दोष से मुझे महाब्रह्महत्या का दोष लग गया है।।३६।।

अपने जामाता की बातों को सुनकर श्वसुर सिद्ध ने यह वाक्य कहा कि हे पुत्र! तुमने अपने पिता को मरने का उपाय बतलाया था। हे ब्रह्मर्षि उसी दोष से तुमको ब्रह्महत्या का पाप लग गया है।।३७।।

चूँकि एक वर्ष तक किसी पतित जन के साथ बैठने, सोने, खाने, बातचीत करने वाले जन भी पतित हो जाता है। अतः हे द्विजोत्तम! मेरे घर में तुम्हारे रहने का स्थान नहीं रह गया है।।३८।।

श्वशुरस्य वचः श्रुत्वा जामाता वाक्यमब्रवीत्। किं मया वद कर्तव्यं त्वया त्यक्ते हि सुव्रत॥३९॥
जामातुर्वचनं श्रुत्व श्वशुरो वाक्यमब्रवीत्। गच्छ त्वं मथुरां देवीं विद्वज्जननिषेविताम्।
तत्राराधतय ततजामार्ब्राह्मणान् वेदपारगान्॥४०॥
श्वशुरस्य वचः श्रुत्वा ब्राह्मणः संशितव्रतः। कल्पग्रामं परित्यज्य तत्क्षणादेव निःसृतः॥४१॥
ततः कालेन महता संप्राप्तो मथुरां पुरीम्। ब्राह्मणानां बहिःस्थाने नित्यं तु वसते द्विजः॥४२॥
कन्यापुरनिवासी च कुशिकोऽथ नराधिपः। तस्य सत्रं नित्यकालं मथुरायां प्रवर्त्तते॥४३॥
द्वे सहस्रे तु विप्राणां तस्मिन् सत्रे च भुञ्जते। ब्राह्मणानां तदोच्छिष्टं ततश्चोद्धरते तु सः॥४४॥
चक्रतीर्थं समासाद्य स्नानं स कुरुते सदा। न भिक्षां कुरुते तत्र भोजनं च न गच्छति॥४५॥
ततः कालेन महता चिन्ताऽभून्महती तदा। दिव्यज्ञानेन तत् सर्वं ज्ञात्वा जामातृचेष्टितम्॥४६॥
स्वां सुतां चोदयामास गच्छ त्वं मथुरां पुरीम्। भोजनं गृह्य तत्रैव गच्छ भर्त्तरि सन्निधौ॥४७॥
दिने दिने तु कुरुते भर्तुर्भोजनकारणात्। दिव्यज्ञानेन महता नित्यं याति तथा प्रिया॥४८॥
दिवसस्यावसाने तु नित्यं याति च सा प्रिया। भोजनं कुरुते नित्यं प्रियादत्तं वसुंधरे॥४९॥

इस प्रकार श्वसुर की बातों को सुनकर जामाता ने यह बात कही कि हे सुव्रत! आपसे त्याग दिए जाने पर मुझे क्या करना चाहिए, यंह तो कहें।।३९।।

अपने जामाता की बातों को सुनकर श्वसुर ने यह कहा कि हे जामातः! तुम विद्वानों से निवेषित मथुरा देवी की पुरी को चले जाओ और वहाँ वेदपारगामी ब्राह्मणों की आराधना करो।।४०।।

इस प्रकार से श्वसुर की बातों को सुनकर तीव्र व्रतधारी ब्राह्मण पुत्र उसी क्षण कल्पग्राम को त्याग कर चल पड़ा।।४१।।

फिर बहुत काल पश्चात् मथुरापुरी में आ पहुँचा। वह ब्राह्मण नित्यप्रति ब्राह्मणों के बाहरी स्थान में रहने लग गया।।४२।।

उस समय कन्यापुर निवासी कुशिकगोत्रीय एक राजा था। नित्य प्रति मथुरा में उसका सत्र चला करता था।।४३।।

उस सत्र में दो हजार ब्राह्मण भोजन किया करते थे। वह राजा उन ब्राह्मणों का उच्छिष्ट ग्रहण किया करता था।।४४।।

लेकिन वह ब्राह्मण चक्रतीर्थ में पहुँच कर सदा स्नान किया करता था। वह वहाँ न तो भिक्षा माँगता था और न भोजन ही किया करता था।।४५।।

फिर कल्पग्राम के उस सिद्ध को बहुत माह बाद चिन्ता हुई। उसने अपने दिव्यज्ञान से अपने जामाता के समस्त कार्यों और व्यवहारों को जान लिया।।४६।।

फिर उसने अपनी पुत्री से कहा कि तुम मथुरापुरी जाओ। भोजन लेकर पति के समीप तुम्हें जाना चाहिए। अतः अपने पति हेतु भोजन लेकर वह नित्य प्रति उसी प्रकार जाने लगी। ब्राह्मण की पत्नी दिव्य ज्ञान से नित्य वहाँ पहुँचने लग गई।।४७-४८।।

इस प्रकार ब्राह्मण की प्रिया नित्य सायंकाल जाती थी। हे पृथ्वि! वह ब्राह्मण पत्नी का दिया हुआ भोजन कर लिया करता था।।४९।।

पात्रं निक्षिप्य कुण्डे तु सत्रे वसति सर्वदा। एवं निवसतस्तस्य वर्षार्द्धं तु गतं तदा॥५०॥
ततः कालेन महता ते पृच्छन्ति पुरःसरम्। कुत्र संतिष्ठसे नित्यं भोजनं कुरुषे कुतः॥५१॥

इति ते विस्मयाविष्टास्ते पृच्छन्ति द्विजोत्तमम्।
कथयामास वृत्तान्तं तं सर्वं चात्मनो हि सः॥५२॥
ते श्रुत्वा ब्राह्मणाः सर्वे एकीभूता वसुंधरे।
इदमूचुस्ततो विप्राः शुद्धो गच्छ स्वमालयम्॥५३॥

चक्रतीर्थप्रभावेन शुद्धोऽसि द्विजसत्तम। अस्माकं वचनाच्चैव पुनः सिद्धोऽसि भो द्विज॥५४॥
ब्राह्मणानां वचः श्रुत्वा स द्विजो हृष्टमानसः। स्नानार्थाय ततस्तत्र चक्रतीर्थे समागतः॥५५॥
तस्य वै गतमात्रस्य भार्या तस्यागता तदा। सा तु हृष्टेन मनसा भर्त्तारं वाक्यमब्रवीत्॥५६॥
भोजनं कुरु मे दत्तं हत्या लक्ष्यामि ते गता। प्रियावचनमाकर्ण्य भर्त्ता वचनब्रवीत्॥५७॥
न पुरा भाषितं भद्रे यदिदं भाषितं त्वया। भर्त्तुर्वचनमाकर्ण्य पत्नी वचनमब्रवीत्॥५८॥
न त्वं संभाषितः पूर्वं ब्रह्महत्यासमन्वितः। चक्रतीर्थप्रभावेन मुक्तोऽसि द्विजसत्तम॥५९॥

फिर पात्र को कुण्ड में डालकर वह सर्वदा सत्रस्थान में रहा करता था। फिर इस तरह उसके रहते-रहते आधा वर्ष बीत गया।।५०।।

फिर बहुत काल बाद वहाँ के उन ब्राह्मणों ने उस श्रेष्ठ ब्राह्मण से पूछ दिया कि तुम नित्य कहाँ रहते हो और कहाँ भोजन करते हो।।५१।।

फिर आश्चर्य चकित इस प्रकार से उन ब्राह्मणों ने श्रेष्ठ उस ब्राह्मण से पूछने लगा। उसने अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त बतला दिया।।५२।।

हे वसुन्धरे! यह सुनकर समस्त ब्राह्मण एकत्रित होने लग गये कि उन ब्राह्मणों ने उससे यह कहा कि तुम अब शुद्ध हो गये हो। अपने घर जाओ।।५३।।

हे द्विजश्रेष्ठ! तुम चक्रतीर्थ के प्रभाव से शुद्ध हो गए हो। हे द्विज! और हम लोगों के कहने से भी तुम पुनः शुद्ध और सिद्ध हो गये हो।।५४।।

इस प्रकार ब्राह्मणों के वचनों को सुनकर वह ब्राह्मण प्रसन्नचित्त हो गया। फिर वह स्नान के लिए चक्रतीर्थ में गया।।५५।।

फिर उसके वहाँ पर जाते ही उसकी पत्नी वहाँ आ पहुँची। उसने प्रसन्न मन से अपने पति से यह वचन कहा—।।५६।।

लो, मेरा दिया भोजन करो। मैं देखती हूँ कि तुम्हारी ब्रह्महत्या के पाप का अन्त हो गया। पत्नी की बातें सुनकर पति ने कहा—।।५७।।

हे भद्रे! तुमने आज जिस प्रकार यह कहा है , वह पहले कभी नहीं कहा था। पति का वचन सुनकर पत्नी ने यह वचन कहा—।।५८।।

पहले तो ब्रह्महत्या के पाप से युक्त होने के कारण आप से मैंने इस प्रकार की बातें नहीं की। हे द्विजश्रेष्ठ! चक्रतीर्थ के प्रभाव से अब आप दोष से रहित हो गये।।५९।।

उत्तिष्ठ कान्त गच्छावः कल्पग्रामं सुशोभनम्। तया सार्द्धं जगामाथ कल्पग्रामं वसुंधरे॥६०॥
भद्रेश्वरनिमित्तं हि द्रव्यं च कथितं शुभम्। नित्यं च भुञ्जते यत्र पात्रे द्रव्यं समर्पितम्॥६१॥
दृष्ट्वा भद्रेश्वरं देवं चक्रतीर्थफलं लभेत्। कल्पग्रामाच्छतगुणं चक्रतीर्थं वसुंधरे॥६२॥
अहोरात्रोपवासेन मुच्यते ब्रह्महत्यया। कल्पग्रामेण किं तस्य वाराणस्यां च वा शुभे॥६३॥
मथुरायां च यत्पुण्यं तस्य पुण्यफलं शृणु। मथुरायां समासाद्य यः कश्चिन्म्रियते भुवि।
अपि कीटः पतङ्गो वा जायते स चतुर्भुजः॥६४॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः॥१६०॥

हे पति! उठिए! हम दोनों को कल्पग्राम को अब चल देना चाहिए। हे वसुन्धरे! वह उसके साथ कल्पग्राम चला गया॥६०॥

फिर भद्रेश्वर के निमित्त प्रदत्त द्रव्य शुभकारक होता है। वह नित्य वहाँ पात्र में रखा द्रव्य खाता था॥६१॥

उस भद्रेश्वर देव का दर्शन करने पर चक्रतीर्थ का फल प्राप्त होता है। हे वसुन्धरे! कल्पग्राम से सौ गुना अधिक चक्रतीर्थ का माहात्म्य है॥६२॥

वहाँ एक अहोरात्र के उपवास से मनुष्य ब्रह्महत्या से रहित हो जाता है। हे भद्रे! उसे कल्पग्राम या वाराणसी से क्या प्रयोजन?॥६३॥

इस प्रकार मथुरा में जो पुण्य होता है, उस पुण्य का फल सुनो। हे भुवि! जो जन मथुरा में आकर मर जाता है, वह कीट या पतंग होकर भी चतुर्भुज ही हुआ करते हैं॥६४॥

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में मथुरा माहात्म्य—चक्रतीर्थ वर्णन में ब्राह्मण कुमार की ब्रह्महत्या निवृत्ति नामक एक सौ साठवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१६०॥

एकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

अथ मथुरामाहात्म्ये वैकुण्ठादितीर्थवर्णनम्

श्रीवराह उवाच

पुनरन्यत्प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व वसुंधरे। वैकुण्ठतीर्थमासाद्य यद्वृत्तं हि पुरातने॥१॥
मिथिला च पुरी रम्या जनकेन च पालिता। मिथिलावासिनो लोकास्तीर्थयात्रां समागताः॥२॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चापि वसुंधरे। स्नात्वा च सौकरे तीर्थे आयाता मथुरां पुरीम्॥३॥
तेषां तु भक्तिरुत्पन्ना मथुरां प्रति सुन्दरि। वैकुण्ठतीर्थमासाद्य सर्वे ते मनुजाः प्लुताः॥४॥
तेषां मध्ये ब्राह्मणोऽपि ब्रह्महत्यासचिह्नितः। रुधिरस्य हि धारा च स्रवन्ती तस्य हस्ततः।
प्रत्यक्षा दृश्यते सर्वैर्ब्रह्महत्या स्वरूपिणी॥५॥
सर्वतीर्थप्लुतस्यापि ब्राह्मणस्य हि सा तदा। न गता पूर्वमेवासीद्वैकुण्ठे स्नानमाचरेत्॥६॥
न सा वै दृश्यते धारा ततस्ते विस्मयं गताः। किमेतत् किमिति प्राहुर्द्धारां प्रति वसुंधरे॥७॥
देवो ब्राह्मणरूपेण लोकान् सर्वांश्च पृच्छति। केन कारणदोषेण धारा त्यक्त्वा गता द्विजम्॥८॥

अध्याय–१६१

मथुरा माहात्म्य–वैकुण्ठ तीर्थ व ब्रह्महत्या, तीर्थों का माहात्म्य और कपिल वाराहाख्यान

श्री भगवान् ने कहा कि हे वसुन्धरे! पुनः आगे दूसरे-दूसरे वृत्तान्त का उल्लेख करने जा रहा हूँ, जो पुरातन काल में वैकुण्ठ तीर्थ घटित हुआ, उसे सुनो।।१।।

जनकपालित रमणीय मिथिलापुरी है। मिथिलावासी जन तीर्थ यात्रा के लिए उद्यत हो चुके हैं।।२।।

हे वसुन्धरे! समस्त ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्ण के जन सौकरक तीर्थ में स्नान कर मथुरापुरी में पधारे।।३।।

हे सुन्दरि! उनमें मथुरा के प्रति भक्ति जाग गयी। वैकुण्ठ तीर्थ में पहुँचकर उन सभी ने स्नान किया।।४।।

उनके मध्य में ब्रह्महत्या दोष वाला एक ब्राह्मण भी था। उसके हाथ से रक्त की धारा निरन्तर बह रही थी। समस्त जन को प्रत्यक्ष स्वरूप वाली ब्रह्महत्या दीख रही थी।।५।।

सर्वप्रथम विविध तीर्थों में स्नान करने से भी उस ब्राह्मण की उस ब्रह्महत्या का अन्त नहीं हुआ। फिर उस ब्राह्मण ने भी वैकुण्ठ तीर्थ में स्नान किया।।६।।

वहाँ स्नान करने के बाद उस ब्राह्मण के हाथ की धारा दीख नहीं रही थी। इस कारण से सबको अत्यन्त आश्चर्य हुआ। हे वसुन्धरे! उन सब जनों ने रक्त की धारा के विषय में जानना चाहा कि यह क्या हो गया, यह क्या हो गया।।७।।

उस समय ब्राह्मण स्वरूप में देव ने उन लोगों से पूछ दिया कि किस कारण स्वरूप दोष से रक्त की धारा निरन्तर बह रही थी और पुनः उसे छोड़कर वह धारा कैसे नष्ट हो गयी?।।८।।

ते सर्वे कथयामासुर्ब्राह्मणस्य विचेष्टितम्। वैकुण्ठेऽतिनिमग्नोऽयं ब्रह्महत्या गता ततः॥९॥
विस्मयो नात्र कर्त्तव्यस्तीर्थस्येदं महत्फलम्। इत्युक्तस्तैर्देवदेवस्तत्रैवान्तरधीयत॥१०॥
एष प्रभावस्तीर्थस्य वैकुण्ठस्य वसुंधरे। वैकुण्ठतीर्थे यः स्नाति मुच्यते सर्वपातकैः।
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोकं स गच्छति॥११॥
पुनरन्यत्प्रवक्ष्यामि असिकुण्डेति विश्रुतम्। नाम्ना गन्धर्वकुण्डं तु तीर्थानां तीर्थमुत्तमम्॥१२॥
तत्र स्नातो नरो देवि गन्धर्वैः सह मोदते। तत्राथ मुञ्चते प्राणान् मम लोकं गच्छति॥१३॥
विंशतिर्योजनानां तु माथुरं मम मण्डलम्। इदं पद्म महाभागे सर्वेषां मुक्तिदायकम्॥१४॥
कर्णिकायां स्थितो देवि केशवः क्लेशनाशनः। कर्णिकायोजनं चात्र सदाऽहं तत्र संस्थितः॥१५॥
कर्णिकायां मृता ये तु ते नरा मुक्तिभागिनः। यत्र मध्ये मृता ये तु तेषां मुक्तिर्वसुंधरे॥१६॥
पश्चिमेन हरिं देवं गोवर्द्धननिवासिनम्। दृष्ट्वा तं देवदेवेशं किं मनः परितप्यते॥१७॥
उत्तरेण तु गोविन्दं दृष्ट्वा देवं परं शुभम्। नासौ पतति संसारे यावदाहूतसंप्लवम्॥१८॥
विश्रान्तिसंज्ञकं देवं पूर्वपत्रे व्यवस्थितम्। यं दृष्ट्वा तु नरो याति मुक्तिं नास्त्यत्र संशयः॥१९॥

इस पर उन सब ने उस ब्राह्मण के पूर्व कर्म को कहने हेतु वाक्य बोला कि इसने वैकुण्ठ तीर्थ में स्नान किया अतः ब्रह्महत्या चली गयी।।९।।

इस प्रसंग में आश्चर्य नहीं करना उचित है। इस तीर्थ का यह महान् फल है। उनके ऐसा कहने पर देवदेव वहीं पर अन्तर्हित हो गये।।१०।।

हे वसुन्धरे! इस वैकुण्ठ तीर्थ का यही प्रभाव है। जो कोई जन वैकुण्ठ तीर्थ में स्नान करता है, वे अपने सभी पापों से रहित हो जाते हैं। सभी पापों से रहित होकर वे ब्रह्मलोक में चले जाते हैं।।११।।

पुनः अन्य प्रसिद्ध असिकुण्ड का उल्लेख करने जा रहा हूँ। वही गन्धर्व कुण्ड नाम का तीर्थ सभी तीर्थों में उत्तम तीर्थ है।।१२।।

हे देवि! वहाँ पर स्नान करने वाला मनुष्य गन्धर्वों के साथ आनन्द करता है। यदि कोई वहाँ अपना प्राण परित्याग करता है, तो वह मेरे लोक में जाता है।।१३।।

फिर मेरा माथुरमण्डल बीस योजन का है। हे महाभागे! यह पद्मस्वरूप है और सबको मोक्ष प्रदान करने वाला है।।१४।।

हे देवि! पद्मस्वरूप माथुरमण्डल के कर्णिका स्थान पर क्लेश नाशक केशव देव स्थित हैं। कर्णिका एक योजन की है। मैं वहाँ सदा रहा करता हूँ।।१५।।

जो जन कर्णिका स्थान पर अपना प्राण त्याग करते हैं, वे जन मुक्ति पथ पर अग्रसर होते हैं। हे वसुन्धरे! जो जन इस कर्णिका स्वरूप मध्यभाग में मरते हैं, उनकी मुक्ति होना सुनिश्चित ही है।।१६।।

पश्चिम में गोवर्द्धन निवासी देवदेव हरि देव का दर्शन करने पर क्या मन दुःख युक्त होसकता है?।।१७।।

उत्तर में स्थित परम कल्याणमय गोविन्द देव का दर्शन करने वाला महाप्रलय पर्यन्त संसार में नहीं ही पतित होता है।।१८।।

दक्षिणेन तु मां विद्धि प्रतिमां दिव्यरूपिणीम्। महाकायां सुरूपां च केशवाकारसन्निभाम्।
तां दृष्ट्वा मनुजो देवि ब्रह्मणा सह मोदते॥२०॥
कृते युगे तु राजासीन् मान्धाता नाम नामतः। तेनाहं तोषितो देवि भक्तियुक्तेन चेतसा॥२१॥
तस्य तुष्टेन हि मया प्रतिमेयं समर्पिता। तेनेयं पूजिता नित्यमात्ममुक्तिमभीप्सिता॥२२॥
यदा तु मथुरां प्राप्य लवणोऽयं निपातितः। तदेयं प्रतिमा दिव्या मथुरायां व्यवस्थिता।
पुण्या च प्रतिमा दिव्या तैजसी दिव्यरूपिणी॥२३॥
कपिलो नाम विप्रर्षिर्मम भक्तिपरायणः। मनसा निर्मिता तेन वाराही प्रतिमा शुभा॥२४॥
कपिलो ध्यायते नित्यमर्चते च दिने दिने। इन्द्रेणाराधितो देवि कपिलो मुनिसत्तमः।
तस्य प्रीतो ददौ देवं वाराहं दिव्यरूपिणम्॥२५॥
देवे लब्धे तु वाराहे शक्रो हर्षसमन्वितः। ध्यायते पूजते नित्यं गन्धमाल्यानुलेपनैः।
इन्द्रेण तु तदा प्राप्तं दिव्यं ज्ञानमनुत्तमम्॥२६॥
ततः कालेन महता रावणो नाम राक्षसः। इन्द्रलोकं गतः सोऽथ स्वर्गं जेतुं महाबलः॥२७॥
शक्रेण सह संगम्य ततो युद्धं प्रवर्त्तितम्। रावणेन जिता देवाः शक्रं चैव महाबलम्॥२८॥

पूर्व दिशा के पत्र पर विश्रान्ति नाम का देव है, जिनके दर्शन करने से मनुष्य मोक्ष पा जाता है। इसमें संशय नहीं करना चाहिए।।१९।।

दक्षिण दिशा में मेरी दिव्य स्वरूप सम्पन्न विशालकाय सुन्दर केशव के आकार के समान मूर्त्ति जानना चाहिए। हे देवि! उनका दर्शन कर मनुष्य ब्रह्मा के साथ आनन्द की अनुभूति किया करते हैं।।२०।।

फिर कृतयुग में मान्धाता नाम का राजा हुआ था। भक्तिभाव सम्पन्न होकर उसने मेरा पूजन किया था।।२१।।

फिर उस पर प्रसन्न होकर मैंने उसे यह मूर्त्ति दी थी। अपनी मुक्ति की कामना से उसने नित्य इसकी पूजा की।।२२।।

जिस समय वह लवण नाम का असुर मथुरा में मारा गया था, तभी यह दिव्य प्रतिमा मथुरा में स्थापित की गई थी।।२३।।

उस समय मेरी भक्तिभाव से पूर्ण एक व्यक्ति कपिल नाम का श्रेष्ठ ब्राह्मण था। उसने ही अपने मनसे शुभ दिव्य प्रतिमा भगवान् वराह का बनाया था।।२४।।

फिर कपिल नाम का ब्राह्मण प्रतिदिन भगवान् वराह की इस प्रतिमा का ध्यान और पूजा किया करता था। हे देवि! अतः इन्द्र ने भी इस मुनि श्रेष्ठकपिल की उपासना की। फिर उस पर प्रसन्न होकर उन्होंने उसे दिव्य रूप वाली वराह देव की प्रतिमा दे दी।।२५।।

इस प्रकार वाराह देव की मूर्त्ति प्राप्त कर इन्द्र प्रसन्न चित्त होकर नित्य निरन्तर सुगन्धि और पुष्प मालाओं द्वारा उन देव का ध्यान और पूजन करने में लीन रहने लगा। फिर इससे इन्द्र को दिव्य श्रेठज्ञान की प्राप्ति हुई।।२६।।

फिर दीर्घ काल पश्चात् रावण नाम का महाबलवान् राक्षस स्वर्ग को जीतने हेतु जब इन्द्रलोक में गया।।२७।।

उस समय वह इन्द्र से मिलकर युद्ध करने लगा। जिस समय रावण समस्त देवों और महाबलशाली इन्द्र को भी जीत लिया।।२८।।

बद्ध्वा चेन्द्रं महाबाहुं शक्रस्य भवनं गतः। प्रविश्य रावणस्तत्र गृहे रत्नविभूषिते॥२९॥
दृष्ट्वा कपिलवाराहं शिरसा धरणीं गतः। तेन संमोहितो देवि रावणो नाम राक्षसः॥३०॥
त्रातुमर्हसि मे देव धरणीधर माधव। दामोदर हृषीकेश हिरण्याक्षविदारण॥३१॥
वेदगर्भ नमस्तेऽस्तु वासुदेव नमोऽस्तु ते। कूर्म्मरूपधर श्रेष्ठ नारायण नमोऽस्तु ते॥३२॥
मत्स्यरूपधरं देवं मधुकैटभनाशिनम्। निरीक्षितुं न शक्नोमि प्रष्टुं नैव च सुव्रत॥३३॥
देवदेव नमस्तुभ्यं भक्तानामभयप्रद। मम त्वं भक्तिनम्रस्य प्रसादं कुरु सर्वदा॥३४॥
इति स्तुतो रावणेन देवदेवो जगत्पतिः। सौम्यरूपोऽभवद्देवो वाराहो लोकविश्रुतः।
सौम्यं तनुं तदा दृष्ट्वा रावणो देवकण्टकः॥३५॥
सन्निधानमनुप्राप्य पुष्पकारोहणोत्सुकः। तमुद्धर्त्तुं न शक्नोति रावणो विस्मयं गतः॥३६॥
शंकरेण पुरा सार्द्धं कैलाशं तु मयोद्धृतम्। देव त्वं स्वल्पकायोऽसि नाहमुद्धरणक्षमः॥३७॥
प्रसीद देवदेवेश सुरनाथ नमोऽस्तु ते। अहं त्वां नेतुमिच्छामि पुरीं लङ्कामनुत्तमाम्॥३८॥

फिर पराजित महाबाहु इन्द्र को बाँधकर उस रावण ने उसके गृह में प्रवेश किया। इस प्रकार रावण रत्नों से सुशोभित इन्द्र के गृह में प्रविष्ट हुआ।।२९।।

उस गृह में वहाँ कपिल के रचित वराह भगवान् की दिव्य मूर्त्ति को देखकर वह भूमि पर गिर पड़ा। उन वराह देव ने उस रावण नाम के राक्षस को मोहयुक्त कर दिया।।३०।।

फिर रावण ने कहा कि हे धरणीधर माधव हिरण्याक्ष का नाश करने वाले दामोदर हृषिकेश देव! आप मेरी रक्षा करें।।३१।।

हे वेदगर्भ वासुदेव! आपको नमस्कार है। हे कूर्मरूप धारण करने वाले श्रेष्ठ नारायण आपको प्रणाम है।।३२।।

हे सुव्रत! मैं मत्स्य रूप धारण करने वाले मधुकैटभ का नाश करने वाले देव को देखने या उनसे कुछ पूछने में समर्थ नहीं हूँ।।३३।।

हे भक्तों को अभय प्रदान करने वाले देवाधिदेव! आपको प्रणाम है। आप भक्ति से विनीत मुझ पर सदा कृपा करते रहे।।३४।।

इस प्रकार से रावण द्वारा स्तुत वराह नाम से जगत्प्रसिद्ध देवाधिदेव जगत्पति देव सौम्य रूप के हो गये फिर देवकण्टक रावण ने उस वराह देव के सौम्य रूप को देखकर उनके समीप पहुँच कर पुष्पक विमान पर चढ़ाने को जिज्ञासु हुआ, किन्तु उन्हें उठा पाने में असमर्थ होने पर वह रावण अत्यन्त विस्मयमय होकर कहने लगा।।३५-३६।।

हे प्रभो! पूर्व में मैंने शंकर सहित कैलास शिखर को ही उठा लिया था। हे देव! आप अत्यन्त छोटे शरीर के हैं, परन्तु आपको उठाने में समर्थ नहीं हूँ।।३७।।

देवाधिदेव सुरनाथ! आपको प्रणाम है। आप मुझ पर प्रसन्न हों। मैं आपको श्रेष्ठ अपनी लंकापुरी ले जाना चाह रहा हूँ।।३८।।

श्रीवराह उवाच

अवैष्णवोऽसि रक्षस्त्वं कुतो भक्तिस्तवेदृशी। कपिलस्य वचः श्रुत्वा रावणो वाक्यमब्रीत्॥३९॥
त्वद्दर्शनात् समुत्पन्ना भक्तिरव्यभिचारिणी। महात्मंस्त्वां नयिष्यामि देवदेव नमोऽस्तु ते॥४०॥
भक्तिमुद्वहतस्तस्य लघुवेषोऽभवत् तदा। पुष्पके तु समारोप्य देवं त्रैलोक्यविश्रुतम्॥४१॥
आनयामास लङ्कायां स्थापितोऽहं स्वमालये। तदास्थितोऽहं लङ्कायां रावणेन प्रपूजितः॥४२॥
अयोध्यायागतो रामो हन्तुं राक्षसपुंगवम्। लङ्कायां रावणं हत्वा राघवेण महात्मना॥४३॥
विभीषणः स्वयं राज्ये स्थापितोऽथ वसुंधरे। विभीषणेन रामस्य सर्वस्वं च निवेदितम्॥४४॥

राम उवाच

सर्वस्वे नास्ति मे कार्यं तव रक्षो विभीषण। देवो मे दीयतां रक्षः शक्रलोकाद् य आगतः॥४५॥
अहन्यहनि पूजामि देवं वाराहरूपिणम्। अयोध्यायां च नेष्यामि लङ्काया गृह्य राक्षस॥४६॥
ततः समर्पयामास कपिलं दिव्यरूपिणम्। पुष्पके तु समारोप्य अयोध्यायां समागतः॥४७॥
अयोध्यायां स्थितं देवं पूजयामास तं तदा। गतं वर्षसहस्रं तु दशैकं तु वसुंधरे॥४८॥

फिर भगवान् वराह देव ने कहा कि हे राक्षस! तुम तो अवैष्णव हो। तुममें ऐसी भक्ति कहाँ है। इस पर कपिल रचित वराह भगवान् की बातों को सुनकर रावण ने इस प्रकार से विनीत स्वर में कहा—।।३९।।

अब तो आपके दर्शन हो जाने से मुझ में स्थिर भक्ति जागृत हो गयी है। हे आत्मन्! मैं आपको ले जाऊँगा। हे देवाधिदेव! आपको नमस्कार है।।४०।।

इस प्रकार उसे भक्ति युक्त हो जानने पर भगवान् ने वराह लघुकाय हो गये। रावण ने त्रैलोक्य प्रसिद्ध देव को पुष्पक पर रख लिया।।४१।।

इस तरह लंका में ले आकर उसने मुझे अपने गृह में स्थापित किया। फिर मैं लंका में स्थित होकर रावण से पूजित होता रहा।।४२।।

फिर जब श्रेष्ठ राक्षस रावण को मारने हेतु राम अयोध्या से लंका में पहुँच गए। महात्मा राघव राम ने लंका में रावण का वध किया।।४३।।

हे वसुन्धरे! फिर उन्होंने स्वयं रावणके अनुज विभीषण को उस लंका की राजगद्दी पर अभिषिक्त किया। लेकिन विभीषण ने भी उन श्रीरामचन्द्र जी को अपना राज्य सहित सर्वस्व समर्पित कर दिया।।४४।।

फिर राम ने कहा कि हे राक्षसेन्द्र विभीषण! तुम्हारे सर्वस्व से मुझे कोई प्रयोजन नहीं है। हे राक्षस! जो देव इन्द्रलोक से आये हैं, उन्हें मात्र मुझे दे दो।।४५।।

मैं प्रत्येक दिन वराहस्वरूप देव का पूजन करूँगा। हे राक्षस लंका से उन्हें लेकर मैं अयोध्या ले जा सकूँगा।।४६।।

फिर विभीषण ने दिव्यरूप धारण करने वाले कपिल रचित वराह भगवान् की मूर्त्ति उन राम को समर्पित कर दी। फिर उन्हें पुष्पक विमान में रख कर राम अयोध्या में आ गये।।४७।।

फिर वे अयोध्या में स्थित उन वराहदेव का पूजन करने लगे। हे वसुन्धरे! इस प्रकार ग्यारह हजार वर्ष बीत गये।।४८।।

लवणस्य वधे रामः शत्रुघ्नं प्रेषयत् तदा। कृतप्रणामः शत्रुघ्नो राघवाय महात्मने।
चतुरङ्गबलोपेतो जगाम मथुरां पुरीम्।४९॥
गत्वा तु राक्षसश्रेष्ठं लवणं रौद्ररूपिणम्। घातयित्वा तु शत्रुघ्नो प्रविश्य मथुरां पुरीम्॥५०॥
ब्राह्मणान् स्थापयित्वा तु मम तुल्यान् महौजसः। षड्विंशतिसहस्राणि देववेदाङ्गपारगान्॥५१॥
अनृचो माथुरो यत्र चतुर्वेदस्तथापरः। एकस्मिन् भोजिते विप्रे कोटिर्भवति भोजिता।
लवणस्य यथावृत्तं कथितं तु वसुंधरे॥५२॥
लवणस्य वधं श्रुत्वा राघवो वाक्यमब्रीत्। वरं वरय शत्रुघ्न यत्ते मनसि रोचते॥५३॥
राघवस्य वचः श्रुत्वा शत्रुघ्नो वाक्यमब्रवीत्। यदि तुष्टोऽसि मे देव वरार्हो यदि वाऽप्यहम्।
दीयतां मम देवोऽयं यदि मे वरदो भवान्।५४॥
शत्रुघ्नस्य वचः श्रुत्वा रामो वचनमब्रवीत्। नय शत्रुघ्न देवं त्वं वाराहं दिव्यरूपिणम्॥५५॥
धन्योऽसौ मण्डलो लोके धन्या सा मथुरा पुरी।
धन्यास्ते माथुरा लोकाः कपिलं पश्यते सदा॥५६॥
दृष्टः स्पृष्टः सदा ध्यातः स्नापितश्च दिने दिने। अनुलिप्तश्च शत्रुघ्न सर्वपापं व्यपोहति॥५७॥

फिर लवणासुर को मारने हेतु राम ने शत्रुघ्न को भेजा था। शत्रुघ्न महात्मा राम राघव को प्रणाम कर चतुरङ्गिणी सेनासहित मथुरापुरी को आ पहुँचे।।४९।।

वहाँ पहुँचने के पश्चात् शत्रुघ्न ने भयंकर स्वरूप वाले राक्षस श्रेष्ठ लवण नाम के असुर को मारकर मथुरापुरी में प्रवेश किया।।५०।।

फिर वहाँ पर उन्होंने मेरे सदृश महा ओजस्वी छब्बीस हजार वेद वेदाङ्ग पारगामी ब्राह्मणों को स्थापित किया।।५१।।

वैसे जहाँ कोई एक ऋचा को भी न जानने वाला माथुर ब्राह्मण हो और अन्य चारों वेदों का ज्ञाता ब्राह्मण हो, तो ऋचारहित भी मथुरा के एक ब्राह्मण को भोजन कराने से करोड़ चारों वेदों के पारज्ञ ब्राह्मणों का भोजन करने के समान हो जाता है। हे वसुन्धरे! शत्रुघ्न ने लवण का वृत्तान्त राम से कहा—।।५२।।

इस प्रकार लवण के वध का समाचार सुनकर श्रीराघव राम ने यह वचन कहा कि हे शत्रुघ्न! तुम्हारे मन में जो कुछ अच्छा लगता हो, वह वर माँगो।।५३।।

श्रीराघव राम के इस प्रकार के वचन को सुनकर शत्रुघ्न ने यह कहा कि हे देव! यदि आप सन्तुष्ट हों और मैं वर के योग्य होऊँ और यदि आप वर देना चाहते हो, तो मुझे इन देव को प्रदान करें।।५४।।

फिर शत्रुघ्न की बातें सुनकर श्रीराम ने कहा कि हे शत्रुघ्न! दिव्य स्वरूप वाले वराह देव को ले जाओ।।५५।।

इस जगत् में वह मण्डल धन्य है और वह मथुरापुरी भी धंन्य है तथा वे मथुरा निवासी जन भी धन्य हैं, जो सदा कपिल का दर्शन करेंगे।।५६।।

हे शत्रुघ्न! प्रतिदिन वराहदेव का दर्शन, ध्यान, स्नान कराना, लेपन कराना आदि सभी पापों को विनष्ट करने वाले हैं।।५७।।

पूजितं स्नापितं देवं दृष्टं यैस्तु दिने दिने। सर्वं हरति पाप्मानं मोक्षं चैव प्रयच्छति॥५८॥
इत्युक्त्वा राघवस्तस्मै देवं प्रादाद् वसुंधरे। देवमादाय शत्रुघ्नो जगाम मथुरां पुरीम्॥५९॥
ब्राह्मणान् स्थापयित्वा तु आगच्छन् मम सन्निधौ। तत्र मध्ये तु संस्थाप्य पूजयामास राघवः।
अनेन क्रमयोगेन मथुरायां स्थितस्तदा॥६०॥
गयायां पिण्डदानेन यत्फलं ज्येष्ठपुष्करे। तत्फलं समवाप्नोति श्वेतं दृष्ट्वा सदा नरः॥६१॥
विश्रान्तिसंज्ञके तद्वद् गोविन्दे च तथा हरौ। केशवे दीर्घविष्णौ च तदेव फलमश्नुते॥६२॥
उदये मामकं तेजः सदा विश्रान्तिसंज्ञके। मध्याह्ने मामकं तेजो दीर्घविष्णौ व्यवस्थितम्।
केशवे मामकं तेजो दिनभागे चतुर्थके॥६३॥
एषा विद्या पुरा देवि नित्यकालं सुगोपिता। भक्ता त्वं मम शिष्या च कथिता ते वसुंधरे॥६४॥

।इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे एकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः।।१६१।।

जो जन प्रतिदिन वराहदेव का पूजन करते हैं, उन्हें स्नान कराते तथा उनका दर्शन करते हैं, वराह देव उनके पाप का नाश कर उन्हें मोक्ष प्रदान करते हैं।।५८।।

हे वसुन्धरे! इस प्रकार कहते हुए राघव ने उन्हें वराह देव को दे दिया। शत्रुघ्न जी वाराहदेव को लेकर मथुरापुरी चले आये।।५९।।

फिर ब्राह्मणों को सम्मानित कर वे शत्रुघ्नजी मेरे पास आये और उन ब्राह्मणों के मध्य मुझे स्थापित कर दिया। फिर रघुवंशी शत्रुघ्न जी ने मेरी पूजा की। इसी क्रम से वाराहदेव मथुरा में विद्यमान हैं।।६०।।

गया में और श्रेष्ठ पुष्कर तीर्थ में पिण्डदान करने से जो फल मिलता है, मनुष्य सदा श्वेत वराहदेव का दर्शन कर वही सब फल प्राप्त कर लेता है।।६१।।

उसी तरह मथुरा में विश्रान्ति तीर्थ में, गोविन्द, हरि, केशव और दीर्घ विष्णु के समीप पिण्डदान करने से वही सब फल हुआ करते हैं।।६२।।

चूँकि सूर्योदय काल में मेरा तेज विश्रान्ति संज्ञक तीर्थ में विद्यमान रहता है। फिर मध्याह्न के समय मेरा तेज दीर्घविष्णु में रहता है। फिर मेरा तेज दिन के चौथे भाग में केशव तीर्थ में रहा करता है।।६३।।

हे देवि! पूर्व में यह विद्या या ज्ञान नित्य गुप्त रखी गई हुई थी। हे वसुन्धरे! इसलिए लेकिन तुम मेरी भक्त और शिष्या हो । अतः मैंने इसे तुम्हें प्रदान कर दिया है।।६४।।

।।इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में मथुरा माहात्म्य—वैकुण्ठ तीर्थ व ब्रह्महत्या, तीर्थों का माहात्म्य और कपिल वाराहाख्यान नामक एक सौ इकसठवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्राम-सम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ।।१६१।।

द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

अथ मथुरामाहात्म्ये अन्नकूटपरिक्रमाविधानम्

श्रीवराह उवाच

अस्ति गोवर्द्धनं नाम क्षेत्रं परमदुर्लभम्। मथुरापश्चिमे भागे अदूराद् योजनद्वयम्॥१॥
ह्रदं तत्र महाभागे द्रुमगुल्मलतायुतम्। चत्वारि तत्र तीर्थानि पुण्यानि च शुभानि च॥२॥
ऐन्द्रं पूर्वेण पार्श्वेन यमतीर्थं तु दक्षिणे। वारुणं पश्चिमे तीर्थं कौबेरे चोत्तरेण तु।
तत्र मध्ये स्थितो भद्रे क्रीडयिष्ये यदृच्छया॥३॥
तत्र वै शक्रतीर्थे तु स्नानं कुर्याद् दृढव्रतः। मोदते शक्रलोके तु सर्वद्वन्द्वविवर्जितः॥४॥
दक्षिणे यमतीर्थे तु स्नानं कुर्याद् दृढव्रतः। यमस्य भवनं गत्वा मोदते कृतनिश्चयः॥५॥
तत्राथ मुञ्चते प्राणान् लोभमोहविवर्जितः। यमलोकं परित्यज्य मम लोकं स गच्छति॥६॥
तत्रैव वारुणं तीर्थमासाद्य स्नानमाचरेत्। वारुणं भवनं गत्त्वा मुच्यते सर्वकिल्बिषात्॥७॥
तथात्र मुञ्चते प्राणान् कामक्रोधविवर्जितः।
वारुणं लोकमुत्सृज्य मम लोकं स गच्छति॥८॥

अध्याय-१६२

मथुरा माहात्म्य-भाद्रशुक्ल एकादशी अन्नकूट परिक्रमा व विधि

श्रीभगवान् वराह ने कहा कि इसके बाद मथुरा के पश्चिम भाग में समीप ही दो योजन विस्तार वाला परम दुर्लभ गोवर्धन नाम का क्षेत्र है।।१।।

हे महाभागे! वहाँ पर वृक्षों , गुल्मों , लताओं से युक्त ह्रद स्थित हैं। वहाँ पर चार पवित्र शुभप्रद तीर्थ स्थित हैं।।२।।

उसके पूर्व दिशा में इन्द्रतीर्थ, दक्षिण दिशा में यमतीर्थ, पश्चिम दिशा में वरुण तीर्थ और उत्तर दिशा में कुबेर तीर्थ स्थित हैं। हे भद्रे! वहाँ मध्य भाग में मैं स्थित हूँ, जहाँ स्वेच्छा से क्रीड़ा किया करता हूँ।।३।।

वहाँ दृढ़व्रत धारण कर इन्द्रतीर्थ में स्नान करने वाले जन अपने समस्त द्वन्द्वों से रहित होकर इन्द्रलोक में आनद किया करते हैं।।४।।

निश्चयपूर्वक दृढ़व्रत धारण कर दक्षिण भाग के यमतीर्थ में स्नान करने वाले जन यमलोक में पहुँच कर भी आनन्द से निवास करते हैं।।५।।

यहाँ पर अपना प्राणों का उत्सर्जन करने वाले जन अपने लोभ और मोह से रहित होकर यमलोक को छोड़कर मेरे लोक में निवास करते हैं।।६।।

फिर वहीं वरुण तीर्थ में पहुँच कर स्नान करने वाले जन वरुण लोक में निवास करते हैं, फिर समस्त पापों से रहित होकर अपने काम, लोभ और क्रोध से रहित होकर वहीं प्राण त्याग कर वे वरुण लोक को छोड़कर मेरे लोक में निवास करने आ जाते हैं।।७-८।।

कौबेरतीर्थे यः स्नाति कौबेरं स्थानमाप्नुयात्। तत्राथ मुञ्चते प्राणान् सर्वद्वन्द्वविवर्जितः।
कौबेरं लोकमुत्सृज्य मम लोकं स गच्छति॥९॥
तत्र मध्ये च यः स्नाति क्रीडते स मया सह। अथात्र मुञ्चते प्राणान् मम लोकं स गच्छति॥१०॥
अन्नकूटं ततः प्राप्य तस्य कुर्यात् प्रदक्षिणम्। न तस्य पुनरावृत्तिर्देवि सत्यं ब्रवीमि ते॥११॥
स्नात्वा मानसगङ्गायां दृष्ट्वा गोवर्द्धने हरिम्। अन्नकूटं परिक्रम्य किमतः परितप्यते॥१२॥
सोमवारे त्वमायां वै प्राप्य गोवर्द्धनं गिरिम्। दत्त्वा पिण्डं पितृभ्यश्च राजसूयफलं लभेत्॥१३॥
गयायां पिण्डदानेन यत्फलं प्राप्यते नरैः। तत्फलं प्राप्यते तत्र नात्र कार्या विचारणा॥१४॥
गोवर्द्धनं परिक्रम्य दृष्ट्वा देवं हरिं प्रभुम्। राजसूयाश्वमेधाभ्यां फलं प्राप्नोत्यसंशयम्॥१५॥

पृथिव्युवाच

परिक्रमोऽन्नकूटस्य विधिना क्रियते कथम्। प्रभावगुणमाहात्म्यं तद्भवान् वक्तुमर्हसि॥१६॥

श्रीवराह उवाच

मासि भाद्रपदे या तु शुक्ला चैकादशी शुभा। गोवर्द्धने सोपवासः कुर्यात् तत्र प्रदक्षिणम्।
स्नात्वा मानसगङ्गायां प्रभाते उदिते रवौ॥१७॥

जो जन कुबेर तीर्थ में स्नान करते हैं, उन्हें कुबेर का लोक प्राप्त होता है। यदि वह यहाँ प्राण त्याग कर देते हैं, तो वे अपने समस्त द्वन्द्वों से रहित होकर कुबेर लोक को त्याग कर मेरे लोक में निवास करते हैं।।९।।

वहाँ गोवर्धन क्षेत्र के मध्य भाग में जो जन स्नान करते हैं वे मेरे ही साथ क्रीड़ा में सहयोग करते हैं। फिर यहीं पर प्राण छूट जाने पर वे जन मेरे लोक में चले जाते हैं।।१०।।

फिर अन्नकूट क्षेत्र में जाकर उनकी प्रदक्षिणा करनी उचित है। हे देवि! जो जन इस प्रकार करते हैं, उनका तो पुनर्जन्म ही नहीं होता।।११।।

फिर मानस गंगा में स्नान कर गोवर्द्धन क्षेत्र में श्रीहरि का दर्शन करने वाले जन यदि अन्नकूट की परिक्रमा करते हैं, तो क्या उन्हें कष्ट हो सकता है?।।१२।।

गोवर्द्धन पर्वत पर पहुँचकर सोमवार की अमावस्या तिथि के दिन पितरों को पिण्डदान करने वाले जन राजसूय यज्ञ का फल पाते हैं।।१३।।

इस प्रकार गया में पिण्ड दान करने से जो फल लोग प्राप्त करते हैं, वही फल वे वहाँ प्राप्त करते हैं। इसमें संशय नहीं करना चाहिए।।१४।।

वैसे गोवर्द्धन की परिक्रमा का और प्रभु श्रीहरि केशव का दर्शन कर लेने पर निःसंशय राजसूय और अश्वमेध यज्ञ करने जैसा फल मिलता है।।१५।।

धरणी ने कहा कि किस विधान से और किस प्रकार अन्नकूट की परिक्रमा की जा सकती है? आप उसके प्रभाव और गुण के महत्त्व का उल्लेख करें।।१६।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि भाद्रपद मास के शुक्लपक्ष की एकादशी शुभ तिथि के दिन प्रातः काल सूर्योदय होने पर मानस गंगा में स्नान कर उपवास पूर्वक गोवर्द्धन की प्रदक्षिणा करनी चाहिए।।१७।।

गोवर्द्धनं प्रसाद्यैवं हरिं चाचलमूर्द्धनि। पुण्डरीकं ततो गच्छेत् कुण्डे स्नात्वा विधानतः॥१८॥
देवान् पितॄन् समभ्यर्च्य पुण्डरीकमथार्च्य च। सर्वपापविनिर्मुक्तः प्रयाति भवनं हरेः॥१९॥
कुण्डं चाप्सरसं नाम प्रसन्नसलिलाशयम्। तत्र स्नानं तर्पणं च कृत्वा फलमवाप्नुयात्।
राजसूयाश्वमेधाभ्यां धूतपाप्मा न संशयः॥२०॥
तीर्थं संकर्षणं नाम्ना बलभद्रेण रक्षितम्। गोहत्या पूर्वसंलग्ना उत्तीर्णा तत्र दूरतः।
स्नानात् गच्छति सा क्षिप्रं नात्र कार्या विचारणा॥२१॥
अन्नकूटस्य सान्निध्ये तीर्थं शक्रविनिर्मितम्। तत्र कृष्णेन पूजार्थमिन्द्रस्य विहतो मखः।
महानिन्द्रस्य चोत्थानं भक्ष्यभोज्यसमन्वितम्॥२२॥
कृता तुष्टिकरा साक्षादिन्द्रेण सह संकथा। इन्द्रस्य वर्षतोऽत्यन्तं गवां पीडाकरं जलम्॥२३॥
तासां रक्षार्थं संस्तभ्य घृतं गिरिवरं तदा। सोऽन्नकूट इति ख्यात सर्वतः शक्रपूजितः॥२४॥
देवा देव्यस्तथा गावो ऋषिभिश्च समन्विताः। पूजितास्तर्पिताः श्रेष्ठाः क्रमता विष्णुना पुरा।
तस्मिन् स्थाने तर्पणेन शतक्रतुफलं लभेत्॥२५॥
ततः कदम्बखण्डाख्यं कुण्डं तु विमलोदकम्।
स्नात्वा पितॄन् समभ्यर्च्य ब्रह्मलोकमवाप्नुयात्॥२६॥

फिर उस पर्वत के शिखर पर विद्यमान गोवर्द्धनधारी श्रीहरि की प्रार्थना करने के बाद कुण्ड में सविधि स्नान कर पुण्डरीक तीर्थ में जाना चाहिए।।१८।।

इस प्रकार देवों और पितरों की पूजा करने वाले जन पुण्डरीक की पूजा करने पर अपने समस्त पापों से विरहित होकर श्रीहरि के लोक में ही जाते हैं।।१९।।

वहाँ पर अप्सरा नाम का एक स्वच्छ जलाशय है। वहाँ स्नान एवं तर्पण करने वाले जन निःसन्देह पाप मुक्त होकर राजसूय और अश्वमेध यज्ञों को कराने का फल प्राप्त कर लेते हैं।।२०।।

फिर बलभद्र रक्षित संकर्षण नाम का तीर्थ है। वहाँ पर जाते दूर रहते ही पूर्वकाल में हुई गोहत्या का दोष नष्ट हो जाता है। फिर वहाँ स्नान करने से वह गोहत्या जल्दी ही दूर हो जाती है। इसमें संशय नहीं।।२१।।

वहाँ पर अन्नकूट के पास इन्द्र निर्मित तीर्थ स्थित है। वहीं पर श्रीकृष्ण ने पूजा करने हेतु आयोजित भक्ष्य भोज्य युक्त उत्कृष्ट और महान् इन्द्रयज्ञ को भी नष्ट कर दिया था।।२।।

वहाँ पर साक्षात् इन्द्र द्वारा वार्त्तालाप हुआ था। इन्द्र ने गायों को कष्ट देने वाली घोर जलवृष्टि की, तो उनकी रक्षा हेतु श्रीकृष्ण ने उखाड़ कर उस श्रेष्ठ पर्वत गोवर्द्धन को धारण कर लिया था। वह पर्वत ही अन्नकूट नाम से प्रसिद्ध है। फिर इन्द्र ने पूर्णतया उनकी पूजा की थी।।२३-२४।।

पुरातन काल में पराक्रम करने वाले श्रीविष्णु ने ऋषियों सहित श्रेष्ठ देवताओं, देवियों, गायों आदि को सन्तुष्ट किया था। उस स्थान पर तर्पण करने से इन्द्रयज्ञ याने सौ यज्ञों के सम्पादन का फल प्राप्त होता है।।२५।।

फिर कदम्ब खण्ड नाम का निर्मल जल वाला एक कुण्ड है। वहाँ पर स्नान कर पितरों का तर्पण करने से ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है।।२६।।

ततो गच्छेद् देवगिरिं शतबाहुसमुच्छ्रितम्। यत्र स्नानाद् दर्शनाच्च वाजपेयफलं लभेत्॥२७॥
महादेवं ततो दृष्ट्वा गत्वा ध्यात्वा फलं लभेत्।
कुण्डे स्नात्वा पितृंस्तर्प्य कृतकृत्यो दिवं व्रजेत्॥२८॥
गङ्गायाश्चोत्तरं यावद् देवदेवस्य चक्रिणः। अरिष्टेन समं यत्र महद्युद्धं प्रवर्त्तितम्॥२९॥
घातयित्वा ततश्चेममरिष्टं वृषरूपिणम्। कोपेन पार्ष्णिघातेन मह्यास्तीर्थं प्रवर्त्तितम्॥३०॥
वृषभस्य वधाज् ज्ञेया आत्मनः शुद्धिमिच्छता। स्नातस्तत्र तदा कृष्णो वृषं हत्वा सगोपकः॥३१॥
विपाप्मा राधां प्रोवाच कथं भद्रे भविष्यति। वृषो हतो मया चायमरिष्टः पापपूरुषः॥३२॥
तत्र राधा समाश्लिष्य कृष्णमक्लिष्टकारिणम्। स्वनाम्ना विहितं कुण्डं कृतं तीर्थमदूरतः।
राधाकुण्डमिति ख्यातं सर्वपापहरं शुभम्॥३३॥
अरिष्टाराधाकुण्डाभ्यां स्नानात् फलमवाप्नुयात्।
राजसूयाश्वमेधाभ्यां नात्र कार्या विचारणा।
गोहत्याब्रह्महत्यायाः पापं क्षिप्रं प्रणश्यति॥३४॥
तीर्थं हि मोक्षराजाख्यं नृणां मुक्तिप्रदायकम्। यस्य दर्शनमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते॥३५॥

फिर सौ बाहु के प्रमाण की ऊँचाई वाले देवगिरि पर भी जाना उचित है। वहाँ स्नान और दर्शन करने से वाजपेय यज्ञ का फल प्राप्त होता है।।२७।।

फिर महादेव के पास जाकर दर्शन और ध्यान करने का फल प्राप्त करना उचित है। फिर उस कुण्ड में स्नान कर पितरों का तर्पण करने से कृतकृत्य होकर मनुष्य स्वर्ग को ही चला जाया करता है।।२८।।

गंगा के उतर की दिशा में एक तीर्थ है, जहाँ देवाधिदेव चक्रधारी विष्णु का अनिष्ट दैत्य के साथ महान् युद्ध हुआ था।।२९।।

हे धरणि! कोप सहित अपने पैरों की एड़ी के प्रहार से इस वृषरूपी अरिष्ट को मारकर विष्णु ने इस तीर्थ की स्थापना की थी।।३०।।

फिर वृष को मारकर गोपों के साथ श्रीकृष्ण ने वृषवध के कारण होने वाले अपने दोषों की शुद्धि करने की इच्छा से ही वहाँ स्नान किया था।।३१।।

इस प्रकार दोषमुक्त श्रीकृष्ण ने राधा से पूछा था कि हे भद्रे! मेरे द्वारा इस पापी जीव वृष का वध हुआ, इसकी शुद्धि कैसे होगी?।।३२।।

फिर उस राधा ने विशुद्ध कर्म करने वाले श्रीकृष्ण का आलिङ्गन किया। फिर उनके पास ही अपने नाम के कुण्ड वाले तीर्थ की स्थापना की। राधाकुण्ड नाम से प्रसिद्ध सभी पापों को दूर करने वाला यह शुभ तीर्थ है।।३३।।

इस प्रकार अरिष्ट और राधाकुण्ड में स्नान करने से राजसूय और अश्वमेध यज्ञ करने का फल मिलता है। इसमें तो संशय करना ही नहीं चाहिए। यहाँ शीघ्र ही गोहत्या और ब्रह्महत्या के पाप भी दूर हो जाया करते हैं।।३४।।

इस प्रकार से मनुष्यों को मुक्ति प्रदान करने वाला मोक्षराज तीर्थ नाम का तीर्थ भी स्थित है। इस तीर्थ के दर्शन मात्र करने से मनुष्य सभी पापों से रहित हो जाते हैं।।३५।।

इन्द्रध्वजोच्छ्रयं यत्र पूर्वस्यां दिशि वै कृतम्। इन्द्रध्वजमिति ख्यातं तीर्थं चैवातिमुक्तिदम्।
तत्र स्नाता दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः॥३६॥
ततो हरेर्निवेद्याशु यात्राफलमनन्तकम्। चक्रतीर्थे नरः स्नात्वा पञ्चतीर्थाख्यकुण्डके॥३७॥
समाप्य तीर्थयात्रां च रात्रौ जागरणं हरेः। गोवर्द्धनस्य कर्त्तव्यं महापातकनाशनम्॥३८॥
एकादश्यां तदा रात्रौ कृत्वा जागरणं शुभम्।
द्वादश्यामुषसि स्नात्वा पिण्डं निर्वाप्य शक्तितः॥३९॥
पितृणां मुक्तिदं तेषां य एवं कुरुते नरः। सर्वपापविनिर्मुक्तः परं ब्रह्माधिगच्छति॥४०॥
एतत् ते कथितं भद्रे अन्नकूटपरिक्रमम्। यथाऽनुक्रमयोगेन तथाषाढेऽपि चोच्यते॥४१॥
य एतच्छृणुयाद् भक्त्या तीर्थानुक्रमणं हरेः। गोवर्द्धनस्य माहात्म्यं गङ्गास्नानफलं लभेत्॥४२॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः॥१६२॥

फिर पूर्वदिशा में जहाँ इन्द्रध्वज की ऊँचाई पर इन्द्रध्वज नाम से ही प्रसिद्ध परम मुक्तिप्रदायक तीर्थ है, वहाँ स्नान करने पर लोग स्वर्ग को जाते हैं और जो जन वहाँ मर जाते हैं, उनका तो पुनर्जन्म ही नहीं होता है।।३६।।

फिर चक्रतीर्थ में स्नान करने के बाद श्रीहरि को अपने यात्रा का अनन्त फल अर्पण कर पञ्चकुण्ड नाम के तीर्थ में तीर्थयात्रा सम्पन्न कर गोवर्द्धन हरि के निमित्त रात्रि में जागरण करना चाहिए। यहा महापापों को भी नष्ट करता है।।३७-३८।।

फिर एकादशी की रात्रि में शुभ जागरण कर द्वादशी को प्रातःकाल यथाशक्ति पिण्डदान करना चाहिए।।३९।।

जो जन इस प्रकार करते हैं, उनके पितरों को मोक्ष तो मिलती ही है, वे जन स्वयं सभी पापों से रहित होकर परमब्रह्ममय हो जाता है।।४०।।

हे भद्रे! तुमको क्रम से यह अन्नकूट की परिक्रमा की विधि कहा है। इसी तरह आषाढ़ में भी करने को कहा गया है। जो जन भक्तिभाव से गोवर्द्धन हरि के इस परिक्रमा का विधान माहात्म्य सुनता है, उन्हें गंगा स्नान का फल प्राप्त होता है।।४१-४२।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में मथुरा माहात्म्य—भाद्रशुक्ल एकादशी अन्नकूट परिक्रमा व विधि नामक एक सौ बासठवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१६२॥

त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

अथ मथुरामाहात्म्ये चतुःसामुद्रिककूपवर्णनम्

श्रीवराह उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व वसुंधरे। यथावृत्तं प्रतिष्ठाने दक्षिणापथमण्डले॥१॥
सुशीलो नाम वैश्यस्तु तस्मिन् वसति पत्तने। धनधान्यसमृद्धस्तु बहुपुत्रकुटुम्बवान्॥२॥
कुटुम्बभरणासक्तो नित्यकालं हि तिष्ठति। स्नानं दानं जपं होमं देवार्चां न करोति सः॥३॥
क्रयविक्रयसक्तस्य कालो दीर्घो गतस्तदा। कदाचिदपि पापोऽसौ साधूनां संगमे गतः॥४॥
न तेन धर्मश्रवणं कदाचिदपि संश्रुतम्। देवानां ब्राह्मणानां च भक्तिस्तस्य न विद्यते॥५॥
आत्मोदरनिमित्तं हि पापं च कुरुते सदा। गच्छन्तं बहुकालं च न स बुध्यति पापकृत्॥६॥
न तस्य जायते बुद्धिर्दानस्योपरि भामिनि। नैवान्यमपि दातारं शक्नोति च निरीक्षितुम्॥७॥
धनयुक्तोऽपि पापोऽसै न ददौ च कदाचन। तस्यैवं वसतस्तत्र प्रतिष्ठाने पुरोत्तमे॥८॥
स तु कालेन महता कुटुम्बासक्तमानसः। स संत्यज्य प्रियान् प्राणान् प्रेतत्वं समुपागतः॥९॥

अध्याय-१६३

मथुरा माहात्म्य-चतुःसामुद्रिक कूप प्रसङ्ग में वणिकोपाख्यान

हे वसुन्धरे! इन सबके पश्चात् दक्षिणा पथ के मण्डल के प्रतिष्ठान में जो घटना घटित हुई थी, उन घटनाओं का उल्लेख अब कर रहा हूँ। उसे सुनो।।१।।

पुरातन काल में सुशील नाम का एक वैश्य व्यक्ति उस नगर में रहा करता था। वह धन-धान्य से युक्त और कई पुत्रों और कुटुम्बियों से सम्पन्न था।।२।।

वह वैश्य सदा ही कुटुम्ब के भरण-पोषण में संलग्न रहा करता था, लेकिन स्नान, दान, जप, होम, देवता पूजन आदि नहीं किया करता था।।३।।

इस प्रकार क्रय-विक्रय कर्म करते हुए उसका दीर्घकाल बीत गया। लेकिन एक बार उस पापी का साधुओं से समागम हो गया। इसके पूर्व उसने कभी धर्मकथा नहीं सुनी थी। उसमें देवों और ब्राह्मणों के प्रति कुछ भी भक्ति नहीं ही थी।।४-५।।

अपने पेट के लिए सदा वह पाप कर्म किया करता था। दीर्घकाल बीतने पर भी उस पापी को ज्ञान की प्राप्ति नहीं हुई।।६।।

हे सुन्दरि! उसके मन में कभी भी दान करने का विचार ही उत्पन्न नहीं हुआ करता था। यदि दूसरा कोई दान करता हो, तो भी उसे वह देखना पसन्द नहीं था।।७।।

इस प्रकार धन सम्पन्न होकर भी उस पापी वैश्य ने कभी दान नहीं किया। जैसे-तैसे वह वैश्य उस श्रेष्ठ प्रतिष्ठान नगर में रहा करता था।।८।।

फिर दीर्घकाल के पश्चात् अपने कुटुम्ब में अति आसक्त मन वाला वह वैश्य मृत्यु को प्राप्त होकर प्रेत हो चला।।९।।

मरुस्थल्यास्तु देशे तु वृक्षमूलसमाश्रितः। स तत्र वसते नित्यं तेन पापेन गुण्ठितः॥१०॥
समाः सप्त गतास्तत्र वसमानस्य सुन्दरि। तत्रैव दैवयोगेन महान् सार्थं उपागतः॥११॥
तस्य मध्ये तु वणिजो मथुराया विनिःसृतः। गते सार्थे तु स वणिक् तं वृक्षं समुपाश्रितः॥१२॥
तत्रैव वसति प्रेतो रौद्ररूपो भयानकः। दीर्घदंष्ट्रः सुविकटो ह्रस्वबाहुर्विभीषणः।
महाहनुर्विशालाक्षो विडालसदृशाननः॥१३॥
तं दृष्ट्वा स वणिक् त्रस्तः समुत्थाय जगाम ह। गच्छन्तं तु गृहीत्वा तं प्रेतो वचनमब्रवीत्॥१४॥
मम त्वं विहितो भक्षः स्वयं प्राप्तोऽसि मानव। मांस ते भक्षयिष्यामि पिबामि तव शोणितम्॥१५॥
इत्याकर्ण्य वचस्तस्य स वणिग् वाक्यमब्रवीत्। कुटुम्बभरणार्थाय संप्राप्तो दुर्गमाटवीम्॥१६॥
वृद्धः पिता मम गृहे माता पत्नी पतिव्रता। मयि संभक्षिते रक्षः कुटुम्बं हि मरिष्यति॥१७॥
विभोर्वचनमाकर्ण्य प्रेतो वचनमब्रवीत्। कस्मात् स्थानात् समायातः सत्यं ब्रूहि महामते॥१८॥

विभुरुवाच

गोवर्द्धनो गिरिवरो यमुना च महानदी। तयोर्मध्ये पुरी रम्या मथुरा लोकविश्रुता।
तस्यां वसाम्यहं प्रेत पितृपैतामहे गृहे।१९॥

वह प्रेत मरुस्थल देश में एक वृक्ष के मूल में निवास करने लगा। वहाँ अप अपने उन पापों से युक्त होकर रहा करता था।।१०।।

हे सुन्दरि! इस प्रकार से वहाँ रहते हुए उसे सात वर्ष बीत गये। दैवयोग से एक बार वहाँ एक अधिकतम यात्रियों का समूह आ पहुँचा।।११।।

उन यात्रियों में मथुरा से वापस आ रहा एक वणिक् भी था। उन यात्रियों के समूह के वहाँ से चले जाने पर वह वणिक् उसी वृक्ष के नीचे रूका रह गया।।१२।।

वहाँ ही भयानक स्वरूप वाला वह भयंकर प्रेत रहा ही करता था। जिसकी दाढ़ें बड़ी और अतिविकट थीं ही, उसकी भुजायें भी छोटी, लेकिन भयानक थीं। उसकी ठुड्डी बहुत बड़ी थी। उसके नेत्र भी बड़े-बड़े थे और उसका मुख एक विडाल के समान विकराल था।।१३।।

उसको देखते ही वह यात्री वणिक् भयभीत होते हुए उठकर जाने को हुआ, तत्क्षण जाते हुए उस वणिक् को पकड़कर उस प्रेत ने यह वचन कहा।।१४।।

हे मानव! तुम स्वयं ही यहाँ आकर अब मेरा भक्ष्य बन चुके हो। मैं अब तुम्हारा मांस भक्षण करते हुए रक्तपान करूँगा। इस प्रकार उसकी बातें सुनकर उस वणिक् ने भी यह वचन कहा कि मैं अपने कुटुम्ब के भरण-पोषण के कनमित्त इस दुर्गम जंगल में आ पहुँचा हूँ।।१५-१६।।

मेरे गृह/परिवार में वृद्ध पिता, माता, पतिव्रता पत्नी है। हे राक्षस! तेरे द्वारा मुझे खा लिये जाने पर मेरा पूरा परिवार भी मर जायेगा।।१७।।

उस विभु वणिक् की बातें सुनकर उस प्रेत ने यह कहा कि हे महामते! मुझ तुम सब सत्य-सत्य कहो। तुम किस स्थान से आ रहे हो।।१८।।

फिर उस विभु ने कहा की श्रेष्ठ पर्वत गोवर्द्धन और महानद यमुना जहाँ स्थित हैं, उनके बीच लोक प्रसिद्ध रमणीय मथुरापुरी स्थित है। हे प्रेत! मैं उस पुरी में अपने पिता-पितामह से प्राप्त गृह में रहा करता हूँ।।१९।।

तत्र मे वसतो नित्यं यद् द्रव्यं पूर्वसंचितम्। क्षीणवित्तश्च तस्याऽहं आयातः पश्चिमां दिशम्॥२०॥
ततो मरुस्थलं प्राप्य तव दृष्टिपथं गतः। यदत्रैवोचितं कार्यं कुरुष्व तदनन्तरम्॥२१॥

प्रेत उवाच

न त्वां खदितुमिच्छामि कृपा मे जायते त्वयि। समयेन हि मोक्षामि कुरुष्व वचनं मम॥२२॥
निवर्त्त गच्छ मथुरां मम कार्यार्थसाधकः।
तत्र गत्वा त्वया कार्यं यत् कर्त्तव्यं वदामि तत्॥२३॥
स्नानं कृत्वा तु विधिवत् कूपे चतुःसमुद्रके। पिण्डदानं कुरुष्व त्वं मम नाम्ना प्रयत्नतः।
स्नानस्य च फलं देहि ततो गच्छ यथासुखम्॥२४॥
नाहं यास्यामि मथुरां द्रव्याभावे कथंचन। भक्षयस्व शरीरं मे ततः पुष्टिमवाप्स्यसि॥२५॥

प्रेत उवाच

गृहे बहुधनं तेऽस्ति गच्छाशु विनिवर्त्य च। आस्ते धनमपर्यन्तं गच्छ त्वं मा विलम्बय॥२६॥

विभुरुवाच

गृहे मम धनं नास्ति यत्त्वया समुदीरितम्। गृहशेषं मम धनं न चान्यत् तत्र विद्यते॥२७॥
पितृपैतामही कीर्त्तिरविक्रेया हि सा मया। प्रेतः प्रहस्य सुचिरमिदं वचनमब्रवीत्॥२८॥

वहाँ पर निवास करते हुए मैंने नित्य अपना पूर्व संचित फल का उपभोग कर लिया है। फिर धन से क्षीण होकर मैं वहाँ से पश्चिम दिशा में आ पहुँचा हूँ।।२०।।

फिर मरुस्थल में पहुँचकर तुम्हारी कुदृष्टि में आ फँसा हूँ। अब यहाँ तुम्हें जो कुछ करना उचित हो, तुम वही करो।।२१।।

प्रेत ने कहा कि वैसे मैं तुम्हें भक्षण करना नहीं चाहता हूँ। मुझे तुम्हारे ऊपर दया आ रही है। किन्तु मैं तुम्हें एक शर्त पर छोड़ सकता हूँ, वचन दो।।२२।।

जब तुम वापस मथुरा जाओगे, उस समय वहाँ तुमको मेरा एक कार्य सिद्ध करना है। वहाँ पहुँचकर जो कुछ करना है, वह तुम्हें बतला रहा हूँ।।२३।।

तुम वहाँ पर चतुःसमुद्रक नाम का एक कूप है। उसमें सविधि स्नान कर मेरे नाम पर प्रयत्नपूर्वक पिण्डदान करोगे। फिर स्नान का फल मुझे प्रदान कर सुखपूर्वक घर वापस चले जाओगे।।२४।।

इस प्रकार उस प्रेत की बातें सुनकर विभु वणिक् ने यह बात कही कि विना द्रव्य अर्पित किये मैं किसी भी तरह मथुरा वापस नहीं जा सकता हूँ। अतः तुम मेरा शरीर ही खा जाओ। उससे कम से कम तुम्हें तो तृप्ति मिल सकेगी।।२५।।

फिर प्रेत ने कहा कि देखो! तुम्हारे घर में पहले से ही बहुत धन है। तुम शीघ्र लौट जाओ। तुम्हारे पास अत्यधिक धन है। तुम जाओ, विलम्ब मत करो।।२६।।

विभु ने कहा कि तुम जैसा कर रहे हो, वह धन मेरे घर में नहीं है। अब मात्र बचा रूप में घर ही मेरा धन है, अन्य कुछ भी तो वहाँ नहीं शेष है।।२७।।

अतः मैं पिता और पितामह आदि परम्परा की कीर्त्ति रूप घर बेच नीं सकता। इस पर प्रेत दीर्घकाल तक हँसते हुए यह वचन कहा—।।२८।।

अस्ति चैव धनं प्रोक्तं यन्मया त्वद्गृहे विभो। स्वर्णभारं च गर्त्तस्थं गृहे तिष्ठति संचितम्॥२९॥
निवर्त्त गच्छ संतुष्टः सुहृदां प्रीतिवर्धनः। एवं द्रक्ष्यामि ते मार्गं मथुरा येन गम्यते॥३०॥

सूत उवाच

वणिक् हृष्टमना भूत्वा पुनर्वचनमब्रवीत्। इमामवस्थां संप्राप्य कथं ज्ञानसमुद्भवः।
ततः स कथयामास यद् वृत्तं हि पुरातनम्॥३१॥
प्रतिष्ठाने पुरवरे विष्णोरायतनं महत्। प्रभातसमये तत्र विष्णोरायतेन शुभे॥३२॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रास्तत्र समागतः। वाचकः पठते तत्र कथां पौराणिकीं शुभम्॥३३॥
मम मित्रं च तत्रैव नित्यकालं प्रतिष्ठति। तस्मिन् काले तु मित्रेण नीतोऽहं विष्णुमन्दिरम्॥३४॥
अत्यादरेण महता संतोष्य च पुनः पुनः। तेनाहूतो निवृत्तस्तु मित्रपार्श्व व्यवस्थितः॥३५॥
रुतं मया ततः पुण्यं कूपं तत्पापनाशनम्। समुद्राः किल तिष्ठन्ति चत्वारोऽत्र समागताः॥३६॥
तस्य कूपस्य माहात्म्यं श्रुतं तत्र महाफलम्। वाचकाय ततो दानं दत्तं सर्वैर्महाजनैः॥३७॥
मित्रेण प्रेरितो दाने मया मौनं समाश्रितम्। मित्रेण च पुनः प्रोक्तं यथाशक्त्या प्रदीयताम्॥३८॥
तदा मित्रप्रसङ्गेन दत्तं वै स्वर्णमाषकम्। ततः कालेन महता गतो वैवस्वतक्षयम्॥३९॥

हे विभु! मैंने जो कहा है, वह धन तुम्हारे घर में है। तुम्हारे घर के एक गड्ढे में स्वर्णभर संचित रूप में पड़ा हुआ है।।२९।।

अतः तुम शीघ्र वापस जाओ और सन्तुष्ट होकर अपने शुभेच्छुओं की प्रीति को बढ़ाओ। जिस मार्ग से मथुरा जान है, उसे मैं देखता रहूँगा।।३०।।

सूत ने कहा कि इस तरह से प्रसन्न मन होकर उस वणिक् ने यह वचन कहा कि ऐसी दशा प्राप्त करने के बाद भी तुम्हें ज्ञान कैसे मिला हुआ है? इस पर प्रेत ने जो पुरातन वृत्तान्त था, उसे वह कहने लगा।।३१।।

प्रतिष्ठानपुर में विष्णु का एक महामन्दिर है। सुबह-सबेरे उस शुभ विष्णुमन्दिर में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शू, सभी इकट्ठा हुआ करते थे। फिर एक प्रवचन करने वाला वहाँ पर पुराण कथा की मंगलमयी कथा सुनाया करता था।।३२-३३।।

एक मेरा मित्र वहाँ नित्य जाया करता था। उस समय एक दिन मेरा मित्र मुझे भी उस विष्णु मन्दिर में लेकर चला गया।।३४।।

अत्यन्त सम्मानपूर्वक मुझे प्रसन्न करते हुए उस मित्र ने मुझे बार-बार बुलाया। फिर मैं वहाँ जाकर अपने मित्र के पार्श्व में बैठ गया।।३५।।

फिर मने उस पापनाशक कूप का वर्णन करते सुना। उसमें निश्चय ही चारों समुद्र स्थित हैं। मैंने वहाँ महाफल वाले उस कूप का माहात्म्य सुना। फिर प्रत्येक श्रेष्ठ लोगों ने प्रवचन करने वाले को दान द्रव्य अर्पित किया।।३६-३७।।

उस समय दान करने हेतु मित्र के कहने पर भी मैं चुपचाप शान्त बैठा रहा। मित्र ने पुनः कहा कि यथाशक्ति कुछ दे दो।।३८।।

वैसे मित्र के प्रसङ्गवश मैंने एक मासा स्वर्ण का दान किया था। पुनः दीर्घ काल के बाद यमराज के घर चला गया।।३९।।

वैवस्वतनियोगेन ततोऽहं पूर्वकर्मभिः। प्रेतत्वं समनुप्राप्तो दुस्तरं दुर्गमं महत्॥४०॥
न दत्तं न हुतं चापि न तीर्थं चावगाहितम्। न तर्पितास्तु पितरः प्राप्तोऽहं प्रेततां गतः॥४१॥
इत्येतत् कथितं सर्वं यन्मा त्वं परिपृच्छसि। गच्छ त्वं सम्मुखस्तत्र यत्र सा मथुरा पुरी॥४२॥
प्रेतस्य वचनं श्रुत्वा विभुर्वचनमब्रवीत्। कथं धारयसे प्राणानिमं वृक्षं समाश्रितः॥४३॥

प्रेत उवाच

कथितं हि मया पूर्वं यद् वृत्तं हि पुरातनम्। वाचकाय तु यद् दत्तं सुवर्णस्य तु माषकम्।
तद्दानस्य प्रभावेन नित्यं तृप्तोऽस्मि वै विभो।४४॥
अकामेन मया दत्तं तस्येदं कर्मणः फलम्। प्रेतभावं गतस्यापि न मे ज्ञानस्य विभ्रमः॥४५॥
ततश्च स वणिक्श्रेष्ठ आगत्य मथुरां पुरीम्। कृतं तेन च तत्सर्वं यथा प्रेतेन भाषितम्।
तेन कृत्येन प्रेतोऽसौ मुक्तिं प्राप्य दिवं गतः॥४६॥
एतत् ते कथितं भूमे माहात्म्यं मथुराश्रितम्। चतुःसमुद्रिके कूपे पिण्डदाने परां गतिम्॥४७॥
तीर्थे चैव गृहे वाऽपि देवस्थानेऽपि चत्वरे। यत्र तत्र मृता देवि मुक्तिं यान्ति न चान्यथा॥४८॥
अन्यत्र हि कृतं पापं तीर्थमासाद्य नश्यति। तीर्थे तु यत् कृतं पापं वज्रलेपो भविष्यति॥४९॥

फिर अपने पहले के किये कर्मों के वश यमराज की आज्ञा से मुझे महादुस्तर और दुर्गम प्रेतत्त्व प्राप्त हुआ है।।४०।।

चूँकि मैंने न कभी दान किया, न कभी हवन किया, न कभी तीर्थों में स्नान किया और न कभी पितरों का तर्पण किया। इसी से मुझे प्रेतत्त्व प्राप्त हुआ है।।४१।।

वैसे तुमने जो कुछ पूछा था, वे सब तुमको मैंने बतला दिया है। अब तुम सीधे वहाँ जाओ, वहाँ मथुरापुरी है।।४२।।

इस तरह प्रेत की बात सुनकर विभु वणिक् ने फिर यह वचन कहा कि इस वृक्ष में रहते हुए तुम कैसे अपना प्राण धारण कर लिया करते हो?।।४३।।

फिर प्रेत ने कहा कि हे विभु! मैंने पहले ही जो पुरातन वृत्तान्त था, वह बतलाया है। लेकिन उस प्रवाचक को जो एक माषा सोना दान किया था, उसी दान के प्रभाव वश मैं नित्य तृप्त रहा करता हूँ।।४४।।

चूँकि मैंने किसी कामनावश दान दिया था, जिसका फल है कि मुझे प्रेत की योनि मिलने पर मेरा ज्ञान नष्ट नहीं हुआ है।।४५।।

फिर वह श्रेष्ठ वणिक् विभु मथुरा पुरी में आ गया और उसने वे सब कर्म किया जो प्रेत ने कहा था। उस कृत्य से वह मुक्त होकर स्वर्ग चला गया।।४६।।

हे भूमे! इस तरह तुम्हें मथुरा का यह माहात्म्य वर्णन कर दिया। यहाँ यह भी बतला दिया कि चतुःसामुद्रिक कूप पर पिण्डदान करने से परमगति मिल जाती है।।४७।।

हे देवि! चतुःसामुद्रिक कूप पर पिण्डदान करने वाला यदि तीर्थ में, घट में, देवस्थान में अथवा आँगन में जहाँ कहीं भी अपना प्राण त्याग करता हो, तो वह निश्चय ही मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।।४८।।

वैसे याद रखना चाहिए कि अन्यत्र का किया हुआ पाप तीर्थ में आकर विनष्ट हो जाते हैं। किन्तु तीर्थ में किया गया पाप वज्रलोप हो जाता है।।४९।।

मथुरायां कृतं पापं तत्रैव च विनश्यति। एषा पुरी महापुण्या यस्यां पापं न विद्यते॥५०॥
कृतघ्नश्च सुरापश्च चौरो भग्नव्रतस्तथा। मथुरां प्राप्य मनुजो मुच्यते सर्वकिल्बिषैः॥५१॥
तिष्ठेद् युगसहस्त्रं तु पादेनैकेन यः पुमान्। तस्याधिकं भवेत् पुण्यं मथुरायां निवासिनः॥५२॥
परदाररता ये च ये नरा अजितेन्द्रियाः। मथुरावासिनः सर्वे ते देवा नरविग्रहाः॥५३॥
बलिभिक्षाप्रदातारः सुनृताः क्रोधवर्जिताः। तीर्थस्नानरता ये च देवास्ते नरमूर्त्तयः॥५४॥
यदन्येषां सहस्त्रेण ब्राह्मणानां महात्मनाम्। एकेन पूजितेन स्यान्माथुरेणाखिलं हि तत्॥५५॥
अऋग् वै माथुरो यत्र चतुर्वेदस्तथापरः। चतुर्वेदोऽपि नैव स्यान्माथुरेण समः क्वचित्॥५६॥
भवन्ति सर्वतीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च। मङ्गलानि च सर्वाणि यत्र तिष्ठन्ति माथुराः।
चतुर्वेदं परित्यज्य माथुरं पूजयेत् सदा॥५७॥
सिद्धभूतगणाः सर्वे ये च देवगणा भुवि। मथुरावासिनो लोकांस्ते पश्यन्ति चतुर्भुजान्॥५८॥
मथुरायां ये वसन्ति विष्णुरूपाणि ते मताः। अज्ञानास्तान् न पश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषा॥५९॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः॥१६३॥

किन्तु मथुरा में किया गया पाप वहीं विनष्ट हो जाते हैं। चूँकि यह पुरी मथुरा परम पवित्र पुरी है। इसमें पाप नहीं ठहरता है।।५०।।

कृतघ्न, मद्यप, चोर, व्रतभङ्ग करने वाले जन भी मथुरा में जाकर सभी पापों से मुक्त हो जाते हैं।।५१।।

जो कोई जन एक पैर पर हजार युगों तक खड़ा रहता है, उससे भी अधिक पुण्य मथुरा में रहने वालों को होता है। जो जन परस्त्री रत, अजितेन्द्रिय आदि होते हैं; वे सब भी मथुरावासी जन शरीर में देवता ही होते हैं।।५२-५३।।

पूजोपहार और भिक्षा प्रदान करने वाले, प्रिय, सत्य बोलने वाले, क्रोधशून्य, तीर्थस्नान करने वाले आदि जो जन हैं, वे सब शरीरधारी देवता ही होते हैं। दूसरे हजारों महात्मा ब्राह्मणों का पूजा करने से जो फल होते हैं, वे सब फल मथुरा वासी को एक ब्राह्मण की पूजा करने मात्र से हो जाता है।।५४-५५।।

जहाँ कहीं कोई मन्त्रहीन मथुरावासी ब्राह्मण हो और दूसरा चार वेदों का ज्ञाता ब्राह्मण हो, वहाँ समानता करने पर चारों वेदों का ज्ञाता होने पर भी ब्राह्मण कभी मथुरावासी के समान नहीं हो सकते।।५६।।

जहाँ पर मथुरावासी ब्राह्मण रहा करते हैं, वे सभी स्थान तीर्थ सदृश पवित्र हो जाते हैं। अतः वेदों के ज्ञाता के त्याग कर सदा मथुरावासी ब्राह्मण की पूजा करनी चाहिए।।५७।।

जो सभी सिद्ध, भूत और देवगण हैं, वे पृथ्वी पर रहने वाले मथुरावासियों को चतुर्भुज विष्णु के रूप से देखा करते हैं। जो जन मथुरापुरी में रहते हैं, वे विष्णु के समान माने जाते हैं। अज्ञानी जन उन्हें नहीं देखते। ज्ञाननेत्र से ही वे देखे जा सकते हैं।।५८-५९।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में मथुरा माहात्म्य—चतुसामुद्रिक कूप प्रसङ्ग में वणिकोपाख्यान नामक एक सौ तिरसठवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१६३॥

चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

अथ मथुरामाहात्म्ये विमत्योपाख्यानम्

धरण्युवाच

श्रुतानि तु महादेव तीर्थानि विविधानि तु। असिकुण्डेति संज्ञेयं तन्ते त्वं कथय प्रभो॥१॥

श्रीवराह उवाच

सुमतिर्नाम राजासीद् धार्मिको लोकविश्रुतः। तीर्थयात्रानिमित्तेन स्वर्गलोकं गतस्तदा॥२॥
गते स्वर्गं तु सुमतौ पुत्रो राज्यं चकार ह। विमर्तिर्नाम नाम्ना च राज्ये पैतामहे स्थितः॥३॥
राज्यं च कुर्वतस्तस्य आगतो नारदस्तदा। विष्टरं पाद्यमर्घ्यं च तस्मै दत्तं यथोचितम्॥४॥
प्रतिगृह्य च तत्सर्वं तमुवाच स नारदः। पितुर्ह्यनृणतां गत्वा स पुत्रो धर्मभाग्भवेत्॥५॥
इत्युक्त्वा नारदस्तत्र तत्रैवान्तरधीयत। नारदे तु गते राजा पप्रच्छ स्वात्ममन्त्रिणः॥६॥
तदा किमुक्तमृषिणा नारदेन पितुः कृते। आनृण्यमिति यद् वाक्यं मया बुद्धं न किंचन॥७॥
मन्त्रिणश्च ततो ज्ञात्वा पितुर्मरणमेव च। तीर्थयात्रानिमित्तं च तस्मै राज्ञे न्यवेदयन्॥८॥

अध्याय–१६४

मथुरा माहात्म्य–विमति आख्यान, विष्णु से उसका वध

धरणी ने कहा कि हे महान् देव! मैंने कई तीर्थों का आपसे वर्णन सुन चुका। हे प्रभो! असि कुण्ड नाम के जो ये कुण्ड हैं, मुझे उसे कहें।।१।।

श्रीवराह ने कहा कि लोकप्रसिद्ध सुगति नाम का एक धार्मिक राजा था। वह तीर्थ यात्रा करने के उद्देश्य से निकल पड़ा। किन्तु इसी प्रसङ्गवश वह स्वर्गवासी हो गया।।२।।

इस तरह उस राजा के स्वर्ग गमन कर जाने पर उनका पुत्र राज्य करने लगा। उसका पुत्र विमति अपने पितामह से चले आ रहे राज्य का स्वामी बन बैठा।।३।।

फिर उस विमति के राज्य शसन काल में उसके पास नारद ऋषि पधारे। उसने उनका आसन, पाद्य, अर्घ्य आदि से यथोचित रीति से स्वागत-सत्कार किया।।४।।

वे सब स्वीकार करते हुए उन नारद ऋषि ने उससे कहा कि पितृऋण से मुक्त हुआ पुत्र ही धर्म का अधिकारी होता है।।५।।

इस प्रकार कहकर नारद जी तत्क्षण वहीं अन्तर्हित हो गये फिर नारद जी के जाने के बाद राजा विमति ने अपने मन्त्रियों से पूछ दिया—।।६।।

उस काल में नारद ऋषि ने मेरे पिता के प्रसङ्ग में मुझसे क्या कहा था? 'ऋण से मुक्ति' उनके इस कथन को मैंने कुछ भी नहीं समझ पाया।।७।।

फिर ऐसा सुनकर मन्त्रियों ने तीर्थ यात्रा के प्रसङ्ग में उनके पिता की मृत्यु का सब समाचार उस राजा को बतला दिया।।८।।

अत एवोक्तमानृण्यं नारदेन पितुस्तव। श्रुत्वा वाक्यं तदा राजा तीर्थलोपं चकार ह॥९॥
विमेर्बुद्धिरुत्पन्ना गच्छामो मथुरां पुरीम्। चतुरो वार्षिकान् मासान् मथुरायां वसामहे॥१०॥
सर्वाणि तत्र तीर्थानि तिष्ठन्ति विविधानि च। आगते तु नृपे तत्र तीर्थान्यूचुः परस्परम्॥११॥
युद्धं विमतिना सार्द्धं स्वयं कर्त्तुं न शक्नुमः। कल्पग्रामं तु गच्छामो वाराहो यत्र तिष्ठति॥१२॥
गतानि तत्र तीर्थानि कल्पग्रामं वसुंधरे। तत्र वाराहरूपेण स्थितोऽहं च यदृच्छया।
यावन् निरीक्षयाम्यग्रं तावत्तिष्ठन्ति सन्निधौ॥१३॥

तीर्थान्यूचुः

तय विष्णो जयाचिन्त्य जय देव जयाच्युत। जय विश्वेश कर्त्तेश जय देव नमोऽस्तु ते॥१४॥
तीर्थैः स्तुतोऽहं वसुधे वचनं चेदमब्रुवम्। वरं वृणुत भद्रं वो यद् वो मनसि वर्त्तते॥१५॥

तीर्थान्यूचुः

वरार्हा यदि देवेश अभयं दातुमर्हसि। विमतिना सुपापेन कृतस्त्रासः सुदारुणः।
तं नियच्छस्व पापिष्ठं यदि पश्यसिः नः दुखम्॥१६॥

श्रीवराह उवाच

हिताय सर्वतीर्थानां हनिष्यामि महारिपुम्। तत्र तीर्थनियोगेन आगतो मथुरां पुरीम्॥१७॥

अतएव नारद ने आपको पिता के ऋण से मुक्त होने को कहा था। तब फिर वह राजा मन्त्रियों की बातें सुनकर तीर्थ विषयक ऋण को दूर करने का मन बना लिया।।९।।

इस तरह राजा विमति यह विचार करने लगा कि मैं मथुरापुरी जाऊँगा। वर्ष के चार मास वहीं मथुरा पुरी में निवास करूँगा।।१०।।

चूँकि वहाँ कई प्रकार के और सम्पूर्ण तीर्थ रहा करते हैं। राजा के आने पर तीर्थों ने परस्पर कहा—।।११।।

हब सब स्वयं विमति के साथ युद्ध तो नहीं कर सकते। अतः हम सभी कल्पग्राम चलें जहाँ साक्षात् वराहदेव विद्यमान हैं।।१२।।

हे वसुन्धरे! इस प्रकार समस्त तीर्थ उस समय कल्पग्राम में आ गये, वहाँ मैं स्वेच्छा से वराह स्वरूप में स्थित हूँ। मैंने जैसे ही आगे की तरफ देखा, वैसे ही वे सभी तीर्थ मेरे पास आ पहुँचे।।१३।।

फिर तीर्थों ने कहा कि हे विष्णो! आपकी सदा जय हो। हे अचिन्त्य आपकी सदा जय हो। हे देव! आपकी जय हो। हे अच्युत! आपकी जय हो। हे विश्वेश! आपकी जय हो। हे कर्त्तेश! आपकी जय हो। हे देव! आपको हमारा प्रणाम है।।१४।।

हे वसुधे! इस प्रकार तीर्थों के द्वारा स्तुत मैंने यह बात कही कि तुम सबका सदा कल्याण हो। तुम्हारे मन में जो कुछ हो वे वर तुम सब माँग लो।।१५।।

फिर तीर्थों ने कहा कि हे देव! यदि हम सब वर पाने के योग्य हों, तो हमें अभयदान करें। अतिपापी विमति ने हमें भयंकर त्रास दिया है। यदि आप हम सबका सुख चाहते हैं, तो उस पापिष्ठ राजा को अवश्य नियन्त्रित करें।।१६।।

श्रीभगवान् वराह ने कहा कि वैसे समस्त तीर्थों के हित के लिए मैं महान् शत्रु का वध करूँगा। तीर्थों की प्रेरणा से वे मथुरापुरी में आ पहुँचे।।१७।।

तत्रागते तु वसुधे युद्धं कृत्वा तु तेन वै। तदाऽसिना तु दिव्येन स राजा बलदर्पितः।
सूदितो हि मया देवि अस्यग्रं वुडितं भुवि।।१८।।

अग्रेण तु मयोद्धृत्य मृत्तिका वरवर्णिनी। तत्र कुण्डं महादिव्यं देवर्षिविधिनिर्मितम्।
असिकुण्डेति संज्ञा च प्राप्ता तेन वसुंधरे।।१९।।

तत्राश्चर्यं प्रवक्ष्यामि म कर्मसुखावहम्। पश्यन्ति मनुजाः सिद्धाः सर्वपापविवर्जिताः।।२०।।

चतुर्दश्यां तु द्वादश्यां श्रद्दधाना जितेन्द्रियाः। फलानि तत्र पश्यन्ति लभन्ते च सुनिश्चिताः।।२१।।

तस्मिन् काले ह्यहं देवि मथुरायां समागतः। तत्र तिष्ठाम्यहं भद्रे पश्चिमां दिशमाश्रितः।।२२।।

तत्र कृत्वा च हैरण्या मूत्तयश्च चतुर्विधाः। तीर्थे वराहसंज्ञे तु मथुरायां व्यवस्थितः।।२३।।

एका वाराहसंज्ञा च तथा नारायणी परा। वामना च तृतीया वै चतुर्था लाङ्गली शुभा।।२४।।

एताश्चतस्रो यः पश्येत् स्नात्वा कुण्डेऽसिसंज्ञिते। चतुःसागरपर्यन्ता क्रान्ता तेन धरा ध्रुवम्।
तीर्थानां माथुराणां च सर्वेषां फलमश्नुते।।२५।।

तीर्थे संस्थापितस्तत्र असिकुण्डस्ततो वरः। या संज्ञा कथिता पूर्वं कोटी वै दक्षिणोत्त्तरे।
असिकुण्डादिभिः कृत्वा तीर्थक्रमणिका वरा।।२६।।

हे भुवि! वहाँ आकर उस राजा विमति से युद्ध करते हुए मैंने दिव्य खड्ग से उस बलगर्वित राजा का वध कर दिया। लेकिन खड्ग का अग्रभाग भूमि में धँस गया।।१८।।

हे सुन्दरि! फिर उस खड्ग की नोंक से मैंने मिट्टी निकाल दिया। इस प्रकार वहाँ पर देवर्षि के विधि के अनुरूप महादिव्य कुण्ड बन गया। हे वसुन्धरे! इसी से उसका नाम 'असि कुण्ड' हो गया।।१९।।

अब मैं वहाँ अपने कर्म में सुखप्रद आश्चर्य का उल्लेख कर रहा हूँ। समस्त पापों से रहित सिद्ध जन इस आश्चर्य को देखा करते हैं।।२०।।

चतुर्दशी और द्वादशी के श्रद्धावान् और जितेन्द्रिय जन वहाँ निश्चय ही पापों को देखा और पाया करते हैं।।२१।।

हे देवि! हे भद्रे!! उस समय मथुरा में आकर मैं पश्चिम दिशा में स्थित हो गया। वहाँ स्वर्ण की बनी चार मूर्तियों का रूप धारणकर मैं मथुरा के वराह नाम के तीर्थ में स्थित हूँ। उन प्रतिमाओं का दर्शन और स्पर्शन मनुष्य को सभी पापों से रहित करने वाला होता है।।२२-२३।।

वहाँ एक प्रतिमा का नाम वराह है, दूसरी का नाम नारायणी, तीसरी का नाम वामना और चौथी प्रतिमा का नाम शुभ लाङ्गली है।।२४।।

इस प्रकार जो जन वहाँ असि कुण्ड में स्नान कर दन चार प्रतिमाओं का दर्शन करता है, उसके द्वारा निश्चयपूर्वक चार सागरों से युक्त और समावृत पृथ्वी की परिक्रमा हो जाती है। फिर वह मथुरा के सब तीर्थों का फल भी प्राप्त कर लेता है।।२५।।

फिर वहाँ श्रेष्ठ असिकुण्ड की तीर्थ रूप में स्थापना की गई। दक्षिण और उरुर दिशा की कोटि का यह प्रथम नामकरण हुआ था। असिकुण्डादि के क्रम से तीर्थ की प्रदक्षिणा करना अत्यन्त श्रेष्ठ है।।२६।।

सुप्तोत्थितोऽपि द्वादश्यामसिकुण्डाप्लुतो नरः।
मूर्त्तयः स्पर्शयेत् पश्येत् चत्वारः पूजयेत् तथा।
नास्येह पुनरावृत्तिर्भवेत् कालविपर्यये॥२७॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः॥१६४॥

पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

अथ मथुरामाहात्म्ये विश्रान्तितीर्थवर्णनम्

श्रीवराह उवाच

श्रृणु देवि यथा संज्ञा विश्रान्तेः कीर्तिता पुरा। राक्षसेन पुरा प्रोक्ता ब्राह्मणाय महात्मने॥१॥

पृथिव्युवाच

किमर्थं राक्षसेनोक्ता संज्ञा विश्रान्तिसंज्ञिता। किमर्थं पृष्टवान् विप्रः सर्वं कथय मे प्रभो॥२॥

श्रीवराह उवाच

उज्जयिन्यामभूद् विप्रः सदाचारविवर्जितः। न स पूजयते देवान् न स साधून् नमस्यति॥३॥

इस प्रकार यदि सोये हुए जन जागने के बाद द्वादशी तिथि के दिन असिकुण्ड में स्नान कर चारों मूर्तियों का स्पर्शन, दर्शन, पूजन आदि कर लेता है, तो उसका किसी काल में भी यहाँ पुनर्जन्म नहीं होता।।२७।।

।।इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में मथुरा माहात्म्य—विमति आख्यान, विष्णु से उसका वध नामक एक सौ चौसठवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ।।१६४।।

अध्याय–१६५

मथुरा माहात्म्य–विश्रान्ति तीर्थ माहात्म्य और ब्राह्मण-राक्षसोपाख्यान

श्री भगवान् वराह ने कहा कि हे देवि! पुरातन काल में विश्रान्ति संज्ञक तीर्थ का जिस तरह उल्लेख हुआ है, उसे सुनो। पुरातन काल में एक राक्षस द्वारा एक महात्मा ब्राह्मण को इसके बारे में इस प्रकार से बतलाया गया था।।१।।

पृथ्वी ने कहा कि उस राक्षस ने उन विश्रान्ति संज्ञक तीर्थ का वर्णन क्यों किया और ब्राह्मण ने उसे यह क्यों जानना चाहा? हे प्रभो! मुझे ये सब कहें।।२।।

श्रीभगवान् वराह ने कहा कि उज्जयिनी नगरी में सदाचारविहीन एक ब्राह्मण रहा करता था। वह न देवताओं की पूजा और न साधु-सन्तों को प्रणाम करता था।।३।।

पुण्यतीर्थं समासाद्य न च स्नानं करोति सः। वेददेवाग्निरहितः परदाररतः सदा॥४॥
सन्ध्ये द्वे शयनस्थश्च नित्यकालं च तिष्ठति। न स देवमनुष्यांश्च पितॄन् पूजयते सदा॥५॥
पापाचारो नैकृतिकः पापसङ्गः सुदुर्मतिः। गार्हस्थ्यधर्ममाश्रित्य मोहितो वर्त्तते सदा॥६॥
गार्हस्थ्यं सर्वधर्माणां श्रेष्ठमुक्तं स्वयंभुवा। जीवन्ति जन्तवः सर्वे यथा गां सर्वतः स्थिताः॥७॥
यथा मातरमाश्रित्य सर्वे जीवन्ति जन्वतः। एवं गार्हस्थ्यमाश्रित्य सर्वे जीवन्ति जन्तवः॥८॥
गार्हस्थ्ये वर्त्तमानोऽपि न स धर्मं समाश्रयत्। उभे सन्ध्ये परित्यज्य पापबुद्धिं समाश्रितः॥९॥
ततःस चौर्यतां प्राप्तः पापैःसह नराधमः। स च रात्रौ द्रवन् लोकांल्लब्धोऽसौ राजरक्षिभिः॥१०॥
पलायमानः स तदा अन्धकूपेऽपतत् तदा। मृतोऽसौ पतितस्तत्र राक्षसत्वमुपागतः॥११॥
अन्धकूपे स पतितो घोररूपोऽवसत् तदा। केनचिदथ कार्येण महान् सार्थ उपागतः॥१२॥
तेषां मध्ये द्विजः कश्चिद् रक्षां कृत्वा वसुंधरे। रक्षोघ्नेन च मन्त्रेण सर्वं सार्थं च रक्षते।
तत्रागत्य च रक्षस्तु ब्राह्मणं वाक्यमब्रवीत्॥१३॥

फिर वह किसी पवित्र तीर्थों में जाकर स्नान भी नहीं करता था। इस प्रकार वेद, देवता, अग्नि आदि से विरहित वह हमेशा दूसरों की स्त्री में आसक्त रहा करता था।।४।।

वह नित्य दोनों सन्ध्याओं में सोया रहा करता था। वह नित्यदेव, अतिथि, पितरों आदि का भी पूजन नहीं किया करता था।।५।।

पापाचार करने वाला, कृतघ्न, पापियों की संतति वाला, दुर्बुद्धि आदि दुर्गुण युक्त ब्राह्मण गृहस्थ धर्म में आश्रयण करते हुए भी हमेशा मोहयुक्त रहता था।।६।।

चूँकि स्वयम्भू ब्रह्मा ने गार्हस्थ्यधर्म को सभी धर्मों से उत्तम कहा है। फिर इस आश्रम के आश्रय में रहकर सभी जीव इस तरह जीवन पाते हैं, जिस तरह पृथ्वी के आश्रित समस्त चराचर स्थित हैं।।७।।

जिस प्रकार माता का आश्रय पाकर समस्त जीव जीवित रहा करते हैं, उसी प्रकार गृहस्थाश्रम से समस्त जीव जीवन का निर्वाह किया करते हैं।।८।।

इस प्रकार गृहस्थाश्रम में रहकर भी वह ब्राह्मण धर्म का आश्रय नहीं किया करता था। दोनों सन्ध्याओं का परित्याग कर वह पापबुद्धि से युक्त रहा करता था।।९।।

फिर वह नराधम पापियों के साथ मिलकर चोरी भी करने लगा। किसी समय एक बार लोगों के भय से रात में भागते हुए वह राजकीय रक्षकों के द्वारा देख लिया गया।।१०।।

फिर तो वह भागते हुए एक अँधेर कुँए में जा गिरा। वह उसमें गिरकर मर भी गया और वह एक राक्षस होकर विचरण करने लगा।।११।।

उस अँधरे कुँए में गिरा हुआ वह ब्राह्मण भयंकर स्वरूप धारण कर रहने लगा। फिर किसी प्रयोजन वश एक बार वहीं पर एक महा व्यापारियों का समूह आ पहुँचा।।१२।।

हे वसुन्धरे! उन व्यापारियों के बीच कोई एक द्विज रक्षोघ्न मन्त्र से उन समस्त व्यापारियों के समूह की रक्षा कर रहा था। वहाँ आकर राक्षस ने ब्राह्मण से यह वाक्य कहा।।१३।।

राक्षस उवाच

अहं दास्यामि ते विप्र यत्ते मनसि वर्त्तते। बहुकालेन संप्राप्तं भोजनं च यथेप्सितम्॥१४॥
उत्तिष्ठ विप्र गच्छ त्वमन्यत्र शयनं कुरु। येनाहं भक्षये सार्थं यावत् तृप्तिर्भवेन्मम॥१५॥
राक्षसस्य वचः श्रुत्वा विप्रो वचनमब्रवीत्। एकसार्थप्रयातोऽहं नोत्सृजामि कथंचन॥१६॥
तस्माद् राक्षस गच्छ त्वं सार्थं मम परिग्रहम्। निरीक्षितुं न शक्नोषि मम मन्त्रबलेन च॥१७॥

राक्षस उवाच

मम भक्षे हते विप्र दोषस्तव भविष्यति। दयां कुरु त्वं विप्रर्षे भोजनं मम दीयताम्॥१८॥
ततोऽसौ पृच्छते विप्रो राक्षसं दारुणं प्रति। केन त्वं कर्मदोषेण राक्षसत्वमुपागतः॥१९॥
ततश्च कथयामास यथावृत्तं पुरातनम्। स्वाचारस्य स्वरूपं च राक्षसत्वं यथा गतः॥२०॥

विप्र उवाच

मित्रत्वे वर्त्तसे रक्षो वद दास्यामि किं तव। आत्मनश्चोपकारेण प्रियं किं करवाणि ते॥२१॥

राक्षस उवाच

ददासि यदि मे विप्र यन्मे मनसि वर्त्तते। मथुरायां च यत्स्नानं कृतं विश्रान्तिसंज्ञके।
तस्य तावत् फलं देहि येन मुक्तिं व्रजाम्यहम्॥२२॥

राक्षस ने कहा कि हे ब्रह्मन्! तुम्हारे मन में जो कुछ हो, वे सब मैं तुमको दूँगा। बहुत दिनों के पश्चात् मुझे इस तरह यथेष्ट भोजन मिलने वाला है।।१४।।

हे ब्रह्मन्! तुम उठो और यहाँ से चले जाओ। फिर अन्यत्र शयन करो, ताकि मैं अपनी तृप्ति होने तक यात्री समूह का भक्षण कर सकूँ।।१५।।

उस राक्षय की बातें सुनकर उस ब्राह्मण ने यह कहा कि मैं एक साथ चला हूँ। फिर मैं किसी प्रकार साथ इनका नहीं छोड़ सकता।।१६।।

इसलिए हे राक्षस! तुम्हीं यहाँ से चले जाओ। यह यात्री दल मेरी रक्षा में है। तुम मेरे मन्त्रबल से रक्षित यात्रीदल को देख भी नहीं सकते।।१७।।

फिर राक्षस ने कहा कि हे विप्र मेरे भोजन में विघात करने पर तुमको दोष लग सकता है। हे ब्राह्मण श्रेष्ठ! तुम दया करो और मुझे भोजन ग्रहण करने दो।।१८।।

फिर उस ब्राह्मण ने भयानक राक्षस से पूछा कि तुम किस कर्म दोष से इस राक्षस के रूप में आ गए हो।।१९।।

तब उसने पुरानी वृत्तान्त, अपना आचरण और स्वरूप तथा जिस तरह वह राक्षस हुआ था, वे सब उसको बतलाया।।२०।।

फिर ब्राह्मण ने कहा कि हे राक्षस! तुम मित्र हो गये हो, बतलाओं मैं तुमको क्या दूँ। अपने द्वारा किये जा रहे उपकार से मैं तुम्हारा क्या प्रिय करूँ।।२१।।

राक्षस ने कहा कि हे ब्राह्मण! यदि तुम मुझे वह वर दे सकते हो, जो मेरे मन में है, तो तुम अपना मथुरा के विश्रान्ति संज्ञक तीर्थ में किए स्नान का फल मुझे दे दो, जिससे मैं मुक्त हो सकूँगा।।२२।।

विप्र उवाच

कथं जानासि रक्षस्त्वं तीर्थं विश्रान्तिसंज्ञकम्। कथं संज्ञाऽभूतस्य तत् कथयस्व राक्षस॥२३॥

राक्षस उवाच

उज्जयिनी नाम पुरी तस्यां वासो हि मे सदा। कस्मिंश्चिदथ कालेन गतोऽहं विष्णुमन्दिरम्॥२४॥
तस्याग्रे तिष्ठते विप्रो वाचको वेदपारगः। विश्रान्तितीर्थमाहात्म्यं श्रावयेत् स दिने दिने॥२५॥
तस्य श्रवणमात्रेण मम भक्तिर्हृदि स्थिता। सा संज्ञा च श्रुता तत्र विश्रान्तेश्च मयाऽनघ॥२६॥
वासुदेवो महाबाहुर्जगत्स्वामी जनार्दनः। विश्रामं कुरुते तत्र तेन विश्रान्तिसंज्ञका॥२७॥
राक्षसस्य वचः श्रुत्वा विप्रो वचनमब्रवीत्। एकस्नानस्य हि फलं तव दत्तं च राक्षस।
इत्युक्तमात्रे वचने ततो मोक्षमवाप स॥२८॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः॥१६५॥

ब्राह्मण ने कहा कि हे राक्षस! तुम विश्रान्तिसंज्ञक तीर्थ को कैसे जानते हो? हे राक्षस! फिर यह बतलाओं कि उसका यह नाम कैसे पड़ा।।२३।।

राक्षस ने कहा कि उज्जयिनी नाम की पुरी है, जिसमें मैं सदा रहा करता था। किसी समय मैं विष्णुमन्दिर में चला गया था।।२४।।

उसके समक्ष वेदपारगामी कथावाचक ब्राह्मण बैठा करता था। वह प्रतिदिन विश्रान्ति तीर्थ का माहात्म्य सुनाया करता था।।२५।।

उस समय उसके श्रवण किए होने से हरि मेरे हृदय में उस तीर्थ के प्रति भक्ति जाग गई है। हे निष्पाप! वहीं उनसे मैंने विश्रान्ति का वह नाम सुना था।।२६।।

वस्तुतः महाबाहु जगत्स्वामी वासुदेव जनार्दन वहाँ विश्राम किया करते थे, इसी से उसका नाम विश्रान्ति पड़ गया है।।२७।।

राक्षस की बातें सुनकर उस ब्राह्मण ने यह वचन कहा कि हे राक्षस! तुम्हें मैं एक स्नान का फल देता हूँ। यह कहते ही वह राक्षस मुक्त हो गया।।२८।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में मथुरा माहात्म्य—विश्रान्ति तीर्थ माहात्म्य और ब्राह्मण-राक्षसोपाख्यान नामक एक सौ पैसठवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्य-नारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१६५॥

❖❖❖

सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

अथ मथुरामाहात्म्ये क्षेत्रपालमहादेववर्णनम्

धरण्युवाच

मथुरां रक्षते कोऽसौ क्षेत्रपालः स्थितः सदा। तेन दृष्टेन यत्पुण्यं कथयस्वाखिलं प्रभो॥१॥

श्रीवराह उवाच

दृष्ट्वा भूतपतिं देवं वरदं पापनाशनम्। तेन दृष्टेन वसुधे माथुरं फलमाप्नुयात्॥२॥
पुरा वर्षसहस्रं तु तपस्तप्तं सुदारुणम्। पूर्णे वर्षसहस्रे तु मया संतोषितो हरः।
वरं वरय भद्रं ते यस्ते मनसि वर्त्तते॥३॥

ईश्वर उवाच

सर्वगस्त्वं हि देवेश मया ज्ञातं सुनिश्चितम्। मथुरायां च मे स्थानं सदा देव प्रदीयताम्॥४॥
देवदेववचः श्रुत्वा हरिर्वचनमब्रवीत्। मथुरायां च देव त्वं क्षेत्रपालो भविष्यसि॥५॥
त्वयि दृष्टे महादेव मम क्षेत्रफलं लभेत्। अन्यथा नाप्नुयात् सिद्धिमेवमेतन्न संशयः॥६॥
येन यद् यादृशं पुण्यं कृतं तीर्थे प्रयत्नतः। भजन्ते मनुजाः सिद्धिमात्मभावेन तादृशीम्॥७॥

अध्याय–१६६

मथुरा माहात्म्य–क्षेत्रपाल महादेव का अवस्थान और विविध तीर्थ

धरणी ने कहा कि वह कौन क्षेत्रपाल हैं, जो हमेशा मथुरा में रहकर रक्षा करता है। हे प्रभो! उसका दर्शन करने से जो पुण्य होता है, उसका सम्पूर्णता से उल्लेख करें।।१।।

श्रीभगवान् वराह ने कहा कि हे वसुधे! पापनाशक वरदायक भूपति देव हैं। उनका दर्शन करने से मथुरा तीर्थ का फल मिला करता है।।२।।

पुरातन काल में श्री शंकर हर ने एक हजार वर्ष तक कठिनतर तपस्या किया। हजार वर्ष के अन्त में मैंने उन हर को संतुष्ट किया। मैंने कहा कि आपका कल्याण हो। आपके मन में जो कुछ हो वे सब वर माँग लें।।३।।

ईश्वर ने कहा कि हे देवेश! मुझे यह निश्चयात्मक रूप से जानकरी है कि आप सर्वत्रगामी हैं। हे देव! अतः मुझे सदैव मथुरा में स्थान प्रदान करें।।४।।

इस प्रकार देवाधिदेव महादेव की बातें सुनकर श्रीहरि विष्णु ने कहा कि हे देव! आप मेरी उस पुरी मथुरा में क्षेत्रपाल के रूप में प्रतिष्ठित हो सकेंगे।।५।।

हे महादेव! आपका दर्शन करने के पश्चात् ही मेरे क्षेत्र की यात्रा का फल प्राप्त हो सकेगा। अन्यथा सिद्धि नहीं मिल सकेगी। इसमें कोई संशय नहीं है।।६।।

जो जनतीर्थ में अपने प्रयास से जिस प्रकार का कर्म करते हैं, वे जन अपनी भावना अर्थात् मानसिक विचार के अनुरूप उसी प्रकार की सिद्धि प्राप्त कर सकेगा।।७।।

मम क्षेत्रप्रवेशे च भूमिः संसारछेदनी। इन्द्रस्येव पुरी रम्या यथा नाकेऽमरावती।
जम्बूद्वीपे तथोत्कृष्टा मथुरा मम वल्लभा॥८॥
विंशतिर्योजनानां हि माथुरं मम मण्डलम्। पदे पदेऽश्वमेधानां पुण्यं नात्र विचारणा॥९॥
न मया कथितं देवि ब्रह्माश्च महात्मनः। रुद्रस्य न मया पूर्वं कथितं च वसुंधरे।
मया सुगोपितं पूर्व गुह्याद् गुह्यतरं परम्॥१०॥
अत्र क्षेत्रे पुरी रम्या सर्वरत्नविभूषिता। तस्यां तिष्ठन्ति तीर्थानि तानि वक्ष्यामि तच्छृणु॥११॥
षष्टिकोटिसहस्त्राणि षष्टिकोटिशतानि च। तीर्थसंख्या च वसुधे मथुरायां मयोदिता॥१२॥
गोवर्द्धनं तथाक्रूरं द्वे कोटी दक्षिणोत्तरे। प्रस्कन्दनं च भाण्डीरं कुरुक्षेत्रसमानि षट्॥१३॥
पुण्यात् पुण्यतरं श्रेष्ठमेतद् विश्रान्तिसंज्ञकम्। असिकुण्डं सवैकुण्ठं कोटितीर्थोत्तमं स्मृतम्॥१४॥
अविमुक्तं सोमतीर्थं यामुनं तिन्दुकं ततः। चक्रतीर्थ तथाऽक्रूरं द्वादशादित्यसंज्ञितम्॥१५॥
एतत् पुण्यं पवित्रं च महापातकनाशनम्। कुरुक्षेत्राच्छतगुणं मथुरायां न संशयः॥१६॥
ये पठन्ति महाभागाः श्रृण्वन्ति च समाहिताः। मथुरायास्तु माहात्म्यं ते यान्ति परमं पदम्।
कुलानि ते तारयन्ति द्वे शते वंशयोर्द्वयोः॥१७॥

मेरे इस क्षेत्र के अन्दर की भूमि सांसारिक कर्म बन्धनों को विनष्ट करने वाली है। जिस प्रकार स्वर्ग में अमरावती पुरी रमणीय है, उसी प्रकार से जम्बूद्वीप में मेरी प्रिय मथुरापुरी सर्वोत्कृष्ट है।।८।।

मैंने बतलाया है कि मेरा मथुरा मण्डल बीस योजन विस्तार वाला है। यहाँ पर कदम-कदम पर अश्वमेध का पुण्य स्थित है। इसमें संशय नहीं है।।९।।

हे देवि! मैंने महात्मा ब्रह्मा को भी यह नहीं बतलाया था। हे पृथ्वि! मैंने पहले रुद्र को भी यह ज्ञात नहीं होने दिया था। मैंने पूर्व में गुप्त से भी अत्यन्त गुप्त इस रहस्यात्मक तथ्य को अतिगुप्त ही हारने दिया था।।१०।।

इस क्षेत्र में यह रमणीय पुरी सभी प्रकार के रत्नों से शोभासम्पन्न है। उसमें समस्त तीर्थ भी स्थित हैं। अब उनका वर्णन कर रहा हूँ, सुनो।।११।।

हे वसुधे! मेरे द्वारा मथुरा में तीर्थों की संख्या साठ हजार करोड़ और साठ सौ करोड़ कही गई है।।१२।।

इन तीर्थों में गोवर्द्धन, अक्रूर, दक्षिण और उत्तर की दो कोटि या प्रस्क्रन्दन, भाण्डीर नाम के छः तीर्थ आदि कुरुक्षेत्र के तुल्य हैं।।१३।।

यहाँ विश्रान्तिसंज्ञक तीर्थ पुण्य से भी अधिक पुण्यतर फलप्रदायक है। वैकुण्ठ सहित असिकुण्ड कोटि तीर्थों से उत्तम माना गया है।।१४।।

फिर अविमुक्त, सोमतीर्थ, यामुन, तिन्दुक, चक्रवर्ती, अक्रूर तथा द्वादशादित्य नाम के तीर्थ आदि भी पुण्य फलप्रदायक, पवित्र और महापातक विनाशक हैं। मथुरामें विद्यमान ये तीर्थ कुरुक्षेत्र से सौ गुना अधिक श्रेष्ठतर है। इसमें संशय नहीं।।१५-१६।।

जो महाभाग जन मथुरा के इस माहात्म्य को सावधानता पूर्वक पढ़ते या सुनते हैं,उन्हें परमपद मिलता है और वे अपने दोनों वंशों याने पितृकुल और मातृकुल के दो सौ पीढ़ियों को तार देने वाला होते हैं।।१७।।

एतन्मरणकाले तु यः स्मरेत् प्रयतो नरः। स गच्छेत् परमां सिद्धिमिह संसारछेदनीम्॥१८॥
एतत् ते कथितं देवि सर्वपातकनाशमन्। तीर्थानां चैव माहात्म्यं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि॥१९॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः॥१६६॥

सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

अथ मथुरामाहात्म्ये यज्ञोपवीतयात्राविधानम्

श्रीवराह उवाच

मथुरायाः परं क्षेत्रं त्रैलोक्ये न च विद्यते। तस्यां वसाम्यहं देवि मथुरायां च सर्वदा॥१॥
सर्वेषां देवि तीर्थानां मथुरा च परं महत्। कृष्णेन क्रीडितं तत्र तच्छुद्धं हि पदे पदे॥२॥
चक्रस्थितं हि तत्सर्वं कृष्णस्यैव पदेन तु। तत्र मध्ये तु तत्स्थानमर्द्धचन्द्रे व्यवस्थितम्।
तत्र वै वासिनो लोका मुक्तिं यान्ति न संशयः॥३॥

जो जन मृत्यु के समय सप्रयास इस आख्यान का स्मरण किया करते हैं, वे जन इस संसार के बन्धन को काटने वाली परमसिद्धि पा जाते हैं।।१८।।

हे देवि! मैंने तुमको यह सभी पापों को विनष्ट करने वाला तीर्थों के माहात्म्य को कहा है। अब आगे तुम और क्या सुनना चाहती हो?।।१९।।

।।इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में मथुरा माहात्म्य—क्षेत्रपाल महादेव का अवस्थान और विविध तीर्थ नामक एक सौ छियासठवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायण-कुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ।।१६६।।

अध्याय–१६७

मथुरा माहात्म्य–यज्ञोपवीत स्नान, गरुड-विष्णु संवाद और माथुर विष्णु स्वरूप

श्रीभगवान् वराह ने कहा कि मथुरा से भी अधिक श्रेष्ठ क्षेत्र तीन लोकों में भी नहीं है। हे देवि! मैं सदा उस मथुरा में ही रहा करता हूँ।।१।।

हे देवि! सभी तीर्थों में मथुरा परम महान् है। श्रीकृष्ण ने वहाँ क्रीडा की थी। वह पुरी प्रत्येक कदम दर कदम पर शुद्ध है।।२।।

श्रीकृष्ण के पद से वह समस्त मण्डल चक्र की तरह से विद्यमान है। उस चक्र के बीच में वह स्थान अर्द्धचन्द्र की आकृति में स्थित है। अतः वहाँ पर निवास करने वाले जन निःसंशय मुक्ति प्राप्त कर लिया करते हैं।।३।।

दक्षिणाकोटि कृष्णस्य उत्तराकोटिमध्यतः। तयोर्मध्ये स्थितो देव आकारः सोमचक्रता॥४॥
तौ देवौ क्षेत्रफलदौ स्नानदानादिकर्मणि। तस्माद्धि स्मरणं कार्यं द्वे कोटी सर्वकर्मसु॥५॥
अर्द्धचन्द्रे तु यः स्नानं करोति नियताशनः। तेन वै चाक्षया लोकाः प्राप्ताश्चैव न संशयः॥६॥
दक्षिणस्यां समारभ्य उत्तरस्यां समापयेत्। यज्ञोपवीतमात्रेण त्रायते च कुलान् बहून्॥७॥

पृथिव्युवाच

यज्ञोपवीतयात्रायां विधानं कथयस्व मे। यथा मानं हि कर्त्तव्यं तत्सर्वं वक्तुमर्हसि॥८॥

श्रीवराह उवाच

यज्ञोपवीतस्य विधिं शृणुष्व वरवर्णिनि। मनुजा येन विधिना मुक्तिं यान्ति न संशयः॥९॥
गृहान्निःसृत्य मौनेन यावत्स्नानं समाचरेत्। पूजां कृष्णस्य कृत्वा वै ततो ब्रूयाद्वसुंधरे॥१०॥
अनेनैव विधानेन स्नानं कुर्यादमत्सरः। न तस्य पुनरावृत्तिरेवमेतन्न संशयः॥११॥
अनेन विधिना चैव उत्तरस्यां समापयेत्। पूजां कृत्वा वामनस्य ततो ब्रूयाद् वसुंधरे॥१२॥
स्नाने समाप्ते विधिवद् देवदेवस्य वै हरेः। कृष्णस्य च मखं कृत्वा स्नानादीनि यथाक्रमम्॥१३॥

फिर श्रीकृष्ण के दक्षिण कोटि और उत्तर कोटि, इनके बीच स्थित सोमचक्र के आकार वाले तीर्थ में देव स्थित हैं।।४।।

उत्तर और दक्षिण कोटि में स्थित वे देव स्नान, दान आदि कर्म के करने पर क्षेत्र सम्बन्धी फल प्रदान किया करते हैं। अतः समस्त कर्मों में दोनों कोटियों का स्मरण करना चाहिए।।५।।

इस प्रकार शुद्ध सात्त्विक नित्य आहार करने वाले जो कोई जन अर्द्धचन्द्र नाम के तीर्थ में स्नान करते हैं, वे निःसंशय राक्षस लोकों में जाते हैं।।६।।

फिर दक्षिण कोटि से यात्रा का आरम्भ करते हुए उत्तर कोटि में उसको सम्पन्न करनी चाहिए। चूँकि यहाँ यज्ञोपवीत की तरह ही यात्रा करने वाले जन अपने अनेकतर कुलों को तारने में सफल हो जाया करते हैं।।७।।

पृथ्वी ने कहा कि अब तुझे यज्ञोपवीत की तरह की यात्रा की विधि बतलायें। जिस प्रमाण विधि से उस यात्रा को किया जाना है, वे सब मुझे आप बतलायें।।८।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि हे सुन्दरि! यज्ञोपवीत के समान यात्रा विधि को सुनो। जिनसे मनुष्य निःसंशय मुक्त हो जाता है।।९।।

हे वसुन्धरे! गृह से मौन धारण किये हुए निकल कर स्नान करने और श्रीकृष्ण की पूजा करने के बाद ही अपना मौन तोड़ना चाहिए।।१०।।

इस तरह इन विधियों से ईर्ष्या रहित होकर स्नान करना चाहिए। ऐसा करने वाले जन निःसंशय पुनर्जन्म से मुक्त होते हैं।।११।।

इस विधान के अनुसार उत्तर कोटि में स्नान आदि कार्य सम्पन्न करना चाहिए। हे वसुन्धरे! फिर वहाँ पर वामन देव की पूजा करने के पश्चात् बातचीत कर सकते हैं।।१२।।

सविधि स्नान करने के बाद देवाधिदेव श्रीहरि कृष्ण की पूजा और अभिषेक आदि कार्य क्रम-से सम्पन्न करना चाहिए।।१३।।

गां वै पयस्विनीं दत्त्वा हिरण्यं वस्त्रमेव च। ब्राह्मणान् भोजयेत् पश्चाद् विधिरेष उदाहृतः॥१४॥
तथा शयनमुद्दिश्य एवमेवं तु कारयेत्।न तस्य पुनरावृत्तिर्मम लोके महीयते॥१५॥
अर्द्धचन्द्रे मृता देवि मम लोकं व्रजन्ति ते। अन्यत्र तु मृता ये तु अर्द्धचन्द्राङ्कितक्रियाः।
तेऽपि स्वर्गं गमिष्यन्ति दाहादिकरणैर्युताः॥१६॥
यावदस्थीन्यर्द्धचन्द्रे यस्य तिष्ठन्ति देहिनः। तावत्सुपुण्यकर्त्ता च स्वर्गलोके महीयते॥१७॥
अर्धचन्द्रे विशेषोऽस्ति तीर्थे विश्रान्तिसंज्ञके। दाहादिकरणे तत्र गर्दभोऽपि चतुर्भुजः॥१८॥
गर्तेश्वरे भूतेश्वरे द्वे कोटी तु वसुंधरे। मध्ये सदैव तिष्ठामि न त्यजामि कदाचन॥१९॥
मथुरायां च यद् रूपं तद् रूपं मे वसुन्धरे। माथुरेण तु तृप्तेन तृप्तोऽहं नात्र संशयः॥२०॥
शृणु देवि यथावृत्तं गरुडस्य महात्मनः। मथुरायामागतोऽसौ कृष्णदर्शनकाङ्क्षया।
मथुरायां स्थितं देवं भिन्नरूपं न पश्यति।२१॥
तदागतोऽसौ वसुधे देवस्याग्रे विहङ्गमः। कृष्णस्य दर्शनार्थाय दिव्यं स्तोत्रमुदीरयत्॥२२॥

गरुड उवाच

विश्वरूप जयादित्य जय विष्णो जयाच्युत। जय केशव ईशान जय कृष्ण नमोऽस्तु ते॥२३॥

फिर दुधारु गाय, स्वर्ण, वस्त्र आदि प्रदान कर ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए। मैंने यह विधि उसकी बतला दी है। फिर देव को सुलाने का लक्ष्य कर इस प्रकार से ही कार्य सम्पन्न करना चाहिए। जो जन इस प्रकार किया करते हैं, उनका निश्चय ही पुनर्जन्म तो नहीं ही होता फिर वे मेरे लोक में जाकर सम्मान पाते हैं।।१४-१५॥

हे देवि! इस प्रकार उस अर्द्धचन्द्राकार तीर्थ में जो जन मर जाया करते हैं, वे मेरे लोक में चले जाते हैं। जो जन अन्यत्र भी मरते हैं, उनका दाहादि कर्म अर्द्धचन्द्र क्षेत्र में सम्पन्न होने से वे भी स्वर्ग में पहुँच जाते हैं।।१६॥

जिन जनों की अस्थियाँ जिस काल तक इस अर्द्धचन्द्र तीर्थ में रहा करती हैं, उस काल तक वे सुन्दर पुण्यकर्ता जन स्वर्ग लोक में सम्मान प्राप्त करते हैं। चूँकि विश्रान्तिसंज्ञक तीर्थ के अन्दर में ही विद्यमान इस अर्द्धचन्द्र में यह वैशिष्ट्य तो है ही कि यहाँ मर जाने पर दाह आदि क्रिया के द्वारा गदहा भी चतुर्भुज हो जाया करते हैं।।१७-१८।।

हे वसुन्धरे! गर्तेश्वर और भूतेश्वर में दो कोटियाँ हैं। मैं उनके बीच में ही रहा करता हूँ और उसे कभी नहीं त्यागता हूँ।।१९।।

हे वसुन्धरे! वस्तुतः मथुरा में जो रूप है, वह ही मेरा स्वरूप है। मथुरा निवासी जनों के तृप्ति से ही मैं भी तृप्त हुआ करता हूँ। इसमें संशय नहीं है।।२०।।

हे देवि! अब तुम महात्मा गरुड़ के साथ घटित हुयी घटना को सुनो। वे श्रीकृष्ण का दर्शन करने की इच्छा से मथुरा आ पहुँचे। उस मथुरा में उनने विद्यमान्देव को भिन्न रूप में नहीं देखा अर्थात् वहाँ सभी कुछ विष्णुरूप ही दिखाई दिया।।२१।।

हे वसुधे! फिर वे पक्षिराज कृष्णदेव के सामने दर्शन हेतु पधारे और दिव्य स्तोत्र का पाठ करने में संलग्न हो गये।।२२।।

गरुड़ ने कहा कि आप विश्वरूप आदित्य की जय हो। अच्युत विष्णु की जय हो। केशव की जय हो। ईशान की जय हो। हे कृष्ण! आपको प्रणाम है।।२३।।

जय मूर्त्त जयामूर्त्त जय केशिनिषदन। जय कंसनिहन्तस्त्वं वासुदेव नमोऽस्तु ते॥२४॥
गरुडेन स्तुतो देवः स्वयं तत्र व्यतिष्ठत। गरुडस्य पुरस्तत्र स्थितो देवः शरीरवान्॥२५॥
वैलक्ष्यमाणो गरुडो वासुदेवेन सान्त्वितः। किं कुर्यां स्तोत्रसंतुष्टो ब्रूहि सत्यं विहङ्गम।
मथुरागमनं किं ते एवमेव वदस्व मे।२६॥

गरुड उवाच

मथुरामागतश्चाहं तव दर्शनकाङ्क्षया। आगते तु मया देव न दृष्टं तव रूपकम्॥२७॥
न हीदं तव देवेश मथुरारूपमात्मनः। एकीभूतमहं सर्वं पश्यामि तव तैरपि॥२८॥
तस्मात् स्तुतिस्तु देवेश कृताऽनुग्रहकाम्यया। गरुडस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य मधुसूदनः।
उवाच श्लक्ष्णया वाचा गरुडं प्रति भाविनि॥२९॥

श्रीकृष्ण उवाच

माथुराणां च यद्रूपं तद् रूपं मे विहङ्गम। ये पापास्ते न पश्यन्ति मद्रूपा माथुरा द्विजाः॥३०॥
एवमुक्त्वा ततः कृष्णस्तत्रैवान्तरधीयत। गरुडोऽपि ततः स्थानाद् गतो देवि यथागतम्॥३१॥
इत्येतत् कथितं देवि माथुराणां तु रूपकम्। येषां पूजितमात्रेण तुष्टोऽहं चैव सर्वदा॥३२॥

मूर्त की जय हो। अमूर्त्त की जय हो। केशिनिषूदन की जय हो। हे कंस निहन्ता! आपकी जय हो। हे वासुदेव! आपकी जय हो।।२४।।

इस तरह गरुड़ से स्तुत कृष्ण देव स्वयं वहाँ आ पहुँचे। वे शरीर धारण करने वाले श्रीकृष्ण देव गरुड़ के सामने समुपस्थित हो गये।।२५।।

वासुदेव ने आश्चर्य में पड़े गरुड़ को सान्त्वना हेतु कहा कि हे पक्षिराज! सत्य कहो तुम्हारी स्तुति से संतुष्ट हुआ मैं तुम्हारे लिए क्या कर सकता हूँ? इस समय, तुम इस मथुरापुरी में क्यों आ पहुँचे हो। यह मुझे कहो।।२६।।

फिर गरुड़ ने कहा कि मैं तो केवल आपके दर्शन की लालसा से ही मथुरा में आया हूँ। हे देव! लेकिन यहाँ आकर आपका स्वरूप नहीं देखा था।।२७।।

हे देवेश! इस मथुरा पुरी में आपका यह स्वरूप आपका अपना स्वरूप नहीं है। मैं आपको मथुरा के उन निवासियों के साथ एकाकार स्वरूप में देख रहा हूँ। अतः हे देवेश! कृपा प्रसाद पाने की इच्छा से ही मैंने यह स्तुति की।।२८।।

हे सुन्दरि! गरुड़ की बातें सुनकर मधुसूदन ने हँसते हुए उनसे स्नेह युक्त वाणी में कहा।।२९।।

श्रीकृष्ण ने कहा कि हे पक्षिराज! मथुरा के निवासी द्विजों का जो रूप है, वही मेरा स्वरूप है। जो पापीजन होते हैं, वे मेरे स्वरूप वाले मथुरावासी द्विजों को नहीं ही देखने में सक्षम हो पाते हैं।।३०।।

इस प्रकार कहते हुए वहीं पर श्रीकृष्ण अन्तर्हित हो गये। हे देवि! फिर उस स्थान से गरुड़ भी जहाँ से आये थे, वहाँ को चले गये।।३१।।

हे देवि! इस प्रकार तुमको मथुरावासी जनों के इस स्वरूप को कह दिया है। जिनका पूजन करने मात्र से मैं सर्वदा संतुष्ट हो जाता हूँ।।३२।।

मथुरायां मृता ये च मुक्तिं यान्ति नचान्यथा। अपि कीटपतङ्गो वा तिर्यग्येनिगतोऽपि वा॥३३॥
यः पश्येद् पद्मनाभं तु द्वादश्यामाश्विनस्य तु। एकदेहधरौ देवौ शिवकेशवरूपिणौ॥३४॥
एकादश्यां सोपवासः कृतशौचः समाहितः। कालिन्द्यां तु नरः स्नातो मुच्यते योनिसङ्कटात्॥३५॥
चैत्रस्य शुक्लद्वादश्यां स्नात्वा तीर्थे तु वैष्णवे। चिन्ताविष्णुं समाभाव्य सोपवासः सजागरः।
मथुरायां गते श्रेष्ठे न शोचति कृताकृतम्॥३६॥
एकांशां तां ततो देवीं यशोदां देवकीं तथा। महाविद्येश्वरीं देवीं मुच्यते ब्रह्महत्यया॥३७॥
यो वाप्यां धर्मराजस्य मथुरायाश्च पश्चिमे। स्नानं करोति तस्यां तु ग्रहदोषैर्न लिप्यते॥३८॥
यं यं देवमभिध्यायेद् भक्तियुक्तेन चेतसा। विश्रान्तिसंज्ञकं दृष्ट्वा दीर्घविष्णु च केशवम्।
सर्वेषां दर्शनं पुण्यं पूजनात् तु फलं भवेत्॥३९॥
इति जपहोमध्यानकाले च सम्यक् सततमभिसमीक्ष्य ब्रह्मणा यत् प्रयुक्तम्।
सकलगुणगणानामास्पदं ब्रह्मसंज्ञं जननमरणहीनं विष्णुमेवाभियान्ति॥४०॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः॥१६७॥

जो कोई जीव मथुरा में मरा करते हैं, वे सभी कीट, पतंग, या तिर्यग्योनि के जीव होने पर भी निश्चित रूप से मुक्त हो जाते हैं॥३३॥

इस प्रकार जो जन आश्विन मास की द्वादशी को पद्मनाभ नाम का एक शरीरधारी शिव और केशव स्वरूप वाले दो देवों का दर्शन करते हैं॥३४॥

फिर जो जन एकादशी तिथि के दिन उपवास करते हुए द्वादशी को शौचादि कर्म सम्पन्न कर एकनिष्ठ भाव से यमुना में स्नान करते हैं, वे योनि के संकट से मुक्त हो जाते हैं॥३५॥

हे श्रेष्ठ भूमि! मथुरा में पहुँच कर चैत्रमास के शुक्लपक्ष की द्वादशी को वैष्णव तीर्थ में स्नान करने के बाद चिन्ताविष्णु का पूजन, उपवास, व्रत, रात्रि जागरण आदि करने वाले जन कृत और अकृत की चिन्ता नहीं किया करते हैं। फिर एक अंश स्वरूपा उस देवी यशोदा, देवकी, महाविद्येश्वरी देवी आदि का दर्शन करने वाले ब्रह्महत्या से भी मुक्त हो जाया करते हैं॥३६-३७॥

जो जन मथुरा के पश्चिम में स्थित धर्मराज की बावली में स्नान करते हैं, उनको कभी भी महादोष नहीं लगा करते हैं।३८॥

फिर विश्रान्तिसंज्ञक दीर्घविष्णु केशव का दर्शन करने वाले जन भक्ति युक्त होकर चित्त से जिन-जिन देवताओं का ध्यान और पूजन किया करते हैं, वे उन सबके दर्शन का पुण्य फल प्राप्त कर लिया करते हैं॥३९॥

इस प्रकार अच्छी तरह जप, होम, ध्यान करने के समय ब्रह्मा द्वारा कहे हुए सभी गुणों के आश्रयीभूत, जन्म और मरण रहित ब्रह्म नाम के मथुरा माहात्म्य रूपी तत्त्व का सतत विचार करने वाले विष्णु के पास पहुँच जाते हैं॥४०॥

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में मथुरा माहात्म्य—यज्ञोपवीत स्नान, गुरुड-विष्णु संवाद और माथुर विष्णु स्वरूप नामक एक सौ सड़सठवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१६७॥

❖❖❖

अष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

अथ मथुरामाहात्म्ये गोकर्णोपाख्यानम्

श्रीवराह उवाच

पुनरन्यत् प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व वसुंधरे। मथुरायां पुरावृत्तं गोकर्णस्य महात्मनः॥१॥

वसुकर्णः पिता तस्य वैश्यो धनसमृद्धिमान्। तस्य भार्या सुशीला च नाम्ना गुणसमन्विता।
भर्तुः प्रियकरी साध्वी न प्रसूता वयोधिका॥२॥

देवतापूजनरता संतानार्थं सुमध्यमा। नित्यकालं सुरार्चायां कालस्तस्याथ गच्छत॥३॥

तत्र उग्रतपा नाम ऋषिः परमधार्मिकः। सरस्वत्याः सङ्गमेऽसौ वृक्षमूलनिकेतनः।
मिताशी षष्ठकाले तु सदा वसति सत्तमः॥४॥

तस्यान्तिके सुशीला च कृत्वा पादाभिवन्दनम्। उपोपविश्य करुणं कुरुतेऽतीव शोचनम्॥५॥

एवं विलपितं श्रुत्वा शनैः सकरुणं हृदि। जाता तस्य स्त्रियं दृष्ट्वा घृणा संतानकामिनीम्॥६॥

ध्यात्वा स सुचिरं कालं विमृश्य बहुधा तदा। उवाच मुनिशार्दूलस्तां स्त्रियं पुत्रगद्धिनीम्।
देवतानां प्रसादेन तव पुत्रो भविष्यति॥७॥

अध्याय-१६८

मथुरा माहात्म्य में गोकर्णोपाख्यान

श्रीवराह ने कहा कि हे वसुन्धरे! फिर से मथुरा में महात्मा गोकर्ण के अन्य पुरातन कालीन वृत्तान्त का उल्लेख करने जा रहा हूँ, उसे सुनो।।१।।

उस गोकर्ण के पिता वसुकर्ण धन समृद्धिमान् वैश्य थे। उसकी सुशीला नाम वाली पत्नि गुण सम्पन्ना, पतिहित कारिणी और साध्वी थी। लेक़िन अधिक आयु बीत जाने पर भी उस सन्तान का सुख नहीं मिला।।२।।

फिर सन्तान हेतु वह देव पूजन में लगी रहती थी। इस प्रकार उसका समय प्रतिदिन देवता-पूजन में ही बीता करता था।।३।।

वहीं पर उग्रतपा नाम वाला एक परम धार्मिक ऋषि भी रहा करते थे।वे सरस्वती के संगम पर वृक्ष के नीचे रहा करते थे। वे श्रेष्ठ ऋषि सदा छठवें भोजन काल में अल्पाहार किया करते थे।।४।।

उन ऋषि के पास पहुँच कर उनकी चरण वन्दना कर उनके पास स्थित होकर वह करुणा के सहित अत्यन्त शोक व्यक्त करने लगी।।५।।

इस तरह उसका करुणा विलाप सुनकर और सन्तान की इच्छा वाली उस स्त्री को देखकर क्रम से उनके हृदय में उसके प्रति दया उत्पन्न हो गई।।६।।

फिर बहुत काल तक ध्यान से देखने के बाद अत्यन्त विचारपूर्वक उन मुनिश्रेष्ठ ने उस पुत्रकामिनी स्त्री से कहा कि देवकृपा से तुमको पुत्र प्राप्त होगा।।७।।

शिवस्यायतनं दिव्यं गोकर्णेति च विश्रुतम्। तमाराधय देवेशं यत्तत् परमकारणम्।
स्नानदीपोपहरेण नित्यं त्वं पतिना सह॥८॥
इत्युक्ता सा भगवता प्रणिपत्य प्रसाद्य च। भर्त्तुः सा कथयामास यत्तेनाशंसयद् भवम्॥९॥
देवताराधनं शश्वत् चक्राते दम्पती तदा। सरस्वत्याः सङ्गमे तौ स्नात्वा गोकर्णपूजनम्।
पुष्पदीपोपहारं तु चक्राते तौ दिने दिने॥१०॥
एवं तयोर्दशाब्दानि गतानि सुतहेतवे। ततः प्रसन्नो भगवानुमापतिरुवाच ह॥११॥
भविष्यति युवां पुत्र एक एव गुणान्तिवः। तस्य संततिसंदेहो दृष्टो मे बहुधा यतः।
देवतानां प्रसादेन यदि तस्य भविष्यति॥१२॥
इत्युक्तौ तौ प्रभावेन स्नात्वा च सरस्वतीमनु। प्रभाते तस्य देवाय ददौ ब्रह्ममखं मुहुः।
सहस्त्रभोज्यमिष्ठान्नैर्वस्त्राभरणदक्षिणाम् ॥१३॥
ततस्तस्यां सुशीलायां गर्भाधानमविन्दत। ततः प्रववृधे गर्भः शुक्लपक्षे यथा शशी।
सुषुवे दशमे मासि पुत्रं बालं शशिप्रभम्॥१४॥
गोसहस्त्रं तदा दत्त्वा सुवर्णं वस्त्रमेव च। बहुशः सर्ववर्णेभ्यः पुत्रजन्ममहोत्सवे॥१५॥

यहीं पर गोकर्ण नाम का प्रसिद्ध शिव का दिव्य मन्दिर है। वहाँ तुम नित्य अपने पति के साथ स्नान और दीपोपहार द्वारा उन परम कारण स्वरूप देवेश की उपासना किया करो।।८।।

भगवान् स्वरूप ऋषि के इस प्रकार कहे जाने पर उसने उनको प्रणाम कर प्रसन्न किया। फिर उसने यह समाचार अपने पति को दिया। फिर उसके पति ने शिव की प्रशंसा की।।९।।

फिर पति-पत्नी दोनों मिलकर सदा देवाराधना करने लगे। इसके लिए वे दोनों प्रतिदिन सरस्वती के संगम पर स्नानोपरान्त पुष्प, दीप आदि उपहार द्वारा गोकर्ण का पूजन करने लगे।।१०।।

इस प्रकार से पुत्र निमित्त पूजन करते हुए उनके दस वर्ष और बीत गये। फिर भगवान् उमापति ने प्रसन्न होकर कहा—।।११।।

तुम दोनों का एक मात्र गुणसम्पन्न पुत्र हो सकेगा। किन्तु, उसकी सन्तति के बारे में मुझे प्रायः संशय है। यदि उसके ऊपर देव का अनुग्रह हुआ तो उसे भी सन्तति होगी।।१२।।

इस प्रकार शंकर जी के कथनानुसार उन दोनों ने प्रातःकाल सरस्वती में स्नान कर उन गोकर्ण महादेव हेतु हजारों प्रकार के खाद्य पदार्थों और मिष्ठान्नों के द्वारा वस्त्र, आभूषण के साथ दक्षिणा प्रदान कर ब्रह्मभोज का आयोजन किया।।१३।।

फिर उस सुशीला स्त्री को गर्भाधान हो गया और उसका गर्भ शुक्लपक्षीय चन्द्र के समान बढ़ने लगा। उसने दसवें मास में चन्द्र के सदृश शिशु रूप पुत्र को उत्पन्न कि।।१४।।

इस प्रकार पुत्र जन्म के उपलक्ष्य में महान् उत्सव में पिता ने एक हजार गौओं का दान कर सब वर्णों को स्वर्ण और वस्त्र दान किया।।१५।।

पिर उस शिशु पुत्र का जातकर्म और नामकरण संस्कार भी किया गया और तब पिता ने विचार कर उसका नाम गोकर्ण रखा।।१६।।

जातकर्म तथा चैवं नामकर्म तथैव च। गोकर्णं नाम तस्यैव पिता चक्रे निरूप्य च॥१६॥
एवमन्नप्राशनं च चूडोपनयनं तथा। अतः परं च गोदानं वैवाहिकमनुत्तमम्॥१७॥
दानं तु ददतस्तस्य देवतां पूजयिष्यतः। कृतानि बहुमुख्यानि मङ्गलानि यथाविधि॥१८॥
ततःप्रविष्टे तारुण्ये अप्रजं वीक्ष्य पुत्रकम्। पुनर्विवाहयामास भार्यास्तस्य चतुष्टयम्॥१९॥

वयोरूपगुणोपेतास्तस्य भार्याः सुलोचनाः।
अप्रजा एव ताः सर्वा नाभवत् पुत्रिणी क्वचित्॥२०॥

तेनैव धर्ममारब्धं पूर्त्तं पारत्रिकं बहु। वापीकूपतडागानि देवतायतनानि च।
प्रपामठाश्च नित्यान्नं भोजनं वर्तनानि च॥२१॥

अनित्यतां ततो मत्वा चञ्चलास्थिरजीवितम्। विनियोगः कृतस्तेन सर्वदा सर्वकर्मसु॥२२॥
गोकर्णस्य समीपे तु पश्चिमे चक्रपाणिनः। प्रासादं कारयामास पञ्चायतनकं हरेः॥२३॥
आरामस्तत्र विस्तीर्णः पुष्पजात्यस्तथैव च। आम्रजम्बीरनारङ्गं बीजपूरफलोपमाः॥२४॥
प्राकारं कारयामास परिखा मण्डलीयकम्। प्रावर्तनं च कूपेषु येन सिञ्चेत् प्रवाटिकाम्॥२५॥
पुष्पाणि च विचिन्वन्ति सर्वास्ता वरयोषितः। स्नानपूजोपलेपांश्च मार्जनं दीपकर्म च।
कुर्वन्ति देवतागारे ताः सर्वाः शुभलोचनाः॥२६॥

फिर क्रम से उसका अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म और उपनयन संस्कार आदि होने के पश्चात् गोदान पूर्वक उसका श्रेष्ठ विवाह संस्कार भी सम्पन्न किया गया।।१७।।

अपने पुत्र के निमित्त दान देने और देवता की पूजा करते हुए विधि के सहित कई उत्तम मङ्गल कार्यों को भी सम्पन्न किये गये।।१८।।

फिर युवावस्था के होने पर भी अपने पुत्र को सन्तानहीन देखकर उसके पिता पुनः चार स्त्रियों से उसका विवाह कराया।।१९।।

वैसे उनकी पत्नियाँ सुन्दर नेत्रों वाली और अवस्था रूप गुण से सम्पन्ना थी। किन्तु वे सभी भी सन्तान रहित ही रह गई। उनमें कोई पुत्रवती नहीं हुई।।२०।।

इस प्रकार उसके पुत्र ने भी विविध प्रकार के पारलौकिक और लौकिक पूर्वकर्म स्वरूप धर्म करना प्रारम्भ कर दिया। वह बावली, कूप, तालाब, देवालय, प्याऊ, छात्रावास आदि बनवाने लगा, फिर नित्य अन्न, भोजन, धन आदि का भी दान करने लगा।।२१।।

इसी तरह वह इस जीवन को चंचल, अस्थिर, अनित्य आदि जानकर सभी प्रकार के शुभकर्मों में लग गया।।२२।।

उस गोकर्ण देव के पास पश्चिम दिशा में चक्रपाणि हरि का पञ्चायतन मन्दिर भी बनवाया और विविध प्रकार के पुष्पों तथा आम, जामुन, नारंगी, नींबू आदि जैसे फलों के विस्तार वाले उद्यान भी बनवाया।।२३-२४।।

फिर उसने उस उद्यान के चारों ओर चहारदीवारी, खायीं और कूपों का भी निर्माण करवाया, जिससे उद्यान की उत्तम सिंचाई कार्य भी होता रहे।।२५।।

फिर उनकी सुन्दर नेत्रों वाली वे सभी श्रेष्ठ स्त्रियाँ पुष्प चुनने के बाद उन देव मन्दिरों में जाकर अभिषेक, पूजन, उपलेपन, मार्जन, दीपकर्म आदि किया करतीं थी।।२६।।

पतिव्रता महाभागाश्चतुरो भगिनीर्यथा। नित्यकालं पतौ वाक्यैः स्थिताः कुर्वन्त्यहर्निशम्॥२७॥
मालाकारस्तथा नित्यं विटपानि प्रसिञ्चति। पालयामास विधिवद् विधिदृष्टेन कर्मणा॥२८॥
जात्यः सुपुष्पवत्यश्च द्रुमाः फलसमन्विताः। नित्यकालमपर्यन्तं फलानां सुमहोत्सवम्।
दीयते भुज्यते सर्वं यथा सत्रे तथा सदा॥२९॥
एवं तु वसतस्तस्य मथुरायां स्थितस्य च। धनस्य संक्षयो जातो यत्तस्य पितुरर्जितम्॥३०॥
शेषमात्रे धने तस्य चिन्ताऽभून्महती तदा। मातापित्रोः कुटुम्बस्य भरणीयस्य भोजनम्।
कथं नु हि करिष्यामि हा कष्टमिति सोऽब्रवीत्॥३१॥
इति निश्चिंत्य मनसा वणिग्लाभं स्थिरं हृदि। कृत्वा सार्थमुपामन्त्र्य निर्गतः पूर्वमण्डलम्॥३२॥
तत्र क्रीत्वा सुपण्यानि उत्तरापथगानि च। बहूनि बहुमौल्यानि परदेशगमानि च॥३३॥
यातायातं ततः कृत्वा लाभालाभान् बहूंस्ततः।
विक्रीयान् यत्सुपण्यं च क्रीत्वा बहुनिवर्त्तनम्॥३४॥
उत्तरापथदेशात् तु सार्थं सुबहुविस्तरम्। अश्वरत्नं मणिरत्नं पट्टरत्नं समर्घकम्।
गृहीत्वा तु समागच्छन् मथुरायां गृहं प्रति॥३५॥
एकदा सार्थसंभारं विश्रान्तुमुपचक्रमे। सानौ पर्वतसामीप्ये प्रभूतयवसोदके॥३६॥
नद्यास्तीरे सुप्रदेश आवासानि प्रचक्रिरे। निवेश्य भाण्डं तत्रैव अश्वानां यवसादिकम्॥३७॥

इस प्रकार पतिव्रता और महाभांग्य शालिनी उसकी चारों पत्नियाँ बहनों के समान नित्य पति के कथनानुसार सभी कार्य किया करती थी।।२७।।

माली नित्य वृक्षों को सींचता था और विधिपूर्वक कर्म करते हुए उन वृक्षों का पालन किया करता था।।२८।।

सुन्दर पुष्पयुक्त लतायें तथा फल युक्त वृक्ष सभी समय फलों का सुन्दर महोत्सव उपस्थित करते थे। समस्त जन यज्ञ के समान सदा ही फलादि देते तथा उसका उपयोग किया करते थे।।२९।।

इस तरह मथुरा में निवास करते हुए उसके पिता का कमाया हुआ जो धन था, उसका अन्त हो गया।।३०।।

फिर अत्यन्त धन के शेष रहने पर उसे अत्यधिक चिन्ता हुई कि माता-पिता तथा भरण-पोषण योग्य कुटुम्ब को कैसे भोजन करा पाऊँगा? उसने कहा कि यह महान् कष्ट की बात है।।३१।।

अपने मन में इस प्रकार निश्चय कर वणिक् ने हृदय में लाभ का विचार स्थिर कर व्यापारियों का दल एकत्रित किया और पूर्वमण्डल की ओर चला गया।।३२।।

उसने वहाँ उत्तरापथ एवं विदेश जाने वाली अनेक बहुमूल्य विक्रय योग्य वस्तुओं को एकत्रित किया।।३३।।

फिर यातायात करते हुए अनेक विक्रयोग्य वस्तुओं को खरीद कर उसने अत्यधिक लाभ के द्वारा बहुत स्वर्ण अर्जित किया।।३४।।

उत्तर के देश से विस्तृत व्यापार द्वारा बहुमूल्य श्रेष्ठ घोड़े मणियाँ रत्नों और उत्तम वस्त्रों को अर्जित कर मथुरा स्थित अपने गृह की ओर चला।।३५।।

एक दिन उन व्यापारियों के दल ने मार्ग में विश्राम करने का आयोजन किया। पर्याप्त जल सम्पन्न ऊँचे पर्वत के समीप उन सबों ने नदी के तट सुन्दर प्रदेश में निवास का निर्माण किया। अपने सामान तथा अश्वादि का चारा

समादिश्येति कृत्यं च भृत्यैः कतिपयैर्वृतः। समारुरोह तं शैलं बहुकन्दरशोभितम्॥३८॥
क्रीडार्थं विहरंस्तत्र सोऽपश्यत् स्थानमुत्तमम्। प्रसन्नसलिलोपेतं नारङ्गैस्तु विभूषितम्॥३९॥
फलवन्तश्च वृक्षाश्च पुष्पाणि सुरभीणि च। पाषाणसन्धौ तत्रस्थमावासं वनमालिनः॥४०॥
तत्रारुह्य दरीद्वारं यावद् दृष्टिर्निपात्यते। तावदभ्यागतं वाचं बहुशः स्वागतेति च॥४१॥
श्रुत्वाऽपि शब्दप्रभवं किमेतदिति निश्चयम्। करिष्यंस्तत्र चैकान्ते दृष्टं पञ्जरगं शुकम्॥४२॥
आगच्छत प्रविशत इदं पाद्यमियं वृषी। फलानीमानि स्वादूनि मधुमांसोदकानि च॥४३॥
यथेष्टं यावतीच्छा च गृह्णन्तु परिचारकाः। आयातौ पितरौ मह्यं विशेषं तौ करिष्यतः॥४४॥
अतिथेरागतस्येह पूजया विमुखो भवेत्। गृहस्थो वर्त्तते तस्य पितरो नरकं गताः।
पूजिते पूजिताः स्वर्गे मोदन्ते कालमक्षयम्॥४५॥
आकाङ्क्षितो गृहस्थो न दद्यादतिथये वरम्। सोऽतिथेर्दुष्कृतं सर्वं गृहीत्व नरकं व्रजेत्॥४६॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन पूज्यो वै गृहमेधिना। काले प्राप्तस्त्वकाले वा यथा विष्णुस्तथैव सः॥४७॥

आदि रखने के बाद नित्यकर्म की कामना से वह कुछ सेवकों सहित अनेक कन्दराओं से सुशोभित उस पर्वत पर चढ़ गया।।३६-३८।।

क्रीडा करने के विचार से विहार करते हुए उसने वहाँ नारङ्गी के वृक्षों से विभूषित और स्वच्छ जल वाला एक उत्तम स्थान देखा।।३९।।

वहाँ पर फल सम्पन्न वृक्ष और सुगन्धित पुष्प थे। वहाँ पर्वत की कन्दराओं में वनमाली का निवास था।।४०।।

अतः उस पर्वत पर चढ़कर उसने ज्यों हि गुफा के द्वार पर दृष्टिपात किया वैसे-अनेक बार 'स्वागत है, स्वागत है' इस प्रकार की आवाज सुनाई दी।।४१।।

आवाज सुनकर भी यह आवाज कहाँ से हो रही है, उसका निश्चय करने हेतु खेल करते हुए उसने एकान्त में पिंजड़ें में एक शुक को स्थित देखा।।४२।।

शुक ने कहा कि आओ, प्रवेश करो, यह पाद्य है, यह आसन है। ये स्वादिष्ट फल हैं तथा यह मधु, मांस और जल है।।४३।।

हे यात्रियों! जितनी इच्छा हो, उसके अनुसार यथेच्छ सामग्री ग्रहण करो। मेरे माता-पिता आने के बाद विशेष सत्कार कर सकेंगे।।४४।।

चूँकि अतिथि के आ जाने पर जो गृहस्थ उसकी पूजा से विमुख होते हैं, उनके पितृगण नरक मे गिर जाते हैं। किन्तु अतिथि की पूजा होने पर उसके पितर स्वर्ग में पूजित होते हैं तथा अनन्त काल तक वहाँ आनन्द पाते हैं।।४५।।

जो गृहस्थ अतिथि को इच्छित पदार्थ नहीं देता, वह अतिथि के समस्त पापों को लेकर नरक में जाता है।।४६।।

अतः सभी प्रयत्न द्वारा गृहस्थ को अतिथि की पूजा करनी चाहिए। समय या असमय में आया हुआ अतिथि विष्णु के समान होते हैं।।४७।।

एवंविधाः शुभा वाचो वैश्यो धर्मोपदेशकाः। श्रुत्वा शुकस्य सर्वास्ता गोकर्णो मुदितोऽब्रवीत्॥४८॥
कस्त्वमृषिः पुराणज्ञः किं वा देवोऽथ गुह्यकः। तव प्रसन्नरूपस्य यस्येयं वागमानुषी॥४९॥
कस्त्वं कथय मे सत्यमुत्साहो वाऽतिथिप्रियः।
धन्यः स मानुषो यस्य नित्यं सन्निहितो भवान्॥५०॥
इत्युक्तः स शुकः सर्वं शशंसात्मपुराकृतम्। श्रुणु रौद्रं यथा पूर्वं मया कृतमबुद्धिना।
शुकस्य विप्रियं यादृङ् महर्षेस्तपसि स्थिते॥५१॥
सुमेरोरुत्तरे पार्श्वे महर्षिगणसेविते। तपश्चचार विपुलं शुको व्याससुतो महान्॥५२॥
श्रोतुकामाः पुराणानि सेतिहासानि नैगमाः। ऋषयस्तत्र आजग्मुरसितो देवलस्तदा॥५३॥
मार्कण्डेयो भरद्वाजो यवक्रीतस्ततो भृगुः। अङ्गिरास्तैत्तिरी रैभ्यः काण्वो मेधातिथिः कुथः॥५४॥
तन्तुः सुतन्तुरादित्यो वसुमानेकतो द्वितः। वामदेवश्चाश्वशिरास्त्रिशीर्षो गौतमो लदः॥५५॥
अन्ये च सिद्धा देवाश्च गुह्यकाः पन्नगास्तथा। शुकं संमानयामासुः प्रपच्छुर्द्धर्मसंहिताम्॥५६॥
अहं तु वामदेवस्य शिष्यो नाम्ना शुकोदरः। भ्रष्टः श्रद्धान्वितो बाल्यान्मुनीनामग्रतश्चरन्॥५७॥
ऊहापोहकरं प्रश्नं वारं वारमु पृष्टवान्। अन्यायवादिनं मां च गुरुर्नित्यं निषेधति।
गुरूणामग्रतो वाक्यं कथायां कथ्यतां वदन्॥५८॥
पूर्वपक्षाश्च सिद्धान्ताः परस्परजिगीषवः। अन्तरे चान्तराक्षेपं पुनर्नैवमवोचथाः॥५९॥

वह गोकर्ण नाम का वणिक् शुक के धर्मोपदेश युक्त उन सभी वचनों को सुनकर प्रसन्न हो गया।।४८।।
जिस सुन्दर रूप वाले आपकी यह दैवी वाणी है, वे आप क्या कोई ऋषि, देवता या गन्धर्व हैं?।।४९।।
सत्य बतलायें। उत्साही अतिथि प्रिय आप कौन हैं? वह मनुष्य धन्य है, जिसके पास आप नित्य रहा करते हैं।।५०।।

इस प्रकार से कहे जाने पर उस शुक ने अपनी समस्त प्राचीन बात कह दी। मैंने पूर्व में अज्ञानवश तपस्या कर रहे महर्षि शुक के साथ जो भयंकर अप्रिय कार्य किया था, उसे सुनो।।५१।।

महर्षियों से सेवित सुमेरु पर्वत के उत्तर की ओर व्यास पुत्र महर्षि शुक महान् तप कर रहे थे।।५२।।
इतिहास सम्पन्न, वेदानुसारी पुराणों को सुनने की इच्छा से वहाँ असित और देवल आदि ऋषि आये।।५३।।
मार्कण्डेय, भरद्वाज, यवक्रीत, भृगु, अङ्गिरा, तैत्तिरि, रैभ्य, काण्व, मेधातिथि, कुथ, तन्तु, सुतन्तु, आदित्य, वसुमान, एकत, द्वित, वामदेव, अश्वशिरा, त्रिशीर्ष, गौतम, लद और अन्य सिद्ध देवता, गन्धर्व, नाग, आदि ने शुक महर्षि का सम्मान कर धर्म संहिता पूछी।।५४-५६।।

मैं वामदेव का शुकोदर नाम का शिष्य था। बालस्वभाव वश श्रद्धायुक्त मैं मुनियों के आगे चलने के कारण मैं भ्रष्ट हो गया था।।५७।।

मैं बारम्बार तर्क युक्त प्रश्न पूछ दिया करता था। गुरु सदा अनुचित बोलने वाले मुझको मना किया करते थे। किन्तु मैं गुरुओं के सम्मुख कथा कही जाते समय बोलने लगता था।।५८।।

एक दूसरे को जीत लेने की इच्छा से पूर्वपक्षीय सिद्धान्तों और बीच-बीच में आक्षेप युक्त वचनों को मैं कहने लगा। गुरु ने मुझे मना किया, पुनः इस प्रकार तुम मत कहना।।५९।।

एवं निषेधितश्चहं गुरुणा मुनिसत्तमैः। न कृतं यन्मया वाक्यं तेनाहं शपितस्तदा॥६०॥
शुकेन कोपाच्छापो मे दत्तोऽयं जल्पको वटुः।
यथा नाम्ना त्वयं पक्षी शुको भवति नान्यथा॥६१॥
इत्युक्तमात्रे वचने तत्रैवाहं शुकोदरः। शुकत्वं तत्क्षणात् प्राप्तः क्षमस्वेतयूचुरोजसा।
मुनयस्तं महात्मानं शुकं तत्त्वार्थवित्तमम्॥६२॥
नान्यथा नान्यथा वाङ्मे कदाचिन् संभविष्यति।
आगामिकाले दास्यामि वरमस्मै शुकाय भोः॥६३॥
युष्माकमुपरोधेन यथारूपो विहङ्गमः। अयं भविष्यति सदा सद्भावहितभावनः॥६४॥
पुराणतत्त्ववेत्ता च सर्वशास्त्रार्थपारगः। मथुरायां मृतः पश्चाद् ब्रह्मलोकं गमिष्यति॥६५॥
एवं शापं वरं गृह्य तस्माद् दीनोऽस्म्यहं द्रुतम्। मथुरा मथुरोच्चारं कुर्वन्नित्यमतन्द्रितः॥६६॥
नित्योद्विग्नस्य मे गात्रं हिमाद्रौ तु गुहां वसन्। प्राप्तोऽहं शबरेणैव येनाहं पञ्जरे कृतः॥६७॥
शबरस्तु सभार्यो वै क्रीडते स मया सह। मुनेः प्रसादान्मे ज्ञानं न जहाति कदाचन॥६८॥
भुज्यते ह्यवशेनैव कृतं येन यथा च यत्। स्वस्थो भव महाभाग मा स्म शोके मनः कृथाः॥६९॥

मुनि श्रेष्ठों और गुरु के इस तरह मना करने पर भी मैंने उनकी बातें नहीं मानी। इससे उस समय मैं शाप युक्त हो गया।।६०।।

कोपपूर्वक शुक ने मुझे शाप दिया कि यह छात्र बकवादी है, यह नाम के अनुसार निश्चित रूपसे शुक ही होगा।।६१।।

इस प्रकार का वचन कहते ही मैं शुकोदर तत्काल वहीं शुक हो गया। मुनियों ने श्रेष्ठ तत्त्वार्थ को जानने वाले महात्मा शुक से ओजपूर्वक 'क्षमा करें' यह कहा।।६२।।

हे महर्षियों मेरा वचन कभी व्यर्थ नहीं होता। वैसे भविष्य के लिए मैं इस शुक को वर प्रदान करूँगा।।६३।।

आप सब लोगों के अनुरोध के कारण इस रूप में भी यह पक्षी सदा सद्भाव और कल्याण की भावना वाला ही रहेगा।।६४।।

यह पुराणों के तत्त्व को जानने वाले एवं सब शास्त्रों का विद्वान होगा। मथुरा में मरकर यह ब्रह्मलोक की प्राप्ति कर सकेगा।।६५।।

इस प्रकार शाप और फिर वर प्राप्त कर शीघ्र ही मैं दीनभाव से 'मथुरा-मथुरा' का आलस्य रहित होकर जप करता रहता हूँ।।६६।।

एक बार हिमालय पर्वत की गुफा में रहने वाले मुझ उद्विग्न का शरीर एक शबर ने पकड़ लिया था। जिसने ही मुझे इस पिंजड़े में बन्द कर दिया है।।६७।।

इस तरह पत्नि सहित शबर मेरे साथ क्रीड़ा करता है। मुनि की कृपा से मैं कभी भी ज्ञान-शून्य नहीं हो पाता हूँ।।६८।।

जो कोई भी जन जिस प्रकार का कर्म करते हैं, उन्हें विवशतापूर्वक उसी प्रकार के कर्मफल भोगने पड़ते हैं। हे महाभाग! आप स्वस्थ हों। मन में शोक न करें। तब उस शुक के इस प्रकार से कहे जाने पर गोकर्ण ने शुक को मोक्ष प्रदायक सुन्दर वचन कहा।।६९।।

इत्युक्तः स तु गोकर्णस्तदा तेन शुकेन च। प्रोवाच वचनं हृद्यं शुकमोक्षप्रदायकम्॥७०॥
या सा मुक्तिप्रदा रम्या मथुरा पापनाशिनी। तस्यां वसाम्यहं भद्र वाणिज्यार्थमिहागतः।
पुनर्गच्छामहे तत्र भाण्डं गृह्य यथासुखम्॥७१॥
मथुरावसिनं श्रुत्वा गोकर्णं स शुकस्तदा। पुत्रं संस्थाप्य चात्मानं गोकर्णस्य यथेप्सितम्॥७२॥
एवं च वदतस्ताभ्यां शबरी शयनोत्थिता। दर्या निःसृत्य बाह्ये तु ददर्शासनसंस्थितम्॥७३॥
भृत्यैः परिवृतं चारु दर्शनीयस्वरूपकम्। निरीक्ष्य बहुशस्तत्र शुको वचनमब्रवीत्॥७४॥
प्रियातिथिं च संप्राप्तं मातःपूज्यतमं शुचिम्। कुरु पूजां यथार्हं च गोकर्णस्य वरातिथेः॥७५॥
शुकस्य वचनाद् यावत् पूजार्थमुपकल्पनम्। न ददाति ततस्तत्र वनाच्छबर आगतः॥७६॥
तस्याग्रे तु पुनस्तेन शुकेनातिथिपूजनम्। शंसितं स तथेत्युक्त्वा कृत्वा पूजां प्रणम्य च॥७७॥
फलानि मांसयुक्तानि मधूनि स्त्रग्वराणि च। संपाद्य संविदं कृत्वा वद किं करवाणि ते॥७८॥
इत्युक्ते शबरेणाथ गोकर्णो वाक्यमब्रवीत्।
अन्यत् किंचिदथोऽदेयं यदि किञ्चिद् ददासि च।
शुकोऽयं पञ्जरस्थश्च पुत्रार्थं मे प्रदीयताम्॥७९॥

हे भद्र! वह जो रमणीय पापनाशिनी और मोक्षप्रदायिणी मथुरा है, उसी में मैं रहने वाला हूँ और व्यापारकार्य से यहाँ तक आ गया हूँ। पुनः साजं-समान लेकर सुखपूर्वक मैं वहाँ जाऊँगा।।७१।।

फिर उस शुक ने गोकर्ण को मथुरावासी जन सुनकर स्वयं को गोकर्ण की इच्छानुरूप उसके पुत्र रूप में स्थापित कर लिया।।७२।।

इस प्रकार से इन दोनों के वार्ता करते समय ही शबरी सोने से जागकर आ गये। फिर वह गुफा से निकल कर बाहर आसन पर उन्हें उसने बैठा देखा।।७३।।

फिर सेवकों से घिरे हुये सुन्दर दर्शनीय स्वरूप वाले उस वणिक् को उसने कई बार देखा। उस समय शुक ने ही उससे कहा—।।७४।।

हे मातः! अत्यन्त पूजनीय पवित्र प्रिय अतिथि आया है। श्रेष्ठ अतिथि गोकर्ण की यथायोग्य पूजा करो।।७५।।

शबरी ने शुक के कहे अनुसार जब तक पूजार्थ सामग्री लाती, तब तक शबर भी वहाँ वन से आ पहुँचा।।७६।।

उससे भी शुक ने पुनः आतिथ्य पूजनार्थ कहा। फिर उसने 'ठीक है' कहकर उन गोकर्ण का पूजा करने के बाद उन्हें प्रणाम भी किया।।७७।।

फिर फल और मांस सहित मधु तथा श्रेष्ठ मालायें देने के बाद संकल्प कर कहा कि अब आपका क्या कार्य करूँ?।।७८।।

इस प्रकार शबर के कहे जाने पर गोकर्ण ने यह वाक्य कहा कि यदि अन्य कुछ देने योग्य हो और आप दें, तो यह पिंजड़े में स्थित शुक मुझे पुत्र हेतु दे दीजिए।।७९।।

मथुरायां गमिष्यामि कृतार्थः पितुरन्तिके। इत्युक्तमात्रे वचने शबरो वाक्यमब्रवीत्॥८०॥
अस्माकं यमुनास्नानं सङ्गमे यमुनाम्भसः। सरस्वत्याश्च पतने दत्ते दास्यामि ते शुकम्॥८१॥
शबरेणैवमुक्तस्तु गोकर्णः प्रत्यभाषत। सरस्वत्याः सङ्गमे च यत्फलं लभते नरः।
स्नानेन किं फलं तस्य यदि जानासि तद् वद॥८२॥

शबर उवाच

शुकेनानेन मे सर्वं मथुरायाश्च यत्फलम्। तत्फलं सङ्गमस्योक्तं श्रवणद्वादशीव्रते॥८३॥
वियोनिस्थो राक्षसो वा तिर्यग्योनिगतोऽपि वा।
यस्योद्दिश्य व्रतं कुर्यात् स गच्छेत् परमां गतिम्॥८४॥
सङ्गमस्य फलं तस्य दृष्ट्वा गोकर्णमीश्वरम्। नासौ यमपुरं याति विष्णुलोकं च गच्छति।
एवं मया श्रुतं तस्य सङ्गमस्य महत् फलम्॥८५॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे अष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः॥१६८॥

इस प्रकार मैं कृतार्थ होकर अपने पिता के समीप मथुरा जा सकूँगा। इस तरह से कहे जाने पर शबर ने भी यह वाक्य कह दिया।।८०।।

देखिए! हम लोगों को सरस्वती के गिरने के स्थान पर तथा सरस्वती यमुना के संगम के यमुना जल में स्नान करने का फल प्रदान कर देने पर मैं आपको यह अपना शुक प्रदान कर सकूँगा।।८१।।

उस शबर के इस प्रकार से कहे जानेपर गोकर्ण ने उत्तर दिया। मनुष्य सरस्वती के संगम में स्नान करने से जो फल पाता है, वह कैसा फल होता है? यदि आप जानते हों, तो मुझे भी बतलाने की कृपा करें।।८२।।

शबर ने कहा कि इस शुक ने मुझे मथुरा का जो फल होता है, वह श्रावण की द्वादशी को संगम में स्नान करनेका जो फल होता है, ये सब बतला दिया है।।८३।।

विकृत योनि का प्राणी, राक्षस या तिर्यग्योनि का भी जो प्राणी जिसके उद्देश्य से व्रत करता है, उसे परम गति प्राप्त होती है।।८४।।

इस प्रकार उस संगम तथा गोकर्णेश्वर का दर्शन करने का यह फल होता है, कि वह जीव यमपुर में न पहुँच कर विष्णु लोक में चला जाता है। मैंने इस प्रकार संगम का महान् फल सुना है।।८५।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में मथुरा माहात्म्य में गोकर्णोपाख्यान नामक एक सौ अड़सठवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१६८॥

एकोनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

अथ मथुरामाहात्म्ये गोकर्णोपाख्यानम्

श्रीवराह उवाच

करिष्यामीति तत् सर्वं प्रपद्य शबरं तदा। शुकं गृह्य ततः स्थानात् प्रस्थितो मथुरां पुरीम्॥१॥
प्रविश्य गृहकृत्यानि मातापित्रोस्तदर्पणम्। शुकस्य चरितं सर्वं निवेद्य च महामतिः॥२॥
एवं निवसतस्तस्य बहु वर्षाणि तत्र वै। सुखं गतानि सर्वाणि विहारे वरपूजने॥३॥
एवं निवसतस्तस्य द्रव्यशेषमजायत। पुनस्तत्रैव गमने वणिग्लाभे मतिर्गता॥४॥
समुद्रयाने रत्नानि महामूल्यानि साधुभिः। रत्नपारीक्षकैः सार्द्धमानयिष्ये बहूनि च॥५॥
एवं निश्चित्य मनसा महासार्थपुरःसरः। समुद्रयायिभिर्लोकैः संविदं सूच्य निर्गतः॥६॥
पोतसंभारमाहात्म्यं कृत्वा कृत्यपदार्थकम्। शुकं गृहीत्वा प्रस्थानमकरोत् पुण्यवासरे॥७॥
मातापित्रोः शुभा वाचो गृहीत्वा देवतागृहे। भार्याणां देवकार्यं च वाटिकायाश्च पोषणम्।
पितुः शश्रूषणं चोक्त्वा सर्वं यूयं करिष्यथ॥८॥

अध्याय–१६९

मथुरा माहात्म्य में गोकर्णोपाख्यान

श्री भगवान् वराह ने कहा कि फिर गोकर्ण वणिक् ने उस शबर के पास पहुँच कर कहने लगा कि मैं यह सब करूँगा। फिर उस शुक को लेकर उसने वहाँ से मथुरा हेतु प्रस्थान किया।।१।।

उसे घर पहुँच कर उसमें प्रविष्ट होकर महाबुद्धिमान वणिक् ने अपने माता-पिता को उस शुक को अर्पित कर, उसके बारे में पूरा वृत्तान्त उसके चरित्र सहित बतला दिया।।२।।

इस तरह वहाँ रहते हुए विहार और श्रेष्ठतर पूजनादि कर्म में उसके जीवन के अनेक वर्ष सुख सहित बीत गया।।३।।

इस क्रम में घर में रहते हुए उसका अर्जित धन फिर से समाप्त हो गया। फिर उस वणिक् ने लाभ हेतु पुनः यात्रा का विचार किया।।४।।

इसके लिए उसने समुद्री जहाज में मूल्यवान् बहुत-सारे रत्नों को साधु प्रकृति वाले रत्नपरीक्षकों के साथ ले आऊँगा, इस प्रकार सोच विचार करने लगा।।५।।

फिर वह अपना निर्णय कर और महान् यात्रीदल को आगे कर समुद्रयात्रियों के साथ उचित शर्त आदि निश्चय कर यात्रा हेतु घर से बाहर निकल गया।।६।।

इसके लिए उसने जलयान सम्बन्धी मङ्गल कार्यों तथा प्रस्थान काल का मङ्गल कार्य कर अपने आत्मज तुल्य शुक को साथ लेकर शुभ दिन में प्रस्थान किया।।७।।

उसने यात्रा पूर्व माता-पिता का आशीर्वाद लेने के साथ देव मन्दिर में देव दर्शन किया। फिर उसने अपनी स्त्रियों से कहा कि तुम लोग देवकार्य, वाटिका का पोषण तथा मेरे माता-पिता की सेवा में भी संलग्न रहा करना।।८।।

यथायोगं यथाकालं यथाकृत्यं यथा च यत्। भवतीभिश्च कृत्यं मे करणीयं यथा तथा॥९॥
संदिश्य भार्याः सुश्रोणीर्देवं दृष्ट्वा प्रसाद्य च। भार्याभिः समनुज्ञातो यानपात्रं गतस्तदा।
शुकेन सह संप्राप्तो महान्तं लवणार्णवम्॥१०॥
पोतारूढास्ततः सर्वे पोतवाहैरुपोषिताः। अपारे दुस्तरेऽगाधे यान्ति वेगेन नित्यशः॥११॥
अथ दैववशाद् वायुर्विलोमः समजायत। दुर्वातेन तदाऽत्यन्तं बलात्पोत उपोहितः॥१२॥
पोतवाहास्ततः सर्वे विसंज्ञा मोहिताः कृताः। हा कष्टं हि कथं किञ्च कुत्र गच्छामहे वयम्॥१३॥
तेषां तु वचनं श्रुत्वा ज्ञात्वा दुर्वातपीडनम्।
आक्षिपद् वाग्भिरुग्राभिरन्योन्याशङ्क्य मूर्च्छिताः॥१४॥
जल्पन्ति कोऽत्र पापिष्ठः समारूढो निराकृतिः। तस्य पातकसंस्पर्शान्मृताः सर्वे न संशयः॥१५॥
एवं विलपतां तेषां चत्वारोऽपि समभ्ययुः। मासास्तत्रैव वाणिज्यं षण्मासात्सिध्यते फलम्॥१६॥
निर्भर्त्सनं ततस्तेषामन्योन्यमभिजल्पताम्। श्रुत्वा शुकस्य गोकर्णः शशंसात्मविनिन्दनम्॥१७॥
अपुत्रस्य गतिर्नास्ति इति सर्वस्य निश्चितम्। एषां मध्ये ह्यहं पापस्तेन तप्यामि पुत्रक॥१८॥

इस तरह आप सभी उचित काल के अनुसार जो भी मेरा अपेक्षित कार्य हो वह यथोचित रीति से सम्पन्न करते रहना।।९।।

फिर वह अपनी पत्नियों को निर्देशित कर देवताओं का दर्शन, प्रार्थना आदि कर अपनी पत्नियों से अनुमति प्राप्त कर अपने जलयान की ओर चला गया। फिर शुक सहित वह महाखारा समुद्र में आ पहुँचा।।१०।।

फिर सभी उस जलयान पर चढ़ गए। फिर पोतवाहकों ने सभी को बैठाकर नित्य वेगपूर्वक अगाध अपार और दुस्तर सागर में पोत को लेकर चलने लगे।।११।।

फिर अचानक दैवात् वायु विपरीत बहने लगी। तब दुष्ट वायु ने बलात् उस पोत को अत्यन्त आक्रान्त कर दिया।।१२।।

फिर तो समस्त पोतवाहक चेतना शून्य और मोहित हो गये। हा! यह कैसा और कौन कष्ट आ पड़ा। हम सब अब कहाँ जा सकते हैं?।।१३।।

उन पोतवाहकों की बातों और दुर्वात का उपद्रव को जानकर उस जलयान पर आरूढ़ समस्त यात्री एक-दूसरे के प्रति शंकालु होकर क्रोधपूर्वक उग्रवाणी द्वारा एक-दूसरों को आक्षेपित करने लगे।।१४।।

वे सब कहने लगे कि कौन कृतघ्न पापी जन इस यान पर आरूढ़ है? उसके पाप के स्पर्श से हम सब निःसंशय मर सकेंगे।।१५।।

उन सब के इस प्रकार से विलाप करते हुए चार मास व्यतीत हो गए। यद्यपि वहाँ छः माह में व्यापार से फल प्राप्त हो गया होता।।१६।।

फिर परस्पर बातें करने वाले जनों द्वारा की गई निन्दा वाक्य से गोकर्ण ने अपने शुक से अपनी वेदना को कहा—।।१७।।

सब जनों का यह निश्चय किया हुआ है कि पुत्रहीन की गति नहीं है। हे पुत्र! इनके मध्य में मैं ही पापी हूँ, इसी से मैं दुःखभागी भी हूँ।।१८।।

यदत्र युक्तं कालेऽस्मिन् विषमे समुपस्थिते।
वद स्वाध्यायषाड्गुण्यं कृच्छ्रे त्वं कार्यवित्तमः॥१९॥

शुक उवाच

मा भैः पितर्जोषमास्व अस्मिन् काले यथोचितम्।
अहं करिष्ये तत्सर्वं मा विषादे मनः कृथाः॥२०॥

एवमाश्वास्य पितरं समुड्डीय ततो द्रुतम्। ध्रुवाख्यां दिशमुद्वीक्ष्य उत्तराभिमुखो ययौ॥२१॥
नीचगत्या रक्षयन्वै सुतरं दुस्तरं जलम्। सानौ पर्वतसामीप्ये योजनेन वरं गिरिम्॥२२॥
रोमाञ्चिततनुर्जातः शुको वीक्ष्य महागिरिम्।
क्रमित्वोद्र्ध्वं च यात्यग्रे तावद् देवालयं शुभम्॥२३॥
दृष्टं च विष्णवायतनं शुद्धस्फटिकनिर्मितम्। स पञ्चायतनं रम्यं सरसा चोपशोभितम्।
दिक्षु सर्वास्वटित्वैवं निलिल्ये देवमन्दिरे॥२४॥
कस्यायं कोऽत्र संचारी कदा किंतु पिता मम। वितरिष्यति नो कालं दुरन्तं सुकृती यथा॥२५॥
क्षणमेकं तथा चैवं तस्य चिन्तान्वितस्य हि। सौवर्णपात्रहस्ता च देवी देवं समर्च्चयत्।
नमो नारायणायोक्त्वा निषसाद वरासने॥२६॥

इस प्रकार की विपरीत काल के आ जाने पर जो करना चाहिए, उसे स्वाध्याय के षड्गुण सम्बन्धी विचार कर मेरा कर्त्तव्य बतलाओ। इस विपत्ति में तुम्हीं एक कार्य के श्रेष्ठ ज्ञाता हो।।१९।।

शुक ने कहा कि हे पिता! डरिए नहीं, चुपचाप शान्त बैठे रहें। इस काल में जो उचित है, वे सब मैं ही करूँगा। लेकिन मन को विषाद मुक्त रखें।।२०।।

अपने पिता से इस प्रकार कहकर वहाँ से वह शुक शीघ्र उड़ गया और ध्रुव की ओर देखकर उत्तर दिशा में चल उड़ा।।२१।।

इस प्रकार मन्दगति से अपनी रक्षा करते हुए उसने दुस्तर जल को पार कर लिया। फिर एक पर्वत के पास ही समतल भूमि पर एक योजन में श्रेष्ठपर्वत था।।२२।।

उस महान् पर्वत को देखकर शुक का शरीर रोमाञ्चित हो गया। ऊपर उठकर जैसे ही आगे बढ़ा, वैसे ही एक सुन्दर देवालय दीख पड़ा।।२३।।

वहाँ उसमें विशुद्ध स्फटिक का बना हुआ एक विष्णु मन्दिर देखा। पञ्चायतन युक्त मन्दिर रमणीय एवं सरोवर से सुशोभित था। समस्त दिशाओं में वह मन्दिर स्फटिक का ही था। उस मन्दिर को देखकर और घूम कर शुक उस देवमन्दिर में प्रविष्ट हो गया।।२४।।

यह किसका मन्दिर है? यहाँ कौन और कब आता जाता है। क्या मेरे पिता सागर को उस प्रकार पारकर सकेंगे, जैसे सत्कर्म करने वाला दुरन्तकाल का अतिक्रमण करता है।।२५।।

इस प्रकार से वह शुक एक क्षण तक विचार करता रहा। फिर उसने देखा कि हाथ में स्वर्ण पात्र लिये हुए एक देवी ने देव का पूजन किया। 'नारायण को नमस्कार है' इस प्रकार कहती हुई वह श्रेष्ठ आसन पर आसीन हो गई।।२६।।

निमेषान्तरमात्रेण वयोरूपसमन्विताः। असंख्याताः समायाता यथा देवी तथैव ताः॥२७॥
गीतं वाद्यं च नृत्यं च यथासौख्यं विहृत्य च। गतास्ता देवताः सर्वा यथास्थानमनुत्तमम्॥२८॥
देवतादक्षिणे भागे पक्षिणां च जटायुषाम्। लक्षान्यनेकयूथानि बृहन्ति बहुसङ्घशः॥२९॥
शुको लिक्ष्या समस्तेषां मध्ये कृत्वा तु संविदम्।
स्वभाषां स पुरस्कृत्य शरण्यं शरणं च यत्॥३०॥
ते समाश्वास्य तं प्राहुः कथमेनं यथागतः। वारिराशौ दुधाधर्षे समुद्रे झषसंकुले॥३१॥
तान् शुकः प्रत्युवाचाथ पिता मे पोतसंस्थितः। दुर्ग्नो दुर्गमस्थोऽद्य विषमे समुपस्थिते॥३२॥
तस्य त्राणमभीप्सन् वै आगतोऽत्र वरं गिरिम्। कुरुध्वं तस्य मे त्राणं यथा सुखमवाप्यते॥३३॥

पक्षिण ऊचुः

एहि पुत्र सुकार्यं ते मार्गं द्रक्ष्यामहे वयम्। पोताभ्यासगतिं यामि पितुस्तव गतिं प्रति॥३४॥
ममैव पादविन्यासे क्रमयिष्ये यतो यतः। तेन ते पृष्ठतो मह्यं स पिता संतरिष्यति॥३५॥
मम चञ्च्वावगाहेन नङ्क्ष्यन्ति जलजन्तवः। एतत्पितुः समस्तं हि शंस क्षिप्रं नदीपतिम्॥३६॥

वहाँ तत्क्षण बाद ही वय और रूपसे युक्त असंख्य स्त्रियाँ आ गयी। वे सब भ वैसी ही थी, जैसी प्रथम पूजन करने वाली देवी थी।।२७।।

फिर सुखसहित गीत-संगीत, नृत्य एवं दूसरे-दूसरे प्रकार का विहार करने के बाद सब देवियाँ अपने-अपने श्रेष्ठ स्थानों को चली गईं।।२८।।

उसी देव मन्दिर के दक्षिण की ओर जटायुष पक्षियों का निवास स्थान था। वहाँ बड़े-बड़े समूहों में अनेक लक्ष पक्षी थे।।२९।।

फिर आश्चर्ययुक्त होकर शुक निश्चित विचार से उनके बीच में चला गया। उसने अपनी भाषा में कहा कि शरण देने योगय की शरण में आया हूँ।।३१।।

उन पक्षियों ने उसे आश्वस्त किया और पूछ लिया कि तुम जलचारी जीवों से युक्त जल से भरे भयंकर समुद्र में कैसे यहाँ आ पहुँचे।।३२।।

फिर शुक ने उनसे कहा कि मेरे पिता जलयान में हैं। वे आज विषम स्थिति तथा अत्यन्त विपत्ति में फँस गये हैं। उनकी रक्षा करने की कामना से मैं इस श्रेष्ठ पर्वत पर आ गया हूँ। मेरे उन पिता की रक्षा करें, जिससे सुख प्राप्त हो सके।।३३।।

उन पक्षियों ने कहा कि हे पुत्र! तुम्हारा कार्य सरल है। हम तुम्हें मार्ग दिखाएंगे। तुम्हारे पिता के उद्धार हेतु मैं जलयान के सदृश गति से चलते हैं।।३४।।

मैं जहाँ-जहाँ चलूँ, तुम वहाँ-वहाँ मेरे पाद चिह्न का अनुगमन करते रहो। इस प्रकार मेरा अनुगमन करते हुए चलने से वे तुम्हारे पिता शीघ्र समुद्र को पार कर जाएंगे।।३५।।

मेरे चोंच के स्पर्श से ही जलचर जीव नष्ट हो जाएंगे। समुद्र में स्थित अपने पिता से शीघ्र ये सब बतला दो।।३६।।

तारयामास वेगेन गत्वा पृष्ठं जटायुषः। स ययौ पर्वतं तीर्त्वा क्वचिन्नाभिसमं जलम्॥३७॥
हृत्कण्ठं चैव गम्भीरं सुखेन सुकृती यथा। स्तोकान्तरे ततः सोऽथ देवागारमनुत्तमम्।
सरोवरं च पद्माख्यं मणिरत्नविभूषितम्॥३८॥
स्नात्वा देवान् पितृंश्चैव तर्पयित्वा यथासुखम्। पुष्पाण्यादाय देवं च पूजयित्वा सकेशवम्॥३९॥
पञ्चायतनकं यच्च खचितं रत्नसंचयैः। दृष्ट्वा निलिल्ये चैकान्ते शुकस्यानुमते स्थितः॥४०॥
क्षणेन ता यथापूर्वं देवताश्चागताः पुनः। नर्त्तयित्वा यथायोगं ताां ज्येष्ठाऽब्रवीदिदम्॥४१॥
स्वागतस्य क्षुधार्त्तस्य धर्मिष्ठस्य महात्मनः। भोजनार्थं फलं दिव्यं पानार्थं तोयमुत्तमम्॥४२॥
गोकर्णस्य प्रयच्छध्वं येन तृप्तिस्त्रिमासिका। यथा शोकं यथा पापं यथा मोहं प्रणश्यति॥४३॥
तत्तथाकृतमूचुस्तमभयं तेऽस्तु मा शुचः। वस स्वर्गापमे स्थाने यावत् सिद्धिर्भवेत्तव॥४४॥
गतास्ताः पुनरेवं च नित्यमेव दिने दिने। वसते स सुखं तत्र मथुरायां यथा तथा॥४५॥
पोतस्तस्मादुत्ततार सुवातेनोपवाहितः। रत्नाकरः शुभो यत्र भावित्वाद् दैवयोगतः॥४६॥

फिर उस जटायु पक्षी के पीठ पर वेगपूर्वक चलते हुए उसने समुद्र को पार कर लिया। चूँकि उसने कहीं-कहीं नाभि, हृदय, कण्ठ आदि तक गम्भीर जल को उसी प्रकार सुख से पार किया था, जिस प्रकार पुण्यवान् जन इस संसार सागर को पार कर जाते हैं। इस प्रकार यह पर्वत के पास पहुँच गया। वह थोड़ी दूर पर स्थित देवालय और मणियों-रत्नों से विभूषित पद्म नामक सरोवर के समीप पहुँच गया।।३७-३८।।

फिर वह सुख के साथ स्नान करने के पश्चात् देवों, पितरों का तर्पण कर उसने पुष्प से केशव की भी पूजा सम्पन्न किया।।३९।।

रत्नों के समूह से जड़ा हुआ जो देव का पञ्चायतन था, उसे देखकर वह उसमें गया और शुक के कहने के अनुसार एकान्त में बैठ गया।।४०।।

क्षणमात्र बाद पहले की तरह वे देवियाँ पुनः आयीं, यथा योग्य नृत्य आदि करने के बाद उनमें से श्रेष्ठतम देवी ने यह कहा—।।४१।।

देखो! क्षुधातुर, धर्मिष्ठ, धर्मात्मा, सुन्दर अतिथि को भेजन हेतु दिव्य फल और पीने हेतु उत्तम जल प्रदान करो।।४२।।

इस अतिथि गोकर्ण को इतना ऐसा फलादि दो, जिनसे तीन मास तक तृप्ति बनी रह सके। फिर जिनसे उनका शोक, पाप, मोह, आदि सब विनष्ट हो सके।।४३।।

वे सब आदेशानुसार उसी प्रकार हुआ। उन सब ने उससे कहा कि तुमको यहाँ कोई भय नहीं है और किसी प्रकार का शोक भी मत करो। इस स्वर्ग से भी अनुपम स्थान में तब तक निवास करो, जब तक तुम्हारे मनोरथ की सिद्धि नहीं हो जाती है।।४४।।

फिर वे सब के सब वहाँ से चली गईं। फिर नित्यप्रति इसी प्रकार से होता रहा। वह गोकर्ण मथुरा के समान वहाँ सुख के साथ रहने लगा।।४५।।

फिर उसका जलयान भी दैवकृपा से वायु की अनुकूलता पाकर उस दुस्तर सागर में पार होकर वहाँ पहुँचा, जहाँ समुद्र का रत्नाकर था।।४६।।

रत्नानि बहुमूल्यानि आहृतानि बहूनि च। यावत् परीक्षणार्थं च गोकर्णं रत्नकोविदम्॥४७॥
निरीक्ष्य तस्य संवासो न दृष्टश्चुक्रुशस्तदा। कुतोऽसौ गतवान् भद्रो मृतो नष्टो जले प्लुतः॥४८॥
व्रीडामुखो निमग्नोऽयं निश्चितं मकरालये। पितुरस्य वयं सर्वे पुत्रवद् विचरामहे॥४९॥
यथाभागं च रत्नानामस्मै दास्यामहे बहु। एष धर्मः सदाऽस्माकमेकसार्थागमेन हि॥५०॥
एवं वसन् स गोकर्णो द्वीपस्थः शोकविह्वलः। शुकं प्रोवाच दीनात्मा मातापित्रोः कृते तदा॥५१॥
शुकेन मन्त्रमोहित्वात् पितुरेवं निवेदितम्। अहं पक्षी लघुतनुर्भवन्तं नेतुमक्षमः॥५२॥
याताऽस्मि मथुरामार्गे समुद्रे जलमालिनि। पित्रोर्वाक्यं तवाख्यास्ये त्वदीयं च तयोस्तदा॥५३॥
पोतारूढप्रतिनिधिर्याम्यनुज्ञा प्रदीयताम्। सत्यमुक्तं ततस्तेन गोकर्णेनान्तरं तथा॥५४॥
गच्छ त्वं पुत्र मथुरामवस्थां मामकीमिमाम्। त्वया विना न शक्नोमि शीघ्रमागमनं कुरु॥५५॥
इत्युक्तः स तथेत्युक्त्वा पोतारूढः खगोत्तमः। कालेन मथुरां प्राप्तः सर्वं पित्रे न्यवेदयत्॥५६॥
श्रुत्वा तं विषमावस्थं मृतं हृदि निवेश्य च। रुदित्वा सुचिरं कालं शुके स्नेहं निवेशितम्॥५७॥

फिर उन लोगों द्वारा समुद्र से बहुत-से बहुमूल्य रत्न निकाले गये। जब उन रत्नों की परीक्षण हेतु यान के यात्रीजन रत्नकोविद गोकर्ण को खोजना प्रारम्भ किया। उन सबने उस गोकर्ण को उनके वासस्थान में देखा, लेकिन उसे कहीं नहीं पाया। इससे सभी विलाप करने लग गये। वह साधु पुरुष कहाँ चला गया। क्या वह मर गया, नष्ट हो गया अथवा जल में डूब गया।।४७-४८।।

प्रतीत होता है कि वह लज्जित होकर समुद्र में डूब गया। चलो, उसके पिता के हम सब पुत्र के समान सेवा करेंगे।।४९।।

हम सभी उसे रत्नों का उचित भाग भी प्रदान करेंगे। चूकि व्यापार के लिए एक साथ यात्रा करने वाले हम लोगों का भी यह सनातन धर्म है।।५०।।

इधर बीच शोकसन्तप्त हो रहे गोकर्ण उस द्वीप में सुख से रह रहा था। फिर भी माता-पिता के बारे में शुक से कहा—।।५१।।

मन्त्ररहित होकर शुक ने अपने उस पिता समान वणिक् पुत्र गोकर्ण से यह कहा कि मैं छोटे शरीर का पक्षी हूँ, इससे आपको ले जाने में असमर्थ हूँ।।५२।।

परन्तु मैं इस जलपूर्ण समुद्र का पार कर मथुरा की ओर जा रहा हूँ और आपके माता-पिता आदि को आपका और उनका आपको सन्देश कह सकूँगा।।५३।।

मैं अपने ही उस पोत में आरुढ़ होकर प्रतिनिधि के रूप में जा रहा हूँ। आज्ञा दीजिए। फिर गोकर्ण ने भी कहा कि 'अच्छा' जाओ।।५४।।

हे पुत्र! तुम मथुरा जाकर मेरी यह दशा मेरे माता-पिता को बतलाओ। तुम्हारे विना मैं नहीं रह सकता, अतः शीघ्र आ जाना।।५५।।

'ऐसा ही हो' इस प्रकार कह कर वह श्रेष्ठ पक्षी उस पोत पर बैठ गया। फिर उचित अवसर पर मथुरा पहुँच कर उसने वणिक् के माता-पिता को सब समाचार दे दिया।।५६।।

इस प्रकार उसे विपरीत दशा में फँसा हुआ सुनकर उन सबने अपने हृदय में उसे मरा हुआ ही समझ लिया। बहुत देर तक रोने के बाद उन्होंने शुक पर पुत्रवत् स्नेह करना प्रारम्भ कर दिया।।५७।।

अस्माकं जीवनार्थाय त्वया कार्यं विहङ्गम। कथाभिरनुकूलाभिर्धर्मदर्शिभिरेव च॥५८॥
शुकेन पञ्जरस्थेन कथालापेन विद्यया। पुत्रशोकाभिसंतप्तौ तथैवाश्वास्य दुःखितौ॥५९॥
अथ सार्थः समायातो रत्नपूर्णो यथोदधिः। वसुकर्णस्य पुत्रार्थमकरोत् स जनो महान्॥६०॥
सर्वैर्विंशतिसंख्याकैरेकैकेन समुद्रजैः। रत्नैः समार्च्चितोऽत्यर्थं पर्वतं कुसुमोत्करैः॥६१॥
प्रसाद्य सर्वे संपूज्य प्रेषितास्ते गृहं ययुः। एवं ते न्यवसंस्तत्र यत्तत्कालं सुखेन तु।
शुश्रूषमाणास्तं वैश्यं यथा स्वपितरं तथा॥६२॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे एकोनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१६९॥
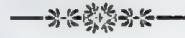
हे पक्षि! हम सबों के जीवन हेतु तुम धर्मयुक्त अनुकूल कथाओं से हमारा मन बहलाओ।।५८।।

फिर पञ्जरस्थ शुक ने कथा सुनाकर और अपनी विद्या द्वारा पुत्रशोक से दुःखी उन दोनों को आश्वस्त किया।।५९।।

फिर रत्नपूर्ण सागर के समान उस जलयान के व्यापारी दल भी आ पहुँचा। वसुकर्ण के पुत्र हेतु उस महान् दल ने रत्नों का बँटवारा किया।।६०।।

इस प्रकार उस बीस सदस्यों वाले दल के समस्त जनों ने एक-एक समुद्र के रत्न से तथा पुष्प मालाओं द्वारा पर्वत का भलीभाँति पूजन किया। फिर पूजा और स्तुति करने के बाद जाने की आज्ञा पाकर वे सभी अपने घर गये।।६१।।

फिर वे सब लोग अपने ही पिता के समान उस वणिक् गोकर्ण के माता-पिता की सेवा करते हुए, उस समय वहाँ सुखपूर्वक निवास करने लगे।।६२।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में मथुरा माहात्म्य इसमें गोकर्णोपाख्यान नामक एक सौ सत्तरवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१७०॥

सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

अथ मथुरामाहात्म्ये-आराम-वाटिकानिर्माणकथनम्

श्रीवराह उवाच

गोकर्णस्तु तथा चक्रे तस्मिन्नायतने शुभे। प्रथमेऽह्नि यथा कृत्यं नित्यं वर्षत्रयोदश॥१॥
ता देव्यो नृत्यगीतेषु कुशलाश्चागता निशि। सुरूपाश्च स्वलंकारा रमयन्ति दिने दिने।
गोकर्णः सर्वभावेन गृहं विस्मृतवानसौ॥२॥
अथैकदा स गोकर्णस्ता देव्यश्च हतौजसः। विवर्णवदना दीना भग्नालंकारवाससः॥३॥
हीनाङ्गा लुञ्चितशिरः केशपक्षनखादयः। दृष्यन्ते विकृताकाराः सव्रणा रुधिरस्त्रवाः॥४॥
ता दृष्ट्वाऽतीवदुःखार्त्ताश्चक्रे मनसि वेदनाम्। अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गो नैव च नैव च।
मम सङ्गादिमा देव्यो दशां च दशमीं गताः॥५॥
एवं ज्ञात्वा स पप्रच्छ तासां रूपविपर्ययम्। कथयध्वं महाभागाः किमेतद् रूपव्यत्ययम्॥६॥

देव्य ऊचुः

अप्रष्टव्यं महाभाग दैवं सर्वेषु कारणम्। कालात्मकंः स भगवान् भुज्यते स्वकृतं यतः॥७॥

अध्याय–१७०

मथुरा माहात्म्य–गोकर्णोख्यान, आराम-वाटिका आरोपण फल

श्री भगवान् वराह ने कहा कि गोकर्ण इस तरह उस शुभ मन्दिर में तेरह वर्षों तक नित्य पहले दिन की ही तरह कर्म करता हुआ निवास करता रहा।।१।।

फिर वे सुन्दरी देवियाँ, जो सुन्दर अलङ्करणों से सम्पन्न और नृत्य-गीत में कुशल थीं, प्रतिदिन रात्रि में वहाँ आ जाया करती थीं। इस तरह वह गोकर्ण पूर्णरूप से अपने गृह को भूल गया।।२।।

तदनन्तर इस क्रम में एक दिन उस गोकर्ण ने देखा कि वे सुन्दरी देवियाँ ओजहीन हो गई हैं। उन सब के मुख कान्ति से रहित तथा उन सब के आभूषण भी टूटे हुए तथा उन सब के वस्त्र भी फटे-चिटे हुए थे।।३।।

फिर वे सब अङ्गरहिता, लुञ्जिता शिर वाली और नख-केश आदि से हीन हो गई थी। उन सबका आकार विकृत और रक्त बहते हुए से व्रण युक्त दीख रहा था।।४।।

इस प्रकार उन सबको अत्यन्त दुःख पीड़ित देख कर उस गोकर्ण ने अपने मन में अत्यन्त खेद किया। फिर उसने सोचा कि अपुत्र की गति नहीं होती और स्वर्ग तो उन्हें नहीं ही मिल पाता है। मेरे ही संग-साथ के कारण ये सब देवियाँ मृतक के समान हो गयी, प्रतीत होता है।।५।।

ये सब विचार करते हुए उसने उन देवियों से उनके रूप विकार के कारण को पूछ दिया। हे महाभागे! मुझे यह बतलाओं कि यह आप सबके रूप विकार का रहस्य क्या है?।।६।।

उन देवियों ने कहा कि हे महाभाग! ये सब पूछने योग्य नहीं है। प्रत्येक घटना में दैव कारण हुआ करते हैं। वे भगवान् कालस्वरूप हैं। अतः अपना किया जीव को भोगना ही पड़ता है।।७।।

स एव नित्यकालं च पृच्छति स्म तदुत्तरम्। दुखार्त्तस्य सुदीनस्य न जल्पन्त्यतिदुःखिताः॥८॥
निश्चयार्थं पुनः सोऽथ गोकर्णस्ताः प्रणम्य च। पृच्छते ग्रहरूपेण निश्चयं विन्दते यथा॥९॥
यदि गोप्यं ममार्त्तस्य वैरूप्यं कथयिष्यथ। अगाधे दुस्तरे प्राणांस्त्यक्ष्याम्यद्य सुदुःखितः॥१०॥
एवमुक्ते तदा तासां मध्ये ज्येष्ठाऽब्रवीदिदम्। दुःखं तस्य समाख्येयं यो विनाशयते रुजम्॥११॥
शृणु वत्स वदिष्येहं विरूपकरणं यथा। अस्माकं च समुत्पन्नमेकचित्तोऽवधारय॥१२॥
आस्ते मधुपुरी रम्या नृणां मुक्तिप्रदायिनी। अयोध्याधिपतिर्वीरश्चतुरङ्गबलान्वितः।
चातुर्मास्यां तीर्थसेवी संगतो भक्तिपूर्वकम्॥१३॥
तत्र देवस्य चागारं विष्णोः पञ्चसमन्वितम्। आरामवाटिकाः शुभ्राः प्राकारवरवेष्टिताः।
कूपप्रावर्त्तकोपेताः पुष्पजात्यो बहूनि च॥१४॥
फलवन्तो द्रुमास्तस्यां सर्वर्तुसु मनोहराः। तस्याभ्याशे स राजर्षिश्चकारावासमुत्तमम्॥१५॥
सेवकैर्नाशितं सर्वमारामं सफलद्रुमम्। प्राकारपरिखा चैव स्थण्डिलप्रतिमं यथा॥१६॥
कृतं निवार्यमाणैस्तैः पापबुद्धिसमाश्रितैः। कीर्त्तयस्तस्य तत् श्रेष्ठं सोऽपि दैववशं गतः।
पञ्जरस्थो यथा सिंहः कोऽस्मांस्त्राता भवेदिति॥१७॥

वह गोकर्ण इस तरह से नित्य प्रति उनसे उत्तर जानना चाहा करता था। लेकिन अत्यन्त दुःख युक्ता देवियां अत्यन्त दीन और दुःखार्त्त उस वणिक् को कुछ नहीं बतलाया करती थी।।८।।

फिर इस बात को जानने हेतु गोकर्ण उनको प्रणाम कर आग्रह के साथ उनसे पूछा, जिससे उसका वास्तविक समाधान प्राप्त हो सके।।९।।

उसने कहा कि अब यदि तुम सब मुझे अपने रूप विकार का गुह्य कारण नहीं बतलाती हो, तो मैं अत्यन्त दुःखी होकर इस दुस्तर सागर में अपना प्राण विसर्जित कर दूँगा।।१०।।

इस प्रकार से कहे जाने पर उनमें सबसे श्रेष्ठ वरिष्ठ देवी ने यह कहा कि दुःख उससे कहना उचित है, जो उस दुःख रूपी रोग को दूर कर सकता हो।।११।।

हे वत्स! सुनो। हम सब का स्वरूप जिस कारण विकृत हुआ है, उसे कहती हूँ, तुम एकाग्र होकर उसे सुनो—।।१२।।

मनुष्यों को मुक्ति प्रदान करने वाली एक रमणीय नगरी मधुपुरी है। लेकिन अयोध्या का वीर राजा चतुरङ्गिणी सेना के सहित चातुर्मास्य में तीर्थ सेवन हेतु भक्तिपूर्वक वहाँ गया है।।१३।।

वहीं पर पञ्चायतन युक्त विष्णुदेव का एक मन्दिर और कूप, जलाशय और अनेक प्रकार के पुष्प वृक्षों से युक्त चहारदीवारी से घिरी हुई एक सुन्दर वाटिका थी।।१४।।

उस वाटिका के सभी ऋतुओं में फल प्रदान करने वाले मनोहर वृक्ष लगे थे। लेकिन उस श्रेष्ठराजा ने उस वटिका के समीप अपना उत्तम प्रवास स्थान बना लिया है।।१५।।

फिर उस राजा के सेवकों ने फल सम्पन्न वृक्षों सहित सम्पूर्ण वाटिका को ही नष्ट कर दिया। फिर उन लोगों ने चहारदीवारी और खाई को समतल भूमि के समान बना दिया।।१६।।

उस विघटन का निवारण किये जाने पर भी पापबुद्धि वाले उन सेवकों ने ये सब कर्म कर डाला। जिनकी

पिधायाञ्जलिना वक्त्रमश्रुक्लिन्नस्तनान्तरम्। रुरोद सुस्वरं दीना हा कष्टमिति जल्पती:॥१८॥
सर्वासां रुदतीनां च कुररीणामिव स्वनः। श्रूयते बहुधाकारो गोकर्णोऽप्यतिदुःखितः॥१९॥
एकैकस्यास्तु चक्रेऽसौ मूर्ध्ना पादाभिवन्दनम्।
प्राञ्जलिर्दीनिया वाचा सान्त्वयामास ताः शनैः॥२०॥
प्राप्तसंज्ञास्तु ताः सर्वा गोकर्णोऽप्याह सुस्वनः। भविता यदि तत्राहं राजानं तं निवारयम्॥२१॥
किं करिष्यामि दैवेन समर्थोऽप्यवसादितः। इत्युक्तमात्रे वचने ताः सर्वा लब्धचेतसः॥२२॥
ऐक्यभावेन ताः सर्वाः पप्रच्छुर्वणिजं प्रति।
कस्त्वं कथय कस्माच्च स्थनाद् यत्त्वमिहागतः॥२३॥

गोकर्ण उवाच

गोकर्णोऽहं सुचार्वास्याः सुकपोलाः सुलोचनाः। इदानीं मलिना भूता मम शोकविवर्द्धनाः॥२४॥
कथयध्वं ममात्मानमग्रतस्तदनन्तरम्। ज्येष्ठा सोवाच तस्याग्रे पुष्पजात्यः स्वलंकृताः।
वयमारामसंस्थाश्च स्वामिना परिपालिताः॥२५॥

वे कीर्त्तियाँ थीं, वे श्रेष्ठपुरुष भी विपरीत दैव के वश में इस प्रकार के हो गये, जैसे पिंजड़े में बन्द सिहं विवश हो जाता है। फिर हम सब का रक्षक अब कौन होगा?।।१७।।

ये सब कहते हुए वह देवी अपने अंजलि से ही अपना मुख ढँक कर आँसुओं से अपने वक्षःस्थल को भिगोती हुई तथा हा! बहुत कष्ट है।' इस तरह कहती हुई अत्यन्त स्पष्ट आवाज में दीन होकर रो पड़ी।।१८।।

कुकरी पक्षी के समान रोती हुई उन सभी की अनेक प्रकार की ध्वनि को सुनकर गोकर्ण अत्यन्त दुःखी-सा हो गया।।१९।।

फिर उसने अपना शीश झुकाकर प्रत्येक देवी के चरणों में प्रणाम किया। और हाथ जोड़कर दीनवाणी में उन सभी को धीरे-धीरे सात्वना प्रदान किया।।२०।।

फिर उन सब देवियों के सचेत और सतर्क होने पर गोकर्ण ने स्पष्ट शब्दों में यह कहा कि यदि मैं वहाँ होता, तो उस राजा को अवश्य रोक पाता।।२१।।

लेकिन इस समय मैं करूँ क्या? सक्षम होकर भी मैं दैववश निष्क्रिय बना दिया गया हूँ। इतना सब सुनते ही सभी देवियाँ सावधान हो गयी।।२२।।

फिर एकमत होकर उन सबने उस वणिक् से पूछ दिया कि बतलाओं कि तुम कौन हो और किस स्थान से यहाँ आये हो?।।२३।।

गोकर्ण ने कहा कि हे सुन्दर मुख, सुन्दर कपोल और सुन्दर-सी नेत्रों वाली देवियों! मैं गोकर्ण हूँ। इस समय आप सभी मलिन होकर मेरा दुःख बढ़ा रही हैं।।२४।।

अतः अब तुझे उसके बाद का अपना वृत्तान्त बतलाओ। ज्येष्ठा देवी ने उसके सम्मुख इस प्रकार कहना प्रारम्भ किया। हम सभी स्वामी द्वारा परिपालित अतिशोभा युक्त कई पुष्प जाति की हैं, जो उपरोक्त वाटिका में स्थित थीं।।२५।।

हृद्याः क्लिष्टाः पुष्पकलाः पुष्पैर्वृद्धि परां गताः। पूर्वं दृष्टाः सुरूपाश्च विपर्ययमथो शृणु॥२६॥
राजलोकैर्भञ्जिताश्च छेदनोन्मूलनेन च। पीडिता भृशमेतैः स्म तेनेदानीं सकल्मषाः॥२७॥
पुष्पमालाविहीनाश्च मूलस्कन्धावशेषिताः। एवंविधाश्च संभूता नष्टसंज्ञाः स्थिता वयम्॥२८॥
यो देवस्तत्र पाषाणमृत्तिकेष्टकयन्त्रितः। सोऽत्र सत्त्वमयः साक्षी तस्य पुण्यस्य कर्मणः॥२९॥
पुण्यं सोदकपूर्णाढ्यं तस्यारामस्य सेचकम्। सरश्चोत्पलपूर्णं च कलहंसैर्युतं सदा॥३०॥

ये च वृक्षाः फलोपेताः ते सुवर्णाः खगोत्तमाः।
रक्षां कुर्वन्ति सततं स्वामिनोऽमुत्र चेह च।
तस्य नाशाद् यथा नोऽत्र जातेयं च विरूपता॥३१॥

गोकर्ण उवाच

आरामकर्त्तुः किं चात्र फलं भवति यादृशम्। करणात् कूपदेवानां तस्य पुण्यफलं वद॥३२॥

ज्येष्ठा उवाच

इष्टापूर्त्तं द्विजातीनां प्रथमं धर्मसाधनम्। इष्टेन लभते स्वर्गं पूर्त्ते मोक्षं विनिर्दिशेत्॥३३॥
वापीकूपतडागानि देवतायतनानि च। पतितान्युद्धरेद् यस्तु स मूलफलमश्नुते॥३४॥

हम सब पूर्व में सुन्दर, पुष्ट, पुष्प सौन्दर्य सम्पन्न पुष्पों से अत्यन्त समृद्ध तथा सुन्दर स्वरूप की दिखने वाली थी। अब उसके विपरीत क्लिष्ट अवस्था के बारे में सुनो।।२६।।

इन राजसेवकों के तोड़ने, काटने और उखाड़ने जैसे कृत्यों से हम सभी इस समय अत्यन्त पीड़ित तथा करुणापूर्ण अवस्था में हैं।।२७।।

इस प्रकार हम सभी पुष्पों से रहित हो गयी हैं। अब केवल हम सबका मूल और स्कन्ध ही शेष बचा है। इस तरह से घटित हो जाने से हम सभी निर्जीव-सी हो गयी हैं।।२८।।

जो देव वहाँ पत्थर और मिट्टी की ईटों से जुड़े हुए थे, वे ही चेतन स्वरूप देव यहाँ उस पुण्यकर्मा हमारे स्वामी के कार्य के साक्षी हैं।।२९।।

उस वाटिका को सींचा जाने वाला पवित्र जल से पूर्ण कमलों से शोभायुक्त और सदा सुन्दर हंसों से युक्त रहने वाला यह सरोवर है।।३०।।

फिर वहाँ जो सुन्दर फल वाले वृक्ष थे, वे ही यहा हैं तथा सुन्दर रंग के जो पक्षी वहाँ निरन्तर स्वामी की रक्षा करते थे, वे ही यहाँ भी करते हम। उन स्वामी का नाश हो जाने से हमारी यह विकृत अवस्था हुई है।।३१।।

फिर गोकर्ण ने कहा कि अच्छा, उद्यान बनवाने और कूप, देव मन्दिर आदि बनवाने का साधारण और विशेष पुण्य फल है, वे हमें बतलाओ।।३२।।

इस पर ज्येष्ठा देवी ने कहा कि इष्टापूर्त्त द्विजातियों का प्रथम धर्म साधन है। इष्ट याने यज्ञ करने से स्वर्ग प्राप्त होता है तथा पूर्त्त अर्थात् कूप, बगीचा इत्यादि का निर्माण करने से मोक्ष होता है।।३३।।

जो कोई जन नष्ट हो रही बावली, कूप, तालाब, देवमन्दिर आदि का जीर्णाद्धार करवाता है, वे मूल रूप से उसको बनवाने जैसा ही फल प्राप्त करते हैं।।३४।।

भूमिदानेन ये लोका गोदानेन च कीर्त्तिताः। ते लोकाः प्राप्यते पुंभिः पादपानां प्ररोपणे॥३५॥
अश्वत्थमेकं पिचुमन्दमेकं न्यग्रोधमेकं श पुष्पजातीः।
द्वे द्वे तथा दाडिममातुलिङ्गे पञ्चाम्रवापी नरकं न याति॥३६॥
यथा सुपुत्रः कुलमुद्धरेद्धि यथाऽतिकृत्स्नान्नियमप्रयत्नात्।
तथा प्ररोपाः फलपुष्पभूताः स्वं स्वामिनं नरकादुद्धरन्ति॥३७॥

गोकर्ण उवाच

इन्धनार्थं यदा नीतमग्निहोत्रं तदुच्यते। छायाविश्रामपथिकैः पक्षिणां निलयेन च॥३८॥
पत्रमूलत्वादींश्च ओषधार्थं तु देहिनाम्। उपकुर्वन्ति वृक्षस्य पञ्चयज्ञस्तदुच्यते॥३९॥
गृहकृत्यानि काष्ठानि क्षुद्रजन्तुगृहं तथा। सत्रनिर्वर्त्तनं प्रोक्तं भिक्षापात्रैः समाकृताः॥४०॥
फलन्ति वत्सरे मध्ये द्वौ वारौ शकुनादयः। सांवत्सरं पितुर्मातुरुपकारं फलैः कृतम्।
एवं पुत्रसमा रोपा एवं तत्त्वविदो विदुः॥४१॥

श्रीवराह उवाच

एवमुक्तस्तया देव्या मालत्या पुष्पजात्यया। हा कष्टं कथमित्येवं मुमोह च पपात च॥४२॥
ताभिराश्वासितो धीमान् ससंज्ञो वारिणोक्षितः। आत्मानं कथयस्माकं यस्माद्यस्त्वमुपागतः॥४३॥

भूमि और गौ का दान करने से जो पुण्यलोक कहे गये हैं, वे सब लोक मनुष्यों को वृक्षारोपण से प्राप्त हो जाते हैं।।३५।।

एक पीपल, एक नीम, एक वटवृक्ष, दस पुष्प वाले वृक्ष, दो अनार, दो नींबू का वृक्ष लगाने वाला और पाँच आम्रवृक्षों के साथ वापी बनवाने वाले जन को नरक में नहीं जाया करते।।३६।।

जिस प्रकार सुपुत्र कुल का उद्धार करने वाला होता है, उसी प्रकार कठिन नियम और प्रयत्न से लगाये गये फल और फूल के पेड़ अपने स्वामी का नरक से उद्धार करते हैं।।३७।।

गोकर्ण ने कहा कि फिर उन वृक्षों का काष्ठ आदि इन्धन हेतु ले जाने पर उस वृक्ष का अग्निहोत्र कहा जाता है। पथिकों को अपनी छया में विश्राम देने, पक्षियों को अपनी शाखाओं पर आवास प्रदान करने और प्राणियों के औषधि हेतु अपना पत्र, मूल, छाल आदि प्रदान करने से वृक्ष जो उपकार करते हैं, यह उसका पञ्चयज्ञ कहा जाता है।।३८-३९।।

फिर गृहादि कार्य हेतु काष्ठ प्रदान करने तथा क्षुद्र जन्तुओं को अपने कोहरादि में गृह बनाने की सुविधा प्रदान करने से उनका सत्र चलाने का कार्य पूर्ण हुआ करता है। और यह भिक्षापात्रों के समान है।।४०।।

वे वृक्ष प्रत्येक वर्ष दो बार फल प्रदान किया करते हैं, जिससे पक्षी आदि का भरण-पोषण हुआ करता है। वृक्ष प्रत्येक वर्ष अपने फलों से माता-पिता स्वरूप अपने लगाने वाले का उपकार भी करते हैं। तत्त्वज्ञों का यह कहना हैकि मनुष्य द्वारा लगाये गये वृक्ष उसके पुत्रतुल्य ही हुआ करते हैं।।४१।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि मालती पुष्प की जाति वाली दस देवी के इस प्रकार से कहने पर 'हा' यह कष्ट कैसा है? इस प्रकार कहे जाने पर वह वणिक् गिर पड़ा और मूर्च्छित-सा हो गया।।४२।।

उनने उस बुद्धिमान् वणिक् को आश्वासन देकर और जल छिड़ककर सचेष्ट किया। फिर उन्होंने उससे कहा कि तुम अपने विषय में यह बतलाओ कि तुम कहाँ से आये हुए हो?।।४३।।

गोकर्ण उवाच

वृद्धौ च मातापितरौ साध्वीभार्याचतुष्टयम्। मथुरायां मम चैतदुद्यानं देवतागृहम्।।४४।।
यदि तत्र गतश्चाहं सपिता राजसन्निधौ। इमामापदमापन्ना न यूयं भविता क्वचित्।।४५।।
ज्येष्ठा प्रोवाच नेष्यामो यदि ते रोचतेऽनघ। अद्यैव मथुरां देवीं प्रवेक्ष्यामोऽधिगम्यताम्।।४६।।
विमानप्रतिमाकारं यानमारुह्य सत्वरः। दिव्यानीमानि रत्नानि भूषणानि फलानि च।
गृह्णीष्वोपायनं राज्ञे तस्मै त्वं देह्यनर्घकम्।।४७।।
आरुह्य स तथेत्युक्त्वा नमस्कृत्य हरिं च ताः। उत्पपात ततः स्थानाद् यत्र राजा व्यवस्थितः।।४८।।
राज्ञे निवेदयामास रत्नानि सुबहूनि च। स्वर्णपात्री कृता पूर्णा राजा वचनमब्रवीत्।।४९।।
स्वागतं ते महाभाग परिपूज्य सुमान्य च। अर्द्धासने कृतः प्रीत्या रत्नदो धनदो यथा।।५०।।
अस्मात् स्थानादिदानीं च महाराजाय सर्पताम्।
आश्चर्यं दर्शयिष्यामि कथयिष्यामि चाभि भोः।।५१।।
स तथेति प्रतिश्रुत्य सेनापतिमुवाच ह। मुहूर्त्तमर्धं चान्यत्र यथा सैन्यं प्रयाति मे।।५२।।
क्षिप्रं त्वं प्रतिपद्यस्व न कालोऽत्यभ्यगाद् यथा। कृतं येन तथा सर्वं यथा राज्ञा प्रभाषितम्।।५३।।

गोकर्ण ने कहा कि मेरे माता-पिता वृद्ध हैं और मेरी चार पत्नियाँ हैं। मथुरा में मेरा ही यह उद्यान और देवालय है।।४४।।

फिर यदि मैं किसी तरह पिता के साथ राजा के पास जा सकूँ, तो तुम लोगों को इस प्रकार का कष्ट नहीं हो सकेगा।।४५।।

फिर ज्येष्ठा देवी ने कहा कि हे निष्पाप! यदि तुम यह चाहते हो, तो हम तुम्हें वहाँ पर लेकर चलेंगी। आओ आज ही तुमको देवी स्वरूपा मथुरा पुरी में पहुँचा दूँ।।४६।।

अतः शीघ्र ही तुम इस विमान के समान यान पर चढ़ जाओ और राज्य को भेंट करने हेतु इन दिव्य रत्नों, आभूषणों और फलों को भी ले लो। उन्हें यह अमूल्य भेंट प्रदान करना।।४७।।

'ऐसा ही होगा' यह कहते हुए वह उस विमान पर सवार हुआ और हरि तथा उन देवियों को प्रणाम कर उस स्थान से जहाँ राजा था, वहाँ के लिए उड़ा।।४८।।

वहाँ पहुँच कर उसने राजा के बहुत सारा रत्न भेंट किया। राजा ने समस्त रत्नों को स्वर्ण के पात्र में भरवा कर कहा—।।४९।।

हे महाभाग! तुम्हारा स्वागत है। पिर उसका आदर सहित सत्कार करने के पश्चात् प्रीतिपूर्वक रत्न और धन दाता कुबेर तुल्य उसे अपने आधे आसन पर बैठा लिया।।५०।।

फिर उसने कहा कि इस स्थान से मैं राजा को आश्चर्य दिखलाऊँगा और बतलाऊँगा। अतः आप लोग हट जायँ।।५१।।

फिर उस राजा ने वैसा ही होना स्वीकार कर सेनापति से कहा कि मेरी सेना के साथ आधे महुर्त्त में अन्यत्र चले जाओ।।५२।।

तुम लोग शीघ्र ही ऐसा करो, जिससे अधिक समय नहीं व्यतीत होसके। राजा ने जैसा कहा उस सेनापति ने सब कार्य वैसे-वैसे ही कर दिया।।५३।।

ता देव्यो दिव्यरूपाश्च विमानकृतरूपकाः।
साधु साध्विति गोकर्णं प्रशशंसुः पुनः पुनः॥५४॥
राज्ञश्चान्तःपुरं चैव प्रत्यक्षं गोत्रनिःस्वनाः। वरं दत्त्वा यथाकामं स्वस्तीत्युक्त्वा दिवं ययुः॥५५॥
गोकर्णस्तु तदाचक्षे तत्सर्वं नृपतेः सुखी। साद्यं तमात्मचरितं पूर्त्तधर्मस्य यत्फलम्॥५६॥
राज्ञा तस्मै प्रदत्तानि ग्रामाणि च पुराणि च। वस्त्राणि गजवाजीनि यच्चान्यदपि तद्वसु॥५७॥
आश्चर्यं परमं धर्ममारामस्य महत्फलम्। श्रुत्वा सर्वं चकारैवं सार्वभौमो महीपतिः॥५८॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः॥

फिर तो विमान रूप धारिणी देवियों ने 'साधु-साधु' कहते हुए वारम्वार गोकर्ण की प्रशंसा करने लगीं॥५४॥

फिर राजा और उस राजा के अन्तःपुर की स्त्रियों और उसके पुत्र पौत्रादि परिवार के लोगों को प्रत्यक्ष शब्द द्वारा वर प्रदान कर तथा' तुम सभी का कल्याण हो' इस प्रकार कहकर वे सभी देवियाँ वहाँ से स्वर्ग को चली गईं॥५५॥

फिर गोकर्ण ने सुख के साथ उस राजा के प्रारम्भ से अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त तथा पूर्त्त धर्म का फल कह सुनाया॥५६॥

राजा ने उसे अनेक ग्राम, पुर, वस्त्र , हाथी, घोड़े अन्य सब वस्तुऐं आदि प्रदान की॥५७॥

इस प्रकार परम आश्चर्य युक्त धन और उद्यान के महाफल को सुनकर सार्वभौम राजा ने फिर सब वैसा ही किया॥५८॥

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में मथुरा माहात्म्य—गोकर्णोख्यान, आराम-वाटिका आरोपण फल नामक एक सौ एकहत्तरवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१७१॥

❖❖❖

एकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

अथ मथुरामाहात्म्ये गोकर्णशुकयोर्दिव्योकारोहणम्

श्रीवराह उवाच

तत्र स्थित्वा यथान्यायं गोकर्णः सर्वमण्डलम्। शुकं च मातापितरौ साध्वीभार्याचतुष्टयम्।
संमान्य पूजयामास यथविभवशक्तितः॥१॥
लोकैस्तत्र महोद्यानं मथुरावासिभिः कृतम्। अविघ्नराजस्य महं द्विजेभ्यो बहुदक्षिणम्॥२॥
भक्ष्यं भोज्यं च दानं च दीनानाथजनस्य च। गीतवादित्रमाङ्गल्यं पुत्रवृद्धौ यथोचितम्।
तत्सर्वं कृतवाँल्लोको गोकर्णस्य महात्मनः॥३॥
एकैकं च परिष्वज्य प्रणिपत्य यथाक्रमम्। मातापित्रोः प्रणम्याथ शिरसा पादवन्दनम्।
शुकं हृदि समालभ्य प्ररुरोद जजल्प च॥४॥
यस्य प्रसादाज्जीवश्च धर्मश्चानुत्तमा गतिः। विनष्टस्य पुनः प्राप्तो राज्यलाभः सुपुष्कलः।
शुकपुत्रान्मया प्राप्तमिह लोके परत्र च॥५॥
एवं वसन् सुखी तत्र गोकर्णः सह बन्धुभिः। रमयामास सुचिरं भुञ्जन् भोगपुरःसरः॥६॥
शुकनाम्ना कृतं तेन शिवस्यायतनं महत्। शुकेश्वरं प्रतिष्ठाप्य दिव्यं सत्रं चकार ह॥७॥

अध्याय–१७१

मथुरा माहात्म्य–गोकर्ण सहित शुक का दिव्यलोक गमन

श्री भगवान् वराह ने कहा कि वहाँ मथुरा में रहते हुए गोकर्ण ने सभी अपने आश्रितों के समूह, माता-पिता और चारों पत्नियों का यथायोग्य अपने वैभव के अनुरूप सम्मान और आदर किया।।१।।

फिर वहाँ मथुरा वासियों ने महान् उद्यान बनवाया। अब राजकीय प्रभाव से होने वाला कोई विघ्न भी नहीं रहा। फिर उसने ब्राह्मणों को बहुत दक्षिणा दी।।२।।

फिर उसने दीन व अनाथ जनों को अन्न, भोजन, धनादि आदि का दान भी किया। फिर महात्मा गोकर्ण के पुत्र की वृद्धि हेतु लोगों ने यथोचित विधि से गाना-बजाना और अन्यान्य माङ्गलिक अनुष्ठान भी किया।।३।।

फिर उस गोकर्ण ने प्रत्येक को क्रम के अनुसार आलिङ्गन कर उन्हें प्रणाम किया। फिर माता-पिता को प्रणाम कर उसने शिर से उनके चरणों की वन्दना की। फिर शुक को हृदय से लगाकर वह रोने और प्रलाप करने लगा।।४।।

मैंने इस शुक रूपी अपने पुत्र की कृपा से यहाँ तथा अन्यत्र जीवन धर्म और श्रेष्ठ गति प्राप्त की। इसी के कारण मुझ नष्ट हुए को विशाल राज्य पुनः प्राप्त हो गया।।५।।

इस तरह गोकर्ण ने अपने बाँधवों के सहित वहाँ सुखपूर्वक रहते हुए और दीर्घकाल तक अनेक सुख भोगों का उपभोग करते हुए विहार किया।।६।।

फिर उसने शुक के नाम से एक महान् शिवालय बनवाया और उसमें शिव की प्रतिष्ठा कर महान् यज्ञ किया।।७।।

ब्राह्मणानां शते द्वे तु मिष्ठान्नवरभोजनम्। शुकसत्रमिति ख्यातं मृतो मुक्तिवाप सः।
विमानवरमारुह्य स्वर्गलोकं गतः शुकः॥८॥
शुकप्रदाने गोकर्णः फलं स्नानस्य संगमात्। श्राद्धं सुवर्णगोदानं कृत्वा तस्मै ददौ च सः॥९॥
शबरस्य सभार्यस्य तेन स्वर्गं गतस्य ह। शुकोदरेण सहितो विमानवरमास्थितः॥१०॥
एतत् ते कथितं सर्वं मथुरायां महत्फलम्। सरस्वतीसंगमस्य गोकर्णस्य शिवस्य च॥११॥
गोकर्णस्य तु संतानमक्षयं धर्मतोऽव्ययम्। संभूतं स सुखं भुक्त्वा ततो मोक्षमवाप्नुयात्॥१२॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे एकसप्तत्यधिकशततमोतऽतध्यायः॥१७१॥

फिर उसके द्वारा दो सौ ब्राह्मणों को मिष्ठान्न का श्रेष्ठ भोजन कराया गया। यह क्षेत्र शुकसत्र के नाम से सुख्यात हुआ। मरने के उपरान्त वह मोक्ष को प्राप्त किया। शुक भी श्रेष्ठ विमान पर चढ़कर स्वर्ग गया।।८।।

उस गोकर्ण के द्वारा उस शबर और शबरी, जिनसे शुक को प्राप्त किया था, के लिए संगम में स्नान और श्राद्ध कर उस शबर के लिए स्वर्ण का गोदान किया।।९।।

फिर उस शुकोदर के साथ ही भार्या सहित शबर भी श्रेष्ठ विमान पर चढ़कर स्वर्ग को चला गय।।१०।।

इस प्रकार मैंने तुम्हें मथुरा में स्थित सरस्वती संगम तथा गोकर्णेश्वर दर्शन का महान् फल कह सुनाया है।।११।।

धर्म वश गोकर्ण को अक्षय और अविनश्वर सन्तान परम्परा प्राप्त हुई। फिर वह सुख भोग कर वह इस प्रकार मुक्त भी हो सका।।१२।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में मथुरा माहात्म्य—गोकर्ण सहित शुक का दिव्यलोक गमन नामक एक सौ एकहत्तरवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१७१॥

❖❖❖

द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

अथ मथुरामाहात्म्ये सङ्गमवर्णनम्

श्रीवराह उवाच

पुनरन्यत् प्रवक्ष्यामि महापातकनाशनम्। संगमस्य प्रभावं हि पापिनामपि मुक्तिदम्॥१॥
अत्रैव श्रूयते पूर्वं ब्राह्मणः संशितव्रतः। महानामेति विख्यातः स्थितोऽसौ वनमाश्रितः॥२॥
स्वाध्याययुक्तो होमे च नित्ययुक्तः स योगवित्।
जपहोमपरो नित्यं स्वकालं क्षपते च सः॥३॥
एवं कर्माणि कुर्वन् स ब्रह्मलोकजिगीषया। बहून्यब्दान्यतीतानि ब्राह्मणस्य वने तदा॥४॥
तस्य बुद्धिरियं जाता तीर्थाभिगमनं प्रति। पुण्यतीर्थजलैरेतत् क्षालयामि कलेवरम्॥५॥
प्रयातो विधिवत् साक्षात् सूर्यस्योदयन प्रति। असिकुण्डादितः कृत्वा दक्षिणं कोटिमं ततः॥६॥
तथा चोत्तरकोट्यन्तं तथान्यं माथुरं च यत्। क्रमेण सर्वतीर्थानि स्नात्वाऽन्यान्यपि पुष्करम्।
गत्वा सर्वाणि तीर्थानि स्नात्वा पूतो भवाम्यहम्॥७॥
इति कृत्वा मथुराया निर्जगाम स वै द्विजः। कृतपूजानमस्कार अध्वानं प्रत्यपद्यत॥८॥

अध्याय-१७२

मथुरा माहात्म्य-संगम माहात्म्य में महानाम ब्राह्मण और पञ्चव्रत, वामन पूजा, श्रावण द्वादशी

श्री भगवान् वराह ने कहा कि मैं पुनः पापियों को भी मुक्ति प्रदान करने वाले और महापातकों को नष्ट करने वाले संगम के दूसरे-प्रभाव का उल्लेख कर रहा हूँ।।१।।

इस प्रसंग में इस प्रकार कहा जाता है कि एक समय कठोर व्रत करने वाले 'महानाम' नाम से ख्यात एक ब्राह्मण किसी वन में रहा करता था।।२।।

वह ब्राह्मण योग का ज्ञाता, स्वाध्यायशील और नित्य हवन करने वाला था। वह नित्य जप और हवन करते हुए अपना समय बीताया करता था।।३।।

इस प्रकार वन में कर्म करते हुए ब्रह्मलोक प्रप्ति की कामना से उस ब्राह्मण के बहुत वर्ष व्यतीत हो गये।।४।।

फिर उस ब्राह्मण को तीर्थों में जाने का विचार उत्पन्न हुआ। उसने उस समय यह सोचा कि पवित्र तीर्थों के जल से इस शरीर को शुद्ध किया जाय।।।५।।

उसके लिए मैं साक्षात् सूर्योदय काल में इस असिकुण्ड से प्रस्थान कर दक्षिण कोटि पर्यन्त जाऊँगा।।६।।

फिर वहाँ से उत्तर कोटि तक तथा मथुरा के अन्य जो तीर्थ हैं, वहाँ भी जाऊँगा। क्रम से सभी तीर्थों एवं अन्यान्य कुण्डों में भी जाकर स्नान करने पर मैं अवश्य पवित्र हो जाऊँगा।।७।।

इस प्रकार से सुचिन्तित ब्राह्मण मथुरा की दिशा में चल पड़ा। पूजा और नमस्कार कर वह मार्ग पर चल पड़ा।।८।।

अध्वप्रपन्नो ददृशे पञ्चप्रेतान् सुभीषणान्। अरण्ये कण्टकिवृते निर्जने शब्दवर्जिते॥९॥
तान् दृष्ट्व विकृताकारानतितीव्रभयङ्करान्। ईषदुचस्तहृदयोऽतितिष्ठदुन्मील्य चक्षुषी॥१०॥
आलम्ब्य स ततो धैर्यं त्रासमुत्सृज्य दूरतः। पप्रच्छ मधुरालापः के यूयं रौद्रमूर्त्तयः॥११॥
भवन्तः कर्मणा केन दुष्कृतेन भयावहाः। एकस्थानात् सदा यूयं प्रस्थिताः कुत्र वा सदा॥१२॥

प्रेता ऊचुः

क्षुत्पिपासातुरा नित्यं बहुदुःखसमन्विताः। हृतबुद्ध्या वयं सर्वे नष्टज्ञाना विचेतसः॥१३॥
न ज़ानीमो दिशं काञ्चिद् विदिशं वाऽपि चध्वनि।
नान्तरिक्षं महीं चापि जानीमो दिवसं तथा॥१४॥
यदेतद् दुःखमापन्नं सुखोदर्कफलं भवेत्। अप्रकाममिदं भाति भास्करोदयमेव च॥१५॥
अहं पर्युषितो नाम सूचीमुख अतः परम्। शीघ्रगो रोधकश्चैव पञ्चमो लेखकस्तथा॥१६॥

ब्राह्मण उवाच

प्रेतानां कर्मजातानां नाम्ना वै संभवः कुतः। किं तत्कारणमेतद्धि येन यूयं सनामकाः॥१७॥

प्रेत उवाच

अहं स्वादु सदाश्नामि दद्मि पर्युषितं द्विजे। एतत्कारणमुद्दिश्य नाम पुर्यषितं मम॥१८॥

मार्ग में चलते हुए उसने शब्द रहित निर्जन कण्टकाकीर्ण वन में अत्यन्त भयंकर पाँच प्रेतों को देखा।।९।।

विकृत आकार वाले अति उग्र और भयंकर स्वरूप वाले उनको देखकर वह हृदय में कुछ डरा और आँख खोलकर खड़ा हो गया।।१०।।

फिर भी ब्राह्मण धैर्य्य सहित भयरहित होकर मधुर शब्दों में पूछता है कि भयंकर स्वरूप वाले तुम लोग कौन हो?।।११।।

आप लोग अपने किस पापकर्म के कारण इस प्रकार के भयंकर स्वरूप वाले हुए हैं तथा एक स्थान से सदा कहाँ जाया करते हो?।।१२।।

प्रेतों ने कहा कि हम सब अत्यन्त भूख और प्यास से व्याकुल, अनेक दुःखों से पीड़ित, भ्रष्ट बुद्धि होने से ज्ञान रहित और विचार शून्य-से हैं।।१३।।

हम बस मार्ग की दिशा, विदिशा, अन्तरिक्ष, पृथ्वी , दिन-रात आदि को नहीं जानते। जो यह दुःख आ चुका है, वह भविष्य में सुखपूर्ण हो सकेगा, किन्तु सूर्योदय तक यह दुःख पूर्ण नहीं हो सकेगा।।१४-१५।।

वैसे मेरा नाम पर्युशित और दूसरे का नामसूची मुख है। इसी तरह तीसरा शीघ्रम, चौथा रोधक और पाँचवाँ लेखक नाम के हैं।।१६।।

ब्राह्मण ने कहा कि कर्मवश उत्पन्न होने वाले आप प्रेतों का नाम कैसे पड़ गया? किस कारण से आप लोग नाम युक्त हो गये।।१७।।

प्रेत ने कहा कि मैं सदा स्वयं ही स्वादिष्ट भोजन किया करता था और ब्राह्मणों को बासी पदार्थ दे दिया करता था। इस कारण मेरा नाम पर्यषित हुआ है।।१८।।

सूचिता बहवोऽनेन विप्राश्चान्नादिकाङ्क्षिणः। एतत्कारणमुद्दिश्य सूचीमुखमतः परम्॥१९॥
संप्रार्थितो द्विजेनैव शीघ्रं याति यतो हि सः। एतत्कारणमुद्दिश्य शीघ्रगस्तेन सोच्यते॥२०॥
एको गृहस्य मध्ये तु भुङ्क्ते द्विजभयेन हि। समारुह्योद्विग्नमना रोधकस्तेन चोच्यते॥२१॥

मौनेनापि स्थितो नित्यं याचितोऽपि लिखेन्महीम्।
अस्माकमपि पापिष्ठो लेखकस्तेन नाम वै॥२२॥

मदेन लेखको याति रोधकस्तु ह्यवाक्छिराः। शीघ्रगः पङ्गुतां प्राप्तः सूचीमुखमतः परम्॥२३॥
उषितः केवलग्रीवो लम्बोष्ठो बृहतोदरः। बृहद्वृषणशुष्काङ्गः पापादेव प्रजायते॥२४॥
एतत् ते सर्वमाख्यातमात्मवृत्तान्मसंभवम्। यदि ते श्रवणे श्रद्धा पृच्छ चान्यद् यदिच्छसि॥२५॥

ब्राह्मण उवाच

ये जीवा भुवि तिष्ठन्ति सर्वे चाहारजीविनः। युष्माकमपि चाहारं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः॥२६॥

प्रेता ऊचुः

शृणुष्वाहारमस्माकं सर्वभूतदयापर। यं श्रुत्वा निन्द्यसे नित्यं भूयो भूयश्च नित्यशः॥२७॥
श्लेष्ममूत्रपुरीषेण योजितानि समन्ततः। गृहाणि त्यक्तशौचानि प्रेता भुञ्जयन्ति तत्र वै॥२८॥

इसने अन्नादि की इच्छा वाले कई एक ब्राह्मणों को सूचित तो किया, पर आने पर उसे दिया नहीं। इसी कारण इसका नाम सूचीमुख पड़ गया है।।१९।।

चूँकि वह ब्राह्मण द्वारा प्रार्थना करने पर शीघ्र ही चला जाया करता था, इसलिए इसको शीघ्रम कहा जाता है।।२०।।

फिर ब्राह्मण के डर से उद्विग्न मन होकर वह अकेले घर के बीच में जाकर भोजन किया करता था। इसी कारण उसका नाम रोधक हुआ है।।२१।।

लेकिन किसी याचक द्वारा माँगे जाने पर यह मौन रहते हुए भूमि पर लिखने लग जाया करता है। इसीलिए हम लोगों में सर्वाधिक पापी इसका नाम -लेखक' पड़ा है।।२२।।

लेखक सदा मद में चलता है, रोधक का शिर नीचे रहता है। शीघ्रम पङ्गु है और इसके बाद सूचीमुख है। फिर पाप से ही यह उषित केवल ग्रीवा वाला, लम्बे ओष्ठ, बड़ा पेट, विशाल अण्डकोष और शुष्क अङ्ग वाला है।।२३-२४।।

इस प्रकार हमने अपनी उत्पत्ति के बारे तुमको सब वृत्तान्त बतला दिया है। यदि तुमको सुनने में श्रद्धा हो, तो तुम और जो कुछ चाहो, वे सब पूछ लो।।२५।।

ब्राह्मण ने कहा कि इस पृथ्वी पर समस्त जीव आहार-जीवी ही हैं। अतः मैं तुम लोगों के आहार के विषय में वास्तविक तथ्य जानना चाहता हूँ।।२६।।

प्रेत ने कहा कि हे सब जीवों पर दया करने वाले! हम सब का भोजन के बारे में सुनो, जिसे सुनकर तुम नित्य बारम्बार हम सब का निन्दा ही किया करोगे।।२७।।

प्रेत नित्य काल, मूल, मल आदि से युक्त और अपवित्र ग्रहों में भोजन करते हैं।।२८।।

बलिमन्त्रविहीनानि दानहीनानि यानि च। गुरवो नैव पूज्यन्ते स्त्रीजितानि गृहाणि च॥२९॥
यानि प्रकीर्णभाण्डानि प्रकीर्णोत्ऋछेषणानि च।
नित्यं च कलहो यत्र प्रेता भुञ्जन्ति तत्र वै॥३०॥
अपात्रे प्रतिदत्तानि विधिहीनानि यानि च। निन्दितानि द्विजातीनां जुगुप्सितकुलोद्भवे॥३१॥
जातानां विवाहितानां कर्मदुष्कृतकारिणाम्। तेभ्यो दत्तं तदस्माकमुपतिष्ठति भोजनम्।
एतत् पापरतं चान्यद् भोजनं दुष्टकर्मिणाम्॥३२॥
निर्विण्णाः प्रेतभावेन पृच्छामस्त्वां दृढव्रत। यथा न भवति प्रेतस्तथा ब्रूहि तपोधन॥३३॥

ब्राह्मण उवाच

एकरात्रत्रिरात्रेण कृच्छ्रचान्द्रायणादिभिः। व्रतैरभ्युद्धतः पूतो न प्रेतो जायते नरः॥३४॥
मिष्टान्नपांनदाता च सततं श्रद्धायान्वितः। यतीनां पूजको नित्यं न प्रेतो जायते नरः॥३५॥
त्रिरग्निः पञ्च चैकं वा प्रतिनित्यं तु पोषयेत्। सर्वभूतदयालुश्च न प्रेतो जायते नरः॥३६॥
देवतातिथिपूजासु गुरुपूजासु नितयशः। रतो वै पितृपूजायां न प्रेतो जायते नरः॥३७॥

जो घर पूजन और मन्त्र रहित तथा दान धर्म शून्य होते हैं, जहाँ गुरुजनों का आदर सम्मान नहीं होता तथा जिस घर के लोग स्त्रीजित होते हैं, जिस घर में बर्तन आदि इधर-उधर बिखरे रहे हैं तथा जूठा अस्त व्यस्त रहता है और जहाँ नित्य कलह होता रहता है, वहाँ प्रेत लोग भोजन किया करते हैं।।२९-३०।।

जो वस्तु अपात्र को किया गया हो, जो दान विधि हीन होते हैं तथा द्विजातियों के निन्दित कुल में उत्पन्न अथवा विवाहित जनों के साथ दुष्ट कर्म करने वालों को दिया जाता है, वह वस्तु हम सबको मिल जाया करते हैं। इस प्रकार यह और दुष्कर्मियों का अन्नाहार भी हमें मिल जाते हैं।।३१-३२।।

हे दृढ़व्रत! हम सब अपने प्रेतभाव से दुःखी होकर आपसे पूछते हैं। हे तपोधन! अतः आप हमें ऐसा उपाय बतलायें, जिससे जीव इस प्रेत योनि को प्राप्त ही न हों।।३३।।

ब्राह्मण ने कहा कि एक रात्र, त्रिरात्र, कृच्छ्र, चान्द्रायणादिव्रतों से उर्ध्व गति प्राप्त करने वाले पवित्र जन प्रेत नहीं होसकते।।३४।।

नित्य-निरन्तर श्रद्धावान् होकर मिष्ठान्न, पेय पदार्थों आदि का दान करने वाले और सन्यासियों की पूजा करने वाले जन प्रेत नहीं होते हैं।।३५।।

तीन प्रकार की अग्नियों अर्थात् मिष्ठान्न, पेय पदार्थों आदि का दान करने वाले और सन्यासियों की पूजा करने वाले जन प्रेत नहीं होते हैं।।३६।।

तीन प्रकार की अग्नियों अर्थात् गार्हस्थग्नि, आहवनीय और दक्षिणाग्नि का सेवन करने वाले, पाँच या एक विधवा, अनाथ जैसों के पोषण करने वाले और सब जीवों पर दया करने वाले जन कथमपि प्रेत नहीं हो सकते हैं।।३६।।

देवता, अतिथि, गुरु, पितर आदि की निरन्तर पूजा करने वाले और सब जीवों पर दया करने वाले जन कथमपि प्रेत नहीं हो सकते।।३६।।

देवता, अतिथि, गुरु, पितर आदि की निरन्तर पूजा करने वाले जन भी प्रेत नहीं हो सकते। जिस समय

शुक्लाङ्गारकसंयुक्ता चतुर्थी जायते यदा। श्रद्धया श्राद्धकृन्मर्त्यो न प्रेतो जायते नरः॥३८॥
जितक्रोधो ह्यमात्सर्यस्तृष्णासङ्गविवर्जितः। क्षमावान् दानशीलश्च न प्रेतो जायते नरः॥३९॥
एकादशीं सितां कृष्णां सप्तमीं वा चतुर्दशीम्। उपवासप्रियो नित्यं न स प्रेतोऽभिजायते॥४०॥
गां ब्राह्मणं च तीर्थानि पर्वतांश्च नदीस्तथा। देवांश्च वन्दते नित्यं न प्रेतो जायते हि सः॥४१॥

प्रेता ऊचुः

त्वत्तस्तच्छुतमस्माभिर्येन प्रेतो न जायते। प्रेतस्तु जायते केन तद्वद त्वं महामुने॥४२॥

विप्र उवाच

शूद्रान्ने तु भुक्तेन ब्राह्मणो म्रियते यदि। तेनैव ह्युदरस्थेन स प्रेतो जायते ध्रुवम्॥४३॥
पाषण्डाश्रमसंस्थश्च मद्यपः पारदारिकः। वृथा मांसरतो नित्यं स च प्रेतोऽभिजायते॥४४॥
देवस्वं ब्राह्मणस्वं च गुरुद्रव्यं हरेत् तु यः। कन्यां ददाति शुल्केन स च प्रेतोऽभिजायते॥४५॥
मातरं पितरं भ्रातॄन् भगिनीसुतमेव च। अदुष्टान् संत्यजेद् यस्तु स प्रेतो जायते नरः॥४६॥
अयाज्ययाजनाच्चैव याज्यानां च विवर्जनात्। रतो वै शूद्रसेवायां स प्रेतो जायते नरः॥४७॥

शुक्लपक्ष के मङ्गलवार को चतुर्थी तिथि के दिन श्रद्धापूर्वक श्राद्ध करने वाले जन कभी भी प्रेत नहीं हो सकते हैं।।३७-३८।।

क्रोध, ईर्ष्या, तृष्णा, आसक्ति से मुक्त, क्षमायुक्त, दानशील आदि गुण वाले जन कभी प्रेत नहीं हो सकते।।३९।।

फिर जो जन शुक्ल और कृष्ण पक्षों की एकादशी, सप्तमी या चतुर्थी तिथि के दिन उपवास करते हैं। वे जन कभी भी प्रेत नहीं होते।।४०।।

जो जन नित्य गाय, ब्राह्मण, तीर्थों, पर्वतों, नदियों, देवों आदि की स्तुति करते हैं, वे जन भी कभी प्रेत नहीं होते।।४१।।

प्रेतों ने कहा कि हे महामुने! हम सब आपसे यह तो सुन लिया कि कोई भी जन किस प्रकार से प्रेत नहीं होत; किन्तु कैसे-कैसे जन प्रेत हो सकते हैं, अब आप मुझे ये सब बतलाने की कृपा करें।।४२।।

ब्राह्मण ने कहा कि यदि ब्राह्मण शूद्रान्न भक्षण कर मर जाता है, तो उसके उदर में स्थित उसी अन्न से वे जन निश्चित ही प्रेत होते हैं।।४३।।

जो जप पाखण्डपूर्ण गार्हस्थ्य आदि आश्रम के धर्म का पालने करने वाला, मद्यप, परस्त्रीगामा, व्यर्थ मांस खाने वाला होता है, वे जन प्रेत हो जाता है।।४।।

जो जन देवता का धन, ब्राह्मण का धन, गुरु का धन आदि का चोरी करने वाले और धन लेकर कन्या प्रदान करने वाला आदि जन भी प्रेत होते हैं।।४५।।

जो जन अपने दोषमुक्त माता-पिता, भाईयों, बहन, पुत्र आदि का त्याग करते हैं, वे जन भी प्रेत होते हैं।।४६।।

यज्ञ करने के अयोग्य जन का यज्ञ कराने वाले, यज्ञ करने योग्य का यज्ञ करने से मना करने वाले और शूद्र की सेवा करने वाले जन प्रेत होते हैं।।४७।।

ब्रह्महा च कृतघ्नश्च गोघाती पञ्चपातकी। भूमिकन्यापहर्ता स च प्रेतो जायते नरः॥४८॥
गुरोर्धर्मोपदेष्टुश्च नित्यं हितमभीप्सतः। न करोति वचस्तस्य स प्रेतो जायते नरः॥४९॥
असद्भ्यः प्रतिगृह्णाति नास्तिकाभिरतः सदा। विरुद्धकारी सततं स प्रेतो जायते नरः॥५०॥

प्रेता ऊचुः

य एतत्कर्म कुर्वन्ति मूढाऽधर्मपरायणाः। विरुद्धकारिणः पापास्तेषां कांचिद् गतिं वद॥५१॥

ब्राह्मण उवाच

ये धर्मविमुखा मूढा दयादानविवर्जिताः। तेषां गतिर्भवेदका मथुरायां तु सङ्गमे॥५२॥
श्रवणद्वादशीयोगे मासि भाद्रपदे सदा। वामनं तत्र देवं तु पूजयेज्जुहुयात् तथा॥५३॥
सुवर्णमन्नं वस्त्रं च छत्रोपानहसंयुतम्। तत्र स्नात्वा पितृंस्तर्प्य दत्त्वा करकमेव च॥५४॥
न ते प्रेता भविष्यन्ति मार्गगा न यमस्य ते। विमानवरमारुह्य विष्णुलोकं व्रजन्ति हि॥५५॥
तत्र तीर्थे नरः स्नातो दृष्टः स्पृष्टोऽथवा श्रुतः। ध्यातश्च कीर्त्तितो वापि तेन गङ्गाऽवगाहिता॥५६॥

तीर्थस्यैव हि माहात्म्यं प्रेतो भूत्वा श्रृणोति यः।
तस्याक्षयपदं विष्णोर्भवतीति मया श्रुतम्॥५७॥

ब्रह्मघाती, कृतघ्न, गोहत्यारा, पाँच महापातकों से युक्त, भूमि और कन्या का अपहरण करने वाला आदि जन प्रेत होता है।।४८।।

फिर धर्मोपदेशक और नित्य हितेच्छु गुरु के वचन का पालन नहीं करने वाले जन निश्चय ही प्रेत होते हैं।।४९।।

किसी असत् पात्र से दान लेने वाले, नास्तिक के साथ सदा रहने वाले और सदा लोक या शास्त्र का विरुद्ध आचरण करने वाले मनुष्य प्रेत होते हैं।।५०।।

फिर प्रेतों ने कहा कि अधर्म पराया मूर्ख शास्त्र विरुद्ध आचरण करने वाले जो पापी यह कर्म करते हैं, उनकी कुछ गति बतलाओ।।५१।।

ब्राह्मण ने कहा कि जो जन धर्मविमुख, मूढ़ और दया तथा दान से हीन मनुष्य होते हैं, उनकी एक मात्र गति मथुरा में स्थित संगम पर जाने से होती है।।५२।।

वहाँ भाद्रपद मास में श्रवण नक्षत्र युक्त द्वादशी तिथि के दिन वामन देव का पूजन और हवन करना चाहिए।।५३।।

फिर वहाँ स्नान कर पितरों का तर्पण कर ब्राह्मणों को स्वर्ण, अन्न, वस्त्र, छाता, जूता और कमण्डलु का दान करते हैं, वे न तो प्रेत होते हैं और न यमपुरी के मार्ग में ही जाया करते हैं। वे जन विमान पर चढ़कर विष्णु लोक जाते हैं।।५४-५५।।

वहाँ पर जो जन तीर्थ में स्नान करने वाले मनुष्यों को देखा करते हैं, स्पर्श करते हैं, उसके विषय में सुनते हैं, उसका ध्यान करते हैं अथवा उसका दर्शन करते हैं, तो वे जन गंगा स्नान कर लेते हैं, ऐसा माना जाता है।।५६।।

मैंने यह सुना है कि प्रेत होकर भी जो जन तीर्थ का माहात्म्य सुना करते हैं, उसे विष्णु का अक्षय पद मिलता है।।५७।।

प्रेता ऊचुः

अस्माकं वद कल्याण व्रतस्यास्य विधिं परम्। धर्मज्ञेन यथा कार्यं प्रेतत्वान्मोक्षदायकम्॥५८॥

ब्राह्मण उवाच

एवमेव व्रतस्यास्य विधानं कर्मसंहितम्। पुराणं कथितं राज्ञे मान्धात्रे पृच्छते पुरा॥५९॥
वसिष्ठेन महाभागाः शृणुध्वं कथयाम्यहम्। प्रेतानां मोक्षणं पुण्यं गतिप्रवरदायकम्॥६०॥
मासि भाद्रपदे शुक्ला द्वादशी श्रवणान्विता। तस्यां दत्तं हुतं स्नातं सर्वं लक्षगुणं भवेत्॥६१॥
सङ्गमे च पुनः स्नात्वा पूजयित्वा तु वामनम्।
कलशं विधिना दत्त्वा तस्य पुण्यफलं शृणु॥६२॥
कपिलानां शतं दत्त्वा हिरण्योपस्करान्वितम्। तेन यत्फलमाप्नोति तद् द्वादश्यामखण्डितम्॥६३॥
राक्षसत्वं न गच्छेत् तु श्रवणद्वादशीव्रतात्। स्वर्गे च वसते तावद् यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥६४॥
ततः स्वर्गात् परिभ्रष्टो ब्राह्मणो वेदपारगः। जातिस्मरो महायोगी मोक्षधर्मपरायणः।
ध्यानयोगेन भावेन युक्तो यात्यपुनर्भवम्॥६५॥
करकं च सुसंपीनं सान्नं रत्नसमन्वितम्। यथालाभोपपन्ना स्यात् सौवर्णा वामनाकृतिः॥६६॥

प्रेतों ने कहा कि हम सब के इस कल्याणप्रद व्रत की श्रेष्ठ विधि बतलाओ। धर्मेश के प्रेतत्त्व से मुक्ति प्रदान करने वाला कार्य जैसे करना है, वे सब कहो।।५८।।

ब्राह्मण ने कहा कि पुरातन काल में राजा मान्धाता के द्वारा पूछे जाने पर इस व्रत का कर्म युक्त पुरातन विधान इस प्रकार से कहा गया है।।५९।।

हे महाभाग! वशिष्ठ के द्वारा यह विधान मान्धाता से कहा गया था, उसको सुनो। मैं उसे कहने जा रहा हूँ। यह प्रेतों को मुक्त करने वाला पवित्र, श्रेष्ठ गति प्रदान करने वाला है।।६०।।

इसके लिए भापद मास शुक्लपक्ष की श्रवण नक्षत्र युक्ता द्वादशी तिथि के दिन दान करना, हवन करना, स्नान करना आदि समस्त कर्म लाख गुना फलदायक होते हैं।।६१।।

वैसे संगम में स्नान करने के बाद वामदेव का पूजन कर विधिविधान से जो कलश का दान करता है, उसका फल सुनो।।६२।।

वर्ण और दूसरे सामग्रियों सहित सौ कपिला गायों का दान करने से जो फल प्राप्त होते हैं, वे सब फल द्वादशी तिथि के दिन कलश दान करने से प्राप्त होता है।।६३।।

श्रावण द्वादशी तिथि के व्रत से मनुष्य राक्षस योनि में नहीं जाता है तथा चौदह इन्द्रों के कालों तक स्वर्ग में रहा करता है।।६४।।

फिर स्वर्ग से पतित हुए जन वेद पारगामी, पूर्व जन्म का स्मरण करने वाला, महायोगी, मोक्षधर्म परायण, ध्यान योग की भवना से युक्त, ब्राह्मण होकर फिर पुनर्जन्म से मुक्त हो जाता है।।६५।।

फिर अन्न और रत्न से युक्त तथा सुन्दर पेय पदार्थ से भरा घट और शक्ति के अनुरूप उपलब्ध समग्रियों

उपानच्छत्रसंयुक्तो विधिमन्त्रपुरःसरः। कृत्वा च विधिवत् तस्य स्नानपूजादिकं नरः।
मन्त्रैस्तथाविधैर्होमैर्ब्राह्मणायोपपादयेत् ॥६७॥

आगच्छ वरदानन्त श्रीपते मदनुग्रहात्। सर्वगोऽपि निजांशेन स्नानमेतदलं कुरु॥६८॥
(आवाहनम्)

यत् त्वं नक्षत्ररूपेण द्वादश्यां नभसि स्थितः। तन्नक्षत्रमहं वन्दे मनोवाञ्छितसिद्धये॥६९॥
(नाक्षत्रम्)

नमः कमलनाभाय कमलालय केशव। कमूर्त्ते सर्वतो व्यापि नारायण नमोऽस्तु ते॥७०॥
(स्नानम्)

सर्वव्यापि जगद्योने नमः सर्वमयाच्युत। श्रवणद्वादशीयोगे पूजां गृह्णीष्व केशव॥७१॥
(पूजा)

धूपोऽयं देवदेवेश शङ्खचक्रगदाधर। अच्युतानन्त गोविन्द वासुदेव नमोऽस्तु ते॥७२॥
(धूपम्)

तेजसा तव लोकाश्च विधृताः सन्ति तेऽव्यय। त्वं हि सर्वगतं तेजो जनार्दन नमोऽस्तु ते॥७३॥
(दीपम्)

अदितेर्गर्भमाधाय वैरोचनिशमाय च। त्रिभिः क्रमैर्जिता लोका वामनाय नमोऽस्तु ते॥७४॥
(नैवेद्यम्)

से युक्त, वामन देव की स्वर्ण मूर्त्ति, छाता, जूता आदि के साथ मनुष्य विधिपूर्वक मन्त्र द्वारा शक्ति अनुरूप ही स्नान और पूजा कर तथा मन्त्रा द्वारा सविधि हवन का ब्राह्मण को वह मूर्त्ति दान किया जाना चाहिए।।६६-६७।।

आवाहनार्थ—हे वरदायक अनन्त श्रीपति! आपसर्वव्यापी हैं। मुझ दीन पर कृपा कर अपने अंश से इस स्थान को शोभायमान करें।।६८।।

नक्षत्र वन्दना—द्वादशी तिथि के दिन आकाश में आप जो नक्षत्रा रूप में अवस्थित रहते हैं। मैं अपनी मनोभिलाषा की पूर्ति हेतु उस नक्षत्र की वन्दना करता हूँ।।६९।।

स्नान हेतु—हे कमलनाभ कमलालय जलस्वरूप सर्वव्यापक नारायण! आपको नमस्कार है।।७०।।

पूजार्थ—हे सर्वत्र व्यापक जगद्योनि सर्वस्वरूप अच्युत! आपको नमस्कार है। हे केशव! श्रवण युक्ता द्वादशी तिथि के दिन मेरी यह पूजा स्वीकार करें।।७१।।

धूपार्थ—हे देव देवेश शंखचक्रगदाधारी अच्युत अनन्त गोविन्द वासुदेव! आपको नमस्कार है, यह धूप है, आप इसे ग्रहण करें।।७२।।

दीपार्थ—हे अव्यय! आपके तेज ने लोकों को धारण किया हुआ है। हे जनार्दन! आप सर्वव्यापी तेज हैं। आपको प्रणाम है।।७३।।

नैवेद्यार्थ—अदिति के गर्भ से उत्पन्न हुए विरोचन के पुत्र बलि के दमन हेतु उसके समीप पहुँचकर आपने मायापूर्वक तीन पगों से समस्त लोकों को जीत लिया था। हे वामन देव! आपको प्रणाम है।।७४।।

देवतानां संभवस्त्वं हि योगिनां परमा गतिः। जलशायि जगद्योने अर्घ्यं मे प्रतिगृह्यताम्॥७५॥
(अर्घ्यम्)

हव्यभुक् हव्यकर्त्ता त्वं होता हव्यस्त्वमेव च। सर्वमूर्त्ते जगद्योने नमस्ते केशवाय चेति स्वाहा॥७६॥
(होमः)

हिरण्यमन्नं त्वं देव जलवस्त्रमयो भवान्। उपानच्छत्रदानेन प्रीतो भव जनार्दन॥७७॥
(दक्षिणा)

पर्जन्यो वरुणः सूर्यः सलिलं केशवः शिवः। अग्निर्यमो वैश्रवणः पापं हरतु मेऽव्ययः॥७८॥
(वामनस्तुतिः)

अन्नं प्राजापतिर्विष्णुरुद्रेन्द्रचन्द्रभास्कराः। अन्नं त्वष्टा यमोऽग्निश्च पापं हरतु मेऽव्ययः॥७९॥
(करकदानम्)

वामनो बुद्धिदाता च द्रव्यस्थो वामनः स्वयम्।
वामनस्तारको द्वाभ्यां वामनाय नमोऽस्तु ते॥८०॥

(यजमाने)

वामनः प्रतिगृह्णाति वामनो मे प्रयच्छति। वामनस्तारको द्वाभ्यां वामनाय नमो नमः॥८१॥
(द्विजप्रतिग्रहे)

कपिलाङ्गेषु तिष्ठन्ति भुवनानि चतुर्दश। दत्त्वा कामदुघां लोका भवन्ति सफला नृणाम्॥८२॥
(गोदानम्)

अर्घ्य हेतु—आप देवताओं को उत्पन्न करने वाले, योगियों के परम गति स्वरूप जलशायी और जगद्योनि हैं। मेरा अर्घ्य ग्रहण करें।।७५।।

हवनार्थ—आप ही हव्यभोक्ता, हव्यकर्त्ता, हवन करने वाले और हव्य स्वरूप हैं। सर्वमूर्ति जगद् योनि केशव को नमस्कार है।—'स्वाहा'।।७६।।

दक्षिणार्थ—आप स्वर्ण, जल , अन्न, वस्त्र आदि स्वरूप हैं। हे जनार्दन! छाता और जूता दान करने से आप प्रसन्न हों।।७७।।

वामनस्तुति—मेघ, वरुण, सूर्य, जल, शिव, अग्नि, यम, कुबेर आदि स्वरूप अव्यय केशव मेरा आप पाप को दूर करें।।७८।।

घटदान—अन्न प्रजापति, विष्णु, रुद्र, इन्द्र, चन्द्र, सूर्य आदि स्वय हैं। अन्न ही विश्वकर्मा यम, अग्नि आदि स्वरूप हैं। अव्य केशव मेरा पाप दूर करें।।७९।।

यजमानार्थ—वामन बुद्धिदाता हैं। वामन स्वयं द्रव्य में स्थित हैं। वामन दोनों को तारने वाले हैं। हे वामन देव! आपको प्रणाम हैं।।८०।।

ब्राह्मणदानार्थ—वामन ग्रहण करते हैं। वामन ही मुझे प्रदान भी करते हैं। वामन याजक और यमजान दोनों को तारने वाले हैं। वामनदेव को वारम्बार प्रणाम है।।८१।।

गोदान—कपिला गौ के अंग में चतुर्दश भुवन हैं। कामधेनु गाय का दान करन से मनुष्य लोक सफल हुआ करते हैं।।८२।।

नमः पापच्छिदे तुभ्यं देवगर्भसुपूजितम्। मया विसर्जितो देव स्थानमन्यदलंकुरु॥८३॥
(विसर्जनम्)

एवं विद्वांस्तु द्वादश्यां यो नरः श्रद्धयान्वितः। यत्र तत्र नभस्ये तु कृत्वा फलमवाप्नुयात्॥८४॥

ब्राह्मण उवाच

यस्तु सारस्वते तीर्थे यमुनायाश्च सङ्गमे। करोति विधिनाऽनेन तस्य पुण्यं शतोत्तरम्॥८५॥
मयाऽपि श्रद्धया चैतत् कालं तीर्थस्य सेवनम्। क्षेत्रासंन्यासरूपेण कृतं भक्त्या समन्वितम्॥८६॥
तेन यूयं न शक्ता मे बाधितुं पापकर्मिणः। श्रवणद्वादशीयोगे तिथिऋक्षसमन्विते।
तावद् व्रतं तु कर्त्तव्यं यावदेकं क्षयं व्रजेत्॥८७॥
तीर्थस्यैष प्रभावो हि प्रत्यक्षमिह दृश्यते। श्रवणाद्वो गतिं साक्षात् साधु लक्षामहेऽधुना॥८८॥

श्रीवराह उवाच

एवं ब्रुवति विप्रे तु आकाशे दुन्दुभिस्वनः। पुष्पवृष्टिः पतद् भूमौ देवैर्मुक्ता सहस्रशः॥८९॥
प्रेतानां तु विमानानि आगतानि समन्ततः। देवदूत उवाचेदं प्रेतानां शृण्वतां तदा॥९०॥
अस्य विप्रस्य संभाषात् पुण्यसंकीर्त्तनेन च। प्रेतभावविमुक्ताः स्थ तीर्थस्य श्रवणादपि॥९१॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन सतां संभाषणं वरम्। कर्त्तव्यं तीर्थभावं च व्रतभावं च भामिनि॥९२॥

विसर्जन—हे देवताओं को उत्पन्न करने वाले सुपूजित, पापनाशक देव! आपको प्रणाम है। हे देव! मेरे विसर्जन करने पर आप अन्य स्थन कोसुशोभित करें।।८३।।

इस प्रकार भाद्रपद मास में इस प्रकार जो कोई भी विद्वान् जन द्वादशी में श्रद्धा के सहित जहाँ-तहाँ कार्य कर फल प्राप्त करते हैं।।८४।।

ब्राह्मण ने कहा कि जो यमुना से संगम पर सारस्वत तीर्थ में इस विधि से कर्म करते हैं उनको सौ गुना अधिक पुण्यफल की प्राप्ति होती है।।८५।।

मैंने भी श्रद्धा और भक्ति से युक्त होकर क्षेत्र सन्यास के रूप में इस समय तीर्थ का सेवन किया है।।८६।।

इस कारण पापकर्म करने वाले तुम सब मुझे पीड़ित नहीं कर सकते। श्रवण नक्षत्र और द्वादशी तिथि का भोग होने पर तब तक व्रत करना चाहिए, जब तक कि यह जीवन समाप्त हो।।८७।।

इस समय तीर्थ माहात्म्य सुनने का यह प्रभाव प्रत्यक्ष ही दिख पड़ रहा है कि मैं तुम लोगों की गति प्रत्यक्ष इन्द्रियों द्वारा देख पा रहा हूँ।।८८।।

श्री भग्वान् वराह ने कहा कि ब्राह्मा के द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर आकाश में दुन्दुभि कि ध्वनि होने लगी और देवताओं ने पृथ्वी पर हजारों पुष्पों की वर्षा की।।८९।।

फिर चारों ओर सेप्रेतों के लिए विमान आ पहुँचे। फिर प्रेतों को सुनाकर देवदूत ने यह कहा।।९०।।

इसी विप्र के भषण और पुण्य का स्मरण चिन्तन करने से तथा तीर्थ के माहात्म्य का श्रवण करने से तुम लोग प्रेतभाव से मुक्त हो चुके हो।।९१।।

अतः सब प्रकार के प्रयास करते हुए साधु जनों के साथ वार्त्ता करना श्रेष्ठ है। हे भामिनि! तीर्थ का सेवन एवं व्रत का अनुठान करना ही चाहिए।।९२।।

तीर्थाभिषेकिपुरुषाद् यथा तेषां दुरात्मनाम्। प्रेतानामक्षयं स्वर्गं सरस्वत्याश्च सङ्गमात्॥९३॥
प्राप्तं तीर्थप्रभावाच्च श्रवणान्मुक्तिदं फलम्। तिलकं सर्वधर्माणां पञ्चप्रेतस्य मुक्तिदम्॥९४॥
यः पठेत् परया भक्त्या शृणुयाद् भक्तितत्परः।
करोति श्रद्धया युक्तो न प्रेतो जायते नरः॥९५॥
पिशाचयंज्ञकं नाम तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्। यस्य श्रवणमात्रेण न प्रेतो जायते नरः॥९६॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१७२॥
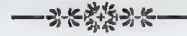
त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

अथ मथुरामाहात्म्ये कृष्ण-गङ्गोपाख्यानम्

श्रीवराह उवाच

शृणु चान्यद् वरारोहे कृष्णगङ्गासमुद्भवम्। यमुनास्त्रोतसि स्नात्वा कृष्णद्वैपायनो मुनिः॥१॥
ध्यात्वा मनसि गङ्गां तां कालिन्दीं पापहारिणीम्। नित्यकालं च कुरते तत्र तीर्थजलाप्लुतिम्॥२॥

फिर सरस्वती के संगम तीर्थ में स्नान करने वाले जनों के सम्पर्क से उन दुरात्मा प्रेतों को अक्षय स्वर्ग प्राप्त हो गया।।९३।।

इस प्रकार तीथ के प्रभाव का श्रवण करने से मुक्तिदायक फल प्राप्त हुआ। उन पाँच प्रेतों को मोक्षप्रदायक यह आख्यान समस्त धर्मों के श्रेष्ठतर है।।९४।।

जो जन परम भक्तिभाव से इसका पाठ करते हैं, भक्तिभाव से इसे सुना करते हैं तथा इसके अनुसार व्रत करते हैं, वे कथमपि प्रेत नहीं हो सकता है।।९५।।

फिर पिशाच संज्ञक तीर्थ त्रैलोक्य में सुख्यात है। जिसके बारे में श्रवण करने मात्र से मनुष्य प्रेत नहीं हो पाता।।९६।।

।।इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में मथुरा माहात्म्य—संगम माहात्म्य में महानाम ब्राह्मण और पञ्चप्रेत, वामन पूजा, श्रावण द्वादशी नामक एक सौ बहत्तरवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ।।१७२।।

अध्याय-१७३

मथुरा माहात्म्य–कृष्ण-गंगा प्रसंग में तिलोत्तमा-पाञ्चालाख्यान

श्री भगवान् वराह ने कहा कि हे सुन्दरि! अब तुम कृष्ण गंगा तीर्थ के माहात्म्य के बारे में सुनो। एक बार कृष्णद्वैपायन मुनि यमुना नदी में स्नान कर मन में उस पापहारिणी कालिन्दी स्वरूपा गंगा का ध्यार कर नित्य उस तीर्थ जल में स्नान करते हैं।।१-२।।

सोमवैकुण्ठयोर्मध्ये कृष्णगङ्गेति कक्यते। यत्रातप्यत् तपो व्यासो मथुरायां स्थितोऽमलः॥३॥
तत्राश्रमपदं दिव्यं मुनिप्रवरसेवितम्। आगच्छन्ति सदा तत्र चातुर्मास्यमुपासितमुम्।
मुनयो वेदतत्त्वज्ञा ज्ञानिनः संशितव्रताः॥४॥
संदेहं यस्य कस्यास्ति वेदे स्मार्त्ते क्रियासु च। पुराणोपनिषत्स्वादि यस्य यस्य यदीप्सितम्।
तस्य तस्य हि योगीशः संदेहं नाशयेत् प्रभुः॥५॥
कालञ्जरं महादेव तस्य तीर्थे पतिं शिवम्। यस्य संदर्शनाच्चैव कृष्णगङ्गाफलं लभेत्॥६॥
तत्र स्थितो द्वादशाब्दव्रतं सङ्गविवर्जितः। पक्षाहारो च फलभुग् दर्शे वै पौर्णमासिके।
कृत्वा हिमवतं पश्चाद् बदर्यामभितो गतः॥७॥
व्यासश्चर्यापरस्तत्र ध्यानयोगपरायणः। त्रिकालदर्शी शुद्धात्मा सिद्धत्वं प्राप्तवान् प्रभुः॥८॥
तस्याश्रमपदस्थस्य यद् दृष्टं ज्ञानचुक्षषा। प्रत्यक्षं कृष्णतीर्थे तु पाञ्चाल्यकुलतन्तुतना॥९॥
पाञ्चाल्योऽथ तिद्वजः कश्चिन्नाम्ना वसुरिति श्रुतः।
दुर्भिक्षपीडितोऽत्यर्थं सभार्यो दक्षिणां गतः॥१०॥
शिवनद्या दक्षिणे कूले सुभिक्षे वरपत्तने। निवासमकरोत् तत्र ब्राह्मणीं वृत्तिमाश्रितः॥११॥
तत्रस्थेन सुताः पञ्च कन्याषष्ठाः कलाविदः। जाता विवाहिताश्चैव धनधान्यसमन्विताः॥१२॥

फिर सोम और वैकुण्ठ के बीच में कृष्ण गंगा स्थित मानी जाती है। जहाँ रहते हुए पवित्र व्यास ने मथुरा में तप किया था।।३।।

वहीं पर श्रेष्ठ मुनिजनों से सेवित दिव्य एक आश्रम स्थित है। चतुर्मास्य का व्रत करने हेतु वेद तत्त्वज्ञ उग्र व्रत धारण करने वाले मुनिजन सदा वहाँ आया करते हैं।।४।।

उस समय वैदिक और धर्मशास्त्रीय कर्मों तथा पुराण और उपनिषदों के प्रसङ्ग में जिस किसी जन को सन्देह हुआ करते थे, उसके सन्देह को श्रेष्ठ योगी और सक्षम व्यास दूर करते थे।।५।।

उस तीर्थ के स्वामी महादेव कालञ्जर शिव हैं, जिनके दर्शन से कृष्णगंगा का फल प्राप्त हुआ करता है।।६।।

वे वहाँ पर अनासक्त भाव से रहते हुए और पक्ष में एक बार अमावास्या तथा पूर्णमासी को फल का आहार कर द्वादश वर्ष का व्रत करने के बाद हिमालय में बदरिकाश्रम में चले गये।।७।।

फिर ध्यान योग पराण त्रिकालदर्शी, शुद्धात्मा प्रभु व्यास ने तपश्चर्या करते हुए सिद्धियाँ प्राप्त किया था।।८।।

उसी आश्रम में स्थित व्यास ने अपने ज्ञाननेत्र से पाञ्चाल कुल से जुड़े जो वृत्तान्त प्रत्यक्ष रूपसे उस समय देखा, वह इस प्रकार है—।।९।।

एक समय पाञ्चाल देश का वुसनाम का प्रसिद्ध कोई ब्राह्मण दुर्भिक्ष-पीड़ित होकर पत्नि सहित दक्षिण दिशा में चला गया।।१०।।

वह ब्राह्मण शिवदी के दक्षिण के तट पर स्थित सुभिक्ष युक्त श्रेष्ठ नगर में ब्राह्मण वृत्ति कर निर्वाह करते हुए रहने लगा।।११।।

वहाँ उसे धन धान्य युक्त पाँच कलाविद् पुत्र और छठी कन्या हुई। फिर उसने उन सब का विवाह भी कर दिया।।१२।।

स द्विजः कालमापन्नः सभार्यस्तत्र संस्थितः। कन्या चास्थीनि संगृह्य मथुरामाजगाम ह॥१३॥
श्रुत्वा पुराणे पठतार्द्धचन्द्रेऽस्थिपातनात्। स्वर्गे वसति सो नित्यं यावदाहूतसंप्लवम्॥१४॥
तीर्थयात्राप्रसङ्गेन लोकः प्रचलितो बहुः। तेन सार्थेन सा कन्या मथुरायां जगाम ह॥१५॥
कनिष्ठा भगिनी तेषां विधवा बालभावके। सुरूपा सुकुमाराङ्गी नीलकुञ्चितमूर्धजा॥१६॥

कदलीकाण्डसंकाशे तस्या ऊरू समांसले।
सुश्लिष्टाङ्गुलिपादौ तु नखाश्चाताम्रमुज्ज्वलाः॥१७॥

गम्भीरा दक्षिणावर्त्ता नाभिस्त्रिवलिशोभिता। क्षामोदरी समा कुक्षी पीनोन्नतपयोधरा॥१८॥
कम्बुग्रीवा संवृतास्या सुदन्ती सुधरा हनुः। सुनखी स्वक्षिणी सुभ्रूः सुप्रमाणा सुभाषिणी।

तेन तेनैव संपूर्णा रूपेण च तिलोत्तमा॥१९॥

यं यं पश्यति चार्वङ्गी यस्तां चैव प्रपश्यति। स स चित्र इव न्यस्तो विचेता जायते नरः॥२०॥
एवंविधा तत्र तत्र तीर्थस्नानपरायणा। दृष्टा वेश्यासमूहेन प्रागल्भ्येन तदा क्वचित्॥२१॥
कन्यकुब्जाधिपो राजा क्षत्रधर्मेति विश्रुतः। तस्य सत्रं सर्वकालं देवगर्त्तेश्वरे शिवे ॥२२॥

फिर वह ब्राह्मण वहीं रहते हुए पत्नि सहित मर गया। उसकी कन्या उसके अस्थियों का संचय कर मथुरा में आ गई।।१३।।

उसके द्वारा पुराण का पाठ सुना गया कि अर्द्धचन्द्र नाम के तीर्थ में जिसका अस्थि गिरायी जाती है, वह ब्राह्मण महाप्रलय तक हेतु सदा स्वर्ग में रहता है।।१४।।

वैसे तीर्थ यात्रा के लक्ष्य से बहुत सारे लोग उस दक्षिण देश के नगर से मथुरा की ओर चले। वह ब्राह्मण कन्या भी उस यात्री दल के साथ मथुरा गयी।।१५।।

वह उन ब्राह्मण के पाँच बालकों की एक मात्र छोटी बहना थी, जो बाल्यावस्था में ही विधवा हो गई थी। वह सुरुपा सुकुमाराङ्गी काले घूँघराले बालों वाली थी।।१६।।

उसकी जाँघे कदली स्तम्भ के समान, दोनों पैर ठीक-ठीक सटी हुई अंगुलियों वाले तथा नख सुन्दर ताम्रवर्ण के थे।।१७।।

उसकी त्रिबलि से सुशोभित नाभि दक्षिणावर्त्त थी। उसका उदर संकुचित, और सम तथा स्तन पुष्ट और ऊँचे थे।।१८।।

उसकी ग्रीवा कम्बु सदृश थी। वह गोलमुख सुन्दर दाँतों और अधरो वाली और ठुड्डी से युक्त थी। उसके नख तथा आँखें उसकी सुन्दर थी। उसकी सुन्दर भौंहें उचित प्रमाण की थी। वह मधुर बोलने वाली थी। उन सब सुन्दर लक्षणों से सम्पन्न वह तिलोत्तमा सुन्दर रूप वाली थी।।१९।।

वह सुन्दर अंगों वाली जिस किसी को देखती थी तथा जो उसे देख लेता था, वे जन चित्रालिखित सदृश अचेत हो जाया करते थे।।२०।।

फिर वहाँ तीर्थों में स्नान करने वाली इस प्रकार की उस कन्या को चतुर वेश्याओं ने कहीं देख लिया।।२१।।

फिर क्षत्रधर्म नाम से प्रसिद्ध कान्यकुब्ज देश का राजा हुआ करता था। देवगर्त्तेश्वर शिव के सनि पर सदा उसका सत्र चला करता था।।२२।।

प्रवर्त्तते सुवित्ताढ्यं प्रेक्षणं च मनोहरम्। वादित्राणि च गीतानि शक्रस्य सदने यथा॥२३॥
तस्य देवस्य ता वेश्यास्ताभिःसा प्रविलोभिता। गीतनृत्यगृहेऽप्येवं तासां धर्ममुपेयुषी।
गताऽल्पैर्दिवसैः साध्वी असाध्वीनां पदे शनैः॥२४॥
एवं वसति बाला देवस्यास्य परिग्रहे। यथासुखं समेताभिर्विहरन्ती दिने दिने॥२५॥

।इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१७३।।

—※※※—

चतुःसप्त्यधिकशततमोऽध्यायः

अथ मथुरामाहात्म्ये-तिलोत्तमा-पञ्चालोपाख्यानम्

श्रीवराह उवाच

पञ्चानां तु कनिष्ठो यः पाञ्चालो ब्राह्मणात्मजः। वाणिज्यभाण्डमादाय समूहस्य प्रसङ्गकः।
सार्थस्य निःसृतो भाति धनवान् रूपवांस्ततः॥१॥
क्रमेण ते सर्वदेशान् विषयान् पर्वतान् नदीः। आक्रम्य तत्र संप्राप्ता यत्र सा मथुरा पुरी॥२॥

वह सत्र सुन्दर सम्पत्ति से पूर्ण तथा देखने में मनोहर था। वहाँ इन्द्रलोक के समान गाना बजाना होता रहता था।।२३।।

उन वेश्याओं से प्रलोभन में आकर वह उस राजा के गीत नृत्य युक्त गृह में पहुँचकर उन वेश्याओं के धर्म से युक्त हो गई। वह साध्वी थोड़े ही दिनों में धीरे-धीरे असाध्वी स्त्रियों के मार्ग पर चल पड़ी।।२४।।

इस प्रकार वह बाला उस राजा के गृह में उन वेश्याओं के साथ प्रतिदिन सुखपूर्वक विहार करने लग गयी।।२५।।

।।इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में मथुरा माहात्म्य—कृष्णा-गंगा प्रसंग में तिलोत्तमा-पाञ्चालाख्यान नामक एक सौ तिहत्तरवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ।।१७३।।

अध्याय-१७४

मथुरा माहात्म्य-तिलोत्तमा-पाञ्चालाख्यान, कृष्णगंगा माहात्म्य

श्री भगवान् वराह ने कहा कि उस पाञ्चाल देशीय ब्राह्मण का पाँच में जो सबसे छोटा धनवान् और रूपवान् पुत्र था। वह व्यापारियों के समूह के साथ प्रसङ्गवश वाणिज्य की सामग्री लेकर चला गया था।।१।।

क्रम से वे सभी देशों, नगरों, नदियां, पर्वतों आदि को पार कर वहाँ पर पहुँचे, जहाँ पर वह मथुरापुरी है।।२।।

आवासं कारयामासुः प्रभूतयवसेन्धने। स्थाने तत्प्रीतिकृत्यानि प्राप्तानि पुरुषाणि च।
स्थाप्य स्थानप्रसङ्गेन वस्त्राभरणभूषितः॥३॥
ऐश्वर्यमदभावेन यानेन महता तदा। स्नानं दानं ततः कृत्वा देवतानां च दर्शनम्॥४॥
कौतुकार्थं ततो गत्वा देवं गर्त्तेश्वरं तदा। तिलोत्तमायास्तद्रूपं दृष्ट्वा मोहवशं गतः॥५॥
धात्रेयिकायास्तस्याश्च बहुमानपुरःसरम्। वस्त्राणि बहुरूपाणि कटकानि सनूपुरैः॥६॥
रत्नहाराणि शुभ्राणि तस्या लोभार्थमुद्यतः। प्रददौ चन्दनं सारं कर्पूरमगुरं तथा॥७॥
तस्या गृहवरे तत्र वसते च दिने दिने। प्रहरार्द्धे दिने जाते ततः स्वशिविरं ययौ॥८॥
स्नात्वा समीपतीर्थे तु कृष्णगङ्गोद्भवे सदा। एवं नित्यप्रसक्तो हि कुरुते द्रव्यगर्वितः॥९॥
षणमासं वर्त्तते कालं तथैव दिवसं गतः। अथैकदा समायाते स्नातुं तत्र सुमन्तुना।
स्वाश्रमस्थेन दृष्टानि तस्य गात्रेऽशुचीनि च॥१०॥
कृमयो रोमकूपेभ्यः पतमाना अनेकशः। यावत् स्नानं स कुरुते तावत् ते राशिमात्रकाः।
स्नातस्य तस्य नश्यन्ति सुरूपश्चाभिजायते॥११॥

फिर उसने परिपूर्ण घास और ईंधन युक्त स्थान पर डेरा डाल दिया। वहाँ अपने घास प्रिय बन्धुओं एवं पुरुशों को स्थापित कर वस्त्र और आभूषण धारण कर वह उस स्थान पर भ्रमण करने निकला।।३।।

फिर ऐश्वर्य से उत्पन्न अहंकारवश उसने महान् यान से यात्रा की फिर स्थान और दान करने के बाद उसने देवता का दर्शन भी किया।४।।

फिर जिज्ञासावश होकर वह गर्त्तेश्वर देव के मन्दिर में गया और वहाँ तिलोत्तमा का वह रूप देखकर वह भी मोहित हो गया।।५।।

फिर अत्यन्त सम्मानपूर्वक उसने उसी धात्री को अनेक प्रकार के वस्त्र, कटक, नूपुर आदि आभूषण प्रदान किया।।६।।

वह सुन्दर रत्न के हारों को देखकर उसे लुभाने लगा। उसने उसे चन्दन वृक्ष क रस, कर्पूर, अगरु आदि प्रदान किया।।७।।

वह श्रेष्ठ गृह में नित्य आधे पहर दिन के समय तक उसके यहाँ रहकर अपने शिविर में आ जाया करता था।।८।।

वह उस समय पास के कृष्णागंगा तीर्थ में स्नान कर उसमें आसक्त और धन के अहं से युक्त इसी तरह का कार्य नित्य ही करता था।।९।।

इसी प्रकार उसके नित्य की दिनचर्या से दिन व्यतीत होकर छः मस के समय बीत गया। फिर एक दिन अपनें आश्रम में स्थित सुमन्तु उसके वहाँ स्नान के लिए आने पर उसके शरीर में अशुचियों को देख समझ लिया।।१०।।

उसके प्रत्येक रोमकूप से कई-कई कीड़े गिरा कर रहे थे। जब तक वह स्नान करता था, उस समय तक उन कीड़ों का ढेर लग जाता था। लेकिन स्नान करने के बाद उसे शरीर को कीड़े विनष्ट हो जाया करते थे। जिससे पुनः वह सुरूपवान् हो जाया करता था।।११।।

एवं सुमन्तुना नित्यं भवेद् रूपव्यवथया। सकृमिः स्नानपूर्वं तु पयसाऽमलगात्रकः॥१२॥
आश्चर्यं तत् समालक्ष्य कोऽय किं वै व्यतर्कयत्।
इति चिन्त्य तदा पृष्टः कस्त्वं कस्मात् समागतः।
किं करोषि दिवा रात्रौ ब्रूहि त्वं पृच्छतो मम॥१३॥

पाञ्चाल उवाच

पाञ्चालो ब्राह्मणसुतो वणिग्लाभार्थमागतः। दक्षिणापथदेशाच्च मथुरां शिविरं स्वकम्॥१४॥
निशामुषित्वा तीर्थे तु स्नात्वा दृष्ट्वा महेश्वरम्। कलिञ्जरं भवत्पादान् गच्छामि शिविरं ततः॥१५॥

सुमन्तु उवाच

आश्चर्यं तव देहेऽस्मिन् नित्यं पश्यामि निःसृतम्। अस्नाते कृमिसंपूर्णं स्नाते निर्मलवर्चसम्॥१६॥
अस्ति कश्चिन्महापापं तव प्रच्छन्नसंभवम्। अस्य तीर्थप्रभावेन स्नानाद् गच्छति दूरतः।
कालिञ्जरस्य संस्पर्शाच्छुद्धं देहं च दृश्यते॥१७॥
निरूप्य कथयास्माकं यत् ते प्रच्छन्नकिल्बिषम्।
तीर्थमाहात्म्यभावेन तेन पृच्छामि ते मलम्॥१८॥
इति तस्य वचः श्रुत्वा मुनेस्त्रिकालदर्शिनः। तस्यां रात्र्यां स एकान्ते तयाऽथ सहितो गृहे।
अपृच्छत् का कुतः कस्य कथं त्वमिह वर्त्तसे॥१९॥

इस प्रकार से सुमन्तु ने नित्य ही उसके रूप के बदलते देखा। स्नान के पहले उसका देह कीड़ों से युक्त दीख पड़ता था और स्नान बाद उसका देह निर्मल होता था।।१२।।

इस प्रकार के उसके शीरर में कौतुक देखकर उस सुमन्तु ने उससे पूछ लिया कि तुम कौन हो? कहाँ से आये हो और दिन रात तुम क्या करते हो? मेरे ऐसे पूछने वाले से तुम्हें सब कुछ सच-सच बतलाना चाहिए।।१३।।

पाञ्चाल ने कहा कि मैं दक्षिणापथ से वाणिज्य हेतु आया हुआ पाञ्चाल ब्राह्मण का पुत्र हूँ। मथुरा में मेरा शिविर है।।१४।।

रात्रि के समय शिविर में रहते हुए दिन के समय स्नानोपरान्त कालिञ्जर महादेव तथा आपका दर्शन कर शिविर में जाता हूँ।।१५।।

सुमन्तु ने कहा कि मैं तुम्हारे शरीर से नित्य कौतुक की उत्पत्ति हुए देखा करता हूँ। स्नान करने के पूर्व तुम्हारा शरीर कृमिपूर्ण रहा करता है, फिर स्नान करने के बाद शरीर तुम्हारा निर्मल और तेजवान् हो जाता है।।१६।।

अतः समझना चाहिए कि तुम्हारा कोई गुप्त महापाप है। इस तीर्थ के प्रभाव से स्नान करने के बाद वह पाप मिट जाया कर रहा है तथा कलिंजर महादेव के स्पर्श मात्र से देह तुम्हारा शुद्ध दीखने लग जाता है।।१७।।

तीर्थ माहात्म्य के प्रभाववश तुम्हारे गुप्त पाप को जानकर मैंने तुमसे पूछा हूँ। अतः तुम मुझे अपना दोश कह दो।।१८।।

उस त्रिकालदर्शी मुनि के इस बात को सुनने के बाद उस रात्रि में उस तिलोत्तमा के साथ एकान्त गृह मे बैठकर उसने पूछा कि तुम कौन हो, कहाँ की हो, किसकी हो और यहाँ क्यों रहा करती हो?।।१९।।

एवं पृष्टा स्वकां चेष्टां मातापित्रोःसमुद्भवाम्। भ्रातृणामागमनं च शनैः प्रोवाच भामिनि॥२०॥
पाञ्चालनगरी रम्या गङ्गायाश्चोत्तरे तटे। तस्यां पिता च माता च वसतः स्म पुरोत्तम॥२१॥
दुर्भिक्षपीडिते राष्ट्रे गतौ तौ दक्षिणापथम्। नर्मदादक्षिणे कूले ब्राह्मणानां पुरोत्तमे॥२२॥
तस्मिन् स्थाने पितुर्मह्यं पञ्च पुत्रा मया सह। जातास्तेषामहं षष्ठा कनिष्ठा विधवाऽभवम्॥२३॥
योऽसौ कनिष्ठको भ्राता मम ज्येष्ठश्च पञ्चमः। बाल एव गतो देशं धनतृष्णाप्रलोभितः॥२४॥
गते तस्य पिता माता मृतौ तत्र नदीमनु। तीर्थेऽस्मिन्नस्थिपातार्थमहं सार्थैः सहागता॥२५॥
अत्र स्नानपरा नित्यं देवब्राह्मणवन्दनम्। कुर्वन्ती वशमापन्ना आसां यस्या ममेदृशम्।
वर्तते कुलटाधर्मं पुंश्चलीनां विहीनकम्॥२६॥
द्वयोस्तु कुलयोर्वंश्या एकविंशतिसंख्यया। नीता नरकमत्युग्रं मया पापिष्ठा भृशम्॥२७॥
एवं सा तथ्य तस्यैवं कथयित्वा तिलोत्तमा। रुरोद सुस्वरं दीनां स्मृत्वा पूर्वकुलं वरम्॥२८॥
विलप्य बहुधा रात्रौ ततस्तां स्त्रीजनं महत्। तत्रागत्य प्रसान्त्वेति किं भद्रे कारणं वद॥२९॥

उसके द्वारा इस तरह से पूछे जाने पर उस सुन्दरी तिलोत्तमा ने क्रम से माता-पिता से अपनी उत्पत्ति, भाईयों का आना तथा अपनी चेष्टा का विस्तृत उल्लेख किया।।२०।।

गंगा के उत्तरी तट पर पाञ्चाल नगरी है। उस श्रेष्ठ नगरी में मेरे माता-पिता रहा करते थे।।२१।।

फिर राष्ट्रीय दुर्भिक्ष से पीड़ित होकर वे दोनों दक्षिणापथ की दिशा में नर्मदा के दक्षिणी तट पर स्थित श्रेष्ठपुर में चले गये।।२२।।

उस स्थान पर मेरे पिता को मेरे साथ और पाँच पुत्र भी थे। उनमें मैं सबसे कनिष्ठ छठी सन्तान थीं। फिर मैं कालातीत होने पर मैं विधवा हो गई।।२३।।

जो मेरा सबसे छोटा, किन्तु मुझसे बड़ा पाँचवाँ भाई था, वह धनार्जन की लालसा से विदेश चला गया।।२४।।

उसके जाने पर मेरे माता-पिता नदी के किनारे मृत्यु को प्राप्त हो गए। मैं उनकी ही अस्थियाँ प्रवाहित करने हेतु व्यापारी दल के साथ यहाँ आयी हुई थी।।।२५।।

वैसे मैं यहाँ नित्य स्नान और देवता तथा ब्राह्मणों की वन्दना और सेवन करती हुई, कुछ काल बाद इन वेश्याओं के प्रलोभन में आ गई। इस कारण निर्लज्ज असती स्त्रियों के समान मेरा इस प्रकार कुलटा धर्म हो गया।।२६।।

इस प्रकार मुझ जैसी अत्यन्त पापिनी द्वारा अपने दोनों कुलों याने मातृ एवं पितृकुल में उत्पन्न हुए इक्कीस पीढ़ियों के पुरुष अत्यन्त भयंकर नरक में डाल दिए गये।।२७।।

फिर वह तिलोत्तमा उससे अपने वास्तविक वृत्तान्त बतलाने के बादअपने पहले के श्रेष्ठ कुल का स्मरण कर ऊँचे स्वर में दीनतापूर्वक रोने लगी।।२८।।

रात्रि में उसका विलापपूर्ण ुदन सुनकर उन स्त्रियों का बड़ा समूह वहाँ पर आ गया। फिर उसे सान्त्वना देकर पूछा कि हे भद्रे! तुम्हारे रोने का कारण क्या है?।।२९।।

एतच्छ्रुत्वा स पाञ्चाल्यो मुमोह च ममार च।
सान्त्वयित्वा तु तां भद्रां ताः स्त्रियो रुदतीं ततः।
पाञ्चालं परिवार्यैव गतप्राणं यथा तथा॥३०॥
गात्रमर्दनसस्नेहमौषधं मणिमन्त्रकम्। सर्वं तस्य प्रयुक्तं यत् ताभिस्तत्रोपकल्पितम्॥३१॥
तस्य कष्टेन काये च ततो जीवमथाचलत्। वायुर्यः प्राणसंचारी प्राणिनां जीवसंज्ञकः॥३२॥
लब्धप्राणं शनैस्तं तु रात्रिशेषेण चेतनम्। स्वस्थावस्थं तु तं मत्त्वा पप्रच्छुर्मोहकारणम्॥३३॥
ततस्तेन यथात्मानं कुलस्य चरितं महत्। तिलोत्तमासहयानां स्त्रीणामग्रे सविस्तरम्।
अगम्यागनं कृत्वा प्रायश्चित्ते मनो दधे।३४॥
ब्रह्महा च सुरापी च ब्राह्मणो यदि जायते। प्रायश्चित्तं विनिर्दिष्टं मुनिभिर्जीवसंशयात्॥३५॥
मातरं गुरुपत्नीं च स्वसारं पुत्रिकां वधूम्। गत्वा तु प्रविशेदग्निं नान्या शुद्धिर्विधीयते॥३६॥
ब्रह्मघ्नश्च सुरापश्च स्त्रीघ्नश्च गुरुतल्पगः। अगम्यागमनं कृत्वा एषां स समतामियात्॥३७॥
इति श्रुत्वा तु पाञ्चाली ज्येष्ठं भ्रातरमेव तम्। द्विजेभ्यः प्रददौ सर्वमङ्गलग्नं विभूषणम्॥३८॥
रत्नं वस्त्रं धनं धान्यं यत् किञ्चित्स्वस्य विस्तरम्। शेषं कालिञ्जरस्यार्थं पूजाभूषाकरं ददौ।
कृष्णगङ्गोद्भवे तीर्थे चितां स्वामादिदेश ह॥३९॥

ये सब सुनने के बाद वह पाञ्चाल देशवासी मोहित होकर मरने जैसी स्थिति में आ गया। फिर उन स्त्रियों ने उस कल्याणिनी को सान्त्वना देकर उस प्राणहीन सार हुए पाञ्चाल देशवासी युवक को घेर लिया।।३०।।

फिर उन सबने शरीर को मलने से लेकर उस समय वहाँ उपलब्ध समस्त स्नेह, औषधि, मणि, मन्त्रां आदि का उस मृतक-सा युवक पर प्रयोग किया।।३१।।

फिर उस मृतक-सा शरीर में अचानक जीव संज्ञक प्राणवायु कष्टपूर्वक पुनः संचार करने लगा। इस प्रकार रात्रि के अन्त में उसे पुनः प्राणयुक्त सचेत और स्वस्थावस्था में देखकर उन सवने उससे उसके मोह का कारण पूछ दिया।।३२-३३।।

फिर उसने तिलोत्तमा की सहायक स्त्रियों के सम्मुख अपने महान् कुल का चरित्र बतलाया। फिरउसने अपने मन में अगम्यागमन का प्रायश्चित करने का निश्चय किया।।३४।।

जब ब्राह्मण ब्रह्महत्यारा, मद्यप आदि हो, तब मुनियों ने जीवननाश करने जैसा प्रायश्चित बतलाया है।।३५।।

फिर माता, गुरुपत्नी, बहन, पुत्री, वधू आदि के साथ इस प्रकार प्रसङ्ग करने पर अग्नि में प्रवेश करना ही चाहिए। ऐसे में पुरुष हेतु कोई अन्य शुद्धि के उपाय नहीं है।।३६।।

इस प्रकार अगम्यागमन करने वाला ब्रह्महत्यारा, मद्यप, स्त्रीघाती, गुरुपत्नी से प्रसङ्ग करने वाले के ही तुल्य हो जाता है।।३७७।।

ये सब सुनकर उस पञ्चाली ने अपने उस ज्येष्ठ भ्राता और ब्राह्मणों को अपने शरीर का सम्पूर्ण आभूषण दे दिया।।३८।।

फिर अवशिष्ट रत्न, वस्त्र, धन-धान्य और जो भी विस्तृत वैभव था, वे सब कालिञ्जर महादेव को पूजन हेतु प्रदान कर दिया।।३९।।

प्रायश्चित्तविशुद्ध्यर्थं प्रविशामि हुताशनम्। इति निश्चित्य तत्रैव स्नात्वा देवं हुताशनम्॥४०॥
सुमन्तुमुनिमत्युग्रमभिवन्द्योपविश्य च। मरणार्थं तदा तत्र कृत्वा सर्वं यतव्रता।
उद्दिष्टो नगरे तत्र सहसा जनरावकः॥४१॥
पाञ्चालेनैव तेनैव माथुरेभ्यः सहस्रशः॥४२॥
दत्तानि सर्वदानानि क्रीत्वा ग्रामं क्रमेण च। ईशावास्यं जपं दिव्यं जापकेभ्यः प्रदत्तवान्॥४३॥
सहायेभ्यस्तथा भागं देवसत्रार्थमेव च। और्ध्वदेहिकभागार्थं परिकल्प्य यथाविधि॥४४॥
स्नात्वा तीर्थे च कृष्णस्य देवं दृष्ट्वा प्रणम्य च। पूजार्थं च नमोवाक्यं कालिञ्जरकृते ददौ॥४५॥
सत्रं मठं च सर्वत्र कृत्वा संदिश्य सार्थकान्। सुमन्तोः प्रवरस्याथ पादौ जग्राह धर्मवित्॥४६॥
दिव्यज्ञानं च तच्छ्रेष्ठमद्भुतं लोमहर्षणम्। अगम्यागमनं पापमागतं मम सुव्रत॥४७॥
सवस्त्रा कनिष्ठया सार्द्धं यावदागमनं मम। अत्र स्थितस्येदानीं च नित्यकालं कृतं मया॥४८॥
त्वया निर्मलदृष्ट्या च मद्गात्रेभ्योऽनिशं सदा। कृमयः पतमानाश्च स्नानात् सर्वं यथोचिताः॥४९॥
तत् सत्यमद्य संजातं भगिनीगामि पातकम्। एवं विश्राव्य तत् पापं चितां दीप्य घृतोक्षिताम्।
प्रवेष्टुकामं तत्राग्नौ खे प्रोवाचाशरीरिणी॥५०॥

फिर पाप की विशुद्धि हेतु प्रायश्चित स्वरूप मैं अग्नि में प्रवेश करूँगी, ऐसा मन में निश्चय कर उसने वहाँ स्नान किया और फिर अग्निदेव को प्रज्वलित किया।।४०।।

फिर अत्यन्त तेजस्वी मुनि सुमन्तु की प्रार्थना कर उनके पास बैठकर उसने वहाँ मरने का व्रत धारण किया। उस समय अचानक उस नगर में लोगों में इस बात की चर्चा जोर पकड़ने लगी।।४१।।

फिर उस पाञ्चाल ने मथुरावासी ब्राह्मणों को हजारों प्रकार का दान किया।।४२।।

उसने 'ईशावाश्यम्' आदि दिव्यमन्त्र का जप करने वालों को सभी प्रकार का दान और ग्रास खरीद कर दान किया।।४३।।

फिर उसने यथोचित अंश के अनुसार सहायकों को, देवयज्ञ के निमित्त और और्ध्वदैहिक कार्य हेतु यथा विधि अपने धनांश का विभाग कर दिया।।४४।।

फिर तीर्थ में स्नान कर श्रीकृष्ण का दर्शन करते हुए उन्हें प्रणाम किया। फिर कालिञ्जर महादेव की पूजा हेतु 'नमः' वाक्य का उच्चारण भी किया।।४५।।

फिर सब जगह सदाव्रत और मठ की स्थापना कर उसने यात्रीदल को उचित सन्देश दिया। उसके बाद उस धर्मज्ञ ने श्रेष्ठमुंनि सुमन्तु के दोनों पैरों कोपकड़ लिया।।४६।।

उन श्रेष्ठ दिव्यज्ञान युक्त अद्भुत और रोमाञ्चकारी मुनि से उसने कहा कि हे सुव्रत! मुझे अगम्यागमन का पाप लगा हुआ है।।४७।।

मैं यहाँ जब से आया हूँ, तब से मैंने यहाँ स्थित अपनी छोटी बहन के साथ नित्य सहवास किया हैं।।४८।।

आपे नित्य अपनी निर्मल दृष्टि से मेरे स्नान पूर्व यथोचित रीति से सर्वदा गिरने वाली कीड़ों को देखा है।।४९।।

इस तरह भगिनी के साथ प्रसङ्ग करने का वह पाप आज सत्य हो गया। इस प्रकार अपना पाप सुनाने के

मैवं कार्षीः साहसं च विपाप्मानो सतश्च वः। कस्माद् वा कस्य संत्रासान्मरणे कृतनिश्चयौ॥५१॥
यत्र कृष्णेन सञ्चारं क्रीड़ितं च यथासुखम्। चक्राङ्कितपदा तेन स्थाने ब्रह्मसमे शुभे॥५२॥
अन्यत्र हि कृतं पापं तीर्थमासाद्य गच्छति। तीर्थे च यत्कृतं पापं वज्रलेपो भविष्यति॥५३॥
द्वावेतौ च यथावश्यं गङ्गासागरसंगमे। सकृदेव नरः स्नात्वा मुच्यते ब्रह्महत्यया॥५४॥
पृथ्व्यां यानि तीर्थानि सर्वाण्येवाभिषेचनात्। तत् पञ्चतीर्थस्नानेन समं नास्त्यत्र संशयः॥५५॥
एकदश्यां च विश्रान्तौ द्वादश्यां सौकरे तथा। त्रयोदश्यां नैमिषे च प्रयागे च चतुर्दशीम्॥५६॥
कार्त्तिक्यां पुष्करे चैव कार्त्तिकस्य सितासिते। कालेष्वेषु नरः स्नात्वा सर्वपापं व्यपोहति॥५७॥
मथुरायां च तीर्थेभ्यो विश्रान्तौ चक्रसंज्ञके। सरस्वत्यामसिकुण्डे तथा कालिञ्जरस्य च॥५८॥
पञ्चतीर्थाभिषेकाच्च यत्फलं लभते नरः। कृष्णगङ्गा दशगुणं लभते तु दिने दिने॥५९॥
ज्ञानतोऽज्ञानतो वाऽपि यत्पापं समुपार्जितम्। सुकृतं दुष्कृतं चापि मथुरायां प्रणश्यति॥६०॥
वराहेण पुरा चेदं पृथिव्याः परिपृच्छते। तीर्थानां गुणमाहात्म्यं कथितं पापनाशनम्॥६१॥

बाद उसने घृतसिञ्चित चिता को प्रज्वलित किया। उसके उस अग्नि में प्रवेश करने की कामना पर आकाश अशरीरिणी वाणी ने कहा।।५०।।

इस प्रकार साहस मत करो। तुम पाप रहित और शुद्ध हो। क्यों और किसके भय से तुम दोनों ने मरने का निश्चय किया है?।।५१।।

चूँकि उन कृष्ण ने जहाँ सुखपूर्वक विहार एवं क्रीड़ा की है तथा जिसे अपने चक्राङ्कित पद से पवित्र किया है, वह शुभ स्थान ब्रह्म के समान है।।५२।।

वैसे अन्यत्र किया हुआ पाप तीर्थ में पहुँचने पर विनष्ट हो जाता है। किन्तु तीर्थ में किया गया पाप वज्रलेप के सदृश होता है।।५३।।

ये दोनों गंगासागर संगम में अवश्य स्नान करें। मनुष्य वहाँ एक बार स्नान कर अपने ब्रह्महत्या रूपी पाप से मुक्त हो जाता है।।५४।।

पृथ्वी में जितने तीर्थ हैं, उनमें स्नान करने से जो फल होता है, वह निःसंशय ही पाँच तीर्थों में स्नान करने के समान नहीं होता है।।५५।।

एकादशी के विश्रान्ति तीर्थ में द्वादशी को सौकरक तीर्थ में, त्रयोदशी को नैमिषतीर्थ में चतुर्दशी को प्रयाग में और कार्त्तिक मास के शुक्ल और कृष्ण पक्ष के समय पुष्कर तीर्थ में स्नान कर मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाता है।।५६-५७।।

मथुरा, विश्रान्ति, चक्रसंज्ञक तीर्थ, सरस्वती तीर्थ और कालिञ्जर के असिकुण्ड, इन पाँच तीर्थों में स्नान करने से मनुष्य जो फल प्राप्त करता है, उससे दश गुना अधिक फल कृष्णगंगा में स्नान करने से प्रतिदिन प्राप्त होता है।।५८-५९।।

ज्ञान का अज्ञान से जो पाप होता है तथ समस्त सुकृत और दुष्कृत भी मथुरा में विनष्ट हो जाते हैं।।६०।।

पुरातनकाल में श्री वराह देव भगवन् ने पृथ्वी के पूछने पर तीर्थों का यह पापनाशक गुण माहात्म्य कहा था।।६१।।

सर्वदेवमयो योऽसौ सर्वयज्ञमयस्तथा। अनन्तश्चाप्रमेयश्च यस्य चान्तं च लभ्यते॥६२॥
यस्य श्रोत्रैकदेशे तु आकाशो लेशमात्रकः। विलीनो नैव ज्ञायेत तस्य देवस्य का कथा॥६३॥
तथा नयनयोः प्रान्ते तेजो लीनं न दृश्यते। निःश्वासे च विलीनोऽसौ वायुर्नष्टो न दृश्यते॥६४॥
खुरान्तरङ्गुलिप्रान्ते समुद्राःसप्त लीनकाः। दृश्यन्ते स्वेदसंकाशाः सार्द्धरूपाः खुरान्तरे॥६५॥
रोमकूपान्तरे मग्ना सशैलवनकानना। नष्टा पृथ्वी न लभ्येत तस्य देवस्य कोऽधिकः॥६६॥
सोऽत्र तीर्थपरित्राणं कुर्वन् दैवं विधिं स्वयम्। वराहः संस्थितः साक्षात् पुराणं येन सूचितम्॥६७॥
पृथिव्याः सर्वसन्देहान् स्फोटयामास योऽजयः। तस्य संदर्शनादेव सर्वपापविवर्जितः।
तत्क्षणादेव जायेत नात्र कार्या विचारणा॥६८॥
ज्येष्ठस्य शुक्लनवमीं स्नात्वा गङ्गोदके नरः। सूकरस्य त्रिरात्रं तु यः कुर्याद् दीपसंयुतम्॥६९॥
द्वादश्यां कृष्णगङ्गायां स्नात्वा कालिञ्जरे ततः। त्रिरात्रं शूकरं कृत्वा दत्त्वा दानं च शक्तितः।
कालिञ्जरे तु द्वादश्यां न स पापैर्विलिप्यते॥७०॥
द्वादशादित्यसंकाशो विमानेन समास्थितः। ब्रह्मणा समनुज्ञातो विष्णुलोके महीयते॥७१॥

वे भगवान् वराह देव सर्वदेवमय, सर्वयज्ञस्वरूप, अनन्त और अप्रमेय है। जिसका अन्त नहीं प्राप्त होता है।।६२।।

जिनके क्षेत्र के एक भाग में लेशमात्र आकाश विलीन होकर प्रतीत नही होता, उन देव का क्या वर्णन हो सकता है।।६३।।

उनके दोनों नेत्रों के प्राप्त भाग में विलीन तेज नहीं दिखलाई पड़ते हैं। उनके निःश्वास में विलीन यह वायु नहीं ज्ञात होता है।।६४।।

उनके खुर की अंगुलियों के बीच के एक भाग में सात समुद्र लीन है। खुर मध्य में विलीन रूप वाले वे समुद्र छोटी स्वेद बिन्दु के समान दीख पड़ते हैं।।६५।।

उनके रोमकूप के मध्य विलीन पर्वत और वनों से युक्त पृथ्वी नहीं ज्ञात होती है। उन देव से कौन अधिक हो सकता है?।।६६।।

साक्षात् वे भगवान् वराह देव दैवी विधि से तीर्थों का परित्राण करते हुए स्वयं यहाँ स्थित हैं, जिन्होंने यह पुराण प्रकट किया है।।६७।।

जिन अजय श्री भगवान् वराह देव ने पृथ्वी के सभी संशयों को दूर किया, उनका दर्शन करने से ही मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है। इसमें कोई संशय नहीं करना चाहिए।।।६८।।

ज्येष्ठ मास के शुक्लपक्ष की नवमी को कृघ गंगा के जल में स्नान कर जो तीन रातों तक सूकर तीर्थ में दीपदान करता है और जो द्वादशी को कृष्णगंगा में स्नान कर सूकर क्षेत्र के कालिञ्जर महादेव के मन्दिर में पूजन करता है तथा यथाशक्ति दान किया करता है, वह शूकर तीर्थ में तीन रात तथा द्वादशी को कालिञ्जर में इस प्रकार करने से पाप से मनुष्य लिप्त नहीं होता।।६९-७०।।

फिर वे जन द्वादश आदित्यों के समान तेजवान् और विमान पर चढ़कर ब्रह्मा की आज्ञा से विष्णुलोक में पहुँच कर आदर प्राप्त करते हैं।।७१।।

श्रीवराह उवाच

एवं च सुस्वरेणैव खे स्थितेन प्रबोधितः। पाञ्चालस्तु शुभं वाक्यं सुमन्तुभ्यपृच्छत॥७२॥
अस्मद्गुरुः पिता त्वं हि ब्रूहि किं करवाणि ते। पावकालम्भनं मे स्यादुताहोस्वित् तपोधन।
अत्र स्थितो माथुराणां तीर्थानां सेवकोऽथवा॥७३॥
त्रिरात्रं कृच्छ्रपाराकं चान्द्रायणसमाधिना। तव पादाङ्किते किं कृते सुकृतं भवेत्॥७४॥

सुमन्तुरुवाच

आकाशवाग्वदति यत् तत्सत्यं नानृतं क्वचित्। मया प्रत्यक्षतःपूर्वं तव गात्रेषु पातकम्।
दिने दिने स्नानपूर्वं याति चायाति नित्यशः॥७५॥
आश्रमेऽस्मिन् ततो भूत्वा निर्मलश्च शशी यथा।
तिष्ठोपरमितः पापाद् यावत्कालं च जीवसि॥७६॥
इयं तु भगिनी पापादुपावृत्ता सती परम्। सुगतिश्च विपाप्मा च भविष्यति च नित्यशः॥७७॥

श्रीवराह उवाच

एष प्रभावस्तीर्थस्य मथुरायां वसुंधरे। कृष्णगङ्गोद्भवस्यापि तथा कालिञ्जरस्य च।
सूकरस्य च माहात्म्यं यथा ते वर्णितं मया॥७८॥
यः श्रृणोति वरारोहे श्रद्धया परया युतः। पठते प्रातरेवापि न स पापेन लिप्यते।
सप्तजन्मकृतं पापं तस्य सर्वं व्यपोहति॥७९॥

श्री भगवान् वराह ने कहा कि इस प्रकार आकाशस्थ सुन्दर वाणी द्वारा प्राबोधित होकर उस पाञ्चाल देशवासी ने सुमन्तु से यह शुभ वचन कहा।।७२।।

वैसे भी आप हमारे गुरु और पिता सदृश हैं। अब आप बतलायें कि मैं क्या करूँ? हे तपोधन! अब बतलायें कि मैं अग्नि में प्रवेश करूँ या न करूँ अथवा क्या मैं यहाँ रहकर मथुरा के तीर्थों की सेवा करूँ?।।७३।।

अथवा क्या आपके चरणाङ्कित स्थान में रहते हुए त्रिरात्र, कृच्छ्रपाराक, चान्द्रायण व्रत अथवा समाधि का साधन करूँ? क्या करने से पुण्यप्रद होगा?।।७४।।

सुमंन्तु ने कहा कि आकाशवाणी ने जो कहा है, वह तो सत्य है। वह कभी असत्य नहीं हो सकता। मैंने पूर्व में प्रत्येक दिन स्नान के पहले तुम्हारे शरीर में पाप का आना और जाना देखा है।।।७५।।

अतः चन्द्र की तरह निर्मल होकर इस आश्रम में जीवनकाल पर्यन्त पाप से विरत होकर रहो।।७६।।

अब पाप से मुक्त तुम्हारी यह बहन परम सती है। तत्पश्चात् अब यह नित्य ही पाप से रहित और सद्गति की अधिकारिणी होती जाऐगी।।७७।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि हे वसुन्धरे! मथुरा में तीर्थ का इस प्रकार का प्रभाव है। मैंने तुम्हें कृष्णगंगा के उद्गम स्थान पर स्थित कालिञ्जर देव तथा वराह का माहात्म्य जिस प्रकार से बतलाया दिया है, वह उसी प्रकार का है।।७८।।

हे सुन्दरि! परम श्रद्धायुक्त होकर जो जन इसे सुनेगा अथवा प्रातःकाल ही जो इसका पाठ करेगा, वह पाप से लिप्त नहीं होगा। उसका सात जन्मों का किया हुआ समस्त पाप विनष्ट हो जाऐगा।।७९।।

फलं च गोशतस्यापि दत्तस्य समवाप्नुयात्। अमृतत्वं च लभते स्वर्गलोकं च गच्छति॥८०॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे चतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१७४॥

पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

अथ मथुरामाहात्म्ये साम्बोपाख्यानम्

श्रीवराह उवाच

शृणु चान्यद् वरारोहे कृष्णनारदयोः पुरा। द्वारकां वसमानस्य मातॄणां प्रति चागतम्॥१॥
सुखासीनस्य कृष्णस्य पुत्रदायुतस्य च। आगतो नारदस्तत्र यदृच्छागमनो मुनिः॥२॥
पाद्यमर्घ्यमासनं च मधुपर्कं सभाजनम्। गां गृह्य यथान्यायं कृत्वा संवादमुत्तमम्॥३॥
एकान्तमिति वक्तव्यं कृष्णं गत्वाऽथ नारदः। उत्थाय युगलो भूत्वा कृष्णायावक्षितं शृणु॥४॥
एष पुत्रो युवा वाग्मी सुरूपश्चारुदर्शनः। स्पृहणीयः सदा कान्तः स्त्रीजनस्य सुरेश्वर॥५॥

फिर जे जन सौ गोदान का फल पा सकेगा। उसे अमरत्व की प्राप्ति हो सकेगी तथा वे स्वर्ग को जा सकेगा।।८०।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में मथुरा माहात्म्य—तिलोत्तमा-पाञ्चालाख्यान, कृष्णगंगा माहात्म्य नामक एक सौ चौहत्तरवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१७४॥

अध्याय-१७५

मथुरा माहात्म्य साम्बाख्यान और सूर्याराधनावश कुष्ठशमन

हे सुन्दरि! पुरातन काल में नारद और कृष्ण के बीच के सम्वाद को कह रहा हूँ, उसे सुनो। एक बार नारद मातृतुल्य द्वारिका में रहने वाले श्रीकृष्ण से मिलने आये।।१।।

वहाँ अपने पुत्र और स्त्रियों के साथ सुखासीन कृष्ण के समीप नारद मुनि अपनी मनोभिलाषा सहित पधारे।।२।।

श्रीकृष्ण ने पात्र सहित पाद्य, अर्ध, आसन, मधुपर्क, गौ आदि सहित यथा अवसर उनका सत्कार किया। फिर श्रीकृष्ण ने नारद मुनि से उत्तम वार्ता प्रारम्भ की।।३।।

नारद जी ने श्रीकृष्ण के समीप पहुँचकर कहा कि मुझे एकान्त में आपसे कुछ कहना है। वे दानों उठकर एकान्त में चले गये। तत्पश्चात् नारद ने श्रीकृष्ण से जो कहा, उसे सुनो।।४।।

हे सुरेश्वर! आपका यह पुत्र साम्ब युवा, सुरूपवान् , सुन्दर आदि दीखने वाला है। यह स्त्रियों को प्रिय और आकर्षक है।।५।।

एतासां वरनारीणां क्रीडार्थं हि सुरेश्वर। देवयोन्योऽददंस्तुभ्यं सहस्राणि च षोडश॥६॥
साम्बं दृष्ट्वा च सर्वासां क्षुभ्यते स मनोभवः। एतत् ते ब्रह्मलोके च गीयते दैवतैः सदा॥७॥
त्वत्प्रियार्थं समायातो भवत्पार्श्वं निषेवितुम्। श्रूयते चार्थवद्गीतं श्लोकं द्वैपायनेन वै॥८॥
कीर्त्तिमन्तः स्वर्गवासा नरकस्तद्विपर्ययात्। दिवं स्पृशति भूमिं च यस्य पुण्येन कर्मणा॥९॥
यावत् स शब्दो भविता तावत्पुरुष उच्यते। पुरुषशविनाशी च कथ्यते शाश्वतोऽव्ययः।
नरके पुरुषः प्रोक्तो विपरीतो मनीषिभिः॥१०॥
तस्मात् साम्बं समाहूय तथा देवीगणं च यत्। आसनेषूपविष्टानां तासां क्षोभं तु साम्बतः।
लक्षयिष्याम्यहं सर्वं सत्यं चासत्यमेव वा॥११॥
तावत् संख्यासनान्येव स्वास्तीर्णानि च भागशः। पद्मपत्रदलोपेताः कृतानि मुनिना सह॥१२॥
सर्वासामुपविष्टानां प्रत्येकं केशवस्तदा। पश्चात् साम्बं समाहूय तस्याग्रे कृतसंपुटः।
स्थितो मुहूर्तं किं कार्यं आदिशस्वाब्रवीत् तदा॥१३॥
दृष्ट्वा रूपमतीवास्य साम्बस्यैव वरस्त्रियाम्। चुक्षोभ भगवान् देवोऽनङ्गः संस्मरणात् तथा।
उत्तिष्ठध्वं गृहं सर्वा गच्छध्वं स्वं निदेशनम्॥१४॥
निगृह्यमाणास्तत् क्षोभं वस्त्रलग्नदलेन ताः। गताः सर्वा यथायाताः साम्बस्तत्र स्थितोऽभवत्॥१५॥

हे सुरेश्वर! क्रीड़ा हेतु इन सोलह हजार श्रेष्ठ देवयोनि की स्त्रियों को आपके लिए दिया गया था।।६।।

साम्ब को देखकर उन सभी का काम क्षुब्ध हो जाया करता है। देवताजन ब्रह्मलोक में आपके प्रसङ्ग में नित्य यह चर्चा करते हैं।।७।।

मैं आपके हित के लिए आपके पास यही कहने आया हूँ। द्वैपायन का कहा हुआ यह अर्थपूर्ण श्लोक सुना जाता है।।८।।

कीर्त्तिमान लोग स्वर्ग में निवास किया करते हैं। इसके विपरीत होने से नरक जाता है। जिसका पुण्यकर्म स्वर्ग और भूमि को स्पर्श करता है। वह स्वर्ग में निवास करने वाला होता है।।९।।

जिस समय तक यह कीर्त्ति वाला शब्द रहा करता है, उस समय तक पुरुषवस्तुतः पुरुष कहलाता है। कीर्त्ति वाला पुरुष अविनाशी, शाश्वत और अव्यय कहा जाता है। मनीषियों ने इसे विपपरीत अर्थात् अकीर्त्तिमान् पुरुष को नरक में रहने वाला कहा है।।१०।।

इसीलिए उन देवियों के सहित साम्ब को इस समय बुलाना चाहिए। साम्ब के कारण आसन पर स्थित उन सब के क्षोभ के सत्यासत्य को पूर्णता से देखना चाहिए।।११।।

फिर मुनि के सहित श्रीकृष्ण ने उन सब स्त्रियो के स्थित हो जाने पर श्रीकृष्ण ने साम्ब को बुला भेजा। फिर उन श्रीकृष्ण के सामने साम्ब आते ही हाथ जोड़कर मुहूर्त्त भर खड़े रहे और कहा कि हमें यह आदेश दें कि क्या करना है?।।१३।।

इस प्रकार उस समय साम्ब के अत्यन्त सौन्दर्य को देख और स्मरण कर उन श्रेष्ठ स्त्रियों की कामभावना क्षुभित होने लगा। फिर उनसे कहा गया कि तुम सब उठो और अपने अपने आवास में जाओ।।१४।।

फिर उन सबने वस्त्र के सहारे पत्र से अपने उस क्षोम को नियन्त्रित किया तथा फिर वे सब जहाँ-जहाँ से आयीं थीं, वहाँ-वहाँ चली गईं।।१५।।

कृष्णस्तु नारदं वीक्ष्य सलज्जमवनीमुखम्। उक्तवान् स्त्रीसमुद्भूतं चरितं बहुविस्तरम्॥१६॥
क्षणं नास्ति रहो नास्ति नास्ति कृत्ये विभावना। तेन नारद नारीणां सतीत्वमुपजायते॥१७॥
श्यामा च वरवर्णाच गौरी चैवैकवाससा। मध्यगण्डा प्रगल्भा च वयोऽतीतास्तथा स्त्रियः॥१८॥
सुरूपं पुरुषं दृष्ट्वा क्षरन्ति मुनिसत्तम। स्वभाव एष नारीणां पुत्रस्य शृणु कारणम्॥१९॥
अनिच्छमानस्तेजस्वी धार्मिको गुरुपूजकः। रूपकारणमुद्दिश्य गताः क्षोभं कथञ्चन॥२०॥
नारदस्त्वेवमेवं च प्रतिपूज्य हरेर्वचः। अन्तरज्ञ उवाचेदं साम्बशापकरं तदा॥२१॥
यथा एकेन चक्रेण रथस्य न गतिर्भवेत्। पुरुषात् तु विनाभूता न क्षरन्ति स्त्रियोऽबलाः॥२२॥
साम्बमुद्दिश्यावाच्यं हि सर्वमुत्पन्नमादितः। यशस्करं महच्चास्य यथेष्टं तत्समाचर॥२३॥
इत्युक्तमात्रावचने नारदे मौनमास्थिते। कृष्णेन साम्बमुद्दिश्य विरूपकरणं महत्।
शापमुक्तं कुष्ठमयं रूपदेहविनाशकम्॥२४॥
तत्क्षणात् कुष्ठिताङ्गः स गलद्रुधिरबिन्दुकः। पूतिगन्धिमांसपिण्डः पशुरुर्त्तितो यथा॥२५॥
ततस्तु नारदेनैव साम्बशापविनाशमन्। समादिष्टो महान् धर्म आदित्याराधनं प्रति॥२६॥

फिर श्रीकृष्ण ने लज्जापूर्वक पृथ्वी की ओर मुख किए हुए नारद मुनि को देखकर कहा कि इन स्त्रियों का चरित्र अत्यन्त विस्तृत है।।१६।।

हे नारद अवसर न हो, एकान्त न हो और कृत्य के प्रसङ्ग में विशेष विचार न हो, तो स्त्रियों में सतीत्व सुरक्षित रहता है।।१७।।

सुन्दर वर्णवाली, गौराङ्गी, एक वस्त्र धारण करने वाली, श्यामा, मध्यगण्डा, प्रगल्भा और अवस्था प्राप्त स्त्रियाँ पुरुष के सुन्दर स्वरूप को देखते ही क्षरित हो जाया करती हैं। हे श्रेष्ठ मुनि! पुत्र के भी विषय में नारियों का यह स्वभाव ही होता है।।१८-१९।।

धार्मिक, गुरुपूजक और तेजस्वी साम्ब की कोई इच्छा नहीं है। उसके रूप के कारण ये स्त्रियाँ क्षुभित हो जाया करती हैं।।२०।।

फिर रहस्य को समझने वाले नारद न हरि श्रीकृष्ण की वाणी की प्रशंसा कर साम्ब को शापयुक्त कराने वाली यह बात इस तरह से कहा।।२१।।

जिस तरह एक चक्र से रथ नहीं चला करते, उसी तरह ही विना पुरुष प्रेरणा के अबला स्त्रियाँ क्षरित नहीं हुआ करती हैं।।२२।।

चूँकि प्रारम्भ से ही साम्ब के प्रसङ्ग में अकथनीय चर्चा चल पड़ी है। आप इनके लिए जो कीर्तिदायक और कल्याणप्रदायक हों, वे ही करें।।२३।।

इस प्रकार कहरक नारद मुनि के चुप होने पर श्रीकृष्ण ने साम्ब के प्रतिरूप को विकृत हो जाने योग्य महाशाप दे दिया, जिससे उन साम्ब का शरीर रूप सौन्दर्य नाशक कुष्ठ सम्पन्न हो गया है।।२४।।

फिर तो साम्ब तत्क्षण रक्तकण टपकाने वाले गलित कुष्ठ युक्त अंगों वाला हो गये। इस तरह उनका शरीर चमड़ी उतारे हुए पशु की तरह दुर्गन्ध युक्त मांसपिण्ड के सदृश हो गया।।२५।।

फिर वहीं नारद जी ने ही साम्ब को उस शाप से मुक्त करने वाला उपाय रूप आदित्य की उपासना करने के महान् धर्म का उपदेश किया।।२६।।

साम्ब साम्ब महाबाहो शृणु जाम्बवसीसुत। उदयाचले पूर्वाह्ले उदयन्तं विभावसुम्॥२७॥
नमस्कुरु यथाश्रद्धं वेदोपनिषदादिभिः। त्वयोदितं रविः श्रुत्व तुष्टिं यास्यति नान्यथा॥२८॥

साम्ब उवाच

अगम्यागमनात् पापाद् ध्वस्तो यः पुरुषो भवेत्। तस्य देवः कथं तुष्टो भविष्यति स वै मुने॥२९॥

नारद उवाच

भविष्यं पुराणमिति च तव वादाद् भविष्यति। ब्रह्मलोके पठिष्यामि ब्रह्मणोऽग्रे त्वहं सदा।
सुमन्तुर्मर्त्त्यलोके च मनोः प्रकथयिष्यति।३०॥

साम्ब उवाच

कथं पूर्वाचले गन्ता मांसपिण्डोपमो ह्यहम्। पितृशापान्महद्दुःखं प्राप्तस्त्वहमकिल्बिषः॥३१॥

नारद उवाच

यथोदयाचले देवमाराध्य लभते फलम्। मथुरायां तथा प्रातर्वटसूर्ये लभेत् फलम्।
मध्याह्ले च तथा देवं फलप्रियमकल्मषम्॥३२॥
मथुरायां च मध्याह्ले मध्यन्दिनरवौ यथा। अस्तङ्गते तथा देवं सद्यो राज्यफलं लभेत्॥३३॥
मथुरायां च मध्याह्ले मध्यंदिनरवौ तथा। प्रातर्मध्यापराह्ले च वटसूर्ये धारलोपके।
कृष्णगङ्गोद्भवे चैव सवनत्रयमेव च॥३४॥

हे जाम्बवती के पुत्र महाबाहु साम्ब! सुनो, पूर्वाह्न में उदयाचल पर उदित हो रहे सूर्य को वेद और उपनिषद् इत्यादि के मन्त्रों से श्रद्धापूर्वक तुम्हें प्रणाम करना चाहिए। वे सूर्य आपकी प्रार्थना से अवश्य ही प्रसन्न हो सकेंगे।।२७-२८।।

साम्ब ने कहा कि हे मुने! जो जन अगम्यागमन के पाप से भ्रष्ट हो गया है, उस पर वे सूर्य देव कैसे प्रसन्न हो सकते हैं?।।२९।।

नारद मुनि ने कहा कि आपके वचन से भविष्य पुराण की उत्पत्ति होगी। मैं ब्रह्मलोक में ब्रह्माजी के सामने सदा उस पुराण का पाठ किया करूँगा। फिर मर्त्त्यलोक में सुमन्तु ऋषिमनु को उसका उपदेश करेंगे।।३०।।

साम्ब ने कहा कि मांसपिण्ड के समान मैं किस तरह से उदयाचल पर पहुँच सकता हूँ। इस प्रकार मुझ निर्दोष को अपने पिता के शाप से महादुःख पहुँचा है।।३१।।

नारद ने कहा कि जैसे कि उदयाचल पर उपासना करने से पुण्यफल मिलता है। वैसे ही फल प्रातःकाल मथुरा में वह सूर्य तीर्थ में प्रार्थना करने पुण्य फल मिल जाया करता है। फिर उसी तरह मध्याह्न में भी फलप्रिय दोषरहित सूर्यदेव की उपासना करनी उचित है।।३२।।

जिस प्रकार मथुरा में दोपहर के समय मध्याह्नकालिक सूर्य की उपासना की जाती है, उसी प्रकार सायंकाल में अस्त कालीन सूर्य की उपासना करनी चाहिए। इस तरह से उपासना करने वाले को तत्क्षण राज्य फल मिल जाता है।।३३।।

मथुरा में दोपहर के समय मध्याह्नकालीन सूर्य तथा प्रातःकाल और अपराह्नकाल में धारलोकप वह सूर्य और कृष्णगंगा के उद्गम स्थल पर तीन सवन याने त्रिकाल यज्ञ करना चाहिए।।३४।।

एवं कुरु यथान्यायमेकाह्ने तु रवेः फलम्। आराध्य साम्ब कुष्ठादि सर्वं पापं जहिष्यसि॥३५॥

श्रीवराह उवाच

ततः साम्बो महाप्राज्ञः कृष्णज्ञप्तो ययौ पुरीम्। मथुरां मुक्तिफलदां रवेराराधनोत्सुकः॥३६॥
नारदोक्तेन विधिना साम्बो जाम्बवसतीसुतः। यथार्हं पूजयामास उदयन्तं विभावसुम्॥३७॥
कृत्वा योगेन चात्मानं साम्बाग्रे तु रविस्तदा। वरं वृणीष्व भद्रं ते मद्धर्मप्रकटाय च॥३८॥
यच्छ्रोषितो नारदेन तद्भद्र मम चाग्रतः। साम्ब पञ्चाशकैः श्लोकैर्वेदगुह्यपदाक्षरैः।
यः स्तुतोऽहं त्वया वीर तेन तुष्टोऽस्मि ते सदा॥३९॥
स्पृष्टो देवेन सर्वाङ्गस्तत्क्षणाद् दीप्तसच्छविः।
व्यक्ताङ्गवयवः साक्षाद् द्वितीयोऽभूद् रविर्यथा॥४०॥
मध्याह्ने याज्ञवल्क्यस्य यज्ञं माध्यन्दिनीयकम्।
अध्यायत् साम्बसहितो रविर्माध्यन्दिनोऽभवत्॥४१॥
वैकुण्ठपश्चिमे पार्श्वे तीर्थं माध्यन्दिनीयम्। स्नात्वा माध्यन्दिनं दृष्ट्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते॥४२॥
उदयास्ते ततो देवः साम्बेन सहितो विराट्। सायाह्ने कृष्णगङ्गायां दक्षिणे संस्थितस्तदा॥४३॥

हे साम्ब! समुचित विधि से एक दिन सूर्य की आराधना कर फल प्राप्त करो। इस प्रकार तुम कुष्ठादि समस्त पापों से मुक्त हो सकोगे।।३५।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि फिर श्रीकृष्ण की आज्ञा प्राप्त कर रवि की उपासना करने का उत्साहित महाबुद्धिमान् साम्ब मुक्तिफलदायिनी मथुरापुरी में आ पहुँचे।।३६।।

इस प्रकार जाम्बवती के पुत्र साम्ब ने नारद के द्वारा कही गई रीति से उदित हो रहे सूर्य को यथाविधि पूजन किया।।३७।।

फिर सूर्य ने साम्ब के सामने योग द्वारा स्वयं को प्रकट किया और कहा कि मेरे धर्म को प्रकट करने हेतु वर माँगों। तुम्हारा कल्याण होगा।।३८।।

हे भद्र साम्ब! नारद ने तुम्हें जो कुछ कहा है, उस स्तुति को तुमने मेरे सामने बोला है। तुमने वेदों के रहस्यपूर्ण पदों और अक्षरों वाले पचास श्लोकों से जो मेरी स्तुति की है, उससे मैं तुम्हारे ऊपर सदा प्रसन्न रहूँगा।।३९।।

फिर उस सूर्यदेव ने साम्ब का स्पर्श किया। इससे उनका सारा शरीर तत्काल तेजमय और शोभा से युक्त हो चला। फिरसमस्त अंगों के पूरे हो जाने से वे दूसरे सूर्य के समान दीखने लग गये।।४०।।

सूर्य ने साम्ब को मध्याह्न में याज्ञवल्क्य के मन्त्र से माध्यन्दिनीयक संहिता का पाठ कराया, जिससे साम्ब सहित सूर्य माध्यन्दिन हो गये।।४१।।

फिर वैकुण्ठ तीर्थ के पश्चिम पार्श्व में माध्यन्दिनीयक तीर्थ है, जहाँ स्नान करने के बाद माध्यन्दिन सूर्य का दर्शन करने से मनुष्य सभी अपने किये पापों से रहित हो जाया करते हैं।।४२।।

फिर विराट् सूर्यदेव उदयकाल से अस्तकाल पर्यन्त वहाँ साम्ब सति रहा करते हैं और सायंकाल कृष्णगंगा के दक्षिण तट पर स्थित होते हैं।।४३।।

तत्र दृष्ट्वा तु सायाह्ने रविमस्तोदयं प्रभुम्। सर्वपापविशुद्धात्मा परं ब्रह्माधिगच्छति॥४४॥

श्रीवराह उवाच

एवं साम्बस्य तुष्टेन मध्याह्ने तु नभस्तलात्। द्विध कृत्वात्मयोगेन साम्बकुष्ठमपोहत।
साम्बप्रियाख्यीर्थेषु तत्रैवान्तरधीयत॥४५॥

साम्बस्तु सह सूर्येण रथस्थेन दिवानिशम्। रविं स पृच्छयामास पुराणं सूर्यभाषितम्॥४६॥
भविष्यत्पुराणमिति ख्यातं कृत्वा पुनर्नवम्। साम्बः सूर्यप्रतिष्ठां च कारयामास तत्त्ववित्॥४७॥
उदयाचले सहस्रांशुं युनायास्तु दक्षिणे। मध्ये कालप्रियं देवं मध्याह्ने स्थाप्य चोत्तमम्॥४८॥
मूलस्थानं ततश्चक्रे अस्ताचलगते रवौ। स्थाप्य त्रिमूर्त्तिं साम्बस्तु प्रातर्मध्यापराह्निके॥४९॥
मथुरायां तथा चैकं स्थाप्य साम्बो वसुंधरे। स्वनाम्ना स्थापयामास पुराणविधिना स्वयम्।
एवं साम्बपुरं नाम माथुराणां कुलेश्वरम्॥५०॥
रथयात्रां तथा कृत्वा रविणा कथितं यथा। माघमासस्य सप्तम्यां देवं साम्बपुरे नराः॥५१॥
रथयात्रां प्रकुर्वन्ति सर्वद्वन्द्वविवर्जिताः। गच्छन्ति तत्पदं शान्तं सूर्यमण्डलभेदकम्॥५२॥

सायंकाल वहाँ अस्ताचलगामी प्रभु सूर्य का दर्शन करे वाला सब पापों से रहित होकर ब्रह्मपद को भी पा जाया करते हैं।।४४।।

श्रीभगवान् वराह ने कहा कि इस प्रकार साम्ब की उपासना से प्रसन्न होकर सूर्य मध्याह्न में आत्मयोग द्वारा अपना दो रूप बना कर आकाशस्तल से नीचे आये और साम्ब के कुष्ठ को नष्ट किया। फिर सूर्यदेव वहीं पर साम्बप्रिय नाम के तीर्थों में विलीन से हो गये।।४५।।

साम्ब भी अपने रथ पर स्थित सूर्य के साथ दिनरात निरन्तर रहते हुए सूर्य के कहे पुराण को पूछ-पूछ कर संगृहीत करने लगे।।४६।।

इस प्रकार तत्त्ववेत्ता साम्ब ने भविष्यपुराण' नाम से सुख्यात पुराण को पुनः नवीनीकृत कर सूर्य की प्रतिष्ठा को पुनःस्थापित किया।।४७।।

फिर उदयाचल पर स्थित और यमुना के दक्षिण भाग में उत्तम कालप्रिय सूर्यदेव को मध्याह्न में सुस्थापित कर सका।।४८।।

फिर तो मूलस्थान पर अस्ताचलगामी सूर्य की स्थापना की गई। इस प्रकार साम्ब ने प्रातः, मध्याह्न और सायंकालीन सूर्य की तीन मूर्त्तियों की सुस्थापना करने में सफल हुआ।।४९।।

हे वसुन्धरे! साम्ब ने मथुरा में भी पौराणिक विधि से अपने नाम की एक सूर्यमूर्त्ति को स्थापित किया। इस प्रकार मथुरावासियों के कुलेश्वर का नाम साम्बपुर पड़ा।।५०।।

अतः प्रत्येक जन को माघमास की सप्तमी तिथि के दिन सूर्य द्वारा कहे गये विधानानुसार रथयात्रा का उत्सव करना चाहिए।।५१।।

उस उत्सव के समय जो जन रथयात्रा करते हैं, वे समस्त द्वन्द्वों से रहित होकर सूर्यमण्डल को भेदने वाले उस शान्त परब्रह्म पद को पा लेते हैं।।५२।।

एतत् ते कथितं देवि साम्बशापसमुद्भवम्। पापप्रशमनाख्यानं महापातकनाशनम्॥५३॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१७५॥

षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

अथ मथुरामाहात्म्ये विश्रान्तितीर्थोपाख्यानम्

श्रीवराह उवाच

शत्रुघ्नेन पुरा घोरो लवणः सूदितो यथा। द्विजानुग्रहकामार्थमन्नमुत्सवरूपिणम्॥१॥

मार्गशीर्षस्य द्वादश्यामुपोष्य नियतः शुचिः। यः करोति वरारोहे शत्रुघ्नचरितं यथा।
द्विजानां प्रीणनं कृत्वा स्वधान्नवरदक्षिणम्॥२॥

लवणस्य वधादेव शत्रुघ्नस्य शरीरके। हर्षस्त सुमहान् जातो रामस्याक्लिष्टकर्मणः॥३॥

अयोध्यायाः समायातो रामः सबलवाहनः। महोत्सवं शत्राुघ्नस्य कर्तुं प्रियचिकीर्षया।
आग्रहिण्यां सितां प्राप्य मथुरां दशरथात्मजः॥४॥

एकादश्यां सोपवासः स्नात्वा विश्रान्तिसंज्ञके। कृत्वा महोत्सवं तत्र कुटुम्बसहितः पुरा॥५॥

हे देवि! मैंने तुमको महापातकों को विनष्ट करने वाला और पापों को शान्त करने वाला साम्ब के शाप से सम्बन्धित यह उपाख्यान कह सुनाया।।५३।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में मथुरा माहात्म्य साम्बाख्यान और सूर्याराधनावश कुष्ठशमन नामक एक सौ पचहत्तरवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१७५॥

अध्याय-१७६

मथुरा माहात्म्य-शत्रुघ्न से लवण वध, विश्रान्ति तीर्थ में महोत्सव

श्री भगवान् वराह ने कहा कि शत्रुघ्न ने पुरातन काल में अत्यन्त घोर वीर लवण नाम के असुर को मारा था। फिर ब्राह्मणों की कृपा कामना से महान् सुन्दर अन्न किया गया था, हे सुन्दरि! जो जन अगहन मास की द्वादशी को पवित्रता और इन्द्रिय निग्रह सहित उपवास कर शत्रुघ्न के समान आचरण करते हुए ब्राह्मणों की प्रसन्नता हेतु श्रेष्ठ हविष्यान्न और पितरों हेतु दक्षिणा देने का उत्सव करते हैं, उनकी सद्गति तो सुनिश्चित ही है।।१-२।।

शत्रुघ्न द्वारा लवणासुर का वध होने से अक्लिष्ट कर्मा राम के शरीर में महान् हर्ष का संचार हुआ था।।३।।

फिर वाहनों और सेनाओं के साथ मथुरापुरी में आकर दशरथ नन्दन राम ने शत्रुघ्न का प्रिय करने की कामना से मार्गशीर्ष मास के शुक्लपक्ष में महान् महोत्सव का महाआयोजन किया था।।४।।

पुरातन काल में राम ने कुटुम्बियों सहित एकादशी को उपवास कर विश्रान्ति संज्ञक तीर्थ में स्नान कर उत्सव किया था।।५।।

तस्मिन् भुक्त्वा यथाकामं तीर्थस्य फलदं नृणाम्। तस्मिन्नहनि तत्रैव यः कुर्यात् सुमहोत्सवम्॥६॥
सर्वपापविनिर्मुक्तः पितृभिः सह मोदते। स्वर्गलोके चिरं कालं यावत् स्थित्वाऽग्रजन्मनः॥७॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१७६॥
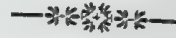
सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

अथ विष्णूपूजने त्रिंशदपराधानां प्रायश्चित्तकथनम्

धरण्युवाच

तवापराधाद् देवेश वर्ज्यान् यान् वैष्णवेन च। निरापराधो मनुजः सापराधश्च जायते॥१॥
कर्मणाचरणेनैव कृते चैव जुगुप्सिते। तत्र पूजाफलं सर्वं जायते तद् वदस्व मे॥२॥

श्रीवराह उवाच

कर्मणा मनसा वाचा ये पापरुचयो जनाः। अपराधगृहास्ते तु विपरीतास्तु साधवः॥३॥
अज्ञानाच्च प्रमादाच्च येषां प्राप्तमथान्तरम्। प्रायश्चित्तं दहेत् सर्वमपराधमलोत्थितम्॥४॥

फिर उसी दिन उसी स्थान पर जो जन मनुष्यों को फलदायक महान् उत्सव करने के बाद भोजन भी कराता है, वे जन समस्त अपने किये पापों से रहित होकर स्वर्गलोक में ब्रह्मा के साथ रहते हुए अपने पितरों के सहित आनन्द पाने वाले होते हैं।।६-७।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में मथुरा माहात्म्य—शत्रुघ्न से लवण वध, विश्रान्ति तीर्थ में महोत्सव एक सौ छियात्तरवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१७६॥

अध्याय–१७७

विष्णु पूजन में तैंतीस प्रकार के अपराध और प्रायश्चित्त

धरणी ने कहा कि हे देवेश! वैष्णवों द्वारा त्याग करने योग्य और आपके प्रति निरपराध प्राणी को अपराधी बनाने वाले कर्मों को त्याग कर अपराधी बनने से बचना चाहिए।।१।।

फिर उक्त प्रकार से अपराधी बनाने वाले कर्म को करने के पश्चात् किन कर्म और आचरण को करने से मनुष्य को आपके पूजा करने का फल मिलता है और वे सब मुझे अभी बतलाने की कृपा करें।।२।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि जो जन कर्म, वाणी और मन से पापकर्म में अपना लगाव रखने वाले हैं, ऐसे जन तो पाप के घर होते हैं। ठीक इसका अलट स्वभाव वाले जन साधु हुआ करते हैं।।३।।

जिन जनों को अज्ञानता अथवा प्रमादी होने से पाप लग जाता है,उनके द्वारा यहाँ किया जाने वाला प्रायश्चित उनके अपराध जनित सारे पापों को विनष्ट कर देता है।।४।।

भक्षणं दन्तकाष्ठस्य राजान्नस्य तु भोजनम्। मैथुनं शवसंस्पर्शं पुरीषोत्सर्गमेव च॥५॥
सूतक्युदक्याक्षपणस्पर्शनं मेहनं तथा। अभाष्यभाषणं कोपं पिण्याकस्य च भक्षणम्॥६॥
रक्तपारक्यमलिनवस्त्रधारित्वनीलिजम्। गुरोश्चालीकनिर्बन्धं पतितान्नस्य भक्षणम्।
अभक्ष्यभक्षणं चैव तण्डुलीयविभीतकम्॥७॥
अवितीर्णं नवान्नस्य जालपादवराकयोः। भक्षणं देवतागारे सोपानत्कोपसर्पणम्॥८॥
तथैव देवपूजायां निषिद्धकुसुमार्च्चनम्। अनिर्माल्यस्य वै विष्णोर्नमस्करणमेव च॥९॥
पानं सुराया देवस्य विना तूर्यैः प्रबोधनम्। वातकर्मार्चने विष्णोःपूजाऽजीर्णान्धकारयोः॥१०॥
अपराधास्त्रयस्त्रिंशत्कर्ता विष्णुं न पश्यति। दूरस्थो न नमस्कारं कुर्यात्पूजा तु राक्षसी॥११॥
एकरात्रं द्विरात्रं वा त्रिरात्रं स्नानमेव च। सवासाः पञ्चगव्याशी मलवस्त्रान्तिकं क्रमात्॥१२॥
नीलीरङ्गापनोदार्थं गोमयेन प्रघर्षणम्। प्राजापत्येन शुद्धिः स्यान्नीलीसूत्रस्य धारणात्॥१३॥
चान्द्रायणद्वयं कुर्याद् गुरोः क्षमितमुत्तमम्। चान्द्रायणं पराकं च पतितान्नस्य भोजनात्॥१४॥
चान्द्रयणं पराकं च प्राजापत्यं तथैव च। गोप्रदानं च भोज्यं च अभक्षणभक्षणे कृते॥१५॥

अब अपराधी बनाने वाले कर्म इस प्रकार हैं—दन्तकाष्ठ का भक्षण, राजा के अन्न का भक्षण, मैथुन, शवस्पर्श, मलमूत्र का त्याग, सूतकी, पुंश्चली, क्षपणक का स्पर्श, मैथुन, अभाष्यभाषण, क्रोध और पिण्याक अर्थात् तिल की पिट्ठी का भक्षण, रक्तयुक्त, मलिन तथा दूसरे के वस्त्र और नीलवस्त्र का धारण करना, गुरुजनों से असत्य आग्रह, पतित के अन्न का भक्षण, अभक्ष्य का भक्षण, तण्डुलीयक याने चौराई का साग और विभीतक याने बहेड़ा का भक्षण करना आदि।

फिर विना वितरण किये नवीन अन्न का भक्षण, जालपाद याने बत्तख और बराक का भक्षण, देवता के मन्दिर में जूता आदि उपानह पहने प्रवेश, देवपूजन में निषिद्ध पुष्प प्रयोग, विष्णु को माला चढ़ाये विना नमस्कार करना आदि।

फिर सुरापान, विना तूर्यनाद के देवता का प्रबोधन, वायु त्याग करते हुए विष्णु का पूजन करना, अजीर्णावस्था में और अन्धकार में पूजन करना। इस प्रकार से तैंतीस प्रकार के अपराधों को करने वाला विष्णु का दर्शन नहीं कर पाता है। फिर दूर रहते हुए उन्हें नमस्कार भी नहीं करना चाहिए। यदि ऐसा किया जाय तो वह पूजा राक्षसी कहलाती है।।५-११।।

अब उसके प्रायश्चित्त को कहा जा रहा है—मलिन वस्त्र धारण करने वाले को क्रम से वस्त्रसहित एक रात्र, द्विरात्र या त्रिरात्र पर्यन्त स्नान और पञ्चगव्य का भक्षण करना चाहिए।।१२।।

नीलवर्ण का वस्त्रधारण करने से होने वाले दोष को दूर करने हेतु गोमय से घर्षण करना चाहिए। नीलवस्त्र धारण करने पर प्राजापत्य व्रत करने पर शुद्धि होती है।।१३।।

गुरु के प्रति आपराध पर दो बार चान्द्रायण का व्रत और फिर गुरुजनों से क्षमा की याचना तथा पतितान्न भक्षण करने पर चान्द्रायण और पराक् व्रत करना श्रेष्ठ है।।१४।।

अभक्ष्य भक्षण हेतु चान्द्रायण, पराक् और प्रजापत्य का व्रत और गोदान और अन्नदान भी करना आवश्यक है।।१५।।

कृतोपवासः पञ्चानां पञ्चगव्येन शुद्ध्यति। सोपानत्कश्चरेत् पादं कृच्छ्रस्य द्विरींभोजनम्॥१६॥
पुष्पाभावेऽर्च्चने स्नानं देवस्य पञ्च धारयेत्। अनिर्माल्यनमस्कारे स्नानं पञ्चामृतेन तु॥१७॥
सुरापाने द्विजातीनां चान्द्रायणचतुष्टयम्। तथैव द्वादशानां च प्राजापत्यत्रयं चरेत्॥१८॥
ब्रह्मकूर्चेन शुद्धिः स्याद् गोप्रदानतत्रयेण च। त्रयाणामेकरात्रेण पञ्चामृतनिषेवनात्॥१९॥
मुच्यते त्वपराधैस्तु तथा विष्णोः स्तवं पठेत्। एतत् ते कथितं गुह्यं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि॥२०॥
पुनः पुनरुवाचेदं देवदेवो जनार्दनः। मोहं गता न शृणुते नष्टसंज्ञेव लक्ष्यते॥२१॥
मुहूर्तमात्रे सा देवी संज्ञां प्राप्येदमब्रवीत्। अपराधे कृते देव सूतकी हि प्रजायते॥२२॥
प्रायश्चित्तानि भीरूणि दुश्चराणि नरैः सदा। तेन मे मनसा मोहो दुःखादेभ्यस्समन्वगात्॥२३॥
अस्ति कश्चिदुपायोऽत्र येन त्वं नृषु तुष्यसि। पूजितः सफलश्चासि अपराधविशोधनात्॥२४॥

श्रीवराह उवाच

संवत्सरस्य मध्ये तु तीर्थे सौकरके मम। कृतोपवासः स्नानेन गङ्गायां शुद्धिमाप्नुयात्।
मथुरायां तथाप्येवं सापराधः शुचिर्भवेत्॥२५॥

पाँच प्रकार के पापों को करने वाले जन पञ्चगव्य से शुद्ध होता है। पैरों में जूता पहने देवमन्दिर में जाने वाले जन दो दिनों तक कृच्छ्रव्रत करे।।१६।।

विना पुष्प का पूजन करने पर देवता को पञ्चामृत से स्नान कराये। इसी प्रकार विना माला के नमस्कार करने परदेव को पञ्चामृत से स्नान कराना चाहिए।।१७।।

सुरापान करने वाले ब्राह्मणों को चार चान्द्रायण व्रत करना चाहिए। इसी प्रकार द्वादश पापों को करने वाला तीन प्राजापत्य व्रत करे।।१८।।

ब्रह्मकर्म, तीन गोदान, तीन एक रात्र व्रत और पञ्चामृत का सेवन करने से शुद्धि हो जाया करती है।।१९।।

इस प्रकार अपराधों से रहित होकर विष्णु के स्तोत्र का पाठ करना चाहिए। मैंने तुम्हें यह गुह्य रहस्य को बतला दिया है। अब और क्या सुनाये?।।२०।।

इस प्रकार से देवेदव जनार्दन ने वारम्वार यह कहा, परन्तु मोहावेशित धरणी ये सब सुन नहीं पा रही थी। वह तो अचेत-सी हो चुकी थी।।२१।।

मुहूर्तमात्र बाद उस देवी ने सचेतन होकर यह कहा कि हे देव! अपराध करने पर मनुष्य सूतकी हो जाया करते हैं।।२२।।

फिर इस मर्त्यलोक में प्रमादी मनुष्यों हेतु प्रायश्चित करना सदा अत्यन्त कठिन और भयप्रदायक हो जाता है। इसी कारण उनके दुःख को स्मरण कर मेरा मन मोह से युक्त हो गया है।।२३।।

अतः इस प्रसङ्ग में क्या कोई अन्य उपाय हो सकता है? जिससे मनुष्यों के ऊपर आप प्रसन्न हो सके तथा अपराध रहित हो जाने पर उन मनुष्यों द्वारा आप पूजित होकर उन्हें फल प्रदान कर सकें।।२४।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि वर्ष के मध्य में मेरे सौकरक तीर्थ में उपवास कर गंगा में स्नान करने से मनुष्य शुद्ध हो जाता है। इसी प्रकार मथुरा में भी अपराधी शुद्ध हो जाता है।।२५।।

अनयोस्तीर्थयोरकें यः सेवेत सकृन्नरः। सहस्त्रजन्मजनितानपराधाञ्जहाति सः॥२६॥

स्नानात् पानात् तथा ध्यानात् कीर्त्तनोच्चारणात् तथा।
श्रवणात् धारणाच्चैव दर्शनाद् याति पातकम्॥२७॥

पृथिव्युवाच

मथुरा सूकरं चैव द्वावेतौ तव वल्लभौ। विशेषमनयोः कस्य ब्रूहि सत्यं सुरेश्वर॥२८॥

श्रीवराह उवाच

पृथिव्यां यानि तीर्थानि आसमुद्रसरांसि च। कुब्जाम्रकं प्रशंसन्ति सदा मद्भावभाविताः।
तस्मात् कोटिगुणो गुह्यः शूकरस्तीर्थसत्तमः।२९॥

एकाहं मार्गशीर्ष्यां च द्वादश्यां सितवैष्णवम्। गङ्गासागरिका नाम पुराणे चापि पठ्यते॥३०॥

गुह्याद् गुह्यतरं देवि माथुरं मम मण्डलम्। फलं परार्द्धगुणितं सिततीर्थान्न संशयः॥३१॥

अटित्वा सर्वतीर्थानि कुब्जाम्रादीनि नित्यशः। श्रमो विनश्यते क्षिप्रं मथुरामागतस्य च॥३२॥

विश्रमणाच्च विश्रान्तिस्तेन संज्ञा वरा मम। सारात् सारतरं स्नानं गुह्यानां गुह्यमुत्तमम्॥३३॥

कुब्जाम्रके शूकरके मथुरायां विशेषतः। विना सांख्येन योगेन मुच्यते नात्र संशयः॥३४॥

या गतिर्योगयुक्तस्य ब्रह्मज्ञस्य मनीषिणः। या गतिस्त्यजतः प्राणान् मथुरायां न संशयः॥३५॥

जो जन इन तीर्थों में एक का भी एक बार सेवन कर लेता है, वह हजारों जन्मों में किये गये पापों को विनष्ट कर देता है।।२६।।

इन दोनों तीर्थों में स्नान, पान, ध्यान, कीर्तन, उच्चारण, श्रवण, धारण आदि कर्म करने से कोई भी पाप नहीं रह जाता है।।२७।।

धरणी ने कहा कि हे सुरेश्वर! मथुरा या सूकर तीर्थ, ये दोनों आपको अत्यन्त प्रिय हैं। मुझे यह सत्य बतलायें कि इन दोनों में कौन विशिष्ट तीर्थ हैं?।।२८।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि इस भूमि पर समुद्र से सरोवर तक जितने भी तीर्थ हैं, उनमें मेरे भक्त सदा कुब्जाम्रक की प्रशंसा किया करते हैं। उससे भी कोटि गुणों वाला श्रेष्ठ सूकर तीर्थ है।।२९।।

मार्गशीर्ष मास के शुक्लपक्ष की द्वादशी तिथि के दिन एक दिन विष्णु का दिवस है। पुराणों में भी उस दिन गंगासागर जाने का वर्णन प्राप्त होता है।।३०।।

नित्य कुब्जाम्रादिक समस्त तीर्थों में भ्रमण करने के बाद मथुरा में आने वाले का क्षम शीघ्र नष्ट हो जाया क़रता है।।३२।।

क्योंकि वहाँ पर विश्राम प्राप्त हो जाता है। अतः मेरे उस श्रेष्ठ तीर्थ का नाम विश्रान्ति है। वहाँ पर स्नान करना सारतत्त्व से भी अधिक महत्त्वपूर्ण तथा गुह्यों से भी अधिक गुह्य है। गति की खोज करने वालों के लिए मथुरा परमगति स्वरूपा है।।३३।।

फिर कुब्जाम्रक, शूकरक और फिर विशेष रूप से मथुरा में विना सांख्य और योग के मनुष्य निःसंशय मुक्त हो जाया करता है।।३४।।

योगयुक्त, ब्रह्मज्ञानी, मनीषी की जो कुछ गति हुआ करती है, निःसंशय वही सब गति मथुरा में प्राण त्याग करने वाले की होती है।।३५।।

एतत् ते कथितं सारं मया सत्येन सुव्रते। न तीर्थं मथुराया हि न देवः केशवात् परः॥३६॥
तस्मात् ते मोहजननी या बुद्धिः पूर्वसंस्थिता। सा स्थिरा न चला शश्वत् मथुरां प्रति भामिनि॥३७॥

।।इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः।।

अष्टसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

अथ मथुरामाहात्म्ये श्राद्धवर्णनम्

श्रीवराह उवाच

पुनरन्यत् प्रवक्ष्यामि पितृणां तृप्तिकारकम्। ध्रुवतीर्थे पुरावृत्तं तच्छृणुष्व वसुंधरे॥१॥
अस्यां पुर्यां तु राजासीद् धार्मिकः सज्जनप्रियः।
चन्द्रसेनेति नाम्ना य यज्वा दाता हिते रतः॥२॥
तस्य भार्या शते द्वे तु कुलशीलवयोयुताः। तासां मध्येऽधिका चैका पतिव्रतपरायणा।
नाम्ना चन्द्रप्रभन चैव वीरनसूवीर्नरनपुत्रिका॥३॥

हे सुन्दर व्रतधारिणि! तुम्हें यह सारतत्त्व बतलाया है कि मथुरा से बढ़कर कोई तीर्थ और केशव से बड़ा कोई देवता नहीं है।।३६।।

अतः हे सुन्दरि! मथुरा के प्रसङ्ग में जो कुछ तुमको मोह उत्पन्न करने वाली बुद्धि थी, उसे छोड़ो, मथुरा शाश्वत एवं स्थिर फलप्रदायक है, न कि चर फलप्रदायक है।।३७।।

।।इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में विष्णु पूजन में तैंतीस प्रकार के अपराध और प्रायश्चित्त नामक एक सौ सतहत्तरवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ।।१७७।।

अध्याय-१७८

मथुरा माहात्म्य-श्राद्ध माहात्म्य और चन्द्रसेन नृपाख्यान

श्री भगवान् वराह ने कहा कि हे वसुन्धरे! पुनः अब पितरों के तृप्त करने वले अन्यान्य प्रसङ्गों को बतलाने जा रहा हूँ। जो पूर्व काल में ध्रुवतीर्थ में घटित हुआ था, उसे सुनो।।१।।

इस मथुरापुरी में चन्द्रसेन नाम का एक धार्मिक, सज्जनप्रिय, यज्ञकर्त्ता, दानी, और हितकारी राजा रहा करता था।।२।।

कुल, शील, अवस्था आदि से युक्त उस राजा की दो सौ पत्नियाँ थीं। उनमें से एक सर्वाधिक पतिपरायणा, वीरमाता और वीर पुत्र की माता चन्द्रप्रभा नाम की पत्नी थी।।३।।

तस्यान दनासीनशतस्यैकान दनासीन नाम्ना प्रभावती।
तस्याः परिग्रहे त्वेका क्लिष्टाचारातिहीनका॥४॥
भुजिष्या सर्ववर्णैः सा मद्यमांसरतिप्रिया। विरूपनिधिनाम्ना च सा दासी दासचेटिका॥५॥
तस्याः पितृगणः सर्वे अतीताः शतसंख्यया। स्वैर्दोषैश्च च्युताः स्वर्गाद् योनिसङ्करकारिभिः।
सङ्करो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च॥६॥
कदाचिदपि तस्याथो भ्रष्टः पितृगणो महान्। सूक्ष्मप्राणिसमूहो हि ध्रुवतीर्थे तदाभवत्॥७॥
कृष्णरूपाश्चक्रमन्तो मशकाकारसन्निभाः। दृष्टास्ते ऋषिणा तत्र त्रिकालज्ञेन भामिनि॥८॥
षष्ठान्नकालभोक्त्रा च पयोव्रतमहात्मना। मौनव्रतेन सा देवि सूर्यगत्या स्थितेन च॥९॥
तस्मिन् दिने न च कृतं व्रतं जप्यं विमोहनात्। कृपाविष्टाभिभूतस्य कौतुकेन निरीक्षतः।
चतुर्थांशावशेषश्च दिवसः पर्यवर्त्तत॥१०॥
एके तत्रागमिष्यन्ति पितरो नभसोऽवनिम्। अन्ये पूर्वोत्तराद्देशाद् दक्षिणात् पश्चिमात् तथा॥११॥
केचत् स्वभावतो हृष्टाः केचित् पुत्रैः स्वधाकृताः।
हृष्टास्तुष्टाः सुपुष्टाङ्गा गच्छन्तो दिवि सङ्घशः॥१२॥

उसकी दौ दासियों में एक प्रभावती नाम की दासी थी। उसकी भी सेविकाओं में एक दासी अत्यन्त ही दूषित आचार वाली थी।।४।।

वह मद्य, मांस, मैथुन प्रिय और सब वर्णों से सहवास करने वाली थी। उस दासी का नाम विरूपनिधि था।।५।।

उसके पूर्व की सौ पीढ़ियों के पितृगण योनि संकर करने वाले उसके दोषों के कारण स्वर्ग से भ्रष्ट हो गये थे। कुलघ्नों के कुल की वर्णसंकर सन्तान नरक प्रदान, करने वली होती है।।६।

फिर किसी समय स्वर्ग से भ्रष्ट उसके महान् पितृगण सूक्ष्म प्राणियों के समूह के रूप में ध्रुवतीर्थ में उत्पन्न हो गए।।७।

हे भामिनि! वे सभी मशक के आकार सदृश, कृष्ण वर्ण युक्त और भ्रमणशील थे। त्रिकालज्ञ ऋषि ने उन्हें वहाँ देख लिया।।८।।

वे ऋषि छः आहारकाल के बाद भोजन करने वाले दुग्धाहारी महात्मा थे। वे मौन व्रत धारण कर सूर्य की गति के अनुरूप स्थित रहा करते थे।।९।।

कैतुकवश देखते रहने के कारण कृपा भाव से अभिभूत ऋषि ने उस दिन मोहवश व्रत एवं जप नहीं किया। दिन का चौथा प्रहर आरम्भ हो गया।।१०।।

कोई एक पितृगण आकाश से पृथ्वी पर आते हैं, दूसरे पूर्व, उत्तर, दक्षिण और पश्चिम भाग में आ जाते हैं।।११।।

कुछ स्वभावतः संतुष्ट हैं तथा कुछ पुत्रों द्वारा आमन्त्रि प्रसन्न, संतुष्ट तथा पुष्ट अंगों वाले सामूहिक रूप से आकाश में आ जा रहे हैं।।१२।।

तपस्विनः स्नानरता रूक्षाः क्षामशरीरिणः। वस्त्रालङ्कारपुष्टाङ्गा हृष्टा गच्छन्ति संघशः॥१३॥
तथाऽपरे नग्नदेहाः सुपुष्टा यान्ति तत्र वै। अन्ये यथागतं यान्ति आयान्ति पुनरेव हि॥१४॥
यानैरुच्चावचैः केचिन्नानारूपैः खगैस्तथा। समागच्छन्ति गच्छन्ति ईरयन्त्राशिषो मुदा॥१५॥
केचिद् यथागता यान्ति क्रुद्धाः शापप्रदायिनः। निर्गतोदररूक्षाश्च गच्छन्ति सुविमानिताः॥१६॥
संमानितास्तथाऽन्ये तु पितरः श्राद्धपूजिताः। महोत्सवमिवालक्ष्य विस्मितो मुनिरुत्थितः॥१७॥
गते पितृगणे पुत्राः सकलत्रा गृहान् ययुः। तिनर्जनं ध्रुवतीर्थं तु वृतवेलमिवाभवत्॥१८॥
तत्रैकान्ते कृशाङ्गोऽथ क्षुत्क्षामो गतिविह्वलः। वेपथुः कोटराक्षश्च पृठलग्न इवोदरः॥१९॥
उरुचर्मास्थिरुकृशब्दो जृम्भमाणो भृशं कृशः। न वाचः श्रूयते तस्य क्षुद्रपक्षिभिरिवोदिताः॥२०॥
को भवान् विकृताकारो वेष्टितो मशकैर्बहु। न गच्छसि यथास्थानमागतस्त्वं निरुद्यमः।
यथावत् पृच्छते मह्यं कथयात्मविचेष्टितम्॥२१॥
ममाद्य नैत्यकं कर्म तीर्थेऽस्मिन् नश्यतेऽनिशम्।
इमानुच्चावचाञ्जन्तून् दृष्ट्वा मां मोह आविशत्॥२२॥
त्वां दृष्ट्वेदृक्स्वरूपं च क्रिया मे संगता त्वयि। विस्रब्धः कथयास्माकं किं करोमि च ते हितम्॥२३॥

उनमें कुछ तो स्नानरत, दुर्बल, रूक्ष शरीर वाले तपस्वी हैं तथा कुछ वस्त्र और अलंकर से अलंकृत पुष्ट अंगों वाले सामूहिक रूप से जा रहे हैं।।१३।।

कुछ तो नग्न और अत्यन्त पुष्ट शरीर वाले वहाँ जा रहे हैं। कुछ नीचे ऊँचे अनेक रूपधारी आकाशचारी जीवों के सहित हर्षपूर्वक आते-जाते और आशीर्वाद दिये जा रहे हैं।।१४-१५।।

कुछ तो पेट निकले हए रूखे शरीर वाले अत्यन्त अपमानित होकर क्रोधपूर्वक शाप देते हुए जिस मार्ग से आये, उसी से लौट रहे हैं।।१६।।

कुछ दूसरे-दूसरे पितृगण श्राद्धकर्म द्वारा पूजित और सम्मानित होकर महान् उत्सव सा कर रहे हैं। ये सब देख मुनि विस्मय से युक्त होकर खड़े हो गये।।१७।।

पितरों के चले जाने पर उनके पुत्र, पत्नियों सहित घर चले गये। ध्रुवतीर्थ निर्जन और समय बीता हुआ-सा हो गया।।१८।।

फिर वहाँ एकान्त में भूख से पीड़ित दुर्बल शरीर वाला, कठिनता से चलता हुआ, काँपता हुआ, नेत्र गह्वर में धँसी हुई आँखों वाला तथा पीठ से सटे पेट वाला, उसके ऊरु के चर्म अस्थि में संलग्न था तथा चलते-चलते उससे शब्द होता था क्षुद्र पक्षियों द्वारा की गयी ध्वनि के समान उसकी वाणी नहीं सुनायी पड़ रही थी।।१९-२०।।

इस प्रकार विकृत आकार वाले तथा बहुत से मच्छरों द्वारा आवेष्टित आप कौन हैं? आप क्यों उद्यम रहित हैं तथा जहाँ से आये हैं, वहाँ क्यों नहीं जाते? मुझ पूछने वाले को अपनी वास्तविक दशा बतलाने का कष्ट करो।।२१।।

आज इस तीर्थ में मेरा नित्यकर्म निरन्तर चलता आ रहा नष्ट हो गया। ऊँचे-नीचे जन्तुओं देखकर मुझे मोह हो गया है।।२२।।

इस स्वरूप वाले तुमको ही देखकर मेरी चेष्टा तुम पर आ टिकी हुई है। विना संकोच मुझसे कहो कि तुम्हारा क्या हित कर सकता हूँ?।।२३।।

जन्तुरुवाच

बृहन्निमित्तमद्यैव पितृणां तृप्तिकारकम्। ध्रुवतीर्थे च यः श्राद्धं पुनः कुर्यात् तिलोदकम्।
तेन तृप्ता दिवं यान्ति पितरस्तेन पुत्रिणः॥२४॥

सोऽहं स्वान्तरिवादत्तस्तृप्त्यर्थस्तु बुभुक्षितः। योनिसंकरदोषेण नरकं समुपाश्रितः॥२५॥
आशापाशशतैर्बद्धः शतवर्षैरिहागतः। अगतिर्गमने मे स्यात् ते गता यैः समागतः॥२६॥
संतानैःपुष्टवपुषो दत्तश्राद्धैः कृतोदकैः। बलवन्तो ययुः स्वर्गं न तथाऽहं दयालुक॥२७॥
येषां सन्ततिरक्षय्या तिष्ठतीह प्रजावती। स्वधया पूजिताः पुत्रैः गच्छन्ति परमां गतिम्॥२८॥
अद्य राज्ञस्तु पितरश्चन्द्रसेनस्य पूजिताः। दृष्टास्त्वया त्रिकालज्ञ दिव्यदृष्ट्या दिवं गताः॥२९॥
ब्राह्मणानां च वैश्यानां शूद्राणां पितरस्तथा। प्रतिलोमानुलोमानां शूद्राणां श्राद्धकर्मिणाम्।
सर्वेषां च त्वया दृष्टं येषां सन्ततिरव्यया॥३०॥

एवं पृष्टः स विप्रेण पुनः पप्रच्छ कारणम्। कौतुकाविष्टहृदयो ज्ञानाविष्टेन चेतसा॥३१॥
तवापि सन्ततिस्तात नास्ति दैवाद् यथोचिता। तथापचितिविज्ञानाल्लक्षणमाहमेव ते॥३२॥

उस जन्तु ने कहा कि आज पितरों को तृप्त करने वाला महान् अवसर है। जो जन आज ध्रुवतीर्थ में तिल और जल से श्राद्ध करते हैं उनके द्वारा तृप्त हुए पितर लोग स्वर्ग को चले जाते हैं। उसी पुत्र से पितरण पुत्रवान् होते हैं।।२४।।

मैं इस प्रकार का हूँ कि मेरे कुल के सिी व्यक्ति ने मेरी तृप्ति हेतु जल और तिल नहीं दिया। अतः मैं प्यासा ही रह गया हूँ। योनिसंकर के दोष से मैं नरकगामी हो गया हूँ।।२५।।

फिर सैकड़ों आशस्वरूप पाशों से बँधा हुआ सौ वर्षों में मैं यहाँ आया हूँ। मैं अब आने में भी असमर्थ हूं जिनके साथ आया था, वे सब भी चले गये।।२६।।

हे दयालु! अपने सन्तानों द्वारा श्राद्ध किए जाने तथा जलाञ्जलि देने से बलवान् और पुष्ट शरीर वाले मेरे साथी स्वर्ग को वापस चले गये। मैं वैसा करने में असमर्थ हूँ।।२७।।

चूँकि जिनकी कुल परम्परा अक्षय और प्रजावान् होती है, ऐसे जनों के पुत्र द्वारा किये गये श्राद्ध से पूजित होकर स्वर्ग चले जाते हैं।।२८।।

हे त्रिकालदर्शी! आज तुमने अपनी दिव्य दृष्टि से राजा चन्द्रसेन क पितरों की श्राद्ध में पूजित होकर स्वर्ग जाते देखा है।।२९।।

तुमने अक्षय सन्तान वाले ब्राह्मणों, वैश्यों, शूद्रों तथा प्रतिलोम और अनुलोम विवाहें से उत्पन्न श्राद्ध करने वाले शूद्रों के पितरों को भी देखा है।।३०।।

उत्सुकतापूर्ण हृदय और जिज्ञासु चित्त स ब्राह्मण ने पुनः उससे इस प्रकार उसकी अवस्था का कारण पूछ दिया।।३१।।

सम्भवतः हे तात! दैववश तुम्हें योग्य सन्तान नहीं है। इसी से तुम्हारी यह दुर्दशा मैं देखने हेतु बाध्य हो रहा हूँ।।३२।।

यदि कश्चिदुपायोऽत्र मया तत्र हितैषिणा। वद सर्वं करिष्यामि यदि शक्यं भवेन्मम॥३३॥
ततः स कथयामास दुःस्थः पितृगणैर्वृतः। य इमे मे शरीरे तु भवन्ति मशकाः कृशाः।
सन्तानप्रक्षयादेते मम देहं समाश्रिताः॥३४॥
तन्तुमात्रमहं तेषां मम तन्तुमयी सकृत्। आस्ते नगार्या मध्ये तु चन्द्रसेनस्य वेश्मनि॥३५॥
महिष्याः प्रेषणे नित्यं दासी नाम्ना प्रभावती। तस्या दासी कर्मकरी विरूपनिधिनामतः॥३६॥
अस्माकं सन्ततेस्तन्तु तस्याः श्राद्धकृते वयम्। आशया बद्धहृदयाः श्राद्धतर्पणहेतवः॥३७॥
स्थिता एतावदेवं तु कालं यास्यामहेऽशुचौ। नरके त्वप्रतिष्ठे तु निराशाः स्वेन कर्मणा॥३८॥
श्रुत्वैतत् स त्रिकालज्ञो मोहाविष्टोऽब्रवीदिदम्। कथं निकृष्टयोन्या यद् दत्तं चापद्यते हविः॥३९॥
विधिरत्र कथं तस्या येन यूयं सुपुत्रिणः। प्रोवाच स त्रिकालज्ञं ज्ञानक्लिष्टं कृपान्वितम्॥४०॥
पूर्वकर्मविपाकेन यां यां गतिमधोमुखीम्। उद्ध्वर्वास्याश्चापि पितरः पुत्रिणः पुत्रमीहते॥४१॥
श्राद्धं पिण्डोदकं दानं नित्यनैमित्तिकं तथा। नान्या गतिः पितृणां स्यात् पितरस्तेन पुत्रिणः॥४२॥
(इति स्मृतिः)

यदि इस प्रसङ्ग में कोई उपाय हो, तो मुझ हितैषी से वह कह सकते हो। यदि वह मेरे करने योग्य होगा तो मैं उन सब को कर दूँगा।।३३।।

फिर पितरों से आवृत्त उस दुर्दशाग्रस्त जन्तु ने कहा कि मेरे शरीर में जो ये मच्छर विवश होकर पड़े हैं; उन सबने सन्तान का क्षय हो जाने से मेरे शरीर का आश्रय किया हुआ पड़ा है।।३४।।

मैं उन सबका का तन्तुमात्र हूँ। मेरी एकमात्र सन्तान नगर के मध्य चन्द्रसेन के गृह में निवास कर रही है।।३५।।

वह रानी की नित्य सेवा करने वाली प्रभावती नाम की दासी है। उसकी विरूपनिधि नाम की एक काम करने वाली दासी है।।३६।।

वह हमारी सन्तान की तन्तु है। श्राद्ध और तर्पण के प्रयोजन वाले हम सब उसके द्वारा किये जाने वाले श्राद्ध के लिए हृदय में आशा बाँधे रह जाया करते हैं।।३७।।

इतने काल तक हम सब ऐसे ही पड़े रहे किन्तु अब हम सब अपने कर्म से निराश होकर प्रतिष्ठाहीन अपवित्र नरक में जाने को बाध्य हैं।।३८।।

ये सब सुनकर उस मोहाविष्ट त्रिकादर्शी ने यह कहा कि निकृष्ट योनि द्वारा प्रदान किया गया हवि तुम सब को कैसे प्राप्त हो सकेंगे।।३९।।

उसके द्वारा कौन विधि सम्पन्न की जाय, जिससे तुम लोग सुपुत्रवान् हो सको। उसने अत्यन्त ज्ञानी दयालु त्रिकालदर्शी से कहा।।४०।।

पुत्रवान् पृिगण अपने पूर्वकर्मों के परिणामस्वरूप चाहे अधोमुख गति वाली अथवा ऊर्ध्वमुख स्थिति में हो, पुत्र की इच्छा सब करते हैं।।४१।।

श्राद्ध, पिण्ड, जल तथा नित्य और नैमित्तिक दान हेतु पितरों की अन्य गति नहीं होती। इसी कारण पितृगण पुत्रवान् होते हैं।।४२।।

अपि स्यात् स कुलेऽस्माकं यो नो दद्याज्जलाञ्जलिम्।
नदीषु बहुतोयासु शीतलासु विशेषतः॥४३॥
विशेषात् तीर्थमध्ये तु तिलमिश्रं जलाञ्जलिम्। रौप्यस्पृष्टजलेनाथ नाभिदघ्ने जले स्थितः॥४४॥
दर्भपाणिस्त्रींस्त्रीन् गोत्रपितृनाम समुच्चरन्। नाम शर्मा तृप्यत्वेवं स्वाधाकारमुदाहरन्॥४५॥
आदावन्ते जले द्वे तु त्रीणि मध्ये समंततः। तृप्यध्वमिति चान्ते वै मन्त्रं मन्त्रप्रतिक्रिया।
उदीरतामङ्गिरस आयन्तु न इत्युत॥४६॥
पित्रे प्रथमतो दद्यान् मात्रे दद्यात् तथा त्वरम्। गोत्रमातानाम देवी तृप्यत्त्वेवं स्वधोच्चरन्॥४७॥
एवं मातामहः शर्मा गोत्रे पितामहस्तथा। उद्ध्वं पितृभ्यो ये चेह पितामह इहोच्यते॥४८॥
मधुवाता ऋचं सिञ्चन् पूर्ववत् परिकीर्त्तयन्। पितामही प्रपितामही मातृवत् पतिना सह॥४९॥
एवं मातामहानां च पूर्ववत् क्रमशो बुधः। नंमो व इति मन्त्रेण प्रत्येकं त्रितयं त्रिषु।
मन्त्रोच्चारं प्रकुर्वीत असूर्यान्नाशयामहे।५०॥
गोत्राय पित्रे महाय शर्मणे चेदमासनम्। गोत्रायै मात्रे गुह्ये तु देव्यै चासनकर्मणि॥५१॥
गोत्र महः पितः शर्म गोत्रे माता देवी मही। अर्घपात्रान्नसंकल्पे पिण्डदानेऽवनेजने॥५२॥

कोई हमारे कुल में ऐसा उत्पन्न हो, जो विशेष रूप से शीतल बहुत जलवाली नदियों में हम सबको जलाञ्जलि प्रदान करें।।४३।।

वह विशेष कर तीर्थ में नाभिपर्यन्त जल में खड़े होकर चाँदी से स्पृष्ट तिलमिश्रित जल प्रदान करे।।४४।।

फिर हाथ में तीन-तीन कुशायें लेकर गोत्र, पिता, शर्मा युक्त अपना नाम तृप्त हो तथा 'स्वधा' शब्द का उच्चारण करते हुए जल प्रदान करे।।४५।।

आदि और अन्त में दो-दो वार तथा मध्य में चारों ओर तीन-तीन वार जलदान करे। प्रत्येक मन्त्र के अन्त में 'तृप्यध्वम्' अर्थात् तृप्त हो, इस प्रकार उच्चारण करे अथवा अङ्गिरा की कही ऋचा 'आयन्तु नः' इत्यादि का उच्चारण करे।।४६।।

सर्वप्रथम पिता को फिर माता को जल आदि दान करे। गोत्र, माता से नाम के साथ देवी शब्द तृप्यतु अर्थात् तृप्त हो तथा स्वधा शब्द का प्रमेया करना चाहिए।।४७।।

इसी तरह मातामह और पितामह के साथ गोत्र, नाम और शर्मा शब्द का उच्चारण करे। इस प्रसङ्ग में पिता के ऊपर के पितरों को पितामह कहा गया है।।४८।।

फिर पूर्ववत् 'मधुव्वाता' आदि ऋचा का उच्चारण करते हुए जलदान करे। माता के समान पति सहित पितामही और प्रतिपामही को जलाञ्जलि देना चाहिए।।४९।।

फिर इसी तरह बुद्धिमान् जन नमो व इत्यादि मन्त्रों द्वारा क्रम से मातामह इत्यादि को तीन बार जल प्रदान करे। फिर 'असूर्यान्नाशयामहे' इस मन्त्र का उच्चारण करना चहिए।।५०।।

अमुक गोत्र के अमुक शर्मा नाम क पितामह का यह आसन है। अमुक गोत्र की अमुक देवी नाम की मातामही का यह आसन है। अमुक गोत्र के अमुक शर्मा नामक पितामह तथा अमुक गोत्र की अमुक देवी नामक मातामही की अर्घपात्र, अन्नसंस्कार, पिण्डदान और अवनेजन नाम को श्राद्धकर्म समर्पित है।।५१-५२।।

गात्रस्य पितुर्महस्य शर्मणोक्तस्य कर्मणि। गोत्रायै मातामह्याश्च देव्याश्चाक्षयकर्मणि॥५३॥
आवाहने द्वितीया च चतुर्थी तुर्यकर्मणि। प्रथमा चाशिषः प्रोक्ता दत्तस्याक्षयकारिका॥५४॥
श्राद्धपक्षे तथा षष्ठी पञ्चमी पूरणे मता। निमित्ते सप्तमी प्रोक्ता दत्तस्याक्षयकारिकाः॥५५॥
गोत्रेति तर्पणे प्रोक्तः पिता तर्पणकर्मणि। पितुरक्षय्यकाले तु पितृणां दत्तमक्षयम्॥५६॥
एवमेतत् सुपुत्रेण भक्तिपूर्वं द्विजेन तु। वार्यपि श्रद्धया दत्तं तदानन्त्याय कल्पते॥५७॥
श्रद्धया ब्राह्मणेनैवं यथाश्राद्धविधिक्रिया।
कृत्वा श्राद्धं तु पितरो दृष्टा मुमुदिरे सदा॥५८॥
जोषमास्स्व त्रिकालज्ञ गच्छाम नरकाय वै। पूर्वकर्मविपाकेन चिरं तु वासितुं मुने॥५९॥

त्रिकालज्ञ उवाच

ये मया चागता दृष्टास्तीर्थेऽस्मिन् पितरोऽथ वै। बहवः स्वस्थमनसो बहवोऽस्वस्थमानसाः॥६०॥
पुत्रदत्तं तथा श्राद्धं नग्नाः सोद्विग्नरूपिणः। मौनेन गच्छतां तेषां किमेतद् वद निश्चयम्॥६१॥

अगस्तिरुवाच

अत्र यन्निश्चयं श्राद्धे पुत्रस्य विकलं भवेत्। नैराश्यकरणं किञ्चित् तन्मे निगदतः शृणु॥६२॥

अक्षय श्राद्धकर्म के समय पितामह गोत्र तथा नाम के साथ शर्मा शब्द का प्रयोग करना आवश्यक है। इसी प्रकार मातामही के नाम के साथ 'गोत्रायै' देव्यै' शब्द का प्रयोग करना चाहिए।।५३।।

आवाहन में द्वितीया, चतुर्थ वर्ग में चतुर्थी और आशीर्वचन में प्रथम विभक्ति का उपयोग करना चाहिए। इस प्रकार किया हुआ जल अक्षय फल दायक होता है।।५४।।

श्राद्ध पक्ष में षष्ठी का, पूरण कर्म में पञ्चमी का, नैमित्तिक में सप्तमी विभक्ति कही गई है। इस प्रकार दिया हुआ ल अक्षय फलप्रदायक होता है।।५५।।

पिता के निमित्त किये जाने वाले तर्पण कर्म में तर्पण के समय गोत्र का उच्चारण करना चाहिए। पितर के श्राद्ध के समय पित्तरों को दिया हुआ पिण्ड और जलादि अक्षय फलप्रदायक होता है।।५६।।

इस प्रकार ब्राह्मणवंशी सत्पुत्र के द्वारा इस प्रकार श्रद्धापूर्वक दिया हुआ जल भी अनन्त फल प्रदायक होता है।।५७।।

ब्राह्मण के द्वारा श्रद्धापूर्वक यथावसर श्राद्धकर्म करने से पितृगण सदा प्रसन्न रहते हैं। हे त्रिकालदर्शी! आप शान्त बैठें। हम नरक को जा रहे हैं। हे मुने! अपने पूर्वकर्म के फलस्वरूप दीर्घकाल तक नरक में निवास करने हम जाते हैं।।५८-५९।।

त्रिकालदर्शी ने कहा कि मैंने इस तीर्थ में जितने भी पितरों को आया हुआ देखा, उनमें बहुत-से स्वस्थ मान वाले और बहुत-से अस्वस्थ चित्त वाले भी थे।।६०।।

कुछ नग्न और उद्विग्न रूप और मन वाले पुत्र द्वारा श्राद्ध किये जाने के बाद चुपचाप चले गये। उनके इस प्रकार जाने का क्या कारण है? यह बतलाओ।।६१।।

अगस्ति ने कहा कि पुत्र द्वारा सम्पन्न श्राद्ध में जो त्रुटि होती है, वही निराशा का कारण है। मैं उसका कुछ अंशों में उल्लेख करता हूँ, उसे सुनो।।६२।।

अदेशकाले यद्दत्तं विधिहीनमदक्षिणम्। अपात्रे मलिनं द्रव्यं महापातकतोर्जितम्॥६३॥
अश्रद्धेयमपात्रेयं दुष्टप्रोक्षितमीक्षितम्। तिलमन्त्रकुशैर्हीनमासुरं तद्धवेदिति॥६४॥
वैरोचनाय देवेन वामनेन विभूतये। सच्छिद्रस्य च श्राद्धस्य फलं दत्तं पुरा किल॥६५॥
तथा दशरथी रामो हत्वा राक्षसमीश्वरम्। रावणं सगणं घोरं तुष्टेन सह सीतया॥६६॥
श्रुत्वा भक्तिं च राक्षस्यास्त्रिजटायास्त्रिलोककृत्।
सीतावाक्यप्रतुष्टेन तस्यै प्रादाद् वरं विभुः॥६७॥
अशुचीनि गृहाण्येव तथा श्राद्धहवींषि च। क्रोधाविष्टानि दानानि विधिपात्रयुतानि च॥६८॥
पादशौचमनभ्यङ्गं प्रतिश्रयमभोजनम्। त्रिजटे त्वत्प्रयच्छामि यच्च श्राद्धमदक्षिणम्॥६९॥
तथैव शम्भुना दत्तं नागराजाय भक्तितः। वासुकये सुतुष्टेन तन्ते निगदतः शृणु॥७०॥
अनुज्ञाप्य व्रतं जन्तुर्वार्षिकी सकला क्रिया। यज्ञस्य योचिता देया दक्षिणा नाददाद् द्विजः॥७१॥
वृथा शपथकारी यो देवब्राह्मणसन्निधौ। अश्रोत्रियाणि श्राद्धानि क्रियामन्त्रैर्विहीनकाः॥७२॥
रात्रौ सवाससा स्नानं यथासत्त्वस्वरूपतः। यः शिष्यो न नमेद् भक्त्या गुरुं ज्ञानप्रदायकम्॥७३॥
तस्यैव प्राकृतं धर्ममग्रे गेये करिष्यतः। सर्वं तुभ्यं मया दत्तं नागराजाय वार्षिकम्॥७४॥

अनुपयुक्त देश और काल में विधि रहित और विना दक्षिणा के अपात्र को जो अशुद्ध द्रव्य दान में दिया जाता है, व बलवान् महापातक होता है।।६३।।

श्रद्धा के अयोग्य अपात्र को दिया हुआ दुष्ट प्राणी द्वारा देखा और स्पर्श किया हुआ, तिल, मन्त्र और कुशा से सहित पिण्डादिका दान आसुरी होता है।।६४।।

वामनदेव ने पुरातन काल में त्रुटिपूर्ण श्राद्ध का फल ऐश्वर्य की वृद्धि हेतु विरोचन के पुत्र बलि को प्रदान किया था।।६५।।

फिर अनुचरों के साथ घोर रावण को मारने के बाद सीता सहित, प्रसन्न दाशरथि तीनों लोकों के स्रष्टा प्रभु श्री राम ने सीता के कहने पर राक्षसी त्रिजटा की भक्ति को सुनने के बाद उस त्रिजटा को सन्तुष्ट होकर यह वर दिया है।।६६-६७।।

कि अपवित्र गृह, श्राद्ध और हवि तथा उपयुक्त विधि और पात्र से युक्त होकर भी क्रोधपूर्वक किया गया दान तथा हे त्रिजटे! पादशुद्धि और अङ्ग शुद्धि रहित तथा आश्रितों को विना खिलाये दक्षिणाहीन किया जाने वाला श्राद्ध मैं तुम्हें प्रदान कर रहा हूँ।।६८-६९।।

इसी प्रकार श्रीशम्भु ने प्रसन्न होकर भक्तिवश नागराज वासुकि को दिया था, उसे मैं बतलाने जा रहा हूँ।।७०।।

जो कोई ब्राह्मण जनव्रत का संकल्प कर उससे सम्बन्धित वार्षिक समस्त क्रिया कर लेने पर यज्ञ में दी जाने वाली उचित दक्षिणा नहीं देता; देवता और ब्राह्मण के पास जो वृथा शपथ करता है तथा क्रिया और मन्त्रों से रहित अवैदिक श्राद्ध, रात्रि में वस्त्र सहित स्नान तथा अपने सत्त्व और स्वरूप के अनुरूप जो शिष्य ज्ञानदाता गुरु को भक्तिपूर्वक प्रणाम नहीं करता, हे नागराज! उन ज्ञानदाता गुरु के ही समक्ष प्राकृत मैथुनादि कर्म का उल्लेख करने वाले मनुष्य का सम्पूर्ण वार्षिक श्राद्ध मैं तुम्हें प्रदान करता हूँ।।७१-७४।।

इत्येतद् वै पुराणेषु सेतिहासेषु पठ्यते। तद्वदलीककरणं श्राद्धं दानं व्रतं तथा।
नोपतिष्ठति तेषां वै तेन नग्नादयस्त्वमी॥७५॥
मुषिताश्छिद्रकरणैस्तद्दानफलभोक्तृभिः। यथा गतास्तथा ते तु श्राद्धे हूतास्तु निष्फलाः॥७६॥
मौनव्रतधरा यान्ति पुनः प्राप्त्यर्थहेतवे। एवमेन्महाप्राज्ञ यन्मां त्वं परिपृच्छसि॥७७॥

त्रिकालज्ञ उवाच

षट्काले भोजने त्वद्य नाहं भोक्तुमिहोत्सहे।
यावत् तृप्तिर्न ते भूयाद् दृष्ट्वा हन्त स्थिरो भव।
तावत्कालं प्रतीक्षस्व यावदागमनं मम॥७८॥
अस्मिंस्तीर्थे सदैवाहं दिवारात्रमतन्द्रितः। सोऽहमद्य व्रतं त्यक्त्वा तव कारुण्यपूरितः॥७९॥
यां स्त्रियं तव सान्निध्यं काङ्क्षितं सुचिरं त्वया।
आनयित्वेह श्राद्धं वः कारयिष्यामि तामहम्।
एवमुक्त्वा स षष्ठाशी मौनवाक् संयमी द्रुतम्॥८०॥
राजा समीपगं दृष्ट्वा अकस्मादागतं ऋषिम्। क्षितौ तले विलुलित पादौ कृत्वा तु मूर्द्धनि।
धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यद्भवान् गृहमागतः॥८१॥

इतिहास और पुराणों में इस प्रकार वर्णन किया गया मिलता है। इस प्रकार का श्राद्ध, दान और व्रत निष्फल होता है। अतः इस प्रकार का श्राद्ध उन पितरों को नहीं पाप्त होता। इसी से वे नग्न, उदास इत्यादि रहा करते हैं।।७५।।

इस प्रकार के दान और श्राद्ध आदि फलों के भोक्ता उनके दोषयुक्त होने के कारण उन श्राद्धादि के फलों का अपहरण कर लेते हैं। अतः श्राद्ध में आमन्त्रित होकर भी वे पितृगण विना फल पाये हुए, जैसे आये, वैसे चले गये।।७६।।

फिर वे पुनः फल प्राप्त करने की कामना से चुपचाप चले जाते हैं। हे महाबुद्धिमान् ! आपने मुझसे जो पूछा था, वह इसी तरह का है।।७७।।

त्रिकालदर्शी ने कहा कि आज छठे भोजन काल में भी मुझे भोजन ग्रहण करने की उत्सुकता तब तक नहीं हो सकता है, जब तक मैं यह न देख लेता हूँ कि तुम तृप्त हो गये हो। अच्छा, ठहरो, जब तक मैं आता हूँ, ब तक ी प्रतीक्षा करो।।७८।।

मैं सदा से ही इस तीर्थ में अहोरात्र काल विना आलस्य किये व्रत किया करता हूँ। वहीं मैं आज तुम्हारे प्रति करुणापूर्ण होकर उस व्रत का त्याग कर रहा हूँ।।७९।।

तुमने बहुत कालों से जिस स्त्री से श्राद्ध सम्पन्न किये जाने की कामना की है, उसे तुम्हारे पास लाकर उससे महान् श्राद्ध करवाता हूँ। इस प्रकार से कहने के बाद छः भोजन काल के बाद भोजन करने वाला वह संयमी शीघ्रतापूर्वक मौन रहकर राजा के पास गया।।८०।।

राजा ने अचानक पास आये ऋषि को देखकर भूमि पर लेटकर उनक चरणों को अपने मस्तक पर रखा और कहा कि मैं धन्य और अनुगृहित हूँ कि आप मेरे घर पधारे हैं।।८१।।

सदा यत्नं करिषमि त्वदागमगृहं प्रति। अद्य मे सफलं जन्म यद्दींवान् स्वयमागतः॥८२॥
इदं पाद्यमिदं चार्घ्यं मधुपर्कमिमां च गाम्। गृहाण मुनिशार्दूल येनाहं शान्तिमाप्नुयाम्॥८३॥
तस्य तत् प्रतिगृह्याशु स मुनिस्त्वरितोऽब्रवीत्। मदीयागमने राजन् शृणु त्वं कारणं यथा।
तच्छ्रुत्वा कुरु तत् क्षिप्रं येनाहं तोषितोऽभवम्॥८४॥
एवमुक्तस्तु राजर्षिरब्रवीत् तं तपोधनम्। किं तद्वद यथा कार्यं येन सिद्धिं च द्रक्ष्यथ॥८५॥

त्रिकालज्ञ उवाच

या सा ते राजमहिषी तामानय वराननाम्। तस्या दासी प्रभावेति तां चानय महामते॥८६॥
ततश्चान्तःपुराद् देवी सदासी तत्र चागता। क्षितौ विलुलिता साध्वी प्रणाममकरोदृषेः।
समासीनां च विप्रेन्द्रः प्रोवाच करसंपुटाम्॥८७॥
अद्य तीर्थे ध्रुवकरे मयाश्चर्यं शुचिस्मिते। यद् दृष्टं तच्च वै सर्वं शृणुध्वं सह मन्त्रिभिः॥८८॥
ये केचित् पितरो लोके लोकानां सर्वतः स्थिताः।
ते पूजिताः श्राद्धकृद्भिः पुत्रैः प्रीता दिवं ययुः॥८९॥
एको वृद्धतरस्तत्र सूक्ष्मप्राणिभिरावृतः। क्षुत्क्षामदेहः शुष्कास्यो निर्गतोदरसूक्ष्मदृक्।
निराशो गन्तुकामश्च पुनः स निरयेऽशुचौ॥९०॥

मैं सदा आपको अपने घर लाने का प्रयत्न करता था। पर आज मेरा जन्म सफल हो गया, जिस कारण से आप स्वयं मेरे घर पधारे हैं।।८२।।

हे मुनिश्रेष्ठ! यह पाद्य है, यह अर्घ्य है, यह मधुपर्क है और यह गाय है। इन सबको आप स्वीकार करें, जिससे मुझे शान्ति का अनुभव हो सके।।८३।।

शीघ्र ही उसके उन पाद्यादि को स्वीकार कर मुनि ने कहा हे राजन् ! मेरे आने का कारण तो अब सुनो ओर फिर शीघ्र ही वैसा करो, जिससे मैं प्रसन्न हो सकूँगा।।८४।।

इस प्रकार कहे जाने पर राजर्षि ने उन तपस्वी से कहा कि आज्ञा करें, क्या कार्य है, जिससे आपकी कामना पूर्ण हो सके?।।८५।।

त्रिकालज्ञ ने कहा कि हे महाबुद्धिमान् ! तुम्हारी वह जो सुन्दरी रानी है, उसे तथा उसकी प्रभावती नाम की दासी को यहाँ बुलाओ।।८६।।

फिर अन्तःपुर से वह रानी अपनी दासी के साथ वहाँ उपस्थित हो गई। उस साध्वी ने भी भूमि पर लेट कर उन ऋषि को प्रणाम किया। फिर उन श्रेष्ठ ब्राह्मण ने हाथ जोड़कर बैठी हुयी उस रानी से कहा—।।८७।।

हे सुन्दरस्मित वाली! आज मैंने ध्रुवतीर्थ में जो आश्चर्य देखा है, उन सबको मन्त्रियों सहित राजा के साथ सुनो।।८८।।

इस संसार के मनुष्यों के जो कोई भी पितरगण हर जगह थे, वे सब श्राद्ध करने वाले पुत्रों द्वारा पूजित होकर प्रसन्नतापूर्वक स्वर्ग को चले गये।।८९।।

उनमें से सूक्ष्म जन्तुओं से घिरा हुआ, क्षुधा से दुर्बल शरीर, सूखे हुए मुख, निकले हुए पेट, और क्षीण दृष्टि वाला एक वृद्ध पितर निराश होकर पुनः अपवित्र नरक में जाना चाह रहा है।।९०।।

कारुण्यात् स मया पृष्टः कस्त्वं ब्रूहि किमिच्छसि। तेनात्मकर्मजनितं मम सर्वं निवेदितम्॥९१॥
ततस्तत्रैव तं धृत्वा तस्य कारुण्ययन्त्रितः। तव दास्याश्च या दासी तस्य तन्तुः किलोच्यते।
नाम्ना विरूपकनिधिस्तामानय वरानने॥९२॥
इति श्रुत्वाऽनवद्याङ्गी तस्या आनयितुं त्वरा। प्रेषयामास सर्वत्र भृत्यान् शीघ्रमिहानय॥९३॥
सा एकांते दिवा किंचिन्मांसपानात् स्वतां हृता। पुरुषेण सहासीनां शय्यां दृष्ट्वा तु सेवकाः।
करे गृहीत्वा त्वरिता मुनेरग्रे स्थिता भवन्॥९४॥
तां दृष्ट्वा मद्यक्लिन्नाङ्गीममनोज्ञां वरावृताम्। उवाच प्रत्ययार्थं वै मुनिः पितृसुतां क्रियाम्॥९५॥
अथ त्वया पितॄणां च कृते दत्तं स्वधाकृतम्। दानं चोदकनिर्वापं कस्मैचिद् ब्राह्मणाय च॥९६॥
सा नैवमित्युवाचेदं तमृषिं संशितव्रतम्।
न जानामि पितॄन् स्वान् वै क्रियाकार्यं च वै विभो॥९७॥
इति ब्रुवाणां तां दासीं त्रिकालज्ञोऽभ्युवाच ताम्। पत्नीं च मथुरेशस्य नृपं सपुरसज्जनम्॥९८॥
सर्वे द्रक्ष्यथ माहात्म्यं पितॄणां सन्ततेः फलम्। सकौतुकं महाभागाः श्राद्धदानस्य चैव हि॥९९॥
ब्राह्मणाः नगरे सर्वे भुक्तभोज्याः सूपूजिताः।
ते नीताः श्राद्धकर्मार्थं श्राद्धिकं गृह्य सत्वराः॥१००॥

करुणावश मैंने उससे पूछ दिया कि तुम कौन हो और यह बतलाओं कि क्या चाहते हो? उसने अपने कर्म से उत्पन्न सम्पूर्ण वृत्तान्त मुझे बतला दिया।।९१।।

हे सुन्दरि! तुम्हारी दासी की जो विरूपनिधि नाम की दासी है, वह उसकी तन्तु सन्तान कही जा रही है।।९२।।

उस सुन्दर रानी ने यह सुनकर उस दासी को लाने हेतु शीघ्र ही सेवकों को सर्वत्र भेजा और कहा उसे यहाँ शीघ्र ही प्रस्तुत करो।।९३।।

उधर वह दिन में ही मांस भक्षण के साथ सुरापान करके अचेत होकर एकान्त में किसी पुरुष के साथ शय्या पर बैठी थी। राजा के सेवकों ने उसका हाथ पकड़ लिया और उसे शीघ्र ही मुनि के सामने प्रस्तुत कर दिया।।९४।।

मद्य से भींगे हुए शरीर वाली और रक्षकों से घिरी हुई उस सुन्दरी को देखकर उस पितर की लड़की से विश्वास के लिए पूछा—।।९५।।

अब तक क्या तुमने पितरों के निमित्त कभी कोई श्राद्धकर्म, जलाञ्जलि प्रदान या किसी ब्राह्मण को दान किया है?।।९६।।

फिर उसने उनउग्रव्रती ऋषि ने कहा कि 'नहीं' हे स्वामी! मैं अपने पितरों को और उनके निमित्त किये जाने वाले क्रियाकर्मों को नहीं जानती।।९७।।

फिर त्रिकालज्ञ मुनि ने इस प्रकार से कहने वाली उस दासी, मथुरा के राजा की रानी तथा पुरवसी सज्जनों सहित राजा से कहा—।।९८।

हे सज्जनों! आप सभी लोग पितरों की सन्तति का फल तथा श्राद्धदान का कौतुकपूर्ण माहात्म्य देखें।।९९।।

फिर उस समय नगर में श्राद्धकर्म योग्य जितने ब्राह्मण थे, उन्हें आदरपूर्वक बुलाकर और भोजन कराकर शीघ्र श्राद्धकर्म कराने के लिए लेकर चले गये।।१००।।

तत उद्घुष्टरावस्तु सर्वलोकः कुतूहलात्। आगतो ध्रुवतीर्थे स राजा सर्वजनैर्वृतः॥१०१॥
तत्रागत्य यथा तं तु नष्टसंज्ञमचेतनम्। अद्राक्षन् सर्वलोकास्तु मशकैर्वेष्टितं ततः॥१०२॥
उवाच स तदा विप्रस्तव संजातया स्त्रिया।
मयैषा तव पुष्ट्यर्थमानीता वद यद्धितम्॥१०३॥

अगस्तिरुवाच

स्नात्वैषा ध्रुवतीर्थे तु ब्राह्मणोक्तक्रमेण तु। करोतु तर्पणं चास्मान् येन पूर्वं क्रमागतम्॥१०४॥
ततः श्राद्धं च रौप्येण वस्त्रदानविलेपनैः। अर्चित्वा पिण्डदानं च करोत्वेषा सुभक्तितः॥१०५॥
अत्रैव य इमे सर्वे द्रष्टारो भविता स्वयम्। कारयित्वा तु सा सर्वं यथोक्तं जन्तुना तदा॥१०६॥
ब्राह्मणा बहवस्तत्र वृताः श्राद्धकृतो वराः। राज्ञा पत्न्या च द्विगुणं श्राद्धार्हं वरदक्षिणम्॥१०७॥
पट्टवस्त्रं तथा धूपं कर्पूरागुरुचन्दनम्। तिलोत्तरं तथान्नं च बहुरूपं सुदक्षिणम्॥१०८॥
दायापितं समग्रं वै विरूपनिधिहस्ततः। कृते श्राद्धे पिण्डदाने स जन्तुः सुकृती भवेत्॥१०९॥
दिव्यकान्तिरदीनात्मा तथाभूतैः पृथक् पृथक्। वेष्टितः शुशुभेऽतीव दीक्षितोऽवभृथान्तरो।
स्वर्गागतैर्विमानैश्च छादितं तत्र वै नभः॥११०॥

फिर सब लोग कौतुकवश कोलाहलपूर्वक समस्त सेवकों से घिरे हुए राजा के साथ ध्रुवतीर्थ में पहुँच गए।।१०१।।

फिर वहाँ पहुँच कर सब लोगों ने मच्छरों से घिरे हुए उस अचेतन प्राणी को देखा। तब उस त्रिकालज्ञ ब्राह्मण ने कहा तुम्हारी सन्तान, जो स्त्री है, उसे तुम्हारी पुष्टि हेतु मैं आया हूँ। जिससे तुम्हारा हित हो, वह कहो।।१०२-१०३।।

अगस्ति ने कहा कि हे ब्राह्मण! यह पूर्वोक्त क्रमानुसार ध्रुवतीर्थ में स्नान कर क्रम से हम लोगों का तर्पण करे।।१०४।।

फिर इसे भक्तिपूर्वक रजत, वस्त्र, विलेपन आदि के दान द्वारा ब्राह्मणों की पूजा करके, श्राद्ध और पिण्डदान करना चाहिए।।१०५।।

जो दर्शक वहाँ उपस्थित थे, उन्होंने उस प्राणी के कथन के अनुरूप उस स्त्री से समस्त कार्य करवाया।।१०६।।

वहाँ अनेक श्राद्धयोग्य श्रेष्ठ ब्राह्मणों का वरण किया गया। राजा और रानी ने भी उन ब्राह्मणों को श्राद्धयोग्य द्विगुणित श्रेष्ठ दक्षिणा दी।।१०७।।

रेशमी वस्त्र धूप, कर्पूर, अगरु, चन्दन, तिल, यवान्न और अनेक प्रकार की दक्षिणा उस विरूपनिधि के हाथ से इन सब पदार्थों का दान कराया गया। श्राद्ध और पिण्डदान सुकृती किये जाने पर वह प्राणी स्वस्थ हो गया।।१०८-१०९।।

वह दिव्य तेजोयुक्त, प्रसन्नचित्त और उसी प्रकार के अनेक प्राणियों से घिरे हुए इस तरह अत्यन्त सुशोभित होने लगा। जैसे यज्ञ हेतु दीक्षित व्यक्ति यज्ञ के अन्त में होने वाले अवभृथ स्नान के बाद शोभायमान हो रहा हो। वहाँ वह स्वर्ग से आये विमानों से आच्छदित हो गया।।११०।।

तेषां मशकमात्राणां सुगात्राणां सुरूपिणाम्। ततस्त्वष्टगणो जन्तुर्विमानं प्रेक्ष्य चागतम्॥१११॥
गन्तुं स्वर्गमुवाचेदं त्रिकालज्ञं नृपं जनम्। शृण्वन्तु वचनं सर्वे मदीयं पितृतुष्टिदम्॥११२॥
ये तीर्थाः सरितः श्रेष्ठाः समुद्राः पर्वतोत्तमाः। कुरुक्षेत्रं गया चैव स्थानान्यायतनानि च।
पितॄणां मुक्तिदं चान्यत्र भूतं न भविष्यति॥११३॥
आषाढ्याः पञ्चमे पक्षे प्रतिपत्प्रभृतीस्तथा।
शुक्लप्रतिपदन्तं च तीर्थेदं प्राप्य सत्वराः॥११४॥
पितरः श्राद्धपिण्डोदा आश्विने ध्रुवमास्थिताः। कृत्वा प्रेतपुरीं शून्यां स्वर्गं पातालमेव च।
ईहमानाः स्वकं पुत्रं गोत्रतन्तुमथानुजम्॥११५॥
कन्यां गते सवितरि यः श्राद्धं संप्रदास्यति। तर्पणं ध्रुवतीर्थाख्ये तिथीनां षोडशान्तरे।
सुतृप्ताः स्मो वयं शश्वद् यास्यामः परमां गतिम्॥११६॥
एष एव प्रभावोऽस्य ध्रुवस्य कथितो मया। दष्टो भवद्भिः सर्वं यदस्माकं सुदुरत्ययम्।
दुस्तरं तारितं पापं श्रद्धाभक्तिकरं महत्॥११७॥
इति विश्राव्य वचनमृषिमन्यं नृपं जनम्। राजपत्नीं तथा दासीं स्वां सुतां शिवमस्तु वः।
आरुह्य वरयानैस्तैर्गताः स्वर्गं वृतामरैः॥११८॥

इस प्रकार उन मशक तुल्य शरीर वाले जन्तुओं का भी शरीर सुन्दर हो गया। फिर अपने उन आठ गणों के साथ उस प्राणी ने अपने स्वर्गीय विमान को देखा।।१११।।

फिर स्वर्ग जाने के लिए प्रस्तुत होकर उसने त्रिकालज्ञ मुनि, राजा और सामान्य जनों से कहा। पितरों को संतुष्टि देने वाला मेरा वचन सभी लोग सुनें।।११२।।

इस प्रकार भूमि पर जो अन्यान्य तीर्थ, नदियाँ, श्रेष्ठ समुद्र, उत्तम पर्वत, गया, कुरुक्षेत्र, पवित्र स्थान, मन्दिर आदि हैं, वे इस ध्रुवतीर्थ के समान न हुए और न हो सकेंगे।।११३।।

आषाढ़ मास से पाँचवें पक्ष में प्रतिपदा तिथि से शुक्लपक्ष प्रतिपदा पर्यन्त इन तिथियों में शीघ्रतापूर्वक पधार कर पितृगण आश्विन मास में ध्रुव तीर्थ में रहते हुए पिण्ड भक्षण किया करते हैं। फिर अपने पुत्र गोत्र की सन्तति अथवा भाई की कामना करते हुए शून्य यमपुरी, स्वर्ग या पाताल को चले जाते हैं।।११४-११५।।

इस प्रकार ध्रुवतीर्थ में इन सोलह तिथियों में कन्या राशि के सूर्य के रहते जो जन श्राद्ध और तर्पण करते हैं, उससे हम सब पितर अत्यन्त संतृप्त होकर शाश्वत परमगति की प्राप्ति किया करते हैं।।११६।।

अब तक मैंने ध्रुवतीर्थ का इस प्रकार से प्रभाव को आप सबसे कहा। फिर आप लोगों ने मेरी दुर्गति तथा इस कथित पाप से पार निकलने का उपक्रम का देखा ही है। यह वृत्तान्त महान् श्रद्धा और भक्ति उत्पन्न करेंगे।।११७।।

इस प्रकार अपनी वात कहकर उसने ऋषि, राजा, अन्य मनुष्यों, राजपत्नी, दासी और फिर अपनी पुत्री से कहा कि 'तुम सब जनों का कल्याण हो' फिर वे सभी श्रेष्ठ विमानों पर आरुढ़ होकर देवताओं से आवृत्त स्वर्ग को चले गये।।११८।।

श्रीवराह उवाच

ततः स राजशार्दूलः सगणः परिवारकः। दृष्ट्वा तीर्थस्य माहात्म्यं प्रणम्य ऋषिसत्तमम्।
प्रविष्टो नगरीं रम्यां संस्मरन् नित्यमच्युतम्॥११९॥
एतत् ते कथितं भद्रे मथुरामाहात्म्यमुत्तमम्।
श्रवणाद् यस्य पापानि नश्यन्ते पूर्वजान्यपि॥१२०॥
पठति श्रद्धया युक्तो ब्राह्मणानां च सन्निधौ। स पितॄंस्तर्पयेत् सर्वानभिगम्य गयाशिरम्॥१२१॥
एतत्त्वया नाव्रतिने न चाशुश्रुषवे तथा। कथनीयं महाभागे यश्च नार्चयते हरिम्॥१२२॥
तीर्थानां परमं तीर्थं धर्माणं धर्ममुत्तमम्। ज्ञानानां परमं ज्ञानं लाभानां लाभमुत्तमम्।
श्रावणीयं महाभागे पुण्यं भागवतान् सदा।१२३॥

सूत उवाच

एतच्छ्रुत्वा प्रभोर्वाक्यं धरणी विस्मयान्विता। पुनः पप्रच्छ मुदिता प्रतिमास्थापनं तदा॥१२४॥

।।इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे अष्टसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१७८।।

श्रीभगवान् वराह ने कहा कि फिर सेवकों और अपने पारिवारिक जनों के सहित वह श्रेष्ठ राजा तीर्थ के माहात्म्य को देखकर श्रेष्ठ ऋषि को प्रणाम कर निरन्तर अच्युत का स्मरण करते अपने रमणीय नगर में वापस आ गया।।११९।।

हे भद्रे! तुमको मथुरा का यह माहात्म्य कह दिया, जिनको सुनकर पूर्व-पूर्व जन्मों में भी किये हुए पाप भी विनष्ट हो जाया करते हैं।।१२०।।

जो जनइस आख्यान को श्रद्धा के साथ ब्राह्मणों के पास पढ़ता है, वे जन पितरों को तृप्त कर दिया करते हैं, उसी प्रकार जिस प्रकार गया में पहुँचकर श्राद्ध करने से पितरों की तृप्ति हुआ करती है।।१२१।।

हे महाभागे! इस आख्यान को तुम किसी व्रतरहित, शुश्रुषा रहित और हरिभक्ति रहित जन को नहीं ही बतलाना।।१२२।।

यह ज्ञानों में श्रेष्ठ ज्ञान, लाभों में श्रेष्ठ लाभ है। हे महाभागे! पवित्र भागरवद् भक्तों को यह सदैव सुनाना चाहिए।।१२३।।

सूत ने कहा कि श्री प्रभु का यह वाक्य सुनकर धरणी को अत्यन्त आश्चर्य हुआ। फिर उसने उनसे प्रसंन्नतावश प्रतिमा स्थापन विधि के बारे में जानने हेतु जिज्ञासा व्यक्त की।।१२४।।

।।इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में मथुरा माहात्म्य—श्राद्ध माहात्म्य और चन्द्रसेन नृपाख्यान नामक एक सौ अठत्तरवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ।।१७८।।

❖❖❖

एकोनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

अथ श्रीविष्णोः मधुकाष्ठप्रतिमार्चनविधानम्

सूत उवाच

एवं श्रुत्वा परं स्थानं सा मही संशितव्रता। सर्वक्षेत्रविभागानि यश्च तेषु परो विधिः।
विस्मयं परमं गत्वा निभृतेनान्तरात्मना॥१॥

धरण्युवाच

अहो क्षेत्रप्रभावो वै यस्त्वया समुदाहृतः। यं श्रुत्वा देव तत्त्वेन जाताऽस्मि विगतज्वरा॥२॥
एकं मे परमं गुह्यं यन्मया हृदि वर्तते। मम प्रीत्यर्थं तद्विष्णो निखिलं वक्तुमर्हसि॥३॥
कथं तिष्ठसि काष्ठेषु शैलमृन्मयजेषु च। ताम्रे कांस्ये च रौप्ये च कथं तिष्ठसि स्थापितः॥४॥
सौवर्णेषु च सर्वेषु स्थापितस्तिष्ठसे कथम्। ब्रह्मरीतिकमासाद्य कथं तिष्ठसि माधव॥५॥
दन्तरत्नं समासाद्य कथं संतिष्ठते भवान्। कथं तिष्ठसि वा लेख्ये भित्तिसंस्थो जनार्दन।
भूमिसंस्थो महाभाग विधिदृष्टेन कर्मणा॥६॥
एवं धरावचः श्रुत्वा प्रत्युवाचादिसूकरः॥७॥

अध्याय-१७९

विष्णु की मधुकाष्ठ प्रतिमार्चन-प्रतिष्ठापन विधान

सूत जी ने कहा कि इस श्रेष्ठतर स्थान मथुरा क्षेत्र के विभागों और उनमें की जाने वाली विधि का इस प्रकार से किया गया उल्लेखनों को सुनने के बाद उग्र व्रतधारण करने वाली उस धरणी ने अत्यन्त चकित होकर शान्त मनसे पूछ दिया।।१।।

धरणी ने कहा कि हे देव! आपने जिस तरह का विलक्षण मथुरा क्षेत्र का प्रभाव वर्णन किया है, उसे सुनकर मैं वास्तव में सन्ताप रहित हो गई हूँ।।२।।

वैसे मेरे हृदय में एक अत्यन्त गुह्य रहस्य है। हे विष्णो! मेरी संतृप्ति हेतु आप उसका विस्तार से यहाँ उल्लेख करें।।३।।

आप काष्ठों, पत्थरो, मिट्टी आदि के सहित ताम्र, कांसा, चाँदी आदि धातुओं की बनी मूर्त्तियों में किस प्रकार से स्थापित होकर उसमें निवास किया करते हैं?।।४।।

फिर आप समस्त स्वर्ग की मूर्त्तियों में किस प्रकार स्थापित होकर रहा करते हैं। हे माधव! पीतल की प्रतिमा में स्थापित होकर आप कैसे निवास करते हैं।।५।।

हे महाभग! आप तो हस्तिदन्त, रत्न, दीवार पर बने चित्र या भूमि पर बने चित्र में किस विधान से स्थापित होकर रहा करते हैं।।६।।

धरणी के इस प्रकार की वाणी सुनकर आदि वराह ने कहा—।।७।।

श्रीवराह उवाच

प्रतिमा यस्य कर्त्तव्या तदानीय वसुंधरे। प्रतिमां कारयेत् चैव लक्षणोक्तां वसुंधरे॥८॥
अर्चाशुद्धिं ततः कृत्वा प्रतिष्ठाप्य विधानतः। ततः संपूजयेद् देवि संसारभवमुक्तये॥९॥
तत्र काष्ठेषु मधुकमानीय च वसुंधरे। कृत्वा तत्प्रतिमां चैव प्रतिष्ठाविधिनाऽर्चयेत्॥१०॥
ततो दद्यात् तु गन्धानि ये मया समुदाहृताः। कर्पूरं कुङ्कमं चैव त्वचं चागुरुमेव च॥११॥
रसं च चन्दनं चैव सिल्हकोशीरकं तथा। एतैर्विलेपनं दद्यादर्चितस्तु विचक्षणः॥१२॥

स्वस्तिकं वर्द्धमानं च श्रीवत्सं कौस्तुभं तथा।
विविधान् पूपकांश्चैव माल्यानि त्रीणि पायसम्॥१३॥

विविधान् मोदकांश्चैव शाकानां विविधानि च। तः शुक्लोदनंचैव कर्मिणां मांससंमितम्।
वर्तिस्तिलफलं चैव कर्मण्यानि न संशयः॥१४॥

एवं सर्व ततो दद्याद् ये मया परिभाषिताः। कर्मणा विधिदृष्टेन शुद्धो भागवतः शुचिः।
प्राणायामं ततः कृत्वा इमं मन्त्रमुदीरयेत्॥१५॥

योऽसौ भवांस्तिष्ठते सर्वयोगप्रधानम्। ससंभ्रमं लोके काष्ठेषु प्रतीतस्तिष्ठ हि सत्त्वभुव॥१६॥

श्रीभगवान् वराह ने कहा कि हे वसुन्धरे! जिस किसी पदार्थ की प्रतिमा बनवानी हो तो उसे लाकर लक्षण युक्त प्रतिमा बनवानी चाहिए।।८।।

फिर अर्चन शुद्धि के सहित विधान के अनुरूप उनकी प्रतिमा सी प्रतिष्ठा करें। फिर संसार से मुक्ति पाने हेतु उस प्रतिमा की पूजा करनी चाहिए।।९।।

हे वसुन्धरे! विभिन्न काष्ठों में से मधुक याने महुए के वृक्ष का काष्ठ लाकर उससे प्रतिमा निर्माण कराना चाहिए। फिर विधि-विधानसे उसकी प्रतिष्ठा कर पूजा करनी चाहिए।।१०।।

फिर मेरे द्वारा कहे गए सुगन्ध अर्पण करना चाहिए। फिर कर्पूर, कुंकुम, अगरु वृक्ष की छाल, रोली, चन्दन, धूप, खस आदि सब से बने विलेपन पूजा कला में बुद्धिमान् भक्त जन को अवश्य अर्पण करना चाहिए।।११-१२।।

फिर स्वस्तिक, वर्द्धमान, श्रीवत्स, कौस्तुभ, विविध प्रकार के अपूप, तीन प्रकार की मालाएँ और पायस भोग हेतु अर्पित करना चाहिए।।१३।।

फिर विविध प्रकार के मोदक, विविध शाक? श्वेत चावल उस समय पूजा में सम्मिलित करने योग्य मांस, अनुलेपन और तिल का फल आदि सभी निःसंशय पूजाकर्म में प्रयोग करने के योग्य उपयोग किए जा सकते हैं।।१४।।

इस प्रकार शुद्ध और पवित्र भगवद् भक्तों को मेरे द्वारा कहे गए सभी पदार्थों को विधि के अनुकूल कर्म के माध्यम से समर्पित करना चाहिए फिर प्राणयाम कर इस मन्त्र का उच्चारण भी करना चाहिए।।१५।।

आप समस्त योगों में प्रधान, इस संसार में ससम्मान पूजास्पद हैं, वे ही सत्त्वगुण के आधारस्वरूप आप इस काष्ठ प्रतिमा में प्रतिष्ठित होकर स्थित रहें।।१६।।

एवं संस्थापनं कृत्वाकाष्ठस्य प्रतिमासु च। पुनः प्रदक्षिणं कृत्वा शुद्धैर्भागवतैः सह॥१७॥
प्रजल्य दीपकानष्टो ज्ञात्वा वाचो सुसंस्थितः। नीतं ततोऽग्रतः पृष्ठे न वक्रं वामदक्षिणम्॥१८॥
ततस्तैः कर्मभिः सर्वं शुभं यैः शून्यवर्जितम्। नमो नारायणेत्युक्त्वा इमं मन्त्रमुदाहरेत्।
कुर्यात् संस्करणं तेषां विधिदृष्टेन कर्मणा॥१९॥

मन्त्रः–योऽसौ भवान् सवजगत्प्रभुत्वाद् वसन्ति देवास्तव देवदेव।
एतेन मन्त्रेण तु लोकनाथः संस्थापितः तिष्ठतु वासुदेवः॥२०॥

सर्वमेवं ततः कृत्वा मम संस्थापनक्रियाम्। पूज्या भागवताः सर्वे ये तत्र समुपागताः॥२१॥
गन्धमाल्यैरर्चयित्वा उपपन्नैश्च भोजनैः। कुर्यात् संस्करणं तेषां विधिदृष्टेन कर्मणा॥२२॥
एतत् कर्मविधानेन मधुकाष्ठस्य सुन्दरि। धर्मसंस्थापनार्थाय एतत् ते कथितं मया॥२३॥
यस्त्वेतेन विधानेन अर्चां काष्ठस्य स्थापयेत्। न स गच्छति संसारं मम लोकं तु गच्छति॥२४॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे एकोनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१७९॥

इस प्रकार काष्ठ की प्रतिमाओं में मेरी स्थापना कर पवित्र भगवद् भक्तों के सहित पुनः प्रदक्षिणा करना चाहिए।।१७।।

फिर विधि विशेषज्ञ को अच्छी तरह स्थित होकर आठ दीपकों को जलाना चाहिए। उन दीपकां को आगे, पीछे, दाहिने, वाम आदि भागों में स्थापित कर देना चाहिए। उन दीपकों को जैसे-तैसे कथमपि नहीं रखना चाहिए।।१८।।

फिर वे सब कार्य करना चाहिए, जिनसे सब शुभ कार्य सम्पन्न होते हैं। 'नमो नारायणाय' यह कहते हुए अग्रोक्त मन्त्र को बोलना चाहिए। फिर विधान के अनुकूल कर्म से उन पदार्थों का संस्कार भी करना चाहिए।।१९।।

दे देवदेव! आपके प्रभुत्ववश सम्पूर्ण संसार और देवगण भी आपके शरीर में निवास किया करते हैं। हे लोकनाथ वासुदेव! इस मन्त्र द्वारा स्थापित होकर इस प्रतिमा में सदा अवस्थित होकर रहा करें।।२०।।

इस प्रकार से मेरी प्रतिमा स्थापन क्रिया सम्पन्न कर वहाँ उपस्थित समस्त भगवद्भक्तों की भी पूजा करनी चाहिए।।२१।।

इसके लिए सुगनि, माला आदि और उपलब्ध भोज्य पदार्थों द्वारा उनकी पूजा करनी चाहिए। फिर विधानसे कर्म करते हुए उनका भी संस्कार करना चाहिए।।२२।।

हे सुन्दरि! इस कार्य विधि द्वारा मधुकाष्ठ याने महुए की लकड़ी की बनी प्रतिमा को स्थापित करनी चाहिए। इस तरह मैंने धर्म स्थापना हेतु तुमको यह विधान बतला दिया है।।२३।।

जो जन इस विधान से काष्ठ की मूर्त्ति स्थापित करते हैं, वे जन पुनः पुनःसंसार में न आकर मेरे लोक में ही निवास किया करते हैं।।२४।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में विष्णु की मधुकाष्ठ प्रतिमार्चन-प्रतिष्ठापन विधान नामक एक सौ उनयासिवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१७९॥

❖❖❖

अशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

अथ विष्णोःशैलप्रतिमाविधानम्

श्रीवराह उवाच

पुनरन्यत् प्रवक्ष्यामि तच्छृष्णुष्व वसुंधरे। यथा तिष्ठामि शैलेषु प्रतिमानामिकस्ततः॥१॥
सुरूपां च शिलां दृष्ट्वा निःशल्यां सुपरीक्षिताम्। सुदक्षं रूपकारं तु शीघ्रमेव नियोजयेत्॥२॥
शीघ्रमालिखतस्तस्य श्वेतेन वर्तिकेन वा। आलेखं लेखयित्वा तु मम कर्मपरायणः॥३॥
अर्घं सदक्षिणं दत्त्वा मधुलाजासमाक्षतैः। दीपकं च ततो दद्याद् बलिं दध्योदनेन च।
नमो नारायणेत्युक्त्वा इमं मन्त्रमुदाहरेत्॥४॥

मन्त्रः

योऽसौ भवान् सर्वजगत्प्रवीरः समोऽग्नितेजा महति प्रधानः।
एतेन मन्त्रेण तु वासुदेव प्रवर अयुत वराह जयस्व वर्धस्व सुप्रतिष्ठितकीर्तिश्च वर्धस्व॥५॥
एतेनैव तु मन्त्रेण कर्त्तव्यं यस्य यादृशम्। एवं रूपं ततः कृत्वा दद्याद् देवि शिलोच्चये॥६॥
ततो वै स्थापनं कुर्यात् सर्वगन्धसुगन्धिभिः। ततः संस्थापयेत् तत्र भूमि पूर्वामुखेन ह।
अहोरात्रोषितेनैव शुक्लवस्त्रेण भूषितः॥७॥

अध्याय–१८०

विष्णु की शैल प्रतिमा पूजन-स्थापन विधान

श्री भगवान् वराह ने कहा कि हे वसुन्धरे! अब पुनः मैं अन्य रहस्यात्मक तथ्य को कहने जा रहा हूँ कि मैं शैल (पत्थर) की प्रतिमा में कैसे रहा करता हूँ।।१।।

इसके लिए सुपरीक्षित सुन्दर स्वरूप वाली शिला देखकर शीघ्र ही अत्यन्त कुशल चित्रकार को नियोजित करना चाहिए।।२।।

फिर वह शीघ्रता से श्वेत रंग खड़िया से प्रतिमा बनायें। इस तरह चित्र बन जाने के बाद मेरा भक्त दक्षिणा सहित अर्घ समर्पण कर मधु, लाजा, अक्षत आदि के साथ दीपक अर्पण करे। फिर दही और चावल की बलि प्रदान करें। इसके बाद 'नमो नारायणाय' मन्त्र को बोलकर यह मन्त्र पढ़ें।।४।।

मन्त्र ने कहा कि जो भग्वान् सभी जनों में श्रेष्ठ वीर, अग्नि के समान तेजवान् और तेजस्वियों में भी प्रथम है। हे प्रवर अच्युत वराहस्वरूप वसुदेव! आपकी वृद्धि हो। हे सुप्रतिष्ठित कीर्त्तिवाले आपकी वृद्धि हो।।५।।

इसी मात्र से जिसके प्रति जिस प्रकार कार्य करना हो, इसी प्रकार करना चाहिए। फिर हे देवि! पूजन सामग्री शिला पर अर्पित करा चाहिए।।६।।

फिर सब प्रकार के गन्धों, सुगन्धियों आदि द्वारा स्थापना करना चाहिए। हे भूमि! फिर एक अहोरात्रा निराव्र उपवास कर श्वेत वस्त्र पहन कर पूर्व दिशा की तरफ मुख कर स्थापना कार्य करना चाहिए।।७।।

शुक्लयज्ञोपवीती च कृत्वा वै दन्तधावनम्। सर्वगन्धोदकं गृह्य इमं मन्त्रमुदाहरेत्॥८॥

योऽसौ भवांस्तिष्ठति सर्वरूप मायाबलं सर्वजगत्स्वरूपम्।
एतेन मन्त्रेण भवत्स्वरूपं संपूजितस्तिष्ठसि लोकनाथ॥९॥
करण धारण प्रबध्यमुदाहरण अपराजित अजरामर संपूज्य
स्थापयात्मानम् अनेन मन्त्रेण ॐ नमो वासुदेवाय॥१०॥

एवं तु स्थापनं कृत्वा शैलस्थां मम सुन्दरि। ततोऽधिवासं कर्त्तव्यं पूर्वप्रोष्ठपदासु च॥११॥
यो मां संस्थापयेद् भूमे मम कर्मपरायणः। यावकं पायसं भुक्त्वा अहोरात्राणि कारयेत्॥१२॥
ततः पश्चिमसंध्यायां दत्त्वा चत्वारि दीपकान्। पञ्चगव्यं च गन्धं च वारिणा सह मिश्रयेत्॥१३॥
चतुरः कलशांश्चैव पादमूलेषु स्थापयेत्। गीतवादित्रघोषेण उत्सवं तत्र कारयेत्॥१४॥
पठन्ति ब्राह्मणा मह्यं सामवेदं गुणान्विताः। ब्रह्माक्षरसहस्राणि ये पुरा मन्त्रवादिनः॥१५॥
येषां पठन्तिशब्देन शुभगीतस्वरेण च। आगमिष्यामि कल्याणि आत्ममन्त्रपथे स्थितः॥१६॥
एवं तु पठतां तेषां ब्राह्मणां सामगायिनाम्। मम संस्थापनार्थाय पठन्ति मम कर्मिकाः॥१७॥
ते च वादित्रघोषेण सामगा वायवे तथा। तान्येवं मधुरेणैव गीतेनान्यमना भुवि॥१८॥

फिर दन्तधावन मुख शुद्धि हेतु प्रदान कर श्वेत यज्ञोपवीत धारण कराकर सब प्रकार की सुगन्धियों से युक्त जल ग्रहा कर इस प्रकार मन्त्र पढ़ना चाहिए।।८।।

हे लोकनाथ! आप तो सर्वरूप माया के बल से समस्त स्वरूपमें अवस्थित हैं, आपका वह स्वरूप इस मन्त्र से अच्छी तरह पूजित होकर प्रतिष्ठित हों।।९।।

हे करण, धरण, प्रवध्य, उदाहरण, अपराजित, अजर, अमर! इस मन्त्र द्वारा आपका पूजनपूर्वक स्थापना कर रहा हूँ। अतः पासुदेव को प्रणाम है।।१०।।

हे सुन्दरि! इस प्रकार शैलस्थित मेरी मूर्ति की स्थापना कर पूर्वाभाद्रपद नक्षत्रा में अधिवास अर्थात् प्रतिमा की प्राण प्रतिष्ठा करनी चाहिए।।११।।

मेरे भक्त को अहोरात्र पर्यन्त यवान्न और पायस सेवन पूर्वक स्थापना और प्रतिमा निर्माण कार्य समपत्र करना चाहिए।।१२।।

फिर सायंकाल चार दीप समर्पित करना चाहिए। पञ्चगव्य और गन्ध को जलमिश्रित करना चाहिए।।१३।।

फिर प्रतिमा के पादमूल में चार कलश स्थापित करना चाहिए। फिर दश स्तुति पाठ करने वालों द्वारा गीत और वाद्य सहित स्तुति पाठ कराना उचित है।।१४।।

उस समय, जो ब्राह्मण जन मन्त्र जानने वाले मेरे निमित्त सामवेद के पुरुषसूक्त का पाठ करने वाले हैं, हे कल्याणि! उनके पाठ की ध्वनि एवं शुभ गीत के स्वर से मैं अपने मन्त्र के मार्ग में चलकर उपस्थित होता हूँ।।१५-१६।।

इस प्रकार उन साममन्त्र गायक ब्राह्मणों के पाठ करते समय मेरा कर्म करने वाले भक्तजन मेरी स्थापना हेतु मन्त्र का पाठ किया करते हैं।।१७।।

हे धरणि! वे ही सामगान करने वाले ब्राह्मण वाद्य वनि एवं मधुर गीत से एकाग्रतापूर्वक वायु की भी स्तुति किया करते हैं।।१८।।

निःशब्दं तु ततः कृत्वा स्थाप्य भागवतः शुचिः। पुनर्मे स्थापनं कुर्यादिमं मन्त्रमुदाहरेत्॥१९॥

आगच्छ हे देव समन्त्रयुक्तः पञ्चेन्द्रियैः षष्ठ तथा प्रधानः।
एतेषु भूतेषु च त्वं विधाता आवासिता तिष्ठ सुलोकनाथ॥२०॥

एतेन मन्त्रेण समिधाऽष्टशतं तिलमधुघृतं होतव्यम्। एवं संनिहितो भवानिति॥२१॥
व्यतीतायां तु शर्वर्यां प्रभाते विमले ततः। पञ्चगव्यं ततः प्राश्य मन्त्रेण विधिपूर्वकम्॥२२॥
सर्वगन्धैश्च लाजैश्च पञ्चगव्यजलं तथा। ततो मे स्थापनं कुर्यादनिशं तिष्ठते मम॥२३॥
गीतवादित्रशब्देन ब्राह्मणानां स्वनेन च। सर्वगन्धांस्तो गृह्य इमं मन्त्रमुदाहरेत्॥२४॥

मन्त्र–योऽसौ भवान् लक्षणमेयभूतस् तेजोऽसि लक्ष्म्या च स चादिपूर्णः।
एतेन मन्त्रेण प्रविश्य मां संस्थितोऽसि विष्णो सह लोकनाथ॥२५॥

तत एतेन मन्त्रेण प्रासादं च प्रवेशयेत्। प्रतिमा स्थापितव्या मे मध्ये च न तु पार्श्वतः॥२६॥
एवं संस्थापनं कृत्वा दद्यादुद्वर्तनं विभोः। चन्दनं कुङ्कमं चैव मिश्रं कालेयकेन च।
एवं चोद्वर्तनं कृत्वा इमं मन्त्रमुदाहरेत्॥२७॥

योऽसौ भवान् सर्वजगत्प्रधानः संपूजितो ब्रह्मबृहस्पतिभ्याम्।
प्रवन्दितः कारणमन्त्रयुक्तः सुस्वागतं तिष्ठ सुलोकनाथ॥२८॥

फिर समस्त स्वर सथगित कराकर भगवद्भक्तों को पवित्रतापूर्वक स्थापना कर्म करना चाहिए। पुनः मेरी स्थापना करते समय यह मन्त्र पढ़ना चाहए।।१९।।

हे मन्त्र से प्रेरित पञ्चेन्द्रिय मन एवं बुद्धि युक्त प्रधान देव! आप पधारें। हे सुलोक नाथ विधाता! इन भूतों में व्याप्त आप यहाँ सुप्रतिष्ठित हों।।२०।।

इस मन्त्र से तिल औरमधु सति एक सौ आठ समिधा की आहुति प्रदान करना चाहिए। फिर इस प्रकार बोलना चाहिए कि इस प्रकार आप यहाँ सन्निहित हैं।।२१।।

फिर रात बीतने पर विमल प्रातःकाल मन्त्र के साथ सविधि पञ्चगव्य का पान करना चाहिए। फिर सब गन्धों, लावा, पञ्चगव्य, जल आदि द्वारा मेरी स्थापना करनी चाहिए और निरन्तर मेरे ही पास उपस्थित रहना चाहिए।।२२-२३।।

फिर गाने-बजाने की ध्वनि और वेद मन्त्र पाठक ब्राह्मणों की ध्वनि सहित सब सुगन्धों को लेकर इस प्रकार मन्त्र बोलना चाहिए।।२४।।

मन्त्रार्थ—आप अपने लक्षण से ही ज्ञात होने वाले, लक्ष्मी सहित आदि पूर्ण और तेजस्वरूप हैं, ऐसे जो हे लोकनाथ विष्णो! आप इस मन्त्र से मन्दिर प्रवेश कर स्थित हों।।२५।।

फिर इस मन्त्र से मन्दिर में प्रवेश कराना चाहिए। यहाँ ध्यान रखना चाहिए कि मेरी मन्दिर के मध्य भाग में स्थापित करें, न कि पार्श्व में।।२६।।

इस तरह से स्थापना कर्म के पश्चात् विभु को उद्वर्तन प्रदान करना चाहिए। चन्दन, कुंकुम औ दारुल हल्दी मिलाकर उद्वर्तन बनाकर इस मन्त्र को बोलनाचाहिए।।२७।।

आपसम्पूर्ण संसार में प्रधान, ब्रह्मा और बृहस्पति द्वारा आप जूजित हैं। आप आवाहन मन्त्र से बुलाये जा चुके हैं। हे सुलोकनाथ! आपका स्वागत हैं। आप प्रतिष्ठित हो।।२८।।

एवं संस्थापनं कृत्वा गन्धमाल्यैः समर्चयेत्। शुक्लवस्त्राणि मे दद्यादिमं मन्त्रमुदाहरेत्॥२९॥
मन्त्रः-ॐ देवदेव सुवस्त्रभूतो। रम्येषु वस्त्रेष्वपि यस्य चित्तम्।
एतेन मन्त्रेण च गृह्य वस्त्रं धरस्व मन्त्रेण पुराकृतानि॥३०॥
एवं वस्त्राणि मे दद्याद् विधिदृष्टेन कर्मणा। धूपनं ते ततो दद्यात् कुङ्कुमागुरुमिश्रितम्॥३१॥
एवं च धूपनं दद्यादिमं मन्त्रमुदाहरेत्॥३२॥
मन्त्रः-
ॐ असौ अनादिमध्यः परं परायणः मनःप्रसादश्च। सुमनः प्रतिगृह्य धूपमिति॥३३॥
दत्तेष्वेवापराधेषु कुर्याच्च प्रापणं मम। पूर्वोक्तेन विधानेन यन्मया भाषितं पुरा॥३४॥
एवं मे प्रापणं कृत्वा जलमाचमनं कुरु। शान्तिजाप्यं तु भद्रं मे सर्वसिद्धार्थसाधकः॥३५॥
मन्त्रः-शान्तिं भवान् कुर्वतु लोकनाथ राज्ञां च राष्ट्रस्य च ब्राह्मणानाम्।
सबालवृद्धं च गवां च शान्ति कन्या च सा सर्वपतिव्रताश्च॥३६॥
रोगा नश्यन्तु सर्वभूताः शान्तिस्तु व्रीहिर्विर्धतु कर्षकाणाम्।
सुभिक्षं काले पर्जन्यं वर्षतु प्रयुक्तो यश्च कालश्चसर्वेशां शान्तिर्भवतु॥३७॥
एवं विधिं ततः कृत्वा विधिदृष्टेन कर्मणा। पूज्य भागवतान् भूमि यथान्यायेन कर्मणा।
भोजयेद् ब्राह्मणांस्तत्र यथोत्पन्नैश्च भोजनैः॥३८॥

इस प्रकार स्थापना कर सुगन्धि और माला द्वारा पूजन करना चाहिए। पुनः मुझे शुक्ल वस्त्र प्रदान करना चाहिए और इस प्रकार मन्त्र बोलना चाहिए।।२९।।

मन्त्र से प्रथम आमन्त्रित सुवस्त्र स्वरूप हे देव देव! जिनका चित्त मनोहारी वस्त्रों में स्थित हैं। उसकी संतुष्टि हेतु आप यह वस्त्र धारण करें।।३०।।

इस विधि के अनुकूल कर्म से मुझे वस्त्र अर्पण कर कुंकुम और अगरु मिश्रित धूप अर्पण करना चाहिए। फिर धूप अर्पण करते समय यह मन्त्र पढ़ें।।३१-३२।।

ये ही देव अनादि मध्य स्वरूप एवं परम आश्रय स्थायन है। आप संतुष्ट मन और सुन्दर चित्त वाले हैं। आप अर्पित धूप ग्रहण करें।।३३।।

इस प्रकार पूजापहार प्रदान करने के बाद पूजा कर्म में प्रमादवश हुए अपराध के बारे में मेरे द्वारा पूर्व कथित विधान से क्षमा प्रार्थना करनी चाहिए।।३४।।

इस तरह मुझसे क्षमा प्रार्थना कर आचमन हेतु जल प्रदान करना चाहिए। फिर सभी प्रयोजनों को सिद्ध करने वाला कल्याणकारी मेरा शान्ति पाठ भी करना उचित है।।३५।।

मन्त्रार्थ—हे लोकनाथ! आप राजा, राष्ट्र, ब्राह्मणों, बालकों, वृक्षों, गायों आदि को शान्ति प्रदान करना चाहिए। जो कन्यायें हों, वे सब पतिव्रता हों।।३६।।

रोग नष्ट हो जायँ समस्त प्राणी शान्त हो। कृषकों का धान्य बढ़ता रहे। देश में चहुँ ओर सुभिक्ष रहे। मेघ समय पर वृष्टि करे। प्रभु द्वारा प्रेरित काल सबके लिए शन्तिप्रद हों।।३७।।

हे भूमि! इस तरह विधि के अनुरूपकर्म द्वारा पूजाकार्य समस्त कर यथोचित कर्म से भगवद् भक्तों की पूजा भी करनी चाहिए। फिर ब्राह्मणों को यथाशक्ति उपलब्ध पदार्थों का भोजन कराना चाहिए।।३८।।

य एतेन विधानेन कुर्यात् संस्थापनं मम। यावन्तो मम गात्रेषु जायन्ते जलबिन्दवः।
तावद् वर्षसहस्राणि मम लोकेषु तिष्ठति॥३९॥
यो मां संस्थापयेद् भूमि सर्वाहंकारवर्जितः। तारितास्तु कुलास्तेन सप्त सप्त च सप्ततिः॥४०॥
एतत् ते कथितं भद्रे शैलिकास्थापनं मम। धर्मसंधारणार्थाय मम भक्तसुखावहम्॥४१॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे अशीत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१८०॥

एकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

अथ विष्णोः मृण्मयीप्रतिमाविधानम्

श्रीवराह उवाच

पुनरन्यत् प्रवक्ष्यामि तच्छृणोहि वसुंधरे। तिष्ठामि मृन्मयं चापि परिनिष्ठितमर्चया॥१॥
कृत्वा तु मृन्मयामर्चामस्फुटां च अखण्डिताम्।
नाप्येव वामनां कुर्यान्न वक्रां कारयेद् बुधः॥२॥

जो इस विधि द्वारा मेर संस्थापन करता है, वे जन उतने वर्ष एक तक मेरे लोक में निवास करते हैं, जितने जल की बूँदे मेरे शरीर में होती है।।३९।।

हे भूमे! जो जन अपना सब प्रकार से अहंकार छोड़कर मेरी स्थापना करते हैं, उनके द्वारा कुल की सत्तहत्तर पुरुष तार दी गई होती है।।४०।।

हे भद्रे! मैंने धर्मस्थापनार्थ अपने भक्तों को सुख प्रदान करने वाले पत्थर प्रतिमा की स्थापना करने का यह विधान तुमको बतला दिया।।४१।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में विष्णु की शैल प्रतिमा पूजन-स्थापन विधांन नामक एक सौ अस्सीवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१८०॥

अध्याय-१८१

विष्णु मृण्मयी मूर्त्ति की स्थापना-अर्चना विधान

श्री भगवान् वराह ने कहा कि हे वसुन्धरे! अब मैं फिर से अन्य रहस्य को कहने जा रहा हूँ, उसे सुनो। अर्चना द्वारा प्रतिष्ठित मृण्मयी प्रतिमा में भी मैं निवास करता हूँ।।१।।

अस्फुट और अखण्डित मृण्मयी मूर्त्ति बनाकर पूजा करनी चाहिए। बुद्धिमान् पुरुष इस मृण्मयी मूर्ति को अत्यन्त छोटी अथ्वा ढेढ़ी नहीं ही बनवाना चाहिए।।२।।

ईदृशीं प्रतिमां कृत्वा मम कर्मपरायणः। भूमे सर्वाणि कर्माणि यथा वा रोचते तथा॥३॥
देवि काष्ठमलाभेन मृन्मयं तत्र कारयेत्। शैलजां वा ततो भूमे म कर्मपरायणः॥४॥
ताम्रकांस्कयरूप्याणि सौवर्णां त्रपुरीतिकाः। कुर्वन्ति शुभकर्माणः केचिद् दान्तेति वा पुनः॥५॥
अर्चनं त्वपरे वेद्यां मम कर्मपरिग्रहात्। केचिल्लोकापवादेन ख्यातिं कुर्वन्ति पूर्वशः॥६॥
कुर्याल्लेख्यं च मे कश्चित् पूजां कुर्वन्ति मानवाः। पूजयेद् यदि वा चक्रं मम तेजोंऽशसंभवम्॥७॥
भूमि एवं विजानीहि स्थापितोऽहं न संशयः। सर्वत्र संप्रतिष्ठामि पूजिताऽहं धराधरे॥८॥
मन्त्रैर्वा विधिपूर्वेण यो मां कर्माणि कारयेत्। एवमेतन्महाभागे मया संपरिकीर्तितः॥९॥
मन्त्रेण विधिपूर्वेण योर्चयेन्मम सुन्दरि। यश्च भक्तिं प्रयत्नेन कर्मणा परिनिष्ठतः॥१०॥
मम चैव प्रसादेन स पूर्वगतमेव च। यथाकामोपतिष्ठन्तं कृत्वा भक्तिं ममान्तिकम्।
दद्याज्जलाञ्जलिं मह्यं यदीच्छेदात्मनः क्रियाम्॥११॥
किं न पुष्पेण जाप्येन सहस्त्रेण शतेन तु। यः स चिन्ताप्रयत्नेन मनसा न चलाचलम्।
एवमेतन्महाभागे मया गुह्यं प्रकीर्तितम्॥१२॥
मृन्मयीं प्रतिमां कृत्वा दृष्ट्वा सुपरिनिष्ठितः। श्रवणे चैव नक्षत्रे कुर्यात् तस्याधिवासनम्॥१३॥

हे भूमे! मेरे कर्मपरायण भक्तजनों को जिस प्रकार की भी प्रतिमा रुचि लगे, वे उसी प्रकार की प्रतिमा बनवाकर पूजा सम्बन्धी सभी कार्य सम्पन्न करना चाहिए।।३।।

हे देवि! काष्ठ की अनुपलब्धता में मिट्टी की प्रतिमा बनवानी चाहिए। हे भूमि! मेरा कर्मपरायण भक्तजन पत्थर की मूर्त्ति भी बनवा सकते हैं।।४।।

कुछ शुभकर्म साधन करने वाले अथवा इन्द्रियों को नियन्त्रित रखने वाले जन कांसा, चाँदी, स्वर्ण, राँगा, पीतल आदि धातुओं की प्रतिमा बनवा सकते हैं।।५।।

फिर मेरे अन्य कर्मपरायण जन वेदी के ऊपर पूजन कर्म किया करते हैं, तो कुछ जन प्रथम जनद्युति द्वारा प्रतिमा को प्रसिद्ध किया करते हैं।।६।।

कुछ जन मेरे कल्पित चित्र बनवाकर पूजा कर्म सम्पन्न करते हैं अथवा मेरे तेज के एकांश से उत्पन्न चक्र की ही पूजा भी करनी चाहिए।।७।।

हे भूमि! इस प्रकार यह समझ लेना चाहिए कि मैं इस प्रकार निःसंशय स्थापित होता हूँ। फिर मैं सर्वत्र प्रतिष्ठित होकर भी पूजित होता हूँ। अथवा सविधि मन्त्र द्वारा जो मेरा पूजन करते हैं, उस पर मैं प्रसन्न भी होता हूँ। हे महाभागे! मैंने तुम्हें इस प्रकार प्रतिमा के रहस्य को बतला दिया है।।८-९।।

हे सुन्दरि! जो सविधि मन्त्र द्वारा मेरी पूजा किया करते हैं तथा जो प्रयत्नपूर्वक मेरा कर्म करते हुए मेरी भक्ति करता है, मेरे पास वह यदि अपनी क्रिया करना चाहे, तो मेरी कृपा से कामनानुसार उपस्थित पूर्वार्जित भक्ति करते हुए मुझे जलाञ्जलि प्रदान करना चाहिए।।१०-११।।

फिर स्थिर-अचल मन से चिन्तन और प्रयत्न के साथ पुष्प सहित एक हजार एक सौ बार जप करना चाहिए। हे महाभागे! मैंने यह रहस्य तुमको बतला दिया है।।१२।।

अन्यतम निष्ठापूर्वक मिट्टी की मेरी प्रतिमा बनाकर श्रवणनक्षत्र में उसकी प्रतिष्ठा करनी चाहिए। फिर

अप्रमत्तेन कर्त्तव्यं यथा भूमिं न गच्छति। स्थापयेत् यथान्यायं पूर्ववद् विधिसंस्थितम्॥१४॥
पञ्चगव्यं च गन्धैश्च वारिणा सह मिश्रयेत्। ततो मे स्नापनं कुर्यादिमं मन्त्रमुदाहरेत्॥१५॥

मन्त्रः

योऽसौ भवान् सर्वजगत्प्रधानो यो न प्रयत्नेन धरेत लोकान्।
आयातु आयातु कुरु प्रसादं संतिष्ठ अर्चासु च मृन्मयासु॥१६॥

कारणं ह्यग्रतेजं द्युतिमान् मतिमान्। नमो महापुरुषाय इति॥१७॥
अनेन मन्त्रेण वेशम प्रविश्य स्थापयितव्यम्॥१८॥

एवं प्रवेशनं कृत्वा विधिदृष्टेन कर्मणा। देवं संस्थापयेत् तत्र वेद्यां सुपरिनिष्ठितम्॥१९॥
एवं संस्थापितं मां तु पूर्वन्यायेन निश्चितः। चतुरः कलशान् गृह्य इमं मन्त्रमुदाहरेत्॥२०॥

मन्त्रः

ॐ वरुण समुद्रो लब्ध्वा संपूजितो ह्यात्मप्रतिप्रसन्नः।
एतेन मन्त्रेण ममाभिषेकं प्राप्तं वरिष्ठं हि सदूर्ध्वबाहुः।
अग्निश्च भूमिश्च रसाश्च सर्वे भवन्ति यस्मात् सततं नमस्ये।२१॥

एवमभिषेचनं कृत्वा मम कर्मपरायणः। पूर्वन्यायेन मे भूमि गन्धमाल्यैः समर्चयेत्॥२२॥
अगुरुं च तुरुष्कं च कुङ्कुमं च रसं तथा। नमो नारायेणेत्युक्त्वा धूपं मां तत्र नीयते॥२३॥

सावधानीपूर्वक उस प्रतिमा को इस तरह स्थापित करना चाहिए कि वह भूमि पर न गिर सके। फिर यथोचित रीति से पूर्व कथितानुसार सविधि वह प्रतिमा स्थापित करना चाहिए।।१३-१४।।

फिर गन्ध और जाप केसाथ पञ्चगव्य को मिलाकर उसके द्वारा मुझे स्नान कराना चाहिए और फिर इस तरह यह मन्त्र बोलना चाहिए।।१५।।

मन्त्रार्थ—सम्पूर्ण जगत् के प्रधान, आप विना किसी प्रयत्न के ही सब लोकों को धारण करते हैं। हे देव! आप पधारें, पधारे। मुझ पर कृपा करें और इस मृण्मयी मूर्त्ति में स्थित हों।।१६।।

आप कारण स्वरूप अग्रतेज, द्युतिमान् , मतिमान् आदि हैं। आप महापुरष को प्रणाम है। फिर इस तरह मन्त्र बोलते हुए मन्दिर में प्रवेश कर मूर्त्ति सीपित करना चाहिए।।१७-१८।।

इस प्रकार सविधि कर्म द्वारा वहाँ पर वेदी पर निष्ठासहित देव को स्थापित करना चाहिए। फिर पूर्वोक्त विधि के अनुरूप निश्चय ही चार कलश लेकर यह मन्त्र बोलना चाहिए।।१९-२०।।

मन्त्रार्थ—ओम् समुद्र में स्थित वरुण स्वरूप देव पूजित होकर जीव पर प्रसन्न हों। वे ऊर्ध्वबाहु देव इस मन्त्र से मेरे इस श्रेष्ठ अभिषेक को स्वीकार करें।।२१।।

हे भूमि! इस प्रकार से मेरा कर्मपरायण भक्त जन मेरा अभिषेक सम्पन्न कर पूर्व कहे हुए के अनुसार गन्ध और माला द्वारा मेरी पूजा करे।।२२।

'नमो नारायणाय' मन्त्र का बोलते हुए अगरु, तुरुक, कुंकुम, सुगन्धि, धूप आदि मुझे समर्पित करना चाहिए।।२३।।

धूपं दत्वा यथान्यायं पीतकं वस्त्र दापयेत्।
नमो नारायणेत्युक्त्वा इमं मन्त्रमुदाहरेत्॥२४॥

मन्त्रः

वस्त्रेण पीतेन सदा प्रसन्नं येन प्रसन्नेन जग्ध॥२५॥

तत एतेन मन्त्रेण वस्त्रं दद्याद् यथोचितम्। पूर्वन्याये मन्त्रेण इमं कर्माणि कारयेत्॥२६॥
कृत्वा तु विमलं कर्म यन्मया परिकीर्त्तितम्। ततो मे प्रापणं दद्यात् पूर्वन्यायेन संस्कृतम्॥२७॥
एवं तत्र विधिं कृत्वा स्थपयेच्चात्र प्रापणम्। पश्चादाचमनं कुर्यादिमं मन्त्रमुदाहरेत्॥२८॥

मन्त्रः

शान्तिदवानां शान्तिश्च ब्राह्मणानां राज्ञः शान्तिः। शान्तिर्वृद्धानां बालानां चैव शान्तिः।
पर्जन्यो सर्वतो ब्रीहि शान्तिः॥२९॥

ततएतेन मन्त्रेण शान्तिं कृत्वा महौजसम्। पश्चाद् भागवतान् पूज्य यथान्यायेन संस्कृतान्॥३०॥
एवं भागवतान् पूज्य ततो ब्राह्मणपूजनम्। पश्चादभिवादनं कुर्यादुपपन्नेन भोजयेत्॥३१॥
ब्राह्मणांश्च तथा पूज्य गृह्य शान्त्युदकं तथा। दद्याच्छिरसि मे भूमे यदिच्छेत् सिद्धिमुत्तमाम्॥३२॥

फिर धूप आदि अर्पित कर 'नमो नारायणाय' मन्त्र बोलकर पीतवस्त्र अर्पण करना चाहिए और फिर इस मन्त्र को बोलना चाहिए।।२४।।

मन्त्रार्थ—जो देव सदा पीताम्बर से प्रसन्न हुआ करते हैं और जिनके प्रसन्न हो जाने से सम्पूर्ण संसार प्रसन्न हो जाता है। ऐसे हे सुन्दर मुख वाले देव! इस पीत वस्त्र को स्वीकार करें और हे भगवन्! आप प्रसन्न हों।।२५।।

फिर इस मन्त्र द्वारा यथोचित विधि द्वारा वस्त्र अर्पण करना चाहिए। वैसे पूर्वोक्त विधि से ही मन्त्र बोलते हुए यह कर्म करना चाहिए।।२६।।

मेरे द्वारा कथित विमल कर्म करके पूर्व में कही हुई विधि से मुझे संस्कार युक्त प्रत्यपण-नैवेद्य अर्पण करना चाहिए।।२७।।

इस प्रकार वहाँ की विधि को करने के उपरान्त भोग लगाना चाहिए और फिर आचमन कराने के बाद यह शान्तिमन्त्र का पाठ करना चाहिए।।२८।।

मन्त्रार्थ—सर्वदेवों को शान्ति प्राप्त हो, ब्राह्मणों को शान्ति प्राप्त हो। राजाओं को शान्ति प्राप्त हो। वृद्धों को शान्ति प्राप्त हो, बालकों को शान्ति प्राप्त हो। फिर सर्वत्र मेघ और अन्न को शान्ति प्राप्त हो।।२९।।

इस तरह इस मन्त्र द्वारा महान् ओजस्वी शान्ति कर्म कर यथोक्त रीति से संस्कार युक्त भगवद्भक्तजनों की पूजा भी करें।।३०।।

फिर भगवद्भक्तों की पूजा सम्पन्न कर ब्राह्मणों की पूजा करनी चाहिए। फिर उनका अभिवादन कर उपलब्ध पदार्थों का भोजन कराना चाहिए।।३१।।

हे भूमि! यदि उत्तम सिद्धि की कामना हो, तो ब्राह्मणों का पूजन कर शान्त्युदक लेकर मेरे शिर पर डालना चाहिए।।३२।।

एवं विसर्जनं कृत्वा ये च तत्र समागताः। पूजयेत गुरं तत्र यदीच्छेन्मम सात्म्यताम्॥३३॥
यो गुरुं पूजयेद् भक्त्या विधिदृष्टेन कर्मणा। तेनाहं पूजितो नित्यं देवि सत्यं ब्रवीमि ते॥३४॥
तुष्टो ददाति कृच्छ्रेण ग्राममात्रं नराधिपः। आब्रह्मपदपर्यन्तं हेलया यच्छते गुरुः॥३५॥
तत्रैव मम शास्त्रेषु ममैवं वचनं शुभे। सर्वशास्त्रेषु कल्याणि गुरुपूजा व्यवस्थिता॥३६॥
य एतेन विधानेन कुर्यात् संस्थापनं मम। तारिताश्च कुलास्तेन त्रीणि त्रिशच्च सप्ततिः॥३७॥
यदत्र जलबिन्दूनि मम गात्रेषु युज्यते। तावत् वर्षसहस्त्राणि मम लोकेषु मोदते॥३८॥
एवं ते कथितं भूमे स्थापनं मृन्मयस्य तु। कथयिष्यामि ते ह्यन्यत् सर्वभागवतप्रियम्॥३९॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे एकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१८१॥

फिर यदि मेरी सादृश्यता पाने की कामना हो , तो वहाँ उपस्थित जनों को विसर्जित करने के बाद गुरु की पूजा भी करें।।३३।।

हे देवि! जो जन विधिपूर्वक कर्म द्वारा भक्तिभावना से गुरु की पूजा करते हैं, उसके द्वारा मैं नित्य पूजित होता हूँ। मैं तुम्हें यह सत्य कर रहा हूँ।।३४।।

वैसे जैसे राजा प्रसन्न होकर ग्राममात्र प्रदान करता है। लेकिन गुरु लीला करते हुए ब्रह्मपद तक प्रदान कर देता है। अतः गुरु का पूजन अवश्य करना चाहिए।।३५।।

हे भद्रे! मरे ही शास्त्रों में इस प्रकार का मेरा वचन है, ऐसा नहीं है, बल्कि समस्त शास्त्रों में गुरुपूजा की व्यवस्था और महत्त्व प्रतिपादित हुआ है।।३६।।

जो जन इस विधिविधानसे मेरी स्थापना किया करते हैं, वे जन अपनी एक सौ तीन पीढ़ियों को तार देने वाला होता है।।३७।।

फिर इस कर्म सम्पादन काल में मेरे शरीर पर जल की जितनी बूँदे पड़ती हैं, वे उपासक जन उतने हजार वर्ष तक मेरे लोक में आनन्द प्राप्त करने वाला होता है।।३८।।

हे भूमे! इस प्रकार से मैंने तुम्हें मृण्मयी प्रतिमा स्थापन करने की विधि कह दी है। अब तुमको समस्त भगवद् भक्तों को प्रिय दूसरी विधि भी कहता हूँ।।३९।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में विष्णु मृण्मयी मूर्त्ति की स्थापना-अर्चना विधान नामक एक सौ इक्यासीवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१८१॥

❖❖❖

द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

अथ विष्णोस्ताम्रप्रतिमाविधानम्

श्रीवराह उवाच

ताम्रेण प्रतिमां कृत्वा सुरूपां चैव भास्वराम्। उचितेनोपचारेण वेश्ममध्ये उपानयेत्॥१॥
ततो वेश्म उपागम्य स्थापयित्वा उदङ्मुखः। चित्रायां चैव नक्षत्रे कुर्याच्चैवाधिवासनम्॥२॥
जलं च सर्वगन्धेन पञ्चगव्येन मिश्रितम्। स्नापयेच्च ततो मां वै इमं मन्त्रमुदाहरेत्॥३॥
मन्त्रः–योऽसौ भवांस्तिष्ठति साक्षिभूतः स ताम्रके तिष्ठति नित्यभूतः।
आगच्छ मूर्त्तो सह पञ्चभूतैर्मया च पालैः सह विश्वधामेति॥४॥
तत एतेन मन्त्रेण स्थापयित्वा यशस्विनि! पूर्वन्यायेन मे तत्र भूमि कार्याणि कारयेत्॥५॥
व्यतीतायां तु शर्वर्यामुदिते च दिवाकरे। प्रसन्नासु च शान्तासु स्थापनं मम कारयेत्॥६॥
ब्राह्मणैः पठ्यमानेषु गीतवादित्रनिःस्वनैः। मङ्गलानां च बहवो द्वारमूलेषु स्थापयेत्॥७॥
द्वारमूलमुपागम्य सर्वगन्धसुगन्धिभिः। ततो मे स्थापनं कुर्यादिमं मन्त्रमुदाहरेत्॥८॥

अध्याय–१८२

विष्णुताम्र प्रतिमा पूजन और स्थापन विधान

श्री भगवान् वराह ने कहा कि ताम्र की बनी सुन्दर चमकीली मूर्त्ति को यथोचित विधि केसाथ मन्दिर में ले जाना चाहिए।।१।।

ऐसा चित्रा नक्षत्र में मन्दिर में ले जाने के बाद उत्तर दिशा की ओर मुख किये हुए मेरी मूर्त्ति की स्थापना कर उसकी प्रतिष्ठा करनी चाहिए।।२।।

फिर सब प्रकार के गन्ध और पञ्चगव्य मिले हुए जल से मुझे स्नान कराना चाहिए, और फिर इस मन्त्र को बोलना चाहिए।।३।।

मन्त्रार्थ—जो साक्षी स्वरूप है, ऐसे आप नित्य ही ताम्र में स्थित रहने वाले हैं। हे विश्वधाम! मेरे द्वारा आवाहित आप पञ्चभूतों और लोकपालों के साथ आयें और इस ताम्रमयी मूर्त्ति में स्थित हो जायँ।।४।।

हे यशस्विनि भूमे! फिर इस मन्त्र से स्थापित कर पूर्व कथित विधि द्वारा वहाँ स्थापना सम्बन्धी न्य पूजा आदि कर्मों का सम्पादन करना चाहिए।।५।।

फिर शान्ति के सहित रात बीत जाने पर सूर्योदय के समय मेरी स्थापना करना चाहिए। उस समय वहाँ संगीत और वाद्य की ध्वनि सहित मन्दिर के द्वार पर ब्राह्मणों द्वारा मांगलिक मन्त्रों का पाठ करते रहते ही मेरी स्थापना करनी चाहिए।।६-७।।

फिर द्वार के पास पहुँच कर सभी गन्धों और सुगन्धि द्रव्यों द्वारा मेरी स्थापना करनी चाहिए, वैसे उस समय यह मन्त्र बोलना चाहिए।।८।।

मन्त्रः

ॐ योऽसौ भवान् वरप्रभविष्णुर्मायाबलो योगबलप्रधानः।
आयाहि मूर्त्तिं त्वमिमां मन्त्रपूर्वं संतिष्ठ ताम्रेष्वपि लोकनाथ॥९॥

ज्वलन पवन प्लावन भावन तपन श्वसन। स्वयं तिष्ठ मे भगवन् पुरुषोत्तम ॐइति सूत्रम्॥१०॥
ततो द्वारमुपागम्य वेश्म शीघ्रं प्रवेशयेत्। वेद्यां निवेशनं कृत्वायुक्त्या न्यायेन संस्कृतम्॥११॥
स्नपनं तु ततो दद्यात् सर्वरत्नोदकैः शुभैः। सर्वगन्धविमिश्रं च मनोज्ञं सुखशीतलम्॥१२॥
एवं मां कल्पयित्वा तु मम शास्त्रविशारदः। नमो नारायणेत्युक्त्वा इमं मन्त्रमुदाहरेत्॥१३॥

मन्त्रः

ॐ आकाशप्रकाश जगत्प्रकाश विज्ञानमयानन्दमय त्रैलोक्यनाथ।
एतेन मन्त्रेण करोहि वासः संपूजितस्तिष्ठ हि लोकनाथ॥१४॥

अपद पद महापद अनद नद उपनिषद गद तिष्ठे भगवन् मम। नमः पुरुषोत्तमाय इति सूत्रम्॥१५॥
एवं च स्थापनं कृत्वा मम शास्त्रानुसारिणः। यथान्यायेन मे तत्र गन्धमाल्यैः समर्चयेत्॥१६॥
ममार्चनविधिं कृत्वा गन्धपुष्पं प्रदापयेत्। शुक्लवस्त्रं समादाय इमं मन्त्रमुदाहरेत्॥१७॥

मन्त्रार्थ—हे लोकनाथ! आप श्रेष्ठ प्रभविष्णु, माया के बल से तथा योग बल से सम्पन्नों में भी प्रधान हैं। आप पधारें और इस ताम्रमयी प्रतिमा में निवास करें।।९।।

हे ज्वलन, पवन, प्लवन, भावन, तपन, श्वसन आदि स्वरूप भगवन् पुरुषोत्तम! आप स्वयं ही स्थित हों, यह सूत्र है।।१०।।

फिर द्वार पर पहुँच कर शीघ्रता से मन्दिर में प्रवेश करना चाहिए और सम्प्रयुक्त विधान के अनुरूप संस्कारपूर्वक वेदी पर मूर्त्ति स्थापित करना चाहिए।।११।।

फिर सब रत्नों से सम्पन्न और सब गन्धों से मिश्रित सुन्दर सुखदायक शीतल शुभ जलों से स्नान कराना चाहिए।।१२।।

इस तरह मेरे कथित शास्त्र को जानने वाले जन को मुझे स्थापित करके 'नमो नारायणाय' मन्त्र बोलते हुए इस मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए।।१३।।

मन्त्रार्थ—हे आकाश, प्रकाश, जनत्प्रकाश, विज्ञानमय, आनन्दमय, त्रैलोक्यनाथ लोकनाथ! इस मन्त्र के द्वारा आप मूर्त्ति में निवास करे और पूजित होते रहें।।१४।।

हे अपद पद महापद अनद नद उपनिषद् गदस्वरूप मेरे भगवन् ! आप निवास करें। आप पुरुषोत्तम को प्रणाम है। यह मन्त्रस्वरूप सूत्र है।।१५।।

मेरे शास्त्र का अनुपालन करने वाले इस प्रकार स्थापा करने के बाद यथाविधि द्वरा गन्ध और माला से मेरी पूजा करे।।१६।।

इस तरह मेरा पूजन विधान सम्पादित कर गन्ध-पुष्प अर्पण करना चाहिएप। अपौर फिर श्वेत वस्त्र ग्रहण कर यह मन्त्र बोलना चाहिए।।१७।।

मन्त्रः

ॐ एकतत्त्व गृह्णस्व वस्त्राण्यपि मन्त्रभूत। उपागतस्तिष्ठ सुलोकनाथ॥१८॥
पूतः पवित्रः मम मन्त्रशुद्धमवा। परम प्रमेय नमः पुरुषोत्तमाय इति सूत्रम्॥१९॥
वस्त्रैर्विभूषितं कृत्वा मम कर्मपरायणः। यथान्यायेन मे शीघ्रमर्च्चनं तत्र कारयेत्॥२०॥
अर्चितालंकृतं कृत्वा सुगन्धिधूपमिश्रितम्। पूर्वन्यायेन मे दद्यात् स्नापनं लोकभावनम्॥२१॥
कृत्वा तु प्रापणं त्वेव दद्यादाचमनं विभोः। गोब्राह्मणशिवार्थाय शान्तिमन्त्रमुदाहरेत्॥२२॥

मन्त्रः

ॐ शान्तिर्देवानां यशश्च देवेषु शान्तिः शान्तिर्विप्राणाम्।
शान्ती राज्ञां सराष्ट्राणां शान्तिर्वै बालकानाम्। व्रीहिपर्जन्यशान्तिर्वै गुर्विणीनाम्॥२३॥
एवं शान्तिमुपागम्य यक्षरक्षां च सुन्दरि। गुरुं भागवतांश्चैवमर्च्चयेत यथोदितम्॥२४॥
एवं संपूजनं कृत्वा मम शास्त्रानुसारिणः। ब्राह्मणान् भोजयेत् तत्र यथोत्पन्नेन माधवि॥२५॥
ततः शान्त्युदकं कार्यं ब्राह्मणेभ्यो वसुंधरे। शिरे शान्त्युदकं कृत्वा यदीच्छेत् सिद्धिमुत्तमाम्।
पूज्य विप्रान् विसर्जित्वा कुर्यात् पादाभिवन्दनम्॥२६॥

मन्त्रार्थ—हे एक तत्त्व और मन्त्र स्वरूप सुलोकनाथ! आप आकर वस्त्र को स्वीकार करें और यहाँ पर स्थित हों।।१८।।

हे परम प्रमेय स्वरूप अव्यय आप मेरे मन्त्र से पवित्र और शुद्ध हो, रक्षा करें। आप पुरुषोत्तम को प्रणाम है। यह मन्त्र स्वरूप सूत्र है।।१९।।

इस प्रकार मेरे कर्मपरायण भक्त को वस्त्र से मुझे विभूषित कर यथोचित विधि से शीघ्र वहाँ री पूजा करनी चाहिए।।२०।।

पूजन के सहित अलंकरणों से विभूषित कर पूर्वकथित विधि द्वारा धूप मिश्रित जल से लोगों को प्रसन्न करने वाला मेरा स्नान कराना चाहिए।।२१।।

इस प्रकार नैवेद्य समर्पित कर विभु को आचमन का जल प्रदान करना चाहिए। फिर गायों और ब्राह्मणों के कल्याण हेतु शान्तिमन्त्र का पाठ भी करना चाहिए।।२२।।

ॐ देवताओं को शान्ति और यश प्राप्त हों। देवों और ब्राह्मणों को शान्ति प्राप्त हो। राष्ट्र के साथ राजाजनों को शन्ति प्राप्त हो। बालकों को शान्ति प्राप्त हो। अन्न और मेघ को शान्ति प्राप्त हो। गर्भिणी स्त्रियों को शान्ति प्राप्त हो।।२३।।

हे सुन्दरि! इसी प्रकार से यक्षों और राक्षसों की भी शान्ति कर उपरोक्त प्रकार से गुरु और भगवद् भक्तों की पूजा करनी चाहिए।।२४।।

हे महाधवि! मेरे शास्त्र का अनुसर णकरने वाले भक्त जन को इसी तरह पूजन करने के बाद उपलब्ध पदार्थों से ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए।।२५।।

हे वसुन्धरे! यदि श्रेष्ठतर सिद्धि पाने की कामना हो, तो उसके बाद ब्राह्मणों के शिर पर उस शान्ति पाठ का जल छिड़कना चाहिए। शान्ति जल छिड़कने के बाद ब्राह्मणों को विदा करना चाहिए और उस समय उनकी चरणों की वन्दना भी करनी चाहिए।।२६।।

गुरुं संपूजयेत् पश्चात् वस्त्रालंकरणेन च। तेनाहं पूजितो भूमि सत्यमेतद् ब्रवीमि ते॥२७॥
गुरुर्यस्य न तुष्येत अवमानकृतेन च। नाहं सत्येन तिष्ठामि पुनः सत्यं ब्रवीमि ते॥२८॥
य एतेन विधानेन कुर्यात् संस्थापनं मम। तारिताश्च कुलास्तेन नवति सप्तत्रिंश च॥२९॥
एतत् ते कथितं भद्रे ताम्राच्चर्चास्थापनं मम। कथयिष्यामि ते ह्येवं कात्स्र्न्येन प्रतिमार्चनम्॥३०॥
यावन्ति जलबिन्दूनि मम स्नानेषु सुन्दरि। तावद्वर्षसहस्राणि मम लोके महीयते॥३१॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः॥
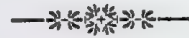
उसके बाद वस्त्र आदि अलंकारों द्वारा गुरु की पूजा करनी चाहिए। हे भूमि! तुमसे सत्य कह रहा हूँ, इस तरह गुरु की पूजा करने वाले उस मनुष्य के द्वारा मैं पूजित हुआ मानता हूँ।।२७।।

मैं पुनः तुमसे सत्य कह रहा हूँ कि जिसके गुरु अपमानवश प्रसन्न नहीं रहते, वहाँ मैं सत्य ही विद्यमान नहीं रहता हूँ।।२८।।

जो जन इस विधान से मेरी स्थापना करने वाले होते हैं, उनके द्वारा सत्ताईस पीढ़ियाँ तार दी जाती हैं।।२९।।

हे भद्रे! मैंने तुमसे अपनी ताम्रमयी प्रतिमा की स्थापना विधि कह दिया। अब तुमको इस प्रतिमा की पूजा करने की सम्पूर्ण विधान आगे कहने जा रहा हूँ।।३०।।

हे सुन्दरि! मुझे स्नान करान में जितनी जल की बूँदें मेरे शरीर के ऊपर पड़ती है, उतने हजार वर्ष तक वह पूजन करने वाला मेरे लोक में निवास करता है।।३१।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में विष्णुताम्र प्रतिमा पूजन और स्थापन विधान नामक एक सौ बयासीवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१८२॥

❖❖❖

त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

अथ विष्णोस्कांस्यप्रतिमाविधानम्

श्रीवराह उवाच

कांस्येन प्रतिमां कृत्वा सुरूपां प्रतिनिष्ठितः। सर्वांगसमायुक्तां विमलां कर्मनिर्मिताम्॥१॥
तत्र ज्येष्ठासु नक्षत्रे मम वेश्ममुपानयेत्। गीतवादित्रशब्देन बहवो मङ्गलास्तथा।
अर्घ्यं गृह्य यथान्यायमिमं मन्त्रमुदाहरेत्॥२॥
योऽसौ भवान् सर्वयज्ञेषु ईड्यो धाता गोप्ता विश्वकायो महात्मा।
प्रसन्नात्मा भगवान् मे प्रसन्नः संपूजितस्तिष्ठ हि लोकनाथ॥३॥
अर्घ्यं दत्त्वा यथान्यायं स्थापयेत उदङ्मुखः। यथान्यायेन संस्थाप्य ततः कुर्यादधिवासनम्॥४॥
चत्वारः कलशांश्चैव पञ्चगव्यसमायुतान्। सर्वगन्धानि लाजांश्च प्रियङ्गुकेसरेण च॥५॥
ततश्चास्तंगते सूर्ये शुद्धैर्भागवतैः सह। स्थापं कुरुते भूमि मम च स्थापनक्रियाम्॥६॥
गृहीत्वा कलशांस्तत्र शुद्धो भागवतस्तथा। नमो नाराणेत्युक्त्वा इमं मन्त्रमुदाहरेत्॥७॥
मन्त्रः–आदिर्भवान् ब्रह्मयुगान्तकल्पः सर्वेषु कालेष्वपि कल्पभूतः।
एको भवान् नास्ति कश्चिद् द्वितीय उपागतस्तिष्ठ हि लोकनाथ॥८॥

अध्याय–१८३

विष्णु कांस प्रतिमा पूजन-प्रतिष्ठापन विधान

श्री वराह भगवान् ने कहा कि इसी प्रकार पूरी निष्ठा सम्पन्न भकत जन को सभी आश्रम शास्त्री सिद्धान्तानुरुप शिल्प कर्म द्वारा कांस्यमयी सुन्दर विमल मूर्त्ति का निर्माण कराना चाहिए।।१।।

फिर ज्येष्ठा नक्षत्र में गीत और वाद्य ध्वनि तथा विविध माङ्गलिक कर्मों के साथ उस कांस्मयी प्रतिमा को मेरे मन्दिर में लाकर रखना चाहिए। फिर यथोक्त विधि से अर्घ्य प्रदान कर यह मन्त्र बोलना चाहिए।।२।।

हे लोकनाथ! आप सभी यज्ञों में उपास्य धाता रक्षक विश्वरूप महात्मा, प्रसन्नात्मा और भगवान् हैं, आप ही मुझसे भी पूजित होकर यहाँ संतुष्टि से स्थित हों।।३।।

फिर अर्घ्य प्रदान कर यथोक्त विधि से उत्तराभिमुख मूर्त्ति की स्थापना करनी चाहिए फिर स्थापना विधि सम्मत कर उसकी प्राणप्रतिष्ठा करनी चाहिए।।४।।

पञ्चगव्य, प्रियङ्गु, केसर, लावा और सभी गन्धों से युक्त चार कलशों को भी स्थापित करना चाहिए। हे भूमे! फिर सूर्यास्त के पश्चात् शुद्ध भगवद् भक्तों के सति मेरी स्थापना का कार्य सुसम्पन्न करना चाहिए।।५-६।।

फिर शुद्ध भगवद् भक्त वहाँ कलशों को स्पर्श कर 'नमो नारायणाय' मन्त्र को बोलकर इस मन्त्र का उच्चारण भी करे।।७।।

मन्त्रार्थ—आप सृष्टि के आदि स्वरूप, ब्रह्मनुगान्त, कल्प, सब कालों में रहने वाले कल्पभूत एक हैं, आपके अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं है। हे लोकनाथ! आप यहाँ आकर स्थित हों।।८।।

कारः विकारः अकारः सकारः षकारः छन्दस्त्रिरूपः क्षरमक्षरधृतिरूपः।
अरूपमिति नमः पुरुषोत्तमायेति सूत्रम्॥९॥

व्यतीतायां तु शर्वर्यामुदिते च दिवाकरे। श्वेतेन च मुहूर्त्तेन प्राप्ते भूतेषु चोत्तरे॥१०॥
पूर्वोक्तेन विधानेन मम शास्त्रानुदर्शिना। स्थापयेद् द्वारमूले तु मम वेश्मस्य सुन्दरि॥११॥
सर्वशान्त्युदकं गृह्य सर्वगन्धफलानि च। नमो नाराणेत्युक्त्व इमं मन्त्रमुदाहरेत्॥१२॥

मन्त्रः–

ओम् इन्द्रो भवांस्त्वं च यमः कुबेरो जलेश्वरो सोमबृहस्पती च।
शुक्रः शनैश्चरराहुबुधः सर्वमादित्यमग्निरश्मिश्च सशीतरश्मिस्तथैव सर्वौषधिरेव मारुतः।
सर्वा शरीरशान्ता देहे वसन्तो पुरुषोत्तमाय नम इति सूत्रम्। सर्वदेवनमस्कारे॥१३॥
तत एतेन मन्त्रेण कृत्वा कर्म सुपुष्कलम्। अप्रमादकृतं पूर्वं ततो वेश्मय प्रवेशयेत्॥१४॥

प्रवेशयित्वा वेश्मे तु एकान्ते मम कार्मिकाः।
स्थापनं तु यथान्यायं यथा दोषो न विद्यते॥१५॥

निर्दोषं तु ततो ज्ञात्वा सर्वपार्श्वेषु पृष्ठतः। सर्वरत्नसमायुक्ताः सर्वगन्धैश्च केसरैः॥१६॥
चत्वारः कलशास्तत्र मम शास्त्रानुसारिणः। पूरयन्तु यथान्यायं मम गात्राभिस्नापनम्।
सुविशुद्धेन मनसा इमं मन्त्रमुदाहरेत्॥१७॥

आप ही कार, विकार, आकार, सकार, षकार, छन्द, त्रिरुप, क्षर, अक्षर, धृतिरूप, और अरूप भी हैं। अतः हे पुरुषोत्तम आपको प्रणाम है। यह सूत्र रूप है।।९।।

रात के पश्चात् प्रभातकाल में सूर्योदय होने पर मूलनक्षत्र में दूसरा शुभ मुहूर्त मिलने पर, हे सुन्दरि! उपरोक्त विधि के अनुरूप मेरे शास्त्र के अनुयायी जन मेरे मन्दिर के द्वार पर मूल में प्रतिमा को स्थापित करें।।१०-११।।

फिर सभी शान्ति कर्म सम्बन्धी जल, समस्त गन्ध और फल लेकर 'नमो नारायणाय' मन्त्र उच्चारण करते हुए इस मन्त्र का भी उच्चारण करे।।१२।।

मन्त्रार्थ—आप ही इन्द्र, यम, कुबेर, जल के स्वामी वरुण, सोम, बृहस्पति, शुक्र, शनिश्चर, राहु, बुध, अराम रश्मिवान् सूर्य, शीत रश्मि चन्द्र, सर्व औषध, वायु और सभी दिशाओं के स्वरूप हैं। समस्त जीवों के शरीर में स्थित पुरुषोत्तम को प्रणाम है। यह सर्वदेव नमस्कारात्मक सूत्र है।।१३।।

फिर प्रमादयुक्त रहकर इस मन्त्र से सभी कर्म कर लेने के पश्चात् मूर्त्ति को मन्दिर में प्रवेश कराना चाहिए।।१४।।

फिर मेरे कर्मपरायण भक्त जन को मेरे एकान्त मन्दिर में स्वयं प्रवेश कर यथोक्त विधि से स्थापना सम्बन्धी कर्म इस प्रकार करना चाहिए, जिसमें कोई दोष न आने पाये।।१५।।

फिर सभी पार्श्वों और पृष्ठभाग में दोषाभाव को जानकर सभी रत्नों, गन्धों और केसरों से सम्पन्न चार कलशों को मेरे स्नान के निमित्त स्थापित कर मेरे शास्त्र को जानने वाले भक्त जन को शुद्ध मन से यह मन्त्र बोलना चाहिए।।१६-१७।।

मन्त्रः-सरांसि ये ते च समस्तसागरा नद्यश्च तीर्थानि च पुष्कलानि।
उपागम्य वेश्म तव प्रसादामनःशुद्धिः श्रिया शुद्धिश्चेति नमः पुरुषोत्तमायेति सूत्रम्॥१८॥
एवं संस्थापनं कृत्वा मम शास्त्रानुसारिणः। पूर्वन्यायेन मां तत्र अर्चयीत यथोदितम्॥१९॥
अर्चित्वालङ्कृतं कृत्वा माल्यगन्धानुलेपनैः।
पश्चाद् वस्त्राणि मे दद्यान्मम गात्रविभूषणम्॥२०॥
आनयित्वा ततस्तत्र स्थापयित्वा ममाग्रतः। उभौ मे चरणौ गत्वा इमं मन्त्रमुदीरयेत्॥२१॥
मन्त्रः-
ॐ आवास्त्र लब्धान्तरभूत सर्वेषु च लववस्त्राणि मां गृह्णातु सः।
सुवस्त्र मुनग्रहस्तिष्ठ तुभ्यं गृह्णीष्व देवेश सुलोकनाथ।
वेद उपवेद नावेद ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद अथर्ववेद संस्तुत इति नमः
परंपराय पुण्याय इति सूत्रम्॥२२॥
अर्चित्वालंकृतं कृत्वा पूर्वन्यायेन सुन्दरि! पश्चान्मे प्रापणं दद्यानमन्त्रं च विधिपूर्वकम्।
प्रापणं तु कृतं तत्र पूर्वमन्त्रसभन्वितम्।२३॥
पश्चादाचमनं कुर्याच्छान्तिं चोरुरतस्तथा। य एतेन विधाने इमं मन्त्रमुदाहरेत्॥२४॥
ॐ कुर्वतो ब्रह्म च ब्राह्मणा वेदाश्चत्वारो ये ग्रहाश्चाष्ट एव।
सर्वे तत्र सरितः सागराश्च शान्तिं कुर्वन्तो ये मया सर्वथोक्ताः॥२५॥

मन्त्रार्थ—जितने सरोवर, समुद्र, नदियाँ, कई तीर्थ आदि हैं, वे सब भी आपकी कृपा पाकर मन्दिर में आकर स्थित हों। फिर मेरे मन की शुद्धि भी हो। मेरी सम्पत्ति की शुद्धि हो। आप पुरुषोत्तम को प्रणाम है। यह सूत्र है।।१८।।

इस प्रकार स्थापना कर्म सम्पन्न कर मेरे शास्त्र का अनुयायी जन को पूर्वोक्त विधि से वहाँ मेरी पूजा करनी चाहिए।।१९।।

फिर पूजा कर माला, गन्ध और अनुलेपनों द्वारा विभूषित कर प्रतिमा को वस्त्र और शरीर का अन्यान्य आभूषण भी अर्पण करना चाहिए।।२०।।

इस-कार पूर्वकथित समस्त पदार्थों को लाकर मेरी प्रतिमा के सम्मुख स्थापित करना चाहिए तथा मेरी मूर्त्ति के दोनों चरणों में प्रणाम करते हुए यह मन्त्र बोलें।।२१।।

मन्त्रार्थ—वे देव जो समस्त अन्न आच्छादन आदि पदार्थों में विद्यमान हैं, मुझ पर कृपा करें। यह सुन्दर वस्त्र ग्रहण कर स्थित हों। हे लोकनाथ देवेश यह वस्त्रादि आपको समर्पित है। आप इसे ग्रहण करें। समस्त वेद, उपवेद, आगम शास्त्र आदि आपकी स्तुति किया करते हैं। आपको प्रणाम है।।२२।।

हे सुन्दरि! उपरोक्त विधि से पूजन करते हुए मेरा अलंकरण करने के बाद पूर्वकथित मन्त्र से विधिपूर्वक मुझे प्रापण प्रदान करना चाहिए।।२३।।

फिर आचमन कराने के बाद शान्तिमन्त्र का पाठ करना उचित है। इसी विधान से कर्म करते हुए यह मन्त्र भी बोलना चाहिए।।२४।।

मन्त्रार्थ—ॐ ब्रह्म, ब्राह्मण, चारों वेद, सब अष्ट ग्रह आदि। सभी शान्ति प्रदा करें। मेरे द्वारा कथित समस्त नदिया, समुद्र आदि सब प्रकार से शान्ति प्रदान करे।।२५।।

आयामः यमः कामः दमः वाम ॐ नमः पुरुषोत्तमायेति सूत्रम्॥२६॥
वृत्तेष्वेवोपचारेषु मम कुर्यात् प्रदक्षिणम्। अभिवाद्य गुरून् सर्वान् कृत्वा चैवाभिवादनम्॥२७॥
तं तु कृत्वा यथान्यायं पूज्य भागवतान् शुचीन्। तेषां संपूजनं कृत्वा पूजयेत द्विजातयः॥२८॥
तेषां शान्त्युदकं गृह्य द्विजानां कमलेक्षणे। शिरसाऽभ्युक्षणं मह्यमेवाहं पूजितो भवे॥२९॥
सर्वान् विसर्जयित्वा तु यथा ते समुपागताः। गुरुं संपूजयेत् तत्र दानसंमानभोजनैः॥३०॥
यो गुरुं पूजयेद् देवि भक्त्वा भावेन सुन्दरि। तेनाहं पूजितो देवि एवमेतन्न संशयः॥३१॥
ब्राह्मणान् मम भक्तांश्च गुरुं चैवाभिनिन्दति। नाशयामि न संदेह एतत् सत्यं ब्रवीमि ते॥३२॥
यावन्ति जलबिन्दूनि मम गात्राणि स्नापयेत्। तावद् वर्षसहस्राणि स्नापको मयि संस्थितः॥३३॥
य एतेन विधानेन भूमि! संस्थापयेन् मम। तारिताश्च कुलास्तेन शतमेकं न संशयः॥३४॥
एतत् ते कथितं भद्रे मम कांस्येन स्थापनम्। कथयिष्यामि ते वेदं रूप्ये रूपप्रवर्तनम्॥३५॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१८३॥
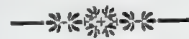
फिर आयाम, यम, काम, दम, सुन्दर वाम स्वरूप पुरुषोत्तम को प्रणाम है। ऐसा ही यह सूत्र वाक्य कहा गया है। इस तरह पूजन आदि उपचार के सम्पन्न हो जाने पर मुझे प्रणाम करना चाहिए और फिर समस्त उपस्थित गुरुजनों को प्रणाम कर मेरी प्रतिमा की प्रदक्षिणा करना चाहिए। फिर यथोक्त विधानानुसार मेरा अभिवादन आदि कर्म सम्पन्न कर मेरे भगवद् भक्तों का भी पूजन करना चाहिए। तत्पश्चात् द्विजाति जनों का पूजन करें।।२६-२८।।

हे पद्माक्षि! फिर शान्ति कर्म प्रयुक्त जल को लेकर उन द्विजों के शिर पर अभिसिंचन कर्म करना चाहि। हे भूमे! उस उपासक का यह कर्म मेरे लिए ही हुआ करता है। इस प्रकार मैं ही पूजा जाया करता हूँ।।२९।।

सब जिस प्रकार से आये हों, उन्हें उसी प्रकार विसर्जित करना चाहिए। दान, सम्मान और भोजन द्वारा वहाँ गुरुजनों का फिर पूजन करना चाहिए।।३०।।

हे सुन्दरि! देवि! जो जन श्रद्धा और भक्ति से गुरु का पूजन किया करता है, समझो कि उसी के द्वारा मैं पूजा जा सकता है। हे देवि! इसमें किसी भी तरह संशय नहीं करना चाहिए। जो जन ब्राह्मणों, मेरे भक्तों और अपने गुरुजनों की निन्दा किया करते हैं, मैं उन्हें विनष्ट कर दिया करता हूँ। मैं तुमको यह सत्य कह रहा हूँ।।३१-३२।।

इस प्रकार जल की जितनी भी बूँदों से मेरे अंगों को स्नान कराया जाता है, उतेन हजार वर्ष तक मुझे स्नान कराने वाला मुझ में ही स्थित रहा करता है।।३३।।

हे भूमे! जो जन इस प्रकार की विधि से मेरी स्थापना के कर्म को सम्पन्न किया करते हैं, उन जनों के द्वारा निःसंशय वंश की सौ पीढ़ियों को तार दिये जाते हैं।।३४।।

हे भद्रे! मैंने तुमको इस तरह अपनी कांस्यमयी प्रतिमा की स्थापना विधि कह सुनाया है। अब आगे मैं तुमको रौप्य धातु की बनी मूर्त्ति की स्थापना आदि का विधान कहने जा रहा हूँ।।३५।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में विष्णु कांस प्रतिमा पूजन-प्रतिष्ठापन विधान नामक एक सौ तिरसिवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१८३॥

❖❖❖

चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

अथ विष्णोरौप्यस्वर्णप्रतिमाविधानम्

श्रीवराह उवाच

रौप्येण प्रतिमां कृत्वा सुरूपां निर्मलां शुचिः। सुश्लिष्टां चैव निर्दोषां सर्वतः परिनिष्ठिताम्॥१॥
चन्द्रपाण्डुरसंकाशां कर्मशुक्लविनिर्मिताम्। श्रृतावर्तमनोज्ञां वै दीप्यमानां दिशो दश॥२॥
तादृशीं प्रतिमां कृत्वा मम कर्मपरायणः। गीतवादित्रशब्देन शङ्खदुन्दुभिनिःस्वनैः।
स्तुतिभिर्मङ्गलैश्चैव मम वेशममुपानयेत्॥३॥
ततो वेशममुपानीय मम कर्मपरायणः। अर्घ्यं दत्वा तु संपूज्य इमं मन्त्रमुदाहरेत्॥४॥

मन्त्रः

ॐ यः सर्वलोकेष्वपि सर्वमर्घ्यः संपूज्यमानश्च दिवौकसामपि।
उपागतो गृह्ण हि अर्घमेतं प्रसीद मां तिष्ठ सुलोकनाथ॥५॥
इज्यः पूज्यः यज्ञः सूर्यः यमः कर्म अग्निहोत्रश्चेति कर्माग्निहोत्रम्।
नमो आदित्यमव्ययरूपाय इति सूत्रम्॥६॥

अध्याय–१८४

विष्णु की रौप्य या स्वर्ण प्रतिमा स्थापना-पूजन विधान

श्री भगवान् वराह ने कहा कि पवित्रता के सहित सुन्दर स्वरूप वाला निर्मल सुश्लिष्ट, निर्दोष और फिर सर्वथा ही परिनिष्ठित रौप्य की प्रतिमा बनवाना चाहिए।।१।।

पाण्डुर याने श्वेत चन्द्र के समान, शुद्ध कर्म से विनिर्मित श्रृतावर्त युक्त मनोहर और समस्त दिशाओं में दीप्त हो रही मूर्त्ति बनवानी चाहिए।।२।।

फिर मेरा कर्मपरायण जन इस प्रकार की मूर्त्ति बनवा कर संगीत, वाद्य, शंख, दुन्दुभि आदि की ध्वनि करते हुए स्तुति और मङ्गल पाठ करने के साथ-साथ मेरी प्रतिमा को मन्दिर में ले जाना चाहिए।।३।।

फिर मन्दिर में ले जाकर मेरा भक्तजन उनको अर्घ्य अर्पण करने के बाद उनका पूजन कर इस मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए।।४।।

मन्त्रार्थ—ॐ सम्पूर्ण लोकों में समस्त जन से अर्घ्य प्राप्त करने वाले और देवतागणों से भी पूजे जाने वाले, जो देव हैं, वे यहाँ पधार कर मेरा यह अर्घ्य स्वीकार करें। हे सुलोकनाथ! मेरे ऊपर प्रसन्न होकर आप यहाँ इस प्रतिमा में सदा स्थित हों।।५।।

हे देव! आप इज्य, पूज्य, यज्ञ, सूर्य, यम, कर्म, अग्निहोत्र और सर्वप्राणी के कर्माग्नि होत्र हैं। अव्यय स्वरूप आदित्य को प्रणाम है। यह सूत्र वाक्य है।।६।।

तत एतेन मन्त्रेण अर्घ्यं दत्वा यथाविधि। विमानो विहितो यश्च स्थापयेदुत्तरामुखम्॥७॥
आश्लेषासु च नक्षत्रे राशौ कर्कटके स्थिते। अस्तंगते दिनकरे स्वजनेन युतस्तथा।
कुर्यादधिवासनं तत्र विधिवन्मन्त्रसंमितम्॥८॥
चत्वारः कलशास्तत्र चन्दनोदकमिश्रिताः। सर्वौषधिसमायुक्ताः सहकारविभूषिताः॥९॥
ततस्ते कर्मिकाः सर्वे मम शास्त्रानुसारिणः। गुरोस्तु वचनं देवि मनोज्ञं सुखशीतलम्।
नमो नारायणेत्युक्त्वा इमं मन्त्रमुदाहरेत्॥१०॥

मन्त्रः

ॐ योऽसौ भवान् सर्वलोकैककर्त्ता सर्वाध्यक्षः सर्वरूपैकरूपः।
आयातु मूर्तौ सहितो मया च ध्रुवादिभिर्लोकपालैस्तु पूज्यः नमोऽनन्तायेति सूत्रम्॥११॥
व्यतीतायां तु रात्र्यायाकुदिते सूर्यमण्डले। दिशासु च प्रसन्नासु द्वारमूलेषु स्थापयेत्॥१२॥
एवं संस्थापनं कृत्वा मम मार्गानुसारिणः। घटैः पूर्णैर्यथान्यायं कुर्यात् तत्राभिषेचनम्॥१३॥
अभिषिंच्य ततः पश्चात् स्थापयेत विधानतः। नमो नारायणेत्युक्त्वा इमं मन्त्रमुदाहरेत्॥१४॥

मन्त्रः

योऽसौ गमनाय सुरतिलोकाभिदृश्यते नैव प्रणम्यते सः।
अदृष्टगमाद्य गृहागमेति सानुग्रहस्तिष्ठ हि लोकनाथ॥१५॥

फिर अग्रोक्त मन्त्र से यथोक्त रीति से अर्घ्य प्रदान कर संविहित विमान पर उत्तर दिशा की ओर मुख कर उन प्रतिमा को स्थापित करना चाहिए।।७।।

फिर श्लेषा नक्षत्र गत कर्कराशि में सूर्यास्त काल बाद अपने स्वजनों सहित सविधि मन्त्र पाठ करते हुए वहां पर स्थापन-कार्य सम्पन्न करना चाहिए।।८।।

फिर चन्दन मिश्रित और सर्वोषधियों से युक्त जल से पूर्ण तथा आम्रपल्लव से विभूषित चार कलश को स्थापित करना चाहिए।।९।।

हे देवि! फिर मेरे शास्त्र को जानने और अनुसरण करने वाले जन अपने गुरु को सुख और शीतलता प्रदान करने वाले मनोहर वचन कहते हुए 'नमो नारायणाय' मन्त्र का इस प्रकार उच्चारण करना चाहिए।।१०।।

मन्त्रार्थ—आप समस्त लोकों के अद्वितीय कर्त्ता, सबके अध्यक्ष स्वरूप, सर्वरूप और अद्वितीय स्वरूप वाले हैं। अतः आप स्वयं इस अपने प्रतिमा आकर अवस्थित हों। मेरे साथ ध्रुव आदि लोकपालों के भी आप पूज्यास्पद है। आप अनन्त को प्रणाम है। यह सूत्र वाक्य है।।११।।

फिर रात बीतने के बाद प्रभात काल में सूर्योदय हो जाने पर सभी दिशाओं के स्वच्छ हो जाने पर द्वारमूल में प्रतिमा को स्थित करना चाहिए।।१२।।

फिर इस तरह स्थापित कर लेने के बाद मेरे मार्ग के अनुपालन करने वाले जन जल से भरे घड़ों द्वारा वहां मेरा यथोक्त विधि से अभिषेक करे।।१३।।

फिर अभिषेक करने के बाद यथोक्त विधि से उसे स्थापित करना चाहिए। और 'नमो नारायणाय' मन्त्र कहकर अग्रोक्त मन्त्र को बोलना चाहिए।।१४।।

मन्त्रार्थ—हे देव! आप सुन्दर स्नेह स्म्पन्न और लोकों में गतिमान् होकर भी कभी दिखाई नहीं दिया करते

प्रवरं परं परायणं होत होत्रा परिवर्त्तय यतश्चेति नमः अनन्ताय इति सूत्रम्॥१६॥
एकाभिषेचनं कृत्वा मम शास्त्रानुसारिणः। तत्र तूर्णं विनीतश्च वेदीमध्येषु स्थापयेत्॥१७॥
ततो मां सर्वतः पश्यन् सर्वदोषैर्विवर्जितम्। द्युतिमान् मतिमांश्चैव विधिमन्त्राणि स्थापयेत्॥१८॥
पुनः कर्त्तव्य मे भूमि स्थापनं मम शोधनम्। येनाहं तत्र तिष्ठामि मन्त्रपूतेन सम्मतम्॥१९॥
कलशानि ततो गृह्य यथान्यायेन पूरितम्। नमो नारायणेत्युक्त्वा इमं मन्त्रमुदाहरेत्॥२०॥

मन्त्रः

ॐ यो वेदवेदाङ्गवरावसिक्तो यो सर्ववेदेष्वपि भावमागात्।
इज्यानरष्टायज्ञाय यश्च सानुग्रहस्तिष्ठ हि लोकनाथ॥२१॥

धन धन कनक धन धनन संजन वातकाननेश्चेति। नमः नमः पुरुषोत्तमाय इति सूत्रम्॥२२॥
एवं संस्थापनं कृत्वा हृष्टतुष्टेन चेतसा। अर्च्चयीत यथान्यायं यन्मया पूर्वभाषितम्॥२३॥

अर्चितालंकृतं कृत्वा मम शास्त्रानुसारिणः।
नीलवस्त्राणि मे दद्यात् प्रियाणि मम भूषणम्॥२४॥

हैं, अतः ऐसे देव यहाँ पूजित हो रहे हैं। फिर सुन्दर अदृष्ट के उदय होने के अवसर पर ही आप देव मेरे गृह में पधारे हैं। हे लोकनाथ! ऐसे जो आप हैं, कृपापूर्वक यहाँ पर स्थित हों।।१५।।

प्रवर, पर, परायण, हवि, होता आदि स्वरूप और जिससे संसार में परिवर्तन होता है, उन अनन्त को प्रणाम है। यह सूत्र वाक्य है।।१६।।

इस प्रकार मेरे शास्त्र के अनुसार चलने वाले को मेरे एक अभिशेक कर शीघ्र ही विनयपूर्वक वेदी के मध्य प्रतिमा स्थापित करना चाहिए।।१७।।

फिर बुद्धिमान् और तेजस्वी भक्तजन सभी दोषों से मुक्त रहता हुआ मुझको सर्वत्र देखता-अनुभव करता हुआ सविधि मन्त्र से स्थापित करे।।१८।।

हे भूमे! फिर से मेरी स्थापना वाले स्थान का शोधन करना चाहिए, जिससे मन्त्र के माध्यम से पवित्र होकर मैं वहाँ सम्मानपूर्वक स्थित हुआ करता हूँ।।१९।।

फिर यथाविधि उन भरे हुए कलशों को लेकर 'नमो नारायणाय' मन्त्र कहते हुए अग्रिम मन्त्र को बोलना चाहिए।।२०।।

मन्त्रार्थ—हे लोकनाथ! आप तो वेद और वेदाङ्ग के श्रेष्ठतर प्रवर्त्तक, समस्त वेदों के तात्पर्य को जानने वाले, पूज्य, मार्गदर्शक, तारन करने वाले और यज्ञस्वरूप हैं। अतः आप कृपापूर्वक यहाँ स्थित हों।।२१।।

सम्पत्ति और धन स्वरूप, स्वर्ण, धन, धनन, संजन आदि स्वरूप पुरुषोत्तम को प्रणाम कह रहा हूँ। यह सूत्र वाक्य है।।२२।।

फिर प्रसन्न और संतुष्ट मन से संस्थान करने के बाद उस विधि से पूजन करना चाहिए, जो विधि मेरे द्वारा पहले ही कहा गया है।।२३।।

इस प्रकार मेरे शास्त्र का अनुगमन करने वाले भक्तजन को प्रतिमा के पूजित और सुशोभित करने के बाद मुझे प्रिय नीलवस्त्र और मेरां आभूषण मुझे विनम्रता से प्रदान करना चाहिए।।२४।।

ततो वस्त्रमुपागम्य जानुभ्यां पतितो भुवि।
नमो नारायणेत्युक्त्वा इमं मन्त्रमुदाहरेत्॥२५॥

मन्त्रः

योऽसौ भवंश्चन्द्रकिरणप्रकाशः शङ्खस्य कुन्दस्य च कर्णधारः।
क्षीरोदधिः कौमुदवर्ण देव वस्त्राणि गृह्णीस्व च तिष्ठ नाथ॥२६॥
वेषः सुवेषः अनन्तः अमरः मरणमारणः कारणसुलभः।
दुर्लभः श्रेष्ठः सुवर्च्च इति सूत्रम्॥२७॥

तत एतेन मन्त्रेण कृत्वावस्त्रेणालंकृतम्। ततो मे प्रापणं दद्यात् फुल्लन्ततोरणे शुभः॥२८॥
दत्त्वा तु प्रापणं ह्येवमाचार्यः शास्त्रसंयुतः। सर्वलोकहितार्थाय शान्तिमन्त्रमुदाहरेत्॥२९॥

यौऽसौ ब्रह्मदेवस्य पुरा शान्ति रुद्रस्य विष्णोर्हि ये च रात्रौ च।
शान्तिर्लोकानां ये मया पूर्वमुक्ताः॥३०॥
अचल चञ्चल सचल खेचल प्रचल अरविन्दप्रभ उद्भवश्चेति।
नमः संस्थापितानां वासुदेव इति सूत्रम्॥३१॥

एवं शान्तिकृतं कृत्वा सर्वपापप्रणाशनम्। पूज्य भागवतांस्तत्र यथान्यायेन संस्कृतम्॥३२॥

इस तरह वस्त्र प्रदान करने के बाद पृथ्वी पर घुटनों के बल बैठ कर फिर 'नमो नारायणाय' मन्त्र बोलते हुए इस मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए।।२५।।

मन्त्रार्थ—हे नाथ! आप चन्द्रकिरणों के प्रकाश स्वरूप, शंख और कुन्दपुष्प के पर्ण सदृश क्षीरसागर और शरदकालीन चाँदनी के वर्ण स्वरूप हैं, अतः आप इन वस्त्रों को स्वीकार कर स्थित हों।।२६।।

आप तो वेष सुवेष अनन्त अमर मरण मारण कारण-सुलभ श्रेष्ठ तेजस्वी और अत्यन्त ओजस्वी हैं। यह सूत्र वाक्य है।।२७।।

उपरोक्त मन्त्र से मेरे उस प्रतिमा को वस्त्र से आच्छादित करने के बाद पुष्प से भी अलंकृत मन्दिर के बाहरी द्वार पर मुझे नैवेद्य प्रदान करना चाहिए।।२८।।

फिर शास्त्र सम्पन्न आचार्य को इस तरह से नैवेद्य अर्पण करने के बाद समस्त लोकों के कल्याणार्थ शान्ति मन्त्र का पाठ करना चाहिए।।२९।।

फिर पुरातन समय में उत्पन्न होने वाले ब्रह्मदेव के शान्ति मिले। रुद्र और विष्णु को शान्ति मिले। रात में शान्ति हो। उन लोकों में भी शान्ति हो, जिन्हें मैंने पूर्व में ही बतला दिया है।।३०।।

अचल, चंचल, सचल, खेचल,प्रचल, कमलवर्ण और उद्भव स्वरूप संस्थापित वासुदेव कोप्रणाम है। यह भी सूत्र वाक्य है।।३१।।

इस तरह सभी पापों को विनष्ट करने वाला शान्तिकर्म सम्पन्न कर फिर भगवद् भक्तों की पूजा करने के बाद यथावसर संस्कार करना चाहिए।।३२।।

ततः संधपूनं कृत्वा मम भक्तिव्यवस्थितम्। ब्राह्मणान् पूजयेत् तत्र उपपन्नेन भोजयेत्॥३३॥

ततः सम्पूज्य विप्राणां गृह्य शान्त्योदकं शुभम्।
कुर्यादभ्युक्षणं तत्र मम कर्मसुखावहम्॥३४॥

ब्राह्मणान् स्वजनं चैव अभिवाद्य कृताञ्जलिः। शीघ्रं विसर्जयेत् तत्र ये तत्र समुपागताः॥३५॥

विसर्जयित्वा सर्वजनं गुरुं यत्नेन पूजयेत्। दानमानेन सत्कारैर्भोजनाच्छादनैः शुभैः॥३६॥

गुरं संपूजयेद् भक्त्या ब्राह्मणांश्च मनः प्रियान्।
भक्त्या हि भक्तिमन्तैश्च तैश्चाहं पूजितः सदा॥३७॥

यावन्ति जलबिन्दूनि मम गात्रेषु स्नापनात्। तावदृ वर्षसहस्राणि विष्णुलोके स मोदते॥३८॥

य एतेन विधानेन भूमि संस्थापयेन्मम। तारिताश्च कुलास्तेन मम कर्मसु निर्मितः॥३९॥

एतत् ते कथितं देवि रौप्यं मां चैव स्थापनम्। सुवर्णस्य प्रवक्ष्यामि स्थापनं मम यत्प्रियम्॥४०॥

यथैव राजतीं कुर्यात् तथैव च सुवर्णिकाम्। तेनैव विधिना सर्वं मन्त्रावाहनस्थापनम्॥४१॥

यत्फलं दारुशैलादिताम्रकांस्यादिराजतीः। तत्फलं कोटिगुणितं लभते नात्र संशयः॥४२॥

तत्पश्चात् मेरी भक्ति करने में अच्छी तरह निपुण जन को धूपन की क्रिया करनी चाहिए। फिर वहाँ उपलब्ध पदार्थों से ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहए।।३३।।

फिर ब्राह्मणों की पूजा कर शुभ शान्ति-उदक लेकर वहाँ मेरे कर्म में सुखप्रदायक अभ्युक्षण कार्य करना चाहिए।।३४।।

फिर दोनों अपने हाथों से बद्धाञ्जलि होकर ब्राह्मणों और स्वजनों का भी अभिवादन करने के बाद वहाँ पर जमा हुए जनों को शीघ्र विसर्जित करें।।३५।।

फिर सबको विदा करने के पश्चात् कल्याणप्रद दान, मान, सत्कार, भोजन और वस्त्र द्वारा यत्नपूर्वक गुरु की भी पूजा करनी चाहिए।।३६।।

फिर भक्तिभाव से गुरु, मन को प्रिय और भक्तिमान् ब्राह्मणों का भी पूजन करना चाहिए। इस तरह जो क्रिया करते हैं, उनके द्वारा मैं सदा ही पूजित होता हूँ।।३७।।

फिर मुझे स्नान कराने में मेरे शरीर पर जल की जितनी बूँदें गिरती हैं, उतने हजार वर्ष तक पूजन करने वाले वे जन विष्णुलोक में आनन्द पाया करते हैं।।३८।।

हे भूमे! जो जन इस विधि विधान से मेरी स्थापना किया करते हैं, वे जन अपने कुल की अनेक पीढ़ियों को भी तार दिया करते हैं। फिर वे जन मेरे कर्म के हेतु ही उत्पन्न हुआ करते हैं।।३९।।

हे देवि! इस प्रकार मैंने तुमको अपनी रौप्य प्रतिमा की स्थापना विधि को बतला दिया है। अब आगे स्वर्ण-प्रतिमा की स्थापना को कहने जा रहा हूँ, जो कि मुझे अत्यन्त प्रिय है।।४०।।

जिस प्रकार से रौप्य-रजत की प्रतिमा की स्थापा विधि बतलायी गई है, उसी प्रकार स्वर्ण-प्रतिमा की भी स्थापना करनी चाहिए। उसी विधान से ही मन्त्र द्वारा आवाहन और स्थापना आदि क्रिया करनी चाहिए।।४१।।

फिर काष्ठ, पत्थर, ताम्र, कांसा, रौप्य आदि की प्रतिमा स्थापित करने का जो फल होता है, उससे कोटि गुणितफल स्वर्ण प्रतिमा की स्थापना से प्राप्त होता है। इसमें कुछ भी संशय नहीं करना चाहिए।।४२।।

कुलानि तारयेत् सुभ्रु अयुतायेकविंशतिम्। यान्ति मल्लयतां भूमि पुनरावृत्तिवर्जिताः॥४३॥
एतत् ते कथितं भूमे यत्त्वया परिपृच्छितम्। रहस्यं विपुलश्रोणि किमन्यत् कथयामि ते॥४४॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१८४॥

पञ्चशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

अथ श्राद्धोत्पत्तिः

सूत उवाच

एवं नारायणाच्छ्रुत्वा सा मही संशितव्रता। कराभ्यामञ्जलिं कृत्वा माधवं पुनरब्रवीत्॥१॥

धरण्युवाच

श्रुतं मे महदाख्यानं क्षेत्रस्य महत्फलम्। एकं मे परमं गुह्यं तद्भवान् वक्तुमर्हसि॥२॥
पितृयज्ञस्त्वमावास्यां सोमदत्तेन वै कृतः। मृगयां समुपागम्य यत्त्वया पूर्वभाषितम्॥३॥

हे सुभ्रु! फिर ऐसे जन अपने कुल की इक्कीस हजार पीढ़ियों को भी तारने वाला होते हैं। हे भूमे! वे सब मुझ में लीन हो जाया करते हैं, उनका फिर पुनर्जन्म भी जो नहीं होता है।।४३।।

हे भूमे! तुम्हारे द्वारा पूछा गया प्रश्न का उत्तर मैंने तुमको बतला दिया है। हे विपुलश्रोणि! अब तुमको दूसरा कौन-सा रहस्य बतलाऊँ।।४४।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में विष्णु की रौप्य या स्वर्ण प्रतिमा स्थापना-पूजन विधान नामक एक सौ चौरासिवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१८४॥

अध्याय–१८५

श्राद्ध उत्पत्ति, निमिनारद सम्वाद, मरने काल में गोदान, मधुपर्क दान, शवदाह क्रिया विधान

श्री सूतजी ने कहा कि इस प्रकार नारायण के मुख से सुनकर तीव्रव्रत धारण करने वाली उस धरिणी ने अपने दोनों हाथ से अञ्जलिबद्ध होकर पुनः माधव से पूछा।।१।।

धरणी ने पूछा कि मैंने आपसे यह महान् आख्यान के रूप में क्षेत्र का महान् फल सुन लिया। आप मुझे एक परम गुह्य रहस्य बतलाने की कृपा करें।।२।।

आपके द्वारा पहले ही यह कहा गया है कि सोमदत्त ने आखेट के निमित्त जाने के पूर्व अमावस्या को पितृयज्ञ किया था।।३।।

किं गुणं पितृयज्ञस्य कथमेव प्रयुज्यते। केन चोत्पादितं श्राद्धं कस्मिन्नर्थे किमात्मकम्।
एवं मे सर्वमाख्याहि पतृकार्यविनिश्चयम्॥४॥

श्रीवराह उवाच

साधु भूमे महाभागे यन्मां त्वं परिपृच्छसि। मोहिताऽसि वरारोहे भाराक्रान्ता वसुंधरे॥५॥
दिव्यां ददामि ते बुद्धिं शृणु सुन्दरि तत्त्वतः। कथयिष्यामि ते हीदं तच्छ्राद्धोत्पत्तिनिश्चयम्॥६॥
आदौ स्वर्गस्य चोत्पत्तिं देवानां च वराङ्गने। निष्प्रभेऽस्मिन्निरालोके सर्वतस्तमसावृते।
स्रष्टुं वै बुद्धिरुत्पन्ना त्रैलोक्यं सचराचरम्॥७॥
सोऽहं च शेषपर्यङ्के एकश्चैव पराङ्मुखः। स्वापामि च वरारोहे अनन्तशयने ह्यहम्॥८॥
निद्रां मायामयीं कृत्वा जागर्मि च स्वपामि च। विष्णुमायामयं कृत्वा भूमि ह्येतन्न जानसि॥९॥
युगं युगसहस्राणि यास्यन्ति च गतानि च। न त्वं मम विजानासि ज्ञातुं मायां यशस्विनि॥१०॥
धारितं मम सुश्रोणि दिवा पञ्चाशतस्तथा। वाराहं रूपमादाय भूमि एवं न जानसि॥११॥
यन्मां पृच्छसि वै ज्ञातुं ममात्मा च यशस्विनि। एका मूर्त्तिस्त्रिधा कृत्वा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः॥१२॥

पितृयज्ञ का क्या गुण है? यह कैसे किया जाता है? इस श्राद्ध को किसने उत्पन्न किया? यह श्राद्ध करने का प्रयोजन क्या है, इसका स्वरूप किस प्रकार का है?।।४।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि हे महाभागे! तुम अत्यन्त धन्य हो, जो तुम्हारे द्वारा मुझसे यह पूछा गया है। हे सुन्दरि पृथ्वि! वैसे अभी तुम मोहित और भय से पीड़त हो। हे सुन्दरि! मैं तुम्हें दिव्य ज्ञान प्रदान करता हूँ। तुम उसे वास्तविक स्वरूप में सुनो।।५।।

मैं तुमको निश्चयात्मक श्राद्ध की उत्पत्ति के प्रसङ्ग को बतला रहा हूँ। हे सुन्दरि! इसके लिए प्रथम मैं तुम्हें स्वर्ग और देवताओं की उत्पत्ति का उल्लेख कर रहा हूँ।।६।।

एक समय स्रष्टा परमात्मा को प्रभा और आलोक मुक्त तथा सब जगह अन्धकार मय विश्वब्रह्माण्ड में चराचरात्क त्रैलोक्य का सृजन का योग्य विचार आया।।७।।

वैसे उस समय मैं सृष्टि कार्य से पराङ्मुख अद्वितीय वहीं मैं शेषनाग स्वरूप पर्यङ्क पर अवस्थित था। हे सुन्दरि! उस समय मैं उस अनन्त शेष शय्या पर शयन की मुद्रा में था।।८।।

वैसे मैं माया से युक्त निद्रा में सोय और जागा करता हूँ। इसी प्रकार से मैं विष्णु माया की स्थिति में रहा करता हूँ। हे वसुन्धरे! तुम ये सब नहीं जानती।।९।।

फिर इसी तरह हजारों युग आते और व्यतीत होते रहा करते हैं। हे यशस्विनि! वैसे भी तुम मेरी इस प्रकार की माया को नहीं ही जान सकती हो।।१०।।

हे सुश्रोणि! तुम तो यह भी नहीं जानती कि वराह स्वरूप धारणकर मैंने पच्चस दिनों तक इस ब्रह्माण्ड को धारण किये हुए था।।११।।

हे यशस्विनि! इस लिए मुझसे तुम यह जानने की जिज्ञासा कर रही हो। वैसे मेरे परमात्मस्वरूप अद्वितीय स्वरूप ने ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर नाम से तीन स्वरूप को धारण कर लिया।।१२।।

क्रोधस्तेजो मया सृष्ट ईश्वरः सुरभावनः। मम नाभ्यामभूत् पद्मं पद्मगर्भः पितामहः॥१३॥

एवं त्रयो वयं देवाः कृत्वा ह्येकार्णवां महीम्।
तिष्ठामि परया प्रीत्या मायां कृत्वा तु वैष्णवीम्॥१४॥

सर्वं तज्जलपूर्णं तु न प्रज्ञायत किञ्चन। वटमेकं वर्जयित्वा विष्णुमूलं यशोद्रुमम्॥१५॥

तिष्ठामि वटवृक्षेऽहं मायया बालरूपधृक्। पश्यामि च जगत् सर्वं त्रैलोक्यं यन्मया कृतम्।
धारयामि वरारोहे भूमि ह्येतन्न जानसि॥१६॥

कालेन तु तदादेवि कृत्वा वै वडवामुखम्। विनिःसृतं जलं तत्र मायया तदनन्तरम्॥१७॥

प्रलये विनिवृत्ते च ब्रह्मा लोकपितामहः। मुहूर्तं ध्यानमादाय भाषितो वचनं मया।
शीघ्रमुत्पादय ब्रह्मन् देवतासुरमानुषान्॥१८॥

एवमुक्तो मया देवि गृह्य तत्र कमण्डलुम्। उपस्पृश्य शुचिर्भूत्वा ब्रह्मा चोत्पादयन्मुखात्॥१९॥

आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ च मरुद्गणाः। तारणार्थं च सर्वेषां ब्राह्मणान् भुवि देवताः॥२०॥

बाहुभ्यां क्षत्रियोत्पन्ना वैश्या ऊरुविनिःसृताः।
पद्भ्यां विनिःसृताः शूद्रास्त्रयोवर्णोपचारकाः॥२१॥

इस समय मैंने ही क्रोधपूर्वक तेजवान् देवताओं के प्रिय रुद्र नाम के ईश्वर को प्रकट किया। उस समय मेरी नाभि से कमल उत्पन्न हुआ और उससे पद्मगर्भ पितामह ब्रह्मा उत्पन्न हो गये।।१३।।

इस तरह से अपनी वैष्णवी माया के बल से हम तीनों देव एक सागरस्वरूप भूमि पर परमप्रीति के साथ अवस्थित थे।।१४।।

प्रायः उस समय सब कुछ जलमय ही था। फिर कुछ भी ज्ञात नहीं था। एकमात्र यशस्वी विष्णुमूलक वटवृक्ष को छोड़कर उस काल में और कुछ भी तो न था।।१५।।

फिर उस समय मैं एक बालक स्वरूप में उस वटवृक्ष के मूल में अवस्थित हुआ था। उस समय मैंने जो त्रैलोक्य की उत्पत्ति की थी, उस सम्पूर्ण जगत् को मैं देख अवश्यं रहा था। हे सुन्दरि भूमे! अतः मैं सम्पूर्ण जगत् को धारण करता हूँ, तुम यह नहीं जानती।।१६।।

हे देवि! उस समय फिर यथाकाल बडवामुख की उत्पत्ति हुई। फिर माया द्वारा उससे जल उत्पन्न हो गया।।१७।।

फिर प्रलय का समय व्यतीत हो जाने पर मैंने एक मुहूर्त्त तक ध्यान कर लोक पितामह ब्रह्मा से यह वचन कहा कि हे ब्रह्मन् ! देवता, असुर और मनुष्यों को आप शीघ्र उत्पन्न की जिए।।१८।।

हे देवि! मेरे द्वारा इस प्रका से कहे जाने पर ब्रह्माजी ने अपने कमण्डलु लेकर आचमन किया और इस प्रकार पवित्र होकर मुख से सृष्टि करने का उपक्रम प्रारम्भ कर दिया।।१९।।

फिर उन्होंने आदित्यों, वसुगणों, रुद्रगणों, दोनों अश्विनी कुमारों, मरुद् गणों और फिर सबको तारने हेतु पृथ्वी को देवस्वरूप ब्राह्मणों को उत्पन्न किया।।२०।।

फिर उनके बाहुओं से क्षत्रिय, ऊरु से वैश्य और दोनों पैरों से उपरोक्त तीनों वर्णों की सेवा करने वाले शूद्र को उत्पन्न किया।।२१।।

देवतादिपरा देवि जाता ब्राह्मणास्तथा। जनिता ब्रह्मपौत्रेण कश्यपेन महात्मना।
देवता ह्यसुराः सर्वे तपोवीर्यबलान्विताः॥२२॥
आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ च मरुद्गणाः। देवतास्तु त्रयस्त्रिंशददित्या जनयत्सुरान्॥२३॥
दित्यां तु जनिताः पुत्रा असुराः सुरशत्रवः। प्रजापतिस्त्वजनयदृषयश्च तपोधनाः॥२४॥
तेजसा भास्कराकाराः सर्वशास्त्रविदो द्विजाः। तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च जनिता ब्रह्मसूनुना॥२५॥
मनोस्तु वंशसंभूत आत्रेय इति विश्रुतः। आत्रयेस्यात्मजो विप्रो निमिर्नाम तपोधनः॥२६॥
निमिपुत्रश्च धर्मात्मा त्रिषु लोकेषु विश्रुतः। जातमात्रो महात्मा स श्रीमांश्च श्रियोनिधिः॥२७॥
एकचित्तं समाधाय तपस्तप्यति निश्चितः। पञ्चाग्निर्वायुभक्षश्च एकपादोर्द्ध्वबाहुकः॥२८॥
शीर्णपत्राम्बुभक्षश्च शिशिरे च जलाशयः। सकृच्छैवालभक्षश्च पुनश्चान्द्रायणं चरेत्॥२९॥
वर्षाणां च सहस्राणि तपस्तप्त्वा वसुंधरे। मृत्युकालमनुप्राप्तस्ततः पञ्चत्वमागतः॥३०॥
नष्टं च श्रीमतं दृष्ट्वा निमेः शोकमुवाविशत्। पुत्र शोकाभिसंतप्तो दिवा रात्रौ तु चिन्तयन्॥३१॥
निमिः कृत्वा तु शौचं च विधिना तत्र माधवि। तमेव गतसंकल्पस्त्रिरात्रे संप्रपद्यत॥३२॥

हे देवि! देवगण और ब्राह्मण उनमें श्रेष्ठ ज्ञानी हैं। फिर ब्रह्मा के पौत्र महात्मा कश्यप ने इन्हें उत्पन्न किया। सभी देवगण और असुर तप, वीर्य और बल से सम्पन्न हैं।।२२।।

कश्यप ने आदित्यों, वसुओं, रुद्रों, दोनों अश्विनी कुमारों, मरुद्गणों के स्वरूप में तैंतीस देवों को अदिति से उत्पन्न किया।।२३।।

प्रजापति ने दिति से देवों के शत्रु असुर स्वरूप पुत्रों को उत्पन्न किया। उन्होंने ही तपोधन ऋषियों को भी उत्पन्न किया।।२४।।

ब्रह्मा के पुत्र कश्यप ने सूर्य के समान तेजवान् , सर्वशास्त्रज्ञ द्विजों और उनके पुत्र,पौत्रों आदि को भी उत्पन्न किया।।२५।।

फिर मनुवंश में उत्पन्न आत्रेय सर्व प्रसिद्ध ही हैं। आत्रेय का पुत्र निमि नाम का तपोधन ब्राह्मण हुआ।।२६।।

उस निमि का धर्मात्म पुत्र तीनों लोकों में श्रीमान् नाम से प्रसिद्ध हुआ। वह महात्मा जन्मकाल से ही ऐश्वर्य सम्पन्न था।।२७।।

फिर उसने अपने मन को एक विष्ठ का निश्चयात्मक होकर कठिन तप किया। उसने तो वायु भक्षण कर एक बाहु ऊपर और एक पैर ऊपर उठाये हुए पञ्चाग्नि सेवन किया।।२८।।

वृक्षों से गिरे हुए पत्तों एवं जल का भक्षण करते हुए वह शिशिर ऋतु में जलाशय में शयन किया करता था। एक बार शैवाल भक्षण कर पुनः वह चान्द्रायण व्रत करता था।।२९।।

हे वसुन्धरे! हजारों वर्षों तक तप करके फिर मृत्युकाल आ जाने पर वह पञ्चतत्त्व में लीन हो गया।।३०।।

इस प्रकार अपने श्रीमान् पुत्र को नष्ट हुआ देखकर निमि को शोक हुआ। वे भी पुत्र के शोक से संतप्त होकर दिन रात चिन्तामग्न रहने लगे।।३१।।

हे माधवि! एक बार सविधि शौच क्रिया सम्पन्न कर निमि ने वहाँ उसके ही निमित्त त्रिरात्र व्रत का संकल्प कर लिया।।३२।।

तस्य प्रतिविशुद्धस्य माघमासे तु द्वादशीम्। मनःसंसृत्य विषयं बद्धिर्विस्तारगामिनी॥३३॥
स निमिश्चिन्तयामास श्राद्धकल्पं समाहितः।
यानि तस्यैव भोज्यानि मूलानि च फलानि च॥३४॥
यानि कानि च भक्ष्याणि नवश्च रससंभवः। यानि तस्यैव चेष्टानि सर्वमेतदुदाहरेत्॥३५॥
आमन्त्र्य ब्राह्मणं पूर्वं शुचिर्भूत्वा समाहितः। दक्षिणावृत्त तत्सर्वमृषिः स्वयमकुर्वत।
सप्त कृत्वा ततस्तत्र युगपत्समुपाविशत्॥३६॥
दत्त्वा तु मांसशाकानि मूलानि च फलानि च। पूजयित्वा तु विप्रान् स सप्तकृत्वेन सुन्दरि॥३७॥
कृत्वा तु दक्षिणाग्राणि दर्भाणि प्रयतः शुचिः। प्रददौ श्रीमते पिण्डं नामगोत्रमुदाहरन्।
तत् कृत्वा स मुनिश्रेष्ठो धर्मसंकल्पमात्मनः॥३८॥
एवं दिने गते भद्रे अस्तं प्राप्ते दिवाकरे। ब्रह्मकर्मोत्तमं दिव्यं भावसाध्यमुपासते॥३९॥
एकाकी यतचित्ताम निराशीरपरिक्रहः। शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैाजिनकुशोत्तरम्॥४०॥
तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तो जितेन्द्रियः। उपविश्यासनेऽयुञ्जद् योगमात्मविशुद्धये॥४१॥

फिर माघमास की द्वादशी तिथि के दिन पूर्णतया विशुद्ध उसके मन में श्राद्ध का यह विषय उत्पन्न हुआ। इस विषय में उसकी बुद्धि और विस्तारित होती गई।।३३।।

उस निमि ने एकाग्र मन से श्राद्ध कल्प का चिन्तन किया। उसके जो भोज्य पदार्थ, मूल, फल, आदि थे, उनका विचार किया।।३४।।

फिर उन्होंने उनके ही निमित्त अनेक प्रकार के खाद्यपदाथ, नौ प्रकार के पेय पदार्थ और उसके प्रिय पदार्थों को इकट्ठा किया।।३५।।

पवित्र होकर एकाग्रमन से पहले उसने ब्राह्मणों को निमन्त्रित किया। फिर दक्षिणाभिमुख होकर उस ऋषि ने वह सभी कार्य स्वयं ही सम्पन्न किया। फिनर उसके निमित्त सात बार इस प्रकार से करने के बाद निमि ब्राह्मणों के साथ बैठ गये।।३६।।

हे सुन्दरि उसने मासं, शाक, मूल, फल आदि प्रदान कर सात ही बार ब्राह्मणों का भी पूजन किया।।३७।।

फिर उसने पवित्रता के साथ संयमित रहकर दक्षिण की ओर कुशों का अग्रभाग स्थापित किया और उसका नाम और गोत्र का उच्चारण करते हुए श्रीमान् नाम के पुत्र को पिण्ड दान किया।।३८।।

फिर वह कार्य सम्पन्न कर उस मुनि श्रेष्ठ ने अपने धर्म का संकल्प किया। हे भद्रे! इस तहर दिन के अन्त होने पर सूर्यास्त काल में अपनी भावना द्वारा सिद्ध होने वाला दिव्य और उत्तम ब्रह्मकर्म स्वरूप सन्ध्या की उपासना की।।३९।।

उसने पवित्र स्थान पर न अधिक ऊँचा और न अधिक नीचा उत्तरोत्तर वस्त्र, मृगचर्म और कुश से सम्प ट्ठपना आसन प्रतिष्ठित किया।।४०।।

फिर जितेन्द्रिय संयमित चित्त और मन को एकाग्र कर उस आसन पर स्थित होकर अपने आत्मा की शुद्धि हेतु योग साधन करने लगे।।४१।।

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थितः। संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्॥४२॥
प्रकाशात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः। मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत् मत्परः।
प्रयुञ्जत सदात्मानं मद्भक्तो नान्यमानसः॥४३॥
एवं संध्यादिनिर्वृत्ते ततो रात्रिमुपागते। पुनश्चिन्तितुमारब्धः शोकसंविग्नमानसः।
कृत्वा तु पिण्डसंकल्पं पश्चात्तापमकुर्वत॥४४॥
कृतं तु मुनिभिः सर्वं किं मया तदनुष्ठितम्। निर्वापकर्म ह्यशुचिः पुत्रार्थे नविनियोजितः॥४५॥
अहो स्नेहप्रभावेन मया चाकृतबुद्धिना। कथं ते मुनयः शापात् प्रदहेयुर्न मामिति॥४६॥
सदेवासुरगन्धर्वाः पिशाचोरगराक्षसाः। किं वक्ष्यन्ति च मां सर्वे ये वै पितामहे पदे॥४७॥
एवं विचिन्त्यमानस्य गता रात्रिर्वसुंधरे। पूर्वसंध्याविनिर्वृत्ते प्रभातायां तु शर्वरीम्॥४८॥
हुत्वाऽग्निं विधिवद् विप्रो ह्युदिते च दिवाकरे। पुनश्चिन्तितुमारब्ध आत्रेयात्मसुदःखितः।
एकाकी भाषते तत्र शोकपीडितमानसः॥४९॥
धिक् तपो विक्रमः कर्म धिक् बलं धिक् जीवितम्।
पुत्रं सर्वसुखैर्युक्तं तं न पश्यामि जीवितम्॥५०॥

इस प्रकार शिर, ग्रीवा और रात्रि को एक सीध में अचलावस्था में धारण किये हुए बैठे और विभिन्न दिशाओं में दृष्टिपात न करते हुए अपनी नासिका के अग्रभाग पर एकटक दृष्टि डाले।।४२।।

ब्रह्मचर्य का व्रत पालन किये हुए ज्ञान प्रकाश स्वरूप निर्भय तम्परायण मनुष्य मन को नियन्त्रित कर मुझ में चित्त लगाये हुए बैठे। मेरा भक्त अन्यत्र मन न लगाये। वह सदा स्वयं को योग युक्त करने का ही प्रयत्न करे।।४३।।

इस प्रकार सन्ध्या आदि कृत्य का सम्पन्न करने पर रात्रि के समय शोकयुक्त मन से पुनः चिन्तातुर हो चले। पिण्डदान करने का संकल्प करने के बाद उसने इस प्रकार पश्चात्ताप किया।।४४।।

उस समय तो मुनियों ने ही सभी कुछ किया। मैंने उसमें क्या किया? अपवित्र अवस्था में ही मैंने पुत्र के लिए पिण्डदान कृत्य सम्पन्न किया।।४५।।

अहो! इस प्रकार अपरिष्कृत्य बुद्धि वाले मैंने स्नेह के वशीभूत ही इस प्रकार का अनुचित कृत्य किया। उस समय उन मुनियों ने शाप से हमें क्यों नहीं जला दिया।।४६।।

देवता, असुर, गन्धर्व, पिशाच, सर्प, राक्षस, और जो जन पितामह के लोक में होंगे, वे सभी मुझे क्या कहते होंगे।।४७।।

हे वसुन्धरे! इस प्रकार उसके चिन्तातुर अवस्था में ही रात्रि बीत गई। फिर रात्रि बाद पूर्व सन्ध्या के समापन पर प्रातः काल भी हो गया।।४८।।

सूर्योदय के बाद ब्राह्मण ने विधिपूर्वक अग्नि में हवन किया। इस प्रकार फिर आत्रेय पुत्र के निमित्त अत्यन्त दुःखित होकर पुनः चिन्ता करने लगा। शोक से पीड़ित चित्त वाला वह ब्राह्मण वहाँ अकेले ही बोलने लगा।।४९।।

तप को धिक्कार है, विक्रम और कर्म को भी धिक्कार है तथा तबल और जीवन को भी धिक्कार है, पुत्र सभी सुखों से युक्त होता है। प्राण स्वरूप उस पुत्र को मैं नहीं देख पा रहा हूँ।।५०।।

नरकं पूतिकाख्यं तं हृदि दुःखं विदुर्बुधाः। परित्राणं ततः पुत्रादिच्छन्तीह परत्र च॥५१॥
पूजयित्वा तु देवांश्च दत्त्वा दानमशेषतः। हुत्वाऽग्निं विधिवद्ध्येतत् तच्च स्वर्गतिं लभेत्॥५२॥
पुत्रेण लभते येन पौत्रेणच पितामहः। अथ पुत्रस्य पौत्रेण मोदन्ते प्रपितामहाः।
पुत्रेण श्रीमता हीनं नाहं जीवितुमुत्सहे॥५३॥
एतस्मिन्नन्तरे देवि नारदो द्विजसत्तमः। जगाम तापसारण्यमृषाश्रमविभूषितम्।
सर्वकामयुतं रम्यं बहुपुष्पफलोदकम्॥५४॥
तं प्रविश्याश्रमपदं भ्राजमानं स्वतेजसा। तं दृष्ट्वा स्वागतेनाथ पूजयामास धर्मवित्॥५५॥
अर्घ्यं पाद्यं तस्य दत्वा आसने चोपवेश्य च। उपविश्यासने देवि नारदो वाक्यमब्रवीत्॥५६॥

नारद उवाच

निमे श्रृणु महाप्राज्ञ शोकमुत्सृज्य दूरतः। अशोच्यमनुशोचस्त्वं प्रज्ञावान्नावबुध्यसे।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः॥५७॥
मृतं वा यदि वा नष्टं योऽतीतमनुशोचति। अमित्रास्तस्य हृष्यन्ति तथापि न निवर्त्तते॥५८॥
अमरत्वं न पश्यामि त्रैलोक्ये सचराचरे। देवतासुरगन्धर्वा मानुषा मृगपक्षिणः।
सर्वे कालवशं यान्ति सर्वं कालमुदिष्यते॥५९॥

विद्वज्जन यह जानते हैं कि उस पुत्रहीन के हृदय में पूतिका नाम के नरक की प्राप्ति का दुःख है। अतएव सब जन इस लोक और परलोक में परित्राण हेतु पुत्र की कामना किया करते हैं।।५१।।

फिर देवताओं की पूजा कर,समस्त दान औश्र सविधि अग्नि में हवन कर मनुष्य स्वर्ग जाने की योग्यता प्राप्त करते हैं।।५२।।

जिस पौत्र और पुत्र के पितामह पिण्ड प्राप्त करते हैं तथा जिस पुत्र के पौत्र से पिण्ड प्राप्त कर प्रपितामह आनन्द करते हैं, उसी पुत्र श्रीमान् से हीन हो जाने से मुझे जीने की कोई जिज्ञासा नहीं रह गया है।।५३।।

हे देवि! इसी बीच द्विजश्रेष्ठ नारद ऋषियों के आश्रम से विभूषित, सब अभीष्ट पदार्थों से युक्त रमणीय और अनेक पुष्पों व फलों से सम्पन्न ताप सारण्य में आ गये।।५४।।

उस आश्र में प्रवेश कर अपने तेज से प्रकाशमान् उन नारद ऋषि को देखकर धर्मज्ञ निमि ने स्वागत द्वारा उनका पूजन सत्कार किया।।५५।।

हे देवि! अर्घ्य और पाद्य प्रदान कर उनको आसन बैठने हेतु प्रदान कर और स्वयं भी आसन पर स्थित हो गये। फिर नारद ने कहा—।।५६।।

नारद ने कहा कि हे महाबुद्धिमान् निमि! तुम सुनो। अपना शोक को त्याग दो। तुम तो अमोचनीय विषय में चिन्ता कर रहे हो। वैसे तुम बुद्धिमान् हो। किन्तु तम यथार्थ तत्त्व को नहीं जानते। पण्डितजन मरने और जीने वालों की चिन्ता नहीं किया करते हैं।।५७।।

जो जन मरे हुये या नष्ट हुए या वित हुए की चिन्ता करते हैं, उनके शत्रु प्रसन्न होते हैं कि वे मृतक आदि जन वापस तो नहीं ही होते हैं।।५८।।

इस चराचरात्मक त्रैलोक्य में मैं कहीं भी अमरत्व नहीं देख करते हैं। देवता, असुर, गन्धर्व, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि सभी काल के वश ही हुआ करते हैं। वे सभी सदा काल से आक्रान्त ही रहा करते हैं।।५९।।

जातस्य सर्वभूतस्य कालमृत्युरुपस्थितः। अवश्यं चैव गन्तव्यं कृतान्तविहितः पथः॥६०॥
तव पुत्रो महात्मा वै श्रीमान्नाम श्रियो निधिः। पूर्णे वर्षसहस्रान्ते तपः कृत्वा सुदुश्चरम्॥६१॥
मृत्युकालमनुप्राप्य गतो दिव्यां परां गतिम्। एतत् सर्वत्त विदित्व तु नानुशोचितुमर्हसि॥६२॥
विधातृविहितं मार्गं गन्तव्यं कालपर्ययात्। कर्मप्रत्ययसर्वेषु नानुशोचितुमर्हसि॥६३॥
नारदेनैवमुक्ते तु श्रुत्वा स द्विजसत्तमः। प्रणम्य शिरसा पादौ निमिरुद्विग्नमानसः॥६४॥
भीतो गद्गदया वाचा निःश्वसंश्च मुहुर्मुहुः। सव्रीडो भाषते विप्रः कारुण्येन परिप्लुतः॥६५॥
अहो मुनिवरश्रेष्ठ अहो धर्मविदांवर। सान्त्वितोऽस्मि त्वया विप्र वचनैर्मधुराक्षरैः॥६६॥
प्रणयात् सौहृदात् स्नेहादहं वक्ष्यामि तच्छृणु। शोकस्यातिचरं चित्तं ममैव हृदि वर्त्तते॥६७॥

कृतस्नेहः सुतस्यार्थे मया संकल्प्य यत्कृतम्।
तर्पयित्वा द्विजान् सप्त अन्नाद्येन फलेन च॥६८॥

पश्चाद् विसर्जितं पिण्डं दर्भास्तीर्य च भूतले। उदकानयनं चैव ह्यपसव्येन वापितम्॥६९॥
शोकस्नेहप्रभावेन एतत् कर्म मया कृतम्। अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्त्तिकरमेव च॥७०॥

समस्त जन्म लिये हुए प्राणियों की उचित काल पर मृत्यु हुआ करती है। यम द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर अवश्य ही जाना पड़ता है।।६०।।

आपका श्रीमान् नाम का महात्मा पुत्र ऐश्वर्य सम्पन्न था। कठोर व्रत और तप करते हुए हजार वर्ष पूर्ण होने पर वह मरकर दिव्य गति को प्राप्त हो गया। ये सब जानकर तो अव तुम्हें शोक नहीं ही करना चाहिए।।६१-६२।।

फिर कालचक्र के अनुसार विधाता द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर चलना पड़ता है। कर्म के कारण होने वाले समस्त विषयों में तुम्हें शोक नहीं करना चाहिए।।६३।।

इस प्रकार नारद के कहे वचनों को सुनकर उस उद्विग्न मन वाले द्विजश्रेष्ठ निमि ने नारद के चरणों में शिर से प्रणाम किया।।६४।।

फिर करुणा से युक्त और वारम्वार निःश्वास लेते हुए भययुक्त लज्जित ब्राह्मण ने गद्गद कण्ठ से कहा।।६५।।

हे धर्मज्ञों में श्रेष्ठ एवं मुनियों में अग्रगण्य ब्रह्मर्षि नारद! आपने मुझे अपने मधुर वाणी से सान्त्वना प्रदान किया।।६६।।

फिर भी मैं सविनय,सहृदयता और सप्रेम जो कहने जा रहा हूँ, उसे आप सुनें। मेरे हृदय में शोक के कारण अत्यन्त व्यग्र चिन्ता विद्यमान है।।६७।।

मैंने स्नेहवश पुत्र हेतु संकल्प करके जो कुछ किया, उसे आप सुने। मैंने अन्नादि एवं फल द्वारा सात ब्राह्मणों को तृप्त किया।।६८।।

फिर पृथ्वी पर कुशा बिछाकर एवं अपसव्य होकर मैंन पिण्डदान किया और जल अर्पित किया।।६९।।

फिर शोक और स्नेह के प्रभाववश मैंने अनार्यों द्वारा सेवित, स्वर्ग से वञ्चित करने वाला और अपकीर्त्ति देने वाला यह कर्म किया है।।७०।।

नष्टबुद्धिः स्मृतः सत्त्वो ह्यज्ञानेन विमोहितः। न च श्रुतं मया पूर्वं न देवैर्ऋषिभिः कृतम्।
भयं तीव्रं प्रपश्यामि मुनिशापात् सुदारुणम्॥७१॥

नारद उवाच

न भेतव्यं द्विजश्रेठ पितरं शरणं व्रज। अधर्मं न च पश्यामि धर्मं नैवत्र संशयः॥७२॥
नारदेनैवमुक्तस्तु निमिर्ध्यानमुपाविशत्। पूजया मनसा चैव पितरं शरणं गतः॥७३॥
ततोऽतिचिन्तयामास वंशकर्त्तारमात्मनः। ध्यातमात्रस्ततो दानुमाजगाम तपोधनम्॥७४॥
पुत्रशोकेन संतप्तं पुत्रं दृष्ट्वा तपोधनम्। पुत्रमाश्वासयामास वाग्भिरिष्टाभिरव्यैः॥७५॥
निमे संकल्पितस्तेऽयं पितृयज्ञस्तपोधन। पित्रेति पूर्वनिर्दिष्टा धर्मोऽयं ब्रह्मणा स्वयम्।
ततो ह्यतितरं धर्मं क्रतुमेकं प्रतिष्ठितम्॥७६॥
कृते स्वयंभुवः पूर्वं श्राद्धीयं व्याहरद्विधम्। नारदस्तु मुनिश्रेष्ठो ह्यस्याग्रे तां ब्रवीम्यहम्॥७७॥
स्त्रष्टारं सर्वभूतानां नमस्कृत्य स्वयंभुवम्। श्राद्धकर्मविधिं चैव प्रेतकर्म च या क्रिया॥७८॥
शृणु सुन्दरि तत्त्वेन यथा दाता स पुत्रकः। मम चैव प्रसादेन तस्य बुद्धिं ददाम्यहम्॥७९॥

मेरी बुद्धि, स्मृति और मन नष्ट-सा हो गया है। मैं अज्ञान से विमोहित हूँ। मैंने पहले ऐसा नहीं सुना था। देवों और ऋषियों ने भी पहले ऐसा कभी नहीं किया। मुनि के कठोर शाप से होने वाला तीव्र भय मुझे दिखलायी पड़ रहा है।।७१।।

नारद ने कहा कि हे द्विजश्रेष्ठ! डरो मत, पितरों के शरण में जाओ। इसमें अधर्म नहीं है। मैं इसमें धर्म ही देख रहा हूँ। इसमें संशय नहीं है।।७२।।

फिर नारद के इस प्रकार कहे जाने पर ब्राह्मण निमि ध्यानमग्न होकर आदरपूर्वक मन से पितरों की शरण में गया।।७३।।

फिर वह अपने वंश को प्रवर्जित करने वाले पुरुष का चिन्तन करने लगा। ध्यान करते ही नाभक उसके वंश का मूल पुरुष उस दाता तपोधन ब्राह्मण के समीप आ पहुँचा।।७४।।

उस पितर ने तपोधन पुत्र को पुत्र के शोक से दुःखित देखकर उसे शाश्वत प्रिय वचनों द्वारा आश्वासन प्रदान किया।।७५।।

हे तपोधन निमि! तुम्हारा संकल्पित यह कर्म पितृयज्ञ है। स्वयं ब्रह्मा ने पुरातन काल में इस पितृधर्म का निर्देश किया था।।७६।।

फिर अतिश्रेष्ठ धर्म स्वरूप यह यज्ञ प्रतिष्ठित हो गया। पहले कृतयुग में ब्रह्मा ने इस श्राद्ध की विधि का उल्लेख किया था। फिर मुनि श्रेष्ठ नारद ने यह विधि मुझे भी बतलायी, अब यह विधि मैं तुम्हें बतलाता हूँ।।७७।।

इस समय समस्त प्राणियों को सृजित करने वाले ब्रह्मा जी को प्रणाम कर श्राद्धकर्म की विधि तथा प्रेतकर्म सम्बन्धी क्रिया का वर्णन किया जा रहा है।।७८।।

हे सुन्दरि! उस दाता पुत्र ने जैसे समस्त कार्य किया, उसे वास्तविक रूप से सुनो। मैं अपने अनुग्रह से उसका ज्ञान प्रदान करता हूँ।।७९।।

जातस्य सर्वभूतस्य कालमृत्युरपस्थितः। अवश्यमेव गन्तव्यं धर्मराजस्य शासनम्॥८०॥
अमरत्वं न पश्यामि पिपीलादीनि जन्तवः। जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
मोक्षं पुण्यविशेषेण प्रायश्चित्तेन च ध्रुवम्॥८१॥
सत्त्वं रजस्तमश्चैव त्रयः शारीरजाः स्मृताः। अल्पायुषो नराः पश्चाद् भविष्यन्ति युगक्षये॥८२॥
सात्त्विकं नावबुद्ध्यन्ति कर्मदोषेण तामसम्। तामसं नरकं विद्यात् तिर्यग्योनिं च राक्षसीम्॥८३॥
सात्त्विकं मुक्तियानेन यान्ति वेदविदो जनाः। धर्मज्ञानं च वैराग्यमैश्वर्यमिति सात्त्विकम्॥८४॥
क्रूरो भीरुर्विषादी च हिंसको ह्यनपत्रपः। अज्ञानत्वं च पैशाची एतेषां तामसा गुणाः॥८५॥
तामसं तं विजानीयाद् बुध्यमानो न बुध्यते। दुर्मदाश्रद्दधानाश्च विज्ञेयास्तामसा नराः॥८६॥
प्रबलो वाचि दक्षश्च काले बुद्धिस्सदा यतः। शूरः सर्वेषु व्यक्तात्म विज्ञेया राजसा नराः॥८७॥
क्षान्तो दान्तो विशुद्धात्मा मेधावी श्रद्छधानवान्।
तपस्वी ध्यानशीलश्च एतेषां सात्त्विका गुणाः॥८८॥
एवं संचिन्त्यमानस्तु न शोकं कर्त्तुमर्हसि। त्यज शोकं महाभाग शोकः सर्वविनाशनः।
शोको दहति गात्राणि बुद्धिः शोकेन नश्यति॥८९॥

यह जानना चाहिए कि समस्त उत्पन्न हुए जीवों की मृत्यु यथा समय अवश्य हुआ करती है। धर्मराज के अधिकार में अवश्य ही जाना पड़ता है।।८०।।

फिर उत्पन्न हुए की मृत्यु सुनिश्चित है और मृतक का जन्म होना भी तो सुनिश्चित है। विशेष पुण्य और प्रायश्चित से निश्चय ही मोक्ष मिता है।।८१।।

सत्त्व, रज और तम ये तीनों शरीर में उत्पन्न होने वाले माने जाते हैं। फिर बाद में युग का क्षय होने पर मनुष्य अल्पायु भी होंगे।।८२।।

कर्म केदोष से जीव तमोगुण प्रभाव को नहीं जानते हैं। तमोगुण के प्रभाव से नरक, पशुपक्षी और रक्ष-योनि प्राप्त हुआ करती है।।८३।।

वेद को जानने वाल सात्त्विक लोक मुक्ति मार्ग के अनुगामी हुआ करते हैं। धर्मज्ञान, वैराग्य,ऐश्वर्य आदि सात्त्विक ही हुआ करते हैं।।८४।।

क्रूर, भीरु, विषादी, हिंसक, आसुरी और पिशाची प्रकृति के प्राणी निश्चय ही तमोगुणी हुआ करते हैं।।८५।।

जो प्राणी समझाने पर भी काई बात न समझे, उसे तमोगुणी जानना चाहिए। अत्यन्त घमण्डी और श्रद्धाहीन मनुष्यों को तमोगुणी जानना चाहिए।।८६।।

प्रबल, बोलने में चतुर, समयानुकूल बुद्धि का सदा उपयोग करने वाला, शूर एवं सभी के प्रति स्वच्छ हृदय रखने वाले मनुष्यों को रजोगुणी जानना चाहिए।।८७।।

क्षमावान् , इन्द्रियनिग्रही, विशुद्धात्मा, मेधावी, श्रद्धावान् , तपस्वी और ध्यान शील होना आदि सभी सात्त्विक पुरुषों के गुण कहे गये हैं।।८८।।

इस प्रकार से विचार करते हुए आपको शोक करना छोड़ देना चाहिए। हे महाभाग! शोक छोड़ दो। शोक तो सब कुछ नष्ट करने वाला होता है। शोक शरीर को जलाता है। शोक से बुद्धि नष्ट होती है।।८९।।

लज्जा धृतिश्च धर्मश्च श्रीः कीर्त्तिश्च स्मृर्तिनयः। नश्यन्ते सर्वधर्माश्च शोकेनापहृते नरे॥९०॥
नैवं शङ्के यथा शोको वर्द्धते स्नेहसंहितः। मूढः स्नेहप्रभावेण कृत्वा हिंसानृते तथा।
पच्यते नरके घोरे ह्यात्मदोषैर्वसुंधरे॥९१॥
स्नेहं सर्वेषु संयम्य बुद्धिं धर्मे नियोजयेत्। धर्मं लोकहितार्थाय शृणु सत्यं ब्रवीम्यहम्॥९२॥
चातुर्वर्णस्य वक्ष्यामि यच्च स्वायंभुवोऽब्रवीत्। नेमिप्रभृति चाशौचं श्राद्धं येन प्रवर्त्तितं॥९३॥
कण्ठस्थानगते जीवे भीतिविभ्रान्तमानसे। ज्ञात्वा च विह्वलं तत्र शीघ्रं निष्क्रामयेद् गृहात्॥९४॥
कुशास्तरणशायी च दिशः सर्वाणि पश्यति।
लब्धस्मृतिर्मुहूर्तात् तु यावज्जीवो न नश्यनितनन॥९५॥
नवाचयेत् स्नेहभावेन भूमि देवा द्विजातयः। सुवर्णं च हिरण्यं च यथायत्ने माधवि।
परलोकहितार्थाय गोप्रदानं विशिष्यते॥९६॥
सर्वदेवमया गाव ईश्वरेणावतारिताः। अमृतं क्षरयन्त्यश्च प्रचरन्ति महीतले।
एतेषां जीवदानेन शीघ्रं मुच्येत किल्बिषं॥९७॥
पश्चाच्छुतिपथं दिव्यमुत्कर्णेन च श्रावयेत्। यावत्प्राणान् प्रमुच्येत कृत्वा कर्म सुदुष्करम्॥९८॥

फिर मनुष्य के शोकग्रस्त होने पर लज्जा, धैर्य्य, धर्म, श्री, कीर्त्ति, स्मृति, नीति, और सब धर्म नष्ट हो जाते हैं।।९०।।

इसमें भी संश्या नहीं कि स्नेह के साथ ही शोक बढ़ता है। हे वसुन्धरे! मूढ़ पुरुष स्नेह के प्रभाववश अपने दोष से हिंसा और असत्य का आचरण कर घोर नरक में जाता है।।९१।।

अतएव सब के प्रति स्नेह को नियन्त्रित कर बुद्धि को धर्म में लगाना चाहिए। सुनो! मैं तो यह सत्य ही कहता हूँ कि धर्मलोक का कल्याण करने वाला होता है।।९२।।

इस प्रकार नेमि से प्रारम्भ किए गए अशौच और श्राद्ध को जिसने प्रवर्तित किया है, उन ब्रह्मा ने चारों वर्णों के लिए जो विधि कहा है, उसे मैं बतलाता हूँ।।९३।।

उस समय जब मनुष्य का प्राण कण्ठगत होने को हो और उसके हृदय के भययुक्त रहने की स्थिति में जीव को विह्वल हुआ जानकर निश्चय ही शीघ्र घर बाहर निकाल देना चाहिए।।९४।।

फिर उसे कुश की चटाई पर इस तरह लिटाना चाहिए कि जिससे वह सब दिशाओं में देख सकता हो। जब तक जीवन का अन्त न हो जाय, उस समय तक उसकी स्मृति रहते ब्राह्मण और द्विजाति जन का उससे स्नेहपूर्वक वार्ता करते रहना चाहिए। हे माधवि! ऐसे अवसर पर प्रयत्न करके यथासम्भव परलोक में कल्याण हेतु स्वर्ण, रजत, गाय आदि का दान करना निश्चय ही विशेष फलप्रदायक होता है।।९५-९६।।

चूँकि ईश्वर ने सर्वदेवमयी गोओं को अवतरित किया है। ये गौऐं अमृत की वृष्टि किया करती है और पृथ्वी पर विचरती रहती है। इनका दान करने पर जीव शीघ्र ही पापों से रहित हो जाता है।।९७।।

अत्यन्त दुष्कर कर्म करने वाले मरने के योग्य प्राणी का प्राण जब तक नहीं निकलता, तब तक उस प्राणी के कान में उच्च स्वर से दिव्य मन्त्रों जैसे गायत्री अथवा ॐकार मन्त्र को बोलना चाहिए।।९८।।

दृष्ट्वा सुविह्वलं ह्येनं मम मार्गानुसारिणम्। प्रयाणकाले तु नरो मन्त्रेण विधिपूर्वकम्॥९९॥
मद्भक्तेनैव कर्त्तव्यं सर्वसंसारमोक्षणम्। मधुपर्कं त्वरन् गृह्य इमं मन्त्रमुदाहरेत्॥१००॥

मन्त्रः-

ॐ गृहाण चेमं मधुपर्कमाद्यं संसारनाशनकरं त्वमृतेन तुल्यम्।
नारायणेन रचितं भगवत्प्रियाणां दाहे च शन्तिकरणं सुरलोकपूज्यम्॥१०१॥
तत एतेन मन्त्रेण मधुपर्कोत्तमं ददौ। पुरुषो मृत्युकाले तु दद्यात् संसारमोक्षणम्॥१०२॥
एवं विनिसृतः प्राणः संसारं च न गच्छति। नष्टसंज्ञ समुद्दिश्य ज्ञात्वा मृत्युवशं गतम्।
संज्ञावनस्पतिं गत्वा गन्धानि विविधानि च॥१०३॥
घृततैलसमायुक्तं कृत्वा वै देहशोधनम्। तेजोऽव्ययकरं चास्य तत्सर्वं परिकल्प्य च॥१०४॥
दक्षिणायां शिरः कृत्वा सलिले तं निधाप्य च। तीर्थान्यावाहनं कृत्वा स्नापनं तत्र कारयेत्॥१०५॥
गयाद्यादीनि तीर्थानि ये च पुण्याः शिलोच्चयाः। कुरुक्षेत्रं च गङ्गा च यमुना च सरिद्वरा॥१०६॥
कौशिकी च पयोष्णी च सर्वपापप्रणाशिनी। भद्रा च नाम गण्डक्या सरयूर्बलदा तथा॥१०७॥
वनानि पञ्च वाराहं तीर्थं पिण्डारकं तथा। पृथिव्यां यानि तीर्थानि चत्वारः सागरास्तथा।
सर्वाणि मनसा सर्वं कृत्वा स्नानं गतायुषाम्।१०८॥

इस प्रकार मेरे मार्ग का अनुयायी जन को प्रयाण काल में अत्यन्त विह्वल हुआ देखकर मनुष्य को सविधि मन्त्र द्वारा उसके अन्तिम समय का कार्य सम्पन्न कर देना चाहिए।।९९।।

मेरे भक्त ही को समस्त संसार से मुक्त करने वाला कार्य करना चाहिए। उसे शीघ्रतापूर्वक मधुपर्क लेकर यह मन्त्र बोलना चाहिए।।१००।।

मन्त्रार्थ—ॐ इस आद्य मधुपर्क को ग्रहण करो। यह संसार के सम्बन्धों को नष्ट करने वाला तथा अमृत के समान है। श्री नारायण ने इसको बनाया है। यह भगवान् को भी अतिप्रिय है। दाह होने पर शान्ति प्रदान करता है और यह देवलोक में पूज्य है।।१०१।।

फिर व्यक्ति को इस मन्त्र के द्वारा संसार से मुक्त करने वाला उत्तम मधुपर्क मृत्युकाल में प्रदान करना चाहिए।।१०२।।

इस प्रकार मरने वाला व्यक्ति पुनः संसार में जन्म नहीं लेता है। अचेतन व्यक्ति को मरणोन्मुख जानकर उसके निमित्त वनस्पतियाँ और अनेक प्रकार की सुगन्धि द्रव्यों को एकत्रित करना चाहिए।।१०३।।

फिर घृत और तेल मिलाकर उससे देह का लेपन करना चाहिए। इस प्रकार उसके निमित्त उन सब शाश्वत तेज उत्पन्न करने वाले कृत्यों को करना चाहिए।।१०४।।

उस मृत शरीर का दक्षिण में सिर कर उसे जल में रखा जाना चाहिए। फिर सब तीर्थों को आवाहन कर वहाँ उसको स्नान भी कराना चाहिए।।१०५।।

गया आदि तीर्थ, पवित्र शिलायें, कुरुक्षेत्र, गंगा, श्रेष्ठ यमुना नदी, कौशिकी, सब पापों को दूर करने वाली पयोष्णी, कल्याणमयी मण्डकी और बलदायिनी सरयू नदी पाँच वन, वाराहतीर्थ, पिण्डारक, पृथ्वी के सभी तीर्थ, चार सागर आदि सभी में मानसिक संकल्प से निष्प्राण व्यक्ति को स्नान कराना चाहिए।।१०६-१०८।।

प्राणाद् गतं तु तं ज्ञात्वा चितां कृत्वा विधानतः।
तस्या उपिर संस्थाप्य दक्षिणाग्रं शिरस्तथा॥१०९॥
देवाश्चाग्निमुखाः सर्वे गृहीत्वा च हुताशनम्। गृहीत्वा पणिना चैव मन्त्रांश्चैवमुदाहरेत्॥११०॥
कृत्वा सुदुष्करं कर्म जानता वाऽप्यजानता। मृत्युकालवशं प्राप्य नरः पञ्चत्वमागतः॥१११॥
धर्माधर्मसमायुक्तो लोभमोहसमावृतः। दहेयं सर्वगात्राणि दिव्यलोकानि गच्छतु॥११२॥
एवमुक्त्वा ततः शीघ्रं कृत्वा चैव प्रदक्षिणम्। ज्वलमानं तदा वह्निं शिरःस्थाने प्रदापयेत्॥११३॥
चातुर्वर्ण्येषु संस्कारमेवं भवति पुत्रक। गात्राणि वाससी चैव प्रक्षाल्य विनिवर्त्तयेत्॥११४॥
मृतं नाम तथोद्दिश्य दद्यात् पिण्डं महीतले। तदा प्रभृति चाशौचं देवकर्म न कारयेत्॥११५॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१८५॥

उसे निष्प्राण हुआ जानकर विधिपूर्वक चिता बनाना चाहिए। फिर उसके ऊपर उत्तर की ओर शिर और दक्षिण की दिशा में पैरों को किये हुए उसे लिटाया जाना चाहिए।।१०९।।

समस्त देवता अग्नि स्वरूप के मुख वाले होते हैं। अतः हाथ में अग्नि को लेकर यह मन्त्र बोलना चाहिए।।११०।।

मन्त्रार्थ—ज्ञान या अज्ञानतापूर्वक दुष्कर कर्म करते हुए यथाकाल मृत्यु के वश में होकर यह जीव पञ्चतत्त्व में लीन हो गया है।।१११।।

धर्म और अधर्म से संयुक्त और लोभ तथा मोह से सम्पन्न इस शरीर को मैं दग्ध कर रहा हूँ। यह दिव्य लोकों में जाय।।११२।।

इस प्रकार कहते हुए शीघ्र प्रदक्षिणा कर प्रज्वलित अग्नि को शिर की ओर रखना चाहिए।।११३॥

हे पुत्र! चारों वर्णों के जनों का अन्त्य संस्कार इसी तरह करना चाहिए। फिर शरीर और वस्त्रों को प्रक्षालित कर गृह की ओर वापस आना चाहिए।।११४।।

फिर मृतक का नाम लेकर पृथ्वी पर पिण्डदान करना चाहिए। उस समय से प्रारम्भ कर अशौच काल पर्यन्त देव सम्बन्धी कार्य निश्चय ही वर्जित करना चाहिए।।११५।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में श्राद्ध उत्पत्ति, निमिनारद सम्वाद, मरने काल में गोदान, मधुपर्क दान, शवदाह क्रिया विधान नामक एक सौ पचासीवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्राम-सम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१॥

❖❖❖

षड्शीत्यधिकशततमोऽध्यायः

अथ शवदाहादिकृत्यम्

धरण्युवाच

देवदेवोऽसि देवानां लोकनाथोऽपरिग्रहः। आशौचकर्म विधिवच्छ्रोतुमिच्छामि माधव॥१॥

श्रीवराह उवाच

आशौचं शृणु कल्याणि यथा शुध्यन्ति मानवाः। गतायुषस्तृतीयेन स्नातव्यं स्रोतसा नदी॥२॥
पिण्डसंक्रमणं दद्यात् त्रीणि दद्याज्जलाञ्जलीन्। चतुर्थे पञ्चषष्ठे वा पिण्डमेकं जलाञ्जलिम्।
अन्यस्थानेषु दातव्यं स्नात्वा अहनि सप्तमे॥३॥
क्षारेण वस्त्रशौचानि दिने च नवमे तथा। अपाकद्रव्यसंयुक्तस्तद् विप्रो वाचयेत् तथा॥४॥
स्नात्वा चैव शुचिर्भूत्वा प्रेतं विप्रेषु योजयेत्। एकोद्दिष्टं मनुष्याणां चातुर्वर्ण्यस्य माधवि।
अपाकद्रव्य संगृह्य ब्राह्मणं वचनं कृतम्॥५॥
त्रिषु वर्णेषु कर्त्तव्यं पाकभोजनमेव च। शुश्रूषामभिपन्नानां शूद्राणां च वरानने॥६॥
दिने त्रयोदशे प्राप्ते पाकेन भोजयेत् द्विजान्। मृतस्य नाम चोद्दिश्य यस्यार्थे विप्रयोजितः॥७॥

अध्याय–१८६

श्राद्ध विधान, प्रेत हितार्थ छत्र, उपानह, इष्ट वस्तु आकद का दान, निमि-आत्रेय संवाद

धरणी ने पूछा कि हे माधव! आपदेवों के देवाधिदेव अपरिग्रह लोकनाथ हैं। अतः मैं सविधि अशौच कर्म सुनने की कामना कर रही हूँ।।१।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि हे कल्याणि! अब तुम अशोच वर्णन सुनो, जिससे मानव मात्र शुद्ध हुआ करते हैं। मृतक के मरने के दिन से तीसरा दिन नदी प्रवाह में स्नान करना चाहिए।।२।।

उस समय पिण्ड के साथ तीन जलाञ्जलि भी प्रदान करनी चाहिए। चौथे, पाँचवें या छठवें दिन एक पिण्ड एवं जलाञ्जलि प्रदान करना चाहिए। सातवें दिन अन्य स्थान पर स्नान कर जलाञ्जलि प्रदान करनी चाहिए।।३।।

नौवें दिन क्षार द्वारा वस्त्र को शुद्ध करें । विना पकाये हुए द्रव्य से युक्त ब्राह्मण को पुराण का पाठ करना चाहिए।।४।।

हे माधवि! फिर स्नान करने के बाद पवित्र होकर ब्राह्मणों में प्रेत को संयुक्त करें। चारों वर्ण के मनुष्यों की यह एकोदिष्ट विधि है। विना पकाया हुआ अन्न लेकर ब्राह्मण द्वारा पुराण का पाठ होता है।।५।।

ब्राह्मण के अतिरिक्त सेवा के हेतु उपस्थित शूद्रों सहित अन्य तीन वर्णों का पकाया भोजन ही पिण्डदान हेतु लेना चाहिए।।६।।

मृतक के नाम के उद्देश्य से जिन ब्राह्मणों को नियुक्त किया गया होता है, उन्हें भी तेरहवें दिन पकाया हुआ अन्न भोजन कराना चाहिए।।७।।

श्वः करिष्य इति कृत्वा ब्राह्मणामन्त्रणं शृणु। गतोऽसि दिव्यलोके त्वं कृतान्तावहितो यमम्।
मनसा वायुभूतेन विप्रेषु मम योजयेत्॥८॥
अस्तंगते तथादित्ये गत्वा विप्रनिवेशनम्। दत्त्वा तु पाद्यं विधिवन्नमस्कृत्वा द्विजोत्तमम्॥९॥
पादम्रक्षणतैलेन प्रेतस्य हितकाम्यया। प्रेतभोगशरीरेषु ब्राह्मणस्य च सुन्दरि॥१०॥
यावत् तु तिष्ठते तत्र प्रेतभागमुदीक्षतः। तावदत्र स्पृशेद् भूमि मम गात्रं प्रतिष्ठितम्॥११॥
प्रभातायां तु शर्वर्यामुदिते च दिवाकरे। श्मश्रुकर्माणि कर्त्तव्यं नखच्छेदपराणि च॥१२॥
स्नापनाभ्यञ्जनं दद्याद् विप्राय विधिपूर्वकम्। गृहीत्वा भूमिभागानि स्थण्डिले तदनन्तरम्॥१३॥
निपाने संगृह्य शुचि कर्त्तव्यं स्थापनादिकम्। नदीकूले निवाते वा प्रेतभूमिं विनिर्दिशेत्।
चतुषषष्टि कृतं भागं तथा वास्तुकृतं तथा॥१४॥
ततो दक्षिणपूर्वायां विभागेषु च सुन्दरि। कुञ्जरस्य च छायायां नदीकूले द्रुमस्य च॥१५॥
श्वचाण्डालादिहीने तु प्रेतकार्यं समाचरेत्। यत्र पश्यति तद्देशं कुक्कुटश्वानशूकराः॥१६॥
श्वा चोपहन्ति रावेण गर्जितेन च शूकरः। कुक्कुटः पक्षवातेन स प्रेतो दुःखमृच्छति।
वर्ज्जनीयास्तु वै चैते प्रेतकार्येषु सुन्दरि॥१७॥

'मैं कल श्राद्ध करूँगा' ऐसा संकल्प करने के बाद होने वाले ब्राह्मण के आमन्त्रण की विधि सुनो। यमराज द्वारा बुलाये जान पर तुम यमराज के दिव्यलोक चले गये। अब वायु स्वरूपं मन से मेरे ब्राह्मणों में स्वयं को संयुक्त करो।।८।।

फिर सूर्यास्त होने पर ब्राह्मण के घर जाकर विधिवद् पाद्य का जल समर्पित कर श्रेष्ठ ब्राह्मण को प्रणाम किया जाना चाहिए।।९।।

हे सुन्दरि! प्रेत के कल्याण की भावना से प्रेत के भोग विषयक शरीरों में लगाया जाने वाला तैल ब्राह्मण के पैरों में लगाना चाहिए।।१०।।

हे भूमे! मृतक का भाग देखे जाने तक वहीं रहा करता है। उस समय तक मेरी प्रतिष्ठित मूर्त्ति का स्पर्श नहीं होना चाहिए।।११।।

रात के बाद प्रातःकाल सूर्योदय होने पर नखकर्त्तन और श्मश्रुमुण्डन का कार्य करना चाहिए। फिर ब्राह्मणों को विधिपूर्वक उपलेपन और अभ्यञ्जन आदि स्नानार्थ प्रयुक्त होने वाले द्रव्य प्रदान कर मिट्टी लेकर यज्ञीय स्थल पर स्थापित करना चाहिए।।१२-१३।।

फिर मृतक के श्राद्ध हेतु किसी जलकुण्ड के समीप अथवा नदी तट पर वायु रुद्ध स्थान में श्राद्धकर्म स्थल निश्चित कर उसे निवास स्थान केसमान चौंसठ भागों में करना चाहिए। हे सुन्दरि! दक्षिण पूर्व की दिशा के विभागों में हाथी अथवा पेड़ की छाया में नदी तट पर कुत्ता और चाण्डाल से मुक्त स्थान पर प्रेत कार्य करना चाहिए। क्योंकि उस स्थान को कुक्कुट, कुत्ता, शूकर आदि न देखे।।१४-१५।।

फिर कुत्ते भूँकने की ध्वनि से, शूकर, गर्जन द्वारा, मुर्गे अपने पंखों की हवा से प्रेत कार्य को दूषित कर दिया करते हैं, जिससे उस प्रेत को दुःख पहुँचता है। हे सुन्दरि! इसीलिए प्रेत कार्य में इनको सर्वथा दूर रखना चाहिए।।१६-१७।।

देवतासुरगन्धर्वाः पिशाचोरगराक्षसाः। नागा यक्षाश्च भूताश्च ये च स्थावरजङ्गमाः।
स्थानं कृत्वा तथा देवि तव पृष्ठे प्रतिष्ठिताः॥१८॥
धारयिष्यामि सुश्रोणि विष्णुमायाकृतं जगत्। चण्डालमादितः कृत्वा नराणां तु सुभावितम्॥१९॥
स्नानं कुर्वन्तु ते भूमे स्थण्डिले तदनन्तरम्। अकृत्वा पृथिवीभागं निर्वापं यस्तु कुर्वते।
त्वदधीनं जगद् भद्रे तवोच्छिष्टं ततो भवेत्॥२०॥
न देवाः पितरस्तस्य गृह्णन्तीह कदाचन। पतन्ति नरके घोरे तेनोच्छिष्टेन सुन्दरि॥२१॥
प्रेतभागे तु स्थण्डिल्ये दद्यात् सर्वाह्निकं स्मृतम्। कृत्वा तु पिण्डसंकल्पं नामगोत्रेण माधवि॥२२॥
पश्चादश्नन्ति गोत्राणि कुलजाश्चैकभोजनाः। न दद्यादन्यगोत्रेभ्यो ये न भुञ्जन्ति ह्येकतः॥२३॥
चतुर्णामपि वर्णानां प्रेतकार्येषु माधवि। एवं दत्तेन प्रीयन्ते प्रेतलोकगता नराः॥२४॥
न दत्वा प्रेतभागं तु भुङ्क्ते यस्तत्र मानवः। गत्वा महानदीं सोऽपि सचैलं स्नानमाचरेत्॥२५॥
तीर्थानि मनसा गत्वा त्रिभिरभ्युक्षयेद् भुवम्।
एवं शुद्धिं ततः कृत्वा ब्राह्मणान् शीघ्रमानयेत्।
आगतं च द्विजं दृष्ट्वा कर्त्तव्या स्वागतक्रिया॥२६॥

हे देवि! तुम्हारे पीठ परदेवता, असुर, गन्धर्व, पिशाच, सर्प, राक्षस, नाग, यज्ञ, भूत आदि जो भी स्थावर और जंगम प्राणी हैं, वे सभी अपना स्थान बनाकर प्रतिष्ठित हुआ करते हैं।।१८।।

हे सुश्रोणि! मैं विष्णु की माया से निर्मित तथा चाण्डाल आदि से ब्राह्मण आदि तक सबके सब मनुष्यों को अत्यन्त प्रिय इस जगत् को धारण करता हूँ।।१९।।

हे भूमे! फिर तुम्हारे चबूतरे पर स्नान करना चाहिए। पृथ्वी का विना भाग किये जो निर्वापन किया करता है, उसका कार्य दोष युक्त हो जाया करता है। हे भद्रे! समस्त जगत् तुम्हारे ही अधीन है। अतः पिण्ड आदि सब कुछ तुम्हारा ही उच्छिष्ट हुआ करता है।।२०।।

देवता और पितृगण उसका पिण्ड कभी भी ग्रहण नहीं करते। हे सुन्दरि! उस उच्छिष्ट से पितृगण घोर नरक में पड़ जाते हैं।।२१।।

हे माधवि! नाम और गोत्र को बोलकर पिण्डदान का संकल्प करना चाहिए और स्थण्डिल पर सर्वाह्निक प्रेत भाग स्वरूप पिण्ड दान करना चाहिए।।२२।।

फिर वंश में जन्म लेने वाले स्वजन जन एक साथ भोजन करने वाले भोजन करते हैं। जो जन एक साथ भोजन न करने वाले तथा अन्य गोत्र के हों, उन्हें श्राद्ध का भोजन करने नहीं देना उचित है।।२३।।

हे माधवि! इस प्रकार चातुर्वर्णों के प्रेतकार्य में पिण्डदान करने से प्रेतलोक में रहने वाले मनुष्य प्रसन्न हुआ करते हैं।।२४।।

जो जन प्रेत का हिस्सा विना अर्पण किए ही उस श्राद्ध कार्य में भोजन करते हैं, उनको भी किसी बड़ी नदी में पहुँचकर वस्त्र के साथ स्नान करना चाहिए।।२५।।

फिर मन से तीर्थ में जाने का संकल्प करने के बाद तीन बार जल से भूमि को अभिमन्त्रित करना चाहिए। इस तरह शुद्धि कर लेने के बाद ब्राह्मणों को शीघ्र लाना चाहिए। फिर उन ब्राह्मणों को आता हुआ देखकर उनका स्वागत करना चाहिए।।२६।।

अर्घ्यं पाद्यं ततो दद्याद् हृष्टतुष्टेन माधवि। आसं चोपकल्पेत मन्त्रेण विधिपूर्वकम्॥२७॥

मन्त्रः

इदं ते आसनं दत्तं विश्रामं क्रियतां द्विज। कुरुष्व मे प्रसादं च सुप्रसीद द्विजोत्तम॥२८॥
उपविश्यासने भद्रे छत्रं संकल्पयेत् पुनः। निवारणार्थमाकाशे भूता गगनचारिणः॥२९॥
देवगन्धर्वयक्षाश्च सिद्धसंघाः सुरास्तथा। धारणार्थं तथाकाशे छत्रं तेजस्विना कृतम्॥३०॥
प्रेतस्य च हितार्थाय धारयेत वसुंधरे। एवं संहृष्टतुष्टेन प्रेतभागानि गृह्णति।
आधारणेन छत्रेण ब्राह्मणाय तु दीयते॥३१॥
आकाशे तत्र पश्यन्ति देवसिद्धपुरोगमाः। गन्धर्वा ;हुसराश्चैव राक्षसाः पिशिताशिनः॥३२॥
पश्यमानेषु सर्वेषु प्रेतः संव्रीडितो भवेत्। व्रीडमानं ततो दृष्ट्वा हसन्त्यसुरराक्षसाः॥३३॥
एवं निवारणं छत्रमादित्येन कृतं पुरा। प्रेतलोकगतानां च सर्वदेवर्षिणा पुरा॥३४॥
अग्निवर्षं शिलावर्षं तप्तं त्रपुजलोदकम्। भस्मवर्षं ततो घोरमहोरात्रेण माधवि॥३५॥
एवं निवारणं छत्रं दद्याद् विप्राय माधवि। पश्चादुपानहौ दद्यात् पादस्पर्शकरे शुभे॥३६॥

हे माधवि! फिर प्रसन्नता के साथ अर्घ और पाद्य अर्पित करना चाहिए। फिर सविधि मन्त्र द्वारा ही आसन प्रदान करना चाहिए।।२७।।

मन्त्रार्थ—हे द्विज! आपको यह आसन प्रदान किया जाता है। आपको यहाँ पर विश्राम करना चाहिए। हे द्विजोरुम! मेरे ऊपर कृपा करें और प्रसन्न हों।।२८।।

हे भद्रे! फिर आसन पर स्थित होकर आकाश में विचरण करने वाले प्राणियों के निवारणार्थ प्रेत के निमित्त आकाश में छत्र प्रदान करने का संकल्प करना चाहिए।।२९।।

फिर देव, गन्धर्व, यक्ष, सिद्ध, देव आदि ने आकाश में धारण करने योग्य तेजस्वी छत्र को बनाया है।।३०।।

हे वसुन्धरे! प्रेत हितार्थ प्रसन्नता और संतुष्टिपूर्वक प्रेतभाग ग्रहण करने वाले ब्राह्मण को धारण करने हेतु दण्डयुक्त छत्र पदान किया जाता है।।३१।।

चूँकि उस काल में आकाश में देवता, सिद्धगण, गन्धर्व, असुर और मांसभक्षी असुर प्रेत को देखते हैं।।३२।।

उस सभी से देखा जाता हुआ प्रेत लज्जित होता है। फिर असुर और राक्षस उसे लज्जित होते देखकर हँसते भी हैं।।३३।।

इसीलिए पुरातनकाल में सूर्य, समस्त देवता और ऋषियों ने प्रेतलोक जाने वालों के आच्छादन हेतु छत्र को बनाया था।।३४।।

हे माधवि! उस प्रेतलोक के पथ में अहोरात्र, अग्नि, शिला, पिघले हुए तप्तरांगा, तप्त जल और भस्म की घोर वृष्टि हुआ करती रहती है।।३५।।

अतः हे माधवि! इन सब के समाधान के लिए ब्राह्मण को छत्र प्रदान करना चाहिए। फिर पैरों में सुन्दर, कोमल-स्पर्श वाले दो उपानहों का भी दान करना चाहिए।।३६।।

उपानहौ च वक्ष्यामि दत्ते भवति यत्फलम्। पादौ च तौ न दह्येते यमस्य विषयं गते॥३७॥
तमोऽन्धकारविषमं दुर्गमं घोरदर्शनम्। एकाकी दुःसहं लोके पथा येन स गच्छति॥३८॥
कालो मृत्युश्च दूतश्च यष्टिमुद्यस्य पृष्ठतः। अहोरात्रैश्च घोरैश्च प्रेतो नीयेत माधवि।
दद्यात् तदर्थं विप्राय परत्र च सुखावहम्॥३९॥
तप्तबालुमयीं सर्वामसिकण्टक्षुराणि च। स तारयति दुर्गाणि दत्तेनोपानहेन तु॥४०॥
पश्चाद् दुकूलानि गृह्णीयाद् धूपं पुष्पं च सर्वशः। विधिना मन्त्रपूर्वेण दातव्यं नात्र संशयः॥४१॥
यान्ति येन विजानीयात् पृथक् प्रेतं नियोजयेत्।
तिलोपचारं कृत्व तु विप्राणां नियतात्मनाम्॥४२॥
नामगोत्रमुदाहृत्य प्रेताय तदनन्तरम्। शीघ्रमावाहयेद् भूमे दर्भपात्रे च भूतले॥४३॥

मन्त्रः

इह लोकं परित्यज्य गतोऽसि परमां गतिम्। गृह्ण गन्धं मुदायुक्तो भक्त्या मे प्रतिपादितम्॥४४॥
सर्वगन्धं सर्वपुष्पं धूपं दीपं तथैव च। प्रतिगृह्णीष्व विप्रेन्द्र प्रेतमोक्षप्रदो भव॥४५॥

एक जोड़ी उपानह के दानसे जो फल हुआ करता है, उनको आगे बतलाया जा रहा है। इससे यमलोक जाने वाले प्रेत के पैर नहीं जला करते।।३७।।

अकेले वह प्रेत जिस किसी पथ से प्रेत लोक को जाया करता है, वह पथ घना अन्धकारमय, दुर्गम और भयानक दीखने वाला होता है।।३८।।

हे माधवि! दण्ड लिये हुए कालस्वरूप मृत्यु और यम के दूत प्रेत के पीछे चला करते हैं। वे सब प्रेत को भयंकर दिन और रात के समय में ले जाया करते हैं। अतः उसके लिए परलोक में सुखदायक जूते की जोड़ी का दान करना उचित है।।३९।।

इस प्रकार उपानह का दान उस प्रेत को तपे बालुका तथा तलवार और छूरे के समान कण्टकों से सम्पन्न मार्ग से पार करने वाला होता है।।४०।।

फिर सब प्रकार विधियुक्त मन्त्र सहित धूप और पुष्प के साथ वस्त्र लेकर प्रदान करना चाहिए। इसमें किसी प्रकार कोई संशय नहीं करना चाहिए।।४१।।

इस प्रकार वह प्रेत जिस किसी मार्ग से जाया करते हैं, उस मार्ग को जानना भी आवश्यक है। अतः प्रेत के हेतु अलग से हिस्सा संयोजित करना चाहिए। प्रेत हेतु संयमित चित्त होकर ब्राह्मणों को तिल प्रदान करना चाहिए।।४२।।

हे भूमे! फिर जल्दी ही नाम और गोत्र बोलकर पृथ्वी पर रखना चाहिए। फिर कुश स्वरूपपात्र पर प्रेत का आवाह्न करना चाहिए।।४३।।

मन्त्रार्थ—आप इस लोक को छोड़कर परमगति को प्राप्त हो चुके हैं। मेरे द्वारा भक्तिभाव से प्रदान किये गये गन्ध को आनन्द सहित स्वीकार करे।।४४।।

हे ब्राह्मण श्रेष्ठ! समस्त पुष्प, सब गन्ध, धूप, दीप आदि ग्रहण करे और प्रेत को मोक्ष प्रदान करने की कृपा करें।।४५।।

एवं वस्त्राणि विप्राय सर्वाण्याभरणानि च। पुनः पक्वान्नकं चैव कल्पयेत वसुंधरि॥४६॥
एवमादीनि द्रव्याणि प्रेतभागानि सर्वशः। पादशौचादितः कृत्वा चातुर्वर्ण्यस्य माधवि॥४७॥
एवं विधि प्रयोक्तव्यं शूद्राणां मन्त्रवर्ज्जितम्। अमन्त्रस्य च शूद्रस्य विप्रो मन्त्रेण गृह्णति।
एतत् सर्वं विनिर्वर्त्य पक्वान्नं भोजयेद् द्विजम्॥४८॥
भोक्ष्यमाणेन विप्रेण ज्ञानशुद्धेन सुन्दरि। प्रेताय प्रथमं दद्यान्न स्पृशेत परात्परम्॥४९॥
सर्वव्यञ्जनसंयुक्तं पिण्डभागानि कल्पयेत्। देवत्वं ब्राह्मणत्वं च प्रेतपिण्डे प्रदीयते।
मानुषत्वं निर्वापेषु दातव्यं सततं बुधैः॥५०॥
त्रिभिः स्थानैः प्रदातव्यं विधिना मन्त्रसंयुतम्। एवं विप्रेषु प्रेतेषु एककालो न विद्यते॥५१॥
हस्तशौचं पुनः कृत्वा ह्युपस्पृश्य यथाविधि।
समन्त्रं प्रतिगृह्णाति पक्वान्नं भक्ष्यभोजनम्॥५२॥
भुज्यमानस्य विप्रस्य प्रेतभागानि नित्यशः। ज्ञातिवर्गेशु गोत्रेषु संबन्धिस्वजनेषु च॥५३॥
भां तत्र प्रदातव्यं तस्यार्थे यस्य विद्यते। दीयमानस्य विप्रस्य वारणीयं न कस्य चित्॥५४॥
निवारयति यो दत्तं गुरुहत्याफलं लभेत्। न देवाः प्रतिगृह्णन्ति नाग्नयः पितरस्तथा॥५५॥

हे वसुन्धरे! इस प्रकार ब्राह्मण को वस्त्र, आभूषणादि, पक्वान्न आदि सब कुछ प्रदान कर देना चाहिए।।४६।।

हे माधवि! सब जगह इस तरह के पदार्थ प्रेतभाग ही हुआ करते हैं। चारों वर्ण के लाग पादशौच से प्रारम्भ कर अपेक्षित समस्त कर्म सम्पादित करना चाहिए।।४७।।

वैसे शूद्रों को विना मन्त्र के इस प्रकार की विधि सम्पन्न करनी चाहिए। मन्त्र रहित शूद्र का दानादि ब्राह्मण स्वयं मन्त्र द्वारा ले लिया करते हैं। इस प्रकार सब कार्य सम्पन्न कर ब्राह्मण को पक्वान्न खिलाना चाहिए।।४८।।

हे सुन्दरि! भोजन करने वाला शुद्ध ज्ञान वाला ब्राह्मण का प्रथम प्रेत हेतु उसका भाग प्रदान करना चाहिए और एक-दूसरे का स्पर्श नहीं करना चाहिए।।४९।।

फिर समस्त व्यञ्जनों से संयुक्त पिण्ड भाग बनाना चाहिए और प्रेत के पिण्ड में ही देवांश और ब्राह्मणांश प्रदान करना चाहिए। बुद्धिमान् जनों को सदा श्राद्ध में मृतक मनुष्य का अंश प्रदान करना चाहिए।।५०।।

सविधि मन्त्र के साथ तीन स्थानों पर पिण्ड भाग प्रदान करना चाहिए। इस प्रकार ब्राह्मणों और प्रेतों के लिए एक ही काल में कार्य नहीं होता है।।५१।।

पुनः हाथ को प्रक्षालित कर सविधि आचमन करना चाहिए फिर मन्त्र के साथ पक्वान्न और अन्य भोज्यपदार्थ ग्रहण करना चाहिए।।५२।।

भोजन करने वाले ब्राह्मणों को सदा ही प्रेतभाग का प्रदान करना चाहिए। इसी तरह अपनी जाति, गोत्र आदि वालों और अपने सम्बन्धियों को भी उनका भाग प्रदान करना चाहिए।।५३।।

इस प्रकार वहाँ जिसका जो भाग हो, वह उसे देना चाहिए। दाता ब्राह्मण को किसी का भाग नहीं रोकना चाहिए।।५४।।

जो जन दिए जाने योग्य भाग को नहीं प्रदान करता उसको गुरु की हत्या करने जैसा पाप का फल मिलता है। उसके द्वारा दिये भाग को देवता, अग्नि पितरगण कभी भी ग्रहण नहीं किया करते हैं।।५५।।

एवं विलुप्यते धर्मः प्रेतस्तत्र न तुष्यति। एवं संचिन्त्यमानस्य यथा धर्मो न लुप्यते।।५६।।
ज्ञातिसंबन्धिमध्ये तु यो दद्यात् प्रेतभोजनम्। हृष्टेन मनसा विप्रो प्रेतभागं विशेषतः।।५७।।
कूटवत् प्रतितिष्ठेत दृष्ट्वा तृप्तिं स गच्छति। एवं तु प्रेतभावेन शीघ्रं मुञ्चति किल्बिषात्।।५८।।
तृप्तिं ज्ञात्वा तु विप्राय पक्वान्नेन स माधवि। दातव्यमुदकं तत्र पाणावभ्युक्षणं ततः।।५९।।
दृष्ट्वा तु प्रोक्षितं तेन उच्छिष्टं न विसर्ज्जयेत्। ब्राह्मणे नाप्यनुज्ञातः शीघ्रं संरम्भयेत् ततः।।६०।।
दातव्यं तत्र चोच्छिष्टं येन हेतुमगर्हितम्। उपस्पृश्य विधानेन मम तीर्थगतेन च।।६१।।
शुचिर्भूत्वा तु विधिवत् कृत्वा शान्त्युदकानि तु। प्रणम्य शिरसा देवि निवापस्थानमागतः।
मन्त्रैः स्तुतिस्तु कर्त्तव्या तव भक्त्याऽवतिष्ठता।।६२।।
नमो नमो मेदिनि लोकमातरुर्वी मही शैलशिला धरा च।
नमो नमो धारिणि लोकधात्रि जगत्प्रतिष्ठे वसुधे नमोऽस्तु ते।।६३।।
एवं निवापदानेन तव भक्तेन सुन्दरि। दद्यात् तिलोदकं तस्य नामगोत्रमुदाहरेत्।।६४।।
गवां शुभौ तु चरणौ नमस्कृत्वा द्विजोत्तमम्। पाणिना पाणिं संगृह्य मन्त्रेणोत्थापयेद् द्विजान्।
दद्याच्छय्यासनं देवि तथैवाञ्जनकङ्कणम्।।६५।।

इस प्रकार उसके धर्म का लोप होता है। फिर प्रेत भी प्रसन्न और संतुष्ट नहीं होता। अतः इस तरह का विचार मन से करके कर्म करना चाहिए, जिससे धर्म का लोप नहीं हो सके।।५६।।

जो ब्राह्मण प्रसन्न मन से जातीय एवं सम्बन्धी लोगों के मध्य प्रेत के निमित्त प्राप्त भोजन का भाग प्रदान करता है। उसका प्रेत भाग विशेष गुणयुक्त होता है।।५७।।

फिर वह प्रेत इस प्रकार प्रदान किया हुआ प्रेतभाग को ढेर के समान समझता है और उसे देखकर प्रसन्न होता है। फिर वह शीघ्र प्रेतभाव सहित पाप से रहित होता है।।५८।।

हे माधवि! उस पक्वान्न से ब्राह्मण को तृप्त हुआ जानकर उसे जल प्रदान करना चाहिए। फिर उन्हें हाथ धुलवाना चाहिए। उनको हाथ धोते हुए देखने के बाद उनके उच्छिष्ट को फेंकना नहीं चाहिए। फिर ब्राह्मण की आज्ञा से शीघ्र शेष कार्य का आरम्भ करना चाहिए।।५९-६०।।

मेरे तीर्थ में स्थित व्यक्ति द्वारा विधानपूर्वक आचमन कर जिसे उस उच्छिष्ट को देना हो, वह निन्दनीय न हो, उसे ही वह उच्छिष्ट प्रदान करना चाहिए।।६१।।

श्राद्ध करने वाले को विधिवद् पवित्र होकर शान्ति पाठ युक्त जल का प्रोक्षण करना चाहिए। फिर हे देवि! श्राद्ध स्थान पर आकर वह शिर से प्रणाम कर फिर तुम्हारी भक्ति से सम्पन्न होकर तुम्हारी स्तुति करनी चाहिए।।६२।।

हे लोकमाता, शैल और शिला को धारण करने वाली, मोदिनी, उर्वी, मही आदि स्वरूपा पृथ्वि देवि! आपको प्रणाम है। प्रणाम है। हे लोकधात्री धरिणि! आपको नमस्कार है, नमस्कार है। हे जगत्प्रतिष्ठा स्वरूपावसुधे! मेरा तुझे प्रणाम है।।६३।।

हे सुन्दरि! तुम्होर भक्त को इस प्रकार उस प्रेत के नाम और गोत्र का बोलकर श्राद्ध के दान काल में तिल और जल प्रदान.करना चाहिए।।६४।।

सम्मुख से गौ के दोनों पैरों में श्रेष्ठ द्विज को प्रणाम करने के बाद हाथ से ब्राह्मणों का हाथ पकड़ मन्त्र द्वारा उनको उठाना चाहिए। हे देवि! फिर उनको शय्या, आसन, अंजन, कंकण आदि प्रदान करना चाहिए।।६५।।

अञ्जनं कङ्कणं गृह्य शय्यामाक्रम्य स द्विजः। मुहूर्त्तं तत्र विश्राम्य निवापस्थानमागतः।
गवां लाङ्गूलमुद्धृत्य ब्राह्मणे हस्तमाददे॥६६॥
पात्रेणौदुम्बरस्थेन कृत्वा कृष्णतिलोदकम्। उदाहरन्ति मन्त्राणि सौरभेयान् द्विजातयः॥६७॥
मन्त्रपूतं तदा तोयं सर्वपापप्रणाशनम्। उद्धृत्य तच्च लाङ्गूलं निवापाभुक्ष्य वारिणा॥६८॥
पश्चात् प्रेतं विसर्ज्यैवं दद्याद् दानं द्विजातये। निवापमन्नमशुचि दद्याद् वायसतर्पणम्॥६९॥
गत्वा तु ब्राह्मणेनापि स्वगृहं यत्र तिष्ठति। पक्वान्नं भोजयेत् सर्वं न तिष्ठेत् प्रतिवासिकम्॥७०॥
पिपीलादीनि भूतानि प्रेतभागेन सर्वशः। कृत्वा तु तर्पणं देवि यस्यार्थे तस्य कल्पयेत्॥७१॥
भुक्तेषु तेषु सर्वेषु दीनानाथान् प्रतर्प्य च। प्रेतराजपुरं गत्वा प्रयच्छन्ति च माधवि॥७२॥
सर्वान्नमक्षयं तस्य दत्तं विप्रेशु सुन्दरि। कर्त्तव्यमेव सस्कारं प्रेतभावविशोधनम्॥७३॥
नेमिप्रभृतिभिः शौचं चातुर्वर्ण्यस्य सर्वतः। भविष्यति न संदेहो दृष्टपूर्वं स्वयंभुवा॥७४॥
कृत्वा तु धर्मसंकल्पं प्रेतकार्यं विशेषतः। न भेतव्यं त्वया पुत्र कृतसंस्कारलक्षणम्।
विस्तरेण मया प्रोक्तं प्रत्यक्षं नारदस्य च॥७५॥

फिर उस ब्राह्मण को अंजन और कंकण ग्रहण कर शय्या पर आरुढ़ होकर मुहूर्त्त काल तक उस पर ही विश्राम करना चाहिए। फिर श्राद्धकर्ता को श्राद्ध स्थल पर आकर गौ की पूँछ पकड़कर उस ब्राह्मण के हाथ में पकड़ाना चाहिए।।६६।।

इधर ब्राह्मण जनों को उदुम्बर के पात्र में तिल और जल भर कर सुरभि सम्बन्धी मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए।।६७।।

फिर तो वह जल सम्पूर्ण पावों को विनष्ट करने वाला होता है। उसके बाद गौ की ऊपर उठी पूँछ को श्राद्ध सम्बन्धी जल अभ्युक्षित करना चाहिए।।६८।।

उस बसके बाद उस प्रोत को विसर्जित कर ब्राह्मण को दान देना चाहिए। और फिर कौए को तृप्त करने हेतु श्राद्ध विषयक अपवित्र अन्न प्रदान कर देना चाहिए।।६९।।

फिर उस ब्राह्मण को अपने घर में जाकर अपने आश्रितों को समस्त पक्वान्न खिला देना चाहिए। क्योंकि दूसरे दिन के लिए शेष नहीं रहना चाहिए।।७०।।

फिर प्रेत के भाग से चींटी आदि समस्त प्राणियों की तृप्ति होती है। हे देवि! जिसका जो भाग है, उसे वह भाग प्रदान अवश्य करना चाहिए।।७१।।

हे माधवि! उन सभी के भोजन कर लेने तथा दीनों और अनाथों के भोजन से तृप्त हो जाने पर उन सभी की शुभाकांक्षायें यमपुर में जाकर प्रेत को उसका भाग प्रदान किया करती है।।७२।।

हे सुन्दरि! इस प्रकार उस प्रेत को उद्देश्य कर ब्राह्मणों को दिया हुआ अन्न उस प्रेत हेतु अक्षय स्वरूप में प्राप्त होने वाला होता है। प्रेतभाव से मुक्त करनेवाला संस्कार तो अवश्य ही करना चाहिए।।७३।।

सर्वप्रथम स्वयम्भू ब्रह्मा से साक्षात् कहा गया चारों वर्णों के लिए किया जाने वाला यह शौच निःसंशय नेमि आदि से प्रारम्भ हुआ होगा।।७४।।

हे पुत्र! विशेष रूप से धर्म का संकल्प करने के बाद प्रेत कार्य सम्पन्न करने पर आपको भय नहीं करना चाहिए। फिर मैंने तुम्हारे द्वारा किये गए अन्त्य संस्कार का स्वरूप नारद के सामने विस्तार से कहा ही है।।७५।।

त्वया वत्स सुतस्यार्थे व्रतमेकं प्रतिष्ठितम्। नेमिप्रभृति लोकेषु पितृयज्ञं भविष्यति॥७६॥
एवं ज्ञास्यसि वत्स त्वं न शोकं कर्त्तुमर्हसि। श्रियानिधि स ते दिव्यं ब्रह्मलोकं सदाक्षयम्॥७७॥
एवमुक्त्वा तदात्रेयः शौचकर्म यथाविधि। दातव्यं तु तृतीये च मासे सप्तनवेषु च।
एकादशे द्वादशे तु कुर्यात् संवत्सरक्रियाम्॥७८॥
प्रेतमाह्वाननं कृत्वा शुचिर्भूत्वा समाहिता। पक्वान्नं भोजयेद् विप्रं प्रेतभागं यथाविधि॥७९॥
मन्त्रयुक्तोपचारेण चार्वण्यर्यस्य सर्वतः। वृषलानाममन्त्राणां प्रयोक्तव्यं यथाविधि॥८०॥
प्रेतकार्ये विनिर्वृत्ते पूर्णे संवत्सरेषु च। आयान्ति जन्तवः केचिद् गत्वा गच्छन्ति चापरे॥८१॥
पितामहः स्नुषा भार्या ज्ञातिसंबन्धिबान्धवाः। यद्येन बहवः सन्ति स्वनेपममिदं जगत्॥८२॥
मुहुर्त्तं स्वंय रोदित्वा ततो यान्ति पराङ्मुखम्। स्नेहपाशेन ये बद्धास्ततो मुञ्चन्ति मानवाः॥८३॥
कस्य माता पिता कस्य कस्य भार्या सुतास्तथा। युगे युगेषु वर्त्तन्ते मोहपाशेन बध्यते।
स्नेहभावेन कर्त्तव्यं संस्कारं क्रियते मम।८४॥
भूतपूर्वं च ते वत्स सृष्टं पूर्वं स्वयंभुवा। त्वया संकल्प्य धर्मश्च पितृयज्ञं भविष्यति॥८५॥

हे पुत्र! तुमने अपने पुत्र के लिए एक विशेष व्रत का प्रतिष्ठित कर दिया है। संसार में नेमि से यह पितृयज्ञ प्रारम्भ हुआ, कहा जा सकेगा।।७६।।

हे पुत्र इस प्रकार से सोच कर तुमको शोक नहीं ही करना चाहिए। तुम्हारे श्री सम्पन्न पुत्र को सदा अक्षय दिव्य ब्रह्मलोक प्राप्त होगा।।७७।।

फिर अत्रिपुत्र ने कहा कि इस प्रकार यथाविधि शौचकर्म कर तीसरे, सातवें, नौवे, ग्यारहवें और बारहवें माह में पिण्डादि दान कर वार्षिक श्राद्ध की क्रिया भी करनी चाहिए।।७८।।

इस प्रकार फिर पवित्र होने के बाद एकाग्र मन से प्रेत का आवाहन कर यथाविधि ब्राह्मण को प्रेतभाग स्वरूप पक्वान्न खिलाना चाहिए।।७९।।

इस प्रकार चातुवर्णों के समस्त जन को ये सब कार्य करना उचित है। ब्राह्मणादि तीन वर्णों के जन मन्त्रयुक्त विधि से ये सब कार्य करते हैं और शूद्रजन को विधि मन्त्र रहित समस्त कार्य करना चाहिए।।८०।।

फिर वर्ष के अन्त में प्रेतकार्य सम्पन्न हो जाने पर परलोक में स्थित कुछ दूसरे प्राणी आते और जाते हैं।।८१।।

फिर प्राणी से सम्बन्धित जो अनेक पितामह, बहन, भार्या, जातीय सम्बन्धी और बन्धुबान्धव होते हैं। वे सभी क्रम से आते और जाते हैं। यह जगत् स्वप्न केसमान है।।८२।।

जो जन स्नेह से बँधे होते हैं। वे सभी वहाँ श्राद्ध स्थल पर पहुँचकर स्वयं मुहूर्त्त काल भर रोने के बाद लौट आते हैं। फिर सब जन सांसारिक बन्धनों से रहित हो जाते हैं।।८३।।

कौन किसका माता-पिता किसी भार्या या किसका पुत्र है? मोहपाश से बँधा हुआ जीव युग-युग से इस संसार चक्र का अनुपालन करता हुआ जी रहा है। अतः स्नेह के साथ मेरे द्वारा निर्दिष्ट संस्कार करना चाहिए।।८४।।

हे वत्स! आदिकाल से स्वयम्भू ब्रह्मा ने इस विधि को बनाया था। फिर तुमने संकल्प पूर्वक जो धर्म कर्म किया है, वह भविष्य में पितृयज्ञ होगा।।८५।।

प्रेतकार्ये निवृत्तेऽपि पितृत्वमुपयान्ति ते। मासे मासेन कर्त्तव्यं पितृदैवततर्पणम्॥८६॥
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः। दद्याद् ब्रह्ममुखायेति अमावास्यां भविष्यति॥८७॥
एवमुक्त्वा तदात्रेयः श्राद्धोत्पत्तिविनिश्चयम्। मुहूर्त्तं ध्यानमादाय तत्रैवान्तरधीयत॥८८॥

नारद उवाच

श्रुत्वा तु मृतसंस्कारमात्रेयोक्तं यथाविधि। चातुर्वर्ण्यस्य सर्वेषां त्वया धर्मं प्रतिष्ठितम्॥८९॥
पितृयज्ञममाश्राद्धं मासि मासि दिनं तथा। वर्त्तयन्ति यथान्यायं ऋषयश्च तपोधनाः॥९०॥
निर्दिष्टो नेमि रात्रेण शूद्राणां मन्त्रवर्जितम्। नेमिप्रभृति श्राद्धं वै करिष्यन्ति न संशयः॥९१॥
भविष्यति न संदेहो बृहस्पतिसमा मतिः। स्वस्त्यस्तु ते महाभाग यास्यामि मुनिसत्तम॥९२॥
एवमुक्त्वा मुनिश्रेष्ठो नारदो द्विजसत्तमः। तेजसा द्योतयन् सर्वं गतः शक्रपुरं दिवम्॥९३॥
एवं च पिण्डसंकल्पं श्राद्धोत्पत्तिं च माधवि। आत्रेयेणर्षिमुख्येन यत्पृष्टेन प्रतिष्ठितम्॥९४॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१८६॥
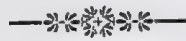
फिर प्रेतकर्म के सम्पन्न हो जाने पर वे परलोक में स्थित जीव पितृयोनि प्राप्त कर लेते हैं। इसीलिए प्रत्येक मास में पितृदेवों का तर्पण करना चाहिए।।८६।।

पिता, पितामह एवं प्रपितामह, वे सभी पितृलोक पा जाते हैं। अतएव भविष्य में इनके लिए प्रत्येक अमावास्या को ब्रह्ममुख में पक्वान्न भोजनादि स्वरूप हवन करना चाहिए।।८७।।

फिर इस प्रकार श्राद्ध की विधि को उत्पन्न करने वला सिद्धान्त का उल्लेख करने के बाद मुहूर्त भर ध्यान कर आत्रेय वहीं पर विलीन हो गये।।८८।।

नारद ने कहा कि इस प्रकार आत्रेय कथित मृतक श्राद्ध विधान याने शक्ति तुमने सुना। फिर तुमने चातुवर्णों द्वारा किये जाने वाले कर्म रूप धर्म को प्रतिष्ठित ही किया है।।८९।।

फिर तपोधन ऋषिजन यथाशक्ति प्रत्येक माह की अमावास्या तिथि क दिन पितृयज्ञ स्वरूप श्राद्ध किया करते हैं।।९०।।

नेमिरात्र ने शूद्रों हेतु इस कार्य का मन्त्र रहित विधि बतलाया है। फिर नेमि से प्रारम्भ होकर समस्त जन निःसंशय यह श्राद्ध कर्म कर सकेंगे।।९१।।

तुम्हारी बुद्धि निःसंशय बृहस्पति केसमान होगी। हे मुनिश्रेष्ठ! तुम्हारा सदा कल्याण हो। अब मैं भी जा रहा हूँ। फिर इस प्रकार कहते हुए ब्राह्मण श्रेष्ठ नारद समस्त दिशाओं को अपने तेज से प्रकाशित करते हुए दिव्य इन्द्रलोक को चल पड़े।।९२-९३।।

हे माधवि! इस तरह ऋषिश्रेष्ठ आत्रये उस पिण्डदान के संकल्प और उत्पन्न श्राद्ध विधि को सुस्थापित किया, जिसे तुमने पूछा था।।९४।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में श्राद्ध विधान, प्रेत हितार्थ छत्र, उपानह, इष्ट वस्तु आदि का दान, निमि-आत्रेय संवाद नामक एक सौ छियासिवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१८६॥

❖❖❖

सप्तशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

अथ श्राद्धकल्पे प्रायश्चित्तविधानम्

धरण्युवाच

श्रुतं श्राद्धं यथावृत्तं शौचाशौचानि सर्वशः। चतुर्णामपि वर्णानां प्रेतभोज्या यथाविधि॥१॥
एकं मे संशयोत्पन्नं भगवन् वक्तुमर्हसि। चातुर्वर्ण्येषु सर्वेषु दद्याद् दानं द्विजोत्तमे॥२॥
प्रतिगृह्णन्ति ये तत्र प्रेतभागं विशेषतः। अनिष्टं गर्हितं यन्मे प्रेतेन सह भोजनम्॥३॥
भुक्त्वा तेषां द्विजो देव मुच्यते केन कर्मणा। कथं ते तारयिष्यन्ति पृच्छामि त्वां जनार्दन॥४॥
एवमुक्तो वसुधया शङ्खदुन्दुभिनिस्वनः। वराहरूपी भगवान् प्रत्युवाच वसुंधराम्॥५॥

श्रीवराह उवाच

साधु भूमि वरारोहे मन्मां त्वं परिपृच्छसि। कथयिष्यामि ते देवि तारयन्ति तथा द्विजाः॥६॥
भुक्त्वा तु प्रेतभोज्यानि ब्राह्मणो ज्ञाननिष्ठितः। उपवासं चरिष्यन्ति शरीरात्मविशोधनम्।
अहोरात्रोषितो भूत्वा ये विप्रा मन्त्रपारगाः॥७॥
पूर्वसंध्यां विनिर्वृत्ते कृत्वा चैवाग्नितर्पणम्। तिलहोमं प्रकुर्वीत शान्तिमङ्गलपाठकः॥८॥

अध्याय-१८७

प्रेतश्राद्ध और भोजन प्रतिग्रह का प्रायश्चित्त, उत्तम ब्राह्मण प्रशंसा

धरणी ने कहा कि चारों वर्णों के हेतु यथाविधान किया जाने वाला श्राद्ध सब प्रकार के शौच और अशौच तथा प्रेत को भोजन प्रदान करने का वर्णन सुना।।१।।

हे भगवन् फिर भी मुझे एक सन्देह हो गया है। आप उसका निराकरण करें। चातुर्वर्णों के लिए श्रेष्ठ द्विज को ही दान दिया जाना चाहिए।।२।।

उनमें जो ब्राह्मण दान लेते हैं और विशेष रूप से जो प्रेतभाग ग्रहण किया करते हैं, उनका वह दान लेना अनिष्टकर और गर्हित हुआ करता है। मेरे विचार से मृतक के सम्बन्धियों के साथ भेजन करना विशेष अनिष्टकर और निन्दनीय है।।३।।

हे देव! इस प्रकार उन मृतक के कुटुम्बियों के यहाँ भोजन करने वाला ब्राह्मण किस कर्म द्वारा दोषमुक्त हो जाता है। हे पुरुषोत्तम! श्राद्ध में भोजन करने वाले वे ब्राह्मण प्रेतादि को कैसे तार देने वाले हो सकते हैं? हे जनार्दन! मैं स्त्री स्वभाव के अधीन सस्नेह आपसे पूछना या जानना चाहती हूँ। इस प्रकार धरणी के पूछने पर शंख और दुन्दुभि के समान शब्द करने वाले वराहस्वरूप भगवान् ने धरणी के प्रति कहा।।४-५।।

श्रीवराह भगवान् ने कहा कि हे सुन्दरी भूमे! तुम तो धन्य हो, इसी कारण तुम इस तरह से जिज्ञासु हो रही हो। हे देवि! तुम्हें बतला रहा हूँ कि वे सब ब्राह्मण लोगों को किस प्रकार तारते हैं।।६।।

प्रेत की तृप्ति हेतु भोजन करने वाले ज्ञान निष्ठित ब्राह्मण शरीर एवं आत्मा की शुद्धि हेतु उपवास किया करते हैं। मन्त्रपारगामी ब्राह्मण अहोरात्र पर्यन्त उपवास कर पूर्व सन्ध्या के अन्त होने पर अग्नि में तिल का हवन करने के बाद शान्ति और मंगल सम्बन्धित मन्त्रों का पाठ करते हैं।।७-८।।

प्राक्स्त्रोतां च नदीं गत्वा कृत्वा चैव समन्त्रवित्। पञ्चगव्यं ततः पीत्वा मधुपर्कसुसंयुतम्॥९॥
पात्रेणौदुम्बरस्थेन कृत्वा शान्त्योदकानि च। गृह्य चौदुम्बरं पात्रं विप्रेण नियतात्मन।
पात्रेणाभ्युक्षयेत् सर्वं स्वगृहं यत्र तिष्ठति॥१०॥
देवाश्चाग्निमुखाः सर्वे तर्पयित्वा विभागशः। भूतानां च बलिं दद्याद् ब्राह्मणेभ्यश्च भोजनम्॥११॥
प्रेतभागेन दत्तेन पूजयित्वा द्विजोत्तमान्। मृतस्य नाममुद्दिश्य ह्यक्षयं चोपकल्पयेत्॥१२॥
स्वस्ति सर्वेषु विप्राय दद्यात् तोयं विसर्जनम्। प्राशयेत् पञ्चगव्यं तु मधुपर्केण संयुतम्॥१३॥
एवं शुद्धिं ततः कृत्वा ब्राह्मणेषु वसुंधरे। पश्चाद् वा तस्य दातव्यं शेषं शान्त्युदकं शुभम्॥१४॥
तेन चाभ्युक्षयेद् भूमि सर्वस्थानं गृहं तथा। तदा प्रभृति शुद्ध्यन्ति तेऽपि यान्ति परां गतिम्।
एष धर्मविधिर्भद्रे चातुर्वर्ण्यस्य सर्वतः॥१५॥
यथैव कुरुते ब्रह्म भुक्त्वा तु प्रेतभोजनम्। अतः शुद्ध्यन्ति वै देवि दाता भोक्ता न संशयः॥१६॥
यथा चैवेन्धनं कूटं भस्मसात् कुरुतेग्निना। तथैव कुरुते ब्रह्म किल्बिषानां विनाशनम्।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणां विप्राणां तु वसुंधरे॥१७॥
ब्राह्मचर्येण मौनेन यमेन नियमेन वा। ध्यानयोगोपवासेन शान्तिहोमक्रियासु च॥१८॥
कुर्वन्ति ब्राह्मणा देवि तारणार्थं न संशयः। दातारं चैवमात्मानं दुर्गाण्यतितरन्ति ते॥१९॥

फिर वह मन्त्रों को जानने वाला ब्राह्मण पूर्वाभिमुख प्रवाह वाली नदी में जाकर स्नान किया करते हैं और फिर मधुपर्क युक्त पञ्चगव्य का पान किया करते हैं।।९।।

फिर वे उदुम्बर के पात्र में शान्तिकर्म करने के लिए जल भरा करते हैं। फिर संयमित होकर ब्राह्मण उदुम्बर के उस पात्र के जल से, जिस गृह में वह रह रहा है, उसे वह अभ्युक्षित किया करता है।।१०।।

फिर मृतक के नाम को बोलकर दान द्वारा प्राप्त प्रेत भाग से किसी श्रेष्ठ ब्राह्मण का पूजन कर वह उस दान को शुद्ध और अक्षय किया करते हैं।।१२।।

फिर सबके लिए 'स्वस्ति' शब्द बोलकर ब्राह्मणों को जल प्रदान करते हुए विसर्जन करना चाहिए। फिर मधुपर्कयुक्त पञ्चगव्य का प्राशन करना चाहिए।।१३।।

हे वसुन्धरे! इस तरह से ब्राह्मणों की पूजा आदि पूर्वक शुद्धि कार्य करने के बाद शेष शुभ शान्तिकर्म सम्बन्धी जल उन ब्राह्मणों को दे देना चाहिए।।१४।।

फिर हे भूमे! उस जल से गृह के सभी स्थानों को अभ्युक्षित करना चाहिए। फिर श्राद्ध में भोजन आदि करने वाले वे सब ब्राह्मण शुद्ध होकर परमगति पाया करते हैं। हे भद्रे! चातुर्वर्णों हेतु यह धर्म विधि समझना चाहिए।।१५।।

इस प्रकार प्रेत भोजन करने वाले बाह्मण को इसी तरह के विधान के अनुरूप अनुष्ठान करना चाहिए। हे देवि! इस तरह विधि सम्पन्न करने से निःसंशय दाता और भोक्ता दोनों ही शुद्ध हो जाया करते हैं।।१६।।

हे वसुन्धरे! जैसे अग्नि ईंधन के ढेर को भस्मसात् कर दिया करती है। वैसे ही ज्ञानाग्नि के द्वारा कर्मदोषों को भस्म कर लेने वाला ब्राह्मण अपने समस्त पापों का नाश वेद ज्ञानसे ही कर दिया करता है।।१७।।

ब्रह्मचर्यपालन, मौन रहना, यम, नियम, ध्यान, योग, उपवास, शान्तिपाठ और हवनादि कर्म ब्राह्मणों द्वारा समस्त जन के उद्धार करने के ही निमित्त हुआ करते हैं। हे देवि! इसमें सन्देह नहीं है। इस प्रकार से दाता और स्वयं को दुर्गतियों से रहित कर दिया करते हैं।।१८-१९।।

गावो हस्त्यश्वमादीनि सागरान्तानि माधवि। प्रतिगृह्णन्ति ये विप्रा मन्त्रेण विधिपूर्वकम्।
प्रायश्चिरुं चरेद् यस्तु तारयन्ति न संशयः॥२०॥
ये सुकर्मसु वर्त्तन्ते ज्ञानशुद्धेन सुंदरि। विकर्म ये न कुर्वन्ति व्यसनेऽपि न वा क्वचित्।
ते द्विजास्तारयिष्यन्ति तद्योगेन वसुंधरे॥२१॥
ब्राह्मणं नावमन्येत् त्रिभिवर्णैर्न संशयः॥२२॥
दैवे च जन्मनक्षत्रे श्राद्धकाले च पर्वसु। प्रेतकार्येषु सर्वेषु परीक्ष्य निपुणं द्विजम्॥२३॥
वेदविद्याव्रतस्नातः षट्कर्मनिरतः शुचिः। शीलसंतुष्टधर्मज्ञः सत्यसंधः क्षमान्वितः॥२४॥
निष्ठितो धर्मशास्त्रेषु अहिंसासु तथैव च। प्रेतसंस्कारकादीनि गृहकार्येषु सर्वतः॥२५॥
एकोऽपि तारयितुं शक्तो यथा नावा महाजलम्। तस्मै दानं प्रदातव्यं ब्राह्मणाय वसुंधरे॥२६॥
देवासुरमनुष्याणां गन्धर्वोरक्षसाम्। सर्वे श्राद्धं करिष्यन्ति निमिप्रभृति माधवि।
मोस मासे च वै पश्चात् पितृपक्षे तपोधने॥२७॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१८७॥

हे माधवि! जो ब्राह्मण जन गौ, हाथी, घोड़ा और समुद्र के अन्त तक के भूमि खण्ड आदि मन्त्र से सविधि स्वीकार करते हैं, वे भी प्रायश्चित्त कर सबको तारने वाले होते हैं, इसमें संशय नहीं है।।२०।।

हे सुन्दरि वसुन्धरे! जो जन ज्ञान से शुद्ध होकर शुभकर्म किया करते हैं, और दुःख में भी कभी विकार युक्त नहीं होते हैं, वे ब्राह्मण उस दानादि कार्य के योग से मिलने वाले दोषों से स्वयं को और साथ में दूसरों को भी तार देने वाले होते हैं।।२१।।

अतः तीनों वर्णों के जनों को कथमपि ब्राह्मण का अपमान करने से बचे रहना ही श्रेयस्कर है।।२२।।

फिर देवकार्य, जन्मनक्षत्र के काल में किये जाने वाले वर्धायन संस्कार, अमावास्यादि पर्वों के समय किये जाने वाले श्राद्ध , प्रेत सम्बन्धी कर्म आदि के समजा में द्विज कापरीक्षण प्रवीणता से करनी चाहिए।।३३।।

चूँकि वेदविद्या का स्नातक, षट्कम्र करने में निपुण, पवित्र, शीलवान् , संतोषी, धर्मज्ञ, सत्यप्रतिज्ञ, क्षमावान् , धर्मशास्त्र और अहिंसा में निष्ठा वाले सभी ब्राह्मण प्रेत सम्बन्धी, गृहसम्बन्धी आदि कार्यों के योग्य हुआ करते हैं।।२४-२५।।

इसीलिए उक्त एक भी ब्राह्मण वैसे ही तारन करने में सक्षम होते हैं, जैसे नौका महाजलराशि के पार लेकर चली जाती है। हे वसुन्धरे! ऐसे ही ब्राह्मण को दान भी दिया जाना चाहिए।।२६।।

हे तपोधने माधवि! निमि से लेकर देवता, असुर, मनुष्य, गन्धर्व, सर्प, राक्षस आदि सब प्रत्येक मास में और पितृपक्ष मं अवश्य श्राद्ध किया करेंगे।।२७।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में प्रेतश्राद्ध और भोजन प्रतिग्रह का प्रायश्चित्त, उत्तम ब्राह्मण प्रशंसा नामक एक सौ सतासिवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायण-कुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१८७॥

❖❖❖

अष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

अथ श्राद्धकल्पे नीलवृषादिदानविधिः

धरण्युवाच

देवमानुषतिर्यक्षु प्रेतेषु नरकेषु च। आयान्ति जन्तवः केचिद् भूत्वा गच्छन्ति चापरे॥१॥
स्वप्नोपममिदं लोकं ह्यात्मकर्म शुभाशुभम्। वर्त्तयन्ति च ते देव तव मायाबलैर्जगत्॥२॥
के एते पितरो देवाः श्राद्धं भोक्ष्यन्ति ये गताः। आत्मकर्मवशाल्लोके गतिं पञ्चसु वर्त्तनात्॥३॥
कथं ते पिण्डसंकल्पं मासे मासे नियोजयेत्। के भवन्ति च भौकतारः श्राद्धपिण्डपितृक्रियाः।
निश्चयं श्रोतुमिच्छामि परं कौतूहलं हि मे॥४॥
पृथिव्यां एवमुक्तस्तु देवो नारायणो हरिः। वराहरूपी भग्वान् प्रत्यवाच वसुंधराम्॥५॥

श्रीवराह उवाच

साधु भूमि वरारोहे सर्वधर्मव्यवस्थिते। कथयिष्यामि ते देवि यन्मां त्वं परिपृच्छसि॥६॥
ये ते भवन्ति भौकतारः पितृयज्ञेषु माधवि। पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः॥७॥

अध्याय-१८८

श्राद्ध विधान में, नील वृष दान, आवश्यक कृत्य आदि कथन

धरणी ने कहा कि यमलोक रूप स्वर्ग-नरक में निवास कर रहे देव, मनुष्य और तिर्यक् जीव उत्पन्न होकर इस संसार में आया करते हैं और फिर इस संसार में पहले से ही रह रहे जीव मृत्युवश विभिन्न अज्ञात लोकों को चले जाया करते हैं।।१।।

हे देव! यह संसार स्वप्न के समान ही तो है। आपकी मायाबल से दृश्यमान इस जगत् में वे जीव अपने-अपने कर्मानुरूप शुभ वा अशुभ फलों को भोगा करते हैं।।२।।

इस पञ्चतात्त्विक संसार में अपने-अपने कर्म के अधीन पृथक्-पृथक् से अवस्थाओं को पाने वाले देवस्वरूप पितृगण कौन लोग हैं, जो श्राद्ध में पिण्डादि का भोगकर पुनः अपने लोकों में चले जाया करत हैं?।।३।।

उन सब के लिए प्रत्येक माह क्यों पिण्डदान करने का संकल्प किया जाता है? कौन लोग श्राद्ध में दिये जाने वाले पिण्डों और पितृक्रिया का भोग किया करते हैं? हे देव! इस प्रसङ्ग में मैं एक निश्चयात्मक सिद्धान्त सुनने, जानने की इच्छा रखती हूँ। चूँकि मुझे इस प्रसङ्ग में अत्यन्त जिज्ञासा हो रही है।।४।।

इस प्रकार पृथ्वी द्वारा पूछे जाने पर वराहस्वरूप भगवान् नारायण देव श्रीहरि ने पृथ्वी से कहा—।।५।।

श्रीभगवान् वराह ने कहा कि हे सम्पूर्णता से धर्मों में समवस्थित रहने वाली सुन्दरि भूमे! तुम धन्य हो। हे देवि! तुमने मुझसे जो पूछा है, उसे कहता हूँ।।६।।

हे माधवि! पितृयज्ञ का भोग करने वाले जो पितर लोग हैं, वे क्रम से पिता, पितामह और प्रपितामह ही होते हैं।।७।।

क्रियते पिण्डसंकल्पं मासे त्वेकदिनं तथा। ज्ञात्वा नक्षत्रसंयोगं कृष्णपक्षेऽप्युपागते।
तिथिपर्व विजानीयाद् येषु दत्तं महत्फलम्।।८।।
श्रद्धाश्राद्धं करिष्यन्ति ये ते ज्ञानविदो जनाः। तत्सर्वं कथयिष्यामि श्रूयतां शुभलोचने।।९।।
केचिद् यजन्ति यज्ञान् वै ब्रह्मयज्ञान् द्विजातयः। केचिद् यजन्ति सुभगे देवयज्ञं हुताशने।।१०।।
केचिच्च भूतयज्ञानि वर्त्तयन्ति सुमध्यमे। केचिन्मनुष्ययज्ञं वै पूजयन्ति गृहाश्रमे।।११।।
पितृयज्ञं च ते देवि शृणु वक्ष्यामि निश्चयम्। ये यजन्ति वरारोहे क्रतून्नैकशतैरपि।।१२।।
सर्वे ते मयि वर्त्तन्ते एवमेतन्न संशयः। अग्निर्मुखं च देवानां हव्यकव्येषु माधवि।।१३।।
अहं मुखं तथाग्निश्च दक्षिणाग्निरहं तथा। अहमाहवनीयोऽग्निः सर्वयज्ञेषु सुन्दरि।।१४।।
पावनः पावकश्चैव अहमेव व्यवस्थितः। सर्वेष्वेव तु कार्येषु देवसत्रेषु माधवि।।१५।।
वैश्वदेवे नियुञ्जीत ब्रह्मचारी शुचिः सदा। भिक्षुको देवतार्थेषु वानप्रस्थो यतिस्तथा।।१६।।
एतान्न भोजयेच्छ्राद्धे देवतार्थेषु योजयेत्। व्रतस्थान् संप्रवक्ष्यामि श्राद्धमर्हन्ति ये द्विजाः।।१७।।

प्रत्येक मास के कृष्णपक्ष आने पर एक दिन उस परलोकवासी पिता आदि के मृत्यु समय के नक्षत्र का संयोग ज्ञातकर उस दिन पिण्ड दान करने का संकल्प करना चाहिए। फिर उस पर्व और तिथि को जाना चाहिए, चूँकि इसी में पिण्डादि प्रदान करने से महान् फल प्राप्त हुआ करता है।।८।।

जो जन ज्ञानवान् हुआ करते हैं, वे निश्चयपूर्वक श्रद्धा से श्राद्ध भी किया करते हैं। हे शुभलोचने! अब तुमको मेरे द्वारा वही सब कहा जा रहा है, उसे सुनो।।९।।

हे सुन्दरि! द्विजाति में उत्पन्न कुछ जन तर्पण के रूप में पितृयज्ञ किया करते हैं, कुछ स्वाध्याय के रूप में ब्रह्मयज्ञ किया करते हैं, तो कुछ जन अग्नि में हवन कर देवयज्ञ किया करते हैं।।१०।।

हे सुमध्यमे! कुछ जन भूतयज्ञ के रूप में बलि प्रदान किया करते हैं तथा कुछ जन गृहस्थाश्रम में मनुष्य यज्ञ स्वरूप अतिथि पूजन किया करते हैं।।११।।

हे देवि! अब तुमको मैं पितृयज्ञ सम्बन्धी निश्चयात्मक सिद्धान्त कह रहा हूँ, उसे सुनो। हे सुन्दरि! जो जन एक सौ प्रकार के यज्ञों को सम्पन्न करते हैं, वे सब मेरे लिए व्यवहार करत हैं। इस प्रकार होने में संशय नहीं है। हे माधवि! हव्य और कव्य के प्रसङ्ग में देवगण का मुख अग्नि ही हुआ करता है।।१२-१३।।

हे सुन्दरि! मैं सब प्रकार के यज्ञों में गार्हपत्याग्नि दक्षिणाग्नि और आहवनीय अग्नि के स्वरूप में देवमुख के रूप में वद्यमान रहता हूँ।।१४।।

हे माधवि! मैं ही एकमात्र सब प्रकार के कार्यों में और देवयज्ञों में पावन और पावक स्वरूप में व्यवस्थित हूँ।।१५।।

सदैव वैश्वदेव के लिए पवित्र ब्रह्मचारी और देवताओं के लिए वानप्रस्थीभिक्षुक यति जनों को नियोजित किया जाना चाहिए।।१६।।

वैसे इन्हें श्राद्ध में भोजन नहीं कराना चाहिए। देवता के निमित्त ही इन्हें नियोजित किया जाना चाहिए। जो ब्राह्मण जन श्राद्धकर्म में शामिल होने के योग्य हुआ करते हैं, मैं उन व्रतधारण करने वालों का अब उल्लेख कर रहा हूँ।।१७।।

उत्तमो गृहसंतुष्टः क्षान्तो दान्तो जितेन्द्रियः। उदासीनः सत्यसन्धः श्रोत्रियो धर्मपाठकः॥१८॥
वेदविद्याव्रतस्नातो विप्रो मिष्टान्नभोजकः। ईदृशान् भोजयेच्छ्राद्धे पितृयज्ञेषु माधवि॥१९॥
दत्त्वा हुताशनायादौ देवतार्थेषु सुन्दरि। पश्चाद् ब्राह्ममुखे दद्यात् पित्रार्थं च यथाविधि॥२०॥
चतुर्णामेकवर्णानां यद्यथा श्राद्धमर्हति। तथाविधि प्रयोक्तव्यं पितृयज्ञेषु सुन्दरि॥२१॥
यन्न पश्यन्ति ते भोज्यं श्वानः कुक्कुटसूकराः।
ब्राह्मणाश्चाप्यपाङ्क्तेया नराः संस्कारवर्जिताः॥२२॥
सर्वकर्मकरा ये च सर्वभक्षाश्च ये नराः। एतान् श्राद्धे न पश्येत पितृयज्ञेषु सुन्दरि॥२३॥
एते पश्यन्ति यच्छ्राद्धं तच्छ्राद्धं राक्षसं विदुः। मया प्रकल्पितं भागमसुरेन्द्रबलेः पुरा।
दत्त्वा मया तु त्रैलोक्यं शक्रस्यार्थे त्रिविक्रमे॥२४॥
एवं श्राद्धं प्रतीक्षन्ति मन्त्रहीनविधिक्रियाम्। वर्जनीया बुधैरेते पितृयज्ञेषु सुन्दरि॥२५॥
प्रच्छन्नं भोजयेच्छ्राद्धे तर्पयित्वा द्विजं शुचिः। पितृणामयाह्वयेद् भूमि मन्त्रेण विधिपूर्वकम्॥२६॥
त्रयः पिण्डाः प्रदातव्याः सह व्यञ्जनसंयुताः। पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः॥२७॥

अपने-अपने गृह में संतुष्ट रहने वाला, उच्च कोटि का क्षमाशील, स्थिरचित्त वाला, जितेन्द्रिय, उदासीन, सत्यव्रती, श्रोत्रिय, धर्मपाठक, वेदविद्या के व्रत में पारङ्गत, मिष्ठान्नभोज़ी आदि गुणों वाले ब्राह्मण श्राद्ध के योग्य हुआ करते हैं। हे माधवि! पितृयज्ञस्वरूप श्राद्ध में उक्त प्रकार के ही ब्राह्मणों को ही भोजन भी करना चाहिए।।१८-१९।।

हे सुन्दरि! प्रथम देवता के निमित्त अग्नि में आहुति प्रान करने के बाद यथाविधि पितरों के निमित्त ब्राह्मण के मुख में अन्नादि अवश्य प्रदान करना चाहिए।।२०।।

हे सुन्दरि! चातुर्वर्णों में एक ही वर्ण के जैसे लोग श्राद्ध के योग्य होते हैं। वैसे ही लोगों को पितृयज्ञ में नियोजित करना चाहिए।।२१।।

कुत्ते, कुक्कुट, सूकर, अपाङ्क्तेय ब्राह्मण और संस्कारहीन मनुष्य द्वारा उन योग्य ब्राह्मणों को भोजन करते नहीं देखा जाना चाहिए।।२२।।

हे सुन्दरि! सब प्रकार के कर्म को करने वाले और सब कुछ खाने वाले जो मनुष्य हों, ऐसे मनुष्य भी पितृयज्ञ मं भोजन करने वाले इन अयोग्य ब्राह्मणों को नहीं ही देख पाये, यही अच्छा है।।२३।।

चूँकि ऐसे मनुष्य जिस श्राद्ध को देख लेते हैं, वह श्राद्ध भी राक्षसी ही हुआ करता है। वामनावतार में मैंने इन्द्र को त्रैलोक्य का अधिकार प्रदान करने के बाद असुरेन्द्र बलि को उपरोक्त प्रकार के श्राद्ध आदि का भाग प्रदान किया है।।२४।।

इसीलिए ही वे बलि मन्त्र, विधि और क्रियाहीन श्राद्ध की प्रतीक्षा करते रहते हैं। हे सुन्दरि! इसलिए पितृयज्ञ में इस प्रकार के लोगों का अवश्य परहेज करना चाहिए।।२५।।

पवित्रता के साथ यथायोग्य अधिकारी ब्राह्मण को सन्तुष्ट कर श्राद्ध में गोपनीय रूप से भोजन कराना श्रेष्ठ है। हे भूमे! सविधि मन्त्र से पितरों का आवाहन करना ही श्रेयस्कर है।।२६।।

फिर पिता, पितामह और प्रपितामह को सब प्रकार के व्यञ्जनों वाला तीन पिण्ड तैयार कर प्रदान करना चाहिए।।२७।।

अपसव्येन दातव्यं मासि मासि तिलोदकम्।
प्रणम्य शिरसा देवीं निवापस्य च धारिणीम्॥२८॥
वैष्णवी काश्यपी चेति अक्षया चेति नामतः। एवं दत्तेन प्रीयन्ते पितरस्तु न संशयः॥२९॥
परमात्मा शरीरस्थो देवतात्मा मया कृतः। त्रीणि तत्र वरारोहे देवगात्राद् विनिस्सृताः।
पितृदेवा भविष्यन्ति भोक्तारः पितृपिण्डकम्॥३०॥
देवताऽसुरगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः। छिद्रं श्राद्धस्य पश्यन्ति वायुभूता न संशयः॥३१॥
पितृयज्ञं विशालाक्षि ये कुर्वन्ति विदो जनाः। आयुः कीर्त्तिबलं तेजो धनं पुत्रपशुस्त्रियः।
तस्यारोग्यं प्रयच्छन्ति तुष्टास्ते पितृदेवताः॥३२॥
आत्मकर्मवशाल्लोके गतिं पञ्चसु वर्त्तनात्। स्वर्गे च वर्द्धते कीर्त्तिमन्ते तु सुखमाप्नुयात्॥३३॥
तिर्यक्षु मुच्यते शीघ्रं प्रेतभावे तथैव च। नरके पच्यमानानां त्राता भवति मानवः॥३४॥
पूजितः पितृदेवेभ्यः सर्वकालं गृहाश्रमे। विधिना मन्त्रपूर्वेण तर्पयित्वा द्विजातयः।
अक्षयं मन्यते चात्र पितरः सपितामहाः॥३५॥
नरास्ते पितृभक्त्या च शुद्धिं प्राप्स्यन्ति हेतुना।
सात्त्विकं शुक्लपन्थानमेते यान्ति विदो जनाः॥३६॥

फिर निवाप को धारण करने वाली देवी भूमि को शिर से प्रणाम कर अपसव्य होकर हीं प्रत्येक मास में तिलोदक प्रदान करना चाहिए।।२८।।

उन देवी का नाम वैष्णवी, काश्यपी और अक्षया है। इस प्रकार पिण्डादि प्रदान करने से पितृगण निःसंशय प्रसन्न हुआ करते हैं।।२९।।

देखो! मैंने परमात्मा के शरीर में स्थित देवस्वरूप पितरों को उत्पन्न किया है। हे सुन्दरि! देव शरीर से पितादि स्वरूप के ये तीन पितर निकले हुए हैं। ये ही पितृदेव पितरों के पिण्ड का भोग किया करते हैं।।३०।।

फिर देवता, असुर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और सर्प ये सब भी वायु स्वरूप धारण कर निःसंशय ही श्राद्ध के छिद्र अर्थात् त्रुटि को देखते रहा करते हैं।।३१।।

हे विशालाक्षि! जो ज्ञानी जन पितृयज्ञ किया करते हैं, उनके ऊपर प्रसन्न हुए पितृदेव उस श्राद्धकर्त्ता को आरोग्य, आयु, कीर्त्ति, बल, तेज, धन, पुत्र, पशु और स्त्री, ये सब प्रदान किया करते हैं।।३२।।

इस पाञ्चतात्त्विक जगत् में अपने कर्म के अधीन जीव अनेक प्रकार की दशाओं में व्यवहारकरते हुए कीर्त्ति और सुख अधिगत करते हुए अन्त में स्वर्ग में भी समृद्धि को प्राप्त कर लिया करते हैं।।३३।।

इस प्रकार श्राद्धकर्त्ता जन शीघ्र ही तिर्यग्योनि और प्रेतभाव से मुक्त होकर नरक में कष्ट पाने वाले अपने पूर्वजों का उद्धार करने वाला होता है।।३४।।

फिर गृहस्थाश्रम में सदैव सविधि मन्त्र द्वारा ब्राह्मणों को तृप्त कर पितृदेवों की पूजा करना चाहिए। इस प्रकार से पिता पितामहादि के साथ समस्त पितृगण उस श्राद्ध को अक्षय मानते हैं।।३५।।

श्राद्धकर्त्ता, जो ज्ञानीजन हैं, वे अपनी पितृभक्ति से विशुद्ध होकर सात्त्विक शुक्लमार्ग से परलोक को जाया करते हैं।।३६।।

पुनरन्यत् प्रवक्ष्यामि शृणु तत्त्वेन सुंदरि। अज्ञानतमसारूढा निकृतिः शाश्वतं तथा।
स्नेहपाशशतेनैव पच्यन्ते नरके नराः॥३७॥
कल्पं ते पच्यमानापि ये न त्रायन्ति मानवाः। तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च कदाचिदपि सुंदरि॥३८॥
मुक्त्वा तु नीलषण्डस्य कौमुद्यां समुपागते। श्राद्धं कृत्वा तु सुश्रोणि तर्पयित्वा द्विजातयः॥३९॥
दत्त्वा तिलोदकं पिण्डं पितृपैतामहाय च। पितरं पितामहोद्दिश्य नीलषण्डं यथाविधि॥४०॥
नरा ये चैव तिष्ठन्ति अतीतपितृबान्धवाः। तेषां त्राता भविष्यन्ति विप्राः शृण्वन्तु मां यथा॥४१॥
गृह्य चौदुम्बरं पात्रं कृत्वा कृष्णतिलोदकम्। विप्राणां वचनं कृत्वा यथाशक्त्या च दक्षिणा॥४२॥
नीलषण्डस्य लाङ्गूले तोयमभ्युद्धरेद् यदि। षष्टिवर्षसहस्राणि पितरस्तेन तर्पिताः॥४३॥
मुक्तमार्गेण शृङ्गेण नीलषण्डेन मेदिनि। उद्धृतं यदि सुश्रोणि पङ्कं शृङ्गतेन च॥४४॥
बान्धवाः पितरस्तस्य तनयेषु च सन्ततिः। उद्धृत्य नरकात् सर्वं सोमलोकं व्रजन्ति ते॥४५॥
नीलषण्डस्य मुक्तस्य तस्य पुण्येन सुन्दरि। षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च।
सोमलेकेषु मोदन्ते क्षुधातृष्णाविवर्जिताः॥४६॥
एष धर्मो गृहस्थानां पुत्रपौत्रंसमन्विताः। वर्त्तयंश्च यथा देवि त्रातारस्ते भवन्ति च॥४७॥

हे सुन्दरि! फिर से दूसरे रहस्य को कहने जा रहा हूँ। अज्ञान रूपी अन्धकार से सम्पन्न मनुष्यों की शाश्वत अधोगति हुआ करती है। वे मनुष्य सैकड़ों स्नेह बन्धन से बँधे हुए नरक में कष्ट भोगने वाले होते हैं।।३७।।

फिर इस प्रकार वे जन कल्पपर्यन्त कष्ट भोगते रहने के बाद जिस तहर मुक्त होते हैं, उसे सुनो। हे सुन्दरि! कभी उनके पुत्रों अथवा पौत्रों में से कोई जन कार्तिक मास आने पर नीलवृष का उत्सर्ग करता है तथा हे सुश्रोणि! श्राद्ध करने के बाद ब्राह्मणों को तृप्त करता है, वह यथाविधि पिता, पितामह आदि को तिलोदक तथा पिण्ड प्रदान करने के बाद पिता, पितामह आदि को उद्देश कर नीलवृष याने साड़ छोड़ता है और अपने पितरों को मुक्ति प्रदान कर देता है। जो जन पिता और बांधवादि से रति होते हैं, उनका त्राण ब्राह्मण जिस विधि से किया करते हैं, उसे मुझसे सुनो।।३८-४१।।

उदुम्बर के पात्र में काला तिल और जल लेकर ब्राह्मणों को प्रदान कर यथाशक्ति दक्षिणा भी प्रदान करता हो।।४२।।

फिर जब नील वृषभ की पूँछ पर जल प्रदान किया जाता हो, तो इस कार्य से पितृगण साठ हजार वर्षों तक संतुष्ट रहा करते हैं।।४३।।

हे सुश्रोणि वसुन्धरे! नीलवृष, जिस मार्ग में मुक्त याने स्वतंत्र किया जाता है, जब उस मार्ग की मिट्टी वह अपने श्रृङ्ग से खोद देता है, तो इस वृषक उत्सर्ग करने वाले मनुष्य के पितर और उनके वंशज नरक से मुक्त होकर सोमलोक को चले जाया करते हैं।।४४-४५।।

हे सुन्दरि! नीलवृष के उत्सर्ग से प्राप्त पुण्य का प्रभाव ही होता है कि साठ हजार और साठ सौ वर्षों तक भूख और प्यास से रहित होकर सोमलोक में आनंदित होते हैं।।४६।।

अतः पुत्र और पौत्रों से सम्पन्न गृहस्थाश्रामिकों का यह यह धर्म है यथा विधि इसका व्यवहार करने वाले अपन कुल के उद्धारक होते हैं।।४७।।

पिपील्यादीनि भूतानि जङ्गमाश्च विहङ्गमाः। उपजीवन्ति सुश्रोणि गृहस्थेषु न संशयः।
एवं गृहाश्रमं मूलं धर्मं तत्र प्रतिष्ठितम्॥४८॥

मासि मासि तु ये श्राद्धं प्रवर्त्तन्ते गृहाश्रमे। तिथिपर्व विजानीयात् तर्पिताः पितृदेवताः॥४९॥

न यज्ञदानाध्ययनोपवासैस्तीर्थाभिषेकैरपि चाग्निहोत्रः।
दानैरनेकैर्विधिसंप्रदत्तैर्न तत्समं श्राद्धगृहस्थधर्मम्॥५०॥

निःसृतं मम गात्रेषु ब्रह्मगात्रेषु निःसृतम्। रुद्रगात्रेषु निःसृतं च त्रिषु स्थानेषु योजिताः॥५१॥

पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः। एवं क्रमेण चैतानि पितृदेवा वसुंधरे॥५२॥

देवताः कश्यपोत्पन्ना श्राद्धेषु विनियोजिताः। तत एते न जानन्ति देवाः शक्रपुरोगमाः॥५३॥

ईश्वरश्च न जानाति आत्मदेहविनिःसृतम्। न च ब्रह्मा विजानाति निःसृतं मम मायया।
एवं मायामयौ भूमि ब्रह्मरुद्रौ बहिष्कृतौ॥५४॥

पुनश्चान्यत् प्रवक्ष्यामि पितृयज्ञेषु सुन्दरि। दद्याद् ब्रह्ममुखे स्वामी न च जुह्वन्ति चाग्निषु॥५५॥

कृत्वा तु पिण्डसंकल्पं दर्भानास्तीर्य भूतले। तेन ते पितृपिण्डेन पितृदेवा वसुंधरे॥५६॥

अजीर्णोनाभिपीड्यन्ते भुञ्जते न च सुन्दरि। ततो दुःखेन संतप्ताः सोममेवाभिपद्यत॥५७॥

हे सुश्रोणि! चींटी आदि जैसे क्षुद्र जीव, गौ आदि स्थलचर जीव, काक आदि आकाशचारी जीव आदि सब निःसंशय गृहस्थाश्रम से ही आजीविका पाने वाले होते हैं। इस प्रकार गृहस्थाश्रम सांसारिक समस्त व्यवहार संचालन का मूल है। अतः उस गृहस्थाश्रम में ही सब धर्म सुप्रतिष्ठित हुआ करते हैं।।४८।।

प्रत्येक मास में तिथि और पर्व को जानकर जो जन गृहास्थाश्रम में श्राद्ध किया करते हैं, उनके द्वारा पितृदेवता अवश्य तृप्त हो जाया करते हैं।।४९।।

अतएव गृहस्थजन द्वारा सम्पादित श्राद्ध स्वरूप धर्म के सदृश कोई दूसरा यज्ञ, दान, अध्ययन, उपवास, तीर्थस्नान अथवा अग्निहोत्रादि धर्म नहीं है।।५०।।

इस प्रकार मेरे ब्रह्मा के और रुद्र के शरीर से उत्पन्न पितृत्व स्वरूप तत्त्व तीन स्थानों में नियोजित है।।५१।।

हे वसुन्धरे! क्रम-से पिता, पितामह और प्रपितामह, ये तीन पितृदेव कहे गये हैं।।५२।।

कश्यप से उत्पन्न देवगण श्राद्ध में विनियोजित किए गए हैं। अतः ये इन्द्र आदि श्रेष्ठ देवता भी इस तत्त्व को नहीं ही जानते हैं।।५३।।

फिर शंकर योन रुद्र और ब्रह्मा भी मेरी माया के अधीन अपने शरीर से उत्पन्न हुए पितृतत्त्व को हीं जाने। हे भूमि ! अतः मायामय ब्रह्मा एवं रुद्र श्राद्ध में निश्चित ही बहिष्कृत ही हैं।।५४।।

हे सुन्दरि! फिर से पितृयज्ञ में सम्पादित होने योग्य अन्यान्य विधि को बतला रहा हूँ। पितृयज्ञ में अग्नि में हाम नहीं करना चाहिए। इसके लिए ब्राह्मण का मुख ही उसका उचित अधिकारी है।।५५।।

हे वसुन्धरे! भूमि पर कुशा फैलाकर पिण्डदान का संकल्प करने के बाद पितृदेवों को उस पर पिण्डदान करना चाहिए।।५६।।

हे सुन्दरि! पुरातन काल में वे अजीर्ण से पीड़ित होकर भक्षण नहीं किया करते थे। फिर दुःख से संतप्त वे जन सोमलोक में पहुँच गए।।५७।।

दृष्ट्वा सोमेन सुश्रोणि देवताजीर्णपीडिताः। स्वागतेनाथ वाक्येन पूजितास्तदनन्तरम्॥५८॥

सोम उवाच

देवताः कस्य चोत्पन्नाः दुखिताः केन हेतुना। एवं तु भाषणस्य सोमस्य तदनन्तरम्।
ऊचुस्ते सोममेवाथ वाक्यं नः श्रूयतामिति॥५९॥

त्रयस्तु पितरो देवास्त्रयो देवेषु निर्मिताः। श्राद्धे नियोजितास्ताभिः पितृपिण्डेन तर्पिताः।
अजीर्णं भवते सोम ततः स्मः दुःखितास्त्रयः॥६०॥

सोम उवाच

सखाऽहं च भविष्यामि त्रयाणां च चतुर्थकः। सहितास्तत्र गच्छामो यथा श्रेयो भविष्यति॥६१॥
एवमुक्तास्तु सोमेन पितृदेवास्तदनन्तरम्। समं सोमेन गच्छन्ति श्रेयस्कामा वसुंधरे॥६२॥
शरण्यं शरणं देवं ब्रह्माणं पद्मसंभवम्। मेरुशृङ्गे सुखासीनं ब्रह्मर्षिगणसेवितम्॥६३॥
दृष्ट्वा पितामहं देवं प्रणम्य शिरसा क्षितौ। अत्रिपुत्रेण सोमेन भाषितो वै पितामहः॥६४॥
य एते पितरो देवाः दुःखिताजीर्णपीडिताः। आगताः शरणं चात्र सोमेन सहिता यथा।
यथा नश्यन्ति जीर्णानि तथा कुरु पितामह॥६५॥
मुहूर्त्तं ध्यानमादाय पश्यन् दिव्येन चक्षुषा। भाषते वचनं ब्रह्मा दिव्यं योगीश्वरं तथा॥६६॥

हे सुश्रोणि! पितृदेवों को अजीर्णता से सम्पीड़ित समझकर सोमदेवता अपने वचन से उनका स्वागत कर उन पितृदेवों का पूजार्चना की।।५८।।

सोमदेव ने कहा कि ये देवगण किससे उत्पन्न हैं और किस कारण दुःखी हैं? फिर उन पितृदेवों ने इस प्रकार कहने वाले सोमदेव से कहा कि आप मेरी बातों को सूनिये।।५९।।

हम सब तीन पितृदेव विष्णु, रुद्र और ब्रह्मा, इन तीन देवों के शरीर से उत्पन्न हैं। फिर उनके द्वारा हम श्राद्ध में नियोजित हैं। इस समय हम पितृपिण्ड से संतृप्त किए हुए हैं। हे सोम! हमें अजीर्ण हो गया है। इसी कारण हम तीनों अत्यन्त सम्पीड़ा अनुभव कर रहे हैं।।६०।।

सोमदेव ने कहा कि कैसे मैं आप तीनों का सखा ही होऊँगा। आप तीनों के साथ मैं भी चला करूँगा, जिससे सभी का कल्याण होगा।।६१।।

हे वसुन्धरे! फिर सोमदेव के इस प्रकार से कहे जाने पर श्रेय के आकांक्षी पितृदेव सोमदेव के साथ जाने लग गये।।६२।।

वे सब सुमेरु पर्वत पर ब्रह्मर्षियों से सेवित और सुखासन में स्थित कमल से उत्पन्न शरणदाता आश्रय स्वरूप ब्रह्मदेव के समीप पहुँच गए।।६३।।

फिर पितामह ब्रह्मदेव को देखकर अग्निपुत्र सोम ने पृथ्वी पर मस्तक झुका कर अभिवादन कर उन पितामह से इस प्रकार कहा—।।६४।।

हे पितामह! ये सब पितृदेव अजीर्ण से पीड़ित हैं और इसी से दुःखी हैं। अतः ये सब मेरे साथ आपकी शरण में पधारे हुए हैं। इनका अजीर्ण जैसे दूर हो, दूर करें।।६५।।

फिर मूहूर्त्त भर ध्यान धारण कर दिव्य नेत्रों से देखने के बाद ब्रह्मा ने देवलोक वासी योगेश्वर शंकर से कहा—।।६६।।

पितृदेवाः कुलोत्पन्ना दुःखिताजीर्णपीडिताः। आगताः शरणं चात्र सामेने सहिता मम।
आचक्ष्व निर्मिता येन यथा श्रेयो भवेत् ततः॥६७॥
ब्रह्मणा चैवमुक्तस्तु ईश्वरः परमेश्वरः। मुहूर्त्तं ध्यानमादाय दिव्यं योगं च माधवि॥६८॥
पश्यते ईश्वरं तत्र योगवेदाङ्गनिर्मितम्। विस्मयं परमं गत्वा ब्रह्माणं वाक्यमब्रवीत्॥६९॥
निर्मिता विष्णुना ब्रह्मन् मायैषा चैव वैष्णवी। प्रथमं पितरो देवा येन श्रेयो भवन्ति ते॥७०॥
पिता तु ब्रह्मदेवत्यो तव गात्रेषु निर्मितः। पितामहस्तु देवत्यो विष्णुगात्रेषु निर्मितः॥७१॥
प्रपितामहस्तु देवत्यो मम देहेषु विष्णुना। श्राद्धे नियोजितास्तत्र मर्त्त्येषु पितृदेवताः।
मानुषाणां हितार्थाय निर्मिता विष्णुमायया॥७२॥
तर्पिताः पितृपिण्डेन देवताजीर्णपीडिताः। आगताः शरणं ब्रह्मन् सोमेन सहिता यदि॥७३॥
येन नश्यन्ति कीर्णानि पितृदेवसुखं भवेत्। शृणु तत्त्वेन वक्षमि ब्रह्मलोकपितामह॥७४॥
शाण्डिल्यपुत्रस्तेजस्वी धूकेतुर्विभावसुः श्राद्धे तु प्रथमं तस्य दातव्यं मानुषेषु च।
सह तेनैव भोक्तव्यं पितृपिण्डविवर्जितम्॥७५॥
ईश्वरेणैवमुक्तस्तु ब्रह्मा कमलसंभवः। आहूय मनसा चैव आगतो हव्यवाहनः॥७६॥

हमारे ही कुल में उत्पन्न पितृदेव अजीर्ण से पीड़ित होकर दुःखी हैं, अतः वे सब सोम के साथ मेरे शरण में यहाँ आये हुए हैं। क्योंकि ये हमारे द्वारा ही उत्पन्न हैं, अतः जिस प्रकार भी इनका कल्याण हो, वह कहो।।६७।।

हे माधवि! ब्रह्माजी के इस प्रकार कहने पर परमेश्वर शंकर ने मूहूर्त्त भर ध्यान लगाकर दिव्य योग धारण किया।।६८।।

फिर श्रीशंकर ने वेदाङ्ग निर्मित योगस्वरूप ईश्वर विष्णु को देखा। फिर अत्यन्त विस्मित होकर उन्होंने ब्रह्मा से कहा—।।६९।।

हे ब्रह्मन् ! ये सब विष्णु की निर्मित की हुई वैष्णवी माया है। क्योंकि ये प्रथम पितृदेव हैं। अतः इनके कल्याणार्थ आपके शरण में आये हुए हैं।।७०।।

आपके शरीर से उत्पन्न पिता स्वरूप ब्रह्मदेवता है। विष्णु के शरीर से उत्पन्न पितामह स्वरूप देवता हैं।।७१।।

फिर श्री विष्णु ने ही मेरे शरीर से प्रपितामह देवता को उत्पन्न किया था। अतः सब मनुष्यों के लिए ये देवता श्राद्ध में नियोजित किए गए हैं। विष्णु की माया ने मनुष्यों को कल्याण हेतु ही इन सबकी उत्पत्ति की है।।७२।।

हे ब्रह्मन्! यदि पितृपिण्ड से तृप्त होने से अजीर्णावस्था को प्राप्त पितृदेवता सोम के साथ आपकी शरण में आये हैं, तो हे ब्रह्मलोकवासी पितामह! मैं फिर वह तत्त्व बतला रहा हूँ, जिससे इनका अजीर्ण दूर होकर इन पितृदेवों को सुख प्राप्त हो सकेगा, उसे सुनो।।७३-७४।।

तेजस्वी धूमकेतु अग्नि शाण्डिल्य के पुत्र हैं। मनुष्यों द्वारा किये जाने वाले श्राद्ध में प्रथम भाग इन्हें ही दिया जाना चाहिए। उ:के साथ ही अन्य सभी को पितृपिण्ड छोड़कर शेषभाग का ही भोग करना चाहिए।।७५।।

इस प्रकार से शंकर के कहे जाने पर कमलोत्पन्न ब्रह्मा ने मन से ही अग्नि का आवाहन किया । फिर वे अग्निदेव वहाँ आ पहुँचे।।७६।।

प्रदीप्ततेजसो वह्निः सर्वभक्षो हुताशनः। योजितः पञ्चयज्ञेषु ब्रह्मणा मम मायया॥७७॥
ब्रह्माऽग्निं भाषते तत्र शृणुष्व च हुताशन। भोक्तव्यं प्राथमं ब्रह्मन् पितृपिण्डविवर्जितम्।
त्वया भुक्ते तु भोक्ष्यन्ति देवताः समरुद्गणाः॥७८॥
भोक्तव्यं मध्यमश्राद्धं पथ्यमन्नं च वै सह। पश्चाद्दत्तं तु तं पिण्डं सह सोमेन भुञ्जते॥७९॥
ब्रह्मणा ह्येवमुक्तास्तु पितृदेवा हुताशनः। प्रस्थिताः सह सोमेन देवतास्ता वसुंधरे।
पितृयज्ञं वराराहे भक्षन्ति सहितास्तदा॥८०॥
एवं तु प्रथमं श्राद्धं दद्यादग्नेर्वसुंधरे। पितृपितामहोद्दिश्य तर्पयित्वा द्विजातयः।
पश्चात्पिण्डं विसर्जेत दर्भानास्तीर्य भूतले॥८१॥
पितुस्तु प्रथमं दद्याद् ब्रह्मांशे पितृदेवते। ततः पितामहायात्र रुद्रांशे मध्यमं स्मृतम्।
प्रपितामहाय च तथा दद्यात् पिण्डं महीतले॥८२॥
विधिना मन्त्रपूर्वेण श्राद्धं कुर्वन्ति ये नराः। तेषां वरं प्रयच्छन्ति देवतास्त्रीणि चोत्तमम्॥८३॥
मम मायानियोगेन कृतं श्राद्धं द्विजातिभिः। अपाङ्क्तेया यथा विप्रास्तत्र वक्ष्यामि सुन्दरि॥८४॥
नपुंसकाः कुलचराः श्वित्रिकाः पशुपालकाः। कुनखाः श्यावदन्ताश्च काणाश्च विकटोदराः॥८५॥

मेरी मायावश ब्रह्मा ने प्रदीप्ततेज वाले सर्वभक्षी हविष्भोगी अग्नि को पञ्चयज्ञों के निमित्त नियोजित किया।।७७।।

उस समय ब्रह्मा ने अग्नि से कहा कि हे ब्रह्मन् हुताशन! सुनो! पितृपिण्ड को छोड़कर अन्य भागों का प्रथम तुम भोग करना। तुम्हारे भोगने पर मरुद्गण सहित अन्य देवता भोग करेंगे।।७८।।

फिर वे सब देवगण एक साथ श्राद्ध में प्रदत्त पथ्य स्वरूप मध्यम अन्नभाग का भोग करेंगे। फिर सोम के सहित पितृगण अन्त में किये गए उस पितृपिण्ड का भोग कर सकेंगे।।७९।।

हे सुन्दरि वसुन्धरे! उस ब्रह्मा के इस प्रकार कहने पर सोम सहित पितृगण अग्नि और अन्य देवता पितृयज्ञ में पहुँचकर श्रद्धान्न का भोग करते हैं।।८०।।

हे वसुन्धरे! इस प्रकार से सर्वप्रथम अग्नि को श्राद्ध में अन्नभाग अर्पित करना चाहिए। फिर द्विजातियों को पृथ्वी पर कुश फैलाकर पिता-पितामह आदि के उद्देश से पिण्डदान अर्पण करना चाहिए।।८१।।

इस क्रम में प्रथम पिता को पिण्ड देना चाहिए। पिता ब्रह्मा के अंश स्वरूप पितृदेव होता है। फिर रुद्र के अंश स्वरूप पितामह को मध्यम पिण्ड प्रदान करने को कहा गया है। इसी तरह प्रपितामह के लिए पृथ्वी पर पिण्ड प्रदान करना चाहिए।।८२।।

इस प्रकार जो जन सविधि मन्त्र से श्राद्ध किया करते हैं, उन्हें ये तीनों देवता उत्तम वर प्रदान किया करते हैं।।८३।।

मेरी माया से नियोजित द्विजाति के लोग श्राद्ध करते हैं। हे सुन्दरि! उस श्राद्ध में जो अपाङ्क्तेय ब्राह्मण होते हैं, अब उसको बतलाया जाता है।।८४।।

नपुंसक, कुलपरम्पराविरोधी, श्वेतकुष्ठी, पशुपालक, कुनखी, काले दाँतो वाले, काने एवं बड़े पेट वाले, नृत्य करने वाले, गाने वाले, नाटक करने वाले, वेद विक्रयी, और सब प्रकार का यज्ञ करने वाले राजा के सेवक,

नर्त्तना गायनाश्चैव तथा रङ्गोपजीविनः। वेदविक्रयिणश्चैव सर्वयाजनयाजकाः॥८६॥
राजोपसेवकाश्चैव वाणिज्यक्रयविक्रयाः। ब्रह्मयोन्यां समुत्पन्नाः संकीर्णाः पतिताश्च ये॥८७॥
असंस्कारप्रवृत्ताश्च शूद्रकर्मोपजीविनः। शूद्रकर्मकरा ये च गणका ग्रामयाजकाः॥८८॥
दीक्षितः काण्डपृष्ठश्च यश्च वार्धुषिको द्विजः। विक्रेता गोरसानां च ये च वैश्योपजीविनः॥८९॥
तस्करा लेखकाराश्च याजका रङ्गकारकाः। तैलिका गिरिका ये च दाम्भिका ये च माधवि॥९०॥
सर्वकर्मकरा ये च सर्वविक्रयिणस्तथा। एतान् न भोजयेच्छ्राद्धे पित्रर्थेषु वसुंधरे॥९१॥
दूराध्वानगता ये च शूद्रकर्मोपजीविनः। रसविक्रयिणश्चैव चित्राकृत् तिलविक्रयी।
श्राद्धकाले तु संप्राप्तं राजसं तं विदुर्बुधाः॥९२॥
अन्ये ये दूषिता देवि द्विजरूपेण राक्षसाः। एतान् न पश्येच्छ्राद्धेषु पितृपिण्डेषु माधवि॥९३॥
अपाङ्क्तेयांस्तथा विप्रान् भुञ्जतः पश्यते द्विजान्।
पितरस्तस्य षण्मासं दुःखमृच्छन्ति दारुणम्॥९४॥
न्यस्तपात्रं द्रुतं कुर्यात् प्रायश्चित्तमुभौ चरेत्। घृतं तु जुहुयादग्नौ आदित्यं चावलोकयेत्॥९५॥
पुनश्चावपनं कृत्वा पितरश्च पितामहान्। गन्धपुष्पं च धूपं च दद्यादर्घ्यं तिलोदकम्।
यथाविधि च विप्राय भोजयेत पुनः शुचि॥९६॥

व्यापार के हेतु क्रय और विक्रय करने वाले और फिर जो ब्राह्मणी से उत्पन्न संकीर्ण एवं पतित होते हैं, विना संस्कार के ही व्यवहार करने वाले, शूद्रकर्म से जीविका उपार्जन करने वाले और शूद्र की सेवा करने वाले और जो गणक और ग्राम याजक होते हैं।।८५-८८।।

दीक्षित, काण्डपृष्ठ, सूदखोर, गोदुग्ध बेचने वाले, और जो वैश्य के कर्म द्वारा जीविका निर्वाह करने वाले ब्राह्मण होते हैं।।८९।।

हे माधवि! तस्कर, चित्रकार, याजक, नाटककार, तेली कृत्य करने वाले, पहाड़ से जीविका करने वाले और जो दाम्भिक होते हैं।।९०।।

हे वसुन्धरे! जो जन सब प्रकार का कार्य करने वाले तथा सब कुछ बेचने वाले होते हैं, उन्हें पितरों के निमित्त श्राद्ध में नहीं भोजन कराना चाहिए।।९१।।

मार्ग में दूर तक चले हुए, शूद्र के कर्म से जीविका निर्वाह करने वाले, रस विक्रयी, चित्रकार और तिल विक्रयी आदि को श्राद्ध में उपस्थित होने पर उस श्राद्ध को बुद्धिमान् जन राजस श्राद्ध कहते हैं।।९२।।

हे देवि माधवि! इन सबके अलावे अन्य भी जो ब्राह्मण रूपी राक्षस होते हैं, पितृपिण्ड के लिए होने वाले श्राद्ध में उनका दर्शन भी नहीं होना पुण्यप्रद कहा गया है।।९३।।

यदि पङ्क्ति से बहिष्कृत जन श्राद्ध में भोजन करने वाले ब्राह्मणों को देख लेता है, तो उसके पितर छः मासों तक भयानक कष्ट पाते हैं।।९४।।

इस प्रकार पङ्क्ति बहिष्कृत के देख लेने पर शीघ्र पात्र रखकर भोजन करने और कराने वाले दोनों ही प्रायश्चित्त करे तथा अग्नि में घी की आहुति देकर आदित्य का दर्शन भी करे।।९५।।

फिर से मुण्डन कराकर पितरों और पितामहों को गंध, पुष्प, धूप और तिलोदक का अर्घ्य प्रदान कर यथाविधि पवित्रता के साथ ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए।।९६।।

पुनश्चान्यत् प्रवक्ष्यामि शृणु तत्त्वेन सुन्दरि। ज्ञानशुद्धेन विप्रेण मन्त्रशुद्धिं यथाविधि॥९७॥
मृतान्नं ये न भुञ्जन्ति कदाचिदपि माधवि। वैश्वदेवेषु दातव्यं श्राद्धेषु च न योजयेत्॥९८॥
प्रेतभोज्यान्नभुञ्जानाः श्राद्धमर्हन्ति ये द्विजाः।
तेषां दोषं प्रवक्ष्यामि भुक्त्वा भोजयते तु सः॥९९॥
दम्भकारकृतोच्छिष्टं कृत्वा तु नरकं व्रजेत्। प्रायश्चित्तं प्रवक्ष्यामि यथा शुध्यन्ति ते नराः॥१००॥
माघमासे तु द्वादश्यां सर्पिर्युक्तं तु पायसम्। स लिहेन्मधुमांसेन तर्पयित्वा द्विजातयः॥१०१॥
सवत्सां कपिलां दद्यादुभयोः शुद्ध्यते तथा। पुनः श्राद्धं प्रकुर्वीत आत्मनः शुभमिच्छता॥१०२॥
स्नानोपलेपनं भूमे कृत्वा विप्रान् निमन्त्रयेत्। दन्तकाष्ठं विसर्ज्जीत ब्रह्मचारी शुचिर्भवत्॥१०३॥
यत्नेन मैथुनं श्राद्धे भोजयित्वा विसर्ज्जयेत्।
अमायां च विशालाक्षि दन्तकाष्ठं न खादयेत्॥१०४॥
आमायां तु च यो मूर्खो दन्तकाष्ठं हि खादति। हिंसितो भवे सोमो देवताः पितरस्तथा॥१०५॥
प्रभातायां तु शर्वर्यामुदिते च दिवाकरे। दिवाकीर्त्तिं ततो गृह्य विप्रस्य विधिपूर्वकम्।
श्मश्रुकर्म च कर्त्तव्यं नखानां छेदनानि च॥१०६॥

हे सुन्दरि! अब मैं तुम्हें कुछ अन्य तत्त्व बतला रहा हूँ। उसे सुनो। यथाविधि ज्ञान शुद्ध ब्राह्मण और मन्त्र से श्राद्ध की शुद्धि हुआ करती है।।९७।।

हे माधवि! जो जन कभी भी मृतक के निमित्त प्रदत्त अन्न नहीं खाते, उन्हें वैश्वदेव कर्म में अन्नादि प्रदान कराना चाहिए, किन्तु श्राद्ध में उन्हें नियोजित न करे।।९८।।

श्राद्ध के योग्य जो ब्राह्मण प्रेत के निमित्त प्रदत्त भोजन करते हैं, उनका दोष कहने जा रहा हूँ। वह भोजन कर दूसरों को भोजन कराता है।।९९।।

दम्भपूर्वक भोजन करने पर भोजन करने वाला नरक जाता है। वे जन जिससे शुद्ध होते हैं, वह प्रायश्चित्त कहने जा रहा हूँ।।१००।।

माघ मास की द्वादशी को मधु और मांस अर्थात् उड़द द्वारा ब्राह्मण को संतृप्त कर वह घृत युक्त पायस का भोजन करे। बछड़ा के साथ कपिला गाय का दान भी करना चाहिए। इस प्रकार श्राद्धकर्त्ता और भोजी दोनों ही शुद्ध हुआ करते हैं। फिर अपने कल्याण की कामना से पुनः श्राद्ध करना चाहिए।।१०१-१०२।।

हे भूमे! अपलेपन और स्नान कर ब्राह्मणों को आमन्त्रित करना चाहिए। उस दिन दन्तधाव का परित्याग करना चाहिए तथा ब्रह्मचर्य धारण पूर्वक पवित्रता का आलम्बवन करे।।१०३।।

हे विशालाक्षि! श्राद्ध में भोजन कराने पर प्रयत्न के साथ मैथुन को त्याग देना चाहिए और अमावास्या तिथि को दन्तधावन का भी भक्षण नहीं करना चाहिए।।१०४।।

जो मूर्खजन अमावास्या तिथि के दिन दन्तधावन रूप काष्ठ का भक्षण करते हैं, उनके द्वारा सोम देवता और पितर हिंसित हुआ करते हैं।।१०५।

रात्रि के बाद सुबह सूर्योदय हो जाने पर नापित को बुलाकर सविधि ब्राह्मण के श्मश्रु तथा केश का मुण्डन और नखच्छेदन कराना चाहिए।।१०६।।

स्नापनाऽभ्यञ्जने दद्यात् पितृभक्तेन सुन्दरि। पक्वान्नं तत्र वै कार्यं सुविमृष्टं च शुद्धितः॥१०७॥
वृत्ते तु तत्र मध्याह्ने श्राद्धारम्भ तु कारयेत्। स्वागं च तथा कृत्वा पाद्यार्घं मण्डलं शुचि।
पाद्यं दत्त्वा तु विप्राय गृहस्याभ्यन्तरं नयेत्॥१०८॥
आसनं कल्पयित्वा तु आवाह्य तदनन्तरम्। अर्घ्यं दत्त्वा विधानेन गन्धमाल्यैः प्रपूज्य च॥१०९॥
धूपं दीपं तथा वस्त्रं तिलोकदकमथपि वा। पात्रा च भोजनस्यार्थे विप्राग्रे धारयेत् तथा॥११०॥
भस्मना मण्डलं कार्यं पङ्क्तिदोषनिवारकम्। अग्निकार्यं ततः कृत्वा अन्नं च परिवेषयेत्॥१११॥
तत्र कार्योऽन्नसंकल्पः पितृनृदिश्य सुन्दरि। यथा सुखेन भोक्तव्यमिति ब्रूयाद् द्विजं प्रति॥११२॥
रक्षोघ्नमन्त्रपाठांश्च श्रावयेत विचक्षणः। तृप्तं तु ब्राह्मणं ज्ञात्वा दद्याद् वै विकिरं ततः।
उत्तरापोशनं दत्त्वा पिण्डप्रश्नं तु कारयेत्॥११३॥
दक्षिणाभिमुखो भूत्वा दर्भानास्तीर्य भूतले। पिण्डदानं प्रकुर्वीत पित्रादित्रितये तथा॥११४॥
पिण्डानां पूजनं कार्यं तन्तुवृद्ध्यै यथाविधि। ब्राह्मणस्य च हस्ते तु दद्यादक्षय्यमात्मवान्।
दक्षिणाभिः प्रतोष्यापि स्वस्ति वाच्य विसर्जयेत्॥११५॥

हे सुन्दरि! पितृभक्त पुरुष ब्राह्मण को स्नान कराये और अञ्जनादि प्रदान करे। फिरपवित्र होकर वहाँ सुन्दर पक्वान्न बनवाना चाहिए।।१०७।।

फिर वहाँ पर मध्याह्न के समय श्राद्ध का शुभारम्भ करना चाहिए। पवित्र होकर ब्राह्मण का स्वागत करते हुए मण्डल में उसे पाद्यार्थ प्रदान करना चाहिए। उस ब्राह्मण को पाद्यार्घ प्रदान करने के बाद उसे घर के अन्दर ले जाना चाहिए।।१०८।।

फिर आसन प्रदान कर उसका आवाहन करना चाहिए। फिर अर्घ्य प्रदान कर विधान के साथ गन्ध और माला से पूजा करना चाहिए।।१०९।।

फिर धूप, दीप, वस्त्र, तिलोदक और खाद्य पदार्थ हेतु पात्र ब्राह्मण के समक्ष रखना चाहिए।।११०।।

फिर भस्म द्वारा पक्ति दोष को दूर करने वाला मण्डल बनाना चाहिए। फिर अग्नि में हवनादि कार्य सम्पादित कर अन्न परोसना चाहिए।।१११।।

हे सुन्दरि! वहाँ पर पितरों के उद्देश्य से अन्न का संकल्प करना चाहिए और ब्राह्मणों से कहना चाहिए कि आपके सुखपूर्वक खाना प्रारम्भ करना चाहिए।।११२।।

फिर विद्वान जन उस समय रक्षोघ्न मन्त्र का पाठ भी करें और ब्राह्मण को संतृप्त हुआ जानकर विकिर याने अन्तिम शेष भोज्यान्न को पक्षी आदि को प्रदान करे। फिर आपोशन मन्त्र का पाठ कर पिण्ड प्रश्न करना चाहिए।।११३।।

दक्षिणाभिमुख होकर पृथ्वी पर कुश प्रसारित करे फिर पितादि तीन पितरों को वहाँ पिण्डदान करना चाहिए।।११४।।

फिर सन्तति की अभिवृद्धि के निमित्त यथाविधि उस पिण्ड की पूजा करनी चाहिए। फिर आत्मगुण सम्पन्न व्यक्ति को ब्राह्मण के हाथ में वह अक्षय पिण्ड प्रदान करना चाहिए। फिर दक्षिणा से ब्राह्मण को संतुष्ट कर उनसे पूजा करा और 'स्वस्ति' कहवा कर विसर्जन करना चाहिए।।११५।।

पिण्डास्त्रयस्तु वसुधे यावत् तिष्ठन्ति भूतले। आप्यायमानाः पितरस्तावत्तिष्ठन्ति वै गृहे॥११६॥
उपस्पृश्य शुचिर्भूत्वा दद्याच्छान्त्युदकानि च। प्रणम्य शिरसा भूमौ निवापस्य च धारिणीः।
वैष्णवी काश्यपी चेति अक्षया चेति नामतः॥११७॥
भक्षयेत् प्रथमं पिण्डं पत्न्यै देयं तु मध्यमम्। तृतीयमुदके दद्याच्छ्राद्धे एवं विधिः स्मृतः॥११८॥
पितृदेवान् विसर्जीत भक्त्या च प्रणमेत् तु तान्। एवं दत्तेन तुष्यन्ति पितृदेवा न संशयः।
दीर्घायुष्यं प्रयच्छन्ति पुत्रपौत्रधनानि च॥११९॥
ज्ञानोत्तमेषु विप्रेषु दद्याच्छ्राद्धं विधानतः। अन्यथा तत्तु वै श्राद्धं निष्फलं नास्ति संशयः॥१२०॥
मन्त्रहीनं क्रियाहीनं यः श्राद्धं कुरुते द्विजः। मद्भक्तस्यासुरेन्द्रस्य फलं भवति भागतः॥१२१॥
उद्धरेद् यदि पात्रं तु ब्राह्मणो ज्ञानवर्जितः। राक्षसैर्ह्रियते तच्च भुञ्जतस्तस्य सुन्दरि॥१२२॥
एतत् ते कथितं भद्रे पितृकार्यमनुत्तमम्। उत्पत्तिश्चैव दानं तु यत्पुण्यं कथितं मया।
अपरं चापि वसुधे किमन्यच्छ्रोतुतिमच्छति॥१२३॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे अष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१८८॥

हे वसुधे! वे तीन पिण्ड जिस समय तक इस पृथ्वी पर विद्यमान रहते हैं, उस समय तक पितृगण संतृप्तिपूर्वक गृह में रहा करते हैं।।११६।।

हे धारिणि! आचमन करने के बाद पवित्रतापूर्वक शान्त्युदक प्रदान करना चाहिए और फिर भूमि पर शिर रखकर प्रणाम करना चाहिए। वैष्णवी, काश्यपी और अक्षया नाम लेकर तीन देवियाँ श्राद्ध को धारण किया करती हैं। फिर प्रथम पिण्ड स्वयं श्राद्धकर्त्ता भक्षण करे। मध्यम पिण्ड अपनी पत्नी को प्रदान करे और तीसरा पिण्ड जल में विसर्जित करे। इस प्रकार की ही श्राद्ध विधि कही गयी है।।११७-११८।।

फिर पितृदेवों को विसर्जित कर उन्हें प्रणाम करना चाहिए। इस प्रकार पिण्डादि प्रादान करने से निःसंशय पितृदेव प्रसन्न हुआ करते हैं। फिर दीर्घायु तथा पुत्र, पौत्र, धन आदि भी प्रदान किया करते हैं।।११९।।

श्राद्ध में विधानपूर्वक ज्ञान सम्पन्न उत्तम ब्राह्मणों को ही दान देना चाहिए। अन्यथा निःसंशय वह श्राद्ध फ़लरहित हुआ करता है। जो ब्राह्मण जन मन्त्र शून्य और क्रिया रहित श्राद्ध करता है, उसके श्राद्ध के फल का भागी मेरा भक्त असुरराज बलि हो जाता है।।१२०-१२१।।

हे सुन्दरि! यदि ज्ञान रहित ब्राह्मण श्राद्ध में भोजन का पात्र ले लिया करता है , तो उस भोजन का फल राक्षस द्वारा अपहरण कर लिया जाता है।।१२२।।

हे भद्रे! मैंने तुमको यह श्रेष्ठ पितृकर्म को कहा है। मैंने इस प्रकार श्राद्ध की उत्पत्ति, उसमें दिये जाने वाले दान और श्राद्ध का जो फल मिलता है, वे सब बतला दिया है। हे वसुधे! अब तुम दूसरा कौन सा रहस्य जानना और सुनना चाहती हो, पूछो।।१२३।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में पुन: श्राद्ध विधान, नील वृष दान, आवश्यक कृत्य आदि कथन नामक एक सौ अट्ठासीवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायण-कुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१८८॥

❖❖❖

एकोननवत्यधिकशततमोऽध्यायः

अथ मधुपर्कोत्पत्तिः

सूत उवाच

एवं श्रुत्वा बहून् धर्मान् धर्मशास्त्रविनिश्चयान्। वराहरूपिणं देवं पुनः प्रपच्छ मेदिनी॥१॥

धरण्युवाच

एवं शास्त्रं मया देव तव वक्त्राद् विनिःसृतम्। श्रुतं सुबहुशश्चैव तृप्तिर्मम न विद्यते।
ममैवानुग्रहार्थाय रहस्यं वक्तुमर्हसि॥२॥
मधुपर्के तु किं पुण्यं कीदृशं च महत्फलम्।
कानि द्रव्याणि कस्तै च देयो विष्णो वदस्व मे॥३॥
ततो भूमेर्वचः श्रुत्वा योगमायाधरो हरिः। वराहरूपी भगवान् प्रत्युवाच वसुंधराम्॥४॥

श्रीवराह उवाच

शृणु भूमे प्रयत्नेन मधुपर्क मया कृतम्। उत्पत्तिं दानपुण्यं च यस्य वा दीयते यथा॥५॥
अहं ब्रह्मा च रुद्रश्च कृत्वा लोकस्य संक्षयम्।
अव्यक्तानि च भूतानि यानि कानि च सर्वथा॥६॥

अध्याय-१८९

मधुपर्क की उत्पत्ति और उसे देने का फल

श्रीसूतजी ने कहा कि इस तरह धर्मशास्त्र द्वारा विनिश्चय किये हुए बहुत से धर्मों के बारे में सुनकर धरणी ने फिर से वराहस्वरूप देव से पूछ दिया—।।१।।

धरणी ने पूछा कि हे देव! इस प्रकार आपके मुख से विनिःसृत शास्त्र को मेरे द्वारा सुना गया। आपसे बहुत कुछ सुनकर भी मेरा मन तृप्त नहीं हो सकता है। अतः मुझ पर ही आप अनुग्रह करने के लक्ष्य से कुछ और रहस्यात्मक तत्त्व को कहें।।२।।

इस मधुपर्क में ऐसा कौन सा पुण्य है और उसका किस प्रकार का महाफल है? किसमें और कौन-सा व्य मधुपर्क निर्माण हेतु देना चाहिए? हे विष्णु! आप मुझे इस मधुपर्क के बारे में यह बतलाने की कृपा करें।।३।।

फिर इस तरह से धरणी की बातें सुनकर योगामायाधारी वराहस्वरूप भगवान् श्री हरि ने धरणी से कहा—।।४।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि हे भूमे! मैंने मधुपर्क का निर्माण किया है। अतः उसको उत्पन्न करना, उसका दान करने का पुण्य और जिस-किसी को जिस प्रकार यह मधुपर्क दिया जाना चाहिए, इन सब को तुम सप्रयास सावधान होकर सुनो।।५।।

प्रलयकाल में मैं, ब्रह्मा और रुद्र ने लोकसंहार करने के बाद पञ्चमहाभूत आदि भी उस समय अव्यक्त हो गये।।६।।

ततो दक्षिणमङ्गेभ्यः पुरुषो मे विनिःसृतः। रूपवान् द्युतिमांश्चैव श्रीमान् कीर्तिरमाकरः॥७॥
तत्र पप्रच्छ मे ब्रह्मा मम गात्राद् विनिःसृतम्। यथैष तिष्ठते विष्णो त्रयाणां तु चतुर्थकः॥८॥
सरहश्च लघुदव एतत् तव न युज्यते। ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा मयाऽप्येवं प्रभाषितम्॥९॥
एष स मे समुद्भूतः सर्वकर्मविनिष्ठितः। मधुपर्केति विख्यातो भक्तानां भवभोक्षणः॥१०॥
मयाऽत्र संश्रितं ब्रह्मन् रुद्रे चापि समासतः। साधु विष्णुप्रभातत्वे यत्त्वया एष दर्शितः।
उद्भवं मधुपर्कस्य आत्मसंभवनिश्चयम्॥११॥
ततस्तु मां ब्रवीद् ब्रवी् ब्रह्मा कारणं मधुरं वचः। मधुपर्केण किं कार्यमेतदाचक्ष्व निष्कलम्॥१२॥
पितामहवचः श्रुत्वा मयाऽसौ प्रतिभाषितः। कारणं मधुपर्कस्य दानं संकरणं तथा॥१३॥
ममार्चनविधिं कृत्वा मधुपर्कं प्रयच्छति। ब्रह्मन् याति परं स्थानं एवमेतन्न संशयः॥१४॥
तस्य क्रियां प्रवक्ष्यामि मम दानपरिग्रहान्।
यस्य दानविधिं प्राप्य यान्ति दिव्यां गतिं मम॥१५॥
वृत्तेष्वेवोपचारेषु ये च ब्रह्मन् मम प्रियाः। संगृह्य मधुपर्कं वै इमं मन्त्रमुदाहरेत्॥१६॥

फिर मेरे दायें अंग से एक पुरुष प्रकट हुआ, जो सुरूपवान् तेजवान् , श्रीमान् कीर्त्तिमान् और लक्ष्मीवान् था।।७।।

उस समय ब्रह्माजी ने मुझसे ही मेरे शरीर से प्रकट हुए पुरुष के बारे में पूछ दिया कि हे विष्णो! हम तीनों के अतिरिक्त यह चौथा कौन है?।।८।।

हेदेव! इस एकाकी लघु पुरुष के साथ आपका स्थित रहना शुभदायक नहीं है। ऐसे ब्रह्मा के वचन को सुनकर मैंने भी उनसे यह कह दिया।।९।।

मेरे शरीर के दायें अंग से प्रकट हुआ यह लघु पुरुष सभी कर्मों में परिनिष्ठित है। भक्तों को संसार से मुक्ति प्रदान करने वाला यह पुरुष मधुपर्क इस नाम से जगत् में सुप्रसिद्ध होगा।।१०।।

मैं और रुद्र एक साथ ही इसमें विद्यामन हूँ। ब्रह्माजी ने कहा कि हे विष्णो! आप धन्य हैं, जो आपने तेजस्तत्व स्वरूप इस पुरुष को तथा अपने शरीर से इस मधुपर्क के प्रकट होने की आंत को हमं भी बतला दिया।।११।।

फिर ब्रह्मा ने मुझसे मधुर वाणी में पूछ दिया कि मधुपर्क से क्या करना चाहिए, ये सब भी मुझे स्पष्टता से बतला दें।।१२।।

इस प्रकार पितामह ब्रह्मा की बात सुनकर मैंने उनको मधुपर्क का कारण औरउसके प्रदान करने की विधि भी बतलायी।।१३।।

हे ब्रह्मन् ! जानिये कि जो जन मेरी पूजा विधि सम्पादित कर इस मधुपर्क को मुझे प्रदान करेगा, वह श्रेष्ठ स्थान प्राप्त करने वाला होगा।।१४।।

अतः मेरे उस मधुपर्क की क्रिया और उस दान को स्वीकारने का फल आगे आपसे कहने जा रहा हूँ। इस मधुपर्क का दान करने की विधि प्राप्त करने से मनुष्य मेरी दिव्य गति को पाने वाला हुआ करता है।।१५।।

हे ब्रह्मन् पूजा आदिकालिक उपचार पूर्ण करने के पश्चात् जो जन मेरे प्रिय भक्त हैं, वे मधुपर्क को ग्रहण कर इस मन्त्र को बोले।।१६।।

मन्त्रः-

ॐ एष भगवन् तव गात्रप्रसूतो। मधुपर्क उभौ महात्मानौ
संगृह्यते तव लोकनाथ। संसारमोक्षं च कुरुष्व देव॥१७॥
पुनरन्यत् प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व वसुंधरे। यादृशो मधुपर्को वै या च तस्य महत्क्रिया॥१८॥
घृतं दधि मधु चैव कारयेत समं तथा।
विधिना मन्त्रपूतेन यदीच्छेत् सिद्धिमुत्तमाम्॥१९॥
समासाद्य ततः कृत्वा मम कर्मपरायणः। उचितेनोपचारेण यत्त्वया परिपृच्छितम्॥२०॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे एकोननवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१८९॥

मन्त्रार्थ—ॐ हे लोकनाथ भगवान् ! आपके शरीर से प्रकट हुआ यह मधुपर्क आप और रुद्र, इन दोनों ही महात्मओं का संकलन करने वाला मात्र है। हेदेव! मुझे इस संसार से मुक्त करने की कृपा करें।।१७।।

हे वसुन्धरे! मैं तुमसे फिर दूसरे रहस्य को कहने जा रहा हूँ, उसे सुनो। यह मधुपर्क जिस प्रकार का होता है और उसकी जैसी महान् क्रिया होती है, उसे मैं आपसे आगे बतला रहा हूँ।।१८।।

यदि जिस किसी को उत्तम सिद्धि पाने की कामना हो, तो मन्त्र युक्त विधि से तुल्य प्रमाण में घृत, मधु और दधि को मिलाना चाहिए।।१९।।

फिर मेरा कर्म परायण भक्त जन उचित उपचार से मधुपर्क प्रदान करे। सारांश रूप में मधुपर्क का यही तत्त्व है, जिसे तुमने पूछा था।।२०।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में मधुपर्क की उत्पत्ति और उसे देने का फल नामक एक सौ नवासीवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१८९॥

नवत्यधिकशततमोऽध्यायः

अथ सर्वशान्तिविधानम्

सूत उवाच

श्रुत्वा तु मधुपर्कस्य उत्पत्तिं दानमेव च। पुण्यं चैव फलं चैव कारणं परमं तथा॥१॥
विस्मयं परमं गत्वा सा मही शंसितव्रता। पादौ गृह्य यथान्यायं प्रत्युवाच जनार्दनम्॥२॥
देव वृत्तोपचारेण तव यन्मनसि प्रियम्। किं च तत्रैव दातव्यं तव कर्मपरायणैः।
एतदाचक्ष्व तत्त्वेन तत्र यत्परमं महत्॥३॥

श्रीवराह उवाच

साधु भूमे महाभागे यन्मां त्वं परिपृच्छसि। कथयिष्यामि तत्सर्वं दुःखसंसारमोक्षणम्॥४॥
कृत्वा तु मम कर्माणि यत् त्वया पूर्वभाषितम्।
पश्चाच्छान्तिं च मे कुर्याद् भूमे राष्ट्रसुखावहम्॥५॥
सर्वकर्म ततः कृत्वा भूम्यां जानु निपात्य च। नमो नारायणेत्युक्त्वा इमं मन्त्रमुदाहरेत्॥६॥
ॐ नमो नमो वासुदेव त्वं गतिस्त्वं परायणम्। शरणं त्वां गतो नाथ संसारार्णवतारक॥७॥

अध्याय–१९०

सर्वशान्ति विधि, मृत्युकाल में मधुपर्क का फल, शान्त्याध्याय का पाठ और फल

श्रीसूतजी ने कहा कि इस प्रकार मधुपर्क की उत्पत्ति, दान, पुण्यफल तथा उसका परमकारण का वर्णन सुनकर कठिनतर व्रतधारण करने वाली धरणी परम विस्मित हो गई और अपने दोनों हाथों से प्रभु के पैरों को पकड़ कर उनसे पूछने लगी।।१-२।।

हे देव! आपके कर्मपरायण भक्तजन को आपकी पूजा करके वहाँ पर क्या प्रदान करना चाहिए, जो आपके मन को भी प्रिय हो। मुझे आप वास्तविक रूप से ये सब कहें, क्योंकि इस प्रसङ्ग में यह अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है।।३।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि हे महाभागे भूमे! धन्य हो, तुमने जो इस प्रकार मुझसे जिज्ञासा किया है। दुःख और इस संसार से मुक्त करने वाला ऐसा तत्त्व सम्पूर्णता से मैं तुमको आगे बतलाने जा रहा हूँ।।४।।

हे भूमे! तुमसे मैंने पहले जो कुछ कहा है, वे सब कर्म करके सम्पूर्ण राष्ट्र को सुखदायी शान्ति प्रदान करने वाला कर्म करना श्रेष्ठ है।।५।।

फिर समस्त कार्य सम्पादित कर भूमि पर घुटने के बल बैठते हुए 'नमो नारायणाय' बोलते हुए आगे कहा जा रहा मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए।।६।।

मन्त्रार्थ—ॐ वासुदेव को प्रणाम है, प्रणाम है। आप ही मेरी गति और परम शरण योग्य स्थान है। हे नाथ! आपकी शरण में पहुँचकर संसार समुद्र से पार उतरा जाता है।।७।।

आगतस्त्वं च सुमुख समचित्तेन वै पुनः। दिशः पश्य अधः पश्य व्याधिभ्यो रक्ष नित्यशः।
प्रसीदस्व सराष्ट्रस्य राज्ञः सर्वबलस्य च॥८॥
गर्भिणीनां च वृद्धानां व्रीहीणां च गवां तथा। ब्राह्मणानां च सततं शान्तिं कुरु शुभं कुरु॥९॥
अन्नं कुरु सुवृष्टिं चसुभिक्षमभयं तथा। राष्ट्रं प्रवर्द्धतु विभो शान्तिर्भवतु नित्यशः॥१०॥
देवानां ब्राह्मणानां भक्तानां कन्यकासु च। पशूनां सर्वभूतानां शान्तिर्भवतु नित्यशः॥११॥
प्रयतात्मा पठेच्छान्तिं मम कर्मपरायणः। पुनर्जलाञ्जलिं कृत्वा इमं मन्त्रमुदाहरेत्॥१२॥
योऽसौ भवान् सर्वजगत्प्रसूतिः यज्ञेषु देवेषु च कर्मसाक्षी।
शान्तिं भवान् कुर्वतु वासुदेव संसारमोक्षं च कुरुष्व देव॥१३॥
एष सिद्धिश्च कीर्त्तिश्च ओजसां तु महौजसम्। लाभानां परमो लाभो गतीनां परमा गतिः॥१४॥
एवं पठन्ति तत्त्वेन मम शान्तिं सुखावहाम्। मे ते मल्लयतां यान्तिपुनरावृत्तिवर्जिताः॥१५॥
एवं शान्तिं पठित्वा तु मधुपर्कं प्रयोजयेत्। नमो नारायणेत्युक्त्वा इमं मन्त्रमुदाहरेत्॥१६॥
योऽसौ भवान् देववरप्रसूतो मधुपर्कश्च समृद्धनामा।
आगच्छ संतिष्ठ इमे च पात्रे ममापि संसारविमोक्षणाय॥१७॥

हे सुमुख! आप आकर समभाव से समस्त दिशाओं में ऊपर और नीचे की ओर देखते हुए नित्य व्याधियों से रक्षा कर सकते हैं। आप राष्ट्र के साथ उसके राजा और उसकी सम्पूर्ण सेना पर प्रसन्न हो सकते हैं।।८।।

आप ही गर्भिणी स्त्रियों, वृद्धो, अनाथों, अनाजों, गायों, ब्राह्मणों आदि को सर्वदा शान्ति प्रदान कर सकते हैं और उनका कल्याण कर सकते हैं।।९।।

हे विभो! आप अन्न, सुवृष्टि, सुभिक्ष, अभय आदि प्रदान कर सकते हैं। इस राष्ट्र की अभिवृद्धि हो सके तथा नित्य निरन्तर सब जगह शान्ति का प्रसार हो।।१०।।

समस्त देवताओं, ब्राह्मणों, भक्तों, कन्याओं, पशुओं और समस्त जीवों को नित्य शान्ति प्रदान कर सकते हैं।।११।।

उपरोक्त प्रकार शान्ति पाठ करने के बाद मेरे कर्म परायण भक्तों को यह मन्त्र बोलना चाहिए।।१२।।

हे देव! आप सम्पूर्ण जगत् को उत्पन्न करने वाले तथा यज्ञों, देवताओं के कर्म करने के साक्षी हैं। अतः आप ही हे वासुदेव! संसार से मुक्ति का उपाय करें।।१३।।

आप ही सिद्धि, कीर्त्ति, तेजों में श्रेष्ठ तेज, लाभों में परमलाभ तथा गतियों में परमगति हैं।।१४।।

इस प्रकार जा वास्तविक रूप से मुझे सुख प्रदान करने वाला शान्ति का पाठ किया करते हैं, वे पुनरावृत्ति से मुक्त होकर मुझ में ही विलीन हुआ करते हैं।।१५।।

फिर शान्तिपाठ सम्पन्न कर मधुपर्क प्रयोग करना चाहिए। फिर 'नमो नारायणाय' कहकर अग्रोक्त मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए।।१६।।

आप श्रेष्ठतम देव के देह से उत्पन्न मधुपर्क, इस श्रेष्ठ नाम से भी सम्पन्न है। अतः आप यहाँ आयें और संसार से मुझे मुक्त करने हेतु इस पात्र में स्थित हो जाय।।१७।।

सर्पिर्दधि मधुश्चैव समं पात्रे उदुम्बरे। अलाभे मधुनो वाऽपि गुडेनसह मिश्रयेत्॥१८॥
घृतालाभे तु सुश्रोणि लाजैः सह विमिश्रयेत्। अलाभे वापि दध्नश्च क्षीरेण सह मिश्रयेत्॥१९॥
दधि मधु घृतं चैव कारयेत समं तथा। अहं दधि मधू रुद्रः सर्पिश्चापि पितामहः॥२०॥
सर्वेषामप्लाभे तु मम कर्मपरायणः। अप एव ततो गृह्य इमं मन्त्रमुदाहरेत्॥२१॥
मन्त्रः-योऽसौ भवान्नाभिमात्रप्रसूतो यज्ञैश्च मन्त्रैः सरहस्यजप्यैः।
सोऽयं मया ते परिकल्पितश्च गृहाण दिव्यो मधुपर्कनामा॥२२॥
यो ददाति महाभागे मयोक्तं विधिपूर्वकम्। सर्वयज्ञफलं प्राप्य मम लोकं प्रपद्यते।
अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व वसुंधरे॥२३॥
यो वै प्राणान् प्रमुच्येत मम कर्मपरायणः। तस्य चैवेह दातव्यो मन्त्रेण विधिपूर्वकम्॥२४॥
यावत्प्राणान् प्रमुच्येत कृत्वा कर्म सुपुष्कलम्। मद्भक्तेन तु दातव्यं सर्वसंसारमोक्षणम्॥२५॥
दृष्ट्वा तु विह्वलं ह्येनं मम कर्मपरायणः। मधुपर्कं परं गृह्य चेमं मन्त्रमुदाहरेत्॥२६॥
योऽसौ भवांस्तिष्ठसि सर्वदेहे नारायणः सर्वजगत्प्रधानः।
गृहाण चेमं सुरलोनाथ भक्तोपनीतं मधुपर्कसंज्ञम्॥२७॥

इस उदुम्बर के पात्र में घी, दही और मधु को समान परिमाण में मिलाकर ग्रहण करे। मधु न रहने पर उसे गुड़ से मिश्रित करना चाहिए।।१८।।

हे सुश्रोणि! घृत के अभाव में धान का लावा मिलाना चाहिए। फिर दही न रहने पर दूध मिलाना चाहिए।।१९।।

इस प्रकार मधु, दही, घृत को तुल्य प्रमाण में संयुक्त करना चाहिए। मैं दही हूँ, रुद्र मधु हैं और पितामह घृत रूप में स्थित होते हैं।।२०।।

फिर समस्त उपरोक्त पदार्थों के अभाव काल में जल से ही अग्रोक्त मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए।।२१।।

मन्त्रार्थ—जो जल यज्ञ और तत्त्वों सहित जप योग्य मन्त्रों के साथ आपके नाभि भाग से उत्पन्न हुआ, उसी को मैंने मधुपर्क नाम से आपके लिए अभिहित किया है, आप इसे अवश्य ग्रहण करेंगे।।२२।।

हे महाभागे! इस प्रकार मेरा बतलाया हुआ मधुपर्क सविधि मुझे ही अर्पित करता है, वह समस्त यज्ञों का फल प्राप्त करने वाला होकर मेरे लोक में चला जाता है। हे भूमे! तुमको अन्य भी रहस्य बतला रहा हूँ।।२३।।

मेरा कर्म परायण भक्त जन जो अपना प्राण त्याग करने को तत्पर हो, उसे सविधि मधुपर्क प्रदान करना चाहिए।।२४।।

अनेक कर्म करने के बाद कोई मनुष्य जन भी प्राण, परित्याग कर रहा हो उस समय मेरे भक्त द्वारा उसको सम्पूर्ण जगत् से मुक्त करने वाला मधुपर्क अवश्य ही दिया जाना चाहिए।।२५।।

मेरा कर्मपराण भक्त उस मरणासन्न मनुष्य को अत्यन्त विह्वल देखकर निश्चय ही श्रेष्ठ मधुपर्क ग्रहण कर इस मन्त्र का उच्चारण करे।।२६।।

मन्त्रार्थ—हे सुरलोकनाथ! समस्त संसार में जो प्रधान, नारायण आप सब प्राणी के शरीर में स्थित हैं, वे आप इस मधुपर्क नाम से अपने भक्त के इस उपहार को अवश्य ग्रहण करें।।२७।।

अनेनैव तु मन्त्रेण दद्याच्च मधुपर्ककम्। नरस्य मृत्युकाले तु दद्यात् संसारमोक्षणम्॥२८॥
एषोत्पत्तिर्महाभागे मधुपर्कस्य कीर्तिता। एवं कश्चिन्न जानाति मधुपर्कं वसुंधरे॥२९॥
एवं भूमि प्रदातव्यं मधुपर्कं शरीरिणाम्। यदिच्छेत् परमां सिद्धिं सर्वसंसारमोक्षणम्॥३०॥
अर्चित्वा वाऽप्यनर्चित्वा मम कर्मपरायणः। ददाति मधुपर्कं मे स याति परमां गतिम्॥३१॥
एष मन्त्रः पवित्रश्च शोधनं शुचिरेव च। कालः क्रिया च मन्त्रश्च मधुपर्कं मम प्रियम्॥३२॥
दीक्षिताय च दातव्यं यश्च शिष्यो गुरुप्रियः। न मूर्खाय प्रदातव्यमिदमध्यात्ममुत्तमम्॥३३॥
धारणे ग्रहणे वापि श्रुते च पठिते तथा। याति दिव्या परां सिद्धिं मधुपर्कस्य कारणात्॥३४॥
एतत् ते कथितं भद्रे मधुपर्कविभावनम्। सर्वसंसारमोक्षार्थं यदीच्छेत् सिद्धिमुत्तमाम्॥३५॥
राजद्वारे श्मशाने वा भये च व्यसने तथा। ये पठन्ति इमां शान्तिं शीघ्रं कार्यं भविष्यति॥३६॥
अपुत्रो लभते पुत्रमभार्यश्च प्रियां लभेत्। अपतिश्चैव भर्त्तारं बद्धो मुच्येत बन्धनात्॥३७॥

इस प्रकार किसी भी मनुष्य के मरण काल में इसी मन्त्र से संसार से मुक्त करने वाला मधुपर्क प्रदान करना श्रेष्ठ है।।२८।।

हे महाभागे! मैंने मधुपर्क की इस प्रकार से उत्पत्ति कथा को कहा है। हे वसुन्धरे! कोई इस प्रकार के मधुपर्क को जानता ही नहीं है।।२९।।

हे भूमे!अतएव सम्पूर्ण संसार से मुक्ति प्रदान करने वाली परम सिद्धि चाहिए तो शरीरधारी मनुष्यों को इस प्रकार मधुपर्क अवश्य देना चाहिए।।३०।।

इस प्रकार पूजन करने अथवा न करने पर भी मेरा कर्म परायण जो भक्त मधुपर्क प्रदान करता है, वह परमगति प्राप्त करने वाला होता है।।३१।।

अतः यह मन्त्र पवित्र, शुद्ध करने वाला, दोष मुक्त आदि है। मुझे प्रिय मधुपर्क का यह काल क्रिया और मन्त्र है।।३२।।

गुरु के प्रिय, दीक्षित शिष्य को ही इसका उपदेश करना चाहिए। यह उत्तम आध्यात्मिक ज्ञान मूर्ख मनुष्य को कथमपि नहीं देना चाहिए।।३३।।

गुरु के प्रिय, दीक्षित शिष्य को ही इसका उपदेश करना चाहिए। यह उरुम आध्यात्मिक ज्ञान मूर्ख मनुष्य को कथमपि नहीं देना चाहिए।।३३।।

मधुपर्क के कारण इस आध्यात्मिक तत्त्व को धारण करने, ग्रहण करने, सुनने अथवा पढ़ने से मनुष्य परम दिव्य सिद्धि प्राप्त कर लेता है।।३४।।

हे भद्रे! यदि किसी को भी उत्तम सिद्धि की कामना हो, तो सम्पूर्ण संसार से मुक्त करने के उद्देश्य से मैंने तुम्हें यह 'मधुपर्क' का प्रासङ्गिक ज्ञान तुम्हें प्रदान किया है, जिसे जानना चाहिए।।३५।।

इस प्रकार राजद्वार, श्मशान, भय अथवा व्यसन के समय जो इस शान्ति का पाठ करते हैं, उनका कार्य निश्चय ही शीघ्र सम्पन्न हो जाया करता है।।३६।।

फिर अपुत्र को पुत्र, स्त्री रहित को प्रिय पत्नि और पति हीना को पति की प्राप्ति होती है। फिर बन्धन में पड़ा मनुष्य बन्धन से मुक्त हो जाता है।।३७।।

एतत् ते कथिता भूमि महाशान्तिः सुखावहा। सर्वसंसारमोक्षार्थं रहस्यं परमं महत्॥३८॥
यस्त्वनेन विधानेन कुर्याच्छान्तिमनुत्तमाम्। सर्वसङ्गं परित्यज्य मम लोकाय गच्छति॥३९॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे नवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१९०॥

एकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

अथ कर्मविपाकनिरूपणम्

लोमहर्षण उवाच

व्यासशिष्यं महात्मानं वेदवेदाङ्गपारगम्। गङ्गाद्वारे समासीनं कृतपूर्वाह्णिकक्रियम्॥१॥
अश्वमेधे तथा वृत्ते राजा वै जनमेजयः। ब्रह्मवध्याभिभूतस्य दीक्षां द्वादशवार्षिकम्।
प्रायश्चित्तं चरित्वा तु आगतो गजसाह्वयम्॥२॥
उपगम्य महात्मानं जाह्नवीतीरसंश्रयम्। ऋषिं परमसंपन्नं वैशम्पायनमञ्जसा॥३॥

हे भूमे! इस प्रकार मेरे द्वारा तुमको अत्यन्त शान्ति और सुखप्रद यह परम महान् तत्त्व सम्पूर्ण संसार से मुक्ति केलिए कहा है।।३८।।

जो जन इस विधि विधान से श्रेष्ठ शान्ति कर्म किया करता है, वे जन समस्त आसक्तियों से मुक्त होकर मेरे लोक में चला जाता है।।३९।।

।।इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में सर्वशान्ति विधि, मृत्युकाल में मधुपर्क का फल, शान्त्याध्याय का पाठ और फल नामक एक सौ नब्बेवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ।।१९०।।

अध्याय-१९१

कर्मविपाक वर्णन के प्रसङ्ग में नचिकेतोपाख्यान

लोमहर्षण ने कहा कि वेदवेदाङ्ग पारगामी व्यासशिष्य महात्मा वैशम्पायन पूर्वाह्ण क्रिया सम्पन्न कर गंगा के किनारे अपने आसन पर आसीन थे।।१।।

फिर उधर अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न कर राजा जनमेजय दीक्षित होकर द्वादश वर्षों तक चलने वाले प्रायश्चित करके अपने हस्तिनापुर में वापस पहुँचे।।२।।

उसी समय वे गंगा के किनारे स्थित परम सम्पन्न महात्मा वैशम्पायन के पास विनम्र भाव से आ पहुँचे।।३।।

कर्मणा प्रेरितस्तेन चिन्ताव्याकुललोचनः। कुरूणां पश्चिमो राजा पश्चात्तापेन पीडितः।
व्यासशिष्यमुपामन्त्र्य प्रश्नमेनपृच्छत॥४॥

जनमेजय उवाच

भगवन् जायते तीव्रं चिन्तयानस्य सुव्रत। कर्मपाकफलं यस्मिन् मानुषैरुपभुज्यते॥५॥
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं कीदृशं तु यमालयम्। किं प्रमाणं च किं रूपं कथं गत्वा स पश्यति॥६॥
न गच्छेयं कथं विप्रा प्रेतराजो निवेशनम्। धर्मराजस्य धीरस्य सर्वलोकानुशासिनः॥७॥

सूत उवाच

एवं पृष्टो महातेजास्तेन राज्ञा द्विजोत्तमः। उवाच मधुरं वाक्यं राजानं जनमेजयम्॥८॥

वैशम्पायन उवाच

महाराज पुरावृत्तां कथां परशोभनाम्। धर्मवृद्धिकरीं नित्यां यशस्यां कीर्तिवर्द्धिनीम्॥९॥
पावनीं सर्वपापानां प्रवृत्तै शुभकारिणीम्। इतिहासपुराणानां कथां वै विदुषां प्रियाम्॥१०॥
कश्चिदासीत् पुरा राजन्नृषिः परमधार्मिकः। उद्दालक इति ख्यातः सर्ववेदाङ्गतत्त्ववित्॥११॥
तस्य पुत्रो महातेजा योगमास्थाय बुद्धिमान्। नाचिकेत इति ख्यातः सर्ववेदाङ्गतत्त्ववित्॥१२॥

अपने पूर्वकृत्कर्म से प्रेरित होकर चिन्ता से व्याकुल आँखों वाले और पश्चात्ताप के पीड़ा से युक्त उस कुरुवंश के अन्त्य राजा जनमेजय ने व्यास के शिष्य के समीप पहुँचकर उनसे अपनी जिज्ञासा को इस प्रकार प्रकट की।।४।।

जनमेजय ने कहा कि हे सुन्दर व्रत धारण करने वाले भगवन् ! विचारशील होने पर मुझको तीव्र दुःख अनुभव होने लग जाता है। मनुष्यों द्वारा किये हुए कर्म का फल जिस जगह भोगा जाता है, वह यमालय किस प्रकार का है? मुझे यह जानने की इच्छा है। उसका प्रमाण और स्वरूप किस प्रकार का है? वह जीव किस प्रकार उस जगह पहुँचकर उसको देख पाता है?।।५-६।।

हे विप्र प्रेतराज धर्म सम्पन्न सम्पूर्ण लोकों के अनुशासक उस धर्मराज के गृह में मैं किस प्रकार नहीं जा सकता हूँ।।७।।

सूत ने कहा कि उस जनमेजय राजा के इस तरह जिज्ञासा व्यक्त करने पर महातेजस्वी द्विजश्रेष्ठ ने राजा से अपनी मधुर वाणी में इस प्रकार कहा—।।८।।

वैशम्पायन ने कहा कि हे महाराज! पुरातन समय में घटित परम सुन्दर धर्म की वृद्धि करने वाली, यश प्रदान करने वाली और नित्य कीर्त्ति की वृद्धि करने वाली कथा एक है।।९।।

वह समस्त पापों से मुक्त कर शुद्ध करने वाली, शुभ कर्मों की ओर प्रावृत्त करने वाली और विद्वानों हेतु प्रिय इतिहास पुराणों की एक कथा है।।१०।।

हे राजन् ! पुरातन काल में कोई एक परम धार्मिक उद्दालक नाम का सभी वेदाङ्ग तत्त्वों के ज्ञाता ऋषि थे।।११।।

उनका नाचिकेत नाम का महातेजस्वी योग सम्पन्न और सम्पूर्ण वेदाङ्ग तत्त्व ज्ञाता एक पुत्र हुआ करते थे।।१२।।

तेन रुष्टेन शप्तोऽभूत् पुत्रः परमधार्मिकः। गच्छ शीघ्रं यमं पश्य मम क्रोधेन दुर्मते॥१३॥
तथेत्युक्त्वा महातेजाः पुत्रः परमधार्मिकः। चिन्तयित्वा मुहूर्त्तं तु योगमास्थाय बुद्धिमान्॥१४॥
क्षणेनान्तर्हितो जातः पितरं प्रत्युवाच ह। विनयात्प्रसृतं वाक्यं भावेन च समन्वितम्॥१५॥
मा भूद्वाक्यं च ते मिथ्या धार्मिकस्य कदाचन। गमिष्यामि पुरं रम्यं धर्मराजस्य धीमतः।
इह चैव पुनस्तावदागमिष्ये न संशयः॥१६॥

पितोवाच

एकस्त्वमसि वत्सश्च नान्यो बन्धुर्विधीयते। अधर्मं चानृतं चास्तु अकीर्तिर्वापि पुत्रक॥१७॥
मिथ्याभिसंशिनं तात यथेष्टं तारयिष्यसि। रोषेण हि मृषावादी निर्दयः कुलपांसनः॥१८॥
अप्रवृत्तस्य संभाष्यो योऽहं मिथ्याप्रयुक्तवान्। त्वां वै धर्मसमाचारमभिधानेन शप्तवान्॥१९॥
अहं पुत्र न सद्वादी न क्षमे धर्मदूषितम्। मम त्वं हि महाभाग नित्यं चित्तानुपालकः॥२०॥
धर्मज्ञश्च यशस्वी च नित्यं क्षान्तो जितेन्द्रियः। शुश्रूषुरनहंवादी शक्तस्तारयितुं मम।
याचितस्त्वं मया पुत्र गन्तुं वै तत्र नार्हसि॥२१॥
यदि वैवस्वतो राजा तत्र प्राप्तं यदृच्छया। रोषेण त्वां महातेजा विसृजेन्न कदाचन॥२२॥

एक बार उन ऋषि उद्दालक ने रुष्ट होने पर परम धार्मिक अपने पुत्र को शाप युक्त कर दिया, कहा कि 'हे दुर्बुद्धि! शीघ्र जाओ और मेरे क्रोध से यम का दर्शन करो।।१३।।

'ऐसा ही हो' यह बोलते हुए परम धार्मिक बुद्धिमान् पुत्र ने योगसाधन का मुहूर्त्त पर्यन्त ध्यान किया।।१४।।

इस प्रकार क्षण मात्र के लिए अन्तर्धान होकर उसने फिर आकर सविनय और सस्नेह पूर्ण वाणी में अपने पिता से यह कहा—।।१५।।

आप धार्मिक जनों का वचन कभी मिथ्या न हो। मैं बुद्धिमान् धर्मराज के रमणीय नगरी में जा रहा हूँ। मैं निःसंशय पुनः यहाँ भी वापस आऊँगा।।१६।।

पिता ने कहा कि हे पुत्र! तुम तो एकामत्र मेरे पुत्र हो। मेरा तो कोई दूसरा बन्धु भी नहीं है। मुझे अधर्म, असत्य भाषण का दोष अथवा अपकीर्त्ति भले ही हो जाय, तुम वहाँ नहीं जाओगे।।१७।।

हे तात! असत्य भाषण करने वाले मुझको, तुम स्वेच्छा से तार सकते हो। रोष वश कुलघाती निर्दयी मैंने असत्य भाषण किया है।।१८।।

मैंने जो कुछ मिथ्या कथन किया है, वह मेरा कथन कभी भी प्रवृत्त नहीं हो। मैंने क्रोधवश धर्माचरण सम्पन्न अपने पुत्र को शाप दिया है।।१९।।

हे पुत्र! मैं सत्यवादी नहीं ही हूँ। मैं धर्म विषयक दोष को नहीं सहन कर सकता। हे महाभाग! तुम नित्य ही मेरी इच्छा का पालन करने वाले हो।।२०।।

तुम नित्य धर्मज्ञ, यशस्वी, क्षमाशील, जितेन्द्रिय, सेवापरायण और अहंकार से विहीन हो। तुम मुझे तार सकते हो। हे पुत्र! मैं तुम से याचना करता हूँ कि तुम वह मत जाओ।।२१।।

वह विवस्वान् पुत्र यमराज स्वेच्छा से तुम्हें वहाँ देखकर क्रोधवश कभी भी तुमको वहाँ से वापस आने नहीं देंगे।।२२।।

विनश्येयमहं पश्य कुलसेतुविनाशनः। धिक्कृतः सर्वलोकेन पापकर्त्ता नराधमः॥२३॥
पूतेति नरकस्याख्या दुःखेन नरकं विदुः। पुतित्राणं भवेत् पुतमिहेच्छन्ति परत्र च॥२४॥
हुतं दत्तं तपस्तप्तं पितरश्चापि पोषिताः। अपुत्रस्य हि तत्सर्वं मोघं भवति निश्चयः॥२५॥

शुश्रूषवान् भवेच्छूद्रो वैश्यो वा कृषिजीवनः।
सम्यग्गोप्ता तु राजन्यो ब्राह्मणो वा स्वकर्मकृत्॥२६॥
तपो वा विपुलं तप्त्वा दत्त्वा दानमनुत्तमम्।
अपुत्रो नाप्नुयात् स्वर्गं यथा तात मया श्रुतम्॥२७॥

पुत्रेण लभते जन्म पौत्रेण तु पितामहः। पुत्रस्य तु प्रपौत्रेण मोदते प्रपितामहः॥२८॥
न हास्यामीति वत्स त्वां मम वंशविवर्द्धनम्। याच्यमानः प्रयत्नेन न तत्र गतुं न चार्हसि॥२९॥

वैशम्पायन उवाच

एवं विलपमानं तं पितरं प्रत्युवाच ह। हृष्टतुष्टमना भूत्वा पुत्रः परमधार्मिकः॥३०॥
न विषादस्त्वया कार्यो द्रक्ष्यसे माहिहागतम्। दृष्ट्वा च तमहं देवं सर्वलोकवशंकरम्॥३१॥
आगच्छामि पुनश्चात्र न च मे मृत्युतो भयम्। पूजयिष्यति मां तात राजा त्वदनुकम्पया॥३२॥

देखो, कुल की परम्परा का नाशक सब जनों से धिक्कार का पात्र पापकर्मी नराधम मैं तो नष्ट ही जो जा सकूंगा।।२३।।

नरक का नाम पुति है। दुःख से नरक का अनुभव होता है। इसी से लोग पुति अर्थात् नक एवं दुःख में रक्षार्थ इस लोक एवं परलोक के हेतु पुत्र की कामना किया करते हैं।।२४।।

फिर पुत्र रहितों द्वारा किया हुआ हवन, दान, तप और पितरों का तर्पण, ये सब निश्चय ही निष्फल ही हुआ करते हैं।।२५।।

फिर सेवारायण शूद्र, कषि से जीविका चलाने वाले वैश्य, भलीभाँति रक्षा करने वाले क्षत्रिय और अपना कर्म करने वाला ब्राह्मण भी पुत्र नहीं होने पर किसी तरह भी कृतार्थ नहीं होते।।२६।।

बहुत बड़ी तपस्या करने अथवा श्रेष्ठ दान देने से भी पुत्रहीन स्वर्ग नहीं प्राप्त कर पाता है। हे तात! मैंने तो ऐसा ही सुना है।।२७।।

पुत्र से पिता, पौत्र से पितामह और प्रपौत्र से प्रपितामह को आनन्द मिलता है।।२८।।

हे पुत्र मैं अपने वंश की वृद्धि करने वाले तुमको नहीं छोड़ूँगा। मैं प्रयासपूर्वक तुमसे याचना कर रहा हूँ। तुम वहाँ नहीं जाओगे।।२९।।

वैशम्पायन ने कहा कि परम धार्मिक पुत्र ने स्वस्थ और प्रसन्न मन से इस तरह से विलाप करने वाले अपने पितरों से कहा—।।३०।।

पुत्र ने कहा कि आपको किसी भी प्रकार से विषाद नहीं करना चाहिए। आप मुझे यहाँ वापस आया हुआ देख सकेंगे। मैं सम्पूर्ण लोकों को अधीन में रखने वाले उन देव का दर्शन कर यहाँ वापस आ जाऊँगा।।३१।।

मैं पुनः यहाँ वापस आ सकूद्रा। मुझे मृत्यु का भय नहीं है। हे तात्! आपकी अनुकृपा से यमराज मेरा सत्कार करने को बाध्य होंगे।।३२।।

सत्ये तिष्ठ महाभाग सत्यं च परिपालय। सत्यं स्वर्गस्य सोपानं पारावारस्य नौरिव॥३३॥
सूर्यस्तपति सत्येन वायुः सत्येन वाति च। अग्निर्दहति सत्येन सत्येन पृथिवी स्थिता॥३४॥
उदधिर्ल्लङ्घयेन्नैव मर्यादां सत्यपालितः। मन्त्राः प्रयुक्ताः सत्येन सर्वलोकहिताय ते॥३५॥
सत्येन यज्ञा वर्त्तन्ते मन्त्रपूताः सुपूजिताः। सत्येन वेदा गायन्ति सत्ये लोकाः प्रतिष्ठिताः॥३६॥
सत्यं गाति तथा साम सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम्। सत्यं स्वगश्च धर्मश्च सत्यादन्यन्न विद्यते॥३७॥

सत्येन सर्वं लभते यथा तात मया श्रुतम्।
न हि सत्यमतिक्रम्य विद्यते किञ्चिदुत्तमम्॥३८॥

देवदेवने रुेण देवगर्भः पुरा किल। सत्यस्थितेन देवानां परित्यक्तो महात्मना॥३९॥
दीक्षां धारयते ब्रह्मा सत्येनैव सुयन्त्रितः। औवणाग्निस्तथा क्षिप्तः सत्येन वडवामुखे॥४०॥
संवर्तेन पुरा तात सर्वे लोकाः सदैवताः। देवानामनुकम्पार्थं धृता वीर्यवता तदा॥४१॥

पाताले पालयन् सत्यं बद्धो वैरोचनोवसत्॥४२॥

वर्द्धमानो महाश्रृङ्गैः शतश्रृङ्गो महागिरिः। स्थितः सत्ये महाविन्ध्यो वर्द्धमानो न वर्द्धते॥४३॥

हे महाभाग! आप अपने सत्य पर दृढ़ व स्थिर रहें और सत्य का ही अनुपालन करते रहें। सत्य वैसे ही उस स्वर्ग का सोपान है, जैसे समुद्र में नौका।।३।।

सूर्य सत्य से ताप युक्त है। वायु भी सत्य से ही बहा करती है। अग्नि भी सत्य से ही जला करती है और पृथ्वी भी सत्य से ही स्थित है।।३४।।

सागर भी सत्य के कारण पालित मर्यादा की अवहेलना नहीं करता है। सत्य से ही अपेक्षित सम्बन्धित मन्त्र सम्पूर्ण लोकों का हित करता है।।३५।।

मन्त्र से पवित्र औरसुपूजित यज्ञसत्य से ही प्रवृत्त हुआ करते हैं। वेद भी सत्य का ही गान किया करते हैं और सब लोक सत्य में ही सुस्थापित हैं।।३६।।

सामवेद सदा सत्य का गान करता है और सभी सत्य में प्रतिष्ठित है। सत्य ही स्वर्ग एवं धर्म है। सत्य से भिन्न कुछ भी नहीं हैं।।३७।।

हे तात् मैंने भी यह सुना है कि सत्य से सब कुछ प्राप्त होता है। सत्य से अधिक श्रेष्ठ कोई अन्य तत्त्व नहीं है।।३८।।

पुरातन काल में देवदेव महात्मा रुद्र ने देवों को धारण करने हेतु सत्य में स्थित होकर देवगर्भ को छोड़ दिया था।।३९।।

अच्छी तरह से नियन्त्रित ब्रह्मा सत्य से ही दक्षा धारण किया करते हैं।सत्य से ही और्व ने बडवामुख समुद्र में अग्नि का प्रक्षेप कर सका था।।४०।।

हे तात् बलशाली सम्वर्त ने देवों पर दया कर देवां के साथ समस्त लोकों को धारण कर सका था।।४१।।
विरोचन के पुत्र बलि बँधे रहकर भी सत्य का पालन करते हुए ही पाताल में निवास किया करते हैं।।४२।।
सैकड़ों शिखरों वाला महापर्वत विन्ध्याचल सत्य में स्थित रह कर ही बड़ी-बड़ी चोब्यिों से नित्य निरन्तर रहने पर भी नहीं बढ़ रहा है।।४३।।

सर्वं चराचरमिदं सत्येन ध्रियते जगत्। गृहधर्माश्च ये दृष्टा वानप्रस्थाश्च शोभनाः।
यतीनां च गतिः शुद्धा ये चान्ये व्रतसंस्थिताः।४४॥
अश्वमेधसहस्त्रां च सत्यं च तुलया धृतम्। अश्वमेधसहस्त्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते॥४५॥
सत्येन पाल्यते धर्मो धर्मो रक्षति रक्षितः। तस्मात् सत्यं कुरुष्वाद्य रक्ष आत्मानमात्मना॥४६॥
एवमुक्त्वा तो हृष्टः स्वेन देहेन सुव्रत। तपसा प्राप्तयोगस्तु जितात्मा जितसंशयः॥४७॥
ऋषिपुत्रो महातेजाः सत्यवागनसूयकः। प्राप्तश्च परमं स्थानं यत्र राज्ञो यमस्य तु॥४८॥

।।इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे एकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१९१।।

सत्य द्वारा ही समस्त चराचर जगत् धारण किया गया है। जो जन गृहस्थ धर्म का पालन करते आ रहे हैं, जो सुन्दर वानप्रस्थ आश्रम के अनुगामी जन हैं, सन्यासियों की जो शुद्ध गति है तथा जो अन्यान्य व्रत धारण करने वाले जन हैं, उन सबसे श्रेष्ठतम सत्य ही है।।४४।।

हजारों अश्वमेध और सत्य को तुला पर रखने पर हजारों अश्वमेध से सत्य श्रेष्ठ ही सिद्ध ही हो सकेगा।।४५।।

सत्य से ही धर्म पालन होता है। रक्षा किया हुआ धर्म प्राणी की रक्षा करता है। अतः सत्य का पालन करना चाहिए और अपने द्वारा अपनी रक्षा करना चाहिए।।४६।।

हे सुन्दर व्रतधारण करने वाले! इस प्रकार कहकर प्रसन्नतापूर्व तपस्या द्वारा योग प्रापत जीवात्मा और संशय मुक्त ऋषिकुमार अपने देह सहित यमालय पहुँच गया।।४७।।

सत्यवक्ता, द्वेषशून्य, महातेजस्वी ऋषिपुत्र उस स्थान पर पहुँचा, जिस स्थान पर यमराज निवास किया करते हैं।।४८।।

।।इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में कर्मविपाक वर्णन के प्रसङ्ग में नचिकेतोपाख्याननामक अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ।।१९१।।

❖❖❖

द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

अथ कर्मविपाकप्रसङ्गे नाचिकेतोपाख्यानम्

वैशम्पायन उवाच

गतश्च परमं स्थानं यत्र राजा दुरासदः। अर्चितश्च यथान्यायं दृष्ट्वैव तु विसर्जितः॥१॥
ततो हृष्टमना राजन् पुत्रं दृष्ट्वा तपोनिधिः। परिष्वज्य च बाहुभ्यां मूर्ध्न्युपाघ्राय यत्नतः।
दिवं च पृथिवीं चैव नादयामास हृष्टवत्॥२॥
स संहृष्टमनाः प्रीतस्तानुवाच तपोधनान्। पश्यन्तु मम पुत्रस्य प्रभावं दिव्यतेजसः॥३॥
यमस्य भवनं गत्वा पुनः शीघ्रमिहागतः। पितृस्नेहानुभावेन गुरुशुश्रूयषयाऽपि च॥४॥
दैवेन हेतुना चायं जीवन् दृष्टो मया सुतः। लोके मत्सदृशो नास्ति पुमान् भाग्यसमन्वितः।
एष मृत्युमुखं गत्वा मम पुत्र इहागतः॥५॥
कच्चित् त्वं न हतो वत्स नैव बद्धो यमालये।
कच्चित् ते स शिवः पन्था गच्छतस्तव पुत्रक॥६॥
कच्चित् ते व्याधयो घोरा नान्वगच्छन् यमालये।
किमपूर्वं त्वया दृष्टं कच्चित् तुष्टो महातपाः॥७॥

अध्याय-१९२

यमलोक से वापस आये नचिकेता ऋषि सम्वाद

वैशम्पायन ने कहा कि वह ऋषिपुत्र नाचिकेत वहाँ पर पहुँच गया, जहाँ पर दुरासद राजा यमराज विद्यमान थे। फिर यथोचित रीति से उस ऋषिपुत्रा का सत्कार हुआ। फिर उसे देखकर यमराज ने उसे लौटा दिया।।१।।

हे राजन् ! फिर तपोनिधि ऋषि अपने पुत्रा को वापस आया देखकरी प्रसन्न होने लगा। फिर प्रयत्न के साथ उसका शिर सूँघकर और दोनों हाथों से आलिङ्गन कर हर्षातिरेक से आकाश और धरती को नाद सम्पन्न कर दिया।।२।।

इस प्रकार प्रसन्नचित्त उस ऋषि ने प्रीति के सहित उन तपोधन ऋषियों से कहा कि यह दिव्य तेज युक्त मेरे पुत्र का प्रभाव देखने योग्य है।।३।।

यहा यमराज के गृह पहुँच कर भी फिर से यहाँ वापस चला आया है। पितृस्नेह और गुरुजनों की सेवा का प्रभाव ही है कि भाग्यवश मैं अपने पुत्र को जीवित देख रहा हूँ। इस संसार में मेरे समान महाभाग्यवान् पुरुष नहीं हो सकता है। मेरा यह पुत्र मृत्यु के मुख से वापस यहाँ मेरे पास आ चुका है।।४-५।।

हे वत्स! क्या उस यम की नगरी में तुम्हें कोई मार नहीं दिया अथवा क्या तुम्हें वहाँ बाँधा नहीं गया। हे पुत्र! वहाँ जाते समय क्या मध्य मार्ग कल्याणप्रद था।।६।।

क्या तुमको यमपुरी में घोर व्याधियाँ नहीं हुयी। तुमने वहाँ क्या अपूर्व बात देखी? हे महातपस्वी क्या तुम सन्तुष्टि अनुभव कर रहे हो?।।७।।

कच्चिद् राजा त्वया दृष्टः प्रेतनामधिपो बली। परुषेण न
कच्चित् त्वां चक्षुषा पयते यमः॥८॥
कच्चिन्न तुष्टो भगवांस्त्वां दृष्ट्वा स्वयमागतम्। कच्चिच्छीघ्रं विसृष्टोऽसि धर्मराजेन पुत्रक॥९॥
कच्चिद्दौवारिकास्तत्र न रौद्रास्त्वां यमालये। कच्चिद् राज्ञा विसृष्टे तु नाबाधन् तेतरे जनाः।
कच्चित् पन्थास्त्व्या लब्धो निर्गतो वा यमालये॥१०॥
अयं ममसुतः प्राप्तः प्रसन्ना मम देवताः। ऋषयश्च महाभागा द्विजाश्च सुमहाव्रताः।
यन्मे वत्स पुनः प्राप्तो यमलोकाद् दुरासदात्॥११॥
एवमाभाषमाणं तु श्रुत्वा सर्वे वनौकसः। त्यक्त्वा व्रतानि सर्वाणि नियमांश्च तथैव च।
जपन्तश्चैव जाप्यानि पूजयन्तश्च देवताः॥१२॥
उदूर्ध्वबाहवः केचित् तिष्ठन्त्यन्ये सुदारुणम्। एकपादेन तिष्ठन्ति पश्यन्त्यन्ये दिवाकरम्॥१३॥
एवमेवं परित्यज्य नियमान् पूर्वसंचितान्। वैश्वानरा महाभागास्तपसा संशितव्रताः।
आगतास्त्वरितं द्रष्टुं नाचिकेतं सुतं तदा॥१४॥
दिग्वाससश्च ऋषयो दन्तोलूखलिनस्तथा। अश्मकुट्टाश्च मौनाश्च शीर्णपर्णाम्बुभोजनाः।
धूमपाश्च तथा चान्ये तप्यमानाश्च पावके॥१५॥

क्या वहाँ प्रेतों के बलवान् राजा यम ने तुम्हें कठोर दृष्टि से तो नहीं देखा? स्वयं वापस आये हुए तुम्हें देखकर क्या भगवान् यमराज सन्तुष्ट हुए थे? हे पुत्र! क्या धर्मराज ने तुमको शीघ्र लौट जाने दिया?॥९॥

क्या वहाँ यमालय में तुमको भयंकर द्वारपाल नहीं मिले? राजा के लौटा देने पर भी क्या तुम्हें दूसरों दूसरों ने कोई कष्ट नहीं दिया? हे पुत्र! क्या तुमको उस यमालय में प्रवेश और निवास का मार्ग मालूम हो गया है॥१०॥

मेरा यह पुत्र वापस आ गया। मेरे देवगण, ऋषिगण महाभाग सुन्दर व्रतधारी द्विजजन मेरे ऊपर अवश्य प्रसन्न हैं, जिस कारण मेरा पुत्र भयानक यमपुर से वापस लौट आने में सफल हो गया है॥११॥

इस प्रकार से बोलते हुए सुनकर समस्त वन निवासी जन अपने व्रतों और नियमों को छोड़कर उनके समीप पहुँच गये। जप करने वालों को जप तथा देव पूजकों ने पूजन करना छोड़ कर उनके समीप आ पहुँचे॥१२॥

कुछ जन ऊपर की ओर हाथ उठाये हुए ही खड़े रहने वाले थे, कुछ जन अत्यन्त कष्ट से एक पैर से खड़े रहने वाले थे तथा अन्य कुछ जन सूर्य की ओर निरन्तर ही देखते रहने वाले थे॥१३॥

उस समय इस प्रकार पूर्व से संकल्प किये जन नियम पालन को छोड़कर वे सब महाभाग और तीव्रव्रत करने वाले तपस्वी ऋषिजन शीघ्र नाचिकेत-पुत्र को देखने आने लगे॥१४॥

उनमें कुछ मुनिजन दिगम्बर थे, कुछ दन्त से ही आहार करने वाले थे, कुछ ओखली में कूटकर आहार करने वाले थे, तो उनमें कुछ जन पत्थर पर कूटकर आहार लेने वाले थे, कुछ जन मौन व्रत धारण करने वाले थे, तो कुछ जन गिरे पत्तों तथा जल से आहार करने वाले थे। फिर अन्य भी कुछ जन थे, जो धूम्रपान करने का व्रत करने वाले थे और कुछ जन चारों ओर प्रज्वलित अग्नि में तप करने वाले थे॥१५॥

परिवार्य तथा दृष्ट्वा तस्य पुत्रं तपोनिधिम्। उपविष्टास्तथाश्चान्ये स्थिताश्चान्ये सुयन्त्रिताः॥१६॥
ते सर्वे तं तु पृच्छन्ति ऋषयो वेदपारगाः। नाचिकेतसुतं दृष्ट्वा यमलोकादिहागतम्॥१७॥
भीतास्त्रस्ताः स्थिता दृष्ट्वा केचित् कौतूहलान्विताः।
केचिद् विमनसश्चैव केचित् संशयवादिनः।
तमूचुः सहिताः सर्वे ऋषिपुत्रं तपोधनम्॥१८॥

ऋषय ऊचुः

भो भो सत्यव्रताचार गुरुशुश्रूषणे रत। नाचिकेत सुत प्राज्ञ स्वधर्मपरिपालक॥१९॥
ब्रूहि तत्र तथा सत्यं यथादृष्टं यथाश्रुतम्। ऋषीणां श्रोतुकामानां पितुश्चैव विशेषतः॥२०॥
अपि गुह्यं च वक्तव्यं पृष्टे सति विशेषतः। सर्वस्यापि भयं तीव्रं यमद्वारात् प्रदृश्यते॥२१॥
मृते नैव परं तात दृश्यते कालमायया। स्वकर्म भुज्यते तात प्रयत्नेन च मानवैः।
इह चैव कृतं यत्तु तत्परत्रोपभुज्यते॥२२॥
करोति यदि तत्कर्म शुभं वा यदि वाऽशुभम्। तथाऽत्र दृश्यते काले कालस्यैव तु मायया॥२३॥
म्रियते च यथा जन्तुर्यथा गर्भे च तिष्ठति। तस्य पारं न च्छन्ति बहवः पारचिन्तकाः॥२४॥

फिर भी वे एकत्रित होकर उसके तपस्वी पुत्र को देखकर घेर कर खड़े हो गए। अन्य कुछ लोग बैठ गये और अन्य जन शान्तिपूर्वक खड़े ही रहे।।१६।।

इस प्रकार वेदतत्त्व के पूर्ण ज्ञान रखने वाले उन सभी ने यमलोक से वापस आये हुए पुत्र नाचिकेत को देख-भाल कर उससे कुछ-कुछ पूछने भी लगे।।१७।।

फिर उस पुत्र को देखकर कुछ जन भय और आतंक से युक्त हो चुके थे। कुछ जन उत्सुकता युक्त थे, कुछ जन उदासीन भी थे फिर कुछ जन ऐसे भी थे, जो सन्देह कर रहे थे। उन सभी ने एकमत से तपोधन पुत्र ऋषिपुत्र से पूछ दिया कि—।।१८।।

ऋषियों ने कहा कि हे सत्यव्रत का आचरण करने वाले और गुरुजनों की सेवा में संलग्न रहते हुए अपने धर्म का पालन करने वाले बुद्धिमान् पुत्र नाचिकेत! सुनने की कामना वाले ऋषियों और विशेषतः आगे पिता को वे सब सत्य वृत्तान्त बतलाओ, जो तुमने देखा और सुना हो।।१९-२०।।

इस प्रकार विशेष रूप से पूछने का मतलब है कि तुम समस्त गुप्त रहस्यात्मक बातें भी सबको बतलाओ, इसलिए कि सभी को यम के द्वारा तीव्र भय होते देखा जाता है।।२१।।

हे तात! काल की माया के कारण मर जाने पर कोई प्राणी नहीं दीखता है। हे तात! मनुष्य प्रयासपूर्वक अपने कर्म का फल भोगा करते हैं। जो यहाँ किया जाता है, उसका फल वहाँ परलोक में भोगना पड़ता है।।२२।।

काल की ही माया से मनुष्य जो शुभ वा अशुभ कर्म किया करता है, उसका फल समय पर इस लोक में दीख पड़ता है।।२३।।

विभिन्न उत्कृष्टतम विचारकों ने भी इस तथ्य का अन्तिम ज्ञान आज तक नहीं कर पाये हैं, कि मनुष्य कैसे मरता है, तथा कैसे गर्भ निवास करता है?।।२४।।

तत्र स्थिते जगत्सर्वं लोभमोहतमोवृतम्। चिन्तयेत न चिन्ताऽत्र मृगयन्ति च यद्धितम्॥२५॥

करोति चित्रगुप्तः किं किं च जल्पत्यसौ पुनः।
धर्मराजस्य किं रूपं कालो वा कीदृशो मुने॥२६॥

किंरूपा व्याधयश्चैव विपाको वाऽपि कीदृशः।
किं च कुर्वन् प्रमुच्येत किं वा कर्म समाचरेत्॥२७॥

आस्पदं सर्वलोकस्य तत्कर्म दुरतिक्रमम्। क्रोधबन्धनजं क्लेशं कर्षणं छेदजं तथा॥२८॥

येन गच्छन्ति विप्रेन्द्र लोकान् कर्मविदो जनाः।
जितात्मानः कथं यान्ति कथं गच्छति पापकृत्॥२९॥

यथा श्रुतं यथा दृष्टं यथा चैवावधारितम्। प्रणयात् सौहृदात् स्नेहादस्माभिरभिपृच्छितम्।
तद सर्वं महाभाग यथातथ्येन विस्तरम्॥३०॥

वैशम्पायन उवाच

ऋषिभिस्त्वेवमुक्तस्तु नाचिकेतो महामनाः। यदुवाच महाराज शृणु तज्जनमेजय॥३१॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१९२॥

वहाँ रहने पर प्राणी लोभ और मोहरूपी अन्धकार से आवृत्त सम्पूर्ण जगत् की चिन्ता करता है, अथवा यहाँ की चिन्ता उसे नहीं हुआ करती है। वहाँ वे किस हितकारक पदार्थ का शोध करते हैं।।२५।।

चित्रगुप्त कथा करते हैं तथा वे क्या कहते हैं? हे मुने! धर्मराज का स्वरूप किस प्रकार का है और वह काल कैसा है।।२६।।

वहाँ पर व्याधियों का क्या रूप है और विपाक याने कर्म फल कैसा होता है? क्या करने से मुक्ति प्राप्त हो जाती है। फिर क्या करने चाहिए?।।२७।।

समस्त जीवों हेतु वहाँ दुष्कर कर्मों का स्थान है। यमलोक में रोष के साथ किये गए बन्धन से होने वाले कर्षण और छेदन से होने वाले क्लेश कैसा होता है?।।२८।।

हे विप्रेन्द्र! कर्म को जानने वाले जन किस मार्ग में वहाँ जाते हैं? जीवात्मा वहाँ कैसे जाया करते हैं तथा पिर पाप करने वाले जन कैसे जाया करते हैं।।२९।।

हे महाभाग! हम सभी प्रीति, सद्भावना और स्नेह से तुमसे यह जानना चाहते हैं कि तुमने जैसा सुना, देखा और निश्चय किया हो, वे सब विस्तार से वास्तविक रूप से हम सभी को बतलाओ।।३०।।

वैशम्पायन ने कहा कि हे महाराज जनमेजय! ऋषियों द्वारा इस तरह पूछे जाने पर महामनस्वी नाचिकेत ने जो कुछ कहा उसे आगे कहने जा रहा हूँ।।३१।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में कर्मविपाक वर्णन के प्रसङ्ग में नचिकेतोपाख्यान नामक एक सौ बानवेवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१९२॥

❖❖❖

त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

अथ नाचिकेतेन पापपुण्यात्मककथनम्

नाचिकेत उवाच

कथ्यमानं मया विप्राः शृण्वन्तु तपसि स्थिताः। प्रणम्य तस्मै देवाय धर्मराजाय धीमते।
संसारं तु यथाशक्त्या कथ्यमानं निबोधत॥१॥
असत्यवादिनो ये च जन्तुस्त्रीबालघातकाः। तथा ब्रह्महणः पापा ये च विश्वासघातकाः॥२॥
ये ये शठाः कृतघ्नाश्च लोलुपाः पारदारिकाः। कन्यानां दूषका ये च ये च पापरता नराः॥३॥
वेदानां दूषितारश्च वेदमार्गविहिंसकाः। शूद्राणां याजकाश्चैव हाहाभूता द्विजातयः॥४॥
अयाज्ययाजकाश्चैव ये कुबुद्धियुता नराः। सुरापो ब्रह्महा चैव यो द्विजो वीरघातकः॥५॥
तथा वार्धुषिका ये च जिह्मप्रेक्षाश्च ये नराः। मातृत्यागी पितृत्यागी यः स्वसाध्वीं परित्यजेत्॥६॥
गुरुद्वेषी दुराचारो दूताश्चाव्यक्तभाषिणः। गृहक्षेत्रहरा ये च सेतुबन्धविनाशकाः॥७॥
अपुत्राश्चाप्यदाराश्च श्रद्धया च विवर्जिताः। अशौचा निर्दयाः पापा हिंसका व्रतभञ्जकाः।
सोमविक्रयिणश्चैव स्त्रीजितः सर्वविक्रयी॥८॥
भूम्यामनृतवादी च वेदजीवी च यो द्विजः। नक्षत्री च निमित्ती च चाण्डालाध्यापकस्तथा॥९॥

अध्याय–१९३

पापियों और पुण्यात्मा से जुड़े यमलोक विषयक प्रश्न

नाचिकेत ने कहा कि हे तप में स्थित रहने वाले ब्राह्मणों! मेरे द्वारा यमलोक का वृत्त बतलाया जा रहा है, आप सब सुनें। उन बुद्धिशाली धर्मराज देव को नमस्कार कर यथाशक्ति बतलाये जा रहे परलोक का वर्णन आप सबको सुनना भी चाहिए।।१।।

झूठ बोलने वाले! जीवों-स्त्रियों-बालकों की हत्या करने वाले, ब्रह्महत्यारे, जो विश्वासघात करने वाले, शठ, कृतघ्न, लालची, परस्त्रीगामी, कन्याओं के साथ बलात्कार करने वाले तथा पाप में रत रहने वाले, वेदों को दूषित करने वाले, वेदमार्ग को नष्ट करने वाले, शूद्रों का यज्ञ कराने वाले द्विजाति आदि जन घोर शोक के भागीदार होते हैं।।२-४।।

ऐसे जन, जो यज्ञ करने के अयोग्य जनों से यज्ञ कराने वाले, दुर्बुद्धि से युक्त, मद्य पीने वाले जन, ब्रह्महत्यारे और वीरघाती द्विजजन, सूदखोर, कुटिल विचार वाले, माता-पिता का त्याग करने वाले, पतिव्रता पत्नी का त्याग करने वाले जन हैं।।५-६।।

गुरु से द्वेषभाव रखने वाले , दुराचारी, अस्पष्टवक्ता दूत, पराये गृह और खेत का अपहरण करने वाले जन, पुल और बाँधों को विनष्ट करने वाले जन हैं।।७।।

पुत्र और पत्नी से हीन जन, श्रद्धाहीनजन, शौचहीन, निर्दयी, पापी, हिंसक, व्रत तोड़ने वाले जन, सोम को बेचने वाले, स्त्रीजित, सब कुछ बेच देने वाले जन हैं।।८।।

ऐसे जन जो ब्राह्मण की भूमि हेतु झूठ बोलने वाले जन, वे से जीविका चलाने वाले जन जीविका हेतु नक्षत्र और शकुन विचार करने वाले जन, चाण्डाल के अध्यापक जन हैं।।९।।

सर्वमैथुनगामी च अगम्यागमने रतः। मायिका रतिकाश्चैव तुलाधाराश्च चे नराः॥१०॥
सर्वपापसुसङ्घाश्च चिन्तका ये च वैरिणाम्। स्वाम्यर्थे न हता ये च ये च युद्धपराङ्मुखाः॥११॥
परवित्तापहारी च राजघाती च यो नरः। अशक्तः पापपोषश्च तथा ये ह्यग्निजीविनः॥१२॥
शुश्रूषया च मुक्ता ये लिङ्गिनः पापकर्मिणः। पानागारी च चक्री च नरा ये चाप्यधार्मिकाः॥१३॥
देवागारांश्च सत्रांश्च तीर्थविक्रयिणस्तथा। व्रतविद्वेषिणो ये च तथाऽसद्वादिनो नराः॥१४॥
मिथ्या च नखरोमाणि धारयन्ति च ये नराः। कूटा वक्रस्वभावाश्च कूटशासनकारिणः॥१५॥
अज्ञानादव्रती यश्च यश्चाश्रमबहिष्कृतः। विप्रकीर्णप्रतिग्राही सूचकस्तीर्थनाशकः।
कलहश्च प्रतर्कश्च निष्ठुरश्च नराधमः॥१६॥
एते चान्ये च बहवो ह्यनिर्दिष्टाः सहस्रशः। स्त्रियश्च पुरुषाश्चैव यत्र गच्छन्ति तच्छृणु॥१७॥
कुर्वन्तीह यथा सर्वे तत्र गत्वा यमालये। तानि तत्कथयिष्यामि श्रूयतां द्विजसत्तमाः॥१८॥

वैशम्पायन उवाच

एवं तस्य वचः श्रुत्वा सर्व एव तपोधनाः। प्रपच्छुर्विस्मयाविष्टा नाचिकेतमृषिं तदा॥१९॥

ऋषय ऊचुः

त्वया सर्वं यथादृष्टं ब्रूहि तत्त्वविदांवर। यथास्वरूपः कालोऽसौ येन सर्वं प्रवर्तते॥२०॥

सबके साथ मैथुन करने वाले जन, अयोग्य और अगम्यागमन करने वाले जन, माया के द्वारा रतिकार्य करने वाले जन, तुला धारण करने वाले जन आदि होते हैं।।१०।।

संगठित होकर सब तरह के पाप को करने वाले, वैरियों की चिन्ता करने वाले, स्वामी के हितार्थ प्राण त्याग नहीं करने वाले, युद्ध में पीठ दीखाने वाले आदि जन होते हैं।।११।।

दूसरों का धन चुराने वाला, राजा के घात पहुँचाने वाला, शक्तिहीन, पाप को पुष्ट करने वाला, अग्नि से जीविका चलाने वाला आदि जन होते हैं।।१२।।

सेवा रहित जन, सन्यास आदि का चिह्न धारण कर पाप करने वाला, मद्यपान के स्थान में जाने वाले शस्त्रधारी, अधार्मिक आदि जन होते हैं।।१३।।

देवमन्दिर, यज्ञ, तीर्थ आदि को बेचने वाले, व्रतद्वेषी, असत्य भाषी आदि जन तथा झूठे ही निष्प्रयोजन नख और बाल धारण करने वाला, छलपूर्ण, कुटिल स्वभाव वाले और कपटपूर्ण शासन करने वाले आदि जन होते हैं।।१४-१५।।

ऐसे जन, जो अज्ञानतावश व्रतहीन, आश्रम से बहिष्कृत, पतित से भी दान लेने वाला, चुगलखोर, तीर्थों को नष्ट करने वाला, कलह करने वाला, कुतर्क करने वाला, निष्ठुर आदि जन तथा अभी नहीं बतलाये गए हजारों प्रकार के स्त्री या पुरुष जन जहाँ जाया करते हैं, उसे आप सब आगे सुनिये।।१६-१७।।

हे श्रेष्ठ द्विजो! वे जन वहाँ यमालय में पहुँचकर जो कुछ किया करते हैं, उन्हें अब बतलाये जा रहे हैं, आप सब उन्हें सुनिये।।१८।।

वैशम्पायन ने कहा कि फिर इस तरह उस ऋषिपुत्र की बाते सुनकर सबके सब तपस्वियों ने आश्चर्य से युक्त होकर नाचिकेत ऋषि से पूछ दिया।।१९।।

ऋषियों ने पूछा कि हे श्रेष्ठ तत्त्वज्ञ! तुमने जैसा सब कुछ देखा है, वह काल जिससे सब प्रवर्त्तित हुआ करते हैं, वे जैसे हैं और अल्पबुद्धि मनुष्य यहाँ जो कर्म करने के कारण उन प्रभु यमराज द्वारा ब्रह्मलोक जाने से रोका जाया

इह कर्माणि यः कृत्वा पुरुषो ह्यल्पचेतनः। वारयेत् स तदा तं तु ब्रह्मलोके च स प्रभुः॥२१॥
कल्पान्तं पच्यमानोऽपि दह्यमानोऽपि वा पुनः। न नाशो हि शरीरस्य तस्मिन् देशे तपोधनाः॥२२॥
यस्य यस्य हि यत्कर्म पच्यमानः पुनः पुनः। अवश्यं चैव गन्तव्यं तस्य पार्श्वं पुनः पुनः।
न तु त्रासाद् द्विजाः सक्तस्तत्र त्रातुं हि कश्चन॥२३॥
न गच्छन्ति च ये तत्र दानेन नियमेन च। वैतरण्याश्च यद् रूपं किं तोयमवहत्यसौ॥२४॥
रौरवो वा कथं विप्र किं रूपं कूटशाल्मलेः। कीदृशा वाऽपि ते दूताः किंवीर्याः किंपराक्रमाः॥२५॥
किं च किं च तु कुर्वाणः किं च किं च समाचरन्। न चेतो लभते जन्तुश्छादितं पूर्वतेजसा॥२६॥
धृतिं न लभते किंचित् तैस्तैर्दोषैः सुवासिताः। दोषं सत्यमजानन्तस्तथा मोहेन मोहिताः॥२७॥
बोद्धव्यं नावबुध्यन्ते गुणानां तु गुणोत्तरम्। हाहाभूताश्च चिन्तार्त्ताः सर्वदोषसमन्विताः।
परं पारमजानन्तो रमन्ते कालमायया॥२८॥
क्लिश्यन्ते बहवस्तत्र कृत्वा पापमचेतसः। एतत् कथय वत्स त्वं यतः प्रात्यक्षदर्शिवान्॥२९॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१९३॥

—※※※—
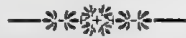
जाता है। हे तपस्वी! उस स्थान पर कल्पान्त तक कष्ट प्राप्त करते हैं और जलाये जाते हुए भी शरीर का नाश नहीं होता है।।२०-२२।।

इस प्रकार जिस व्यक्ति का जैसा कर्म हुआ करता है, वह व्यक्ति से पुनः पुनः भोगा करते हैं। प्रत्येक जीव को अवश्य ही उन यमराज के पास वारम्वार जाना पड़ता है। हे द्विजो! वहाँ कोई भी किंसी जीव को बचाने में समर्थ नहीं है।।२३।।

ऐसे कौन-कौन जन हैं , जो अपने दान और नियम पालने के वश वहाँ तक नहीं जाते। वैतरणी का क्या महत्त्व है? उसमें कैसा जल प्रवाहित होता है।।२४।।

हे विप्र! रौरव नरक किस प्रकार का है? कूटशाल्मलि का किस प्रकार का स्वरूप है? उन यमराज के वे दूत कैसे हैं? उनकी शक्ति एवं उनका पराक्रम कैसा है?। पूर्वार्जित तेज से ढँका हुआ जीव क्या-क्या कर्म करने और किन-किन आचरणों का पालन करने में चेतना नहीं प्राप्त कर करते हैं?।।२५-२६।।

विभिन्न दोषों से युक्त जीव अल्प भी धैर्य्य नहीं रख पाता है। वे जीव अपने वास्तविक दोष को न जानने से मोहग्रस्त रहा करते हैं।।२७।।

चूँकि वे बतलाये जाने पर भी गुणों में श्रेष्ठगुण को नहीं जान पाते हैं। विविध दोषों से युक्त जीव हाहाकार करते हुए चिन्ता से दुःखी रहा करते हैं। उत्कृष्ट अन्त्य तत्त्व को जन जानन के कारण वे काल के माया से ग्रस्त होकर रमण भी तो किया करते हैं। फिर अनेक बुद्धिहीन जीव पापनिष्ठ होकर कष्ट भोगा करते हैं। हे वत्स! इसीलिए कि तुमने ये सब प्रत्यक्ष देखा है। अतः हम सबको उन्हें बतलाओ।।२८-२९।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में पापियों और पुण्यात्मा से जुड़े यमलोक विषयक प्रश्ननामक एक सौ तिरानवेवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१९३॥

❖❖❖

चतुर्नवधिक्यशततमोऽध्यायः

अथ धर्मराजपुरीवर्णनम्

वैशम्पायन उवाच

तेषां तद् वचनं श्रुत्वा ऋषीणां भावितात्मनाम्। उवाच वाक्यं वाक्यज्ञः सर्वं निरवशेषतः॥१॥

नाचिकेत उवाच

श्रूयतां द्विजशार्दूलाः कथ्यमानं मया द्विजाः। योजनानां सहस्रं तु विस्तराद् द्विगुणायतम्।
द्विगुणं परिवेषेण तद् वै प्रेतपतेः पुरम्॥२॥

भवनैरावृत्तं दिव्यैर्जाम्बूनदमयैः शुभैः। हर्म्यप्रासादसंबाधं महाट्टालसमन्वितम्॥३॥

सौवर्णेनैव महता प्राकारेणाभिवेष्टितम्। कैलासशिखराकारैर्भवनैरुपशोभितम्॥४॥

तत्रैव विमला नद्यस्तोयपूर्णाः सुशोभनाः। दीर्घिकाश्च तथा कान्ता नलिन्यश्च सरांसि च॥५॥

तडागाश्चैव कूपाश्च वृक्षषण्डाः सुशोभनाः। नरनारीसमाकीर्णा गजवाजिसमाकुलाः॥६॥

नानादेशसमुत्थानैर्नानाजातिभिरेव च। सर्वजीवैस्तथाकीर्णं तस्य राज्ञः पुरोत्तमम्॥७॥

अध्याय-१९४

धर्मराजपुरी सहित पुष्पोदका वैवस्वती नदियों का वर्णन

वैशम्पायन ने कहा कि इस प्रकार उन सुसंस्कृत ऋषिजनों के उन वचनों को सुनकर वाक्यज्ञ नाचिकेत ने सब कुछ सम्पूर्णता से कहना शुरु कर दिया।।१।।

नाचिकेत ने कहा कि हे श्रेष्ठ द्विजो! अब मैं आप लोगों से बतलाने जा रहा हूँ। आप लोग उन्हें ध्यान देकर सुनें। यमपुर हजार योजन विस्तार वाला और उससे भी द्विगुणित लम्बा ह। इस प्रकार उस प्रेतराज के नगरी का घेरा उससे दुगुना ही है।।२।।

उस पुर में दिव्य स्वर्ण से बने सुन्दर भवनों का आवर्त्तन है। फिर वह नागरी महान् अट्टालिकाओं से युक्त प्रासादों से पूर्ण है।।३।।

वह नगरी स्वर्ण निर्मित महान् प्राकार और प्रासादों से वेष्टि और कैलाशशिख्र के समान भवनों से सुशोभित है।।४।।

वहाँ उस नगरी में जलपूर्ण स्वच्छ नदियाँ, सुन्दर-सुन्दर बावलियाँ और कमलयुक्त सुशोभित सरोवर भी स्थित हैं।।५।।

फिर वहाँ तालाब, कुऐं, सुन्दर-सुन्दर वृक्षों के समूह भी स्थित हैं। वह पुर पुरुष औरं स्त्रियों से सम्पन्न और हाथी, घोड़ों आदि से भी परिपूर्ण है।।६।।

फिर उन यमराज का अपना उत्तम पुर भी अनेक देशीय जनों, अनेक जातियों और समस्त प्रकार के जीवों से सुसम्पन्न है।।७।।

क्वचिद् युद्धं क्वचिद् द्वन्द्वं तेन बद्धो यमालये।
क्वचिद् गायन् हसंश्चैव क्वचिद्दुःखेन दुःखितः॥८॥
क्वचित्क्रीडन् यथाकामं क्वचिद् भुञ्जन् क्वचित् स्वपन्।
क्वचिन्नृत्यन् क्वचित् तिष्ठन् क्वचिद्बन्धनसंस्थितः॥९॥
एवं शतसहस्राणि तस्य राज्ञः पुरोत्तमे। स्वकर्मभिः प्रदृश्यन्ते स्थूलाः सूक्ष्माश्च जन्तवः।
मया दृष्टा द्विजश्रेठास्तस्य राज्ञः पुरात्तमे॥१०॥
अङ्गानि चैव सीदन्ति मनो विह्वलतीव मे। दिव्यभावाः स्पृशन्त्येते चिन्तयानस्य तत्फलम्।
तथाऽपि कथयिष्यामि यथादृष्टं यथाश्रुतम्॥११॥
पुष्पोदका नाम तत्र नदीनां प्रवरा नदी। दृश्येत न च दृश्येत नानावृक्षसमाकुला॥१२॥
सुवर्णकृतसोपाना दिव्यकाञ्चनबालुका। प्रसन्नेन च तोयेन शीतलेन सुगन्धिना॥१३॥
पुष्पोत्पलवनाकीर्णा नानापक्षिसमाकुला। भ्राजते सरितां श्रेष्ठा सर्वपापप्रणाशिनी॥१४॥
तस्यास्तीरे मया दृष्टाः पादपाश्च सहस्रशः। अमराः क्रीडमानाश्च जलक्रीडनकानि च॥१५॥
विशालजघना यस्यां गन्धर्वाः सामगा इव। भुजङ्गावनताङ्ग्यश्च किन्नर्यश्च सुगायनाः।
दिव्यभूषणसंभोगैः क्रीडन्त्यत्र समागताः॥१६॥

उन यमराज द्वारा यमपुर में निबद्ध प्राणी कहीं युद्धरत हैं, तो कहीं कलह में संलग्न है। तो कहीं गाते और हँसते हुए लोग हैं तथा कहीं दुःख पीड़ित जन भी स्थित हैं।।८।।

इस प्रकार यमलोक में निबद्ध जीव कहीं स्वेच्छा से क्रीडा किया करते हैं, तो कहीं भोग करने में संलग्न हैं। कहीं कोई सोया हुआ है, कहीं कोई नाच रहा है, कहीं कोई बँधे हुए बैठे समय व्यतीत कर रहे हैं।।९।।

वैसे उन यमराज केउस उत्तमपुर में सैकड़ों-हजारों स्थॅल औरसूक्ष्म प्राणी अपने कर्मों के कारण विभिन्न स्थितियों दीख पड़ते हैं। हे श्रेष्ठ द्विजो! उन यमराज के उस उत्तम पुर में मैंने ऐसा ही दृश्य देखा था।।१०।।

वैसे मेरे अंगों में सिकूढ़न अनुभव हो रहे हैं और मन अत्यन्त विह्वल होता अनुभव हो रहा है और उस फल को सोच कर दिव्य-दिव्य भाव आ जा रहे हैं, फिर भी मैंने जैसा देखा और सुना है वैसा अवश्य कहूँगा।।११।।

वहाँ पर एक पुष्पोदक नाम का समस्त नदियों में महान् नदी है। वह नदी अनेक वृक्षों से समाहृत दीख भी पड़ती है और नहीं भी दीख पड़ती है।।१२।।

उस स्वच्छ शीतल, सुगन्धित आदि जल युक्त उस नदी में स्वर्ण की सीढ़ियाँ हैं और उसके बालू दिव्य स्वर्ण के ही हैं।।१३।।

वह भी विविध प्रकार के पुष्पों और कमलां से भरा तथा अनेक पक्षियों के समूह से समावृत्त है। वहाँ सब प्रकार के पापों को नष्ट करने वाली वह श्रेष्ठ नदी शोभायमान हुआ कर रही है।।१४।।

उस नदी के किनारे पर मैंने हजारों वृक्ष देखा, उस पर देवतागण जलक्रीड़ा करते हुए देखे गए थे।।१५।।

फिर सामगान के गायक और जाँघों वाले गन्धर्व और सर्प के समान विनम्र अंगों वाले और सुन्दर गीत गाने वाली किन्नरियाँ वहाँ पर पहुँचकर दिव्य आभूषणों और भोगों से विहार करती हुई देखी गईं।।१६।।

एवं नारीसहस्त्राणि तत दिव्यानि नित्यशः। क्रीडन्ति सलिले तत्र प्रासादेषु शुभेषु च॥१७॥
तत्रापरे वृक्षषण्डा नित्यपुष्पफलान्विताः। ते च कामप्रदा नित्यं मत्तद्विजसमायुताः॥१८॥
प्रमदाश्च जले तत्र कान्तरूपाः सुमेखलाः। रमयन्त्यो नरांस्तत्र यथाकामं यथासुखम्॥१९॥
तां नदीं क्षोभयन्त्यस्ताः क्रीडन्ति सहिताः प्रियैः।
गायन्ति सलिले काश्चिन्मधुरं मधुविह्वलाः॥२०॥
जलतूर्यनिादेन भूषणानां स्वनेन च। भाति सा निम्नगा दिव्या दिव्यरत्नैरलंकृता॥२१॥
वैवस्वती नाम महानदी सा शुभा नदीनां प्रवराऽतिरम्या।
प्रयाति मध्ये नगरस्य नित्यं मातेव पुत्रं परिपालयन्ती॥२२॥
तोयानुरूपा च मनोहरा च दिव्येन तोयेन सदैव पूर्णा।
यस्यास्तु हंसाः पुलिनेषु मत्ताः कुन्देन्दुवर्णाः प्रचरन्ति नित्यम्॥२३॥
रथाङ्गसाह्वैः प्रवररैश्च पद्मैः प्रतप्तजाम्बूनदकञ्रणकाभिः।
या दृश्यते चैव मनोज्ञरूपा सुवर्णसोपानयुता सुकान्ता॥२४॥
यस्यास्तु तोयं विमलं सुगन्धि स्वादु प्रसन्नममृतोपमदिव्यरूपम्।
वृक्षास्तु यस्यां वनषण्डजाताः सदा शुभैः पुष्पफलैरुपेताः॥२५॥

फिर नित्य हजारों नारियाँ वहाँ जल में तथा सुन्दर प्रासादों में क्रीड़ा करने में व्यस्त देखी गई थीं।।१७।।

नित्य पुष्पों एवं फलों से सम्पन्न तथा मतवाले हाथियों से भी सेवित अन्य वृक्षों के समूह वांच्छित फल प्रदान करने वाले देखे गए थे।।१९।।

अपने प्रेमी जनों के साथ क्रीड़ा करती हुयी वे स्त्रियाँ उस नदी के जल को क्षुब्ध कर दिया करती हैं। कुछ स्त्रियाँ मधुपान से विह्वल होकर गाती हुई देखी गईं।।२०।।

इस प्रकार जलतरंग के शब्द, आभूषणों की ध्वनि तथा दिव्य रत्नों से अलंकृत वह दिव्य नदी नित्य शोभायमान देखी गई।।२१।।

एक वैवस्वती नाम की महान् नदी समस्त नदियों में श्रेष्ठ और अत्यन्त रमणीय प्रतीत हुआ करती है। पुत्र को पालने वाली माता के समान वह नगर के मध्य में प्रवाहित होती हुई देखी गई।।२२।।

वह नदी सर्वदा जल से सम्पन्न रहा करती है। जल के समान ही वह मनोहर भी है। उस नदी के किनारे पर कुन्द और चन्द्र के समान श्वेत मत्त हंसनित्य भ्रमण करते हैं।।२३।।

वह नदी श्रेष्ठ चक्रवाक पक्षियों, प्रसंतान स्वर्ण के समान कर्णिका वाले कमलों तथा स्वर्ण की सीढ़ियों से सम्पन्न होने से सुन्दर और मनोहर दीख पड़ती है।।२४।।

उस नदी का जल स्वच्छ, सुगन्धित, स्वादिष्ट, मनोहर, अमृतोपम, दिव्य आदि तो है ही उसके तट पर स्थित वनों में सुन्दर पुष्पों और फलों से युक्त वृक्ष स्थित हैं।।२५।।

फिर सुन्दर मनोहर स्वरूप युक्त मदविह्वल स्त्रियाँ जल में क्रीड़ा करती हैं, जिसका जल क्रीडन और लाडन इत्यादि से कुछ भी वदरंग नहीं हो पाता है।।२६।।

नार्यः सुरूपा मदविह्वलाश्च क्रीडन्ति तोयेषु मनोज्ञरूपाः।
यस्या जलं क्रीडनताडनाद्यैर्विवर्णतां नैव तु याति जातु॥२६॥
या देवतानामपि पूजनीया तपोनिधीनां च तथा मुनीनाम्।
या दृश्यते तोयभरेण कान्ता कृतिः कवीनामिव निर्मलार्था॥२७॥
जलं च दत्तं बहुभिर्नरैश्च तस्यां स्वरूपप्रतिमा च निष्ठा।
प्रासादपङ्क्तिर्ज्वलनप्रकाशा तस्यास्तु तीरे बहुभक्तिरम्या॥२८॥
वादित्रगीतस्वनतालयुक्ता गायन्ति नार्यः सहिताः सदा हि।
कन्याकुलानां मृदुभाषितानि मनोहरणां च वनेषु तेषु॥२९॥
कुर्वन्ति संहर्षमिव स्वनेन मनोज्ञरूपा दिवि देवतानाम्।
मृदङ्गनादाश्च सुन्त्रियुक्तैर्गानध्वनिश्चैव सुवंशयुक्तः॥३०॥
प्रासादकुञ्जेषु विहार्यमाणा न तृप्तिमेवं बहुधा प्रयान्ति।
गन्धः सुगन्धोऽगुरुचन्दनानां वातः शुभो वाति सुशीतमन्दः॥३१॥
क्वचित् सुगन्धः प्रचचार भूयः प्रसादरोधः प्रविरूढमार्गः।
क्वचिज्जनाः क्रीडनकावसक्तः क्वचिच्च नारीनरगीतशब्दाः॥३२॥
तथाऽपरे क्रीडनकाः सुकान्ताः सुवर्णवेदीकृतसानुशोभाः।
विमानभूताः प्रचरन्ति तोये प्रमत्तनारीनरसंकुलाश्च॥३३॥

वह नदी देवों और तपोनिधि मुनियों से सुपूजित हुआ करती है। वह जल से पूर्ण रहने के कारण इस तरह सुन्दर अनुभव हुआ करती है, जैसे निर्मल अर्थ वाली कवियों की कृति रमणीय और मनमोहक हुआ करती है।।२७।।

उसमें अनेक मनुष्य जल प्रदा करने वाले हैं। उस नदी के तट पर सुन्दर प्रतिमा सुस्थापित किया हुआ है। उसके जल में महलों की पक्तियों की छाया अग्नि के समान प्रतीत हुआ करती है। उसके तट पर अनेक भक्ति युक्त लोग रमण किया करते हैं।।२८।।

वहाँ पर स्त्रियाँ सदैव मिलकर तालयुक्त वाद्य और संगीत की ध्वनि के सहित गीत गाया करती रहती है। वहाँ के वनों में मनोहर कुलीन कन्यायों का कोमल वार्त्तालाप होता हुआ सुना जाता है।।२९।।

वहीं पर स्वर्गस्थ देवगणों की मनोहारिणी स्त्रियाँ अपनी ध्वनि से उमङ्ग उत्पन्न किया करती हैं। वहीं पर सुन्दर तार वाले वाद्य, वंशी और मृदङ्ग के नाद के साथ गीत की ध्वनि हुई करती रहती है।।३०।।

प्रायः प्रासादों के कुञ्जों में विहार करने वाली स्त्रियों को इस प्रकार भी संतृप्ति नहीं हुआ करती है। वहीं पर सुगन्धित अगरु एवं चन्दनों की सुगन्धि व्याप्त रहा करती है तथा शीतल और मन्द वायु प्रवाहित होती है।।३१।।

वहाँ कहीं अत्यधिक सुगन्धित का प्रसार होता है और महलों के अवरोध से उस सुगन्धि को प्रसार का मार्ग अवरुद्ध हो जाया करता है। कहीं पर मनुष्य खेल की सामग्रियों में संलग्न हैं और कहीं स्त्रियों तथा पुरुषों की गति की ध्वनि होती हुई प्रतीत होती है।।३२।।

इसी तरह अन्यत्र सुन्दर पुरुष क्रीड़ा कर रहे होते हैं। वहाँ पर पर्वत के शिखर स्वर्ण की वेदियों से शोभा पाते हैं। प्रमत्त स्त्रियों और पुरुषों से परिपूर्ण विमान समान जलयान उस नदी के जल में संचार किया करते हैं।।३३।।

शक्यो विभागो न हि रम्यताया ह्यसौ दिनैर्वा बहुभिः प्रवक्तुम्।
नैषा कथा कर्मसमाधियुक्ता शक्या प्रवक्तुं दिवसैरनल्पैः॥३४॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१९४॥
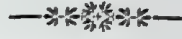
पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

अथ यमपुरस्थगोपुरादि वर्णनम्

ऋषिपुत्र उवाच

दशयोजनविस्तारं ततो द्विगुणमायतम्। प्राकारेण परिक्षिप्तं प्रासादशतशोभितम्॥१॥
समालिखन्निवाकाशं प्रदीप्तमिव तेजसा। गोपुरं तूत्तरं तत्र प्रासादशतशोभितम्।
नानायन्त्रैः समाकीर्णं ज्वालामालासमायुतम्॥२॥
देवतानामृषीणां च येचान्ये शुभकारिणः। प्रवेशस्तत्र तेषां हि विहितो धर्मदर्शिनाम्॥३॥
राजे गोपुरं सर्वं शारदाभ्रचयप्रभम्। मानुषाणां सुकृतिनां प्रवेशस्तत्र निर्मितः॥४॥
अग्निधर्मसमाकीर्णं सर्वदोषसमन्वितम्। आयंस गोपुरं तत्र दक्षिणं भीमदर्शनम्॥५॥

इस प्रकार कहना पड़ता है कि वहाँ की रमणीयता का वर्णन करना सम्भव नहीं है। इसका वर्णन लम्बे समय में भी पूर्ण होने वाला नहीं है। बहुत दिनों में कर्म की एकाग्रतापूर्वक भी यह कथा सम्पन्न नहीं हो सकती।।३४।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में धर्मराजपुरी सहित पुष्पोदका वैवस्वती नदियों का वर्णननामक एक सौ चौरनवेवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१९४॥

अध्याय–१९५

यमपुरी में विभिन्न दिशाओं में स्थित गोपुर, यमसभा आदि विषयक वर्णन

ऋषिपुत्र ने कहा कि इस प्रकार वह नगरी दस योजन चौड़ा और उससे दुगुना लम्बा तथा प्रकार से समावृत और सैकड़ों प्रासादों से सुशोभित है।।१।।

तेज से प्रदीप्त और आकाश को स्पर्श करने के समान उरुर दिशा का गोपुर सौ प्रासादों से सुशोभित है। वह गोपुर अनेक प्रकार के यन्त्रों से युक्त ज्वाला की मालाओं से सुसम्पन्न है।।२।।

जहाँ देवता, ऋषिगण, अन्य शुभ कर्म करने वाले और धर्म द्रष्टाजनों का उसमें प्रवेश हुआ करता है।।२।।

वहा सम्पूर्ण गोपुरशारदीया मेघसमूह के समान शोभायमान होता है। उसमें निश्चय ही सुन्दर कर्मों को करने वाले जनों का ही प्रवेश हुआ करता है।।४।।

वहीं पर दक्षिण दिशा की ओर अग्नि के धर्म सम्पन्न तथा सब प्रकार के दोषों से पूरा भयानक दीखने वाला लोहे का गोपुर है।।५।।

रौद्रं प्रतिभयाकारं सुतप्तं दुर्निरीक्षणम्। प्रवेशो हि ततस्तेन विहितो रविसूनुना॥६॥
पापिष्ठानां नृशंसानां क्रव्यादानांदुरात्मनाम्। पापानां चैव सर्वेषां ये चान्ये घातमारकाः॥७॥
औदुम्बरमवीचीकमुच्चावचमनोकृतम्। गोपुरं पश्चिमं तत्र दुर्निरीक्षं समन्ततः॥८॥
महता वह्निजालेन समालिप्तं भयानकम्। दुष्कृतीनां प्रवेशार्थं यमेन विहितं स्वयम्॥९॥
तस्मिन् पुरवरे रम्ये रम्या परमशोभना। सर्वरत्नमयी दिव्या वैवस्वतनियनोनिजता॥१०॥
सभा परमसंपन्ना धार्मिकैः सत्यवादिभिः। जितक्रोधैरलुब्धैश्च वीतरागैस्तपस्विभिः॥११॥
सा सभा धर्मयुक्तानां सा सभा पापकारिणाम्। सा सभा सर्वलोकस्य शुभस्यैवाशुभस्य च।
कर्मणा शुचितस्याथ सा सभा धर्मसंहिता॥१२॥
अनिर्वर्त्य यथाकर्म शास्त्रदृष्टेन कर्मणा। निर्विशङ्का निराक्षेपा धर्मज्ञा धर्मपाठकाः।
चिन्तयन्ति च कार्याणि सर्वलोकहिताय ते।१३॥
यथादृष्टं यथाशास्त्रं यथातालनिवेदकाः। ततः सर्वे च तत्सर्वं चिन्तयन्ति सुयन्त्रिताः॥१४॥
मनुः प्रजापतिश्चैव पाराशर्यो महामुनिः। अत्रिरौद्दालकिश्चैव आपस्तम्बश्च वीर्यवान्॥१५॥
बृहस्पतिश्च शुक्रश्च गौतमश्च महातपाः। शङ्खश्च लिखितश्चैव ह्यङ्गिरा भृगुरेव च॥१६॥
पुलस्त्य पुलहश्चैव ये चान्ये धर्मपाठकाः। यमेन सहिताः सर्वे चिन्तयन्ति प्रतिक्रियाम्।
सर्वे च कामप्रचुरा ये दिव्या ये च मानुषाः॥१७॥

उसका स्वरूप अत्यन्त भीषण और भयंकर है। वह अत्यन्त तापयुक्त और दुर्निरीक्ष्य है। सूर्य पुत्र यम उसमें क्रूर पापी दुरात्मा हत्यारों और सब प्रकार के पाप करने वाले और प्रच्छन्न हिंसक लोगों का प्रवेश निर्दिष्ट किया हुआ है। वहाँ से वहीं लोग प्रविष्ट होंगे।।६-७।।

वहाँ पर उदुम्बर काष्ठ का ऊँचा-नीचा बना हुआ पश्चिम दिशा का गोपुर है। वह तो सब ओर से दुर्निरीक्ष्य है।।८।।

वह महान् अग्नि समूह से युक्त और भयानक है। स्वंयं यमराज ने दुष्कर्मियों के प्रवेश हेतु इसे बनाया है।।९।।

उस रमणीय श्रेष्ठपुर में यमराज की संस्थापित सर्वरत्नमयी परमसुन्दर दिव्य सभाभवन है।।१०।।

वह श्रेष्ठ सम्भा भवन क्रोध को जीतने वाले, लोभरहित, वीतराग, तपस्वियों और सत्यवादी धार्मिकों से सुसम्पन्न है।।११।।

फिर वह सभा धर्मयुक्तों और पापियों की भी तो है ही। वह सभी सब जनों के शुभ और अशुभ का विचार करने वाली है। कर्म द्वारा शुद्ध होने वालों के लिए वह धर्म सम्पन्न सभा है।।२।।

औचित्य से न हटने वाले, शास्त्रम्मत कर्म करने वाले, शंका और आक्षेप से रहित धर्मज्ञ और धर्मशास्त्र का अध्ययन-स्वाध्याय करने वाले जन उस सभा में सम्पूर्ण लोकों के कलणार्थ कार्य का विचार करते हैं।।१३।।

वे सब सुसंयमित समय के अनुरुप प्रत्यक्ष देखे गए और शास्त्र से निर्दिष्ट विधि से सब कुछ सोच-समझकर निवेदन किया करते हैं।।१४।।

मनु, प्रजापत्ति, दक्ष, महामुनि पराधर, अत्रि, औद्दालकि, वीर्यवान् आपस्तम्ब, बृहस्पति, शुक्र, महातपस्वी गौतम, शंख, लिखित, अङ्गिरा, भृगु, पुलस्त्य, पुलह और जो अन्यान्य धर्मशास्त्री हैं, वे सब यम के साथ प्रतिकार का निर्णय किया करते हैं। वहाँ पर निवास करने वाले दिव्य जीव या जो मनुष्य हैं; उन सभी में काम की अधिकता है।।१५-१७।।

कुण्डलाभ्यां पिनद्धाभ्यामङ्गदाभ्यां महातपाः। भ्राजते मुकुटस्तस्य ब्रह्मदत्तो महाद्युतिः॥१८॥
तेजसा वर्चसा चैव दुर्निरीक्ष्यो महाबलः। एकस्थमिव सर्वेषां तेजस्तेजस्विनां तदा॥१९॥
तस्य पार्श्वे महादिव्या ऋषयो ब्रह्मवादिनः। दीप्यमानाः स्ववपुषा वेदवेदाङ्गपारगाः॥२०॥
वेदार्थानां विचारज्ञाःसत्यधर्मपुरस्कृताः। छन्दःशिक्षाविकल्पज्ञाः शब्दशास्त्रविकल्पकाः॥२१॥
निरुक्तमतिवादाश्च सामगान्धर्वशोभिताः। धातुवादाश्च विविधा निरुक्ताश्चैव नैगमाः॥२२॥
तत्र चैव मया दृष्टा ऋषयः पितरस्तथा। भवने धर्मराजस्य प्रगायन्तः कथाः शुभाः॥२३॥
तस्य पार्श्वे मया दृष्टः कृष्णवर्णो महाहनुः। उत्तमः प्रकृताकार ऊद्ध्र्वरोमा निराकृतिः॥२४॥
वामबाहुश्च दण्डेन प्रवरेण समन्वितः। विकृतास्यो महादंष्ट्रो नित्यक्रुद्धो भयानकः॥२५॥
शिष्ट्यर्थे धर्मराजेन संदिष्टः स पुनः पुनः। शृणोति चैव कालोऽसौ नित्ययुक्तः सनातनः।
तथान्ये चापरे तत्र शासनेषु समाहिताः॥२६॥
दृष्टा तत्र मया तात सर्वतेजोमयी शुभा। यमेन पूज्यमाना सा दिव्यगन्धानुलेपनैः॥२७॥
संहारः सर्वलोकानां गतीनां च महागतिः। अतः पर न कर्त्तव्यं साधनं कथितं बुधैः॥२८॥

वे सब महान् तपस्वी और अत्यन्त तेजस्वी दो कुण्डलों तथा दो जड़ाऊ विजायटों से सम्पन्न हैं। उनके मस्तक पर ब्रह्मा का प्रदान किया हुआ मुकुट अतिशय शोभा उत्पन्न करने वाले हैं।।१८।।

फिर महाबली यमराज तेज और ओज के आधिक्य के कारण दुर्निरीक्ष्य हैं। समस्त तेजस्वियों का तेज उसमें संकलित हुआ-सा जान पड़ता है।।१९।।

उनके पार्श्व में महादिव्य वेद वेदाङ्गपारगामी दीप्त शरीर वाले ब्रह्मवादी ऋषिगण रहा करते हैं।।२०।।

फिर वे सब वेदार्थों का सोच-विचार करने की विधि जानने वाले तथा सत्य और धर्म का आदर करने वाले हैं। वे लोग छन्दशास्त्र, शिक्षा, कल्प और शब्दशास्त्र के परम विचारक हैं।।२१।।

फिर वे सब निरुक्त, तर्कशास्त्र, सामवेद, गान्धर्वविद्या से सुसम्पन्न हैं। धातुवाद तथा अनेक प्रकार के भाषाशास्त्र तथा निगमों के परम ज्ञाता हैं।।२२।।

मैंने वहाँ धर्मराज के भवन में ऋषियों और पितरों को सुन्दर कथाओं का गान करते हुए और सुनते स्पष्ट रूप से देखा। फिर मैंने उनके पार्श्व में काले रंग के बड़ी ठोढ़ी वाले, खड़े रोगों वाले अरुचिकर परन्तु प्रकृष्ट आकार वाले अन्य पुरुष को देखा था।।२३-२४।।

उसके वाम बाहु में श्रेष्ठ दण्ड था। उसका मुख टेढ़ा एवं दंष्ट्रा बहुत बड़ी थी। वह नित्य क्रोधयुक्त एवं भयंकर आकृति वाले थे।।२५।।

धर्मराज उन्हें वारम्वार ज्ञानार्थ आदेश दे रहे थे। वे नित्य नियुक्त सनातन काल से यमराज का आदेश सुना करते थे। इसी से अन्यान्य जन भी वहाँ यमराज के शासन में स्थित हैं।।२६।।

हे तात! मैंने वहाँ समस्त तेजों से युक्त शुभकारी मोहिनी को देखा। यमराज दिव्य गन्ध और अनुलेपन से उसकी पूजा किया करते हैं।।२७।।

चूँकि वह स्थान समस्त लोकों का संहार करने वाला और गतियों में श्रेष्ठ गति है। विद्वानों के अनुसार इससे बढ़कर कोई दूसरा साधन नहीं है।।२८।।

वियन्ति ह्यसुरास्तत्र ऋषयश्च तपोधनाः। असुराश्च सुराश्चैव योगिनश्च महौजसः।
नमस्कार्या च पूज्या च मोहनी सर्वसाधनी॥२९॥
तस्याङ्गेभ्यः समुद्भूता व्यधयः क्लेशसंभवाः। अपराश्च महाघोरा व्याधयः कालनिर्मिताः।
पौरुषेण समायुक्ताः सर्वलोकनयाय ताः॥३०॥
प्रकृत्या दुर्विनीतश्च महाक्रोधः सुदारुणः। महासत्त्वो महातेजा जरामरणवर्जितः।
मृत्युर्दृष्टो दुराधर्षो दिव्यगन्धानुलेपनः॥३१॥
गायना हसनाश्चैव सर्वजीवप्रबोधकाः। मृत्युना सहिता नित्यं कालज्ञाः कालसंमताः।
दिव्याभरणशोंभिः शोभमानाः सुतेजसः॥३२॥
सबालव्यजनच्छत्रैः केचित् तत्र महौजसः। पर्यास्तरणसंछन्नेष्वासनेषु तथापरे।
पूज्यमाना मया दृष्टाः केचित् तत्र महौजसः॥३३॥
अथान्ये च ज्वरास्तत्र वेदनाश्च सुदारुणाः। नारीनरस्वरूपाश्च मया दृष्टा अनेकशः॥३४॥
कामक्रोधविचारिण्यो नानारूपधराः स्त्रियः। जीवक्षयकरा घोरास्तीव्ररोषा भयानकाः॥३५॥
तासां हलहला शब्दाः सर्वासां च समन्ततः। धर्मराजसमीपे तु दारयन्ति धरामिमाम्॥३६॥

तपोधन ऋषिगण, असुर, देवता और महान् ओजस्वी योगी जन वहाँ पर भयुक्त ही रहा करते हैं। सब कुछ सिद्ध करने वाली मोहिनी शक्ति निश्चय ही जनों के प्रणाम और पूजा करने के योग्य ही है।।२९।।

उन्हीं के अंगों से ही क्लेश प्रदायक व्याधियाँ निःसरित हुई हैं। काल द्वारा बनाया गया अन्य भी महाघोर व्याधियाँ हैं। सम्पूर्ण लोकों के नियमन हेतु वे सब पौरुष सम्पन्न हैं।।३०।।

फिर मेरे द्वारा दिव्य गन्ध और अनुलेपन से सम्पन्न जरा और मरण से वर्जित महासत्त्वयुक्त अत्यन्त तेजस्वी महाक्रोधी अत्यन्त भयनक प्रकृति से अति दुर्विनीत मृत्यु को देखा गया।।३१।।

समस्त जीव समूह को सचेतन करने वाली यह गाती और हँसती रहा करती है। फिर काल की अनुज्ञा से समय को जानने वाले इस मृत्यु के साथ रमण किया करते हैं। वह सुन्दर तेज से युक्त दिव्य आभूषणों की शोभा से सम्पन्न निवास करती है।।३२।।

वहीं पर कुछ महान् ओजस्वी जन बालव्यञ्जन याने चमर और छत्र से सम्पन्न विद्यमान थे। दूसरे-दूसरे कुछ जन गद्दे और चादर से सम्पन्न आसन पर विराजमान होकर स्थित थे। फिर मेरे द्वारा वहीं पर कुछ अत्यन्त ओजस्वियों को पूजित होते देखा गया था।।३३।।

फिर वहीं पर मेरे द्वारा कुछ स्त्री और पुरुष के स्वरूप में अनेक प्रकार के भयानक जीवों और वेदनाओं को भी देखा गया था।।३४।।

वहीं पर मेरे द्वारा जीवों का संहार करने वाली, अतिक्रोधी, नानारूप धारण करने वाली, घोर भयंकर और काम तथा क्रोधवश विचरण करने वाली स्त्रियाँ भी देखी गई।।३५।।

इस प्रकार से सर्वत्र उन सबके द्वारा किये जा रहे कोलाहल से वातावरण व्याप्त था। फिर वे धर्मराज के पास में ही इस भूमि को पीड़ित करती दीख रही थी।।३६।।

कूष्माण्डा यातुधानाश्च राक्षसाः पिशिताशनाः। एकपादा द्विपादाश्च त्रिपादा बहुपादकाः॥३७॥
एकबाहुर्द्विबाहुश्च त्रिबाहुर्बहुबाहुकः। शङ्कुकर्णा महाकर्णा हस्तिकर्णास्तथाऽपरे॥३८॥
केचित् तु तत्र पुरुषाः सर्वशोभनशोभिताः। केयूरैर्मुकुटैश्चान्ये चित्रैरङ्गैस्तथाऽपरे॥३९॥
स्रग्विणो बद्धपट्टाश्च सर्वाभरणभूषिताः। सकुठारास्त्र सकुद्दालाः सचक्राः शूलपाणयः॥४०॥
सशक्तितोमराः केचित् सधनुष्का दुरासदाः। असिहस्तास्तथा चान्ये तथा मुद्गरपाणयः॥४१॥

सज्जिता दधिहस्ताश्च गन्धहस्ता ह्यनेकशः।
विचित्रभक्षहस्ताश्च वस्त्रहस्तास्तथैव च॥४२॥
धूपान् प्रगृह्य विविधान् वासांसि शुभदर्शनाः।
शिबिकाश्च महाशोभा यानानि विविधानि च॥४३॥

वाजिकुञ्जरयुक्तानि हंसयुक्तानि चापेर। शरभैर्ऋषभैश्चापि हस्तिभिश्च सुदर्शनैः॥४४॥
मयूरैः सारसैश्चैव चक्रवाकैश्च वाजिभिः। एवंरूपा मया दृष्टास्तत्र चान्ये भयानकाः॥४५॥

एक कूष्माण्ड नाम का असुर और मांसभक्षी एक पैर वाले, दो पैरों वाले, तीन पैरों वाले और फिर अनेक पैरों वाले राक्षस वहाँ पर देखे गए थे।।३७।।

फिर वहाँ कोई एक भुजा वाला, कोई दो भुजा वाला, कोई तीन भुजाओं वाला और कोई अनेक भुजाओं वाला भी देखा गया था। फिर कोई शंकु की आकृति जैसे कानों वाले, कोई बड़े-बड़े कानों वाले और दूसरे कुछ हाथी जैसे कानों वाले भी वहाँ थे।।३८।।

फिर वहीं पर कुछ पुरुषजन सब प्रकार की आभूषणों से विभूषित थे। कुछ जन केयूर और मुकुटों से सम्पन्न तथा अन्य विचित्र अंगों से युक्त थे।।३९।।

वहीं पर कुछ माला धारण किये हुए, कुद पट्ट बाधे हुए और सब आभूषणों से विभूषित थे। कुछ हाथों में कुठार, कुछ कुदाल, कुछ चक्र और कुछ शूलधारण किये हुए थे।।४०।।

फिर कुछ जन तोमर और शक्ति धारण किए हुए थे तथा कुछ भयंकर दीखने वाले जन धनुष-बाध धारण किये हुए थे। अन्य कुछ लोग हाथ में तलवार धारण किये थे तथा कुछ दूसरे-दूसरे जन अपने-अपने हाथ में मुद्गर धारण किये हुए थे।।४१।।

कुछ जन सँजे-धँजे थे और अपने हाथों में दही ले रखे थे। फिर कई जन अपने हाथ में गन्ध भी लिये हुए थे। कुछ जन हाथों में विचित्र तरह के खाद्यपदार्थ लिये हुए थे और कुछ जन अपने हाथों में वस्त्र भी रखे हुए थे।।४२।।

कुछ सुन्दर दीखने वाले जन अपने हाथों में अनेक प्रकार के धूप और वस्त्र लिये हुए थे। वहीं अत्यन्त सुन्दर-सुन्दर डोलियाँ और विविध वाहन भी स्थित थे।।४३।।

कुछ यान घोड़े और हाथ्यिों से तुड़े हुए थे तथा दूसरे यान हंसो से जुड़े हुए थे। कुछ यान 'शरभ' मृग से, कुछ बैलों से जुड़े थे। अन्य कुछ यान सुन्दर-सुन्दर हाथियों से जुड़े हुए देखे गए थे।।४४।।

कुछ यान मोरों, सारसों, चक्रपाकों और घोड़ों से सम्पन्न थे। मैं इसी प्रकार के यानों तथ अन्य भयानक प्राणियों को भी वहाँ देखा था।।४५।।

उज्ज्वला मलिनाश्चैव जीर्णवस्त्रा नवांशुकाः। सुमना विमना मूका मारकाः शतमारकाः॥४६॥
समार्जारी काचवर्णा कृष्णा चैव कलिस्तथा। धर्महस्ता यशोहस्ताः कीर्तिहस्तास्तथापरे॥४७॥
एते पुरोगमास्तत्र कृतान्तस्य महात्मनः। यद्येतान् हि यजेद् विप्रो नास्ति तस्य पराभवः॥४८॥
नमस्कार्याश्च पूज्याश्च आपन्नेन हि नित्यशः। परितुष्य कृतान नित्यं विहिताः सर्वलौकिकाः॥४९॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१९५॥

—❊❊❊—

षडनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

अथ नाचिकेतेन यमस्तुतिः

वर्तमानः सभामध्ये राजा प्रेतपुराधिपः। मामेकं मृतकं तत्र दर्शनं च ददौ यमः॥१॥
याथातथ्येन मे पूजा कार्येण विधिनाऽकरोत्। आसनं पाद्यमर्घ्यं च वेददृष्टने कर्मणा॥२॥
अब्रवीच्च पुनर्हृष्टो आस्यतां च वरासने। काञ्चने कुशसंच्छन्ने दिव्यपुष्पोपशोभिते॥३॥

वहाँ पर कुछ जीव उज्ज्वल, कुछ मलिन, कुछ पुराने वस्त्र धारण किये और कुछ नवीन वस्त्र धारण किये थे। कुछ प्रसन्न मन वाले, कुछ उदासीन, कुछ मारने वालों तथा कुछ सैकड़ों को मारने वाले थे।।४६।।

वहीं पर कुछ स्त्रीजन बिल्ली लिए थी , कुछ कांच के वर्ण की, कुछ कृष्ण वर्ण की और कुछ कलह करने वाली थी। कुछं हाथों से धर्म करने वाली, कुछ यशस्वी हाथों वाली और अन्य कीर्त्ति सम्पन्न हाथों वाली भी थीं।।४७।।

इस प्रकार उस महात्मा यमराज की नगरी में उक्त प्रकार के प्रमुख निवासी थे। जो ब्राह्मण इनका पूजन किया करता है, उसका पराभव नहीं होता।।४८।।

फिर आसक्ति ग्रस्त जीवों को नित्य इन्हें प्रणाम और इनका पूजन करना अभीष्ट होना चाहिए। इन्हें नित्य-निरन्तर सन्तुष्ट कर समस्त लौकिक कार्य करना चाहिए।।४९।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में यमपुरी में विभिन्न दिशाओं में स्थित गोपुर, यमसभा आदि विषयक वर्णननामक एक सौ पञ्चानवेवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१॥

अध्याय–१९६

यमराज की स्तुति सहित यमपुरी के विभिन्न शुभाशुभ का वर्णन

चूँकि प्रेतपुर याने यमलोक के राजा यमराज अपने उस सभा के बीच में विद्यमान थें। फिर यमराज ने केवल मात्र मुझ मृतक को ही यमपुरी का दर्शन कराया। फिर उन्होंने विधि के अनुकूल कर्म से मेरी यथोचित रीति से पूजन किया। वेद के अनुकूल कर्म से उन्होंने मुझे आसन, पाद्य और अर्घ्य प्रदान किया।।१-२।।

फिर उन्होंने प्रसन्न होकर मुझसे कहा कि कुश से आच्छन्न, दिव्य पुष्पों से विभूषित स्वर्ण के श्रेष्ठ आसन पर बैठिए।।३।।

तस्य वक्त्रं महारौद्रं नित्यमेव भयानकम्। पश्यतस्तस्य मां विप्रास्ततः सौम्यतरं बभौ॥४॥
लोहिते तस्य वै नेत्रे जल्पतश्च पुनः पुनः। पद्मपत्रनिभे चैव जज्ञाते मम सौहृदात्॥५॥
ततोऽहं तस्य भावेन भावितश्च पुनः पुनः। प्रहृष्टमानसो जातो विश्वासं च परं गतः॥६॥
तस्य प्रीतिकरं सद्य सर्वदोषविनाशनम्। कामदं च यशस्यं च दैवतैश्चापि पूजितम्॥७॥
कालवृद्धिकरं स्तोत्रं क्षिप्रं तत्र उदीरयन्। येन प्रीतो महातेजा यमः परमधार्मिकः॥८॥

ऋषिपुत्र उवाच

त्वं धाता च विधाता च श्राद्धे चैव हि दृश्यसे। पितृणां परमो देवश्चतुष्पाद नमोऽस्तु ते॥९॥
कालज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवादी दृढव्रतः। प्रेतनाथ महाभाग धर्मराज नमोऽस्तु ते॥१०॥
कर्ता कारयिता चैव भूतभव्यभवत्प्रभो। पावको मोहनश्चैव संक्षेपो विज्ञतरस्तथा।
दण्डपाणे विरूपाक्ष पाशहस्त नमोऽस्तु ते॥११॥
आदित्यसदृशाकार सर्वजीवहर प्रभो। कृष्णवर्ण दुराधर्ष तैलरूप नमोऽस्तु ते॥१२॥
मार्तण्डसदृशश्रीमान् मार्तण्डसमतेजसा। हव्यकव्यवहस्त्वं हि प्रभविष्णो नमोऽस्तु ते॥१३॥

वैसे उनका मुख नित्य-निरन्तर महारौद्र और भयानक दिखलाई पड़ता है, किन्तु हे विप्रो! मुझे देखते ही उनका मुख सौम्य हो गया था।।४।।

फिर बोलने के समय उनके नेत्र वारम्वार लाल हो जाते हैं, किन्तु मेरे से स्नेह करने के कारण वे कमलपत्र के समान हो गये थे।।५।।

इस प्रकार मैं उनके स्नेह से अत्यन्त ही प्रभावित हो गया था। मेरा चित्त भी प्रसन्न हो गया, मुझपर उनका पूर्ण विश्वास हो गया था।।६।।

फिर मैंने उन्हें प्रसन्न करने वाला, तत्काल समस्त दोषों को दूर करने वाला, सब कामनाओं को पूर्ण करने वाला, यश प्रदान करने वाला, देवताओं से पूजित और आयुष्य बढ़ाने वाला स्तोत्र शीघ्र पढ़ने लगा। जिससे परमधार्मिक और महातेजस्वी यमराज प्रसन्न हो गये।।७-८।।

ऋषि पुत्र ने कहा कि आप धाता और विधाता हैं। आप श्राद्ध में देखे जाते हैं। आप पितरों के परम देव हैं। हे चतुष्पाद! आपको नमस्कार है।।९।।

आप कालज्ञ, कृतज्ञ, सत्यवादी, दृढ़व्रती आदि तो हैं ही, आप हे महाभाग प्रेतनाथ धर्मराज! आपको प्रणाम है।।१०।।

हे करने वाले, कराने वाले, भूत, भविष्य, वर्तमान आदि काल स्वरूप प्रभो! हे पावक मोहन, संक्षेप और विस्तार स्वरूप हाथ में पाश धारण करने वाले विरूपाक्ष 'दण्डपाणि! आपको नमस्कार है।।११।।

हे आदित्य के समान आकृति वाले, सब जीव को हरण करने वाले, कृष्णवर्ण, दुराधर्ष तैरास्वरूप प्रभो! आपको प्रणाम है।।१२।।

हे सूर्य तुल्य तेजस्वी, सूर्य तुल्य श्रीमान् ! हे हव्य तथा कव्य को वहन करने वाले प्रभविष्णु! आपको प्रणाम है।।१३।।

पापहन्ता व्रती श्राद्धी नित्ययुक्तो महातपाः। एकदृग्बहुदृग्भूत्वा काल मृत्यो नमोऽस्तु ते॥१४॥
क्वचिद् दण्डी क्वचिन्मुण्डी क्वचित् कालो दुरासदः।
क्वचिद् बालः क्वचिद् वृद्धः क्वचिद् रौद्र नमोऽस्तु ते॥१५॥
त्वया विराजितो लोकः शासता धर्महेतुना। प्रत्यक्षं दृश्यते देव त्वद्विना न च सिध्यति॥१६॥
देवानां परमं दैवं तपसां परमं तपः। जपानां परमं जप्यं त्वत्तश्चान्यो न दृश्यते॥१७॥
ऋषयो वा तथा क्रुद्धा हतबन्धुसुहृज्जनाः। पतिव्रतास्तु या नार्यो दुःखितास्तपसि स्थिताः।
नत्वा शक्ता इह स्थानात् पातनाय कदाचन॥१८॥
तस्मात्त्वं सर्वदेवेषु एको धर्मभृतां वरः। कृतज्ञः सत्यवादी च सर्वभूतहिते रतः॥१९॥

वैशम्पायन उवाच

एवं श्रुत्वा स्तवं दिव्यमृषिपुत्रस्य भारत। परितुष्टस्तदा धर्मो उद्दालकसुतं प्रति॥२०॥

यम उवाच

परितुष्टोऽस्मि भद्रं ते माधुर्येण तवानघ। याथातथ्येन वाक्येन ब्रूहि किं कारवाणि ते॥२१॥
वरं वरय भद्रं ते यं वरं काङ्क्षसे द्विज। शुभं वा श्रेयसा युक्तं जीवितं वाऽप्यनामयम्॥२२॥

हे पापनाशक व्रती, श्रद्धाधिकारी, नित्ययुक्त, महान् तपस्वी, अनेक द्रष्टा होकर भी एक दृक्! हे कालमृत्यु! आपको प्रणाम है।।१४।।

हे कहीं दण्ड धारण करने वाले, कहीं मुण्डित रहने वाले, कहीं भयंकर कालस्वरूप, कहीं बालक, कहीं वृद्ध, कहीं रौद्र स्वरूप यमराज! आपको प्रणाम है।।१५।।

आप शासनकर्त्ता और धर्म हेतु स्वरूप वाले आपसे यह लोक विराजित है। हेदेव! यह प्रत्यक्ष दिखलायी पड़ता है कि आपके विना कोई कार्य नहीं सिद्ध होता।।१६।।

हे देव! आप देवों के धनदेव, तपों में भी परमतप, जपों में भी परमजप हैं। आपके अलावे अन्य कोई नहीं दीख पड़ा करता है।।१७।।

बन्धुओं और सुहृदों के मरने से कुछ ऋषि जन प्रतिव्रता स्त्रियाँ या तपस्या करते हुए दुःख उठाने वाले लोग आपको अपने स्थान से गिराने में कभी भी समर्थ नहीं हैं।।१८।।

इसीलिए सब देवताओं में आपको एकमात्र श्रेष्ठ धर्म पोषक, कृतज्ञ, सत्यवादी और समस्त प्राणियों का सदा हित करने वाले हैं।।१९।।

वैशम्पायन ने कहा कि हे भारत! ऋषि पुत्र के ऐसे दिव्य स्तोत्र को सुनकर धर्मराज उस उद्दालक के पुत्र के प्रति और भी संतुष्ट हो गये।।२०।।

यमराज ने कहा कि हे निष्पाप! मैं तुम्हारे माधुर्य और सत्यवचन से सन्तुष्ट हूँ। तुम्हारा कल्याण हो। कहो, मैं तुम्हारे लिए क्या करूँ?।।२१।।

हे द्विज! तुम जो वर कीं कामना कर रहे हो। वह वर माँग लो। क्या तुम श्रेय से युक्त शुभ ऐश्वर्यादि अथवा रोगरहित जीवन की इच्छा करते हो।।२२।।

ऋषिपुत्र उवाच

नेच्छाम्यहं महाभाग मृत्युं वा जीवितं प्रभो। यदि त्वं वरदो राजन् सर्वभूतहिते रत॥२३॥
द्रष्टुमिच्छाम्यहं देव तव देशं यथातथम्। पापानां च शुभानां च या गतिस्त्विह दृश्यते।
सर्वं दर्शय मे राजन् यदि त्वं वरदो मम॥२४॥
चित्रगुप्तं च ते राजन् कार्यार्थं तव चिन्तकम्। दर्शयस्व महाभाग सर्वलोकस्य चिन्तक।
यथाकर्मविशेषाणां दर्शनार्थं करोति सः॥२५॥
एवमुक्तो महातेजा द्वारस्थ संदिदेश ह। चित्रगुप्तसकाशं तु नय विप्रं सुयन्त्रितम्॥२६॥
वक्तव्यश्च महाबाहुरस्मिन् विप्रे यथातथम्। प्राप्तकालं चयुक्तं च तत्सर्वं वक्तुमर्हसि॥२७॥
ततोऽहं त्वरितं नीतस्तेन दूतेन दर्शितः। प्राप्तश्च परया प्रीत्या चित्रगुप्तनिवेशनम्॥२८॥
प्रत्युत्थितश्च मां दृष्ट्वा चिन्तयित्वा तु तत्त्वतः। स्वागतं मुनिशार्दूल यथेष्टं परिगम्यताम्॥२९॥
एवं संभाष्य मां वीरः स्वान् भृत्यान् संदिदेश ह।
कृताञ्जलिपुटान् सर्वान् घोररूपान् भयानकान्॥३०॥

चित्रगुप्त उवाच

भो भो शृणुत मे दूता मम चित्तानुवर्त्तकाः। भक्तिमन्तो दुराधर्षा नित्यं व्रतवरायणाः॥३१॥

ऋषिपुत्र ने कहा कि हे प्रभो! हे महाभाग! मैं मुत्यृ या जीवन नहीं चाहता हूँ। समस्त जीवों का कल्याण करने वाले हे राजन् ! यदि आप वर प्रदान करना चाहते हैं तो मैं वास्तविक रूप से आपका देश देखना चाहता हूँ। हे राजन् यदि आप मुझे वर प्रदान करना चाहते हैं, तो पापियों और पुण्यशीलों की जो गति यहाँ दीख पड़ रही हो वे सब मुझे दिखला दें।।२३-२४।।

हे राजन् ! हे महाभाग! आपके कार्य हेतु समस्त जनों के कर्मों का विचार करने वाले चित्रगुप्त को मुझे दिखलाने की कृपा करें। वे चित्रगुप्त कर्मानुसार विशेष फलों को प्रकट करने हेतु कार्य करते हैं।।२५।।

इस प्रकार से कह जाने पर महातेजस्वी यमराज ने द्वारपाल से कहा कि अच्छी तरह से इस नियन्त्रित ब्राह्मण को चित्रगुप्त के समीप लेकर जाओ।।२६।।

और फिर उस महाबहु से कहना कि इस ब्राह्मण को वास्तविक बातें बतला दे। जो कालोपयोगी और युक्त हो वे सब इन्हें बतलाया जाय।।२७।।

फिर परम प्रीतिपूर्वक दूत मुझे चित्रगुप्त के घर ले गया और उसने मुझे उनका दर्शन भी कराया।।२८।।

मुझे देखकर चित्रगुप्त खड़े हो गये। वास्तविक रूप से विचार कर उन्होंने कहा कि हे मुनिश्रेष्ठ! आपका स्वागत है। आप इच्छानुरूप यहाँ भ्रमण करें।।२९।।

मुझसे इस प्रकार कहकर वीर चित्रगुप्त ने अपने घोररूप वाले भयानक और हाथ जोड़े हुए समस्त सेवकों से कहा कि—।।३०।।

हे मेरे चित्त का अनुसरण करने वाले भक्तिमान् दुराधर्ष एवं नित्य व्रत परायण मेरे दूतो! सुनो।।३१।।

यम के आदेश से यह विप्र प्रेतों के निवास स्थान पर जायेगा। आप लोग इनकी रक्षा और बचाव करते रहें।।३२।।

अयं विप्रो यमादिष्टः प्रेतवासं गमिष्यति। अस्य रक्षा च गुप्तिश्च भवद्भिः क्रियतामिति॥३२॥

नैव दुःखेन खेदः स्यान्न चोष्णं न च शीतलम्।
बुभुक्षाऽपि तृषा वाऽपि एष आज्ञापयामि ह॥३३॥

एवं दत्तवरो विप्रो गुरुचित्तानुचिन्तकः। सर्वभूतदयावांश्च द्रव्यवांश्च स वै द्विजः॥३४॥
यथाकाममयं पश्येद् धर्मराजपुरोत्तमम्। एवमुक्त्वा महातेजा गच्छ गच्छेति चाब्रवीत्॥३५॥

ऋषिपुत्र उवाच

संदिष्टाश्च ततो दूताश्चित्रगुप्तेन धीमता। धावन्तस्त्वरमाणास्तु गृह्णन्तो घ्नन्ति चैव ह॥३६॥
बन्धयन्ति महाकाया निर्दहन्ति महाबलाः। पाटयन्ति प्रहारैश्च ताडयन्ति पुनः पुनः।
वेणुयष्टिप्रहारैश्च प्रहरन्ति ततोऽधिकैः॥३७॥

भग्ना भिन्ना विभिन्नाश्च तथा भिन्नशिरोधराः। रुदन्ति करुणं घोरं त्रातारं नाप्नुवन्ति ते॥३८॥
नरकेऽपि तथा पूर्णे अगाधे तमसाऽऽवृते। केचिच्च तेषु पच्यन्ते दह्यन्ते पावकेन्धनाः॥३९॥
तैलपाके तथा केचित् केचित् क्षीरेण सञ्च्रपषा। पतन्ति ते दुरात्मानस्तत्र तत्र स्वकर्मभिः।
यातनैर्विविधैर्घोरैर्दह्यमानास्ततस्ततः॥४०॥

केचिद् यन्त्रमुपारोप्य संपीड्यन्ते तिला इव। तेषां संपीड्यमानानां शोणितं स्रवते बहु॥४१॥

इन्हें किसी प्रकार दुःख और क्लेश न हो। अथवा इन्हें शीत, उष्ण, भूखा प्यास आदि का भी अनुभव नही हो। मैं यह आज्ञा देता हूँ।।३३।।

देखे! गुरुजनों क चित्त का अनुगामी, समस्त प्राणियों पर दया करने वाला, द्रव्य सम्पन्न और वर प्राप्त करने वाला यह विप्र इच्छानुसार धर्मराज का उत्तम पुर देखेंगे। इस प्रकार कहकर महातेजस्वी चित्रगुप्त ने कहा कि 'जाओ-जाओ'।।३४-३५।।

ऋषिपुत्र ने कहा कि फिर बुद्धिमान चित्रगुप्त ने दूतों को उचित आदेश दिया। फिर वहाँ मैंने देखा कि कुछ जन शीघ्रतापूर्वक दौड़ते हुए किसी न किसी प्राणी को पकड़ कर पीट रहे थे।।३६।।

यमराज को कुछ विशाल शरीर वाले महाबलवान् सेवक प्राणियों को बाँधते जलाते, चीरते, वारम्वार प्रहार कर मारते तथा उसमें भी अधिक बाँस के डण्डों के प्राहार से पीट रहे थे।।३७।।

टूटे-फूटे और घायल शरीर तथा फुटे हुए सिर और कन्धों वाले प्राणी करुण पूर्ण होकर घोर रुदन कर रहे थे। वे कोई बचाने वाला नहीं प्राप्त कर पा रहे थे।।३८।।

कुछ प्राणि उस अगाध अन्धकार से पूर्ण नरक में प्रज्वलित इन्धन द्वारा जलाये और पकाये जा रहे थे।।३९।।

कुछ जीव तेल में, कुछ दूध में, कुछ घी में पकाये जा रहे थे, वे दुरात्मा अपने कर्मवश वहाँ आते हैं तथा क्रमशः अनेक प्रकार की भयंकर यातनाओं के साथ जलाये जाते हैं।।४०।।

कुछ प्राणियों को यन्त्र पर रखकर तिल के समान पेरा जा रहा था। अनके पेरे जाने से बहुत सारे रुधिर प्रवाहित हो रही थी।।४१।।

ततो वैतरणी घोरा संभूता निम्नगा तथा। सफेनसलिलावर्त्ता दुस्तरा पापकर्मिणाम्॥४२॥
अथान्ये शूल आरोप्य दूताः पादेषु गृह्य वै। वैतरण्यां सुघोरायां प्रक्षिपन्ति सहस्त्रशः॥४३॥
नानुष्णे रुधिरे तत्र फेनमालासमाकुले। दशन्ति सर्पास्तांस्तत्र प्राणिनां तु सहस्त्रशः॥४४॥
अनुत्तार्य तदा तस्या उच्छ्रिता विकृतावशनाः। आवर्त्ता ऊर्मयश्चैव उत्तिष्ठन्ति सहस्त्रशः॥४५॥
तत्र शुष्यन्ति ते पापाः सर्वदोषसमन्विताः। मज्जन्तश्च प्लवन्तश्च त्रातारं नाप्नुवन्ति ते॥४६॥
अथान्ये बहवस्तत्र बहुभिश्चापि दूतकैः। कूटशाल्मलिमारोप्य लोहकण्टकसंवृताम्।
असिशक्तिप्रहारैश्च ताडयन्ति पुनः पुनः॥४७॥
तत्र शाखासु घोरासु मया दृष्टाः सहस्त्रशः। कूष्माण्डा यातुधानाश्च लम्बमाना भयानकाः॥४८॥
अतिक्रम्य च ते स्कन्धांस्तीक्ष्णकण्टकसंकुलान्। वेदनार्त्तास्तु वेगेन शीघ्रं शाखा उपारुहन्॥४९॥
तत्र ते निहता घोरा राक्षसाः पिशिताशनाः निःशङ्कं तमसावृतम्।
संक्रामन्तश्च खादन्ति शाखायां कपिवद् भृशम्॥५०॥
यथा च कुक्कुटं खादेत् कश्चिन्म्लेच्छो निराकृतिः।
तथा कटकटाशब्दस्तस्मिन् वृक्षे मया श्रुतः॥५१॥
पक्वमाम्रफलं यद्वन्नरः खादेद् यथा वने। एवं ते मुखतः कृत्वा महावक्त्रा दुरासदाः॥५२॥

फिर उसी से घोर वैतरणी नदी उत्पन्न हुई है। फेन युक्त जल के भ्रमर वाली उस नदी को पापी लोग नहीं पार कर सकते हैं।।४२।।

दूतजन ऐसे ही अन्यान्य हजारों जीवों को शूल पर रखकर और पैर पकड़कर उन्हें घोर वैतरणी में फेंक देते हैं।।४३।।

वहाँ फेन समूह से युक्त शीतल रुधिर में हजारों सर्प उन प्राणियों को डँसते हैं। उस वैतरणी नदी में हजारों पार न करने योग्य ऊँची, भयानक, अनियन्त्रित भँवरों और लहरें उठती रहती हैं।।४४-४५।।

उस रुधिर में सर्वदोषों वाले पापी जीव सूखते रहते हैं। डूबते उतराते उन जीवों को कोई बचाने वाला नहीं मिलता है। फिर अनेक दूत अन्य बहुत-से जीवों को लोहे के काँटों से युक्त शाल्मलि वृक्ष के शिखर पर रखकर तलवार एवं बरछी के प्रहार से बारम्बार मारते हैं।।४६-४७।।

मैंने वहाँ भयानक शाखाओं पर हजारों भयंकर कुष्माण्ड एवं यातुधान नाम का नारकीय जीवों को लटके हुए देखा।।४८।।

वे जीव तीक्ष्ण काँटों से भरे स्कन्धों का अतिक्रमण करने पर पीड़ा से व्याकुल होकर शीघ्र वेगपूर्वक शाखा पर चढ़ जाते हैं।।४९।।

फिर वहाँ चढ़े हुए मांसभक्षी वे घोर राक्षस अन्धकार पूर्ण शाखा पर प्रच्छन्न रूप से निःशंक होकर भ्रमण करते हुए प्रहार करते तथा बन्दर के समान बहुत भोजन करते रहते हैं।।५०।।

जैसे कोई पतित म्लेच्छ कुक्कुट खाता है, उसी तरह का कट-कट शब्द मैंने उस वृक्ष पर सुना।।५१।।

जैसे कोई जीव वन में पका हुआ आम का फल खाता है, उसी प्रकार से वे विशाल मुख वाले भयंकर प्राणी

चूषयित्वा तु ते सर्वांस्तेषां तस्मिन्नगोत्तमे। विसृजन्ति क्षितिं यावदस्थिभूतान्नरांस्तथा॥५३॥
ततो जवेन संयुक्ता वनस्थाश्चूषिताः पुनः। आविष्टानि च कर्माणि पुनः शीघ्रमकामयन्॥५४॥
अधस्तात् तु पुनस्तत्र पच्यन्ते पापकर्मिणः। पापेषु बहुसंख्येषु दारुणेषु सुदुःखिताः॥५५॥
विधानं याहि चैवेति वदन्तः परुषं वचः। यमदूता निरामर्षाः सूदयन्ति पुनः पुनः॥५६॥
पाषाणवर्षैः केचित्तु पांसुवर्षैश्च विद्रुताः। प्रविशन्ति न गच्छायां ततस्ते प्रज्वलन्ति तु॥५७॥
द्रवन्ति च पुनस्तत्र दूतैशपि दृढं हताः। भुवनेषु च घोरेषु पच्यन्ते ते दृढाग्निना॥५८॥
वारिपूर्णं ततः कुम्भं शीतलं च जलं पुनः। दीयतां दीयतां चेति ब्रुवते नः प्रसीदथ।

ततः पानीयरूपेण जलं तप्तं तु दीयते॥५९॥
तेन दग्धाश्च आर्ताश्च क्रोशयन्तः परस्परम्।
आलिङ्ग्यालिङ्ग्यदुःखार्त्ताः केचित्तत्र पतन्ति वै॥६०॥

तथान्ये क्षुधितास्तत्र हाहाभूता अचेतसः। अन्नानां सुसमृष्टानां भक्षाणां च सुगन्धिनाम्॥६१॥
पश्यन्ति राशींस्तत्र स्थान् सुगन्धान् पर्वतोपमान्। दधिक्षीररसांश्चैव कृशरान् पायसांस्तथा॥६२॥

अपना मुख बनाकर उस श्रेष्ठ वृक्ष पर उन सब जीवों को चूसने के बाद अस्थिमात्र शेष रहने पर उन्हें पृथ्वी पर फेंक देते हैं।।५२-५३।।

फिर वन में स्थित चूसे गए जीव पुनः गतिशील हो जाते हैं। अपने कर्मों के आवेश से युक्त होकर वे पुनः शीघ्र कामनायें करने लगते हैं।।५४।।

पुनः वे पापकर्मी वहाँ नीचे स्थित अनेक कष्टपूर्ण पापमय स्थानों में पकाये जाने पर अत्यन्त दुःखित होते हैं।।५५।।

अमर्षशून्य यमदूत "विधि के अनुरुप भोग करो" इस प्रकार का कठोर वचन कहते हुए उन्हें पुनः-पुनः पीड़ित करते रहते हैं।।५६।।

कुछ जन पत्थरों और धूलि की वर्षा के कारण भाग कर वृक्ष की छाया में प्रवेश करते हैं फिर वे जलने लग जाते हैं।।५७।।

फिर से वे वहाँ दौड़ने लगते हैं और यमदूत उन्हें दृढ़तापूर्वक मारते रहते हैं। फिर भयानक अग्नि उन्हें घोर भुवनों में उन स्थानों पर पकाया करती है।।५८।।

फिर वे वारम्वार यह कहते हुए कि हमारे ऊपर दया करो जलपूर्ण घट और शीतल जल प्रदान करो। तब उन्हें पीने हेतु तप्त जल दे दिया जाता है।।५९।।

इस प्रकार उससे दग्ध होकर दुःखी वे परस्पर चिल्लाते हैं। फिर कुछ दुःखी प्राणी एक-दूसरे को आलिङ्गन कर वहाँ गिर पड़ते हैं।।६०।।

तथा अन्य कुछ भूखे प्राणी हाहाकार करते हुए अचेत हो जाया करते हैं। वे वहाँ अच्छी तरह पकाये अन्न और सुगन्धित भोज्य पदार्थों की सुगन्धित पर्वत तुल्य राशियाँ देखते हैं। दही, दूध, रसों, खिचड़ी, खीर आदि की राशि या ढेर देखते हैं।।६१-६२।।

मधुमाधवपूर्णानि सुरामैरेयकस्य च। माध्वीकस्य च पानस्य सीधोर्जातरसस्य च॥६३॥
पानानि चैव दिव्यानि शीतलानि सुगन्धि च। गोरसस्य च पानानि भाजनानि सहस्त्रशः।
तपोऽर्जितानि दिव्यानि तिष्ठन्ति सुकृतात्मनाम्॥६४॥
माल्यानि धूपगन्धानि नानारससमायुताः। मनोहराश्च कान्ताश्च भूमिस्थाश्च सहस्त्रशः॥६५॥
भोजनेषु च सर्वेषु स्त्रियः कान्ता मनोहराः। गृहीतकुम्भमणिकाः सर्वाभरणभूषिताः॥६६॥
फलानि कुण्डहस्ताश्च पात्रीहस्तास्तथापराः। सुमनः पाद्यहस्ताश्च अदीनाः परमाङ्गनाः।
अन्नदानरताश्चापि भोजयन्ति सहस्त्रशः॥६७॥
नूपुरोऽज्ज्वलपादाश्च तिष्ठन्ति च मनोहराः। उपस्थाप्य महायोग्यमन्नं कालेन योषितः॥६८॥
ब्रुवन्ति सर्वास्ते चैव तस्यान्नस्य च दक्षिणाः। निघ्नन्तस्तान् हसतश्च दूता निष्ठुरवादिनः॥६९॥
भो भो कृतघ्ना लुब्धाश्च परदाराभिमर्शकाः। पापाः शठा निःकृतिकाः सर्वदानविवर्जिताः॥७०॥
परापवादनिरताः पापबद्धकथानकाः। निर्लज्जा गूहकादेया याचितुं मनसा हिताः॥७१॥
सुलभानि न दत्तानि विभवे सति लौकिकम्। पानीयमथ काष्ठानि यद्यन्नं सुखमागतम्।
तेन वध्या भवन्तो वै यातनाभिरनेकशः॥७२॥
कर्मणां च क्षयो जातः संसारे यदि पच्यथ। विमुक्ता इह लोकात् तु जनिष्यथ सुदुर्गताः॥७३॥

फिर मधु और मधु से निर्मित सुरा से पूर्णपात्र वहाँ उपस्थित रहते हैं। मैरेयक माध्वीक और सीन्धु नाम का सुराओं के पूर्ण पात्र वहाँ विद्यमान रहता है।।६३।।

वहाँ हजारों प्रकार के दिव्य, शीतल और सुगन्धित पेय पदार्थ तथा गोरस से बने पेय पदार्थों के पात्र उपस्थित रहते हैं। सत्कर्म कर्त्ताओं के तप से अर्जित वे सभी दिव्य पदार्थ उनके लिए वह उपस्थित रहते हैं।।६४।।

हजारों प्रकार की मालायें, धूपों के गन्ध, अनेक प्रकार के रसों से सम्पन्न पदार्थ और पृथ्वी पर स्थित रहने वाली मनोहर सुन्दर स्त्रियाँ वहाँ उपस्थित रहती हैं।।६५।।

सब भोजन के कालों में आभूषणों से अलंकृत और जलपूर्ण घड़ा तथा अन्य जलपात्र ली हुई स्त्रियाँ वहाँ विद्यमान रहा करती हैं।।६६।।

बहुत-सी स्त्रियाँ हाथों में फल कुण्ड तथा पात्र ली हुई है। वे श्रेष्ठ स्त्रियाँ परम प्रसन्न हैं और अन्न दान में रत होकर हजारों को खिलाया करती हैं।।६७।।

नुपूर से विभूषित पैरों वाली मनोहर स्त्रियाँ वहाँ खड़ी रहती हैं। स्त्रियाँ वहाँ समय पर अत्यन्त योग्य अन्न उपस्थित करती हैं।।६८।।

फिर वे सब कटुवादी यमदूत पापीजनों को मारते हुए हँसकर उस अन्न की दक्षिणा बतलाते हैं।।६९।।

हे कृतघ्न, लोभी, परस्त्रीगामी, पापी, शठ, क्रूर और सब प्रकार के दान से रहित जीवों हे दूसरों की निन्दा में रत रहने वाले पापपूर्ण कथा के अनुरागी निर्लज्ज और गूढ़कर्म करने वालो! माँगने की कामना वाले!।।७०-७१।।

लौकिक ऐश्वर्य होने पर भी तुम सुलभ और सुखपूर्वक प्राप्त अन्नपान, काष्ठ आदि माँगने पर प्रदान नहीं किया है। इसीलिए तुम अनेक तरह की यातनाओं द्वारा दण्ड के भागीदार बने हुए हो।।७२।।

यदि कर्मों का क्षय हो जाता है, तो संसार में कष्ट उठाना पड़ सकता है। इस लोक से मुक्त होकर अत्यन्त दुर्गति पूर्ण स्थिति में जन्म ग्रहण कर सकोगे।।७३।।

कुलेशु सुदरिद्रेषु संजाताः पापकर्मिणः। पापैरनुगता घोरैर्मानुषं लोकमाश्रिताः॥७४॥
वृत्तस्था भुञ्जते हीमांश्चतुर्वर्णा न संशयः। ततः सत्यरताः क्षान्ताः दयावन्तः सुधार्मिकाः॥७५॥
इह विश्रम्यते धीराः किंचित्कालं सहानुगाः। गच्छन्ति परमं स्थानं पृथिव्यां वा महाकुले॥७६॥
बहुसुन्दरनारीके समृद्धे सुसमाहिते। आयन्त तथा क्षान्ताः प्राप्स्यन्ति परमां गतिम्॥७७॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे षण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१९६॥

सप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

अथ यमलोकस्य यातनावर्णनम्

ऋषिपुत्र उवाच

तस्मिन् क्षितितलं सर्वमायसैः कण्टकैश्चितम्। प्रभवन्ति पुनः केचिद् विषमं तमसाऽऽश्रितम्॥१॥
अथान्ये छिन्नपादास्तु छिन्नपाणिशिरोधराः। पापाचारास्तथादेशाद् अपसर्पत माचिरम्॥२॥

इस प्रकार पापकर्त्ताओं के अत्यन्त दरिद्र कुल में उत्पन्न होगा। मनुष्य लोक में रह कर घोर पाप से सम्पन्न होओगे।।७४।।

अपनी वृत्ति का पालन करने वाले चारों वर्णों के जन निःसंशय इस पदार्थों का भोग करते हैं। इसी प्रकार सत्यवादी, क्षमाशील, दयावान् और धार्मिक जन भी इन पदार्थों का भोग किया करते हैं।।७५।।

इस प्रकार अपने अनुयायियों के साथ धीर पुरुष कुछ समय तक वहाँ विश्राम कर परमपद को पा जाते हैं अथवा पृथ्वी पर महान् कुल में जन्म ग्रहण करते हैं।।७६।।

चूँकि वे क्षमाशील अत्यन्त सुन्दर स्त्री वाले समृद्ध और अति निश्चिन्त परिवर में उत्पन्न होकर परम गति प्राप्त करते हैं।।७७।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में यमराज की स्तुति सहित यमपुरी के विभिन्न शुभाशुभ का वर्णननामक एक सौ छानवेवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१९६॥

अध्याय–१९७

यमलोक में प्राप्त होने वाले यातनाओं का वर्णन

ऋषिपुत्र ने कहा कि उस यमनगरी में अन्धकार युक्त विषम पृथ्वीतल पूरी तरह लौह काँटों से सम्पन्न है। कुछ धार्मिक जीव उसे पार करने में अवश्य समर्थ हो जाते हैं।।१।।

लेकिन अन्य पापकर्मियों के हाथ, पैर, मस्तक और ग्रीवा निश्चय ही छिन्न-भिन्न हो जाया करते हैं, फिर उन्हें यमदूतों के आदेश से शीघ्र चलना भी पड़ता है।।२।।

ये तु धर्मरता दान्ता वपुष्मन्ती तथा गृहे। परियान्ति क्षितिं सर्वे पात्यन्ते पापकारिणः॥३॥
याचमानाः स्थिता नित्यं सुशीतैस्तोयभोजनैः। स्त्रियः श्रीरूपसंकाशाः सुकुमाराः सुभोजनाः॥४॥
कृत्वा पूजां परां तत्र प्रतीक्षन्ते परं जनम्। अग्नितप्ते सुघोरे च निक्षिप्यन्ते शिलातले॥५॥
आलोके च प्रदृश्यन्ते वृक्षाश्च भुवनानि च। आयान्ति दह्यमानेषु पृष्ठपादोदरेषु च॥६॥
तत्र गत्वा तु ते दूताः प्रविशन्ति सुदारुणाः। क्लिश्यन्ति बहवस्तत्र त्रातारं नाप्नुवन्ति ते॥७॥
अथान्ये तु श्वभिर्घोरैरापादतलमस्तकम्। भक्ष्यमाणा रुदन्तश्च क्रोशन्ति तु पुनः पुनः॥८॥
अथान्ये तु महारूपा महादंष्ट्रा भ्यानकाः। सूचीमुखं कृताः पापाः क्षुधितास्तृषितास्तथा॥९॥

अन्नादि दीयमानानि भक्ष्याणि विविधानि च।
भोज्यानि लेह्यचोष्याणि यैर्निषिद्धं दुरात्मभिः॥१०॥

असौ सारमयी नारी वह्नितप्ता सुदारुणा। आलिङ्गति नरं तत्रा धावन्तं चानुधावति॥११॥
धावन्तं चानुधावन्ती इदं वचनमब्रवीत्। अहं ते भगिनी पाप अहं भार्या सुतस्य ते।
मातृष्वसा ते दुर्बुद्धे मातुलानी पितृष्वसा॥१२॥

जो जन धर्मरत और इन्द्रियों को वश में रखने वाले होते हैं, वे जन शरीर धारी घर के समान वहाँ सर्वत्र भ्रमण किया करते हैं, किन्तु पापकर्मी वहाँ पटके जाते हैं।।३।।

नित्य सुशीतल जल और भोजन द्वारा स्वागत किये गए धर्मवान् जन वहाँ ठहरते हैं। लक्ष्मी के समान रूपवती सुकुमार स्त्रियाँ सुन्दर भोजन लिये रहती हैं।।४।।

वे स्त्रीजन उस श्रेष्ठ धार्मिक जन की पूजा कर उसकी सेवा भी किया करती हैं। किन्तु पापीजन अग्नि से तपे हुए अत्यन्त कष्टपूर्ण शिलातल में फेंके जाते हैं।।५।।

उन पापियों को प्रकाश में वृक्ष और कई भुवन दीख पड़ते हैं। पीठ, पैर, उदर आदि जलते हुए वे वहाँ तक आते हैं।।६।।

वहाँ जाने पर भयानक अनेक यमदूत उन्हें कष्ट दिया करते हैं। वहाँ पापियों को कोई रक्षक नहीं मिल पाता है।।७।।

भयानक कुत्तों द्वारा पैर से मस्तक पर्यन्त खाये जा रहे अन्य पापी जन वारम्बार रोते और चिल्लाते रहा करते हैं।।८।।

फिर दूसरे विशाल रूप और महान् दंष्ट्रा वाले पापियों का मुख सूई के समान होने से वे भूखे और प्यासे रह जाया करते हैं।।९।।

फिर भोजन हेतु दिया जा रहा अन्न, बाई प्रकार के भोज्य वस्तु, चटनी और चूसने योग्य पदार्थों का भोजन दुरात्मओं केलिए निषिद्ध हुआ करता है।।१०।।

फिर लौहमयी और अग्नि से तपे अतिकष्टकारिणी स्त्री उस दौड़ रहे पुरुषजन का आलिङ्गन किया करती है और उसके पीछे भागती रहती है।।११।।

इस प्रकार उस दौड़ रहे पुरुष के पीछे दौड़ रही वह स्त्री इस तरह कहा करती है कि हे पापीजन! मैं तुम्हारी बहन हूँ। मैं तुम्हारे पुत्र की पत्नि हूँ। हे दुर्बुद्धि! मैं तुम्हारी मौसी, मामी और फुआ हूँ।।१२।

अहं हि गुरुभार्या ते भ्रातुर्भार्या त्वहं तव। मित्रभार्या त्वहं मूढ राजभार्या त्वहं शृणु॥१३॥
श्रोत्रियाणां द्विजातीनां तायास्त धर्षितास्त्वया।
मोक्षसे न हि पाप त्वं रसातलगतोऽपि वा॥१४॥
किं प्रधावसि निर्लज्ज व्यसनैश्चोपपादितैः। वधिष्येऽहं ध्रुवं पाप यथा कर्म त्वया कृतम्॥१५॥
एवं वै घोषयन्ती च श्रावयन्ति पुनः पुनः। अभिद्रवन्ति तं पापं घोररूपा भयानकाः॥१६॥
जातीनां च सहस्त्रेषु जातं जातं तथा स्त्रियः। अनुपीड्य दुरात्मानं धर्षयन्ति सुदारुणम्॥१७॥
वृषलीबहुलैर्दुखैः किं क्रन्दसि पुनः पुनः। किं क्रन्दसि सुदुर्बुद्धे परिष्वक्तः स्वयं मया॥१८॥
दशधा त्वं मया पाप नीयमानः पुनः पुनः। अञ्जलिं वाऽपि कुर्वाणो याचमानो च लज्जसे॥१९॥
न मोक्षसे मया पाप कुतो गच्छसि मूढ वै। यत्र यत्र प्रयासि त्वमिति गत्वा यमालये।
तत्र तत्रैव पाप त्वां न त्यक्षे पारदारिकम्॥२०॥
लोहयष्टिप्रहारैश्च ताडयन्तः पुनः पुनः। गोपाला इव दण्डेन कालयन्तो मुहुर्मुहुः॥२१॥
व्याघ्रसिंहसृगालैश्च तथा गर्दभराक्षसैः। भक्ष्यन्ते श्वापदैरन्यैः श्वानकाकैस्तथाऽपरे॥२२॥
असितालवनं तत्र धूमज्वालासमाकुलम्। दावाग्निसदृशाकारं प्रदीप्तं सर्वतोऽर्चिषा॥२३॥

मैं तुम्हारे गुरु की पत्नि हूँ। फिर मैं तुम्हारे भाई की पत्नि हूँ। हे मूढ! सुनो! मैं तुम्हारे मित्र की भार्या हूँ तथा मैं राजपत्नी हूँ।।१३।।

हम तुम्हारे द्वारा बलात्कार की गयी श्रोत्रिय ब्राह्मण की स्त्रियाँ हैं। हे पापी रसातल में जाने पर भी तुम छूट नहीं सकते।।१४।।

व्यसनों वाले हे निर्लज्ज क्यों दौड़ते हो? हे पापी! तुमने जिस प्रकार का कर्म किया है उसके अनुसार मैं तुम्हारा वध करूँगी।।१५।।

इस प्रकार भयंकर स्वरूप वाली वे भयानक स्त्रियाँ इस तरह पुकारती हुई सुनाया करती हैं। फिर उस पापी के पीछे दौड़ने लगती हैं।।१६।।

हजारों जातियों में उत्पन्न स्त्रियाँ उस दुरात्मा को पीड़ित कर भयानक रूप से डाँटती हैं। शूद्रस्त्री कहा करती है कि हे दुर्बुद्धि! तुम क्यों रो रहे हो? मैं स्वयं तुम्हारा आलिङ्गन कर रही हूँ, क्यों तुम व्यर्थ रो रहे हो?।।१७-१८।।

हे पापकर्मि! मेरे द्वारा ले जाये जा रहे तुम हाथ जोड़कर दशों प्रकार से वारम्बार याचना करते हुए लज्जा नहीं आती है।।१९।।

हे पापाचारि! मैं तुमको छोड़ने वाली तो नहीं। हे मूढ़! कहाँ जाओगे? तुम इस यमालय में जहाँ-जहाँ जाओगे, वहाँ-वहाँ हम भी चलेंगी। हे पापी! हम परस्त्रीगमन करने वाले तुमको नहीं छोड़ने वाली हूँ।।२०।।

फिर वे उनको लोहे के दण्ड से इस तरह वारम्वार मारा करती हैं, जैसे ग्वाले पशुओं को दण्ड से वारम्वार हाँका करते हैं।।२१।।

फिर दूसरे-दूसरे पापीजन को व्याघ्र, सिंह, शृंगाल, गर्दभ, राक्षस और अन्य सिंह प्राणी खाया करते हैं।।२२।।

वहाँ पर धूम और ज्वाला से पूर्ण, दावाग्नि के समान आकृति वाला और हर जगह ज्वाला से प्रदीप्त असिताल वन है।।२३।।

तत्र क्षिप्तास्ततः पापा यमदूतैः सुदारुणैः। दह्यमानाः सुतप्ताश्च संश्रयन्ते द्रुमान् पुनः।
असिपत्रे ततो वृक्षाश्छिन्दन्ति बहुशो नरान्॥२४॥
तत्र छिन्नाश्च दग्धाश्च हन्यमानाश्च सर्वशः। विघृष्टा विकृताश्चैव दह्यमाना नदन्ति ते॥२५॥
असितालवनद्वारि ये तिष्ठन्ति महाबलाः। पापकर्मसमायुक्तास्तर्ज्जयन्ति सुदारुणाः॥२६॥
भो भो पापसमाचारा धर्मसेतुविनाशकाः। अतो निमित्तं पापिष्ठा यातनाभिः सहस्रशः॥२७॥
अनुभूयेह तत्सर्वं मानुष्य यदि यास्यथ। कुलेषु सुदरिद्राणां गर्भवासेन पीडिताः।
भोगैश्च पीडिता नित्यं उत्पत्स्यथ सुदुर्गताः॥२८॥
अग्निज्वालानिभास्तत्र अग्निस्पर्शा महारवाः। पक्षिणश्चायसैस्तुण्डैर्व्याघ्राश्चैव सुदारुणाः॥२९॥
तत्र घोरा बहुविधाः क्रव्यादाः श्वापदास्तथा। खादन्ति रुषितास्तत्र बहवो हिंसकान् नरान्॥३०॥
ऋक्षद्वीपिसमाकीर्णे बहुकीटपिपीलिके। असितालवने विप्रा बहुदुःखसमाकुले॥३१॥
तत्र क्षिप्ता मया दृष्टा यमदूतैर्महाबलैः। असितपत्रसुभग्नाङ्गाः शूललग्नास्तथाऽपरे॥३२॥
तथाऽपरो महादेशो नानारूपो भयानकः। पुष्करिण्यश्च वाप्यश्च ह्रदा नद्यस्तथैव च।
तडागानि च कूपाश्च रुधिरस्य सहस्रशः॥३३॥

फिर भयानक दीखने वाले यमदूत पापियों को उसें फेंक दिया जाता है। तप्त हो रहे और अतिशय तापयुक्त वे पापी पुनः पेड़ों पर आश्रय ग्रहण करते हैं। तदनन्तर असिपत्र में स्थित वृक्ष उन मनुष्यों को अनेक प्रकार से तो छिन्न-भिन्न किया करते हैं।।२४।।

वहाँ वे सब कटै, जले, पीटै जा रहे, घसीटे जा रहे, विकृत और जलाये जा रहे जीव सब जगह आर्त्तनाद किया करते रहते हैं।।२५।।

असिताल वन के द्वार पर जो महाबलवान् , अति भयंकर और पापकर्म युक्त द्वारपाल रहा करते हैं, वे जीवों को धमकाते ही रहा करते हैं।।२६।।

हे हे पापाचार करने वाले महापापियों! तुम सब धर्म सेतु के विनाशक हो। इसीलिए तुम हजारों यातनाओं से गुजर रहे हो।।२७।।

अतः यहाँ तुम इन सबका अनुभव करो। यदि तुम पुनः मनुष्य योनि प्राप्त कर पाओगे, तो तुम लोग दरिद्रों के कुल में गर्भवास से पीड़ित होओगे। नित्य भोगों के कारण कष्ट पाओगे और फिर उत्पन्न होकर तुम्हारी अत्यन्त दुर्गति ही हुआ करेगी।।२८।।

वहाँ अग्नि ज्वाला के समान, अग्नि के समान स्पर्श वाले और घोर शब्द करने वाले अत्यन्त भयंकर व्याघ्र तथा लोहे की चोञ्च वाले पक्षियोनि के जीव स्थित हैं।।२९।।

वहाँ पर विविध प्रकार के मांसभक्षी, कई हिंसक पीड़ा रोष से हिंसक मनुष्यों को खाया करते हैं।।३०।।

हे विप्रो! अनेक कीटों और चींटियों वाले तथा हाथियों से व्याप्त ऋक्ष तथा अनेक दुःखों से पूर्ण असिताल वन में मेरे द्वारा महाबलशाल यमदूतों से फेंके गए जीवों को देखा गया है। उनमें कुछ प्रणियों के अंग अच्छी तरह असिपत्र में प्रविष्ट हो चुके थे, और दूसरे शूल में लगे अष्ट रहे थे।।३१-३२।।

वैसे ही विभिन्न रूपों वाले भयंकर दूसरे देश, तालाब, बावलियाँ, जलखात, नदियाँ, तडाग और रुधिर के हजारों कूप स्थित हैं।।३३।।

पूतिमांसकृमीणां च अमेध्यस्य तथैव च। अन्यानि च मया तत्र दृष्टानि मुनिसत्तमाः॥३४॥

तत्र क्लिश्यन्ति ते पापास्तस्मिन् मध्ये सहस्रशः।
जिघ्रन्तश्च तथा गन्धं मज्जन्तश्च सहस्रशः॥३५॥

अस्थिपाषाणवर्षाश्च रुधिरस्य बलाहकाः। अश्मवर्षं च ते घोराः पातयन्ति सहस्रशः॥३६॥

धावतां प्लवतां चैव हा हतोऽस्मीति भाषिणाम्। प्राहतानां पुनःशब्दो वध्यतां च सुदारुणः।
क्रन्दतां करुणोन्मिश्रं दिशोऽपूर्यन्त सर्वशः॥३७॥

क्वचिद् बद्धः क्वचिद् रुद्धः क्वचिद् विद्धः सुदारुणैः।
क्वचिच्छूले तथा विद्ध उद्बद्धश्च क्वचित् तथा॥३८॥

हा हा भयानकोन्मिश्रः शब्दोऽश्रूयत दारुणः। अपश्यं पुनरन्यत्र यत्स्मृत्वा चोद्विजेन्नरः॥३९॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे सप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१९७॥

हे श्रेष्ठ मुनियो! मेरे द्वारा वहाँ अन्य भी हजारों दुर्गन्धियुक्त मांस, कृमियों, तथा अपवित्र पदार्थों का ढेर देखा गया है।।३४।।

फिर वेसब पापी जीव उन पदार्थों के बीच हजारों तरह का दुःख भोगते हैं तथा अनेक प्रकार के दुर्गन्धों को सूँघते तथा उनमें डूबते रहा करते हैं।।३५।।

फिर वहाँ मेघ अस्थि, पाषाण, रुधिर आदि की वर्षा किया करते हैं। वे भयंकर मेघ कई प्रकार से पत्थरों की वृष्टि क्रिया करते हैं।।३६।।

फिर इस स्थिति में भाग रहे, डूब रहे, अति पीटे जा रहे, बाँधे जा रहे आदि प्रकार से जीवों का 'हाय मैं मारा गया' इस तर का आर्तनाद तथा उनके करुणापूर्णरुदन की ध्वनि समस्त दिशाओं में व्याप्त हैं।।३७।।

फिर कहीं काई बँधा है, कहीं कोई अवरुद्ध है, कहीं कोई अत्यन्त भयानक शस्त्रों से वेधित है, कहीं कोई शूल से ही वेधित है और कोई कहीं ऊपर टँगा हुआ पड़ा है।।३८।।

इस प्रकार भय युक्त हाहाकर की भयानक ध्वनि हर जगह सुनायी पड़ रही थी। मेरे द्वारा फिर से अन्यत्र इस प्रकार के दृश्यों को देखा गया, जिसे स्मरण करके मनुष्य उद्विग्न मात्र ही हो जाते हैं।।३९।।

।।इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में यमलोक में प्राप्त होने वाले यातनाओं का वर्णननामक एक सौ अनठानवेवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ।।१९८।।

❖❖❖

अष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

अथ नन्दकेषु यातनावर्णनम्

ऋषिपुत्र उवाच

तप्तं चैव महातप्तं महारौरवरौरवौ। सप्ततालश्च नरको नरकः कालसूत्रकः॥१॥
अन्धकारश्च नरको अन्धकारपरस्तथा। अष्टावेते तु नरकाः पच्यन्ते यत्र पापिनः॥२॥
प्रथमे प्रथमं विद्याद् द्वितीये द्विगुणं तथा। तृतीये त्रिगुणं विद्याच्चतुर्थे तु चतुर्गुणम्॥३॥
पञ्चमे तु गुणाः पञ्च षष्ठं षड्गुणमुच्यते। सप्तमे तु गुणाः सप्त अष्टमेऽष्टविधा गुणाः॥४॥
अहोरात्रेण चाध्वानं प्रेता गच्छन्ति तत्पुरम्। दुःखितानां ततो दुःखं दुःखाद् दुःखतरं ततः॥५॥
दुःखमेवात्र हि सुखं दुःखैर्दुःखं विवर्ध्यते। उपायस्तत्र नैवास्ति येन स्वल्पं सुखं भवेत्॥६॥
मुच्यते च मृतस्तत्र मारकास्तत्र दुर्लभाः। शब्दे स्पर्शे तथा रूपे रसे गन्धे तु पञ्चमे॥७॥
न सुखं तस्य तत्रास्ति किञ्चिदेवात्र विद्यते। शारीरैर्मानसैश्चैव दुःखैर्दुःखान्तगामिभिः॥८॥
आयसैः कण्टकैस्तीक्ष्णैस्तप्तावृता मही। अन्तरिक्षं खगानीकैरग्निजिह्वैः समावृतम्॥९॥
अतीव च बुभुक्षाऽत्र पिपासा चाप्यतीव हि। उष्णमत्युष्णमेवात्र शीतलं चातिशीतलम्॥१०॥

अध्याय–१९९

नरक वर्णन सहित वहाँ दी जा रही यातनायें

ऋषिपुत्र ने कहा कि तप्त, महातप्त, महारौरव, रौरव, सप्तताल, कालसूत्रक, अन्धकार, अन्धतामिस्त आदि प्रकार से आठ प्रकार के नरक हैं, जिनमें पापीजन कष्ट भोगा करते हैं।।१-२।।

इस तरह प्रथम नरक में एक गुना, द्वितीय में दुगुना, तीसरे में तीगुना, चौथे में चार गुना कष्ट मिलते हैं, जानना चाहिए।।३।।

फिर पाँचवें में पञ्चगुना, छठे में छगुना, सातवें में सातगुना और आठवें में अष्टगुना कष्ट कहा गया है।।४।।

फिर प्रेतजन याने मृतक जीव अहोरात्र मार्ग में चलकर उस पुर में पहुँच पाते हैं। दुःखी जीवों को वहाँ के दुःख से भी अधिक कष्टप्रद दुःख मिला करते हैं।।५।।

यहाँ दुख ही सुख है। दुःख से दुःख की अभिवृद्धि हुआ करती है। वहाँ कोई जन इस प्रकार का उपाय नहीं कर सकता कि जिससे थोड़ा भी सुख मिलने की सम्भावना की जा सके।।६।।

वहाँ पर मृतक प्राणी को छोड़ दिया जाता है। वहाँ मारक दुर्लभ होते हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि स्वरूप के बारे में वहाँ उसके लिए कोई भी सुख नहीं होता है। शारीरिक और मानसिक दुःखों से ही अन्य दुःखों का अन्त होता है।।७-८।।

फिर वहाँ की तप रही भूमि तपते हुए तीक्ष्ण लोहे के काटों से आवृत है। वहाँ का आकाश अग्नि के समान जिह्वा वाले पक्षियों के समूह से घिरा रहा करता है।।९।।

यहाँ पर अति भूख और प्यास का अनुभव हुआ करता है। यहाँ उष्ण पदार्थ अत्यन्त ऊष्ण और शीतल पदार्थ भी अत्यन्त शीतल हुआ करते हैं।।१०।।

पातुकामस्य पानीयं राक्षसैर्नीयते सरः। हंससारससंकीर्णं पद्मोत्पलविभूषितम्॥११॥
पातुकामश्च पानीयं सहसा तत्र धावति। सलिलं प्रेक्षते चैव तत्र तप्ततरं तथा।
ततः पक्वानि मांसानि राक्षसैः परिनीयते॥१२॥
क्षारोदकेऽपि च तथा क्षिप्यतेऽत्र महाह्रदे। तत्र चैव ह्रदे नैका मत्स्या खादन्ति सर्वशः॥१३॥
ततः कालावसाने तु कथंचित् प्रपलायिनः। किञ्चिदन्तरमागम्य वेदनार्त्ताः पतन्ति हि।
यातनार्थं पुनस्तत्र मांसं चैवोपजायते॥१४॥
शिरस्येवोपविष्टस्य प्रस्थितस्य प्रधावतः। तस्यार्त्तायामवस्थायां दुःखं भवति दारुणम्॥१५॥
करीषगर्त्तस्तत्रैव कुम्भीपाकः सुदारुणः। पद्मपत्राकृतिसतस्य पेशीं तत्र शरीरजाम्॥१६॥
पाटयन्ति सुमार्गेण राक्षसाः करपत्रिकाः। निपीड्य दशनै रोषं भीमनादाः सुरोषिताः॥१७॥
असिपत्रवनं चात्र शृङ्गाटकवनं तथा। तत्र शृङ्गाटकाश्चैव तप्तवालुकमिश्रिताः॥१८॥
दह्यते छिद्यते चैव विध्यते भिद्यते तथा। पाट्यते पीड्यते चैव कृष्यते च विशस्यते॥१९॥
श्यामाश्च शबलाश्चैव श्वानस्तत्र दुरासदाः। खादन्ति च सुसंरब्धाः सर्पवृश्चिकसन्निभैः॥२०॥
कण्टकैः प्रतिकूलैश्च तत्रान्या कूटशाल्मली। कर्षन्ति तत्र चैवैनं यावदस्थावशेषितः॥२१॥

फिर जल पीने हेतु माँगने वालों को राक्षस उसे सरोवर पर ले जाते हैं, जो सरोवर हंस और सारसों से तथा कमलपत्रों से विभूषित होता है, पानी मांगने वाला प्राणी वहाँ दौड़कर जाता है, लेकिन वहाँ अत्यन्त ऊष्ण जल देखता ही है कि इधर राक्षस उसके शरीर से पक्व मांस नोंच लेते हैं।।११-१२।।

फिर वैसे ही उस जीव को उस खारे जल वाले महाह्रद में फेंक दिया जाता है। उस ह्रद में उसे सब ओर से कई प्रकार की मछलियाँ नोंचती रहती हैं।।१३।।

फिर कुछ समय बाद किसी तर फेंके गए जीवों को महाह्रद में से निकल जाने दिया जाता है, फिर वह जीव भागने लगते हैं। फिर कुछ दूर जाकर वे पीड़ा से व्याकुल होकर गिर पड़ते हैं। पुनः वहाँ यातना मिलने हेतु उनके शरीर में माँस आ जाते हैं।।१४।।

इस प्रकार व्याकुल अवस्था में बैठै, चलते, भागते हुए उस जीव के शिर में दुरण पीड़ा उत्पन्न हो जाया करती है।।१५।।

फिर वहाँ पर करीषगर्त नाम का नरक और पद्मपत्र की आकृति का भयंकर कुम्भीपाक नरक है। वहाँ उसके शरीर की पेशी को हाथ में आड़ी रखने वाले राक्षस सुन्दर रीति से फाड़ते हैं। वे राक्षस उसके शरीर के शेष भाग को दाँतों से चबाकर भयानक शब्द करते और सुरा पीया करते हैं।।१६-१७।।

वहीं पर असिपत्रवन और श्रृंगाटक वन भी है। वहाँ पर तप्त बालू से मिश्रित श्रृंगाटक हैं, वहाँ जीव को जलाया , काटा, छेदा, भेदा, फाड़ा, पेरा, और घोंटा जाता है।।१८-१९।।

फिर वहाँ काले और भूरे वर्ण के भयानक कुत्ते, सर्प और बिच्छू के समान अपनी जिह्वा एक दाँतों से जीव को खया करते हैं।।२०।।

वहीं परएक विपरीत तरीके के काँटों से युक्त दूसरा कूटशाल्मलि है। राक्षसजन उस पर इस भरकीय जीव को उस समय तक घसीटते हैं, जिस समय तक उसकी हड्डियाँ ही शेष रह जाया करती हैं।।२१।।

यद्दुःखं तस्य दुर्बुद्धेः प्रतिकूलं च तस्य यत्। तत्र चोत्पद्यते शीघ्रं यातनार्थाय यत्नतः॥२२॥
शीतकामस्य वै चोष्णमुष्णकामस्य शीतलम्। सुखकामस्य वै दुःखं सुखं नैवात्र विद्यते॥२३॥
छिन्नाश्च शतधाऽप्येवं ह्यनिशं तैः सहस्रशः। छिन्नाङ्गाः सर्वगात्रेषु सर्वमेवं स विन्दति॥२४॥
सलिलं च नदीं घोरां व्यालाकीर्णां भयानकाम्।
तां चैव तार्यते प्रेतो यां दृष्ट्वैव भयं भवेत्॥२५॥
करम्भवालुका नाम शतयोजनमायता। अग्निज्वालासमा घोरा पथा येन स गच्छति॥२६॥
ततो वैतरणी नाम क्षारोदा तु महानदी। योजनानि तु पञ्चाशदधस्तात् पञ्चयोजनम्॥२७॥
अगाधपङ्का वै तत्र चर्ममांसास्थिभेदना। तत्र कर्कटका घोरा वज्रदंष्ट्रा विशन्ति ताम्॥२८॥
उलूकाश्च धनुर्मात्रा वज्रजिह्वास्थिभेदना। महाविषा महाक्रोधा दुर्विषह्याः सुदारुणा॥२९॥
समुत्तीर्य तु कृच्छ्रेण तस्माद् योजनकर्दमात्। वसन्त्यदूरे केचित् तु शून्यागारे निराश्रये।
यत्र वै मूषिकगणा भक्षयन्ति ह्यनेकशः॥३०॥
मूषकैर्जग्धगात्रस्तु ह्यस्थिमात्रावशेषितः। प्रभाते वायुना स्पृष्टः पुनर्मांसं स विन्दति॥३१॥

उस पापी दुर्बुद्धि जीव को वहाँ जो भी दुःख देने वाला पदार्थ होता है और उसके प्रतिकूल जो भी वस्तु होती है, वह शीघ्र ही वहाँ उसकी यातना हेतु यत्नपूर्वक वहाँ पर उत्पन्न हो जाया करते हैं।।२२।।

फिर शीत की इच्छा करने वाले को ऊष्ण, ऊष्ण पदार्थ की कामना वाले को शीत और सुख की अभिलाषी को दुःख मिलता है। अतः वहाँ सुख नहीं ही मिला करता है।।२३।।

वे राक्षस नारकीय जीव को इस प्रकार सैकड़ों और सहस्रों टुकड़ों में काटा करते हैं। उनके अंगों के कट जाने पर वह प्रेत सम्पूर्ण शरीर में सब अंगों को प्राप्त कर लेता है।।२४।।

उस प्रेत को ऐसे ही व्यालाकीर्ण भयंकर जलपूर्ण घार नदी के पार ले जाया जाता है, जिसे देखकर ही भय उत्पन्न होता है।।२५।।

फिर वैसे करम्भ बालुका नाम का सौ योजन विस्तृत अग्निज्वाला के सदृश भयंकर नदी है, जिस मार्ग से उसे जाना पड़ता है।।२६।।

फिर खारे जल वाली वैतरणी नाम की महानदी है, जो पचास योजन विस्तृत और पाँच योजन गहरी है।।२७।।

वह चर्म, मांस, अस्थि आदि का भेदन करने वाली तथा अगाध पंक वाली नदी है। उस नदी में वज्र के समान दाढ़ वाले केकड़े भ्रमण करते हैं।।२८।।

वहाँ धनुष के समान, वज्र के समान जिह्वा वाले, हड्डियों का भेदन करने वाले महाविषयुक्त अतिक्रोधी अत्यन्तकठोर और भयंकर उल्लू रहा करते हैं।।२९।।

कष्टपूर्वक उस एक योजन विस्तृत कीचड़ से निकल कर नारकीय जीव थोडी ही दूर पर स्थित एकान्त निराश्रित भवन में निवास किया करते हैं, जहाँ उन्हें चूहे कई प्रकार से खाया करते हैं।।३०।।

फिर चूहों द्वारा खाये जाने के आद अस्थि शेष मात्र रहने पर वह प्रेत सुबह सबेरे वायु के स्पर्श से पुनः मांसयुक्त हो जाता है।।३१।।

शून्यागारप्रवेशात् तु गव्यूती नातिदूरतः। सहकारवनं नाम चमरा यत्र पक्षिणः॥३२॥
निस्त्वगस्थिस्तु क्रियते निर्मांसश्चैव मानवः। निःशिराजालकश्चैव निरक्षिश्रवणस्तथा॥३३॥
वटवृक्षो नातिदूरे दक्षिणे तु त्रियोजनम्। सन्ध्याभ्र इव चाभाति प्रदीप्तो नित्यमेव तु॥३४॥
दशयोजनविस्तीर्णा तदधः शतमायता। यमचुल्लीति विख्याता गम्भीरा सा त्रियोजनम्।
नित्यं प्रज्वलिता सा तु नित्यं धूमान्धकारिता॥३५॥
तत्र प्रेतसहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि चः। प्रक्षिप्यन्ते त्वहोरात्रं राक्षसैर्यमकिङ्करैः।
एकमासं तु तस्यां तु चुल्हायां वै परिभ्रमात्॥३६॥
ततः शकुनिका नाम वसामेदोवहा नदी। चुल्लीकुक्षौ विनिष्क्रान्ता वेगिनी वहते तु सा॥३७॥
तां समुत्तीर्य कृच्छ्रेण यातनाः सप्तकाः पुनः। एकैकं दुस्तरं घोरं यथापूर्वं यथाक्रमात्॥३८॥
दश तत्र लताशूलाः कुम्भीपाकास्त्रयोदश। याति पापमहोरात्रं तस्मिन्निर्यातनेन तु॥३९॥
राक्षसैर्निरनुक्रोशैर्दुर्निरक्ष्यैस्ततस्ततः। अङ्गरेषु विधूमेषु शूलप्रोतस्तु पच्यते॥४०॥
शुष्कोदपाने धूमे च अधः शीर्षोऽवलम्बते। ज्वाल्यते तीक्ष्णतैले तु कटाह्यां स तु पच्यते॥४१॥

फिर उपरोक्त शून्यागार के निकट ही दो कोस पर सहकारवन नामक वन है, जहाँ चमर पक्षी रहा करते हैं।।३२।।

फिर उनके द्वारा जीव त्वक्, अस्थि, मांस, स्नायु मण्डल, आँखे और कान से हीन कर दिया जाता है।।३३।।

वहाँ से निकट ही दक्षिण दिशा की ओर नियोजन पर एक वट वृक्ष है, जो सन्ध्या कालीन मेघ के समान नित्य प्रदीप्त दीख पड़ता है।।३४।।

उस वट के नीचे सौ योजन लम्बी, दस योजन चौड़ी तथा तीन योजन गहरी प्रसिद्ध यम चुल्ली है। वे निरन्तर प्रज्वलित और धूम से आच्छन्न रहती है।।३५।।

यमदूत राक्षस दिन रात उसमें हजारों, लाखों और अरबों प्रेतों को फेंका करते हैं। वे प्रेत एक मास तक उस चुल्हें में भ्रमण करते हैं।।३६।।

फिर चुल्ली के पार्श्व से निकलने वाली वसा और मेद से पूर्ण वेगवती शकुनिका नामक नदी उनको बहा ले जाया करती है।।३७।।

कष्ट के साथ उसको पार करने के बाद वह दुष्कर्मी जीव पुनः सात प्रकार की यातनायें भोगता रहता है। पूर्ववत् क्रम से एक-एक बार दुस्तर कष्टों का उठाता हुआ पड़ा रहता है। वह दुष्कर्मी जीव अतिकष्ट से तीव्र वेदनाओं को भोगता है।।३८।।

वहाँ दश लताशूल तथा तेरह कुम्भीपाक हैं। फिर यातना हेतु दिनरात पापी जीव जाया करते रहते हैं।।३९।।

इस प्रकार उनसब जगहों पर भयंकर क्रूर राक्षस द्वारा धूम रहित अङ्गारों के पर शूल में वेधित जीव को पकाया जाता है।।४०।।

फिर शुष्क जल वाले शूप्र में नीचे शिर के बल लटका कर तीक्ष्ण तेल वाली कड़ाही में वह जीव राक्षसों द्वारा जलाया और पकाया जाता है।।४१।।

करीषगर्त्ते स पुनः पच्यते मन्दवह्निना। एकैकस्मिन् दशाहं तु शूलादिषु स पच्यते।
यातनाः सप्तकास्तस्य निष्क्रान्तस्य त्रियोजने।।४२।।
यतो यमनदी नाम तप्तपूयजलोर्मिणी। समुत्तीर्य तु कृच्छ्रेण दह्यमानस्त्वचेतनः।।४३।।
ततो मुहूर्त्तं विश्रान्तः किञ्चिदन्तरगामतः। दीर्घिकां मोक्षते कान्तां शीतोदां दिव्यकाननाम्।।४४।।
सर्वकामान् स लभते भगिनी सा यमस्य तु। भक्ष्यं भोज्यं च सर्वैस्तु दुःकृतेस्तत्र लभ्यते।
विस्मरेत् तत्र तत्सर्वं त्रिरात्रमुषितस्य तु।।४५।।
ततो गलग्रहो नाम पर्वतः शतयोजनः। निराश्रयः स सत्त्वानामेकपाषाण एव च।।४६।।
तत्र वर्षति पर्जन्यस्तप्तत्रपुजलं सदा। तत्र कृच्छ्रेण तरति अहोरात्रेण मानवः।।४७।।
शृङ्गाटकवनं नाम तत्र पश्यति शाद्वलम्। नीलमक्षिकदंशैश्च सुव्याप्तां तद्वनं महत्।।४८।।
यैस्तु स्पृष्टश्च दष्टश्च कृमिरूपश्च जायते। प्रेतो वर्षति मांसासृक् क्रमात् तस्मात् विनिःसृतः।।४९।।
ततोऽन्यल्लभते चैव यातनार्थं प्रयत्नतः। ततः पश्यति पुत्रांस्तु महद्दुःखं सुदारुणम्।।५०।।
मातरं पितरं चैव पुत्रान् दारांस्तथा प्रियान्। पुरस्ताद् बध्यमानं स क्रन्दमानमचेतनम्।।५१।।

फिर वह करीषगर्त में मन्द अग्नि से पकाया जाया जाता है। शूलादिपर प्रत्योरापित कर वह एकैक गर्त में दस-दस दिनों तक पकाया जाता है। इस प्रकार सात यातनाओं से उसके निकलने पर तीन योजन की दूरी पर तप्तपूय स्वरूप जल की लहरों वाली यमनदी नाम का एक नदी है। जलाया जाता हुआ अचेतन प्राणी कष्ट से उस नदी को पार करता है।।४२-४३।।

फिर कुछ दूर जाकर वे सब एक मुहूर्त्त तक विश्राम करते हैं। फिर वे एक शीतल जल और दिव्य उपवन युक्त सुन्दर बावली देखते हैं।।४४।।

यह बावली यम की बहन है। वे सब प्रेत वहाँ सब कामना योग्य वस्तुओं को प्राप्त करने वाले होते हैं। पिर समस्त दुष्कर्मियों को वहाँ खाने पीने की वस्तुऐं प्राप्त हुआ करती हैं। वहाँ पर तीन रात्रि रहने पर उसे पूर्व में हुए वे सब कष्ट विस्मृत हो जाया करते हैं।।४५।।

फिर सौ योजन का पापग्रह नाम का पर्वत है। उसमें एक ही पत्थर है और उस पर कोई प्राणी नहीं रहा करता है।।४६।।

मेघ उस पर्वत के ऊपर तप्त राँगा रूपीजल की वृष्टि करता है। मनुष्य कष्टपूर्वक उसे एक अहोरात्र में पार कर पाता है।।४७।।

वहीं पर श्रृंगाटक वन नाम का एक वन है। जीव वहाँ हरियाली देख पाता है। वह महान् वन नील मक्खियों एवं मच्छरों से व्याप्त है।।४८।।

जिनके द्वारा स्पर्श किये जाने और काटे जाने पर प्रेत कृमि स्वरूप हो जाते हैं। वहाँ पर मांस और रुधिर की वृष्टि हुआ करती है। जो क्रम से उसके बाहर निकलता है।।४९।।

फिर यातना हेतु प्रयत्नपूर्वक वह अन्य स्थान प्रापत करता है। वहाँ वह अपने पुत्रों को देखता है। जिससे उसे अतिकष्टकारक महान् दुःख अनुभव होता है।।५०।।

उसने अपने सामने मारे जाते हुए और रोते हुए अचेत माता-पिता, पुत्रों और अपनी प्रिया पत्नी को भी देखता है।।५१।।

हा पुत्र त्राहि त्राहीति कन्दमानस्ततस्ततः। लगुडैर्मुद्गरैर्दण्डैर्जानुभिवणुभिस्तथा॥५२॥
मुष्टिभिश्च कशाभिश्च व्यालैरङ्कगतैरपि। तद् दृष्ट्वा तादृशं दुःखं ततो मोहं स गच्छति॥५३॥
एवमेवात्मकर्माणि पर्यायेण पुनः पुनः। प्राप्नुवन्तीह तत्रैव नरा दुःकृतकारिणः॥५४॥
पातकाश्चैव चत्वारः समाचारेण पञ्चमः। कृत्वा तानि नरा यान्ति देशं पापकारिणः॥५५॥
तमादिषु च सर्वेषु गुणान्तरपथं गतः। यदा भवति स प्रेतस्तदा स्थावरतां व्रजेत्॥५६॥
तदा च स्थावरे तेषु जातस्य हि भवेन्नरः। क्रमशः स भवेत् प्रेतस्तदा पशुगणेष्वपि॥५७॥
षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च। गतः स वसति प्रेतो नरके स पुनः पुनः॥५८॥
ततो निवृत्तकर्मा तु स्वेदजः संभवेत् पुनः। स्वेदजानां ततो योनिं सर्वां संचरेत् क्रमात्॥५९॥
ततश्च पक्षिणां योनिं सर्वां संसरते पुनः। गोयोनौ तु ततो गत्वा ततो मानुषतां व्रजेत्॥६०॥
ततो विषत्वं गच्छेत कर्मणाऽनेन वेष्टितः। वैश्यात् क्षत्रियतां याति तस्माच्च ब्राह्मणो भवेत्॥६१॥
ब्राह्मणत्वमपि प्राप्तः पापकर्मा दुरात्मवान्। दुःशिक्षितेन मनसा आत्मद्रुह्यो भवेत् तदा॥६२॥

फिर इधर-उधर वे सब हे पुत्र! बचाओ! बचाओ' इस तरह कहते हुए रोते रहा करते हैं। वे सब लाहियों, मुद्गरों, दण्डों, घुटनों तथा बाँस की बल्लियों मुक्कों, कोड़ों अथवा गोद में पड़े सार्पों द्वारा मारे जाया करते हैं। वे प्रेत जीव उस प्रकार के उनके स दुःख को देखकर मोहित हो जाया करते हैं।।५२-५३।।

इस प्रकार से दुष्कर्म करने वाले जीव वहाँ पर अपने किये कर्मों अनुरूप क्रम से वारम्वार फल पाया करते हैं।।५४।।

चूँकि चार महान् पातक होते हैं। ऐसे पापियों के साथ संसर्ग पाँचवाँ महापातक है। उन ापों को करने पर पापकर्मी मनुष्य उस स्थान पर जाया करते हैं।।५५।।

एक गुण, द्विगुण आदि गुणित प्रकारक दूरी वाले मार्ग पर चलते हुए मृतक जीव तमिस्र आदि नरकों में जाया करते हैं। जब वे प्रेत जीव उन नरकों से मुक्त हो जाया करते हैं, उस समय वे स्थावर योनि में जन्म पाता है।।५६।।

फिर वे जीव स्थावर योनि के उन विभिन्न योनियों में उत्पन्न होकर फिर वे प्रेत क्रम से पशुओं की योनि में उत्पन्न हो पाता है।।५७।।

इस तरह उन योनियों में होने पर वे जीव वारम्वार साठ हजार साठ सौ वषर्ों तक नरक का भोग करते रहा करते हैं।।५८।।

फिर उनका कर्माभोगान्त होने पर वेप्रेत पुनः स्वेदज के रूप में जन्म लेता है। इस प्रकार वे क्रम से स्वेदजों की सभी योनियों में भ्रमण करते रहते हैं।।५९।।

फिर वे पुनः पक्षियों की सब योनियो में भ्रमण करते हैं। फिर वे गौर की योनि में जाकर तब वे पुनः मनुष्य योनि को प्राप्त कर पाता है।।६०।।

मनुष्य योनि में भी सर्वप्रथम शूद्र होकर उत्पन्न होता है। शूद्र योनि में जन्म लेकर यदि वे विशुद्ध रह पाता है, तो उसके बाद अपने इस कर्म बल से वे वैश्य योनि में जन्म लेते हैं। इसी तरह वैश्य से वे क्षत्रिय और फिर उत्तरोत्तर शुद्ध रहने पर ब्राह्मण योनि में उत्पन्न हो पाता है।।६१।।

फिर ब्राह्मण होने पर भी यदि वे दुरात्मा पापकर्मों से युक्त होते हैं, तो वे पुनः शिक्षा युक्त मन के कारण वे आत्मद्रोही हो जाया करते हैं।।६२।।

शरीरं मानसं घोरं व्यसनैरुपपादितम्। उपयुक्तो नरो जातः पूर्वकर्मभिरन्वितः॥६३॥
ज्ञेयश्च ब्रह्महा कुष्ठी काकाक्षः काकतालुकः। सुरापः श्यावदन्तश्च पूतिगन्धश्च पापकृत्॥६४॥
राजहा पितृहा चैव सुरापश्चैव यो भवेत्। सुवर्णहर्ता च नरो ब्रह्मघ्नेन समो हि सः॥६५॥
क्वचिन्नाटविरूपान्ता नराणां पापकर्मिणाम्। यावता कर्मभिस्तैस्तैस्तेषु निर्याणवेश्मसु॥६६॥
छिन्नभिन्नविशस्तानां रुधिरेण समन्ततः। व्याप्तं महीतलं सर्वमापगाश्च प्रपूरिताः॥६७॥
अजस्रं क्लिश्यमानानां क्रन्दतां च सुदारुणम्। समुत्तस्थे महानादो हाहाकारसमाकुलः॥६८॥
बन्धन्तो विविधैर्बन्धैर्घातयन्तश्च दारुणम्। लौहयष्टिप्रहारैश्च आयुधैश्च सुदारुणैः॥६९॥
छेदनैर्भेदनैश्चोग्रैः पीडनाभिश्च सर्वशः। श्रान्ताः कर्करा दूता मोहमापन्नचेतसः॥७०॥
यदा श्रान्ताश्च खिन्नाश्च हन्तारः पापकर्मिणाम्। विज्ञापयंस्तदा दूताश्चित्रगुप्तं महौजसम्॥७१॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे अष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१९८॥

पूर्व कर्मों के कारण जन्म लिये हुए वे जीव विविध प्रकार के शारीरिक और मानसिक व्यसनों से युक्त हो जाया करते हैं॥६३॥

फिर ब्रह्मघाती जीव कोढ़ी, कोए के समान नेत्र और वायु वाला हुआ करते हैं। फिर सुरापान करने वाला जीव काले दाँतों वाला, दुर्गन्धि युक्त पापकर्मी होता है॥६४॥

जो जन राजा का हत्यारा, पिता को मारने वाला, सुरापान करने वाला और स्वर्ण की चोरी करने वाला होता है, वे सब ब्रह्मघाती के समान होते हैं॥६५॥

चूँकि इस यमलोक में जो पापकर्मी विकृत स्वरूप वाले हैं, उन मनुष्यों के पापकर्मों के कारण ही तदनुरूप विभिन्न यातना गृहों में जाना और रहना पड़ता है॥६६॥

फिर उन यातना गृहों का पृथ्वीतल सर्वत्र छिन्न-भिन्न और मारे गए प्राणियों के रुधिर से संव्याप्त रहा करते हैं। नदियाँ भी उन्हीं रुधिरों से भरी रहा करती हैं॥६७॥

वहाँ पर नित्य भयानक स्तर पर पीड़ित हो रहे और रोने वाले जीवों के हाहाकर से युक्त महानाद उठता रहता है॥६८॥

विभिन्न बन्धनों में बाँधे हुए और अत्यन्त भयंकर लौह दण्डों और आयुधों से भयंकर प्रहार करते हुए सब जगह उग्ररूप से छेदन, भेदन और पीड़न करने से कार्य करने वाले यमदूत श्रान्त होकर फिर मोहित हो जाया करते हैं॥६९-७०॥

फिर पापियों को मारने वाले दूत जब श्रान्त और भिन्न हो जाते हैं, तो वे इन महान् ओजस्वी चित्रगुप्त से निवेदन करते हैं॥७१॥

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में यमलोक में प्राप्त होने वाले यातनाओं का वर्णननामक एक सौ अनठानवेवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥१९८॥

❖❖❖

नवनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

अथ राक्षसकिङ्करेषु युद्धवर्णनम्

ऋषिपुत्र उवाच

ततस्ते सहिताः सर्वे अन्योऽन्याभिरताः सदा। नानावेषधरा दूताः कृताञ्जलिपुटास्तदा॥१॥

दूता ऊचुः

वयं श्रान्ताश्च क्षीणाश्च अन्यान् योजितुमर्हसि। वयमन्यत् करिष्यामः स्वामिकार्यं सुदुष्करम्॥२॥

अन्ये हि तावत् तत्कुर्युर्यथेष्टं तव सुव्रत। भगवन् परिक्लिष्टाः स्मस्त्राहि नः परमेश्वर॥३॥

ततो विवृत्तरक्ताक्षस्तेन वाक्येन रोषितः। विनिःश्वस्य यथा नागो ह्यपश्यत् सर्वतो दिशम्॥४॥

अदूरे दृष्टवान् कञ्चित् पुरुषं सह्यनाकृतिम्। स तु वेगेन संप्राप्त इङ्गिताो दुरात्मवान्।
निःसृतश्च स रोषेण चित्रगुप्तेन धीमता॥५॥

ततः स त्वरितो गत्वा मन्देहा नाम राक्षसाः। नानारूपधरा घोरा नानाभरणभूषिताः।
विनाशाय महासत्त्वा यत्र तिष्ठन्महायशाः॥६॥

चित्रगुप्तो महाबाहुः सर्वलोकार्थचिन्तकः। समः सर्वेषु भूतेषु भूतानां वधमादिशत्॥७॥

अध्याय-१९९

राक्षस-किन्नर युद्ध के सहित धर्मराज द्वारा ज्वर प्रशंसा

ऋषि पुत्र ने कहा कि इस प्रकार से सदैव आपस में स्नेह बाँटने वाले अनेक वेषधारी दूत एक साथ हाथ जोड़कर बोल पड़े।।१।।

दूतों ने कहा कि हम सब श्रान्त और क्षीण हो चले हैं। अतः अब इन कार्यों के लिए अन्यों को नियुक्त करें। हम सब स्वामी के अन्य दुष्कर कार्य को करेंगे।।२।।

हे सुव्रत! अब अन्य जन आपके यथेष्ट कार्य को करें। हे भगवन! हम सब थक चुके हैं। हे परमेश्वर! हमारी आप रक्षा करें।।३।।

इन बातों के रूष्ट होते हुए लाल-लाल नेत्र खोले हुए और नाग के सदृश लम्बी साँस लेते हुए चित्रगुप्त ने सब दिशाओं में देखा।।४।।

फिर पास में ही उन्होंने एक विकृत आकृति वाले किसी पुरुष की ओर देखा। फिर संकेत को समझने वाला वह दुरात्मा वेगपूर्वक उन सब के समीप गया। बुद्धिमान् चित्रगुप्त ने रोष से उसे बाहर की ओर भेजा।।५।।

फिर वह उस स्थान पर शीघ्रता से चला गया। जहाँ विभिन्न रूप धारण करने वाले, अनेक आभूषणों से सुशोभित, महाबली और अतियशस्वी भयंकर मन्देह नाम का राक्षस विनाश हेतु रहा करते हैं।।६।।

सबके आशय को समझने वाले और सब प्राणियों पर समान भाव रखने वाले महाबाहु चित्रगुप्त ने उन भूतों के वध का आदेश दे दिया।।७।।

ततस्ते विविधाकारा राक्षसाः पिशिताशनाः। उपरुह्य तथा सर्वे मातङ्गांश्च हयांस्तथा॥८॥
बद्धगोधाङ्गुलित्राणा नानायुधसमुद्यताः। अग्रतः किंकरास्तिष्ठन् कृत्वापादाभिवन्दनम्॥९॥
अब्रुवंश्च पुनर्हृष्टाः शीघ्रमाज्ञापय प्रभो। तव संदेशकर्त्तारः कस्य कृन्ताम् जीवितम्॥१०॥
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा चित्रगुप्तो ह्यभाषत। रोषगद्गदया वाचा निःश्वसन् वै मुहुर्मुहुः॥११॥
भो भो मन्देहका वीरा मम चित्तानुपालकाः। एतान् बध्नीत गृह्णीत भूतान् राक्षसपुङ्गवाः॥१२॥
एवं हत्वा च बध्वा च आगच्छत पुनर्यथा। हन्तारः सर्वजीवानां कृतघ्ना हठविक्रमाः॥१३॥
हत्वा वै पापकानेतान् मम विप्रियकारिणः। एतच्छुत्वा वचस्तस्य वचनं चेदमब्रुवन्॥१४॥

राक्षसा ऊचुः

श्रान्ता वा क्षुधिता वाऽपि दुःखिता वा तपोधनाः।
अमात्येनैव ज्ञातव्या भृत्याः शतसहस्रशः॥१५॥

एते वधार्थं निर्दिष्टास्त्वयैव च महाव्रताः। न युक्तं विविधाकारा ह्यस्माकं नाशनाय वै॥१६॥
यथा ह्येते समुत्पन्नाः सर्वधर्म्यनुचिन्तकाः। तथा वयं समुत्पन्नास्तदर्थं हि भवानपि॥१७॥
मा च मिथ्या परिज्ञा ते धर्मिष्ठस्य भवत्विति। अस्माकं विग्रहे वीर मुच्यन्ते यदि मन्यसे॥१८॥

फिर वे सब हाथियों और घोड़ों पर चढ़ गए। फिर गोह चर्म के बने वस्त्रों को पहन कर और विविध प्रकार के आयुधों को धारण कर वे उद्यत हो चले। वे सब सेवक उन चित्रगुप्त के चरणों की वन्दना कर उनके समक्ष क्रम से खड़े हो गये।।८-९।।

फिर उसने पुनः प्रसन्न होकर कहा कि हे प्रभु! शीघ्र आज्ञा दें। आपके सन्देश का पालन करने वाले हम सब किसका जीवन नष्ट करें।।१०।।

उनके इस वचन को सुनकर चित्रगुप्त ने वारम्वार निःश्वास छोड़ते हुए रोष से गद्गद कण्ठ से कहा— हे हे मेरे मन के अनुरूप कार्य करने वाले वीर राक्षस श्रेष्ठ मन्देह! लो इन सब को बाँधो और पकड़ लो।।१२।।

फिर इन सबको बाँधने और मारने के बाद पुनः यहाँ आओ। अत्यन्त पराक्रमी तुम सब समस्त कृतघ्न जीवों को मारने वाले हो।।१३।।

मेरा अप्रिय करने वाले इन सब पापकर्मियों को मार कर यहाँ आओ। उनके ऐसी वाणी सुनकर उनने यह वचन कहा।।१४।।

राक्षसों ने कहा कि अमात्य को ही सैकड़ों और सहस्रों थके, भूखे, दुःखी या कष्टसहिष्णु भृत्यों की जानकारी होनी चाहिए।।१५।।

अपने ही इन विविध आकृति वाले महाव्रतधारियों को वध और नाश करने का आदेश दिया है। किन्तु यह उचित नहीं है।।१६।।

जिस तरह सम्पूर्ण धर्मों का विचार करने वाले ये सब उत्पन्न हुए हैं, उसी तरह उसी कार्य हेतु हम और आप भी उत्पन्न हुए हैं।।१७।।

हे वीर! आप धार्मिक की आज्ञा मिथ्या न हो, अतः यदि आप चाहें, तो हम लोगों से युद्ध करने हेतु इन सबको भी मुक्त कर दें।।१८।।

परित्रायस्व नो वीर किङ्कराणां महाबलान्। हन्यमानान् हि रक्षोभिरस्मानद्य रणाजिरे॥१९॥
एवमुक्त्वा ततो घोरा व्याधयः कामरूपिणः। सन्नद्धास्त्वरितं शूरा भीमरूपा भयानकाः॥२०॥
गजैरन्ये तथा चाश्वै रथैश्चापि महाबलाः। कण्टकैस्तुरगैर्हंसैरन्ये सिंहैस्तथा मृगैः॥२१॥
महिषैश्च शृगालैश्च व्याघ्रैर्मेषैस्तथाऽपरे। गृध्रैः श्येनैर्मयूरैश्च सर्पगर्दभकुक्कुटैः॥२२॥
एवं वाहनसंयुक्ता नानाप्रहरणोद्यताः। समागता महासत्त्वा अन्योन्यमभिकाङ्क्षिणः॥२३॥
तूर्यक्ष्वेडितसंघुष्टैर्दलितास्फोटितैरपि। जयार्थिनो द्रुतं वीराश्चालयन्तश्च मेदिनीम्॥२४॥
ततः समभवद् युद्धं तस्मिंस्तमसि वर्त्तते। मुकुटैरङ्गदैश्चित्रैः केयूरैः पट्टिशासिकैः॥२५॥
सकुण्डलैः शिरोभिश्च भ्राजते वसुधातलम्। बहुभिश्च सकेयूरैश्छत्रैश्च मणिभूषणैः॥२६॥
शूलशक्तिप्रहारैश्च यष्टितोमरपट्टिशैः। असिखड्गप्रहारैश्च बलप्राणसमीरितैः॥२७॥
अभवद् दारुणं युद्धं तुमुले लोमहर्षणम्। नखैर्दन्तैश्च पादैश्च तेऽन्योऽन्योऽमभिजघ्निरे॥२८॥
बाहुभिः समनुप्राप्तं केशाकेशि ततः परम्। अयुक्तमतुलं युद्धं तेषां वै समजायत॥२९॥
ततस्ते राक्षसा भग्ना दूतैर्घोरपराक्रमैः। देहि देहि वदन्त्येव भिन्धि गृह्णीष्व तिष्ठ च॥३०॥

हे वीर! आज रणाङ्ग में राक्षसों द्वारा मारे जा रहे हम महाबलवान् सेवकों की रक्षा अपको करना चाहिए।।१९।।

इस प्रकार कहते हुए भयंकर स्वरूप वाली और स्वेच्छानुरूप रूप धारण करने वाली भयानक और घोर पराक्रमी व्याधियाँ आ पहुँची।।२०।।

कुछ महाबलवान् व्याधियाँ हाथियों, घोड़ों, रथों, कण्टकों, हंसों, सिंहों और मृगों पर समारूढ़ थी।।२१।।

फिर दूसरी मैंसों, शृंगालों, व्याघ्रों, भेड़ों, गीधों, वाज पक्षियों, मोरों, सर्पों, गदहों, और मृगों से संयुक्त व उस पर सवार थी।।२२।।

इस प्रकार के विविध वाहनों से सम्पन्न, विविध शास्त्र धारण करने वाले तथा एक दूसरे की आकांक्षा करने वाले महाबलवान् वे सब आ पहुएचे।।२३।।

जयाभिलाषी वीरों के तूर्य के उद्घोष तथा बलपूर्वक किये गए ताल के शब्दों से शीघ्र ही पृथ्वी को कम्पित करने लग गया।।२४।।

फिर उस अन्धकारपूर्ण स्थान में युद्ध प्रारम्भ हो गया। मुकुटों, विजायटो, विचित्र केयूरों, पट्टिश युक्त छूड़ियों, कुण्डलयुक्त मस्तकों, अनेकं केयूरों, छत्रों, तथा मणिजटित आभूषणों से पृथ्वी तल शोभायमान हो चली।।२५-२६।।

बल एवं वेगपूर्वक चलाये गए शूलों, शक्तियों, यष्टियों, तोमरों, पट्टिशों, तलवारों और खड्गों के प्रहारों से लोमहर्षण भयानक घोर युद्ध हो गया। वे एब एक-दूसरे को नखों, दाँतों और पैरों से मारने और काटने लग गये।।२७-२८।।

वे सब बाहुओं से युद्ध करने के बाद एक-दूसरे का केश पकड़कर फिर अनुचित रूप से उनका परस्पर घोर युद्ध हुआ।।२९।।

फिर घोर पराक्रमी दूतों द्वारा वे राक्षस भगा दिये गए। वे सभी भागते समय दो दो, काटो, पकड़ो, खड़े रहो' इस तरह कोलाहल कर रहे थे।।३०।।

वध्यमानाः पिशाचास्ते ये निवृत्ता रणार्दिताः। आह्वयन्त प्रतिभयात् क्रोधसंरक्तलोचनाः॥३१॥
तिष्ठ तिष्ठ क्व यासीति न गच्छामि दृढो भव। मया मुक्तमिदं शस्त्रं तव देहविनाशनम्॥३२॥
किन्तु मूढ त्वया शस्त्रं न मुक्तं मे रुजाकरम्। मया क्षिप्तास्तु इषवः प्रतीच्छ किं पलायसे॥३३॥
किं त्वं वदसि दुर्बुद्धे एषोऽहं पारगो रणे। म बाहुविमुक्तस्तु यदि जीवस्यतो वद॥३४॥
तत्र ते सहसा घोरा राक्षसाः पिशिताशनाः। मन्देहा नाम नाम्ना ते बध्यमानाः सहस्रशः॥३५॥
ततो भग्ना यदा ते तु राक्षसाः कामरूपिणः। प्रतिपद्यन्त ये मायां तामसीं तमसावृताः।
अदृश्याश्चैव दृश्याश्च तद्बलं तमसावृतम्॥३६॥
ततस्ते शरणं जग्मुर्ज्वरं परमभीषणम्। शूलपाणिं विरूपाक्षं सर्वप्राणिप्रणाशनम्॥३७॥
मदेहा नाम नाम्ना वै राक्षसाः पिशिताशनाः। खादन्ति चैव घ्नन्ति स्म चित्रगुप्तेन चोदिताः॥३८॥
व्याधीनां च सहस्राणि दूतानां च महाबलाः। वयमद्य महाभाग त्रायस्व जगतः पते॥३९॥
ततस्तेषां वचः श्रुत्वा दूतानां कामरूपिणाम्। ज्वरः क्रुद्धो महातेजा योधानां तु सहस्रशः॥४०॥
कालो मुण्डः केकराक्षो लोहयष्टिपरिग्रहः। विविधान् संदिदेशात्रा पुरुषानग्निवर्चसः॥४१॥

इस प्रकार उस युद्ध में हारकर पीछे की ओर भाग रहे क्रोध से लाल हुए नेत्रों वाले तथा मारे जा रहे वे पिशाच भयवश आहवान करते आ रहे थे।।३१।।

ठहरो! ठहरो! कहाँ भागे जा रहे हो? मैं नहीं जाता हूँ, दृढ़ बनो' मैं तुम्हारे देह को नष्ट करने वाला यह शस्त्र त्याग दे रहा हूँ।।३२।।

किन्तु हे मूढ! तुमने मुझे कष्ट देने वाला शस्त्र हीं छोड़ा। मैंने बाणों को छोड़ा है। रूको, कहाँ भाग रहे हो?।।३३।।

हे दुर्बुद्धि! तुम क्या कह रहे हो? यह मैं युद्ध को पार करने वाला हूँ। यदि मेरे बाहुओं से मुक्त होकर जीवित रहे, तो कहना।।३४।।

फिर मारे जा रहे हजारों मांसभक्षी मन्देह नामक वे घोर राक्षस भागने लगे। फिर स्वेच्छानुसार स्वरूप धारण करने वाले वे तमोगुण युक्त राक्षस, जब पराजित हो गये, तो उन्होंने तामसी माया का प्रयोग कर दिया। अदृश्य और दृश्य रहने वाले उन सबकी सेना अन्धकार से घिर गयी।।३६।।

फिर वे अत्यन्त भयंकर शूलपाणि, विकृत नेत्रों वाले और सब प्राणियों को विनष्ट करने वाले ज्वर की शरण में चले गये।।३७।।

फिर उन्होंने उस ज्वर से कहा कि ये मांस भक्षी मन्देह नाम का राक्षस है। ये चित्रगुप्त की आज्ञा से जीवों को खाया करते हैं और मारते भी हैं।।३८।।

हजारों व्याधि स्वरूप दूतों में हम अत्यन्त बलवान् हैं। हे महाभाग! आज हम पराजित हो गये हैं। हे संसार के स्वामी! हमारी आप रक्षा करें।।३९।।

फिर स्वेच्छानुरूप रूपधारी उन दूतों की वाणी सुनाकर महातेजा ज्वर ने क्रोध सहित हजारों योद्धाओं से कहा—लौहदण्डधारी, केराक्ष, कालस्वरूप मस्तक वाले, ज्वर ने अग्नि के समान तेजस्वी विविध प्रकार के पुरुषों को यह आज्ञा दे डाला।।४०-४१।।

बद्धाञ्जलिपुटान् सर्वानिदमाह सुरेश्वरः। यात शीघ्रमिमान् पापान् योगेन च बलेन च॥४२॥
ततस्ते त्वरितं गत्वा यत्र ते पिशिताशनाः। ज्वराज्ञया तु ते सर्वे जीमूतघननिःस्वनाः॥४३॥
बहूंस्ते राक्षसान् घोरान् दर्पोत्सिक्तान् सहस्त्रशः। बहुशस्त्रप्रहारैश्च शस्त्रैश्च विविधोज्ज्वलैः॥४४॥
तरसा राक्षसा विग्ना रुधिरेण परिप्लुताः। मोचयामास संग्रामे स्वयमेव यमस्ततः॥४५॥

राक्षसान् मोचयित्वाऽथ हन्यमानान् समन्ततः।
गत्वा ज्वरं महाभागं विनयात् सान्त्वयन् मुहुः॥४६॥

पूजयन् वै ज्वरं दिव्यं गृह्य हस्ते महायशाः। प्रविवेश गृहं स्वं तु संभ्रमे तादृशेन तु॥४७॥
आननं तु समुत्प्रोञ्छ्य स्वेदसंग्रामबिन्दुमत्। धर्मराजोऽथ विश्रान्तं कालभूतं महाज्वरम्॥४८॥
किं किं वृत्तमिदं देव व्यापिनस्त्वं महातपाः। रोषायासकरं चैव सर्वलोकनमस्कृतः॥४९॥
अहं त्वं चैव देवेश इमं लोकं चराचरम्। शासेम हि यथाकामं यथादृष्टं यथाश्रुतम्॥५०॥
त्वया गुप्तो ह्यहं देव मृत्युना च सुसंवृतः। लोकान् सर्वानहं हन्मि सर्वघाती न संशयः॥५१॥
गच्छ गच्छ यथास्थानं युद्धं च शमय स्वयम्। राक्षसानां हतास्तत्र षष्टिकोट्यो रणाजिरे।
अमराश्चाक्षयाश्चैव न हि त्वां यापयन्ति वै।५२॥

सुरेश्वर ज्वर ने हाथ जोड़े हुए उन सब योद्धाओं से कहा। योग और बलपूर्वक शीघ्र इन पापियों पर आक्रमण कर दो।।४२।।

फिर ज्वर की आज्ञा पाकर वे सब शीघ्र वहाँ चले गये, जहाँ मेघ के समान ध्वनि करने वाले मांसभक्षी वे सब राक्षस विद्यमान थे।।४३।।

उन्होंने कई हजार दर्पोन्मत्त घोर राक्षसों को कई प्रकार के तीक्ष्ण शस्त्रों के प्रहारों से मारा।।४४।।

वेगपूर्वक मारे गए राक्षस रुधिर से नहा गये। फिर स्वयं यम ने ही उन्हें युद्ध से मुक्त कराया।।४५।।

हर जगह मारे जा रहे राक्षसों को मुक्त कराकर महाज्वर के समीप जाकर उनने विनयपूर्वक वारम्वार शान्त किया।।४६।।

फिर महायशस्वी यमराज आदरपूर्वक दिव्य ज्वर का हाथ पकड़ कर अपने गृह में लेकर चले गए। फिर वहाँ उनका उचित सत्कार किया गया।।४७।।

चूँकि युद्ध के कारण उत्पन्न स्वेद बिन्दुओं से सम्पन्न उनका मुख पोंछ कर धर्मराज ने कालस्वरूप महाज्वर के विश्राम कराकर कहा।।४८।।

हे देव! आप सब जनों से प्रणाम किये जाने वाले, महाताप सम्पन्न और सर्वव्यापी हैं। आपको रोष और कष्ट उत्पन्न करने वाला यह क्या-क्या कार्य हुआ है?।।४९।।

मैं, तुम और देवेश; आप देखे और सुने गये तथ्यों के अनुलेप अपनी कामना से इस चराचर जगत् को अनुशासित करते हैं।।५०।।

हे देव! आप और मृत्यु द्वारा रक्षित मैं अच्छी तरह कार्य करते हुए सब जीवों को मारने का काम करते हैं। निःसंशय मैं सभी को मारने वाला हूँ।।५१।।

आप अपने स्थान पर जाय। स्वयं युद्ध को शान्त कर दें। रणभूमि में साठ करोड़ राक्षस मारे गए हैं। अमर और अक्षय प्राणी आपका अतिक्रमण नहीं कर सकते।।५२।।

ततो ह्युपरतं युद्धं धर्मराजो यतः स्वयम्। दूतानां चित्रगुप्तेन सख्यमेवकारयत्॥५३॥
ततः संभाषते दूताश्चित्रगुप्तं तथैव च। नियुङ्क्ष्व यथापूर्वं सर्वकर्माणि जन्तुषु।
स्वकर्मगुणभूतानि ह्यशुभानि शुभानि च॥५४॥
ततो दूताः समागम्य चित्रगुप्तस्य पार्श्वतः। उपस्थानं च कुर्वन्ति कालचिन्तकमब्रुवन्॥५५॥
यथा लोका यथा राजा यथा मृत्युः सनातनः। तदेवोत्तिष्ठ तिष्ठेति क्षम्यतां क्षम्यतां प्रभो॥५६॥
।।इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे नवनवत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१९९।।

—※※※—
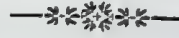
द्विशततमोऽध्यायः

अथ कर्मविपाक वर्णनम्

ऋषिपुत्र उवाच

विस्मयं तु मया दृष्टं तस्मिन्नद्भुतदर्शनम्। चित्रगुप्तस्य संदेशो धर्मराजस्य धीमतः॥१॥
क्षिप्तं शीघ्रं फलं तेषां ये वै क्षिप्ताःपुरा जनाः। अग्निना वै प्रातप्तास्ते बद्धा बन्धैः सुदारुणैः॥२॥

फिर युद्ध शान्त हो गया। क्योंकि स्वयं यमराज के चित्रगुप्त से दूतों का आपस में समझौता कराने को कह दिया।।५३।।

फिर दूतों ने उसी प्रकार चित्रगुप्त से कहा कि आप जीवों में समस्त कायां का नियोजन करें। जीवों का अशुभ और शुभ उनके अपने कर्मों के परिणाम स्वरूप होता है।।५४।।

फिर वे दूत चित्रगुप्त के पास आये और उनका आदर किया। फिर उनने काल की चिन्ता करने वाले चित्रगुप्त से कहा—।।५५।।

चूँकि जेसे प्रजा होते हैं, वैसा ही राजा तथा वैसा ही सनातन मृत्यु होता है। अतः हे प्रभो! आप उठें और स्थिर रहें और हमें क्षमा करें, क्षमा करें।।५६।।

।।इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में राक्षस-किन्नर युद्ध के सहित धर्मराज द्वारा ज्वर प्रशंसानामक एक सौ निन्यानबेवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ।।१९९।।

अध्याय-२००

कर्म-विपाक का वर्णन

ऋषिपुत्र ने कहा कि मेरे द्वारा उस यमपुर में अद्भुत लगने वाला आश्चर्य देखा गया है। मेरे द्वारा चित्रगुप्त का सन्देश सुना गया और बुद्धिमान् धर्मराज का कार्य भी देखा गया।।१।।

प्रथम जो जन वहाँ ले जाये जा चुके थे, उनको तत्काल प्राप्त होने वाले फल को मेरे द्वारा देखा गया। भयानक बन्धनों में जकड़े हुए वे अग्नि में पकाये गये।।२।।

संतप्ता बहवो येन तैस्तैः कर्मभिरुल्बणैः। श्यामानां शबलानां च इमं शीघ्रं प्रमापय॥३॥
दुराचारं पापवृत्तं निर्घृणं पापचेतसम्। श्वानस्तु हिंसका ये च भक्षयन्तु दुरात्मनः॥४॥
पितृघ्नो मातृगोघ्नस्तु सर्वदोषसमन्वितः। आरोप्य शाल्मलीं घोरां कण्टकैस्तैर्विपाटय॥५॥
एवं पाचय तैलेन घृतक्षौद्रे तथैव च। एवं शूले समारोप्य कृत्वा ताम्रं नराधमम्॥६॥
तप्यतां च पुनस्तत्र प्रदीप्ते हव्यवाहने। ततो मनुष्यतां प्राप्य ऋणैस्तत्र प्रपीड्यते॥७॥
शयनासनहर्त्तारमग्निदायी च यो नरः। वैतरण्यामयं तत्र क्षिप्यतामचिरं तदा॥८॥
पापकर्मायमत्यर्थं सर्वतीर्थविनाशकः। तस्य प्रदीप्तकालोऽयं वह्नितप्तोऽतिदुःस्पृशः।
आदेशमुभयोरस्य कर्णयोः कूटसाक्षिणः॥९॥
यो नरः पिशुनः कूटः साक्षी चालीकजल्पकः। बहुयाजनकं विप्रमध्रुवं दाम्भिकं शठम्॥१०॥
बद्ध्वा तु बन्धने घोरे दीयतां तु न किञ्चन। जिह्वाऽस्य छिद्यतां शीघ्रं वाचा दुष्टस्य पापिनः॥११॥
गम्यागम्यं पुरा येन विज्ञातं न दुरात्मना। कृतं लोभाभिभूतेन कामसंमोहितेन च।
तस्य छित्वा ततो लिङ्गं क्षारमग्निं च दापयेत्॥१२॥
इमं तु खलकं कृत्वा दुरात्मा पापकारिणाम्। दायादा बहवो येन अर्थहेतोर्विनाशिताः॥१३॥

जिसने कई जनों को सन्तप्त किया है, उसे अपने उन-उन उग्र कर्मों के कारण श्याम और दूसरा शबल नाम के कुत्तों द्वारा तत्काल काटा गया।।३।।

फिर जो हिंसक कुत्ते हैं, वे सब दुराचारी, पापाचारी, क्रूर, पाप का चिन्तन करने वाले दुरात्मा को खाया करते हैं।।४।।

फिर पितृघाती, मातृहन्ता, गोहत्यारा आदि के घेर शाल्मलि पेड़ पर लटका कर उसके काँटों से उसे फाड़ा गया।।५।।

इसी तरह अधम जन को शूल पर रखकर तैल, घृत, शहद आदि में पकाओ, और उसे ताम्र के समान बनाकर पुनः प्रदीप्त अग्नि में पकाओ। फिर वह अधम जीव मनुष्य योनि मिलने पर ऋण द्वारा सम्पीड़ित किया जाता है।।६-७।।

जो जन शय्या और आसन को चुराने वाला तथा आग लगाने वाला होते हैं, उसे शीघ्र वैतरणी नदी में फेंक दिया जाय।।८।।

यह जीव अति पापकर्म करने वाला और सभी तीर्थों को नष्ट करने वाला है। अतः इसे जलाने का समय है। इस झूठे साक्षी देने वाले के दोनों कानों में अति दुःसह अग्नि डाल दो।।९।।

इस प्रकार चुगलखोर, असत्य साक्षी देने वाला, मिथ्या वक्ता, कई जनों का रूा कराने वाला, अस्थिर, दम्भी, शठ आदि हों उन्हें घोर बन्धन में जकड़कर भोजन-पनी कुछ भी मत दो। फिर वचन से दुष्टता करने वाले पापी जनों की जिह्वा शीघ्र काट डालो।।१०-११।।

लोभ अथवा काम से मोहित होकर गम्यागम्य का विना विचार किये कार्य करने वाले का लिङ्ग काट कर तेजाब डालो।।१२।।

जिस किसी ने धन हेतु अपने बाँधवों का नाश किया हो ऐसी पापकर्मी दुरात्मा को खल में डाल कर मूसल से कूट डालो।।१३।।

इमं वार्धुषिकं विप्रं सर्वत्राङ्गेषु छेदय। तथायं यातनां यातु पापं बहु समाचरन्॥१४॥
सुवर्णस्तेयिनं पापं कृतघ्नं च तथा नरम्। क्रूरं पितृहणं चेमं ब्रह्मघ्नेषु समीकुरु।
अस्थि छित्वा पुनः क्षिप्रं क्षारमग्निं च दापय॥१५॥
इमं तु विप्रं खादन्तु तीक्ष्णदंष्ट्राः सुदारुणाः। पिशुनं हि महाव्याघ्राः पञ्च घोराः सुदारुणाः॥१६॥
इमं पचत पाकेषु बहुधा मर्मभेदिनम्॥१७॥
येनाग्निरुज्झितः पूर्वं गृहीत्वा च न पूजितः। इमं पापसमाचारं वीरघ्नमतिपापिनम्।
कर्कटस्य तु घोरस्य नित्यक्रुद्धस्य प्रापय॥१८॥
इमं घोरे ह्रदे क्षिप्रं सर्वयाजनयाजकम्। सर्वेषां च पशूनां तु नित्यं धारयते जलम्।
त्राता चैव न दाता च पापस्यास्य दुरात्मनः॥१९॥
अदानव्रतिनो विप्रा वेदविक्रयकास्तथा। सर्वकर्माणि कुर्युर्ये दीयतां च न किञ्चन॥२०॥
तोयभाजनहर्त्तारं भोजनं यो निवारयेत्। हन्यतां सुदृढैर्दण्डैर्यमदूतैर्महाबलैः।
वेणुदण्डकशाभिश्च लौहदण्डैस्तथैव च॥२१॥
जलमस्मै न दातव्यं भोजनं च कथंचन। तस्मादन्नं च पानं च न दातव्यं कथंचन॥२२॥
इमं विश्वास्य हन्तारं वह्नौ शीघ्रं प्रपाचय। ब्रह्मदेयं हृतं येन तं वै शीघ्रं विपाचय॥२३॥

इस ब्यांज खाने वाले ब्राह्मण के सभी अंगों को छेद डालो। यह अत्यन्त पाप करने वाला इसी प्रकार यातना भुगते।।१४।।

स्वर्ण की चोरी करने वाला, कृतघ्न मनुष्य और पितृघाती इस मनुष्य को ब्रह्महत्या करने वालें में शामिल कर दो। फिर इनकी हड्डियाँ तोड़ तोड़ कर फिर तेजाब में डाल दो।।१५।।

फिर इस ब्राह्मण को तीक्ष्या दाढ़ों वाले अतिकष्ट देने वाले महान् भयानक पाँच महाव्याघ्र को मिलकर खाने दो।।१६।।

इस मर्म भेदन करने वाले को बहुतों बार अग्नि में पकाओ।।१७।।

जिस किसी ने पहले अग्नि को त्याग दिया हो और फिर ग्रहण कर उसकी पूजा न की हो, ऐसे इस अतिपापी मित्र हत्यारे को नित्य क्रूद्ध रहने वाले भयानक केकड़े को दे दो।।१८।।

समस्त यज्ञों को कराने वाले इस जन को जल्दी ही घोर ह्रद में डाल दो। फिर यह निरन्तर समस्त पशुओं का मूत्र ही जल रूप में पिलाओ। इस दुरात्मा पापी को कोई भी न बचाये और कभी कुछ दे सके।।१९।।

जिनकी दान करने का स्वभाव नहीं है, जो वेद को बेचता हो तथा सब प्रकार का कर्म करने वाले ब्राह्मण हों, तो उन्हें कुछ भी मत दो।।२०।।

जिसने जलपात्र चुराया हो तथा दूसरे का भोजन रोका हो, उसको महाबलवान् यमदूत अत्यन्त दृढ़ दण्डों, बाँस के दण्ड, कोड़ों और लोहे के दण्ड से मोर-पीटे।।२१।।

इस व्यक्ति ने कभी किसी को जल और भोजन नहीं दिया है। अतः इसे किसी प्रकार का अन्न या पेय पदार्थ कोई नहीं दे।।२२।।

विश्वस्त होकर हत्या किया है, इसे शीघ्र अग्नि में पकाओ। जिसने भी ब्राह्मण को दी हुई वस्तु का अपहरण किया है, उसे भी शीघ्र अग्नि में पकाओ।।३।।

बहुवर्षसहस्राणि पातयेत् कर्मविस्तरे। समुत्तीर्ण ततः पश्चात् तिर्यग्योनौ प्रपातयेत्॥२४॥
सूक्ष्मदेहशरीरेषु कीटपक्षिविजातिषु। क्लिष्टो जातिसहस्रैस्तु जायते मानुषस्ततः॥२५॥
तत्र जातो दुरात्मा च कुलेशु विविधेषु च। हिंसारूपेण घोरेण ब्रह्मवध्यां प्रदापयेत्॥२६॥
राजप्रमारकं घोरं ब्रह्मघ्नं दुष्कृतं तथा। सुवर्णस्तेयिनं चैव सुरापं चैव कारयेत्।
अनुभूय ततः काले ततो यक्ष्म प्रयोजयेत्॥२७॥
गोघातको ह्यं पापः कूटशाल्मलिमारुहेत्। क्लिश्यते विविधैर्घोरै राक्षसैर्घोरदर्शनैः॥२८॥
पूतिपाकेषु पच्येत जन्तुभिः संप्रयोजितः। ब्रह्मवध्याच्चतुर्भागैर्मृगपशुत्वमागतः॥२९॥
उद्विग्नवासं सततं यत्र यत्रोपपद्यते। पापकर्मा समुद्विग्नो जातौ जातः पुनः पुनः॥३०॥
अयं तिष्ठति किं पापः पितृघाती दुरात्मवान्। तं तु वर्षशतं साग्रं भक्षयन्तु विचेतसः॥३१॥
ततः पाकेषु घोरेषु पच्यतामतिनिर्घृणः। ततो मानुषतां प्राप्य गर्भस्थो म्रियते पुनः।
व्यापन्नो दशगर्भेषु ततः पश्चाद्विमुच्यताम्॥३२॥
तत्रापि लब्ध्वा मानुष्यं क्लेशभागी च जायते। बुभुक्षारुग्विकारैश्च सततं तत्र पीड्यते॥३३॥

इसे कई हजार वर्षों तक कर्म के प्रपञ्च में डाल दो। फिर उससे निकलने पर इसे तिर्यग्योनि में डाल देना।।२४।।

फिर वह पापी जन को सूक्ष्म शरीर वाले कीड़ों और पक्षियों की हजारों विभिन्न जातियों में उत्पन्न होना तय कर दा।।२५।।

देखो! इस घोर हिंसक दुरात्मा को अनेक प्रकार के कुलों में उत्पन्न होने दो। और इसको ब्रह्महत्या करने का दोष लगाना चाहिए।।२६।।

फिर घोर दुष्कर्मी, राजघाती, ब्रह्मघाती, स्वर्ण चोर आदि जनों के साथ भी इसी प्रकार व्यवहार करना चाहिए। फिर घोर दुःख भोग लेने के पश्चात् यथा समय इसके पाप के अनुरूप क्षयरोगी होकर दुःख भोगने दिया जाना चाहिए।।२७।।

तुम्हारे भयंकर दीखने वाले विविध प्रकार के घोर राक्षसों द्वारा इस पापी गोहत्यारा को कूटशाल्मलि पर लटका कर कष्ट दो।।२८।।

पापी जन विविध हिंसक जन्तुओं से भक्षित होते हुए पूतिपरकां में कष्ट पाया करते हैं। ब्रह्महत्या के चतुर्थ भाग से पापी मनुष्य मृग की पशुयोनि में उत्पन्न होता है।।२९।।

पापीजन जहाँ-कहीं भी जाता है, वहाँ-वहाँ वे निरन्तर उद्विग्नता से ही निवास किया करते हैं। वे पाप करने वाले जन वारम्वार पशुयोनि में उत्पन्न हो-होकर उद्विग्न मन ही हुआ करते हैं।।३०।।

यह दुरात्मा पितृघाती पापी क्यों खड़ा है। इसे क्रूर जन्तु सैकड़ों वर्षों तक निरन्तर भक्षण करता रहे।।३१।।

फिर इस क्रूर को घोर पाकों में पकवाओ। फिर मनुष्य योनि में उत्पन्न होकर फिर से यह कर्म में ही मृत्यु प्राप्त करे। इस प्रकार दश बार गर्भों में मर जाने के पश्चात् यह छूटकारा पा सके।।३२।।

फिर भी मनुष्य योनि पाने पर वह क्लेश भागी ही होना चाहिए। वह भूख और रोग के विकारों से निरन्तर पीड़ित रहना चाहिए।।३३।।

पापाचारमिमं घोरं मित्रविश्वासघातकम्। यन्त्रेण पीड्यतां क्षिप्रं ततः पश्चाद्विमुच्यताम्॥३४॥
दीप्यतां ज्वलनं घोरे वर्षाणां च शतद्वयम्। जायते च ततः पश्चाच्छुनां योनौ दुरात्मवान्॥३५॥
भ्रष्टोऽपि जायते तस्मान्मानुषः क्लेशभाजनः।
प्राप्नुयाद् विविधान् रोगान् संसारे चैव दारुणान्॥३६॥
ब्रह्मस्वहारिणं पापं नरं लवणहारिणम्। वर्षाणां तु शतं पञ्च तत्र क्लिष्टो दुरात्मवान्॥३७॥
कृमिको जायते पश्चाद् विष्ठायां कृमिकोऽपरः। शकुन्तो जायते घोरस्त्र पश्चाद् वृको भवेत्॥३८॥
इममग्निप्रदं घोरं काष्ठाग्नौ संप्रपाचय। स्वकर्मसु विहीनेषु लुब्धो ह्यतिदुरात्मवान्॥३९॥
तस्मात्काणः प्रजायेत मुच्यते ह्यचिरेण वै। तीव्रा तु यातना तत्र कृमिस्तत्र प्रजायते।
ततः श्वाऽथ मृगो वाऽपि ततो मानुषतां व्रजेत्॥४०॥
तत्रापि दारुणं दुःखमुपभुङ्क्ते दुरात्मवान्। सर्वकारणकार्येषु सहसंघातचिन्तकः॥४१॥
एवं कर्मसमायुक्तास्ते भवन्तु सहस्रशः। परद्रव्यापहाराश्च रौरवे कृतकः शठः॥४२॥
कुम्भीपाके तु निर्दग्धः पश्चाद् गर्दभतां व्रजेत्। ततो जातस्त्वसौ पापः खररूपी महानदः।

इस मित्र के साथ विश्वासघात करने वाले घोर पापी को यन्त्र में पेरने के पश्चात् ही मुक्त करने के बारे में सोचना।।३४।।

इसको दो सौ वर्षो तक घोर अग्नि में जलते रहने दो। फिर यह दुरात्मा कुत्ते की योनि में उत्पन्न हो सके।।३५।।

फिर उससे मुक्त होने पर इस पापी को मनुष्य योनि में क्लेश पाने के लिए उत्पन्न होने दो। संसार में इसे अनेक भयंकर रोग होना चाहिए।।३६।।

ब्राह्मण का धन चोरी करने वाला और नमक चुराने वाला इस दुरात्मा को पाँच सौ वर्षों तक वहीं क्लेश युक्त रहना चाहिए।।३७।।

पहले वह कृमि हो सकेगा। फिर विष्ठा में रहने वाला अन्य कीट हो सकेगा। फिर वह घोर पक्षी हो सकेगा। फिर वह भेड़िया योनि में उत्पन्न होगा।।३८।।

फिर आग लगाने वाले और अपने कर्म से विहीन दुरात्मा लोभी को लकड़ीकी आग में डाल कर पकाओ।।३९।।

फिर वह काना होकर उत्पन्न होना चाहिए। फिर उससे मुक्त होने पर यह उस कृमि की योनि में उत्पन्न होना चाहिए, जिससे तीव्र दुःख मिलता है। फिर वह कुत्ता अथवा मृग होने के बाद मनुष्य योनि में उत्पन्न होना चाहिए।।४०।।

सभी कार्य और उससे सम्बन्धित कारणों में सहयोगियों के साथ मात्र संघर्ष का चिन्तन करने वाला दुरात्मा यहाँ भी दारुण दुःख भोगा करता है।।४१।।

इस प्रकार दूसरों के द्रव्य का अपहरण कर्त्ता हजारों दुष्कर्मी शठ पुरुष रौरव नरक में अपनेअपने कर्मों के फलों से सम्पन्न होना चाहिरए।।४२।।

फि कुम्भीपाक में जलाये जान के बाद वह गर्दभ योनि में जाना चाहिए। गर्दभ योनि में उत्पन्न होकर यह

वहते विविधान् भाण्डान् क्षुत्तृष्णाश्रमपीडितः॥४३॥
दशजातांस्ततो गत्वा खरेषु स पुनः पुनः। मानुष्यं स पुनः प्राप्य चौरो भवति पापकृत्॥४४॥
परोपघाती निर्लज्जः सर्वदोषसमन्वितः। वृक्षशाखावलम्बस्थः अधःशीर्षः प्रलम्बते॥४५॥
अग्निना पच्यतां पश्चाल्लुब्धो वै पुरुषाधमः। ततो वर्षशते पूर्णे मुच्यतां स पुनः पुनः॥४६॥
अजितात्मा तथा पापः पिशुनश्च दुरात्मवान्। वागुलिस्तु भवेत् पश्चात् पूर्वमण्डलितां व्रजेत्॥४७॥
विमुक्तश्च ततः पश्चान्मानुष्यं लभते चिरात्। धिक्कृतः सर्वलोकेषु कष्टं दारिमागतः॥४८॥
ग्रामाद् ग्रामं व्रजेच्चैव देशाद् देशं वनाद् वनम्। न शर्म लभते क्वापि कर्मणा स्वेन गर्हितः॥४९॥
इमं ह्यनृतिकं घोरं क्षेत्रहारकमेव च। स्वकर्मदुष्कृतं पापं सर्वकर्माणि कारयेत्॥५०॥
कर्मण्येकैकशश्चायं स तु तिष्ठत्ययं पुनः। वर्षलक्षं न संदेहस्ततस्तिष्ठति किं पुनः॥५१॥
ततो जातीः स्मरेत् सर्वास्तिर्यग्योनिं समाश्रितः। जायतां मानुषः पश्चात् क्षुधया परिपीडितः॥५२॥
सर्वकामविमुक्तस्तु सर्वदोषसमन्वितः। क्वचिज्जात्यां भवेदन्धः क्वचिद् बधिर एव च॥५३॥

महान् शब्द करने वाला गर्दभ स्वरूप पापी भूख, प्यास, श्रम आदि से पीड़ित होकर अनेक प्रकार के भारों को इन्हें ढोना चाहिए।।४३।।

गर्दभ योनि में क्रम से दस बार उत्पन्न होकर वह पापकर्मी मनुष्य योनि में भी आकर चोर होना चाहिए।।४४।।

समस्त दोषों से युक्त निर्लज्ज, कृतघ्न आदि को शिर नीचे की ओर करके वृक्ष की शाखा पर लटका देना चाहिए।।४५।।

फिर लोभी अधम पुरुष को अग्नि में पकाना चाहिए। इस तरह सौ वर्ष पूरा होने पर उसे पुनः मुक्त करना चाहिए।।४६।।

आत्म नियन्त्रण रहित दुरात्मा पापी चुगलखोर बहेलिया होकर अपने पूर्व सहयोगियों का सम्पर्क पाने वाला होना चाहिए।।४७।।

इससे मुक्त हो जाने परवह शीघ्र मनुष्य योनि में उत्पन्न होना चाहिए। और सब जनों द्वारा धिक्कारा जाता हुआ कष्टपूर्ण दरिद्रता को प्राप्त करना चाहिए।।४८।।

फिर वह एक गाव से दूसरे गाँव में, एक देश से दूसरे देश में तथा एक वन से दूसरे वन में भटकता फिरता रहना चाहिए। अपने कार्य के कारण गर्हित पुरुष कहीं भी शान्ति से नहीं रहना चाहिए।।४९।।

फिर इस झूठ बोलने वाले जन और क्षेत्रों का अपहरण करने वाले तथा इस घोर दुष्कृत करने वाले से सभी प्रकार का कार्य कराना चाहिए।।५०।।

यह क्रम से एक-एक कर्म में एक-एक लाख वर्ष लगा रहना चाहिए। तुम दूतों को इस विषय में सन्देह नहीं रहना चाहिए कि पुनः यह कहा रहे।।५१।।

फिर यह तिर्यग्योनि में उत्पन्न होकर अपने समस्त जन्मों का स्मरण करता रहे। फिर मनुष्य होकर यह भूख से पीड़ित होना चाहिए।।५२।।

फिर सभी सुखों से रहित और सभी दोषों से युक्त यह जन कहीं जन्म से ही अन्धा और कहीं बहरा होना चाहिए।।५३।।

क्वचिन्मूकश्च काणश्च क्वचिद् व्याधिसमन्वितः।
एवं हि प्राप्नुयाद् दुःखं न च सौख्यमवाप्नुयात्॥५४॥
जात्यन्तरसहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च। शान्तिं न लभते चैव भूमिक्षेत्रहरो नरः॥५५॥
तीव्रैरन्तर्गतैर्दुःखैर्भूमिहर्त्ता नराधमः। इमं बन्धैर्दृढैर्बध्वा विपाचयत वै भृशम्॥५६॥
प्रबद्धः सुचिरं कालं यमलोकगतो नरः। जायते सततं पापो मार्जारस्तेन कर्मणा॥५७॥
तीव्रक्षुधापरिक्लिष्टो बद्धो बन्धनयन्त्रितः। दुःखान्यनुभवंस्तत्र पापकर्मा नराधमः।
सप्तधा सप्त चैकां च जातिं गत्वा स पच्यते॥५८॥
इमं शाकुनिकं पापं श्वभिर्गृधैश्च घातय। ततः कुक्कुटतां यातु विड्भक्षश्च दुरात्मवान्॥५९॥
दंशश्च मशकश्चैव ततः पश्चाद् भवेत् तु सः। जातिकर्मसहस्रं तु ततो मानुषतां व्रजेत्॥६०॥
इमं सौकरिकं पापं महिषाघातसंयुतः। वर्षाणां वै सहस्रं तु धावन्तमनुधावताम्॥६१॥
विभिन्नश्च प्रभिन्नश्च शृङ्गाभ्यां पद्भिरेव च। ततो मुक्तस्त्वतो देशात् पश्चात् सूकरतां व्रजेत्॥६२॥
महिषः कुक्कुटश्चैव शशे जम्बुक एव च।

फिर कहीं यह गूँगा, कहीं पर काना और कहीं यह रोगों से युक्त होना चाहिए। इस तरह इसे दुःख ही प्राप्त हो, कहीं इसे सुख मिले ही नहीं।।५४।।

फिर भूमि और क्षेत्र का अपहर्त्ता जन हजारों, लाखों और अरबों जन्म लेकर भी कहीं शान्ति न पा सके।।५५।।

फिर भूमि का अपहर्त्ता नराधम तीव्रा आन्तरिक दुःखों से युक्त होना चाहिए। ऐसे जन को दृढ़ बन्धन जकड़ कर अत्यन्त आग में पकाना चाहिए।।५६।।

पापीजन यमलोक में चिरकाल तक निरन्तर बाँधे रहने के पश्चात् अपने उस कर्म से बिल्ली की योनि में उत्पन्न हो पाता है।।५७।।

उस जन्म में पापकर्मी नराधम बन्धन में जकड़ा हुआ वह क्षुधा से पीड़ित होकर दुःखों का अनुभव करता है। वह पचास जन्म में भी दुःख भोगता है।।५८।।

इस तरह से पानष्ठि शाकुनिक को कुरों एवं गृध्रों से नोचवाया जाना चाहिए। फिर यह दुरात्मा मलभक्षी कुक्कुट योनि में उत्पन्न होना चाहिए।।५९।।

फिर वह दंश करने वाले कीटों एवं मच्छरों की योनि में उत्पन्न होना चाहिए। उक्त योनि में हजारों बार जन्म लेकर फिर वह मनुष्य होता है।।६०।।

इस प्रकार सूकर पालने वाले या उसका शिकार करने वाले पानी को भैंसे के आघात से घायल करना चाहिए। हजारों वर्षों तक दौड़ते रहने वाले इस पापी के पीछे-पीछे भैंसों को दौड़ाया जाना चाहिए।।६१।।

फिर भैंसे के दोनों सींगों और पैरों से यह छिन्न-भिन्न होना चाहिए। फिर वह इस स्थान से मुक्त होक यह सूकर योनि में उत्पन्न होना चाहिए।।६२।।

फिर महिष, कुक्कुट, खरगोश, शृंगाल आदि में से जिस-जिस योनि में इसका पुनर्जन्म हो, वहाँ यह हिंसक

यां यां जातिं पुनर्याति तत्र भक्ष्यो भवेत् तु सः।
कर्मक्षयोऽन्यथा नास्ति मया पूर्वं विनिर्मितम्॥६३॥

प्राप्य मानुषतां पश्चात् पुनर्व्याधो भविष्यति। अन्यथा निष्कृतिर्नास्ति जातिजन्म शतैरपि॥६४॥
उच्छिष्टान्नप्रदातारं पापाचारमधार्मिकम्। अङ्गारैः पच्यतामेष त्रीणि वर्षशतानि च॥६५॥
भिन्नचारित्रदुःशीला भर्त्तुर्व्यलीककारिणी। आयसान् पुरुषान् तप्तानालिङ्गंतु समन्ततः॥६६॥
ततः शुनी भवेत् पश्चात् सूकरी च ततः परम्। कर्मक्षये ततः पश्चान्मानुषी कुत्सिता भवेत्।

न च सौख्यमवाप्नोति तेन दुःखेन दुःखिता॥६७॥
अनेन भृत्या बहवः श्रान्ताः श्रान्ताः प्रवाहिताः।
भक्ष्यं भोज्यं च पानं च न तेषामुपपादितम्॥६८॥

अनुमोदेत् प्रजा दृष्ट्वा लिप्समाना दुरात्मवान्। एवं कुरुत भद्रं वो मम पार्श्वे तु दुर्मतिः॥६९॥
रौरवे नरके घोरे सर्वदोषसमन्विते। सर्वकर्माणि कुर्वाणं क्षपयध्वं दुरासदे॥७०॥
वर्षाणां तु सहस्रं हि तैस्तैः कर्मभिरावृतम्। प्रक्षिप्यतामयं पश्चाद् दस्युजातौ दुरात्मवान्॥७१॥
जायतामुरगः पश्चात् ततः कर्म समाश्रयेत्। ततः पश्चाद् भवेत् पापः श्वेतरः सर्वपापकृत्॥७२॥

प्राणियों का भक्ष्य बने। दूसरे किसी प्रकार से इसके कर्म का क्षय नहीं हो पाता। मैंने पहले ही इसका नियम बनाया है।।६३।।

मनुष्य योनि के मिलने पर यह व्याध होना चाहिए। अन्यथा सैकड़ों जातियों में जन्म लेने पर भी इसको मुक्ति नहीं मिलनी चाहिए।।६४।।

जूठा अन्न प्रदान करने वाले पापाचारी अधार्मिक को तीन सौ वर्षों तक अंगारों में पकाया जाना चाहिए।।६५।।

चरित्र भ्रष्ट, दुःशील, पति के विरुद्ध आचरण वाली स्त्री लोहे के तप्त पुरुष मूर्त्ति को सम्पूर्णता से आलिङ्गित किया करे।।६६।।

फिर यह कुतिया की योनि में उत्पन्न होकर सुअरी की योनि में उत्पन्न होना चाहिए। फिर उसके पश्चात् कर्म क्षय होने पर यह कुत्सित मानुषी होती है। उस दुःखसे पीड़ित होकर सुख प्राप्त ही नहीं करे।।६७।।

फिर इसने कई सेवकों को थका-थका कर कार्य कराया, थके आने पर भी पुनः इसने कार्य हेतु भेज दिया और उन्हें खाने और पीने की वस्तु नहीं दी। मेरे पास ऐसा कार्य करो, जिससे इस दुर्बुद्धि दुरात्मा को कष्ट से व्याकुल होते देखकर इसके दण्ड हेतु इच्छित प्रजा दण्डविधान का अनुमोदन करें। तुम सबका कल्याण होना चाहिए।।६८-६९।।

सभी दोषों से सम्पन्न अत्यन्त कठोर भयानक रौरव नरक से सब कार्य कराते हुए इसे कष्ट देना चाहिए।।७०।।

अपने-अपने कर्मों से यह हजारों वर्षों तक सम्पन्न रहना चाहिए। फिर इस दुरात्मा को दस्यु जाति में उत्पन्न होने दो।।७१।।

फिर यह सरीसृप योनि में उत्पन्न होकर कर्मफल का भोग कर सकेगा। उसके बादयह पापी कुत्ते से हीन योनि में उत्पन्न होकर सब पाप करे।।७२।।

सूकरस्तु भवेत् पश्चान्मेषश्च जायते पुनः। हस्त्यश्वश्वसृगालश्च सूकरो बक एव च॥७३॥
ततो जातस्तु सर्वेषु संसारेषु पुनः पुनः। वर्षाणामयुतं साग्रं ततो मानुषतां व्रजेत्॥७४॥
पञ्चगर्भेषु सापत्सु पञ्चजातौ म्रियेत सः।
अपोगण्डो म्रियेत् पञ्च कर्मशेषं क्षये तु सः॥७५॥
ततो मानुषतां याति चैष कर्मविनिर्णयः। पापस्य सुकृतस्याथ प्रजानां विनिपातने॥७६॥
भृत्यानां चाप्यसन्मानं दुःप्रहारश्च नित्यशः। अतः स्वयंभुवा पूर्वकर्मपाको यथार्थवत्॥७७॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे द्विशततमोऽध्यायः॥२००॥
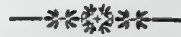
फिर यह सूकर होकर फिर भेड़ बनना चाहिए। इसी तरह यह क्रम से हाथी, घोड़ा, शृंगाल, सूकर और बगुला बनना चाहिए।।७३।।

तत्पश्चात् विविध योनियों में बारम्बार हजारों वर्षों तक जन्म लेकर मनुष्य योनि में जन्म लेना चाहिए।।७४।।

यह पाँच बार पाँच जातियों के आपत्ति युक्त गर्भ में ही मृत्यु पाये, अपोगण्ड शिशु के रूप में पाँच बार मरने पर इसके शेष कर्म का क्षय होगा। फिर यह मनुष्य योनि में उत्पन्न होना चाहिए। फिर पापियों को विभिन्न योनि में डाले जाने चाहिए। इस प्रसङ्ग में पाप और पुण्य का विशिष्ट निर्णय लिया गया है।।७५-७६।।

अतएव ब्रह्मदेव ने भृत्यों का नित्य अनादर करने अथवा उन पर कठोर प्रहार करने के प्रसङ्ग में यथोचित विधि से यह कर्मफल निश्चित किया है।।७७।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में कर्म-विपाक का वर्णननामक दो सौवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥२००॥

❖❖❖

एकाधिकद्विशततमोऽध्यायः

अथ पापङ्गवर्णनम्

ऋषिपुत्र उवाच

अन्यानपि यथा पापांश्चित्रागुप्तो दिदेश ह।
व्यामिश्रान् कथ्यमानांश्च शृणुध्वं तान्महौजसः॥१॥

शीलसंयमहीनानां कृष्णपक्षानुगामिनाम्। महापापैरुपेतानां कथ्यतां तत्पराभवम्॥२॥
राजद्विष्टा गुरुद्विष्टाः सर्वे ते वै विगर्हिताः। अविश्वास्या ह्यसंभाष्याः कुक्षिमात्रपरायणाः॥३॥
हिंसाविहारिणः क्रूराः सूचकाः कायदूषकाः। गवेडकस्य वधका महिषाजास्तथैव च॥४॥
दावाग्निं ये च मुञ्चन्ति ये च सौकरिकास्तथा। तत्र कालमसंख्येयं पच्यन्ते पापकारिणः॥५॥
कर्मक्षयाद् यदा भूयो मानुष्यं प्राप्नुवन्ति ते। अल्पायुषो भवन्तीह व्याधिग्रस्ताश्च नित्यशः॥६॥
गर्भ एव विपद्यन्ते म्रियन्ते बालकास्तथा। परिरङ्गताः केचिन्म्रयन्ते पुरुषाधमाः॥७॥
काष्ठवंशेन शस्त्रेण वायुना ज्वलनेन वा। जलाग्नितोयपाशैर्वा तेषां तु विनिपातनम्॥८॥

अध्याय-२०१

पाप समूह विवेचनपूर्वक उसकेक फल हेतु चित्रगुप्त कथन

ऋषिपुत्र ने कहा कि इसी प्रकार चित्रगुप्त ने अन्य पापों का भी संकेत किया है। अब बतलाने योग्य उन विशेष में मिश्रित महाबलवान् पापों का फल सुनें।।१।।

अब मैं शील और संयम से हीन कृष्णपक्ष में करने वाले या कुत्सित कर्म करने वाले महापापों वाले पुरुषों का पराभव को कह रहा हूँ।।२।।

ऐसे वे सब जन निन्दा के योग्य, अविश्वास के योग्य और वार्त्ता करने के अयोग्य हुआ करते हैं, जो जन राजद्वेषी, गुरुद्वेषी और केवल पेट भरने की चिन्ता करने वाले हुआ करते हैं।।३।।

फिर हिंसा करने हेतु रमण करने वाले, क्रूर, सूचक, कार्य दूषित करने वाले, चारागाह नष्ट करने वाले तथा महिष और बकरों का वध करने वाले, वन में अग्न लगाने वाले,सूकर का वध करने वाले पाप कर्म करने वाले उस यमलोक में अत्यन्त काल तक कष्ट भोगने के योग्य हुआ करते हैं।।४-।।

फिर ऐसे कर्म के क्षय हो जाने पर जब वे फिर मनुष्य हुआ करते हैं, तो वे निरन्तर व्याधि पीड़ित और अल्पायु ही हुआ करते हैं।।६।।

फिर कुछ शिशु गर्भ में ही मर जाया करते हैं और कुछ अधम जन गर्भ से बाहर आकर ही मर जाया करते हैं।।७।।

ऐसे में बाँस की बल्ली, शस्त्र, वायु, अग्नि द्वारा अलग-अलग अथवा जल, अग्नि और बन्धन इन सबके द्वारा ऐसे जनों को दण्डित किया जाता है।।८।।

मातापितृवधं कष्टं मित्रसंबन्धिबन्धुजम्। बहुशः प्राप्नुवन्त्येते विद्रवं चाप्यभीष्णशः।
प्राणातिपातिनो ह्येते प्राप्नुवन्ति यथा तथा॥९॥
बहिः सकामाः कृपणा रभसं दण्डघातिनः।
श्रोत्रत्वक्चक्षुषा जिह्वा न हि शाम्यन्ति येऽधमाः॥१०॥
गोवध्या ब्राह्मणघ्नश्च पापकर्मविदेशकाः। लोहकाः कारुकाश्चैव गर्भाणां विनिपातिकाः॥११॥
मूलकर्मकरा ये च गरदाः पुरदाहकाः। ये च पञ्जरकर्त्तारो ये च शूलोपघातकाः॥१२॥
पिशुनाः कलहाश्चैव ये च मिथ्याविदूषकाः। गोकुञ्जरखरोष्ट्राणां चर्मका मांसभेदकाः।
उद्वेजनकराश्चण्डाः पच्यन्ते नरकेषु ते॥१३॥
तत्र कालं तु संप्राप्य यातनाश्च सुदुःसहाः। कर्मक्षये यदा भूयो मानुष्यं प्राप्नुवन्ति ते॥१४॥
हीनाङ्गाः सुदरिद्राश्च भवन्ति पुरुषाधमाः। शारीरं मानसं दुःखं प्राप्नुवन्ति पुनः पुनः॥१५॥
गलवेदनास्तथोग्राश्च तथा मस्तकवेदनाः। कुक्ष्यामयं तथा तीव्रं प्राप्नुवन्ति नराधमाः॥१६॥
श्रवणच्छेदनं चैव नासाच्छेदनमेव च। छेदनं हस्तपादाभ्यां प्राप्नुवन्ति स्वकर्मणा॥१७॥
जडान्धबधिरा मूकाः पङ्गवः पादसर्पिणः। एकपक्षहताः काणाः कुनखाश्च नराधमाः॥१८॥

चूँकि ऐसे सभी जन प्रायः माता और पिता के वध तथा मित्रों, कुटुम्बियों, बान्धवों आदि के वध से होने वाले कष्ट ही पाया करते हैं। वैसे प्राण हरणकर्त्ता ऐसे सब जन सर्वदा पराजय का ही सामना किया करते हैं।।९।।

वैसे जो अधम जन बाहरी रूपसे कामवासना वाला, कृपण, वेगपूर्वक दण्ड का उपयोग करने वाला और कान, त्वक् , नेत्र, ह्विा आदि कर्मेन्द्रियों पर नियन्त्रण नहीं रखने वाला हुआ करते हैं।।१०।।

फिर गो और ब्राह्मण का वध करने वाला, पाप कर्म को करने हेतु विशिष्ट प्रेरणा देने वाला, लोहे का काम करने वाला बढ़ई, गर्भो को गिराने वाला, आदि जो मूल के काटने आदि का कार्य करने वाले, विष देने वाले, गाँव को जला देने वाले पिञ्जरा बनाने वाले, शूल का आरुढ़ कर मारने वाले आदि जो हुआ करते हैं और फिर चुगली करने वाले, कलह करने वाले, मिथ्या दोष लगाने वाले अथवा हास्य करने वाले हैं, फिर गाय, हाथी, गदहा, ऊँट आदि क चर्म और मांस को काटने वाले, उद्वेग उत्पन्न करने वाले और उग्र होते हैं,वे सब नरक में निश्चय ही अत्यन्त कष्ट पाया करते हैं।।११-१३।।

इस तरह वे सभी अधिक समय तक अत्यन्त दुःसह कष्ट प्राप्त करने के बाद जब अपने अपने कर्म का क्षय कर लिया करते हैं, तब फिर वे मनुष्य योनि में उत्पन्न हुआ करते हैं।।१४।।

फिर वे अधम जन हीनाङ्ग और अत्यन्त दरिद्र हुआ करते हैं। वे सब बार-बार शारीरिक और मानसिक वेदना प्राप्त किया करते हैं।।१५।।

उन नराधमों को गले और मस्तक की तीव्र वेदना और पेट सम्बन्धी उग्ररोग हो जाया करते हैं।।१६।।

फिर अपने कर्म के अधीन उनका कान, नाक, हाथ और पैर भी काटा जाता है।।१७।।

ऐसे नराधम जड़, अन्धे, बहिरे, गूँगे, पङ्गु, पैर से सरक कर चलने वाले, एक बगल के पक्षाघात वाला, काने और कुनखी हुआ करते हैं।।१८।।

कुब्जा खञ्जास्तथा हीना विकटाश्च घटोदराः।
किलासा श्वित्रकुष्ठी च भवन्ति स्वैश्च कर्मभिः॥१९॥

वाताण्डाश्चाण्डहीनाश्च प्रमेहमधुमेहिनः। योनिशूलाक्षिशूलाश्च श्वासहृद्गदशूलिनः॥२०॥

पिण्डकावर्त्तभेदैश्च प्लीहगुल्मादिरोगिणः। बहुभिर्दारुणैर्घोरैर्व्याधिभिः समभिद्रुताः॥२१॥

इत्येतान् हिंसकान् क्रूरान् प्रापयित्वा सुनिर्घृणान्।
मिथ्याप्रलापिनो दूताः पाचयित्वा यथाक्रमम्॥२२॥

कर्कशाः परुषासत्या ये च भाषानिरर्थकाः। एषा चतुर्विधा भाषा या मिथ्याथ विधीयते॥२३॥

हास्यरूपेण या भाषा चित्ररूपेण वा पुनः। अरहस्यं रहस्यं वा पैशुन्येन तु निन्दनात्॥२४॥

उद्वेगजननां वाऽपि कण्टकां लोकगर्हिताम्। स्नेहक्षयकरां रूक्षां भिन्नवृत्तविभूषिताम्॥२५॥

कदलीगर्भनिस्सारां मर्मस्पृक् कटुकाक्षरम्। स्वरहीनामसंक्षेपा भाषन्ति च निरर्थकाम्॥२६॥

अयन्त्रितमुखा ये च येऽनिबद्धाः प्रलापिनः।
दूषकांस्ते हि जल्पन्तोऽनृजवो ऋजवः स्थिताः।
निर्दया गतलज्जाश्च मूर्खा मर्मविभेदिनः॥२७॥

वे जन अपने कर्मों के अधीन ही कुबड़े, लँगड़े, हीनाङ्ग, विकट, घट के समान पेट वाले, किलास और श्वित्र नाम के कुष्ठ से युक्त हुआ करते हैं।।१९।।

वे वात रोग युक्त अण्डकोश वाले, पौरुषहीन, प्रमेह, मधुमेह से युक्त योनि कष्ट, नेत्ररोग, श्वास और हृदय रोग सम्बन्धी कष्ट से युक्त हुआ करते हैं।।२०।।

फिर वे सब पापीजन फोड़ा, यर्मरोग के विभिन्न भेदों से युक्त,प्लीहा, गुल्म आदि प्रकार के रोगों से युक्त और दसूरे विविध घोर कष्टकारक व्याधियों से पीड़ित हुआ करते हैं।।२१।।

फिर यमदूत इन क्रूर और अत्यन्त निर्दयी हिंसकों तथा असत्य बोलने वालों को क्रम से नरकों में पीड़ित किया करते हैं।।२२।।

जो कर्कश, कठोर, असत्यवक्ता निरर्थक बकवासी होते हैं,उन्हें नरक में कष्ट हुआ ही करता है। यह चार प्रकार की भाषा है, जिसे मिथ्या कही गई है।।२३।।

जो भाषा हास्यात्मक शब्दों में, विचित्र रूप से निन्दा हेतु प्रयुक्त शब्द और चुगलखोरी हेतु प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष तत्य प्रकट किया जाता है।।२४।।

जो प्रायः संसार में निन्दायोग्य, कण्टक रूपक उद्वेग उत्पन्न करने वाली, स्नेह को नष्ट करने वाली, रूक्ष और सद्वृत्त को नष्ट करने वाले गुण युक्त हुआ करती है।।२५।।

जो जन केले के मध्य भाग के समान निःसार, मर्मस्पर्शी, कटु अक्षरों वाली, स्वर रहित, असंक्षिप्त और निरर्थक वाणी का प्रयोग किया करते हैं।।२६।।

जो असंयमित वाणी प्रयोग करने वाला, असंयमित निरर्थक बाते करने वाला, दोषारोपण करने वाले, सरल होकर भी कुटि की तहर सम्भाषण करने वाले, दयाहीन, लज्जाविरहति , मूर्ख और मर्मभेदन करने वाले होते हैं।।२७।।

न मर्षयन्ति येऽन्येषां कीर्त्यमानान् शुभान् गुणान्।
दुर्वाचः परुषांश्चण्डान् बन्ध्यध्वं नराधमान्॥२८॥

ततस्तिर्यक् प्रजायन्ते बहुधा कीटपक्षिणः। लोके दोषकराश्चैते लोकद्विष्टास्तथापरे।
तत्र कालं चिरं घोरं पच्यन्ते पापकारिणः॥२९॥

कर्मक्षये यदा भूयो मानुष्यं प्राप्नुवन्ति ते। परिभूता अविज्ञाना नष्टचित्ता अकीर्त्तयः॥३०॥

अनर्च्याश्चाप्यनर्हाश्च स्वपक्षे त्ववमानिनः। त्यक्त्वा मित्राण्यमित्रेषु ज्ञातिभिश्च निराकृताः॥३१॥

लोकदोषकराश्चैव लोकद्वेष्याश्च चे नराः। अन्यरपि कृतं पापं तेषां पापं तु मस्तके॥३२॥

वज्रं शस्त्रं विषं वाऽपि देहाद् देहनिपातनम्। मिथ्याप्रलापिनामेषामुक्ता क्लेशपरम्परा॥३३॥

स्तेयहारं प्रहारं च नीतिहारं तथैव च। स्तेयकर्माणि कुर्वन्ति प्रसह्य हरणानि च॥३४॥

करण्डासिनो ये च राजशब्दोपजीविनः। पीडयन्ति जनं सर्वं कृपणा ग्रामकूटकाः।
समये कृतहर्त्तारो लोकपीडाकरा नराः॥३५॥

अनादिबुद्धयश्चान्ये अर्घातिशयकारिणः। भूतनिष्ठाभियोगज्ञा व्यवहारेष्वनज्ञया॥३६॥

भेदकाराश्च धातूनां रजतस्य च कारकाः। सुवर्णमणिमुक्तानां कूटकामानुकारकाः॥३७॥

जो जन अन्यों के गुणों को कहे जाने पर नहीं सहन करते, उन दुर्वचन बोलने वाले कठोर और उग्रनाराधमों का बन्धन करो।।२८।।

फिर संसार में दोष उत्पन्न करने वाले, अन्य लोकद्वेषी नराधम प्रायः कीट और पक्षियों की तिर्यक् योनि में उत्पन्न हुआ करते हैं। वे पापी उन योनियों में बहुत काल तक घोर कष्ट भोगा करते हैं।।२९।।

फिर जब उनका कर्मक्षय हो जाता है, तो उन्हें पुनः मनुष्य योनि की प्राप्ति हुआ करती है। फिर मनुष्य होकर पराजित, ज्ञानरहित, नष्टचित्त तथा अकीर्त्ति युक्त हुआ करते हैं।।३०।।

फिर वे सब आदर रहित, अपात्र, अपने लिए अनादृत, मित्रों से दूर शत्रुओं के मध्य रहने वाले और स्वजाति तिरस्कृत हुआ करते हैं।।३१।।

दूसरों द्वारा किया हुआ पाप भी ऐसे जनों पर हुआ करता है। जो जन संसार में दूषण किया करते हैं और संसार जिनसे द्वेष किया करते हैं।।३२।।

इस प्रकार वज्र, शस्त्र, विष अथवा देह से देह के नष्ट होने आदि सब मिथ्या प्रालाप करने वालों के कष्ट कहे गए हैं।।३३।।

जो जन चोरी से, प्रहार नीति से, चोरी के कार्य तथा हठ आदि से अपहरण किया करते हैं।।३४।।

जो जन हाथ में दण्ड और तलवार रखा करते हैं, राजा की आज्ञा द्वारा जीविका का निर्वाह करते तथा सब जनों को पीड़ित किया करते हैं। फिर जो जन कृपण और ग्राम में कुटिल व्यवहार किया करते हैं। जो जन किसी समय दी हुई वस्तु का अपहरण करते और संसार को सम्पीड़ित किया करते हैं।।३५।।

फिर ऐसे जन जो अकारण पाप बुद्धि वाले, मूल्यवृद्धि करने वाले, प्राणियों के अभियोग को जानने वाले और उपयुक्त आज्ञा के व्यवहार करने वाले होते हैं।।३६।।

फिर धातुओं का भेदन करने वाले, कृत्रिम चाँदी बनाने वाले तथा जो जन छल करने की दृष्टि से स्वर्ण, मणि और मुक्ता का कृत्रिम रूप तैयार कर लिया करते हैं।।३७।।

न्यासापहारका ये च संमोहनकराश्च ये। ये तथोपाधिकाः क्षुद्राःपच्यतां तेषु तेष्वथ॥३८॥
निरयेष्वप्रतिष्ठेषु दारुणेषु ततस्ततः। तत्र कालं तु सुचिरं पच्यन्तां पापकारिणः॥३९॥
कर्मक्षयो यदा तेषां मानुष्यं प्राप्नुवन्ति ते। तत्र तत्रोपपद्यन्ते यत्र यत्र महद् भयम्॥४०॥
यस्मिंश्चौरभयं देशे क्षुद्भयं राजतो भयम्। श्वापदेभ्यो भयं यत्र व्याधिमृत्युभयं तथा॥४१॥
ईतयो यत्र देशेषु लुब्धेषु नगरेषु च। क्षयकालोपसर्गो वा जायन्ते तत्र ते नराः॥४२॥
बहुदुःखपरिक्लिष्टा गर्भवासेन पीडिताः। एकहस्ता विहस्ता वा कूटाश्च विकृतोदराः॥४३॥
शिराविकृतगात्राश्च हीनाङ्गा वातरोगिणः। अश्रुपातननेत्राश्च भार्या न प्राप्नुवन्ति ते॥४४॥
तेषामपत्यं न भवेत् तद्रूपं च सलक्षणम्। अतिह्रस्वं विवर्णं च विकृतं भ्रान्तलोचनम्।
संसारे च तथापक्वं कृपणं भैरवस्वनम्॥४५॥
महतः परिवारस्य तृप्त्यापोच्छिष्टभोजितः। रूपतो गुणतो हीनो बलतः शीलतस्तथा॥४६॥
राजभृत्या भवन्त्येते पृथिवीपरिचारकाः। अनालया निरामर्षा वेदनाभिःसुसंवृताः॥४७॥

जो जन धरोहर का अपहरण किया करते हैं, जो सम्मोहित करते हों, और जो क्षुद्रजन उपद्रव करने वाले होते हैं, उन्हें उन घोर नरकों में कष्ट पीड़ा सहना पड़ता है।।३८।।

फिर पाप करने वाले जन अव्यवस्थित भयानक नरकों में चिरकाल पर्यन्त उन-उन नरकों में कष्ट सहा करते हैं।।३९।।

फिर जब ऐसे जनों का कर्मक्षय हो जाया करते हैं, तो उन्हें मनुष्य योनि मिला करता है। परन्तु ऐसे मनुष्य जन्म में भी वे सब उनके कुल आदि में जन्म लिया करते हैं, जाहँ महान् भय सदा बना रहता है।।४०।।

फिर जिस देश में चोर का भय हो, भूख का भय हो, राजा का भय हो, हिंसक पशुओं का भय हो और मृत्यु तथा रोग का भय हुआ करता है।।४१।।

जिन देशों में ईति याने प्राकृतिक आपदा का भय हो, जहाँ लोग लोभ हों, अथवा जहाँ पर विनाश कालिक उत्पन्न हो, ऐसे जनों का जन्म हुआ करता है।।४२।।

फिर उस स्थान के गर्भवास से पीड़ित हुआ करते हैं। जन्म होने के बाद भी वे अनेक दु;खों से पीड़ित रहा करते हैं। किसी समय उन्हें एक हाथ रहा करता है, और किसी समय विना हाथ के भी रहा करते हैं। प्रायः उनके अंग कटे-टूटे तथा उनका उदर विकृत आकृति का हुआ करता है।।४३।।

ऐसे जनों की शिरायें और शरीर विकृत हुआ करते हैं। वे हीनाङ्ग तथा वातरोगी हुआ करते हैं। उनके आखों से अश्रुपात होता रहता है। उन्हें पत्नी भी प्राप्त नहीं हुआ करती है।।४४।।

उनकी सन्तान भिन्न रूप और लक्षण से सम्पन्न हुआ करते हैं। प्रायः उनकी आँखें छोटे, विकृत वर्ण वाले तथा भ्रान्तियुक्त हुआ करते हैं। वे संसार में अनुभवहीन, कृपण और भीषण शब्द करने वाले हुआ करते हैं।।४५।।

ऐसे जन बड़े परिवार को संतृप्त कर शेष बचे उच्छिष्ट भोजन और पीने को वस्तु सेवन करने को बाध्य होता है। फिर वह रूप, गुण, बल शील आदि से हीन होता है।।४६।।

फिर वे सब राजा का सेवक होकर पृथ्वी की सेवा किया करते हैं। ये गृहहीन, अमर्षशून्य और दुःखों से सम्पन्न हुआ करते हैं।।४७।।

समकार्यसजात्यानां मित्रसंबन्धिनां तथा। कर्मान्तिकारका ह्येते तृषाभूता भवन्ति ते॥४८॥
अनर्थो राजदण्डो वा नित्यमुत्पाद्यते वधः। कर्मकल्याणकृच्छ्रेषु भृशं चापि विमुह्यति॥४९॥
कर्षकाः पशुपालाश्च वाणिज्यमुपजीवकाः। यद् यत् कुर्वन्ति ते कर्म सर्वत्र क्षयभागिनः॥५०॥
यत्किञ्चिदशुभं कर्म तस्मिन् देशे समुच्छ्रितम्। तस्य देशस्य नैवास्ति वर्जयित्वा तु तान्नरान्।
सत्यमन्विष्यमाणापि नैव ते कीर्त्तिभागिनः॥५१॥
सुवृष्ट्यामपि तेषां वै क्षेत्रं तत्तु विवर्जयेत्। अशनिर्वा पतेत् तत्र क्षेत्रं वाऽपि विनश्यति॥५२॥
न सुखं नापि निर्वाणं तेषां मानुष्यतां व्रजेत्। उत्पद्यते नृशंसानां तीव्रः क्लेशः सुदारुणः॥५३॥
स्तेयकर्मप्रयुक्तानामुक्ता क्लेशपरम्परा। परदारप्रसक्तानामिमां श्रृणुत यातनाम्॥५४॥
तिर्यङ्मानुषदेहेशु यान्ति विक्षिप्तमानसाः। विहरन्ति ह्यधर्मेषु धर्मचारित्रदूषकाः॥५५॥
तांस्तेनैव प्रदानेन संग्रहेऽनुग्रहेण वा। मूलकर्मप्रयोगेन राष्ट्रसतिक्रमेण वा॥५६॥
प्रसह्य वा प्रकृत्या वै ये चरन्ति कुलाङ्गनाः। वर्णसंकरकर्त्तारः कुलधर्मादिभेदकाः॥५७॥
शीलशौचादिसंपन्नं ये जनं धर्मलक्षणम्। धर्षयन्ति सदा पापाः श्रूयतां तत्पराभवः॥५८॥

ऐसे जन अपने कुल और जाति के लोगों और मित्रों तथा कुटुम्बियों के कर्मों का अन्त करने वाले असंतुष्ट जीव हुआ करते हैं।।४८।।

ऐसा जन निरुद्देश्य ही राजदण्ड का उपयोग कर देने वाला, नित्य हत्या का विषय उत्पन्न करने वाला और फिर कल्याणकारी और क्रूरकर्मों में अतिमोहित रहा करते हैं।।४९।।

कृषक, पशुपालक अथवा व्यापार द्वारा जीविका निर्वाह करने वाला होकर भी वह जो-जो कार्य करता है,उन सभी में क्षय भागी होता है। सत्यान्वेषण करने वाला होकर भी कीर्त्ति प्राप्त करने में असफल होते हैं।।५०।।

चूँकि उस देश में जो भी अति उत्कट अशुभ कर्म हुआ करता है। उस जगह उस जन के अलावे अन्य कोई भी उस कर्म का भागी नहीं होता है।।५१।।

अच्छी वृष्टि होने पर भी उन पापियों के क्षेत्र में वृष्टि नहीं होती। उस क्षेत्र में मात्र वज्रपात हुआ करता है अथवा वह क्षेत्र ही नष्ट हो जाया करता है।।५२।।

उनकी मनुष्य योनि से सम्बन्धित सुख या निर्वाण याने परमसुख से रहित होती है। क्रूर जनों को अति भयंकर तीव्र क्लेश होता है।।५३।।

यहाँ तक चोरी कर्मवश मिलने वाले क्लेशों को कहा गया है। अब आगे परस्त्रीगमन करने पर यातना क्या-क्या हो सकता है, सुनो।।५४।।

ऐसे जन पशुपक्षी और मनुष्य के शरीर में जन्म लेकर विक्षिप्त चित्त हुआ करते हैं। धर्म और सदाचार को नष्ट करने वाले ऐसे जन अधर्मों के कारण प्रसन्न हुआ करते हैं।।५५।।

ऐसे जन, जो उन्हें उस तरह वस्तुओं को देने, संग्रह करने, अनुग्रह करने, मूलधन का प्रयोग करने या फिर राष्ट्रीय मर्यादा का अतिक्रमण करते हुए हठपूर्वक या सहज रूप से कुलीन स्त्रियों से दुर्व्यवहार किया करते हैं और वर्णसंकर उत्पन्न करते हैं तथा कुल के धर्म को नष्ट करते हैं।।५६-५७।।

ऐसे पापीजन शील, शौच आदि से सम्पन्न धर्मरूप पुरुष को घर्षित करते हैं उनके पराभव को आगे कहे हैं, सुनो।।५८।।

निरये पापभूयिष्ठा अनुभूय महाभयम्। बहुवर्षसहस्राणि कर्मणा स्वेन दुःकृतैः॥५९॥
कर्मक्षये यदा भूयो मानुष्यं प्राप्नुवन्ति ते। संकीर्योनिजाः क्षुद्रा भवन्ति पुरुषाधमाः॥६०॥
वेश्यालङ्घककूटानां शौण्डिकानां तथैव च। दुष्टपाषण्डनारीणां नैकमैथुनगामिनाम्॥६१॥
निर्लज्जाः पण्डकाः केचिद् बद्धपौरुषगण्डकाः।
स्त्रीबन्धकाः स्त्रीविलासाः स्त्रीवेषाः स्त्रीविहारिणः॥६२॥
स्त्रीणां चानुप्रवृद्धा ये स्त्रीभोगपरिभोगिनः। यद्देवतास्तन्नियमास्तद्वेषास्तत्प्रींषिताः॥६३॥
तद्भावास्तत्कथालापास्तद्भोगपरिभोगिनः। विप्रलोभं च दानेषु प्राप्नुवन्ति नराधमाः॥६४॥
सौभाग्यपरमाशक्ता नरा वीभत्सदर्शनाः। अबुद्धैः सह संवासं प्रियं चाविप्रियं तथा॥६५॥
शारीरं मानसं दुःख प्राप्नुवन्ति नराधमाः। कृमिभिर्भक्षणं चैव तप्ततैलोपसेचनम्।
अग्निक्षारनदीभ्यां च प्राप्नुवन्ति न संशयः॥६६॥
परदारप्रसक्तानामयं भवति निग्रहः। सर्वं च निखिलं कार्यं यमया समुदाहृतम्॥६७॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे एकाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२०१॥

अतिशय पाप करने वाले अपने दूषित कर्म से अनेक हजार वर्ष तक नरक में अत्यन्त भय का अनुभव कर कर्म का क्षय होने पर, वे पुनः जब मनुष्य होते हैं, तो वे पुरुषों परमाधम संकीर्ण योनि में उत्पन्न क्षुद्र जन हुआ करते हैं॥५९-६०॥

वेश्यागमन करने वाले, मर्यादा तथा विरोध करने वाले, धूर्तता युक्त व्यवहार करने वले मद्यादि का विक्रय करने वाले जन दुष्ट और पाखण्डी स्त्रियों और अनेकों के साथ मैथुन करने वालों में जन्म लिया करते हैं॥६१॥

ऐसे जन निर्लज्ज, नपुंसक, पौरुषहीन, स्त्रीबन्धक, स्त्रीविलासी, स्त्री का वेष धारणकरने वाले तथा स्त्रियों के साथ विहार करने वाले हुआ करते हैं॥६२॥

ऐसे जन स्त्रियों का अनुकरण करने वाले, स्त्री के भोग का उपभोग करने वाले, उनके देवता की साधना करने वाले, उनके नियमों का पालन करने वाले, उनसे द्वेष करने वाले और उनसे सम्भाषण करने वाले हुआ करते हैं। इस प्रकार जो नराधम उनकी भावना वाले, उसके विषय में सर्वदा बातें करने वाले, उनके भोग और उपभोग करने वाले हैं, वे दान केप्रसङ्ग से प्रालोभित हुआ करते हैं॥३६-६४॥

ऐसे सौभाग्य के प्रसङ्ग में परम अशक्त, वीभत्स स्वरूप वाले और अज्ञानियों के साथ प्रिय और अप्रिय प्रवास करने वाले हुआ करते हैं। ऐसे नराधम शारीरिक और मानसिक दुःख और क्लेश पाया करते हैं। ऐसे जन कृमि द्वारा भक्षित होते हैं और ऊष्म तैल से उपसिक्त हुआ करते हैं। ऐसे जन निःसंश अग्नि और तेजाब की नदी में डाल दिये जाते हैं॥६५-६६॥

इस प्रकार यह परस्त्री गमन करने वालों के हेतु दण्ड कहा गया है। मेरे द्वारा पहले जो कहा गया है, वह सम्पूर्ण कार्य उनके साथ भी हुआ करता है॥६७॥

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में पाप समूह विवेचनपूर्वक उसकेफ़ फल हेतु चित्रगुप्त कथन नामक दो सौ एकवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥२०१॥

❖❖❖

द्व्यधिकशततमोऽध्यायः

अथ चित्रगुप्तेनकार्यनिर्देशः

ऋषिपुत्र उवाच

इदं चैवापरं तस्य वदतो हि मया श्रुतम्। चित्रगुप्तस्य विप्रेन्द्रा वचनं लोकशासिनः॥१॥
दूरेऽसाविति किं कार्यं न क्षयस्यास्य कर्मणः। किं कृपां कुरुते तस्मिन् गृहाण जहि मा व्यथः॥२॥
व्रीडितः किं भवान् ज्ञातुं किं तिष्ठसि पराङ्मुखः।
किं न धावसि वेगेन किं त्वया सुचिरं कृतम्॥३॥
गच्छ गच्छ पुनस्तत्र शीघ्रं चैनमिहानय। अशक्तोऽस्मीति किं रोषमहते दर्पमीदृशम्॥४॥
किं त्वं वदसि दुर्बुद्धे विवाहस्तस्य वर्त्तते। ऊर्ध्वरेतास्तपस्वीति त्वं मा भीषयसे कथम्॥५॥
किं त्वं वदसि गर्जन् वै मुहूर्त्तं परिपालय। रमते कान्तया सार्द्धमिति किं त्व प्रभाषसे॥६॥
पतिव्रतेति साध्वीति रहस्यं भाषसे पुनः। किं किं वदसि बालो हि निशि चैवागतो गृहम्॥७॥
आनीयते कथं ज्ञात्वा भोक्तुकामं कथं हरे। जलशायिनं कथं चैव दातुकामं कथं हरे॥८॥

अध्याय–२०२

चित्रगुप्त द्वारा दूतों को पापियों हेतु यातना का आदेश दिया जाना

ऋषिपुत्र ने कहा कि हे श्रेष्ठ विप्रो! मेरे द्वारा संसार पर शासन करने वाले उन चित्रगुप्त को दूसरी बार वह कहते हुए, सुना गया।।१।।

इसको दूर क्यों किया जा रहा है? इनके कर्म का अभी क्षय नहीं हुआ। अरे! उस पर कृपा क्यों किया जा रहा है? इसे भी पकड़ो और मार डालो। दुःख क्यों उठाते हो?।।२।।

आप अपना कर्म जानकर लज्जित क्यों हो रहे हो? तुम मुख पीछे की ओर करके क्यों खड़े हो गये हो? वेगपूर्वक क्यों भाग रहे हो? तुमने दीर्घकाल तक क्या किया है?।।३।।

देखा! वहाँ पुनः जाओ! उसको यहाँ शीघ्र ले आओ। मैं अशक्त हूँ। यह कहने का तुम्हारा यह दर्प महान् क्रोध निमित्त होगा।।४।।

हे दुर्बुद्धे! तुम इस प्रकार क्यों कह रहे हो? कि उसका विवाह है? वह ऊर्ध्वरिता तपस्वी है, इस प्रकार कहते हुए मुझे क्यों डरा रहे हो?।।५।।

तुम गरज कर क्यों बोला करते हो? मुहूर्त्त भर रुकना चाहिए, अभी वह पत्नि के साथ रमण कर रहा है। इस तरह क्यों कहा करते हो?।।६।।

फिर से यह बात कर हरे हो कि वह पतिव्रता है। इसीलिए कि वह बालक है और रात्रि में घर आया है' इस प्रकार क्यों कहा करते हो।।७।।

'हे हरि! भोगेच्छु, जलशयन करने वाले या दान की माना वाले को कैसे लाया जा सकता है। इस प्रकार से क्यों कहा करते हो?।।८।।

धार्मिका यूयमेवात्र अहमेको नृशंसकृत्। यात यात तथा दृष्ट्वा तथा कालोऽनतिक्रमेत्॥९॥
शीघ्रं यर्पो भव त्वं हि व्याघ्रस्त्वं च सरीसृपः। जले ग्राहो भव त्वं हि त्वं कृमिस्त्वं सरीसृपः॥१०॥
नरकानुगतस्त्वं हि व्याधिभूतः समाश्रयः। अतीसारो भव त्वं हि त्वं छर्दिस्त्वं पुनर्भव॥११॥
कर्णरोगो विषूची च नित्यरोगस्तु त्वं भव। ज्वरो भव महाघोरो जले ग्राहो दुरासदः॥१२॥
वातव्याधिस्तथा घोरस्तथैव त्वं जलोदरः। उन्मादोऽपस्मरश्चैव वातरोगस्तथैव च॥१३॥
विभ्रमस्त्व भवेच्छीघ्रं विष्टम्भश्च पुनर्भव। व्याधिर्भव महाघोरो अयं रुजां तु विन्दतु॥१४॥
यथा कालं यथा दृष्टं तत्र कालोऽत्र तिष्ठतु। कालसंहरणे वापि शुभस्यागमनेऽपि वा।
भवन्तः कृतकर्माणस्ततो मोक्षमवाप्स्यथ॥१५॥
द्रुतं द्रवत वेगेन सर्वे गच्छत माचिरम्। एषाज्ञा धर्मराजस्य या मया समुदाहृता॥१६॥
एकाहं क्षपयेत् तत्र द्विरात्रं तत्र माचिरम्। त्रिरात्रं चतुरात्रं वै षड्रात्रं दशरात्रकम्॥१७॥
पक्षं वा मासमेकं वा बहून् मासांस्तथाऽपि वा।
क्षपयित्वा यथाकालं ततो मोक्षमवाप्स्यथ॥१८॥

प्रतीत हो रहा है कि तुम सब ही यहाँ धार्मिक हो और मैं ही एक मात्र हिंसक और क्रूर हूँ। जाओ, जाओ। यह अवश्य ध्यान रखो कि समय का अतिक्रमण नहीं होना चाहिए।।९।।

देखा! शीघ्र तुम सब सर्प, व्याघ्र, सरीसृप आदि का रूप धर कर जाओ। जल में तुम ग्राह बनो। तुम सब कृमि या सरीसृप का रूप भी धारण कर सकते हो।।१०।।

अतः नरक के अनुरुप व्याधि का रूप धारण कर तुम संसार में जीवों को अपने आश्रित कर डालो। तुम अतिसार या छर्दि रोग का रूप धारण करो।।११।।

तुम तो कर्ण रोग और निरन्तर कष्ट देने वाला विषूचिका रोग का रूप भी धारण कर सकते हो। तुम महाभयंकर ज्वर और जल में दुष्ट ग्राह का रूप धारण कर सकते हो।।१२।।

अरे! तुम तो वातरोग; घोर जलोदर रोग, उन्माद, अपस्मार, वातव्याधि आदि का रूप भी बना कर जाओ।।१३।।

तुम शीघ्र विभ्रम महाभयानक विष्टम्भ रोग बन सकते हो। यह पापी, इन रोगों से पीड़ित हो सकते हैं।।१४।।

तुम तो समय और कर्म फल के अनुरूप यहाँ यमलोक में तथा वहाँ मर्त्यलोक में काल का रूप धारण कर वर्तमान रहा करो। काल के रूप में संहार करने तथा शुभफल देने का कार्य सम्पन्न करने के बाद आप सबको मोक्ष मिल सकेगा।।१५।।

आप सब शीघ्र वेग के सहित दौड़कर जाओ। मेरे द्वारा जो कुछ कहा गया है, उसे यमराज का आदेश समझो।।१६।।

अब विलम्ब मत करो। वहाँ एक रात्रि, दो रात्रियाँ, तीन रात्रियाँ, चार रात्रियाँ, छः रात्रियाँ अथवा दस रात्रियाँ व्यतीत कर सकते हो।।१७।।

इस प्रकार एक पक्ष अथवा एक मास अथवा अनेक मास वहाँ व्यतीत कर सकते हो, फिर यथा समय तुम सबको मुक्ति मिल सकेगी।।१८।।

मूढात्मा भूत वै तत्र करुणः कष्टमेव च। यस्मिन् यस्मिंस्तु कालेऽहं यावतश्चाश्रयाम्यहम्।
तस्मिंस्तस्मिं महाकालं यूयं तत्कर्त्तुमर्हथ॥१९॥
विनियोगा मया युक्ता यथापूर्वं मया श्रुतम्। जाग्रतं वा प्रामत्तं वा यथा कालोऽनतिक्रमेत्॥२०॥
यत्नात् तथा तु कर्त्तव्यं भवद्भिर्मम शासनात्। अभयं चात्र यच्छामि ब्राह्मणेभ्यो न संशयः॥२१॥
तस्माद् यात ऋषिभ्यश्च स्त्रीभ्यश्चापि महाबलाः। यातनाया न भेतव्यमहमाज्ञापयामि वः॥२२॥
यथातथ्यं च कुरुत यथा कालो न गच्छति। यथा कामं प्रकुरुत यच्च दृष्टं यथा तथा।
मयाज्ञप्ता विशेषेण मृत्युना सह सङ्गताः॥२३॥
यथा वीरो महातेजाश्चित्रगुप्तो महायशाः। यथाऽब्रवीत् स्वयं रुद्रो यथा शक्रः शचीपतिः।
यथाज्ञापयते ब्रह्मा चित्रगुप्तस्तथा प्रभुः॥२४॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे द्व्यधिकशततमोऽध्यायः॥२०२॥

वहाँ मर्त्यलोक में मूढ़ात्मा करुण प्राणी को कष्ट मिले। मैं जिस समय जिस प्राणी को कालरूप में आश्रित कर लूँ, उस समय महाकाल के रूप में तुम सब मेरा कार्य करो।।१९।।

इस समय मेरे द्वारा पहले बतलोय हुए नियम के अनुरूप ही समस्त व्यवस्था की गई है। जैसा कि तुम सबने भी सुना होगा कितुम सब जाग्रत और सावधान रहा क़रो, जिससे कि काल का कभी भी अतिक्रमण नहीं हो सके।।२०।।

आप सब मेरे आदेश से उसी प्रकार कार्य किया करें। मैंने निःसंशय यहाँ ब्राह्मणों को अभयदान प्रदान किया है।।२१।।

अतः अब तुम जा सकते हो। मैं तुम सबको आदेश दे रहा हूँ। हे महाबलवान् दूतो! ऋषियों और स्त्रियों से मिलने वाली यातना से भी मत डरो।।२२।।

वास्तविक रूप से ऐसा काम करो कि जिससे काल का भी कहीं भी अतिक्रमण न हो सके। जिस प्रकार देखो, तदनुसार यथेच्छ कार्य करो। मेरा आदेश से विशेष रूप से मृत्यु के साथ रहा करो।।२३।।

इस प्रकार महायशस्वी और अत्यन्त तेजस्वी वीर चित्रगुप्त ने अपने दूतों को इस तरह अपने सम्बोधन में आदेश दिया, जैसे रुद्र ने अपने गणों को तथा शचीपति इन्द्र अपने सेवकों को आदेश दिया करते हैं, प्रभु चित्रगुप्त ने भी उसी प्रकार आदेश दिया, जैसे ब्रह्मा अपने मानसपुत्रों को आदेश किया करते हैं।।२४।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में चित्रगुप्त द्वारा दूतों को पापियों हेतु यातना का आदेश दिया जाना नामक दौ सौ दो अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥२०२॥

त्र्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

अथ प्राणीनां कर्मविपाक निरूपणम्

ऋषिपुत्र उवाच

इदमन्यत् पुरा विप्राः श्रूयतां तस्य भाषितम्। यमस्य चित्रगुप्तस्य यत् तत् तत्र मया श्रुतम्॥१॥
अयं तु भयतां यातु यातु स्वर्गं महीक्षिताम्। अयं वृक्षस्त्वंय तिर्यगयं मोक्षं व्रजेन्नरः॥२॥
अयं नागो भवेच्छीघ्रमयं तु परमां गतिम्। स्वपूर्वकान् पश्यतेऽयमात्मनस्तु पितामहान्॥३॥
क्लिश्यतो रुदतश्चैव तदतश्च पुनः पुनः। स्वेन दोषेण सर्वे वै ह्यक्षयं नरकं गताः॥४॥
दारत्यागी अधर्मिष्ठः पुत्रपौत्रविवर्जितः। क्षिप्तं वै रौरवे ह्येनं क्षपयन्तु महौजसः॥५॥
मुच्यतां त इमे सर्वे अतीतानागतास्तथा। मुच्यन्तामाशु मुच्यन्तां त एते पापवर्जिताः॥६॥
आगमे च विपत्तौ च सर्वधर्मानुपालकाः। तत्र कल्पान् बहून् स्वर्गे उषित्वा ह्यनसूयकाः॥७॥
बहुसुन्दरिनारीके आद्ये परमधार्मिके। कुले मानुषतां यातु धर्मस्येह निदर्शनम्।
त्रिविष्टपपरिक्लिष्टो वासो ह्यस्याक्षयो भवेत्॥८॥

अध्याय–२०३

पुनः प्राणियों के शुभाशुभ कर्म विपाक वर्णन

ऋषिपुत्र ने कहा कि हे विप्रो! पूर्वकाल में उन यम के द्वारा चित्रगुप्त को जो कुछ कहा गया था, उसे सुनो। जिसे मैंने वहाँ सुना था।।१।।

इसे भय प्राप्त होना चाहिए। इसे राजाओं केस्वर्ग में जाना चाहिए। इको वृक्ष होने दो। इसको तिर्यक् योनि में भेजो औरउस मनुष्य को मोक्ष प्रदान करो।।२।।

इस तत्काल नाग बनने दो। इसको परमगति प्रदान करो और देखो! यह मनुष्य अपने पूर्वजों पिता, पितामहादि से मिल सके।।३।।

इस प्रकार सब अपने-अपने दोषों के कारण अक्षय नरक में पहुँच कर नित्य क्लेश प्राप्त करते, रोते और चिल्लाया करते हैं कि—।।४।।

हे महान् ओज वाले दूतो! पत्नि का त्याग करने वाले पुत्र, पौत्रादि से हीन मुझ-सा अधार्मिक जन को रौरव नरक में डाल दो।।५।।

बहुत अतीत काल में ही आये हुए इन सबको अब मुक्त कर दो। ये सब अब पाप मुक्त हो गये हैं। अतएव इन सबको मुक्त करो, मुक्त करो।।६।।

देखो! ये सब लाभ व हानि के समय मैं भी अपने समस्त धर्मों का अनुपालन करने वाले हैं। अतः असूया मुक्त होकर इन सबको अनेक कल्पों तक हेतु स्वर्ग में रहने हेतु जाने दो, उसके बाद ये सुंदर स्त्रियों वाले, श्रेष्ठ और परमधार्मिक कुल में मनुष्य योनि को अधिगत कर सके। देखो, धर्मराज का ऐसी आज्ञा है। अतः स्वर्ग में इसने सबका नित्य अक्षय निवास होना चाहिए।।७-८।।

अयमायोधने शत्रुं हत्वा तु निधनं गतः। ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा राष्ट्रार्थे वा तथा हतः॥९॥
शक्रस्य ह्यमरावत्यां निवेदयत मा चिरम्। तत्र वैमानिको भूत्वा कल्पमेकं वसिष्यति॥१०॥
तथैवायं महाभागो धर्मात्मा धर्मवत्सलः। बहुदानरतो नित्यं सर्वभूतानुकम्पकः॥११॥
एनं गन्धैश्च माल्यैश्च शीघ्रमेव प्रपूजय। अस्मै पूजा भवेदेषा मयादिष्टा महात्मने॥१२॥
वीज्यतां चामरैरेष रथमस्मै प्रदीयताम्। प्रोतवासं समुत्सृज्य इतो यातु त्रिविष्टपम्॥१३॥
शङ्खतूर्यनिनादेन तत्र वै विजयेन च। तत वै पूजितो नित्यं प्रायशो लभतां सुखम्॥१४॥
अयं गच्छतु भद्रं च इन्द्रदेशं दुरासदम्। अनेन वै कीर्तिमता लोकः सर्वो ह्यलंकृतः॥१५॥
गुणैश्च शतसंख्यैस्तु स्वयं शकः प्रतीक्षते। तावत्स्थास्यति धर्मात्मा यावच्छक्रस्त्रिविष्टपे॥१६॥
तावत् स मोदते स्र्वे यावद् धमाऽनुमीयते। ततश्च्युतश्च कालेन मानुष्ये सुखमश्नुते॥१७॥
रत्नधेनुप्रदश्चै० सर्वधर्मैरलंकृतः। अश्विनोर्नय लोकं तु सर्वसौख्यसमन्वितम्॥१८॥
अयं यातु महाभागो देवदेवं सनातनम्। अतिसृष्टाः पुरा येन यथोक्ताः सुखदोहनाः॥१९॥
सर्वभक्त्या भवेद् दत्ता द्विजेभ्य उपपादिताः। शुचीनां ब्रह्मचारीणामन्नदानं विशेषतः॥२०॥

देखो, ये जन युद्ध में शत्रुओं को मारते हुए मरा है और इस ब्राह्मण को गौ, राष्ट्र आदि के लिए मरा हुआ है, इसे बिना देर किये शीघ्र इन्द्र की अमरावती में ले जाओ। वहाँ इसे वैमानिक होकर एक कल्प तक रहने दिया जाय।।९-१०।।

फिर यह महाभाग, धर्मात्मा, धर्मानुरागी, बहुत दान करने वाला और निरन्तर सब जीवों पर कृपा करने वाला कहा है।।११।।

अतएव इनकी गन्ध, माला आदि से तत्काल पूजा करनी चाहिए। मेरी आज्ञा से इस महात्म की पूजा किये जाते रहना चाहिए।।११-१२।।

देखो, इसके ऊपर चँवर डुलाना चाहिए और इसको रथ प्रदान करो। यह तो इस प्रेत के स्थान को छोड़कर स्वर्ग में चले जाँय। इसे धीमान् इन्द्र का अर्द्धासन मिले।।१३।।

फिर वहाँ शंख और तूर्य की ध्वनि के सहित उत्कर्ष के साथ पूज्यमान होकर निरन्तर सुख प्राप्त करने वाले हैं। इसको कल्याण मय दुर्लभ इन्द्रलोक में जाना चाहिए। इस कीर्त्ति युक्त जीव से सम्पूर्ण संसार शोभायमान है।।१४-१५।।

साक्षात् इन्द्र इनके सैकड़ों गुणों के कारण इनका आदर कर सकें। यह धर्मात्मा वहाँ उस समय तक रह सकेंगे, जब तक इन्द्र स्वर्ग में रहेंगे।।१६।।

उसको उस समय तक स्वर्ग में आनन्द मिल सकेगा, जिस समय तक इसके धर्मानुमान की चर्चा होती रहेगी। फिर वहाँ से हटने पर यथाकाल यह मनुष्य योनि में सुख प्राप्त करने वाले हो सकेंगे।।१७।।

यह रत्न और धेनु का दान करने वाला समस्त धर्मों से अलंकृत हैं। इसे समस्त सुख से सम्पन्न अश्विनी कुमारों के लोक में लेकर चले जाओ।।१८।।

इस महाभाग्यवान् को उन सनातन देवदेव के पास जाना चाहिए, इन्होंने पूर्व में उपरोक्त सुखप्रद वस्तुओं कीसृष्टि की थी।।१९।।

अत्यन्त भक्ति की भावना से इसने ब्राह्मणों को भलिभाँति अनेक पदार्थों दान दिया था। पवित्र ब्रह्मचारी को अन्न दान करने विशेष गुण वाला होता है।।२०।।

तेन दत्तं नयिष्यन्ति रुद्रकन्या मनोहराः। तत्र कल्पं वसेद् गत्वा रुद्रलोके न संशयः॥२१॥
तेन दत्तं द्विजातिभ्यो मधुखण्डपुरःसरम्। रसैश्च विविधैर्युक्तं सर्वगन्धसमन्वितम्॥२२॥
तरुणी क्षीरसंपन्ना गौः सुवर्णयुता शुभा। सवत्सा हेमवासाश्च दत्ताऽनेन महात्मना॥२३॥
अस्य लेख्यं मया दृष्टं तिस्त्रः कोट्यस्त्रिविष्टपे। ऋषीणां प्रच्युतश्चैव समृद्धे जायते कुले॥२४॥
सुवर्णस्य प्रदाता च त्रिदशेभ्यो निवेद्यताम्। त्रदशानभ्यनुज्ञाप्य यातु देवमुमापतिम्।
तत्रैष वै महातेजा यथेष्टं काममाप्नुयात्॥२५॥
तत्रैवायमपि प्रेतो गणभक्तो महातपाः। प्रयातु पितृभिः सार्द्धं तर्पिता येन पूर्वजाः॥२६॥
दानव्रता दिवं यान्तु सर्वलोकनमस्कृताः॥२७॥
अयं भद्रो महाकामः सर्वभूतहिते रतः। सर्वकामैरयं पूज्यः सर्वकामप्रदो नरः॥२८॥
क्षितिप्रदो द्विजातिभ्यो अयं यातु त्रिविष्टपम्। तत्रैव तिष्ठतां वीरो ब्रह्मलोके सहानुगः॥२९॥
विविधैः कामभोगैस्तु सेव्यमानो नरोत्तमः। अजराख्यं क्षयं चैव पूज्यमानो यथाविधि॥३०॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे त्र्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२०३॥
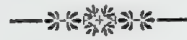
उसके द्वारा दिये दान का ही प्रभाव है कि उसे मनोहर रुद्र लोक की कल्याएँ प्राप्त हो गया है। निःसंशय यह रुद्रलोक में एक कल्प पर्यन्त निवास कर सकेगा।।२१।।

उस जन ने ब्राह्मणों को सभी गन्धों से और अनेक प्रकार के रसों से सम्पन्न मधुर खाँड से मिश्रित पदार्थ प्रदान किया है।।२२।।

देखो, इस महात्मा द्वारा सुनहरे वस्त्र से सम्पन्न स्वर्ण वाला दूध प्रदान करने वाली कल्याणमयी तरुणी गाय प्रदान की गई है।।२३।।

मेरे द्वारा स्वर्ग में इसके तीन करोड़ लेखों कोदेखा गया है। फिर स्वर्ग से अळने पर यह ऋषियों के कुल में उत्पन्न हो सकेगा। यह स्वर्ण दान किया है, इन्हें देवगण के समीप पहुँचा दो। फिर वहाँ देवताओं से आदेश लेकर यह उमापति देव के समीप पहुँचे। यह महातेजस्वी वहीं यथेष्ट सुखभोग प्राप्त कर सकेंगे।।२४-२५।।

जिस-किसी ने पूर्वजों का श्राद्ध सम्पन्न किया हो, वही वह महातपस्वी गण भक्त प्रेत भी पितरों के सहित उसी जगह पहुँचे। फिर समस्त लोकों से नमस्कृत दानव्रती स्वर्ग को पहुँचे।।२६-२७।।

यह सब जीवों का कल्याण करने वाला पवित्र और उच्चाकांक्षी जन है। समस्त प्रकार का सुख प्रदान करने वाले इस मनुष्य का सभी सुखकारक पदार्थों से सत्कार करना चाहिए।।२८।।

ब्राह्मणों को भूमि प्रदान करने वाला इस मनुष्य को स्वर्ग पहुँचाओ। यह वीर अपने अनुदायी के साथ उस ब्रह्मलोक में ही रहेंगे।।२९।।

यह उत्तम जन कई प्रकार के सुखप्रद पदार्थों से सेवित होते हुए अजर नामक स्थान पर यथाविधि सम्मान प्राप्त कर सकेगा।।३०।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में पुनः प्राणियों के शुभाशुभ कर्म विपाक वर्णन नामक दो सौ तीन अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥२०३॥

❖❖❖

चतुरधिकद्विशततमोऽध्यायः

अथ शुभकर्मविपाकवर्णनम्

ऋषिपुत्र उवाच

चित्रगुप्तस्य संदेशो वदतो यो मया श्रुतः। श्रूयतां वै महाभागास्तपःसिद्धा द्विजोत्तमाः॥१॥
इमं सर्वातिथिं दान्तं सर्वभूतानुकम्पकम्। समान्नदानदातारं शेषभोजनभोजिनम्।
मुञ्च मुञ्च महाभृत्य एष धर्मस्य निर्णयः॥२॥
अहं कालेन सार्द्धं हि मृत्युना प्रवृतस्तथा। मम स्थास्यन्ति पार्श्वेभ्यः पापा वै विकृतास्तथा॥३॥
एनं गायन्ति गन्धर्वा गगनेऽप्सरसस्तथा। दीयतामासनं दिव्यं तथान्यद् यानमेव च॥४॥
अन्यान् यान् कामयेत् कामान् मनसा यानि चेच्छति।
तत्तु शीघ्रं प्रदातव्यं धर्मराजस्य शासनात्॥५॥
अक्रियाणि तु दानानि पूर्वं दत्तानि धीमता। प्रेष्यतां च महाभागो भोक्तुं चैव सहानुगः॥६॥
तिष्ठत्येषोऽत्र वै वीरो ममादेशान्महायशाः। यावत्स्वर्गाद् विमानानि समागच्छन्ति कृत्स्नशः॥७॥
ततःस प्रवरैर्यानैः सानुगः सपरिच्छदः। देवानां भवनं यातु दैवतैरभिपूजितः॥८॥

अध्याय-२०४

शुभकर्म विपाक वर्णन में गो प्रशंसा, गोसेवा प्रशंसा

ऋषिपुत्र ने कहा कि हे महाभाग तप से सिद्ध द्विजोत्तमो! मेरे द्वारा चित्रगुप्त को जिन सन्देशों को कहते हुए सुना गया है, उनको आप सब सुनें।।१।।

हे महाभृत्य! अपने समस्त अतिथियों को सम्मान और अन्न प्रदान करने वाले इन्द्रियसंयमी, समस्त जीवों पर कृपा करने वाले और अपने अतिथि आदि के भोजन करने के बाद शेषांश भोजन को ग्रहण करने वाले को छोड़ दो छोड़ दो। यह धर्मराज का निर्णय है।।२।।

मैं काल और मृत्यु के साथ प्रवृत्त हूँ। मेरे पार्श्व भागों में विकृत पाप करने वाले जन मात्र रहा करते हैं।।३।।

आकाश में गन्धर्व और अप्सरायें इसका यश गाया करते हैं। इन्हें दिव्य आसन और यान प्रदान किया जाना चाहिए।।४।।

धर्मराज के आदेशानुसार इन्हें जिन भोग्य पदार्थों की अपेक्षा हो अथवा मन से जिन पदार्थों की कामना करें वे सब शीघ्र इन्हें ले आकर दो।।५।।

इस धीमान् जन ने पूर्व में क्रिया रहित दान किया है। इन्हें भी अपने अनुयायी के साथ उस दान का फल भोग करने भेज दो।।६।।

मेरी आज्ञा से यह महायशस्वी वीर यहाँ तब तक रहे जब तक कि स्वर्ग से सम्पूर्ण विमान नहीं आ जा रहे हैं।।७।।

फिर इसे अपने अनुयायियों एव सेवकों के सहित उरुम यानों से देवताओं के भवन में पहुँचकर उन देवताओं से भी सम्मान प्राप्त करना चाहिए।।८।।

तत्रैव रमातं वीरो यावल्लोका धरन्ति वै। स कृतार्थः सदा लोके यत्रैषोऽभिप्रयास्यति॥९॥
तत्र मेध्यं पवित्रं च यत्र स्थास्यत्ययं शुचिः। नैककन्याप्रदातारं नैकयज्ञकृतं तथा॥१०॥
पूजयतां सर्वकामैस्तु पदं गच्छतु वैष्णवम्। तत्रैष रमतां धीरः सहस्रमयुतं समाः।
ततो वै मानुषे लोके आढ्ये वै जायतां कुले॥११॥
भूतानुकम्पको ह्येष क्रियतामस्य चार्च्चनम्। वर्षाणामयुतं चायं तत्रा तिष्ठतु देववत्।
जायते तु ततः पश्चात् सर्वमानुषपूजितः॥१२॥
उपानहौ च छत्रं च जलभाजनमेव च। असकृद् येन दत्तानि तस्मै पूजां प्रयच्छथ।
सभा यत्र प्रपद्यन्ते यस्मिन् देशे सहस्रशः॥१३॥
हस्तेन संस्पृशत्येष मृदुना शीतलेन च। विद्याधरस्तथा ह्येष नित्यं मुदितमानसः।
महापद्मानि चत्वारि तस्मिन् तिष्ठतु नित्यशः॥१४॥
ततश्च्युतश्च कालेन मानुषं लोकमागतः। बहुसुन्दरिनारीके कुले जन्म समाप्नुयात्॥१५॥
दधि क्षीरं घृतं चैव येन दत्तं द्विजातिषु। एष वा यातु नः पार्श्वे अस्मै पूजां प्रयच्छथ॥१६॥
नीयतां नीयतां शीघ्रं यत्र तिष्ठन्ति चालये। गोरसस्य तु पूर्णानि भाजनानि सहस्रशः॥१७॥
तत्र दत्त्वा च पीत्वा च बान्धवेभ्यो विभागशः। ततः पश्चादयं यातु यत्र लोकोऽनसूयकः॥१८॥

इस वीर को उसी जगह तब तक रमण करने दो, जब तक समस्तलोक विद्यमान रहा करते हैं। यह जहां भी जा सकेगा, वह स्थान लोक में नित्य कृतार्थ ही हुआ करेगा।।९।।

देखो, यह पवित्र जन जहाँ भी रह सकेगा, वह स्थान यज्ञभूमि के समान पवित्र ही हो सकेगा। यह अनेक कन्याओं का दान करने वाला और अनेक यज्ञों को करने वाला भी है।।१०।।

समस्त भोग्य वस्तुओं से इनकी पूजा करो। यह विष्णु का स्थान ग्रहण करेगा। यह धैर्य्यवान जन वहीं पर ग्यारह हजार वर्षों तक रमण करे, फिर यह मनुष्य लोक में सम्पन्न परिवार में जन्म ग्रहण करेगा।।११।।

देखो, यह जीवों पर दया करते रहा है, इसकी पूजा होनी चाहिए। वहाँ पर यह दस हजार वर्षों तक देवता के समान रह सकेगा। फिर मनुष्य लोक में उत्पन्न होकर यह समस्त मनुष्यों से पूजित हो सकेगा।।१२।।

जिसने कई बार उपानह, छत्र और जलपात्र का दान किया है, उसको वहाँ जिस स्थान पर हजारों प्रकार की सभायें होती हों, वहाँ आदर प्रदान करो।।१३।।

वहाँ पर यह कोमल और शीतल हाथ से स्पर्श करता है। यह नित्य प्रसन्नचित्त रहने वाला विद्याधर है। यह नित्य चार महापद्मों के मध्य स्थित रहे।।१४।।

फिर उचित समय जब वहाँ से हटेंगे, तो यह मनुष्य लोक में पहुँचकर अत्यन्त सुन्दर स्त्री वाले कुल में जन्म ग्रहण कर सकेगा।।१५।।

जिसने ब्राह्मणों को दही, दूध और घृत प्रदान किया हो, वह तो मेरे पार्श्व में स्थित रहे और इनकी पूजा की जानी चाहिए।।१६।।

इन्हें शीघ्र ही उस घर में ले जाना चाहिए, जहाँ हजारों गोरस के पूर्णपात्र विद्यमान हों।।१७।।

वहाँ अपने बाँधवों को बाँट कर देने और पीने के बाद यह उस लोक को जा सकेगा, जहाँ असूयाहीन लोक है।।१८।।

तत्रैव रमतां धीरो बहुवर्षशन्ययम्। बहुसुन्दरिनारीभिः सेव्यमानो महातपाः।
अमराख्यो भवेत् तत्र गोलोकेषु समाहितः॥१९॥
इदमेवापरं चैव चित्रगुप्तस्य भाषितम्। सर्वदेवमया देव्यः सर्ववेदमयास्तथा॥२०॥
अमृतं धारयन्त्यश्च प्रचरन्ति महीतले। तीर्थानां परमं तीर्थमतस्तीर्थं न विद्यते॥२१॥
तस्मात् पुरस्तु दातव्यं गवां वै मेध्यकारणात्। दध्ना हि त्रिदशाः सर्वे क्षीरेण च महेश्वरः॥२२॥
घृतेन पावको नित्यं पायसेन पितामहः। सकृद्दत्तेन प्रीयन्ते वर्षाणां हि त्रयोदशः॥२३॥
तां दत्त्वा चैव पीत्वा च प्रेतो मेध्यस्तु जायते। पञ्चगव्येन पीतेन वाजिमेधफलं लभेत्।
गव्यं तु परमं मेध्यं गव्यादन्यन्न विद्यते॥२४॥
दन्तेषु मरुतो देवा जिह्वायां तु सरस्वती। खुरमध्ये तु गन्धर्वाः खुराग्रेषु तु पन्नगाः॥२५॥
सर्वसन्धिषु साध्याश्च चन्द्रादित्यौ तु लोचने। ककुदे सर्वनक्षत्रा लाङ्गूले धर्म आश्रितः॥२६॥
अपाने सर्वतीर्थानि प्रस्रवे जाह्नवी नदी। नानाद्वीपसमाकीर्णाश्चत्वारः सागरास्तथा॥२७॥
ऋषयो रोमकूपेषु गोमये पद्मधारिणी। रोमेषु सन्ति विद्याश्च त्वक्केशेष्वयनद्वयम्॥२८॥

यह महातपस्वी घोर पुरुष वहाँ गोलोक में निश्चित अमर नाम प्राप्त कर सकेगा और कई प्रकार की स्त्रियों द्वारा सेवित होकर सौओं वर्ष तक रमण करेगा।।१९।।

उन चित्रगुप्त का इस प्रकार के दूसरे-दूसरे कथन भी हैं। ये गाय स्वरूप देवियाँ सर्वदेवमय और सर्ववेदमय हैं।।२०।।

फिर ये अमृत धारण कर भूमितल पर घूमा करती हैं। ये सब तीर्थों में उत्तमा तीर्थ स्वरूपा हैं। इनसे बड़ा कोई अन्य तीर्थ नहीं है। यह पवित्रों में अत्यन्त पवित्र हैं तथा पुष्टिकर पदार्थों में सर्वोत्तम पुष्टि प्रदान करने वाली हैं।।२१।।

अतः पवित्रतावश गौ का ही प्रथम पदार्थ प्रदान करना उचित है। एक बार गौ की दही से समस्त देवता तथा दूध से महेश्वर और घृत प्रदान करने से अग्नि एवं पायस से पितामह तेरह वर्ष नित्य तृप्त रहा करते हैं।।२२२३।।

उनको प्रदान कर पीने वाला व्यक्ति मरने पर पवित्र हो जाया करता है। फिर पञ्चगव्य पान करने से अश्वमेध का फल प्राप्त होता है। गाय से प्राप्त होने वाले घृत आदि पदार्थ से अधिक पवित्र अन्य कोई पदार्थ नहीं हो सकता है।।२४।।

फिर गौ दन्त में मरुद्गण देव, जिह्वा में सरस्वती, खुर के मध्य गन्धर्व जन और खुर के अग्रभाग में नाग लोग निवास किया करते हैं।।२५।।

फिर उन गाय की समस्त सन्धियों में साध्य गण, दोनों नेत्रों में चन्द्रमा, अैर सूर्य, ककुद में सभी नक्षत्र और पूँछ में धर्म स्थित रहते हैं।।२६।।

फिर गायों के अपान में सब तीर्थ, मूत्र में गंगा नदी और इनके स्तनों में अनेक द्वीप तथा चार सागर स्थित हैं।।२७।।

इन गायों के रोमकूपों में ऋषिगण, गोमय में पद्म धारण करने वाली लक्ष्मी, रोमों में विद्यायें और इनके त्वचा में और केशों में दोनों अयन स्थित हैं।।२८।।

धैर्यं धृतिश्च शान्तिश्च पुष्टिर्वृद्धिस्तथैव च। स्मृतिर्मेधा तथा लज्जा वपुः कीर्त्तिस्तथैव च॥२९॥
विद्या शान्तिर्मतिश्चैव सन्नतिः परमा तथा। गच्छन्तमनुगच्छन्ति एता गावो न संशयः॥३०॥
यत्र गावो जगत् तत्र देवदेवपुरोगमाः। यत्र गावस्तत्र लक्ष्मीः सांख्यधर्मश्च शाश्वतः।
सर्वरूपेषु ता गावस्तिष्ठन्त्यभिमताः सदा॥३१॥
भवनेषु विशालेषु सर्वप्रासादपङ्क्तिषु। स्त्रियश्च पुरुषाश्चैव रक्षयन्तः सुयन्त्रिताः॥३२॥
शयनासनपानेषु उपविष्टाः सहस्रशः। क्रीडन्ति विविधैभोगैर्भोगेषु च सहस्रशः।
तत्र पानगृहेष्वन्ये पुष्पमालाविभूषिताः॥३३॥
भक्ष्याणां विविधानां च भोजनानां च संचयन्। शयनासनपानानि वाजिनो वारणांस्तथा।
अपश्यं विविधास्तत्र स्त्रियश्च शुभलोचनाः॥३४॥
शोभयन्ति स्त्रियःकाश्चिज्जलक्रीडागतास्तथा। उद्यानेषु तथा चान्या भवनेषु च पुण्यतः॥३५॥
अनेन सदृशं नास्ति अस्मादन्यत्र विद्यते। अहो सूत्रकृतं शिल्पमहो रत्नैरलंकृतम्।
एवं गृहाद् गृहं गच्छन्नहं तत्र ततस्ततः॥३६॥
ततस्तु निखिलं सम्यग् दृष्ट्वा कर्म महोदयम्। पुनरेवागतः पार्श्वं यमस्य द्विजसत्तमाः॥३७॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे चतुरधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२०४॥

फिर इन गायों के चलने पर इनके पीछे-पीछे धैर्य्य, धृति, शान्ति, पुष्टि, वृद्धि, स्मृति,, मेधा, लज्जा, वपु, कीर्त्ति, विद्या, मति और श्रेष्ठ विनति चलती हैं। इसमें सन्देह नहीं करना चाहिए।।२९-३०।।

जहाँ-जहाँ गायें होती हैं, वहाँ लक्ष्मी एवं सांख्यधर्म नित्य निवास करते हैं। सर्वदा सम्मानीय वे गायें समस्त स्वरूपों में स्थित रहती हैं।।३१।।

अच्छी तरह अनुशासित स्त्रियों और पुरुष विशाल भवनों और समस्त प्रासाद पङ्क्तियों में रक्षा किया करते हैं। उस जगह हजारों जन शय्या, आसन और पान गोष्ठियों में स्थित रहा करते हैं। हजारों समूहों में विभक्त जन विविध प्रकार के भोग साधनों से क्रीड़ा करते रहा करते हैं। दूसरे कुछ जन पुष्प और माला से अलंकृत होकर उस पानगृहों में रमण भी किया करते रहते हैं।।३२-३३।।

इस प्रकार वहाँ मेरे द्वारा कई प्रकार के शयन, भोज्यद्रव्य,पेय वस्तुऐं , अश्व, हाथी तथा सुन्दर नेत्रों वाली स्त्रियों को देखा गया। उनमें कुछ स्त्रियाँ जलक्रीड़ा करती हुं सुशोभित हो रही थी। अन्य कुछ स्त्रियाँ अपने पुण्य से उद्यानों और भवनों में शोभा पा रही थीं।।३४-३५।।

अतः इसके समान दूसरा स्थान नहीं है। अहा! शास्त्रीय सूत्रानुसार विनिर्मित शिल्प किस प्रकार सुन्दर और रत्नों से शोभायमान हो रही थी। इस प्रकार वहाँ एक घर से दूसरे घर में जो हुए मेरे द्वारा देखा गया।।३६।।

हे श्रेष्ठ द्विजो! फिर समस्त कर्मों में महान् फल का देखकर मैं पुनः यम के पास आ गया।।३७।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में शुभकर्म विपाक वर्णन में गो प्रशंसा, गोसेवा प्रशंसा नामक दो सौ चौथा अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥२०४॥

❖❖❖

पञ्चधिकद्विशततमोऽध्यायः

अथ नारद-यमराजसम्वादः

ऋषिपुत्र उवाच

इदमन्यन्महाभागा नारदात् कलहप्रियात्। श्रुतं विप्रा यथा तत्र यमस्य सदसि स्वयम्।।१।।
तथा च पृच्छतसतस्य पुरावृत्तं महात्मनः। आख्यातं कथयामास यदुक्तं चित्रभानुना।।२।।
यथा च जनको राजा कामान् दिव्यानवाप्तवान्। तत्सर्वं कथयिष्यामि श्रूयतां मुनिसत्तमाः।।३।।
अहं तत्र महातेजा नारदो मुनिसत्तमः। धर्मराजसभां प्राप्तस्तपसा द्योतितप्रभः।।४।।
तत्र राजाऽथ वेगेन तं दृष्ट्वा स्वयमागतम्। अर्चयित्वा यथान्यायं कृत्वा चैव प्रदक्षिणाम्।।५।।
उवाच च महातेजाःसूर्यपुत्रः प्रतापवान्। स्वागतं ते द्विजश्रेष्ठ दिष्ट्या प्राप्तोऽसि नारद।।६।।
सर्वज्ञः सर्वदर्शी च सर्वधर्मविदां वरः। गान्धर्वस्येतिहासस्य विज्ञाता त्वं महामुने।।७।।
वयं पूताश्च मेध्याश्च त्वां दृष्ट्वा ह्यागतं विभो। अयं देशः पुनः पूतः सर्वतो ब्रह्मवित्तम।।८।।
यत्कार्यं येन वा कार्यं यद् वै मनसि वर्त्तते। प्रब्रूहि भवान्नाशु यच्चान्यत् किंचिदुत्तमम्।।९।।

अध्याय–२०५

नारद और यमराज सम्वाद में विविध व्रत, दान आदि का फल

ऋषिपुत्र ने कहा कि हे महाभाग्यवान् विप्रो! मेरे द्वारा स्वयं यमराज की उस सभा में कलहप्रिय नारद से इस प्रकार दूसरे तथ्य को सुना गया।।१।।

उन चित्रभानु ने पुरातनवृत्त की जिज्ञासा करने वाले उन महात्मा नारद से जो रहस्य कहा था, उसे भी मेरे द्वारा सुना गया था।।२।।

हे श्रेष्ठतम मुनियो! वैसे राजा जनक ने जैसे दिव्य भोगों को अधिगत किया था, वे सब मैं कहने जा रहा हूँ। जिस समय, मैं वहाँ विद्यमान था, उसी समय अपने तपश्चर्या से सुदीप्त तेजस्वी तेज सम्पन्न मुनियों में सर्वोत्तम नारद धर्मराज की सभा में पधार गए।।३-४।।

इस तरह उन नारद मुनि को देखकर धर्मराज स्वयं वेगपूर्वक आगे बढ़कर उनका यथोचित रीति से पूजन कर प्रदक्षिणा करते हुए प्रतापी और महातेजस्वी सूर्यपुत्र ने कहा कि हे मुनिश्रेष्ठ! आपका स्वागत है। हे नारद! मेरे भाग्य से ही आज आप यहाँ पधारे हैं।।५-६।।

हे महामुनि! आप सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, समस्त धर्मों को जानने वालों में श्रेष्ठ, गान्धर्व विद्या और इतिहास के मर्मज्ञ हैं।।७।।

हे विभो! आपको यहाँ पधारने से हम सभी पवित्र और धन्य हो गये हैं। हे श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी! इस प्रकार यह देश सब जगह पवित्र हो गया है।।८।।

हे भगवन! अब आपका जो कार्य हो, जिससे कार्य हो या जो कुछ आपके मन में हो अथवा जो भी कोई अन्य उत्तम तत्त्व हो उसे हमें शीघ्र कहें।।९।।

दुर्लभं त्रिषु लोकेषु यच्च प्रियतरं तव। तपोमयानां सर्वेषां द्विजातीनां च सुव्रत।
अहमाज्ञाविधेयोऽस्मि भवतस्तु विशेषतः॥१०॥

नारद उवाच

भवान् पाता च गोप्ता च नेता धर्मस्य नित्यदा।
सत्येन तपसा क्षान्त्या धैर्येण च न संशयः॥११॥

भावज्ञश्च कृतज्ञश्च त्वदन्यो नेह विद्यते। संशयः सुमहान् प्राप्तस्तन्ममाचक्ष्व सुव्रत॥१२॥
अमरत्वं कथं यान्ति व्रतेन नियमेन च। केन वा दानधर्मेण तपसा वा सुरोत्तम॥१३॥
अतुलां च श्रियं लोके कीर्त्तिं च सुमहाफलम्।
लभन्ते शाश्वतं स्थानं दुर्लभं विगतज्वराः॥१४॥
केन गच्छन्ति नरकं पापिष्ठं लोकगर्हणम्। सर्वमाख्याहि तत्त्वेन परं कौतूहलं हि मे॥१५॥

यम उवाच

गच्छन्ति हि नरा घोरा बहवोऽधर्मनिर्मितम्। बन्धाश्च सूबहूंस्तत्र प्राप्नुवन्ति तपोधन॥१६॥
विस्तरेण तु तत्सर्वं ब्रवीमि मुनिसत्तम। श्रूयतां तन्महाभाग श्रुत्वा चैवोपरधारय॥१७॥
नाग्निचिन्नरकं याति न पुत्री न च भूमिदः। शूरश्च शतवर्षी च वेदानां चैव पारगः॥१८॥

समस्त द्विजातियों और तपस्वियों श्रेष्ठतम हे सुव्रत! त्रिलोक में दुर्लभ जो कुछ आपकी अत्यन्त प्रिय हो, उनको बतलायें। मैं विशेष रूप से आपकी आज्ञा के अनुरूप उसे शीघ्र पालन करना चाहता हूँ।।१०।।

नारद ने कहा कि आप निःसंशय सत्य, तप, क्षमा और धैर्य से धर्म के शाश्वत रक्षक, प्रेरक और नेता हैं।।११।।

फिर आपके अलावे दूसरा और कौन भाव और कर्म को समझने वाला नहीं है। हे सुव्रत! मुझे महान् संशय हो गया है, उसे मुझको बतलायें।।१२।।

हे सुरश्रेष्ठ! किस व्रत, नियम, दान धर्म या तप से मनुष्य अमरता प्राप्त करते हैं।।१३।।

फिर पश्चात्ताप रहित होकर मनुष्य कैसे लोक में अतुत, लक्ष्मी, कीर्त्ति, महान् फल और दुर्लभ शाश्वत स्थान प्राप्त किया करते हैं।।१४।।

वह मनुष्य किस कर्म से अतिपाप सम्पन्न और लोक निन्दित नरक या करते हैं? ये सब मुझे यथार्थ रूप से कहें। मुझे इस प्रसङ्ग में अत्यन्त जानने की उत्सुकता है।।१५।।

यमराज ने कहा कि हे तपोधन! अनेक घोर मनुष्य अधर्म द्वारा निर्मित नरक में जाया करते हैं तथा वहाँ वे अनेक बन्धनों को प्राप्त किया करते हैं।।१६।।

हे मुनिश्रेष्ठ! विस्तार से उन सब विषयों का वर्णन करता हूँ। हे महाभाग! उसको सुनो औरसुनकर धारण करो।।१७।।

अग्नि का चयनकर्त्ता, पुत्रवान् , भूमिदान करने वाला, शूर व्यक्ति, सौ वर्ष जीने वाला, तथा वेदों के पारगामी व्यक्ति कभी भी नरक में नहीं जा पाता है।।१८।।

अजिताश्चाशठाश्चैव स्वामिभक्ताश्च ये नराः। बर्हिंसका न गच्छन्ति ब्रह्मचर्यव्यवस्थिताः॥१९॥
पतिव्रता दानवन्तो द्विजभक्ताश्च ये नराः। स्वदारनिरता दान्ताः वरदारविवर्जकाः॥२०॥
सर्वभूतात्मभूताश्च सर्वभूतानुकम्पकाः। न गच्छन्ति तु तं देशं पापिष्ठं सततसावृत्तम्।
यातनास्थानसंपूर्णं हाहाप्रतिभयस्वनं॥२१॥
ज्ञानवन्तो द्विजा ये च ये च विद्यापरं गताः।
उदासीना न गच्छन्ति स्वाम्यर्थे च हता नराः॥२२॥
न गच्छन्त्यत्र दातारः सर्वभूतहिते रताः। शुश्रूषका मातृपित्रोर्न गच्छन्ति हि ते नराः॥२३॥
तिलान् गां च हिरण्यं च पृथिवीं चापि शाश्वतीम्।
ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छन्ति न गच्छन्ति न संशयः॥२४॥
यथोक्तयजमानाश्च सत्रयाजिन एव च। चातुर्मास्यकरा ये च ये द्विजा आहिताग्नयः॥२५॥
गुरचिरुानुपालाश्च कृतिनो मौनयन्त्रिताः। नित्यस्वाध्यायिनो दान्ताः सदा सभ्याश्च ये नरः।
मां न पश्यन्ति ते चैव आत्मभावेन भाविताः॥२६॥
अपर्वमैथुना ये च न गच्छन्ति जितेन्द्रियाः। ब्राह्मणा अमरत्वं च प्राप्नुवन्ति न संशयः॥२७॥

पवित्रता स्त्री, सत्यवक्ता, अपराजित व्यक्ति, शठता नहीं करने वाला, स्वामिभक्त, अहिंसक, और ब्रह्मचर्य पालन करने वाला व्यक्ति भी नरक में नहीं जाया करते हैं।।१९।।

पतिव्रता स्त्री, दान करने वाला, ब्राह्मण भक्त, अपनी पत्नि के अनुरागी, इन्द्रिय संयमी, और परायी स्त्री का संग नहीं करने वाला आदि जन नरक में नहीं जाया करते हैं।।२०।।

समस्त जीवों को आत्मवत् मानने वाले, समस्त जीवों पर दया करने वाले, आदि जन अत्यन्त पापयुक्त अन्धकार से घिरा, यातना स्थानों से पूर्ण और हाहाकार की प्रतिध्वनि से पूर्ण, ऐसे नारकीय देश में नहीं जाया करते हैं।।२१।।

ज्ञानयुक्त द्विज, विद्यापारगी, उदासीन और अपने स्वामी हेतु प्राण त्याग करने वाले जन कभी भी नरक में नहीं जाया करते हैं।।२२।।

दानदाता, समस्त जीवों के कल्याण में लगा रहने वाला और माता-पिता की सेवा करने वाले जन कभी भी वहाँ याने नरक में नहीं जाया करते हैं।।२३।।

ब्राह्मणों को तिल, गाय, स्वर्ण और शाश्वती पृथ्वी का दान करने वाला जन निःसंशय नरक में नहीं जाया करते हैं।।२४।।

शास्त्रीय रीति के यजमान, यज्ञ करने वाले, चतुर्मास्य करने वाले और अहिताग्नि जन, गुरु के चित्त का अनुसरण करने वाले, सुशील, मौन व्रत करने वाला, नित्य स्वाध्याय करने वाला, इन्द्रिय निग्रही और सदा सभा में साधुता से व्यवहार करने वाला आदि जन आत्मभाव से भावित होकर मेरा दर्शन पाते हैं।।२५-२६।।

पर्वदिनों मैथुन न करने वाले एवं जितेन्द्रिय ब्राह्मण नरक में नहीं जाया करते हैं और वे निःसन्देह अमरता को प्राप्त कर लेते हैं।।२७।।

निवृत्ताः सर्वकामेभ्यो निराशाः सुजितेन्द्रियाः। न गच्छन्ति हि तं घोरं यत्र ते पापकर्मिणः॥२८॥

नारद उवाच

किं दानं श्रेयसा युक्तं पात्रेण फलमुच्यते। किं वा कर्म महत् कृत्वा स्वर्गलोके महीयते॥२९॥
रूपं वा धनधान्यं वा आयुश्च कुलमेव च। प्राप्यते येन दानेन तन्ममाचक्ष्च सुव्रत॥३०॥

यम उवाच

न शक्यं विस्तरेणेह वक्तुं वर्षशतैरपि। शुभाशुभानां गतयो द्रष्टुं वा प्रष्टुमेव वा॥३१॥
किंचिन्मात्रं प्रवक्ष्यामि येन यत् प्राप्यते नरैः। विविधानि च सौख्यानि प्रायशस्तु गुणागुणैः॥३२॥
रहस्यमिदमाख्यानं श्रूयतां मुनिसत्तम। या गतिः प्राप्यते येन प्रेत्यभावे न संशयः॥३३॥
तपसा प्राप्यते स्वर्गं तपसा प्राप्यते यशः। आयुःप्रकर्षो भोगश्च भवन्ति तपसैव तु॥३४॥
ज्ञानविज्ञानमारोग्यं रूपसौभाग्यसंपदः। तपसा प्राप्यते भोगो मनसा यो य इष्यते॥३५॥
एवं प्राप्नोति पुण्येन मौनेनाज्ञां महामुने। उपभोगांस्तु दानेन ब्रह्मचर्येण जीवितम्॥३६॥
अहिंसया परं रूपं दीक्षया कुलजन्म च। फलमूलाशिनां राज्यं स्वर्गः पर्णाशिनां भवेत्॥३७॥
पयोभक्ष्या दिवं यान्ति जायते द्रविणाढ्यता। गुरुशुश्रूषया नित्यं श्राद्धदानेन सन्ततिः॥३८॥

समस्त प्रकार की कामनाओं से मुक्त, आशा विहीन और जितेन्द्रिय मनुष्य पापकर्मियों के उस घोर लोक में नहीं जाया करते हैं।।२८।।

नारद ने कहा कि किस प्रकार का दान श्रेय से युक्त है? किस पात्र से उत्तम फल कहना चाहिए। अथवा कौन महान् कर्म करके मनुष्य स्वर्ग लोक में पूजित हुआ करती हैं?।।२९।।

हे सुव्रत! जिस दान से रूप, धन धान्य, आयु, कुल आदि मिलते हैं, वे सब मुझसे कहें।।३०।।

यम ने कहा कि शुभ और अशुभ कर्मों की गतियों को सौ वर्षों में भी विस्तर से देखना पूछना अथवा कह पाना सम्भव नहीं है। मनुष्य जिस कर्म, गुणों और अवगुणों से जो फल और विविध प्रकार के सुखों एवं दुःखों को प्राप्त किया करते हैं, उसका कुछ वर्णन किया जा रहा है।।३१-३२।।

हे मुनिश्रेष्ठ! मरने पर मनुष्य जिस कर्म से निःसंशय जो गति पाया करते हैं, उस रहस्यमयी आख्यान को सुनना चाहिए।।३३।।

चूँकि तप से स्वर्ग और यश की प्राप्ति होती है। आयु और उत्कृष्ट भोग भी तप से ही मिला करते हैं।।३४।।

ज्ञान-विज्ञान, आरोग्य, रूप, सौभाग्य, सम्पत्ति और मनोवांछित भोग भी तप से मिल जाया करते हैं।।३५।।

हे महामुनि! मनुष्य को पुण्य से भी इसी तरह की प्राप्ति हुआ करती है। फिर मौन से आज्ञा प्रदान करने की प्रभुता, दान से उपभोग योग्य द्रव्य और ब्रह्मचर्य से जीवन की प्राप्ति हुआ करती है।।३६।।

अहिंसा से श्रेष्ठ रूप, दीषा से अच्छा कुल का जन्म, कन्द मूल फल खाने वाले को राज्य औरपत्रभक्षण करने वालें को स्वर्ग मिला करते हैं।।३७।।

फिर दूध पीने वाले जन स्वर्ग जाया करते हैं। गुरुजनों की सेवा से धन सम्पन्नता और नित्य श्राद्ध करने से सन्तति की प्राप्ति हुआ करती है।।३८।।

गवाद्याः कालदीक्षाभिर्ये तु वा तृणशायिनः।
स्त्रियं त्रिषवणाद् ब्रह्मन् वायुं पीत्वेष्टलोकभाक्॥३९॥

क्रतुयष्टा दिवं याति उपहारश्च सुव्रत। कृत्वा तु दशवर्षाणि वीरयानाद् विशिष्यते॥४०॥
रसानां प्रतिसंहारात् सौभाग्यमुपजायते। आमिषस्य प्रतीहाराद् भवत्यायुष्मती प्रजा॥४१॥
गन्धमाल्यनिवृत्त्या तु मूर्तिर्भवति पुष्कला। अन्नदानेन च नरः स्मृतिं मेधां च विन्दति॥४२॥

छत्रप्रदानेन गृहं वरिष्ठं रथं तथोपानहसंप्रदानात्।
वस्त्रप्रदानेन सुरूपता च धनैश्च पुत्रैश्च भृता भवन्ति॥४३॥

पानीयस्य प्रदानेन तृप्तिर्भवति शाश्वती। अन्नपानप्रदानेन कामभोगैस्तु तृप्यते॥४४॥

पुष्पोपगन्धं च फलोपगन्धं यः पादपं स्पर्शयते द्विजाय।
सः स्त्रीसमृद्धं हि सुरत्नपूर्णं गृहं हि सर्वोपचितं लभेत।
वस्त्रान्नपानीयरसप्रदानात् प्राप्नोति तानेव नरः प्रकामम्॥४५॥
स्त्रग्धूपगन्धान्यनुलेपनानि पुष्पाणि गृह्याणि मनोरमाणि।
दत्त्वा द्विजेभ्यः स भवेत् सुरूपो रोगांश्च कांश्चिल्लभते न जातु॥४६॥

कालदीक्षा आदि से तृण पर शयन करने वालों को गाय आदि मिलते हैं। हे ब्रह्मन् ! त्रिषवण से स्त्री और वायु भक्षण से इष्टलोक की प्राप्त हुआ करते हैं।।३९।।

हे सुव्रत! क्रतुमाजी स्वर्ग जाया करता है। दस वर्ष तक उपहार व्रत करने वाला वीरयान से विशिष्ट हुआ करता है।।४०।।

रसों का परित्याग करने से सौभाग्य उत्पन्न होता है। और मांस त्याग करने से सन्तान और दीर्घायु की प्राप्ति हुआ करती है।।४१।।

गन्ध और माला परित्याग करने से मूर्त्ति सुन्दर होती है, फिर अन्नदान करने से मनुष्य को स्मृति और मेधा मिला करती है।।४२।।

छत्र का दान करने से श्रेष्ठ गृह, उपानह दान करने से रथ, वस्त्र दान करने से सुन्दर रूप, धन और पुत्रों की प्राप्ति हुआ करती है।।४३।।

जल देने से शाश्वती तृप्ति होती है तथा अन्नपान प्रदान करने से मनुष्य काम भोगों से तृप्त हुआ करता है।।४४।।

इस प्रकार जो जन ब्राह्मण के लिए पुष्प-उपगन्ध, फल-उपगन्ध और वृक्ष का स्पर्श करता है, वे जन स्त्री युक्त, सुरत्न से सम्पन्न और सब प्रकार से परिपूर्ण गृह की प्राप्ति करने में सफल होता है। फिर वस्त्र, अन्न, जल और रस प्रदान करने वाले मनुष्य उन्हीं पदार्थों की कामना के अनुरूप प्राप्त किया करते हैं।।४५।।

फिर ब्राह्मणों को माला, धूप, गन्ध, अनुलेपन, पुष्प और मनोरम गृह दान करने से मनुष्य सुन्दर स्वरूप वाला हुआ करते हैं। फिर उसे कोई रोग भी नहीं होता है।।४६।।

बीजैरशून्यं शयनाभिरामं दद्याद् गृहं यः पुरुषो द्विजाय।
स स्त्रीसमृद्धं गजवाजिपूर्णं लभेदधिष्ठानवरं वरिष्ठम्॥४७॥
धुर्यप्रदानेन तथ गवां च लोकानवाप्नोति नरो वसूनाम्।
गजं तथा गोवृषभप्रदानैः स्वर्गे सुखं शाश्वतमाप्नुवन्ति॥४८॥
दीपप्रदानाद् द्युतिमाप्नुवन्ति घृतेन तेजःसुकुमारतां च।
प्रणुद्युति स्निग्धता चापि तैलैः क्षौद्रेण नानारसतृप्तितां च॥४९॥
पायसेन वपुःपुष्टिं कृसरात् स्निग्धसौम्ताम्। फलैस्तु लभते पुत्रं पुष्पैः सौभाग्यमेव च॥५०॥
रथैर्दिव्यं विमानं तु शिविकां चैव मानवः। प्रेक्षणैरपि सौभाग्यं प्राप्नोति हि न संशयः।
अभयस्य प्रदानेन सर्वकामानवाप्नुयात्॥५१॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे पञ्चाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२०५॥
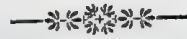
जो जन गोशाला से युक्त और शयनागार आदि से सम्पन्न मनोरम गृह ब्राह्मण को प्रदान करता है, वे जन स्त्री से सम्पन्न, हाथी, घोड़े से पूर्ण श्रेष्ठ निवास योग्य स्थान प्राप्त कर लिया करता है।।४७।।

फिर श्रेष्ठ गो का दान करने पर मनुष्य वसुओं का लोक पाने वाला हो जाता है। हाथी, घोड़ा, बैल आदि का दान करने से मनुष्य स्वर्ग में शाश्वत सुख प्राप्त करता है।।४८।।

दीप का दान करने वाला सौन्दर्य प्राप्त करने वाला होता है। घृत के दान से तेज और सुकुमारता, तेल के दान से प्रकृष्ट द्युति और स्निग्धता तथा शहद के दान से अनेक प्रकार के रसों से होने वाली तृप्ति मिला करती है।।४९।।

पायस के दान से शरीर की पुष्टि, खिचड़ी के दान से स्निग्धता और सौम्यता, फलों के दान से पुत्र तथा पुष्पों के दान से सौभाग्य मिला करते हैं।।५०।।

मनुष्य को रथों के दान से दिव्य विमान और शिविका तथा प्रेक्षणों अर्थात् देखने योग्य पदार्थों के दान से निःसंशय सौभाग्य प्राप्त करते हैं। मनुष्य अभय प्रदान करने से सब प्रकार की अभिलषित वस्तुऐं भी प्राप्त कर लिया करते हैं।।५१।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में नारद और यमराज सम्वाद में विविध व्रत, दान आदि का फल नामक दो सौ पाँचवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥२०५॥

❖❖❖

षडधिकद्विशततमोऽध्यायः

अथ पतिव्रतामाहात्म्यम्

ऋषिपुत्र उवाच

मुहूर्त्तस्य तु कालस्य दिव्याभरणभूषितान्। प्रयातान् दिवि संप्रेक्ष्य विमानैः सूर्यसन्निभैः॥१॥
ब्राह्मणास्तपसा सिद्धाः सपत्नीकाः सबान्धवाः। सानुरागा ह्युभयतो मन्युनाभिपरिप्लुताः॥२॥
विवर्णवदनो राजा प्रभातेजोविवर्जितः। अचरिादेव संजातः क्रोधेन भृशदुःखितः॥३॥
तं तथा निःप्रभं दृष्ट्वा धर्मराजं तपोधनः। नारदश्चाब्रवीत् तत्र ज्ञात्वा तस्य मनोगतम्॥४॥

अपि त्वं भ्राजमानस्तु पशोः पतिरिवापरः।
कस्मात् ते शोभनं वक्त्रं क्षणाद् वैवर्ण्यतां गतम्॥५॥
विनिःश्वसन् यथा नागः कस्मात् त्वं परिरतप्यसे।
राजन् कस्मा् विभेषि त्वमेतदिच्छामि वेदितुम्॥६॥

यम उवाच

विवर्णं जायते वक्त्रं शुष्यते न च संशयः। यन्मया ईदृशं दृष्टं श्रूयतां तन्महामुने॥७॥

अध्याय-२०६

पतिव्रता माहात्म्य

ऋषिपुत्र ने कहा कि काल के मुहूर्त्त के सूर्य के समान विमानों द्वारा दिव्याभरणों से विभूषित जनों को आकाश में जाते हुए देखा गया था।।१।।

वे जन दोनों तरफ तप से सिद्ध, अनुरागयुक्त, तेज सम्पन्न, कई ब्रह्मण, पत्नी और बान्धवों के सहित जा रहे थे।।२।।

फिर उनको देखकर यमराज के मुख का वर्णन विकृत होने लग गया। तदनन्तर वे ओज और तेज से हीन हो गये। फिर वे तत्काल ही अतिदुःखी और रोषयुक्त हो गये।।३।।

तपोधन नारद ने उनको इस प्रकार से उस समय प्रभाहीन हुआ-सा देखकर फिर उनके मन के आशय निहितार्थ को समझते हुए जिज्ञासा की।।४।।

वैसे आप इस समय द्वितीय पशुपति की तरह शोभायमान हो लग गये हैं। आपका मुख पलमात्र में क्यों विकृत हो गया?।।५।।

फिर आप नाग के समान तेज श्वसन लेते हुए दुःखी भी हो रहे हैं? हे राजन् आप क्यों कर भयभीत हो गए हैं। मैं इस रहस्य को समझना चाह रहा हूँ।।६।।

यम ने कहा कि निःसंशय इस समय मेरा मुख मण्डल सूख-सा रहा है और विकृत-सा भी हो गया है। हे महामुने! मैंने इस समय जैसा कुछ देखा है, उसे सुनिये।।७।।

यायावरास्तु ये विप्रा उञ्छवृत्तिपरायणाः। दृढस्वाध्यायतपसो ह्रीमन्तो ह्यनसूयकाः॥८॥
अतिथिप्रियकाश्चैव नित्ययुक्ता जितेन्द्रियाः। ते त्वहंमानिनः सर्वे गछन्त्युपरि मे द्विज॥९॥
न च मामुपतिष्ठन्ति न नचैव वशगा मम। मस्तके मम गच्छति सपत्नीकाः सहानुगाः॥१०॥
दिव्यगन्धैर्विलिप्ता/ा माल्यभूषितवाससः। सृजन्तो मम माल्यानि तेन तप्ये द्विजोत्तम॥११॥

मृत्यो तिष्ठसि कस्यार्थे को वा मृत्युः कथं भवेत्।
किं त्वं न भाषसे मृत्यो ब्रूहि लोके निरर्थकः॥१२॥

त्वमशक्तान् सदा हंसि पापिष्ठान् धर्मवर्जितान्। एषां तपसि सिद्धानां नाहं विग्रहवानिह॥१३॥
निहानुग्रहौ नापि मया शक्यौ महात्मनाम्। कर्त्तुं वा प्रतिषेद्धुं वा तस्मात् तप्ये अहं परम्॥१४॥
एस्मिन्नन्तरे तत्र विमानेन महाद्युतिः। पतिव्रता समं भर्त्रा सानुगा सपरिच्छदा॥१५॥
महता तूर्यघोषेण संप्राप्ता प्रियदर्शना। धर्मराजहितं सर्वं धर्मज्ञा धर्मवत्सला॥१६॥
साऽब्रवीत् तु विमानस्था साधयन्ती शुभाङ्गना। विचित्रं प्रसृतं वाक्यं सर्वसत्त्वसुखावहम्॥१७॥

पतिव्रतोवाच

धर्मराज महाबाहो कृतज्ञः सत्यसम्मतः। मैवमीर्ष्यां कुरुष्व त्व ब्राह्मणेषु तपस्विषु॥१८॥

देखिए, उच्छवृत्ति से जीवन निर्वाह करने वाले, घुमक्कड़, दृढ़ स्वाध्याय तथा तप करने वाले असूयामुक्त, संकोच सम्पन्न हे द्विज! अतिथि सेवक, निरन्तरता वाले, जितेन्द्रिय और अहंकारयुक्त ये सब ब्राह्मण मेरे ऊपर से यात्रा कर रहे हैं।।८-९।।

वे सब न तो मेरा सम्मान करते हैं और न मेरे वश में हैं, वे सब अपनी पत्नियों और अनुगामियों के सहित मेरे शिर पर से उड़ते चले जा रहे हैं।।१०।।

उनके देह दिव्य गन्धों से विलेपित, माला पहने हुए और वस्त्रों से सम्पन्न हैं। हे श्रेष्ठ द्विज! वे मेरे ही द्रोनों ओर से इस प्रकार जा रहे हैं और मेरे ऊपर मालायें गिरा रहे हैं, इसी से मैं दुःखी हूँ।।११।।

हे मृत्यु! किसलिए बैठे हो? मृत्यु क्या है और कैसे हुआ करती है? हे मृत्यु! तुम क्यों नहीं बोलते? बता दो, क्या संसार में तुम निरर्थक हो?।।१२।।

तुम सर्वदा धर्मरहित अति पापीजनों को ही मारा करते हो। मैं शरीरधारी यहाँ इस तपः सिद्ध महात्माओं का निग्रह और अनुग्रह करने में समर्थ नहीं हूँ। मैं इसी से अत्यन्त दुःखी हो रहा हूँ।।१३-१४।।

इसी क्रम में विमान से अत्यन्त तेजस्विनी पतिव्रता स्त्री आपने पति ओर अनुयायियों के सहित वहीं पर आ पहुँची।।१५।।

फिर महान् तूर्यघोष के सहित धर्मज्ञा धर्मप्रिया वह प्रियदर्शना पतिव्रता स्त्री वहाँ पर आ गई तथा धर्मराज के निमित्त बहुत सारी बातें कहने लगी।।१६।।

उस विमान पर स्थित हुई साधना में लगी हुई उस शुभाङ्गना ने समस्त जीवों को सुख प्रदान करने वाली विचित्र बातें कहने लगी।।१७।।

उस पतिव्रता ने कहा कि हे कृतज्ञ सत्यसम्मत महाबहु धर्मराज! आप किसी तपस्वी ब्राह्मणों से इस प्रकार की ईर्ष्या मत करो।।१८।।

एतेषां तपसां वीर माहात्म्यं बलमेव च। अचिन्त्याः सर्वभूतानां ब्राह्मणाः वेदपारगाः॥१९॥
ब्राह्मणाः सततं पूज्या ब्राह्मणाः सर्वदेवताः। मात्सर्यं क्रोधसंयुक्तं न कर्त्तव्यं द्विजातिषु॥२०॥
त्वया शुभाशुभं कर्म नित्यं पूजा मनस्विनाम्।
रागो वा रोषमोहौ वा न कर्त्तव्यौ सदा सताम्॥२१॥
प्रयातां गगने दृष्ट्वा प्राच्यां सौदामिनी यथा। दृष्ट्वा पतिव्रतां नारीं धर्मराजेन पूजिताम्।
अब्रवीन्नारदस्तत्र धर्मरागं तथागतम्॥२२॥

नारद उवाच

एषा च का महाभागा सुरूपा प्रमदोत्तमा। या त्वया पूजिता राजन् हितमुक्त्वा गता पुनः॥२३॥
एतदिच्छाम्यहं ज्ञातुं परं कौतूहलं हि मे। एतन्मे सुमहाभाग कथयस्व समासतः॥२४॥

यम उवाच

अहं ते कथयिष्यामि कथां परमशोभनाम्। एषा मया यथा तात पूजिता पूज्यसत्तमा॥२५॥
पुरा कृतयुगे तात निमिर्नाम महायशाः। आसीद् राजा महातेजाः सत्यसंधेति विश्रुतः॥२६॥
तस्य पुत्रो मिथिर्नाम जननाज्जनकोऽभवत्। तस्य रूपवती नाम पत्नी प्रियहिते रता॥२७॥
सा चापि शुभसर्वाङ्गी पतिभक्ता पतिव्रता। प्रीत्या परमया युक्ता भर्त्तुर्वचनकारिणी॥२८॥

हे वीर! वे वेदपारगामी ब्राह्मण हैं। इनकी तपस्या का माहात्म्य और बल समस्त जीवों हेतु अचिन्त्य ही है।।१९।।

वैसे भी ब्राह्मण सतत् पूज्य हैं। ब्राह्मण समस्त देवता के स्वरूप हैं। ब्राह्मणों से क्रोधयक्त मात्सर्य नहीं करनी चाहिए।।२०।।

आपको तो मनस्वियों के शुभ और अशुभ कर्म का नित्य सम्मान करना उचित है। सज्जनों को नित्य राग, द्वेष, रोष और मोह से मुक्त रहना श्रेष्ठ है।।२१।।

इस आकाश मण्डल में विद्युत् के समान पूर्व की ओर जाती हुई धर्मराज से सुपूजिता पतिव्रता नारी के बारे में नारद ने वहाँ उपस्थित धर्मराज से पूछा।।२२।।

नारद ने कहा कि हे राजन! यह महाभाग सुन्दर श्रेष्ठ स्त्री कौन है? जो तुम्हारे द्वारा सुपूजित होकर हित की बातें कहकर पुनः चली गई।।२३।।

मैं इसे जानना चाहता हूँ, मुझे फिर से परम कुतूहल हो रहा है। हे महाभाग! मुझे सारांश रूप में यह अवश्य कहें।।२४।।

यम ने कहा कि मैं आपको यह परम सुन्दर कथा कहने जा रहा हूँ। हे तात! मैंने अपने पूजनीयों में श्रेष्ठ इसकी पूजा की है। क्योंकि पहले कृतयुग में निमि नाम का महायशस्वी महातेजस्वी सत्यसन्ध प्रसिद्ध राजा थे।।२५-२६।।

उनका मिथि यम का एक पुत्र था। वह 'जनन कर्म के कारण' जनक नाम से सुख्यात था। उनकी रूपवती नाम की पत्नी प्रिय और हित करने में लगी रहती थी।।२७।।

समस्त शुभ लक्षणों से सम्पन्न सम्पूर्ण अंगों वाली वह पतिव्रता और पतिभक्त स्त्री अत्यन्त प्रेम से अपने पति की बातों को माना करती थी।।२८।।

सोऽपि राजा महाभागः सर्वभूतहिते रतः। धर्मात्मा च महात्मा च सत्यसंधो महातपाः॥२९॥
य इमां पृथिवीं सर्वां धर्मेण परिपालयत्। न व्याधिर्न जरा मृत्युस्मस्मिन् राजनि शासति।
ववर्ष सततं देवस्तस्य राष्ट्रे महाद्युतेः॥३०॥
एवं बहुगुणोपेतं तस्य राज्यं महात्मनः। न कश्चिद् दृश्यते मर्त्यो रुजार्तो दुःखितोऽथ वा॥३१॥
अथात्र बहुकालस्य राजानं मिथिलाधिपम्। उवाच राज्ञी विप्रेन्द्र विनयात् प्रसृतं वचः॥३२॥

राज्युवाच

भृत्यानां च द्विजातीनां तथा परिजनस्य च।
यदि स्त्रीद्रविणं किञ्चित् पृथिव्यां यद् गृहे च ते॥३३॥
विनियुक्तं तु तत्सर्वं सान्निध्यं तु तथा त्वया। न च राजन् विजानन् तु भोजनस्य प्रशंससि॥३४॥
नास्ति तन्नियमः कश्चित् पुष्पमूलं च नास्ति नः।
न वा गवादयः केचिन्न च वस्त्राणि कर्हिचित्॥३५॥
न चैव वार्षिकः कश्चिद् विद्यते भोजनस्य च। दृश्यते हि महाराज मम चैवाथ सुव्रत॥३६॥
यत् कर्त्तव्यं मया वाऽपि तन्मे ब्रूहि नराधिप। कर्त्र्यस्म्यहं विशेषेण यद् वाक्यमपि मन्यसे॥३७॥

फिर धर्मात्मा, महात्मा, सत्यसन्ध, महातपस्वी, महाभाग्यवान् वह राजा भी समस्त जीवों के कल्याण साधन में संलग्न रहता था।।२९।।

वह राजा धर्म के अधीन होकर सम्पूर्ण पृथ्वी का पालन किया करता था। उसी राजा के शासन काल में व्याधि, वार्धक्य और मृत्यु कुछ भी नहीं था। उस महातेजस्वी राजा के राष्ट्र में मेघ भी सदा वृष्टि किया करते थे।।३०।।

उस महात्मा राजा का राज्य इस तरह कई गुणों से सम्पन्न था। कोई भी मनुष्य रोगी अथवा दुःखी नहीं दीख पड़ा करता था।।३१।।

हे विप्रेन्द्र! बहुत काल बाद रानी ने मिथिलाधिप राजा से विनय सहित एक स्पष्ट वचन इस प्रकार कहा था।।३२।।

रानी ने कहा कि पृथ्वी पर आपके गृह में जो कुछ आपका और आपकी स्त्री का धन है, उसे अपने भृत्यों, ब्राह्मणों और परिजनों के निमित्त संलग्न कर रखा है।।३३।।

इस भूमि पर भृत्यों, द्विजातियों, परिजनों और आपके गृह में जो स्त्री एवं धन आदि हैं। आपने उन सेवकादि के निमित्त अपने उस सम्पूर्ण धन को इस प्रकार लगा दिया है कि भोजन हेतु भी कुछ भी नहीं रह गया है। ये सब जानते हुए भी आप प्रशंसा करते हैं।।३४।।

अब गृहस्थाश्रम के धर्म का कोई वैसा नियम नहीं रह गया है। हमारे पास पुष्प और मूल भी नहीं है। गाय आदि कोई पशु या वस्त्र भी नहीं है।।३५।।

हे सुन्दर व्रत धारण करने वाले महाराज! मुझे वर्षों तक भोजन के लिए भी कुछ नहीं दीख पड़ता है।।३६।।

हे नराधिप! मेरा जो कुछ भी कर्तव्य हो, वह मुझे बतलायें। मैं उसे करूँगी। विशेष रूप से मेरे कहने पर भी विचार करें।।३७।।

राजोवाच

न शक्यमुपरोधेन वक्तुं भामिनि विप्रियम्। न च पश्याम्यहं देवि तव चैव जनस्य च।
तद् ब्रवीमि यथाशक्त्या यदि मे मन्यसे प्रिये॥३८॥
हविष्ये वर्त्तमानानामिदं वर्षशतं गतम्। कुद्दालेन हि काष्ठेन क्षेत्रं वै कुर्महे प्रिये॥३९॥
ततो धर्मविधिं कृत्वा प्राप्नुयाम न संशयः। भक्ष्यं भोज्यं च पेयं च ततस्त्वं सुखमाप्स्यसि।
एवमुक्ता ततो राज्ञीराजानमिदमब्रवीत्॥४०॥

देव्युवाच

भृत्यानां तु सहस्राणि तव राजन् निवेशने। अश्वानां च गजानां च सौरभानां तथैव च॥४१॥
उष्ट्राणां महिषाणां च खराणां च महायशः। एते सर्वे कथं राजन् न कुर्वन्ति तवेप्सितम्॥४२॥

राजोवाच

नियुक्तानि हि कर्माणि वार्षिकाणीतराणि च। सर्वकर्माणि कुर्वन्ति ते भृत्या मे वरानने॥४३॥
बलीवर्दाः खरा अश्वा गजा उष्ट्रा ह्यनेकशः। सर्वे नियुक्ता मे देवि सर्वकर्मसु शोभने॥४४॥
आयसंत्रपुषं ताम्रं राजतं काञ्चनं तथा। नियुक्तानि तु सर्वाणि सर्वकर्मस्वनिन्दिते॥४५॥
न तु पश्याम्यहं देवि किञ्चिद्धैमं न चायसम्। येन कुर्यामहं देवि कुद्दालं सुसमाहितः॥४६॥

राजा ने कहा कि हे देवि! हे भामिनि! किसी आग्रह के अधीन होकर इस तरह की अप्रिय बातें नहीं ही करनी चाहिए कि मैं तुम्हारा और अपने कुटुम्बियों का ध्यान नहीं देना चाहता हूँ। हे प्रिये! यदि तुम मेरी बात मानी तो मैं यथाशक्ति उपाय बतला रहा हूँ।।३८।।

वैसे हविष्य पर रहते हुए हम सब का इस तरह सौ वर्ष बीत चुका है। हे प्रिये! अब हम सब कुदाल और काष्ठ के द्वारा खेती किया करेंगे।।३९।।

फिर हम निस्संशय धार्मिक रीति सम्पन्न कर भोजन और पेय द्रव्य प्राप्त कर सकेंगे। इससे तुम्हें सुख प्राप्त हो सकेगा। राजा के इस प्रकार कहे जाने पर रानी ने राजा से यह वचन कहा।।४०।।

देवी ने कहा कि हे राजन् ! आपके घर में हजारों नौकर हैं। इसी तरह घोड़े, हाथी और गायें भी हजारों की संख्या में हैं।।४१।।

हे महायशस्वी राजन् ! ऊँटों, भैंसों, गदहों आदि की भी हजारों की संख्या है। वे सब आपका सोचा कार्य क्यों नहीं करते?।।४२।।

राजा ने कहा कि वैसे तो सालों भर किये जाने वाले और दूसरे अनेक कार्य पूर्व से ही सुनिश्चित है।हे सुभ्रवि! मेरे जो सेवक हैं, वे इन सब कार्यों को करने में संलग्न हैं।।४३।।

हेसुन्दरि! हे देवि!! मेरे समस्त बैल, गदहे, घोड़े, हाथी और ऊँट अनेक प्रकार के सभी कार्यों में लगे हुए हैं।।४४।।

हे अनिन्दित! सब लोहा, रांगा, ताँबा, चाँदी, सोना आदि सब प्रकार के कार्यों में संलग्न हैं।।४५।।

हे देवि! मैं कुछ भी सोना या लोहा, इस प्रकार का नहीं देख रहा हूँ, जिससे मैं निश्चिन्त होकर कुदाल बनवा सकूँ।।४६।।

एवमुक्त्वा महादेवी तेन राज्ञा सुशोभना। हृष्टपुष्टमना देवी राजानमिदमब्रवीत्॥४७॥
गच्छ राजन् यथाकाममनुयास्यामि पृष्ठतः। एवमुक्तः सुनिष्क्रान्तः सभार्यः स नरेश्वरः॥४८॥
ततो राजा च देवी च क्षेत्रं मृगयतस्तदा। गतौ च परमाध्वानं ततो राजाऽब्रवीदिदम्॥४९॥
इदं भद्रं मम क्षेत्रमास्थातु वरवर्णिनी। यावद् मुग्लानिमान् भद्रे कण्टकांश्च वरानने॥५०॥
अहं छिनद्मि वै देवि त्वमेतान् बोधय प्रिये। एवं ते कर्मयोगस्तु ततः प्रप्स्यामि चेप्सितम्॥५१॥
एवं एवमुक्त्वा महादेवी तेन राजा तपोधन। उवाच मधुरं वाक्यं प्रहसन्ती वराङ्गना॥५२॥
वृक्षोऽत्र दृश्यते पार्श्वे सौवर्णो गुल्म एव च। पानीयस्य तु सान्निध्यं न किञ्चिदिह दृश्यते।
कथं क्षेत्रं करिष्यावो हृद्रोगे तस्य कारकः॥५३॥
इयं नदी ह्यं वृक्ष इयं भूमिः समांसला। अस्मिन् वाऽपि कृतं कर्म कथं गुणकरं भवेत्॥५४॥
तस्यास्तद् वचनं श्रुत्वा राजा वचनमब्रवीत्। शुभं सानुनयं वाक्यं भूतानां गुणवत्सलः॥५५॥
पूर्वग्राहो भवेत् पूर्वं विनियुक्तं तथा प्रिये। पानीयस्य तु पार्श्वेन सन्निकृष्टेन सुन्दरि।
चतुर्थजनपर्यन्तं न किञ्चिदिह दृश्यते॥५६॥
अयं ग्राहो महादेवी न च बाधाऽत्र कस्यचित्। ततस्तच्छोधयामास स क्षेत्रं भार्यया सह॥५७॥

फिर उस राजा के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर सुन्दरी देवी हृष्ट-पुष्ट मन वाली महारानी ने राजा से यह वचन कहा—।।४७।।

हे राजन! आप स्वेच्छा से चलें, मैं आपका अनुसरण करूँगी। उसके इस प्रकार कहे जाने पर वह राजा पत्नी सहित बाहर की ओर निकला।।४८।।

फिर राजा और रानी खेत खोजते हुए श्रेष्ठ मार्ग पर चले गये। फिर उस समय राजा ने इस प्रकार से कहा—।।४९।।

हे सुन्दरि! देखो, यह मेरा अच्छा सा खेत है। यहाँ पर बैठ जाओ। हे सुमुखि! कल्याणि! जिस समय तक इन झाड़ियों और काँटों में मैं काट रहा हूँ। हे प्रिये! तुम इन्हें जला दो। इस प्रकार तुम्हारा कर्म योग होगा तथा इससे हमको अभिलषित पदार्थ की प्राप्ति हो सकेगी।।५०-५१।।

हे तपोधन!उस राजा के इस प्रकार से कहे जानें पर सुमुखि महारानी ने हँसते हुए मधुर वाणी में कहा।।५२।।

यहाँ पास में वृक्ष और सुनहली झाड़ी दीख पड़ रही है, किन्तु जल के पास यहाँ कुछ भी नहीं दीख रहा है। यहाँ हम दोनों खेती कैसे करेंगे। इस प्रकार कार्य करना हृदय रोग का कारण बन सकता है।।५३।।

यह नदी है। यह वृक्ष है और यह दृढ़ उर्वरा भूमि है। यहाँ पर किया हुआ कार्य किस प्रकार गुणकारी होगा?।।५४।।

उस रानी के इन वचनों को सुनकर प्राणियों के गुण के प्रेमी राजा ने नम्रतापूर्वक शुभवाणी में कहा—हे प्रिये! प्रथम मिलने वाली वस्तु पहले प्रयुक्त हुआकरती है। हे सुन्दरी यह क्षेत्र जल के समीप स्थित है। चार योजन की दूरि तक दूसरा कोई क्षेत्र यहाँ नहीं दीख पड़ रहा है।।५५-५६।।

हे महादेवि! इसे अवश्य ग्रहण करना है। इसमें किसी को बाधा नहीं है। फिर उसने भार्या सहित खेत का शोधन किया।।५७।।

वितानमध्ये उग्रश्च सविता तपते सदा। समृद्धश्च महा तत्र निदाघः काल आगतः।
प्रवृद्धो दारुणो धर्मः कालश्चैवातिदारुणः॥५८॥
ततः सा तृषिता देवी क्षुधिता च तपस्विनी। स्निग्धौ ताम्रतलौ पादौ तस्यास्तपति सुव्रत॥५९॥
गुणप्रवाहरक्तेषु तस्याः पादेषु सुव्रत। सूर्यस्य पादा मध्याह्ने तपन्तो वह्निसंनिभाः॥६०॥
ततः सा व्यथिता देवी भर्त्तारमिदमब्रवीत्। तृषिताऽस्मि महाराज उष्णेन पीडिता भृशम्॥६१॥
पानीयं दीयतां राजन् शीघ्रं मम प्रसादतः। इत्युक्त्वा पतिता देवी विह्वला दुःखपीडिता॥६२॥
पतन्त्या च तया सूर्यो विह्वलाया निरीक्षितः। यदृच्छया तु कोपेन पतन्त्या ईषितस्तया॥६३॥
ततो विवस्वान् भगवान् संत्रस्तो गगने तदा। दिवं मुक्त्वा महातेजाः पतितो धरणीतले॥६४॥
ततो दृष्ट्व तु तं राजा स्वेन भावेन वर्जितम्। किमर्थमिह तेजस्वी त्यक्त्वा मण्डलमागतः॥६५॥
किं करोमि महातेजः सर्वलोकनमस्कृत। एवं ब्रुवन्तं राजानं सूर्यः सानुनयोऽब्रवीत्॥६६॥
पतिव्रता शुभाक्षी च ममैषा रुषिता शुभा। ततोऽहं पतितो राजंस्तव कार्यानुशासनः॥६७॥
अनया सदृशी नारी त्रैलोक्ये नैव विद्यते। पृथिव्यामन्तरिक्षे च न काचिदिह दृश्यते॥६८॥

फिर उग्र सूर्य सदैव आकाश मण्डल के मध्य तप रहा था। उस समय वहाँ पूर्ण महान् ग्रीष्मकाल उपस्थित हो गया, उनका यह कर्म कठोर परिश्रम तथा समय भी अत्यन्त दारुण था।।५८।।

फिर वह तपस्विनी देवी भूखी और प्यासी हो गयी। हे सुव्रत! ताम्र के समान उसके दोनों पैर के चिकने तलवे जलने लगे।।५९।।

हे सुव्रत! उसके पैरों में रक्त का अत्यधिक प्रवाह होने लगा। सूर्य की किरणें दोपहर में अग्नि के समान तप रही थी।।६०।।

फिर उस पीड़ित देवी ने पति से यह कहा कि हे महाराज! मैं प्यासी और गर्मी से अत्यन्त पीड़ित हूँ।।६१।।

हे राजन् ! कृपया मुझे शीघ्र जल प्रदान कीजिए। इस प्रकार कहने के बाद दुःख से पीड़ित व्याकुल देवी गिर पड़ी।।६२।।

उस व्याकुल देवी ने गिरते समय सूर्य की ओर देखा, उसने गिरते समय अचानक रोषपूर्वक सूर्य को देखा।।६३।।

फिर आकाश मण्डल में सन्त्रस्त महातेजस्वी भगवान् सूर्य उस आकाश मण्डल को छोड़कर धरती पर आ गिरे।।६४।।

फिर अपने स्वभाव से मुक्त उन सूर्य को देखकर राजा ने विचार किया कि तेजस्वी सूर्य आकाश मण्डल को छोड़कर पृथ्वी पर क्यों आ पहुँचे हैं?।।६५।।

पुनः राजा ने कहा कि हे महातेजस्वी! और समस्त चराचर से नमस्कृत हे सूर्य! मैं आपके हेतु इस समय क्या कर सकता हूँ।।६६।।

सुन्दर नेत्रों वाली यह कल्याणी पतिव्रता मुझ पर क्रुद्ध हो गयी है। हे राजन् इसी से मैं आपका कार्य करने हेतु आ गिरा हूँ।।६७।।

इसके समान स्त्री इस समय त्रैलोक्य में नहीं है। भूमि या अन्तरिक्ष में इसके समान कोई भी नहीं मुझे दीख रहा है।।६८।।

अहोऽस्याः परमं सत्त्वमहोऽस्याः परमं तपः। अहो धैर्यं च शक्तिश्च त्वया ते शंसिता गुणाः॥६९॥
इयं च ते महाभाग तव चित्तानुवर्त्तिनी। अनुरूपा विशुद्धा च तपसा च वराङ्गना॥७०॥
प्रतिव्रता च साध्वी च नितयं तव हिते रता। सदृशी ते महाभाग शक्रस्येह यथा शची॥७१॥
पात्रं पात्रवता प्राप्तं सुकृतस्य महत्फलम्। अनुरूपोऽनुरूपाया अहो यातः सुयन्त्रितः॥७२॥
मा च ते वितथः कामो भवेच्चैव नराधिप। कुरुष्व दयितं क्षेत्रं यथा मनसि वर्त्तते॥७३॥
भोजनार्थं महाराज त्वदन्यो नेह विद्यते। फलदं च सुसस्यं च भविष्यति हि कामदम्॥७४॥
एवमुक्त्वा ततः सूर्यः ससर्ज जलभाजनम्। उपानहौ च छत्रं च दिव्यालङ्कारभूषितम्।
ददौ च राज्ञे सविता प्रीत्या परमया युतः॥७५॥
उभयोस्तु सुखस्यार्थं सपुण्यस्य विशेषतः। दत्त्वा तत् पुण्यकर्माणं ततःप्राह दिवाकरः।
एवमुक्त्वा तु भगवांस्तत्तथा कृतवान् क्वचित्॥७६॥
राज्ञा च जनकेनैव प्रियाया हितकाम्यया। ततः सा श्रीमती देवी तोयेनाप्यायिता शुभा॥७७॥
लब्धसंज्ञा गतभया राजानमिदमब्रवीत्। देवी दृष्ट्वा तदाश्चर्यं विस्मयोत्फुल्ललोचना॥७८॥

अहा! इसका कैसा श्रेष्ठ सत्त्व है एवं कैसा श्रेष्ठ तप है? अहा! इसका धैर्य एवं इसकी शक्ति कैसी है। अपने उन गुणों की प्रशंसा की है।।६९।।

हे महाभाग! तपस्या से विशुद्ध आपके अनुरूप यह सुन्दरि आपके चित्त का अनुगमन करने वाली है।।७०।।

यह साध्वी पतिव्रता नित्य आपका हित करने वाली है। हे महाभाग! यह उसी तरह आपके समान है जैसे इन्द्र के योग्य इन्द्राणी है।।७१।।

चूँकि पुण्य का यह महान् फल होता है कि पात्र को पात्र की प्राप्ति होती है। अहा! अत्यन्त संयमी आपके समान योग्य व्यक्ति को अनुरुप पत्नी प्राप्त हुयी है।।७२।।

हे नराधिप! आपकी कामना व्यर्थ न हो, आपके मन में जैसा हो, उसी प्रकार की प्रिय खेती आप करें।।७३।।

हे राजन् ! आपके अलावे दूसरा कोई भोजन वाला नहीं है। जो इच्छा पूर्त्ति करने वाला फलदायक अन्न उत्पन्न कर सकेगा।।७४।।

फिर इस प्रकार कहते हुए सूर्य ने जलपात्र, उपानह और दिव्यालङ्ककरण से अलंकृत छत्र की सर्जना कर परम प्रेमपूर्वक राजा को प्रदान किया।।७५।।

फिर उन दोनों पुण्यवानों के विशेष सुख के लिए उन-उन पदार्थों को प्रदान कर भगवान् सूर्य ने पुण्यकर्मी राजा से इस प्रकार कहा कि पूर्वकाल में सूर्य ने शायद ही वैसा किया हो।।७६।।

फिर राजा जनक ने अपनी प्रिय पत्नी के हित की कामना से वैसा ही किय। फिर वह कल्याणी श्रीमती रानी जल से तृप्त सी हो चली।।७७।।

फिर चेतना के वापस आ जाने पर निर्भय रानी ने राजा से यह कहा। वह आश्चर्य देखकर रानी के नेत्र चकित से फैल गये।।७८।।

केन दत्तं शुभं तोयं दिव्यं छत्रमुपानहौ। एतन्मे संशयं राजन् कथयस्व तपोधन॥७९॥

राजोवाच

एष देवो महादेवि विवस्वान् नाम नामतः। तवानुकम्पया देवि मुक्त्वाकाशमिहागतः॥८०॥
एवमुक्ता तु सा देवी भर्त्तारमिदब्रवीत्। करवाणस्य कां प्रीतिं ज्ञायतामस्य चेष्टितम्॥८१॥
ततो राजा महातेजाःप्रणिपत्य कृताञ्जलिः। विज्ञापयामास तदा भगवन् किं करोमि ते॥८२॥
एवमुक्तो नरेन्द्रेण सूया वचनमब्रवीत्। अभयं मे महाराज स्त्रीभ्यो भवतु मानद॥८३॥
तच्छुत्वा वचनं तस्य भास्करस्य नराधिपः। तां प्रियां प्रीतहृदयां श्रावयन् तस्य भाषितम्॥८४॥
राज्ञस्तु वचनं श्रुत्वा देवी वचनमब्रवीत्। प्रीत्या परमया युक्ता तस्य राज्ञो मनःप्रिया॥८५॥
रश्मीनां वारणार्थाय छत्रं दत्त्वा तु कुण्डिकाम्। इमौ चोपनहौ दत्त्वा पादस्पर्शकरावुभौ॥८६॥
अभयं ते महाभाग गच्छ गच्छ यथागतम्। संप्राप्नुयाश्च नारीभ्यो देव सर्वाभयं सदा॥८७॥
एतत् सर्वं यथावृत्तं कथयामास भास्करः। मम मात्रे महाभाग यथावृत्तं यथाक्रमम्॥८८॥
एवं पतिव्रतां विप्र पूजयामि नमामि च॥८९॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे षडधिकद्विशततमोऽध्यायः
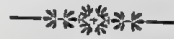
अरे! किसने सुन्दर जल, दिव्य छत्र और उपानह को प्रदान किया है। हे तपोधन राजन! ! मेरे इस संशय के बारे में कुछ कहेंगे।।७९।।

राजा ने कहा कि हे देवि! ये विश्वान् नाम के देव हैं। हे देवि! तुम्हारे पर अनुग्रह हेतु ये आकाश त्याग कर यहाँ पधारे हैं। इस प्रकार कहे जाने पर उस देवी ने पति से यह कहा कि मैं इनका क्या प्रिय करूँ। आप इनकी चेष्टा को जानिए।।८०-८१।।

फिर प्रणिपात करने के बाद राजा ने हाथ जोड़कर कहा कि हे भगवन् ! मैं आपका क्या प्रिय करूँ।।८२।।
राजा के इस प्रकार से कहे जाने पर भगवान सूर्य ने यह वचन कहा कि हे सम्मान प्रदान करने वाले राजन! मुझे स्त्रियों से अभय प्राप्त हो।।८३।।

सूर्य के इस प्रकार के कथन को सुनकर राजा ने प्रसन्न हृदय वाली उस प्रिय पत्नी को उन सूर्य का वचन कह सुनाया।।८४।।

उस राजा का वचन सुनकर राजा के मन को प्रिय रानी ने परम प्रेम के साथ यह वचन कहा—।।८५।।
अच्छा तो किरणों के निवारणार्थ छत्र, कुण्डिका और पैरों को स्पर्श करने वाले इन उपानहों को प्रदान करने पर आपको अभय है। हे महाभाग! जहाँ से आप आये हुए हैं, वहाँ चले जाँय, चले जाय। हेदेव! आप स्त्रियों से सदैव अभय प्राप्त करेंगे।।८६-८७।।

हे महाभाग! सूर्य ने यह सम्पूर्ण वृत्तान्त यथावत् क्रमशः मेरी माता संज्ञा से कहा था।।८८।।
अतः हे विप्र! मैं पतिव्रता का पूजन किया करता हूँ और उसे प्रणाम भी किया करता हूँ।।८९।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में नारद और यमराज सम्वाद में विविध व्रत, दान आदि का फल नामक दो सौ छठवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥२०६॥

❖❖❖

सप्तधिकद्विशततमोऽध्यायः

अथ पतिपरायणाधर्मः

नारद उवाच

कर्मणा केन राजेन्द्र तपसा वा तपोधनाः। उत्तमां च गतिं यान्ति कृष्णवासः प्रशंस मे।
एवमुक्तस्तु धर्मात्मा नारदेनाब्रवीत् तदा॥१॥

यम उवाच

न तस्या नियमो विप्र तपो नैव चसुव्रत। उपवासो न दानं च न दमो वा महामुने।
यादृशी तु भवेद् विप्र शृणु तत् त्वं समासतः॥२॥

प्रसुप्ते या प्रस्वपिति विबुद्धे जागर्ति स्वयम्। भुङ्क्ते भोजिते विप्र सा मृत्युं जयति ध्रुवम्॥३॥

मौने मौना भवेद् या तु स्थिते तिष्ठति या स्वयम्।
सा मृत्युं जयते विप्र नान्यत् पश्यामि किंचन॥४॥

एकदृष्टिरेकमना भर्त्तुर्वचनकारिणी। तस्या विभीमहे सर्वे ये तथान्ये तपोधन॥५॥

देवानामपि सा साध्वी पूज्या परमशोभना।
भर्त्रा चाभिहिता याऽपि न प्रत्याख्यायिनी भवेत्॥६॥

अध्याय–२०७

पतिव्रता स्त्री धर्म निरूपण

नारद ने कहा कि हे राजेन्द्र! हे कृष्ण वस्त्र धारण करने वाले यम! तपस्या रूपी धन वाले स्त्रियाँ किस कर्म या तपस्या से उत्तम गति प्राप्त करते हैं?।।१।।

यम ने कहा कि हे सुव्रत महामुने! हे विप्र! उसका कोई नियम , तप, उपवास, दान या दम नहीं है। उनकी जैसी गति होती है, उसे संक्षेप में बतला रहा हूँ। हे विप्र! सुनो।।२।।

हे विप्र! जो अपने पति के सोने पर सोती है, उसके जागने पर स्वयं जागती है। फिर उसको भोजन करा लेने पर भोजन करती है, वह निश्चय ही मृत्यु को जीत लेती है।।३।।

जो स्त्री पति के मौन रहने पर मौन रहती है और उसके खड़े होने पर ही स्वंय खड़ी रहती है, वह मृत्यु को जीत लेती है। हे विप्र! मैं दूसरा कुछ भी कारण नहीं देखता।।४।।

हे तपोधन! एक दृष्टि और एक चित्त से जो पति के कहे का पालन किया करती है, उससे मैं तथा जो दूसरे देवता हैं, वे सब डरा करते हैं।।५।।

ऐसी परम शोभना साध्वी स्त्री देवों की भी पूज्या हुआ करती हैं, जो पति के कटु कहने पर भी उसके वचन का खण्डन नहीं करती।।६।।

वर्त्तमानाऽपि विपेन्द्र प्रत्याख्याताऽपि वा सदा। न दैवतं संश्रयति पतिनाऽन्यं कदाचन।
भर्त्तुर्मृत्युमुखं ब्रह्मन् न पश्यति वराङ्गना॥७॥
एवं या तु भवेन्नित्यं भर्त्तुः प्रियहिते रता। अनुचेष्टेन भावने भर्त्तारमनुगच्छति।
सा तु मृत्युमुखद्वारं न गच्छेत् ब्रह्मसंभव॥८॥
एष माता पिता बन्धुरेष मे दैवतं परम्। एवं शुश्रूषते या तु सा मां विजयते सदा।
पतिव्रता तु या साध्वी तस्याश्चाहं कृताञ्जलिः॥९॥
भर्त्तारमनुध्यायन्ती भर्त्तारमनुगच्छति। भर्त्तारमनुशोचन्ती मृत्युद्वारं न पश्यति॥१०॥
गीतवादित्रनृत्यानि प्रेक्षणीयान्यनेकशः। न शृणोति पश्येत मृत्युद्वारं न पश्यति॥११॥
स्नायन्ती तिष्ठती वाऽपि कुर्वन्ती वा प्रसाधनम्।
नान्यं या मनसा ध्यायेत् कदाचिदपिसुव्रता॥१२॥
देवता अर्चयन्ती वा भोजयन्त्यथ वा द्विजान्। पतिं न त्यजते चित्तान्मृत्युद्वारं न पश्यति॥१३॥
भानौ चानुदिते या तु उत्थाय च तपोधन। गृहं मार्जयते नित्यं मृत्युद्वारं न पश्यति॥१४॥
चक्षुर्देहश्च भावश्च यस्या नित्यं सुसंवृतम्। शौचाचारसमायुक्ता साऽपि मृत्युं न पश्यति॥१५॥

हे विप्रेन्द्र जो सदा कार्य में लगी रहती या तिरस्कृत होने पर भी पति के अतिरिक्त दूसरे किसी देवता का भी कभी आश्रय ग्रहण नहीं करती। वह श्रेष्ठस्त्री कभी भी पति को मृत्यु के मुख में नहीं देखती।।७।।

हे ब्रह्मपुत्र! इस प्रकार जो चेष्टा और चित्त से नित्य पति का हित करने में संलग्न रहा करती है तथा उसका अनुगमन करती है, वह मृत्यु के मुख रूपी द्वार में प्रवेश नहीं किया करती है।।८।।

यह मेरे माता, पिता और परम देवता हैं। इस प्रकार की भावना से जो पति की सेवा करती है, उसके सम्मुख हम भी हाथ जोड़ा करते हैं।।९।।

इस प्रकार निरन्तर पति का ध्यान करने वाली पति का अनुसरण करने वाली और पति का चिन्तन करने वाली स्त्री मृत्यु का द्वार नहीं देखती।।१०।।

जो स्त्री गाना, बजाना, नाच और दूसरे कई प्रकार के देखने योग्य खेल तमाशों को न तो सुनती और न देखती है, वह स्त्री मृत्यु का द्वार नहीं देखती।।११।।

इस तरह सुन्दर व्रत करने वाली जो भी स्त्री कभी भी स्नान करते, बैठी रहने, या शृङ्गार करते पति के अलावे अन्य का चिन्तन नहीं करती।।१२।।

देवता का पूजन करते, ब्राह्मणों को भोजन कराते हुए भी जो चित्त से पति का ध्यान नहीं छोड़ती, वह मृत्यु का द्वार नहीं देखती।।१३।।

हे तपोधन जो स्त्री सूर्योदय होने के पूर्व नित्य घर को स्वच्छ करती है, वह कभी भी मृत्यु का द्वार नहीं देखती है।।१४।।

जिसके नेत्र, देह और विचार अच्छी तरह नियन्त्रित रहते हैं और जो शौच और आचार से युक्त रहती है। वह मृत्यु का द्वार नहीं देखती है।।१५।।

भर्त्तुर्मुखं प्रपश्यन्ती भर्तृचिन्तानुपालिनी। वर्त्तते च हिते भर्त्तुर्मृत्युद्वारं न पश्यति॥१६॥
एवं कीर्तिमतां लोके दृश्यन्ते दिवि देवताः। मानुषाणां च भार्या वै तत्र देशे तु दृश्यते॥१७॥
कथितैवं पुरा विप्र आदित्येन पतिव्रता। मम मात्रा तु दुर्द्धषा सैव दिव्या कथा श्रुता।
गुह्यमेतद् द्विजश्रेष्ठ पूजयामि पतिव्रताम्॥१८॥

।।इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे सप्ताधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२०७।।

अष्टाधिकद्विशततमोऽध्यायः

अथ प्राणीनाशुभकर्मावश्यकताकथन

नारद उवाच

रहस्यं धर्म्यमाख्यानं त्वयोक्तं तु महायशः। स्त्रीणां माहात्म्यमुद्दिश्य भास्करस्य मतं यथा॥१॥
इदं हि सर्वभूतेषु परं कौतूहलं मम। तदहं श्रोतुमिच्छामि कथयस्व महातपः॥२॥
ये नरा दुःखसंतप्तास्तपस्तीव्रं समाश्रिताः। नानाव्रतशतोपायैः सुखहेतोर्महाप्रभ॥३॥

पति का मुख देखती हुई और पति की इच्छा का अनुपालन करती हुई, जो पति का हित करने में लगी रहती है, वह मृत्यु का द्वार नहीं देखती।।१६।।

स्वर्गीय देवता इस प्रकार कीर्त्तिवानों के लोक में दीख पड़ते हैं और मनुष्यों की पवित्रता स्त्रियाँ भी उस स्थान पर दीख पड़ती हैं।।१७।।

हे व्रिप! पुरातन काल में आदित्य ने पतिव्रता की इस प्रकार की कथा कही थी। मेरी माता ने भी उसी उत्कृष्ट दिव्य कथा को सुनाया। हे द्विज श्रेष्ठ! यह गुप्त रहस्य है। मैं पतिव्रता की पूजा किया करता हूँ।।१८।।

।।इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में पतिव्रता स्त्री धर्म निरूपण नामक दौ सौ सातवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ।।२०७।।

अध्याय-२०८

जीव को स्वोद्धारार्थ शुभकर्म की अपेक्षा, पापनाश के उपाय कथन

नारद ने कहा कि हे महायशस्वी! आपने स्त्रियों के माहात्म्य के प्रसङ्ग में सूर्य भगवान् की अभिमतानुरुप धर्मयुक्त रहस्यात्मक आख्यान मेरे द्वारा कहा गया।।१।।

अब सभी जीवों के विषय में मेरा यह एक परम उत्सुकता है, जिसे मैं आपसे जानना चाहता हूँ। हे महातपस्वी उसे तो आपको कहना चाहए।।२।।

हे महातेजस्वी! दुःख संपीड़ित जन सुख हेतु विविध व्रत और सौओं उपाय से युक्त तीव्र तप किया करते हैं।

मनसा निश्चितात्मानस्त्यक्त्वा सर्वप्रियाप्रियम्। काङ्क्षन्ते बहवः केचित् केन तद्विनिहन्यते॥४॥
श्रुता लोके श्रुतिस्तात श्रेयो धमा हि नित्यशः। सम्यक् तस्याश्रितस्याथ कथं पापे मतिर्भवेत्॥५॥
कस्यैतच्चेष्टितं तात कर्त्ता कारयिताऽपि वा। कः कर्षति जगच्चैको भूतग्रामं चतुर्विधम्॥६॥
कं वा द्वेषं पुरस्कृत्य मतिस्तस्य प्रवर्त्तते। सुखदुःखादिलोकेऽस्मिन् यः करोति सुदारुणम्॥७॥
यद्येवं तु मया गुह्यं दुर्विज्ञेयं सुरैरपि। शक्यं श्रोतुं महाराज तदाख्याहि तपोधन॥८॥
नादेनैवमुक्तस्तु धर्मराजो महायशाः। विनयात् प्रश्रितं वाक्यमिदमाह महामतिः॥९॥

यम उवाच

देवर्षे श्रूयतां पुण्यं यद् ब्रवीमि महामुने। त्वद्भक्त्या मे कथयतः शृणुष्वावहितोऽनघ॥१०॥
न कश्चिद् दृश्यते विप्र कर्त्ता कारयिताऽपि वा। यद् वै परमधर्मात्मन् यस्मिन् कर्मप्रतिष्ठतम्॥११॥
यस्य वै कीर्त्त्यते नाम येन चाज्ञाप्यते जगत्। व्याहरामि वचश्चार्य यः करोमि स्वंयकृतम्॥१२॥
दिव्येऽस्मिन् सदसि ब्रह्मन् ब्रह्मर्षिगणसंवृते। यथाश्रुतं यथादृष्टं कथयिष्याम्यहं विभो॥१३॥
स्वकर्म भुज्यते तात संभूतैर्यत्कृतं स्वयम्। आत्मानं पातयत्यात्मा कश्चित् कर्म च कारयेत्॥१४॥

कई जन मन से सभी प्रिय और अप्रिय का परित्याग कर निश्चयात्मक सुख की कामना किया करते हैं। परन्तु वह सुख किसके द्वारा नष्ट कर दिया जाता है।।३-४।।

हे तात! संसार में एक श्रुति के अनुरूप एक प्रथा चली आ रही है कि धर्म ही नित्य श्रेयस्कर है। उसका अच्छी तरह आश्रय स्वीकारने वाले की बुद्धि पाप में किस प्रकार से लग सकती है।।५।।

हे तात् यह किसी चेष्टा है? इसका कर्त्ता कौन है? चार प्रकार के भूतों से बनी हुई इस संसार को कौन एक पुरुष निरन्तर आकृष्ट करता है?।।७।।

हे तपोधन! महाराज! यदि देवों और असुरों को भी न जानने वाला यह रहस्य मेरे सुनने योग्य हो, तो आप उसे मुझे अवश्य बतलाये।।८।।

नारद के इस प्रकार से कहने पर महायशस्वी परम बुद्धिमान् धर्मराज ने विनय के साथ यह वाक्य कहा—।।९।।

यम ने कहा कि हे निष्पाप देवर्षि महामुने! तुम्हारी भक्ति के कारण मैं जो पवित्र तत्त्व कहने जा रहा हूँ, उसे एकनिष्ठ भाव से सुनिये।।१०।।

हे विप्र! हे परम धर्मात्मा! कोई भी करने या कराने वाला प्रकट रूप से दीखता नहीं जिसमें कि कर्म प्रतिष्ठित होता है।।११।।

हे आर्य! जिसके नाम का कीर्तन हुआ करता है, जिससे जगत् का नियन्त्रण होता है और जो जीवों के स्वयं किये कर्म के अनुरूप काल का सर्जना करता है, उस तत्त्व को मैं बतलाने जा रहा हूँ।।१२।।

हे विभो! हे ब्रह्मन!! ब्रह्मर्षियों से भरी इस दिव्य सभा में मैंने जिस प्रकार सुना और देखा है, वे सब बतला रहा हूँ।।१३।।

हे तात! जीव स्वयं अपने किये कर्म का फल भोगा करता है। आत्मा ही आत्म को पतित किंया करता है और उससे कोई कर्म करवाता है।।१४।।

वायुराभाविता संज्ञा संसारे सा दृढीकृता। तामेव भजते जन्तुः सुकृतं वाऽथ दुष्कृतम्॥१५॥
अभिघाताभिभूतस्तु आत्मनात्मानमुद्धरेत्। आत्मा शत्रुश्च बन्धुश्च न कश्चित् बन्धुरात्मनः॥१६॥
वधबन्धपरिक्लेशं निर्जितं पूर्वकर्मभिः। जगत्यामुपभुङ्क्ते वै जीवो योनिशतैरपि॥१७॥
मिथ्याप्रवृत्तशब्दोऽयं जगद् भ्रमति सर्वशः। यावच्च कुरते कर्म तच्च कर्म स्वयं कृतम्॥१८॥
यथा यथा क्षयं याति अशुभं पुरुषस्य वै। तथा तथा शुभा बुद्धिर्मनुजस्य प्रवर्त्तते॥१९॥
संसारे प्राप्तदोषस्य जायमानस्य देहिनः। पततां च गतो भावः पापकर्मक्षयेन तु॥२०॥
शुभाशुभकरीं बुद्धिं लभते पौर्वदैहिकीम्। दुष्कृतैः कर्मभिर्देही शुभैर्वा स्वयमर्जितैः।
क्लेशक्षयं पापहरं शुभं कर्म करोत्यथ॥२१॥
शुभाशुभं प्राप्य नरः कर्माकर्म तथैव च। निवृत्तं कर्म विमलं स्वर्गलोके महीयते॥२२॥
स्वर्गः शुभफलप्राप्तिर्निरयः पापसंभवः। नैव कश्चित् प्रदाता वै नापि हर्त्ता प्रदश्यते॥२३॥

नारद उवाच

यद्येवं स्वकृतं कर्म समन्वेति शुभाशुभम्। शुभस्येह भवद् वृद्धिरशुभस्य क्षयोऽपि वा॥२४॥

चूँकि प्राणवायु से उद्भावित संज्ञा ही सम्पूर्ण जगत् में दृढ़ हुई है। जीव उसी सुकृत या दुष्कृत को भोगता है।।१५।।

फिर अभिघात से अभिभूत जीव आत्मा से ही आत्मा का उद्धार करता है। आत्मा ही अपना शत्रु और बन्धु होता है। आत्मा का दूसरा कोई बन्धु नहीं है।।१६।।

इस जगत् में जीव अपने पूर्वकर्मों से ही अधिगत बन्ध, बन्धन और दुःखों को सैकड़ों योनियों में भोगता है।।१७।।

इस प्रकार का कथन असत्य है कि किसी बाह्य कारण से सम्पूर्ण संसार भ्रमण किया करता है। वस्तुतः पुरुष जितना भी कर्म करता है, वह उसी का स्वयं किया हुआ कर्म हुआ करता है।।१८।।

फिर मनुष्य का अशुभ जितना ही क्षीण हो जाता है, उसकी शुभ वृद्धि उतनी ही अधिक प्रवृत्त हुआ करती है।।१९।।

कर्म से दोष अधिगत होने पर संसार में जन्म लेने वाले जीव के पापकर्म का क्षय होने के कारण उसके निरन्तर पतनोन्मुख हो रही प्रवृत्ति का अन्त हो जाता है।।२०।।

जीव स्वयं से ही सम्पादित शुभ या अशुभ कर्मों के कारण पूर्व जन्म की अशुभ या अशुभ करने वाली बुद्धि प्राप्त करता है। फिर उसी के अनुसार ही वह दुःखशामक और पापविनाशक शुभ कर्म किया करता है।।२१।।

इस प्रकार शुभाशुभ और कर्माकर्म अधिगत करने के बाद मनुष्य अपना दोषमुक्त कर्म करने के कारण स्वर्ग में आदर प्राप्त करता है।।२२।।

चूँकि शुभ फल की प्राप्ति स्वर्ग में और पापकर्म की प्राप्ति नरक में हुआ करती है। फिर कोई अन्य फल को प्रदान करने वाला या शमन करते नहीं दीखता है।।२३।।

नारद ने कहा कि यदि अपना किया गया कर्म ही इस तरह शुभ और अशुभ से सम्पन्न हुआ करते हैं फिर

मनसा कर्मणा वाऽपि तपसाऽऽचरितेन वा। यथा न रोहते जनतुस्तथा त्वं वक्तुमर्हसि॥२५॥

यम उवाच

इदं पुण्यं पवित्रं च अशुभानां शुभप्रदम्। कीर्त्तयिष्यामि ते सम्यक् पापदोषक्षयं सदा॥२६॥

प्रणम्य शिरसा सम्यक् पापपुण्यकराय च। कर्तृणे जगतो नित्यं विश्वस्य जगतो ह्यहम्॥२७॥

येन सृष्टमिदं सर्व त्रैलोक्यं सचराचरम्। अनादिमध्यनिधनं दुर्विज्ञेयं सुरासुरैः॥२८॥

यः समः सर्वभूतेषु जितात्मा शान्तमानसः। स पापेभ्यो विमुच्येत ज्ञानवान् सर्ववेदवित्॥२९॥

तत्त्वार्थं वेत्ति यः सम्यक् पुरुषं प्रकृतिं तथा। ज्ञात्वावा यो न मुह्येत पदं प्राप्नोति शाश्वतम्॥३०॥

गुणागुणपरिज्ञाता ह्यक्षयस्य क्षयस्य च। ध्यानेनैव ह्यसंमूढः स पापेभ्यः प्रमुच्यते॥३१॥

स्वदेहे परदेहे च सुखदुःखे च नित्यशः। विचारज्ञो भवेद् यस्तु मुच्यते एनसा ध्रुवम्॥३२॥

अहिंस्त्रः सर्वभूतेषु तृष्णाक्रोधविवर्जितः। शुभन्यायपरो यश्च स पापेभ्यः प्रमुच्यते॥३३॥

प्राणायामैश्च निर्दह्य अधःसंचारणानि च। व्यवस्थितमना यस्तु स पापेभ्यः प्रमुच्यते॥३४॥

उसके वश ही इस संसार में शुभ की वृद्धि और अशुभ का क्षय हुआ करता है तो जीव जिस प्रकार मन, कर्म, तप और चत्रि द्वारा जन्म नहीं ले सके, उसे आप बतलाईए।।२४-२५।।

यम ने कहा कि वह पुण्यकारक, पवित्र और अशुभों को भी शुभ करने वाला तत्त्व है। मैं आपको सर्वदा पाप और दोष को विनष्ट करने वाला उस तत्त्व को ठीक से कह रहा हूँ।।२६।।

अतः मैं अखण्ड जगत् के सृजनकर्त्ता तथा पाप और पुण्य के सर्जक भगवान् को अच्छी तरह शिर झुका कर प्रणाम करता हूँ।।२७।।

जिसने इस अखण्ड आदि, मध्य और अन्त से मुक्त सुरों और असुरों से भी दुर्विज्ञेय अखण्ड चराचर त्रिलोक की सृष्टि की है, उन भगवान् को मैं प्रणाम करता हूँ।।२८।।

जो जन शान्तचित्त, जितात्मा होकर समस्त जीवों से समभाव रखकर व्यवहार करते हैं वे सर्वज्ञ, ज्ञानवान् , पापों से मुक्त हुआ करते हैं।।२९।।

जो जन अच्छी तरह तत्त्वार्थ, प्रकृति और पुरुष को जानने वाले होते हैं, फिर उनको जानकर कभी भी मोहित नहीं हुआ करते हैं, वे शाश्वत स्थान पाते हैं।।३०।।

जो जन ध्यान से ही क्षय और अक्षय के गुण और अवगुण को जानने वाले मोहग्रस्त नहीं होते, वे पाप से रहित हो जाता है।।३१।।

जो जन निरन्तर स्वदेह और परदेह में अनुभूत होने वाले सुख और दुःख का चिन्तन किया करते हैं, वे निश्चयपूर्वक सब पापोंसे रहित हो जाते हैं।।३२।।

जो जन सब जीवों पर क्रूरता, तृष्णा और क्रोध से मुक्त तथा सुन्दर न्यायसंगत व्यवहार करने वाले होते हैं, वेसब पापों से रहित हो जाया करते हैं।।३३।।

जो जन प्राणायाम के द्वारा अधोमुखी प्रवृत्तियों को दग्ध कर व्यवस्थित चित्त हो जाया करते हैं, वे सब पापों से रहित हुआ करते हैं।।३४।।

निराशीः सर्वतस्तिष्ठेदिष्टार्थेषु न लोलुपः। परीतात्मा त्यजेत् प्राणान् सर्वपातात् प्रमुच्यते॥३५॥
श्रद्दधानो जितक्रोधः परद्रव्यविवर्जकः। अनसूयश्च यो मर्त्यः स पापेभ्यः प्रमुच्यते॥३६॥
गुरुशुश्रूषय युक्तस्त्वहिंसानिरतश्च यः। अक्षुद्रशीलस्तु नरः स पापेभ्यः प्रमुच्यते॥३७॥
प्रशस्तानि च यः कुर्यादप्रशस्तानि वर्जयेत्।
मङ्गल्यपरमो यश्च स पापेभ्यः प्रमुच्यते॥३८॥
योऽभिगच्छति तीर्थानि विशुद्धेनान्तरात्मना। पापादुपरतो नित्यं स पापेभ्यः प्रमुच्यते॥३९॥
उत्थाय ब्राह्मणं गच्छेन्नरो भक्त्या समन्वितः। अभिगम्य प्रयत्नेन स पापेभ्यः प्रमुच्यते॥४०॥

नारद उवाच

यत्तच्छ्रेयो हितं चैव सर्वेषां वै परंतप। उपपन्नं च युक्तं च तत्त्वया समुदाहृतम्॥४१॥
विविधैः कारणोपायैः सम्यक्कृत्वार्थदर्शितैः। संशयोऽभून्मम पुरा स त्वया नाशितः प्रभो॥४२॥
ततोऽप्यल्पतरोपायो यदि कश्चिन्महातपः। कथ्यतां मे महाभाग येन पापं प्रणश्यति॥४३॥
दुष्करं पूर्वमुक्तं हि योगधर्मस्य साधनम्। पापापहरणं लोके यदन्यत्सुखसाधनम्॥४४॥

जो जन सब जगह आशारहित, अपेक्षित द्रव्यों में भी लालच रहित और सब जगह आत्मभाव सम्पन्न होकर प्राण छोड़ते हैं, वे भी सभी पापों से रहित होते हैं।।३५।।

जो जन श्रद्धावान् , क्रोधजयी, परद्रव्यत्यागी और असूयारहित जीवन जीने वाले होते हैं, वे भी सब पापों से रहित हो जाया करते हैं।।३६।।

जो जन गुरु सेवा करने वाला, अहिंसा सम्पन्न तथा नीच आचरण करने वाला नहीं है, वे जन भी सब पापों से रहित हुआ करते हैं।।३७।।

जो जन प्रशस्त कर्म करने वाले और अप्रशस्त कर्म को छोड़ने वाले तथा निरन्तर मङ्गल कार्यों का अनुष्ठान करने वाले होते हैं, वे भी पाप मुक्त हुआ करते हैं।।३८।।

जो जन विशुद्ध अन्तरात्मा से तीर्थों में जाया करते हैं तथा पाप नहीं किया करते हैं। वे भी पापों से रहित ही हुआ करते हैं।।३९।।

शयन से जागकर जो जन प्रयास के साथ भक्तिभाववान् होकर पूज्य ब्राह्मण के पास जाया करते हैं, वे भी सब पापों से रहित हुआ करते हैं।।४०।।

नारद ने कहा कि हे शत्रुतापी! आपने अभी उस रहस्य को बतलाया है, जो निश्चय ही सबके लिए श्रेयस्कर, हितसाधक, युक्तियुक्त और उचित है।।४१।।

हे प्रभो! इस प्रकार पूर्व में अच्छी तरह विविध प्रकार के तर्कों और उपायों से तत्त्वार्थ का चिन्तन और विचार करने पर भी जो शंका हुआ, उसे आपने इस तरह निश्चय ही दूर कर दिया है।।४२।।

हे महातपस्वी और महाभाग फिर भी यदि इसकी अपेक्षा अन्य कोई अल्प उपाय हो, जिससे पाप नष्ट हुआ करता हो, तो आप मुझे वह उपाय बतलाईये।।४३।।

पूर्व में कहा गया योगधर्म का साधन करना अत्यन्त कठिन है। संसार में दूसरा कोई पाप रहित करने वाला सुख साधन हो, तो उसे बतलाईये।।४४।।

अल्पायासकरं चैव सुखोपायं च सर्वशः। येन पापकृतान् दोषान् व्यपोहति सुदारुणान्॥४५॥
आत्मायत्ताश्च ये नित्यं न च विस्तारविस्तराः। गुणैश्च विविधैर्युक्ता इह लोके परत्र च॥४६॥
कर्मणामशुभानां च विवधोत्पत्तिजन्मनाम्। यः समर्थः स्फोटयितुं तन्मे ब्रूहि महातपः॥४७॥

यम उवाच

यथा स भगवानाह धर्ममेतं प्रजापतिः। तदहं भावयिष्यामि नमस्कृत्य स्वयंभुवे॥४८॥
लोकानां श्रेयसोऽर्थं तु पापानां तु विनाशनम्।
क्रियाकारनियोगं च प्रोच्यमानं निबोध मे॥४९॥
कैवल्यमिति संपन्ने श्रद्दधनो भवेन्नरः। अनन्यमानसः कुर्याद् यथा धर्मानुशासनम्॥५०॥
प्राप्नुयादीप्सितान् कामान् पापैर्मुक्तो यथासुखम्।
यः कुर्याद् धर्मसंयुक्तं विशुद्धेनान्तरात्मना॥५१॥
यस्तु कारयते रूपं शिशुमारं प्रजापतिम्। दृष्ट्वा नमस्येत् प्रयतः स पापेभ्यः प्रमुच्यते॥५२॥
यदा तस्य शरीरस्थं सोमं पश्येत् समाहितः। महापातकनाशस्तु तदा तस्य विधीयते॥५३॥
ललाटे तु स्थितं दृष्ट्वा मुच्यते सर्वपातकैः। कण्ठस्थं पातकैः सर्वैर्हृदिस्थं यत्कृताकृतम्॥५४॥

जो कि अल्प प्रयास से योग्य और सब प्रकार से सुखपूर्ण हो, ऐसा उपाय हो, जो पाप के कारण होने वाले अत्यन्त कठिन दोषों को दूर करता हो, तो उसे बतलाईए।।४५।।

इह लोक और परलोक में जो जनों के नित्य अपने अधिकार में हो, अधिक विस्तार मुक्त हो तथा कई प्रकार के गुणों से युक्त हो। हे महातपस्वी! जो कई प्रकार की उत्पत्ति और जन्म लेने वाले अशुभ कर्मों को विनष्ट करने में समर्थ हो, उसे मुझे कहें।।४६-४७।।

यम ने कहा कि स्वयम्भू ब्रह्मदेव को प्रणाम करते हुए मैं उस धर्म को वैसे ही कह रहा हूँ, जैसे उन भगवान् प्रजापति ने इस धर्म को बतलाया था।।४८।।

इस तरह मैं लोगों के कल्याणकारक और पापनाशक क्रियाकलाप के विधान को बतलाने जा रहा हूँ, उसे सुनो।।४९।।

देखिए! कैवल्यावस्था को पा जाने पर भी मनुष्य को श्रद्धापूर्वक अनन्य चित्त से धर्म विषयक विधान का पालन करना चाहि।।५०।।

जो जन विशुद्ध अन्तःकरण के कारण मुक्त होकर सहजता से अभिलषित भोग पदार्थों को प्राप्त करने वाले हैं। जो जन प्रजापति की शिशुमार के समान प्रतिमा बनाकर सप्रयास उसका दर्शन किया करते हैं और उन्हें प्रणाम भी करते हैं, वे जन पापों से रहित हो जाया करते हैं।।५१-५२।।

जब वे जन एकनिष्ठ भाव से उनके देह में सोम का दर्शन किया करते हैं, तो उसे उस समय उस पुरुष के पापों को नष्ट हुआ ही जानना चाहिए।।५३।।

इस तरह प्रजापति के ललाट में स्थित सोम का दर्शन कर कोई भी जन समस्त पापों से मुक्त हो जाया करते हैं। कण्ठ में स्थित सोम का दर्शन करने से भी कोई जन सब पापों से मुक्त हो जाया करते हैं। हृदय में स्थित सोम का दर्शन करने या न करने पर भी पापों से वे जनमुक्त हो जाया करते हैं।।५४।।

मनसा कर्मणा वाचा यत्किंचित्कलुषं कृतम्। उदरस्थं तु तं दृष्ट्वा मुच्यते नात्र संशयः।
वाङ्मनोभिः कृतानां तु पापानां विप्रमोक्षणम्॥५५॥
यदा लाङ्गूलकण्ठे तु स्थितं पश्येद् दिवाकरम्। तदा स दुष्कृतान् सर्वान् निर्नाशयति मानवः॥५६॥
यदा सोमंगुरुं सूर्यं सम्यक्कुर्यात्प्रदक्षिणम्। ध्यायेत ह्यक्षरं यस्तु स पापेभ्यः प्रमुच्यते॥५७॥
भृगुर्बुधः शनैश्चरो लोहिताङ्गश्च वीर्यवान्। सौम्यरूपो यदा चन्द्रः कुरुते च प्रदक्षिणाम्॥५८॥
हृदि कृत्वा तु तत्पापं यो ध्यायेताक्षरं शुचिः। तदा निर्मलतां याति चन्द्रमाः शारदो यथा।
प्राणायामशतं कृत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते॥५९॥
जघनस्थं शुचिर्दृष्ट्वा नरश्चन्द्रमसं मुने। नमस्येत् प्रयतो भूत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते।
आर्द्रस्थमार्द्रकर्मा तु ध्यात्वा चाष्टशताक्षरम्॥६०॥
नमस्येच्च शुचिर्भूत्वा तदा पापात् प्रमुच्यते। यदा चन्द्रश्च सूर्यश्च द्वावन्योऽन्यं प्रपश्यतः।
संपूर्णौ विमलौ सम्यग्भ्राजमानौ स्वतेजसा॥६१॥
कृत्वा हृदि तथा पापं यो ध्यायेत् परमव्ययम्। पूर्णमष्टशतं विप्र स पापेभ्यः प्रमुच्यते॥६२॥

इसी तरह उदर में स्थित उन सोम का दर्शन कर कोई भी जन निःसंशय मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं। उसके मन, वचन और कर्म से कृत् जो कोई पाप हुआ करता है,उन सब मन,वचन और कर्म विषयक पापों से उसको मुक्ति मिल जाया करती है।।५५।।

फिर मनुष्य जिस समय उनकी पूँछ में विद्यमान सूर्य का दर्शन करते हैं, तो उस समय वे अपने सब पाप कर्मों को नष्ट कर दिया करते हैं।।५६।।

जो जन सोम, गुरु और सूर्य की अच्छी तरह प्रदक्षिणा किया करते हैं तथा अक्षर ब्रह्म का ध्यान करते हैं, वे सब पापों से रहित हो जाया करते हैं।।५७।।

फिर जो पराक्रम सम्पन्न जन सौम्यस्वरूप चन्द्र, मंगल, बुध, शुक्र और शनि की प्रदक्षिणा किया करते हैं और अपने पाप करने के बाद भी जो अपने हृदय में पवित्रता से अक्षर ब्रह्म का ध्यान करते हैं, वे शरद्कालीन चन्द्रमा के समान निर्मल हो जाया करते हैं। फिर वे जन सौ प्राणायाम कर समस्त पापों से रहित हो जाया करते हैं।।५८-५९।।

हे मुने! इसी तरह पवित्र जन उनकी जंघा में विद्यमान चन्द्रमा का दर्शन करने और प्रयास के साथ प्रणाम करने से सभी पापों से मुक्त हो जाया करते हैं फिर जो जन गीला वस्त्र धारण कर जल में विद्यमान चन्द्रमा का ध्यान कर एक सौ आठ मन्त्र का जप किया करते हैं, वे सभी पापों से रहित हो जाते हैं।।६०।।

फिर जो जन पवित्र होकर प्रणाम किया करते हैं, वे पापों से रहित हो जाया करते हैं। जब चन्द्र और सूर्य एक-दूसरे को परस्पर देख रहे हों तथा अपने तेज के द्वारा उन दोनों का अखण्ड शुद्ध मण्डल प्रकाशित हो रहा हो, उस समय के उनके स्वरूप का ध्यान करना अत्यन्त श्रेयस्कर है।।६१।।

हे विप्र! फिर पाप करने के बाद भी जो जन हृदय में परम अव्यय पुरुष का ध्यान किया करते हैं और मन्त्र का एक सौ आठ जप किया करते हैं, वे सब पापों से मुक्त हो जाया करते हैं।।६२।।

स्वयं प्रज्वलिते वह्नौ ध्यात्वा चाक्षरमव्ययम्। घृतं तु जुहुयाद् यस्तु स पापेभ्यः प्रमुच्यते॥६३॥
वामनं ब्राह्मणं दृष्ट्वा वाराहं च जलोत्थितम्। धरणी चोद्धृता येन सिंहं चापि महामुने॥६४॥
नमस्येद् वै पयोभक्षः स पापेभ्यः प्रमुच्यते।
प्राणायामं च यः कुर्यात् सोऽपि पापात् प्रमुच्यते॥६५॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे अष्टाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२०८॥

—❊❊❊—

नवधिकद्विशततमोऽध्यायः

अथ चातुवर्ण्यपापनाशनोपायः

ऋषिपुत्र उवाच

एतच्छ्रुत्वा शुभं वाक्यं धर्मराजस्य नारदः। इदं भावेन भक्त्या च पुनर्वचनमब्रवीत्॥१॥

नारद उवाच

समः सर्वेषु भूतेषु स्थावरेषु चरेषु च। धर्मराज महाबाहो पितुस्तुल्यपराक्रम॥२॥
ब्राह्मणानां हितार्थाय यदुक्तं मे प्रदक्षिणम्। इयं श्रेयः समाख्यानं श्रुतं श्रुतपरं पदम्॥३॥

इस प्रकार अव्यय अक्षर ब्रह्म का ध्यान कर जो प्रज्वलित अग्नि में स्वयं होम किया करते हैं, वे जन अपने पापों से रहित हो जाया करते हैं।।६३।।

हे महामुने! जो ब्राह्मण वेष धारण करने वाले वामन, धरती का उद्धार करने वाले जल से निकले वराह तथा सिंह का रूप धारण करने वाले नारायण का दर्शन कर उन देवों को प्रणाम करते हैं और पयोव्रत धारण करते हैं, वेजन पापों से मुक्त हो जाते हैं। फिर जो जन प्राणायाम करते हैं, वे भी पाप से मुक्त हो जाते हैं।।६४-६५।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में पतिव्रता स्त्री धर्म निरूपण नामक दो सौ आठवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥२०८॥

अध्याय-२०९

चातुर्वर्णों के पापनाशक उपाय, प्रबोधिनी एकादशी माहात्म्य

ऋषिपुत्र ने कहा कि इस तरह धर्मराज के सुभाषित वचन को सुनकर नारद ने श्रद्धा और भक्ति भाव से पुनः यह बात पूछी।।१।।

नारद ने कहा कि हे पिता के समान महापराक्रमी, महाबाहु, और समस्त चराचर पर समभाव रखने वाले धर्मराज! आपके द्वारा ब्राह्मणों की हितकारक प्रदक्षिणा करने के बारे में मुझे जिस प्रकार बतलाया गया, वैसे कल्याण युक्त आख्यान को मेरे द्वारा भी सुना गया। इस प्रकार मेरे द्वारा सुने गये समस्त वर्णनों में उत्तम वर्णन है।।२-३।।

त्रयो वर्णा महाराज यज्ञसामान्यभागिनः। शूद्रा वेदपवित्रेभ्यो ब्राह्मणैस्तु बहिष्कृताः॥४॥
यथैव सर्वसमता तव भूतेषु मानद। तथैव तेषामपि हि श्रेयो वाच्यं महामते।
यथाधर्महितं वाक्यं शूद्राणामपि कथ्यताम्॥५॥

यम उवाच

अहं ते कथयिष्यामि चातुर्वर्ण्यस्य नित्यशः। यद्धितं धर्मयुक्तं च नित्यं भवति सुव्रत॥६॥
केवलं श्रुतिसंयोगाच्छ्रद्धया नियमेन च। करोति पापनाशार्थमिदं वक्ष्यामि तच्छृणु॥७॥
गावः पवित्रा मङ्गल्या देवानामपि देवताः। यस्ताः शुश्रूषते भक्त्या स पापेभ्यः प्रमुच्यते॥८॥
सौम्ये महूर्त्ते संयुक्ते पञ्चगव्यं तु यः पिबेत्। यावज्जीवकृतात् पापात् तत्क्षणादेव मुच्यते॥९॥
लाङ्गूलेनोद्धृतं तोयं मूर्ध्ना गृह्णाति यो नरः। सर्वतीर्थफलं प्राप्य सर्वपापैः प्रमुच्यते॥१०॥
प्रस्त्रावेन तु यः स्नायाद् रोहिण्यां मानवो द्विज। सर्वपापकृतान् दोषान् दहत्याशु न संशयः॥११॥
धेनुस्तनाद् विनिष्क्रान्तां धारां क्षीरस्य यो नरः। शिरसा प्रतिगृह्णाति स पापेभ्यः प्रमुच्यते॥१२॥
ब्राह्मणस्य सदा स्नातो भकत्या परमया युतः। नमस्येत् प्रयतो भूत्वा स पापेभ्यः प्रमुच्यते॥१३॥

हे महाराज! त्रिवर्णों के मनुष्य यज्ञ में साधारण रूप से भाग लिया करते ही हैं। किन्तु ब्राह्मणों ने वेद जैसे पवित्र यज्ञों से शूद्रों को बहिष्कृत-सा कर दिया है।।४।।

हे सम्मान प्रदान करने वाले महाबुद्धिमान् ! चूँकि सब जीवों पर आपकी समान दृष्टि है। अतएव उनके भी कल्याण की बात कहें। शूद्रों के लिए भी धर्मयुक्त कल्याणकारक बातें कहें।।५।।

यम ने कहा कि हे सुव्रत! अब मैं आपको चारों वर्णों हेतु जो नित्य धर्म युक्त कल्याणकारी बात है, उसे बतलाता हूँ।।६।।

जिस कार्य को श्रुति सम्मत रीति से मात्र श्रद्धा और यिमपूर्वक पापनाश हेतु किया जा सकता है, उसे सुनना चाहिए।।७।।

चूँकि गौ पवित्र मङ्गल करने वाली और देवताओं के भी देवता स्वरूप है। अतएव जो कोई जन भक्तिभाव से उन गौओं की सेवा कियाकरते हैं, वे जन भी सब पापों सेरहित हो जाया करते हैं।।८।।

फिर सौम्य मुहूर्त्त के संयोग बनने पर जो जन पञ्चगव्य का पान किया करते हैं, वे जन भी समस्त जीवन में किये पापों से रहित हो जाया करते हैं।।९।।

जो जन गाय की पूँछ से उद्धृत जल को मस्तक को धारण कर लिया करते हैं, वे जन सब तीर्थों का फल पाकर सब पापों से मुक्त हो जाते हैं।।१०।।

हे द्विज! जो जन रोहिणी नक्षत्र में गौ के मूत्र से स्नान करते हैं, वे जन तत्क्षण ही समस्त पापों से दग्ध कर लिया करते हैं, इसमें सन्देह नहीं।।११।।

जो जन गौ के स्तन से निकले दूध को अपने शिर पर धारण करते हैं, वे सब पापों से रहित हो जाया करते हैं।।१२।।

जो जनस्नान कर परम भक्ति भाव से सप्रयास ब्राह्मण को प्रणाम करते हैं, वे सब पापों से रहित हो जाया करते हैं।।१३।।

उदयान्निःसृतं सूर्यं यस्तु भक्त्या नरो द्विजः। दध्यक्षताञ्जलीभिस्तु त्रिभिः पूजयते शुचिः॥१४॥
तस्य भानुः प्रसन्नश्च अशुभं यत्समर्जितम्। तत्क्षणादेव निर्दग्धं भस्मीभवति तस्य तत्॥१५॥
यावकं दधिमिश्रं तु पात्रे औदुम्बरे स्थितम्। सोमाय पौर्णमास्यां हि दत्त्वा पापैः प्रमुच्यते॥१६॥
अरुन्धतीं ध्रुवं चैव तथा सप्त महामुनीन्। अभ्यर्च्य विधिना रात्रौ तेभ्यो दत्त्वा च यावकम्॥१७॥
एकाग्रमानसो भूत्वा यो नमस्येत् कृताञ्जलिः। किल्बिषं तस्य वै सर्वं तत्क्षणादेव नश्यति॥१८॥
द्विजं शुश्रूषते यस्तु तर्पयित्वा तु भक्तितः। नमस्येत् प्रयतो भूत्वा स पापेभ्य प्रमुच्यते॥१९॥
विषुवत्ये च योगे त शुचिर्दत्त्वा पयो नरः। तस्य जन्मकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति॥२०॥
प्राचीनाग्रान् कुशान् कृत्वा स्थापयित्वा वृषं नरः। द्विजैः सह नमस्कृत्य सर्वपापैः प्रमुच्यते॥२१॥
दक्षिणावर्त्तशङ्खेन गत्वा प्राक्स्त्रोतसं नदीम्। कृत्वाभिषेकं विधिवत् ततः पापैः प्रमुच्यते॥२२॥
दक्षिणावर्त्तशङ्खेन तिलमिश्रोदकेन तु। उदके नाभिमात्रे तु यः कुर्यादभिषेचनम्॥२३॥
प्राक्स्त्रोतसां तु वै नद्यां नरस्तत्राम्भसाऽऽप्लुतः। यावज्जीवकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति॥२४॥
अर्च्छिपद्मपत्रेण सर्वरत्नोदकेन तु। त्रिंशो यस्तु नरः स्नायात् सर्वपापैः प्रमुच्यते॥२५॥

फिर द्विजाति में जन्म लिये हुए जो जन पवित्र के सहित दधि और अक्षत युक्त तीन अञ्जलियों से उदयकालीन उदित हुए सूर्य की भक्तिभाव से पूजा किया करते हैं, सूर्य ऐसे जनों पर प्रसन्न हो जाया करते हैं।।१४-१५।।

फिर पूर्णिमा तिथि के दिन उदुम्बर के पात्र में रखा हुआ दधि मिश्रित यावक चन्द्रमा को प्रदान करने वाले जन भी सब पापों से रहित हो जाया करते हैं।।१६।।

फिर रात के समय सविधि अरुन्धती, ध्रुव और सप्तर्षियों का पूजन कर उनको यावक अर्पण करने वाले जन सब पापों से रहित हो जाया करते हैं।।१७।।

फिर जो एकनिष्ठ और अञ्जलिबद्ध होकर प्रणाम करते हैं, उनके तत्क्षण समस्त पापों का नाश हो जाया करता है।।१८।।

जो जन तर्पण करने के पश्चात् भक्ति और सप्रयास से ब्राह्मण को प्रणाम करते हैं, वे जन भी सब पापों से मुक्त हो जाया करते हैं।।१९।।

विषुवन् योग के समय जो जन पवित्रता से दूध का दान करते हैं, उसके जन्म पर्यन्त के किये पाप तत्काल विनष्ट हो जाया करते हैं।।२०।।

जो जन पूर्वाभिमुख कुशाओं के अग्रभाग रखकर ब्राह्मणों के सहित बैल को स्थापित कर प्रणाम करते हैं, अर्थात् वृषोत्सर्ग करते हैं तो सब पापों से रहित हो जाया करते हैं।।२१।।

फिर पूर्वाभिमुख बहने वाली नदी के किनारे जाकर विधिवद् दक्षिणावर्त शंख से स्नान करने वाले जनों कासमस्त पाप विनष्ट हो जाया करते हैं।।२२।।

जो जन नाभिमात्र जल में दक्षिणावर्त्त शंख से तिलमिश्रित जल से अभिषेक किया करते हैं तथा जो जन पूर्वाभिमुख बहने वाली नदी में जल से स्नान करते हैं, वे सब तत्क्षण ही जीवन पर्यन्त किए पापों से रहित हो जाया करते हैं।।२३-२४।।

दक्षिणावर्त्तशङ्खेन पात्रशोध धरे स्थितम्। उदकं यः प्रतीच्छेत शिरसा हृष्टमानसः।
तस्य जन्मकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति॥२६॥
प्राक्स्रोतसां नदीं गत्वा नाभिमात्रे जले नरः।
स्नात्वा कृष्णतिलैर्मिश्रान् दत्त्वा सप्ताञ्जलीन् नरः॥२७॥
प्राणायामत्रयं कृत्वा ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः। यावज्जीवकृतं पापं तत्क्षणादेव मुच्यते॥२८॥
अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि गुह्याद् गुह्यतरं मुने। कार्त्तिकेऽमलपक्षे तु एकादशी या स्मृता मुने॥२९॥
भक्तिमुक्तिप्रदा सा तुनाम्ना ख्याता प्रबोधनी। या सा विष्णोः परा मूर्त्तिरव्यक्तानेकरूपिणी।
सा क्षिप्ता मानुषे लोके द्वादशी मुनिपुंगव॥३०॥
ये उपोष्यन्ति विधिवन्नारायणपरायणाः। न तेषामशुभं किंचिज्जन्मोटिकृतं मुने॥३१॥
अस्याश्रित्य पुरा पृष्टो धरण्या परमेश्वरः। वराहरूपी देवर्षे सर्वलोकहिताय वै॥३२॥

धरण्युवाच

अस्मिन् कलियुगे घोरे नराः पापरताः प्रभो। ब्रह्मस्वहरणे युक्तास्तथा ब्राह्मणघातकाः॥३३॥
गुरुद्रोहरता देवमित्रद्रोहरतास्तथा। स्वामिद्रोहरताश्चैव परदारभिमर्शकाः॥३४॥

जो जन विना छिद्र वाले कमलपत्र और समस्त रत्नों से स्पृष्ट जल से तीस बार स्नान करते हैं, वे जन समस्त पापों से रहित हो जाया करते हैं।।२५।।

जो जन दक्षिणावर्त्त शंख से युक्त पात्र से प्रसन्नचित्त होकर शिर पर जल धारण करते हैं, उसके जन्म भर का किया पाप तत्काल विनष्ट हो जाया करते हैं।।२६।।

जो जन पूर्वाभिमुख बहने वाली नदी के किनारे पर जाकर नाभि मात्र जल में खड़े होकर स्नान कर काले तिल से युक्त सात अञ्जलि प्रदान करते हैं और तीन प्राणायाम कर ब्रह्मचारी एवं जितेन्द्रिय रहा करते हैं, वे जन तत्काल ही पापों से रहित हो जाया करते हैं।।२७-२८।।

हे मुने! आपको मैं दूसरे भी गुह्य से गुह्यतर तत्त्व बतलाने जा रहा हूँ। हे मुने! कार्त्तिक मास के शुक्लपक्ष में जो एकादशी तिथि हुआ करती है।।२९।।

उस प्रसिद्ध एकादशी को प्रबोधिनी नाम से जाना जाता है, जो भोग और मोक्ष को प्रदान करने वाली है। हे श्रेष्ठमुने! श्री विष्णु के विभिन्न स्वरूपों में यह अव्यक्त मूर्त्ति की द्वादशी मनुष्य लोक में भेजी गई है।।३०।।

हे मुने! उस एकादशी को श्रीविष्णु नारायण देव के जो भी भक्तजन उपवास किया करते हैं, उनके कोटि-कोटि जन्मों का कृत् पाप का नाश होता है।।३१।।

हे देवर्षि! पुरातनसमय में धरणी ने इस सम्बन्ध में वराह स्वरूप परमेश्वर से सम्पूर्ण लोकों के हित लाभार्थ पूछा था।।३२।।

धरणी ने पूछा कि हे प्रभो! इस कलियुग में जो जन पाप में आसक्त, ब्राह्मण का धन अपहत करने वाले और ब्राह्मणों के घातक हैं, वे जन गुरु, देवता, मित्र, स्वामी आदि के द्रोह में आसक्त और परस्त्री से बलात्कार करने वाले हैं।।३३-३४।।

परद्रव्यापहारेण संसक्ताश्च सुरेश्वर। अभक्ष्यभक्ष्यनिरता वेदब्राह्मणनिन्दकाः॥३५॥
दाम्भिका भिन्नमर्यादा नायमस्तीतिवादिनः। असत्प्रतिग्रहे सक्ता अगम्यागमने रताः॥३६॥
एतैश्चान्यैश्च पापैश्च संसक्ता ये नरा विभो। किमासाद्य गतिर्देव तेषां वद सुरेश्वर॥३७॥

श्रीवराह उवाच

साधु देवि महाभागे यत्पृष्टोऽहं वरानने। रहस्यं ते प्रवक्ष्यामि लोकानां हितकाम्यया॥३८॥
महापातकयुक्ता ये नराःसुकृतवर्ज्जिताः। तेषां मया हितार्थाय निर्मितं तच्छृणुष्व मे॥३९॥
या सा विष्णोः परा शक्तिरव्यक्ताऽनेकरूपणिी। सा मर्त्ये निर्मिता भूमि द्वादशीरूपधारिणी॥४०॥
तामुपोष्य नरो भद्रे महापापरताश्च ये। पुण्यपापविनिर्मुक्ता गच्छन्ति पदमव्ययम्॥४१॥
नान्योपायो विशालाक्षि विद्यते किल शोभने। एकादशीं विना येन पापक्षयमुपेष्यति॥४२॥
यथा शुक्ला तथा कृष्णा उपोष्या हि प्रयत्नतः।
शुक्ला भक्तिप्रदा नितयं कृष्णा मुक्तिं प्रयच्छति॥४३॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन कर्त्तव्यं द्वादशीव्रतम्। यदिच्छेद् वैष्णवं स्थानं गन्तुं वै भूतधारिणी॥४४॥

हे सुरेश्वर! इस युग में जन्में जन दूसरों का धन अपहृत करने में संलग्न हैं, फिर अभक्ष्य का भी भक्षण करने वाले तथा वेद और ब्राह्मणों के निन्दक हैं।।३५।।

फिर दम्भी, मर्यादा का उल्लंघन करने वाले, यह कुछ भी नहीं है। ऐसा कहने वाले असत् प्रतिग्रह करने वाले और अगम्या स्त्री से गमन करने वाले जन हैं।।३६।।

हे विभो! जो जन इन और इस प्रकार के दूसरे-दूसरे पापों से युक्त हैं। क्या करने से उनकी सद्गति हो सकती है? हे देव सुरेश्वर! इस प्रकार ये सब हमें कहें, बड़ी कृपा होगी।।३७।।

श्री भगवान् वराह ने कहा कि हे महाभागे! सुमुखि देवि! तम तो धन्य हो, जो तुमने मुझसे ये सब पूछा है। लोकहित की कामना से यह तत्त्व तुमको बतलाता हूँ।।३८।।

जो जन पुण्यहीन और महापातक सम्पन्न हुआ करते हैं, उनके कल्याणार्थ मैंने जो विधान बना रखा है, उसे तुम मुझसे सुनो।।३९।।

हे भूमि! श्रीविष्णु की अव्यक्त विभिन्न स्वरूपों वाली पराशक्ति है, वह मर्त्यलोक में द्वादशी के रूप में बनाई गयी है।।४०।।

हे भद्रे! उस दिन उपवास करने से जो महापाप करने में लीन और पुण्य पाप से हीन जन हुआ करते हैं, वे निश्चय ही अव्यय स्थान को पाया करते हैं।।४१।।

हे विशालाक्षि! हे सुन्दरि! एकादशी के अलावे दूसरा इस प्रकार का कोई अन्य उपाय नहीं है, जिसमें पापक्षय हो सके।।४२।।

उदाहरणार्थ जैसी शुक्ल पक्ष की एकादशी होती है, वैसे ही कृष्णपक्ष की भी एकादशी को सप्रयास उपवास करना चाहिए। वैसे शुक्लपक्ष की एकादशी भक्ति पदान करने वाली हुआ करती है और कृष्ण पक्ष की एकादशी तो निश्चय ही मुक्ति प्रदान करने वाली है।।४३।।

अतः हे समस्त भूतों को धारण करने वाली! यदि श्रीविष्णु की जगह में जाना चाहते हो तो सब प्रकार के प्रयास से द्वादशी व्रत करना श्रेष्ठ है।।४४।।

वाचा च मनसा चैव कर्मणा यदुपार्जितम्। पापं मासकृतं पुंसां दहत्येकादशी कृता॥४५॥
रटन्तीह पुराणानि भूयो भूयो वरानने। न भोक्तव्यं न भोक्तव्यं संप्राप्ते हरिवासरे॥४६॥
यदीच्छथ नरा गन्तुं तद् विष्णोः परमं पदम्। न भोक्तव्यं न भोक्तव्यं तदा केशववासरे॥४७॥
ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष प्रलापं मे श्रृणुष्व तत्। आराधयस्व विश्वेशमेकादश्यामतन्द्रियः॥४८॥
न शङ्खेन पिबेत् तोयं न हन्यान्मत्स्यसूकरौ। एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि॥४९॥
स ब्रह्महा सुरापश्च स स्तेयी गुरुतल्पगः। एकादश्यां तु यो भुङ्क्ते पक्षयोरुभयोरपि॥५०॥

किं ते न कृतं पापं दुर्वृत्तेनात्मघातिना।
एकादश्यां विशालाक्षि भुङ्क्ते यो न विजानता॥५१॥

न शक्नोति यदा शुक्लामेकादश्यामुपोषितुम्। तदा नक्तेन कर्त्तव्यं तथैवायाचितेन वा॥५२॥
एकभक्तेन दानेन कर्त्तव्यं द्वादशीव्रतम्। न करोति यदा भूमि व्रतं वा दानमेव वा।
महापातकभागी स्यात् सुगतिं नाप्नुयात् क्वचित्॥५३॥
उपवासासमर्थानां सदैव पृथुलोचने। एका सा द्वादशी पुण्या उपोष्या या प्रबोधिनी॥५४॥

फिर महा पर्यन्त वचन, मन और कर्म से व्यक्ति जो पाप अर्जित किया रहता है, उसे व्रत की हुई एकादशी भस्म कर देती है।।४५।।

हे सुमुखि! पुराण तो बार-बार यह कहा कर रहे हैं कि श्रीविष्णु के दिन कथमपि नहीं भोजन करना चाहिए, भोजन नहीं करना चाहिए।।४६।।

अतः यदि मनुष्य श्रीविष्णु के उस परम स्थान पर जाना चाहें, तो केशव के दिन नहीं ही भोजन करना चाहिए, नहीं ही भोजन करना चाहिए।।४७।।

मैं सदा भुजा उठाकर कहता हूँ कि मेरी उन बातों को सुनो। एकादशी को विना आलस्य यि विश्वेश की उपासना करना चाहिए।।४८।।

वैसे कभी भी शंख से जल नहीं पीना उचित है और फिर मत्स्य और शूकर की हत्या नहीं करनी चाहिए। दोनों पक्षों की एकादशी को नहीं खाना चाहिए।।४९।।

जो जन प्रत्येक मास की दोनों पक्षों की एकादशी को भोजन किया करते हैं, वे ब्रह्महत्यारा, शराबी, चोर, गुरुपत्नी के संग व्यभिचार करने वाला पापी हुआ करते हैं।।५०।।

हे विशालाक्षि! जो जन न जानते हुए भी एकादशी को भोजन किया करते हैं, अतः जानना चाहिए कि वे जन कौन ऐसा पाप है, जिसे उनने नहीं किया?।।५१।।

फिर यदि शुक्लपक्षीय एकादशी को उपवास न कर सके हों, तो रात्रि में भोजन नहीं करना चाहिए अथवा अयाचित वस्तु से निर्वाह करना चाहिए।।५२।।

एक बार भोजन कर दान करने के बाद द्वादशी का व्रत करना चाहिए। हे भूमे! जो जन उस दिन व्रत या दान नहीं करते वे महापातक का भागीदार हुआ करते हैं और उसे कभी सुगति नहीं मिलती है।।५३।।

हे विशालाक्षि! जो जन सदा उपवास करने में अक्षम या असमर्थ होते हैं, उन्हें एक ही पवित्र उस द्वादशी का व्रत करना चाहिए, जो प्रबोधिनी कहलाती है।।५४।।

तस्यामाराध्य विश्वेशं जगतामीश्वरेश्वरम्। प्राप्नोति सकलं तद्धि द्वादशद्वादशीफलम्।।५५।।
पूर्वभाद्रपदायोगे सैव वा द्वादशी भवेत्। अतीव महती तस्यां सर्वकृत्यमथाक्षयम्।।५६।।
उत्तराङ्गारकयुता यदि स भवति प्रिये। तदा सा भवति पुण्या कोटिकोटिगुणोत्तरा।।५७।।
यदन्यकाले वर्षैस्तु केशवाल्लभते फलम्। सकृदेवार्चिते तस्यां लभते भूतधारिणि।।५८।।
यथा प्रबोधनी पुण्या तथा यस्यां स्वपेद्धरिः। उपोष्या हि महाभागे अनन्तफलदा तु सा।।५९।।
शयने बोधने चैव कटिदाने च सुन्दरि। उपोष्यैव विधानेन याति मल्लयतां नरः।।६०।।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन द्वादशीं समुपोषयेत्। यछिच्छेत विशालाक्षि शाश्वतीं गतिमात्मनः।।६१।।
एकादशी सोमयुता कार्त्तिके मासि भामिनि। उत्तराभाद्रसंयोगे अनन्ता सा प्रकीर्त्तिता।।६२।।
तस्यां यत्क्रियते भद्रे सर्वमानन्त्यमश्नुते। अनन्तपुण्यफलदा तेनानन्ता स्मृता प्रिये।।६३।।
एकादशी भौमयुता यदा स्याद् भूतधारिणि। स्नात्वा देवं समभ्यर्च्य प्राप्नोति परमं फलम्।
प्राप्नोति सकलं तद्धि द्वादशद्वादशीफलम्।।६४।।
जलपूर्णं तदा कुम्भं स्थापयित्वा विचक्षणः। पञ्चरत्नसमोपेतं घृतपात्रयुतं तथा।।६५।।

चूँकि उस प्रबोधिनी के दिन संसार के विश्वेश ईश्वर की उपासना कर मनुष्य द्वादश द्वादशी के व्रत या सम्पूर्ण फल प्राप्त कर लिया करते हैं।।५५।।

पूर्वाभाद्रपदा से संयुत जो द्वादशी हुआ करती है, वह अत्यन्त महान् हुआ करती है। उस दिन में किये गए समस्त कृत्य अक्षय हुआ करते हैं।।५६।।

हे प्रिये! यदि वह तिथि उत्तराभाद्रपदा नक्षत्र और मङ्गलवार से युक्ता हो, तो वह करोड़ों गुना अधिक पवित्र हुआ करती है।।५७।।

फिर हे भूतों को धारण करने वाली धरणि! यदि अन्य कालों में एक वर्ष पर्यन्त उपासना करने से केशव से फल मिल पाता है, तो केवल उस दिन एक बार ही उनकी पूजा से वही फल प्राप्त हो जांता है।।५८।।

हे महाभागे! जैसे प्रबोधिनी एकादशी परम पवित्र है, वैसे ही जिस दिन श्री हरि शयन करते हैं, उस एकादशी में भी उपवास करना चाहिए। वह एकादशी भी अत्यन्त ही फल प्रदायिनी होती है।।५९।।

हे सुन्दरि! हरि के शयन, जागरा और पार्श्व परिर्वतन की तिथि के दिन में उपवास करने से मनुष्य मुझ में विलीन हो जाया करते हैं।।६०।।

अतः हे विशालाक्षि! यदि अपनी शाश्वत गति की इच्छा हो, तो सब प्रकार से प्रयत्नपूर्वक द्वादशी को उपवास करना चाहिए।।६१।।

हे भामिनि! कार्त्तिक मास में उत्तराभाद्रपदा से संयुक्त सोमवार को यदि एकादशी हुई हो, तो वह अनन्तर एकादशी कही जाती है।।६२।।

हे भूतधारिणि! फिर यदि मंगलवार युक्ता एकादशी हो, तो उस दिन स्नानकर देव का पूजन करने वाला मनुष्य श्रेष्ठ फल पाने वाला होता है। वे निश्चय ही द्वादश द्वादशीव्रत का सम्पूर्ण फल प्राप्त कर लेते हैं।।६४।।

फिर चालाक जन को पञ्चरत्न के साथ घृत पात्र युक्त जलपूर्ण कुम्भ स्थापित करना चाहिए।।६५।।

तस्य स्कन्धे तु घटितं मत्स्यरूपं जनार्दनम्। माषकेन सुवर्णेन सुतप्तेन वरानने॥६६॥
स्नापयित्वा विधानेन कुङ्कुमेन विलेपितम्। पीतवस्त्रयुगच्छन्नं छत्रोपानद्युगान्वितम्।
पूजयेत् कमलैदवि मद्भक्तः संयतेन्द्रियः॥६७॥
मत्स्यं कूर्मं वराहं च नरसिंहं च वामनम्।
रामं रामं च कृष्णं च बुद्धः कल्की च वै नमः॥६८॥
इत्येवमादिभिर्मन्त्रैः पुष्पैर्धूपैः समर्चयेत्। ततस्तस्याग्रतो देयं नैवेद्यं घृतपावितम्॥६९॥
एवं संपूज्य गोविन्दं दिवाऽपि कमलेक्षणे। रात्रौ चोत्थापनं कार्यं देवदेवस्य सुव्रते॥७०॥
प्रभाते विमले स्नात्वा भक्त्या संपूज्य केशवम्। पुष्पधूपादिनैवेद्यैः फलैर्नानाविधैः शुभैः॥७१॥
ततस्तु पूजयेद् विद्वानाचार्यं भक्तिभावितः। अलङ्कारोपहारैश्च वस्त्राद्यैश्च स्वशक्तितः॥७२॥
पूजयित्वा विधानेन तं देवं प्रतिपादयेत्। जगदादि जगद्रूप अनादि जगादिकृत्।
जलशायिन् जगद्योने प्रीयतां मे जनार्दनः॥७३॥
अनेनैव विधानेन यः कुर्याद् व्रतराडिदम्। तस्य पुण्यफलं यस्मान्मत्तः शृणु वसुंधरे॥७४॥
यदि वक्त्रसहस्त्राणां सहस्त्राणि भवन्ति हि। संख्यातुं नेह शक्यन्ते प्रबोधिन्यास्तथा गुणाः।
तथाप्युद्देशमात्रेण शक्त्या वक्ष्यामि तच्छृणु॥७५॥

हे सुमुखि! उसके स्कन्ध प्रान्त में एक मासे अच्छी तरह पकाये स्वर्ण से बने मत्स्य स्वरूप जनार्दन को स्थापित करना चाहिए। हेदेवि! उनको विधि के अनुरुप स्नान कराना चाहिए और कुंकुम का लेप करना चाहिए। फिर दो पीले वस्त्रों से उनको आच्छादित करना चाहिए। और दो उपानह और छत्र भी उन्हें अर्पण करना चाहिए। फिर मेरा भक्त इन्द्रिय संयमी व्यक्ति को कमलपुष्पों से उनकी पूजा करनी चाहिए।।६६-६७।।

वैसे मत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, रामचन्द्र, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि को प्रणाम है।।६८।।

इस प्रकार इस मन्त्र, पुष्पों और धूपों से उनकी पूजा करनी चाहिए। फिर उनके समक्ष घृत से पवित्र नैवेद्य अर्पण करना चाहिए।।६९।।

हे पद्माक्षि! हे सुव्रते!! इस तहर दिन में भी गोविन्द का पूजन कर रात्रि के समय देवदेव का उत्थापन करना चाहिए।।७०।।

फिर प्रभात काल में नहाकर स्वच्छ वस्त्र पहन कर भक्ति भाव से पुष्प, धूप, आदि, नैवेद्य और अनेक प्रकार के शुभफलों से श्री केशव की पूजा करनी चाहिए।।७१।।

फिर विद्वान् व्यक्ति को अलंकार, उपहार और वस्त्रादि द्वारा यथाशक्ति भक्ति भाव से आचार्य की पूजा करनी चाहिए।।७२।।

फिर सविधि पूजा कर उन देव की स्तुति करनी चाहिए। हे जगत् के आदि स्वरूप जगद्रूप अनादि जगत् आदि की उत्पत्ति करने वाले, जलशायी और जगत् के मूल कारण स्वरूप जनार्दन! आप मुझ पर प्रसन्न रहें।।७३।।

हे भूमि! इस विधि से जो जन इस व्रतराज की उपासना करते हैं, उनके पुण्यफल को अब तुझसे सुनो। यदि कई हजार मुख हो, तो भी प्रबोधिनी एकादशी के गुणों की गणना नहीं हो सकती है। फिर भी यथाशक्ति नाम मात्र का उल्लेख करने जा रहा हूँ, सुनो।।७४-७५।।

चन्द्रतारार्कसंकाशमधिशक्त्यानुजीविभिः। सहैव यानमातिष्ठेत्स तु विष्णुपुरे चिरम्॥७६॥
ततः कल्पसहस्रान्ते सप्तद्वीपेश्वरो वसेत्। आयुरारोग्यसंपन्नो जन्मातीतो भवेत् ततः॥७७॥
ब्रह्मघ्नश्च सुरापश्च स्तेयी च गुरुतल्पगः। पापान्येतानि सर्वाणि शृण्वतो दहते क्षणात्॥७८॥
पश्येच्च धीमानधनोऽपि भक्त्या स्पृशेन्मनुष्य इह धीयमानः।
शृणोति भक्त्याऽथ मतिं ददाति विकल्मषः सोऽपि दिवं प्रयाति॥७९॥
दुःस्वप्नं प्रशममुपैति पठ्यमानं माहात्म्यं भवभयमोचनं नराणाम्।
यः कुर्यात् किमुतेह देवि सम्यक् कृतात्मा व्रतपरं प्रबोधनाख्यम्॥८०॥
ते धन्यास्ते कृतार्थाश्च तैरेव सुकृतं कृतम्। तैराप्तं जन्मनः सारं ये काले कीर्त्तयन्ति माम्॥८१॥
नारायणाच्युतानन्त वासुदेवेति यो नरः। सततं कीर्त्तयेद् भूमि याति मल्लयतां प्रिये॥८२॥
किं पुनः श्रद्धया युक्तः पूजयेन्मामनन्यधीः। गुरूपदिष्टमार्गेण याति मल्लयतां नरः॥८३॥
तस्य यज्ञवराहस्य विष्णोरमिततेजसः। प्रणामं ये च कुर्वन्ति ते पूज्याः सततं सुरैः॥८४॥
तस्मात् सुनियतैर्भाव्यं वैष्णवं मार्गतां पदम्। दुर्ल्लभं वैष्णवत्वं हि त्रिषु लोकेषु सुन्दरि॥८५॥

वे जन दीर्घकाल तक विष्णु के पुर में अपनी शक्ति स्वरूपिणी पत्नी और आश्रितों के साथ चन्द्र और तारा के समान प्रकाशमान् होकर यान पर आरुढ होकर निवास किया करते हैं।।७६।।

फिर हजारों कल्पों के उपरान्त सात द्वीपों का स्वामी होकर आयु और आरोगय सहित संसार में निवास करता है। फिर वे जन्म व मरण रहित भी होता है।।७७।।

फिर ब्रह्महत्या करने वाले, मद्य पीने वाले, चोर, गुरुपत्नी संग करने वाले आदि जनों के भी समस्त पाप इसे सुनते ही तत्काल दग्ध हो जाया करते हैं।।७८।।

वित्तरहित होकर भी बुद्धिमान् जन भक्तिभाव से देव का दर्शन और स्पर्शन करे। जो जन भक्ति भाव से इसे सुनता है तथा इसका उपदेश करता है, वे भी पाप रहित होकर स्वर्ग में जाया करते हैं।।७९।।

इस माहात्म्य का पाठ करने से दुःस्वप्न की शान्ति हुआ करती है। फिर सब जनों के जन्म मरण विषयक भय का नाश हो जाया करता है। हे देवि! जो जन प्रबोधन नाम के इस श्रेष्ठ व्रत को अच्छी तरह किया करते हैं, उनको यहाँ मिलने वाले फल की क्या बात है?।।८०।।

जो जन प्रबोधिनी एकादशी के समय मेरा भजन करते हैं, वे धन्य और कृतार्थ हैं। उन्हीं से पुण्य अर्जित किया गया है। ऐसे जनों को जन्म का सार तत्वत ज्ञात हो जाया करता है।।८१।।

हे प्रिये! हे भूमे!! जो जन नारायण, अच्युत, अनन्त और वासुदेव इत्यादि नाम का सदैव कीर्तन किया करते हैं, वे तो मुझ में लीन हो जाया करते हैं।।८२।।

फिर जो जन श्रद्धा के साथ गुरु द्वारा उपदिष्ट मार्ग से मेरा पूजन करते हैं, वे मुझ में विलीन तो हो जाया ही करते हैं।।८३।।

फिर जो जन उन अमित तेजस्वी यज्ञवराह स्वरूप श्रीविष्णु को प्रणाम किया करते हैं, वे निरन्तर देवों के समान पूज्य हुआ करते हैं।।८४।।

हे सुन्दरि! इसीलिए अच्छी तरह नियमपूर्वक वैष्णव पद प्राप्त करना चाहिए। वैष्णवत्व तीनों लोकों में दुर्लभ हुआ करता है।।८५।।

जन्मान्तरसहस्त्रेषु समाराध्य वृषध्वजम्। वैष्णवत्वं लभेत् कश्चित् सर्वपापक्षये सति।
पापक्षयमवाप्नोति ईश्वराराधने कृते॥८६॥
ज्ञानमन्विच्छता रुद्रं पूजयेत् परमेश्वरम्। मां समाराध्य संयाति तद् विष्णोः परमं पदम्।
वैष्णवा हि महाभागे पुनन्ति सकलं जगत्॥८७॥
संस्मृतः कीर्त्तितो वाऽपि दृष्टः स्पृष्टोऽपि वा प्रिये।
पुनाति भगवद्भक्तश्चाण्डालोऽपि यदृच्छया॥८८॥
एतज् ज्ञात्वा तु विद्वद्भिः पूजनीयो जनार्दनः। वेदोक्तविधिना भद्रे आगतोक्तेन वा सुधीः॥८९॥

यम उवाच

एतच्छुत्वा महाभागा धरणी संशितव्रता। समाराध्य जगन्नाथं विधिना तल्लयं गता।
अतो यत्नेन वै साध्यं वैष्णवत्वं विपश्चिता॥९०॥
ये वैष्णवा महात्मानो विष्णुपूजनतत्पराः। तेषां नैवास्त्ययं लोको यान्ति तत् परमं पदम्॥९१॥
ये सकृद् द्वादशीमेतामुपोष्यन्ति विधानतः। प्रबोधनाख्यां सुधियस्ते यान्ति परमं पदम्॥९२॥
न यमं किङ्करान् दण्डान् नरकांश्च य यातनाः। पश्यन्ति द्विजशार्दूल इति सत्यं मयोदितम्॥९३॥
एतत् ते सर्वमाख्यातं यथातत्त्वं यथाश्रुतम्। कथितं ते महाभाग यत्त्वया परिपृच्छितम्॥९४॥

हजार जन्मों में वृषध्वज श्रीशंकर की आराधना कर कोई पापक्षय होने पर वैष्णवत्व प्राप्त कर पाते हैं। ईश्वर की उपासना कर पापक्षय की प्राप्ति होती है।।८६।।

अतः ज्ञान की इच्छा रखने वाला जन परमेश्वर रुद्र की पूजा करें। मेरी उपासना कर मनुष्य विष्णु के उस परमपद को प्राप्त करता है। हे महाभागे! वैष्णव मनुष्य अखिल जगत् को पवित्र किया करते हैं।।८७।।

हे प्रिये! चाण्डाल भगवद् भक्त भी स्मरण, कीर्त्तन, दर्शन या स्पर्शन से भी अनायास पवित्र हो जाया करते हैं।।८८।।

हे भद्रे! इसे जानने के बाद बुद्धिमान् विद्वानों को वेदोक्त अथवा आगमोक्ता विधि से भी जनार्दन का पूजन करनी ही चाहिए।।८९।।

यम ने कहा कि इसे सुनकर तीव्रव्रत धारण करने वाली महाभागा धरणी सविधि जगन्नाथ की उपासना कर उनमें लीन सी हो गई। अतः विद्वज्जन को सप्रयास वैष्णवत्व सिद्ध करना ही चाहिए।।९०।।

जो महात्म विष्णु भक्त विष्णु पूजन करने के निमित्त संलग्न रहा करते हैं, उनको इस लोक में नहीं रहना होता है,वे परमपद प्राप्त कर लेते हैं।।९१।।

जो बुद्धिमान् जन विधि के अनुरूप प्रबोधिनी नाम के इस द्वादशी को उपवास किया करते हैं, वे परम पद प्राप्त करने वाले हुआ करते हैं।।९२।।

वे जन यम, यमदूतों, यमदण्डी और नरक की यातनाओं का कभी भी साक्षात्कार नहीं किया करते हैं। मैंने यह सत्य वचन कहा है।।९३।।

मुझसे कहे गए इस यथार्थ वर्ण को आपने यथावत् सुना। हे महाभागे! तुमने जो कुछ जानना चाहा था, उसे मैंने तुमको बतलाया।।९४।।

स्वयंभुवा यथा प्रोक्तं गुह्यख्यानं महामुने। तत् ते सर्व समासेन व्याख्यातं धर्मवत्सल॥९५॥

।।इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे नवाधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२०९।।

दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

अथ नाचिकेता-ऋषिवार्त्तानन्तरस्वस्वस्थानगमनम्

नारद उवाच

साधु साधु महाराज सर्वधर्मविदांवर। त्वया तु कथिता दिव्या कथेयं धर्मसंहिता॥१॥
अतोऽहमपि सुप्रीतस्तव धर्मपथे स्थितः। तव वाक्यानि मृष्टानि प्रोक्तानि च श्रुतानि च॥२॥
त्वयाऽहं चैव राजेन्द्र पूजितश्च विशेषतः। गच्छामि त्वरितो लोकान् यत्र मे रमते मनः।
स्वस्ति तेऽस्तु महाराज अकम्पोभव सुव्रत॥३॥
एवमुक्त्वा ततो जातो नारदो मुनिसत्तमः। तेजसा द्योतयन् सर्वं गगनं भास्करो यथा।
विचचार दिवं रम्यां कामचारी महामुनिः॥४॥

हे धर्मवत्सल महामुने! स्वयम्भू ब्रह्मा जो इस गुह्य आख्यान को जिस तरह से कहा था, मैंने भी वैसे ही वे सब सारसंक्षेप में आपको कह सुनाया है।।९५।।

।।इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में पतिव्रता स्त्री धर्म निरूपण नामक अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ।।२०९।।

अध्याय-२१०

नचिकेता की वाणी सुनने के अनन्तर ऋषियों का अपने स्थान गमन

नारद ने कहा कि हे सर्वधर्म मर्मज्ञों में वरिष्ठ महाराज! आप धन्य हैं, धन्य हैं। इसीलिए आप के द्वारा इस धर्मयुक्त दिव्य कथा को कहा गया है।।१।।

इसलिए ही मैं भी अतिप्रसन्नतापूर्वक आपके धर्म मार्ग में स्थित हो गया हूँ। आपके कहे वचनों को मेरे द्वारा अक्षरशः सुना और आप विचार भी किया है।।२।।

हे राजेन्द्र! आपने विशिष्टता से मेरा स्वागत-सत्कार किया है, अब मैं तत्काल उन लोकों में जा रहा हूँ, जहाँ मेरा मन आनन्दित हुआ करता है। हे सुव्रत महाराज! आप का सदा कल्या हो और आप सदैव अकम्पित रहें।।३।।

इस प्रकार कहते हुए मुनि श्रेष्ठ नारद वहाँ से चले गये। फिर स्वेच्छा से घूमने-फिरने वाले नारद महामुनि सूर्य के समान आकाश को प्रकाशित करते हुए मनोहर स्वर्ग में भ्रमण करने लग गये।।४।।

गते तस्मिंस्तु सुचिरं स राजा धर्मवत्सलः। मां दृष्ट्वा सुमनो विप्रा वाक्यैश्चित्रैश्च वन्दयन्॥५॥
कृत्व पूजां च मे युक्तां प्रियमुक्त्वा च सुव्रत। विसर्जयामास विभुः सुप्रीतेनान्तरात्मना॥६॥
एतद्वः कथितं विप्रास्तस्य राज्ञः पुरोत्तमे। यथा दृष्टं श्रुतं चैव यथा चेहागतो ह्यहम्॥७॥

वैशम्पायन उवाच

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा हृष्टपुष्टास्तपोधनाः। साधु साधु इति प्रोक्ता विस्मयोत्फुल्ललोचनाः॥८॥
केचिद् वैखनसास्तत्र केचिदासन्निरासनाः। यायावरास्तथा चान्ये वानप्रस्थास्तथा परे॥९॥
शालीनाश्च तथा केचित् कापोतीं वृत्तिमास्थितः। तथाऽन्ये जगृहुर्वृत्तिं सर्वभूतदयां शुभाम्॥१०॥

शिलोञ्छाश्च तथैवान्ये काष्ठान्ताश्च महौजसः।
अपाकपाचिनः केचित् पाकिनश्च क्वचित् पुनः॥११॥
नानाविधिचराः केचित् केचिदात्मविनिर्जिताः।
स्थानमौनव्रताः केचित् तथान्ये जलशायिनः॥१२॥
तथोर्ध्वशायिकाश्चान्ये तथान्ये मृगचारिणः।
पञ्चाग्नयस्तथ केचित् केचित् पर्णफलाशिनः॥१३॥

अब्भक्षा वायुभक्षाश्च तथान्ये शाकभक्षिणः। अतोऽन्येऽति तथा तीव्रं तपश्च प्रतिपेदिरे।
तपसोऽन्यन्न चास्तीति चिन्तयित्वाा पुनः पुनः॥१४॥

हे विप्रो! फिर उन नारद जी के चले जाने पर धर्मवत्सल उन राजा ने दीर्घतक प्रसन्न मन से मुझे देखकर सुन्दर वाणी में मेरी वन्दना की।।५।।

हे सुव्रत विभो धर्मराज ने इस तरह मेरी यथोचित पूजा कर मधुर वचन और प्रात्र मन से कहते हुए मुझे भी विदा किया।।६।।

हे विप्रो! उन धर्मराज के उरुम पुर में मेरे द्वारा जिस प्रकार से देखा गया और सुना गया तथा जिस प्रकार से मैं यहाँ आया वे सब आप लोगों से कह सुनाया है।।७।।

वैशम्पायन ने कहा कि इस तरह उसकी बातों को सुनकर हृष्ट-पुष्ट और आश्चर्य से उत्फुल्ल नेत्रों वाले तपस्वियों 'साधु-साधु' कहा।।८।।

उनमें से कुछ वैखानस थे, कुछ निरासन थे, अन्य कुछ यायावर थे तथा अन्य कुछ जन वानप्रस्थ थे।।९।।

फिर उनमें से कुछ जन शाला में रहने वाले थै, कुछ जन कपोत की वृत्ति रखने वाले थे, कुछ जन सब जीवों पर दया करने वाले आदि शुभ वृत्ति वाले जन थे।।१०।।

उनमें भी कुछ जन शिलोञ्छवृत्ति करने वाले, कुछ जन अतिशय तपस्वी जन अपाकपाची और कुछ कभी-कभी पाक करने वाले जन थे।।११।।

फिर कुछ जन विविध प्रकार के व्यवहार करने वाले तथा कुछ जन आत्मजयी थे। कुछ जन मौनव्रत धारण कर किसी स्थान पर स्थित रहने वाले थे तथा अन्य कुछ जन जलशायी भी थे। वैसे उनमें कुछ जन ऊर्ध्वशायी, कुछ जन मृगचारी, कुछ जन पञ्चाग्नि सेवन करने वाले तथा कुछ जन पत्र और फल खाने वाले थे।।१२-१३।।

उनमें कुछ जन मात्र जल पीकर रहने वाले, कुछ वायु भक्षण करने वाले तथा अन्य कुछ जन शाक भक्षण

जन्मनो मरणाच्चैव केचिद् धीरा महर्षयः। त्यक्त्वा धर्ममधर्मं च शाश्वते नियमे स्थिताः॥१५॥

वैशम्पायन उवाच

श्रुत्वा चैव कथामेतामृषयो दिव्यवर्चसः। जगृहुर्नियमांस्तांस्ताञ्छुभहेतोरनिन्दिताः॥१६॥
नाचिकेतोऽपि धर्मात्मा पुत्रं दृष्ट्वा तपोधनम्। प्रीत्या परमया युक्तो धर्ममेवान्वचिन्तयत्॥१७॥
वेदाथममितं विष्णुं शुद्धं चिन्मयमीश्वरम्। चिन्तयामास धर्मात्मा तपः परममास्थितः॥१८॥
इदं तु परमाख्यानं भवगद्भक्तिकारकम्। शृणुयाच्छ्रावयेद् वापि सर्वकामानवाप्नुयात्॥१९॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२१०॥
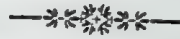
करने वाले थे। इन सबके अलावे दूसरे जन तप से बढ़कर कुछ भी दूसरा नहीं है, इस प्रकार सोच कर तीव्र तप करने वाले थे।।१४।।

कुछ धैर्य्य वाले महर्षि जन्म और मरण से भय के कारण धर्म और अधर्म का विचार त्याग कर शाश्वत नियम का पालन करने वाले थे।।१५।।

वैशम्पायन ने कहा कि ये सब कथा सुन कर दिव्य तेज युक्त अनिन्दित ऋषियों ने कल्याण हेतु उन-उन विभिन्न नियमों को ग्रहण कर लिया।।१६।।

धर्मात्मा नाचिकेत के पिता भी तपोधन पुत्र को देखकर परम प्रीति सहित धर्म का ही चिन्तन करने में लग गये।।१७।।

धर्मातमा नाचिकेत परम तप करते हुए वेदार्थ स्वरूप अपरिमित शुद्ध विष्णु का चिन्तान करने में व्यस्त हो गये।।१८।।

इस प्रकार जो जन भगवद् भक्ति उत्पन्न करने वाले इस श्रेष्ठ आख्यान को सुनता या सुनाता है, वे सभी कामनाओं को पाने वाला हुआ करते हैं।।१९।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में नचिकेता की वाणी सुनने के अनन्तर ऋषियों का अपने स्थान गमन नामक दो सौ दसवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमामूलग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायण-कुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥२१०॥

एकादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

अथ ब्रह्मा-सनत्कुमारसम्वाद

सूत उवाच

पुरा देवैर्विनिहते संग्रामे तारकामये। अत्युच्छ्रिते प्रतिबले दानवानां बले तथा॥१॥
लब्धपदे सहस्राक्षे क्षीणशत्रौ गतास्पदे। सम्यक् प्रसूतिमापन्ने त्रैलोक्ये सचराचरे॥२॥
शृङ्गेऽति चाचलेन्द्रस्य मेरोः सर्वहिरण्मये। मणिविद्रुमचित्रो च विपुले पङ्कजासने॥३॥
सुखोपविष्टमेकाग्रं स्थिरचित्तं कृतक्षणम्। निवृत्तकार्यमुदितं सूर्यवैश्वानरद्युतिम्॥४॥
प्रणम्य मूर्ध्ना चरणावुपगम्य समाहितः। ब्रह्माणं परिपप्रच्छ सनत्कुमार एव हि॥५॥

सनत्कुमार उवाच

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि पुराणमृषिसम्मतम्। गोकर्णं तु महाभाग त्वत्तस्तत्त्वविदांवर॥६॥
कथमुत्तरगोकर्णं दक्षिणं च कथं विभो। शृङ्गेश्वरस्य परमं कथं सम्यक् प्रतिष्ठितम्॥७॥
क्षेत्रास्य किं प्रमाणं स्यात् किं च तीर्थफलं स्मृतम्। कथं पशुपतिस्तत्र भगवान् मृगरूपधृक्॥८॥
सर्वैस्त्वत्प्रमुखैर्देवैः कथमासादितःपुनः। मृगरूपं कथं चास्य शरीरं क्व प्रतिष्ठितम्॥९॥
यथा यत्र च यस्तत्र विधिसम्यगनुष्ठितम्। तत्सर्वं निखिलेनाशु ब्रूहि मे वाग्विदां वर॥१०॥

अध्याय-२११

ब्रह्मा और सनत्कुमार संवाद में गोकर्णेश्वर माहात्म्य नन्दिकेश्वरोपाख्यान

श्रीसूत जी ने कहा कि पुरातन समय में देवताओं द्वारा अत्यन्त बलवान् तारकासुर और दानवों की सेना के संग्राम में मारे जाने के बाद सहस्रनेत्र इन्द्र को अपना स्थान पर लेने, क्षीण शत्रु के स्थान पतित हो जाने और सचराचर त्रिलोक के अच्छी तहर सृष्टि क्रम पर लेने परसम्पूर्ण स्वर्णमय तथा मणि और विुम से सुशोभित पर्वत श्रेष्ठ मेरु ने अत्यन्त ऊँचे शृङ्ग पर विद्यमान विस्तृत पद्मासन पर सुख के साथ स्थित एकनिष्ठ चिरु वाले, स्थिर मन, स्मरणधान, कार्यों से निश्चितन्त और उदयकालीन सूर्य तथा अग्नि के समान प्रकाशमान् ब्रह्मा के समीप जाकर उनके चरणों में शिर से प्रणाम करने के बाद एकाग्र मन सनत्कुमार ने पूछा।।१-५।।

सनत्कुमार ने पूछा कि हे तत्त्वविदों में श्रेष्ठ, महाभाग, भगवन् ! मैं आपसे ऋषि सममत प्राचीन गोकर्ण का माहात्म्य सुनना चाह रहा हूँ।।६।।

हे विभो! उत्तर और दक्षिण गोकर्ण तथा श्रेष्ठ शृङ्गवेर कैसे अच्छी तरह प्रतिष्ठित है।।७।।

फिर उस क्षेत्र का क्या प्रमाण है? उस तीर्थ का फल क्या हुआ करते हैं? मृगरूपधारी भगवान् पशुपति वहाँ कैसे सुप्रतिष्ठित है?।।८।।

आपके सहित समस्त देवताओं ने पुनः उनके मृगरूपी शरीर को पाया? वे शरीर कहाँ सुप्रतिष्ठित है।।९।।

हे श्रेष्ठ वाग्विद् ! उस समय जिस प्रकार जिस स्थान पर और जिस विधि से अनुष्ठान किया गया, वे सब मुझे तत्क्षण बतलाने की कृपा करें।।१०।।

एवमुक्तः स भगवान् ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः। उवाच तस्मै पुत्राय गुह्यमेतत् पुरातनम्॥११॥

ब्रह्मोवाच

शृणु वत्स महाभग यथा तत्त्वं ब्रवीमि ते। पुराणमेतद् ब्रह्मर्षे सरहस्यं यथाश्रुतम्॥१२॥
अस्ति भूधरराजस्य मन्दरस्योत्तरे शुचौ। मुञ्जवान् नाम शिखरी नन्दनोपवनद्युतिः॥१३॥
वज्रस्फटिकपाषाणप्रवालाङ्कुरशर्करः। नीलामलशिलावर्णगुहानिर्झरकन्दरः॥१४॥
विचित्रकुसुमोपेतैर्लतामञ्जरिधारिभिः। रेजे यः प्रांशुभिः शृङ्गैरुल्लिखद्भिरिवाम्बरम्॥१५॥
दर्यस्तत्राधिकं रेजुर्नानाधातुपरिस्त्रवैः। शिलीन्ध्रकुसुमोपेताश्चित्रिता इव सर्वतः॥१६॥
तत्र केतकिखण्डाश्च कुन्दखण्डाश्च पुष्पिताः। उन्मीलिता इवाभान्ति धातकीवनराजिभिः॥१७॥
भिन्नेन्द्रनीलविमलैर्धौतैः प्रस्त्रवणाम्बुभिः। चित्रैः कुसुमसंछन्नैः शिलाप्रस्तरविस्तरैः॥१८॥
शक्रचापनिभैः रम्यैः कुबेरभवनद्युतिः। तस्मिन्नगवरे हृष्टा विहरन्त्यमरस्त्रियः॥१९॥
कूजद्भिः शिखिभिर्मत्तैः नृत्यद्भिश्चाप्सरोगणैः। प्रमदैश्च सदा हृष्टैः सेवितं तन्नगोत्तमम्॥२०॥
कल्हारकुसुमोपेतंहंससारससेवितम्। प्रसन्नसलिलाकीर्णं सरैरुत्फुल्लपङ्कजैः॥२१॥

इस प्रकार से कहे जाने पर ब्रह्मज्ञों में श्रेष्ठ भगवान् ब्रह्मदेव ने अपने उस पुत्र सनत्कुमार को इस गुह्य प्राचीन कथा को कहा।।११।।

ब्रह्मा ने कहा कि हे महाभाग् पुत्र! हे ब्रह्मर्षि!! मेरे द्वारा भी जैसा सुना गया है, उसे वैसे ही इस प्राचीन कथा को रहस्य सहित तुमको कहने जा रहा हूँ।।१२।।

पर्वतराज मन्दर के उत्तर की दिशा की ओर एक पवित्र स्थान पर नन्दन वन के समान प्रकाशमान् मुञ्जवान् नाम का एक पर्वत स्थित है।।१३।।

उसी पर हीरा और स्फटिक के पत्थर तथा प्रवाल के अंकुर समान कंकड़ियाँ वहीं पर नीलवर्ण की स्वच्छ शिलाओं से युक्त गुफा और झरने वाला कन्दरायें हैं।।१४।।

वह विचित्र पुष्पों वाला और लता सहित मञ्जरियों को धारण करने वाले गगनस्पर्शी ऊँचे शृङ्गों से विभूषित था।।१५।।

फिर उसकी घाटियाँ कई प्रकार की धातुओं की उपलब्धियों से अत्यन्त ही विभूषित थी। वे हर जगह शिलीन्ध्र पुष्पों से सम्पन्न और शोभायमान थी।।१६।।

वहाँ केतकी और कुन्दपुष्पों के समूह पुष्पों से सम्पन्न थे। उस घातकी के वन झुरमुटों से वे उन्मीलित की तरह विभूषित हो रही थी।।१७।।

भिन्न प्रकार के इन्द्रनीलमणि के समान झरने के जल से प्रक्षालित तथा चित्रविचित्र पुष्पों से आच्छादित विस्तृत शिला पत्थरों से सम्पन्न इन्द्रधनुष के समान रमणीय शिलाओं से युक्त कुबेर के भवन की तरह विभूषित उस श्रेष्ठ पर्वत पर प्रसन्न मन वाली देवताओं की स्त्रियाँ रमण किया करती हैं।।१८-१९।।

वह उरुम पर्वत कूजन कर रहे मतवाले मोरों और अति मतवाले हर्षित नृत्य कर रही अप्सराओं के गण से सर्वदा सेवित रहा करते हैं।।२०।।

फिर वह खिले हुए कमलपुष्पों से सम्पन्न और हंस व सारसों से सेवित स्वच्छ जल से पूर्ण सरोवरों से सुशोभित और कल्हार पुष्प से अलंकृत है।।२१।।

गतयूथानुकीर्णाभिर्जुष्टाभिर्मृगपक्षिभिः। सेविताभिर्मुनिगणैः सरिद्भिरुपशोभितम्॥२२॥
किन्नरोद्गीतकुहरे परपुष्टनिनादिते। विद्याधरशताकीर्णे देवगन्धर्वसेविते॥२३॥
धारापातैश्च तोयानां विस्फुलिङ्गैः सहस्रशः। प्रज्वालितातुले शृङ्गे रम्ये हरितशाद्वले॥२४॥
सर्वर्तुकवनोद्याने पुष्पाकरसुशोभिते। यक्षकिंपुरुषावासे गुह्यकानामथाश्रये॥२५॥
तस्मिन् गिरिवरे रम्ये महोरगगणायुते। धर्मारण्ये तपःक्षेत्रे मुनिसिद्धनिषेविते॥२६॥
वरदस्तत्र भगवान् स्थाणुर्नाम महेश्वरः। सर्वामरगुरुर्देवो नित्यं सन्निहितः प्रभुः॥२७॥
भक्तानुकम्पी स श्रीमान् गिरीन्द्रसुतया सह। अध्यास्ते स गिरविरे पार्षदैश्च गुहेन च॥२८॥
विमानयायिनः सर्वे तं देवमजमव्ययम्। आजग्मुः सेवितुं देवा वरेण्यं वरलिप्सया।
अन्ये देवनिकायाश्च सेवितुं प्रयतन्ति तम्॥२९॥
ततस्त्रेतायुगे काले नन्दी नाम महामुनिः। आरिराधयिषुः शर्वं तपस्तेपे महत् तदा॥३०॥
ग्रीष्मे पञ्चतपास्तिष्ठेच्छिशिरे सलिलाश्रये। ऊर्ध्वबाहुनिरालम्बस्तोयाऽनिलहुताशनैः॥३१॥
व्रतैश्च विविधैरुग्रस्तपोभिर्नियमैस्तथा। जप्यपुष्पोपहारैश्च काले काले मुनिः सदा॥३२॥

फिर वह हस्तियों के गणों से सम्पन्न, मृगों और पक्षियों से सुसेवित तथा मुनिगणों से भी सेवित नदियों से शोभायमान हो रहा था।।२२।।

फिर किन्नरों के गान से युक्त, कोयल के कूजन से प्रतिध्वनित सौ ओं विद्याधरों से सम्पन्न और देवताओं तथा गन्धर्वों से सेवित कन्दराओं से सम्पन्न रमणीय और हरी घास वाला वह विशाल शृङ्ग जल धारा प्रवाह उत्पन्न हुए स्फुर्लिङ्गों से प्रकाशित हुआ करता रहता था।।२३-२४।।

वहाँ पुष्प समूहों से विभूषित समस्त ऋतुओं के अनुरूप वन और उद्यान थे। वह यक्षों, किन्नरों, और गुह्यकों का निवास स्थान है।।२५।।

फिर व मुनियों, सिद्धों आदि से सुसेवित, विशाल सर्पों के गणों से युक्त उस रमणीय श्रेष्ठ पर्वत पर तपः क्षेत्र स्वरूप धर्मारण्य स्थित है।।२६।।

वहीं स्थाणु नाम का वरदायक समस्त देवों में श्रेष्ठ प्रभु महेश्वर नित्य रहा करते हैं।।२७।।

अपने भक्तजनों पर अनुकम्पा करने वाले वे श्रीमान् पर्वतराज की कन्या, पार्षदों और गुह नाम के अपने गणों के सहित उस उत्तम पर्वत पर रहा करते हैं।।२८।।

फिर विमान से यात्रा करने वाले सब देवगण और अन्यान्य देवों का गण भी वर पाने की इच्छा से उन अजन्मा अव्यय वरणीय देव की सेवा करने हेतु आकर प्रयत्न करते रहते हैं।।२९।।

फिर त्रेतायुग के समय नन्दी नाम के महामुनि ने श्री शंकर जी की उपासना करने की कामना से महान् तप किया।।३०।।

वे ग्रीष्म ऋतु में पञ्चाग्नि सेवन करते हुए तप किया करते थे और शीतकाल में जल में ही स्थित रहा करते थे। वे अपने भुजाओं को उठाये हुए विना सहारे के खड़े रहते थे। फिर वे जलवायु और अग्नि द्वारासमस्त अपनाकार्य सम्पादित किया करते थे।।३१।।

वे मुनि सदा अनेक प्रकार केव्रत,उग्रतप और नियमों का पालन किया करते थे। फिर वे समय-समय पर जपसहित पुष्पोपहार अर्पित किया करते थे।।३२।।

शंकरं विधिवद् भक्त्या सोऽर्चयद् द्विजपुंगवः। उग्रेण तपसात्मानं क्षपयामास सुव्रतः॥३३॥
काष्ठभूतो यदा विप्रः कृशो धमनिसंततः। क्षामोऽभूत् कृष्णवर्णश्च ततः प्रीतश्च शंकरः॥३४॥
सम्यगाराधितो भक्त्या नियमेन च तोषितः। तदात्मदर्शनं प्रादात् स मुनेर्वृषभध्वजः॥३५॥
उक्तवांश्च मुनिं शर्वश्चक्षुर्दिव्यं ददामि ते।
अदृश्यं पश्य मे रूपं वत्स प्रीतोऽस्मि ते विभो॥३६॥
यं पश्यन्तीह विद्वांसो रूपमप्रतिमौजसम्। सहस्रसूर्यकिरणं ज्वालामालिनमूर्जितम्॥३७॥
बालार्कमण्डलाकारं प्रभामण्डलमण्डितम्। जटाजूटातटाश्लिष्टं चन्द्रालंकृतशेखरम्॥३८॥
जगदालोकनं श्रीमत्प्रदीप्तत्रयलोचनम्। प्रादेशमात्रं रुचिरं शतशीर्षं शतोदरम्॥३९॥
सहस्रबाहुचरणं सहस्राक्षिशिरोमुखम्। अणीयमामणीयांसं बृहतां तु बृहत्तरम्॥४०॥
अक्षमालापवित्राङ्गं कमण्डलुकरोद्यतम्। सिंहचर्माम्बरधरं वलयज्ञोपवीतिनम्॥४१॥
दृष्ट्वा देवं महादेवं हृष्टरोमा महातपाः। प्राञ्जलिः प्रणतो भूत्वा गृणन् ब्रह्म सनातनम्॥४२॥
नमो धात्रे विधात्रे च शम्भवे वरदाय च। जगद्भोक्त्रे त्रिनेत्राय शंकराय शिवाय च॥४३॥
भवाय भवगोप्त्रे च मुनये कृत्तिवाससे। नीलकण्ठाय भीमाय भूतभव्यभवाय च॥४४॥

सुन्दर व्रत धारण करने वाले उस श्रेष्ठ ब्राह्मण ने सविधि भक्तिभाव से शंकर का पूजन किया और उग्र तपस्या के बल से स्वयं को क्षीण कर डाला।।३३।।

जब वे ब्राह्मण काष्ठ के समान दुर्बल धमनियों से पूर्ण कृष्णवर्ण एवं क्षीण हो चले, फिर श्रीशंकर उने ऊपर प्रसन्न हुए।।३४।।

उसकी भक्ति को अच्छी तरह पूजित और नियम से संतृप्तवृषध्वज ने उस मुनि को अपना दर्शन प्रदान किया।।३५।।

श्री शंकर ने उस मुनि से कहा कि 'मैं तुमको नेत्र देता हूँ'। हे विभो वत्स! मैं तुम पर अत्यन्त प्रसन्न हूँ। मेरे इस अदृश्य स्वरूप को जानो।।३६।।

चूँकि विद्वान् मुनि जन अत्यन्त ओजपूर्ण और हजारों सूर्य की किरणों के समूह वश अत्यन्त ऊर्जावान् जिस स्वरूप को देखा करते हैं।।३७।।

यह बालसूर्य की तरह मण्डलाकार प्राभामण्डल से मण्डित, जटाजूट से सम्पन्न और चन्द्र से विभूषित मस्तक वाले, जगत् को समावलोकित करने वाले, शोभायुक्त, तीन प्रदीप्त नेत्रों वाले प्रादेशमात्र सुन्दर सौओं शिर और उदर वाले, हजारों बाहु और चरणों वाले, सहस्रनेत्रों शिर-मुख वाले, छोटे तथा बड़े से बड़े रुद्राक्ष की माला से पवित्र अंगों वाले, हाथ में कमण्डलु लिये हुए, सिंह चर्म का वस्त्र धारण करने वाले और सर्प स्वरूप यज्ञोपवीत धारण करने वाले देव देव महादेव को देखकर महातपस्वी नन्दी रोमाञ्चित हो चले। फिर हाथ जोड़कर प्रणाम कर उस सनातन ब्रह्म की स्तुति करने लग गये।।३८-४२।।

धाता, विधाता, वरदायक शम्भु को प्रणाम है। जनद् के भोक्ता त्रिनेत्र शंकर शिव को प्रणाम है।।४३।।

संसार के रक्षक, भवस्वरूप कृत्तिवास मुनि स्वरूप को प्रणाम है। भूतभव्य स्वरूप भीम नीलकण्ठ को प्रणाम है।।४४।।

लम्बस्नुवे करालाय हरिनेत्राय मीढुषे। कपर्दिने विशालाय मुञ्जकेशाय धीमते॥४५॥
शूलिने पशुपतये विभवे स्थाणवे तथा। गणानां पतये स्त्रष्ट्रे संक्षेप्त्रे भीषणाय च॥४६॥
सौम्याय सौम्यरूपाय भीमाय त्र्यम्बकाय च। प्रेतवासनिवासाय रुद्राय वरदाय च॥४७॥
कपालमालिने तस्मै हरिश्मश्रुधराय च। भक्तप्रियाय सततं नमोऽस्तु परमात्मने॥४८॥
एवं नन्दी भवं स्तुत्वा नमस्कृत्य च भक्तितः। प्रणम्य शिरसा देवं पुनः पुनरवन्दत॥४९॥
ततस्तु भगवान् प्रीतस्तस्मै विप्राय शंकरः। उवाच च वचःसाक्षात् तमृषिं वरदः प्रभुः॥५०॥
वरान् वृणीष्व विप्रेन्द्र यानिच्छसि महामुने। तांस्ते सर्वान् प्रयच्छामि दुर्लभानपि मारिष॥५१॥
प्रभुत्वमरत्वं वा शक्रत्वमिति वा प्रभो। ब्रह्मत्वं लोकपालत्वमपवर्गमथापि वा॥५२॥
अथाष्टगुणमैश्वर्यं गाणपत्यमथापि वा। यदिच्छसि मुने शीघ्रं तद् ब्रूहि मुनिपुंगव॥५३॥
इत्युक्तोऽसौ भगवता शर्वेण मुनिसत्तमः। प्रोवाच वरदं देवं प्रहृष्टेनान्तरात्मना॥५४॥
न प्रभुत्वं न देवत्वं नेन्द्रत्वमपि वा प्रभो। ब्रह्मत्वं लोकपालत्वं नापवर्गं वरप्रद॥५५॥
नैवाष्टगुणमैश्वर्यं गाणपत्यं न च प्रभो। स्पृहये देवदेवेश प्रसन्नेत्वयि शंकर॥५६॥

लम्बस्नु, कराल, हरिनेत्र, मोढुष् को प्रणाम है। बुद्धिमान् , विशाल, मुञ्जकेश, कपर्दी को प्रणाम है।।४५।।

त्रिशूलधारी, पशुपति, विभु, स्थाणु को प्रणाम है। गणों के पति, स्त्रष्टा, संक्षेप्ता, और भीषण रुद्र को प्रणाम है।।४६।।

सौम्य, सौम्य स्वरूप, भीम, त्र्यम्बक, प्रेतनिवास, रुद्र और वरदायक शंकर को प्रणाम है।।४७।।

उन कपाल की माला को धारण करने वाले, हरित श्मश्रु धारण करने वाले, भक्तजन प्रिय, परमात्मा को मेरा सतत् प्रणाम है।।४८।।

इस प्रकार से नन्दी ने स्तुति कर भक्ति भावना से शंकर को प्रणाम किया। शिर से महादेव को प्रणाम कर उन्होंने बार-बार उनकी वन्दना की।।४९।।

फिर भगवान् शंकर उस विप्र पर प्रसन्न हुए। और वरदायक प्रभु ने प्रत्यक्ष होकर उस ऋषि से यह वचन कहा।।५०।।

हे ब्राह्मण श्रेष्ठ महामुने! तुम जो चाहते हो, उन वरों को माँग लो। तुमको उन सब दुर्लभ वरों को प्रदान करूँगा। संकोच नहीं करना चाहिए।।५१।।

हे प्रभो! प्रभुत्व, अमरत्व, इन्द्रत्व, ब्रह्मत्व, लोकपालत्व अथवा मोक्ष या हे मुनिश्रेष्ठ! यदि तुम अष्टगुणों वाला ऐश्वर्य या गाणपत्य की कामना करते हो, तो तत्काल कहो।।५२-५३।।

फिर भगवान् शिव ने मुनि श्रेष्ठ से इस तरह कहा। फिर उस मुनि ने प्रसन्न मन से वरदायक महादेव से इस प्रकार कहा।।५४।।

हे वरदाता प्रभो! मैं प्रभुत्व, देवत्व, इन्द्रत्व, ब्रह्मत्व, लोकपालत्व या अपवर्ग आदि नहीं चाह रहा हूँ।।५५।।

हे प्रभो देव देव शंकर! आपके प्रसन्न होने पर मैं आठ गुणों वाला ऐश्वर्य यागाणपत्य भी नहीं चाह रहा हूँ।।५६।।

यदि प्रीतोऽसि भगवन्ननुक्रोशतया मम। अनुग्राह्यो ह्यं देव त्वयाऽवश्यं सुराधिप॥५७॥
यथाऽन्ये न भवेद् भक्तिस्त्वयि नित्यं महेश्वर। तथाऽहं भक्तिमिच्छामि सर्वभूताशये त्वयि॥५८॥
यथा च न भवेद् विघ्नं तपस्यभिरतस्य मे। कोटिजप्येन रुद्राणामाराधनपरस्य च॥५९॥
एतत् तु वचनं श्रुत्वा नन्दिनः स महेश्वरः। प्रहस्योवाच तं प्रीत्या ततो मधुरया गिरा॥६०॥
प्रीतोऽस्म्युत्तिष्ठ विप्रर्षे तपसानेन सुव्रत। आराधितश्च भक्त्याहं त्वया शुद्धेन चेतसा॥६१॥
पर्याप्तं ते महाभाग तपः कर्त्तुं तपोधन। निवर्त्तयति मां वत्स मत्पादाराधने रतः॥६२॥
जप्ता ते त्रिगुणा कोटी रुद्राणां पुरतो मम। पूर्णं वर्षसहस्रं च तपस्तीव्रं महामुने॥६३॥
न कृतं यत्पुरा देवैर्नासुरैर्त्रृषिभिर्न च। कृतं सुमहदाश्चर्यं त्वया कर्म सुदुष्करम्।
संक्षोभितमिदं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम्॥६४॥
आगमिष्यन्ति ते द्रष्टुं देवाः सर्वे सवासवाः। अक्षयश्चाव्ययश्च त्वमतर्क्यः ससुरासुरैः॥६५॥
दिव्यतेजोवपुः श्रीमान् दिव्याभरणभूषितः। मत्तुल्यो मत्प्रभावश्च त्वमेकः ससुरासुरैः॥६६॥
मद्रूपधारी मत्तेजास्त्र्यक्षः सर्वगुणोत्तमः। भविष्यसि न सन्देहो देवदानवपूजितः।
अनेनैव शरीरेण जरामरणवर्जितः॥६७॥

वस्तुतः यदि आप मेरे ऊपर अनुग्रह करना चाहते हैं, मुझ पर प्रसन्न हैं, तो हे सुराधिप देव! आप अवश्य मुझ पर इस प्रकार अनुग्रह करें जिससे हे महेश्वर! आप में मेरी भक्ति नित्य बनी रहे। दूसरे किसी में मेरी भक्ति कभी न हो। हे सर्वभूताशय! मैं आप में ऐसी भक्ति ही चाहता हूँ।।५७-५८।।

जिससे मेरी तपस्या करने तथा रुद्र सम्बन्धी मन्त्रों के कोटि जप से उपासना करने में विघ्न न हो।।५९।।

इस प्रकार से नन्दी की बातों को सुनकर उन महेश्वर ने हँसकर प्रेमपूर्वक उससे मीठे स्वर में कहा।।६०।।

हे सुन्दर व्रत धारण करने वाले ब्रह्मर्षि! इस तपस्या से मैं प्रसन्न हूँ। तुम उठो। तुमने शुद्ध चित्त से मेरी उपासना की है।।६१।।

हे तप स्वरूप धन वाले महाभाग! आप का तप करना अन्यतम है। हे वत्स! तुम्हारी तपस्या मुझे अपने चरणों की उपासना हेतु तुमसे और अधिक तप कराने से रोक रही है।।६२।।

हे महामुनि! तुमने मेरे समक्ष रुद्र मन्त्रों का त्रिगुणित जप किया और सम्पूर्ण एक हजारवर्ष तक तीव्र तप किया है।।६३।।

तुम्हारे द्वारा अत्यन्त महान् आश्चर्यपूर्ण दुष्कर कर्म किया गया है, जिसे पूर्व में किसी देवों, असुरों या ऋषियों ने भी कभी नहीं किया था। तुम्हारे इतने किए कर्म से ही सचराचर त्रैलोक्य संक्षुब्ध हो चुका है।।६४।।

देखो! इन्द्र समेत सब देवगण तुम्हारा दर्शन करने आ सकेंगे। चूँकि तुम देवों असुरों से तुम अतर्क्य अक्षय और अव्यय हो।।६५।।

दिव्य आभूषणों से विभूषित दिव्य तेज से युक्त देह वाले श्रीमान् तुम मेरे समान और मेरे प्रभाव से सम्पन्न अद्वितीय हो। तुम देवताओं और असुरों से पूजनीय हो।।६६।।

इस प्रकार मेरे रूप और तेज से सम्पन्न तुम निःसंशय समस्त गुणों से युक्त त्रिनेत्र के रूप में देवों और असुरों से पूजित होओगे। इसी देह से तुम वार्धक्य और मरण से मुक्त हो सकोगे।।६७।।

दुष्प्राप्येयमवाप्ता ते देवैर्गाणेश्वरी गतिः। पार्षदानां वरिष्ठस्त्वं मामकानां द्विजोत्तम।
नन्दीश्वर इति ख्यातो भविष्यसि न संशयः॥६८॥
प्राप्तमष्टगुणं सत्यमैश्वर्यं ते तपोधन। द्वितीयां मे मनुं त्वां तु नमस्यन्ति च देवताः॥६९॥
अद्यप्रभृति देवाग्र्य देवकार्येषु सर्वतः। त्वं प्रभुर्भविता लोके मत्प्रसादान्मुनीश्वर॥७०॥
त्वामेवाभ्यर्चयिष्यन्ति सर्वभूतानि सर्वतः। मत्तः समभिवाञ्छन्तः प्रसादं पार्षदाधिपः॥७१॥
वरान् वरार्थिनां दाता विधाता जगतः सदा। भविष्यसि च धर्मज्ञ भीतानामभयप्रदः॥७२॥
यस्त्वां द्वेष्टि स मां द्वेष्टि यस्त्वामनु स मामनु। नावयोरन्तरं किञ्चिदम्बरानिलयोरिव॥७३॥
द्वारे तु दक्षिणे नित्यं त्वया स्थेयं गणाधिपः। वामे तु विभुना चापि महाकालेन सर्वदा॥७४॥
प्रतीहारो भवानद्य सर्वदा त्रिदशोत्तम। शिरो मे रक्षतु भवान् महाकालेऽपि मे गणः॥७५॥
न वज्रेण न चक्रेण न दण्डेन न चाग्निना। कश्चित् कर्त्तुं तवाबाधां शक्तो वै भुवनत्रये॥७६॥
देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः। त्वामेव संश्रयिष्यन्ति मद्भक्ताः पुरुषाश्च ये॥७७॥
त्वयि तुष्टे ह्यहं तुष्टः कुपिते कुपितस्त्वहम्। त्वत्तः प्रियतरो नास्ति ममान्यो द्विजपुङ्गव॥७८॥

वैसे तो तुमने देवों को अप्राप्त गाणेश्वरी गति पायी है। हे द्विजोत्तम! तुम निःसन्देह मेरे पार्षदों में श्रेष्ठ नन्दीश्वर के नाम से सुख्यात हो सकोगे।।६८।।

हे तपोधन! तुमको अष्टगुणों वाले ऐश्वर्य और सत्त्व सब प्राप्त होगा। देवता भी मेरे इस द्वितीय शरीर स्वरूप तुम्हें प्रणाम किया करेंगे।।६९।।

फिर आज से देवता विषयक कार्यों में तुम देवों में भी अग्रणी हो सकोगे। हे मुनीश्वर! मेरी कृपा से तुम संसार के स्वामी होओगे।।७०।।

हे पार्षदाधिप! मेरी कृपा की कामना वाले समस्त जीव सर्वत्र तुम्हारी ही आराधना किया करेंगे।।७१।।

हे धर्मज्ञ! तुम वर के आकांक्षी जनों को सदा वर प्रदान करने वाले, जगत् के विधाता और भयभीत जनों को अभय प्रदान करने वाले होओगे।।७२।।

जो जन तुमसे द्वेष करेगा, वे मुझसे द्वेष करने वाले होंगे। फिर जो जन तुम्हारे अनुकूल रहा करेंगे वे मेरे भी अनुकूल हो सकेगा। आकाश और वायु केसमान हम दोनों में कोई अन्तर या भेद नहीं हो सकेगा।।७३।।

हे गणधिप! तुम नित्य ही दक्षिण द्वार पर रहना और सर्वव्यापी महाकाल सर्वदा वामद्वार पर रहा करेंगे।।७४।।

हे देवश्रेष्ठ! आज से तुम सदैव हेतु मेरा द्वारपाल होओगे। तुम और मेरे गण महाकाल भी मेरे शिर की रक्षा किया करेंगे।।७५।।

त्रिलोक में कोई वज्र, चक्र, दण्ड, अग्नि आदि से भी तुमको बाधा पहुँचाने में सक्षम नहीं हो सकेगा।।७६।।

देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सर्प और जो जन मेरे भक्त हो सकेंगे, वे तुम्हारा ही आश्रय ग्रहण करेंगे।।७७।।

तुम्हारे सन्तुष्ट होने पर मैं सन्तुष्ट हो सकूँगा और तुम्हारे कुपित होने पर मैं भी कुपित हो सकूँगा। हे द्विजश्रेष्ठ! दूसरा कोई तुमसे अधिक मेरा प्रिय नहीं हो सकेगा।।७८।।

एवं तस्य वरान् दत्त्वा प्रीतः स्वयमुपापतिः। उवाच भूयः स्पष्टेन स्वरेणाम्बरचारिणा॥७९॥
आगतान् विद्धि सर्वान् वै त्रिदशान् समरुद्गणान्। दिदृक्षया भद्रं ते कृतकृत्यश्च साम्प्रतम्॥८०॥
यदीरितं मया वत्स वरान् प्रति वचस्त्वयि। प्रविष्टं न श्रुतिपथं दिवि सर्वदिवौकसाम्॥८१॥
नारायणं पुरस्कृत्य सेन्द्रास्ते समरुद्गणाः। ममार्थे चागमिष्यन्ति वरार्थं तपसाऽमराः॥८२॥
यक्षविद्याधरगणाः सिद्धगन्धर्वपन्नगाः। मुनयश्च महात्मानस्तपोलब्धाः सहस्रशः॥८३॥
ते बुद्ध्वा त्वद्गतामृद्धिं प्रतप्ताः भृशमीर्षया। तपांसि विविधान्यत्र व्रतानिनियमानि च॥८४॥
चर्तुं समभिवाञ्छन्ति सदाभ्यासे वरार्थिनः। वरदं मामभिज्ञाय गिरौ मौञ्जवति स्थितम्॥८५॥
अत्र ते यावदागम्य न मां पश्यन्ति मानवाः। तावदेव इतः शीघ्रं गमिष्यामि महामुने॥८६॥
अद्य ते तु मया सर्वे देवा ब्रह्मपुरोगमाः। द्रष्टव्याश्चानुमेयाश्च मत्तोऽनुग्रहकाङ्क्षिणः॥८७॥
अभिप्रायं च सर्वेषां जानामि द्विजसत्तम। अनुगृह्य वरैस्तैश्च तत्रैवान्तरधीयत॥८८॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे एकादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२११॥

इस प्रकार उसको वर प्रदान करने के उपरान्त प्रसन्न उमापति ने स्वयं स्पष्ट आकाशमागी स्वर में कहा॥७९॥

तुमको देखने की कामना से मरुद्गण सहित समस्त देवों को आया हुआ, जानो। तुम्हारा कल्याण हो, अब तुम कृतकृत्य हो चुके हो॥८०॥

हे वत्स! तुम्हारे प्रति मैंने वरों के विषय में जो कुछ कहा है, वह स्वर्ग में स्थित समस्त देवगण को कर्णगोचर नहीं हुआ है। श्री नारायण को आगे कर इन्द्र और मरुद्गण सहित समस्त देवता तपस्या द्वारा वर हेतु मेरे पास आएंगे॥८१-८२॥

यक्ष और विद्याधर के समूह, सिद्ध, गन्धर्व, सर्प तथा महात्मा, जो तपस्वी मुनि हैं, वे सहस्रों तुम्हें प्राप्त हुए ऐश्वर्य को जानकर ईर्ष्या से अत्यन्त मोहित हो रहे हैं। वे यहाँ अनेक प्रकार के तप, व्रत, नियमों आदि का पालन करना चाहते हैं॥८३॥

वे सब मौञ्जवान् पर्वत पर मुझ वरदाता को स्थित जानकर सदा मेरे समीप रहते हुए वर की कामना से तप आदि करने की इच्छा रखते हैं॥८५॥

हे महामुनि! वे जन, जिस समय तक यहाँ आकर मुझे देख पाएंगे उस समय तक मैं तत्काल ही यहाँ से जा चुकूँगा। अब मेरी कृपाप्रसाद की कामना वाले वे सब ब्रह्मा आदि देवता आज मेरे प्रत्यक्ष और अनुमान के ही विषय हैं॥८६-८७॥

हे द्विजश्रेष्ठ! मैं सबका अभिप्राय जानता हूँ। इस प्रकार श्री शंकर जी इन वरों द्वारा नन्दी को अनुगृहित कर वहीं अन्तर्धान कर गये॥८८॥

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में ब्रह्मा और सनत्कुमार संवाद में गोकर्णेश्वर माहात्म्य नन्दिकेश्वरोपाख्यान नामक दो सौ ग्यारहवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमाग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥२११॥

द्वादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

अथ नन्दीमाहात्म्यम्

ब्रह्मोवाच

अन्तर्हिते ततस्तस्मिन् भवे वै भूतनायके। बभूव दिव्यः स तदा नन्दी गणचमूपतिः॥१॥
चतुर्भुजस्त्रिनयनो दिव्यसंस्थानसंस्थितः। दिव्यवर्णवपुश्चारुर्दिव्याङ्गदविभूषितः॥२॥
त्रिशूली परिघी दण्डी पिनाकी मौञ्जमेखली। शुशुभे तेजसा तत्र द्वितीय इव शङ्करः॥३॥
आस्थितः पादमाकृष्य आह्वयन्निव स द्विजः। त्रिभिः क्रमैः क्रान्तुमनास्त्रिविक्रम इवोद्यतः॥४॥
तं दृष्ट्वा खेचराः सर्वे देवताः परिशङ्किताः। आख्यातुं पुरुहूताय संभ्रान्ताः प्रययुर्दिवम्॥५॥
तेभ्यः श्रुत्वा सहस्राक्षः सर्वे चान्ये दिवौकसः। विषादं परमं गत्वा चिन्तामापेदिरे भृशम्॥६॥
अयं कश्चिद् वरं लब्ध्वा वरदानं महेश्वरात्। अत्यूर्जितबलः श्रीमांस्त्रैलोक्यं प्राप्स्यति ध्रुवम्॥७॥
यादृशोऽस्य महोत्साहस्तेजोबलसमन्वितः। नूनमेषो महासत्त्वो हरेत् स्थानं दिवौकसाम्॥८॥
यावच्चैवोजसा नाकमसौ चङ्क्रमते प्रभुः। प्रसादयामो वरदं तावदेव वयं शिवम्॥९॥

अध्याय–२१२

नन्दी का माहात्म्य

ब्रह्मा ने कहा कि फिर उन भूत नायक शंकर के अन्तर्धान कर जाने पर वे दिव्य नन्दी गणों के सेनाधिप हो गए।।१।।

वे भी चार भुजाओं और तीन नेत्रों से युक्त, दिव्य अङ्गद से विभूषित दिव्य वर्णयुक्त सुन्दर शरीर से सम्पन्न एवं दिव्य स्थान में स्थित हो गए।।२।।

फिर त्रिशूल, परिध, दण्ड, पिनाक, मूँज की मेखला धारण करने वाले वे तेज से अन्य शंकर के सदृश शोभायमान हो रहे थे।।३।।

तीन कदमों से त्रिलोक का अतिक्रमण करने वाले त्रिविक्रम वामन के समान वह द्विज पैरों को आकृष्ट कर जैसे आह्वान करते हुए खड़ा था।।४।।

उनको देखकर अत्यन्त भयभीत सब आकाशचारी देवता घबड़ाये हुए इन्द्र से कहने हेतु स्वर्ग को चले गए।।५।।

इस पकार उनसे समाचार सुनकर इन्द्र और स्वर्ग में निवास करने वाले अन्य सभी देव परमदुःखी होकर अत्यन्त चिन्ति हो चले।।६।।

इस क्रम में श्रीशंकर से वरदान पाकर यह अत्यन्त बलवान् कोई श्रीमान् निश्चित रूपसे त्रिलोक पर अधिकार तो नहीं करना चाहता है।।८।।

अतः जिस काल तक यह प्रभुता युक्त जीव ओज के साथ स्वर्ग पर आक्रमण करना चाहेगा, उस काल तक हम सबको वरदाता शिव को ही प्रसन्न करना चाहिए।।९।।

एवमुक्त्वा तु ते तत्र मया सह सुरोत्तमाः। गिरेर्मौञ्जवतः शृङ्गमाजग्मुर्देवनिर्मितम्।।१०।।
विधाता भगवान् विष्णुः प्रभुस्त्रिभुवनेश्वरः।
अभ्यधावंस्ततः सोऽथ स हि जानाति हृद्गतम्।
कृतेन तेन विबुधाः पश्यन्ति मुनयश्च ते।।११।।
ततः स भगवान् विष्णुः सह देवः सधातृकः। जगाम तत्र यत्राऽसौ नन्दी तिष्ठति देववत्।।१२।।

नन्द्युवाच

सफलं जीवितं मेऽद्य सफलश्च परिश्रमः। यन्मे दृष्टः सुराध्यक्षः गुरुस्त्रिभुवनार्चितः।।१३।।
पर्याप्तं तन्ममाद्येह कृतकृत्योऽस्मि तेन वै। यच्च मे प्रभुरव्यग्रः प्रीतः पापहरो हरः।।१४।।
विधाय पार्षदत्वं मे वरानिष्ठान् प्रयच्छतु। परो मेऽनुग्रहः सोऽत्र पूतोऽस्मि खलु साम्प्रतम्।।१५।।
यच्चोक्तं विधिना वाक्यं देवान् प्रति महात्मना।
मामुद्दिश्य हितं तथ्य तथैव च न चान्यथा।।१६।।
यन्मां देवर्षयः प्रीत्या समागत्य प्रियंवदाः। तेनास्मि परमप्रीत आदृतः परमेष्ठिना।।१७।।

देवा ऊचुः

वयं तं वरदं देवं द्रक्ष्यामस्ते वरप्रदम्। तवैष तपसा तुष्टः स्वयं प्रत्यक्षतां गतः।।१८।।

इस प्रकार विचार कर मेरे साथ वे सब श्रेष्ठदेवगण देव निर्मित इस मौञ्जवान् र्वत पर आ पहुँचे।।१०।।

फिर उस समय उन देवताओं के साथ त्रिभुवनेश्वर प्रभु विधाता भगवान् विष्णु भी आ गए। चूँकि वे हृदय के भाव को जानते हैं। उने द्वारा किये जा रहे इस कार्य को वे देवजन तथा मुनिगण सभी देखने लग गये।।११।।

फिर ब्रह्मा और देवों के सहित वे भगवान् विष्णु वहाँ आ गए जहाँ वे नन्दी देवता के सदृश वर्तमान थे।।१२।।

नन्दी ने कहा कि आज मेरा जीवन और परिश्रम सब सफल हो गया। जिसके प्रभाव से ही आज मुझे त्रिभ्फवन पूजित श्रेष्ठ सुराध्यक्ष का दर्शन हुआ।।१३।।

आज यहाँ मेरे लिए इतना ही पर्याप्त है। मैं इसी से कृतकृत्य हो गया हूँ कि मेरे प्रभु पापहरण करने वाले हर प्रसन्न और व्यग्रता मुक्त हैं।।१४।।

अतः अब तुझे अपना पार्षद बनाकर अभिलषित वर प्रदान करें। यही मेरे ऊपर परम कृपा होगी। मैं अब अवश्य ही पवित्र हो जाऊँगा।।१५।।

महात्मा ब्रह्मा के द्वारा देवों के प्रति मुझे लक्ष्य कर जो कहा गया है, उस तथ्य को वैसे ही कहा जा रहा है, इसमें कुछ भी अतिरिक्त नहीं है।।१६।।

चूँकि प्रीति के सहित प्रिय बोलने वाले देवगण और ऋषिगण यहाँ आये और परमेष्ठी के द्वारा मेरा सम्मान किया गया, इससे मैं अत्यन्त अभिभूत हूँ।।१७।।

देवताओं ने कहा कि हम सब आपको वर प्रदान करने वाले उन वरदाता देव का दर्शन करना चाहते हैं, जिनने आपकी तपस्या से संतुष्ट होकर स्वयं आपको दर्शन दिये।।१८।।

इत्युक्तवन्तस्ते देवाः पुनरूचुर्द्विजोत्तमम्। कुत्र द्रक्ष्यामहे देवं भगवन्तं कपालिनम्॥१९॥

नन्द्युवाच

अनुगृह्य तु मां देवस्तत्रैवादर्शनं गतः। न जाने कुत्र वा देवं कुत्रास्ते तद् गवेष्यताम्॥२०॥

सनत्कुमार उवाच

किमाह नन्दिनं देवो येनासौ नोक्तवान् प्रभुम्। तन्मे कथय देवेश गुह्यं किं चास्ति शूलिनः॥२१॥

ब्रह्मोवाच

यदुक्तवान् महेशानो नाख्येयोऽस्मि सुरान् प्रति।
किमुक्तवान् महादेवो नन्दिनं तच्छृणुष्व मे॥२२॥

ईश्वर उवाच

अस्ति कश्चित् समुद्देशः क्षितेः सिद्धोऽद्रिसंकटः। पारे हिमवतः पुण्ये तपोवनगुणैर्युतः॥२३॥
तत्र श्लेष्मातको नाम वसते पन्नगोत्तमः। सोऽनुग्राह्यो मयावश्यं तपसा दग्धकिल्विषः॥२४॥
तदभ्यासे च रुचिरं न चासौ वा नराश्रयः। तस्य नाम्ना च तत्स्थानं दिव्यं विरजसो भवेत्।
श्लेष्मातकं वनमिति ख्यातं पुण्यशिलोच्चयम्॥२५॥
मृगरूपेण चरता तत्र वै त्रिदशा मया। द्रष्टव्याः सञ्जिघृक्षन्तु खिन्नाश्चान्वेषणे मम।
नाख्यातव्यं त्वया तेषां देवताप्सरसामिदम्॥२६॥

इस प्रकार से कहकर उन देवताओं ने फिर से द्विज श्रेष्ठ से कहा कि हम लोग उन कपाली भगवान् महादेव का दर्शन कहाँ पर कर सकेंगे?।।१९।।

नन्दी ने कहा कि पता नहीं। मुझ पर कृपा करने के बाद महादेव वहीं अन्तर्धान हो गये थे। मैं नहीं जानता, वे देव कहाँ पर स्थित हैं। अतः उन्हें आप सब खोज लें।।२०।।

सनत्कुमार ने कहा कि महादेव ने नन्दी से ऐसा क्या कहा था, जिसको उसने प्रभु से नहीं कहा। हे देवेश! मुझे वह कहो। त्रिशूल धारण करने वाले शंकर क्या तत्त्व हैं?।।२१।।

ब्रह्मा ने कहा कि शंकर ने जो कहा था कि यह सब देवगणों को बतलाने योग्य नहीं है। इस प्रकार महादेव ने नन्दी से जो कहा था,उसे इस समय मुझसे सुनो।।२२।।

ईश्वर ने कहा कि हिमालय पर्वत उस पार के पवित्र स्थान में पर्वत से लगे तपोवन के गुणों से सम्पन्न पृथ्वी का कोई सिद्ध प्रदेश है।।२३।।

उस स्थान पर श्लेष्मातक नाम का एक विशिष्ट सर्प रहा करता है। मैं तपस्या द्वारा नष्ट हुए पापयुक्त उस सर्प पर अवश्य कृपा करने वाला हूँ।।२४।।

उसके आसपास मनुष्यों का कोई सुन्दर आश्रम स्थान तो नहीं है। वह दिव्य रजोगुण मुक्त थान उसके नाम से प्रसिद्ध है। पवित्र शिलाओं के समूह से सम्पन्न वह स्थान श्लेष्मातक नाम से जाना जाता है।।२५।।

मृग केस्वरूप में चरते हुए मैं देवताओं को देख सकूँगा। मेरे बारे में पता न लगा पाने से खिन्न वे लोग दीर्घ श्वास लेंगे। तुम देवों और अप्सराओं को यह मत बतलाना।।२६।।

एवमुक्त्वा पशुपतिः ऋषिं कात्यायनं तदा। अनुगृह्य वरैस्तैश्च तत्रैवान्तरधीयत॥२७॥
विद्योतयन् दिशः सर्वास्त्रिदशैः परिवारितः। बालुकेन्दुनिभं दिव्यमर्चितं दिव्यबिन्दुभिः॥२८॥
कामगं रथमारुह्य महेन्द्रः समरुद्गणः। आयातः शैलपृष्ठं तमोजसा पूरयन्निव॥२९॥
यदोगणवृत्तश्चैव वरुणो यादसां पतिः। वज्रस्फटिकचित्रेण विमानेनातितेजसा॥३०॥
तप्तकाञ्चनवर्णेन रत्नचित्रेण भास्वता। विमानेनागतः श‍ृङ्गे द्योतयन् वै धनाधिपः।
विमानशतकोटीभिरावृतो यक्षराक्षसैः॥३१॥
श्रीमद्भिर्बहुभिर्दिव्यैर्विमानैः सूर्यसन्निभैः। अधिष्ठितैः सुकृतिभिः प्रायाद् वैवस्वतो यमः॥३२॥
चन्द्रादित्यौ ग्रहाः सर्वे समग्रमृक्षमण्डलम्। विमानैरर्कवह्न्याभैराजग्मुः खान्महीधरम्॥३३॥
रुद्रास्त्वेकादशायाताः सूर्या द्वादश एव च। आगतावश्विनौ देवौ मौञ्जवन्तं महागिरिम्॥३४॥
विश्वे देवाश्च साध्याश्च मरुतश्चोजसान्विताः। संच्छाद्यैरावतपथं सहसाभ्याययुर्द्रुतम्॥३५॥
स्कन्दश्चैव विशाखश्च भगवांश्च विनायकः। सम्प्राप्तस्तं गिरिवरं मयूरशुकनादितम्॥३६॥
नारदस्तुम्बुरुश्चैव विश्वावसुपरावसू। हाहा हूहूस्तथा चान्ये सर्वे गन्धर्वसत्तमाः॥३७॥

उस काल मेंकात्यान ऋषि से इस प्रकार कहते हुए तथा उनको कई वर प्रदान करने से अनुगृहित कर पशुपति शिव वहीं पर अन्तर्धान हो गये।।२७।।

फिर देवताओं से समावृत और सब दिशाओं को प्रकाशमान् करते हुए बालचन्द्र की तरह दिव्य विन्दुओं से समर्पित दिव्य स्वेच्छाचारी रथ पर आरुढ़ होकर मरुद्गण के साथ महेन्द्र अपने तेज से उस स्थान को सम्पन्नता प्रदान करते हुए उस पर्वत पृष्ठ पर आ पहुँचे।।२८-२९।।

फिर जलचर जीवों सेसम्पन्न जलाधिप वरुण वज्रस्फटिक से सुशोभित तेजस्वी विमान से वहाँ आ पहुँचे।।३०।।

फिर तप्त स्वर्ण के वर्णयुक्त रत्नों से विभूषित प्रकाशमान विमान से पर्वत शिखर को प्रकाशित करते हुए और सौओं कोटि विमानों में आरुढ़ यक्ष तथा राक्षसों से घिरे हुए कुबेर भी उस स्थान पर पधार गए।।३१।।

फिर सूर्य के समान प्रभासम्पन्न, विविध दिव्य विमानों में आरुढ़ धर्मात्माओं के सहित वैवस्वत यम भी उस स्थान पर आ पहुँचे।।३२।।

फिर चन्द्र, आदित्य सहित समस्त ग्रह और समग्र तारा मण्डल, सूर्य और अग्नि की तरह प्रकाशयुक्त विमानों द्वारा आकाश से पर्वत पर आ पहुंचे।।३३।।

फिर एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य और दोनों अश्विनी कुमार उस मौञ्जवान् नाम के महापर्वत पर पहुँच गये।।३४।।

वहीं पर ओजवान् विश्वेदेवगण, साध्यगण और मरुद्गण अचानक आकाश मार्ग को आच्छादित करते हुए तत्काल वहाँ उपस्थित हो गये।।३५।।

फिर स्कन्द, विशख और भगवान् विनायक मयूर और शुकों के प्रतिध्वनियों के सहित उस महार्वत पर आ गए।।३६।।

फिर नारद, तुम्बुरु, विश्वावसु, परावसु, हाहा, हूहू नाम वाले गन्धर्व तथा अन्य सब के सब श्रेष्ठ गन्धर्व वहाँ आ गए।।३७।।

वैहायसैर्यानवरैर्विविधैर्वासवाज्ञया। अनिलश्चानलश्चैव धर्मः सत्यो ध्रुवोऽपरः॥३८॥
देवर्षयश्च सिद्धाश्च यज्ञा विद्याधरास्तथा। गुह्यकाश्च महात्मानः सर्व एव समागताः॥३९॥
गन्धकाली घृताची च बुद्धा गौरी तिलोत्तमा। उर्वशी मेनका रम्भा पञ्चस्था च तथापरा।
एताश्चान्याश्च तच्छैलमाजग्मुर्देवयोषितः॥४०॥
पुलस्त्योऽत्रिर्वसिष्ठश्च मरीचिर्भृगुरेव च। कश्यपः पुलहः शक्तिर्विश्वामित्रोऽथ गौतमः॥४१॥
भारद्वाजोऽग्निवेश्यश्च तथा वृद्धपराशरः। मार्कण्डेयोऽङ्गिरा गर्गः संवर्त्तः क्रतुरेव च॥४२॥
ऋचीको जमदग्निश्च भार्गवश्च्यवनस्तथा। नियोगान्मम विष्णोश्च शक्रस्य च दिवस्पतेः॥४३॥
सिन्धुश्च पुरुषश्चैव प्रभासः सोम एव च। लोहितश्चाययुस्तत्र गङ्गासागर एव च॥४४॥
नद्यश्चैव नदाश्चैव वर्णयिष्यामि सागराः। गङ्गा च यमुना चैव सरयूश्च महानदी॥४५॥
ताम्रारुणा चारुभागा वितस्ता कौशिकी तथा। पुण्या सरस्वती कोका नर्मदा बाहुदा तथा॥४६॥
शतद्रूश्च विपाशा च गण्डकी च सरिद्वरा। गोदावरी च वेणी च तापी च सरिदुत्तमा॥४७॥
करतोया च सीता च तथा चीरवती नदी। नन्दा च परनन्दा च तथा चर्मण्वती नदी।
पर्णाशा देविका चैव तृतीया विनता तथा॥४८॥
अन्यानि चापि मेदिन्यां तीर्थान्यायतनानि च।
निजस्वरूपाश्चाजग्मुस्तत्र पुण्या गुणान्विताः॥४९॥

फिर इन्द्र की आज्ञा से वायु, अग्नि, श्रेष्ठ सत्य, धर्म और ध्रुव विविध प्रकार के आकाश में चलने वाले विमानों पर आरुढ़ आ पहुँचे।।३८।।

फिर देवर्षिगण, सिद्धगण, यक्षों, विद्याधरगण, गुह्यकगण और अन्रू समस्त महात्मा भी वहाँ आ पहुँचे।।३९।।

गन्धकाली, घृताची, वृद्धा, गैरी, तिलोत्तमा, मेनका, रम्भा, पञ्चस्थला तथा अन्य देवस्त्रियाँ भी उस पर्वत के ऊपर उपलब्ध हो गईं। पुलस्त्य, अत्रि, वशिष्ठ, मरीचि, भृगु, कश्यप, पुलह, शक्ति, विश्वामित्र, गौतम आदि भी वहाँ उपस्थित हो गए।।४०-४१।।

भारद्वाज, अग्निवेष, वृद्धपराशर, मार्कण्डेय, अङ्गिरा, गर्ग, संवर्त, क्रतु, ऋचीक, जगदग्नि, भार्गव, च्यवन आदि भी मेरे, विष्णु के और इन्द्र स्वर्गाधीश के आदेश से वहाँ पर उपस्थित हो गए।।४२-४३।।

सिन्धु, पुष्कर, प्रभास, सोम, लोहित, गंगासागर भी वहाँ पर आ पहुँचे।।४४।।

फिर नदियाँ, नदों का समूह, सागर समूह आदि भी वहाँ पहुँचे, जिनका वर्णन आगे किया जाना है। गंगा, यमुना, महानदी, सरयू, ताम्रारुणा, चारुभागा, वितस्ता, कौशिकी, पवित्र सरस्वती, कोका, नर्मदा, बाहुदा आदि नाम वाली नदियाँ भी उस पर्वत पर उपस्थित हो गई।।४५-४६।।

फिर शतद्रू, विपाशा, नदियों में श्रेष्ठ गण्डकी, गोदावरी, वेणी, नदियों में श्रेष्ठ तापा आदि नामवाली नदियाँ भी आ पहुँची।।४७।।

करतोया, सीता, चीरवती नदी, नन्दा, परनन्दा तथा चर्मण्वती नदी, पर्णाशा, देविका और तीसरी विनता नदी पृथ्वी पर स्थित अन्य गुण वाले पवित्र तीर्थ और आयतन अपने स्वरूप में उपस्थित हुए।।४८-४९।।

चत्वारश्च समुद्रा वै सर्वत्र प्रथिता भुवि। उपागताः सुरेन्द्रस्य नियोगादुत्तमं गिरिम्॥५०॥
शैलोत्तमो महामेरुः कैलासो गन्धमादनः। हिमवान् हेमकूटश्च निषधश्च महागिरिः॥५१॥
विन्ध्यो महेन्द्रः सह्यश्च मलयो दर्दुरस्तथा। माल्यवांश्चित्रकूटश्च तथा द्रोणः शिलोच्चयः॥५२॥
श्रीपर्वतो लतावेष्टः पारियात्रश्च शैलराट्। आगताः सर्व एवैते शलेन्द्राः काननौकसः॥५३॥
सर्वे यज्ञाः सर्वविद्या वेदाश्चत्वार एव च। धर्मः सत्यं दमः स्वर्गः कपिलश्च महान् ऋषिः॥५४॥
वासुकिश्च महाभागः अमृताशी भुजङ्गराट्। ज्वलत्फणासहस्त्रेण अनन्तश्च धराधरः॥५५॥
फणीन्द्रो धृतराष्ट्रश्च किर्मीराङ्गश्च नागराट्। अम्भोधरश्च स श्रीमान् नागराजो महाद्युतिः॥५६॥
अर्वुदो न्यर्वुदवलस्तथा चक्षुःश्रवाधिपः। विद्युज्जिह्वो द्विजिह्वेन्द्रः शङ्खवर्च्चो महाद्युतिः॥५७॥
ख्यातस्त्रिभुवने धीमान् नहुषोऽनिमिषेश्वरः। विरोचनसुतः सत्यः स्फुटामणिशतश्चितः॥५८॥
फणाशतधरो रूपी भूरिशृङ्ग इवाचलः। अरिमेजयसंयुक्तः प्रज्ञावान् भुजगेश्वरः॥५९॥
विनतो नागराजश्च कम्बलाश्वतरौ तथा। भुजगाधिपतिर्वीरो एलापत्रस्तथैव च॥६०॥
उरगानामधिपती कर्कोटकधनञ्जयौ। एवमाद्याः समायाता भुजगेन्द्रा महाबलाः॥६१॥
अहोरात्रे तथा पक्षौ मासाश्च ऋतुवत्सराः। द्यौर्मेदिनी दिशश्चैव विदिशश्च समागताः॥६२॥
ततश्चैवागतैर्देवैर्यक्षैः सिद्धैश्च सर्वशः। अपूर्यत गिरेः शृङ्गं वेलाकाले यथोदधिः॥६३॥
तस्मिन् देवसमाजे तु रम्ये शैलेन्द्रमूर्द्धनि। पुष्पाणि मुमुचुस्तत्र तरवो ह्यनिलार्दिताः॥६४॥

इस प्रकार पृथ्वी पर सर्वत्र ख्यात चार समुद्र सुरेन्द्र के आदेश से उत्तम पर्वत पर पधारे।।५०।।

फिर पर्वत श्रेष्ठ महामेरु, कैलाश, गन्धमादन, हिमवान् , हेमकूट, महापर्वत निषध, विन्ध्य, महेन्द्र, सह;, मलय, दर्दुर, माल्यवान् , चित्रकूट, द्रोण आदि नाम वाले उच्च पर्वत, लतावेष्टित श्रीपर्वत, पर्वतराज पारियाग आदि सब वनवासी श्रेष्ठ पर्वत भी आ पहुँचे।।५१-५३।।

फिर समस्त यज्ञ-विद्यायें, चार वेद, धर्म, सत्य, दम, स्वर्ग और महषि कपिल के साथ-साथ महाभाग अमृत भोजी सर्पराज वासुकि तथा धरणी को धारण करने वाले ज्वलनशील सहस्रों फण वाले अनन्त भी पधारे।।५४-५५।।

सर्पश्रेष्ठ धृतराष्ट्र, नागराज, किर्मीराङ्ग, महातेजस्वी, नागराज, श्रीमान् अम्भोधर भी वहाँ आ पहुँचे।।५६।।

अर्बुद, न्यर्बुदबल, चक्षुःश्रवाधिप, विद्युज्जिह्व एवं महातेजस्वी सर्पश्रेष्ठ शंखवर्च, त्रिभुवन ख्यात अनिमिषेश्वर, बुद्धिमान् नहुष, सैकड़ो स्वच्छ मणियों से सुशोभित विरोचन पुत्र सत्य, अरिमेजय सहित अनेक शृङ्गों वाले पर्वत के समान सौ फणों को धारण करने वाले बुद्धिमान नागराज रूपी नागराज विनत, कम्बल, अश्वतर तथा सर्पों के राजा वीर एलापत्र तथा सर्पों के अधिपति कर्कोटक, धनञ्जय आदि महाबलवान् सर्प श्रेष्ठ वहाँ पर आ गए।।५७-६१।।

दिन, रात, कृष्णपक्ष, शुक्लपक्ष, द्वादश मास, छः ऋतुएें, षष्टि सम्वत्सर,द्युलोक, पृथ्वी, दिशायें, विदिशायें आदि भी वहाँ पर आ गये।।६२।।

फिर पर्वत का शृङ्ग वेलाकाल में समुद्र की तरह सब उपस्थित हुए देवों, यक्षों, सिद्धों से अपूर्ण हो चला।।६३।।

फिर वायु प्रेरित वृक्षों ने पर्वत श्रेष्ठ की रमणीय चोटी पर एकत्रित उन देव समाज पर पुष्पों की वृष्टि करने लगा।।६४।।

प्रगीता देवगन्धर्वाः प्रनृताश्चाप्सरोगणाः। पक्षिणः संप्रहृष्टाश्च कूजन्ति मधुरं तदा।
पुण्यगन्धाः सुखस्पर्शास्तत्र वान्ति च वायवः॥६५॥
एवमागत्य ते सर्वे देवा विष्णुपुरोगमाः। श्रिया ज्वलन्तं ददृशुर्नन्दिनं पुरतः स्थितम्॥६६॥
स च तानागतान् दृष्ट्वा गन्धर्वाप्सरसां गणान्।
सहितान् देवराजेन सार्द्धमन्यैश्च दैवतैः॥६७॥
मूद्ध्र्ना प्रणम्य चरणौ प्राञ्जलिः प्रयतात्मवान्। संभ्रान्तः सहसा तेभ्यो नमस्कर्तुं प्रचक्रमे॥६८॥
नमस्कृत्य च तान् सर्वान् स्वागतेनानुभाष्य च। अर्घ्यपाद्यादिभिः शीघ्रमासनैश्च निमन्त्रयत्।
प्रणिधानेन तस्यार्घ्यं श्रुत्वा तत्प्रतिपूजयेत्॥६९॥
आदित्या वसवो रुद्रा मरुतश्चाश्विनावपि। साध्या विश्वे सगन्धर्वा गुह्यकाश्च प्रपूजयेत्॥७०॥
विश्वावसुर्हाहाहूहू तथा नारदतुम्बुराः। चित्रसेनादयश्चैव गन्धर्वाः पूजयन्ति तम्॥७१॥
तं वासुकिप्रभृतयः पन्नगेन्द्रा महौजसः। सौम्यमभ्यर्चयन्ति स्म दृष्ट्वा नन्दीश्वरं तथा॥७२॥
सिद्धचारणसङ्घाश्च विद्याश्चाप्सरसांगणाः। सत्कृतं देवदेवेन गणास्तमभिपूजयन्॥७३॥
यक्षा विद्याधराश्चैव ग्रहाः सागरपर्वताः। ब्रह्मर्षयश्चैव सिद्धा गङ्गाद्याः सरितस्तथा।
आशिषः प्रददुस्तस्य सर्व एव मुदान्विताः॥७४॥

उस काल में प्रसन्न पक्षी, मधुर ध्वनि के कूल रहे थे। वहाँ पवित्र गन्ध और सुखदायक स्पर्श वाली हवायें भी बह रहीं थी।।६५।।

इस प्रकार श्रीविष्णु आदि समस्त देवों ने वहाँ आकर सामने स्थित तेज से अतिप्रकाशित नन्दी को देख।।६६।।

फिर उनने देवराज इन्द्र और अन्य देवों के साथ पधारे गन्धर्वों और अप्सराओं के समूह को देखा।।६७।।

फिर संयतचित्त नन्दी अञ्जलिबद्ध होकर मस्तक से उनके चरणों में प्रणाम करने के बाद पुनः आदर के साथ उन्हें नमस्कार करना प्रारम्भ किया।।६८।।

इस प्रकार उनने तत्काल ही उन सबको अर्घ्य, पाद्य, आसन आदि द्वारा नियन्त्रित किया। फिर एकाग्रता के सहित उनको अर्घ्य प्रदान करने के पश्चात् स्तुति द्वारा उनकी अर्चना की।।६९।।

फिर द्वादश आदित्य, वसुगण, उनचास मरुद् , दोनों अश्विनी कुमारों, साध्यगण, विश्वेदेव गण, गन्धर्व के साथ गुह्यकों ने नन्दी का पूजन किया।।७०।।

फिर विश्वावसु, हाहा, हूहू, नारद, तुम्बुरु, चित्रसेन आदि गन्धर्वों ने उनकी पूजा की और नन्दीश्वर को देखकर महान् ओजस्वी वासुकि आदि श्रेष्ठ सर्पों ने उन सौम्य नन्दी की अर्चना सम्पन्न किया।।७१-७२।।

सिद्धों और चारणों के समूह तथा विद्याओं व अप्सराओं के समूहों ने देवदेव इन्द्र से सत्कृत उन नन्दी की पूजा की।।७३।।

यक्ष, विद्याधर, ग्रह, सागर, पर्वत, ब्रह्मर्षिगण, सिद्धगण, गंगा, आदि नदियाँ, आदि सबने सहर्ष उनको आशीर्वाद प्रदान किया।।७४।।

देवा ऊचुः

स सुप्रीतोऽस्तु ते देवः सदा पशुपतिर्मुने। सर्वत्र चाप्रतिहता गतिश्चास्तु तवानघ॥७५॥
भवान् देवस्तुवानः स्यादत ऊर्ध्वं द्विजोत्तम। निरामयोऽमृतीभूतश्चरिष्यति विभुः सुखी॥७६॥
लोकेषु सप्तसु विभो त्र्यम्बकेन सहाच्युत। इत्युक्तस्त्रिदशैर्नन्दी पुनस्तान् प्रत्युवाच ह॥७७॥

नन्दिकेश्वर उवाच

यद्भवद्भिः प्रियं सर्वैः प्रीतिमद्भिः सुरोत्तमैः।
आशिषानुगृहीतोऽस्मि नियोज्योऽहं सदा हि वः॥७८॥
ब्रूत यूयं किमस्माभिः कर्त्तव्यं भवतामिह। आज्ञापयध्वमाज्ञप्तस्तस्माद् विबुधसत्तमाः।
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा शक्रः प्रोवाच तं तदा॥७९॥

शक्र उवाच

कुत्रासौ प्रस्थितो भद्र कुत्र वा स गतोऽसि वा। पश्यामो विप्र सर्वे देवानामधिपं विभुम्।
स्थाणुमुग्रं शिवं देवं सर्व एव वयं मुने॥८०॥
यदि जानासि भगवानीश्वरो यत्र तिष्ठति। तत्स्थानं च समाख्याहि महर्षे शीघ्रमेव हि॥८१॥
तच्छ्रुत्वा वचनं धीमानीरितं वज्रपाणिना। प्रत्युवाच ततः शक्रं नन्दी भगवतः स्मरन्॥८२॥

नन्दिकेश्वर उवाच

श्रोतुमर्हसि देवेन्द्र यथातत्त्वं दिवस्पते। अस्मिन् गिरौ मुञ्जवति स्थाणुरभ्यर्चितो मया॥८३॥

फिर देवों ने कहा कि निष्पाप मुनि! वे पशुपति महादेव आपके ऊपर सदा प्रसन्न ही रहें और आपकी गति सर्वत्र अप्रतिहत होगी।।७५।।

हे द्विजश्रेष्ठ, अब आगे आप देवों के पूज्य हो सकेंगे। रोगरहित, अमर, वैभव सम्पन्न और सुखी होकर आप सर्वत्र विचरते रह सकेंगे।।७६।।

हे अच्युत विभो! आप सप्तलोकों में त्रिलोचन शिव के साथ विचरण करेंगे। इस प्रकार से देवों के कहे जाने पर नन्दी ने पुनः उनसे कहा।।७७।।

नन्दिश्वर ने कहा कि आप सब प्रीति सम्पन्न देव श्रेष्ठों ने प्रिय वचन कहकर आशीर्वाद द्वारा मुझको अनुग्रहित किया है। अतः आप सबकी आज्ञाकारी हूँ।।७८।।

आप सब बतलायें कि मैं आपका क्या हितकार्य कर सकूँ। आप सब मुझको आज्ञा प्रदान करें। आपकी आज्ञा से मैं कार्य करूँगा। उस समय उनके उस वचन को सुनकर इन्द्र ने कहा—।।७९।।

इन्द्र ने कहा कि हे मुने! हे विप्र! वे कल्याण स्वरूप अच्युत कहाँ हैं? या कहाँ पर गए हैं? हम सब किस तगह पहुँच कर उन देवाधिदेव विभु स्थाणु उग्र शिव देव का दर्शन करें।।८०।।

हे महर्षि! यदि आप यह जान रहे हों कि ईश्वर शिव कहाँ हैं, तो हमें शीघ्र ही उस स्थान को बतलायें।।८१।।

फिर वज्रपाणि इन्द्र के उस वचन को सुनकर नन्दी ने भगवान् का स्मण करते हुए इन्द्र से कह दिया।८२।।

नन्दिकेश्वर ने कहा कि हे स्वर्गाधिप देवेन्द्र! वास्तविक रहस्य को सुनिये। मैंने इस मुञ्जवान् पर्वत पर स्थाणु शंकर की पूजा की है।।८३।।

प्रीतोऽसौ मां वरैर्दिव्यैरनुगृह्य हरः प्रभुः। प्रीतो विनिर्गत इतः न विज्ञातुं विभो ह्यहम्॥८५॥
यद्याज्ञापयसे देवमहं त्वच्छासने स्थितः। मार्गितुं यत्नमास्थाय देवदेवस्य वासव॥८६॥

।इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे द्वादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः।।२१२।।

त्रयोदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

अथ गोकर्णेश्वर-शैलेश्वरोत्पत्तिः

ब्रह्मा उवाच

ततः शक्रः सुरगणैः सह सर्वैः समेत्य च। बुद्धिं चकार गमने मार्गितुं यत्र शङ्करः॥१॥
तत उत्थाय ते देवाः सर्व एव शिलोच्चयात्। विहायसा ययुः शीघ्रं तेनैव सह नन्दिना॥२॥
स्वर्लोकं ब्रह्मलोकं च नागलोकं च सर्वशः। बभ्रमुस्त्रिदशाः सर्वे रुद्रान्वेषणतत्पराः॥३॥
खिन्नाः क्लिष्टाश्च सुभृशं न पुनस्तत्पदं विदुः। चतुःसमुद्रपर्यन्तां सप्तद्वीपवतीं महीम्।
सशैलकाननोपेतां मार्गयद्भिर्हि तं सुरम्॥४॥

फिर उन प्रसन्न प्रभु हर ने दिव्य वरों द्वारा मुझको अनुगृहित किया और फिर प्रसन्न होकर यहाँ से कहीं चले गए। हे विभो! मैं वह स्थान नहीं जानता।।८४।।

हे इन्द्र! मैं आपकी आज्ञा में तत्पर हूँ। देव देव को तलाश करने के प्रयास में आप जो कुछ मुझे आज्ञा दें, मैं वे सब करने को तत्पर हूँ।।८५।।

।।इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में नन्दी का माहात्म्य नामक दौ सौ बारहवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमाग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ।।२१२।।

अध्याय–२१३

गोकर्णेश्वर और शैलेश्वर की उत्पत्ति

ब्रह्मा ने कहा कि फिर इन्द्र ने समस्त देवों के साथ संयुक्त रूप से उस स्थान पर पहुँचकर खोज करने का विचार किया, जहाँ शंकर के होने की सम्भावना थी।।१।।

फिर वे सब देवता उस मुञ्जवान पर्वत से उठकर उन नन्दी के सहित शीघ्रतापूर्वक आकाश मार्ग का अनुसरण करने लग गये। फिर समस्त देवगण श्रीशंकर जी का शोध करते हुए स्वर्गलोक और नागलोक में सब जगह भ्रमण करने लग गये।।२-३।।

फिर चार सागरों तक विस्तारित पर्वतों और वनों से युक्त सात द्वीपों से युक्त पृथ्वी पर उन शंकर का शोध करते हुए उनको अत्यन्त खिन्नता और क्लेश का अनुभव हुआ, परन्तु वे उस स्थान को नहीं जान समझ पाये।।४।।

कन्दरेषु महाद्रीणां तुङ्गेषु शिखरेषु च। विततेषु निकुञ्जेषु विहारेषु च सर्वतः॥५॥
विचिन्वद्भिः क्षितिमिमां तृणं द्विविदलीकृतम्। न प्रवृत्तिः क्वचिदपि शम्भोरासाद्यते सुरैः॥६॥
यदा निर्विण्णमनसो मार्गमाणाः सुरास्तदा। न पश्यन्ति शिवं तत्र तदैषां भयमाविशत्॥७॥
भीतास्ते संविदं कृत्वा सञ्चिन्त्य गुरुलाघवम्। सम्भूयान्योऽन्यममरा मामेव शरणं ययुः॥८॥
तमेकाग्रेण मनसा शङ्करं लोकशङ्करम्। उपायमात्रं दृष्टं मे ध्यायंस्तद्वेषभूषणैः।
यथा यत्र च सोऽस्माभिर्द्रष्टव्यो वृषभध्वजः॥९॥
सर्वं त्रैलोक्यमस्माभिर्विचितं वै निरन्तरम्। श्लेष्मातकवनोद्देशं स्थानं मुक्त्वा महीतले।
आगच्छध्वं गमिष्यामस्तमुद्देशं सुरोत्तमाः॥१०॥
इत्येवमुक्त्वा तैः सर्वैस्तामाशां प्रस्थिता वयम्। तत्क्षणादेव सम्प्राप्ता विमानैः शीघ्रयायिभिः।
श्लेष्मातकवनं पुण्यं सिद्धचारणसेवितम्॥११॥
तस्मिन् सुरमणीयानि विविधानि शुचीनि च।
ध्यानस्थानानि रम्याणि बहूनि गुणवन्ति च॥१२॥
आश्रमाणि महारण्ये दरोणां विवरेषु च। विभान्ति वनराजीभिः नद्यश्च विमलोदकाः॥१३॥
सिंहशार्दूलमहिषा गोलाङ्गूलर्क्षवानरैः। नादितं गजयूथैश्च मृगयूथैश्च तद्वनम्॥१४॥

फिर महापर्वतों, उनकी कन्दराओं में, उनकी ऊँची-ऊँची चोटियों पर, विवरों में, कुञ्जों और रमण करने योग्य स्थानों में सब जगह शोध किया गया।।५।।

इस क्रम में देवगणों ने इस धरणी पर धोध क़रते हए तृणों को चीर-चीर कर टुकड़ों में देख डाला, किन्तु उनको कहीं भी श्री शंकरजी का पता नहीं चल पाया।।६।।

फिर तो शिव शंकर का शोध करने वाले देवताओं का मन पूर्णतया उदास हो गया। इस प्रकार जब उन सबों ने कहीं शिव को नहीं देखा, तो वे सब भयभीत हो गये।।७।।

फिर एकनिष्ठ मन से उनके वेष और आभूषण का ध्यान करते हुए मुझे लोक कल्याण करने वाले केवल एकभाग शंकर ही उपाय रूप दीख पड़े। फिर मैंने देवों से कहा कि वृषभध्वज शंकर जहाँ और जैसे भी हों, हम सब इसी तरह उनका ध्यान करें।।९।।

वैसे इस पृथ्वी पर अवस्थित श्लेष्मातक वनस्थली के अलावे अखिल त्रिलोक को हम सबों ने नित्य-निरन्तर शोध कर लिया। अतः हे श्रेष्ठ देवो! आओ हम सब अब उस श्लेष्मातक स्थान पर शोध हेतु चलें।।१०।।

इस प्रकार उनके द्वारा कहे जाने पर हम सबने उस दिशा में प्रस्थान किया। फिर गमन करने वाले विमानों द्वारा हम सभी तत्काल सिद्धों और चारणों से सेवित पवित्र उस श्लेष्मातक वन में प्रवेश कर गये।।११।।

उस स्थान में कई तरह के परम रमण करने योग्य, पवित्र, मनोहर और अत्यन्त गुण सम्पन्न ध्यान करने योग्य स्थान थे।।१२।।

फिर उस महावन में पर्वतों के विवरों में कई आश्रम बने हुए थे। विमल जलवाली नदियाँ वन समूहों से शोभायमान हो रही थीं।।१३।।

वह वन सिहं, व्याघ्र, माहिष, गोलाङ्गूल, भालू, वानरों आदि से सम्पन्न था। फिर वहवन हाथियों और अन्य पशुओं की ध्वनि से प्रतिध्वनित भी हो रहा था।।१४।।

प्रमुखे वासवं कृत्वा विविशुस्ते सुरास्तदा। विमुच्य रथयानानि पद्भिः सिद्धादिसंकटम्॥१५॥
कन्दरोदरकूटेषु तरूणां गहनेषु च। सर्वदेवमयं रुद्रं मार्गमाणाः शनैः शनैः॥१६॥
प्रविशन्तश्च ते देवा वनोद्देशे क्वचिच्छुभे। कदलीवनसंछन्ने फुल्लपादशोभिते॥१७॥
गिरिनद्यास्तु पुलिने हंसकुन्देन्दुसन्निभे। गन्धामोदेन पुष्पाणां वासिते मधुगन्धिभिः॥१८॥
मुक्ताचूर्णनिकाशाभिर्बालुकाभिस्ततस्ततः। विक्रीडमानां ददृशुः कन्यां काञ्चिन्मनारमाम्॥१९॥
तत्र तां विबुधा दृष्ट्वा सर्वे मां समनोदयन्। आद्योऽहं सर्वदेवानां कथमेतद् भवेदिति॥२०॥
मुहूर्त्तं ध्यानमास्थाय विज्ञाता सा मया तदा। ध्रुवं शैलेन्द्रपुत्रीयमुमा विश्वेश्वरीति वै॥२१॥
ततस्तदुच्चशिखरमारुह्य विबुधेश्वराः। अधो विलोक्य ते सर्वे ददृशुस्तं मृगोत्तमम्॥२२॥
तिष्ठते मृगयूथस्य मध्ये गुप्तस्य सर्वतः। एकशृङ्गैकचरणं तप्तहाटकवर्चसम॥२३॥
चारुवक्त्राक्षिदशनं पृष्ठतः शुक्लबिन्दुभिः। शुक्लेनोदरभागेन राजतैरुपशोभितम्॥२४॥
पीनोन्नतकटिस्कन्धं निमग्नांसशिरोधरम्। बिम्बोष्ठं ताम्रजिह्वास्यं दंष्ट्राङ्कुरविराजितम्॥२५॥
तं दृष्ट्वा विबुधाः सर्वे शिखरात् प्रतिधाविताः। सर्वोद्यमेन तरसा तं मृगेन्द्रजिघृक्षया॥२६॥

उस समय वे सब देवगण इन्द्र को आगे कर रथों और सवारियों का त्याग कर पैदल ही सिद्धादियों से सेवित उस वन में प्रवेश कर गये।।१५।।

फिर क्रम से कन्दरा के बीच में अवस्थित कुञ्चों, सघन वृक्षों के नीचे आदि स्थलों पर सर्वदेवमय रुद्र शंकर को खोजते हुए वे देवगण कदली केवन से समाच्छादित और पुष्प युक्त वृक्षों से शोभायमान वन किसी शुभ स्थान में प्रवेश कर गये।।१६-१७।।

फिर पर्वत की नदी के हंस, कुन्द, इन्दु के समान स्वच्छ और पुष्पों सुमधु गन्ध युक्त सुगन्धित के प्रवाह से सुवासित और सब जगह मोती हे चूर्ण की तरह बालुका कणों से विभूषित तीर पर खेलती हुई किसी मनोरम कन्या को उन सबों ने देखा।।१८-१९।।

समस्त देवों ने वहाँ उसे देख कर मुझसे कहने लगे कि मैं समस्त देवों में प्रमुख हूँ। अतः यह कन्या कौन है, बतलाया जाय।।२०।।

फिर मैंने कुहूर्त्त पर्यन्त ध्यान कर उसे जान लिया कि अवश्य ही यह पर्वतराज की पुत्री विश्वेश्वरी उमा है।।२१।।

फिर उस ऊँचे पर्वत पर चढ़-चढ़कर उन सब श्रेष्ठ देवों ने नीचे की ओर एक श्रेष्ठ मृग को देखा।।२२।।

मृगगणों के बीच सब प्रकार सुरक्षित बैठे हुए उस मृग का एक सींग और एकपैर तप्त स्वर्ण की तरह प्रकाशमान् थे।।२३।।

फिर उसका मुख और उसके दाँत भी सुन्दर थे। उसकी पीठ श्वेत विन्दुओं से शोभा युक्त थी। उसके पेट भग चाँदी के समान बिन्दुओं से शोभा पा रही थी।।२४।।

फिर उसकी कटि और उसके स्कन्ध भाग मोटे और ऊँचे भी थे। उसकी गीवा झुकी हुई थी। उसे ओष्ठ बिम्बवत् थे। उसकी जिह्वा और मुख ताम्र के समान था। उसका मुख दंष्ट्रा के अंकुर से शोभायुक्त था।।२५।।

उस मृग को देख कर सबके सब देव सब प्रकार के प्रयास से उस श्रेष्ठ मृग को पकड़ने हेतु वेग के साथ पर्वत-शिखर से एक साथ दौड़ पड़े।।२६।।

शृङ्गाग्रं प्रथमं धृत्वा गृहीतं वज्रपाणिना। ततो मध्यं मया तस्य तदा गृहीतं प्रणतात्मना॥२७॥
जग्राह केशवश्चापि मूलं तस्य महात्मनः। त्रिभिरेवं गृहीतं तु त्रिधाभूत बभञ्ज तत्॥२८॥
शक्रस्याग्रं स्थितं हस्ते मध्यं हस्ते मम स्थितम्।
विष्णोर्मूलं स्थितं हस्ते प्रविभक्तं त्रिधा गतम्॥२९॥
शृङ्गस्यैव गृहीतस्य त्रिधास्माभिर्मृगाधिपः। विषाणरहितस्तस्य प्रणष्टः पुनरप्यसौ॥३०॥
अन्तर्हितोऽन्तरीक्षस्थः प्रोवाचास्मानुपालभन्।
भो भो देवा मया यूयं वञ्च्यमानानवाप्स्यथ॥३१॥
सशरीरोऽहं युष्माभिर्न गृहीतो वै यत्सुराः। शृङ्गमात्रेण सन्तुष्टा भवन्तस्तेन वञ्चिताः॥३२॥
यद्यहं सशरीरश्च गृहीत्वा स्थापितोऽभवम्। चतुष्पात् सकलो धर्मः स्यात् प्रतिष्ठां गतो भवेत्॥३३॥
कामं शृङ्गाणि मेऽत्रैव श्लेष्मातकवनेऽमराः। न्यायतः स्थापयिष्यध्वं लोकानुग्रहकाम्यया॥३४॥
अत्रापि महती व्युष्टिर्भविष्यति न संशयः। पुण्यक्षेत्रे सुमहति मत्प्रभावानुभाविते॥३५॥
यावन्ति भुवि तीर्थानि आसमुद्रसरांसि च। क्षेत्रेऽस्मिंस्तानि तीर्थानि गमिष्यन्ति ममाज्ञया॥३६॥

इस तरह वज्रपाणि इन्द्र ने सर्वप्रथम पहुच कर उसके शृङ्ग का अग्रभाग पकड़ लिया। फिर विनम्र चित्त से मैंने उसका बीच का भाग पकड़ा।।२७।।

फिर श्री केशव ने भी उस महात्मा मृग का पूलभाग पकड़ लिया। इस प्रकार तीन देवों द्वारा पकड़ा गया वह शृङ्ग तीन भागों में विभक्त हो गया।।२८।।

इस तरह इन्द्र के हाथ में अग्रभाग, मेरे हाथ में मध्य भाग और श्री विष्णु के हाथ में मूल भाग रह गया। इस प्रकार वह तीन भागों में खण्डित हो गया।।२९।।

इस प्रकार हम सबों द्वारा पकड़े गये उसके शृङ्ग का भी तीन भाग हो गया। फिर सींग रहित वह मृगराज विलीन हो गया।।३०।।

इस तरह से विलीन होकर अन्तरिक्ष में अवस्थित हुए देव ने हमारा उपलम्भ करते हुए कहा कि हे देवों! मुझे ठगे जा रहे तुम सब मुझे नहीं पा सकते हो।।३१।।

हे देवो! तुम सबों ने तो सदेह मुझेपकड़ा नहीं था। आप सब मात्र सींग से सन्तुष्ट हो रहे थे। इसी से तुम सब दर्शन से इस समय वञ्चित हो गए।।३२।।

वैसे यदि तुम सब मुझे सशरीर पकड़ कर प्रातिष्ठित करते, तो धर्म चार चरणों वाला हो जाता। फिर उसकी प्रातिष्ठा होती।।३३।।

हे देवो! देखो, इसी श्लेष्मातम वन में लोकानुग्रह की इच्छा से सविधि अच्छी तरह मेरे शृङ्ग को स्थापित करो।।३४।।

इस प्रकार मेरे प्रभाव से अनुभावित होकर अतिमहान् इस पुण्यक्षेत्र में भी निस्सन्देह महान् तीर्थ हो सकेगा।।३५।।

अतएव भूमि पर जितने भी तीर्थ, समुद्र और सरोवर हैं, वे सभी इस क्षेत्र में मेरी आज्ञा से आया करेंगे।।३६।।

अहं पुनः शैलपतेः पादे हिमवतः शुभे। नेपालाख्ये समुत्पत्स्ये स्वयमेव महीतलात्॥३७॥
दीप्ततेजोमयशिराः शरीरश्च चतुर्मुखः। शरीरेश इति ख्यातः सर्वत्र भुवनत्रये॥३८॥
तत्र नागह्रदे घोरे स्थास्याम्यन्तर्जले ह्यहम्। त्रिंशद्वर्षसहस्राणि सर्वभूतरतः सदा॥३९॥
यदा वृष्णिकुलोत्पन्नः कृष्णश्चक्रेण पर्वतान्। पाटयित्वेन्द्रवदनं दानवान् निहनिष्यति।
तदा स देशो भविता सर्वम्लेछैरधिष्ठितः॥४०॥
ततो लिङ्गचयं तत्र प्रतिष्ठाष्यन्ति पार्थिवाः।
क्षत्रियाः सूर्यवंशीयाः शून्ये लप्स्यन्ति मां नृपाः।
म्लेच्दान्निर्जित्य तं तत्र राज्यं प्राप्स्यन्ति शाश्वतम्॥४१॥
ततो जानपदस्तत्र भविष्यति महांस्तदा। स्फीतो ब्राह्मणभूयिष्ठः सर्ववर्णाश्रमैर्युतः॥४२॥
धर्मः संस्थाप्यते तत्र ब्राह्मणैः संप्रवर्तितः। सम्यक्प्रवृत्ता राजानो भविष्यन्त्यायतौ स्थिताः॥४३॥
एवं सम्यक् स्थिते तस्मिन् देशे पौरजने तथा। तत्र मामर्च्चयिष्यन्ति सर्वभूतानि सर्वदा॥४४॥
तत्राऽहं यैः सकृद् दृष्टो विधिवद् वन्दितस्तु यैः। गत्वा शिवपुरं ते मां पश्यन्ते दग्धकिल्विषाः॥४५॥
उत्तरेण तु गङ्गाया दक्षिणे चाश्विनीमुखात्। क्षेत्रं हिमवतं ज्ञेयं योजनानि चतुर्दश॥४६॥

मैं पुनः शैलराज हिमालय के पाद में अविस्थत नेपाल नामक स्थान पर स्वयं ही धरणी से उत्पन्न हो सकूँगा।।३७।।

चार मुखों से युक्त दीप्त तेजोमय शिर और शरीर वाला मेरा स्वरूप तीन भुवनों में शरीरेश नाम से ख्याति प्राप्त हो सकेगा।।३८।।

फिर मैं उस स्थान के घोर नागह्रद के जल के अन्दर तीस हजार वर्ष तक सदा सब जीवों का हित करता रह सकूँगा।।३९।।

फिर जब यादव कुल में उत्पन्न कृष्ण अपने चक्र से पर्वतों को तोड़ कर इन्द्र का दमन एवं दानवों का संहार कर डालेंगे, उस समय वह देश सब म्लेच्छों द्वारा अधिष्ठित हो जा सकेगा।।४०।।

फिर सूर्यवंशी क्षत्रिय राजा जन एकान्त में मुझे अधिगत करते हुए मेरे लिङ्ग रूप को वहाँ प्रतिष्ठापित कर सकेंगे। वे म्लेच्छों के परास्त कर वहाँ पर शाश्वत राज्य स्थापित कर सकेंगे।।४१।।

फिर वह देश महान् अत्यन्त विस्तृत अत्यधिक ब्राह्मणों से सम्पन्न समस्त वर्णें और आश्रमों से युक्त हो जा सकेगा।।४२।।

वहाँ ब्राह्मणों से प्रवर्जित धर्म की स्थापना हो सकेगी और राजा जन न्यायमार्ग में अवस्थित होकर अच्छी तरह कार्य सम्पादन कर सकेंगे।।४३।।

इस प्रकार उस देश में देशवासियों के अच्छी तरह स्थापित हो चुकने पर निरन्तर सब जीवों मेरी पूजा किया करेंगे।।४४।।

इस प्रकार उस जगह जो जन एक बार भी मेरा दर्शन कर सकेंगे एवं जो विधिवद् मेरी वन्दना कर सकेंगे, वे अपने सब पापों को दग्ध कर शिवपुरी में जाकर मेरा दर्शन कर सकेंगे।।४५।।

फिर गंगा के उत्तरी क्षेत्र और अश्विनी मुख के दक्षिणी चौदह योजन को हिमवत् क्षेत्र जानना चाहिए।।४६।।

हिमाद्रेस्तुङ्गशिखरात् प्रोद्भूता वाग्मती नदी। भागीरथ्याः शतगुणं पवित्रं यत्र तज्जलं॥४७॥
तत्र स्नात्वा हरेर्लोकानुपस्पृश्य दिवस्पतेः। त्यक्त्वा देहं नरा यान्ति मम लोकं न संशयः॥४८॥
अपि दुष्कृतकर्माणो क्षेत्रेऽस्मिन् निवसन्ति ये।
नियतं पुरुहूतस्य श्रिताः स्थाने वसन्ति ते॥४९॥
देवदानवगन्धर्वाः सिद्धविद्याधरोरगाः। मुनयोऽप्सरसो यक्षा मोहिता मम मायया।
तद्वै गुह्यं न जानन्ति यत्र सन्निहितो ह्यहम्॥५०॥
तपस्तपोधनानां च सिद्धक्षेत्रं हि तत्स्मृतम्। प्रभासाच्च प्रयागाच्च नैमिषाद् पुष्करादपि।
कुरुक्षेत्रादपि बुधाः क्षेत्रमेतद् विशिष्यते॥५१॥
श्वशुरो मे स्थितो यत्र हिमवान् भूधरेश्वरः। प्रभवन्ति यतः सर्वा गङ्गाद्याः सरितां वराः॥५२॥
तस्मिन् क्षेत्रवरे पुण्ये पुण्याः सर्वास्तु निम्नगाः।
सर्वे प्रस्रवणाः पुण्याः सर्वे पुण्याः शिलोच्चयाः॥५३॥
आश्रमस्तत्र भविता सिद्धचारणसेविताः। शैलेश्वर इति ख्यातः शरीरं यत्र मे स्थितम्।
स्रवन्तीनां वरा पुण्या वाग्मती पर्वतोत्तमात्॥५४॥
भागीरथी वेत्रवती कलुषं यास्यते नृणाम्। कीर्त्तनादेव संशुद्धेद् दर्शनाद् भूतिमाप्स्यति॥५५॥

फिर हिमालय के उच्च शिखर से वाग्वती नदी निकली है। जहाँ उसका जल भागीरथी के जल से सौ गुना अधिक पवित्र माना जा सकेगा।।४७।।

इस तरह जो जन वहाँ स्नान करता है, वे विष्णुलोक और आचमन करने से इन्द्रलोक प्राप्त किया करेंगे। फिर वहाँ शरीर छोड़ने पर मनुष्य मेरे ही ही लोक में सीधे जा सकेंगे। इसमें सन्देह नहीं करना चाहिए।।४८।।

जो दुष्कर्म करने वाला जन भी इस क्षेत्र में रहेंगे, वे निश्चय कर इन्द्र के लोक में जा कर निवास कर सकेंगे।।४९।

फिर देव, दानव, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर, सर्प, कुनिजन, अप्सरायें, यक्ष आदि मेरी माया से मोहित हैं। इसी से वे उस गुप्त स्थान को नहीं जानते, जहाँ मैं सन्निति हूँ।।५०।।

अतः वह तपधनों के तपस्या से सिद्ध क्षेत्र माना जाता है। यह क्षेत्र प्रभास, प्रयाग, नैमिष, पुष्कर, कुरुक्षेत्र आदि से भी विशिष्ट है।।५१।।

फिर जहाँ पर मेरे श्वसुर गिरिराज हिमालय स्थित हैं तथा जहाँ से ये सभी गंगा आदि श्रेष्ठ नदियाँ निःसरित हैं, उस पवित्र श्रेष्ठ क्षेत्र में सभी नदियाँ पवित्र ही हैं। सभी झरने भी पवित्र हैं और सबपर्वत भी पवित्र हैं, वहाँ सिद्धों और चारणों से सेवित आश्रम रहेंगे।।५२-५३।।

जहाँ मेरा शरीर स्थित है,वह शैलेश्वर नाम से सुख्यात है। उस श्रेष्ठ पर्वत से निःसरित वाग्वती नदियों में श्रेष्ठ है।।५४।।

फिर वेगवती भागीरथी का कीर्त्तन करने से मनुष्यों का पाप विनष्ट हुआ करते हैं। फिर उसका दर्शन करने से मनुष्य ऐश्वर्यवान् हो जाता है।।५५।।

पानावगाहनात् तस्यास्तारयेत् सप्त वै कुलान्।
लोकपालांस्तु ते सर्वे तीर्थं काङ्क्षन्ति तत्स्वयम्।
तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति मृतास्तेऽपुनर्भवाः॥५६॥

स्नात्वा स्नात्वा तु ये तत्र नित्यमभ्यर्चयन्ति माम्। उद्धरे तानहं प्रीतो घोरात् संसारसागरात्॥५७॥
यस्तस्य वारिणा पूर्वमेकं वा घटमुद्धरेत्। स्नापनार्थे मम शुचिः श्रद्दधानोऽनसूयकः॥५८॥
वेदवेदाङ्गविदुषा श्रोत्रियेण विशेषतः। आहुतस्याग्निहोत्रस्य यत्फलं तस्य तद् भवेत्॥५९॥
तस्यास्तीरे जलोद्भेदं मन्मूलादभिनिःसृतम्। मृगशृङ्गोदकं नाम नित्यं मुनिजनप्रियम्॥६०॥
तत्राभिषकं कुर्वीत उपस्पृश्य समाहितः। यावज्जीवकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति॥६१॥
तीर्थं पञ्चनदं प्राप्य पुण्यं ब्रह्मर्षिसेवितम्। अग्निष्टोमफलं तत्र स्नातमात्रः प्रापद्यते॥६२॥
षष्टिं धनुःसहस्राणि यानि रक्षन्ति वाग्मतीम्। न तां पापः कृतघ्नो वा कदाचित् प्राप्नुयान्नरः॥६३॥
शुचयः श्रद्दधानाश्च सत्ससंधाश्च ये नराः। वाग्मत्यां ते नराः स्नात्वा लभन्ते चोत्तमां गतिम्॥६४॥

आर्त्ता भीताः प्रसन्नाश्च व्याधितोऽव्याधितोऽपि वा।
वाग्मत्याः सलिले स्नात्वा पश्येद् यो मां तु संस्कृतम्॥६५॥

फिर मनुष्य उस भागरथी का जल पीकर तथा उसमें स्नान कर अपने सात पीढ़ियों को तार दिया करता है। समस्त लोकपाल स्वयं उस तीर्थ की कामना किया करते हैं। चूँकि उसमें स्नान कर जीव स्वर्ग को सीधे जाया करते हैं फिर वहाँ पर जो मर जाता है,वह तो मुक्त ही हो जाता है।।५६।।

जो जन वहाँ नित्य-निरन्तर स्नान कर मेरा पूजन किया करते हैं, उन्हें मैं प्रसन्न होकर घोर संसार सागर से पार तो उतार ही दिया करता हूँ।।५७।।

इस प्रकार श्रद्धावान् और ईर्ष्या रहित जो जन पवित्रता पूर्वक मुझे स्नान कराने हेतु उसके जल से पूर्ण एक घड़ा निकालता है, उसे वह फल मिलता है, जो वेद और वेदाङ्गों के विद्वान् श्रोत्रिय द्वारा अग्निहोत्र में हवन करने का विशेष फल होता है।।५८-५९।।

उसके तीर पर मेरे मूल से उत्पन्न मृगशृगोदक नाम का एक जलस्तोत मुनिजनों का नित्य प्रिय हुआ करेगा।।६०।।

अतः वहाँ एकनिष्ठ चित्त से आचमन कर स्नान करना चाहिए। इस प्रकार से किये जाने पर सम्पूर्ण जीवन भर में किया गया पाप तत्काल ही नाश को प्राप्त होता है।।६१।।

ब्रह्मर्षियों से सेवित पवित्र पञ्चनद तीर्थ में जाकर वहाँ स्नान मात्र करने से अग्निष्टोम का फल प्राप्त हुआ करता है।।६२।।

चूँकि साठ हजार धनुष वाग्मती की रक्षा किया करते हैं। अतएव कोई कृतघ्न पापी जन कभी उसे पा नहीं सकते।।६३।।

जो जन पवित्र श्रद्धालु एवं सत्यप्रतिज्ञ होते हैं, वे वाग्वमी में स्नान कर उत्तम गति प्राप्त कर लियाकरते हैं।।६४।।

जो कोई आर्त्त, भययुक्त, प्रसन्न, व्याधिग्रस्त या व्याधिरहित जन इस वाग्मती के जल में स्नान करने के बाद

तस्य शान्तिर्भवेन्नित्यं पुरुषस्य न संशयः। मम्प्रभावात् तु तत्तस्य सर्वं नश्यति किल्बिषम्।
ईतयः समुदीर्णापि प्रशमं यान्त्यशेषतः॥६६॥
वाग्मती सरितां श्रेष्ठा यत्र यत्राऽवगाह्यते। भवस्तत्र फलं दद्याद् राजसूयाश्वमेधयोः॥६७॥
योजनाभ्यन्तरं क्षेत्रं समन्तात् सर्वतो दिशम्। मूलक्षेत्रं तु विज्ञेयं रुद्रेणाधिष्ठितं स्वयम्॥६८॥
तत्र पूर्वोत्तरे पार्श्वे वासुकिर्नाम नागराट्। वृतो नागसहस्त्रेण द्वारि तिष्ठति मे सदा।
सविघ्नं कुरुते नृणां तत्क्षेत्रं विशतां सदा॥६९॥
प्रथमं स नमस्कार्यस्ततोऽहं तदनन्तरम्। अनेन विधिना पुंसामविघ्नं विशतां भवेत्॥७०॥
वन्दते परया भक्त्या यो मां तत्र नरः सदा। पृथिव्यां स भवेद् राजा सर्वलोकनमस्कृतः॥७१॥
गन्धैर्माल्यैश्च मे मूर्तिमभ्यर्च्चयति यो नरः। उत्पत्स्यते स देवेषु तुषितेषु न संशः॥७२॥
यस्तु दद्यात् प्रदीपं मे पर्वते श्रद्धायान्वितः। सूर्यप्रभेषु देवेषु तस्योत्पत्तिर्विधीयते॥७३॥
गीतवादित्रनृत्यैस्तु स्तुतिभिर्जागरेण वा। ये मे कुर्वन्नरास्सेवां मत्संस्थात्र भवन्ति ते॥७४॥
दध्ना क्षीरेण मधुना सर्पिषा सलिलेन वा। स्नापनं ये प्रयच्छन्ति ते तरन्ति जरान्तकौ॥७५॥

संस्कृत मेरी मूर्त्ति का दर्शन करता है, निःसंशय उनको नित्य शान्ति मिलती है। मेरे प्रभाववश उने समस्त पाप का नाश हों जाता है। प्रबल प्राकृतिक अपत्तियाँ भी सम्पूर्णता से विनष्ट हो जाती हैं।।६५-६६।।

इस प्रकार नदियों में श्रेष्ठ वाग्मती में जहाँ-जहाँ स्नान किया जाता है, वहाँ-वहाँ शंकर राजसूय और अश्वमेध यज्ञों का फल प्रदान किया करते हैं।।६७।।

सम्पूर्ण दिशाओं में चारों तरफ एक योजन के अन्तर्गत के क्षत्र को स्वयं रुद्र से अधिष्ठित मूलक्षत्र जानना उचित है।।६८।।

उसके पूर्वोत्तर पार्श्व में वासुकि नाम के नागराज हजारों नागों से समावृत होकर मेरे द्वार पर अवस्थित रहा करते हैं। वे उस क्षेत्र में प्रवेश करने वाले मनुष्यों के मार्ग में सर्वदा विघ्न किया करते हैं।।६९।।

अतः सर्वप्रथम उनाके प्रणाम करना उचित है। फिर मुझे प्रणाम करना चाहिए। इस विधि से प्रवेश करने वाले जनों को विघ्न नहीं हुआ करते हैं।।७०।।

फिर जो जन वहाँ नित्य परम भक्तिभाव से मुझको प्रणाम किया करते हैं, वे जन इस पृथ्वी के ऊपर सब लोगों से नमस्कृत राजा हुआ करते हैं।।७१।।

जो जन सुगन्धि और माला से मेरी मूर्त्ति की पूजा किया करते हैं, वे जन निःसंशय तुषित देवों में जन्म लिया करते हैं।।७२।।

जो जन श्रद्धापूर्वक मेरे पर्वत पर दीपदान किया करते हैं, वे जन सूर्य के समान तेजस्वी देवों में उत्पन्न हुआ करते हैं।।७३।।

वैसे यहाँ पर जो जन नाच, गाना, बाजा, स्तुति, जागरण आदि से मेरी सेवा किया करते हैं, वे मुझमें स्थित रहा करते हैं।।७४।।

जो जन दही, दूध, मधु, घृत अथवा जल से मुझे स्नान कराते हैं, वे जन वार्धक्य एवं मृत्यु के उस पार हो जाया करते हैं।।७५।।

यः श्राद्धे भोजनं दद्याद् विप्रेभ्यः श्रद्धयान्वितः। सोऽमृताशी भवेन्नूनं त्रिदिवे सुरपूजितः॥७६॥
व्रतोपवासैर्होमैर्वा नैवेद्यैश्चरुभिस्तथा। यजन्ते ब्राह्मणा ये मां परया श्रद्धयान्वितः॥७७॥
षष्टिं वर्षसहस्राणि उषित्वा दिवि ते ततः। ऐश्वर्यं प्रतिपद्यन्ते मर्त्यलोके पुनः पुनः॥७८॥
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रः स्त्री वापि संयतः। शैलेश्वरं तु य स्थानं भक्तितः समुपासते।
मत्पार्षदः स तु भवेत् सततं सहितःसुरैः॥७९॥
शैलेश्वरं परं गुह्यं गतिः शैलेश्वरं परम्। शैलेश्वरात् परं क्षेत्रं न क्वचिद् भुवि विद्यते॥८०॥
ब्रह्महा गुरुहा गोघ्नः स्पृष्टो वै सर्वपातकैः। क्षेत्रमेतदनुप्राप्य निर्मलो भवते नरः॥८१॥
विविधान्यत्र तीर्थानि सन्ति पुण्यानि देवताः। येषां तोयैर्नरः स्पृष्टः सर्वपापैः प्रमुच्यते॥८२॥
क्रोशं क्रोशं सुरै रूपं संहृत्य च विनिर्मितम्। तीर्थं क्रोशोदकं नाम पुण्यं मुनिजनप्रियम्॥८३॥
तत्र स्नात्वा शुचिर्दान्तः सत्यसन्धो जितेन्द्रियः।
विमुक्तः किल्बिषैः सर्वैः सर्वमेव फलं लभेत्॥८४॥
अनाशकं व्रजेद् यस्तु दक्षिणेन महात्मनः। शैलेश्वरस्य पुरुषः स गच्छेत् परमां गतिम्॥८५॥
भृगुप्रपतनं कृत्वा कामक्रोधविवर्जितः। विमानेन दिवं गच्छेद् वृतः सोऽप्सरसां गणैः॥८६॥

जो जन उस स्थान पर श्राद्ध में श्रद्धाभाव से ब्राह्मण भोजन कराते हैं, वे अवश्य ही स्वर्ग में देवों से पूजित होते हुए अमृत का भोजन किया करते हैं।।७६।।

जो ब्राह्मण जन परम श्रद्धाभाव से व्रत, उपवास, हवन और नैवेद्य तथा चरु से देवता का पूजन किया करते हैं, वे जनसाठ हजार वर्ष तक स्वर्ग में निवास कर पुनः मर्त्यलोक में भी ऐश्वर्यवान् हुआ करते हैं।।७७-७८।।

जो कोई ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र जन संयमित होकर मेरे स्थान स्वरूप शैलेश्वर की भक्ति के साथ उपासना किया करते हैं, वे जन निरन्तर देवों के साथ मेरा पार्षद बना करते हैं।।७९।।

वैसे शैलेश्वर अत्यन्त गुह्य है। शैलेश्वर परम गति स्वरूप हैं। पृथ्वी पर कहीं भी शैलेश्वर से श्रेष्ठ कोई अन्य स्थान नहीं ही है।।८०।।

ब्रह्मघाती, गुरुघाती, गोवधक और सब पापों से युक्त जन भी इस क्षेत्र को पा कर निर्मल हो जाया करते हैं।।८१।।

यहाँ अनेक प्रकार के तीर्थ और देवता हैं, जिसके जल का स्पर्श हो जाने पर कोई जन समस्त पापों से मुक्त हो जाया करते हैं।।८२।।

रि देवताओं ने कोस-कोस पर स्वरूप धारण कर क्रोशोदक नाम के मुनिजनों को प्रिय पवित्र तीर्थ निर्मित किया हुआ है।।८३।।

वहाँ पवित्रता से स्नान कर एकाग्र मन, जितेन्द्रिय और सत्यप्रतिज्ञ रहने वाले जनसमस्त पापों से रहित होकर सब प्रकार के फल पाते हैं।।८४।।

जो जन महात्मा शैलेश्वर के दक्षिण में स्थित अनाशक तीर्थ में जाया करते हैं, वे जन परम गति को पाया करते हैं।।८५।।

जो जन काम और क्रोध से मुक्त होकर भृगुप्रपतन नाम के तीर्थ की यात्रा किया करते हैं, वे जन अप्सरागणों से समावृत्त विमान से स्वर्ग में जाया करते हैं।।८६।।

भृगुमूले परं तीर्थं ब्रह्मणा निर्मितं स्वयम्। ब्रह्मोद्भेदेति विख्यातं तस्यापि शृणु यत्फलम्॥८७॥
संवत्सरं तु यस्तत्र स्नायते संयतेन्द्रियः। स ब्रह्मलोके विरजे गच्छते नात्र संशयः॥८८॥
तत्र गोरक्षकं नाम गोवृषपदविक्षतम्। दृष्टानि तानि च पुमान् गोसहस्रफलं लभेत्॥८९॥
गौर्यास्तु शिखरं तत्र गच्छेत् सिद्धनिषेवितम्। यत्र सन्निहिता नित्यं पार्वती शिखरप्रिया॥९०॥
लोकमाता भगवती लोकरक्षार्थमुद्यता। तस्यास्तु सालोक्यमगात् तामेवार्च्याभिवाद्य च॥९१॥
त्यजते यस्तनुस्तस्या ह्यधस्ताद् वाग्वतीतटे। उमालोके व्रजेदाशु विमानेन विहायसा॥९२॥
तीर्थं ब्रह्मोदयं नाम पुण्यं पापप्रणाशनम्। स्तनकुण्डे उमायास्तु यः स्नायात् खलु मानवः।
स्कन्दलोकमवाप्नोति भूत्वा वैश्वानरद्युतिः॥९३॥
तीर्थं पञ्चनदं प्राप्य पुण्यं ब्रह्मर्षिसेवितम्। अग्निहोत्रफलं तत्र स्नानमात्रे प्रपद्यते॥९४॥
नकुलोहेन मतिमान् स्नापयेत् प्रयतात्मवान्।
जातिस्मरः स तु भवेत् सिध्यते चास्य मानसम्॥९५॥
तस्यैवोत्तरतस्तीर्थमपरं सिद्धसेवितम्। नाम्ना प्रान्तकपानीयं गुह्यं गुह्यकरक्षितम्॥९६॥
संवत्सरं यस्तु पूर्णं तत्र स्नायान्नरः सदा। गुह्यकःस भवेदाशु रुद्रस्यानुचरः सदा॥९७॥

साक्षात् स्वयं ब्रह्माजी ने भृगुमूल में श्रेष्ठ तीर्थ घोषित किया है, जो ब्रह्मोद्भेद के नाम से सुख्यात है। उसका भी जो फल हुआ करता है, उसे सुनो।।८७।।

जो जन इन्द्रियों के संयमन कर वहाँ एक वर्ष तक स्नान करते हैं, वे जन रजोगुण से मुक्त ब्रह्मलोक में जाया करते हैं। इसमें भी संशय नहीं करनी चाहिए।।८८।।

वहीं पर गोवृषपदविक्षत गोरक्षक नाम का तीर्थ है, जो जन उनका दर्शन करते हैं, वे जनहजारों गायों के दान का फल पाया करते हैं।।८९।।

वहीं सिद्धों से सेवित गौरी के शिखर पर जाना उचित ही है, जहाँ पर निरन्तर शिखर प्रिया पार्वती निवास किया करती हैं।।९०।।

इस प्रकार लोकमाता भगवती निरन्तर लोक की रक्षा हेतु सन्नद्ध रहा करती है। उनकी पूजा और अभिवादन कर कोई भी जन उनका सालोक्य पाया करते हैं।।९१।।

जो जन उसके ही नीचे वाग्मती के तीर पर शरीर त्याग किया करते हैं, वे तत्क्षण ही आकाश में चलने वाले विमान से उमा के लोक में जाया करते हैं।।९२।।

जो जन उमा के स्तन कुण्ड में स्नान करते हैं, वे जन अग्नि के समान तेजस्वी होकर स्कन्दलोक को पाया करते हैं।।९३।।

जो जन ब्रह्मर्षियों से सेवित पवित्र पञ्चनद तीर्थ में जाया करते हैं, वे जन वहाँ पर मात्र स्नान कर अग्निहोत्र करने का-सा फल पा जाया करते हैं।।९४।।

उसी के उत्तर दिशा में सिद्धों से सेवित प्रान्त कपानीय नाम के गन्धर्वों से रक्षित अन्य तीर्थ भी है। जो जननित्य उसमें पूरे एक वर्ष तक स्नान करते हैं, वे तत्क्षण ही गुह्यक होकर सदा हेतु रुद्र की सेवा में लग जाया करते हैं।।९५-९७।।

देव्याः शिखरवासिन्या ज्ञेयं पूर्वोत्तरेण वै। दक्षिणेन तु चाग्मत्याः प्रस्रुतं कन्दरोदरात्॥९८॥
तत्र गत्वा जलं स्पृष्ट्वा स्नात्वा चाभ्युक्ष्य मानवः।
मृत्युलोकं न पश्येत कृच्छ्रेषु च न सीदति॥९९॥
गत्वा सुन्दरिकातीर्थं विधिना तीर्थवादिकः। तत्र स्नात्वा भवेत् तोये रूपवानुत्तमद्युतिः॥१००॥
त्रिसन्ध्यं तत्र गच्छेत पूर्वेण विधिवन्नरः।
तत्र सन्ध्यामुपासित्वा द्विजो मुच्येत किल्बिषात्॥१०१॥
वाग्वत्या मणिवत्या च संभेदे पापनाशने। अहोरात्रं वसेद् यस्तु रुद्रजापी द्विजः शुचिः॥१०२॥
स भवेद् वेदविद् विद्वान् यज्वा पार्थिवपूजितः। तारितं च कुलं तेन सर्वं भवति साधुना॥१०३॥
वणाऽवरोऽपि यः कश्चित् स्नात्वा दद्यात् तिलोदकम्।
तर्पिताः पितरस्तेन भवेयुर्नात्र संशयः॥१०४॥
यत्र यत्र च वाग्वत्यां स्नाति वै मानवः सदा। तिर्यग्योनिं न गच्छेत समृद्धे जायते कुले॥१०५॥
वाग्वत्याः प्रभवत्याश्च तीर्थं। देवर्षिसेवितम्।
धीमान् गच्छेत विधिना कामक्रोधविवर्जितः॥१०६॥
गङ्गाद्वारे तु यत् प्रोक्तं स्नानपुण्यफलं महत्। स्नानस्य तद्दशगुणं भवेदत्र न संशयः॥१०७॥

फिर शिखरवासिनी देवी के पूर्वोत्तर दिशा में तथा वाग्मती के दक्षिण दिशा में स्थित कन्दरा के अन्दर से उत्पन्न पापनाशकपवित्र ब्रह्मोदय नाम का तीर्थ है। जो जन वहाँ जाते, जल का स्पर्श करते, स्नान करते या जल सिंचन करते हैं, वे जन मृत्यु लोक का कभी दर्शन नहीं किया करते हैं और संकट से भी कष्ट नहीं पाया करता।।९८-९९।।

इस प्रकार सविधि तीर्थयात्रा का संकल्प कर सुन्दरिका तीर्थ में पहुच कर वहाँ के जल में स्नान करने वाले जन अवश्य ही रूपवान् और उत्तम तेज से सम्पन्न हो जाया करते हैं।।१००।।

जो कोई द्विजजन उसके पूर्व की दिशा में तीन सन्ध्याओं में पहुँचकर सविधि सन्ध्योपासना किया करते हैं, वे पापमुक्त हो जाया करते हैं।।१०१।।

जो कोई द्विजजन पवित्रता के साथ रुद्र मन्त्र का जप करते हुए वाग्मती और मणिवती के पापनाशक संगम पर एक दिन और रात्रि निवास किया करते हैं, तो वे वेदों का मर्मज्ञ, यज्ञ करने वाला, विद्वान् और पार्थिवपूजन हुआ करते हैं। वे साधु जनसम्पूर्ण को तारने वाला हुआ करते हैं।।१०२-१०३।।

यहाँ पर निम्न आदि वर्ण का भी जो जन स्नान कर अपने पितरों को तिल और जल अर्पित करते हैं, वे भी निःसंशय पितरों को तार देते हैं।।१०४।।

जो जन नित्य वाग्मती में जहाँ कहीं भी स्नान करता है, वे जन कभी भी तिर्यग्योनि में उत्पन्न नहीं हुआ करते हैं, पुनः वे सम्पन्न कुल में ही जन्म लिया करते हैं।।१०५।।

जो कोई बुद्धिमान् जन काम व क्रोध से मुक्त होकर देवर्षियों से सेवित इस वाग्वती और प्रभवती के तीर्थ में जाया करते हैं, उन्हें यहाँ निःसन्देह गंगाद्वार में स्नान करने का जो महान् पवित्र फल बतलाया गया है, उसकी अपेक्षा दस गुना फल मिलता है।।१०६-१०७।।

अत्र विद्याधराः सिद्धा गन्धर्वा मुनयः सुराः। स्नानमेतदुपासन्ते यक्षाश्च भुजगैः सह॥१०८॥
स्वल्पमप्यत्र यत्किंचिद् द्विजेभ्यो दीयते धनम्। तदक्षयं भवेद् दातुर्दानपुण्यफलं महत्॥१०९॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन करणीयं च देवताः। वरिष्ठं क्षेत्रमेतस्मान्नान्यदेव हि विद्यते॥११०॥
तस्मिन् श्लेष्मातकवने पुण्ये त्रिदशसेविते। यत्र यत्र मया देवाश्चराता मृगरूपिणा॥१११॥
आसितं स्वपितं यातं विहृतं वा समन्ततः। तत्र तत्राभवत् सर्व पुण्यक्षेत्रं च सर्वतः॥११२॥
शृङ्गमेतद् त्रिधाभूतं सम्यक् प्रश्रयतामराः। गोकर्णेश्वर इत्येतत् पृथिव्यां ख्यातिमेष्यति॥११३॥
एवं संदिश्य विबुधान् देवदेवः सनातनः। अदृश्य एव विबुधैः प्रयातस्तूत्तरां दिशम्॥११४॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे त्रयोदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२१३॥

यहाँ विद्याधर, सिद्ध, गन्धर्व, मुनि, देवता, यक्ष आदि जन नागों के साथ स्नान और आराधना किया करते हैं॥१०८॥

जो जन यहाँ ब्राह्मणों को अल्प धन भी प्रदान करते हैं, उन दान करने वाले को दान के पुण्य का अक्षय और महाफल मिलता है॥१०९॥

हे देवो! अतएव सभी प्रकार से प्रयासपूर्वक इस श्रेष्ठ क्षेत्र की यात्रा करनी चाहिए। क्योंकि इस क्षेत्र से श्रेष्ठ अन्य कोई क्षेत्र नहीं है॥११०॥

हे देवो! मैं मृग स्वरूप में घूमते हुए देवों से सेवित उस पवित्र श्लेष्मातक वन में जहाँ-जहाँ बैठा, सोया, चला अथवा मैंने जहाँ रमण किया, वे सभी स्थान सर्वत्र पूरे रूप से पुण्यक्षेत्र हो गये॥१११-११२॥

हे देवो! अच्छी तरह ध्यान से सुनो। तीन भागों में विभक्त हुआ शृङ्ग पृथ्वी पर गोकर्णेश्वर नाम से सुख्यात हो सकेगा॥११३॥

इस प्रकार देवताओं को उपदेश कर सनातन देव देव शंकर देवों से अदृष्ट रहकर उत्तर दिशा की तरफ चलते चले गये॥११४॥

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में गोकर्णेश्वर और शैलेश्वर की उत्पत्तिनामक दो सौ तेरहवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमाग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥२१३॥

चतुर्दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

अथ गोकर्णेश्वरमाहात्म्यम्

ब्रह्मोवाच

तस्मात् स्थानादपक्रान्ते त्र्यम्बके मृगरूपिणि। अन्योन्यं मन्त्रायित्वा तु मया सह सुरोत्तमाः॥१॥
त्रिधा विभक्तं तच्छृङ्गं पृथक्पृथगवस्थितम्। सम्यक् स्थापयितुं देवा विधिदृष्टेन कर्मणा॥२॥
स्थापितं दिवि नीत्वा वै शृङ्गाग्रं वज्रपाणिना। मया तत्रैव तन्मध्यं स्थापितं विधिवत् प्रभोः॥३॥
देवैर्देवर्षिभिश्चैव सिद्धैर्ब्रह्मर्षिभिस्तथा। गोकर्ण इति विख्यातिः कृता वैशेषिकी वरा॥४॥
विष्णुना देवतार्थेन तन्मूलं स्थापितं ततः। तस्य शृङ्गेश्वर इति नाम तत्राभवन्महत्॥५॥
ततस्तत्रैव भगगवांस्तस्मिन् शृङ्गे त्रिधा स्थिते। सान्निध्यं कल्पयामास भागेनैकेन सोन्मनाः।
शतं तस्य तु भागानामात्मनो निहितं मृगे॥६॥
तस्मादेकं समुत्सृज्य भागं शृङ्गत्रये विभुः। मार्गाणि तच्छरीरेण निर्याय भगवान् हरः॥७॥
शैशिरस्य गिरेः पादं प्रपेदे स्वयमात्मनः। शतसंख्या स्मृता व्युष्टिस्तस्मिञ्छैलेश्वरे विभोः।
त्रिधा विभक्ते शृङ्गेऽस्मिन्नेकाग्रगतिनि प्रभोः॥८॥

अध्याय-२१४

गोकर्णेश्वर माहात्म्य और गोकर्ण तीर्थों की उत्पत्ति

ब्रह्मा ने कहा कि मृगस्वरूप त्र्यम्बक शिव के इस प्रकार उस स्थान से विलीन होने पर उन श्रेष्ठ देवों ने मुझसे परामर्श किया।।१।।

फिर तिथि के अनुकूल विधियों से अच्छी तरह स्थापना कार्य हेतु तीन खण्डों में विभाजित उस शृङ्ग को अलग-अलग रखा गया।।२।।

वज्रपाणि इन्द्र ने अपने हाथ लगे उस शृङ्ग खण्ड के अग्रभाग को स्र्ग में तो जाकर स्थापित किया। मैंने उसके मध्य भाग को सविधि वहीं प्रभु के क्षेत्र में स्थापित कर दिया।।३।।

फिर देवों, देवर्षियों, सिद्धों, ब्रह्मर्षियों ने गोकर्ण नाम से उस स्थान की विशेष प्रकार की उत्तम ख्याति की। फिर भगवान् विष्णु ने भी उस शृङ्ग के मूलभाग को उसी देवतीर्थ में प्रतिष्ठापित किया। उसका वहाँ शृङ्गेश्वर यह नाम प्रसिद्ध हुआ।।४-५।।

फिर अत्यन्त जिज्ञासु भवान् शिव ने तीन भागों में विभाजित उस शृङ्ग के वहाँ स्थित भाग में अपने एक अंश की सन्निधि वश सन्निहित किया। फिर उस भाग का सौगुना अंश उनने अपने मृगशरीर में प्रतिष्ठित किया।।६।।

फिर विभु भगवान् हर अपने मृगरूप सींग के तीन भागों में से एक भाग के अलावे अपने उस मृगरूप शरीर से विविध मार्गों पर चल पड़े।।७।।

वे अपने मृगस्वरूप शरीर से साक्षात् स्व्यं शिव शैशिर पर्वत का तलहटी में गये। फिर उस शैलेश्वर पर विभु शिव की सौ गुनी स्थिति हुई है। फिर तीन भागों में विभाजित इस अंग में प्रभु ने एक भाग की स्थिति हुई।।८।।

ततः सुरासुरगुरं देवं भूतमहेश्वरम्। आगम्य तपसोग्रेण वव्रिरे विविधान् वरान्।
देवदानवगन्धर्वाः सिद्धयक्षमहोरगाः॥९॥
श्लेष्मातकवनं कृत्स्नं सर्वतः परिमण्डलम्। तीर्थयात्रां पुरस्कृत्य प्रादक्षिण्यं प्रचक्रमुः॥१०॥
फलान्निर्दिश्य तीर्थानां तथा क्षेत्रफलं च यत्। यथास्थानानि ते तस्मान्निवृत्ताश्च सुरास्ततः॥११॥
एवं तत्र निवर्त्तेषु देवतेषु तदा ततः। पौलस्त्यो रावणो नाम भ्रातृभिः सह राक्षसैः॥१२॥
आगम्योग्रेण तपसा देवमाराधयद् विभुम्। शुश्रूषयाच परया गोकर्णेश्वरमव्ययम्॥१३॥
यदा तु तस्य तुष्टो वै वरदः शंकरः स्वयम्। तदा त्रैलोक्यविजयं वरं वव्रे स राक्षसः॥१४॥
प्रसादात् तस्य तत् सर्वं वाञ्छितं मनसा हि यत्। अवाप्य च दशग्रीवस्तदिष्टं परमेश्वरात्।
त्रैलोक्यविजयायाशु तत्क्षणादेव निर्ययौ॥१५॥
त्रैलोक्यं स विनिर्जित्य शक्रं च त्रिदशाधिपम्। तदुत्पाट्यानयामास पुत्रेणेन्द्रजिता सह।
शृङ्गाग्रं यत्पुरा नीत्वा स्थापितं वज्रपाणिना॥१६॥
तद् यावद् रावणः स्थाप्य मुहूर्त्तमुदधेस्तटे। संध्यामुपासते तत्र लग्नस्तावदसौ भुवि॥१७॥
न शशाक यदा रक्षस्तदुत्पाटयितुं बलात्। वज्रकल्पं समुत्सृज्य तदा लङ्कां विनिर्ययौ॥१८॥
स तु दक्षिणगोकर्णो विज्ञेयस्ते महामते। स्वयं प्रतिष्ठिस्तत्र स्वयं भूतपतिः शिवः॥१९॥

फिर देवता, राक्षस, दानव, गन्धर्व, सिद्ध, यक्ष और महान् सर्पों ने उग्र तप से सुरों और असुरों के गुरु भूतमहेश्वर देव की सेवा कर विविध प्रकार से वरदान प्राप्त कर सका।।९।।

सबने हर जगह मण्डलाकार समस्त श्लेष्मातक वन की तीर्थ यात्रा का प्रदक्षिणा की।।१०।।

फिर वे देवता तीर्थों का फल तथा क्षेत्र का फल निर्देशित करने के बाद उस स्थान से आ गये।।११।।

फिर वहाँ से समस्त देवों के आ जाने पर पैप्लस्त्य रावण राक्षस अपने भाईयों के सहित वहाँ आकर उग्र तप किया था, फिर उसने श्रेष्ठ सेवा द्वारा उस अव्यय विभु गोकर्णेश्वर देव की उपासना की थी।।१२-१३।।

फिर जिस समय स्वयं साक्षज्ञत् शिव उस पर प्रसन्न हुए, तो उसे वर माँगने को कहा, उस समय उस राक्षस ने त्रिलोकी विजय करने कावर माँगा।।१४।।

फिरवह रावण परमेश्वर की कृपा प्रसाद से मनोवाञ्छित वे सब इष्ट फल सम्पूर्णत से पाकर तत्काल ही त्रिलोक विजय हेतु चल पड़ा।।१५।।

फिर उसके द्वारा अपने पुत्र मेघनाद सहित देवाधिप इन्द्र को जीतने का उस शृङ्ग के अग्रभाग को भी उखाड़ लिया, जिसे वज्रपाणि इन्द्र ने पूर्व में वहाँ लाकर प्रतिष्ठापित किया था।।१६।।

फिर जिस समय रावण सागर तट पर उसे क्षण भर के लिए रखकर सायंकृत्य करने में संलग्न हुआ, तो वह वहीं भूमि पर दृढ़ता से धँस गया।।१७।।

लेकिन फिर जिस समय राक्षस बलात् उसे उखाड़ने की चेष्टा की, तो उससे वह टस से मस नहीं हुआ, तो फिरउस वज्र समान शृङ्गाग्र को वहीं छोड़ कर रावण लंका को चला आया।।१८।।

हे महामते! आप सब तो वहाँ दक्षिण गोकार्य में भूतपति शिव के स्वयं प्रतिष्ठित हुआ जानना चाहिए।।१९।।

एतत् ते कथितं सर्वं मया विस्तरतो मुने। यथावदुत्तरस्थस्य गोकर्णस्य महात्मनः॥२०॥
दक्षिणस्य च विप्रर्षे तथा शृङ्गेश्वरस्य च। शैलेश्वरस्य च विीो स्थित्युत्पत्तिर्यथाक्रमम्॥२१॥
व्युष्टि क्षेत्रस्य महती तीर्थानां च समुद्भवः। प्रोक्त सर्वं मया वत्स किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि॥२२॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे चतुर्दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२१४॥

पञ्चदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

अथ वाराहपुराणपाठफलम्

सनत्कुमार उवाच

उक्तं भगवता सर्वं यथावत् परमेष्ठिना। पृष्टेन संशयं सम्यक् कृत्वाऽर्थपरिनिश्चयम्॥१॥
भगवद्विश्वरूपस्य स्थाणोरप्रतिमौजसः। क्रीडतो लोनाथस्य कानने मृगरूपिणः॥२॥
यथा शरीरं शृङ्गं च पुण्यक्षेत्र प्रतिष्ठितम्। हिताय जगतस्तत्र तीर्थानि च यथाऽभवन्।
तन्मे ब्रूहि महाभाग यथातत्त्वं जगत्पते॥३॥

हेमुने! इस प्रकार मेरे द्वारा आप को उत्तर और दक्षिण में स्थित महात्मा गोकर्ण का यथावत् समस्त तत्त्व विस्तृत रूप से कह दिया गया है। हे ब्रह्मर्षि! शृङ्गेश्वर तथा विभु शैलेश्वर की स्थिति और उसके उत्पन्न होने की कथा को भीक्रम से आपसे कह दिया है।।२०-२१।।

हे वत्स! मैंने क्षेत्र का महान् माहात्म्य और तीर्थों के उत्पन्न होने की सम्पूर्ण कथा को कह दिया। अब तुम और क्या सुनने की कामना करते हो?।।२२।।

॥इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में गोकर्णेश्वर माहात्म्य और गोकर्ण तीर्थों की उत्पत्तिनामक दो सौ चौदहवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमाग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ॥२१४॥

अध्याय–२१५

वाराह पुराण और उसके वाचक पूजन फल

सनत्कुमार ने कहा कि भगवान् परमेष्ठी के पूछे जाने पर समस्त सन्देहास्पद प्रासङ्ग का अच्छी तरह विनिश्चयीकरण कर समस्त प्रसङ्ग का उसी प्रकार से वर्णन किया।।१।।

उस वन में मृगस्वरूप में क्रीड़ा करने वाले अनुपम स्थाणु स्वरूप ओजस्वी लोकनाथ भगवान विश्वरूप शिव का देह और शृङ्ग पुण्क्षेत्रों में जिस भी तरह स्थापित हुआ और जिस प्रकार जगत् कल्याण हेतु वहाँ पर तीर्थ उत्पन्न हुए, उन्हें हे महाभाग जगत्पति! मुझको वास्तविक स्वरूप में कह सुनाने की कृपा करें।।२-३।।

ब्रह्मोवाच

पुलस्त्यो वक्ष्यते शेषंयदतोऽन्यं महामुने। सर्वेषामेव तीर्थानामेषां फलविनिश्चयम्।
कुरुराजं पुरस्कृत्य मुनीनां पुरतोऽयने।।४।।

पुत्रो मे मत्समः सम्यग् वेदवेदाङ्गतत्त्ववित्। यं श्रुत्वा पुरुषस्तात विमुक्तः सर्वकिल्बिषैः।
यशस्वी कीर्तिमान् भूत्वा नन्दते प्रेत्य चेह च।।५।।

श्रोतव्यमेतत् सततं चातुर्वर्ण्यैः सुसंयतैः। मङ्गल्यं च शिवं चैव धर्मकामार्थश्रसाधकम्।।६।।

श्रीभूतिजननं पुण्यमायुष्यं विजयावहम्। धन्यं यशस्यं स्वस्तीयं पापघ्नं शान्तिवर्धनम्।।७।।

श्रुत्वैवं पुरुषः सम्यङ् न दुर्गतिमवाप्नुयात्। कीर्तयित्व व्रजेत् स्वर्गं कल्यमुत्थाय मानवः।।८।।

सूत उवाच

इत्युक्त्वा भगवान् देवः परमेष्ठी प्रजापतिः। सनत्कुमारं संदिश्य विरराम महायशाः।।९।।

एतद् वः कथितं सर्वं मया तत्त्वेन सत्तमाः। महावराहसंवादं धरण्यायास्तदुत्तमम्।।१०।।

यश्चैव कीर्तयेन्नित्यं शृणुयात् भक्तितो नरः। सर्वपापविनिर्मुक्तः स याति परमां गतिम्।।११।।

प्रभासे नैमिषारण्ये गङ्गाद्वारेऽथ पुष्करे। प्रयागे ब्रह्मतीर्थे च तीर्थे चामरकण्टके।
यत् पुण्यफलमाप्नोति तत् कोटिगुणतिं भवेत्।।१२।।

ब्रह्मा ने कहा कि हे महामुने! इसके अलावे जो शेष है, उसे मेरा पुत्र पुलस्त्य बतला सकेंगे। कुरुराज और मुनियों के सम्मुख अयन काल में इन सब तीर्थों के फल के विषय में निश्चित सिद्धान्त का वर्णन वे ही करेंगे।।४।।

चूँकि मेरा पुत्र मेरे समान ही अच्छी तरह वेद-वेदाङ्ग के तत्त्वों को जानने वाला है। हे तात् इस वर्णन को सुनने के बाद मनुष्य समस्त पापों से मुक्त और यशस्वी तथा कीर्त्तिमान् होकर इस लोक में और मरने पर परलोक में भी आनन्दित होता है।।५।।

चातुर्वर्ण के मनुष्यों को अच्छी तरह संयमन के सहित नित्य इस मङ्गलमय, कल्याणकारी और धर्म, अर्थ, काम आदि के साधक तत्त्व को अवश्य ही सुना करना चाहिए।।६।।

इस प्रकार यह ऐश्वर्य और सम्पत्तिप्रद, पवित्र, आयुवर्द्धक, विजयप्रद, धनद, यशप्रद, कल्याणकारी, पाप नाश करने वाला और शान्ति की अभिवृद्धि करने वाला ही है।।७।।

जो जन इसे अच्छी तरह सुनकर कर्म करते हैं,उनकी दुर्गति नहीं होती। सुबह प्रभात काल में जागकर इसका भाजन करने वाले जन स्वर्ग में ही निवास करते हैं।।८।।

सूत ने कहा कि इस प्रकार कहे जाने के बाद भगवान् प्रजापति महायशस्वी परमेष्ठी देव सनत्कुमार को मार्गदर्शन देकर चुप हो गये।।९।।

हे साधुजन! मरे द्वारा आप लोगों को महावराह और धरणी का सम्पूर्ण श्रेष्ठ सम्वाद वास्तविक रूप से कहा गया है।।१०।।

जो जन निरन्तर भक्तिभाव से इस पुराण का भजन और श्रवण करते हैं, वे जन अपने सम्पूर्ण पापों से रहित होकर परम गति प्राप्त करते हैं।।११।।

फिर प्रभास, नैमिषारण्य, गंगाद्वार, पुष्कर, प्रयाग, ब्रह्मतीर्थ और अमर कण्टक तीर्थ में जाकर मनुष्य जो फल प्राप्त किया करता है, उससे भी कोटि गुना फल यहाँ इसके पाठ सुनने और सुनाने से मिलता है।।१२।।

कपिलां द्विजमुख्याय सम्यग् दत्त्वा तु यत् फलम्। प्राप्नोति सकलं श्रुत्वा अध्यायैकेन सत्तमाः॥१३॥
श्रुत्वाऽस्यैव दशाध्यायं शुचिर्भूत्वा समाहितः। अग्निष्टोमातिरात्राभ्यां फलं प्राप्नोति मानवः॥१४॥
यः पुनः सततं शृण्वन् नैरन्तर्येण बुद्धिमान्। पारयेत् परया भक्त्या तस्यापि शृणु यत् फलम्॥१५॥
सर्वयज्ञेषु यत् पुण्यं सर्वदानेषु यत् फलम्। सर्वतीर्थाभिषेकेण यत् फलं मुनिभिः स्मृतम्।
तत् प्राप्नोति न संदेहो वराहवचनं यथा॥॥१६॥
यः स एतत् पठेद् भक्त्या मद्वाक्याद् द्वादशीदिने। तस्य नूनं भवेत् पुत्र अपुत्रस्यापि धारिणि॥१७॥
यस्येदं तिष्ठते गेहे लिखितं पूज्यते सदा। तस्य नारायणो देवः स्वयं तिष्ठति धारिणि॥१८॥
यश्चैतच्छृणुयाद् भक्त्या नैरन्तर्येण मानवः। श्रुत्वा तु पूजयेच्छास्त्रं यथा विष्णुं सनातनम्॥१९॥
गन्धपुष्पैस्तथा वस्त्रैर्ब्राह्मणानां च तर्पणैः। यथा शक्त्या नृपो ग्रामैः पूजयेच्च वसुंधरे॥२०॥
श्रुत्वा तु पूजयेद् यस्तु पौराणं नियतः शुचिः। सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुसायुज्यतां व्रजेत्॥२१॥

॥इति श्रीवराहपुराणे भगवच्छास्त्रे पञ्चदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२१५॥

॥इति श्रीवराहपुराणम्॥

हे सज्जन पुरुषो! ब्राह्मण को कपिला गाय दान करने का जितना फल होता है, वे सब सम्पूर्ण फल इस पुराण के एक-एक अध्याय को सुनने से ही मिलता है। जो जन पवित्रतावस्था में एकनिष्ठ चित्त से इस पुराण के दस अध्याय सुनाकरते हैं, उन्हें अग्निष्टोम और अतिरात्र का फल मिलता है। फिर से यह कि जो जन नित्य भक्ति भावना से इस पुराण को सुनता है, उसका भी जैसा फल हुआ करता है,उन्हें सुनो।।१३-१५।।

मुनिजनों ने सब यज्ञों, सब दानों और सब तीर्थों में स्नान किये जाने का जैसा फल कहा है, उसे मनुष्य निःसंकोच प्राप्त करता है, जिस प्रकार कि वराह भगवान का वचन प्रमाण है।।१६।।

हे धरणि! यदि कोई जन मेरे कहे अनुसार द्वादशी तिथि के दिन भक्तिपूर्वक इस पुराण का पाठ करते हैं, तो वे निश्चयपूर्वक अपुत्र होने पर तत्काल पुत्र पा सकेगा।।१७।।

हे धरणि! जिस किसी जन के घर में यह पुराण लिखित रूप से पूजित हुआ करता है, उसके घर में स्वयं नारायण देव रहा करते हैं। जो जन नित्य भक्तिभाव से इसको सुना करते हैं और सुनकर सनातन विष्णु के समान इस शास्त्र की पूजा करते हैं, वे जन विष्णु में लीन हो जाया करते हैं।।१८-१९।।

हे वसुन्धरे! राजाजनों को यथाशक्ति गन्ध, पुष्प, वस्त्र, ग्रामों आदि द्वारा पूजन कर ब्राह्मणों को प्रसन्न करना चाहिए। जो जन पवित्रता और संयमित होकर सुनने के पश्चात् इस पुराण की पूजा करते हैं, वे जन सम्पूर्ण पापों से रहित होकर विष्णु सायुज्य को प्राप्त कर लेते हैं।।२०-२१।।

।।इस प्रकार भगवच्छास्त्र श्रीवराहपुराण में वाराह पुराण और उसके वाचक पूजन फलनामक दो सौ पन्द्रहवाँ अध्याय बिहार प्रान्त के सहरसामण्डलान्तर्गत दोरमाग्रामसम्वासी श्रीमत्सूर्यनारायणकुलभूषण डॉ. सुरकान्तझा द्वारा वाराणसी के तारामन्दिर में सुसम्पन्न हुआ।।२१५।।

।।इति श्री वराहपुराणम्।।

❖❖❖

***
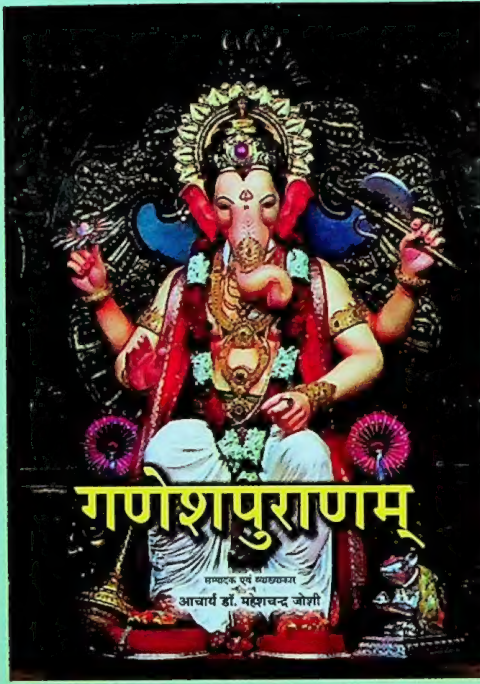
₹ 1800.00 (Set in 2 Vols.)

गणेशपुराणम्

समीक्षात्मक पाठ एवं अनुवाद और परिशिष्ट सहित।

सम्पादक एवं अनुवादक - **डॉ. महेशचन्द्र जोशी**

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस के गौरवपूर्ण प्रकाशनों में चिर प्रतीक्षित श्रीगणेशपुराण का प्रकाशन अद्वितीय गौरव और हर्ष का विषय है। इसका प्रकाशन दो जिल्दों में किया गया है। प्रथम जिल्द में गणेशपुराण के खण्डित, त्रुटित और विसंगत पाठ को संशोधित समीचीन और सुपाठ्य स्वरूप प्रदान करने के साथ ही इसके सटीक अनुवाद और प्रसंगानुकूल अपेक्षित संस्कृत वाङ्मय की सभी विधाओं से प्रमाणों का उद्धरण देने के साथ ही टिप्पणियों में पाठान्तर को भी स्थान दिया गया है और इसकी विस्तृत भूमिका में पुराणों की विषय-वस्तु की चर्चा सहित गणेशपुराण की प्राचीनता, इस पुराण में गणेशोपासना की पृष्ठभूमि में वर्णित भौगोलिक परिवेश, पंचदेवोपासना में गणेश पूजा का महत्त्व, विघ्न-विनायक गणेश जी की अग्रपूज्यता, वेदों, पुराणों, आगमों और तन्त्रग्रन्थों में गणपति उपासना के सप्रमाण गम्भीर विवेचन के साथ ही इस पुराण की कथा के जिज्ञासुओं और कथावाचकों की सुविधा हेतु हिन्दी भाषा में और संस्कृत भाषा में भी गणेशपुराण के सभी अध्यायों की कथा का सारांश देने के साथ ही अन्य अनेक सूचनाऐं उपलब्ध करायी गयी हैं। इस पुराण के अन्त में संशोधित पाठानुसार गणेश-सहस्त्रनामावली और शब्दानुक्रमणियों और श्लोकानुक्रमणी को द्वितीय जिल्द में निबद्ध किया गया है। **प्राचीन भारत में दाम्पत्यमर्यादा** जैसे पुरस्कृत ग्रन्थ के लेखक डॉ. महेशचन्द्र जोशी ने सर्वदेव प्रतिष्ठा विषयक **प्रतिष्ठामयूख** को जिस प्रकार उपयोगी और लोकप्रिय स्वरूप प्रदान किया था उससे भी अधिक वैदुष्यपूर्ण निष्ठा-भाव से इस गणेशपुराण को सम्पूर्ण भारतवर्ष में प्रथम बार इतने उत्कृष्ट रूप में सम्पादित करने के उनके प्रशंसनीय प्रयास से यह पुराण चौखम्बा संस्कृत सीरीज के प्रकाशनों में अद्वितीय मणिरत्न के समान समादरणीय और संग्रह योग्य बन गया है।

इस गणेशपुराण की भूमिका में विद्वान् लेखक ने यह विवेचन किया है कि सम्पूर्ण भारतवर्ष में एकमात्र गणेशजी ही ऐसे देवता हैं जो अनादिकाल से सर्वत्र सर्वपूज्य रहे हैं और विदेशों में भी बौद्ध धर्मानुयायी उनकी पूजा करते हैं। गणेशपुराण के उपासनाखण्ड में गणेश जी के आविर्भाव, उनके स्वरूप, उनके नाना अवतारों और उनकी उपासना से देवों, ऋषि-मुनियों और अन्य भक्तों की मनोरथ सिद्धि के वर्णन और उनकी उपसना-पद्धति आदि विषयों का वर्णन है। इस पुराण के क्रीडाखण्ड में भी गणेशजी के नाना अवतारों, उनकी बाल-लीलाओं तथा आसुरी शक्तियों के दमन और नाना चमत्कारों का वर्णन है। गणेश जी जैसी लीलाऐं कर चुके थे प्रायः वैसी ही लीलाऐं उनके हजारों वर्ष पश्चात् अवतार लेने वाले भगवान् कृष्ण ने भी की थी। गणेशपुराण से ही यह विदित होता है कि गणेश जी विकलांगों को सुन्दर काया देते हैं, रोगी को नीरोग बनाते हैं, निर्धन को धनी, अपुत्री को पुत्रवान्, वन्ध्या को पुत्रवती बनाते हैं तथा कन्या को सुन्दर पति प्रदान करते हैं। गणेशपुराण की फलश्रुति है कि जिस घर में यह पुराण रहता है वहाँ भूत-प्रेत आदि और ग्रहों आदि की पीड़ा नहीं होती है।

Also can be had from : **Chowkhamba Sanskrit Series Office, Varanasi.**

ISBN : 978-81-218-0348-9